"अंक" से "एक्सट्रैक्टम् साइपिपीडीयाई फ्लुइडम्"।

शब्द संख्या — १०६२६

❀ श्री ❀

चुनार आयुर्वेदीयानुसंधान--ग्रन्थमाला का तृतीय पुष्प

(आयुर्वेदीय कोष का द्वितीय खण्ड)

आयुर्वेदीय विश्व-कोष

An Encyclopaedical Ayurvedic Dictionary

(With full details of Ayurvedic, Unani and Allopathicterms.)

अर्थात्

आयुर्वेद के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग सम्बन्धी विषय यथा निघण्टु, निदान, रोग-विज्ञान, विकृति-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, रसायन-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, कीटाणु-विज्ञान इत्यादि प्रायः सभी विषय के शब्दों एवं उनकी अन्य भाषा (देशी, विदेशी, स्थानीय एवं साधारण बोलचाल) के पर्यायोंका विस्तृत व्याख्या सहित अपूर्व संग्रह। व्याख्या में प्राचीन व अर्वाचीन मतों का चिकित्सा-प्रणाली-त्रयके अनुसार तुलनात्मक एवं गवेषणापूर्ण विवेचन किया गया है। इसमें ४००० से अधिक वनस्पतियों, समग्र खनिज एवं चिकित्सा-कार्य में आनेवाली प्रायः सभी आवश्यक प्राणि-वर्ग की तथा रासायनिक औषधोंके आजतक की शोधों का सार्वाङ्गीन सुन्दर, सुबोध एवं प्रामाणिक वर्णन है। इसके सिवा इसमें सभी प्राचीन अर्वाचीन रोगों का विस्तृत निदान-चिकित्सादि भी वर्णित है। संक्षेप में आयुर्वेद (यूनानी तथा डॉक्टरी) संबन्धी कोई भी विषय ऐसा नहीं, चाहे वह प्राचीन हो या अर्वाचीन जिसका इसमें (समावेश न हुआ हो।)

लेखक तथा संकलन-कर्त्ता—
श्री बाबू रामजीतसिंह जी वैद्य
श्री बाबू दलजीतसिंह जी वैद्य
रायपुरी चुनार, (यू० पी०)

प्रकाशक—
श्री पं० विश्वेश्वरदयालु जी वैद्यराज
सम्पादक-'अनुभूत योगमाला',
बरालोकपुर इटावा, (यू० पी०)

१ म संस्करण, १००० प्रति
सम्वत् १९९४ वि० तथा सन् १९३७ ई०

मू० ६।) सजिल्द

28.00

श्री पं० विश्वेश्वरदयालु जी के प्रबन्ध से हरिहर प्रेस, बरालोकपुर-इटावा में मुद्रित।

आयुर्वेदीय-विश्व-कोष प्रथम खंड—
प्रथम आवृत्ति··· ··· ···सन् १९३२ ई०
द्वितीय आवृत्ति··· ··· ···फरवरी सन् १९३४ ई०

State Museum Library
Lucknow

4165

प्राक्कथन

इस शीर्षक के अंतर्गत प्रथम खंड में जो कुछ लिखा गया है, हम उसे ही पर्याप्त समझते हैं। अस्तु, यहाँ अब कुछ विशेष न लिखकर, प्रथम खंड की अपेक्षा इसमें क्या-क्या परिवर्तन, परिवृंहण एवं सुधार किए गए हैं, उसे संक्षेप में आपके सम्मुख प्रकट कर देना ही हम इस समय अपना कर्त्तव्य समझते हैं। पूर्व की अपेक्षा इस खंड में अधोलिखित सुधार एवं परिवर्त्तन किए गये हैं--

(१) अपने कई एक मित्रों के समुचित आग्रह से अबसे 'आयुर्वेदीय कोष' के स्थान में इस ग्रंथ का नाम 'आयुर्वेदीय-विश्व-कोष' रक्खा गया, जो ठीक अर्थों में अपने नाम का द्योतक है।

(२) प्रत्येक मूल शब्द के उच्चारक रोमनवर्ण एवं उनके प्रत्येक भाव के समानार्थी अँगरेजी शब्द देना, अनुपयोगी समझकर, इस खंड में उन्हें स्थान नहीं दिया गया।

(३) प्रत्येक आयुर्वेदीय, यूनानी तथा डॉक्टरी औषध, पारिभाषिक शब्द, रोग-निदान-चिकित्सादि की चिकित्सा-प्रणालीत्रय के अनुसार प्रथम खंड की अपेक्षा अधिक खोज एवं गवेषणात्मक रूप से विस्तृत विशद व्याख्या की गई है। उदाहरण के लिए 'आक', 'आँवला', 'आयुर्वेद', 'उन्माद', आदि शब्द अवलोकन करें।

(४) प्रत्येक मूल शब्द को हिंदी मानकर, प्रथम उसका हिंदी-भाषा व्यवहारानुसार लिंग-निर्धारण किया गया है और संस्कृत होने पर उसके संस्कृत भाषा-व्यवहार के अनुसार भी लिंग का निर्देश कर दिया गया है।

अनेक मित्रों ने इस ग्रंथ के निर्माण में अनेकानेक प्रकारकी सहायता प्रदानकी है, उनको हम हार्दिक धन्यवाद समर्पण करते हैं। इसके अतिरिक्त और भी जो जो सज्जन ज्ञात वा अज्ञात रूप में इस कार्य में सहायक हुए हैं वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। पं० विश्वेश्वरदयालुजी वैद्यराज संपादक अनुभूत योगमाला तो हम लोगों के विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जो उन्होंने काफ़ी अर्थ व्ययकर इस बृहत्काय ग्रंथ का प्रकाशनकर हम लोगों का उत्साह वर्द्धित किया है। आपही के उत्साह-वर्द्धन और पथप्रदर्शन का यह फल है कि यह भाग इस सजधज के साथ इतनी शीघ्रता से अत्यल्प समय में प्रकाशित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

अन्त में इसमें हम अनेक त्रुटियों का पद-पद पर अनुभव कर रहे हैं और साथ ही अपनी इस गुरुतर कार्य संपादन की अक्षमता का भी।

किसी ने सत्य कहा है—

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिव वामनः॥

यद्यपि प्रूफ संशोधन में हमारे सहयोगियों ने अतिशय प्रयत्न किया है; तथापि शीघ्रता के कारण अनेकानेक त्रुटियाँ रह गई हैं। आशा है, विज्ञ पाठकवृन्द उन्हें सुधारकर अभिप्रेत अर्थ निकालनेकी कृपा करेंगे एवं उनसे हमें सूचित करेंगे, जिसमें वे अगले संस्करण में सुधार दिये जायँ। इति।

आयुर्वेदीयानुसंधान-प्रासाद
रायपुरी-चुनार (यू० पी०)
चैत्र शुक्ल रामनवमी तदनुसार
१९ अप्रैल सन् १९३७ ई०

विदुषां विनयावनत—
बाबू रामजीतसिंहजी,
बाबू दलजीतसिंहजी वैद्य।

आयुर्वेदीय-विश्व-कोष के प्रथम खंड के विषय में भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत के जगन्मान्य सुविख्यात योग्य आयुर्वेदीय-पंडितों एवं प्रमुख आयुर्वेदीय एवं अन्य पत्रकारों की सम्मतियों का सार—

॥ श्री श्रीगौरकृष्णः शरणम् ॥

श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिकसार्वभौम साहित्यदर्शनाद्याचार्य तर्करत्न न्यायरत्न गोस्वामी दामोदर शास्त्री काशी—

अष्टाङ्गास्त्रेऽभाजां सनियमकलितादभ्रवस्तुप्रभावः,
प्रोद्बोधानेकचेष्टाप्रवणितहृदयाभिज्ञ शारीरिकाणाम् ।
योग्यव्युत्पत्तिचुञ्चुर्गगनशरदल व्योमभूमानजुष्टै,
रायुर्वेदीय कोषः प्रमदमकृत नोऽकारपूर्वस्थशब्दैः ॥

अर्थ—अपने अपने गुणों के साथ बहुत सी औषधियों के प्रभावों को बतलाने में यथोचित यत्न करनेवाले पंडित और वैद्यक-शास्त्र के अष्टांगो का विशेष परिशीलन करनेवाले वैद्यों की योग्यता को प्रकाशित करनेवाले दशहज़ार ढाई सौ शब्दों से युक्त आयुर्वेदीय-कोष ने हमको हर्षान्वित किया।

इह किलेटावाप्रान्तस्थबरालोकपुरतः प्रकाशितायुर्वेदीयकोष प्रथमखण्डमकारादिकाज्ञातयद्मान्त सार्द्ध-शतद्वयाधिक दससहस्रशब्दाढ्यावलोक्य जिज्ञास्वामयाविजनतासंतोषावह नामतोऽवधाय विनिर्णीय चागदङ्कार चयसध्रीचीनताम परेषामप्यलङ्कर्णीमतां विनिश्चिन्वन् प्रसाद्यमान मानसोऽदसीयपरिपूर्णतामनन्तरायां जगदीश्वरभ्यर्थयमानां विरमति सुधाविस्तरादतिशयम्। —चैत्र शुक्ल तृतीयायां, १९९० वैक्रमाब्दे, काश्याम्

अर्थ—वर्तमान समय में इटावा जिले के प्रसिद्ध बरालोकपुर से प्रकाशित ‘आयुर्वेदीय कोष’ के अकारादि अज्ञातयद्मान्त दसहज़ार ढाईसौ शब्दों से सुशोभित प्रथम खंड को देखकर और यह समझ कर कि इससे जिज्ञासु रोगियों को संतोष होगा, वैद्यसमूह को सहायता मिलेगी, एवं औरों के प्रति इसकी उपयोगिता का निश्चिय करता हुआ और प्रसन्न मन से जगदीश्वर के निकट उक्त कोष की निर्विघ्नता पूर्णता की प्रार्थना करता हुआ वृथा विस्तार से विरत होता हूँ।

श्री चरकाचार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालयायुर्वेद कालेजाध्यक्ष
स्वर्गीयश्री धर्मदासजी कविराजः

नूनमिटावाप्रांतीय बरालोकपुर पत्तनीय श्री विश्वेश्वरदयालु शर्ममुद्रापितः श्रीमद्दलजीतसिंह रामजीत-सिंहाभ्यांविनिर्मित संस्कृताद्यनेक भाषासमलङ्कृतः कोषश्चिकित्सक जनानाम्परमोपकारको वरीवर्तिमन्येयंसम्प्रति-निरुपमस्संवृत्त इति प्रमाणयति।

—पौष शुक्ल १, गुरौ सं० १९९० ।

व्याकरण साहित्यशास्त्री आयुर्वेदाचार्य भिषगाचार्य भिषग्शिरोमणि विद्यावारिधि श्री सत्य नारायण शास्त्री महोदयस्य सम्मतिः—

कौबेर कोषइव सर्व गिरोद्गृतोऽयंयोलालसीति भिषजामुपकारकोवै।
श्री रामजीत दलजीतपदाभिधाभ्याम् सश्वन्मुदा विरचितो ह्युपमा विहीनः ॥ १ ॥
यश्चामर प्रभृति कोषकृतस्समग्रान्, सद्भावजुष्ट मदनादिकृतीनजस्रम्।
भाषास्वकेन परिभाव्यचचा चकास्ति, सोऽयंसदा विजयताम्भवतांसुकोषः ॥ २ ॥
बरालोकपुरस्थेन, विश्वेश्वरदयालुना, मुद्रापितोऽन्वयं कोषो, भिषजामुपकारकः ॥ ३ ॥
इति प्रमाणी कुरुते, सत्यनारायणाभिधः, वाराणसीयमगस्तस्य, पत्तनीयश्चिकित्सकः ॥ ४ ॥

—पौष शु० १२ गुरौ श्री सं० १९९० ।

भारत प्रसिद्ध, आयुर्वेद मार्तण्ड, नि० भा० वैद्य सम्मेलनों के सभापति-श्रीयादवजी त्रिकमजी आचार्य बम्बई, लिखते हैं—

"आपका भेजा हुआ 'कोष' मिला, इस कोष के प्रसिद्ध करने का आपका प्रयत्न स्तुत्य है। आयुर्वेदीय शब्दों की व्याख्या इसमें देखने को मिल सकती है। केवल एक ही 'कोष' से अनेक कोषों के रखने की तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी। वैद्यों को इसका संग्रह अवश्य करना चाहिये।"

श्री० गणपतिचन्द्र केला, सम्पादक 'धन्वन्तरि' विजयगढ़ (अलीगढ़) से लिखते हैं—

"आयुर्वेदीय-कोष" मिला, हार्दिक धन्यवाद! ऐसा आवश्यक विशाल आयोजन आप उठा रहे हैं, इसके लिये दोनों ही रचयितागण हमारे हार्दिक धन्यवाद को स्वीकार करें।

विश्वेश्वर भगवान् ने प्रकाशितकर वैद्य-समाज का जो उपकार किया है, वह स्तुत्य है। ऐसे विशद विशाल विशेषोपयोगी ग्रंथ के संकलन में समस्त वैद्यसमाज और संस्थाओं को सहायता देकर उत्साह बढ़ाना चाहिये।"

संपादक 'आयुर्वेद संदेश' लाहौर (१५ सितम्बर १९३४ ई०) के अंक में लिखते हैं—

"यह कोष अपनी पद्धति का पहिला ही कोष है, जिसमें वैद्यक, यूनानी और ऐलोपैथी में प्रयुक्त शब्दों के न केवल अर्थ दिये गये हैं, वरन् सम्पूर्ण सर्व मतानुसार व्याख्या की गई है, यथा अश्वगंधा की व्याख्या ५ पृष्ठों में समाप्त की गई है, अर्थात् अश्वगंधा का स्वरूप, पर्याय, अंग्रेजी नाम, वानस्पतिक वर्णन, उत्पत्ति स्थान, आकृति, प्रसिद्ध प्रसिद्ध योग तथा अश्वगंधारिष्ट, अश्वगंधा पाक, अश्वगंधा चूर्ण, अश्वगंधा घृतादि, मात्रा, गुण, अनुपानादि सहित, एवं भिन्न-भिन्न द्रव्योंका शारीर रोगोंपर सर्वमतानुसार अच्छा प्रकाश डाला गया है, जिससे पाठक पर्याप्त ज्योति प्राप्त कर सकते हैं। इस विस्तृत व्याख्या के कारण ही कोष के प्रथम भाग में जो ९०० पृष्ठों में विभक्त है, १०२५० शब्दों का वर्णन है। इस भाग में अनुक्रमणिकानुसार अभी तक 'अ' अक्षर की भी समाप्ति नहीं हुई। यदि इसी शैली का अनुकरण अगले भागों में भी किया गया, तो कई भागों में समाप्त होगा। पुस्तकका आकार चरक तुल्य २२×२९=८ है। इसे आयुर्वेदका "महाकोष" समझना चाहिए।"

संपादक–'आरोग्य दर्पण', अहमदाबाद, जनवरी सन् १९३५ ई० के अङ्क में लिखते हैं—

"यह आयुर्वेद का एक अभूतपूर्व महान् कोष है, जो दीर्घ अध्ययन और परिश्रम के पश्चात् लिखा गया है। इस भाग में 'अ' से 'अज्ञातयक्ष्मा' तक के शब्दों का संग्रह किया है। इसमें आयुर्वेद की सभी शाखाओं से सम्बन्ध रखनेवाले शब्दों का संग्रह है और शब्दों का केवल अर्थ ही नहीं दिया गया; बल्कि विस्तृत विवेचन किया गया है। वास्तव में इसे 'शब्द-कोष' नहीं, 'विश्व-कोष' कहना चाहिए और कोष की भाँति नहीं, साहित्य ग्रंथों की भाँति पढ़ना चाहिए। इसमें केवल प्राचीन वैद्यक (भारतीयायुर्वेद) के ही नहीं, अपितु यूनानी और डॉक्टरी के शब्दों को भी संगृहीत किया गया है। हम इस कोष का हृदय से स्वागत करते हैं और प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी से प्रार्थना करते हैं कि वह इसकी एक-एक प्रति अवश्य खरीदकर लेखकों और प्रकाशक का उत्साह बढ़ावे। यह कोष आयुर्वेद के छोटे से छोटे विद्यार्थी से लेकर दिग्गज पंडितों तक के लिए भी उपयोगी है।

हम इस कोष को इतना उपयोगी समझते हैं, कि इसे आयुर्वेदिक साहित्य में एक उज्ज्वल रत्न कहने में संकोच नहीं होता।

श्रीमान् बाबू जुगलकिशोर जी बड़वानी–सी० आई० लिखते हैं—

आपका 'आयुर्वेदीय कोष' यह खंड भाग मिला। प्रथम बहुत अच्छा निकला है। ऐसे कोष के प्रकाशित करने पर आप बधाई के पात्र हैं। वैद्य लेखकों का परिश्रम शतमुख से सराहनीय है।"

श्रीमान् पं० आयुर्वेदाचार्य कृष्णप्रसादजी त्रिवेदी बी० ए० चाँदा (सी० पी०) से लिखते हैं—

"हमारे मित्रद्वय वैद्यराज, पुरुषसिंहों ने जो परिश्रम किया है और कर रहे हैं, इसके लिए केवल आयुर्वेद ही नहीं, अपितु हिन्दी भाषाभिज्ञ समस्त संसार, उनका तथा प्रकाशक महोदय, सर्वमान्य चिकित्सक, वैद्यराज पं० विश्वेश्वरदयालुजीका आभारी है। यह केवल 'आयुर्वेदीय कोष' ही नहीं, प्रत्युत 'आयुर्वेदी विश्व-कोष' कहलाने के योग्य है। यद्यपि 'आयुर्वेद' शब्द में इस व्यापक अर्थ का समावेश है तथा लेखकों ने प्रस्तावना में इसका स्पष्टीकरण भी किया है, तथापि आधुनिक काल में यह शब्द एक प्रकार से योग रूढ़ अर्थ का ही बोध कराता है। जैसे यद्यपि 'पंकज' में कीचोत्पन्न समस्त वस्तुओं का समावेश है, तथापि सर्वसाधारणतः कमल' के ही अर्थ में उसका उपयोग किया जाता है। तद्वत् 'आयुर्वेद' से यद्यपि संसार की सर्व औषध प्रणालियों का बोध व्यापक अर्थ में होता है, तथापि वह आर्यों की वेदोक्त प्राचीन निदान एवं चिकित्सा-प्रणाली का ही बोधक है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में अकल, अकलंक, अकाम, अकुलीन, अखिन्न, अकुशल इत्यादि कतिपय सर्व साधारण शब्दों का भी अर्थ दिया गया है। इसीसे इस ग्रंथरत्न को केवल 'आयुर्वेदीय कोष' के नाम से पुकारना, उसकी कीमत को घटाना है। अब आगे इस ग्रंथ को 'आयुर्वेदीय विश्व-कोष' इस नाम से प्रसिद्ध करने से इसका विशेष महत्व एवं प्रचार होगा, ऐसी मेरी विनीत सूचना है।

ग्रंथ के इस प्रथम खंड में 'अ' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाले प्राय: सब शब्दों का अर्थ बड़ी गवेषणापूर्ण दृष्टि से लिखा गया है। अभी केवल मामूली तौर पर मैंने इसे देखा है।"

वैद्य भूषण श्री हरिनन्दन शर्मा, फलौदी (मारवाड़) से लिखते हैं—

"'आपका 'कोष' प्राप्त हुआ, धन्यवाद! इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। आयुर्वेद क्षेत्र में एक बड़ी पूर्ति हुई है। अभी तक कोई कोष ऐसा नहीं था, जो डॉक्टरी व यूनानी तथा अन्य भाषाओं की वैद्यकीय औषधियों के पर्याय गुणादि को प्रगट करे।"

◆

हमारे शरीर की रचना के यशस्वी लेखक स्वर्गीय डा० त्रिलोकीनाथजी वर्मा L. M. S. सिविलसर्जन जौनपुर, लिखते हैं—

"निस्संदेह आपका 'कोष' एक अत्यन्त उपयोगी ग्रंथ है। प्रत्येक चिकित्सा प्रेमी को इससे लाभ उठाना चाहिए।"

B. R. चौबे, फरुखाबाद, लिखते हैं—

"आयुर्वेदीय-कोष" को देख हृदय को अति ही प्रसन्नता हुई। संकलन-कर्त्ता और प्रकाशक दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।"

देखिए "स्वराज्य" खँडवा, ११ जून सन् १९२५ की संख्या ४१ में अपने कैसे जोरदार उद्गार प्रगट करता है!

"इस विषय में आजकल जितने भी ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, उनमें प्रस्तुत 'आयुर्वेदीय कोष' को ऊँचा स्थान मिलना चाहिए। ग्रंथकारों ने इस कोष के संकलन में जो परिश्रम किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है।"

सर्वाधिक प्राचीन हिंदी साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' प्रयाग, अपने अगस्त सन् १९३५ ई० के अंक के पृष्ठ १९१ पर इसकी आलोचना करते हुये, लिखती है—

"इसमें केवल आयुर्वेदीय औषधियों के ही नाम नहीं संग्रह किए गए हैं; अपितु यूनानी तथा डाक्टरी औषधियों के नाम भी दिये गये हैं। इस प्रकार इसके प्रणयन में इस बात का ध्यान रखा गया है, कि चिकित्सा-प्रणाली-त्रय के औषधि समूहों का इसमें समावेश हो जाय। इसकी रचना विश्व-कोष के ढंग पर की गई है और इसमें संदेह नहीं कि विद्वान् लेखकों ने इस उपयोगी ग्रंथ के बनाने में बड़ा परिश्रम किया है। प्रकाशक भी प्रशंसा के पात्र हैं। चिकित्सकों तथा चिकित्सा-शास्त्र प्रेमियों को इसका संग्रहकर प्रकाशक को प्रोत्साहन देना चाहिये।"

इनके अतिरिक्त सैकड़ों अन्य सम्मतियाँ भी हैं, जो स्थानाभाव से यहाँ नहीं दी जा सकीं और "अनुभूत योगमाला" में वे समय-समय पर निकल भी चुकी हैं।

King George's Medical College

Department of Pharmacology

LUCKNOW

23 rd. March 1936

Dear sir,

I thank you for sending us the 1st. Volume of your 'Ayurvediya-Kosha.' Work of this nature involves monumental labour and I have no doubt will be highly appreciated by those interested in the Indigenous system of medicine. I wish you success in your undertaking.

Yours Faithfully

B. N. Vyas. M. B.

ROYBAHADUR.

'I have glanced through the pages of the so called 'Ayurvedic kosha' (Vol. I.) Dictionary of words used in Ayurvedic, Unani and Allopathic systems of medicine, compiled by Vaidyas Ramjita Sinha and Daljita Sinha. From what I have seen of the work it has impressed me as a very valuable and useful production of an encyclopædic character and there is no doubt that the Hindi literature, in fact the general medical Literature of India, has been enriched by this publication. The compilors have drawn upon original and standard works, so far as the Ayurvedic section is concerned and it is hoped that if they keep themselves upto date in case of the subsequent Volames and have an eye on accuracy and thoroughness they will be rendering a great service to the cause of medical literature and profession in India. The work involves a tremendous amount of labour and is well worthy of generous patronage from the public."

Dated—
17 । 1 । 1934

M. M. Gopinath kaviraj, principal.
Government sanskrit collge.
Benares.

आयुर्वेदीयानुसंधान ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प

“सर्प-विष-विज्ञान”

लेखक—

बा० दलजीतसिंह जी ‘आयुर्वेदीय-विश्व-कोष-कार,

यह पुस्तक क्या है, आयुर्वेदीय, यूनानी और डॉक्टरी के सैकड़ों पुस्तकों का मक्खन है। विशेषता इसमें यह है कि, इसमें प्रायः सभी विषय स्वानुभूत हैं। इसमें कोई विषय ऐसा नहीं, जिसपर पूर्ण विचार न कर लिया गया हो और जिसका परीक्षण एवं प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान न प्राप्त कर लिया गया हो। कहाँ तक कहें इसमें अपने-पराये लगभग बीस वर्ष के अनुभव निष्कपट भाव से दिल खोलकर प्रकट कर दिये गये हैं। इसके पढ़ने से अनेक व्यक्ति प्रसिद्ध सर्प-विष-चिकित्सक बन गए हैं। इसके द्वारा चिकित्सा करने पर १०० में ६० रोगी शर्तिया चंगा होते हैं। ऐसा प्रयत्न किया गया है कि, इसमें सर्प-विष-चिकित्सा विषयक कोई भी ज्ञातव्य विषय छूटने न पाए। इसमें सर्प-भेद, सर्प-विष एवं उसके गुण-धर्म, सर्प-दष्ट के लक्षण, मृत-जीवित परीक्षा, सर्प-दष्ट की आयुर्वेदीय, यूनानी, डाक्टरी और स्वानुभूत आरम्भिक सामान्य विशेष चिकित्सादि अनेक विषयों का विस्तृत स्पष्टोल्लेख किया गया है। अन्त के दो प्रकरणों में बिच्छू एवं ततैया के दंश-लक्षण एवं चिकित्सा आदि पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। अन्त में इसमें आये हुये कठिन शब्दों के स्पष्टी-करण के लिये एक लघु-कोष द्वारा इस पुस्तक को समाप्त किया गया है।

इस ग्रन्थ की अनेक वैद्यक एवं मासिक-साप्ताहिक दैनिक-पत्रों एवं आयुर्वेद के धुरन्धर विद्वानों ने मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है और उन्होंने इसे सर्व-साधारण, बालचर, एवं वैद्यों के लिए अतीव उपादेय बतलाया है। किसी-किसी ने तो यहाँ तक लिखा है कि, इस विषय में आजतक प्रकाशित पुस्तकों में यह सर्व श्रेष्ठ है। विशेष जानकारी के लिए बृहत् सूची मँगा देखें। मूल्य १) डाक व्यय अतिरिक्त।

पता—दी चुनार आयुर्वेदीय औषधालय,
रायपुरी, चुनार (यू० पी०)

श्री धन्वन्तरये नमः

आयुर्वेदीय विश्व-कोष

(अं)

अंक–संज्ञा पुं० [सं० अंक] दे० "अङ्क" ।

अंकक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० अंकिका] (१) चिह्न करनेवाला । (२) गिनती करनेवाला ।

अँकटा–संज्ञा पुं० [सं० कर्कर, प्रा० कक्कर] (१) कंकड़ का छोटा टुकड़ा । (२) कंकड़ पत्थर आदि का महीन टुकड़ा वा चूरा जो अनाज में से चुनकर निकाल दिया जाता है ।

अँकटी–संज्ञा स्त्री० [अँकटा शब्द का अल्पार्थक प्रयोग] बहुत छोटी कंकड़ी ।

अँकड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० अंकुर=अँखुआ, टेढ़ी नोक] (१) कँटिया । हुक । (२) बेल । लता ।

अंकधारण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० अंकधारी] चिह्न धारण करना । गोदाना ।

अंकन–दे० "अङ्कन" ।

अंकपरिवर्तन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करवट लेना । करवट बदलना । करवट फिरना । एक ओर से दूसरी ओर पीठ करके सोना ।

अंकपालि–दे० "अङ्कपाली" ।

अंकपालिका–संज्ञा स्त्री० दे० "अंकपाली" ।

अंकपाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) धाय । दाई । धातृ । (२) आलिंगन ।

अंकमाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आलिंगन । भेंट । गले लगाना । परिरंभण ।

अंकमालिका–संज्ञा स्त्री० दे० "अङ्कमालिका" ।

अँकरा–संज्ञा पुं० [सं० अंकुर] एक खर वा कुधान्य जो गेहूँ के पौधों के बीच जमता है । इसका साग बनता और यह बैलों के खिलाने के काम में आता है । इसका दाना वा बीज काला, चिपटा छोटी मूँग के बराबर होता है और प्रायः गेहूँ के साथ मिल जाता है । इसे गरीब लोग खाते भी हैं । खेसारी इसी का रूपान्तर है । रवाड़ी, राड़ी (पं०) ।

अँकरी–संज्ञा स्त्री० [अँकरा का अल्पार्थक प्रयोग]

अंकलिगे–[कना०] दे० "अङ्कलिगे" ।

अँकुड़ा–संज्ञा पुं० [सं० अंकुर] [स्त्री०, अल्पार्थक रूप अँकुड़ी] (१) लोहे का झुका हुआ टेढ़ा काँटा । (२) गाय बैल के पेट का दर्द वा मरोड़ जिसे ऐंचा भी कहते हैं ।

अंकुडु–[ते०] कुरैया । कुटज ।

अंकुडु कर्र–[ते०] गम्बीर । (Uncaria gambier, *Roxb.*)

अंकुडु कोडिश–[ते०] मीठा इन्द्रजौ ।

अंकुडु चेट्टु–[ते०] [बहु० अंकुडु चेट्लु] कुरैया । कुटज वृक्ष ।

अंकुडुमानु–[ते०] [बहु० अंकुडुमानुलु] कुरैया कुटज वृक्ष ।

अंकुडु वित्तु–[ते०] [बहु० अंकुडुवित्तनमुलु] कड़ुआ इंद्रजौ । तिक्त इन्द्रयव ।

अंकुडु वित्तुलु–[ते०] कड़ुआ इंद्रजौ ।

अंकुर, अंकूर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अङ्कुर" ।

अंकुरक–संज्ञा पुं० दे० "अङ्कुरक" ।

अंकुरित–वि० [सं० त्रि०] जातांकुर । अँखुआया हुआ । जमा हुआ । निकला हुआ । दे० "अङ्कुरित" ।

अंकुशा–संज्ञा पुं० दे० "अङ्कुश" ।

अंकुशग्रह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महावत । हाथीवान । निषादी । फ़ीलवान ।

अंकुशदंता–वि० दे० "अङ्कुशदन्ता" ।

अंकुशदुर्धर–संज्ञा पुं० दे० "अङ्कुशदुर्द्धर" ।

अँकुशा–संज्ञा पुं० दे० "अङ्कुश" ।

अंकुश्त–[फ़ा०] कोयला ।

अंकुस-संज्ञा पुं० दे० "अङ्कुश"।

अंकुसा ऑफ़िशिनेलिस-[ले० anchusa officinalis] गावज़ुबाँ।

अंकुसा टिंक्टोरिया-[ले० anchusa tinctoria, *Desv.*] एक पौधा जिसका तेल औषधके कार्य में आता है। मेमो०।

अंकुसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० अंकुस+ई] [अंकुस का अल्पार्थक प्रयोग] हुक। कँटिया।

अंकूलंग-[ता०] (Withania somnifera, *Dunal.*) अश्वगंध। असगंध।

अंकूलिया, अंकूली-[गु०] ढेरे का पेड़ ; अङ्कोट।

अंकेरिया गैम्बियर-[ले० uncaria gambier, *Roxb.*] खदिर। कत्था वृक्ष। खैर वृक्ष। चीनी कत्था (Gambier) इं० मे० मे०।

अंकेरिया गैम्बीर-[ले० uncaria gambir, *Roxb.* 'wood of'] अंकुडुकर्र-ते०। गम्बीर-मल०। स० फा० इं०।

अंकोट, अंकोटक, अंकोढ-संज्ञा पुं० (Alangium decapetalum) ढेरा। दे० "अङ्कोल"।

अंकोटक-संज्ञा पुं०-(Alangium decapetalum) दे० "अङ्कोल"।

अँकोड़ा-संज्ञा पुं० [सं० अंकुर] बड़ी कँटिया।

अँकोर-संज्ञा पुं० [सं० अंकमाल वा अंकपालि; हिं० अँकवार] (१) अंक। गोद। छाती। (२) खोराक वा कलेवा जो खेत में काम करनेवालों के पास भेजा जाता है। छाक। कोर। दुपहरिया। जलपान।

अंकोरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० अँकोराई] [अंकोर का अल्पार्थक प्रयोग] (१) गोद। अंक। (२) आलिंगन।

अँकोल संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अङ्कोल"।

अंकोहर-संज्ञा पुं० [?] ढेरा।

अँखिया-संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, पं० अँक्ख, हिं० आँख] (Eye) आँख। चक्षु। नेत्र।

अँखुआ-संज्ञा पुं० [सं० अंकुर] [क्रि० अँखुआना] (१) अङ्कुर। बीज से फूटकर निकली हुई टेढ़ी नोक जिसमें से पहिली पत्तियाँ निकलती हैं। (२) बीज से पहिले पहिल निकली हुई मुलायम बँधी पत्ती। डाभ। कल्ला। कनखा। कोंपल। फुनगी।

अँखुआना-क्रि० अ० [हिं० अँखुआ] अंकुर फोड़ना वा फेंकना। उगना। जमना। अंकुरित होना।

अंग-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भाग, अंश, खंड, टुकड़ा। (२) भेद, प्रकार, भाँति, तरह। (३) उपाय। (४) सहायक, सुहृद, पक्ष का, तरफ़दार। (५) योग के आठ अंग; यथा-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ध्यान, धारणा और समाधि। दे० "योग"। त्रि० दे० "अङ्ग"।

अंगकर्म-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीर को सँवारना वा मलना। शरीर में तेल आदि सुगंधित पदार्थ लगाना।

अंगग्रह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Bodily pain) दे० "अङ्गग्रहः"।

अंगचालन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हाथ पैर हिलाना। अंग डोलाना।

अंगज-वि० [सं० त्रि०] शरीरसे उत्पन्न। तनसे पैदा। संज्ञा पुं० [स्त्री० अंगजा, अंगजाता] (१) पुत्र, बेटा, लड़का। (२) पसीना। स्वेद। (३) काम, क्रोध आदि विकार। (४) मद। (५) रोग। (६) (Cupid) कामदेव। दे० "अङ्गज"।

अंगजा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] [पुं० अंगज, अंगजात] कन्या, पुत्री, बेटी।

अंगजाई-संज्ञा स्त्री० [सं० अंगज] दे० "अंगजा"।

अंगजात-संज्ञा पुं० दे० "अंगज"।

अंगजाता-संज्ञा स्त्री० दे० "अंगजा"।

अँगड़ाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगड़ाना+ई] [क्रि० अँगड़ाना] देह टूटना, बदन टूटना। आलस्य से जम्हाई के साथ अंगों को तानना वा फैलाना। देह के बन्द वा जोड़ के भारीपन को हटाने के लिए अवयवों को पसारना वा तानना। शरीर के लगातार एक स्थिति में रहनेके कारण जोड़ों वा बन्दोंके भर जाने पर अवयवों को फैलाना।

नोट—सो के उठने पर वा ज्वर आने के कुछ पहिले यह प्रायः आती है।

अंगण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आँगन। दे० "अङ्गणं"।

नोट—शुभाशुभ निश्चयके लिये इसके दो

भेद माने गये हैं, एक 'सूर्यवेधी' जो पूर्व-पश्चिम लंबा हो, दूसरा 'चंद्रवेधी' जिसकी लम्बाई उत्तर-दक्षिण हो। चन्द्रवेधी आँगन अच्छा समझा जाता है।

अंगति–संज्ञा पुं० दे० "अङ्गति"।

अंगत्राण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीरको ढकने-वाला। अँगरखा। कुरता।

अँगनाप्रिय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अङ्गनाप्रियः"।

अंगनेर-[राजपु०] खाजा (हिं)।

अंगन्यास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तंत्रशास्त्र के अनुसार मंत्रों को पढ़ते हुए एक-एक अंग को छूना।

अंगपाक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अंगों का पकना वा सड़कर उनमें मवाद भरना। अंग पकने का रोग। फोड़े-फुन्सी का रोग।

अंगपालिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धाय। धात्री। दाई।

अंगपाली–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आलिंगन।

अंगप्रोक्षण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अंग पोंछना। देह अँगोछना। शरीर पोंछना। शरीर को गीले कपड़े से मलकर साफ़ करना।

अंगभंग–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) किसी अवयव का खंडन वा नाश। अंग का खंडित होना। शरीर के किसी भाग की हानि। (२) स्त्रियों की मोहित करने की चेष्टा। स्त्रियों की कटाक्ष आदि क्रिया। अंगभंगी।

वि० जिसका कोई अवयव कटा वा टूटा हो। जिसके शरीर का कोई भाग खंडित हो। अपाहज। लँगड़ा। लूला। लुंज। जिसके हाथ-पैर टूटे हों।

अंगभंगी–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) स्त्रियोंकी चेष्टा। स्त्रियों की मोहित करने की क्रिया। (२) हाव भाव।

अंगभूत–वि० [सं० त्रि०] (१) अंगसे उत्पन्न। देहसे पैदा। (२) अंतर्गत। भीतर। अंतर्भूत।

संज्ञा पुं० पुत्र। बेटा।

अंगमर्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अङ्गमर्दः"।

अंगमर्दन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अंगों की मालिश। देह दबाना। हाथ पैर दबाना।

अंगरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] किसी पत्ती वा फल का कूटकर निचोड़ा हुआ रस। स्वरस। रॉंग। Juice (Succus)

अंगरक्षा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] शरीर की रक्षा। देह का बचाव। बदन की हिफ़ाज़त।

अँगरा–संज्ञा पुं० [सं० अंगार] (१) अँगार। अँगारा। दहकता हुआ कोयला। (२) बैल के पैर टपकने वा रह-रह कर दर्द करनेका एक रोग। इस रोग में बैल बार-बार पैर उठाया करता है।

अंग़रा–[यू०] Hibiscus rosa=sinensis, *Linn.* (Elowers of–) जपापुष्प। गुड़हल। उड़उल।

अंग़राएहिंदी–[अ०, फ़ा०] Hibiscus rosa=sinensis, *Linn.* (Flowers of-) जपापुष्प। गुड़हल। अड़उल। जवा। जासून। जासूत। गुड़ेल। कुड़ल–द०।

अंगराग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चन्दन आदि लेप। उबटन। बटना। केशर, कपूर, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों से मिला हुआ चन्दन जो अंगमें लगाया जाता है। (२) वस्त्र और आभूषण। (३) शरीर की शोभाके लिए महावर आदि रँगनेकी सामग्री। (४) एक प्रकार की सुगंधित देशी बुकनी जिसे मुँह में लगाते हैं। वि० दे० "अङ्गराग"।

अँगराना-क्रि० अ० दे० "अँगड़ाना"।

अंगरापान-संज्ञा पुं० (A sort of betel) ताम्बूल भेद। एक तरह का पान।

अँगरी–संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग+रक्ष] कवच। झिलम। बख़्तर (बक्तर)।

संज्ञा स्त्री० [सं० अगुलीय] अंगुलित्राण। उँगलियों को धनुष की रगड़ से बचाने के लिये गोह के चमड़े का दस्ताना।

अंगलीन्ह–संज्ञा पुं० [?] सुम्बुल ख़ताई, बालछड़ भेद। (Garden angelica) इं० हैं० गा०।

अंगलेट–संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] शरीर का गठन। काठी। उठान। देह का ढाँचा।

अंगलेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अंगराग द्रव्य। उबटन। बटना।

अंगविकल–वि० [सं० त्रि०] व्याकुलांग। विकृत शरीर। जिसके शरीर में पीड़ा हो।

अंगविकृति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "अङ्गविकृति"।

अंगविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अंग विषयक ज्ञान। शरीर-विज्ञान। देह तत्व। (२) सामुद्रिक विद्या।

अंगविभ्रम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अंगभ्रांति। एक रोग जिसमें रोगी अंगों को और का और समझता है।

अंगविक्षेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अंग हिलाना। अंगहार। चमकाना। मटकाना। हाथ पैर हिलाना। (२) नृत्य। नाच। (३) कलाबाज़ी।

अंगवैकृत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीर का विकार।

अंगशैथिल्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बदन की सुस्ती। अंग का ढीलापन। थकावट।

अंगशोष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रोग जिसमें शरीर क्षीण होता वा सूखता है। सुखंडी रोग। सूखा। क्षयी रोग।

अंगसंग–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Coition) मैथुन। रति संयोग। संभोग। हम बिस्तरी।

अंगसंस्कार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अंगों का सँवारना। सुगन्धित द्रव्यों से शरीर की सजावट।

अंगसंस्क्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] देह संस्कार। शरीर की सजावट।

अंगसिहरी–संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग=शरीर+हर्ष=कंप] (१) कंप। कँपकँपी। ज्वर आने के पहिले देह की कँपकँपी। (२) जूड़ी।

अंगस्तूरा छाल–संज्ञा स्त्री० दे० "अङ्गस्तूराछाल"।

अंगहार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अंगविक्षेप"।

अंगहीन–वि० [सं० त्रि०] (१) जिसका कोई एक अंग न हो। जिसके शरीर का कोई भाग खंडित वा टूटा हो। लूला। लँगड़ा। लुंज। अवयवरहित। (२) कामदेव का एक नाम वा विशेषण।

अंगाकड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार+हिं० करी] अंगारों पर सेंकी हुई मोटी रोटी। लिट्टी। बाटी। दे० "अङ्गारकर्कटी"।

अंगांगीभाव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अवयव और अवयवी का परस्पर सम्बन्ध। उपकारक उपकार्य्य सम्बंध। अंश का सम्पूर्ण के साथ आश्रय आश्रयी रूप सम्बन्ध अर्थात् ऐसा सम्बंध कि उस अंश का अवयव के बिना सम्पूर्ण की सिद्धि न हो। (२) गौण और मुख्य का परस्पर सम्बंध।

अंगार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कोयला। (२) दहकता हुआ कोयला। अंगारा। दे० "अङ्गार"।

अंगारः–[फ्रा०] सांसर्गिक कृमि। दे० "अंथ्राक्स anthrax"।

अंगारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अङ्गारक"।

अंगारक मणि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अङ्गारकमणि"।

अंगारः का टीका–संज्ञा पुं० [उ०] सांसर्गिक कृमिघ्न सीरम। दे० "ऐंटि अंथ्राक्स सीरम स्क्लेवॉस (Antianthrax serum sclavos)"।

अंगारकी बटी–संज्ञा स्त्री० दे० "अङ्गार कर्कटी"।

अंगारकी लिट्टी–संज्ञा स्त्री० दे० "अङ्गार कर्कटी"।

अंगारधानिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० अंगारधानिका]। बोरसी। अँगेठी। दे० "अङ्गारधानिक"

अंगारधानी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अँगेठी। बोरसी।

अंगार परिपाचित–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "अंगारपाचित"।

अंगारपाचित–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अंगार वा दहकती हुई आग पर पकाया हुआ खाना, जैसे कबाब, नानखताई इत्यादि।

अंगारपात्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "अङ्गारपात्री"।

अंगारपुष्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अङ्गार(क)पुष्पः"।

अंगारबल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "अङ्गारबल्ली"।

अंगारमणि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Coral) प्रवाल। मूँगा।

अंगारवल्लिका, अंगारवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुञ्जालता। घुँघची की बेल। चिरमटी की बेल। (२) करौंदा। दे० "अङ्गारवल्ली"।

अंगारा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] (Burning charcoal) दे० "अंगार"।

अंगारिका—संज्ञा स्त्री० दे० "अङ्गारिका"।

अंगारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं स्त्री०] दे० "अङ्गारिणी"।

अंगारी—संज्ञा स्त्री० [सं स्त्री०] (१) दहकते हुए कोयले का छोटा टुकड़ा। (२) चिनगारी। (३) अंगार वा दहकती हुई बिना लपट की आग पर पकाई हुई रोटी। लिट्टी। बाटी। (४) अँगेठी। बोरसी।

अँगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अंगारिका] (१) ईख के सिर पर की पत्ती जिसे काटकर गाय बैल को खिलाते हैं। (२) गड़ासे से कटे हुए ईख के छोटे टुकड़े जो कोल्हू में पेरने के लिए तैयार किए जाते हैं। गँडेरी। गेंडी।

अंगिरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटीला। कटीला गोंद। कतीरा। The gum astragalus (Tragacanth).

अंगिरा—संज्ञा पुं० दे० "अंगिरस"।

अंगी—संज्ञा पुं० [सं० अंगिन्] (१) शरीरी। देहधारी। शरीरवाला। (२) अवयवी। उपकार्य। अंशी। समष्टि। (३) प्रधान। मुख्य।

अँगीठा—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि=आग+स्था=ठहरना। अग्निस्था। अग्निष्ठा। प्रा० अग्गिट्ठाँ] बड़ी अँगीठी। बड़ा आतिशदान। बड़ी बोरसी। आग रखने का बरतन।

अँगीठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अँगीठा का अल्पार्थक प्रयोग] आग रखने का बरतन। आतिशदान।

अंगुर—संज्ञा पुं० दे० "अंगुल"।

अँगुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] उँगली।

नोट—अँगुरी की चाँदी=यह चाँदी बम्बई की सिल की चाँदी को खूब साफ़ करके बनाई जाती है। इसी को पीटकर चाँदी का वरक बनाते हैं। वरक पीटने की चाँदी।

अंगुल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लंबाई की एक नाप। एक आयत परिमाण। आठ जौ के पेटकी लम्बाई। आठ यवोदर का परिमाण। १२ अंगुल का एक बित्ता और २ बित्ते का एक हाथ होता है। दे० "अंगुल"।

अंगुलद्राख—[पश्तु०] (Vitis vinifera, *Linn.*) काली दाख। फा० इं० १ भ०।

अंगुलितोरण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] त्रिपुंड तिलक। तीन पतली अर्द्धचंद्राकार समानान्तर रेखाओं का टीका जिसे शैव लोग माथे पर लगाते हैं।

अंगुलित्राण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोहके चमड़े का बना हुआ एक दस्ताना जिसे बाण चलाते समय उँगलियों को रगड़से बचाने के लिए पहिनते हैं। गोहके चमड़े का दस्ताना। उँगलियों की रक्षा के निमित्त गोह के चमड़े का एक आवरण। दे० "अङ्गुलित्राणकम्"।

अंगुलिपंचक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अङ्गुलिपञ्चकम्"।

अंगुलिपर्व—संज्ञा पुं० [सं० अंगुलिपर्व्व] उँगली की पोर वा जोड़।

अंगुलिमुख—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उँगली का अग्रभाग। दे० "अङ्गुलिमुख"।

अंगुलिवेष्टन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१)दस्ताना। हथेली और उँगलियों को ढाँकने का आवरण। (२) अंगुलित्राण।

अंगुलिस्फोटन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उँगली फोड़ना व चिटकाना। अंगुलिमोटन।

अँगुली—संज्ञा स्त्री० [सं०अङ्गुली] (१) उँगली। (२) हाथी के सूँड़ का अगला भाग।

अंगुलीसम्भूत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नख। नाखून।

अंगुल्यस्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] उँगली की अस्थि। पर्व। पोर्वा। (Phalanx)

अंगुश्त—[फ़ा०] दे० "अङ्गुश्त"।

अंगुश्ताना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) उँगली पर पहिनने की लोहे वा पीतल की एक टोपी

जिसमें छोटे-छोटे गढ़हे बने रहते हैं। उसे दरज़ी लोग सीते समय एक उँगली में पहिन लेते हैं जिसमें सुई न चुभ जाय। इसीसे वे सुई को उसका पिछला हिस्सा दबाकर आगे बढ़ाते हैं। दे० "अङ्गुलित्राणकम्"।

अंगुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अँगूठा। हाथ वा पैर की सबसे मोटी उँगली। (Thumb)

अँगुसा-संज्ञा पुं० [सं० अंकुश=टेढ़ी नोक] अंकुर। अँखुआ।

अँगुसाना-क्रि० अ० [हिं० अँगुसा] बोए हुए अनाज का अँखुआ फोड़ना। जमना। अंकुरित होना। अँखुआना।

अँगूठा-संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ, प्रा० अंगुट्ठ] मनुष्यके हाथकी सबसे छोटी और मोटी उँगली। पहिली उँगली जिससे दूसरा स्थान तर्जनी का है। तर्जनी की बगल में छोर पर की वह उँगली जिसका जोड़ हथेली में दूसरी उँगलियों के जोड़ों से नीचे होता है।

अँगूठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगूठा+ई] मुँदरी। मुद्रिका। अंगुश्तरी।

अंगूर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक लता और उसके फल का नाम। द्राक्षा। दाख। दे० "अङ्गूर"।

अँगेठा-संज्ञा पुं० दे० "अँगीठा"।

अँगेठी-संज्ञा स्त्री० दे० "अँगीठी"।

अँगोछना क्रि० अ० [सं० अंगप्रोक्षण] [संज्ञा अँगोछा, अँगोछी] गीले कपड़े से देह पोंछना। शरीर पर गीला वा भींगा वस्त्र रख कर मलना। गीला कपड़ा फेर कर बदन साफ़ करना।

अँगोरा-संज्ञा पुं० [देश०] मच्छर। भुनगा।

अँगोरी-संज्ञा स्त्री० दे० "अँगारी"।

अंघस्-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पाप। पातक। अपराध।

अँघिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] आटा वा मैदा चालने की चलनी जो झीने कपड़े से मढ़ी होती है। अँगिया। आखा।

अंघ्रि-संज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रि] दे० "अङ्घ्रि"।

अंघ्रिप-संज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिप] दे० "अङ्घ्रिप"।

अंचंचक-[?] दे० "अञ्चकक"।

अंचुसा-[यू०, रू०] अञ्जुसा। दम्मुल् अख़्वैन। ख़ूनाख़राबा। विजयसार निर्यास। फा० इं० २ भा०।

अंचू-दे० "अञ्चू"।

अंछर-संज्ञा पुं० [सं० अक्षर] मुँह के भीतर का एक रोग जिसमें काँटे से उभर आते हैं।

अंज-संज्ञा पुं० [सं० कंज] कमल। कमल का फूल।

अंजन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [क्रि० अँजवाना, अँजाना] (१) श्यामता लाने वा रोग दूर करने के निमित्त आँख की पलकों के किनारों पर लगाने की वस्तु। सुरमा। काजल। आँजन। प्रत्येक औषधि जो नेत्र में डाली जाय। (२) रात। रात्रि। (३) छिपकली। (४) एक जाति का बगला जिसे नटी भी कहते हैं। (५) एक पेड़ जो मध्य-प्रदेश, बुंदेलखंड, मद्रास, मैसूर आदि में बहुत होता है। इसकी लकड़ी श्यामता लिए हुए लाल रंग की और बड़ी मज़बूत होती है। यह पुलों और मकानों में लगती है, और इसके असबाब भी बहुत से बनते हैं। (६) सिद्धांजन, जिसके लगाने से कहा जाता है कि ज़मीन में गड़े ख़ज़ाने देख पड़ते हैं। (७) कद्रु से उत्पन्न एक सर्प का नाम। (८) लेप। दे० "अञ्जन"।

वि० काला। सुरमई।

अंजनक-कल्लु-[ता०] सुर्मा। अंजन का पत्थर। दे० "अञ्जन"।

अंजनकेश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दीपक। दीया। चिराग़।

अंजनकेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नख नामक सुगंध-द्रव्य जिसके जलाने से अच्छी महक उड़ती है। दे० "अञ्जनकेशिका"।

अंजन शलाका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंजन वा सुरमा लगाने के लिये जस्ते वा सीसे की सलाई। सुरमचू।

अंजनसार-वि० [सं० अञ्जन+साधन] सुरमा लगा हुआ। अंजनयुक्त। आँजा हुआ। जिसमें अंजन सारा या लगाया गया हो।

अंजनहारी-संज्ञा स्त्री० [सं० अंजन+कार] (१) आँखकी पलकके किनारे की फुंसी। बिलनी।

गुहांजनी। गुहाई। अंजना। भृंगी। अञ्जननामिका। (२) एक प्रकार का उड़नेवाला कीड़ा जिसे कुम्हारी वा बिलनी भी कहते हैं। वह प्रायः दीवार के कोनों पर गीली मिट्टी से अपना घर बनाता है। कहते हैं कि इस मिट्टी को घिसकर लगाने से आँख की बिलनी अच्छी हो जाती है।

अंजना–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) आँख की पलक के किनारे पर होनेवाली एक लाल छोटी फुंसी जिसमें जलन और सूई चुभाने के समान पीड़ा होती है। बिलनी। अंजनहारी। गुहांजनी। (२) दो रंग की छिपकली।
संज्ञा पुं० (१) एक जाति का मोटा धान जो पहाड़ी प्रदेशों में पैदा होता हैं।
क्रि० सं० [सं० अञ्जन] दे० "आँजना"।

अंजनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बिलनी। आँखकी पलककी फुड़िया। दे० "अञ्जननामिका"। (२) चन्दन लगाए हुई स्त्री। (३) एक काष्ठ ओषधि। कुटकी। दे० "अञ्जनी"।

अंजबार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० "अञ्जबार"।

अंजरपंजर–संज्ञा पुं० [सं० पजर] देह का बंद। शरीर का जोड़। ठठरी। पसली।

अंजल, अंजला–[?] ख़त्मी। ख़ैरू। लु०क०।
संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलि] दे० "अञ्जली"।

अंजलिगत–वि० [सं० त्रि०] अँजली में आया हुआ। हाथ में पड़ा हुआ। दोनों हथेलियों पर रक्खा हुआ।

अंजलिपुट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अँजली।

अंजलिबद्ध–वि० [सं० त्रि०] अंजलि बाँधे वा हाथ जोड़े हुए। विनम्र।

अंजली
अँजली } संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलि] (१) दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट। दोनों हथेलियों को मिलानेसे बना हुआ ख़ाली स्थान या गड्ढा जिसमें पानी वा और कोई वस्तु भर सकते हैं। (२) उतनी वस्तु जितनी एक अँजुली में आवे। प्रस्थ। कुड़व। दो प्रसृति। एक नाप जो बीस मागधी तोले वा सोलह व्यावहारिक तोले अथवा एक पाव के बराबर होती है। दो पसर।

अँजवाना
अँजाना } क्रि० स० [सं० अञ्जन] अंजन लगवाना। सुरमा लगवाना।

अंजस–[अ०] अशुद्धतर। अत्यन्त अपवित्र। नजिस। बहुत पलीद।

अंजायना पेक्टोरिस–[अं० angina pectoris] हृच्छूल।

अंजित–वि० [सं० त्रि०] अंजन लगाए हुए। अंजनसार। आँजे हुए।

अंजीदः–[यू०] गंदना। लु० क०।

अंजीर–संज्ञा पुं० [सं० पु०] एक पेड़ तथा उसका फल जो गूलर के समान होता है और खाने में मीठा होता है। दे० "अञ्जीर"।

अंटा–संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] (१) बड़ी गोली।
नोट–इसका प्रयोग अफ़ीम और भंग के संबंध में अधिक होता है।
(२) बड़ी कौड़ी।

अंटी–संज्ञा स्त्री० [सं० अंट] [क्रि० अँटियाना] (१) उँगलियों के बीच का स्थान या अंतर। घाई। (२) गाँठ। मुर्री (धोती की)।

अँठई–संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टपदी] किलनी। चिचड़ी। छोटे छोटे कीड़े जो प्रायः कुत्तों के बदन से चिमटे रहते हैं।

अंठली–संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टि=गुठली, गाँठ] नवोढ़ा के निकलते हुए स्तन।

अंड–संज्ञा पुं० [सं० अण्डम्] दे० "अण्ड"।

अंडकोश(ष)–संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोषः] दे० "अण्डकोश"।

अंडज–संज्ञा पुं० दे० "अण्डजः"।

अंडधारक रज्जु–संज्ञा पुं० दे० "अण्डधारक रज्जु"।

अँडरना–क्रि० अ० [सं० अतरण] धान के पौधे का उस अवस्था में पहुँचना जब बाल निकलने पर हो। रेंड़ना। गरभाना।

अंडवृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक रोग जिसमें अंडकोश वा फ़ोता फूलकर बहुत बढ़ जाता है। फ़ोतेका बढ़ना। अण्डवर्द्धन।

निदान–शरीर का बिगड़ा हुआ वायु या जल नीचे की ओर चलकर पेड़ की एक ओर की संधियों से होता हुआ अंडकोश में जा पहुँचता है और उसको बढ़ाता है। वैद्यक में इसके वातज, पित्तज आदि कई भेद माने गए हैं।

अंडा–संज्ञा पुं० [सं० अंड] [वि० अँडैल] बच्चों को दूध न पिलानेवाले जन्तुओं (मादा) के गर्भाशय से उत्पन्न गोल पिंड जिसमें से पीछे उस जीव के अनुरूप बच्चा बनकर निकलता है। वह गोल वस्तु जिसमें से पक्षी, जलचर और सरीसृप आदि अंडज जीवों के बच्चे फूटकर निकलते हैं। बै_ज्ञः–अ०। त्रि० दे० "अण्डा"।

अंडाकर्षणी पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी विशेष। (Muscle Gubernaculum Testis)

अंडाकार–वि० [सं० त्रि०] अंडाकृति। (Oval) दे० 'अण्डाकार"।

अँड़िया–संज्ञा पुं० [देश०] बाजरे की पकी हुई बाल।

अंडी–संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्ड] (१) रेंडी। रेंड़ के फल का बीज। Ricinus communis (Seeds of Castor oil plant) (२) रेंड़ वा एरंड का पेड़ Ricinus Communis (Tree of Castor oil)। (३) गंधमार्जारी।

अँडुवारी–संज्ञा स्त्री० [सं० अणु=छोटा टुकड़ा] एक प्रकार की बहुत छोटी मछली।

अंडैल–वि० [हिं० अंडा] जिसके पेटमें अंडे हों। अंडेवाली।

अंतः करण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वह भीतरी इंद्रिय जो संकल्प विकल्प, निश्चय, स्मरण तथा सुख दुःखादि का अनुभव करती है। कार्य भेद से इसके चार विभाग हैं—

(क) मन, जिससे संकल्प विकल्प होता है। (ख) बुद्धि, जिसका कार्य विवेक वा निश्चय करना है। (ग) चित्त, जिससे बातों का स्मरण होता है। (घ) अहंकार, जिससे सृष्टि के पदार्थों से अपना सम्बन्ध देख पड़ता है। (२) हृदय। मन। चित्त। बुद्धि। (३) नैतिक बुद्धि। विवेक।

अंतः कोण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भीतरी कोना। भीतर की ओर का कोण।

अंतःक्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भीतरी व्यापार। अप्रगट कर्म।

अंतः पटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोमरस जब वह छानने के लिए छनने में रक्खा हो।

अंतः परिधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी परिधि वा घेरे के भीतर का स्थान।

अंतःशल्य–वि० [सं० त्रि०] भीतर सालने वाला। गाँसी की तरह मन में चुभनेवाला। मर्मभेदी।

अंतः संज्ञा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] जो जीव अपने सुख दुःख के अनुभव को प्रगट न कर सके, जैसे वृक्ष।

अंतःसत्वा–संज्ञा स्त्री० दे० "अन्तःसत्वा"।

अंतः स्वेद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह जिसके भीतर स्वेद वा मदजल हो। हाथी।

अंत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] [वि० अंतिम, अंत्य] (१) वह स्थान वा समय जहाँ से किसी वस्तु का अंत हो। समाप्ति। अखीर। अवसान। इति। (२) शेष भाग। अंतिम भाग। पिछला अंश। (३) पार। छोर। सीमा। हद। अवधि। पराकाष्ठा। (४) अंतकाल। मरण। मृत्यु। नाश। विनाश। (५) परिणाम। फल। नतीजा।

संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] अंतःकरण। हृदय। मन।

संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र] आँत। अँतड़ी।

अंतक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अंत करनेवाला। नाश करनेवाला। (२) मृत्यु जो कि प्राणियों के जीवनका अंत करती है। मौत। (३) यमराज। काल। (४) ईश्वर, जो कि प्रलयमें सबका संहार करता है। (५) शिव। (६) सन्निपात ज्वर का एक भेद। दे० "अन्तकः"।

अंतकर, अंतकर्त्ता, अंतकारी, अंतकृत–वि० [सं० त्रि०] अंत करनेवाला। विनाश वा संहार करनेवाला। मार डालनेवाला।

अँतड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] आँत। अंत्री। नली। (Intestine, bowel)

अंतरचक्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तंत्रके अनुसार शरीर के भीतर माने हुए मूलाधार आदि कमल के आकार के छः चक्र। षट्चक्र।

अंतरछाल-संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर+छाल] छाल के नीचे की कोमल छाल वा झिल्ली। बोकले के भीतर का कोमल भाग।

अंतरजाल-संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+जाल] कसरत करने की एक लकड़ी।

अंतरनायनी पेशी
अंतरवाहिनी पेशी }–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

किसी अंग को मध्यरेखा की ओर ले जानेवाली पेशी। जैसे, बाहु को वक्ष की ओर ले जानेवाली पेशी। (Muscle adductor) अज़्लः मुक़र्रिबः (अ)।

अंतरपट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धातु वा औषध को फूँकने के पहिले उसकी लुगदी वा संपुट पर गीली मिट्टी के लेव के साथ कपड़ा लपेटने की क्रिया। कपड़मिट्टी। कपड़ौरी। कपरौटी। (२) गीली मिट्टी का लेव देकर लपेटा हुआ कपड़ा।

अंतरप्रभव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वर्णसंकर। जो दो भिन्न भिन्न वर्णों के माता पिता से उत्पन्न हो।

अंतररति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] संभोग के सात आसन। यथा स्थिति, तिर्यक, सम्मुख, विमुख, अध, ऊर्द्ध और उत्तान।

अंतरस्थ-वि० [सं० त्रि०] भीतर का। भीतरी। अन्तःस्थ। आंतरिक।

अँतरा-संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] (१) अंतर। बीच। (२) वह ज्वर जो एक दिन नागा देकर आता है। (३) कोना।

वि० एक बीच में छोड़ कर दूसरा।

नोट—विशेषण में इसका प्रयोग साधु भाषामें केवल 'ज्वर' शब्द के साथ और प्रांतीय भाषाओं में कालसूचक शब्दों के साथ होता है।

अंतरा-क्रि० वि० [सं० अन्तरा] मध्य।

संज्ञा पुं० प्रातः काल और संध्या के बीच का समय। दिन।

अंतराग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] पेटकी अग्नि। जठराग्नि। पेट की गरमी जिससे खाई हुई वस्तु पचती है।

अंतरालदिशा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा। कोण। कोना।

अंतरित-वि० [सं० त्रि०] (१) छिपा हुआ। (२) आच्छादित। ढका हुआ।

अंतर्मुख-वि० [सं० त्रि०] जिसका मुँह भीतर की ओर हो। जिसका छिद्र भीतर की ओर हो। अमृ० सा०।

क्रि० वि० भीतर की ओर प्रवृत्त। जो बाहर से हटकर भीतर ही लीन हो।

अंतर्लीन-वि० [सं० त्रि०] मग्न। भीतर छिपा हुआ। ग़र्क़। विलीन। डूबा हुआ।

अंतर्वती-वि० स्त्री० [सं० त्रि०] (१) गर्भवती। गर्भिणी। हामिला। (२) भीतरी। भीतरकी। अंदर रहनेवाली। अंतरस्थित।

अंतर्वत्नी-वि० स्त्री० [सं० त्रि०] गर्भवती। गर्भिणी। हामिला।

अंतर्विकार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीर का धर्म। मन का शरीर सम्बन्धी अनुभव, जैसे भूख, प्यास, पीड़ा इत्यादि।

अंतर्वेगीज्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का ज्वर जिसमें भीतर दाह, प्यास, चक्कर, सिरमें दर्द, और पेटमें शूल होता है। इसमें रोगी को पसीना नहीं आता और न दस्त होता है। इसे कष्टज्वर भी कहते हैं।

अंतश्छद्-संज्ञा पुं० [सं०] भीतरी तल। भीतरी आच्छादन।

अंतस्-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःकरण। हृदय। चित्त।

अंतस्थ-वि० [सं० त्रि० [वि० अंतस्थित] (१) भीतरका। भीतरी। (२) बीच में स्थित। मध्य का। मध्यवर्ती। बीचवाला।

अंतस्थित-वि० [सं० त्रि०] (१) भीतर स्थित। भीतरी। (२) हृदय स्थित।

अंतावरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० अंत+सं० आवली] अँतड़ी। आँतों का समूह।

अंत्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आँत। अँतड़ी। रोधा। दे० "अन्त्र"। (२) कहीं कहीं "अंतर" का अपभ्रंश है।

अंत्रकूजन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "अन्त्र-कूजनम्"।

अंत्रवृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आँत उतरने का रोग। दे० "अन्त्रवृद्धि"।

अंत्रांडवृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक रोग जिसमें आँतें उतरकर फ़ोते में चली आती हैं और फ़ोता फूल जाता है।

अंत्रालजी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीव से भरी एक प्रकारकी ऊँची गोल फुंसी जो वैद्यक के अनुसार कफ और वातके प्रकोपसे होती है। दे० "अन्त्रालजी"।

अंत्री–संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] अँतड़ी। आँत।

अँदरसा–संज्ञा पुं० [सं० इन्दुरसा। फ़ा० अंदर+सं० रस] एक प्रकार की मिठाई जो चौरेठे वा पिसे हुए चावल की बनती है। चौरेठे को चीनी के कच्चे शीरे में डालकर थोड़ा घी देकर पका लेते हैं। जब वह गाढ़ा हो जाता है तब उतार कर दो दिन तक रखकर उसका खमीर उठाते हैं। फिर उसी की छोटी-छोटी टिकियाँ बनाकर उन पर पोस्ते का दाना लपेट कर उन्हें घी में तलते हैं। इन्दुरसा।

अंध–वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा अंधता] (१) नेत्रहीन। बिना आँखका। अंधा। जिसकी आँख में ज्योति न हो। जिसमें देखने की शक्ति न हो। (२) उन्मत्त। मतवाला। मस्त।

संज्ञा पुं० (१) वह व्यक्ति जिसे आँखें न हों। नेत्रहीन प्राणी। अंधा। (२) जल। पानी। (३) उल्लू। (४) चमगादड़। (५) अँधेरा। अंधकार।

अंधक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नेत्रहीन मनुष्य। दृष्टिरहित व्यक्ति। अंधा।

अंधकरिपु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अंधकार का नाश करनेवाले, सूर्य्य। (२) चन्द्रमा। (३) अग्नि।

अंधकूप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अंधा कूँआ। वह कूँआ जिसका जल सूख गया हो और जो घास पातसे ढका हो। (२) अँधेरा।

अंधतमस–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] महा अंधकार। गहिरा अँधेरा। गाढ़ा अँधेरा।

अंधता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंधापन। दृष्टिहीनता।

अंधत्व–संज्ञा पुं० दे० "अंधता"।

अंधपूतनाग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का रोग विशेष। इसमें वमन, ज्वर, खाँसी, प्यास आदि की अधिकता होती है। बालक के शरीर से चर्बी की सी गंध आती है और वह रोता बहुत है। दे० "पूतना" वा "अन्धपूतना"।

अँधरा–संज्ञा पुं० [सं० अन्ध] [स्त्री० अँधरी] अंधा। नेत्रविहीन प्राणी। दृष्टिरहित जीव। चक्षुहीन मनुष्य।

वि० अंधा। बिना आँख का। दृष्टि रहित।

अँधरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधरा+ई] (१) अंधी। अंधी स्त्री।

अंधविंदु–संज्ञा पुं० [सं०] आँख के भीतरी पटल पर का वह स्थान जो प्रकाश को ग्रहण नहीं करता और जिसके सामने पड़ी हुई वस्तु दिखाई नहीं देती।

नोट—नेत्रपटल पर ज्ञानतंतु पीछे से आकर शिराओं के रूप में फैले हुए हैं और मुड़कर शंकु और छड़ियों के आकार में हो गए हैं। मनुष्य की आँख में इन शंकुओं की संख्या ३३६०००० मानी गई है। ये छड़ियाँ वा शंकु आकार और रंग का परिज्ञान कराने में काम देते हैं। यदि प्रकाश ऐसे स्थान पर पड़े जहाँ कोई शंकु न हो तो कुछ देख नहीं पड़ता। यही स्थान अंधविंदु कहलाता है।

अंधस–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पका हुआ चावल। भात।

अंधा–संज्ञा पुं० [सं० अन्ध] [स्त्री० अंधी] बिना आँख का जीव। वह जीव जिसकी आँखों में ज्योति न हो। वह जिसको कुछ सूझता न हो। दृष्टिरहित जीव।

वि० (१) बिना आँख का। दृष्टि रहित। जिसे देख न पड़े। देखने की शक्ति से रहित। (२) विवेकशून्य। विचार रहित। अविवेकी। अज्ञानी। भले बुरे का विचार न रखनेवाला। (३) जिसमें कुछ दिखाई न दे। अँधेरा। प्रकाश शून्य।

अँधार–संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] अँधेरा। अँधियारा। तम।

अंधिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रात्रि। रात। (२) आँख का एक रोग।

अँधियार, अँधियारा-संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] [स्त्री० अँधियारी] (१) अँधेरा। अंधकार। तम। (२) धुँधलापन। धुंध।
वि० (१) प्रकाश रहित। अँधेरा। तमाच्छादित। (२) धुँधला। दे० "अँधेरा"।

अँधियारी कोठरी-संज्ञा स्त्री० (१) अँधेरा छोटा कमरा। (२) पेट। उदर। गर्भस्थान। कोख। धरन।

अंधुल-संज्ञा पुं० [सं० अन्धुल] दे० "अन्धुल"।

अँधेरा-संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] [स्त्री० अँधेरी] (१) अंधकार। तम। प्रकाश का अभाव। उजाले का उलटा। (२) धुँधलापन। धुंध। (३ छाया। परछाईं। (४) उदासी। उत्साहहीनता। शोक।
वि० (१) अंधकारमय। प्रकाश रहित। तमाच्छादित। बिना उजाले का।

अँधेरा की जड़-संज्ञा स्त्री० [देश०] विलायती मेँहदी की जड़।

अंध्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहेलिया। व्याधा। शिकारी।

अंब-संज्ञा स्त्री० दे० "अंबा"।
संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब] आम का पेड़। Mango tree (Mangifera Indica)

अंबक-संज्ञा पुं० [सं० अम्बकः] दे० "अम्बक"।

अंबकरञ्ज-[बं०] (Pongamia glabra) डहर करञ्ज। करञ्जभेद। इं० मे० मे०।

अंबर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वस्त्र। कपड़ा। पट। (२) स्त्रियों के पहननेकी एक प्रकारकी एकरंगी किनारेदार धोती। (३) आकाश। आसमान। (४) कपास। (५) एक सुगन्धित वस्तु (Ambergris)। दे० "अम्बर"। (६) एक इत्र। (७) अभ्रक धातु। अबरक। Talc (Mica)। (८) अमृत। अने०। (९) बादल। मेघ। (क्व०)

अंबरबारी-संज्ञा पुं० [सं०] दारुहरिद्रा। दारूहन्द। चित्रा। (Berberis asiatica) एक झाड़ी जो हिमालय और नीलगिरि पर होती है। इसकी जड़ और छाल से बहुत ही अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे कभी-कभी चमड़ा भी रँगते हैं। इसके फलको ज़रिश्क कहते हैं। इसके बीजसे तैल निकलता है। इसकी लकड़ी जिसे दारुहलद वा दारुहल्दी कहते हैं औषधियों में काम आती है। इसकी जड़ और लकड़ी से एक प्रकार का रस निकालते हैं, जो रसवत वा रसौत कहलाता है।

अंबरबेलि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Cuscuta reflexa) अकाशबेल। आकाशबेल। आकाशबौंर। अमरबेल।

अंबरमणि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आकाशके मणि, सूर्य्य।

अँबराई-संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र=आम+राजी=पंक्ति] आम का बगीचा। आमकी बारी। नौरंगा।

अँबराव-संज्ञा पुं० [सं० आम्रराजी] आम का बगीचा।

अंबरांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े का छोर। (२) वह स्थान जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला हुआ दिखाई देता है। क्षितिज।

अंबरीष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) भाड़। (२) वह मिट्टी का बर्तन जिसमें भड़भूँजा गरम बालू डालकर दाना भूनते हैं। (३) सूर्य्य का नाम। (४) किशोर अर्थात् ११ वर्ष से छोटा बालक। (५) आमड़े का फल और पेड़। अम्बाड़ा। (Spondias Mangifera)। (६) विष्णु। (७) शिव। (८) अनुताप। पश्चात्ताप।

अंबरीसक-संज्ञा पुं० [सं० अंबरीष] भाड़। भरसायँ। -डिं०।

अँबली-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गुजराती कपास जो ढोलेरा नामक स्थान में होता है।

अंबष्ठ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० अंबष्ठा] दे० "अम्बष्टः(ष्ठः)"।

अंबष्ठकी-संज्ञा स्त्री० दे० "अंबष्ठा"।

अंबष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अंबष्ठ की स्त्री। (२) एक लता का नाम। दे० "अम्बष्ठा"।

अंबा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] माता। जननी। दे० "अम्बा"।

अँबाड़ा–संज्ञा पुं० दे० "आमड़ा"।

अंबापोली–संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र=आम, प्रा० अंब+सं० पौलि=पोतला, रोटी] अमावट। अमरस।

अंबालिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) माता। माँ। जननी। (२) अंबष्ठा लता। पाढ़ा। पाठा। (Cissampelos hexandra.)

अंबिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "अम्बिका"

अँबिया–संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र, प्रा० अंब] आम का छोटा कच्चा फल जिसमें जाली न पड़ी हो। इसकी खटाई कुछ हलकी होती है। इसे लोग दाल में डालते हैं। इसकी चटनी बनती और अचार भी पड़ता है। टिकोरा। केरी। अमिया। छोटा आम। वि० दे० "आम"।

अंबु–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "अम्बु"।

अंबुकंटक–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकण्टक] (An alligator) नक्र। मगर।

अंबुकिरात–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकिरातः,–टः] मगर। (An alligator)

अंबुकेशी–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] एक जलजंतु। ऊद।

अंबुचर–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचरः] जलचर।

अंबुचामर–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचामरम्] सेवार।

अंबुज–संज्ञा पुं० दे० "अम्बुजः"।

अंबुजात–वि० [सं० त्रि०] (Aquatic) जल से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० कमल।

अंबुताल–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुतालः] शैवाल। सेवार।

अंबुद–वि० [सं० अम्बुदः] जो जल दे।

संज्ञा पुं० (१) बादल। (२) मोथा। नागरमोथा। (Cyperus Rotundus, *Linn.*)

अंबुधर–वि० [सं० अम्बुधरः] जो जल को धारण करे।

संज्ञा पुं० (Cloud) बादल। मेघ।

अंबुधि–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुधिः] समुद्र। सागर।

अंबुधिस्रवा–संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिस्रवाः] (Aloe Barbadensis) घृतकुमारी। घीकार।

अंबुप–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपः] (१) समुद्र। सागर।

वि० पानी पीनेवाला।

अंबुपति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्र।

अंबुपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागरमोथा। मोथा। उच्चटा।

अंबुप्रसाद–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुप्रसादः] (Strychnos potatorum, *Linn.*) निर्मली। कतक।

अंबुरुह–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुरुहः] (Nymphœa nelumbo) कमल।

अँबुवाची–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] आषाढ़ में आर्द्रा नक्षत्र का प्रथम चरण अर्थात् आरम्भ के तीन दिन और बीस घड़ी जिनमें पृथ्वी ऋतुमती समझी जाती है और बीज बोने का निषेध है।

अंबुवेतस–संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवेतसः] एक प्रकार की बेंत जो पानी में होती है। बड़ी बेंत। जलवेतस।

नोट—यह बेंत पतली पर बहुत दृढ़ होती है। इसकी छड़ियाँ बहुत उत्तम बनती हैं। दक्षिण बंगाल, उड़ीसा, करनाटक, चटगाँव, वर्मा आदि में पाई जाती है।

अंबुसर्पिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जोंक। leech (Hirudo)।

अंभ–संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] जल। पानी। Water (Aqua)

अंभनिधि–संज्ञा पुं० दे० "अंभोनिधि"

अंभसार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मोती। मुक्ता।

अंभसू–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धूआँ। धूम। (२) भाप।

अंभोज–वि० [सं० त्रि०] जल से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० दे० "अम्भोजम्"।

अंभोद–वि० [सं० त्रि०] जो पानी दे।

संज्ञा पुं० दे० "अम्भोदरः"।

अंभोधर–संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधरः] दे० "अम्भोदरः"।

अंभोधिवल्लभ–संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधिवल्लभः] दे० "अम्भोधिवल्लभ" ।

अंभोनिधि–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र । सागर ।

अंभोराशि–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र । सागर ।

अंभोरुह्–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] कमल ।

अँवरा–संज्ञा पुं० [देश०] आमला । दे० "आँवला"।

अँवला–संज्ञा पुं० [देश०] आमला । दे० "आँवला"।

अंश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कंधा । स्कंध । अंस । (२) भाग । विभाग । (३) हिस्सा । बाँट । बखरा । (४) चौथा भाग । (५) कला । सोलहवाँ भाग । (६) वृत्त की परिधि का ३६० वाँ भाग, जिसे एकाई मान कर कोण वा चाप का प्रमाण बतलाया जाता है । भूपरिधि का ३६० वाँ भाग । डिग्री degree (अं०)। इसका संकेत चिह्न इस प्रकार (०) है ।

अंशक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० अंशिका] (१) भाग । टुकड़ा । (२) हिस्सेदार । वि० (१) अंशधारी । (२) विभाजक ।

अंशकूट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Acromion process) अंसकूट । स्कन्धफलक । स्कंध-शिखर । कंधे की हड्डी का उभार । वा० शा० ४ अ० ।

अंशमर्म्म–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] स्कंधसन्धिस्थ मर्म्म । स्कंध मर्म्म । सु० शा० ६ अ० ।

अंशल–वि० [सं० त्रि०] (१) मांसल । स्थूल । (२) बलवान ।

अंशवान्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साम । सोमलता। सु० चि० २६ अ० ।

अंशांश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भाग का भाग ।

अंशी–वि० [सं० अंशिन्] [स्त्री० अंशिनी] (१) अंशधारी । (२) शक्ति वा सामर्थ्य रखनेवाला ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं० अंशिन्] अवयवी ।

अंशु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तृष्णा । (२) सूर्य्य । (३) प्रभा । किरण । रश्मि । (४) तेज । मे० शद्विक । (५) लता का कोई भाग । (६) सूत । तागा । धागा । (७) तागे का छोर । (८) लेश । बहुत सूक्ष्म भाग ।

अंशुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तेजपत्र । तेजपात । भा० पू० १ भ० । रा० नि० व० ६ । (२) श्लक्ष्णवस्त्र । मे० कत्रिक । (३) वस्त्र । कपड़ा । महीन वस्त्र । पतला कपड़ा । (४) रेशमी कपड़ा । (५) उपरना । दुपट्टा । उत्तरीय वस्त्र । (६) ओढ़नी । ओढ़ना ।

अंशुकाय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रवालादि ।

अंशुजाल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रश्मि समुदाय ।

अंशुधर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य्य ।

अंशुनाभि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] वह विंदु जिस पर समानांतर प्रकाश की किरणें तिरछी और संकुचित होकर मिलें । सूर्य्यमुखी शीशे को जब सूर्य्य के सामने करते हैं, तब उसकी दूसरी ओर इन्हीं किरणों का समूह गोल वृत्त वा विंदु बन जाता है जिसमें पड़ने से चीज़ें जलने लगती हैं । (हिं० शब्द सा०)

अंशुपर्णिका, अंशुपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सरिवन । शालपर्णी । श० र० । (शब्दार्णव) दे० "अंशुमती" ।

अंशुमंत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य्य ।

अंशुमती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सरिवन । शालपर्णी । शालपाणि, छालानी (बं०) । सालवण् । भूँइशेवगा (मरा०) । सप्पा कुपोव (ते०) । शार्पणि (उत्०) । गुण—कास, नाशक, ग्राही और कफपित्तनाशक है । च० द० । रस में तिक्त भारी तथा वातनाशक है और विषम-ज्वर, प्रमेह, अर्श, सूजन और सन्ताप नाश करने वाली है । रा० नि० व० ४ । यह भारी है तथा वमन, ज्वर, श्वास और अतिसारनाशक तथा शोष, त्रिदोषनाशक एवं रसायन है । मद० व० १ । यह धातुवर्द्धक है । भा० पू० गु० व० । "मेचकं चांशुमत्याः" । चि० क्र० क० वल्ली । वि० दे० "सरिवन" ।

अंशुमतीफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केले का पेड़ । कदली वृक्ष । भा० पू० १ भ० फ० व० ।

अंशुमत्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य्य ।

अंशुमत्फला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केले का पेड़ । कदली वृक्ष । रा० नि० व० ११ ।

अंशुमान्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सूर्य्य।

(२) एक प्रकार की सोमलता। सोम।

अंशूदक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह जल जो दिन में सूर्य्य की किरणों से तप्त हो और रात में जिसपर चन्द्रमाकी किरणें पड़े। यह एक प्रकारका भौम जल है जो निर्मल, शैत्यगुणयुक्त और शरद् ऋतु में प्रशस्त है। इसे हंसोदक भी कहते हैं। यथा—

"शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम्।
दिवार्क किरणैर्जुष्टं निशायामिन्दुरश्मिभिः॥
अरुक्षमनभिष्यन्दि तत्तुल्यं गगनाम्बुना"॥

सु० सू० ४६ अ० वारिव०। भा० पू० १ भ०।

गुण—यह बलकारक, शीतल, हलका, और रसायन है। मद० ८ व०। यह श्रमघ्न, पित्त, दाह, विष, मूर्च्छा, रक्तविकार एवं मदात्यय रोग में हितकारक हैं। रा० नि० व० १४।

अंस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Shoulder) स्कंध। कंधा।

अंसकण्ठका पेशी, अंसकण्ठकीया पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंस वा कंधे और कण्ठ के बीच की पेशी। ऑमो-हायोऑइडियस Omohyoideus (अं०)।

अंसकशेरुका लघ्वीपेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्कंधास्थि को पीछे खींचने तथा घुमानेवाली छोटी पेशी। मसल र्‌हॉम्बॉइडिअस माइनर Muscle Rhomboideus minor (अं०)।

अंसकशेरुका वृहती पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्कंधास्थि को पीछे खींचने तथा घुमानेवाली बड़ी पेशी। मसल र्‌हामबॉइडिअस मेजर Muscle Rhomboideus major (अं०)।

अंसकूट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्कंधास्थि में एक उभार जिससे अक्षक (हँसली) बँधी रहती है। अंसप्राचीरक का मुड़ा हुआ और कंधे की प्रवर्द्धन की शकल में निकला हुआ भाग। एक्रोमिअन प्रोसेस Acromion process (अं०)। अख्रम, ज़ाइदहे अख़्रमियः, क़िल्लतुल् कतिफ़, तुतूऽअख़्रमी (अ०)।

नोट–स्कंधास्थि में छोटे बड़े दो उभार होते हैं। छोटेको अंसकूट तथा बड़ेको अंसतुण्ड कहते हैं।

(२) साँड़ के कंधों के बीच का ऊपर उठा हुआ भाग। कूबड़। कुब्ब। डिल।

अंसकूटाक्षकीया पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंसकूट तथा अक्षक को ढाँकनेवाली पेशी। मसल एक्रोमिओ-क्लेविक्युलर Muscle Acromio clavicular (अं०)।

अंसचक्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शोल्डर गर्ड्ल Shoulder girdle (अं०)।

अंसज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्कंधास्थि। अ‍ज़्मुल्कतिफ़– अ०। स्कैप्युला Scapula (अं०)।

अंसतुण्ड–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्कंधास्थिके ऊपर के किनारे (ऊर्ध्व धारा) के पास का एक मुड़ा हुआ उभार। इस अस्थिसे १६ मांसपेशियाँ लगी रहती हैं। कोरेकॉइड प्रोसेस Coracoid process (अं०)। नुतूऽग़ुराबी, मिन्क़ारुल् ग़ुराब, ज़ाइदहे मिन्क़ारियः (अ०)।

अंसतुण्ड कूटीया पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष। कोरेको एक्रोमिअल Muscle Coraco acromial (अं०)।

अंसतुण्ड प्रगण्डकीया पेशी, अंसतुण्ड-प्रगण्डिका पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बाहु को मोड़ने तथा उसे वक्ष की ओर ले जानेवाली पेशी। मसल कोरेको ब्रेकिएलिस Muscle Coraco-brachialis (अं०)।

अंसतुण्डप्रगण्डीया पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष। मसल कोरेको ह्यूमरेलिस Muscle Coraco-humeralis–अं०।

अंसतुण्डाधरा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंसतुण्डाधः पेशी। अ‍ज़्लः तह्‌तुन्नुतूउल् ग़ुराबियः (अ०)। सबकोरेकॉइड मसल Subcoracoid muscle (अं०)।

अंसपर्शुका पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्कंधास्थि को आगे लानेवाली पेशी, जैसा धक्का देने वा घूँसा मारने आदि में किया जाता है। सिरेटस ऐण्टीरिअर मसल Serratus Anterior muscle (अं०)

अंसपारिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महानिम्ब वृक्ष।

बकायन–हिं०। महानिम् (बं०)। (Melia azedarach, *Linn.*) वै० निघ०।

अंसपीठ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्कंधास्थि के कंधे में रहनेवाले मोटे भाग में का एक गढ़ा। यहाँ पर बाहु की अस्थि का शिर उससे मिला रहता है। ग्लीनॉइड केविटी Glenoid cavity (अं०)। ऐ.नुल् कतिफ़, हुक़्क़ुल् कतिफ़–(अ०)। दे० "अंसप्राचीरक"

अंसपृष्ठिका नाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नाड़ी विशेष। (Dorsal scapular nerve)

अंसप्रच्छदा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंसाच्छादनी पेशी। अज़्लहे दालियः (अ०)। डेलटाइडिअस मसल Deltoideus muscle (अं०)।

अंसप्राचीरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्कंधास्थि के चौड़े भाग के पश्चात् पृष्ठ पर का वह उभार जो खवे में टटोला जा सकता है। स्पाइन ऑफ़ दि स्केप्युला Spine of the Scapula (अं०)। .ऐनुल् कतिफ़–अ०। शाने की हड्डी का उभार (उ०)।

अंसप्राचीरकाधः खात–संज्ञा पुं० [सं०] स्कंधास्थि के चौड़े भाग के पिछले पृष्ठ का वह अंश जो अंसप्राचीरक से नीचे होता है।

अंसप्राचीरकाधोगा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी जो अंशप्राचीरक-खातसे लगी रहती है। (Muscle Infraspinatus.)

अंसप्राचीरकोर्ध्व खात–संज्ञा पुं० [सं०] स्कंधास्थि के चौड़े भाग के पिछले पृष्ठ का वह अंश जो अंसप्राचीरक से ऊपर है।

अंसप्राचीरकोर्ध्वा-(र्ध्वगा) पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी जो अंसप्राचीरकोर्ध्व खातसे लगी रहती है। (Muscle supraspinatus)

अंसफलक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कंधे की हड्डी। स्कंधास्थि। अंसत्र। स्कंधफलक। स्केप्युला Scapula, shoulder blade (अं०)। च। प्रशस्त स्कंध-बं०। अज़्मुल् कतिफ़-अ। शानः की हड्डी-उ०। (२) भुजा। (३) अंसमर्म। सु० शा० ६ अ०।

अंसमेरु–संज्ञा पुं० [सं०] दे० "अंसप्राचीरक"।

अंसु़ल़ान्–[अ०] अरण्य पलाण्डु। काँदा। Urginea (Scilla) Indica, *Roxb.* स० फा० इं०।

अंसवंश–संज्ञा पुं० [सं०] (Spine of the scapula)। दे० "अंसप्राचीरक"।

अंसवंशाधर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अंसप्राचीरकाधः। तह़्तुल् ऐ.रूज़् कतिफ़् (अ०)। सब स्पाइनस Sub Spinous–अं०।

अंसवंशाधरा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंसप्राचीरकाधरा पेशी। अ.ज़्लहे तह़्तुल् ऐ.रूज़् कत्फ़ियः (अ०)। मसल इन्फ़्रा स्पाइनेटस Muscle Infra Spinatus (अं०)।

अंसवंशोत्तरा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंसप्राचीरकके ऊपरकी पेशी। अंसप्राचीरकोर्ध्व पेशी। मसल सुप्रा स्पाइनेटस Muscle Supra-spinatus (अं०)।

अंसशोष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नामकी वातव्याधि विशेष। यह रोग स्कंधस्थित वायु के तत्स्थानीय कफ के शोषित करने से उत्पन्न होता है। स्कंधस्थ कफ धातु शोषक वातरोग।

लक्षण—कंधे में रहनेवाली वायु जब दूषित होकर स्कंध के बंधन कफ को सुखा देती है, तब उसको स्कंधशोष कहते हैं। मा० नि०।

अंससन्धि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कंधे का जोड़। स्कंध संधि। (Shoulder joint) मफ़्सिलुल् कतिफ़–अ०।

अंसाच्छादनीपेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंसप्रच्छदा पेशी। अंस वा कंधे को ढाँकनेवाली पेशी। (Muscle Deltoideus Deltoid muscle) अज़्लहे दालियः (अ०)।

अंसाधःपेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Trapezius muscle) कंधेके नीचेवाली पेशी।

अंसाधर–वि० [सं० त्रि०] स्कंधाधर। कंधे के नीचे का। (Subscapular)। तह़्तुल् कतिफ़–अ०।

अंसाधरापेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्कंधास्थि के अगले पृष्ठ से लगी हुई एक पेशी विशेष। यह अंसखात से आरंभ होकर लघुपिण्डक पर समाप्त

होती है। कार्य—प्रगण्ड को मध्यरेखा की ओर लाना और भीतर को घुमाना। नाड़ी–उर्ध्व तथा निम्न अंसाधरा नाड़ियाँ। मसल सबस्केप्युलेरिस Muscle Subscapularis-(अं०)। अ़ज़्ल: तह्‌तुल् कतिफ़-(अ०)।

अंसाधोपेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Subscapularis muscle) कंधे के नीचे की पेशी।

अंसार्गल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अंसप्राचंरक। अंसवंश। (Spine of the scapula)

अंसार्बुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) कंधे का उभार। (२) प्रगंडास्थि के गात्र के मध्य का बाहर की ओर का उभार।

अंसास्थि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंधे की हड्डी। स्कंधास्थि। अंसफलक। (Scapula)

अंसास्थि, अंसफलक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Scapular shoulder blade) कंधे की हड्डी का किनारा।

अंसाक्षकीयासंधि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंसकूट तथा हँसली की संधि। एक्रोमियो क्लेविक्युलर जॉइण्ट Acromio-clavicular joint (अं०)।

अंसोत्कर्षणीपेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्कंधास्थि के ऊर्ध्वकोण को ऊपर खींचनेवाली पेशी। आरम्भ–ग्रीवा के ऊपर के ४ कशेरुका के पार्श्व प्रवर्द्धन। अन्त–स्कंधास्थि की वंशानुगाधारा। नाड़ी–३, ४, ५ ग्रैवेयी नाड़ियाँ। लेवेटर स्केप्युली Levator Scapulæ-(अं०)। अ़ज़्लहे राफ़िअतुल् अ़ज़्मुल् कतिफ़-(अ०)। इ० श० र०।

अंसोत्तरापेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंसोर्ध्वपेशी। कंधों के ऊपर की पेशी। ट्रान्सवर्स स्केप्युलर मसल Transverse Scapular Muscle (अं०)।

अंसोदर्य–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० अंसोदर्या] कंधे के नीचे का। अंसाधर। (Subscapular)

अंसोदूखल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अंसपीठ। (Glenoid cavity.)

अंसोर्ध्वधमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंधे के ऊपर की धमनी। (Supra scapular artery)

अंसोर्ध्वगानाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंधे से ऊपर की नाड़ी। (Supra-scapular nerve)

अंसोत्कर्षणीनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंसोत्कर्षणी पेशी की नाड़ी। (Nerve to Levator scapuli)

अंह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० अंहस्] (१) दुःख। व्याकुलता। (२) पाप। दुष्कर्म। अपराध। विघ्न। बाधा।

अंहति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रोग। मे० तन्त्रिक। पीड़ा। अम०। (२) दान। (३) त्याग। परित्याग।

अँहुड़ी–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की लता जिसमें छोटी-छोटी गोल पेटे की फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी बनती है और इनके बीज दवा में पड़ते हैं। बाकला।

अंह्रि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) पाद। (२) तरुमूल। वृक्ष की जड़। अम०। (३) चारकी संख्या।

अंह्रिप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पेड़। वृक्ष। पादप। हला०।

अंह्रिस्कंध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुल्फ। पैर का गट्टा। (Malleolus) है० च०।

(आ)

आ–संस्कृत वा हिन्दी वर्णमाला का दूसरा अक्षर जो "अ" का दीर्घ रूप है। दीर्घ और प्लुत इसके दो भेद हैं। इसका उच्चारण-स्थान कंठ है।

अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग सीमा, अभिव्याप्ति, ईषत् और अतिक्रमण के अर्थों में होता है।

उप० [सं०] यह प्रायः गत्यर्थक धातुओं के पहले लगता है और उनके अर्थों में कुछ थोड़ी सी

विशेषता कर देता है; जैसे आपात, आघूर्णन, आरोहण, आकंपन, आघ्राण।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ब्रह्मा। पितामह। (२) दुःख। कष्ट। रंज। (३) वाक्य।

आइक-[य०] अज़्मलामी। जिह्वामूलास्थि। ऑस हाइऑइड (Os hyoid)।

आइच-[बं०] आच। आच्छुक। आल। सुरञ्जी (व्यापा० ना०)। (Morinda citrifolia: var. 1st, Citrifolia proper, *Roxb.*)।

आइगेस्युरिक एसिड-संज्ञा पुं० [अं० Igasuric acid] कुचिला का एक सत्व जिसमें स्ट्रिक्नीन (कुचलीन) तथा ब्रूसीन दोनों सम्मिलित होते हैं। दे० "कुचला"।

आइगेस्युरीन-[अं० Igasurine] आइगेस्युरिक वा स्ट्रिक्नक एसिड के साथ मिला हुआ अशुद्ध ब्रूसीन जो कुचलाका एक सत्व है। दे० "कुचला"।

आइज़ाल मेडिकल-[अं० Izal medical] यह कोलटार का एक यौगिक है। दे० "पिक्स कार्बोनिस प्रीपेयरेटा"।

आइट्रोल-संज्ञा पुं० [अं० Itrol] एक सफ़ेद निर्गंध चूर्ण जिसमें ६३ प्रतिशत चाँदी होती है। इसे सिल्वर साइट्रेट (Silver citrate)

आइएटमेएट आफ़ एकोनाइटीन-[अं० Ointment of aconitine] वत्सनाभानानुलेपन। दे० 'बच्छनाग"।

आइएटमेएट आफ़ एट्रोपीन-[अं० Ointment of atropine] धत्तूरीनानुलेपन। दे० 'बिलाडोना"।

अनुलेप। प्रलेप। लेप। दे० अङ्गुएएटम्।

आइएटमेएट आफ़ आयोडाइड आफ़ मर्करी-संज्ञा पुं० [अं० Ointment of iodide of mercury) नैलिदपारदानुलेपन। दे० "पारा"।

आइएटमेएट आफ़ आयोडाइड आफ़ लेड-संज्ञा पुं० [अं० Ointment of iodide of lead] सीसकनैलिदानुलेपन।

आइएटमेएट आफ़ आयोडीन-[अं० Ointment of iodine] नैलिकानुलेपन। दे० "आयाडम्"।

आइएटमेएट आफ़ आयडोफ़ार्म-[अं० Ointment of iodoform] आयडोफ़ार्मानुलेपन। दे० "आयडोफार्म"।

भी कहते हैं। यह पानी में बहुत कम घुलता है अर्थात् ४२० भाग में केवल १ भाग। प्रभाव-कीटघ्न (Antiseptic) और संकोचक (Astringent)। उपयोग-उग्र पूयमेह (Acute gonorrhœa) में ८२०० भाग पानी में एक भाग यह दवा मिलाकर इसकी पिचकारी करना उपयोगी है।

नोट—कोई कोई इसका उच्चारण 'इट्रोल' भी करते हैं। वि० दे० "चाँदी"।

आइडिस्क-संज्ञा पुं० [अं० Eye disk] सुफ़्हाते रक़ीक़ः (अ०)। दे० "लैमेली"।

आइएटमेएट-संज्ञा पुं० [अं० Ointment]

आइएटमेएट आफ़ एमोनिएटेड मर्करी-[अं० Ointment of ammoniated mercury] दे० "अङ्गुएएटम् हाइड्रार्जिराई एमानिएटा"।

आइएटमेएट आफ़ कोकीन-[अं० Ointment of cocaine] कोकीनानुलेपन। दे० "अङ्गुएएटम् कोकीना"।

आइएटमेएट आफ़ कोनाइम्-[अं० Ointment of conium] शूकरानानुलेपन। अङ्गुएएटम् कोनियाई। दे० "कोनायम्"

आइएटमेएट आफ़ केन्थेरीडीज़-[अं० Ointment of cantharidies] स्निग्धमाक्षिकानुलेपन। दे० "अङ्गुएएटम् कैन्थेरीडाइनाई"।

आइएटमेएट आफ़ कैप्सिकम्-[अं० Ointment of capsicum] रक्तमरिचानुलेपन। दे० "अङ्गुएएटम् कैप्सिसाई"।

आइएटमेएट आफ़ क्राइसारोबीन-[अं० Ointment of chrysarobin] क्राइसारोबीनानुलेपन। दे० "अङ्गुएएटम् क्राइसारोबाईनाई"।

आइएटमेएट आफ़ कैलोमेल-[अं० Ointment of calomel] केलोमेलानुलेपन।

आइएटमेएट आफ़ क्रियोज़ूट-[अं० Ointment of creosote] क्रीयोज़ूटानुलेपन। दे० "अङ्गुएएटम् क्रियोज़ूटाइ"।

आइएटमेएट आफ़ गाल–[अं० Ointment of gall] मार्चिकानुलेपन । दे० 'अङ्गुएएटम् गाली'

आइएटमेएट आफ़ गाल एएड ओपियम्–[अं० Ointment of gall and opium] दे० "अङ्गुएएटम् गाल कम ओपियो" ।

आइएटमेएट आफ़ चालमूगरा आइल–[अं० Ointment of chaulmugra oil] चालमूगरा प्रलेप । दे० "अङ्गुएएटम गाइनोकार्डीई" ।

आइएटमेएट आफ़ टार–[अं० ointment of tar] टारानुलेपन ।

आइएटमेएट आफ़ टार्टरेटेड ऐरिटमनी–[अं० Ointment of tartarated antimony] तार्तारा‌ञ्जनानुलेपन । दे० "अञ्जन" ।

आइएटमेएट आफ़ नाइट्रेट आफ़ मर्करी–[अं० Ointment of nitrate of mercury] पारदनत्रेतानुलेपन । दे० "पारा" ।

आइएटमेएट आफ़ पैराफ़ीन–[अं० Ointment of paraffin] पैराफ़ीनानुलेपन । दे० "पैराफ़ीन" ।

आइएटमेएट आफ़ पोटासियम् आयोडाइड–[अं० Ointment of potassium iodide] पांशुनैलिदानुलेपन । दे० " पोटेसियम्" ।

आइएटमेएट आफ़ बेलाडोना–[अं० Ointment of belladona.] बेलाडोनानुलेपन । दे० "बेलाडोना" ।

आइएटमेएट आफ़ माइरोबेलन–[अं० Ointment of myrobalan] हरीतकी प्रलेप । दे० "हड़" ।

आइएटमेएट आफ़ माइरोबेलन विथ ओपियम्–[अं० Ointment of myrobalan with opium] हरीतक्यहिफेन प्रलेप ।

आइएटमेएट आफ़ युकेलिप्टस [अं० Ointment of eucalyptus] युकालिप्टस प्रलेप । दे० "युकेलिप्टाई" ।

आइएटमेएट आफ़ रेड आयोडाइड आफ़ मर्करी–[अं० Ointment of red iodide of mercury] रक्तनैलिदपारदीयानुलेपन । दे० "पारा" ।

आइएटमेएट आफ़ रेडप्रेसिपिटेट-[अं० Ointment of red precipitate] दे० "पारा" ।

आइएटमेएट आफ़ रेड मर्क्युरिक आक्साइड–[अं० Ointment of red mercuric oxide] रक्तपारदभस्मानुलेपन । दे० "पारा"।

आइएटमेएट आफ़ रोज़वाटर–[अं० Ointment of rose water] गुलाबार्कानुलेपन । दे० "गुलाब" ।

आइएटमेएट आफ़ लेड एसिटेट–[अं० Ointment of lead acetate] सीसकैसीटेट प्रलेप ।

आइएटमेएट आफ़ लेड एसीटेट ग्लीसरीनी–[अं० Ointment of lead acetate glycerine] सीसकैसीटेटग्लीसरीनीयानुलेपन ।

आइएटमेएट आफ़ लेड कार्बोनेट–[अं० ointment of lead carbonate] सफ़ेदानुलेपन । दे० "सीसा" ।

आइएटमेएट आफ़ वेरेट्रीन–[अं० Ointment of varetrin] अमरीकीय छिक्किकासत्वानुपलेन । दे० "वैरेट्रीन" वा "नकछिकनी" ।

आइएटमेएट एलो–[अं० Ointment yellow पीतपारदभस्म प्रलेप । दे० "पारा" ।

आइएटमेएट एलो मर्क्युरिक औक्साइड–[अं० ointment yellow mercuric oxide] पीत पारद भस्म प्रलेप । दे० "पारा"।

आइएटमेएट ज़िङ्क–[अं० Ointment zinc] यशद प्रलेप । दे० "जस्ता" ।

आइएटमेएट ज़िङ्क आलिएट–[अं० Ointment zinc oleate] यशद–आलिएट प्रलेप । दे० "जस्ता" ।

आइएटमेएट ब्ल्यू–[अं० ointment blue] नील पारदानुलेपन । दे० "पारा" ।

आइएटमेएट मर्करी–[अं० Ointment mercury] पारदानुलेपन । दे० "पारा" ।

आइएटमेएट मर्करी कम्पाउएड–[Ointment mercury compaund] मिश्रित पारदानुलेपन । दे० 'पारा" ।

आइएटमेएट मर्क्युरिक आयोडाइड–[अं० Ointment mercuric iodide] रक्त नैलिद पारदानुलेपन । दे० "पारा" ।

आइण्टमेण्ट मर्क्युरस क्लोराइड–[अं० Ointment mercurous chloride] रसकर्पूरानुलेपन। दे० "पारा"।

आइण्टमेण्ट मर्क्युरिक आलिएट–[अं० Ointment mercuric oleate] दे० "पारा"।

आइण्टमेण्ट मर्क्युरिक नाइट्रेट–[अं० Ointment mercuric nitrate] पारद नाइट्रेट प्रलेप। दे० "पारा"।

आइण्टमेण्ट मर्क्युरिक नाइट्रेट डाइल्यूट–[अं० Ointment mercuric nitrate dilute] जलमिश्रित शोरकपारदानुलेपन। दे० "पारा"।

आइण्टमेण्ट रेज़िन–[अं० Ointment resin] रालप्रलेप। दे० "राल"।

आइण्टमेण्ट सल्फ़र–[अं० Ointment sulphur] गन्धकानुलेपन। दे० "गन्धक"।

आइण्टमेण्ट सल्फ़र आयोडाइड–[अं० ointment sulphur iodide] गन्धनैलिदानुलेपन।

आइण्मेण्ट साइट्रन–[अं० Ointment citron] निम्बुकानुलेपन।

आइण्टमेण्ट स्परमेसिटाई–[अं० Ointment spermaceti] ह्वेल मछली के सिर की चर्बी का मरहम।

आइत–[अ] [बहु० उ़त, ़ईत] वह स्त्री जो न बन्ध्या हो और न मुद्दतों गर्भ ही धारण करे।

आइदअ रूमी–[अ] दमुलअख़्वैन। (Dragon's blood) खूनाखराबा।

आइपोमिया आब्स्क्योरा–[ले० Ipomœa obscura] सिरुताली (ता०)। इं० मे० प्लां।

आइपोमिया आरिज़ेबेन्सिस्–[ले० Ipomœa orizabensis] ऑरिज़ेबा जैलप (orizaba jalap)। प्रयोगांश–शुष्क मूल–राल। स्केमोनी (सक़मूनिया)। दे० "आइपोमिई-रैडिक्स"।

आइपोमिया इडयुलिस–[ले० Ipomœa edulis] शकरकन्द। रंग आलू (बं०)। चकरकन्द। रतालू। मीठा आलू। (Ipomœa Batatas, *Lamk.*)।

आइपोमिया एक्वेटिका–[ले० Ipomœa aquatica, *Forsk.*] करेमू। कलम्बी। कलमी-शाक (बं०)। नालि-चि-भाजी (मरा०) गन्थिअम-नारि (पं०)। प्रयोगांश–पञ्चांग। उपयोग–यह सामान्यतः शाक रूप से व्यवहार में आता है। दे० "करेमू"।

आइपोमिया एरियोकार्पा–[ले० Ipomœa eriocarpa, *Br.*] भँवर (पं०)। यह खाद्य के काम में आता है।

आइपोमिया केम्पेन्युलेटा–[ले० Ipomœa campanulata, *Linn.*] एक पौधा जिसे सर्प विषघ्न बतलाया जाता है। फा० इ० २ भा०।

आइपोमिया केरयुलिया–[ले० Ipomœa cæru lea] भारतवर्ष में होनेवाला एक पौधा जिसका बीज विरेचक प्रभाव के लिए प्रसिद्ध है। इं० मे० मे०।

आइपोमिया कामाक्लिट–[ले० Ipomœa quamoclit, *Linn.*] कामलता। सीता च-केस (मरा०)। दे० "इश्क़पेचा"। फा० इं० २ भ०।

आइपोमिया टर्पीथम्–[ले० Ipomœa turpethum, *R. Br.*] श्वेत त्रिवृत, त्रिपुटा, त्रिवृतिका, सफेद निसोत। नाकपत्र। पितोहरी। (Turpeth) फा० इ० २ भ०। इं० मे० मे०। स० फा० इं०। मेमो०। इं० मे० प्लां०।

आइपोमिया ट्राइडेंटेटा–[ले० Ipomœa tridentata, *Roth.*] प्रसारिणी।

आइपोमिया डिजिटेटा–[ले० Ipomœa digitata, *Linn.*] विदारी। विदारीकन्द। भूमिकुष्माण्ड। बिलाईकन्द। पतालकुम्हड़ा। पताल कुहँड़ा। (Batatas paniculata) फा० इं० २ भ०। मेमो०। इं० मे० प्लां०।

आइपोमिया निल–[ले० Ipomœa nil] कालादाना। मिर्चाई। (हिं०, बं०, बम्ब०)। (Ipomæa Hederaceæ)। इं० मे० मे०।

आइपोमिया पर्गा–[ले० Ipomœa purga,

Hagva.] विरेचक मूल । जलब । जलाबा । जलापा । Jalap (Jalapa) । मे० मो० । म० अ० डॉ० । दे० "जलापा" ।

आइपोमिया पर्प्युरा-सेन्स–[ले० Ipomœa perpura-scens] बारीकभौरी (कों०) । इं० मे० प्लां० ।

आइपोमिया पिस्कैप्री–[ले० Ipomæa pesca-præ] दोपातीलता । छागल खुरी (बं०) । (Ipomæa biloba, *Forsk.*) । फा० इं० २ भ० । इं० मे० मे० । इं० मे० प्लां ।

आइपोमिया पिस्टीग्राइडीस–[ले० Ipomæa pestigrides, *Linn.*] लाङ्गुली-लता (बं०) । यह पागल कुत्ते का विष दूर करनेवाला माना जाता है । इसे पीस कर मक्खन के साथ कार्बङ्कल (पीठ के फोड़े) पर एवं जले हुए स्थान पर लगाते हैं । फा० इं० २ भ० । इं० मे० प्लां ।

आइपोमिया पेनिक्युलेटा–[ले० Ipomœa paniculata] भूमिकुष्माण्ड (सं०) । पताल कुम्हड़ा । पताल कोंहड़ा भुँइकुम्हड़ा । (Ipomœa digitata, *Linn.*). इं० मे० मे० ।

आइपोमिया बाइलोबा–[ले० Ipomæa biloba, *Forsk.*] वृद्धदारक । दोपातीलता । मरजाद बेल (हिं०) छागलखुरी (बं०) युग्मपत्रा । मर्यादालता । छागलाङ्घ्री (सं०) । फा० इं० २ भ० । इं० मे० प्लां । मेमो० ।

आइपोमिया बेटेटास–[ले० Ipomæa batatas, *Lamk.*] शकरकन्द । रंग आलू (बं०) । चकरकन्द । रतालू । मीठा आलू । (Sweat Potato) मेमो० । इं० मे० मे० ।

आइपोमियां बोनानाक्स–[ले० Ipomæa bona=nox, *Linn.*] मूनफ्लॉवर (Moon flower) गुलचाँदनी (बम्ब०) । दुधिया-कलमी (I. grandiflora, *Roxb.*), कलमीलता (Lettsonia bona=nox, *Roxb.*)–बं० । पाथम्पु-टोडमी । नाग मुवतेई (ता०) । मून्दन्द-वल्लि (मल०) । न्वेका-सुन फ्यू (बर०) । (Ipomæa Grandiflora) मेमो० । फा० इं० २ भ० । इसका शुष्क किया हुआ डोड़ा तथा बीज, पुष्प, पत्र और मूल सर्प-दंश में उपयोगी समझा जाता है ।

आइपोमिया ब्रेसिलेन्सिस्–[ले० Ipomæa brasilensis] छागलाँघ्री । दोपातीलता Goat's foot-creeper (Ipomæa biloba) । इं० मे० मे० ।

आइपोमिया म्युरिकेटा–[ले० Ipomæa muricata, *Jacq.*] बारीकभौरी । छोटी भौरी (कों०) । गरिया (बम्ब०) ।

इसका मूल निवासस्थान फ़ारस तथा हिमालय पर्वत है । इसी से तुख़्मेनील प्राप्त होता है, जिसका आयात बम्बई में फ़ारस देश से होता है । रॉग्ज़बर्ग कहते हैं,–"मैने इसका बीज फ़ारस से मँगाकर स्वयं अपने बाग में बोया था, जिससे यह वार्षिक सिद्ध हुआ" । ग्राहाम इसको कैलोनिक्शन स्पेशियोज़म् (Calonyction Speciosum) का एक भेद मानते हैं । बम्बई के उपवनों तथा मरुस्थलों में यह प्रायः होता है । उपयोग—इस पौधे का स्वरस खटमल मारने के काम में आता है । वि० दे० "बारीक भौरी" ।

आइपोमिया युनिफ्लोरा–[ले० Ipomæa uniflora, *Roem.*] यह विरेचक है । इसका रस पैत्तिकाजीर्ण में काम आता है । फा० इं० २ भ० ।

आइपोमिया रिप्टेन्स–[ले० Ipomæa reptans] पट्टशाक । नाड़ी शाक । पटुआ का शाक ।

आइपोमिया रेनिफ़ार्मिस–[ले० Ipomæa reniformis, *Chois.*] मूषाकर्णी । उन्दिर-काना । मूसाकानी । इन्दुर कानी (बं०) । फा० इं० २ भ० । इं० मे० मे० । इं० मे० प्लां० । मेमो० ।

आइपोमिया वाइटीफ़ोलिया–[ले० Ipomæa vitifolia, *Sweet.*] नवल (बम्ब०) । एक वृहत् बहुवर्षीय लता है । जिसके पत्ते हृदयाकार पञ्जे की तरह पाँच कँगूरेवाले होते हैं । पुष्प बड़े, चमकीले और पीले रंग के होते हैं । इसका स्वरस अत्यन्त शीतल समझा जाता है ।

यह दूध और शर्कराके साथ व्यवहारमें आता है। नीबू का रस १ भाग, अफीम आधा भाग और मामीरान (Coptis root) चौथाई भाग के साथ मिला कर आई हुई आँख में इसका स्थानीय उपयोग भी होता है। फा० इं० २ भ०।

आइपोमिया साइमोसा [ले० Ipomæa cymosa, *Roem.* et. *Schuletes.*] शाहपसंद। लालदाना। सापुस्सुन्द (बं०)। स० फा० इं०। इं० मे० मे०। फा० इं० २ भ०। दे० "शाहपसंद"।

आइपोमिया सिन्युएटा-[ले० Ipomæa sinuata, *Ort.*] एक पौधा जिसका मूलनिवास स्थान अमेरिका है। परन्तु अब यह उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त में भी उत्पन्न होता है। इसके पत्ते की गंध कड़ुए बादाम के तेल के समान होती है। यह उक्त नाम के फ्रांसीय मद्य बनाने में व्यवहृत होता है। फा० इं० २ भ०। इं० मे० मे०।

आइपोमिया सिपेरिया-[Ipomæa sepiaria, *Koen.*] शाहपसंद। लालदाना। स० फा० इं०। इं० मे० मे०। फा० इं० २ भ०।

आइपोमिया हेडिरेसिया-[ले० Ipomæa hederaceæ, *Jacg.*] कालादाना। मिर्चाई। (Pharbitis nil, *Chois.*) फा० इं० २ भ०।

आइपोमीई रैडिक्स-[ले० Ipomœæ radix] (Orizaba jalap root, mexican scammony root) दे० "सकमूनियाँ"।

आइर-[अ०] (१) चक्षुपीड़ा। आँख दुखना। नेत्रशूल। आँख आना। (Ophthalmia)। (२) कण प्रभृति जो नेत्र में पड़ जाँय। (३) वह छोटा फफोला जो नेत्र के नीचे पपोटे पर निकल आए।

आइरिस्-[ले० Iris] (१) इन्द्रधनुष-पुष्पी (सं०)। ईरसा (अ०, फ़ा०, हिं०)। Orrisroot। दे० "ईरसा"। (२) 'Iris sp'. पुष्करमूल-लकड़ी।

आइरिस् एन्सेटा-[ले० Iris ensata, *Thumb.*] ईरिसा। सोसन (हिं०)। ऐरमा (भूटा०)। उनरजल, मार्जल, कृषुम (काश०)। बेख़ बनफ़्शा (फ़ा०)।

उद्भवस्थान—शीतोष्ण उत्तरी पश्चिमी हिमालय पर्वत श्रेणियों तथा काश्मीर, नम स्थलों और प्रायः उद्यानों में सामान्य रूपसे उत्पन्न होता है। उपयोग-कहा जाता है, कि यह औषध की तरह काममें आता है। इं० मे० प्लां०। प्रयोगांश-जड़।

आइरिस् कुमाउनेन्सिस्-[ले० Iris kumaunensis, *Wall.*] पिआज़, कर्कर, तेज़मा (पं०)। (Iris longifolia, *Roxb.*) इं० मे० प्लां०। इं० डू० इं०।

उत्पत्तिस्थान—शीतोष्ण उत्तरी हिमालय तथा आल्प पर्वतीय प्रदेश। उपयोग-चम्बामें इसकी पत्ती और जड़ ज्वर में प्रयुक्त होती है। (स्टूवर्ट)

आइरिस, चाइनीज़-[अं० Iris, chinese] आइरिस चाइनेन्सिस् (Iris, chinensis) सोसन। सोसान। पीलगोश। इं० हैं० गा।

आइरिस जर्मेनिका-[ले० Iris germanica, *Linn.*] बीख़े-बनफ़्शः। केवड़े का मूल (भा० बाज़ा०)। पद्मपुष्कर। फा० इ. ३ भ०। इं० मे० मे०। दे० "पुष्करमूल"।

आइरिस् नेपालेन्सिस्-[ले० Iris nepalensis, *D. Don.*] चलून्दर। सोसन। शीती। चिलूंचि (पं०)। उ० प० सू०। हिमा०। नीलपद्म (Iris decora, *Wall.*) Blue lotus इं० मे० प्लां। इं० मे० मे०। मेमो०।

आइरिस् पर्सियन-[अं० Iris persian] आइरिस पर्सिका (Iris persica) हूबर। इं० हैं० गा०।

आइरिस् पैलिडा-[ले० Irispallida] पुष्करमूल। इं० मे० मे०।

आइरिस फ़ीटिडिसिमा-[ले० Iris fœtidissima, *Linn.*] दादमारी। दाबीदूब। (Wild Iris, *Xyris.*) फा० इं० ३ भ०।

आइरिस फ़्लोरेण्टिना-[ले० Iris florentina, *Linn.*] ईरसा। पुष्करमूल। मेमो०। इं० हैं० गा०।

आइरिस् फ़्लोरेन्स-[ले० Iris florence] ईरसा। पुष्करमूल। मेमो०। इं० हैं० गा०।

आइरिस् ब्लू-लैग-[अं० Iris blue-plag] आइरिस् वर्सिकलर।

आइरिस् रूट-[अं० Iris root] पुष्करमूल। ईरसा।

आइरिस् लाङ्गिफ़ोलिया-[ले० Iris longifolia, *Roxb.*] पुष्करमूल। फा० इं० ३ भ०।

आइरिस वर्सिकोलर-[ले० Iris versicolor] ईरसाए क़ज़्हियः। सोसन आस्मान जूनी (अ०) इन्द्रधनुषपुष्पी। ईरसा।

आइरिस स्युडोकोरस-[ले० Iris pseudocorus] पखानबेद (गु०)। पखानभेद। जिगर की बीमारियों में इसका क्वाथ अथवा चूर्ण प्रयोग में आता है। यह मूत्रल, सुगन्धियुक्त तथा उत्तेजक है। यह अकेला बहुत कम व्यवहार में आता है। इं० मे० मे०।

आइरीडियम्-[अं० Iridium] नवाविष्कृत ६८ प्रकार के धातु-तत्त्वों में से एक। यह प्लैटिनम समूह की पालिश किये हुए स्टील की तरह की एक सफेद धातु है। इन्द्रधनुषम्।

आइरीडिई-[ले० Iridiæ]
आइरीडेसीई-[ले० Iridaceæ] } वनस्पतियों का एक वर्ग। कुङ्कुम वर्ग। केशर वर्ग।

आइरीडीन-[ले० Iridin,]
आइरीसीन-[ले० Irisin] } पुष्करमूलीन। ईरसा का सत्व। इन्द्रधनुष-पुष्पी सत। दे० "पुष्करमूल" वा "ईरसा"।

आइल-[अं० Oil] [बहु० आॅइल्ज़ Oils] तैल। तेल। रोग़न (फ़ा०)।

नोट—ब्रिटिश फार्माकोपिया में जितने तैल (स्थिर या अस्थिर) आफ़िशल हैं उन सभी का वर्णन "आॅलियम्" में किया गया है।

आइल अजोवान-[अं० Oil ajowan] अजवायन का तेल।

आइल अबीटीज़-[अं० Oil abietis] देवदारु का तेल।

आइल अरेकिस्-[अं० Oil arachis] चिनिया बादाम का तेल।

आइल आफ़ अर्थ-नट-[अं० Oil of earth-nut] चिनिया बादाम का तेल। मूँगफली का तेल।

आइल आॅफ़ आरेञ्ज-पील-[अं० Oil of orange-peel] नारंगी के छिलके का तेल। नागरंग-त्वक् तैल।

आइल आफ़ ऊड-[अं० Oil of wood] लकड़ी का तेल। काष्ठ तैल।

आइल आफ़ एनिसी-[अं० Oil of anise] अनीसून का तेल।

आइल आफ़ केजुपुट-[अं० Oil of cajuput] कयपूती का तेल। (Cajuputi oil)

आइल आफ़ केड-[अं० Oil of cade] हाऊबेर का तेल। हपुषा तैल। Juniper Tar oil (Cadinum oleum)।

आइल आफ़ केमोमाइल-[अं० Oil of chamomile] बाबूने का तेल। रोगन बाबूना।

आइल आफ़ केम्फर-[अं० Oil of camphor] कपूर का तेल। कर्पूर तैल। रोग़न काफ़ूर।

आइल आफ़ कैरन-[अं० Oil of carron] एक प्रकार का एमलशन जो पाँच भाग जैतून का तेल और पाँच भाग चूने के पानीको मिलाकर प्रस्तुत किया जाता है। इसे जले हुए स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

आइल आफ़ कैरवे-[अं० Oil of caraway] जीरे का तेल। जीरक तैल। करोया तेल। रोग़न ज़ीरः।

आइल आफ़ कैष्टर-सीड-[अं० Oil of castor-seed] अरण्डी के बीजका तेल। रेंडी का तेल। कैष्टर आइल।

आइल आफ कोपेबा-[अं० Oil of copaiba] रोग़नबलसाँ। बलसाँ का तेल। कोपाइबा।

आइल आफ़ कोरियाण्डर-[अं० Oil of coriander] धनिए का तेल। धान्यक तैल।

आइल आफ़ क्युबेब्स-[अं० Oil of cubebs] कबाबचीनी का तैल। रोग़न कबाबचीनी।

आइल आफ़ क्रोटन-[अं० Oil of croton] जमालगोटे का तेल। जैपालबीज-तैल।

आइल आफ़ क्लाव्ज़-[अं० Oil of cloves] लौंग का तेल। लवङ्ग तैल।

आइल आफ़ गाइनो कार्डिया-[अं० Oil of gynocardia] चालमूगरे का तेल । कुष्टवैरी तैल ।

आइल आफ़ गालथिरिया-[अं० Oil of gaultheria] गन्दपूर का तेल । शीतहरित तैल । हरीभरी का तेल । (Oil of winter-green) ।

आइल आफ़ ग्राउएड-नट-[अं० Oil of ground-nut) चिनिया बादाम का तेल । मूँगफली का तेल ।

आइल आफ़ चावलमूग्रा-[अं० Oil of chaulmoogra] चालमूगरे का तेल । कुष्ठवैरी तैल ।

आइल आफ़-टर्पेएटाइन-[अं० Oil of terpentine] तारपीनका तेल । गन्धाबिरोज़ेका तेल ।

आइल आफ़ टाइकोटिस्-[अं० Oil of ptychotis] अजवाइन का तेल ।

आइल आफ़ डिल-[अं० Oil of dill] सोए का तेल ।

आइल आफ़ थियोब्रोमा-[अं० Oil of theobroma] दे० "आलियम् थीयोब्रोमेटिस्" ।

आइल आफ़ नट-मेग-[अं० Oil of nut-meg] जायफल का तेल ।

आइल आफ़ पाइन-[अं० Oil of pine] देवदार का तेल । देवदारु तैल । oil of siberian fir (Abietis oil)

आइल आफ़ पी-नट-[अं० Oil of peanut] चिनिया बादाम का तेल । मूँगफली का तैल ।

आइल आफ़-पेपरमिएट-[अं० Oil of peppermint] पुदीने का तैल । पिपरमिएट का तेल । रोचनी का तैल ।

आइल आफ़ फ़ास्फ़रस-[अं० Oil of phosphorous] अगिया बैताल का तेल । स्फुरक तैल ।

आइल आफ़ बिटर आमएड-[Oil of bitter almond] कडुए बादाम का तेल । कटु बाताद तैल ।

आइल आफ़ मष्टर्ड-[अं० Oil of mustard] राई का तेल । राजिका तैल ।

आइल आफ़ युकेलिप्टस-[अं० Oil of eucalyptus] युकेलिप्टा तैल ।

आइल आफ़ रोज़-[अं० Oil of rose] गुल रोग़न । गुलाब का तेल ।

आइल आफ़ रोज़मेरी-[अं० Oil of rosemary] (Oleum rosmarinum) रोग़न इक्लीलुल्जबल ।

आइल आफ़ लिन्सीड-[अं० Oil of linseed] अतसी का तैल । अलसी का तेल । तीसी का तेल ।

आइल आफ़ लेमन-[अं० Oil of lemon] (Oleum limonis) नीबू का तेल ।

आइल आफ़ लेमन-ग्रास-[अं० Oil of lemon-grass] गन्धजनी का तेल । रूसा का तेल ।

आइल आफ़ लेवेएडर-[अं० Oil of lavender] (Oleum lavendulæ) रोग़न ख़ज़ामा ।

आइल आफ़ विट्रिआल-[अं० Oil of vitriol] गन्धक का तेज़ाब ।

आइल आफ़ विएटर-ग्रीन-[अं० Oil of winter-green] आइल आफ गाल्थेरिया ।

आइल आफ़ वेस्लीन-[अं० Oil of vaseline] (Vaseline oil) दे० "वेसलीन" ।

आइल आफ़ साइबेरियनफ़र-[Oil of siberian fir] देवदारु तैल । Oil of pine (Abietis oleum)

आइल आफ़ सिन्नेमन-[अं० Oil of cinnamon] दालचीनी का तेल ।

आइल आफ़ सिसेम-[अं० Oil of sesame] तिल का तेल । तिल्ली का तेल । रोगन कुंजद ।

आइल आफ़ सेबिना-[अं० Oil of sabina] औरतों के रजोरोध और अनियमित ऋतु की बीमारी में इसके उपयोग से लाभ होता है । यह अर्गट तुल्य बच्चेदानी को हिलाता है । इसलिए इसे गर्भवती स्त्रियों को न देना चाहिए; क्योंकि यह गर्भपातक है । जमालगोटे के समान इसके देने से दस्त और वमन होने लगता है । मात्रा-२ से ६ बूँद तक ।

आइल आफ़ सैएड्ल ऊड-[अं० Oil of sandal wood] चन्दन का तेल । रोग़न संदल ।

आइल आफ़ स्पियरमिण्ट-[अं० Oil of spearmint] पुदीने का तेल। दे० "पुदीना"।

आइल एडेप्सीन-[अं० Oil adepsine] सूअर की चरबीका तेल। दे० "पैराफ़ीनम् लिक्विडम्"।

आइल एबेटीज़-[अं० Oil abietis] देवदारु का तेल।

आइल ऐन्थेमिडिस-[अं० Oil anthemidis] बाबूने का तेल। रोग़न बाबूना।

आइल कार्डमोमाई-[अं० Oil cardamomi] इलायची का तेल।

आइल कार्बोलिक-[अं० Oil carbolic] कार्बोलिक का तैल।

आइल केम्फोरेटेड-[अं० Oil camphorated] कर्पूरित तैल।

आइल केरियोफिलाई-[अं० Oil caryophili] लवङ्ग तैल। लौंग का तेल।

आइल केरुई-[अं० Oil carui] Oil of caraway कराविया का तेल। कालाजीरा का तेल। रोग़न कराविया।

आइल केसिया-[अं० Oil cassia] दालचीनी का तेल।

अइल-ग्रे-[अं० Oil grey] ग्रे आइल। दे० "पारा"।

आइल टेरेबिन्थ-[अं० Oil terebinth] तारपीन का तेल।

आइल-डी-[अं० Oil dee] दे० "पैराफीनम् लिक्विडम्"।

आइल नीम-[अं० Oil neem] नीम का तेल। निम्ब तैल।

आइल-पाइनी-सिल्वेस्ट्रिस्-[अं० Oil pinisylvestris] देवदारु का तेल।

आइल प्राइसिस-[अं० Oil picis] मत्स्य तैल। मछली का तेल।

आइल पेचोली-[अं० Oil patchouli] पचौली का तेल।

आइल रेसिनी-[अं० Oil recini] अण्डी का तेल। रेंडी का तेल।

आइल वुड-[अं० Oil wood] गर्जन बालसम। यह कोपाइबा की प्रतिनिधि स्वरूप भारतवर्ष में व्यवहृत होता है।

आइल वेस (ज़े) लीन-[अं० Oil vaseline] तरल पैराफीन का एक भेद। दे० "पैराफीनम् लिक्विडम्"।

आइल सासाफ़रास-[अं० Oil sasafaras] सासाफ़रास का तेल।

आइल सेण्टल-फ्लेवा-[अं० Oil santalflava] चन्दन का तेल। रोग़न सन्दल।

आइल हाइड्नो कार्पी-[अं० Oil hydnocarpi] कुष्ठवरी तैल। चॉलमोगरे का तेल।

आइलः-[अ०] (Family) कुटुम्ब।

आइली-सीड ओरिएण्टल-[अं० Oilyseed oriental] तिल। तिल्ली। कुञ्जद। समसम। (Sesamum oriental, S. indicum) दे० "तिल"।

आइलेक्स डाइपाइरेना-[ले० Ilex dipyrena, *Wall.*] शङ्गल। कलूचो। दिउसा (पं०)। कौला (नैपा०)। कदोरा (शिम०)।

प्रयोगांश-पत्र। उपयोग-चारा।

आइलेक्स पैरा-ग्वाएन्सिस-[ले० Ilex paraguayensis, *Sthilaire*] पैराक्वे-टी। (Paraquay tea)। मेटी।

आइलेक्स वर्टिसिलेटा-[ले० Ilex verticiliata] ब्लैकएलडर (Black alder)।

आइलेन्थ(एट)स ग्लैण्ड्युलोसा-[ले० Ailanthus glandulosa, *Desf.*] जापान वार्निश-ट्री Japan varnish-tree, ट्री ऑफ़ हेविन Tree of heaven, चाइनीज़ सुमाक Chinese sumach-(अं०)। गोट्टर बाम gotter baum-(जर०)।

आइलेन्थस मालाबैरिकस-[ले० Ailanthus malabaricus, *Dc.*] (१) त्वक्-पेरुमत्तु प्पट्टै-ता०। पेद्मानु-पट्ट-ते०। पेरुमरत्तोलि-मल०। कुम्बलुपोत्त-सिं०। (२) रालवत् स्वरस (गुग्गुल धूप) मड्डिपाल-ता०। मड्डिपालु-ते०। तेल मट्टिपाल-मल०। स० फा० इं०।

(*N. O. Simarubaceoe*)

उत्पत्ति-स्थान—चीन और उत्तरी भारतवर्ष। यह संयुक्त-राज्य (United states)

अमेरिका में भी बोया जाता है। (पी० वी० एम०; इं० प्लां०)।

प्रयोगांश—छाल।

वानस्पतिक विवरण-त्वचा सुगंधिमय, प्रिय गंध युक्त, कड़ुई और धूसर वर्ण की होती है। बाहर से मोटी, खुरदरी, पीतवर्ण की और भीतर से इसकी रचना रेशेदार होती है।

औषधि-निर्माण—त्वचा ५ से ३० ग्रेन। (२॥ से १५ रत्ती)।

तरलसत्व—१० से ३० बूँद।

इन्द्रियव्यापारिक प्रभाव—मांसावसादक। सुरती की तरह इसका वातसंस्थान पर अवसादक प्रभाव होता है।

उपयोग—आइलेन्थस विरेचक कृमिघ्न है और इसका तेल सूँघना सशक्त आक्षेपहर तथा मतलीजनक है। डा० ट्रू इसे हृदय की धड़कन, हठीली हिक्का, आक्षेपयुक्त श्वास (दमा), मांसाकुंचन तथा अपस्मार में लाभदायक एवं विश्वसनीय होने की शिफ़ारिश करते हैं। चीनी लोग प्रवाहिकामें इसका अमोघौषधतुल्य उपयोग करते हैं। यूरुप में कृमिघ्न रूप से विशेषकर कद्दूदाने (Tapeworm) में इसका लाभदायक उपयोग किया गया है। (पी० वी० एम०)—

इसकी त्वचा प्रबल कृमिहर है। चूर्ण रूपमें इसमें तीव्र निद्राजनक और मतलीकारक गंध होती है। यह चीन देश के एक संकोचक औषधि के समान वातसंस्थान पर सशक्त अवसादक प्रभाव करता है। इं० मे० प्लां०।

आइवी-पाइज़न-[अं० Ivy poison] (Poison oak) रहस् टाक्सिकोडेण्ड्रोन (Rhus toxicodendron) ह्विट० मे० मे०।

आइस-[अं० Ice] बर्फ़। हिम। दे० "जल"।

आइस पुल्टिस—संज्ञा स्त्री० [अं० Ice poultice बर्फ़ की पुल्टिस।

बर्फ़ की पुल्टिस लगाने की रीति—
गट्टापारचा के एक टुकड़े के आधे भाग पर काष्ठ के बुरादे की एक तह रखकर उस पर कूटा हुआ बर्फ़ और थोड़ा नमक मिलाकर फैलादें। इसके उपरांत बचे हुए आधे भाग को बर्फ़ की तहके ऊपर उलटाकर उसके दोनों किनारों को तारपीन तैल वा सम्मोहनी (क्लोरोफ़ार्म) लगाकर परस्पर चिपका दें। तदनन्तर उक्त बर्फ़ की गद्दी को फ़लालैन की एक थैली में रखकर विकारी स्थान पर रखदें।

नोट—(१) यह नन्फार्माकोपिअल प्रयोग है। (२) युरोपमें कोई-कोई डाक्टर न्युमोनिया (फुफ्फुसौष, फुफ्फुस प्रदाह) में इस प्रकार बर्फ़ की पुल्टिस लगवाते हैं। उनका कहना है कि प्रायः इससे लाभ होता है।

आइस बैग ऐण्ड लीटर्ज़ काइल—संज्ञा पुं० [अं० Icebag and leiter's coil] बर्फ़ की थैली अथवा लीटरीय हलका (कुण्डल)।

विधि—जब शिर, वक्ष वा उदर में शीतलता पहुँचाना आवश्यक होता है, तब रबड़ की एक थैली में कूटा हुआ बर्फ़ भरकर उसे रोगस्थान पर स्थापित करते हैं वा लीटर्ज़ काइल (लीटरीय कुण्डल) में शीतल जल भरकर उसको भी व्यवहार में लाते हैं।

नोट—नन्फार्माकोपिआगत प्रयोग।

आइसलैण्ड मास—संज्ञा पुं० [अं० Iceland mass] सिट्रारिया (Cetraria)-ले०। पाषाण-पुष्प (सं०)। पत्थर का फूल। दे० "सिट्रारिया"।

आइसिन् ग्लास—[अं० Isinglass] इक्थियोकोला (Icthyocolla)-ले०। ग़रउस्समक (अ०)। सिरेशममाही। सरेशमाही। मछली का सरेश।

आइसिन-ग्लास जापानीज—संज्ञा पुं० [अं० Isinglass japanese] जापानी सरेशमाही। (Agar-agar) दे० "अगर-अगर"।

आइसेटिस टिंक्टोरिआ—[ले० Isatis tinctoria, *Linn.*]

आइसेटोफेन—संज्ञा पुं० [अं० Isatophan] दे० "आटोफेन"।

आइसेरोल—संज्ञा पुं० [अं० Isarol] इक्थिओल की तरह का एक मिश्रण।

आइसो-एसिटिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Isoac-

आइल आफ़ स्पियरमिएट-[अं० Oil of spearmint] पुदीने का तेल। दे० "पुदीना"।

आइल एडेप्सीन-[अं० Oil adepsine] सूअर की चरबी का तेल। दे० "पैराफ़ीनम् लिक्विडम्"।

आइल एबेटीज़-[अं० Oil abietis] देवदारु का तेल।

आइल ऐन्थेमिडिस-[अं० Oil anthemidis] बाबूने का तेल। रोग़न बाबूना।

आइल कार्डेमोमाई-[अं० Oil cardamomi] इलायची का तेल।

आइल कार्बोलिक-[अं० Oil carbolic] कार्बोलिक का तैल।

आइल केम्फोरेटेड-[अं० Oil camphorated] कर्पूरित तैल।

आइल केरियोफिलाई-[अं० Oil caryophili] लवङ्ग तैल। लौंग का तेल।

आइल केरुई-[अं० Oil carui] Oil of caraway कराविया का तेल। काला जीरा का तेल। रोग़न कराविया।

आइल केसिया-[अं० Oil cassia] दालचीनी का तेल।

अइल-ग्रे-[अं० Oil grey] ग्रे आइल। दे० "पारा"।

आइल टेरेबिन्थ-[अं० Oil terebinth] तारपीन का तेल।

आइल-डी-[अं० Oil dee] दे० "पैराफीनम् लिक्विडम्"।

आइल नीम-[अं० Oil neem] नीम का तेल। निम्ब तैल।

आइल-पाइनी-सिल्वेस्ट्रिस्-[अं० Oil pinisylvestris] देवदारु का तेल।

आइल पाइसिस-[अं० Oil picis] मत्स्य तैल। मछली का तेल।

आइल पेचोली-[अं० Oil patchouli] पचौली का तेल।

आइल रेसिनी-[अं० Oil recini] अरण्डी का तेल। रेंडी का तेल।

आइल वुड-[अं० Oil wood] गर्जन बालसम। यह कोपाइबा की प्रतिनिधि स्वरूप भारतवर्ष में व्यवहृत होता है।

आइल वेस (ज़े) लीन-[अं० Oil vaseline] तरल पैराफीन का एक भेद। दे० "पैराफीनम् लिक्विडम्"।

आइल सासाफ़रास-[अं० Oil sasafaras] सासाफ़रास का तेल।

आइल सेण्टल-फ्लेवा-[अं० Oil santalflava] चन्दन का तेल। रोग़न सन्दल।

आइल हाइड्नो कार्पी-[अं० Oil hydnocarpi] कुष्ठवरी तैल। चॉलमोगरे का तेल।

आइलः-[अ०] (Family) कुटुम्ब।

आइली-सीड ओरिएण्टल-[अं० Oilyseed oriental] तिल। तिल्ली। कुञ्जद। समसम। (Sesamum oriental, S. indicum) दे० "तिल"।

आइलेक्स डाइपाइरेना-[ले० Ilex dipyrena, *Wall.*] शङ्गल। कलूचो। दिउसा (पं०)। कौला (नैपा०)। कदीरा (शिम०)।

प्रयोगांश-पत्र। उपयोग-चारा।

आइलेक्स पैरा-ग्वाएन्सिस-[ले० Ilex paraguayensis, *Sthilaire*] पैराक्वे-टी। (Paraquay tea)। मेटी।

आइलेक्स वर्टिसिलेटा-[ले० Ilex verticiliata] ब्लैकएल्डर (Black alder)।

आइलेन्थ(एट)स ग्लैण्डूयुलोसा-[ले० Ailanthus glandulosa, *Desf.*] जापान वार्निश-ट्री Japan varnish-tree, ट्री ऑफ़ हेविन Tree of heaven, चाइनीज़ सुमाक Chinese sumach-(अं०)। गोट्टर बाम gotter baum-(जर०)।

आइलेन्थस मालाबैरिकस-[ले० Ailanthus malabaricus, *Dc.*] (१) त्वक्-पेरुमत्तु पप्पट्टै-ता०। पेद्दमानु-पट्ट-ते०। पेरुमरत्तोलि-मल०। कुम्बलुपोत्त-सिं०। (२) रालघत् स्वरस (गुग्गुल धूप) मड्डिपाल-ता०। मड्डिपालु-ते०। तेल मट्टिपाल-मल०। स० फा० इं०।

(*N. O. Simarubaceoe*)

उत्पत्ति-स्थान—चीन और उत्तरी भारतवर्ष। यह संयुक्त-राज्य (United states)

अमेरिका में भी बोया जाता है। (पी० वी० एम०; इं० प्लां०)।

प्रयोगांश—छाल।

वानस्पतिक विवरण—त्वचा सुगंधिमय, प्रिय गंध युक्त, कडुई और धूमर वर्ण की होती है। बाहर से मोटी, खुरदरी, पीतवर्ण की और भीतर से इसकी रचना रेशेदार होती है।

औषधि-निर्माण—त्वचा ५ से ३० ग्रेन। (२॥ से १५ रत्ती)।

तरलसत्व—१० से ३० बूँद।

इन्द्रियव्यापारिक प्रभाव—मांसावसादक। सुरती की तरह इसका वातसंस्थान पर अवसादक प्रभाव होता है।

उपयोग—आइलेन्थस विरेचक कृमिघ्न है और इसका तेल सूँघना सशक्त आक्षेपहर तथा मतलीजनक है। डा० ट्रू इसे हृदय की धड़कन, हठीली हिक्का, आक्षेपयुक्त श्वास (दमा), मांसाकुंचन तथा अपस्मार में लाभदायक एवं विश्वसनीय होने की शिफ़ारिश करते हैं। चीनी लोग प्रवाहिकामें इसका अमोघौषधतुल्य उपयोग करते हैं। यूरुप में कृमिघ्न रूप से विशेषकर कद्दूदाने (Tapeworm) में इसका लाभदायक उपयोग किया गया है। (पी० वी० एम०)—

इसकी त्वचा प्रबल कृमिहर है। चूर्ण रूपमें इसमें तीव्र निद्राजनक और मतलीकारक गंध होती है। यह चीन देश के एक संकोचक औषधि के समान वातसंस्थान पर सशक्त अवसादक प्रभाव करता है। इं० मे० प्लां०।

आइवी-पाइज़न—[अं० Ivy poison] (Poison oak) रहस् टाक्सिकोडेण्ड्रोन (Rhus toxicodendron) ह्विट० मे० मे०।

आइस—[अं० Ice] बर्फ़। हिम। दे० "जल"।

आइस पुल्टिस—संज्ञा स्त्री० [अं० Ice poultice बर्फ़ की पुल्टिस।

बर्फ़ की पुल्टिस लगाने की रीति—

गट्टापारचा के एक टुकड़े के आधे भाग पर काष्ठ के बुरादे की एक तह रखकर उस पर कूटा हुआ बर्फ़ और थोड़ा नमक मिलाकर फैलादें। इसके उपरांत बचे हुए आधे भाग को बर्फ़ की तहके ऊपर उलटाकर उसके दोनों किनारों को तारपीन तैल वा सम्मोहनी (क्लोरोफ़ार्म) लगाकर परस्पर चिपका दें। तदनन्तर उक्त बर्फ़ की गद्दी को फ़लालैन की एक थैली में रखकर विकारी स्थान पर रखदें।

नोट—(१) यह नन्फार्माकोपिअल प्रयोग है। (२) युरोपमें कोई-कोई डाक्टर न्युमोनिया (फुफ्फुसौष, फुफ्फुस प्रदाह) में इस प्रकार बर्फ़ की पुल्टिस लगवाते हैं। उनका कहना है कि प्रायः इससे लाभ होता है।

आइस बैग ऐण्ड लीटर्ज़ काइल—संज्ञा पुं० [अं० Icebag and leiter's coil] बर्फ़ की थैली अथवा लीटरीय हलका (कुण्डल)।

विधि—जब शिर, वक्ष वा उदर में शीतलता पहुँचाना आवश्यक होता है, तब रबड़ की एक थैली में कूटा हुआ बर्फ़ भरकर उसे रोगस्थान पर स्थापित करते हैं वा लीटर्ज़ काइल (लीटरीय कुण्डल) में शीतल जल भरकर उसको भी व्यवहार में लाते हैं।

नोट—नन्फार्माकोपिआगत प्रयोग।

आइसलैण्ड मास—संज्ञा पुं० [अं० Iceland mass] सिट्रारिया (Cetraria)-ले०। पाषाण-पुष्प (सं०)। पत्थर का फूल। दे० "सिट्रारिया"।

आइसिन् ग्लास—[अं० Isinglass] इक्थियोकोला (Icthyocolla)-ले०। ग़रउस्समक (अ०)। सिरेशममाही। सरेशमाही। मछली का सरेश।

आइसिन-ग्लास जापानीज़—संज्ञा पुं० [अं० Isinglass japanese] जापानी सरेशमाही। (Agar-agar) दे० "अगर-अगर"।

आइसेटिस टिंक्टोरिआ—[ले० Isatis tinctoria, *Linn.*]

आइसेटोफेन—संज्ञा पुं० [अं० Isatophan] दे० "आटोफेन"।

आइसेरोल—संज्ञा पुं० [अं० Isarol] इक्थिओल की तरह का एक मिश्रण।

आइसो-एसिटिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Isoacetic acid] काननैरएडबीजाम्ल । फा० इं० ३ भ० ।

आइसोटानिक साल्ट सोल्यूशन्–संज्ञा पुं० [अं० Isotonic salt solution] एक प्रकार का लवण का घोल जिसका हैज़े में शिरान्तरीय अन्तःक्षेप होता है । वि० दे० "विसूचिका" ।

आइसोनैण्ड्रा आब्रोवेटा–[ले० Isonandra obovata] अज्ञात ।

आइसोप्युनीसीन–[ले० Isopunicine]
आइसोपेलीटिएरीन–[ले० Isopelletierine] }
एक तैलीय द्रव सत्व जो अनारका छाल से प्राप्त होता है । यह कृमिघ्न है । फा० इं० २ भ० । इं० मे० मे० । दे० "अनार" ।

आइसोप्राल–संज्ञा पुं० [Isoprol] एक प्रकार का श्वेत अस्थिर चूर्ण जिसमें से कपूर को सी गंध आया करती है । स्वाद—तीक्ष्ण एवं किंचित् तिक्त । घुलनशीलता—यह जलमें तो कम, पर जलमिश्रित मद्यसार में सरलतापूर्वक घुल जाता है ।

प्रभाव—निद्राजनक ।

प्रयोग—अनिद्रा और उन्माद रोग में इसको बरतते हैं ।

मात्रा—निद्रा हेतु १० से १५ ग्रेन । परन्तु उन्माद में २० से ४५ ग्रेन तक देते हैं । (Trichlorisopropyl Alcohol)

आइसोफार्म–संज्ञा पुं० [अं० Isoform] चाँदी की तरह परत रूप में होनेवाला एक प्रकार का सफ़ेद चूर्ण जिसको ४से ८ ग्रेन (२से ४ रत्ती) की मात्रा में उतने ही कैल्सियम फास्फेट (चूर्ण स्फुरेत) में घोल कर प्रवाहिका तथा आन्त्रीय ग्रंथि-रोग में आन्त्रीय पचननिवारक रूप से व्यवहार में लाते हैं । उत्ताप देने पर इसके रवे विस्फोटकीय (Explosive) होते हैं । इसलिए इसे सामान्यतया ग्लीसरीन (मधुरीन) के साथ सम्मिश्रित कर कैपशूल्ज़ में रख कर काम में लाते हैं । अभ्रक के साथ सम्मिश्रित कर अवचूर्णन (१० में १ भाग) रूप से अथवा ग्लीसरीन-पेस्ट का १० प्रतिशत प्रलेप रूपसे इसका वहिरप्रयोग लाभदायक सिद्ध हुआ है । पैराआयोडोएनीसोल (Paraiodoanisol) । ह्वि० मे० मे० ।

आइसोब्युटिल एमाइल–[अं० Isobutyl amyl] एमाइल नाइट्रिस के समान गुण-धर्मवाला एक प्रकार का मिश्रण है ।

आइसो ब्युटिल नाइट्रिस–[ले० Isobutyl nitris] एक डाक्टरी दवा ।

गुण-धर्म तथा उपयोग—यह आफ़िशल एमाइल नाइट्राइट में १० प्रतिशत की मात्रा में होता है । आइसोब्युटिल नाइट्राइट के कारण ही एमाइल नाइट्राइट का औषधीय प्रभाव होता है । यह आफ़िशल एमाइल नाइट्राइट की अपेक्षा शीघ्र प्रभाव करता हुआ प्रतीत होता है । मात्रा-२ से ५ मिनिम (बूँद) । दे० "एमाइल नाइट्राइट" ।

आइसोरा कारिलीफोलिआ–[ले० Isora corylifolia] मुर्रा । मरोड़फली । (Helicteris isora) । इं० मे० मे० ।

आइसो हेस्पेरीडीन–[अं० Isohesperidin] नारंगी में पाया जानेवाला एक ग्ल्युकोसाइड विशेष । इं० मे० मे० । फा० इं० १ भ । दे० "नागरंग (नारंगी) " ।

आइस्टर शेल–संज्ञा पुं० [अं० oyster shell] मोती की सीपी । शुक्ति ।

आई–संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] आयु । उमर । अवस्था । (Age) ।

संज्ञा स्त्री० [अं० Eye] आँख ।

आउल–[नैपा०] एक प्रकार का ज्वर जो नैपाल की तराई में होता है ।

संज्ञा पुं० [अं० owl] उल्लू नाम का पक्षी ।

आउंस–संज्ञा पुं० [अं० Ounce] एक अँगरेज़ी मान जो दो प्रकार का होता है । एक ठोस वस्तुओं के तौलने में और दूसरा तरल वा द्रव पदार्थों के नापने में काम आता है । तौलने का आउंस हिन्दुस्तानी सवा दो तोले के बराबर होता है । ऐसे बारह आउंसों का एक पाउंड होता है । नापने का आउंस १६ सोलह ड्राम का होता है । और एक ड्राम साठ बूँदों का

होता है। अँगरेज़ी में आउंस का संकेत इस प्रकार (oz.) है।

आउस–संज्ञा पुं० [सं० आशु, बं० आउश] धान का एक भेद जो बंगाल में मई जून में बोया जाता है और अगस्त सितंबर में काटा जाता है। यह दो प्रकार का होता है—एक मोटा, दूसरा महीन वा लेपी। भदई। ओसहन । आशुधान्य, वैद्यक में इसे मधुर, पाक में भारी और अम्ल तथा पित्तकारक माना है।

आऊल्सी–[अ०] नबातुस्सिब्र। कुमारी। घीकुवार। उ० प० सू.।

आओ–[पं०] ओलची। आडुई।

आओडै ओत्ती–[ता०] चिटकी। शिरियारी। बन-ओकड़ा (बं०)। झिञ्झिरीटा–सं०। Triumfetta rhomboidea) इं० मे० मे०।

आओला, आओलु–[काश०] आमला। आँवला। (Phyllanthus Emblica, *Linn.*)

आक–संज्ञा पुं० [सं० अर्क, प्रा० अक्क]

पर्य्या०–मदार। अकौआ। अकवन। अकोंद। अकन। आग (हिं०)। अर्क। क्षीरदल। पुच्छी। पुष्पी। प्रताप। क्षीरकाण्डक। भञ्जन। विक्षीर। क्षीरी। खर्जुघ्न। खर्जूघ्न। शीतपुष्पक। शिवपुष्पक। जम्भन। जम्भल। क्षीरपर्णी। विकीरण। सदापुष्प। सूर्याह्व। आस्फोत (ट) क। तूलफल। शुकफल। भास्कर। रवि। सविता। वसुक। आस्फोत (ट)। गणरूप। मन्दार। अर्कपर्ण। रूपिका (सं०)। ख़रक। दरख़्त ज़हरनाक। ज़हूक (फ़ा)। उ़श्र। उ़श्शर। उ़शर। उ़शार। ऐ़न। ऐ़नुल् अद्वियः (अ)। हजाकियूस (यू०)। कैलोट्रापिस जायगैंटिया Calotropis Gigantea, *R. Br.*, कैलोट्रापिस प्रासरा Calotropis Procera, *R. Br.* (ले०)। मडार Mudar, जायगैंटिक स्वालोवर्ट Gigantic Swallow wort. (अं०)। आर्ब्री–अ–सोयी Arbre-á-Soye (फ्रां०)। आक। आकड़ा (द०)। आकंद गाछ। आकोंदो। आक। (बं०) एरुक्कु। एरुक्कम्। एरकम् (ता०)। जिल्लेडु-चेट्टु। मंदारमु। जिल्लेरु। एक्के। अर्कमु। घोली (ते०)। एरुक्क। एक्क। वेलेरिका (मल०)। यक्कंद-गिडा। येक्क। एक्केमले। एक्केमाले। योकड़ा (कना०)। आकड-च-झाड। आकड़ा। रूई। आकंद (मरा०)। आकड-नु झाड़। आकड़ो। आकड (गु०)। वरा। वरागहा (सिंगा०)। मयोविङ् (बर०)। बीज एलोशा (सिं०)। यक्के (करना०)। आख (पं०)। आखा। आक्खा (हरद्वार)। काडरती। (गोंड०)। अकु। आँकड़ा (मालवा)। अक्वन (विहा०)। ओयारा (सिंहली)। आकनन (संथाल)। आँक (नेपा०)। मंदार (बम्ब०)।

संज्ञा-निर्णायक नोट—क्षीरदल, क्षीरकाण्डक, तूलफल, और शुकफल इत्यादि संस्कृत संज्ञाएँ परिचयज्ञापिका और खर्जूघ्न गुणप्रकाशिका संज्ञा है। शेष आक की वे सभी संज्ञाएँ जो भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों में व्यवहृत हैं, प्रायः संस्कृत 'अर्क' शब्द से बिगड़ कर बनी हुई जान पड़ती हैं। मदार संस्कृत मन्दार का संक्षिप्त रूप है। विषैला होने से फ़ारसी में इसे 'दरख़्त ज़हरनाक' कहते हैं। बुर्हान महोदय के अनुसार उ़शर फ़ारसी भाषा का शब्द है और प्रायः उन सभी वनस्पतियों के लिए व्यवहार में आता है, जिनमें दूध होता है और विशेषतः ऐसे पौधों के लिए जिनको हिंदुस्तान में आक कहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि, 'उ़शर' अरबी भाषा का शब्द नहीं जैसा प्रायः कोषों में लिखा मिलता है; प्रत्युत आर्य्य-भाषा, सम्भवतः संस्कृत 'उष' (जलाना) शब्द से व्युत्पन्न जान पड़ता है।

डिमकोक़ Calotropis gigantea को राक्सबर्गने Asclepias gigantea लिखा है। उक्त दोनों महानुभावों ने यह बात स्वीकार की है (राक्सबर्ग २५१ पृ०, डि० २ य खंड ४२८ पृ०), कि इस प्रकार का मदार भारतवर्ष में सर्वत्र सुलभ है। इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स के लेखक ने Gigantea procera, *R. Br.* को सफ़ेद मदार लिखा है।

शारिवा वर्ग

(*N. O. Asclepiadeoe*)

इतिहास—भारतीयों का आक विषयक ज्ञान

अत्यन्त प्राचीन है । प्राचीन हिन्दू लेखकों ने अर्कपत्र वा अर्कपर्ण का, जो वैदिककाल में सूर्य्योपासना में काम आता था, उल्लेख किया है। आयुर्वेदीय ग्रंथों में से सर्व प्रथम चरक में इसका उल्लेख मिलता है। चरक ने केवल एक ही प्रकार के आक का वर्णन किया है। सुश्रुत ने अर्क और अलर्क (श्वेतार्क) भेदसे दो प्रकार के आक का उल्लेख किया है। धन्वन्तरीय निघण्टु में अर्क और राजार्क, राजनिघंटु में अर्क, श्वेतार्क, राजार्क और श्वेतमन्दारक इन चार प्रकार के आकों का और भावप्रकाश में लाल और सफ़ेद इन दो प्रकार के आकों का उल्लेख मिलता है। सारांश यह कि, प्रायः सभी प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा विषयक एवं रासायनिक आयुर्वेदीय ग्रन्थ आक के प्रयोगों से भरपूर हैं। जितना लाभ इस पौधे से वैद्यों एवं भारतीय रसायनशास्त्रियों ने उठाया, उतना और किसी ने भी नहीं। आज तक भी इनके यहाँ इस पौधेका प्रचुर प्रयोग दिखाई देता है। इसी लिए किसी किसी ने इसे 'वानस्पतीय पारद' तक लिख डाला है।

मुसलमान हकीमों में सर्व प्रथम अबू हनीफ़ा (जीवनकाल २७० हिजरी) ने स्वलिखित किताब नबातात (ओषधिशास्त्र) नामक ग्रंथ में आक का उल्लेख किया है। इसके विषय में प्राचीन अरब निवासियों का विलक्षण अंधविश्वास था। अरबी भाषा के प्रसिद्ध कोष क़ामूस और ताजुल्अरूस से मालूम होता है कि, असभ्यता के ज़माने में अरबदेशवासी उ़शर (मदार) को तसलीअ़ की क्रिया में, जो दुर्भिक्षावस्था में की जाती थी, प्रयोजित करते थे। तसलीअ़ की क्रिया करने की यह विधि थी, कि मदार के एक सूखे पौधे को जंगली बैल की दुम में बाँधकर उसमें आग लगा देते थे और उसे मारकर जंगल में भगा देते थे। उनका यह कथन था कि, वह आग के प्रकाश से, जो बिजली की तरह प्रकाशमान था, मेंह को ढूँढ़ले इत्यादि।

इब्नसीना ने उ़शर नाम से आक और मंदार-शर्कराका, जिसे सक्करुल् उ़शर कहते हैं, उल्लेख किया है। वे इस परम्परागत अंधविश्वास का भी उल्लेख करते हैं कि, जो इसके वृक्षके नीचे बैठता है, वह काल कवलित होता है।

जैसा कि ऊपर बयान हुआ, तिब यूनानी में लगभग एक सहस्र वर्ष से इसका उल्लेख चला आता है। प्रागुक्त ग्रंथों के अतिरिक्त क़ानून शेखुर्रईस और तज़किरा दाऊदअंताकी में भी इसका उल्लेख है। ख़ज़ाइनुल्मुलूक, मख़्ज़नुल्-अद्विय: और मुहीतआज़म प्रभृति यूनानी द्रव्यगुणशास्त्र विषयक ग्रंथों में इसका पूर्ण परिचय और सविस्तार गुणधर्म उल्लिखित है।

यूनानी और रूमी चिकित्सकों ने मदार का उल्लेख नहीं किया है। क्योंकि उक्त औषधि उन्हें मालूम न थी। पर किसी किसी मुसलमान चिकित्सक ने इसका यूनानी नाम हजाकियूस लिखा है, जो यूनानी शब्द अगाथियूसका, जिसका अर्थ अत्यन्त पवित्र है, अपभ्रंश जान पड़ता है। कोई कोई श्यामदेशीय चिकित्सक इस शब्दका उपयोग मदारके लिए करते थे और चूँकि श्यामदेशीय चिकित्सकों ने ही अरबनिवासियोंको वैद्यक की शिक्षा दी। अस्तु उपर्युक्त संज्ञा अगाथियूस बिगड़कर हजाकियूस बन गई।

प्राचीन हकीमोंने तीन प्रकार के मदार के पौधे (दरख़्त उ़शर) का उल्लेख किया है और इसके एक भेद को इतना विषैला लिखा है कि, यदि कोई उस पौधे की छाया में बैठे, तो मरजाय, जो केवल उनका एक भ्रम मात्र था।

अर्वाचीन अल्लोपैथी (डॉक्टरी) चिकित्सा में भी इसका उपयोग होता है।

उत्पत्तिस्थान—आक हिन्दुस्तान के प्रायः हर एक भाग, विशेषतः उजाड़ एवं ऊसर भूमिमें, उत्पन्न होता है। किंतु पंजाब, सूबा देहली, संयुक्तप्रांत, आगरा, अवध प्रभृति स्थानोंमें इतने प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होता है कि, खँडहर, जंगल इत्यादि में जिस ओर दृष्टि डालें, इसके पौधे दिखाई दिए बिना नहीं रहते। इसके अतिरिक्त आसाम, बंगाल, बिहार, दक्षिणी हिंदुस्तान, मलाया प्रायद्वीप, दक्षिण चीन, लंका,

सिंगापुर, अरब, ईरान और अफ़रीकामें भी इसके क्षुप पाए जाते हैं।

भेद—चरकने केवल एक प्रकारके आक (अर्क) का उल्लेख किया है। सुश्रुतमें अर्क और अलर्क (श्वेतार्क) प्रभेद से दो प्रकारके आकका उल्लेख मिलता है। धन्वन्तरीय निघण्टुमें दो प्रकार के आक–(१) अर्क और (२) राजार्क, राजनिघण्टु में चार प्रकार के आक–(१) अर्क, (२) श्वेतार्क (३) राजार्क और (४) श्वेत मन्दारक और भावप्रकाश में दो प्रकार के आक सफ़ेद और लाल (आक) के उल्लेख मिलते हैं।

जहाँतक देखने में आता है, फूल के विचार से मदार के पौधे दो प्रकार के होते हैं–(१) वह जिसका फूल मक्खन की तरह सफ़ेद होता है। यही श्वेतार्क है। (२) वह जिसका फूल बैंगनी होता है, यही रक्तार्क है।

अब रहा यह कि धन्वन्तरीय तथा राजनिघण्टूक्त राजार्क और श्वेत मन्दारक को किस मदार के अन्तर्गत परिगणन किया जाय? राजनिघण्टुकार राजार्क के पर्य्याय इस प्रकार लिखते हैं—"राजार्को वसुकोऽलर्को मन्दारो गणरूपकः"। इससे ज्ञात होता है कि, अलर्क, मन्दार तथा मन्दारक ये राजार्क के ही नामान्तर हैं। अरुणदत्त लिखते हैं—"मन्दारकः श्वेतपुष्पः"। (वाग्भट टीका सू० १५ अ०)। अस्तु राजार्क और श्वेत मन्दारक इन दो प्रकार के मदारों को सफ़ेद आक (श्वेतार्क) का ही एक भेद माना जा सकता है। राजनिघण्टुकारने राजार्कको 'सदापुष्प' और श्वेत मन्दारक को "दीर्घपुष्प" लिखा है। अस्तु, यह कहना कदाचित् असंगत न होगा कि, जिस जाति के सफ़ेद आकमें सदा पुष्प रहें उसे राजार्क और जिसके पत्ते साधारण जाति वालेके पत्ते से अपेक्षाकृत बड़े हों, उसे श्वेतमन्दारक कहना चाहिए। रक्तार्क की अपेक्षा श्वेतार्क में दूध अधिक होता है। सुश्रुत के प्रसिद्ध टीकाकार डल्लण लिखते हैं–'अलर्कोमन्दारकः यस्य क्षीरं न विनश्यति"। सु० टी० ३५ अ० अर्कादि व०।

प्राचीन मुसलमान हकीम, जैसे, मीर मुहम्मदहुसेन लेखक मख़्ज़नुल् अद्वियः और मुहम्मद आज़मखाँ लेखक मुहीत आज़म प्रभृति ने तीन प्रकार के आक का उल्लेख किया है; जैसे–(१) इसके क्षुप बहुत बड़े, पत्ते भी बहुत बड़े और फूल सफ़ेद होते हैं। इसमें बहुत ज़्यादा दूध होता है। यह आक का सर्वोत्तम प्रकार है। इसके पोधे शहर और आबादी के पास उपजते हैं। (२) इसके पोधे एवं पत्ते अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। फल बाहर से सफ़ेद भीतर से बैंगनी वा ललाई लिए गहरे नीले रङ्ग का होता है और (३) आक का वह सब से छोटा भेद जिसमें सफ़ेदी लिए पिस्तई रंग के फूल लगते हैं। इसमें दूध भी कम होता है। इसके पौधे रेगिस्तानी एवं उजाड़ भूमि में उगते हैं।

किसी किसी ने इसके तीसरे भेद को अत्यन्त विषैला लिखा है।

वानस्पतिक वर्णन—आक एक क्षुप जाति का पौधा है। इसके क्षुप बहुत बड़े, सीधे, बहुशाखी, बहुवर्षीय और एक प्रकार के दुग्धमय एवं चरपरे रस से परिपूर्ण होते हैं। क्षुप २ से ६ हाथ तक ऊँचा होता है; पर सफ़ेद मदार का पुराना पोधा कहीं कहीं इससे भी ऊँचा देखने में आता है। यह प्रायः ऊसर और शुष्क भूमि में, जहाँ किसी अन्य प्रकारके पोधे प्रफुल्लित नहीं रह सकते, इसके क्षुप बहुतायत से और हरे भरे दिखाई पड़ते हैं। प्रकांड और शाखाएँ कुछ कुछ ख़ाकी, जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। तने और प्रधान शाखा की त्वचा बहुत हल्की, शोले की तरह नरम और विदीर्ण होती है। कोमल शाखाएँ धुनी हुई रूईकी तरह सफ़ेद रोईं से घनावृत होती हैं। पत्ता–सम्मुखवर्ती अन्योन्यलंघित, सम्पूर्ण ३ से ६ इञ्च तक लम्बा और २ से ३ इञ्च तक चौड़ा, आयताण्डाकार, अग्रभाग के निकट चौड़ा, गोलाकार और वृंत के समीप साधारण मरु, कांडाच्छादक, अर्द्धवृंतीय और पत्रोदर ऊन की तरह की सफ़ेद रोइयों से घन व्याप्त होता है। पत्ते के ये कोन अत्यन्त घन-व्याप्त होते हैं। इसी से पत्रपृष्ठ शुभ्र दिखाई पड़ता है। पत्ते के उभरे हुये भाग की ओर पत्ते की डंटी के निकट ताँमड़े रंग के दलबद्ध कर्कश

लोम होते हैं। पुष्प-सवृंत, छत्रकाकार वा गुच्छाकार, कटोरीनुमा (*Involucrate*)। पुष्पवृंत–पार्श्विक वा आंतिक, मोटा और लम्बा, साधारण ऊन की तरह के रोओं से ईषदावृत, लगभग सीधा, पार्श्विक होने की दशा में यह एकांतरीय होता है अर्थात् सम्मुखवर्ती पत्रके बीच से विषमवर्ती रूप से निकलता है; छत्रक (*Umbels*) प्रायः साधारण, पर कभी कभी मिश्रित और आधार पर इन्वाल्युकरावृत होते हैं, इन्वाल्युकर्स (वह पौष्पिकपत्र जिससे पुष्प आवृत होता है) लघु एवं छिलकेदार होते हैं। पुष्पवाह्यावरण वा कटोरी (*Calyx*) बीजकोषाधः, अचिरस्थाई, बहुसपलीय, एवं सपल ५ और ख़ाकी होते हैं। हर एक सपल लगभग $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ इंच तक लम्बा होता है। पुष्पाभ्यन्तर कोष (पँखड़ी) बीज कोषाधः, पतनशील बहुदलीय होता है। पँखड़ियाँ ५, लंबी, अधिक कोणीय, बाहर से उभरी हुई (*Reflexed*), आवर्त्ताकार (*Revolute*), बाहर से सफ़ेद और भीतर से सफ़ेदी मायल बैंगनी (*Pale blue*) वा सफ़ेद होती हैं। पराग-केशर (*Stamens*) अस्पष्ट, परागतंतु मिले हुए, नलिकाकार, (*Gynostegium*), जो स्त्री-केशर (*Pistil*) को पूर्णतया आवृत किए होता है। (स्त्री-केशर को ही आक की लौंग भी कहते हैं)। पराग-केशरीय लघु पँखड़ियाँ (*Corona*) पञ्च-पत्रयुक्त; पत्रक, कीलाकार, जड़के पास बाहर उभरे हुए एवं दनदानेदार होते हैं। बीजकोष (*Ovaries*) २—गर्भकेशर (*Style*) २, (*Gynostegium*) के भीतर स्थिर होते हैं। गर्भकेशर का सिरा (*Stigma*) दोनों गर्भकेशरों में सामान्य अर्थात् एक होता है और फैलकर चिपटी शक्ल का हो जाता है। यह लगभग १। लाइन व्यास का, पंचकोण, कारटिलेजवत् और ठीक (*Gynostegum*) के ऊपर स्थित होता है। डोडा (*Follicles*) युग्म, मसृण, स्फुटनशील, लम्बोतरा, उभरा हुआ और बीच से मुड़ा हुआ होता है, जिससे उसकी नोंक पक्षी की चोंच की तरह मालूम होती है। उनमें से एक प्रायः नष्टशील होता है। बीज–रोमावृत, बहुत पतला (चिपटा स्याही मायल), कुछ-कुछ अण्डाकार, जिसकी जड़ वा ऊपरी सिरे पर, जो कि डोड़े के सिरे की ओर होता है, रोओं का एक गुच्छा लगा रहता है। यह साल भर में कभी फूल से खाली नहीं रहता।

रासायनिक संघटन—कहते हैं कि इसमें एक प्रकार का कड़ुआ और चरपरा पीला राल होता है, जो इसका प्रभावकारी अंश है। इसके अतिरिक्त इसकी जड़ की छाल में भी दो वस्तुयें पाई जाती हैं। वार्डेन (*Warden*) तथा वैडेल (*Waddel*) के अनुसार उनमें से एक को 'मडार एल्बन' (*Mudar alban*) और दूसरे को 'मदार फ्लूएविल' (*Mudar fluevil*) कहते हैं। ये गटापारचा में पाये जानेवाले 'एल्बन' तथा 'फ्लूएविल' के बहुत कुछ समान होते हैं (इं० ड्र० इं०)। 'मदार एल्बन' एक रवादार जौहर है जिसे "मंदारीन" भी कहते हैं। मंदारीन आक का एक प्रभावात्मक सार है, जो ईथर तथा मद्यसार-विलेय और शीतल जल एवं जैतूनतैल में अविलेय होता है। इसमें गरमी से जम जाने और शीत में खुले रखने पर द्रवीभूत हो जाने का मुख्य गुण है (मे० मे० आर० एन० खोरी २ य खं०, ३६५ पृ०)। इसमें किसी प्रकार का क्षारोद नहीं होता। इसके अलावा इसमें काउचूक (*Caoutchouc*) वा रबड़ की सी एक वस्तु भी होती है।

प्रयोगांश—यद्यपि मदार का प्रायः हर एक भाग, जैसे मूल, पत्र, कली, पत्रमुकुल (फुनगी), पुष्प, क्षीर, मन्दारशर्करा (सक्करुल् उशर) एवं मंदारकीट (टिड्डा) प्रभृति दवा के काम आता है, तथापि इसकी जड़ की छाल और इसका दूध सर्वोत्कृष्ट है। फिर भी इन दोनों में दूध ही अधिक प्रभावकारी है; पर इसका प्रभाव नियमित और निरापद नहीं। अस्तु, औषध के काम के लिए जड़ की छाल ही अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी एवं उपादेय होती है।

मूलत्वक्, मात्रा–½ माशा से १ माशा तक।

शुष्क अर्कक्षीर, मात्रा—$\frac{1}{4}$ मा० से १ माशा तक (यह मात्रा बहुत अधिक है—लेखक)। अंतर्धूम-दग्धपत्र अर्थात् मंदारक्षार, मात्रा—२ मा० से ४ मा० तक। पत्ते का स्वरस; मात्रा-२ से ६ बूँद। अंकुर, पुष्प या मूल का क्वाथ, मात्रा $\frac{1}{2}$ छटाँक। ३ मा० से ५ मा० तक आक की जड़ की छाल वामक है।

नोट—डाक्टर मोहीदीन शरीफ़ के अनुसार आक का क्षुप जितना ही पुराना होगा, उसकी जड़ उतनी ही गुणकारी होगी; क्योंकि डाक्टर डिल और सरकार महोदय के अनुसार नये पौधे की अपेक्षा उसमें अधिक कड़ुआ और चरपरा राल़दार पदार्थ होता है। पर यदि केवल उसको सुखाकर जैसा प्रायः किया जाता है, चूर्णकर लिया जाय, तो उत्तम वामक प्रभाव के लिये, उसकी अधिक मात्रा अपेक्षित होगी। अस्तु, बुकनी बनाने के पूर्व उसके मोटे, खुरदुरे, अस्फ़ंजवत् उपचर्म को, जो सर्वथा प्रभावशून्य होता है, चाकू आदि से खुरच कर पृथक् कर दें। इस प्रकार तैयार की हुई बुकनी बहुतांश में चावल के आटे की तरह होती है। इसकी गंध मतलीजनक और कुछ कुछ चरपरी होती है। स्वाद में यह ईषत्तिक्त होता है। इसे कागदार बोतल में सुरक्षित रखना चाहिये। वमन के लिये इस चूर्ण की मात्रा—४० से ५० ग्रेन (२०—२५ रत्ती) तक है। किसी किसी ने ३० से ६० ग्रेन लिखा है। वल्य रूप से ३ से १० ग्रेन (१॥ से ५ रत्ती) तक।

मंदारत्वक् अप्रैल व मई के महीनों में मदार के ऐसे क्षुप की जड़ से लेना चाहिए, जो रेतीली ज़मीन में उगे हों और छाल उतारने से पूर्व उनको साया में सुखा लें।

औषध-निर्म्माण—यद्यपि आयुर्वेद एवं यूनानी तिब्बी ग्रन्थों में आक के सहस्रों प्रयोग आए हैं, तथापि द्विरुक्ति दोष से बचने के लिए, उन सब का यहाँ उल्लेख कर देना उचित नहीं जान पड़ता। क्योंकि उन सबका उल्लेख आक के वर्णन में आगे और स्थल स्थल पर इस कोष में आयेगा। अस्तु, उन्हें पाठकगण वहाँ से देख लें।

डाक्टरी में केवल इसका टिंक्चर काम में आता है। प्रयोग यह है—

टिंक्चूरा कैलोट्रापिस Tinctura Calotropis (ले०)। टिंक्चर आफ़ मडार Tincture of Mudar (अं०)। मंदारासव, अर्कासव (सं०)। सब्ग़हे उ़शर (अ़)। तअफ़ीने मदार (फ़ा०)। मदार का टिंचर (हिं०, उ०)।

निर्माण-विधि—मदार की छाल २० आउंस, मद्यसार (६०%) आवश्यकतानुसार वा उतना जितने से प्रस्तुत टिंक्चर का घनफल पूरा एक पाइंट हो जाय। पर्कोलेशन द्वारा प्रस्तुत करें।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड ड्राम=(१·८से३·६ घन शतांश मीटर)।

गुणधर्म, प्रभाव तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार गुण-दोष—आक कड़ुआ, गरम, परम शोधन तथा खाज एवं व्रणहर और उद्धत जंतुसंतति को नष्ट करनेवाला है। मदार चरपरा गरम, वातनाशक, दीपन तथा दस्तावर है और सूजन, व्रण, खाज, कोढ़ प्लीहावृद्धि एवं कृमिका नाश करता है। धन्वन्तरीयनिघंटु।

आक चरपरा, गरम, वातनाशक तथा दीपनीय है और सूजन, व्रण, खाज, कोढ़ और कृमिको नष्ट करता है। रा० नि० व० १०।

दोनों प्रकार के आक सारक तथा वातनाशक हैं और कोढ़, खाज, व्रण, प्लीहा के रोग, गुल्म, बवासीर, कफ, उदर रोग, मल एवं कृमि रोगको नष्ट करते हैं। मद० व० १। रा० नि० व० १०।

लाल मदार का फूल (रक्तार्क पुष्प) मधुर, कड़ुवा, कोढ़ तथा कृमिनाशक, कफनाशक, बवासीर, ज़हर एवं रक्तपित्त नाशक, संग्राही और गुल्म एवं सूजन में उपयोगी है। मदार का दूध कड़ुवा, गरम, स्निग्ध, लवणयुक्त, हलका तथा कोढ़, गुल्म एवं उदर रोगनाशक और उत्तम विरेचन है। मा० पू० १ भ०।

दोनों प्रकार के आक कनपुटी के रोग, वायु, कोढ़, खाज, क्षय तथा व्रणों का नाश करते हैं और प्लीहा के रोग, गुल्म बवासीर, जिगर की बीमारी, कफ या उदर रोग और कृमि रोग को नष्ट करते हैं। मद० व० १।

आक (अर्क) कृमिनाशक, तीक्ष्ण तथा दस्तावर है और बवासीर एवं कफ के दोष दूर करता है। इसका दूध क्रिमिदोषनाशक तथा गुणकारी है और कोढ़, उदर के रोग एवं बवासीर का नाश करता है। राज०।

आक की जड़ की छाल स्वेदक, श्वास निवर्हणी, गरम, वामक और फिरंगरोग नाशक है।

आक भेदनीय, स्वेदक, वामक, कफहर, योनिदोषहर तथा आस्थापनीय और बीज मूत्रल है। च०।

आक कृमिहर, व्रणशोधन और वातविकार नाशक है। सु०।

आक का दूध औषध में डालने से पूर्व शुद्ध कर लेना चाहिये। शोधन क्रम इस प्रकार है—दोनों प्रकार के अर्कक्षीर की शुद्धि पञ्चगव्य में खरल करनेसे होती है। यथा—

"पञ्चगव्येपु शुद्धं तु देयमर्कद्वयं तथा।"

यूनानी मतानुसार गुणधर्म

प्रकृति—सर्व सम्मतिसे गरम और रूक्ष; दूध चौथे दरजे में गरम और रूक्ष तथा उसके शेष अवयव तीसरे दर्जेमें गरम व रूक्ष हैं। शेख़ुर्रईस के मत से अर्कक्षीर तीसरी कक्षा में गरम और चौथी कक्षा में रूक्ष है। फूल दूसरी कक्षा में गरम रूक्ष है।

हानिकारक—यकृत् और फुफ्फुस को।

दर्पघ्न—दूध, घी एवं रोग़न (तेल)। क़ै द्वारा इसका शोधन होता है।

प्रतिनिधि—शबरम, इपीकेकाना तथा अंतमल।

मात्रा—तिब्बी ग्रंथों में आक के दूध की मात्रा नीम दिरम (पौने २ माशा) लिखी गई है। पर यह मात्रा अधिक प्रतीत होती है। इसकी मात्रा अधिक से अधिक २ रत्ती रखनी चाहिए। इसके अतिरिक्त मदारके दूसरे अवयव; जैसे छाल, फूल और पत्ती को ४–५ रत्ती से अधिक सेवन न करना चाहिए। क्वाथ में पत्ती वा छाल ६ मा० तक प्रयोजित की जा सकती है। ताज़ी पत्ती का निचोड़ा हुआ पानी ४–५ बूँद सेवन किया जा सकता है।

शेख़ुर्रईस के अनुसार त्वचा पर इसका दाहक, भक्षक और विदारण प्रभाव होता है। यह श्लेष्मानिस्सारक है। रेचनी शक्ति के कारण इससे श्लेष्मा का भली प्रकार उत्सर्ग होता है। इसके दूध में रूई का फाहा तर करके शूल करनेवाले दाँत पर रखने से तत्काल लाभ होता है।

मीरमुहम्मद हुसेन—यद्यपि तीनों प्रकार के आक गुण में समान होते हैं; तथापि उनमें से प्रथम प्रकार अर्थात् सफ़ेद आक का बड़ा भेद अपेक्षाकृत अधिक उत्तम होता है। क्योंकि उससे प्रचुर परिमाण में दुग्ध निकलता है। आक का दूध दाहक, श्लेष्मा का रेचक, लोमशातक एवं फफोलाजनक है और सभी प्रकार के दुग्धवत् रसों में अधिक तीक्ष्ण गिना जाता है। म० अ०।

मदारका दूध अत्यन्त विषैला है। अस्तु, इसके बहुत आंतरिक प्रयोग वा बहुमात्रा प्रयोग से मतली पैदा होती और क़ै आने लगती है, मेदा और आँतें छिल जाती हैं। अस्तु, बहुत समझ बूझ कर इसका आंतर प्रयोग करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति भूलसे आक का दूध वा इसका कोई मिश्रण सेवन करले और उससे छिलन (स.हूज) और मतली इत्यादि दूसरे उपसर्ग प्रगट हो जायँ, तो क़ै कराएँ और गाय का दूध एवं घी पिलाएँ।

आक के फूल में अपने साधारण गुणों के अतिरिक्त ये विशेष गुण हैं—आमाशय बलप्रद, विशूचिका में उपकारी और खाँसी एवं दमा के लिये लाभदायक है।

आक का पत्ता—सूजन को कम करनेवाला (मुहल्लिल औराम) एवं सर्दी के दर्द को दूर करनेवाला है। इसलिये गठिया के दर्द एवं अन्य प्रकार के दर्द में इसको गरम करके बाँधने से वेदना शांत होती और सूजन उतर जाती है। दुग्धवत् पत्तोंका रसभी मांसभक्षक एवं आरुण्यताकारक है। इसलिए यह भी त्वचा सम्बन्धी रोगों के लिये गुणकारी है। पीले पड़े हुए मदार के पत्ते का रस नाक में सुड़कने से आधासीसी को लाभ होता है। श्लेष्मानिस्सारक होने से यह खाँसी और दमा को दूर करता है। पत्तों को सुखाकर कूट छानकर ख़राब ज़ख़्मों पर छिड़कते हैं, जिससे

दूषित मांस दूर होकर स्वस्थ मांसांकुर का उदय होता है। पत्तों का रस बुख़ार वा जूड़ी ज्वर में लाभदायक है। (शाहद गाज़रूनी)

अर्क मूलत्वक्—यह कफ को छाँटता और पसीना लाता है तथा परिवर्तक, आक्षेपहर एवं वल्य है। अस्तु जलोदर, गठिया, द्वितीय कक्षा के आतशक और प्रारम्भिक कुष्ठ में उपयोगी है। यह स्रावों, विशेषतः पित्तस्राव को बढ़ाता है और आँत के मांसतन्तुओं, विशेषकर कोलन और मलाशय पर, अवसादक प्रभाव करता है और पीड़ा, मरोड़ और क्षोभ प्रभृति प्रवाहिकीय लक्षणों को शमन करता है। अस्तु, श्लेष्मातिसार एवं प्रवाहिका में लाभप्रद है। विसूचिका के रोगी और सर्पदष्ट के लिए तिर्याक़ी असर रखता है। इसका क्वाथ २॥ तो० से ५ तो० तक जूड़ी ज्वर के रोकने के लिए उपयोगी है। इसके बहुल प्रयोग से मेदा और आँतें छिल जाती हैं और अधिक मात्रा में सेवन करने से ज़ोर की मतली पैदा करता है।

डाक्टरी मतानुसार—थोड़ी मात्रा जैसे, ३ से १० ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन-चार बार देने से इसकी जड़ की छाल परिवर्तक, वल्य और श्लेष्मानिस्सारक प्रभाव करती है। परन्तु यदि इसे आध-आध घंटे पर दिया जाय तो यह प्रबल उत्क्लेशकारक, स्वेदक और आमाशयांत्र-क्षोभक प्रभाव करती है। ३० से ६० ग्रेन की मात्रा में देने से इसका वामक प्रभाव होता है और इससे बहुत जी मिचलाता है।

मंदारशर्करा (अर्कनिर्यास)

एक प्रकार का यवासशर्करा वा तुरंजबीन की तरह का शीरख़िश्त वा शार्करीय पदार्थ जो अरब वा फ़ारस में होनेवाले एक प्रकार के मदारके क्षुप से प्राप्त होता है। यह तुरंजबीन और शीरख़िश्त की तरह मुनूअक़द होता है। पहिले भारतवर्ष में इसका आयात बहुत होता था; परन्तु अब यह किसी भी भारतीय बाज़ार में नहीं मिलता।

पर्य्या०—आक की शकर, आक का गोंद, शकर मदार, आक की मिस्री (उ०, हिं०)। शकर उ़शर, सक्करतुल् उ़शर, समग़ मदार (अ०)।

नोट—मिन्हाज के लेखक के अनुसार यह एक प्रकार का गोंद है जो आकके क्षुप के पुष्पांग द्वारा स्रावित होकर एकत्रित हो जाता है और धीरे धीरे शुष्क होकर निर्यासवत् सख़्त हो जाता है। उन्होंने और भी लिखा है, कि लोग कहते हैं कि, यह एक प्रकारका ओस है जो आकके क्षुप पर गिरकर नमकके टुकड़ों की तरह जम जाता है। किसी किसीके अनुसार यह एक प्रकार की शकर है जो नमक के टुकड़ों की शकल में हजाज़ से आती है। परन्तु यह ठीक नहीं। किसी किसी ने भूलसे इसे शकरतेग़ाल लिखा है। अबू हनीफ़ा का वर्णन मिन्हाज के समान ही है। श्रेष्ठ प्रामाणिक लेखों के अनुसार इसके गुण इसके पौधे के रसके समान होते हैं। अस्तु, यह प्रतीत होता है, कि यह उक्त पौधे के रस के स्राव के अतिरिक्त और कुछ नहीं, जिसमें स्वभावतः कुछ शर्करा होती है।

गुण-दोष

अर्क-शर्करा वा अर्क सुधा—(सक्करतुल् उ़शर)-आक की मिस्री प्रकृति को मृदु करनेवाली एवं श्वासोच्छ्वासावयवों को कोमल करनेवाली है। अस्तु खाँसी, श्वासकृच्छ्रता, फुफ्फुसीय व्रण तथा छाती, जिगर और मेदे प्रभृति के दर्द के लिए उपयोगी है। जाली होने के कारण आँख में लगाने से जाले और फूले को दूर करती एवं दृष्टिशक्ति को बल प्रदान करता है। मृदुकारी (मुलय्यिन) एवं स्वच्छताकारी (जाली) होने के कारण ऊँटनी के दूध के साथ जलोदर के लिए लाभकारी है।

आक का आंतरिक एवं वाह्य प्रयोग

आक का अंकुर

सुश्रुत—(१) कर्णशूल में अर्कांकुर—आक के फूल और पत्रांकुर को काँजी में पीस कर किंचित् तिल तैल और सेंधानमक मिला थूहर के डंडे में भीतर का गूदा निकालकर, उसके खोखले भाग में इसे भर दें। फिर उस डंडे के चारों ओर आक का पता लपेटकर धागे से बाँधकर ऊपर से चिकनी मिट्टी की मोटी तह का लेपकर, इसे पुटपाक की विधि से पकावें। जब ऊपर का

मिट्टी लाल हो जाय, तब उसे निकालकर मिट्टी आदि पृथक् कर, पत्रांकुर को स्नुहीकाण्ड में से निकाल, इसका गर्मागर्म रस बूँद बूँद करके कान में टपकाएँ। इससे कान का दर्द दूर होता है। यथा—

"अर्कांकुरानम्लीपिष्टांस्तैलाक्तान् लवणान्वितान्।
सन्निदध्यात् स्नुहीकाण्डे कोरिते तच्छदावृते ॥
पुटपाक क्रमस्विन्नान् पीड़येदारसागमात् * *।
सुखोष्णं तद्रसं कर्णे दापयेच्छूल शान्तये ॥"

(उ० २१ अ०)

(२) श्वास में अर्काङ्कुर—आक के कोमल पत्तों का काढ़ा कर, उस काढ़े को भूसी रहित भूने जो में बार बार (वा ७ बार) भावना देकर उसे सुखा लें। फिर चूर्णकर (६ माशेसे १ तोला की मात्रा में) शहद के साथ श्वास रोगी को सेवन कराएँ।

यथा—

"अर्कांकुरैर्भावितानां यवानां साध्वनेकशः।
तर्पणं वा पिबेदेषां सक्षौद्रं श्वास पीड़ितः॥"

(उ० ५१ अ०)

वृहन्निघण्टु रत्नाकर—कर्णशूल में अर्काङ्कुर दे० "अर्काङ्कुरादि स्वरस"।

मिफ़्ताहुल ख़ज़ाइन-(१) आक के कोमल पत्ते २॥ नग, कंद स्याह २ तोला दोनों को सिल पर पीसकर सात गोलियाँ बनाएँ। इतवार मंगल से प्रारंभ करके १-१ गोली पागल कुत्ते के काटे हुए को ७ दिन तक खिलाएँ। इससे ज़हर दूर होगा। परीचित। (रफ़ीक़ुल् इतिब्बा)

(२) मदार की ताज़ी कोंपल बारीक कतरकर पँचगुने तिल तैल में मिलाएँ। फिर इस तेल को परिस्रुतकर अर्क निकालकर रखदें। शिथिल एवं सुप्त अवयव पर इसकी मालिशकर आक का पत्ती बाँध देने से उसमें नवजीवन का संचार होता है। तीन दिन तक प्रयोग करें। इससे छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकलेंगी, जो तिलके तेल में मोम गलाकर लगाने से दूर हो जाती हैं। हलका ज्वर भी होता है। पर शरीर में स्फूर्ति मालूम होती है।

(३) शिगूफ़ा मदार (अर्कांकुर), काली मिर्च, कालानमक और सोंठ समान भाग, इनको बारीक पीसकर रखदें। आमाशयशूल एवं ज़ोफ़ हाज़मा के लिए १ मा० की मात्रा में शीरा बादियान के साथ दें। (शरह)

(४) मदार का ताज़ा शिगूफ़ा (कोंपल), लाल रेंड़ का ताज़ा अंकुर (कल्ला), काली-मिर्च इनको समान भाग लेकर बारीक करके शहद के साथ चनेके बराबर गोलियाँ बनाएँ।

गुण-प्रयोग—बवासीरके लिए शतशोऽनुभूत है। चांद्र मास के अन्तिम तीन दिन और दूसरे महीने के पहिले चार रोज़ अर्थात् एक सप्ताह प्रति दिन तीन गोलियाँ एक छटाँक गोघृत के साथ निगल जाँय। तीन महीने प्रति सप्ताह यह प्रयोग करें। मदैव के लिए लाभ होगा। (इस्रार सद्रियः)

(५) नई फूटी हुई मदार की कोमल पत्तियाँ ३ नग गुड़ में लपेटकर बारीवाले बुख़ार के रोगी को नौबत से २-३ घंटे पूर्व सेवन करायें। तिजारी बुख़ार पहिले ही बार रुक जायगा। चौथिया बुख़ार के लिए ४ नग सेवन करायें।

कोई-कोई मदार की कोंपल को खाँसी और दमा के लिए बहुत उपकारी मानते हैं और उसके सेवन की विधि इस प्रकार लिखते हैं—

(६) पान पर सभी मसाला लगाकर एक नग मदार की कोंपल लपेटकर खाएँ। इसी प्रकार दूसरे दिन १॥ नग, तीसरे दिन २ नग, चौथे दिन २॥ नग और पाँचवें दिन तीन नग कोंपल खाएँ और ४० दिन तक रोज़ाना ३ नग कोंपल खाते रहें। इससे खाँसी और दमा दूर हो जायगा। पर इसे शरदृऋतु में सेवन करना चाहिए। यदि उपर्युक्त मात्रा से आधी खाया जाय तो उत्तम है। इसके सेवन काल में खटाई, बादी, मीठी और स्निग्ध चीज़ों से परहेज़ करना प्रशस्ततर है। (मुहीत आज़म)।

आक का पत्ता (अर्क पत्र)

चरक—(१) व्रणाच्छादनार्थ अर्कपत्र—व्रणको विद्वान् मनुष्य आकके पत्ते से आच्छादित करे। यथा—

"व्रणप्रच्छादने विद्वान् पत्राण्यर्कस्य चादिशेत्"।

(चि० १३ अ०)

(२) ऊरुस्तम्भ रोगी के शान्त्यर्थ अर्कपत्र— ऊरुस्तम्भ रोगी को तैलाक्त जल में सिद्ध किया हुआ आक का पत्ता बिना लवण डाले सेवन कराएँ यथा —

"शाकैरलवणैरथाज्जलतैलोपसाधितः।
सुनिषण्णकनिम्बार्क * * * पल्लवैः॥"

(चि० २७ अ०)

चक्रदत्त—(१) वृश्चिक दंशन में अर्कपत्र-बिच्छू के डंक मार देने पर सर्व प्रथम दष्टस्थान पर गुग्गुल की धूनी दें। इसके उपरांत पिसे हुए आक के पत्तों का उक्त स्थान पर लेप करदें; इससे बिच्छू के डंक मारने की पीड़ा शांत होती है।

यथा —

"पुरधूपपूर्वमर्कच्छदमिथ पिष्ट्वा कृतो लेपः।"

(विष० चि०)

(२) कुष्ठ में अर्कपत्र—दे० "अर्कतैलम्"।

भावप्रकाश-(१) प्लीहा रोगमें अर्कपत्र-मिट्टी की हाँडी में सूखे हुए वा ताजे अकौए के पत्ते और उससे चौथाई सेंधानमक के चूर्ण को पर्यायक्रम से रखकर हाँडी का मुँह बन्द करदें। फिर इस हाँडी को गजपुट के भीतर रखकर इसकी अंतर्धूम भस्म प्रस्तुत करें। इस भस्मको दहीके तोड़ के साथ सेवन करने से बढ़ी हुई और कठोर प्लीहा कोमल होकर स्वाभाविक अवस्था पर आ जाता है।

यथा—

"अर्कपत्रं सलवणं पुटदग्धं सुचूर्णितम्।
निहन्तिमस्तुना पीतं प्लीहानामतिदारुणम्॥,,

(नि० खं० ३ भ० प्लीहा-चि०)

(३) मेढ़्पाक में अर्कपत्र-शिश्नके पक जाने पर उसे आक के पत्तेके काढ़े से धोएँ। यथा—

"जयाजात्यश्वमारार्क सम्पाकानां दलैः पृथक्।
कृतं प्रक्षालनं क्वाथं मेढ़्पाके प्रयोजयेत्॥"

(म० खं० ४ भ० उपदंश-चि०)

वङ्गसेन—वातार्श में अर्कपत्र—कूटे हुए आक के पत्ते १ भाग, मिले हुए पाँचों नमक चौथाई भाग को किंचित् तिल तैल और चांगेरी के रस वा काँजी में मिलाकर यथाविधि अंतर्धूमदग्ध कर क्षार प्रस्तुत करें। इस क्षारको गरम पानी वा मद्य के साथ वातज अर्श रोगी को सेवन कराएँ। यथा—

"लवणान्यर्कपत्राणि विनीय तरुणानि च।
तैलेनाम्लेन युक्तानि युक्त्या क्षारं दहेद्भिषक्॥
उष्णोदकेन मद्यैर्वा रसैरम्लैश्चलाभतः।
पीतः प्रशमयत्येष क्षारोऽर्शो वातसम्भवम्॥"

(अर्शोऽधिकारे)। वृ०नि०र०वातार्श।

शार्ङ्गधर संहिता—पामा, कच्छू आदि में अर्कपत्र-आकके पत्तों का रस और हल्दी के कल्क से सिद्ध किया हुआ सरसों का तेल पामा, कच्छू और विचर्चिका को दूर करता है। यथा—

"अर्कपत्र रसे पक्वं हरिद्रा कल्क संयुतम्।
नाशयेत् सार्षपं तैलं पामां कच्छूं विचर्चिकाम्॥"

(म० खं० अ० ६)

वृहन्निघण्टुरत्नाकर-(१) कर्णशूल में अर्कपत्र-आक के पके हुए पीले पत्तों में घी चुपड़कर आग पर सेंककर निकाला हुआ स्वरस गुनगुना करके कानमें डालने से कान का दर्द दूर होता है।

(२) खल्ली, शूल, हैजा आदिमें अर्कपत्र-आक का रस, धतूरे का रस, सफ़ेद थूहरका रस, सहिंजनका रस और काँजी प्रत्येक १ प्रस्थ, कुट और सेंधानमक प्रत्येक २-२ पल, इनके साथ प्रस्थ तैल का पाक सिद्ध करें। यह खल्ली, शूल, हैज़ा, पक्षाघात, और गृध्रसी का नाशक है।

यूनानीमतानुसार, प्रयोग—(१) पीले पड़े हुए मदार के पत्ते में घृत लगाकर आग पर सेंकें। फिर उसे हाथ से मलकर उसका रस निचोड़ लें और उसे नथुनों में टपकाएँ। इससे नाकसे पानी जारी होकर आधासीसी के दर्द को आराम होगा।

(२) आक के पत्ते की पीठ पर, जो सफ़ेद रोआँ होता है, उसे यत्नपूर्वक पृथक् करलें, जिसमें दूध साथ न मिल जाय। फिर उसकी चने प्रमाण गोलियाँ बनाएँ। इसमें से एक गोली उपयुक्त शर्बत के साथ प्रति तीन-तीन घंटे पर खिलाने से प्लेग में लाभ होता है। परीक्षित है।

(३) एक सेर गाय का घी कड़ाही में डाल कर आग पर रक्खें और उसमें एक-एक साफ़ पत्ता मदार का डाल कर जलाएँ। जब एक जल

जाय, उसको निकालकर दूसरा डालें। इसी प्रकार सौ पत्ता जला कर घी को साफ़ कर लें। यह भी प्रकृति के अनुकूल २-३ तोला वा अधिक रोटी के साथ वा पोलाव वा गोश्त में डाल कर सेवन करने से समस्त कफज व्याधि वा केंचुए नष्ट होते हैं। कफ प्रकृति के लोगों में असीम मैथुन शक्ति प्रादुर्भूत होती है। परन्तु यह ध्यान रखें कि, पत्ते नए हों, पुराने पत्तों में किञ्चिन्मात्र भी प्रभाव नहीं होता। परीक्षित है। (इसूरार सद्रियः)

(४) फ़ूले अर्थात् शरीर के आधे निम्न भाग के फ़ालिज के लिए यह प्रयोग परीक्षित है—एक गड्ढा इतना गहरा खोदें, जिसमें आदमी बैठ सके। उसमें उपले भरकर जलाएँ, ताकि उसकी दीवारें लाल हो जाँय। फिर उसको आग, राख प्रभृतिसे रहित करके उसमें ताज़े आक के पत्ते भर दें। जब वे पत्ते गरम होंगे, उनसे वाष्प उद्भूत होगा। रोगी को पशमीने की चादर में लपेट कर उस गड्ढे पर बिठाएँ। उसका मुँह खुला रखें, जिसमें वाष्प इत्यादि से सुरक्षित रहे। यह क्रिया मकान के भीतर निर्वातस्थान में करनी चाहिए। रोगी पसीने से शराबोर हो जायगा। दूसरे दिन रोगी को ६ माशे रेंड़ी की गुद्दी बादाम के तेल में भुनकर शहद के साथ चटाएँ। इससे क़ै दस्त होंगे। इसके उपरान्त फिर उसे उसी प्रकार गड्ढे पर बिठाकर वाष्प स्वेद दें। इसी भाँति तीन दिन अमल करने से गया गुज़रा रोगी भी तन्दुरुस्त हो जाता है। शरीर पर छोटी छोटी फुन्सियाँ निकल आती हैं। पर वे दूसरे तीसरे दिन स्वयं लुप्त हो जाती हैं। एक रोज़ बुख़ार भी हो जाता है; परन्तु उससे कोई भय नहीं। परीक्षित है। (मिफ़्ताहुल् ख़ज़ाइन)

(५) लौंग, अकरकरा, जायफल, हर एक १ तोला जौकुट कर मदार के ७ पत्ते नीचे और ७ पत्ते ऊपर देकर सी लें और तवे पर रखकर उस पर प्याला औंधा दें। नीचे एक पहर तक नरम आँच जलाएँ, जिसमें नीचेवाला पत्ता लगभग जल जाय। फिर दवाओं को बारीक करके रख दें।

गुण, प्रयोग—शीतल वातजन्य रोगों (अमराज बारिदः अस्बियः), गठिया और स्त्रियों के प्रसूत रोग के लिए उत्तम एवं परीक्षित औषधि है। १ रत्ती से आध माशा तक उचित औषध के साथ योजित करें। (मख़्ज़नुल् अक्सीर)

(६) एक घड़े में २ सेर मदार के पत्ते तह बतह बिछाकर उस पर १ छटाँक सोंठ रख दें और उस पर पुनः २ सेर मदार की पत्ती पर्याय-क्रम से बिछाएँ तथा एक लोटा पानी डाल दें। फिर घड़े का मुँह बन्द करके ऊपर पत्थर रख दें। नीचे आग जलाएँ। जब पानी सूख जाय और आवाज़ न दे, तब आग लगाना बन्द करदें। प्रातःकाल वाष्प से बचकर सोंठ (ज़ंजबील) निकाल लें और आध सेर गोघृत में भूनें। फिर निकाल कर शहद में रखदें। गोघृत को भी सुरक्षित रखें।

गुण, प्रयोग—गठिया (वजउल मफ़ासिल) और कफज संधिवात (निक़रिस बलग़मी) के लिए शहद के सहित ज़ंजबील का एक टुकड़ा खाएँ और गोघृत में गेहूँ की रोटी कूटकर खालें। जल बहुत कम पिएँ। फिर उस रोग़न (गोघृत) की मालिश करके धूप में बैठें। इससे पसीना आयेगा। हवा से बचे रहें। परमात्मा की दया से तीन दिन के सेवन से आराम होगा। (रफ़ीक़ुल् इतिब्बा)

(७) शाह गाज़रूनी लिखते हैं; कि मदार के ताज़े पत्ते गरमकर बाँधने से सूजन कम होती है और सर्दी से होनेवाला संधिशूल आराम होता है। इसके क्वाथ में जैतून का तेल मिलाकर मालिश करने से आक्षेप, पक्षाघात और अवसन्नता में बहुत लाभ होता है।

(८) रोग़न उशर (मंदार तैल)—आक का हरा पत्ता, धतूरे का हरा पत्ता, रेंड़ का हरा पत्ता, सेंहुड़ का पत्ता, बकायन का पत्ता, सहिंजन का पत्ता, भँगरे का पत्ता और भाँग का पत्ता इन सबको समान भाग लेकर शीरा निकाले। जितना यह स्वरस हो उतना ही इसमें तिल का तेल डालकर इसे अग्नि पर चढ़ाकर पकाएँ। जब केवल तेल मात्र शेष रहे, उतार कर छान लें

और बोतल में सुरक्षित रखें। मालिश करते समय इसमें पीपल और कालीमिर्च १-१ दिरम (३॥ मा०) का महीन चूर्ण मिला दें। इसकी मालिश से समस्त प्रकार के कफज एवं सर्दी के संधि-शूल आराम होते हैं। फ़ालिज तथा लक़वा के लिए अकसीर है।

(९) किसी अङ्ग को अधिक काल तक आक के पत्ते द्वारा आच्छादित रखने पर वह अङ्ग लाल हो जाता है; किन्तु वहाँ फोला नहीं पड़ता। अर्कपत्र के इसी गुण के कारण, उदराध्मान वा शूलवत् वेदना में उदर पर तैलाक्त आक का पत्ता स्थापित करने से लाभ होता है। आक के पत्ते का लेप दर्द एवं सूजन के लिए लाभदायक है।

(*R. N. khory, Part 2., p. 396*)

(१०) इसकी पत्ती का सेंधानमक के साथ बन्द बरतन में अन्तर्धूमदग्ध विधि से क्षार प्रस्तुत कर इसको दही के तोड़ के साथ सेवन कराते हैं। यह जलन्धर और उदरवृद्धि में उपयोगी है।

(११) मदार की पत्ती का तरल सार १ से ५ बूँद की मात्रा में सविराम-ज्वर की विरामकालीन अवस्था में दिया जाता है। कहते हैं कि, यह बारी को रोकने में क्विनीन की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है।

(डॉ० के० एम० नादकर्णी)

नोट—अनेक बार प्रयोग करने पर उपरिलिखित फल कभी देखने में न आया। —लेखक

(१२) इसकी पत्ती को तिल्ली के तेल में मिलाकर किसी पत्थर से खूब पीसकर मरहम बना लें। फ़ोते के दर्द में इसे चुपड़ कर लंगोट बाँध लेवे, तत्काल आराम होगा।

(१३) मदार की पत्ती, भिलावाँ हर एक ७ नग तिल तैल में जलाएँ। जब खूब जल जाय, साफ़ करके शीशी में रखें और जिस वक्त ज़रूरत हो, धूप में बैठकर मालिश करें। केवल दो तीन बार की मालिश से हर प्रकार के दर्द में लाभ होता है। बिना भिलावें के केवल आक की पत्ती को आग में जलाने से भी लाभ होता है।

(१४) मदार का हरा पत्ता १ पाव, ज़र्दचोब (हल्दी) २ तोला दोनों को लेकर इतना कूटें कि, गोली बनाने लायक़ हो जाय। फिर माष के बराबर गोलियाँ बना लें। इसमें से चार गोली ताज़े पानी के साथ सेवन करें और एक गोली दैनिक यहाँ तक बढ़ाते जाँय कि सात गोलियों की मात्रा तक पहुँच जाय। फिर एक एक करके कम करते जाँय। यह प्रयोग इस्तिस्क़ाऽलहमी (Anasarca) के लिए बहुत उपयोगी है।

(१५) एक पत्ते आक पर पानी में बारीक पिसा हुआ कत्था और चूना लगा दें और दूसरे पर गायका घी पोतकर उनको परस्पर मिला कर मिट्टी के कूज़े में रखकर उसका मुँह बंद कर दें। फिर इसे आग में रखकर जला लें। इसमें से एक रत्ती भस्मको पान में रख कर खिलाएँ। यह श्वासकृच्छ्रता में अत्युपयोगी है।

(१६) आक की पत्ती को घी से आप्लुत कर गरम कर लें। फिर इससे इर्क़मदनी (नहरुवा) पर कोष्ण टकोर करें और उसको सूजन पर बाँध दें, उपकारक है। इसके अतिरिक्त गठिया इत्यादि में भी उसी प्रकार गरम करके बाँधने से लाभ होता है।

(१७) आक की पीली पड़ी हुई पत्ती को आग पर गरम कर निचोड़ा हुआ रस कान में टपकाने से बहरापन दूर होता है। परन्तु इसे दो सप्ताह तक प्रयोग में लाएँ।

(१८) आक का पत्ता शोथविलायक एवं व्रणविदारण है और यदि ढेलों की जगह पत्तोंसे इस्तंजा करें तो बवासीरके लिए मुफ़ीद होता है।

(१९) आक की पीली पत्ती के दोनों ओर घी पोत कर आग पर गरम कर निचोड़ें। इस प्रकार निचुड़ा हुआ रस कान में डालने से आधासीसी का दर्द शांत होता है।

—(मुहीत आज़म)

(२०) मदार के लघु क्षुप से ४ सेर पत्ती लेकर उनका स्वरस निकालें और उसमें से १० सेर को भिगो सुखाकर फिर तर करें। इसी प्रकार सात बार करें। फिर पीसकर चूर्ण बनाएँ। इसमें से आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में यह चूर्ण शहद के साथ दें। खाँसी और दमा में परीक्षित है।

(२१) अचार की विधि से इसकी पत्ती में राई प्रभृति पदार्थ सम्मिलित कर अचार तैयार कर सेवन करने से बढ़ी हुई तिल्ली और जिगर में लाभ होता है।

(२२) इसके पत्तों को गीले कपड़े में लपेट कर ऊपर से मिट्टी चढ़ायें और भूभल में रक्खें। कुछ देर बाद पत्ते निकाल कर स्वरस निचोड़ लें। बहरापन के लिए कुछ दिन कान में टपकाएँ और आधासीसी के लिए नाक में।

(२३) मदार की पत्ती ४२ नग, ज़र्दचोब (हल्दी) २ मा० और बेर की लकड़ी का कोयला ५ मा०, इनको कूट पीसकर गरम किये हुए बादाम के तेल में मिलाकर उड़द के बराबर गोलियाँ बनाएँ। ज्वर के लिए ४ गोलियाँ दें, श्वित्र के लिए १ गोली सुबह शाम, रक्तविकार के लिए भी १ गोली सुबह, १ गोली शाम को, इस प्रकार एक सौ इक्कीस दिन तक सेवन कराएँ। गठिया के लिए भी १ गोली दें। इसके अतिरिक्त फ़ालिज, कफज्वर, ख़नाज़ीर (कंठमाला) इत्यादि में भी यह लाभदायक है।

(२४) आक का हरा पत्ता, धतूरे का हरा पत्ता, तम्बाकू का हरा पत्ता, गूलर का हरा पत्ता और भँगरैए का हरा पत्ता, इनको बराबर लेकर कूट पीसकर जंगली बेरके बराबर गोलियाँ बनाएँ, एक गोली सुबह, १ शाम इस तरह ४० दिन तक निगल लिया करें। यह गठिया तथा वातज पीड़ा के लिये लाभदायक है।

(२५) मदार की हरी पत्ती पर बाबूने का तेल दोनों तरफ़ लगाकर और गरम करके उस तेल की बूँदें गरम गरम टपकाने से कान के दर्द और आधासीसी को लाभ होता है। इसके पत्तों को गरम कर निचोड़ लें। उस रस को हर प्रकार के जले हुए ज़ख़्मों पर लगाने से लाभ होता है।

(२६) मदार की पीली पत्ती २० नग, ईख का तीक्ष्ण पुराना सिरका १ पाव, सोंठ, काली मिर्च, पाँचों नमक, जवाखार, कपूर प्रत्येक १-१ तोला को चूर्णकर एक बोतल में डालकर १५ दिन तक उस बोतल को धूप में रखें, पुनः उसे छानकर दूसरे बोतल में सुरक्षित रखदें।

मात्रा—१० बूँद से ६० बूँद तक।

गुण—इसकी एक मात्रा थोड़े पानी के साथ पीने से उदरशूल, आध्मान, गुल्म, हैजा और प्लीहा इत्यादि में लाभ होता है। परीक्षित।

आक का फूल वा अर्क-पुष्प

योगरत्नाकर—(१) स्त्रियों के रजोधर्म में अर्कपुष्प—आकके फूल तेल (तिल) में पकाकर सेवन करने से स्त्रियों का मासिकधर्म खुलकर आता है।

वृहन्निघण्टुरत्नाकर—(२) सदाह प्रवृद्धाश्मरी में अर्क पुष्प—मदार के फूल गाय के दूध में पीसकर ३ दिन तक रोज़ प्रातः पीने से दाहयुक्त बढ़ी हुई पथरी का नाश होता है।

(वृ० नि० र० ५ भ० अर्श०)

(३) मदार की बंद कली एक अदद गुड़ में लपेट कर गोली बनाएँ और ३ दिन तक निरंतर खिलाएँ, जूड़ीज्वर रोकने के लिए उत्तम है।

मुहीत आज़म।

(४) मदार की कली ६ तो० कालीमिर्च ३ तो०, खाने का नमक (सैंधव) ३ तो०, लौंग कुलाहदार और जौहर नौसादर हर एक ६ मा०, कली का चूना ३ मा०, शुद्ध अफीम १॥ मा०, सब दवाओं का एक दिन अदरक के रस में खरल करके सुखा लें। फिर एक रोज़ नीबू के रस में घोंटकर चने बराबर गोलियाँ बनाएँ।

गुण—ये गोलियाँ विसूचिका, उदरशूल, आमाशय विकार तथा अजीर्ण में उपकारी हैं और भूख पैदा करतीं तथा पाचनशक्ति को ठीक करती हैं और परीक्षित हैं। हैज़ामें इनका निश्चित लाभ होता है। एक दो गोली गुलाबार्क के साथ खिलाएँ। इससे शर्तिया विसूचिका का ध्वंस होगा।

(५) पूरी अवस्था को पहुँचा हुआ मदार का फूल, अर्कलवण हरएक ४ तो०, नमक लाहौरी, नमक स्याह, नमक हिंदी प्रत्येक ५ तो० कालीमिर्च २ तो०, भूना सुहागा १ तो० नीबू के रस में एक दिन खरल करके चने बराबर गोलियाँ बनाएँ।

गुण—आहारपाचक, वायुनिःसारक और तर दर्दों (औजाअ मरतूबा) के लिए परीक्षित है। एक गोली भोजनोपरांत सेवन करें। (मिफ़्ताहुल ख़ज़ाइन)।

(६) मदार की बंद मुख कली २ भाग, अजवायन १ भाग, कंद स्याह ५ भाग, कूटकर एक दिल कर लें और मदार की पत्तां ७ अदद ऊपर नीचे रखकर सीकर कपड़मिट्टी करें और गरम भूभलमें दो पहर गाड़कर निकालें। फिर दवाओं को भिन्न करके बारीक करें और शीशी में रखलें।

गुण, प्रयोग—श्वासकृच्छ्रता, दमा, पुरानी खाँसी और उदरस्थ वायु के लिए अत्यन्त उपयोगी है। १ माशा मक्खन वा मुनक्का में दें। (मख़्ज़न)

(७) अर्क मदार—मदार का फूल, अजवायन हरएक पाँचसेर, सहिंजन की जड़ २॥ सेर कूट कर एक मटके में इतने पानी में ९ रोज़ तर करें, कि वह (पानी) एक बालिश्त ऊपर रहे। उसका मुँह बंद रखें, फिर नरम आँच पर अर्क निकालें। उसके ऊपर जो तेल हो उसे शीशी में बंद रखें।

गुण, प्रयोग—जलोदर, सूउल्क़िनूयः (Anasarca), श्वासकृच्छ्रता, पुरानी खाँसी, गठिया (वजउल मफ़ासिल) और वातज वेदना के लिए अक्सीर है। १ रत्ती तेल पत्ते पर लगाकर खाएँ और २ तोला से ४ तो० तक अर्क पीते रहें। (मख़ज़न)

नोट—यदि तीन माशे संखिया के ५–७ टुकड़े कर पोटली में बाँधकर नैचे में बाँध दें और अर्क निकालें तो इसके पूर्वोक्त गुणों में और भी वृद्धि होगी।

(८) मदार का मुँह बँधा फूल २ भाग, फ़िलफ़िल गिर्द (गोलमिर्च) ४ भाग, साँभर-नमक ३ भाग इनको कूटकर खरल करें और मिर्च के बराबर गोलियाँ बनाएँ। इसमें से १ गोली नित्य प्रातः काल खाएँ।

गुण-प्रयोग—श्वास की तंगीमें उपकारी है।

(९) आकका मुँह बँधा फूल आधसेर और अजवायन एक पाव को कूटकर सायेमें सुखालें। फिर पीसकर ६ मा० निहार मुँह सेवन करें और खटाई तथा वादी से परहेज करें।

गुण, प्रयोग—श्वासकृच्छ्रता, खाँसी, बाव-गोला, उदर तथा सीने के रोगके लिए लाभप्रद है। (मुहीतआज़म)

(१०) अर्कपुष्प बलकारक, पाचक, आमाशय-बलदायक और कास-श्वास के लिए उपयोगी है। (आर० एन० खोरी)

(११) मदार के सूखे फूल १–२ ग्रेन की मात्रा में शकर के साथ कुष्ठ, द्वितीय कक्षा के उपदंश और पूयमेह में व्यवहृत होते हैं।
पथ्य—दूध। (के० एम० नादकर्णी)

(१२) मदार के फूलका जीरा १ तोला और इसके बराबर नमक लाहौरी और पीपल मिलाकर कालीमिर्च के बराबर गोलियाँ बनाएँ। बालकों को रातमें एक गोली देने से खाँसी बिलकुल नहीं आती। पूर्ण वयस्क स्त्री-पुरुष भी दूध से २ गोली खाएँ। इससे रेज़िश, खाँसी, बल्कि दमा तक दूर होता है। यदि सोने के समय मुँह से बहुत लार बहता हो, तो इसके सेवन से लाभ होता है। उदरशूल, विसूचिका, अजीर्ण के लिए भी अकसीर है।

(१३) आक के फूल १ तोला, कालीमिर्च, सोंठ और नमक लाहौरी हरएक एक तोला सबको पीसकर अदरख के रस में गोलियाँ बनाएँ। जब कभी पेट में भारीपन मालूम हो, तब एक गोली किंचिद् जलके साथ सेवन करें। यह गोलियाँ गठिया के लिए भी लाभप्रद हैं। रियाह बासूरी के लिए भी उपकारी हैं। इससे मस्सों की खराब रतूबत निकलकर तबीअत हलकी हो जाती है। हैज़े में भी बहुत उपयोगी है।

(१४) मदार का बिना खिला फूल १ तो०, भुना सुहागा ५ मा०, लौंग, सोंठ, पीपल (फ़िल-फ़िलदार), कालानमक हरएक ५ मा०, इनको कूट पीसकर १–१ रत्ती की गोलियाँ बनालें और थोड़ी-थोड़ी देर में १–१ गोली खिलाते रहें। यदि लाभ हो तो चार गोलियाँ एक ही बार खिलावें। हैज़ा के लिए परीक्षित है।

(१५) मदार का फूल १ तो०, सुहागा (भुना) ४ मा०, कालीमिर्च (फ़िलफ़िल गिर्द), ६ मा०, घीक्वार के गूदे में खरल करके चने के बराबर गोलियाँ बनालें। एक गोली अर्क गुलाब से दें। हैज़ा के लिए बहुत गुणकारी हैं।

(१६) हब्ब गुल-मदार—मदार का फूल (बिना खिला), सोंठ, कालीमिर्च, बाँस का पत्ता समान भागले बारीक पीसकर चने के बराबर गोलियाँ बनाएँ और दो गोलियाँ प्रातः सायं पानी के साथ खाएँ। यह गठिया (वज्उल-मफ़ासिल) के लिए मसीहुलमुल्क के दवाख़ाने में रायज और मुफ़ीद है।

(१७) आक के फूल लेकर सुखालें और खूब महीन पीसकर मदार के पत्ते के रसमें बराबर तीन दिन खरल करके चने के बराबर गोलियाँ बनाएं। कैसा ही कठिन से कठिन उदरशूल हो, उसके लिए यह अनुपम है। गरम पानी के साथ दो गोलियाँ निगलवा दें, फौरन् आराम हो जायगा। आराम न होने पर दो गोलियाँ और दें।

(१८) सुखाया हुआ आक का फूल १० तो०, मदार की जड़ की छाल ५ तो० दोनों को खूब बारीक पीसलें और आक के पत्ते का रस डालकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनाएँ। उदरशूल एवं वात सम्बन्धी रोगों के लिए अनुपम औषध है।

मात्रा—१ से ४ गोली तक। अर्क सौंफ, वा गरम पानी के साथ सेवन कराएँ।

(१९) आक के हरे फूलों को कूटकर पक्का २ सेर पानी निचोड़ लें। इसमें पक्का एक पाव मदार का दूध और १। सेर गाय का घी भी सम्मलित करें। फिर इनको एक उत्तम कलई-दार देगचे में डालकर नरम नरम आग पर पकाएँ, यहाँ तक कि केवल घी मात्र शेष रह जाय। फिर आग पर से उतारकर घी को छानकर सुरक्षित रक्खें।

गुण, प्रयोग—जिसकी अँतड़ी में क्रिमि पड़े हों और उसके कारण पाचन-शक्ति ख़राब हो गई हो, बवासीर हो, उसे इस घी में से ३ मा० से ६ मा० तक प्रतिदिन गाय के आध पाव पक्के दूध में मिलाकर सेवन कराएँ। इसके सेवन से आँतों के कीड़े मर जाते तथा अजीर्ण और बवासीर प्रभृति दूर होते हैं।

(२०) साया में सुखाया हुआ मदार का फूल, जवाखार, कलमीशोरा, भुना सुहागा, कुसुम बीज (कड़) इनको हरी दूब के रस में खरल करके सुखाएँ। इसमें से ३-३ मा० की मात्रा में बकरी के दूध के साथ खाएँ। यह बस्ति एवं वृक्कस्थ अश्मरीछेदक और मूत्रावरोध निवारक है।

(२१) मदार का फूल १ तो०, भुनी हुई हींग ३ मा०, पुदीना १ तो०, सोंठ, जवाखार, अमचूर और कालीमिर्च हर एक १ तो०, नमक लाहौरी ५ तो०, इनको बारीक पीसकर नीबू के रस में खरल कर जंगली बेर के बराबर गोलियाँ बनाएँ। यह सुस्वादु, पाचक और आध्मानहर है।

(२२) आक की लौंग (क़रन्फ़ल मदार) —जो अर्कपुष्प के ठीक बीचोबीच लौंग के सिर की तरह होती है, निकाल कर उसके बराबर नमक लाहौरी और पीपल डालकर कालीमिर्च के बराबर गोलियाँ बनाएँ। कास रोगी को उसमें से १ गोली रात में दें, तो खाँसी बिल्कुल न रहे। बच्चों को ज़रा इससे छोटी गोली दें।

(२३) फूलों की लौंग निकाल कर १ तो०, कालीमिर्च १ तो०, अदरक १॥ तो० सबको मिला कर चने के बराबर वटिकाएँ प्रस्तुत करें। इसमें से १ गोली देने से हैज़ा के रोगी को तत्काल लाभ होता है और उदरशूल आदि में भी उपकारी है।

आक की जड़

चरक—अर्श में अर्कमूल—बवासीर के मस्सों के लिए आक की जड़ और शमी की पत्ती का धूपन (धूनी) लाभकारी है। यथा—

"अर्कमूलं शमीपत्रमर्शोभ्यो धूपनं हितम्।"
(चि० ९ अ०)

सुश्रुत—कुष्ट में कृमि पड़ जाने पर अर्क मूलत्वक्—जिस कुष्ट रोगी के कोढ़ के क्षत में कृमि पड़ गए हों, उसे नीम का काढ़ा वा आक

एवं सफ़ेद आक और सतिवन की जड़ की छाल का काढ़ा पिलावें। यथा—

"निम्ब क्वाथं जातसत्वः पिवेद्वा क्वाथं वार्का-लर्क सप्तच्छदानाम्।" (त्रि० ६ अ०)

चक्रदत्त—(१) वृद्धि रोग में अर्कमूल—मदार की जड़ की छाल को काँजी में पीसकर बढ़े हुए फ़ोते (कुरंड) पर प्रलेप करने से बहुत बढ़ा हुआ कुरंड भी विनष्ट होता है। यथा—

"निष्पिष्टमारणालेन रूपिकामूल वल्कलम्।
लेपोच्चवृद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमपिदृढ़म्॥"
(वृद्धि० चि०)

(२) श्लीपद रोग में अर्कमूल—आक की जड़ की छाल काँजी में पीसकर प्रलेप करने से बहुत बढ़ा हुआ श्लीपद (फीलपाव) रोग भी नष्ट होता है। यथा—

"निष्पिष्टमारणालेन रूपिकामूल वल्कलम्।
प्रलेपात् श्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपिदृढ़म्॥"
(श्लीपद चि०)

वङ्गसेन—आँख के रोग में अर्कमूल—एक तोला अकौए की जड़ की छाल कूटकर एक पाव पानी में एक मुहूर्त तक रखकर छान ले। आँख में लाली, भारीपन, वेदना, क्लेदबाहुल्य और अत्यन्त खाज पड़ने पर इसे बूँद बूँद करके आँख में डालने (आश्च्योतन करने) से लाभ होता है। (नेत्ररोगाधिकार)

बृहन्निघण्टुरत्नाकर—(१) खाँसी में अर्कमूल—आक की जड़ और मैनसिल समानभाग, त्रिकुटा आधा भाग इनका चूर्ण बना धूम्रपान कर ऊपर से ताम्बूल खाने अथवा दूध पीने से ५ प्रकार की (खाँसी) का नाश होता है।

हकीम अलीयारख़ाँ—(१) यदि मदार की जड़ की छाल और गोलमिर्च समान भाग ले कूट छानकर अदरक के रसमें खरल कर काली मिर्च के बराबर गोली तैयार करें और एक गोली हैज़ा के रोगी को दें, तो बुरी से बुरी अवस्था में भी उपकार हो। (मुहीत आज़म)

(२) मदार की जड़ को जलाकर भस्म कर लें। इसमें से १ रत्ती सुबह के वक्त बताशे में रखकर खिलाएँ। इससे खाँसी दूर होती है और कफज्वर नहीं आता।

(३) एक दिरम (३॥ मा०) आक की जड़, गोलमिर्च आधा दिरम (१॥ मा०) इनको बड़ के दूधमें खरलकर चने के बराबर गोली बनाएँ। बारी से एक घंटे पूर्व १ गोली खिलाएँ। इससे बुख़ार की बारी रुक जाती है।

(४) इसकी जड़ को तेल में पकाकर उस तेल की मालिश करने से फालिज, लक़वा, सुन्नता और कंपन रोग में लाभ होता है।

✓ (५) आक की जड़ को अपने ही पेशाब में पीसकर वर्तिका बना स्त्री यदि अपनी योनि में रखे, तो पति को पराभूत कर ले।

(६) यदि आक की जड़ को बकरी के दूध में पीसकर नाक में टपकाएँ, तो मृगी रोग अच्छा हो। और इसकी जड़ को हींग के साथ पानी में पीस कर गरम कर उदर पर लेप करने से उदरशूल (क़ौलंज) में लाभ होता है।

(७) इसकी जड़ को कपास की जड़ के साथ पीसकर थोड़ा जल मिलाकर पीने से साँप का काटा हुआ विष मुक्त होता है। अकेले पिलाना भी उपकारक है।

(८) यदि इसकी जड़ की ताज़ी छाल सज्जीलोटा के साथ बच्चों के पेशाब में खरल करके पार्श्वशूल में, जिसे पंजाबी में 'हूक पड़ना' कहते हैं, लेप कर धूप में बैठें और अरने कंडे से सेक करें तो लाभ हो। (मुहीत आज़म)

(९) कैलोमेल और ऐण्टिमोनियल पाउडर के साथ आक की छाल के सेवन से दोषों का संशोधन होता है।

(१०) वृद्धि, श्लीपद, कोढ़ के क्षत और विविध प्रकार के चर्म्म-रोगों में इसका प्रलेप बहुत ही उपयोगी होता है।

(११) आक की जड़ की छाल में मदार के दूध की भावना देकर घाम में सुखा लें। इसका चुरुट प्रस्तुत कर अग्नि संयोग द्वारा इसका धूम पान करने से श्वासकष्ट निवृत्त होता है।

(१२) आक की जड़ की सूखी छाल

वामक है और यह इपिकेक्काना को प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहार में आती है। अर्क मूलत्वक् को अफीम के साथ मिलाकर आमरक्तातिसार वा प्रवाहिका में "डोवर्स पाउडर" की तरह व्यवहारमें लाते हैं। (*Materia Medica of India–R. N. Khory, Part 2., p. 396*)

(१३) अर्वाचीन इंद्रियकार्यविज्ञान विषयक गवेषणाओं से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि, मदार का स्वरस, त्वचा पर लगाने से, क्षोभक प्रभाव करता है। अस्तु, चोट तथा मोच में वेदना निवारणार्थ लवण के साथ इसका व्यवहार बुद्ध्यात्मक है और पुरातन गठिया में इसकी ताज़ी छाल का प्रयोग भी वैसा ही है। थोड़ी मात्रा में मुख द्वारा प्रयोजित करने पर यह रक्त-केशिकाओं को उत्तेजित करता और त्वचा पर प्रबल प्रभावोत्पादन करता है। अस्तु, यह श्लीपद तथा कोढ़ (Cansonora) में उपयोगी है। (*Pharmacographia Indica, Part 2., P. 434*)

मोहीदीन शरीफ़—(१४) मैने अधिक परिमाण में अर्कमूलत्वक् का प्रवाहिकामें व्यवहार किया और उसे इपीकेक्काना की उत्तम प्रतिनिधि पाया। इस रोगमें इसकी मात्रा अंतमूल के अमिश्रित चूर्ण के बराबर ही है। (स० फा० इं० पृ० ३६६)

(१५) मदार की जड़ की छाल और काली मिर्च समान भाग लेकर खूब खरलकर चने के बराबर गोलियाँ बनाएँ। इसमें से एक वा दो गोली सौंफ वा गुलाब के अर्क और सिकंजबीनके साथ देने से कष्टसाध्य हैज़े में भी तत्काल वमन एवं दस्त बन्द हो जाते हैं। आसन्नमृत्यु रोगी भी रोग–मुक्ति प्राप्त करता है। इसे तिर्याक़ बीख़ मदार कहते हैं। (मख़्ज़नुलअकसीर)

(१६) मदार की जड़ की छाल १ भाग, कालीमिर्च चौथाई भाग, सोंचरनमक चौथाई भाग, सबको मिलाकर चने के बराबर गोलियाँ बनाएँ। किसी अंग में दर्द हो तो ६ मा० घी के साथ १–१ गोली सुबह शाम सेवन करें। निहायत अक्सीर है। हैज़े में मायूसी के समय यह गोलियाँ मसीहाई का असर दिखाती हैं।

(१७) मदार की जड़ की छाल ४ तो०, प्याज़ अंसल (काँदा) २ तो०, जूफ़ा खुश्क ८ तो० सबको बारीक पीसकर शहद में मिला चने के बराबर गोलियाँ बनाएँ।

मात्रा—२ गोली तक। कफज कास में लाभदायक है। विशेषतः चिरकारी कास में बहुत ही उपयोगी है। दमे और कफज श्वासकष्ट में भी अकसीर है।

(१८) पानी के साथ पिसी हुई सर्पदष्ट का अगद है।

(१९) ४॥ मा० इसकी जड़ का चूर्ण भृंगराज स्वरस के साथ सेवन करने से स्त्री अक्षता के समान हो जाती है।

(२०) इसकी जड़ को मक्खन और बकरेके खूनके साथ खरल करें और जब सूख जाय, सुरमे की भाँति आँख में लगाएँ। इससे आँख की रोशनी तेज़ हो जायगी। (सफ़ेद आक की जड़ अधिक उपयोगी है)

(२१) मदार की जड़ की छाल ४ सेर लेकर एक मिट्टी के बरतन में डालदें और पाव सेर गेहूँ एक सफ़ेद कपड़े में बाँधकर डालदें और बरतन को पानी से $\frac{3}{4}$ भरदें। फिर उसका मुँह बंद करके २१ दिन तक घोड़े की लीद में गाड़दें। निश्चित समय के उपरांत निकालकर देखें। यदि उसमें कुछ पानी शेष हो तो उसको आग पर शुष्क करलें और गेहूँ उसमें से निकालकर बारीक पीसकर ६१ गोलियाँ बनाएँ। इसमें से एक गोली प्रतिदिन खाएँ।

पथ्य—गेहूं की रोटी और घी बिना नमक के खिलाएँ इससे कोढ़ अवश्य अच्छा होता है।

(२२) कालीमिर्च १०० भाग, पीपल १०० भाग, सोंठ १०० भाग, दारचीनी ५० भाग, लौंग ५० भाग, संखिया ४ भाग, इनको बारीक पीसकर अर्कमूलत्वक् स्वरस सबके बराबर, इसमें भली प्रकार खरलकर चने के बराबर गोलियाँ बनाएँ।

मात्रा—१ गोली।

गुण, प्रयोग--पाचन-विकार, अजीर्ण, बदहज़मी, हैज़ा, उदरशूल, कफज एवं वातरोगों में अत्युपयोगी है। खाना हज़म करता, भूख पैदा करता और खाँसी में उपयोगी है। संग्रहणी में छाछ के साथ इसका सेवन अत्यन्त गुणकारी है।

(२३) इसको जड़ के पास की गीली मिट्टी लाकर टिकिया बना, अत्यन्त वेदनायुक्त एवं कीड़े पड़े हुए ज़ख्म में रखदें। इससे कीड़े मिट्टी के नीचे आ जायँगे और मर जायँगे। पशुओं पर इसकी अनेकों बार परीक्षा की जा चुकी है। आशा है कि, मानुषिक ज़ख्मों में भी लाभदायक होगी। (अलहकीम जून १९२५ ई०)

आक का दूध

चरक—वमन तथा विरेचन के लिए अर्कक्षीर-मदार का दूध सुखा चूर्णकर सेवन करने से क़ै और दस्त आते हैं। यथा—

"क्षीरमर्कस्य विज्ञेयं वमने सविरेचने"।

(सू० १ अ०)

सुश्रुत—(१) जलत्रास रोग में अर्कक्षीर—आकके दूध युक्त (नस्यों से) शिरका विरेचन करें। यथा—

"अर्कक्षीरयुतं चास्य दद्याच्छीर्ष विरेचनम्"।

(कल्प० ६ अ०)

(२) तिलकुट (पलल) और तिल का तेल एवं आक का दूध और ईख का गुड़ इनको एकत्र मिलाकर कुक्कुरदष्ट व्यक्ति को खिलाएँ। इसके सेवन से अलर्क-विष (जलत्रास रोग) नष्ट होता है। यथा—

"पललं तिलतैलं च रूपिकायाः पयोगुड़ः
निहन्ति विषमालर्कं मेघवृन्दमिवानिलः।"

(कल्प० ६ अ०)

वाग्भट—दन्तगत कृमिशूल में अर्कक्षीर—कृमि के खाये हुए दाँत के खोंड़रों में सूखा हुआ सतिवन वा आक का दूध चूर्णकर भरदें और रोगीको थूक निगलने से रोकदें। इससे दन्तशूल नष्ट होता है। यथा—

"सप्तच्छदार्कक्षीराभ्यां पूरणं क्रिमिशूलजित्"।

(उ० २२ अ०)

वङ्गसेन—मुखकार्ष्ण्य में अर्कक्षीर—हल्दी के चूर्ण में मदार का दूध मिलाकर मुँह के काले धब्बों पर लेप करें। इससे चिरकाल के काले दाग भी निश्चय करके अच्छे होते हैं। यथा—

"अर्कक्षीर हरिद्राभ्यां मर्दयित्वाप्रलेपनात्।
मुखकार्ष्ण्यं समं याति चिरकालोद्भवंध्रुवम्"।

(क्षुद्र रोगाधिकार)

भावप्रकाश—कोढ़ में आक का दूध—दे० "कच्छूराक्षस तैल"। (कुष्ठ चि०)

बृहन्निघण्टुरत्नाकर—कर्णमूल में अर्कक्षीर-पोहकरमूल, दालचीनी, चीता, गुड़, दन्तीबीज, कुट और कसीस को आक के दूध में पीसकर लेप करने से कर्णमूल नष्ट होता है।

योगरत्नाकर—बवासीर में अर्कक्षीर—आक का दूध, थूहर का डंठल, गोखरू, कड़ुई तोरई के पत्ते, कंजे की गिरी इन सबको बकरे के मूत्र में पीसकर लेप करने से बवासीर के मस्सों का नाश होता है।

शेख़ुर्रईस--दन्तशूल में अर्कक्षीर—आक के दूध में रूई का फ़ाहा तर करके दर्द करनेवाले दाँत पर रखने से तत्काल लाभ होता है। आपने और भी लिखा है कि चमड़ा सिझानेवाले चमड़ा के बाल साफ़ करनेके लिए, वे उस पर मदारके दूध का प्रलेप करते हैं। इसके लेप से दाद, गंज और बवासीर इत्यादि में लाभ होता है। और यदि शहद के साथ इसका प्रलेप करें तो गंज मुखपाक एवं दाद आदि में लाभ होता है। मधुवारि (माउल् असल्) में थोड़ा इसे मिलाकर गण्डूष करने से बच्चों के मुखपाक में लाभ होता है। मु० अ०। म० अ०।

मीरअब्दुलहमीद--आक का दूध कोढ़, दाद, तर खुजली, फ़ोड़े-फुन्सी निकलना, प्लीहकाठिन्य, यकृद्रोग, जलोदर, अंत्रकृमि और कद्दूदाने में अत्यन्त लाभप्रद है। यदि अजवायन को इसके दूध में कतिपय बार भिगो, साया में सुखा सेवन कराएँ, तो इससे श्वासकृच्छ्रता और कफजकास में बहुत लाभ होता है। कहते हैं कि चने आदि वा अन्य किसी प्रकार के दाने को इसके दूध में बारम्बार भिगोकर साया में सुखालें। इसकी अल्प मात्रा से काफ़ी दस्त आते हैं और पूर्वोल्लिखित

रोगों में यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। यह पेट को जारी करता और आँखों को निर्बल करता है। हाथ पैर के जोड़ों पर सींक से इसके दूध का गोदा देने से वहाँ फफोले पड़ जाते हैं, जिससे लेसदार रतूबत स्रावित होने लगती है और वेदना शांत हो जाती है। इसलिए कोई कोई भारतीय इसे चीते वा भिलावें की स्याही की भाँति उपयोग में लाते हैं।

आक का दूध उसके दूसरे अवयव की अपेक्षा अधिक ज़हरीला होता है। यह क्षतकारक, दाहक और त्वक् आरुण्यताकारक तीव्र रेचन और कफ छाँटनेवाला है। अस्तु, गठिया की सूजन को कम करने, खाज, गंज और दाह को नष्ट करने के लिए इसका प्रलेप करते हैं। बवासीर के मस्सों पर लगाने से थोड़ी देरमें यह उन्हें गिरा देता है। कफ छाँटनेवाला होने से यह खाँसी और दमा (श्वास) के लिए उपयोगी है।

डाक्टर एन्सली--आपके अनुसार आक दो प्रकार का होता है। इन दोनों प्रकार के आक के पौधों की पत्ती और डाली में एक प्रकार का बहुत सा दूध की तरह रस होता है। इसे चतुरता पूर्वक सुखाने पर यह प्रबल रेचक एवं परिवर्तक है। तामिल वैद्य सफ़ेद कोढ़ में इसे गुणकारी मानते है। (मेटीरिया मेडिका आफ हिन्दुस्तान)

डाक्टर डीमक--डिमक के अनुसार छाल की अपेक्षा दूध वा रस को सुखाकर प्रयोजित करनेसे उत्तम प्रभाव होता है।

डाक्टर डंकन (Dr. Duncan) ने सन् १८२८ ई० में इसके वामक गुणों की ओर डाक्टरों का ध्यान आकृष्ट किया।

आर० एन चोपरा—इसके दुग्धमय रससे एक प्रकार का गटापार्चा तैयार हो सकता है; पर इसका उत्तम व्यापारिक उपयोग नहीं हो सकता। चमड़ा सिझाने और रँगाई के काम में भी इसका व्यवहार होता है। यह ताज़े चमड़े की दुर्गंधि को दूर करता है और उसे एक प्रकार का पीला रंग प्रदान करता है। डिमक के अनुसार चमड़ा सिझानेवाले खाल के बाल दूर करने में भी इसका उपयोग करते हैं। (इं० ड्र० इं०)

आर० एन० खोरी—(१) आक का दूध अतिविरेचक, उष्ण और क्षतोत्पादक (Caustic) है तथा क्रिमिभक्षित दंत एवं कर्णशूलमें थूहरके दूधके साथ इसका प्रयोग करने से पीड़ा शांत होती है। (२) आक के दूधका योनिमें प्रयोग करने से गर्भस्राव होता है। (३) यह वात, मलेरिया ज्वर एवं मृदु हेक्टिक ज्वरमें व्यवहृत होता है। (४) फिरंग रोग में आक के दूधका बहुत प्रयोग दिखाई देता है। इसीलिए इसको उद्भिज्ज पारद (Vegetable mercury) कहते हैं। (५) सेंहुड़का दूध और दारुहल्दी चूर्ण के साथ आकके दूधकी वर्त्ति प्रस्तुत कर, गुह्य भाग में प्रविष्ट कराने से, अत्यंत कुंथनयुक्त बारंबार मल त्याग की प्रवृत्ति निवृत होती है। (६) बिच्छू वा भिड़ आदि वा किसी दूसरे कीड़ेके काटने पर, दष्टस्थान पर मदार के दूधका लेप करने से डँसने से होनेवाली ज्वाला प्रशमित होती है। (७) लोमोत्पाटनके लिए चमड़े के व्यवसायी आकका दूध काममें लाते हैं। (८) स्त्रियाँ गुह्यांगों के बाल दूर करने के लिए इसका उपयोग करती हैं। (९) वेदना एवं सूजनयुक्त जोड़ों वा केरादद्रु में आक के दूधका प्रलेप विशेष उपकारी है। (१०) जब भगंदर वा नासूर (नाड़ीव्रण) का मुँह बंद हो जाता है, तब उसे खोलने के लिए मदार के दूध का, अन्य औषधियों के साथ व्यवहार करते हैं। (११) आक का दूध अधिक मात्रा में सेवन करने से अत्यंत वमन विरेचन होकर विषवत् अनिष्ट होता है। (*Materia Medica of India-R.N. Khory, part 2. , p. 396*)

(१) यदि तीन बूँद आकका दूध रूई पर डालकर और उस पर थोड़ा कुटा हुआ जवाखार बुरककर उसे बताशे में रख निगल जाएँ, तो तीन ही दिन के प्रयोग से बवासीर नष्ट हो जायगा।

(२) बारीक ख़ुशबूदार सफ़ेद चावल लेकर तीन बार अर्कक्षीर में भिगोएँ और सुखाएँ इसके बाद बहुत महीन पीसकर हुलास तैयार करें। यह नस्य शिरोशूल के लिए बहुत ही

उपयोगी है, विशेषतः उस शिरोशूल के लिए जो ज़ुकाम के बंद होने वा सरदी के कारण हो। इसके अतिरिक्त दंतशूल के लिए भी उपकारी है और बन्द ज़ुकाम को खोलता है। किसी किसी ने कर्णशूल, दाढ़ का दर्द, आँख की ललाई प्रभृति के लिए भी उपकारक लिखा है।

नस्य की विधि—जिस ओर पीड़ा हो उसके दूसरे नथनेमें आधी रत्ती दवाका नसवार लें। इस से अधिक हानिकारक है। यह नसवार ऐसे रोगी को देना चाहिए जो हृष्ट-पुष्ट एवं सत्वप्रधान प्रकृतिका हो। इस नस्य के उपरांत यदि मक्खन का नसवार भी दें, तो उसके दोषों का निराकरण हो जाता है। (इसरारुल् इतिब्बा। अल्मसीह, अगस्त सन् १९२२ ई०)

नोट—कोई कोई जंगली अरने की राख का अर्कक्षीर में तर व ख़ुश्ककर हुलास प्रस्तुत करते हैं।

(१) ऊँट की नाक का कीड़ा (शरदृतु में जब ऊँट को छींकें आती हैं, तब उसकी नाक से यह कीड़ा निकलता है) आवश्यकतानुसार लेकर सुखा लें। फिर उसे मदार के दूध में भिगोएँ और सुखाएँ। तदुपरांत बारीक पीसकर नस्य प्रस्तुत करें। यह हुलास अपस्मार रोग (सरअ़) के लिए लाभदायक है। (अल्मसीह अगस्त सन् १९२२ ई०)

(२) ऊँट की सूखी मैंगनी मिट्टी इत्यादि साफ़ करके किसी बरतन में जलाएँ। जब अंगारा हो जाए, अर्क दुग्ध में डाल दें। फिर सुखाकर बारीक पीस लें। इस प्रकार तैयार की हुई यह दवा १ तोला, लौंग २ मा०, बड़ी इलायची का दाना १ मा०, सफ़ेद मिर्च ५ दाना इनको बारीक करके रख दें और नस्यरूप से प्रयोग करें। यह नज़ला, ज़ुकाम और रतूबत दिमाग़ियः के लिए परीक्षित है। (सद्रियः)

(३) अनारकी छाल ४ तो० खूब महीन पीस कपड़छन कर अर्क दुग्ध में गूँध रोटी की तरह नरम आँच से पकालें। फिर इसे शुष्ककर बहुत बारीक पीसें और जटामांसी, छरीला हरएक ३ मा०, छोटी इलायची और कायफल प्रत्येक १॥ मा० मिलाकर नसवार बनाएँ। इसका नस्य लेने से १५ मिनट बाद सख़्त छींकें आती हैं। इससे नज़ला दिमाग़िया और रतूबत की ज़्यादती दूर जाती है तथा मूर्च्छित रोगी भी होश में आ जाता है। अनेकों बार का परीक्षित है। (इसरारुल् इतिब्बा)

(४) जब चार घड़ी दिन शेष रहे, अपस्मार रोगी के पाँव के तलवों पर मदार का दूध लगा कर, बारीक पिसी हुई कालीमिर्च अवचूर्णित कर दें। इसके उपरांत मदार का पत्ता पाँव के नीचे रख कर मोज़ा पहन लें और चालीस दिन तक निरन्तर इसी प्रकार करते रहें और पाँव न धोएँ। इससे मृगी (सरअ़) सर्वथा जाती रहती है। परीक्षित। (ब्याज)

(५) पुरानी रूई को तीन बार अर्कक्षीर में भिगोकर सुखालें। फिर तेल में तर करके सीपी में जलालें, जिसमें जलकर स्याह हो जाय, सफ़ेद न हो। इस प्रकार तैयार की हुई राख थोड़ी सी आँख में लगाने से एक दो बार में आँख की फूली नष्ट हो जाती है। (ब्याज़)

(६) गुग्गुल ५ माशे, हिना सुर्ख़, सनाय-मक्की हरएक २ मा०, कतीरा १ मा० इनको आक के दूध में खूब घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बनाएँ। एक गोली तक गरम पानी के साथ निगल जाँय। यह गृध्रसी, संधिवात (निक़्रिस) और गठिया (वज्उल मफ़ासिल) में बहुत गुणकारी है। (मख़्ज़नुल् अक्सीर)

(७) पुरानी ईंट का महीन चूर्ण १ तो० आक के दूध में तर करके सुखालें और ६ दाना लौंग मिलाकर बारीक करें। इसमें से थोड़ा सा नाक में प्रधमित करने से मोतियाबिंदु का तीन दिन में लाभ होता है। इसे अरुण प्रधमन (नफ़ूख़ अमहर) कहते हैं। (मनहज)

(८) सफ़ेद चावल, हरा तूतिया और कचूर प्रत्येक २ तो०, सोंठ १ तो० बारीक करके मदार के दूध में भिगोकर सुखा लें। फिर किसी कदर भूनकर पीस लें। इसे थोड़े बादाम के तेल वा बकरियों के दूध के साथ नाक में टपकाने से सिर का दर्द, आधासीसी, समलवायु, पुरातन नज़ला,

लक़्वा, पक्षाघात (फ़ालिज) और मोतियाबिंदु (नज़ूलुल् माऽ) अच्छा होता है । इसूगार सद्रिया में से है । (मिनह्)

(९) नारियल की समूची गिरी में छेदकर आक का दूध भर दें । फिर उस छेद को काटेहुये टुकड़े से बन्दकर उस पर आटे का लेप करें । जब वह सूख जाय, उसपर १ अंगुल मोटा मिट्टी का लेप करें । फिर दस सेर उपले जलाकर, जब लपट बर तरफ़ हो जाय, उसको गाड़ दें । तदुपरांत निकालकर जमे हुए आक के दूध को पृथक् रख दें ।

गुण - पुरातन श्वासकृच्छ्रता में ½ मा० से १ मा० तक शक्त्यनुसार खिलाकर ऊपर से जितना गाय का घी पी सके, पिलाएँ । क़ै होकर सम्पूर्ण दूषित मल निकलजायगा और सदैव के लिए लाभ होगा । (तिर्याक़)

(१०) उत्तम लोटाखार कुल्हिया में डालकर २० दिन तक हर रोज़ उस पर अर्कदुग्ध इतना डालें कि, तर हो जाय । फिर निकालकर सुखा लें और उसी कुल्हिया में कपड़मिट्टी करके उपलों की आग दें और निकालकर पीस लें । गुण—कफ की खाँसी और साँस की तंगी में एक रत्ती बताशे में खिलाएँ । परीक्षित । (सद्रियः) ।

(११) बड़ा घोंघा (हलज़ून कलाँ), अफ़ीम, हरा तूतिया, कालाबोल (सिब्र स्याह), सफ़ेद फिटकरी, शुद्ध कतरा हुआ कुचला, नौसादर, हुक्के की मैल इन आठ दवाओं को बराबर बराबर लेकर बारीक कर तीन बार मदार के दूध में छाँह में भिगो सुखा लें । फिर महीन करके शीशी में रक्खें ।

गुण—यह साँप के काटे का अगद है । इसे सर्पागद (तिर्याक़ुल् अफ़ई) कहते हैं । कैसा ही ज़हरीले साँप ने काटा हो, इसके प्रयोग से लाभ होता है । दष्टस्थान पर छेवा मारकर एक रत्ती दवा मल दें । इससे पूर्व सर्पचिकित्सा में वर्णित बंधन एवं सींगी आदि प्रयोग करें । यदि विष व्याप्त हो चुका हो, तो एक रत्ती इस दवा का पानी में घोलकर पिलाएँ । ज़हर क़ै द्वारा निस्सरित होगा । यदि रोगी बेहोश हो, तो इसे उसके कंठ के भीतर टपकाएँ और थोड़ा सा नाक में फूँक दें । इससे वह होश में आ जायगा । शरीर के जिस भाग पर लालिमा या नीलवर्णता मालूम हो, वहाँ छेवा देकर दवा मल दें, ज़हर आगे न बढ़ेगा । (मख़्ज़नुल् अक्सीर)

(१२) आध पाव आक का दूध लेकर इतना खरल करें कि सूख कर खरल में चिमट जाय । दूसरे दिन और आध पाव इसी प्रकार खरल करें । इस प्रकार आठ दिवस में एक सेर अर्कक्षीर खरल में शुष्क कर लें । फिर उसको छुरी से खुरच कर पृथक् करके दो भाग करलें । मिट्टी के एक बड़े प्याले में दोनों भाग एक तोला सुहागे के नीचे-ऊपर रखकर उस पर दूसरा प्याला, जिसके बीच में छोटा सा छेद हो, रखकर कपड़मिट्टी कर लें । दोनों ऊपरवाले प्याले औंधा रखना चाहिए । फिर उन प्यालों को चूल्हे पर रखकर नीचे चिराग़ की तरह एक लकड़ी की नरम आँच दें । दो पहर के बाद ऊपरवाला प्याला गरम होगा । उस पर पानी से तर करके चार तह कपड़ा रख दें और पूर्व की भाँति आग जलाएँ । चार पहर के बाद शीतल करलें । प्रातः प्यालों को खोलकर नीचे के प्याले का अवशिष्टांश पृथक् रक्खें । बीच के प्याले में पीले रंग की सलाखें लगी होंगी, उनको अलग रक्खें और ऊपरवाले प्याले में जौहर लगा होगा उसे भी भिन्न रक्खें ।

गुण—नीचे के प्यालेवाली चीज़ गठिया (वजउल् मफ़ासिल) के लिए एक रत्ती की मात्रा में दैनिक बताशे में रखकर खिलाएँ । बस तीन रोज सेवन कराना पर्याप्त है । शेष दो औषधियाँ बवासीर के लिए उपयोगी हैं । पहिले दो दिन तक बीच के प्यालेवाली दवा एक रत्ती की मात्रा में मक्खन में खिलाएँ । पथ्य में केवल मिस्री डाला हुआ दूध दें । दो दिन के उपरांत रात को रोगी के पेट में दर्द मालूम होगा । परंतु इससे भयभीत न हों । तीसरे दिन बहुत प्रातःकाल ऊपर के प्यालेवाला जौहर एक रत्ती की मात्रा में मक्खन में खिलाएँ । रोगी लेटा रहे ।

एक पहर के बाद काँच निकल कर मस्से गिर जायँगे। उसे स्वच्छ वस्त्र के साथ धीरे से पृथक् करलें। फिर एक तोला फिटकरी बारीक करके कपड़े पर रखकर काँच पर रक्खें और लंगोट बाँध लें। उसी वक़्त रोगी को मुर्ग़ी का शोरबा पिलाएँ और दो घंटे तक रोगी दोनों पाँव पर बैठा रहे। उपरांत नरम आहार दें। परीक्षित।

(मिफ़्ताहुल् ख़ज़ाइन)

(१३) आकके दूध में बराबर तिल का तेल मिलाकर छाजन पर मलने से लाभ होता है। शहद के साथ प्रलेप करने से छाजन के अतिरिक्त गंज और दाद के लिए गुणकारी है।

(१४) आक के दूध को जलाकर सरसों के तेल के साथ मालिश करने से तर व ख़ुश्क खाज में लाभ होता है।

(१५) रूई की बत्ती बनाकर मदार के दूध में तर और ख़ुश्क करें। फिर तिल तैल में जलाकर काजल लें। यह काजल आँखों में लगाने से सुलाक़ (बामनी) को दूर करके पलकों के बाल उगाता है।

(१६) मदार के दूध को बारह पहर तक गोघृत में खरल करें। इसमें से एक रत्ती शिश्न के ऊपरी भाग पर तिला करें। हस्तमैथुनी एवं कामावसाय के रोगी को लाभप्रद है।

(१७) साँप के दष्टस्थान पर आक का दूध उस समय तक टपकाते रहें; जब तक अभिशोषित होता रहे। जब दूध का अभिशोषण बन्द हो जाय, बस करें। ज़हर का तमाम असर दूर हो जायगा।

(१८) आक का दूध आँख में लगाने से आँख लाल हो जाती, सूज आती और उसमें खाज होती है। उपचार इसका मक्खन है। इसके दूध का दर्पघ्न शक्कर और तिल लिखा है।

(१९) आक का दूध आँख आने में उपयोगी है और वह इस प्रकार कि, यदि बाईं आँख आई हो और उसमें कड़क एवं पीड़ा होती हो, तो दाहिने पाँव के नाखून और यदि दाहिनी आँख आई हो तो बाएँ पैर के नाखून आक के दूध से भरें। परंतु ध्यान रक्खें कि, कहीं दूध आँख में न लग जाय। वरन् परिणाम उलटा होगा। (मुहीत आज़म)

(२०) एक तोला सम्मुलफ़ार (संखिया) को आक के पाँच तोले दूध में मिलाएँ और खूब खरल करें। पुनः धूप में रखकर तेल पृथक् कर लें। इसमें से थोड़ा लेकर शिश्न पर मलने और ऊपर से पान वा रेंड का पत्ता बाँधने से हस्तमैथुनी को कुछ फ़ायदा होता है। इस तिला से कभी फुंसियाँ निकल आती हैं और कभी फोला पड़ जाता है। जब ऐसी दशा हो तिला का सेवन बंदकर केवल मक्खन जलाकर लगाया करें।

नोट—प्रायः औषधों एवं धातुओं के भस्मीकरण में आक के दूध का व्यवहार होता है; परन्तु इसे निकालना आसान नहीं। कोमल प्रकृति के मनुष्यों की उँगलियों के सिरों पर क्षत होजाते हैं। फिर भी बहुत श्रम के उपरान्त बहुत कम दूध निकलता है। अस्तु, इसके निकालने की एक सरल विधि, जिसका उल्लेख "मफ़्ताहुल् ख़ज़ाइन" के पृष्ठ २६८ पर है, लिखी जाती है। आशा है पाठकवृन्द इससे लाभ उठायेंगे।
विधि यह है—

मदार का एक पुराना क्षुप जड़ सहित उखाड़ कर जड़ को मिट्टी इत्यादि से भली प्रकार साफ़ करलें। फिर उसकी जड़ से ऊपर का छिलका इस तरह छील डालें, जैसे मूली, गाजर इत्यादि का छिला जाता है। जड़ की छाल छुड़ाकर सम्पूर्ण क्षुप को किसी बर्तन में रख दें। सारे क्षुप का दूध जड़ की राह बर्तन में एकत्रित हो जायगा। इस विधि से बिना कष्ट के सेरों दूध प्राप्त होजाता है।

आक द्वारा धातु भस्मीकरण

कोई भी धातु उपधातु, रसोपरस वा रत्न उपरत्न ऐसा नहीं, आवश्यकतानुसार जिसका मदार के किसी अवयव विशेष द्वारा, विधि विशेष से, भस्म करने पर, भस्म प्रस्तुत न हो। अस्तु, वैद्यक एवं यूनानी—वैद्यक के भस्म-प्रकरण एवं रासायनिक प्रक्रियाओं में इसका प्रचुर प्रयोग दिखाई पड़ता है। कदाचित् इसी बात को लक्ष्य में रखकर ही शार्ङ्गधर संहिता में इस श्लोक का प्रादुर्भाव हुआ है—

"शिलागंधार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः ।
म्रियन्ते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा ॥"

(म० खं० ११ अ०)

नोट—आक के पंचांग द्वारा होनेवाली भस्मों की उत्तमोत्तम, सरल एवं शतशोऽनुभूत एवं शास्त्रीय विधियाँ पृथक् पृथक् धातुओं के प्रकरण में आएँगी । अस्तु, यहाँ नहीं दी गईं ।

मदार की शाखा वा टहनी

(१) मदार की लकड़ी का कोयला बराबर मिस्री के साथ बारीक पीस लें और ६ मा० प्रतिदिन सेवन करें । इससे शरीर में रुका हुआ कच्चा पारा पेशाब के रास्ते ख़ारिज होगा । लालमिर्च और खटाई से परहेज़ कराएँ ।

(२) शरीर के किसी भाग पर जब चोट वा आघात पहुँचने से एक प्रकार का भयावह सूजन, जिसे साधारण बोली में 'पलम दौड़ना' कहते हैं, हो जाय, तब इसकी पत्रशून्य शाखा कूटकर ऊपर का छिलका लगभग ४-५ तो० लेकर खूब रगड़ लें और टिकिया बनाकर कड़छे में २ तो० डालकर दोनों तरफ ज़रा ज़रा सुर्ख़ीमायल कर ईषदुष्ण व्रण के मुँह पर बाँध दें । परमात्मा की दया से शीघ्र सूजन एवं दर्द से आराम होगा । इसी प्रकार २-३ टिकियाँ बाँधना पर्याप्त है ।

फल तथा बीज

(१) गंधक, मस्तगी, हीराकसीस प्रत्येक ६ तो०, फिटकरी तथा शिंगरफ़ हर एक तीन तो०, इन पाँचों औषधियों को रोहू मछली के एक नग पित्ते में खरल करके सुखा लें । फिर दूसरे ज़ुहरा (पित्ता) के पानी के साथ यहाँ तक खरल करें कि सूख जाय । इसी प्रकार १०१ पित्तों का पानी अभिशोषित कराएँ । फिर मदार के बीज (जो उसकी रूई के बीच काले रंग का होता है) लेकर कोल्हू में पेरकर उसका तेल निकलवाएँ । पुनः पूर्व लिखित खरलीभूत औषधि को पक्के एक पाव तेल के साथ खरल करके एक दिल करलें । फिर मदार की रूई की कतिपय मोटी वर्तिकाएँ बनाकर उक्त औषधि मिले हुए तेल में आप्लुत करें और लोहे की छड़ पर लपेट कर किसी चीज़ से धूप में लटकाकर आग लगाएँ और नीचे चीनी का बरतन रक्खें, ताकि तेल उसमें गिरे । इस तैल को सुरक्षित रखें ।

गुण तथा प्रयोग—यह एक अक्सीरी तैल है जो स्वास्थ्य को स्थिर रखता है और बालों को काला करता है ।

सेवन विधि-इस प्रकार है—एक ख़स की मात्रा में उक्त तैल को पानी के लगन (?) में डालकर अच्छी तरह मिलाएँ और उस पानी से बाल धोएँ, स्याह हो जाँयगे । इसके बाद चमेली का तेल इत्यादि लगाएँ । दसवें दिन फिर प्रयोग करें । लगभग एक ख़स यह तेल रोटी के ग्रास में आवृत कर निगल जाँय और एक ख़स रोटी के कवल में रखकर रात के समय एक तरफ़ के दाँतों के बीच रक्खें, दूसरी रात में दूसरी तरफ़ । इसी प्रकार १० रात्रि तक अमल करें । इस अमल से बुड्ढा फिर नवजवान होजाता है, बाल सफ़ेद नहीं होते और गिरे हुए दाँत फिर पैदा हो जाते हैं । कामशक्ति को पूरी ताक़त मिलती है और मुखमंडल खिल पड़ता हैं ।

(मख़्ज़नुल् अक्सीर)

(२) मदार की रूई ३ मा० जलाकर, तिल का तेल १ तो०, एक तोला निथरे हुए चूने के पानी में मिला दें । इसे आग से जले हुए स्थान पर लगाएँ वा वस्त्र तर करके रखें । इससे बहुत शीघ्र आराम होगा । यदि ज़ख़्म में सोज़िश हो तो २ रत्ती अफ़ीम पानी में घोलकर मिला दें । केवल रूई जलाकर लगाना भी लाभदायक है ।

(३) जिस क्षत से ख़ून बह रहा हो, उस पर मदार की ताज़ी रूई रखकर बाँधे, तुरन्त ख़ून बहना बन्द होगा ।

(४) जो क्षत किसी प्रकार न भरता हो, उसे साफ़ करके उसमें मदार की रूई रखकर बाँध दें । इसी प्रकार रोज़ाना व्रण को स्वच्छ कर ताज़ी रूई बदलते रहें । थोड़े ही दिन में घाव भर जायगा ।

आक का पंचांग

शारह गाज़रूनी—मदार की छाल वा पंचांग (पत्ती, टहनी, छाल, फूल और फल) का क्वाथ

तैयार करके उसके बराबर ज़ैतून का तेल वा न मिलने की दशा में तिल का तेल मिलाकर जला लेना चाहिए। केवल तेल मात्र शेष रहने पर उतार लें। इस तेल की मालिश से फ़ालिज एवं आक्षेप में लाभ होता है।

हकीम मीर अब्दुल् हमीद—सफ़ेद मदार का पंचाङ्ग साया में सुखा कूट-पीसकर महीन चूर्ण बनाएँ। इसमें से २ मिस्क़ाल चूर्ण गाय के दूध के साथ खाने से शारीरिक निर्बलता, कफज कास, जीर्णज्वर और आध्मान में बहुत लाभ होता है। यदि इस चूर्ण को भँगरैए के रस में भिगोकर सुखा लें, तो इसके प्रभाव प्रबलतर होंगे। (मुहीत आज़म)

नोट—इसे $\frac{1}{2}$ मा० से १ मा० की मात्रा में प्रारम्भ करना और क्रमशः थोड़ा थोड़ा बढ़ाते रहना ठीक जँचता है। —लेखक

मदार के सर्वाङ्ग अर्थात् जड़, टहनी, पत्ती और फल इत्यादि को सुखाकर जलाएँ। इसकी राख को पानी में घोलकर तीन चार दिन तक स्थिर पड़ा रहने दें। फिर इसके ऊपर का निथरा हुआ पानी लेकर कडाही में यथाविधि पकाकर क्षार प्रस्तुत करें।

गुण तथा प्रयोग—सुरमे की तरह लगाने से यह प्रायः आँख के रोगों के लिए अक्सीरुल् बसर है। एक-दो रत्ती खाने से यह आहार पाचक एवं वायुनिस्सारक है। जिसे बिच्छू ने डंक मारा हो, उसे दो रत्ती यह नमक और पारा एक रत्ती हथेली पर मिलाकर थूक से हल कर डंककी जगह पर लगाएँ, वेदना प्रभृति शीघ्र प्रशमित होगी। यह एक जादू है, जिसे लोग देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। (सद्रियः)

नोट--विशेष गुणधर्म मदार-क्षारवत्।

— लेखक

उपर्युक्त विधि से तैयार किया हुआ मंदारक्षार ४ तो० एक मिट्टी के बरतन में डालकर उसमें १ तो० ताँबे का पत्र डालकर, बरतन का मुँह बन्दकर ऊपर से कपड़मिट्टीकर सुखालें। फिर इसे आँवें में एक बरतन के भीतर रखकर वा पृथक् उपलों की आग दें, शीतल होने पर निकालें। यह भस्म आसमानी एवं पारद-भक्षक होगी।

आक का टिड्डा (मलख़ मदार)

एक प्रकार का विचित्र रंग का बेपर का मनोहर कीड़ा जो ग्रीष्म ऋतु में प्रायः आक पर देखने में आता है। इसको एक शीशी में बन्द करके रखें, यहाँतक कि, वह खुश्क हो जाय। इसके उपरांत समान भाग कालीमिर्च के साथ कूट छानकर हुलास बनाएँ। आवश्यकता होने पर रोगी के नथुनों में थोड़ा फूँकें। यह नस्य मृगी के रोगी के लिए लाभदायक एवं परीक्षित है। (अल-मसीह अगस्त सन् १६२८ ई०)

वक्तव्य

चरक की कुष्ठ-चिकित्सा में केवल आक का अकेला नहीं, प्रत्युत द्रव्यांतर के साथ व्यवहार दिखाई देता है। जैसे—"वृषक त्रिवृदर्कनागरकं", "कुष्ठार्कतुत्थ", "कुष्ठार्कमूलसर्षप" और 'सप्तच्छदार्कमूलपल्लव।" चरक की श्वासचिकित्सा में केवल 'मुक्ताद्यचूर्ण' नामक औषध में आक का उल्लेख दिखाई पड़ता है। चरक में कुत्ते के विष की पृथक् चिकित्सा नहीं। चरक (चि० ७ अ०) में कनकक्षीर तैलमें आक की पत्ती और मूलत्वक् का प्रयोग हुआ है।

सुश्रुत के कल्पस्थान के छठे अध्याय में 'शृगालश्वतरक्ष्वृक्ष' से लेकर "स्वस्थस्त्रस्तो न सिध्यति" तक ग्रंथ में पागल सियार तथा कुत्ते आदि के लक्षण, उनके काटे हुए के लक्षण और जलत्रास आदि के अरिष्ट लक्षणों का बहुत उत्तम वर्णन आया है। इसके आगे उनकी चिकित्सा में अर्क का व्यवहार हुआ है। यथा—

"अर्कक्षीरयुतंचास्य दद्याच्छीर्षविरेचनम्।
पललंतिलतैलंच रूपिकाया, पयोगुड़ः"॥

(कल्प० ६ अ०)

चरकोक्त "मृतसंजीवनी" तथा "अमृतघृत" और "वृश्चिकविष चिकित्सा" में अन्य द्रव्यों के साथ अत्यन्त अप्रधान रूपसे अर्क का व्यवहार हुआ है। चरक की प्लीहोदर चिकित्सा में अर्कका प्रयोग नहीं दिखाई देता।

वाग्भटोक्त कुक्कुरविष चिकित्सा में सुश्रुत

लिखित अर्कक्षीर के प्रयोग की विधि उद्धृत की गई है (उ० ३८ अ०)। चरककी ग्रहणी-चिकित्सा की "क्षारगुड़िका" नामक औषध में, जिसे वाग्भट महोदय ने अपने ग्रंथ के ग्रहणी-चिकित्सा-अधिकार में अविकल उद्धृत की है, प्रचुर परिमाण में अर्क व्यवहृत हुआ है।

सुश्रुतोक्त प्लीहोदर एवं ग्रहणी-चिकित्सामें अर्क का प्रयोग नहीं हुआ है। चरकने भेदनीय, स्वेदोपग एवं वमनोपग वर्ग में अर्क का पाठ दिया है (सू० ३६ अ०)। स्वेदोपग, वमनोपग शब्द से अभिप्राय उन द्रव्यों से है, जो स्वेदन और वमन क्रिया में सहायक हों।

सुश्रुत ने ऊर्ध्वभागहरवर्ग अर्थात वामक द्रव्यों की तालिका में अर्क का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु अधोभागहर वर्ग अर्थात् विरेचक द्रव्यों की तालिका में अर्क का पाठ दिया है। "शेषाणां क्षीराणि" वाक्य में आक के क्षीर को ही विरेचक बतलाया है (सू० ३६ अ०)। वमनद्रव्य-विकल्पविज्ञानीयाध्याय में सुश्रुत ने "सदापुष्पी" पाठ दी है। इससे ज्ञात होता है, कि सुश्रुत ने भी अर्क को वमनोपग स्वीकार किया है।

प्राचीन तिब्बी ग्रंथोंके अनुशीलनसे ऐसा प्रतीत होता है; कि आक का क्षुप औषधरूपेण बहुत कम व्यवहृत हुआ है। हाँ! जंत्र-मंत्र, जादू टोने एवं अन्य क्रियायों में इसका प्रचुर प्रयोग दिखाई पड़ता है, जिसका विस्तृत वर्णन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। परन्तु अर्वाचीन तिब्बी ग्रंथों में इसके उत्तमोत्तम प्रयोग मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि, यह वैद्यों के संपर्क एवं मुस्लिम शासनकाल में अन्य विद्याओंके साथ-साथ तिब्बी चिकित्सा की उन्नति के फल स्वरूप हैं।

(२) ऊख का अँखुआ। इक्ष्वङ्कुर। [बं०] (१) आक। ईख। गन्ना। इक्षु। फा० इं० ३ भ०। (२) आल। आच्छुक। मेमो०।

आक का गोंद–संज्ञा पुं० [हिं० आक+का+गोंद] मन्दार शर्करा। शकर उ़शर। सक्करुल् उ़शर–(अ०)। Manna or Saccharine substance produced by calotropis procera.

आक की बुढ़िया–संज्ञा स्त्री० [हिं० आक+की+बुढ़िया] (१) मदारका घूआ। मदारकी रूई। (२) बहुत बूढ़ी स्त्री।

आकज–[फ़ा०] ज़ुअ्रूर।

आकड़–[देश०]
आकड़-चे-झाड–[मरा०]
आकड-नु-झाड–[गु०]
आकड़ो–संज्ञा पुं० [हिं० आक+ड़ा (प्रत्य०)]

आक। मदार। अर्क। (Calotropis Procera, *R. Br.*) स० फा० इं०। दे० "मदार"।

आंकड़ा–[बं०, द०, मरा०, गु०]
आकड़ो–[गु०]
आक। मदार। मन्दार। (Calotropis Procera, *R. Br.*) फा० इं० २ भ०।

आकनपाता–[बं०] आनन्दी–सं०। एक प्रसिद्ध वृक्ष है।

आकनादी-[बं०] (१) पाठा। अम्बष्ठा। पुरइन पाड़ी। (Cissampelos parreira)। वि० दे० "पाढ़ा"। (२) वनतिक्ता–सं०। (Stephania hernandifolia) फा० इं० १ भ०।

आकन्द-[बं०, बरब०] आक। मन्दार। अर्क। (Calotropis procera)

आकम्प, आकम्पन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] [वि० आकम्पित] काँपना। कँपकपी। थरथराहट। ईषत्कम्पन।

आकम्पित–वि० [सं० त्रि०] थोड़ा काँपा हुआ। हिला हुआ।

आकर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्पत्तिस्थान। उद्भवस्थान। मूल। सोर्स (Source)–अं०। (२) धातु एवं रत्नादि की उत्पत्ति का स्थान। खानि। खनी। खान। माइन (mine)–अं०। (३) भाण्डार। खज़ाना। अम०। (४) समूह। (५) समुद्र। सागर। (६) योनि।

वि० चतुर। होशियार। दक्ष। कुशल। व्युत्पन्न।

आकरकढ़ा, आकरकर–संज्ञा पुं० [अ० आक़रक़रहा] अकरकरा। करकरा। आकरकरभ। (Pyrethri Radix) दे० "अकरकरा"।

आकरकरभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
आकरकरम्–[ता०] } दे० "अकरकरा"।

आकरकरहा-संज्ञा पुं० [अ० आक़रक़र्हा] (Pyrethri Radix) अकरकरा इं० मे० मे०। दे० "अकरकरा"।

आकरकरा–[बं०]
आकरकरो–[गु०] } (Pyrethri Radix)
दे० "अकरकरा"।

आकरज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खान से उत्पन्न। रत्न। जवाहिर। वै० निघ०।

आक़रशमआ-[अ०] आज़रबू (उश्नान काष्ठ)।

आकरालक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मसूरिका। मसुरी। मसूर।

आकरोट–[बं०] अख़रोट।

आक़र्क़रः–[फ़ा०]
आक़र्क़र्हा-[अ०]
आक़र्क़र्हा हस्पानी–[फ़ा०] } (Pyrethri, Radix) अकरकरा।
आकरकरभ। दे० "अकरकरा"।

आकर्ण–वि० [सं० त्रि०] कान तक (फैला हुआ)। कर्णमूलावधि। कर्ण पर्यन्त।

आकर्ण-चक्षु–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान तक फैली हुई आँख। दीर्घनयन। बड़ी आँख। विशाल नेत्र।

आकर्णन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वि० आकर्णित] (१) कान। कर्ण। श्रवण। (२) श्रवण करना। सुनना।

आकर्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इन्द्रिय। मे० षत्रिक। (२) खिंचाव। आकर्षण। कशिश। एक जगह के पदार्थ का बल से दूसरी जगह जाना। (३) चुम्बक। (४) कसौटी। कष्टिप्रस्तर।

आकर्षक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का पत्थर। चुम्बक पत्थर। चूम्बुक पाथर (बं०)। मिक़्नातीस (अ०)। आहन रुबा (फ़ा०)। लोडस्टोन Load–stone, मैग्नेट Magnet (अं०)।

वि० [सं० त्रि०] आकर्षणकर्त्ता। वह जो दूसरे को अपनी ओर खींचे। खींचनेवाला।

आकर्षक संदंश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का चिमटा। र० सा०।

आकर्षकारिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कारी"।

आकर्षण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आकर्षित, आकृष्ट] (१) बल से खींचलाना। टानना। खिंचाव। टान। (२) अन्तरवहन। (३) किसी वस्तु का दूसरी वस्तु के पास उसकी शक्ति वा प्रेरणा से लाया जाना।

आकर्षणगोला–संज्ञा पुं० [सं० आकर्षण+हिं० गोला] आकर्षण मण्डल। प्राणीशास्त्र के अनुसार किसी सेल के जीवोज में की मींगी से भिन्न वह एक विन्दु जैसी चीज़, जिसके चारों ओर पहिए के आरों के समान रेखाएँ दिखाई देती हैं। आकर्षण मण्डल (Centrosome)

आकर्षणमण्डल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "आकर्षण गोला"।

आकर्षण-विन्दु–संज्ञा पुं [सं०] (Centriole)

आकर्षणी-नाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Adductor canal) अ० शा०।

आक़ल–[अ०] पहाड़ी बकरा। पार्वतीय छाग। (Hill-goat)।

आकत्तकर्र–[ते०] दे० "अकरकरा"। (Pyrethri Radix) स० फा० इं०।

आकल बनफ़सः–[अ०] (१) फ़र्फ़्यून। सेंहुँड़। थूहर। (Euphorbium)। (२) कपूर (Camphor)।

आकलाल–संज्ञा पुं० [हिं० आक+लाल] लाल मदार, लाल आक, आक (हिं०)। अर्क। रक्तार्क। अरुणार्क। अर्कपर्ण। विकीरण। रक्तपुष्प। शुक्लफल। स्फोट। विश्वीर। सदापुष्पी। रूपिका। आदित्यपुष्पिका। दिव्यपुष्पिका (सं०)। लाल आकंद गाछ (बं०)। नल्ल जिल्लेडु (ते०)। (Calotropis Gigantea. *R. Br.*)

शारिवा वर्ग

(*N. O. Asclepiadeae*)

नोट—आयुर्वेद में अर्क तथा साधारण बोल चाल की भाषा में आक वा मदार शब्द से प्रायः लाल मदार का ही अर्थ लिया जाता है, जिसका

पूर्ण विवरण 'आक' शब्द के अंतर्गत आ चुका है। अस्तु वहाँ देखें। यहाँ पर लाल आक के शास्त्रों में जो पृथक् गुणधर्म लिखे हैं, केवल उन्हीं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

गुणधर्म—दोनों प्रकार के आक रेचक, वायु के रोग, कोढ़, खाज, क्षय-रोग तथा व्रणनाशक हैं और प्लीहा के रोग, गुल्म, बवासीर, यकृत, श्लेष्मा, उदररोग और कृमि रोगों के नाशक हैं। मद० व० १। रा० नि० व० १०।

दोनों प्रकार के आक रेचक, वात, कोढ़, खाज, विष एवं व्रण नाशक हैं और प्लीहा, गुल्म, बवासीर, कफ, उदर रोग और मल के कृमि का नाश करते हैं। यह कड़ुआ, चरपरा, गरम, कफनाशक मेदनाशक, विषनाशक, वात, कोढ़ एवं व्रण नाशक हैं और सूजन, खाज और विसर्प को नाश करते हैं और इनका फूल मधुर कड़ुआ कफ नाशक तथा धारक है एवं कृमि, कोढ़, अर्श तथा विष का नाश करता है और रक्तपित्त, गुल्म तथा सूजन में उपकारक है। भा० पू० १ भ०।

आकली–संज्ञा स्त्री० [देश०] चटक पक्षी। गौरा। गौरैया।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] मादा गौरा। चटका। वै० निघ०।

आकलीच–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाकुची। बावची। (Conyza or Serratula anthelmintica)

आकलु-हालु–[कना०] गोदुग्ध। गाय का दूध। (Cow's milk) स० फा० इं०।

आकल्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राग। बीमारी। (Disease) हे० च०।

आकल्पक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तम। अंधकार। (२) मोह। (३) ग्रंथि। गाँठ। (४) उत्कलिका। उत्कण्ठा। मे० कचतुष्क। (५) मूर्च्छा। गश। (६) रोग।

आकल्ल आकल्लक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "अकरकरा"। (Pyrethri Radix)

आकल्लकादि क्वाथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में एक क्वाथौषध। योग इस प्रकार है—

अकरकरा, गोखरू, जटामांसी, तुलसी, शिलाजीत, एरण्डमूल, पीपल, मुलहठी, तक्राह्वा (एक पौधा), निर्गुण्डी, लौंग, सोंठ, इनके क्वाथ में इलायची के चूर्ण का प्रक्षेप डालकर नियमपूर्वक ७ दिन तक पीने से अत्यन्त पीड़ा युक्त अश्मरी और शर्करा (पथरी) रोग का नाश होता है। वृ० नि० र० अश्मरी चि०।

आकष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निकष प्रस्तर। स्वर्णादि कसने का पत्थर। कसौटी। श० र०।

आंकस गड्डुह–[द०] राकसगड्डा। पाताल गरुड़ी। छिरहटा। (Bryonia epigaea, *Rott.*) स० फा० इं०।

आकस गड्डा–[द०] राकसगड्डा। पताल गरुड़ी। छिरहटा। (Bryonia epigaea, *Rott.*) स० फा० इं०।

आक सफ़ेद–संज्ञा पुं० [हिं० आक+फ़ा० सफ़ेद] सफ़ेद मदार, सफ़ेद आक (हिं०)। श्वेतार्क। शुक्लार्क। अलर्क। गणधूप। मन्दार। वसुक। श्वेतपुष्प। सदापुष्प। बालार्क। प्रताप। सुपुष्प। वृत्तमल्लिका। तपन। शीतार्कक। शर्करापुष्प। श्वेत। काष्ठील। गणरूपक। वेधा। शम्भु। सितार्कक। शङ्करादि। अत्यर्क। (सं०)। गुरतार्कंद। श्वेत आकन्द गाछ (बं०)। तेल्ल जिल्लेडु (ते०)। पाँढ़री रूई (मरा०)। बिलिय अच्छे (करना०)। धोल आकडो (गु०)।

शारिवा वर्ग

(*N. O. Asclepiadeae.*)

नोट—लाल आक से सफ़ेद आक में सिवाय इसके कोई विशेष अन्तर नहीं, कि इसका फूल सफ़ेद होता है और लाल आक से कम प्राप्य है। कीमियागर इसकी विशेष तलाश में रहते हैं। डॉक्टर बी० डी० बसु महोदय ने स्वरचित 'इंडियन मेडिसिनल प्लाँट्स' नामक ग्रन्थ में Calotropis Procera, *R. Br.* के अन्तर्गत इसका पृथक् वर्णन किया है। इसका पूर्ण विवरण "आक" शब्द के अन्तर्गत दिया जा चुका है। यहाँ पर केवल आयुर्वेदोक्त एवं कतिपय अन्यमतानुसार गुणधर्म एवं प्रयोग दिए जाते हैं। 'राजार्क' एवं श्वेत मन्दारक के लिए

जो सफ़ेद आक के केवल भेद मात्र हैं और जिनका निश्चयात्मक विवरण 'आक' शब्द में दिया गया है, उन शब्दों के अन्तर्गत देखें।

गुणधर्म—श्वेतार्क चरपरा, कड़ुआ, गरम तथा मलशोधनकर्ता है और मूत्रकृच्छ्र, रक्त-विकार, सूजन, अर्ति एवं व्रणदोष विनाशक है। रा० नि० व० १०।

दस्तावर, वायु, कोढ़, खाज, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, बवासीर, कफ और उदर के कृमियों का नाश करता है। इसका फल शुक्रजनक, हलका, दीपन तथा पाचक है और अरोचक, प्रसेक, अर्श, कास और श्वास का नाश करता है। भा० पू० १ भ०।

हकीम मीर अब्दुल हमीद—लिखते हैं कि सफ़ेद फूलवाले आक का समग्र क्षुप (पचांग) लेकर छाया में सुखालें। फिर उसे कूट पीसकर दो मिसक़ाल की मात्रा में गोदुग्ध के साथ खाने से शारीरिक दौर्बल्य, कफजन्य कास और जीर्ण-ज्वर का नाश होता है और यह आध्मानहर है। यदि इस चूर्ण को भाँगरे के रस में भिगोकर सुखालें तो इसके प्रभाव प्रबलतर होंगे।

नोट—इसकी मात्रा आजकल के अनुसार अधिक जान पड़ती है। यदि इसको आधा मा० से १ मा० तक की मात्रा से प्रारम्भकर धीरे-धीरे बढ़ाएँ तो उत्तम हो।

कर्नल बी० डी० बसु महोदय के अनुसार गुणधर्म में सर्वथा यह आक के समान होता है। इसका दूध त्वचा पर फोटके डालने के लिए काम में आता है। (इं० मे० प्लां)

इसकी ताज़ी जड़ दंत-मंजन रूप से काम में आती है और पठान लोग इसे दन्तशूलनाशक मानते हैं। (वैट)

ऐसा विश्वास किया जाता है कि, इसका फूल स्वच्छताकारक (Detergent) है। (सखाराम अर्जुन)

पंजाब में इसका ताज़ा दूध बालहत्या के लिए काम में लाया जाता है। एक ड्राम इसका ताज़ा दूध १५ मिनट में बच्चे की हत्या कर सकता है। यद्यपि इसका प्रभाव अपेक्षाकृत मन्दतर; पर हाइड्रोस्यानिक एसिड के समान होता है और मुँह में फेन आने से प्रारम्भ होता है। (डा० ऐचिशन)

फूल विसूचिका में व्यवहृत होते हैं। (डा० थॉमसन)

इसकी जड़ बकरी के ख़ून तथा गाय के मक्खन में मिलाकर आँखमें लगाने से दृष्टि बढ़ती है और जो बात अनुभव में आई है, वह यह है कि इसकी पत्ती सूजन को विलीन करनेवाली है, दूध क्षतकारक है और फोड़े-फुन्सियों को बिठाने एवं विदारण करने में उपयोगी है। और यदि आँख में पड़ जाय तो खाज एवं क्षत पैदा कर देता है। (तालीफ़ शरीफ़ी)

आकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] [वि० आकांक्षक, आकांक्षी, आकांक्षित] (१) इच्छा। चाह। अभिलाषा। वांछा। (२) अपेक्षा। (३) अनुसंधान।

आकार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आकृति। मूर्ति। रूप। चेहरा। सूरत (२) डील डौल। कद। (३) बनावट। संघटन। (४) चिह्न। निशान। दाग़। (५) चेष्टा।

आकारकरभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अकरारम्भक। अकरकरा। (Pyrethri Radix.) भा० म० १ भ० ज्वरघ्नी वटी। शार्ङ्ग०। वि० दे० ‘अकरकरा।”

आकारकरभा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अकारारम्भक। अकरकरा। भा० म० १ भ० ज्वरघ्नी वटी। शार्ङ्ग०। वि० दे० “अकरकरा”

आकारकेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अर्वाचीन छेदनशास्त्र में मस्तिष्क का एक केन्द्र। यह संवेदन क्षेत्र के पीछे ऊपर के किनारे के पास होता है। रूपकेन्द्र। (Form centre)

आकारगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भय हर्ष आदि से उत्पन्न अंग-विकार को छिपाना। सूरत छिपाना।

आकार गोपन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मनोविकार सूचक चिह्नों को छिपाना। आकारगुप्ति।

आकाल—क्रि० वि० [सं० अव्य०] समय तक।

आकाल मृत्यु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० “अकाल मृत्यु।”

आकालिक-वि० [सं० त्रि०] जो बे वक्त पैदा हो। असमयजात। अकालसम्भव। असामयिक। असमय में उत्पन्न। (Untimely.)।

आकाश-संज्ञा पु० [सं० पुं०, क्ली०] (१) अभ्रक। अबरख। अभ्रधातु। रा० नि० व० १३।

गुण—ये पित्तकारक, मृदुता तथा लघुताकारक होते हैं। च० सू० २६ अ०।

(२) शून्य। पाँच तत्वों में से एक तत्व विशेष। संस्कृ। पर्याय—द्यो द्यो, अभ्र, व्योम, पुष्कर, अम्बर, नभ, अनन्त, सुरवर्त्म, अन्तरीक्ष, अन्तरिक्ष, गगन, खं, वियत्, विष्णुपद, विहाय, नाक, अनंग, नभस, मेघवेश्म, महाविल (ज), मरुद्वर्त्मन्, मेघवर्त्म, त्रिपिष्ट (शब्द र०), शून्य, द्यु, तारापथ, मेघाध्वा, कुनाभि, अक्षर, त्रिविष्टप। आकाश-(बं०)। ईथर Ether (अं०)। सदीम-अ०।

टिप्पणी—साधारण बोलचालमें हम लोग केवल ऊपरके शून्य स्थान को ही आकाश कहते हैं। इसका अपभ्रंश "आकास" शब्द भी प्रचलित है। वैशेषिककार ने आकाश को द्रव्यों में माना है। न्याय में भी आकाश को पंचभूतोंमें माना है और उससे श्रोत्रेंद्रिय की उत्पत्ति मानी है। उनके अनुसार यह नित्य, असीम एवं अशरीरी होता है। शब्द इसका विशेष गुण है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व संयोग एवं विभाग-ये पाँच आकाश के सामान्य गुण हैं। कर्ण इसका इंद्रिय है। सांख्यकार ने भी आकाश को प्रकृति का एक विकार और शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न माना है और उसका गुण शब्द कहा है। वेदान्त के मत से आकाश जन्य पदार्थ है। गणितशास्त्र में आकाश शब्द से शून्य समझा जाता है। तैत्तिरीय उपनिषत् के मत से परब्रह्म से पहिले आकाश उत्पन्न हुआ था। फिर आकाश से वायु की उत्पत्ति हुई। बाइबिल में भी लिखा है, कि ईश्वर ने पहले आकाश बनाया था। आकाश का कर्म स्थान देना है अर्थात् आकाश के अभाव में कुछ भी नहीं रह सकता। वि० दे० "तत्व"।

आकाश-करुडन-[ता०] पाताल गरुड़ी। महामूल। कदम्ब। राकस गड्डु। गरजफल (द०)। (Bryonia Epigaea, *Rott.*). इं० मे० मे०।

आकाशग, आकाश-गामी-वि० [सं० त्रि०] जो आकाश में चले। आकाशचारी। नभचर।

आकाश-गड्डुह्-संज्ञा पुं० [सं० ?] राकस गड्डुह। महामूल। छिरिहटा। पातालगरुड़ी। (Bryonia Epigaea.)

आकाश-गरुड-गड्डुलु-[ते०]
आकाश-गरुड-गड्डुले-[कना०]
आकाश-गरुडन-[ता०]
आकाश-गरुड-वल्ली-[कना०]
पाताल गरुड़ी। महामूल। आकाश गड्डुह। राकस-गड्डुह्। गरजफल-द०। (Bryonia Epigaea, *Rott.*)।

आकाश-चारी-वि० [सं० आकाशचारिन्] [स्त्री० आकाशचारिणी] आकाश में विचरनेवाला। आकाशगामी। नभचर।

आकाशज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ओषजन। ऊष्मजन। (Oxygen) अ० शा०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वायु। (२) पक्षी। चिड़िया।

आकाशजल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मेंह का पानी। वृष्टिजल। वह जल जो ऊपर से बरसे यह शुद्ध होता है। (२) तुषार। ओस।

नोट—मघा नक्षत्र में जो पानी पड़ता है उसे पात्र में भरकर रख छोड़ते हैं और औषध के काम में लाते हैं।

आकाश-निद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खुले हुए मैदान में सोना। खुली जगह की नींद। प्रशस्त स्थान का शयन।

आकाश-नीम-संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० आकाश+हिं० नीम] एक प्रकार की बेल जो नीम के वृक्ष पर होती है। नीम का बाँदा। (A kind of Epidendron.) A kind of plant growing on the Neem trees.

आकाश-पटल संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अभ्र धातु। अभ्रक। Talc (Mica); वै० निघ०।

आकाश-पवन-संज्ञा पुं० [सं० आकाश+पवन]
आकाश-बेल-संज्ञा पुं० [सं० आकाश+बेल]
अकाशबेल। अमरबेल। अमरलता। बँवर। Air-

ptant or Dodder (Cuscuta Reflexa.)

आकाश-मण्डल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नभमण्डल । खगोल । गगनमण्डल ।

आकाश मांसी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बालछड़ । सूक्ष्म जटा-मांसी । (Small variety of Jatamansí, produced in Kedár-mountains.) आकाश-जटामांसी–बं० । संस्कृत-पर्याय-निरालम्भा । खसम्भवा । सूक्ष्मपत्री । गौरी । पर्व्वत-वासिनी । अभ्रमांसी ।

उत्पत्ति-स्थान—केदार भूमि ।

गुण—शीतल, सूजनको बिठानेवाली (शोफ़-नाशक), व्रण-नाड़ीनाशक तथा लूता विष (मकड़ी का ज़हर), गर्द्दभ तथा जाल आदि रोग नाश करनेवाली है और शरीर के रंग को उज्ज्वल करती है । रा० नि० व० १२ । प० मु० । दे० "जटामांसी" ।

आकाश-मूली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pistia Stratiotes.) जलकुंभी । पाना । हारा० ।

आकाश ललित–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "आकाशजल" ।

आकाश-वल्लरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
आकाश-वल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
आकाश-वल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
आकाश-वेल–संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+हिं० वेल]

अकाशबेल । आकाश-बेल । अमरबेल । बँबर । आकाश वेलि । नलमुद वेलि (पश्चिम) ।

संस्कृत-पर्याय—खवल्ली । दुःस्पर्शा । व्योमवल्लिका । अमर-वल्लरी ।

गुण—ग्राही, तिक्त, पिच्छिल, नेत्ररोग नाशक, अग्निवर्द्धक, हृद्य तथा पित्त और कफ नाशक है । भा० पू० १ भ० । मद० व० १ । मधुर, कटु, पित्त-नाशक, वीर्य-वर्द्धक, रसायन तथा बलबर्द्धक है । रा० नि० व० ३ ।

आकाशी, आकाशीय–वि० [सं० त्रि०] व्योम सम्बन्धी । आसमानी । आकाशस्थ । आकाशका ।

आकाश-सलिल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आन्तरीक्षजल । वर्षोदक । वर्षाजल । बरसात का पानी । वृष्टिर जल–बं० । आबेबाँरा-फ़ा० । मेंह का पानी-उ० । रेन वाटर (Rain-water)–अं० । पावसाचेपाणी-मरा० ।

गुण—मधुर, रुचिकारक, दीपन, पथ्य, तृषानाशक, श्रमनाशक और प्रमेह शामक है । बरसात का वह पानी जो भूमि पर पड़कर गदला होजाता है, दोषकारक होता है और देर का ठहरा हुआ स्वच्छ, हलका, स्वादु, पथ्य और सुखकारक होता है । रा० नि० व० १४ ।

आकाशस्फटिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का बिल्लौरी पत्थर जो आकाश में उत्पन्न और सूर्यकांत तथा चन्द्रकान्त भेद से दो प्रकार का माना जाता है ।

आकाशीय-द्रव्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जो द्रव्य मृदु, लघु, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण और शब्द गुण प्रधान हैं, उन्हें "आकाशीय द्रव्य" कहते हैं ।

आकाशी-वर्ण–संज्ञा पुं० [हिं० आकाशी+सं० वर्ण] नील वर्ण । बैंगनी । करौंदिया रंग ।

आकाहुली–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रसिद्ध बूटी जो अर्श में उपयोगी है ।

पहिचान - ललाई लिए हरी । स्वाद–कडुआ । प्रकृति—१ कक्षा में गरम-ख़ुश्क । हानिकारक—पुट्ठों और जोड़ों को । दर्पनाशक—शहद और अदरक । प्रतिनिधि—ख़ुर्फ़ा का साग । विशेष गुण—शुक्रमेहघ्न । मात्रा (शर्बत)—साधारण ६ मा० वा १ तो० । पूर्णवयस्क–१ तो० से २ तो० । गुण, कर्म, प्रयोग—उदरस्थ क्रिमि, कफ तथा पित्त के विकार और प्रमेह को दूर करती है । एक दाम (७ मा०) की मात्रा में ७ नग कालीमिर्च के साथ आध पाव पानी में पीस छानकर पीने से ख़ूनी बवासीर अच्छा होता है । (मुहीत आज़म । तालीफ़ शरीफ़ी)

यह सूजन को उतारती, मतली तथा पैत्तिक दस्तों को लाभ पहुँचाती है । (बुस्तानुल् मुफ़रिदात)

आक़िर, अक़ीम–संज्ञा उभ० लिंग [अ०] [बहु० उक़्र] बन्ध्या स्त्री-पुरुष । वह स्त्री या पुरुष जिससे सन्तान उत्पन्न न हो । बाँझ । बैरेन (Barren.), स्टेराइल (Sterile)–अं० ।

नोट—आक़िर और अक़ीम ये दोनों शब्द स्त्री-लिंग वा पुल्लिंग दोनों में समान हैं, अर्थात् इनमें लिंग भेद नहीं।

आक़िल–वि० [अ०] (१) बुद्धिमान् । समझदार । इण्टेलिजेण्ट (Intelligent.)–अं० । (२) संकोचक-औषध । ग्राही वा धारक औषधी । क़ाबिज़ दवा । ऐस्ट्रिञ्जेण्ट (Astringent.) –अं० ।

आकिल–वि० [अ०] भक्षक । खानेवाला । आशी । ईटर (Eater.), वोरस (Vorous.) –अं० ।

आकिलः–[अ०] भक्षक । मांसभक्षक । मांस को गलाने वा खानेवाला क्षत । क्षयकारी । वह क्षत (घाव) जो किसी अवयव को खाता और गलाता चला जाय । ख़ारः, गोश्तख़ोरः–फ़ा० । कैङ्क्रम (Cancrum.), फैजीडीना (Phagedena.)-ले० ।

आकिलतुल्फ़म्-[अ०] मुखस्थ मांस-भक्षक । सतांने जोफ़ दहन । गोश्तख़ोरहे दहन । बादख़ोरहे दहन-फ़ा० । कैङ्क्रम ऑरस (Cancrum-oris.), गैङ्ग्रीनस स्टामेटाइटिस (Gangrenous Stomatitis.)–ले० ।

आकिलतुल्-फ़र्ज-[अ०] स्त्री-गुह्येन्द्रीय-मांसभक्षक । एक प्रकार का स्त्री-गुह्येन्द्रिय सम्बन्धी रोग । गोश्त-ख़ोरः–फ़र्ज । अन्दाम निहानी का गोश्त ख़ोरा–उ० । छोटी निर्बल कन्याओं में "आकिलतुल्-फ़म्" की तरह से गुह्येन्द्रिय में एक सड़ाँध युक्त व्रण होजाता है, जिससे तत्स्थानीय अवयव गलकर मुर्दार पड़ जाता है । नॉमा-प्युडेण्डाई (Noma-Pudendi.), नॉमा वल्वाई (Noma-Vulvi.)–ले० ।

आकिलुल्-अश्शाब–[अ०] शाकाहारी-पशु । शाकभाजी खानेवाले प्राणी, जैसे–गाय, बकरी इत्यादि । हर्बिवोरस (Herbivorous.)–अं० ।

आकिलुल्लहूम-[अ] मांसाहारी-पशु । मांसभक्षक । मांसाशी । कार्निवोरस (Carnivorous.) –अं० ।

आकिलुल्-हबूब–[अ०] अन्नाहारी । अन्न खानेवाले । ग्रेनिवोरस (Granivorous.)–अं० ।

आकिलुल्-हश्रात–[अ०] कृमि भक्षक । कीड़ाख़ोर । कीड़ा-मकोड़ा खानेवाले । एण्टोमोफ़ैगस (Entomophagus.)-अं० ।

आकिलुल्-हैवानात-[अ०] प्राणी-भक्षक । जीवाशी । जानवरों को खानेवाले । ज़ूफ़ैगस (Zoophagus.)-अं० ।

आकिलुल्साइरिल माकूलात–[अ०] सर्वभक्षी । सर्वाहारी । सर्व भोगी । समस्त प्रकार की वस्तुएँ, जैसे–प्राणी और वनस्पति आदि को आहार करनेवाला । जैसे-मनुष्य ऑम्निवोरस (Omnivorous.)-अं० ।

आकीर्ण–वि० [सं० त्रि०] व्याप्त । पूर्ण । भरा हुआ । फैला हुआ । विक्षिप्त ।

आकु-[ते०] [बहु० आकुलु] पत्र । पत्ती । पात ।

आकुजेमुडु-[ते०] सेहुँड़ । वज्र । (Euphorbia nerifolia.) स० फा० इं० ।

आकुञ्चन–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] [वि० आकुंचनीय, आकुंचित] (१) संकोच । संकोचन । सिकुड़न । बटुरना । सिमटना । इन्क़िबाज़ । (२) हृदयके कोष्ठो का सिकुड़ना । इन्क़िबाज़ुल क़ल्ब –अ० । कॉण्ट्रैक्शन (Contraction.), सिस्टोल (Systole)–अं० । सु० सू० २५ अ० । (३) वक्रता । टेढ़ापन । वैरूप्य ।

आकुञ्चन-रक्तभार–संज्ञा पुं० [सं०] धमनी का वह रक्तभार जो हृदय के संकोच के समय होता है । सङ्कोच-रक्तभार । (Systolic blood pressure)

आकुञ्चित–वि० [सं० त्रि०] (१) तिरछा । टेढ़ा । बाँका । वक्र । कॉण्ट्रेक्टेड (Contracted.)-अं० । (२) सिकुड़ा हुआ । सिमटा हुआ ।

आकुण्ठन–सं० पुं० [सं० क्लीं०] [वि० आकुण्ठित] कुन्द हो जाने की क्रिया वा भाव । गुठला होना । कुन्द होना ।

आकुण्ठित–वि० [सं० त्रि०] (१) गुठला । कुन्द । (२) स्तब्ध । जड़ ।

आकुल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का घोड़ा (A sort of horse.) । (२) खच्चर । अश्वतर ।

वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा आकुलता, आकुलत्व] (१) व्याकुल। कातर। उद्विग्न। आर्त्त। क्षुब्ध। व्यग्र। व्यस्त। घबराया हुआ। (Perplexed, agitated)। (२) विह्वल। कातर। अस्वस्थ।

--[मरा०] अङ्कोल। ढेरा। (Alangium decapetalum.)

आक़ुल-[अ०] जवासा। यवास। (Alhagi-maurorum.)

आकुलकृत्-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pyrethri Radix.) अकरकरा। उ०-"किरात तिक्ता-कुलकृत् कुलिञ्ज"। भा० म० १ भ० जिम्भक ज्व० चि०।

आकुला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तप्त अपक्व गोधूमादि। जैसे—

"तप्तैरपक्व गोधूमैराकुला परिकीर्त्तिता।"

गुण—यह भारी, वृष्य, मधुर तथा बल-वर्द्धक है। रा० नि० व० २६।

आकुलु-[ते० बहु०] पत्तियाँ। पत्राणि-सं०। (Leaves.)।

आक़ुशिरुव-[बरब०] एक प्रकार की बूटी जिसके पत्ते नख की तरह सफ़ेद होते हैं और फल टहनियों के सिरे पर पीले रंग के लगते हैं।

आकुस़ार-[बरब०] एक प्रकार की बूटी जो एक गज के लगभग ऊँची होती है और इसकी चोटी पर सोए की तरह छतरी होती है। बीज सूक्ष्म तथा स्वाद में चरपरे होते हैं।

उत्पत्ति-स्थान—यह बूटी अधिकतर शाम तथा स्पेन में उत्पन्न होती है।

आकूतेगी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बेलपत्री।

आक़ूना-[अ०] (१). शिश्न की धड़कन। पुरुष जननेन्द्रिय की फड़कन जो उसके प्रहर्षण काल में होती है। प्रहृष्ट शिश्नस्थ स्पन्दन। (२) स्त्री के गर्भाशय की ग्रीवा की धड़कन। (३) तम्हुद अवइ़यः मनी अर्थात् शुक्राशय का आकुञ्चन जो उष्ण शोथ वा प्रहर्षण के कारण होता है।

आक़ूरा-[अ०] अफीम। (Opium.)

आक़ूल-[अ०] (१) ग्राही (संकोचक) औषध। अधिक क़ब्ज़ करनेवाली दवा। धारक औषध। (२) ऊँटकटारा। उष्ट्रकंटक।

आक़ूला-[अ०] एक प्रकार का आहार। काची-फ़ा०।

आकृति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रूप। मूर्ति। आकार। डौल। (२) शरीर। (३) लक्षण। मे० तत्रिक। (४) अवयव। बनावट। गढ़न। ढाँचा। विभाग।

आकृतिच्छत्रा आकृतिच्छत्री-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक जलीय ओषधि। जलकुम्भी। कुंभिका। (२) कोषातकी लता। तरोई। तोरई। र० मा०।

आकृष्ट-वि० [सं० त्रि०] खींचा हुआ। आकर्षित। कृताकर्षण। टाना हुआ। (Attracted.)

आकोन्दो-[बं०] मदार। आक। (Calotropis procera.)

आंकोलशी-[बं०] केवाँच। कौंच। (Mucuna-pruriens.)

आकुंठन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आकुंठित] (१) कुंद होना। गुठला होना।

आकुंठित-वि० [सं० त्रि०] (१) गुठला। कुंद। स्तब्ध। जड़।

आक्रन्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) क्रन्दन। रोदन। रोना। (२) घोर युद्ध। भयङ्कर युद्ध घोर संग्राम। कड़ी लड़ाई। (३) पुकार। बुलाना। आह्वान। (४) ध्वनि। शब्द। (५) चिल्लाना। चीख़ना।

आक्रन्दन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रोना। (२) चिल्लाना।

आक्रम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चढ़ाई। नाँघना। बलात्कार। क्रान्ति। (२) पराक्रम। शूरता।-डिं०।

आक्रमण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) [वि० आक्रमणीय, आक्रमित, आक्रान्त] (१) बल-पूर्वक सीमाका उल्लंघन करना। हमला। चढ़ाई। धावा। (२) आघात पहुँचाने के लिए किसी पर झपटना। (३) घेरना। (४) आक्षेप करना। निंदा करना। (५) अन्न। अनाज।

आक्रान्त-वि० [सं० त्रि०] (१) ग्रस्त। बलवान के द्वारा गृहीत। घिरा हुआ। आवृत। छिका

हुआ। (२) व्याप्त। आकीर्ण। (३) वशीभूत। पराजित। विवश। (४) जिस पर आक्रमण किया हो। जिस पर हमला हुआ हो।

आक्रीड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गाँव के बाहर का बगीचा। बाग़। उद्यानादि।

"पुमानाक्रीड़ उद्यानं राज्ञः साधारणं वनम् ।"

अम०।

आक्रुष्ट–वि० [सं० त्रि०] शापित। कोसा हुआ। शप्त।

आक्रोश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आक्रुष्ट, आक्रोषित] (१) गाली। अपवाद। च० इं० १२ अ०। (२) शाप। बद दुआ। शापित।

आक्रोशन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आक्रोशनीय, आक्रोशित, आक्रोश्य] शाप देना। बददुआ देना। दे० "आक्रोश"।

आक्रोशित–वि० [सं० त्रि०] दे० "आक्रुष्ट"।

आक्रोष, आक्रोषन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली] अभिषङ्ग। शाप देना। कोसना (Malediction.)। दे० "आक्रोश"।

आक्लान्त–वि० [सं० त्रि०]। (१) श्रान्त। अवसन्न। खिन्न। थका हुआ। श्रमित। (२) सना हुआ। पोता हुआ।

आक्लिन्न–वि० [सं० त्रि०] (१) आर्द्र। ओदा। तर। (२) नरम। कोमल।

आक्लेद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आर्द्रीभाव। तरी।

अक्लेदिभाव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आर्द्रताकारक गुण का हेतु। आर्द्रताजनक। क्लेदकारक। क्लिन्नताजनक। च० द० विदग्धाजीर्ण–चि०।

आक्सन बूटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० आकसन=असगंध +बूटी] असगन्ध देशी।

आक्स-बाइल–संज्ञा पुं० [अं० Ox bile] (Felbovinum.) वृषभ पित्त। बैल का पित्त। ज़ुहरहे नरगाव–फ़ा०। दे० "फेलबोविनम्" वा "बैल"।

आक्स ब्लड–संज्ञा पुं० [अं० Ox blood] वृषभ-रक्त। बैल का खून। दे० "हिमाटोजन" वा "बैल"।

आक्स (ब्लड)सीरम–[Ox blood-serum.] वृषभ रक्त-वारि। दे० "हिमोग्लोबीन" वा "बैल"

आक्साइड–संज्ञा पुं० [अं० Oxide.] ऊष्मिद। ओषित। ऊष्मजन (आक्सिजन) वायव्य और धातुओं के मेल से बना हुआ एक यौगिक पदार्थ। ये उन उन धातुओं की भस्में हैं। भिन्न भिन्न धातुओं के संयोग से भिन्न भिन्न प्रकार के आक्साइड (भस्म) बनते हैं। जैसे–पारे से आक्साइड अफ़ मर्करी (पारद भस्म), जस्ते से आक्साइड आफ़ ज़िंक (यशद भस्म) और लोहे से आक्साइड आफ़ आयर्न (लौह भस्म), इत्यादि। दे० "भस्म"।

आक्साइड आफ़ आर्सेनिक–संज्ञा पुं० [अं० Oxide of arsenic] संखिया का भस्म। आखुपाषाण भस्म। मल्ल भस्म। दे० "संखिया"।

आक्साइडम् आर्सेनिकम्–संज्ञा पुं० [लै० Oxidum arsenicum] संखिया भस्म। आखुपाषाण भस्म। मल्ल भस्म। दे० "संखिया"।

आक्सी एकैन्थीन–संज्ञा पुं० [अं० Oxyacanthine] दारुहरिद्रा में पाया जानेवाला एक प्रकार का सत्व। इसका संकेत सूत्र इस प्रकार है—(क^{३२}उद^{४६}नत्र^{२}ऊ^{११})। यह एक सफ़ेद क्षारीय सत्व है। सूर्य्यप्रकाश में यह पीला हो जाता है जल में लगभग अविलेय होता है। स्वाद–तिक्त तथा इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। विलेयता–यह मद्यसार में विलेय, ईथर में इससे न्यून, पर क्लोरोफार्म, बेञ्ज़ोल, वसा और उड़नशील तैलों में सरलतापूर्वक विलेय होता है। गंधकाम्ल से यह मटमैलापन लिए लाल रंग का हो जाता है। शोरकाम्ल (Nitric acid.) से यह पीला पर उत्ताप पहुँचाने पर बैंगनी हो जाता है।

आक्सीकेन्नाबीन–संज्ञा पुं० [अं० Oxycannabine] एक प्रकार का सत्व जो भाँग की गोंद से प्राप्त होता है। सङ्केत सूत्र—(क^{२०}उद^{२०}नत्र^{२}ऊ^{७})। यह १७६° शतांशके ताप पर घुल जाता है और अवियोजित रूप में ही वाष्पीभूत हो जाता है। (फार्मा०)। दे० "भाँग"।

आक्सी केम्फर–सं० पुं० [अं० Oxycamphor]

कपूर का सत्व । एक प्रकार का सफ़ेद स्फटिकवत् चूर्ण जो १ भाग ५० भा० जल में विलेय होता है ।

संकेत सूत्र—$(\text{क}^{१०}\text{उ}^{१६}\text{ऊ}^{२})$ ।

गुण—यह पल्मोनरी डिस्पीनिया (फुफ्फुसीय श्वासकष्ट) में उपयोगी है । मात्रा—५से १५ग्रेन अर्थात् २॥ रत्ती से ७॥ रत्ती तक ।

उपयोग विधि—इसको कीचट वा जिलेटीन केप्शूल में डालकर आक्सेफर रूप में देना चाहिए । दे० "कपूर" ।

आक्सीचीन एसेप्टोल—संज्ञा पुं०[अं० Oxychin aseptol] एक प्रकार का पचननिवारक (ऐन्टिसेप्टिक) तथा अक्षोभक द्रव्य । दे० "एसेप्टोल" ।

आक्सीजन—संज्ञा पुं० [अं० Oxygen] एक वायवीय तत्व । ओषजन । ऊष्मजन । अम्लजन । उष्णजन । दे० "ऊष्मजन" ।

आक्सीजन गैस—संज्ञा पुं० [अं० Oxygen gass] ओषजन वायव्य । चालित उष्णजन वायव्य बेलनाकार लौह नलिकाओं में, जिनमें १२ से २० वर्गफीट तक यह वायव्य भरा होता है, बिकने के लिए आता है । उन नलिकाओं से रबड़ की नलिकाएँ जोड़कर इसे सूँघा जा सकता है । इसे मुख्यतः ऐसी अवस्था में सुँघाते हैं, जब कि रक्त अशुद्ध होने के कारण शरीर नीला पड़ जाता है । अस्तु, न्युमोनिया (श्वसनक ज्वर) में श्वास-काठिन्य तथा अधिक उत्ताप को कम करने के लिए इसको सुँघाते हैं । हृद्रोग में भी इसे सुँघाने से श्वास-कष्ट दूर होकर साँस सरलतापूर्वक आने लगती है । इसी भाँति ब्राइट्स डिज़ीज़ (ब्राइट-व्याधि), अञ्जाइना पेक्टोरिस (हृच्छूल), ऐज़्मा (दमा-श्वास) और थाइसिस (राजयक्ष्मा) प्रभृति रोगों में भी इसके सुँघाने से लाभ होता है । साधारण क्षतों पर ऊष्मजनित वाष्प प्रवाहित करने से तत्स्थानीय कृमियाँ विनष्ट हो जाती हैं और उन पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है । इसलिए वे शीघ्र अच्छे हो जाते हैं ।

आक्सीजन-वाटर—संज्ञा पुं० [अं० Oxygen-water] ओषजनीय जल । ऊष्मजनोदक । इसे चित्त प्रसन्न करनेके लिए पीते हैं । डायबेटीज़ (बहुमूत्र रोग), डिस्पेप्सिया (अजीर्ण), टेटेनस (धनुष्टङ्कार, कुज़ाज़), हाइड्रोफोबिया (जलत्रास), एकलम्पशिया (आक्षेपक, शिश्वाक्षेप), एक्सअॉप्थैल्मिक गॉइटर (Goitre) तथा न्युमोनिया (फुफ्फुसौष) इत्यादि रोगों में इसे पिलाते हैं । दे० "हाइड्रोजीनिआई पर आक्साइडाई लाइक्वार" ।

आक्सीटाकिक—वि० [अं० Oxytocic] आशु प्रसवकारक । शीघ्र प्रसव करानेवाली । जल्द बच्चा पैदा करानेवाली । मुअज्जिलुल् विलादत ।

आक्सीट्रापिस-माइक्रोफाइला—संज्ञा पुं० [ले० Oxytropis-microphylla, *D. C.*] एक प्रकार का पौधा जो चारा के काम आता है । मेमो० ।

आक्सीडेण्ड्रोन-आर्बोरियम्—संज्ञा पुं० [ले० Oxydendron arboreum.] सावरवुड-लीव्ज़ (Sourwood-leaves)-अं० ।

आक्सीडोल—संज्ञा पुं० [अं० Oxydol] प्रारम्भ में यह ओमेची (Eaumaiche) नाम से प्रसिद्ध था । इसमें इसके घनफल से तिगुना ऊष्मजन होता है । व्रणों के ड्रेसिंग (व्रण-बंधन) में इसका उपयोग होता है ।

आक्सीदुर्रसास्—संज्ञा पुं० [अ०] सीसे की भस्म । मुर्दासङ्ग (प्रा० अ०) । मुर्दासंग । प्लम्बाई । ऑक्साइडम् (Plumbioxidum)

आक्सीदुल्-ख़ार्सीन—संज्ञा पुं० [अ०] यशदौष्मिद । जस्ते की भस्म । दे० "जस्ता" ।

आक्सीबैफस-हिमालायकस—संज्ञा पुं० [ले० Oxybaphus himalaicus, *Edge.*] एक प्रकार का पोधा जो चारा के काम में आता है । पुमई, बाउस—पं० । मेमो० ।

आक्सी मर्सीन—संज्ञा पुं० [अं० Oxymyrsine] यह मेंहदी नहीं, प्रत्युत एक प्रकार का बूचर्स ब्रूम Butcher's broom (Ruscus aculeatus.) है । वाइल्ड मर्ट्ल (Wild-myrtle)-अं० । आसल बर्री-अ० । फा० इं० २ भ० ।

आक्सीमल—संज्ञा पुं० [अं० Oxymel]

सिकंजबीन। दे० "ऑक्सीमेला"।

आक्सीमल अर्जीनीई–[ले० Oxymel urginiæ] यह ऑक्सीमेल सिल्ली की तरह प्रस्तुत किया जाता है। अरण्यपलाण्डु (Urginea) Indian Squill स्क्वील अर्थात्–विदेशी अरण्यपलाण्डु के स्थान में प्रयोग किया जाता है। दे० "अरण्यपलाण्डु"।

आक्सीमल आफ़ स्क्विल–[अं०Oxymel of squill]
आक्सीमल-सिल्ली–[ले०Oxymel scillae]
सिकञ्जबीन अन्स.ल। काँदे का सिकंजबीन। बनपलांडु का सिकंजबीन।

आफ़िशियल
(*Official*)

निर्माण-विधि—२॥ आउंस कूटे हुए विदेशी अरण्यपलाण्डु (स्क्वील) को एसीटिक एसिड (सिरकाम्ल) २॥ फ्लुइड आउंस और परिस्रुत जल ८ फ्लुइड आउंस में एक सप्ताह तक भिगोकर भली प्रकार दबाकर छानलें। इस प्रकार जो द्रव (यह लगभग १० आउंस होता है) प्राप्त हो, उसमें २७ फ्लुइड आउंस अथवा उतने परिमाण में विशुद्ध मधु संयोजित करें, जिसमें आक्सीमेल का आपेक्षिक भार १·३२० हो जाय।

मात्रा—आधा से एक फ्लुइड ड्राम।

प्रभाव—कंठ्य वा श्लेष्मानिस्सारक।

आक्सीमेला–[ले० Oxymela] एक प्रकार की मिश्रित वस्तु जो शहद और एसीटिक एसिड (सिरकाम्ल) के योग से प्रस्तुत की जाती है। सिकंजबीन-अ०। सिकञ्जबीन –फ़ा०। आक्सीमेल (Oxymel)–अं०।

नोट—सिकंजबीन दो शब्दों यथा–सिरकः और अङ्गबीन अर्थात् मधुका यौगिक है। इसीसे अरबी शब्द "सिकञ्जबीन" व्युत्पन्न है।

ऑक्सीमेल के अतिरिक्त ब्रिटिश फार्माकोपिया में एक ही ऑक्सीमल है, जिसकी मात्रा आधा ड्राम से लेकर १ ड्राम तक है।

ऑक्सीमेल या सिकंजबीन एक ऐसा यौगिक है, जो मधु और सिरकाम्ल (Acetic acid) को मिलाकर तैयार किया जाता है।

निर्माण-विधि—(१) ४० आउंस (भार में) द्रवीकृत शुद्ध मधु को एसिटिक एसिड (सिरकाम्ल) ५ फ्लुइड आउंस और परिस्रुत जल आवश्यकतानुसार वा लगभग ५ फ्लुइड आउंस में मिला लें। सिकंजबीन का विशिष्ट गुरुत्व १·३२० होना चाहिए। मात्रा—१ से २ फ्लुइड ड्राम=(३·६ से ७·१ घन शतांशमीटर)।

प्रभाव तथा उपयोग—कण्ठ्यवा श्लेष्मानिस्सारक और शैत्यकारक (Refrigerant)। यह अनुपान की तरह काम में आता है। (२) दे० "आक्सीमेल सिल्लो"।

आक्सीरिया रेनिफ़ार्मिस–[ले० Oxyria reniformis, *Hook.*] एक पौधा जो औषधि और खाद्य के काम में आता है।

आक्सीरिया एलेटियर-संज्ञा स्त्री० [ले० Oxyria elatiar]
आक्सीरिया डायगाइना–[ले० Oxyria digyna, *Hill.*]
अमलू-पं०। सेमो०। इं० मे० प्लां०।

आक्सीलीथ–[अं० Oxylith] सान्द्र ओषजन (Solid oxygen)। सोडियम पर ऑक्साइड (Sodium peroxide)। दे० "आक्सीजन गैस"।

आक्सीस्टेल्मा-एस्क्युलेण्टम्–संज्ञा पुं० [ले० Oxystelma-esculentum, *Br.*]उपलसरी अथवा क्षीर-वर्ग की वनस्पतियों में से एक प्रकार की वनस्पति। दुद्धी। दुग्धिका। युग्म फलोत्तमा। उत्तम फलिनी। इ० मे० प्लां०।

आक्सीस्पार्टीना-संज्ञा पुं० [ले० Oxyspartina.] यह स्पार्टीन तथा ऊष्मजन का एक यौगिक है। इसके श्वेत दानेदार रवे होते हैं। जल में यह सरलतापूर्वक घुल जाता है और सशक्त क्षारीय घोल (Alkaline-solution) का निर्माण करता है। मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १$\frac{1}{2}$ ग्रेन। दे० "स्कोपेरियाई केक्यूमीना"।

आक्सीस्पार्टीनी-हाइड्रोक्लोराइडम्–[ले० Oxyspartinæ hydrochloridum] इसके रवे स्वच्छ होते हैं, जो जल में सरलतापूर्वक घुल जाते हैं। रसको त्वगस्थ अन्तः क्षेप द्वारा उपयोग में लाते हैं। मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १$\frac{1}{2}$ ग्रेन। दे० "स्कोपेरियाई केक्युमीना"।

आक्सेफर–संज्ञा पुं० [अं० Oxaphor.] एक प्रकार का ५० प्रतिशत का एल्कोहलिक घोल। दे० "आक्सी-केम्फर"।

आक्सेलाइड-कार्निक्युली–[फ्रां० Oxalide corniculeá.] अमलोनी। चाङ्गेरी। अम्ललोणी। अम्ललोणिका–सं०। आमरूल–बं०। खटमिट्ठा–पं०। चालमोरी। चूका–हिं०।

आक्सेलिक एसिड–संज्ञा पुं० [अं० Oxalic acid.] चूक-सत्व। चूका या अमरोला का सत। जौहर हुम्माज़। दे० "एसिडम् आक्सेलिकम्"।

आक्सेलिस-एसिटोसिल्ला–[लें० Oxalis acetosilla, *Linn.*] एक पौधा जो शीतोष्ण हिमवती पर्वत-श्रेणी तथा काश्मीर से लेकर सिक्किम तक होता है। गुण—शैत्यकारक तथा स्कर्वीनाशक। (वैट)

आक्सेलिस-कार्निक्युलेटा–[लें० Oxalis corniculata, *Linn.*]
आक्सेलिस-प्रोकम्बेंट–[लें० Oxalis, procumbent.]

अम्ललोणी, चाङ्गेरी–सं०। चूका, तिपाती, तिनपतिया–हिं०। आमरूल–बं०। फा० इं० १ भ०। इं० मे० प्लां०।

आक्सेलिस-सेन्सिटिव–[अं० Oxalis sensitive.]
आक्सेलिस-सेन्सिटिवा–[लें० Oxalis sensitiva.]
लाखचना।

आख–संज्ञा पुं० [हिं० आक] मदार। आक। (Calotropis gigantea, *R. Br.*)

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खुरपी। खनित्र। खंता।

आख़-ग़ूर–संज्ञा पुं० [उ०] (Pyrus tomentosa) जंगली नासपाती।

आख़ता–वि० [फ़ा० आख़्तः] जिसके अण्डकोष चीरकर निकाल लिए गए हों। आख़्ता। बधिया। अख़्तः, ख़सी–फ़ा०। कैस्टरेटेड (Castrated)–अं०।

नोट—यह शब्द प्रायः घोड़े के लिए प्रयुक्त होता है। पर कोई कोई इस शब्द का कुत्ते और बकरे के लिए भी प्रयोग करते हैं।

आखनिक, आखनिकषक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शूकर। सूअर। (२) मूषिक। चूहा। मे०। वि० [सं० त्रि०] खोदनेवाला। खननकर्त्ता।

आखरोट–[बं०] (Juglans regia) अखरोट।

आखा–संज्ञा पुं० [हिं० आख] आक। मदार। (Calotropis gigantea)

संज्ञा पुं० [सं० आक्षरण=छानना] एक प्रकार की चलनी। आँखी। (A sieve)

आख़िज़ा–[अ० आख़िज़ः] मुद्रिकः। जमूद। शख़ूस। क़ातू खुस–यू०। कैटालेप्सी (Catalepsy)–अं०। आख़िज़ा का शाब्दिक अर्थ सहसा पकड़नेवाला वा आशुग्राहक है। किंतु तिब्ब की परिभाषा में एक प्रकार के रोग को कहते हैं। इसमें रोगी की चेतना एवं गति सहसा अवरुद्ध हो जाती है; और वह जिस दशा में होता है, उसी दशा में रह जाता है अर्थात् यदि बैठा हो तो बैठा, खड़ा हो तो खड़ा, काम करता हो तो काम करता रह जाता है। विस्तार एवं भेद के लिए देखो–"जमूद"।

आखी–[पं०] अङ्कोल ढेरा। टेरा। कंटौंच। करेर (इ)

आखु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मूसा। मूष। चूहा। अथर्व०। सू० ५०। १। का० ६। (२) सूअर। शूकर। (३) चोर। (४) देवताड़ वृक्ष। देवहाड़। देवताल। (५) जंगली चूहा। वन्यमूषिक। (६) खनित्र। खंता।

आखुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मूसा। चूहा। रत्ना०। (२) वन्यमूषिक। जंगली चूहा। मद० व० १२। (३) शूकर। सूअर। हे० च०। (४) देवताड़वृक्ष। (Deotar tree.) र० मा०।

आखुकरीष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चूहे का सूखा मैला। मूसा की शुष्क विष्ठा। चूहे की सूखी लेंड़ी।

आखुकर्णपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र मूषिककर्णी। लघु मूषाकर्णी। छोटी मूसाकानी। लघुउंदीरकाणी–मरा०। इन्दुरकाणी, मूषाकाणी–बं०। (Ipomœa Reniformis-the small variety of-) वै० निघ०।

आखुकर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्रवन्ती। एक प्रकार की दंती।

आखुकर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बड़ी दन्ती। भा० पू० १ भ०। वै० निघ०। राज०। सि० यो० कृमि-चि० कृमिघ्न पूपिका (श्रीकंठ)। (२) पानी की मूसाकानी। जलजमूषिककर्णी। रा० नि० व० ३। वि० दे० "मूसाकानी"। (३) द्रवंती का क्षुप। रा० नि० व० ५।

आखु-गन्धी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आम्बाहलदी। कर्पूरहरिद्रा। काफूर हल्दी। आम आदा-बं०। वै० निघ०।

आखुजित्–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भूँइ आँवला। भूम्यामलकी।

आखु-पर्णा, आखुपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
आखु-पर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(१) Salvinia Cucullata (The large variety of-) बड़ी मूसाकानी। स्थूल मूषिककर्णी। चूहाकानी। उन्दुरकन्नी। बड़ ईन्दुर कार्णा-बं०। रत्ना०। (२) ह्रस्व दन्ती। छोटी दन्ती। क्षुद्र-दंता-बं०। Croton polyandrum (The small Var. of-)। (३) कृष्ण-दन्ती। काली-दन्ती। र० मा०। (४) बड़ी-दन्ती। वृहद्दन्ती। Croton polyandrum (The large Var. of-) भा० पू० १ भ०। (५) मण्डूकपर्णी। थूल-कूड़ि-बं०। (Hydrocotyle Asiatica.) च० द० कृमि० चि०।

आखु-पत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूषाकर्णी। मूसाकानी। चूहाकानी। रा० नि०।

आखु-पत्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तेजपात। (Cinnamomum Loureiri.)।

आखु-पाषाण, आखु-पाषाणक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] A kind of mineral (Loadstone.) लौह-चुम्बक। चुम्बक पत्थर। चूम्बूक-पाथर-बं०। संगमिक्नातीस्। यथा –

"आखुपाषाणनामाऽयं लोह सङ्करकारकः"।

रा० नि० व० १३।

गुण—यह स्निग्ध, पारद का नियामक लौह भेदकर, वीर्य बढ़ानेवाला, कांतिवर्धन तथा त्रिदोष और सर्वव्याधि नाशक होता है। किंतु अशुद्ध रह जाने से सातो धातुओं को बिगाड़ता, दाह उत्पन्न करता और चित्त भटकाता है। उस समय लालास्राव होने लगता, अनेक प्रकार की वेदना बढ़तीं, बहुत सी व्याधियाँ घेर लेतीं, बहुत प्यास लगती और मृत्यु भी हो जाती है। वै० निघ०।

आखु-पाषाण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] संखिया नामक विष।

आखु-फला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी दन्ती। ह्रस्वदन्ती। वै० निघ०।

आखु-भुक् (ज्)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लाल लटजीरा। लाल-चिचड़ी। रक्त अपामार्ग। (२) बिडाल। बिलार। बिल्ली। मार्जार। मद० व० १२।

आखु-मांस–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चूहे का मांस। मूषिक-मांस।

आखुमांस तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैद्यक में एक योग जो योनिकन्द-रोग नाशक है। जैसे–मूषक (चूहा) के मांस के छोटे-छोटे टुकड़े बनालें। तदनन्तर इनके साथ यथाविधि तिल तैल का पाक करें। जब तक मूषक का मांस अच्छी तरह न गल जाय, तब तक पकाते रहें। इस तैल को कपड़े में भिगोकर योनि में धारण करने से अति लज्जाजनक योनिकन्द नामक रोग नष्ट हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। च० द० योनि व्यापच्चि०।

आखु-विष- संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दारुमोच-विष। विष विशेष। दारमुज बं०। प० मु०। (२) चूहे का ज़हर। दे० "मूसा"।

आखु-विष-जित्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सतिवन। छातिम। सप्तपर्ण-वृक्ष। (Alstonia Scholaris.)

आखु-विषहा, आखु-विषापहा–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) देवताड़ का वृक्ष। प० मु०। (२) पीत देवदालीलता। बिंदाल। घघरबेल। सोनैया। रा० नि० व० ३।

आखु-श्रुति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी मूसाकानी। क्षुद्र मूषिककर्णी। छोट-इन्दुरकाणी-बं०। रा० नि० व० ३।

आखुस्कंध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिरस का पेड़। शिरीष का वृक्ष। क्षीर-कञ्चुकी।

आखूत्कर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूहे की निकाली हुई मिट्टी।

आखेट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृगया। शिकार।

आखेटक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शिकारी जानवर। वि० [सं० त्रि०] शिकारी। मृगयु। आखेटी।

आखेट-शीर्षक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुट्टिमभेद। सुरङ्ग। गह्वर। अम०। श० र०।

आखेटिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शिकारी कुत्ता। मृगया कुशल कुक्कुर। (२) शिकारी। मृगयु। शिकार करनेवाला। अहेरी।

आखेटी–वि० [सं० आखेटन्] [स्त्री० आखेटिनी] शिकारी। अहेरी।

आखोट, आखोड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अखरोट का पेड़। आक्षोट वृक्ष। रा० नि० व० ११। भूतवृक्षक।

आखोटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मृगया-कुशल कुक्कुर। शिकारी कुत्ता। शिकारी-कूकूर -बं०। (A hound.) पर्याय-विश्वकद्रु। हा०। (२) व्याध। व्याधा। शिकारी। अहेरी।

आखोर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूहा। मूसा। सु० नि० वातर० नि०।

आख़ोर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] कूड़ा करकट। सड़ी गली चीज़।

आखोर-विष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूहे का विष। सु० नि० वा० र० नि०।

वि० [फ़ा०] (१) सड़ा गला। रद्दी। (२) मैला कुचैला।

आख़ूगोर–[उ०] जंगली नासपाती। Wild pear (Pyrus-tomentosa.)

आख्ठेर-आर्बन-बाम–[जर० Achter-orbanbaum.] (Bixa orellana) सिन्दूरिया। लटकन–बं०। इं० मे० मे०।

आख्ठेर-खोखोसपाल्मी–[जर० Achter kokospalme] नारियल। नारिकेल। इं० मे० मे०।

आख्ठेर-ज़ुख़ख़रोर–[जर० Achter-zucherrohr] गन्ना। ईख। इक्षु। इं० मे० मे०।

आख्ठेर-नार्डी–[जर० Achter-narde] जटामांसी। इं० मे० मे०।

आख्ठेर-मुस्खाट-नुस्सबाम–[जर० Achter-muscatnussbaum] जायफल। जातीफल। इं० मे० मे०।

आख्ठेर-हिर्से–[जर० Achter-hirse] चीना। (Panicum-miliacecum.)

आख्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नाम। संज्ञा नाँव। अभिधान। (A name.)। (२) (Appellation, Term.) विवरण। व्याख्या।

आग–संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] (१) तेज और प्रकाश का पुञ्ज जो उष्णता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई वस्तुओं में देखा जाता है। अग्नि। अनल। आगी। (२) जलन। ताप। गरमी।

संज्ञा पुं० [सं० अग्र] ऊख का अगौरा।

आग क्युथिस–[यू०] हाऊबेर। अभल। हपुशा। हबुषा।

आगजमडु–[ते० आकुजेमुडु] सेहुँड़। थूहर।

आगड़ा–संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० गाद=पुष्ट] ज्वार इत्यादि की वह बाल जिसके दाने मारे गए हों।

आगत–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आगता] आया हुआ। आयात। निर्गत का उलटा।

आगति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pathology.) सम्प्राप्ति।

आगदौना–संज्ञा पुं० [हिं० आग+दौना] एक प्रकार की हिन्दी ओषधि, जिसे धमासे का एक भेद बतलाया जाता है।

आग़नीस–[तु०] मेउड़ी। सम्हालू। निर्गुण्डी।

आगन्तु, आगन्तुक–वि० [सं० त्रि०] (१) आगमनशील। जो आवे। आनेवाला। (२) जो इधर उधर से घूमता फिरता आजाय। बाहर से आनेवाला। (३) अतिथि। पाहुना। (४) दैवायत्त। आकस्मिक।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) अचानक होनेवाला रोग। (२) आगंतुक अनिमित्त लिंगनाश। एक प्रकार का चक्षु रोग, जिसमें आँख की ज्योति मारी

जाती है। प्राचीनों के अनुसार यह देवता, ऋषि, गन्धर्व, बड़े सर्प और सूर्य के देखने से होजाता है।

आगन्तुक ज्वर–संज्ञा पुं० [सं० पुं] आगन्तुज शब्द का अर्थ "अभिघात आदि कारण" है। अस्तु, आगन्तुक ज्वर से अभिप्राय अभिघातादि से उत्पन्न ज्वर है। वैद्यक में यह आठ प्रकार के ज्वरोंमें से आठवाँ है और चार प्रकारका होता है। यथा—

"आगन्तुरष्टमो यस्तु सनिर्दिष्टश्चतुर्विधः।
अभिघाताभिषङ्गाभ्यामभिचाराभिशापतः"।

(च० चि० ३ अ०)

अर्थात्—"अभिघात, अभिषङ्ग, अभिचार और अभिशाप इसके चार भेद हैं।"

भावप्रकाशके अनुसार भूत, विष, वायु, अग्नि, क्षत तथा भंग और राग, द्वेष एवं भय आदि के कारण उत्पन्न ज्वर 'आगंतुक' कहलाता है।

(भा० म० १ भ० ज्व० चि०)

माधव निदान में लिखा है—

"अभिघाताभिचाराभ्यामभिषङ्गाभिशापतः।
आगन्तुर्जायतेदोषैर्यथा स्वं तं विभावयेत्॥"

अर्थात्—"अभिघात, अभिचार, अभिषङ्ग और अभिशाप द्वारा उत्पन्न ज्वर को आगन्तु-ज्वर कहते हैं। इसमें प्रथम कोई दोष नहीं जान पड़ता, पश्चात् जो जो दोष कुपित हों, उन्हीं उन्हीं दोषों के लक्षणों से जानना चाहिए। यथा काम शोक भयाद्वायुरितिभावः।

यूनानी ग्रंथकारों के अनुसार आगंतु-ज्वर जिसका सम्बंध रूहसे होता है, वस्तुतः यह एक प्रकार का सूक्ष्म ज्वर है, जो रूहत्रंय अर्थात् रूहतबीई (नैसर्गिकरूह), रूह हैवानी और रूह नफ़सानी में से किसी एक के साथ हरारत ग़रीबी के संबंध से प्रादुर्भूत होता है और फिर उससे समग्र शरीर गरम हो जाता है। इसकी गरमी रूह में प्रकाशित होती है। अतएव उक्त ऊष्मा यदि वह दोषों वा अवयवों में स्थानांतरित न हो गई हो, तो शीघ्र दूर हो जाती है। प्रायः देखा गया है कि एक दिन-रात से अतिक्रमण नहीं करती। इसी कारण इस ज्वर को हुम्मायौम वा तपे यकरोजः नाम से अभिहित करते हैं। जालीनूस के अनुसार कभी इस ज्वर की ऊष्मा ६ दिन तक भी रहती है। इस प्रकार का ज्वर प्रायः अस्बाब ख़ारिजः (आगंतुक कारणों), जैसे चिंता, दुःख, भय, वैकल्य आदि मानसिक और दौड़ धूप, श्रम, श्रांति आदि बाह्य शारीरिक आदि से प्रादुर्भूत होता है। कभी अजीर्ण, बदहज़मी के कारण और कभी दर्द वा त्वगीय फोड़ा-फुंसी के कारण हो जाया करता है।

पर्य्या०—हुम्मा यौम (अ०)। तपे यकरोजः (फ़ा०)। एक रोज़ का बुखार (उ०)। एफीमरल फीवर Ephemeral fever, फेब्रिक्युला Febricula, ऐक्सिडेंटल फ़ीवर Accidental fever (अं०)।

नोट—यदि चौबीस घंटे के उपरांत ज्वर उतर जाय तो उसे 'एफीमरल' कहते हैं। परंतु जब दो-चार दिन वा सप्ताह पर्यंत रहे, तब उसको डॉक्टरी में फेब्रिक्युला और अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा में 'हुम्मा मुस्तमरः' कहते हैं।

यूनानी मतानुसार हुम्मायौम के निम्न भेद होते हैं—(१) हुम्मा यौम इस्तिह्साक़िय्यः (स्नान ज्वर), (२) हुम्मायौम तअ़बिय्यः (श्रांति वा आयास ज्वर), (३) हुम्मायौम हर्रिय्यः (अंशुघात जन्य ज्वर), (४) हुम्मा यौम सुद्दिय्यः (अवरोधजनित ज्वर) और (५) हुम्मा यौम ग़िज़ाइय्यः (आहार ज्वर)। इनके विस्तृत विवेचन के लिए दे० "हुम्मा"।

उपर्युक्त चारों प्रकार के आयुर्वेदोक्त आगन्तु-ज्वरों के लक्षण इस प्रकार हैं—

"शस्त्रलोष्ट्रकशाकाष्ठमुष्टयरत्नितलद्विजैः।
तद्विधैश्च हते गात्रे ज्वरः स्यादभिघातजः॥
तत्राभिघातजे वायुः प्रायो रक्तं प्रदूषयन्।
सव्यथा शोथ वैवर्ण्यं करोति सरुजं ज्वरम्।"

(च० चि० ३ अ०)

अर्थात् "तलवार छुरा आदि शस्त्र, ढेले, लाठी, घूंसा, चाबुक आदि के शरीर में लगने से उत्पन्न ज्वर को अभिघातज कहते हैं। अभिघातज ज्वर में प्रायः वायु रक्त को दूषित करके वेदनायुक्त सूजन, विवर्णता और पीड़ा सहित ज्वर का प्रादुर्भाव करती है।"

अन्यच्च—

"काम शोक भय क्रोधैरभिषक्तस्य यो ज्वरः ।
सोऽभिषङ्गज्वरो ज्ञेयो यश्च भूताभिषङ्गजः ॥
काम शोक भयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः ।
भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्य लक्षणाः ॥"
(च० चि० ३ अ०)

अर्थात् "काम, शोक, भय क्रोध और भूतादि के आवेश से होनेवाले ज्वर को "अभिषङ्ग ज्वर" कहते हैं। काम, शोक, भय इनसे वायु कुपित होता है और क्रोध से पित्त एवं भूताभिषंग से (देवग्रहादि के संबंध से) तीनों दोष कुपित होते हैं और इसमें भूत देव ग्रहादि के सामान्य लक्षण (हँसना, रोना, काँपनादि) एवं वातादि दोषों के भी लक्षण होते हैं"।

इनको भूताधिकार वा 'उन्माद निदान' में देखो। ज़हरीले वृक्ष वा उसकी वायु के स्पर्श से अथवा अन्य विषों के सम्बंध से होनेवाले ज्वर को भी चरक ने 'अभिषङ्गज' लिखा है। यथा—

"विषवृक्षानिल स्पर्शात्तथाऽन्यैर्विष संभवैः ।
अभिषक्तस्य चाप्याहुर्ज्वरमेकेऽभिषङ्गजम् ॥"
(च० चि० ३ अ०)

माधवनिदानकार के अनुसार स्थावर-जंगम विष भक्षण करने से हुए ज्वर में मुख की श्याम वर्णता, दाह, दस्त होना, अन्न में अरुचि, प्यास, सूई चुभने की सी पीड़ा और मूर्च्छा आदि लक्षण होते हैं।

माधवनिदान के अनुसार कामज ज्वरमें चित्त विभ्रंश अर्थात् चित्त का कहीं न लगना, तन्द्रा, आलस्य, भोजन में अरुचि, हृदय में पीड़ा और शरीर का सूखना ये सब लक्षण होते हैं। भय और शोक से उत्पन्न ज्वर में प्रलाप और कोप से उत्पन्न ज्वर में कम्प होता है।

विपरीत मंत्र जपने से, लोहे के स्रुवा से मारणार्थ सर्षपादि होम वा कृत्य के प्रयोग करने से प्रगट ज्वर को 'अभिचार' और ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध और सिद्ध इनके शाप देने से हुए ज्वर को 'अभिशाप' कहते हैं। अभिचार तथा अभिशाप से उत्पन्न ज्वर में मोह और प्यास होती है और भूत (देवता ग्रहादि) के सम्बन्ध से उद्विग्न चित्त होना एवं हँसना, रोना और काँपना आदि लक्षण होते हैं। यथा—

"अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ।
भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदन कम्पनम् ॥"
(मा० नि०)

माधवनिदानकार ने औषधी-गंधज ज्वर को भी आगन्तुक ज्वरों में लिखा है और इसका लक्षण इस प्रकार लिखते हैं—

"औषधीगन्धे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः ।"
(मा० नि०)

अर्थात् 'तीक्ष्ण औषधि के सूँघने से उत्पन्न ज्वर में मूर्च्छा, शिराशूल, वमन और छींक ये लक्षण होते हैं।'

चिकित्सा

आगन्तुकज्वरों की चिकित्सा में इस बात का स्मरण रखें कि वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों में से जिसका प्राबल्य हो उसी के शमन की ओर प्रथम ध्यान दें। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष ऐसे नियम भी हैं, इसकी चिकित्सा में जिनका काम में लाना अत्यावश्यकीय है। अभिघातज ज्वरों में उष्णता विरोधी चिकित्सा करें और ऐसे खान-पान की व्यवस्था करें जो कषाय, मधुर एवं स्निग्ध हों।

अभिचार जन्य में—देवाराधन, स्वस्तिवाचन, अतिथि सत्कार तथा अन्य शुभ कर्मों द्वारा प्रतिकार करें।

अभिशापज ज्वर, देवाराधन जन्य ज्वर, तथा ग्रहपीड़ा जन्य ज्वर, में अभिचारजन्य ज्वर की भाँति उपचार करें।

औषधी-गन्ध जन्य ज्वर, विष जन्य ज्वर में—विष और पित्तनाशक ओषधियों द्वारा और गन्ध जन्य ज्वर में—उत्तम तद्दोषनाशक क्वाथों द्वारा उपचार करें।

क्रोध जन्य ज्वर में—पित्तनाशक योगों द्वारा तथा शान्तिकर उत्तम उत्तम वचनों द्वारा शान्ति करें।

कामज ज्वर में—मनोवांछित पदार्थों द्वारा तथा धैर्य और वायुशामक योगादि से और शोकज ज्वर, भयज ज्वरमें—कामज्वर की भाँति चिकित्सा करें।

भूताभिषङ्ग ज्वर में—भूत-विद्या में कहे हुए प्रयोग, जैसे, बन्धन ताड़नादि उपायों का अवलंबन करें तथा उपयुक्त वायु-कोप-शामक औषधि काम में लाएँ।

मानसिक ज्वर वा (मानस ज्वर) को—मन को शान्तिप्रद कर्मों द्वारा नष्ट करें।

और भी कहा है कि क्रोध का प्रकोप होने से कामज्वर स्वयं शान्त होजाता है। क्रोध और काम के प्रकोप से भय एवं शोक ज्वर स्वयं प्रशमित होजाते हैं।

आगन्तुक-रोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अभिघात जन्य रोग।

आगन्तुक-रोग नाशक–वि० [सं० त्रि०] जो आगंतुक रोगों का निवारण करे।

आगन्तुकशोथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चोट आदि के कारण उत्पन्न सूजन।

आगन्तुज–वि० [सं० त्रि०] जो अकस्मात् पैदा हो जाय। हठात् उत्पन्न। जैसे—

'आगन्तुजे भिषग्रोगे शस्त्रणोत्कृत्य यत्नतः"।
दोषागन्तुजमृत्युभ्योरसमन्त् विशारदौ"।
सुश्रुतः।

नोट—यह शब्द रोग आदि का विशेषण है। जैसे–आगन्तुज व्याधि।

आगन्द: गोश्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] भरेहुए शरीरका आदमी। ठोस शरीर का मनुष्य।

आगन्तु व्रण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह घाव जो चोट के पकने से हो। सद्योव्रण। सद्योजात क्षत। ताज़ा ज़ख़्म। टटका घाव।

आगपत्री–संज्ञा स्त्री० [हिं० आग+सं० पत्रिन्] तेजपात।

आगम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शास्त्र। जैसे—"आगम नादागमः शास्त्रम्"। सु० सू० ४० अ०। (२) आगमन वेद। (३) तन्त्र-शास्त्र। तन्त्र। (४) नीति। नीतिशास्त्र (५) भविष्य काल। आनेवाला समय। (६) उत्पत्ति। (७) योगशास्त्रानुसार शब्द प्रमाण।

वि० [सं० त्रि०] आनेवाला। आगामी। [उ० प० सू०] फ़ोर गुगाड। बिलवरम्।

आगमावर्त्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वृश्चिकालीका क्षुप। बिछाती। वहंएटा। (Fragia involucrata) रा० नि० व० ४। (२) क्षुद्र मेढ़श्रृङ्गी। छोटी मेढ़ासिंगी। वै० निघ०।

आगर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आगरी] (१) वह गड्ढा जिसमें नमक जमाया जाता है। नमक बनाने का गड्ढा। (२) गृह। घर। (३) नमक का कारख़ाना।

संज्ञा पुं० [सं० अर्गल=ब्योंड़ा] अगरी।

आगरबध–संज्ञा पुं० [सं० आ+गल+बद्ध] कण्ठमाला।–डिं०।

आगरी–संज्ञा पुं० [हिं० आगर] नमक बनाने वाला। लोनिया।

आगल–संज्ञा पुं० [सं० आर्गल] अगरी। ब्योंड़ा। बेंड़ा।

वि० अगला।

आगलगना–संज्ञा पुं० [हिं० आग+लगना] हाथी का एक रोग जिससे उसके सारे शरीर में फफोले पड़ जाते हैं।

आगलस–[यू०] एक प्रकार की बूटी जो गेहूं की तरह होती है। पर इसके फल पर दो तीन पर्दे होते हैं और यह मुलायम होती है। दोसर।

आगलान्त–क्रि० वि० [सं० अव्य०] गले तक। कंठ पर्य्यंत।

आगलित–वि० [सं० त्रि०] अवसन्न। म्लान। मुरझाया हुआ।

आग-वल्या–संज्ञा स्त्री० [सं० आजवल्ल] बन तुलसी। श्वेत बर्बरी। नगुंद। दे० "आजवल्ल"।

आगवाह–संज्ञा पुं० [सं० अग्निवाह=धूम] धूआँ। धूम्र।–डिं०।

आगस्त्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अगस्तिया। वक-पुष्प। अगस्त का फूल।

वि० [सं० त्रि०] अगस्त-मुनि सम्बंधीय।

आगा–संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग] (१) किसी चीज़ के आगे का भाग। अग्र। सामना। अगवाड़ा। (२) शरीर का अगला भाग। (३) छाती। वक्षःस्थल। (४) मुख। मुँह। मुहरा। (५) ललाट। माथा। (६) लिंगेन्द्रिय।

आग़ाज़-दलन–[तु०] सौदानियात ।

आग़ाज़े-मस्ती–[फ़ा] आग़ाज़े शबाब । नौजवानी । यौवनारंभ । युवावस्था का आरम्भ । जवानी ।

आगामि, आगामी–वि० [सं० आगामिन् [स्त्री० आगामिनी] आनेवाला । आगंतुक ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालत्रय । तीनों काल ।

आगामि-तन्तु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Afferent fibre.) ज्ञान तन्तु । केन्द्रगामी तार ।

आगार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) घर । गृह। मंदिर । मकान । अ० टी० । (२) स्थान । जगह । (३) ख़ज़ाना । कोष ।

आगारगोधिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छिपकली । बिस्तुइआ । गृहगोधिका । सु० चि० १ अ० ।

आगार-धूम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गृह-धूम । घर का धूआँ । अरँऊ । काजल । कालिख । झूल-बं० । वै० निघ० २ भ० वा० व्या० त्वक्सुप्तता । (२) दीपक की कालिख । काजल ।

आगार-धूमाद्य-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपदंश नाशक एक प्रकार का तेल जिसे उपदंश पर लगाने से बड़ा उपकार होता है। गृहधूम १ भा०, हल्दी २ भा०, सुराकिट्ट (शराबकी मैल) ३ भा० इनका ३ पल तैल में पकाएँ ।

गुण—उपदंश रोग में उपयोगी है । च० द० उपदंश चि० । वंगसेनके अनुसार इससे शोथ और खाज दूर होती है । वंगसे० सं० उपदंश चि० ।

आगार-लोमिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गृह-लोमिका । ब्राह्मणयष्टिका । बामूनहाटी-बं० । सु० चि० १ अ० । भ० ।

आगि, आगी–संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] आग । अग्नि ।

[श्वेत] लालमिर्च । सुर्ख़मिर्च । फा० इं० २ भ० ।

आगिप्टिशे-इण्डिगोप-फ्लान्ज़े–[जर० Agyptiche-indigop-flanze] एक प्रकार का नीलका पाधा । इं० मे० मे० । दे० 'नील" ।

आगिल–[ता०] चिकरेसिया टेब्युलेरिस । (Chickrassia-Tabularis, *Adr.*) फा० इं० १ भ० ।

आगी-दवण–[गु०] धमासा का एक भेद ।

आगुरव–[बं०] अगर ।

आगुल्फ–वि० [सं० त्रि०] गुल्फ पर्यन्त । टिहुना तक । गट्टा (टखना) पर्यन्त ।

आग़ू–[तु०] कनेर । करवीर ।

आग़ूनी-[तु०] प्यूसी । खीस । पेउँस । पियूष । किलाट ।

आग़ोरस–[फ़ा०] हाऊबेर । अभल । हपुषा । हवुषा ।

आग़्ज़ीमिल-[अं० Oxymel] दे० "आक्सीमेल"।

आग्नाद-[बं०] आकनादि–बं० । बनतिक्तका । (Stephania hernandifolia, *Wall., Wight.*) फा० इं० १ भा० ।

आग़्नीस-[तु०] मेउड़ी । सम्हालू । निर्गुण्डी ।

आग्नेय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोना । स्वर्ण । सुवर्ण । रा० नि० व० १३ । (२) घी । घृत । पाणिनी० । (३) रक्त । रुधिर । खून । हे० च० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अड़ूसा । वासा । वै० निघ० ज्व० लाक्षा तैल । (२) एक प्रकार का देश । (३) उन ज़हरीले कीड़ों की एक जाति जिनके काटने वा डंक मारने से जलन होती है । सुश्रुत में कौंडिल्यक (गड़गुलार), लाल चींटा, भिड़, पतिंगिछया, भौंरा आदि २४ कीड़े इसके अन्तर्गत गिनाए गए हैं !

वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आग्नेयी] (१) पित्तोद्दीपक । क्षुधाजनक । दीपन औषध । (कटु, अम्ल लवण पदार्थ) । पाचक । (२) अग्नि तुल्य । आग की तरह । (३) अग्नि-सम्बन्धी । अग्नि का । आतिशी । (४) अग्नि से उत्पन्न । (५) जिससे आग निकले । जलानेवाला । (६) जो आग लगाने से जल उठे । जैसे–लाह घी, लोबान इत्यादि ।

आग्नेय गिरि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धधकने वाले पर्वत । ज्वालामुखी पर्वत ।

आग्नेय-द्रव्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैद्यक में वे द्रव्य जो उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लघु, रूक्ष, विषद एवं रूप-गुण प्रधान होते हैं, "आग्नेय-द्रव्य" कहलाते हैं ।

गुण—ये शरीर में दाह, पाक, प्रभा, प्रकाश और वर्णकारक होते हैं। च० सू० २६ अ०।

आग्नेय-वायु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्निकोण की वायु। भावप्रकाश के अनुसार यह दाहकारक और रूक्ष होती है। भा०।

आग्नेयी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) घोड़े की शुभ-सूचक छाया अर्थात् चिह्न (लच्छन)। जैसे–"पद्मरागारुणा चैत्रमाग्नेयी परिकीर्तिता।" ज० द०।

वि० स्त्री० [सं०] (१) अग्निकोण। पूर्व और दक्षिण के बीच की दिशा। (२) अग्नि को दीपन करनेवाली औषधि।

आग्र-मास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चीता। चित्रक।

आग्रहायण, आग्रहायणिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अगहन का महीना। मार्गशीर्ष मास। अम०।

आग्रायण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } नवान्न
आग्रायणेष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } भक्षण।
नूतन अन्न का प्रारम्भ। नवशस्येष्टि। आग्रयण। नवान्न का जलसा।

आघट्टक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्त अपामार्ग। लाल चिरचिरा। रा० नि० व० ३। रक्तपुष्प।

आघट्टन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आघट्टित, आघट्टक] [स्त्री० आघट्टना] घर्षण। मर्दन। रगड़। मालिश।

आघर्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आघर्षित] [स्त्री० आघर्षणी=बालों की कूँची] मर्दन। रगड़। मालिश।

आघांट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अपामार्ग। चिरचिरा। चिचड़ी। रा० नि० व० ४।

आघाड़ा-[मरा०, का०] } अपामार्ग। चिरचिटा।
आघाड़ो-[गु०] }

आघात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आघात। धक्का। ठोकर। (२) मार। चोट। प्रहार। आक्रमण। (३) वधस्थान। बूचड़खाना। मक़तल।

आघात-काल–संज्ञा० पुं० दे० "उन्माद"। च० नि० ७. अ०।

आघात-ज्वर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अभिघात जन्यज्वर। चोट से आने वाला बुख़ार। दे० "आगन्तुक ज्वर"।

आघार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घी। घृत। आज्य। हला०।

आघूर्ण-वि० [सं० त्रि०] (१) घूमता हुआ। फिरता हुआ। (२) हिलता हुआ।

आघूर्णन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चक्र की तरह घूमना। फिरना। चक्करखाना।

आघूर्णित–वि० [सं० त्रि०] घूमता हुआ। इधर उधर फिरता हुआ। नाचता हुआ। चकराया हुआ।

आघूर्णित-लोचन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह जिसकी आँखें चढ़ी हों।

आघ्राण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आघ्रात, आघ्रेय] (१) गंधग्रहण। सूँघना। बास लेना। शम्म शाम्मः, शमूम–अ०। (२) तृप्ति। आसूदगी। हे० च०।

वि० [सं० त्रि०] (१) गृहीतगंध। सूँघा हुआ। (२) तृप्त। आसूदा।

आघ्राण-तन्त्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Olfactory nerve) आघ्राण-नाड़ी। अस्बशम्मी, उस्बतुश्शम-अ०।

आघ्राण-देश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Olfactory region) घ्राण-देश।

आघ्राण-बुद्बुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Olfactory bulb) घ्राणार्बुद। ज़ाइदतान–अ०।

आघ्राण-लम्बिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Olfactory lobe) घ्राण-खण्ड।

आघ्राण-शक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Olfactology) घ्राणशक्ति। सूँघने की ताकत।

आघ्राण-शकल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Olfactory cell.) घ्राणज्ञ सेल। कीसतुश्शम-अ०।

आघ्राणार्ह–वि० [सं० त्रि०] गंधग्रहणके योग्य। सूँघने लायक।

आघ्राणीय–वि० [सं० त्रि०] (Olfactory.) घ्राण का। घ्राण सम्बन्धी। शाम्मियः–अ०।

आघ्राणीय-कुल्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Olfactory-groove.) घ्राण प्रणाली। मीज़ाबुश्शम–अ०।

आघ्रात–वि० [सं० त्रि०] (१) शिङ्घित। गृहीत

गंध। सूँघा हुआ। मे०। (२) तृप्त। हे० च०।

आघ्रेय-वि० [सं० त्रि०] (१) सूँघने के लायक। सूँघने क़ाबिल। घ्राण करने योग्य। (२) घ्राणद्वारा ग्राह्य। सूँघा जा सकनेवाला।

आङला-[बं०] आमला। (Phyllanthus emblica.)

आङौन, अङ्गौन-[बर०] [बहु० आङौन-मियाआ, अङ्गौन मियाआ] कली। मुकुल। (Bud) स० फा० इं०।

आङ्कोल-संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] ढेरा। दे० "अङ्कोल"।

आङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोमलांग। मृदु शरीर। कोमल अंग। त्रिका०।

आङ्गम्च-संज्ञा पुं० [?] हराकद्दू।

आङ्गार-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अङ्गार-समूह। अंगार का ढेर। अ० टी० रा०।

आङ्गारः-[फ़ा०] ख़बूज़ा। (Musk melon) इं० हैं० गा०।

आङ्गिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्वत्थ-वृक्ष। पीपल का पेड़। रा० नि० व० ११।

आङ्गिक, आङ्गिकी-वि० [सं० त्रि०] अंग का। अंग सम्बन्धी। शारीरिक। शरीर संबन्धी।

आङ्गिरस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देवगुरु। बृहस्पति।

आङ्गुएण्टम्-[ले० Unguentum] अनुलेपन। दे० "अङ्गुएण्टम्"।

आङ्गुरिक, आङ्गुलिक-वि० [सं० त्रि०] उँगली जैसा। उँगली की तरह। उँगली का सा।

आङ्गुल-संज्ञा पुं० [बं०] अंगुली। (Finger.) वि० [सं० त्रि०] उँगली संबन्धी।

आङ्गुलीया-धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Digital artery.) उँगलियों को पोषण करनेवाली धमनी। उँगली की धमनी।

आङ्गुलीया-नाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उँगली की नाड़ी। (Digital nerve.)

आङ्गुलीया-शिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उँगली की शिरा।

आङ्गुष्ठि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंगुरीयक। आँटी।

आङ्गूर-[बं०] अंगूर। दाख। द्राक्षा। (Vitis-vinifera.) दे० "अङ्गूर"।

आच-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आल। आच्छुक-पुष्प-वृक्ष। (Morinda tinctoria.)

आच-[बं०] आल। आच्छुक। मोरिण्डा साइट्री फोलिया (Morinda-Citrifolia.) मेमो०।

[नेपा०] अर्जुन-भव०। (Terminalia Arjuna.)

[ता०] अञ्जन। छोटा दुधेरा-(गोण्डा)। मे०। (Hardwickia Binata, *Roxb.*)

आचमन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आचमनीय, आचमित] (१) ह्रीवेर। नेत्रवाला। सुगंधबाला। (२) भोजनोपरांत मुख धोना। आचमन करना। शुद्धि के लिए मुँह में जल लेना। कुल्ला करना। (३) विधि विशेष से थोड़ा पानी पीना। मद० व० ३।

आचमनक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीकदान। निष्ठीवनपात्र। निष्ठीवन सराव। थूकदान। उगलदान। (Spittoon.)

आचमित, आचान्त-वि० [सं० त्रि०] आचमन किया हुआ। कृताचमन।

आचरण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आचरणीय, आचरित] (१) व्यवहार। आचार। चाल-चलन। (२) अनुष्ठान। (३) आचार-शुद्धि। सफ़ाई। (४) चिह्न। लक्षण।

आचाम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आचमन। श० र०। (२) भक्त। मण्ड। भात का माँड़। रत्ना०। दे० "माँड़"। (३) भात। ओदन। भक्त।

आचामनक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटकोल। पीकदान। निष्ठीवन-पात्र। (Spittoon.) संस्कृत पर्याय—प्रोण्य। कठकोल। पतद्ग्रह (हा)। हारा०।

आचार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सदाचरण। व्यवहार। चरित्र। विधान। शुद्धता। शील। जैसे—

"मैत्रीसद्भिः समं कुर्य्यात् स्नेहं सत्सु च सर्व्वथा।
संसर्गं साधुभिः कुर्य्यादित्यादि।" भा०।

(२) एक प्रकार की खटाई । अचार । (Pickles.)

संज्ञा पुं० [सं० चारः] चार-पियार । प्रियाल । चिरौंजीका वृक्ष । पियाल । (Buchanania Latifolia.)

आचार-वल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } चिरौंजी
आचार-वृक्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } का वृक्ष।
चार प्रियाल । पियाल ।

आचारिय-पलवे-[सिं०] कौंच । केवाँच ।

आचारी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हिलमोचिका । गुण—यह शोथ, कुष्ठ और कफ-पित्तनाशक है । भा० पू० १ भ० ।

वि० [सं० आचारिन्] [स्त्री० आचारिणी] शास्त्रीय आचार रखनेवाला । शास्त्र के अनुसार चलनेवाला । शुद्ध आचरण रखनेवाला । शुद्ध आचार का । आचारवान ।

आचार्य परीक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शास्त्रोक्त विशेष लक्षणों द्वारा आचार्यकी पहिचान । आचार्य के योग्यायोग्य होनेका शास्त्र-विधानानुसार जाँच । चरक में योग्य आचार्य के निम्न गुण दिए हैं—पर्यवदातश्रुत (वैद्यक शास्त्रके उपदेशों को जो अच्छी तरह सुना हो), परिदृष्टकर्मा (प्रत्येक वैद्यक सम्बन्धी कर्मोंको देखा हुआ), दक्ष (चतुर),दक्षिण (उदार स्वभाववाला), शुचि (पवित्र),जितहस्त (शस्त्रादि कर्म करनेमें स्थिरतापूर्वक हाथ रखने वाला अथवा यशी),उपकरणवन्त (जिसके पास हर प्रकारकेउपादान प्रस्तुत हों), सर्वेन्द्रियोपपन्न (जिसकी इन्द्रियाँ विकारशून्य हों), प्रतिपत्तिज्ञ (कर्तव्यका जाननेवाला), उपस्कृत विद्य(शास्त्रोक्त विधियों का जाननेवाला), अहंकार रहित, अनसूया(अछिद्रान्वेषी), अकोपनं (कोपसे रहित), क्लेशक्षमं (कष्ट सहन की क्षमता प्राप्त), शिष्य वत्सल (शिष्य पर प्रेम रखनेवाला, अध्यापकीय ज्ञान से परिपूर्ण) इस प्रकार के प्रत्येक गुण आचार्य में होना चाहिए । अर्थात् जिस प्रकार मेघ वृष्टि करके क्षेत्रस्थ पौधों को तृप्त कर देते हैं उसी प्रकार आचार्य अपने उत्तम शिष्य को विद्याओं से तृप्ति करनेवाला होना चाहिए । च० वि० ८ अ० ।

आचित-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] प्राचीनकाल का एक मान जो १० भार वा २५ मनका होता था । अम० । द्वयुतपल । दो अयुतपल अर्थात् २0000 पलकी एक तौल । "पलानामयुतद्वये"। मे० तत्रिके ।

आची-[ता०] अरलू । सउना । । खकटर (Oroxylum indicum.)

आची-कच्छी-संज्ञा स्त्री० [देश०] Penreedgrass. (Saccharum sara.)नरकट । नरसल । शर—सं० ।

आचीन-संज्ञा पुं० [देश०]गुलाचीन । (Plumeria Acuminata.)

आचु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आल । आच्छुक वृक्ष । आच फुलेर गाछ—बं० । (Morinda citrifolia.) भैष० कन्दर्पसार तैल ।

आचूतन-कर्म-संज्ञा पुं० [सं० आश्च्योतन+कर्म] आश्च्योतन—सं० । दे० "आश्च्योतन" ।

आचूषण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चूसनेकी क्रिया वा भाव । (Absorption.) । (२) शरीरके रक्त चूसने की सींगी । (३) सींगी लगाना । (४) अभिशोषण (Absorbing.) इम्तिसास़—अ० ।

आचूषक, आचोषक-वि० [सं० त्रि०](Absorbent.) चूसनेवाला । अभिशोषक । मुनश्शिफ़, जाज़िब—अ० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिद्ध । उक़ाब । गीध । गृध्र ।

आचोट- संज्ञा स्त्री० (१)आघात । क्षत विक्षत । घाव । (२)अनाकृष्ट । बिना जोती हुई ज़मीन ।

आच्-[बं०] } आल ।
आच्छक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } आच्छुक।
रंजन-द्रुम । (Morinda tinctoria.) र० मा० ।

आच्छन्न-वि० [सं० त्रि०] (१) आच्छादित । ढँका हुआ । आवृत्त । (२) छिपा हुआ । तिरोहित ।

आच्छाक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नीलका सा एक पौधा जिससे लाल रंग बनता है । आल । (Morinda tinctoria.)
पर्य्या०—रंजन द्रुम । पत्रीक । पत्रिक । आच्छिक ।

आच्छाद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कपड़ा। वस्त्र। (२) आवरण। पर्दा।

आच्छादक-वि० [सं० त्रि०] आवरणकर्त्ता। ढाँकनेवाला। जो ढाँके। छिपानेवाला। आवरक। आच्छादनकर्त्ता।

आच्छादन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आच्छादित, आच्छिन्न] (१) कपास। कार्पास। (२) वस्त्र। कपड़ा। रत्ना०। (३) ढँकना। आवरण। पिधान। मे० नवतुष्क।

आच्छादन-फला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाल-कपास। कार्पासी। रक्त कार्पास। देवकपास। नि० शि०।

आच्छादनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] देवकपास। नर्मा। कार्पासी। गण नि०।

आच्छादित-वि० [सं० त्रि०] (१) ढँका हुआ। आवृत्त। (२) ढाँका हुआ।

आच्छाद्य-वि० [सं० त्रि०] आच्छादनीय। ढाँकने योग्य। आवृत्त करने योग्य।

आच्छिन्न–वि० [सं० त्रि०] छिन्न किया हुआ। काटा हुआ। छेदा हुआ।

आच्छु–[बं०] आल। आच्छुक।

आच्छुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आल। आच्छुक। दे० "आल"।

आच्छे-गिडा–[कना०] दुद्धी। दुधिया। सुर्ख़ दुद्धी। रक्तबिन्दुच्छदा। (Euphorbia pilulifera.)

आाच्छोटन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आच्छोटित](१) चुटकी बजाना। (२) उँगली चटकाना। उँगली फोड़ना।

आच्छोदन–संज्ञा० पुं० [सं० क्ली०] शिकार। अहेर। मृगया। आखेट। अम०।

आछी–संज्ञा स्त्री० [सं० आच्छुक] एक प्रकार का बाँस।

[ग़ाज़ीपुर]–एक प्रकार का वृक्ष जो ऊँचाई में लिसोड़े से छोटा, लगभग ७-८ फुट ऊँचा होता है। पत्ता लिसोड़े की तरह और फल अण्डाकार हरे रंग के होते हैं। वहाँ के लोग इसे ज़हर समझते हैं। ग़ाज़ीपुर में प्रसिद्ध है।

–[देश०] आल। आच्छुक।

वि० [सं० आशिन्] खानेवाला। भक्षक।

आछु–[बं०] आल। आच्छुक। फा० इं० २ भ०।

आछोटण–संज्ञा पुं० [सं० आच्छोदन=मृगया] शिकार। आखेट। अहेर।–डिं०।

आज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) घी। घृत। जटा०। (२) बकरी का घी। च० चि० र० पि०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिद्ध। उक़ाब। गीध। गृध्र।

आ़ज–[अ०] हाथी-दाँत। हस्ति-दन्त।

आजक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) घी। घृत। जटा०। (२) बकरी का घी। छागघृत। च० चि० र० पि०। (३) बकरियों का झुण्ड। छाग समूह।

आज़ख़–[फ़ा०] मस्सा। सो़लूल–अ०। (Mole, wart.)

आ़ज़ः–[अ०] सुगन्धित अरिष्ट।

आज घृत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नेत्ररोग में प्रयुक्त योग, यथा—छागघृत, दुग्ध, कमल, जीवक, ऋषभक, मेदा समान भाग ले कल्क बना यथाविधि घृत सिद्ध कर रक्खें। गुण—इसे नेत्र में लगानेसे नेत्र के प्रत्येक रोग दूर होते हैं। बंग से० सं० नेत्र रो० चि०।

आजन–संज्ञा पुं० [सं० अञ्जन] (१) कज्जल। दे० "आँजन"। (२) एक प्रकारकी चिड़िया।

आज-नवनीत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बकरी के दूध से निकाला हुआ नैनू। बकरी का मक्खन। गुण—मधुर, कसैला, त्रिदोषनाशक, आँख के लिए हितकारी, दीपन तथा बलकारक है। रा० नि० व० १५। ताज़ा नैनू—क्षय और खाँसी को दूर करनेवाला, बलकारक, नेत्ररोग नाशक, कफनाशक और दीपन है। अत्रि० ८ अ०।

आजन्म-क्रि० वि० [सं० अव्य० आजन्मन्] जन्मावधि। जन्म भर। जीवन भर। ज़िंदगी भर। आजीवन। जब तक जीये तब तक। उम्रभर।

आजन्म-सुरभि-पत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मरुवक वृक्ष। मरुना। नागदौना।

आजन्म-सुरभि-पत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(१) मरुवक वृक्ष। मरुवा। नागदौना। गन्ध तुलसी। नागदना–बं०। (Origanum marjorana, *Linn.*) रा० नि० व० १०। (२) जम्बीर। जम्बीरी नीबू।

आजमनु-पत्री–[गु०] पञ्जीरी का पत्ता। पञ्जीरी का पात। इन्दुपर्णी। आजपद। उत्पन्न भेद-सं०।

आजसुनु-पात्रो–[गु०] पञ्जीरी का पात। सीता की पञ्जीरी–हिं०। पञ्जारी का पता, अजवान का पत्ता-द०। (Anisochilus carnosus. *Wall.*) स० फा० इं०।

आज-मूत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बकरी का मूत्र। बकरेका पेशाब। छाग-मूत्र। (Goat's urine) म० द० व० ८।

आजमूद–[बं०] अजमोदा। Apium involucratum. *Roxb.* (fruit of–)

आजमूदह्–[द०]
आजमूदह्–अजवान [द०]
आजमूदा–[द०]
आजमुदा–[द०]
अजमोदा। Apium involucratum, *Roxb.* (fruit of–)

स० फा० इं०।

आज़मूदा–वि० [फ़ा०] आज़माया हुआ। परीक्षित।

आजमोदा-चोमा [कना०] आजमोदा। Apium involucratum, *Roxb.* (fruit of–)

आज़रगून–[फ़ा०] आज़र्यून। सूर्यमुखी। सूरजमुखी। Helianthus annus, *Linn.* (Seeds of–)

आज़रवास–[इब्रा०] साफ़्सिया।

आज़रबू–[फ़ा०] एक बूटी की जड़ जो ऊनी वा सूती कपड़ों की मैल साफ़ करने में काम आती है। किसी किसी के मत से यह कुन्दश का एक भेद है। कोई कोई अर्तनीसा को भी कहते हैं।

आज़रयून–[मुअ०] सूरजमुखी। Helianthus annus, *Linn.* (Seeds of–) स० फा० इं०। म० अ०। मु० आ०।

आज़रयून:–(मुअ०] एक बूटी जो अग्नि के समान कान्ति रखती है। किसी किसी के मत से इसकी जड़ का सिर्यानी (शामी) नाम अर्तनीसा और फ़ारसी नाम गुलेमशो है।

आजरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बकरी की यख़नी। बकरे के मांस का काढ़ा। छाग मांस-रस। बकरी के मांसका रस। च० द० यक्ष्म०।

आज़रसर–[फ़ा०] हाऊबेर। अभल। हवुषा। हपुषा (Juniperus Communis.)

आज-वला–[मरा०] वन तुलसी। (Wild-basil.

आज-वल्ल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वन-तुलसी। जंगली तुलसी। राम तुलस भेद–मरा०। श्वेत बर्बरी–हिं०। आजवला–देश०।

गुण—वन तुलसी कटु, उष्ण, शीतल, दाहकारक, प्रिय, रूखी, रुचिकारक, दीपक और हलकी होती है तथा इसका विपाक पित्तकारक होता है। तिक्त, मधुर, सुख से प्रसव करानेवाली, रंग को निखारनेवाली, वायु नाश करनेवाली तथा कफ और नेत्र रोगों को हरण करनेवाली है। मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, विष, कामला, कुम्भकामला, आनाह, वातशूल, अग्निमान्द्य, कुष्ट, विष एवं कृमि, रक्त-दोष, श्वास तथा कास, दद्रु, हृदय तथा पसली के शूल और ज्वरों को, कण्डू (खाज), कुष्ट तथा वमन को नष्ट करती है। सुगंधाजवल्लः (सुगंध वनतुलसी) को कटु, उष्ण तथा तृप्तिकारक कहा है और यह पित्तकारक, निद्राजनक, वमन व वातनाशक, ग्रह-बाधा, पार्श्वशूल (पसली का दर्द), कास-श्वास तथा कफ को जीतती है और सूजन तथा शरीर की दुर्गंध को नष्ट करती है। वै० निघ०। वि० दे० "तुलसी"।

आजवैन–[बं०] अजवाइन। स० फा० इं०।

आजक्षीर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बकरी का दूध। छाग दुग्ध। (Goat's milk)।

गुण—बकरी का दूध गुण में गाय के दूध के समान तथा ग्राही, दीपन, लघु, क्षय, अर्श, अतिसार, रक्तप्रदर, श्रम और ज्वरनाशक है। यह समस्त रोगों का नाश करनेवाला है। मद० व० ८। बकरी का दूध कसैला, मधुर, शीतल, ग्राही, तथा लघु है और पित्त एवं क्षय रोग नाशक है। कामज्वर तथा रक्तातिसार के रोगियों के लिए हितकारक और तीनों दोषों को जीतनेवाला है। अत्रि० ८ अ०। वा० टी० हेमा०।

आज़ाए-रईसा-[अ०] उत्तमांग । दे० "अअ्ज़ाए रईसः" ।

आज़ाडिरेक-डी-इण्डी-[फ्रां० Azadirac d' Inde] नीम । निम्ब । फा० इं० १ भ० ।

आज़ाडिरेक्टा-इण्डिका-[ले० Azadirachta Indica, *Juss.*] नीम । अरिष्ट । निम्ब । (Indian lilac) फा० इं० १ भ० । इं० मे० मे० । स० फा० इं० । इं० मे० प्लां० ।

आज़ाद दरख़्त-संज्ञा पुं० [फ़ा०](१)बकाइन । महा निम्ब । Persian Lilac (Melia azedarach, *Linn.*) मु० आ० । म० अ० । फा० इं० १ भ० । स० फा० इं० । इं० मे० प्लां० । इं० मे० मे० । (२) सरो ।

आज़ाद-दरख़्त-हिन्दी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] नीम । निम्ब । अरिष्ट । Indian lilac (Melia Azadirachta, *Linn.*) मु० आ० । म० अ० ।

आज़ाद-दारू-संज्ञा पुं० [फ़ा०] पहाड़ी-चुकंदर । (Wild beat.)

आज़ान-[अ० उज़्न का बहु०] कान । कर्ण ।

आजानु-वि० [सं० अव्य०] घुटने तक लम्बा । जाँघ पर्यन्त । जानु अवधि ।

आज़ानुत्तीस-[अ०] हय्युलआलम का एक भेद । क़ोतूलीदून (स) और ग़ोतूलीदून इसके यूनानी नाम हैं ।

आज़ानुद्दुब-[अ०] बूसीर और लसीक़ी की तरह की एक बूटी है, जिसे क़ुलूमस भी कहते हैं ।

आजानु-बाहु-वि० [सं० त्रि०] घुटने तक लम्बी भुजावाला ।

आज़ानुल्-अ़नज़-[अ०] मिज़्मारूर्राई ।

आज़ानुल्-अर्नब-[अ०] बारतंग की तरह की एक बूटी जिसके पत्ते बारतंग के पत्ते की तरह; किन्तु उनसे छोटे होते हैं । गावज़ुबान के पत्ते की तरह उन पर सफ़ेद-सफ़ेद बिन्दु होते हैं और इसके फूल तीसी के फूल की तरह होते हैं । खुरदरा होने के कारण इसके बीज कपड़ों में चिपट जाते हैं । कोई-कोई इसे स.लक़ भी कहते हैं । आज़ानुश्शात, आज़ानुल् ग़ज़ाल ।

आज़ानुल्-क़सीस-[अ०] दे० "क़ोतूलीदून" ।

आज़ानुल्-ग़ज़ाल-[अ०] बारतंग की तरह की एक बूटी ।

आज़ानुल्-जदी-[अ०] एक प्रकार का बड़ा बारतंग ।

आज़ानुल्-फ़ार-[अ०] चूहाकानी । मूसाकानी । (Salvinia cucullata.)

आज़ानुल्-फ़ील-[अ०] (१) कोफ़ कर्बार । किसी-किसीके मतसे सागौनका पत्ता । (२) राकसगड्डः । (Bryonia Epigæa.) इसकी जड़ का मलहम पुरातन सन्धिवात को दूर करता है । इं० हैं० गा० ।

आज़ानुश्शात-[अ०] दे० "आज़ानुलअर्नब" ।

आज़ानु..स्स.ौर-[अ०] एक प्रकार का गावज़ुबान ।

आजानेय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोड़े की एक जाति जो उत्तम मानी जाती है । कुलीन अश्व । अच्छी जाति का घोड़ा । हे० च० ।

"शक्तिभिर्भिन्नहृदयाः स्खलन्तोऽपि पदे पदे ।
आजानन्ति यतः संज्ञामाजानेयास्ततः स्मृताः"॥
शालिहोत्रः ।

आज़ार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बीमारी । रोग । व्याधि । विकृति (२) दुःख । कष्ट । तकलीफ़ ।

आज़ारे-तल्ख़ः [फ़ा०] पांडु-रोग । (Jaundice.)

आजुर-[अ०] ईंट । (Brick)

आ.ज़ु.र, आ.ज़ु.रः-[अ०] पायख़ाना । मल । विष्ठा ।

आज़ोकेरीन-संज्ञा पुं० [अं० Ozokerine] मृदु पैराफ़ीन तथा वेज़ेलीन के व्यापारिक नाम । दे० "पेट्रोलियम्" ।

आज्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) घी । घृत । सर्पि । रा० नि० व० ९ । (२) श्रीवास । तारपीन का तेल । शब्द कल्प० ।

आज्यप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घृत भोजी ।

आज्यपात्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घी का बरतन । घियाँड़ा । आज्यस्थाली ।

आज्यभुक् ज्)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि । आग ।

आझर-[आसा०] अर्जुना । जेरूल-बं० ।

आञ्जिनेय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का जन्तु । आउनाइ । आञुनि-बं० । आँजनो । श० मा० ।

आटन–संज्ञा पुं० [अं० Autan] पैराफार्म और परआक्साइड आफ़ बेरियम् के मिश्रण का व्यापारिक नाम जो कमरों की शुद्धि हेतु काम में आता है। दे० "पैराफ़ार्म"।

आटरुष, आटरूष, आटरूषक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वासक क्षुप। अडूसे का पेड़। छोट-वासक। मधुवासक या वासन्ती-बं०। अडुलसा-मरा०। Justicia adhatoda., Adhatoda vasica। र० नि० व० ४। भा० पू० १ भ०। सि० यो० र० पि० चि० स्तम्भन योग। "आटरुषक निर्व्यूहे"। "राजवृक्षाटरूषकैः"। सि० यो० ज्वर०। दे० "अडूसा"।

आटरूषादिकषाय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक कषाय औषध। योग यह है—(१) अडूसा, सिरस की छाल, असगंध और पुनर्नवा इनके बनाए हुए काढ़ा में दूध पकाकर पीने से राजयक्ष्मा का नाश होता है। वृ० नि० र० क्षय चि०।

नोट—यहाँ बकरी का दूध लेना चाहिए। (२) अडूसा, पित्तपापड़ा, नीमकी छाल, मुलहठी, धनियाँ, नागरमोथा, सोंठ, देवदारु, वच, इन्द्र जौ, गोखरू और पीपलामूल। इनका यथाविधि क्वाथ-कर पीने से सन्निपातज्वर, श्वास, अतिसार, खाँसी, शूल और अरुचि का नाश होता है। वृ० नि० र० सन्निपा० चि०।

आटलौटकम्–[मल०] अडूसा (Adhatoda Vasica) फा० इं० ३ भ०।

आटविक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वनमानुष। जंगली आदमी।

वि० [सं० त्रि०] वन्य। जंगली।

आटवीमूलक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गृञ्जन।

आटा संज्ञा पुं० [सं० आर्द=ज़ोर से दबाना] (१) पिसान। किसी अन्न का चूर्ण। चून। (२) किसी वस्तु का चूर्ण। बुकनी।

आटि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } शरारि पक्षी।
आटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } शरालि पक्षी।
टिटिहरी। शराल पाख–बं०। बगली–पक्षीण–मर०। The sarali, a bird so called (Turdus ginginianus.) मद० व० १३। दे० "आड़ी"।

आटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] डाट। रोक। टेक।

आटीकर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बैल। वृष। वृषभ। बर्धा। (A bull.) वै० निघ०।

आटीमुख, आटीवदन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुश्रुत में व्रण चीरने का एक नश्तर जो शरारि पक्षी के मुख का सा होता है। जैसे—

"सूचीकुशपत्राटीमुखशरारीमुखेत्यादि विंशति शस्त्र गणनायाम्।" सुश्रुत

आटु-तिरण्डाप्पाल–[मल०] कीड़ामार। गन्धान। (Aristolochia Bracteata, *Retz.*) स० फा० इं०।

आटो आफ़ रोज़–संज्ञा पुं० [अं० Otto of rose] Oil of rose. गुलाब का इत्र। दे० "गुलाब" वा "रोज़ी ऑलियम्"।

आटोप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पेट की गुड़गुड़ाहट। उदर में वेदनायुक्त गुड़ गुड़ शब्द होना। दर्द के साथ पेट की गुड़गुड़ाहट। यह वायु जन्य होता है। जैसे-"आटोपो गुड़गुड़ा शब्दः प्रोक्तोजठर सम्भवः"। भा०। मा० नि०। अन्यच्च—

"आमाटोपापचि श्लेष्मगुल्मे क्रिमिविकारिणाम्।"
सुश्रुत।

(२) आडम्बर। विभव। (३) आच्छादन। फैलाव। (४) फलन। सूजन।

आटोफेन–संज्ञा पुं० [अं० Atophan] फेनिल सिङ्कानानक एसिड (Phenyl Cinchoninic acid), फेनोक्वीन (Phenoquin)। इसमें युरिकाम्लीय (Uric acid) स्राव के बढ़ाने की शक्ति होती है। यह किञ्चित् विलेय है। इसको २५ ग्रेन की मात्रा मे दिन में तीन बार प्रयोग में लाते हैं। ड्यूश (Dutsh) महोदय तथा जार्ज्युस्की (Georgiewski) महोदय के कथनानुसार उग्र आमवात एवं अन्य सन्धिवात संबन्धी विकारों में इसका उत्तम प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त पैराटोफेन (Paratophan), आइसाटोफेन (Isatophan) तथा नोवाटोफेन (Novatophan) नामक औषधियाँ भी हैं, जो उतनी ही मात्रा में व्यवहार में आती है। इनमें से नोवाटोफेन स्वादरहित होने से अधिक पसन्द किया जाता है। ह्वि० ट० मे० मे०।

आट्टोप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक रोग जिसमें पेट की नसें तन जाती हैं। (२) पेटकी नसों का तनाव।

आटड़पाल–[मल०]
आट्ड़पालै–[ता०] } पानीजमा। जलजमनी। जमती की बेल। जमती का पत्ता–द०। (Salix Tetra sperma, *Roxb.*) स० फा० इं०।

आट्टु-शवुक्कुमरम्–[ता०] झाऊ। गज़–फ़ा०। (Tamarix Gallica) स० फा० इं०।

आट्युनाइट–[अं० Autunite] कैल्शियो-फास्फेट। दे० "युरेनियम्"।

आठ-खट्टा–संज्ञा पुं० दे० "अष्टाम्ल वर्ग"।

आठ-गठिया–संज्ञा पुं० [हिं० आठ+गाँठ+इया (प्रत्य०)] दे० "अठगठिया शाक"।

आठ मूत्र–संज्ञा पुं० दे० "अष्टमूत्रम्"।

आठिल–संज्ञा पुं० [हिं० आठ+इल (प्रत्य०)] एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष जो नीबू के क़द का होता है। इसकी पत्तियों को मठे के साथ पीसकर पिलाने से मवेशियों का तिलबढ़ (प्लीहोदर) नामक रोग नष्ट होता है। कहते हैं कि इसकी छड़ियाँ बनाकर धारण करने से अपरस दूर होता है।

आड़ (र)–संज्ञा पुं० [सं० अल=डंक] बिच्छू वा भिड़ आदि का डंक।

[बं०] एक प्रकार की मछली। आड़माछ–बं०।

आड़क–संज्ञा पुं० [देश०] (१) महुआ। (२) कटहल। (३) बड़हल। (४) ताड़। ता० श०।

आड़गीर–संज्ञा पुं० [हिं० आड़+फ़ा० गीर] खेत के किनारे की घास।

आडटोड–[सिं०] अडूसा। आटरूष। वासक। स० फा० इं०।

आडटोडे–[ता०]
आडाटोडै–[ता०]
आडटोड–[सिं०] } दे० "अडूसा"। (Adhatoda vasica.)

आडम्बर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आडम्बरी] (१) पलक। आँख की पलक। नेत्रच्छद। चकेर-पाता–बं०। (२) आच्छादन (३) बरौंधी। अक्षिलोम।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली] शरीर का मर्द्दन। जिस्म की मालिश।

आडसोगे–[का०] (Adhatoda vasica.) दे० "अडूसा"।

आड सोगे-सप्पु–[कना०] अडूर। दे० "अडूसा"।

आडा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अनाज। ग़ल्लाभेद।

आड़ा–[व०] [स्त्री० आड़ी] (१) व्यतस्त। आँखों। के समानांतर दाहिनी ओर से बाईं ओर को वा बाईं ओर से दाहिनी ओर को गया हुआ। (Oblique.) (२) वार से पार तक रक्खा हुआ। (३) तिरछा। वक्र।

आडापाकु–[ते०]
आडासार–[ते०] } दे० "अडूसा"।

आड़ि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) एक जल पक्षी, जिसको शरालि भी कहते हैं। यह गिद्ध की तरह का होता है। शरारि। शराटि। शराल-पाखी–बं०। A bird, the sarali (Turdus ginginianus.)। मद० व० १२। (२) एक प्रकार की मछली। आड़ माछ–बं०। आड़ी मछली। गुण—गुरु, स्निग्ध, वात और श्लेष्म प्रकोपक, बलकारक तथा शुक्र, मेधा और अग्निवर्द्धक है। राज०।

आड़िक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरारि पक्षी।

आड़िका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरालि पक्षी। शराल-पाखि–बं०। गुण—आड़ी वातविकार तथा कासनाशक, बल्य, वृष्य और दीपन है। अत्रि० २२ अ०। दे० "आड़ि"।

आडियालु–[ते०] चन्द्रसूर। हालिम। चनसुर। (Lepidium sativum, *Linn.*)

आड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
आड़ीकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } शरालि पक्षी। शराल पाखि–बं०। The sarali (Turdus ginginianus.) मद० व० १२।

आड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० आड़ा] (१) एक प्रकार का स्वर। (२) रक्षक (Protector.)।

वि० पड़ी। बेंड़ी।

आडीकाकरा–संज्ञा पुं० [?] चन्द्रसूर। Lepidium sativum (Seeds of. –) स० फा० इं०।

आडु-तिणा-पालै–[ता०] कं.डामार। (Aristolochia Bracteata, *Retz.*) स० फा० इं०।

आडु-सुन्नु–[पं०] दे० "आड़ू" ।

आड़ू–संज्ञा पुं० [सं० अंड अथवा आलु] आड़ू । शफ़्तालू–फ़ा० । ख़ौख़–अ० । ग़ब्रेश्ताई–अफ़्० । औड़, चिनन्नू, आड़ू सुन्नू, फ़सूनू, अड़ुई, शमनानू, बेमबेमी, कठरती, मुंडल, आड़ू–पं० । टक्यो, तरकंस–लेप० । प्रूनस पर्सिका Prunus Persica, *Benth. & Hooker.*, एमिग्डलस पर्सिका Amygdalus Persica, *Linn.*, पाइजियम् पर्सिका Pygeum Persica. (ले०) । पीच Peach (अं०) ।

संज्ञा-निर्णायक नोट—शफ़्तालू वास्तव में आड़ू की ही जाति का एक भिन्न फल है, जिसे हिंदी में 'सतालू' कहते हैं । इसका फल आड़ू से बड़ा और मीठा होता है । परंतु आड़ू खट्टापन लिए होता है । शफ़्तालू को अरबी में ख़ौख़ कहते हैं और इसी नाम से 'मख़्ज़नुल् अद्विय:' एवं 'मुहीत आज़म' प्रभृति यूनानी वैद्यकीय निघण्टुओं में इसका वर्णन आया है । वि० दे० "शफ़्तालू" वा "सतालू" ।

वाताद वा गुलाब वर्ग

(*N. O. Rosaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान तथा वानस्पतिक वर्णन—इसके वृक्ष सतालू के पेड़ की तरह होते हैं । यह फ़ारस तथा देहरादून, हिमालय की तराई आदि भारतवर्ष के शीत प्रधान देशों में बहुत होता है । इसका फल खटमीठा होता है और दो प्रकार का होता है—एक चकैया और दूसरा गोल ।

प्रकृति-दूसरे दर्जे में सर्द एवं तर । किसी किसी ने पहिली कक्षा में सर्द लिखा है ।

हानिकारक—ज्वरोत्पादक है, शीघ्र सड़ जाता है और वात एवं कफ प्रकृति के लोगों को हानिकारक है । दर्पघ्न–शहद और अदरख का मुरब्बा और सोंठ इत्यादि । प्रतिनिधि-अमरूद और आड़ू का दूसरा भेद (शफ़्तालू) । किसी किसी ने किशमिश लिखा है । मात्रा–१० नग । शर्बत की मात्रा–(वयस्क) ४ से ६ मा० तक शक्ति के अनुसार । (साधारण) २ से ३ मा० तक आवश्यकतानुसार ।

गुण, कर्म, प्रयोग—गुरु तथा दीर्घपाकी (मुहीत आज़म, तालीफ़ शरीफ़ी), मादे को नरम करता तथा प्यास, रक्तोष्मा और गरम-ख़ुश्क वाष्पों को प्रशमित करता है । ज्वर, शुद्ध रक्त, एवं पैत्तिक ज्वर के लिए उपयोगी है और उष्ण प्रकृति को) क्षुधावर्द्धक तथा कामोद्दीपक है । दो माशे इसका फूल गर्भपात के लिए पर्याप्त है । इसके बीज का तेल कर्णशूल एवं बाधिर्य के लिए गुणकारी है । इसके पत्तों को पीने तथा लगाने से मेदे के कीड़े मर जाते हैं ।

प्रकृति को कोमल करता, मस्तिष्क को ठंढा रखता और सौदावी प्रकृति को आर्द्र करता है । मुँह की दुर्गंधि का नाशक और उग्र प्रदग्ध दोषों (अख़्लात) का अपहरणकर्त्ता है । दो औक़िया (५ तो० ७॥ मा०) इसके पत्तों का निचोड़ा हुआ पानी पीने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं । पेड़ू पर पत्तों का लेप करने से केंचुए निकल जाते हैं । इसका फूल मस्सों को दूर करता है । इसकी गुठली बवासीर के दर्द को दूर करती है और कान का दर्द एवं बहरापन दूर होता है । (बुस्तानुल् मुफ़्रिदात)

फल स्निग्धतासंपादक, स्कर्वीहर (Antiscorbutic) और आमाशय बल्य वा पाचक (Stomachic) रूप से व्यवहार में आता है ।

पंजाब-निवासी इसके फल को उदरीयकृमि एवं केंचुओं में उपयोगी बतलाते हैं । (बेलफ़ोर)

फूल विरेचक है । (इं० मे० प्लां०)

परिपक्वावस्था में फल में बहुल परिमाण में शर्करा एवं निर्यास होता है और यह अत्यन्त सुस्वादु होता है । यह कोष्ठमृदुकर और सरलतापूर्वक पचनीय होता है । इसकी गिरी कड़ुए बादाम की उत्तम प्रतिनिधि है । पत्तियों का काढ़ा कोष्ठमृदुकर (Laxative) उदरीय कृमिनाशक और अवसादक (Sedative) है । इसके फल से एक प्रकार की शराब चुआई जाती है जिसे 'आड़ू की शराब' (Peach-brandy)' कहते हैं । (इं० मे० मे० पृ० ७२८)

हकीम मुहम्मद शरीफ़ ख़ाँ के अनुसार यह शफ़्तालू की जाति का ही एक वृक्ष है । यह शफ़्तालू की अपेक्षा कुछ खट्टा होता है और किंचिद् गुरु एवं चिरपाकी है । (तालीफ़ शरीफ़ी)

नोट—आयुर्वेदोक्त गुण-धर्म के लिए दे० "आरुक (१)" ।

आडेलि–[ते०] चन्द्रसूर । स० फा० इं० ।

आढ़–संज्ञा स्त्री० [सं० आढ़ि] एक प्रकार की मछली। (A kind of fish.)।

संज्ञा पुं० [सं० आढ़क] चार प्रस्थ अर्थात ४ सेर की एक तौल। आढ़क।

आढ़क–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] (१) एक प्रकार का शमी धान्य। अरहर। आढ़की। टॉर। रहर। (Cajanus indicus) प० मु०। (२) एक तौल जो ४ सेर के बराबर होती है। चार प्रस्थ। यथा—'चतुः प्रस्थमाढ़कम्'। (३) ४ पुष्कल। यथा—

"पुष्कलानि तु चत्वारि आढ़कः परिकीर्तितः"

८ मुष्टिका एक कुञ्चि, ८ कुञ्चिका एक पुष्कल और ४ पुष्कल का एक आढ़क होता है। यथा—

"अष्टमुष्टिर्भवेत् कुञ्चिः कुञ्चयोऽष्टौतु पुष्कलम्।
पुष्कलानि चचत्वारि आढ़कः परिकीर्त्तितः ॥"इति

मतांतर से १२ प्रसृति का १ कुड़व, ४ कुड़व का १ प्रस्थ और ४ प्रस्थका १ आढ़क होता है। सुश्रुत में लिखा, स्वर्णादि तौलने का आढ़क २५६ पल का होता है। पर्याय०–भाजन, पात्र, कांसपत्र, चतुःषष्टि-पलम्। भा०। (४) अन्न नापने का काठ का एक बरतन जिसमें अनुमान से ४ सेर (८ शराव) अन्न आता है। पायली।

आढ़क–[?] तालपर्णी।

आढ़का–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सुराष्ट्रज आढ़की विशेष। टमुर–बं०। पर्याय–कांसोद्भवा। (२) द्रवद्रोण का चौथाई भाग (८ वा १६ सेर)। दे० "आढ़की"।

आढ़किक, आढ़कीन–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आढ़किकी] (१) जिसमें ४ सेर (१ आढ़क) बीज बोया जा सके। (२) जिसमें ४ सेर (१आढ़क) द्रव्य रख सकें।

आढ़किका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आढ़की। वै० निघ०।

आढ़की–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार की तौल जो ४ सेर की होती है। दे० "आढ़क"। आढ़ि–बं०। आढ़क (=८ शराव)। मे० कत्रिक। (२) सौराष्ट्र मृत्तिका। सोरठा मिट्टी। हे० च०। (३) गोपीचन्दन। गन्ध द्रव्य विशेष। अ० टी०। (४) एक प्रकार का शिम्बी धान्य। अरहर। रहर। टर। तुवरी। टमुर। तुवर। तुव्वर। अरड़। रहरी। तूर। तूअर (हिं०)। हेमा०। तुल्या, तुवरी, वर्ण्या, करवीर-भुजा, वृत्तबीजा, पीतपुष्पा (रा०), मृत्ताल (शब्द र०), काची, मृत्स्ना, तुवरिका, मृतालक सुराष्ट्रज (अ०), मृत्तालक (अ० टी०), तुवरी, शणपुष्पिका (सं०)। तुव्वर, आरोर, ओरोल (द०)। अड़र, आढ़रि–बं०। शाखुल, शाखूल-अ०, फा०। शाज़, कशाहुल–अ०। केजेनस इण्डिकस Cajanus Indicus, *Spr.*, के० बाइकोलर C. Bicholor, के० फ्लेवस C. Flavus, साइटिसस केजन Cytisus Cajan, *Linn.* (लै०)। पिजेन पी Pigeon pea, डाल Dal, कैडजन पी Cadjan pea, काँगो पी Congo pea (अं०)। आडगी, तुवरै (ता०)। कादुलु, कन्दलो, कंदुलु–(ते०)। आढका–(मलाबा०)। तोगरी–(कना०)। तूर, तुवेरो, डाङ्गरी, तूरनी, दाल–(गु०)। पै-एन ख्यङ्ग–(बर०)। तुरी तोरी–(मरा०)। कटलाकटु, तोगरै–(कना०)। आढकी, तुवर, कटजन (मलय०)। तूर, तोर–(रा०)।

शिम्बी वर्ग

(*N. O. Leguminosae.*)

उत्पत्ति-स्थान तथा वानस्पतिक वर्णन—एक अनाज जिसका पौधा चार पाँच हाँथ ऊँचा होता है। इसकी खेती समग्र भारतवर्ष में होती है। इसकी एक सींक में तीन-तीन पत्तियाँ होती हैं जो एक ओर हरी दूसरी ओर भूरी होती हैं। इनका स्वाद कसैला होता है। अरहर बरसात में बोई जाती है और अगहन पूस में फूलती है। इसका फूल पीला तितली के आकार का होता है। फूल झड़ जाने पर इसमें डेढ़ दो इंच की फलियाँ लगती हैं, जिनमें चार पाँच दाने होते हैं। दानों में दो दालें होती हैं। इसके दो भेद हैं। एक छोटी दूसरी बड़ी। बड़ी को 'अरहरा' कहते हैं और छोटी को 'रयिमुनिया' कहते हैं।

छोटी दाल अच्छी होती है। अरहर फागुनमें पकती है और चैत में काटी जाती है। पानी पाने से इसका पेड़ कई वर्ष तक हरा रह सकता है। भिन्न-भिन्न देशों में इसकी कई जातियाँ हैं; जैसे—रायपुर (मध्यप्रदेश) में हरोला और सिही जाति, बंगाल

में मघवा और चैती तथा आसाम में पलवा, देव या नली। धन्वन्तरि एवं राजनिघंटु में रंग के विचार से अरहर तीन प्रकार की लिखी है–(१) सफ़ेद, (२) लाल तथा (३) काली। (कहीं-कहीं काली की जगह पीली लिखा है। वै० श० सिं०)। मुहीत आज़म में लिखा है कि अरहर और तुवर एक ही जाति के दो पौधे हैं। इन दोनों में भेद यह है, कि तुवर का पौधा अरहर के पौधे से छोटा होता है; परन्तु शरीफ़ ख़ाँ के अनुसार अरहर का पौधा तुवर के पौधे से छोटा होता है। अरहर खरीफ़ की फसल में बोई जाती है और रबी के अन्त में गेहूं के साथ काटी जाती है। तुवर खरीफ़ से पहले बोया जाता है और रबी की फसल से पहले कट जाता है। तुवर से अरहर के दाने बड़े होते हैं। तुवर मालवा आदि देशों में होता है और अरहर दोआबा में बहुत होती है। अरहर तुवर से स्वाद में उत्तम होती है जो प्रत्यक्ष ज्ञान के विपरीत है। अनुभव की बात यह है कि, उसमें कुछ गंध होती है। खानदेश के तुवर का दाना बड़ा और छिलका उतरी हुई दाल बहुत पीली एवं सुस्वादु होती है।

इसे कोई भारत और कोई अफ़्रीका का पौधा बताते हैं।

प्रयोगांश—बीज वा फली और पत्ती।

रासायनिक संघटन—अरहर में खाद्य द्रव्य; जैसे–नत्रजनीय पदार्थ (Nitrogenous matter), तैल वा वसामय पदार्थ, निशास्ता (Starch) तथा कर्बोज़ की चीज़ें (Carbohydrates) पोषण लवण और जलीय पदार्थ होते हैं। इं० मे० मे०।

औषध-निर्माण—आढ़कीयूष। प्रलेप। गण्डूष आदि।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—आढ़की कफपित्तनाशक, कुछ-कुछ वायु को प्रकुपित करनेवाली, कसैली, स्वादु, संग्राही, पाक में कटु, शीतल तथा हलकी है और मेद, कफ तथा रक्तपित्त में इसका लेप एवं सेक उपकारक होता है। (धन्वन्तरीय निघण्टु)

(साधारण आढ़की के गुण)-आढ़की की दाल कसैली, मधुर, कफ एवं पित्त को जीतनेवाली, ईषत्वातकारक, रुचिकारक, भारी और ग्राहिणी है। रा० नि० व० १६।

अरहर कसैली, रूक्ष, मधुर, शीतल, हलकी, ग्राहिणी, वातकर्त्ता, वर्णकारक, पित्त, कफ और रुधिरके विकारों को शांत करती है। भा० पू० १ भ०।

अरहर मृदु, कसैली, सरक्तपित, ऋतु, कफ, मुखव्रण, गुल्म, ज्वर, अरोचक, कास, छर्दि तथा हृद्रोग और बवासीर (दुर्नाम) को दूर करती है। अत्रि० १२ अ०।

सफ़ेद अरहर दोषकारक, लाल अरहर बलकारक, रुचिकारक, पित्त एवं ताप मिटानेवाली और पीली अरहर दीपन, पित्त और दाह नाशक है। रा० नि० व० १६।

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—प्रकृति–दूसरे दर्जे में गरम ख़ुश्क। कोई-कोई द्वितीय कक्षा में सर्द खुश्क लिखते हैं। स्वाद—फ़ीकी, कुछ-कुछ हरायँध लिए बेस्वाद वा सोंधी। हानिकर्ता–मेदा और मस्तिष्क के लिए। यह दीर्घपाकी, आध्मानकारक, वाष्पोद्भूत करनेवाली और अनिद्राजनक है। दर्पघ्न-अम्ल पदार्थ और गाय का घी। प्रतिनिधि–मसूर। विशेष गुण-इसकी दाल विषघ्न एवं बवासीर की नाशक है। मात्रा खाद्य में अधिक और औषध में १ तो० से २ तो० तक। (साधारण) ६ मा० से १ तो० तक औषध रूप से। यह निर्विषैल ही नहीं, प्रत्युत खाद्य है।

हकीम मुहम्मद आज़मखाँ के अनुसार भारतीय इसे हलकी संग्राही, रक्तपित्त एवं कफनाशक, विषघ्न और वायुकारक मानते हैं। कोई कोई इसे पित्त, कफ, क्रोध तथा भय को दूर करनेवाली फीकी, मधुर, मातदिल और सदैव पथ्य लिखते हैं और कहते हैं कि यह बुख़ार तथा हुकहुक (?) को दूर करनेवाली, क्षुधावर्द्धक और मूत्र विकार में लाभदायक है तथा वायु को अनुलोम करती और भोजनोपरांत होनेवाली क़ै की प्रवृत्ति को लाभ पहुँचाती है। यह श्रवण शक्ति को बल प्रदान करती, प्यास एवं सम्पूर्ण शरीर की सूजन को दूर करती है। इसका यूष मीठा है और वाक् शक्ति प्रदान करता है एवं मूत्ररोग, यर्क़ान (कामला), सूउल्क़िन्यः (Anasarca) को दूर करता है। (मुहीत आज़म)

मख़्ज़नुल शिफ़ा के रचयिता लिखते हैं कि अरहर कुछ-कुछ वायु पैदा करती है तथा कफ एवं तलख़ा (पित्ताशय) ×और यदि इसे रोग़न के साथ खाएँ तो तलख़ा, वायु तथा बलग़म को नष्ट करती है। इसका दर्पनाशक पीपल और शहद है।

हकीम शरीफ़ख़ाँ के अनुसार यह दूसरी कक्षा में गरम और तीसरी कक्षा में ख़ुश्क है। यह आमाशय बलप्रद तथा भारी है और बलग़मी एवं सर्दी के रोगों में उपकारी है। इसे पकाने में पहली बार एक दो जोश देकर, इसका पानी पृथक् करदें और दूसरा पानी डालकर फिर पकाएँ। इससे इसकी ख़ुश्की दूर होकर यह सुस्वादु होजाती है और यदि दूध या दही में इसी प्रकार शुद्ध करें तो ख़ुश्की और हरारत दोनों दूर होती हैं। यदि इसकी पत्ती को पानी में क्वथित कर उस पानी से गण्डूष करें, तो दंतशूल नष्ट हो। (तालीफ़ शरीफ़ी)

किसी किसी के मत से शीतला के कारण होनेवाली फूली में इसकी पत्ती का शीरा लाभकारी है। यह आँख को मैल आदि से स्वच्छ करता है। इसकी पत्ती को पानी में पीसकर पीने से अफ़ीम का ज़हर दूर होता है। यदि इसकी पत्ती को पानी में पीसकर शोथ पर प्रलेप करें तो, यह उसे पकाकर पीब बाहर निकाल देती है और यदि जल्द पकाना चाहें तो ईषदुष्ण प्रलेप करें। यदि अरहर की दाल को पानी में पीसकर दिन में दो बार बालख़ोरा पर आलेप करें और दूसरे दिन बालख़ोरे को जंगली कंडे से रगड़कर, किंचिद् गोघृत मर्दनकर धूप में बैठें तो दो तीन बार यह क्रिया करने से बाल उग आएँगे। यदि अरहर को पानी में पीसकर बालकों के फ़ोते पर लेप करें तो लाभ हो। (मुहीत आज़म)

डा० नादकर्णी—दाल पोषक और शीघ्रपाकी है। इसलिए रोगियों को पथ्य है। परंतु यह गरम और ख़ुश्क मानी जाती है। क्योंकि इसमे विष्टम्भ पैदा होता है। यह आढ़कीयूष बनाने में बहुत काम आती है और इसे लोग बहुत पसंद करते हैं। पत्तियाँ मुखरोग में काम आती हैं। अरहर की दाल और पत्ती को पीसकर, कल्क बना गरमकर स्तन पर प्रलेप करते हैं, इससे चूची में दूध बनना बंद हो जाता है। मसूढ़ों के पिलपिला होने और मुखपाक में (मुँह आने पर) लोग इसकी कोमल पत्तियाँ चबाते हैं (फोड़े-फुंसियों पर भी पीस कर लगाते हैं)। पत्तियोंको कुचलकर निकाले हुए रस में थोड़ा नमक डालकर पाण्डु (Jaundice) में प्रयोजित करते हैं। इसकी दालों की बनाई पुल्टिस सूजन को कम करती है। (इं० मे० मे० पृ० १४१। इं० मे० प्लां०)

आमाशयातिसार (जाब एवं सफ़रावी दस्तों में लाभदायक और इसका अत्यल्प भाग शरीर के अंगों में परिणत होता (क़लीलुल् ग़िज़ा) है। उष्ण प्रकृति को इसके खाने से दस्त आजाते हैं और ख़ुश्की होती है। बलग़मी वा कफ प्रकृति को हानिकारक नहीं। इसको जला २ २ मा० शहद के साथ खाने से स्तंभक है। इसकी पत्ती बादी बवासीर के लिए परीक्षित है। थोड़ी नमकी पत्ती के साथ सूजन उतारनेवाली और कड़ाई दूर करनेवाली है।

(मख़्ज़नुल् अद्विय:)

आढ़की-यूष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्लो०] तुवरी यूष। अरहर का यूष। अड़रेर झोल-बं०।

गुण—यह बल्य होता है। रा० नि० व० १६। आढ़की अर्थात् अरहर का यूष मधुर, विशोषण तथा वातनाशक है और मनुष्यों की श्लेष्मा एवं पितको हरण करता है। अत्रि० १३ अ०।

आढ्य-त्रि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आढ्या] (१) सम्पन्न। पूर्ण। (२) युक्त। विशिष्ट।

आढ्यपवन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ऊरुस्तम्भ रोग। (२) बच। (३) हरिद्रा। हल्दी।

आढ्य-वात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वात-रक्त। एक प्रकारका वात रोग। (A kind of nervous disease.)

लक्षण—चल, स्निग्ध, मृदु, शीतल अंगों में शोथ तथा मृदुता आदि ये लक्षण "आढ्यवात" रोग में होते हैं। यथा—

"चलः स्निग्धे मृदुः शीते शोफोऽङ्गेषुमृदुस्तथा।
आढ्यवात इति ज्ञेयः सकृच्छ्रो मेदसावृतः॥" च०।

अन्यच्च—

"कफमेदोवृतोवायुर्यदोरू प्रतिपद्यते।
तदाङ्गमर्दशैथिल्य रोमहर्ष रुजाज्वरैः॥

निद्रयार्चार्दितौ स्तब्धौ शीतला वप्रचेतनौ ।
गुरुकावस्थिरावूरू न स्वाविव च मन्यते ॥
तमूरुस्तम्भमित्याहुराढयवातमथापरे ”

सु० ऊरुस्त० ।

आढया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अजमोदा । राँधुनी-बं० । (Apium involucratum.) वै० निघ० ।

आणक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक रुपए का सोलहवाँ भाग । आना ।

आणव-संज्ञा पुं [सं० क्ली०] अणुत्व । सूक्ष्मता ।
 वि० [सं० त्रि०] (१) अणुका । अणु सम्बन्धी । (२) अतिशय सूक्ष्म । बहुत बारीक ।

आणवीन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भूमि भेद ।

आणि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) आणि नाम का एक मर्म-स्थान । यह स्नायुमर्मोंमें से एक है । स्थान-घुटनेसे ऊपर दोनों तरफ़ तीन अंगुल का "आणि" नामक मर्म है । वहाँ बिंधने से शोथ की वृद्धि होती और साथल अकड़ जाती है । सु० शा० ६ अ० । (२) मकान का कोना । (३) सीमा । हद । (४) तलवार की धार ।

आणिले-[?] हड़ । हरीतकी ।

आण्टग्रीज़-[ले० Ant-grease] एक द्रव्य ।

आण्ट-विच-फ्ली-[अं०] लिसोढ़ा । मेमो० ।

आ(अ)ण्टिश-[ले०] अपामार्ग । (Achyranthes aspera.) स० फा० इं० ।

आण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अंडा । अण्ड । मुष्क । वृषण । (A testicle)
 वि० जो अंडेसे पैदा हो । जैसे-पक्षी, सर्प इत्यादि ।

आण्डज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आण्डजा] अण्डे से पैदा होनेवाले पक्षी, सर्प इत्यादि ।
 वि० [सं० त्रि०] जो अंडेसे पैदा हो । अंडजाता ।

आण्डाद-संज्ञा पुं० [सं०] अंडाखोर । अंडभक्षक । जो अंडा खाए ।

आण्डिकी-वि० [सं० त्रि०] अण्ड सम्बन्धी । अण्डका । (Testicular, Spermatic.)

आण्डिकी-धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अण्ड को पोषण करनेवाली धमनी । मुष्कीया धमनी । (Spermatic artey, Testicular artery.)

आण्डिकीया डिम्बिकी (दाहिनी) शिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंड की शिरा विशेष ।

आण्डिकी-शिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अंडकी शिरा । (Internal Spermatic vein.)

आण्डे-[मरा०] अण्डा । अण्ड । Ovum (egg.) स० फा० इं० ।

आत-संज्ञा पुं० [सं० आतु] शरीफ़ा । सीताफल । (Custard apple, Annona Squamosa.)
 [तु०] घोड़ा । अश्व ।

आतइच्-[बं०] अतीस । अतिविषा ।

आतक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का साँप ।

आतङ्क-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ज्वर । बुख़ार । (२) रोग । बीमारी । रत्ना० । (३) सन्ताप । (४) शंका । डर । भय । मे० कत्रिक ।

आतङ्कज्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का आगंतुकज्वर । भयजनित ज्वर । च० चि० ।

आत-जाम-संज्ञा पुं० [?] (Indian olive) देशी जैतून । जामफल जो दक्खिन देश में प्रसिद्ध है । इसका फल खाया जाता है ।

आतजौ—संज्ञा पुं० [सं० अतियव] एक प्रकार का छोटा जौ जो गेहूं और जौ के बीच सुर्ख़ तथा सफ़ेद होता और छिलका रहित गेहूं की तरह होता है । यह घास की जाति के एक पौधे का बीज है जिसमें एक ही बारीक तना होता है । कोई कोई इसे गेहूं के क़िस्म का एक प्रकार का धान्य लिखते हैं । हकीम तमीमी के अनुसार यह एक प्रकार का अनाज है, जिसे ख़ंदरूस भी कहते हैं । इसका पौधा जौ के पौधे की तरह होता है; परंतु इसका पत्ता बारीक और तना अत्यन्त सूक्ष्म और इसका दाना दीर्घ होता है । अबू हनीफ़ः दीनवरी ने लिखा है कि यह सभी प्रकार छिलकों से रहित एक प्रकार का जौ है जो अरब की भूमि में उत्पन्न होता है । ग़ाफ़ूक़ी के अनुसार यह फ़ारस व आज़रबेजान में बहुत उत्पन्न होता है । और वहाँ इसे 'जौ बिरहना' कहते हैं । दीसक़ूरीदूस के मत से तराग़ांस एक

प्रकार के दाने की शकल का होता है जिसे ख़ंदरूस कहते हैं। किसी किसी ने भूल से इसे ही कालमेघ का यवतिक्ता लिखा है। सारांश यह कि यह एक प्रकार का धान्य है जिसका ऊपर वर्णन किया गया है। जौ गंदुम, जौ बिरहनः (फ़ा०)। सुल्त, सिल्त (अ०)। तब्आ, तराग़ीश (यू०)। (मुहीत आज़म)।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में गरम, द्वितीय कक्षा में तर और गरम तथा ख़ुश्क भी लिखा है। स्वाद—फ़ीका कुछ कुछ मधुर। हानिकर्ता—आमाशय को। दर्पघ्न—गायका दूध और तर चीज़ें, जैसे—सौंफ,शक्कर और रोग़न (मु० अ०)। विशेषगुण—शारीरिक स्थौल्य के लिए उत्तम है। मात्रा—(वयस्क) २ तो० से ४ तो० तक। (साधारण) १ तो० से २ तो० तक।

गुण, कर्म प्रयोग—इसका पानी जौ की अपेक्षा अधिक तर है। दूध में पकाकर पीने से शरीर को स्थूल करता है और मेद की वृद्धि करता है। जैतून के तेल के साथ इसका हरीरा मालीख़ोलिया और प्रलाप (हज़ियान) में उपयोगी है और सीने, वृक्क एवं वस्ति के मलों का शोधन करता है तथा सख़्त खाँसी को रोकता है। इसकी गरम गरम रोटी प्रकृति को कोमल करती है एवं विमल दोष उत्पन्न करती है। यही बासी होनेसे आध्मानकारक एवं दीर्घपाकी हो जाती है। इसके क्वाथ में बैठने से बवासीर का दर्द शांत होता है। (मख़्ज़नुल् अद्वियः)

मुहीत आज़म में भी इसके प्रायः वे ही गुण लिखे हैं, जो मख़्ज़नुल अद्वियः में हैं। हाँ! प्रयोगकम कुछ भिन्न लिखा है। जैसे लिखा है कि इसकी अधपकी रोटी को गरम गरम सिर पर रखने से मालीखोलिया एवं प्रलाप में लाभ होता है। काफ़ी मसके के साथ इसका हरीरा तैयार कर तीन वा पाँच रोज़ प्रातः काल पीनेसे उक्त रोग एवं चिरकारी कास में लाभ हाता है और सीने एवं फुफ्फुस को शुद्ध करता है। इसका पानी और यह जो की अपेक्षा अच्छा होता है और गुण-कर्म में गेहूँ के समीप और सभी प्रकार के जौ से अधिक पोषणकर्त्ता है। परंतु पचता नहीं, (इन्हिदार) और आटोप एवं आध्मानकारक है। अस्तु, इसकी रोटी कोष्ण मीठी चीज़के साथ रोग़नमें खानी चाहिए। और इसको जब गरम खाते हैं, तब यह उदर को मुलायम करता और निर्मल दोष (ख़िल्त) उत्पन्न करता है। जब इसे इसी प्रकार एक-दो दिन बीत जाते हैं, तब यह हज़म नहीं होता और इसके खानेवाले को ऐसा मालूम होता है, मानो उसके उदर में पत्थर रखा हो। यह मूत्रप्रवर्त्तक वृक्क एवं वस्तिशोधक है। इसका काढ़ा दूध के साथ पीने से यह स्थौल्यजनक एवं वृक्कस्थ मेदोत्पादक है। इसका प्रलेप शोथविलायक है और बढ़ा हुई तिल्ली, व्यंग (कल्फ़) एवं ग़श का नाश करता है। इसके काढ़े में बैठने से बवासीर का दर्द शांत होता है और उससे मुख प्रचालन करने से वह निखर आता है। (मुहीत आज़म)।

आतञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तर्पण। तृप्ति। अम०। (२) उपद्रव। (३) निक्षेप। फेंकना। सु० प्रतिवाप। (४) दही जमाने की खटाई। जामन।

आतत—वि० [सं० त्रि०] (१) तना हुआ। (Distended.)। (२) विस्तृत।

आतति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (Tension, distension) तनाव। तमद्दुद्—अ०।

आतन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दर्शन। (२) विस्तृति। फैलाव।

आतप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आतपी। आतप्त] रौद्र। धूप। घाम। सूर्यकी किरण। प्रकाश। (Sunbeams, Sunshine)

संस्कृत पर्याय—किरण, तेज (नि०), रौद्र, प्रकाश, द्योत, (ख०), दिनज्योति, सूर्यालोक, दिन-प्रभा, रविप्रकाश, प्रद्योत, तमारि, तापन, द्युति।

गुण—धूप सेवनसे पसीना आता, मूर्च्छा आती, रक्त बढ़ता, तृष्णा लगती तथा दाह होता है एवं यह श्रमजनक और पित्त एवं विवर्णता-कारक है। मद० व० १२। यह कटु, रूक्ष, तथा नेत्ररोग प्रकोपन है। रा० नि०।

"आतपः कटुकोरूक्षः स्वेदमूर्च्छा तृषा मदः।
दाह वैवर्ण्यजननो नेत्ररोग प्रकोपनः॥"
सुश्रुत।

इस विषय में जो कुछ अनुभव हुआ है, यह है—एक दिरम (३॥ मा०) यह दवा, निशोथ, सोंठ तथा अकरकरा एकत्र उसके बराबर वा प्रत्येक १-१ दाँग (३॥। रत्ती) पीसकर शहद मिलाकर उपयुक्त रेचन-औषध द्वारा शरीर का संशोधन करने के उपरांत सेवन करें और पूर्व की भाँति प्रलेप कर वा बिना लेप किए ही धूप में बैठें। पहले दिन से लेकर तीसरे दिन तक यह श्वित्रकी जगह फफोला उत्पन्न कर देता है और पीले पानी के निःसृत करने के उपरांत उस स्थान से सर्वथा अदृश्य हो जाता है।

इब्न बेतार लिखते हैं कि उक्त रोग में मैंने इस दवा के विविध प्रभाव देखे। किसी किसी में तो इसकी एक शर्बत से दो शर्बत की मात्रा से पहली बारमें ही तत्त्तण प्रभाव प्रकटित हुआ। परन्तु दूसरों को इससे अधिक देना पड़ा।

हकीम शरीफ़ के अनुसार १॥ भाग आतरीलाल और सुदाब की पत्ती तथा साँप की कैंचली प्रत्येक १-१ भाग, किसी किसी के अनुसार १ वा २ दिरम आतरीलाल तथा आध-आध दिरम सुदाब की पत्ती और साँप की कैंचली इनको कूट-छान कर पाँच दिन वा सप्ताह भर १० तो० (३० दिरम) अंगूरी शराब के साथ खिलाएँ। परमात्मा की दया से रोगी श्वित्र से मुक्त होगा। परीक्षित है।

गीलानी ने लिखा है, कि आतरीलाल १ भाग और सुदाब की पत्ती तथा साँप की कैंचली प्रत्येक आधा भाग ले कूट-छानकर शहद में मिलाएँ और इसमें से रोग एवं रोगी के बल के अनुसार पानी वा शराब वा पानी और शहद अथवा अवलेह की तरह शहद में मिलाकर खिलाएँ। इसके शर्बत की मात्रा प्रारंभ में थोड़ी रखनी चाहिए। फिर क्रमशः धीरे धीरे बढ़ाते जाँय। इसी प्रकार जब जब आवश्यक हो कई बार इसका प्रयोग करें। जब तक कि यह रोग दृढ़ नहीं हो गया होता, एक बार ही इसका प्रयोग पर्याप्त होता है। परंतु जब दृढ़ एवं स्थायी हो जाता है, तब कई बार प्रयोग करना आवश्यकीय जान पड़ता है। बहुत पुराना एवं ज़ोरदार होने की दशा में ३-४ बार चिकित्सा करने से गोश्त की सफ़ेदी दूर होकर समान-वर्णता उत्पन्न होती है। चिरकाल बाद पुनः श्वेतवर्णता उत्पन्न होती है। और जब फिर श्वेतवर्णता उत्पन्न होने पर शरीर संशोधन के उपरांत चिकित्सा की जाती है, तो रोग नष्ट हो जाता है और फिर प्रगट नहीं होता। कहते हैं कि १०॥ माशा इसे प्रतिदिन शहद के साथ पंद्रह दिन तक और ५ दिन अंगूरी शराब के सेवन करने से नैरोग्य प्राप्त होता है। यदि शरीर का पूर्ण संशोधन करने के उपरांत इसका सेवन कर धूप में बैठें और श्वित्र भाग को खुला रखें, तो वहाँ फफोला पड़कर पीला वा पिलाई लिए सफ़ेद पानी निकलने लगेगा। यह नैरोग्य-सूचक चिह्न है। फिर आवश्यक होने पर व्रणरोपण प्रलेप द्वारा उसकी चिकित्सा करें। मांसल स्थानों में उक्त औषध का प्रभाव तीव्रतर एवं अस्थिमय तथा नाड़ी-सूत्रमय स्थलों पर मंदतर होता है। यह प्लीहा को लाभकारी है।

संग्राही एवं बल्य ओषधियों के साथ इसका प्रयोग आमाशय तथा यकृतादि कोष्ठावयवों को लाभकारी है। यह यर्क़ान के लिए उपयोगी है और मूत्रल, आर्त्तव-प्रवर्त्तक, क्रिमिघ्न और गर्भपातक है। इसका प्रलेप व्रण को सुखानेवाला है और शर्बत श्वासोच्छ्वासावयवों को निर्मल करता है तथा वायु-प्रभेदोंको तहलील करता है। इसके बीजको पीसकर गर्भिणी की नाक में प्रधमित करने से गर्भपात होता है। इस प्रकार इसका शर्बत गर्भपातक है तथा वृक्क एवं बस्ति को साफ़ करता है। (मुहीत-आज़म)

आतर्पण—संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] (१) तृप्ति। संतुष्टता। छकावट। मे० । (२) प्रीणन। (३) मंगल द्रव्यों का आलेपन।

वि० [सं० त्रि०] तृप्तिकारक।

आतश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आग। अग्नि।

आतशक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० आतशकी] फिरंग रोग। गंधरोग (भा०)। फिरंगोपदंश (सं०)। गर्मी का रोग। आबलहे फ़िरंग, बादे फिरंग, कोफ़्त (फ़ा०)। दाउज़्ज़ुहूरा, ज़ुहरा, दाउल् अफ़्रंजी, अल्ख़जील (अ०)। सिफ़िलिस Syphilis, हार्डशैंकर Hard-chancre(अं०) वेरोली Verole (फ्रां०)। लष्टस्युखी Lust-seuche (जर०)।

संज्ञा निर्णायक टिप्पणी– फिरंग आदि ठंढे देशों में यह रोग विशेषता से होता है। अतएव वैद्यों ने इसे फिरंग नाम से अभिहित किया। फ़ारसी में बादेफ़िरंग को आतशक नहीं कहते, परंच नारफ़ारसी को आतशक कहते हैं (दे० "नारफ़ारसी")। किंतु भारतवर्ष में मर्ज़ बादफ़िरंग को आतशक कहते हैं। इसी कारण किसी-किसी हकीम ने नारफ़ारसी, आतशक और बादेफ़िरंग को एक ही रोग माना है। परन्तु वास्तविक बात यह है कि ये दोनों परस्पर भिन्न व्याधियाँ हैं। ईरान और मिश्रदेश निवासी इस रोगको फिरंग देश से संबंधित मानते हैं। अस्तु फ़ारसी में इसे आबलहे फ़िरंग और अरबी में दाउल्अफ़्रंजी कहते हैं। यूनान तथा रूम निवासियों की मुहब्बत की देवी (ज़ुहरः) से संबन्धित करते हुए इसको अरबी में दाउज़्ज़ुहरा वा केवल ज़ुहरा भी कहते हैं (दे० "अम्राज़ज़ुहूरिय्यः")। चूँकि यह रोग रोगी को एकदम जीर्ण-शीर्ण कर देता है, इससे अर्वाचीन फ़ारसी में इसे "कोफ़्त" कहते हैं। अर्वाचीन फ़ारसी भाषा के वैद्यकीय ग्रंथों में इसी नामसे इसका उल्लेख मिलता है। इस रोग से रोगी लज्जित (ख़जल्) होता है। इसलिए अरबी में इसे अल्ख़जील भी कहते हैं। आजकल भारतवर्ष में आतशक शब्द आतशक हक़ीक़ी (आबलहे फ़िरंग) और आतशक मजाज़ी दोनों के लिए प्रयुक्त होता है; परन्तु इन दोनों में भेद प्रकट करने के लिए आतशक शब्द के साथ हक़ीक़ी वा मजाज़ी विशेषण का प्रयोग उपयुक्त जान पड़ता है। भारतवर्ष में इस रोग को प्रायः आतशक नाम से अभिहित करते हैं। अतएव केवल आतशक से आतशक हक़ीक़ी और आबलहे फ़िरंग से आबलहे फ़िरंग का अर्थ ग्रहण करना चाहिए और आतशक मजाज़ी से मजाज़ी वा मृदु आतशक का। अतः हमने भी उक्त रोग के वर्णन में प्रायः इस बात का ध्यान रखकर आतशक हक़ीक़ी वा आबलहे फिरंगको प्रायः आतशक नाम से उल्लेख किया है। यही भावप्रकाशोक्त फिरंग रोग है।

इस रोग का इतिहास पढ़ने से आपको ज्ञात होगा कि नेपल्ज़वालों ने इस रोग को फ्रांस से सम्बन्ध प्रगट करते हुए, इसको फ्रेंच पाक्स (फ़िरंगीय स्फोटक) नाम से अभिहित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि ईरानियों ने इसकी उक्त संज्ञा अर्थात् आबलहे फराँसीसी से बादेफ़िरंग बना लिया और उक्त सम्बन्ध से ही भारतीयों ने इसका नाम फिरंगरोग (बादेफ़िरंग) रखा।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट और हारीत आदि प्राचीन संहिताओं में जो उपदंश नामक रोग का उल्लेख मिलता है उसे ही कोई कोई अर्वाचीन पंडित फिरंगरोग लिखते हैं। परन्तु इस समय जो रोग आतशक (गरमी) के नाम से विख्यात है और बहुत फैला है, वह पूर्वलिखित उपदंश से विलक्षण एवं कतिपय बातों में भिन्न प्रतीत होता है। चरक सुश्रुतादि में जो इसे पृथक् नहीं लिखा, उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उस समय भारतभूमि में इस भीषण रोग का पदार्पण नहीं हुआ था और विदेशियों के अधिक समागम एवं अनुचित सहवास के कारण इस अभागे देश में भी इस घृणाजनक रोग का प्रादुर्भाव हुआ। ऐसा ज्ञात होता है कि भावमिश्र के समय में इस रोग का काफ़ी प्रसार हो चुका था। इसीसे उन्होंने स्वनिर्मित भावप्रकाश नामक ग्रन्थ में इस फिरंग नामक रोग का उल्लेख किया है और उन्होंने इसे उपदंश से पृथक् लिखा है।

परन्तु कोई कोई वैद्य सुश्रुत का उपदंशोक्त "योनिरोगोपसृष्टामुपसेवमानस्य" पाठ उद्धृत कर फिरंगरोग का भी उपदंश में ही अन्तर्भाव करते हैं। इसीलिए फ़िरंग रोगाक्रांत योनिवाली स्त्री के साथ संग करने से इसकी उत्पत्ति भी मानते हैं और वहीं पर "शुक्र मूत्रवेगविधारणात्" ऐसा पाठ भी है जिससे वर्तमानकालीन सूज़ाकरोग का भी अन्तर्भाव हो सकता है। पर भावप्रकाश के अनुसार उपदंश और फिरंग की औषधि और चिकित्सा में अन्तर होने से तथा फिरंग में आमवात की सी व्यथा और नासाभंगादि उपद्रव भेद से यह निश्चय रूप से पृथक् सिद्ध होता है। अस्तु हमने उपदंश का वर्णन पृथक् किया है।

प्राचीनकाल में सूज़ाक, आतशक और आबलहे फिरंग इन तीनों को एक ही प्रकार के विष से उत्पन्न माना जाता था। अस्तु यूरोप में सन् १८३८ ई० (डाक्टर रेकार्ड महोदय के अन्वेषणों) तक

यही बात मानी जाती रही। किन्तु पश्चात्कालीन अन्वेषणों से यह प्रतिपन्न हुआ, कि न केवल सूज़ाक एवं आतशक ही दो विभिन्न व्याधियाँ हैं, प्रत्युत आतशक और आबलहे फिरंग भी परस्पर दो भिन्न व्याधियाँ हैं। इनमें से सूज़ाक तो अत्यन्त प्राचीनकाल से यूरोप और एशिया के प्रायः प्रदेशों में पाया जाता है; परन्तु आबलहे फिरंग के उत्पत्ति-स्थान के सम्बन्ध में बहुत मतभेद रहा है।

इतिहास—फिरंगरोग के आदि उत्पत्ति-स्थान के सम्बन्ध में एशिया और युरोपदेशीय विद्वानों में बहुत मतभेद रहा है। युरोपनिवासी इसका प्रारंभ चीन और हिन्दुस्तान प्रभृति एशियाई देशों से मानते रहे और एशिया निवासी विशेषतः पारस्य और भारत निवासी तथा मिश्रदेशवासी भी इस रोग को फिरंग देश से सम्बन्धित करते रहे हैं। परन्तु सत्य बात यह है, कि इस व्याधिने नई दुनिया अर्थात् अमरीक़ासे पुरानी दुनिया अर्थात् युरोप और एशिया में पदार्पण की है। अस्तु, सर्ववादिसम्मति से यह निष्पन्न होता है, कि सन् १४९३ ई० से पूर्व युरोपमें उक्त व्याधि अज्ञात थी और वस्तुतः इससे अमरीका की खोज के उपरान्त कोलंबस के नाविकों द्वारा युरोपीय प्रदेशों में प्रसार पाई।

सन् १४९३ ई० में हैटी (Hayti) नामक द्वीप (अमेरिकास्थित) की खोज के उपरान्त कोलंबस अमेरिका से वापिस आया। उसके उन नाविकों द्वारा, जो उक्त रोग का बीज अपने साथ लाए थे, उसी वर्ष बारसलोनिया (स्पेन का एक प्रदेश) में इस व्याधि का प्रसार हुआ। इसके लगभग १-२ वर्ष उपरान्त जब फ्रांसाधिप चार्लस अष्टम ने सन् १४९४-५ ई० में नेपलज़ (Naples) पर आक्रमण किया और नगर को चतुर्दिक् से घेर लिया, तब उसकी सहायतार्थ स्पेन से फ़ौजें आईं और इनके संसर्ग से नेपलज़ में उक्त व्याधि ने प्रचार पाई और वहाँ से सम्पूर्ण फराँसीसी सैनिकों में फैल गई। अस्तु, फराँसीसी सैनिकों ने यह कहना प्रारंभ किया कि यह नेपलज़ की भेंट है और नेपलज़वालों ने कहा कि, यह फ्रांस का मेवा अर्थात् फिरंगोपदंश वा फराँसीसी चेचक (French pox) है। फलतः इसी वर्ष इसके इटली प्रदेश में उक्त रोग ने प्रबल प्रसार पाया और कुछ वर्षोपरान्त समग्र युरोप में फैल गया।

प्रारम्भ में यह अनुमान किया जाता था कि यह व्याधि भी अन्य जनपदोद्ध्वंसक व्याधियों की तरह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में प्रविष्ट हो जाती है। परन्तु धीरे-धीरे यह ज्ञात हो गया कि यह तद्रोगाक्रांत स्त्री-सहवास से ही प्रायः उद्भूत होता है और आदि में उक्त रोग के विष का शरीर में व्याप्त होना अनिवार्य है। इसके पीछे हकीम बारकलसूस ने इसके पैत्रिक होने का अनुभव किया। मसीह की सोलहवी शताब्दी में इस रोग के लक्षण विस्तार से लिखे गए जिससे ज्ञात होता है कि वर्तमान काल की अपेक्षा उक्तकाल में यह व्याधि उग्र रूपसे होती थी और पारद एवं ग्वायकम (पवित्रकाष्ठ) इसके उपादेय औषध ख्याल किए जाते थे। ईसा की अठारहवीं शताब्दी में कोष्ठावयवों के आतशकी रोगों का उल्लेख किया गया। पहले आतशक हक़ीक़ी (आबलहे फिरंग) और आतशक मजाज़ी को चिरकाल तक एक ही रोग माना जाता रहा। पीछे से इन दोनों में भेद निरूपित किया गया और उन्नीसवीं शताब्दी मसीही में इसका यथार्थ वर्णन प्रकाशित किया गया। परन्तु. उस समय तक भी इसका वास्तविक कारण अज्ञात था। अंततः सन् १९०५ ई० में डाक्टर शाडिन ने इस रोग के विशेष कीटाणु दर्याफ़्त किए। फिर जरमन के डाक्टर अहर्लिक और जापानी डाक्टर हाटा ने सम्मिलित प्रयत्न द्वारा संखियाके एक विशेष यौगिकका निर्माण किया जिसके उपयोग से उक्त रोग के कीटाणु नष्ट होकर निःसंदेह निश्चित आरोग्य लाभ होता है।

कतिपय यूनानी तिब्बी ग्रंथों में भी इस बात का उल्लेख उपलब्ध होता है, कि ९०४ हिजरी तदनुसार सन् १४९३ ई० में उक्त व्याधि सर्व प्रथम फ़िरंगिस्तानी द्वीपों में प्रादुर्भूत हुई। अतएव उसका नाम आबलहे फ़िरंगवा बाद फिरंग (फिरंगोपदंश) पड़ा। परंतु कतिपय हकीमों के कथनानुसार यह रोग अति प्राचीन है और सिकंदर रूमी के समय से ज्ञात है। उनके मतानुसार तिब्बी ग्रंथों में सबूर ग़रीबः के नाम से जिस रोग का उल्लेख आया है, वह यही रोग आबलहे फ़िरंग ही है अथवा मर्ज़ क़मरः

(Anthrax) वा नारफ़ारसीका ही दूसरा नाम आतशक है। उनकी यह धारणा सर्वथा असत्य है। क्योंकि प्राचीन भारतीय, यूनानी वा मिश्रदेशीय ग्रंथों में इस रोग का कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता। प्राचीन आयुर्वेदीय संहितावर्णित उपदंश नामक व्याधि अनेक बातोंमें फिरंगरोगके सर्वथा समान होते हुए भी, इससे एक भिन्न व्याधि है। अतः पूर्वोक्त कथनानुसार उक्त व्याधि वस्तुतः अमेरिका से यूरोप में आई और वहाँ से एशिया में इसका प्रादुर्भाव हुआ।

भेद—रक्त में व्याप्ताव्याप्त होने के विचार से यह रोग दो प्रकार का होता है—(१) आभ्यन्तर फिरंग, प्रकृतिदूषक फिरंग, आतशक हक़ीक़ी और (२) स्थानिक वा वाह्यफिरंग, आतशक मजाज़ी। भावप्रकाश में लिखा है—

"फिरङ्गस्त्रिविधो ज्ञेयो वाह्यभ्यन्तरस्तथा।
वहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिङ्गानि च ब्रुवे ॥"

(भा० म० फिरंगाधिकार)

अर्थात्—"वाह्य, आभ्यन्तर और वाह्यभ्यन्तर भेद से फिरंग रोग तीन प्रकार का होता है।"

संक्रमण-प्रकार भेद से भी इसके दो भेद हैं—(१) उपार्जित और (२) सहज, पैतृक वा आनुवंशिक। पुनः रोग-काल एवं रूपके विचारसे इसके तीन भेद होते हैं—(१) प्रथम कक्षा का फ़िरंग वा आतशक अव्वला, (२) द्वितीयावस्था का फ़िरंग, आतशक सानवी और (३) तृतीयावस्था का फिरंग वा चिरकारी फिरंग, आतशक सुलासी। नीचे इनमें से प्रत्येक का पृथक् पृथक् वर्णन किया जाता है।

वाह्य वा स्थानिक फिरंग-रोग

आतशक मजाज़ी, क़ह्र्ए ज़ुह्रियः, क़ह्र्एरिख़्वः (अ०)। मजाज़ी आतशक, नर्म आतशक, नापाक ज़ख्म, (उ०)। मृदु चट्टा, वाह्य फिरंग (हिं०)। सॉफ्ट शैंकर Soft Chancre (अं०)।

यह एक प्रकारका स्थानिक संक्रामक व्रण है जोप्रायः अपवित्र एवं निषिद्ध स्त्री-सहवास, जैसे-परदारगमन, वेश्यागमन आदिसे जननेंद्रिय आदि पर होजाता है। अर्वाचीन वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा इसका कारण एक प्रकार का विशेष कीटाणु सिद्ध हुआ है जिसको सर्व प्रथम डाक्टर ड्युक्रे Ducrey ने दर्याफ़्त किया था। इस प्रकारके व्रण का विष अत्युग्र संक्रमणशील होता है। यदि यह क्षत अधिक फैल जाय, तो उससे जननेंद्रिय प्रभृति गल सड़ जाती हैं और यदि उचित प्रतिकार किया गया, तो यह २–३ सप्ताह में सर्वथा निर्मूल हो जाता है। आभ्यंतर फिरंगकी तरह इसका विष रक्त में व्याप्त नहीं होता और न इससे उसकी भाँति उग्र एवं भयावह उपसर्ग तथा परिणाम ही प्रादुर्भूत होते हैं। अर्थात् आतशक मजाज़ी के अच्छा हो चुकने के उपरांत रक्तदोष जनित विकार, यथा-फोड़े-फुंसी एवं शरीर पर दाग प्रगट नहीं होते और न आतशक के कारण मस्तिष्क, वात, एवं अस्थि आदि के रोग उत्पन्न होते हैं। भावप्रकाश के अनुसार वाह्य-फिरंग विस्फोटक की तरह होता है और इसमें थोड़ी पीड़ा होती है और यह व्रण की तरह फूटता है। वैद्यगण इसे सुखसाध्य मानते हैं। यथा—

"तत्र वाह्य फिरंगः स्याद्विस्फोट सदृशोऽल्परुक्।
स्फुटितो व्रणवद्वैद्यैः सुखसाध्योऽपि सःस्मृतः" ॥

(भा० म० ४ भ०)

जनसाधारण दोनों प्रकार के फिरंग में कोई भेद निरूपित नहीं करते; अतएव जब फ़िरंग रोगी २–३ सप्ताह की चिकित्सा से सर्वथा नैरोग्य लाभ करते हैं, तब वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि फ़िरंग रोग चाहे जिस प्रकार का हो, दो–तीन सप्ताह की चिकित्सा से, पूर्णतया अच्छा हो जाता है। परंतु इस महान भूल के कारण बेचारे वे फिरंग रोगी, जो आभ्यंतर फ़िरंगरोगाक्रांत हैं, दो–तीन सप्ताह की चिकित्सा द्वारा पूर्ण लाभ की आशा करके, आगे चिकित्सा-क्रम जारी नहीं रखते। जिसका परिणाम यह होता है, कि वे आजन्म नाना भाँति के कष्ट झेलते रहते हैं।

वाह्य वा स्थानिक फिरंग (Soft chancre) ४ प्रकार का होता है—

(१) इस प्रकार के चट्टे में प्रायः बाघी नहीं होती और यह साधारण उपचारों से ही साध्य होता है। इसेही प्रायः मृदुचट्टा (Simple chancre) कहते हैं।

(२) इस प्रकार के चट्टे में गति होती है।

यह चरते-चरते लिंग नाश तक कर सकता है। यह शीघ्र अच्छा नहीं होता, इसमें पीव अधिक मात्रा में जाती और बद होना अनिवार्य होता है। इस चट्टे को क्षयकारी फिरंग (Phagedænic chancre) कहते हैं।

(३) इसमें त्वचा, मांस, शिरा प्रभृति सड़ गलकर झड़ जाती हैं। इसके शीघ्र ठीक न होने से इन्द्री गलकर गिर जा सकती है। इसे विध्वंसक वा गलित चट्टे (Sloughing Chancre) के नाम से अभिहित करते हैं।

(४) कठिन फिरंग शिश्नमुण्ड और ऊपरी चर्म पर हुआ करता है। इसका प्रान्त कठिन, मध्य गम्भीर गोलाकार, निम्न भाग धूसराभ और पार्श्व उन्नत रहता है। (Indurated or Hunteran chancre).

निदान—इस रोग की छूत ही इसके उत्पन्न करने का मूल कारण है, जो प्रायः उक्त रोगाक्रान्त स्त्री-संगम द्वारा पुरुष को लग जाती है।

लक्षण—रोग का विष लगने के प्रायः २४ घंटे उपरान्त जननेन्द्रिय में खाज होकर एक अथवा अनेक फुन्सियाँ प्रगट होजाती हैं। उनमें तीसरे दिन रतूबत पैदा होकर आबला बन जाता है। चौथे पाँचवें दिन रतूबत पीव बन जाती है। और वह आबला टूटकर एक घाव बन जाता है। यह घाव पुरुषों की सुपारी (शिश्नमुण्ड) वा उसकी त्वचा के भीतर मूत्रवहिर्द्वार पर अथवा उसके भीतर या जननेन्द्रिय की त्वचा पर होता है और नारियों में भगोष्ठों पर वा गुह्येन्द्रिय के भीतर और कभी गर्भाशय की ग्रीवा पर पैदा होता है। इस घाव के उत्पन्न होते ही वंक्षणस्थ लसीका-ग्रंथियाँ सूज जाती हैं, जिनमें सामान्यतः पीव पड़कर बद बन जाते हैं। अंततः ये शीघ्र फूटकर ज़ख़्मी हो जाते हैं। इसका ज़ख़्म गम्भीर होता है और उसके चारों ओर सूजन होती है, किनारे साफ़ किंचित् उभरे हुए, ज़ख़्म की सतह क्रिमिभक्षित सी और रंग ख़ाकी होती है और उससे बहुलता के साथ मवाद निःसृत होता है। विकृतावयव शोथ युक्त एवं उसमें दर्द तथा जलन होती है। यदि रोगी मैला-कुचैला, दरिद्री और शराबी हो तो ज़ख़्म अति शीघ्र फैल जाता है। जननेन्द्रिय की त्वचा वा इन्द्री गल सड़ जाती है जिससे रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है। इस क्षत का निर्धारित समय ३ से ८ सप्ताह तक होता है।

टिप्पणी—कोई-कोई अर्वाचीन वैद्य महाशय इसे ही, आयुर्वेदोक्त ‘‘उपदंश वा ध्वजभंग लिखते हैं।” वि० दे० “उपदंश”।

डॉक्टरी चिकित्सा

घाव को सर्वथा स्वच्छ रखना अनिवार्य है। ब्लैक-वाश (१ भाग कैलोमेल और १४६ भाग लाइमवाटर को परस्पर मिलाकर बनी औषधि) इसके प्रक्षालन करने की उत्तम औषधि है। अतएव ब्लैक-वाश से व्रण को भली भाँति प्रक्षालित कर उस पर शुद्ध आयडोफॉर्म वा आयोडोल छिड़क कर पट्टी बाँधदें और हर चौथे घंटे पट्टी बदलते रहें।

नोट—आयडोफॉर्म की गंध यदि अप्रिय प्रतीत होती हो, तो उसकी जगह आयोडोल वा अरिष्टाल और जीरोफॉर्म प्रयोजित करें।

यदि कुछ दिन तक उपर्युक्त उपचार करने से व्रण अच्छा न हो, परंच उसकी सतह बदनुमा पिलाई लिए हो, तो नाइट्रेट ऑफ़ मर्करी वा शुद्ध कार्बोलिक-एसिड आदि से व्रण की सतह को दग्ध करें। इससे विकृत अंकुर जलकर गिर जाता है और नीचे से देखने में व्रण की स्वस्थ अरुण सतह निकल आती है। उस पर पूर्वोक्त विधि के अनुसार आयडोफॉर्म प्रभृति डूस करने से शीघ्र लाभ होने लगता है।

यदि रोगी का ख़तना न हुआ हो, तो शिश्नमुण्डावरक को ऊपर उठाकर ज़ख़्म को ब्लैक-वाश से भली भाँति प्रक्षालित करना चाहिए और ब्लैक-वाश में किंचित् लिंट तर करके सुपारी और उसको ढाँकनेवाली त्वचा के मध्य में रख देना चाहिए। स्त्रियों के भगोष्ठों के बीच इसे रखना चाहिए, ताकि ज़ख़्म का ज़हरीला माद्दा दूसरी जगह लगकर और ज़ख़्म न पैदा करदे।

यदि क्षत बढ़ जाय तो रोगी को १-२ घंटे तक गरम पानी में बैठावें अथवा जननेन्द्रिय को आधे घंटे तक गरम ब्लैकवाश में रखें।

कभी शिश्नमुंडावरक के नीचे मवाद एकत्रीभूत होकर वेदना का कारण बनता है और उससे सुपारी आदि शीघ्र गलकर मुर्दार पड़ने लगती है। ऐसी

अवस्था में तत्काल छेवा आदि देकर मवाद निकलने का मार्ग बनाना चाहिए और मुरदार पड़े अवयव को साफ़ करके पूर्वोक्त विधि से आयडोफॉर्म से ड्रेस करना चाहिए।

यद्यपि वाह्यफिरंग का विष रक्त में वर्त्तमान नहीं होता, तथापि यदि आंतरिक रूप से पारद का प्रयोग किया जाय, तो इसमें संदेह नहीं कि क्षत शीघ्र अच्छा होने लगता है। अतएव आवश्यकतानुसार आभ्यंतर फिरंगरोगोक्त पारद-यौगिकों को व्यवहार में लावे।

सर्व प्रथम एक हलका रेचन देकर, पुनः आंतरिक रूप से रक्तशोधक और बलकारक औषध के प्रयोग से शीघ्र आराम हुआ करता है।

यदि बद (वध्न) हो जायँ, तो उनको चीरा देकर ऐण्टिसेप्टिक ड्रेस करें। यदि रोगी निर्बल हो तो बलकारक पथ्य दें और आन्तरिकरूप से सारसापरिल्ला (उश्बा मग़रबी) सेवन करें।

तिब्बी चिकित्सा

यद्यपि इस प्रकार के फिरंग में शरीर के खून में कोई विकार नहीं होता; तथापि रोग प्रतिषेधक रूप से रक्तदोष निवारण एवं रक्तोष्मा शमनार्थ निम्न लिखित औषध का आंतरिक प्रयोग करें—

शाहतरा, चिरायता, सरफोका और मुंडी हर एक ७ मा०, उन्नाब ५ नग, हलेला स्याह, लाल चंदन प्रत्येक ५ मा० रात को गरम पानी में भिगोकर प्रातः काल मल-छानकर ४ तो० शर्बत उन्नाब मिला कर पिलाएँ। यदि शीत ऋतु हो तो लालचंदन की जगह उतना ही उश्बा मग़रबी मिलाएँ और शायंकाल ५ मा० माजून उश्बा ८ तो० अर्क उश्बा २ तो० शर्बत उन्नाब मिलाकर पिलाएँ और अधोलिखित बहिर चिकित्सा का अवलंबन करें।

मरहम फ़िरंग—कपूर, संगजराहत प्रत्येक २ मा०, मुरदासंग १ मा०, तूतिया किरमानी और राल प्रत्येक १ तो०, कत्था सफ़ेद १ तो०, मोम सफ़ेद ४ मा०, गोघृत ४ तो०, सब औषधियों को कूटकर कपड़छन चूर्ण बनाएँ। फिर मोम और गोघृत को पिघला कर नीचे उतार लें और औषधियों का कपड़छन चूर्ण इसमें मिलाएँ। पुनः उक्त मरहम को ७ बार पानी से धोकर किसी चीनी की प्याली में रख छोड़ें और आवश्यकतानुसार स्वच्छ वस्त्र पर लगाकर ज़ख़्म पर लगाएँ। गुण—फिरंग के आबले को लाभदायक है।

मरहम सफ़ेद—सफ़ेदा काशग़री (धोया हुआ)-मुरदारसंग प्रत्येक १॥ तो०, कतीरा ३ मा०, रसवत ३ मा०, अफ़ीम १ मा०, कपूर २ मा०, सफ़ेद मोम १॥ तो०, गुल रोग़न ६ तो०, बिहीदाने का लुआब २ मा०, कुक्कुटाण्ड श्वेतक १ नग, पहले मोम और रोग़न को पिघला कर नीचे उतारें। फिर सब औषधियों को, जो कूट छानकर रखीं हों, उसमें डालकर खूब मिलाएँ। सबसे पीछे अंडे की सफ़ेदी और बिहिदाने का लुआब मिलाकर काम में लाएँ। स्थानिक फिरंग के क्षतों को लाभदायक है।

मरहम राल—राल सफ़ेद, आब क़ज़ई, दमुल् अख़वैन, मुरदासंग, तूतिया किरमानी, सेंदुर, गुलनार, जलाई हुई सुपारी हरएक १ भाग, मोम २ भाग, गोघृत ३० भाग, पहले तूतिया को एक मिट्टी की रक़ाबी आदि में आग पर रखकर भूनें। फिर अन्य औषधियों को बारीक कूट छानकर और रोग़न एवं मोम को परस्पर मिलाकर यथाविधि मरहम प्रस्तुत कर काम में लावें।

मरहमचोबचीनी—मुरदासंग, शिंगरफ़ प्रत्येक ७ मा०, कात हिंदी (कत्था), चोबचीनी प्रत्येक १४ मा०, मोम सफ़ेद २ तो०, गाय का मक्खन ८ तो० यथा विधि मरहम प्रस्तुत कर काम में लाएँ।

फिरंग जनित क्षत-निवारक अवचूर्णन—पुराना चमड़ा, काग़ज़, आदमी के शिर का बाल, पीली कौड़ी, सुपारी, शाख़ गोज़न (साबरशृंग), फिटकिरी हर एक जलाया हुआ, इनमें से प्रथम तीन औषधियाँ १-१ भाग और शेष चार दवाएँ २-२ भाग, सब औषधियों को बारीक पीसकर कपड़छन करके रख छोड़ें। आवश्यकता होने पर ज़ख़्म में गुलरोग़न लगा ऊपर से इसे अवचूर्णित कर दें।

आंतरिक रूप से हब्ब सीमाब, हब्ब रसकपूर वा अर्क उश्बा प्रभृति भी खिलाएँ-पिलाएँ। इससे ज़ख़्म बहुत शीघ्र अच्छा हो जाता है।

आभ्यंतर फ़िरंग (आतशक हक़ीक़ी)

फिरंग रोग एक प्रकार की आगंतुज संक्रामक व्याधि है, जो रोग की छूत लगने से अर्थात् रोग का विष किसी अपवित्र घाव के द्वारा शरीर में प्रवेश कर

रक्त को दूषित करके व्रण (घाव, जख़्म)रूपमें प्रकाश पाती है अथवा माता-पिता के शरीर में उक्त रोग का विष रहने से कई पीढ़ियों तक पुत्र,पौत्र प्रपौत्रादि में भी उत्तरोत्तर विकाश पाती है अर्थात् पैतृक रूप से माता पिता से प्राप्त होती है।

निदान—भावमिश्र लिखते हैं कि, फिरंग नामक देश में प्रचुरता के साथ होने से ही वैद्यों ने इसे फिरंग नाम से अभिहित किया है। फिरंगियों के अंग के संसर्ग एवं फिरंग रोगाक्रांता स्त्री-प्रसंग द्वारा ही भारतवर्ष में इस रोग का पदारोहण हुआ। इसलिए यह रोग आगंतुक कहा गया है। इस रोग में दोषों का संबंध पीछे से होता है अर्थात् प्रथम संसर्ग का होना अनिवार्य है। यथा—

"फिरंगसंज्ञके देशे वाहुल्येनैव यद्भवेत्।
तस्मात् फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः॥
गन्धरोगः फिरंगोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम्।
फिरंगिणोऽङ्गसंसर्गात् फिरंगिण्याः प्रसङ्गतः॥
व्याधिरागंतुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः।
भवेततल्लक्षयेत् एषां लक्षणैर्भिषजां वरः॥"

(भा० म० ४ भ०)

अर्वाचीन गवेषणाओं से सर्ववादिसम्मति से यह बात स्वीकृत हो चुकी है कि इस रोगका उत्पादक कारण एक प्रकार का अणुवीक्ष्य सूक्ष्म लहरदार कीटाणु है, जिसको डॉक्टरी में स्पाइरोकीटा पैलीडा (Spirochæta Pallida) अर्थात् फिरंग रोगोत्पादक कीट कहते हैं। इसको डॉक्टर शॉडिन (Schaudinn) ने सन् १९०५ ई० में दर्याफ़्त किया था। उक्त कीटाणु समग्र फिरंगरोगाक्रांत व्यक्तियों के प्रारम्भिक क्षत, उनके रक्त, उनके त्वगीय दाग धब्बों, ददोड़ों तथा फुंसियों में और मुख एवं गुदा के चट्टों एवं प्लीहा प्रभृति में वर्तमान पाया जाता है। अस्तु, इसका आदि कारण पूर्वोक्त कीटाणु ही है जो नाना भांति से मनुष्य शरीर में प्रवेश पाकर उक्त रोग को प्रकट करता है। इस रोग की छूत निम्न प्रकार से लगती है।

फिरंग-संक्रमण-प्रकार—इस रोग की छूत प्रायः दूषित स्त्री-सहवास, मुख्यतः पर-स्त्रीगमन, वेश्यागमन आदि दुराचारों से ही लगा करती है। पर कभी कभी फिरंगरोग पीड़ित व्यक्ति के चुम्बन, उसका जूठा हुक्का वा पानी पीने, उसके साथ भोजन करने वा उसका उच्छिष्ट आहार खाने वा उसके जूठे बरतनों में खाने, उसके साथ सोने और उसका पहना वस्त्र धारण करने से उस व्यक्ति में इस रोग का प्रादुर्भाव होजाता है। डॉक्टर वा जर्राह को ऐसे रोगी पर किसी प्रकार का शस्त्रकर्म करते समय तथा धात्री वा दाई को ऐसी रोगिणी का बच्चा जनाते समय उँगली आदि पर मवाद लग जाने से भी यह व्याधि प्रगट हो जाया करती है। अपवित्र स्त्री-सहवास जनित फिरंग का चट्टा (Chancre) प्रारम्भ में शिश्नमुण्ड (सुपारी), शिश्नमुण्डावरण, मूत्रनली का सम्मुख भाग, अंडकोषावरण, योनिकपाट, योनिमुख इत्यादि स्थानों में क्षत रूप में प्रकाश पाकर वहाँ से ओठ, जीभ, तालू प्रभृति शरीर के अन्य भागों में भी प्रकट हो सकता है। कभी कभी पवित्र मनुष्यों को प्रसंग के बिना ही इस नारकीय व्याधि का शिकार हो यम-यातना भुगतनी पड़ती है। उक्त अवस्था में जननेन्द्रिय पर क्षत न होकर शरीर के किसी अन्य भाग पर होता है। इस प्रकार के आतशक को पवित्र आतशक वा मैथुन-विवर्जित फिरंगरोग (Syphilis insantium) अथवा (Extragenital chancres) कहते हैं।

पैतृक फिरंगरोगाक्रांत शिशु को दूध पिलाने से दाई को भी इस रोग का शिकार होना पड़ता है। पुनः उस दाई से स्वस्थ शिशु को यह रोग हो जाता है। ऐसे सहज फिरंगरोग पीड़ित शिशु का मवाद लेकर अन्य निरोग शिशु को शीतला का टीका लगाने से यह रोग हो जाता है।

यद्यपि रोगारंभ से लेकर रोग की द्वितीयावस्था के अंत तक आतशक रोगीके रोगकी छूत अन्य व्यक्तियोंको लग सकती है। तथापि इस रोग का प्रारंभिक क्षत अपेक्षाकृत अधिक संक्रामक होता है।

आनुवांशिक फिरंग पिता के वीर्य दोष अथवा माता के रक्त से होता है वा माता-पिता दोनों इसके उत्पादक कारण होते हैं। गर्भवती को यह रोग होनेसे भ्रूण भी इस रोग से आक्रांत हो जाया करता है।

कभी ऐसा भी होता है कि शिशु को तो सहज

वा आनुवंशिक फिरंग रोग होता है; परंतु जननी देखने में सर्वथा रोग विरहित ज्ञात होती है अर्थात् देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि वह फिरंग रोगाक्रांत है। सत्य बात तो यह है कि, उसके भीतर गुप्त रूप में उक्त रोग का बीज वर्तमान होता है। शिशु को फिरंग पीड़िता जननी द्वारा होनेवाला यह रोग अत्युग्र होता है। फिरंग रोग पीड़ित व्यक्ति के ज़ख़्म का मवाद भी संक्रामक होता है और यदि वह भी स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में लग जाय तो उसे आतशक हो जाता है।

फिरंग रोग का विष सप्त-धातुओं को दूषित करनेवाला होनेके कारण रोगी को जो संतति होती है, वह भी प्रायः उसी विष का अंश लेकर होती है। ऐसी संतति में कभी कभी जन्मते ही और कभी कुछ दिनों बाद बालक के गुह्यप्रदेश के आसपास और हाथ-तलवों पर और हथेली पर लाल वा काले चट्टे अथवा दाग़ पाये जाते हैं। कभी कभी ये पकते भी हैं अथवा उनके छिलके उतरते हैं, नाकमें शोथ होकर पाक होता है और उसमें से स्राव भी होता है। यहाँ तक कि कभी-कभी नाक तक बैठ जाती है। ऐसे लड़के बहुत ही निर्बल होते हैं और उनका वर्ण फीका होता है। कभी-कभी वे गर्भ में ही फिरंग-ग्रस्त होते हैं। उक्त अवस्था में वे पेट में ही मृत होते हैं; जिससे गर्भपात हो जाता है अथवा वे जन्मते ही काल कवलित हो जाते हैं। किसी-किसी की गुदा, शिश्न और ओठों में फोड़े जन्म से ही रहते हैं वा बाद में हो जाते हैं।

अपवित्र स्त्री-सहवास से इस रोग का विष स्वस्थ व्यक्तियों को लगकर सर्व प्रथम यह रोग ज़ख़्म वा चट्टेके रूप में जननेन्द्रिय पर प्रकट होता है। परंतु कभी-कभी उँगली पेडू, कपोल, ओष्ठ और ज़बान प्रभृति में से जिस जगह उक्त रोग की विषाक्त चेप लग जाती है, इसका ज़ख़्म वहीं प्रकट हो जाता है। पुनः वहाँ से समस्त शरीर में व्याप्त होता है।

भारतवर्ष में जहाँ बाज़ारू भ्रष्ट चरित्र स्त्रियों के साथ सहवास एवं वेश्यागमन आदि व्यभिचार-कांड का बाज़ार गरम है, वहीं प्रचुरता के साथ इस रोग का ज़ोर देखने में आता है। यद्यपि यह रोग हर अवस्था में हो सकता हैं, तथापि तरुण अवस्था एवं यौवनकाल में इसका विशेष प्रादुर्भाव होता है। स्त्री-पुरुष काले गोरे प्रायः सभी इस रोग के शिकार होते हैं। पर किसी किसी व्यक्ति एवं जाति विशेष में इस रोग के विरुद्ध असीम रोगप्रतिषेधक शक्ति वर्तमान होती है। कोई-कोई ऐसे व्यक्ति एवं ऐसी जातियाँ हैं जिनके वंश वा ख़ानदान में चिरकाल से यह रोग अपना अड्डा जमा चुका है, उनमें इसके लक्षण साधारण होते हैं। परन्तु जब किसी ऐसे व्यक्ति वा ऐसी जाति में यह रोग प्रथमबार होता है, जिनके ख़ानदानमें इसका किंचिन्मात्र भी असर न हो, तब उनमें इसके लक्षण बहुत उग्र होते हैं। और जब एक कुटुम्ब से दूसरे कुटुम्ब के व्यक्ति में अर्थात् जंगी से फिरंगी में वा इसके विपरीत इस रोग का प्रवेश होता है। उस समय भी यह अत्यन्त उग्र होता है।

जब एक बार यह रोग हो जाता है, तब प्रायः दोबारा नहीं होता। और यदि कभी हो भी जाय तो बहुत साधारण प्रकार का होता है। हाँ, सलवासान के प्रयोग द्वारा पूर्णतया रोग-मुक्त हो चुकने के उपरांत भी किसी-किसी व्यक्ति को दोबारा यह रोग हो गया है।

संक्रमण—प्रकार प्रभेद से यह रोग दो प्रकार का होता है—(१) स्वार्जित फिरंग रोग और (२) सहज वा आनुवंशिक फिरंग रोग। नीचे इनमें से प्रत्येक का पृथक्-पृथक् वर्णन किया जाता है।

उपार्जित फिरंगरोग

आतशक कसबी, आतशक मक्सूबः (अ०,फ़ा०)। एक्वायर्ड सिफिलिस Acquired syphilis (अं०)। इस प्रकार का आतशक किसी न किसी भाँति छूत लगने से एवं स्वार्जित होता है। मवाद लगने की जगह वा चीरा आदि के द्वारा शरीर के जिस भाग से इसका विष भीतर प्रविष्ट हुआ होता है, वहाँ पर सर्व प्रथम एक दृढ़ उभार वा लाल फुन्सी उत्पन्न हो जाती है। इसके दो-तीन मास उपरांत शरीर पर ददोड़े वा लाल-लाल दाने निकल आते हैं, ज्वर होता है और लसीका ग्रंथियाँ बढ़ जाती हैं। फिर चन्द मास बाद वा एक दो वर्ष के उपरांत, त्वचा, पेशियाँ, अस्थि, और आन्तरिक अवयवों में दानेदार उभार (गुम्मियाँ, गम्मेटा इत्यादि) उत्पन्न हो जाते हैं। अंततः शरीर में कुछ

ऐसे परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं, जिनसे सार्वांगिक वातग्रस्तता (General Paralysis) और (Loco-motor ataxy) प्रभृति रोगों से आक्रांत होने के लिए प्रकृति तैयार हो जाती है।

फिरंग रोग का विष शरीर में प्रविष्ट होते ही रोग के लक्षण उपस्थित नहीं हो जाते। परंच १० से लेकर ४६ दिन के उपरान्त इसका रूप प्रगट होता है। पर छूत लगने के प्रायः २४ दिन बाद रोग के लक्षण प्रगट हो जाते हैं।

वर्णना सौकर्यार्थ के लिए इस रोग के लक्षणों को तीन कक्षाओं में विभाजित कर वर्णन किया जाता है।

प्रथमावस्था के स्वरूप वा लक्षण—प्राथमिक फिरंग (सं०, हिं०)। प्राइमरी ष्टेज (Primary stage), प्राइमरी सिफिलिस Primary syphilis (अं०)। आतशक अव्वला, दर्जा अव्वला, दर्जा इब्तिदाई। रोग की छूत लगने वा विष शरीर में प्रविष्ट होने के प्रायः तीन सप्ताह बाद, उस स्थल पर पहिले एक कठोर उभार वा एक लाल फुन्सी उत्पन्न हो जाती है। इसकी जड़ कठोर हो जाती है और यह धीरे धीरे बढ़कर फट जाती है, जिससे वहाँ पर एक ज़ख़्म बन जाता है। यह केवल एक ही होता है और इसके आस पास की त्वचा किसी भाँति ऊँची हो जाती है। यदि ज़ख़्म को दबाकर देखें तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई कड़ी कुर्री त्वचा के भीतर उत्पन्न हो गई है। यह सर्वथा वेदनारहित होता है और इसमें से पीव भी बहुत कम निकलती है। इस ज़ख़्म के प्रादुर्भूत होने के ५—७ दिन के उपरांत वंक्षण (जंघासा) की लसीका ग्रंथियाँ सूजकर कड़ी हो जाती हैं। दबाने से ये कठोर प्रतीत होती हैं। पर इनमें न पीड़ा होती है और न ये मृदु होते हैं। इनमें पीव भी नहीं पड़ती। इसे साधारण बोल चाल में बद वा बाघी (Bubo) कहते हैं। यदि इस आतशकी फुंसी वा उभार में से अथवा पूर्वोक्त सूजी हुई ग्रन्थियों में से सूचिका द्वारा किंचिद्द्रव लेकर उसकी अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा की जाय, तो उसमें प्रागुक्त आतशकी कीट वर्तमान पाए जाते हैं।

बाह्याभ्यंतर दोनों प्रकार के फिरंगरोगका प्रादुर्भाव प्रथम चट्टे के रूप में ही होता है। डॉक्टरी में इन फिरंग जनित विस्फोटकों को शैंकर (Chancre) कहते हैं। परंतु आभ्यंतर फिरंग वा आतशक हक़ीक़ी का चट्टा कुर्री की तरह कठोर होता है; इसलिए उसे हार्ड शैंकर (कठोर चट्टा, प्रकृति दूषक फ़िरंग वा आतशक सौदावी) कहते हैं। बाह्यफिरंग वा स्थानिक आतशक का चट्टा मृदु होता है, इसलिए उसे सॉफ्ट शैंकर (मृदु चट्टा, आतशक सफ़रावी) नाम से अभिहित करते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के शैंकर (चट्टों) अर्थात फ़िरंग में निम्न भेद पाया जाता है—

स्थानिक फिरंग का चट्टा कोमल होता है और यह फुंसी अथवा लाल दाग़ के रूप में प्रारंभ होकर श्वेत घाव के रूप में हो जाता है, जिसमें से राध, पीव, लसीका (लिंफ) निकलती है। परंतु आभ्यंतर फिरंग का चट्टा कठोर और प्रायः सूखा होता है और यदि उसमें स्राव भी हुआ तो पीव का न होकर एक प्रकारकी पतली लसीका का होता है। इस प्रकार के हार्ड शैंकर को अँगरेजी में हानटेरियन शैंकर भी कहते हैं।

हार्ड शैंकर प्रारंभ में फुंसी की तरह नहीं, प्रत्युत मटर के सदृश कठिन अथवा चीरेदार गाँठ के रूप में प्रारंभ होता है।

पहले प्रकार के चट्टेवाले में बद वा बाघी क्वचित् ही होती है और यदि हुई भी तो पककर शीघ्र ही फूट जाती है। दूसरे प्रकार में बद होना अनिवार्य होता है और वह होकर पत्थर के समान कड़ा रहता है। उसमें पीव नहीं होती और यदि कदाचित् हुई भी तो कई एक क्षोभक कारण विशेषों से ही होती है। इतने पर भी उसका कड़ापन दूर नहीं होता।

स्थानिक उपदंश का चट्टा चाहे कितने ही दिन रहे और कितना ही विकोप को प्राप्त हो, तो भी बहुत ही हुआ तो इंद्री झड़ जायगी, पर संपूर्ण शरीर दूषित न होगा। परंतु आभ्यंतर फिरंग का चट्टा (Hard chancre) पीव और ठनक आदि न होने के कारण चाहे कितना भी निरुपद्रवी देखने में आवे एवं उसमें चाल न होने के कारण उसके द्वारा इंद्री को दुःखापत्ति होने की संभावना

भी न हो, तो भी उसे बड़ा भयंकर जानना चाहिए। क्योंकि उसके परिणाम चिरस्थायी होते हैं। उसके कारण जो रक्त में विकृति उत्पन्न हो जाती है उसका कष्ट आजन्म भोगना पड़ता है। इसकी उष्णता जन्म भर रहती है। इतना ही नहीं, प्रत्युत इसका असर वंश परंपरा तक चला जाता है।

आभ्यंतर फ़िरंग स्त्री-संग से तीन चार सप्ताह उपरांत एक किंचित् कठोर लाल रंग का उभार वा घाव रूप में प्रगट होता है; परंतु स्थानिक फिरंग में मवाद लगने के साधारणतः चौबीस घंटे पश्चात् पहले फुंसी पैदा होती है जो तीसरे दिन आबला बन जाती हैं। फिर वह आबला फूटकर क्षत बन जाता है।

आभ्यंतर फिरंग की चिकित्सा न्यूनाधिक दो वर्ष तक करना अनिवार्य होता है। परंतु स्थानिक वा बाह्य फ़िरंग केवल कुछ सप्ताहों की चिकित्सा द्वारा निर्मूल हो जाता है।

आभ्यंतर फिरंग का विष रक्त में प्रविष्ट हो जाता है। अतएव उसमें विशेष औषध चिरकाल तक सेवन कराना अनिवार्य होता है; परंतु बाह्य फिरंग केवल एक प्रकार का स्थानीय क्षत है। अस्तु, इसमें उपयुक्त स्थानिक उपचार तो अनिवार्य होता ही है। पर यदि फिरंग के निःशेष निवृत्यर्थ पारद के यौगिक प्रभृति का उपयोग कराया जाय तो और भी उत्तम हो।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि उक्त दोनों प्रकार के फिरंगरोग एक साथ ही प्रगट हो जाते हैं। उक्त दशा में आभ्यंतर फिरंग (आतशक हकीकी) के सभी लक्षण प्रकाशित हो जाते हैं।

इन भेदक चिह्नों द्वारा फिरंग के ज़ख़्म को देखकर यह बतलाया जा सकता है, कि रोगी बाह्याभ्यंतर फिरंग रोगों में से किस प्रकारके फिरंगसे पीड़ित है।

कभी ऐसा होता है कि इसके मवाद लगने के उपरांत जो कठोर उभार वा दाना बनता है, वह ज़ख़्म रूप में परिणत नहीं होता और न उसमें पीव पड़ती है; प्रत्युत कभी कभी जननेन्द्रिय के किसी भाग विशेष की त्वचा केवल मोटी और लाल हो जाती है, जिसे देखकर आतशक होने का अनुमान भी नहीं किया जा सकता।

कभी ऐसा भी होता है कि आतशक के ज़ख़्म में क्षोभ होकर उसमें से पीव निकलती है और जहाँ पर वह लगती है, वहाँ पर घाव कर देती है।

कभी कभी आभ्यंतर फिरंग (आतशक हकीकी) के ज़ख़्म में बाह्यफिरंग (स्थानिक फिरंग) का मवाद भी मिला हुआ होता है। ऐसी अवस्था में उसे मिश्रफिरंग वा भावप्रकाशानुसार बाह्याभ्यंतर फिरंग कहते हैं। इसमें दोनों प्रकार के लक्षण समुदाय सम्मिलित रहते हैं। वैद्यगण इसे असाध्य मानते हैं।

आतशक का घाव साधारणतः जननेन्द्रिय पर हुआ करता है। अतः पुरुषों में शिश्नमुण्ड (सुपारी), जननेन्द्रिय का कोई और भाग तथा मूत्रप्रणाली इसके संक्रमण के मुख्य स्थान हैं और स्त्रियों में भगोष्ठ का भीतरी पृष्ठ वा गर्भाशय की ग्रीवा। किंतु ओष्ठ, चूची की भिटनी (स्तनवृंत), उँगली वा शरीर के किसी और भाग पर जहाँ इस रोग का विष प्रविष्ट होजाय, इस प्रकार का क्षत होजाया करता है।

उक्त आतशकी क्षत के प्रगट होने के एक से तीन मास के उपरान्त (किंतु साधारणतः १॥ महीने वा ६ सप्ताह के बाद) इस रोग की द्वितीयावस्था प्रारम्भ होती है।

द्वितीयावस्था—गौण फिरंग (सं० । हिं०)। आतशक सानोई। आतशक का दर्जा दोम। सेकंडरी सिफिलिस (Secondary syphilis), सेकंडरी ष्टेज (Secondary stage) अं०।

इस कक्षा में पहुँचा हुआ रोगी भीरु एवं अशक्त हो जाता है; शरीर पर गुलाबी फुन्सियाँ निकल आती हैं; शरीर की समग्र लसीका ग्रंथियाँ सूज आती हैं; मांस, अस्थि तथा संधियों में दर्द होने लगता है और यह रात में बढ़ता है। कभी कभी ज्वरांश हो आता है, जो कभी तो साधारण और कभी उग्र होता है, कभी नौबती और कभी निरंतर होता है। निदान करने में कभी मलेरिया ज्वर से इस ज्वर का धोखा होता है।

गुलाबी दाने प्रथम छाती तथा बाजुओं पर प्रकट होते हैं। इसके उपरान्त वे कालापन लिए ताम्रवर्ण के हो जाते हैं। ये दाने २ से ४ सप्ताह तक धीरे

धीरे सम्पूर्ण शरीर पर निकलते रहते हैं और पुनः लगभग दो मास में मुरझा जाते वा अदृश्य हो जाते हैं। कुछ काल के लिए वहाँ पर काले काले धब्बे मात्र रह जाते हैं। इन दानों के मध्य किंचित् पीव आदि भी पड़ जाया करती है; किन्तु दर्द, जलन वा खाज प्रभृति बिलकुल नहीं होती और ये ही आतशकी दानों के विशेष लक्षण हैं। किसी किसी रोगी में दो तीन सप्ताह में ही ये दाने विलुप्त प्राय हो जाते हैं।

इन दानों के प्रादुर्भूत होने के साथ ही, होठों और जिह्वा पर तथा कपोलों के भीतर की ओर सफ़ेद सफ़ेद चट्टे वा दाग पड़ जाते हैं, जो क्षतयुक्त होकर आतशकी ज़ख़्म बन जाते हैं। मुँह के कोनों वा बाछों पर, स्त्री-गुह्येन्द्रिय के किनारों पर और गुदा के चतुर्दिक् चट्टे (Condyloma) पड़ जाते हैं। कंठकी ग्रन्थियाँ (Tonsils) बढ़ जाती और सूज आती हैं। अर्थात् फिरंगीय प्रदाह हो जाता है और पुनः उनमें क्षत बन जाते हैं। बार बार कंठ प्रदाह होनेसे आवाज़ भर्रा जाती है जो इस व्याधिका एक विशिष्ट लक्षण है। प्लीहा बढ़ जाती और शरीर की समग्र लसीका ग्रंथियाँ विशेषतः वंक्षण तथा ग्रीवा के पीछेकी ओर की ग्रंथियाँ शोथयुक्त होकर कठिन हो जाती हैं जो उक्त व्याधि के परिचायक रूप हैं। भौहों, पलकों एवं शिर के बाल गिर जाते हैं। उन्हीं दिनों कलाई, टाँगों की लंबी हड्डियों अर्थात् नलियों में दर्द होने लगता है और यह साधारणतः रात में अधिक हो जाया करता है। संधियाँ सूज आती हैं, आँख के अंगूरी पर्देमें प्रदाह होजाता है और कभी रोगी बहिरा हो जाता है इत्यादि। रोगीका रक्त दूषित एवं निर्बल होकर उसे रक्ताल्पता वा पांडु (Anæmia) हो जाता है और वह अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। रोगी के रक्त एवं उसके शरीर के दानों आदि की रतूबत में फिरंग रोग के कीटाणु पाये जाते हैं। फिरंग की द्वितीयावस्था के उपर्युक्त लक्षण किसी किसी रोगी में ६ वा ८ महीने बाद, पर साधारणतः १८ मास के उपरांत सर्वथा दूर हो जाया करते हैं।

फिरंग की तृतीयावस्था के लक्षण प्रगट होने का कोई विशिष्ट समय निर्धारित नहीं होता। उनका प्रगट होना वा न होना बहुतांश में रोगी के स्वास्थ्य एवं उचित उपचार पर निर्भर करता है। अस्तु, इसकी द्वितीयावस्था में जिन रोगियों की उचित एवं नियमानुकूल चिकित्सा की जाती है, उनमें प्रायः तृतीयावस्था के लक्षण उपस्थित होते ही नहीं और यदि हों भी तो बहुत साधारण होते हैं। किंतु किसी-किसी रोगी में यथार्थ चिकित्सा होते हुए भी ६ वा ८ मास के उपरांत और किसी में कई वर्ष बाद तृतीयावस्था के लक्षण प्रगट होते हैं। कोई २ रोगी १५–१५, २०–२० वर्ष पर्यन्त भले-चंगे रहते हैं और पुनः उनमें तृतीय कक्षा के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

पर द्वितीय एवं तृतीयावस्था के मध्यवर्ती दिनों में समय-समय पर कतिपय लक्षण उपस्थित हो होकर रोगी को इस बात का स्मरण दिलाया करते हैं, कि अभी तक आतशक रूपी आपत्ति उसके शिर पर मँडला रही है अर्थात् आतशकरूपी कष्टदायिनी चड़ैल से अभी तक उसका पल्ला नहीं छूटा है। उक्त लक्षणों को द्वितीयावस्था के अंतिम लक्षण कहते हैं और वे निम्नांकित हैं—

(१) आँख के गोले के विभिन्न पर्दों में प्रदाह हो जाता है। (२) धमनी के भीतरी स्तर में प्रदाह हो जाता है, और मस्तिष्क की किसी धमनी में अवरोध उपस्थित होकर मस्तिष्क के विशेष भाग का रक्तसंवहन अवरुद्ध होकर उसकी क्रिया नष्ट हो जाती है, जिससे स्थानीय फ़ालिज हो जाता है। (३) हस्तपाद के तलवों पर छाजन (Psoriasis) हो जाती है। इस रोग में यह विशेषता होती है, कि उसके किनारे गोल होते हैं और त्वचा शुष्क होकर फट जाती है और उस पर से चट्टे वा छिलके उतरते रहते हैं। (४) टाँगों प्रभृति पर गोल-गोल ज़ख़्म बन जाते हैं जिन्हें 'रूपया' कहते हैं। ऐसे घावों में यह विलक्षणता होती है, कि उनपर खुरंड बन जाता है और ज़ख़्म नीचे-नीचे बढ़ता जाता है इत्यादि।

तृतीयावस्था का फिरंग—आतशक सुलासी। आतशके मुज़्मिन। पुरातन आतशक। आतशक का दर्जा सोम। टर्शियरी ष्टेज Tertiary stage, टर्शियरी सिफलिस Tertiary syphilis (अं०)।

लक्षण—द्वितीयावस्था के लक्षण के विलुप्त हो

जाने के महीनों वर्षों बाद (वा कभी दूसरी अवस्था के साथ ही) चिरकारी फिरंग जन्य प्रदाह के लक्षण प्रगट होते हैं । अस्तु, विभिन्न अवयव तथा कोष्ठावयव में छोटी मोटी ग्रंथियाँ (Gummata) उत्पन्न होकर कभी कभी वे कोमल एवं क्षतयुक्त हो जाती हैं । इस प्रकार की गिल्टियाँ (गुम्मियाँ वा गुमड़े) त्वचा, पेशी, जिह्वा, कंठ, आँत, मस्तिष्क, सुषुम्नाकांड, नाड़ी, हृदय, फुफ्फुस, यकृत, प्लीहा और वृक्क प्रभृति तथा अस्थियों में भी प्रादुर्भूत हो जाती हैं । हड्डियों में जो उभार (गम्मेटा) उत्पन्न होते हैं, उनमें रात के समय प्रभूत वेदना हुआ करती है । तालू प्रभृति में क्षत होकर वह गल जाता है । कभी नाक का बाँसा गलकर नाक बैठ जाती है । रोगी क्षीण, दुर्बल एवं शक्तिहीन हो जाता है, प्रभृति ।

भावप्रकाश में आभ्यंतर फिरंग के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

"संधिष्वाभ्यंतरः स स्यादामवात इव व्यथाम् ।
शोथं च जनयेदेष कष्टसाध्यो बुधैः स्मृतः ॥"
मा० म० ४ भ० ।

अर्थात् "आभ्यंतर (भीतरी) फिरंग आमवात रोग की तरह संधियों में व्यथा और शोथ उत्पन्न करता है और इसे वैद्यों ने कष्टसाध्य कहा है ।"

नव्यानुसंधानों से इस रोग की एक चतुर्थावस्था भी ज्ञात हुई है, जो निम्न है—

चतुर्थावस्था—हाल के कतिपय अन्वेषकों का मत है, कि (Tabes Dorsalis), (Locomotor Ataxia) और उन्मत्त व्यक्ति की सार्वांगिक वातग्रस्तता (General Paralysis of the insane) आदि कई एक वात रोग चिरकारी फिरंग के विषाक्त प्रभाव के परिणाम स्वरूप हैं । और यह निःसंदेह है, कि इन रोगों के ९० % प्रतिशत रोगी ऐसे होते हैं, जिन्हें किसी न किसी समय आतशक अवश्य होचुका होता है । इस प्रकार के लक्षणों को आजकल फिरंग की चतुर्थावस्था के लक्षण कहते हैं ।

सहज वा आनुवंशिक फिरंग रोग

पर्य्याय—सहज फिरंग, आनुवंशिक फिरंग, पैतृक फिरंग, कौलिक फिरंग (सं०, हिं०) । आतशक मौरुसी, आतशक, मौलूदी (अ०, फ़ा०) । मौरुसी आतशक, पैदायशी आतशक (उ०) । हेरिडिटरी सिफिलिस Heriditary syphilis. कॉन्जेनिटल सिफिलिस Congenital syphilis-(अं०) ।

गर्भ को प्राप्त होनेवाला फिरंग, पिता के वीर्यदोष से होता है अथवा माता के रक्त से होता है अथवा दोनों से भी होता है । गर्भस्थिति के उपरान्त यदि माता को यह रोग हो जाय तो उससे आँवल द्वारा भ्रूण को हो जाता है । जब पिता के वीर्य में इस रोग का विष हो, तब उससे संतति को अवश्य सहज फिरंगरोग हो जाता है । परन्तु उसकी जननी में प्रगटरूप से इस रोग के कोई चिह्न नहीं पाये जाते । अस्तु, ज्ञात होता है कि फिरंगी भ्रूण द्वारा उसके रक्त में इस रोग का कुछ असर अवश्य हो जाता है । क्योंकि यदि संतति के मुँह में आतशकी क्षत हो और वह अपनी माता का दूध पीता हो, तब भी उसकी माता को रोग का कुछ असर नहीं होता । पर जब ऐसा शिशु किसी स्वस्थ दाई का दूध पीता है तब उस दाई को यह रोग हो जाता है । इसी प्रकार यदि माता-पितामें से किसी एकको यह रोग हो चुका हो तो संतति देखने में निरोग पैदा होती है और उस पर भी इस रोग का कोई प्रभाव नहीं होता । अस्तु, यदि माता वा दाई फिरंगरोग से आक्रांत हो अथवा उसकी भिटनी पर आतशकी क्षत वर्तमान हो तब भी शिशु पर उक्त रोग का कोई प्रभाव नहीं होता । माता द्वारा संतति को उक्त रोग होने पर रोग के लक्षण अत्युग्र होते हैं ।

आनुवंशिक फिरंग-रोग के लक्षण—फिरंग रोगी का वीर्य साधारणतः दूषित एवं निर्बल होता है । इसलिए वह माता के गर्भाशय में उचित रीति से परिपुष्ट नहीं हो पाता, जिससे बार बार गर्भपात हो जाता है । किसी किसी अवस्था में शिशु पूर्ण समय के उपरांत पैदा होता है । तो भी वह शीघ्र मृत हो जाता है । कभी कभी शिशु पूरे दिनों का होकर देखने में निरोग पैदा होता है, किंतु उसमें सहज फिरंग के लक्षण शीघ्र प्रकटित हो जाते हैं ।

जन्मकाल से २ से ८ सप्ताह के उपरांत, पर साधारणतः चार सप्ताह पश्चात् रोग के लक्षण प्रगट हो जाते हैं । प्रारंभ में शिशु मोटा ताज़ा एवं

निरोग ज्ञात होता है। किंतु जब रोग के लक्षण प्रकाशित होते हैं, तब बालक दुर्बल तथा शक्तिहीन होने लगता है। उसके शरीर का रंग सफ़ेद पड़ जाता है और सम्पूर्ण शरीर विशेषतः चेहरे पर बुड्ढे आदमियों की तरह झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं। बालक को प्रतिश्याय होता है। नाक से सदा पानी टपका करता है, दम रुक रुक कर आता है, मुख और कंठ में छाले वा ज़ख़्म पड़ जाते हैं, नाक के भीतर क्षत होकर हड्डी विकृत हो जाती है, होंठों, चड्ढों और पायु के चतुर्दिक् शकाक पैदा हो जाते हैं और उक्त स्थल छिल जाते वा वहाँ पर कड़ी फुंसियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, शरीर पर गुलाबी दाने, फुंसियाँ वा छाले उत्पन्न हो जाते हैं। लाल रंग के दाने पहले साधारणतः चूतड़ों और जननेन्द्रिय पर निकला करते हैं। बाल बारीक और कमज़ोर होकर झड़ जाते हैं। दुग्ध-दंत प्रथम तो विलंब से निकलते हैं और दूसरे कमज़ोर और बोदे होते हैं, जो शीघ्र गिर जाते हैं। बालक रोता रहता है और उसकी प्रकृति चिड़चिड़ी हो जाती है, क़ै दस्त आते हैं और कभी पांडु इत्यादि हो जाता है। फिर स्थिर-दंत उदय होने वा यौवन तक किसी प्रकार का लक्षण उपस्थित नहीं होता। दूध के दाँत गिर जाने के उपरांत जो स्थिर-दंत निकलते हैं, वे कुरूप और मेख़ की तरह होते हैं वा दंदानेदार मानो क्रिमिभक्षितवत् होते हैं। आँखें दुखती हैं। कभी ऊँचा सुनाई देने लगता है। अस्थियों में उभार पैदा हो जाते हैं। टाँगों की हड्डियाँ टेढ़ी हो जाती हैं। संधियों के पास अस्थियों के सिरे सूज जाते हैं, अधिकतया घुटनों के जोड़ शोथयुक्त हुआ करते हैं। पैतृक फिरंग रोगी को यक्ष्माक्रांत हो जाने की बहुत आशंका रहती है।

नोट—जन्म के उपरांत आनुवंशिक फिरंग के लक्षण जितना शीघ्र प्रगट हों, वे उतना ही भयावह होते हैं। सहज फिरंगाक्रांत शिशु से प्रायः दूसरों को यह रोग हो जाया करता है।

प्रश्न यह होता है कि, क्या आतशक वालों को विवाह करना चाहिए? इस विषय में विद्वानों में मत भेद है। बहुमत इस पक्ष में है, कि प्रायः उनसे आगामी नस्ल अर्थात् तीसरी पीढ़ी में रोगका प्रादुर्भाव नहीं होता; किन्तु वे आनुवंशिक एवं उपार्जित फिरंग को साधारणतया फैला सकते हैं। फलतः ऐसे व्यक्ति पाणिग्रहण कर सकते हैं और करते हैं और उनको स्वस्थ संतति उत्पन्न होती है।

इनके अतिरिक्त सर्वांग में होनेवाले फिरंग को सार्वांगिक फिरंग वा रचनात्मक फिरंग (Constitutionl syphilis) कहते हैं।

रोग का निदान—इस रोग के उपर्युक्त लक्षणों को दृष्टि में रखते हुए, इस रोग का निदान करना कोई कठिन नहीं। परन्तु कोई-कोई रोगी इस रोग को गुप्त रखते हैं और उसका होना स्वीकार नहीं करते। ऐसे व्यक्तियों से रोगकी गत घटनाएँ दर्याफ़्त करने से निदान सरल हो जाता है।

फिरंग जनित क्षत वा त्वग्रोग की रतूबत वा रोगी के खून की अणुवीक्षणयंत्र द्वारा परीक्षा करने से उनमें फिरंग के कीटाणु पाये जाते हैं। और यदि इस प्रकार सार्वांगीन निदान शक्य न हों, तो फिर वैसर मैंज़ टेस्ट (जो एक प्रकार का सीरमीय परीक्षा है) द्वारा इसका पूर्ण निदान हो जाता है।

फिरंग के उपद्रव

कृशता, बलकी क्षीणता, नाक बैठ जाना, अग्निमांद्य, रक्तदोष (पाठांतर से अस्थिशोष) और हड्डियों का टेढ़ा हो जाना आदि उपद्रव होते हैं। यथा—

"कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मंदता।
रक्तदोषोऽस्थि वक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी॥"

(भा॰ म॰ फिरंगाधिकार)

साध्यासाध्यता

बाहर का उत्पन्न हुआ नवीन और उपद्रव रहित फिरंग साध्य है और भीतरका फिरंग कष्टसाध्य है। बाहर और भीतर के लक्षणों से युक्त क्षीण काय पुरुष का पूर्ण व्याप्त उपद्रवयुक्त फिरंग असाध्य होता है। यथा—

"वहिर्भवो भवेत् साध्यो नवीनो निरुपद्रवः।
आभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमामयः॥
वहिरन्तर्भवो जीर्णो क्षीणस्योपद्रवैर्युतः।
व्याप्तो व्याधिरसाध्योऽयमित्याहुर्मुनयः पुरा॥"

(भा॰ म॰ फिरंगाधिकारे)

रोग का परिणाम

प्राय: रोगियों में, जिनकी उचित एवं यथार्थ चिकित्सा की जाती है, इसका फल निरापद होता है। सैलवर्सान और नियोसलवर्सान के उपयोग से और इनके साथ पारद के प्रयोग से रोगी सदा के लिए फिरंग से मुक्ति लाभ करता है। पर यदि प्रथम एवं द्वितीयावस्था में इसका उचित प्रतीकार न किया गया, तो फिर रोग की तृतीयावस्था के लक्षण अत्यंत उग्र एवं भयावह होते हैं।

पाणिग्रहण वा विवाह

पहले तो यूरोप तथा अमेरिका में यह शासन विधान प्रचलित था, कि जब तक रोगारम्भ से लेकर पूरे दो वर्ष व्यतीत न हो जायँ, फिरंग रोगी विधानानुसार विवाह न करने के लिए बाधित होता था और ऐसा विवाह अनुचित माना जाता था; क्योंकि इससे फिरंगाक्रांत संतति के उत्पन्न होने की आशंका ही नहीं, प्रत्युत निश्चय होता था। परन्तु अब यह नियम स्थिर किया गया है कि, यदि वैसरमैंज़टेष्ट (वैसरमैन की परीक्षा) से निरन्तर ६ मास पर्यन्त रोगी के रक्त में इस रोग का कुछ असर न पाया जाय, तो उसे सर्वथा निरोग माना जाता है और उसे विवाह करने की राजाज्ञा दी जाती है। पर अबभी कोई-कोई डॉक्टर चार वर्ष तक शादी न करना श्रेष्ठ ख़्याल करते हैं।

रोग-प्रतिषेधक उपाय

फिरंग रोग से सुरक्षित रहने के लिए पवित्रता एवं सच्चरित्रता का जीवन व्यतीत करना अत्यावश्यकीय है। इन कुत्सित रोगों अर्थात् आतशक और सूज़ाक को परदारगमन, वेश्यागमन आदि व्यभिचारों का नैसर्गिक दण्ड समझना चाहिए। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है—

"मियाँ को आतशक बीबी को बद है,
नतीजा कारे बद का कारे बद है।"

फिरंग रोगी विशेषतः प्रथम एवं द्वितीयावस्था के फिरंगी के परस्पर आलाप, मिलाप, चुंबन, आलिंगन प्रभृति से तथा उसके साथ खाने-पीने से वा उसका उच्छिष्ट खाने-पीने से, अथवा उसके जूठे बर्तन में खाने-पीने से, उसका जूठा हुक्का पीने से, उसके व्यवहार किए हुए रूमाल, तौलिया वा वस्त्र प्रभृति के काम में लाने से, अथवा उसके बिछौने पर सोने से सदा सर्वथा बचना चाहिये। वरन् संभव है कि यदि हाथ, मुँह वा शरीर पर कहीं साधारण सी खरौंच भी हो तो वहाँ पर फिरंगका विष प्रवेशित हो जाने से यह क्लेशदायक रोग हो जाय। स्वयं फिरंग रोगी को भी इस विषय में बहुत सतर्क रहना चाहिये। न उसे किसी के साथ खान-पान में सम्मिलित होना चाहिए और न खाने पीने की चीजों को स्पर्श करना चाहिए, न उसे किसीको चुंबन, आलिंगन करना चाहिए और न लोगों के मुँह के समीप होकर वार्त्तालाप करना चाहिए। ताकि बात करते समय उसकी थूक के छींटे किसी के मुँह पर न पड़ जाँय। उनको पृथक् बरतनों में खाना पीना चाहिए। सारांश यह कि हर प्रकार से परहेज़ करना कराना चाहिए, जिससे ऐसे रोगियों से अन्य व्यक्तियों में रोग का संक्रमण न हो। इतने पर भी यदि शरीर के किसी छिले हुए स्थान पर आतशक के विष द्वारा रोग-संक्रमण की आशंका हो। तो उस स्थान को पारदीय घोल (२००० में १) से धोकर और पाँच मिनट तक उक्त घोल से आर्द्र करके फिर उसपर मेचनीकाफ़ प्रलेप आप्लुत कर देना चाहिए।

रूसी डॉक्टर मेचनीकॉफ़ (Metchnikoff) अपने अनुभव के आधार पर इस बात के समर्थक हैं कि मनुष्य शरीर के जिस स्थल पर फिरंग की चेंप लग जाय, उस स्थल पर उसी समय अथवा एक दो घंटे के उपरांत भी यदि अधोलिखित पारदानुलेपन का, जिसे वे रोगप्रतिषेधनीयानुलेपन के नाम से अभिहित करते हैं, मर्दन किया जाय तो उक्त रोग का विष प्रभाव शून्य हो जाता है और उसे यह रोग होने नहीं पाता अर्थात् मनुष्य उससे सुरक्षित रहता है। योग यह है—

फिरंग-प्रतिषेधनीय मेचनीकाफानुलेपन

कैलोमेल	३३ ग्रेन (१६॥ रत्ती)
लेनोलीन	६७ ग्रेन (३३॥ रत्ती)
वेज़ेलीन	१० ग्रेन (५ रत्ती)

विधि—औषधि-त्रय को परस्पर मिलाकर मरहम प्रस्तुत करें। उपयोग—शस्त्रकर्म करनेवालों (जर्राहों), दाइयों, मरहम पट्टी करनेवालों आदि

को, जिन्हें फिरंगरोगी की मरहम-पट्टी करने का अवसर होता रहता है, चाहिए कि इस मरहम को सदा प्रस्तुत रखें और यदि उँगली आदि पर जहाँ कहीं संदेहात्मक ख़राश प्रतीत हो उस पर तत्क्षण किंचित् यह मरहम मल दें ।

ऐसे स्त्री-सहवास के उपरांत, जिसमें आतशक के विष-संक्रमण की आशंका हो, स्थान विशेष को पूर्वोक्त पारदीय विलयन से प्रक्षालित करने के बाद पाँच मिनट तक उक्त स्थल को उस घोल में रखकर पुनः उस मरहम में से २० वा ३० ग्रेन (माशा-२ माशा) लेकर उसे जननेन्द्रिय पर मल दें और एक घंटे पश्चात् उष्ण जल एवं साबुन से धो डालें ।

परन्तु ब्रह्मचर्य एवं पवित्र जीवन के सामने इस उपचार का कोई मूल्य नहीं । क्योंकि रोग हो जाने पर उसकी चिकित्सा करने से अपेक्षाकृत यह कहीं श्रेष्ठतर है कि रोग होने ही न दिया जाय अर्थात् (Prevention is better than cure) ।

आनुवंशिक फिरंगरोग प्रतिषेधार्थ यह आवश्यकीय है कि जननी वा प्रसूता-स्त्री फिरंगरोग से सर्वतः सुरक्षित रहे । अस्तु, इसके लिए उचित ही नहीं, प्रत्युत अनिवार्य है कि यदि किसी अविवाहित पुरुष को आतशक होजाय, तो वह आगामी चार वर्ष तक विवाह न करे । क्योंकि उक्त समय के उपरान्त स्त्री-सहवास द्वारा रोग-संक्रमण का बिलकुल भय नहीं रहता । यद्यपि उचित प्रतीकार द्वारा उक्त निर्दिष्ट चतुर्वर्षीय समय में कमी की जा सकती है । तथापि प्रशस्ततर यही है कि उसे घटाने के स्थान में बढ़ाया ही जाय, जिसमें आतशकीय संतति उत्पन्न होने की बिलकुल आशंका ही न रहे ।

फिरंगिणी स्त्री जितने समय तक पुरुष-संगम द्वारा इस रोग की छूत अन्य व्यक्तियों में पहुँचा सकती है, उससे कहीं अधिक समय तक वह अपने प्रिय शिशु में इस कुत्सित व्याधि की छूत पहुँचाने की क्षमता रखती है । माता का गर्भ स्थिति से पूर्व वा गर्भस्थितिकाल में फिरंग का प्रभावकारी एवं निःशेष नैरोग्यकारी चिकित्सा का अवलम्बन करना, भ्रूण वा शिशु को प्रायः इस रोग के संक्रमण से सुरक्षित रखता है । और यदि भ्रूण इस रोग से आक्रांत होगया हो तो शिशु को जन्मकाल से पूर्व ही रोगमुक्त कर देता है । परन्तु गर्भिणी में जिस प्रकार शीघ्र यह चिकित्सा प्रारंभ किया जाय उसी प्रकार सफलता की अधिक आशा होती है ।

फिरंगरोग की आयुर्वेदीय चिकित्सा

फिरंग की चिकित्सा के विषय में इसकी डॉक्टरी तथा यूनानी चिकित्सा में बहुत कुछ लिखा जा चुका है । अतएव यहाँ पर कतिपय उत्तमोत्तम अयुर्वेदीय तथा स्वानुभूत एवं वैद्यों के अनुभूत योगमात्र दिए जाते हैं ।

(१) कर्पूररस—भावप्रकाश के अनुसार रसकपूर फिरंगरोग की एक सर्वोत्कृष्ट औषध है । वे इसके सेवन की एक सर्वोत्तम विधि, जिस विधि के अनुसार रसकपूर के सेवन से मुँह नहीं आता, इस प्रकार लिखते हैं—गेहूँ के आटे को गूँधकर उसमें गड्ढा सा करके उसमें ४ रत्ती शुद्ध रसकपूर रखें और उसे कचौड़ी की भाँति बन्द करदें । उसे इस प्रकार बन्द करें कि रसकपूर बाहर न दिखाई दे । फिर उस आटे की गोली पर लौंग का चूरा बुरकाकर उसे इस तरह निगलवाएँ कि वह दाँतों को न लगने पाएँ । किन्तु पानी से निकल जावें (अच्छा हो यदि उसे निगलने से पूर्व नीबू के आधे भाग को पहले चूस लें और आधे भाग के रस से गोली निगल जावें) । ऊपर से जी चाहे तो पान खाएँ । शाक, खटाई और नमक से परहेज़ करें तथा श्रम, धूप, मार्ग चलना और विशेषकर स्त्री-सेवन त्याग दें । भा० म० फिरंगाधिकार ।

नोट—उपर्युक्त रसकपूर को सुपारी की राख और पीली कौड़ी की भस्म समान मिला नीबू के रस में तीन दिन खरल करें फिर उसकी मटर बराबर गोलियाँ बनाएँ । इसमें से एक गोली उपर्युक्त विधि के अनुसार सात वा १४ दिन सेवन करें और गुड़ सेवन से सर्वथा परहेज़ करें । ऊपर लिखी हुई ४ रत्ती की मात्रा आजकल के मनुष्यों के लिए बहुत अधिक है । उसमें से २ रत्ती एक मात्रा में सेवन करना ही निरापद एवं उपकारी हो सकता है ।

(२) सप्तशालिवटी - पारा १ टंक, कत्था १ टंक, अकरकरा २ टंक, शहद ३ टंक इनको खरल में डाल घोट पीस सात गोलियाँ बना लेवें । इसमें से १ गोली प्रातः काल जल से सेवन करें और खटाई

नमक त्यागदें। इससे फिरंग रोग का नाश होता है। (भा० म० फिरंगाधिकार)

(३) नीम की पत्ती का चूर्ण १ भाग, हड़ आठवाँ भाग, आँवला आठवाँ भाग और हलदी सोलहवाँ भाग इन सबको चूर्णकर उसमें से ४ मा० (शाण) चूर्ण शहद के साथ खाने से वाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकार के फिरंग का नाश होता है। भा०।

(४) फिरंग रोग की निवृत्ति के लिए ४ मा० (शाण) चोपचीनी का चूर्ण शहद के साथ सेवन करें और लवण त्याग दें। और यदि लवण न छोड़ सकें तो सेंधानमक खा सकते हैं; क्योंकि यह मधुर एवं परम हितकारी है। (भा०)

(५) पारा १ कर्ष, गंधक १ कर्ष और पपरिया कत्था १ कर्ष इनकी कजली करें। फिर उसमें हलदी, केशर, इलायची, बड़ी इलायची, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, चन्दन (सफ़ेद), लाल चन्दन, पीपल, वंशलोचन, बालछड़, तेजपात सबको पीस कजली में मिला देवें। इसके उपरांत उसमें शहद ८ तो० और घी ८ तो० डालकर मिलादें। इसमें से आधे कर्ष की मात्रा में दोनों समय २१ दिन तक सेवन करें और नमक से परहेज करें। इससे फिरंग जनित व्रण का अवश्य नाश होता है। इसके सेवन से चिरकालोत्पन्न महा व्रणों का भी नाश होता है। इसके खाने से मुख के भीतर शोथ नहीं होता। (भा० म० फिरंगाधिकार)

(६) रसकपूर २ तो०, एक दो वा तीन डली ले पुनः १ पानी का पीला मेंढक जिसका पेट फाड़कर भीतर की आलाइस निकाल ली गईहो, लेकर उसके भीतर रसकपूर की पूर्वोक्त डलियाँ रखकर उसके पेट को सीदें। फिर उसपर उड़द का आटा गूँधकर लेप चढ़ाएँ और एक सेर घी में यहाँ तक भूनें कि आटा लाल हो जाय। फिर रसकपूर की डलियाँ निकाल कर उसी प्रकार एक दूसरे मेंढक के भीतर रखकर भूनें। इस तरह क्रमशः ७ मेंढकों के भीतर रख-रखकर भूनलें। अंत में मेंढक के ऊपर का लेप उतारकर ३ सेर हुके का दुर्गन्धित जल लेकर एक कलईदार ताँबे के देग में रखकर नरम आँच से पकाएँ। जब सब पानी सूख जाय और मेंढक लगभग जलने को हो तब उसे पीसकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—शक्ति के अनुसार १ रत्ती तक है। यह पुराने से पुराने आतशक, सूजाक और हर प्रकार के फ़साद खून (जिसमें सौदावी माद्दा मिला हो) के लिए अक्सीर है।

(७) मरहम आतशक—सुपारीकी भस्म ½ ड्राम, पीली कौड़ीकी भस्म १॥ ड्राम, कत्था सफ़ेद ३ड्राम, आयडोफार्म ५ ड्राम, केलोमेल १ ड्राम इनको १०१ बार जलधौत घी १ आउंस में घोंटकर मरहम तैयार करें वा सूखो बुरकनी ही घाव पर छिड़कें। इससे फिरंग के क्षत शीघ्र सूख जाते हैं।

(८) नख तैल—नख १ पाव लेकर पतालयंत्र द्वारा तेल निकालें। पुनः इस तेल को रूई के फाहा में लगाकर फिरंग जनित तालू के सूराख़ में भर दें। इससे तालू का सूराख़ कुछ दिनों के उपयोग से बन्द हो जाता है।

(९) कुकरौंधा १ तो० चार-पाँव अंडे काली मिर्च के साथ भाँग की तरह पीसकर प्रातः सायं काल पीने से पारद जनित मुँह आने, मुख पाक आदि में अनिर्वचनीय लाभ होता है। यदि इसकी एक मात्रा में पोटासियम् आयोडाइड १० ग्रेन मिला कर सेवन करें तो अत्यंत उपकार हो। परीक्षित।

(१०) कुकरौंधे का रस घाव पर छोड़ने से उसकी सड़न बंद होकर वह शीघ्र भरने लगता है।

(११) श्यामालता की जड़ की छाल १ तो० चार पाँच नग काली मिर्च के साथ पीसकर १० ग्रेन पोटासियम् आयोडाइड मिलाकर पीने से रक्तदोष दूर होकर फिरंग रोग का नाश होता है।

(१२) सत्यानाशी की जड़ ३ मा० चार पाँच दाने काली मिर्च के साथ जल में पीसकर सुबह-शाम पीने से फिरंग का नाश होता है।

(१३) सत्यानाशी का दूध चट्टे पर लगाने से लाभ होता है।

(१४) गो दुग्ध १ सेर पानी ४ सेर और सत्यानाशी की जड़ १ तो० इनको महीन पीसकर थोड़ा थोड़ा करके दिन भर में पिएँ। यह उत्तम इंद्री-जुल्लाब है। इससे शरीर का सारा रक्तदोष दूर होकर फिरंग रोग का नाश होता है।

(१५) जलपिप्पली का पंचाङ्ग १ तो० तीन

चार अंडे कालीमिर्च और १ पाव पानी के साथ पीस छानकर सुबह शाम पिएँ और दिन रात में आध पाव ताजा मक्खन खाएँ। फिरंग में अन्य चिकित्साओं के साथ इसका उपयोग बहुत गुणकारी है। परीक्षित।

(१६) त्रिफले की भस्म १ भाग, पपड़ी कत्था १ भाग, कपूर $\frac{1}{4}$ भाग, छोटी इलायची $\frac{1}{4}$ भाग, चिकनी सुपारी की राख १ भाग इनको खूब महीन कर क्षत को त्रिफला के जल से प्रक्षालित कर सुखाकर ऊपर से उक्त चूर्ण बुरक दें।

(१७ लाल गुंजा के पत्तों के रस में ३ माशा मिर्च और ६ मा० मिश्री मिला ७ दिन क्रम से सेवन करें। गेहूँ की रोटी अलोनी और तुवर की दाल का पथ्य दें।

(१८) इन्द्रायन की जड़ और फल सम भाग लेकर चूर्ण करें। इसमें से ३ मा० चूर्ण बराबर शक्कर के साथ दोनों समय सेवन करें और ऊपर से भुने चने १ मुट्ठी के अंदाज खाएँ। किसी प्रकार के परहेज की ज़रूरत नहीं। बीस दिन में लाभ प्रदर्शित होता है।

(१९) इन्द्रायण की जड़का चूर्ण १॥ मा० वा ३ मा० बराबर शक्कर मिलाकर फाँकें। ऊपर से भुने चने खायँ। सात वा चौदह दिन तक इसका सेवन करें और कोई परहेज़ न करें। इसका आश्चर्यकारक स्थायी गुण होगा।

(२०) यदि मुखपाक बृहत् रूप से हो और कंठ से बोला न जाता हो ऐसी दशा में सत्यानाशी (भँड़भाँड़) के ऽ- कल्क द्वारा ऽ। पाव भर घृत सिद्ध करके ३ दिन तक बराबर सेवन कराने से कंठ पाकादि से स्वच्छ हो जाता है।

(२१) रसकपूर और पारदादि द्वारा मुख पाक होने पर निम्नलिखित गंडूष कराएँ—खजूर की छाल, कचनार की छाल, चमेली की पत्ती और गोंदनी के पत्तों के क्वाथ में थोड़ी फिटकरी मिलाकर कुल्ली कराएँ।

(२२) पोटास पर्मैंगेनास के घोल से अथवा गेंदे के पत्र-पुष्पों के क्वाथ में फिटकिरी डाल मुख में पूय पड़ने पर इससे गंडूष कराएँ।

(२३) शीशम के पत्तों के क्वाथ से ३-४ दिन तक गंडूष कराने से भी मुख पाक में लाभ होता है।

(२४) मुँह आने पर पीपल, वट, गूलर, पाकर और बेंत की छाल के क्वाथ से कुल्ली करने से लाभ होता है।

(२५) बुरादा फौलाद जौहरदार १ तो०, तूतिया सब्ज़ १ तो०, पारा शुद्ध १ तो० इन्हें ३५० कागज़ी नीबू के रस में खरल में डालकर घोंटें। जब रस सूख जाय तब त्रिफले का पानी जो ७ सेर पानी में क्वथित कर १ सेर बचा लिया गया हो, डालकर ७ रोज तक घोटे और सुखाएँ। इसी तरह हल्दी के काढ़े में ७ दिन खरल करें। इसके बाद टिकिया बनाकर पोटली में बन्द करदें और उस पर सात कपरौटी करें। जब एक कपरौटी सूख जाय तब दूसरी कपरौटी करें, इसी तरह सुखा-सुखाकर ७ कपरौटी पूरी करें और जब वह अच्छी तरह सूख जाय तब उसे गजपुट में रखकर फूँकदें। सुनहले रंग की भस्म होगी।

मात्रा—आधी रत्ती मक्खन के साथ खाने से आतशक एवं सूजाक नष्ट होता है और शक्तिकी वृद्धि होती है।

(२६) शुद्ध पारा १०० रत्ती, मिस्री ३०० रत्ती दोनों को लोहेके पात्रमें नीमके सोंटे से एक पहर तक अच्छी तरह घोटें। इसके उपरांत उसमें सफ़ेद कत्थेका चूर्ण पारे के बराबर मिलाकर यहाँ तक घोटें कि, कज्जल सरीखा हो जाय। फिर इसकी २० गोलियाँ बनाकर गोधूम चूर्ण में बन्दकर रखदें। तीन दिन तक तीन गोली दें और चौथे दिन एक-एक दें। इसी तरह चौदह दिन तक सेवन कराने से आतशक जड़ से निर्मूल हो जाता है। इसकी मात्रा आज कल के रोगियों को इतनी न देकर थोड़ी देनी चाहिए। परीक्षित।

पथ्य—मिश्री, जौ की अर्द्ध उष्ण रोटी, गाय का घी, सुगंधि पदार्थ का सेवन और एक ही बार भोजन करना उचित है। इसके सेवन के साथ जल पीना, यहाँ तक कि जल का स्पर्श तक वर्जित है। प्यास लगने पर अनार वा ईख का रस पिएँ। शौचादि के लिए उष्ण जल का प्रयोग करें। अग्नि ताप, धूप, हवा इनसे बहुत ही बचकर रहना चाहिए। जाड़े व बरसात का दिन हो तो प्रथम कहो

हुई वस्तुओं को वर्जित न करें। यदि मुखपाक होजाय तो कचनार आदि मुखपाकनिवारक औषधियों का सेवन करें। श्रम, मार्ग चलना, पढ़ना, अधिक सोना त्याग दे। मुख शुद्धि हेतु पान और कपूर मुख में धारण करें। इस पर वात-पित्त के विरुद्ध कफनाशक चिकित्सा करें और नमक, खटाई, दिन का सोना, रात्रि-जागरण, स्त्रीप्रसंग आदि त्याग दें। १४ दिन के पश्चात् गरम जल से स्नान करना चाहिए। जांगल जीवों के मांस-रस का सेवन लाभदायक होता है और जब तक प्रथम की सी प्रकृति न हो, तब तक कसरत इत्यादि न करें। इन क्रियाओं के विरुद्ध इस रस के सेवन करनेवालों को कष्ट होता है और जो इन नियमों का पालन करते हैं वही इस दुष्ट रोगसे मुक्त होते हैं। इसके सेवन करनेवालों की तेज और बल-वृद्धि होती है तथा गठिया, शोथ, आमवात आदि का नाश हो अस्थियों में दृढ़ता होती है।

उपर्युक्त योगों के अतिरिक्त निम्नलिखित योग भी आतशक की चिकित्सा में व्यवहृत होते एवं लाभकारी सिद्ध होते हैं।

कर्पूर भांडेश्वर (पुरातन आतशक के लिए), चोबचीनो पाक पंचतिक्तघृत, बृहत् मंजिष्ठादि क्वाथ (यो० र०), रसशेखर, चतुर्मुख रस। वरादि गुग्गुलु, महा शार्दूल चन्द्रोदय, उपदंशकुठार और चिरकारीफिरंग में श्यामलता (Indian sarsa), बृहत् अमृतवल्ली कषाय और अमृतवल्ली कषाय आदि अत्यन्त गुणकारी हैं।

ज्वर होने की दशा में ज्वरघ्न औषधि काम में लाएँ। फिरंग की चिकित्सा में कोठे का ध्यान रखना नितांत आवश्यक है। आँतों का सर्वदा शुद्ध रखना अनिवार्य है। चट्टों और उभरे हुए दानों पर सोमराजी तैल, मरिचाद्य तैल, महारुद्र गुडूची तैल, कंदर्प सार तैल तथा त्वग्रोगों में व्यवहृत अन्य उपयुक्त तैल का शरीर पर विशेषतः विकारी स्थल पर मालिश करना चाहिए।

धूम प्रयोग

(१) पारा १ कर्ष, गंधक १ कर्ष और चावल १ तो० (अन्न) इनकी कज्जली कर सात गोलियाँ बनाएँ। प्रतिदिन १ गोली का धूम पिलाएँ। इस तरह सात दिन तक धूम पान कराने से फिरंग रोग का नाश होता है। भा० म०।

(२) सिंगरफ, अकरकरा, नीम की गोंद, माजूफल, सुहागा प्रत्येक १–१ तो० लेकर कूट लें। इसमें से १ तो० दवा चिलम पर रख कर पीवे।

(३) पीपल वृक्ष की छाल, खैरकी छाल, लौंग, जावित्री, जायफल, इलायची और रसकपूर १–१ तो० लेकर २० भाग करें। इसमें से एक भाग नित्य खैर के कोयलों से हुक्के पर सात दिन तक पीवें और १४ दिन तक पथ्य से रहें। उन दिनों केवल दूध भात खायँ। मुँह आने पर भय न करें, राल गिरने दें।

(४) भटकटैया के पत्तों को चिलम में रखकर इसका धूम पान कराएँ।

(५) आक की जड़ की छाल ३ मा० बायविडंग २ तो०, लौंग टोपीदार ३ मा०, शुद्ध शिंगरफ ३ मा० सबको चूर्ण कर पानी से तर करके तीन टिकियाँ बनाएँ, इसमें से एक टिकिया दैनिक चिलम पर रख कर ऊपर से बेर की लकड़ी की आग रख तमाकू की तरह धूम पान करें। इस धूमपान से आतशक नष्ट हो जाता है।

स्वेद

(१) १ टंक पारे को पीले फूल के बरियारे के पत्ते के रस में हाथ से यहाँ तक मर्दन करें कि पारा दिखाई न दे। फिर इसे आग पर रखकर उससे हाथों को स्वेदित करें। इस प्रकार ७ दिन तक करें और नमक खटाई से परहेज करें। इससे फिरंग रोग का नाश होता है। (भा०)

(२) पारा, बंग, सफ़ेद कत्था, हड़ की भस्म, कोमल केला और सुपारी की भस्म इन्हें १–१ तो० लें। सिंगरफ़, हड़ताल, गंधक, तूतिया, पद्माख, सरल, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, देवदारु, बकम की लकड़ी और केशर काष्ठ १-१ मा० लेकर चूर्ण करें। इस चूर्ण को चांगेरी के रस में अथवा तुलसी के पत्तों के रस में वा पुराने गुड़ में वा घृत में ६ गोलियाँ बनाएँ। इसमें से ४ गोलियों को वस्त्र में लपेटकर धूम्र रहित अंगारों पर रख चारपाई पर आतशक के रोगी को सुलाकर नीचे से उसके शरीर में धूम दें। रोगी को वस्त्र वा कंबल से ढाँक दें, ताकि धूम्रबाहर न

जाने पाये। उक्त धूम्र को नाक, मुँह, कान आदि में न जाने दें एवं श्वास अवरुद्ध न होने दें। इस तरह स्वेद कराने से आतशक नष्ट होता है। इसी तरह नियमानुसार ३ दिन तक प्रातः सायंकाल स्वेद दें और इसमें से उड़द प्रमाण दवा आंतरिक रूप से सेवन करें। इसके उपरांत रोगी को गरम जल से स्नान कराएँ। इससे फुन्सियाँ, सूजन, आमवात, खंज, पंगुवात, कुष्ट और आतशक दूर होता है।

अपथ्य—खटाई, शाक, भोजन, दही, भारी अन्न, और खीर इत्यादि का इसमें निषेध है।

फिरंगोपकारी व्यजन

नीम की पत्ती, मेंहदी की पत्ती, रसकपूर, खस, चन्दन सफ़ेद, लाल चंदन इनको पानी में महीन पीसकर ताल के पंखे पर लेपकर सुखालें। उस पर गुलाब जल छिड़क कर रोगी को उसकी वायु दें। इससे आतशक में लाभ होता है।

क्षतपर लगाने के मरहम प्रभृति

(१) १ तोला नवनीत लेकर १०० बार पानी में काँसे की थाली में धोएँ और घाव तथा चट्टों पर लगाएँ।

(२) एक काँसे की थाली में ३ तो० गोघृत वा मक्खन लेकर उसमें ३ मा० रसकपूर पीसकर मिला दें और उसे काँसे की ही कटोरी से घोटें। बाद चिकनी सुपारी, संगजराहत, सफ़ेद कत्था आधा तोला लेकर कूट छानकर मिलाएँ और फिर घोटें। इसे चट्टों पर लगाने से शीघ्र घाव भरकर अच्छा हो जाता है।

(३) रसकपूर, मुर्दासंग, शंखजीरा (संगजराहत), माजूफल, चिकनी सुपारी का कोयला और सफ़ेद कत्था इन सबको पीसकर महीन बुकनी बनाएँ। इसे चट्टों पर बुरकावे वा दूध में खरल करके भी लगाते हैं।

(४) शार्ङ्गधरोक्त त्रिफलादि तैल चट्टों को भरने के लिए सर्वोत्तम है। इसका फाहा धरा करें।

(५) नीलाथोथे का पानी तैयार कर उससे चट्टों को धोना भी लाभदायक है।

(६) घोंघे की राख भी चट्टों को भरती और सुखाती है।

(७) सफ़ेद कत्था, मुरदासंग, इलायची, कपूर और सफ़ेदा समभाग। इनको घोट-छानकर चट्टों पर बुरकाएँ।

(८) भूना तूतिया ४ मा०, सफ़ेद कत्था १ तो०, संगजराहत १ तो०, सुपारी की भस्म ६ मा०, पीली कौड़ी की भस्म ६ मा०, राल ६ मा०, मुरदासंग ६ मा०, शुद्ध सफ़ेद देशी मोम २ तो०, १०८ बार ठंढे पानी से धोया हुआ गाय का मक्खन। इनमें से प्रथम मक्खन और मोम को आगपर रखकर पिघलाएँ; फिर उसमें शेष ओषधियों का महीन चूर्ण कर मिलाएँ। यह आतशक एवं अन्य सभी प्रकार के व्रणों में बहुत ही लाभकारी है।

बाघी का उपचार

(१) प्रथम जोंक लगवाकर रक्त निकलवाना श्रेयष्कर है।

(२) मधु ४ भाग और चूना ३ भाग मिलाकर बद पर लेप देवें और गोयँठे की आँच से सेकें।

(३) कागज़ पर गूलर का दूध लगाकर बद पर इसकी पट्टी रखें। अपने आप पट्टी गिरने पर फिर वही पट्टी लगावें।

(४) गूलर का दूध, गुड़ और कली का चूना मिलाकर बद पर इसकी पट्टी रखें।

(५) बरगद का दूध, मुर्गी के अंडे की सफ़ेदी, राल वा गंधाबिरोज़े का पलस्तर रखने से बाघी बैठ जाती है।

(६) ३ मा० नौशादर को एक छटांक पानी में मिलाकर घोल प्रस्तुत करें। इसमें अलसी के पौधे का बना कपड़ा कई तह कर भिगोकर बाघी पर रखने से वह बैठ जाती है। परन्तु ध्यान रक्खें कि कपड़ा सूखने न पाए अर्थात् उस पर उक्त घोल बराबर डालते रहें।

(७) कृष्णजीरक (मँगरैल), हवुषा, पुष्करमूल, तमालपत्र और बेरपत्र इनको काँजी में पीसकर लगाने से भी सूजन उतर जाती है।

(८) वेदना निवारणार्थ लोबान वा गेहूं के आटे को भेड़ के दूध में पीसकर इसका पलस्तर लगाएँ।

बाघी फोड़ने के उपचार

(१) बाघी को पकाने के लिए तीसी वा गेहूँ की गर्मागर्म पुल्टिस बाँधें वा साबुन और शकर कूटकर बाँधें।

(२) मदार की जड़ की छाल जल में पीसकर बाँधने से बाघी पक जाती है।

(३) बाघी फोड़ने के लिए बेलपत्र को बाँटकर बाँधें वा अनन्नास के झाड़ की पत्ती वा चित्रक की पत्ती पीसकर बाँधें।

पथ्यापथ्य

उत्तम पुराना चावल, मूँग की दाल, चना, मसूर और अरहर की दाल तथा परवल, गूलर, मानकंद, बैंगन, सहिंजन की फली, कुष्मांड आदि की तरकारी दिन के समय सेवन करें। तरकारी घी में बनानी चाहिए, तेल में नहीं। ताज़े बकरे के मांस, कबूतर वा मुर्ग़ी के गोश्त का मांसरस तैयारकर कुछ अंतर दे-देकर सेवन करना चाहिए। सायंकाल चपाती उपर्युक्त वस्तुओं की भाजी के साथ खाएँ। ज्वर का प्रावल्य होने पर साबूदाना खाएँ। मधुर, सभ्रम शीतल, कफवर्द्धक खान-पान, दूध, मछली, स्नान, स्त्री-सहवास, दिन में सोना और शारीरिक व्यायाम आदि से बचना चाहिए। ये फिरंगी को बहुत अहितकर हैं।

आतशक के डाक्टरी अमोघास्त्र

फिरंग रोग की चिकित्सा में साधारणतः संखिया, पारद और आयोडीन के यौगिकों का उपयोग किया जाता है। संखिया और पारद तो फिरंगीय कीटाणु नाशक हैं अर्थात् ये आतशक के विष को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं और आयोडीन के यौगिक रोगजनित विषाक्त प्रभाव का शरीर से निवारण करते हैं।

प्रथमतः फिरंग रोग की चिकित्सा में साधारणतः पारद एवं आयोडीन के यौगिक ही प्रयोग में आते थे। परंतु सन् १६०६ ई० में जरमन देश निवासी इहर्लिक (Ehrlich) नामके एक विद्वान ने और उसके सहकारी हाटा नामक जापानी पंडित ने मल्ल का एक विशिष्ट योग प्रस्तुत किया, जिसका नाम (Salvarsan) वा उक्त विद्वानद्वय के नाम पर अहर्लिक हाटा (Ehrlichhatee) वा प्रयोगशाला के परीक्षण-संख्या के अनुसार '६०६' रखा गया। उक्त यौगिक आतशक की चिकित्सा के लिए अमोघ औषध सिद्ध हो चुका है। इसके उपरांत अहर्लिक के स्थानापन्न डाक्टर कोली (Kolle) ने एक दो यौगिक और निर्मित किए जो उसकी अपेक्षा और लाभकारी प्रमाणित हुए हैं। अतः आजकल अधिकतया संखिया के इन नवयौगिकों से ही फिरंग रोग का प्रतीकार किया जाता है। अस्तु, हम भी सर्व प्रथम इसी चिकित्सा का उल्लेख करते हैं।

फिरंग की नूतन अमोघ चिकित्सा

इस प्रकार की चिकित्सा में संखियाके वे कतिपय मुख्य नूतन रासायनिक योग, जो प्रयोग में आते हैं, उन सबका हम यहाँ क्रमानुसार उल्लेख करते हैं—

(१) सालवर्सान (Salvarsan) वा आर्सेनोबेंज़ोल (Arsenobenzol) वा '६०६'—यह संखिया का प्रधान यौगिक है। यह एक प्रकार का पीले रंग का चूर्ण है, जिसमें ३१·५ प्रतिशत संखिया होता है। वायु के स्पर्श से यह यौगिक अत्यंत विषाक्त एवं विकृत हो जाता है। इसलिए यह छोटे छोटे सिर बंद शीशियों वा ऐम्पुल्ज़ (Ampoules) में बिकताहै।

सालवर्सान फिरंग रोगमें अत्युपयोगी है और यदि इसे फिरंग-रसायन कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इस औषध से द्वितीय एवं तृतीयावस्था के आतशक और आनुवंशिक फिरंग में प्रायः अतिशीघ्र लाभ हो जाता है। परंतु आतशक के उपरांत होनेवाले रोग, जैसे, लोकोमोटर एटेक्सी प्रभृति मे इस दवा से कुछ भी लाभ नहीं होता।

फिरंग रोग का निःशेष निदान हो जाने के उपरांत तुरंत इस दवा का प्रयोग प्रारंभ कर दिया जाता है। इस दवा को परिस्नुत जल में विलीन करके उक्त विलयन का शिरा वा पेशी में इंजेक्शन करते हैं। हर आठवें दिन इस औषध की एक बार पिचकारी की जाती है। सामान्यतः पाँच सात पिचकारी लगाने के उपरांत रोगी को निःशेष नैरोग्य प्राप्त होता है।

मात्रा—पूर्ण वयस्क पुरुष में शिरान्तर अंतःक्षेप करने के लिए ०·६ ग्राम, किन्तु एक युवती स्त्री के लिए ०·५ ग्राम और बालकों के लिए शारीरिक भार के अनुसार ०·००२ से ०·००५ ग्राम तक प्रयोग में लाते हैं।

(२) नियोसालवर्सान (Neosalvarsan) वा नियो-आर्सेनो बेंज़ोल (Neoarseno-benzol) वा "६१४"—सालवर्सान की तरह यह भी संखिया का एक मुख्य नवयौगिक है और फिरंग में बहुत उपयोगी है। यह सालवर्सान की अपेक्षा अधिक लाभकारी है। इसको ०·४५ से ०·६ ग्राम की मात्रा में १० से २० घन शतांशमीटर परिस्नुत जल में विलीन करके उक्त घोल का सप्ताह में एक बार शिरांतरीय वा पेश्याभ्यंतरीय सूचीवेध करते हैं। छः से आठ अंतःक्षेप का एक चिकित्सा-क्रम, जिसके साथ पारद का भी उपयोग करते हैं, प्रायः उपकारक हुआ करता है। कभी तीन मास के अंतर से पुनः यही उपचार करते हैं।

नियोसालवर्सान आतशक की प्रथमावस्था (Primary syphilis) और तृतीयावस्था (Tertiary syphilis) में विशेषतया लाभकारी है। परन्तु यह फिरंग की द्वितीयावस्था (Secondary syphilis) में तनिक भी उपयोगी नहीं। आनुवंशिक फिरंग (Congenital syphilis) में भी यह बहुत कुछ लाभदायक है। परन्तु आतशक के उपरांत के रोग, जैसे (Parasyphilitic condensions) में यह कुछ भी उपकारी नहीं।

(३) सल्फर्सेनोल (Sulphersenol)—यह भी संखिया का एक नूतन योग है जो हाल ही में तैयार किया गया है। यह भी पीले रंग का एक चूर्ण है जो परिस्नुत जल में सुविलेय होता है। इसको सालवर्सान और नियोसालवर्सान से इसलिए उत्तम माना जाता है, कि इसका त्वगधः सूचीवेध किया जा सकता है। अस्तु, १ घन शतांशमीटर (1 c. c.) परिस्नुत जल में ०·६ ग्राम सल्फर्सेनोल विलीन करके इसका त्वगीय सूचीवेध किया करते हैं। परंतु नितंब के ऊपरी भाग में इसका पेशीय सूचीवेध भी कर दिया करते हैं।

(४) गैलिल (Galyl)—संखिया का एक और नव्य योग है। यह हरापन लिए भूरे रंग का एक चूर्ण है जो किसी क्षारीयद्रव में विलीन हो जाता है। यह भी छोटी-छोटी सिरबंद शीशियों (ऐम्पुल्ज़) में सोडियम कार्बोनेट के साथ मिश्रित किया हुआ मिलता है। इसको भी त्वगीय सूचीवेध द्वारा प्रयोग में लाते हैं।

डॉक्टर अहर्लिक के स्थानापन्न डाक्टर कोली ने संखिया के अधोलिखित दो और नव्य योग प्रस्तुत किए हैं—

(५) सल्फॉक्सिलेट (Sulphoxylate) वा "१४९५" और (६) सिल्बर साल्वर्सान (Silber salvarsan) जो चाँदी और सालवर्सान का यौगिक है।

संखिया के उपर्युक्त नवाविष्कृत यौगिकों
के
गुणधर्म तथा उपयोग

संखिया के उपरिलिखित सभी यौगिक फिरंग रोग में पारद की अपेक्षा आशुप्रभावकारी एवं उपकारक हैं। इनके उपयोग से आतशक में निःशेष लाभ होता है। सुतरां इस प्रकार की चिकित्सा से निःशेष आरोग्य प्राप्त व्यक्तियों को यदि पुनः फिरंग रोग की छूत लग जाय तो वे पुनः इस रोग से आक्रांत हो जाते हैं। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि उक्त चिकित्सा-विधि द्वारा फिरंग का विष शरीर से सर्वथा निःसृत हो जाता है अर्थात् शरीर पूर्णतया इसके विष से मुक्त हो जाता है। अतएव जब पुनः इस रोग का संक्रमण होता है, तब फिर रोग का आक्रमण हो जाता है। इस चिकित्सा-विधि से पूर्व अन्य सभी प्रकार की चिकित्साओं से यह अवस्था उपस्थित नहीं होती थी। पूर्वोक्त वर्णन से इस बात का संदेह न करना चाहिए कि रोग का पुनराक्रमण होता है, परंच रोग दुबारा अभिनव उत्पन्न होता है।

सालवर्सान और नियोसालवर्सान की अपेक्षा डाक्टर कोली द्वारा अभिनव निर्मित सिल्बरसालवर्सान नामक औषध द्विगुण आशुकारी प्रमाणित होती है। अतएव इसे उनकी अपेक्षा बहुत थोड़ी मात्रा में प्रयोजित करते हैं। सल्फॉक्सिलेट आशुप्रभावकारी नहीं, प्रत्युत मंदकारी है।

निश्चित एवं स्थिर प्रभाव के विचार से ये यौगिक परस्पर विभिन्न होते हैं। अस्तु, गैलिल और सल्फरसेनोल की अपेक्षा सालवर्सान और नियोसालवर्सान का प्रभाव अधिक स्थायी होता है। नियोसालवर्सान को मांसपेशीय वा गम्भीर अधोत्वगीय सूचीवेध

द्वारा प्रयुक्त करना श्रेष्ठतर है। सिल्वरसाल्वर्सान और सल्फॉक्सिलेट के विषय में अभी तक कोई निश्चित मत स्थिर नहीं किया गया। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन एवं परीक्षणों द्वारा यह बात प्रमाणित हो चुकी है, कि सिल्वरसाल्वर्सान उग्र आतशकी व्रणों तथा फिरंगजनित वातव्याधियों में विशेष उपकारी है।

संखिया के पूर्वलिखित नूतन
यौगिकों के
विषाक्त प्रभाव

इन यौगिकों के उपयोग काल में वा उसके उपरांत इसके कतिपय विषैले प्रभाव विविध लक्षणों के रूप में प्रगट होते हैं। अस्तु, सूचीवेध काल में वा तत्क्षण उसके उपरांत रोगी का चेहरा सुर्ख़ हो जाता है, उसकी ज़बान और होंठ सूज आते हैं और शरीर पर ददोड़े वा पित्ती (उद्र्द) उछल आती है। कभी रोगीको मूर्च्छा आजाती है औरमसूढ़ों वा दाँतों में दर्द होने लगता है। ये लक्षण लगभग एक आध घंटे उपरांत, पर कभी चंद घंटे बाद विलुप्त हो जाते हैं। पिचकारी करने के साधारणतः कुछ घंटे बाद वा उसी दिन, जिसदिन पिचकारी की जाती है, ये स्वरूप प्रकाशित होते हैं। किसी किसी रोगी को जाड़े से ज्वर चढ़ आता है एवं शिरोशूल होता है, कै एवं दस्त आते हैं, कटिशूल होता और टाँगों में आक्षेप होता है; ओठों पर आबले (Herpes) निकल आते हैं। एक वा कतिपय पिचकारियों के एक-दो दिन वा एक-दो मास के उपरांत मूत्र में एल्ब्युमेन (Albumen) आने लगता है, मुखपाक (Stomatitis) होता, चिरकारी शिरोशूल विकार होता, निर्बलता होती, भूख मर जाती और निद्रा भंग हो जाती है। त्वच के विभिन्न स्थलों में क्षोभ एवं प्रदाह (Erythema और Dermatitis) होकर लाल-लाल ददोड़े प्रभृति निकल आते हैं; पांडु हो जाता और उग्र मस्तिष्क विकार के लक्षण उपस्थित हो जाते हैं।

उपर्युक्त लक्षणों में से पांडु (यर्क़ान), त्वक्प्रदाह और एल्ब्युमिनोरिया (Albumenorrhoea) इसके विशिष्ट लक्षण हैं। क्योंकि इन्हीं का अधिकतया प्रादुर्भाव हुआ करता है।

टिप्पणी—उपर्युक्त सभी लक्षण प्रत्येक व्यक्ति में नहीं उत्पन्न हुआ करते; परंच विभिन्न रोगियों में इनमें से विविध लक्षण न्यूनाधिक उत्पन्न हुआ करते हैं। कोई कोई रोगी इस प्रकार की चिकित्सा से अधिक प्रभावित होते हैं और किसी किसी रोगी में ऐसी विकृत दवाओं के वा उनके विकृत (ग़लत) प्रयोग से ऐसे भयंकर लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस प्रकार की चिकित्सा किसी सुविज्ञ अनुभवी चिकित्सक द्वारा ही कराई जाय।

सालवर्सान और नियोसालवर्सान

अधोलिखित रोगों एवं दशाओं में इन दवाओं का प्रयोग वर्जित है—(१) ज्वर एवं काला आज़ार रोग में तथा (२) बहुमूत्र रोग (Diabetes), (३) वृक्कौष, (४) लाकोमोटर एटेक्सी और सार्वांगिक वातग्रस्तता (General paralysis) आदि वात-व्याधियों की प्रवर्द्धित दशा में, (५) धमनी एवं हृद्रोग, (६) किसी आंतरिक अवयव के व्यापक विकार विशेषतः उरःक्षत (Pulmonary pthisis) प्रभृति, (७) आतशक विवर्जित उग्र रेटिना के रोग (Retinal diseases) और चक्षुरोग (Optic diseases) इत्यादि रोगों में इसके उपयोग का निषेध है।

सूचना—समग्र रोगियों में उक्त औषध का प्रयोग अत्यल्प मात्रा से प्रारम्भ करना चाहिए। अतएव एक पूर्णवयस्क पुरुष में सालवर्सान को ०·३ ग्राम की मात्रा से और नियोसाल्वर्सान को ०·४५ ग्राम की मात्रा से प्रारम्भ करना चाहिए।

जीवन निर्वाहार्थं रोगी को यथासंभव स्वच्छता एवं मध्यमार्ग का अवलंबन अनिवार्य होना चाहिए। उसे स्वच्छ खुली वायु में रहना चाहिए, सर्दी एवं बारिश इत्यादि में भींगने से बचना चाहिए, शीघ्रपाकी लघु आहार करना चाहिए। अम्ल, अधिक मधुर, अधिक गोश्त, अत्यन्त तीक्ष्ण मसाले, बैंगन, मेथी और लहसुन प्रभृति से भी परहेज़ करना चाहिए। गोमांस, तैल के पकवान और शराब से तो निःशेष बचना चाहिए। हुक्का और सिगरेट भी बहुत कम पीना चाहिए।

बाबू राजेन्द्रकुमार रचित (Recent advance in the treatment of syphilis)

नामक पुस्तक से, जो सन् १९१९ ई० में प्रकाशित हुई थी, यहाँ पर कुछ उत्तम प्रयोग अनूदित किए जाते हैं—

(१) मर्क्युरिक आयोडाइड १ ड्राम, आर्सैनिअस आयोडाइड ८७½ ग्रेन, सोडियम् आयोडाइड का १ प्रतिशत का घोल ३५ बूँद, परिस्रुत जल ४० आउंस लेकर घोल तैयार करें। पुनः उसमें फेनोल फेथेलीन (Phenol phethalein) ०·५ प्रतिशत का घोल २० बूँद मिलाकर क्षारीय घोल प्रस्तुत करें। पुनः सोडियम् हाइड्रेट २५ प्रतिशत का घोल प्रस्तुतकर ऊपरवाले क्षारीय घोल में एक-एक बूँद करके डालते जायँ, जब उसका रंग बदलकर गुलाबी रंग आजाय, तब समझ लें कि इसका क्षारत्व दूर हो गया। इसमें प्रायः सोडियम् हाइड्रेट का २ ड्राम घोल व्यय होता है।

परीक्षा—लिटमस पेपर द्वारा परीक्षा करें। जब थोड़ा खारापन शेष रह जाय तब इसे तैयार समझें। इसे एक ग्लास-स्टॉपरदार शीशी में सुरक्षित रक्खें। दो महीने तक यह घोल शुद्ध रूप में बना रहता है। यदि इसका गुलाबी रंग जाता रहा तो, पुनः उपर्युक्त सोडियम् हाइड्रेट का क्षारीय घोल उक्त विधि के अनुसार मिलाने से पूर्ववत् रंग आ जाता है। मात्रा—८ से १५ घन शतांशमीटर तक। उपयोग-विधि—सबसे छोटी मात्रा से प्रारम्भ करके ४ वा ६ इंजेक्शन देकर रोक दें। इसी भाँति बीच बीच में रोककर ६ सप्ताह के पश्चात् फिर इंजेक्शन देना प्रारम्भ करें। बालक एवं स्त्री के वय-क्रमानुसार मात्रा घटाई बढ़ाई जा सकती है। १५ वर्ष की अवस्था के बालक वा स्त्रियाँ १० घन शतांशमीटर तक की क्षमता रखती हैं। इंजेक्शन देते समय परिस्रुत जल मिलाकर २२ घन शतांशमीटर पूरा कर लेना चाहिए। शिरांतरिक अंतःक्षेप (Intravenous injection) द्वारा ही इसे प्रयोग में लाना चाहिए। २० घन शतांशमीटर की पिचकारी इसके लिए उपयुक्त होती है। कभी कभी इससे मुखपाक भी हो जाता है।

(२) आर्सैनियस आयोडाइड ८७॥ ग्रेन, सोडियम् आयोडाइड का १ प्रतिशत का घोल ३५ विंदु, परिस्रुत जल ४० आउंस इसे भी नं० १ की तरह तैयार करें। पूर्ण-मात्रा—८ से १५ घन शतांशमीटर। उपर्युक्त विधानानुसार प्रयोजित करने से आतशक में पूर्ण लाभ होता है। इससे मुखपाक नहीं होता।

मुख द्वारा निम्नलिखित योगों का व्यवहार करें—

(३) मर्क्युरिक आयोडाइड (वटी रूप में) —मात्रा, $\frac{१}{३२}$, $\frac{१}{१६}$, $\frac{१}{२०}$ ग्रेन।

(४) आर्सैनियस आयोडाइड—$\frac{१}{२०}$, $\frac{१}{५}$, $\frac{१}{१२}$ ग्रेन प्रतिदिन।

(५) सोडियम् आयोडाइड—एक समय में ५ से २० ग्रेन तक।

इनके अतिरिक्त कई अन्य उत्तम औषधियाँ भी प्रस्तुत हुई हैं जिनके यथोक्त इंजेक्शन द्वारा आतशक में बहुत लाभ होता है। जैसे—थियोसार्मीन (ब्रह्मचारी द्वारा प्रस्तुत), आर्सेमीन और मर्क्युरोक्रोम इत्यादि।

आतशक की प्राचीन डॉक्टरी चिकित्सा

डॉक्टरी की प्राचीन चिकित्सा-विधि के अनुसार फिरंग की प्रथमावस्था में साधारणतया पारद के यौगिक बाह्यांतर रूप से प्रयोग में आते हैं और द्वितीयावस्था में पारद और संखिया के यौगिक वा पारद और पोटासियम् आयोडाइड के यौगिक और तृतीयावस्था में विशेषतः पोटासियम् आयोडाइड का व्यवहार किया करते हैं।

फिरंग जनित क्षत का स्थानीय उपचार—आतशक के प्रारंभिक क्षत को स्वच्छ मात्र रखना पर्याप्त होता है। परन्तु प्रति दिन कम से कम एक बार उष्ण जल और साबुन से धोकर और शुष्ककर उस पर (१) कैलोमेल वा (२) आयडोफॉर्म वा (३) आर्थोफॉर्म वा (४) आयोडोल वा (५) अरिस्टोल और जेरोफॉर्म अवचूर्णित कर दिया करें वा (६) ३३ प्रतिशत कैलोमेल वाली लैनोलीन लगा दिया करें अथवा (७) ब्ल्यु ऑइंटमेंट लगाया करें अथवा (८) ब्लैकवाशलिंट का जरा सा टुकड़ा क्लेदित करके गद्दी की तरह जख्म पर रख दिया करें।

यदि ज़ख़्म शीघ्र अच्छा न हो तो उस पर कभी कभी सावधानी से लाइकर हाइड्राजिराइ पर नाइट्रेट्स लगा दिया करें। और यदि क्षत बहुत अस्वच्छ रहता हो वा उसमें मवाद हो तो उसको ब्लैक वाश से धोकर उस पर कैलोमेल अवचूर्णित कर दिया करें अथवा यह मरहम लगाएँ।

हाइड्राजिराई एट ज़िंसाई साइनाइडाई	५ ग्रेन
अंग्वेण्टम् लेनोलीनी को०	१ आउंस

नोट—आयडोफार्म में किंचित् यूकेलिप्टस ऑइल मिलाने से उसकी दुर्गन्ध कम हो जाती है। यदि दुर्गन्ध के कारण उसे न लगाना हो तो उसके स्थान में आयोडोल वा अरिष्टोल लगाएँ। क्योंकि ये निर्गंध होते हैं।

आंतरिक चिकित्सा—फिरंग की प्रथमावस्था में पारद और द्वितीयावस्था में पारद एवं पोटासियम् आयोडाइड और तृतीयावस्था में पोटासियम् आयोडाइड अत्यन्त उपयोगी औषधि हैं।

फिरंग की प्राचीन चिकित्सा

पारद वा पारा (Mercury)—बहुत प्राचीन काल से पारद फिरंग रोग का प्रधान औषध माना जाता है। प्रायः सभी वैद्य, हकीम और डाक्टर इसको फिरंग रोग की एक असीम लाभकारी औषध मानते हैं। अतएव इस रोग में प्रयुक्त सहस्राधिक वैद्यकीय, यूनानी तथा डाक्टरी योगों में केवल पारद वा पारद के यौगिक, जैसे रसकपूर, दारचिकना वा हिंगुल प्रभृति ही होते हैं। यदि रोग के प्रारम्भ अर्थात् उसकी प्रथमावस्था में पारद का समुचित उपयोग किया जाय तो आतशकी ज़ख़्म के किनारों और उसकी जड़ की कड़ाई घटना प्रारम्भ होकर क्षत अच्छा होने लगता है, और वंक्षणस्थ लसीका ग्रंथियाँ जो प्रथमतः अधिक सूजी हुई नहीं होतीं, यदि पहिले से अधिक वर्द्धित हो चुकी हों तो पुनः विलीन होने लग जातीं हैं। और सब से बड़ा लाभ यह होता है कि द्वितीयावस्था के आने वाले कष्ट प्रथम तो रुक जाते हैं; वरन् बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। परन्तु यह आवश्यक है कि उक्त औषधि का चिरकाल तक नियमपूर्वक प्रयोग जारी रखा जाय।

डॉक्टरीमें पारद और उसके यौगिक निम्नलिखित पाँच प्रकार से प्रयोग किए जाते हैं—

(१) मौखिक—(क) ग्रे पाउडर २ ग्रेन और डोवर्स पाउडर २ ग्रेन दोनों की एक पुड़िया बनाएँ और ऐसी एक-एक पुड़िया दिन में तीन बार दें वा (ख) ब्ल्यु पिल २ ग्रेन की मात्रा में दिन में २ या ३ बार दें वा (ग) लाइकर हाइड्राजिराइ पर क्लोराइड ½ से १ ड्रामकी मात्रा में १ आउंस पानी में मिलाकर ऐसी एक-एक मात्रा दिन में दो बार दें वा (घ) मर्गाल कैप्शूल्ज़ (Mergal capsules) दो दो कैप्शूल्ज़ दिन में तीन बार दें। इस दवा को निरंतर २—३ महीने तक देते रहने से किसी प्रकार का क्षोभ वा कोई अन्य हानिकारक प्रभाव प्रकाशित नहीं होता। अथवा (ङ) मर्क्युरोल टेब्लेट (Mercurol tablet) पार्क डेविस कंपनी का बना एक-एक टिकिया दिन में तीन बार दें।

नोटः—उपरिलिखित औषधों में से कोई सी एक दवा प्रयोग में लाएँ। यह सभी उपयोगी हैं। इनमें से नं० (घ) के कैप्शूल्ज़ और नं० (ङ.) के टेब्लेट निरापद एवं अक्षोभक होते हैं।

यदि संभवतः रोगारम्भ से ही इस प्रकार की चिकित्सा का अवलंबन किया जाय और उसे स्थायी रूप से कुछ महीनों तक निरंतर वहन किया जाय, तो प्रायः दशाओं में फिरंग की द्वितीयावस्था के लक्षण प्रगट ही नहीं होते और यदि हुए भी तो बहुत साधारण होते हैं।

इस प्रकार का चिकित्सा-क्रम जारी रखने की दो रीतियाँ हैं—

(१) सविराम प्रयोग—प्रायः डॉक्टर पारद के उपर्युक्त यौगिकों में से किसी एक को निरंतर २ मास तक देते रहते हैं और फिर एक महीने के लिए इसका प्रयोग बंद कर देते हैं अर्थात् २ मास के उपरांत एक महीने का विराम देते हैं। पुनः दो मास तक देकर तीन महीने का विराम देते हैं। इसी भाँति दो वर्ष तक औषध का प्रयोग करते हैं। फलतः दो वर्ष के समय में रोगी को १० महीने दवा खिलाई जाती है और १४ महीने नहीं खिलाई जाती। पुनः आगामी तीन वर्षों में इसको छः छः सप्ताह के दौरों में दिया जाता है। अतएव तीसरे और चौथे वर्ष में ६ सप्ताह औषध का प्रयोग किया जाता है और ६ सप्ताह बंद रखा जाता है। इस

प्रकार एक वर्ष में ६–६ सप्ताह ६ बार दवा दी जाती है। पाँचवें वर्ष इसी भाँति ५ बार दवा दी जाती है।

(२) निरंतर वा सतत प्रयोग—यह डॉक्टर हचिशन (Hutchison) की प्रयोग विधि है। इस रीति के अनुसार औषध का विरामरहित अर्थात् निरंतर प्रयोग किया जाता है।

विधि यह है—ग्रे पाउडर २ ग्रेन और डोवर्स पाउडर २ ग्रेन दोनों की एक गोली वा टिकिया बनाकर ऐसी १–१ गोली वा टिकिया दिन में तीन बार देते हैं। पुनः एक दो सप्ताह में क्रमशः इसकी मात्रा बढ़ाकर द्विगुण कर देते हैं अर्थात् प्रतिदिन ६ गोली वा टिकियाँ देने लगते हैं और उस समय तक निरंतर हर रोज देते रहते हैं, यहाँ तक कि रोगी के मुख में धातु का सा स्वाद प्रतीत होने लगता है और उसके मसूढ़े कुछ दर्द करने लगते हैं। उस समय औषध की मात्रा आधी कर देते हैं और फिर उसे ६ मास, ९ मास वा एक वर्ष तक बराबर देते रहते हैं। परन्तु इस बीच में कभी-कभी औषध की मात्रा बढ़ा भी दिया करते हैं।

पारद-प्रयोग विशेषतः उसके निरंतर प्रयोग में इस बात का ध्यान रखें कि, रोगी का मुँह न आए। अतएव रोगी को सचेत करदें कि, वह अपना मुख स्वच्छ रखे और फिटकिरी (१० ग्रेन एक-आध छटाँक पानी में मिलाकर) वा पर्मैंगेनेट ऑफ पोटास ($\frac{1}{4}$ ग्रेन एक-आध छटाँक पानी में मिलाकर) के पानी से गण्डूष करते रहें। जिसमें मसूढ़े फूल न जायँ। औषध-प्रयोग से पूर्व रोगी के दाँतों की परीक्षा करें। यदि कोई दाँत सड़ा गला वा क्रिमिभक्षित हो तो उसे उखड़वा दें अथवा उसे भरवा दें।

पारद सेवनकाल में रोगी को गोश्त, शोरबा, फलादि मेवों और सागपात खाने का निषेध करदें और शराब भी न पीने दें; क्योंकि उससे दस्त आने लग जाया करते हैं। यदि रोगी को कुछ ऊँघ सी वा ग़फ़लत होने लगे अथवा उसके शिर में दर्द हो वा मलावरोध हो तो गोलियों आदि में अफीम की मात्रा घटादें।

(२) उद्वर्तन द्वारा पारद-प्रयोग—मालिश को डॉक्टरी में इनंक्शन (Inunction) और यूनानी वैद्यक में तम्रीख़ वा मर्ख़ और संस्कृत में उद्वर्तन वा अभ्यंग आदि कहते हैं। उक्त औषध प्रयोग की यह भी एक उत्तम रीति है। अस्तु, आधा से १ ड्राम अंग्वेण्टम हाइड्रार्जिराई अर्थात् ब्ल्यु ऑइण्टमेण्ट (पारदानुलेपन) का हर रात को अभ्यंग किया करते हैं।

औषध की मालिश शरीर के ऐसे भाग पर करते हैं, जहाँ की त्वचा बारीक एवं कोमल होती है और जिस पर बाल अपेक्षाकृत कम होते हैं; जैसे, भुजा का भीतर की ओर का भाग, कक्ष, वंक्षण और रानों की भीतर की ओर का पृष्ट इत्यादि। हर रातको एक ही स्थान पर मालिश नहीं करते। परंच स्थान बदलकर अभ्यंग करते हैं। उदाहरणतः यदि आज दाहिनी बगल के नीचे तो कल बाईं बगल के नीचे इत्यादि। सप्ताह में ६ दिन हर रात को इस दवा की मालिश करके रोगी को वही वस्त्र पहना दें और सातवें दिन दवा की मालिश न करें; परंच रोगी को गरम पानी से स्नान कराकर उसके नीचे के कपड़े बदलवा दें। इस चिकित्सा क्रमको उसी भाँति कुछ सप्ताह तक निरंतर जारी रखें, जब तक कि औषधका पूर्ण प्रभाव न हो अर्थात् रोगी के मुँह में धातुवत् स्वादकी प्रतीति न होने लगे और मसूढ़ों में साधारण सा दर्द न होने लगे।

जिस स्थान पर पारदीय प्रलेप का उद्वर्तन करना हो उसे पहले उष्ण जल और पारदीय साबुन (मर्करी सोप) वा साधारण साबुन से प्रक्षालित कर सुखा लेना चाहिए। पुनः उक्त स्थल पर मरहम की निरंतर ३० मिनट तक मालिश करनी चाहिए। प्रायः रोगी स्वयं इसकी मालिश कर लेता है। पर यदि वह न कर सकता हो तो अन्य व्यक्ति को हाथों में विलायती चरमी दस्ताने पहनकर उसकी मालिश करनी चाहिए, जिसमें यह दवा उसके हाथों में अभिशोषित न होती रहे।

(३) पारदीय धूपन अर्थात् पारेकी धूनी देना—धूनी देने को तिब्ब में बख़ुर, डॉक्टरी में फ्युमिगेशन (Fumigation) और वैद्यक में धूपन कहते हैं। यह चिकित्सा-क्रम मुख्यतः उन अवस्थाओं में उपकारक होता है, जब शरीर पर आतशकी लाल

चट्टे वा धब्बे, फुंसियाँ वा दाने निकले हुए हों वा मुखपाक वा अतिसार प्रभृति के कारण रोगी मुख द्वारा औषध न खा सकता हो ।

धूनी दो प्रकार से दी जाती है—एक पारदीय धूपन-यंत्र (मर्क्युरियल वेपरबाथ) जिसमें तार की जाली के केस के भीतर एक स्पिरिट-लैंप होता है और जिसकी चोटी पर एक छोटी सी तश्तरी लगी होती है तथा उसके चारों ओर एक ऊँचा गोल दोहरा कुंडल होता है, जिसमें लगभग १ आउंस पानी आ सकता है । अस्तु, उस कुंडल में पानी भरकर स्पिरिटलैंप को प्रदीप्त कर देते हैं । जब पानी खौलने लगता है, तब २०से ३० ग्रेन कैलोमेल (रसकपूर) बारीक पीसकर उस तशतरी पर बुरक देते हैं और उस यंत्र को बेंत की बनी हुई एक कुरसी के नीचे रखकर उस कुर्सी पर रोगी को नग्न करके बिठा देते हैं । किंतु, गले तक उस पर साबुन की तरह के चमड़े का बना हुआ लबादा वा चोग़ा पहना देते हैं अथवा एक कंबल ओढ़ा देते हैं और उसके ऊपर एक वाटरप्रूफ शीट वा बरसाती डाल देते हैं । परंतु चोग़ा वा कंबल प्रभृति को बेंत के एक घेरे के द्वारा रोगी के शरीर से किंचिद्दूर रखते हैं । इस प्रकार २० वा तीस मिनट तक धूनी देकर पुनः रोगी को चोग़े वा कंबल सहित शय्या पर लिटा देते हैं ।

धूनी देने की दूसरी सरल विधि यह है कि रोगी को नग्न करके बेंत की एक कुरसी पर बिठा कर ऊपर से ग्रीवा पर्यंत एक कंबल ओढ़ा दें । परंतु बेंत के एक घेरे द्वारा कंबल के भीतर की ओर से किंचित् ऊँचा रखें जिसमें वह शरीर से न लगा रहे । पुनः एक केतली वा बरतन में खौलता हुआ पानी कुरसी के नीचे रख दें और एक गरम की हुई तश्तरी वा ईंट भी कुर्सी के नीचे रख दें और एक पैसे वा अधन्नी वा किसी धातु के पत्तर को अग्नि में लाल करके कुरसी के नीचे उस ईंट वा तश्तरी पर रखकर उस पर ३० ग्रेन कैलोमेल डाल दें । धूनी प्रति दिन सायंकाल २० वा ३० मिनट तक देना चाहिए और धूनी दे चुकने के उपरांत रोगी को कंबल सहित बिछौने पर लिटा देना चाहिए । यदि उसे पसीना न आता हो तो गरम गरम चाय पिलाना चाहिए ।

सूचना—धूनी देते समय रोगी को अकेला न छोड़ना चाहिए; क्योंकि कभी कभी सुकुमार प्रकृति के पुरुष को मूर्च्छा आ जाया करती है ।

(४) त्वगीय सूचीवेध द्वारा पारद प्रयोग—परक्लोराइड ऑफ मर्करीसोल्युशन वा ग्रे-आइल (पारदीय तैल) का नितंब की पेशियों में अंतःक्षेप किया करते हैं । पिचकारी बहुत स्वच्छता के साथ और अत्यंत चतुरतापूर्वक करनी चाहिए । पिचकारी करने के उपरांत रोगी को विश्राम करना चाहिए । वरन् सूई की जगह पर फोड़ा बन जाया करता है । पर रसकर्पूरीय नावनीतक (कैलोमेल क्रीम) का सूचीवेध अपेक्षाकृत अधिक निरापद एवं भय रहित होता है । ऐसी पिचकारी भी सप्ताह में एक बार की जाया करती है । कुछ सप्ताह पिचकारी करके फिर कुछ सप्ताह रोगी को विश्राम दिया जाता है अर्थात् पिचकारी नहीं की जाती ।

(५) सपाज़िटरी रूप में पारद का प्रयोग—ब्ल्युपिल (पारदीयानुलेपन) की वर्त्ति प्रस्तुत कर गुदा में रख दिया करते हैं । गुदा के गम्मेटा (गुमड़ा) में यह चिकित्साक्रम अधिक लाभकारी प्रमाणित होता है ।

नोट—चाहे जिस भाँति पारद का उपयोग करें, इसे उस समय तक अबाध रखना चाहिए, जब तक कि पारदीय प्रभाव के उपर्युक्त लक्षण प्रगटित न हों । जब मसूढ़े दर्द करने लगें तब पारद का प्रयोग कुछ समय के लिए बंद कर दें । पारद-प्रयोग-काल में रोगी को शीत एवं भींगने से बचा रहना चाहिए । प्रति दिन कोष्ण वा उष्ण पानी से स्नान एवं वायु-सेवन करना चाहिए । मादक द्रव्य विशेषतः सुरा से सर्वथा परहेज़ करना चाहिए और शीघ्रपाकी एवं लघु आहार करना चाहिए ।

पारद के कुपरिणाम

(१) कभी पारद-यौगिकों के सेवन से दस्त आने लगते हैं । उक्त अवस्था में कुछ काल के लिए औषध सेवन स्थगित कर दें और अहिफेन युक्त चॉक पाउडर वा टिंक्चर ओपियम् और चॉक मिक्सचर मिलाकर पिलाएँ । (२) कंठ प्रदाह होने पर भी पारद-सेवन स्थगित कर दें । (३) मुँह आने पर पारद का सेवन बंद करके फिटकरी और पोटासी

क्लोरास १० ग्रेन १ आउंस जल में मिलाकर उससे गंडूष कराएँ एवं लवणमय विरेचन दें। उदाहरणतः मैगनेशिया वा सोडा सल्फ़ास आध आउंस की मात्रा में पाव भर पानी में विलीनकर पिलाएँ। वायु परिवर्त्तन कराएँ और यह योग दें। (क) पोटासी आयोडाइड १० ग्रेन, टिंचर सिंकोना कंपाउंड १ ड्राम, डिकॉक्शन सिंकोना १ आउंस ऐसी एक-एक मात्रा दिन में दो बार दें वा (ख) पोटासियम् क्लोरेट लाजेंज चूसने के लिए दें और परआक्साइड आफ हाइड्रोजन (मर्क कंपनी निर्मित) से मसूढ़ों को साफ़ करें। फिर इन पर क्लोसल्ज अर्जेंटम् वा लाइकर आर्सेनीकेलिस १ ड्राम, वाइनम् इपीकाक १ ड्राम और रेक्टिफाइडस्पिरिट २ ड्राममिलाकर उसमें पिचु वर्त्तिका आप्लुत कर मसूढ़ों पर फेरें और आंतरिक रूपसे गंधक की टिकियाँ खाने को दें। यदि मुख और कंठ अधिक विकृत हों, तो आगामी योग नं० (८) दें। (४) त्वक् प्रदाह—कभी कभी पारे के प्रयोग से वंक्षण (जंघासा) और कुहनी के स्थान की त्वचा लाल होकर उस पर दाने पैदा हो जाते हैं, जिनमें से पतला द्रव निःसृत होता है और कभी विकृत स्थान शोथयुक्त होकर वहाँ जख़्म पड़ जाते हैं। ऐसी दशा में उपर्युक्त स्थानीय चिकित्सा के अतिरिक्त विरेचन देने के बाद प्रागुक्त पोटासी आयोडाइड वाला योग वा कंपाउंड सारसापरिला का प्रयोग लाभदायक होता है। (५) कभी पारद जन्य विषाक्तता के कारण रोगी भीरु एवं चिंतित रहता है, उसका हृदय निर्बल होकर धड़कने लगता है, रात्रि स्वेद और श्वासकृच्छ्रता होती है एवं नींद नहीं आती, अंततः मूर्च्छा आदि होकर रोगी स्वर्ग को प्रस्थान करता है। ऐसी दशा में तुरंत पारद का सेवन बंद करके जलवायु परिवर्त्तन कराएँ, बलकारक औषध तथा आहार दें। अस्तु, पहले कुछ दिन तक यह योग दें।

पोटासी आयोडाइड ७ ग्रेन, टिंकचर सिंकोना कंपाउंड ½ ड्राम, डिकाक्शन सिंकोना कंपाउंड १ आउंस ऐसी ऐसी एक-एक मात्रा दिन में दोबार दें। और पुनः ईस्टंज़ सिरप १–१ ड्राम की मात्रा में दिन में दो बार दें।

पारदजनित विषाक्तता में निम्नलिखित वैद्यकीय उपयोग भी लाभकारी प्रमाणित होते हैं—

सालसा मिश्र औषध, पंचतिक्त घृत और कुष्ठ में व्यवहृत औषधों का व्यवहार भी उपकारी होता है। ४ रत्ती शुद्ध गंधक प्रतिदिन घी के साथ सेवन करें वा १०-१२ बूँद गर्जन तेल दूध के साथ देने से लाभ होता है।

फिरंग में पोटासियम् आयोडाइड का प्रयोग

फिरंग के कीटाणुओं पर इस दवा का कोई प्रभाव नहीं होता। हाँ! यह आतशक के गुमड़ों तथा उभारों को विलीन एवं अभिशोषित करनेके लिए विशेष लाभकारी औषध है। तृतीयावस्था के मास्तिष्क, सौषुम्न वा वातज आतशकी व्याधियाँ, जैसे, फालिज, लक़वा, कंप, आक्षेप, वा उन्माद, प्रलाप एवं दृष्टि हीनता प्रभृति भी इसके प्रयोग से अच्छे हो जाते हैं। परंतु पारद की तरह इसका भी चिरकाल तक प्रयोग करना चाहिए।

आतशक की द्वितीयावस्था के अंत और तृतीय अवस्था के प्रारम्भ में पारद और पोटासियम् आयोडाइड दोनों को परस्पर मिलाकर प्रयोजित करना बहुत उपकारक होता है। अस्तु, उक्त अवस्था में डानुवंस सोल्युशन १५ से २० बिंदु की मात्रा में थोड़े पानी में मिलाकर ऐसी एक-एक मात्रा दिन में दो बार भोजनोपरान्त दें अथवा योग नं० १ व २ सेवन कराएँ। यद्यपि किसी किसी व्यक्ति को पोटासियम् आयोडाइड की क्षमता बहुत कम होती है, पर कोई विशेषतः चिरकारी आतशक के रोगियों को इसकी अत्यधिक क्षमता होती है। तथापि इसको पहिले थोड़ी मात्रा में देना चाहिए और फिर धीरे धीरे इसकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। अतएव पहिले इसको ५से १० ग्रेनकी मात्रामें आधा गिलास पानीमें मिलाकर ऐसी एक-एक मात्रा औषधि दिन में तीन बार भोजनोपरांत दें, जिसमें पाचन-विकार न हो। फिर धीरे धीरे इसकी मात्रा द्विगुण कर दें। परंतु इसे तीन सप्ताह तक निरंतर देनेके बाद एक सप्ताह इसका सेवन न करें और उस सप्ताह में रोगी को कोई बलकारक औषधादि, जैसे, योग नं० (६) और (८) का प्रयोग कराएँ और पुनः दोबारा उक्त औषध थोड़ी मात्रा में प्रारम्भ कर धीरे-धीरे

उसकी मात्रा बढ़ाते जायँ। इसी प्रकार कुछ महीनों तक इस औषध का सेवन करें, यहाँ तक कि हड्डी प्रभृति के आतशकी उभार (Gummata) विलीन हो जायँ। अस्थियों के आतशकी वेदनापूर्ण उभारों को विलीन करने के लिए इसको वीरता-पूर्वक साहस के साथ बड़ी मात्रा में देना चाहिए।

टिप्पणी–चिरकारी आयोडीन जनित विषाक्तता (आयोडिज्म)–किसी-किसी व्यक्ति को तो इस औषध की क्षमता बहुत ही न्यून होती है और उनमें एक-आध ग्रेन औषध खाने से भी आयोडीन द्वारा विषाक्तता (Iodinism) के लक्षण उपस्थित हो जाते हैं; परन्तु दूसरोंको इसकी अत्यधिक क्षमता होती है और उनको १ से ४ ड्राम दैनिक इस औषध के सेवन से भी कोई हानि नहीं होती विशेषतः पुरातन फिरंग रोगी को।

आयोडीन द्वारा विषाक्तताके लक्षण (Iodism) एवं उसके अगद के लिए देखें "आयोडम्"।

भोजन करने के आध घंटे उपरांत पोटासियम् आयोडाइड मिक्सचर को एक गिलास पानी के साथ पीना उत्तम है। पोटासियम आयोडाइड के कतिपय ऐसे योग, जो फिरंग की तृतीयावस्था (Tertiary syphilis) में उपयोगी हैं। आगे दिए जाते हैं। परंतु उक्त औषध के क्षोभक एवं हानिकारक प्रभावों से सुरक्षित रहने के लिए इसके निम्न लिखित प्रयोग बहुत लाभदायक होते हैं—

(१) आयोडिपीन (Iodipin)-यह आयोडीन और तिल तैल द्वारा निर्मित एक योगहै जिसकी मर्क एण्ड कंपनी निर्मित छोटी-छोटी टिकियाँ (Tabloids) मिलती हैं। इसमें से दो टिकियाँ दिन में तीन बार सेवन कराना लाभकारी होता है।

(२) आयोडलबीन (Iodalbin)-आयोडीन-और एल्ब्युमेन इसके उपादान हैं। इसमें २१ प्रतिशत आयोडीन होता है। इसको पाँच-पाँच ग्रेन की मात्रा में कैप्शूलज़ में डालकर दिन में तीन बार दिया करते हैं।

(३) आयोडिवल (Iodival)-इसमें ४७ प्रतिशत आयोडीन होता है। इसकी पाँच-पाँच ग्रेन की टिकियाँ होती हैं। मात्रा--एक-एक टिकिया दिनमें तीन बार दें।

(४) सेजोडीन (Sajodin)-इसमें १४ प्रतिशत आयोडीन होता है। इसको १५–१५ ग्रेन की मात्रा में भोजन करने के एक घंटे बाद दिनमें तीन बार देते हैं।

फिरंग की द्वितीय एवं तृतीयावस्था में
लाभकारी कतिपय
उत्तम परीक्षित योग

(१) पोटासियम् आयोडाइड	१० ग्रेन
लाइकर हाइड्रार्जिराइ पर क्लोर	½ ड्राम
स्पिरिट क्लोरीफॉर्म	१० विंदु

ऐसी एक-एक मात्रा आध गिलास पानी के साथ दिन में दो बार भोजनोपरांत दें। यह आतशक की द्वितीयावस्था में उपकारी है।

(२) पोटासियम् आयोडाइड	१० ग्रेन
लाइकर हाइड्रार्जिराई पर क्लोर	½ ड्राम
लाइकर सारसी को०	½ ड्राम
टिंकर सिंकोना	½ ड्राम
एक्वा डिस्टिलेटा (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा औषध आधा गिलास पानी के साथ दिन में दो बार भोजनोपरांत दें। आतशक की द्वितीयावस्था में उपकारक है।

(३) पोटासियाई आयोडाइड	१० ग्रेन
स्पिरिटस एमोनिया ऐरोमेटिकस	१० विंदु
एक्सट्रैक्ट सारसी लिक्विड	१ ड्राम
स्पिरिटस क्लोरोफॉर्माइ	१५ विंदु
एक्वा (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा औषध आधे गिलास पानी के साथ दिन में दो बार भोजनोपरान्त दें। यह आतशक की तृतीयावस्था में लाभकारी है।

(४) डानुर्वंज़ सोल्युशन	१० विंदु
पोटासियम् आयोडाइड	५ ग्रेन
सिरुपस ट्राइफोलिया कंपाउंड	१ ड्राम
डिकॉक्शन सारसी कंपाउंड (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा औषध आधे गिलास पानी में दिन में दो बार भोजनोपरान्त सेवन कराएँ। यह फिरंग की द्वितीयावस्था में गुणकारी है।

(५) पोटासियाई आयोडाइड	१० ग्रेन
पोटासियाई बाइकार्ब	१० ग्रेन
एक्सट्रैक्ट सारसी लिक्विड	१ ड्राम

एक्सट्रैक्ट कैस्कारी लिक्विड	१५ मिनिम
एक्वा क्लोरोफॉर्माई (ऐड)	१ आउंस

ऐसी-ऐसी एक मात्रा औषध आधे गिलास पानी के साथ दिन में दो बार भोजन के बाद दें। यह टर्शियरी सिफिलिस में हितकारक है।

(६) फेराई एट एमोनियाई साइट्रेटस	१० ग्रेन
लाइकर आर्सेनिकेलिस	४ मिनिम
लाइकर स्ट्रिक्निया	३ मिनिम
टिंक्चूरा कलंबी	२० मिनिम
एक्वा क्लोरोफॉर्माई (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा औषध दिन में दो बार भोजनोपरांत सेवन कराएँ। यह पोटासियम् आयोडाइड सेवन के उपरान्त एक सप्ताह पर्यंत सेवन कराया जाता है।

(७) फेराई एट एमोनियाई साइट्रेटस	१० ग्रेन
टिंक्चूरा जेन्शियाई कंपाज़िटस	३० बिंदु
लाइकर स्ट्रिक्नीनी	३ बिंदु
स्पिरिटस क्लोरोफॉर्माई	१५ बिंदु
एक्वा (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा औषध दिन में दो बार प्रयुक्त कराएँ। इसे पोटासियम् आयोडाइड के सेवन के बाद एक सप्ताह पर्यन्त दिया जाता है।

(८) टिंक्चूरा एकोनाइट	२ बिंदु
पोटासियम् क्लोरेट	३ ग्रेन
लाइकर फेराई परक्लोर	१० बिंदु
लाइकर हाइड्रार्जिराई पर क्लोर	५ बिंदु
लाइकर स्ट्रिक्नीन	२ बिंदु
ग्लीसरीन	१ ड्राम
एक्वा क्लोरोफॉर्माई (ऐड)	½ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा औषध प्रति ३-३ वा ४-४ घंटे के उपरान्त चन्द बार सेवन कराएँ। यह आतशक के उग्र कंठ विकार एवं ज्वर में गुणकारक है।

नोट—यद्यपि इस योग के उपादान परस्पर संयोग-विरुद्ध हैं; तथापि क्रियात्मक रूप से यह बहुत ही उपयोगी है। (डा० उमेश)

सहज वा आनुवंशिक फिरंग रोग की चिकित्सा

इस प्रकार के आतशक में भी पारद अत्यन्त गुणकारी है। पुनः बालकों को इसकी अधिक क्षमता होने के कारण साधारण मात्रा से किंचित् अधिक मात्रा में भी इसका उपयोग निरापद होता है। अतएव ४ वा ६ मास के शिशु को आध-आध ग्रेन ग्रे पाउडर प्रथम एक सप्ताह तक दिन में ३ बार दें, पुनः कुछ सप्ताहों तक सप्ताह में एकबार दें। इसी भाँति एक वर्ष पर्यन्त इस औषध का लगातार सेवन कराएँ। पर बीच में कभी कभी इसका प्रयोग बन्द कर दिया करें। यदि उक्त औषध सात्म्य न हो तो फिर मटर के दाने बराबर ब्ल्यू ऑइंटमेंट (पारदानुलेपन) फ़लालेन के एक छोटे टुकड़े पर लगाकर उसे बालक की रान के भीतरी ओर वा उसके पेट पर रखकर ऊपर से एक बारीक पट्टी बाँध दें अथवा फलालैन की एक पट्टी पर ही किंचित् पारदानुलेपन लगाकर उसे शिशु के पेट पर लपेट दें और हर रात को उसी पट्टी पर मरहम लगाकर उसे बच्चे के पेट पर लपेट दिया करें। चार पाँच दिन बाद बालक को गरम पानी से स्नान करा दिया करें। यदि शिशु माता वा धात्री का स्तन्यपान करता हो तो उसे भी थोड़ी मात्रा में पारद का सेवन कराना चाहिए, ताकि स्तन्य द्वारा शिशु पर उसका प्रभाव हो।

टिप्पणी—यदि फिरंगाक्रांत शिशु के लिए कोई दाई रखना हो तो वह ऐसी होनी चाहिये जिसे आतशक हो चुका हो। अन्यथा आतशकी शिशु से स्वस्थ धात्री को भी यह रोग हो जायगा। कभी नवजवान आनुवंशिक आतशक रोगी की हड्डियों एवं संधियों में सूजन प्रभृति हो जाती है। ऐसी दशा में पारद और पोटाशियम आयोडाइड मिलाकर वा अकेले पोटासियम आयोडाइड का सेवन उपकारी होता है। और शोथयुक्त हड्डियों अर्थात् अस्थियों के फिरंगजनित उभारों पर लिनिमेंट ऑफ आयोडीन वा टिंचर आयोड न लगाना लाभदायक होता है।

डाक्टरी अमिश्र औषधि

आद्य—फेरासलफास, हाइड्रार्जिरम्, हाइड्रार्ज कम क्रीटा, हाइड्रार्ज आयोडाइडम् विरिडि, आइडोफार्म, आयोडीन, मेजीरियन, नाइट्रिक एसिड, पोटासियाई आयोडाइडम्, सारसा परिला, हेमिडेसमास; दैहिक व गौण—अर्जेंटाई क्लोराइडम्, कैक्टोप्सिस, मेजी-

रियन, फेरी आयोडाइडम्, ग्वायकम्, हेमिडेसमास, हाइड्रार्जिरम्, कर्रोसिव सब्लिमेट, हाइड्रार्ज आयोडाइडम् रुब्रम्, हाइड्रार्ज आयोडाइम् विरिडि, हाइड्रोकोटाइल एसियाटिका (ब्राह्मी), आयोडीन, जेबोराण्ड, लाइकर आर्सेनिआइट, हाइड्रार्जिराई, आयोडाइडाई, आलिएट हाइड्रार्ज, नाइट्रिक एसिड, नाइट्रोहाइड्रो क्लोरिकएसिड, पोडाफिलीन, लाइकर पोटासी, पोटासियाई आयोडाइडम्. पोटास क्लोरास, सारसापेरिला, सासाफरास, सल्फ्युरंटेडे ऐण्टिमनी, टाइनास्पोरा ।

फिरंगी चर्मरोग में—ग्वायकम्, कर्रोसिव सब्लिमेट, हाइड्रार्जिरम् आयोडाइडम् रुब्रम्, हाइड्रार्ज आयोडाइडम् विरिड, आलिएट हाइड्रार्ज, लाइकर क्लोराई, नाइट्रिक एसिड पोटाशियाई ब्रोमाइडम्, पोटाशियाई आयोडाइडम्, लाइकरसोडि क्लोरेट ।

अस्थि और अस्थ्यावरण पीड़ा में—आयोडीन, हाइड्रार्ज आयोडाइडम् रुब्रम्, पोटाशियाई आयोडाइडम्; क्षत में—क्रोमिक एसिड, अर्जेंटाई आक्साइडम्, कैलाट्रापिस, कैकलिस, फास्फरस, केनायम्. फेरीसल्फास, हाइड्रार्जिरम्, आयोडाइडम् रुब्रम्, हाइड्रार्जिरम् नाइट्रेटिस, हाइड्रार्ज आक्साइडम् रुब्रम्, आइडोफार्म, कोशियेनाइमो, पोटासि क्लोरास, पोटाश आयोडाइडम्, सेविनी, टैनिन; काण्डिलोमेटा में क्रोमिक एसिड इत्यादि ।

आतशक की तिब्बी चिकित्सा

आतशक की प्रथम एवं द्वितीयावस्था में सौदा के मुंज़िज और मुसहिल के उपरांत दोषों (मवाद) का संशोधन कर पारद के योग, यथा—हब्ब सीमाब, हब्ब रसकपूर वा जौहर आतशक प्रभृति में से किसी एक का प्रयोग कराएँ। आतशक की द्वितीयावस्था अर्थात् चिरकारी फिरंग में उश्बा, चोबचीनी और रक्तशोधकार्क (अर्क मुसफ्फ़ी खून) प्रभृति का प्रयोग कराएँ । यदि संभव हो तो माउज्जुब्न (पनीर) सेवन कराएँ । यद्यपि फिरंगरोग के लिये शतशः योग यूनानी तिब्बी ग्रन्थों में लिखे मिलते हैं, तोभि यहाँ उनमें से कतिपय लाभकारी एवं परीक्षित योगों का ही उल्लेख किया जाता है ।

दिल्ली के शरीफ़ी खांदानकी अनुभवसिद्ध चिकित्साविधि—सर्व प्रथम आतशक रोगी को प्रति सुबह यह रक्तदोषनाशक हिम (ख़ेसाँदहे फ़िसाद खून) ग्यारह वा तेरह दिन तक पिलाएँ—चिरायता, शाहतरा, सरफोंका, मुंडी, हलेला स्याह, लालचंदन प्रत्येक ७ मा०, उन्नाब ५ नग, इन सब को रात्रि में पावभर गरम पानी में भिगोकर, प्रातःकाल मल-छानकर और ४ तो० शर्बत उन्नाब मिलाकर पिलावें ।

नोट—शरद् ऋतु होने पर उपर्युक्त योग में से लाल चंदन निकालकर उसकी जगह उश्बा मग़रबी ७ मा० मिलाएँ । यदि रोगी को नज़ला हो तो लालचंदन की जगह गुलबनफ़शा, तुख़्मख़त्मी, तुख़्मख़ुब्बाज़ी प्रत्येक ७ मा० मिलाएँ और श्लेष्म परिपाक (नुज़ुज बलग़म) के समय ५ मा० मुलेठी मिलाएँ ।

प्रतिदिन प्रातःकाल उपर्युक्त ख़िसाँदा और सायंकाल १ तो० माउल्उश्बा १२ तो० अर्कउश्बा वा २ तो० शर्बत उन्नाब के साथ दें । इसके ११ वा १३ दिन के निरंतर सेवन से जब दोष परिपक्व (नुज़ुज मादा) होजाय, तब मत्बूख़ हफ़्तरोज़ा नामक विरेचनौषधिको बराबर सप्ताह पर्यंत पिलाएँ । इससे दैनिक २–४ दस्त होकर रोग का आपत्तिकारक माद्दा शरीर से विसर्जित होजाता है । योग यह है—

मत्बूख़ हफ़्तरोज़ः—नीम के पेड़ की छाल, कचनार वृक्ष की छाल, इन्द्रायन की जड़, कीकर की फली, छोटी कटाई का पंचाङ्ग, पुराना गुड़ प्रत्येक १० तो०, इन सबको ३ सेर जल में क्वथित करें और पाद शेष रहने पर उतार छानकर रखलें । इसमें सात मात्रा बनाएँ और प्रतिदिन सुबह एक मात्रा यह औषधि पिलाएँ । सात दिवस पर्यंत उक्त औषध देने के उपरांत पुनः ४–५ दिवस तक यह तबरीद (शैत्यकारक औषध) प्रयोजित करें–

तबरीद—ज़हरमोहरा, वंशलोचन हरएक १ मा० दोनों को बारीक पीसकर, १ तो० माजून उश्बा १ तो० ख़मीरा गावज़ुबाँ में मिलाकर ऊपर से एक चाँदी का वर्क लपेटकर खिलाएँ और ऊपर से ३ मा० बिहीदाने का लुआब, ५ नग उन्नाब का शीरा और १२ तो० अर्क मुरक्कब फ़िसादे खूनमें मिलाकर और ४ तो० शर्बत उन्नाब अथवा ४ तो० शर्बत बज़ूरी में मिश्रित कर पिलाएँ ।

पथ्यापथ्य—चिकित्सा कालमें खट्टी, मीठी, गरम,

भारी, खाने-पीनेकी चीज़ोंसे परहेज़ करें, प्रधानतः अचार चटनी, गुड़, तेल, गोश्त, मछली, अंडे, बैंगन, मेथी, लहसुन, गरम मसाला और शराब कबाब से परहेज़ रखें।

यद्यपि उपयुक्त चिकित्सा द्वारा रोग को लाभ होता है; तथापि रोगकी निःशेष निवृत्ति के लिए उसके उपरांत हब्बकत्थ, हब्ब लेमूँ, हब्ब सीमाब वा जौहरआतशक प्रभृति में से किसी का प्रयोग करें।

उपयुक्त चिकित्सा-क्रम के अतिरिक्त आतशक की एक और परीक्षित चिकित्साविधि निम्न है। उक्त रीति के अनुसार आतशक के रोगी को प्रथम ग्यारह वा तेरह दिन तक प्रति दिन यह मुंज़िज दें—

मुंज़िज—गुलबनफ़्शा, गुलगावज़ुबान, गुलेसुर्ख़, शाहतरा, चिरायता, मुण्डी, उन्नाब, उस्तोख़ोद्दूस, बादरंजबूया प्रत्येक ५ मा० सब औषधियों को रात्रि में सवा पाव गरम पानी में भिगोकर प्रातः मलछानकर ४ तो० शर्बत बज़ूरी मिलाकर पिलाएँ।

नोट—रोगी की प्रकृति में उष्मा की उल्बणता होने पर इस योग में लाल चन्दन, कासनीमूल, तुख़्म ख़यारैन (खीरे के बीज) और गुलनीलोफ़र हरएक ५ मा० और मिलाएँ।

११ वा १३ दिन निरंतर उपयुक्त मुंज़िज पिलाने के उपरांत पुनः विरेचन दें। अतएव उपयुक्त मुंज़िज के योग में सनाय मक्की, हब्बुन्नील, इन्द्रायन की जड़, रेशाख़त्मी प्रत्येक ६ मा०, शीरख़िश्त ४ तो० और मग्ज़ फ़लूस ख़यार शंबर (अमलतास का गूदा) ये विरेचनौषध और योजित कर सब औषधियों को अर्क गावज़बाँ, अर्क कासनी और अर्क गुलाब प्रत्येक १५ तो० में रात को भिगोकर और प्रातःकाल मल छानकर ऊपर से ६ मा० बादाम का तेल डालकर पिलाएँ।

दो-तीन दिन ठहरकर पुनः एक ऐसा ही मुसहिल दें। परन्तु उन दो-तीन दिन के विरामकाल में और दूसरे मुसहिल (विरेचन) के उपरांत ४-५ दिन तक यह तबरीद दें।

तबरीद—ख़मीरा गावज़ुबाँ १ तो० चाँदी के १ नग वर्क में लपेटकर खिलाएँ और ऊपर से १२ तो० अर्क शाहतरा वा अर्क मुरक्कबफ़िसाद ख़ून में ५ नग उन्नाव का शीरा निकालकर और ४ तो० शर्बत उन्नाब मिलाकर तथा ७ मा० समूचा ईसबगोल छिड़ककर पिलाएँ।

चार पाँच दिन तबरीद देने के बाद फिर हब्ब सीमाब वा हब्बकत्थ वा हब्ब रसकपूर अथवा जौहर आतशक प्रभृति में से किसी एक का नियमपूर्वक एवं पथ्य के साथ उपयोग करें।

निर्धन रोगियों को मुंज़िज रूप से केवल चिरायता, शाहतरा और मुंडी प्रत्येक ५ मा० रातको गरम पानी में भिगोकर प्रातः मल-छानकर और २ तो० शर्बत उन्नाब मिलाकर पिलाएँ। ग्यारह दिन तक यह मुंज़िज पिलाकर फिर हब्बुस्सलातीन (जयपालवटी) का विरेचन दें, और बीचमें दो-तीन दिन ठहरकर एक और विरेचन दें। इसके उपरांत हब्बसीमाब वा जौहरआतशक प्रभृति का सेवन कराएँ।

जयपालवटी—शुद्ध जमालगोटे की गिरी, कंजे की गिरी, सोंठ, कालीमिर्च प्रत्येक ७ मा० सबको महीन पीसकर और मिलाकर कालीमिर्च बराबर वटिकाएँ प्रस्तुत करें। इसमें से ७ गोली गरम पानी के साथ बहुत भोर में दें।

विरेचनवटी—उश्बा मग़रबी, पीलीहड़, हड़ काबुली, चोबचीनी, सनायमक्की, सौंफ, उन्नाब, गावज़ुबान, शुद्ध जमालगोटा, रोग़न बादाम हरएक १ तो० बारीक पीसकर गुलाबजल में घोंट चने बराबर गोलियाँ बनाएँ।

मात्रा एवं सेवन विधि—एक गोली दूध मिस्री के साथ प्रातः काल खिलाएँ। इसी भाँति तीन दिन तक खिलाएँ।

उग्र फिरंग और आतशक के दोष की उल्बणता में निम्नलिखित योग व्यवहृत होते हैं और लाभकारी हैं—

उग्र फिरंग में चोबचीनी,, उश्बामग़रबी, बसफ़ाइज फुस्तक़ी प्रत्येक ५ मा०, चिरायता, शाहतरा प्रत्येक ७ मा० सब दवाओं को रात में पावभर गरम पानी में भिगोकर प्रातः मल-छानकर और ४ तो० शर्बत उन्नाब मिलाकर पिलाएँ।

आतशक के दोष प्राबल्य (हैजान माद्दा) में ३ मा० बिहीदाने का लुआब, ५ दाने उन्नाब का शीरा (अर्क शाहतरा और अर्क मुसफ्फ़ी ख़ून प्रत्येक ६ तो० में

निकालकर) ४ तो० शर्बत बज़ूरी मिलाकर पिलाएँ। कभी इसके साथ ७ मा० इत्रीफल शाहतरा भी खिलाते हैं।

अत्यन्त दोष-प्रकोप के शमन होनेपर प्रातःकाल ख़िसाँदहे फ़िसाद खून और पूर्वोक्त योग सायंकाल में देते हैं। पुरातन आतशक अर्थात् तृतीयावस्था के आतशक में तथा फिरंग जनित त्वगीय एवं वात व्याधियों में जिस प्रकार पोटासियम आयोडाइड लाभकारी है, उसी प्रकार उश्बा मग़रबी और चोबचीनी प्रभृति औषधियों से बने योग जैसे अर्क उश्बा मुरक्कब, माजून उश्बा और माजून चोबचीनी आदि उपकारी हैं और यदि अर्क उश्बा मुरक्कब में पोटासियम आयोडाइड मिलाकर दीजाय तो अधिक गुणकारी हो।

चिरकारी आतशक में भी संशोधन अर्थात् एक दो विरेचन देने के उपरांत यदि (१) जौहर रसकपूर, (२) जौहरकलाँ वा (३) जौहर आतशक में से किसी एक को व्यवहार में लाएँ तो परमात्मा की दयासे अवश्य लाभ होता है। परंतु शराब-कबाब और कुपथ्यकारक वस्तुओं से परहेज़ करना अनिवार्य है।

अब हम नीचे कतिपय परीक्षित यूनानी योगों का उल्लेख करते हैं।

नूतन और चिरकारी आतशक
के लिये
यूनानी सिद्ध योग

(१) हब्बसीमाब—मस्तगी, पारद, अकरकरा, मुलेठी प्रत्येक २ मा०, संखिया, १ रत्ती। सर्व प्रथम पारे और संखिया को एक कागजी नीबू के रस में खूब खरल करके फिर अकरकरा और मस्तगी आदि मिलाकर सबकी ६० वटिकायें प्रस्तुत करें। इसमें से १ गोली प्रातः और १ सायं पानी के साथ ठीक भोजनोपरांत निरंतर १५ दिन तक सेवन करें। यह संशोधन अर्थात् जुल्लाब के बाद आतशक की प्रथम तथा द्वितीयावस्था में गुणकारी है।

पथ्य—लवण रहित रोग़नी रोटी दें तो अत्युत्तम हो। अपथ्य—खटाई, मधुर पदार्थ, गुड़ तथा तैलीय पदार्थं आदि।

(२) हब्बकत्थ—कपूर, रसकपूर, सफ़ेद मूसली, पापड़ी कत्था हर एक १ तो० सबको पानी वा अर्क पान में पीसकर कालीमिर्च के बराबर गोलियाँ बनाएँ। इसमें से एक गोली दैनिक प्रातःकाल बीज़ निकाले हुए मुनक्का के भीतर रखकर पानी के साथ निगलवाएँ और सादा शोरबा वा अरहर की दाल का पथ्य दें। यह आतशक की द्वितीय और तृतीयावस्था में लाभकारी है और सौदावी रोगों एवं संधिशूल (वजउल मफ़ासिल) में भी उपकारी हैं।

(३) जौहर रसकपूर वा जौहर मुनक्का—रसकपूर, दारचिकना, संखिया हर एक १ तो०, शराब ब्रांडी ५ तो० में खरल करके विधिवत् जौहर उड़ाएँ। इस जौहर में से १४ दिन तक १ चावल जौहर बीज निकाले हुए मुनक्का के भीतर रखकर प्रातःकाल इस प्रकार निगलवाएँ कि, यह औषध दाँतों को न लगने पाये। इसे संशोधन अर्थात् जुल्लाब के पीछे दें। यह नूतन एवं चिरकारी फिरंग में लाभदायक है। पथ्य-लवणरहित रोग़नी रोटी दें। अपथ्य-गुड़, तेल, खटाई, मधुर वस्तु और मांस प्रभृति।

(४) जौहर कलाँ – रसकपूर, संखिया, दारचिकना, पारा और शिंगरफ़ हर एक १ तो०, विशुद्ध सुरा और दो बार का उतारा हुआ गुलाबार्क प्रत्येक १० तो० में खरल करके यथाविधि जौहर उड़ाएँ। मात्रा—२ चावल पेंड़े के भीतर रखकर गोली बना इस प्रकार निगलवाएँ कि उक्त जौहर दाँतों को न लगने पाए।

नोट—यदि इसके खाने से गरमी प्रतीत हो तो हर एक मात्रा में आध चावल फिटकरी पीसकर मिला लिया करें। गुण—इसे नए-पुराने आतशक और सौदावी रोगों में संशोधन के उपरांत प्रयोजित करने से बहुत लाभ होता है।

पथ्य—लवण वर्जित घृताक्त रोटी। अपथ्य—अम्ल एवं मधुर पदार्थ, गुड़, तेल और मांस प्रभृति।

(५) जौहर आतशक – गंधक आमलासार १ तो०, सफ़ेद संखिया, लाल संखिया, पीला हड़ताल तबक़ी, शिंगरफ़ रूमी, पारा, मुरदासंग रसकपूर, नीलाथोथा प्रत्येक २ तो० सबको खरल में महीन पीसकर एक सेर नीबू के रस में खरल करके सुखाएँ। फिर इन औषधियों को एक मिट्टी के प्याले में डालकर दूसरे प्याले को उस पर बराबर ढँक कर ऊपर से कपड़मिट्टी करके उक्त प्याले को चूल्हे पर इस प्रकार रखें कि दवा का

प्याला आग पर रहे और खाली प्याला ऊपर रहे। चूल्हे में बेर की लकड़ी की मंदाग्नि दें और ऊपर के प्याले पर कई तह किया हुआ एक वस्त्र का टुकड़ा पानी में तर करके रख दें और सूखने पर उसे निरंतर भिगो-भिगो कर उस पर रखते रहें। इसी प्रकार दो पहर तक हलकी आँच देकर प्याले को शीतल होने दें। फिर ऊपर के प्याले से जौहर खुरच कर शीशी में सुरक्षित रखें। मात्रा-१ चावल से २ चावल तक बीज निकाले हुए मुनक्के के भीतर रखकर वा हलुए में रखकर इस तरह निगलवाएँ जिसमें दवा रोगी के दाँतों में न लगे। गुण-संशोधन अर्थात् जुल्लाब के बाद इसके सेवन से नए-पुराने आतशक में लाभ होता है। परीक्षित।

(६) अर्क उश्बा—उन्नाब, शाहतरा, हरी गिलोय, सरफोंका, बर्ग हिना, शीशम का बुरादा, मुंडी, बसफाइज हर एक ५ तो०, हलेला स्याह, चिरायता प्रत्येक १० तो०, लालचंदन, सफ़ेद चंदन, बड़ी इलायची, गावज़बाँ, परसियावशाँ (हंसराज) प्रत्येक २ तो० सब औषधियों को रात के समय गरम पानी में भिगोकर प्रातः ९ सेर अर्क उतारें। मात्रा—७ तो० सुबह शाम। गुण—आतशक की द्वितीय और तृतीयावस्था तथा रक्तविकार में गुणकारी है।

नोट—चिरकारी आतशक के लिए यदि इसकी प्रत्येक मात्रा में १० ग्रेन (५ रत्ती) पोटासियम् आयोडाइड मिलाकर दिया जाय तो यह अत्यंत लाभदायक प्रमाणित होता है।

(७) अर्क उश्बा मुरक्कब—यह आतशक की द्वितीय और तृतीयावस्था में विशेष लाभदायक है। इसमें भी यदि पूर्व की भाँति 'पोटासियम् आयोडाइड' मिलाकर सेवन कराएँ तो असीम लाभ हो।

(८) माजून उश्बा—उश्बा ९ तो०, बसफ़ाइज ४ तो०, अफ्तीमून १ तो०, गुलेसुर्ख़ ४ तो०, सफ़ेद चंदन और सनायमक्की प्रत्येक २ तो०, सौंफ ४ तो०, शहद और मिस्री हर एक ३ पाव। यथाविधि मअ्जून प्रस्तुत करें। मात्रा—७ मा० अर्क उश्बा वा अर्क उश्बा मुरक्कब के साथ। गुण—संशोधनोपरांत इसके सेवन से द्वितीय और तृतीयावस्था के फिरंग में बहुत लाभ होता है।

(९) माजून चोबचीनी—बूज़ीदान (सतावर), पीपल, लौंग, जायफल, गुलाब की कली, ऊद हिंदी, अबरेशम कतरा हुआ प्रत्येक ५। मा०, लाजवर्द मग़सूल, दरूनज अक़रबी, सालिममिस्री, शकाकुल मिस्री, बालछड़ (सुंबुलुत्तीब), सुरंजान प्रत्येक ७ मा०, हलेला काबुली का छिलका, हलेला स्याह, गुठली निकाला हुआ आमला, सफ़ेद निशोथ, उस्तोख़ुद्दूस, बहमन सुर्ख़, बहमन सफ़ेद, जरंबाद (कचूर), बिल्लीलोटन प्रत्येक १०॥ मा०, अफ़्तीमून, बस्फ़ाइज फुस्तकी प्रत्येक १ तो० ५ मा०, उत्तम चोबचीनी ३ छं० १। तो०, शुद्ध शहद १। सेर सब औषधियों को कूट-छानकर शहद में मिलाकर माजून बनाएँ। मात्रा—७ तो० अर्क उश्बा वा अर्क उश्बा मुरक्कब के साथ ७ मा० उक्त माजून सेवन करें। गुण—संशोधन वा जुल्लाब के उपरान्त इसका सेवन आतशक और सौदावी रोगों में उपकारी है।

(१०) अर्क माउज्जुब्न—यह आतशक के पुराने और निर्बल रोगियों को लाभदायक है।

(११) अर्क मुसफ़्फ़ीख़ून—(ब नुस्ख़ा कलाँ) —यह आतशक के बाद रक्त शुद्धि एवं बचे हुए दोषों के संशोधनार्थ उत्तम है।

(१२) उपदंशहरी—संगजराहत २ तो०, मुरदासंग २ तो०, कालीमिर्च २ तो०, अकरकरा २ तो०, बड़ी इलायची का दाना २ तो०, पीली हड़ २ तो०, काबुली हड़ की छाल २ तो०, छोटी हड़ २ तो०, देशी अजवायन २ तो०, खुरासानी अजवायन २ तो०, कत्था सफेद २ तो०, लौंग २ तो०, पीली कौड़ी की भस्म २ तो०, सुपारी का फूल २ तो०, नीलाथोथे की भस्म ६ मा० सबको बारीक पीसकर महीन कपड़े से छानें और लोहे की कदाही में डालकर एक सेर कागजी नीबू का रस इसमें मिलाएँ और नीम के एक सोंटे से, जिसके मुँह पर ताँबे का पैसा जड़ा हो, खूब घोटें। जब गाढ़ा होजाय तब जंगली बेर प्रमाण गोलियाँ बनाएँ और धूप में सुखाकर सुरक्षित रखें। प्रातः सायं एक-एक गोली ठंडे पानी से सेवन करें। दो सप्ताह निरन्तर सेवन करने से फिरंग सदा के लिए निर्मूल होजाता है। पथ्य—गेहूँ की रोटी, चने की दाल। लालमिर्च, गुड़, तैल, खटाई,

मद्य, मांस, मछली और मूँग की दाल इत्यादि से परहेज करें। यथासम्भव घी का अधिक व्यवहार करें। इस प्रकार प्रयोग करने से नया वा पुराना आतशक जड़से जाता रहता है। रक्त शुद्ध हो जाता है और फिर इस रोग के होने की आशंका नहीं रहती। संतान पर इसका बुरा असर नहीं पड़ता। दूसरी दवाओं से आतशक का ज़हर शरीर से कभी नहीं जाता और जीवन भर कष्ट भुगतना पड़ता है। (परीक्षित)

फिरंग की स्थानीय चिकित्सा

मरहम रसकपूर, मरहम सिंगरफ़, मरहम स्याह, मरहम सफ़ेद और मरहम चोबचीनी इनमें से किसी एक का प्रयोग करें अथवा यह मरहम लगाएँ—

(१२) मरहम दाफ़अ् आतशक—मुरदासंग, पीली कौड़ी की भस्म, सफ़ेद कत्था, कोयलों की आग पर जलाई हुई हड़ताल गोदंती, छोटी इलायची (छिलका सहित) प्रत्येक ६ मा०, सेलखरी, कपूर, कबाबचीनी हर एक ३ मा०, सफ़ेद वंशलोचन २॥ मा० सबको बारीक पीसकर कपड़छन करलें और शतधौत गोघृत मिलाकर ज़ख़्मों पर लगाएँ।

(१३) अनुलेपन—जो आतशक में होनेवाले दाह और ज़ख़्म प्रभृति के लिए लाभकारी है। योग—सफ़ेदा काशगरी, रसवत और कपूर प्रत्येक ६ मा० सबको बारीक पीसकर आवश्यकतानुसार रेशाख़त्मी के लुआब में मिलाकर प्रलेप करें।

(१४) तैल—यह फिरंगजनित आवयविक रूक्षता के लिए लाभकारी है। योग—६ मा० सफ़ेदा काशगरी को गुलरोग़न, चमेली का तेल और पीला मोम हर एक १ तो० तथा इक्कीसबार धोया हुआ गोघृत १ तो० इन सबको पिघलाकर सफ़ेदा काशगरी मिला शरीर पर लगाए।

आतशदान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] अँगीठी। बोरसी। अङ्गारिका।

आतशी–वि० [फ़ा०] (१) अग्नि सम्बन्धी। आग्नेय। (२) अग्नि-उत्पादक। जैसे—आतशी-शीशा। (३) जो आग में तपाने से न फूटे, न तड़के; जैसे—आतशी-शीशी।

आतशी-शीशा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का काँच जिससे आग पैदा होती है।

आतशी-शीशी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आग बरदाश्त करनेवाली काँच की कूपी। अग्निसहनशीला कूपी।

आता–संज्ञा पुं० [सं० आतु] सीता-फल। शरीफ़ा। A custard apple (Anona squamosa.)

आत्ता-जाम–[बं०] जामफल। Indian olive (Olea dioca, *Roxb.*)

आतान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लम्बाई। दीर्घ विस्तार। तूल-अ०। (Length.)

आतानिक, आतानिकी-वि० [सं० त्रि०] लम्बाई की रुख़ का। लम्बाई सम्बन्धी। (Longitudinal.) मुस्ततील (अ०)।

आतानिकमस्तिष्क-विशरण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मस्तिष्क का लम्बाई के रुख़ फट जाना। शक़ाक़ुल्-मख़्ख़ल् मुस्ततीलियः–अ०। (Longitudinal cerebral fissure.) अ० शा०।

आतानिक-सीमन्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्पर की वह सीवन जो लम्बाई की रुख़ स्थित है। दर्ज़-सहमी, सहमी-अ०। (Sagittal suture) अ० शा०।

आतानिक स्नायु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्बितुल-मुस्ततीलियः–अ०। (Longitudinal or common ligament.)

आतापि, आतापी–संज्ञा पुं० [सं० पुं० आतापिन्] चील। चिल्लपक्षी। चिल-पक्षी–बं०। शशमारी–मरा०। (A kite) हला०।

आतायी–संज्ञा पुं० [सं० पुं० आतायिन्] चील। चिल्लपक्षी। (A kite.) अम०।

आता-संदेश–संज्ञा पुं० [सं० आतु+बं० संदेश] एक प्रकार की बँगला मिठाई। इसमें आत (शरीफ़ा) की सी सुगंध आती है। यह छेने की बनती है।

आति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरारि पक्षी। शराली The sarali (Turdus giuginianus.) हला०। "सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो।" यजु० २४। ३४। "ता आतयोन तन्वः शुम्भतः स्वा।" ऋ० १६। ६५।

वि० [सं० त्रि०] हरवक्त चलनेवाला। सर्वदा गमनकारी।

आतिक़–[अ़०] [अवातिक़ बहु०] अंस । स्कंध । कंधा ।

आतिरश्चीन–वि० [सं० त्रि०] कुछ-कुछ टेढ़ा । ईषत् तिर्यक् ।

आतिश–[फ़ा०] अग्नि । आग । आतश ।

आतिश-ख़ारः–[फ़ा०] चकोर पक्षी । (The Bartavelle or Greek partridge.)

आतिश-ज़न–[फ़ा०] एक प्रकारकी चिड़िया जिसकी चोंच में बाँसुरी की तरह सात छिद्र होते हैं । दीपकलात । कोकनस । स० इश० ।

आतिशी-कैण्डू–संज्ञा पुं० [फ़ा० आतिश+कैण्डू] एक प्रकार का सविष और पँचरंगी धारीवाला सर्प । पूर्ण विवरण के लिए दे० "कैण्डू" ।

आतिशी-शीशा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] आग प्रज्वलित करनेवाला काँच ।

आतिशी-शीशी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अग्नि सहन शीला कूपी ।

आतीस–[बं०] अतीस । अतिविषा ।

आतु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उडुप । भेलक। भेला । भार-बं० । (२) शरीफ़ा । (३) दे० "आड़ू" ।

आतु-तिण्टपाल–[मल०] कीड़ामार । गन्धान बूटी । (Aristolochia Bracteata, *Retz.*) फा० इं० ३ भ० ।

आतुर–वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा आतुरता, आतुर्य] (१) रोगी । पीड़ित । (Diseased.) रा० नि० व० २० ।

"स्मृति निर्देश कारित्वमभीरुत्वमथापिवा ।
ज्ञापकत्वञ्च रोगाणामातुरस्य गुणामताः ॥"
भैष०

(२) दुःखी । (३) व्याकुल । व्यग्र । घबराया ।

आतुर-परीक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] यथावत् भेषजप्रयोगार्थ क्षण-क्षण पर रोगी के प्रत्येक अवस्था के निरीक्षण करने की क्रिया वा भाव । च० वि० ८ अ० ।

आतुरोपक्रमणीय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वह व्यापार जो रोगी के रोग-निवारण के लिये काम में लाया जाय । इसमें आयु, व्याधि, ऋतु, अग्नि, वयस, देह, बल, सत्व सात्म्य, प्रकृति, भेषज और देशपर ध्यान रखना पड़ता है । (२) इसका अधिकार करके रचा हुआ ग्रंथ । तत्प्रतिपादक ग्रंथ । इसी मज़मून की किताब । यह सुश्रुत का एक अध्याय है ।

आतुरोपद्रव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रोगी के उपद्रव । सु० ।

आतुर्य्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार का फलनाशक ज्वरांश । वस्तु भेद से ज्वरांश नाना भाँति का होता है । इसका वर्णन हरिवंश के १८३ अध्याय में भली प्रकार आया है । (२) आतुरता । घबराहट । (३) पीड़ा । तकलीफ़ ।

आतूस–[अ़०] छिक्काकारक । क्षुत्कारक । छींक लाने वाली औषधि । इर्हाइन (Irrhine)

आतृप्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) The custard apple tree (Annona Reticulata.) आत । शरीफ़े का पेड़ । आतागाछ-बं० । सीताफली चेझाड़-मरा० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीफ़ा (फल) । आत का फल ।

फल के गुण—यह तृप्तिकारक, रक्तवर्द्धक स्वादु, शीतल, हृद्य, बल्य, मांसजनक तथा दाह, रक्तपित्त और वात नाशक हैं । राज० ।

आतेपद–संज्ञा पुं० [सं० ?] जौ बिरहना । काल मेघ (?)। (Andrographis Paniculata.)

आत्तगंध–वि० [सं० त्रि०] सूँघा हुआ । गृहीत गंध ।

आत्पूक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] त्रपु । वंग । रंग । राँगा ।

आत्म–वि० [सं० आत्मन्] (१) निज का । स्वकीय । अपना । स्वाय । (२) जीव । स्वयं । (Soul, Self) ।

आत्मक वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आत्मिका] मय । युक्त । नोट–यह शब्द पृथक् नहीं आता, केवल यौगिक बनाने के काम में किसी शब्द के अन्त में आता है ।

आत्म-गन्धक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्ध बोल । रत्था बोल–मरा० । वै० निघ० ।

आत्मगन्धिहरिद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्पूर हरिद्रा । आमाहलदी । कापूर हलदा-मरा० । वै० निघ० ।

आत्म-गुप्ता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केवाँच। किवाँछ। कपिकच्छू। कौंच। "आत्मगुप्ता जड़ा हप्पएडा।" अम०। (Mucuna pruriens, Corpopogon pruriens) भा० पू० १ भ० मद० व० १। "दूर्व्वानन्तानिम्ब वासात्मगुप्ता।" रा० नि० व० ३। वा० सू० १५ अ० दुर्व्वादिव०। दे० "केवाँच"। (२) शतावरी। (Asparagus racemosa.) रा० नि० व० ३।

आत्मगुप्ता-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तैल विशेष।

गुण—भारी, गरम, चिकना, मीठा, कसैला तथा इसका फल बलकारी, वृष्य, वृंहण और वात नाशक है। धन्व० नि०।

आत्म-ग्राही–संज्ञा पुं० [सं० त्रि० आत्मग्राहिन्] [पुं० आत्मग्राही, स्त्री० आत्मग्राहिणी] स्वार्थ पर। स्वार्थी। कुक्षिम्भर। स्वोदरपूरक। आत्म पालक। उदरम्भरि। पेटू। (Selfish.)।

आत्म घण्टीका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शणपुष्पी। सनई। के० दे० नि०।

आत्म-घात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आत्म हत्या। खुदकुशी। (Self-murder. Suicide.)।

आत्म-घोष, आत्म घोषा–संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) कौआ। काक। वायस। (A crow.) हारा०। (२) मुर्ग़ी। कुक्कुट। ताम्रचूड़।

आत्मज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बेटा। पुत्र। तनीय। आत्मजन्मा। (२) मुर्ग़ा। कुक्कुट। (A cock.) श० च०। (३) रक्त। ख़ून। (४) कामदेव। कंदर्प।

आत्मजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कन्या। पुत्री। दुहिता। दुख़्तर। बेटी। (A daughter.)। (२) शूकशिम्बी। केवाँच। कौंच। च० चि० ३ अ०। (३) बुद्धि।

आत्म-जात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "आत्मज"।

आत्मनाला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सातला। सप्तला। गण नि०।

आत्मन्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निजत्व। अपनापन। अपना स्वरूप।

नोट—इसका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में होता है और यह "निज का" या "अपना" का अर्थ देता है। वि० दे० "आत्मा"।

आत्मनीन–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) पथ्य। बीमार के खाने की चीज़ें। रा० नि० व० ३०। (२) प्राणधार। जानवर। (३) पुत्र। बेटा। (४) श्यालक। साला। (५) स्वीय। अपना।

आत्मभू–वि० [सं० त्रि०] अपने शरीर से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पुत्र। (२) कामदेव।

आत्म-मूली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दुरालभा। धमासा–मरा०। श० मा०।

आत्मम्भरि–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आत्मम्भरी] आद्यून। औदरीक। अपना पेट पालनेवाला। स्वार्थी। जो अकेले अपनेको पाले। उदरंभरि। स्वोदरपूरक। पेटू। कुक्षिम्भरि।

आत्म-योनि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामदेव।

आत्मरत–संज्ञा पुं० [सं०] महेंद्रवारुणी। बड़ा इंद्रायन। लाल इंद्रायन।

आत्म-रक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महेन्द्रवारुणी लता। बड़ा इन्द्रायन। बड़ माकाल फल लता-बं०। महाकाल-सं०। रा० नि० व० ३। मद० व० १। (२) अपनी रक्षा।

आत्मलोम–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० आत्मलोमन्] श्मश्रु। दाढ़ी।

आत्मवत्–वि० [सं० त्रि०] (१) यत्नवती। (२) धृतिमती।

आत्मविज्ञान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] योगाभ्यास और समाधि द्वारा परमात्मा के स्वरूप आदि का विज्ञान। वा० सू० १ अ०।

आत्मशक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सतावर। शतावरी। नि० शि०।

आत्मशल्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शतावरी। सतावर। शतमूली–बं०। (Asparagus racemosus.) रा० नि० व० ४।

आत्म-संयम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आत्म-नियंत्रण। मनोवशीकरण।

आत्मसम्भव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आत्म-सम्भवा] (१) पुत्र।

वि० [सं० त्रि०] अपने शरीर से उत्पन्न।

आत्मसात्–वि० [सं० अव्य०] अपने अधीन। स्वहस्तगत।

आत्महत्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अपने से अपनी हत्या करना । स्ववध । आत्मघात । आत्मवध । ख़ुदकुशी । आत्महनन । आत्महिंसा (Suicide, self-destruction.)

आत्महा-संज्ञा पुं० [सं०] अपने को मारनेवाला । आत्मघाती । (Committing-suicide.)

आत्मा-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं० आत्मन्] वि० आत्मिक, आत्मीय] (१) शरीर । देह । मे० गत्रिक । (२) जीव । (३) वायु । (४) अग्नि । आग । हे० च० । (५) मन । मे० । (६) धृति । बुद्धि । (७) यत्न । (८) स्वभाव । प्रकृति । धर्म ।

आत्माशी-संज्ञा पुं० [सं० पु० आत्माशिन्] [स्त्री० आत्माशिनी] एक प्रकार की मछली । त्रिका० ।

आत्मिक-वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आत्मिका] (१) आत्मा-सम्बन्धी । (२) अपना (३) मानसिक ।

आत्मीकरण-सं० पुं० [सं० क्ली०] पक्वीकृत भोजन के मूल अवयव वा आहार रस में से आवश्यक पदार्थों को अन्नमार्ग की श्लैष्मिककला में से होकर रक्त और लसीका में पहुँचने और उनके शरीर के भाग बनने की क्रिया । (Assimilation, absorption.)

आत्मीकृत-वि० [सं० त्रि०] अपनाया हुआ । आत्मसात्कृत । आत्म सम्बन्धीय ।

आत्मीय-वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आत्मीया] निज का । अपना । स्वीय । आत्म्य ।

आत्मीयता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) आत्म-सम्बन्ध । स्नेह सम्बन्ध । (२) मैत्री । मित्रता ।

आत्मोद्भव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काम देव । (२) पुत्र । लड़का ।

आत्मोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) माषपर्णी । बन उड़द । मषवन । माषाणी-बं० । (२) बन-मुद्ग । बन मूँग । मुद्गपर्णी । रा० नि० व० ३ । (३) कन्या । पुत्री । आत्मजा । (४) बुद्धि ।

आत्यूक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वङ्ग । राँगा । कथील । Tin (Stannum.)

आत्यूह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दात्यूह-पक्षी । मुर्ग़ाबी । (Gallinule.)

आत्रीलाल-संज्ञा पुं० [अ०, फ़ा०] (१) घाटी पित्तपापड़ा । (Peristrophe bicalycula, *Nees.*) । (२) आतरीलाल । स० फा० इं० । दे० "आतरीलाल" ।

आत्रेय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शरीरस्थ रस धातु । हे० च । (२) अत्रिमुनि के पुत्र अर्थात् दत्त, दुर्वास और चन्द्र । (३) एक वैद्यक ग्रंथ-रचयिता । इन्होंने उष्टूप्रयः कल्पभेद, नाड़ीज्ञान, हारीत संहिता भेद, आत्रेयहारीतोत्तरार्द्ध और आत्रेयसंहिता नामक ग्रन्थ बनाये हैं ।

कहते हैं कि, यह भरद्वाज मुनि के शिष्य थे । कोई कहते हैं कि आत्रेय और भरद्वाज एक ही व्यक्ति हैं । पीछे आत्रेय के ६ शिष्य हुए । उन ६ शिष्यों ने अपने अपने नामों से एक एक संहिता की रचनाकर मर्त्यलोकमें आयुर्वेद का प्रचार किया । उन ६ शिष्यों के नाम अग्निवेश, भेल, जतुकरण, पराशर, हारीत और क्षारपाणी थे । इस मर्त्यलोकमें कायचिकित्सा के आपही प्रथम प्रवर्त्तक हुये हैं । अस्तु, आपका शिष्य सम्प्रदाय, जिसे आत्रेय सम्प्रदाय वा चरक सम्प्रदाय (School of physicians) कहते हैं, शारीरिक और मानसिक रोग समूहों की औषधादि द्वारा चिकित्सा करते थे । ये शस्त्रचिकित्सक नहीं थे, इसीलिये चिकित्सक (Physicians) नाम से प्रसिद्ध थे ।

वि० [सं० त्रि०] (१) अत्रि सम्बन्धी । अत्रि का । (२) अत्रि से उत्पन्न ।

आत्रेयिका, आत्रेयी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऋतुमती स्त्री । रजःस्वला स्त्री । हला० । मे० यत्रिक । (२) एक नदी । (३) अत्रि की स्त्री । अत्रि-पत्नि । (४) ऋतुस्नाता स्त्री ।

आत्शक-[फ़ा०] फिरंग रोग । गर्मी का रोग । (Syphilis.) दे० "आतशक" ।

आत्शक-अव्वला-[फ़ा०] इब्तिदाई आत्शक । प्रथम कक्षीय फिरंग रोग । (Primary syphilis.) दे० "आतशक" ।

आत्शक-मक्सूब:-[फ़ा०] उपार्जित फिरंगरोग । संसर्गज फिरंग । वह गरमीका रोग जो किसीन किसी प्रकार छूत लगने से स्वयं गृहीत होता है । (Acquired syphilis.)

आत्शक-मजाज़ी–[अ०] मजाज़ी आत्शक । कुर्ह्.हे-ज़ुह्.रिय्यः–अ० । मृदु फिरंग । नरम आत्शक। (Soft chancre)

आत्शक-मिज़ाजी–[अ०] स्वाभाविक वा असली फिरंग । दे० 'आत्शक-हक़ीक़ी"।

आत्शक-मुज़्मिन–[अ०] पुरातन फिरंग । त्रितीय दरजा में पहुँचा हुआ फिरंग । (Tertiary syphilis.)

आत्शक मौरूसी } **आत्शक-मौलूदी** } [अ०] वह आतशक जो माता-पिता के दोष से बालक को हो । पैतृक फिरंग । सहज फिरंग । पैदायिशी वा आनुवंशिक फिरंग रोग । वंशज फिरंग । मौरूसी आत्शक ।

नोट––गर्भस्थिति-काल में पिता और माता अथवा पिता-माता दोनों की ओर से वीर्य द्वारा यह रोग उत्पन्न होता है । गर्भस्थित होने के पश्चात् यदि माता को यह रोग हो जावे, तो उससे अमरा द्वारा शिशु को भी यह रोग हो जाता है ।

जब पिता के वीर्य में इस रोग का बीज हो, तो सन्तति में इस रोग का होना अवश्यम्भावी है ।

आत्शक-.सानोई–[अ०] द्वितीय कक्षा का फ़िरंग । दूसरे दर्जे में प्राप्त गर्मी का रोग । (Secondary syphilis.)

आत्शक-सु..लास.ी, आत्शकमुज़्मिन– [अ०] तृतीय कक्षा अर्थात् तीसरे दरजे का फिरंग । पुरातन फिरंग । (Tertiary Syphilis.)

आत्शक-ह्.क़ीक़ी, आत्शक-मुज़्मिन–[अ०] हक़ीक़ी आत्शक । असल आत्शक । सख़्त आत्शक । आब्लहे-फिरङ्ग । बादे-फिरंग । कोफ़्त । असली गर्मी का रोग । (Syphilis.)

आदंश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दाँतसे काटने की क्रिया । दंशन । काटना । "आदंशः सर्व लूतानामेतदादंशलक्षणम् ।" सु० । (२) दंशनस्थान । काटने की जगह । दष्टस्थान । "आदंशंस्वेदितं चूर्णैः प्रच्छितं प्रतिसारयेत् ।" सु० । (३) दंत । दाँत । डंक । (४) क्षत । घाव । ज़ख़्म । (Wound.)

आद–वि० [सं० त्रि० [[स्त्री० आदा] जो पा रहा हो । ग्रहण करनेवाला । भक्षक ।

नोट–यह शब्द प्रायः समासांतमें प्रयुक्त होता है ।

आदत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आदत । स्वभाव । प्रकृति । मिज़ाज (Habit) । (२) अभ्यास । बानि । टेव ।

आदम–संज्ञा पुं० [अ आदम मिलाओ सं० आदिम] (१) आदमकी सन्तान । आदमी । मनुष्य । (२) इबरानी और अरबी लेखकों के अनुसार मनुष्यों का आदि प्रजापति ।

आदम-चश्म–संज्ञा पुं० [अ० आदम+फ़ा० चश्म=चक्षु] वह घोड़ा जिसकी आँखकी स्याही (कालिमा) मनुष्य की आँख की स्याहीके समान हो । ऐसा घोड़ा बड़ा नटखट होता है ।

आदर–[अ०] [बहु० उदर] अन्त्रवृद्धि रोग से पीड़ित व्यक्ति । मरीज उद्रः । मरीज़ फ़तक़ । मरीज़ा बाद ख़ायः । मरीज़ा बाद ख़ु.स्.यः । दब्बः । मफ़्तूक़ । (Herniated.)

आदरंग–[फ़ा०] अदरंग । अर्द्धाङ्ग । पक्षाघात । (Hemiplegia.)

आदरदक़ियून–[रू०] उश्नान के सदृश एक बूटी । क़ाक़ला ।

आदर्श–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दर्पण । शीशा । आईना । (२) टीका । (३) प्रतिपुस्तक । प्रतिलिपि । किसी किताब की कापी । मे-शन्निक ।

आदर्शक–संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण । आईना । शीशा ।

आदर्शक-यंत्र–संज्ञा० पुं० [सं० क्ली०] अणु-वीक्षण यंत्र । सूक्ष्म-दर्शक यंत्र । ख़ुर्द-बीन । (Microscope.)

आदर्शन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दर्पण । आईना । संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] देखना । नज़ारा ।

आदर्श-मण्डल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मण्डली (चित्तीदार) जातीय सर्प । सु० कल्प० ५ अ० । दे० "साँप" ।

आदस–[अ] मसूर । मसुरी । Lentil (Cicer lens.)

आदहन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जलन । ईर्ष्या । दाह । (२) श्मशान । चितास्थान । चिता-भूमि ।

आदा–संज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक] अद्रक । अदरख ।

[बं०] आदी । अदरक । (Zingiber officinalis, *Roxb.*)

आदान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार का घोड़े का आभूषण । हे० च० । (२) निदान । (३) रोग लक्षण । रा० नि० व० २० । (४) ग्रहण । लेना । (५) ग्रहणशक्ति । च० शा० ५ अ० ।

आदान-काल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मनुष्य के बल को हरण करनेवाला काल । बल का आदान अग्नि रूप है । वा० सू० ३ अ० ।

आदाना-आदानी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हस्तिघोषा। नेनुआ । धुन्दुल–बं० । र० मा० । भैष० क्षुद्र रोग चि०, महानील तैल ।

आदार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक पौधा जो सोमलता की प्रतिनिधि है । हि० वि० को० ।

आदारिविम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुश्रुत में एक प्रकार की बेल, जिसमें अमलबेत के फूल की तरह के फूल लगते हैं । आनेरी । "आदारिविम्बीं सुकदम्ब पुष्पीं विपाच्य सर्पिर्विपचेत् कषाये ।" सु० ।

आदि–वि० [सं०] प्रथम । पहिला । पूर्व । आरंभ का । अग्र ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आरंभ । मूल कारण । बुनियाद ।

आदि-कारण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निदान । मूल कारण । अम० ।

आदिके–[कना०] सुपारी । पुंगी-फल । इं० मे० मे० ।

आदित्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अर्क क्षुप । मदार । आक । (२) श्वेतार्क क्षुप । सफ़ेद मदार का पौधा । (३) सूर्य । अम० ।

आदित्य-कान्ता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हुरहुर । हुलहुल । हुड़हुड़िया–बं० । आदित्य-भक्ता । वै० निघ० । (२) मण्डूकपर्णी ।

आदित्यगुटिका–संज्ञा स्त्री०[सं०स्त्री०]दे०'आदित्यवटी।'

आदित्य-तेजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हुरहुर । आदित्यभक्ता । वै० निघ० ।

आदित्य-पत्र, आदित्य-पत्रक–संज्ञा पुं०[सं० पुं०] }
आदित्य-पत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }

(१) एक प्रकार का हुरहुर । आदित्य-भक्ता भेद ।

गुण—कटु, उष्ण वीर्य,कफनाशक, वातरोगनाशक, दीपन, जाठर-गुल्म-नाशक और अरोचक को दूर करनेवाला है । रा० नि० व० ४ ।

(२) अर्क वृक्ष । आक का पेड़ । मदार ।

आदित्य-पर्णिका, आदित्य-पर्णिनी, आदित्य-पर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हुलहुल । हुरहुर । आदित्य-भक्ता । (२) सूरजमुखी । च० चि० १ अ० । सु० चि० १५ अ० । धन्व० नि० । सूर्य्यमुखी । (Helianthus annus.) सु० चि० ३० अ० । धन्व० नि० ।

आदित्य-पाक-खण्ड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सेवती गुलाब की पंखड़ियाँ जीरा रहित १५ तो०, कूईं का फूल १५ तो०, कमल का फूल १५ तो०, हारसिंगार का फूल १५ तो०, चाँदनी का फूल १५ तो० ।

चूर्णार्थ—चन्दन सफ़ेद २ तो०, खस २ तो०, छोटी इलायची २ तो०, वंशलोचन २ तो०, कमलकेशर २ तो०, शीतलचीनी २ तो०, नागकेशर २ तो०, मिश्री २ सेर ।

निर्माण-क्रम—एक काँच या मिट्टी का बड़े मुँह का बरतन लेकर उसमें थोड़ा मिश्री का चूर्ण फैला दें । पश्चात् फूलों की थोड़ी सी मञ्जरियाँ उस पर बिखेरें । इसी तरह चूर्ण की हुई औषधियों का चूर्ण थोड़ा सा बिखेरें और ऊपर अर्क गुलाब २ छटाँक, अर्क केवड़ा २ छटाँक, अर्क वेदमुश्क २ छटाँक मिलाकर ऊपर से सिंचन करें, पुनः धूप में रखें । इसी क्रम से हर तीसरे दिन उक्त मात्रा में अर्क लेकर छिड़कते जाँय और धूपमें रखा करें । जब १२ छटाँक अर्क पूरा हो जाए, तब बन्द कर दें । फिर उस पात्र को १-२ दिन तक धूप में रखकर पाक करें ।

मात्रा—१–२ तोला ।

गुण—इसके सेवन से मूर्च्छा, मदोद्वेग, हृदरोग, रक्तपित्त, दाह, प्यास का अधिक लगना इत्यादि दूर होते हैं । लेखक ।

आदित्य-पाक-गुग्गुलु-वटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वातरोग में प्रयुक्त योग—

त्रिफला और पीपल के चूर्ण ४–४ तो०, दशमूल के काढ़े में भिगोएँ । पुनः दालचीनी, इलायची, तेजपत्र और शुद्ध गुग्गुल हर एक दो-दो तोले मिलाकर धूप में पाक करें । जब वटिका बनाने योग्य हो जावे, तो एक-एक माशा प्रमाण की गोलियाँ बना लें ।

गुण—मांस के रस के साथ खाने से संधि, अस्थि और मज्जागत वातरोग नष्ट होता है। बंग से० सं० वात रो० चि०।

आदित्य-पाक-गुडूची-तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का योग, जैसे—

पाकार्थ—तिल तैल १ सेर, गिलोय का स्वरस १ सेर।

प्रक्षेपार्थ—वटजटा तथा जटामांसी का चूर्ण मिलित $\frac{1}{4}$ पाव सेर, इस चूर्ण को डालकर धूप में रखकर तैल पाक करें। जब पानी धूप की गर्मीसे उड़ जाय, तब उतार कर छान लें।

गुण—इसकी मालिश से खालित्य रोग से पीड़ित पुरुष के शिर पर बाल उग जाते हैं। चक्र० द० क्षुद्र-रो० चि०।

आदित्यपाकतैल—संज्ञा० पुं० [सं० क्ली०] एक औषधीय तैल जो कोढ़ के लिए उपयोगी होता है इसे गुडूची तैल भी कहते हैं।

योग—मजीठ, लाही, त्रिफला, हलदी, मैनसिल, हड़ताल और गन्धक इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण करें और तैल के बराबर जल मिलाकर धूप में रक्खें। जब धूप की गर्मी से जल जलकर तैल मात्र शेष रह जावे, तब छानकर बोतल में रक्खें।

गुण—इसके उपयोग से कुष्ट का नाश होता है।

आदित्य-पुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) धातकी पुष्प वृक्ष। धायका पेड़। धवई। धव। धातकी। धाइ—बं०। (२) क्षीर-काकोली।

आदित्य-पुष्पिका, आदित्य-पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) आक। मदार। अर्क-वृक्ष। (२) लाल फूल का मदार। लोहितार्क क्षुप। अर्क-पुष्पी-मरा०। र० मा०।

आदित्य-बन्धु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
आदित्य-बन्ध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) कमल। पद्म। (२) हुरहुर। हुलहुल। सूर्य्यावर्त।

आदित्य-भक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हुरहुर। हुलहुल। बन-शलते। शुल्टे। हुड़हुड़े-बं०। सूर्य्य-फुल-वल्ली-मरा०। रा० नि० व० ४। च० द०। भा०। वि० दे० "हुलहुल"। (२) सूर्यमुखी।

आदित्य-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रसौषध जो अजीर्ण में उपयोगी है। योग—इस प्रकार है—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक, त्रिफला, त्रिकुटा, लौंग, जायफल, पाँचो नमक इन्हें तुल्य भाग ले बारीक चूर्णकर पुनः अम्लवर्ग के रस में खरलकर सात भावना दें। इसके बाद इसकी आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—यह अजीर्ण को नष्ट करता और जठराग्नि को दीप्त करता है। वृ० रस रा० सु० अजीर्ण चि०।

आदित्यवटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक योग जो वात रोगों में उपयोगी है। योग—इस प्रकार है—सोंठ, हींग, सफेद जीरा, कालीमिर्च, चित्रक की जड़, तज, शुद्ध सिंगी मोहरा, वच प्रत्येक तुल्य भाग को चूर्णकर भाँगरे के रस से मर्दनकर चने के बराबर गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके सेवन से वातरोग, हृद्रोग, अष्टशूल, गुल्म रोग, मन्दाग्नि और बवासीर का नाश होता है। (अमृत सा०)

आदित्यवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हुलहुल। आदित्य भक्ता। वै० नि०

आदित्य-वल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हुलहुल।
आदित्य-वल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हुलहुल। । हुरहुर। वै० निघ०। गण० नि०।

आदित्यालू—[ते०] चन्द्रसूर। हालो। इं० मे० प्लां०।

आदि-प्राणि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Protozoon) जीव-विज्ञान में प्राणि-वर्ग का वह सबसे छोटा व्यक्ति जिसका शरीर एक ही सेल से निर्मित्त होता है। जैसे, अमीवा।

नोट—आदिप्राणी इतने छोटे होते हैं, कि बिना अणुवीक्षण की सहायता के दिखाई नहीं देते। इनमें से कुछ ऐसे हैं कि जिनके शरीर में प्रविष्ट होने से तरह-तरह की व्याधियाँ उत्पन्न होजाती हैं। उदाहरणार्थ—(१) मलेरियाज्वर के जन्तु। (२) काला अज़ार ज्वर के जन्तु। (३) स्लीपिंग सिकनेस अर्थात् अतिनिद्रा रोगके जन्तु (४) आतशक (फिरंग) रोग के जन्तु इत्यादि।

आदि-फुफ्फुस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Rudimentary lung.)

आदिबलप्रवृत्त—वि० [सं० त्रि०] सुश्रुत के अनुसार

वे रोग जो शुक्र-शोणित के संयोग से होते हैं; जैसे—कोढ़, बवासीर इत्यादि। मातृज और पितृज भेद से पुनः उनके दो भेद हो जाते हैं। इन्हें आध्यात्मिक रोग भी कहते हैं। सु० सू० २४ अ०।

आदिम–वि० [सं० त्रि०] (१) आद्य। प्रथम। उत्पन्न। पहला। (२) भूमि।

आदिमा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भूमि। पृथ्वी।

आदि-वृत्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्मन्तक का पौधा। आपटा–मरा०। आपुटा–सं०। दे० 'आपटा'।

आदिपुरुष, आदिपूरुष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मनुष्य के आदि बीजस्वरूप हिरण्यगर्भ।

आदिबल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्पादक शक्ति। पैदा करनेवाली ताकत।

आदी–संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रक] पर्य्या०—अदरक। अदरख। आंदा। (हिं०, द०)। आर्द्रक। आर्द्रिका। शृङ्गवेर। ककुद (के० दे०)। कंदौषध (द्रव्यरत्न०)। कटुभद्र, कटूत्कट (क), गुल्ममूल, मूलज। कन्दमूल, वर, महीज, सैकतेष्ट, अनूपज, अपाकशाक, आर्द्राख्य, महाजम्बु, राहुच्छत्र, सुशाकक, शार्ङ्ग, आर्द्रशाक, सच्छाक, मुनिभू (सं०)। (ध० नि०। रा०नि०व०६)। ज़ंज्बीले तर, शिंग्वेज़, शंग्वेज़, शं(शि)गबेर (फ़ा०)। ज़ैगेबर, हूतियून (यू०)। ज़ंगबील (सिरि०)। ज़ंज्बीले रतब (अ०)। आदा, आद्रोक (बं०)। ज़िंजिबर ऑफ़िसिनेलिस Gingiber officinalis, *Roxb.* (ले०)। ग्रीन जिंजर Green Ginger (अं०)। जिंजेम्ब्रे Gingembre (फ्रां०)। इंग्वेर Ingwer (जर०)। इञ्जि (ता०)। अल्लम, अल्ल (ते०)। इंचि (मल०)। हसीसुंठि (कना०)। अल, आलङ्, आलें (मरा०)। आदु, आध (गु०)। अल्ल (करना०)। सिङ्गुरु, अमु इंगुरु, खियें, (सिंगा०)। गिङ्सीं, क्ष्येनषें। (बर०), हसीसुंठी (खा०)। आदो (मा०)। अदूरक। अद। अद्रक। आदा। ज़ंजूबील (पं०)। आदा (आसा०)। अदरक, अधरख (द०)। आदु, आले, आलें, आलूच, अदरक (बम्ब०)।

सुखाया हुआ अदरक, सोंठ (शुंठी)

सोंठ, सिंधी–(हिं०)। सोंट (द०)। शुण्ठि, शुण्ठी, महौषध, विश्व, विश्वभेषज, विश्वौषध, नागर, महौषधी, शुष्कार्द्र, इन्द्रभेषज, भेषज, कटुग्रंथि, कटुभद्र, कटूत्कटक (के० दे०), कटूषण, सौपर्ण, (शृङ्गबेर), कफारि, आर्द्रिक, आद्रक, शोषण, नागराह्व, शुण्ठि, शुण्टी (सं०)। (धनवन्तरि निघंटु। रा० नि० व० ६)। शुँठ, सोंठ (बं०)। ज़ंज्बीले ख़ुश्क (फ़ा०)। ज़ंज्बील, ज़ंज्बीले याबिस, क़फ़ीर (अ०)। जिंजिबर ऑफ़िसिनेलिस Zingiber officinalis, *Roxb.* (ले०)। ड्रायड जिंजर Dried Ginger (अं०)। शुक्कु (ता०)। सोंटि, शोंठी (ते०)। चुक्क (मल०)। वण शुंठि, शुँठि (कना०)। सूंट, शुँठ्य (गु०)। वेलिच इंगुरु, इंगुरु (सिंगा०)। सोंठ, सूठ (मरा०)। गिंसिखिआव् (बर०)। सोंठ (उ० प० सू०)। सोंठ, जंजबील (पं०)। सोंट, सुंट, सुंटा (बम्ब०)।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—इसकी लेटिन संज्ञा ज़िंजिबर (Zingiber) संस्कृत शृङ्गवेर से, क्रमशः फ़ारसी शंगविर तथा यूनानी 'ज़ैगेबर' द्वारा व्युत्पन्न हुई है। इसी प्रकार इसकी अरबी संज्ञा ज़ंजबील भी इसके प्राचीन फ़ारसी नाम से व्युत्पन्न है, जो स्वयं संस्कृत से व्युत्पन्न है। भेद केवल इतना है कि, इसमें 'ग' की जगह 'ज' रख दिया गया है, जिसका अरबी वर्णमाला में अभाव है। इसी कारण डॉक्टर सय्यद अहमद आफ़ंदी ने स्वरचित ग्रंथ उम्दतुल् मुहताज में ज़ंजबील को हिंदी संज्ञा लिखा है। परंतु पिज़िश्कीनामा के लेखक श्रीमान् नाज़िमुल् इतिब्बा मीरज़ा अली अकबरखाँ महोदय प्रायः युरोपियन लेखकों के समान ज़ंजबील को यूनानी ज़ैगेबर से व्युत्पन्न बतलाते हैं। उपर्युक्त विवेचन से अंततः यही प्रतिपन्न होता है, कि इसकी फ़ारसी, यूनानी और अरबी सभी संज्ञाएँ इसकी संस्कृत संज्ञा से व्युत्पन्न हैं।

आर्द्रक व हरिद्रा वर्ग

(N.O. Scitamineae or Zingiberaceae)

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष के बहुत से भागों में अदरक की खेती होती है। यह भारतवर्ष के प्रत्येक गरमतर भाग, जैसे, मदरास, बम्बई, कोचीन और ट्रावनकोर इत्यादि में बहुत बड़े परिमाण में बोया जाता है और बंगाल तथा पंजाब आदि में अपेक्षाकृत कम और हिमालय पर ४००० से ५००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है। मुहीतआज़मके

अनुसार यह यमन, उमान, माज़ंदरान इत्यादि प्रदेशों में भी होता है ।

वानस्पतिक वर्णन—वैद्यकके अनुसार यह गुल्मौषध जाति की वनस्पति है । अर्वाचीन वनस्पति-शास्त्र के अनुसार यह एक बहुवर्षीय क्षुप है जो एकसे तीनफुट ऊँचा होता है । इसमें हल्दीकी तरहकी लंबी लंबी पत्तियाँ लगती हैं । जब फूल झड़ जाते हैं और तना मुरझा जाता है, तब यह जाना जाता है कि अदरक पककर संग्रहके योग्य होगया । इसके उपरांत पाताली धड़ (Rhizome), जिसे साधारण बोल चाल में अदरख की गाँठ वा जड़ कहते हैं । खोद लिया जाता है और नाना प्रकार से इसे बाज़ार में भेजने योग्य बनाया जाता है ।

जमैइका से एक प्रकार का सर्वोत्तम सोंठ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है—सर्व प्रथम उसकी गाँठ को भली प्रकार धोकर साफ़ कर लेते हैं । फिर उसके ऊपरी छिलके को तेज़ चाकू से पृथक्कर उसे फिर धोते हैं । अंत में उसे धूप में सुखा लेते हैं । कभी कभी सुखाने से पूर्व थोड़ा उबाल लेते हैं । इस प्रक्रिया को (Bleaching process) कहते हैं । परन्तु यदि यह अधिक उबल जाय तो इसके प्रभावात्मक अंश सर्वथा नष्ट हो जाँयगे । अस्तु, यह प्रक्रिया कभी हानि से खाली नहीं ।

इसका छिलका उतारना भी कम होशियारी का काम नहीं; क्योंकि इसका स्थिर तैल, जिस पर कि इसका सुरभित गुण अवलंबित है, उपचर्मस्थित तंतुओं में ही अंतर्हित होता है । अस्तु, अधिक छिल जाने पर, इसके उक्त गुणके निर्बल होजाने का भय है । इस प्रकार सुखाई हुई गाँठ को ही सोंठ वा शुंठि कहते हैं । यह गाँठ चपटी, विषम और शाखायुक्त ३ से ४ इंच तक लंबी होती है । प्रत्येक शाखा के ऊपरी सिरे पर एक चिह्न होता है । बाहर से इसका रंग हलका पीलापन लिए होता है । तोड़ने पर इसकी रचना तंतुमय एवं स्वाद तीव्र तथा चरपरा होता है । हरी गाँठ अर्थात् आदी मसाला, चटनी, अचार और दवाओं में काम आती है । आकार में हल्दी की गाँठ इसके समान होती है । परन्तु वह पीली होती है ।

स्थान भेद एवं प्रक्रिया भेद से आदी अनेक प्रकार की होती है । उनमें से रोपकर लगाई हुई नए पाताली धड़ से उत्पन्न आदी श्रेष्ठ एवं पुरानी गाँठ से ही उत्पन्न आदी निम्नकोटि की होती है । वैद्यक में कदाचित् इसीको 'क्षुद्रिका' वा 'क्षुद्रार्द्रक' लिखा है । भारतीय सोंठ में यद्यपि कोचीन के सोंठ का पद सबसे ऊँचा है, तथापि रंगपुर के ज़िले, मिदनापुर, हुगली (बंगाल), सूरत, थाना, बम्बई और कुमाऊँ (संयुक्त प्रांत) आदि भी उत्तम आर्द्रकोत्पादन के लिये प्रसिद्ध हैं ।

बम्बई में तीन प्रकार का सोंठ बिकता है—अहमदाबादी, कलकतिया और मालाबारी या कोचीनी । इनमें मालाबारी सोंठ प्रायः दूने दाम में बिकता है ।

हकीम मुहम्मद आज़म खाँ लिखते हैं, कि एक प्रकार का सोंठ और होता है, जो सफ़ेद और तंतुरहित होता है । इसे हिंदी में 'सतुआ सोंठ' वा 'मैदासोंठ' वा 'बैतरा सोंठ' और अरबी में 'ज़ञ्जबील सतवा' कहते हैं । इसी को वनौषधिदर्पणकार ने 'भुशुरी शुँठ' लिखा है और लिखा है, कि यह सम्पूर्ण त्वक्, विवर्जित सोंठ ही है । देश में इसे 'धुसुरी' सोंठ कहते हैं । मुहीत आज़म में लिखा है कि, इसके दूसरे भेद को, जो बंगाल में होता है, 'अम्बा सोंठ' कहते हैं; क्योंकि उससे कच्चे आम की सी गन्ध आती है और यह गुणधर्म में पूर्वोक्त अदरकके समान होता है । इसे बंगला में आम आदा, दक्खिन में आम के बू की अदरक और लेटिन में (Curcuma amada, *Roxb.*) कहते हैं । वि० दे० "आम आदा" ।

इतिहास—भारतवर्ष में अदरक की खेती प्राकैतिहासिक कारण से होती आ रही है । प्राच्य देश ही इसके मूल उत्पत्तिस्थान हैं । वहीं से लोग इसे पश्चिम-इंडीज़ में लेगये । जहाँ अब यह अधिकता से पाया जाता है । पूर्व और पश्चिम इंडीज़ से यह पुरानी और नई दुनियाँके उष्ण प्रदेशों में फैल गया । भारतवर्ष में अब यह जंगली होता है, ऐसा ज्ञात नहीं होता । आयुर्वेदीय एवं चीनी वैद्यकीय ग्रंथों में इसके असंख्य प्रमाण भरे पड़े हैं । वैद्यक में 'आर्द्रक' और 'शृङ्गवेर' अदरक के लिए और 'विश्वौषध', 'विश्वभेषज' तथा 'नागर' ये संस्कृत नाम सोंठ के लिये बार-बार प्रयुक्त हुये हैं । पुरानी फ़ारसी में 'शिंगवीर' वा 'शंगबीर' तथा 'अदरक' ये संज्ञाएं

पाई जाती हैं, जिनका प्रयोग सोंठ के लिए होता था। सम्भवतः ईरानियों ही के द्वारा सब से पहले यूनानियों को इस औषधि का ज्ञान हुआ। क्योंकि इसकी यूनानी संज्ञा 'ज़ैंगेबर' इसके संस्कृत नाम 'शृङ्गवेर' से पुरानी फ़ारसी 'शिंगवेर' द्वारा व्युत्पन्न जान पड़ती है। अरबनिवासियों को भी संभवतः ईरानियों से ही इस औषधि का ज्ञान हुआ। क्योंकि इसकी अरबी संज्ञा ज़ंजबील फ़ारसी शंगबीर का ही अरबीकृत रूपमात्र है।

यूनानी और रूमी इसे पहले मसाला ही समझते थे, जिन्हें सम्भवतः यह रक्तसागर (Red sea) की राह से प्राप्त होता था। उनका ख्याल था, कि यह दक्षिण अरब में पैदा होता था। कहते हैं, कि सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी में मिश्र के प्रधान नगर सिकंदरिया से इस मसाले पर रूमियों ने सरकारी ख़ज़ाने की चुंगी लगाई थी। पूर्व से यूरोप के व्यवसाय में इसकी गणना प्रधान रही।

युनानी हकीम दीसक़ूरीदूस ने इसे पाचक, सूक्ष्म आमाशय-मृदुकर, आमाशय-बलप्रद और कालीमिर्च के सभी गुणों से युक्त लिखा है। और यह भी लिखा है कि यह (Collyria) का एक अवयव और विषों का अगद था। प्लाइनी ने भी इसका उल्लेख किया है। जालीनूस इसको फ़ालिज (Paralysis) और समग्र श्लैष्मिक रोगों में उपयोगी बतलाते हैं। पालूस वा बोलस इसे वातव्याधि एवं निक़्रिस (Gout) में लाभदायक लिखते हैं। इब्नसीना और अन्य अरबदेशीय एवं फ़ारसी हकीम इसके गुणधर्म लिखने में प्रायः यूनानियों का ही अनुकरण करते हैं। हाँ! ये इतना अधिक लिखते हैं, कि यह कामोद्दीपक भी है।

रासायनिक संघटन—अदरक में १ से ३ प्रतिशत तक एक प्रकार का हलके पीले रंग का उड़नशील तेल होता है, जिसमें विशेष प्रकार की गंध होती है। यह तैल जमेइकन अदरक में १ प्रतिशत, अफ़रीकन में २ से ३ शतिशत और भारतीय में लगभग ३, ४ प्रतिशत तक होता है। इसका कटुसार आवश्यक मात्रा में वाष्पीभूत नहीं होता। अस्तु वह तैल में नहीं पाया जाता। यह पृथक् कर लिया गया है और इसका नाम जिंजरोल (Gingerol) वा जिंजरीन (Gingerin) अर्थात् आर्द्रकीन रक्खा गया है। परन्तु इसका रासायनिक स्वभाव अभी तक अनिर्णीत है। इं० ड्र० इं०।

प्रयोगांश—साफ़ करके सुखाया हुआ पाताली धड (Rhizome) वा गाँठ और ताजी गाँठ।

मात्रा—स्वरस, १ से २ तो०।

सोंठ का चूर्ण—६ रत्ती से ३ मा० तक। मेटीरिया मेडिकोक्त मात्रा—१० से २० ग्रेन (.६५ से १.३ ग्राम)।

प्रभाव—सुरभित, उत्तेजक, वायुनिस्सारक, आक्षेपहर, आमाशय-बलदायक, लालाप्रवर्तक और पाचक। वाह्यप्रभाव स्थानीय उत्तेजक एवं आरक्ततजनक।

औषधि-निर्माण—वैद्यक में सोंठ वा अदरक मिश्रित औषधों की संख्या इतनी अधिक है, कि उन सबका यहाँ उल्लेख करना व्यर्थ ज्ञात होता है, और फिर वे सब यथा-क्रम इस ग्रन्थमें आएँगे ही। अस्तु, यहाँ पर उदाहरण स्वरूप कतिपय योगों के केवल नाम मात्र दे दिये जाते हैं।

(१) त्रिकटु, (२) पंचकोल, (३) षडूषण, (४) आर्द्रक वटक, (५) समशर्कर चूर्ण, (६) सौभाग्यशुंठी, (७) सैंधवाद्य तैल, (८) अदरकी (सोंठौरठ) (९) आर्द्रकखण्ड, (१०) आर्द्रक पाक, (११) आर्द्रकमातुलुङ्गावलेह. (१२) आर्द्रकावलेह।

यूनानी वैद्यकीय योग—जवारिश ज़ंजबील, हब्ब अदरक, हब्ब ज़ंजबील, रोग़न ज़ंजबील, सुहाग सोंठ, माजून सुहाग सोंठ, मुरब्बाए ज़ंजबील, नमक शेखुर्रईस, ज़र्दे जाम इश्क़ बुज़ुर्ग, सफ़ूफ़ नमक सुलेमानी ख़ास, पिंडी मर्दाना, हब्ब इस्हाल ख़ास, जवारिश अकसीरुल् मिअ्दः, जवारिश काफ़ूर, योगराज गुग्गुल (हकीम शरीफ खाँ निर्मित), मअ्जून नानख़ाह हकीम अलीगीलानी, मअ्जून युहया बिन ख़ालिद, मुफ़र्रिह कबीर, मअ्जून मुक़व्वी व मुबही, मअ्जून मुनृइज़, हब्ब अक्सीरुल् क़ुलयः, हब्ब रहमत, हब्ब मुस्हिल, सफ़ूफ़ क़ौलंज, सफ़ूफ़ हाज़िम, सुनून सुर्ख़, ज़मादः अजीब इत्यादि।

डॉक्टरी याग—यह पड़ता है—(१) इन्फ्युज़म सेन्नी, (२) मिक्श्चूरा सेन्नी कम्पोज़िटा, (३) पिल्युला सिल्ली कम्पोज़िटा (४) पिल्युला एलोज़ एट फेराई

(५) पिल्युला कम्बोजीई कम्पोज़िटा, (६) पल्विस सिन्नेमोमाई कम्पॉजिटस, (८) पल्विस ओपियाई कम्पोजिटस, (९) पल्विस रियाई कम्पोज़िटस और (१०) पल्विस स्केमोनियाई कम्पॉजिटस तथा अधोलिखित योगों में—

सम्मत योग

(*Official Preparations*)

सिरूपस ज़िंजिबरिस Syrupus Gingeberis (ले०)। सिरप ऑफ़ ज़िंजर Syrup of ginger (अं०)। शर्बत ज़ञ्जबील। सोंठ का शर्बत।

निर्म्माण-क्रम—महीन बुका हुआ सोंठ का चूर्ण $\frac{1}{2}$ आउंस मद्यसार (९० %) और शर्बत प्रत्येक आवश्यकतानुसार। जिंजर को ऐलकोहल (मद्यसार) के हमराह पर्कोलेटकर एक फ्लुइड आउंस टिंचर प्रस्तुत करलें और फिर उसमें इतना शर्बत (सीरप) मिलाएँ, कि कुल घनफल एक पाइंट हो जाय।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड ड्राम=(१·८ से ३·६ घन शतांशमीटर)।

टिंक्चूरा ज़िंजिबेरिस Tinctura Gingiberis (ले०)। टिंक्चर ऑफ़ जिंजर Tincture of Ginger (अं०)। शुण्ठ्यासव। सोंठ का टिंचर। सब्ग़ाहे ज़ंजबील, तश्रफ़ीन ज़ंजबील (अ०)।

निर्माण-क्रम—जिंजर का ४० नं० का सफ़ूफ़ २ आउंस, एलकोहल (९०%) आवश्यकतानुसार, जिंजर के चूर्ण को २ फ्लुइड आउंस एलकोहल में तर करके पर्कोलेशन द्वारा १ पाइंट टिंचर तैयार करलें।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइडड्राम=(१·८ से ३·६ घन शतांशमीटर)। यह पड़ता है—

(१) पिल्युला स्केमोनी कम्पोज़िटा, (२) एसिड सल्फ्युरिक एरोमेटिक, (३) इन्फ़्युज़म सिंकोनी एसिडम् और (४) सोल्युशन से भी कंसंट्रेटस में।

(*Not official preparations*)

टिंक्चूरा ज़िंजिवरिस फ़ॉर्टिस Tinctura Zingiberis Fortis (ले०)। एसेंस ऑफ़ जिंजर Essence of Ginger, लिक्विड एक्सट्रैक्ट आफ़ जिंजर Liquid Extract of Ginger (अं०)। मिश्रित शुण्ठ्यासव, शुंठीसार, तरल शुंठिरसक्रिया (सं०)। सब्ग़ाहे ज़ंजबील मुरक्कब, रूहज़ंजबील, ख़ुलासहे ज़ंजबील सय्याल (अ०)।

निर्म्माण-क्रम—जिंजर १ भाग, एलकोहल (९०%) आवश्यकतानुसार इतना जितने में पर्कोलेशन के बाद टिंक्चर का घनफल २ भाग हो।

मात्रा—५ से २० बिंदु।

आलियो रेज़िन आफ़ जिंजर Oleoresin of Ginger। जिंजरीन Gingerine (अं०)। आर्द्रकसार। सोंठ का सत। आर्द्रकीन। नागरीन। ज़ंजबीलीन, जौहर ज़ंजबील।

जिंजर का ६० नं० का चूर्ण १० भाग, ईथर आवश्यकतानुसार। जिंजर को ईथर से एग्ज़्हाष्ट करें और उसको वाष्पीभूत करने के उपरांत जो रालदार तेल (Oleoresin) शेष बचे, उसको मज़बूत डाटवाली बोतल में डालकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—$\frac{1}{4}$ से १ ग्रेन।

अदरक वा सोंठ के गुण-धर्म

आयुर्वेदीयमतानुसार गुण दोष—

अदरक गरम, विपाक में चरपरा, हृद्य, शीतल, हलका, दीपन, रुचिकारक तथा सूजन, कफ और गले की बीमारी को दूर करनेवाला है, और कफ वातनाशक, स्वर्य, विबन्ध, आनाह तथा शूल को जीतनेवाला है और चरपरा, गरम, रुचिकारक, वृष्य और हृद्य है। (धन्वन्तरीय निघण्टु)। रा० नि० व० ६।

सोंठ स्निग्ध, गरम, कटुक तथा वृष्य है और सुजन, कफ, अरुचि, वात, उदररोग, श्वास, पाण्डु तथा श्लीपद (फ़ील पाव) का नाश करता है। (धन्वन्तरीय निघण्टु)।

सोंठ चरपरा, गरम तथा स्निग्ध है और कफ, सूजन, वायु, शूल, विबन्ध, उदररोग, आध्मान (अफ़रा), श्वास और श्लीपद का नाश करता है। रा० नि० ६ व०।

नागर (सोंठ) वात कफनाशक, विपाक में मधुर। चरपरा, वृष्य, उष्ण, रोचन, हृद्य, स्निग्ध, हलका और दीपन है। सु० सू० ४६ अ०।

सोंठ—अग्निसंदीपन, वृष्य, ग्राही हृदय को हित-

कारी और विबन्ध को दूर करता है तथा रुचिकर्त्ता, हलका, मधुरपाकी, स्निग्ध, उष्ण और कफ वात को दूर करनेवाला है। अदरक के गुण सोंठ के समान ही होते हैं। वा० सू० ६ अ०।

सोंठ रस में चरपरा, गुणों में स्निग्ध तथा हलका, वीर्य में गरम और विपाक में मीठा है तथा रुचिकारी, आमवातनाशक, पाचन करता, कफ वात तथा मलादि के रुकने को नाश करता, बलकारक तथा सर(मलादि प्रवर्त्तक) है। (पाठांवर से स्वर्य) और वमन, श्वास, शूल, खाँसी, हृदय के रोग, श्लीपद, शोथ, बवासीर, अफ़रा, उदर और वादी के रोग नष्ट करता है। अग्निगुणभूयिष्ठ अर्थात् आग्नेयगुणविशिष्ट होने के कारण भीतर के द्रव भाग का शोषणकर मल का संग्रह करता है। अस्तु, यह संग्राही है। अब शंका यह होती है कि जो विबन्ध (वायु प्रभृति द्वारा मल के रुकने) को दूर करते हैं वे ग्राहक किस प्रकार हो सकते हैं? समाधान यह है कि, सोंठ में विबन्ध भेद की शक्ति है, किन्तु मल निकालने की शक्ति नहीं है।

अदरक रस में चरपरा, उष्णवीर्य, पाक में मीठा, गुण में तीक्ष्ण, रूक्ष, भेदक, भारी, अग्निदीपक तथा वातकफनाशक है। जितने गुण सोंठ में है, प्रायः वे सब अदरक में पाये जाते हैं। भोजन से पूर्व सेंधा-नमक के साथ इसका सेवन पथ्य है और यह अग्नि उद्दीप्त करता, रुचि उत्पन्न करता तथा कंठ एवं जिह्वा को शुद्ध करता है। कोढ़, पांडु, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, व्रण, ज्वर, दाह, प्रभृति रोगों तथा गरमी और शरद् ऋतु में अदरक का सेवन वर्जित है। (भा० प्र० १ भ०)।

अदरक सोंठ की तरह भेदन दीपन और भारी है। यथा—"आर्द्रकं नागरगुणं भेदनं दीपनंगुरु।" मद० व० २६।

पाक में मधुर, मलसंग्राही, हृद्य, स्वर्य तथा वातकफनाशक है और हृदय के रोग, अर्श और आमनाशक है तथा पित्तकारक एवं आध्मान, आनाह और वमनको दूर करनेवाला है। (केय देव निघंटु)

यूनानीमतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—नफ़ीसी के अनुसार सोंठ तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में ख़ुश्क (अदरक प्रथम कक्षा में ख़ुश्क) है। शेख़ के अनुसार सोंठ तीसरी कक्षा के अंतमें गरम और दूसरी कक्षा में ख़ुश्क है। अदरक तीसरी कक्षामें उष्ण और प्रथम कक्षामें रूक्ष है। इब्न-मासूया के अनुसार तीसरी कक्षा में गरम और प्रथम कक्षा में तर है। सारांश यह कि, इसकी दर्जाबंदी में इसी प्रकार का मतभेद प्राचीन तिब्बी ग्रंथों में पाया जाता है।

हानिकारक—कंठ और उष्ण प्रकृति को। कभी-कभी यह मेदे को शिथिल करता है, उस दशा में सफ़रजल का रस सेवन करने से, उसकी शांति होती है।

दर्पघ्न—शहद, रोग़न बादाम और सर्द तर वस्तु कर्पूरादि।

प्रतिनिधि—पीपल, कालीमिर्च और सफ़ेद मिर्च विशेषतः सोंठ। सोंठ और अदरक परस्पर एक दूसरे की प्रतिनिधि हैं।

मात्रा—अदरक २ मा०, अदरककी वयष्क मात्रा-१ तो०। सोंठ-२ मा०। वयष्क मात्रा-(सोंठ) ७ मा० (दो दिरम)।

अन्य सभी जड़ों की तरह, इसमें रतूबत फ़ज़्लिय्यः होती है। इसी वजह से इसमें रूक्षता कम है और इसी कारण इसमें शीघ्र घुन लग जाता है और यह जल्द सड़-गल जाती है एवं इसकी उष्मा चिरकाल पर्यन्त बनी रहती हैं; जैसा, कि तर लकड़ी जलाने से उसमें बहुकाल तक हरारत रहती है। विपरीत इसकी सूखी लकड़ी शीघ्र जल जाती है और बुझ जाती है। वायु उत्पन्न करने से यह कामोद्दीपन करता है। अपनी गर्मी के कारण पाचक है और यकृत एवं मेदे की सर्दी के लिये सात्म्य है। अपनी संशोषण एवं अभिशोषण क्रिया से यह मेदे की तरी जो मेवों के खाने से पैदा हो जाती है, नष्ट करता है अर्थात् संग्राही है।

यह स्मृतिवर्द्धक है; क्योंकि मस्तिष्क की रतूबत फ़ुज़्लिय्यः को विलीन कर देता है। शकर और गरम पानी के साथ सेवन करने से वह प्रकृति को मृदु करता है। क्योंकि उस अवस्था में वह अपनी छेदन एवं निर्मलकारिणी शक्ति से पिच्छल तथा लुआबदार मलों को दस्तों द्वारा निकालता है। (तर्जुमा नफ़ीसी)

अदरख और सोंठ के आंतरिक एवं वाह्य प्रयोग

चरक—(१) मूत्रमार्ग द्वारा रक्तस्राव होनेपर नागर—जब पेशाब में ख़ून आता हो, तब कूटा हुआ सोंठ १ तो०, पानी १॥ पाव इनको आधपाव गाय के दूध में क्वथितकर दुग्धावशेष रहने पर इसका सेवन कराएँ। यथा—

"नागरकैः शृतम्वा।" (चि० ४ अ०)

(२) बवासीर में सोंठ—चीते की जड़ और सोंठ का समान भाग चूर्ण सीधु नामक मद्य के साथ बवासीर के रोगी को सेवन कराएँ। यथा—

"सनागरं चित्रकं वा सीधुयुतं प्रयोजयेत्।"
(च० ६ अ०)

(३) अतिसार में सोंठ—सुगन्धवाला और सोंठ समान भाग लेकर क्वाथ प्रस्तुत कर सेवन करें। यह अग्निवर्द्धक और अतिसारहर है। यथा—

"ह्रीवेर शृङ्गवेराभ्यां पक्वं वा पाययेज्जलम्।"
(चि० १० अ०)

(४) क्षतक्षीणता में सोंठ—क्षतक्षीण रोगी को प्रतिदिन सोंठ का चूर्ण सेवन करना चाहिये। औषध सेवन काल में अन्न त्यागकर केवल दूध पीता रहे। यह बलप्रद एवं आरोग्यप्रद है। यथा—

"कल्पोऽथ शुण्ठी मधुकयोस्तथा।"
(चि० १६ अ०)

(५) शोथ में अदरक—पुराना गुड़ और अदरक बराबर-बराबर लेकर क्रमशः मात्रा बढ़ाते हुये एक महीने तक सेवन कराएँ। औषध जीर्ण होने पर दूध वा मांस-यूष के साथ अन्न का पथ्य दें। यह शोथ में उपयोगी है। यथा—

"प्रयोजयेदार्द्रकनागरम्वा तुल्यं गुड़ेनार्द्धपलाभिवृद्ध्या।" (चि० १७ अ०)

(६) उदर रोग में अदरक—आदी का रस और दूध समान भाग मिलाकर सेवन करें। किंवा दसगुने आदी के रसमें तिल का तेल पकाकर सेवन करें वा उसका अभ्यंग करें। यथा—

"शृङ्गवेरार्द्रकरस पाने क्षीर समो मतः।
तैलं रसेन तेनैव सिद्धं दशगुणेन वा॥"
(चि० १८ अ०)

(७) आमपरिपाचनार्थ सोंठ—गरम पानी के साथ सोंठ का चूर्ण फाँकने से आम का परिपाक होता है। यथा—

"नागरञ्चोष्णवारिणा।" (चि० १६ अ०)

सुश्रुत—(१) कर्णशूल में अदरक—तिल का तेल और आदी का रस इनमें किंचित् मधु तथा लवण मिलाकर गरम करलें और इसे ईषदुष्ण कान में बूँद-बूँद करके टपकाएँ। इससे कान का दर्द दूर होगा। यथा—

"कर्णशूलेतु शृङ्गवेररसं तैलमधुसंसृष्टं।
सैन्धवोपहितं सुखोष्णं कर्णे दद्यात्॥"
(चि० ५ अ०)

(८) कामला में सोंठ—कामला रोगी के लिये पुराने गुड़ के साथ सोंठ का सेवन हितकारक है। यथा—

"✽कामलिनां ✽ हिता। ✽ सगुड़ा शुण्ठी।"
(उ० ४४ अ०)

(३) गुल्म में सोंठ—गुल्म रोगी के बलाबल का विचारकर गोमूत्र के साथ निशोथ और सोंठ का चूर्ण सेवन कराएँ। यथा—

"पिवेत्त्रिवृन्नागरम्वा।" (उ० ४८ अ०)

चक्रदत्त—(१) सन्निपातज्वर में आर्द्र—आदी के रस में सेंधानमक और त्रिकटु का चूर्ण मिलाकर आकंठ मुख में धारण करें, और कुछ देर रखकर थूक दें। इसी प्रकार बार-बार करें। इससे मुख, कंठ एवं गले का कफ बाहर निकलकर लघुता प्राप्त होती है। यथा—

"आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं कटुकत्रयम्।
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः॥"
(ज्वर० चि०)

(२) अतिसार में आर्द्रक—चित्त लेटे हुये रोगी की नाभि के चारों ओर पिसे हुये आँवले का थाला बनाकर, उसके बीच में आदी का रस भर दें। इससे अतिसार में लाभ होता है। यथा—

"कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैर्वामलकैर्भिषक्।
आर्द्रक स्वरसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम्॥
नदीवेगोपमं घोरं अतिसारं निरोधयेत्॥"
(अतिसार-चि०)

(३) ग्रहणी में सोंठ—सोंठ के कल्क में गाय का घी पकाकर उपयुक्त मात्रा में सेवन करें। यह वात को अनुलोमन करता तथा ग्रहणी, पांडु, प्लीहा, खाँसी और ज्वरनाशक है। यथा—

"घृतं नागर कल्केन सिद्धं वातानुलोमनम् ।
ग्रहणीपाण्डु रोगघ्नं प्लीहकास ज्वरापहम् ॥"

(ग्रहणी-चि०)

(४) अग्निदीपनार्थ आर्द्रक-दोपहर के भोजन से पूर्व ४-५ क़तरा आदी सेंधानमक मिलाकर खा लेने के उपरान्त भोजन करने से जठराग्नि बहुत बढ़ जाती है । यथा—

"भोजनाग्रे सदापथ्यं जिह्वाकण्ठ विशोधनम् ।
अग्निसंदीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ॥"

(अग्निमांद्य-चि०)

(५) कास में आर्द्रक-आदी का रस मधु के साथ सेवन करने से नूतन सर्दी एवं श्वास-कास शांत होता है । यथा—

"स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम् ।
पाययेत् श्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥"

(कास-चि०)

(६) ऊरुस्तम्भ रोग में सोंठ-उरुस्तम्भ में गोमूत्र या दशमूल के काढ़े के साथ सोंठ का चूर्ण सेवन करना चाहिये । यथा—

"अथ नागरम् उरुस्तम्भे पिवेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेनवा ।"

(उरुस्तम्भ-चि०)

(७) आमवात में सोंठ-१ कर्ष (१० मा०) सोंठ का चूर्ण रोज़ाना काँजी के साथ सेवन करने से आमवात का नाश होता है और यह परम कफ-वात-नाशक है । यथा—

"कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिवेत् सदा ।
आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥"

(आमवात-चि०)

(८) हृद्रोग में सोंठ-सोंठ का काढ़ा गरम-गरम पीने से अग्नि बढ़ती है । यह हृदय के रोग तथा श्वास-कास, वायु और शूलनाशक है ।

(हृद्रोग-चि०)

(९) शिरोरोग में सोंठ-सोंठ का चूर्ण मिला हुआ दूध का नस्य लेने से तीव्र शिरोवेदना प्रशमित होती है । यथा —

"नागर कल्क मिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम् ।
नानादोषोद्भूतां शिरोरुजां हन्ति तीव्रतराम् ॥"

(शिरोरोग-चि०)

शार्ङ्गधर—(१) आमातिसारसम्भव पीड़ा में सोंठ-सोंठ के चूर्ण में थोड़ा गाय का घी मिलाकर ऊपर से रेंड का पत्ता लपेटकर गोला बनालें । फिर उसके ऊपर चिकनी मिट्टी का प्रलेप कर मधुर अग्नि में पुटपाक की विधि से पकालें । प्रातःकाल यह चूर्ण चीनी में मिलाकर सेवन करने से आमातिसारजन्य पीड़ा एवं मरोड़ प्रशमित होती है । यथा—

"चूर्णं किञ्चिद् घृताभ्यक्तं शुण्ठ्या एरण्डजैर्दलै । वेष्टितं पुटपाकेन विपचेन्मन्दवह्निना । तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सितान्वितम् । तेन यान्ति शमं पीड़ा आमातिसारसम्भवा ।"

(द्वि० ख० १ म० अ०)

(२) आमवात में शुंठी-पुटपाक—सोंठ के चूर्ण को रेंड़ की जड़ के रस में भिगोकर इसका गोला बना लें । उस गोले को रेंड़ के पत्ते से ढाँककर, उसका पुटपाक प्रस्तुत करें । उसका रस शहद के साथ पीने से प्रबल आमवात में जय प्राप्त होती है । यथा —

"शुण्ठी कल्कं विनिक्षिप्य रसैरैरण्डमूलजैः । विपचेत् पुटपाकेन तद्रसः क्षौद्रसंयुतः आमवातसमुद्भूतां पीड़ां जयति दुस्तराम् ।"

(द्वि० ख० १ म० अ०)

(३) वृषणवात में अदरक—आदी का रस मधु के साथ सेवन करने से वृषणवात का नाश होता है । यथा—

"आर्द्रक स्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत् ।"

(द्वि० ख० १ म० अ०)

भावप्रकाश—(१) विषमज्वर में सोंठ-पीले फूल के बरियारा की जड़ की छाल और सोंठ इनको समान भाग ले क्वाथकर २-३ दिन सेवन करने से शीत, कंप एवं दाहयुक्त विषमज्वर नष्ट होता है । यथा—

"महावलामूलमहौषधाभ्याम् । क्वाथोनिहन्याद् विषमज्वरंहि । शीतं सकम्पं परिदाहयुक्तम् । विनाशयेत् द्वित्रिदिन प्रयोगात् ।"

(म० ख० १ म० भ०)

(२) विसूचिका में सोंठ—बेलगिरी और सोंठ का काढ़ाकर पीने से वमन और विशूचिका प्रशमित होती है । यथा—

"विल्वनागर निःक्वाथो हन्याच्छर्दि विसूचिकाम् ।"

(म० ख० द्वि० भ०)

(३) खजूर और सिंघाड़ा बहुत खाने से होनेवाले अतिसार में सोंठ—जब सिंघाड़ा और खजूर बहुत ज़्यादा खाने से अजीर्ण हो, तब सोंठ सेवन करना चाहिए। यथा—

"खर्ज्जुर शृङ्गाटकयोः प्रशस्तं विश्वौषधम्।"

(म० ख० द्वि० भ०)

(४) हिक्का में सोंठ—क्षीर परिभाषानुसार बकरी के दूध में तैयार किया हुआ सोंठ का काढ़ा हिचकी को दूर करता है। यथा—

"हिक्कार्त्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम्।"

(म० खं० द्वि० भ०)

(५) गुल्म में अदरक—एक टंक सर्जिकाक्षार और उतना ही अदरक इन दोनों को एक साथ खाने से गुल्मरोग नष्ट होता है। यथा—

"सुवर्चिका टङ्कमिता तत् समानार्द्रिकाऽपि च।
उभे भुञ्जीत युगपद् गुल्मामय निवृत्तये।"

(म० खं० तृ० भा०)

(६) शीतपित्त में अदरक—पुराने गुड़ के साथ आदी का रस सेवन करने से शीतपित्त एवं मंदाग्नि दूर होती है। यथा—

"आर्द्रकस्य रसः पेयः पुराणगुणसंयुतः। शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वह्निमान्द्य विनाशनः।"

(७) आमवात में सोंठ—सोंठ के चूर्ण को गरम पानी के साथ फाँकें, तो पीड़ायुक्त आमवात का नाश हो, मेधा की वृद्धि हो तथा शिर और गले की सर्दी नष्ट हो। यथा—

"उष्णांभसापीतममुष्यचूर्णं तूर्णं सशूलाम विनाशनंस्यात्। मेधासमृद्धिं वितनोति नित्यं शिरोगलस्थं हरतेच शैत्यं।" (अभि० नि० १ म० भ०)

(८) वारिदोष में अदरक—अदरक और जवाखार का कल्क बनाकर किञ्चिद् गरम जल के साथ पीने से अनेक देश के जलके पीने (पानी लगने) से उत्पन्न हुए रोग दूर होजाते हैं। यथा—

"सहार्द्रकयवक्षारौ पीत्वा कोष्णेन वारिणा।
नानादेशसमुद्भूतं वारिदोषमपोहति॥"

(म० खं० ज्वर)

वृहन्निघण्टुरत्नाकर—शोथ में अदरक—अदरक के रस और पुराने गुड़ को मिलाकर सेवन करने तथा बकरी का दूध पीने से शीघ्र ही सब प्रकार की सूजन नष्ट होजाती हैं। यथा—

"आर्द्रकस्वरसः पीतः पुराण गुड़मिश्रितः।
अजाक्षीराशिनां शीघ्रं सर्वशोथहरोभवेत्॥"

यूनानीमतानुसार गुण-दोष—

शेखुर्रईस के अनुसार यह स्मरणशक्ति को बढ़ाता है, विशेषतः इसका मुरब्बा शिर और गले की रतूबत को नष्ट करता है और आवाज़ खोलता है। इसको पीसकर रजनीगंधा-तैल (रोग़न खैरी) में मिला प्रलेप करने से, शिरोशूल, कफजनित आधासीसी, लक़वा, मस्तिष्क के सुद्दे और कफज दोष (अख़्लात बलग़मी) नष्ट होते हैं।

अदरक का मुरब्बा कफज प्रकृति एवं शीत प्रकृतिवालों को लाभदायक है।

इसहाक़ बिन उमरान लिखते हैं कि, दो दिरम (७ मा०) सोंठ का चूर्ण गरम पानी से सेवन करें। इससे पिच्छल लुआबी ख़िल्त के दस्त आएँगे। २ दिरम (७ मा०) इसे पानी एवं शर्करा के साथ खाने से मेदा से गाढ़े दोषों के दस्त होंगे। यदि इसमें निसोथ और मिलादें तो शरीर के अत्यन्त आभ्यंतरिक भाग से दृढ़ प्रगाढ़ीभूत कफ को एवं अपनी शक्ति से सौदा का उत्सर्ग करेगा। आँतों की मरोड़ के लिये लाभप्रद है और आमाशयांत्रस्थ संचित प्रगाढ़ बलग़मी रियाह (वायु) तथा आध्मान को दूर करता है। गाढ़े दोषों को पतला करता और कृमियों को नष्ट करता है। यदि इसे कतिपय अन्य औषधि के साथ मिलाकर सेवन करें, तो इससे सहवास शक्ति पैदा होती, शुक्रवृद्धि होती और कामोद्दीपन होता है। इसी प्रकार इसका मुरब्बा कामोद्दीपक है, विशेषकर शीत प्रकृति को। इसके मुरब्बे का शीरा शिश्न पर मलने से मैथुन में अत्यन्त आनन्द प्रदान करता है। कहते हैं कि यह अवरोधजनित कामला (यर्क़ान), मूत्रावयवों की निर्वलता एवं शैत्यजन्य कृच्छ्रमूत्रता में अत्यन्त उपकारक है और अर्द्धभृष्ट कुक्कुटांड पीतक के साथ प्रयोजित करने से यह वीर्य बढ़ाता एवं उसे गाढ़ा करता है। कुलंजन और पिस्ते के साथ अत्यन्त कामोद्दीपक है, और इसरार में से है। निसोथ के साथ सेवन करने से यह पिंडली एवं संधिस्थ स्नेह का रेचक और विरेचक औषधों की शक्ति का स्थापक है। इसका प्रलेप अवयवों को अत्यन्त बलप्रदान

करता तथा कुज़ाज़, वायु, बवासीर, सर्दी के दर्द, तथा अंड एवं सम्पूर्ण अवयव के शीतल बलग़मी, जलीय तथा वातज शोथों के लिये लाभप्रद है। इसके आँख में लगाने से नाखूना और फूली नष्ट होती है। अक़रक़रा के साथ इसे पीसकर लेप करने से बालख़ोरे आदि में लाभ होता है। इसका पहाड़ी भेद प्रभाव में श्रेष्टतर होता है।

नोट—इसी प्रकार यूनानी तिब्बी ग्रन्थों में अदरक और सोंठ का बहुल प्रयोग दिखाई देता है। शेख़ुर्रईस, जालीनूस, बोक़्रस आदि के ग्रन्थों में तथा मख़्ज़नुल् अद्वियः, मुहीत आज़म, तालीफ़ शरीफ़ी आदि इसलामी निघण्टुओं में ज़ंजबील नाम से इसका प्रचुर प्रयोग एवं गुणधर्म उल्लिखित मिलता है। परंतु ये केवल यूनानी ग्रन्थों के भाषांतर मात्र हैं, जिन्होंने स्वयं अपने एतद्विषयक ज्ञान भारतीय वैद्यकीय ग्रन्थों से प्राप्त किये थे। अस्तु, केवल पिष्ट पोषण मात्र समझ, उनका यहाँ विशेष उल्लेख नहीं किया गया। यहाँ कुछ हकीमों के विचार केवल उदाहरण स्वरूप उद्धृत कर दिये गए।

सोंठ एवं अदरक पर अन्य मत

सोंठ (Ginger) प्रबल वायुनिस्सारक एवं सुरभियुक्त उत्तेजक है। इसलिये इसका प्रभाव लालमिर्च तथा इलायची की तरह होता है। इसको चबानेसे अधिक लाला उत्पन्न होती है और इसका नस्य लेने से अधिक छींकें आती हैं। पर अधिकतर आमाशय-बलप्रद एवं वायुनिस्सारक इत्यादि रूप से अजीर्ण में, विशेषतः जब कि आध्मान हो, इसका उपयोग किया जाता है। ऐसी रेचक औषधिके साथ, जिससे पेटमें मरोड़ होने लगती है,सोंठ वा शृङ्गवेरीन (Gingerine) मिलाकर प्रयोग कराने से मरोड़ नहीं होती। (मे० मे० ह्विटला)

सोंठ सुगंधि, उष्ण (Stimulant) और वायुनाशक है। सेवन करने से उदर में ज्वाला एवं गरमी मालूम होती है। यह उदरस्थ संचित वायु निकाल आध्मान को दूर करता है। वायुनाशक होने से शूलरोग में इसका प्रयोग होता है। गल रोग विशेष (Relaxed throat) एवं लालास्राव वर्द्धित करने के लिए इसे चबाने को दिया जाता है। प्रलेपादि बाह्य रूप में प्रयोजित करने से सोंठ त्वक्लौहित्योत्पादक, वेदनाहर एवं लालास्रावकारी है। ताज़ा अदरक चबाकर खाने से आमाशय। बलप्रद एवं पाचक है। शिरोशूल, वातशूल, उदरशूल और दंतशूल में गरम जल में पिसे हुए सोंठ का प्रलेप करते वा पिंडस्वेद देते हैं। सोंठ ग्रहणी विशेष (Atonic Dyspepsia), अग्निमांद्य, उदराध्मान, प्रवाहिका, कास, हौलदिल, शोथ, विसूचिका और उदराध्मान रोग में व्यवहृत होता है, तथा यह विवमिषोत्पादक है। विरेचक औषधों के साथ इसका व्यवहार करने से विवमिषा तथा विरेचनजन्य परिकर्त्तिका का नाश होता है। यह तिक्त औषधियों को सुस्वादु बनाने के काम में आता है। एरंडतैल जैसी विरेचक औषधों के अनुपान की तरह अदरक का रस व्यवहार में आता है। इसका रस लहसुन के रस और शहद के साथ कास श्वास में प्रयोजित किया जाता है। (Materia medica of India, R. N. Khory, *Part ii, P. 601*)

आदी का रस नींबू के रस के साथ पित्ताजीर्ण में उपयोगी है। सोंठ को गरम पानी में पीसकर प्रलेप करने से शिरोशूल में लाभ होता है। पश्चिमी भारतवर्ष में अदरक का रस और मोरपंखी की भस्म थोड़े शहद के साथ कै में प्रयोजित करते हैं। वहाँ यह वमन की एक प्रसिद्ध औषध है। (डीमक-फा० इं० ३ भ०)।

डॉक्टर नादकर्णी—सोंठ साधारणतः मसाला और चटनी बनाने में काम आता है। इसकी ताज़ी गाँठ अर्थात् अदरक से शर्बत प्रस्तुत किया जाता है और इसका मुरब्बा भी बनता है। ऐसा अजीर्ण जिसमें क्षुधा का भी अभाव हो, अदरक का रस, नीबू का रस और सैंधानमक बराबर-बराबर लेकर खूब मिलाकर सेवन करने से वा केवल आदी का रस और सेंधानमक समान भाग लेकर ठीक भोजन करने से पूर्व सेवन करने से लाभ होता है। कहते हैं कि भोजन से पूर्व सोंठ और सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से जिह्वा निर्मल होती, कंठ खुलता, क्षुधा की वृद्धि होती और रुचि उत्पन्न होती है।

२ तो० आदी का रस, ७ तो० गाय के दूध में भली प्रकार मिलाकर इतना पकाएँ कि, आधा शेष रहे। फिर उसमें बारीक पिसी हुई मिश्री काफ़ी

परिमाण में मिलाकर इसे रात में सोने से पूर्व उचित मात्रा में सेवन करें। अथवा आदी का रस, आम का रस, उत्तम चीनी और गोदुग्ध प्रत्येक २ तो० इनको खूब मिलाकर आधा शेष रहने तक पकाएँ। इसे प्रातः सायं सेवन करें। इससे पित्त एवं पैत्तिक प्रलाप में लाभ होता है।

अदरक का टुकड़ा चबाने से प्रचुर परिमाण में लाला स्रावित होती है। अस्तु, कंठरोग विशेष (Relaxed sore-throat) स्वरभंग और कंठग्रह (Loss of voice) में कभी-कभी लाभ होता है।

कहते हैं कि अदरक का रस और प्याज़ का रस हर एक १ तो० मिलाकर प्रयोजित करने से क़ै और मतली (Retching) में लाभ होता है।

आदी के रस में मिस्री मिलाकर दिन में दो बार सेवन करने से बहुमूत्ररोग अच्छा होता है। कहते हैं कि दोनों प्रकार से बहुमूत्र रोग की यह प्रशस्त औषध है। इसे चूर्ण वा फांट रूप में प्रयोग करना उत्तम है। चूर्ण की दशा में इसकी मात्रा १० से ३० ग्रेन है और इसे ५ ग्रेन कार्बोनेट आफ सोडियम् वा पोटाशियम् के साथ चिरकारी गठिया (Rheumatism) वा (Gout) में प्रयोजित करते हैं। इसका फांट (२० में १) घंटे-घंटे पर १ से २ आउंस की मात्रा में व्यवहार किया जाता है।

गरम पानी वा घी के साथ इसका चूर्ण अजीर्ण एवं भूख न लगने आदि की एक उत्तम औषध है।

आंत्रशूल, आमाशयशूल इत्यादि में सोंठ के फांट में ४ से ८ ड्राम तक कैष्टराइल मिलाकर सेवन कराते हैं। ऐसी दशा में सोंठ के चूर्ण में सर्जिकाक्षार और किंचित् हींग (भूनी) मिलाकर रोगी को फँकाते हैं। इस रोग की यह प्रसिद्ध घरेलू दवा है। अथवा सोंठ ४ भाग, अनीसून १ भाग इन सबका आधा घी, सबको घी में भूनकर चूर्ण करलें। इसे प्रति दिन उचित मात्रा में गुड़ के साथ सेवन करें।

चिरकारी गठिया (Rhematism) में सोंठ का फांट (२४ में १) बिछौने पर जाने से ठीक पूर्व गरम-गरम सेवन करें। इसके उपरांत शरीर को कंबल से ढक लें, जिसमें प्रभूत स्वेद स्राव हो। इसका परिणाम प्रायः अच्छा होता है। सर्दी, ज़ुकाम (सर्दी लगजाना) और विष-ज्वरों की शैत्यावस्था में भी इससे लाभ होता है।

मालाबार के वैद्य यह मानते हैं कि, अदरक के रस की क्रमवर्द्धित मात्रा का सार्वांगिक जलंधर रोगी में, चाहे वह किसी कारण से हो, प्रबल मूत्रप्रवर्त्तनीय प्रभाव होता है। रावबहादुर डा० एम० सी० कोमन एल० एम० एस मदरास के अनुसार यकृत संकोचजन्य नूतन शोथयुक्त जलोदर (Ascites) में तीन रोगियों पर इस प्रयोग की परीक्षा की गई। इसके प्रयोग से उनको पूर्ण लाभ हुआ। अदरक के ताज़े रस का प्रबल मूत्रल प्रभाव हुआ। रोगियों के पेशाब की मात्रा क्रमशः दिन-दिन बढ़ती गई। पुरातन हृद्रोग एवं ब्राइट्स डिज़ीज़जन्य शोथ (Dropsy) में यह उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। बल्कि इसके सेवन-काल में रोगी की हालत बदतर होती गई। जलोदर सहित यकृत संकोच के चिरकालीन रोगों में इसके प्रयोग से तनिक भी लाभ नहीं हुआ। उक्त डाक्टर महोदय लिखते हैं, कि मुझे इसमें तनिक भी शक नहीं, कि जलोदर एवं अधोशाखाओं (पादादि) की सूजन सहित प्रारंभिक यकृत संकोच में ताजा अदरक का रस उपयोगी प्रमाणित होगा।

प्रयोग विधि—५ तो० ताजे अदरक को कूटकर रस निचोड़े और जितना रस हो उसमें उतनी मिश्री मिलाकर प्रथम दिन प्रातःकाल सेवन कराएँ, २॥ तो० अदरक प्रतिदिन बढ़ाते जायँ। यहाँ तक कि वह २५ तो० तक पहुँच जाय। फिर २॥ तो० अदरक प्रति दिन घटाते हुये सेवन करें। यहाँ तक कि वह पुनः पूर्व मात्रा अर्थात् ५ तो० की मात्रा पर पहुँच जाय। इस पर भी यदि कुछ शोथ का चिह्न शेष रह जाय, तो पहिले की भाँति उत्तरोत्तर बढ़ती-घटती हुई मात्रा में पुनः अदरक स्वरस का सेवन प्रारम्भ करें। पथ्य में रोगी को केवल दूध एवं काँजी का आहार दिया जाय। यह प्रयोग पुनः परीक्षणीय है। (डॉ० कोमन *Ind. Drugs Report, Madrus.*)

रेंड की जड़ और सोंठ से तैयार किये हुये फांट में भुनी हींग और सोंचलनमक मिलाकर सेवन करने से कहा जाता है कि, गठिया के दर्द को लाभ होता है।

सोंठ, दालचीनी, रेंड़ की जड़ और लौंग समान भाग, इनको पीसकर शिर में लगाने से वातज शिरोशूल अच्छा होता है। मुख में लगाने से कभी-कभी इससे चेहरे के दर्द एवं दंतशूल में लाभ होता है।

विसूचिका की अन्तिम अवस्था में, जबकि रोगी निढाल होजाता है और उसका सारा शरीर शीतल होजाता है, तब शीतल पसीना आना रोकने को, स्थानीय रक्तसंवहन-क्रिया के बढ़ाने को और इस भयंकर व्याधि के दुःखदायक आक्षेपादि के रोकने को, सोंठ के चूर्ण का उद्धूलन करते हैं।

मूर्च्छा आदि की दशा में सोंठ को पानी में पीसकर पलक पर अंजन करते हैं अथवा सोंठ और (Omum) वा सोंठ, कालीमिर्च और पीपर अर्थात् त्रिकटु का बारीक चूर्ण चुटकी में लेकर नकुओं में इसका नसवार देते हैं। इससे मूर्च्छा तंद्रा, उन्माद और मस्तिष्कज्वरजन्य बेहोशी इत्यादि में लाभ होता है।

योन्याक्षेप (Vaginismus) में विचूर्णित सोंठ रेंड़ी के तेल में भली प्रकार मिलाकर वा रेंड़ की जड़ के कल्क के साथ वेदनापूर्ण स्थल पर लगाया जाता है।

सोंठ १ ग्रेन, सोडा बाईकार्ब ३ ग्रेन और रेवंदचीनी २ ग्रेन इनको बारीककर सेवन कराएँ। बालकों के लिए उत्तम पाचक है।

सोंठ का चूर्ण १ रत्ती, फेराई सल्फ (हीराकसीस) १ रत्ती और रेवंदचीनी १ रत्ती। यह एक मात्रा है। ऐसी एक मात्रा भोजनोपरांत दिन में दो बार सेवन कराएँ। यह बल्य है।

सोंठ ५ रत्ती, अजवायन (१ ड्राम), इलायची का चूर्ण १५ रत्ती। यह एक मात्रा है। ऐसी एक मात्रा दिन में दो बार भोजनोपरांत दें। यह अजीर्ण, बदहज़मी में उपयोगी है। (बर्डवुड)

सोंठ की महीन बुकनी और चीनी प्रत्येक १ तो०, उदरशूल में इसमें से थोड़ा चूर्ण सेवन करें।

भिषग्रत्न पं० जे० एल० दूबे जी—(इं० मे० मे०) अदरक का रस १ तो० और मदार की जड़ १ तो० इनको हावनदस्ते में यहाँ तक खरल करें कि गोली बनाने योग्य हो जाय। फिर इसकी कालीमिर्च बराबर गोलियाँ बना लें। विसूचिका में गुनगुने पानी के साथ इस गोली का सेवन करें।

अदरक का रस मधु वा चीनी के साथ ज़ुकाम और खाँसी पर देते हैं।

बम्बई में विसूचिका (हैज़ा) वा वमन रोग होने से अदरक का रस समान भाग तुलसी के रस में मिला तथा उसमें थोड़ा सा मधु और मोरपंख का भस्म डालकर प्रायः सेवन कराते हैं।

आदी–संज्ञा पुं० [सं० आदिन्] [स्त्री० आदिनी] भक्षक। खानेवाला।

नोट—यह शब्द समासांत में व्यवहृत होता है। जैसे—अन्नादी।

आदीचक–संज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक+सं० चक्र] एक प्रकार की अदरक जिसकी भाजी बनती है।

आदीनव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दोष। हारा०। (२) क्लेश। कष्ट। तकलीफ। अम०।

आदु–[गु०] अदरख। अदरक। आर्द्रक। स० फा० इं०।

आदुएडा–[?] भगाटी।

आदु-तिन्न-पलै–[ता०] कीड़ामार। गन्धान। (Aristolochia bracteata.) इं० मे० मे०।

आदु-मुत्तोडा–[कना०] जंगली पिकवन। अन्तमूल–बं०। गन्धान। मुक्तीनी (सं०)। Vomiting-Swallowwort (Asclepias asthamatica) इं० मे० मे०।

आद्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अँगूठा। अंगुष्ठ। रत्ना०। संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] धान्य। अनाज। रा० नि० व० १६।

वि० [सं० त्रि०] भक्षणीय (द्रव्य)। भक्ष्य। खाने योग्य।

आद्य-धातु–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] शरीर की सात धातुओं में से सबसे पहली धातु। रस धातु। कैलूस। यह भोजन से पेट में बनता और पित्त के सहारे रक्त में परिणत होता है। वै० निघ०।

आद्य-पुष्पक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] १ भाग कुङ्कुम (केशर), १ भा० चन्दन, १ भाग वारि (ह्रीवेर-सुगंधबाला) वा कुङ्कुम ३ भाग को "आद्य पुष्पक" कहते हैं।

"चन्दनं कुङ्कुमं वारित्रयमेतद्वरार्धकम्।
त्रिभाग कुङ्कुमो पेतं तदुक्तं चाद्यपुष्पकम्॥
(रा० नि० व० २२)

आद्य-माषक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्राचीन मान जो पाँच गुंजा अर्थात् ५ रत्ती के बराबर होता है । पाँच रत्ती का १ मा० । अम० । ८० गुञ्जा का मान । वै० निघ० ।

आद्य-माषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] माषपर्णी । माषाणि-बं० । बन उड़द । मषवन । रामकुरथी ।

आद्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पृथ्वी । भूमि । वै० निघ० । (२) तिथि ।

आद्यून–वि० [सं० त्रि०] औदरीक । स्वोदरपोषक । पेटू । अपनाही पेट पालनेवाला । अम० ।

आर्द्र, आर्द्रक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आदी । अदरक । अदरख । (Zingiber officinalis, *Roxb.*)

गुण—कफ-वातनाशक, स्वर्य (स्वर को उत्तम बनानेवाला), विबन्ध, आनाह तथा शूलनाशक है और कटु, उष्ण, रुचिकारक, हृद्य एवं वृष्य है । सु० सू० ४५ अ० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलमार्जार । जलविडाल । ऊदबिलाव । (An otter)

आद्रशाक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अदरख आदी । नि० शि० ।

आद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वन पीपर । वन पिप्पली । रा० नि० । नि० शि० ।

आद्रिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोंठ । आदी । अदरख । के० दे० नि० । नि० शि० ।

आद्रोक–[बं०] अदरख । आदी । स० फा० इं० ।

आध–वि० [हिं० आधा] किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक । आधा । निस्फ़ ।

आधमन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्फीति । सूजन । मोटाई ।

आधर्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घृणा । नफ़रत ।

आधर्षण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आधर्षित, आधर्ष्य] कष्ट देनेवाला ।

आधा–वि० [सं० अर्द्ध, पा० अद्धो, प्रा० अद्ध] [स्त्री० आधी] किसी वस्तु के दो बराबर हिस्सों में से एक ।

आधा-कपाली–संज्ञा पुं० [सं० अर्द्ध+कपाल+ई–प्रत्यय] एक प्रकार की आधे शिर की पीड़ा । आधाशीशी (Hemicrania) अधकपारी । अर्द्धावभेदक । दे० "अर्द्धावभेदक" ।

आधाझारा (ड़ा)–संज्ञा पुं० [सं० आघाट] ओंगा । अपामार्ग । चिचड़ी । चिरचिटा । चिचडा ।

आधान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) संस्कारपूर्वक अग्नि प्रभृति स्थापन । रखने का काम । (२) गर्भाधान । (३) पात्र । बरतन ।

आधानवती–वि० स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भवती ।

आधानिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाधान संस्कार गर्भधारण संस्कार । त्रिका० ।

आधार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अवलम्ब । अधिकरण । आश्रय । सहारा । (२) आलवाल । थाला । मे० । (३) पात्र । (४) मूल । (५) योगशास्त्र में एक चक्र का नाम । इसे मूलाधार भी कहते हैं । नींव ।

आधारी–वि० [सं० आधारिन्] [स्त्री० आधारिणी] सहारा रखनेवाला । सहारे पर रहनेवाला । (२) सहारा पकड़नेवाला । आधारस्थित ।

नोट—यह शब्द प्रायः समासान्त में आता है । जैसे—दुग्धाधारी ।

आधारीयाधमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूलाधार सम्बन्धी धमनी । इजानियः–अ० । (Perineal Artery)

आधासीसी–संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्ध+शीर्ष] अधकपाली । अर्धकपाली । आधे सिर की पीड़ा । (Hemicrania.) दे० "अर्द्धावभेदक ।"

आधि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) मनोव्यथा । मनः पीड़ा । मानसिक-व्यथा । चिंता । शोक । (२) प्रत्याशा । मे० । (Expectation)

आधिदैविक–वि० [सं० त्रि०] (१) वायु प्रभृतिसे जिन्हें वैद्यक में देवता कहा गया है, पैदा होनेवाला (दुःखादि) ।

नोट–सुश्रुत में जो सात प्रकार के दुःख गिनाये हैं, उनमें से तीन अर्थात् कालबलकृत (बर्फ़ इत्यादि पड़ना, वर्षा अधिक होना और अधिक गर्मी होना), देवबलकृत (बिजली गिरना, पिशाचादि लगना), स्वभावबलकृत (भूख प्यास का लगना) आधिदैविक कहलाते हैं । वि० दे० "दुःख" वा "व्याधि ।"

आधिज–वि० [सं० त्रि०] पीड़ादि से उत्पन्न । दर्द वगैरः से पैदा होनेवाला ।

आधिभोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घोड़े गाय

आदि का उपभोग। (२) मनोव्यथा का अनुभव रूप भोग।

आधिभौतिक–वि० [सं० त्रि०] (१) जो पृथ्वी आदि भूतों के सम्बन्ध से उत्पन्न हो। (२) व्याघ्र सर्पादि जीवों कृत। (३) जीव वा शरीरधारियों द्वारा प्राप्त।

नोट–सुश्रुत में रक्त और शुक्र दोष तथा मिथ्या आहार-विहार से उत्पन्न व्याधियों को आधिभौतिक के अंतर्गत ही माना है।

आधिमन्यव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वराग्नि। ज्वर-संताप।

आधिशमी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की शमी। वै० निघ०।

आधु–[गु०] अदरख। आदी। इं० मे० मे०।

आ(धु)धूत–वि० [सं० त्रि०] (१) ईषत् कंपित। कुछ-कुछ काँपता हुआ। (२) पागल। (३) व्याकुल। (४) चालित। हटाया हुआ।

आधेय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आधार पर स्थित वस्तु। जो वस्तु किसी के आधार पर रहे। किसी आधार पर टिकी हुई चीज़।

आधोरण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चतुर पीलवान। हस्तिपक। महावत। हाथीवान। हला०।

आध्मात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वायु रोग। मे० तत्रिक।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उदर स्फीति। पेट फूलना। आध्मान। च० द०। अग्नि मां० चि० पथ्यात्रिके। (२) शब्द। आवाज़।

वि० [सं० त्रि०] (१) दग्ध। भस्मी कृत। जला हुआ। (२) स्फीत। फूला हुआ। जिसे वातदोषजन्य उदर स्फीतता-संपादक रोग हो। (३) शाब्दित।

"साटोपत्युग्ररुजमाध्मान मुदरंभृशम्।" सु०।

आध्मान–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] एक प्रकार की वातव्याधि। उदरस्फीति। उदरस्फीतता। आनाह। पेट फूलना वा अफरना। पेट खूभना। आनाह। अफरा। अफारा। नफ़्ख़ शिकम, दमीदन शिकम (फ़ा०)। इन्तिफ़ाखुल्बत्न (अ०)। टिंपेनाइटीस Tympanites, मेटियोरिज़्म Meteorism, फ्लैच्युलेंस Flatulence, फिजिओसिस Physiosis (अं०)।

निदान—आमाशयांत्र रोग, यकृत एवं जरायु के रोग और संधिशूल (निक़्रिस) प्रभृति इसके कारण हैं। प्राय: अजीर्ण आहार के सड़ने-गलने से वायु पैदा होकर इस रोग का कारण होती है। वातज प्रकृति के व्यक्ति अधिक इस रोग का शिकार होते हैं।

भारी, बादी और विष्टंभी आहार के खाने वा बासी भोजन करने से और कभी सुख-चैन का जीवन व्यतीत करने तथा खाना खाने के उपरान्त तत्काल सो जाने से भी यह विकार हो जाता है।

लक्षण—भोजन करने के कुछ घंटे बाद पेट अफर जाता है और जब तक डकार प्रभृति आकर वायु नि:सृत नहीं हो जाती, तबीअत हलकी नहीं होती, कभी आध्मानाधिक्य के कारण पेट में दर्द होता है, और हृदय धड़कने लगता है।

सुश्रुत में लिखा है—

"आटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम्।
आध्मानमितिजानीयाद्घोरं वातनिरोधजम्॥
विभुग्नपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम्।
प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफ व्याकुलतानिलम्॥"
(सु० नि० १ अ०)

अर्थात्—एक प्रकार का उदर रोग जिसमें पेट (पक्वाशय) मशक की भाँति फूल जाता है, गुड़ गुड़ शब्द होता और अति उग्र पीड़ा होती है। यह घोर व्याधि प्राय: अधोवायु के रोकने से होती है। इसी प्रकार की एक और व्याधि होती है जिसे प्रत्याध्मान कहते हैं। यह आमाशय (नाभि से ऊपर) में होती है। इसमें पेट फूल जाता है और पँसवाड़े और हृदय फटे से जाते हैं। इसमें वायु के साथ कफ मिला होता है।

"शूलंच मूत्रं मुहुर्मुहुः प्रवृत्तिं वस्तितोदमाध्मानञ्च।"
(सु०)

चिकित्सा—आयुर्वेद के अनुसार आध्मान-रोग में सर्व प्रथम लंघन कराएँ। तदनन्तर दीपन पाचन औषधि एवं फलवर्त्ति क्रिया तथा वस्तिकर्म और शोधन प्रभृति क्रियाओं का व्यवहार करें। अथवा एक-दो मात्रा यह औषध दें।

जौहर कलमी नौसादर, जवाखार, काला नमक, आक का चार, मूलीखार प्रत्येक पाँच भाग, जीरा सफेद, जीरा स्याह, सोंठ प्रत्येक १० भाग और सत

पुदीना (पिपरमिंट), सत अजवायन (थाइमोल), हींग प्रत्येक १ भाग इनका बारीक चूर्णकर कुल चूर्ण की दूनी शर्करा मिलाकर शीशी में सुरक्षित रखें।

मात्रा—१ मा० से ३ मा० तक।

डॉक्टरी के अनुसार सब्जी, तरकारी, मधुर एवं श्वेतसारीय आहार, फल, मेवा, छाछ, कड़वा शोरबा इत्यादि खाने-पीने से परहेज करें। जब उदराध्मान से कष्ट अनुभव हो, तब पेट को रूई वा गरम पानी की बोतल से सेकें और पुदीना के तेल (आलियम मेन्थी), सोए के तेल (ऑलियम एनिथाई) वा अनीसून के तेल (ऑलियम् एनिसाई) की दो चार बूँदें वा रोग़न तारपीन ५ बूँद मिश्री की डली पर डालकर दें अथवा इन दोनों में से किसी एक का व्यवहार करें।

(१) ऐरोमेटिक स्पिरिट आफ अमोनिया	३० मिनिम
स्पिरिट आफ ईथर	२० ”
टिंक्चर आफ कार्डेममूज़	३० ”
टिंक्चर आफ जिंजर	१५ ”
आइल आफ़ केरुई	२ ”
पेपरमिंट वाटर (ऐड)	१ आउंस

मात्रा—ऐसी एक मात्रा औषध तुरंत पिला दें। उदराध्मान में लाभकारी है।

(२) स्पिरिट आफ केजुपुट	१० मिनिम
स्पिरिट आफ ईथर	१० ”
टिंक्चर आफ़ कार्डेममूज़	३० मिनिम
कार्मिनेटिव टिंक्चर	१५ मिनिम
स्पिरिट आफ़ ऑरेंज	३० मिनिम
वाटर (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक मात्रा औषध फौरन् पिला दें। उदराध्मान में उपकारी है।

टिप्पणी—रोग के वास्तविक क़ारण को मालूम कर दूर करें। अस्तु, यदि आमाशय की निर्बलता के कारण उदर में वायु उत्पन्न होकर डकार आदि आते हों, तो चिरकारी अजीर्ण की चिकित्सा करें। यदि अँतड़ियों में वायु पैदा होकर आध्मान का कारण हो, तो मलावरोध न होने दें। विष्टंभी एवं आध्मानकारक खान-पान से परहेज़ करें। भोजन करते समय पानी कम पिएँ। परन्तु भोजन से डेढ़ दो घंटे पूर्व वा पश्चात् एक गिलास पानी पी लिया करें। वि० दे०—“आध्माननाशक”।

यूनानी मतानुसार—किंचित् सौंफ वा अजवायन मुँह में चबाकर उसका रस चूसें अथवा ५–७ तो० चहार अर्क पिलाएँ अथवा नमक सुलेमानी खास १ मा० वा सफ़ूफ़ नाना १ मा० वा सफ़ूफ़ नमक शेखुर्रईस १ मा० खाना खाने के पीछे चाट लिया करें। जवारिश कमूनी (कबीर) ७ मा० वा जवारिश जालीनूस ७ मा० भोजनोपरान्त खाने से लाभ होता है। सफ़ूफ़ुल् इमलाह ४ रत्ती और जवारिश कमूनी ७ मा० में मिलाकर खिलाने से भी उपकार होता है। उग्र अवस्था में ७ मा० जवारिश बसबासः खिलाकर सौंफ ५ मा०, अनीसून ३ मा०, तुख्म कसूस ३ मा० और अर्क बादियान १२ तो० में पीस-छानकर खमीरा बनफ़शा ४ तो० मिलाकर प्रातः सायं पिलाना चाहिये। हब्ब तनकार (टंकण वटी) ३–३ वटी भोजनोपरान्त खिला दिया करें वा जवारिश कमूनी घटा-बढ़ाकर इस भाँति सेवन कराएँ कि प्रथम दिन जवारिश कमूनी ३ मा० खिलाएँ। तीन दिन इसी मात्रा से खिलाकर चौथे दिन से एक-एक मा० बढ़ाते जायँ, यहाँ तक कि २१ मा० की मात्रा तक पहुँच जाय।

इसके उपरांत उसी भाँति १-१ मा० प्रतिदिन घटाकर प्रथम मात्रा पर ले आएँ, फिर तीन दिन तक सेवन करके बन्द कर दें। यदि वायु के साथ उग्र मलावरोध एवं उदरशूल हो, तो जवारिश जालीनूस ७ मा० पहिले खिलाएँ और ऊपर से शीरा बादियान, शीरा तुख़्म कसूस, शीरा अनीसूँ और शीरा तुख़्म करफ़्स प्रत्येक ३ मा० १२ तोले गुलावार्क में निकालकर ४ तो० गुलकन्द तथा शर्बत गुलाब एवं शर्बत दीनार हर एक २ तो० मिलाकर पिलाएँ। इसकी विशेष चिकित्सा उदरशूल एवं अजीर्ण की तरह करें।

पथ्य--लघु एवं शीघ्र पाकी आहार जैसे, छाग-मांसरस चपाती के साथ दें। तरकारियों में कद्दू तोरई, टिंडा और पालक प्रभृति दें।

अपथ्य--वादी, भारी, चिरपाकी और आध्मानकारक वस्तु-जैसे, आलू अरवी, कचालू, माष की दाल, मटर, लोबिया प्रभृति से परहेज करें।

आध्माननाशक, आध्मानहर–वि० [सं० त्रि०] अफारा दूर करनेवाला। जो आध्मान का निवारण करे। वायु निःसारक। वातानुलोमक। वायुनाशक। कासिरुर्रियाह, तारिदुर्रियाह, मुफ़र्रिक़्रियाह (अ०)। कार्मिनेटिव Carminative.

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह औषधियाँ जो आमाशय और आँतों से वायुप्रवर्त्तन में सहायक होती हैं। इन औषधियों की उक्त क्रिया त्रिविध होती है—(१) आमाशयांत्रीय वाततंतुओं को गति प्रदानकर उनकी पेशीय चेष्टाओं को तीव्र करने से। (२) आमाशय के ऊर्द्धाधो द्वारों को प्रसरित करने और (३) आमाशय तथा आंत्र के वाततंतुओं एवं पेशियों को गति प्रदान करने से। इन क्रियाओं के फल स्वरूप उद्गार वा डकार आते हैं वा वायु द्वारा अपान वायुनिःसृत होती है। वायुनाशक औषधियाँ यह हैं—

(१) आयुर्वेदीयमतानुसार—इसमें आयुर्वेदोक्त वायुनाशक एवं दीपन-पाचन औषधियाँ सम्मिलित हैं।

(२) यूनानीमतानुसार—अनीसून, अफ़्तीमून, अदरक, सौंफ़, जावित्री, पुदीना, कड़बीज, मूली, जावशीर, हमामा, पीपल (दारफ़िलफ़िल), ज़ीरा, ज़रावंद, सोंठ, ज़रंबाद (नरकचूर), सज्जी, सुदाब, सातर, फंजंकुश्त (सम्हालू), कालीमिर्च, किर्दमाना (जंगली वा पहाड़ी करोया), कुंदुर, अजमोदा, गुलाब, मर्ज़ंजोश, अजवायन, कालानमक, मूली का क्षार, सेंधानमक प्रभृति।

डॉक्टरी मतानुसार—सुगंध-द्रव्य जैसे, कपूर, बालछड़, सुगंधतिक्त द्रव्य। जैसे, हींग और सुरामय द्रव्य, चरपरा द्रव्य, अस्थिर तैल और उश्शक़ प्रभृति औषधियाँ आध्मानहर हैं। इनमें से सुरभित द्रव्य (Aromatics) और सुरामय द्रव्य सर्वाधिक प्रभावकारी होते हैं। उक्त औषधियों की सूची यह है—

इपीकेकाना, शतपुष्पातेल (Oleum anethi), अनीसून का तेल (Oleum anisi), इक्लीलुल्जबल का तेल (Oleum rosmarini), करावियां का तेल (Oleum carui), लौंग का तेल (Oleum caryophylli), नीबू का तेल (Oleum limonis), ख़ज़ामा का तेल (Oleum lavenduli), हरे पुदीनेकातेल (Oleum manthi viridis), पीपरमिंट का तेल (Oleum menthi pepp.), ईथर, ईथर एसीटिकस, हींग

(एसाफीटिडा), बोल्डो, पाइपर, पाइमेंटो, हाऊबेर (जुनिपर), सोंठ (जैंजिबर), सुम्बुल (संबल), दारचीनी (सिन्नेमोमम्), साफ़ (फीनिक्युलम्), लकड़ी का कोयला (कार्बोलिग्नाई), इलायची (कार्डेमोमम्), कोटू, धनिया (Coriander), क्लोरोफॉर्मम्, कैसकरिल्ला (अंबरत्वक्), कपूर (कैंफर), जायफल (माइरिष्टिका), मिरह (मिर्रः), पिपरमिंट (मेंथोल), मेंथोल वेलीरिएनेट और बालछड़ (वेलीरियन) इत्यादि ।

आध्मान-कारक-वि० [सं० त्रि०] अफराजनक । पेट फुलानेवाली । वे ओषधियाँ जिनके खाने से पेट फूले, जैसे—मटर, केराव, ज्वार, मकाई, बाकला, गोभी, लोबिया, मोठ, इत्यादि । Flatulent फ्लैच्यूलेंट (अं०) । मुनफ्फ़िख़, नफ़्फ़ाख़ (अ) ।

आध्मानी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नलिका नाम का वणिक् द्रव्य । अबारी । रा० नि० व० १२ ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आध्मानरोगी ।

आध्य-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
आध्यान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } (१) स्मृति । (२) उत्कंठापूर्वक स्मरण । चिन्ता । फ़िक्र । अम० । शर० ।

आध्यात्मिक-वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आध्यात्मिकी] (१) आत्मसम्बन्धी । मनसम्बन्धी । आत्माश्रित । (२) शोक-मोह-ज्वरादि रूप शारीरिक एवं मानसिक दुःख । वि० दे० "व्याधि" ।

आध्यात्मिक-ताप-संज्ञा पुं० [सं०] वह दुःख जो मन, आत्मा और देह इत्यादि को पीड़ा दे; जैसे—शोक, मोह, ज्वर आदि ।

आन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अन्तर्मुखश्वास । उच्छ्वास । मुँह के भीतर की साँस । (२) वहिर्मुखश्वास । प्रश्वास । (Expiration) हे० च० ।

आन-[पं०] कीमू । हीमू । (Marns serrata.) मेमो० ।

आनः-[अ०] पेड़ू । वस्ति-गह्वर । (Pulvis)

आनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पटह । नगाड़ा । (२) भेरी । दुंदुभी । (३) मृदङ्ग । डङ्का । (४) शब्द-युक्त मेघ । गरजता हुआ बादल । "आनकः पटहे भेर्यं ध्वनन मेघ मृदङ्गयोः ।" हेम० ।

आनकूव-[मल०] आम्बाहल्दी । जंगली हल्दी । (Curcuma Aromatica.) स० फा० इं० ।

आनग़ाज़ा-[यू०] गुड़हल । अढ़उल । ओड्रपुष्पी । जया पुष्प ।

आनज-[?] गूगल । गुग्गुल । (Burseqaceae)

आनडुह, आनडुहक-वि० [सं० त्रि०] बृष संबन्धी । बैल का ।

नोट—यह शब्द गोमय, चर्म मांसादि का विशेषण है ।

आनडुही-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बलीबर्द । (२) भल्लातक । (३) ऋषभक । (४) वासा ।

आनत-वि० [सं० त्रि०] अत्यन्त झुका हुआ । अधोमुख ।

आनद्धवस्तिता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूत्रावरोध । मूत्रसंग । हब्सुल्बौल । पेशाब रुकना । "मूत्रवहे द्वे तयोर्मूलं वस्तिर्मेढ्रञ्च तत्रविद्धानद्धवस्तितः ।" सु०

आनद्धा-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०]

आनन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मुँह । मुख । वदन । आस्य । रा० नि० व० १८ ।

आनन-[बर] (T. Fragrans.)

आननास-[बं०] अनन्नास । अनानास । अनरस ।

आनन्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सम्मद ।

आनन्ददत्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आनन्द देनेवाला उपस्थ । (२) मेढ्र ।

आनन्दन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आनन्द-दायक द्रव्य । खुश रखनेवाली चीज ।

आनरेरिञ्जल-[मल०] बड़ा गाखरू । फ़रीदबूटी । (Pedalium murex.) स० फा० इं० । (२) मद्य । शराब । (३) राजजम्बूवृक्ष । फरेंदा । फरेंदा जामुन । (Ugenia jambolana.) । भा० प्र० । (४) हर्ष । सुख । आह्लाद । प्रसन्नता । ख़ुशी । मोद । आनन्दथु-पुं० ।

आनन्दक, आनन्दकर-वि० [सं० त्रि०] सुख-कारक । सुखजनक । आह्लादकर । (Pleasure giving.) आनन्दद ।

आनन्द-पट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नवोढावस्त्र । नई विवाहिता स्त्री का वस्त्र । नवोढ़ा का कपड़ा । दूल्हन की पोशाक । हारा० ।

आनन्द-प्रभव-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रेत । वीर्य । शुक्र । नुत्फ़ा । (Semen virile.) । हे० च० । (२) वैद्यक में एक रसका नाम जो प्रायः ज्वरादि की चिकित्सा में काम आता है ।

आनन्द-भैरव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में एक रसौषध । यह तीन प्रकार का होता है । (१) शुद्ध शिंगरफ, वत्सनाभ, मिर्च, भुना सुहागा, पीपल प्रत्येक तुल्य भाग ले, चूर्ण कर नीबू के रस से मर्दनकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ । अनुपान-शहद, और कुरची । गुण-इसके सेवन से द्विदोषज अतिसार नष्ट होता है । (२) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक की कजली, शुद्ध वत्सनाभ, शिंगरफ, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, भूना सुहागा इन सबका चूर्णकर भँगरैया के रस में तीन दिन खरलकर आध रत्ती की गोलियाँ बनाएँ ।

सेवन-विधि--एक गोली नित्य १० दिन पर्य्यंत खिलाने से खाँसी, क्षय, संग्रहणी, सन्निपात और मृगी ये सब रोग विनष्ट हो जाते हैं ।

आनन्द भैरव घृत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] त्रिफला, चित्रक, और मीठातेलिया लेकर कल्क बनाएँ । एरण्ड का तेल और घृत मिलाकर गोमूत्र के साथ इसका यथाविधि पाक सिद्ध करें ।

गुण—इसकी मालिश करने से चर्मरोग का नाश होता है । यदि इसे खाने के लिये देना हो, तो लहसुन, सेंधानमक और तेल का अनुपान देना चाहिए । र० र० स० अ० २१ ।

आनन्द-भैरव रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वंग भस्म, स्वर्णभस्म, पारदभस्म (चन्द्रोदय), तुल्यभाग ले शहद से खरलकर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ । अनुपान--घुँघची की जड़ का चूर्ण ४ रत्ती ।

गुण--इसके सेवन से प्रमेह रोग दूर होता है । वृ० रस० रा० सु० ।

आनन्द-भैरव वटी, आनन्द भैरवी वटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वैद्यक में एक रस का नाम जो शीताङ्ग में व्यवहृत होता है । योग इस प्रकार है—

विष, त्रिकुटा, गंधक, भुना सुहागा, ताम्र भस्म, धतूरे के बीज, शिंगरफ तुल्यभाग ले बारीक चूर्णकर भाँगरे के रस की एक दिन भावना देकर पुनः चनाप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

अनुपान—आंक, एरण्डमूल-त्वक् के क्वाथ के साथ त्रिकुटाचूर्ण मिलाकर खाने से दारुण सन्निपात का नाश होता है । वृ० रस० रा० सु० ।

आनन्द-मय-वि० [सं० त्रि०] आनन्दपूर्ण । खुशी से भरा हुआ ।

आनन्दमय-कोष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अविद्यास्वरूप कारण-शरीर। (Causal-body.) । (२) सुषुप्ति । गहरी नींद। (३) पञ्च-कोषों के अन्तर्गत पाँचवाँ कोष। (४) सत्व-प्रधान ज्ञान।

आनन्दयोग–संज्ञा पुं० [सं०] एक योग विशेष। दे० 'शब्दयोग'।

आनन्दरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में एक प्रकार का रसौषध। योग—जायफल, सेंधानमक, शिंगरफ, कौड़ी की भस्म, सोंठ, मीठा तेलिया, धत्तूरबीज और पीपल, इन्हें समान भाग लेकर अच्छी तरह मर्दनकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इन्हें मिस्री के साथ सेवन करने से उदररोग, वात, कफ, शूल, आमातिसार, संग्रहणी और सूखारोग का नाश होता है। वृ० नि० र० अतिसा० चि०।

इसके सेवन से उदररोग, वात, कफ, शूल, आमातिसार, संग्रहणी और योनिरोग दूर होते हैं। वृ० रस रा० सु०।

आनन्द-शय्या– संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नव विवाहिता स्त्री के सोनेका स्थान। नवोढा शयनगृह।

आनन्दा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) विजया। भाँग। (२) वार्षिकीपुष्पवृक्ष। बेला। बेल-फूल-बं०। भा० पू० १ भ० पु० व०। (३) आरामशीतला। इसकी पत्ती ख़ुशबूदार होती है। रा० नि० व० १०। (४) वनमूँग। मुगवन। मुद्गपर्णी। वै० निघ०।

आनन्दित–वि० [सं० त्रि०] हर्षित। मुदित। प्रमुदित। सुखी।

आनन्दी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) आकनपाता नाम का प्रसिद्ध वृक्ष। श० च०। (२) आरामशीतला। रा० नि० व० १०।

वि० [सं० त्रि०] आनन्दजनक। आनन्दिन। (१) हर्षित। प्रसन्न। ख़ुश। (२) आनन्दकारक।

आनन्दोदय-रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में एक प्रकार का रसौषध। पारा, गंधक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, विष समान भाग तथा मिर्च ८ भाग और सोहागा ४ भाग, सबको भाँगरे के रससे सात भावना दें। इसी तरह अम्ल तथा अनार के बीज के रस की सात भावना दें।

मात्रा—२ रत्ती।

गुण तथा उपयोग विधि—पान के रस के साथ सायंकाल सेवन करने से वात कफ के रोग, मन्दाग्नि, संग्रहणी, ज्वर, अरुचि और पाण्डुरोग का नाश होता है। भैष० पाण्डु-चि०।

पथ्य—इसके ऊपर गुरु भोजन तथा खटाई और मांसभक्षण करना चाहिए। वृ० रस रा० सु०। पांण्डु वि०।

आनप-काय-[मल०] लौकी। जंगली कद्दू। (Lagenaria vulgaris) इं० मे० मे०।

आनप-चेट्टु-[ते०] भटबाँस। भटवाँस।

आनय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आनयन। उपनय। उपनयन। यज्ञोपवीत संस्कार।

आनर्त्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जल। पानी। मे० तत्रिक। (२) नृत्य स्थान। नाचघर। (३) युद्ध। (४) नर्तन। नाच।

वि० [सं० त्रि०] नाचनेवाला।

आनर्त्तक-त्रि० [सं० त्रि०] नाचनेवाला। नचनिया। नर्तक।

आनसक-[?] रोग। बिवाई।

आनसुल्-अर्वाह-[अ०] उस्तोख़ुद्दस।

आनसुल्-नफ़्स-[अ०] तरातेज़क के समान एक बूटी है, जो मिश्र व शाम में उत्पन्न होती है।

आनाखु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की ईख । इक्षुतुल्या । कास । प० मु० ।

आनानास-संज्ञा पुं० [देश०] अनन्नास ।

आनाह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक उदर व्याधि । मलावरोध से पेट का फूलना । मलमूत्र रुकने से पेट फूलना । विण्मूत्ररोधक व्याधि ।(Epistasis)

लक्षण—जब आम अथवा पुरीष क्रम से संचित, विगुण वायु से बारंबार विबद्ध होकर अपने मार्ग से भली भाँति प्रवृत्त नहीं होते, तब उक्त लक्षणों से युक्त विकार को आनाह कहते हैं। आम से प्रगट आनाहरोग से प्यास, पीनस, मस्तक में दाह, आमाशय में शूल, देह में भारीपन, हृदय का जकड़ना, शूल, मूर्च्छा, डकार, कमर, पीठ तथा मलमूत्र इनका रुकना, विष्टा मिली हुई क़ै और श्वास ये लक्षण होते हैं। पकाशय में आनाहरोग होने से अलसक रोगोक्त लक्षण (आध्मान वातरोधादि) होते हैं। मा० नि० ।

ऊपर नीचे वात के अवरोध से उदर में गुड़गुड़ शब्द, अत्यन्त तीव्र वेदना और आध्मान ए लक्षण आनाह रोग में होते हैं। वा० नि० ११ अ० ।

चिकित्सा—आनाह रोग में वायु अनुलोमकारी क्रिया करनी चाहिए। उदावर्त-चिकित्सा में वर्णित शोधन, वस्तिकर्म आदि क्रियाएँ इसमें लाभकारी प्रमाणित होती हैं। निम्नलिखित औषधि भी उपकारक हैं—

(१) निसोथ २ भा०, पीपल ४ भा०, हड़ ४ भाग इनका बारीक चूर्णकर, बराबर गुड़ मिलाकर रखें।

मात्रा—३ मा० से ६ मा० तक।

(२) वच, हड़, चित्रकमूल, जवाखार, पीपल, पोहकरमूल इनको बराबर-बराबर लेकर चूर्ण करें।

मात्रा—१॥ मा० से ३ मा० तक।

इनके अतिरिक्त निम्न योगों का यथाविधि व्यवहार करें। यह आनाह और उदावर्त दोनों में लाभकारी हैं—

नाराच चूर्ण, गुड़शतक, वैद्यनाथवटी, बृहत् इच्छाभेदीरस, सरलभेदी वटिका, शुष्कमूलाद्यघृत और स्थिराद्यघृतादि। वि० दे० "उदावर्त"।

आनाह-योग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तिल, अपामार्ग, केला, पलाश और आमला इनके काण्डों को जलाकर भस्म को जल में घोलकर पानी निथार लें। पुनः इस निथारे हुये जलको औटाकर खार निकाल लें। इस खार की मात्रा २ रत्ती है। इसे बकरा या भेड़के मूत्र के साथ सेवन करने से शर्करा (पथरी) रोग का नाश होता है। भैष० र० अश्मरी चि०।

आनाह-वर्त्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] सुश्रुतमें उदररोग में वर्णित एक वर्त्ति प्रयोग। जैसे—वमन विरेचन के द्रव्यों का एक-एक पल लें और पिप्पल्यादिक, वचादिक और हरिद्रादिक गणों के द्रव्यों को महीन पीसलें और पाचों नमक पल-पल भरलें फिर इन सबको गोमूत्रादिक मूत्र गण में डालकर फिर इसमें थूहर का दूध एक प्रस्थ मिलाएँ। पुनः सबको मिलाकर मन्दी-मन्दी अग्नि से पकाएँ और पकते समय घोटता जावे। जब कल्क ठीक-ठीक पकजाय, जले नहीं तब उसे उतारकर ठंडा करलें और अक्षप्रमाण की गोलियाँ बनालें।

इनमें से बल के अनुसार एक या दो या तीन गोली जैसी आवश्यकता हो नित्य सेवन

करें। इसी प्रकार तीन या चार महीने तक सेवन करें। यह आनाहवर्त्ति की क्रिया है जो विशेष करके महा व्याधियों में उपयोग की जाती है।

गुण—यह कोठे की कृमियोंको नष्ट करती है तथा खाँसी, श्वास, कृमि (वाह्य कृमि), कुष्ठ प्रतिश्याय, अरुचि और भोजन न पचना तथा उदावर्त्त इतने रोगों को नष्ट करती है। सु० चि० १४ अ०।

आनाहिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह उपाय जो आनाह रोग को दूर करे। आनाह रोगोपशमनीय विधि यथा—

"आस्थापनं मारुतजे, स्विन्ने स्निग्धे विशिष्यते।
पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिकोभवेत्॥" सु०।

वि० [सं० त्रि०] आनाह रोग में व्यवहृत होनेवाला।

ऑनियन-संज्ञा पुं० [अं० Onion.] पलाण्डु। पियाज़। (Allium cepa)

ऑनियन,-कामन-[अं० Onion, common] बड़ा प्याज। बस्ल।

ऑनियन-स्पैनिस-[अं० Onion, spanish] स्पेन देश का पियाज़। स्पेनीय पलाण्डु। (Spanish onion)

ऑनियन गॉर्लिक-[अं० Onion garlic] शीरे पियाज़क (फ़ा०)। (Muscate garlic)

आनिल-वि० [सं० त्रि०] वायु संबंधी। वायुका।

आनिस-[अ०] (१) वह लड़की जो बहुकाल तक पतिरहित अर्थात् अविवाहिता रही हो। (२) वह पुरुष जिसने अधिक समय तक मैथुन न किया हो।

आनिस बिबेरेल्ल-[जर० Anisbiberrell.] सौंफ। (Pimppinelea) Anisum

आनिसुन्नफ़स-[अ०] इब्न वहशियः ने अपनी पुस्तक में बाशक्कातामन नाम से इसका उल्लेख किया है। यह जर्जीर के समान एक पौधा है। पत्र अप्रशस्त और पुष्प तरहतेज़क के समान एवं पीतवर्ण के तथा शुभ्र पत्रों से आच्छादित होते हैं। विना वायु के ये सूर्य की गति के अनुसार गति करते हैं। प्रकाण्ड चतुष्कोणीय एवं कृष्णाभ होता है। वसन्त ऋतु में प्रति वर्ष इसके क्षुप पानी के नालों में उत्पन्न होते हैं। गदही और बकरियाँ इसकी पत्ती को खाती हैं, जिससे उनके स्तनों में अत्यन्त दूध की वृद्धि होती है। इसके क्षुप मिश्र एवं शाम में अधिकता के साथ उत्पन्न होते हैं।

प्रकृति—प्रथम कक्षा के द्वितीय भाग में उष्ण व रूक्ष। किसी-किसी के मत से द्वितीय कक्षा में उष्ण तथा समशीतोष्ण (मुअ्तदिल) है। इसमें रूक्षता भी मिली हुई है।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसमें पोषक एवं औषधीय गुण है। इसका रस वा क्वाथ चिन्ताहर, मस्तिष्क एवं अन्तःकरण को बलप्रदायक, आह्लादकारक तथा हर्षोत्पादक है। इसका यह असर सुरापानजन्य प्रभाव की तरह होता हैं, किन्तु यह मादकता एवं ख़ुमार विरहित होता है। परंतु जब कुचलकर इसके स्वरस द्वारा मद्य प्रस्तुत करते हैं, तब यह मादक एवं स्मृति के लिए हितकर सिद्ध होता है। इसके स्वरस का आश्च्योतन करने से आँख में पड़ी हुई फूली नष्ट होती है। मैफ़ख़तज (मद्य भेद) वा आबिकत्तीर के साथ लगभग ४ दिरम इसका बीज भक्षण करने से कामशक्तिशून्य शतवर्षीय पुरुष का भी काम जागृत होता है। यह अवरोधोद्घाटक तथा दुग्ध, आर्त्तव, स्वेद एवं मूत्र द्वारा मलों का प्रवर्त्तक, सौन्दर्यवर्द्धक कपोलों के वर्ण का प्रसाधक, स्थौल्यजनक और पाण्डुहर है।

आनील-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आनीली] (१) नीले रंग का घोड़ा । हे० च० । राँगा । वंग । (२) कथील । हे० च० । (३) कुछ-कुछ आसमानी रंग । ईषन्नीलवर्ण । हलका आसमानी रंग ।

वि० [सं० त्रि०] कुछ-कुछ नीले रंगका । ईषन्नीलवर्ण का । हलके आसमानी रंग का ।

आनीसन-[यू०] अनीसून ।

आनु-वि० [सं० त्रि०] प्राणी । जानदार । आनव ।

आनुक-[अ०, फ़ा०] सीसक । सीसा । (Plumbum) स० फा० इं० ।

आनुपूर्व-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अनुक्रम । क्रमागत । क्रमानुगत । पर्याय ।

आनुपूर्वी-वि० [सं० आनुपूर्वीय] क्रमानुगत । क्रमानुसार । एक के बाद दूसरा ।

आनुलोमन-त्रि० [सं० त्रि०] अनुलोमकारी । अनुलोमन । च० द० अर्श चि० ।

आनुलोम्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सारल्य । मृदुकारक । पेट को मुलायम करनेवाला । च० द० अर्श चि० । (२) अनुकूल । "क्रियाणामनुलोम्यञ्च करोत्यकुपितोऽनिलः ।" सु० ।

आनुवंशिक-परंपरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Heredity.)

आनुवासनिक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अनुवासन वस्ति । च० चि० ३ अ० ।

आनुषङ्गिक-वि० [सं० त्रि०] साथ साथ होनेवाला । अप्रधान । प्रासंगिक । गौण ।

आनूप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आनूपी] (१) भैंस । महिष । जटा० । (२) अनन्नास । अनारस । अनानास । (३) हिज्जल-वृक्ष । समुद्रफल । समुंदरफल । प० मु० । (४) वे प्राणी जो अनूप देश में रहते हैं । अनूप-देशवासी प्राणी मात्र । (५) एक प्रकार का देश । वह स्थान जहाँ जल अधिक हो । जलप्राय देश । अनूप देश ।

"निरुक्कि-रहम्बु बहुवृक्षश्च वातश्लेष्मामयान्वितः ।
देशोऽनूप इति ख्यातः आनूप तद्भवं जलम्" ॥

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार का भौम जल । अनूपदेशीय जल । अनूप जल । दे० "अनूप" । (२) जल । रा० नि० व० १४ । (३) सूअर ।

वि० [सं० त्रि०] (१) जलप्राय प्रदेश में पैदा होनेवाला । अनूप देश जात । (२) जलबहुल । जलप्राय । मरतूब ।

आनूपक-वि० [सं० त्रि०] जलप्राय देश में रहनेवाला । अनूप देश में रहनेवाला ।

आनुगा (प्रत्य०) ओर का; जैसे, कक्षानुगा कक्ष की ओर का । Towards.

आनूप-जल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अनूप देश का पानी । अनूप-देशस्थ जल ।

गुण—यह मीठा चिकना, भारी तथा पित्तनाशक है और पामा (कोढ़), कण्डू (खाज), वात, कफ तथा ज्वर को पैदा करनेवाला है । रा० नि० व० १४ ।

आनूप-जाङ्गल-साधारण-मांस-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रुरु (कूलेचर), हरिण, मृग, क्रोड़ (वन शूकर) और सारंग इत्यादि का मांस ।

गुण—यह हलका, मधुर, बलकारक, वृष्य और रुचिकारक होता है । रा० नि० व० १७ ।

आनूप-पक्षी-मांस-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अनूप देश में पाई जानेवाली चिड़ियों का मांस । सारस, हंस, चकवा इत्यादि पक्षियों का मांस, जो प्रायः जलीयदेश में होते हैं ।

गुण—यह ठंढा, चिकना, वात-कफनाशक और भारी है । रा० नि० व० १७ ।

आनूप-भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जलप्राय स्थान । सजलभूमि । तर जमीन । दे० 'आनूप' ।

आनूप-मांस-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अनूप देशस्थ जीवों का मांस । कूलेचर, प्लव (तैरनेवाले)

कोशस्थ (खोखले में रहनेवाले), पादी और मत्स्य वर्गीय जीवों; जैसे–नील गाय, काले हिरन (रुरु), बकरे, सूअर और गेंड़े इत्यादि अनूप-देशीय जीवों का मांस। रा० नि० व० १७।

गुण—अनूप वर्गीय जीवों का मांस मधुर, चिकना, भारी, मन्दाग्निकारक, कफजनक, मांस-पोषक, अभिष्यन्दी और प्रायः हितकारक है। भा० पू० १ भ०। सि० यो० वा० व्या० शाल्वण स्वेद। भैंसा, रोझ, गैण्डा, सूअर, चमरी और रुरु इनके मांस मधुर, बलकारी, भारी, चिकने और कफकारी हैं। वं० से० सं० मांस-वर्ग। विशेष विवरण के लिये कूलेचर, कोशस्थ इत्यादि शब्दों में देखो।

आनूप-वर्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन प्राणियों का वर्ग, जो अनूप देश में पाये जाते हैं। सुश्रुत के अनुसार उनके ये पाँच वर्ग हैं–(१) कूलेचर, (२) प्लव, (३) कोशस्थ, (४) पादी और (५) मत्स्य। इनमें से हाथी और नील गाय प्रभृति कूलेचर, हंस तथा सारस प्रभृति प्लव वा सङ्घातचारी, शङ्ख तथा नख आदि कोशस्थ, और कूर्म तथा कुम्भीर प्रभृति पादी कहलाते हैं।

मांसके गुण—कूलेचर, वातनाशक, वृष्य तथा मधुर आदि गुण युक्त, प्लव वा संघातचारी रक्त-पित्तादि नाशक और कोशस्थ, पाक और रस में मधुर होते हैं। सु० सू० ४६ अ०। आनूप देशीय जीवों का मांस कफकारक तथा वातप्रकोपक है। अत्रि० २० अ०।

आनूयस–[यू०] सरेश। (Glue)

ऑनेग्रेशीई–[ले० Onagraceæ] वन-लौंग वर्ग।

आनैक्-कटड़ाभै–[ता०] राकसपत्ता। बड़ा कवाँर। जङ्गली-कँवार। (Agave americana, *Linn.*) स० फा० इं०।

आनैक्-कट्रा-पभम्–[ता०] राकस-पत्ता। (Agave americana.)

आनैक्-कूट्लै–[ता०]
आनैक्-कटली–[कना०]
} राकस-पत्ता। बड़ा कवाँर। (Agave americana, *Linn.*)। हाथी चिघार। राम बाँस।

आनै-त्तिप्पिलि–[मल०] गजपीपल। गज पिप्पली। Scindapsus (Pothos) officinalis, *Schott.* (Berries of–) स० फा० इं०। इं० मे० मे०।

आनै नेरुञ्जि-[ता०] बड़ा गोखुरू। फ़रीद-बूटी। (Pedalium murex, *Linn*) फा० इं० ३ भ०। स० फा० इं०।

आनै-पुलिय-मरम्–[ता०] गोरखइमली। कल्प-वृत्त। (Adansonia digitata, *Linn.*) स० फा० इं०।

ऑनोनिस्स्पाइनोज़ा–[ले० Ononis spinosa, *Linn.*] किरुउल। इं० हैं० गा०।

ऑनोस्मा-एकिऑइडिस–[लै० Onosma Echioides] गावज़बाँ वर्गकी एक औषध। फा० इं० २ भ०। रतनजोत।

ऑनोस्मा-एमोडी–[ले० Onosma emodi] गावज़वाँ। इं० हैं० गा०।

ऑनोस्मा ब्राञ्चिङ्ग–[अं० Onosma, branching] गावजबाँ।

ऑनोस्मा-ब्रैक्टिएटम्–[लै० Onosma-Bracteatum, *Wall.*] गावजबाँ वर्ग की एक औषधि। फा० इं० २ भ०।

ऑनोस्मा-हुकेरी–[ले० Onosma hookeri, *Clarke.*] गावज़बाँ वर्ग की एक औषधि। फा० इं० २ भ०। रतनजोत। रङ्गे बादशाह। इं० हैं० गा०।

आन्तर–वि० [सं० त्रि०] (१) आभ्यन्तर। भीतरी। आन्तरिक। अंदरूनी। (Internal.)। इन्सी (अ०)। (२) माध्यमिक। बीच का। (Medial.)।

आन्तर-अर्बुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] अर्वाचीन शारीरक के अनुसार प्रगण्डास्थि के नीचे के सिरे का भीतर की ओर का उभार। अन्तरार्बुद। (Medial epicondyle.)

आन्तर-ऊर्वर्बुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] ऊर्वस्थि के नीचे के सिरे में वह मोटा उभार, जो भीतर की ओर होता है। (Medial condyle of femur.)

आन्तर-कारभ स्नायु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्नायु

विशेष। (Internal carpal ligament.) अ० शा०।

आन्तर-कारोट सत्तक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (Internal carotid plexus.) आभ्यन्तर ग्रैव नाड़ी-जाल। ज़फ़ीरः सुबाती ग़ाइर-अ०। अ० शा०।

आन्तर-कारोटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) (Internal carotid nerve) नाड़ी विशेष। (२) (Interal carotid artery.) एक धमनी विशेष। अंतः शिरोधीया धमनी। शियीन सुबाती ग़ाइर। (अ०)

आन्तर-केन्द्रकीय-पटल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Inner nuclear layer.) पटल विशेष। अ० शा०।

आन्तर-कौची-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Internal mammary artery or vein.) आन्तरीय स्तनीया धमनी वा शिरा। अ० शा०।

आन्दर-कौर्ची धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial tarsal artery) कूर्च्च के मध्य की धमनी। अ० शा०।

आन्तर-कौर्पर स्नायु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Ulnar collateral ligament) स्नायु विशेष। अ० शा०।

आन्तर-कौद्येया-वनता पेशी-संज्ञा स्त्री०[सं० स्त्री०] (Obliquus-internus-abdominis muscle) मध्य उदरच्छदा पेशी। अ० शा०।

आन्तर-गारु-दायिती पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pterygoideus internus muscle) पेशी विशेष। अ० शा०।

आन्तर-गौल्फ स्नायु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Deltoid·ligament) स्नायु विशेष। अ० शा०।

आन्तर-घौटिकी धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Internal malleolar artery) धमनी विशेष। अंतः गौल्फीया धमनी। अ० शा०।

आन्तर-च्छादनी पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी विशेष।

आन्तर-जंघार्बुद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] जंघास्थि के ऊपर के सिरे का वह उभार, जो अन्दर की ओर होता है। (Medial condyle tibia.)

आन्तर-जाङ्घ-त्वाची-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial sural cutaneous nerve) नाड़ी विशेष। जंघा अंतः त्वगीया नाड़ी। अ० शा०।

आन्तर-जानव स्नायु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Tibial collateral ligament) स्नायु विशेष।

आन्तर-नासाखण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Internal nose.) भीतरी नाक।

आन्तर-नैगली सिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Internal jugular vein) गर्दन की भीतरी शिरा। अंत: कण्ठगा शिरा। अंत: शिरोधीया शिरा। शिरोधीया शिरा। गंभीर। अ० शा०। हब्लुल् वरीद बातिन: (अ०)

आन्तर-परिवर्तन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Invertion.)

आन्तर-पाद-तलीया धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial plantar artery) धमनी विशेष। अंत: पादतलिकी धमनी।

आन्तर-पादोदर्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) (Medial plantar nerve.) नाड़ी विशेष। अ० शा०। (२) (Medial plantar vein.) शिरा विशेष। अ० शा०।

आन्तर-पार्शुकान्तरीया पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Inter costale internus muscle) अन्त: पर्शुकान्तरिका पेशी। अ० शा०।

आन्तर-पार्ष्णीया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Media lcalcaneal nerve) नाड़ी विशेष। अ० शा०।

आन्तर-पार्ष्णीयी-धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial-calcaneal artery) एड़ीकी धमनी विशेष। अ० शा०।

आन्तर-पीनासिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Great saphenous vein) ऊर्ध्वतः पार्श्विका शिरा। अ० शा०।

आन्तर-पुरस्तनौरसी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (अन्तः

(अग्र) उरस्या नाड़ी। Medial Anterior thoracic nerve) अ० शा०।

आन्तर-पृष्ठकीयाबुर्द–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Internal occipital Protuberence.) पीठ का भीतर की ओर का उभार।

आन्तर-पृष्ठ्य-त्वाचीनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial dorsal cutaneous nerve) करपृष्ठ त्वगीया नाड़ी।

आन्तर-प्राकोष्ठ-त्वाचीनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial antibrachial cutaneous nerve) प्रकोष्ठ अन्तःत्वगीया नाड़ी।

आन्तर-प्रागाण्ड-त्वाचीनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial brachial cutaneous nerve) प्रगण्ड अन्तः त्वगीया नाड़ी।

आन्तर-प्राच्छन्नी पेशी, आन्तर-प्राच्छादनी पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Obturator Internus muscle) पेशी विशेष।

आन्तर-मणिबन्ध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Carpi ulnaris.)

आन्तर-मणि-बन्धप्रसारणीपेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Extensor carpiulnaris) मणिबंध को फैलानेवाली पेशी। अ० शा०।

आन्तर-मणि-बन्ध स्नायु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Ulnar collateral Ligament) स्नायु विशेष। अ० शा०।

आन्तर-मणि-बन्धाकुञ्चनी पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Flexor carpiulnaris muscle) मणिबंध को भीतर की ओर बटोरनेवाली पेशी। अ० शा०।

आन्तर-मान्दिरीनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Tibial nerve) जंघिला नाड़ी। अ० शा०।

आन्तर मांस-रज्जु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Erector spinae) मांस-रज्जु विशेष। अ० शा०।

आन्तर-वर्त्म धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial palpibral artery) धमनी विशेष। अ० शा०।

आन्तरविस्तीर्णा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Vastus medialis muscle) पेशी विशेष। अ० शा०।

आन्तर-श्रोत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Internal-ear) अंतः कर्ण। अ० शा०।

आन्तर-श्रौणी धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Internal iliac artery) पेडू की भीतरी धमनी। यह पेडू की महाधमनी से प्रारंभ होकर पेडू की हड्डी के छिद्र पर पहुँच कर अगले और पिछले दो भागों में विभाजित हो जाती है। शिर्यान हर्क़फ़ी ग़ाइर (अ०)।

आन्तर श्रौणी सिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Internal iliac vein) पेडू की भीतरी शिरा। वरीद हर्क़फ़ी बातिन। वरीदुल् ख़ासिरः बातिन।

आन्तर-हानव स्नायु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Sphenomandibular ligament) स्नायु विशेष। अ० शा०।

आन्तर-हानवी धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Internal maxillary artery) हनु के भीतर की एक धमनी।

आन्तर-हानवी सिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Internal maxillary vein) हनु के भीतर की एक शिरा।

आन्तराताानिक-पाशक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Medial longitudinal fasiculus) पाशक विशेष। अ० शा०।

आन्तरापान-संवरणी पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Sphincter ani internus muscle) मलद्वार संकोचनी अन्तःस्था पेशी। अ० शा०।

आन्तरार्बुद, आन्तरार्व्वुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (Medial-epicondyle) आन्तर अर्बुद। प्र० शा० ह० श० र०।

आन्तरार्बुदिक-तीरणिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रगंडास्थि के गात्र पर की वह उभरी हुई रेखा जो आन्तरार्बुद से ऊपर की ओर जाती है। (Medial Supracondylar ridge) प्र० शा०। ह० श० र०।

आन्तरास्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Internal orifice) अन्तर्मुख।

आन्तरिक–वि० [सं० त्रि०] (१) अन्तर्गत। भीतर का। भीतरी। अंदरूनी। आभ्यंतरिक।

अन्तर या बीच में रहनेवाला। (Internal inter)। (२) मानसिक (Mental.)।

आन्तरिक-उद्रेचन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आभ्यन्तरिक स्राव। अफ़राज बातिनी–अ०। (Internal entericas, Internal secretion)

आन्तरिक-ज्वर–संज्ञा पुं० [सं० आन्त्रिक–ज्वर] (Typhoid-fever) आन्त्रिक-ज्वर। दे० "टायफाइड-ज्वर"

आन्तरिक-पर्शुकान्तर पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पसलियों के बीच की अन्दर की पेशी।

आन्तरिक-श्वास-कर्म–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास। (Internal-respiration.)

आन्तरिक-स्राव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह विशेष रस वा द्रव पदार्थ जो किसी अवयव के द्वारा रक्त में से स्रावित होता है और पुनः शोणित में अभिशोषित होकर विशेष प्रकार की कैफ़ियत उत्पन्न करता है। अंतः स्राव। आभ्यन्तरोद्रेक। इफ़्राज़ बातिनी, मुफ़रज़ दाख़िली (अ०)। Internal secretion.

आन्तरि (री)क्ष–वि० [सं० त्रि०] (१) आकाश सम्बन्धी। आकाश का। (२) आकाश जात। आकाश से पैदा होनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आकाश। आशमान।

आन्तरि(री)क्ष जल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आकाश का जल। आकाश सलिल। आसमान का पानी। धार, कार, तौषार तथा हैम भेद से यह चार प्रकार का होता है। इनमें से वृष्टिजल (मेंह का पानी) को धार, वर्षोपल (बिनौरी) के पानी को कार, शिशिर (नीहार तोय, कुहरा वा ओस) जल को तौषार तथा हिम अर्थात् प्रातः जो जमकर बर्फ बन जाता है, उसे (प्रातहिमोद्भव) जल को हैम कहते हैं। इनमें से धार समुद्र तथा गाङ्ग भेद से पुनः दो प्रकार का होता है। इनमें गाङ्ग धार जल अत्यन्त गुणकारक तथा दोषपाचक है। कहते हैं कि, आश्विन मास में स्वाति एवं विशाखा पर रवि रहने से जो मेघ बर्षते हैं, उस जल को "गाङ्ग" तथा मार्गशीर्षादि नक्षत्रों में जो वृष्टि होती है, उसे "सामुद्र" जल कहते हैं। इसकी परीक्षा यह है, कि चाँदी के बरतन में दही लगाकर उसमें शालि-चावल के बनाये भात का पिण्ड वर्षा में एक मुहूर्त्त तक रखने से यदि उसमें कोई विकार न आवे, तो उस धार जल को "गाङ्ग" जानना चाहिये।

गुण—गङ्गा के जल (गांग) का स्वाद, शीतल, रुचिकारक, कफपित्तनाशक स्वच्छ, हलका तथा दोष रहित होता है और नित्य इसके गुण की वृद्धि होती है। सामुद्र जल शीतल, भारी और कफवातकारक है। जिस प्रकार चित्रा नक्षत्रमें पड़ा हुआ जल अत्यन्त गुणकारक गाङ्ग जल के समान होता है, उसी प्रकार दोनों भाँति रसाश्रय होने के कारण भूमि पर गिरने से यह नाना रसों को प्राप्त होता है। रा० नि० व० १४। दे० "गगनाम्बु"।

आन्तरिक्ष-द्रव्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीरस्थ छोटे-छोटे छिद्र (स्रोत), शब्द और श्रोत्र-इन्द्रिय यह सब आन्तरिक्ष अर्थात् आकाश के अंग हैं। च० शा० ७ अ०।

आन्तरोरव्य-चक्रावर्त्ता-धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial femoral cutaneous, Internal femoral circumflex) धमनी विशेष।

आन्तरोरव्य-त्वाचीनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial femoral cutaneous nerve) अरु मध्य त्वगीया नाड़ी। अ० शा०।

आन्तरोपान्त्या सिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Medial marginal vein) प्रांतीय मध्य शिरा। अ० शा०।

आन्तरौपस्थी धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Internal pudendal artery) उपस्थ की एक धमनी विशेष। अ० शा०।

आन्तरौपस्थी सिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Internal pudendal vein) उपस्थ की एक शिरा विशेष। अ० शा०।

आन्त्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [स्त्री० आन्त्री] अँतड़ी। अन्त्र। आँत। (Intestine.)

वि० [सं० त्रि०] आँत सम्बन्धी। अन्त्र का।

आन्त्र-चलन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अँतड़ी का कृमिवत् आकुञ्चन।

आन्त्र-प्रदाह–संज्ञा पुं० [सं०पुं०] आन्त्र शोथ। आँतों की खराश और मरोड़। आँतों की सूजन। वर्मु ल् अम्आऽ, मग़्सुल् अम्आऽ, सह़्जुल् अम्आऽ (अ०)। एण्टेराइटिस Enteritis, इन्फ्लामेशन ऑफ़ इन्टेष्टाइंस Inflammation of Intestines (अं०)।

टिप्पणी—जब आँतों की श्लैष्मिक-कला का प्रदाह हो, तब उसे आन्त्रीय प्रतिश्याय (Enteric catarrh) कहते हैं। परंतु जब किसी एक अँतड़ी की समग्र झिल्ली में शोथ हो जाय, तब वह आन्त्रिक शोथ (Enteritis) कहलाता है। इस रोग में कोई ऐसे विशिष्ट लक्षण नहीं होते, जिससे यह निश्चिततया ज्ञात हो सके कि, प्रदाह द्वादशांगुलान्त्र (Duodenum) में है वा आँत के किसी अन्य भाग में। तोभी द्वादशांगुल-अन्त्र के प्रदाह को द्वादशांगुलान्त्र प्रदाह (Duodenitis) कहते हैं और उसी भाँति बृहद् अन्त्र के शोथ को बृहदांत्र प्रदाह और अन्त्रपुट के प्रदाह को अंत्रपुटप्रदाह (Typhlitis) कहते हैं।

कारण वा निदान

आन्त्रिक प्रदाह के भी प्रायः वे ही कारण हैं, जिनका उल्लेख आमाशयिक प्रदाह में किया गया है अर्थात् अपरिपाचित आहार आदि से आँतों में क्षोभ होना। धूप में अधिक चलने फिरने से, अग्नि के पास अधिक काल तक काम करने से, वा लालमिर्च और मसालायुक्त एवं गरम आहार के अधिक सेवन से और दोषों में से किसी दोष-प्रकुपित दोष के संचय से, विशेषतः जब अधिक पित्तोद्रेक होकर आँतों पर गिरता है और द्रवों से होकर आँतों तक पहुँचकर इतना क्षोभ संजनित करता है कि, स्वयं व्याधि के नाम से अभिहित होता है। कभी आँतों में आघात पहुँचना, आंत्रिक क्षत, आन्त्रार्बुद प्रभृति वा आन्त्र में पित्त की कंकड़ियों वा दृढ़ मल का संचित होना, उदर में शीत लगना, विसूचिका, महामारी का बुखार, यक्ष्मा वा यकृतप्रदाह आदि भी इस व्याधि के कारण हैं।

पेशाब पीला और जलन के साथ आता है। मलोत्सर्ग के उपरांत कुछ काल तक गुदा-स्थान में शोथ एवं प्रदाह होता है और उदर में मरोड़ एवं वेदना का अनुभव होता है।

लक्षण—जब आँतों की केवल श्लैष्मिक कला में शोथ होता है, तब शूलवत् पीड़ा होती है, और श्लेष्मा वा पित्त के रंग के विरेक आते हैं। यदि रोग उग्र हो, तो जाड़ा लगकर ज्वर चढ़ आता है। शरीर गरम होता है, जिह्वा शुष्क एवं सुर्ख होती है, प्यास का प्राबल्य होता है, नाड़ी तीव्र एवं कठोर होती है, कठिन उदरशूल होता है, विशेषतः नाभि के चतुर्दिक् दबाने से तीव्र पीड़ा होने लगती है। कभी हिचकियाँ आने लगती हैं और कभी मूर्च्छा एवं आक्षेप होकर मृत्यु की आशंका होती है।

जब आन्त्र के सम्पूर्ण स्तर में सीमित शोथ होता है, तब सूजन की जगह कठोर वेदना होती है, जो चलने-फिरने हिलने-डोलने वा विकृत स्थल को दबाने से तीव्र हो जाती है। ज़ोर का बुख़ार होता है। रोगी अतिशय व्यग्र एवं उदासीन होता है और अत्यंत निर्बल हो जाता है। आन्त्र का विकारी स्थल पहले आक्षेपयुक्त होकर फिर वातग्रस्त हो जाता है। इसलिये आँतों में रोक पड़कर सख़्त कब्ज हो जाता है और उदराध्मान होकर रोगी की मृत्यु का आवाहन करता है। हिचकियाँ आती हैं और दुर्गंधित वमन आता है। यदि सूजनकी जगह उग्र अवरोध हो तो वमन में मलोत्सर्ग होने लगता है। जिह्वा शुष्क और काली हो जाती है और प्रलाप इत्यादि होकर रोगी काल कवलित होता है।

जब द्वादशांगुलीयान्त्र में प्रदाह हो, तब साथ ही पित्त प्रणाली के शोथयुक्त वा अवरुद्ध हो जाने से रोगी को यर्क़ान (पांडु) भी हो जाया करता है। अंत्रपुट प्रदाह (Typhlitis) और पेरिटिफलायटिस में दक्षिण पार्श्व के वंक्षण स्थल पर वेदना अनुभव होता है, जिसके दबाने से उग्र पीड़ा होती है।

नोट—आन्त्रीय प्रदाह उग्र एवं चिरकारी भेद से दो प्रकार का होता है।

रोग-विनिश्चय वा निदान

उदरशूल, उदरच्छदा-कलाप्रदाह, अतिसार,

प्रवाहिका और औदरीय विद्रधि आदि व्याधियों का आन्त्रप्रदाह से बहुत साम्य होता है। अस्तु, इस रोग को ठीक जानने के लिये निम्नलिखित भेदक चिह्नों का जानना अनिवार्य होता है।

(१) उदरशूल में रोगी को ज्वर नहीं होता। पर आन्त्रशोथ में ज्वर का होना अनिवार्य होता होता है।

(२) उदरच्छदा-कला के प्रदाह में रोगी टाँगें बटोर लेता है। उदर स्पर्श करने से कठिन वेदना होती है। साँस लेने में रोगी अपने पेट को रोकता है। उग्र वेदना के साथ ही आध्मान भी अधिक हुआ करता है।

(३) अतिसार में ज्वर नहीं होता एवं वेदना उदर के किसी विशेष भाग में सीमित नहीं हुआ करती।

(४) प्रवाहिका में भी लगभग समग्र उदर भर में मरोड़ हुआ करती है, आदि।

(५) औदरीय विद्रधि में आँत्र की क्रिया में कुछ विकार नहीं आता।

चिकित्सा

डाक्टरी—रोगी को आराम से बिछौने पर लिटाए रखें। प्यास निवृत्यर्थ थोड़ा-थोड़ा पानी पिलाते रहें वा बर्फ़ का टुकड़ा चुसाते रहें। वेदना स्थल पर पोस्ते के क्वाथ से टकोर करें अर्थात् सेंककरें वा तीसी की गरम-गरम पुल्टिस बाँधे। ताकि नीचे की आँतें मलवर्जित हो जाँय। केवल उष्णजल वा साबुन के पानी से वस्तिकर्म (एनिमा) करें। यह बात स्पष्ट है कि चोभक आहार ही इस रोग का कारण हुआ करता है। अतएव क्षुद्रान्त्र के संशोधनार्थ रोगी को ४ ग्रेन (२ रत्ती) कैलोमेल खिलाकर उसके ६ घंटे उपरांत एक मात्रा सिडलिट्ज पाउडर दें, जिसमें एक वा दो दस्त आ जाँय। पुन: एक-दो दिन तक रोगी को किसी प्रकार का आहार न दें, जिसमें आँतों को विश्राम मिल जाय एवं आहार-पाचन का भी कष्ट न हो। पीने के लिये यह योग दें—

(१) बिस्मथ कार्ब	१५ ग्रेन
टिंक्चर ओपियम्	१० विंदु
म्युसिलेज अकेशिया	१ ड्राम
निर्मल जल (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा औषध दिन में तीन बार दें।

(२) बिस्मथ सैलीसिलेट	२५ ग्रेन
म्युसिलेज अकेशिया	३ ड्राम
एक्वा (ऐड)	३ आउंस

इसमें से एक-एक आउंस औषध दिन में तीन बार दें और यदि अधिक क़ै आती हो, तो उसका उचित उपचार करें।

यदि रोगी बहुत निर्बल हो जाय, तो ब्रांडीमिक्शचर में एक मात्रा में ५ विंदु के हिसाब से, टिंक्चर ओपियम् मिलाकर दें। रोगोपरांत होनेवाली निर्बलता में यह योग दें—

एमोनिया कार्ब	३० ग्रेन
टिंक्चर लैवेंडर कंपाउंड	१ फ्लुइड आउंस
इन्फ्युजन सिंकोना फ्लेवा	८ फ्लुइड आउंस तक

इसमें से १-१ आउंस की मात्रा दिन में दो-तीन बार दें।

यूनानी वैद्यकीय चिकित्सा

इसकी प्रथमावस्था में १ तो० कीकर की गोंद (समग़ अरबी) महीन पीसकर ठंडे पानी में भली भाँति क्लेदितकर १ तो० विलायती एरंड तैल संयोजितकर पिलाएँ। यदि रोग उग्र हो एवं रोगी शिराव्यध की क्षमता रखता हो, तो बासलीक का वेधन करे अर्थात् फ़सद खोलें। वरन् १२ तो० अर्क गावज़बान में मग्ज़कद्दू ३ मा०, मग्ज़ तरबूज ३ मा०, तुख़्म खुर्फ़ा ३ मा० और तुख़्मकाहू ३ मा० का शीरा निकालकर उसमें ४ तो० शर्बत नीलोफ़र मिलाकर प्रात:काल पिलाएँ। ३ मा० बिहीदाना और ४ मा० रीशा ख़त्मी, १२ तो० अर्क गावज़बान में भिगोकर लुआब निकालें। और ५ मा० सौंफ अर्क गावज़बान में पीसकर शीरा निकाले। फिर लुआब और शीरा मिलाकर २ तो० शर्बत निलोफ़र सम्मिलित करें तथा ७ मा० समूचा ईसबगोल छिड़ककर सायंकाल को पिला दिया करें। यदि कष्ट अधिक हो तो ईसबगोल के स्थान में चहार तुख़्म ७ मा० व ७ मा० तुख़्म बारतंग छिड़ककर पिलाएँ। अथवा पत्थर गरम करके छाछ में बुझाकर वा कीकर की गोंद (समग़ अरबी)

३ मा०, कतीरा ३ मा० ज़रूरद ३ मा०, वंशलोचन ३ मा०, निशास्ता ३ मा० सबको महीन पीसकर छाछ में मिलाकर तुख़्म रेहाँ ४ मा० वा समूचा ईसबगोल ७ मा० छिड़ककर २ तो० शर्बत बनफ़सा सम्मिलितकर पिला दें। प्रातःकाल सफ़ूफ़ मक़्लियासा ४ मा० आवश्यकतानुसार गोघृत में मर्दनकर फँकाकर १२ तो० अर्क गावज़ाबान में मीठे अनार का शर्बत २ तो० वा शर्बत नीलोफ़र २ तो० सम्मिलितकर पिला दिया करें और सायंकाल को १ तो० बेलगिरी का मुरब्बा खिलाकर ऊपर से ६ तो० अर्क गावज़ाबान, ६ तो० अर्क गुलाब और मीठे अनार का शर्बत २ तो० मिलाकर पिलाएँ। यदि रोग पुरातन होजाय और मल के साथ पीव आने लगे, तो क़ुर्स अक़ाक़िया ३ वटी खिलाकर ऊपर से २ तो० शुद्ध मधु पानी में मिलाकर पिला दिया करें। क़ुर्स रातीनज आधी टिकिया चावलों के माँड़ में मिलाकर इसको गुदा में वस्ति दें और सफ़ेद राल तथा समग़ अरबीवाली गोलियाँ एक प्रातः और एक सायंकाल खिला दिया करें। यह योग भी आन्त्रशोथ में लाभकारी है। रेवंदचीनी १ तो०, भूना समूचा ईसबगोल १ तो०, तुख़्मरेहाँ १ तो०, समग़ अरबी २ तो०, भर्जित निशास्ता २ तो०, इसमें से तुख़्मरेहाँ और ईसबगोल को छोड़कर शेष औषधियों को कूट-छानकर चूर्ण बनाएँ और ईसबगोल तथा तुख़्मरेहाँ को बिना कूटे समूचा मिला दें। इसमें से ६ मा० चूर्ण ठंडे पानी से फँका दिया करें।

आयुर्वेदीय—आमातिसार एवं प्रवाहिकावत् चिकित्सा करें।

पथ्यापथ्य

डाक्टरी—दूध में सोडावाटर वा बार्लीवाटर। यवाम्बु मिलाकर दें। फिर सादा शोरबा वा यख़्नी दें। पुनः पतला सा साबूदाना इत्यादि दें। भारी एवं आध्मानकारक खान-पान से कुछ दिन तक बचते रहें।

वैद्यकीय—शीतल और लघु आहार जैसे, दूध, चावल और मूँग की नरम खिचड़ी, ख़शका प्रभृति और तरकारियों में से कद्दू, तोरई, पालक, खुर्फ़ा, खीरा, ककड़ी, टिंडा, छाग-मांसरस, कम मिर्च की तरकारी के साथ पका हुआ व्यवहार में लाएँ। दही और चावलों का उपयोग उपयोगी सिद्ध होता है। बर्फ़ से ठंडा किया हुआ वा ताज़ा पानी पीना चाहिए।

तीक्ष्ण, अम्ल, लवण एवं उष्ण पदार्थों से परहेज़ कराएँ। लालमिर्च, गरम मसाला, गोश्त, अंडा, मछली, बैंगन, सिरके की चटनी, पुदीना, आलू, अरवी तथा कचालू प्रभृति हानिकारक हैं। श्रम तथा आयास के काम और धूप में चलने फिरने से बचें।

टिप्पणी—जब तक रोग पुरातन न होगया हो और उसमें पीव न पड़ गई हो, तब तक इस रोग में छाछ, दूध और दही प्रभृति का प्रयोग खूब कर सकते हैं। पीव पड़ जाने के उपरांत उक्त वस्तु अहितकर सिद्ध होती हैं। रोग की प्रारंभिक अवस्था में ठंडी और लुआबदार वस्तुएँ उपयोगी होती हैं।

आन्त्र विद्रधि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (Intestinal abscess) आँत का फोड़ा।

आन्त्र-वृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अन्त्रवृद्धि। फ़तक। बादख़ायः-अ०। (Hernia.)

आन्त्र संकोच-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अँतड़ी का कृमिवत् आकुञ्चन। (Peristaltic-movement.) (२) आँत का एक रोग जिसमें आँत का छिद्र संकुचित होजाता है। गुल्म का दबाव पड़ना वा आँत की दीवारों में किसी प्रकार का रचनात्मक परिवर्तन वा आँत्र के किसी भाग का स्थान भ्रष्ट होना आदि, जैसा अन्त्रवृद्धि में प्रायः देखा जाता है, इसके मुख्य कारण हैं। (Contraction of intestines)

आन्त्र संकोचक—संज्ञा पुं० [सं०]

वह औषधियाँ जो आँत के कृमिवत् आकुञ्चन को शिथिल करती और तद्रसोद्रेक को घटाती है। आँत्र-संग्राही, आँत्रधारक (सं०)। क़ाबिज़ात अमूआ (अ०)। इण्टेष्टाइनल ऐष्ट्रिंजेंट्स Intestinal astringents (अ०)।

प्रभाव एवं क्रियाभेद से आँत्र-संकोचक औषधियों के निम्न भेद होते हैं—

(१) इस प्रकार की धारक औषधियाँ आंत्रस्थ रगों को संकुचितकर अपना धारक प्रभाव करती हैं। यद्यपि इस सूची में वे सभी धारक औषधियाँ सम्मिलित हैं, जो शरीर पर साधारणतया प्रभाव प्रकटित करती हैं; तो भी निम्नलिखित कुछ ऐसे द्रव्य हैं, जिनका विशेषतः आंत्र संकोचक रूप से व्यवहार होता है; जैसे—फिटकरी, सीसे के लवण (Lead salts), चाँदी के लवणों (Silver salts) के जलमिश्रित घोल और जलमिश्रित गंधकाम्ल।

(२) वह आंत्रसंकोचक औषधियाँ जो रगों को सहारा देनेवाले तंतुओं की एल्ब्युमेन को प्रगाढ़ीभूतकर धारक प्रभाव प्रदर्शित करती हैं। ऐसी औषधियाँ आंत्रीय श्लैष्मिककला की बारीक रगों के गिर्द एल्ब्युमेन को प्रगाढ़ीभूत एवं दृढ़कर देती हैं; जिससे रक्तसंवहन स्वच्छंदतया नहीं हो सकता और ये रगों की दीवारों से रसोद्रेक को घटाती हैं। इस प्रकार की औषधियों की सूची निम्न है—

लोहे के लवण (Ferric salts), ताँवे के लवण (Copper salts), यशद के लवण (Zinc salts), सीसे के लवण (Lead salts), विज़्मथ साल्ट्स (Bismuth salts), कषायाम्ल (Tannic acid) एवं वे समग्र द्रव्य जिनमें यह अम्ल वर्तमान होता है; जैसे कत्था, दालचीनी, हीरादोखी (काइनो), क्रेमेरिया, युकालिप्टज़ निर्यास और हीमेटॉक्सिलीन।

(३) इस प्रकार की आन्त्रधारक औषधियाँ आन्त्रिक रसों के स्राव को घटाकर संग्राही प्रभाव करती हैं और वे यह हैं— सीसे के लवण (Lead salts), कैल्सियम् साल्ट्स और अफीम (ओपियम्)।

(४) इस प्रकार की आन्त्रधारक ओषधियाँ आन्त्र के कृमिवत् आकुंचन को कम करके स्वकर्म प्रदर्शित करती हैं और वे यह हैं— बेलाडोना, पारसीकयमानी, अफीम, धतूरा, सीसे के लवण (Lead salts), बिस्मथ साल्ट्स (Bismuth salts) और चूना (Lime)।

आन्त्रसंग्राहक ओषधियों का प्रयोग— आन्त्रधारक प्रायः अतिसार में दस्तों को रोकने के लिये काम में आते हैं। परन्तु यह अनिवार्य है कि, अतिसार के कारण को मालूम कर उसे दूर किया जाय। अतएव यदि आन्त्रस्थ कोई क्षोभक आहार वा सुद्दा प्रभति अतिसार का कारण हो तो किसी मृदु रेचनौषध यथा एरंड-तैल (कैष्टर आइल), वा पल्विस र्हियाई कंपोज़िटा द्वारा साधारण जुल्लाब देकर उक्त संक्षोभक द्रव्य वा सुद्दा का उत्सर्ग करें। इसके पश्चात् दस्त स्वयं बन्द हो जाते हैं। पर यदि आंत्र-प्रदाह अतिसार का कारणीभूत हो, तो फिर ऐसे आंत्रधारक का उपयोग लाभकारी होता है, जो आंत्रस्थ रगों को संकुचितकर एवं तद् रसोद्रेक तथा कृमिवत् आकुंचन को कम करके स्वकर्म प्रदर्शित करते हैं। अस्तु, दो-चार धारक ओषधियों को मिलाकर देने से उनका प्रभाव और प्रबलतर हो जाता है। जब अधिक विरेक आते हों, तब अफीम का प्रयोग अत्यन्त गुणकारी सिद्ध होता है।

बालातिसार में जब मल की कैफ़ियत खट्टी हो, तब बिज़्मथ के यौगिकों से बहुत लाभ होता है। अतिसार का कारण जब आँत की कतिपय उग्र व्याधियाँ, जैसे-यक्ष्मजनित क्षत वा टाइफायड (आंत्रज्वर) प्रभृति होते हैं, तब ऐसी दशा में संग्राही ओषधियों का कुछ भी प्रभाव नहीं होता। पर यदि अधिक दस्त आते हों, तो साधारण धारक ओषधि; जैसे, चाक वा बिज़्मथ किंचिद् अहिफेन के साथ देने से कल्याण होता है। परंच उक्त रोग में रोगी के सार्वाङ्गिक स्वास्थ्य का सर्व प्रथम ध्यान करना श्रेयष्कर है। अतएव रागी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। उसे चलना-फिरना नहीं चाहिये; भोजन बिलकुल सादा एवं अल्प परिमाण में खाना चाहिये; जल अधिक न पीना चाहिये और शरीर को गरम रखना चाहिये।

आन्त्रक्षय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकारका राजयक्ष्मा जो आँतोंमें होता है।(Intestinal Tuberculosis) दे० "राजयक्ष्मा"।

आन्त्रापचय-संज्ञा पुं० [सं०] आँत के क्षीण होने की क्रिया वा भाव। एक रोग जिसमें उप-

वास आदि के कारण उचित परिपोषण के अभाव में आँत और उसके साथ सारा शरीर क्षीण एवं कृश होता जाता है। आन्त्रीय प्रतिश्याय, विशेषकर शिशुओंमें इस रोगका कारण होता है। (Atrophy of intestines)

आन्त्रार्बुद–संज्ञा पुं० [सं०] आँत का अर्बुद। (Cancer of the intestines) एक प्रकार का प्रतिश्याय जो आँतों की आंतरिक झिल्ली (श्लैष्मिककला) की सूजन से उत्पन्न होता है।

आन्त्रावरोध–संज्ञा पुं० [सं०] आँतों का एक रोग, जिसमें आन्त्रस्थित द्रव्य वस्तिगह्वरस्थ वा औदरीय किसी अवस्था वा कारण विशेष से आगे बढ़नेसे रुक जाता है। आँतोंकी रुकावट। रुद्धान्त्र। (Intestinal obstruction)

टिप्पणी—आन्त्रावरोध एक साधारण शब्द है। जिन-जिन रोगों वा अवस्थाओं में आँत में अवरोध उत्पन्न होता है, उन सबको आन्त्रावरोध संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं। अतएव अधोलिखित रोग इसके भेद वा कारण कहे जा सकते हैं—

(१) अन्त्रवृद्धि (Hernia), (२) अन्त्रान्योन्यानुप्रविष्ट(Intussusception), (३) बद्धगुदोदर वा सन्निरुद्धगुद (Stricture of the rectum), (४) उदावर्त (५) आनाह (Flatulent colic), (६) आध्मान (Tympanites), (७) शूल (Colic), (८) गुल्म (Abdominal tumour), और (९) मलावष्टम्भ वा कब्ज़ (Constipation) इत्यादि।

विशेष विवरण के लिए। दे० "रुद्धान्त्र"।

आन्त्राक्षेप-सं० पुं० [सं०] एक रोग जिसमें आँत अनियमित रूप से ज़ोर के साथ आक्षिप्त होती है। साथ ही वेदना होती है, जिसे शूल कहते हैं। साधारण दशा में हमें उसके कृमिवत् आकुञ्चन का ज्ञान नहीं होता। परन्तु जब मांसस्तरों का प्रबल आकुंचन होता है, तब कुछ न कुछ वेदना का होना अनिवार्य होता है। (Spasm of intestine)

आन्त्रिक–वि० [सं० त्रि०] आँत सम्बन्धी। अँतड़ी का। अन्त्र सम्बन्धी।

आन्त्रिक-ज्वर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Enteric fever.) टायफॉइड ज्वर। दे० 'टायफाइड'।

आन्त्रिक प्रतान–संज्ञा पुं० [सं०] आँत का एक रोग, जिसमें आँतों का छिद्र साधारण अवस्था से बहुत विस्तृत होजाता है। (Dilatation of intestines)

आन्त्रिक प्रतिश्याय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मृदु आंत्रप्रदाह। आँतों का नज़्ला। (Catarrh of intestines) नज़्लः मिअ़्वियः, वर्म बातिन अम्आऽ (अ०)।

आन्त्रिक फिरंग-रोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह फिरंग-रोग जो अँतड़ी में होता है। आँत में होनेवाला आतशक। (Syphilitic disease of intestines)

नोट—मलाशय के नीचे की छोर एवं गुदप्रांत को छोड़कर, आंत्र के शेष भाग में यह फिरंगरोग कम होता है।

आन्त्रिक रक्तस्राव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रोग जिसमें आँत से खून आने लगता है। रक्तचाप की वृद्धि, आँत की दीवारों का विकार एवं आगंतुक आदि इसके अनेक कारण हैं। (Haemorrhage from intestines)

आन्त्रिक रक्तावष्टम्भ–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें आँत के किसी भाग में रक्त-संचय होता है। (Congestion of intestines)

आन्त्रिक रोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह रोग जिसका संबंध आँतों से हो आँतों में होनेवाला रोग। अँतड़ी की बीमारी। आन्त्ररोग। आंत्राय व्याधि। अम्राज़ुल् अम्आऽ (अ०)। डिज़ीज़ेज़ आफ़ दी इन्टेस्टाइन्ज़ Diseases of the intestines (अं०)।

आन्त्रिक व्रण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आन्त्रिक क्षत। क्षतोदर। छिद्रोदर। छिन्नोदर। परिस्रा० युदर। Ulceration of intestines, Ulcerative enteritis) दे० "क्षतोदर"।

आन्त्रिक स्थौल्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रोग जिसमें आंत्र की श्लैष्मिक और उपश्लैष्मिककला तथा मांस के स्वर तक स्थूल होजाते हैं। यह संबंधक तंतुओं की अतिवृद्धि के कारण होता है,

जो प्रायः चिरकारी आंत्रप्रदाह आदि में देखा जाता है। आंत्रीय अतिपुष्टि। (Hypertrophy of intestines)

आन्त्रिकी·धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अँतड़ी को पोषण करनेवाली धमनी। आँत की धमनी। (Intestinal artery)

आन्त्र शोधक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह औषधियाँ जो आन्त्रस्थ द्रव्यों में ख़मीर उठने वा सडाँध एवं दुर्गन्धि पैदा होने को अथवा आँतों द्वारा अशुद्ध द्रव्याभिशोषण को रोकती हैं। इस हेतु समग्र आमाशय-शोधक एवं दुग्धाम्ल (लैक्टिक एसिड) और कैलोमेल आदि औषधियाँ काम में आती हैं। पर्या०—

इन्टेष्टाइनल एण्टिसेप्टिक्स Intestinal antiseptics (अं०)। दाफ़िआते तअफ़्फ़ुने अमूआऽ (अ०)।

टिप्पणी—यह बात अभी तक संदिग्ध है, कि आन्त्रस्थ द्रव्यों को (उनके शरीर में होने पर) निःसंक्रामक बनाना सम्भव भी है, वा नहीं? और यदि यह सम्भव हो, तो यह लाभकारी भी है वा नहीं? क्योंकि अँतड़ी के भीतर जो अणुवीक्ष्य सूक्ष्माणु (Microorganism) वर्तमान होते हैं, वह साधारणतः आन्त्रीय पाचन-क्रिया के सहायक होते हैं। तो भी इस प्रकार की औषधियों के प्रयोग का प्रयत्न किया जा रहा है और उसमें किसी हद तक सफलता भी मिली है।

आन्त्र-हानिकर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह औषधियाँ जो आँतों के लिये हानिकर हों। आन्त्र असात्म्य। मुज़िरात अमूआऽ (अ०)। वे निम्न हैं—

उश्ना (छड़ीला), अंज़ुरः, अंजदान, अनीसून, विरंग काबुली, निसोथ, सक़्मूनियाँ, सकबीनज, सलीख़ा (तज), ऊदबलसाँ, अंबर, चाँदी, छोटी इलायची, लौंग, कमीला, कंतूरियून सग़ीर, कमाज़ारियूस, कमून, जीरा, गेरू, नूरुल्मुर्द, माहीज़हरज और रजतपत्र (चाँदी का वर्क़)।

आन्त्रीय-कृमि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आँत के कीड़े। उदरीय कृमि। (Intestinal worms) दीदान (अ०)। दे० "कृमिरोग"।

आन्त्रीय-प्रणाश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Gangrene of intestines.)

आन्त्रीय-रचना-विकार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आंत्र का स्वाभाविक रूप से भिन्न छोटा वा बड़ा अथवा किसी और स्वरूप आकार का होना। जैसे, उपांत्र कभी साधारण आकार से भिन्न, आधा वा दूना बड़ा होता है। पुनः यह सहज वा उपार्जित होता है। (Malformation of Intestines.)

आन्त्रीय क्षय रोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आँत का क्षय रोग। (Tubercular disease of intestines.) दे० "राजयक्ष्मा"।

आन्थिस्टिरिया-एरुण्डिनेशीई–[ले० Anthistiria arundinaceae, *Roxb.*] एक प्रकार की घास। उलु। उल्लह। कङ्गर। खण्डुर। (उ० प० सू०)।

आन्थेमिस·कोट्युला–[ले० Anthemis cotula.] बबूना बदबू। बाबूना बर्री। मेवीड। (Mayweed.)–अं०।

आन्थेमिस-नोबिलिस–[ले० Anthemis-nobilis, *Linn.*] गुले बाबूना। बाबूना। बाबूनहे गाव। (Anthemis dioscorides.)

आन्थोसिफेलस·कैडम्बा–[ले० Anthocephalus cadamba, *Miq.*] कदम्ब। कदम का पेड़।

आन्थ्रिस्कस-सेरिफोलियम्–[ले० Anthricus cerefolium, *Hoffm.*] आतरीलाल।

आन्थ्रोनियम्, इण्डिकम्–[ले० Anthroneam indicum]

आन्दरूसाकास–[यू०] तज़्किरा दाऊद अंताकी के अनुसार एक उद्भिज्ज जो बैतुल्मुक़द्दस की ओर उत्पन्न होता है। इसकी शाखाएँ पत्रहीन होती बीज पोस्ते के बी की तरह और कोषावृत्त होते हैं; हैं। यह द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। जलंधर (इस्तिस्क़ाऽ) में सर्वथा उपयोगी है। इसका प्रलेप निक़्रिस में लाभकारी है। यह उदर के कृमियों को नष्ट करता है। (ख० अ०)

आन्दोलन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आन्दोलित आंदोलक] (१) कम्प। कम्पन। झूलना। हलचल। (२) अनुसंधान।

आन्धस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] माँड़। मंड।

आन्धसिक–वि० [सं० त्रि०] पाचक। सूद। नानबाई। अम०।

आन्ध्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दे० "तमोगुण"। (२) अंध का भाव। अंधता। अंधापन। दृष्टिशक्तिराहित्य।

"आन्ध्यमधिमन्थं तिमिरप्रादुर्भावमित्यादिचापादयति"। सु०।

आन्ध्र-देश-पूग–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आन्ध्रदेश में होनेवाली सुपारी।

गुण—पाक में मधुर, थोड़ी खट्टी, कसैली, वात-कफनाशक और मुख में जड़ता उत्पन्न करनेवाली है। वै० निघ०।

आन्न–वि० [सं० त्रि०] (१) जो खाने को पा चुका हो। खा चुकनेवाला। संतुष्ट। (२) अन्न सम्बन्धी। अनाज का।

आन्पल–[मल०] कमल। कँवल। निलोफ़र। पद्म। (Nymphaea edulis, *d. c.*) स० फा० इं०।

आप-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जल-समूह। सलिल। पानी। Water (Aqua.)

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आठ वसुओं में से एक। (२) आकाश।

[सं० स्त्री०] सुगंधवाला। नेत्रबाला। बाला-बं०। (Pavonia odorata.) अम०।

नोट—इस शब्द का प्रयोग समासान्त में "पानेवाला" अर्थ में होता है। जैसे–दुराप-कठिनतापूर्वक मिलनेवाला।

आपकर–वि० [सं० त्रि०] दुःख देनेवाला। बुरा। नागवार।

आपक्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ईषत्पक्व कलायादि। वा भूना हुआ हरा जव आदि। कोई-कोई रोटी को कहते हैं। अम०। (२) अल्प पक्व द्रव्य। कुछ पकी हुई चीज़।

आपगा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नदी। दरिया। सरित् इत्यादि निम्नगापगाः। अम०। पानी। जल।

आपगाजल,-आपगासलिल, आपगावारि–संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० क्ली०] नदी-जल। नदी का पानी। दरिया का पानी। नादेय।

गुण—नदी का पानी दीपन, रूखा, वातकारक हलका और लेखन है। मद० व० ८। दे० "नदी"।

आपटा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक वृक्ष जो कड़ी ज़मीन में और पहाड़ी जगह में प्रायः उत्पन्न होता है। इसमें बहुत सी शाखाएँ होती हैं। पत्ते ऊँट के पाँव की तरह लगभग एक उँगली के बराबर या उससे अधिक फटे होते हैं। इसके फूल में तीन-तीन पुष्प दल होते हैं और उन दलों के भीतर तंतु होते हैं। पुष्प-मकरंद मधुवत् मधुर होता है, जिसमें से सैंधी की सी गंध आती है। फूल सफेद रंग का होता है। बीजफली के भीतर होता है। फली बाकले की फली की तरह होती है। कच्ची फली को मलने से प्रथम खीरे की सी गंध आती है, फिर सुगंध निकलती है। स्वाद कषैला और मीठा होता है। इसके बीजों से तेल निकालते हैं। इसका एक भेद और है, जिसमें लाल फूल लगते हैं। इसकी छाल और शाखाएँ कोमल होती हैं। इससे बंदूकका तोड़ा बनाते हैं। इसकी आग बुझती नहीं। किसी-किसी ग्रन्थ में लिखा है कि, इसके पत्ते दोहरे,गोल,रुपये के बराबर होते हैं। दशहरे के दिन हिन्दू लोग 'समी' की जगह इसके पत्ते लूटते हैं और इसे शुभ ख़्याल करते हैं। वे इसे सोना मानकर आपस में बाँटते हैं। स्वाद तिक्त, तीव्र और कसैला होता है, विशेष कर छाल कसेली होती है। छाल का रंग सफ़ेद होता है।

प्रकृति—सर्द-तर। कोई-कोई प्रथम कक्षा में गरम और तीसरी कक्षा में रूक्ष और कोई द्वितीय कक्षा में गरम-तर और कोई मातदिल बतलाते हैं। इसका फल शीतल और रूक्ष है।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसकी छाल, कफ, पित्त, खाँसी और उदरज कृमियों को नष्ट करती है और पाचक है। इसके तने की छाल १ माशे से ३ माशे तक शीतल जल के साथ खाने से सैलानुर्रिहम (श्वेतप्रदर) के लिये हितकर है। इसके फूल नेत्ररोगों को नष्ट करते एवं आँख की रोशनी बढ़ाते हैं। वस्तिस्थ शैत्य को दूर करते, भूख पैदा करते और नशा लाते हैं। फूलों से मद्य भी प्रस्तुत करते हैं। वे दस्त बंद करते हैं और पित्त एवं रक्त-दोष, विष और उदरीय कृमियों को दूर करते हैं। चेहरे के भभक उठने को भी लाभकारी

है। गुदभ्रंश अर्थात् काँच निकलने में उपयोगी हैं। ये अतिरज और बवासीरके खूनको बन्द करते हैं। किंतु वे (फूल) कफ उत्पन्न करते हैं। फूल प्लीहोदर, प्रमेह, गरमी, जलन, सर्दी, सतत-ज्वर, चौथिया, भूतावेश, जिन, भूत, अश्मरी, रेत, कुष्ठ, गंडमाला, अन्य अवयवों के क्षत, खुनाक़ (Tonsillitis), रक्तविकार और अजीर्ण प्रभृति रोगों में इसका फूल कल्याणप्रद है। किसी-किसी के मत से यह कफ नाशक भी है। इसकी फलियाँ संग्राही और दीर्घपाकी है। यह मीठी और रूक्ष हैं। दस्त बादी और कफ का निवारण करतीं, पित्त तथा दमा पैदा करती हैं। इसकी शुष्क कलियों के बारीक चूर्ण की फंकी देने से आँव के दस्त रुक जाते हैं। इसकी जड़ की अंतरछाल के काढेसे प्लीह की पैत्तिक सूजन मिटती है। इसके काढ़े से कुल्लियाँ करने से मुख-पाक जाता रहता है और दाँत दृढ़ होते हैं। इसके फल मुदिर हैं। इसके बीजों को सिर्का में पीसकर विषैले कीड़ों के दष्ट स्थान पर या पित्तजन्य क्षत पर लेप करने से उपकार होता है। इसके पत्तों के चूर्ण की फंकी देनेसे आँव के दस्त मिटते हैं. इसकी अंतरछाल का क्वाथ पिलाने से कीड़े मर जाते हैं। एक पुस्तक में लिखा है, कि आपटा कफ, वीर्य और मल को सुखाता तथा पित्त, कफ वायु, बहुमूत्र, प्रदाह, प्यास, व्रण, ज्वर (तप) विष, कै, आसेबपरी, कंठमाला (खनाजीर), रक्तदोष, कंठ के रोग, विस्फोटक, सूजन और अतिसारको नष्ट करता है। इसका फल सुस्वादु, रूखा, फीका, भारी, आध्मानकारक, संग्राही तथा कफ और वायु (रेह) का नाश करता है। (ख० अ०)। दे० "अश्मन्तक"

(२) आरी, रिस, थिलकइन-पं०। मे० मो०।

आपण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दूकान। हट्ट। हाट। बाज़ार। पण्य-विक्रय-स्थान। विक्रयशाला। अम०।

आपणिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वणिक्। दूकानदार। व्यापारी। बनिया। सौदागर। (२) बाजार की चुङ्गी। हट्टका राजकर। वि० [सं० त्रि०] (१) बाजारू। बाज़ार से आया हुआ। (२) वाणिज्य संबंधी।

आपत-संज्ञा स्त्री० [सं० आपद्] विपत्ति। दुःख। क्लेश।

आपतिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाज नाम की चिड़िया। सेन। श्येन पक्षी।

आपत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रोगादि से जकड़ जाने की दशा। दुःख। कष्ट। क्लेश। विपत्ति।

आपत्य-वि० [सं० त्रि०] संतान सम्बन्धी। औलाद का।

आपद, आपदा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० आपद्] विपद। विपत्ति। आपत्ति। (Calamity)

आपद्-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विपत्ति। आफ़त।

आपद्-ग्रस्त-वि० [सं० त्रि०] विपन्न। आपत्तियों में फँसा हुआ। दुःख में पड़ा हुआ। आपद्गत। तकलीफ़ का मारा।

आपद्धर्म-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दुःख में किया जानेवाला व्यापार। वह धर्म जिसका विधान केवल आपत्काल के लिये हो।

आपधर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बादल। जल धारण करनेवाला।

आपन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मरिच। मिर्च। श० च०।

आपनिक-संज्ञा पुं० [सं० आपणिक। पर्ण=पत्ता] (१) इन्द्र नील-मणि। बहुमूल्य हरा पत्थर। पन्ना। पन्नग। मरकत। (२) एक देश विशेष।

आपन्त-वि० [सं० त्रि०] (१) प्राप्त। शरण्य। (२) आपद् ग्रस्त। आपद्-प्राप्त। दुःखी। मुसीबत ज़दा।

आपन्नसत्वा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भवती स्त्री। अन्तः सत्वा। रा० नि० व० १८। गर्भिणी नारी। हामिला औरत।

आपन्नाश-संज्ञा पुं० [सं०] आपद्नाश। विपत्ति नाश। जिसका कष्ट दूर हो गया हो।

आपप्याय-पज़ुम्-[मल०] पपैया। पपीता। विलायती रेंड।

आपया-संज्ञा स्त्री० [सं० आपगा] एक नदी जिसका उल्लेख ऋगवेद में आया है।

आपली-[?] तून का वृत्त ।

आपस्-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जल । पानी । वारि ।

आपस्तम्भिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिवलिङ्गी । लिङ्गिनी नाम की लता । (Bryonia)

आपहृत्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सर्प । साँप ।

आपाक-संज्ञा पुं० [सं० पुं० (१) आवाँ । पोयान । भट्टी । आष्ट्री ।

[अव्य०] पाक पर्य्यन्त । पकने तक । जटा० । (२) ईषत्पाक । (३) सम्यक्पाक । (४) पुटपाक ।

आपाङ्ग-[बं०] अपामार्ग । चिर्चिटा । चिचिढ़ी ।

आपाङ्गय-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आँख के किनारे लगनेवाला सुरमा ।

"शलाकया दक्षिणेन क्षिपेत्कानीनमञ्जनम् ।
आपाङ्गयं वा यथायोग्यं कुर्य्याचात्रगतागतम् ॥"
सुश्रु० ।

आपाण्डु, आपाण्डुर-वि० [सं० त्रि०] ईषत्विवर्ण । ज़र्दीमायल । पीला सा ।

आपात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गिराव । पतन । (२) किसी घटना का अचानक हो जाना । (३) आरम्भ । (४) अंत ।

आपादमस्तक-[सं० अव्य०] चरणावधि । आदि से अन्त तक । बिलकुल । सरसे पैर तक ।

आपान-,आपानक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शराब पीने का स्थान । पान भूमि । कलवरिया । मैख़ाना । हला० । (२) मद्यप । मद्यह । मतवाला । शराबी । (३) वह गोष्ठी जिसमें शराब पी जाय । शराबियों की गोष्ठी । 'आपानं पान गोष्ठिका' । अम० । (४) मिलकर शराब पीना ।

आपान्तमन्यु-वि० [(वै०) सं० त्रि०] पान करने से उत्साह देनेवाला । जो पीने से जोश बख़्शता हो । नोट-यह शब्द सोमरस का विशेषण है ।

आपायी-संज्ञा पुं० [सं० आपायिन्] [स्त्री० आपायिनी] शराबी । सुरापानकर्त्ता । मद्यप । शराब पीनेवाला ।

आपालि-संज्ञा स्त्री [सं० पुं०] जूँ । ढील । केश कीट । उकुण (बं०) । अम० ।

आपिञ्जर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोना । स्वर्ण । रा० नि० व० १३ ।

वि० [सं० त्रि०] आरक्त । सुर्ख़ीमायल । लाल सा । सुर्ख़ीमायल रंग । ईषद् रक्तवर्ण ।

आपी-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] वह नक्षत्र जिसका देवता आप (जल) है । पूर्वाषाढ़ नक्षत्र ।

वि० [सं० त्रि०] आपीन । मोटा । स्थूल । बढ़ा हुआ ।

आपीड़-सज्ञा पुं० [सं०] सिर पर पहनने की चीज । जैसे-शेखर, शिरोमाला, मुकुट, कलगी, पगड़ी, टोपी, इत्यादि । शिरोभूषण । सेहरा ।

आपीडन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आपीड़ित] [स्त्री० आपीड़ा] (१) पीड़ा पहुँचाना । तकलीफ़ देना । (२) दबना । (३) संकोचन, इन्क़िबाज ।

आपीत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तून का पेड़ । तूणी-वृक्ष । तूँदगाछ-[बं०] तुंद का पेड़ ।

गुण—कटु, कसेला, मीठा, हलका, कड़ुआ, ग्राही, शीतल, वृष्य एवं व्रण, कुष्ठ तथा रक्तपित्त नाशक है । भा० पू० १ भ० । (२) कुछ-कुछ पीला रंग । ईषत्पीतवर्ण । ज़र्दीमायल रंग ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रूपा माखी । रौप्यमाक्षिक नामक धातु । तारमाक्षिक । (Iron pyrites) । (२) सोना-माखी । स्वर्ण-माक्षिक । रा० नि० व० १३ । (३) कमल-केशर । पद्म-केशर । मद० व० ३ ।

वि० [सं० त्रि०] (१) सोनामाखी के रंग का । कुछ पीला । ज़र्दीमायल । पीला सा । (२) थोड़ा पिया हुआ ।

आपीता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आपटा । अश्मन्तक । दे० "आपटा" ।

आपीन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊधस् । गोस्तन । गाय का स्तन । बाख । अम० । हला० । (२) सुवर्णमुखी । सनाय । सोनामुखी-बं० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूआँ । कूप ।

वि० [सं० त्रि०] कठोर । मोटा । बड़ा ।

आपुटा-संज्ञा पुं० [देश०] अश्मन्तक वृक्ष । आदि वृक्ष । दे० "आपटा" ।

आपुटा-[देश०] अश्मंतक का पेड़ । आपटा ।

आपुप,-आपूप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पिष्टक । पूआ । पूड़ी । पूप । रोटी । रत्ना० । (२) अनूप

देश में पाये जानेवाले जन्तु (जीव) मात्र। अनूप जन्तु। राज०।

आपूपिक–वि० [सं० त्रि०] (१) उत्तम रोटी बनानेवाला। (२) जो रोटी के साथ खाया जाय; जैसे गुड़ आदि। (३) रोटी बेचनेवाला। अपूप विक्रेता। (४) अपूपभक्षणशील। रोटी खानेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रोटी का ढेर। अपूप समूह।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कांदविक। नानबाई। (२) मुरब्बासाज़। हलवाई।

आपूप्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सत्तू। शक्तु। (२) चूर्णक। आँटा। मयदा। पिसान। पिष्ट। त्रिका०। (३) रोटी। आ० सं० इं० डिं०। त्रिका०।

आपूर्य्यमाण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुक्ल-पक्ष। उजेली रात।

आपूष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कथील। रङ्ग। राँगा। वंग। रा० नि० व० १३। (२) सीसा। नाग।

आपेक्षिक–वि० [सं० त्रि०] सापेक्ष। अपेक्षा रखनेवाला।

आपेक्षिक गुरुत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आपेक्षिक-भार। (Specific gravity.) दे० "सापेक्षिक गुरुत्व"।

आपेक्षिक-भार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सापेक्षिक गुरुत्व।

ऑपोडल्-डॉक–संज्ञा पुं० [अं० Opodeldoc] सोपानुलेपन। सावुन का मलहम। दे० "लिनिमेण्टम् सैपोनिस"। ह्वि० मे० मे०।

ऑपोन-संज्ञा पुं० [अं० Opon] एक प्रकार का निर्बल अहिफेन-सत्व-रहित (Morphia-free) ऑम्नोपॉन, जो निद्राजनन हेतु काम में आता है।

मात्रा—३ रत्ती (६ ग्रेन)। दे० "ऑम्नोपान"।

ऑपोपॉमेक्स किरोनियम्–[ले० Opopomax chironiumkoch] एक वृक्ष, जिसका गोंद औषध हेतु काम में आती है। जावशीर। मे० मो०।

ऑपो मारफीन–[ले० Opomorphine]—

ऑपो सेरी,ब्रीन–[अं० Opocerebrin] (Pochlscerebrin) पॉह्ल्स सेरीब्रीन, पॉह्ल निर्मित मस्तिष्क-सत्व। ब्रोमाइडस् के साथ अपस्मार रोगी को इसका सेवन कराते हैं। दे० "ग्रंथि सत्व (Gland substances)"।

आप्टा–[मरा०] (१) अर्जुन वृक्ष। भैष०। (२) कचनार भेद।

आप्टोसीन–[अं० Opticin] (Retinal extract) दे० "ग्रंथि सत्व (Gland substances)"।

आप्टोचीन–[अं० Optochin] (Ethyl-hydrocupreine-hydrochloride) एक सफ़ेद रंग का चूर्ण।

मात्रा—२-१० ग्रेन (२॥ रत्ती से ५ रत्ती)। दे० "हाइड्रोक्वीनोन"।

आप्त–वि० [सं० त्रि०] (१) जिसके वचन का विश्वास किया जाय। विश्वस्त। आप्तवाच्। आप्तवाक्। चरकोक्त आप्त पुरुषों के लक्षण—

तपोज्ञान के बल से जो रज और तम गुणों से मुक्त होचुके हैं और जिनको तीनों काल अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान का सदा शुद्ध और सत्य ज्ञान है, ऐसे विश्वस्त, श्रेष्ठ और बुद्धिमान् मनुष्यों का ज्ञान संशय-रहित होता है। च० वि० ४ अ०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भ्रम प्रमाद-रहित ज्ञानयुक्त ऋषि। (२) योगशास्त्र के अनुसार शब्द प्रमाण। (३) कुशल। दक्ष। (४) विषय को ठीक तौर से जाननेवाला। (५) प्राप्त। लब्ध। (६) युक्ति युक्त। ठीक। (७) सत्य। सच्चा।

आप्तगर्भा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भवती स्त्री। गर्भिणी स्त्री।

आप्तवचन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आप्तसूत्र। इलहाम। आप्तवाक्य। अभ्रांत वचन।

आप्तवाक्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जो ठीक बात कहता हो।

आप्तवाच्–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] विश्वस्त व्यक्ति का साक्ष्य। वि० [सं० त्रि०] भ्रम प्रमादादि वाक्यरहित। ठीक बात बोलनेवाला।

आप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जटा । उलझे हुए बालों का गुच्छा । हारा० ।

आप्तोपदेश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन मनुष्यों के उपदेश, जो विश्वास के योग्य हों । ऋषि-वाक्य । ऋषियों के कहे हुए उपदेश ।

आप्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कुष्ठ नाम की औषधि । कुट । अ० टी० । भा० पू० १ भ० । (२) पूर्वाषाढ़ नक्षत्र ।

वि० [सं० त्रि०] (१) जल के विकार से उत्पन्न । (२) जल संबंधी । जलीय । आबी । पानी का । (३) जलमय । पानी रखनेवाला । (४) जो पानी में रहे । पानी में निवास करनेवाला ।

आप्य-द्रव्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] द्रव, सर, मन्द, स्निग्ध, मृदु, पिच्छल तथा रस, रक्त, वसा, कफ, पित्त, मूत्र, स्वेद आदि द्रव्य जो जल के अंगहैं । च० शा० ७ अ० ।

आप्यान-वि० [सं० त्रि०] (१) मोटा । स्थूल । वृद्ध । (A fat, carpulent.) । (२) प्रीत । आसूदा ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) प्रीति । आसूदगी । (२) वृद्धि ।

आप्याय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्थूल होनेका भाव । भर जाने वा मोटा पड़ने की हालत ।

आप्यायन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आप्यायित, आप्यायक] (१) तर्पण । तृप्त करने का भाव । तृप्तिजनन । प्रीणन । तृप्ति । रा० नि० व० २ । (२) चर्बी बनाने का कार्य । (३) वृद्धि पाने का भाव । वृद्धि । वर्धन । बढ़ती । (४) एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होना । एक रूप से दूसरे रूप में जाना; जैसे—दूध में खट्टा पदार्थ पड़ने से दही जमना । (५) मृत धातु को शहद, सुहागे, घी आदि के संयोग से जगाना वा जीवित करना । (६) बलकारक औषध । ताक़तवर दवा । (७) मोटाई । स्थूलता ।

आप्यायित-वि० [सं० त्रि०] (१) सन्तुष्ट । आनन्दित । (२) तर । आर्द्र । (३) परिवर्धित । बढ़ा हुआ । (४) अवस्थांतर-प्राप्त । दूसरे रूप में परिवर्तित ।

ऑप्युन्शिया-डीलनिआई-[ले० Opuntia dillenii.] नागफनी । नागफण । चप्पल सेंड । (Cactus indicus.) विदार । विश्वसारक । इं० मे० मे० ।

ऑप्युन्शिया तूना-[ले० Opuntia tuna] एक प्रकार की नागफनी । फा० इं० २ भ० पृ० १०० ।

आप्लव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
आप्लवन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } स्नान । अवगाहन । अम० हे० च० ।
आप्लाव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }

वि० डुबाना । बोरना ।

आप्लावित-वि० [सं० त्रि०] (१) डुबाया हुआ । बोरा हुआ । शराबोर । (२) स्नात । नहाया हुआ ।

ऑप्लीमेनस कम्पोजीटस-[लै० Oplimenus compositus] एक प्रकार की घास । तृण ।

ऑप्लीमेनस-बर्मन्नाई-[ले० Oplimenus burmanni] एक प्रकार की घास । तृण ।

आप्लुत-वि० [सं० त्रि०] (१) स्नात । भीगा हुआ । तरबतर । शराबोर । (२) आर्द्रीभूत । भीगा हुआ ।

आप्लुष्ट-वि० [सं० त्रि०] (१) अल्पदग्ध । ईषद्दग्ध । झुलसा हुआ । (२) सम्यग्दग्ध । अच्छी तरह जला हुआ ।

आप्लोटैक्सिस ऑरिक्युलेटा-[ले० Aplotaxis auriculata, *Dc.*]

आप्लोटैक्सिस-लप्पा-[ले० Aplotaxis-lappa] कुट । कुष्ठ ।

ऑप्सोनिक-इण्डेक्स-[अं० Opsonic-index] भक्षक शक्ति चिन्ह अर्थात् रक्त के श्वेताणुओं के भक्षण कर जाने की शक्ति का चिन्ह । रोगी वा निरोगी सभी प्रकार के व्यक्तियों के रक्त में कीट निर्बलकारी शक्ति (Opsonic power) विद्यमान होती है । स्वस्थ व्यक्तियों के रक्त में तो ऐसी शक्ति लगभग समान होती है, पर अस्वस्थ व्यक्तियों के रक्त में यह शक्ति न्यूनाधिक होती है । समग्र संसर्गज व्याधियों में रक्त की इस शक्ति का अनुपात स्वास्थ्य की अपेक्षा से निकाला जाता है । अस्तु, एक स्वस्थ व्यक्ति के रक्त के

श्वेताणुओं का कीटाणुओं के भक्षण कर जाने का एक रोगी मनुष्य के रक्त के श्वेताणुओं का कीटाणुओं के भक्षण कर जाने से तुलना करके यह मालूम करना कि, उनका पारस्परिक अनुपात क्या है, अर्थात् यह कि स्वस्थ व्यक्ति के रक्तके श्वेताणु कितने कीटाणु खा सकते हैं, और रोगी मनुष्य के रक्त के श्वेताणु कितने, इसे "ऑप्सोनिक इण्डेक्स" कहते हैं। इसका अनुमान इस प्रकार किया जाता है। कल्पना करो कि, एक स्वस्थ मनुष्य के श्वेताणुओं (ल्युकोसाइट्स) ने १५ मिनट में एक शत कीटाणु (बैक्टीरिया) खाये और एक रोगी के ५० श्वेताणुओं ने १५ मिनट में १५० कीटाणु खाये। अस्तु इसका अनुपात इस प्रकार हुआ $\frac{१५०}{१००}=\frac{३}{२}=१\frac{१}{२}=१\cdot५$

आप्सोनीन–[अं० Opsonin] रक्तवारि में पाई जानेवाली एक ऐसी चीज, जो रक्त में प्रविष्ट बैक्टीरिया को इतना निर्बल कर देती है कि, रक्त के श्वेताणु उन पर सरलतापूर्वक आक्रमण कर सकते हैं। इस प्रकार का द्रव्य प्रत्येक तन्दुरुस्त मनुष्य एवं प्राणी के रक्त में वर्तमान होता है।

आब्सल्यूट–[अं० absolute] विशुद्ध। ख़ालिश।

आफ़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] दुःख। कष्ट। व्याधि। हानि। पीड़ा। चोट। दाऽ (अ०)।

आफ़ताब–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० आफ़ताबी] सूर्य।

आफ़ताब परस्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सूरजमुखी। सूर्यमुखी। (२) गिरगिट। कृकलास।

आफ़ताबा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] गड़ुवा। आबताबा।

आफ़ताबी–वि० [फ़ा०] (१) गोल। वृत्ताकार। (२) सूर्य सम्बन्धी। सौर।

आफ़ताबी गुलकन्द–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह गुलकन्द जो धूप में तैयार की जाय। आदित्य-पाक गुलाब खण्ड।

ऑफ़िऑक़्ज़िलोन-रेड-फ्लावर्ड–[अं० Ophioxylon red flowered] चाँदरा। नाग सुगन्धा। सर्पगंधा। दे० "छोटा चाँद" वा "धवल बरुआ"।

ऑफ़ऑकि्सलोन-सर्पेण्टिनम्–[ले० Ophioxylon-serpentinum] चाँदरा। रॉऊल्फ़िया सर्पेन्टिनम्। फा० इं० २ भ०। दे० "छोटा चाँद" वा "धवल बरुआ"।

आफ़िक़ः–[अ०] कोख। कुक्षि। ख़स्र, ख़ासिरः (अ०)। (Flank)

आफ़िक़ः–[अ०] वस्ति में से अश्मरी पकड़ने का यन्त्र। अश्मर्य्याहरणयन्त्र। (Trilope.)।

आफ़िक़तुल हसात–[अ०] वस्तिस्थ अश्मरी-छेदक-यंत्र। (Lithotrite.)।

आफिङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अफ़ीम। अहिफेन। श० च०।

आफ़ियत–संज्ञा स्त्री० [अ० आफ़िय्यत] शान्ति। विराम। कुशल क्षेम।

ऑफ़ियोराइज़ा-मङ्गोस–[ले० Ophiorrhiza-mungos, *Linn.*) सर्पाक्षि। सरहटी। फा० इं० २ भ०।

ऑफ़िशल–[अं० Official] सम्मत। प्रामाणिक। शास्त्रीय। मुस्तनद। क़ानूनी। रस्मी।

ऑफिशल-डाइल्युटेड-अल्कुहाल्ज़–[अं० Official diluted alcohols] प्रामाणिक-जल-मिश्रित मद्य-सार। वह जलमिश्रित मद्यसार जो ब्रिटि फार्माकोपिया में प्रविष्ट है। वे निम्न हैं—

(१) मद्यसार (Alcohol) ७० प्रतिशत—
निर्माण-क्रम—१०० फ्लुइड-आउंस ऐल्कुहॉल (९० प्रतिशत) में ३१·०५ फ्लुइड-आउंस परिस्रुति-जल मिला लेवें। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ·८९०० होता है।

(२) मद्य-सार (Alcohol) ६० प्रतिशत—
निर्माण-क्रम—१०० फ्लुइड आउंस ऐल्कुहॉल (९० प्रतिशत) में ५३·६५ फ्लुइड आउंस परिस्रुत जल मिश्रित करें। इसका सापेक्षिक गुरुत्व ·९१३५ होता है।

(३) मद्य-सार—(Alcohol) ४५ प्रतिशत—
निर्माण क्रम—१०० फ्लुइड आउंस ऐल्कुहॉल (९० प्रतिशत) में १०५·३४ फ्लुइड आउंस परिश्रुत जल मिला लेवें। इसका सापेक्षिक गुरुत्व ·९४३६ होता है।

(४) मद्य-सार—(Acohol) २० प्रतिशत—
निर्माण-क्रम—१०० फ्लुइड आउंस ऐल्कुहॉल

(९० प्रतिशत) में ३५५·८४ फ्लुइड आउंस परिश्रुत जल मिला लेवें। इसका सापेक्षिक भार. ·९७६० होता है।

ऑफ़िसल-फार्माकोपीआ–[अं० Official pharmacopœa] निर्णीतयोग। सम्मत योग-संग्रह। प्रामाणिक-योग-शास्त्र। क़राबादीने मुस्तनद-(फ़ा०)।

ऑफ़िसल-फार्मेसी–[अं० Official pharmacy] सम्मत-योग-कल्पना। प्रामाणिक-औषधि-निर्माण।

ऑफ़िशिनल-कार्थमस–[अं० Officinal carthamus] कड़। बर्रे। कुसुम्भ। कुसुम।

आफ़िस्ती–[फ़ा०] मरुआ। दौना। (Origanum Marjorana, *Linn.*)

आफ़ीन,आफिम्–[बं०] अहिफेन। अफीम।

आफीन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अफीम। अहिफेन। वै० निघ०।

आफीम–[बं०] अहिफेन। अफीम।

आफुक,–आफूक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अहिफेन। अफीम। भा० पू० १ भ०। दे० "पोस्ता"।

आफू–संज्ञा स्त्री० [हिं० अफीम मि० मरा० आफू] अफीम। अहिफेन।

ऑफेलिक एसिड–[अं० Ophelic acid] एक प्रकार का तेज़ाब, जो चिरायते के सत्व में पाया जाता है। फा० इं० २ भ०। दे० "चिरायता"।

ऑफेलिया-अंगष्टि-फोलिया–[ले० Ophelia angustifolia, *Don.*) पहाड़ी-चिरायता। यह चिरायते की प्रतिनिधि है।

ऑफेलिया-चिरेटा–[ले० Ophelia chirata] किरात। एक प्रकार का चिरायता। दे० "चिरायता"।

ऑफेलिया-मल्टीफ्लोरा–[ले० Ophelia multiflora, *Dalz.*] सिलाजीत (द०)। एक प्रकार का चिरायता। दे० "चिरायता"। फा० इं० १ भ०।

ऑफ्टर-बर्थ-वीड–[अं० After-birth-weed] पेन्सिल फ्लावर (Pencil-flower.)। स्टाइलो सैन्थीस-एलेटियर (Stylosanthes elatior, *Swartz.*)–ले०।

शिम्बी वर्ग

(*N. O. Leguminosoe*)

उत्पत्ति स्थान—मध्य, दक्षिणी रियासत।

प्रयोगांश—क्षुप।

औषधि-निर्माण तथा मात्रा—क्षुप चूर्ण–२० से ६० ग्रेन (१०-३० रत्ती)।

तरल सत्व–१० से २० मिनिम (बूँद) प्रसव से पूर्व दिन में ३ बार।

उपयोग—यह जरायु-अवसादक, बलकारक और प्रारंभिक प्रसवकारक है। यह गर्भाशय के क्षोभ तथा गर्भ के पश्चात् काल में होनेवाली अनियमित वेदना को दूर करता है। यह जरायुके तंतुओं को स्वस्थता प्रदान करता है। अस्तु, प्रसवकारी प्रयत्न में वृद्धि करता और शिशु संजनन में सुविधा उपस्थित करता है। यह स्वाभाविक गर्भपात की प्रवृत्ति को भी रोकता है। पी० वी० एम०।

आफ्तः–[अ० आफ़्तः] (१) भेड़। मेष। (A sheep)। (२) बकरी। छाग। (A goat.)।

आफ़्ताब–[फ़ा०] सूर्यं। सूरज।

आफ़्ताब परस्त–[फ़ा०] (१) सूर्यमुखी। सूरजमुखी। (२) गिरगिट।

ऑफ़्थैल्मिक–वि० [ले० Ophthalmic] नेत्र सम्बन्धी। आँख का।

आफ्थैल्मिक-डिस्क्स–संज्ञा पुं० [अं० Ophthalmic discs.] एक डॉक्टरी औषध, जिसके प्रत्येक डिस्क में $\frac{१}{५००}$ से $\frac{१}{२००}$ ग्रेन हायोसीन-हाइड्रोब्रोमाइड पाया जाता है। दे० "अजवाइन खुरासानी।"

आफ़्थैल्मिक बार्बरी–संज्ञा स्त्री० [अं० Ophthalmic barberry] दारुहल्दी। दारुहरिद्रा। रसाञ्जन। फा० इं० १ भ०।

आफ़्थैल्मिक-रिऐक्शन–संज्ञा पुं० [अं० Ophthalmic reaction] चाक्षुषीय प्रतिक्रिया।

आफ्फेङ्ग-सिख़्ट–[जर० Affenge sict] बकुल। मौलसरी।

आफ़ूसी–संज्ञा स्त्री० [अ० आफ़ूसी] माज़ू। मायाफल। माज़ूफल।

आब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] जल । आप । अप । पानी । दे० "पानी" ।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आभा । चमक । द्युति । कान्ति । तड़क भड़क । झलक ।

आब-आहक-संज्ञा पुं० [फ़ा०] चूने का पानी । चूर्णाम्बु ।

आब-आहक-शकरी-[फ़ा०] चूने का मीठा पानी । चूर्णमिष्टाम्बु । Liquor calcis saccharatus.

आब-आहन-[फ़ा०] गर्म लोहे से बुझाया हुआ पानी । लौह-जल ।

आबक़-[अ० आबक़] चिड़िये का वह बच्चा जिसने उड़ना आरम्भ किया हो ।

आब-कद्दू-संज्ञा पुं० [फ़ा०] कद्दू का पानी ।

विधि—कद्दू (लौकी) को कपड़-मिट्टी करके भाड़ में रखें । जब मिट्टी लाल होजाए, पर कद्दू न जले, तब उसे निकाल लें । ठंडा होने पर मिट्टी हटाकर पानी निचोड़ लें, इसे ही "आब कद्दू" कहते हैं ।

आब-काफ़ूर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] कपूर-जल । अर्क-कपूर । कपूरार्क । केम्फर वाटर Camphor-water-अं० । अक्वा केम्फोरा Aqua camphora-लै० ।

आब-क़ामः-[फ़ा०] दे० "काँजी" ।

आब-कार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] मद्य बनानेवाला । कलवार । कलाल ।

आब-कारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह स्थान जहाँ मदिरा चुआई जाती हो । शुण्डा । मैख़ाना । शराब-खाना । हौली । कलवरिया । भट्टी । (२) मादक वस्तुओं से सम्बन्ध रखनेवाला सरकारी मुहकमा ।

आबकारी-ओपियम-संज्ञा पुं० [फ़ा० आबकारी+अं० ओपियम्] एक प्रकार का अफीम । फा० इं० १ भ० ।

आब-कासनी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] कासनी का फाड़ा हुआ पानी । दे० "आब-मकोय" ।

आब-क्लोरोफ़ॉर्म-संज्ञा पुं० [फ़ा० आब+अं० क्लोरोफ़ॉर्म] सम्मोहनी-द्रव । अर्क क्लोरोफॉर्म । Chloroform-water (Aqua-chloroformi) दे० "क्लोरोफॉर्म" ।

आब-खयार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] खीरे का पानी ।

निर्माण-क्रम—आब-कद्दू के समान ।

आब-ख़यार्ज़ः-संज्ञा पुं० [फ़ा०] खीरे का पानी ।

निर्माण-क्रम—आब-कद्दू के समान ।

आब-ख़िस्त-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) आब-जौ । (२) आबदान । तबूज़ ।

आब-ख़ोर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] खीरा । इं० हैं० गा० ।

आब-ख़ोरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पानी पीने का बरतन । गिलास । (२) प्याला । कटोरा ।

आबगीना-[फ़ा० आबगीनः] (१) काँच । शीशा । आइना । दर्पण । (२) शीशे का गिलास । (३) हीरा । हीरक ।

आब-गूँ-[फ़ा०] निशास्ता । श्वेतसार । मग्ज़-गन्दुम ।

आब गोश्त-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गोश्त का पानी । मांस-रस । ह़सा । शोरबा । यख़्नी ।

नोट—इससे वास्तव में वह पानी अभिप्रेत है, जो मांस को कूटकर उत्ताप पहुँचाने से टपकता है । कोई कोई आब यख़्नी को और कोई कोई मांस के क्वथित जल को आब-गोश्त कहते हैं और माउल्लह़्म् मांस के परिश्रुत अर्क का नाम रखते हैं ।

आब-चश्महाये-जारी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बहते हुये सोतों का पानी ।

आबचश्मा-[फ़ा०] नालों का पानी । सोते का पानी ।

आबज़न-[मु अ०]
आबज़न रतिब-[अ०] } (१) औषधियों के क्वाथ अथवा केवल जल में रोगी को बिठाना ।

रीति—आबज़न कराने के लिये एक बड़ा बरतन लेना चाहिये । गुर्दा (वृक्क), वस्ति, जरायु तथा आंत्र सम्बन्धी रोगों में रोगी को नाभि-पर्यन्त और आमाशय, वक्ष तथा पार्श्व रोगों में स्कंध पर्यन्त और सम्पूर्ण शरीरस्थ व्याधि में ग्रीवा पर्यन्त आबज़ान कराना चाहिये । ह़म्माम-ज़ुलूसी-अ० । Sitz-bath-अं० । (२) ताँबे का लगिन स्नान ।

आब-ज़मज़म-संज्ञा पुं० [फ़ा०] ज़मज़म (काबे के पास एक कूँआ है) का पानी ।

आबजारी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बहता पानी। नदी। नाला। (२) बहते हुए आँसू।

आब·ज़ुलाल–संज्ञा पुं० [फ़ा०] दवा का निथरा हुआ स्वच्छ पानी। औषधियों को रात भर जल में भिगोकर प्रातः बिना मले ऊपरसे पानी निथार लिया जाय, तो उसको आबज़ुलाल कहते हैं। निथारा हुआ साफ पानी। अच्छा और साफ़ पानी।

आबजोश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] गरम पानी के साथ उबाला हुआ मुनक्का। दे० "अङ्गूर"।

आब-जौ–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जौ का पानी। यवाम्बु। (Barley water)। (२) तबूंज। इं० हैं० गा०।

आब-त्रिफला–संज्ञा पुं० [सं० त्रिफला+फ़ा० आब=पानी] हड़, बहेड़ा और आमला लेकर जौकुट कर चौगुने जलमें भिगो रखें। थोड़ी देर बाद छानलें। यही आब त्रिफला या त्रिफला का पानी है।

आबदस्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मलोत्सर्ग के उपरांत गुदा धोना। (२) गुदा धोने का पानी।

आबदान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] तबूंज। हिन्दमाना। हिरमाना। (Water-melon)। इं० हैं० गा०।

आब-नज़ूल–संज्ञा पुं० [फ़ा० आबेनुज़ूल] फोते में पानी उतरने का रोग। अंडवृद्धि। कुरंड।

आबनुक़रा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चाँदी का पानी। (२) पारा।

आबनूस–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० आबनूसी] तेंदू की जाति का एक सदाबहार पेड़ जो भारत के जंगलों में बहुत होता है। इसके वृक्ष बहुत ऊँचे होते हैं। पत्ती सनोबर की पत्ती की तरह, पर उससे कुछ बड़ी होती है। फल अंगूर की तरह पिलाई व ललाई लिये किंचिन्मधुर और बिकठा होता है। फूल और बीज मेंहदी के बीज और फूल की तरह होता है। यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है, तब इसके हीर की लकड़ी बिलकुल काली एवं मसृण होती है। यही काली लकड़ी 'आबनूस' के नाम से बिकती है और बहुत वज़नी होती है।

स्वाद में कुछ तेजी लिए ईषत्तिक्त एवं फीका अर्थात् बदमज़ा होता है। जलाने से सुगंध देता, परन्तु बिना जलाए कुगंधी होता है। सर्वोत्तम वह समझा जाता है जो अत्यन्त काला दीप्तिमान, मसृण, वज़नी, समतल, जिसमें रंगीन रेखाएँ न हों, आग पर डालने से जिसमें से सुगंध आए और जो स्वाद में प्रदाहक एवं कषाय हो और पानी में डालने से डूब जाय। असली और नकली आबनूस की पहचान यह है कि जो स्वाद, में किंचित् प्रदाहक एवं कषाय हो तथा जिसकी गीली ताजी लकड़ी जलाने से सुगंधि आए, वह असली है, इससे भिन्न होने पर नकली समझना चाहिये।

पर्य्या०—डायोस्पाइरॉस एबिनेष्टर Diospyros Ebinaster, डायोस्पाइरॉस एबीनम् Diospyros ebenum, *Koenig*. (ले०)। एबॉनी Ebony (अं०)।

तिंदुक-वर्ग

(*N. O. Ebenaceae*)

उत्पत्ति-स्थान—भारत-वर्ष तथा फारस इत्यादि।

प्रयोगांश–सूखी लकड़ी की हीर (आबनूस) का बुरादा एवं फल इत्यादि।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यूनानीमतानुसार–प्रकृति—शेख़ बूअलीसीना ने इसे द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष लिखा है। हकीम अंताकी और इब्न बेतार के अनुसार तृतीय कक्षा के प्रारम्भ में उष्ण और द्वितीय कक्षा के अंत में रूक्ष है। हानिकर्त्ता—आमाशय को विशेषतः आमाशय नैर्बल्य में। दर्पनाशक–बबूल का गोंद (समग़ अरबी) और शहद उसके बराबर वा कुछ कम। प्रतिनिधि—बेर की लकड़ी समान भाग वा न्यूनाधिक वा भारतीय तेंदूके वृक्ष की पुरानी लकड़ी की हीर। विशिष्टगुण—आँख के प्रायः रोगों में इसका सुरमा अत्युपयोगी एवं परीक्षित है।

मात्रा—(वयस्क) ७ मा० से १०॥ मा० तक (२ दिरम से ३ दिरम तक)। (साधारण) ३ मा० से ५ मा० तक (१ दिरम से १॥ दिरम तक)।

मीर मुहम्मद हुसेन—यह तारल्यजनक, निर्मलताजनक, मूत्रप्रवर्त्तक, वस्तिस्थ अश्मरीछेदक,

वायुनाशक तथा प्लीहास्थित अवरोध का उद्घाटक है। यदि इसे हरे बारतंग के पानी में हल करके माथे पर लगाएँ और नाक में सुड़कें तो, नक्सीर बन्द हो। इसका सुरमा रतौंधी को दूर करता है। इसे ख़ूब महीन पीसकर आँख में छिड़कने से यह हलकी फूली, आँख से पानी आना (दम्अ़ः), आँख की खाज और रूक्ष नेत्राभिष्यंद में उपयोगी और नेत्ररक्षक है, पलकें उगाता एवं सद्योव्रण के ख़ून को बन्द करता है। गुले रोग़न और अंडे की सफेदी के साथ जले हुये स्थान पर इसका प्रलेप करने से लाभ होता और दाह शांत होता है। शराब में क्वथित कर कंठमाले पर लगाना उपकारी है। (तालीफ़ शरीफ़ी) यह रक्तोष्माहर, पुराने ज़ख्मों का अभिशोषक एवं आर्द्र कण्डू (तर ख़ारिश) में लाभकारी है। इसके सूखे फलों का चूर्ण अतिसार, श्वेतप्रदर और स्त्री-पुरुष के शिश्न मूलग्रन्थि-स्राव (वदी), प्रोष्टेट ग्रंथि-स्राव (मज़ी) एवं शुक्र को रोकने की उत्तम औषध है। ख़ूब परिपक्व होने पर यह खासा काले रंग का होता है। इसका बुरादा औषध के काम आता है। (मख्ज़नुल् अद्वियः)

आबनूसी–वि॰ [फ़ा॰] (१) आबनूस कासा काला। अत्यन्त श्याम। गहरा काला। (२) आबनूस का। आबनूस का बना हुआ।

आबनूसे-हिन्दी–संज्ञा पुं॰ [अ॰, फ़ा॰] तेन। गाब। तेंदू। तिन्दुक। दे॰ "तेंदू"।

आबनैज़ारहा–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] बाँस के जंगल का पानी।

आबबिरञ्ज-ज़ारहा–[फ़ा॰] धान के खेत का पानी।

आब-मकोय व कासनी–[फ़ा॰] मकोय और कासनी का पानी।

विधि—मकोय अथवा कासनी की हरी पत्तियों को कूटकर पानी निचोड़ लें। इसके उपरांत एक कलईदार देगची में डालकर इतना पकाएँ कि उसका हरा वा लाल अंश पृथक् हो जाए। इसके बाद साफ़ पानी छानलें। यही पानी "आबकासनी" या "आबमकोय" मुरव्वक़ ('फाड़ा हुआ') कहलाता है।

नोट—इसी प्रकार से अन्य हरी बूटियों के पत्तियों का पानी फाड़कर निकाला जाता है।

आब-मीना–[फ़ा॰] काँच। शीशा।

आबरला–[फ़ा॰] अज्ञात।

आबरवाँ–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] (१) बहता पानी। (२) नदी। नाला। (३) चलते हुये आँसू।

आबरे–[का॰] सफ़ेद सेम। राजशिम्बी। श्वेत शिम्बी।

आबरेशम–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] अबरेशम। वि॰ दे॰ "अबूरेशम"

आबरेशमख़ाम–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] कच्चा रेशम का कोआ।

आबरेशम-ख़ाममुक़र्रिज़–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] काटा हुआ कच्चा रेशम। कैंची से कतरकर साफ़ किया हुआ कच्चे रेशम का कोआ।

आबरेशम-मुह़म्मस़–[अ॰] भुना हुआ अब्रेशम। इसके भूनने की विधि "तह़मीस" में देखो।

आबल:–[फ़ा॰] (१) फफोला। फोला। छाला। फोस्का। विस्फोटक। फोटका। झाला। (Blister, Bulla, Vesicle.)। (२) शीतला। मसूरिका। चेचक। माता।

नोट—चेचक तुर्की भाषा का शब्द है। इस रोग को फ़ारसी में आबल: तथा अरबी में जुद्री कहते हैं। (Small pox, Variola.)

आबल:अंगेज़–[फ़ा॰] त्वचा पर छाला या फफोला डालनेवाली ओषधि। मुनफ़्फ़िक़–अ॰। फोस्काकारक। विस्फोटकारक। (Vesicant.)

आबल: अंगेज़ अद्वियः–[फ़ा॰] वे ओषधियाँ जिनके प्रयोग से फफोले पड़ जायँ। मुनफ़्फ़िक़ात–अ॰। फोस्काजनक ओषधियाँ। (Blisters.)

आंबल: अंगेज़ क्लोडीन–[मुअ॰] फोस्काजनक क्लोडीन। (Blistering collodium.) दे॰ "कैन्थेरिस"।

आबल: अंगेज़-सस्तर–[फ़ा॰] फोस्काजनक प्रस्तर। दे॰ "कैंथेरिस"।

आबल:-फ़िरंग–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] (Syphilis.) आबलहे फ़िरंग। बाद फिरंग।। आतशक। दे॰ "आतशक"।

आवला-संज्ञा पुं० [फ़ा० आबल:] दे० "आबल:"।

आबलूज-[फ़ा०] क़न्द मुकर्रर।

आव-लेमूँ-[फ़ा०] नीबू का स्वरस।

आबल्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निर्बलता। कमज़ोरी।

आवशोरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) यवक्षार से शुद्ध किया हुआ जल। जो पानी शोरे से छना हो। (२) जम्बीर के रस और शर्करा से बना हुआ शर्बत। नीबू के अर्क़ और चीनी से तैयार होनेवाला शर्बत।

आवहराम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अशुद्ध वा त्याज्य जल। नापाक पानी। (२) आसव। शराब।

आवरत-[फ़ा०] तुरञ्ज का गूदा।

आवाध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीड़ा। दर्द। 'आबाधे पीड़ायाम्।' (सिद्धांत कौमुदी)

वि० [सं० त्रि०] पीड़ाशून्य। दर्दरहित।

आबाधा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) त्रिभुज के आधार का खंड। लम्ब। रेखा विशेष। (२) पीड़ा। दर्द। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक भेद से यह तीन प्रकार का होता है।

आबार-[फ़ा०] सुफ़ेदा। जलाया हुआ सीसा। सीसक भस्म।

आबाल्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शैशव के संग समाप्त होनेवाली अवस्था। जो उम्र बचपन के साथ ख़तम हो।

आबिक़-[रासायनिक] पारा। पारद। (Mercury.)

आबिल-दे० "आविल"।

आबिल-कन्द-संज्ञा पुं० दे० "आविलकंद"।

आ़बिस-[अ०] (१) सिंह। शेर। (२) क्रुद्ध। कुपित।

आबी-वि० [फ़ा०] (१) पानी का। जलीय। जलसंबन्धी। आप्य। (२) पानी में रहनेवाला। जलचर। (३) रंग में हलका। फीका। (४) पानी के रंग का। हलका नीला या आसमानी। (५) जल-तटनिवासी। कूलेचर। (६) पानी से पैदा होनेवाला। वारिज।

संज्ञा पुं० (१) खारी नमक जो सूर्य के ताप से जल उड़ाकर बनता है। समुद्र लवण। साँभर नमक। (२) जल के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसकी चोंच और पैर हरे होते हैं और ऊपर के पर भूरे और नीचे के सफ़ेद होते हैं। (३) एक प्रकार का अंगूर। विही नामक प्रसिद्ध फल। बिह।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिक्त भूमि। सींची हुई ज़मीन।

आबीका-[?] कुकरौंधा। (Blumea Lacea) लु० क०।

आबी-कैण्डू-संज्ञा पुं० [फ़ा० आबी+कैंडू] यह कैण्डू जाति का एक निर्विष सर्प है। दे० "कैंडू"।

आबीघोड़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा० आबी+हिं० घोड़ा] दरियाई घोड़ा।

आबीरोटी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० आबी+हिं० रोटी] पानी लगा लगाकर बननेवाली रोटी। पानी के हाथ की चपाती।

आबीलु-[?] एक उद्भिज्ज जिसके पत्ते विषखपरे के पत्तों की तरह और बीज गाजर के बीजों के सदृश और जड़ शलगम के समान होती है। यह सुस्वादु होता है और नदी के तटों पर उत्पन्न होता है। प्रकृति--द्वितीय कक्षा में गरम और रूक्ष है। गुण--पेशाब खुलकर लाता है और पिलही की सूजन को मिटाता है। मात्रा—७ माशे।

आबूस-[यू०] हरा तूतिया। नीला-थोथा। तुत्थ।

आबे-एस्ताद:-[फ़ा०] स्थिर जल। ठहरा हुआ पानी।

आबे-कद्र-व-ग़लीज़-व-फ़ासिद-[फ़ा०] गदला पानी। मैला पानी।

आबे-कारेज़-[फ़ा०] कारेज़ का पानी।

नोट--कारेज़ उन नहरों या नालों को कहते हैं जिनको कृषक एवं मालीगण ऐसी मुख्य विधि द्वारा भूमि के भीतर खोदते हैं, कि उनका जल पृथ्वी के ऊपर बहने लगता है।

आबेकिब्रीती-[फ़ा०] वह पानी जो गन्धक की खान से वा ऐसी भूमि से निकले जिसमें गन्धक के अवयवों का मिश्रण हो।

आबेक़ीरी-[फ़ा०] वह पानी जो क़ीर (अलकतरे) की खान से निकले।

आबेकुम्मः-[फ़ा०] एक प्रकार का ग़लीज़ और काले रंग का पानी जो एक प्रकार की मछली के पेट से निकलता है।

आबे-ख़ाकस्तर-[फ़ा०] वह पानी जिसमें चन्द बार राख डालकर जोश दिया गया हो और जिसे साफ़ करके व्यवहार में लाएँ।

आबे-ग़लीज़-[फ़ा०] गदला पानी। आबे-फ़ासिद।

आबे-गोश्त-[फ़ा०] मांसरस। गोश्त का पानी। आबगोश। दे० "यख़नी"।

आबे-चाह-[फ़ा०] कूएँ का पानी। दे० "कूप जल"।

आबे-ज़िफ़्ती व क़ीरी-[फ़ा०] वह पानी जो ज़ुफ्त या क़ीर (अलकतरे) की खान से निकलता है।

आबेजौ (जोशानीदः)-[फ़ा०] जौ का काढ़ा कर विशेष रीतिसे निकाला हुआ पानी। इसे माउश्शईर वा यवाम्बु भी कहते है। आश जौ। (Barley water) दे० "माउश्शईर"।

आबे-तल्ख़-[फ़ा०] कड़ुआ पानी। तीता पानी।

आबे-दन्दाँ-[फ़ा०] (१) एक प्रकार का अमरूत वा अनार। (२) एक प्रकार का हलुआ।

आबे-दरियाई-[फ़ा०] दरिया का पानी। नदी का जल।

आबे-दरियाये-शोर-[फ़ा०] सामुद्र जल। समुद्र का पानी।

आबे-दवा-[फ़ा०] औषधाम्बु। दवा का पानी। औषधीय जल। (Medicinal-water)

आबे-दहन-[फ़ा०] थूक। लाला। लार।

आबे-दारु-[फ़ा०] मोमियाई।

आबे-नहर-[फ़ा०] नहर का पानी। (Cannal water.)

आबे-नहरहाये-जारी-[फ़ा०] बहती हुई नहरों का पानी। बहते हुए नालों का पानी।

आबे-नीम-गर्म-[फ़ा०] थोड़ा गरम पानी। गुनगुना पानी। ईषदुष्ण जल। अर्धोष्ण जल। कोष्ण जल।

आबे-नैज़ारहा-व बिरञ्ज-ज़ारहा-[फ़ा०] बाँस के जङ्गल एवं धान के खेतों का पानी।

आबे-पनीर-[फ़ा०] (Cheese-water.) पनीर का पानी। माउज्जुब्न। फटे हुये दूध का पानी।

आबे-फ़ातिर-[फ़ा०] गुनगुना पानी। कोष्ण जल।

आबे-फ़ासिद-[फ़ा०] (Muddy or dirty water.) गदला पानी। अस्वच्छ जल।

आबे-बाराँ-[फ़ा०] वृष्टि-जल। मेघजल। मेंह का पानी। (Rain-water.)

आबे-बिसयार-गर्म-[फ़ा०] बहुत गर्म पानी। अत्यन्त उष्ण जल।

आबे-बिसयार-सर्द-[फ़ा०] अत्यन्त शीतल जल। बहुत ठंडा पानी।

आबे-मअ्दन-फ़िल्लज़ात-[फ़ा०] धातुओं की खान का पानी। वह पानी जो धातुओं की खान से निकले।

आबे-मरवारीद-[फ़ा०] मोतिया-बिन्दु। नेत्र शुक्र गत रोग। नुज़ूलुल्-माऽ। (Cataract.) भभके से चुआया हुआ पानी।

आबे-मुक़त्तर-[फ़ा०] टपकाया हुआ पानी। परिश्रुत-वारि। (Distilled-water.)

आबे-मुदब्बर-[फ़ा०] विशुद्ध जल। विशुद्ध-वारि। साफ़ किया हुआ पानी। (Purified-water.)

आबेर-[?] अज्ञात।

आबेल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी किसी के मत से विषखपरा (पुनर्नवा भेद) की तरह की एक जड़ है। इसका पौधा मौसिम बहार में उगता है। इसमें बहुत सी शाखाएँ होती हैं और इसके बीज गाजर के बीज की तरह होते हैं। (२) मतांतर से एक बूटी है, जिसकी जड़ शलगम की तरह होती है। दे० "आंबील"।

आबेशोर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] नमकीन वा खारापानी। क्षार-जल। समुद्र का पानी। आबशोरा।

आबे-हयात्-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अमृत। जीवन-वारि। (Nectar.) The-water of life. (२) राजा के पीने का पानी। (३) साफ़ ठंडा मीठा पानी।

आबे हुम्मात-[फ़ा०] उष्ण स्रोतों का पानी अर्थात् ऐसे गरम सोतों का पानी जिनसे गंधक, फिटकरी वा नौसादर आदि निकलते हैं।

आबोली-[मरा०] कटसरैया। कुरण्टक। पीयाबाँसा।

आबो-हवा-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जलवायु। पानी और हवा। (Climate.)

आॅब्टयूज़-लीव्हड माइम्युसोप्स-[अं० Obtuse-leaved mimusops] खिरनी। राजादन। खीर खजूर-बं०।

आब्द-वि० [सं० त्रि०] (१) जो बादल से पैदा हो। मेघजात। (२) मेघ संबंधी। बादल का।

आब्दिक-वि० [सं० त्रि०] वार्षिक। सालाना। सांवत्सरिक।

आब्दिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इमली। अमली। तिन्तिड़ी। श० र०। दे० "अम्लिका"।

आब्स्ल्यूट-आल्कुहॉल-[अं० Absolute alcohol.] वह शराब जिसमें पानी का अंश न हो वा बहुत अल्प हो। विशुद्ध मद्यसार। ख़ालिस शराब। Pure Rectified Spirit.

आभ-संज्ञा स्त्री० [सं० आभा] शोभा। कांति। दीप्ति। द्युति। आभा।

संज्ञा पुं० [फ़ा० आब] पानी। जल।

संज्ञा पुं० [सं० अभ्र] आकाश।-डिं०।

आभय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला अगर। (२) कुट नाम की औषधि।

आभरण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आभरित] (१) परवरिश। सम्यक् पोषण। (२) भूषण। अलङ्कार। गहना।

आभा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बबूल का पेड़। बब्बूल। कीकर। भा० पू० १ भ० वटादि व०। च० द० भग्न० चि० वा० व्या० एरण्ड-पाक। भा० त्रिकशूल-चि०। (२) महाशतावरी। बड़ी शतावर। (३) कान्ति। प्रभा। ज्योति। द्युति। चमक। दीप्ति। (४) प्रतिबिंब। छाया। झलक। (५) गुग्गुल।

नोट—समासांत में आभा का 'आभ' होजाता और सदृश अर्थ होता है। जैसे—हेमाभ=हेम सदृश।

आभा-गुग्गुल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक आयुर्वेदीय औषधि जिसका व्यवहार टूटी हुई हड्डी के जोड़ने में होता है। योग इस प्रकार है—सतावर (आभा), आमला, हड़, बहेड़ा, सोंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक तुल्य भाग सबके बराबर शुद्ध गुग्गुल मिलाकर यथा-विधि सेवन करें। च० द० भग्न-चि०। वंग से० सं० भग्न-चि०।

आभादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कटिग्रह में प्रयुक्त योग—आभा (बड़ी सतावर), रास्ना, गिलोय, सतावर, सोंठ, सौंफ, असगन्ध, हाऊबेर, विधारा, अजवाइन, अजमोद प्रत्येक समान भाग ले यथा-विधि चूर्ण करें।

मात्रा—३ मा० से १ तो०।

गुण—इसके उपयोग से कटिग्रह, गृध्रसी, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह तथा शरीरस्थ सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं। वंग से० सं० कटिग्र०-चि०। यो० र० वा० व्या०।

आभास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सदृश। प्रतिबिम्ब। अभिप्राय। दीप्ति-दोष। अवतरणिका। (२) पता। संकेत। (३) मिथ्याज्ञान।

आभिचारिक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जादू। अभिचार।

वि० [सं० त्रि०] अभिचार सम्बन्धी। शाप का।

आभिजन-वि० [सं० त्रि०] जन्म सम्बन्धी। वंशपरम्परादागत।

आभिजात्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कौलीन्य। कुलीनता। शराफ़त।

आभिधानिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोषकार। कोष रचयिता।

वि० [सं० त्रि०] कोष सम्बन्धी।

आभिमुख्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सामना। सम्मुखत्व। सामने होने का भाव।

आभीर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आभीरी] (१) अहीर। ग्वाला। घोषी। गोप। (२) भील।

आभीरपल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ग्वालों की वस्ती। अहीरोंका गाँव।

आभील-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीर की पीड़ा। दु:ख। कष्ट। वै० निघ०।

आभुग्न-वि० [सं० त्रि०] (१) आकुंचित। मुड़ा हुआ। (२) कुछ टेढ़ा। ईषद्वक्र।

आभूषण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आभूषित] गहना। अलङ्कार। भूषण।

आभोग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुख आदि का पूरा अनुभव।

आभ्यन्तर,-आभ्यन्तरिक–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आभ्यन्तर] (१) भीतर का। अन्दर का। अंतरंग। आन्तर। आन्तरिक। भीतरी। (Internal, inner.)। (२) मध्यवर्ती। बीच का। दरमियानी।

आभ्यवकाशिक–वि० [सं० त्रि०] जो खुली हवा में रहता हो।

आभ्यवहारिक–वि० [सं० त्रि०] खाद्य। खाने योग्य। (Edible) भोजनीय।

आभ्यासिक–वि० [सं० त्रि०] अभ्यास प्राप्त।

आभ्युदयिक–वि० [सं० त्रि०] अभ्युदय संबन्धी।

आम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) व्याधिमात्र। रोग। बीमारी। मे०। (२) मल-विषमता रूप रोग। रा० नि० व० २०। (३) खाए हुए अन्न का कच्चा, न पचा हुआ मल जो सफेद और लसीला होता है। अपक्वान्नजरस। सि० यो० अजी० चि० बृंद। जठराग्नि की दुर्बलता के कारण बिना पका हुआ और वातादि दोष द्वारा दूषित हुआ आमाशयगत रस नामक प्रथम धातु को "आम" कहते हैं। वा० सू० १३ अ०। दूसरे आयुर्वेदाचार्यों का यह मत है कि अत्यन्त बिगड़े हुए वातादिक दोष, जब आपस में मिल जाते हैं, तब आम की उत्पत्ति होती है। वा० सू० १३ अ०।

आमदोष में कर्तव्य

जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाले पाचन द्रव्य, स्नेहन और विधिपूर्वक स्वेदन प्रयोग द्वारा आमदोष को पकावें। फिर दोष की शुद्धि करनेके समय रोगी की शक्ति के अनुसार मृदु, मध्य या तीक्ष्ण वमन विरेचन द्वारा उनको पासवाले मार्ग द्वारा बाहर निकालने का यत्न करें। वा० सू० १३ अ०।

(४) वह रोग जिसमें आँव गिरती है। (५) छः प्रकार के अजीर्ण रोगों में से एक। आमाजीर्ण।

संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम का पेड़, आंब का पेड़ (हिं०)। आम्र वृक्ष (सं०)।

नोट—इसी प्रकार किसी भी आम्र–बोधक संस्कृत संज्ञा के साथ वृक्ष शब्द लगाने से आम के पेड़ का बोध होता है।

आमगाछ (बं०)। आमका झाड़ (द०)। शज्रतुल अंबज (अ०)। दरख़्ते अंबः, दरख़्ते नग़्ज़क (फ़ा०)। मैंगिफेरा इंडिका Mangifera Indica, *Linn.* (ले०)। मैंगोट्री Mango tree (अं०)। मैंग्वीर Manguier (फ्रा०)। मैंगोबॉम Mangobaum (जर०)। माङ्गामरम, मामरम (ता०)। मामिडि चेट्टु, माकंदमु, मावी (ते०)। माव्वमुच्चिमरम् (मल०)। माविना मरा (कना०)। अंबाच झाड़ (मरा०)। कैरिनु झाड़, अंबानुझाड़ (गु०)। अंबगहा (सिंगा०)। सिय-पिङ्, तिये-पिङ् (बर०)।

कलमी आम–पैवंदी आम्ब (हिं०)। पैवंदी आम, अल्फ़न (द०)। ग्राफ्टेड मैंगो Grafted mango (अं०)। वट्टु-मांग-पज़म, वट्टु मांग मरम (ता०)। वट्टु मामिडि पंडु (ते०)। अएटु-मविन हएणु (कना०)।

संज्ञा-निर्णायक नोट—आम की फ़ारसी संज्ञा अंबः संस्कृत अम्रः से व्युत्पन्न है और अरबी अंबज फ़ारसी अंबः का मुअर्रिब है। इसकी लेटिन, अँगरेजी, फरासीसी और जरमनी संज्ञाएँ तामिल मांगा की रूपांतर मात्र हैं। कहीं कहीं लिखा है, कि पुष्प रहित फलवाले को आम्र, फूले हुये को च्यूत और फूल फल दोनों से युक्त को सहकार कहते हैं। यथा—

"अपुष्पफलवानाम्रः पुष्पितश्च्यूत उच्यते।
पुष्पैः फलैश्च संयुक्तः सहकारः स उच्यते"॥

भल्लातकी वा काजू वर्ग
(*N. O. Anacardiaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—भारतवर्ष ही आम का जन्म स्थान है। यह ग्रीष्म-प्रधान देश का वृक्ष है। शीत-प्रधान देश में आम का पेड़ नहीं उगता। छोटा नागपुर और भारतवर्ष के दक्षिण में यह पहले आपही आप उगता वा जंगली होता था। हिमालय पर भूटान से कुमाऊँ तक इसके जंगली पेड़ मिलते हैं। उत्तर पश्चिम प्रांत को छोड़ अब सारे भारतवर्ष में इसके वृक्ष लगाए गए हैं और काफ़ी फूलते फलते हैं।

इतिहास—आम भारतवर्ष का प्रधान मेवा है। भारतीयों को इसका ज्ञान बहुत प्राचीन

काल से है। औषधों में इसका बहुल प्रयोग होने के साथ ही, धार्मिक कृत्यों में इसका काफी उपयोग दिखाई देता है। इसका टल्लो पंचपल्लव का एक उपादान है और आम का बौर पहले पहल बसंत में विष्णु भगवान पर चढ़ता है, शिवरात्रि को शिव पर। शास्त्रों के अनुसार यह कामदेव के पंचबाण का एक अंग है और भारतीय कवियों को अत्यंत प्रिय है। प्रवाद है कि, पहले आम पृथ्वी पर नहीं था। इंद्र को जीत रावण इसे स्वर्ग से ले आया था। चीनी बौद्ध यात्री फाहियान और हुएनसांग अपनी भारत की यात्रा में लिखते हैं कि, आम्रपाली नामक एक बौद्ध रमणी ने बुद्ध के वैशाली में ठहरते समय विश्रामार्थ एक आमका बाग भेंट किया था और स्मरणार्थ मंदिर बनवाया था। कहते हैं कि यह आम के पेड़ से पैदा हुई थीं। अरब निवासी अचार (Pickle) रूप से इसे बहुत पहले से जानते हैं। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय समुद्र यात्री इसे अरब देश के बन्दरगाहों तक पहुँचाये। इब्न बतूत ने, जो सन् १३३२ ई० में भारतवर्ष आया था, इसके उक्त प्रकारसे उपयोग किये जाने का उल्लेख किया हैं। अरबी अंबज़ तथा फ़ारसी अंभः संस्कृत अम्र वा आम्र से व्युत्पन्न हैं। मुसलमानी ग्रंथों में भी पक्वापक्वाम्र के गुण विषयक विस्तृत लेख उपलब्ध होते हैं।

वानस्पतिक वर्णन—एक बड़ा शाखी पेड़ जिसकी पत्तियाँ, साधारण लंबी-लंबी (आध से १ फुट तक), भालाकार और अनीदार गहरे हरेरंग की होती हैं और महुएके पत्तों की तरह एक डंठल के चारों ओर आवर्त्त रूप में होती हैं। आम का नूतन पल्लव,कोमल,गुलाबी तथा स्वादमें कषैला एवं सुरभित होता है। छाल बाहर से गहरे भूरे रंग की और लम्बाई के रुख़ विदीर्ण होती है, भीतर से पीताभ श्वेत वा लाली लिये होती है। यह स्वादमें कषैली एवं प्रिय गंधि युक्त होती है। माघमें इसमें पुष्प आना प्रारंभ होता है, और फागुन के महीने में इसके पेड़ मंजरियों वा मौरों से लद जाते हैं, जिनकी मीठी गंध से दिशाएँ भर जाती हैं। आम जब बौरने लगता है, तब उसके कोमल कल्लों एवं मंजरी पर एक प्रकार का विशेष गंधि चिपचिपा निर्यासवत् पदार्थ स्रावित होकर लगा रहता है। चैत के आरंभ में बौर झड़ने लगते हैं और सरसई (सरसों के बराबर फल) बैठने लगती है। जब कच्चे फल बैर के बराबर हो जाते हैं, तब वे टिकोरे कहलाते हैं। जब वे पूरे बढ़ जाते हैं और उनमें जाली (अस्थि) पड़ने लगती है तब उन्हें अँबिया वा केरी कहते हैं। डालसे तोड़ने पर इससे जो एक प्रकार का चिपचिपा मंद तारपीनवत् गंधमय द्रव (Gum resin) स्रावित होता है, वह अत्यन्त प्रदाहक होता है, और शरीर के जिस भाग पर लग जाता है, वहाँ पर जलन एवं प्रदाह पैदा करता और एक प्रकार का काला धब्बा डाल देता है। इसे चोपी वा चेंपी कहते हैं। आकार परिमाण के विचार से आम अनेक प्रकार का होता है। कभी कभी तो यह इतना छोटा होता है जितना पैवंदी बेर पर कभी कभी उससे भी छोटा देखने में आता है। और कोई इतना बड़ा होता है जितनी कि छोटी हाँडी वा बच्चे का शिर। इसीलिये उसे कहीं कहीं हँड़ियहवा आम कहते हैं। साधारणतः यह मुष्टिका प्रमाण का होता है। आकृति के विचार से भी यह बहुत प्रकार का होता है। पर साधारणतः गोल वा अण्डाकार जिसका नीचे का सिरा ऊपरवाले की अपेक्षा लघु दीर्घ एवं एक ओर को झुका होता है।

नोट—कच्चे फल का गूदा सफेद और कड़ा होता है और पक्के का गीला और पीला। अच्छी जाति के कलमी आमों की गुठली बहुत पतली होती है और उनका गूदा बँधा हुआ और गाढ़ा तथा बिना रेशे का होता है। आम का फल खाने में बहुत मीठा होता है। पक्के आम आषाढ़ से भादों तक बहुतायत से मिलते हैं। पक्के आम भी दो प्रकार के होते हैं–(१) पेड़ का पका और (२) पाल का पका। पेड़ का पका आम जो आप से आप चूता वा टपकता, टपका वा कोंपर कहलाता है। यह कुछ-कुछ खट्टा होता है। मालवा और दकन में इसे शाख़ का कहते हैं। परंतु अधपका वा गुराँयध आम जो वृक्षसे तोड़कर

भूसे,सूखी घास वा ढाककी पत्ती आदि में गाड़दिया जाता है और पकजाने पर निकाला जाता है, अत्यन्त मीठा होता है। इसे ही पाल का आम कहते हैं। वह आम जो पेंड़में ही पीला पड़ जाता है और चोट आदि लगने के कारण उस पर काला धब्बा पड़ जाता है, 'कोयली' व 'कोयलपद्दा' कहलाता है। ऐसा आम कुछ सुगन्धित व स्वादिष्ट होता है।

फल के भीतर एक बहुत कड़ी गुठली होती है, जिसके ऊपर कुछ रेशेदार गूदा चढ़ा रहता है। गुठली (Seed or stone) दोनों बगल से दबी हुई चिपटी, दीर्घाण्डाकार वा ईषत् वृक्काकार, अत्यन्त तंतुल और दृढ़ होती है और विभिन्न लंबाई चौड़ाई की प्रायः १॥ से २॥ इंच लंबी और १ से १॥ इंच तक चौड़ी होती है। खूब सूख जाने पर गिरी ढीली पड़ जाती है और ऊपरके कड़े छिलके वा जाली (Shell) के भीतर गतिशील जान पड़ती है। मींगी सर्वथा गुरदे के आकार की होती है। सूखने पर यह बहुत कड़ी सफेद वा भूरी १॥ से २ इंच लंबी और १ से १॥ इंच चौड़ी और दो दलों में विभक्त होती है। ताज़ी होने पर यह लगभग तिहाई और लंबी तथा चौड़ी, सफेद एवं नरम होती है। गिरी का स्वाद कुछ-कुछ कसैला एवं लुआबी होता है। इसमें किसी प्रकार की विशेष गंध नहीं पाई जाती। चाकू से जब किसी बालाम्र की गिरी काटी जाती है, तब गिरी और चाकू दोनों पर एक प्रकार का बैंगनी धब्बा पड़ जाता है। इससे प्रगट होता है कि गिरी में बहुत परिमाण में कषायाम्ल (Tannic acid) वर्तमान होता है।

आम के पेड़ से निकली हुई गोंद के छोटे विषम टुकड़े होते हैं। ये टुकड़े अत्यन्त सूक्ष्म, अश्रुबिंदुवत कणों के परस्पर मेल से बन जाते हैं। यह साधारणतः लाली लिये पीली वा रक्ताभधूसर हलका गुलाबी वर्ण की किंचित्लुआबी और जल विलेय होती है और इसमें से मंद सुगंधि आती है। सूखने पर इसके सूक्ष्म भंगुर टुकड़े होते हैं और यह विविध रंगों और आभःप्रभा की होती है।

केवल बीज से जो आम पैदा किए जाते हैं, उन्हें 'बीजू' कहते हैं। ये उतने अच्छे नहीं होते। इसीसे अच्छे आम क़लम और पैवंद लगाकर उत्पन्न किए जाते हैं, जो 'कलमी' कहलाते हैं। पहले गुठली ही रोपी जाती थी, उसके उपरांत यूरोप निवासियों से हम लोगों ने कलम लगाना सीखा। पैवंद लगाने की यह रीति है कि पहले एक गमले में बीज रखकर पौधा उत्पन्न करते हैं। फिर उस पौधे को किसी अच्छे पेड़ के पास ले जाते हैं और उसकी एक डाल उस अच्छे पेड़ की डाल से छाल उतारकर बाँध देते हैं। जब दोनोंकी डाल बिलकुल एक होकर मिल जाती है,तब गमले के पौधे को अलग कर लेते हैं। इस प्रक्रिया से गमलेवाले पौधे में उस अच्छे पौधेके गुण आजाते हैं। दूसरी युक्ति यह है कि अच्छे आम की डाल को काटकर किसी बीजू पौधे के ठूँठे में ले जाकर मिट्टी के साथ बाँध देते हैं। आम के लिए हड्डी की खाद बहुत उपकारी है। गिरी हुई दीवार की मिट्टी और सूखा कीचड़ और लोनी मिट्टी आम के पेड़ की जड़ में देने से वह बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ता है। ख़ुश्क और कंकरीली मिट्टी में भी यह पैदा होता है।

बीजू आम का पेड़ बहुत बड़ा और सतेज होता है, पर कलम का उतना बड़ा और तेजरकर नहीं होता।

नोट—निम्न बंगदेश में पौष मास के अन्त में आम बौरने लगता है और माघ मास तक प्रायः सभी वृक्षों में मौर निकल आते हैं। उस समय वृष्टि होजाने से फल मारा जाता है। माघ मास के अन्त और फागुन के महीने में सरसई बैठ जाती है। ज्येष्ठ महीने के अन्त में प्रायः सब आम पक जाते हैं। परन्तु भागलपुर, मालदह से पश्चिम सभी स्थान में माघ, फागुन के महीने में मंजरियाँ लगती हैं और आषाढ़ महीने में आम पकना प्रारम्भ होता है।

मालवप्रांत के किसी ग्राम में कवि कालिदास का जन्म हुआ था और वे उज्जयिनी में रहते थे। उन्होंने मेघदूत में आषाढ़ मास में आम पकने की बात लिखी है। अतएव, इन दो में चाहे जिस

स्थान पर उन्होंने मेघदूत की रचना की हो, आषाढ़ मास में वहाँ आम पक जाते थे। यथा—

"छन्नोपान्तः परिणत फलद्योतिभिः काननाम्रैः।"
(पू० मे० १८)

इस पर मल्लिनाथ ने लिखा है—

"आषाढ़े वनचूताः फलन्ति पच्यन्ते च मेघवातेन इत्याशयः।"

इसमें ऐसा सन्देह हो सकता है, कि और आम इससे पहले पक जाते हैं। किंतु वास्तव में देखा जाता है, कि कुछ पेड़ों के सिवा युक्त प्रदेश आदि देशों में आषाढ़ मास में ही आम पकते हैं। फलतः बङ्गाल देश से बहुत पीछे वहाँ आम पकते हैं।

कलकत्ते से दक्षिण और आसाम प्रभृति अनेक स्थानों में पकने के समय आम में कीड़े पड़ जाते हैं। कुछ आमों की अंठलियों में एक प्रकार के पतिंगे होते हैं। पका आम काटने पर वे फरसे उड़ जाते हैं। इस प्रकार कीड़े पैदा होनेसे आधा आम खराब नहीं होता। परन्तु अन्य प्रकार के कीड़े अत्यन्त छोटे होते हैं और पके आम में किलबिल किलबिल घूमते फिरते हैं। जिस आम में ऐसे कीड़े होते हैं। वह आम खाया नहीं जाता। ये सब कीड़े छोटे छोटे छेदों से आम के भीतर घुस जाते और उसके बाद बड़े होजाते हैं। (हिं० वि० को०)।

आम के बहुत भेद हैं; जैसे मालदह, बंबइया, लँगड़ा, सफ़ेदा, कृष्णभोग, रामकेला, पायरी, हापुस, फ़ज़ली, मोहनभोग, भोंट और तोतापरी इत्यादि। भारतवर्ष में दो स्थान आमों के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं—मालदह (बंगाल में) और मभगाँव (बंबई में)। मालदह आम देखने में सबसे बड़ा होता है, पर स्वाद में फीका होता है। बंबइया आम मालदह से छोटा है, पर खाने में बहुत मीठा होता है। लँगड़ा आम देखने में लम्बा लम्बा होता है। यह कच्चे पर अत्यन्त खट्टा, पर पकने पर सबसे मीठा होता है। बनारस का लँगड़ा प्रसिद्ध है। लखनऊ का सफ़ेदा भी मिठास में अपने ढँग का एक है। इसका छिलका सफ़ेदी लिए होता है, इसीसे इसे सफ़ेदा कहते हैं। दक्षिण भारतवर्ष में जो उत्तम क़लमी आम होते हैं वे ये हैं—क़ादरपसंद, मुलग़ोबा, पीतरपसंद, दिलपसंद और याक़ूते रुम्मानी। इनमें से प्रथम अर्थात क़ादरपसंद ही सर्वश्रेष्ठ है।

इसके अतिरिक्त एक प्रकार का आम और होता है, जिसे भदौंहा आम कहते हैं। यह सबसे पीछे भादों वा कुआर में पकता है। आम बारहमासी भी होते हैं।

वैद्यक में इतने प्रकार के आमों का उल्लेख मिलता है; जैसे, आम्र (साधारण आम), क्षुद्राम्र वा कोशाम्र (कोशंभ आम), राजाम्र; महाराजाम्र वा महाराजचूत और रसालाम्र (राजनिघंटुक महाराजाम्र)।

प्रयोगांश—फल (कच्चा तथा पका); गुठली (गिरी)—इसके चूर्ण की मात्रा—१० से ३० रत्ती; पत्र, मंजरी; छाल, चूर्ण की मात्रा—५से ३० रत्ती; जड़ और निर्यास।

रासायनिक संघटन—सूखे अमहर में जल २१%, जलीय सार ६१·५ %, काष्ठोज (Cellulose) ५%, अविलेय भस्म १.५% और विलेय भस्म १.६% होते हैं। विलेय भस्म में पोटाश, निरपेक्ष अम्लिकाम्ल (इमली का सत), निंबुकाम्ल (नीबू का तेज़ाब) और सेब का तेज़ाब (Malic acid) होता है। पक्व फल में पीत रंजक-द्रव्य, ईथर-विलेय हरित रंजक-पदार्थ (Chlorophyl product), कज्जलद्विगंधिद (Bisulbhpide of carbon), तथा बेंज़ोल और चिह्न मात्र मायिकाम्ल (Gallic acid) निंबुकाम्ल (Citric acid) और निर्यास होता है। छाल में कषायिन (Tannin) होता है। गिरी में मायिकाम्ल (Gallic acid) और कषायिन (Tannin), वसा, शर्करा, निर्यास और भस्म (राख) होती है। पके फलके गूदेमें निर्यास एवं निंबुकाम्ल (Citric acid) के साथ चिह्न मात्र मायिकाम्ल (Gallic acid) होता है। वृक्ष की गोंद में आर्द्रता और ७१% भस्म के अतिरिक्त शर्करा (Galactose तथा Pentoses) होती है। (Indian meteria medica—Dr. Nadkarni, *P. 528-9.*)

औषध-निर्म्माण—फल का शर्बत, मुरब्बा, पाक, अचार, कढी, लेह (चटनी), अमहर, अमावट, अमचूर इत्यादि खाद्य द्रव्यों के बनाने में व्यवहार होता है। छाल से चूर्ण और तरल-सार प्रभृति, सूखे फूल, पत्र एवं गिरी से क्वाथ, चूर्ण इत्यादि, औषधें प्रस्तुत होती हैं। इसकी पत्तियों की धूनी दी जाती है और उनकी नसों की भस्म प्रस्तुत होती है।

आम निम्न आयुर्वेदीय औषधों में पड़ता है—आम्रपाक, आम्रफलपानक, आम्ररसाकृति, आम्रलेह, आम्रादि चूर्ण, आम्र त्वचा स्वरस, आम्रादि कषाय, आम्रादिफांट, आम्रादि योग, आम्रादि यवागू, आम्रादि हिम, आम्रास्थ्यादि कषाय, अंगराग लेप।

आम का फल

आम्र, आंब (हिं०)। चूतक (मे०), पिकवल्लभ (भा०), आम्र (शब्द० र०), फलश्रेष्ठ, फलोत्पति, मृषालक (श०), चूत, रसाल, सौरभ, सहकार (अ०), माकन्द, षटपदातिथि (पूर्वा भाद्रपदा), मधुदूत, वसन्तद्रु, पिकप्रिय, स्त्री प्रिय, गन्धवन्धु, अलिप्रिय (शब्द र०), शरेष्ट, मदिरासख (ज०), पिक बन्धु, (त्रि०), केशवायुध, कोषी, परपुष्ट, महोत्सव (शब्दमा०); कामशर, कामवल्लभ, कामाङ्ग, कौरेष्ट, माधवद्रुम, भृङ्गाभीष्ट, सीधुरस, माधुली, कोकिलोत्सव, वसन्त दूत, अम्लफल, मोदाख्य, मन्मथालय, मध्वावास, सुमदन, पिकराग, नृपप्रिय, प्रियाम्बु, कोकिलावास, त्रिकराह्वय (रा० नि०), आम्र, कीरेष्ट, मदोद्भव, पिक बान्धव, वनपुष्पोत्सव, मधु, मधुफल, सुफल, वसन्तपादप, अतिसौरभ, मधूली, मदाढय (धन्व०)–सं०। आम (द०, बं०, गु०)। अंबज (अ०)। अंबः, नग़्ज़क (फ़ा०)। मैंगिफेरा इंडिका Mangifera indica, *Linn.* (the fruit of—) ले०। मैंगो Mango (अं०)। मांगा पज़्म, मांगा परम, मांगोस, माम्र (ता०)। मामिडि पंडु (ते०)। माव्व काय, माम् पलम, मावु (मल०)। माविना हराणु, (कना०)। अंबा (मर०, गु०, सिंगा०)। अंबो (गु०)। सियति (बर०)। माविन फल (का०)। मंगा (सिंगा०)। अंबो (कों०)। भरका (गोंडा)। उली (कोल०)।

गुणधर्म

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कच्ची अँबिया (बालाम्र) रक्तपित्तकारक और पित्तवर्द्धक है। पक्का आम वायु को जीतनेवाला, मांसवर्द्धक, शुक्रवर्द्धक एवं बलकारक है। (च० सू० २७ अ०)

टिकोरा (बालाम्र) वातपित्तकारक है और (बद्धकेसर) हृद्य, वर्णकर, रुचिकारक, रक्त, मांस तथा बल बढ़ानेवाला, कसैला, अनुरस, स्वादु, वातनाशक, वृंहण, गुरु और पित्त का विरोधी नहीं है। पक्का आम वीर्य्यवर्द्धक, वृंहण, मधुर, वल्य, गुरु एवं विष्टम्भी है और जीर्ण नहीं होता। (सु० सू० ४६ अ०)।

टिकोरा (बालाम्र) कसैला, अम्ल, चरपरा, रूक्ष तथा वात, रक्त एवं पित्तकारक है। अँबिया (सम्पूर्णाम्र) खट्टी, तथा रक्त, पित्त एवं कफकारक है और हृदय को हितकारी, वर्णकारक, रुचिकारक, रक्त, मांस तथा बलप्रद, कसैला, अनुरस, स्वादु, वातघ्न, वृंहण तथा भारी है। ख़ूब पक्का आम (सम्पक्काम्र) पित्तविरोधी, शुक्र विवर्द्धक, मधुर, बृंहण, वल्य, गुरु और विष्टम्भी तथा अजीर्णकारक (पाठांतर से—अजीर्ण नाशक) है। आम का रस (सहकार रस) हृद्य, सुरभि, स्निग्ध और रोचक है। पक्काम्र कसैलापन लिए खट्टा, भेदक, कफ वातनाशक, हृद्य, वर्णकारक, रुचिकारक तथा रक्त, मांस और बल बढ़ानेवाला है। (धन्वन्तरीय निघंटु)

आम रस में खट्टा, कसैला, सुगन्धि, गले के रोग का नाशक और जठराग्नि-उद्दीपक है। आम का टिकोरा (बालाम्र) पित्तप्रकोपक, वायु तथा रक्तदोष जनक, पटुता आदि कारक और (लवणादि द्वारा) रुचिकारक है।

अपिच—आमका टिकोरा (बालाम्र) पित्त, वायु एवं कफ पैदा करनेवाला है। बद्धास्थि (जिसमें जाली पड़ गई हो) भी उसी के समान

होती है। पका आम त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ट, पुष्ट, और भारी है तथा धातुओं को बहुत बढ़ाता, तृप्तिजनक (तर्पण), कांतिजनक और प्यास एवं श्रम को शांत करता है। रा० नि० व० ११।

कच्चा आम वायु और रक्तपित्तकारक है। जिसमें गुठली पड़ गई हो, वह आम कफपित्तकारक होता है। पका आम भारी, वातनाशक, मधुर, अम्ल, कफ तथा वीर्य बढ़ानेवाला है। वा० सू० ६ अ०।

बालाम्र (टिकोरा) रस में खट्टा, कसैला, सुगन्धि, कंठरोगनाशक और अग्निदीपक तथा ग्राही है और प्रमेह, रक्त, कफ, पित्त और व्रण नाशक है। मद० व० ६।

कच्चा आम अर्थात् केरी (अपक्वाम्र) प्रशस्त, संग्राही और रक्तपित्त को प्रकुपित करती है। पका आम मीठा, खट्टा, भेदी और पैत्तिक रोगों का नाश करता है। अत्रि० १७ अ०।

आम का टिकोरा (बालाम्र) कसैला, खट्टा, रुचिकारक तथा वातपित्तकारक है। कच्चा आम वा अँबिया (तरुणाम्र) अत्यन्त खट्टी, रूक्ष, त्रिदोषजनक एवं रुधिर-विकार करनेवाली है।

आम्रपेशिका वा अमहर अर्थात् छिलकारहित काटकर धूप में सुखाई हुई कच्ची केरी खट्टी, स्वादु कसैली, दस्तावर और कफवात को जीतनेवाली है।

नोट—अमहर-छिले हुये कच्चे आम की सुखाई हुई फाँक। यथा—

"आम्रमामंत्वचाहीनमातपेऽतिविशोषितम्"
(भा०)

आम्रपेशिका, आम्रपेशी, शुष्काम्रखंड (सं०)। आमृशी, (बं०)। आंबोशी, अंबोसी (मरा०)। आम की छिट्ट, आमखुश्क।

नोट—इसे ही कूटकर अमचूर बनाते हैं। कहीं-कहीं अमहर को ही अमचूर वा आमचूर कहते हैं।

पका आम मीठा, वृष्य, स्निग्ध, बलकारक एवं सुखप्रद है तथा भारी, वातहरणकर्त्ता, हृद्य, वर्ण्य (देह के रंग को निखारनेवाला), शीतल, अपित्तल (पित्तकारक नहीं), कसैला तथा अनुरस है और अग्नि, कफ एवं वीर्य्य विवर्द्धक है। पेड़ का पका आम (वृक्षसम्पक्वाम्र) भारी, परम वातहारक, मधुर और खट्टा (खटमीठा) तथा कुछ-कुछ पित्त को प्रकुपित करता है। पाल का पकाया हुआ आम (कृत्रिम पक्वाम्र) पित्तनाशक होता है। इसमें खट्टा रस थोड़ा और मिठास अधिक होता है। (उषित) परम रुचिकारी, बल्य, वीर्यकारक और हलका है तथा शीतल, शीघ्र पचनेवाला, वातपित्तहरणकर्त्ता और दस्तावर है। निचोड़ा हुआ आम का रस वा अमरस (गालित आम्ररस) बलकारक, भारी, वातहरणकर्त्ता, दस्तावर, हृदय को अहित (अहृद्य), तृप्तिजनक (तर्पण), अत्यन्त बृंहण और कफ बढ़ानेवाला है। आम का टुकड़ा वा फाँक (आम्रखंड) भारी, परम रुचिकारी, देर में पचनेवाला (चिरपाकी), मधुर, बृंहण, बलकारक, शीतल और वातनाशक है। दूध के साथ खाया हुआ आम वातपित्तनाशक, रुचिकारी, बृंहण, बलवर्द्धक, शुक्रसंचय करनेवाला और देहके रंगको निखारनेवाला है। दुग्धाम्र अत्यन्त सुस्वादु, भारी और शीतल है। आमके अतियोगसे अर्थात् बहुत आम खाने से मंदाग्नि, विषमज्वर, रुधिरदोष, बद्धगुदोदर (अत्यन्त कोष्टरोध), एवं आँख के रोग हो जाते हैं। इसी लिये अधिक आम खाना वर्जित कहा है। परन्तु ऊपर ये जितने दोष आम के कहे हैं, वे खट्टे आम के हैं, नकि मीठे आम के। मीठा आम तो नेत्रादि के लिए अत्यन्त हितकारी है। बहुत ज़्यादा आम खा लेने के उपरांत सोंठ का जल पीवें अथवा सोंचर वा कालेनमक के साथ जीरे का चूर्ण फाँकें। इससे अधिक आम खाने का दोष दूर होता है। भा० पू० १ भ०।

आम्रावर्त्त—आम के सुखाये रस के पर्त वा तह। इसे बनाने के लिए पके आम को निचोड़ कर उसका रस कपड़े पर फैलाकर सुखाते हैं। जब रस की तह सूख जाती है, तब उसे लपेटकर रख लेते हैं। यथा—

"पकस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः।
घर्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रावर्त्त इति स्मृतः॥"
(भा० पू० १ भ०)

पर्य्या०—अमावट, आमरस, अमरस, अँवसठ, आमोट, आंमकी रोटी, अंबावट (हिं०) । आम्रावर्त्त, आम्रात (क)–(सं०) । आंबापोळी, आंबेरसा ची पोली (मरा०) । आमसत्व, आमोट (बं०) ।

गुण—सूर्य की-किरनों से पाक होने से यह हलकी और रुचिकारी होती है और इसके सेवन से तृषा, वमन, वात एवं पित्त की शांति होती है तथा कोष्ठस्थित वादी आदि संपूर्ण निकल जाती है । भा० पू० १ भ० ।

गुणधर्म तथा आंतर-बाह्य प्रयोग

चक्रदत्त—प्लीहोदर में पके आम का रस–प्लीहा के रोगी को मीठे पके आम का रस शहद के साथ सेवन कराएँ । यह वायु-प्रधान प्लीहोदर में प्रयोज्य है । यथा—

"प्लीहव्युपरमो योगः पक्वाम्ररसोऽथवा समधुः ।"
(प्लीह-चि०)

भावप्रकाश—मत्स्यभक्षणजनित अजीर्ण में कच्चा आम–कच्चे आम का सेवन बहुत मछली खाने से हुए अजीर्ण का प्रतिकार है । यथा—

"आममाम्रफलं मत्स्ये ।"
(म० खं० २ य० भ०)

वंगसेन—बालक के मुखपाक में आम्रसार–शिशु के मुँह आने वा मुखपाक में अथवा बालक के मुख में क्षत होनेपर आमका सारवान् काष्ठचूर्ण, गैरिक एवं रसांजन—इसको बराबर-बराबर लेकर एक में मिला मधु के साथ मुख में लिप्त करें । यथा—

"मुखपाके तु बालानां आम्रसारमयं रजः ।
गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजंस रसांञ्जनम् ॥"
(बालरोगाधिकार)

वृहन्निघण्टुरत्नाकर—वमन में आम का चूर्ण–आम्रादिक चूर्ण, खील और सेंधानमक को शहद में मिलाकर चाटने से वमन का नाश होता है । यथा—

"आम्रादिलाजसिंधूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत् ।"
(हिक्का-चि०)

चरक—हृद्य औषधियों में आमला एवं आमड़ा–आँवला और आमड़ा हृद्य हैं । यथा—

"आम्राम्रातक ❀ ❀ ❀ ❀
इति दशेमानि हृद्यानि भवन्ति ॥"
(सू० ४ अ०)

यूनानीमतानुसार गुणदोष—

हकीम मुहम्मद शरीफ़ खाँ लिखते हैं कि, यदि आम का अधपका फल जिसमें २ अंगुल डंटी लगी हो, लेकर डंटी के सिरे पर मोम लगाकर गाय के घी वा शहद में डालदें तो दो-तीन महीने तक इसका स्वाद नहीं बदलता और सालभर तक इसके रंग रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता । लेखक का कथन है कि खट्टा आम कंठ, वक्ष और आँतों को हानिप्रद तथा पित्त-प्रकृति को सात्म्य और आमाशयबलप्रद है । मुहीत आज़म में यह विशेष लिखा है–यह मसूढ़ों को हानिप्रद एवं शुक्रतारल्यता जनक है । इसका दर्पनाशक शक्करादि मीठी चीज़ें हैं । कच्चे आम का बारीक छिलका उतार कर उसे कतर डालें । इसके बाद उसे पानी में छोड़ दें, जिसमें खटाई पानी में रह जाय । फिर उसे साफ़ करके शक्कर वा मिश्री से मीठा करके खाएँ । यह हृदय एवं आमाशय को बल देने तथा ज़हर के दोष दूर करने में अनुपम है । इसे अकेला वा भोजन के साथ खाते हैं ।

कच्चे आमको गरम राख में गाड़दें । जब नरम हो जाय, निकाल कर पानी में उसका गूदा निचोड़ लें और मीठा करके खाएँ (इसे पन्ना वा पानक कहते हैं) न उपर्युक्त ये दोनों प्रयोग लगभग समान हैं । परन्तु लेखक के समीप इसमें से पहला अपूर्व बल्य, हृद्य एवं सुस्वादु है । और दूसरा वबाई हवा के ज़हर का नाशक है । (तालीफ़ शरीफ़ी । मुहीत आज़म)

भारतीय पंडित आम को शीतल लिखते हैं । परंतु हमारे अनुभव में खट्टा आम उष्मा से रिक्त नहीं । यूनानी चिकित्सकों ने मीठे आम को दूसरे दर्जे में गरम और तीसरे दरजे में रूक्ष लिखा है । लेखक के अनुभव में यह कामोद्दीपक, वृक्क को बलप्रद, आमाशय बलदायक, वृंहण (कसरत गिज़ा), स्थौल्यकारक, प्रकृति को मृदुकर्त्ता, चेहरे के रंग को निखारनेवाला है ।

पक्का आम मीठा व तुन्द, सर्द व तेज़, भारी,

कामोद्दीपक, हृदय एवं सभी अंगों को बलप्रद, क्षुधाजनक और पित्तदोष शामक है। इसका रस कोष्ठमृदुकर, आहार पाचक, और शरीर का रंग निखारनेवाला है।

मीर मुहम्मदहुसेन लिखते हैं, कि हिंदुस्तानी मनुष्य कच्चे फल के गूदे को भूनकर शक्कर मिलाकर रखते हैं और उसे प्लेग तथा हैज़े के समय में खाते और उसका शरीर पर लेप करते हैं।

डॉ० आर० एन० खोरी—

पक्वाम्र रसायन, तृप्तिप्रद, पुष्टिकर, एवं किंचित् मृदुरेचक है। कच्चा आम अम्ल, कषाय एवं स्कर्वी रोग का प्रतिषेधक तथा प्रशामक है। अम्बोसी ( ) में निंबुकाम्ल (Citric acid) होने से यह स्कर्वी-रोग-प्रतिषेध एवं प्रशमन के लिए प्रशस्त है। (Materia medica of India, *Part. 11, P.164*)

डॉ० मोहीदीन शरीफ खाँ बहादुर—साधारण आम का गूदा मृदुरेचक, पर कलमी आम का गूदा बहुत ही पोषक होता है। साधारण आम के गूदे का प्रायः आँतों पर प्रभाव होता है; परन्तु औषध रूप में इसका कभी व्यवहार नहीं होता। क़लमी आम का गूदा अत्यंत पोषक होता है। मुझे कुछ ऐसे व्यक्तियों का स्वयं अनुभव है, जो आम की फ़सल में कतिपय प्रकार के क़लमी आम नित्य प्रति खाते रहने से हृष्ट पुष्ट हो गए। (Materia Medica of Madras)

डॉ० नादकर्णी—फल स्वेदक, कषाय और शैत्यकारक हैं, पक्का फल किंचित् कोष्ठ-मृदुकर (Laxative), मूत्रल, पुष्टिकर और रसायन (Invigorating) है। कच्चा आम अम्ल, कषाय, आमाशय-बलप्रद और स्कर्वीहर है।

भारतीय फलों में आम सर्वाधिक सुस्वादु है। आम का पका फल अत्यंत रुचिकर एवं पुष्टिकर है और वातजन्य एवं आमाशय-नैर्बल्यजनित अजीर्ण और कोष्ठवद्ध में उपकारक है। पके आम के रस, शक्कर तथा सुगंधित द्रव्यों के योग से तैयार किया हुआ पाक उत्तम पुष्टई एवं वल्य है। भूने हुए कच्चे आम के गूदे में शर्करा मिलाकर एक प्रकार का पाक प्रस्तुत किया जाता है। प्लेग वा विसूचिका-काल में इसका सेवन लाभप्रद होता है और प्रतिषेधक रूप से इसे शरीर पर मलते भी हैं। फल वा फल के छिलके से एक प्रकार का तरल सार प्रस्तुत करते हैं, जो श्लैष्मिक कलाओं के लिए कषाय वल्य है। कंठमाला (Diphtheria) एवं अन्य दूषित कंठरोगों में इसका विशेष प्रभाव होता है। स्थानिक रूप से रक्तक्षरणादि में इसका प्रलेप अत्युपयोगी होता है। शीतजन्य पाददारी वा बिवाई में कच्चे आमका रस लगाया जाता है। आम के फल के छिलके को दूध में पीसकर थोड़ा शहद मिलाकर देने से रक्तामाशय रोग में लाभ होता है। कच्चे आमके छिलके को काटकर टुकड़े-टुकड़ेकर घी में भून लें। फिर उसमें शक्कर मिलाकर एक गोला बना लें। इससे बनाई हुई वटिकाएँ असृग्दर रोग में काम आती हैं। कच्चे हरे आम का छिलका २½ तो० दही में रगड़कर इमलूशन बनाएँ। यह विसूचिका महामारी की दवा है। अपने अम्लत्व (Citric acid) गुण के कारण २½ आउंस अमहर १ आउंस नीबूके रसके बराबर है। इसलिए यह स्कर्वी रोग में अत्युपयोगी है। मीठे आम का अचार जो भोजन के साथ अबाध रूप से खाया जाता है, अमचूर की तरह शरीर के भीतर स्कर्वीहर द्रव्यों के प्रवेशन की उत्तम विधि है। (Indian Materia medica.)

आतपाघात (लू लगना) में उबाले हुए कच्चे आमका गूदा शरीर पर मलने और खिलाने से लाभ होता है एवं दूषित वायुमंडल में सुरक्षित रखता है।

हकीम मुहम्मद आज़मखाँ लिखते हैं—"कच्चे आम को अँबिया कहते हैं। जब यह बहुत छोटा रहता है, तब इसे बालकेरी (वा टिकोरा) कहते हैं। यही बड़ा हो जाने पर 'केरी' कहलाता है। जब यह बढ़ कर दृढ़ हो जाता है, तब बीज में गिरी के ऊपर जाली पड़ जाती है। यह पहली कक्षा में शीतल एवं रूक्ष होता है। कोई-कोई दूसरी कक्षा में शीतल और प्रथम कक्षा में रूक्ष लिखते हैं। यह स्वाद में खट्टा, पित्तनाशक, प्रदाहशामक, वमन एवं मूर्च्छाहर, पिपासाहर,

प्लीहा एवं रक्तदोष हारक, क्षुधाजनक, आहार-पाचक, वृक्क एव वस्तिस्थ अश्मरी भेदक, वातपित्त प्रकृति को हानिप्रद, कफहारक तथा वायुजनक है और फुफ्फुस, वृक्क एवं बाह को हानिप्रद है। इसका दर्पघ्न शक्कर है। यह विशेषकर गर्भ-पातक है।

यदि अँबिया को पीसकर आँख पर बाँधें तो अभिष्यंद दूर हो। कच्चे आमको चाकू से छील-कर, इसके छोटे-छोटे टुकड़े काटकर धूप में सुखा लें। इसे अमचूर (अमहर) कहते हैं। यह भी खाने के काम में आता है। यदि इसे थोड़े खारी नमक के साथ पीसकर दूषित क्षतों पर लगाएँ, तो लाभ हो। इसके पीने से प्यास दूर होती है। इसे पीसकर दाद पर लगाने से लाभ होता है। यदि इसमें से थोड़ा सा लेकर लोहे के तवे पर डाल लोहे के दस्ते से धीरे-धीरे यहाँ तक रगड़ें कि एक जात हो जाय। इसके आँख पर प्रलेप करने और इसमें से थोड़ा आँख के भीतर डालने से नेत्राभिष्यंद रोग में शीघ्र लाभ होता है।

जिस आम की गुठली कड़ी न हुई हो, ऐसे कच्चे आम को लेकर उसका अचार व मुरब्बा बनाएँ। इसका अचार पित्त प्रकृति को लाभप्रद, क्षुधावर्धक और प्लीहानाशक है। एक साल के पुराने अचार के तेल की शरीर पर मालिश करने के बाद जौ के आटे का उबटन लगाने से खाज दूर होती है। इसका मुरब्बा आमाशय को बल-प्रद एवं हृदय को बलवान करनेवाला है। तथा मुखदौर्गंध्यहर, ख़फ़क़ान को लाभप्रद, पिच्छल दोषोंका छेदक और बवासीर को लाभदायक है।"

आप उत्तम आम की पहिचान यह लिखते हैं—"जो पक्का आम अत्यन्त सुस्वादु, रेशा रहित, पतले गूदा का एवं सुगंधित हो, तथा जिसमें चोपी कम हो वह सर्वोत्तम और जिसमें इसके विपरीत गुण हों, वह निकृष्ट एवं हानिकर है। इसके खाने की उत्तम रीति यह है, कि उसे शीतल जल वा बर्फ़ के पानी से ख़ूब धो डालें। फिर उसे मुलायम हाथ से मलकर ढेंपी पृथक् कर प्रथम उसकी चोपी गारकर गिरादें। फिर मुँह लगाकर चूसें। यद्यपि चाक़ू से काटकर खाना भी किसी-किसी को सात्म्य होता है, पर इस प्रकार खाने से रेशे आदि से सुरक्षित नहीं रह सकते। अस्तु, यह विधि ठीक नहीं, क्योंकि रेशा आमाशय में आध्मान, भारीपन, उदरशूल, आँत में मरोड़ तथा गले में ख़राश पैदा करने का कारण बनता है। यदि आम के रस को बारीक रेशों से रहित-कर थोड़ा गुलाब तथा मिश्री मिलाकर मिट्टी के नए बरतन में शीतलकर खाएँ तो सर्वोत्तम हो। कोई-कोई आम का रस निकाल शक्कर मिला चावल वा रोटी के साथ खाते हैं। कोई-कोई मीठे दही, मलाई, मिश्री, गुलाब और रोग़नी रोटी के साथ खाते हैं। परन्तु इस ढंग से प्रायः कोमल प्रकृति के लोगों का जी मिचलाता है और उनकी तबीअत उसे स्वीकार नहीं करती।"

आगे चलकर आप और लिखते हैं "पक्का आम द्वितीय कक्षा में गरम-तर है। कोई-कोई दूसरे दर्जे में गरम-ख़ुश्क लिखते हैं। यह दौर्गंध्यहर, प्रक्षालक, प्राणशक्ति को बलप्रद, उत्तमांगों, श्वासोच्छ्वासावयव, अन्नप्रणाली तथा आंत्र को बलवृद, कसीरुल्‌गिज़ा, स्थौल्यकर, रूक्षताहर, उचित रूप से वृक्क तथा वस्ति को बलप्रद, कामोद्दीपक, चेहरे के रंग को निखारनेवाला, मुख-दौर्गन्ध्यहर, क्षुधाजनक तथा प्रकृति को मृदुकर है और ख़फ़क़ान, कास, साँस की तंगी, सर्दी का दर्दसिर, अर्शजन्य कोष्टबद्ध एवं अतिसार, आमाशयातिसार विशेष (ज़र्ब), कौलंज, प्यास, श्रांति, निर्बलता, आलस्य एवं सुस्ती को दूर करनेवाला और मूत्रप्रवर्त्तक है। हकीमों ने इसे यक्ष्मा (दिक़) के लिये विशेष उपयोगी लिखा है, मुख्यतः उस दिक़ के लिए जो वार्द्धक्य के कारण होता है। चूँकि आम के अनेक भेद प्रभेद हैं। अस्तु, उनमें से जो विशेष सुगंधिमय होता है, वह हृदय तथा मस्तिष्क को अधिक बलप्रद है। इसका सूँघना भी मस्तिष्क बलप्रद, यकृत को हानिकर तथा जलंधरोत्पादक है।"

दर्पघ्न—मवेज़ (मुनक्का) है। किसी-किसी ने सोंठ लिखा है। इस दशा में कदाचित् ज़रिश्क का शर्बत, सिकंजबीन वा जामुन का शर्बत श्रेष्ठ-तर होगा। अनुभव की बात यह है, कि आम खाने से किसी-किसी को यकृत नैर्बल्य तथा जलोदर का पुनरावर्त्तन होते पाया गया है।

किसी-किसी की प्रकृति में गरमी करता है। इसका दर्पघ्न ठंडा पानी, दही, मधुर छाछ तथा शीतल निचोड़ (स्वरस) जैसे, फालसे का रस, उत्तम है। संक्षेप में यह गरम प्रकृति को हानिकर है, विशेषतः खाली पेट में। क्योंकि निहार मुँह खाने से क्षुधा नष्ट होजाती है, क़ब्ज़ होता और गुरुता अधिक होती है। कहते हैं कि, यह किंचित् वायुजनक, आध्मानकारक और चिरपाकी है, विशेषतः मिराक रोगी को, मुख्यतः वह जिसका रस गाढ़ा हो। अस्तु, उसे कम करने एवं सूक्ष्म करने का प्रयत्न करना कर्त्तव्य है। इसका दर्पनाशक सिकंजबीन पान करना, जामुन खाना वा इसका शर्बत पीना, छाछ का पानी वा ठंडा पानी पीना है। क़लमी आम चिरपाकी तथा अफ़राजनक होता है। यही रेशेदार उससे भी निकृष्ट, कोष्ठ-वद्धताजनक तथा सौदावी रोग, तर व ख़ुश्क खाज और फोड़े-फुन्सी आदि का उत्पादक है। इस प्रकार के अफ़ारा का दर्पघ्न वैद्यों ने सोंठ लिखा है। उसके ऊपर थोड़ा नमक खाना भी अनुभवजन्य है। नमक मिला सोंठ इससे भी श्रेष्ठ है। यदि आँतों में ऐंठन वा मरोड़ करे, तो बादाम के तेल वा इसी के अनुरूप उसका प्रतिकार करें। अतिसार की दशा में इसकी गुठली से उसका उपचार करें। रूक्ष प्रकृति के लोगों को दूध पिलाएँ और यदि दूध अफ़रा करे तो दूध में थोड़ा सोंठ पकाकर दें (वा केवल सोंठ दें)। कहा है कि स्थौल्य तथा कामोद्दीपन के लिये दुहा हुआ ताजा दूध वा कुछ पकाया हुआ दूध उसकी क्रिया का सहायक है। परंतु खट्टा आम खाने के उपरांत दूध पीना हानिकारक है; क्योंकि मेदे में उसके जम जाने की संभावना होती है। फलतः यदि प्रकृति का ध्यान रखते हुये इसका व्यवहार किया जाय, तो शक्तिसंपादन में यह चोबचीनी का समकक्ष ही नहीं, प्रत्युत उससे भी श्रेष्ठतर है। पर जब तक दो-तीन बारिश न हो जाय, यह सेवनीय नहीं।

सर्द तर प्रकृति एवं आमाशयातिसार विशेष (ज़र्ब) के रोगी जब आहार की जगह पकान्न और पानी की जगह ऊँटनी का दूध १-२ मास तक सेवन करते हैं, तब उन्हें बहुत लाभ होता है। यहाँ तक कि किसी-किसी रोगी का यह रोग विनष्ट हो जाता है।

आम की चोपी (चेंप) गरम तथा क्षतकारक है। जिस अंग पर यह पड़ा हो उस पर तैलाभ्यंग करना इसका दर्पनाशक है। स्त्रीदुग्ध भी इसका दर्पघ्न है।

मुहीत आज़म के अनुसार वैद्यों ने निहार मुँह आम, जामुन, नारियल, कटहल, इमली, ताड़फल, बेर, केला, अंगूर, सेब, गूलर और खीरा का खाना वर्जित किया है। (मुहीतआज़म)

नोट—शेष गुणधर्म वही लिखे हैं जो आयुर्वेदीय ग्रंथों में आचुके हैं। —लेखक

आम की चेंप दाना पैदा करती एवं क्षतोत्पादक है। हलदी के साथ इसकी पट्टी शिश्न की शिथिलता को दूर करती है। अस्तु, हस्तमैथुनी को इससे उपकार होता है।

अँबिया की चटनी बहुत अच्छी होती है और नमक, मिर्च, पुदीना तथा जीरा वा चीनी वा गुड़ डालकर बनती है। इसका अचार तथा मुरब्बा भी डालते हैं। हिंदुस्तानी पके आम को सिरके में डुबो रखते और बहुत दिन खाया करते हैं। स्वभावतः जिसका धातु कोष्ठबद्ध हो, यदि वह नित्य अमचूर या अमावट खाए, तो पेट का उद्वेग कम पड़ता है। सर्वदा धूप दिखाकर यत्न से रखने पर अमचूर और अमावट बारह महीना रहता है, उसमें कीड़े नहीं लगते। परंतु अमचूर में हल्दी और नमक न मिलाने से बरसात के दिनों में उसमें कीड़ा लग जाते और वह ख़राब हो जाता है।

आम का मुरब्बा भी खाने में ज़ायकेदार होता है। यह कोठे को खूब साफ़ करता है। बनाने की विधि यह है—जिस आम में एक दम रेशा न हो और पकने पर कड़ा रहे, उसके बड़े-बड़े टुकड़े करके घी में भून लें। फिर उन्हें मिश्री के रस जैसी गाढ़ी चीनी में छोड़ भाँड़े में रखदें। आम का मुरब्बा बहुत दिन नहीं रहता।

बङ्गदेश के अनेक स्थानों में जो आमका अचार बनता है, उसे कासुंदी कहते हैं। इसके बनानेकी रीति यह है,-पहले सरसों और हल्दी को अच्छी तरह धोकर सुखालें। सूख जाने पर दोनों को खूब

महीन पीस लें। इसके बाद दश सेर आमको, छील और गुठली निकालकर टुकड़े-टुकड़े करें। पकी हुई ३ सेर इमलीका चियाँ निकाल डालें। फिर २ सेर सरसों के चूर्ण और आध सेर हल्दी को आम और इमली के साथ ढेंकी में कूटना चाहिए। एक सप्ताह बाद फिर उसके साथ पूर्ववत् १० सेर आम और ३ सेर इमली कूटें। एक सप्ताह के बाद फिर उसके साथ पहले ही की तरह १० सेर आम, ३ सेर इमली और २॥ सेर नमक कूट अच्छी तरह सानकर मिला दें। इस अचार को हाँड़ी में रखकर उसका मुँह बंद करदें। बीच-बीच में धूप दिखा देने से यह सड़ता नहीं। यह मुखरोचक और आग्नेय है। इससे अम्लका व्यंजन बनाने पर वह खाने में खूब सुस्वादु होता है। बंगाल के स्थान विशेष में अन्यान्य भी अनेक प्रकार की कासुन्दी बनती है।

पश्चिम देश का अचार खाने में बहुत रुचिकर होता है। वह इस तरह बनाया जाता है। जालीदार एक-एक आम के चार-चार फाँक कर उनके भीतर की आधी गुठली निकाल आधी रहने दें। फिर पत्थर के बरतन में उनमें अच्छी तरह सेंधानमक मिलाकर धूप में रखदें। पानी निकलने पर उसे फेंक दें। ऐसे ही तीन दिन करके अंत में छोटी मेथी, काला जीरा, सौंफ और मिर्चा कुछ अधकुटा और कुछ समूचा रखें। इस मसाले को आधा तोले के अन्दाज हरएक आम में भर उसे असली सरसों के तेल में डाल दें और उसके ऊपर थोड़ा सा यह मसाला और सेंधानमक छोड़ें। उसके बाद हाँड़ी का मुँह बंदकर बीच-बीच में धूपमें रख देना अत्यावश्यक है। कुछ दिन में आम गल जाने पर अचार तैयार हो जायगा।

गृहस्थ लोग छिलका सहित कच्चे आम को सुखाकर रखते हैं। बच्चों को उदरामय होने पर उसका क्वाथ पिलाने से दो ही तीन दिन में फायदा मालूम होता है।

आम की गुठली (आम्रबीज)

पर्य्या०—आम की गुठली, कोइली, कोसिली, कुसली, कोसली, कुसुली–(हिं०)। आम्रास्थि, आम्रबीज (सं०)। आमेर आँटी वा कुशी (बं०)। दी स्टोन आँर सीड ऑफ़ मैंगो The stone or seed of mango (अं०)।

आम की मींगी

आम की गुठली का मग्ज़, आम की गिरी, आम की गुठलीका दाना, बिजली (हिं०, द०)। आम्रास्थि, आम्रबीज शस्य (सं०)। मग्ज़ें तुख्मे अंबः, ख़स्तहे अंबः (फ़ा०)। दि कर्नेल ऑफ़ मैंगो The kernel of mango (अं०)।

नोट—गिरी २ वा ३ महीने के उपरांत गुठली में पड़ी रहने से ख़राब हो जाती है। इसलिए यथासंभव शीघ्र ही उसे गुठली से निकालकर धूप में सुखा रख लें। उस बालाम्र की गिरी जिसमें अभी जाली न पड़ी हो, जाली पड़े हुए वा पके आम की गिरी से अपेक्षाकृत उत्तम कषायौषध है। अस्तु, टिकोरे वा बिना जाली पड़े आम को ताज़ा काटकर गिरी वा कोइली पृथक् कर लें। फिर उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर शीघ्र धूप में सुखालें। आम पके होने की दशा में भी गिरी वा बीज को गुठली से यथासंभव शीघ्र ही भिन्न करलें और उसी प्रकार धूप में सुखालें।

औषधि-निर्माण—(१) आम्रास्थि मिश्र चूर्ण–सुखाए हुए बालाम्र की गिरा का चूर्ण ३ आउंस, जीरा, कालीमिर्च और सोंठ का चूर्ण प्रत्येक १ आउंस २ ड्राम, आम्रनिर्यास का चूर्ण ४ ड्राम, अफ़ीम का चूर्ण १ ड्राम-इनको अच्छी तरह मिलाकर कपड़छन करलें और खरल में इसे धीरे-धीरे रगड़कर बंद बोतल में रखें।

(२) आम्रास्थि अमिश्र चूर्ण—आम की गिरी को महीन बूककर बंद बरतन में सुरक्षित रखें। मात्रा—अमिश्र चूर्ण, ४० से ८० ग्रेन तक (२० से ४० रत्ती); मिश्र चूर्ण, १० से ६० ग्रेन तक, अवस्थानुकूल एवं प्रत्येक रोग की अन्य दशाओं को ध्यान में रखकर, २४ घंटे में ३–४ बार सेवन कराएँ।

इसकी प्रतिनिधि स्वरूप डॉक्टरी औषधें—अमिश्र चूर्ण=क्रेटा प्रिपेरेटा, पल्व-क्रेटी ऐरोमेटिकस। मिश्रचूर्ण=पल्व-इपिकाक कंपोज़िटस, पल्व-काइनो कंपोजिटस, पल्व क्रेटी ऐरोमेटिकस-कम ओपियो।

गुणधर्म

आयुर्वेदीय मतानुसार—आम्र बीज (आम की गिरी) कसैला, कुछ कुछ खट्टा तथा मधुर है और वमन, अतिसार और हृदय के दाह को नष्ट करता है। भा०।

आम की गिरी का तेल—आम्रतैल, आम्रास्थि तैल (सं०)। आम्रास्थिका तैल। आम का तैल (हिं०)। आमेर कुशीर तैल (बं०)।

गुण—आम का तेल कुछ कुछ कड़ुआ, मधुर, अति पित्तजनक नहीं, वातकफनाशक, रूक्ष, सुगंध और विशद होता है। मद० व० ८। सहकार तैल ईषत् तिक्त, अति सुगंधि, वातकफनाशक, सूक्ष्म, मधुर, कसैला और नातिरक्तपित्तकर है। अत्रि ४ अ०। आम का तेल कसैला, स्वादु, रूक्ष, सुगंधि तथा कड़ुआ है और मुखरोगनाशक एवं कफवातनाशक है। (बृहन्निघण्टु रत्नाकर)

हकीम मुहम्मद आज़मखाँ—गुठली की गिरी दूसरे दरजे में शीतल एवं रूक्ष है तथा संग्राही है।

गुणधर्म तथा वाह्यांतर प्रयोग

चरक--नासिका द्वारा रक्तस्राव होने पर आम्रास्थि-आम की कोसिली के रस का नास लेने से नाक से ख़ून आना बंद होता है। यथा—

"नस्यं तथाम्रास्थि रसः"। (चि० ४ अ०)

भावप्रकाश--मांसभोजनज अजीर्ण में आम्रबीज-आम की गिरी खाने से, मांस-भक्षण से होनेवाला अजीर्ण शांत होता है। यथा--

"तद्बीजं पिशिते हितं"। (म० खं० २ य० भ०)

बृहन्निघण्टुरत्नाकर--भयंकर दारुण रोग में आम की गुठली-आम की गिरी और हड़ दोनों समान भाग लेकर चूर्ण करके दूध में पीसकर लेप करने से भयंकर दारुण का नाश होता है। यथा—

"आम्रबीजस्य चूर्णंतु शिवाचूर्णं समं द्वयम्।
दुग्धपिष्टः प्रलेपोऽयं दारुणं हन्ति दारुणम्"॥
(क्षुद्र)

(२) संग्रहणी, ज्वरातिसार आदि में आम की गुठली-दे० "आम्रादियोग"।

(३) वमन तथा अतिसार में आम्रास्थि-दे० "आम्रास्थ्यादि कषाय"।

हकीम मुहम्मद शरीफ़खाँ लिखते है कि इसकी गिरी भून कर खाई जाती है। यह कोष्ठबद्धकारक, आमाशय को लाभप्रद एवं अत्यन्त सुस्वादु होती है। इसके खाने के उपरांत जल पीने से अत्यंत मिठास मालूम होती है, ऐसा अनुमान किया जाता है। भारतीय इसकी गुठली को पड़ते हुये मेंह में छोड़ देते हैं। फिर उसकी मींगी निकाल कर खाते हैं। यह अत्यंत सुस्वादु होता है और पित्त का शमन करता, आमाशय संकोचक एवं वल्य है। मेंह में पड़ी हुई गुठली की मींगी को नीबू के रसमें भी तरकर काममें लाते हैं। यह और गुणकारी हो जाती है। कोई-कोई कतरने के उपरांत इसे नीबू के रस में पीसकर, इसमें नमक और अजवायन मिला काम में लाते हैं। यह आमाशय बलप्रद और अपूर्व पाचक हो जाता है। सारांश यह कि, इसे विविध प्रकार से काम में लाते हैं। कहते हैं कि तीन साल का होने पर इसमें तिर्याक़ियत आ जाती है और जब यह ७ मा० (½ दाम) पानी में पीसकर चूर्ण कर ली जाती है, तब इससे बढ़कर कोई दूसरी धारक औषध नहीं रह जाती। (तालीफ़ शरीफ़ी पृ० ६) यह चिरकारी अतिसार का रुद्धक और मूत्राघात, सल्सुलबौल में लाभदायक है। "खैरुल् तजारुब" में लिखा है, कि आम की गुठली पीसकर लेप करने से शोथ उतारने में जदवार का काम करती है। (मुहीत आज़म)

आर० एन० खोरी--आम की गिरी कसैली एवं कृमिघ्न है। Materia medica of India, part 11., P. 164)

मोहीदीन शरीफ़ खाँ बहादुर--गिरी कषाय, स्निग्धतासंपादक और पुष्टिकर है। बालाम्र की गिरी चिरकारी अतिसार, प्रवाहिका, रक्तनिष्ठीवन और ख़ूनी बवासीर में अत्यन्त उपयोगी है। पुरातन अतिसार और प्रवाहिका में इसे अफ़ीम और किसी उत्तेजक सुरभित द्रव्य के साथ, जैसे, कि आम्रास्थि-मिश्र-चूर्ण में पड़े हैं, प्रयोजित करने से विशेष उपकार होता है। इसी प्रकार प्रयोजित की हुई पके आम की गिरी भी पूर्वोक्ति-

खित रोगों में कुछ प्रभाव करती है। पर बहुत ही कम। यह कषाय होने की अपेक्षा अधिक पोषक एवं स्निग्धता संपादक होती है। भूनने वा उबाल देने से गिरी का स्वाद अप्रिय नहीं होता और दुर्भिक्ष के समय निर्धन जनता इसे खाद्य के काम में लाती है।

उक्त डॉक्टर महोदय के अनुसार इसमें कृमिघ्न प्रभाव नहीं है। वे लिखते हैं–"मैंने इसका बहुतसे रोगियों को, १ से २ ड्राम की मात्रा में नहीं, प्रयोग कराया; परंतु कभी एक भी केचुआ वा अन्य प्रकार का औदरीय कृमि निकलते न पाया, जब कि उन्हीं रोगियों में से ५–६ को 'सेंटोनीन' की कुछ ही अल्प मात्रा से निरपवाद थोड़े बहुत क्रिमि निस्सरित हुये।" (Materia medica of madras, Vol. 1., P. 122.)

डॉ० नादकर्णी—गिरी कषाय एवं कृमिघ्न है श्वास, अतिसार, पुरातन प्रवाहिका, रक्तनिष्ठीवन, असृग्दर, श्वेतप्रदर, ख़ूनी बवासीर, केचुये इत्यादि में विचूर्णित आम्रबीज वा गिरी २० से ३० ग्रेन की मात्रा में शहद के साथ वा बिना शहद के प्रयोग में आती है। उस प्रवाहिका में, जिसमें आँव आती हो, आमकी गिरी को दही में पीसकर सेवन करने से लाभ होता है। जब गर्भवती स्त्री को अतिसार का रोग होता है, तब उसे भूनी हुई आमकी गिरी खाने को दी जाती है। नाक से रक्त-स्राव होने पर गिरी के रस का नस्य दिया जाता है। आम की गिरीका काढ़ा बेल और सोंठ मिलाकर वा अकेले अतिसार रोग में दिया जाता है। (शार्ङ्ग०)।

मात्रा—१ से १॥ ड्राम तक। (Indian materia medica.)

आम की गिरी को जल में क्वथितकर उसमें मिश्री मिला पीनेसे उग्र तृषा भी शांत होती है।

—लेखक

पुष्प

पर्य्या०—आम का मौर, आम का बौर, आम की मंजरी, आम का फूल (हिं०)। आम्रपुष्प, आम्रमुकुल (सं०)।

गुणधर्म तथा वाह्यांतर प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—आम का बौर (आम्र पुष्प) अतिसार, कफ, पित्त और प्रमेह को दूर करता है तथा रुधिर की दुष्टता को नष्ट करता है और शीतल, रुचिकारक, ग्राही एवं वातकारक है। भा० पू० १ भ०।

आम का मौर रुचिकारक एवं दीपन है। रा० नि० व० ११।

तालीफ़ शरीफ़ी में फूल को शीतल एवं रूक्ष और मुहीत आज़म में दूसरी कक्षा में शीतल एवं रूक्ष लिखा है। उक्त दोनों ग्रंथों में इसके प्रायः वैद्यकोक्त गुण ही लिखे हैं। हाँ! इतना विशेष लिखा है कि यह अत्यंत सुरभित वीर्यस्तम्भक और फोड़े-फुन्सी को दूर करनेवाला है। नथुनों में इसका प्रधमन करने से नकसीर को लाभ होता है। आम के फूल, छाल और पत्ते को पानी में पीसकर उसका गण्डूष धारण करने से दाँत और मसूढ़े दृढ़ होते हैं और अत्यन्त दूषित मुखपाक को भी लाभ होता है। इसकी पिचुवर्तिका बना योनि में धारण करने से गर्भाशय द्वारा द्रवस्रावित होने एवं योनि की दुर्गंधि में लाभ होता है।

नादकर्णी—आम के सूखे मौर का काढ़ा वा चूर्ण अतिसार, पुरातन प्रवाहिका और चिरकारी पूयमेह (Gleet) में उपकारी है। इसके चूर्ण की धूनी देने से मच्छर नहीं लगते।

आम्रपत्र

पर्य्या०—आम का पत्ता, आम की पत्ती (हिं०)। आम्रपत्र, आम्रदल (सं०)। बर्ग अंबः, बर्ग नग़्ज़क (फ़ा०)। दी लीफ ऑफ मैंगो The leaf of mango (अं०)।

नोट—आम के नए निकले हुए नरम गुलाबी पत्तों को हिंदी में टूसा, कोंपल, टल्लो, कलसी इत्यादि संस्कृत में आम्रपल्लव, किसलय आदि कहते हैं।

गुणधर्म

आयुर्वेदीय मतानुसार—आम की छाल, जड़ और पल्लव ग्राही, कसैला तथा कफपित्तनाशक है। यथा—

"त्वङ् मूल पल्लवं ग्राहि कषायं कफपित्तजित्"
(धन्व०)

आम के नवीन कोमल पत्ते (पल्लव) रुचिकारी, कफ और पित्त विनाशक हैं। भा० पू० १ भ०।

मुहम्मद आज़मखाँ के अनुसार पत्ती और छाल दूसरी कक्षामें शीतल, रूक्ष और पाचक है।

गुणधर्म तथा वाह्यांतर प्रयोग

चरक—पित्तज वमन में आमका पत्ता—पित्तज वमनके निवारणार्थ आम और जामुनकी कोंपल का काढ़ा शीतलकर और शहद मिलाकर सेवन कराएँ। यथा—

"जम्ब्वाम्रयोः पल्लवजं कषायम्।
पिबेत् सुशीतं मधुसंयुतं वा"॥ (चि० २३ अ०)

वंगसेन—पक्वातिसार में आम्रपल्लव—आम की कोंपल और कच्चे कैथ का गूदा एकत्र पीसकर चावल के धोवन के साथ पीने से पक्वातिसार में लाभ होता है। यथा—

"नवचूतस्य पर्णानि कपित्थफलमेवच।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पक्वातिसार शान्तये॥"
(अतिसार चि०)

शार्ङ्गधर संहिता—दे० "आम्रादिफांट"।

मुहम्मद आजमखाँ—इसकी पत्ती और नरम टहनी को पीस कर लगाने से बाल बढ़े और काले होते हैं। इसी प्रकार कच्चे आम के छिलके को अकेले वा अन्य उपयुक्त औषधियों के सहित तेल में डालकर धूप में रखें। शिरमें इस तेलके लगाने से बाल झड़ना रुक जाता है एवं यह बाल बढ़ाने और काला करने के लिए उपयोगी है।

यदि इसकी हरी पत्ती को चिलम में रखकर तंबाकू की तरह पिएँ तो बवासीर को लाभ हो।

आम की कोंपल २ तो० ४ मा० ले कूटकर उसका स्वरस निकालें। इसमें उतनी ही मिश्री मिलाकर पीनेसे बवासीर (तालीफ़ शरीफ़ी) एवं औरतों का माहवारी खून आना बंद हो जाता है। कहते हैं कि आम की सूखी पत्तियों का धूआँ वृक्षस्थ वायु को दूर करता है, और उसका धूआं गले में खींचने से कंठक्षत को लाभ करता है। पेड़ से स्वयं गिरी हुई आम की पत्ती को मलकर चिलम में रखकर तंबाकू की तरह पिएँ। इसके चालीस रोज़ के सेवन से कंठका वह क्षत, जिसमें कंठस्रोत, नाक की सूराख़ और चँदिया ये तीनों एक हो गई हैं, ठीक हालत पर आ जाता है।

आम का ताज़ा पता वृक्ष से लेकर निचोड़ें और जो रस प्राप्त हो उसे पलक पर निकले हुए दाने (गुहेरी) पर लगाएँ, लाभ होगा।

पत्ती की बीड़ी ६ नग और कालीमिर्च ६ नग-इनको पानी में बारीक पीसकर गोलियाँ बनाएँ। हैजे की कै दस्त जो किसी प्रकार बंद न होती हो, इससे बंद हो जाती है। (मुहीत आज़म)

आम के पत्ते को भस्म का अग्निदग्ध किंवा अत्युष्ण तरल पदार्थ द्वारा दग्ध स्थान पर प्रलेप करते हैं। आम्र की कोंपल सुखाकर चूर्णकर बहुमूत्र (Diabetes) रोग में सेवनीय है। (Materia medica of India—R. N. khory, *Part, 11., p. 164*)

नादकर्णी—पत्र-स्वरस रक्तामाशय रोग में उपकारक है। २ तो० आम्रपत्रस्वरस, मधु और दूध हर एक १ तो० और $\frac{1}{2}$ तो० घी-इन सबको मिलाकर सेवन करने से भी लाभ होता है। पाददारी वा बिवाई प्रभृति के लिए छाल वा पत्र द्वारा प्राप्त क्षीरवत् द्रव उपयोगी है। कंठग्रह वा गला बैठ गया हो, तो इसकी पत्तियों का काढ़ा देने से उपकार होता है। यदि पलकों पर कील वा गुहेरी (Warts) हों, तो पत्तियोंके बीच की नस जलाकर प्रयोग में लाएँ। कहा जाता है कि, गले के कतिपय रोगों में तथा हिचकी प्रभृति में इसकी सूखी पत्तियों को जलाकर धूम्रपान करनेसे लाभ होता है। (Indian materia medica)।

मसूढ़ों एवं दाँतको दृढ़ करने के लिए भारतीय आमकी पत्ती और पत्रवृंत का बहुत प्राचीनकालसे उपयोग कर रहे हैं। इसलिए वे इसे रोगी को चबाने को देते हैं। इससे दाँत स्वच्छ होकर चमकने लगते हैं।

आम के बकले और पत्ते से पीला रंग तैयार करते हैं।

पशु को प्रथम आमका पत्ता खिलाया, फिर उसके पेशाब से प्योरी रंग बनाया जाता है।
(हिं० वि० को०)

आमकी छाल

पर्य्या—आम का बोकला आम की छाल (हिं०)। आम्रत्वचा, आम्रवल्कल (सं०)। आमेर छाल (बं०)।

गुण धर्म

आयुर्वेदीय मतानुसार—यह कसैली होती है। आम की अंतरछाल (आम्रान्तरत्वग्) कसैली ग्राही दाहकारक तथा पित्त, प्रमेह और कफ की नाशक और योनिशुद्धिकारक है।

(वृहन्निघण्टुरत्नाकर)

गुणधर्म तथा वाह्यांतर प्रयोग

चक्रदत्त—रक्तातिसार में आम्रत्वक्—आमको छाल को बकरी के दूध में खूब पीसकर पीने से रक्तातिसार में रक्तका आना बंद हो जाता है।

यथा—

"आम्रार्जुनत्वचः पीताः क्षीरेण मध्वाढयाः पृथक् शोणितनाशना"। (अतिसार-चि०)

भावप्रकाश—अतिसार में आम्रमध्यत्वक्—आमके पेड़की अंतरछाल को गायके दहीमें अच्छी तरह पीसकर पीने से अतिसार एवं तज्जनित उदर की दाह एवं वेदना शीघ्र प्रशमित होती है। यथा—

"तथा मध्वत्वगाम्रजा अतिसारं व्यथादाहं हन्त्येवाशु न संशयः।" (म० खं० १ मः भः)

वंगसेन—बालकों के मुखपाक में आम्रसार—आमके सारवान् काष्ठका चूर्ण, गैरिक और रसांजन इनको समभाग लेकर शहद में मिला मुख में लेपन करने से बालकों के मुख आने वा मुखपाक में लाभ होता है। यथा—

"मुखपाके तु वालानां आम्रसारमयं रजः।
गैरिकं क्षौद्र संयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम्॥"

(वालरोगाधिकार)

वृहन्निघण्टुरत्नाकर—उपदंश-व्रण में आम्रत्वचा—आम की छालका १ पल स्वरस लेकर उसमें ४ पल बकरी का दूध मिलाकर प्रातःकाल सात दिन तक पीने से उपदंश-व्रण (उपदंश का घाव) नष्ट हो जाता है। यथा—

"आम्रत्वचंविनिष्पीडय निगृह्य स्वरसं पलम्॥
चतुः पलं त्वजाक्षीरं संयुक्तं प्रपिबेत्प्रगे।
एवं मुनिदिनं कुर्यादुपदंशव्रणे हितम्॥"

(उपदंश)

(२) वमन एवं तृषामें आम्रत्वक्—आम और जामुन की छाल का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से सब प्रकार का वमन और तृषा शांत होती है। यथा—

"आम्रजम्बू कषायं वा पिबेन्माक्षिक संयुतम्।
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णां चवपकर्षति॥"

(तृष्णा-चि०)

(३) पित्तज संग्रहणी में आम्रत्वक्—आम, आमड़ा और जामुन की छाल का काढ़ा करके उसमें शाली चावलों की यवागू (क्वाथ का २० में १) सिद्ध करके सेवन करनेसे पित्तज संग्रहणी का नाश होता है। यथा—

"आम्रमाम्रातकं जंबूत्वक्कषाये पचेद्भिषक्।
यवागूं शालिभिर्युक्तां भुक्त्वा तां ग्रहणीं जयेत्॥"

(संग्रहणी-चि०)

शार्ङ्गधर संहिता—रक्तपित्त में आम्रत्वक् दे० "आम्रादिहिम"। (२ खं० ३ अ०)।

आम की छाल कषाय और बल्य है। आम्रत्वक् कषाय एवं कृमिघ्न है और पीनस रोग तथा क्रिमि-रोगमें इसका व्यवहार होता है। कषैली होनेसे अतिसार में इसका व्यवहार होता है एवं नकसीर तथा आमाशय, अंत्र, गर्भाशय और फुफ्फुस द्वारा रक्तस्राव होने में भी इसे काम में लाते हैं। यह प्रदर एवं प्रमेह के श्लेष्मस्राव रोकने के लिए भी व्यवहार में आता है। (Materia medica of India–R.N. Khory, *Part 11., p. 164.*)

नादकर्णी—असृग्दर, श्वेतप्रदर, खूनी बवासीर और फुफ्फुस द्वारा रक्तनिर्गम की दशा में तथा प्रतिश्याय (Nasal catarrh) एवं औदरीय कृमि-रोग (Lumbrica) में आम की छाल का तरल सार वा फांट प्रयोग में आता है। आम की छाल का रस ४ तो०, चूने का पानी १ तो० इनको मिलाकर सात दिन तक सेवन करें। उग्र पूयमेह की यह परमोत्कृष्ट औषध है। आम के पेड़ की छाल वा फल के छिलके का तरल सार (१२ में १) एक चाय की चम्मच की मात्रा में १ छटाँक जलमें मिलाकर घंटे दो-दो घंटे पर सेवन करते रहने से फुफ्फुस, जरायु

एवं आंत्र द्वारा रक्तस्राव होने में बहुत उपकारी सिद्ध होता है। (Indian materia medica.)

आम अभी हाल ही में यूरोप तथा अमेरिका की चिकित्सा में प्रविष्ट हुआ है। इसके लिए इसके फल के छिलके वा छाल का तरलसार काम में आता है। श्लैष्मिक कलाओं पर एक प्रकार के विशिष्ट वलय प्रभाव के साथ ही इसका संकोचक असर होता है। फुफ्फुस, आंत्र एवं जरायु द्वारा रक्तस्राव होने में तथा गर्भाशय एवं आंत्र से दूषित पूयमिश्रित श्लेष्मा आने में इसके समान दूसरी दवा नहीं, जब यह इस भाँति दिया जाता है—

एक्सट्रैक्टफ्लु० मैंगिफरा इंडिका १० फ्लु० ग्रा०
एक्वा डि० १२० ग्रा०

इसमें से एक चाय की चम्मच भर दवा प्रति घंटा वा २ घण्टा पर सेवन कराएँ। (फा० इं० १ भ०)

आमकी ताजी छाल का रस अंडे की सफेदी वा लुआब और किंचित् अफीम के साथ मिलाकर भी प्रयोग में आता है। यह अतिसार और प्रवाहिका में भी उपयोगी है। (ऐन्सली)

जब इसके तरल सार को १०:१२५ ग्राम जल के अनुपात से गण्डूष धारण कराते हैं वा इसका स्थानीय प्रयोग करते हैं, तब कंठमाला (Diphtheria) और अन्य गले के रोगों में विशेष प्रभाव होता है। यही घोल वा छाल के काढ़े का गण्डूष मुखपाक में तथा श्वेतप्रदर, गुदभ्रंश एवं योनिभ्रंश में इसकी पिचकारी बहुत ही उपयोगी है। प्रतिश्याय में भी यह उपकारक है। (Practitioner's Vade Mecum-Edaljee cawasjee Tukina. *L. M. & S.*)

आम के तने और जड़ की छाल शीतल, अनुरस और संकोचक है। इसकी लकड़ी की भस्म नासिका द्वारा रक्तस्राव होने में उपकारक है। (आम की पत्ती का अवचूर्णन भी उपयोगी है। (मुहीत आज़म)। यदि आम के वृक्ष की छाल ऊपर से छिली हुई २ तो० ४ मा० लेकर जौकुट कर रात को पाव सेर जल में भिगो दें और प्रातःकाल साफ करके एक सप्ताह पर्यन्त सेवन करें, तो सूजाक का नाश हो। (तालीफ़ शरीफ़ी) आम के तने और जड़ की छाल कूटकर दही में मिलाकर सेवन करें और पथ्य में दूध और चावल का व्यवहार करें। इससे अतिसार का नाश होता है। इसकी टहनी की दातौन मुख-दुर्गंधि-निवारक है। (मुहीत आज़म)।

आम की जड़

पर्य्या०—आम्रमूल, आमूशिफा (सं०)। बीख़े अंब: (फ़ा०)। आमेर शिकड़ (बं०)। The root of mango-tree (अं०)

गुणधर्म

आयुर्वेदीय मतानुसार—आमकी जड़ कसैली, ग्राही, शीतल, रुचिप्रद तथा सुगन्धि है और कफवातनाशक है। (बृहन्निघटुरत्नाकर)

सुगन्धि, रुचिकारक, संग्राही और शीतल है। रा० नि० व० ११।

गुणधर्म तथा वाह्यान्तर प्रयोग

वङ्गसेन—शोथ में रसालमूलत्वक्, पुनर्नवापत्र और आम्रमूलत्वक् हरएक ६ सेर, इसमें से १पाव मिश्रित लेकर कूटकर ६४ सेर जलमें पकाएँ। जब पकते-पकते १६ सेर जल शेष रह जाय, तब उसमें ४ सेर मूर्च्छित घी डालकर विधिवत् पाक करें। फिर आधसेर पुनर्नवा-पत्र और आध सेर आम्रमूलत्वक् उत्तम रूप से पीसकर १६ सेर जल में मिला, उक्त घृत को इसमें डाल पुनः पकाएँ। घृतमात्र शेष रहने पर उतार लें। इसे उपयुक्त मात्रा में शोथ रोगी को सेवन कराएँ। यह शोथ, गुल्म और अग्निमांद्य प्रभृति में हितकर है। यथा—

"पुनर्नवा पत्ररसालमूलं।
संक्षुद्य तोयार्म्मणे शेषासद्धम् ॥
चतुर्थभागेन घृतं विपक्वम्।
प्रस्थन्तु तत्कल्कपलाष्टकेन ॥
संसेवितं वातवलासरोगान्।
सर्व्वांश्च शोथानपि दुस्तरांश्च ॥
गुल्मोदर सीहगुदोद्भवांश्च।
निहन्ति वह्निं कुरुते हि पुंसाम् ॥

(शोथ-चि०)

आम का बंभा (वंदा)

पर्य्या०—आमूवंद, आमवंदा, आमूवृंदाक, (सं०)। आमगाछेर बांदरा (बं०)।

गुणधर्म तथा :प्रयोग—इसके पड़ने से वृक्ष सूखने लगता है। कहते हैं कि इसके क्वाथ से कामला के रोगी को स्नान कराने से लाभ होता है।

आम की गोंद (आम्र निर्यास)

आमका गोंद (द०)। मांगा पिशिन (ता०)। ममडि पिसुनु, ममडि बंक (ते०)। माङ्ग पश (मल०)। माविन मिश्रान: (कना०)। आम गुन (बं०)। अंबा च गोंद, अंबा नो चोक। (मरा०)। अंबानुगुंदर (गु०)। अंबमेल्लेइयम (सिंगा०)। सियसी (बर०)। दी गम ऑफ मैंगो The gum of mango (अं०)

गुण-धर्म तथा प्रयोग

मोहीदीन शरीफ़—आम की गोंद स्निग्धता-संपादक और किंचित् उत्तेजक है। (Materia Medica of Madras.)

नादकर्णी—छाल द्वारा प्राप्त तिक्त रालदारगोंद कसैली होती है। बिवाई में इसकी रालदार गोंद लगाने से लाभ होता है। (Indian Materia medica.)

आम की छाल से निकली हुई गोंद को नीबू के रस में मिलाकर तर खाज (Scabies) और दूसरे प्रकार के चर्मरोगों में प्रलेप करते है। (ऐन्सली; आर० एन० खोरी)। नादकर्णी ने इसे प्रतिश्याय (Catarrh) में भी उपयोगी लिखा है।

आम की गोंद उपदंश प्रतिषेधक मानी जाती है। (मुरें)।

आम आदा—संज्ञा पुं० [देश० बंगला] आमहलदी, फोलिया (बं०)। आमहल्दी, आम्बिया हलदी, अंबा सोंठ, कपूरहल्दी (हिं०)। आमूगंधा, आम्रगंधि-हरिद्रा, कर्पूरहरिद्रा, दार्वीभेदा, सुरभिदारु, दारु, कर्पूरा, पद्मपत्रा, सुरीमत्, सुरतारका (सं०)। आम की बोकी अदरक (द०)। आरुकम्लक चोरम्, मामिडि अल्लम, कारुपासुपु (ते०)। कूव(मलाबार)। कर्क्युमा आमाडा Curcuma amada, *Roxb.* (ले०)। मैंगोजिंजर Mango ginger (अं०)। हली अरसोन (करनाटकी)। आमहलदी (मरा०)।

संज्ञा-निर्णायक नोट—देखने में इसकी जड़ आदी के आकार-प्रकार की, पांडु पीत वर्ण की होती है। पर इससे आम के छिलके सी प्रिय गंध आती हैं; इसीसे इसको आमआदा कहते हैं। इस बात को ध्यान में रखकर ही इसकी उपर्युक्त सभी संज्ञाएँ बनाई गई हैं। पश्चिमी भारतवर्ष में प्रायः लोग इसे नहीं जानते। बंबई में जिसे अंबाहलद कहते हैं, वह इससे भिन्न पौधा है। दे० "आमाहलदी"।

हरिद्रा वा आर्द्रक वर्ग

(*N. O. Scitamineae.*)

उत्पत्ति-स्थान—भारतवर्ष के बंगाल प्रांत में इसकी खेती होती है वा यह जंगली होता है।

वानस्पतिक-वर्णन—यह हल्दी की जाति का एक प्रसिद्ध पौधा है। इसकी जड़ से भी तीखुर निकाली जाती है।

रासायनिक संघटन—इसकी गाँठ (Rhizome) में उड़नशील तैल, राल, शर्करा, निर्यास, श्वेतसार, ऐल्ब्युमिनॉइड्स, (Crude fibre), सैंद्रियकाम्ल (Organic acids) और भस्म पाई जाती है।

प्रयोगांश—पाताली धड़ (Rhizome)।

मात्रा—२ मा०।

प्रभाव—वायुनिस्सारक, शीतल, सुगंधित, तिक्त एवं कषाय।

औषध-निर्म्माण—फांट तथा कल्क।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार गुणदोष—कपूरहलदी (आमूगंधि हरिद्रा) शीतल वातकारक, पित्त-नाशक, मीठी, कड़वी और सर्व प्रकार की खाज का नाश करनेवाली है। भा० पू० ७ भ०।

डिमक के अनुसार बंगाल में चटनी बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है और यह वायु-निस्सारक, आमाशयबलप्रद और शीतल माना जाता है। औषधीय गुणधर्म में यह अदरक के समान होता है। फा० इं० ३ भ०।

हकीम मुहम्मद आज़म खाँ के अनुसार यह आर्द्रक का ही एक भेद है और गुणधर्म में प्राय: उसी के समान होता है। इसकी हरी गाँठ कतरकर नमक और नीबू के रस में मिला पाचन-शक्ति और मुख का स्वाद बदलने के लिये भोजनोपरांत थोड़ा-थोड़ा खाते हैं। यह ख़ुशबूदार एवं सुस्वादु होता है। (मुहीत आज़म)

नादकर्णी—ताज़ी जड़ सुगंधित रूप से व्यवहार में आती है। अदरक की तरह यह चटनियों का एक उपादान माना जाता है। इसकी ताज़ी और सूखी गाँठका औषधीय उपयोग भी होता है। इसके कंद में प्रिय सुरभित गंध होती और यह सुगंधि स्वादयुक्त होता है। यह खाज में उपयोगी है। कंजे की पत्तीके रसके साथ इसकी गाँठ पीसकर क्रिमि-रोग में दी जाती है। चमेली की पत्तीके रस में पीसकर इसे बालकों के त्वग्रोग में बरतते हैं। पकवानों में कृत्रिम रूप से आमका स्वाद पैदा करने के लिए इसकी जड़का कांढ़ा व्यवहार में आता है। अन्य रक्तशोधक औषधों के साथ चोट (Bruises) एवं त्वग्रोगों में इसकी गाँठके प्रलेपका वाह्य प्रयोग भी होता है। The Indian materia medica, *P. 273-4*)

आमक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुम्हड़ा । कुँहड़ा । कुष्माण्ड ।

वि० [सं० त्रि०] अपक्क । कच्चा ।

आम का झाड़-[द०] आम का पेड़ । आम्रवृक्ष ।

आम का तेज़ाब-संज्ञा पुं० [हिं० आम+का+तेज़ाब] आम्राम्ल ।

आम कारक-वि० [सं० त्रि०] आम उत्पन्न करनेवाला । आमजनक । आँव की वृद्धि करनेवाला ।

आम-की-गुठली-संज्ञा स्त्री० [हिं० आम+की+गुठली] आम्रबीज । आम का बीया । आमृास्थि ।

आम की बोकी अदरक-[द०] अम्बा-हल्दी । आम हल्दी । (Curcuma amada, *Roxb.*)

आम की रोटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० आम+की+रोटी] अमावट । अँवसठ । आम्रावर्त्त ।

आम की छिट्ट-संज्ञा स्त्री०
आम खुश्क-सज्ञा पुं० [फ़ा०] } अमचूर । आमूचूर्ण । फा० इं० १ भ० ।

आमगन्धा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] व्रीहि ।

आम-गन्धि-वि० [सं० त्रि०] विस्रगंध युक्त । बिसाँध । बिसायँध गंध; जैसे, चिता के धुएँ वा कच्चे मांस वा मछली की । अम० ।

संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] चिता के धुएँ आदि की गंध । कच्चे गोश्त वा जलती लाश की बू । बिसायँध ।

आमगन्धिक-दे० "आमगन्धि" ।

आम-गन्धि-हरिद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अम्बा-हल्दी । आमहल्दी । आम्रहरिद्रा । आम-आदा-बं० । (Curcuma Amada) वै० निघ० ।

आम-गर्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कच्चा गर्भ । अपूर्ण गर्भ । यथा—

"गर्भस्त्वामगर्भेण" । (च० शा० ६ अ०) ।

आमगाछ-[बं०] आम का पेड़ । आम्रवृक्ष । (A mango-tree.) ।

आमघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी । कटुका । रा० नि० व० ६ ।

आम-चन(ण)क-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कच्चा चना । अपक्व चणक । कच्चा रहिला । काँचा छोला-बं० । कंचे छोले, छोले हरेभरे-मरा० । रहिला, हसियपकले-कं० । Gram (Cicer arietinum.)

गुण—शीतल, रुचिकारक, सन्तर्पण, प्यास को दूर करनेवाला, दाहनाशक, गौल्य, अश्मरी और शोषनाशक है तथा कसेला और कुछ-कुछ कटु-वीर्य है । रा० नि० व० १६ । वि० दे० "चना" ।

आमचूर-संज्ञा पुं० [हिं० आम+चूर] आम का सूखा चूर्ण । आमूचूर्ण । अमचुर । यह खटाई चटनी इत्यादि में बरता जाता है ।

आम-ज्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह बुखार जो तरुणावस्था को पार न किए हो । अपक्व-ज्वर । कच्चाज्वर । नवज्वर । ताज़ा बुखार ।

लक्षण—लालाप्रसेक (लार बहना), उबकाई आना (हृल्लास), हृदय में जड़ता, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, अन्न न पचना, मुख का स्वाद बिगड़ना, गात्र का भारीपन, क्षुधा का नष्ट होना, बहुमूत्रता, देह की जड़ता, ज्वर का अतिवेग इत्यादि लक्षण आमज्वर में होते हैं । आमज्वर में वैद्य को औषध न देनी चाहिये, क्योंकि इससे

ज्वर की वृद्धि होती है तथा शोधन और शमन औषध देने से विषमज्वर उत्पन्न हो जाता है। मा० नि०। कहा है—

"पाययेद्दोष हरणं मोहादामज्वरे तुयः।
प्रसुप्त कृष्ण सर्पंसकराग्रेण परामृशेत् ॥"

वा० चि० १ अ०।

[आमडम्-[ते०] सफ़ेद एरण्ड । श्वेतैरण्ड । (Ricinus Alba.)

आमड़ा-संज्ञा पुं० [सं० आम्रातः] आमड़े का पेड़। (हिं०)। आम्रातक वृत्त (सं०)। आमड़ा गाछ (वं०)। दरख़्ते मरियम (फ़ा०)। मरियम का झाड़, जंगली आमका झाड़ (द०)। स्पॉण्डियास मैंगीफेरा Spondias mangifera, *Pers.* (ले०)। हॉगप्लम ट्री Hog-plum tree (अं०)। मरि-माञ्चेडि (ता०)। इवुर मामिडि, अम्बाल चेट्टु, सीतप्रुत्तमु, पीत प्रुत्तमु, पुईवले, केडर्स, अंवला चेट्टुपिटे (ते०)। अन्पाज़ूम (मल०)। अमटेमर (कना०)। अम्बाच झाड (मरा०)। गुए बिङ् (बर०)।

आमड़े का फल

अमड़ा, आमड़ा, आमरा, अमारी, अंबाड़ा, अमरा, आम्बाड़ा, अमला, अंबोधा (हिं०)। आम्रातक, पीतनक, कपिचूत. अम्लवाटक, शृङ्गी, कपी, रसाढ्य, तनुचीर, कपिप्रिय (धन्वन्तरीय निघंटु); आम्रातक, पीतनक, कपिचूत, अम्लवाटक (रा० नि० व० ११); पीतन, कपीतन, वर्षपाकी (र), मधुराम्लक (श), पीतनक, कपीचूता, अम्रवाटिक, मृगीफल, रसाढ्य, तन्नुचीर, कपिप्रिय, अम्बरातक, कपिचूत, अम्बरीष (ज), आम्रात, अम्रात (शब्द० मा०) अमृतक, अध्वगभोग्य (त्रि०), मर्कटाम्र (भा०) अम्बष्ठा-(सं०)। आमडा, अमरा, अंबरा (बं०)। जंगली आम, मरयम का फल, राम आम (द०)। दी हॉग प्लम The hog-plum, वाइल्ड मैंगो Wild mango (अं०)। मोम्बिन् डीमलाबार Mombin de malabar (फ्रां०)। मरि-माङ्ग, मर्य-माङ्ग, व्याट्टु माङ्ग, काठ (ठ) माऽ, मरियम चेडि, आमपुटै, मरिमञ्चेडि, अंपलै, कटमोरा, काटमर, ठानंब (ता०)। इवुर मामिडि, अडवि मामिडि, आंबालमु, टौर मामिडि, आमाटस, अंबाड़ी, आमाटे (ते०)। अंबलम, अन्पाज़ूम, अम्पाड़म (मल०)। काडुमाविना, अमूटे, अमूटे हरणु, अंबटे, पुंडी (कना०)। इरशोल आंवा, आंबाड़े, अंबाड़ा, रानआंवा, आमअंबाड़ा (मरा०)। जंगली आंवो, अंभेड़ा, अमेड़ा (गु०)। अमटे, अंबट्टेमर, अमटे, पंडीकन, कोरें, क्योरोई (बर०)। जंगली आम, अंबाड़ा, अमड़ा, अमड़ह (बम्ब०)। अम्बुर्री (कोल०)। अमड़ा, अमरा, ट्रोम्रोंग (आसाम)। टोंग रोंग, टंगरोग, अडिआई (गारो)। अमड़ा, अमरा (नेपा०)। कौचिलिंग, काट, अंबोहम (माल०, द०)। अंबुला, अंबुड (उड़ि०)। अंबेड़ा, अंबेरा (कुकू०)। हमड़ा, हमरा (कोंड०)। अमड़ा, अम्बुर्स, बोहाम्ले, आमड़ा, अमबरा, अंबरा, अंबोड़ा (कुमा०)। बहमो, अंबाड़ा (पं०)। अएमब क्रेल्ला, ईम्बीरिल्ला (सिंर०)। हमा।

आमड़े की गोंद

आमृातक निर्यास (सं०)। मर्यम के झाड़ का गोंद, जंगली आम का गोंद (द०)। मरि-माङ्ग पिशिन (ता०)। इवुर मामिडि पिसुनु (ते०)। The gum of hog-plum.

नोट—'कपिप्रिय', 'अध्वगभोग्य', 'तनुचीरी' और 'वर्षपाकी' इसकी अन्वर्थ संज्ञाएँ हैं।

उत्पत्ति स्थान—आमड़े के पेड़ समग्र भारतवर्ष में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जंगली पाए जाते हैं वा लगाए जाते हैं। सिंध नदी से पूरब की ओर एवं दक्षिण की ओर मलाका सिंहल तक तथा लंका तक इसका अधिक प्रसार देखते हैं। बंगदेश में इसके पेड़ बहुतायत से पाए जाते हैं। हिमालय पर यह ५००० फुट से अधिक ऊँचाई पर नहीं होता। प्रकृति ने इसे अनयनवृत्त एशिया में विभाजित किया है।

वानस्पतिक वर्णन—आम की तरह का, पर उससे कुछ छोटा एक पेड़, जिसका तना और शाखाएँ अत्यन्त चिकनी होती हैं। इसकी पत्तियाँ जिंगनी की पत्तियों से मिलती जुलती, पर उनसे मोटी एवं कोमल होती हैं और १-१॥ फुट लंबे सीकों पर ३ से ५ जड़े लगती हैं। ये

२ से ६ इंच तक लंबी तथा १ से ४ इंच तक चौड़ी अनीदार होती हैं आम के साथ ही इसका पतझड़ होता है और उसी की तरह सफ़ेद मौर आता है तथा छोटे-छोटे फल घौंद में लगते हैं। फल अंडाकार, गुदार, मसृण, कुक्कुटाण्ड वा बड़े बेर के बराबर विविध आकार का (१ से १॥ इंच लंबा और ¾ से १। इंच मोटा), कच्चे पर हरा और पकने पर पिलाई लिए होता है। स्वाद में यह ईषदम्ल एवं कषाय और सूक्ष्म विशिष्ट गंधि होता है। यह बालाम्र वा क्षुद्राम्र की तरह होता है, इसीलिए इसे किसी किसी भाषा में 'जंगली आम' कहते हैं। इसकी गुठली लंबोतरी, काष्ठीय, बहुत कड़ी, बाहर से तंतुल, पंचकोशीय जिनमें से केवल १ से ३ कोष बीजोत्पादक होते हैं। बीज भालाकार, अभ्रूण (Embryo) उलटा, बीजावरण शून्य होता है। फल अक्तूबर मास में पकता है। वृक्ष में पक्का फल रहते-रहते पत्ता झड़ जाता है और मंजरियाँ निकल आती हैं। कोई कोई वृक्ष वर्ष में दो बार फलता है। इसके बड़े एवं प्राचीन वृक्ष में पुराने कटे वा चिड़चिड़ाए भाग से प्रचुर परिमाण में एक प्रकार की रालदार गोंद टपकती है, जो वृक्ष के तने के समीप भूमि पर मोटे, चिपटे, लंबोतरे वा विषम खंड रूप में एकत्रित पाई जाती है वा थोड़ी मात्रा में वृक्ष पर ही लगी पाई जाती है। यह निर्यास पिलाई लिए वा हलके भूरे रंग का वृक्ष से लटकता हुआ मिलता है और इसकी सतह चिकनी एवं चमकीली होती है यह जल में अर्द्धविलेय होता और अन्य बहुत सी बातों में कीकर की गोंद के समान होता है। छाल चिकनी, सुगंधित, मसालेदार खाकी रंगकी होती है। लकड़ी कोमल, हलकी, खाकी होती है।

साधारण वृक्षों के समान इसके वृक्ष से पौधे उत्पन्न किए जाते हैं। शाखाओं को काटकर रोपण कर देने से भी वृक्ष तैयार होजाते हैं। अर्थात् यह बीज और कलम दोनों प्रकारसे उत्पन्न किया जाता है। जली हुई मिट्टी, बालू और उद्भिज खाद मिट्टी में मिलाकर इसकी जड़ में देना अच्छा होता है। इसके थाले को गोंड़ने और विशेष यत्न करने से जल्द कीड़ा पड़ने तथा वृक्ष सूखने लगता है।

भेद—देशी और विलायती भेद से यह दो प्रकार का होता है। देशी आमड़े की पत्ती कुछ बड़ी लगती और शरीफ़े की पत्ती से कुछ मिलती जुलती होती है। फल छोटा होता है, पर गुठली बड़ी होती और गूदे का नाम नहीं मिलता, केवल गुठली पर बक्कला चिपका रहता है। पकने पर आम की सी सुगंध देता और स्वाद में खटमीठा होता है। देखने में फल बेर के बराबर होता है। विलायती आमड़ा जावा द्वीप से आया है। फल बड़ा और पत्ता ढालू होता है। सुपक्व फल खाने में मीठा होता है। इसलिए इसे देशी की अपेक्षा अधिक पसंद किया जाता है।

आमड़े से दूध निकलने पर वृक्ष सूख जाता है; किंतु विलायती में दूध नहीं होता। इसकी लकड़ी हलकी मुलायम और कुछ-कुछ भूरी होती है। अस्तु, कोई असबाब बनाने के काम में नहीं आती।

नोट—उद्भिद्वेत्ताओं के कथनानुसार देशी और विलायती दोनों प्रकार का आमड़ा एक ही वृक्ष ठहरता है, केवल स्थान विशेष में मृत्तिका और जल-वायु के गुण से रूपांतर होजाता है।

प्रयोगांश—आमड़े के फल, वृक्ष की छाल, गोंद और पत्ते औषध प्रयोग में आते हैं।

औषध-निर्माण—**आम्रातक अमिश्र चूर्ण**—आमड़े के कच्चे फल जिसकी गुठली पूर्ण विकसित एवं कड़ी न होगई हो, लेकर गुठली निकाल डालें और गूदे के छोटे-छोटे टुकड़े कर धूप में सुखालें। अच्छी तरह सूख जाने पर इसे कूटकर यथाविधि महीन चूर्ण बनाएँ।

मात्रा—३० ग्रेन से १ ड्राम तक वा अधिक, २४ घंटे में ३-४ बार।

गूदे का चूर्ण, मात्रा—२-४ तो० तक। छाल का रस, मात्रा—½ से २ तो० तक। क्वाथ, मात्रा—५ से १० तो० तक। छाल का चूर्ण, मात्रा—½ माशा से ३ माशा तक।

इसकी प्रतिनिधि स्वरूप यूरोपीय औषधें—अमड़े का कच्चा फल जैंशन और कलंबा और

निर्यास कीकरकी गोंद (Indian gum-arabic) की प्रतिनिधि है।

प्रभाव—कच्चा फल आमाशय बलप्रद एवं वल्य है और गोंद स्निग्धतासंपादक एवं मृदुताकारक है।

गुणधर्म तथा प्रयोग--

आयुर्वेदीय मतानुसार—अमड़े का फल वृष्य, पित्तकारक, अग्निदीपक, शीतल, कसैला, मधुर, किंचित् वायुकारक और भारी है। (धन्वन्तरीय-निघंटु)

कच्चा अमड़ा कसैला, खट्टा, हृदय तथा कंठ को हर्षकारक है और पक्का खटमिट्ठा, चिकना तथा कफ पित्तनाशक है। (रा० नि० व० ११)

कच्च अमड़ा खट्टा, वातघ्न, गुरु, उष्णवीर्य, रुचिकर एवं रेचक है। पक्का अमड़ा रस में कसैला, पाक में मधुर, शीतल, तर्पण (तृप्ति जनक), श्लेष्मप्रद, स्निग्ध, वृष्य, विष्टंभी, बृंहण, गुरु और वल्य है एवं वायु, पित्त, क्षत, दाह, क्षय एवं रक्तदोषनाशक है। (भाव प्रकाश)

इसके कोमल पत्ते रुचिकारी, ग्राही तथा अग्निप्रदीपक है।

यूनानी मतानुसार गुण-दोष-प्रकृति--दूसरे दर्जे में शीतल और पहले में रूक्ष। हानिकर्त्ता—शीतल प्रकृति को। दर्पनाशक--कालीमिर्च। विशिष्ट गुण--पैत्तिक रोगों को लाभप्रद है।

मात्रा--१ वा २ फल।

पैत्तिक रोग और पित्तातिसार नाशक एवं उष्ण प्रकृतिवाले को लाभकारी है। कास को हानिप्रद है। इसका दर्पनाशक उन्नाब और मीठा अनार है। इसके अधिक खाने से शरीर में ख़राश पैदा हो जाती है। हिंदुस्तानियों के अनुसार यह गरम अरुचिनाशक, स्तन्यजनन, आमाशय बलप्रद, क्षुधाजनक और पित्तजनक है।(मुहीत आज़म)

हकीम मुहम्मद शरीफ़खाँ के अनुसार आमड़ा छोटे आमकी तरह का एक मेवा है, जिसे अँगरेज़ अपने बगीचों में लगाते हैं और इसका फल खाते हैं। यह अफराकारक एवं विरपाकी है। स्वाद में यह आम की तरह नहीं, प्रत्युत कुस्वादु एवं उष्ण है। (तालीफ़ शरीफ़ी)

आर्त्तव रोकने में गुठलीका प्रयोग हितकारी है।

फल कच्चा होने पर हरा, मुलायम, रेशारहित और कुछ कसैलापन लिए खट्टा होता है। इससे अचार बनाते और क़लिया एवं दाल आदि में डालते हैं, जिससे वह खट्टा एवं सुस्वादु होजाते हैं। पकाने पर इसका कसाव बहुत कम हो जाता है। इसकी पत्ती कुछ-कुछ खट्टी और अत्यंत कसैली होती है। इसका फूल उससे भी खट्टा और लतीफ़ होता है। फल की तरह इसके फूल एवं कोमल पत्तियों को पकाकर खाते हैं। जब इसके साथ मछली पकाते हैं, तब वह अत्यंत सुस्वादु हो जाती है। (मुहीत आज़म)

गुणधर्म तथा प्रयोग

नालाज्वर विशेष (आह्वत्र) में इसके वृक्ष की छाल (१ तो० १० मा० से २ तो० १मा०) पीसकर बकरी के तुरंत दुहे हुए दूध १८॥ तो० वा २॥ तो० के साथ दो तीन दिन तक प्रातःकाल पीना, वा हाथकी हथेली व पैरके तलवे में मलना गुणकारी है। कहते हैं कि, यदि बकरी एक रंग काली हो तो और उत्तम है। इससे रोग एवं उसके उग्र उपसर्ग की शांति होती है। (मुहीत आज़म)।

आर० एन० खोरी—आमड़े का गूदा कसैला, आमाशय बलप्रद एवं अम्ल है और अजीर्ण रोग में व्यवहृत होता है। छाल और निर्यास संकोचक तथा स्निग्धतासंपादक है और प्रवाहिका में व्यवहार में आते हैं। (Meteria medica of India, *Vol.-2-, p. 172*)

वनौषधि-दर्पणकार लिखते हैं—"जिस स्त्री की सभी संतान शैशव में ही मृत्यून्मुख हो जाती हैं, उसकी नवज़ात संतान के गले में आमड़े की गुठली चाँदी में मढ़ाकर धारण कराएँ। अमड़े की गुठली की यह एक विशेषता है। नया अमड़ा होने पर भी जो पुराना अमड़ा डंडी से पृथक् न हुआ हो और शुष्कावस्था में भी डंडी से लगा हो, इस कार्य के लिये उसे ही ग्रहण करना चाहिये।"

मोहीदीन शरीफ़—कच्चे फल का चूर्ण आमाशय बलप्रद है और आमाशयनैर्बल्यजन्य अजीर्ण की सामान्य दशाओं में उपयोगी है और

उन सभी रोगों में, जिनमें जैशन एवं कलंबा प्रयुक्त होते हैं, यह बल्यरूप से उपयोगी है। निर्यास लुआब की शकल में गुरु चूर्ण प्रभृति को अवलंबित रखने के लिए, अन्य औषधों का उपयोगी अनुपान है। (Materia Medica of Madras, Vol. 1., P-130)

डिमक—संस्कृत ग्रंथों में अमड़े का गूदा खट्टा कसैला और पैत्तिकाजीर्ण में उपयोगी माना गया है। इसी लिए इसे 'पित्तवृक्ष' भी कहते हैं। हिंदुस्तानी लोग खटाई की तरह इसका बहुत प्रयोग करते हैं। यह रायता बनाने में भी काम आता है। पत्ती और छाल संकोचक एवं सुगंधित होती है तथा प्रवाहिका में प्रयोजित होती है। निर्यास स्निग्धतासंपादक (शामक) रूप से काम में आता है। (फा० इं० १ भ०)।

नादकर्णी—इसके फल की गूदी अम्ल-संकोचक तथा पित्तज मंदाग्नि को लाभकारी है। यह स्कर्वीहर भी है। पत्ती और छाल सुरभित-संकोचक है और प्रवाहिका में व्यवहृत होती है। छाल पित्तज मंदाग्नि में भी प्रयुक्त होती है। कभी-कभी यह शैत्यकारक (Refrigerant) रूप से भी व्यवहारमें आती है। (टी० एन० मुकुर जी)

निर्यास स्निग्धताजनक है। कर्णशूलमें पत्तों का रस कान में डालने से और कान के बाहर लगाने से लाभ होता है। (ऐट्किन्सन)।

इसकी लकड़ी का काढ़ा सूज़ाक तथा श्वेतप्रदर में दिया जाता है। विष में बुझाए हुए शस्त्रके घाव पर इसके हरे वा सूखे फल को खाने वा पीसकर लगाने से लाभ होता है। आमड़े के नरम फलका रस लगभग १ तो०, मिश्री ५ तोला और पीपल का चूर्ण ४–५ रत्ती–इनको एकत्रकर सेवन करें। पित्त रोग की यह प्रसिद्ध घरेलू दवा है। छाल द्वारा स्रावित गोंद धूनी देने के काम आती है। (The Indian materia medica, *P. 817*)

इसका फल रक्तजरोग में लाभदायक होता है। पित्त की मंदाग्नि में फल की गिरी खिलाने से लाभ होता है। आमातिसार में पत्तों का चूर्ण, वृक्ष की छाल के काढ़े के साथ, देना चाहिए।

फल में कोई गंध नहीं होती। बकले के पास का भाग बहुत खट्टा लगता है, किंतु उसे निकाल डालने पर, गुठली के पास फल मीठा और खाने लायक होता है। पकने पर उसे कभी कभी सूखा भी खाते हैं, किंतु प्रायः तरकारी में खटाई देने को हरा ही छोड़ देते हैं। तेल, नमक और लालमिर्च मिलाकर फल की चटनी भी बनाते हैं। गाय और हिरन फल को बड़े चाव से खाते हैं।

पके आमड़े का मुकुल फूटने से पहले पके बेर के साथ अम्ल व्यंजन बनाकर खाने पर मुखरोचक होता है। कच्चे आमड़े का भी व्यंजन बनता है। सुनने में आता है, कि सर्वदा खाने से ज्वर, कुष्ट, कस और ग्रंथिका वात रोग उत्पन्न होता है। अस्तु, इसे कुपथ्य समझना चाहिए। किसी अंग के कट जाने पर आमड़े की हरी पत्ती बाँटकर प्रलेप करने से रक्त नहीं निकलता। सामान्य रक्तामाशय रोग में बकले का क्वाथ पिलाने से पीड़ा दब जाती है। (हिं० वि० को०)

आमडी–[ते०] सफेद-एरण्ड। शुक्लैरण्ड। श्वेतैरण्ड।

आमणक्कङ्कोट्टै–[ता०] रेंडी। अरण्ड का बीया। एरण्डबीज।

आमणक्कम्‌ चेडि–[ता०] रेंड का पेड़। एरण्ड-वृक्ष।

आमणक्कु-मुत्तु–[ता०] एरण्डबीज। रेंडी। अण्डी।

आमणक्केणेय–[ता०] रेंडी का तेल। एरण्ड तैल। एरण्ड-स्नेह।

आमण्ड,-आमण्डक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एरण्ड वृक्ष। रेंड। अरण्ड का पेड़। प० मु०। (२) शुक्लैरण्ड। सफेद रेंडका पेड़। रा० नि० व० ८। भा० पू० १ भ०। (३) कञ्ज। पुष्कर। पद्मपत्र।

आमण्ड–संज्ञा पुं० [अं० Almond] बादाम।

आमण्ड-आइल–संज्ञा पुं० [अं० Almond oil] बाताद तैल। बादाम का तेल। रोग़न बादाम –फ़ा०। दे० "बादाम"।

आमण्ड इण्डियन–[अं० Almond, Indian] बादामे-हिन्दी। (Terminalia cotappa) इसकी ताज़ी गिरी खाई जाती है। इं० हैं० गा०।

आमण्ड, कॉस्मेटिक-क्रीम–संज्ञा पुं॰ [अं॰ Almond, cosmetic-cream] सौंदर्यप्रद वाताद-तैल। दे॰ "बादाम"।

आमण्ड, पर्सियन–संज्ञा पुं॰ [अं॰ Almond, persian] बादामे-फ़ारसी। लौज़। लूज़ान। (Amygdalus Communis.)

आमण्ड, बिटर–संज्ञा पुं॰ [अं॰ Almond-bitter] कटु-वाताद। कड़ुआ बादाम। (Amygdala Amara)

आमण्ड-मिक्सचर–संज्ञा पुं॰ [अं॰ Almond-mixture] बादाम-तैल मिश्रण (Mistura Amygdalœ.) दे॰ "बादाम"

आमण्ड वास–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] आसव। वै॰ निघ॰।

आमण्ड-स्वीट–[अं॰ Almond,sweet] मधुर वाताद। मीठा बादाम। (Amygdala-dulcis.) दे॰ "बादाम"।

आमण्डा–[अं॰ Almonda] बादाम।

आमण्डी-मरम्–[ता॰] वन्य-वाताद। जंगलीबादाम। अरण्य-वाताद। (Hydnocarpus Inebrians, *Vahl.*)

आमतक्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] कच्चा माठा। "तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्तिकण्ठेकरोनितु"। वृ॰ वा॰ भ॰।

आमता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] कच्चा होनेका भाव। अपक्व। ख़ामी। कच्चाई।

आम-तिन्तिड़ि, आमतिन्तिड़ी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰स्त्री॰] अपक्व तिन्तिड़ी। कच्ची इमली। काँचा तेंतुल–बं॰।

आम-त्वच-(क्)–वि॰ [सं॰ त्रि॰] बारीक-चर्ममया। नर्म चमड़ेवाला। कोमलचर्मावृत।

आमन–संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] (१) वह भूमि जिसमें सालभर में केवल एक ही फ़सल उत्पन्न हो। (२) बंगाल के धान की जाड़े की फ़सल। हेमंतकालमें उत्पन्न होनेवाला धान। यह जुलाई अगस्त में बोया और दिसम्बर में काटा जाता है। वि॰ दे॰ "शालि" वा "धान"।

आमनस्य–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] (१) अनमनापन। वैमनस्य। (२) दुःख। पीड़ा दर्द। रंज। अम॰।

आमनाशिनीगुटिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] देवदाली के फूल को पीसकर गुड़ के साथ बनाई हुई गोली वा वर्त्ती जिसे गुदा में रखने से उदरस्थ समस्त कच्चा आम गिर जाता है और शरीर शुद्ध हो जाता है। र॰ चि॰।

आमनी–संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] (१) वह भूमि जिसमें जाड़े का धान बोया जाता है। (२) जाड़े में बोए जानेवाले धान की खेती।

आमन्त्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] रेंड़। एरण्डवृक्ष। आमंड। रा॰ नि॰।

आमन्त्रण–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] संबोधन। आह्वान। निमन्त्रण। नेवता।

आमन्त्रित–वि॰ [सं॰ त्रि॰] निमन्त्रित। आहूत। बुलाया हुआ।

आमन्द्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] आमण्ड। पुष्कर। कञ्ज। पद्मपत्र।

आम-पक्व लक्षण–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] आम के पकने का लक्षण। आम अर्थात् कच्चाविष्ठा अधिक भारी होने के कारण जल में डूब जाता है। और पका हुआ विष्ठा जल में तैरता रहता है। अतिपतला संघात शीतलता व कफ दूषणों के बिना होवे, तो आटोप और विष्टम्भवाले का दुर्गंध युक्त मल कच्चा व पक्का कफ के कारण जल में डूब जाता है। भैष॰ र॰ अती॰ चि॰।

आम-पत्रिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] चिल्ली नामक शाक। चिलारी। चिविल–मरा॰। वै॰ निघ॰।

आमपाक–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] दे॰ "आमपक्व"।

आम-पीच, आम्ब-पीच–[अं॰] एक फलदार वृक्ष, जो अंगरेज़ों द्वारा भारतवर्ष में पहुँचा है। ऊँचाई में इसके वृक्ष नाशपाती के पेड़ के बराबर, किंतु उससे भी उच्चतर होते हैं। पत्र आम्रपत्र से क्षुद्रतर, फल छोटे बेर के बराबर किसी भाँति दीर्घ एवं नोकदार होता है। स्वाद में कोई मधुर, कोई अम्ल और कोई बेस्वाद होता हैं। बाहर से इसका रंग रक्ताभ होता है, जिसपर खसखस बीजवत् शुभ्रबिंदु होते हैं। फलत्वक् पतली, मज्जा श्वेत जिसके भीतर घुँघची के बराबर काले रंग का बीज होता है। पुष्प आम्रपुष्पवत्, किन्तु सीधा होता है।

प्रकृति—शीतल व रूक्ष।

मात्रा—शर्बत, ५ दिरम (१ तो० ५॥ मा०)।

प्रतिनिधि—क्वथित अंगूर का पानी दालचीनी तथा केसर के साथ।

गुण—इसका फल खानेसे कारबंकल में अपूर्व लाभ होता है तथा यह रक्तोत्पादक है।

हानिकर्त्ता—वृक्क को। दर्पघ्न—मधु।

आम-पीनस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कफ। (२) कफाक्रमण। सर्दी होना। जुकाम होना। (Catch Cold.)

आमफल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम का फल। आम्रफल। दे० "आम"।

आममांस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कच्चा मांस।

आममांसासी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कच्चा गोश्त खानेवाला आदमी। आमाद्। राक्षस।

आमय—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) काला अगर। कृष्णागुरु। र० मा०। (२) कुष्ठ। कुट। रा० नि० व० ११। सि० यो० अप० चि०। "शिरीष लशुनामयैः"। भा० म० १ भ०, ज्वर० चि०। 'शालूरपर्ण्यादि मूलामय मधुसुता।'

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रोग। व्याधि। बीमारी। आरज़ा। 'रोग व्याधि गदामयः' अम०। वा० नि०। 'विविधैर्योगैर्निहन्यादामयान् बहून्'। सु०। (२) ऊँट। रा० नि० व० २०। (३) अजीर्ण। बदहज़मी।

आमयव्याप्त—वि० [सं० त्रि०] रोगी। बीमार। दुःखी। दुःखिया।

आमयावित्व—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अजीर्ण। बदहज़मी।

आमयावी—त्रि० [सं० आमयाविन्] [स्त्री० आमयाविनी] रोगी। रा० नि० व० २०।

आम-रक्त-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का अतिसार। रक्तामाशय रोग। लाल आँव गिरनेकी बीमारी। मा० नि०। दे० "अतिसार"।

आमरक्तातिसार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आँव और लहू के साथ दस्त होने का रोग। आम-रक्त। दे० "अतिसार"।

आमरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आमाशयिक-रस। Gastric juice वि० दे० "आमाशयिक रस"। (२) कच्चारस। अपक्वरस। सि० यो० अजी० चि०। "श्रीकण्ठः"। (३) अमरस। अमावट।

आमरा—[बं०] आमड़ा। अमड़ा। आम्रातक।

आमरूल—[बं०] अम्बीलोना। चुक्र। चूका। चांगेरी शाक। (Rumex vesicarius.)

आमरेका पेड़-संज्ञा पुं० [देश०] आमड़ा। अमड़ा। अम्रतक वृक्ष।

आमरो—[बं०] आँवला। आमला। अँवरा। (Phylanthus emblica, *Linn.*)

आमरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] व्याधि।

आमर्दकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आमला। आँवला।

आमर्दन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आमर्दित, आमर्दी] ज़ोर से मलना। ख़ूब पीसना वा रगड़ना।

आमर्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) क्रोध। कोप। गुस्सा। (२) असहनशीलता।

आमल,-आमलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० अल्प० आमलकी] (१) आमलकी वृक्ष। आँवले का पेड़। धात्रीफल। (२) अड़ूसा। वासकवृक्ष। अरूष। श० च०। (३) काठ आमला। काष्ठ-आमला। काष्ठ धात्रीफल। क्षुद्र-आमलक-फल। दे० "काष्ठ धात्रीफल"। (४) पदुम काठ। पद्मकाष्ठ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आँवलेका फल। आमलकी। आमला। अँवरा। (२) वयस्था। गुडूची।

आमलक आलवाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आँवले का थाला। आमलों को जल में पीसकर उससे रोगी की नाभीके चारों ओर थाला बनाकर, उसमें अदरख का रस भरदें। तो शीघ्र ही अत्यन्त भयंकर नदी के वेग के समान प्रबल अतिसारका नाश होता है। भा० म० खं० अति० चि०।

आमलक खंड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] परिणाम शूल में प्रयुक्त योग—बीजादि से रहित उबाला हुआ आमला २०० तो०, ६४ तो० घी में भूनें। फिर इसमें ३२ तो० मिश्री, आमलों का रस ३२ तो०, पेठे का रस ६४ तो० मिलाकर पकाएँ। जब पकते-पकते करछी से लगने लग जाय, तब इसमें पीपर, जीरा, सोंठ, मिर्च, प्रत्येक का चूर्ण आठ-आठ तो०,

तालीसपत्र ४ तो०, धनियाँ ४ तो०, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात और मोथा एक-एक तो० पीसकर मिलाएँ । पुनः इसमें ३२ तो० शहद मिलाकर रक्खें ।

गुण—इसके सेवन से त्रिदोष-जनित परिणाम-शूल, वमन, मूर्च्छा, श्वास, कास, अरुचि, हृदय-शूल, पृष्ट-शूल और रक्त-पित्त का नाश होता है । यह उत्तम रसायन है । वंग से० सं० परिणाम शूल चि० ।

आमलक-गंधक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धक-आमला । आमलासार-गंधक ।

आमलक-घृत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैद्यक में एक घृतौषधि । उत्तम भूमि में यथोचित काल में उत्पन्न और गन्ध, वर्ण और रससे परिपूर्ण वीर्यवान् आमलों के स्वरस और चौथाई भाग पुनर्नवा के कल्क के साथ १ आढक (६४ पल) घृत सिद्ध करें । पुनः विदारीकन्द के स्वरस और जीवन्ती के कल्क के साथ, इसके पश्चात् चौगुने गोदुग्ध और बला, अतिबला के क्वाथ और शतावरी के कल्क के साथ यथा-विधि सिद्ध करें । उपर्युक्त प्रयोगों में से एक-एकके साथ १००-१०० अथवा १०००–१००० बार विधिवत घृत सिद्ध करके चौथाई भाग खाँड़ और शहद मिलाकर सोने, चाँदी या मिट्टी के दृढ़, स्वच्छ और घृत के चिकने घड़े में भरकर रक्खें ।

गुण—इसे यथाविधि अनुकूल मात्रा से प्रातःकाल सेवन करने और पच जाने के पश्चात् दूध और घृत के साथ शाली चावल का भोजन करने से १०० वर्ष तक की यौवनावस्था बनी रहती है । और समस्त रोग नष्ट होजाते हैं तथा वह सन्तानोत्पत्ति में समर्थ होजाता है । च० चि० १ अ० ।

आमलक-चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आमले का चूर्ण । चरक के रसायनाधिकार में इसे रसायन लिखा है । च० चि० १ अ० ।

आमलकम्–[मल०] } आमला । आँवला । आम-
आमलकमु–[ते०] } लकी । धात्रीफल ।

आमलक योग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमले का एक प्रयोग जिसमें आमले की गुठली जल में पीसकर और उसमें शहद मिलाकर पीने से श्वेत प्रदर का तीन दिन में नाश होना बतलाया गया है ।

आमलक-शुण्ठ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काष्ठामलक । काष्ठ धात्रीफल । काठ-आमला । "मुद्गामलक-शुण्ठयोः" । च० द० ज्वर० पञ्चमुष्टिः ।

आमलक-रसायन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक आयुर्वेदीय रसायन योग ।

निर्माण विधि—आमला, हड़, बहेड़ा इनको ढाककी छाल में बन्द करके ऊपर से मिट्टी का लेप करके आरने उपलों की अग्नि में स्वेदन करें । पुनः इनमें से गुठली पृथक् करके उसमें से १००० पल लेकर ओखली में कूटें । फिर इसमें दही, घी, शहद और चीनी तथा तिल का तेल मिलाकर विधि-पूर्वक अनाहार मुख सेवन करें । इसके पश्चात् यथोचित काल में प्रकृत्यनुकूल यवागु आदि का आहार करें एवं जौ का चूर्ण घृत में मिलाकर देह पर मर्दन करें ।

जब तक इसका प्रयोग जारी रहे, उस समय तक प्रत्येक भोजन में अग्नि और बलानुसार मूँग के यूष, या दूध के साथ साठी चावलों का घृत युक्त भात खाएँ । उसके उपरान्त यथेच्छ सुख-कारक आहार-विहार करें ।

गुण—इसके सेवन से प्राचीनकाल में ऋषियों ने पुनः यौवनावस्था एवं सैकड़ों वर्ष की निर्विकार आयु प्राप्त की थी । तथा इसके प्रभाव से अत्यन्त शारीरिक बल, इन्द्रियबल, एवं बुद्धि प्राप्त करके निष्ठा के साथ तप करते थे । च० चि० १ अ० ।

(२) एक रसायन योग । प्रथम एक वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय होकर ब्रह्मचर्य पूर्वक सावित्री का ध्यान करते हुए केवल दुग्धाहार पर ही रहें । इसके पश्चात् पौष, माघ या फाल्गुन के महीने में एक दिन निराहार व्रत धारण करके पूर्णमासी के दिन आमलों के बन में प्रवेश करें । वहाँ पहुँचकर बृहत् फलों से परिपूर्ण आमले के किसी वृक्ष पर चढ़ जाएँ और किसी शाखा के एक आमले को हाथ में लेकर उस समय तक ब्रह्मामृत मन्त्र का जाप करें, जब तक कि वह आमला अमृतमय होकर शर्करा और मधु के समान मधुर एवं स्निग्ध और कोमल न हो जाए । इस प्रकार आमले में सुधा

संचार होने पर उसे भक्षण करें। इस समय जितने अमृतमय आमले खाए जाएँगे, उतनी ही हजार वर्ष की युवावस्था प्राप्त होगी।

आमलकअवलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आयुर्वेद में एक लेह्यौषध. उबाले हुए आमले, दाख और सोंठ इन्हें समान भाग लेकर पीसकर उसमें शहद मिलाकर चाटने से मूर्च्छा, खांसी और श्वास का नाश होता है। र० र० ज्वर चि०। (२) दे० "आमलकी रसायन"।

आमलकसार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमलासार गन्धक।

आमलका, आमलकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटी जातिका आँवला। आँवली। औंरी। मद० व० १। भा० पू० १ भ०। रा० नि० व० ११। वै० निघ०। सु०सू० ४५ अ०। च० चि० १ अ० दे० "आँवला"। (२) भुँइ आमला। भूम्यामलकी।

आमलकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) आँवली। औंरी। दे० "आँवला"। (२) वयस्था। गुडुची। गिलोय।

आमलकी-दल, आमलकी-पत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तेजपात। (२) ज़र्नब। तालीशपत्र। तालीस-पत्र। वै० निघ०।

आमलकायस रसायन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आयु, बुद्धि, बलादि वर्धक उक्त नाम का इस प्रकार का एक रसायन योग—

प्रथम माघ या फाल्गुन मास में हाथ से तोड़े हुये यथोक्त गुण सम्पन्न आमले लेकर, उनकी गुठलियाँ निकालकर एवं सुखाकर आमलों का चूर्ण करें। फिर इसको आमले के रस की २१ भावना देकर सुखाकर महीन करलें। इसके बाद षड विरेचन शताश्रितोयाध्यायोक्त जीवनीय, बृंहणीय, स्तन्यजनन, शुक्रवर्द्धक और वयः स्थापक गण एवं चंदन, अगर, धौ, खदिर, सीसम और आसन इन वृक्षोंके सार, हड़, बहेड़ा, पीपल, वच, चव्य, चीता और वायविडंग यह सब चीज़ें मिलाकर १ आढक (६४ पल) ग्रहण करें। अब इनमें से चन्दनादि के सारों को कूटकर बारीक-बारीक टुकड़े करलें। फिर सब चीजों को १० आढक जल में पकाएँ। जब १ आढक जल शेष रह जाय, तब नीचे उतारकर छानकर उसमें आमलों का पूर्वोक्त १ आढक चूर्ण मिलाएँ और फिर उसे उपलों या बाँस अथवा सरकंडे की अग्नि में पकावे। जब पानी जल जाय (परन्तु औषधि न जलने पाए) तब नीचे उतार कर किसी लोहे के पात्र में फैलाकर सुखाएँ। इसके पश्चात् काले हिरन की चर्म पर एक पत्थर की शिला बिछाकर उसे उस पर पीसें। इसे आठवाँ भाग लोह चूर्ण और घृत तथा शहद मिलाकर अग्नि बलानुसार मात्रा में सेवन करें।

इसे पूर्वकाल में वशिष्ठ, कश्यप, अंगिरा आदि ऋषियों ने सेवन किया था और इसके प्रभाव से श्रम, व्याधि, जरा आदि रहित एवं अत्यन्त बलवान होकर यथेच्छ काल तक तपस्या करते थे। इसके प्रभाव से उन्होंने तप, ब्रह्मचर्य्य, ध्यान और शांति युक्त आयु प्राप्त की थी। यथोक्त नियमों का पालन करने से ग्राम्य जनों को भी इससे सिद्धि प्राप्त होसकती है। च० चि० १ अ०।

आमलकी रसायन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अवस्था स्थापक एक योग—

निर्माणविधि—(१) १००० नग आमले और १००० पिप्पलियों को ढाकके क्षारीय जल में भिगो दें। पानी इतना होना चाहिए, कि उसमें उपर्युक्त दोनों चीज़ें अच्छी तरह डूब जाँय। जब सब क्षार-जल सूख जाय, तब उन्हें छाया में सुखा कर आमलों की गुठली दूर करके दोनों का चूर्ण कर लें। फिर उसमें चारगुना उत्तम शहद और घी एवं चौथाई भाग चीनी मिलाकर किसी उत्तम चिकने पात्र में भरकर ज़मीन में दबा दें। इसके पश्चात् उसे छः मास के अन्त में निकालकर अग्नि बलानुसार उचित मात्रा से प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करें और सायंकाल को पथ्य भोजन करें। इसके सेवन से मनुष्य १०० वर्ष की आयु प्राप्त कर सकता है। च० चि० १अ०।

(२) १ आढक आमले के चूर्ण को २१ दिन तक १००० आमलों के रस में भिगोएँ। पुनः उसमें १–१ आढक शहद और घी तथा सबके वज़न से आठवाँ भाग, पीपलका चूर्ण और चौथा

भाग खाँड मिलाकर मिट्टी के चिकने पात्र में भर कर राख के ढेर में दबा दें और बरसात भर वहीं दबा रहने दें। पुनः बरसात बाद निकाल कर यथा विधि सेवन करें और पथ्य पालन करें। इसके सेवन से १०० वर्ष की जरारहित आयु प्राप्त हो सकती है। च० चि० १ अ०।

(३) यथोक्त गुण सम्पन्न १००० आमलों को ढाक की गीली लकड़ी की ढक्कनदार हाँड़ी में भरकर उसके मुखको अच्छी तरह बन्द कर दें, कि जिसमें भाप न निकल सके। अब इस हाँड़ी को अरने उपलों की मृदु अग्नि पर रखकर आमलों को स्वेदित करें। जब आमले उसीज जांय तब ठंडा होने पर उनकी गुठली निकालकर गूदे को अच्छी तरह मथ लें। अब एक आढ़क यह मथा हुआ गूदा लें और एक आढक पीपल का चूर्ण, १॥ आढ़क वायविडङ्ग का चूर्ण, खाँड १ आढ़क, शहद,घी और तिल-तैल २-२ आढ़क लेकर, सब को मिलाकर घृतके चिकने घड़े में भरकर २१ दिन तक रक्खा रहने दें। इसके पश्चात् यथोचित पथ्य पालन करते हुए विधि-पूर्वक सेवन करें।

गुण—इसके सेवन से १०० वर्ष की जरारहित आयु प्राप्त हो सकती है। च० चि० १ अ०।

आमलक्यवलेह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाण्डु रोग में प्रयुक्त आमले की एक प्रकार की चटनी।

योग—यंत्र द्वारा निकाला हुआ आमले का स्वच्छ रस १ द्रोण लेकर उसमें पीपल का चूर्ण १ प्रस्थ, मुलहठी २ पल, बीजरहित मुनक्का का कल्क १ प्रस्त, अदरख और वंसलोचन २-२ पल, मिस्री ५० पल मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाएँ। जब गाढ़ा हो जाए, तब उतार कर ठंडा होने पर उसमें उत्तम शहद १ प्रस्थ मिलाएँ। मात्रा-१तो० से ४ तोला तक। गुण-इसके सेवन से हलीमक और पाण्डु रोग का नाश होता है। यो० र० पाण्डु-चि०।

आमलक्यादि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] औषधियों का एक वर्ग जिसमें आमलकी आदि पड़ती है। वह यह है—

आमला, हड़, पीपल और बहेड़ा। इस गण की औषधियाँ सब तरह के ज्वरों की नाशक, आँख के लिए हितकारी, अग्निदीपक, वृष्य, कफ और अरुचिनाशक हैं। सु० सू० ३८ अ०।

आमलक्यादि अवलेह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का अवलेह का योग, जिसमें आमला प्रधान है और जिसे ब्रह्म रसायन भी कहते हैं। योग इस प्रकार है—

दशमूल, पुनर्नवादि पंचमूल (पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, बला, एरण्डमूल), जीवकादि पंचमूल (जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावर) और तृणपंचमूल (सरपत की जड़, ईख की जड़, काश की जड़, शालि धान की जड़ और कुसा की जड़)-इन्हें पृथक्-पृथक् दो-दो पल लें। उत्तम हरड़ १००० तथा परिपक्व आमले ३००० लें। प्रथम काष्ठ औषधियों को १० गुने जल में डालकर पकाएँ, जब शेष जल १ भाग रहे, तब उसको शुद्ध वस्त्र में छान लें। पुनः हड़ और आमकों की गुठलियाँ पृथक् करलें और उसे पीसकर झीने वस्त्र में छानलें। जब छनकर रेशे पृथक् होजाँय, तो इसको उन औषधियों के क्वाथ में मिलादें। पुनः इसमें ब्राह्मी, पीपल, शंखपुष्पी, केवटीमोथा, नागरमोथा, विडंग, रक्तचंदन, अगर, मुलहठी, हल्दी, बच, कनकबीज, दालचीनी और छोटी इलायची का बारीक चूर्णकर सम्मिलित करें और ११०० पल (१ मन १५ सेर) मिश्री, २ आढ़क तिल का तेल और गोघृत ३ आढ़क मिलाकर कलईदार ताम्रपात्रमें भरदें। फिर उसे मन्द-मन्द अग्नि से पकावें। जब गाढ़ा होकर सुर्ख होजावे, तब ठंडा करके इसमें २॥ आढ़क उत्तम शहद मिलाएँ। पुनः अच्छी तरह आलोड़ित कर किसी चिकने घृत के पात्रमें भरकर १५ दिन तक धरा रहने दें।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे उचित मात्रानुसार अर्थात् उतनी जितनी मात्रा खाने से भूख बन्द न हो जाय, विधिवत् नित्य खाएँ। जब मात्रा जीर्ण हो जाय अर्थात् प्रातः काल की खाई हुई औषध पचकर भूख लग जाय, तब साठी चावलों का भात और गोदुग्ध का आहार करें। इसके सेवन से वैखानस और बालखिल्य तथा अन्यान्य तपोधन महर्षि अमित आयु

को प्राप्त हुए थे उनकी जीर्णता दूर होकर तरुणावस्था प्राप्त हुई थी एवं वे तन्द्रा, क्लान्ति, श्वास, आदि रहित होकर निरातंक शुद्ध काय हुये थे। वे सावधानी, मेधा, स्मृति और बल से संपन्न होकर चिरकाल तक तप और ब्रह्मचर्य को पालन करते थे। इसी ब्राह्म्य रसायनको वे आयु की कामना के अर्थ प्रयोग करते थे। इसके प्रभाव से मनुष्य दीर्घायु, नवीन अवस्थावाला होकर अपनी इच्छानुसार इष्ट कामनाओं के फल को भोगता है। च० चि० १ अ०।

आमलक्यादि-कषाय-संज्ञा० पुं० [सं० पुं०] आयुर्वेद में एक प्रकार का काढ़ा जिसमें आमला और अन्य औषधियाँ पड़ती हैं। योग—

आमला, नागरमोथा, सोंठ, कटेरी और गिलोय के काढ़े में शहद और पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से संतत-ज्वर का नाश होता है। वृ० नि० र० ज्वर चि०।

आमलक्यादिक्वाथ-संज्ञा पुं० [सं०] आमलों के काढ़े में गुड़ मिलाकर पीने से रक्तपित्त, दाह, शूल, मूत्रकृच्छ्र, और थकावट का नाश होता है। वृ० नि० र० मूत्रकृ० चि०।

आमलक्यादि-खण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उत्तम पके हुये बीज रहित आमला ६४ तो० लेकर गोदुग्ध में पीसकर ६४ तो० गाय के घी में भूनें। पुन: ६४ तो० मिश्री की चाशनी करके मिलाएँ। पश्चात् अड़ूसे की जड़ की छाल ४ पल, जीरा, मिर्च, पीपर, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर-इनका चूर्ण एक-एक तोला बनाकर यथाविधि मिलाकर रखें।

गुण—इसके सेवन से दाह रोग की शान्ति होती है। बंग से० सं० दाह-चि०।

आमलक्यादि-गण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुश्रुत में औषधियों का एक वर्ग जिसमें आँवला, हड़, पीपल और चीता (पाठान्तर से बहेड़ा) ये पाँच द्रव्य सम्मिलित हैं। आमलक्यादि गण सर्वज्वरनाशक, नेत्रों को हितकारी, दीपन, वृष्य, कफ तथा अरुचिनाशक है। सु० सू० ३८ अ०।

आमलक्यादि गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]आमला, कमल गट्टा, कूट, धान की खील और बड़ की कोंपल-इन पाँच औषधियों का चूर्ण करके शहद में मिलाकर झरबेरी के बराबर गोलियाँ बनाएँ।

गुण--इन गोलियों को मुख में रखकर चूसने से प्रबल तृष्णा और मुख शोष का नाश होता है। वृ० नि० र० तृष्णा-चि०।

आमलक्यादिघृत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का आयुर्वेदीय घृत-योग।

निर्माण-विधि-आमले का स्वरस, ईख का स्वरस; हरीतकी क्वाथ-इनमेंसे प्रत्येक वस्तु समान भाग लेकर उनके साथ सब के वजन से चौथाई घृत का यथा-विधि पाक सिद्धकर सेवन करने से पित्तज गुल्म का नाश होता है। वृ० नि० र० गुल्म-चि०।

आमलक्यादि-चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आँवला के सहित औषधियों का एक गण जिसका चूर्ण हर प्रकार के ज्वरों में उपयोगी, दीपन और भेदी है। औषधियाँ यह हैं—आमला, चीता, हड़, पीपल और सेंधानमक, इनका यथाविधि चूर्ण करें।

मात्रा—६ मा० से १ तो० तक।

गुण—सम्पूर्ण ज्वरों का नाशक और अग्निप्रदीपक है। भा० म० २ भ० ज्व०-चि०। यो० र०।

आमलक्यादि-पाक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्त-पित्त में प्रयुक्त एक पाक-योग—

निर्माण-विधि—काकड़ासिंगी, तामलकी (तालीस पत्र), त्रिफला, खिरेटी, गिलोय, विदारीकंद,कचूर, जीवंती, दशमूल, चन्दन, नागरमोथा, नीलकमल, इलायची, अडूसा, मुनक्का, अष्टवर्ग, पुष्करमूल-इन सबको पृथक्-पृथक् डेढ़-डेढ़ पल प्रमाण लेकर १ द्रोण जल में ५०० आँवलों के साथ औटावें। औट जाने पर गुठलियों से पृथक्कर यथाविधि घृत और तैल ६-६ पल मिलाकर भूनें। तदनन्तर $\frac{1}{2}$ तुला मिश्रीकी चाशनी करके पाक करें। जब शीतल हो जाय, तबका ६ पल शहद डालदें। पुनः उसमें बंशलोचन, छोटी इलायची, नागकेशर, तज, पत्रज और पीपल प्रत्येक २-२ पल और पूर्वोक्त काकड़ासिंगी आदि को चूर्णकर डालें। इसे च्यवनप्राश अवलेह भी कहते हैं। यो० चि०।

गुण—यह पाक रक्त-पित्त, क्षयरोग, क्षीणता, कास, कुष्ठ, भ्रम, प्यास इन सब रोगों को तथा बुढ़ापे को दूर करता है।

आमलक्यादि-योग-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में आमले का एक योग विशेष। दे० "आँवला"।

आमलक्यादिलेह-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आयुर्वेदमें एक प्रकारका अवलेह योग, जिसमें आँवला, आदि औषधियाँ पड़ती हैं। विधि तथा उपादान—शुद्ध आमलों का रस १६ सेर (१ द्रोण) आग पर चढ़ाकर पकाएँ। तदनन्तर पीपल का चूर्ण १ सेर (१ प्रस्थ) मुलहठी ८ तो० (२ पल), दाख का कल्क १ सेर (१ प्रस्थ), छिली हुई अदरख ८ तो० (२ पल), वंशलोचन ८ तो० (१ पल), मिश्री २॥ सेर, (आधी तुला) डालकर चाशनी करें और फिर उसमें उत्तम शहद १ सेर (१ प्रस्थ) मिलाकर रखें।

मात्रा—४ तो० (१ पल) या आवश्यकतानुसार।

गुण—इसके सेवन से हलीमक, कामला, पाण्डु, जल के विकार और अतिसाररोग का नाश होता है। यो० र० पाण्डु-चि०

(२) उबाले हुए (स्विन्न) आमले, दाख और सोंठ समान भाग लेकर, पीसकर शहद में मिलाकर चाटने से मूर्च्छा, खाँसी और श्वास का नाश होता है। र० र० ज्वर।

आमलक्यादि लोह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्तपित्तादि रोग में प्रयुक्त होनेवाला एक योग—

आमला, पीपल, और लोहभस्म समान भाग लेकर मिश्री के साथ उपयोग करने से रक्तपित्त का नाश होता है। यह अग्निदीपक वल्य, वृष्य, और अम्लपित्तनाशक और वात पित्त से उत्पन्न रोगों का नाशक है। रस० यो० सा०।

आमलच्छद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तालीशपत्र। ज़रनब। तालीसपत्ता। वै० निघ०।

आमलज-[अ०] आमला। आँवरा।

आमलतास-संज्ञा पुं० दे० "अमलतास"।

आमलयः-[फ़ा०] आमला। आँवला।

आमला-संज्ञा पुं० [सं० आमलक] दे० "आँवला"।

आमलातक-संज्ञा पुं० [सं०] मेंहदी का फूल।

आमलादि-वटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक औषध जो प्यास दूर करने के काम में आती है।

योग तथा निर्माण-विधि—आमला, कमल गट्टा, कुट, लाजा (लावा), वटकी जटा (बरोह) समानांश लेकर चूर्ण करके शहद के साथ झरबेरी के बराबर गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके प्रयोग से तथा मुख में धारण करने से मुख राग और दारुण प्यास नष्ट होती है। योग० चि० गुटि० अ०।

आमलाद्य-लोह-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैद्यक में एक प्रकार की रसौषध, जो रक्त-पित में उपयोगी है।

निर्माण विधि—आमला और पीपल का चूर्ण समान भाग लेकर पुनः दोनों के समान उत्तम लोहभस्म और इन तीनोंके बराबर मिश्री मिलाएँ।

मात्रा—३ से ६ रत्ती तक वा आवश्यकतानुसार।

गुण—इसके प्रभाव से रक्त-पित्त, अम्ल-पित्त, पित्तजन्य रोग, वात-रोग और अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं। र० सा० सं०। वृ० रस रा० सु०।

आमला-मुनक्का-[फ़ा०] गुठली निकाला हुआ आमला। बीजरहित आँवला।

आमलासार-संज्ञा पुं० एक प्रकार की गंधक। दे० "गंधक"।

आमली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भुँई आँवला। भूम्यामलकी। वै० निघ०।

[बं०] इमली।

आम-वात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रोग जिसमें आँव गिरती है और संधियों में वेदना तथा हाथ पैर में सूजन हो जाती है। मुँह भी सूज जाता है और शरीर पीला पड़ जाता है। यह रोग मन्दाग्नि वाले को अजीर्ण में भोजन करने आदि कारणोंसे होता है। इसकी चिकित्सा "अतिसार" रोग में देखिये।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की वातव्याधि। यह एक उग्र व्याधि है, जिसमें तीव्र-ज्वर होता है, जोड़ सूज जाते हैं, और हृदय के कोष्ठों की सूजन (Endocarditis) की ओर विशेष

प्रवृत्ति होती है अर्थात् हृदय के भीतर सूजन हो जाने की आशंका होती है।

पर्य्या०—आमवात, संधिवात (सं०)। गठिया (हिं०)। गठिये का बुखार, शदीद. गठिया (उ०)। हुम्मा वज्उल् मफ़ासिल, वज्उल् मफासिल हाद्द, दाउल् मफ़ासिल (अ०)। रुह्युमैटिक फीवर Rheumatic fever, एक्यूट रुह्युमैटिज़्म Acute rheumatism. (अं०)। रुह्युमैटिज़्मी आर्टिक्युलैरी ऐगु Rhumatisme articulaire aigu (फ्रां०)। हिट्ज़िजर गेलेंकरुह्युमैंटिज़्मस Hitziger gelenkrheumatismus (जर०)।

टिप्पणी—वैद्यक में 'आमवात' नाम से केवल एक ही प्रकार के गठिया अर्थात (Rheumatic fever) का ही उल्लेख मिलता है। पर नवीन शोधों से इसके निम्न लिखित भेद और ज्ञात हुए हैं, पाठकों के लाभार्थ जिनका यहाँ उल्लेख कर देना उचित जान पड़ता है। वे इस प्रकार हैं –

(१) छोटी संधियों में होनेवाला साधारण आमवात (Rheumatic arthritis or gout), (२) चिरकारी आमवात (Chronic Rheumatism), (३) मांसपेशीगत आमवात (Muscular rheumatism), (४) पूयमेहजनित आमवात (Gonorrhœal Rheumatisn) और (५) फिरंगीय आमवात (Syphilitic Rheumatism)। इनके विस्तृत वर्णन के लिए दे० "गठिया"।

निदान तथा संप्राप्ति

विरुद्ध आहार (प्रकृति विरुद्ध, समय विरुद्ध, संयोग विरुद्ध) तथा विरुद्ध चेष्टा करनेवाले मनुष्यों के एवं स्निग्ध अन्न भक्षण करके कसरत करनेवाले मनुष्यों और बिना काम के बैठे रहनेवाले मनुष्यों के मंदाग्नि के कारण कुपित वायु से प्रेरित किया हुआ आम (अन्नरस) आमाशय, वक्षःस्थल, कंठ, मस्तक और संधि आदि कफस्थानों-को धावमान होता है। वहाँ से वह आम अत्यंत अपक्व रहकर धमनियों में प्राप्त होता है।

इसके उपरांत वात, पित्त और कफ से अत्यन्त दूषित होकर वह अन्नरस स्रोतों में अभिष्यंद उत्पन्न करता है और वह नाना रंग का और अत्यन्त चिकना (पिच्छिल) होता है। यह शीघ्र दुर्बलता और हृदय की गुरुता उत्पन्न करता है। यह अन्नरस (आम) सम्पूर्ण आमवात रोगों (व्याधियों) का आश्रय है, अतएव अति दारुण है। जब आम और वायु दोनों एक समय कुपित होकर कोठे में तथा कमर और गरदन के पीछे की संधियों में प्रविष्ट होकर शरीर को जकड़ देते हैं, तब उसको आमवात कहते हैं। मा० नि०।

डॉक्टरी में यद्यपि अभी इस रोग का सर्वमान्य निदान ज्ञात नहीं; तथापि इस बातको प्रायः सभी पाश्चात्य चिकित्सक मानते हैं, कि यह एक कीटाणु जन्य रोग है। किसी-किसी के मत से स्ट्रेप्टोकॉकस कीटाणु द्वारा रक्त दूषित होकर यह रोग होता है। इसके विपरीत दूसरों का यह मत है कि उक्त कीटाणु द्वारा स्थानीय संक्रमण होकर उससे विषाक्तता होती है। अधुना कोई-कोई अन्वेषक माइक्रोकॉकस रह्युमाटिकस (Micrococcus rheumaticus) अर्थात् आमवातिक कीटाणुओं को इस रोग का कारण मानते हैं।

कभी यह व्याधि पैतृक होती है। यद्यपि उक्त व्याधि प्रत्येक अवस्था में हो सकती है; तो भी अधिकतया १६ से २५ वर्ष की आयु में विशेष होती है। स्त्रियों की अपेक्षा निर्धन और श्रमजीवी पुरुषों को अधिक हुआ करती है। पूर्वोक्त कथनानुसार इस रोग का कारण एक विशेष प्रकार का कीटाणु है जो रोगी के रक्त प्रभृति में वर्तमान होता है। अस्तु, उक्त कीटाणु को यदि किसी स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट करें, तो उसे भी यह रोग होजाता है। परन्तु वर्षा में भींगना, आर्द्रस्थान में शयन करना, भींगे कपड़े देर तक पहने रहना, सर्दी लगना, पाचनविकार, ऋतुपरिवर्तन और कठोर शारीरिक श्रम प्रभृति भी इसके

विप्रकृष्ट कारण हैं। तर स्थानोंमें जहाँ कि ऋतु में अकस्मात् परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् वायु शीतल और तर होजाती है, वहाँ इस रोग का अधिक प्रकोप होता है। स्त्रियों में मासिकस्राव का अवरुद्ध होजाना, अधिक काल तक स्तन्यदान करना और गर्भधारण प्रभृति इसके प्राथमिक कारण हैं। बीस वर्ष से न्यून अवस्था की तरुणी में इस रोग का अधिक प्रादुर्भाव होता है। जो व्यक्ति एकबार इस रोग का शिकार होचुका होता है, उसे पुनः इस रोग से आक्रांत होने की आशंका हुआ करती है।

लक्षण—इस रोग में प्रायः अकस्मात् बेचैनी मालूम होती और जाड़ा लगकर ज्वर चढ़ आता है, जिसके २४ वा ३६ घंटे के उपरांत एक वा कई जोड़ों में पहले अँकड़ाव पुनः उग्र वेदना होती है। सर्व प्रथम घुटने और टखने के जोड़, उसके उपरांत कुहनी और कलाई की संधि रोगाक्रांत होती है। कभी ऐसा होता है, कि प्रथम रोगी को बेचैनी होती है, कभी-कभी (Tonsils) गले की ग्रंथियाँ सूज जाती हैं, शरीर के विभिन्न भागों में वेदना होती है। तत्पश्चात् बड़ी संधियों में सूजन और वेदना होती है, जो दबाने से बढ़ती है। फलतः जब यह रोग पूर्णतः प्रकाशित होजाता है, तब रोगी की अवस्था अत्यन्त दयनीय होती है; जोड़ सूजकर अत्यन्त दर्द करने लगते हैं। यहाँ तक कि यदि उन पर वस्त्र का भी स्पर्श होजाय, तो रोगी दर्द की शिकायत करता है। सूजन दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है और एक के बाद दूसरे बड़े-बड़े जोड़ कभी दोनों ओर के सम्मुखवर्त्ती जोड़ एक साथ रोगाक्रांत होजाते हैं। ज्वर १०२ वा १०३ कक्षा का होता है। प्रातःकाल यह किंचित् घट जाता है; किंतु तीव्रावस्था में १०५ दर्जे का ज्वर होता है और कभी-कभी १०६ वा ११० दर्जे तक का भी अति उग्र ज्वर होजाता है। ऐसी दशा में मृत्यु की अधिक आशंका होती है। नाड़ी भरी हुई एवं तीव्र चलती है। जिह्वा क्लिन्न एवं मैली होती है। प्रायः मलावष्टंभ होता है। पेशाब अल्प परिमाण में और लाल होता है। पाचनशक्ति विकृत होती है। भूख नहीं लगती, किंतु प्यास अधिक लगती है। प्रचुर दुर्गंधित स्वेद-स्राव होता है और उसकी कैफ़ियत अम्ल होती है। इस रोग में शोथ एक से दूसरी संधि में और दूसरी से तीसरी में स्थानांतरित होता रहता है। इस प्रकार बड़े-बड़े जोड़ों में वेदना प्रभृति का दौरा होता रहता है। दर्द के मारे रोगी हिल-डोल नहीं सकता। प्रायः रात में नींद नहीं आती। साधारणतः दस-बारह दिवस के उपरांत ज्वर उतर जाता है और अन्य लक्षण भी घट जाते हैं; केवल निर्बलता शेष रह जाती है। इस रोग की प्रायः पुनरावृत्ति होती है।

वैद्यक के अनुसार अंग टूटना, अरुचि, प्यास, आलस्य, भारीपन, ज्वर, अन्न न पचना और शरीर की शून्यता ये आमवात के सामान्य लक्षण हैं। यथा—

"अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्यं गौरवं ज्वरः।
अपकः शूनताङ्गनामामवातस्य लक्षणम् ॥"
(मा० नि०)

इस रोग के अत्यन्त बढ़ जाने पर ये लक्षण होते हैं और तब यह सब रोगों में अति कष्टदायक होता है—

हाथ, पैर, शिर, टखने, त्रिक, जानु, जाँघ-इनकी संधियों में पीड़ारहित सूजन होती है और जहाँ आम प्राप्त होता है, उस स्थान में बिच्छू के डंक मारने कीसी पीड़ा होती है। मंदाग्नि, मुख से पानी गिरना, अरुचि, देह का भारीपन, उत्साह का नाश, मुख का स्वाद बिगड़ जाना, दाह होना और बहुत मूत्र उतरना, कोख में कठिनता, शूल, निद्रा-विपर्यय अर्थात् दिन में सोना और रात्रि में जागना, प्यास, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, हृदयग्रह, मल-मूत्र रुकना, जड़ता, आँतों का बोलना, आनाह और अन्यान्य कष्टदायक संकोच खंज आदि उपद्रवों को करता है।

यथा—

"संकष्टः सर्व रोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत्।
हस्तपाद शिरोगुल्फ त्रिक जानूरु सन्धिषु ॥
करोति सरुजं शोथं यत्रदोषः प्रपद्यते।
सदेशोरुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः॥

जनयेत्सोऽग्नि दौर्वल्यं प्रसेकारुचि गौरवम्।
उत्साह हानि वैरस्यं दाहञ्च वहुमूत्रताम्॥
कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्रा विपर्य्ययम्।
तृट्छर्दि भ्रम मूर्च्छाश्चहृद्ग्रहंविडविवद्धताम्॥
जाड्यांन्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान्।
(मा० नि०)

आमवात के विशेष लक्षण—पित्त से उत्पन्न आमवात दाहयुक्त लाल रंगका होता है, वातका शूल सहित होता है और कफयुक्त में मानो शरीर को भींगे कपड़ेसे लपेट दिया गया हो ऐसा लपेट दिया गया हो ऐसा प्रतीत होना, भारीपन और खुजली होती है। यथा—

"पित्तात् सदाहरागञ्च सशूलं पवनानुगम।
स्तिमितं गुरुकण्डञ्च कफ दुष्टं तमादिशेत॥"
(मा० नि०)

टिप्पणी—जब ज्वर का वेग प्रबल न हो और जोड़ भी अत्यधिक सूजे हुए एवं वेदनापूर्ण न हों, तब इस प्रकार के रोग को साधारण आमवात (Sub-acute Rheumatism) कहते हैं। इसमें विकृत संधि के रूप-आकार एवं बनावट में किंचिन्मात्र भी अन्तर उपस्थित नहीं होता।

व्याधि का वेग-काल—यह रोग प्रायः तीन सप्ताह से छः सप्ताह तक रहता है। बहुधा रोगी इससे स्वास्थ्य लाभ करते हैं। किंतु नैरोग्य प्राप्ति के उपरांत कभी-कभी किसी आंतरिक अवयव में विकार उत्पन्न हो जाता है वा संधियों में कठोरता आदि दोष शेष रह जाते हैं। हृदय के रोगाक्रांत होने के उपरांत जब रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है, तब वह सर्वथा स्वस्थ नहीं हो जाता। प्रत्युत कुछ न कुछ विकार शेष रह जाता है। फलतः साधारण आयास वा श्रम करने से भी हृदय धड़कने लगता है और साँस फूलने लगता है। अंततः जलोदर रोगाक्रांत होकर रोगी इहलौकिक लीला समाप्त करता है। सांवातिक रोग में रोगी प्रायः हृदय-विकार से मृत्यु को प्राप्त होता हैं।

रोग-निदान

निक्रूरिस वा (Gout) रोग से इसका निदान करना अनिवार्य है (दे० "गठिया")। रोग के प्रारम्भ में विसर्प (Erysepelas), पूयज्वर (पाई-इमिया) और हड्डी-तोड़ बुख़ार (डेंग्यूफ़ीवर) प्रभृति से इस रोग का भ्रम होजाया करता है। किन्तु उपर्युक्त रोग के विशेष लक्षणों को ध्यान में रखने से पूर्णतया एवं निश्चयात्मक निदान होजाता है।

उपसर्ग

जैसा कि ऊपर वर्णन हुआ, इस रोग में सूजन एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे जोड़ में स्थानान्तरित होजाया करती है। कभी पूर्वाक्रांत जोड़ में पुनः इसका प्रादुर्भाव होता है और यह बात किसी प्रकार भयावह नहीं। परन्तु जब यह रोग आंतरिक अवयवों में स्थानान्तरित होजाता है। तब उसका परिणाम प्रायः आपत्तिकारक होता है। अस्तु, जब हृदय वा हृदावरक की ओर इसकी प्रवृत्ति होती है, तब यह आतंकजनक अनुमान किया जाता है अर्थात् हृदय के इस रोग से आक्रांत होने पर रोगी की दशा निराशाजनक होती है। इसी प्रकार मास्तिष्कीय आमवात (सेरिबल र्ह्युमाटिज़्म) भी अत्यन्त तीव्र एवं भयावह होता है; क्योंकि इसमें मस्तिष्क एवं उसके पर्दों में सूजन होजाती है। जिसके कारण ज्वर अत्यन्त तीव्र (प्रायः १०६ से ११० दर्जे तक) होता है, चेहरा भुरभुराया हुआ होता एवं चित्त न लगना और बुद्धिभ्रंश आदि लक्षण होते हैं। व्यग्रता एवं प्रलाप होता है। अंततः तंद्रा एवं मूर्च्छावस्था में रोगी इस संसार से प्रस्थान कर जाता है।

परिणाम वा साध्यासाध्यता—संधिशूल अर्थात् जोड़ों के दर्द से तो कम मृत्यु, उपस्थित होती है। पर जब आंतरिक अवयव, जैसे, हृदय वा मस्तिष्क रोगाक्रांत होजाते हैं एवं बहुत तीव्र ज्वर होजाता है, तब परिणाम प्रायः अशुभ होता है। दो दोष वा तीनों दोषों के प्रकोप से हुए आमवात में हर एक दोष के मिले हुए लक्षण प्रकाशित होते हैं। जब यह एक दोष के प्रकोप से होता है, तब साध्य होता है, दो दोषों के प्रकोप से हुआ याप्य (कष्टसाध्य), परन्तु तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न अर्थात्

सान्निपातिक और विशेषकर वह जिसमें सम्पूर्ण शरीर पर सूजन हो, कृच्छ्रसाध्य वा असाध्य होता है। कहा भी है—

"एक दोषानुगः साध्यो द्विदोषोयाप्य उच्यते।
सर्वदेहचरः शोथः सकृच्छ्रः सान्निपातिकः॥"
(मा० नि०)

चिकित्सा-क्रम

आयुर्वेदीय मतानुसार—आमवातकी चिकित्सा में रोगी को प्रथम स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, लंघन तथा वस्तिकर्म कराने के पश्चात् तिक्तरस, दीपन औषध और कटु रस का सेवन हितकारी होता है।

वेदनापूर्ण स्थल को गरम बालू की पोटली से सेंक करें अथवा बालुका स्वेद की विधि से स्वेद कराएँ। निम्नलिखित वस्तुओं में से जो उपलब्ध हो, उसके द्वारा स्वेद करें; जैसे—कपासके बिनौले, कुलथी, तिल, जौ, रेंड़ की जड़, तीसी, पुनर्नवा और सन के बीज इनको समान भाग लेकर एकत्र वा पृथक् पृथक् काँजीमें पीसकर कल्क प्रस्तुत कर उसे दो बराबर भागों में बाँटें। फिर इन दोनों को वस्त्र-खंड में बाँधकर दो पोटलियाँ बनाएँ। फिर एक मिट्टी के घड़े में थोड़ी काँजी डालकर घड़े के मुख को एक ऐसे खपड़े के टुकड़े वा परई से ढँक दें, जिसमें बहुसंख्यक छोटे-छोटे छिद्र किए गए हों। इसके बाद गेहूँ के गूँधे हुए आटे वा किसी अन्य ऐसी ही वस्तु से घड़े और ढक्कन के दर्ज को बन्द करदें और बर्तन को अग्नि पर रखें। जब काँजी उबलने लगे, तब पूर्वोक्त पोटलियों को बारी-बारी से सछिद्र ढक्कन के ऊपर रखकर गरम करें और उससे विकारी स्थल को स्वेदित करें। इसे 'शंकरस्वेद' कहते हैं। (भैष०)

लेप—(१) जटामांसी, सुपारी, सहिजन की जड़ और सर्पाक्षी-इन्हें समान भाग लेकर गोमूत्रमें बारीक पीसकर लेप करने से आमवात का नाश होता है। (२) सोये के बीज, बच, सोंठ, बड़ा गोखरू, बरुण की छाल, पीले फूल की बरियारा, पुनर्नवा, कचूर, प्रसारणी, जयंती और हींग-इनको समान भाग लेकर काँजी में पीसकर गरमकर लगाएँ। (३) कृष्णजीरक (मँगरैल), पीपल, करंज की गुद्दी और सोंठ इनको बराबर-बराबर लेकर अदरक के रस में पीस गरमकर लगाएँ। (४) सेँहुँड के रस में सेंधानमक मिलाकर लगाने से सूजन और दर्द दोनों में उपकार होता है।

आन्तरिक

(१) दशमूल वा सोंठ के काढ़े में आधा छटाँक वा रोग व रोगी की अवस्था के अनुसार न्यूनाधिक रेंडी का तेल (कैस्टर आइल) मिलाकर पिलाएँ अथवा केवल रेंडी का तेल गरम दूध में मिलाकर पिलाएँ।

(२) निशोथ का चूर्ण २ मा०, सेंधानमक १२ मा० और सोंठ का चूर्ण २ मा० परस्पर मिलाकर रखें। इसमें से १–१॥ तो० चूर्ण काँजी के साथ व्यवहार में लाएँ।

(३) निशोथ के चूर्ण में निशोथ-पंचांग के काढ़े की भावना देकर उपर्युक्त मात्रा में काँजी के साथ सेवन करें। ये विरेचनार्थ उपादेय हैं। आंत्र शुद्धि के लिये इनका व्यवहार किया जा सकता है।

(४) दशमूल, गिलोय, रेंड की छाल, सोंठ, देवदारु और रास्ना इनको समान भाग लेकर क्वाथ करें। इस क्वाथ में उचित मात्रा में रेंडी का तैल मिलाकर पीने से आमवात की पीड़ा नष्ट होती है।

(५) चीते की जड़, कुटकी, पाठा, इंद्रजव, अतीस और गिलोय का चूर्ण अथवा देवदार, वच, मोथा की जड़, अतीस और हड़ के चूर्ण का प्रयोग भी लाभकारी प्रमाणित होता है। इसकी मात्रा १ तो० से १॥ तो० तक है। इसे गरम पानी के साथ सेवन करना चाहिए।

(६) 'गौरख पाक'—यह आमवात का अनुभव सिद्ध योग है। इसके प्रयोग से आमवात में बहुत लाभ होता है। 'गौरख पाक' के लिए दे० "गौरख"।

डॉक्टरी चिकित्सा

वाह्योपचार

रोगी को एक ऐसे कमरे में, जिसका उत्ताप ६० अंश फारनहाइट हो, वायु का रुख बचाकर,

एक नरम बिछौने पर आराम से लिटाएँ। परन्तु चारपाई लोहे की लचकदार न हो। रोगी को फलालैन का कुरता और पायजामा पहनाएँ ताकि जो पसीना आए वह उन कपड़ों में अभिशोषित होता रहे। अन्यथा स्वेद के अभिशोषित न होने की दशा में वायु लगकर सर्दी लगने की आशंका रहती है और इससे रोग आंतरिक अवयवों में स्थानांतरित होजाया करता है।

गठिया के रोगी को सर्वथा आराम से बिछौने पर लेटा रहना अत्यावश्यकीय होता है। क्योंकि इसमें हृदय के रोगाक्रांत होने की बहुत संभावना होती है। और हृदय के रोगाक्रांत होजाने पर फिर रोगी के लिए उठना-बैठना वा चलना-फिरना अत्यन्त भयावह होता है। इसलिए ज्वर शांत होने के उपरांत भी कई सप्ताह तक रोगी का आराम से लेटे रहना अनिवार्य होता है। पुनः धीरे-धीरे शरीर की मालिश करानी चाहिए। इसके उपरांत क्रमशः उठकर बैठना, फिर खड़ा होना और फिर चलना फिरना चाहिए। पर यदि चलने फिरने से हृदय धड़कने लगे अथवा नाड़ी तीव्र चलने लगे तो उक्त अवस्था में कुछ दिवस और विश्राम करना चाहिए। सूजी हुई संधियों को पोस्ते के क्वाथ से सेंक करें। इस हेतु २ तो० पोस्ते के छिलके को २ सेर पानी में क्वथित कर, उस क्वाथ में फलालैन का टुकड़ा भिगो और निचोड़कर सूजे हुए जोड़ों पर अहोरात्रि में दोबार आध-आध घंटे सेंक करें सेंककर चुकने के उपरांत यह औषध लगाएँ।

ऑलियम् गॉलथेरिया १ आउंस, मेंथोल १ ड्राम, केम्फर २ ड्राम, लेनोलीन ३ आउंस तक-इन सब औषधियों को मिलाकर, उसमें से थोड़ी सी दवा लेकर पूर्वोक्त विधि के अनुसार विकृत जोड़ों पर मर्दन करें और फिर उनको धुनकी हुई स्वच्छ रूई से ढककर उपर से आइल्ड सिल्क (मोमजामा) रखकर पट्टियाँ बाँध दें। अथवा 'सैलीसिलेट ऑफ़ मीथिल' को समान भाग वेज़ेलीन और लेनोलीन में मिलाकर उपयुक्त विधि के अनुसार जोड़ों पर लगाएँ। यह भी बहुत गुणकारी है।

आभ्यांतरिक चिकित्सा

सैलीसिलेट ऑफ सोडा इस रोग की अव्यर्थ महौषधि है, जबकि यह काफ़ी परिमाण में प्रयुक्त की जाती है। परन्तु इस औषध के प्रयोग से पूर्व रोगी को एक लवण-विरेचन देकर उसके पेट को शुद्ध कर लेना चाहिए। अतएव रात्रि में ३ ग्रेन कैलोमेल १० ग्रेन सोडाबाईकार्ब में मिलाकर सेवन कराएँ और आगामी प्रातःकाल को मैग्नेसिया सलफास ४ ड्राम २-३ छटाँक पानी में घोलकर पिलाएँ। दो-चार दस्त आ चुकने के उपरांत सैलिसिलेट ऑफ सोडा का उपयोग करें। उग्र आमवात में यदि रोगी जवान हो, तो चिकित्सा के प्रारंभ में दिन के समय १० ग्रेन सैलीसिलेट ऑफ सोडा प्रति दो-दो घंटे पश्चात् प्रयोजित करें और रात्रि के समय प्रति ४-४ घंटे पश्चात्। इस प्रकार चौबीस घंटे में ८० वा ९० ग्रेन व्यवहार में लाएँ। एक वा दो दिन में जब ज्वर एवं वेदना में कमी आजाय, तब मात्रा भी घटा देनी चाहिए। यदि सैलीसिलेट ऑफ सोडा के साथ कोई क्षारीय औषध, जैसे, सोडाबाईकार्ब वा पोटासी बाईकार्ब मिलाकर दी जाय, तो फिर उसका अवसादक प्रभाव नहीं होता। जिन रोगियों पर इसका अधिक अवसादक प्रभाव होता हो, उन्हें इसके साथ स्पिरिट अमोनिया एरोमेटिक मिलाकर व्यवहार करना श्रेयस्कर होता है। इसलिए अधोलिखित दोनों योगों में से किसी एक को व्यवहार में लाएँ।

(१) सोडियाई सैलीसिलेट्स (नेचरल)	२० ग्रेन
सोडियाई बाई कार्बोनेट्स	१५ ग्रेन
सिरप ज़िंजिबरिस	½ ड्राम
एक्वा क्लोरोफॉर्माई (ऐड)	१ आउंस

ऐसी १-१ मात्रा पहले प्रति २-२ घंटे बाद ९ मात्रा तक और फिर प्रति ३-३ घंटे बाद ४ मात्रा तक और फिर प्रति ४-४ घंटे पश्चात् देते रहें।

गुण—यह उग्र गठिया में अति लाभकारी है।

(२) सोडियाई सैलीसिलेट्स (नेचरल)	२० ग्रेन
पोटासियाई कार्बोनेट्स	१५ ग्रेन

एक्सट्रैक्ट ग्लीसीरहाइज़ी लिक्विड १५ मि०
स्पिरिटस अमोनिया एरोमेटिकस २० मिनिम्
एक्वा क्लोरोफॉर्माई (ऐड) १ आउंस

ऐसी १-१ मात्रा औषध प्रति ४-४ घंटे पश्चात् दें। दो-तीन दिन के बाद फिर प्रति ६ घंटे बाद दें। यह भी उग्र गठिया में उपकारी है।

यदि सैलीसिलेट ऑफ़ सोडा को पूरी मात्रा में प्रयुक्त करने से ४८ घंटे के उपरांत रोग कम न हो, तो फिर यह समझना चाहिए कि, उसे उग्र आमवात नहीं परंच कोई अन्य व्याधि है। क्योंकि उक्त औषध के उपयोग से बहुधा १-२ दिन में ज्वर, वेदना एवं तत्सम्बंधी अन्य लक्षण अवश्य घट जाते हैं। जब रोग घट जाय तब औषध की मात्रा भी क्रमशः घटा देनी चाहिए। उदाहरणतः दो-तीन दिन के पश्चात् जब ज्वर और वेदना प्रभृति कम हो जायँ, तब औषध की मात्रा तिहाई कम करदें। पुनः पाँच छः दिन के अनन्तर आधी करदें और पाँच सात दिवस के उपरांत और घटादें अर्थात् १०-१० ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन बार दें। परंतु ज्वर और संधिशूल के प्रशमित हो जाने के उपरांत भी कई सप्ताह तक उक्त औषध को देते रहें और यदि औषध की मात्रा घटाने से रोग बढ़ जाय, तो फिर तुरंत उसकी मात्रा बढ़ादें।

उग्र आमवात के प्रायः रोगियों को तो सैलीसिलेट ऑफ सोडा की, उपर्युक्त मात्रा बिना किसी प्रकार की हानि के क्षमता होती है। किंतु किसी किसी को इसकी अधिक मात्रा की क्षमता नहीं होती। किसी-किसी को यह असात्म्य होती है। अतएव किसी-किसी पर इसका विषैला प्रभाव होकर कान बजने लगते हैं, दृष्टि धुँधली हो जाती है, और शिरोघूर्णन, वमन, असीम निर्बलता एवं प्रलाप आदि विकार हो जाते हैं, मूत्र के साथ रक्त आने लगता है, अत्यंत हृदौर्बल्य के कारण नाड़ी बहुत निर्बल और अनियमित चलने लगती है, हस्त-पाद शीतल हो जाते हैं, कोई-कोई रोगी सर्द आहें भरने लगते हैं इत्यादि। औषध के कृत्रिम एवं विकृत होने की दशा में उपर्युक्त भयंकर लक्षण अवश्य प्रगट हो जाते हैं। अतः उक्त औषध सदा विश्वासनीय कारखाने की बनी एवं विश्वस्त औषध-विक्रेता से खरीदनी चाहिये। फिर भी यदि उपर्युक्त विकार प्रकाशित हों, तो इसको प्रागुक्त योगों की शकल में देना चाहिये। इतने पर भी यदि सात्म्य न हो तो इसकी जगह सैलीसीन (Salicin) वा एसपाइरीन (Aspirin) व्यवहार में लायें। अतएव २० ग्रेन सैलीसीन दिन में तीन बार देने से बहुधा कल्याण होता है। सैलीसीन का एक उत्तम प्रयोग यह है—

सैलीसीन २ ड्राम, पोटासियम कार्बोनेट और सोडियम बाई कार्बोनेट प्रत्येक $\frac{1}{2}$ ड्राम इन सबको परस्पर मिलाकर ६ पुड़िया बनाएँ और ऐसी १-१ पुड़िया पानी के साथ दिन में तीन बारदें।

ऐस्पाइरीन के प्रयोग से भी इस रोग में उपकार होता है। अतएव इसे चूर्ण रूपमें दूध अथवा ताज़े नीबू के रस में मिलाकर इस प्रकार उपयाग में लाएँ कि प्रथम दो दिन तक प्रति दिन ८-८ ग्रेन ऐस्पाइरीन ३-३ घंटे के अंतर से देते हैं। और फिर तीसरे से छठे दिन तक ४-४ घंटे पश्चात् देते हैं। फिर सातवें से नवें दिन तक ५-५ घंटे के अंतर से देते हैं। दसवें से बारहवें दिन तक ६-६ घंटे बाद देते हैं। पर यदि इसके प्रयोग काल में शरीर पर दाग, धब्बे वा ददोड़े प्रभृति निकल आएँ तथा अधिक निर्बलता प्रतीत होने लगे तो इसका प्रयोग स्थगित कर देना चाहिये। १२ वर्ष के रोगी बालकको जवान रोगी की अपेक्षा इसे आधी मात्रा में दे सकते हैं। दश वर्ष के बालक को ५ ग्रेन दैनिक कतिपय बार दे सकते हैं। सुकुमार बालकों को सैलीसिलेट ऑफ सोडा की जगह सैलीसीन का व्यवहार श्रेष्ठतर होता है। अतएव सैलीसीन १० ग्रेन और सोडाबाईकार्ब ५ ग्रेन दूध में मिलाकर दें।

सीरम और वैक्सीन ट्रीटमेंट इस रोग में उपयोगी सिद्ध नहीं हुये।

उपर्युक्त औषधियों के सेवन काल में रोगी को मलावरोध न होने दें। अस्तु, यदि रात दिन में मलोत्सर्ग न हो, तो रात्रि में कम्पाउंड पाउडर ऑफ लिकरिस १ ड्राम वा कन्फ़ेक्शन ऑफ सेना १ ड्राम अथवा ब्ल्यू पिल ५ ग्रेन वा प्रातः काल मैग्नेशिया सल्फेट २ ड्राम और मैग्नेशिया

कार्बोनेट २० ग्रेन, पेपरमिंट वाटर १ आउंस पानी में मिलाकर पिलाएँ।

वेदना एवं व्याकुलता निवारणार्थ रात्रि में १० ग्रेन डोवर्स पाउडर के प्रयोग से लाभ होता है। पर यदि मस्तिष्क रोगाक्रांत हो, तो उक्त औषध का प्रयोग वर्ज्य है।

उग्र ज्वरोष्मा प्रशमनार्थ रोगी के शरीर को शीतल जल से असफंज करना वा उसको भींगे चादर से लपेटना वा सावधानीपूर्वक शीतल जल से स्नान कराना प्रायः कल्याणकारी होता है। अतएव रोगी को एक तर चादर पर लिटाकर और चद्दर के कोने पकड़कर रोगी को धीरे से उठाकर टब अर्थात् नाद में जिसमें ६० अंश फारनहाइट का उष्ण जल भरा हो, सावधानीपूर्वक पानी में पकड़े रखें और उसमें धीरे-धीरे इतना शीतल जल मिलाते जायँ, कि जल का तापक्रम घटकर ७५° अंश फारनहाइट तक हो जाय।

टिप्पणी—१५ मिनट में ही यह सब कार्य समाप्त कर देना चाहिये। पुनः स्नानांतर रोगी को तत्काल सूखी चादर में लपेट कर शय्या पर सुला देना चाहिए और उसे देखते रहना चाहिए। यदि निर्बलता ज्ञात हो, तो उत्तेजक औषधियों का व्यवहार कराएँ।

हृदय के रोगाक्रांत होनेपर उस स्थान पर भारीपन एवं वेदना का अनुभव होता है एवं हृदय और नाड़ी की गति अनियमित हो जाती है। ऐसी दशा में हृदय स्थल पर राईका पलस्तर लगाना वा तीसीकी पुल्टिस रखना उपयोगी सिद्ध होता है।

जब रोगी स्वास्थ्य लाभ करने लगे तो उसे सर्दी से सुरक्षित रखें और जब असल रोग निवृत्त हो जाय और केवल निर्बलता शेष रह जाय, तब रोगी को बल्य औषधियाँ,जैसे, लोहे और क्विनीन के यौगिक और मछली का तेल प्रभृति सेवन कराएँ। गरम स्थानों में जलवायु परिवर्तनार्थ जाने का आदेश करें और कुपथ्य करने से रोकें। रोग निवृत्ति के उपरांत होनेवाली निर्बलता में क्विनीन टॉनिक मिक्श्चर विशेषकर सैलो-क्विनीन-सैलीसिलेट १० ग्रेनकी मात्रामें कीवट में डालकर दिनमें दो-तीन बार दें। यह योग भी बहुत उपकारी है—

लाइकर आर्सेनिकेलिस १ ड्राम।

सिरूपस फेराई आयोडाइडाई ६ ड्राम।

दोनों को परस्पर मिलाकर उसमें से १० से ३० बिंदु रोगी की अवस्था के अनुसार क्रम वर्द्धित मात्रा में जलमें मिलाकर दिन में दो-तीन बार भोजनोपरांत दें।

यूनानी मतानुसार चिकित्सा

हकीमों के अनुसार इस प्रकार का ज्वर उग्र-रक्तज एवं पैत्तिक आमवात में ही हुआ करता है। अस्तु, ज्वर को ध्यान में रखकर नियमानुसार रक्तज एवं पैत्तिक आमवात की चिकित्सा करें।

टिप्पणी—यद्यपि प्राचीन यूनानी चिकित्सकों ने इस रोग में फ़सद बासलीक़ द्वारा रक्तमोक्षण को अत्यंत उपकारी लिखा है। पर अर्वाचीन अन्वेषणों से यह बात प्रमाणित हो चुकी है, कि उक्त रोग में रक्तमोक्षण (फसद) करना हृदय को विकृत एवं निर्बल करता है। अस्तु, उचित यह है कि शिराव्यध न कर, संशोधनार्थ विरेचन का प्रयोग करें। सुतरां अधोलिखित वाह्यांतरोपचार का आश्रय लें।

वाह्योपचार

(१) एक तो० सुरंजान हरे धनिये के पानी में पीसकर पीड़ित संधियों पर प्रलेप करें।

(२) रसवत ३ मा०, लाल चंदन २ मा० और सुरंजान १ मा० सबको पीसकर २ तो० गुलरोग़न मिलाकर लगाएँ। अथवा वेदना शमनार्थ

(३) ईसबगोल और कोकनार (पोस्ता)समान भाग लेकर पानी में पकाकर गाढ़ा करें। इसमें आवश्यकतानुसार गुलरोगन मिलाकर प्रलेप करें। यह प्रलेप भी प्रारंभिक अवस्था में उपादेय है।

(४) दोनों चंदन, गुले सुर्ख़,सुपारी, अक़ाक़िया, जौ का आटा समान भाग लेकर सिरका और हरे धनिए के पानी बराबर भाग में पीसकर आलेप करें। तीव्र वेदना निवारणार्थ अफीम और केसर प्रत्येक ३ मा० और मिला लें। तीन दिन के उपरांत ख़त्मी तथा बनफ़्शा, इकलीलुल्मलिक और गुल बाबूना उपर्युक्त औषधि के बराबर

और डालें अथवा (५) सुरंजान ३ मा०, मकोय ४ मा० कूटछानकर गुलरोगन १ तो० और मुर्गे के एक अंडे की सफ़ेदी में मिलाकर लगाएँ।

उग्र वेदना की दशामें बर्ग हिना खुश्क १ तो०, देशी साबुन १ तो० आवश्यकतानुसार सिरके में पीसकर आग पर रखें,जब मरहमकी भाँति होजाय, ईषदुष्ण जोड़ों पर लगाकर रूई वा रेंड का पत्ता रखकर बाँध दिया करें। रोग़न कुचिला, रोग़न गुल आख, अर्क अजीब, रोग़न कुस्त अथवा रोग़न सुर्ख वा कैरूती कर्पनः आदि में से कोई आवश्यकतानुसार गरम करके मालिश करें। इससे वेदना तत्काल शांत होती है। अथवा फर्पयून २॥ मा०, जुंदबेदस्तर १ मा० सूरिंजान तल्ख़ ६ मा०, जावशीर ३ मा० आवश्यकतानुसार गुलावार्क में पीसकर कवोष्ण वेदना स्थल पर प्रलेप करें। इससे भी वेदना शांत होती है।

आभ्यंतरिक उपचार

प्रारंभ में कुछ दिन तक ७ मा० माजून सुरंजान मिलाकर, गोखुरू ३ मा०, खरबूजे के बीज ३ मा०, खीरा के बीज ३ मा० पानी में पीसकर शर्बत बज़ूरी ४ तो० मिलाकर पिलाएँ और वेदना स्थल पर रोग़न हिना आवश्यकतानुसार ईषदुष्ण करके मालिश करें। यदि इस उपाय से लाभ न हो, तो सोए के बीज (तुख़्म शिबित) १ तो० पानी में क्वथितकर सिकंजबीन मिलाकर गरम गरम पिलाएँ, जिससें क़ै हो जाय। प्रारंभ में वमन हो जाने से प्रायः इस रोग में लाभ पहुँचता है और यदि संशोधन की आवश्यकता हो तो, प्रथम यह मुंज़िज ६ दिन तक पिलाएँ—

सूरिंजान शीरीं ५ मा०, गुले बनफ़्शा ७ मा०, चिरायता ७ मा०, उन्नाब ५ दाना, सूखा मको ५ मा०, सौंफ की जड़ ५ मो०, शाहतरा ७ मा०, अफ़्तीमून विलायती ५ मा०, बस्फाइज फुस्तकी ५ मा०, मवेज मुनक्का ६ दाना, सौंफ ७ मा० रात में उष्ण जल में भिगोएँ। प्रातः मल-छानकर गुलकंद ४ तो० वा तुरंजबीन ४ तो० मिलाकर पिला दिया करें। दसवें दिन इसी योग में गुलेसुर्ख़ ७ मा०, सनाय मक्की ७ मा० और डालकर भिगोएँ। प्रातः मल-छानकर अमलतास का गूदा ५ तो०, तुरंजवीन ४ तो०, गुलकंद ४ तो०, शक्कर सुर्ख़ ४ तो० बढ़ाकर, ५ दाने बादाम की गिरीका शीरा सम्मिलितकर पिलाएँ।

यदि विरेचन द्वारा दोषों का पूर्णतया संशोधन न हो, तो दूसरे और तीसरे रेचन में हब्ब इयारज ६ मा० प्रागुक्त विधानानुसार सेवन कराएँ अथवा हब्ब सूरिंजान ५ वटी रात्रि में खिलाकर प्रातः काल विरेचनौषध पिलाएँ, प्रत्येक विरेचन के बीच एक दो-दिन का अंतर देकर दूसरा विरेचन दें। दो विरेचनों के बीचकी अंतर-कालीन अवस्था में पूर्वोक्त तबरीद का प्रयोग करें। विरेचन का कार्य समाप्त होने के उपरांत माजून उश्बा ७ मा० वा माजून इज़ाराक़ी ३ मा० वा माजून सूरिंजान शीरीं ७ मा० अर्क उश्बा १० तो० और मिस्री २ तो० मिलाकर दें। हब्ब गुल आख वटी हब्ब सूरिंजान ५ वटी, वा हब्ब इज़ाराक़ी २ वटी अर्क मको १२ तो० के साथ खिलाना भी लाभकारी है। रात में यह वटी दें सक़ोतरी १ तो०, सकमूनिया मुशव्वी सिब्र १ तो०,सफ़ेद निशोथ १ तो०, सूरिंजान शीरीं १ तो०, ग़ारीक़ून मुश्खल (छना हुआ) १ तो०, सनाय मक्की १ तो०, सोंठ १ तो० सबको कूट छानकर यथावश्यक गुलावार्क में घोंटकर चने बराबर गोलियाँ बनाएँ। इसमें से ५ वटी रात में सोते समय गरम पानी के साथ खिला दिया करें।

पथ्यापथ्य

ऊरुस्तम्भ रोग में वर्णित हिताहित आहार-विहार के नियमों का पालन करें। इसमें स्नान करना वर्जित है। पर यदि बिना स्नान किये रोगी न रह सके, तो उसे कभी-कभी गरम पानी से स्नान कराना चाहिये। वेदना-स्थल को सदा रूई वा फलालैन से आच्छादित रखना नितांत आवश्यकीय है। ज्वर होने पर चावल का प्रयोग वर्जित है। रोगी को सूखा आहार यथा गेहूं के आटे की चपाती वा साबूदाना अथवा कोई अन्य लघु आहार दें।

पुराना चावल, कोदों का पुराना चावल, पटोल, करेला, जौ की रोटी, लवा, तीतर, कबूतर तथा अन्य वातनाशक मांसों का रस, तक्र, कटुरस

और मस्तु (दही का तोड़) के साथ उपयुक्त आहार देना बहुत गुणकारी है। (भैष०)

डॉक्टरी मत—इस रोग में पथ्यापथ्य का विशेष ध्यान रखें। अतएव जब तक ज्वर वर्तमान हो, केवल गोदुग्ध पिलाते रहें, दूध में शक्कर कम मिलाएँ। थोड़ा सोडावाटर वा एक छटाँक दूध में एक-दो ग्रेन के हिसाब से सोडियम साइट्रेट मिला देना विशेष उपकारी होता है। रोगी जितना दूध पी सके, पीने दें। अहर्निशि में न्यूनातिन्यून २ वा २॥ सेर दूध पिलाना चाहिए दूध में यवाम्बु भी योजित कर देसकते हैं। पानी भी रोगी जितना पीना चाहे उसे देते रहें। किंतु अधिक शीतल जल न दें। जब बुखार उतर जाय और दो दिन तक किंचिन्मात्र भी ज्वरांश न रहे, तब दूध की जगह मूँग की दाल, चपाती और खाली सब्जी तरकारी भी पकाकर दे सकते हैं। जब तक ज्वर उतरे दश दिवस न बीत जायँ, तब तक किसी प्रकार का गोश्त वा मछली प्रभृति कदापि न दें। अन्यथा रोग के पुनरावर्तन की आशंका रहती है।

आमवात रोग में व्यवहृत मिश्र-अमिश्र औषध

अमिश्र औषधि

आयुर्वेदीय—हिंगु, तेजपत्र, चव्य, गोरख, अमलतास, आक, धत्तूर, गुगुल, एरण्डबीज, एरण्डमूल, सोंठ, निसोत, इन्द्रायणमूल, इन्द्रायण का गूदा, पीपल, पीपलामूल, त्रिफला, सौंफ, लौंग, कचूर, वायविडंग, कुटकी, जमालगोटा, चित्रक, हिंस्रा, सहिजनमूल, गिलोय, मिर्च, अनन्तमूल, नौसादर, संखिया, पारद, गंधक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, बंगभस्म, टंकणभस्म, शहद, घृत, पुरातन गुड़, इत्यादि।

आयुर्वेदीय और यूनानी—इयारज, निसोथ, शतावर (बूज़ीदान), सुरंजान, माही ज़हरज, गुग्गुल, पीली हड़, काली हड़, राई, सोंठ, चीता लकड़ी, सातर, अनीसून, अजवायन, हरमल, क़ंतूरियून, कुट, एलुआ, इंद्रायन का गूदा, ग़ारीक़ून, तगर, वच, कालीजीरी, फ़र्फ़्यून, ज़रावंद, मजीठ, ज़ूफ़ा ख़ुश्क, अर्तनीसा, लौंग, जिंतियाना, हाशा, तज, पुदीना, फितरासालियून, जुन्दः, फ़रासियून, कमाफ़ीतूस, कमाज़रियूस, उस्क़ूरदियून, सोया, गेहूं की भूसी, तुख़्म कड़, मुरी, ख़र्बक़ स्याह, ख़र्बक़ सफ़ेद, अकरकरा, माज़रियून, हींग, कालीमिर्च, जुंदबेदस्तर, हुर्फ़, बदाम तल्ख़, बाबूना, सूखा अंजीर स्याह, सुदाब, नमक हिंदी, नमक इंद्रानी, नतरून, बोरह, सकबीनज, उश्शक, जावशीर, बिरोजा, तुख़्म करफ़्स (अजमोदा), तुख़्म सुदाब, तुख़्म मूली, तुख़्म जर्जीर, बीख़ कबर, इंद्रायन की छाल (पोस्त हंज़ल), ग़ार के पत्ते, करमकल्ले के पत्ते, जौ का आटा, अंडे की ज़रदी, मोम और बकरी की मींगनी।

डॉक्टरी—(उग्र आमवात में) एकोनाइट, एकोनाइटीना, ऐक्टिया, अमोनियम् ब्रोमाइडम्, एण्ड्रोपोगाई, ऐण्टिपायरीन, पल्विस ऐण्टिमोनिएलिस, स्नान, केजुपुटी, केन्नाबिस इंडिका, क्लोरल हाइड्रेट, जेलसीमियम्, सक्कस लाइमोनिस, कॉल्चिकम्, ग्वायकम्, फेरी पर ऑक्साइडम्, हाइड्रेटिस, हाइड्रोस्यानिक एसिड, हायोसायमस, जेबोरैण्डाई, केइरीन, आयोडीन, मैग्नेसिया, नीम, ओपियम्, पोटाश एसीटास, लाइकर पोटास, पोटास नाइट्रास, फासफरस, क्विनाइन सैलीसिलेट, सैलीसिलेट, सोडियाई बेंज़ोआस, सोडियाई कार्बोनास, सल्फर, स्ट्रेमोनियम्; सल्फ्युरस एसिड, विरेट्राम एल्बम्, विरेट्राम् विरिडि, दुग्ध, आटोफेन, सैलीसीन।

इस रोग में सोडा सैलीसिलेट हाइपोडर्मिक इंजेक्शन उचित मात्रा में देने से अत्यन्त लाभ होता है।

मिश्र औषध वा योग

आयुर्वेदीय—रास्ना पञ्चक, रास्ना सप्तक, रास्ना दशमूल, रास्नादि कषाय, महारास्नादि कषाय (क्वाथ), शतपुष्पाद्य चूर्ण, हिंग्वाद्य चूर्ण, अलम्बुषाद्य चूर्ण, वैश्वानर चूर्ण, पथ्याद्य चूर्ण, पुनर्नवादि चूर्ण, आभाद्य चूर्ण, अजमोदादि वटिका, योगराज गुग्गुलु, बृहत् योगराज गुग्गुलु, शिवा गुग्गुल, सिंहनाद गुग्गुलु, बृहत् सिंहनाद गुग्गुलु, वातारि गुग्गुलु, रसोनपिंड, महारसोन-

पिंड, आमगजसिंह मोदक, आमवातारि वटिका, आमवातेश्वररस, वात गजेन्द्रसिंह, त्रिफलादि लौह, विडंगादि लौह, शुंठी घृत, शृंगवेराद्य घृत, काञ्जिक शतपत्र घृत, प्रसारिणी तैल, वृहत् सैंधवाद्य तैल, विजय भैरव तैल, द्विपञ्चमूलादि तैल, कुब्जप्रसारिणी तैल और महामाष तैल आदि कतिपय शास्त्रीय औषधें आमवात रोग में व्यवहृत होती हैं। इनके अतिरिक्त वातव्याधि में वर्णित तैलों का विचारपूर्वक उचित प्रयोग बहुत ही उपकारी प्रमाणित होता है। रोगी को विरेचन देने की आवश्यकता होने पर प्रथमोक्त (आयुर्वेदीय चिकित्सांतर्गत वर्णित) औषध चतुष्टय को कैष्टर आइल के साथ व्यवहार में लाएँ। उग्र आमवात, गृध्रसी, ऊर्द्धांगवात तथा अन्य वात रोगों में वातारिमर्दन तैल' के प्रयोग से वेदना उसी क्षण शांत होती है। जहाँ तक संभव हो रोग प्रारम्भ होते ही चिकित्सा का आश्रय लें, अन्यथा रोग से मुक्ति लाभ करना अत्यन्त कठिन होजाता है।

यूनानी—अक्सीर औजाअ, जौहर मुनक्का, हब्ब असगंध,हब्ब असगंध सतावरी, अर्क़ उश्बः, मत्बूख़ हफ्तरोज़ः, माजून योगराज गुगुल, माजून उश्बा, माजून उश्बा मुरक्कब, माजून सुरंजान, माजून सुरंजान मुरक्कब, माजून लना, हब्ब रहमत, हब्ब स्याह कसीरुल् फ़वायद, हब्ब नारजील, हब्ब वजुउल मफ़ासिल, हलुवाए ज़र्द चोब, हब्ब इर्क़ुन्निसाऽ, हब्ब वजुउल मफ़ासिल शदीद, ख़ुलासा सुरंजान शीरीं, दवाए असफ़र, दवाए वजुउल् मफ़ासिल्, दवाए इल्तिहाब मफ़ासिल, दवाए औजाअ मफासिल, रोग़न सुर्ख़, रोगन लोबान ख़ास, रोग़न सक्ता, रोग़ने वजुउल मफ़ासिल, सफ़ूफ़े वजउल् मफ़ासिल, शर्बत अनन्तमूल, ज़माद वजुउल मफ़ासिल, तिलाए वजुउल मफ़ासिल, तिलाए वजुउल मफ़ासिल मुज़्मिन, तिलाए वजुउल मफ़ासिल व दर्द कमर, अर्क़ तंबूल, माजून उश्बा, माजून फालिज, माजून मुहूयाबिन खालिद, मुफ़र्रिह कबीर, माजून वजुउल मफासिल आतशकी।

आमवात-गजकेशरी रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमवात में प्रयुक्त योग—लोहभस्म १ भा० गुगुल १ भा०, ताम्रभस्म $\frac{1}{2}$ भा०, पारा और गन्धक दोनोंसमान भाग लेकरगुगुल से $\frac{1}{2}$ भाग सबको एक साथ घोटकर पुन: त्रिफला १ भाग पानी ३२ भा० दोनों का क्काथ करें जब $\frac{1}{8}$ शेष रह जाय,तब छानकर उसमें उपरोक्त लोहभस्मादि डालें। लोहभस्म के बराबर अभ्रक भस्म और लोह भस्म से द्विगुण घृत डालें। पुनः इसमें शतावरी का रस १ सेर. गो दुग्ध १ सेर डालकर एक लोहे की कड़ाही में लोहे की करछी से धीरे-धीरे औटें। जब गाढ़ा होजाय, तब इसमें पुनः विडंग, सोंठ, धनियाँ, गिलोय, सफेद जीरा, स्याह जीरा, पञ्चकोल, निसोथ, दन्ती, त्रिफला, छोटी इलायची और नागरमोथा दो-दो तो० बारीक चूर्णकर उक्त पाक किए हुए लोहादि के साथ अच्छी तरह मिलाएँ।

गुण तथा उपयोग विधि—इसे शहद और घृत के साथ सेवन करने से आमवात, सन्धिवात, कटिशूल, दारुण कुक्षिशूल, जांघ, पैर और उँगुलियों की पीड़ा गृध्रसी, मन्दाग्नि, गुल्म, शोथ, कामला और पाण्डु रोग का नाश होता है। (रस० या० सा०)।

आमवात-गजसिंहमोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में आमवात की एक उपयोगी औषध।

निर्माण-विधि—सोंठ का चूर्ण १६ पल, अजवायन का चूर्ण ८ पल, जीराचूर्ण, धनियाँ चूर्ण प्रत्येक २-२ पल, सौंफ, लौंग, भूना सुहागा, मिर्च निसोथ, त्रिफला, जवाखार, पीपल कचूर, इलायची, तेजपत्र, चव्य, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, बंगभस्म, इनमें से प्रत्येक का चूर्ण १-१ पल और चूर्ण से तिगुनी मिश्री मिलाएँ।

मोदक-निर्माणक्रम—पहले शर्करा को थोड़े पानी में घोल मृदु अग्नि से उबालें फिर उपर्युक्त चूर्णमिला मोदक-विधिसे पका घृत एवं मधु डालें और फिर १-१ कर्ष का मोदक बना लें हैं।

मात्रा—२ से ६ मा० या आवश्यकतानुसार।

गुण—इसके विधिवत् सेवन से शूल, रक्त-पित्त, अम्ल-पित्त और आम-वात दूर होता है।

अनुपान—शहद, घृत।

पथ्य—दूध, भात। र० सा० सं०। वृ० रस रा० सु०।

आमवातघ्न-गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आमवात में प्रयुक्त एक प्रकार की गोली। योग—

पारद, गंधक, सोहागा समान भाग लेकर चूर्णकर एक बड़ी कौड़ी या शंख के भीतर भर के पुट पाककर रक्खें। इसे जम्भीरी के रस के साथ सुबह और चावल के पानी के साथ सायंकाल सेवन करने से आमवात और वातरक्त का नाश होता है। यदि इस क्रिया से लाभ न हो तो, सोते समय रात को एरण्डमूलादि चूर्ण दें। इसे एरण्ड की जड़, त्रिफला, गोमूत्र क्षार, चित्रक और वच्छनाग के समान भाग चूर्ण के साथ १ रत्ती मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के वातरोग दूर होते हैं। रस० यो० सा०।

आमवात प्रमाथिनी वटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आमवात को नष्ट करनेवाली गोली। योग—सोरा, आक की जड़, गंधक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म इन्हें समान भाग लेकर अमलतास के काढ़े में घोटकर १ मा० प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसे निसोथ के चूर्ण के साथ सेवन करने से आमवात, कफ के रोग और आमजन्य सभी रोग दूर होते हैं। (रस० यो० सा०)

आमवाताद्रिवज्ररस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमवात में प्रयुक्त होनेवाला एक रसयोग—

पारा, गंधक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म और अहिफेन इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण करें। पुनः यवक्षार के जल की, भाँग के रस की सात सात भावना पृथक् पृथक् देकर ४ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसे दोषानुसार अनुपान योग से उपयोग करने से आमवात और २० प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। रस० यो० सा०।

आमवात-विध्वंसनरस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमवात नाशक एक योग—

पारद ४ मा०, गंधक १ मा० दोनोंकी कज्जली करके उसमें सबका सोलहवाँ भाग मीठे तेलिये का चूर्ण मिलाकर चीते के रस में घोटकर दो-दो या ३-३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके सेवन से वातरोग अपस्मार, उन्माद, सर्वांग पीड़ा, एकांगवात, आमवात, हनुस्तम्भ और शैत्यादि का नाश होता है।

आमवातहर-त्रि० [सं० त्रि०] आमवातनाशक।

आमवातहर (अहिंस्रादि) लेप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हैंसा, सुपारी की जड़, सहिजन की जड़ की छाल, दीमक की मिट्टी, इन्हें गोमूत्र में पीसकर लेप करने से आमवात (गठिया) का नाश होता है। यो० र०।

आमवातारि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रेंड की जड़, त्रिफला, गोमूत्र, चीता और मीठा तेलिया, इन्हें पीसकर १ रत्ती के बराबर घी के साथ खाने से हर प्रकार के वातरोग नष्ट होते हैं। र० चि० म० ६ अ०।

आमवातारिगुड़िका, (वटिका)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पारा, गंधक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, तूतिया, सुहागा और सेंधानमक प्रत्येक १-१ भा०, गुगुल २ भा०, निशोथ की जड़ की छाल आधा भा०, चीते की जड़ की छाल आधा भा०-इन्हें एकत्र खरल करके घी में घोटकर १॥ मा० वा २ मा० प्रमाण की बनाई हुई गोलियाँ जो पाचक, भेदक तथा आमवात, गुल्म, शूल, उदररोग, यकृत्, प्लीहोदर, अष्ठीला, कामला, पाण्डु, अरुचि, ग्रन्थि, शूल, शिरःशूल, वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गंडमाला, कृमि, कुष्ठ, भगंदर, विद्रधि, अन्त्रवृद्धि, बवासीर और गुदा के समस्त रोगों का नाश करती है। र० सा० सं०।

आमवानारि रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारा १ भा०, गंधक २ भा०, त्रिफला ३ भा०, चित्रक ४ भा०, गुग्गुल ५ भा० सबको एरण्ड के पत्तों के रस में घोटकर रक्खें-मात्रा-१ कर्ष या उचित मात्रा में उष्ण जल के साथ देने से आमवात रोग का नाश होता है।

पथ्य—दूध, मूँग की दाल, जौ की रोटी इत्यादि। भैष० आम० वा० चि०।

आमवातिक-ज्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Rheumatic fever.) दे० "आमवात"।

आमवातेश्वर-रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में एक रसौषध।

योग तथा निर्माण-विधि—शुद्ध गंधक १ पल ताम्रभस्म आधा पल, शुद्धपारद $\frac{1}{4}$ पल, लोहभस्म $\frac{1}{4}$ पल। प्रथम पारा और गंधक की कज्जली कर फिर उसमें शेष ओषधियों का चूर्ण मिलाएँ। पुनः इसमें एरण्ड के रस और पञ्चकोल के क्वाथ को २० भावना दें। इसी तरह गिलोय के रसकी १० भावना दें। पुनः भूना सोहागा ६ तो०, वायविडंग, कालीमिर्च, अम्लीखार, प्रत्येक ३–३ तो०, जमालगोटा शुद्ध, त्रिकुटा, त्रिफला प्रत्येक ६–६ मा० कूटकर मिलाएँ। इसे अच्छी तरह घोटकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ प्रस्तुत करें।

गुण—इसके विधिवत् सेवन से आमवात, मंदाग्नि, बवासीर, संग्रहणी, शोथ और पाण्डु दूर होते हैं। भिन्न-भिन्न अनुपान से यह समस्त बीमारियों को नष्ट करता है। वृ० रसरा० सु०।

आमविष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विषसंज्ञक आमदोष। विष के लक्षणों से युक्त आमदोष। लक्षण–विरुद्ध आहार, अध्यशन (प्रथम का भोजन बिना पचे फिर खालेना) और अजीर्ण में भोजन करनेवाले मनुष्यके विष लक्षण,लालास्रावादियुक्त विष संज्ञक जो अत्यन्त कष्टदायक आम-दोष उत्पन्न करता है, वह विष के समान शीघ्र प्राणघातक और चिकित्सा से विरुद्ध होता है। इस लिए इसकी चिकित्सा न करें। विष में शीतक्रिया रूक्ष चिकित्सा और आम में उष्ण चिकित्सा की जाती है, किंतु विष लक्षणयुक्त आम में दोनों क्रियाएँ विरुद्ध होती है। इसलिये यह दुश्चिकित्स्य होता है। वा० सू० ८ अ०।

आम-शूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का शूल का रोग जो आँव के कारण होता है। आँव मरोड़े का रोग। आँव के कारण पेट में मरोड़ होने का रोग। (The colic pain arising from indigestion)

लक्षण—पेट में गुड़गुड़ शब्द होना, उबकाई, बमन, शरीर में भारीपन, मानो शरीर में भीगा हुआ कपड़ा लपेट दिया गया हो, ऐसा प्रतीत होना, अफरा, कफ तथा मुख से लार गिरना, इन सब आँवसे हुए कफके समान लक्षणोंसे युक्त शूल-रोग को आम-शूल कहते हैं। मा० नि०।

आमशोफ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कच्ची सूजन। वा० सू० २६ अ०।

आमसोल–संज्ञा पुं० [देश०] अमसूल। कोकम। रक्तम्ब-साल (Garcinia Indica.) इं० मे० प्लां०। यह कोकम नामसे मथुरादि में प्रसिद्ध है। वहाँ इसकी चटनी बनाई जाती है।

आमसंग्रहण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम के रोकने की क्रिया। "दोषसंग्रहणे दोषा दोषोपक्रम ईरिता।" वा० चि० १ अ०।

आमहलदी, आमहल्दी–संज्ञा स्त्री० [हिं० आम+हलदी] अम्बा-हल्दी। आम्बा हल्दी। आमाहलदी। (Curcuma amada) फा० इं० ३ भ०।

आमाजीर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आँवका अजीर्ण। कच्चा अनपच। तुख़मा। इस रोग में खाया हुआ अन्न ज्यों का त्यों गिरता है। इसका मुख्य कारण अग्नि की मन्दता है। आमरसाजीर्ण। आँव की बदहज़मी, अनपच।

चिकित्सा—(१) आमाजीर्ण में वच और सेंधानमक का चूर्ण यथोचित मात्रा में जल के साथ खाकर वमन करें। (२) हींग, सोंठ, मिर्च, पीपर और सेंधानमक-इन्हें पानी में पीसकर रोगी, के पेट पर लेपन कर दिन में शयन कराने से हर प्रकार का अजीर्ण नष्ट होता है। (३) १०० हड़ों को गो तक्र में उबालें, और वीजों को पृथक् कर पुनः इसमें—सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, चव्य,चित्रकमूल, पाँचों नमक, अजवाइन, खुरासानी अजवाइन, सोहागा, सज्जीखार, जवाखार, हींग और लौंग प्रत्येक २०–२० मासे लेकर चूर्ण करें। फिर इसमें चुकके रस से भावना दें इसी तरह नीबू के रस में ३ दिन भावना देकर पूर्वोक्त हड़ों में पूरण करें। इसमें से १ हड़ प्रतिदिन सेवन करने से आमाजीर्ण, मन्दाग्नि, हैजा, गुल्म और शूलादि रोगों का शीघ्र नाश होता है। (४) हड़, पीपल, काला नमक समान भाग लेकर चूर्ण करें। इसे गरम जलके साथ सेवन करने से लाभ होता है।

आमातिसार, आमातीसार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में छः प्रकार के अतिसार रोगों में से एक।

आँव के कारण अधिक दस्तों का होना। आँव मुरेड़े के दस्त। पेचिश। (Dysentery.), म्युको कोलायटिस (Muco-colitis.) ज़हीर –अ॰। दे॰ "अतिसार" वा "प्रवाहिका"। मा॰ नि॰।

आमानाह–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] आँव के कारण पेट का फूलना। आँव का अफरा।

आमानुबन्ध–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] आमसातत्य। सर्वदा आमका सञ्चय। आँवका लगाव। च॰ द॰ ग्रह॰ चि॰ शुण्ठ्यादि।

आमान्न–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] (१) बिना पका अन्न। अपक्व अन्न। कच्चा अन्न। कोरा अन्न। सूखा अनाज। (२) खाये हुए अन्न की अपरिक्वता। (३) कच्चा चावल। आतप चावल। अरवा चावल।

आमाम्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] कच्चा आम। टिकोरा। बालाम्र। अँबिया। केरी।

गुण—कसेला तथा खट्टा रस युक्त, रुचिकारक और वात-पित्त को बढ़ानेवाला है। भा॰ पू॰ १ भ॰। वि॰ दे॰ "आम"।

आमाल–संज्ञा पुं॰ [अ॰ अअ्‌माल] [अमल का बहु॰] (१) मान। पैमायश। (२) नशीला शर्बत। उन्मादक पान। (३) बत्तियाँ। पिचकारियाँ। वस्ति।

आमावस्था–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] अपक्व अवस्था। आम की दशा। कच्ची हालत।

आमाशय–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] आम अर्थात् अपक्व अन्न का स्थान। इसका स्थान नाभि और स्तन के मध्य भाग में है। यथा—"नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः।" रा॰ नि॰ व॰ १८। च॰।

मिअ्‌दः (अ॰)। स्टमक Stomach (अं॰)। जठर, कोष्ठ (हिं॰)। यह पेटके भीतर एक थैली है जिसमें भोजन किए हुए पदार्थ इकट्ठे होते और पचते हैं। सुश्रुत में इसका स्थान नाभि और छाती के बीच में लिखा है, पर वास्तव में इस थैली का चौड़ा भाग छाती के नीचे बाईं ओर होता है और क्रमशः पतला होता हुआ दाहिनी ओर द्वादशाङ्गुल-अन्त्र से जा मिलता है। यह उदर के सबसे ऊपर के भाग में वक्षोदर-मध्यस्थ पेशी के नीचे रहता है। इसके दो किनारे होते हैं। इसका वाम वा ऊपर वाले भाग का आहार नलिका वा अन्नमार्ग से सम्बन्ध होता है। यह भाग हृदय से अधिक निकट है। इसलिए इसको आमाशय हृदय-द्वार (Cardiac end) वा फम मिअ्‌दः वा फ़म अअ्‌ला अथवा अल्‌फ़ुवाद कहते हैं। दक्षिण किनारे को आमाशय-पक्काशयिक द्वार (Pylorus) वा फ़म अस्फ़ल वा अल्‌बव्वाब कहते हैं। मेदे के आमाशय-पक्काशयिक द्वार में एक द्वारच्छद (कपाट) होता है। इसकी बनावट इस प्रकार की होती है, कि पक्काशय से कोई वस्तु आमाशय में प्रवेश नहीं पा सकती, परन्तु आमाशयस्थ पदार्थ को नीचे उतरने में कोई बाधा नहीं होती।

आमाशय का यह कुल भाग अन्नप्रणाली का ही एक हिस्सा है जो उसके और भागों से बहुत फूला हुआ और बाहर से देखने में मशक की तरह होता है।

यह थैली झिल्ली और मांस की होती है। इसके अन्तःस्तर में श्लैष्मिक कलाके नीचे अनेक छोटी-छोटी ग्रंथियाँ होती हैं। इन्हीं ग्रंथियों में से एक प्रकार का पाचक रस परिस्रावित होता है, जिसको आमाशयिकरस कहते हैं। इस पाचक रस की सहायता से आमाशयस्थ आहार पचने योग्य पतला हो जाता है। पुनः इस अर्धतरलता-प्राप्त आहारको आमाशय अपने नियमानुसार शनैः-शनैः सूक्ष्मान्त्र में धकेल देता है।

जब आहार आमाशय में पहुँच कर उसके रस से मिश्रित होता है, तब उसमें एक माधुर्य उत्पन्न होता है और भोज्य पदार्थों के शर्करा और लवणादि पदार्थ पचन कार्य और तरलता उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। परन्तु प्रोटीनज अंश जब तक परिपक्व होकर तरलता को प्राप्त नहीं हो जाते, तब तक केशिकाओं में नहीं जा सकते। लवण, खाँड, पानी आदि पदार्थ आमाशय की श्लैष्मिक कला से केशिकाओं के द्वारा यकृत और वृषणों तक पहुँच जाते हैं। आहार का शेष भाग जिसमें वसा, श्वेतसार प्रोटीन

आदि होते हैं। यह सब शनैः-शनैः पचकर आँतमें जाते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रायः एक बार का यथेच्छ भोजन स्वस्थ आमाशय से ५-६ घंटों के भीतर समस्त रूप से आँत में चला जाता है।

(२) प्रवाहिका। दस्त मरोड़े की बीमारी।

आमाशय(यिक, यिका)अन्त्रश्छदा-धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आमाशय और अंत्रश्छदा कला को पोषण करनेवाली धमनी। यह दो होती हैं एक दाहिनी, दूसरी बाईं। आम अंत्रश्छदा धमनी। (Gastro-epiflou artery.)

आमाशय ऊर्ध्वांश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमाशय का बाईं ओर का चौड़ा और स्थूल भाग (Fundus of stomach.)

आमाशय(यि)की धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आमाशय की धमनी।

आमाशय-दक्षिणांश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमाशय का दाहिनी ओर का तंग भाग (Pyloric Portion.)

आमाशय-द्वार-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हृदय का खुलनेवाला दरवाजा। (Cardiac orifice, opening.)

आमाशय-पक्वाशय-धमनी-
आमाशयिक-पक्वाशयिक धमनी-
आमपक्वाशयिक(की)धमनी-
} संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आमाशय और पक्वाशय को पोषण करनेवाली धमनी। (Gastro-duodenal artery.)

आमाशय-पक्वाशयिक-द्वार-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आमाशय का अंतिम भाग।

आमाशय-प्रदेश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमाशय के भाग। (Epigastrium)

आमाशय-बलदायक-वि० [सं० त्रि०]
आमाशय-बलप्रद-वि० [सं० त्रि०]
} वह औषध जो आमाशयिक रसोद्रेक को बढ़ाती है। मुक़व्वी मिअ़्दः (अ०)। स्टोमैकिक Stomachic (अं०)।

ऐसी औषधियों का प्रभाव दो प्रकार से होता है—एक तो मौखिक नाड़ियों को गति प्रदानकर आमाशय को परावर्तित रूप से गति मिलने से और दूसरे आमाशय में पहुँचकर नाड़ीवात-शाखाओं को गतिप्रदानकर रक्त नालियों को प्रसरित करने से। फलतः समग्र सुगंध-द्रव्य (Aromatics), तिक्त-द्रव्य (Bitters), चरपरे-द्रव्य (Pungents) और सुरा-घटित द्रव्यों का ऐसा ही प्रभाव होता है। अस्तु, आमाशय बलप्रद औषध के ये मुख्य चार वर्ग हुए—

(१) सुरभित आमाशय बलदायक-मुक़व्वियात मिअ़्दहे ख़ुश्बू (अ)। (Aromatic Stomachics)

(२) तिक्तआमाशय बलप्रद-मुक़व्वियात मिअ़्दहे तल्ख़ (अ०)। (Bitter Stomachics)

(६) कटुकामाशय बलदायक-मुक़व्वियात मिअ़्दहे हि़र्रीफ़ (अ०)। (Pungent Stomachics)

(४) सुरामय आमाशय बलप्रद-मुक़व्वियात मिअ़्दहे स्पिरिटदार (अ०)। (Spirituous stomachics)

प्रयोग—अजीर्ण तथा कतिपय उग्र व्याधियों के अनंतर होनेवाली निर्बलता में आमाशय बलप्रद औषधों का व्यवहार होता है। इसके प्रयोग से भूख बढ़ती है और आमाशयिक रस अधिक उत्पन्न होता है।

आमाशय-मध्यांश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमाशय के बीच का भाग।

आमाशय-यकृतकला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आमाशय और यकृत को ढाँकनेवाली झिल्ली। (Gastro-hepatic omentum)

आमाशय-रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमाशयिक-रस। (Gastric juice.)

आमाशय-विस्तृति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आमाशय का फैलाव (Dialatation of stomach.)

आमाशय-संकोचक-वि० [सं० त्रि०] जो आमाशय की रगों को संकुचित करें। दे० "आन्त्र-संकोचक"।

आमाशय-हानिकर-वि० [सं० त्रि०] वह औषधियाँ

जो आमाशय को हानि पहुँचाती हैं। मुज़िरात-मिअ्दः (अ०)।

आमाशय-असात्म्य-औषध यह हैं—

आबनूस, अबरेशम ख़ाम, उष्ण जल, अमल (हाऊबेर), असू़ल, आलूबुखारा, मीठा तथा खट्टा अनार, उश्शक, अंगूर, पनीरमायः, अंजीर, तीसी, बोरहे अरमनी, बिहीदाना, विजया बीज, तुख़्म ख़ुर्फ़ा, भेजा, पोस्त उत्रज, हिनत्राना का बीया, मीठा तूत, गाजर का बीज, सू़ाक़िस्या, सालममिस्री, जामुन, गूलर, तुख़्म बकायन, हजरुल् यहूद (बेर पत्थर), हुर्फ़ (हालों), कच्चा अंगूर (हस्रम), हलुआ प्रभृति, ख़र्नूब, ख़ुब्बाजी, ख़त्मी, अमलतास, खीरा, रेशा ख़त्मी, मक्खन, ज़ुअरूर, लिसोढ़ा (सपिस्ताँ), सिल्क़, सक़मूनिया, सुमाक़, सकबीनज, मक्ली, समन (घी), सूरंजान, शीह, शह्.म (चर्बी), एलुआ, मसूर, उन्नाब, फ़ावानिया, क़ुर्तुम (कड़), भंग, कद्दू, गंधक, कपूर, तिल, माउश्शई.र, हिन्दबाना और वे द्रव्य जो आमाशल-शैथिल्य-कारक हों।

आमाशय-हृदय द्वार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आमाशयका वह भाग जहाँ अन्नप्रणाली का अन्त होता है। (Cardiac opening.)

आमाशय-क्षोभक—वि० [सं० त्रि०] जो आमाशय को क्षुभित करे। उग्रताकारक।

आमशयांत्रक्षोभक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

वह औषधियाँ जो मेदे और आँतों में क्षोभ एवं ख़राश उत्पन्न करती हैं।

गैस्ट्रो इन्टेस्टाइनल इरिटेंट्स (Gastro-intestinal irritants (अं०)। मुहय्यिजात मिअ्.दः वा अम्.आऽ (अ०)। ख़राश कुनिंदहे मिअ्.दः व अम्.आऽ (फ़ा०)।

अनेक क्षोभकारी विष अत्यल्प मात्रा में औषध रूप से व्यवहार में आते हैं। यदि उन्हें अधिक मात्रा में खा लिया जाय, तो उनसे लक्षणों की एक ऐसी क्रमावली प्रादुर्भूत होजाती है, जिसे उसका विषैला प्रभाव कहते हैं। यदि वह क्षोभकारी द्रव्य दाहक वा भक्षक है, तो उसके खा लेनें से ओष्ठ, मुँह, कंठ और अन्नमार्ग में प्रदाह एवं वेदना होने लगती है तथा वे शीघ्र लाल और शोथयुक्त होजाते हैं। आमाशय में पहुँचकर वह अत्युग्र क्षोभ संजनित करता है, जिससे अत्यन्त वमन होता और जी मिचलाता है। उदर में असह्य वेदना होती है। जब वह आँतों में पहुँचना है, तब वहाँ भी वैसा ही (आमाशयवत्) प्रदाह एवं क्षोभ उत्पन्न करता है, जिसके साथ ही दस्त आने लगते हैं। कभी-कभी क़ै-दस्त इस प्रकार अकस्मात् आने लगते हैं, कि उन लक्षणों से विसूचिका होने का संदेह हो सकता है। परन्तु इस प्रकार के क़ै-दस्त प्रायः रक्तमिश्रित होते हैं और सार्वांगिक अंग-शैथिल्य, नाड़ी की मंदता और पूर्णावसन्नता (Collapse) अर्थात् हस्त-पाद का शीतल होजाना आदि इसके प्रधान लक्षण हैं। विष-भक्षण के उपरांत यदि रोगी कुछ काल तक जीवित रहे, तो उसे उदरकला प्रदाह (Peritonitis), आमाशयिक क्षत, आन्त्रीय क्षत एवं (Structure of the œsophagus) आदि विकार होजाते हैं। यदि वह ज़हर खाने के उपरांत शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो, तो उसके शव का छेदन कर निरीक्षण करने पर आमाशय और आन्त्र की श्लैष्मिक-कला लाल और सूजी हुई दिखाई देती है और उसके नीचे ख़ून के धब्बे दृष्टिगोचर होते हैं।

टिप्पणी—कतिपय मुख्य क्षोभक विषों, यथा, स्फुर प्रभृति से प्रारंभिक विषाक्त लक्षणों के विलुप्त होने पर गौण विषाक्त लक्षणों का प्रादुर्भाव होता है, अर्थात् वे दोबारा विषैले लक्षण प्रगट करते हैं।

आमाशयार्बुद—संज्ञा पुं० [सं०पुं०] सर्तान मिअ्.दः, सर्तानुल् मिअ्.दः (अ०)। कैंसर ऑफ दी स्टमक Cancer of the Stomach -(अं०)।

निदान—यह पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक हुआ करता है और प्रायः यह ४० वर्ष की आयु के पश्चात् होता है। पैतृकता एवं आमाशय का पुरातन प्रदाह प्रभृति इसके कारण हैं।

लक्षण—इस विकार में आमाशय में गोला-

कार संचय के साथ-साथ भार-बोध प्रतीत होता है। आमाशय के स्थान पर बर्छी चुभने की सी वेदना होती है। भोजन के पीछे तथा गोले को दबाने से पीड़ा की वृद्धि होती है। भोजन करने के थोड़ी देर पीछे ही रोगी को वमन होता है। वमन में प्रथम भोज्य पदार्थ श्लेष्म और पित्त मिश्रित गिरते हैं और इस वमन किये हुये पदार्थ में अर्बुद के सूक्ष्म खंड तथा कृष्णवर्ण का रक्त भी मिला रहता है। सदैव अजीर्ण के लक्षण विद्यमान रहते हैं। आमाशय के बाएँ सिरे पर शोथ होता है। कोष्टबद्धता, बेचैनी, दुर्बलता और पाण्डुता देखी जाती है। जब अर्बुद की स्थिति आमाशय के दक्षिण ओर हो, तो भोजन करने के प्रायः १॥ घंटा बाद वमन होता है और जब बाईं छोर पर होता है, तब प्रायः वमन शीघ्र शीघ्र होता है। वमन के पश्चात् भी रोगी सुख का अनुभव नहीं करता। आमाशयार्बुद की पुरातन अवस्था में आमाशय में अर्बुद के साथ-साथ शोथ भी उत्पन्न हो जाता है। प्रतानों और श्लेष्मिककला के बुदबुदाकार होने को ही आमाशयार्बुद कहते हैं। यह रोग दो प्रकार का होता है।

आमाशयार्बुद में, आमाशय में शोथ होता है। इस रोगी के आमाशयिक रसों की परीक्षा करने से उनमें "लवणाम्ल" का सर्वथा अभाव होता है। रोगी निर्बल और कृश होता जाता है। क्षुधा नष्टप्राय हो जाती है।

नोट—आमाशयार्बुद और आमाशयिक व्रण के भेदक चिह्नों के लिये दे० "आमाशयिकव्रण"।

चिकित्सा

आरंभिक काल का अर्बुद शांत भी हो जाता है। परंतु पूर्ण बलप्राप्त अर्बुद में शस्त्र-चिकित्सा से भिन्न अन्य कोई उपाय नहीं। यद्यपि शंका-रहित उपाय यह भी नहीं, तथापि यदि रोग समूल नष्ट हो सकता है, तो इसीसे हो सकता है। खाने, पीने वा लगानेवाली औषधें इस पर विशेष प्रभाव उत्पन्न नहीं करतीं। तोभी रोगी को सूक्ष्म, शीघ्रपाकी आहार, जैसे, शोरबा, यख़नी, दूध, यवाम्बु प्रभृति दें। औषध रूपसे यह योग दें—

एसिड कार्बोलिक	१६ बूँद
बिस्मथ सबनाइट्रास	४ ड्राम
एक्वा क्लोरोफ़ॉर्म	३ फ्लुइड आउंस

इनको खूब मिलाकर, इसमें से १ ड्राम की मात्रा में दिन में २–३ बार भोजन से पूर्व प्रयोग कराएँ। अथवा शुद्ध विष, शुद्धपारद, शुद्ध गंधक लोहभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक समान भाग लेकर खरल में डालें और चित्रक स्वरस अथवा क्वाथ से ७ भावना देकर सुखा लें। एक से दो रत्ती तक मधु से चाटकर ऊपर से यह क्वाथ पिएँ।

पिप्पली, सारिवा, उश्बा, हरीतकी, आमला और कचूर हरएक ६–६ मा० यथाविधि क्वाथ सिद्धकर शहद मिलाकर पिलाएँ।

आमाशयावसादक–वि० [सं० त्रि०] जो आमाशयिक क्रिया को शिथिल करे। मन्दाग्नि-कारक। अग्निमांद्यकर।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह औषधियाँ जो आमाशयिक वात तंतुओं एवं पेशियों पर निर्बलता कारक तथा शामक प्रभाव करती हैं। प्रभाव भेद से ये दो प्रकार की होती हैं–

(१) स्थानीय (Direct) और (२) गौण (Indirect)।

(१) स्थानीय आमाशयावसादक–प्राथमिक वा सरल आमाशय-शामक। मुसक्किनाते मिश्रदः मुस्तक़ीमः वा मुक़ामी (अ०)। (Direct वा Local gastric Sedatives)

इस प्रकार की औषधियाँ अपने स्थानिक प्रभाव से आमाशयिक वाततंतुओं की शाखाओं के क्षोभ को निवृत्त करती हैं अर्थात् आमाशय पर शामक प्रभाव करती हैं। ये निम्न हैं—

कज्जलाम्ल (कार्बोनिक एसिड), जलमिश्रित हाइड्रोस्यानिक एसिड, बर्फ़ (आइस), उष्ण जल (हॉट वॉटर), बिज़्मथ कार्बोनेट, बिस्मथ सबनाइट्रेट, बिस्मथ सैलीसिलेट, अहिफेनीन (मॉर्फीन), अफ़ीम (ओपियम्), बेलाडोना, अजवायन खुरासानी (हायोसायमस) और धतूरा (ष्ट्रैमोनियम्)।

(२) गौण आमाशयावसादक—ये औषधियाँ

वात केन्द्रों द्वारा आमाशयिक साँवेदनिक सूत्रों को परावर्तित रूप से शिथिल कर आमाशय पर अवसादक प्रभाव करती हैं। (दे० "काउंटर इरिटेंट्स")। ये दवाएँ निम्न हैं—

ब्लिष्टर्स (फोस्काजनक), फोमण्टेशन (सेक), पौल्टिसेज़ (पुलटिस) तथा हाइड्रोस्यानिक एसिड डायल्यूट और अहिफेनीन (मार्फीन) तथा क्लोरोफॉर्म (त्वगीय सूचीवेधन द्वारा)।

टिप्पणी—इनमें से अफीम अतिशय प्रबलतर आमाशयावसादक है। कतिपय ऐसी आमाशयावसादक औषधियाँ भी हैं, जिनकी क्रिया अभी तक अज्ञात ही है। जैसे—सेरेम ऑक्सीलेट, वाइनम् इपीकेक्वानी और टिंक्चर ऑफ आयोडीन बिंदु मात्रेण अर्थात् १-१ वा २-२ बिंदु की मात्रा में प्रयुक्त करने से।

एलकलीज़ अर्थात् क्षारौषध, जैसे-सोडियम् कार्बोनेट वा पोटासियम् बाइकार्बोनेट प्रभृति आमाशयिक रस की तो वृद्धि करती हैं, किंतु लाला स्राव को घटाती है। पर यदि एलकलीज़ अर्थात् क्षारीयौषध और सुराघटित आमशयोद्दीपक औषधों को अधिक परिमाण में प्रयोजित किया जाय, तो ये आमाशयिक रसोद्रेक को घटाती हैं।

विशेष प्रकार के अजीर्ण में एलकलीज़ (क्षार) अधिकतया भोजन से पूर्व व्यवहार किया जाता है। इस भाँति प्रयुक्त करने से वह आमाशयिक रस के निरंतर स्राव को रोकता है, जिससे रसोद्रेककारी ग्रंथियों को विश्राम का अवसर मिल जाता है और इस अल्पकालीन विश्राम से उनकी क्रिया यथावत् हो जाने के कारण वे सर्वथा पूर्ववत् रसोद्रेक कर सकती हैं। किंतु आमाशय के अम्लत्व को घटाने के लिए भोजनोपरांत क्षारीयौषध का व्यवहार किया करते हैं। इसके अतिरिक्त सीसा (Lead), चाँदी (Silver) और जस्ते (Zinc) के लवण थोड़ी मात्रा में, अफीम, कषाययाम्ल (टैनिक एसिड) और वानस्पतीय धारक औषधे, जैसे, काइनो, कत्था (कैटेक्यु) प्रभृति आमाशय की रगों को संकुचित करती हैं। इससे उसके स्रावों को घटाती हैं। ये आमाशयसंकोचक (Gastric astringent) प्रभाव करती हैं अथवा गौण रूप से आमाशयावसादक असर करती हैं।

आमाशयिक प्रतान–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रतान विकृति का दूसरा सीधा नाम आमाशय के मुख का संकुचित होना है। एक रोग जिसमें आमाशय अत्यंत विस्तीर्ण हो जाता है। आमाशय विस्तार। (Dilatation of Stomach)

यह रोग उग्र एवं चिरकारी भेद से दो प्रकार का होता है।

निदान

आमाशय से संबंधित अन्त्र के निचले भाग के मुख अर्थात् आमाशय के आमाशय पक्वाशयिक द्वार का संकुचित होना, आमाशयिक व्रण तथा आमाशयार्बुद आदि इसके प्रमुख कारण है। किसी कारण से आमाशय के स्थूल होने से अथवा श्लैष्मिक कला के स्थौल्य से जब मुख संकुचित हो, तब भी यह हो सकता है। यकृत वृद्धि तथा क्लोम के अर्बुदों का आमाशय पर दबाव पड़ने से भी प्रतान विकृति होती है।

लक्षण

रोगी सर्वदा ही आमाशयमें दर्द,व्याकुलता और भारीपन की शिकायत करता है। आमाशय, हृदय और कंठ में दाह प्रतीत होता है। इसमें ४-५ वें दिन रोगी को वमन होता है, आमाशयिक व्रण के रोगी की तरह भोजन के थोड़ी देर बाद ही वमन नहीं होता और न इसमें उत्क्लेश वा मतली आदि विकार होता है। भोज्य पदार्थों की मात्रा से वमित पदार्थ का मान अधिक होता है। भुक्त द्रव्य अपने साथ आमाशय में संचित कफ पित्त को भी ले आता है। वमित पदार्थ दुर्गंधपूर्ण और मलिन वर्ण का होता है। रोगी के मुख से तथा उद्गारों से प्राय: दुर्गंध और अम्लता निकला करती है। रोगी को एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व में सोने तथा आमाशय को मसलने से द्रव पदार्थ के खिसकने की लहर सी जान पड़ती है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता है मानो उसका उदर एक दम पूर्ण हो और वह अस्थिर जान पड़ता है। उसे ऐसा ज्ञात होता है मानो उदर में २-३ दिन से खंभीरण हो रहा हो। पुनः काफी परिमाण में आमाशयस्थित द्रव के

निःसृत होने से रोगी कुछ आराम अनुभव करता है। वमन होने के उपरांत यदि उदर की परीक्षा की जाय, तो उस समय भी वह पूर्ण एवं तना हुआ मालूम होता है। वास्तविक बात यह है कि वमन द्वारा आमाशय के द्रव्य का अंशतः उत्सर्ग होता है और यह क्रिया वक्षोदर-मध्यस्थ पेशी एवं औदरीय पेशियों द्वारा संपादित होती है आमाशयिक पेशियाँ तो इसमें सर्वथा निष्क्रिय हो जाती हैं। किसी-किसी के मुख द्वारा रक्तपात होता है; परंतु अर्बुद के अभाव में यह क्वचित् ही देखने में आता है।

प्रायः अम्लोद्गारका होना, जो रोगीको सर्वाधिक कष्टप्रद प्रतीत होता है। प्यास और प्रायः अधिक परिमाण में लालास्राव होना आदि इसके सामान्य लक्षण हैं। अर्बुद होने की दशा में भूख मर जाती है, परन्तु अन्य दशाओं में क्षुधा अच्छी लगती है। बहुधा निरंतर मलावरोध होता और मल कड़ा एवं ग्रंथिल होता है। पेशाब अम्लतायुक्त होता है। रोगी दिन प्रति दिन निर्बल होता जाता है और प्रायः पाँव में शोथ होकर मृत्यु उपस्थित होती है।

उदर को बाहर से देखने पर तना हुआ होता है, जिस पर उभरी नीली-नीली शिराएँ स्पष्टतया दिखाई देती हैं। कौड़ी के स्थान पर यह दबा हुआ और दाईं ओर की अपेक्षा दाहिनी ओर का भाग अधिक उभरा हुआ दीखता है। आमाशय पर ठेपन करने से ढोलवत् शब्द होता है। आमाशय का अधोभाग उठाव लिए होता है। अधः प्रदेशीय आमाशयिक प्रतानों के शिथिल होने से यह उठाव हर्निया की तरह भी देखा जाता है। नाभि के चतुर्दिक् तथा आमाशय पर यदि ठेपन से अप्रिय (भद्दी) सी आवाज़ सुनाई देवे तो "आमाशयिक प्रतान" विकृति का संदेहरहित निश्चय कर लेना चाहिए। उदर के अधिकांश भाग पर ठेपन द्वारा ढोलवत् शब्द की प्रतीत उदर का अनियमित तनाव, कौड़ी प्रदेश का गहराव, उदर के वामपार्श्व का पूरित होना, उदर के तने हुए भाग के ऊपर कृमिवत् गति का स्पष्टतया होना, विलक्षण वमन और वमित पदार्थ का बहुल परिमाण में एवं अम्लतायुक्त होना आदि इस रोग के विशिष्ट परिचायक चिह्न हैं, जिनसे इस रोग की निश्चयात्मक परीक्षा हो सकती है।

आमाशयिकप्रदेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छेदन-शास्त्र में उदर का एक प्रदेश। उदर के नौ प्रदेशों में से एक। (Local-hypo-chondriac region)

आमाशयिक रक्त संचय–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें आमाशय में रक्त संगृहीत होजाता है। गरम मसाला, मिर्च, चटपटे भोजन, चाय, काफी और मद्य के अधिक सेवन से इस रोग का प्रादुर्भाव होता है। नित्य के अजीर्ण से, तीव्र ज्वर के पश्चात् यकृत विकार, हृद्रोग और वक्षःस्थल संबंधी अन्य रोगों के कारण रक्त संचालन में व्याघात उत्पन्न होने से इसकी उत्पत्ति होती है। (Hyperæmia of stomach)

आमाशयिक व्रण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमाशयिक क्षत। ज़ख़्म मिअ़्दः, क़ुरूह मिअ़्दः (अ०) गैस्ट्रिक अल्सर Gastric ulcer (अं०)।

इस रोग में साधारणतः आमाशय की पिछली दीवार पर एक, दो वा चार इंच क्षत होते हैं। इस प्रकार के क्षत विरला ही आमाशय की अगली दीवार पर होते हैं जो बहुत ही भयावह होते हैं और प्रायः द्वादशांगुलांत्र में क्षत पैदा कर देते हैं।

उग्र वा सद्योजात क्षत छोटा सा होता है। इसका किनारा साफ़ कटा हुआ होता है, मानो छुरी से काटकर बना दिया गया हो। ज़ख़्म की सतह साफ़ और समतल होती है। पुरातन क्षत बड़ा होता है। उसका प्रांत मोटा और अनियमित होता है। कारण उसका यह है कि एक ओर से तो क्षत बढ़ता जाता है और दूसरी ओर से अच्छा होता जाता है। यह क्षत बढ़ते बढ़ते बहुत गंभीर होजाता है और कभी इतना गंभीर होजाता है कि आमाशय की दीवार में छिद्र होजाता है।

निदान

यह रोग २० से ३५ वर्ष की अवस्था में और

पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होता है। विशेषतः उन स्त्रियों को जिनका मासिक धर्म रुका होता है वा जिन्हें नियमित ऋतु आने की जगह रक्तनिष्ठीवन विकार होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि आमाशयिक धमनी में अवरोध उत्पन्न होकर वह अवरुद्ध एवं ज़ख़्मी हो जाती है अथवा आमाशयिक मांस-पेशियों में स्थानीय आक्षेप होकर आमाशय की आंतरिक तल का एक लघुभाग अवसन्न हो जाता है, पुनः आमाशयिक रस वा कीटाणु प्रभाव से वहाँ क्षत हो जाता है। सारांश चिरकारी आमाशयिक शोथ वा पुरातन अजीर्ण इस रोग का कारण होता है और ऐसे कार्य, जिनसे आमाशयिक पेशियों पर ज़ोर पड़ता है, जैसे, जूता सीना प्रभृति, भी इसके कारणीभूत हैं। आमाशय के किसी स्थान विशेष में, झिल्ली में, प्रतानों में एवं आमाशयकी दीवारों में जब आहार-विहार की विषमता से अथवा किसी वाह्य कारण से रक्त-संचय होता है, तब संचय का अंतिम परिणाम भी व्रणरूप में प्रकट होता है। आघात, सन्यास, हृदय और वृक्क्य नालियों के रोग भी इसके कारण माने जाते हैं वह साधारण और भयंकर दो प्रकार का होता है।

लक्षण

इस रोग में चिरकारी अजीर्ण न्यूनाधिक वर्तमान होता है। रोगारम्भ में आमाशय-द्वार वा कौड़ी के स्थान पर वा उसके सम्मुख पीठपर बोझ वा जकड़न प्रतीत होती है। पुनः शनैः-शनैः व्यथा प्रशमित होने लगती है जो प्रायशः वर्तमान रहती थी। आमाशय पर दबाव डालने से पीड़ा में वृद्धि होती है और साधारणतया आमाशय में भोजन पहुँचने के उपरांत एक आध घंटे तक अति तीव्र पीड़ा रहती है। यह कभी रुक-रुक कर इतनी तीव्र होती है कि रोगी मारे व्यथा के व्यग्र हो जाता है और खाए हुए आहार को क़ै करके निकाल देता है। कभी रिक्त आमाशय में भी यह वेदना होती है। पर साधारणतया भोजनोपरांत पहले उग्र वेदना होती है, फिर धीमी-धीमी पीड़ा बराबर बनी रहती है। प्रायः भोजन करने के दो घंटे उपरांत क़ै हो जाया करती है, जिसमें रक्त मिश्रित अपक्व आहार आता है। वमन की अति वृद्धि में रक्त और श्लेष्म (लेसदार) भी निकलता है। कभी आमाशय की किसी बड़ी धमनी के फट जाने से केवल रक्त का वमन भी होता है। जिससे रोगी निढाल हो जाता है। वमन होने से व्यथा, दाह और बेचैनी में कमी सी जान पड़ती है। परंतु इसके प्रभाव से रोगी अधिकाधिक निर्बल होता जाता है। इस रोग में यदि समय पर उचित चिकित्सा न की जाय और दुर्भाग्यवश रोग बढ़ता जाय, तो मल के साथ भी रक्तपात होता है। इसी कारण से मल का वर्ण काला हो जाता है। किंतु इस बात को स्मरण रखना चाहिए, कि रोगी को औषध में बिस्मथ वा टिंक्चर ष्टील देने से भी मल काले रंग का आया करता है। कभी व्रण के फूट जाने के कारण आमाशय में छिद्र हो जाता है, जिससे भुक्त पदार्थ नीचे उदरच्छदाकला में पहुँच कर शोथ उत्पन्न करता है। यह अवस्था रोगी के लिये अत्यन्त दुःखप्रद होती है। छिद्र के होते ही तीव्र व्यथा निरंतर रहने लगती है। प्रायः व्यथा समग्र पेट में हुआ करती है। रोगी का मुखमंडल उदास और पीत-प्रभ दीखता है। वमन का बार-बार होना और नाड़ी की गति का वैषम्य (तीव्र और क्षीण) इस रोग के प्रधान लक्षण हैं। इस रोग में प्रायः मलावष्टंभ रहता है और अहार के हज़म न होने के कारण रोगी दिन प्रति दिन दुर्बल और कमज़ोर होता जाता है।

इस रोग से 'आमाशयिक शूल' एवं 'आमाशयार्बुद' में बहुत साम्य है। इसलिए यहाँ इनके भेदक चिह्न दिए जाते हैं, जिससे यथावत् रोग निदान में सुविधा हो।

आमाशयिक शूल तथा आमाशयिक व्रण

(१) व्रण के कारण आमाशय में जो व्यथा होती है, वह भोजनोपरांत बढ़ जाती है। भोजन के अभाव में व्यथा शांतप्राय रहती है।

(२) व्रण की पीड़ा में सर्वदा अजीर्ण बना रहता है। किन्तु आमाशयिक शूल में अजीर्ण वेग-काल पर ही होता है।

(३) आमाशय के व्रण में आमाशय के

बाईं ओर व्यथाधिक्य दबाने से होता है। आमाशय शूल में दबाने से आराम मालूम होता है।

(४) आमाशय के व्रण का रोगी दिन प्रति दिन दुर्बल होता जाता है। वमन में रुधिर आता है। शूल में ऐसा नहीं होता तथा आमाशय के रसों में भी अत्यम्ल प्राप्त नहीं होता।

(५) आमाशयिक व्रण प्रायः २०-३५ वर्ष की अवस्था में होता है; परन्तु शूल चाहे जिस आयु में हो सकता है।

आमाशयिक व्रण तथा आमाशयार्बुद के भेदक चिह्न

(१) आमाशयार्बुद प्रायः ४० वर्ष की आयु से प्रथम नहीं होता। आमाशयिक व्रण २०-३५ वर्ष की आयु के पश्चात् नहीं होता।

(२) अर्बुद की वृद्धि अति शीघ्र होती है। व्रण शनैः शनैः वृद्धि को प्राप्त होता है।

(३) अर्बुद में व्यथाधिक्य, वमन होने पर भी वेदना शांत नहीं होती। व्रण में तीव्र व्यथा का अभाव, वमनोपरांत व्यथा की शांति होती है।

(४) अर्बुद में वमन में रक्त की अल्पता होती है। व्रण में वमन में रक्त अधिक होता है।

अन्त

यदि उचित उपचार किया जाय तो, रोगी प्रायः नैरोग्य लाभ करते हैं। अन्यथा इसका परिणाम दुःखपूर्ण होता है।

चिकित्सा

डाक्टरी—आमाशय को सर्वथा विश्राम देना नितांत आवश्यक है। अतएव कुछ दिन तक रोगी को किसी प्रकार का आहार न दें और पोषक वस्ति द्वारा उसका पोषण करते रहें। पिपासा शमनार्थ एवं व्यग्रता के लिए घूँट घूँट शीतल जल पान करते रहें। यदि पोषक वस्ति का प्रबन्ध संभव न हो अथवा उसके उपयोग के कुछ दिवस उपरांत जब रोग घट जाय, तब एक छटाँक दूध में २ ग्रेन सोडा बाई कार्ब मिलाकर अथवा उसमें थोड़ा चूर्णाम्बु (Lime water) मिलाकर और उसे बर्फ़ से शीतल करके ४-४ घंटे के उपरांत थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देते रहें। पुनः कुछ दिवस पश्चात् यवाम्बु (Barley water) मिलाकर वा पतला अरारोट वा साबूदाना दूधमें पकाकर वा सादा शोरबा और यख़नी अथवा एग फ़्लिप प्रभृति खूब शीतल करकेदेते रहें। रक्तपात एवं वेदना निवारणार्थ आमाशय के ऊपर बर्फ़ रखें और बिस्मथ एवं अफ़ीम मिलाकर प्रयोजित करें।

औषध रूप से योग नं० १ वा २ दें। यदि वेदना हो तो योग नं० ३ प्रयोग में लाएँ। यदि वमन द्वारा अधिक रक्त निःसृत हो, तो रक्त वमन की चिकित्सा करें। यदि कलेजा जलता हो, तो योग नं० ४ का व्यवहार करें। मलबद्धता को दूर करने के लिए प्रति दूसरी वा तीसरी रात को कैलोमेल १ ग्रेन और कंपाउंड पाउडर ऑफ रूबर्ब ५ ग्रेन मिलाकर दें। योग निम्न हैं—

(१)	अर्जेंटाई नाइट्रास	$\frac{1}{3}$ ग्रेन
	अंग्वेण्टम् केओलीन	आवश्यकतानुसार

दोनों की एक गोली बनाएँ और ऐसी एक-एक गोली भोजन से आध घंटे पूर्व प्रातः शायं दें। आमाशय व्रण में लाभकारी है।

(२)	अर्जेंटाई नाइट्रास	$\frac{1}{3}$ ग्रेन
	टिंक्चूरा ओपियाई	१० मिनिम
	एक्वा एनीसाई (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा भोजन से पूर्व सुबह शाम दें। आमाशयिक व्रण में उपकारी है।

(३)	बिस्म्युथाई कार्ब	१५ ग्रेन
	एसिड हाइड्रोस्यानिक डिल	३ मिनिम
	लाइकर मार्फिया हाइड्रोक्लोर	१० मिनिम
	म्युसिलेज अकेशिया (ताज़ा)	१ ड्राम
	एक्वा क्लोरोफॉर्माई (ऐड)	१ आउंस

ऐसी १-१ मात्रा दिनमें २-३ बार दें। आमाशयिक व्रण की वेदनावस्था में लाभकारी है।

(४)	बिस्म्युथाई कार्ब	२० ग्रेन
	मैग्नेशियाई कार्ब	१० ग्रेन
	सोडियाई बाई कार्ब	५ ग्रेन
	एक्वा (ऐड)	१ आउंस

ऐसी १-१ मात्रा दिन में दोबार भोजन से आध घंटा पूर्व दें।

गुण—यह आमाशयिक व्रण में कलेजा जलने की दशा में गुणकारी है।

टिप्पणी—रोगी को औषध सेवनोपरांत दाहिनी करवट लेटना चाहिए।

आयुर्वेदीय तथा यूनानी चिकित्सा

प्रागुक्त डाक्टरी चिकित्सा में वर्णित नियमों को दृष्टि में रखें। ताकि आमाशय पीव आदि से स्वच्छ होजाय। पहले मधुवारि (माउलूअस्ल) वा यवाम्बु पिला दें। फिर क़ुर्स तबासीर ५ मा० वा क़ुर्स कहरुवा ७ मा० शर्बत हब्बुल् आस २ तो० के साथ प्रातः सायंकाल दें वा यह योग व्यवहार में लाएँ। (१) कुंदुर, दम्मुल् अख़्वैन, कहरुवा, गिले अरमनी प्रत्येक २ मा०, इनको पीसकर २ तो० शर्बत खशखाश मिलाकर पिलाएँ और ऊपर से ७ तो० गुलाबार्क और २ तो० शर्बत मोरिद मिलाकर पिला दें अथवा यह क़ुर्स व्यवहार में लाएँ-(२) ख़सखाश ७ मा०, समग़ अरबी, कतीरा हरएक ३॥ मा०, गुलनार, गुलेसुर्ख़, हब्बुलआस, उसारा रीश बर्गंद, अकाकिया, केशर, कहरुबा प्रत्येक २० रत्ती-सब ओषधियों को कूट-छानकर सुमाक़ के पानी से टिकियाँ बनाएँ और उनको छाया में सुखाएँ।

मात्रा—४ मा० थोड़े इसबगोल के लुआब मिले हुए शीतल जल के साथ।

हरे चिरचिरे के पत्तों का रस १ तो०, मिस्री का चूर्ण ३ मा०, संगयहूद की भस्म ४ रत्ती-इन की पुड़िया खाकर ऊपर से उक्त रस पान करें। इससे आमाशयिक व्रण जनित कष्ट तथा अकस्मात् होनेवाला रक्तवमन शांत होता है।

इस रोग की यह आरम्भिक चिकित्सा है। अत्यन्त वृद्धिगत रोग में शस्त्रक्रिया का आश्रय कल्याणकर होता है।

लेप—न्यग्रोधादि चूर्ण को घृत और मधु में मिलाकर २ अंगुल स्थूल लेप करें और पट्टी बाँध देवे तथा रोगी को चित्त लिटाए रखें। इसको निरंतर कुछ काल तक सेवन करने से आमाशयिक व्रण और शोथ दूर होजाता है।

आमाशयिक शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमाशयका एक रोग जिसमें आमाशय की आंतरिक श्लेष्मिक कला शोथयुक्त एवं लाल हो जाती है और उससे सफेद पिच्छिल द्रव प्रचुरता के साथ स्रावित होता है। कहीं-कहीं उसपर छोटे-छोटे क्षत भी पड़ जाते हैं, जिनसे रक्त आता है। आमाशयिक प्रदाह। (Inflammation of Stomach, Gastritis)।

आमाशयिक प्रदाहके प्रायः निम्न भेद होते हैं-(१) उग्र आमाशयिक प्रदाह, (२) पुरातन आमाशयिक प्रदाह, (३) उग्रविषाक्त आमाशयिक प्रदाह, (४) कफज आमाशय प्रदाह वा आमाशयिक विद्रधि, अब इनमें से प्रत्येक का पृथक्-पृथक् वर्णन कियाजाता है—

(१) उग्र आमाशयिक शोथ

उग्रप्रातिश्यायिक आमाशयप्रदाह (सं०, हिं०)। वर्म मिअ्दः शदीद, शदीद वर्म मिअ्दः (नज़्ली), सूए हज़्म शदीद (अ०)। मेदा का शदीद वर्म (उ०)। Acute Gastritis, Acute Catarrhal Gastritis, Acute inflammation (अं०)।

निदान

प्रायः यह रोग खाद्य-द्रव्य के दोष से होता है। अधिक खाना, खराब, भारी, बासी और सड़ीगली चीज़ें खाना, अधिक मसालेदार भोजन करना, अधिक मधु और अम्ल पदार्थ का सेवन, कच्चा वा सड़ागला मेवा और कच्ची सब्ज़ी, जैसे गाजर, मूली वा सलाद प्रभृति खाना, कड़ा वा रेशेदार गोश्त और निकृष्ट प्रकार की मछली आदि और विशेषकर तीक्ष्ण मद्य प्रभृति के सेवन से इस रोग का प्रादुर्भाव होता है।

किसी-किसी का मेदा स्वभावतः निर्बल होता है। ऐसे व्यक्ति के तनिक सी असावधानी के कारण आमाशय-प्रदाह हो जाता है। जिन लोगों के शरीर में संधिवात आमवात का विष वर्तमान होता है और जिनको हृदय, वृक्क वा यकृत् सबंधी कोई रोग होता है, उनको भी यह व्याधि हो जाया करती है। उक्त अवस्था में यह अतिशय उग्र एवं भयावह होती है।

प्रायः तीव्र एवं विस्फोटकीय ज्वरों में अर्थात् ऐसे बुख़ार जिनमें शरीर पर लाल-लाल धब्बे वा फुन्सी प्रभृति निकल आती हैं, जैसे, रक्तज्वर,

विसर्प, खसरा, चेचक इत्यादि में भी आमाशय की भीतरी झिल्ली में शोथ हो जाता है और आमाशय के प्रत्येक रचना विषयक रोग जैसे, आमाशयिक व्रण, आमाशयार्बुद अथवा आमाशयिक क्षय प्रभृति रोगों में उग्र आमाशयिक शोथ का होना अनिवार्य होता है।

कभी-कभी उष्ण नज़ला के मेदे पर गिरने से वा किसी प्रकार के क्षोभ के कारण आमाशय में प्रदाह हो जाता है। इसके अतिरिक्त हरिताल, संखिया, सुरमा, एलमीनियम आदि विष एवं विरुद्ध और मात्राधिक भोजन से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। वातरक्त, मधुमेह, वृद्धारोग; हृदय से रक्तस्राव होने से तथा गुरुपाकी भोजनों से यह प्रायः उत्पन्न होता है।

लक्षण

यदि सूजन अधिक वा तीव्र न हो तो उदर में भारीपन और व्यग्रता का बोध होता है। दिल घुटता है, जी मिचलाता है। थूक अधिक आता है और कभी-कभी मुँह से अम्ल-द्रव निकलता एवं उद्गार बाहुल्य होता है। जिह्वा मैली होती है। भूख मर जाती है। प्यास अधिक लगती है। मलबद्धता होती, पेशाब कम आता, शिरोशूल होता और प्रायः सूक्ष्म ज्वर भी होता है। आमाशय में एवं हस्त-पाद के तले में दाह होता है।

बालकों को जब इस प्रकार का उग्र आमाशयिक प्रदाह होता है, तब सूजन के प्रायः अँतड़ियों की ओर बढ़ जाने से दस्त आने लगते हैं और असह्य उदरशूल होता है। परंतु जवानों को साधारणतः कोष्ठबद्धता होती है। जब सूजन आमाशय से बढ़कर द्वादशांगुलीय अन्त्र अर्थात् पक्वाशय में जा पहुँचती है, तब पित्त प्रणाली के शोथयुक्त हो जाने से एक-दो दिवस के उपरांत साधारण पाण्डु विकार भी हो जाया करता है।

यदि शोथ अत्युग्र हो, तो लक्षण भी वैसे ही तीव्र होते हैं। अतएव १०३० दर्जे का ज्वर होता है। जिह्वा शुष्क एवं मैली दानेदार, किनारेसे रक्तवर्ण और मध्य से फटी हुई होती है। मुँह से दुर्गंधि आती, बार-बार जी मिचलाता और वमन होता है। वमन में प्रथमतः अपक्व आहार निकलता है। पुनः श्लेष्मा निःसृत होती है जो कभी रक्तमिश्रित होती है। ज़ोर की प्यास लगती और भूख मर जाती है। यहाँ तक कि रोगी को भोजन से घृणा हो जाती है। उदर मशक के समान फूल जाता और आमाशयिक द्वार पर दबाने से वेदना अनुभव होती है। हाथ के स्पर्श, या दबाव से पीड़ा बढ़ जाती है। कभी कभी आक्षेप की तरह का शूल होता है। पेशाब लालिमायुक्त अल्प मात्रा में आता है और उसमें बाहुल्यता के साथ तलछट तलस्थायी होती है। नाड़ी शीघ्र एवं सूक्ष्म चलती है। हृदय डूबा जाता है और साधारणतः पतले पतले दस्त आते हैं।

आमाशयिक शोथ का पाचन-दोष से निदान करने में प्रायः भ्रम हो जाया करता है। अस्तु, आगे इन दोनों का तुलनात्मक विवरण प्रकाशित किया जाता है—

(१) आमाशयिक शोथ में हाथ के दबाव से आमाशय में पीड़ा होती है; परन्तु पचन दोष में हाथ-स्पर्श से पीड़ा नहीं होती।

(२) प्रथम में रोगी ज्वराक्रांत होता है; परन्तु पचन दोष में प्रायः ज्वर का अभाव होता है।

(३) आमाशयिक शोथ में नाड़ी तीव्र गति से चलती है; परन्तु पचन दोष में नाड़ी की गति क्षीण रहती है।

(४) आमाशयिक शोथ में जिह्वा फैली, फटी और शुष्क सी रहती है। परंतु पचन दोष में वह मलिन उभरी हुई और जल-स्राव से युक्त होती है।

(५) आमाशयिक शोथ में अधिक उष्ण और चटपटे पदार्थ खाने से आमाशय में जलन और बेचैनी बढ़ती है। पचन दोष में इसके विपरीत ऐसे पदार्थों से सुख प्राप्त होता है।

(६) आमाशयिक शोथ में तृषाधिक्य होता है। पर पचन दोष में प्रायः तृषा नहीं होती।

इन भेदक चिह्नों द्वारा प्रथम रोग का ठीक निश्चय हो जाने पर ही चिकित्सा क्षेमकारी हो सकती है।

नोट—जिन कारणों से आमाशयिक शोथ का

प्रादुर्भाव होता है, प्राय: उन्हीं कारणों से आमाशय में क्षत भी हो जाता है। कभी यह व्याधि चिरकालानुबंधी होकर व्रण उत्पन्न कर देती है, जिसको डॉक्टरी में "गैष्ट्रिक अल्सर (आमाशयिक व्रण)" कहते हैं। (इनके निदान, लक्षण एवं चिकित्सा प्रभृति प्राय: एक सी होती है)

रोग का अंत वा साध्यासाध्यता—उचित चिकित्सा द्वारा प्राय: थोड़े दिनों में ही लाभ हुआ करता है। पर यदि रोग अतिशय तीव्र हो, तो एक से तीन सप्ताह में लाभ हो जाता है अन्यथा चिरकारी आमाशयिक प्रदाह में परिणत हो जाता है अर्थात् फिर यह रोग पुरातन हो जाता है।

चिकित्सा

रोग के लक्षण लिखते समय यह लिखा जा चुका है, कि इस रोग में भूख मर जाती है। यही नहीं, प्रत्युत आहार से घृणा हो जाती है। मानो यह उक्त रोग की नैसर्गिक चिकित्सा है, जिससे अभिप्राय यह होता है, कि प्रदाहित आमाशय को पूर्ण विश्राम प्राप्त हो। अस्तु, प्रकृति के इस चिकित्सा विषयक संकेत को दृष्टि में रखकर एवं उसके समर्थन वा सहायतार्थ, यह अत्यावश्यकीय है, कि इस रोग में आमाशय को पूर्णत: विश्राम दिया जाय। अत: उग्र व्याधि में रोगी को एक दो दिवस तक किसी प्रकार का आहार न दें, केवल प्यास दूर करने के लिए थोड़ा सा बर्फ चूसने वा बर्फ़ से शीतल किया हुआ सोडावाटर वा शीतल जल घूँट-घूँट पीने की आज्ञा दे। यदि रोगी अत्यंत निर्बल हो तो पोषण वस्ति द्वारा उसका पोषण करें। पर यदि रोग साधारण हो तो थोड़ी मात्रा में बर्फ़ से ठंडा किया दूध और सोडा भी पिला सकते हैं। वेदना शमनार्थ आमाशय के ऊपर पोस्ते के क्वाथ से टकोर करें वा गरम पानी की बोतल से सेंक दे वा गरम पुलटिस बाँधे अथवा १-२ ड्राम लिनिमेंट ऑफ ओपियम की मालिश करें। अतिशय तीव्र वेदना होने पर आमाशय के स्थान पर कतिपय जलौका धारण कराएँ वा ¼ ग्रेन मॉर्फिया का त्वगीय अन्त:क्षेप करें अथवा ५ विंदु टिंक्चर ओपियम वा ५ विंदु लाइकर ओपियाई सिडेटाइवस् एक घूँट शीतल जल में मिलाकर आध-आध घंटे पश्चात् दो-तीन बार दें। यदि वेदना के अतिरिक्त बारंबार वमन वा शुष्क उबकाइयाँ भी आती हों, तो अधोलिखित योग नं० १ वा २ अथवा आमाशयिक व्रण में लिखित डॉक्टरी योग नं० २ का उपयोग करें। कोष्ठबद्धता होने की दशा में गरम पानी और साबुन की वस्ति दें वा एक मात्रा सिडलिट्ज़ पाउडर वा २ ड्राम एफ़रवेसिंग मैग्नेशियम सल्फेट २ छटाँक पानी में मिलाकर प्रयोग में लाएँ।

योग इस प्रकार हैं—

(१) बिस्म्युथाई कार्ब	१० ग्रेन
लाइकर ओपियाई सिडेटाइवी	७ विंदु
एसिड हाइड्रोस्यानिक डिल	२ विंदु
स्पिरिटस क्लोरोफॉर्मीई	१० विंदु
म्युसिलेज ट्रैगेकैंथी	१ ड्राम
एक्वा (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा औषध प्रति ४ घंटे पश्चात् तीन-चार बार दें।

गुण—यह उग्र आमाशयिक शोथ में लाभकारी है।

(२) बिस्म्युथाई कार्ब	१० ग्रेन
एसिड हाइड्रोस्यानिक डिल	३ विंदु
लाइकर मॉर्फ़िया हाइड्रोक्लोर	१० विंदु
म्युसिलेज अकेशिया (ताज़ा)	१ ड्राम
एक्वा क्लोरोफ़ार्म (ऐड)	१ आउंस

ऐसी १-१ मात्रा औषध प्रति ६-६ घंटे पश्चात् तीन-चार बार दें।

गुण—उग्र आमाशयिक प्रदाह में गुणकारी है।

साधारण रोग में रोगी को १२ घंटे वा एक दिन तक निराहार रखें। उक्त अवस्था में एक मात्रा सिडलिठ्ज पाउडर वा एफरवेसिंग मैग्नेशियम सल्फेट पिलाना अथवा रात्रि में ३-५ ग्रेन कैलोमेल (सोडाबाईकार्ब १० ग्रेन के साथ) खिलाकर आगामी प्रात: काल को एक मात्रा सिड्लिट्ज पाउडर थोड़े पानी में मिलाकर जब वह उबलने लगे उस समय पिलाना लाभकारी होता है। केवल इतना ही उपाय से और चार पहर तक निराहार रखने से लाभ हो जाता है।

रोग के प्रारम्भ में यदि बार-बार वमन होता हो और क़ै में अपक्व आहार निकलता हो, तो उक्त अवस्था में केवल एक-दो गिलास गरम पानी अथवा उसमें १–२ चुटकी लवण मिलाकर पिलाएँ और उँगली वा पर से कंठ को सुहलाते रहें, जिसमें खुलकर क़ै हो जाय वा ४ ड्राम टिंक्चर ऑफ़ इपीकेक्वाना वा ३० ग्रेन पल्विस इपीकेक्वाना २–३ छटाँक गरम पानी में मिलाकर पिलाएँ, ताकि भली भाँति वमन हो जाय और आमाशय शुद्ध हो जाय। ऐसी दशा में आमाशय को सोडियम् बाई कार्बोनेट के विलयन वा पर्मैंगेनेट ऑफ़ पोटाश के हलके घोल से ष्टमक साइफ़सिन (   ) द्वारा आमाशय को प्रक्षालित कर देना भी गुणकारी है।

पथ्य—जब रोग के लक्षण प्रशमित हो जाँय अर्थात् जब रोग में स्पष्टतया कमी आ जाय, तब प्रथम दूध में सोडावाटर मिलाकर बर्फ़ से शीतल कर घंटे-घंटे वा दो-दो घंटे पश्चात् घूँट घूँट पिलाएँ। पुनः मात्रा वर्द्धित कर दें और शनैः शनैः अन्य हलका, शीघ्रपाकी आहार देने लगें। भारी, अम्ल, चरपरे और मसालादार खान-पान से कुछ दिवस पर्यंत परहेज़ रखें।

यूनानी वैद्यकीय चिकित्सा

स्थानीय वा बाह्य—रोग के प्रारंभ में आमाशय की जगह यह प्रलेप लगाएँ—रसवत, लाल चंदन, गुले सुर्ख़ (गुलाब) और गिले अर्मनी प्रत्येक ६–६ मा०, पाँच तो० हरे मकोय के रस में पीसकर आमाशय के ऊपर कोष्ण प्रलेप करें। तीन दिन के उपरांत उक्त योग में १ तो० जौ का आटा, ६ मा० तुख़्म ख़त्मी ९ मा०, अमलतास का गूदा और मिलाकर उपयोग में लाएँ—सप्ताह पश्चात् प्रलेप का यह योग काम में लाएँ—सुंबुलुत्तीब (बालछड़) ६ मा०, गुल बाबूना ६ मा० इकलीलुलमलिक ६ मा०, अमलतास का गूदा ९ मा०, जौ का आटा १ तो०, सूखा मकोय ६ मा०, सब औषधियों को हरे मकोय के पानी में पीसकर गरम करके शोथयुक्त स्थल पर आलेप करें। यदि संभव हो, तो रोगी के दोनों कंधों के बीच सींगी लगाएँ।

आद्यौषध५—तो० हरे मकोय का फाड़ा हुआ पानी और ५ तो० हरी कासनी का फाड़ा हुआ पानी, ४ तो० शर्बत दीनार मिलाकर प्रातः सायंकाल पिलाएँ। कुछ दिवस के उपरांत जब तीव्रता कम हो जाय, तब गुलबनफ़्शा ७ मा०, मवेज़ मुनक्का ९ दाना, कासनी की जड़ ७ मा०, सौंफ ७ मा०, गावज़बान ५ मा०, मकोय ५ मा० रात को गरम पानी में भिगोकर प्रातः काल मल छानकर ख़मीरा बनफ़्शा ४ तो० मिलाकर पिला दिया करें। तीन दिन के उपरांत यदि आवश्यक हो, तो तुख़्म कसूस ५ मा० (पोटली में बँधा हुआ) और हरे मकोय का फाड़ा हुआ पानी ५ तो०, हरी कासनी का फाड़ा हुआ पानी ५ तो० और बढ़ाकर प्रयोग करें। और ख़मीरा बनफ़्शा की जगह ४ तो० शर्बत बज़ूरी सम्मिलित कर काम में लाएँ। यदि मलबद्धता हो, तो उसमें ४ तो० गुलकन्द और सम्मिलित कर लें और दूसरे समय तृतीय प्रहर को यह प्रयोग व्यवहार करें—दवाउल् मिष्क मातदिल ५ मा० खिलाकर ऊपर से सौंफ ५ मा०, मवेज़ मुनक्का ९ दाना, मकोय ३ मा०, ६–६ तो० अर्क सौंफ और अर्क बिरंजासिफ में पीसकर शीरा निकाल ४ तो० ख़मीरा बनफ़्शा सम्मिलित कर पिला दिया करें। यदि संशोधन अनिवार्य हो, तो प्रातः काल के पिलाने के योग में बिना हरे मकोय और कासनी के पानी के मिलाए शेष औषधि आठ दिन तक पिलाया करें। पुनः नवें दिन उसमें सनाय मक्की ७ मा० योजितकर रात्रि में भिगोदें और प्रातःकाल मल छानकर ५ तो० अमलतास का गूदा, ४ तो० गुलकंद, ४ तो० तुरंजबीन, ४ तो० लाल शकर, ५ दाने बादाम का शीरा सम्मिलित कर पिलाएँ और दूसरे दिन तबरीद के योग का व्यवहार करें। इसी भाँति आवश्यकतानुसार तीन दिन तक विरेचनौषध का उपयोग करें। ध्यान रखें कि इस रोग में तीव्रेचन का प्रयोग हानिकारक सिद्ध होता है।

इसके उपरांत ख़मीरा गावज़बान जवाहरवाला खिलाकर ऊपर से ५ तो० हरी कासनी का फाड़ा

हुआ पानी और हरे मकोय का फाड़ा हुआ पानी ५ तो० शर्बत बजूरी मिलाकर कुछ दिवस पर्यंत पिलाएँ। अथवा पहले ४ मा० दवाउल् मिस्क मातदिल खिलाकर ऊपरसे १२ तो० अर्क बिरंजासिफ़ और ४ तो० ख़मीरा बनफ़्शा मिलाकर पिलाना भी कल्याणकारक होता है।

इस प्रकार के उष्णशोथ में जिसमें प्यास एवं ज्वर का तीव्र वेग होता है, यदि रोगी बलवान हो तो फ़स्द बासलीक़ के खोलने से लाभ होता है।

नोट—जब शोथ परिपाक को प्राप्त होता है, तब ज्वर एवं वेदना प्रशमित हो जाती है। उस समय दूध में कोष्ण जल मिलाकर पिलाएँ और उदर को किंचित् हाथ से दबाकर निचोड़ें। जिसमें पकी हुई सूजन विदीर्ण हो जाय। सूजन फूटने की पहचान यह है, कि ख़ून और पीब क़ै एवं दस्त द्वारा निःसरित होंगे। पुनः स्वच्छताके लिये उस समय १२ तो० गरम पानी में ४ तो० शहद मिलाकर ईषदुष्ण पिलाएँ, जिसमें आमाशय पीबादि विवर्जित हो जाय। आमाशय के शुद्ध होजाने के उपरांत ६ मा० गुलनार फ़ारसी ६ मा० दम्मुल अख़वैन, ६ मा० गिलेअर्मनी, ६ मा० कुन्दर और ६ मा० कहरुबा समई महीन पीसकर इसमें से ६–६ मा० प्रातः सायंकाल खिलाएँ।

पथ्यापथ्य

लघु एवं शीघ्रपाकी आहार थोड़ी मात्रा में दें। खट्टे, मसालादार और तीक्ष्ण चरपरे पदार्थ से परहेज़ करें। जब रोग के लक्षण घट जाएँ, तब आशजौ, मुर्ग़ी के बच्चों का शोरबा (बिना मसाले के पकाया हुआ), मरिच रहित छाग मांस रस, मूँग की नरम खिचड़ी वा मूँग का यूष, चावलों का माँड़, ख़शका दूध के साथ वा साबूदाना प्रभृति आहार की जगह काम में लाएँ। अधिक भूख लगने पर मवेज़ मुनक़्क़ा के दाने खिलाएँ, पानी की जगह अर्क मकोय, अर्क कासनी, अर्क गावज़बान प्रभृति पिलाएँ।

आयुर्वेदीय चिकित्सा

आमाशयिक प्रदाह में—सेब का मुरब्बा, आँवले का मुरब्बा, बीह का मुरब्बा और हरड़ का मुरब्बा प्रत्येक २-२ तो०, इन-सबको खूब बारीक पीसकर गुलाबार्क में घोलकर शर्बत की तरह पीने से आमाशय का प्रदाह, भोजनोत्तर छाती की जलन, खट्टे डकार और आमाशय की दुर्बलता दूर होती है। प्रदाह की तीव्रता के कारण जिन रोगियों को मुखपाक होजाता है एवं जिनकी क्षुधा, अत्यधिक गर्मी के कारण, नष्ट होजाती है, उन्हें यह औषध अमृतके समान लाभ करती है।

रससिंदूर, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मुक्ता भस्म और स्वर्ण भस्म समभाग—सबको घृतकुमारी के रस से मर्दन करके १-१ रत्ती की वटिका प्रस्तुत करें। इसमें से १-१ वटी मधु के साथ सेवन करने से आमाशयिक शोथ में लाभ होता है।

वाह्य रूप से महानारायण तैल का मर्दन और दशांग लेप का प्रयोग (लेपार्थ) इस रोग में विशेष लाभ करते हैं।

(२) विषाक्त उग्र आमाशयिक शोथ

मेदा की ज़हरीली सूजन, वर्म मिअ्दः सम्मी शदीद (उ०)। Acute toxic gastritis.

इस रोग में आमाशय का अन्तःस्तर किसी दाहक विष के प्रभाव से प्रदग्ध होकर शोथयुक्त होजाता है।

निदान—किसी भक्षक वा दाहक विष जैसे, दारचिकना, संखिया, तेजाब वा दाहक क्षार जैसे, कास्टिक सोडा प्रभृति के भक्षण करने से आमाशय में इस प्रकार की तीव्र सूजन होजाती है।

लक्षण—तेज़ाब वा कोई दाहक क्षार प्रभृति के अकस्मात् खाते-पीते ही मुख, कंठ एवं आमाशय में तीव्र जलन एवं वेदना होने लगती है। बोलने और निगलने में कष्ट प्रतीत होता है। बारंबार वमन होता है, जिसमें आमाशय की आंतरिक झिल्ली के टुकड़े कट-कट कर निकलते हैं और कभी उसमें किंचित् रक्त भी होता है। उदराध्मान होता और हाथ के स्पर्श से वेदना अनुभव होती है। तीव्र प्यास लगती है। शीतल जलपान करने की बहुत अभिलाषा होती है।

साँस क्लेश के साथ आता है। नाड़ी मलीन और वेग से धावमान होती है। हस्त-पाद शीतल होजाते हैं। दृष्टि के सामने तमावृत मालूम होता है। असीम निर्बलता एवं व्यग्रता उत्पन्न होती है। अंततः हिचकियाँ आकर रोगी स्वर्गलोक को प्रस्थान करता है।

टिप्पणी—विषाक्त आमाशयिक शोथ का एक और भेद है, जो सड़े-गले मांस वा मत्स्य प्रभृति के भक्षण से होजाया करता है। इससे भी आमाशय में उग्र प्रदाह होता है। कभी कभी अत्यन्त तीव्र शोथ होजाता है और कभी उक्त सूजन में पीव भी पड़ जाती है। कभी यह सूजन अँतड़ियों की ओर बढ़ जाती है। उदर में कठिन वेदना होती, कै और दस्त आते, हस्त-पाद शीतल होजाते हैं और कुछ ही घंटों में रोगी इहलौकिक लीला समाप्त करता है।

इस प्रकार के सामान्य विष में भी उचित उपचार के होते हुए भी प्रायः पूर्ण निरोगता प्राप्त नहीं होती एवं स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

चिकित्सा

चूँकि इस प्रकार का विषाक्त उग्र आमाशयिक शोथ नाना भाँति के भक्षक एवं दाहक विषों आदि द्वारा प्रगट होता है। अतएव इनकी चिकित्सा का वर्णन उन-उन विषों के अंतर्गत किया जायगा।

(३) चिरकारी आमाशयिक शोथ

पुरातन अजीर्ण, वर्म मिअ्दः मुज़्मिन, सूए हज़्म मुज़्मिन, पुरानी बदहजमी। Chronic Gastritis, Chronic Dyspepsia, Chrornic infammation

इस रोग में आमाशय किसी भाँति वर्द्धित हो जाता है। इसकी भीतरी झिल्ली साधारणतया स्थूल एवं धूसर वर्ण की हो जाती है और कभी उसके अन्तःस्तर पर क्षत वा रक्तस्राव के चिह्न पाए जाते हैं। आमाशयिक ग्रंथियाँ सूजकर निष्क्रिय हो जाती हैं और आमाशयिक रस की जगह सांद्र एवं पिच्छल द्रव निःसरित होता रहता है। कभी आमाशय की दीवारें पतली होकर निर्बल हो जाती हैं।

निदान—कभी तो यह रोग उग्र आमाशयिक शोथ के परिणाम स्वरूप होता है। पर बहुधा इसका कारण आहार–दोष ही हुआ करता है अर्थात् गुरुपाकी एवं आध्मानकारक आहार सेवन, मधुर तथा घी–तेल के बने पदार्थ अधिक खाना, निर्धारित समय पर खूब चबाकर स्वस्थ चित्त से भोजन न करना, चाय, कहवा, तंबाकू एवं तांबूल भक्षण और गरम मसाला अधिक खाने-पीने विशेषतः मद्यपान, भोजन के साथ वा भोजनोत्तर बर्फ़ का पानी पीना वा तर मेवा जैसे, खरबूज़ा प्रभृति खाना, भोजन करते ही कोई मानसिक वा शारीरिक कार्य करना, काम–काज करने के उपरांत श्रांति दूर हुए बिना ही पेट भर भोजन कर लेना, वायु सेवन वा शारीरिक व्यायाम न करना और सर्वदा एक ही स्थान में बैठा रहना जिससे प्रायः स्थायी कोष्ठबद्धता का विकार हो जाता है, दुःख, चिंता एवं अशांति का होना, दाँतों का खराब होना, आमाशय के रोग, कोई कोई हृद्रोग, फुफ्फुस यकृत और वृक्क रोग प्रभृति, शरीर में आमवात, निक़रिस वा आतशक प्रभृति का विष वर्तमान होना आदि इस रोगके कारणीभूत हैं।

लक्षण—इस रोग में भूख ठीक नहीं लगती। पाचन विकार होता एवं भोजनोत्तर आमाशय में भार बोध, बेचैनी और वेदना अनुभव होती है। उद्गार वाहुल्य, उदराध्मान एवं आटोप आदि विकार होते हैं। आमाशय पर दबाने से भी किसी भाँति वेदना प्रतीत होती है। जिह्वा बीच से मैली होती है और उसकी नोक और किनारे लालिमायुक्त होते हैं। कंठ खरखरा होता, मुख में फुंसियाँ और छाले निकले रहते, और मसूढ़े फूल जाते हैं। मुँहसे दुर्गंधि आती, अधिक लाला स्राव होता, कलेजा जलता, शिरोशूल होता, तृषाधिक्य और मलावरोध होता है। मल के साथ प्रायः अपरिपाचित आहार वायु के साथ निःसरित होता है।

दिल धड़कता है। नींद अच्छी नहीं आती। हस्त-पाद के तलवों में दाह होता है। पेशाब लाल रंग का अल्प मात्रा में आता है और उसे

रखने से उसके नीचे तलछट बैठ जाती है। त्वचा रूक्ष हो जाती और शरीर का वर्ण फीका पड़ जाता है। रोगी दिन-दिन निर्बल एवं कृश व भीरु होता जाता, सुस्त और चिंतित रहता है। काम-काज में उसका जी नहीं लगता।

चिकित्सा

"अजीर्ण" वा "मन्दाग्नि" की तरह।

(४) सपूय उग्र आमाशयिक शोथ

मेदा का फोड़ा, फ़लग़मूनी मिअ्‌दः, दुबैलतुल् मिअ्‌दः। Phlegmonous Gastritis, Acute Suppurative Gastritis

निदान—संक्रामक ज्वरों, जैसे, प्रसूतज्वर प्रभृति में आमाशय के भीतर शोथ होकर उसमें पीव पड़ जाती है वा उसमें दूषित व्रण के कारण एक वा अधिक बड़े-बड़े फोड़े बन जाते हैं। विषाक्त उग्र आमाशयिक प्रदाह भी इसका कारण हुआ करता है।

लक्षण—तीव्र आमाशयशूल होता है और वमन आते हैं और प्रायः दस्त भी आते हैं। ज्वर तथा प्रलाप होता और रोगी मूर्च्छित होकर परलोक गमन करता है। क्वचित फोड़ा फूट कर पीव ख़ारिज हो जाती और रोगी बच भी जाता है।

चिकित्सा—रोग के हेतु एवं लक्षण के अनुसार उचित प्रतीकार करना चाहिये।

आमाशयिक संकोच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमाशय का एक रोग जिसमें निरंतर दीर्घ कालतक निराहार रहने के कारण आमाशय संकुचित हो जाता है। कभी-कभी यह संकीर्ण होकर आँतों के आकार का ही रह जाता है। (Contraction of Stomach)

आमाशयिकी-धमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आमाशय की धमनी। यह दो होती हैं, एक दाहिनी और दूसरी बाईं। (Gastric artery.)

आमाशयोत्तेजक-,आमाशयोद्दीपक—वि० [सं० त्रि०] जो आमाशय को उद्दीप्त करे। दीपन-पाचन।

संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जो आमाशयिक रस की उत्पत्ति की वृद्धि करे और आमाशयिक क्रिया को उत्तेजित करे (किंतु छर्दिजनक गति को नहीं)। जैसे—खनिजाम्ल,-कुचलीन (स्ट्रिकनीन), ईथर और अस्थिर तैल प्रभृति।

पर्य्या०—मुहर्रिकाते मिअ्‌दः, मुक़व्वियात मिअ्‌दः (अ०)। गैष्ट्रिक ष्टिम्युलेंट्स Gastric Stimulants, ष्टामेकिक टॉनिक्स Stomachic Tonics (अं०)।

उपयोग—आमाशय की निर्बलता से होनेवाले अजीर्ण में आमाशयोद्दीपक औषधियाँ विशेषतः जल मिश्रित शोरक-लवणाम्ल (डाइल्यूट नाइट्रो हाइड्रोक्लोरिक एसिड) को कुचला और कलंबा प्रभृति के साथ मिलाकर देते हैं।

टिप्पणी—यह बात अनुभव में आ चुकी है, कि जब आमाशय में अम्लत्व गुण की वृद्धि होती है, तब आमाशय की गति भी तीव्र हो जाती है। अतएव आमाशय में अम्लत्व-वर्द्धन द्वारा हम उसकी गति को भी तीव्र एवं बलवान बना सकते हैं। मानो आमाशयोद्दीपक औषधियों का असर आमाशय की गति को तीव्र करना एवं पाचन-शक्ति बलिष्ट बनाना है। अस्तु, चिरकारी अजीर्ण में जब कि आमाशयिक पेशियों को शक्ति प्रदान करना अभीष्ट हो, तब आमाशयोत्तेजक औषधियों के साथ खनिजाम्ल और कुचिला को मिलाकर उपयोग करना प्रायः कल्याणकारी होता है; क्योंकि कुचिला और उसका सत कुचलीन (ष्ट्रिक्नीन) आमाशयिक पेशियों को विशेषतया बल प्रदान करते हैं।

आमाशय बलकारी औषधें—आयुर्वेदीय तथा यूनानी—अतीस, बच, बेज, सतिवन, भूनिंब, अबरेशम, आँवला, छड़ीला, अनारदाना, आलू, इलायची, इज़ख़िर, बिल्लीलोटन, सौंफ, बहेड़ा, वंशलोचन, बालंगू, पोस्ततुरंज, पोस्त संगदानहे मुर्ग़, पहाड़ी पोदीना, जायफल, दोक़ू, दरूनज अक़्रबी, दारचीनी, ज़रिश्क, ज़ंजबील, ज़रूरद, जरंबाद, सुअद कोफ़ी (नागरमोथा), सुंबुल हिंदी (बालछड़), सफ़रजल, साज़िज हिंदी (तेजपात), शकाकुल, शीरख़िश्त, उष्ट्रीक्षीर, समग़ अरबी, अर्क़ गुलाब, ऊद गर्की (काला

अगर), फरंजमिश्क, दालचीनी, लौंग,कुट, कुंदुर, कबाबचीनी, केवड़ा,गुलाब, गिर्दहे सुमाक, लादन, लोबान, मस्तगी, हड़ का मुरब्बा, कालीमिर्च, पुदीना, नरकचूर, कालानमक, हड़, पुनर्नवा, बरना (वरुण), अमलतास, देवदार, सिंकोना की छाल, और पाठा ।

डॉक्टरी औषधियाँ—जंगली मूली (आरमोरेशिया,), नारंगी का छिलका (ऑरेंशियाई कॉर्टेक्स), ऑरेक्सीन,अरेक्सीन टेनेट, ऑरेक्सीन हाइड्रोक्लोराइड, एसिड सल्फ्युरिक डायल्यूट (जलमिश्रित गंधकाम्ल), जलमिश्रित स्फुरकाम्ल (एसिड फॉस्फोरिक डायल्यूट), जलमिश्रित लवणाम्ल (एसिड हाइड्रोक्लोरिक डायल्यूट) पपीता (इग्नेशिया), एलुआ (एलोज़), गुल बाबूना (एन्थेमिस), वुकु (ब्युक्यु), कालीमिर्च (पाइपर), पेप्टोनाइज़्ड फूड, पेप्सीन, पैन्क्रिएटिक एन्ज़ाइमूज़, टेरेक्सीकम्, जंशियाना (जिंतियाना), चिरायता (चिरेटा), डिकॉक्टम् एलोज़ कम्पॉज़िटम्, उश्बा मग़रबी (सारसापरिल्ला), कुचलीन (ष्ट्रिकनीन), सर्पेंण्टेरिया, सिंकोना, सिंकोनीडीन, सिंकोनीडीनी सैलीसिलास, सिंकोनीन, सरसों (सिनेपिस), सोडियाई क्लोराइडम्, कावा कावा,क्रेमेरिया, कस्पेरिया, क्काशिया, क्कीनीनीसल्फास, क्वीनीनी हाइड्रोक्लोराइडम्, लाल मिर्च (कैप्सिकम्), कैसकरिल्ला, कोलंबा, ग्वाराना, नीबू का छिलका (लाइमोनिस कॉर्टेक्स), हशीशतुद्दीनार (ल्युप्युलीनम्), माज़रियून (मेज़ेरियन), कुचिला (नक्सवामिका), हाइड्रैष्टिस और रीछ दाख (यूवा अर्साई)।

नोट—उपर्युक्त द्रव्य आन्त्रबलप्रद भी है ।

आमास–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शोथ, शोफ, श्वयथु, प्रदाह, सूजन–हिं० । शोज़िस–फ़ा० । इल्तिहाब, नरम,सलअ़ः–अ ।स्वेलिंग Swelling,इन्फ्लामेशन Inflammation-अं० ।

आमाहलदी–संज्ञा स्त्री० [सं० आम्रहरिद्रा] आँबा हल्दी, अम्माहल्दी, जंगली हल्दी, वन हरदी, वनहल्दी, आंबे हलद, आंबे हल्दी (हिं०)। आंबेहल्दी, अंबे हल्दी (द०) । आम्रहरिद्रा, आम्रनिशा, अरण्यहलदीकन्द, अरण्यहरिद्रा, वन हरिद्रा, शोली, शोलिका (सं०)। बनहोलोदि, बनहलुद, आमहलुद, आंबे होलोदि, जंगली हलदी (बं०)। कर्क्युमा एरोमेटिका Curcuma Aromatica, *Salisb.* (लै०)। वाइल्ड टर्मेरिक Wild Turmeric, येलो जेडोआरी Yellow Zedoary, कोचीन टर्मेरिक Cochin Turmeric (अं०)। जेडोऐरी जॉनी Zedoaire jaune (फ्रां०)। कस्तूरि मंजल, (ता०)। कस्तूरि पसुपु, अडवि पसुपु (ते०)। काट्टु मञ्जल, कस्तूरि मञ्जल, आनकूव (मल०) । कस्तूरिअरिशिना, कड अरिशिना (कना०)। आंबी हलेद, रानहलुद, वेडि हलद, साली (मर०) । आंबहलद, हलदल, बनहल्दर, कपूरकचली (गु०)। कियासनोइन् (बर०) । अड़िविषका, अरिसिन, रानहलद (कों०) । रानहलुद, कचोरा, आंबे हलदी (बम्ब०)। दुदकहा (सिंगा०)।

आर्द्रक वा हरिद्रा वर्ग

(*N. O. Zingiberaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—समग्र भारतवर्ष विशेषकर बंगाल में जंगली होती वा लगाई जाती है । यह बंगाल के जंगलों में बहुत जगह आप से आप होती है ।

वानस्पतिक-विवरण—एक पौधा जिसकी जड़ हल्दी की तरह होती है । उपयुक्त वायुमंडल में रखने पर इसका माध्यमिक कन्द शलजम जैसा बड़ा होता है। वर्षा से ठीक पूर्व मई जून में इसमें फूल आते हैं। कहीं-कहीं यह आधी बरसात बीतने पर फूलती है। इसका माध्यमिक पाताली धड़ (Rhizome) आयताकार वा शंक्काकार प्रायः २ इंच से अधिक व्यास का होता है । वाह्य तल गहरे भूरे रंग का, जिस पर वृत्ताकार छल्लों के चिह्न पड़े होते और उससे बहुत सी मोटी-मोटी जड़ें निकली होती हैं । इनमें से किसी-किसी के सिरे पर लगभग गुठली सहित बादाम के आकार प्रकार के नागरंग-पीतवर्ण के कन्द होते हैं। पार्श्विक पाताली धड़ लगभग उँगली जैसे मोटे कतिपय गुदार छोटी जड़ों से युक्त होते हैं। माध्यमिक और पार्श्विक दोनों

प्रकार के पाताली धड़ भीतर से हलदी की तरह गहरे नारंगी रंग के होते हैं। जड़ में उग्र कर्पूरवत् गंध होती है।

रासायनिक-संघटन—कंद में एक प्रकार का उड़नशील तेल, राल, श्वेतसार, लुआब (Mucilage), शर्करा, निर्यास, एल्ब्युमिनॉइड्स और हारिद्रीन (Curcumin) एक प्रकार पीत रंजक द्रव्य आदि होते हैं।

प्रयोगांश—कंद वा पाताली धड़ (Rhizome)।

प्रभाव—वल्य, उत्तेजक और वायु निस्सारक।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—अरण्यहल(र)दीकंद कोढ़ को दूर करनेवाला और वातरक्त नाशक है। भा० पू० १ भ० ह० व०।

चरपरी, मीठी, रुचिकारी, अग्निदीपक, कड़ुई, कोढ़ को दूर करनेवाली, तथा वातनाशक है और रक्तविकार, विष, श्वास, कास और हिचकी का नाश करनेवाली है। वै० निघ०।

आम्रहरिद्रा, कड़वी, खट्टी, रुचिकारी, हल्की, अग्निदीपक, गरम, कषैली तथा रेचक है और कफ, उग्र व्रण, कास, श्वास, हिचकी, ज्वर, मुख के रोग और रक्तविकार का नाश करती है। वै० निघ०।

बन हरिद्रा, चरपरी, रुचिकारी, गौल्य, कड़ुई और दीपन है। रा० नि० व० ७।

यूनानी मतानुसार—प्रकृति-दूसरी कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष, किसी-किसी के अनुसार समशीतोष्ण है। स्वाद-कड़वा, बदमज़ा एवं किंचित् तीव्र। हानिकर्त्ता-हृदय को। दर्पघ्न-नारंज। प्रतिनिधि-वकुची, चकवँड़ के बीज वा हल्दी। शर्बत की मात्रा-३॥ मा० (१ दिरम)।

यह वायुलयकर्त्ता है। और आपत्तिग्रस्त अवयव पर मवाद गिरने से रोकती है, शीघ्र हज़्म होती और करती है। पथरी को तोड़कर फेंकती है। मूत्रावरोध, शुष्क वा आर्द्र खाज एवं चोट चाहे गिर पड़ने के कारण हो वा मार पीट के कारण, इसके पिलाने वा प्रलेप करने से पूर्ण लाभ होता है। निरंतर इसका मंजन करने से मुख का स्वाद ठीक होता है। (निर्विषैल)।

हकीम मुहम्मद शरीफ़ ख़ाँ—के अनुसार इसे खाज, रक्तदोष, दद्रु और चोटमें खाने और लगाने से लाभ होता है और यह पाचक है। (तालीफ़ शरीफ़ी)

हकीम मुहम्मद आज़म ख़ाँ इसके प्रायः वे ही गुणधर्म लिखते हैं, जिनका उल्लेख आयुर्वेदीय ग्रन्थों में हो चुका है। पर इतना विशेष लिखते हैं कि ज़र्राह लोग इसे मुर्गी के अंडे की सफेदी में मिलाकर बलात् अस्थिभग्न पिष्ट, एवं आघात आदि में व्यवहृत करते हैं। आपने और भी लिखा है कि जिसने इसे मामीरान वा दारहल्द समझ रखा है, उन्होंने अत्यन्त गलती की है। (मुहीत आज़म)

नव्य मतानुसार

यह चोट पर बहुत फ़ायदा करती है।

लोग क्षत और सन्ध्यभिघात पर इसे बाँटकर लगाते हैं।

आमाहलदी की जड़ कफ नाशक, स्तम्भक और अतिसार तथा मेह विकार में उपकार करनेवाली है। यह मसाले और तरकारी की तरह भी काम आती है।

डिमक—जंगली हलदी के गुणधर्म बहुतांश में हलदी के समान हैं; पर अत्युग्र कर्पूरवत् गंध के कारण यह उतना ग्राह्य नहीं। चोट तथा मोच इत्यादि में हिंदुस्तानी लोग अन्य औषधि के साथ वाह्य प्रलेप रूप से इसका औषधीय प्रयोग करते हैं। विसर्प आदि ज्वरों (Exanthematous fevers) में दबे हुए दानों को उभाड़ने के लिए इसका प्रयोग होता है। पर इसका कभी अकेले प्रयोग नहीं होता, वरन् चोट पर लगाने के लिए संकोचक, और दाने उभाड़ने के लिए कड़ुई एवं सुगंधित औषधियों के साथ इसका व्यवहार होता है। भारतवर्ष में इसका चटनी आदि की तरह कभी प्रयोग नहीं हुआ, पर ट्रावनकोर में इसके कंद से एक प्रकार का अरारोट (तीखुर) तैयार किया जाता है। (फा० इं० ३ भ०)

नादकर्णी—इसकी गाँठ पांडुपीत वर्ण की होती है, जिसमें एक प्रकार का ग्राह्य सुरभित गंध होती है। ताज़ी जड़ में एक प्रकार की

काफूरी गंध होती है। इसके गुणधर्म तथा प्रयोग हलदी के समान हैं। सूखी गाँठ रक्तदोष एवं त्वग्रोगों में प्रयुक्त होनेवाली अन्य ओषधियों के साथ सुगंधि हेतु व्यवहार में आती है। विसर्पीग ज्वरों (Exanthematous fever) में दाने उभाड़ने के लिए १॥ से ३ रत्ती की मात्रा में इसका चूर्ण दिया जाता है। चोट तथा मोच आदि में इसको तेलमें पकाकर लगाते हैं। हलदी की तरह इसका मुख्य उपयोग रंजन-क्रिया रूप से होता है। (The Indian materia medica.)

एन्सली के अनुसार दक्षिणी हिंदुस्तान के मुसलमान इसे कतिपय प्रकार के सर्पदंश में एक मूल्यवान औषध मानते हैं और इसे हड़ताल, कुट और अजवायन के साथ प्रयोग में लाते हैं।

छोटी माता और खाज में इसका वाह्य प्रयोग होता है। (Surg. major Henry david cook, Calicut malabar.)

इसकीलोबान (Benzoin) के साथ पीसकर बनाई हुई लुगदी शिरोमूल में माथे पर लगाने की एक उत्तम घरेलू दवा है। (Surg. Maj. Jhon north, I. M. S. Bangalore)

शिरोशूल में इसे माथे पर लगाते हैं। अंगराग रूप से भी इसका प्रयोग होता है। (इं० मे० प्लां०)

आमाहल्दी–[संज्ञा स्त्री०] सं० एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ हलदी के रंगकी होती है। इसमें से कचूर की सी गंध आती है।

आमिख–संज्ञा पुं० दे० "आमिष"।

आमिन–संज्ञा स्त्री० [हिं० आम का स्त्री०] आम की एक जाति जो अवध में होता है और जिसके फल सफेदेकी तरह मीठे, पर बहुत छोटे-छोटे होते हैं।

आमिलः–[फ़ा०] आमला।

आमिल–[पं०] आकाशबेल (Cuscuta reflexa.)।

वि० [सं० अम्ल] खट्टा। अम्ल।

आमिष्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मांस। ऋ० ६। ४६। १४।

आमिष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मांस धातु। (२) मांस। गोश्त (खानेका)। (Flesh) रा० नि० व० १७। (३) भोग्य वस्तु। काम में लाने योग्य चीज़। मे० षत्रिक। त्रिका०। (४) जम्भीरो नीबू।

नोट—आमिष शब्द से मत्स्य एवं मांस उभय का बोध होता है।

आमिषकर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह वस्तु जिससे मांस बने। शोणित। रक्त। खून।

आमिष-गन्धिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पूतनी। पुदिना। रोचनी।

आमिष-प्रिय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कंक नामका पक्षी। सफेद चील। काँक। काक पक्षी-बं०। रा० नि० व० १६। (२) गिद्ध, चील और बाज़ आदि पक्षी जो मांस पर टूटते हैं। वि० [सं० त्रि०] जिसे मांस प्रिय हो। मांस भक्षक। गोश्तखोर।

आमिष-भुक्(भूक्)–वि० [सं० त्रि०] मछली और मांस खानेवाला मांस भोक्ता। मांस भक्षक। मांसाशी। मांस खानेवाला। गोश्तखोर–फ़ा०। (Carnivorous)। आकिलुल् ल.ह्म–अ०।

आमिषभुज्–वि० [सं० त्रि०] आमिषभुक्।

आमिष-स्नेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चर्बी। वसा। Fat.

आमिषाशी–वि० [सं० आमिषाशिन्] [स्त्री० आमिषाशिनी] मांस खानेवाला। मांसभक्षक। आमिषभुक्।

आमिषी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जटामांसी। बालछड़। (Valeriana jatamansi.) अ० टी० भ०।

आमिस्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मांस। गोश्त "न वर्तृ तत्यामिष गृभीता।,, ऋक् ६। ४६। १४। 'आमिषि आमिषे मांसे।' (सायण) (२) शव। मुरदा।

नोट—इस शब्द का प्रयोग केवल वेद की प्रचीन संहिता में मिलता है।

आमिक्षा, आमीक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] [वि० आमिक्षीय, आमिक्ष्य] (१) खौलते हुये दूध में दही डालकर बनाई हुई चीज़। छेना। पनीर।

फटा हुआ दूध । तक्र कूर्चिका । संतानिका । "तप्ते पक्वे च पयसि दधियोगेन जातायां दुग्ध विकृतौ । शृते क्षीरे दधि क्षिप्तमामिक्षाकथ्यते बुधैः" । हला० । "आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरेस्याद्दधि योगतः ।" अम० । दे० "छेना" । (२) दही । अथ० सू० ६ । १३ । का १० ।

आमिक्षीय-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दधि । दही । आमिक्षीण । आमिक्षय ।

आमी-[पं०] (१) अमलोरा । (२) रेंड । एरण्ड ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० आम] (१] छोटा और कच्चा आम । अँबिया । केरी । (२) एक पेड़जो कद में बहुत छोटा होता है। प्रतिवर्ष शिशिर ऋतु में इसके पत्ते झड़ जाते हैं । हिमालयके पहाड़ी लोग इसकी पतली टहनियों की टोकरियाँ बनाते हैं । शिमला, हज़ारा, तथा कुमाऊँ के पहाड़ों में यह वृक्ष अधिकतर पाया जाता है । तुंगा । भान । हिं० श० सा० ।

संज्ञा स्त्री० [सं० आम=कच्चा] जौ और गेहूं की भुनी हुई बाल ।

आमीक्षा-संज्ञा स्त्री० दे० "आमिक्षा" ।

आमुत-[पं०] वन्दा-सं० । सीपी ।

आमुदम्-[ते०] रेंडी का तेल । अण्डी का तेल । एरण्ड स्नेह ।

आमुदमु-चेट्टु-[ते०] एरण्ड वृक्ष । रेंड का पेड़ । स० फा० इं० ।

आमुदमु वित्तुलु-[ते०] अण्डी के बीज । एरण्डबीज । रेंडी । स० फा० इं० ।

आमुदामु-[ते०] सफ़ेद रेंड । श्वेतैरण्ड ।

आमुप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का बाँस जिसमें काँटे होते हैं । बीहड़ बाँस । काँटेदार बाँस । बेऊड़ बाँश, बेऊड़ बाँस-बं० । (Bambusa) spinosa.) श० च० । एक प्रकार का कंटक युक्त बाँस जो मद्रास प्रांत के उत्तर पूर्व विभाग बंगाल, आसाम और ब्रह्मदेश में स्वतः उत्पन्न होता है । युक्त-प्रांत में इसे लगाया करते हैं । यह पीले रंग का होता है और इस पर लंबाई के रुख़ सूत की तरह हरे रंग की धारियाँ पड़ी होती हैं । इसका बकला चमड़े जैसा कड़ा होता है । फूल कम आता है । पत्ती छोटी तथा नीचे की ओर बालदार होती और पेंदी में उभरी हुई टहनी रहती है । बीहड़ बाँस बहुत मोटा नहीं होता, किंतु अपर जाति की अपेक्षा दृढ़ रहता है । इसकी लंबाई ३० से ४० फुट तक होती है । लकड़ी साफ़ सुथरी निकलती है । यह अन्य बाँसों की तरह बहुत कामका होता है । वि० दे० "बाँस" ।

आमुरा-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का मझोले आकार का पेड़, जिसे लतमी वा नतमी भी कहते हैं । यह धीरे-धीरे बढ़ता और यह बंगाल, नैपाल, अण्डमन एवं ब्रह्मदेश में उपजता है । इसका बकला खाकी होता है और पत्तियाँ नीचे की ओर चिकनी तिरछी लंबी, चौड़ी, दोनों किनारे चपटी और नोकदार ढकी देख पड़ती है । फूल फाड़ीदार निकलता है, किंतु कील नहीं छोड़ता । लकड़ी लाल, दानेदार परंतु चटख़ जानेवाली होती और वज़न में प्रति घनफुट २२–२३ सेर उतरती है । निम्न बंगाल में इससे खूँटे, खंभे, आदि बनाते और सुंदरबन में जलाने का काम लेते हैं । (हिं० वि० को०)

आमूल-[सं० अव्य०] मूल पर्यन्त । पहिले से । मूलावधि ।

आमूषिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दीर्घ तुण्डी । नखी । दीर्घतुण्ड । चुचुन्दरी । छुछुंदार ।

गुण—मधुर, स्निग्ध, व्यवायी और शुक्र वर्द्धक है । ध० नि० सुवर्णादि० व० ६ ।

आमृणाल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खस । उशीर । समगन्धिक । वीरणमूल ।

आमेड़ा-[गु०] आमड़ा । अम्बाड़ा । अमड़ा । आम्रातक ।

आमोट-[ते०] अमड़ा । आम्रातक । अम्बड़ा । आम्बाड़ा ।

आमोद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आमोदित, आमोदी] (१) दूर से आनेवाली गंध । दूरगामीगंध । तेज़महक । सुगन्धित । मे० । (२) शतावरी । सतावर । (३) आनन्द । हर्ष । कौतुक । आह्लाद । प्रसन्नता । (४) दिल बहलाव । तफ़रीह । (५) इत्रियात । गन्ध । सौरभ । रा० नि० २ व० ।

वि० [सं० त्रि०] प्रीतिप्रद । ख़ुश करनेवाला ।

आमोदक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अजवाइन । यमानिका । वै० निघ ।

आमोद-जननी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पान। नागवल्ली। वै० निघ०। बहुला। ध० नि० व० ११।

आमोद-प्रमोद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भोग विलास। सुख चैन। हँसी ख़ुशी। राग-रंग।

आमोदा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शतावरी। सतावर। शुल्फा।

आमोदित–वि० [सं० त्रि०] (१) आनन्दित। प्रसन्न। ख़ुश। हर्षित। (२) सुगंधीकृत। सुरभित। सुगंधित। (३) दिल लगा हुआ। जी बहला हुआ।

आमोदी–वि० [सं० आमोदिन्] (१) मुखवासन। मुँह को सुगंधित करनेवाला। (२) कर्पूरादि वटिका (तांबूलविहारादि)। कृत मुख गंध। अ० टी०। (३) प्रसन्न रहनेवाला। ख़ुश रहनेवाला।

आमोलन–[यू०] श्वेतसार। निशास्ता।

आमोलुका–[बं०] जंगली अंगूर।

ऑम्नोपॉन–[अं० Omnopon] Pantopon पैण्टोपॉन। यह एक प्रकार का मटमैले रंग का चूर्ण है, जिसमें अफ़ीम के बीस क्षारीय सत्वों में से सबके हाइड्रोक्लोराइड्स होते हैं, और उसके भार का आधा मॉर्फिया (अहिफेन-सत्व) होता है। कहा जाता है कि श्वासोच्छ्वास केन्द्र पर मॉर्फिया की अपेक्षा इसका न्यूनतर प्रभाव होता है। इसके दो प्रतिशत २% घोलका, १५ मिनिम (बूँद) की मात्रा में स्कोपोलेमीन मॉर्फीनीय अनस्थेसिया में त्वगन्त: अन्त:क्षेप देने की शिफ़ारिश की जाती है। उन्माद (Mania.) रोग में निन्द्राजनक रूप से $\frac{1}{6}$ से $\frac{1}{3}$ ग्रेन की मात्रा में इसका त्वगन्त: अन्त: क्षेप किया गया। इसी प्रकार के एक औषध का नाम एलोपॉन (Alopan) है जिसको उतने ही मात्रा में देते हैं।

मॉर्फिया (अहिफेन सत्व) रहित ऑम्नोपॉन का नाम ऑपोन (Opon) है। यह एक निर्बल निद्राजनक औषध है जिसको ६ ग्रेन (३ रत्ती) की मात्रा में दे सकते हैं। इसमें प्रधानत: नार्कोटीन होता है।

आम्ब–संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम। आम्र।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का धान। आमन धान। "सत्यायाम्बानां चरुं वरुणाय धर्मपतये"। (तैत्तिरीय संहिता १। ८। १०) "आम्बा: धान्यविशेषा"। (सायण) वि० दे० "आमन"।

आम्ब-का पेड़–संज्ञा पुं०
आम्ब च झाड़–[मरा०]
} आम का पेड़। आम्र-वृक्ष।

आम्बट-चूको-बूको–[मरा०] चूका। चुक्र। चाङ्गेरी। खटकल बूटी।

आम्बती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुल्फ़ा। ख़ुर्फ़ा। बड़ी नोनिया। वृहल्लोणी शाक।

आम्ब-पीच–[अं०] आमपीच। एक फलदार पेड़। दे० "आमपीच"।

आम्बर–संज्ञा स्त्री० [अ० अंबर] अम्बर।

आम्बल–[गु०] आमला।

[ता०] निलोफर।

आम्बल-गंधक–[गु०] आमलासार गन्धक।

आम्बला–[गु०] आमला।

[फ़ा०] इमली। अमली।

आम्बली–[पं०] आमला। आँवला। इं० मे० मे०।

आम्ब-हलद–[गु०] आम्ब-हल्दी। आम्बे-हलद–हिं०। आम्रहरिद्रा। (Curcuma amada.) स० फ़ा० इं०।

आम्बा–[मरा०] आम। आम्र।

आम्बाड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] अम्बाड़ा। अमड़ा। आम्रातक।

आम्बात–संज्ञा पुं० दे० "आमवात"।

आम्बा-(म्बे) हलदी–संज्ञा स्त्री० [देश०] अम्बा-हल्दी। आम्रहरिद्रा।

आम्बा-हल्दर–[गु०] आमाहलदी। आम्रहरिद्रा। वनहरिद्रा। स० फा० इं०।

[बम्ब०] (१) आमाहल्दी। आम्रहरिद्रा। (२) कर्पूर हरिद्रा। इं० ड्र० इं०।

आम्बि-(म्बी)या हलदी–संज्ञा स्त्री० [सं० आम्रहरिद्रा] आम्बा-हल्दी। आमा-हलदी। (Curcuma amada.)।

आम्बी–[गु०] आम। आम्र।

आम्बी-लोना–संज्ञा पुं० [देश०] चूका। चुक्र। चांगेरी (Rumex vesicarius)

आम्बी-हलदी–संज्ञा स्त्री० [देश०]
आम्बी-हलेद–[मरा०] जंगली हलदी।
आम्बेहलद–[द०; देश०]
आम्बे-हलदी–[द०] बनहरिद्रा ।
आम्बे-हलदर–[बम्ब०]
आम्बे-होलादि–[बं०] कपूर हरिद्रा
(Curcuma Aromatica, *Salisb.*)

आम्बुल–[पं०] आँवला । आमला । (Phyllanthus emblica, *Linn.*)

आम्बो–[गु०] आम । आम्र ।

आम्बोली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० (प्रा० कों०)] लाल कटसरैया का एक भेद । रक्त-झाटी विशेष-बं० । (The Red Barleria.)

आम्बोस–[?] कोसम । कोसम । कोषाम्र ।

आम्भोरह–[देश०] कतिपय शाकों को मिलाकर पकाया हुआ साग, जिसे दकनवाले मिलौनी भी कहते हैं । ता० श० ।

आम्भ-संज्ञा पुं० [देश०] नेवले के प्रकार का एक जन्तु ।

आम्भस-त्रि० [सं० त्रि०] जलीय । जलात्मक । आबी । पनीला ।

आम्भसिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मछली । मत्स्य ।
वि० [सं० त्रि०] जल संबन्धी । जलीय। (Aquatic)

आम्भः–[अ०] शिर का ऐसा आघात जो भेजे या भेजे की झिल्ली तक पहुँचे । (Scalp-Wound.)

आम्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आम का पेड़ । आम्र–वृक्ष । आमगाछ–बं० । The mango tree. (Mangifera Indica.) दे० "आम" । मद० व० ६ । रा० नि० व० ११ । वा० सू० १५ अ० न्यग्रोधादि । भा० पू० १ भ० । अत्रि० १७ अ० ।
संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आम का फल आम्रफल । आम । (२) पल=८ तो० । प० प्र० १ ख० । (३) पूर्वाभाद्रपदा ।
[बं०] अमड़ा । अम्बाड़ा ।

आम्र-गंधक
आम्र-गंध(क)घृत् } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कोकुआ नामक एक प्रकार का कँटीला पौधा । समष्ठील क्षुप । कोतुंवा–मरा० । रा० नि० व० ४ । (२) आमाहल्दी ।

आम्रगंधक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अम्बुजः । लिम्नोफाइला ग्रेटिऑलॉइडीस (Limnophila Gratioloides, *Br.*), लि० ग्रेटिस्सिमा (L. gratissima, *Rheede.*), लि० इएटर्मीडिया (L. Intermedia), लि० इलॉङ्गेटा (L. Elongata.)–ले० । कुत्तू–हिं० । कर्पूर–बं० । अम्बुली–मरा० । माङ्ग-नारि–मल० ।

(*N. O. Scrophularineoe.*)

उत्पत्ति स्थान—सम्पूर्ण भारतवर्ष के दलदली स्थल । प्रयोगांश—पौदा ।

इतिहास तथा उपयोग—यह एक छोटा जलीय पौधा है, जिसे हिन्दू लोग अन्तरुत्सेचनापह (Antiseptic) ख़याल करते हैं और संक्रामक ज्वरों में इसके रस का शरीर पर अभ्यंग करते हैं । र्‌हीडो इसे उपयुक्त प्रयोजन के लिए तथा प्रवाहिका में शुंठी और जीरा एवं अन्य सुगंध-द्रव्यों के साथ उपयोग में लाने की ओर ध्यान दिलाते हैं । उनका यह भी वर्णन है कि उक्त पौधे का नारिकेल तैल के साथ प्रलेप प्रस्तुत कर इसका श्लीपद रोग में उपयोग होता है । राग़्ज़बर्ग कालमूनिया बालसेमिया (Columnea balsamea) नाम के अन्तर्गत उक्त पौधे का वर्णन करते हैं तथा इसके महत् गंध और सुगंधि स्वाद का विचार करते हैं । इसके बङ्गला नाम से कर्पूर अभिप्रेत है । ताजे पौधे की गंध विचित्र रीति से शान्तिप्रद एवं ग्राह्य होती है और कर्पूर वा निम्बू तैल का स्मरण दिलाती है । (डाइमॉक)

लिम्नो फाइला ग्रेटिस्सिमा (Limnophila gratissima, *Rheede.*):—इसके वे ही समस्त वर्नाक्युलर नाम तथा गुणधर्म हैं । ज्वर में शैत्यकारक रूप से भी इसका औषधीय उपयोग होता है और धात्री को जबकि उसका दुग्ध अल्प ही, दिया जाता है ।

वानस्पतिक विवरण—साधारणतया यह अमिश्र शाखी पौधा, ४–८ इंच ऊँचा, होता है ।

पत्र डंठल के चारों ओर आवेष्टित, पत्राकार और $\frac{1}{4}$–$\frac{3}{4}$ इं० लम्बे होते हैं, अधिक आर्द्र स्थलों में धड़ के सिरे पर जल से बाहर निकले हुये कुछ अखण्डित, सम्मुखवर्त्ती तथा आधार पर असंख्य केशोपम बहुशीर्षीय पत्र दीख पड़ते हैं। धड़ पुष्ट वा कोमल होता है। पुष्प वाह्य कोष $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{6}$ इंच लम्बे, क्वचित् वृहत्तर। पुष्पाभ्यन्तर कोष $\frac{1}{3}$ इं० नील वर्णवाले। (फ्लो० ब्रि० इं०)।

आम्र-गन्धा, (आम्रगन्धि)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्पूर-हरिद्रा। अम्बा हल्दी। कपूर-हर्दि। (Curcuma aromatica.) भा० पू० १ भ०।

आम्र-गन्धि-हरिद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अम्बा हल्दी। आम्र-हरिद्रा। आमा-हलदी। (Curcuma amada.)

आम्र-चिञ्चक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अम्लिका। अम्ली। इमली।

आम्र-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम की गुठली का तेल। आमका तेल। आम्रास्थि तैल। आमेर-कुशीर-तैल–बं०।

गुण—कुछ तीता, मधुर, अतिपित्तकारक नहीं, रूक्ष, वातकफनाशक, सुगन्धित तथा विशद है। मद० व० ८। सहकार तैल कुछ तिक्त, अतिसुगंधयुक्त, वातकफनाशक, सूक्ष्म, मधुर, कसेला एवं वात तथा रक्तपित्तकारक है। अत्रि० १४ अ०।

आम्र-त्वचा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] आम की छाल। आम्र-वल्कल। आमेर छाल–बं०।

गुण—यह कसेली होती है। रा० नि० व० ११। दे० "आम"।

आम्र-निशा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आम्बा-हल्दी। आम्र-हरिद्रा। अम्बा हल्दी। वै० निघ०।

आम्र-पल्लव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] आम की कोंपल। आम्र-किसलय। आम के कोमल पत्ते।

गुण—रुचिकारक तथा कफ और पित्तनाशक है। भा० पू० १ भ०। दे० "आम"।

आम्र-पाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पक्वचूतरस (पके आमोंका रस) १ द्रोण (१६ सेर), मिश्री वा चीनी १ आढ़क (४ सेर), घृत २ सेर (२ प्रस्थ), सोंठ २ पाव (८ पल), कालीमिर्च $\frac{1}{2}$ पाव (१ कुड़व), पीपल २ पल (८ तो०), जल ४ सेर (१ आढ़क) मिलाकर विधिवत पकाएँ। पुनः इसमें पीपलामूल, नागरमोथा, चव्य, धनियाँ, सफ़ेद जीरा, स्याह जीरा, सोंठ, नागकेशर, दालचीनी, तालीशपत्र प्रत्येक ४-४ पल चूर्ण कर डालें। जब पाक सिद्ध हो जाय, तब उसको शीतल होजाने पर शहद ६४ तोले मिलाकर पाक को जमा लेवें अर्थात् बर्फ़ी बनालें।

मात्रा—१ पल।

गुण—भोजन के आदि में सेवन करने से अरोचक, उग्र कास, श्वास, क्षय, पीनस, प्रतिश्याय, प्लीहा, यकृत रोग, अम्लपित्त, रक्तपित्त, तालु-भंग, स्वरभंग रोग, हर प्रकार के दुष्ट रोग, अर्श, पाण्डुरोग, कामला, हृदय रोग, शिरः पीड़ा, अतिदारुण आनाह (अफरा), खाज और शीतपित्त का नाश होता है तथा इस आम्र पाक रूप औषध के सेवन से वृद्धता दूर होती है। यो० चि०।

(२) आम्रपाक—पक्के आमों का रस १ द्रोण (२५६ पल), मिश्री १ आढ़क (६४ पल), घी १ प्रस्थ (१६ पल), सोंठ ८ पल, मिर्च १ कुडव (४ पल), पीपल २ पल आर पानी १ आढ़क लेकर चूर्ण योग्य ओषधियों का चूर्ण करके सबको एकत्र मिलाकर मिट्टी के बर्तन में पकाएँ और लकड़ी के करछुली से चलाते रहें। जब गाढ़ा होजाय, तब उतारकर उसमें इन चीज़ों के चूर्ण का प्रक्षेप दें।

धनियाँ, जीरा, हड़, चीता, दारचीनी, बड़ा जीरा, पीपलामूल, नागकेशर, इलायची के बीज, लौंग और जावित्री प्रत्येक १-१ पल। इनके चूर्ण को मिलाने के बाद ठंडा होने पर उसमें २ कुडव (८ पल) शहद मिलाएँ।

इसे भोजन से पहले १ पल या अग्नि बलानुसार उचित मात्रा में सेवन करने से ग्रहणी, क्षय, श्वास और अरुचि तथा अम्लपित्त, रक्तपित्त और पाण्डु रोग का नाश होता है। यह अत्यन्त वाजीकर, पौष्टिक, बलदायक तथा स्वास्थ्य का संरक्षक है। भा० उ० खं० ३।

आम्र-पाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आम के बाग़ की रक्षा करनेवाली एक बौद्ध रमणी।

आम्र-पुष्प–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम का बौर। आम का मौर। आम्र-मुकुल। आमेर बौल–बं०।

गुण—रुचिकारक और दीपन है। रा० नि० व० ११। अतीसार नाशक, कफ, पित्त और प्रमेहनाशक, रक्तदोष को दूर करनेवाला. शीतल और वातकारक है। भा० पू० १ भ०। दे० "आम"।

आम्र-पेशिका,-आम्र-पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमहर। शुष्क आम्रखण्ड। आमूशी–बं०। आंबोशी–मरा०।

गुण—खट्टी, मीठी, रस में कसेली, भेदक और कफ-वातनाशक है। भा० पू० १ भ०।

आम्र-फल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम। आम्र। आम का फल।

आम्र-फल-पानक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम का पन्ना। आम्र-फलकृत पानक। आम्र प्रपानक। आमेरपाना–बं०।

प्रपानक निर्माण-क्रम—कच्ची अमियों को जल में औटाकर हाथ से खूब मल लेवें, पश्चात् सफ़ेद बूरा (चीनी), शीतल जल, कपूर और कालीमिर्च डालें। इसको प्रपानक वा आम का पन्ना कहते हैं। यह श्रेष्ट प्रपानक भीमसेन ने निर्माण किया था।

गुण—यह पन्ना तत्काल रुचिकारक। बलदायक और तुरन्त इन्द्रियों को तृप्त करता है। भा० १ भ०।

आम्रमय–वि० [सं० त्रि०] आम से युक्त। आम से बना हुआ। आम्रकृत।

आम्र-मूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम की जड़। आम्रशिफा। आमेरशिकड़–बं०।

गुण—सुगंधियुक्त, रुचिकारक संग्राही और शीतल है। रा० नि० व० ११।

आम्र-रसाकृति–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसाला जो पके आम के रस की तरह पीला होता है।

इसके बनाने की रीति भावप्रकाश में इस प्रकार लिखी है—मस्तु रहित दही को निचोड़कर उसमें उचित मात्रा में शक्कर मिलाएँ। फिर उसमें थोड़ा केशर महीन करके मिलादें। इसका रंग पके आम के रस की तरह होगा। यह सिखरन (शिखरिणी) पीले रंग का, हलका, सुरुचिकारक, मधुर, बलकारक और वातपित्तनाशक है।

आम्र-लेह्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम की चटनी। आम्र-कृत लेह। आम्र द्वारा निर्मित चटनी। आमेर चाट-बं०।

निर्माण-विधि—कच्चे आम को भूनकर उसे हाथ से मलकर गूदा पृथक् करें। फिर उसमें उचित मात्रा में गुड़ व शर्करा मिलाएँ। इसके बाद उसमें सेंधानमक, कालीमिर्च और भूनी हींग का प्रक्षेप (छौंका) दें।

गुण—रुचिकारक, मधुर, तृप्तिकारक, हृद्य, स्निग्ध और गुरु है। पाक विद्या विशारदों की यही अनुमति है। वै० निघं०।

आम्रवट,-आम्रवाट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमड़ा। अम्बाड़ा। आम्रातक। मद० व० ६।

आम्रवन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम्रवण आम का बन। आम का बाग। अमराई।

आम्र-वन्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम्र-वन्दा। आम का बन्फा। आमगाछेर वान्दर बं०। वै० निघ०-२ भ० ज्व० चि०।

नोट—इसके पड़ने से वृक्ष सूखने लगता है।

आम्र-बीज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम की गुठली। कोइली। आम्रास्थि। आमेर आँटी वा कूशी-बं०।

गुण–यह कषैली, छर्दि तथा अतिसार नाशक है और कुछ-कुछ खट्टी, मीठी तथा हृदयकी जलन को दूर करनेवाली है। भा०। दे० "आम"।

आम्र-वृक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम का पेड़। आमेर-गाछ-बं०।

आम्र-वेतस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अम्ल-वेतस। अमलबेत। रा० नि० व० ६।

आम्रशालि–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] रक्तशालि। रा० नि० व० १६।

आम्र-सत्व–संज्ञा पुं० [सं०] अमरस। अमावट। आम्रावर्त्त। आमसत्व (बं०)।

आम्र-हरिद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अम्बाहल्दी। आम्रनिशा। आमहलुद-बं०। Curcuma amada.

गुण—कड़ुई,खट्टी, रुचिकारक, हल्की, अग्निदीपक, गरम, कषैली तथा रेचक है और कफ,

उग्र व्रण, खाँसी, साँस, हिचकी, ज्वर, मुख रोग एवं रक्तदोष नाशक है। वै० निघ०। वि० दे० "आमाहल्दी"।

आम्राई–संज्ञा स्त्री० [सं० आम्रराजि] अमराई। आम का बाग।

आम्रा,-आम्रागाछ-[बं०] आमड़ा। अमड़ा। आम्रातक।

आम्रात,-आम्रातक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अमड़ा। आमड़ा। अम्बाड़ा। इरशाल आंवा, आंवाड़े–मरा०। आमड़ा-गाछ-बं०। शब्द० मा० वि० दे० "आमड़ा"। (२) अमावट। अमरस। आम्रावर्त्त।

"पक्कस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः।
धर्म्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रातक इति स्मृतः॥"

भा०। दे० "अमावट"।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आमड़े का फल। आम्रातक फल। आमड़ा। रा० नि० व० ११। भा०। वि० दे० "आमड़ा"। (२) राजाम्र भा० पू० १ भ०।

आम्रात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम्रातक।

आम्रातक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पलाशिका। रा० नि० व० २३। च० सू० ४ अ०। (२) आमड़ा। अम्बाड़ा। आमड़े का पेड़ और फल। (३) अमावट। अमरस।

आम्रादि-कषाय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आम आदि का काढ़ा, आम और जामुन की छाल का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से हर प्रकार की वमन और तृषा शान्त होती है। वृ० नि० र० तृष्णा-चि०।

आम्रादि-क्वाथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम आदि का काढ़ा, आम और जामुन की छाल के क्वाथ में पारा, सिन्दूर और शहद डालकर पीने से प्यास दूर होती है। रस रत्न प्रदी०।

आम्रादिफाण्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमादि का फांट, आम और जामुन की कोंपल, कमल और वड़ के अंकुर और खस-इनसे बनाया हुआ फाण्ट अथवा शीतकषाय शहद युक्त पीने से ज्वर, पिपासा, वमन, अतिसार और दुस्साध्य मूर्च्छाका नाश होता है।

आम्रादि-फांट(हिम)-संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] वैद्यक में एक प्रकार का शीत कषाय, जिसके सेवन से रक्तपित्तका नाश होता है। निर्माण-क्रम–आम, जामुन और अर्जुन की छाल के चूर्ण का शीत कषाय (हिम) बनाकर उसमें शहद मिलाकर प्रातः काल सेवन करें। मात्रा–२॥ तो० से ५ तो० तक। शार्ङ्ग० २ खं० ३ अ०।

आम्रादि-यवागू–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] आम, अंबाड़ा और जामुन की छाल का काढ़ा तैयार करके उसमें शालि चावलों की यवागू सिद्ध करके सेवन करने से पित्तज संग्रहणी का नाश होता है। वृ० नि० र० संग्रहणी-चि०।

आम्रादि-योग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम की गुठली, सोंठ, बबूल की छाल और कूड़े की छाल को आम के रस में ३ दिन तक खरल करके और इसमें मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्तज संग्रहणी, ज्वरातिसार, रक्तस्राव और शूल का शीघ्र नाश होता है।

आम्रान्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राजाम्र। ध० निघ० ५।

आम्रावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम के सुखाए रस की पर्त्त। अमावट। आम की रोटी। अमवट। आम्र-सत्व। आमोट। आंबे-रसा चींपोली –मरा०।

निर्माण-विधि—पके मीठे आमका रस निचोड़कर कपड़े (या किसी बरतन) पर फैलाकर धूप में सुखा लें, जब रस की तह सूख जाय, फिर उस पर दूसरा रस डालकर सुखाएँ। इस प्रकार जितना मोटा करना हो उसी के अनुसार रस डालकर सुखा लें, फिर लपेट कर रख लें। इसी को अमावट या अम्रावर्त्त कहते हैं।

गुण—यह प्यास, क़ै तथा वात पित्त को दूर करनेवाला, दस्तावर, रुचिकारक और हलका है। सूर्य के किरण द्वारा पाक करने से यह रुचिकारक और हलका होता है तथा कोष्ठस्थित वादी आदि सबको दूर करता है। भा० पू० १ भ०। दे० "आम"।

आम्रास्थि–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) आम की गुठली की गिरी। आम्र-बीज शस्य। बिजली। आमेर-आँटी-बं०। च० सू० ४ अ०। (२) आम की गुठली।

आम्रास्थ्यादि-कषाय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक कषाय जिसमें आम की गिरी आदि पड़ती है।

जैसे आम की गिरी और बेल गिरी का काढ़ा शहद और मिश्री मिलाकर पीने से वमन और अतिसार का नाश होता है। वृ० नि० र० अतिसा०-चि० ।

आम्ल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इमली का पेड़ । तिन्तिडी । तेंतुल-गाछ-बं० । (२) अमलबेत । अम्लवेतस । मद० व० ६ । वै० निघ० २ भ० वा० व्या० प्रत्यष्ठीला-चि० । (३) वृक्षाम्ल । नि० शि० ।

वि० [सं० त्रि०] अम्लरस । खट्टारस । खटाई ।

गुण – खट्टा रस पाचक, रुचिकारक, हलका, पित्तकारक, कफजनक, लेखन, गरम, क्लेदन, बाहर शीतलता कारक, चिकना और दस्तावर है । अत्यन्त सेवन से तिमिर, दाह, तृष्णा, भ्रम, ज्वर, कंडु, पांडुरोग, विसर्प, स्फोट और कुष्ठ पैदा करता है । वै० निघ० । वि० दे० "रस" ।

आम्लका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पलाशी नाम की लता । यह नागर देशमें प्रसिद्ध है । वै० निघ० ।

आम्लकीदल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तालीसपत्र । तेजपात ।

आम्लटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूके का क्षुप । चुक्र । चुको-बं० । र० मा० ।

आम्ल-दोल्का–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चाङ्गेरी ।

आम्ल-पञ्चक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पाँच खट्टे फलों का समूह । खट्टे रसवाले पाँच फल । जैसे-बेर, अनार, इमली, चूका और अमलबेत । मतान्तर से जम्भीरी नींबू, नारंगी, अमलबेत, इमली और बिजौरा नींबू । रा० नि० व० २२ पञ्चाम्ल ।

आम्ल-पत्रक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चूक । चुक्र । तुर्शा । टकपालङ्-बं० । वै० निघ० । (२) भेण्डा । भिण्डातिका । भिण्ड । भिण्डक् । क्षेत्रसम्भवा । सुशाक । करपर्णी । वृत्तबीज । चतुष्पद । चतुष्पुण्ड्र । (३) अश्मन्तक ।

आम्ल-पत्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पलाशीलता । वै० निघ० । यह नागर देश में पलाशी और काश्मीर में शटी कहलाती है ।

आम्ल-पित्त–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अम्लपित्त नामक रोग । दे० "अम्लपित्त"।

आम्ल-फल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कैथ । कईत । कपित्थ-फल । वै० निघ० ।

आम्लोटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र चिञ्चा । छोटी इमली । वै० निघ० ।

आम्ललोणिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमलोनी । अमललोणिका । सेह । चलमोही ।

आम्लवक्त्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का पित्तजन्य रोग । मुँह खट्टा रहने का रोग ।

आम्ल-वर्ती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमलोनी । अम्ललोणिका । आंबवन्ती–मरा० । वै० निघ० ।

आम्ल-वर्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खट्टी ओषधियों का एक वर्ग । दे० "अम्लवर्ग" ।

आम्ल-वल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आंवट बेल नाम की महाराष्ट्र देशीय एक प्रसिद्ध लता ।

गुण—यह दीपन, तीक्ष्ण, खट्टी तथा रुचिकारक है । और कफ,शूल, गुल्म, वात और प्लीहा को नष्ट कर देती है । वै० निघ० ।

आम्ल-वास्तुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकारका बहुत खट्टा बथुआ । चुकावेतो । चुक्र वास्तूक । चुक्रिका–बं० । वै० निघ० ।

आम्ल-वेतस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अमलवेत । अम्लवेतस । रा० नि० । (२) इमली का पेड़ ।

आम्लः-[फ़ा०] आमला । आँवला ।

आम्लमुक़्श्शर-[फ़ा० आम्लः=हिं० आमला+अ० मुक़श्शर=छिलका उतारा हुआ] छिला हुआ आमला ।

आम्लः मुनक़्क़ा-[फ़ा० आम्लः+मुनक़्क़ा=साफ़ किया हुआ] गुठली निकाला हुआ आमला ।

आम्ला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इमली का पेड़ । तिन्तिडीक । (२) लिङ्गिनीलता । शिवलिङ्गी । श० र० । (३) श्रीवल्ली । सीकाकाई । रा० नि० व० ८ । (४) चाङ्गेरी नि० शि० ।

आम्लातक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमड़ा । आमड़ा । आम्रातक । रत्ना० ।

आम्लातकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पलाशी नाम की लता । रा० नि० व० ४ ।

आम्लानिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीली कटसरैया । पीतझिण्टी क्षुप ।

आम्लाशानैतसी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अम्बवती-शाक ।

आम्लासार-गन्धक-संज्ञा स्त्री० दे० "आँवलासार-गन्धक"।

आम्लिक-मेटा-प्रोटीन-संज्ञा पुं० [सं० आम्लिक+ अं० मेटा प्रोटीन] प्रोटीन से बननेवाली वस्तुएँ । जैसे-प्रोटीन से आम्लिक मेटाप्रोटीन, प्राटोजेज़ Acid Meta-Protein, Protoses, पेप्टोनीज़ (Peptonees) ।

आम्लिका, आम्लीका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इमली का पेड़ । अम्लिका । तेंतुल-गाछ—बं० । दे० "अम्लिका" । (२) खट्टा डकार । अम्लोद्गार । श० मा० । (३) दन्तशठा । चाङ्गेरी । दे० "अम्लिका" ।

आम्लैलस,-आम्ली-[बरब०] अफ़रीका के किसी किसी भाग में होनेवाली एक प्रसिद्ध बूटी का नाम ।

आयडो-ऐण्टि-पाइरीन-[अं० Iodo-anti-pyrin] एक बे रंग निर्गंध एवं स्वादरहित तथा पचन-निवारक (Anti septic) चूर्ण । आइडो-पाइरीन (Iodo-pyrin) । दे० "आयोडम्" ।

आयडो-केफ़ीन (केफ़ीनी)-[अं० Iodo-caffeine,-nae] केफ़ीनी आयोडाइड सोडियम् (Caffeinae-Iodide-sodium) दे० "कफीना" तथा "आयोडम्" ।

आयडो-केसीन-[अं० Iodo-casein] एक औषध जो एक्स आप्थैल्मिक गॉइटर में प्रयुक्त होती है । दे० "आयोडल्बीन" ।

आयडो-कोल-[अं० Iodocol] आयोडीन (नैलिका) तथा ग्वाएकोल का एक यौगिक जिसको यक्ष्मा में ५ ग्रेन (२॥ रत्ती) की मात्रा में देते हैं । हि० मैं० मे० । दे० "ग्वाय-कोल" ।

आयडो-क्रियोसोल-[अं० Iodo-creosol] दे० "ट्रामेटोल" ।

आयडो-क्रेसोल-[Iodo-cresol] एक अघुलनीय, गन्धरहित चूर्ण जिसमें ५४ प्रतिशत आयोडीन (नैलिका) होती है । ट्रॉमेटोल Traumatol । दे० "आयडोफॉर्म" ।

आयडो-ग्लीडीन-[अं० Iodo-glidine] आयोडीन (नैलिका) और ग्लीडीनका एक यौगिक । दे० "आयोडल बेसिड" ।

आयडो-ग्लुटेन-[अं० Iodo-gluten] एक डॉक्टरी यौगिक औषध । मात्रा—१० से १५ ग्रेन । दे० "आयोडल्बीन" ।

आयडो-टर्पीन-[अं० Iodo-terpine] एक श्याम वर्ण का तार्पीन की गन्ध का चूर्ण जो नैलिका एवं टर्पीन के सहव्यापार द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । कहा जाता है कि नैलिकाभ्यङ्ग (Iodine liniment) के स्थान में इसका व्यवहार प्रार्थनीय है । क्योंकि त्वचा द्वारा यह तत्काल अभिशोषित हो जाता है । इसमें १० भाग केओलीन (Kaolin) संमिश्रित कर, यह आयडोफॉर्म की प्रतिनिधि रूप में काम आता है ।

डाइ-आयोडाइड-ऑफ़-टर्पीन Di-iodide-of terpine जिसको न्यूमो कॉक्कीन (Pneumo-coccinre) कहते हैं, उसी भाँति का एक यौगिक है, जो बे रंग, सुगंधित एवं स्नेहमय तरल होता है और जिसका फुफ्फुसीय कीटों (Pneumo-coccus) पर प्रबल घातक प्रभाव होता है । उग्र फुप्फुसौष में ३० बूँद की मात्रा में इसका त्वगन्त: अन्त:क्षेप करते हैं तथा उर:क्षत (Tuber culosis) में इसकी १५ बूँद की मात्रा कैपशूल में डालकर सेवन कराते हैं । ह्वि० मे० ।

आइडो-थाइरीन-[अं० Iodo-thyrin] एक प्रकार का विकृताकार मटमैले रंग का चूर्ण जिसमें आयोडीन (नैलीन) का मिश्रण होता है और जो थाइरॉइड ग्लैण्ड (चुल्लिका ग्रंथि) से प्राप्त होता है । यह सशक्त परिवर्त्तक (Alterative) औषध है । चुल्लनैलीन, थाइरो आयोडीन (Thyroiodine) । थाइरोग्लैण्डीन (चुल्लीन)-एक सूखा सत्व है जिसमें ग्रंथि के सम्पूर्ण प्रभावात्मक सत्वों का अस्तित्व प्रमाणित किया जाता है । दे० "थाइरॉइड" ।

आयडो-थियोब्रोमीन-[अं० Iodo-theobromine) एक औषध जिसमें ४० प्रतिशत थियो-

ब्रोमीन-सोडियम्-आयोडाइड और सैलिसीलेट सम्मिलित होता है। इसको साइरोसिस् ऑफ दी लीह्वर (यकृत रोग) और नेफ्राइटिस् (वृक्क प्रदाह) में लाभदायक बतलाते हैं। पर्य्या०–सोडियोथिओ-ब्रोमीन आयोडाइड (Sodio-theobromine-iodide)

आयडो-पाइरीन–[अं० Iodo-pyrin] एक बे रंग, स्वादरहित, गंधरहित, रवादार चूर्ण जो ऐण्टिपाइरीन और आयोडीन के परस्पर योग द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। आयोडैण्टिपाइरीन (Iodantipyrin.)

प्रभाव—यह श्वास तथा आमवातनाशक है और प्रबल पचननिवारक एवं ज्वरघ्न है। यह उन सभी अवस्थाओं में, जिनमें ऐण्टिपाइरीन व्यवहृत होता है, दिया जाता है। टिकिया रूप में इसका व्यवहार करना सर्वोत्तम है।

मात्रा—२॥ रत्ती से ५ रत्ती तक। दे० "आयोडस्"।

आयडो-पाइरोल–[अं० Iodo-pyrol] दे० "आयोडोल"।

आयडो-प्रोटीन–[अं० Iodo-protein] एक डॉक्टरी यौगिक औषध है। दे० "आयोडल्बीन"।

आयडोफार्म–[अं० Iodoform] दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडो-फॉर्म-आइण्टमेण्ट–[अं० Iodoform-ointment] आयडोफार्मानुलेपन। दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडोफार्म-एरोमेटिसेटम्–[ले० Iodoform-aromatisatum] सुवासित आयडोफार्म। दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडो-फार्म-ओडरलेस–[अं० Iodoform-odourless] गंधरहित आयडोफार्म। दे० "आयडोफार्मीन"।

आयडोफार्म-गाज–[अं० Iodoform-gauze] दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडोफार्म-ड्रेसिंगस्–[अं० Iodoform-dressings] आयडोफार्मीयव्रण–बन्धन। दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडोफार्म-प्रेसिपिटेटम्–[अं० Iodoform-precipitatum] दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडोफार्म-बाइट्युमिनेटम्–[ले० Iodoform-bituminatum] आयडोफार्म श्वेतक। यह आयडोफार्म और ऐल्ब्युमीन का एक यौगिक है। दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडोफार्म-मुअ़त्तर–[उ०] सुवासित आयडोफार्म। दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडोफार्म-मुत्रसिब–[उ०] तलस्थायीभूत आयडोफार्म। दे० "आयडोफार्मम्"।

आयोडोफॉर्मम्–संज्ञा पुं०[ले० Iodoformum] एक प्रकार के छोटे छोटे नीबू के रंग के पीले चमकदार रवे जिनमें से विशेष प्रकार की दुर्गंधि आती है। स्वाद—अप्रिय, नैलिकावत् किञ्चिन् मधुर। उत्ताप देने पर यह धूसर वर्ण के तरल रूप में घुल जाता है। तदनन्तर इससे धूसर एवं बैंगनी वाष्प उद्भूत होता है और काले रंग का पदार्थ अवशिष्ट रह जाता है। निरन्तर अग्नि देने पर यह सर्वथा लुप्तप्राय होजाता है।

पर्य्या०—आयोडोफॉर्म Iodoform–अं०। ट्राई आयोडोमीथेन Tri-iodomethane–रासा०।

रासायनिक संकेत (क उद् नै ३) *CHI 3*
(ऑफ़िशल *Official*)

निमाण-विधि—ईथिल, ऐल्कुहॉल (मद्यसार), आयोडीन (नैलिन) और पोटासियम् कार्बोनेट (पांशु कज्जलेत) के घोल को सम्मिलितकर उत्ताप देने से प्रस्तुत होता है।

विलेयता–जल में तो यह कम घुलता है, परंतु १ भाग ७ भाग ईथर में, १ भाग १२ भाग, क्लोरोफ़ॉर्म में, १ भाग १२० भाग ऐल्कुहॉल (६०%) में, १ भाग १०० भाग ग्लीसरीन में, १ भाग १० भाग क्लोडीन में, १ भाग १४ भाग युकेलिप्टस ऑइल में, १ भाग ३० भाग ऑलिव ऑइल में और स्थिर वा अस्थिर अर्थात् फिक्स्ड तथा वॉलेटाइल ऑइल्ज़ (उड़नशील तैलों) में और किसी भाँति बेञ्ज़ोल में विलेय होता है। गरम ईथर में पूर्णतः एवं शीघ्र विलेय होता है और इसकी प्रतिक्रिया न्युट्रल (उदासीन) होती है।

मिश्रण—पीले रंग के विलेय पदार्थ, आयोडाइड्स, पिक्रिक एसिड।

संयोग विरुद्ध (असम्मिलन)—कैलोमेल (रसकपूर), सिल्वर नाइट्रेट (रजतनेत्) और अन्य नाइट्रेट्स, पोटासियम् क्लोरेट और पोटासियम् नाइट्राइट।

कार्य—ऐण्टिसेप्टिक (अन्त्ररुत्सेचनापह या सडाँधावरोधक), डिओडोरेण्ट (दुर्गंधिनाशक), और आल्टरेटिव (परिवर्तक)।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से ३ ग्रेन (=३ से २० सेण्टिग्राम्स =·०३२ से ·१६ ग्राम)।

सम्मत योग (ऑफ़िशल प्रिपेयरेशन्ज़)

(*Official preparations.*)

(१) सपॉज़िटोरिया आयोडोफॉर्माई Suppositoria iodoformi–ले०। आयोडोफ़ॉर्म सपॉज़िटरीज़ Iodoform suppositories–अं०। आयोडोफ़ॉर्म पिचुक्रिया (वर्तिका)–हिं०। शियाफ़ आयोडोफ़ॉर्म–उ०।

निर्माण-विधि—आयोडोफॉर्म ३६ ग्रेन (२·४ ग्राम), ऑइल आफ़ थिओब्रोमा आवश्यकतानुसार (q. s.); आइल आफ़ थिओब्रोमा को पिघलाकर थोड़े से तैल में आयोडोफ़ार्म को हल करलें। पुनः शेष तैल को उसमें सम्मिलित कर, १५ ग्रेनवाले साँचे में ढालकर, १२ वर्त्तिकाएँ प्रस्तुत करें।

शक्ति—प्रत्येक वर्तिका में ३ ग्रेन आयोडोफ़ार्म और १२ ग्रेन आइल आफ़ थिओब्रोमा होता है।

(२) अङ्ग्वेण्टम् आयोडोफ़ार्माई Unguentum iodoformi–ले०। आयोडोफ़ार्म आइण्टमेण्ट Iodoform ointment–अं०। आयोडोफ़ार्म प्रलेप–हिं०। मर्हम आयोडाफ़ार्म–उ०।

निर्माण-विधि—आयोडीन का बारीक चूर्ण $\frac{1}{4}$ ग्रेन, पीत पैराफ़ीन २$\frac{1}{4}$ आउंस-दोनों को परस्पर सम्मिलित करलें।

शक्ति—१० में १ (१०%)।

प्रभाव—सडाँधावरोधक (ऐण्टिसेप्टिक), डिस इन्फेक्टेण्ट (निःसंक्रामक) और ऐण्टिसिफ्लिटिक (उपदंशघ्न)।

नॉट ऑफ़िशल योग और पेटेण्ट औषधें

(*Not official preparations*)

(१) आयोडोफ़ार्म ऐरोमेटीसेटम् Iodoform aromatisatum–ले०। सुगंधित आयोडोफ़ार्म–हिं०। आयोडोफार्म मुअत्तर–उ०।

आयोडोफ़ार्म ९६ भाग, क्युमेरीन (जौहर इक्लीलुल्मलिक) ४ भाग दोनों को भली भाँति मिश्रित करलें।

नोट—यदि क्युमेरीन न मिले अथवा रोगी को उसकी गंध अप्रिय हो तो, उसके स्थान में आयोडोफ़ार्म में कोई वालेटाइल (उड़नशील, अस्थिर) तैल सम्मिलितकर उसकी दुर्गंधि का सुधार करलें। अस्तु, आइल आफ पेपरमिण्ट (पुदीने का तैल), आइल आफ़ क्लव्ज़ (लौंग का तैल), आइल आफ सिन्नेमन (दालचीनी का तैल), आइल आफ़ स्ट्रोनेला (रोहिष या इज़्खिर का तेल), आइल आफ़ बर्गेमोट (नागरङ्ग त्वक् तैल) तथा आइल आफ़ सासाफ्रास (सासाफ्रास तैल) में से किसी एक के साथ सम्मिलित करने से उसकी दुर्गंधि का सुधार किया जा सकता है। यदि ताजे भुने हुए कहवे का चूर्ण योजित किया जाय तो, वह भी आयोडोफ़ार्म की दुर्गंधि को दबा देता है। सूक्ष्म कर्पूर तैल या बालसम आफ़ पेरू या मुश्क के मिलाने से भी उसकी दुर्गंधि छिप जाती है।

यदि हाथ अथवा किसी पात्र आदि से आयोडोफ़ार्म की दुर्गंधि दूर करनी हो, तो कषायाम्ल (टैनिक एसिड) के घोल से धोने पर वह दूर होजाती है।

(२) आयोडोफ़ॉर्म प्रेसिपिटेटम् (Iodoform Precipitatum)–ले०। तलस्थित आयोडोफ़ार्म–हिं०। आयोडोफ़ार्म मुर्तसिब–उ०।

यह पीलापन लिये हुए गुलाबी रंग का एक मृदु चूर्ण है।

(३) आयोडोफ़ॉर्म ड्रेसिंग्ज़ (Iodoform Dressings)–अं०। अस्तुः—

आयोडोफ़ॉर्म गॉज़ (Iodoform Gauze) ५ या १० या २० प्रतिशत शक्ति का होता है।

आयोडोफ़ॉर्म वूल (Iodoform wool }
आयोडोफ़ॉर्म लिण्ट (Iodoform lint }

यह भी ३ या ५ या १० प्रतिशत शक्ति का होता है। यदि किसी आकस्मिक आघात के कारण स्त्री-गुह्येन्द्रिय से रक्तक्षरण होता हो तो आयोडोफॉर्म गाज़ को एड्रीनेलीन (उपवृक्क सत्व) के घोल में भिगोकर उसे उक्त स्थान में रखने से रक्तस्राव अवरुद्ध हो जाता है।

(४) ह्वाइटहेड्स वार्निश (Whiteheads' Varnish)-इसमें आयोडोफार्म १० प्रतिशत, कम्पाउंड टिञ्चर आफ बेञ्ज़ोइन (जिसमें मद्यसार के स्थान में ईथर डाला जाता है) में घोला हुआ होता है।

(५) बूजीज़ ऑफ़ आयोडोफ़ार्म ऐण्ड युकेलिप्टस (Bougies of Iodoform and Eucalyptus)-आयोडोफ़ार्म ५ ग्रेन (२॥ रत्ती), ऑइल ऑफ युकेलिप्टस १० मिनिम, आइल आफ़ थियोब्रोमा ३५ मिनिम-सबको मिलाकर बूजी (बर्तिका) प्रस्तुत करें, जो ४ इञ्च लम्बी और १० नम्बर के केथीटर (मूत्र प्रवर्तिनी शलाका) के बराबर मोटी हो। यह बूजी (वर्तिका) गनोरिया (पूयमेह) में उपयोगी है।

उपयोग-विधि—रोगी पेशाबकर पीठ के बल चित लेट जावे और बूजी को युकेलिप्टस या कार्बोलिक आइल (२० में १) में चुपड़कर उसे मूत्र प्रणाली में प्रविष्ट करलें और मूत्र वहिर्द्वार पर बोरिक लिण्ट की गद्दी रखकर वा गट्टापर्चा टिश्यू रखकर उस पर स्टिकिङ्ग-प्लास्टर की धज्जियाँ लगाकर उसे मज़बूत करदें, जिसमें वह गिर न जाय। रोगी को ४–५ घण्टे तक पेशाब न करना चाहिये। यदि रोग तीव्र न हो, तो पेशाब करने के बाद दोबारा बूजी रखनी चाहिये। दूसरे दिन सल्फ़ोकार्बोनेट २ ग्रेन (१ रत्ती) १ आउंस जल में घोलकर इससे अहोरात्रि में ३–४ बार पिचकारी करें और चौथे दिन जब लक्षण न्यून पड़जाँय, तब २ ग्रेन अर्थात् १ रत्ती फ़ी आउंसवाले ज़िंकलोशन की पिचकारी करें।

यह उपर्युक्त चिकित्सा रोगारम्भ से प्रथम दिवस ही व्यवहार में लानी चाहिये। यदि उसे एक सप्ताह हो गये हों, तो भी यह चिकित्सा-क्रम लाभदायक होता है; परन्तु पुरातन सूज़ाक में यह लाभप्रद नहीं होता।

नोट—चिकित्सा पथ में मद्य, लालमिर्च, गरम मसाला, गरम वा खट्टे पदार्थ रोगी के लिये अपथ्य हैं।

(६) कोलोडियम् आयोडोफ़ार्माई (Collodium Iodoformi)-आयोडोफ़ार्म १ भाग, कोलोडीन फ्लेक्ज़ाइल १२ भाग—दोनों को मिला लें।

गुण—औपदंशीय क्षतों और ग्रंथिशोथों पर इसे लगाते हैं।

(७) इमल्सियो आयोडोफ़ार्माई (Emulsio Iodoformi) आयोडोफ़ार्म का बारीक चूर्ण १० भा०, ग्लीसरीन (मधुरीन) ७० भाग, परिसुत वारि २० भाग, आयडोफ़ार्म को ग्लीसरीन में भलीभाँति रगड़कर पुनः जल योजित करें।

गुण—इससे साइनस (नाड़ीव्रण) तथा ऐब्सेस केविटी (विद्रधि खात) में पिचकारी करते हैं।

(८) इन्सफ्लेशियो आयोडोफ़ार्माई (Insufflatio Iodoformi) आयडोफ़ार्म १ भाग, बिज़्मथ सबनाइट्रेट १ भाग-दोनों को मिलालें। कर्ण, नासिका तथा कण्ठ रोगों में यह नस्य प्रयोग में लाते हैं।

(९) नीब्युला आयोडोफार्माई (Nebula Iodoformi)-आयोडोफ़ार्म ८ भाग, ईथर १०० भाग पर्यंत।

(१०) पेस्टिलस आयोडोफ़ार्माई (Pestillus Iodoformi) प्रत्येक टिकिया में १ ग्रेन आयोडोफ़ार्म और १० ग्रेन ग्ल्यूको जिलेटीन होता है। मुख, जिह्वा और कण्ठ के औपदंशिक क्षतों में इन टिकियों को मुख में रखकर चूसना लाभप्रद होता है।

(११) अङ्गुवेण्टम् आयोडोफ़ार्माई कम ऐट्रोपीना (Unguentum Iodoformi cum Atropina):–प्रेसीपिटेटेड आयोडोफ़ार्म ६० ग्रेन, ऐट्रोपीन २ ग्रेन, साफ़्ट पैराफ़ीन १ आउंस, पहिले ऐट्रोपीन को उत्ताप द्वारा पैराफ़ीन में घोल लें। पुनः शीतल होने पर उसमें आयोडोफ़ार्म मिला दें। आफ़्थैलिमक हास्पिटल लण्डन (बी० पी० सी०) में प्रयुक्त।

(१२) अङ्ग्वेण्टम् आयोडोपैराफ़ीनी (Unguentum Iodoparaffini)–आयोडोफ़ार्म १ भाग, आइल आफ युकेलिप्टस ८ भाग, मन्दाग्नि पर तैल में आयोडोफ़ार्म को घोलें और पुनः उसमें पिघलाया हुआ पैराफीन २७ भाग और साफ़्ट पैराफीन ६ भाग मिलाकर शीतल होने तक हिलाते रहें।

आयोडोफ़ॉर्म की प्रतिनिधि स्वरूप औषध।

(१) अइरोल (Airol)–दे० "बिज़मथ"

(२) ऐण्टिसेप्टोल (Antiseptol)–इसमें ५० प्रतिशत आयोडीन (नैलिका) होता है; इसमें या सिङ्कोनीन आयोडो-सल्फेट (Cinchonine iodo-Sulphate) में गंध नहीं होती। एक आउंस ज़िङ्क ऑइण्टमेण्ट में एक ड्राम इसको मिलाकर ल्युपस पर लगाते हैं।

(३) अरिस्टोल (Aristol)-यह एक रक्तभायुक्त ललाई लिए हुए मटमैले रंग का चूर्ण है। डाइ-थाइमोल-आयोडाइड (Di-thymol iodide) दे० "अरिस्टोल"।

(४) बिज़्म्युथाई आयोडो-रिसार्सीन-सल्फ़ोनेट (Bismuthi iodo-resorcin Sulphonate) दे० "बिज़्म्युथम्"।

(५) बिज़्म्युथाई सोडियम्-फास्फो-सैलिसिलास (Bismuthi sodium-phospho-salicylas.) दे० "बिज़्म्युथम्"।

(६) बिज़्म्युथाइ सब गैलेट (Bismuthi subgallate)–दे० "बिज़्म्युथम्"।

(७) क्रियोसल (Creosal) } यह
(८) क्रेसेलोल(Cresalol) } दोनों
सशक्त ऐण्टिसेप्टिक (अन्तरुत्सेचनापह) हैं, जो आयोडोफ़ॉर्म की अपेक्षा उत्तम हैं; क्योंकि प्रथम तो ये निरापद हैं और द्वितीय यह कि इनकी गंध अप्रिय नहीं होती। इसके अतिरिक्त ये संकोचक भी हैं। क्रियोसल को ५ से १५ ग्रेन (२॥ से ७॥ रत्ती) की मात्रामें इण्टेस्टाइनल थाइसिस (आन्त्रिकयक्ष्मा) में देते हैं और क्रेसेलोल को ३ से ८ ग्रेन की मात्रा में आन्त्रिक ज्वर (टाइफ़ाइड फ़ीवर) विषयक अतिसार में देते हैं।

(९) डाई आयोडोफ़ार्म (Di-iodoform), इथिलीन पर आयोडाइड (Ethylene periodide)–इसके गंध रहित पीतवर्ण के मन्शूरी रवे होते हैं जो जल, क्लोरोफ़ार्म और ईथर में नहीं घुलते। यह भी आयोडोफ़ार्म के स्थान में प्रयुक्त होता है और फ्रेञ्च कोडेक्स में आफ़िशल है।

(१०) एका आयोडोफ़ार्म (Eka iodoform)–यह एक पीले रंग का चमकीला रवादार चूर्ण है जो जल में तो अविलेय; परन्तु १ भाग ७५ भाग मद्यसार, एक भाग ८ भाग ईथर और एक भाग १३½ भाग क्लोरोफ़ार्म में विलेय होता है। यह आयडोफ़ार्म और फ़ार्म ऐल्डी हाइड का यौगिक है। यह एक सशक्त ऐण्टिसेप्टिक है।

(११) युरोफीन (Europhen)–यह एक पीले रंग का चूर्ण है जिसमें से केशर की सी गंध आती है। इसमें २८ प्रतिशत आयोडीन (नैलिका) होता है। यह जल एवं ग्लीसरीन (मधुरीन) में तो अविलेय, किन्तु ईथर और क्लोरोफ़ार्म में विलेय होता है। इसको अवचूर्णन (डस्टिङ्ग पाउडर) रूप से काम में लाते हैं, या इसको १० प्रतिशत के अनुलेपन (मलहम) का उपयोग करते हैं। यह अक्षोभक एवं निरापद है तथा आयोडोफ़ार्म की उत्तम प्रतिनिधि है। एक भाग इसे २० भाग जैतून तैल में मिलाकर और उसमें १½ आउंस चर्बी तथा कत्त में मर्दन करने से यक्ष्मा की प्रथमावस्था में लाभ होता है। सेकेण्डरी उपदंश में इसके एक प्रतिशतवाले घोल के १५ मिनिम का प्रतिदिवस त्वगन्तः अन्तःक्षेप करते हैं।

(१२) आयडोफ़ार्मीन (Iodoformine)–इसमें ७५ प्रतिशत आयोडोफ़ार्म होता है। यह श्वेत या हलके पीले रंग का चूर्ण है

जो जल में अविलेय किन्तु क्लोरोफ़ार्म, ईथर और मद्यसारमें किसी प्रकार विलेय तथा एसीटोनमें घुल जाता है। यह भी आयोडोफ़ार्म की प्रतिनिधि है।

आयडो फ़ार्मल (Iodoformal)-यह भी एक पीले रंग का चूर्ण है जो जल में अविलेय होता है। यह ऐण्टिसेप्टिक है।

(१४) आयोडोफ़ार्मोजन (Iodoformogen) यह आयोडोफ़ार्म और ऐल्ब्युमीन (अण्ड श्वेतक) का एक यौगिक है। इसमें ९० प्रतिशत ऐल्ब्युमीन (अण्डश्वेतक) होता है। इसको क्षतों पर छिड़कते हैं।

(१५) आयोडोफ़ार्म बाइट्युमिनेटम् (Iodo form bituminatum)-यह टार्टार और आयोडोफ़ार्म का एक यौगिक है जिसकी गंध अप्रिय नहीं होती। इसको भी क्षतों पर बुरका करते हैं।

(१६) आयोडोल (Iodol), टेट्रा आयोडो पाइरोल (Tetra-iodo-pyrol) यह एक पीताभायुक्त धूसर वर्ण का स्फटिकवत् चूर्ण है, जिसकी गंध अप्रिय नहीं होती और न इसका प्रभाव विषैला होता है। यह जल में तो अविलेय परन्तु मद्यसार, क्लोरोफार्म और ईथर में विलेय होता है। इसका प्रभाव आयोडोफ़ार्म के समान और आन्तरिक रूप से पोटासियम् आयोडाइड की तरह होता है। अस्तु, इसको ५ से १० ग्रेन की मात्रा में वटिका रूप में या कैपशूल में डालकर देते हैं।

(१७) आयोडो-सैलिसिलिक एसिड (Iodo-salicylic-acid), डाई-आयोडो सैसिलिक एसिड (Di-iodo salicylic-acid)—ये आयोडीन (नैलिका) और सैलिसिलिक एसिड के यौगिक हैं। इनमें उक्त दोनों औषधियों का सम्मिलित प्रभाव होता है। इनको ऐण्टिपाइरेटिक (ज्वरघ्न), अनलगेसिक (वेदनाहर) और ऐण्ट रयुमैटिक (आमवातहर) रूप से व्यवहार में लाते हैं। जिन दशाओं में सैलिसिलेट लाभप्रद नहीं होते, उन अवस्थाओं में इनसे लाभ होता है।

मात्रा—१० से २० ग्रेन (५ से १० रत्ती)।

(१८) लोरेटीन (Loretine)—यह एक पिलाई लिए हुए गंधरहित, स्फटिकवत् चूर्ण है जो अक्षोभक एवं निर्विषैल है।

(१९) लोसोफान (Losophan)—यह एक मटमैले रंग का वर्णरहित स्फटिकवत् चूर्ण है, जिसमें ८० प्रतिशत आयोडीन (नैलिका) होती है।

(२०) नोसोफिन (Nosophen)—यह एक ख़ाकी मायल सफ़ेद रंग का गंधरहित चूर्ण है, जिसमें ६० प्रतिशत आयोडीन (नैलिका) होती है। इसको आन्त्रान्तरूत्सेचनापह (इन्टेस्टाइनल ऐण्टिसेप्टिक) रूप से ३ से ८ ग्रेन (१॥-४ रत्ती) की मात्रा में देते हैं।

(२१) एण्टिनोसिन (Antinosin)—यह नोसोफिन का सोडियम साल्ट है।

(२२) युडौक्सिन (Eudoxin)—यह नोसोफ़िन का विज़्मथ साल्ट है।

(२३) नैप्थोल अरिस्टोल (Napthol aristol)—यह एक हरिताभायुक्त पीतवर्ण का निर्गंध स्वादरहित चूर्ण है, जिसको त्वग्रोगों में बर्तते हैं।

(२४) सेनोफ़ार्म (Sanoform) यह एक हलके सफेद रंग का निर्विषैल तथा अक्षोभक स्फटिकवत् चूर्ण है, जिसमें ६० प्रतिशत आयोडीन (नैलिका) होता है। यह डेसिकेटिङ्ग (चोषक वा अभिशोषक) है। इसको नेत्र रोग तथा क्षतों (अल्सर्ज़) में प्रयुक्त करते हैं।

(२५) सल्फेमिनोल (Sulphaminol)—यह एक पीले रंग का निर्गंध, स्वादरहित और निरापद चूर्ण है जो शारीरिक द्रवों के साथ मिलकर सल्फर (गंधक) और टैनिक एसिड (कषायाम्ल) में वियोजित होजाता है। यह स्वरयान्त्रिक यक्ष्मा (लेरिञ्जियल थाइसिस) में उपयोगी है। नासिका द्वारा जलस्राव होने पर इसका नस्य देते हैं।

मात्रा—४ ग्रेन (२ रत्ती)।

(२६) थिओ रिसॉर्सीन (Thioresorcin)

(२७) डाइ-आयोडो थिओ-रिसार्सीन (Di-iodo thio-resorcin)

ये गंधक और रिसार्सीन के यौगिक हैं। इनके स्वादरहित निर्विषैल चूर्ण होते हैं। इनमें से प्रथम पिलाई लिए सफेद और द्वितीय भूरा चूर्ण होता है।

(२८) ट्रामेटोल (Traumatol) } यह
आयोडोक्रेसोल (Iodocresol) }

एक अविलेय गंधरहित चूर्ण है, जिसमें ५४ प्रतिशत आयोडीन (नैलिका) होती है।

इनके अतिरिक्त और भी कतिपय औषधियाँ हैं जो वर्णन के योग्य नहीं।

आयडोफार्मकी फार्माकालाजी अर्थात् प्रभाव

वाह्य प्रभाव

आयडोफार्म को जब वाह्य रूप से व्रणों आदि पर लगाया जाता है, तब इसका दौर्गंध्यहर (Deodorant), शोधक (Antiseptic) और सड़ाँधावरोधक (Disinfectant) प्रभाव होता है, इसके उक्त प्रभाव आयडोफार्म के वियोजित होकर आयोडीन के पृथक् हो जाने के कारण पैदा हो जाते हैं। अतएव आयडोफार्म ज़ख्म पर लगाने से सीरम (रक्तवारि) और वसा में घुल जाती है और शरीर के भीतर प्रविष्ट होकर प्राणिज क्षारोदों (Ptomans) तथा जीवित कोषाणु आदि के प्रभाव से अपनी रचना बदल देती है और विशुद्ध आयोडीन पैदा करती है। इसी कारण इसके पूर्वोक्त दौर्गंध्यहर एवं पचननिवारक प्रभाव प्रादुर्भूत होते हैं।

टिप्पणी—जब तक आयोडीन सीरम तथा वसा में विलीन न हो जाय, यह वियोजित नहीं होती और न अपनी बनावट ही बदलती है अर्थात् अघुलित आयडोफार्म पर टोमैन्स आदि का कुछ प्रभाव नहीं होता। अतएव उक्त पृथक्करण एवं परिवर्तन बहुत शीघ्र पैदा नहीं होता। इससे यह कदापि न समझना चाहिए कि, जब आयडोफार्म ज़ख्म पर लगाई जाती है, तब उससे आयोडीन भिन्न होकर स्थानिक क्षोभ का कारण बनती है। परंच आयडोफार्म व्रण पर स्थानीय अवसन्नताजनक प्रभाव करती है।

आंतरिक प्रभाव

शरीर के भीतर आयडोफार्म का क्या वास्तविक प्रभाव होता है, वह अभी तक अच्छी तरह ज्ञात नहीं। जहाँ तक ज्ञात है, यह है कि शरीर में यह एक तरह आयोडाइडवत् प्रभाव करती है। आमाशय में पहुँचकर यह अवसादक प्रभाव करती है और हृदय पर निर्बलता जनक। बड़ी मात्रा में देने से इसका विषैला प्रभाव होता है। श्वासोच्छ्वास के रास्ते शरीर से यह आयोडीन की शकल में निःसृत होती है और मूत्र द्वारा आयोडाइड्स और आयोडेट्स के रूप में, इसका उत्सर्ग अधिकतर मूत्रपथ से हुआ करता है।

आयडोफार्म की टाक्सिकालाजी अर्थात्
विषैला प्रभाव

एतज्जन्य उग्र विषाक्तता तो अब देखने में नहीं आती, पर किसी व्रण आदि से इसके धीरे-धीरे अभिशोषित होने अथवा इसके निरंतर आंतरिक प्रयोग द्वारा चिरकारी विषाक्तता के निम्न लिखित लक्षण उपस्थित हो जाया करते हैं—

व्याकुलता, शिर चकराना, नेत्र-कनीनिका प्रसार, भूख कम हो जाना और आमाशय तथा आंत्र में क्षोभ होकर क़ै दस्त आना प्रभृति लक्षण प्रगट हो जाते हैं। नाड़ी शिथिल एवं निर्बल चलती है, ज्वर होता है (जिसका ताप कभी-कभी १०४° फारन हाइट होता है,), प्रलाप तथा उन्माद आदि हो जाता है। त्वचा पर इरिथिमा (त्वक्प्रदाह) वा एक्ज़ेमा (छाजन) दोष हो जाता है, आक्षेप होने लगता है, शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं और कभी-कभी निर्बलता इस सीमातक पहुँचती है कि, मृत्यु आ उपस्थित है। यकृत एवं पेशियों की रचना वसा में परिणत हो जाती है। कभी पेशाब में ख़ून और एल्ब्युमेन आने लगता है। उक्त लक्षण कभी तो अकस्मात् प्रगट हो जाते हैं और कभी क्रमशः धीरे-धीरे तथा सप्ताहों रहा करते हैं।

नोट—किसी व्यक्ति को उक्त औषध की बहुत ही अल्प क्षमता होती है। अतएव उनके क्षत आदि पर किंचिन्मात्र आयडोफार्म छिड़कने से ही ये अभिशोषित होकर विषाक्त लक्षण पैदा कर देती है।

आयडोफार्म का अगद एवं चिकित्सा

सोडियम बाई कार्बोनेट १५ ग्रेन वा बड़ी मात्रा में पानी में घोलकर ऐसी एक-एक मात्रा

औषध घंटे-घंटे बाद कई बार दें। इससे तज्जन्य विषाक्त लक्षण एवं कुप्रभाव घट जाते हैं। ज्वर शमन हेतु स्वेद प्रवर्त्तक औषध दें वा कोष्ण जल से शरीर पर अस्फंज करें। निर्बलता निवारणार्थ उत्तेजक औषधों का व्यवहार करें।

आयडोफार्मके थेराप्युटिक्स अर्थात् औषधीय प्रयोग

वाह्य प्रयोग

व्रण के उत्तेजनार्थ एवं उनको स्वच्छ रखने तथा स्थानीय निःसंक्रमण, शोधन और अवसन्नता जनन प्रभाव के लिए शस्त्रचिकित्सा में आयडोफार्म का बहुल प्रयोग होता है। परन्तु इसमें पाई जानेवाली एक प्रकार की विशेष दुर्गंधि इसके प्रयोग में बाधक होती है।

शस्त्रचिकित्सा में इसका विविध प्रकार से प्रयोग होता है। उदाहरणतः आयडोफार्म गाज़ (१० वा २० प्रतिशत शक्ति का), आयडोफार्म वूल वा लिंट (५ वा १० प्रतिशत शक्तिका) रूप में यह प्रायः व्रणादि को ड्रेस करने में काम आते हैं। केवल इसे वा बोरिक एसिड प्रभृति के साथ व्रणों पर अवचूर्णित करते हैं। मरहम की शकल में वा क्लोडीन में मिलाकर लगाते हैं वा बूजी (वर्त्ति) और सपाजिटरी के रूप में व्यवहार करते हैं।

यद्यपि हर प्रकार के व्रण (Ulcer) और क्षत (Wound) के लिए यह दवा गुणकारी हैं, तो भी फिरंग जनित क्षतों, ट्युबर्क्लीय क्षतों वा कंठमाला जनित क्षतों और आतशक के ज़ख़्म के लिए यह उपकारी है। क्षत पर इसकी महीन बुकनी छिड़कना वा इसका मरहम लगाना पर्य्याप्त होता है। जले हुए स्थान (Burns) पर आयडोफार्म को ग्लीसरीन और पानी में मिला कर लगाते और ऊपर से धुनकी हुई साफ़ रूई (Cotton-wool) से आच्छादित कर देते हैं। ताज़े ज़ख़्मों और जननेंद्रिय के क्षतों पर इसको क्लोडीन के साथ मिलाकर (कलोडियम् कम् आयडोफार्मम्) लगाना उपकारक होता है। कनपेड़ (Mumps), बाघी वा बद (Buboes), पुरातन सूजी हुई ग्रंथि, निक्रिस (Gout) और आमवात (Rheumatism) में सूजे हुए जोड़ों पर तथा वातज वेदना पर भी इसी प्रकार इसका लगाना लाभकारी होता है। कान, नाक, मुँह और कंठ के क्षतों, विशेषतः आतशक वा ट्युबर्क्ल संबंधी क्षतों में, इसकी स्टार्च वा बिज़्मथ इत्यादि के साथ मिलाकर इन्सफ़्लेटर (प्रधमन यंत्र) द्वारा प्रधमित करना गुणकारक होता है। विस्फोटक (Abcess) के भीतर और नाड़ीव्रण (Sinus) के छिद्र में इसके इमलशन की पिचकारी लाभकारी होती है। नूतन सूज़ाक में आयडोफार्म बूजी से लाभ होता है।

(Rectum) के कतिपय रोग, जैसे गुदा की खाजमें, खाज एवं वेदना शमनार्थ आयडोफार्म सपाज़िटरीज़ प्रयोजित की जाती हैं। अर्बुद (Cancer) के क्षत पर इसके छिड़कने से उसकी दुर्गंधि दूर हो जाती है और उससे बढ़ता हुआ ज़ख़्म एवं दर्द घट जाता है।

आयडोफार्म का आंतरिक प्रयोग

आंतरिक रूप से आयडोफार्म क्वचित ही प्रयोग में आता है। परन्तु फिरंग जनित मुख क्षत तथा ट्युबर्क्ल जनित कंठ एवं स्वरयंत्र स्थित क्षतों में इसको स्प्रे (Spray), प्रधमन (Insufflation) आर टिकिया (Pastil) की शकल में प्रयोजित करते हैं। आमाशयस्थित क्षत (Gastric ulcers) और यक्ष्मा (Pthisis) में इसका आंतरिक प्रयोग लाभदायक प्रमाणित नहीं हुआ।

सूचना—निर्बल एवं बूढे व्यक्तियों को इसकी बहुत कम क्षमता होती है अर्थात् उनमें इसके विषैले प्रभाव प्रगट होने की आशंका होती है। किंतु बालकों को इसकी अधिक क्षमता होती है।

योग-निर्म्माण विषयक आदेश—

इसका आंतरिक प्रयोग करना हो, तो मिक्सचर वा लोशनमें कीकर निर्यास के लुआब (Mucilage of acacia) में अवलंबित करके दें वा वटिका रूप में जो ग्ल्युकोज़ (द्राक्षौज) से अथवा उसके भार के $\frac{1}{6}$ पल्विस ट्रैगाकांथ कंपाउंड के मिलाने से उत्तम बन जाती है। इसकी दुर्गंधि यूकेलिप्टस आइल, जैरेनियम्

आइल (२ ड्राम में ५ बूँद) वा बालसम आफ पेरू वा कस्तूरी अथवा क्यूमेरीन से छिप जाती है।

परीक्षित योग

(१) आयडोफार्माई	१ आउंस
क्रियोलीनी	५ ग्रेन
आलियम् क्युली पाइरोलग	२ ग्रेन

इनको परस्पर मिलालें। यह निगंध आयडोफार्म है।

(२) आयडोफार्माई	१ आउंस
क्युमेरीनी	५ ग्रेन
वेनीलेनी	५ ग्रेन

परस्पर मिलालें। यह निगंध आयडोफार्भ है।

(३) पलिव्रस आयडोफार्माई	३० ग्रेन
कलोडियम् फ्लेक्ज़ाइल	१ आउंस तक

दोनों को मिलालें। आतशक के क्षतों और गुदा विशरण (Anal fissure) पर लगाने के लिए यह उत्तम प्रलेप (Pigment) है।

(४) आयडोफार्माई प्रेसपिटेटाई	१ ड्राम
म्युसिलेजो ट्रैगेकैंथी	४ ड्राम
एक्वी डिष्टिलेटी	१ आउंस पर्यंत

इस दवा को अत्यंत सावधानी से प्रस्तुत करना चाहिए और बारीक मलमल में छान लेना चाहिए। फिर इसमें से १ टीस्पूनफुल (१ ड्राम) लेकर और थोड़े पानी में मिलाकर इसकी वस्ति में पिचकारी करें। यह वस्तिप्रदाह (Cystitis) में उपकारी है।

(५) पल्विस आयडोफार्माई	२ ड्राम
पल्विस एसिडाई बोरिसाई	१ ड्राम
पल्विस एमाइली	६ ड्राम

सबको परस्पर योजित कर लें। (Rheinitis), नासा दौर्गंध्य (Ozena) और कर्णस्राव (Otorrhoea) में इसका प्रधमन लाभकारी होता है।

(६) आयडोफार्मम् प्रेसीपिटेटम्	३० ग्रेन
क्युमेरीन	१ ग्रेन
वर्नी सोली	½ आउंस

सबको मिलाकर वार्निश बनाएँ और विकृत स्थल पर इसका पतला लेपकर सूखने दें। इसका जो बारीक स्तर जम जाता है, वह गरम पानी से धुल जाता है। इरिसिपेलास (विसर्प) पर लगाने के लिए उपयोगी है।

(७) आयडोफॉर्मम प्रेसीपिटेटम्	५ ग्रेन

आलियम् थियोब्रोमेटस आवश्यकतानुसार सपाज़िटरी बनाएँ। बवासीर और गुद विशरण (Anal fissure) में मलोत्सर्गसे पूर्व इसके प्रयोग से मलत्याग में दर्द नहीं होता।

(८) आयडोफार्माई प्रेसीपिटेटाई	४० ग्रेन
आलियम् युकेलिप्टाई	४० बूँद
कैम्फोरी	४० ग्रेन
आलियम थियोब्रोमेटस	३ ड्राम
अंग्वेएटम् पैराफ़ीनी	१ आउंस

सबको मिलाकर मरहम बनाएँ। अग्नि दग्ध (Burn) और उष्ण जल द्वारा दग्ध (Scald) आदि में जले हुए स्थान और क्षतों (Wound) पर लगाने के लिए उपयोगी है।

आयडो-फार्मल–[अं० Iodo-formal] एक प्रकार का पीले रंग का रवादार अविलेय चूर्ण। यह भी आयडोफार्म की प्रतिनिधि है और आयडोफार्म का ईथिल-हेक्सा मीथिलीन हाइड्रायोडाइड और प्रबल पचननिवारक है। आयडोफार्मीन ईथिल आयोडाइड (Iodoformin ethyl iodide) दे० "आयडोफॉर्मम"।

आयडो-फार्मलिएट–[अं० Iodo-form-lint] दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडो-फार्म-वूल–[अं० Iodoform-wool] दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडोफार्म-सपोज़िटरीज–[अं० Iodo-form suppositories] आयडोफार्म वर्तिका। दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडोफार्मीन–[अं० Iodoformin] एक सफ़ेद रवादार चूर्ण जिसको ओडर्लेस आयडोफार्म (गन्ध शून्य आयडोफार्म) कहते हैं। यह आयडोफार्म और हेक्सामिथिलीन टेट्रामीन (Hexamethylene tetramine) का एक यौगिक है। यह आयडोफार्म के समान प्रभाव करता है। परन्तु इसके विषय में यह प्रतिज्ञा की जाती है, कि छिड़कने पर इससे फार्मोल भिन्न हो जाता है अथवा उत्पादकावय-

वस्थ व्रण (Chancres), ग्रंथिक क्षतों (Tuberculosis,ulcers) प्रभृति पर बाह्य रूप से उपयोग करने से क्षतों पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है और खुरण्ड जनित किए बिना शीघ्र अङ्कुर उत्पन्न करता है। पूयमेह में उपस्थ में इसकी पिचकारी करते हैं।

नोवायोडीन (Novoiodin), हेक्सामिथिलीन टेट्रामीन डायोडाइड (Hexamethylene tetramine-aiodide) और अभ्रक का एक मिश्रण है। यह भी आयडोफार्म की प्रतिनिधि है। मुख्यतः ग्रंथिक व्रणों तथा नेत्र-कर्म्म में यह अमूल्य औषध है। ह्वि० मे० मे०।

आयडोफार्मीन-ईथिल-आयोडाइड–[अं० Iodoformin-ethyl iodide] दे० "आयडोफार्मल"।

आयडो-फार्मोजन–[अं० Iodoformogen] यह मृदु तथा गंधरहित औषध है। क्षतों पर अवचूर्णन करने से इसका उत्तम प्रभाव होता है। कहा जाता है कि इसके सेवन के बाद फुंसियाँ भी नहीं निकलतीं।

आयडोफिनोल–[अं० Iodophenol] दे० "अरिष्टोल"।

आयडो-मेन्थोल–[अं० Iodo menthol] इसमें पेप्टोनाइज़्ड आयोडीन (Pentonised iodine), मेन्थोल (पुदिना सत्व) तथा रेडियम-बेरियम क्लोराइड होते हैं। इसके घोल का उरःक्षत वा यक्ष्मा (Tuberculosis) में पेश्यान्तरीय अन्तःक्षेप करते हैं। मेन्थोल (पुदिना सत्व) १ भाग, आयडोपीन (Iodopine) ५ भाग तथा युकेलिप्टोल (Eucalyptol) २ भाग इनके द्वारा निर्मित घोल का १ घन शतांशमीटर (I c.c.) की मात्रा में अन्तःक्षेप करने से श्रेष्टतर परिणाम प्राप्त होते हैं। (बर्लिनरः)। पर्याय–डायोरेडीन (Dioradin)

आयडोरिसार्सीन–[अं० Iodoresorcin] डायोडोरिसॉर्सीन (Di-iodoresorcin) दे०– "अरिष्टोल"।

आयडोलिसीन–[अं० Iodolysin]
आयडोलिसीनी–[अं० Iodolysine] } इसको १५ बूँद की मात्रा में अन्तःक्षेप के काम में लाते हैं। दे० "फाइब्रोलिसीन"।

आयडोलूज़–[अं० Iodolose] एक गहरा गुलाबी लिए मटमैले रंग का चूर्ण, जिसमें ३ प्रतिशत नैलिका (Iodine) और ग्लाइकोजन का यौगिक होता है। उपदंश तथा कण्ठमाला में आयोडाइड्स ऑफ सोडियम् एवं पोटासियम् की प्रतिनिधि स्वरूप २० बूँद की मात्रा में इसका उपयोग किया जाता है। पर्य्या०–ग्लाइकोजन आयोडी (Glycogen-iodi)।

आयडोलेनी–[अं० Iodolene] एक कोमल पीत-वर्ण का गंध रहित चूर्ण जो अक्षोभक पचन-निवारक औषध है। इसको आयडोफार्म की प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहार में लाते हैं। तृतीय कक्षा के उपदंश तथा ऐक्टिनोमाइकोसिस् रोग में इसका १० प्रतिशत का औषध ३० ग्रेन (१५ रत्ती) की मात्रा में व्यवहार में आता है; और ३६ प्रतिशत का अवचूर्णन रूप से उपयोग किया जाता है। पर्याय–आयोडल ऐल्ब्युमिनेट (Iodal albuminate)।

आयडो-सल्फेट आफ़ सिङ्कोनीन–[अं० Iodo sulphate of cinchonine] एण्टिसेपोल (Antisepol)।

आयडोसिटीन–[अं० Iodocitin] लेसिथीन (Lecithin)। अण्ड-पीतक सत्व।

आयडो-सैलिसिलिक एसिड–[अं० Iodo-salicyle acid] आयोडीन तथा सैलिसिलिक-एसिड का एक यौगिक। दे० "आयडोफार्मम्"।

आयडोसोल–[अं० Iodosol] दे० "आयोडेक्स"। (Iodex)।

आयडोस्टेरीन–संज्ञा पुं० [अं० Iodostarin] नैलिका का एक नूतन यौगिक। इसकी श्वेत, अविलेय स्फटिकवत् परतें होती हैं जिसमें ५०% के लगभग नैलिका होती है। ४ वा ५ ग्रेन की मात्रा में यह आमाशय में से अपरिवर्तित अवस्था में ही निकल जाता है। इसका परिवर्तन आन्त्र में आरंभ होता है। उपयोग करने के १ घंटे पश्चात् यह लाला एवं मूत्र में प्रगट होता है। इसका प्रवर्त्तन मन्द गति एवं विलम्ब से होता है।

आयडोहिमोल-[ले० Iodohœmol] नैलिका और रक्त का एक यौगिक । दे० "हीमोल" (Hoemol) ।

आयत-वि० [सं० त्रि०] (१) दीर्घ । लम्बा । तवील । दराज़ । (२) विस्तृत । विशाल । लंबा चौड़ा (३) ज्यामितिशास्त्र में दीर्घ चतुरस्र आकार । शक्ल मुस्ततील ।

[तु०] कुत्ता । श्वान ।

आयतच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केले का पेड़ कदली वृक्ष । म० द० व० ५ । त्रिका० ।

आयतन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अधिष्ठान । ठहरने की जगह । (२) आश्रय । सहारा । (३) हेतु । कारण । रोग निदान । भा० ।

आयतपत्रा, आयतपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केले का पेड़ । कदली वृक्ष । त्रिका० ।

आयतबरूती-[तु०] जंगली गुलाब का जीरा (दर्लीक) ।

आयताक्ष-वि० [सं० त्रि०] जिसकी आँख बड़ी और पपोटा लंबा हो । विस्तृत नेत्र वा दीर्घ नयनच्छद रखनेवाला ।

आयतापाङ्ग-वि० [सं० त्रि०] जिसकी आँख की गाँसी लंबी हो । दीर्घ कोणयुक्त आँख रखनेवाला ।

आयदा अरीद, आयदु आरियद्-[यू०, फ़ा०] एक पौधा जिसके पत्ते जंगली आस के से होते हैं। पत्तों की जड़ से एक लम्बा तार निकलता है जो अंगूर के तारों की तरह होता है । इसके सिर पर फूल होता है । गीलानी कहते हैं कि ऐज़ा अरीज़ा में इसका उल्लेख होगा । यह द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है । इसको खाने से ज़बान में क़ब्ज़ मालूम होता है । इसकी जड़ अन्य सभी अवयवों की अपेक्षा प्रबलतर है । इसके सर्वाङ्ग अंगों से रक्त स्राव को रोकते हैं, दस्तों को बन्द करते हैं, आन्त्रिक व्रणों को आराम करते हैं; जरायु के रसों (रतूबत) और खून को बन्द करते हैं ।

मात्रा—१ मा० तक । (ख० अ०)

आयदु आरीद-संज्ञा पुं० [यू०, फ़ा०] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ आसबर्री के समान होती हैं।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष ।

स्वाद—इसके भक्षण से जिह्वा स्तम्भित हो जाती है । सभी गुणों में इसकी जड़ अधिक प्रभावशाली होती है । यह प्रत्येक अंग के रक्तस्राव को, चाहे वह जिस समय हो, रोकता है एवं अतिसार तथा स्त्रियों में अधिक रक्त आने का रुद्धक है आयदा । मु० अ० ।

आयन-वि० [सं० त्रि०] अयन संबंधी ।

संज्ञा पुं० [देश०] गाय का थन । बाख़ ।

आयब-[अ०] शेर । सिंह ।

आयरिस-[ले० Iris] दे० "आइरिस" वा "ईरसा" ।

[अं० Iris] नेत्र के अग्र और पश्चात् भागों के बीच में स्थित एक ताल (Lens) । इस ताल पर आगे की ओर मध्य पटल से निकला हुआ एक प्रवर्द्धन लगा रहता है । जो आयरिस Iris कहलाता है ।

आयरिस वर्सिकर-[ले० Iris versicolor] ईरसा । इंद्रधनुषपुष्पी । दे० "ईरसा" ।

आयरीनन मेरून-[?] एक अत्यन्त लाभदायक मलहम विशेष । दे० "आयरिस" ।

आयर्न-[अं० Iron] लोहा । लौह । लोह । दे० "लोहा" ।

आयर्नआर्सीनेट-[अं० Iron arsenate] लौह सोमलते । यह लोहा और संखिया का एक यौगिक है । (Ferri Arsenas) । दे० "लोहा" ।

आयर्न-इक्थियोलेट-[अं० Iron icthyolate] फेरी इक्थोल (Ferri-ichthyol) इक्थ्योलेट आफ आयर्न (Ichthyolate of iron) यह रक्ताल्पता की दशा में उपयोगी है । दे०- "इक्थियोयल" ।

आयर्न-एलम्-[अं० Iron alum] एल्ब्युमीन एमोनियो फेरिक । हिं० मे० मे० ।

आयर्न-ऐण्ड-एमोनियम्-साइट्रेट-[अं० Iron and ammonium citrate] लोहनृसार सत्रेत । (Ferriet ammonii citras) दे० "लोहा" ।

आयर्न ऐण्ड किनीन साइट्रेट-[अं० Iron and quinine citrate] लोह क्वीनन सत्रेते । (Ferri et quinine citras) दे० "लोहा" ।

आयर्न-ऐण्टिडोट–[अं० Iron antidote] लोह प्रतिविष। हिं० मे० मे०।

आयर्न ऐलगीनाइड–[अं० Iron alginoid] यह एक अविलेय धूसर वर्ण का चूर्ण है। दे० "लोहा"।

आयर्न ऐल्ब्युमिनेट–[अं० Iron albuminate] (Albuminate of Iron) दे० "लोहा"।

आयर्न-केकोडाईलेट–[अं०]Iron cacodylate] केकोडाइलेट आफ आयर्न (Cacodylate of iron.)। दे० "लौह" तथा "एसिड केकोडाइलिकम्"।

आयर्न कीवेनीस–[अं० Iron quevennes] (Quevennes' iron.) फेरम रिडेक्टम् (Ferrum Redactum)।

प्रभाव—वल्य तथा रक्त वर्द्धक है।

मात्रा—१ से ५ ग्रेन गोली की शकल में।

आयर्न-ग्लीसरो-फास्फेट–[अं० Iron glycerophosphate] लोहमधुर स्फुरेत। (Ferri Glycerophosphate) दे० "लोहा"।

आयर्नडायालाइज्ड–[अं० Iron dialysed] यह एक गहरे मटमैले रंग का द्रव है जो संखिया का अगद है।

मात्रा—३० बूँद से १ आउंस तक।

आयर्न-नन आफिशल साल्ट–[अं० Iron non-official salt] ऐल्ब्युमिनेट आफ आयर्न। दे० "लोहा"।

आयर्न-पाइराइटीज़–[अं० Iron pyrites] सोनामक्खी। सुवर्णमाक्षिक। (Ferri Sulphuratum)।

आयर्न-पिल–[अं० Iron pill] लौह वटिका। लोहे की गोली। (Piluia Ferri) दे० "लोहा"।

आयर्न-फास्फेट–[अं० Iron phosphate] लौहस्फुरेत (Ferri Phossphas)। दे० "लोहा"।

आयर्न-फ्लोराइड–[अं० Iron fluoride] फ्लोराइड आफ आयर्न (Fluoride of Iron)।

मात्रा–$\frac{१}{१६}$ से $\frac{१}{४}$ ग्रेन तक गोलीकी शकल में।

प्रभाव—प्लीहशोश नाशक है।

आयर्न-बार्क–[अं० Iron bark] ब्ल्यु गम-ट्री। (Blue-gumtree) Eucalyptus Globutus दे० "युकेलिप्टस"।

आयर्न-बेञ्जोएट–[अं० Iron benzoate] (Beuzoated iron) दे० "लोहा"।

आयर्न-ब्रोमाइड–[अं० Iron bromide](Bromide of iron) ब्रोमाइड ऑफ आयर्न। दे० "लोहा"।

आयर्न-लैक्टेट–[अं० Iron lactate](Lactate of iron दे० "लोहा"।

आयर्न-वायटेलीन–[अं० Iron vitellin] ओवोफेरीन (Ovoferrin) यह एक तरल औषध है। हि० मे० मे०।

आयर्न-वुड ट्री–[अं० Iron wood tree] (१) अञ्जन। अञ्जनी। (२) नागकेशर। Mesua ferrea, *Linn.*। फा० इं० १ भा०।

आयर्न-सक्सिनेट–[अं० Iron succinate]लोह और अम्बर द्वारा निर्मित एक लवण।

मात्रा—५ ग्रेन। हि० मे० मे०। दे० "सक्सिनम्"।

आयर्न-सल्फेट–[अं० Iron sulphate] लौह गन्धेत। कसीस। काशीश। (Green sulphate of iron)।

आयर्न-सोमेटोज़–[अं० Iron somatoze] यह ऐल्ब्युमीज तथा ४॥ प्रतिशत लौह भस्म (फेरिक आक्साइड) का एक यौगिक है जिसको रक्ताल्पता (एनीमिया) में देते हैं। हि० मे० मे०।

आयस–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०](१) तीक्ष्ण लोह। फौलाद। इस्पात। रा० नि० व० १३। (२) सामान्य लौह। साधारण लोहा। रत्ना०। दे० "लोहा"। लोहे का कवच। (३) अगर नामक लकड़ी। (४) रत्न। मणि।

वि० [सं० त्रि०] लौहमय। लोहे का।

आयस-मल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०](१) मण्डूर।

च० द० पाण्डु चि०। (२) लोहे का कीट। लौहमल।

आयसी–वि० [सं० आयसीय] (१) लोहे का। आहनी। (२) तेज़ किया हुआ। तीक्ष्णीकृत।

आयस्कार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लोहार। लोहकार। त्रिका० (२) हाथी की रान का ऊपरी हिस्सा। हस्ती की जंघा का ऊर्ध्व भाग।

आयस्त–वि० [सं० त्रि०] (१) तेजित। (२) क्षिप्त। फेंका हुआ। मे० तत्रिक। (३) चोटा खाया हुआ। प्रतिहत। (४) दुःखित।

आया–संज्ञा स्त्री० [पुर्त्त०] अँगरेज़ों के बच्चों को दूध पिलाने और उनकी रक्षा करनेवाली स्त्री। धात्रि।

आयात–त्रि० [सं० त्रि०] आगत। उपस्थित। आया हुआ। (Import) निर्यात का उलटा।

आयापान-आयापाना संज्ञा पुं० दे० "आयपान"।

आयाम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का वात रोग। यह दो प्रकार का होता है, अभ्यन्तरायाम और वाह्यान्तरायाम। (२) दैर्घ्य। लम्बाई। विस्तार। अम०। (३) व्रण के सङ्कुचित अग्र भाग वा मुख को चौड़ा करने की क्रिया। फोड़े के मुँह को बड़ा करना। सु० चि० १ अ०। (४) नियमित करने की क्रिया। नियमन।

क्रि० वि० [सं० अव्य०] एकपहर तक। प्रहर पर्य्यंत।

आयाम-काञ्जिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की काँजी जो ग्रहणी अधिकारोक्त में लिखे रोगों में उपयोगी है। छिलके रहित कूटे हुए जवों को १४ गुने जल में पकाकर जो मण्ड बनाया जाता है, उसे वाट्य कहते हैं। वह वाट्य १ आढ़क, जौ के सत्तू एक आढ़क, तथा न बहुत पतली न बहुत मोटी, अर्थात् मध्यमाकार की मूलियों के चौंसठ (अर्थात् १ आढ़क परिमित) टुकड़े लेकर एक पवित्र तथा चिकने पात्र में डाल दें। तदनन्तर इसमें २ द्रोण जल भी डाल दें। पश्चात् जवाखार, सज्जीखार, तुम्बुर, अजवाइन, धनियाँ, विडलवण, सेंधानमक, सौंचल नमक, हींग शिवाटिका (वंशपत्री, हिंगुपत्री) तथा चव्य, इन ओषधियों के पृथक दो-दो पल परिमित चूर्ण को लेकर डाल दें। और पीपल, जीरा, कालाजीरा, राई, कालीजीरी तथा चित्रक इन ओषधियों के चूर्ण को पृथक् एक-एक पल परिमित डालें। इन सब ओषधियों को डालकर पात्र का मुख अच्छी तरह से बन्द करके १५ दिन तक पड़ा रहने दें। पश्चात् छानकर प्रयोग में लाएँ।

गुण—यह काँजी बल तथा शरीर को बढ़ाती और शरीर के वर्ण को प्रदीप्त करती है एवं वय को बढ़ाती है। दैहिक बल को तो यह विशेषतया बढ़ाती है। चूँकि यह खाये हुए अन्न को एक याम (प्रहर) के भीतर पचा देती है, इसलिए इसे "आयाम काञ्जिक" कहते हैं।

मात्रा—१–२ तो०। विधि पूर्वक सेवन से जलोदर, गुल्म, प्लीहा, हृदय-रोग आनाह, आरोचक, अग्निमांद्य, कोष्ठगत शूल, अर्श, भगन्दर तथा विविधि प्रकार की वात-व्याधियाँ शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। चक्र द०।

आयास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) श्रान्ति। क्लेश। सुस्ती। मांदगी। हे० चं०। (२) अत्यंत परिश्रम। बहुत यत्न। मेहनत। कोशिश। दौड़ धूप।

आयासी–संज्ञा पुं० [सं० आयासिन्] [वि० आयासक] [स्त्री० आयासिनी] (१) यत्नवान। मशक्कती। (२) श्रांत। सुस्त। थका-माँदा।

आयुत–वि० [सं० त्रि०] आर्द्रीभूत। गलित। पिघला हुआ। जो पसीजा हो।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आर्द्रीभूत घृत। पिघला हुआ घी।

आयु–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, क्ली०] (१) शरीर, मन, आत्मा और इंद्रियों के संयोग को "आयु" कहते हैं। पर्याय–धारी, जीवित, नित्यग, अनुबंध। च० सू० १ अ०। जीवित-काल, अवस्था, वय, आयुर्बल, आयुस। जटा०। उम्र, ज़िंदगी। (२) औषध, भेषज, दवा। (३) घृत, घी। रा० नि० व० १५। (४) वसा, चर्बी। रा० नि० व० १२।

आयुध–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चकवँड। पमाड। चक्रमर्द। (२) हथियार। शस्त्र मात्र।

आयुध-दीर्घ-पृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सर्प । साँप । हारा० ।

आयुध-धर्म्मिणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जैंत । जयन्तीक्षुप । श० च० ।

आयुधागार-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] राजा के हथियार रखने का घर । अस्त्र-गृह । सिलहख़ाना । शस्त्र गृह ।

आयुधिक, आयुधीय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शस्त्र जीवी । अस्त्रधारी । सिपाही ।

वि० [सं० त्रि०] शस्त्र संबंधी । हथियार का ।

आयुनिर्णय-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आयु तीन प्रकार की है—स्वल्पायु, मध्यायु और पूर्णायु । ३२ वर्ष से पहिले अल्पायु, उसके पीछे मध्यायु ७० वर्ष तक, फिर दीर्घायु, फिर १०० वर्ष के अनन्तर हो तो उत्तमायु कही जाती है ।

विश्रामसागर के रचयिता बाबा रघुनाथ दास जी के अनुसार कलि में मनुष्य की आयु का प्रमाण ३० वर्ष का है । "तीस वर्ष आयु नर होइ हैं कलि अधिकाय, अष्ट अब्द की कामिनी जनमी सुत पति पाय"।

आयुपरीक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जीवन की जाँच । शास्त्रोक्त लक्षणों के द्वारा यह जानना कि रोगी की आयु शेष है या नहीं । वि० दे० "अरिष्ट" ।

आयु-प्रमाण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आयु का मान। जीवन की अवधि । मनुष्य और हाथीकी परमायु १२० वर्ष ५ दिन है, घोड़े की ३२ वर्ष, गधा व ऊँट की २५ वर्ष; गो, बैल और भैंस की २४ वर्ष और कुत्ते आदि नखियों की १२ वर्ष, बकरे भेड़ी आदि की १६ वर्ष । वृहजा० आयु० ७ अ० । चरक के मत से मनुष्य की आयु १०० वर्ष की है । च० श० ६ अ० । किसी-किसी के अनुसार १२० वर्ष की ।

इन्द्रियों केअर्थ यथा शब्द, स्पर्श आदि इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चेष्टा आदिकों की विकृति आदि लक्षणों से आयुका प्रमाण जाना जाता है । यदि इनमें अकस्मात् विकृति होजाय, तो क्षण भरमें या मुहूर्त्त में, एक दिनमें, अथवा तीन दिन, पाँच दिन, सात दिन, दश दिन एवं बारह दिन में तथा पक्ष में या महीने में अथवा छः महीने में या एक वर्ष में मनुष्य स्वभाव में स्थित होजाता है । यहाँ पर स्वभाव, प्रवृत्ति का उपराम, मरण, अनित्यता, निरोध—यह सब एकही अर्थ वाले शब्द हैं अर्थात् मरण के वाचक हैं बस यही आयु के प्रमाण हैं । इससे विपरीत आयुका अप्रमाण जानना चाहिए । च० सू० ३० अ० ।

आयु प्रमाण जानने की रीति

वैद्य को रोगी के वर्ण, स्वर, गंध, स्पर्श, नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा, त्वचा, सत्व, इच्छा, शौच, शील, आचार, स्मृति, आकृति, बल, ग्लानि, तन्द्रा, कर्म, शरीर की गौरवता और लाघवता, आहार-बिहार, आहार का परिणाम, रोगी की शान्ति का उपाय, अपाय, व्याधि, व्याधि के पूर्व रूप, वेदना, उपद्रव, छाया, प्रतिच्छाया, स्वप्न देखना, दूत की योग्यता, रोगी के देखने के लिए जाते हुए रास्ते में औत्पादिक भाव, रोगी के गृहवालों की अवस्था विशेष तथा अन्य अवस्था, औषधि के गुण विशेष, औषधि के दोष, रोग में किस प्रकार से किस औषध का प्रयोग करना-इन सबको रोगी के जीवन, मरण तथा आयु विशेष के प्रमाण जानने को इच्छा करनेवाले वैद्य की योग्य है, कि प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तोपदेश के द्वारा आयु की परीक्षा करे ।

इन सब प्रकार की परीक्षाओं में बहुत सी परीक्षा तो पुरुष के आश्रय होती हैं, और बहुत सी ऐसी हैं जो पुरुषाश्रित नहीं हैं । उनमें जो पुरुषाश्रित नहीं हैं, उनकी उपदेश और युक्ति अर्थात् अनुमान और आप्तोपदेश द्वारा करनी चाहिए । एवं जो पुरुषाश्रित हैं उनकी प्रकृति और विकृति द्वारा परीक्षा करें ।

प्रकृति वर्णन—स्वभावकी परीक्षा इतने प्रकार की है—

जातिगत प्रकृति, कुलगत प्रकृति, देश के अनुरूप प्रकृति तथा समयानुरूप प्रकृति और प्रति पुरुष में उसकी आत्मनियत प्रकृति, इस प्रकार पुरुष की जाति, कुल, देश, काल अवस्था और शरीर भेद से प्रकृति अर्थात् स्वभाव प्रत्येक पुरुष का उसके अनुरूप होता है । वह इन भेदों से और पुरुष भेद से मनुष्यों में भाव विशेष

होते हैं। इन सब भावों का अपने अपने ठीक स्वभाव में रहना प्रकृति कहा जाता है।

विकृति-वर्णन—विकृति तीन प्रकार की होती है—

लक्षण निमित्ता विकृति, लक्ष्य निमित्ता विकृति और निमित्तानुरूपा विकृति। शरीर के आरोग्यता के हेतुभूत जो लक्षण होते हैं, उनके विकृत होजाने से वह विकृति के निमित्त जाने जाते हैं। उनको लक्षण निमित्ता विकृति कहते हैं। क्योंकि कोई-कोई लक्षण ही इस प्रकार शरीर से बँधे हुए हैं। समय समय पर प्रकट होकर जिस-जिस समय में जिस-जिस प्रकार से शरीर में वह लक्षण होते हैं उस-उस प्रकार की विकृति को उत्पन्न करते हैं।

निमित्तानुरूप—निमित्तकी अर्थानुरूपा विकृति को निमित्तानुरूपा विकृति (विकार) कहते हैं, अर्थात् बिना कारण के ही स्वभावादिकों में विकृति होजाना निमित्तानुरूपा विकृति कही जाती है। इसी विकृति को वैद्य लोग अनियमित होने से आयुप्रमाण का निमित्त मानते हैं। इसी विकृति को विद्वान् (वैद्य) आयुषक्षय का निमित्त और प्रेतत्व का लिङ्ग (चिन्ह) मानते हैं, तथा गतायु मनुष्य की आयुनाश के ज्ञानार्थ इसी विकृति को कथन करते हैं। और इसी विकृति के आश्रय से मरनेवाले प्राणी के लक्षण का ज्ञान निम्न प्रकार से है।

प्रकृतिवर्णन—जैसे—कृष्ण-वर्ण, कृष्ण-श्याम-वर्ण, श्याम गौर-वर्ण और गौर वर्ण यह शरीर के प्रकृति-वर्ण अर्थात् स्वाभाविक वर्ण हैं। इनके सिवाय और भी जो शरीर के वर्ण (रंग) होते हैं, वह सब उक्त कथित वर्णों की न्यूनाधिकयता से और वर्ण विशेष को जानना चाहिए। वर्ण के ज्ञाता बुद्धिमान वैद्य शरीर के स्वाभाविक वर्ण का उपदेश इसी प्रकार किए हैं।

वैकारिक-वर्ण—नील, श्याम, ताम्र, हरित और श्वेत यह शरीर के विकृति वर्ण हैं। इनके अतिरिक्त और भी जैसे कि जो वर्ण प्रथम देखा न हो अथवा प्रथम से भिन्न प्रकार का होजाय, उसको भी विकृति-वर्ण कहते हैं। प्रथम बुद्धिमान् को शरीर के प्रकृति-वर्ण और विकृति-वर्ण को जानना चाहिए।

वर्णजन्य अरिष्ट—(अरिष्टकारक वर्णाधिकार) यदि प्रकृति वर्ण वाले प्राणी के शरीर में वामभाग अथवा दक्षिण-भाग या आगे-पीछे दोनों ओर या केवल पीछे तथा केवल आगे या किसी अंग में स्वाभाविक और किसी अंग में वैकारिक वर्ण दिखाई दे, तो उस रोगी को अरिष्ट लक्षण जानें। यदि रोगी के मुख का वर्ण प्रथम से बिलकुल बदल जाय अथवा और प्रकार स्वभाविक वर्ण एकदम पलट जाय, तो यह उसके मृत्यु का चिन्ह समझें। वर्ण भेद से ग्लानि, हर्ष, स्नेह और रूक्षता का निर्देश किया गया है तथा प्लव (लहसन) व्यंग, तिल, कालक, पिडका इनका रोगी के मुख पर सहसा प्रगट होना यह सब रोगी के लिए अशुभ चिन्ह हैं। रोगी के नख, नेत्र, मुख, मल, मूत्र और हाथ पैरों के वर्ण एकाएक विकृत हो जाय तथा स्वभाविक नष्ट होकर और प्रकार के वैकारिक वर्ण उत्पन्नहो जाँय अथवा बल, वर्ण और इन्द्रियों में एकाएक हीनता उत्पन्न होजाय, तो यह रोगी के आयुनाशक चिन्ह जाने। इनके सिवाय और भी जो पहले कभी न देखा हो उस प्रकार के वर्ण विकार का एकाएक उत्पन्न होजाना भी रोगी की मृत्यु का चिन्ह होता है।

स्वराधिकार—(स्वाभाविकस्वर) हंस, बगुला, (क्रौञ्च) चकवा (इन्दु) दुन्दुभी (नगारा), चिड़ा, काक, कबूतर और झींगुर इनके सदृश स्वर होना प्रकृत स्वर हैं। इनके अतिरिक्त जिनका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है, उनको भी जिस प्रकार स्वर के जाननेवाले कथन किया हो, उसी प्रकार जानलें।

वैकृतिकस्वर—यदि रोगियों का स्वर एड (भेड़) के समान अथवा समझ में न आए इस प्रकार का या गद्गद् स्वर अथवा शांति और हीन शब्द या फटा हुआ हो, तो वैकारिक स्वर जाने। इसके अतिरिक्त जो प्रथम से श्रवण न किया हो, इस प्रकार का अभूतपूर्व स्वर भी वैकारिक होता है।

रोगी के स्वर का सहसा बदल जाना और अनेक प्रकार का स्वर होना तथा अनेक प्रकार से फटा हुआ हो जाना—ये मुमूर्षु के लक्षण हैं।

जिस प्राणी के एकायक अर्ध या सम्पूर्ण शरीर में वैकारिक वर्ण प्रकट हो जाँय, वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है।

यदि रोगी के अर्ध मुख का वर्ण नीला, श्याम, ताम्र वर्ण या लाल वर्ण हो जाय और आधा अन्य वर्ण का हो, तो यह अरिष्टकारक लक्षण हैं।

आधा मुख चिकना जैसा तेल से भिगा हुआ सा प्रतीत हो तथा अर्ध मुख बिलकुल रूक्ष हो तथा अर्ध चेहरे में ग्लानि और अर्ध में हर्ष प्रतीत होता हो, तो यह रोगी के मृत्यु के चिन्ह जाने।

जिस रोगी के मुख पर एकायकी तिल, पिप्लव (लहसुन), व्यंग (झांई), तथा अनेक प्रकार की रेखा आदि विचित्र रूप से प्रगट हो जाँय, तो उसके मरणाख्यापक चिन्ह जाने।

जिस रोगी के नख और दाँतों पर रंग-बिरंगे फूल से पड़ जाँय अथवा दाँतों पर अत्यन्त गाढ़ी मैल जम जाय एवं दाँतों में चूर्ण सा लगा हुआ विदित हो, उस रोगी के मृत्यु के चिन्ह जाने।

जिस रोगी के दोनों होंठ, दोनों पाँव, हाथ, नेत्र, मल, सूत्र और नख इनमें एकाएकी विवर्णता उत्पन्न हो जाय और जो रोगी क्षीण-बल हो, उसकी मृत्यु जाने।

जिस रोगीके दोनों होंठ नीले या पकी हुई जामुन के समान हो जाँय, उस रोगी को गतायु जाने।

जिस रोगी का एकाएकी स्वर बदल जाय अथवा अनेक प्रकार के वैकारिक चिन्ह हो जाँय, उसे नष्ट आयु जाने।

बल और मांस-हीन रोगी के स्वर और वर्ण में अन्य किसी प्रकार की विकृति होना भी उसके मरण का चिन्ह है। च० इन्द्रि० २ अ०।

आयुर्दाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आयु। जीवन-काल।

आयुर्द्रव्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भेषज। औषध। दवा। र० मा०। (२) घृत। घी।

आयुर्बल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आयुष्य का बल। उम्र का ज़ोर। आयुष्य। उम्र।

आयुर्मेद—[मल०] मधु। शहद।

आयुर्योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] औषध। दवा। रा० नि० व० २०।

आयुर्लक्षण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आयु के लक्षण वे लक्षण वा चिह्न, जिनसे यह जाना जाय कि अभी रोगी की आयु वर्तमान है एवं वह जीवित रहेगा। वे ये हैं—जिस रोगी की दृष्टि, कर्ण तथा मुख सौम्य हों और उसे गंध स्वाद का ज्ञान हो, हस्त, पाद गर्म हों, शरीर में अल्प दाह हो, जिह्वा कोमल, स्वेद रहित ज्वर, कण्ठ कफ से रहित और नासिका द्वारा श्वासका गमन हो, ता रोगी की आयु ठीक समझनी चाहिये तथा यह निश्चय जीता है। यो० चि०।

आयुर्विचार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आयुका विचार। आयु के विषय में परामर्श। वैद्य को चाहिये कि प्रथम रोगी के आयु की पूर्ण परीक्षा करे, क्योंकि आयु का ज्ञान हो जाने से चिकित्सा सफल होती है। यो० चि०।

आयुर्विज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आयु सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना। आयु-संबंधी ज्ञान।

आयुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आयुर्वेदीय] आयु संबंधी शास्त्र। चिकित्सा-शास्त्र। वैद्य-विद्या। शल्यादि स्थानाष्टकसम्पन्न धन्वन्तर्यादि प्रणीत चिकित्सा-शास्त्र।

शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग या मेल को "आयु" अर्थात् उम्र कहते हैं अथवा यों कहो कि मनुष्यों के जीवित समय की ही "आयु" संज्ञा है और विद् धातु का अर्थ ज्ञान होता है। यहाँ ज्ञान का अर्थ आयु सम्बन्धी ज्ञान है। आयु सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान जिस शास्त्र से लाभ किया जा सके, उसका नाम आयुर्वेद है। अथवा कभी कम नहीं होनेवाली एवं सुखकर आयु प्राप्त करने का उपाय जिस शास्त्र में दिया हुआ है उसका नाम आयुर्वेद है। कहा है—

"आयुरस्मिन् विद्यते अनेन वा आयुर्विन्दतीति आयुर्वेदः।" (सु० सू० ७ अ०)

अर्थात् जिस शास्त्र से आयु का ज्ञान और दीर्घायु की प्राप्ति हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

आयुर्वेद शब्द का साधारण अर्थ चिकित्सा-शास्त्र है। पर इसे केवल भारत का ही चिकित्सा-शास्त्र नहीं, अपितु सम्पूर्ण पृथ्वी का चिकित्सा-शास्त्र कहना चाहिये; क्योंकि इस शास्त्र के अनुसार चिकित्सा करने से मनुष्य केवल भारतवासियों को ही नहीं, वरञ्च समग्र जगत् को भी बहुत ही लाभ पहुँचा सकता है। प्राचीन समय में यह शब्द इसी व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता था, जैसा कि आगे के प्रमाणों से स्पष्टतया विदित हो जायगा; परन्तु वर्तमान समय में आयुर्वेद केवल आर्यों का वेदोक्त, प्राचीन निदान एवं चिकित्सा-शास्त्र और वह भी केवल मनुष्यों का ही चिकित्सा-शास्त्र इस संकीर्ण अर्थ में प्रसिद्ध है अर्थात् इस अर्थ में रूढ़ हो गया है। देखिए इसकी व्यापकता के विषय में स्वयं आयुर्वेद के आचार्य्य क्या कहते हैं—

"हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानञ्च तञ्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥"
(च० श्लो० स्था० १ अ०)

अर्थात् सुख, दुःख एवं आयु के लिये क्या हितकर और क्या अनिष्टकर है, जिससे इस बात का ज्ञान हो एवं जिससे आयु के मान का ज्ञान हो, उसी शास्त्र का नाम आयुर्वेद है। अन्यच्च—

"आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिरायुर्वेदः स उच्यते॥"(भा०)

अर्थात् आयु का हित और अहित, रोगों के कारण और चिकित्सा, यह सब विषय जिस शास्त्र में निर्णीत हैं, उसी शास्त्र का नाम आयुर्वेद है। इतना ही पर्य्याप्त नहीं; क्योंकि ये विषय तो पृथ्वी के सभी चिकित्सा-शास्त्रों में वर्णित हैं। इसलिये आयुर्वेद का भेदक लक्षण (समानासमान जातीय व्यावर्तक लक्षण) यह भी और कहा गया है—

"अनेन पुरुषो यस्मात् आयुर्विन्दति वेत्ति च।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेदः प्रकीर्त्तितः॥"
(भा०)

अर्थात् इस शास्त्र से मनुष्य दीर्घायु लाभ करता है और आयु को जानता है, इसीलिए इसका नाम आयुर्वेद है। और भी कहा है—

"तत्र आयुर्वेदयतीति आयुर्वेदः। कथमिति चेत्? उच्यतेस्वलक्षणतः, सुखासुखतः, हिताहिततः, प्रमाणाप्रमाणतश्च। यतश्च आयुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुण कर्माणि वेदयति अतोऽपि आयुर्वेदः।" (च० सू० ३० अ०)

"आयु को विदित करानेवाला अर्थात् आयु-विषयक ज्ञान के करानेवाले शास्त्र को आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद आयु का परिज्ञान किस प्रकार कराता है; कहते हैं—जैसे, आयु के लक्षण सुखायु, दुःखायु, हित आयु तथा अहित आयु, आयु का प्रमाण और अप्रमाण, जिस प्रकार आयु के बढ़ानेवाले पदार्थ आयु को बढ़ाते हैं एवं क्षय करते हैं और द्रव्य, गुण, कर्म इन सबका यथार्थ ज्ञान करानेवाले को आयुर्वेद कहते हैं।"

इन सब कथनों का तात्पर्य यह है कि, पृथ्वी में आयुर्वेद के सिवाय जितने चिकित्सा-शास्त्र हैं, उनमें दीर्घजीवन के लाभ के अपूर्व उपाय रसायनादि और आयु जानने के उपाय अरिष्ट लक्षणादि कहीं भी उपदिष्ट नहीं हैं, इससे सूक्ष्मदर्शियों के हृदय में स्पष्ट प्रतीत होता है, कि आयुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय अन्य सभी चिकित्सा-शास्त्रों से भिन्न और अतीव गौरवान्वित है। आयुर्वेदीय चिकित्सा का प्रयोजन केवल रोगाक्रांत व्यक्ति का रोगनिवारण ही नहीं, प्रत्युत सुस्थ व्यक्ति की स्वास्थ्यरक्षा और उसका दीर्घजीवन प्राप्त करना आयुर्वेद-कल्पतरु का अमृतमय फल है।

सारांश आयुर्वेद वह विज्ञान तथा कला है, जिसकी सहायता से ऐसा सुखद जीवन बिताया जा सके, जो कि समाज के लिये कल्याणकारी हो। यह चरक द्वारा की गई आयुर्वेद की परिभाषा का निचोड़ है। उसका ध्येय स्वस्थों के स्वास्थ्य की रक्षा करना, तथा बीमारों को स्वस्थ करना है। यह सुश्रुत का वचन है।

सुश्रुत ने कहा है, आयुर्वेद दो प्रकार का होता है—(१) स्वस्थ आदमियों की स्वास्थ्य रक्षा और रोग हो जाने पर रोग का प्रतिकार। इसीलिए आयुर्वेद-शास्त्र में विस्तृत रूप से सभी प्रकार का उपाय दिया हुआ है। चिकित्सा दो प्रकार की कही गई है—औषधि-साध्य और शस्त्र-साध्य। इसी दृष्टि से आयुर्वेद दो विभागों में विभक्त किया गया

है। काय चिकित्सक-संप्रदाय और शल्य-चिकित्सक संप्रदाय।

परंतु केवल मनुष्य स्वस्थ शरीर एवं दीर्घ आयु ही को लेकर सुखी नहीं हो सकता है। धर्म्म, अर्थ, समाज प्रभृति उनके विषयों से मनुष्य के सुख दुःख का संबंध है। इसीलिए ही आयुर्वेद में धर्म्म-नीति, अर्थ-नीति, समाज-नीति संबंधी अनेक बातें बताई गई हैं।

आयुर्वेद शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ और भी विशाल है। आयुर्वेद केवल मनुष्यों काही चिकित्सा-शास्त्र है सो नहीं—तरुलता, पशु-पक्षी प्रभृति की चिकित्सा भी आयुर्वेद की अंगीभूत है। इसलिए वृक्षायुर्वेद, अश्वायुर्वेद, गवायुर्वेद और गजायुर्वेद आदि आयुर्वेदके नाना अंग कहे गए हैं। यद्यपि हम भारतवासियों के दुर्भाग्यसे उन अंगों के बड़े-बड़े ग्रंथ विलुप्त हो गये, तथापि "अग्निपुराण (२८१-२९१ अ०)" "शालिहोत्र संहिता" एवं "पालकाप्य संहिता" आदि प्राचीन ग्रंथों में जो आजकल वर्तमान हैं, उन अंगोंका अच्छा परिचय मिलता है। मधूसूदन सरस्वती ने स्वरचित 'प्रस्थान भेद' ग्रंथ में काम-शास्त्र को भी आयुर्वेद का अंग माना है।

आयुर्वेद अष्टांग-शास्त्र है

सारांश यह है कि, आयुर्वेद अनेक शाखाओं में विभक्त चिकित्सा-साधन-जीवन का विज्ञान है। बहुत प्राचीन काल से ही आयुर्वेद आठ भागों में विभक्त किया गया है। वे विभिन्न शाखाएँ इस ढंग से विभाजित की गई हैं—

(१) काय-चिकित्सा—औषधि-साध्य शरीर सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा अर्थात् औषधियों का व्यवहार, रोग का निदान तथा चिकित्सा-प्रणाली। (२) शालाक्य-तन्त्र—या निदान तथा विशेष चिकित्सा; आँख, नाक, कान तथा गला सम्बन्धी रोगों का निर्णय और उनकी चिकित्सा। (३) शल्यतन्त्र—अर्थात् जर्राही-यन्त्रशस्त्रसाध्य रोगों का निर्णय और उनकी चिकित्सा एवं दाई का काम। (४) विष गर्भ निरोध (सुश्रुत लिखित अगद-तंत्र) का अर्थ है—विष संबंधी चिकित्सा अर्थात् स्थावर और जंगम सभी प्रकार के विषों का परिज्ञान और उसकी चिकत्सा—जिसमें साँप, बिच्छू, विष-खोपड़ी, तथा अन्य कीड़े सम्मिलित हैं। यही नहीं, बल्कि इसमें वे अदृश्य कीड़े भी हैं जो वायु एवं जल-द्वारा बीमारी फैलाते हैं। (५) भूत-विद्या में झाड़-फूँक की प्रणाली सम्मिलित है, जिससे रोगी पर चढ़ा हुआ, कथित भूत उतारा जाता था। भूतों के चढ़ने के रोग को विभिन्न प्रकार का मस्तिष्क का विकार समझा जाता था। (६) कौमार-भृत्य—बच्चों की चिकित्सा—शिशु—चिकित्सा और शिशु पालन-विधि। (७) रसायन-शास्त्र—का अर्थ है, वृद्धावस्था में शरीर में शक्ति लाना अथवा ज्वर से पीड़ित जीर्ण मनुष्यों की पुनः आयु ठीक करने की चिकित्सा। (८) वाजीकरण-तन्त्र अथवा जनन-शक्ति की रक्षा करना एवं उसकी वृद्धि करना। उपयुक्त ८ प्रकारों में से ६ तो आज पूर्ण रूप से पाश्चात्य देशों में व्यवहृत किए जाते हैं, शेष दो पर भी पाश्चात्य देशों में अमल करना आरंभ हो गया है और यूरोप में बड़े-बड़े विज्ञान-वेत्ता उनका अध्ययन कर रहे हैं। ये ही आयुर्वेद के अष्टांग कहे गए हैं।

आयुर्वेद का पूर्व ऐतिहासिक मूल

वेद में आयुर्वेद

आयुर्वेद शब्द में वेद शब्द देखकर काफी लोग यह बात सोचने लगते हैं, कि आयुर्वेद-शास्त्र भी वेद का अंग या परिशिष्ट है।

सुश्रुत ने कहा है कि आयुर्वेद अथर्ववेद की शाखा है, यथा — "इहखल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैवप्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्याय सहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः" इत्यादि। अर्थात् "आयुर्वेद नामक अथर्ववेद के इस लक्ष-श्लोकमय उपाङ्ग को स्वयम्भू ब्रह्मा ने प्रजा-सृष्टि के प्रथम ही बनाया था।" अब तो वेद को पश्चिम के तमाम पंडितों ने संसार का प्राचीन साहित्य माना है। वस्तुतः वेद को यदि अनादि और नित्य स्वीकार किया जाय, तो आयुर्वेद को भी नित्य और अनादि अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। महर्षि चरक भी कहते हैं कि—"भिषजा पृष्टेनैव चतुर्णां वेदनामात्मनोऽथर्ववेदेभक्ति रादेश्या।"

(च० चि० ३० अ०)

आयुर्वेद किस वेद के अंतर्गत आता है और किस वेद का उपाङ्ग ठहरता है। इस विषय में

भगवान् वेदव्यास अपने "चरणव्यूह" नामक ग्रंथ में कहते हैं—

"सर्वेषामेव वेदानामुपवेदा भवन्ति ऋग्वेदस्य आयुर्व्वेद उपवेदः, यजुर्वेदस्य धनुर्वेदः, सामवेदस्य गान्धर्ववेदः, अथर्ववेदस्य शस्त्रशास्त्राणि।"

अर्थात् "सभी वेद का एक उपवेद होता है। ऋग्वेद का उपवेद (उपांग) आयुर्वेद है, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद के उपवेद को शस्त्रशास्त्र अर्थात् शल्यतंत्र कहते हैं।" इन बातों में यद्यपि कुछ विरोध है, तथापि सिद्धांत यह है कि चारों वेदों में ही आयुर्वेद के विषय सूक्ष्म रूप से पाये जाते। अतएव ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में स्पष्ट लिखा है—

"ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वावेदान् प्रजापतिः।
विचिन्त्यतेषामर्थे वै आयुर्व्वेदं चकार सः॥"

इतने पर भी वैद्यगण अथर्ववेद पर ही अधिक निर्भर क्यों करते हैं, इसका कारण चरक का यह सूत्र है—

"तत्रचेत् प्रष्टारः स्युश्चतुर्णामृक् सामयजुरथर्ववेदानां कं वेदमुपदिशन्त्यायुर्वेदविदः ? तत्र भिषजा पृष्ठेनैवं चतुर्णां ऋक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या। वेदोह्याथर्वणः। स्वस्त्ययनवलि-मङ्गल-होम नियमप्रायश्चित्तोपवास-मन्त्रादि-परिग्रहाच्चिकित्सां प्राह।" (च० सू० ३० अ०)

अर्थात् "यदि कोई पूछे आयुर्वेदवेत्ता ऋक्-यजुः-साम-अथर्व इन चार में से किस वेद के अवलंबन से उपदेश दे, तो चिकित्सक उक्त चारों में अथर्ववेद पर अपनी भक्ति दिखाए। क्योंकि अथर्व-प्रोक्त वेद ही स्वस्त्ययन, वलि, मंगल, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास और मंत्रादि को स्वीकार कर चिकित्सा-तत्व का उपदेश देता है।"

चरक और सुश्रुत दोनों के अनुसार अथर्ववेद आयुर्वेद का उद्गम है।

अन्य वेदों में तो कम पर अथर्ववेद में व्यापक रूप से, आयुर्वेद की बातों, सिद्धान्तों, शरीर के विभिन्न भागों की बीमारियों तथा दवाओं के सम्बन्ध में बहुतायत से उल्लेख किया गया है। वास्तव में आयुर्वेद सम्बंधी सूचनाओं का वेदों में प्रचुरता के के साथ मिलना हमें चकित कर देता है, विशेषतः उस समय जब कि, हम यह सोचते हैं, कि उनसे मिलान करने पर वर्तमान आयुर्वेदीय ग्रंथों में संशोधन करना, त्रुटियोंको सुधारना तथा अतिरिक्त अंशों को जोड़ना एक निश्चित सीमा तक संभव है।

उपर्युक्त वर्णन से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गई कि आयुर्वेद वेद का ही एक उपवेद है एवं इसका प्रादुर्भाव वेदों के साथ ही हुआ था। इस विषय की पुष्टि के लिये कि, वेदों में आयुर्वेद का पर्याप्त वर्णन उपलब्ध है, एवं यह कि उस समय चिकित्सा शास्त्र चरम पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था, यहाँ कुछ और अवतरण दिये जाते हैं—

"युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः।" (ऋग्वेद, १। ११७। १३)

अश्विनीकुमारों ने जरा जीर्ण च्यवनऋषि को पुनर्यौवन प्रदान किया था। यह कथा वर्तमान आयुर्वेद में भी प्रसिद्ध है। यथा—

"अस्य प्रयोगाच्यवनः सुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा।"
(च० चि० १ अ०)

"यदयातं दिवोदासाय वर्त्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता।
रेव दुवाह सचनो रथोवांवृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता॥"
(ऋ० मं० १ सू० १६)

इस मंत्र में आयुर्वेद के आचार्य दिवोदास और भरद्वाज के नाम अश्विनीकुमारों के साथ निर्दिष्ट हैं और इसी मंत्र से यह भी प्रतिपन्न होता है, कि ऋग्वेद के इस मंत्र के प्रादुर्भाव के समय दिवोदास और भरद्वाज सुपरिचित थे।

"सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते
सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥" (ऋग्वेद १। ११६। १५)

अर्थात् खेल नामक राजाके संग्राम में विश्पला नाम्नी एक स्त्री का पैर कटकर गिर गया था और अश्विनीकुमारों ने उसको कृत्रिम (बनावटी) पैर चढ़ाकर ज्यों का त्यों कर दिया था। इसी प्रकार अन्य बहुत से प्रमाण वेदों में आए हैं। यथा—

"आक्षी ऋज्राश्व अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे॥" (ऋग्वेद १। ११७। १७)

अश्विनीकुमारों ने अंधे ऋज्राश्व को चक्षुमान किया।

"याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजमृप्र अन्धं श्रोणं चक्षुव एतवे कृथाः ॥" (ऋग्वेद १।११२।८)
योषायै चित् पितृपदे दुरोणे पतिं जुर्य्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥" (ऋग्वेद। १।११७।७)

इसके अतिरिक्त यह भी एक मुख्य बात है कि वैदिक मंत्रों में कृमि–दृश्य तथा अदृश्य–दोनों प्रकार का वर्णन आया है और यह कहा गया है कि उनसे बीमारी उत्पन्न होती है।

और भी कहा है—

"यस्यौषधिः प्रसरताङ्गमङ्ग परुस्परु"। (शु० य० १२ अ०)

इस मंत्र में शरीर के एक अंग में औषध प्रयोग से और-और अंगों का रोग कैसे आरोग्य होता था, इसका वृत्तान्त बीज रूप से वर्णित है।

"दधि मधु घृतं सनीय प्राशयति जातरूपम्।"
दध्नः सौम्य प्रथ्यमानस्ययोऽणिमा स ऊर्द्धं समुदीषति तत्सर्पिर्भवति,एवमेव खलु सौम्य अन्नस्यास्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्द्धं समुदीषति"।

ऐसा यजुरारण्यक षष्ठ अध्याय में और छान्दोपनिषदादि में अन्न-विपाक क्रिया सुन्दर प्रकार से वर्णित है। इन सब उद्धरणों के देने से हमारा अभिप्राय आयुर्वेद की अति प्राचीनता दिखलाना है। भारतीयों को जाने दीजिये। आज बड़े से बड़े अंगरेज़ ऐतिहासिक इस बात में एक मत हैं, कि ऋग्वेद ही पृथ्वी का आदि साहित्य है। अस्तु, यह निर्विवाद सिद्ध है कि वेद के अति प्राचीनत्व के साथ ही आयुर्वेद भी अति प्राचीन है।

आयुर्वेद के समय निरूपण का प्रयत्न

आयुर्वेद की उत्पत्ति का यथार्थ समय निश्चित करना हमारे लिए तो सर्वथा असम्भव ही है। अनेक विद्वानों ने इस विषय में दिमाग़ लड़ाया और अब भी लड़ा रहे हैं। परंतु सच्ची कामयाबी आज तक किसी को न हुई, आजतक कोई भी अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक न पहुँचा, सभी इधर-उधर लटकते रह गये। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ, सब का मत भी एक नहीं। इस विषय में म० म० कविराज गणनाथसेन जी के विचार एवं निर्णय अवश्य सराहनीय हैं, जिसे उनके एक लेख से, यहाँ अविकल उद्धृत किया जाता है। वह इस प्रकार है—

वेद के समान पुराणों में भी आयुर्वेद का प्रसंग जहाँ तहाँ बहुत पाया जाता है। महाभारत में उदाहरण मिलने की कमी नहीं है—

"कच्चित्ते कुशला वैद्याः अष्टांगेच चिकित्सिते।"
(महा० सभा० ३९ अ०)

"आयुर्वेद विदस्तस्मात् त्रिधातुं मां प्रचक्षते।"
(महा० शान्ति० १३७ अ०)

दर्शनशास्त्रों में भी आयुर्वेद का प्रसंग मिलता है—

"मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्यात् तत् प्रामाण्याम्"।
(गौतम सूत्र) इत्यादि।

इस गौतम सूत्र से भी आयुर्वेद का अतिप्राचीनत्व प्रतिपन्न होता है। स्मृति ग्रंथों में "याज्ञवल्क्य स्मृति" अतिप्राचीन ग्रंथ है—इस याज्ञवल्क्यस्मृति में भी अन्नविपाक क्रिया और अस्थि-गणनादि आयुर्वेद के विषय स्पष्ट मिलते हैं।

वेद का समय निर्णय असम्भव होने पर भी, महाभारत के समय निर्णय का एक अपूर्व द्वार "वृहत्संहिता" में देखा जाता है। वह यह है कि—

"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ। षट्द्विक पञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञ स्यात् ॥

अर्थात् जिस समय युधिष्ठिर राज्य-शासन करते थे, सप्तर्षि मंडल मघा नक्षत्र में रहा। सप्तर्षि मंडल का यह नियम है कि, "एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम्"। आचार्य्य बाराहमिहिर ने जो गणना कर सिद्धांत किया है, उसके अनुसार युधिष्ठिर का राज्यकाल इस समय ४३९६ वर्ष पहले ठहरता है। काश्मीर के प्रसिद्ध इतिहास राजतरङ्गिणी में निर्णीत महाभारत की समय-गणना इस गणना से प्रायः ठीक-ठीक मिलती है। अतः महाभारत रचना के लिये ३६० वर्ष यदि छोड़ भी दिये जाँय, तो भी महाभारत अन्ततः ४००० वर्ष का प्राचीन है; इसमें कुछ भी संदेश नहीं करना चाहिये। (अब आप स्वयं विचार सकते हैं कि,जो लोग ऋग्वेद को केवल ४००० वर्ष मात्र का पुराना मानते हैं, वे

कहाँ तक सत्य मार्ग पर हैं) जा हो, जब इस महाभारत के "देवर्षिचरितं गार्ग्यः कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम्" तथा "श्यामायनोथ गार्ग्यश्च जाबालिः सुश्रुतस्तथा। विश्वामित्रात्मजाः सर्वेमुनयो ब्रह्मवादिनः॥"

इन दो प्रसंगों में आत्रेय और सुश्रुत के नाम मिलते हैं, तब चरक और सुश्रुत-संहिता के मूल ग्रंथ आत्रेय संहिता, अग्निवेशसंहिता, वृद्धसुश्रुत प्रभृति महाग्रंथों की विद्यमानता महाभारत के पूर्वकाल में अथवा सम समय में अवश्य प्रतीत होती है। "कठ चरकाल्लुक्" इस पाणिनीय सूत्र से भी चरक संहिता की अति प्राचीनता सिद्ध होती है। क्योंकि पाणिनि का समय अंततः दो हजार वर्ष के पूर्व निर्विवाद सर्ववादिसम्मति से सुनिर्णीत हो चुका है। अतएव प्राचीन मूल संहिताओं का अंततः चारहजार वर्ष पूर्व और वर्तमान चरकसंहिता का समय अंततः दो हजार वर्ष पूर्व का होना सिद्ध हुआ। इस विषय पर और संदेह होना नहीं चाहिये।

यूरोपीय ऐतिहासिक लोगों में सुप्रसिद्ध डाक्टर रायल अपने "Essay on the Antiquity of Hindu Medicine" नामक ग्रंथ में क्या लिखते हैं—

"The hoary works of the hindus,-Sharaka and Sasrad as the Arabs called them (evidently corruptions of the names Charaka and Susrut), were translated into Persian by Persian scholars and then into Greek by the physicians of Greece attending the courts of Alamanazer and Harun-ul-rashid of Baghdad, each of whom severally held an international congress of medical men in central India."

अर्थात् "अरबियन इतिहास में स्पष्ट लेख है कि, वे लोग 'शरक" और "ससरद" नामक दो चिकित्सा ग्रंथ हिंदुस्तानसे साथ ले गये, और पारस्य देश के पंडितों से उनका उलथा कराया। प्राचीन मिसर (इजिप्ट) देशवासियों ने, अरब देशियों से, इन महा ग्रन्थों के उपदेश लिए और मिसर देशवासियों से ग्रीसवालों ने आयुर्वेद के तत्वों को सीखा। डॉक्टर रायल आगे चलकर कहते हैं कि रूम के सुलतान "अलमंजर" ने सम्पूर्ण पृथ्वी के वैद्यों को बुलाकर एक विशाल वैद्य-सम्मेलन किया एवं ये "शरक" और 'ससरद" (अर्थात् अपने चरक और सुश्रुत) वैद्यक के श्रेष्ठ ग्रंथ माने गये और पृथ्वीमंडल के समस्त चिकित्सकोंमें समादरणीय हुए।"

"उयुन-उल्-अम्बा फितुल-कातुल-इतिब्बा" नामक अरबी ग्रंथ में भी लिखा है कि सन् ई० की आठवीं शताब्दी में भारतवर्षीय पंडितों के आधीन बगदादकी राजसभा में बैठ लोग ज्योतिष और आयुर्वेद पढ़ते थे। सरक्, ससरद और येदान नामक तीन आयुर्वेदिक ग्रंथ भारतवर्ष के लोग अरब देश ले गए। उक्त तीनों ग्रन्थ चरक, सुश्रुत और निदान नाम के अपभ्रंश जैसे हैं। इससे स्पष्ट है कि यह बात अष्टम शताब्दी की है। इसी से डाक्टर रायल महोदय का अनुमान है कि आयुर्वेद अन्ततः दो हज़ार वर्ष के पूर्व बहुत ही उन्नतावस्था को प्राप्त हुआ था।

डाक्टर वाइज ने अपने "Commentries on Hindu Medicine" नामक ग्रंथ में कहा है कि, "It was most Probably at this early period (i. e., about three centuries before Christ) that they studied the healing art with such success as to enable them to produce systematic works on medicine etc., etc.

अर्थात् खीष्ट जन्म के तीन सौ वर्ष पूर्व, हिंदुओं का चिकित्सा-शास्त्र इतनी उन्नतावस्था पर था, कि उस समय चिकित्सा विषयपर अति मनोरम प्रणाली के अनेक अपूर्व ग्रंथों की रचना हुई थी।

परंतु यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि, प्राचीन आयुर्वेद के मूल ग्रंथ इस समय प्रायः नहीं मिलते और वर्तमान चरक, सुश्रुत प्राचीन ग्रंथों के जीर्ण-शीर्ण भग्नावशेष मात्र हैं। इस बातके प्रमाण वर्तमान ग्रंथों में ही बहुत मिलते हैं, प्रतिसंस्कर्त्ताओं के सूखे लेख भी अनेक हैं।

भारतीय आयुर्वेद का इतिहास

वैदिककाल में आयुर्वेद की उत्पत्ति एवं विकास के संबन्ध में जो कथानक दिये गये हैं, वे बड़े ही चित्ताकर्षक हैं। चरक और सुश्रुत में उनका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

ब्रह्मा ने अपने ध्यान-नियोग से आयुर्वेदशास्त्र को उत्पन्न किया और प्रजापति का उसकी शिक्षा दी। प्रजापति ने अश्विनीकुमारों को बताया। वे दैवी चिकित्सक बने। तदुपरांत हिमालय पर रहनेवाले देवताओं के स्वामी इन्द्र ने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। इंद्र ने उसकी शिक्षा समस्त ऋषियों और मुनियों को दी, जो मनुष्य जाति की सेवा करने की भावना से, उसकी शिक्षा लेने को उत्साहित हुये थे। इंद्र के दो शिष्य भरद्वाज अथवा आत्रेय (प्रयाग) एवं राजा दिवोदास धन्वन्तरि (बनारस) आयुर्वेद-शास्त्र के प्रकांड पंडित एवं अनुभवी चिकित्सक सिद्ध हुये। आत्रेय को औषधि-चिकित्सा-प्रणाली (वैद्यक) एवं धन्वन्तरि ने (जो कि आयुर्वेद-शास्त्र पारंगत देवता धन्वन्तर के अवतार माने जाते हैं) चीर-फाड़ (जर्राही) प्रणाली की नींव डाली।

बहुत संभवत: भारतीय इतिहास के बौद्धकाल के आरंभ में एक नई श्रेणी के चिकित्सकों का आविर्भाव हुआ—जो सिद्ध नाम से प्रसिद्ध थे। ये लोग रसायन-विद्या द्वारा चिकित्सा करते थे और धातुओं के उपयोग से बीमारियों को अच्छा करते थे, विशेषत: पारे का अधिक उपयोग करते थे। "रसायन" तथा "वाजीकरण" इन दो विषयों में उनका अध्ययन बहुत बढ़ा-चढ़ा था।।

इस विषय में बस इतना ही कहकर, यहाँ से आगे आयुर्वेद का यथासम्भव क्रमवद्ध एवं सुविस्तृत इतिवृत्त देने का प्रयत्न किया जायगा।

वर्णनासौकर्य्यार्थ इतिहासकरों ने भारतीय आयुर्वेद के इतिहास को अधोलिखित चार भागों में विभाजित किया है—

(१) आद्य दैवकाल वा प्रभातकाल—ब्रह्मा से लगाकर इंद्र तक परंपरानुसार, जिस प्रकार आयुर्वेद का अवतरण एवं विकास हुआ, उतने काल को आयुर्वेद के इतिहास का प्रभातकाल वा दैवकाल कहते हैं; क्योंकि उक्त काल तक यह विद्या केवल स्वर्ग में, देवताओं तक ही सीमित रही। (२) मध्यकाल, जिसके पुनः ये दो भाग होजाते हैं—(अ) वैदिककाल और (आ) आर्षकाल वा संहिताकाल—भरद्वाज वा आत्रेय और धन्वन्तरि से लगाकर बौद्धधर्म के प्रचार से पूर्व का समय, इस काल के अतर्गत कहा जा सकता है। जितनी भी मौलिक (संहिताओं की) रचनाएँ हुई हैं, वे प्रायः इसी काल में हुई हैं। इसके बाद से संग्रहकर्त्ताओं का प्रादुर्भावकाल आता है। उस काल में छिन्न-भिन्न विशीर्ण प्राचीन आयुर्वेद-साहित्य का संकलन वा संग्रह एवं आपूरण हुआ। अस्तु, उसे आयुर्वेद का (३) अपराह्नकाल या संग्रह युग कहना चाहिए। आर्षयुग से लेकर भावमिश्र के युग तक संग्रहकाल कहा जा सकता है। इसी काल की आदि में रसवैद्यों का भी आविर्भाव हुआ था। अस्तु, इसे सिद्ध या तन्त्र युग भी कहते है। इसके उपरांत मुसलमानों के पदार्पण के साथ ही आयुर्वेद की रही सही गौरव-गरिमा भी विध्वस्त होकर रसातल को चली गई। अस्तु, उस काल को इसका वास्तविक (४) अवनतिकाल कहा जा सकता है। आगे इनमें से प्रत्येक काल का इतिहास, तत्कालीन लेखकों एवं उनके ग्रन्थों का संक्षेप में परिचय दिया जाता है—

आद्य दैवकाल वा प्रभात-काल

आयुर्वेद के जन्म के विषय में चरक-सुश्रुतादि ग्रंथों में इस प्रकार उल्लिखित है।

जगत् की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा के मन में यह शास्त्र पहले पहल प्रारंभ हुआ। तात्पर्य यह कि आदि पुरुष स्वयं ब्रह्मा जी आयुर्वेद के प्रथम प्रणेता और प्रवर्त्तक हुए, जो हिंदुओं की त्रिमूर्त्ति में से एक हैं। उन्होंनेप्रथम आयुर्वेदीय लक्ष-श्लोकमयी एक विशाल संहिता की रचना की, जिसे "ब्रह्म संहिता" कहते हैं। सुनते हैं, कि इस ग्रंथमें नैरोग्य-प्राप्ति एवं दीर्घ-जीवनोपाय आदि विषयों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। परंतु जब उन्होंने देखा, कि मनुष्यों की आयु और योग्यता इतनी नहीं, जो उससे पूर्णतया लाभ उठा सकें, तब उन्होंने उसे संक्षेप कर दिया। इसमें रोगों के निदान, लक्षण और चिकित्सा का सविस्तरोल्लेख है। इसे भारतवासियों की प्रचीनतम् रचना कहनी चाहिए। पर आजकल यह कहीं नहीं

मिलती; क्योंकि न यह किसी हृदय पट पर अंकित (अर्थात् न किसी को याद) है और न किसी काग़ज़ पर लिखा है। कोई-कोई कहते हैं, कि सुश्रुत के पद्य भाग में, इस ग्रन्थ के श्लोकों की झलक पाई जाती है।

अपनी पुस्तक रचने के बाद ब्रह्मदेव ने संसार के उपकारार्थ दक्षप्रजापति को आयुर्वेद पढ़ाया। उन्होंने भी अपने नाम से एक ग्रंथ निर्माण किया, जिसे "प्रजापति-संहिता" कहते हैं। यह ग्रंथ भी आजकल अप्राप्य है।

फिर दक्ष प्रजापति ने स्वर्ग के वैद्य दोनों अश्विनीकुमारों को आयुर्वेद की शिक्षा दी। यह दोनों सहोदर भ्राता थे, जिनके पितृदेव सूर्य और माता छाया थीं। यह दोनों भाई यूनानी हकीम दैस्कूरियन से मिलते जुलते हैं। क्योंकि इन्हें भी देववैद्य और शल्यतन्त्रविद् समझा जाता है। प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन से यह मालूम होता है कि यह दोनों भाई शस्त्र-कर्म में अत्यन्त दक्ष और सिद्धहस्त थे। इन दोनों भाइयों ने, इस विषय में बड़ी भारी उन्नति की और ख़ूब नाम कमाया। सुरपुरी में ये दोनों भाई ही देवताओं की चिकित्सा करते थे। इनके विषय में अतीव विलक्षण एवं विस्मयकारक आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं।

चरक में उल्लेख है—

"अश्विनौ देव भिषजौ यज्ञ वाहावितिस्मृतौ।
दक्षस्यहि शिरश्छिन्नं पुनस्ताभ्यां समाहितम्॥
प्रशीर्णादशनाः पूष्णो नेत्र नष्टे भगस्य च।
वज्रिणश्च भुजस्तम्भस्ताभ्यामेव चिकित्सितः॥
चिकित्सितस्तु शीतांशुर्गृहीतो राजयक्ष्मणा।
सोमान्निपतितश्चन्द्रः कृतस्ताभ्यां पुनः सुखी॥
भार्गवश्च्यवनः कामीवृद्धः सन्विकृतिंगतः।
वीतवर्ण स्वरोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषगुत्तमौ।
बभूवतुर्भृशंपूज्याविन्द्रादीनां महात्मनाम्॥
ग्रहाः स्तोत्राणि मन्त्राणि तथान्यानि हवींषिच।"
धूम्राश्च पशवस्ताभ्यां प्रकल्प्यन्ते द्विजातिभिः॥
(चरक)

अर्थात् "अश्विनीकुरार देवताओं के वैद्य हैं। इनको यज्ञ में भाग भी दिया जाता है। इन्होंने दक्ष के कटे हुये सिर को जोड़ दिया था। पूषा देवके गिरे हुये दाँतों को और भगदेव के नष्ट नेत्रों को फिर उत्तम बना दिया था। इंद्र की स्तम्भित भुजाओं की चिकित्सा की थी, राजयक्ष्मा से व्याकुल हुये चन्द्रमा को अश्विनीकुमारों ने ही अच्छा किया। सोमभाव से नष्ट हुये चन्द्रमा को इन्होंने सुखी किया और भृगु के पुत्र च्यवनऋषि कामवश होने से वृद्धावस्था में विकृत हो गये थे, उनको भी इन्होंने ही वर्णस्वरयुक्त पुनः युवा बना दिया। इस प्रकार के बहुत से योग्य और उत्तम चिकित्सा-कर्म किये। उन कर्मों के प्रभाव से यह अश्विनीकुमार इंद्रादि देवता और महात्माओं के विशेष पूजनीय हुये। इसीलिये द्विजाति भी उनके अर्चना, मंदिर, स्तोत्र, मन्त्र, घृतकी आहुति, धूप और यज्ञ-याग करते हैं।"

भावप्रकाश में भी लिखा है—

"स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नं भैरवेण रुषाऽथ तत्।
अश्विभ्यां संहितं तस्मात् तौ जातौ यज्ञभागिनौ॥
देवासुररणे देवा दैत्यैर्ये सक्षताः कृताः।
अक्षतास्ते कृताः सद्यो दस्राभ्यामद्भुतं महत्॥
वज्रिणोऽभूद्भुजस्तम्भः स दस्राभ्यां चिकित्सितः।
सोमन्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव सुखीकृतः॥
विशीर्णाः दशनाः पुष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च।
शशिनो राजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यां ते चिकित्सिताः॥"
(भा० १ भ०)

अर्थात्—(१) इन्होंने दक्ष प्रजापति के कटे हुये शिर को जोड़ दिया था, (२) जब कभी देवताओं और राक्षसों में संग्राम होता था, तो यह घायल देवताओं के क्षतों आदि का उपचार एवं चिकित्सा किया करते थे। अस्तु, (३) एक बार एक युद्ध में महाराज इन्द्र का भुजा नाकारा हो गया था; परन्तु इनकी चिकित्सा से वह सर्वथा पूर्ववत् हो गया, (४) सोम भाव से नष्ट हुए चन्द्रमा को इन्होंने सुखी किया। (५) पूषा देवता के कुछ दाँत गिर गए थे, इन्होंने उसे पुनः लगा दिये थे। (६) भगदेवता की बिगड़ी हुई आँखों को इन्होंने ठीक किया अर्थात् उन्हें चक्षुमान कर दिया था और (७)

चन्द्रदेव को राजयक्ष्मा का जो रोग हो गया था, वह भी इन्हीं की चिकित्सा से अच्छा हुआ, (वेद के अनुसार–विश्पला नाम्नी एक कुमारी लड़की की, किसी युद्ध में टाँग कट गई थी, उसकी जगह इन देव वैद्यों ने लोहे की कृत्रिम टाँग लगा दी थी) इत्यादि, इत्यादि।

इन्होंने ने भी अपने नाम से एक ग्रन्थ निर्माण किया था, जिसे "अश्वि-संहिता" कहते हैं। किन्तु, आजकल यह ग्रंथ अप्राप्य है।

अश्विनीकुमारों की उद्भट विद्वता एवं उनकी अद्भुत चिकित्सा-प्रणाली पर देवराज इन्द्र मुग्ध होगए। वे हिमालय के उस पार (तिब्बत?) रहा करते थे। उन्होंने इनसे इस विद्या के सीखने की इच्छा प्रगट की। अश्विनीकुमारों ने महाराज इन्द्र को प्रेमपूर्वक पूर्णतया आयुर्वेद की शिक्षा प्रदान की। उन्होंने भी एक संहिता की रचना की, जो "वलभित्-संहिता" के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसका भी आजकल पता नहीं लगता।

बस यहीं से, इतिहास के इस प्रथमकाल-दैव-काल का अन्त होता है। अब तक आयुर्वेद स्वर्गलोक में ही आबद्ध था, मर्त्य-लोक में इसका प्रवेश नहीं हुआ था। इस प्रकार ब्रह्मा से लेकर इन्द्र तक परम्परा से आयी हुई आयुर्वेद-विद्या के समय निरूपण का कार्य हमारे लिए सर्वथा अशक्य है। फिरभी किसी-किसी पाश्चात्य ऐतिहासिक ने इसके समय निर्धारण का साहस किया है। परन्तु उसे अभी संदेह-रहित न समझकर, यहाँ नहीं दिया गया। श्रीमान् महामहोपाध्याय कविराजगणनाथसेनजी महोदयने इस देवयुगाख्य-काल के विषय में केवल इतना ही लिखा है, कि वह अति प्राचीन एवं स्मरणातीत है। हम भी यही कहकर इस वार्त्ता को यहीं समाप्त करते हैं।

इसके उपरान्त इसके द्वितीय-काल—संहिता-काल का प्रारम्भ होता है।

संहिता-काल या आर्ष-काल

जैसा कि ऊपर हमने लिखा है, इन्द्र तक यह आयुर्वेद-विद्या केवल स्वर्ग में ही रही। फिर इन्द्र से एक ओर भरद्वाज ऋषि ने इस विद्या की शिक्षा पाकर मर्त्य-लोक में आत्रेय आदि ऋषियों द्वारा काय-चिकित्सा का, जिसे आत्रेय-संप्रदाय या चरक-संप्रदाय कहते हैं, स्थापन किया और दूसरी ओर धन्वन्तरिने शस्त्र-चिकित्सा की, जिसे धन्वन्तरि-संप्रदाय वा सुश्रुत-संप्रदाय कहते हैं, नींव डाली। पुनः क्रमशः कार्य विभागानुसार उनसे ही अष्टाङ्ग-वैद्यक-तंत्रकारों का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार मर्त्य-लोक में इस अष्टांग-विद्या के आदि प्रवर्त्तक इन्द्र के शिष्य धन्वन्तरि और आत्रेय से लेकर आगे के काल को हम संहिता-काल वा आर्ष-काल कहेंगे। इतिहासकारों ने आज से २१०० वर्ष पूर्व, एकाधिक सहस्र वर्ष व्यापी इस युग का समय निश्चित किया है।

वैदिकाचार-गौरव के नष्ट होने और महर्षिगण के तीव्र प्रभावके लुप्तप्राय होने के उपरांत, आज २५०० वर्ष हुए, कि नवीन धर्म प्रवर्त्तक भगवान बुद्ध का आविर्भाव हुआ। आज से २००० वर्ष से किञ्चित् पूर्व चरकादि वैद्यक के प्रति संस्कर्त्ताओं के प्रादुर्भूत होने से, यह प्रगट होता है कि, उस समय में आर्ष-ग्रन्थ प्रतिसंस्कारापेक्षणीय थे। एवं उनकेथोड़े काल बाद ही दृढबल वाग्भटादि वैद्यकाचार्य्य गण हुए। अत: आज से १५०० वर्ष पूर्व से ही आर्षयुग का अंत हो गया, ऐसा कहा जा सकता है। परंतु आजकल जो प्राचीन ग्रन्थ एवं टीका पाई जाती है, उससे यह स्पष्ट साबित होता है, कि आठसौ वर्ष पहले प्राचीन समयके लिखे हुए ग्रंथ पाये जाते थे।

आयुर्वेद के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है, कि संहिताकारों का समय और उससे आगे का संबन्धित-काल सबही प्रायः आयुर्वेद का स्वर्ण-समय अथवा दूसरे शब्दों में आयुर्वेद का मध्यान्ह-सूर्य कहा जा सकता है। इस काल में महर्षियों ने गजाश्व-आयुर्वेदादि नाना उपाङ्ग और और मानुष-चिकित्सा-शास्त्र आदि का लोक में प्रणयन एवं प्रचार किया। जितनी भी मौलिक रचनाएँ लब्ध होती हैं, वह इसी काल की परमविभूति हैं। इसके अनन्तर अपरान्ह-काल में आयुर्वेद की जो स्थिति थी, वह प्राय: बहुत ही विकट पायी जाती है, जिसका आगे उल्लेख किया जायगा।

आयुर्वेद के अष्टांग

कहा जाता है, कि आयुर्वेद अष्टांग-शास्त्र है। इन आठ अंगों के नाम ये हैं—

"शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्यमगद-तन्त्रं रसायन-तन्त्रं वाजीकरण तन्त्रमिति।" (सु० सू० १ अ०) अन्यच्च—

"काय-चिकित्सा शालाक्यं शल्यापहर्तृकं विषगरवैरोधिक प्रशमनं भूतविद्या कौमारभृत्यं रसायन वाजीकरणम्।" (च० सू० ३० अ०)

अर्थात्–काय चिकित्सा, शल्यतन्त्र, शालाक्यतन्त्र भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायन और वाजीकरण। इन चिकित्साङ्गों में रसायन और वाजीकरण स्वस्थ की स्वास्थ्य रक्षा तथा जीर्ण-शीर्ण, निस्तेज रोगी को बल-वर्ण यौवनादि देने के लिये और शेष ६ चिकित्साङ्गों का उद्देश्य रोगी का रोग निवारण है। आज कल जिस प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा के अनेक भिन्न-भिन्न विशेषज्ञ चिकित्सज्ञ दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार प्राचीन समय में भी आयुर्वेद के अनेक विशेषज्ञ (Specialists) थे। वे लोग काय-चिकित्सक (Physician), शल्यतान्त्रिक, शल्यापहर्त्ता वा जर्राह (Surgeon), शालाकी चिकित्सक (Specialists in Eye, Ear Nose and Throat diseases), अगदतान्त्रिक या विष-चिकित्सक (Toxicologists), भूतवैद्य, कौमारभृत्यक, रासायनिक और वाजीकरणिक कहे जाते थे। आयुर्वेद की इन सब भिन्न-भिन्न शाखाओं की बहुत उन्नति हुई थी और कम से कम प्रायः हर एक शाखाओं की आठ या दश संहितायें (Authoritative works) बन गई थीं। इस प्रकार पचास साठ ग्रंथो के नाम और पाठोद्धार सहित सात आठसौ वर्ष पहिले बनाई हुई टीका, पाई जाती है। यह बहुत दुःख का विषय है, कि इन मूल ग्रंथों में से अधिकांश, राष्ट्र विप्लव आदि अनेक कारणों से लुप्त हो गये हैं। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि जितने प्रामाणिक ग्रंथ आज कल पाये जाते हैं, वे सब अधिकांश केवल प्राचीन संहिताओं का प्रतिसंस्कार (Recompilations) या संग्रह मात्र ही हैं। आगे अब हम क्रमशः इनमें से प्रत्येक अंग के प्रवर्त्तक, एतत्कालीन विद्वानों एवं उनके ग्रंथों आदि का संक्षिप्त विवरण (प्रत्यक्ष शारीर प्रथम भागके उपोद्घात एवं कतिपय अन्य ग्रंथों एवं लेखों के आधार पर) लिखते हैं।

(१) काय-चिकित्सा

कायचिकित्सा-(Practice of Medicine) आयुर्वेद वा चिकित्सा-शास्त्र का वह अंग, जिसमें ज्वर अतिसार आदि कायिक रोगों की चिकित्सा का उल्लेख होता है। काय-चिकित्साका शब्दार्थ शारीर-चिकित्सा है। यों तो सभी चिकित्सा-शास्त्र इस चिकित्साङ्ग के अंतर्भूत ही हैं, तथापि इसमें विशेषता यह है कि, काटना फाड़ना आदि शल्यतन्त्र तथा शालाक्यतंत्र के कामोंको न कर, केवल औषधों से रोगों का प्रतिकार करना काय-चिकित्सा का प्रधान कार्य है। इस समय आयुर्वेद के अन्यान्य अंगों का विलोप होने पर भी काय-चिकित्सा वर्तमान रहने से आयुर्वेद का गौरव रक्षित हो रहा है। इस अंग के आदि प्रवर्त्तक महर्षि आत्रेय हैं।

महर्षि आत्रेय

चरक संहिता में लिखा है कि, एक समय मर्त्यलोक में लोगों को रोगों से पीड़ित देखकर दयार्द्र हृदय भरद्वाज, अङ्गिरा, जमदग्नि, वसिष्ठ, विश्वामित्र प्रभृति अनेक महर्षियों ने हिमालय के सानुप्रदेश में महासभा की थी, उस सभा के निर्णय के अनुसार भरद्वाज मुनि देवलोक में जाकर इन्द्र से आयुर्वेद का अध्ययन करके आये। उन भरद्वाज से आत्रेय ऋषि ने आयुर्वेद की शिक्षा पायी। किसी-किसी के अनुसार भरद्वाज और आत्रेय एक ही व्यक्ति हैं। अस्तु, उनके अनुसार स्वयं महर्षि आत्रेय ने राजा इन्द्र से आयुर्वेद सीखा।

इनकी लिखी हुई कई पुस्तकें हैं, जिनमें से "अत्रि-संहिता" विशेष उल्लेखनीय है। यह ग्रंथ चार भागों में विभक्त है, जिनमें कुल ४६१०० श्लोक हैं। भारतीय चिकित्सा-शास्त्र विषयक यह प्रथम उल्लिखित पुस्तक है, जो श्रेष्ठ एवं प्रमाण मानी जाती है और तदुत्तरकालीन सभी ग्रंथों की उद्गम है।

पीछे आत्रेय के ६ शिष्य हुये। उन ६ शिष्यों ने अपने-अपने नामों से एक-एक संहिता की रचना कर मर्त्यलोक में आयुर्वेद का प्रचार किया। उन ६ शिष्यों के नाम अग्निवेश, भेल, जतुकरण, पराशर, हारीत और क्षारपाणी थे। इनके मध्य महर्षि अग्निवेश ही सबकी अपेक्षा कुशाग्र बुद्धि एवं मेधावी

थे। यही वर्त्तमान चरक-संहिता के पितृस्वरूप हैं। इनकी प्रणीत अग्निवेश-संहिता ही वर्त्तमान चरक-संहिताका मूल ग्रन्थ है, क्योंकि वर्त्तमान चरक संहिता इस मूल ग्रन्थ का प्रतिसंस्कृत और दृढबल नामक आचार्य्य से सम्पूर्ण किया हुआ भग्नावशेष है।

अंजननिदान को भी जिसमें अति संक्षेप में एवं रमणीयतापूर्वक रोगों का निदान वर्णित है, महर्षि अग्निवेशकृत मानते हैं। महर्षि आत्रेय के द्वितीय शिष्य भेल ने भी अपने नाम से एक संहिता की रचनाकी, जिसे "भेलसंहिता" कहते हैं। यह भी प्रायः दुष्प्राप्य है। भेलसंहिता और भालुकितंत्र दोनों एक ग्रन्थ नहीं। आत्रेय सम्प्रदाय की समादृत पुस्तक जतूकर्ण निर्मित "जतुकर्णसंहिता" भी सम्प्रति अति दुर्लभ है। यह जतूकर्ण-संहिता नामक गद्यात्मक-रचना-भूयिष्ठ महाग्रंथ शिवदास के समय में सुलभ था; क्योंकि उसने चक्र-संग्रह-टीका में बहुधा जतूकर्ण के पाठों का उद्धृत किया है। पराशर कृत "पराशर संहिता" और क्षारपाणि रचित "क्षारपाणि-संहिता" के पाठ न केवल विजयरचित और श्रीकंठ द्वारा बहुधा उद्धृत ही किये गए हैं। अपितु शिवदास के समय में भी ये सुलभ थे, जैसा चक्रसंग्रह की टीका में, उनके उद्धृत पाठों से ज्ञात होता है। हारीत मुनि कृत "हारीतसंहिता" चक्रपाणि, विजय, श्रीकंठ और शिवदास आदि के समय में सुलभ थी, किंतु अब वह सुदुर्लभ है। आजकल हारीतसंहिता नाम से जो एक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, उसे स्वप्न में भी आर्ष ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि पूर्वोक्त चक्रादि व्याख्याकारों से लेकर शिवदास तक के उद्धृत पाठ इस हारीतसंहिता में नहीं मिलते। अप्रौढ रचना के कारण, इस ग्रंथ की पर्यालोचना करने पर इसमें व्याकरण की अशुद्धि, छन्दोभङ्ग आदि दोष दिखाई पड़ते हैं और इसमें वाग्भटादि के नाम का निर्देश आया है। इससे यह प्रगट होता है कि किसी सर्वथा अर्वाचीन एवं अल्पज्ञ व्यक्ति ने इसकी रचना की है। किसी-किसी के मत से हारीतसंहिता और अत्रिसंहिता दोनों एक ही ग्रंथ हैं। पर भावप्रकाशकार अपने ग्रंथ में अत्रिसंहिता के कुछ श्लोक लेते हैं, जिनका हारीतसहिता में कहीं पता भी नहीं लगता, जिससे उपर्युक्त वचन का स्वयं खंडन होजाता है।

इनके अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के ये दो ग्रंथ और हैं—

(१) खरनाद-संहिता और (२) विश्वामित्र-संहिता। अष्टांग-हृदय की टीका में हेमाद्रि ने खरनाद के पाठ उद्धृत किये हैं। हेमाद्रि ने खारणादि नाम से भी कोई-कोई पाठ उद्धृत किया है। यह पूर्णतया ज्ञात नहीं होता, कि वह खरनाद ही का है वा किसी अन्य—खरनाद के पुत्र का। अरुणदत्त ने भी बहुधा खरनाद के पाठ उद्धृत किये हैं। इनमें से विश्वामित्र-संहिता अति प्राचीन है। चक्रपाणि ने चरक और सुश्रुत की टीका में इसके अवतरण दिये हैं। चक्र की टीका में मुष्क के वर्णनावसर पर शिवदास ने भी इसके पाठ उद्धृत किये हैं। टीकाकारों ने उक्त-संहिताद्वय के पाठ प्रायः कायचिकित्सा के प्रसंग में उद्धृत किए हैं, संभवतः इसी लिए इसका कायचिकित्सातंत्र में अंतर्भाव किया गया।

चरक-संप्रदाय वा आत्रेय-संप्रदाय

आत्रेय सम्प्रदाय वा चरक सम्प्रदाय महर्षि आत्रेय का शिष्य सम्प्रदाय शारीरिक और मानसिक रोग समूहों की औषधादि द्वारा चिकित्सा करते थे। ये शस्त्र-चिकित्सक नहीं थे, इसलिए "काय चिकित्सक" (Physicians) नाम से प्रसिद्ध थे। उनका साधारण नाम आत्रेय सम्प्रदाय (School of physicians) था। ये जाति के ब्राह्मण थे; इसलिए शस्त्र-चिकित्सा के प्रति इनका विशेष अनुराग न होना ही स्वाभाविक था।

आत्रेय का प्रादुर्भाव काल

डॉक्टर हार्नले अपने अंगरेजी ग्रंथ "मानव शरीरास्थियाँ" (Bones of the Human body) के उपोद्घात में लिखते हैं, कि गौतम-बुद्ध के ज़माने में भारतवर्ष में दो मुख्य विद्यापीठें थीं, जिनमें विश्व भर की विद्याएँ सिखलाई जाती थीं। उनके आचार्य उद्भट विद्वान हुआ करते थे। उनमें आयुर्वेद-विद्या की भी शिक्षा दी जाती थी। अतएव उनमें से एक विश्वविद्यालय काशी या बनारस में पूरब की ओर और दूसरा जो पहिले की अपेक्षा अधिक प्रख्यात था पश्चिम-दिक् तक्षशिला में झेलम नदी के तट पर स्थित था। इसी उत्तर कथित विश्व-

विद्यालय में गौतमबुद्ध-काल में भारतीय आयुर्वेद के निष्णात आचार्य महर्षि आत्रेय थे। इससे यह ज्ञात होता है, कि संभवत: वह ईसा से पूर्व छठवीं शताब्दी में हुये होंगे। इसी प्रकार एक और अँगरेज लेखक रॉकहिल "बुद्धका जीवन-चरित" (Life of Buddha) नामक अपने स्वरचित ग्रंथ के ६९ पृष्ठ पर लिखते हैं, कि जीवक नामक एक प्रसिद्ध वैद्य ने जो बुद्ध का समकालीन था, तक्षशिला में आत्रेय से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। यहाँ पर यह बात स्मरण रखना चाहिए, कि यह डॉक्टर हार्नले एवं रॉकहिल कथित आत्रेय हमारे पूर्व-कथित भरद्वाज शिष्य आत्रेय—"अत्रि-संहिता" प्रणेता महर्षि पुनर्वसु आत्रेय नहीं; अपितु ये बुद्धकालीन भिक्षुक आत्रेय हैं, जिनका बुद्ध-धर्म की आख्यायिकाओं में उल्लेख आया है। हमारे प्रसङ्गागत आत्रेय-पुनर्वसु-आत्रेय बुद्धकाल से बहुत पूर्व, चरक, सुश्रुत से भी बहुत पहले हुये हैं।

इनके अतिरिक्त एक और आत्रेय हुए हैं, जो शालाक्य तंत्रकार थे और उन्हें कृष्ण आत्रेय कहते हैं। उनके द्वारा प्रणीत शालाक्यतंत्र को कृष्णात्रेय तन्त्र कहते हैं।

(२) शल्यतन्त्र

शल्यतन्त्र—(Surgery) आयुर्वेद का वह अंग जिसमें शस्त्र-साध्य रोगों के निवारण तथा शल्यों के निकालने की विधि पूर्ण रूप से वर्णित है। चीरफाड़, जर्राही।

सुश्रुत के अनुसार यही चिकित्सा का प्रथमाङ्ग है। तृण, काष्ठ, पाषाण, पांशु, धातु, इष्टक, अस्थि, केश, नख आदि कारणवश शरीर में घुस और मल-मूत्र को रोक पीड़ा-दायक होते हैं, उन्हें निकालने के लिये यन्त्र, क्षार एवं अग्नि बनाने तथा लगाने और नाना प्रकार रोग निर्णय करने का उपाय इस तंत्र में लिखा है।

शल्यतन्त्र का मुख्य ग्रन्थ सुश्रुत-संहिता है। प्राचीनकाल में शल्यतन्त्रविद् सुश्रुत-संप्रदाय के वैद्य बात की बात में रोगी की प्राणरक्षा के लिए हस्तपादादि का छेदन निरापद रूप से कर सकते थे। आधुनिक समय में पश्चिमी चिकित्सा में जो कुछ चीरफाड़ आदि चिकित्सा प्रचलित है, उन सभी के श्रेय का मूल यह शल्यतन्त्र ही है, इसमें संदेह नहीं। यद्यपि प्राचीन मूल सुश्रुत संहिता आज हमें उपलब्ध नहीं, तथापि प्रतिसंस्कर्त्ता प्रमाद एवं प्रक्षेपयुक्त इसका जो जीर्ण शीर्ण भग्नावशेष आज हमें प्राप्त है, उसमें तथा तद् उपजीवी ग्रंथों में वर्णित शल्यतंत्र विषयक स्वल्प विवरण को देखकर ही हम लोग आश्चर्यचकित होते हैं। यदि—

"औपधेनव मौरभ्रं सौश्रुतं पौषकलावतम्।
शेषाणां शल्यतंत्राणांमूलान्येतानिनिर्दिशेत:॥"

इस श्लोक में निर्दिष्ट आयुर्वेद के प्रधान ग्रन्थ इस समय मिल जाते तो, कितने अपूर्व तत्त्व सुनकर जगत् को विस्मित होना पड़ता। इसके आदि प्रवर्त्तक धन्वन्तरिजी महाराज हैं।

धन्वन्तरि

धन्वन्तरि देववैद्य कहे जाते हैं। रोमनिवासियों के समीप, जो पद इमहूतिब को या यूनानियों के निकट असक्लीबियूस को प्राप्त है, वही पद भारतवासियों के नज़दीक धन्वन्तरि महाराज को प्राप्त है। इनकी उत्पत्ति के विषय में एक विलक्षण आख्यायिका प्रसिद्ध है। कहते हैं, एक बार भूमण्डल पर किसी एक जनपदोध्वंसक महामारी फूट पड़ी, जिसके कारण देवगण भी बहुत ही भयभीत हो गये। वे सब मिलकर विष्णु के पास इस विचार से गये, जिसमें वे उनसे अपनी रक्षा का उपाय पूछें। विष्णु ने उनसे कहा, जिस प्रकार हो सके क्षीर-सागर को मंथनकर उसमें से अमृत प्राप्त करो। यह कार्य था बड़ा कठिन। अतएव अखिल देवतागण एवं राक्षसों ने इसी में अपना कल्याण समझा कि, पारस्परिक वैमनस्य एवं वैरभाव को तिलांजली दे दें और एक मत होकर काम करें। अस्तु, उन्होंने वासुकी नाग को मंदराचल के चारों ओर आवेष्टितकर, उसे क्षीरसागर में खड़ा करके बलपूर्वक मंथन करना प्रारम्भ किया। वासुकी नाग की पूँछ तो देवताओं की ओर थी और शिर राक्षसों की ओर। इस प्रकार कुछ काल तक वे उसे बिलोते रहे। सर्प के फण के समीप रहने और उसके विषैले फुफकारों के कारण राक्षसगण काले वर्ण के हो गए।

परिणामत: क्षीरसागर से अमृत के सहित चौदह रत्न प्राप्त हुए, जिनमें सबके अंत में श्वेत वस्त्र धारण

किये एक हाथ में अमृत का प्याला लिये, हमारे धन्वन्तरि महाराज प्रादुर्भूत हुए। पुनः क्षीरसागर से प्राप्त यह १४ रत्न, देवता एवं राक्षसों के बीच विभाजित किए गए। महाराज धन्वंतरि अमृत के प्यालासहित देवताओं के हिस्से में पड़े और उनके प्रधान वैद्य स्वीकार किए गए। इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होने पर, जब एक बार देवराज इंद्र ने स्वर्ग से इस मर्त्यलोक पर दृष्टिपात की, तब उन्होंने देखा कि यहाँ पर बहुत से लोग व्याधि एवं दुःख से पीड़ित हैं। उन्होंने महाराज धन्वंतरि को आज्ञा दी, कि वे भूलोक में जाकर उनके कष्ट दूर करें। अतएव उन्होंने महाराज इंद्र की आज्ञा मानकर काशीराज के यहाँ देवदास के रूप में अवतीर्ण होकर, इस शुभ कार्य का संपादन किया।

सुश्रुत-संहिता में आयुर्वेदागम कुछ दूसरे प्रकार से लिखा है। ब्रह्मा जी से लगाकर इंद्र तक गुरुपरम्परा तो पूर्वोक्त प्रकार ही है; परन्तु इसके सिवाय लिखा है, कि धन्वन्तरि जी ने इंद्रसे आयुर्वेद के उपदेश पाये और मर्त्यलोक-वासियों को नाना प्रकार की पीड़ाओं अथच रोगों से आर्त्त देखकर काशी धाम में काशीराज दिवोदास * रूप से अवतीर्ण हुए।

* नोट—गरुड़पुराण (अ० १३९ श्लो० १०-१९) में देवदास को धन्वन्तरि का अवतार नहीं लिखा, अपितु उन्हें धन्वन्तरि की चौथी पीढ़ी में अर्थात् प्रपौत्र लिखा है। परंतु सुश्रुत-संहिता में देवदास और धन्वन्तरि दोनों को एक ही व्यक्ति स्वीकार किया है। उसके अनुसार देवदास ही धन्वंतरि था।

दिवोदास या काशीराज

पूर्वोक्त कथनानुसार दिवोदास महाराज धन्वंतरि के अवतार माने जाते हैं। वह बनारस या काशी के राजा थे, अतः उनको काशीराज भी कहते हैं। उनके पिता का नाम सदेव था। उनका पाणिग्रहण महाराज ययाती की राजकुमारी माधवी से हुआ था।

दिवोदास या काशीराज आयुर्वेद विद्या के उद्भट पंडित थे। कहते हैं कि ये अत्यन्त सदाचारी एवं ईश्वर भक्त थे। रोगियों की चिकित्सा बहुत ही ध्यानपूर्वक और चित्त लगाकर करते थे। उन्होंने अपने नाम से एक संहिता की रचना की, जिसे "धन्वन्तरि-संहिता" कहते हैं। किसी-किसी के मत से दिवोदास ने द्रव्यगुण विषयक भी एक ग्रन्थ लिखा है, जिसे राजनिघंटु कहते हैं। परन्तु दूसरों के मत से वह एक और ही धन्वन्तरि थे। जो राजा विक्रमाजीत के समय में हुए हैं। उक्त राजनिघण्टु उन्हीं की कृति है।

विश्वामित्र पुत्र सुश्रुत, औपधेनव- औरभ्र, पौषकलावत और गोपुररक्षित प्रभृति शिष्यगण ने दिवोदास काशीराज से आयुर्वेद का अध्ययन किया। धन्वन्तरिजी के प्रधान शिष्य विश्वामित्र पुत्र सुश्रुत जाति के क्षत्रिय थे और काशीराज दिवोदास भी स्वयं क्षत्रिय थे। सुतरां शल्यतन्त्र वा शस्त्रचिकित्सा को ही प्रधान समझकर उन्होंने आयुर्वेद की चर्चा की। सुश्रुतादि ऋषियों ने भी अपने नामों से एक-एक संहिता ग्रन्थ रचकर, आयुर्वेद का प्रचार किया। इन संहिताओं में सुश्रुत-संहिता ही प्रधान गिनी जाती थी। परन्तु दुःख की बात है कि अब यथार्थ सुश्रुत-संहिता उपलब्ध नहीं होती। वर्त्तमान सुश्रुत-संहिता भी मूलबद्ध सुश्रुत ग्रंथ का नागार्ज्जुनकृत प्रतिसंस्कृत और लेखक प्रमाद एवं प्रक्षेपों से दूषित भग्नावशेष मात्र है। औषधेनवतन्त्र और औरभ्रतन्त्र-इन दोनों तंत्रोंके संप्रति सर्वथा नाम मात्र शेष रह गये हैं। इनके उद्धृत प्रमाण भी विरला ही मिलते हैं। चक्रपाणि ने सुश्रुत की भानुमति नामक टीका में पौष्कलावत-तन्त्र के उद्धरण दिये हैं। जनश्रुति है, कि धन्वंतरि शिष्य गोपुररक्षित कृत एक और तंत्र है, जिसे गोपुररक्षित-तंत्र कहते हैं। परंतु उसके पाठ अभी तक कहीं नहीं मिले। किसी-किसी के मत से संभवतः 'गोपुर' और "रक्षित" ये दो व्यक्तियों के नाम हैं और इनके लिखे हुए दो तंत्र हैं। इनके अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के नीचे लिखे हुए कई एक ग्रंथ और हैं, जिनका यहाँ संक्षिप्त परिचय देना उचित जान पड़ता है। यथा—

(१) वैतरण-तन्त्र—प्राचीन व्याख्याकारों ने बहुधा इसके पाठ अपनी टीकाओं में उद्धृत किए हैं। (२) भोजतन्त्र वा भोजसंहिता—शल्यतांत्रिकों का यह अतिबृहत् तंत्र था, ऐसा उनके शतशः उद्धृत पाठों से ज्ञात होता है। डल्लन ने सुश्रुत की

टीका में भोज को सुश्रुतादि के समकक्ष महर्षि लिखा है। अस्तु, यह संदेह न करना चाहिए कि यह धारेश्वर नृपति भोज हैं। धारेश्वर भोजकृत भी राजमार्त्तण्डादि वैद्यक संग्रह-ग्रन्थ हैं, परन्तु वे भोजसंहिता की अपेक्षा बहुत ही अर्वाचीन हैं और उनका वैद्यक के अपराह्नकालीन ग्रन्थों में अन्तर्भाव होता है। भोजराज की अपेक्षा भोजमुनि के अति प्राचीन होने के कारण, कोई-कोई इन्हें वृद्ध-भोज संज्ञा से अभिहित करते हैं। प्रायः सभी प्राचीन टीकाकारों ने भोज-संहिता के पाठ अपनी टीकाओं में उद्धृत किये हैं। (३) करवीर्य्यतन्त्र-करवीर्य्याचार्य (करवीराचार्य्य ?) कृत यह तन्त्र टीकाकारों के समय बहुत प्रसिद्ध नहीं था। (४) भालुकितन्त्र—जैसा कि हमने पहले लिखा है, यह भेल-संहिता से पृथक् हो शल्य-चिकित्सा विषयक एक तंत्र है। डल्हन ने सुश्रुत की टीका में तथा विजयरक्षित और श्रीकण्ठ ने निदान की टीका में भी भालुकी-तंत्र के पाठ उद्धृत किये हैं। पर म० म० श्री कविराज गणनाथ सेन जी महोदय ने चक्रपाणि के वचन को प्रमाण मानकर यन्त्र-शस्त्रादि समन्वित इस तंत्र को शल्य-तन्त्र विषयक ही निर्णीत किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त नौ शल्यापहर्त्ताओं के तंत्रों का हमने परिचय कराया। इनके अतिरिक्त (५) कपिल और (६) गौतम नाम के दो और तंत्र हैं, जिनके कतिपय उद्धृत पाठों से ऐसा अनुमान होता है, कि कदाचित् वे चिकित्सा विषयक हैं।

ज्ञात रहे, धन्वन्तरि संप्रदाय वा सुश्रुत संप्रदाय-इन शस्त्र-चिकित्साप्रिय सुश्रुतादि महर्षिगण का साधारण नाम धन्वन्तरि-सम्प्रदाय वा सुश्रुत-सम्प्रदाय वा शल्यतान्त्रिक-सम्प्रदाय (School of Surgeons) कहकर विख्यात था। यह प्रधानतः शस्त्र-चिकित्सक थे। प्रथम ही कहा गया है, कि इनके आदि गुरु क्षत्रिय थे और इनके शिष्य भी प्रायः क्षत्रिय ही थे; इसलिए शस्त्र-चिकित्सा के प्रति इनका भी विशेष अनुराग होना स्वाभाविक था।

चरक

कहते हैं, चरक अहिपति भगवान शेष के अवतार हैं, जिन्होंने स्वयं पतंजलि रूप में अवतीर्ण होकर जीर्णविशेष अग्निवेश-तंत्र का प्रतिसंस्कार किया, जिसे चरक-संहिता कहते हैं।

यहाँ पर यह बतला देना कदाचित् अप्रासंगिक एवं अनुचित न होगा, कि प्राचीन समय में सर्प देवतुल्य एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे। उस अतीतकाल में मिश्रदेशवासियों, यूनानियों एवं अन्य प्राचीन जातियों, यथा भारतनिवासियों ने उनको विद्या एवं नित्यता का आदर्श माना है। अतः मिश्र के प्राचीन पादरी अपने आपको 'नागदेव का पुत्र" इस उपाधि से विभूषित किया करते थे। क्योंकि उनके समीप भी नाग बुद्धिमानी एवं अविनाशत्व के उदाहरण स्वरूप थे। प्राचीन यूनानियों का भी संभवतः ऐसा ही सिद्धांत था; क्योंकि असकलीबियूस (यूनानी देववैद्य) की मूर्तियों में उसकी छड़ी पर सर्प लिपटा हुआ दिखलाया जाता है और उसकी पुत्री हायजिया (स्वास्थ्य की देवी) के चित्रों में भी उसके हाथ में सर्प दिखाया जाता है। ईसवी सन् से २००० वर्ष पूर्व यहूदियों में सर्पोपासना की जाती थी। भारतवासी तो अब तक श्रावण मास की पंचमी-नागपंचमी व्रत रखते हैं।

चरक की संसार में बड़ी प्रतिष्ठा है। कहते हैं चरक पढ़े बिना जो चिकित्सा करते हैं, वह वैद्य नहीं यमदूत है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी लिखा है. यदि संसार में चरक की रीति से चिकित्सा की जाय तो संसार आज-कल की तरह रोग-पीड़ित न हो। हमारे यहाँ के लोग भी चिकित्सा के लिये चरक की बड़ी प्रशंसा करते हैं। कहा है—

"निदाने माधवः श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तः चरकस्तु चिकित्सिते ॥"

अर्थात् रोगों का निदान-कारण जानने के लिए "माधव निदान" सर्व श्रेष्ठ ग्रंथ है; सूत्रों के लिये "वाग्भट" सर्वोत्तम हैं, शारीरिक ज्ञान के लिए सुश्रुत और चिकित्सा के लिए चरक सबसे उत्तम है।

चरक में गद्य (Prose) और पद्य (Verse) दोनों हैं। यह ग्रंथ सूत्र-स्थान, विमान स्थान प्रभृति आठ भागों में विभक्त है। सूत्र-स्थान में सहस्रों काम की बातें संक्षेप में बड़ी ही खूबी से लिखी गई हैं।

इस भाग के पढ़ने से वैद्य को चिकित्सोपयोगी हज़ारों बातें मालूम हो जाती हैं। विमान स्थान में रसायन एवं शरीर-कार्य विज्ञान का संक्षिप्त वर्णन है। इसमें न्याय-शास्त्र का अधिक अंश है, इससे सामान्य बुद्धि के लोगों को यह भाग अरुचिकर मालूम होता है। शरीर-स्थान में शरीर के अंगों के वर्णन के सिवाय वेदांत, सांख्य और वैराग्य का विशद विवेचन किया गया है। आठवाँ सिद्धि-स्थान है, जिसमें कुछ प्रश्नोत्तर बड़े ही काम के हैं। संक्षेपतः इस ग्रंथ का प्रत्येक भाग बड़ा ही उपयोगी है।

चरक के प्रत्येक अध्याय के अंत में, यह चरक-संहिता चरक-प्रतिसंस्कृत अग्निवेशतंत्र ही है, ऐसा लिखा मिलता है। यथा—"अग्निवेश कृतेतंत्रे चरक प्रतिसंस्कृते"। प्रतिसंस्कार का अर्थ है—पुराने का नवीकरण रूप जीर्ण संस्कारात्मक व्यापार वा जीर्णोद्धार अतएव यह कहना चाहिये कि चरक-संहिता साक्षात् अग्निवेशतंत्र ही है। अग्निवेश तन्त्र का जीर्णविशेष चक्रपाणि, विजय रक्षित, श्रीकंठ और शिवदास के समय में भी सुलभ था, ऐसा उनके उद्धृत पाठों से विदित होता है। उनके उद्धृत पाठ वर्तमान चरक-संहिता में उपलब्ध नहीं होते। लभ्यमान चरक-संहिता चिकित्सा-स्थान के आधे भाग पर्यंत परम दयालु महर्षि चरक द्वारा जीर्णोद्धार और पूरा किया हुआ है। इसके उपरांत के अवशिष्ट अंश को दृढबल ने पूरा और प्रायः पुनःसंस्कृत किया था।

जैसा कि जीर्ण संस्कृत अग्निवेशतन्त्र में भी,—

"अस्मिन् सप्तदशाध्यायः कल्पा सिद्धय एव च।
नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तन्त्रे चरक संस्कृते॥
तानेतान् कापिवलिः शेषान् दृढ़वलोऽकरोत्।
तन्त्रास्यास्य महार्थस्यं पूर्णार्थं यथायथम्॥"

स्पष्ट विलोप-आपूरण सूचक और दृढबल पंडित द्वारा कृत चरक संहिता, ऐसा उल्लेख मिलता है। (च० चि० ३० अ०)।

चरक संहिता के ८ स्थानों में से चक्रपाणिदत्त के अनुसार छठवें भाग चिकित्सा-स्थान के १७ अध्याय और सातवें (सिद्ध-स्थान) एवं आठवें (कल्प-स्थान) के सभी अध्याय दृढवल कृत हैं। जैसा ऊपर लिखा गया है। स्वयं चरक में भी इसका संदर्भ पाया जाता है। (दे० च० सिद्धि-स्थान ३ अ० या १२ अ० श्लो० ७४)। उसने स्वरचित अंश में भी यतस्ततः स्वकपोल कल्पना से आत्रेयाग्निवेश संवादात्मक वर्णन किया है और स्वकृतांश में भी प्रत्येक अध्याय के अंत मे "अग्निवेशकृते तन्त्रे चरक प्रतिसंस्कृते" ऐसे पद दिये हैं। उसने केवल चरक संहिता का आपूरण ही नहीं किया, अपितु उसने चरक प्रतिसंस्कृत अंश का भी पर्यालोचन किया है। अस्तु, चरक के ईसवी सन् के ग्यारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के व्याख्याकार चक्रपाणिदत्त और विजयरक्षित आदि जब चरक संहिता के प्रारम्भिक अध्यायों की व्याख्या करने लगते हैं, जो स्वयं चरक प्रतिसंस्कृत है, तब वे एक काश्मीरी व्याख्या का भी प्रमाण देते हैं, जिससे उनका अभिप्राय संभवतः उस नज़र सानी से है, जो दृढबल ने चरक द्वारा प्रतिसंस्कृत अंश पर की थी। इसके अतिरिक्त जब व्याख्याकार उक्त चरकसंहिता के अंतिम भागों का कहीं हवाला देते हैं, तब दृढवल को उनका लेखक मानते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि आयुर्वेदीय लेखक एवं संग्रहकार यह भली भाँति जानते हैं कि चरक-संहिता की पूर्ति करने में दृढबल ने कितना प्रयास किया है।

अब रहा यह कि यह चरक थे कौन और कब हुए?

इस विषय में विद्वानों के विभिन्न मत हैं।

इस बात का पता लगाना कि चरक किस जमाने में हुए, अत्यंत कठिन है। भारतीय विद्वानों का यह विचार है, कि चरक सृष्टि की आदि में पैदा हुए, जिसका प्रमाण वे पाणिनी के अष्टाध्यायी का यह सूत्र बतलाते हैं—

"कठचरकाल्लुक्"—इस पाणिनीय सूत्र में चरक नाम का अवलोकन कर कोई कहते हैं, कि ये ही अग्निवेशतंत्र के प्रतिसंस्कर्ता हैं और ये पाणिनी से भी बहुत पूर्व हुए। परंतु यह ठीक नहीं, क्योंकि निर्दिष्ट सूत्र में कठ और चरक पद से यजुर्वेद के शाखा विशेष के प्रवक्ता दो ऋषियों का ग्रहण होता है। चरणव्यूह में भगवान व्यास कहते हैं—

"यजुर्वेदस्य षडशीतिर्भेदाः भवन्ति।
तत्र चरका नाम द्वादश भेदाः॥
चरकाआह्वरकाः कठाः प्राच्यकठाः इत्यादि।"

इसलिये सूत्र निर्दिष्ट मन्त्र-प्रवक्ता चरक ऋषि कोई दूसरे ही हैं, इसमें कोई संशय नहीं। क्योंकि यह अग्निवेशतंत्र प्रतिसंस्कर्त्ता ही हैं, इसके लिये कोई प्रमाण नहीं। वेद प्रवक्ता चरक के बहुत प्राचीन होने के कारण न तो कोई ऐसी कल्पना ही यथावत् समझ में आती है।

पाश्चात्य पंडित सिलवियन लेवी (Mr. Sylvian Levi) के मत से यह वैद्यक प्रतिसंस्कर्त्ता चरक कनिष्क राजा का राजवैद्य था, ऐसा त्रिपिटक नामक चीन देशीय बौद्ध-ग्रंथ से प्रगट होता है। राजतरङ्गिणी नामक काश्मीर के इतिहास में लिखा है, कि यह तुरुष्कवंशीय राजा आज से १७५० वर्ष पूर्व अर्थात् दूसरी शताब्दी में हुआ। इसलिए लेवी महोदय के अनुसार यही चरक अग्निवेशतंत्र के प्रतिसंस्कर्त्ता हैं। परन्तु प्रमाणाभाव के कारण यह भी मान्य नहीं। संभवतः यह कोई और चरक हों। यदि हम केवल इस नाम ही को ध्यान में रक्खें, तो भी चरकसंहिता के प्रतिसंस्कर्त्ता अति प्राचीन प्रमाणित हो सकते हैं, जैसा कि ऊपर पाणिनी के सूत्रों और वेद में इस नाम की वर्तमानता दिखलाई गई है। पुनरपि चरक संहिता में भारतीय दर्शनशास्त्रों की, जिन दो शाखाओं-न्याय और वैशेषिक का उल्लेख पाया जाता है, उससे भी यह विदित होता है कि, चरकसंहिता ऐसे काल में लिखी गई होगी, जिस समय में उक्त दर्शनों का आविर्भाव तो होगया था, पर वह सुसंस्कृत नहीं हुए थे और न उनमें सूक्ष्मता पाई जाती थी, जिसे हम ऊहापोह के साथ मीमांसायुक्त स्पष्टतया सूत्ररूप में गौतम के न्यायशास्त्र एवं कणादकृत वैशेषिक दर्शन में अवलोकन करते हैं। अन्वेषण कर्त्तागण गौतमबुद्ध का समय ईसवी सन से ५०० वर्ष पूर्व निश्चित करते हैं और कणाद का उससे भी कतिपय शताब्दी पूर्व। इससे भी चरक की अतिप्राचीनता प्रमाणित होती है।

यहाँ पर एक बात और जो विशेष उल्लेखनीय है, वह यह है, कि चरक निज ग्रन्थ में केवल उन्हीं देवताओं और मंत्रों का उल्लेख करता है, जो वेदों में पाए जाते हैं। किन्तु पुराणों के देवताओं का उसमें बिलकुल उल्लेख नहीं। अलबत्ता एक स्थान में कृष्ण और वासुदेव का उल्लेख आया है। परन्तु वह दृढबलवाले भाग में हैं, मूलचरकवाले हिस्से में नहीं। इसके अतिरिक्त चरक ने मानव-अस्थिपंजर में उतनी ही अस्थियाँ (३६०) परिगणित की हैं, जो प्राचीन वैदिककालीन पुस्तकों में उल्लिखित हैं और बाल्यावस्था की परम सीमा तीस वर्ष स्थिर की है, जो वीरता के युग के अनुकूल ही है। तात्पर्य यह कि इन सब बातों से यह निःसंदेह प्रमाणित होता है, कि चरक पुराणों से अवश्य अपेक्षाकृत अधिक पुराना है। पाश्चात्य पंडित जो इसे खींचतानकर ईसा के जन्म से पीछे के काल में ले आते हैं, वह वस्तुतः बिलकुल धोखा खाते हैं।

पतञ्जलिकृत होने के कारण ही व्याकरण महाभाष्यको "पातञ्जल" कहा जाता है। शब्देंदुशेखर के प्रारंभमें नागाजिभट्टने 'पातञ्जले महाभाष्यकृतभूरि परिश्रमः' लिखा है। इन्हीं महर्षि पतञ्जलि ने योग सूत्र बनाये थे और इन्हीं ने 'अग्निवेश संहिता' का प्रति संस्करण किया था, यह प्रामाणिक लोगों का मत है। चरक पतंजलि का ही नामांतर है और इसी कारण उक्त संहिता आज "चरक-संहिता" के नाम से प्रसिद्ध है। निम्न पद्य भी इन्हीं बातों का सूचक है—

"योगेन चित्तस्य, पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन। योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि" ॥

किसी-किसी के अनुसार पतञ्जलि केवल चरक संहिताकार ही न थे; प्रत्युत रसशास्त्रों में भी इनका नाम सुना जाता है। पतञ्जलि ने पाणिनी की अष्टाध्यायी पर भाष्य लिखा है। कोई-कोई कहते हैं कि भगवान पतंजलि ने चरक का भी भाष्य लिखा है। पुनः वे ही स्वयं प्रतिसंस्कर्त्ता कैसे हो सकते हैं। परंतु प्रमाणाभाव के कारण यह यथार्थ नहीं। यदि चरक का पातञ्जल भाष्य कदाचित् प्रसिद्ध होता, तो सहस्राधिक वर्ष पुराने चक्रपाणिदत्त आदि के व्याख्यानों में वह कौन है ? क्या इसकी वार्त्ता भी न सुनी गई होती ? सारांश यह कि रस-ग्रंथकार होने से ही, पतञ्जलि का वैद्यककारत्व सिद्ध होता है। इससे भी अनुमान किया जाता है कि वे संहिता के प्रतिसंस्कर्त्ता थे। चक्रपाणि आदि ने भी उनका प्रतिसंस्कर्तृत्व स्पष्ट स्वीकार किया है। अस्तु, पतञ्जलि का

प्रादुर्भाव एवं प्रसंगागत अग्निवेशसंहिता का निर्माण काल इस प्रकार भगवान पतञ्जलि का अग्निवेश-संहिता प्रतिसंस्कर्त्तृत्व सिद्ध होनेपर, अब उनके समय निर्णय के विषय में लिखा जाता है। प्रायः प्राच्य और प्रतीच्य सभी ऐतिहासिक इनके आविर्भूत का समय दो सहस्र वर्ष (वा किञ्चिदधिक) निश्चय करते हैं।

महर्षि पतञ्जलि यूनानी आक्रमणके समय विद्यमान थे, ऐसा अनेक प्रमाणों द्वारा प्रतिपन्न होता है। उन्होंने 'अग्निवेश-संहिता' का प्रतिसंस्करण किया और इसी कारण 'अग्निवेशकृते तन्त्रे चरक प्रतिसंस्कृते' यह बात आरंभ हुई। अब सोचिये कि 'अग्निवेश-संहिता' का निर्माण-काल क्या हो सकता है ? संहिता बनी, उसका प्रचार हुआ और धीरे-धीरे कालक्रम से उसमें कमी आई। फिर संस्करण हुआ और पुनः प्रचार हुआ। अनन्तर फिर उसी प्रकार कमी हुई, संहिता दुर्लभ हो गई और चरक ने उसका प्रतिसंस्करण किया। अब विचारिये कि तीन-तीन बार प्रचार, ह्रास, संस्करण और प्रतिसंस्करण के लिये कितना समय अपेक्षित हुआ होगा ? यदि इन सबके लिये कम-से-कम एक सहस्र वर्ष भी मान लें, तो चरक-संहिता का निर्माण-काल यूनानी आक्रमण से एक सहस्र वर्ष पूर्व ठहरता है।

चरक और सुश्रुत प्रतिसंरकर्त्ता नागार्जुन का समकालीनत्व

जिस काल में भगवान पतञ्जलि, जिनका दूसरा नाम चरक था, विशीर्णप्राय अग्निवेश-संहिता का प्रतिसंस्कार किया अर्थात् चरक-संहिता की रचना की। कहते हैं फिर उसी समय में बौद्धाचार्य नागार्जुन ने सुश्रुत-संहिता का प्रतिसंस्कार किया।

सुश्रुत-संहिताका प्रतिसंस्कारकाल चरक-संहिता की रचना से पीछे—

महामहोपाध्याय श्री युक्त कविराज गणनाथसेन जी महोदय ने अनेक अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह भली भाँति प्रमाणित किया है कि, सुश्रुत-संहिता का प्रतिसंस्कार चरक-संहिता की रचना से अनन्तर हुआ। क्योंकि प्रतिसंस्कृत सुश्रुत-संहिता में बहुधा चरक के पाठ दिखाई देते हैं और विषय-सन्निवेशक्रम प्रायः समान ही है।

सुश्रुत और चरक

यद्यपि साधारणतया विद्वानों का यह मत है, कि चरक, सुश्रुत से पहले हुआ है, पर यह ठीक नहीं। क्योंकि पुराण इस बात को प्रमाणित करते हैं, कि सुश्रुत महाराज धन्वन्तरि के, जो देवताओं के चिकित्सक एवं आयुर्वेद के प्रणेता थे, शिष्य हैं। गरुड़-पुराण से यह विदित होता है कि महाराज धन्वन्तरि सतयुग में हुये हैं। अतः यह सिद्ध है कि उनके शिष्य सुश्रुत भी उसी युग में हुये हैं। फिर चरक ने स्वयं यह बात स्वीकार की है कि वह शल्य-तंत्र का पंडित नहीं था और वह शस्त्रकर्मसाध्य रोगों की चिकित्सा भी ओषधियों के द्वारा ही कर लिया करता था।

चरक ने (शरीर-स्थान ४ अ० में) माता के उदर में भ्रूण के भरण-पोषण एवं उसकी वृद्धि के विषय में धन्वतरि के मत का उल्लेख किया है अर्थात् वही जो सुश्रुतसंहिता में उल्लिखित है। उसने शस्त्रकर्म के विषय में भी अपने शिष्यों को धन्वन्तरि के अनुयायियों (सुश्रुत-संप्रदाय) का हवाला दिया है। लिखा है—

> "तत्रधान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ।
> वैद्यानांकृतयोग्यानां व्यधशोधन रोपणैः॥"
> (च० गुल्म चि० ५ अ०)

इससे सिद्ध होता है कि सुश्रुत चरक का पूर्वज है अर्थात् चरक से पूर्व हुआ है।

चरक संहिता के अनुवाद

खुलफ़ाए अब्बासिया के ज़माने में जब बहुत से वैद्यक ग्रंथों का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ, उस समय चरक-संहिता भी अनूदित ग्रंथों में समाविष्ट थी। अबुमुहम्मद ज़करिया राज़ी ने स्वरचित ग्रन्थ "अलहादी" और अन्य ग्रंथों में चरक का भी उल्लेख किया है। यही नहीं, अपितु कतिपय स्थलों पर उसके वाक्य उद्धृत कर दिये हैं। यहाँ पर यह बता देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि चरक का सर्व प्रथम पहलवी भाषा में ही अनुवाद हुआ था। इसके उपरान्त अब्दुल्लाबिनअली ने उस पर एक भाष्य लिखा। फिर उस फारसी भाष्य को अरबी वेष दिया गया। डाक्टर हंटर के अनुसार ईसवी सन की आठवीं शताब्दी में चरक और सुश्रुत का

लेटिन और जर्मनी भाषाओं में अनुवाद किया गया। अब अंगरेज़ी में इनका अनुवाद वर्तमान है। अभी हाल ही में सरदारीलाल वैद्यराज ने चरक का उर्दू में अनुवाद किया है।

चरक-संहिता के भाष्य

चक्रपाणिदत्त ने चरकसंहिता पर एक भाष्य लिखा है, जिसे "चरक-तात्पर्य्य-टीका" या "आयुर्वेद दीपिका" कहते हैं। चक्रपाणिदत्त संभवतः सन् १०६० ई० में हुए थे। उनका यह भाष्य प्रमाणित माना जाता है। किन्तु यह सम्पूर्ण नहीं मिलता।

सुश्रुत

जैसा कि महाभारत में भी लिखा है, सुश्रुत महात्मा विश्वामित्र के पुत्र थे। इन्होंने अपने पिता की आज्ञा से, प्राणियों के उपकारार्थ, अपने छः भाइयों के साथ (वा एक सौ ऋषिपुत्रों के साथ) काशी जाकर, काशिराज दिवोदास से आयुर्वेद सीखा। कहते हैं, महाराज दिवोदास धन्वन्तरि के अवतार थे। उन्होंने इन्द्र के कहने से इस लोक में जन्म लिया था। काशिराज सभी शिष्यों (ऋषिपुत्रों) को आयुर्वेद सिखाते थे; किंतु उनके शिष्यों में सुश्रुत सबसे तेज़ थे। आप गुरु के उपदेशों को खूब ध्यान लगाकर सुनते थे। कहते हैं, इसीसे आपका नाम "सुश्रुत" पड़ गया। सुश्रुत ने पढ़ लिखकर जो ग्रंथ लिखा, उसीको आजकल "सुश्रुत" कहते हैं।

चिकित्सा की अपेक्षा सुश्रुत शस्त्र-विद्या में अधिक निपुण थे। यह प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने भारतीय शल्यतंत्र के सिद्धांतों को स्वरचित ग्रंथ सुश्रुत-संहिता में एकत्रित किया है। अत: आत्रेय और चरक को साधारणतः कायचिकित्सक और सुश्रुत को शल्यचिकित्सक (सर्जन) कहते हैं।

सुश्रुत का प्रादुर्भाव काल

सुश्रुत का प्रादुर्भाव एवं मृत्युकाल पर अंधकार का गहरा पर्दा पड़ा हुआ है, जिसे वर्तमानकालीन अनुसंधान भी उठाने में असमर्थ हैं। किसी-किसी के अनुसार सुश्रुत चरक से भी पूर्व हुआ है (इससे हम भी सहमत हैं, जैसा पहले बतलाया गया है)। शतपथ ब्राह्मण के अध्ययन से यह प्रगट होता है कि उसका रचयिता सुश्रुत के सिद्धान्तों से परिचित था। यद्यपि उक्त ग्रंथ की यथार्थ तारीख अभी ज्ञात नहीं हुई। तो भी किसी-किसी का विचार है कि वह ईसवी सन से कई शताब्दी पूर्व लिखी गई होगी।

कात्यायन की वार्त्तिकाएँ जो ईसवी सन् से ४०० वर्ष पूर्व की लिखी हुई हैं, उनमें भी सुश्रुत के नाम का उल्लेख आया है। परन्तु डॉक्टर पी० सी० राय (History of Hindu Chemistry के लेखक) के मत से इस नाम से सुश्रुतसंहिता के लेखक का कोई सम्बन्ध नहीं। उनके अनुसार ईसवी सन् से पूर्व चतुर्थ शताब्दी में सुश्रुत का नाम केवल फसाना होगया था, जिससे अनुमान किया जाता है कि आदि सुश्रुत अनेक शताब्दी पूर्व हुए होंगे। अब हम उनके समादरणीय ग्रंथ 'सुश्रुत-संहिता' का वर्णन करते हैं।

सुश्रुत-संहिता

सौश्रुततंत्र अर्थात् प्राचीन सौश्रुततंत्र के विषय में, जिसे वृद्ध-सुश्रुत भी कहते हैं, यह बतलाना कि वह कैसा ग्रंथ था; एक अतीव जटिल समस्या है। क्योंकि यह सुश्रुत-संहिता जो सम्प्रति उपलब्ध होती है, इसमें उस प्रधान संहिता का केवल संक्षिप्त सार मात्र है अथवा वह मूलभूत वृद्ध-संहिता का सर्वथा प्रतिसंस्कृत एवं परिबृंहित स्वरूप है। इसके अतिरिक्त वागभट्ट, अरुणदत्त, डल्लन, चक्रपाणिदत्त आदि सभी ने इसका प्रतिसंस्कृत होना स्वीकृत किया है एवं वृद्ध सुश्रुत के पाठ जिन्हें बहुधा वैद्यक टीकाकारों ने उद्धृत किए हैं, लभ्यमान सुश्रुत-संहिता में प्राय: नहीं मिलते। साथ ही साथ इसका शारीर-स्थान अनेक बड़ी-बड़ी भूलों से परिपूर्ण है। स्वयं सुश्रुत ने सूत्रस्थान के तीसरे अध्याय के आरंभ में लिखा है कि मैंने अपने ग्रंथ को पाँच भागों और १२० अध्यायों में विभक्त किया है। परंतु इन पाँचों के सिवा एक उत्तर-तंत्र और है, जिसमें ६६ अध्याय हैं और जो सम्पूर्ण नागार्जुन लिखित हैं। डल्वण के मतानुसार जैयट और गयदास प्रभृति भाष्यकारों ने भी सुश्रुत-संहिता का प्रतिसंस्कार किया है। परन्तु जब हिंदू-धर्म और बौद्ध-धर्म में परस्पर युद्ध छिड़ा हुआ था, उस समय सुश्रुत-संहिता प्रतिसंस्कृत होकर

और अधिक प्रामाणिक एवं समादरणीय ग्रंथ बन गया। इसका प्रतिसंस्कर्त्ता सिद्धनागार्जुन नामक एक प्रसिद्ध रसायनविद् था। उसने उक्त संहिता में उत्तर-तंत्र नामक एक अलग अध्याय ही जोड़ दिया है। यह प्रतिसंस्कृत एवं परिवर्द्धित ग्रंथ सुश्रुत-संहिता के नाम से प्रसिद्ध हो गया। आज कल जो प्राचीन ग्रंथ एवं टीका पाई जाती है, उससे यह स्पष्ट साबित होता है कि आठ सौ वर्ष पूर्व प्राचीन समय के लिखे हुए ग्रंथ पाये जाते थे।

सुश्रुत और बुक़रात

बुक़रात के वचन और सुश्रुत-संहिता के कतिपय लेखों की सहसा पारस्परिक सादृश्य के कारण कोई-कोई पाश्चात्य इतिहासविद् यह निष्कर्ष निकालते हैं, कि प्राचीन भारतीय चिकित्सक यूनानियों के खुशाचीं थे। इतना ही नहीं, अपितु जर्मन के हीस नामी एक आचार्य ने तो सुश्रुत के नाम के संबंध में भी बाल की खाल निकालने का प्रयत्नकर अपनी अल्पज्ञता का परिचय दिया है। उसके अनुसार "सुश्रुत" शब्द अरबी सुकरात से बिगड़कर बना है। अरबनिवासी कभी-कभी सुकरात को बुक़रात का पर्य्याय मान लेते हैं। अतएव सुश्रुत मानो यूनानी हकीम बुकरातका हिंदी नाम है और बुकरात कास (Cos) नगरका अधिवासी है, तो सुश्रुत काशी या कासी का। इससे भी उक्त विचार की पुष्टि होती है। किंतु यूरोप ही के अन्य उदात्तवृत्ति के ऐतिहासिक ऐसे विचारों को असत्य एवं निर्मूल प्रमाणित करते हैं। वे इसके विरुद्ध यह अकाट्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध करते हैं कि प्राचीन यूनानियों ने अतीत-कालीन भारतनिवासियों से कतिपय विद्याओंमें पर्य्याप्त लाभ प्राप्त किया है। अत: वेबर महोदय स्वरचित भारतीय साहित्य का इतिहास (History of Indian Literature) नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि फीसागोरस नामक यूनानी विद्वान—ने प्रथम अलूइसरार पुन: भौतिक शास्त्र विषयक ज्ञान भारत के ब्राह्मणों से प्राप्त किया है। कहते हैं कि ईसा से ६०० वर्ष पूर्व फीसागोरस (Pythagoras) विद्याध्ययन के लिये भारत के विद्या-केन्द्रों और तीर्थस्थानों में बहुत दिनों तक रहा था, यह बात इतिहास से सिद्ध है।

सुश्रुत संहिताके भाष्य तथा व्याख्या एवं अनुवाद ग्रंथ

सुश्रुत-संहिता पर प्राचीनतम भाष्य चक्रपाणिदत्त लिखित "भानुमति" नामक है। चक्रपाणिदत्त सन् १०६० ई० में हुआ है। दूसरा डल्लणकृत "निबन्ध-संग्रह" नामक भाष्य है। कहते हैं डल्लण राजा सिंहपाल देव के समय में हुआ था। उक्त राजा का राज्य मथुरा के आस-पास था। डल्लण ने अपने से पूर्वके व्याख्याकारों की टीकाओंसे भी लाभ उठाया है। वह इस बात को स्वयं स्वीकार करता है। अन्य व्याख्याकार ये हैं—

(१) जैय्यट आचार्य, (२) गयदास आचार्य, (३) भास्कराचार्य और (४) माधवाचार्य, इनका ठीक समय ज्ञात नहीं।

हेमाद्रि और वाचस्पति जो दोनों संभवत: सन् १२६० ई० में हुए, निबंध-संग्रह नामक प्राचीन टीका के उद्धरण देते हैं। क्योंकि डल्लण स्वयं चक्रपाणिदत्त का हवाला देता है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि वह सन् १०६० ई० और सन् १२६० ई० के मध्य हुआ होगा। डॉक्टर होर्नले का विचार है कि गयदास कृत भाष्य का नाम "नुतन कुंडिका" था और गयदास संभवत: चक्रपाणिदत्त का समकालीन होगा। क्योंकि उनमें से कोई एक दूसरे के भाष्य का हवाला नहीं देता।

खलीफा मंसूर के समय में अर्थात् ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी में सुश्रुत-संहिता और चरक-संहिता का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ। अबु-मुहम्मद ज़करियाराज़ी ने स्वरचित ग्रंथ अलहादी कबीर में सुश्रुत का भी उल्लेख किया है। किसी किसी स्थल पर उसने इसके वाक्य उद्धृत कर दिये हैं। डॉक्टर हंटर के मत से आठवीं शताब्दी मसीही में, सुश्रुत का लेटिन और जर्मनी भाषाओं में भी उलथा हुआ। सम्प्रति इसके अँगरेजी, हिंदी और उर्दू भाषांतर भी प्रकाशित हो गये हैं। इसका अँगरेजी भाषांतर कविराज कुंजलाल भिषग्रत्न कृत सर्वोत्कृष्ट है। इसका एक उर्दू तर्जुमा वैद्यराज सरदारीलाल ने लाहौर से प्रकाशित किया है।

रसवैद्य-संप्रदाय अथवा सिद्धयुग

पूर्वोक्त आत्रेय सम्प्रदाय और धन्वन्तरि सम्प्र-

दाय के चिकित्सकगण सम्पूर्ण पृथक् भाव से चिकित्सा-विद्या के प्रधान दो अङ्गों का अनुशीलन करते थे। स्वर्ण, लौहादि धातु घटित औषधों से चिकित्सा करनी उनके समय में विशेष प्रचलित नहीं थी। चरक और सुश्रुत में धातुओं का सामान्य प्रयोग विरले ही स्थानों में दृष्टिगोचर होता है। (जैसे—चरक चिकित्सा-स्थान रसायन पाद में लौह सुवर्णादि का प्रयाग) अतएव धातु घटित औषधों के प्रयोग उनके समय में बहुत प्रकार से नहीं होते थे। पारा आदि धातुओं का व्यवहार खाने में नहीं किया जाता था, यह निःशङ्क चित्त से कहा जा सकता है। धातु घटित औषधों के अधिक प्रयोग चरक सुश्रुतादि के पीछे (सम्भवतः बौद्धों के समय में अर्थात् प्रायः दो हज़ार वर्ष पूर्व) प्रचलित हुए हैं। परन्तु कोई-कोई ऐसा भी कहते हैं कि चरक सुश्रुतादि के सम समय ही योगि चिकित्सक लोग रस चिकित्सा का उत्कर्ष बढ़ा रहे थे। अस्तु,

धातु घटित औषधों के प्रधान प्रवर्त्तक रस-वैद्य-सम्प्रदाय वा रस—चिकित्सक-गण हैं, जो सिद्ध नाम से भी प्रसिद्ध थे। जनरव है कि महा योगी देवादि देव महादेव ने इस चिकित्सा प्रणाली की सृष्टि की और आदिनाथ, नित्यनाथ चन्द्रसेन, गोरक्षनाथ (गोरखनाथ ?), कपाली भालुकि, माण्डव्य प्रभृति योगीगण इस विद्या के प्रवर्त्तक हुए। रस शब्दका अर्थ पारद है। इन रसादि धातुसमूहों का जारण मारणादि करके प्रयोग करने से शरीर के रोगों की तो बात ही क्या जरा मरण का भी विनाश हो सकता है; रस-वैद्य लोगों ने इसको प्रमाणित करके दिखलाया है। अस्तु, पारा आदि के सर्वरोग-नाशिनी शक्ति का आविष्कार इन्हीं रसवैद्यों ने ही किया था। यह कहा जाता है कि इन लोगों ने ही पारा आदि धातुओं के एवं ताँबा इत्यादि धातुओं के संयोग से सोना और रूपा बनाने को प्रथा निकाली थी। वस्तुतः उस समय रसवैद्यों का प्रभाव समग्र भारत में इतना विस्तृत हो गया था कि, वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य्य को अपने प्रसिद्ध सर्व दर्शन संग्रह नामक ग्रंथ में "रसेश्वर दर्शन" नामक दर्शन के मत को ग्रहण करना पड़ा। माधवाचार्य ने सर्व्वदर्शन नामक ग्रन्थ में रसेश्वर-दर्शन के विषय में लिखा है। इस दर्शन का प्रधान मत यह है कि—

"श्रेयः परं किमन्यत् शरीरमजरा मरं विहायैकम्"

प्रसिद्ध है कि यह योगी चिकित्सक-गण एक रस (पारद) प्रयोग से ही चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का फल साधन करते और इसीलिये इसकी चिकित्सा-शास्त्रों में विशेष प्रतिष्ठा और प्रधानता हुई थी। पारद, गंधक, लौह, अभ्र, स्वर्ण, रौप्य, प्रभृति, पार्थिव पदार्थ (Mineral) समूह का जारण, मारण इस चिकित्सा-प्रणाली का प्रधान अङ्ग है। इसलिये रस-विद्या ही वर्त्तमान "केमिष्ट्री वा धातुविद्या" की प्राचीन मूल भित्ति कही जा सकती है।

वर्तमान समय की आयुर्वेदीय चिकित्सा में जारित धातुओं का विशेष व्यवहार देखा जाता है। इसका भी मूलकारण केवल रसवैद्य-संप्रदाय और उनके ग्रंथ समूह हैं। आजकल वर्तमान आयुर्वेद-प्रणाली पर इस रसवैद्य-संप्रदाय की इतनी श्रेष्ठता बढ़ गई है, कि आजकल आयुर्वेद को, प्राचीन ऋषियुग का नहीं कहा जा सकता। तन्त्रग्रंथों में रस-चिकित्सा-विषय अनेक स्थानों में लिखा हुआ मिलता है। इसलिए इस चिकित्सा को कोई-कोई "तान्त्रिक-चिकित्सा" भी कहते हैं। आज इस रसविद्या के कणामात्र को कितने ही फकीरों ने अपनी आजीविका कर रखी है।

दक्षिण भारत में 'सिद्ध-प्रणाली' का विकास एक अन्य ही नूतन आधारपर हुआ। लोग यह कहते हैं कि दक्षिण में आयुर्वेदके प्रचारक अगस्त्यमुनि थे। परंतु आयुर्वेद के साथ ही साथ "सिद्ध-संप्रदाय" अथवा रसवैद्य के मत भी तामिल भाषा में वहाँ प्रचारित हुये थे। इसी लिये ही दक्षिण भारत में यह सिद्धमत प्राचीन आयुर्वेद-शास्त्र के प्रतिद्वन्दी रूप में अभी तक है।

"सिद्ध-विधान" का अध्ययन तथा अभ्यास दो भिन्न-भिन्न प्रणालियों द्वारा हुआ, जिनमें प्रथम को "वद संप्रदाय" तथा दूसरे को "थेन-संप्रदाय" कहते हैं। प्रथम ने अपने विचारों को संस्कृत भाषा में तथा दूसरे ने द्राविड़ भाषाओं में व्यक्त किया।

इस प्रकार चरक-संप्रदाय, सुश्रुत-संप्रदाय और रसवैद्य-संप्रदाय—इन तीनों संप्रदायों की

चिकित्सा ने ही एक समय भारतवर्ष में प्रतिष्ठा लाभ की थी। इनमें दो संप्रदायों का चिकित्सा-शास्त्र प्रधानतः ऋषिप्रणीत है; इस लिए इन उभय प्रकार की चिकित्साओं को आर्ष-चिकित्सा भी कहते थे। शेष की चिकित्सा वा रस-चिकित्सा तन्त्रमूलक है। इसवास्ते इसका द्वितीय नाम तान्त्रिक-चिकित्सा है। वस्तुतः नागार्जुनादि मुनीन्द्र इस चिकित्सा के प्रवर्त्तक हैं, इससे यह भी एक प्रकार की आर्ष चिकित्सा ही है।

(३) शालाक्यतन्त्र

शालाक्य तन्त्र—Diseases of the eye, ear, nose and throat चक्षु, कर्ण, मुख, नासिका, कण्ठादिगत रोगों की चिकित्सा के लिए यह चिकित्सांग प्रसिद्ध था। इस अंग के प्रधान आचार्य विदेहराज जनक, निमि, काङ्कायन, गार्ग्य, गालव, शौनक, करालभट्ट, चक्षुष्य और कृष्णात्रेय थे।

इनमें से प्रत्येक ने अपने-अपने नाम से एक-एक ग्रन्थ निर्माण किया था, जो क्रमशः ये हैं—विदेहतन्त्र, निमितन्त्र, काङ्कायनतन्त्र, गार्ग्यतन्त्र, गालवतन्त्र, शौनकतंत्र, करालतंत्र, चक्षुष्यतंत्र और कृष्णात्रेयतंत्र। इनके अतिरिक्त शालाक्यतंत्र विषयक सात्यकिकृत एक और तंत्र था, जिसे सात्यकितंत्र कहते है। डल्लन और श्रीकंठ ने जिसके पाठ अपनी टीका के नेत्ररोगाधिकार में उद्धृत किए हैं।

इनके एक ग्रन्थ भी वर्तमान समय में नहीं मिलते अथवा यों कहिए, कि भारतवर्ष के भाण्डार में अमुद्रित अवस्था में कहीं पड़े हुए हैं, जिनकी खबर हम लोग नहीं जानते। इन आचार्यों के नाम और इनके ग्रंथों के प्रमाण सुश्रुत के उत्तरतन्त्र के प्रथम अध्याय और वाग्भट्ट के उत्तर-स्थान में तथा श्रीकंठदत्त, शिवदास, अरुणदत्त आदि की टीकाओं में मिलते हैं।

(४) भूतविद्या

भूतविद्या—(Treatment of mental Diseases) आयुर्वेद का वह चिकित्साङ्ग जिसमें भूतग्रस्त सदृश मानस-रोगों की चिकित्सा वर्णित होती है। सुश्रुत में लिखा है—

“न ते मनुष्यैः सहसंविशन्ति नवा मनुष्यान् क्वचिदा विशन्ति। येत्त्वाविशन्तीति वदन्तिमोहात्ते भूतविद्या विषयादपोह्याः॥” (सु० उ० ६ अ०)

अर्थात्—“भूत-प्रेतादि मनुष्य के शरीर में कभी प्रविष्ट नहीं होते (उनके सदृश लक्षणों को देखकर वर्णना–सौकर्यार्थ देवग्रहजुष्ट आदि नाम रखे गये हैं), जो लोग समझते हैं कि यथार्थ ही भूत-प्रेतों का आवेश होता है, वे लोग भूत-विद्या के विषय से बिलकुल अनभिज्ञ हैं।” यह बात सत्य है कि सुश्रुत के परवर्त्ती प्रतिसंस्कर्त्ता और संग्रहकार लोग सुश्रुताचार्य के इस अभिप्राय को न समझकर बहुधा इसके विरुद्ध वचन लिख चुके हैं। परंतु ऐसी स्पष्टोक्ति के पीछे संदेह नहीं करना चाहिए। जप, होम, मन्त्र आदि अथर्ववेदोक्त विधि वस्तुतः मानस रोगों की मानसिक चिकित्सा ही हैं।

आयुर्वेद का यह भूत-विद्या नामक अंग किसी समय इस देश में बहुत ही उन्नति को प्राप्त था। भूतों के चढ़ने के रोग को विभिन्न प्रकार का मस्तिष्क का विकार समझा जाता था। किंतु हमारे दुर्भाग्यवश अब वह केवल झाड़ा फूकी मात्र में अवशिष्ट रह गया। इस समय भूत-विद्यातन्त्रों के नाम अलभ्य हैं, फिर उनके ग्रंथों के विषय में क्या कहा जा सकता है? संग्रह-ग्रंथों में भूत-विद्या का जो कुछ विषय मिलता है उसको देखकर संदेह घटने की जगह बढ़ता ही हैं, किंतु अपस्मार, उन्माद और भूतोन्माद इन रोगों के लिए “यथोक्तमिहतत्सर्व्वं प्रयुञ्जीत परस्परम्” (वा० उ० ५ अ०) इस उपदेश से और भूतोन्माद में औषध, अंजन, तैल, घृत, स्नान आदि की व्यवस्था को देखकर अवश्य ही प्रतीति होती है, कि भूतोन्माद कई प्रकार के मानस-रोग और उनकी चिकित्सा मात्र है। यथा अधोलिखित लभ्यमान आयुर्वेदीय ग्रंथों में बीज रूप से आज भी इस भूत-विद्या का आंशिक परिचय मिलता है—

(१) सुश्रुत के अमानुषप्रतिषेधनीय अध्याय में (उत्तर० ६ अ०);

(२) चरक की उन्माद-चिकित्सा में (चिकि० ९ अ०);

(३) वाग्भट के भूतविज्ञानीय-भूतप्रतिषेधाख्य अध्याय में (उत्तर० ४।५ अ०)

सुश्रुत और वाग्भट में भूतविद्या नाम से पृथक् भी इसका उल्लेख हुआ है। किंतु चरक में उन्मादाधिकार में ही भूतविद्या का अन्तर्भाव हुआ है, ऐसा ज्ञात होता है। यद्यपि व्याख्याकारों के उन-उन प्रसंगों की हज़ारवर्ष से भी अधिक पुरानी व्याख्याओं में किसी भी भूतविद्या-तंत्र के प्रमाण उद्धृत नहीं किए गए हैं। जिससे अनुमान किया जाता है कि उनसे भी बहुत पहले ही भूतविद्यातंत्रों का विलोप हो चुका था। तथापि पौराणिक युग में इस भूतविद्या का सर्वथा विलोप नहीं हुआ था, क्योंकि अग्नि-गरुड़ादि पुराणों में इस प्रसंग का सविस्तार उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त यद्यपि बाल-ग्रहादि की चिकित्सा का भूतविद्या में ही अंतर्भाव करना सुकर है। तो भी उसका पृथक् बालतन्त्र (कौमारभृत्य) में वर्णन होने से, ऐसा अनुमान होता है कि चरकानुसृत मार्गानुरूप मानसरोगाधिकार ही यह भूतविद्या है।

सुनते हैं कि अथर्वा नामक एक ऋषि हुए थे, जो भूतविद्या के आचार्य और बलिमन्त्रादि-प्रवर्त्तक समझे जाते हैं। कहते हैं, इन्होंने भूतविद्यातंत्र पर एक ग्रंथ निर्माण किया था।

(५) कौमारभृत्य

कौमारभृत्य—(Midwifery and Diseases of Children) कुमार शब्द का अर्थ बालक है। अस्तु, कौमारभृत्य का अर्थ बच्चों की चिकित्सा हुआ। गर्भाधान से लगाकर बालक जब तक ४-५ वर्ष का न हो, तब तक बालक और उसकी माता का स्वस्थवृत्त, तथा रोगों की चिकित्सा जिस शास्त्र में वर्णित है, उसका नाम कौमारभृत्य है। गर्भाधान किस-किस विधि से होना चाहिए, गर्भाधानकाल में माता पिता का स्वास्थ्य कैसा रहना चाहिए और शास्त्रोक्त विधियों को न मानने से कैसा बालक उत्पन्न होता है, इस विषय पर कौमारभृत्य का उपदेश यथार्थ ही अमूल्य और अद्वितीय है। गर्भाधान के अनंतर गर्भिणी को अवश्य पालनीय नियम दौहृद (गर्भावस्था की उत्कट अभिलाषा) देने का प्रयोजन और दौहृद न होने से हानियाँ तथा बालक की विकृताङ्गता आदि के विषय में आयुर्वेद में जिस प्रकार के लेख मिलते हैं, उनको देखकर बुद्धिमान मनुष्य को स्वीकार करना पड़ता है कि, ये बातें यदि सत्य हैं तो बड़ी ही अद्भुत हैं।

प्राचीनकाल में कौमारभृत्य के अनेक आचार्य हुए हैं, जिन्होंने अपने-अपने नाम से पृथक्-पृथक् एतद्विषयक ग्रंथ निर्माण किया था। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है, कि आज उनमें से एक भी उपलब्ध नहीं। उन कौमारभृत्य तन्त्रकारों में से जीवक, पार्वतक और बंधक आदि के नाम डल्लन ने सुश्रुत-उत्तरतन्त्र की व्याख्या के शुरू में निर्दिष्ट किए हैं। उनके लिखित ग्रन्थ क्रमशः जीवकतन्त्र, पार्वतक तन्त्र और बंधकतन्त्र रहे होंगे।

बौद्ध इतिहासों में स्पष्ट लेख है कि राजगृह निवासी जीवकाचार्य कौमारभृत्य के बड़े आचार्य थे। इसी से पाली भाषा में उनका नाम "जीवक कौमारभच्च" लिखा मिलता है। जीवक राजा बिम्बीसार के चिकित्सक थे और उनका नाम समग्र भारत में प्रसिद्ध था। कहते हैं कि भिक्षु आत्रेय इनके गुरु थे। बुद्धदेव के समय में गांधार की राजधानी तक्षशिला (Taxilla near modern Kandhar) में आप कौमारभृत्यके अध्यापक और इसतंत्र के कई ग्रंथों के प्रणेता थे। परंतु क्या ही शोक की बात है, कि आज जीवकाचार्य के एक भी ग्रंथ नहीं मिलते।

सुश्रुतके उत्तरतंत्र (२७–३८) में १२ अध्यायों में कौमारभृत्य के प्रसंग का वर्णन हुआ है, जिससे अनुमान किया जाता है कि यह आयुर्वेद का एक सुमहान अंग रहा होगा, जो सम्प्रति सर्वथा प्रनष्टप्राय है।

सुश्रुत में लिखा है—

"कौमारभृत्यं कुमारभरणधात्रीक्षीरदोष संशोधनार्थं दुष्टस्तन्य ग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधीनामुपशमनार्थम्।"

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रसूतितंत्र (दाई का काम) का, जिसका मुख्य प्रयोजन गर्भिणी का उपचारादि है, इसमें अंतर्भाव नहीं होता। उसका शारीर वैद्यक और शल्यतंत्रोक्त मूढगर्भ की चिकित्सादि में ही समावेश होता है। अस्तु, म० म० कविराज गणनाथसेनजी के अनुसार प्रसूतितंत्र (Midwifery) कौमारभृत्य से सदा पृथक् ही है। सुश्रुत

के उत्तरतंत्रीय विभाग के अवलोकन से यह प्रकट होता है कि किसी-किसी स्त्रीरोग का वर्णन कौमारभृत्य के अन्तर्गत हुआ है, जैसा कि योनि व्यापत्-प्रतिषेधाध्याय के अंत में यह पाठ देखने से प्रगट होता है कि—

"इति सुश्रुताचार्य्यविरचिते आयुर्वेदशास्त्रे उत्तरतन्त्रे कौमारभृत्यं समाप्तम् ।" इति ;

इसके अतिरिक्त कौमारभृत्य के ये दो ग्रन्थ और हैं–प्रथम कुमारतंत्र, जिसका उल्लेख सुश्रुत की भानुमति नामक टीका में चक्रपाणि ने किया है और दूसरा हिरण्याक्ष नामक तंत्र है। जिसका श्रीकंठ ने निदान में बालरोग के व्याख्यान में प्रमाण उद्धृत किया है।

(६) अगदतन्त्र

स्थावर और जङ्गम सभी प्रकार के विषों की चिकित्सा जिसमें वर्णित है, सुश्रुत के अनुसार उस शाखाङ्ग का नाम "अगदतन्त्र" (Toxicology) है। उद्भिज्ज अर्थात् तरु लतादि से उत्पन्न नाना प्रकार के फूल मूलादि विष और पार्थिव अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न संखिया, हरिताल आदि विषों को स्थावर विष कहते हैं और सर्प, वृश्चिक, विषखोपड़ी नाना प्रकार के कीटक आदि विषों की जङ्गमविष संज्ञा है। इन सब विषों की पहचान और इनसे प्राणियों की रक्षा यही अगदतन्त्र का प्रधान विषय है। यही नहीं, अपितु इसमें वे अदृश्य कीड़े भी हैं जो वायु एवं जल द्वारा बीमारी फैलाते हैं। इस अगदतंत्र को पृथक् चिकित्साङ्ग समझकर प्राचीनों ने इसकी इतनी उन्नति की थी कि, राजाओं की रसोई से लगाकर युद्ध क्षेत्र तक अगदतंत्रविद् वैद्यों की बड़ी भारी आवश्यकता समझी जाती थी। इसी कारण सुश्रुत में उपदेश है—

"महानसे प्रयुञ्जीत वैद्यं तद्विद्यपूजितम् ।
तस्माद्वैद्येन सततं विषाद्रक्ष्योनराधिपः ॥" इत्यादि

इसके सिवाय सुश्रुत के कल्पस्थान और चरक चिकित्सा स्थान के २३ वें अध्याय में अगदतन्त्र के बहुत कुछ विषयों की चर्चा है।

इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध राजनीतिविद् चाणक्य लिखित "कौटिलीयार्थशास्त्र" नामक ग्रन्थ में सर्पदष्ट, फाँसी, विषप्रयोग आदि से मरे हुए मनुष्य का शवच्छेद करने से बाहर भीतर जो-जो लक्षण दीख पड़ते हैं, उनका लक्षण प्रसंगागत स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। यद्यपि आजकल के आयुर्वेदीय ग्रंथों में इस विषय का विशेष कुछ नहीं मिलता, तथापि चाणक्यके ग्रंथ देखने से अवश्य मानना पड़ेगा, कि इस अंग का–जिसका नाम अँगरेजीमें (Medical jurisprudence) अर्थात् व्यवहारायुर्वेद है, किसी समय विस्तृत विवरण समेत अगदतंत्र के अंतर्भूत था।

यही क्यों महाभारत में कथा है कि, जब परीक्षित को तक्षक ने डसा उस समय अगदतांत्रिक मंत्र औषधोपचार से अवश्य प्राणदायक धन्वन्तरि नामक एक वैद्य उनको संजीवित करने के लिए आरहे थे; किंतु तक्षक ने बड़ी चतुराई से उनको लौटा दिया। चाहे यह कथानक सत्य हो वा असत्य; किंतु इतना तो निःसंकोचभाव से कहा जा सकता है कि हम लोगों को यह भी ज्ञान नहीं कि, यदि किसी ने अफीम या बच्छनाग खालिया तो क्या उपाय करना चाहिए। इतने पर भी यदि जंगम विषों की चिकित्सा अब भी कहीं कुछ है, तो आयुर्वेद में ही है।

महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन जी महोदय ने स्वरचित "प्रत्यक्ष-शारीर" नामक ग्रंथ के प्रथम भाग के उपोद्घात में एतद्विषयक कतिपय प्राचीन ग्रंथों के नामोल्लेख किये हैं, जो सम्प्रति अप्राप्य है। विशेष परिचयार्थ उक्त ग्रंथरत्न का अवश्य अवलोकन करें। यहाँ पर उन ग्रंथों के केवल नाम मात्र दिये जाते हैं। वह ये हैं—काश्यप-संहिता, अलम्बायन-संहिता, उशनः-संहिता, सनक संहिता (या शौनक-संहिता) और लाट्यायन-संहिता।

(७) रसायन-तन्त्र

रसायन तन्त्र—चिकित्सा-शास्त्र का वह अंग है जिसमें वार्द्धक्य और रोगों को दूर करनेवाले औषध अर्थात् रसायन का वर्णन होता है। रसायन-शास्त्र का अर्थ है, वृद्धावस्था में शरीर में ताक़त लाना, जैसे—
"यज्जरा-व्याधि-विध्वंसिभेषजं तद् रसायनमुच्यते।"
इस विषय पर प्रचलित तन्त्र का नाम रसायन तन्त्र है।

आयुर्वेद के मध्य दिन में इस तंत्र की भी विलक्षण उन्नति हुई थी। तदनन्तर बौद्ध-युग में तो इसकी जो उन्नति हुई, उससे यह सर्वथा स्वतंत्र अंग ही जान पड़ने लगा। पुन: कोई कोई कहते हैं कि आर्ष रसायन प्रयोगों में प्राय: वनौषधियों का ही व्यवहार होता था। पर कुछ थोड़ेसे लोग इसे लोहादि प्रयोगपरा जानकर रसतंत्र को आयुर्वेद से सर्वथा एक पृथक् तंत्र ही मानते हैं। परन्तु ऐसा संदेह नहीं करना चाहिये। रसायन नामक अंग सर्व्वथा वैद्यक का अंग ही है, ऐसा प्रसिद्ध है! कहा भी है—

"यज्जरा-व्याधि-विध्वंसि भेषजंतद्रसायनमिति।"

सुश्रुत में अन्नपानविधि—अध्याय में लोहे का गुणोल्लेख हुआ है तथा कुष्ट-प्रमेहादि की चिकित्सामें लौह, शिलाजतु, माक्षिक आदि धातुओंके प्रयोग का उपदेश आया है। चरक में भी लोहा और पारा (रस) का व्यवहार दिखाई देता है। इसी प्रकार आर्ष-युग में लोहे आदि के प्रयोग होने पर भी बौद्ध युग के आरम्भ में रसादि पार्थिव भेषजोपचार बाहुल्य के कारण अतिपुष्ट यह रसायन-अंग एक पृथक् ही अंग है, ऐसा प्रतीत होने लगा। पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं। अतिशय प्रयास एवं विशेष प्रयत्नादि द्वारा किसी अंग-उपांग के अत्यंत परिवृंहित एवं परिपुष्ट होने के कारण ही उसे अलग नहीं कहा जा सकता।

सुनते हैं कि रसायनतंत्र दो प्रकार के होते हैं—आर्ष और अनार्ष। इनमें आर्षतंत्र ये हैं—पातञ्जलतन्त्र, व्याडितंत्र, वशिष्ठतन्त्र और माण्डव्यतंत्र। ये तीनों तंत्र ही रसतान्त्रिकों के आश्रयभूत एवं अति प्राचीनतंत्र हैं, ऐसा वृद्ध वैद्यों की प्रसिद्धि है।

इनके अतिरिक्त नागार्ज्जुननामक किसी मुनि—बौद्धाचार्य्यप्रणीत एक रसतंत्र और है, जिसे नागार्ज्जुनतन्त्र कहते हैं। कक्षपुटतन्त्र और आरोग्यमञ्जरी संज्ञक दो रस ग्रन्थ और हैं, जिन्हें नागार्ज्जुनकृत बतलाया जाता है। निदान टीका में विजयरक्षित ने आरोग्यमंजरी के प्रमाण उद्धृत किये हैं।

रसरत्न समुच्चयकार ने अपने ग्रंथ के आरम्भ में रसतंत्राचार्य्यों की जो एक सूची दी है, उससे अन्यान्य रसतन्त्रकारों का परिचय मिलता है।

(८) वाजीकरण-तन्त्र

वाजीकरणतन्त्र—वाजि शब्दका अर्थ अश्व (किसी के मत से शुक्र) है। आयुर्वेद का वह चिकित्साङ्ग जिसमें अल्प तथा शुष्क वीर्य को बढ़ाने, विकृत को स्वाभाविक अवस्था पर लाने और क्षयप्राप्त शुक्र को उत्पन्न करने का विधान है। क्षीण शरीर को सबल करने और मन को सदा प्रफुल्ल रखने का विषय भी उक्त शास्त्र में वर्णित है। अस्तु, वाजीकरणतंत्र से अभिप्राय जननशक्ति की रक्षा करना एवं उसकी वृद्धि करना है।

कहा है—

"येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नर:।
तद्वाजीकरणम्।" (चरक)

सुश्रुत में लिखा है—

"सेवमानो यदौचित्याद्वाजीवात्यर्थ वेगवान्।
नारीस्तर्पयते तेन वाजीकरणमुच्यते॥"

अन्यच्च—

"यद्द्रव्यं पुरुषं वाजिवत् सुरतक्षमं करोति तद्वाजीकरणमुच्यते।" अथवा—"यद्द्रव्यं पुरुषं कुर्य्याद्वाजीवत् सुरतक्षमं तद्वाजीकरमाख्यातम्।"

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट हो रहा है कि, जो द्रव्य मनुष्य की कामशक्ति को इतना बढ़ा दें कि उसकी शक्ति अश्ववत् विषय की ओर बढ़ जाय, उस द्रव्य को वाजीकरण कहा गया है।

शुक्रवर्द्धन और ओजोवर्द्धन औषधों को नित्य अथवा प्रयोजनानुसार सेवन करना—वाजीकरणतन्त्र की व्यवस्था है। चरक कहते हैं—

"नाभुक्तभेषज: स्त्रियमुपेयात्"

अर्थात् वाजीकरण औषध सेवन किये बिना स्त्री का सहवास नहीं करना। शुक्र को शरीर का सार वस्तु समझकर आचार्यगण वीर्य्य-रक्षा के लिए मनुष्य को यहाँ तक सतर्क कर गये हैं।

अँगरेजी में इन दोनों तंत्रो के अनुरूप कोई विशेष चिकित्साङ्ग नहीं है। अतः इन तंत्रों के अँगरेजी नाम ही नहीं मिलते। यह भी स्मरण रहे कि ध्वजभंग (नामर्दी) शुक्र सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा में यूनानी हकीमों की जो कुछ विशेषता है, वह इसी वाजीकरण तंत्र की कणामात्र को लेकर ही है।

इस अष्टाङ्ग में आजकल का शारीर-विद्या (Anatomy), शरीर-क्रिया-विज्ञान (Physiology), शल्यतन्त्र (Surgery), भेषज परिचय और द्रव्यगुण(Materia medica), भेषज कल्पना (Pharmacy), रसतंत्र वा धातु-विद्या (Chemistry), काय-चिकित्सा (Practice of Medicine), शारीर वैकृत विज्ञान वा सम्प्राप्ति (Pathology),जीवाणुविद्या (Bacteriology), अगदतन्त्र (Toxicology) और धात्री विद्या वा प्रसूतितंत्र (Midwifery) प्रभृति विषय विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त सदृश-चिकित्सा-प्रणाली (Homeopathy), विरोधि-चिकित्सा-प्रणाली (Allopathy), जल-चिकित्सा-प्रणाली (Hydropathy) और तंत्रशास्त्र में वर्ण-चिकित्सा (Chromopathy) इत्यादि विषय भी मिलते हैं।

उस आर्ष-काल में मानुष चिकित्सा-तन्त्रों के अतिरिक्त गज-अश्व-चिकित्सादि विषयक भी अनेक ग्रंथ लिखे गये थे, जिनमें से कुछ एक अब भी मिलते हैं। यथा—

(१) शालिहोत्र-संहिता—यह ग्रंथ अश्वायुर्वेद विषयक है। यद्यपि इस समय यह दुर्लभ है, तथापि सुप्रसिद्ध है। इतिहासकारों का मत है कि सर्व प्रथम अरबदेशवालों ने अपनी भाषा में इसका भाषान्तर किया और इसका नाम "शालाटोर" रखा।

नकुल और जयदत्तसूरिकृत अश्ववैद्यक संप्रति बंगदेशीय एसियाटिक सुसायटी द्वारा प्रकाशित किया गया है और प्रसिद्ध है।

(२) पालकाप्य-संहिता—गजायुर्वेदविषयक यह एक सुमहान ग्रंथ है, जिसे संप्रति आनन्दाश्रम के अध्यक्ष ने मुद्रित किया है।

प्राचीन आयुर्वेद की ज्ञानोन्नति का परिचय

आयुर्वेद का चिकित्सातत्व वैदिककाल से प्रचलित है। इसमें किसी बात की कमी देख नहीं पड़ती। जो कुछ कमी है वह हमारे मूल प्रचीन आर्ष ग्रन्थों का विलोप एवं प्रस्तुत ग्रंथों में प्रतिसंस्कर्त्तांकृत प्रतिसंस्कार और लेखक प्रमाद एवं प्रक्षेप दोष आदि के कारण ही है। तथापि अभी तक वर्तमान भग्नावशेष में भी कई एक शरीर-चिकित्सादि तत्वों का वर्णन ऐसा मनोहर है कि, उसे देखकर गुणग्राही सज्जनों का चित्त आनंद से प्रफुल्लित हो उठता है।

अस्तु, उनका पुनः संशोधन एवं प्राचीन प्राप्य ग्रन्थों की खोजकर उन्हें प्रकाशित करने तथा अलभ्य विषयों को अन्य चिकित्सा-शास्त्रों से लेकर पूर्ण करने से हम अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं।

आयुर्वेद की उन्नति एवं विकास का अध्ययन एक अत्यंत रोचक विषय है। उससे आपको इस बात का ज्ञान हो जायगा, कि उस समय के आयुर्वेद की शाखाएँ और प्रतिशाखाओं ने कितनी उन्नति की थी, इससे आपका चित्त प्रफुल्लित होगा एवं आपको प्रसन्नता होगी और पुनः अपनी उक्त पूर्व ऊर्जित अवस्था की प्राप्ति की प्रेरणा। ज्ञात रहे कि यह उसी युग के आरम्भ-काल की बात है, जब कि आयुर्वेदीय औषधियाँ एवं प्रणाली मिश्र तथा अरबमें जा पहुँची, जिसका उल्लेख बेरूनी, राज़ी प्रभृति अरब लेखकों ने किया है।

आप लोग भली भाँति जानते हैं कि प्राचीन-काल में आयुर्वेद अष्टांग सम्पूर्ण शास्त्र था और उस समय इसके पूर्वाङ्ग शरीर-विद्या (Anatomy and physiology), भेषज परिचय और द्रव्यगुण (Materia medica), भेषज कल्पना और धातु-विद्या (Chemistry) आदि भी बहुत उन्नत अवस्था को पहुँची हुई थी।

(१) (अ) शारीर-विज्ञान—आयुर्वेद का पूर्वाङ्ग शारीर-विद्या (Anatomy and physiology) है। हमारे आयुर्वेदाचार्य लोग पहले ही से कह रहे हैं—"शरीर के सूक्ष्माणु सूक्ष्म तत्वों को जो (च० शा० ६ अ०) मनुष्य सीखता है और हर समय स्मरण रखता है, उसी मनुष्य को आयुर्वेद सीखने का फल मिलता है।"

आज से दो सहस्त्र वर्ष पूर्व भी शरीरको चीरने फाड़ने की आवश्यकता का अनुभव किया गया था।

सुश्रुत कहते हैं—"इस लिये शव का प्रबंध करके, चतुरतापूर्वक चीर-फाड़ के उपरांत मनुष्य के हर अंग का, निश्चित ज्ञान, जो संदेहरहित हो, प्राप्त करना चाहिये।"

चरक भी लिखते हैं—जिसको "मनुष्य शरीर का संपूर्णरूप से पूरा ज्ञान है, वही आयुर्वेद का पूर्णांश में ज्ञाता समझा जा सकता है।"

इसके अतिरिक्त सुश्रुत और चरक में अस्थि का अपूर्व वर्णन मिलता है। यद्यपि उनके शारीर स्थानों में वृक्क, फुफ्फुस, मुस्तुलुङ्ग, हृदय, यकृत और प्लीहा आदि कई शारीर-यंत्रों के नाम मात्र मिलते हैं, तथापि यह बड़े दुःख की बात है कि, इन सबों का पूर्ण-विवरण सर्वथा दुर्लभ हो रहा है।

त्वचा के वर्णन में सुश्रुत सात प्रकार और चरक छः प्रकार की त्वचा का विवरण लिखते हैं। उसी प्रकार वर्तमान समय में भी अणुदर्शक-यंत्र से देखने पर भी त्वचा का विभाग दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार कलाओं और स्नायुओं का विवरण भी आयुर्वेद में सुन्दर रीति से है।

जलोदर रोग में भी सुश्रुत के चिकित्सा-स्थान के १४ वें अध्याय में कथित "ब्रीहिमुख-शस्त्र" और "द्विद्वारानाड़ी" (Frocarand canula) से चार-पाँच बार में समग्र जल निकालने की विधि डॉक्टरी जलसेन (Paracentesis) से सर्वथा उत्कृष्ट है। अश्मरी रोग में सुश्रुत के चिकित्सा-स्थान के ७ वें अध्याय में कथित वस्ति को चीरकर पथरी (Gravel) निकालने की विधि सुन्दर रूप से वर्णित है।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि अस्थि-भंग, संधिविच्युति आदि चिकित्सा आयुर्वेद में जैसी है वैसी ही डॉक्टरी की सर्जरी में है जो कि अत्यन्त नवीन मत कहा जाता है।

सुश्रुत के शारीरिक आठवें अध्याय में वर्णित यकृत् और प्लीहादि रोग में हाथ-पैर के शिरादाहऔर शिरावेध से जो अद्भुत फल मिला करता है, उसको डाक्टर अभी नहीं जान सके। हाथ पैरका चीरना, पेट चीरकर आमाशय, पक्वाशय गर्भाशय आदिपर शस्त्रकर्म करना (Laparotomy) और करोच्छेद (Trephining) अर्थात् खोपड़ी को चीर कर मस्तिष्क के ऊपर शस्त्रकर्म करना, सुश्रुत चिकित्सा के द्वितीय अध्याय और वाग्भट्ट उत्तर-स्थान के २६ वें अध्याय में अच्छी तरह वर्णित है। मूढ़गर्भ की चिकित्सा तो इस अवनति के समय में भी आयुर्वेद में जिस प्रकार वर्णित है, उसको देखकर मानना पड़ता है कि वर्तमान समय की प्रणालियाँ, यथा-बालक जनाना, प्रयोजनानुसार माता और बालक पर शस्त्रकर्म करना-सभी-सुश्रुतोक्त—

"उत्कर्षणापकर्षण-स्थानापवर्तनोत्कर्तन-भेदनच्छेदन-पीडनर्जुकरण दारणानि।"

(सु० चि० १५ अ०)

इन कर्मों के अन्तर्भूत हैं। सुश्रुतोक्त मूढ़गर्भों की गतियाँ और उनके चिकित्सा विषयक उपदेशों को पढ़कर कौन नहीं स्वीकार करेगा कि केवल "अपवर्तन" (Turning) ही नहीं, किंतु "उदर-विदारण" (Caeserion section), "गर्भ-दारण" (Embryotomy) आदि शस्त्रकर्म भी किसी समय कौमारभृत्यक वैद्यों के हस्तामलक थे।

आयुर्वेद का यन्त्र, शस्त्र, वस्तिकर्म (उत्तर-वस्ति, शिरोवस्ति, कर्णवस्ति, गुदवस्ति अर्थात् आस्थापन, निरूहण और अनुवासनादि) भी किसी से पीछे नहीं था। आँख बनाना, नाक बनाना आदि में भी आयुर्वेद का अनुकरण ही किया जा रहा है। आयुर्वेद की व्रण-चिकित्सा भी अति ही समुन्नत अवस्था को प्राप्त थी।

जब आयुर्वेदिक सर्जरी का अभ्यास आयुर्वेद के जाननेवालों को था, तब अश्विनीकुमारों ने दक्ष का कटा हुआ शिर जोड़ दिया था और ब्रह्मा का कपाल जब वीरभद्र ने फाड़ डाला था, तो अश्विनी-कुमारों ने ही ठीक किया था। ऐसा ही भोजके समय भी उसके मस्तक में गये हुए जन्तु शालाक्य-क्रम से ही निकाले थे। अर्श के मस्से पर भी उस समय आपरेशन होता था। "भोज प्रबंध" नामक ग्रन्थ में जो लगभग सन् ९८० ई० में लिखा गया है, "सम्मोहनी" नामक औषध का उल्लेख आया है। कहते हैं कि बौद्धकाल में शस्त्रकर्म से पूर्व रोगी को संज्ञा-शून्य करने के लिए (वा त्वक् सुप्तता जननार्थ) इसका उपयोग किया जाता था। सुनते हैं कि प्राचीन ग्रन्थों में "संजीवनी" नामक प्राणदायक औषध का भी उल्लेख मिलता है।

अधिक कहाँ तक कहें, प्राचीन काल में जो अद्भुत शस्त्रकर्म किये जाते थे, आयुर्वेद में उनका

वर्णन देखकर हमें कहना होता है; कि उनसे अधिक विस्मयकर शस्त्रकर्म अभी तक विशेष कुछ नहीं किये गये हैं। शस्त्रकर्म की चर्चा इस देश से उठ गयी, अतः प्रतिपक्षी इस समय चाहे जो कुछ कहा करें।

शल्यतंत्र का इतना ही स्वल्प विवरण जो कि, सुश्रुत-संहिता और उसके उपजीवी ग्रंथों में मिलता है, देखकर ही हम लोग विस्मित होते हैं। यदि—

"औपधेनव मौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम्।
शेषाणां शल्यतन्त्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत्॥"

इस श्लोक में निर्दिष्ट—आयुर्वेद के शल्यतंत्र के प्रधान ग्रंथ इस समय मिल जाते, तो न मालूम कितने अपूर्व तत्व सुनकर जगत को विस्मित होना पड़ता।

(आ) प्राणि-शास्त्र—शरीर-क्रिया-विज्ञान के तत्व, जैसे-पाचन संबन्धी मुख्य बातें, जीवाणु पोषण एवं विकास विषयक साधारण ज्ञान तथा मलमूत्र के चढाव एवं उतार संबंधी बातों का ज्ञान आयुर्वेद-शास्त्र के लेखकों को बहुत पहिले से था।

आज से कुल २०० वर्ष पूर्व जिस रक्त-संवहन क्रिया का आविष्कार करने से सर विलियम हार्वे योरप खंड के परम पूजनीय हुए थे; उसी रक्त संवहन क्रिया (Circulation of blood) का मनोहर वर्णन आयुर्वेद में (च० सू० ३० अ०) अभी तक मिलता है। देखिए प्रधान केंद्र—हृदय से धमनियों में से होकर बहनेवाला रक्त सर्व शरीर में कैसे प्रवाहित होता है और शरीर में घूम फिरकर पुनः हृदय में लौट आता है, इस विषय पर कैसा स्पष्ट कहा गया है कि, "सम्वर्तमानं हृदयं समाविशति यत् पुनः"। यह वही तत्व है, जो जीवाणुओं का पोषण करके तमाम प्राणियों को जीवित रखता है। यह "तत्व" ही है जो गर्भस्थित बच्चे के शरीर में होकर फिर माता के हृदय में आ जाता है। चरक में लिखा है—

"नाभ्यांह्यस्यनाडी प्रसक्ता, साचामरा, अमराचास्य मातुः प्रसक्ता हृदये। मातृ हृदयं ह्यस्यताममरामभि संस्रवते सिरभिः स्पन्दमानाभिः॥"

(च० शा० ६ अ०)

वाग्भटाचार्य भी स्पष्ट कहते हैं—

"दश मूलसिरा हृत्स्थाता: सर्व्वं सर्व्वतोवपुः।
रसात्मकं वहन्त्योजस्तन्निबद्धंहि चेष्टितम्॥"

(वा० शा० ६ अ०)

अतिरिक्त इसके इस बात का कि रक्त को रंग संबंधी पदार्थ कलेजे तथा प्लीहा से प्राप्त होता है, उल्लेख सुश्रुत ने किया है। यही बात कि, कलेजे से रक्त को रंग संबंधी पदार्थ मिलता है, अब जाकर पश्चिमवालों ने मालूम की है।

पूर्वोक्त संदर्भों को देखकर आयुर्वेद के परम शत्रु को भी स्वीकार करना पड़ेगा कि, महर्षिगण रक्तसंवहन क्रिया को अच्छी प्रकार समझते थे।

वायु-पित्त-कफ तत्व

शारीरिक क्रिया-विज्ञान आयुर्वेद के त्रिदोष तत्व अर्थात् वायु, पित्त, कफ, आदि के सर्व व्यापिता का आविष्कार भी प्राचीनकाल की ज्ञानोन्नति का एक श्रेष्ठ दृष्टांत है। शारीरिक क्रिया-विज्ञान के लिए वायु, पित्त, कफ ये त्रिधातु हैं, मानसिक क्रिया-विज्ञान के लिए वैसे ही सत्व-रज-तम ये त्रिगुण हैं।

यही सिद्धान्त ग्रीस देश में जाकर बहुत विकृत होकर (Humoural theory)के रूप में परिणत होगया है। यद्यपि यह (Humoural theory) हँसी उड़ाई जाने लायक है। जैसा कि—इस समय वायु का अर्थ सौदा वा विंड अर्थात् हवा, पित्त का अर्थ सफ़रा वा बाइल अर्थात् पीले रंग का तरल पदार्थ विशेष और कफ का अर्थ बलगम वा फ्लेग्म अर्थात् मुँह नाक आदि द्वारा निःसृत एक लसदार पदार्थ विशेष-इतना समझकर लोग आयुर्वेद की अपव्याख्या, करते हैं; परंतु यह आयुर्वेद पर घटित नहीं होता है। आयुर्वेदीय त्रिदोष-विज्ञान की ऐसी व्याख्या करना मानो अपनी अल्पज्ञता एवं मूर्खता का परिचय देना है।

वस्तुतः वायु, पित्त, कफ इन तत्वों से शरीर की स्वाभाविक क्रिया को तथा शरीर की विकृत अवस्था की क्रियाओं को एवं चिकित्सा में भेषज प्रयोग के जो अपूर्व नियम बाँधे गए हैं, उन नियमों को एकबार समझने से, महर्षियों का दिव्य ज्ञान देखकर सभी को विस्मित एवं मुग्ध होना पड़ता है।

वायु, पित्त, कफ केवल शरीर के ही तीन स्तम्भरूप हैं। यही नहीं, परन्तु समग्र आयुर्वेद के हेतु, लक्षण, औषध स्कंध के तीन प्रधान स्कंध स्वरूप हैं। मनुष्य का वयः क्रम, अहोरात्र, षड्ऋतु, अन्नविपाक आदि सभी में वायु, पित्त का प्रभाव महर्षियों ने स्पष्ट प्रतिपन्न किया है, जिससे चिकित्सा-कार्य में पूरी-पूरी सहायता मिलती है। इस विषय पर इस समय बस इतना ही कहकर आगे द्रव्यगुण पर कुछ कहेंगे।

द्रव्यगुण वा भेषज-कल्पना

शरीर-तत्व के बाद आयुर्वेद का द्वितीय पूर्वांग द्रव्यगुण (Materia medica) और भेषज कल्पना (Pharmacy) है। द्रव्यगुण के साथ इसका एक और अंग उद्भिज-विद्या वा बोटानी (Botany) है। इस विषय में भी राघवभट्टकृत "वृक्षायुर्वेद" और शार्ङ्गधरकृत "उपवन-विनोद" (जिसका बंगानुवाद म० म० कविराज गणनाथसेन महोदय अपने बाल्यकाल ही में प्रकाशित कर चुके हैं) नामक-ग्रंथ अब वर्तमान हैं। आयुर्वेद के द्रव्य-गुण विषय में राजनिघण्टु, मदनपाल निघण्टु, चक्रपाणिकृत द्रव्य-गुण आदि असंख्य ग्रंथ वर्तमान हैं। आयुर्वेदोक्त गुणों की विशेषता यह है कि महर्षि लोग पहले मनुष्य शरीर पर—आज-कल की तरह कुत्ता बिल्ली पर नहीं-भेष की क्रियाओं को देखकर सूक्ष्मविचार और अतीन्द्रिय ज्ञान से भेषज गुणों को लिखते थे, इसलिये उनके कथित द्रव्यों के गुण, रस,वीर्य्य, विपाक और प्रभाव अपूर्व हैं। आज-कल जिस तत्व का पत्ता बंदर, बिल्ली कुत्तों के ऊपर परीक्षा करके लगाया जाता है, उससे कहीं अधिक तत्व-ज्ञान का पता आयुर्वेद के रस, वीर्य्य, विपाक और प्रभाव के निर्णय द्वारा लगाया जाना सम्भव है। द्रव्य के रस और स्वाद, शरीर पर उष्णता और ठंढ करने की शक्ति अथवा वीर्य्य, शरीर के भीतर द्रव्य के रसों का होनेवाला परिणाम या विपाक और रोग नष्ट करने के उपायों का ज्ञान प्राचीन समय के आचार्य-गणों का बहुत चढ़ा-बढ़ा एवं पूर्ण था।

द्रव्यों का अचिन्त्य प्रभाव आयुर्वेद ही कह सकता है। जैसे द्रोणपुष्पी के रस को नेत्र में डालने से अथवा सहदेवी की जड़ सिर में बाँधने से चातुर्थिकज्वर दूर हो जाता है। ऐसे ही अर्धनारी नटेश्वर अंजन को जिस आँख में डालें, शरीर के उसी आधे अंग का ज्वर उतर जाना आदि प्रभाव के गुण हैं। इसे तर्क और युक्ति द्वारा जानना असंभव है। वैज्ञानिकता का आडम्बर चाहे जितना किया जाय, पर सुश्रुतोक्त उपदेश त्रिकाल में असत्य नहीं होगा।

"सहस्रेणापि हेतूनां नाम्बष्ठादि विरेचयेत्।
तस्मात्तिष्ठेत्तु मतिमानागमे न तु हेतुषु ॥"

अर्थात् अम्बष्ठादि औषधों से हजार कारण रहने पर भी विरेचन नहीं होता; यह स्वभावसे ही संग्राही हैं। इस दृष्टांतको एवं आगम को देखकर काम करना चाहिये, केवल युक्ति से काम नहीं चल सकता। अर्वाचीन रस-तंत्र के अनुसार हरीतकी में कषायिन (Tannic acid) नामक पदार्थ उपलब्ध होता है, जिसका धर्म स्तंभक है। परन्तु हरीतकी विरेचन लाती है, इसे प्राय: सभी जानते हैं। यहाँ पर पाश्चात्य रसायनतंत्र उसके विरेचनीय (Active principle) बतलानेमें असमर्थ है।

साथ ही यह स्मरण रखना परमावश्यक है कि भेषजों के गुण अनंत हैं और कई गुण ग्रंथों में न रहने पर भी विशेष करके जानने योग्य हैं।

रसविद्या (केमिष्ट्री) और फार्मेसी विषय का अति सूक्ष्म ज्ञान भेषज-विद्या वा द्रव्य-गुण के साथ ही आयुर्वेद के दो पूर्वाङ्ग और हैं, जिनके नाम रसविद्या (Chemistry) और औषध निर्माण-विद्या (Pharmacy) हैं। रसशास्त्र के गुणों द्वारा रसायन संबन्धी क्रियात्मक ज्ञान का भी विशेष अध्ययन होने का आयुर्वेद संबन्धी ग्रथों में उल्लेख है, आचार्य पी० सी० राय ने इस संबंध में अपनी पुस्तक हिष्ट्री ऑफ हिंदू केमिष्ट्री में विस्तार-पूर्वक चर्चा की है।

एक साधारण बात यह है कि पारे में यदि गंधक मिलादिया जाय, तो उसमें उठान नहीं होता; परन्तु साथ ही उसका चिकित्सा सम्बन्धी गुण भी नष्ट नहीं होता, बल्कि पूर्ण रूप में प्राप्त होता है। रस और पारद की योगवाहिता—अर्थात् जिन धातुओं के साथ बनाया जाय, उनके गुणों के ग्रहण की शक्ति वैद्यक का ही आविष्कार है। पारा संबंधी

अनेकों प्रकार के मिश्रण एवंउनके चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोग इन रसशास्त्रज्ञ वैद्यों को मालूम थे। अन्य धातुओं के भी मिश्रण का ज्ञान तथा उनके प्रचुरता के साथ प्रयोग की बातें मालूम थीं। उनके घटाने बढ़ाने तथा मारने की विधियाँ, उन्हीं रस शास्त्रज्ञों द्वारा बताई हुई आज भी आधुनिक वैद्यों द्वारा बर्त्ती जाती हैं।

आयुर्वेदिक पंचभौतिक विकासको जाननेवाले वैद्यों ने ही हीरे-पन्ने आदि पत्थरों का और स्वर्णादि धातुओं का गुण जानकर इनका मूल्य अधिक बढ़ा दिया था और इनके दिव्य रस-निर्माण करने की विधि का प्रचार किया था। स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, लौह, राँगा, सीसा, जस्ता आदि धातुओं की निरुत्थ भस्म करना और उनकी सूक्ष्म मात्रा से प्रयोग करके अपूर्व फल लेना, यह भी रस-विद्या के परमोत्कर्ष को प्रकाशित कर रहा है। निरुत्थ भस्म होने पर उस भस्म से उसी धातु को फिर खड़ा करना असम्भव है। भस्म की परीक्षा ऐसे करके केमिस्ट्री उसके गुणों का कोई प्रमाण नहीं पा सकती। अर्वाचीन रसतंत्र (Chemistry) के अनुसार तो कपर्दिका, शंख, शुक्ति और मुक्ता की भस्मों की गणना एक ही वर्ग में होती है। परंतु आयुर्वेद में इनमें से प्रत्येक के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभव का वर्णन है। इसी प्रकार सुवर्ण घटित मकरध्वज में सुवर्ण के न बढ़ने पर भी सुवर्ण के साथ चौबीस पहर तक अग्नि के पाक होने से उसमें सुवर्ण का जो गुणा धान होता है—सुवर्ण के जो अपूर्व गुण होते हैं, वह अभी केमिस्ट्री के परीक्षण द्वारा ज्ञात होने से बहुत दूर हैं।

इसके अतिरिक्त साधारण औषध बनाने में घृत तैलादि के साथ औषधों का पाक करके अपूर्व गुणाधान करना यह भी आयुर्वेदीय औषध-निर्माण विषयक अपूर्व नैपुण्य प्रकाश कर रहा है, जिसके आश्चर्यकारक प्रभाव हम नित्यही प्रत्यक्ष देख रहे हैं। आसव अरिष्ट, घी, तेल प्रभृति अनेक औषधों का गुणाधान और उनके द्वारा सफलता पूर्वक चिकित्सा करना चरक सुश्रुत आदि ग्रंथों से अथवा इसके पहले ही से चलता आया है। मीठा विष, कुचला, हड़ताल, रसमाणिक्य प्रभृति विषाक्त औषधियों का भी व्यवहार वैद्यों से बहुत अच्छी तरह जाना हुआ है। विशाक्त औषधि आदि को शुद्ध करने या निर्दोष करनेकी रीति भी रसचिकित्सा की थाती ही है।

त्रिसूत्र वा त्रिस्कंध आयुर्वेद

आयुर्वेद के पूर्वाङ्ग के बारे में इतना ही कह कर आगे आयुर्वेदोक्त प्रधान चिकित्सांग पर थोड़ा कुछ कहेंगे। पहले लिखा जा चुका है कि आयुर्वेद अष्टांग-शास्त्र है अर्थात् आयुर्वेदीय चिकित्सा आठ अंगों में विभक्त है; तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि आयुर्वेद में प्रधान विषय तीन ही हैं। इसलिए आयुर्वेद त्रिस्कंध अथवा त्रिसूत्र कहलाता है। इन तीन स्कंधों के नाम हेतुस्कंध, लिंग-स्कंध और औषध-स्कंध हैं और प्रत्येक स्कंधों में असंख्य संक्षिप्त सूत्र भरे हुए हैं। इन सूत्रों से ही रोग निर्णय तथा चिकित्सा-कार्य सुश्रृङ्खलता से चलता है। इन सूत्रों की रचना में महर्षियों का जो अपूर्व दिव्यज्ञान और सूक्ष्म-दर्शिता देखी जाती है, उसे देखकर अभीतक संपूर्ण जगत् आश्चर्यान्वित होता है।

इसी प्रसंग में प्राचीनकाल की रोग-परीक्षा-विधि के विषय में भी कुछ कहना उचित जान पड़ता है। आजकल जिस प्रकार डाक्टर लोग चार प्रकार की इंद्रिय द्वारा, जिनका काम दर्शन, स्पर्शन, श्रवण और सूँघना है, रोग परीक्षा करते हैं, उसी प्रकार पुराने समय में भी रोग-निर्णय किया जाता था। चरक ने इन चार इंद्रियों के व्यवहार के बारे में कहा है। सुश्रुत इनसे भी आगे बढ़कर जिह्वा के भी उपयोग का विधान करते हैं। यद्यपि नाड़ी-परीक्षा का उल्लेख चरक सुश्रुत आदि आर्ष ग्रंथों में नहीं है, तो भी बाद के ग्रन्थों, जैसे शाङ्गधर-संहिता एवं भावप्रकाश में इसका यथेष्ट वर्णन मिलता है। किंतु जो यह कहते हैं कि नाड़ी देखकर अनेक बातें कही जा सकती हैं, वह उन महाशयों की नितांत भूल है। पहले समय के शाङ्गधर-संहिता, भावप्रकाश आदि ग्रंथों में नाड़ी-विज्ञान की बातें रहने पर भी, उक्त ग्रंथकारों द्वारा सभी रोग निर्णय किया जाता है, ऐसी बात कहीं नहीं पाई जाती है। यदि यह बात सत्य होती, तो चरक, सुश्रुत आदि आर्ष ग्रंथों में रोगविज्ञान के षड्विध उपाय, त्रिविध-चतुर्विध उपाय लिखने की आवश्यकता ही न होती।

प्राचीन काल में युद्ध में वैद्य भी जाया करते थे और वहाँ इन लोगों का शिविर (तम्बू) ताना

जाता था। ये लोग शत्रु से दूषित की गई हुई वायु को किस प्रकार शुद्ध करते थे, इसका भी वर्णन सुश्रुतादि में दिया गया है। डाक्टरों में इस विषय की चर्चा प्रायः लुप्त है।

अगदतंत्र अथवा विष-चिकित्सा में भी आयुर्वेद का कोई कम ज्ञान नहीं था। सुश्रुत के कल्पस्थान की पर्यालोचन करने से यह पाया जाता है कि सर्प-विष, अलर्क-विष, क्षिप्तश्वानविष वा जलत्रास (Rabies) आदि की चिकित्सा, चूहे, बिच्छू आदि अनेक प्रकार के विषाक्त जंतुओं का वर्णन और उनके विषों की चिकित्सा का सीखना वैद्यों के लिये अनिवार्य था। पहिले की शास्त्र (Entomology) और विषाक्त जीव-जंतुओं का श्रेणी-विभाग आदि आयुर्वेद का एक प्रधान अंग था। उसके कुछ अंश भाव भी सुश्रुत में मौजूद हैं।

कुष्ठ, ज्वर, यक्ष्मा, आँख का उठ जाना अर्थात् अभिष्यंद आदि कितने संक्रामक रोगों के सम्बन्ध में भी प्राचीन काल के आयुर्वेद में स्पष्ट रूप से कहा है। नहीं दिखाई देनेवाले अदृश्य जीवाणु या क्रिमी जो कि कुष्ट आदि रोगों के कारण हैं, यह भी प्राचीन समय में लोगों को अज्ञात नहीं थे। यह अवश्य है कि इसके बारे में आजकल जितना विकास हुआ है, उतना पहले नही था। परंतु सुश्रुत के "रक्त वाहि सिरास्थाना रजसा जन्तवोऽणवः षट्ने कुष्टैक कर्माणः" और "केशादाद्या अदृश्यास्ते" आदि क्रिमि के उल्लेख अत्यंत आश्चर्यजनक हैं।

इसके अतिरिक्त अर्वाचीन इञ्जेक्शन चिकित्सा भी कोई नूतन चिकित्सा विधि नहीं, अपितु हमारे सूचिकाभरणादि प्रयोगों का सुव्यवस्थित, सुसंस्कृत एवं परिमार्जित रूप मात्र है। कहाँ तक लिखें, आयुर्वेद की प्रचीन ऊर्जित ज्ञान-गारिमा के उल्लेख के लिये लेखनी असमर्थ है। अस्तु, यहाँ पर प्रसंगानुकूल उसका थोड़े में उल्लेख कर आगे इस विषय में विदेशी पंडितों के कुछ वचन उद्धृत कर ही इस विषय को समाप्त किया जाता है।

आयुर्वेद की अतिप्राचीनता और अखिल विद्या वीजता

हमारा आयुर्वेद ही सर्वाधिक प्राचीन एवं निखिल चिकित्साशास्त्र का बीज है। आयुर्वेद के उस मध्यकालीन समय में, जबकि अन्य देशों के पूर्व पुरुष सचमुच के बनमानुष थे, अपने रहने के लिए घर भी बनाना न जानते थे, जमीन में जानवरों की तरह भीटें खोद के रहते थे, तंत्र-मंत्र, झाड़ा-फूँकी रूपी अविद्यांधकार तमसाच्छन्न थे, उनसे हजारों लाखों वर्ष पूर्व, वल्कि उनके भी गुरु सभ्यताभिमानी ग्रीस और रोम के सभ्यता सीखने और होश सँभालने से भी बहुत पहले, निखिल भूमण्डल में भारत का ही उज्ज्वल ज्ञानालोक उद्भासित होरहा था, यह इतिहासवेत्ताओं से छिपा नहीं। वही समय था कि, भारत के आयुर्वेदाचार्यों ने मनुष्यों के कटे सिर जोड़े थे, अंधों को सूझता कर दिया था और बूढ़ों को नौजवान बना दिया था। क्या अश्वनी-कुमारों द्वारा ब्रह्मा के कटे शिर जोड़े जाने की बात निरी कपोल-कल्पना ही है? क्या इन्द्र का भुज-स्तम्भ रोग और चन्द्रमा का क्षय रोग आराम होने की बात निरी गप्प ही है? नहीं! कदापि नहीं! यदि और देशों की प्राचीन लेखकों के ग्रंथों की बातें बिलकुल मिथ्या हैं, तो हमारे पुराणों की बातें भी मिथ्या हो सकती हैं। यदि उनमें लिखी बातें सत्य हैं, तो हमारे यहाँ की बातें भी निःसंदेह सत्य हैं।

प्राचीन समय में महाभारत के युद्ध के उपरांत जब लोगों का स्वास्थ्य खतरे में था, उस समय आयुर्वेद ही ने सबके स्वास्थ्य की रक्षा की थी। उस स्वास्थ्य-रक्षा की योजना में जड़ी बूटियों से लेकर चीर-फाड़ तक काम में लाया गया था। बाद को जब आर्यावर्त्त संसार के आधे भाग का शिक्षक बना, उस समय आयुर्वेद ने संसार के सुदूरवर्त्ती स्थानों में प्रवेश किया। उस समय अरब, ईरान (फारस), मिश्र देश, यूनान (ग्रीस) तथा रोम आदि पश्चिमीय देश एवं बर्मा, चीन आदि पूर्वीय देश दक्षिण महाद्वीपादि इस विज्ञान का विद्यार्थी बनने में अपने को गौरवान्वित समझते थे। आज से करीब सवा दो सहस्र वर्ष पूर्व जब सिकंदर इस देश पर आक्रमण करने आया था, उस समय वह आयुर्वेद-शास्त्र के गुणों को देखकर आश्चर्यान्वित

हुआ था। तब से आयुर्वेद ने यूनान की यूनानी पद्धति, एवं रोम की एलोपैथिक पद्धति की नींव डाली एवं उनका विकाश आरम्भ किया। इसी तरह चीन की भी चिकित्सा-प्रणाली आयुर्वेद की ऋणी है। प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता इस बात को स्वीकार कर चुके हैं।

इतिहास की सृष्टि के भी घोर अंधकार में हमारी दृष्टि जहाँ तक पहुँचती है, वहाँ भारत के छिन्न भिन्न विध्वस्त गौरव के साक्षी स्वरूप कितने ही मणि-माणिक्य अब भी प्रकाशमान हो रहे हैं। केवल हमारी ही नहीं,प्रत्युत पृथ्वीके सर्व देशवासियों की दृष्टि में दिन पर दिन भारत का गौरव प्रतिभात होता जा रहा है। कोई दिन ऐसा था कि, ग्रीक के अधिवासियों को पाश्चात्य पंडितों ने जगत् गुरु और आदि सभ्य होनेका गौरव दिया था; क्या ही आनन्द का विषय है,कि आज उन मिसर और ग्रीक देशवासियों के भी यथार्थ गुरु, ये वृद्ध भारतवासीही थे, इस बात को पाश्चात्य पंडित-गण भी भली भाँति मानने लगे हैं। चिकित्सा-शास्त्र में भारतीय चिकित्सा-विज्ञान सम्पूर्ण चिकित्सा-विज्ञानों का आदि मूल वा पितृ स्वरूप है यह भी अब ऐतिहासिक लोग स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु भारतीय चिकित्सा-विद्या (आयुर्वेद) के मूल सूत्रों से किस प्रकार अन्य चिकित्सा-विज्ञानों की सृष्टि हुई है और अब तक आयुर्वेद के कितने ही मूल सूत्रों के न जानने से दूसरे चिकित्सा-विज्ञानों में जो कितनी ही त्रुटियाँ हैं, इन बातों की गंभीर गवेषणा ऐतिहासिक लोगों को नहीं, अपितु वैद्य लोगों को ही करनी परमावश्यक है।

महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन महोदय लिखते हैं—"जहाँ से भारत के अतीतकाल के वास्तविक इतिहास का अंत होता है, वहाँ से अर्वाचीन भारतीय इतिहास का प्रारंभ होता है। भगवान बुद्ध का जन्म वा सम्राट् अशोक का राज्य भारत की गौरव-गरिमा का प्रारम्भ नहीं, अपितु उसीका गत ज्ञानगरिमा की इतिश्री प्रतिभासित करता है। इस काल से पूर्व के भारत के सुपूतों के उदात्त कार्यों का वास्तविक इतिहास अभी लिखना शेष है। यही वह सहस्राधिक वर्ष व्यापी युग था, जिसमें आयुर्वेदशास्त्र साथ ही भारतीय-विज्ञान के बहुत से अन्य अंगों और साहित्य की असीम उन्नति हुई थी और जिसने अपने प्रकाश से मिश्र, यूनान, रोम और अरब आदि विभिन्न देशों को प्रकाशमान किया था।"

उपर्युक्त बातों से आपको पूर्णतया ज्ञात होगया होगा कि, आज इस भूतल पर जितने देश हैं, उन अखिल-देशीय आयुर्वेदों की उत्पत्ति हमारे आयुर्वेद से ही हुई है। हमारा आयुर्वेद संसार में सबसे प्राचीन और पहला—आदि है। इस कथन की पुष्टि के लिए नीचे हम विदेशियों के ही कुछ वचन उद्धृत करते हैं, जिससे स्वयं आपको हमारे बातों की सत्यता प्रमाणित होगी। अस्तु,

पुरा इतिहासकारोंने अकाट्य प्रमाणोंद्वारा यह बात प्रमाणित करदी है कि, उस प्रागैतिहासिक काल में ही आर्य लोग मिश्र देश में उपनिविष्ट हो गये थे। अस्तु, इनके और बर्बर जातियों के मिश्री भूत होकर निवास करने के कारण ही, उसे मिश्र देश कहने लगे। प्राचीन मिश्र-निवासियों के रीति-रस्म को देखने से भी यह प्रतिपन्न होता है।

पोकाक महोदय ने सैकड़ों दृष्टांत देकर यह भली प्रकार प्रदिपादित किया है, कि न केवल ग्रीस भाषा संस्कृत भाषा से प्रादुर्भूत हुई है, अपितु ग्रीस देशवासियों के नगर, देवताओं के नाम, कथा, वस्तु प्रभृति भी भारतीयों के नगर देवताओं के नाम आदि के सर्वथा अनुकरण मात्र हैं। (Pocock's India in Greece)

कहते हैं नील शिखंडी—तान्त्रिक देवता ने मिश्र देश में नीलतन्त्र (प्राचीन भारतियों की एक गुप्त-विद्या) की शिक्षा दी। नील नदी जिसके तटपर मिश्रदेश बसा है, कदाचित् उसी देवता—नील शिखंडी के नाम से ही अभिहित हुआ है।

महाभारत के वर्णनानुसार, ययाती के चारों पुत्र जिनको उनके पिता ने श्राप दे दिया था, वहाँ से पश्चिम दिशा को चले गये और कुछ एक म्लेच्छ जातियों के अगुआ बने। अस्तु, कोई कोई कहते हैं कि उन्हीं के मिलने के कारण इस देश का मिश्र नाम पड़ा। (Aryan history of medicine)

जैकोलियट (Jacolliot) बहुत ठाक एवं बलपूर्वक कहता है—"हमें यह बात भूल न जानी

चाहिए कि, भारतवर्ष—प्राचीनकालीन असीम प्रकाश केंद्र—एशिया के सभी प्रदेशों से संबंधित था और तद्देशीय पुराकालीन सभी दार्शनिक एवं ऋषिगण आयुर्विज्ञान के अध्ययनार्थ वहाँ जाते थे।”

यूनानी और रोम देशीय चिकित्सा-शास्त्रों पर भारतीय चिकित्सा-शास्त्र का प्रभाव स्पष्ट दृग्गोचर होता है। ग्रीस देशीय सम्राट् सिकंदर ने जब दिग्विजय की अभिलाषा से भारतवर्ष पर आक्रमण किया, तो उसके द्वारा हेलेनिक सभ्यता भारतीय सभ्यता के अति निकट संपर्क में आ गई। उस काल में भारतीय आयुर्वेद-विद्या चरम सीमा पर पहुँची हुई थी और औषध-प्रयोग-विज्ञान एवं अगदतंत्र विषयक भारतीय चिकित्सिकों का ज्ञान-गौरव अन्यदेशवासियों की अपेक्षा कहीं चढ़ा-बढ़ा था। उन्होंने प्रत्येक के द्रव्य-गुणों का पर्याप्त अध्ययन किया था और रोगों और औषधों द्वारा उनकी चिकित्सा के अध्ययन की ओर व्यवस्थित रूपेण ध्यान दिया था। यूनानी शिविर के सिपाहियों की सर्पदष्ट एवं अन्य व्याधियों की चिकित्सा में उन चिकित्सकों का उपचार-कौशल इस बात का साक्षी है। तब इसमें आश्चर्य ही क्या, कि यूनानी चिकित्साशास्त्र ने आयुर्वेद विषयक बहु संख्यक ज्ञान हिंदुओं से प्राप्त किया और अपने द्रव्य-गुण-शास्त्र को परिवृंहित किया। यह विश्वासनीय है कि बहुत से यूनानदेशीय दार्शनिक, जैसे—पैरासेल्सस, बुक़रात और फीसागोरस ने स्वयं प्राच्य देशों का भ्रमण किया था और इस प्रकार वे भारतीय-शिक्षा को अपने देश में पहुँचाने में प्रधान कारण-सहायक हुए। दीसकूरीदस के ग्रन्थों से स्पष्ट प्रगट होता है कि प्राचीन यूनान निवासी अपने चिकित्सा विषयक ज्ञान के लिए प्राच्य एवं भारतीयों के कितने ऋणी हैं। उसके प्रथम ग्रंथ में बहुत से भारतीय पौधों, विशेष कर सुगंधित औषध-वर्ग का, जिसके लिए सदैव से भारतवर्ष प्रसिद्ध रहा है, वर्णन मिलता है। श्वास रोग में धत्तूर धूम्रपान, पक्षाघात एवं अजीर्ण में कुचिला का प्रयाग और विरेचनार्थ जयपाल का प्रयोग विषयक उनका ज्ञान प्राचीन भारत-निवासियों के संपर्क का ही फल है।

प्रसिद्ध हकीम जालीनूस अपनी पुस्तक में लिखता है—“आयुर्वेद-विद्या पहले हिंदुस्तान से मिश्र में और मिश्र से यूनान और अरब में गई। मेरे उस्ताद हकीम अफलातून ने हिंदुस्तान जाकर ‘कालज्ञान के’ ३६ लक्षण और बहुत से ग्रंथ पढ़े थे। उनका सारभाग वह एक तख़्ती पर लिखकर गले में लटकाये रहते थे। उस तख़्ती की विद्या को वह किसी शिष्य को न सिखाते थे। मरते समय उन्होंने अपनी बीबी से कहा कि, मेरे मरने पर इस तख़्ती को मेरी क़ब्र में दफ़ना देना। उनकी बीबी ने उनके मरने पर वह तख़्ती उनके साथ क़ब्र में गड़वा दी। मुझे इस बातसे बड़ा आश्चर्य हुआ। एक दिन क़ब्र खोदकर मैंने वह तख़्ती निकाल ली। पीछे से मैने उस विद्या में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। मेरी देखा देखी अरस्तू और उनके शिष्यों ने भी हिंदुस्तान जाकर चिकित्सा-शास्त्र पढ़ा।”

ग्रीस देशीय चिकित्सा-ग्रंथों में बात-पित्त-कफ-शोणित को सर्व देह के कारण का हेतु और सब रोगों के उत्पन्न करने में कारण माना गया है। यह हमारे यहाँ के धन्वन्तरि संप्रदाय के आचार्यों का बहुत पुराना मत है। अस्तु, सौदा-सफरा-वलग़म के साथ ही खून को भी दोष-गणना में सामिल करने का श्रेय यूनानी चिकित्सकों को नहीं दिया जा सकता। स्वयं “सुश्रुत” ने शोणित को चतुर्थ दोष स्वीकृत किया है।

रोम की सभ्यता बहुत पीछे की है रोम और यूनानदोनों अपनी सभ्यताके लिये सम्राट्अशोक तथा अन्य बौद्ध राजाओं द्वारा, भेजे हुए बौद्ध-धर्म-प्रचारकों के ऋणी हैं। प्राचीन चित्रों में, पुरातन रोम तथा अन्य देशवासियों के वेश-विन्यास प्राचीन भारतियों के वेश-विन्यास से सर्वथा मिलते-जुलते हैं रोम देशवासी भी भारतीय औषधियों में बहुत रुचि रखते थे। इस बात के लिये हमारे पास काफी प्रमाण मौजूद हैं कि, आज से कई शताब्दी पूर्व भारत और रोम के बीच औषधियों का व्यापारिक संबंध था। वह देश जहाँ पर विभिन्न प्रकार के जलवायु हों और जहाँ हिमाद्रिवत् आश्चर्य-जनक पर्वत श्रेणियाँ एवं गगन-स्पर्शी शिखर हों, वह अति प्राचीन काल से यदि उत्तमोत्तम औषधियों की उपज के लिए जगत विख्यात रहा हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? प्लाइनी के समय में यह औषधीय-व्या-

पार इतना बढ़ा-बढ़ा था कि उसने बहुमूल्य भारतीय औषधियों एवं मसालों को खरीदने में रोम देश का प्रभूत धन भारत में चले जाने की शिकायत की है। अब आपको ज्ञात हो गया होगा कि यहीं से हज़ारों औषधियाँ केवल रोम ही में नहीं, अपितु अरब, ईरान होकर, यूनान और इटली (रोम) में पहुँचती थीं और वहाँ से स्पेन, फ्रांस, इंग्लैंड और जर्मनी में फैल जाती थीं। वहाँ से उनके बदले प्रभूत धनराशि भारत में उलट पड़ती थी उसी जमाने में यह भारत-वसुन्धरा पृथ्वी का स्वर्ग थी। प्रसंगागत इस विषय में एक प्राच्य-विद्या के आंग्ल विद्यार्थी के लेख का उद्धरण देना कदाचित् रुचिदायक होगा। कैप्टन जान्सटन सेंट एम० ए० ने अपनी एक वक्तृता के बीच कहा था कि जब योरप प्रकाश पाने की अभिलाषा से ग्रीस की गोद में शरणापन्न था, उस समय भारतवर्ष शल्यतंत्र एवं चिकित्सा-विद्या में असाधारण उन्नति कर चुका था। वह कहते हैं—"उस समय यदि यह जो कुछ हम जर्राही (Surgery) में पाते हैं, तो चिकित्सा-विद्या में भारतवर्ष से क्या नहीं प्राप्तकर सकते। यह सुविस्तृत ऊर्वर देश जो, वनस्पति-जगत का विविधात्मक विश्व-भाण्डार है—हम प्राचीन भारतीयों का द्रव्य-गुण-शास्त्र वह विस्मयकारक वस्तु है, जिसके यूनान निवासी और रोम देशवासी दोनों ऋणी हैं।"

डॉक्टर वाइज (Commentary on Hindu Medicine), डाक्टर रायले, डॉक्टर एलन वेल इत्यादि अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस बातको स्वीकार किया है, कि भारतीय चिकित्सा-शास्त्र ही निखिल चिकित्सा-शास्त्रों का मूल वा उद्गम है।

इतने पर भी कई अदूरदर्शी मनुष्यों ने ग्रीक पद्धति को संसार की चिकित्सा-पद्धतियों की जननी ठहराया है। उन लोगों के पृथ्वी शब्द का अर्थ सम्भवतः योरोप मात्रही है। अथवा यों कहो कि—

अरब देशीय सभ्यता का आविर्भाव बहुत पीछे हुआ। अरब देशीय इतिहासकार खुले शब्दों में अपने को भारत का ऋणी होना स्वीकार करते हैं। अलबेरूनी नामक प्राचीन अरब ऐतिहासिक ने जो सन् १०१७ से सन् १०३० ई० तक भचा त हुए थे, में ही रहा, यह बात पूर्णतया स्वीकार की है कि अरब देश-वासी भारतीय ज्ञानकणा के अधिकारी हैं। यह प्रसिद्ध है, कि ईरान के ख़लीफ़ा हारूँ रशीद नामक नरपति ने अपने राजत्वकाल में ईसवी सन् की ८ वीं शताब्दी में "शरक" (चरक), 'सस्रद्' (सुश्रुत) नामक इन दो ग्रंथों का एवं माधवीय निदान का अरबी भाषा में अनुवाद करवाया। कोई कोई कहते हैं कि उसने अगदतन्त्र और कौमारभृत्य आदि विषयक अन्य कतिपय ग्रंथों के भी उलथा करवाये थे। वह अपनी चिकित्सा के लिये हिंदू वैद्यों को रखते थे। उन्होंने मनका (मंख), सालह (मालेह ?)और अब्नधन? नामक तीन भारतीय वैद्यों को बगदाद मँगवाया था। अस्तु, मनका ने वनौषधि-विद्या विषयक कतिपय संस्कृत ग्रंथों के साथ सुश्रुत का भी अरबी भाषा में भाषांतर किया। वह फारसी भाषा का भी पंडित था। उसी काल में चरक का भी अरबी भाषांतर हुआ। अबु मुहम्मद ज़करिया राज़ी ने स्वरचित अलहादी एवं अन्य ग्रंथों में चरक और सुश्रुत का उल्लेख किया है।

सुनते हैं मनका (मंख) नामक भारतीय भिषक् ने खलीफ़ा हारूँ रशीद को, जिन्होंने उसे भारतवर्ष से अपनी चिकित्सा के लिए बुलवाया था; दारुण रोग से मुक्तकर, उसकी सभा में महती प्रतिष्ठा प्राप्त की। उसके विषय में यह कथानक प्रसिद्ध है—मंख को बगदाद आए थोड़े ही दिन हुए थे, कि एक दिन वह बाजार में भ्रमणार्थ गया। मार्ग में वह क्या देखता है कि एक अताई औषध-विक्रेता अपनी चादर बिछाए और उस पर बहुत सी जड़ी-बूटियाँ फैलाए, दवा बेच रहा है। उस समय वह एक माजून का मर्तबान हाथ में लिए हुए उसका ग वर्णन कर रहा था और कहता था—" कया आह्लिक ज्वर, दुजारी, तिजारी, चौ वर्ष पूर्व शिरोशूल, आँख दुखने, उदर अर्श, मूत्रातिसार, फ्रा से बार-बार आक्रांत होने तात्पर्य यह लोग हीन बना दिये गये थे। को ला कनिष्क नामक महा प्रतापी राजा ने; क जाति का राजा था, हिमालय से लेकर विंध्याचल तक भारत के समस्त उत्तर पश्चिमीय देशों को जीत लिया था। इसके तीन सौ वर्ष अनन्तर देश में शांति स्थापित हुई। संभवतः इसी समय के

उद्घाटित कर दिया, कि अरब-नरपति मूर्ख है।" लोगों ने पूछा वह कैसे? मनका ने कहा, इसलिए कि उसने ऐसे सर्व विद्या-पारंगत योग्य चिकित्सक के अपने यहाँ होते हुए, व्यर्थ ही प्रभूत धन-व्यय कर अपनी चिकित्सार्थ मुझे बुलवाया। मेरी जन्म-भूमि, मेरे बाल-बच्चे, सुहृद, बंधु-बांधव सब मुझसे छुड़ाया और अब सहस्रों रुपया मेरी तनख़ाह पर व्ययकर रहा है। उसने क्यों न इस योग्य हकीम की चिकित्सा कराई, जो एक ही औषध द्वारा दुनिया भर के रोगों के निमूल करने का प्रण कर रहा है!!! यदि यह मिथ्या है तो यह राजा की मूर्खता तथा अल्पज्ञता का प्रमाण है। उसकी कुशलता तो इसमें है कि उसका बध करके सहस्रों मनुष्यों की, जो उसके जाल में पड़कर प्राण गँवाते हैं, प्राणदान क्यों नहीं देता, इत्यादि। (तबक़ातुल् इतिब्बा)

यावन चिकित्सा सम्प्रति यूनानी वा तिब्बी नाम से प्रसिद्ध है। यह पहले भारत से ही अरब देश में गई और पुनः भारत-विजयी मुसलमान नृपतियों के साथ भारत में आई, इसमें किसी प्रकार का मतभेद नहीं। अस्तु, यावन-चिकित्सा में आज भी आयुर्वेद के बहुशः बीज दृग्गोचर होते हैं। आयुर्वेद के मार्मिक सिद्धान्तों के विशद विवेचन यद्यपि आंशिक रूप से अथवा मौलिक रूप से ही सही यूनानी चिकित्सा में होचुके थे। सौदा-सफरा-बलगम के साथ ही खून को भी दोष-गणना में शामिल करने का श्रेय यूनानी चिकित्सा को नहीं दिया जा सकता। स्वयं "सुश्रुत" ने शोणित को चतुर्थ दोष स्वीकृत किया है। निःसंदेह यूनानी चिकित्सा में निघण्टु आदि के सम्बन्ध में कुछ बारीकियाँ मिलती के पर वह भी मेरे विचार से अनुच्छिष्ट नहीं हैं। उसके प्र सिराव्यध प्रणाली (फ़स्द खोलने का कर सुगंधित औ (फ़स्द) का बहुत प्रचार जो भारतवर्ष प्रसिद्ध रहा है, ाई देता है, वह सुश्रुतोक्त रोग में धत्तूर धूम्रपान, पचाध में लिखा है—"सिरा-कुचिला का प्रयाग और विरेचनार्थ र्तितः। (सु० प्रयोग विषयक उनका ज्ञान प्राचीन भारत-निवा के संपर्क का ही फल है।

प्रसिद्ध हकीम जालीनूस अपनी पुस्तक में लिखता है—"आयुर्वेद-विद्या पहले हिंदुस्तान से

आदि उसके भारतीय होने के प्रमाण हैं। वाजीकरण जो इस समय यावन-चिकित्सा का सर्वस्वभूत है, वह भी सर्वथा निस्संदेह रूप से आयुर्वेद का अपभ्रंश स्वरूप मात्र है। यही क्यों स्वयं 'यूनानी' शब्द यवनानी संस्कृत शब्द का अपभ्रंश ही है (यवनानां भाषा यवनानी—इतिहि वैयाकरणाः)।

चीनदेशीय चिकित्सा-शास्त्र में भी बहुधा आयुर्वेद का बीज दिखाई देता है। पुनः वहाँ भी यही वात, पित्त, कफ, शोणितवाद वर्त्तमान है, जिसे इत्सिंग नामक चीनदेशीय परिव्राजक ने निर्दिष्ट किया है। बहुशः ओषधियाँ भी भारत में ही होनेवाली हैं। (प्र० शा० संस्कृत उपोद्घात पृ० ६)

उपर्युक्त विवेचन से अपने-पराए-प्रमाणों द्वारा अब यह बात निर्विवाद सिद्ध होगई कि, आयुर्वेद ही अखिल चिकित्सा-शास्त्र का बीजभूत एवं आदि स्रोत है।

आयुर्वेद का अवनति काल और संग्रह-युग

आयुर्वेद की प्राचीन ऊर्जित अवस्था का इतिहास यहाँ तक संक्षेप से कहकर अब इसकी अवनति का दिग्दर्शन कराना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। आयुर्वेद के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि संहिताकारोंकासमय और उससे आगेका संबंधित काल सब ही प्रायः आयुर्वेद का स्वर्ण समय अथवा दूसरे शब्दों में आयुर्वेद का मध्याह्न सूर्य कहा जा सकता है। इसके अनंतर विशेष कर सिद्ध एवं तन्त्र कालोपरांत मध्यकाल में आयुर्वेद की जो स्थिति थी, वह प्रायः बहुत ही विकट पाई जाती है।

यूनानियों के आक्रमण काल से—आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व ही आयुर्वेद की अवनति के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे। जिस समय भारतवर्ष में हिंदू राजाओं का आधिपत्य विनष्ट होने लगा एवं बौद्धों का और बौद्ध राजाओं का प्रभाव समग्र भारत में व्याप्त हो गया, उसी समय के संघर्ष से आयुर्वेद का कुछ-कुछ विलोप होने का सूत्रपात होने लगा था सही, किंतु धर्म पर आक्रमण होने पर भी कई बौद्ध ग्रंथकारों की कृपा से आयुर्वेद का लोप सम्यक् प्रकार से नहीं होने पाया, प्रत्युत आयुर्वेद के कितने उ ही क्या है य का पुनरुद्धार ही हुआ है। आयुर्वेद का न शकों तथा उनके बाद हूणों के आक्र-

मणों, फिर हिंदू तथा बौद्ध राजाओं के गृह-युद्धों के कारण होने लगा। फिर उत्तर भारत में मुसलमानों का निष्ठुर आक्रमण आरम्भ हुआ। पूर्तगीजों एवं डचों ने दक्षिण भारत पर आक्रमण किया। इन्होंने जो कुछ इनके सामने पड़ा, या तो तलवार के घाट उतार दिया या आग में स्वाहा कर दिया। यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि भारतीय गौरव आज भी क्योंकर बच रहा। जब कि यूनान तथा रोम के गौरव का पता उनकी कब्रों, दफनाये हुए मुर्दों तथा पिरामिडों से ही चलता है। हमारे भारतवर्ष का गौरव हमारे अमूल्य साहित्य में-जिसे हमारे पूर्वज निधि रूपमें छोड़ गये है-मिलता है।

यह मैं पूर्व से ही बतला चुका हूं कि, हमारी अवनति का श्री गणेश विदेशियों के पदार्पण के साथ ही हुआ। ईसवी सन् से ३२७ वर्ष पूर्व जब ग्रीस के सम्राट् सिकंदर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया, तब इस आक्रमण के कारण देश में महा विप्लव प्रारम्भ हुआ। अकाल पड़ने, घरों के जलने से असंख्य मनुष्य और बहुत से ग्रन्थ नष्ट हो गये। सिकंदर ने देश विजय करके लौटते समय सबका भार ग्रीस सेना के नायक सेल्यूकस पर छोड़ता गया। सेल्यूकस ने यहाँ से अनेक ग्रंथ ग्रीस देश में भेज दिया। इन ग्रन्थों में प्रायः बहुत चिकित्सा ही के ग्रन्थ थे। यह पहिले ही कहा जा चुका है कि सिकंदर और उसका सेनापति दोनों ही भारतीय चिकित्सा के चमत्कार को देखकर मुग्ध हो गये थे। सेल्यूकस जाते समय महाराज चन्द्रगुप्त के राज्य में ग्रीस देश के चिकित्सक मेगस्थनीज नामक दूत को भारतीय शिक्षा ग्रहण करने के लिये छोड़ता गया था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ग्रीस देश के चिकित्सकों ने भारत से ही अच्छी शिक्षा प्राप्त की है।

महाराज चन्द्रगुप्त और उनके पुत्र बिन्दुसार के मरने के बाद उस समय का क्रूर प्रकृतिवाला राजा "चन्द्रशोक" बहुत राजाओं को और राजवंश को मार कर गद्दी पर बैठा था (ईसवी सन् से २६४ वर्ष पूर्व)। अभी अशोक को तीन वर्ष ही सिंहासनारूढ़ भये हुआ था कि सुघोर राजविप्लव मचा था, जिसमें लाखों मनुष्य काल कवलित हुए थे, यह निश्चित है। इसके उपरांत अशोक ने उपगुप्त नामक बौद्ध द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण किया और तब से वह बहुत धर्मिष्ठ राजा हो गया। इसी समय में यह अनेक बौद्ध सन्यासियों को चीन ग्रीस आदि देश में भेजकर बौद्ध धर्म का ज्ञान दिया। चिकित्सा भी बौद्धधर्म की एक अंगभूत है। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि बौद्धधर्म के श्रमण करनेवाले अर्थात् श्रमण भिक्षुकों ने यहाँ तक कि यवन देश में भी इसका प्रचार किया था। किंतु इस समय राजा द्वारा मुर्दा चीरना मना था। अस्तु, शरीर-शिक्षा (Anatomy) की अवनति होती गई।

इसके उपरान्त मौर्य्यवंश के नष्ट होने पर १८३ (बी० सी) में पार्थि नामक ग्रीक जाति, शक नामक बर्बर जाति प्रायः सिंध नदी को पार कर साकेतपुर तक आक्रमण किया करते थे। इस कारण प्रायः राष्ट्र विप्लव मचा रहता था। इसी समय मिलिंद नामक ग्रीस देशीय एक व्यक्ति ने पंजाब जीता था। मगध देश का शुंगवंशीय पुष्यमित्र ने मौर्यवंशीय राजा वृहद्रथ का विनाश करके उसका राज्य अधिकारमें कर लिया था। निरंतर इसी प्रकार युद्धों से प्रायः सभी आर्य शास्त्रोंकी निवृत्ति होती गई और साथ ही साथ आयुर्वेद की भी अवनति यथेष्ट हुई और देश-व्यापी पुष्यमित्र के राजा होने के उपरांत एक भारी विप्लव मचा था। इसी समय भगवान पतंजलि ने अग्निवेश-संहिता को फिर से जागृत किया था। श्रीमान् महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेनजी महोदय लिखते हैं—"मैंने अन्य स्थलों में यह पाया है कि इन्हीं का अन्य प्रसिद्ध नाम चरक था।" बौद्धाचार्य नागार्जुन ने भी इसी समय सुश्रुत-संहिता का प्रतिसंस्कार किया था। यह सब घटनाएँ लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व घटी थीं।

पुनः शक जातियों से बार-बार आक्रांत होने पर भारतीय राजा लोग हीन बना दिये गये थे। कुशाणवंशीय कनिष्क नामक महा प्रतापी राजा ने; जो शक जाति का राजा था, हिमालय से लेकर विंध्याचल तक भारत के समस्त उत्तर पश्चिमीय देशों को जीत लिया था। इसके तीन सौ वर्ष अनन्तर देश में शांति स्थापित हुई। संभवतः इसी समय के

बीच में चरक-संहिता के कुछ अंश भी नष्ट हो गये और काश्मीर के दृढ़बलाचार्यने प्रायः आजसे १७०० वर्ष पूर्व उसके बचे हुए अंश की पूर्ति की।

इसके बाद पङ्कपाल के समान बहुत सी हूण और शक सेनाओं ने भारत पर आक्रमण कर बहुत विप्लव उपस्थित कर दिया था। इसके कुछ ही समय के अनंतर सन् ५७ बी० सी० में मालवा देश के राजा विक्रमादित्य ने शक जातियों को मार भगाकर उज्जयिनी से हिमालय तक राज्य विस्तार कर लिया। इस समय से लेकर प्रायः सौ वर्ष तक देश में शांति रही। यह आयुर्वेद का संग्रह-काल है।

राजा विक्रमादित्य एवं इनके वंश के राजाओं के शासन-कालमें राज्य-विप्लव से जर्जर भारतवासियों ने पुनः ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पुष्टता लाभ की। इसी समय में कालिदास के समान प्रमुख कवि और आर्यभट्ट जैसे प्रमुख ज्योतिषी हुए थे। इसके ५६० वर्ष बाद वाग्भट्टाचार्य, वृंदमाधव नामक ग्रंथों के संग्रहकर्त्ता और जैयट, गयदास, भाष्कर, ब्रह्मदेव आदि व्याख्याकारक गणों ने जन्म लिया था। बंगाल में चरक-सुश्रुत के टीकाकार और संग्रहकर्त्ता चक्रपाणि ने इसी समय(१०४०से १०५० ए० डी०) हुये थे। चक्रपाणि भारतवर्ष की आयुर्वेद-विद्या के पुनरुद्धार के अंतिम आचार्य थे। मालव के अनेक शास्त्रों के ज्ञाता भोज नामक राजा थे, जो सन् १००६ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनका बनाया हुआ "राजमार्तण्ड" नामक वैद्यक ग्रंथ और "पातञ्जलि वृत्ति" नामक दार्शनिक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है।

इसके उपरांत भारतवर्ष पर मुसलमानों का घोर आक्रमण होने लगा। पूर्व में महम्मद बिन कासिम ने सन् ७१२ ई० में सिंध देश पर आक्रमण किया। परन्तु, प्रभाव स्थायी या अधिक क्षतिकारक नहीं हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी में महम्मद गजनी ने भारतवर्ष पर बहुत सी सेनाएँ लेकर आक्रमण किया। इसके फल-स्वरूप सोमनाथ के मंदिर प्रभृति का विध्वंस होना और अनेक सम्प्रदायों का नष्ट होना था। अनेक तीर्थ स्थानों की मूर्तियाँ तोड़ी गई थीं और सैकड़ो हज़ारों प्रजाओं का नाश हुआ और साथ ही साथ धन-नाश भी हुआ। गजनी की सेनाओं ने अनेक घरों को और साथ ही साथ अनेक ग्रन्थों को जला डाला था। उस समय अपने धर्म-धन-प्राण आदि की रक्षा के लिए लोगों को ज्ञानार्ज्जन की चेष्टा छोड़नी पड़ी। महम्मद गजनी की लूट-पाट के उपरांत थोड़े ही दिनों बाद देश-द्रोही जयचंद द्वारा बुलाए हुए महम्मद गोरी ने भी तुरंत भारत पर आक्रमण कर दिया। सन् ११६१ ई० में क्षत्रियकुल के सूर्य और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज महम्मद गोरी द्वारा पराजित हुए। इसके दश वर्ष बाद ही सारा आर्यावर्त्त मुसलमानों के अधीनस्थ होगया। इसके बाद अलतमश और अलाउद्दीन ने दक्षिण देश और मालवा पर चढ़ाई करके उन्हें नष्ट कर दिया।

मुसलमानों के आक्रमण से दूर रहने के कारण बंगाल की क्षति न होने पायी थी। ईसामसीह की मृत्यु के उपरांत सातवीं या आठवीं शताब्दी में निदान-संग्रह-कारक माधवकर और ग्यारहवीं शताब्दी में चक्रपाणि हुए थे। बंगाल में बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में मुसलमानों का विप्लव आरंभ होने पर भी टीकाकार विजय-रक्षित और श्रीकंठ ने आयुर्वेद की लुप्तप्राय या क्षीण ज्योति को पुनः प्रज्ज्वलित कर दिया। इन लोगों के समय तक अनेक प्राचीन ग्रंथ पाये जाते थे। इसके उपरांत धीरे-धीरे क्रम से बंगाल भी पठान और मुगलों द्वारा विध्वस्त होने लगा।

तेरहवीं शताब्दी के बीच में चंगेज़खाँ भारत पर आक्रमण करके हिमालय से लेकर लूट-पाट मचाता हुआ मध्य देश तक आया था। चंगेजखाँ के लौट जाने पर भी बार-बार आनेवाली पठान जातियों से और भारतीय राजाओं से प्रायः घोर लड़ाइयाँ हुआ करती थीं। इसके उपरांत चौदहवीं शताब्दी के अंतिम थोड़े वर्षों में तैमूरलंग ने आकर दो महीनों तक अनेक घरों को जलाया था और कितनों को मौत के घाट उतारा था।

इसी समय दक्षिण में महाविक्रमी वीरबुक्क नामक एक राजा ने बुक्क नामक राज्य स्थापित किया था। इसने अपने सायणाचार्य और माधवाचार्य द्वारा सभासदों से वेद का उद्धार करवाया और उसका भाष्य बनवाया था। शार्ङ्गधर नामक ग्रंथकार इसी समय उत्पन्न हुए थे।

सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में मुगल राजा बाबर ने पठानों को जीतकर राज्य पर अधिकार किया था। इसके थोड़े ही दिनों बाद हुमायूँ की दिग्विजय के कारण देश में महा भयङ्कर विप्लव मचा था। इसके बाद हुमायूँ शेरशाह नामक पठान राजा से पराजित होकर राज्य से हटा दिया गया। इसी समय के बीच में सोलह वर्ष मुगलों और पठानों में घोर संग्राम होता रहा। इसी कारण से भारत के धन-प्राण और विद्या की बहुत क्षति हुई।

सोलह वर्ष बाद फिर हुमायूँ ने युद्ध करके राज्य जीत लिया। उसके पुत्र अकबरने अपनी भुजाओं के प्रताप से प्रायः सभी भारतवर्ष को जीत लिया। इसके पहिले भी बहुत सी प्रजाओं के और धन के नष्ट होने पर भी अंत में शांतिस्थापित हुई। अकबर शाह भारतीय शास्त्रों और पंडितों का आदर किया करता था। इसी समय आयुर्वेद के प्रसिद्ध संग्रहकर्त्ता भावमिश्र हुए थे।

अकबर के पौत्र औरंगज़ेब के राज्यारोहण के उपरांत देश में महान् विप्लव मचा था। यह सुना जाता है कि औरंगजेब ने जो हिंदुओं से द्वेष करता था, सैकड़ों हिंदुओं के मंदिरों को चूर-चूर कर दिया था। इसने भारतवर्ष के अनेक ग्रंथों को जलाकर और असंख्य स्वधर्मनिष्ट प्रजाओं को हत्या करके एक भयंकर अनिष्ट मचा रक्खा था। यही क्यों प्रसिद्ध ऐतिहासिक अँगरेज अलफिनस्टन (Elphinstone) साहब तो यहाँ तक कहते हैं; कि औरंगजेब बादशाह का यह मत था कि कुरान में जो बात नहीं वह सब मिथ्या है और जगत् में जो सत्य जहाँ कहीं हो, वह अवश्यही कुरान में है। इसी विचार से उसने हिंदुओं के ग्रंथों को जलाकर हम्मामों (स्नानागार) में पानी गरम कराया। इसलिये पहिले उन्नत भारतीय विद्या भी फिर शोचनीय दशा को पहुँच गई। आयुर्वेद तो इतना मुसलमानों द्वारा लूटे जाने पर भी किसी प्रकार जीवन धारण किए रहा।

इसके उपरांत ईसवी सन् १७६९ में नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। इसके पहिले अहमदशाह अब्दाली ने चार बार आक्रमण किया था। इन सब आक्रमण के स्वरूप भी अनेक प्रजाओं के प्राण नष्ट हुए और बहुत से शहर श्मशान में परिणत कर दिये गए और बहुत धन और ग्रन्थ नष्ट हुए।

आर्ष युग से लेकर भावमिश्रके युग तक संग्रह-काल कहा जा सकता है। यही भारतवर्ष को आयुर्वेद विद्या अथवा सभी विद्याओं का अपराह्न काल कहा जा सकता है। इस समय भी प्राचीन काल की कुछ संहिताएँ खंडित पाई जाती थीं और उन सभी ग्रंथों को प्राप्त करने की पुनः चेष्टा की जा रही थी।

इस संग्रह काल में आयुर्वेद की अत्यधिक अवनति होने पर भी प्रतिसंस्कारक, संग्रह-कारक और टीकाकारों की चेष्टा के कारण संपूर्ण नष्ट नहीं होने पाया था। टीकाकारक आदि के समय भी अनेक संहिताएँ सुलभ थीं, ये बात कही गई हैं। इसलिये मैं संग्रहकालके बाद ही के समय को अवनति काल कहता हूं।

इस अवनतिकाल में प्रायः सभी संहिताएँ दुर्लभ होगईं और जो नहीं दुर्लभ हुईं वह भी संदेह का मूल बन गईं। इसके सिवा संस्कृत भाषा के पठन-पाठन का ह्रास होजाने के कारण आयुर्वेद के चिकित्सकों की संख्या कम होगई। राज्य विप्लव और अभाव के कारण वैद्य लोग अपना-अपना व्यवसाय छोड़ दूसरा पेशा करने लगे। इसका फल यह हुआ कि जिन पुरुषों के लिए आयुर्वेद के ग्रंथ बहुमूल्य थे, उनकी संतानों के लिए वही ग्रंथ एक-दम बेकाम और कूड़े में परिणत होगये। इस प्रकार जितने रत्न नष्ट होगए हैं; उनकी कोई गिनती नहीं है।

धीरे-धीरे अनुचित धर्म के अभिमान से रोगियों के मलमूत्र रक्त आदि से लोग घृणा करने लगे और इसके फल-स्वरूप वस्ति-कर्म (Enemata) प्रायः लोप होगया। शस्त्र-चिकित्सा को लोग नाइयों के काम में गिनती करने लगे और प्रसूति-विद्या धीरे-धीरे नीच जातियों को स्त्रियों के हाथों में चली गई।

यह पहले ही कहा गया है कि बौद्ध राजाओं के समय से ही मुर्दों का चीरना राजा के हुक्म से बन्द कर दिया गया। चाहे यह बौद्ध धर्म के ही प्रभाव से हो अथवा निरंतर लड़ाई से ग्रस्त हो भारतीय राजाओं ने या उनके आदमियों ने शस्त्र

चिकित्सा पर ध्यान नहीं दिया। विजयी मुसलमानों का इस तरफ कोई उत्साह ही नहीं था। फल स्वरूप यह हुआ कि मुर्दों को चीरकर शरीर ज्ञान का पता लगाने की प्रथा एकदम ही लुप्त हो गई और भारतीय चिकित्सक शस्त्र-चिकित्सा से एकदम अनभिज्ञ हो गये। इस प्रकार शारीर-चिकित्सा-हीन वैद्यों की संख्या अत्यंत बढ़ गई और यही आयुर्वेद की अवनति का कारण हुई।

पहले समय हिंदुओं के एवं बौद्ध राजाओं के बनाये हुये देश-देश में अस्पताल थे। बौद्ध-युग के उपरांत जब कि मुसलमानों का विप्लव होने लगा था उस समय से अस्पताल धीरे-धीरे उठने लगे थे। चिकित्सा-विद्या को प्राप्त करनेवाले जब तक आरोग्य शाला में कार्याभ्यास नहीं करते, तब तक चिकित्सा-विद्या पारदर्शिका नहीं होती।

इसी कारण से आजकल चिकित्सकों का ज्ञान इतना संकीर्ण हो गया है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि चिकित्सा के संग्रह-काल ही में यावनिक चिकित्सा की प्रधानता बढ़ने लगी थी। आयुर्वेद की अवनति के समय मुसलमान राजाओं का आदर ज्यादातर यावनिक चिकित्सा की तरफ बढ़ने लगा था और आयुर्वेदीय चिकित्सा का प्रचार घटने लगा था। यही केवल नहीं था, बल्कि भारतीय राजा भी अपने देश में राजकीय यूनानी चिकित्सा को प्राधान्य देने लगे थे। इसी कारण भारतवर्ष में यूनानी चिकित्सका बहुतों के मत से अच्छी मानी जाती है और वे इसका आदर करते हैं।

इस प्रकार धीरे धीरे ग्रंथों का लोप, भिन्न-भिन्न अंशों में इसका अप्रचार, पाँच प्रकार के कर्मों का लोप, संस्कृत भाषा की शिक्षा और आलोचना की कमी आदि होने के अनेक कारणों से प्रायः दो सौ वर्ष पहले आयुर्वेद की अवनति चरम पराकाष्ठा तक पहुँच गई थी। तो भी लोग डाक्टरी को बाल-चिकित्सा कह करके आयुर्वेद की श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे। उसके बाद दोनों में अनेक परिवर्तन हुए। यहाँ तक संक्षेप में भारतीय आयुर्वेद का प्राचीन इतिहास लिखकर, आगे पाठकों के मनोरंजनार्थ अन्यदेशीय आयुर्वेद का इतिहास अत्यन्त संक्षेप में दिया जाता है।

नोट—यहाँ पर अभी बहुशः आचार्यों के जीवनचरित, उनका समय एवं उनके ग्रंथों का उल्लेख करना तथा कतिपय अन्य ज्ञातव्य विषय, शेष रह गये हैं। उन सबका इस ग्रंथ (कोष) में यथा स्थान विस्तृत उल्लेख किया जायगा।

बाबुल देशीय आयुर्वेद

कोई-कोई इतिहासकार कहते हैं कि, सर्व प्रथम बाबुल देशवालों ने आयुर्वेद-विद्या को जन्म दिया था। अस्तु, बाबुल और नैनवा के खँडहरों से, जो प्राचीन काल की खश्ती पुस्तकें निकली हैं, उनसे पता चलता है कि आरम्भ में तो वहाँ पर चिकित्सा-विज्ञान झाड़-फूँक और यंत्र-मंत्र में ही आबद्ध था। परंतु धीरे-धीरे वहाँ पर यह रीति चल पड़ी कि रोगी को किसी चाराहे पर लिटा देते थे और जो यात्री वहाँ से होकर निकलते, उनसे रोगी का हाल कहकर उसकी चिकित्सा पूछी जाती थी। यदि उनको कोई उपचार मालूम होता, तो वह बतादेते थे। इस प्रकार जो गुणकारी दवाएँ वा उपचार उनको ज्ञात होते, उनको ताँबे या चाँदी की तख्तियों पर लिखकर उन्हें अपने एक देव-वैद्य प्रतिमा वा मूर्ति के गले में डालते रहते।

उस समय में वही वैद्य होता, जिसको कतिपय परीक्षित प्रयोग ज्ञात होते। एक वैद्य एक रोग के सिवा दूसरे रोग की चिकित्सा नहीं करता था।

पुनः उन सत्य योगोंके साथ उन्होंने कम-कम भ्रमात्मक विचारों एवं मिथ्या अनुमानों को संमिश्रित कर दिया। परन्तु काल पाकर वहाँपर आयुर्वेद-विद्या की उन्नति हुई और भिन्न-भिन्न नगरों में भव्य चिकित्सालय एवं आयुर्वेद-विद्यालय स्थापित होगये।

लंदन के अजायबघर में आसूरिया की एक खश्ती पुस्तक अपूर्णावस्था में रखी हुई है और ईसामसीह के जन्म से ७०० वर्ष पूर्व की लिखी हुई है जो एक प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ की प्रतिलिपि है। उसे बवासिया के आयुर्वेद-विद्यालय के कतिपय विद्वानों ने लिखा था। उस पुस्तक में लंबे-लंबे और एक ही व्याधि के कई-कई योग लिखे हुए हैं।

नोट—प्रायः इतिहासज्ञों का विचार है कि प्राचीन मिश्रनिवासियों ने प्राचीन बाबुल निवासियों से आयुर्वेद विद्या सीखी थी।

इब्रानी और बनी इसरायल में हजरत दाऊद का पुत्र सुलेमान, जो ईसवी सन् से १५१४ वर्ष पूर्व सिंहासनारूढ़ हुआ था, सर्व प्रथम वानस्पतिक तथा प्राणिज औषधियों के गुण-धर्म वर्णन करनेवाला बतलाया जाता है।

पुनः आसीना में ईसवी सन् से २०० वर्ष पूर्व एक विद्वन्मण्डली आयुर्वेद-विद्या के अध्ययन अध्यापन मेंतत्पर थी, जिसने कतिपय वानस्पतिक एवं खनिज औषधियों का वर्णन किया।

मिश्रदेशीय आयुर्वेद

मिश्र देश में आयुर्वेद की अतीव उन्नति हुई; परंतु बाबुल आदि की भाँति वहाँ भी धार्मिक नेता ही चिकित्सक भी हुआ करते थे। रोगोत्पत्ति तत्व भी लगभग वही था, जिसका बाबुली आयुर्वेद में उल्लेख हो चुका है। अलबत्ता चिकित्सा में मंत्र-तंत्र और भूत-प्रेत को कष्टदायक वस्तु, जैसे गोबर और दुर्गंधित धूनियोंका उपयोग अपेक्षाकृत कम था। चिकित्सक को सीमा से अधिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता था। यहाँ तक कि मिश्र का प्राचीनतर चिकित्सक इमहूतिब (Imhotep) जो ईसवी सन् २९८ वर्ष पूर्व मिश्र के द्वितीय ज़ौसर नामी अधिपति का प्रधान मंत्री और मुख्य राजगीर भी था, उसी भाँति एक देवता या परमेश्वर माना जाता था, जिस प्रकार यूनानदेशीय आयुर्वेद में असक़्लीबियूस। उसके उपरांत पाँचवीं बादशाही के उद्भट आयुर्वेदज्ञ नेनख सेकखमित और रा-ओत्वर प्रसिद्ध चिकित्सक हुए हैं। मिश्रके प्राचीन वस्तुओं में से ममी की हुई सुरक्षित शवों के परीक्षण और आयुर्वेद विषयक लेखों (ऐवर्स पेपरिस ईसवी सन् से ९५०० वर्ष पूर्व, एडविन स्मिथ पेपरिस ईसवी सन्से १६०० वर्ष पूर्व, हर्ष्ट पेपरिस ईसवी सन् से १४००-१५०० वर्ष पूर्व, बर्लिन पेपरिस ४०३९ ईसवी सन्से १२९०-१२३० वर्ष पूर्व) के अनुवादों से पता चलता है कि प्राचीन मिश्रदेशनिवासी न केवल आयुर्वेद-विद्या में ही काफी उन्नति कर चुके थे, प्रत्युत शस्त्र-कर्म में भी आवश्यकीय योग्यता रखते थे। अतएव एडविन स्मिथ पेपरिस अधिकतया शस्त्रकर्म साध्य रोगों और उनकी चिकित्सा में विभक्त हैं। परंतु मिश्र के अठारहवें और उन्नीसवें राजत्व कालमें थोथमस, अमन हूतप और रामसस नामी राजा के समय में पुनः आयुर्वेद-विद्याका स्थान तंत्र-मंत्र एवं जादू ने ले लिया, तो भी आयुर्वेद विद्या के सिद्धांत धार्मिक वेश-विन्यासाच्छन्न होकर यथावत् उन्नति करते रहे। अतएव धार्मिक चिकित्सक न केवल सैद्धांतिक आयुर्वेद-विद्या को अपने उत्तराधिकारियों तक पहुँचाते रहे, अपितु अपने मंदिरों और धार्मिक पूजागृहों के द्वारा पीड़ितों की चिकित्सा भी नियम-पूर्वक आयुर्वेदीय सिद्धान्तों के अनुकूल करते रहे। यहाँ तक कि मिश्र की उन्नति का ह्रास होने के उपरांत अधिकार के साथ विद्या की बागडोर भी यूनानी और रूमियों के हाथों में चली गई।

नोट—लेख एक वृक्ष के पत्तों से तैयार किए हुए विशेष कागज पर उल्लिखित हैं। ये सन् १८६२ ई० में और उसके उपरांत प्राप्त हुए हैं। इनमें से एबर्स अपेपरिस पेपरिस और एडविन-स्मिथ पेपरिस अधिक और आवश्यक प्रसिद्ध हैं। इनके आंशिक अनुवाद जर्मनी और अँगरेजी भाषा में होचुके हैं।

चीन देशीय आयुर्वेद

चीन में सबसे पूर्व हुविंग टी नामक राजा (ईसवी सन् से ३६८७ वर्ष पूर्व) ने आयुर्वेद-विद्या की नींव डाली, उसने अधिकतर औषधियों का उपयोग किया। उसके बाद अन्य व्यक्तियों ने निदान और रूप के नियम एवं सिद्धांत निरूपित किये।

चीनी आयुर्वेद में दो चीज़ों की ओर प्रधानतया ध्यान दिया गया। रोग निदान, द्रव्यगुण-शास्त्र, नाड़ी परीक्षा और मूत्र-परीक्षा के विषय में कतिपय अतीव उपयोगी सिद्धांत एवं रहस्यों का प्रतिपादन किया गया। उसी प्रकार वानस्पतिक, प्राणिज और खनिज द्रव्योंकी ओर भी अधिक ध्यान दिया गया। चीनी लामाओं के पास कतिपय उत्तमोत्तम नुसखे होते थे।

यूनान-देशीय आयुर्वेद

यूनान में सर्व प्रथम असक़्लीबियूस (Asclepias) ने नियम-पूर्वक चिकित्सा-कार्य प्रारंभ किया। जन साधारण में उसके जादू असर उपचारों की आशातीत ख्याति हो गई। यूनानदेशवासी

एक स्वर से उसे आयुर्वेद विद्या का प्रवर्त्तक और नैरोग्य-देव स्वीकार करते हैं।

असक़लीबियूस ने ९० वर्ष की आयु पाई। क्योंकि इसने सर्व प्रथम विलक्षण विस्मय-कारक चिकित्सा की। अतएव इसकी श्रेष्टता की बहुशः आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हो गईं।

मुख्य कवि हूमर ने अपने प्रमुख काव्य ईलियड में उसकी प्रशंसा की और अन्यान्य कवियों ने उसे "स्वास्थ्य-देव" स्वीकार किया। परिणाम यह हुआ कि जहाँ कहीं प्लेग (महामारी) का पदार्पण होता, वहाँ उसकी पूजा आरम्भ हो जाती थी। अतः विभिन्न स्थानों में, उसके नाम पर दो सौ मंदिर निर्मित किये गए। उनमें सबसे प्रसिद्ध मंदिर कूनगर की एक पहाड़ी के ऊपर हरी झाड़ियों और वृक्षों के बीच एक प्रशस्त स्थान में बनाया गया था। उस मंदिरके भीतर असक़लीबियूस की मूर्ति स्थापित रहती थी, जिसके सम्मुख रोगी मत्था टेकते और अपने स्वास्थ्य के लिये प्रार्थनाएँ किया करते थे। बुक़रात अपने समय में इसी * मंदिर में चिकित्सा किया करता था। उसने इसका नाम अफंदूकीन (रोगीशाला) रखा था।

नोट—निकट वर्तमान मेंयूनानकी पुरान वस्तुओं कीसंरक्षक सभा ने उस रोगीशालाकी खोजकी है और उसे पुनः निर्माण कराकर आयुर्वेद-स्मारक रूप से संरक्षित कर दी है। उक्त भवन की निर्माण शैली से यह झलकता है कि बुक़रात सूर्यप्रकाश और स्वच्छ खुली वायु के गुणोंसे परिचित था। यूरूप और अमेरिका के बीसों चिकित्सक उसके अवलोकनार्थ प्रतिवर्ष वहाँ जाते हैं।

असक़लीबियूस के बाद गोरस, मेनस, अफ़लातून, फीसागोरस प्रभृति प्रमुख चिकित्सकों ने समय-समय पर ख्याति प्राप्ति की। किंतु आयुर्वेद-विद्या की उन्नति एवं विकास का सेहरा बुक़रात (जन्मकाल ईसवी सन् से ४६० वर्ष पूर्व, मृत्यु ईसवी सन् से ३५७ वर्ष पूर्व) के सिर रहा। बुक़रात से पूर्व आयुर्वेद विषयक रहस्य एवं तत्त्व असक़लीबियूस की वसीयत के अनुसार उसके वंशजों तक ही परिमिति रहते थे। क्योंकि बुक़रात असक़लीबियूस की उन्नीसवीं पीढ़ी से था। अतः उसके परंपरागत आयुर्वेद विषयक तत्त्व एवं रहस्य उसे उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त हुए थे। बुक़रात ने परंपरागत अपने वंशजों द्वारा प्राप्त इस आयुर्वेद-विद्या के सिद्धान्त तथा नियम सुव्यवस्थित करके उसे जनसाधारण में प्रचलित कर दिया। दोष चतुष्टय (अख़्लात अरबा) का सिद्धान्त सर्व प्रथम उसीने लेख बद्ध किए। शरीर पर जलवायु और दोषों के तारतम्य के प्रभावों का उसने सविस्तार स्पष्टोल्लेख किया है। शरीरावयव, शारीर व्याधियाँ, व्रण-क्षत, चिकित्सा, फ़स्द, स्वस्थवृत्त विषयक उसने विविध ग्रंथों की रचना की और सैद्धान्तिक आयुर्वेद की नींव डाली।

बुक़रात के बाद विभिन्न चिकित्सकों ने आयुर्वेद मेंउन्नति की। अरस्तातालीस (जन्म सन् ३८४ मसीह से पूर्व) ने आयुर्वेद के सामूहिक सिद्धान्तों को व्यवस्थित की। दीसक़ूरीदूस ने द्रव्यगुण-शास्त्र को क्रमबद्ध किया। जालीनूस शवच्छेद (Anatomy) और इन्द्रिय कार्य-विज्ञान (Pyhsiology) में वृद्धि की।

जालीनूस (जन्म तिथि सन् ६५ ई०) ने यूनानी आयुर्वेद को एक सर्वाङ्गपूर्ण शास्त्र का रूप प्रदान किया। उसने अंगविच्छेद की ओर प्रधानतया ध्यान दिया और शल्यतंत्र में बहुत कुछ उन्नति एवं वृद्धि की। औषधियों के अनुसंधान में भी उसकी बहुत रुचि थी। उसने योगों को सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। वर्तमान यूनानी आयुर्वेद का जो सार्वांगीन रूप आज हमारे सम्मुख है, वस्तुतः वह आपही के अध्यवसाय एवं अविश्रांत प्रयास का फल है और वर्तमान इसलामी आयुर्वेद और अर्वाचीन आयुर्वेद (अल्लोपैथी वा पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र) का आधार भी उक्त जालीनूसी आयुर्वेद पर ही है।

रोम देशीय आयुर्वेद

रोम राज्य की उन्नति के साथ साथ यूनानी आयुर्वेद रोम में भी जा पहुँचा। रोम देश में कलसूस, सरनूस (योनि-वीक्षण-यन्त्र आविष्कर्त्ता), अतीनूस, रोफिस, अरज जीनस और प्लाइनी सुविख्यात सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक स्कॉलर हुए हैं। इन्होंने यूनानी आयुर्वेद में कोई विशेष उन्नति तो नहीं की, पर बहुत हद तक उसको जीवित रखा। इसके उपरांत रोम की तबाही के साथ यूरोप अपने

सुविदित असभ्यता के अंधतमस काल में लीन हो गया और विद्या-वैभवके साथ आयुर्वेद रूपी धरोहर भी इस्लामियों के हाथ में आगई। पुन: इन्होंने उसे एक ओर बलख-बोखारा, तुर्किस्तान, चीन और हिंदुस्तान में और दूसरी ओर स्पेन में प्रसारित कर दिया।

इस्लामी आयुर्वेद

मुसलमानों ने अपने उन्नति काल में आयुर्वेद की ओर भी ध्यान दिया। इस बीच में सर्व प्रथम यूनानी ग्रंथों के अनुवाद किए गए। अतः जौरजस, हुनैन बिन इसहाक़, मासरजोया, मूसा बिन खालिद, अबु यूसफ़ुल् बतरीक् इत्यादि ने उन ग्रंथों के अरबी भाषा में उल्था किए। हिजरी सन् की दूसरी शताब्दी के अंत तक उक्त काल रहा। इसके उपरान्त इस्लामी चिकित्सकों ने आयुर्वेदिक सिद्धान्तों और उसकी शाखाओं के विषय में विद्वत्तापूर्ण ऊहापोह किया। यह काल कंदीसे प्रारंभ होकर इब्न जुलजुल पर समाप्त होता है। हिजरी सन् की तीसरी और चौथी शताब्दी में इस्लामी चिकित्सक अधिकतर यूनानी चिकित्सकों के अनुयायी थे।

इसके बाद तृतीय काल में मुसलमानों ने विभिन्न आयुर्वेद विद्याओंके मेलसे एक नूतन चिकित्सा-प्रणाली का सूत्रपात किया। इस नव्य आयुर्वेद में यूनानी, अरबी, ईरानी और भारतीय आयुर्वेदों को एक कर दिया गया, साथ इसके उन्होंने नव्य रोगों का अनुसंधान किया। नई औषधियाँ ढूँढ निकाली; चिकित्सा विषयक नये सिद्धांत निरूपित किये और नूतन रीति से औषधि-निर्माण की व्यवस्था की; क़राबादीन (फार्माकोपिया) रचे और स्वस्थवृत्त के तत्व आविष्कृत किये। यह काल हिजरी सन् की आठवीं शताब्दी तक रहा। उस जमाने में अनेक प्रशंसनीय ग्रन्थ प्रतिपादित हुए, जिनमें से अबुलूहसन बिन जैदुत्तिबरी लिखित "फिरदौसुल् हिकमत", मुहम्मद बिन ज़करिया राज़ी प्रतिपादित "हादी कबीर", अली बिन अब्बास का 'कामिलुस्सनाअ:' अबु अली हुसेन बिन सीना के "कानून", अब्बुल् क़ासिम ज़हरावी लिखित "अत्तशरीफ़" और अब्दुल मुल्क की "अत्तैसीर" ने असाधारण ख्याति प्राप्त की।

इसके उपरांत अंतकाल प्रारम्भ हुआ, जिसमें हकीमों ने अधिकतया भाष्य या व्याख्या एवं समासीकरण (खुलासा) की ओर विशेषतया ध्यान दिया।

मुसलमानी काल में शतसः हकीमों ने असाधारण ख्याति प्राप्त की। अतः इस्लाम के प्रारंभोदय काल में अलहिर्स बिन क़ल्द:, इब्न आसाल, तथा जौक, जीनब तबीबा ने प्रसिद्धि प्राप्त की। बनी अब्बास के प्रारंभ काल में जौरजस, बख़्तीशूअ, जबरईल, मासरजोय:, मासूय:, यूहन्ना, हुनैन बिन इसहाक आदि प्रसिद्ध हकीम हुए। अराक के चिकित्सकों में से कंदी, साबित बिनकुर्रह, अज़म में इब्नुत्तिबरी, अबुलहसन तिबरी, अली बिन अब्बास,अबुसहेल मसीही, अबु अलीबिन सीना, एलाक़ी, इब्न अबी सादिक़, नजीबुद्दीन समरक़ंदी, श्याम देश में अबुनस्र फ़ाराबी, अबुमंसूर सामरी, मिश्र में तमीमी, इब्न रिज़्वान, अश्शेख़ुस्सदीद, इब्न जमीअ, इब्नुल् बेत्तार और स्पेन में इब्न जुलजुल, इब्न ज़ुहर और अबुल् क़ासिम सुविख्यात चिकित्सकों ने ख्याति लाभ की।

इसलामी चिकित्सकों में अबुबकर मुहम्मद बिन ज़करिया राज़ी (मृत्यु काल सन् ९३२ ई०) और शेख़ुर्रईस अली हुसैन इब्नसीना ने अपेक्षाकृत अधिक ख्याति प्राप्त की। इब्न ज़करिया राज़ी ने सर्व प्रथम चेचक और खसराके विषय में एक पुस्तक निर्मित की। इससे पूर्व हारूँ ने चेचक का वर्णन किया था। राजी लिखित हादी कबीर नामक श्रेष्ठ ग्रंथ-रत्न चिरकाल तक यूरोप में प्रचलित रहा। शेखु्र्रईस बू अली सीना ने इब्न ज़करिया से भी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। इनका सुविख्यात ग्रंथ "कानून" आजतक तिब्बी विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है।

इसलामी काल का सर्वाधिक प्रख्यात शल्यचिकित्सक (जर्राह) अबुल क़ासिम जहरावी (मृत्यु काल सन् ११०६ ई०) स्पेन में पैदा हुआ था। उसने "अत्तसरीफ" नामक एक अतिशय बहुमूल्य ग्रंथ की रचना की है। उसका एक भाग केवल व्रणों से सम्बन्ध रखता है। उसमें सैकड़ों व्रणों पर किये गये प्रयोगों का सविस्तर उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त उसमें बहुशः उपकरण चित्र हैं।

वर्तमान यूरोपीय शल्य-चिकित्सा का भव्य-भवन इसी ग्रंथ-रत्न पर स्थापित किया गया हैं।

इसलामी आयुर्वेद के अंतिम समय में दाऊद अंताकी, अबुल्हसन क़र्शी, अली जेलानी, मुहम्मद अकबर अर्ज़ानी, मोमिनखाँ, मुहम्मदहुसेन, शरीफ़खाँ, आज़म खाँ प्रभृति प्रसिद्ध हकीम हुए हैं।

पाश्चात्य आयुर्वेद (अल्लोपैथी)

यूरोप का अंधयुग—असभ्यता का युग, अधिकतर सन् २०० ई० से लेकर सन् १२०० ई० तक समाप्त होता है। उस काल में यूरोपीय आयुर्वेद क्रमशः भ्रम एवं अंध-विश्वास में परिणत होता गया। अत: ईसवी सन् की छठीं-सातवीं शताब्दी तक आयुर्वेद-विद्या यूनान में भी लुप्त प्राय हो गई थी। प्रारम्भ में कुफ्फार के मंदिरों में आयुर्वेदीय सिद्धांतों के अनुसार रोगियों की न्यूनाधिक चिकित्सा होती रही। किन्तु ईसा की सातवीं शताब्दी में कुफ्फार के मंदिरों के नष्ट-भ्रष्ट होने से यह भी समाप्त हो गया। पुनरपि गिरजों और खानकाहों के पादरी रोगियों की न्यूनाधिक खैराती चिकित्सा करते रहे। पर ग्यारहवीं शताब्दी में सेंट बरनर्ड ने उसे भी रोक दिया और औषध की जगह व्याधि-चिकित्सा को केवल स्तुति प्रार्थना तक सीमित कर दिया गया। परंतु उसी समय उसके मुक़ाबिले में सेंट गाल में नियमानुसार चिकित्सालय और वनस्पत्युद्यान आरोपित कर आयुर्वेद-विद्या का पुनरुद्धार किया गया। इसके उपरांत नवीं से बारहवीं शताब्दी पर्यंत सलरनू के वैद्यक-विद्यालय की खूब ख्याति होगई। किंतु सन् १०७७ ई० में जब नॉर्मन लोगों ने सिल्ली और सलरनू को विजयकर वज़न्तीनी राज्य का अंत कर दिया, उस समय नव्य राज्याधिकारियों के साथ एक अफरीकीय अनुवादक भी आया, जिसके पास यूनानी आयुर्वेद के अरबी उल्थे भी थे। उसने केसीबोनो में ठहरकर उन अरबी उल्थाओं का लेटिन भाषा में भद्दा सा अनुवाद किया, जो सन् १५३३ ई० तक यूरोप निवासियों के काम आता रहा। अब मूल यूनानी ग्रन्थों के लेटिन में यथार्थ उल्था प्रकाशित होने लगे। पर नवीं से बारहवीं शताब्दी तक पूर्वी और पश्चिमी इसलामी खलीफ़ाओं के अधीन अन्य विद्या-कला के साथ आयुर्वेद-विद्या ने भी खासी उन्नति की, जिसका संक्षिप्त वर्णन इसलामी आयुर्वेद के अंतर्गत किया जा चुका है। पूरब में बग़दाद और पश्चिम में कुर्तुबा और तलिया श्रेष्टतर आयुर्वेदके केंद्र थे। सन् १०८५ ई० में जब ईसाइयोंने तलिया को फ़तह किया, उसके बाद से यूरोपीय आयुर्वेद की उन्नति आरम्भ हुई। अत: इसलामी आयुर्वेदीय ग्रंथों के यूरोपीय भाषा में बहुसंख्यक अनुवाद होने लगे। इनमें से शेख़ुर्रईस आदि के प्रसिद्ध ग्रंथ क़ानुन प्रभृति के अनुवाद ग्रंथ सन् १६०५ ई० पर्यंत यूरोप के सुप्रसिद्ध यूनिवर्सिटियों, माउंटर पिलर बोलोगना, पेरिस, पाड़वा, आक्सफ़र्ड और कैंब्रिज प्रभृति के पाठ्यक्रम में समाविष्ट रहे।

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी तक वे इसलामी आयुर्वेद-ग्रंथों के अनुवादों पर ही पूर्णतया निर्भर रहे और रॉजर बेकन के समय तक पाश्चात्य आयुर्वेद में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। इसके उपरांत तेरहवीं शताब्दी मसीही में माउंट प्लेयर और बोलोगना के विश्वविद्यालयों ने मांडेन्स, गाई डी चालीक, लानवा का आरनल्ड और माण्डोल का हेनरी नामी उच्च श्रेणी के विद्वान पैदा किए, जिन्होंने आयुर्वेदिक सिद्धान्तों के अन्वेषण का कार्य प्रारम्भ किया। किंतु सोलहवीं शताब्दी तक वह बहुत मंदगति से होता रहा। सोलहवीं शताब्दी ईसवी और उसके उपरान्त यूनानी और इसलामी चिकित्सा-शास्त्र के आधार से सैद्धान्तिक उन्नतियाँ की गईं। अस्तु, प्रासेयस (जन्म तिथि सन् १४६३ ई०) ने अर्वाचीन रसायन-विद्या (Chemistry) और भेषज-कल्पना की आधारशिला रखी। वसीलियस (सन् १५१४-६४) ने शवच्छेदन-शास्त्र को व्याख्यासहित सम्मुख रखा। माइकल सरोमेटस (सन् १५१२-१५५३ ई०) ने रक्त भ्रमण के लघु मार्ग को ढूँढ निकाला। इसके बाद डॉक्टर विलियम हारवे (सन् १५७८-१६५७ ई०) ने शोणितसंक्रमण-सिद्धांत को विद्वानों के सामने रखा और इसे माल पेग्नी नामक एक इटेलियन अन्वेष्टा ने सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षणकर इसे सत्य प्रमाणित कर दिया। पुनः थॉमस सिडनहम् (सन् १६२४-१६८९ ई०) ने ज्वर विषयक और जॉन हंटर (सन् १७७८-

१७६३ ई०) ने शवच्छेदन-विद्या में अनिर्वचनीय उन्नति की। इसके उपरान्त डॉक्टर एडवर्ड जेनर (सन् १७४९-१८३३ ई०) ने चेचक का टीका आविष्कृत कर टीकों की नींव डाली। एम्ब्रूसी पारी (सन् १५१०-१५९० ई०) ने शल्यतंत्र में क्षतों में टाँके लगाने की शिक्षा दी। पुनः सर हेम्फ्री डेवी (सन् १७७८-१८२९ ई०), डब्ल्यु० टी० जी० मार्टन (सन् १८०९-१८६८ ई०) और जेम्स नेग सिम्सन ने सन् १८४७ ई० में क्रमशः स्थानिक अवसन्नता-कारक और ईथर, क्लोरोफॉर्म प्रभृति सार्वांगिक स्पर्शज्ञाताजनक औषधों का आविष्कार किया। लूइस पाश्चर (सन् १८२२-१८९५ ई०) ने जीवाणु-विद्याकी नींव डाली जिसके, सुशिक्षित शिष्यों में से जौजफ़ रालटर, रूसीजियो और एलाई मेच्नीकाफ़; जर्मन डॉक्टर काख़ या अहर्लिक ने उसमें प्रशंसनीय उन्नति की। सर पाट्रिक मैंसन, ल्युरन, सर रानल्ड रॉस और जापानी डॉक्टर नगूची ने संक्रामक या संसर्गज व्याधियों के अन्वेषण में स्तुत्य कार्य किए। सरल्युनार्ड राजर्स ने कुष्ठ और विशूचिका—हैज़ाकी नूतन चिकित्सा आविष्कृत की। मास्तिष्क वा मानसिक रोगोंकी उत्पत्ति एवं चिकित्सोपचार के विषय में फ़िलिप पाइनल, विलियम ट्यूक, डॉक्टर हैनरी मॉड स्ले, फर्ड और जेवरच के एक जंग नामी डॉक्टर ने श्रेयस्कर उन्नति की है। पुनरपि बॉट, फ़्लोरंस, नाइटैंगेल, डॉक्टर थ्युबाल्ड, डॉक्टर फ़िनिसन, डॉक्टर ए० रूसेर ने सूर्य-चिकित्सा की आधार-शिला रखी और उसे उन्नति प्रदान की। इसके साथ अन्य विद्याएँ, जैसे विद्युत्, फोटोग्राफी प्रभृति के ज्ञान ने आयुर्वेदोत्कर्ष के निमित्त यथेष्ट सामग्री उपस्थित कर दी है और आधुनिक विज्ञान की उन्नति के साथ आयुर्वेदानुसंधान विषयक एक अतुलनीय व्यापक क्रम का प्रारंभ हो गया है।

आयुर्वृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आयु बढ़ाने की क्रिया वा भाव। दराजी उम्र। सु०।

आयुर्वेददृक्-आयुर्वेददृश्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्य। चिकित्सक। तबीब। हकीम।

आयुर्वद-प्रकाश—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] माधव विरचित उक्त नाम का एक चिकित्सा-ग्रन्थ।

आयुर्वेद-मय—वि० [सं० त्रि०] आयुर्वेदाभिज्ञ। आयुर्वेदज्ञ। आयुर्वेद-ज्ञाता। चिकित्साशास्त्र-वेत्ता।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धन्वन्तरि।

आयुर्वेद-लक्षण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जिस शास्त्र में आयु सम्बन्धी अर्थात् आयु का हित, अहित, व्याधि का कारण, और उसका शमन जाना जाय! भा० प्र०।

आयुर्वेद-विद्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जिसको आयुर्वेद तन्त्र के स्थान, अध्याय-क्रम-पूर्वक प्रश्नों का विभाग, वाक्य, वाक्यार्थ, अर्थावयव अच्छी तरह आते हों। च० सू० ३० अ०।

आयुर्वेद-विज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विनोदलाल सेन संगृहीत उक्त नाम का एक आयुर्वेदीय ग्रंथ।

आयुर्व्वेदिक—वि० [सं० त्रि०] (१) आयुर्वेद सम्बन्धी। (२) आयुर्वेदाभिज्ञ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्य। आयुर्वेददृश।

आयुर्व्वेदी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्य। रा० नि० व० २०।

आयुर्व्वेदीय—वि० [सं० त्रि०] आयुर्वेदोक्त। आयुर्वेद-सम्बन्धी। आयुर्वेद का।

आयुशेष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीवन काल की समाप्ति। मरण। मृत्यु। मौत।

आयुष्कर—वि० [सं० त्रि०] परमायुजनक। उम्र बढ़ानेवाला। आयु की वृद्धि करनेवाला।

आयुष्काम—वि० [सं० त्रि०] आयुरभिलाषुक। आयुप्रार्थी। उम्र की ख्वाहिश रखनेवाला। वा० सू० १ अ०। "अर्थात् आयुष्कामीयं रसायनम्"। सु०।

आयुष्कृत्—वि० [सं० त्रि०] आयुर्वृद्धिकर। उम्र बढ़ानेवाला। जैसे अभ्रक पारदादि।

आयुष्टोम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का यज्ञ जो आयु की वृद्धि के लिये किया जाता है।

आयुष्मान्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आयुष्मती] (१) जीवक नामका महा क्षुप। रा० नि० व० ५। (२) २७ फलित ज्योतिष के विष्कुम्भ आदि योगों में से एक। तृतीय योग।

वि० [सं० त्रि०] दीर्घजीवी। दीर्घायु। चिरञ्जीवी।

आयुष्य—वि० [सं० त्रि०] (१) पथ्य। बीमार के खाने लायक। (२) आयुर्हितकर। आयुर्वर्द्धक। आयुको हितकारक। रा० नि० व०२०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उम्र । आयु । अवस्था । (२) आयुर्हितकर बल । हयातबख़्श ताकत ।

आयुस्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अवस्था । उम्र । जीवित-काल । ज़ीस्त ।

आयुस्कर–दे० "आयुष्कर" ।

आयुस्तीस–[यू०] ग़ाग़ालस ।

आयेशा–संज्ञा स्त्री० [अ०] इस्लाम धर्मप्रचारक मुहम्मद साहब की तृतीय पत्नी । यह अबूबक्र की कन्या थीं । सात वर्ष की अवस्था में मुहम्मद के साथ इनका विवाह हुआ था ।

आयोडम्–संज्ञा पुं० [लै० Iodum] आयोडीन (Iodine)–अं० । नैल । नैलीन । नैलिका । अलयूद–मुअ० । युद–मुअ० ।

सम्मत वा ऑफ़िशल (*Official*)
सङ्केत सूत्र (नै० वा I.)
परमाणु भार १२६·९२

नाम विवरण—इसका लेटिन नाम आयोडम् एवं अँगरेजी नाम आयोडीन दोनों इसके ग्रीक (यूनानी) नाम आयोडीस (Iodes) से व्युत्पन्न हैं । आयोडीस का अर्थ बैंगनी (बनफ़्शई) रंग होता है । उत्ताप देनेपर चूँकि इससे सुंदर बैंगनी रंग का वाष्प उद्भूत होता है; इसलिये इसको उक्त नाम से अभिहित किया गया ।

इतिहास—यद्यपि प्राचीन यूनानी, इसलामी व युरूपीय हकीम (अस्फंज सोख़्ता) दग्धमृदाभ्र को जिसका एक प्राचीन अँगरेजी नाम स्पाँञ्जिया अस्टा (Spongia Usta) है, और जिसका प्रभावात्मकांश नैलिका ही होती थी, प्रायः उन्हीं व्याधियों में प्रयुक्त करते थे, जिनमें कि अधुना नैलिका व्यवहृत होती है; तो भी उन्हें नैलिका के विशुद्ध रूप का ज्ञान न था । सम्वत् १८६९ तदनुसार सन् १८११ ई० तथा १२२६ हिजरी में कुर्तुवाँ नाम के एक फ्रान्सीसी वैज्ञानिक ने नरकुल की भस्म से अर्द्ध धातु रूप में उक्त तत्व को प्राप्त किया । यह कुछ समुद्र के जल में भी लवण रूप में घुला हुआ पाया जाता है । चिलिदेश के शोरे में भी २ प्रतिशत तक पाया गया है । कई मछलियों के शरीर में भी यह तत्व देखा जाता है । इसके अतिरिक्त यह समुद्र की जड़ी बूटियों, अस्फ़ंज (अभ्रमुर्दा) स्रोतपूर्ण प्राणियों तथा किसी-किसी स्रोतों के जल में भी विद्यमान होता है । यह हरिन (Chlorine) की तरह पांशुजम् तथा सैन्धजम् से मिलकर लवण बनाता और प्रायः उनसे संप्रक्त लवण रूप में भी पाया जाता है ।

निर्माण-विधि—नरकुल की भस्म को जल में घोलकर उस जल को अग्नि पर गाढ़ा करते हैं । जब उस घोलमें रवे बँधने लग जाते हैं, तब उसको उसी भाँति पड़ा रहने देते हैं । उन रवों से उस घोलको पृथक् करके उसको कुछ और गाढ़ा करते हैं, और पुनः रवे बँधने के लिये छोड़देते हैं । इस तरह करने पर जितने सैंधजम् व पांशुजम् के और यौगिक होते हैं या और धातु के कोई लवण होते हैं वे सब घोल से पृथक् होकर रवों के रूप में जम जाते हैं । जो घोल अन्त में बच रहता है वह केवल पांशुजम् के साथ मिला हुआ इस नैलिन तत्त्व का होता है । यह पांशुनैलिद लवण सबसे पीछे जाकर जमता है । अब उक्त घोल में हरिनका जल बूँद बूँद करके छोड़ते हैं तो पांशुजम् नैलिद को छोड़कर हरिन के साथ मिलने लगता है और नैल तत्त्व जो पांशुजम् से संयुक्त होता है, उसको छोड़कर तलस्थायी होता जाता है । इस प्रकार सारा का सारा नैल उक्त घोल से भिन्न कर लेते हैं । यह छोटे-छोटे पतले रवों के रूप में बँध जाता है, जिसको चतुरतापूर्वक शुष्क कर लेते हैं ।

नोट—यह आयोडाइड (नैलेदिद) तथा आयोडेट यौगिकों से भी प्राप्त होता है ।

लक्षण—यह एक सांद्र अर्द्धधातव तत्त्व है, जिसकी गंध विशेष प्रकार की होती है और जो प्रकाशमान श्याम वर्ण का होता है । उत्ताप देने पर इससे बैंगनी रंग का वाष्पोद्भूत होता है । इसके परतदार रवे या रम्बिक कण होते हैं ।

विलेयता—यह एक भाग ७०० भाग जल, एक भाग १२ भाग ऐलकोहल (९० प्रतिशत), १ भाग ४ भाग ईथर, १ भाग ३० भाग क्लोरो-

फ़ार्म, १ भाग ६ भाग कार्बन बाइ सल्फ़ाइड तथा १ भाग ६५ भाग ग्लीसरीन में और पोटाशियम् आयोडाइड (पांशुनैलेदिद) या सोडियम् क्लोराइड (सैन्ध हरिद या सैंधव) के जलीय घोल में सरलतापूर्वक घुल जाता है।

मिश्रण—आयर्न (लौह) और आयोडीन-साइनाइड।

परीक्षा वा पहिचान—अपने विशेष प्रकार के धात्विक आभा-प्रभा एवं गला घोटनेवाली गंध से इसको तत्क्षण पहिचाना जा सकता है।

संयोग-विरुद्ध—श्वेतसार (स्टार्च) फ्री एमोनिया, क्षार (ऐलकेलीज़), धातुलवण (मेटेलिक साल्ट्स), वानस्पतिक क्षारीय सत्व (वेजिटेबिल ऐलकलाइड्स), खनिजाम्ल (मिनरल एसिड्स) और तारपीन का तेल (ऑइल ऑफ़ टर्पेंटाइन)।

प्रभाव—लसीका ग्रंथ्युत्तेजक, पवन निवारक परिवर्त्तक, दाहक (कॉस्टिक), आरुण्यकारक रूबीफ़ेशेण्ट) और अभिशोषक (ऐब्ज़ॉर्बेण्ट)।

व्यवहार—यह आयोडाइड ऑफ आर्सेनिक (मल्लनैलिद), लेड (सीसा), मर्करी(पारा), पोटाशियम् (पांशुजम्), सल्फर (गंधक) और सोडियम् के निर्माण में व्यवहृत होती है। इनमें से यहाँ पर केवल सोडियम् आयोडाइड और पोटासियम् आयोडाइड का ही वर्णन किया जावेगा।

सम्मत योग

(*Official preparations*)

(१) टिङ्क्चूरा आयोडाई फॉर्टिस (Tinctura iodi fortis)-ले०। स्ट्रॉङ्ग टिङ्क्चर ऑफ़ आयोडीन (Strong tincture of iodine)-अं०। तीक्ष्ण नैल द्रव, तीव्र नैलिद घोल-हिं०। तम्फ़ीन युद् क़वी-फ़ा०।

अवयव—

आयोडीन प्योर (नैलिका)	१० भाग
पोटाशी आयोडाइड (पांशुनैलेदिद)	६ भाग
परिश्रुत जल	१० भाग
ऐलकोहल (९० प्रतिशत)	१०० भाग

निर्माण-विधि—प्रथम नैलिका और पांशु नैलेदिद पर्यन्त दोनों को खरल में छोड़कर परिश्रुत जल मिलाकर खूब घोटें, जो हल होता चला जाय उसे एक बोतल में डालते चले जाँय, पश्चात् उसमें ऐलकोहल छोड़कर बोतल भरकर रख लें। जो भाग न घुला हो उसमें ऐलकोहल छोड़कर घोलते चले जाँय।

शक्ति—१० प्रतिशत।

वर्ण—श्याम, अरुणधूसर द्रव।

प्रभाव – पचननिवारक तथा काउण्टरइरिटेण्ट।

(२) टिङ्क्चूरा आयोडाई मिटिस (Tinctura iodi mitis)-ले०। वीक टिङ्क्चर ऑफ़ आयोडीन (Weak tincture of iodine)-अं०। मन्द नैलद्रव, निर्बल नैलिद घोल।

निर्माण-विधि—आयोडीन (नैलिन) और पोटाशियम् आयोडाइड (पांशु नैलिद) प्रत्येक ½ आउंस परिश्रुत जल ½ आउंस, ऐल्कोहल आवश्यकतानुसार। आयोडीन और पोटाशियम आयोडाइड तथा डिस्टिलडवाटर (परिश्रुत जल) को बोतल में डालें। जब आयोडीन घुल जाय तब उसमें इतना ऐलकोहल मिलावें कि प्रस्तुत टिङ्क्चर का द्रव्यमान पूरा एक पाइण्ट होजाय। यह गंभीर रक्तवर्ण का द्रव होता है।

शक्ति—इसमें २॥ प्रतिशत आयोडीन होती है।

मात्रा—२ से ५ बूँद (= ·१२ से ·३ घनशतांशमीटर), जलमिश्रित (१२ से ३० शतांशमिलिग्राम्स)।

(३) अङ्गवेण्टम् आयोडाई (Unguentum iodi)-ले०। आयोडीन ऑइण्टमेण्ट (Iodine ointment)-इं०। नैलिकानुलेपन, नैल प्रलेप-हिं०। मर्हम युद्, मर्हम आयोडीन-फ़ा०।

निर्माण-विधि—आयोडीन २० ग्रेन, पोटाशियम् आयोडाइड २० ग्रेन, ग्लीसरीन ६० ग्रेन, लार्ड (शूकर वसा) ४०० ग्रेन। आयोडीन, पोटाशियम् आयोडाइड तथा ग्लीसरीन को शीशे या चीनी के खरल में रगड़ें और क्रमशः उसमें लार्ड मिलाते जायँ। यह धूसर वर्ण का होता है।

शक्ति—२५ में १ या ४ प्रतिशत।

प्रभाव—विलायक (रिज़ॉल्वेण्ट), परिवर्तक और क्षोभक (इरिटेण्ट)।

नोट—आयोडाइड्स ऑफ सोडियम्, आर्सेनिक,–आयर्न,–मर्करी,–पोटाशियम् तथा–लेड एवं तन्निर्मित योग उन-उन धातुओं के नाम के अन्तर्गत वर्णित हैं।

असम्मत योग तथा पेटेण्ट औषधें

(*Not official preparations.*)

(१) कॉस्टिकम् आयोडाई (Causticum iodi)-ले०। दाहक तैल। युद् कावी–फ़ा०।

निर्माण विधि—आयोडीन १८० ग्रेन, पोटाशियम् आयोडाइड ६० ग्रेन, ऐलकोहल(९०%) एक फ्लुइड आउंस। तीनों को परस्पर मिला लेवें।

प्रयोग—ल्युपस और टर्शियरी सिफिलिटिक सोर्ज़ (पुरातन औपदंशीय क्षतों)पर लगाते हैं।

(२) ग्लीसराइनम् आयोडाई (Glycerinum, iodi)-ले०। मॉर्टन्स फ्लुइड(Morton's fluid)-अं०।

निर्माण-विधि—आयोडीन १० ग्रेन, पोटाशियम् आयोडाइड ३० ग्रेन, ग्लीसरीन १ फ्लुइड आउंस।

प्रयोग—स्पाइना बाईफिडा (Spina bifida) में इसकी, ३० बूँदकी पिचकारी करते हैं। पिचकारी करते समय इस बात का ध्यान रक्खें कि सौषुम्नार्बुद में से वह द्रव विसर्जित न होने पावे।

(३) फेनोल आयोडेटम् (Phenol iodatum)। दे० "एसिडम् कार्बोलिकम्"।

(४) ल्युगॉल्ज़ सोल्युशन (Lugols soluton)। ल्युगल घोल-हिं०। मह्लूल ल्युगल-उ०।

निर्माण-विधि—आयोडीन २० ग्रेन, पोटाशियम् आयोडाइड ३० ग्रेन, वाटर (जल) १ आउंस।

नोट—यह ब्रिटिश फार्माकोपिया सन् १८८५ ई० में प्रविष्ट था।

(५) पिग्मेण्टम् मैण्ड्ल (Pigmentum mandle) तिलाये मैण्ड्ल।

निर्माण-विधि—आयोडीन ६ ग्रेन, पोटाशियम् आयोडाइड २० ग्रेन, आइल ऑफ पेपरमिण्ट ५ बूँद, ग्लीसरीन एक आउंस पर्यंत।

प्रयोग—इसको ग्रेन्युलर फेरिञ्जाइटिस(दानेदार कण्ठप्रदाह) में लगाते हैं। यह अत्यन्त लाभदायक औषध है।

(६) पिग्मेण्टम् पाइसिस कम आयोडो (Pigmentum picis cum iodo)-ले०। कास्टर्स पेस्ट (Coster's paste)–अं०। कास्टरानुलेपन–हिं०। ज़ुमादकास्टर–उ०।

निर्माण-विधि—आयोडीन १५० ग्रेन, रेक्टिफाइड आइल ऑफ़ टार एक फ्लुइड आउंस। मन्दाग्नि पर आयोडीन को तैल में घोल लें।

प्रयोग—दद्रु पर इसके लगाने से प्रायः लाभ होता है।

(७) पिग्मेण्टम् आयोडो कार्बोलिसेटम् (Pigmentum iodo carbolisalum)—ले०। तैल कार्बोलिकाम्लानुलेपन–हिं०। तिलाये युद् व हामिज़ुल्फ़ह्म–उ०।

निर्माण-विधि—आयोडीन ४ ग्रेन, आयोडाइड ऑफ़ पोटाशियम् ४ ग्रेन, कार्बोलिक एसिड ४ ग्रेन, ग्लीसरीन ४ फ्लुइड ड्राम, वाटर (जल) १ फ्लुइड आउंस पर्यन्त। आयोडीन और आयोडाइड ऑफ़ पोटाशियम को जल में घोलें और कार्बोलिक एसिड को ग्लीसरीन में, पुनः दोनों को परस्पर मिला लेवें।

प्रयोग—इसको भी पुरातन एवं दानेदार कण्ठ-प्रदाह में लगाते हैं।

(८) टिङ्क्चूरा आयोडाई डीकलरेटम् (Tinctura iodi decoloratum)-ले०, कलरलेस टिङ्क्चर ऑफ़ आयोडीन (Colourless tincture of Iodine)-अं०। वर्ण रहित तैल द्रव-हिं०। तअ्फ़ीन युद् बे रङ्ग-उ०।

योग व निर्माण-विधि—आयोडीन २५ ग्रेन, ऐलकोहल (९० %) २½ फ्लुइड आउंस। आयोडीनको ऐल्कोहल (मद्यसार) में मंदाग्नि पर लीन करें। शीतल होने पर स्ट्राँङ्ग सोल्यूशन ऑफ़ एमोनियाँ (तीक्ष्ण एमोनिया घोल) १०

फ्लुइड आउंस मिलाकर इसको उष्ण स्थान में रक्खें, जब यह वर्ण रहित हो जाय अर्थात् इसका रंग उड़ जाय, तब इसमें ऐलकोहल (९० %) इतना मिलायें कि सम्पूर्ण औषधि का द्रव्यमान २० फ्लुइड आउंस हो जाय। यह सामान्य टिंक्चर की अपेक्षा निर्बल होता है। विशेषता इसमें यह होती है कि यह बेरंग होता है।

(९) पेस्टा आयोडो एट एमाइलाई (Pasta iodo et amyli)–ले०। नैल श्वेतसारीयानुलेपन–हिं०। ज़िमाद युद् निशाई–उ०।

योग व निर्माण विधि—श्वेतसार (स्टार्च) १ भाग, ग्लीसरीन (मधुरीन) २ भाग, वाटर (जल) ६ भाग। तीनों को परस्पर योजितकर उबालें और फिर लगभग शीतल होने पर उसमें ½ भाग स्ट्रांङ्ग टिंक्चर आयोडीन मिलाएँ।

प्रयोग—इसको व्रणों, विशेषकर औपदंशीय व्रणों, पर लगाते हैं। इससे व्रण शुद्ध एवं अच्छे होजाते हैं।

(१०) सिरुपस एसिडाई हाइड्रायोडाईसाई (Syrupus acidi hydriodici)–ले०। बी० पी० सी०।

मात्रा—भली भाँति डाइल्यूट करके २० से ६० बूँद तक देवें।

(११) वेपर आयोडाई (Vapour iodi)–ले०। नैल वाष्प–हिं०। अब्ख़रात युदी–उ०। टिंक्चर आयोडीन एक फ्लुइड ड्राम, वाटर (जल) एक फ्लुइड आउंस दोनों को किसी उपयुक्त पात्र में डालकर मन्दाग्नि पर रखकर वाष्प उड़ने दें और उक्त वाष्प रोगी को सुँघावें।

(१२) एमाइलाई आयोडिसेटम् (Amyli iodisatum) एमाइलम् आयोडेटम् (Amylum iodatum)–ले०। आयोडाइज़्ड स्टार्च (Iodized starch)–अं०।

योग व निर्माण-विधि—आयोडीन ५ भाग, आर्द्रीकरण हेतु जल आवश्यकतानुसार, ह्वीटेन स्टार्च (गोधूमज श्वेतसार) ९५ भाग–दोनों को परस्पर चतुरतापूर्वक रगड़कर मिलालें। आयोडीन के प्रयोग करने की यह एक उत्तम विधि है।

मात्रा—दुग्ध वा जल में मिलाकर इसको १ ड्राम (½ से ४ ड्राम) की मात्रा में वर्तते हैं।

प्रयोग - वाह्य रूप से उन सम्पूर्ण दशाओं में, जिनमें आयडोफॉर्म व्यवहृत होती है। इसका उपयोग किया जा सकता है। उपदंश एवं अज्ञात विषों में विषघ्न रूप से इसका प्रयोग करते हैं।

नोट—क्लोरीन (लवणजन, हरिन) तथा ब्रोमीन (ब्रह्मथिका) द्वारा इसी प्रकार के यौगिक तय्यार किये जाते हैं और इसी मात्रा में इनका उपयोग किया जा सकता है। इन्हें ब्रोमाइड वा क्लोराइड ऑफ़ स्टार्च कहते हैं।

(१३) आयडोपाइरीन (Iodopyrin), आयोडैण्टिपाइरीन (Iodantipyrine)

(१४) आयोडीन ट्रि (ट्राइ) क्लोराइड (Iodine trichloride)। यह एक पीतवर्ण का चूर्ण है, जो आयोडीन (नैलिका) और क्लोरीन (हरिन) के योग द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें ५० प्रतिशत आयोडीन होती है। एक गैलन जल में इसका एक ड्राम का घोल प्रबल पचननिवारक है। फर्मेण्टेटिव डिस्पेप्सिया (सन्धानीयाजीर्ण) में उक्त घोल को ½ आउंस की मात्रा में देने से लाभ होता है।

(१५) आयोडीनोल (Iodinol), आयोडीपीन (Iodipin), जॉडीपीन (Jodipin)–यह एक पीत वर्ण का तैलीय द्रव है जो ब्रोमिनोलवत् आयोडीन को तिल तैल में द्रवीभूत कर तय्यार किया जाता है। इसमें १० से २५ प्रतिशत आयोडीन होती है। निर्बलतर द्रव २ से ४ ड्राम की मात्रा में उष्ण दुग्ध वा काफी में मिलाकर मुख द्वारा उपयोग किया जाता है और २५ प्रतिशत शक्ति का उष्ण घोल ४५ से ९० बूँद की मात्रा में चौड़ी सूची द्वारा अन्तःक्षेपित किया जाता है। यह अन्तिम मात्रा १५ से ३० ग्रेन आयोडाइड ऑफ़ पोटाशियम के बराबर होता है। तीव्रतर आयोडोपीन ३०–३० बूँद प्रति कैप्शूल की मात्रा में प्राप्त हो सकता है, यह टिकिया की शकल में भी प्रयोग में आता है। आयोडोपीनको अभ्यङ्ग (Inunction)

रूप से भी उपयोग किया जा सकता है। कण्ठमाला (Scrofula) में अन्त: प्रयोग हेतु मार्टिण्डेल निम्न लिखित योग-सूत्र लिखते हैं—आयोडोपीन (२५ प्रतिशत) १ भाग और थिक माल्ट एक्सट्रैक्ट ३ भाग।

यह तैलीय गंध वा स्वाद युक्त होता है। यह जल तथा ऐलकोहल ९०% में अविलेय, परन्तु ईथर और क्लोरोफार्म में प्रत्येक अनुपात से विलेय होता है। आयोडीन के प्रयोग की यह सर्वोत्तम विधि है, सामान्य आयोडाइड्स की क्षमता न होनेपर इसका उपयोग किया जा सकता है। आमाशय से यह अपरिवर्तित दशा में ही निकल जाता है एवं उसी दशा में आन्त्र द्वारा अभिशोषित होता है और रक्त वा तन्तुओं में पहुँच कर धीरे-धीरे निरन्तर आयोडीन से भिन्न होता जाता है। उपयोग करने के एक मास पश्चात् नैलिका मूत्र में देखी जा सकती है। इसका उन समग्र अवस्थाओं में जैसे आर्टीरियो-स्क्लेरोसिस, युटराइन फाइब्राइड्स, ब्राङ्काइटिस (कास), ऐज़्मा (श्वास, दमा), आमवात और विशेषकर उपदंश, जिसमें इसके त्वगन्त: अन्तःक्षेप से अत्यन्त प्रशंसनीय परिणाम उपलब्ध हुए हैं, जिनमें आयोडाइड्स लाभप्रद होते हैं, उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त इसको कास युक्त श्वास, एम्फाइसीमा (वायुरोध), प्लुराइटिस (फुफ्फुसावरण प्रदाह) में बर्तते हैं। इसको ३० से ४० मिनिम की मात्रा में त्वगन्त: अन्तःक्षेप द्वारा उपयोग में लाते हैं। उपदंश की तृतीय कक्षा में एवं उस कक्षा के औपदंशीय क्षतों के लिये यह एक लाभदायक औषधि है। यही नहीं प्रत्युत डाक्टर विण्टर न्याज़ तो इसको पोटाशियम आयोडाइड से श्रेष्ठतर अनुमान करते हैं।

(१६) आयडो-केफीन (Iodo-caffeine)। दे० "कहवा"।

(१७) आयडोथाइरीन (Iodo-thyrin), थाइरो-आयोडीन (Thyroiodine)। यह चुल्लिका ग्रंथि (Thyroid gland) द्वारा प्राप्त एक विकृताकार मटमैले रंग का चूर्ण है, जिसमें नैलिका होती है। थाइरोकोल (Tbyrocol) तथा थाइरोग्लैण्डीन (Thyroglandin) नाम की उक्त ग्रंथि द्वारा निर्मित दो और औषधें हैं, जिनमें उक्त ग्रंथि के समग्र प्रभावात्मकांश विद्यमान होते हैं। (दे० "थाइरॉइड")। इसमें ०.०३ प्रतिशत आयोडीन (नैलिका) होती है। यह उतनी ही मात्रा में प्रयुक्त होता है, जितने में शुष्क ग्रंथि प्रयोग में आती है। यह प्रबल परिवर्तक है।

(१८) आयोडलबेसिड (Iodal bacid) यह एक पीत धूसर वर्ण का गंध रहित एवं स्वाद रहित चूर्ण है, जो जलमें विलेय होता है। यह ऐल्ब्युमीन (अण्डलाल) और आयोडीन (नैलिका) का एक यौगिक है जिसमें १० प्रतिशत नैलिका होती है। इसके विषय में यह प्रतिज्ञा की जाती है कि यह आयोडाइड्स आफ़ सोडियम् तथा पोटाशियम् की अपेक्षा कम अवसादक है। अस्तु, आर्टीरियो-स्क्लेरोसिस, टर्शियरी सिफ़लिस (तृतीय कक्षा के उपदंश) और अपस्मार में जब आयोडाइड्स को अधिक काल तक एवं अधिक मात्रामें देना होता है, तब इसका उपयोग अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर अनुमान किया जाता है।

मात्रा—१५ से २० ग्रेन।

(१९) आयोडोग्लीडीन (Iodoglidine)—यह उपर्युक्त औषध के बहुत कुछ समान होता है और आयोडीन तथा ग्लीडीन (गोधूमज ऐल्ब्युमीन) का एक यौगिक है। आयोडलबेसिडवत् यह अक्षोभक है तथा मन्दगति से अभिशोषित होता है। इसको भी उसी मात्रामें उपयोग किया जा सकता है।

आयोडीन की फार्माकॉलॉजी (प्रभाव)

बहिः प्रभाव

आयोडीन का प्रभाव क्लोरीन प्रभाववत् होता है, परन्तु यह उतना तीव्र नहीं होता। यह प्रबल ऐण्टिसेप्टिक (पचन निवारक), डिओडोरेण्ट (दौर्गन्ध्यहर) और ऐण्टिपैरासिटिक (पराश्रयी कीटघ्न) है। यदि शुद्ध आयोडीन या उसका कोई तीव्र यौगिक त्वचा पर लगाया जाय, तो वहाँ

पर वेदना, उष्णता एवं दाह का बोध होता है एवं तत्स्थानीय धमनियों के प्रसारित होजाने से उक्त स्थल का रङ्ग लालिमायुक्त होजाता है। त्वक् प्रदाह के कारण वहाँ फफोले पड़ जाते हैं और यदि उसको कुछ बार प्रयोग किया जाय, तो उसका काउण्टर-इरिटेण्ट प्रभाव होता है। कदाचित् उसकी परावर्तित क्रिया द्वारा आन्तरिक धमनियाँ संकुचित होजाती हैं और प्रदाह कम होजाता है। अस्तु, शक्ति और प्रयोगकाल के अनुसार यह इरिटेण्ट (क्षोभक), रूबीफ़ेशेण्ट (आरुण्यकारक, रागजनक) और वेसीकेण्ट (फोस्काजनक) तथा काउण्टर इरिटेण्ट (प्रतिक्षोभक) है। इसके लगाने से त्वचा पीत धूसर वर्ण की होजाती है और उपचर्म मृतप्राय होकर पर्त्त रूप में भिन्न होजाता है।

उपर्युक्त वर्णनानुसार इसके लगाने से स्थानिक धमनियाँ प्रसारित हो जाती हैं और श्वेताणु (Leucocytes) उनकी दीवालों से बाहर निकल आते हैं। इस प्रकार यह अभिशोषक रगों (Absorbent vessels) को उत्तेजना पहुँचाती है। सम्भवतः इसी बात पर उसका अभिशोषक (Absorbent) प्रभाव निर्भर है। यह स्मरणीय बात है कि त्वचा पर आयोडीन लगाने से (विशेषकर उसके तीव्र यौगिकों के लगाने से) उसमें उद्दर्दवत् प्रदाह हो जाता है (विशेषत: बालकों और आमवात पीड़ितों में)।

आयोडीन त्वचा द्वारा रक्त में अभिशोषित हो जाता है और रक्तवारि के क्षारीय पदार्थों से मिलकर सोडियम् आयोडाइड और पोटाशियम् आयोडाइड में परिणत हो जाता है। परन्तु जब ये यौगिक रूप में भ्रमण करते हुये किसी ऐसे अवयव में पहुँचते हैं जिसमें अम्ल द्रव होता है, जैसे, आमाशय व वृक्क, तब उक्त अम्ल के सम्पर्क से उनमें पुन: परिवर्तन उपस्थित होता है और आयोडीन (नैल) जो कि क्षोभ संजनित करता है, भिन्न हो जाता है। अस्तु, यदि आयोडीन को त्वचा के विस्तृत भाग पर लगाया जाय अथवा उसका अधिक मात्रा में अन्त:क्षेप किया जाय, तो उसके रक्त में अभिशोषित हो जाने से नैलिका द्वारा विषाक्तता (आयोडिज़्म) के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। रोगी को वमन आने लगते हैं। मूत्र में ऐल्ब्युमीन (अण्डलाल) आने लगता है और उन्माद होकर कोलैप्स हो जाता है।

अन्तः प्रभाव

अन्न-मार्ग व श्वासोच्छ्वास—यह अन्नमार्ग तथा श्वासोच्छ्वास् मार्ग दोनों में क्षोभ उत्पन्न करता है। आमाशय तथा आन्त्र में यह धीरे-धीरे सोडियम् आयोडाइड व आयोडेट में परिवर्तित हो जाता है; परन्तु इसका अधिक भाग अपरिवर्तित एवं स्वतन्त्र रहता है। अस्तु, यह आमाशय व आन्त्र में क्षोभ उत्पन्न करता है, जिससे वमन व विरेक आने लगते हैं और उदरशूल की तरह वेदना होने लगती है। अत्यल्प मात्रा में यह वमन आने को रोकता है। आयोडीन-वाष्प के सूँघने से श्वास-मार्ग में क्षोभ संजनित होकर कास एवं छिक्का का प्रादुर्भाव होता है। ललाट एवं वक्ष में वेदना होने लगती और श्वासावरोध-विकार होता है।

आयोडीन के थेराप्युटिक्स (उपयोग)

बहिः प्रयोग

आयोडीन का अधिकतर स्थानिक उपयोग होता है। अस्तु, मन्द व्रणों को उत्तेजना देने के लिए इसका टिङ्क्चर (नैल द्रव) या प्रलेप वा लाइकार प्रायः उपयोग में आता है। इसके टिङ्क्चर को इतने जल में मिलाकर जिसमें वह हलके रक्त वर्ण का हो जाय, इससे प्रायः पुरातन एवं अशुद्ध व्रणों को प्रक्षालित करते हैं। सन्धि, स्नैहिककला, लसीका-ग्रंथि, फुफ्फुसावरण, हृदावरण, फुफ्फुस, यकृत्, प्लीहा, जरायु, डिम्बाशय, परिविस्तृतकला वा उदरच्छदाकला और अस्थ्यावरण इत्यादि के अल्प उग्र प्रदाहों या पुरातन प्रदाहों में इसके टिङ्क्चर या लिनिमेण्ट (उद्वर्त्तन) प्रभृति को काउण्टर इरिटेण्ट (प्रतिक्षोभक) रूप से काम में लाते हैं। सन्धि-रोगों, जैसे आमवात (गठिया), संधिवात (गाउट) संधि प्रदाह (आर्थ्राइटिस) और अस्थि रोगों विशेषकर औपदंशीय में काउण्टर-इरिटेण्ट रूप से- आयोडीन के यौगिक अधिकता से काम आते

और प्रायः लाभजनक होते हैं। टिङ्क्चर आयोडीन प्रभृति के लगाने से पुरातन ग्रंथि-शोथ विलीन होजाता है। आयोडीन का टिङ्क्चर वा प्रलेप यदि क्रॉनिक प्ल्युरिसी (पुरातन फुफ्फुसावरणप्रदाह) में विकृत स्थल पर निरन्तर लगाया जाय, तो प्राय: वेदना न्यून होजाती और एकत्रीभूत द्रव के अभिशोषण में सहायता मिलती है। पुरातन यक्ष्मा (क्रॉनिक थाइसिस) में टिङ्क्चर आयोडीन प्रभृति को अक्षकास्थि के नीचे लगाया करते हैं, जिससे कभी-कभी कास व श्लेष्मामें कमी होजाती है। पुरातन कास में विशेषकर बालकों में टिङ्क्चर आयोडीन का वक्ष पर लगाना प्रायः लाभदायक होता है।

नोट—लाइकर आयोडाई या लिनिमेण्टम् आयोडाई बहुत तीव्र होते हैं। इसलिए वह एक ही स्थल पर दो या तीन बार से अधिक नहीं लगाये जा सकते और यदि उनके लगाने से अधिक वेदना एवं क्षोभ हो, तो ऐल्कोहल (मद्यसार) या ब्राण्डी या ह्विसकी या ओडीकलोन से या पोटाशियम् आयोडाइड या लाइकर पोटाशी के घोल से उक्त स्थान से आयोडीन को धो डालना चाहिए।

यदि किसी स्थान पर ऐब्सेस (विद्रधि) बननेवाला हो या ब्युबो (बद, बाघी) या कार्बङ्कल के उत्पन्न होने की आशङ्का हो, तो उक्त स्थल के समीप या आसपास तीव्र लाइकर आयोडाई लगाकर फोस्का संजनित करने से सामान्यत: प्रदाह कम होजाता है। उदर्द(Erysepalas) और कार्बङ्कल के फैलने या उसकी वृद्धि को रोकने के लिए आसपास की त्वचा पर टिङ्क्चर आयोडीन प्रभृति लगाया करते हैं। इससे रोग की वृद्धि नहीं होने पाती। पराश्रयी कीट जन्य त्वग्रोगों, जैसे-दाद (Ringworm), खालित्य और तर खुजली आदि के लिए कास्टर पेस्ट एक अत्युपयोगी औषध है। टीनिया सर्टिनेटा (दद्रुभेद) में टिङ्क्चर आयोडीन या आयोडीन प्रलेप का उपयोग पर्य्याप्त होता है। एण्डो मिट्राइटिस (गर्भाशयांतरिक शोथ) में आयोडाइज़्ड फेनोल का स्थानीय प्रयोग अत्यन्त लाभदायक होता है। स्वरभेद, कण्ठरोहिणी (Diphtheria), यक्ष्मा और कास में आयोडीन वाष्प का सुँघाना उपयोगी है, परन्तु वायुप्रणालियों को क्षोभ से सुरक्षित रखनेके लिए उसको क्लोरोफॉर्म तथा जलवाष्प के साथ सुँघाया करते हैं। दन्तमूलावरणस्थ शोथ (डेण्टल पेरि ऑस्टाइटिस) के कारण जब दाढ़ में वेदना हो तब शुद्ध टिङ्क्चर आयोडीन या उसमें उतना ही टिङ्क्चर एकोनाइट (वत्सनाभासव) मिलाकर उसे रूई की फुरेरी से विकृत स्थल पर चतुरतापूर्वक लगाने से प्राय: लाभ होता है। कण्ठ रोगों, विशेषकर ग्रेन्युलर फेरिञ्जाइटिस (दानेदार कण्ठप्रदाह) में पिग्मेण्टम् मेण्डल लगाने से प्रायः रोग का निवारण होता है। सिस्टिक ब्रॉङ्कोसील (घेघा) में टिङ्क्चर आयोडीन घोलकी पिचकारी करते हैं और हाइड्रोसील (अण्डवृद्धि) में जल निकालने के बाद कभी कभी शुद्ध टिङ्क्चर आयोडीन (नैल द्रव) की पिचकारी करते हैं जिसमें कि अण्डावरण के दोनों पर्त्त जिनमें जल एकत्रित रहता है, परस्पर जुट जायँ।

आयोडीन लोशन (आयोडीन २ से ३ ग्रेन, पोटासियम् आयोडाइड २ ग्रेन, परिश्रुत जल १ आउंस) के नेत्र में डालने से ओपिसिटी ऑफ दी कॉर्निया (फूली) यदि वह नवीन हो और गंभीर न हो, तो प्रायः दूर होजाता है।

अन्तः प्रयोग

शुद्ध नैलिका अन्तः रूपसे विरला ही उपयोग में आती है। टिङ्क्चर आयोडीन (नैल द्रव) को मसूढ़े तथा दन्त पर लगाने से टार्टार (दन्तमल) घुल जाता है। क्षत युक्त या व्रणमय मसूढ़ों पर लगाने से उनके क्षत अच्छे हो जाते हैं। आयोडीन के गण्डूष धारण करने से पारद जनित लाला-स्राव या मुख आना रुक जाता है और मुख वा कण्ठ के औपदंशीय अथवा अनौपदंशीय क्षत पूरित होते हैं। पिग्मेण्टम् मेण्डल, क्रॉनिक ग्रेन्युलर फेरिञ्जाइटिस (पुरातन दानेदार कण्ठप्रदाह) में साधारणतः व्यवहृत होता है और वास्तव में एक उपयोगी दवा है। टिङ्क्चर आयोडीन एक या दो बूँद अर्ध या

एक-एक आउंस जल में मिलाकर आध-आध घंटे पश्चात् दो-तीन बार देने से किसी-किसी समय वमन का आना रुक जाता है।

मलेरियल फीवर, (मलेरिया ज्वर, विषम ज्वर) और गाउट (रक्तवात) में कोई-कोई डाक्टर आयोडीन का उपयोग गुणदायक बताते हैं; परंतु पुरातन मलेरिया जन्य ज्वरों में उसके टिङ्क्चर को अन्तःरूप से देने से भी कभी-कभी लाभ हो जाता है। सिफ़लिस (उपदंश) और स्कॉफ्युला (कंठमाला) में जब उसके लवणों से लाभ नहीं होता, तब किसी-किसी समय आयोडीन उपयोगी सिद्ध होती है।

आयोडीन-इंजेक्शन

प्रस्तुत-क्रम—आयोडीन प्योर ५ ग्रेन, पोटासियम् आयोडाइड ५ ग्रेन-दोनों को थोड़े से परिश्रुत जल (Distilled water) के साथ शीशे के स्वच्छ खरल में घोटें। जब दोनों अच्छी तरह घुलकर द्रव रूप में आ जायँ, तब २ आउंस परिस्रुत जल डालकर, एक शीशे के स्टापरदार शीशी में फिल्टर करके, पुनः उसमें १ ड्राम ग्लीसरीन मिलाकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—२ से ५ बूँद यह औषध ५-१० सी० सी० (घन शतांशमीटर) नार्मल सेलाइन सोलुशन (साधारण लवण-घोल) में मिलाकर यथाविधि शिरांतर (Intravenous) अन्तःक्षेप करें।

प्रयोग—इसका उपयोग प्रायः उन सभी व्याधियों में होता है, जिनमें नैलिका आंतरिक रूप से व्यवहार में आती है।

नोट—आयोडीन से आमाशय तथा अँतड़ी में क्षोभ होकर क़ै दस्त आने लगते हैं। अतएव इसको भली-भाँति विलीन करके भोजनोपरान्त काम में लानी चाहिये। जर्मन का एक प्रसिद्ध डॉक्टर टिङ्क्चर आयोडीन को शर्बत या शेरी में मिलाकर भी पिलाता है।

पोटासी आयोडाइडम Potassi Iodidum

पांशु नैलेदिद

सङ्केत सूत्र (Ki) पां. नै.

(ऑफिशल *Official*)

पर्याय—पोटाशी आयोडाइडम् (Potassi Iodidum)-ले०। पोटाशियम् आयोडाइड (Potassium Iodide)-अं०। पांशु नैलेदिद-हिं०। यूदूरुल् बूतास्यूम्-मुअ०। युदूरे पुटासियूम्-फ़ा०।

निर्माण-विधि—लाइकार पोटाशी को आयोडीन में लय करने से आयोडेट और आयोडाइड ऑफ़ पोटाशियम् प्रस्तुत होते हैं। पुनः उक्त द्रव को वाष्पीभूत करने के पश्चात् जो कुछ प्राप्त हो, उसको कोयले के साथ मिलाकर उत्ताप देने से आयोडेट का ऊष्मजन वायव्य कार्बानिक एसिड बनकर विसर्जित हो जाता है और आयोडाइड ऑफ पोटाशियम् अवशिष्ट रह जाता है। उसको उबलते हुये जल में लय करके छान लेते हैं। पुनः उसको धो और उड़ाकर उसके रवे बाँधकर सुरक्षित रखते हैं।

लक्षण—इसके वर्ण रहित; अस्वच्छ घनाकार रवे होते हैं, जिनकी प्रतिक्रिया किञ्चित् क्षारीय होती है।

घुलनशीलता—यह ४ भाग ३ भाग जल में, एक भाग १२ भाग मद्यसार अर्थात् ऐलकोहल (६० प्रतिशत) में, और एक भाग ३ भाग ग्लीसरीन में विलेय होता है।

मिश्रण—आयोडेट्स, नाइट्रेट्स, ब्रोमाइड्स और साइनाइड्स इत्यादि।

संयोग-विरुद्ध (Incompatibles)-बिस्मथ सबनाइट्रेट, स्पिरिटस ईथरिस नाइट्रोसाई, लिकोरिस (मुलेठी), लाइक्कार स्ट्रिकनीनी, ऐलकलाइडल साल्ट्स और ऐसे यौगिक जिनमें श्वेतसार (स्टार्च) पाया जाय।

प्रभाव—आल्टरेटिव (परिवर्त्तक), रिज़ॉल्वेण्ट (लयकर्त्ता, उपदंश और कण्ठमाला का), एक्सपेक्टोरेण्ट (कण्ठ्य, श्लेष्मनिःसारक) और मूत्रल (डायोरेटिक)।

मात्रा—५ से २० ग्रेन (३ से १२ डेसीग्राम) घोलरूप में।

यह पड़ता है—टिङ्क्चर आयोडाइ फोर्ट (लगभग २६$\frac{3}{4}$), टिङ्क्चर आयोडाई मिटिस (लगभग १० ग्रेन) और अङ्ग्वेटम् आयोडाइ (१७$\frac{1}{2}$ ग्रेन) तथा निम्न लिखित आफ़िशल योगों में—

सम्मत योग

ऑफ़िशल प्रिपेयरेशञ्ज़

(*Official preparations*)

(१) लिनिमेण्टम् पोटेशियाइ आयोडाइडाई कम सैपोनी (Linimentum potassii Iodidi cum sapone)-ले०। लिनिमेण्ट आफ़ पोटाशियम् आयोडाइड विथ सोप (Liniment of potassium Iodide with soap)-अं०। सप्रक्षालक पांशु नैलेदिदानुलेपन।

निर्माण-विधि—नव प्रस्तुत कर्ड सोप के पत्र २ आउंस, पोटाशियम् आयोडाइड (पांशु नैलेदिद) १½ आउंस, ग्लीसरीन एक फ्लुइड आउंस, आइल आफ़ लेमन एक फ्लुइड ड्राम, परिश्रुत जल १० फ्लुइड आउंस। कर्ड सोप के बारीक चूर्ण को परिश्रुत जल और ग्लीसरीन के साथ मिलाकर चीनी की प्याली में वाटर बाथ पर रक्खें। जब साबुन लय हो जाय, तब द्रव को पांशु नैलेदिद (Potassium Iodide) पेषित खरलमें प्रविष्ट करें। पुनः मर्दित कर दोनों को भली प्रकार मिला लेवें और शीतल होने के एक घण्टा पश्चात् उसमें आइल आफ़ लेमन मिला दें।

प्रभाव—परिवर्तक और लयकर्त्ता। इससे त्वचा पर चिह्न नहीं पड़ता।

(२) अङ्ग्वेण्टम् पोटाशियाई आयोडाइडाई (Unguentum potassii Iodidi) -ले०। पोटाशियम् आयोडाइड आइण्टमेण्ट (Potassium Iodide ointment)-अं०। पांशु नैलेदिदानुलेपन।

निर्माण-विधि—पोटाशियम् आयोडाइड ५० ग्रेन, पोटाशियम् कार्बोनेट ३ ग्रेन, डिस्टिल्ड वाटर (परिश्रुत जल) ४७ ग्रेन (बूँद), बेञ्ज़ोएटेड लार्ड ४० ग्रेन। पोटाशियम् आयोडाइड और पोटाशियम् कार्बोनेट को परिश्रुत जल में लय करके उक्त घोल में बेञ्ज़ोएटेड लार्ड को क्रमशः योजित करें। प्रभाव—लिनिमेण्टवत्।

असम्मत योग

नॉट ऑफ़िशल प्रियेपरेशञ्ज़

(*Not official preparations*)

(१) लिनिमेण्टम् पोटेशियाई आयोडाइडाई (Linimentum potassii Iodidi)। साफ़्ट सोप १३½ भाग, पोटाशियम् आयोडाइड १० भाग, ग्लीसरीन ७ भाग, लेमन आइल १ भाग, ऐलकोहल (६०%) आवश्यकतानुसार या १०० भाग पर्यन्त।

सोडियाई आयोडाइडम्

Sodii iodidum

संकेत सूत्र (*NaI.*) सैं० नै०

ऑफ़िशल (*Official*)

पर्याय—सोडियाई आयोडाइडम् (Sodii iodidum)-ले०। सोडियम् आयोडाइड (Sodium iodide)-अं०। सैंध नैलेदिद, सैंध नैलिद-हिं०। यूदूरुस्सोदियूम्-मुअ०। युदूरे सोदयुम्-मुफ़ा०।

निर्माण-विधि—आयोडीन (नैल) तथा सोडा के सोल्यूशन अर्थात् सैंध घोल (Sodium hydroxide) से जिसका रासायनिक नाम सैंध उद्दुष्मिद है, पोटाशियम् आयोडाइडवत् प्रस्तुत किया जाता है।

लक्षण—श्वेत वर्ण का कणदार चूर्ण है जो वायु में से आर्द्रता को अभिशोषितकर पिघल जाता है।

स्वाद—तिक्त और किञ्चित् नमकीन।

विलेयता—यह ११ भाग ६ भाग जल में और एक भाग ३ भाग ऐलकोहल (९० प्रतिशत) में विलेय होता है।

मिश्रण—पोटाशियम् आयोडाइडवत्।

प्रभाव—इसके वैसे ही प्रभाव होते हैं जैसे पोटाशियम् आयोडाइड के (परिवर्तक); किन्तु यह उसकी अपेक्षा कम नैर्बल्यकारक होता है और अपेक्षाकृत रोगी को इसकी क्षमता अधिक होती है।

मात्रा—५ से २० ग्रेन।

आयोडीन के असम्मत लवण
(*Not official iodine salts*)

(१) एमोनियम् आयोडाइडम् (Ammonium iodidum) यू-ले० । एमोनियम् आयोडाइड (Ammonium iodide)-अं० ।

यह एक श्वेत और आर्द्रता-चोषक चूर्ण है जो वायु के लगने से पीत वर्ण का होजाता है ।

विलेयता—यह ४ भाग ३ भाग जल में १ भाग ३ भाग ऐलकोहल (९० प्रतिशत) में और ३ भाग ४ भाग ग्लीसरीन में विलेय होता है ।

प्रभाव—इसके भी वे ही प्रभाव होते हैं जो पोटाशियम् आयोडाइड के; परन्तु उसकी अपेक्षा यह कम नैर्बल्यकारक होता है ।

मात्रा—३ से २० ग्रेन ।

(२) रूबीडियाई आयोडाइडम् (Rubidii iodidum) । इसके वर्ण रहित, घनाकार रवे होते हैं जो जल में विलेय होते हैं । इसकी अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर क्षमता होती है और यह भी कम नैर्बल्यकारक होता है ।

मात्रा—५ से २० ग्रेन ।

(३) स्ट्रॉन्शियाई आयोडाइडम् (Strontii iodidum) । यह भी एक श्वेत रवादार पदार्थ है । इसके प्रभाव व मात्रा भी रूबीडियाई आयोडाइडम् के समान हैं ।

पोटाशियम् आयोडाइड और सोडियम आयोडाइड की फॉर्माकॉलॉजी अर्थात् उनके प्रभाव

बहिः प्रभाव

पोटेशिअम् और सोडियम् आयोडाइड का त्वचा पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता । प्रलेप रूप से उपयोग करने पर, ये अत्यल्प मात्रा में अभिशोषित होते हैं । स्वेद द्वारा वियोजित होकर भी ये अभिशोषित हो जाते हैं ।

अन्तः प्रभाव

आयोडीन के लवणों का प्रभाव आयोडीन के प्रभाव के समान होता है, भेद केवल यह होता है कि इनसे आमाशय व आन्त्र में कम क्षोभ जनित होता है, इसलिये उनका अधिक उपयोग करते हैं । इनमें से पोटाशियम् आयोडाइड सबसे अधिक उपयोग में आता है ।

शरीर में पहुँच कर जब ये आयोडाइड्स सजीव जीवन-मूल के अवशिष्ट ऊष्मजन वायव्य की थोड़ी-थोड़ी मात्रा के साथ ऐसे घोल में सम्मिलित होते हैं, जिसकी प्रतिक्रिया कार्बोनिक एसिड (कज्जलिकाम्ल) की उपस्थिति के कारण अम्ल होती है, तब इनके (आयोडाइड्स के) संयोगी अवयव वियेजित हो जाते हैं तथा शुद्ध नैलिका (Iodine) भिन्न हो जाती है और यही भिन्न हुई आयोडीन प्रभावकारक होता है अर्थात् समग्र प्रभाव इसी आयोडीन के होते हैं । इस बात का प्रमाण कि, आयोडाइड के यौगिकों के प्रभाव शरीरान्तर पृथक्भूत आयोडीन के कारण होते हैं यह है कि, पूर्वकाल में आयोडीन को अन्तः रूप से उपयोग में लाया जाता था, तब उससे वे ही लक्षण व परिणाम उपस्थित होते थे, जो अधुना आयोडाइड्स के उपयोग द्वारा होते हैं ।

आयोडाइड्स (नैलिका के लवण अर्थात् पोटाशियम् आयोडाइड या सोडियम् आयोडाइड प्रभृति) को अधिक मात्रा में बर्तने से सार्वाङ्गिक निर्बलता के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं, जिनको आयोडिज़्म (नैलिका द्वारा विषाक्तता) नाम से अभिहित करते हैं । आयोडीन के विशिष्ट प्रभावों के अतिरिक्त इन लवणों के कुछ अपने विशेष प्रभाव होते हैं । ये वायु प्रणालियों की श्लैष्मिक कलाओं की राह निःसृत होते हुये उनकी ग्रंथियों के स्रावों को बढ़ाते हैं और प्रगाढ़ एवं पिच्छिल श्लेष्मा को द्रवीभूत करते हैं । अस्तु, ये श्लेष्मा निःसारक (कंठ्य) हैं ।

ये इंडायरेक्ट रूप से आक्षेपहर भी हैं । इनको अधिक परिमाण में देने से मूत्रोत्सर्ग भी अधिक होता है । परन्तु अभी तक यह ज्ञात नहीं हुआ कि उक्त प्रभाव उस एल्कली (सोडा या पोटास आदि क्षार, जो इन लवणों में होता है) की बड़ी मात्रा से होता है अथवा आयोडीन से । यदि इनको दीर्घ काल तक बड़ी मात्रा (उदाहरणतः पोटाशियम् आयोडाइड १० ग्रेन की) मात्रा में दिया जाय तो स्तनधारी प्राणी की छातियों में

दूध की उत्पत्ति घट जाती है और स्त्रियों के स्तन और पुरुषों के अंड संकुचित हो जाते हैं तथा पौरुष वा पुंस्त्व शक्ति नष्ट हो जाती है ।

पोटासियम् आयोडाइड वा न्यूनातिन्यून आयोडीन कतिपय खनिज विषों, जैसे, सीसक वा पारद विष को शरीर से निःसृत करती है । क्योंकि यह उनके एल्ब्युमिनस यौगिकों के साथ मिलकर विलेय लवणों का निर्माण करती है और इस प्रकार यह शरीर तंतुओं में से उनको पृथक् कर देती है । इस कथन का प्रमाण यह है कि एल्ब्युमिनेट ऑफ़ लेड पोटेशियम् आयोडाइड के घोल में घुल जाता है ।

फिरंग रोग में आयोडाइड्स विशेष रूप से लाभकारी हैं । परंतु अभी तक यह बात मालूम नहीं हुई, कि इस रोग में उक्त औषध का प्रभाव किस प्रकार होता है अर्थात् यह फिरंग जनित विष पर किस तरह प्रभाव करते हैं ।

उत्सर्ग—शरीर से आयोडायड्स का उत्सर्ग अधिकतया मूत्र द्वारा होता है, और किसी भाँति शारीरिक द्रवों, जैसे थूक, पसीने और दुग्ध द्वारा । त्वचा से निःसृत होते समय यह उस पर नाना भाँतिकी फुंसियाँ—लाल धब्बे वा ददोड़े (Eruptions) पैदा करते हैं, जो कि घर्मग्रंथियों के स्रोतों से प्रारंभ होते हैं । यह प्रभाव भी उस स्वतंत्र आयोडीन का होता है जो उन यौगिकों से पृथक् हो जाती है ।

आयोडीन द्वारा विषाक्तता
(आयोडिज़्म)

किसी-किसी व्यक्ति को इस औषधकी अत्यल्प क्षमता होती है । यहाँ तक कि $\frac{1}{2}$ से १ ग्रेन से भी आयोडिज़्म (नैलिका द्वारा विषाक्तता) के लक्षण प्रगट हो जाते हैं । पर इसके विपरीत दूसरोंको इसकी अत्यधिक क्षमता (१ से ४ ड्राम दैनिक) होती है । विशेषकर चिरकारी फिरंग रोगीके नैलिका जनित विषाक्तता (Iodism) के लक्षण इस प्रकार हैं—नाक बहती है, छींकें आती हैं, आँखों से पानी जारी होता है, भूख मर जाती है और कंठ एवं स्वरयंत्र में प्रदाह होकर कास के लक्षण प्रकाशित होने लगते हैं । यदि इन लक्षणों को उदय होने पर भी आयोडाइड्स का प्रयोग-क्रम चालित रखा जाय, तो ये लक्षण और उग्रतर हो जाते हैं । फलतः मसूढ़े और लाला ग्रंथिया सूज जाती है, कंठ में ऐसा प्रदाह होता है मानो वह छिला जाता है, थूक बहुत ज्यादा निकलती है और ज़बान पर मैल जम जाती है । किसी-किसी को क़ै-दस्त आने लगते हैं, स्वरयंत्र प्रदाह (Laryngitis) एवं कास हो जाता है और त्वचा पर लाल-लाल धब्बे वा ददोड़े निकल आते हैं । कभी-कभी एल्ब्युमेन मिश्रित पेशाब आने लगता है । ये समस्त लक्षण उस स्वतंत्र आयोडाइड्स के कारण उद्भूत होते हैं जो उन आयोडाइड्स से उपर्युक्त रीति से अनुसार अधिक परिमाण में पृथक् होती है । उक्त कथन का प्रमाण यह है कि जब सोडियम् बाई कार्बोनेट को अधिक मात्रा में देते हैं, तब उक्त सभी लक्षण विलुप्त हो जाते हैं, क्योंकि उससे शारीरिक पतली रतूबात खारी होजाती हैं । इस प्रकार आयोडीन का पृथक् वा निःसृत होना रुक जाता है ।

प्रतिविष (Antidotes)

वामक औषध वा क्षमक-पंप (इसका सावधानी पूर्वक प्रयोग करना चाहिये) द्वारा आमाशय को साफ़ कर डालें । फिर श्वेतसार, अरारूट, ब्रेड, उबाले आलू, आटा, चूने का पानी, सोडियम् हाइपो-सल्फाइट और स्निग्धता-संपादक पेय द्रव्यों में से किसी एक का यथाविधि प्रयोग करें, कार्बोनेट ऑफ़ एमोनिया वा स्पिरिट अमोनिया ऐरोमेटिक, पोटासियम् बाइ कार्बोनेट वा सोडियम् बाइ कार्बोनेट के देनेसे आयोडिज़्म (नैलिका विष)के कुलक्षण अदृश्य होजाते हैं और फाउलर्ज़ सोल्यूशन के प्रयोग से त्वचा पर अरुण वर्ण के धब्बों का पड़ना (Skin eruptions) बंद हो जाता है ।

पोटासियम आयोडाइड और सोडियम आयोडाइड के थेराप्युटिक्स अर्थात् औषधीय प्रयोग

वाह्य प्रयोग

कभी कभी आयोडीन की जगह पोटासियम् आयोडाइड का लिनिमेंट वा इसका ऑइंटमेंट

(मरहम), संधि वा शोथयुक्त ग्रंथियों पर विशेषतः जब ग्रैवेयी ग्रंथियाँ बढ़ गई हों, प्रयोजित किये जाते हैं। उक्त यौगिकों के प्रयोग से क्षोभ बहुत कम होता है और त्वचा के रंग में कोई परिवर्त्तन नहीं होता।

आंतर प्रयोग

(१) आमाशय तथा यकृत---पोटासियम् आयोडाइड की अत्यल्प मात्रा($\frac{1}{2}$ ग्रेन)एरोमेटिक स्पिरिट आफ़ अमोनिया और इपीकेकाना वाइन में मिलाकर भोजनोपरांत आमाशय नैर्बल्य जनित अजीर्ण में प्रयोजित करने से बहुत लाभ होता है। यकृत संकोच (Cirrhosis of the livers) के प्रारम्भ में भी कहते हैं, कि इससे लाभ होता है।

(२) श्वासोच्छ्वासावयव—उग्र प्रतिश्याय (Acute corrhiza) के प्रारम्भ में यदि रात को सोते समय १० ग्रेन पोटासियम् आयोडाइड प्रयोजित की जाय, तो रोगाक्रमण शिथिल पड़ जाता है। किंतु चिरकारी प्रतिश्याय (Chronic cold) में इसको अल्पमात्रा में व्यवहृत करने से लाभ होता है। श्वास में आयोडाइड्स का उत्तम आक्षेपहर प्रभाव होता है। अस्तु, १५ वा २० ग्रेन की मात्रा में पोटाशियम् आयोडाइड के प्रयुक्त करने से दमा को चाहे वह सर्दी के कारण हो अथवा किसी अन्य कारण से, प्रायः लाभ होता है। कास में सांद्र एवं पिच्छल श्लेष्मा को द्रावित कर निःसृत करने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। बालकों के कास-रोग में, मुख्यतया जब कि कष्ट श्वास की अधिकता हो, आयोडाइड्स को टार्टार-एमेटिक के साथ मिलाकर प्रयुक्त करने से प्रायः लाभ होता है। फुफ्फुसौष तथा(Pleurisy)में इसका प्रयोग क्षरित द्रव के शोषण में सहायक होता है।

(३) हृदय और धमनी—हृदावरक प्रदाह (Pericarditis) रोग में क्षरित द्रव के अभिशोषणार्थ एवं हृदय के कपाटों पर एकत्रीभूत मवाद के अभिशोषणार्थ आयोडाइड्स का उपयोग गुणकारी होता है। माइट्रल रीगर्जिटेशन और एओर्टिक आब्सट्रक्शन (दे० डिजिटेलिस) में इसका निरंतर कुछ काल तक प्रयोग कराना लाभकारी होता है। एओर्टिक एनोरिज़्म (आवर्त्तीय धमन्यर्बुद)में अधिक मात्रा में इनके प्रयोग से, विशेषकर २० ग्रेन पोटासियम् आयोडाइड देने से प्रायः लाभ होता है; क्योंकि हृदय की गति मंद हो जाती है, रक्तभार घट जाता है और उसके जमने की शक्ति बढ़ जाती। अतएव वेदना दूर हो जाती है, और यदि रोग अधिक प्रकोप को न प्राप्त हुआ हो, तो कभी-कभी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ होता है। परंतु चिकित्सा-काल में रोगी को उठने चलने फिरने आदि से सर्वथा वर्जित कर दें। आहार में भी पथ्य का बहुत ध्यान रखना चाहिए। हृच्छूल में भी विशेषतः उसकी विरामकालीन अवस्था में आयोडाइड्स के प्रयोग से लाभ होता है। धमनी-काठिन्य (Artery osclerosis) में भी यह एक अत्यंत लाभदायक औषधि है।

(४) लसीका ग्रंथियाँ (Lymphatic glands)—आयोडाइड्स के आंतरिक प्रयोग एवं साथ ही आयोडीन के बहिर प्रयोगसे पुरातन वर्द्धित लसीका ग्रंथियाँ, चाहे वे गण्डमाला विषयक (Scrofulous) हों अथवा किसी अन्य प्रकार की, विलीन होकर छोटी होजाती है।

(५) वृक्क—वृक्क के रोगों में आयोडाइड्सका मूत्रल प्रभाव होता है। अतएव इनको चिरकारी ब्राइट-व्याधि में प्रयोजित करने से इस्तिस्काऽलहमी (Anasarca)बहुत शीघ्र नष्ट होजाता है। इसीलिए कुछ समय से इस रोग में उक्त औषध का बहुल प्रयोग होता है। परन्तु एल्ब्युमेनोत्सर्ग होने पर इनका प्रवल प्रभाव होता है वृक्क के उन रोगों में, जिनमें उनकी रचना मोम वा वसामेंपरिणत होजाती है अर्थात(Larditious diseases) में, आयोडाइड ऑफ़ आयर्न अत्युपयोगी ख्याल की जाती है।

(६) मस्तिष्क—अनेक डॉक्टर मस्तिष्कीय जलोदर रोग में पोटासियम आयोडाइड के प्रयोग की अभ्यर्थना करते हैं। किंतु इससे केवल आरज़ी लाभ होता है। मस्तिष्कावरक प्रदाह (Meningitis) में एवं फिरंग जनित अन्य मस्तिष्क

रोगों में आयोडाइड और ब्रोमाइड को परस्पर मिश्रितकर प्रयुक्त करना (उदाहरणत: पोटासियम् आयोडाइड और पोटासियम् ब्रोमाइड वा सोडियम् आयोडाइड एवं सोडियम् ब्रोमाइड प्रभृति) श्रेष्ठतर चिकित्सा है। अर्थात् जितना लाभ इस औषध से होता है, उतना और किसी दवा से नहीं हीता। परंतु पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए आयोडाइड को बड़ी मात्राओं, उदाहरणतः एक वा आध ड्राम की मात्रा में देना चाहिए।

(७) कई एक फिरंग जनित त्वगीय रोग जैसे, चंबल (Psoriasis) और त्वक् प्रदाह (Erythema) किसी-किसी समय पूरी मात्रा में आयोडाइड्स के प्रयोग द्वारा अच्छे होजाते हैं।

कंठमाला (Scrofula)—ट्युबरक्युलोसिस (क्षय) से जब उक्त ग्रंथियाँ आक्रांत एवं विकृत होजाती हैं, तब उस दशा में आयोडाइड्स विशेषत: सिरुपस फ़ेराई आयोडाइडाई अकेले वा कॉड लिवर आइल के साथ अत्यंत लाभदायक होता है। किंतु फुफ्फुस य ट्युबर्क्ल्ज पर इनका बहुत कम प्रभाव होता है।

आतशक वा फिरंग—आतशक की प्रथम एवं द्वितीयावस्था में जिस प्रकार पारद विशेष उपकारी है, उसी प्रकार तृतीयावस्था के आतशक में आयोडाइड्स विशेष रूप से लाभकारी हैं। इनके प्रयोग से अस्थि स्थित शोथ, गुमड़े (Nodes and Gummata)एवं अन्य फिरंग जनित गवाद जो दिमाग़ एवं अन्य कोष्ठों में एकत्रित होजाते हैं, वे अति शीघ्र विलीन होजाते हैं। फिरंग जनित चक्षु रोग, जैसे फिरंगीय उपतारा प्रदाह (Syphilitic iritis) और (Syphilitic Retinitis) में भी यह अत्यंत उपकारक है। परन्तु उक्त अवस्था में इसे निर्णीत मात्रा से अधिक मात्रा (यथा २० से ४० ग्रेन तीन-चार बार दैनिक) में साहस पूर्वक देने पर ही सफलता निर्भर करती है। द्वितीयावस्था के फिरंग में भी कभी-कभी इन से बहुत लाभ होता है, जबकि इनको हाइड्रार्जिराई परक्लोराइडाई के साथ योजित कर दिया जाता है। आतशक के कारण जब स्त्री को बंध्यत्व दोष हो जाता है, तब इसके प्रयोग से प्राय: बिलकुल लाभ हो जाता है। आनुवंशिक फिरंग (Congenital Syphilis) रोग में भी आयोडाइड्स उपकारक होते हैं। किंतु जब संतति के शरीर से फिरंग का विष दूर हो जाता है तब फिर उसे इनकी क्षमता कम होती है।

प्रथमावस्था के फिरंग (Primary Syphilis) में आयोडाइड्स का कुछ प्रभाव नहीं होता।

खनिज विष—पारदजनित विषाक्तता (Mercurial Poisioning) और सीसक जन्य विषाक्तता(Lead Poisoning) में अर्थात् इन धातुओं के शरीर के भीतर वर्तमान होने की दशा में आयोडाइड्स विशेषत: पोटासियम् आयोडाइड के प्रयोग से वे शरीर से विसर्जित होजाती हैं। परन्तु ऐसे रोगियों को सदा आयोडाइड के साथ मैग्नेसियाई सल्फास मिलाकर देना चाहिए, जिसमें घुले हुए खनिज लवण उपयुक्त मार्ग से नि:सृत होते रहें। वरन् आंत्र द्वारा उनके पुन: अभिशोषित होजाने की आशंका होती है। इस प्रकार पारदोत्सर्गकाल में कभी मुँह भी आजाया करता है। चिरकारी रजत द्वारा विषाक्तता (अर्गाइरिया) में भी आयोडाइड्स से कभी-कभी लाभ होजाता है।

सन्धि के रोग—चिरकारी आमवात (Chronic Rheumatism)जो मुख्यत: आतशक के कारण हो, सूजाक जनित आमवात (Gonorrhoeal rheumatism),आमवातिक संधि-प्रदाह (Rhematic arthritis) और चिरकारी संधिशूल (Chronic gout) एवं अन्य संधिगत प्रादाहिक रोगों में आयोड्स का प्रयोग अत्यंत उपकारक होता है। आमवात के सदृश अन्य दर्द जो रात में बढ़ जाते हैं, चाहे वे फिरंग जनित हों अथवा न हों, आयोडाइड्स के प्रयोग से आराम होते हैं।

योग-निर्म्माण विषयक आदेश—(१)सोडियम् आयोडाइड गुण-धर्म में पोटासियम आयोडाइड के समान है, किंतु यह अधिक व्यवहार

में नहीं आती । अमोनियम् आयोडाइड और रूबीडियम् आयोडाइड अपेक्षाकृत कम निर्बलता जनक होते हैं। (२) ध्यान में रखो कि आयोडाइड्स को कम मात्रा में देने से प्राय: आयोडीन द्वारा विषाक्तता (Iodism) के लक्षण उपस्थित हो जाते हैं; परन्तु उनको अधिक परिमाण अर्थात् बड़ी मात्रा में प्रयोजित करने से यह बात नहीं होती। (३) इनको दूध में मिलाकर बड़ी मात्रा में देने से भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। (४) अमोनियम् कार्बोनेट वा पोटासियम् बाई कार्बोनेट नैलिका द्वारा विषाक्तता (Iodism) के लक्षणों के प्रतिपेधक हैं । (५) आयोडाइड्स, एल्कलाइडियल साल्ट्स के साथ संयोग विरुद्ध होते हैं और उनको लाइकर ष्ट्रिकूनीनी के साथ नहीं मिलाना चाहिए; क्योंकि ष्ट्रिकूनीन तलीभूत हो जाती है।

परीक्षित योग

(१) पोटासियाई आयोडाइडाई	१० ग्रेन
लाइकर हाइड्रार्जिराई पर क्लोराइडाई	३० बूँद
लाइकर सारसी कम्पाजिटस	३० बूँद
टिंकूचूरा सिंकोनी कम्पाजिटस	३० बूँद
एक्वा डिष्टिलेटा	१ आउंस पर्यंत

ऐसी एक-एक मात्रा दिन में दोबार दें। तृतीयावस्था के आतशक (Tertiary syphilis) में लाभकारी है।

(२) पोटाशियाई आयोडाइडाई	३ ड्राम
वाइनाई कॉल्चिसाई सेमिनम्	२ फ्लुइड आउंस
टिंकूचर ओपियाई कैम्फोरी	२ फ्लुइड आउंस
टिंकूचूरा ष्ट्रेमोनियाई	४ फ्लुइड ड्राम
टिंकूचूरा सेमीसीफ्युगी	३ फ्लुइड आउंस

इसमें से एक टीस्पूनफुल की मात्रा में दिन में ३ बार दें। चिरकारी आमवात में लाभदायक है।

(३) पोटासियाई आयोडाइडाई	५ ग्रेन
टिंकूचर सिंकोनी	१ड्राम
एक्वा डिष्टिलेटी	१ आउंस तक

ऐसी एक-एक मात्रा औषध दिन में तीन बार दें। पुराने फ़िरंग (Tertiary Syphilis) में गुणकारी है।

(४) पोटासियाई आयोडाइडाई	१० ग्रेन
लाइकर हाइड्रार्जिराई पर क्लोराइडाई	३०मिनिम
स्पिरिटस क्लोरोफॉर्मोई	१० मिनिम
इन्फ्युजम ऑरेंशियाई कंपॉज़िटम्	½ आउंस तक

ऐसी १–१ मात्रा औषध दिन में दो बार दें। तृतीयावस्था के फिरंग रोग में लाभकारी है।

(५) पोटासियाई आयोडाइडाई	३ ग्रेन
मैग्नेसियाई सल्फेटस	३० ग्रेन
पोटासियाई बाई कार्ब	१५ ग्रेन
स्पिरिटस अमोनिया एरोमैटिक	१५ मिनिम
इन्फ्युज़म आरेंशियाई	१ आउंस तक

ऐसी एक-एक मात्रा दिन में दो बार दें। सूजाक जन्य आमवात में लाभकारी है।

(६) पोटासियाई आयोडाइडाई	१ ड्राम
पोटासियाई बाइ कार्ब	१ ड्राम
सोडियाई सैलिसिलेट्स	१ ड्राम
वाइनाई काल्चिसाई	२ ड्राम
टिंकूचूरा कार्डिमोमाई कंपाज़िटा	४ ड्राम
एक्वा क्लोरोफार्मोई	६ आउंस तक

इसमें से आध-आध आउंस की मात्रा में दिन में २ वा तीन बार दें। गाउट और चिरकारी आमवात में लाभदायक है।

(७) पोटासियाई आयोडाइडाई	३ ग्रेन
पोटासियाई बाइ कार्ब	१० ग्रेन
टिंकूचूरा बेलाडोनी	८ मिनिम
सिरूपस ऑरेंशियाई	आधा ड्राम
इन्फ़्यूज़म जंशियाई कंपाज़िटा	१ आउंस तक

ऐसी १-१ मात्रा औषध दिनमें तीन बार दें। श्वास वा दमा में लाभकारी है।

(८) पोटासियाई आयोडाइडाई	५ ग्रेन
पोटासियाई साइट्रेटस	१० ग्रेन
स्पिरिटस अमोनिया एरोमेटिक	१५ मिनिम
इन्फ्यूज़म जेंशियाई को०	१ आउंस तक

ऐसी १-१ मात्रा औषध दिन में तीन बार दें। आमवातिक संधिप्रदाह में गुणकारी है।

(९) पोटासियाई आयोडाइडाई	२ ग्रेन
टिंकूचूरा सिंकोनी	१५ मिनिम
सिरूपस सारसी कंपाजिटस	आधा ड्राम
इन्फ्युजम कस्कारिल्ली	२ ड्राम तक

ऐसी १-१ मात्रा औषध दिन में तीन बार दें। बालकों के वर्द्धित लसीका ग्रंथियोंमेंलाभकारी है।

(१०) पोटासियाई आयोडाइडाई	५ ग्रेन
सोडियाई सल्फेटूस	१ ड्राम
स्पिरिटस अमोनिया एरोमेटिक	१५ मिनिम
स्पिरिटस क्लोरोफॉर्माई	१० मिनिम
इन्फ्यूजम जेंशियाई कंपोजिटा	१ आउंस तक

ऐसी १-१ मात्रा दिनमें तीन बार दें। चिरकारी सीसक जनित विषाक्तता (Lead poisoning) में उपकारक है।

(११) पोटासियाई आयोडाइडाई	१५ ग्रेन
पोटासियाई ब्रोमाइडाई	१५ ग्रेन
सिरूपस ऑरेंशियाई	१ ड्राम
एक्वा डिष्टिलेटा	१ आउंस पर्यंत

ऐसी १-१ मात्रा औषध थोड़े पानीमें मिलाकर खाली पेट दिन में तीन बार दें। यह मस्तिष्क-सौषुम्नावरक प्रदाह में उपकारक है।

(१२) पोटासियाई आयोडाइडाई	५ ग्रेन
पोटसियाई ब्रोमाइडाई	१० ग्रेन
अमोनियाई क्लोराइडाई	१० ग्रेन
सिरूपस ऑरेंशियाई	१ ड्राम
एक्वा केरियोफिलाई	१ आउंस पर्यंत

ऐसी १-१ मात्रा औषध दिन में तीन बार दें। कटिशूल में उपकारक है।

आयोडम्-ऑलिएटम्–[ले० Iodum oleatum] आयोडेक्स। स्टेनलेस आयोडीन। दे० "आयोडेक्स Iodex"।

आयोडम्-स्टेनलेस–[अं० Iodum stainless] दे० "आयोडेक्स (Iodex)"।

आयोडल्बीन–[अं० Iodelbin] नैलिका (Iodine) का एक अन्य ऐल्ब्युमीन वा प्रोटीड यौगिक। यह हलके लाल रंग का चूर्ण है; परन्तु उत्तर कथित दो वस्तुओं से भिन्न यह जल में विलेय होता है और आमाशय से अपरिवर्तित दशा में ही निकल जाता है तथा यकृत एवं क्लोम ग्रन्थ्यस्थ क्षारीय स्रावों द्वारा द्रवीभूत हो जाता है। इसमें २०% से ऊपर नैलिका होती है। इसे १० ग्रेन (५ रत्ती) की मात्रा में कीचटूस में डालकर देते हैं।

आयोडोप्रोटीन भी उसकी तरह का ही एक यौगिक है, जिसमें नैलिका (Iodine) १०% और आयोडो ग्लुटेन ८% होता है। इसको १० से १५ ग्रेन की मात्रा में बर्तते हैं।

आयोडोकेज़ीन(Iodocasein)-यह एक्सआफ्थैल्मिक गॉइटर की दवा है।

आयोडल्बेसिड–[अं० Iodalbacid] आयोडीन और ऐल्ब्युमीनका एक यौगिक। दे० "आयोडम्"।

आयोडाइज्ड-ऑइल–[Iodised-oil] (Oleum iodi)। शक्ति–२० में १ अथवा इच्छानुसार। यह त्वचा द्वारा तत्काल अभिशोषित हो जाता है और कोमल त्वचा पर क्षोभ वा कोई चिह्न उत्पन्न नहीं करता। यह कास, ग्रन्थि-वृद्धि तथा वितान वा आमवात आदि में उपयोगी है।

आयोडाइज्ड--फिनोल-[अं० Iodised phenol] }
फिनोल-आयोडेटम्-[ले० Phenol-iodatum] }
नैलिका (आयोडीन) और श्वेत-सार (स्टार्च) का एक मिश्रण। दे० "आयोडम्"।

आयोडाइड–[अं० Iodide] नैलेदिद। दे० "आयोडम्"।

आयोडाइड-आफ़ ईथिल–[अं० Iodide of Ethyl] दे० "ईथिल आयोडाइड"।

आयोडाइड-आफ़ कैलिसयम्-[अं० Iodide of calcium] कैल्शियम् आयाडाइड Calcium iodide। दे० "आयोडम्"।

आयोडाइड-आफ़ थाइमोल-[अं० Iodide of thymol] दे० "अरिष्टोल"।

आयोडाइड-आफ़ पोटाशियम्–[अं० Iodide of potassium] दे० "पोटेशियाई आयोडाइडम् (Potassii iodidum)"।

आयोडाइड-आफ पोटाशियम्-इन-पिल–[अं० Iodide of potassium in pill]पांशु-नैलिद-वटिका।

निर्माण-विधि—आयोडाइड आफ पोटाशियम में थोड़ा जल मिलाकर भली भाँति मर्दनकर इसका कल्क प्रस्तुत करें; तदनन्तर मुलेठी के चूर्ण

के साथ इसकी गुटिकाएँ (६ ग्रेन की) प्रस्तुत करें।

आयोडाइड-आफ़ फिनोल-[अं० Iodide of phenol] दे० "एसिडम् कार्बोलिकम्"।

आयोडाइज्ड फिनोल-[अं० Iodised phenol] दे० "एसिडम् कार्बोलिकम्"।

आयोडाइड-आफ़ बिज़्मथ-[अं० Iodide of bismuth] बिज़्मथ आक्सी-आयोडाइडम् (Bismuth oxyiodidum; Bismuth subiodidum.) पी० वी० एम०।

आयोडाइड-आफ़ बेरियम्-[अं० Iodide of barium] यह बड़ी ज़हरीली चीज़ है। फ्रांस-देश में इसे बढ़ी हुई लसीका ग्रन्थियों, प्रधानतः पुरातन दाहजनक स्फोटकों पर, लगाया जाता है। इसके लिए इसके साथ पेट्रोलेट सम्मिलित किया जा सकता है।

आयोडाइड-आफ़ मर्करी-[अं० Iodide of mercury] हाइड्रार्जिराई आयोडिक(Hydrargyri iodic; Iodide-hydrarg mercurio sodic iodide)। पी० वी० एम०।

आयोडाइड-आफ लीथियम्-[अं० Iodide of lithium] इसका सन्धिवात (Gout) में श्रेष्ठतम उपयोग होता है। यह बढ़ी हुई दशाओं में ही नहीं, प्रत्युत सन्धि-वातजन्यदाहक विस्फोटक एवं अजीर्ण में भी लाभदायक प्रमाणित होता है। औपदंशीय वेदनापूर्ण अवस्थाओं में भी इससे लाभ होता है।

मात्रा—३ से ५ ग्रेन।

आयोडाइड-आफ़-लेड-[अं० Iodide of lead] Plumbi iodide सीस-नैलिद। Lead iodide। दे० "सीसा"।

आयोडाइड-आफ़-लेड-आइण्टमेण्ट-[अं० Iodide of lead ointment] सीस-नैलिद-प्रलेप। (Unguentum plumbi iodide) Lead iodide ointment. दे० "सीसा"।

आयोडाइड-ऑफ़-सोडियम्-[अं० Iodide-of sodium] सोडियाई आयोडाइडम (Sodii Iodidum) दे० "आयोडम्"।

आयोडाइड-ऑफ-स्टार्च-[अं० Iodide-of-starch] दे० "आयोडाइज्ड-स्टार्च"।

आयोडाइलोफॉर्म-[Iodyloform] एक अविलेय चूर्ण जिसमें ५ प्रतिशत नैलिका होती है। यह नैलिका (Iodine) तथा जेलाटीन (सरेश) को परस्पर मर्दन करने ने प्रस्तुत होता है। उपस्थैन्द्रीय क्षतों की चिकित्सा में आयडोफार्म की प्रतिनिधि स्वरूप इसका उपयोग किया जाता है। यह एमाइल आयोडिसेटम् के समान प्रतीत होता है।

आयोडार्गोल-[अं० Iodargol] एक डाक्टरी दवा-जिसकी पूयमेह (सूज़ाक) में पिचकारी की जाती है। टेटेनस (धनुष्टङ्कार) में सीरम चिकित्सा के साथ इसका पेश्यन्तः अन्तःक्षेप करते हैं। आयोडिओल (Iodeol) इससे निर्बल होता है। आमवात और यक्ष्मा में इसका अन्तःक्षेप करते हैं।

आयोडाल्बीन-[अं० Iodalbin] दे० "आयोडल्बीन"।

आयोडिओल-[अं० Iodeol] आयोडार्गोल Iodargol.

आयोडिक्-एसिड-[अं० Iodic-acid] दे० "एसिडम् आयोडिकम् Acidum iodicum."

आयोडिक-हाइड्रार्ज-[अं० Iodic-Hydrarg] दे० "हाइड्रार्जिराइ आयोडिक"।

आयोडिज़्म-[अं० Iodism] नैलिका द्वारा विषाक्तता। आयोडीन जनित विषाक्तता। दे० "आयोडम्"।

आयोडिनोल-[अं० Iodinol]
आयोडिपीन-[अं० Iodipin] } पीत वर्ण का एक तलीय द्रव जो नैलिका (Iodine) को तिल्ली के तेल में द्रवीभूत कर प्रस्तुत किया जाता है। जाडिपीन (Jodipin) दे० "आयोडम्"।

आयोडिवल-[अं० Iodival] एक ठोस स्फटिकवत् पदार्थ, जिसमें ऐन्द्रिक योग युक्त ४७ प्रतिशत नैलिका Iodine होती है। यह इनआर्गैनिक् आयोडाइड्स की प्रतिनिध है। आमाशय से यह अपरिवर्तित दशा में ही निकल जाता है।

द्वादशाङ्गुलान्त्र में पहुँचकर इससे एक प्रकार का सोडासाल्ट बन जाता है जो धीरे-धीरे अभिशोषित होता और रक्त एवं वसामय तन्तुओं में वियोजित हो जाता है। मात्रा–५ से १० ग्रेन की मात्रा में टिकिया की शकल में उपयोग में आ सकता है। प्रयोग–श्वास, कास, टर्शियरी नर्वलीजन तथा आर्टिरियो-स्क्लेरोसिस आदि में इसका उपयोग होता है। जॉडिवल Jodival वा मानो-आयोडा-आइसो वैलेरिएनिल-युरिया (Mano-iod-isovalerianyl-urea)

आयोडिस–[यू० Iodis] नैलिका। आयोडम् (Iodum.)

आयोडिसीन–[अं० Iodicin] एक डॉक्टरी दवा (Iodo-ricin oleate.)। मात्रा–३ ग्रेन (कैप्शूल में)। दे० "कैल्सियम् साल्टस"।

आयोडीन–संज्ञा स्त्री० [अं० Iodine] नैलिका। नैल। नैलीन। दे० "आयोडम्"।

आयोडीन-ऑइण्टमेण्ट–[अं० Iodine-ointment] नैलिका प्रलेप। दे० "अङ्गुएण्टम् आयोडम्"।

आयोडीन-कलर्लेस–[अं० Iodine-colourless] वर्णहीन आयोडीन। दे० "आयोडम्"।

आयोडीन-कोल्लोडिऑन–[अं० Iodine-collodion) एक डॉक्टरी दवा जो ३० ग्रेन नैलिका Iodine को एक आउंस फ्लेक्सिबल कोलोडिऑन में घोलने से प्रस्तुत होती है। दे० "कोलॉइड"।

आयोडीन-टिङ्कचर-ऑफ़–[अं० Iodine-tincture-of] टिङ्कचर आयोडीन। दे० "आयोडम्"।

आयोडीन-ट्रिक्लोराइड–[अं० Iodine-trichloride] एक पीले रंग का चूर्ण। दे० "आयोडम्"।

आयोडीन-डीकलरेटा–[अं० Iodine-decolorata] वर्ण रहित टिङ्कचर आयोडीन। विधि–टिङ्कचर आयोडीन १ आउंस, सोल्युशन सोडियम थियोसल्फ ३५ ग्रेन, जल १ आउंस–इनको यथाविधि मिलाकर घोल प्रस्तुत करें। इसके उपरान्त इस घोल को टिङ्कचर आयोडीन में क्रमशः इतना मिलाएँ, जिसमें वह वर्ण रहित हो जावे। दे० "आयोडम्"।

आयोडीन-मोल्लीन–[अं० Iodine-mollin] कण्ठमाला (Scrofulous gland) तथा रुग्ण संधियों पर लगाने की श्रेष्टतर डॉक्टरी औषधि। दे० "मोल्लीन (Mollin)"।

आयोडीन-सोल्यूशन–[अं० Iodine-solution] नैलिका घोल। दे० "एसिटिलीन-डाइक्लोराइड"।

आयोडेक्स–[अं० Iodex] आयोडोसोल Iodosol, केल्फियोन kelphion, आयोडम् ऑलिएटम् Iodum oleatum तथा स्टेनलेस आयोडीन Stainless iodine प्रभृति ऐसी दवाएँ जो वर्ण रहित नैलिका द्वारा निर्मित होती हैं। यह शूकर वसा के स्थान में ऑलिक एसिड द्वारा निर्मित किया जाता है। यह किञ्चित् घर्षण मात्र से त्वचा द्वारा तत्क्षण अभिशोषित हो जाते हैं। इनमें से मार्टिण्डेल का स्टेनलेस-ऑइण्टमेण्ट (Ungt iodiin tinctum) अर्थात् चिन्ह शून्य प्रलेप अपेक्षा कृत श्रेष्टतर होता है।

आयोडेट ऑफ कैल्शियम्–[अं० Iodate-of calcium] कैल्शियम् आयोडेट (Calcium Iodate) दे० "आयोडम्"।

आयोडेण्टी-पाइरीन–[अं० Iodanti-pyrin] आयोडोपाइरीन (Iodopyrin) दे० "आयोडम्"।

आयोडेट्स–[अं० Iodates] दे० "एसिडम् आयोडिकम्"।

आयोडेलीनी–[अं० Iodelene] दे० "आयोडोल ऐल्यब्युमिनेट"।

आयोडोल–[अं० Iodol] एक डॉक्टरी औषध जिसमें लगभग ९० प्रतिशत आयोडीन (नैलिका) होती है। यह प्रायः गन्धरहित होता है और बहुत मन्द गति से अभिशोषित होता है। क्षतों, व्रणों एवं घावों पर अवचूर्णन (Dusting powder) रूप से ईथरवत् (१० में १), प्रलेप (८ में १) अथवा किंचित् स्पिरिट द्वारा प्रस्तुत कल्क रूप में काम आता है। उरःक्षत वा यक्ष्मा जन्य स्वरयंत्र प्रदाह तथा कण्ठप्रदाह में इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है। कोई-कोई नेत्र शल्यकार इसको कुकूणक (कुथुआ) वा रोहों (Granular lids) पर लगाने का सम-

र्थन करते हैं। पूयमेह (सूज़ाक) में इमलशन की शकल में इसकी सफलता पूर्ण पिचकारी की जा चुकी है।

मैजोनीज़ सूत्र-[अं० Mazzoni's formula]आयोडोल १ ड्राम,एलकोहल २ आउंस, ग्लीसरीन ४ आउंस। मेन्थोल आयोडोल-(१ प्रतिशत मेन्थोल) इसको नाक,गला तथा स्वरयंत्र सम्बन्धी रागों में उपयोग करते हैं। यह अमूल्य अक्षोभक पचननिवारक तथा अङ्गमर्दप्रशामक है। इसलिये इसे दाँतों के खोखले में भरते हैं। हि० मे० मे०।

आयोडोल-ऐल्ब्युमिनेट-[अं० Iodol albuminate] आयोडेलेनी (Iodelene)।

आयोथियोन-[अं० Iothion] जोथियोन (Jothion, डाइ-आयोडो-हाइड्रॉक्सि प्रोपेन (Diiodo-hydroxy propane)। शर्बत के समान भारी और पीतवर्ण का एक तरल जिसमें लगभग ८० प्रतिशत के आयोडीन (नैलिका) होती है। आयोडीन ऑइण्टमेण्ट (नैलिकानुलेपन) रूप से इसका वाह्य उपयोग होता है। २५ से ५० प्रतिशत लेनोलीन-अनुलेपन को दिन में एकबार त्वचा पर मर्दन करने से ट्युबक्युलस ऑस्टीटीज़, ऐज़्मा (श्वास), आर्टीरियो-स्क्लेरोसिस और टर्शिअरी सिफिलिस (तृतीय कक्षा के उपदंश) इत्यादि रोगों में उत्तम परिणाम उपस्थित हुए। यह औषध शीघ्र अभिशोषित होकर कुछ ही मिनटों में लाला तथा मूत्र में प्रगट होने लगती है।

आयोहाइड्रीन (Iohydrin) इससे मिलता जुलता एक पदार्थ है जिसका दूसरा नाम डाई-आयोडो-आइसो-प्रोफिल ऐल्कुहाल (Diiodo-iso-propyl-alcohol) है। इसका उपयोग पूर्वोक्त विधि द्वारा ही होता है। इसे अनुलेपन रूप से ही व्यवहार में लाते हैं। लिपोजाडीन या लिपाइडीन (Lipoidin) को, जिसे डाइ-आयोडो-ब्रैसिडिनिक-एसिड ईथिल ईस्टर(Di-iodo-brassidinic-acid ethyl ester) भी कहते हैं, सफ़ेद रंगकी अविलेय सूचियाँ होती हैं। इसको १० से १५ ग्रेन की मात्रा में बर्तते हैं। यह धीरे-धीरे अभिशोषित होता है और अपने साथ मिलनेवाले वसामय तथा वाततन्तु को नष्ट भ्रष्ट करनेवाला माना जाता है।

आयोनाइडियम-स्युफ्रुटिकोसम्-[Ionidium-Suffruticosum] रतन-पुरुष-मरा०। ओरिल तामरय-ता०। पुरुष रत्नम्-ते०। नुनबाड़ा-बं०। चार्टी, पद्म-चारिणी-सं०। फा० इं० १ भ०।

आयोनिक-मेडिकेशन-[अं० Ionic-medication] कैटाफोरेसिस Cataphoresis वा एलेक्ट्रिक ऑस्मोसिस Electric osmosis।

आयोहाइड्रीन-[अं० Iohydrin] डाइ-आयोडो-आइसो-प्रोफिल-ऐलकोहल (Di-iodo-isoprophyl-alcohol) दे० "आयोथियोन"।

आरआर-[अ०] सरो।

आर, आरक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हरताल। हड़ताल। (२) एक खटमीठे फल का वृक्ष जिसे रेफल कहते हैं और जो गौड़ देश में प्रसिद्ध है। र० मा०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मुण्ड-लौह। जैसे—"आरं कांस्यम् मृतं ताम्रं"। रा० नि० व० १३ मेघ नाद रस। (२) पीतल। पित्तल। भा०। (३) वह लोहा जो खान से निकाला गया हो, पर साफ़ न किया गया हो। एक प्रकार का निकृष्ट लोहा। (६) किनारा। प्रांतभाग। (७) कोना। कोण। (८) पहिए का आरा। सक्थि।

संज्ञा स्त्री० [सं० अल=डंक] (१)लोहे की पतली कील जो साँटे वा पैने में लगी रहती है। अनी। पैनी। काँटा। बैना। (A goad)। (२) नर मुर्गे के पंजे के ऊपर का काँटा जिसमें लड़ते समय वे एक दूसरे को घायल करते हैं। (३) बिच्छू, भिड़ वा मधुमक्खी आदि का डंक। (४) एक प्रकार की गँठी।

संज्ञा स्त्री० [सं० आरा] चमड़ा छेदने का सूआ वा टेकुआ। सुतारी।

आरकुट्ट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीतल। दे० "आरकूट"।

आरकूट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] ताँबा और जस्ता की उपधातु। पित्तल। पीतल। पितरी। पितल–बं०। रा० नि० व० १३।

आरक्त–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) लाल चंदन। रक्त चन्दन। (२) लाल सा रंग। ईषद् रक्त वर्ण। सुर्ख़ी मायल।

वि० [सं० त्रि०] (१) ईषद् रक्त। लाल सा। ललाई लिए हुए। खूब रँगा हुआ। सम्यक् अनुरक्त। कुछ लाल। (२)ख़ूब लाल। सम्यक् रक्त। अहमर।

आरक्त-पुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दुपहरिया का पेड़। बन्धूक। बन्धु-जीवक वृक्ष। बान्धुली–बं०।

आरग्वध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अमलतास का वृक्ष। अमिलतास का पेड़। (Cassia fistula) सि० यो० पित्त० ज्व रात्रादौ श्री कण्ठ। (२) अमिलतास का पत्ता। आरग्वध-पत्र। च० सू० ३ अ० १ म० पल। (३) सुवर्णालुफल। अमिलतास। "द्राक्षारग्वधयोश्चापि"। च० द० पित्त ज्व० चि०। "आरग्वध-ग्रन्थिक-मुस्त-तिक्ताः"। च० द० वातश्लेष्म ज्व० आरग्वधादि। "आरग्वध चिरमालकः"। ड०। सु० सू० ३८ अ०। वि० दे० "अमलतास"।

आरग्वध-पञ्चक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का कषाय जिस में अमलतास, तिक्तक, वा रोहिणी (कुटकी), हड़, पीपलामूल और मोथा ये पाँच दवाएँ पड़ती हैं और जो वात-कफ-ज्वर में उपयोगी है। हा०। अत्रि० २ स्थान २ अ०।

आरग्वधमु–[ते०] आरग्वध। अमलतास।

आरग्वधादि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वैद्यक में अमलतास इत्यादि औषधियों का एक वर्ग जिसमें अमलतास, इन्द्रजौ, पाटला पुष्प (पाढल का फूल), काकतिक्ता (करञ्ज), नीम, गिलोय, मूर्वा, स्रुवा वृक्ष (कोकुआ), पाठा, चिरायता, पीयाबाँसा, परवल, दोनों करञ्ज (पूति करञ्ज और चिरविल्व), छातिम, चीता, सुषवी (काला जीरा) करेला, पानीयवल्ली (मेढ़ासिंगी), मैनफल, रामसर, और घोण्टा (सुपारी) इत्यादि ओषधियाँ सम्मिलित हैं। यह आरग्वधादि गण वमन, कोढ़, विषम ज्वर, कफ; खुजली, प्रमेह एवं दुष्टव्रण को दूर करता और विशेषतः बलासघ्न होता है। वा० सू० १५ अ०। सु० सू० ३८ अ०।

(२) अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हड़ इनका काढ़ा आम और शूल युक्त कफ-वात-ज्वरनाशक एवं दीपनपाचन है। च० द० ज्वर चि०।

आरग्वधादि कषाय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]रसायनसारोक्त एक कषाय जिसे ग्रंथकर्त्ता ने अपना सैकड़ों बार का परीक्षित और ज्वर दूर हो जाने के उपरांत विष्टंभ (कब्ज़ियत) रहने पर प्रयोग करने को लिखा है। उनका कहना है कि इससे एक दो दस्त खुलकर हो जाते हैं। उदर का दोष निःशेष निःसृत हो जाता है और भूख खूब लगती है।

योग और सेवन विधि—अमलतास का गूदा २ तो०, कुटकी २ तो०, निशोथ २ तो०, बीज रहित मुनक्का ५ दाना, सनाय की पत्ती २ तो०, बड़ी हड़ की छाल २ तो०, सूखे गुलाब के फूल २ तो०, सब ओषधियों का आधा गुलकन्द-इन आठों में से अमलतास का गूदा, दाख और गुलकंद इन तीन चीज़ों को छोड़कर बाकी पाँच चीज़ों को कूटकर चूर्ण कर लें। पीछे इन चीज़ों को भी मिलाकर कल्क कर लें। इस कल्क में से ढाई तोले के अंदाज पावभर पानी में डालकर अधौट क्वाथ कर पीवें।

(२) अमलतास की गूदी, मोथा, मुलहठी, खस, हड़, हल्दी, दारुहल्दी, पटोलपत्र, नीमकी छाल, गिलोय और कुटकी–इनका सिद्ध किया हुआ काढ़ा वातपित्तज्वर के लिए हितकारी है। वृ० नि० र० ज्वर चि०।

(३) एक प्रकार का काढ़ा जिसमें अमिलतास, पिपरामूल, मोथा, कुटकी और हड़ यह पाँच दवाएँ पड़ती हैं। इसे आरग्वधादि, पाचन कहते हैं। यह साम, सशूल, वात-कफ ज्वर में उपयोगी है। च० द० व० चि०।

(४) अमलतास, हल्दी, पाठा, करञ्ज, तेजपात, क्षुद्र श्वेता (लालचिचिंटा), महा श्वेता(बाँझ खेखसा) और वृश्चिकाली।

गुण—व्रण, कुष्ठ, विष, श्वास, कृमि, मेद और कफनाशक है। वंग से०सं० गणपाठाधिकार।

आरग्वधादि-काथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का काढ़ा। दे० "आरग्वधादि"।

आरग्वधादि गूदिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमलतास का गूदा। दे० "अमलतास"।

आरग्वधादि नस्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमलतास की जड़ को चावलों के पानी में पीसकर नास लेने और लेप करने से गंडमाला का नाश होता है। वृ० नि० र० गंडमाला चि०।

आरग्वधादि वर्त्ती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमलतास, बेर, हलदी इनका चूर्ण करके उसमें शहद और घी मिलाकर उसमें सूत की बत्ती भिगोकर नासूर में रखने से व्रण का शोधन होता है।

आरग्वधाद्य-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार का तेल जो चक्रदत्त के योनिव्यापदधिकार में वर्णित है। योग इस प्रकार है—सरसों का तेल ४ श०, गदहे का मूत्र ४ श०, अमिलतास की जड़ की छाल ४ शराव, १ पल शङ्ख चूर्ण, २ पल हड़ताल, इनको यथाविधि पकाकर तैल तैयार करें। च० द० योनि व्या० वि०। (२) एक औषधीय तैल जो चक्रदत्त की कुष्ट-चिकित्सा में वर्णित है। योग इस प्रकार है—अमिलतास की छाल, बरगद की छाल, कुट, हड़ताल, मैनसिल, हलदी और दारु हलदी के मिलित पादिक-कल्क से ४ सेर तेल पकाने पर यह तैयार होता है। च० द० कुष्ठ चि०। भै०।

आरचक्र–[बं०] तिवर–बम्ब०।

आरज़ा–संज्ञा पुं० [अ० आरिज़ा] रोग। बीमारी।

आरटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गेंदा। (२) भारंगी। भार्गी।

आरट्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोट। घोड़ा। अश्व।

आरट्टज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आरट्ट देशीय अश्व। टट्टू। जटा०।

आरडी–[नैपा०] कचयटा। कचैटा।

आरणा-छारणा–[जय०] वनपला। अरना उपला। जंगली कंडा। अमृ० सा०।

आरणाल, आरणालक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की काँजी जो तुष (छिलका) रहित कच्चे गेहूँ को भिगोकर तैयार की जाती है। पके गेहूँ को संधानितकर तैयार की हुई काँजी। काञ्जिक। आमानी काँजि–बं०। यह गुणमें सौवीर के समान होती है। भा० पू० सन्धानव:।

आरणि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल का घूर्णन। आवर्त्त। पानी का चक्कर। भँवर। गिर्दाब।

आरणेय–वि० [सं० त्रि०] अरणि संबंधी।

आरण्य, आरण्यक–वि० [सं० त्रि०] (१) जंगली। बनैला। वनजात। सहराई। (२) जंगल का। बन का।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वनजात पशु। दे० "आरण्यपशु"। (२) एक प्रकारका अकृष्ट-पच्य धान्य। जंगली धान। इसका पर्याय तृण-धान्य वा नीवार है।

आरण्यक–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आरण्यकी] दे० "आरण्य"।

आरण्य-कार्पास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भारद्वाजी। उलट कम्बल। (Abroma augusta) Devils cotton. (बनौषधि दर्पण)।

आरण्यकुक्कुट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आरण्य-कुक्कुटी] वन कुक्कुट। जंगली मुर्ग़ा। इसका मांस स्निग्ध, वृंहण (पुष्टिकर), श्लेष्मवर्धक, गुरु और वात, पित्त, क्षय, वमन एवं विषम ज्वर को मिटानेवाला है। भा०।

आरण्य-गोमय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वन्य गोमय। जंगली गोबर। बिनवाँ कंडा। जंगली कंडा। च० चि० १ अ०।

आरण्यज द्राक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जंगली दाख। स्टेफीसेग्रीई सेमिना (Staphisagriae semina.)

आरण्य-पशु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बनैला पशु। जंगली जानवर। वनजात पशु। पैठीनसी ने वनज पशु सात प्रकार के कहे हैं–(१) रीछ, (२) भैंस, (३) बंदर, (४) सर्पादि (सरीसृप), (५) काला हिरन (रुरु), (६) चीतल हिरन (पृषत्) और (७) मृग।

आरण्य-मक्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] डाँस। दंशक। बन मक्खी। डँस। डाँस माछि–बं०। रत्ना०।

आरण्यमुद्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वनमुद्ग। जंगली मूँग। मुद्गपर्णी।

आरण्य-मुद्गा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बन मूँग। मुद्गपर्णी। मुगानी-बं०। रा० नि० व० ३।

आरण्य-विम्बिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जंगली कुंदरु। तुण्डिका। बनो तेला कुचा-बं०। रा० नि० व० २३।

आरण्योपल-भस्म-संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली] बनैले कंडे की भस्म। वन्य करीष भस्म। वन्योपल भस्म। वै० निघ० २ भ० ज्व० भस्मेश्वररस।

आरति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] [वि० आरत] स्वस्थ चित्तत्व। शांति। शांतचित्तता।

आरतूम-[?] पुष्प। फूल।

आरद-[गु०] उड़द।

आरन-संज्ञा पुं० [सं० अरण्य] अरण्य। वन। कानन। जंगल।

[यू०] लोफ़-कबीर।

आरनज-[फ़ा०] अरनज। मिर्फ़क़-अ०। कुहनी।

आरन-सारन-[यू०] लोफ़-सग़ीर।

आरनाल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली० आरणाल] (१) चावलों का धोवन। (२) कच्चे गेहूँ का खींचा हुआ अर्क। (३) काँजी।

आरनालक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काँजी। काँजिक।

"आरनालक सौवीर कुल्माषाभियुतानि् च। अवन्ति
सोमधन्याम्ल कुञ्जलानि च काञ्जिक॥"
अम०।

"आरनालन्तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः।
पक्वैर्वा सन्धितैस्तु सौवीर सदृशं गुणैः॥"
भा० प्र०।

"आरनाल दधिक्षीरं कन्दुपक्वं च सक्तवः।
स्नेह पक्वञ्च तक्रञ्च शूद्रस्यापि न दुष्यति॥" अत्रि०।

आरनाल तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आरनाल १ आढक, सर्जरस (राल) ४ पल, इनसे १ प्रस्थ तैल सिद्ध करें। गुण-यह तैल ज्वर एवं दाह का नाश करता है। वृ० नि० र० वा० र०।

ऑरम-[ले० Aurum] सुवर्ण। स्वर्ण। सोना। [सं० क्ली०] (१) लोहा। (२) रीतिका। पीतल।

ऑरम-क्लोराइडम्-[ले० Aurum-chloridum] स्वर्ण हरिद। (Chloride of gold) दे० "सोना"।

ऑरम-ट्रिफ़ाइलम्-[ले० Aurum-triphyllum] सलजम-हिन्दी। एरिसीमा-ट्रिफ़ाइलम-ले०।

आरमाछ-[बं०] अरि-मत्स्य। (Arius arius, *Ham.&Buch.*)।

आरम्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दर्प। खुद-बीनी। (२) वध। (३) उद्यम। मे०।

आरर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शब्द। ध्वनि। आवाज़।

आर(रा)व-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सम्यक् शब्द। आवाज़। शोर। (२) अरब देश का निवासी।

आर-वी-दक्षिण-ग्राहक कोष्ठ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हृदय को शरीर से रुधिर लाने का कोठा। R- V. Right auricle.

आरस-[फ़ा०] चिनार। दलब। सपेदार। Plantanus orientalis.

आरस्ता-[फ़ा०] खुरासानी अजवायन।

आरस्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) फीकापन। विस्वादु। निस्वाद। अरसत्व। (२) रसभिन्नत्व। लज्जतका फ़र्क़।

आरक्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी के मस्तकस्थ कुम्भ का नीचे का भाग। गजकुम्भ-अधोभाग। हला०। हे० च०। (२) गजकुम्भ-सन्धि भाग। त्रिका०। (३) हाथी के मस्तक का चमड़ा।

आरा-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) चर्म भेदक अस्त्र। चमड़ा छेदनेकी सुतारी। सूआ। (Awl)

नोट—यह व्यधन अर्थात् फ़सद खोलने के काम में आता।

(२) आरामुखी नाम की एक जल पक्षी विशेष। अम०। (३) काष्ठ-भेदक। करौंत। क्रकच। (४) एक प्रकारका जलचारी जन्तु। च० सू० २७ अ०। (५) पहिये का फेरा। आर।

आरांकश-संज्ञा पुं० [हिं० आरा+फ़ा० कश] लकड़ी चीरने वाला। आरा चलाने वाला आदमी। क्राकचिक।

आराक्ज़िलम-इण्डिकम्-[ले० Oroxylum Indicum, *Vent.*] अरलू। सोनापाठा।

श्योनाक । मुलीन-पं० । फा० इं० ३ भ० । इं० डू० इं० ।

आराक्ज़िलीन-[अं० Oroxylin] अरलू का सत । श्योनाक सार । फा० इं० ३ भ० ।

आराग्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सुतारी की नोक । चर्मभेदिका का आगे का भाग । (२) खुरपे वा छुरी आदि अर्द्धचंद्राकार अस्त्रों का मुख (धार) । जैसे—

"आराग्रन्तुमुखं तेषाम । पुष्प पत्रादि भेदतः ॥
अर्द्धचन्द्रक्षुरप्रादिधाराग्रं मुखमुच्यते ॥"
हला० ।

आराधन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वायु । पवन । हवा । मे० नचतुष्क ।

आराबिशर-कफ्फेबौम-[जर० Arabischer kaffebaum] काफ़ी । ग्लेवफल । कहवा ।

आराबिशर-जस्मिन-[जर० Arabischer Jasmin] बेला । (Jasminum-sambac) इं० मे० मे० ।

आराम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपवन । कृत्रिम वन । बाग़ । फुलवारी । "नगरान्नातिदूरेण यः सद्भिरुपरोपितः।तरुषण्डः सआरामस्तथोपवनमुच्यते ॥" हला० । "आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेवयत् ।" अम० ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चंगापन । सेहत । स्वास्थ्य । पीड़ा की शांति । उपशम । (२) विश्राम । थकावट मिटाना । दम लेना । (३) चैन । सुख ।

आराम-घोलि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का पत्र-शाक जो पच्छिमी देशों में प्रसिद्ध है । लोनियाँ ।

गुण—आरामघोलिका खट्टी, रूखी, रुचिकारी तथा वातनाशक, पित्तकारक और श्लेष्माजनक है । छोटी आरामघोलिका जीर्ण-ज्वरनाशक है । रा० नि० व० ७ ।

आरामघोलिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "आराम घोलि" ।

आराम-दान-संज्ञा पुं० [फ़ा० आराम+हिं० दान] पानदान । पान का डब्बा । ताम्बूलपिटक ।

आराम-वल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की मल्लिका वा चमेली । रा० नि०व०२३ । दे० "आरामवेलिका" ।

आरामवेलिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूलपोती । क्षुद्रवल्ली । पोतिका । क्षुद्रपोतिका क्षुप । उपोदक नाम्नी । वल्लि । शाक । ट्टपोतिका ।

गुण—त्रिदोषनाशक, वृष्य, बलकारी, लघु, बलकारक, पुष्टिकारक, रुचिकारी और जठराग्निदीपक है ।

आरामशाली-[मला०] दे० "आरामशीतला" ।

आराम-शीतला, आराम शीतली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का शाक जिसकी पत्तियाँ सुगंधित होती हैं और महाराष्ट्र देश में आरामशाली नाम से प्रसिद्ध है । बर्वर्यादिगण में इसका पाठ है । पच्छिमी देशों में इसे आरामशीतला भी कहते हैं । पर्याय—रामशीतला । शीतलानन्दा । सुनन्दनी । रामा । महानंदा । गन्धाढ्या और आरामशीतला ।

गुण—कड़ुई, ठंढी, पित्तनाशक, दाहशामक, शोषहारक, व्रण और विस्फोटक को नष्ट करनेवाली है । रा० नि० व० १० । शीतल, कटु, पित्त, कफ तथा अर्श को नष्ट करनेवाली है । म० द० व० १ । यह कड़ुई, ठंडी और पित्तनाशक है । वैद्य० ।

आराम-सीतल-संज्ञा पुं० [सं० आरामशीतला] गुर्च का एक भेद ।

गुण—तीक्ष्ण, कटु, शीतल, पित्तनाशक, कफ, रक्त तथा प्रमेह रोग को नष्ट करता है । ता० श० ।

आरामुख-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का अस्त्र जो फ़सद् खोलने (व्यधन) के काम आता है । व्यधनार्थ शस्त्र विशेष । सु० सू० ८ अ० ।

आरार-[अ०] सरो । (Cypress evergreen.)

आरा(अर-)रुट किभङ्गु-[ता०]
आरारुट के गड्डे-[द०]
आरा(अर-)रुट गड्डलु-[ते०]
आरारुटेर-मूल-[बं०]
आ(अ)रारोट-संज्ञा पुं० [अं०]
तीखुर । तवाखीर । Indian arrow-root (Curcuma angustifolia, *Roxb.*) दे० "तीखुर" ।

आरारूट विलायती-संज्ञा पुं० [अं० ऐरारूट+अ० विलायती] दे० "अरारूट"।

आरालिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आरालिका] पाचक । रसोईदार । बावरची । नानबाई । अम०।

आराशस्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आरा नामक एक शस्त्र जो अर्धाङ्गुल गोल मुखवाला होता तथा उस गोलाकार के ऊपर का भाग अर्धांगुल युक्त चतुष्कोण होता है। पक्व और अपक्व का संदेह हो ऐसे स्थान में इस आरा शस्त्र द्वारा ही सूजन का वेध किया जाता है । अत्यन्त मांस युक्त कर्णपाली वेधन में यह काम आता है। वा० सू० २६ अ० ।

आराह-[अ०] मस्तगी ।

आरि,-आरी-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का काँटेदार वृक्ष। (२) खदिरसार। खैर । कत्था । आरि । संदानिका । उद्दालक और खदिर पत्रिका-सं० ।

गुण—कटु, तिक्त, कफ-वातनाशक तथा उष्ण है, व्रण तथा गले की बीमारी को दूर करनेवाली रुचिकारी एवं संदीपन है । रा० नि० व०८ । दे० "आरी" ।

आरी कषैली, चरपरी, तिक्त, रुधिरकी बीमारी, पित्त और त्रिदोष को नष्ट करती है। रस और पाक में खट्टी और गरम है। यह बादी की खाँसी को दूर करती है । दे० "आर" ।

आरिक्-संज्ञा पुं० [अ०] ऋतुमती स्त्री । (Menstrual women.)

आरिगन एक्वेटिक-[अं० Origan aquatic] Hemp agrimany (Eupatorium cannabinum.) यह एक पानी का पौधा है ।

ऑरिगेनम्-नॉर्मली-[ले० Origanum narmali] मिर्जञ्जोश-पं० ।

ऑँरिगेनम्-मार्जोरेना-[ले० Origanum marjorana, *Linn.*] मरुआ । मरुवक । मर्जंजोश। (Sweet marjoram leaves.)

ऑँरिगेनम्-वल्गेरिस-[ले० Origanum vulgaris, *Linn.*) सातर। पुदीना कोही। साथर।

ऑरिगेनम्-हर्एक्लिओटिकम्-[ले० Origanum heracleoticum] एक पौधा जो खाने के काम आता है । मे० मो० ।

आरिज़-[अ० आरिज़] (१) कपोल । गाल। (२) ग्रीवा वा ग्रीवापार्श्वद्वय । गरदन के दोनों ओर। (३) मुखकोण-द्वय (बांछें) । मुखके दोनों कोने । (४) अग्र-दन्त । (५) अग्र-पश्चाद्दन्त। (६) लाहक अर्थात् वह कैफ़ियत जो किसी दशा के आधीन हो । रोधक ।

आरिज़ा-संज्ञा पुं० [अ० आरिज़ः। (१) रोग। व्याधि । बीमारी । आकुल्व । दुःख । घटना। (२) सर्प जो डँसते ही मार डाले । कालसर्प।

आरिज़ः, आज़िहः, स.अ.बान, अफ़ई और अफ़उवान का भेद—

जो सर्प काटते ही मृत्युकारक हो उसे आरिज़ः और आज़िहः (कालसर्प) नाम से अभिहित करते हैं। अधिक लम्बे वा पुरुष सर्प को स.अ.बान और जिस सर्प के डँसने पर अगद अथवा मन्त्र निष्फल सिद्ध हों, उसे अफ़ई कहते हैं। अफ़उवान नर अफ़ई है ।

ऑरिज़ेबा-जैलप-[अं० Orizaba-jalap] आइपोमिया ऑँरिज़ेबेन्सिस । दे० "सक़मूनिया"।

ऑरिज़ेबा-जैलप-रूट-[अं० Orizaba jalap-root] सक़मूनिया की जड़ । (Mexicana Scammony root)

आरित-मञ्जरी-संज्ञा स्त्री० [ ] हरित मञ्जरी। कुण्डली । श्वेत वसन्त ।

आरि (री) या-संज्ञा स्त्री० [सं० आरू=ककड़ी] एक फल जो ककड़ी के समान होता है। यह भादों-क्वार के महीने में होती है और बहुत ठंडी होती है । यह एक बित्ता लम्बी और अँगूठे के बराबर मोटी होती है । खीरा ।

आरियूत-[?] अमलतास । आरग्वध ।

आरिय्यः-[अ०] [बहु० उवारी] दन्तकोटर । दन्त गुहा । दाँत का खोखला । सिन्खुस्सिन्न-अ० । (Alvevolus Phantnoma)

ऑरिसकेम्फर-[अं० Orris camphor] एक प्रकार का वन पदार्थ जो पुष्करमूल के जल के

साथ खींचने से प्राप्त होता है। फा० इं० ३ भ०।

ऑरिसरूट–[Orris-root] पुष्कर-मूल । पद्म-पुष्कर । ईरसा । (Iris florentina)

आरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० आरा का अल्प० वा स्त्री०] (१) लकड़ी चीरने का एक औज़ार। छोटा आरा । क्षुद्र-क्रकच । करौंती । (२) आहवी । उरि। उरु । (३) आपटा । (४) जूता सीने का सूजा । सुतारी ।

[पं०] गैस । थिलकइन ।

[मल०] चावल ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जालबबुरक या स्थूल-कंटक भी कहते हैं। (२) दुर्गंधखैर। बबुरी । (३) बल्लीखैर ।

आरी-एट-पोटेशियाइ-ब्रोमाइडम्–[ले० Auri-et-potassi-bromidum] सुवर्ण पांशु ब्रह्मणम् । दे० "सोना" ।

आरी-एट-सोडियाई-क्लोराइडम्–[ले० Auri-et-sodii chloridum] सुवर्ण-सर्जिहरिद् । (अमरीका) इसमें एनूहाइड्राइड-गोल्ड-क्लोराइड और ऐन्हाइड्रस-सोडियम-क्लोराइड दोनों बराबर बराबर होते हैं। इसमें ३० प्रतिशत सुवर्ण होता है।

मात्रा—$\frac{१}{२०}$ ग्रेन । दे० "सोना" ।

आरी-क्लोराइडम्–[ले० Auri-chloridum] स्वर्ण-हरिद । क्लोराइड आफ गोल्ड (Chloride of gold.) दे० "सोना" ।

आरीद-बरीद–[फ़ा०] (१) एक दवा जो सीस्तान देश से आती है और प्याज की तरह चिरी हुई होती है। (२) अन्ताक़ी के अनुसार सफ़ेद सौसन की जड़ का नाम है जिसको सौसन आज़ाद भी कहते हैं। प्रकृति—अत्यन्त गर्म। मात्रा-१ दिरम ।

गुण—निर्मलकारी । इसका प्रलेप अर्श के रक्त का अवरोधक है । इसका शर्बत आर्तव प्रवर्तक है ।

आरी-ब्रोमाइडम्–[ले० Auri-bromidum] कलौंछ लिए मटमैले रंग का एक चूर्ण जो जल में घुल जाता है । स्वर्ण ब्रह्मणिकम् । दे० "सोना" ।

आरु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शूकर । सूअर । (२) कर्कट । केकड़ा । सर्तान । (३) एक प्रकार का वृक्ष जो बंगाल, उत्तर-पूर्वाञ्चलस्थ पर्वत जयन्तीगिरि, कोयम्बटूर, कनाड़े, सुंदे, सिंहल, पेगू और टेनासरम आदि स्थानों में होता है । बम्बई का आरू बहुत अच्छा होता है। किंतु सिलहट, कछाड़ और चटगाँव की लकड़ी सबसे बढ़िया और कीमती निकलती है। आरूल का पेड़ । (Lagerstroemia flos=reginae, *Retz.*) मे० रद्दिक । (४) कोंहड़ा । कुष्माण्डलता । (५) कद्दू । अलाबु ।

[मल०] विलायती सरो–मरा० । चौक-ता० । (Casuarina Equisetifolia, *Forst.*) फा० इं० ३ भ० ।

आरुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक जड़ी जो हिमालय पर होती है । पत्ते और फल के विचार से इसकी चार जातियाँ होती हैं। पर गुण में सब समान होती हैं । आड़ । आड़ू ।

पर्याय—वीरसेन । वीर । वीरानक । (ध० नि०) वीरारुक ।

गुण—सभी प्रकार के आरुक हृद्य होते हैं और प्रमेह तथा बवासीर का नाश करते हैं। (धन्व०) यह। वात तथा प्रमेह, अर्श और कफका नाश करता है । मद० व० ६ । यह मधुर तथा शीतलहै । अर्श, प्रमेह और गुल्म तथा रक्त दोष को नष्ट करता है । रा० नि० व० ११ । वि० दे० "आड़" । (२) प्रवर । अगरु ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आलूबुखारा । गुण—ग्राही, कषैला, हृद्य, ठंडा, भारी, मलावरोधक, भेदक, गरम, कफ नाशक, पित्त नाशक, पाचक, खट्टा, मीठा, खाने में प्रिय, मुख को साफ करने वाला, प्रमेह, गुल्म तथा अर्श नाशक और रक्त वा वातरोगनाशक है । पकने पर यह मीठा और भारी होता है तथा कफ, पित्त कारक, गरम, रुचिकारक और धातुवर्द्धक है। वै० निघ० । दे० "आलू-बुखारा" ।

आरु-कणु-पुल-क्रानुग–[ते०] ऊख । ईख । गन्ना । इक्षु ।

आरारूट विलायती–संज्ञा पुं० [अं० ऐरारूट+अ० विलावती] दे० "अरारूट" ।

आरालिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आरालिका] पाचक । रसोईदार । बावरची । नानबाई । अम०।

आराशस्त्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आरा नामक एक शस्त्र जो अर्धाङ्गुल गोल मुखवाला होता तथा उस गोलाकार के ऊपर का भाग अर्धांगुल युक्त चतुष्कोण होता है। पक्व और अपक्व का संदेह हो ऐसे स्थान में इस आरा शस्त्र द्वारा ही सूजन का वेध किया जाता है । अत्यन्त मांस युक्त कर्ण-पाली वेधन में यह काम आता है। वा० सू० २६ अ० ।

आराह–[अ०] मस्तगी ।

आरि,-आरी–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का काँटेदार वृत्त । (२) खदिरसार । खैर । कत्था । आरि । संदानिका । उद्दालक और खदिर पत्रिका–सं० ।

गुण—कटु, तिक्त, कफ-वातनाशक तथा उष्ण है, व्रण तथा गले की बीमारी को दूर करनेवाली रुचिकारी एवं संदीपन है । रा० नि० व०८ । दे० "आरी" ।

आरी कषैली, चरपरी, तिक्त, रुधिरकी बीमारी, पित्त और त्रिदोष को नष्ट करती है। रस और पाक में खट्टी और गरम है। यह बादी की खाँसी को दूर करती है । दे० "आर" ।

आरिक्–संज्ञा पुं० [अ०] ऋतुमती स्त्री । (Menstrual women.)

आरिगन एक्वेटिक–[अं० Origan aquatic] Hemp agrimany (Eupatorium cannabinum.) यह एक पानी का पौधा है ।

ऑरिगेनम्-नॉर्मली–[ले० Origanum narmali] मिर्जञ्जोश–पं० ।

ऑरिगेनम्-मार्जोरेना–[ले० Origanum marjorana, *Linn.*] मरुआ । मरुवक । मर्जंजोश । (Sweet marjoram leaves.)

ऑरिगेनम्-वल्गेरिस–[ले० Origanum vulgaris, *Linn.*) सातर । पुदीना कोही । साथर ।

ऑरिगेनम्-हर्एक्लिओटिकम्-[ले० Origanum heracleoticum] एक पौधा जो खाने के काम आता है । मे० मो० ।

आरिज़–[अ० आरिज़] (१) कपोल । गाल । (२) ग्रीवा वा ग्रीवापार्श्वद्वय । गरदन के दोनों ओर । (३) मुखकोण-द्वय (बांछें) । मुखके दोनों कोने । (४) अग्र-दन्त । (५) अग्र-पश्चाद्दन्त । (६) लाहक अर्थात् वह कैफ़ियत जो किसी दशा के आधीन हो । रोधक ।

आरिज़ा–संज्ञा पुं० [अ० आरिज़ः । (१) रोग । व्याधि । बीमारी । आकुल्व । दुःख । घटना । (२) सर्प जो डँसते ही मार डाले । कालसर्प ।

आरिज़ः, आज़िहः, स्.अ्.बान, अफ़ई और अफ़्उ़वान का भेद—

जो सर्प काटते ही मृत्युकारक हो उसे आरिज़ः और आज़िहः (कालसर्प) नाम से अभिहित करते हैं । अधिक लम्बे वा पुरुष सर्प को स्.अ्.बान और जिस सर्प के डँसने पर अगद अथवा मन्त्र निष्फल सिद्ध हों, उसे अफ़ई कहते हैं । अफ़्उवान नर अफ़ई है ।

ऑरिज़ेबा-जैलप–[अं० Orizaba-jalap] आइपोमिया ऑरिज़ेबेन्सिस । दे० "सक़मूनिया"।

ऑरिज़ेबा-जैलप-रूट–[अं० Orizaba jalap-root] सक़मूनिया की जड़ । (Mexicana Scammony root)

आरित-मञ्जरी–संज्ञा स्त्री० [ ] हरित मञ्जरी । कुण्डली । श्वेत वसन्त ।

आरि (री) या–संज्ञा स्त्री० [सं० आरू=ककड़ी] एक फल जो ककड़ी के समान होता है । यह भादों-क्वार के महीने में होती है और बहुत ठंडी होती है । यह एक बित्ता लम्बी और अँगूठे के बराबर मोटी होती है । खीरा ।

आरियूत–[?] अमलतास । आरग्वध ।

आरिय्यः–[अ०] [बहु० उवारी] दन्तकोटर । दन्त गुहा । दाँत का खोखला । सिन्खुस्सिन-अ० । (Alvevolus Phantnoma)

ऑरिसकेम्फर–[अं० Orris camphor] एक प्रकार का घन पदार्थ जो पुष्करमूल को जल के

साथ खींचने से प्राप्त होता है। फा० इं० ३ भ०।

ऑरिसरूट–[Orris-root] पुष्कर-मूल। पद्म-पुष्कर। ईरसा। (Iris florentina)

आरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० आरा का अल्प० वा स्त्री०] (१) लकड़ी चीरने का एक औज़ार। छोटा आरा। क्षुद्र-क्रकच। करौंती। (२) आहवी। उरि। उरु। (३) आपटा। (४) जूता सीने का सूजा। सुतारी।

[पं०] गीस। थिलकइन।

[मल०] चावल।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जालबर्बुरक या स्थूल-कंटक भी कहते हैं। (२) दुर्गंधखैर। बबुरी। (३) बल्लीखैर।

आरी-एट-पोटेशियाइ-ब्रोमाइडम्–[ले० Auri-et-potassi-bromidum] सुवर्ण पांशु ब्रह्मणम्। दे० "सोना"।

आरी-एट-सोडियाई-क्लोराइडम–[ले० Auri-et-sodii chloridum] सुवर्ण-सर्जिहरिद्। (अमरीका) इसमें एनूहाइड्राइड-गोल्ड-क्लोराइड और ऐन्हाइड्रस-सोडियम-क्लोराइड दोनों बराबर बराबर होते हैं। इसमें ३० प्रतिशत सुवर्ण होता है।

मात्रा—$\frac{१}{२०}$ ग्रेन। दे० "सोना"।

आरी-क्लोराइडम्–[ले० Auri-chloridum] स्वर्ण-हरिद। क्लोराइड आफ गोल्ड (Chloride of gold.) दे० "सोना"।

आरीद-बरीद–[फ़ा०] (१) एक दवा जो सीस्तान देश से आती है और प्याज की तरह चिरी हुई होती है। (२) अन्ताक़ी के अनुसार सफ़ेद सौसन की जड़ का नाम है जिसको सौसन आज़ाद भी कहते हैं। प्रकृति—अत्यन्त गर्म। मात्रा-१ दिरम।

गुण—निर्मलकारी। इसका प्रलेप अर्श के रक्त का अवरोधक है। इसका शर्बत आर्तव प्रवर्तक है।

आरी-ब्रोमाइडम्–[ले० Auri-bromidum] कलौंछ लिए मटमैले रंग का एक चूर्ण जो जल में घुल जाता है। स्वर्ण ब्रह्मणिकम्। दे० "सोना"।

आरु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शूकर। सूअर। (२) कर्कट। केकड़ा। सर्तान। (३) एक प्रकार का वृक्ष जो बंगाल, उत्तर-पूर्वांचलस्थ पर्वत जयन्तीगिरि, कोयम्बटूर, कनाड़े, सुंदे, सिंहल, पेगू और टेनासरम आदि स्थानों में होता है। बम्बई का आरू बहुत अच्छा होता है। किंतु सिलहट, कछाड़ और चटगाँव की लकड़ी सबसे बढ़िया और कीमती निकलती है। आरूल का पेड़। (Lagerstroemia flos=reginae, *Retz.*) मे० रद्दिक। (४) कोंहड़ा। कुष्माण्डलता। (५) कद्दू। अलाबु।

[मल०] विलायती सरो–मरा०। चौक-ता०। (Casuarina Equisetifolia, *Forst.*) फा० इं० ३ भ०।

आरुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक जड़ी जो हिमालय पर होती है। पत्ते और फल के विचार से इसकी चार जातियाँ होती हैं। पर गुण में सब समान होती हैं। आड़। आड़ू।

पर्याय—वीरसेन। वीर। वीरानक। (ध० नि०) वीरारुक।

गुण—सभी प्रकार के आरुक हृद्य होते हैं और प्रमेह तथा बवासीर का नाश करते हैं। (धन्व०) यह। वात तथा प्रमेह, अर्श और कफ का नाश करता है। मद० व० ६। यह मधुर तथा शीतल है। अर्श, प्रमेह और गुल्म तथा रक्त दोष को नष्ट करता है। रा० नि० व० ११। वि० दे० "आड़"। (२) प्रवर। अगरु।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आलूबुखारा। गुण—ग्राही, कषैला, हृद्य, ठंडा, भारी, मलावरोधक, भेदक, गरम, कफ नाशक, पित्त नाशक, पाचक, खट्टा, मीठा, खाने में प्रिय, मुख को साफ करने वाला, प्रमेह, गुल्म तथा अर्श नाशक और रक्त वा वातरोगनाशक है। पकने पर यह मीठा और भारी होता है तथा कफ, पित्त कारक, गरम, रुचिकारक और धातुवर्द्धक है। वै० निघ०। दे० "आलू-बुखारा"।

आरु-कणु-पुल-क्रानुग–[ते०] ऊख। ईख। गन्ना। इक्षु।

वि० [सं० त्रि०] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ। तन्दुरुस्त;

आरोग्यता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वास्थ्य। तन्दुरुस्ती।

आरोग्य-दर्पण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक हिंदी भाषा का चिकित्सा ग्रन्थ।

आरोग्य-पञ्चक–संज्ञा पुं०[सं० क्ली०] (१)हड़, अमलतास, तिक्ता (कुटकी), निशोथ और आमला इन पाँच ओषधिगों का समूह। इनके द्वारा सिद्ध किया हुआ पाचन साम तथा जीर्णज्वर में उपयोगी है। भा० म० १ भ० ज्व० चि०। (२) वैद्य वंगसेन में पाँच ओषधियों का समूह। पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका क्वाथ दीपनपाचन और कफज तथा वातजन्य रोग नाशक है।

आरोग्यमञ्जरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागार्जुनकृत उक्त नाम का एक रस-ग्रन्थ।

आरोग्य-रागी रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वर में प्रयुक्त एक योग—

पारद, गन्धक, पीपलामूल, वंसलोचन, जमालगोटा, त्रिकुटा, पाँचो नमक, विड़ नमक और कपूर, हरएक समान भाग लेकर महीन पीसकर एक दिन पान के रस में घोटें।

मात्रा—१–२ रत्ती।

गुण—इसे पानके रसके साथ प्रयोग करने से नवीन ज्वर और सब प्रकारके सन्निपातों का नाश होता है। यदि इसके सेवन से अधिक संताप हो तो शैत्या उपचार से शमन करे।

आरोग्य-लक्षण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निरोग होने के चिन्ह। रोगरहित होनेके लक्षण। वे ये हैं–दही, अक्षत, (अखंड चावल जौ आदि), ईख, निष्पाव (चौला),प्रियंगु, मधु, घृत, अलक्तक, अंजन, भृंगार, (कनकालक, स्वर्ण-पात्र), घंटा, दीपक, कमल दूर्वा (दूब), मछली का गीला मांस, धान की खील, फल, मोदकादि भक्ष्य-द्रव्य, पद्मरागादि मणि, हाथी, पूर्ण कलश, कन्या, रथ, शूरवीरता और दान शीलतादि गुणविशिष्ट प्रतिष्ठित मनुष्य, देवता, राजा, चमेली आदि के सफेद फूल, सफ़ेद चमर, सफ़ेद वस्तु, सफ़ेद घोड़ा, शंख, साधु, ब्राह्मण, पगड़ी, तोरण,स्वस्तिक (साथिया) समधृत भूमि, प्रज्वलित अग्नि, हृदयहारी अन्नपान आदमियों से भरी हुई गाड़ी, सवत्सा गौ, सवत्सा घोड़ी, सवत्सा स्त्री, जीवजीवक हिरन, सारसादि प्रिय भाषी पक्षी कंकड़, सफेद सरसों, इत्रादि सुगन्धित द्रव्य, सफेद मधुरादि रस, शांत स्वभाव बैल का शब्द, क्रोध रहित गौ का शब्द, प्रशस्त (शृगाल, उल्लू और चांडालादि को छोड़ कर) मृग, पक्षी, मनुष्य और मनोहारी जीवों के शब्द, छत्र, ध्वजा और पताका का ऊपर के स्थान में लगाना, जय जय शब्द, भेरी मृदङ्ग और शंख इनकी ध्वनि, आरोग्यतार्थ प्रशस्त शब्द,वेदध्वनि, अनुकुल और सुखप्रद वायु, यह सब शुभ लक्षण हैं। जब वैद्य रोगी की चिकित्सा के लिये अपने गृह से चले वा रोगी के गृह में प्रवेश करे तब यह सब शुभ शकुन दिखाई दें तो समझना चाहिये कि रोगी रोग मुक्त होगा। वा० शा० ६ अ०।

आरोग्य वर्द्धनी गुटिका (रस)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पारा, गंधक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, और ताम्र भस्म प्रत्येक १ भाग, त्रिफला २ भाग, शिलाजीत ३ भाग, शुद्ध गूगल ४ भाग, चीतामूल ४ भाग, कुटकी का चूर्ण सब के तुल्य भाग लेकर महीन चूर्ण करके सबको दो दिन तक नीम के रस में घोंट कर बेर प्रमाण गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसे उचित अनुपान से भक्षण करने से मण्डल-कुष्ट और हरप्रकार के कुष्ट, वातज,पित्तज और कफज ज्वर का नाश होता है। ज्वर आने से ५ दिन पीछे इसका सेवन उत्तम है। यह पाचनदीपन, पथ्य, हृद्य, मेद नाशक, मलशोधक और अत्यन्त क्षुधावर्द्धक तथा अन्य सर्व रोग नाशक है। र० र० स० अ० २०।

आरोग्य-शाला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Hospital) चिकित्सालय। चिकित्सा-गृह। औषधालय। दारुल्-शिफ़ा। अस्पताल।

आरोग्य-शिम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमलतास का पेड़। आरग्वध वृक्ष। घनबहेड़ा। शोन्दाल गाछ-बं०। लघु वाहावा–मरा०। (Cassia fistula.) मद० व० १।

आरोग्यसागररस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रसौषधि–पारा, गंधक ४–४ तो०, दोनों की कज्जली बनाएँ। पुनः सोनामक्खी की भस्म ८ तो०, हरताल, मैनसिल और अभ्रकभस्म प्रत्येक ४–४ तो०, सज्जीखार १ तो०–इन्हें खरल कर ३ तो० ताँबे की डिबिया बना उसमें प्रागुक्त औषधियाँ रख दृढ़तापूर्वक बन्द करें। पुनः कपड़मिट्टी कर धूप में सुखा गजपुट में रख जंगली कण्डों की आँच दें। जब शीतल हो जाय, तब निकाल कर चूर्ण कर पुनः इसमें गंधक, हरताल, मैनशिल मिला वाराह पुट में १० बार फूँके। इसमें २० भाग वैक्रान्त की भस्म मिला सबको खरल कर चाँदी के एक डिब्बे में रख छोड़े।

मात्रा—१ रत्ती।

गुण—इसके सेवन से पांडु रोग, अरुचि, अर्श, वात, पित्त, कफ, गुल्म, अफरा, शोथ, श्वास, मस्तक-शूल, वमन, अग्निमांद्य और उदावर्त आदि अनेक प्रकार की बीमारियाँ दूर होती हैं। वृ० रस० रा० सु०।

आरोग्याम्बु–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह पानी जो पकाते-पकाते चौथाई रह गया हो। पादावशिष्ट उष्ण जल। चतुर्थांश अवशिष्ट (सेर का पाव भर) रहा हुआ जल। यह आरोग्य कारक है। "पाद शेषंतु यत्तोयं आरोग्याम्बु तदुच्यते।" (भा० म० खं०)

आरोधना–क्रि० सं० [सं० आ+रुन्धन=छेकना] रोकना। छेकना। आड़ना। अवरोध करना।

आरोप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्थापित करना। लगाना। (२) एक पेड़ को उखाड़कर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना।

आरोपण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आरोपित, आरोप्य] (१) लगाना। स्थापित करना। मढ़ना। (२) पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना।

आरोह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अवरोह। श्रेष्ट नारियोंका नितम्ब (चूतड़)। रा० नि० व० २७। (२) परिमाण विशेष। हे० च०। (३) गज आदि का आरोहक। सवार। मे० हत्रिक। (४) घोड़े, हाथी, आदि पर चढ़ना। सवारी। (५) आक्रमण। चढ़ाई। (६) कारण से कार्य्य का प्रादुर्भाव वा पदार्थों का एक अवस्था से दूसरी अवस्था की प्राप्ति। जैसे–बीज से अंकुर, अंकुर से वृक्ष वा अंडे से बच्चे का निकलना। (७) क्षुद्र और अल्प चेतनावाले जीवों से क्रमानुसार उन्नत प्राणियोंकी उत्पत्ति। आविर्भाव। विकाश। (८) वेदान्त में क्रमानुसार जीवात्माकी ऊर्ध्वगति वा क्रमशः उत्तमोत्तम योनियों को प्राप्त होना। (९) ऊपर की ओर गमन। चढ़ाव।

आरोहक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अश्वारूढ़। सवार। (२) वृक्ष। दरख़्त।

वि० [सं० त्रि०] (१) चढ़नेवाला। आरोहणकर्त्ता। (२) उन्नतिशील। उठनेवाला।

आरोहण–संज्ञा पुं० [सं०क्ली०] [वि० आरोहित] (१) उत्थान। चढ़ाव। (२) सीढ़ी। सोपान। (३) चढ़ना। सवार होना। (४) अंकुर निकालना। अँखुआना।

आरोहि–वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्वगामी। उद्गामी। स़ाइ़द-अ़०।

आरोहि-गलीया धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Ascending pharyngeal Artery) धमनी विशेष।

आरोहि ग्रैवी धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धमनी विशेष। उद्गामी ग्रैवेयी धमनी। (Ascending cervical Artery)

आरोहित–वि० [सं० त्रि०] (१) चढ़ा हुआ। (२) निकला हुआ। (३) अँखुआया हुआ।

आरोहि-तालव्या धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धमनी विशेष। उद्गामी तालव्या धमनी। (Ascending palatine artery)

आरोहि-स्थूलान्त्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उद्गामी बृहदान्त्र। (Ascending colon)

आरोही–वि० [सं० आरोहिन्] [स्त्री० आरोहिणी] (१) चढ़नेवाला। ऊपर जानेवाला। (२) उन्नतिशील।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सवार। (२) उद्भिद्की एक जाति। आरोही जाति के पौधे अपना भार नहीं

सँभाल सकते । ये कभी-कभी अपने आप टहनियों में लिपट जाया करते हैं; जैसे गुर्च आदि । किसी-किसी में केवल मूल निकलता है जो तने को पकड़ लेता है ; कोई कांड अपने पत्ते के आगे दूसरी वस्तु से मिल बैठता है । जैसे, करिहारी । अपर वस्तु पकड़ने के लिए आरोही जाति के वृक्ष-कांड से धागे का सा अंकुर फूटता है, जो कली व पत्ते का रूपान्तरमात्र है ।

आरोह्यावर्त्ता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाधमनी का ऊर्ध्वांश । (Ascending portion of aorta) ।

आर्क–वि० [सं० त्रि०] सूर्य्य संबंधी । आफ़ताबी ।

आर्किडेसीई–[ले० Orchidaceae] सालब मिश्री वर्ग । फा० इं० ३ भ० ।

ऑर्किस-मैस्क्युला–[ले० Orchis mascula, *Linn.*] सालबमिश्री । (The salap orchid.)

ऑर्किस मैस्क्युलेटा–[ले० Orchis-masculata] सालबमिश्री । एलियम-मैक्लिएनाई (Allium-macleani) ।

ऑर्किस-लैक्सिफ्लोरा–[ले० Orchis-laxiflora, *Lam.*] सालममिश्री । सुधामूली । एलियम मैक्लिएनाइ Allium macleani.

आर्किस-लैटिफोलिया–[ले० Orchis latifolia, *Linn.*] सालममिश्री । सुधामूली । एलियम मैक्लिएनाइ Allium macleani.

आर्केनेटी–[फ्रा० Orcanette] रतनजोत (Alkanet) ।

आ (अ) कर्टोस्टैफ़िलास युवाअर्साई–[ले० Arctostaphylos Uva Ursi, *Spreng.*] इनबुदुब । इसके पत्ते औषध के काम में आते हैं । मे० मो० । दे० "इनबुद्‌ब" वा "यूवी अर्साई फोलिया" ।

आर्गन–संज्ञा पुं० [अं० Argon] एक प्रकार का वायव्य वा गैस जो वायु में वर्तमान होता है । वायु के १०० भागों में ०'९४ भाग के लगभग इस गैस के होते हैं । यह वायु मण्डल का निष्क्रिय भाग है । इसका सङ्केत सूत्र A(अरि-) तथा परमाणु भार ३९'९ है ।

नोट—यह आर्गोज़ (Argos) यूनानी शब्द से व्युत्पन्न है । जिसका अर्थ निष्क्रिय है ।

आर्गीनम्-[अं० Argenum] सातर ।

आर्गीमोनी-मेक्सिकेना–[ले० ArgemoneMexicana, *Linn.*] ब्रह्म-दण्डी ? । शृगाल कंटक । सियाल काँटा । शीगाल काँटा–बं० । पीला धतूरा । भेरवण्ड । भड़भाड़ । फिरङ्गी धतूरा ।

आर्गीरिआ-स्पेसिओज़ा–[ले० Argyreia-Speciosa, *Sweet.*]समुद्र-शोष । समुन्दर फल । समन्दर का पाता–मे० मो० ।

आर्गीजिरोल–[अं० Argyrol] यह चाँदी का एक यौगिक है । वाइटेलीन (Vitellin) दे० "चाँदी" ।

आर्गीस–[बरब०] ज़रिश्क की जड़ की छाल । दारुहरिद्रा मूल त्वक् । Berberis Vulgaris (*The root of–*) ।

आर्गैनिक—वि० [अं० Organic] ऐन्द्रियक । सावयव । सैन्द्रिक वा वानस्पतिक वा प्राणिज औषध, जैसे–अहिफेन और अजवाइन आदि (वानस्पतिक) और कस्तूरी व मत्स्य-तैल प्रभृति (प्राणिज) ।

आर्गैनो थेरपी—संज्ञा स्त्री० [अं० Organotherapy] ऐन्द्रिक चिकित्सा । इलाज उज़्वी–अ० । (Hormone therapy) ।

आर्ग्वध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]आरग्वध वृक्ष । अमलतास का पेड़ । घन बहेरा । सोंदाल

आर्घा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० आर्घ्या] पीले रंग की एक प्रकार की मधुमक्खी जिसका सिर बड़ा होता है । यह मालवा में प्रायः दिखाई पड़ती है । सारंग मक्खी ।

आर्घ्य—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) आर्घा नाम की मक्खियों का मधु । सारंग मधु । आर्घा मधु । सारंग मधु । अर्घा मधु । रा० नि० व० २४ ।

सारंग मधु के गुण—यह कफ-पित्त नाशक और आँखों को लाभकारी है एवं कसेला, पाक में कडुआ, चरपरा बल तथा पुष्टिदायक और रक्त दोष नाशक है । भा० मधु० व० । रा० नि० व० १४ । यह पकाने से कुछ कडुआ और कसेला

हो जाता है। (२) एक प्रकार का महुआ जिसकी सफेद गोंद मालवा देशसे आती है। वहाँ इसे श्वेतक कहते हैं। कहते हैं कि इस प्रकार के महुए के पेड़ जरत्कार ऋषि के आश्रम में होते है। भा० प्र०।

वि०। [सं० त्रि०] आर्घा सम्बन्धी। सारंगका।

आर्घ्य-मधु–संज्ञा पुं० [सं० पु०। सारंग मधु। दे० "आर्घ्य"।

आर्घ्य-शर्करा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वह शकर जो सारंग मधु से तैयार की गई हो। गुण में यह आर्घ्य मधुके तुल्य होता है। रा० नि० व० १४।

आर्घ्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की मधुमक्खी जिसकी चोंच पीली होती है। यह भौंरे के समान होती है। आर्घा। रा० नि० व० १४। दे० "आर्घ्य"।

ऑर्चीटीन–[अं० Orchitin] } अण्ड-सत्व।
ऑर्चीडीन–[अं० Orchidin] } मुष्कीन। मुष्क-सत्व। स्पर्मीन (Spermin), टेस्टीक्युलीन (Testiculin), डिडिमीन Didymin –अं०। उत्पादक ग्रंथि-सत्व। दे० "अण्डसत्व"।

आर्चैंञ्जेलिका ऑफ़िसिनैलिस–[ले० Archangelica officinalis] एञ्जेलिका (Angelica), (Angelica archangelica.) सुम्बुल-खताई का एक भेद। एक प्रकार का बालछड़।

आर्टिक्युलेटा–संज्ञा पुं० [अं० Articulata] बिना रीढ़वाले जंतुओं का एक भेद, जिनके शरीर संकुचित रहते हैं; पर चलने की दशा में फैल जाते हैं। जैसे–जलौका। इसका शरीर और अंग ग्रथित रहता है; किंतु अंतर्गत कंकाल अस्थिमय नहीं होता और प्रधान मज्जातंतुगत सूत्र उन्मुख होता है। जलचर और थलचर भेद से इसके दो विभेद और कृमि, जालिक, बहुपाद, कवची और कीटक पाँच गण हैं। कृमि, जालिक तथा बहुपाद, स्थलचर और कवची एवं कीटक जलचर हैं। स्थलचर देह की शाखा प्रतिशाखा रूप से विस्तीर्ण वायुनाड़ी द्वारा और जलचर अधोगंड द्वारा साँस लेते हैं।

कृमि का शरीर तीन भागों में विभक्त होता है। शीर्ष और वक्षःस्थल उदर से पृथक् रहता है। इसके छः पैर होते हैं और प्रायः दो वा चार पक्ष निकलते हैं।

जालिका का शीर्ष एवं वक्षःस्थल एक ही खंड में मिला और उदर से जुदा होता है। इसके आठ पैर होते हैं। बहुपाद उदर से पृथक् वक्षःस्थल नहीं रखते और कीटक से देख पड़ते हैं। इसके बहुत पैर होते हैं। कनखजूराकी गणना इसी गण में होती है।

कवची के देह में दो भाग होते हैं। शीर्ष एवं वक्षःस्थल एक ही में मिला और उदर से जुदा रहता है। पैर प्रायः दस वा चौदह, कभी-कभी अधिक और क्वचित् न्यून भी होते हैं। केकड़ा और ओंगा मछली इत्यादि इन्हीं जानवरों में परिगणित होते हैं।

कीटक का वक्षःस्थल उदर से भिन्न नहीं होता, इसके पैर नहीं होते। कभी-कभी पैर के स्थान में फूली हुई गाँठें निकल आती हैं। कछुआ, जोंक, चक्करदार कीड़ा और अँतड़ियों का कीड़ा कीटक होता है। (हिं० वि० को०)।

आर्टि-चोक–[अं० Artichoke] अल्ख़र्शफ़ा-अ०। हुर्शफ़। कङ्गर। अर्तचक। हाथीचक-उ०। हस्तिपिज, वज्राङ्गी–सं०। आर्टी चौट Artichaut–फ्रां०। Helianthus tuberosus or Cynara Scolymus.

उत्पत्ति-स्थान—जेरूसलीम। प्रभाव—कामोद्दीपक और शुक्रवर्धक। प्रयोग—स्वादिष्ठ शाक। इं० मे० मे०।

आर्टीचोक-गम–[अं० Artichoke-gum] कंकरजद। तुराबुल क़ै। कंकरी। समग़ हुर्शफ़। कंकरज़द (फ़ा०)।

आर्टीचोक-गार्डेन–[अं० Artichoke-garden] हुर्शफ़। कङ्गर। अर्तचक। Cynara Scolymus.

आर्टीचोक-जेरुसलीम–[अं० Artichoke-Jerusalem] ख़ूरपरस्त। ख़ानालायक। (Helianthus tuberosus.)

आर्टीचोक सीड्स–[Artichoke seeds] हब्बुल ज़ुलीम। फा० इं० १ भ०।

आर्टीफ़िशल-इम्युनिटी–[अं० Artificial-Immunity.] कृत्रिम रोग क्षमता (वैष्णवी शक्ति या रोग नाशक शक्ति) ।

आर्टीफ़िशल-कार्ल्स बाडवाटर (साल)–[अं० Artificial-carlsbad-water] (Pulvis sal carolini factilly) कार्ल्सबाड स्रोत का कृत्रिम लवण । दे० "सोडियम्" ।

आर्टीमिसिया-अब्रोटेनम्–[ले० Artemisia-abrotanum] सर्दन वुड (Southern-wood) ।

आर्टीमिसिया-आस्ट्रिएका–[ले० Artemisia-austriaca] दौना । धारो ।

आर्टीमिसिया-इण्डिका–[ले० Artemisia-Indica, *Willd.*] ग्रंथिपर्णी । मज़ातरी । मस्तारू । अफ़्सन्तीने हिन्दी । स० फा० इं० ।

आर्टीमिसिया-एलीगैण्ट[ले० Artemisia-elegant, *Roxb.*] अबटूना ।

आर्टीमिसिया-ऐब्सिन्थियम्–[ले० Artemisia-absinthium, *Linn.*]दे० "अफ़्सन्तीन" ।

आर्टीमिसिया-पर्सिका–[ले० Artemisia-Persica, *Boiss.*] शीह । सरीफ़ून । अफ़्सन्तीनुल्-बह्र-अ०, फ़ा० । परदेशी दौना । । इं० मे० प्लां० । मे० मो० ।

आर्टीमिसिया-पार्वीफ्लोरा–[ले० Artemisia-Parviflora, *Roxb.*] कन्यूर्तस–पं० । बर्मर–लेद० । इं० मे० प्लां । मे० मो० ।

आर्टीमिसिया-पैनीक्युलेटा–[ले० Artemisia-Paniculata] विलायती अफ़्सन्तीन । (*Worm wood*) इं० मे० मे० ।

आर्टीमिसिया-फ्रीगाइडा–[ले० Artemisia-Frigida, *Willd.*] (Sierra sativa) Mountain sage ।

मिश्र वर्ग

(*N. O. Compositoe.*)

उत्पत्ति-स्थान—पश्चिमी संयुक्त-राज्य (अमरीका)

प्रयोगांश—क्षुप ।

औषध-निर्माण—क्षुप चूर्ण–१ से २ ड्राम । तरल-सत्व–१ से २ फ्लु० ड्रा० ।

उपयोग—यह क्वीनीन की नूतन प्रतिनिधि है । यह रोगी के शरीर को व्यस्त करने की ओर कम प्रवृत्त है; क्योंकि यह शिरो-विकार विषयक कोई लक्षण यथा कर्णनाद, बाधिर्य तथा अनित्य उन्माद, नहीं उत्पन्न करता । आमवात, गृध्रसी, वात वेदना और विषमज्वर अर्थात् मलेरिया ज्वरोत्पादक प्रदेशों में होनेवाले सामान्य विकारों को दूर करने में व्यवहृत होता है । परियाय ज्वरकी चिकित्सा में तीव् उष्ण लेमनेड की शीशी में, एक चाय के चम्मच भर इस औषध के तरल सत्व को शीत की आशंका होने से एक घंटा पूर्व देते हैं और स्वेद प्रादुर्भूत न होने पर इसे आध आध घंटे पर दोहराते हैं । आम-वात, रक्तज्वर, खुनाक (Diphtheria) में उपर्युक्त नियम के अनुसार इसे उष्ण उपयोग करते हैं । निश्चित् तया स्वेद तथा मूत्र-स्राव होने तक इसे प्रति आध आध घंटे पर दोहराते रहते हैं । पी० वी० एम ।

आर्टीमिसिया-मैड्रास पट्टन~ ले० Artemisia-madras pattan] वनमाष । वन उड़द । माषपर्णी । Teramnus labialis, *Linn.*

आर्टीमिसिया-मेरिटिमा–[ले० Artemisia-maritima, *Linn.*] (Worm-seed) अफ़्सन्तीनुल् बहर–अ० । किरमानी ओंवा–बम्ब० । शीह । सरिफ़ून । दर्मनः–फ़ा० । किर्माला । इं० मे० प्लां । मे० मो० ।

आर्टीमिसियो-वल्गैरिस–[ले० Artemisia Vulgaris, *Linn.*] नागदमनी–सं० । नागदौन । नागदौना । नागदमनी । सर्पन । दवना-बम्ब० । अफ़सन्तीने-हिन्दी–अ० । बरिञ्जासिफ़्रेकोही–फ़ा० । माचीपत्री–ता० । दरनम–ते० । तीत-पात–नैपा० । इं० मे० प्लां० । मे० मो० ।

आर्टीमिसिया-सीवर्सिएना–[ले० Artemisia-Siversiana, *Willd.*]अफ़्सन्तीन ।दौना । इं० मे० प्लां । मे० मो० ।

आर्टीमिसिया-सैक्रोरम्–[ले० Artemisia sacrorum, *Ladeb.*] ज़बूर । बुर्नक । चूम्बर । जाउ । निउर्तसो । मुन्यू । तत्वेन–पं० । मे० मो० ।

आर्टीमिसिया स्कोपेरिया–[ले० Artemisia scoparia, *Wallst, &. Kits.*] झाऊ । लसज । दुरू-मग ।दोना मरुआ–पं० । चूरीसरोज-बाजा० । मे० मो० ।

आर्टीमिसिया-स्टेकमेनिएना-[ले० Artemisia stechmaniana] अफ़्सन्तीनुल्बहर । दिर्मनः तुर्की । शीह ख़ुरासानी-अ० ।

आर्टेनिमा सिसेमॉइडीज़-[ले० Artanema Sesamoidis, *Benth.*] कोकिलाच । नीरमुल्लि (मदरास) ।

आर्टोकार्पसइन्टेग्रिफोलिया-[ले० Artocarpus integrifolia, *Linn.*] कटहल । पनस । स्कन्दफल । कन्थल-बं० । इं० मे० प्लां० । इं० मे० मे० । मे० मो० ।

आर्टोकार्पस-इन्सिसा-[ले० Artocarpus incisa, *Linn.*] प्रयोगांश-गोंद (निर्यास)। खाद्य । मे० मो० ।

आर्टोकार्पस-चैप्लाशा-[ले० Artocarpus chaplasha, *Roxb.*] चप्लास-बं० । सम-आसा० । मे० मो० ।

आर्टोकार्पस-नोबिलिस्-[ले० Artocarpus-nobiles, *Thw.*] देल । आलुदेल-सिं० । मे० मो० ।

आर्टोकार्पस-पार्वीफ्लोरा-[ले० Artocarpus-parviflora] यह कटहल की जाति का ही एक वृक्ष है जो बंगदेश तथा पूर्वी-द्वीपपुंज में उत्पन्न होता है । इसका फल खाया जाता है । इं० मे० मे० ।

आर्टोकार्पस-ब्ल्युमी-[ले० Artocarpus-blumei] पनस (Artocarpus paceae) जाति का एक वृक्ष । यह मालाबार तथा जावा में उत्पन्न होता है । इसका फल खाया जाता है । फल से एक प्रकार का तैल प्राप्त हाता है जो पाक क्रिया तथा अतिसार में प्रयुक्त होता है । इसकी कली एवं पत्तियों को प्रलेप रूप में अर्श एवं बाघी (कक्षस्थलीव्रण) Buboes में लगाते हैं । इं० मे० मे० ।

आर्टोकार्पस लकुचा-[ले० Artocarpus lakoocha, *Roxb.*] बड़हल । लकुच । देफल-बं० । इं० मे० मे० । दहुआ-बम्ब० । इं० मे० प्लां० । फा० इं० । मे० मो० ।

आर्टोकार्पस-वेब्याना-[ले० Artocarpus webbiana] तालीसपत्र ।

आर्टोकार्पस-हिर्स्युटा-[ले० Artocarpus-hirsuta, *Lamk.*] रानफनस । हेबलसु । पातफनस-मरा० । जंगली कटहल-हिं० । अयनी । अञ्जली-ता० । ऐनी । अन्सजेनी-मल० । हेबलसु । हेस्स्वा-कना० । मे० मो० ।

आर्टोबाट्रीज-ओडोरेटिसिमा-[ले० Artobotrys odoratissima, *R. Br.*] मदन-मालती-हिं० । मदनमस्त-द० ।

आर्डियलबीन-[अं० Ordeal bean] लोबिया-कालाबार-अ०, पि० । बाक़लाए कालाबार ।

आर्डिशिया-अन्सेप्स-[ले० Ardisia anceps, *Dr. Wall.*] लाल जाम ।

आर्डिसिया-कलरेटा-[ले० Ardisia colorata, *Roxb.*] आ० ऐन्सेप्स (A. anseps, *Wall.*) अमरकली ।

उतपत्ति स्थान—यह क्षुप प्रायः आसाम तथा कछार से लेकर मलक्का पर्यन्त होता है ।

प्रयोगांश—त्वचा (छाल) ।

उपयोग—लंका में इसे दन कहते हैं । इसकी छाल ज्वरघ्न रूप से ज्वर एवं अतिसार में प्रयुक्त होती है । क्षतों में इसका वाह्य प्रयोग भी होता है । वैट ।

आर्डिसिया-ग्लैण्ड्युलस-[ले० Ardisia glandulous] बन नरकाली ।

आर्डिसिया-ग्लैण्ड्युलोसा-[ले० Ardisia glandulosa] बन नरकाली ।

आर्डिसिया, टू एज्ड-[अं० Ardisia,two edged] लालजाम ।

आर्डिसिया, नाइट-शेड लाइक-[अं० Ardisia, night-sdade like] बुझाम ।

आर्डिसिया, रेडफ्लावर्ड-[अं० Ardisia, redflowered] अमरकली ।

आर्डिसिया-सोलेनेशिया-[ले० Arnisia-solanacea] बनजाम ।

आर्त-वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा आर्ति, आर्त्तता] (१) पीड़ित । चोट खाया हुआ । (२) दुखो । क्लेशित । व्याकुल । कातर । (३) अस्वस्थ ।

आर्तव-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [स्त्री० आर्त्तवी] वह रज जो स्त्रियों की योनि से प्रत्येक मास में

२८ वा २६ दिन पर या इससे भी न्यूनाधिक दिनों पर निकलता है। स्त्री-पुष्प। रज। मासिक-धर्म। वि० दे० "रज"।

वि० [सं० त्रि०] (१) ऋतु में उत्पन्न। मौसमी। सामयिक। (२) ऋतु-सम्बन्धी।

आर्तस्वर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आर्त्तनाद। पीड़ित-ध्वनि। कातरस्वर। क्लेशजन्य चीत्कार। दुःख सूचक शब्द। करुणस्वर। दर्दनाक आवाज़।

आर्ति–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] व्याधि। रोग।

आर्तिमान–वि० [सं० आर्तिमत्] [स्त्री० आर्तिमती] पीड़ित। बीमार। आज़ुर्दा।

आर्तिहा–वि० [सं० आर्तिहन्] पीड़ा निवारक। दर्द दूर करनेवाला। आर्तिहर।

आर्त्तगल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
आर्तगला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
} (१) नीलीकटसरैया। नीलझिण्टी। नील-झाँटी–बं०। काला कोराँटा-मरा०। (Barleria coerulea) रा० नि० व० १०। च० द० अश्म-चि० कषाय घृत। सु० सू० ३८, ३६ संशोधन। दे० "नीलाम्लान" वा "कटसरैया"।

गुण—यह गरम, कडुई, चरपरी और वात कफ नाशक है तथा सूजन, खाज, शूल, कोढ़, और व्रण नाशक है। वै० निघ०। भैष० मुख रोग चि०।

(२) रक्त झिण्टी वृक्ष। लाल कटसरैया। भा० पू० १ भ०।

आर्त्त–दे० "आर्त"।

आर्त्तता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पीड़ा। दर्द। (२) दुःख। क्लेश।

आर्त्तनाद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "आर्तस्वर"।

आर्त्तव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "आर्तव"।

आर्त्तवकोश(ष)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] डिम्बाशय। Ovary. मबैज़, ख़ुस्युतुर्रिह़्म–(अ०)।

आर्त्तव-प्रवर्तक–त्रि० [सं० त्रि०] रजःनिस्सारक। रजः प्रवर्त्तक। मुदिर्र हैज़–अ०। (Emmenagogue.)

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जो द्रव्य रुके हुए वा भली प्रकार न आते हुए आर्त्तव का प्रवर्त्तन करता है। मासिक खोलने की दवा। रजो निःसारक। मुदिर्र हैज़, मुदिर्र तम्स्। (अ०)। एम्मेनेगॉग Emmenagogue (अं०)।

आर्त्तव प्रवर्त्तक औषधियाँ दो प्रकार की होती हैं–एक प्राथमिक (Direct) और दूसरी गौण (Indirect)।

(१) सरल वा प्राथमिक आर्त्तव प्रवर्त्तक Direct emmenagogues)—ऐसी औषधियाँ गर्भ विरहित जरायु को किंचिद् गति प्रदान कर आर्त्तव की वृद्धि करती हैं। वे यह हैं-गर्भशातक औषध अल्प मात्रा में, जैसे–हींग, बोल, ग्वायकम्, तेलनी मक्खी (कैन्थेरीडीज़) और अजमोदा का सत (एपिओल)।

(२) गौण आर्त्तव प्रवर्त्तक (Indirect-Emmenagogues)—ये औषधियाँ इस प्रकार प्रभाव करती हैं—

(१) रक्त के उपादानों को ठीक अवस्था पर लाकर, जैसा लौह, मैंगेनीज़ और कॉड लिवर ऑइल के प्रयोग से होता है।

(२) वातमंडल की अवस्था को सुधारकर, जैसा कि कुचिला तथा कुचिलीन (स्ट्रिक्नीन)।

(३) जरायु स्थित रक्त-संवहन क्रिया को बढ़ाकर, जैसे उष्ण कटि-स्नान (Hot hip-bath), उष्ण-सार्षप-स्नान (Hot mustard bath), राई की पुलटिस तथा रान एवं जननेंद्रिय पर जोंक लगवाना।

(४) यदि रक्त में किसी प्रकार ज़हर हो, तो उसका निराकरण करके, जैसे क्विनीन और लोहा मलेरिया जनित विष को दूर करके और रक्त की अवस्था सुधारकर आर्तवप्रवर्त्तक प्रभाव करते हैं एवं यक्ष्मा रोग में कॉड लिवर ऑइल शरीर को शक्ति प्रदान कर ऐसा प्रभाव करता है।

आर्त्तवप्रवर्त्तक औषधियाँ निम्न हैं—

आयुर्वेदीय—उलट कंबल, एलुआ, नौसादर, बाबूना, बोल (रसगंध), पपीता, दालचीनी, कबाबचीनी, लौह, हींग, कपास, जटामांसी, सुदाब, कुचिला, मेथी।

यूनानी—अभल (हाऊबेर), असारून, उक्हवान (   ), तीसी, अनीसून, अंजदान, बरंजासफ़, बिरंग काबुली (बायविडंग),

बाबूना, कासनो की जड़ की छाल, हंसराज, तुसुंस, गाजर का बीज, कासनी बीज, खीरा का बीज, खरबूज़े का बीज, चिरचिटा का बीज, कड़ (तुख़्म क़ुतुंम), जंुदबेदस्तर, जुश्र्:, जावशीर, जिंतियान:, हबतुल्ख़ज़रा, गोखरू, सुदाब, सुश्रद (नागरमोथा), सलीख़ा, शोनीज़, (कलौंजी), मिश्कतरामशीश्र, अर्क़ ऊद, फावानिया, मीठा कुट, किर्दमाना, अनमोदा, काकनज, गुल खैरू, गुल टेसू, मज़ंजोश. मिश्रह साइला(शिलारस), नमाम तथा अजवायन, तज, हरमल, शोरा, फरासियून, ऊद, तगर, केशर, ज़ूफ़ा ख़ुश्क, दौना मरुश्रा, कमाज़रियूस, बुन, बतम बीज, चने का पानी और अमलतास की छाल।

डॉक्टरी औषध—लोह के लवण (आयर्न साल्ट्स), अर्गोटा (शैलम्), अजमोदे का सत (एपिश्रोज), शुद्ध सुरा (एलकोहल), एलुश्रा (एलोज़), सुहागा (बोरेक्स), रेचन (पर्गेटिह्व्ज़), पिल्युला एलोज एट मिर्ही, पोटेसियाई परमैंगेनास, डिकॉक्टम एलोज़ कम्पोज़िटम्, रूयुटा (सुदाब), सेविना (अभल), सिमिसिफ्युगा, फेरम रिडक्टम्, कालोफाइलीन, क्वीनीन, कलेंड्युला, कैंथेरिस (तेलनीमक्खी), मैंगेनीसियाई आक्साइडम् प्रिपेयरेटम्,नर्वाइन टॉनिक्स (नाड्य बलदायक औषधें), हाइड्रास्टिस हाइड्रोक्लोराइडम् और हीमोटिनिक्स (रक्त बलदायक) औषधें।

उपयोग—जब आर्त्तव ठीक न आता हो अथवा एकदम बंद होगया हो, तब रोग के वास्तविक कारण का पता लगा उसे दूर करना चाहिए। अतएव यदि सर्दी लगने के कारण आर्त्तव आना बन्द होगया हो, तो रोगिणी को कटि पर्यंत गरम पानी में बिठाने और बच्छनाग के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। पर यदि इस रोग का कारण रक्ताल्पता (anaemia) हो, तो लोह के यौगिकों का प्रयोग अति लाभकारी होता है। और यदि मासिक विलंब से आए अथवा रुक गया हो तो, परमैंगेनेट; एलुवा वा मिर्ह के युक्तिपूर्ण प्रयोग से ठीक होजाया करता है। परंतु कभी कभी प्रबल आर्त्तव प्रवर्त्तक औषधि जैसे, अर्गट वा सेविन आदि का प्रयोग अनिवार्य होता है।

आर्त्तव-रुद्धक–वि० [सं० त्रि०] आर्त्तव आने को बंद करनेवाला (द्रव्य)। आर्त्तवावरोधक।

आर्त्तव-रोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्त्रियोंके मासिक धर्म्म का नियमानुसार न होना। यह दो प्रकारका होता है। (१) रजस्राव—जब रजोधर्म चार से अधिक दिन तक रहे अथवा महीने में एक से अधिक बार हो। (२) रजस्तंभ–जब रजोधर्म एक मास से अधिक काल पर हो-कई महीने का अंतर देकर हो।

आर्त्तवरोध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]आर्त्तवका रुकजाना। आर्त्तव क्षय। अनार्त्तव। नष्टार्त्तव। इंक़िताउत्तमूस, इह्तिबासुत्तमूस–(अ०)। एमनोरिया amenorrhoea. (अं०)।

आर्त्तव-वृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० आर्त्तव की अधिकता। अधिक ऋतुस्राव होना अर्थात् आर्त्तव का परिमाण में अधिक अथवा निश्चित काल से देर तक या अनियमित रूपसे स्रावित होना। इसे ही असृग्दर या प्रदर नाम से अभिहित करते हैं। (Menorrhagia.)

आर्त्तवक्षय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]आर्त्तवनाश। नष्टार्त्तव। मासिक स्राव की रुकावट। (Amenorrhoea.)।

आर्त्तवा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आर्त्तवमती स्त्री। ऋतुमती-नारी। रजःस्वला। A woman during mestruation.

आर्त्तवी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] घोड़ी। घोटकी। रा० नि० व० १६।

आर्त्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पीड़ा। वेदना। दर्द। रा० नि० व०। (२) क्लेश। दुःख। मनो व्यथा। यथा—

"दाहातिसारपित्तासृङ्मूर्च्छामद्यविषार्त्तिषु।"
सु०।

आर्थेक् असाफीटिडा–[अं० Arthec-assafoetida.] हींग। हिङ्गु।

आर्थो नैफ्थोल–[अं० Artho-naphthol] Alphanaphthol. यह बीटा नैफ़्थोल की तरह होता है। दे० "नैफ़्थोल"।

ऑर्थोफॉर्म–[अं० Orthoform,new] एक श्वेत स्फटिकवत् चूर्ण जो स्थानीय अवसन्नता-

जनक और पचननिवारक है। दे० "कोकी फॉलिया"।

आर्थोफॉर्म-हाइड्रो क्लोराइड–[ले० Orthoform-hydrochloride] एक औषध जो १ भाग ९ भाग जल में घुल जाती है। दे "कोकी फॉलिया"।

आर्थो-मोनो-ब्रोमो-फेनोल–[अं० Ortho-mono-bromo-phenol] एक बनफ़्शई रंग का द्रव। दे० "एसिडम् कार्बोलिकम्" या "पैरा-मोनो क्लोरो फ़ेनोल"।

आर्थोसिफन ष्टेमिनिअस–[ले० Orthosiphon-stamineous, *Benth.*] तुलसी भेद।

पर्य्याय—जावा टी (Javatea.)-अं०। कोमिस कॉट्जिङ्ग-मल०। ऑसिमम् लॉङ्गिफोलियम् (Ocimum longifolium), ऑ० ग्राण्डि फ्लोरम् (O. Grandiflorum)-ले०।

तुलसी वर्ग

(*N. O. Labiatoe*)

उत्पत्ति-स्थान—भारतवर्ष, जावा, पूर्वी द्वीप समुदाय (भारत) तथा ऑष्ट्रेलिया।

वानस्पतिक-विवरण—एक खुले शाखा युक्त चिरायु क्षुप जो १ से ३ फीट ऊँचा, किञ्चित् श्वेत लोमयुक्त या चिक्कण (लोम शून्य) होता है; प्रकाण्ड (धड़) चतुष्कोणीय; पत्र २ से ४ इंच की दूरी पर सम्मुखवर्त्ती (युग्म),पत्र डण्डी की ओर नलिकाकार न्यूनकोण में अन्त होते हैं; पत्रडंठल, अण्डाकार वा अण्डा-भालाकार, प्राय: नोकीला, १-२ इं० लम्बा, विषम दंष्ट्राकार होता है; पुष्प श्वेत वा नीलगूँ, खुला हुआ किन्तु सूक्ष्मतर आन्तिक गुच्छों में प्रत्येक गुच्छे में ४-६ की संख्या में डंठल की चारों ओर चक्र रूप में लगा होता है; पुष्प वाह्य कोष $\frac{1}{6}$ इं०, घण्टाकार, अधोमुखी होता है; पुष्पाभ्यंतर कोष-नलिका त्रिगुण लम्बी, ओष्ठ अत्यन्त प्रसरित, नलिका की अपेक्षा छोटी तथा अत्यन्त पतली होती है। परागकेशर चार, पुष्पाभ्यंतर-कोष-नलिका से द्विगुण वा त्रिगुण लम्बा होता है। गर्भ-केशर उससे भी लम्बा होता है। अस्थिकाएँ (Nutlets) चौड़ी आयताकार विचित (Rugulose) होती हैं।

रासायनिक संघटन—डॉक्टर पेरिनेली (Perinelle) के मतानुसार इस पौधे में एक द्राक्षौज (Glucoside) विद्यमान पाया गया जिसे ऑर्थोसिफोनीन (Orthosiphonin) नाम से अभिहित किया गया। इसके रवे जल में अत्यन्त विलेय, शुद्ध मद्यसार में किञ्चित् विलेय, सम्मोहनी (क्लोरोफार्म) में अत्यन्त अल्पमात्रा में विलेय और ईथर में सर्वथा अविलेय होता है।

प्रयोगांश—पत्र।

औषध-निर्माण—(१) तरल सत्व २०-३० बूँद, अति जलमिश्रित (हलका किया हुआ) दिवस में ३ से ४ बार पर्यन्त, या २४ घण्टे में लगभग २ ड्राम।

उपयोग—परागकेशर एवं गर्भकेशर के लम्बा होने के कारण मलाबारनिवासी इसे कॉमिस कॉट्जिङ्ग (मार्जार श्मश्रु) कहते हैं। जावा में यह वृक्क तथा वस्ति रोगों में अपने प्रभाव हेतु बहुत काल से प्रसिद्ध तथा उपयोग में आरहा है। डच ईस्टइण्डीज के गर्वनर जनरल युरूप निवासियों में से प्रथम थे, जिन्होंने युरूपीय फार्माकोपिआ के समग्र मूत्रल औषधि-समूह की परीक्षा करने के पश्चात् अश्मरी की अत्यन्त वेदनापूर्ण अवस्था में, उक्त औषधि के लाभदायक प्रभाव का स्वयं अनुभव कर, उसके औषधीय गुणकी ओर ध्यान आकृष्ट की। इसके पत्र का शीत कषाय उपयोग में लाया गया और एक या दो दिवस पश्चात् उसे अपने कष्ट के सुधार का अत्यन्त सन्तोषप्रद अनुभव हुआ। मूत्र जो बहुत काल से अस्वच्छ एवं गाढ़ा आता था वह स्वच्छ हो गया, वृक्कशूल लुप्त प्राय हुआ और बुद्धिमत्तापूर्वक चिरकालीन औषध उपयोग के पश्चात् उसके रोग मुक्त हो जाने का अनुमान किया जा सकता था। उनकी आज्ञानुसार वह हालैण्ड के द्रव्यगुणशास्त्र (Materia medica)में प्रविष्ट कर लिया गया।

डॉक्टर सी० एल वान डेर बर्ग जो "दी फ़िज़िशन इन ईष्ट इण्डिया" के लेखक हैं और बटेविया तथा जावा में बहुवर्षीय चिकित्सक रह चुके हैं, उक्त पौधेके मूत्रल विशेषतया अश्मरी में, इसके लाभदायक प्रभाव, पुरातन वस्तिप्रदाह तथा वृक्कपूयस्राव में इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं।

आर्थ्रोक्नेमम-इण्डिकम्–[ले० arthrocnamum Indicum, *Maq.*] जादु पालङ्ग-बं०। उमारी-ता०। कोय पिप्पली–ते०। मघोल-बम्ब। सुभर।

आर्द–[फ़ा०] आटा। चूर्ण। पिसान। (Flour)
वि० [सं० त्रि०] सम्यक् पीड़क। पुरदर्द। दुःखदाई।

आर्द कुनार–[फ़ा०] बेर का आटा। बैरचूर। बैरचुन।

आर्दंज–[फ़ा०] तेन्दू। साज।

आर्द-तोलः–[फ़ा०] हरीरे वा काची जैसी एक प्रकार की आश जिसे यतिगण आटे से पकाकर खाते हैं।

आर्दन थेरा वाइम्पी–[ले० Arthen thera vimpi] खीप-दिल्ली। माहुर–हिं०। चपकिया-कुमाँयू। कीप-सिंध। भोवाटू–अं०।

आर्दम, आर्दहम–[?] सूरजमुखी। आज़रयूनः।

आर्द-मैदः–[फ़ा०] मैदा। बारीक आटा। महीन आटा।

आर्द-सबूसदार–[फ़ा०] बिना छाना हुआ आटा। तुष युक्त आटा।

आर्दहम–[?] आज़रयूनः। सूरजमुखी।

आर्दोज–[यु०] हाऊबेर। अभल का वृक्ष। (Juniperus communis.)

आर्द्र—वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा आर्द्रता] (१) हरा। ताज़ा। नूतन। (२) सजल वस्तु। क्लिन्न। भींगा। भींजा। ओदा। सीला। गीला। तर। सना। लथ-पथ। रतब, तर-अ०। Moist, dump, wet अं०। (३) सरस। (४)- काठिन्यशून्य। नर्म।

आर्द्रक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली] शृंग-वेर। अदरक। अदरख। आदी। भा० पू० १ भ०। मद व० २६ "आर्द्रकं शृङ्गवेर स्यात्" अम०।

आर्द्रकखण्ड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का आयुर्वेदीय योग।

अदरख, १ प्रस्थ (१६ पल), गाय का घृत १ कुड़व (८ पल), गाय का दूध २ प्रस्थ, मिस्री १ प्रस्थ।

प्रक्षेपार्थ द्रव्य—पीपल, पीपलामूल, मिर्च, सोंठ, चीते की जड़, बायविडङ्ग, मोथा, नागकेशर, दारचीनी, छोटी इलायची, पत्रज, कचूर प्रत्येक का चूर्ण १-१ पल। यथा-विधि पाक प्रस्तुत करें।

गुण– प्रातःकाल १ पल की मात्रा में सेवन करनेसे यह शीतपित्त, उदर्द, शीत, उत्कोष्ठ, यक्ष्मा, रक्त-पित्त, कास, श्वास, अरोचक, वात, गुल्म, उदावर्त्त, शोथ, कण्डू और कृमिरोग का नाश करता है। और उदरस्थ अग्नि की वृद्धि तथा बलवीर्य की वृद्धि करता है। वृ० यो० त०।

आर्द्रकघृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आदी के स्वरस में पकाया हुआ नया घी।

गुण—इसके पीने से मन्दाग्नि, उदररोग और सूजन दूर होती है। वंग से० सं० उदर रो० चि०।

आर्द्रक-पाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अदरखको छीलकर बारीक-बारीक टुकड़े करके लोहे या मिट्टी के पात्र में गाय के घी में यथाविधि भूनकर उसके बराबर गुड़ मिलाकर मंदाग्नि से पकावें। जब पाक सिद्ध होजाय, तब ठंडा करके उसमें सोंठ, जीरा, मिर्च, नागकेशर, जावित्री, छोटी इलायची, दारचीनी, पत्रज, पीपल, धनिया, कालाजीरा, पीपलामूल और वायविडंग का चूर्ण बनाकर रक्खें।

गुण—इसे प्रतिदिन अर्द्ध पल की मात्रा से सेवन करने से श्वास, कास, अरुचि, हृद्रोग, ग्रहणी, गुल्म, शोथ और शूलका नाश होता है एवं स्मरण शक्ति की वृद्धि तथा स्वरभंग का नाश होता है।

आर्द्रक-मातुलुंगावलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का योग जो अरुचि-रोग में प्रयुक्त है।

निर्माण-क्रम—अदरख का स्वरस १ प्रस्थ, गुड़ ८ पल, बिजौरे नीबूका रस १ कुड़व(४पल)-

सबको एकत्र करके मन्दाग्नि से पकाएँ। जब पाक सिद्ध हो जाए, तब उसमें दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल, हड़, बहेड़ा, आमला, धमासा, चीते की जड़, पीपलामूल, धनियाँ, जीरा सफ़ेद, जीरा स्याह प्रत्येक का चूर्ण १-१ कर्ष मिलाकर यथाविधि रक्खें।

गुण—इसके उपयोग से अरुचि, क्षय, कामला, पांडु, सूजन, कास, श्वास, अफारा, उदररोग, गुल्म, प्लीहा और शूल का नाश होता है। वृ० नि० रत्ना०।

आर्द्रकस्वरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आदी का रस अदरक का स्वरस। आदार रस-बं०। Ginger juice (Succus Zingiber) च० द० ज्व० चि०।

इसमें पुराना गुड़ मिलाकर पीने से तथा बकरी का दूध पीने से हर प्रकार की सूजन नष्ट होती है। वृ० नि० र० शोथ।

आर्द्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वनार्द्रक। वनजा। अरण्यज आर्द्रिका। पेड। दे० "अरण्यजार्द्रक"।

आर्द्रकादि कल्क—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का अदरख-योग।

निर्माण-विध—अदरख और जवाखार का कल्क (चटनी) बनाकर किंचित् गरम करके जल के साथ पीने से अनेक देशजन्य जल-विकार नष्ट होता है। भा० म० खं० ज्वर चि०।

आर्द्रकादि-कवलग्रह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अदरख के स्वरस में सेंधानमक और सोंठ, मिर्च, पीपल मिलाकर कवल ग्रहण करें और बार-बार थूकते जाँय। इससे हृदय, मुख, क्लोम, मन्या, पार्श्व और गले आदि में लिप्त कफ निकलकर लघुता आजाती है। एवं पर्वभेद, ज्वर, मूर्छा, निद्रा, श्वास, गले, मुख और आँखों के रोग, गुरुता, जड़ता और अरुचि आदि का नाश होता है। इस प्रयोग को बलाबल विचार कर २-४ बार करना चाहिये। सन्निपात के लिये यह अत्युत्तम प्रयोग है। च० द० ज्वर० चि०।

आर्द्रकादि स्वरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अदरख का रस और सोंठ का क्वाथ अथवा त्रिफले के रस में शिलाजतु मिलाकर सेवन करने से त्रिदोषजन्य शोथ रोग की शांति होती है। औषध पच जाने पर दुग्ध-युक्त भोजन करना चाहिये। वृ० नि० र०।

आर्द्रकावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार की आयुर्वेदीय चटनी। योग निर्माण-विधि—अदरख ५० पल, गुड़ पुरातन ५० पल, धनियाँ, अजवायन, लोहभस्म, जीरा, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची और मोथा प्रत्येक का चूर्ण २-२ पल डालकर यथा-विधि पाक करें।

गुण—इसके सेवन से खाँसी, अर्श, ज्वर, पीनस, सूजन, गुल्म और क्षय रोगका नाश होता है। वै० दी० ३ वि०।

(२) आदी १ प्रस्थ (६४ तो०) लेकर उसका छिलका दूर करें। पुनः कूटकर ६४ तो० पुरातनगुड़ मिला यथा-विधि पाक करें। पुनः इसमें १ कुडव (१६ तो०) घी डालें। फिर इसमें दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, छोटी इलायची हरएक ४ तो०, त्रिकुटा ३ पल, लौंग, भारंगी, अडूसा, चिरायता, पुष्करमूल, देवदारु, असगंध, जावित्री, त्रिफला, अगर, खदिरसार, मुलहठी, प्रत्येक २-२ तो० बारीक चूर्ण कर उसमें मिलाएँ। मात्रा—१-२ तो०।

गुण—इसके सेवन से श्वास, क्षय, शोष, १० प्रकार की नपुंसकता, कफ, कोप, आमवात, मंदाग्नि उदर-ग्रह, हृदय रोग और रक्त दोषादि नष्ट होते हैं। यह अग्निकी वृद्धिकर बल-वीर्यकी वृद्धि करता है। यो० चि०।

आर्द्रकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हरी लकड़ी। हरिद्र्णदारु।

आर्द्रचरणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चिकने पैर वाली स्त्री।

आर्द्रचिक्कण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) धात्रीफल (२) श्रीफल। विल्व। रा० नि० व० २३। (३) कच्ची चिकनी सुपारी। आम चिक्कण गुवाक।

आर्द्रज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोंठ। शुण्ठी। रा० नि० व० ६।

आर्द्रकुटजावलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अतिसार में प्रयुक्त होनेवाली एक प्रकार की चटनी।

योग—हरे कुड़े की छाल १०० पल लेकर १ द्रोण जलमें पकाएँ, जब चौथाई भाग शेष रहे तब छानकर उसमें–ज़जालू, धौ के फूल, बेलगिरी, पाठा, मोचरस, मोथा और अतीस, इनमें से प्रत्येक का १-१ पल चूर्ण मिलाकर पुनः पकाएँ। जब गाढ़ा होकर करछी से लगने लगे, उतार लें।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे पानी, बकरी के दूध या चावलों के माँड़ के साथ सेवन करने से रङ्ग विरङ्गे, वेदनायुक्त और अन्य हर प्रकार के प्रवल अतिसार, रक्तप्रदर, बवासीर और प्रवाहिका का नाश होता है। वृ० नि० र० अतिसार चि०।

आर्द्रता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नमी। गीलापन। तरी। क्लेद। सील। (२) नवीनता। ताज़गी। (३) कोमलता। नर्मी।

आर्द्रत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "आर्द्रता"।

आर्द्र-दाड़िम-निर्य्यास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आर्द्र दाड़िम के फल का स्वरस। ताज़े अनार के फल का रस। सि० यो० अरोच० चि० श्री कण्ठ।

आर्द्र-मरिच–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] आम-मरिच। कच्ची मिर्च। काँचा मरिच-बं०।

गुण—कच्ची मिर्च कुछ-कुछ गरम, पाक तथा रस में मीठी, पित्त को नहीं उत्पन्न करनेवाली (अपित्तल), चरपरी, भारी और अग्निप्रदीपक, है तथा कड़वी, रुचिकारक, स्वादु एवं अत्यन्त-कफवातहरणकारक है और हृद्रोग व कृमिनाशक है। वै० निघ०।

आर्द्रमाषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बन उड़द। मसवन। बनमास। माषपर्णी। रा०नि० व० ३।

आर्द्रवटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रसिद्ध भोज्य पदार्थ। अदरक का बड़ा। आदीका बड़ा। आदा बड़ा-बं०।

इसके बनाने की रीति—मूँग की पिट्ठी की बड़ी बनाकर तेल में पकाएँ। फिर उसे हाथ से मलकर चूर्ण कर लें, उसमें भुनी हुई हींग छोटे छोटे आदी के टुकड़े, भुना हुआ जीरा, मिर्च, नींबू का रस और अजवायन ये सब युक्ति से मिलाकर फिर कढ़ाई में पकाएँ। इसके उपरान्त इसके गोले बनाकर उसके भीतर मसाला भर कर फिर उन गोलों को तेल में पकाएँ। पकने पर उसे कढ़ी में डाल दें।

गुण—ये बड़े रुचिकारक, पाचक, हलके, बलदायक, अग्नि प्रदीपक, तृप्तिकारक, पथ्य और त्रिदोषनाशक हैं। भा० पू० १ भ०।

आर्द्रवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आर्द्रवृक्षीय] सरस वृक्ष। तर दरख़्त।

आर्द्र-शाक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हरी आदी। ताज़ा अदरक। सरस आर्द्रक। रा० नि० व० ६।

आर्द्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काला अतीस। कृष्णातिविषा। (२) अगरु। (३) २७ नक्षत्रों में से छठाँ नक्षत्र। (४) आदी। अदरक। रा० नि० व० ६।

आर्द्राख्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अदरख। आदी।

आर्द्राद्रि, आर्द्राद्रिसानुजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] त्रायमाणा। (Delphinium zalil) के० दे० नि०।

आर्द्राशनि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बिजली। विद्युत्। (२) एक अस्त्र।

आर्द्रास्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आदी। अदरख। आर्द्रक।

आर्द्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटा अदरख। क्षुद्र आर्द्रक। भा० पू० १ भ०। (२) हरा धनिया। कच्चा धनियाँ। आर्द्र धनिका। काँचाधने–बं०।

गुण—"कड़ुई, मीठी, मूत्रल और पित्त उत्पन्न नहीं करती"। "आर्द्रिका भेदनी, भारी, तीक्ष्ण, गरम और दीपन है, पाक में चरपरी और मीठी, रूखी और वात-कफनाशक है।" वा० सू० ६ अ०।

आर्द्ध-मात्रिक-निरूह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] एक प्रकार की वस्ति।

योग—दशमूल का काढ़ा ३२ तो०, एरण्ड तैल ८ तो०, शहद ८ तो०, सौंफ १ तो०, सेंधानमक १ तो० इन औषधियों से तैयार की हुई निरूह वस्ति–वात-रक्त, कोढ़, खाँसी,विषम-ज्वर, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, प्लीहा, हलीमक, त्रिदोषजन्य

विकार और सान्निपातिक रोगों को शीघ्र दूर करती है। चरक सुश्रुत में अनेक प्रकार के निरूह वर्णित हैं; परन्तु वैद्यों ने इसीका व्यवहार विशेष किया है। यह आत्रेय कथित निरूह है। वंग० सं० निरूह वि०।

आर्नबीन–[फ़ा०] जंगली कन्दी। Dragon plant.

आर्नीका-मॉण्टेना–[ले० Arnica montana, *Linn.*] अद्रि ताम्रकूट। पार्वती क्षार-पत्रा। पार्वती धूम्र-पत्रा। पहाड़ी तमाकू। माउण्टेन टुबेको (Mountain to,bacco), लेपर्ड्स-बेन (Leopards·bane)-अं०। तब़्ग़ुल्-जबली, बत़्नुल जबाल। तब़्ग़ुल-जबाल, लिसानुल-ह़म्लुल्-बी, दरूनज नमीसा–अ०। तम्बाकूए-कोही, ज़ह्रे-पलङ्ग–फ़ा०। पहाड़ी-तम्बाकू, चीतेमारज़ह्र–उ०।

नॉट आफ़िशल (*Not official.*)

मिश्र वर्ग

(*N. O. Compositae*)

एक छोटा सा क्षुप जो मध्य व दक्षिणी युरोप के पर्वतीय देश तथा साइबेरिया में उत्पन्न होता है।

प्रयोगांश—इस क्षुप की ग्रंथियाँ, छोटी-छोटी जड़ें तथा कलियाँ औषध के काम आती हैं।

नोट—दे०"आर्नीकीफ्लोरीज़"।

आर्नीकी-फ्लोरीज़–[ले० Arnicae-flores] अद्रि ताम्रकूट मुकुल, पार्वतीय तमाकू की कलीहिं०। आर्निका-फ्लावर्ज़ (Arnica-flowers)। ज़हूरुत्तबग़ुल-जबली–अ०। गुल्हे तम्बाकूए-कोही–फ़ा०।

ऑफ़िशल (*Officialae.*)

मिश्र वर्ग

(*N. O. Compositae.*)

टिप्पणी—यह आर्निका मॉण्टेना(जंगलीतमाकू) की शुष्क कलिकाएँ हैं, जो औषधके काम आती हैं।

वानस्पतिक विवरण—कलियों की बालदार घुण्डियों पर १६–२० दानेदार (लोमश) पंखड़ियाँ और बहुत सी खोखली पीली पत्तियाँ (Florets) लगी होती हैं। इनके गिर्द दो पंक्तियाँ झिल्ली युक्त पत्तियों की पाई जाती हैं। फल लहरदार, पतले और लोमश होते हैं। गंध प्रिय तथा स्वाद कटु होता है।

ऑफ़िशल योग

(*Official preparations*)

टिङ्क्चूरा आर्नीकी फ्लोरम् (Tinctura arnicae florum)-ले०। टिङ्क्चर आर्निका फ्लावर्स (Tincture of arnica-flowers)-अं०। आर्द्र ताम्रकूट मुकुलासव–हिं०। सब़्ग़हे ज़हूरुत्त-ब़्ग़ुल जबली–अ०। तम्बूफ़ीन गुल्हाए तम्बाकूए कोही–फ़ा०। पहाड़ी तम्बाकू की कलियों का टिङ्क्चर–उ०।

निर्माण-विधि—आर्नीका फ्लावर्स २ आउंस, मद्यसार (४५$^0/_0$)आवश्यकतानुसार, पर्कोलेशन द्वारा एक पाइण्ट टिङ्क्चर प्रस्तुत कर लेवें।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड ड्राम (२–४ मिलिग्राम)।

आर्निका की फार्माकालॉजी अर्थात् प्रभाव

बहिः प्रभाव—आर्निकाके वाह्य प्रयोगसे त्वचा की शिराओं को गति मिलती है और यदि उसके वाष्प को उड़ने से रोका जाय तो उससे त्वचा पर प्रदाह होकर विसर्प की तरह त्वचा लाल हो जाती है और उस पर ददोड़े प्रभृति निकल आते हैं।

अन्तः प्रभाव—उड़नशील तैल की तरह यह एक उष्ण सुगंधित(Warm aromatic) औषध है। अन्नप्रणाली को उत्तेजित कर आमाशय वा आन्त्र की गतिको तीव्र करती है। अधिक मात्रा में यह सशक्त आमाशयान्त्र-क्षोभक है अर्थात् इससे रेचन व वमन होने लगते हैं। थोड़ी मात्रा में यह रक्तवाहकसंस्थान (Vascular System) और वात वा नाड़ी संस्थान (Nervous System) को परावर्तित रूप से गति देती है; परन्तु अधिक परिमाण में देने से यह उनको निर्बल करती है और इससे किसी भाँति आक्षेप एवं मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है। त्वचा और वृक्क के लिये भी यह एक असरलोत्तेजक (Remote Stimulant.) है।

आर्नीका के थेराप्युटिक्स अर्थात् उपयोग

बहिर्प्रयोग—उक्त औषध के अधिकतर लोशन रूप में ही उपयोग में लाया जाता है। अस्तु एक भाग इसके टिङ्क्चर को दस भाग पानी में मिला कर इसे ब्रूसेस (चोट खाए हुए या कुचले हुए स्थान) और स्प्रेन्स (संधि वितान, मोच खाए हुए स्थान) पर लगाने से वेदना कम हो जाती है और चोट की जगह नीली नहीं पड़ने पाती।

अन्तः प्रयोग—आन्तरिक रूप से इस औषधि का बहुत कम उपयोग करते हैं। बहुशः आनुमानिक लाभों को दृष्टि में रखकर इसको बुरे प्रकार के ज्वरों में निर्बलता हरण हेतु और मदात्यय (Delerium tremens), आमवात, पुरातन कास और प्रवाहिका प्रभृति रोगों में इसे लाभप्रद बतलाया गया है; परन्तु इसके फल सन्दिग्ध सिद्ध हुये।

इसके फूलों के टिङ्क्चर को इसकी जड़ के टिङ्क्चर की अपेक्षा श्रेष्टतर एवं प्रभावात्मक विचार किया जाता है। अस्तु, अमरीका के नवीन उपनिवेशों में इसका ही अधिकतया व्यवहार किया जाता है।

आर्नीकी-रैडिक्स-[ले० arnicae radix] पहाड़ी तम्बाकू की जड़।

आर्नीकी-रुहाइज़ोमा-[ले० Arnicae rhizoma] अद्रिताम्रकूट-मूल, पर्वतीय तमाकू की जड़-हिं०। आर्नीका रैडिक्स (arnica radix), आर्नीका रहाइजोम (arnica rhizome)-अं०। जज़्रुत्तबगुल-जबली, दरूनज नमीसा-अ०। बीख़ तम्बाकूए-कोही-फ़ा०। पहाड़ी तम्बाकू की जड़-उ०।

ऑफ़िशल (*Official*)

मिश्रवर्ग

(*N. O. Compositae*)

वानस्पतिक विवरण—यह १ से २ इंच लम्बी, $\frac{1}{6}$ से $\frac{1}{4}$ इंच मोटी वेलनाकार अर्थात् गोल और लम्बी श्याम धूसर वर्ण की खुरदरी (विषम तलीय) ग्रंथियाँ या गोल वक्र टुकड़े जिनके ऊर्ध्व भाग पर शाखाओं के चिह्न और अधः भाग की और तार जैसी बारीक छोटी-छोटी जड़ें निकली हुई होती है। गंध–विशेष प्रकार की प्रिय।

स्वाद—कटु एवं चाभक।

परीक्षा—वेलेरियन और सर्पेण्टरी की जड़ें स्वरूप में इनके समान होती हैं, किन्तु उनमें से प्रत्येक की गंध विशेष प्रकार की होती है।

रासायनिक संघटन (वा संयोगी तत्व)- इसमें (१) आर्नीसीन (arnicin) अर्थात् अद्रिताम्रकूटीन या पार्वतीय तम्बाकू सत्व, (२) इन्युलीन (Inulin), (३) उड़नशील तैल (Volatile oil) और (४) राल (Resin) ये चार अवयव होते हैं।

ऑफ़िशल योग

(*Official preparations*)

टिङ्क्चूरा अर्नीकी (Tinctura arnicœ)-ले०। टिङ्क्चर ऑफ़ आर्नीका (Tincture of arnica)-अं०। अद्रिताम्रकूटासव-हिं०। सुम्बाह् तब्बाुल् जबली-अ०। तम्बाकूफ़ीन तम्बाकूए कोही-फ़ा०।

निर्माण-क्रम—आर्निका रुहाइज़ोम का ४० नं० का चूर्ण १ आउंस, मद्यसार (७० %) यथावश्यक, चूर्ण को मद्यसार में तर करके पर्कोलेशन की विधि से १ पाइण्ट टिङ्क्चर तयार कर लेवें।

वि० दे० "आर्नीकी फ्लोरीज"।

आर्नीट्रोफी-एपोरेटिका-[ले० arnitrophe-eporetica] घी कुशी-बं०।

आर्नीसीन-[अं० arnicin] पार्वतीय तम्बाकू का सत्व। दे० "आर्नीका मॉण्टेना"।

आर्नोटा-[अं० arnotta] लटकन द्वारा प्राप्त एक प्रकार का रंग। इं० हैं० गा०।

आर्नोटा-हार्ट-लीव्हड-[अं० arnotta, heart-levead]लटकन। (Bixa orellana)।

ऑर्पिमेण्ट-[अं० orpiment] हड़ताल। हरताल।

ऑर्फोल-[अं० orphol] एक घुलनेवाला चूर्ण। दे० "बिज़मथ साल्टस्"।

आर्बोर, वाइटी-[अं० arbor,vitae] एक प्रकार का वृक्ष जिससे चन्द्रस नाम की गोंद प्राप्त

होती है। (Sandarach tree, ara tree–अं०।

आर्ब्यूटीन-[अं० Arbutin] अर्ब्यूटीन। रीछ। दाख का सत्व।

आर्मेयक-[?] बकाइन। महानिम्ब।

आर्मो-कार्पम्-सेनोआइडिस-[ले० Ormocarpumsennoides, *D. C.*] जंगली मूँग। जंगली मंगी। काटमोरङ्गी-ता०। दे० "अडवी-मूँग"।

आर्मोरेशीई रैडिक्स-[ले० Armoraciæ radix] अरण्य मूलक, जाङ्गल(वन्य)मूलक, बनमूली–हिं०। हॉर्स रैडिश रूट (Horse-radish root)-अं०। जज़्र फज्लुल्बर्री–अ०। तुर्ब दश्ती–फ़ा०। जङ्गली मूली-उ०।

ऑफ़िशल (*Official.*)

सार्षप वर्ग

(*N. O. Cruciferoe.*)

उत्पत्ति स्थान— ब्रिटेन, युरूप और उत्तरी अमरीका। इसका उत्पत्तिस्थान वस्तुत: पूर्वी युरूप है; परन्तु अब यह ब्रिटेन प्रभृति में सर्वत्र बोई जाती है। यह कॉकलिएरिया आर्मोरेशिया (Cochlearia armoracia) अर्थात् अरण्य-मूलक (हशीशतुल् मुआलिक या फ़ज्लुल्बर्री) की ताज़ी जड़ है जो कृषि किये हुए पौधों से पत्र आने से पूर्व काटकर एकत्रित करली जाती है।

वानस्पतिक विवरण—यह जड़ बेलनाकार, लम्बी और गोल, कुछ-कुछ गावदुमी (शंकाकार) होती है; जिसका ऊपर का सिरा मोटा होता है जिस पर गिरी हुई पत्तियों के चिह्न होते हैं। जड़ की मोटाई (व्यास) $\frac{1}{2}$ से १ इं० और लम्बाई १ फु० वा अधिक, वर्ण बाहर से सूक्ष्म पीताभायुक्त यां किञ्चित् भूरा; भीतर से सफ़ेदी मायल। स्वाद–उग्र। यदि इसको छीला या कुचला जाय तो इससे अत्यन्त उग्र गंध आती है।

टिप्पणी—भारतवर्ष में जिन लेखकों ने आर्मोरेशिया रैडिक्स का हिंदी नाम सहिंजने की जड़ लिखा है, वास्तव में उन्होंने भूल की है। यह सहिंजने की जड़ नहीं, प्रत्युत उसकी एक उत्तम प्रतिनिधि है अर्थात् भारतवर्ष में सहिंजने की जड़ को इसके स्थान में व्यवहार कर सकते हैं। म० अ० डा०।

रासायनिक संघटन—इस जड़ में एक ऐसा फ़र्मेण्ट (खमीरी माद्दा) पाया जाता है जो जल की उपस्थिति में एक पारद स्वभाव का तैल-ब्युटाइल सल्फ़ोसाइनाइड उत्पन्न कर देता है। गोया इसमें एक उड़नशील तैल है जो काले सरसों के तेल की तरह होता है।

परीक्षा—कभी कभी इसकी जड़ का वत्सनाभ मूल (Aconite root) से धोका हो जाता है, जो आश्चर्यजनक बात है; अस्तु यहाँ इन दोनों जड़ों के पारस्परिक भेदों का वर्णन कर दिया जाता है।

(१) हार्स-रडिशरूट (अरण्य मूलकमूल)–

आकार—यह बड़ी होती है; अस्तु इसका व्यास १ या १$\frac{1}{2}$ इंच और लम्बाई १ फुट या अधिक तथा यह बेलनाकर होती है।

वर्ण—बाहर से पीताभायुक्त और भीतर से श्वेत मज्जा युक्त।

गंध—छीलने पर तीव्र या उग्र।

स्वाद—चरपरा।

(२) वत्सनाभ मूल (Aconite root)

आकार—यह छोटी होती है, अस्तु इसका व्यास $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच और लम्बाई २ से ४ इंच तथा यह गावदुमी (शंक्वाकार) होती है।

वर्ण—बाहर से श्याम धूसरित और भीतर से सफेद श्वेतसारीय।

गंध—कुछ नहीं।

स्वाद—चर्वण करने पर चुनचुनाहट या सनसनाहट का बोध होता है।

हार्स-रैडिश के कार्य—लालावर्द्धक, उत्तेजक और मूत्रल।

आफिशल योग

Offical preparations

नाम—स्पिरिटस आर्मोरेशी कम्पोज़ीटस(Spiritus armoraciae compositus)-ले०। कम्पाउण्ड स्पिरिट आफ़ हार्स रैडिस (Compound spirit of horse-radish)-अं०। अरण्यमूलक मद्य मिश्रण-हिं०।

रूह् फ़ज्लुल्बर्री मुरक्कब अ० । मुरक्कब रूह् तुर्ब दस्ती-फ़ा० ।

निर्माण-क्रम—छिली हुई हार्स-रैडिश की जड़ ५ आउंस, कटु नागरङ्ग के शुष्क त्वक् का चूर्ण ५ आउंस, जायफल कूटा हुआ ५५ ग्रेन, मद्यसार (६० % प्रतिशत) १$\frac{1}{4}$ पाइंट, परिश्रुत जल १$\frac{1}{2}$ पाइंट-सम्पूर्ण अवयव को परस्पर योजित कर दो पाइंट द्रव परिस्रुत कर लेवें ।

मात्रा—१ से २ फ्लु० ड्रा०=(३.६ से ७.१ क्यु० सें०) ।

अरण्य मूलक (Horse-radish) के प्रभाव

वहिः प्रभाव--राई के समान हार्स रैडिश का त्वचा पर (Rubifacient) प्रभाव होता है । इससे त्वचा रक्त वर्ण की हो जाती है एवं उसके स्रावों की भी वृद्धि होती हैं, किन्तु उसके यह सब प्रभाव राई से कम होते हैं । उक्त प्रभाव हेतु यह कभी उपयोग में नहीं लाई गई ।

अन्तःप्रभाव—अरण्यमूलक(Horse radish)जब चबाया जाताहै तब लालाग्रंथियों पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है और वह इनके स्रावों को अभिवर्द्धित करता है; अस्तु यह लालास्रावक है । जब निगला जाता है तब यह आमाशयिक स्रावों को बढ़ाता है । अस्तु यह आमाशय बलप्रद है । आत्मीकृत होने के पश्चात् यह वृक्क द्वारा विसर्जित किया जाता है और भ्रमणकाल में यह उन-उन अवयवों को, जो पथ में मिलते हैं, उत्तेजना प्रदान करता है । इस कारण यह वास्तविक मूत्रल है । इसमें सूक्ष्म स्वेदक प्रभाव भी है । सर ह्विट्लॉ—

अरण्यमूलक(Horse-radish)के उपयोग—

अन्तः प्रयोग—कण्ठ शैथिल्य (Relaxed throat) में इसकी ताज़ी जड़ तथा श्याम सर्षप दोनों समान भाग के क्वाथ से गण्डूष कराना लाभप्रद होता है । जब दाँतों में पीड़ा होती हो, तथा जिह्वा एवं कपोल शिथिल पड़ गये हों, तो इसके चबाने से लाभ होता है ।

आमाशय की निर्बलता द्वारा उत्पन्न हुए अजीर्ण (Atonic dyspepsia.), पुरातन आमवात तथा जलोदर में इसके उपयोग से लाभ होता है । इसका मिश्रित मद्य एक उत्तम सुगंधित एवं वायुनिस्सारक (Carminative.) है ।

आर्ष-वि० [सं० त्रि०] (१) ऋषि संबंधी । पुराना । (२) ऋषिकृत । ऋषियों का बनाया हुआ । च० शा० ४ अ० पृ० ७२६ ।

आर्ष-चिकित्सा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऋषियों द्वारा की हुई चिकित्सा । ऋषियों की चिकित्सा की प्रणाली ।

आर्षभ-वि० [सं० त्रि०] वृष संबंधी । बैल का ।

आर्षभी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच । कपिकच्छु । कौंच । आला कुशी-बं० । (Mucuna pruriens) । रा० नि० व० ३ ।

आर्षलक्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आर्ष पुरुष के लक्षण । जो मनुष्य भजन, अध्ययन, व्रत, होम, ब्रह्मचर्य अतिथिव्रतका पालन करते हैं और मद, मान, द्वेष, राग, लोभ, मोह, लोभ, दोष रहित हों तथा प्रतिवचन, विज्ञान, उपधारण शक्ति सम्पन्न होते हैं, उनको आर्ष कहते हैं । च० शा० ४ अ० ।

आर्सासेटीन-[अं० Arsacetin] संखिया का एक यौगिक । दे० “संखिया” ।

आर्सीकोडाइल-[अं० Arsycodile] एक प्रकार का यौगिक लवण । दे० “एसिडम्-केकोडिलिकम्” ।

आर्सीनाइल-[अं० Arsinyl] अर्हेनाल (Arrhenal.) ।

आर्सीनेट-ऑफ़-आयर्न-[अं० Arsenate of Iron] हरे रंग का एक स्वादरहित चूर्ण । मल्ल लौहेत (Ferri arsenas.) । दे० “संखिया” ।

आर्सेनिअस-अन्हाइड्राइड-[ले० Arsenious anhydride] गौरी पाषाणक । आखुपाषाणक । संखियाविष । सोमलखार । दे०‘ संखिया”

आर्सेनिअस-एसिड-[अं० Arsenious acid] गौरी पाषाणक । आखुपाषाणक । संखिया विष । सोमलखार । दे० “संखिया” ।

आर्सेनिअस आयोडाइड-[अं० arsenious Iodide] मल्ल नैलिद । इसकी नारंगी के रंग की बहुत बारीक कलमें होती हैं। दे० "संखिया"

आर्सेनिआई-आयोडाइडम्-[ले० arsenii Iodidum] मल्लनैलिद । इसकी नारंगी के रंग की बहुत बारीक कलमें होती हैं। दे० "संखिया" ।

आर्सेनिआई-ब्रोमाइडम्-[ले० arsenii-bromidum] मल्ल ब्रह्मखिकम् (Bromide of arsenium,)।

पीलापन लिये सफेद रंग के बहुत बारीक रवे जो जल में घुल जाते हैं। दे० "संखिया"।

आर्सेनिक-[अं० arsenic] } संखिया ।
आर्सेनिकम्-[ले० arsenicum] } सोमल ।
मल्ल । गौरी पाषाण । आखु पाषाण । वि० दे० "संखिया" ।

आर्सेनिकल-पॉइजनिंग-[अं० arsenical poisoning] संखिया द्वारा विषाक्तता । दे० "संखिया" ।

आर्सेनिकल-पेस्ट-[अं० arsenical-paste] मल्लानुलेपन । यह दाँत बनानेवालों के काम आता है।

आर्सेनिकल सिगरेट्स-[अं० arsenical cigarettes] सोमलीय सिगरेट । दे० "संखिया"।

आर्सेनिकेलिस-एसिड-[अं०arsenicalis acid] संखिया । मल्ल । सोमलाम्ल । दे० "संखिया"।

आर्सेनियोल हीमोल-[अं० arseniol hoemol] मल्लरक्तोल । दे० "हीमोल" ।

आर्सेनो-फर्रेटोज़-[अं० arseno-ferratose] एक मुख्य तरल औषधि जिसकी प्रत्येक चाय की चम्मच की मात्रा में $\frac{3}{4}$ ग्रेन अल्ब्युमिनेट ऑफ आॅयर्न और $\frac{१}{१००}$ ग्रेन मल्ल होता है। ह्वि० मे० मे० । दे० "लोहा" ।

आर्सेनो-बेञ्जोल-[अं० arsenobenzol] सालवर्सन (Salvarsan), निओसालवर्सन (Neosalvarsan.) दे "सालवर्सन" ।

आर्समीन-संज्ञा पुं० [अं० Arsamin] सोआमीन (Soamin), एटाक्सिल (atoxyl), सोडियम एमिनोफेनिलआर्सनेट (Sodium aminophenylarsanate)। यह उपदंश दूर करने के लिए व्यवहार में आता है। १ से ३ ग्रेन की मात्रा से क्रमशः बढ़ाकर १० ग्रेन की मात्रा तक इसका त्वगन्तः अन्तःक्षेप किया जाता है। बहुत से लोग इसकी प्रशंसा करते हैं, परन्तु एतत्विषयक विस्तृत साहित्य का अनुशीलन करने पर अत्यन्त सतर्क पूर्ण व्यक्ति को भी इस बात का पूरा विश्वास हो जावेगा, कि यह एक अत्यंत भयावह एवं विषैली वस्तु है।

आर्क्ष-वि० [सं० त्रि०] भल्लूक सम्बन्धी । भालू का ।

आल-संज्ञा स्त्री० [सं० अल्=भूषित करना] (१) आचु । आच्छुक । आच्छुक (सं०)। आच्, आउ (इ) च् गाछ, आच्छु (वै०श०; मेमो०) दारुहरिद्रा (इं० मे० प्लां)-बं० ।मोरिण्डा साइट्रिफोलिया(Morinda citrifolia, *Linn.*), मोरिण्डा टिङ्क्टोरिया (Morinda tinctoria, *Roxb.*) मोरिण्डा ब्रैक्टिएटा (Morinda bracteata), मोरिण्डा लेट्रिफोलिया (Morinda letrifolia)-ले० । इण्डियन मल्बेरी (Indian Mulberry)-अं० । नून-सरम् (फा० इं०), तुन-चु (इं० मे० मे०)-ता० । मद्दी-चेट्टु, मुलङ्ग चेट्टु (इं० मे० प्लां), मुञ्ज-पवत्तरी (फा० इं० -ते० । कडप्पिलवु (इं० मे० मे०)-मल० । हलदी पौटे, तगतेमर-कना० । बरटिण्डियल (इं० मे० मे०), बरटोण्डी, आल, आल, नागकुडा (फा-इं०)-मरा० । आल (इं० मे० मे०), बरटोण्डी (मेमो०),मञ्जिष्ठा ? (इं० मे० प्लां०)-बम्ब० । माकड फल-कों० । आचू-उड़ि० । लरनोङ्ग, आसुखट-आसा० । चइली (इं० मे० प्लां०), बनकटारी-सन्ता० । आच, आइच (इं० मे० प्लां०)-म० प्र० ।

मञ्जिष्ठा वर्ग

(*N. O. Rubiaceae.*)

उत्पत्ति स्थान—यह समग्र भारतवर्ष के उष्ण प्रधान प्रदेशों में लगाया जाता वा जंगली होता है।

वानस्पतिक वर्णन—एक पौधा जिसकी खेती पहले रंग के लिए बहुत होती थी। यह प्रत्येक दूसरे वर्ष बोया जाता है और दो फुट ऊँचा होता है। इसका मूल रूप ३०-४० फुट का पूरा पेड़ होता है। इसके दो भेद हैं—एक मोटी (बड़ी) आल (Morinda tinctoria, *Roxb.*) और दूसरी छोटी आल (Morinda citrifolia, *Linn.*)। छोटी आल फ़सल के बीज से बोई जाती है। इसके पेड़ अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। पत्ती आयताण्डाकार मसृण, प्रशस्त (चमकीली), १०-१२ इंच लंबी और ४-५ इंच चौड़ी होती है, शिराएँ पांडु वर्ण की एवं भीतरी पृष्ठ पर स्पष्ट होती हैं; फूल सफ़ेद; पँखड़ी लंबी फुनेलाकार; फल आयताकार ३ इंच वा इससे अधिक लंबा, बर्द्धित रसपूर्ण पुष्पवाह्यावरणों (कटोरियों) से संघटित होता है, जिसमें १-१ बीजयुक्त गूदे के अनेक खंड होते हैं जो भली भाँति संलग्न एवं रेखाओं द्वारा ध्रुवों में विभाजित होते हैं। प्रत्येक ध्रुव पर एक-एक वृत्ताकार चिह्न होता है। यह पांडु पीताभ हरिद् वर्ण का होता है जिससे खूब पक जानेपर सड़े हुए पनीर की सी अत्यन्त दुर्गंधि आती है। बीज काला और बिहीके बीजकी तरहका होता है। मोटी आलके वृक्ष अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। इसकी पत्ती, फल, फूल छोटी आल के बहुत समान होते हैं। परंतु फल अपेक्षाकृत छोटा और पत्ती कोमल रोमावृत होती है और इसके एक भेद में तो यह सर्वथा ऊन की तरह की रोइयों से आच्छादित होती है। कोई कोई उद्भिद विद्या-विशारद इसे मोटी आल की ही जंगली जाति बतलाते हैं। मोटी आल बड़े पेड़ों के बीज से आषाढ़ में बोई जाती है। आल की जड़ की छाल ललाई लिये भूरे रंग की, लगभग मसृण होती है, जिसका स्वाद विवमिषाजनक किंचित्तिक्त होता है। लकड़ी कड़ी नारंगी-पीत वा ललाई लिए पीले रंग की होती है। तुरत की खोदी हुई जड़ की गन्ध चरपरी एवं अग्राह्य होती है। इसकी छाल और जड़ गँड़ासे से काटकर हौज़ में सड़ने के लिये डाल दी जाती है और कई दिनों में रंग तैयार होता है। बुंदेलखंड, कोटा, मालवा, बूँदी, प्रभृति, स्थानमें तथा दक्षिण भारत में इसकी खेती होती है। महिसुर की आल सर्वोत्कृष्ट होती है।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—किसी-किसी यूनानी ग्रंथ में लिखा है कि यह एक वृक्ष की जड़ है। यह पेड़ पुराना और बड़ा होता है तो उसे आछी कहते हैं और द्विवर्षीय, तृवर्षीय की जड़ को आल कहते हैं। मुहीत आजम में लिखा है कि आल मजीठ की एक जाति भी है जिसको अरबी में फ़ुव्व: कहते हैं। दाराशिकोही और मुफ़र्रिदात इमामी में आल की अरबी संज्ञा फुव्व: लिखी है। यह सर्वथा असत्य एवं भ्रामक है। आल न मजीठ की किस्म का नाम है और न वह और मजीठ एक वस्तु है, बल्कि दोनों पृथक् पृथक् द्रव्य हैं। ग़लती का कारण यह जान पड़ता है कि आल से भी कपड़े रँगे जाते हैं और मजीठ से भी।

कृषि—आल की बोआई दो प्रकार से होती है—प्रथम बीज छींटकर, द्वितीय क्यारी बनाकर बीज डाले जाते हैं। बीज छींटने के उपरांत ज़मीन को हल से जोतकर मीढ़ें बना देते हैं, जिसमें बीज मिट्टी के नीचे पड़ जाँय। १५ वा २० रोज में अंकुर निकल आते हैं, तब खेत को निराकर गोंड़ा जाता है। प्रथम वर्ष कई बार निराई और गोंड़ाई करनीपड़तीहै और जनवरीसे जूनतक गरमी के दिनों में ३-४ बार ज़मीन सींची जाती है। पहले वर्ष के उपरांत पुन: कुछ नहीं करना पड़ता। इसके तीसरे वर्ष आल फूलने फलने लगती है। चौथे वर्ष फ़रवरी और मार्च में यह खोद डाली जाती है और धूप में सूखने के लिए छोड़ दी जाती है। सूखने के उपरान्त इसे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट इन तीन श्रेणियों में बाँट लेते हैं। एक बीगहे में ४८ से ७२ मन के लगभग ताज़ी जड़ निकलती है। उपर्युक्त पौधों में से सभी नहीं काट डाले जाते, प्रत्युत कुछ बीज के लिये छोड़ दिए जाते हैं। जब ये छः वर्ष के हो जाते हैं, तब इनके फलको संगृहीत कर इनकी राशि लगा देते हैं और ऊपर से फूस आदि से ढाँक कर सड़ने के लिए छोड़ देते हैं। फिर बीज को धोकर बोने के लिए रख देते हैं। आल के

पौधे के बीच-बीच गेहूँ तथा अन्य अनाज भी बोये जाते हैं।

रासायनिक संघटन—जड़ और जड़की छाल में एक प्रकार का लाल रंग होता हैं जिसे आच्छुकीन (Morindin) कहते हैं। यह आल का रवादार सत है। फल के स्वरस में सेवाम्ल (Malic acid), नीबू का तेज़ाब (Citric acid), द्राक्षौज (Glucose), पेक्टिन (Pectin) और निर्यास होता है। पके फल में प्रचुर परिमाण में शर्करा होती है। पक्का फल मृदुरेचक है।

प्रयोगांश—पत्ती और फल।

औषध-निर्माण—यह प्राय: तेल के योगों में पड़ती है। जैसे-कंदर्पसार तैल (भैष०)आदि।

गुणधर्म तथा प्रयोग

डिमक—आच्छुक नाम से आल का प्रयोग भारतवर्ष में लाल रंग के लिए अत्यंत प्राचीन काल से होता आ रहा है। पत्ती एवं फल का औषधीय उपयोग भी बहुत प्राचीन है। अन्यच्च—

(१) सुगंधि औषधियों के साथ इसकी पत्ती को पीसकर वा क्वथित कर अतिसार और प्रवाहिका में बरता जाता है। बल्य एवं ज्वरघ्न रूप से भी इसका प्रयोग होता है।

(२) संधिशूल (Gout) निवारणार्थ एवं क्षतों को ठीक करने के लिए इसके रस (पत्ती का रस) का वाह्य प्रयोग होता है। (डूरी)

(३) फल अवरोधोद्घाटक एवं आर्त्तव प्रवर्त्तक माना जाता है। (ऐन्सली)

(४) थोड़ी राई के साथ जलाई हुई पत्तियों का काढ़ा शिश्वतिसार की उत्कृष्ट घरेलू दवा है। इं० मे० प्लां०।

(५) आल के कच्चे फलों को जलाकर उसमें लवण मिला मसूढ़ों पर लगाएँ। पिलपिले मसूढ़ों (Spongy-gum) में इसका लाभदायक उपयोग होता है। (वैट डिक्शनरी)

(६) उग्र विरेचक रूप से जड़ का प्रयोग होता है। (वैट)

(७) संकोचक रूप से मोटी आल की जड़ का आंतरिक प्रयोग होता है। (इर्विन)

(८) नादकर्णी—भारतवर्षमें इससे खाता-बही आदि पर चढ़ाने के खारुआ कपड़े रँगे जाते हैं। कहते हैं कि इससे रँगे हुए कपड़े में दीमक नहीं लगतीं।

(९) अवरोधोद्घाटक और रज: प्रवर्त्तक रूप से फल और पत्ती का प्रयोग होता है। इनका प्रयोग बल्य एवं ज्वरघ्न रूप से भी होता है।

(१०) आल के फल के रस का शर्बत बना उसका गंडूष करने से कंठक्षत में लाभ होता है। (Indian materia Medica, *P. 560-1*)

(११) कच्चे फल की कढ़ी बनाई और खाई जाती है। फा० इं० २ भ०।

आल का फल तिल्ली और अन्य आभ्यंतरिक अवयवों की रुकी हुई रतूबत को बहाता है। यह आर्त्तव का प्रवर्त्तन करता और उसकी रुकावट को मिटाता है। यह फोड़े और चाँदी को नष्ट करता है। इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से ज्वर छूटता है। बल पैदा करने के लिए इसके पत्तों को क्वथित कर पिलाना चाहिये। इसकी जड़ का काढ़ा पिलाने से दस्त आते हैं। दस्त बंद करने की दवाओं के साथ इसके पत्तों को औटाकर पिलाते हैं। इसका फल पीसकर घाव में भर दें, इससे खून आना बन्द हो जाता है। (ख० अ०)

(२) इस पौधे से बना हुआ रंग।

वि० [सं० त्रि०] अनल्प। अधिक। ज्यादा।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) हड़ताल। हरिताल। प०मु०। शाङ्ग०।'पिञ्जरं पितकं तालमालञ्च हरितालकं'। (अमर २। ९। १०४) (२) मछली वा मेंढ़क का अंडा।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक कीड़ा जो सरसोंकी फ़सल को हानि पहुँचाता है। माहो। (२) प्याज़ का हरा डंठल। (३)कद्दू। लौकी। (मालवा)

संज्ञा पुं० [सं० आर्द्र] (१) गीलापन। तरी। आर्द्रीभाव। सील। (२) आँसू। अश्रु।

संज्ञा पुं० [देश० का०] बरगद। वट।

संज्ञा पुं० [देश मालवा] मजीठ की तरह की एक लाल जड़ है।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कँटीला पौधा । स्याह काँटा । किंगरई । वि० दे० "किंगरई" ।

आल, आलक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) हरिताल । हरताल । हड़ताल । प० मु० । शार्ङ्ग० । (२) शालपर्णी विशेष ।

आल-कुशी–[बं०] केवाँच । कौंच । कपिकच्छु । (Mucuna pruriens.)

आलकुहॉल–[अं० Alcohol, सं० कोहल] मद्यसार । एलकोहल ।

आलगर्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का पानी का साँप । डेड़हा । जलसर्प । अलगर्द ।

आलगूच–[बं०] वृत्तरुहा । वृन्दाक । बाँदा । बन्दा । बंझा ।

आलङ्ग–[फ़ा०] (Sloc) इं० हैं० गा० ।

आलजिह्वा–संज्ञा स्त्री० दे० "अलिजिह्वा" ।

आलञ्ज–[फ़ा०] (Prunus spinosa) इं० हैं० गा० ।

आलतुल्लुआ़ब–[अ़०] लालाग्रंथि । ग़ुद्दहे-तहतुल्लिसान । (Salivary gland.)

आलतुल्ह़रकत–[अ०] वह मांसपेशी वा वात-तन्तु जिसके द्वारा शरीर में गति उत्पन्न होती है । गत्युत्पादक अवयव । (Locomotive organ.)

आलद–[कना०]
आलद-भरा–[कना०]
आलद-हालु–[कना०]
} बर्गद का दूध । बड़ का दूध । वटक्षीर ।

आलदूषक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का प्रतुद पक्षी । सु० सू० ४६ अ० ।

आलना–संज्ञा पुं० [सं० आलय+फ़ा० लाना] घोंसला । खोंथा ।

आलपाका–संज्ञा पुं० [अं० Alpaca] (१) एक प्रकार का ऊँट जो दक्षिण अमेरिका के पेरू प्रांत में होता है । इसका बाल लम्बा और मुलायम होता है । अलपाका । (२) अलपाका का ऊन । (३) एक प्रकारका कपड़ा । दे० "अलपाका" ।

आलपो-गाडा-पज़म–[ता०]
आलपो-गाडा-पण्डलु[ते०]
} आलू-बुख़ारा । Prunus (Prunum) स० फ़ा० इं० ।

आलफ़स्तक़-क़शर–[अ०] पिस्ते का छिलका । पिस्त वल्कल ।

आलबेरो, डेलडायवॉलो–[अं० Albero-deldiavolo] अञ्जीरे हिन्दी । हिन्दी अंजीर । फा० इं० ३ भ० ।

आलम–संज्ञा पुं० [अ० आलम्] (१) दुनिया । संसार । जगत् । (२) फ़ारसी मुहावरे में आलम का प्रयोग दशा, अवस्था, स्वरूप के अर्थ में होता है । जैसे–आलमे ख़्वाब=सुप्तावस्था । आलमेशबाब=युवावस्था ।

आलम-पाल–[ता०] बरगद का दूध । बड़का दूघ । वट-क्षीर ।

आलम-मस्ती–संज्ञा पुं० [अ०] ऐयाशी । इन्द्रियनिरति । रंगरस ।

आलम-स़ग़ीर–[अ०] आलम कबीर अर्थात् ब्रह्माण्ड का उल्टा । पिण्ड अर्थात् मनुष्य । (Microcosm.)

आलमारी–संज्ञा स्त्री० दे० "अलमारी" ।

आल-मिराव–[?] पठारी–बम्ब० ।

आलमेटीन–[अं० Allmatien] दे० "फार्मलीन" ।

आलमेरीन–[अं० Almarene] एक मिश्र औषध । दे० "गाल्थेरीई ऑलियम्" ।

आलम्ब–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अवलंब । आश्रय । सहारा । (Suspensory) । (२) आधार । (३) टेक । सहारा लेनेवाली चीज़ । (४) लंब । सीधे खड़ी लकीर । उमूद ।

वि० [सं० त्रि०] नीचे की ओर लटकनेवाली चीज़ । जो नीचे झुका हो ।

आलम्ब-कूट–संज्ञा पुं० [सं०] कपाल की पश्चात् अस्थि में महा छिद्र के इधर उधर समस्थ भाग के नीचे के पृष्ठ पर का वह उभार जो ग्रीवा के प्रथम कसेरुका के संधिप्रवर्द्धन के ऊपर टिकता है । (Occipital condyles.) ।

आलम्बन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आलम्बित आलम्बी] (१) आश्रय । सहारा । अवलम्बन । (२) आधार । बुनियाद । (३) कारण । सबब ।

आलम्ब-स्नायु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Suspensory ligament.) । स्नायु विशेष ।

आलम्बा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की झाड़ी जिसकी पत्ती ज़हरीली होती है ।

आलयः–[फ़ा०] मेढ़ा । नर भेंड़ा । पुरुष मेष ।

आलय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घर । मकान । गृह । वासस्थान । (२) स्थान ।

आलयून–[यू०] ग़ालयून ।

आलर्क–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पागल कुत्ते का ज़हर त्तिप्त कुकुर का विष । "निहन्ति विषमालर्क मेघवृन्द मिवानिलः ।" (सु०)

वि० [सं० त्रि०] त्तिप्त कुक्कुर सम्बन्धी । पागल कुत्ते का ।

आलवण–संज्ञा पुं० दे० "आलवणा" ।

आलवणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) तीव्रा नामक वृत्त । गुण—यह कफ मेद और कृमिनाशक है । (२) आल । आच्छुक ।

आलवण्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लवणरस भिन्नत्व । फीकापन । लवणशून्यत्व । अलवणता । अलवणत्व । बेनमकी । बेलज़्ज़ती ।

आलवण्य-वृत्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तीव्रा नमक वृत्त । दे० "आलवणा" ।

आलवना–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "आलवणा"।

आलवाल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कियारी । घेरा । थाला । अवाल । जलाधार । "स्यादालवालमावालमावापः" । अम० ।

आलविष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुश्रुत के अनुसार वे जंतु जिनके आर (आल) में ज़हर हो । डंक मारनेवाले जंतु, जैसे-बिच्छू, विश्वंभर (एक कृमि), राजीव, मत्स्य, उच्चिटिंग और समुद्र वृश्चिक (समुद्री बिच्छू)। सु० कल्प० ३ अ० ।

आलविषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की मकड़ी जिसका ज़हर असाध्य होता है । लूता । ज़हरीली मकड़ी । अलविषा । सु० कल्प० ८ अ० ।

आल स्पाइस–[अं० Allspice] फ़िल्फ़िलुस्सौदान । दे० "पाइमेण्टा" (Pimenta)।

आलस्पाइस-आइल–[अं० Allspice oil] रोग़न फ़िल्फिलुस्सौदान । रोगन अबाज़ीर । दे० "पाइमेण्टा" Pimenta ।

आलस्पाइस ट्री-[अं० Allspice tree] नबात फ़िल्फ़िलुस्सौदान । अबाज़ीर । (Pimenta officinalis) दे०–"पाइमेण्टा" ।

आलस्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शक्ति रहने पर भी कार्य्य करने में अनुत्साह । सुस्ती । काहिली । आलस । जैसे–"शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्म्मस्वालस्य मुच्यते ।" "आलस्यं मधुरास्यता ।"- भा० म० १ भ० उर० चि० । संस्कृत पर्य्याय–अलसता, तन्द्रा, कौसीद्य (हे०), मन्दता, कार्य्य प्रद्वेष ।

आलहे-बाज़िलः–[अ०] उदर प्रभृति कोष्ठावयवों से जल निकालने का यंत्र । मिब्ज़ल । A trocar.

आलहे-राफ़िअः–[अ०] ऊपर उठानेवाला यंत्र । ऊर्ध्वोत्थापक यंत्र । Elevator.

आलहे-शीरकश–[फ़ा०] स्तन से दूध निकालने का यंत्र । चूचुक दुग्धाहरक यंत्र । Breast-pump.

आला–[बम्ब०] आल । आच्छुक । (Morinda citrifolia.)

[ता०] (१) बर्गद । बड़ । वट । (२) अश्वत्थ । पीपल वृत्त ।

संज्ञा पुं० [अ० आलः] यंत्र । हथियार । दे० "आलः"।

वि० [अ० आ़ला] ऊँचा । अव्वल । आली ।

वि० [देश०] (१) आर्द्र । क्लिन्न । तर । गीला । (२) सपूय । पूयस्रावी । जख़्मी । पीप देनेवाला ।

आलाइश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गंदी वस्तु । मल । गलीज़ । (२) घाव का गंदा ख़ून, पीव वग़ैरह । (३) पेटके भीतर की अँतड़ी इत्यादि ।

आ़लाक़तीतस–[यू०] "ह़ज्रलब्नी" ।

आलाकुशी–[बं०] केवाँच । कौंच । कपिकच्छु ।

आलाक्त–वि० [वै० सं० त्रि०] विषाक्त । ज़हरबुझा । (ऋक् ६ । ७५ । १५) । "आलाक्ता अलेन विषेणाक्ता" । (सायण)

आलात–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अङ्गार । कोयला । अलात । रा० नि० व० २० ।(२) लकड़ी जिसका एक छोर जलता हुआ हो । जलती लुआठी । लुक ।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) इन्द्रिय व्यापार शास्त्र की परिभाषा में मुख्य मुख्य कार्य के अवयव। अंग। (Organs)। (२) शल्यशास्त्र की परिभाषा में चीरफाड़ के भिन्न भिन्न औज़ार। हथियार। (Instruments)।

आलात-कैलूसियः–[अ०] कैलूस अर्थात् आहार-रस का आचूषण करनेवाले यंत्र।

आलात-ग़िज़ा अअ्ज़ाऽ ग़िज़ा–[अ०] आहारावयव, जैसे, अन्नप्रणाली, आमाशय, आन्त्र इत्यादि। (Organs of food.)

आलात तनफ़्फ़ुस–[अ०] श्वासोच्छ्वास संस्थान। श्वास प्रश्वासावयव। अअ्ज़ाऽ तनफ़्फ़ुस। जैसे, कण्ठ, फुफ्फुस आदि। Organs of respiration.

आलात-तनासुल–[अ०] जननेंद्रियाँ। उत्पादक संस्थान। अअ्ज़ाऽतनासुल, जैसे- दोनों मुष्क, शुक्राशय, शिश्न प्रभृति। Sexual organs organs of generation.

आलात-बौल–[अ०] मूत्रावयव। मूत्र संस्थान। जैसे, वृक्कद्वय, गविनीद्वय, वस्ति, मूत्रप्रणाली। Urinary organs.

आलातहज़्म–[अ०] पाचकावयव। पोषण संस्थान। जैसे मुख, कंठ, आमाशय, आन्त्र प्रभृति। Digestive organs.

आलात-हर्क़त–[अ०] गत्युत्पादक अवयव; जैसे, मांसपेशियाँ और वाततन्तु आदि। Organs locomotion.

आलात-हिस्स–[अ०] ज्ञानेन्द्रियाँ, जैसे, चक्षु, कर्ण, नासिका (घ्राण) जिह्वा और त्वचा। Organs of senses.

आलान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) हाथी बाँधने का खूँटा वा खंभा। हला०। (२) हाथी बाँधने का रस्सा वा जंज़ीर। (३) बंधन। रस्सो। बेड़ी।

आलाप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आलापक, आलापित] (१) संगीत के सात स्वरों का साधन। तान भेद। (२) बात-चीत। कथोपकथन। संभाषण।

आलापिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लौकी की बनी हुई मुरली। मउहर।

आला बास्टेर–[जर० Alabaster] गोदन्ती हरताल। (Calcium Sulplate) इं० मे० मे०।

आलाबु, आलाबू–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लौआ। कद्दू। लौकी। श० र०।

आलाम–[अ० अलम का बहु०] (१) व्यथा। वेदना। पीड़ा। दर्द। दे० "अलम वा वज्अ़"। (२) दुःख। क्लेश।

आलाम-बाद-वलादत–[अ०] प्रसव के उपरान्त होनेवाली पीड़ा। बच्चा होने के पीछे का दर्द। ख़वालिफ़।

आला-मरम्–[ता०] (१) बर्गद। बड़। वटवृक्ष। (२) पीपल। अश्वत्थ।

आलाम-माग़िस्–[अ०] पेट की मरोड़। औदरीय आवेष्ठन।

आलाम-वज्उ़ल-मफ़ासि़ली–[अ०] } संधिवेदना।
आलाम-हिदारिय्यः–[अ०] }
आमवात। आमवात संबंधी व्यथा। Rheumatalgia.

आलायश–दे० "आलाइश"।

आलाल-मेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का प्रमेह।

आलाल मेह के लक्षण

जिसके तंतुओं के समान, पिच्छिल, लारयुक्त मूत्र आता हो उसको "आलाल मेही" कहते हैं, यह कफ दोष से होता है। च० नि० ४ अ०।

आलावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कपड़े का पंखा। वस्त्र-व्यजन। कापडेर पाखा–बं०। "आलावर्तं तु वस्त्रस्य (व्यजनम्)" हे० च० ४१२।

आलास्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घड़ियाल। नक्र। कुम्भीर। निहंग। मगरमच्छ। "नक्रः कुम्भीर आलास्यः।" हे० च०। ४। ४१२।

आलंग–संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ियों की मस्ती। कामानल। भूल। चुल।

आलि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) बिच्छू। वृश्चिक। (२) भौंरा। भिड़। भ्रमर। ततैया। मे० लद्विक। (३) भ्रमरी। (४) पंक्ति।

अवली । क़तार । (५) सेतु । पुल । बाँध । (६) रेखा । (७) सखी । सहेली । वयस्या । (८) कूलवाला ।

ऑलिएट्–[अं॰ Oleate] [बहु॰ Oleates] दे॰ "आलियेटम्" ।

ऑलिएटम–[ले॰ Oleatum] [बहु॰ Oleata] दे॰ "आलियेटम्" ।

ऑलिएटेड-मर्करी–[अं॰ Oleated-mercury] हाइड्रार्जिरम् ऑलिएटम् । (Hydrargyrum oleatum) (Mercuric oleate) दे॰ "पारा" ।

ऑलिएसीई–[ले॰ Oleaceæ] जैतून वर्ग ।

आलिकन्द–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] मालाकन्द ।

आलिगाँ–[वै॰ सं॰ स्त्री॰] एक प्रकार का सर्प ।

आलिङ्गन–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] [वि॰ आलिङ्गित, आलिङ्गी; आलिंङ्ग्य] गले से लगाना । हृदय से लगाना । परिरंभण । आश्लेष । प्रीति पूर्वक आपस में मिलना । (Embrace.) रत्ना॰ ।

नोट—यह ७ प्रकार की बहिर्रतियों में गिना गया है । जैसे–आलिंगन, चुंबन, परस, मर्दन, नख, रद-दान और अधरपान ।

आलिञ्जर–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] झंझर । घड़ा । अलिंजर । त्रिका॰ ।

आलिनी–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] दे॰ "आलिन्" ।

आलिन्–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] विच्छू । वृश्चिक ।

आलिप–वि॰ [सं॰ त्रि॰] आलेपन कर्त्ता । आलेपन कारक । तिला करनेवाला । जो चुपड़ता हो ।

आलिप्त–वि॰ [सं॰ त्रि॰] लीपा-पोता । आलेपनकृत् ।

ऑलिबेनम्–[ले॰ Olibanum] कुन्दुर । लोबान ।

आलिम–वि॰ [अ॰ आलिम] विद्वान । पंडित ।

संज्ञा पुं॰ [अ॰] विद्वान पुरुष । पढ़ा लिखा आदमी ।

आलिम बवज़ाइफ़ुल् अअ़ज़ाऽ–[अ॰] इन्द्रिय व्यापार शास्त्री । इन्द्रिय-कार्य्य विशारद । शरीर कार्य-विज्ञानवेत्ता । (Physiologist.)

आलिम बिन्नबातात्–[अ॰] वनस्पति शास्त्रज्ञ । वनस्पति शास्त्र विशारद । वनस्पति शास्त्र वेत्ता । उद्भिद विद्या विशारद । (A botanist.)

आलिम बिल्-अअ़्शाब–[अ॰] ओषधि-शास्त्र विद् । आषधि शास्त्रज्ञ । (A herbolist.)

आलिम-बिल् अमराज़–[अ॰] रोगशास्त्रज्ञ । विकृति विज्ञान विशारद । रोग शास्त्र के ज्ञाता । (Pathologist.)

आलिम-बिल्-तश्रीह–[अ॰] शल्य शास्त्री । शल्य-चिकित्सक । व्यवच्छेदक । चीर फाड़ का ज्ञाता । (Anatomist.) ।

आलिम्पना-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] तृप्ति । संतुष्टि । आसूदगी । छकाहट । त्रिका॰ ।

ऑलियम्–[ले॰ Oleum] [बहु॰ ऑलिया Olea] तेल । तैल । तैलम्–सं॰ । दे॰"तेल" ।

आलियम्-अजोवान–[ले॰ Oleum ajowan] अजवाइनका तेल । यमानी तैल । (Ptychotis-oil.) मात्रा—$\frac{1}{2}$ से ३ बूँद ।

आलियम्-अबीएटिस–[ले॰ Oleum abiates] oil of pine, oil of siberian fir. देवदार का तेल ।

आलियम्-आर्जेण्टाई–[ले॰ Oleum-argenti] दे॰ "चाँदी" ।

आलियम्-आजाडिरैक्टी–[ले॰ Oleum-azadirachtae] निम्ब तैल । नीम का तैल । फा॰ इं॰ १ भ॰ । दे॰ "नीम" ।

आलियम्-आरेन्शियाई कार्टिसिस–[ले॰ Oleum aurantii corticis] नारंगी के छिलके का तैल । oil of orange peel.

आलियम्-आर्गीमोनी–[ले॰Oleum-argemone] मरुए का तैल ।

आलियम्-आर्गेमोनिस–[ले॰ Oleum-argemones.] भड़भाड़ का तैल । फा॰ इं॰ १ भ॰ ।

आलियम् आर्सेनीसाई–[ले॰ Oleum-arsenici.] मल्ल तैल । दे॰ "संखिया" ।

आलियम्-आलिह्वी-[ले॰ Oleum-olivae] ज़ैतून का तैल । ज़ैत–अ॰ । रोग़ने ज़ैतून–फ़ा॰ । जैतू नेएणेयू–ता॰ । जैतून-नूने–ते॰ । ज़ैतून-तेल–बं॰ । Olive oil–स॰ फ़ा॰ इं॰ । मे॰ मे॰ ।

आलियम्-आलिह्वी-कम-एसिडो-आलिएको–[लें० Olium-olivae-cum-acido-oleico] ज़ैतून का तैल (Lipanin) जिसमें ५ प्रतिशत जैतूनाम्ल (Oleic acid) मिला होता है। सुगंधि के लिए इसमें थाड़ा सूक्ष्म बादाम-तैल मिलाया हुआ होता है। यह काड मत्स्य। (मछली)। (Cod-liver oil) की प्रतिनिधि है।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ ड्राम। दे० "आलियम् आलिह्वी"।

आलियम्-इन्फर्नेला–[ले० oleum infernale] बाघभेरएड का तेल। कानन-एरएड तेल। फा० इं० ३ भ०।

आलियम्-एकोनाइटीनी–[शे० Oleum-aconitenae] वत्सनाभ तैल। बच्छनाग का तेल।

आलियम्-एएड्रोपोगोनिस–[ले० Oleum-andropogonis] खत्री का तैल। लामज्जक तैल। फा० इं० १ भ०।

आलियम्-एनाकार्डियाई–[ले० Oleum anacardii] काजूका तेल। (Cashew-nut-oil.) फा० इं० १ भ०।

आलियम्-एनीथाई–[ले० Oleum-anethi] सोआ का तेल। शतपुष्पा तैल। रोग़न-शिबित्त। (Oil of dill.) दे० "सोआ"।

आलियम्-एनीसाई–[ले० Oleum anisi] अनीसूँ का तेल। रोग़ने-अनीसूँ। (Oil of anise) दे० "अनीसून"।

आलियम्-एन्थिमिडिस–[ले० Oleum anthemidis] बाबूने का तेल। रोग़ने-बाबूनः। दुह्नुल्-बाबूनज। (oil of chamomile.) दे० "बाबूना"।

आलियम्-एमिग्डली–[ले०Oleumamygdale] बादाम का तेल। वाताद तैल। (Almond oil) दे० "बादाम"।

आलियम-एमिग्डली-अमारी–[ले० Oleum-amygdalae amarae.]कड़ुए बादामका तेल।

आलियम्-एमिग्डली-पीर्सक–[ले० Oleum-amygdalae-persic] ईरानी बादामकातेल। ईरानी रोग़न बादाम। दे० "बादाम"।

आलियम्-एमिग्डली-एसेंशल-पीर्सक–[Oleum-amygdalae Essential Persic] ईरानी सूक्ष्म-बादाम तैल।

आलियम्-एरेकिस–[ले० Oleum-arachis] चिनिया बादाम का तेल। (Earth-nut-oil, Arachis oil, ground-nut-oil, Pea-nut oil) दे० "मूँगफली"।

आलियम-काडमिआइ–[ले० Oleum-cadmii]

आलियम्-कार्डेमम्–[ले०Oleum-cardamum] इलायची तेल।

आलियम्-कार्डेमोमाइ–[ले० Oleum·cardamomi] इलायची का तैल। एलातैलम्-सं०। रोग़न इलायची-फ़ा०। दे० "इलायची"।

आलियम्-कालोसिन्थ–[ले० Oleum·colocynth] इन्द्रायन का तेल।

आलियम्-केजुपुटाई–[ले० Oleum-cajuputi] कयपूती का तेल। रोग़न कायापुटी–फ़ा०। (Oil of cajuput) दे० "कयपूती"।

आलियम्-केडीनम्–[ले० Oleum-cadinum] हाऊबेर का तैल। हपुष-तैल। रोग़न केड फ़ा०। दे० "हाऊबेर"। पी० वी० एम।

आलियम्-केप्सिकम्–[ले० Oleum-capsicum] लालमिर्च का तैल। सुर्ख़ मिर्च का तैल।

आलियम्-केम्फोरी–[ले० Oleum-camphorae] कपूर का तेल। कपूर-तैल। फा० इं० ३ भ०।

आलियम्-केरियो-फाइलाई–[ले०Oleum caryophylli] लौंग का तेल। रोग़ने-क़रन्फ़ल। (Oil of cloves) दे० "लौंग"।

आलियम्-केरुआई–[ले०Oleum carui]स्याह-जीरे का तैल। कृष्ण-जीरक तैलम्–सं०। रोग़ने कराविय:–फ़ा०। (Oil of caraway) दे० "कृष्णजीरक" या "कालाजीरा"।

आलियम्-केलीडोर–[ले० Oleum·calidore] केतकी का तैल। केवड़े का तैल।

आलियम्-केलोफ़ाइली–[ले० Oleum.calophylli] पुन्नाग तल। फा० इं० १ भ०।

आलियम्-केसीई–[ले० Oleum·cassiae] तज का तेल।

आलियम्·कोपाइबी–[ले॰ Oleum-copaibae] रोग़ने बलसाँ कोपाइबी। रोग़ने कोपाइबा।(Oil of copaiba) दे॰ "कोपेबा"।

आलियम्-कोरियाण्डराई–[ले॰ Oleum-coriandri] धनियाँ का तैल। धान्यक तैल। रोग़ने कश्नीज़-फ़ा॰। (Oil of coriander) दे॰ "धनियाँ"।

आलियम्-क्युकरबीटा–[ले॰ Olum cucurbita] कद्दू का तैल। रोग़न-कद्दू। दे॰ "कद्द्"।

आलियम्·क्युबेबी–[ले॰ Oleum cubebae] कबाबचीनी का तैल। रोग़ने कबाबचीनी, रोग़ने कबाबः-फ़ा। (Oil of Cubebs.) दे॰ "कबाबचीनी"।

आलियम्-क्रोटोनिस–[ले॰ Oleum-crotonis] जमालगोटे का तेल। जयपाल-तैल।(Crotn-oil) दे॰ "जमालगोटा"।

आलियम्·गर्जन–[ले॰Oleum-garjan] गर्जन का तेल। दे॰ "गर्जन";

आलियम्-गाइनो कार्डिई–[ले॰ Oleum-gynocardiae] चावल मूगरे का तेल। फा॰ इं॰ १ भ॰। दे॰ "चालमूगरा"।

आलियम्गार्सीनीई–[ले॰Oleum garcineae] कोकम का तेल। फा॰ इं॰ १ भ॰। दे॰ "कोकम्"।

आलियम्-गालथेरीई–[ले॰ Oleum gaulthe riae] गन्दपूरो का तेल। (oil of winter-green) मात्रा—५ से १५ बूँद। फा॰ इं॰ २ भ॰। पी॰ वी॰ एम।

आलियम्-गासिपिआई–[ले॰ Oleum gossypii] बिनौले का तेल। दे॰ "कपास"। फा॰ इं॰ १ भ॰।

आलियम्·ग्रेमिनिस-साइट्रेटाई–[ले॰ Oleum graminis citrati] रूसा का तेल। रोहिसे का तेल। गन्ध-तृण तैल। रोग़ने इज़्ख़िर-फ़ा॰। दे॰ "रूसा"।

आलियम्-चापायन-लीह्व–[ले॰ Oleumchapayan leave] अनन्नास का तेल। दे॰ "अनन्नास"।

आलियम्-चा(का)र्टा–[ले॰ Oleum charta] काग़ज़ का तेल।

आलियम्-चालमूग्री–[ले॰ Oleum chaulmoogree] चावलमूगरे का तेल। (Chaulmoogra oil, Gynocardi. oil.)

आलियम्-जटमांसी–[ले॰Oleum jatamansi] जटामांसी का तेल। मात्रा—२ से ६ बूँद। दे॰ "जटामांसी"।

आलियम्-जुनीपरस सेबिना–[ले॰ Oleum juniperus sabina]दे॰'आइलआफसेबिना'

आलियम्-जुनीपराई–[ले॰ Oleum juniperi] हाऊबेर का तेल। हबुषा तैल। अरअर का तेल। (oil of juniper) दे॰ "हाऊबेर"।

आलियम् जैट्रोफी–[ले॰Oleum jatrophee] व्याघ्रैरंड का तेल। वाघभेरंड का तेल। फ़िज़िकनट ऑइल। फा॰ इं॰ ३ भ॰।

आलियम्-टेरीबिन्थीनी–[ले॰ Oleum terebinthinae] तारपीन का तेल। रोग़ने तारपीन-फ़ा॰। (Oil of Turpentine) दे॰ "तारपीन"।

आलियम्-टेरीबिन्थीनी-रेक्टीफिकेटम्–[ले॰Oleum terebinthinae rectificatum.] तारपीन का शुद्ध तेल। रोग़ने तारपीन ख़ालिश। (Rectified oil of Turpentine)

आलियम्·डिप्टेरो कार्पी–[ले॰ Oleum dipterocarpi] गर्जनका तेल। फा॰ इं॰ १ भ॰।

आलियम्-डीलाइनी–[ले॰ Oleum deelinae] दे॰ "पैराफीनम् लिक्विडम् Paraffinum liquidum."

आलियम्-थिओब्रोमेटिस–[ले॰ Oleum theobromatis] थिओब्रोमा का तेल।

आलियम्·नाइग्रम–[ले॰ Oleum nigrum] मालकाँगनीका तेल। स॰ फा॰ इं॰। (Black oil) दे॰ "मालकँगनी"।

आलियम्-नाइट्रो ग्लीसरीनी–[ले॰ Oleum-nitro-glycerine] बादाम के तेलमें १ प्रतिशत नाइट्रो ग्लीसरीन मिलाकर बनाया हुआ एक तेल।

मात्रा—१ से २ बूँद मिश्री की डली वा बताशे पर डाल कर सेवन करें। दे० "ट्राई नाइट्रो ग्लीसरीन"।

आलियम्-पचौली–[ले० Oleum patchauli]

आलियम्-पाइनाई–[ले० Oleum-pini] सनोबर का तेल। रोग़ने सनोबर, रोग़ने सरो-फ़ा०। (oil of pine) दे० "सरो"।

आलियम्-पाइनी-सिल्वेष्ट्रिस–[ले० Oleum pini-sylvestris] अनन्नास का तेल। दे० "अनन्नास" (Fir-wood oil) पी० वी० एम।

आलियम्-पाइपरेटी–[ले० Oleum pipperatae] पिपरमिण्ट का तेल। दे० "पुदिना"।

आलियम्-पाइपरिस–[ले० Oleum piperis] कालीमिर्च का तेल। दे० "मिर्च"।

आलियम्-पाइमेण्टी–[ले० Oleum-pimentae] (oil of pimento) आँलस्पाइस का तेल।

आलियम्-पाइरीथ्री–[ले० oleum pyrethrae] अकरकरे का तेल। आकरकरभ तैल। दे० "अकरकरा"।

आलियम्-पार्सले–[ले० oleum parsley] अजवाइन का तेल। दे०"अजवाइन"।

आलियम् पिटोसिलीनी–[ले० Oleum pitosileni] अजवायन का तैल।

आलियम्-पिसिस्–[ले० Oleum piscis] मत्स्य तैल-सं०। मच्छी (मछली) का तेल –हिं०, द०। मचार तैल–बं०। दुह्नुस्समक–अ०। रोग़ने-माही–फ़ा०। मीन-येरणोय्–ता०। चेपनूने–ते०। मत्स्यम–नै; मीन–नै–मल०। मीनिना–यणो–कना०। मोसोलीच–तैल–मरा०। मीन–तेल, माल–तेल–सिंगा०। (Fish oil) स० फ़ा० ई०।

आलियम् फास्फोरिकम्–[ले० Oleum phosphoricum] फास्फरस का तेल। स्फुर तैलम्–सं०। रोग़ने फास्फोरस–फ़ा०। (Phosphorated oil) दे० "फास्फोरस"।

आलियम् फास्फोरेटम्–[ले०Oleum phosphoratum] फास्फरस का तेल। स्फुर तैलम्–सं०। रोग़ने फास्फोरस–फ़ा०। (Phosphorated-oil) दे० "फास्फोरस"।

आलियम् फेनिक्युलाई–[ले० oleum foeniculi] सौंफ का तेल। रोग़ने बादियान। दे० "सौंफ"।

आलियम् प्युमिलिओनिस–[ले० oleum pumilionis]

आलियम् बेज़ीई–[ले० oleum basiae]

आलियम् माइरिष्टिकी–[ले० oleum myristicae] जायफल का तेल। रोग़ने जौज़बूयः–फ़ा०। (oil of nut-meg.)। दे० "जायफल"।

आलियम् माइरिष्टीकी-एक्सप्रेसम्–[ले० oleum myristicae axpressum] दबाकर निकाला हुआ जायफल का तेल। (Expressed oil of nut-meg.) दे० "जायफल"।

आलियम् मार्जारम्–[ले० oleum marjaram] मरुआ का तेल। दे० "मरुआ"।

आलियम् मिर–[ले०oleum myrrh] बोल का तेल। दे० "बोल"।

आलियम् मेटिकी [ले० oleum maticae]

आलियम्-मेन्थी-पाइपरीटी–[ले० oleum-menthae piperatae.] पिपरमिण्ट का तैल। रोग़ने पुदीनह फ़िल्फ़िली–फ़ा०। (oil of peppermint) दे० "पुदीना"।

आलियम्-मेन्थी-विराइडिस–[ले० oleum-menthae viridis] रोग़ने-नअ़्नउ़्ल्-सुम्बुली–फ़ा०। (oil of spearnmit)-दे० "पुदीना"।

आलियम्-मेसिडिस-, मेसिस–[ले० oleum-macidis,-*Cis*] जावित्री का तैल।

आलियम्-मोरहुई–[ले० oleum-morrhuae] मत्स्य तैलम्। मछली के जिगर का तैल। रोग़ने (जिगर) माही–फ़ा०। (Cod liver oil.) दे० "मोहुई आलियम्"।

आलियम्-युकेलिप्टाई–[ले० oleum-eucalypti] युकेलिप्टस-तैल। रक्तबोल का तैल। (oil of eucalyptus) दे० "युकेलिप्टा"।

आलियम्-युलेकोन–[ले०oleum eulachon] कैण्डलफिश आइल। (Candle-fish-oil)

आलियम्-रिसाइनी-[ले० oleum recini] एरण्ड तैल। अरण्डी का तैल। रेंडी का तैल। (Castor oil) दे० "रेंड़"।

आलियम्-रोज़मेराइनी–[ले० oleum rosmarini] रोग़ने गुले–सुर्ख़बह्‌री। (oil of rosmary.) दे० "गुलाब"।

आलियम्-रोज़ी–[ले० oleum rosoe] इत्र गुलाब। गुलाब का इतर। रोग़ने गुले सुर्ख़। (oil of rose, otto of rose) दे० "गुलाब"।

आलियम्-लम्बीकोरम्–[ले० oleum lumbicorum] केचुए का तैल।

आलियम्-लाइनाइ–[ले० oleum lini] तीसीका तेल। अलसी का तेल (Linseed oil.) दे० "अतसी"।

आलियम्-लाइमोनिस–[ले० oleum limonis] नीबूका तैल। जम्भीर तैल।(oil of lemon) दे० "नीबू"।

आलियम्-लेवेण्ड्युली–[ले० oleum lavandulae] लवेण्डर का तैल। रोग़ने ख़ज़ामी। (oil of lavandula)

आलियम्-सेण्टेलाई–[ले० oleum-santali-]
आलियम्-सेण्टेलाईफ्लेवाई-[oleum-santali flavi] चन्दन तेल। चन्दन का तेल। रोग़ने सन्दल–फ़ा०। (oil of Sandal-wood.) दे० "चन्दन"।

आलियम्-से(वि)वन–[ले० oleum-savin] }
आलियम्-सेविना– [oleum-savina] }
oil of Savin-poison abortive.

आलियम्-हाइड्नो-कार्पीई–[ले० oleum-hydnocarpi] एक प्रकार के चावलमूगरे का तेल। कडुकवथच-तेल–मरा०।

आलियम्-हार्ट्स हार्न–[oleum-harts'-horn] बारहसिंगे का तेल।

आलियम्-होम एट्रोपीनी कम कोकीना–[ले० oleum homatropinae cum-cocaina] दे० "बेलाडोना"।

आलिया–[ले० olea] दे० "तेल"।

आलिया-कस्पिडेटा–[ले० olea-cuspidata, *Wall.*] जैतून–अफ़०, कन०, (हिं०)। को, कोहु, काव, कन–पं०।

आलिया-ग्लैण्डयुली-फेरा–[ले० oleum glandulifera, *Wall.*] गुलिलि, खवन, सीर, फलश–पं०। गइर, गल्दु, गईर–कुमाँ०। मे० मो०।

आलिया-डायोका–[ले० olea-dioca]

आलियाण्डर, कामन–[अं० oleander, common] कनेर, करवीर। (Nerium oleander)

आलियाण्डर,नेटेड–[अं० oleander,netted.] कारन्ता। (Nerium reticulatum, *Roxb.*)

आलियाण्डर-मेडिसिनल–[अं– oleander, medicinal] इन्द्रयव। कुर्ची। (Nerium antidysentericum, *Linn.*)

आलिया-फेरूगिनीआ–[ले olea ferruginea, *Royle.*] कुड़–हिं०। ज़ैतून–अफ़।

आलियम्-वर्गमेण्ट–[ले०] नारंगी के छिलके का तेल।

आलियम्-वेरिडिस–[ले० oleum veridis] हरे पुदीने का तेल। (oil of spearmint) दे० "पुदीना"।

आलियम्-वेरेट्रायनी–[ले० oleum-veratrinae] पताल छिक्कनी सत्व-तैल। अमरीका की नकछिकनी के सत का तेल। दे० "नकछिकनी"।

आलियम्-सक्सीनी–[ले० oleum-succinae] अम्बर का तेल।

आलियम्-सक्सीनी-आकसाइडम्–[ले० oleum succinae-oxidum] नकली कस्तूरी का तेल।

आलियम्-सासाफ्रास–[ले० oleum-sassafras] सासाफ़रास का तेल।

आलियम्-सिनी–[oleum-cinae] फा० इं० २ भ।

आलियम्-सिनेपिस वालेटाइल–[ले० oleum-sinapis volatile] उड़नशील सर्षप-तैल। राई का उड़नेवाला तेल। (Volatile oil of mustard) दे० "सरसों"।

आलियम्-सिनेरियम्–[ले० oleum-cinereum] धूसर तैलम्। रोग़ने-अश्हब (ख़ाकी)–फ़ा०। (Grey oil) दे० "पारा"।

आलियम्-सिन्नेमोमाई–[ले० oleum-cinnamomi] दालचीनी का तेल। (oil of cinnamon) दे० "दालचीनी"।

आलियम्-सिलाष्टर्स-न्यूटन्स–[oleum-celasters-nutans] माल-कँगनी का तेल।

आलियम्-सिलाष्ट्री–[oleum-celastri] माल-काँगनी का तेल। फा० इं० १ भ०।

आलियम्-सिल्ला-कम्पाउण्ड–[ले०oleum-scilla compound] जंगली प्याज़ का तेल। वन पलाण्डु मिश्र-तैल।

आलियम्-सीसेमी–[ले० oleum-sesami] तिल्ली का तेल। तिल तैल। मीठा तेल। तिल का तेल। (Sesame oil.) दे० "तिल"।

आलियम्-सेटाइह्वा–[ले० oleum-sativa]

आलियाण्डर-स्वीट सेण्टेड–[अं० oleander-sweet scented] कनेर। करवीर। करपद। ख़रज़हर:। (Nerium odorum)

आलिया-योरोपिया–[ले० olea-europaea] योरोपीय जैतून वृक्ष।

आलियाष्टर, क्लोज़–[अं० oleaster, close] गवारा। Elangus Conferta, Pro, *Lind.*] इसका फल खाया जाता हैं।

आलियिक एसिड–[अं० oleic-acid] एसिडम् आलियिकम् (Acidum oleicum) बी० पी०।

आलियेट–[अं० oleate] [बहु० आलिएटस] }
आलियेटम्–[ले०oleatum] [बहु० आलिएटा] }

आलियेटम्-अर्जेण्टाई–[ले०oleatum argenti] सामान्य आलियेट आफ सिल्वर पुरातन व्रणों (प्राचीन क्षतों) में लाभप्रद है। एक आउंस में १० से ६० ग्रेन आलियेट सम्मिलित प्रलेप कण्डू तथा विसर्प में प्रयुक्त होता है। पी० वी० एम।

आलियेएटम्आर्सेनिसाई–[ले० oleatum-arsenici] आलियेट आफ आर्सैनिक। दे० "संखिया"।

आलियेटम्-एकोनाइटीनी–[ले० oleatum-aconitinae] आलियेट आफ एकोनाइट। दे० "बच्छनाग"।

आलियेटम्-एल्युमिनिआई–[ले० oleatum-aluminii] यह अत्यन्त सशक्त सङ्कोचक है। पी० वी० एम।

आलियेटम् ऐट्रोपीनी–[ले० oleatum atropinae] आलियेट आफ एट्रोपीन। दे० "बेलाडोना"।

आलियेटम् केडमिआई–[ले० oleatum-cadmii] यह सशक्त उत्तेजक है और बढ़ी हुई ग्रंथि विशेषकर गण्डमाला तथा पुरातन ज्वलनशील विस्फोटक, (Eczema) वा प्राचीन व्रणों में लाभदायक है। पी० वी० एम।

आलियेटम्-कोकीनी–[ले०oleatum cocainae] आलियेट आफ कोकीन। दे० "कोका"।

आलियेटम्-क्युप्री–[ले० oleatum-cupri] आलियेट आफ़ कापर। यह त्वचा के पराश्रयी कीट विषयक रोगों में अत्यन्त लाभप्रद और प्रभावात्मक औषध है। पी० वी० एम। दे० "ताँबा"।

आलियेटम्-ज़िन्साई–[ले० oleatum zinci] आलियेट आफ जिंक।

आलियेटम् निकेली–[ले०oleatum-nickeli] यह संकोचक है; अस्तु प्राचीन व्रणों तथा पुरातन दाह युक्त विस्फोटक में उपयोगी है। पी० वी० एम०।

आलियेटम् लम्बाई–[ले० oleatum-plumbi] दे० "सीसा"।

आलियेटम् फेरी–[ले० oleatum-feri] वाह्यरूप से इसका उपयोग करने पर यह कम संकोचक और अक्षोभक है। गण्डमाला में कॉड मत्स्य यकृत्तैल(Cod-liver oil)के साथ व्यवहार में लानेसे लाभ करता है। पी० वी० एम०।

आलियेटम्-बिज़्म्युथाई-[ले० oleatum-bismuthi] यह स्नेहजनक, शामक और सूक्ष्म संकोचक प्रभाव करता है, तथा त्वग् क्षोभ को दूर करता है। पी० वी एम०।

आलियेटम् मैङ्गेनीशिआई-[ले० oleatum-manganesii] बाइनॉक्साइड ऑफ़ मैङ्गानीज़ (Binoxide of manganese)। इसका २० प्रतिशत का घोल रजः प्रवर्त्तक रूप से उदर पर अभ्यङ्ग करने में काम आता है। पी० वी० एम०।

आलियेटम्-स्टैनी-[ले० oleatum-stanni] ऑलियेट ऑफ टीन। इसका संकोचक प्रभाव होता है।

आलियेटम्-हाइड्रार्जिराई-[ले० oleatum-hydrargyri] पारद तथा आलीयिक एसिड का एक मिश्रण। दे० "पारा"।

आलियेटा-[ले० oleata] ऐसे मिश्रण जिनका Basis ऑलीयिक एसिड होता है। ऐसे मिश्रण की चाशनी घन वा अर्द्ध घन होती है। ब्रिटिश फार्माकोपिया में इस प्रकारका केवल यह एक ही मिश्रण है अर्थात् हाइड्रार्जिराई ऑलियास Hydrargyri oleas जिसका योग यह है—

दारचिकना (मर्क्युरिक क्लोराइड) १ आउंस, हार्ड सोप (दृढ़ साबुन) का चूर्ण २ आउंस, आलियिक एसिड १ ड्राम और उबलता हुआ परिश्रुत जल आवश्यकतानुसार। आलियिक एसिड और दृढ़ साबुन को मिलाकर जल में भली प्रकार घोलें और फिर उसमें मर्क्युरिक क्लोराइड मिला देवें।

आलियेट्स आफ अल्केलाइड्ज़-[अं० oleates of alkaloids] इनके घोल का वैसा ही प्रभाव होता है जैसा इनके अमिश्रित मूलावयव का; उस अवस्था में जबकि इसका साधारण उपयोग नहीं हो सकता अथवा जहाँ इनके स्थानिक प्रभाव की आवश्यकता होती है, ये अत्यन्त लाभदायक होते हैं। ये निम्न हैं—

१—आलियेटम् एकोनाइटीनो, शक्ति २ %
प्रभाव—वात विकार।

२—आलियेटम् ऐट्रोपीनी, शक्ति २ %
प्रभाव तथा उपयोग—अङ्गमर्दप्रशमन रूप से वेदना युक्त भाग के लिए।

३—आलियेटम् कोकीनी-शक्ति ५ %
प्रभाव—स्थानिक अवसन्नताजनक।

४—आलियेटम् मॉर्फीनी, शक्ति १० %
प्रभाव—स्थानिक अवसादक।

५—आलियेटम् क्वीनीनी, शक्ति २५ %
मोहुई तथा ओल ol के साथ इसका अन्त: तथा वहि: प्रयोग होता है।

६—आलियेटम् स्ट्रिक्नीनी, शक्ति, २ %
प्रयोग—अन्त: वा वहि:।

७—आलियेटम् वेरेट्रीन शक्ति, २ %
प्रयोग—वात वेदना में हितकर है। पी० वी० एम०।

आलियेनोडाइन-[अं० oleanodyne] आलियिक एसिड में घुला हुआ एक घोल जिसमें मार्फीन (अफीम सत्व), वेरेट्रीन (जटामांसी सत्व), ऐट्रोपीन (धत्तूरीन), एकोनाइटीन (वत्सनाभीन) आदि होते हैं। इनका स्थानीय उपयोग होता है। ह्वि० मे० मे०।

आलियोक्रीयोज़ोट-[अं० oleocreosote] एक हलके पीले रंग का तैलीय द्रव जो क्रियोज़ूटल। के समान होता है। यह क्रियोज़ूट का आलीयिक ईथर है।

मात्रा—३० बूँद। दे० "क्रियोज़ूटल"।

आलियो-क्रियोजूट-[अं० oleo-creosote] यह हलके पीले रंग का एक तैलीय द्रव जिसमें से क्रियोजूटकी सूक्ष्मसी गंध आती है। दे० "क्रियाजूटम्"।

आलयो-गम-रेज़िन्स-[अं० oleo-gum-resins] एक प्रकार का गोंद, जिसमें निर्यास, राल और उड़नशील तैल विविध मात्रा में पाए जाते हैं।

आलियोजेन्स-[अं० oleogens] दे० "मिट्टी का तेल"।

आलियो रेजिन आफ जिञ्जर-[अं० oleoresin of ginger] शुण्ठि सत्व। सोंठ का सत्व। (Gingerine) दे० "सोंठ"।

आलियो-रेजिना पाइपेरिस-[अं० oleo-resina-piperis] कालीमिर्च का राल युक्त तैल।

मात्रा–$\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती (वटिका रूप में)। दे० "मिर्च"।

आलियो रेजिना ल्युप्युलीनाई–[ले० oleoresina lupulini] हशीशतुद्दीनार का रालदारतेल। मात्रा–१ से २॥ रत्ती। दे० "हशीशतुद्दीनार"।

आलियो रेज़िन्स–[अं० aleo-resins] ज़ैतरातीनजी अर्थात् रालदार-तेल।

आलियो स्टियूरेटेड-आफ ज़िङ्क–[अं० oleo-stearated of zinc] Zinc oleostearas) ज़िन्साई आलियो स्टियरास (Zinci oleostearas.)

आलिरेसिया–[अं० oleresia] बड़ी लोनिया।

आलिवल्ला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] Lepidium sativum, *Linn.* हालिम। हालों। आशाल वीज–गु०। वै० नि० २ भ० वा० व्या० कटिवा० चि०।

आलिविरई–[ता०] चन्द्रसूर। चन्सर। हालिम–मरा०, बं०, गु०। (L. Sativum.)

आलिवेराई कार्टेक्स–[ले० oliveri cortex] oliver's bark. सासाफ्रास।

आलिश–[पं०] अकरी। कचा। (Rubus fructicosas, *Linn.*) मे० मो०।

आलिसपायिस–[अं०] दे० "ऑलस्पाइस"।

आलिह्व–[अं० olive] ज़ैतून।

आलिह्व-आइल–[अं० olive-oil] जैतून का तेल। आलिह्वी आलियम् (olivae oleum.)

आलिह्व-इण्डियन–[अं० olive-indian] आताजाम। (olea dioica) जाम-फल। इसका फल खाया जाता है।

आलिह्व-ट्री–[अं० olive-tree] जैतून का पेड़। (olea europea)

आलिह्व सॉ-लीह्वड–[अं० olive-saw leaved] जलपाई। इसका फल मुख्यकर कढ़ी और अचार प्रभृति में प्रयुक्त होता है।

आलिह्वी आलियम्–[ले० olivae-oleum] जैतून का तेल।

आली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कफोणी। कुहनी। मे० लद्विक। (२) बिच्छू। वृश्चिक। अ० टी० भ०। (३) बाँध। सेतु। पुल। शब्द र०।

संज्ञा स्त्री० [सं० आलि] (१) सखी। सजनी। सहचारिणी। सहेली। (२) पंक्ति। क़तार। [बं० उड़ीसा] एक मछली।

आलीएसीई–[ले० oleaceae] जैतून वर्ग।

आलीज़ून–[यू०] जंगली पुदीना।

आलीढ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चाट। लेहन। (२) अशित। भोजन।

वि० [सं० त्रि०] (१) आस्वादित। चाटा या खाया हुआ। (२) क्षत। चीथा हुआ।

आलीतन–[?] केतकी। केवड़ा।

आलीन–वि० [सं० त्रि०] आश्लिष्ट। पिघला वा गला हुआ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] संश्लेष।

आलीनक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] राँगा (जो अन्य धातुओं के साथ संश्लिष्ट हो जाता है)। कथील। रंग। वंग। हे० च०।

आलीशालब–[फ़ा०] एक प्रकार का पक्षी।

आलु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का कन्द जो कोंकण देश में प्रसिद्ध है। कासालु। कासालु–मरा०। (२) ज़मीकन्द। सूरन। शूरण। (३) आलू। आलुक। (४) उल्लू नामका पक्षी। पेचक। रा० नि० व० ७। (५) कोविदार। आबनूस।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटा जलपात्र। लुटिया। घंटी। झारा। कर्कटी। गलन्तिका। त्रिका०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चौघड़ा। बेड़ा। भेलक। शब्दर०। (२) मूल। जड़। त्रिका०। (३) एक प्रसिद्ध कंद जिसे गोल आलू भी कहते हैं। मे०।

नोट—आजकल आलू शब्द से केवल एक विशेष प्रकार के गोल आलू का बोध होता है। पर वैद्यक में आलु शब्द बहुत व्यापक अर्थों में लिया गया है। बहुत से ऐसे कंद हैं जिन्हें वैद्यक में 'आलु' ही कहा गया है। जैसे–

"कंदो बहुविधो लोके आलुशब्देन भण्यते।
कच्चालु चैत्र घण्टालु पिण्डालु शर्करादिकम्
काष्ठालु चैवमाद्यं स्यात् तस्य भेदा अनेकशः" ॥

वि० दे० "आलू"।

गुण—रक्त-पित्तनाशक, भारी, स्वादु, ठंडा, शुक्रजनक और स्तन्यकारक है। द्रव्याभि०।

आलुक, आलूक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] एक प्रकार का कंद शाक। आलू-कंद। बहुत प्रकार के कंदों का एक सामान्य नाम। भा० पू० १ भ। राज०। वि० दे० "आलू"।

आलुकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का रतालु। अरुवी। अरवी। अरुई।

गुण—बलकारी, चिकनी, भारी, हृदय के कफ को नष्ट करनेवाली, विष्टंभ करनेवाली और तेल में भूनी हुई अत्यन्त रुचिकारी होती है। भा० पू० १ भ०। शा० व०।

आलुकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रक्तालु भेद। घुँइँयाँ। अरुई। अरवी। भा० पू० १ भ० शा० व०। दे० "अरवी"।

आलुपका, आलुपकारा–[बर०] आलूबुख़ारा।

आलुबुखार–[मरा०] आलूबुखारा।

आलू–संज्ञा पुं० [सं० आलु] एक प्रकार का प्रसिद्ध कंद जो बहुत खाया जाता है।

पर्य्याय—आलु, आलुक, आलूक, आरु, आरुक, आलू, वीरसेन (सं०)। आलूए फ़िरंग, सेबेज़मीं (फ़ा०)। सोलेनम् (एण्टिकोरम्) ट्युबरोसम् Solanum tuberosum, (लें०)। पोटेटो Potato (अं०)। पाम्मे डी टेर्रे Pomme de terre-(फ्रा०)। कारताप्पे Kartappe (जर०)। बटाटा (मरा०, बम्ब०, कों०, कना०)। पपेटा (गु०)। उर्लै कलंगे (ता०)। उर्लै गड्डू (ते०)। तुफ़्फ़ा हुलूअर्ज़ (अ०)।

संज्ञा-निर्णायक नोट–संस्कृत 'आलु, आलुक, आलूक वा आलू" शब्द पहले कई प्रकार के कंदों के लिए व्यवहृत होते थे. विशेषकर अरुआ के लिये। कहा भी है—

"काष्ठालुकशंखालुकहस्त्यालु कानिकथ्यंते।
पिण्डालुक सप्तालुक रक्तालुकानि चोक्तानि॥"
(भा०)

अर्थात् काष्ठालुक (कठालू, काठ आलू), शंखालुक (शँखारू, शाँख आलू), हस्त्यालुक, सप्तालुक (पाठांतर से मध्वालुक), पिंडालुक (गोल आलू) और रक्तालुक (रतालू, रत्तड़ा) ये आलू के ही भेद हैं, इनके अतिरिक्त कई प्रकार के अन्य पौधे जिनका मूल कंद होता है, आलु शब्द से बोधित होते थे। अस्तु इस बात का निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि आलु शब्दका मूल अर्थ क्या था। परन्तु अधुना आलू शब्द एक विशेष प्रकार के गोल कन्द के अर्थ में, जिसका खाद्यरूपेण बहुल प्रयोग होता है, रूढ़ हो गया है। यद्यपि यह भारतीय पैदावार नहीं, तो भी अब आलू शब्द से प्रायः इसी आलू का अर्थ लिया जाता है। फ़ारसी में कुछ गोल फलों के लिए भी आलू शब्द का व्यवहार होता है; जैसे–आलूबुख़ारा, शफ़तालू, आलूचा। महाराष्ट्र और मारवाड़ी इसे "बटाटा" कहते हैं, जो अँगरेज़ी पोटेटो (Potato) शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है।

आलु वर्ग
(*N. O. Solanaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान अमेरिका है। परंतु अब भारतवर्ष में आलू की खेती चारों ओर होने लगी है और पटना, नैनीताल और चीरापूँजी इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। नैनीताल के पहाड़ी आलू बहुत बड़े-बड़े होते हैं। बंगाल में हुगली और वर्धमान ज़िला इसकी कृषि के मुख्य स्थान हैं। प्रायः जहाँ नदी का पानी सूखा, आलू बो दिया जाता है। मिट्टी रेतीली रहने से यह बहुत उपजता है, कंकड़दार ज़मीन ठीक नहीं होती। सींचने की भी अधिक आवश्यकता होती है।

आसाम की खसिया पहाड़ पर यह बहुत उपजता है। किंतु कृषिकार्य सुचारुरूप से न चलने पर सात आठ दिन में आलू सड़ जाता है।

युक्तप्रांत के नैनीताल, अलमोड़ा, पावरी, लोहूघाट, और समतल स्थान में यह बहुत होता है। पहाड़ी आलू आकार में बड़ा और स्वाद में अच्छा होता है। क्वार, कार्तिक में क्यारियों के बीच मेंड़ बनाकर आलू बोये जाते हैं जो पूस में तैयार हो जाते हैं। एक पौधे की जड़ में पावभर के लगभग आलू निकलता है।

पंजाब में बड़े-बड़े नगरों के पास इसकी कृषि होती है। मध्यदेश का आलू कुछ बिगड़ गया है। यहाँ आलू प्राय: अक्तूबर में बोया और फरवरी या मार्च में खोदा जाता है।

बंबई प्रांत में पूना, अहमदनगर, सतारा, अहमदाबाद और कैड़ा इसके बोने की प्रधान जगहे हैं। महाबालेश्वर का आलू सुप्रसिद्ध है। खानदेश का पाचोरा स्थान आलू की मंडी है।

मद्रास प्रांत के नीलगिरी पर्वत पर अच्छा आलू उपजता है। किंतु प्रतिवर्ष एक ही खेत में कृषि होने से आलू में अब रोग लग गया है।

ब्रह्मदेश में आलू कम होता है। बहुत प्रयत्न करने पर भी लोग इसकी कृषि से लाभ उठा न सके।

इतिहास—यह पौधा वास्तव में दक्षिण अमेरिका का है। आज भी चिली प्रांतमें यह आप ही आप उपजता है। लिमा और ग्रेनाडा में भी यह जंगली मिलता है। अमेरिका के आविष्कार काल में यह चिली से नव ग्रेनाडा तक बोया जाता था, किंतु दक्षिण अमेरिका के पूर्व प्रांत और मेक्सिको में इसे कोई जानता न रहा। सन् १५३५ और १५८५ ई० के मध्य युरोपनिवासी, आलू को स्पेन ले गये थे और वहीं से पुर्तगाल, इटली, फ्रांस, बेलजियम और जर्मनी में इसकी खेती का प्रसार हुआ। सन् १५८६ ई० को सर वाल्टर राले ने कारोलिना से स्वतंत्र भाव में आलू आयरलैंड पहुँचाया था। पहले इंगलैंड, स्कॉटलैंड और फ्रांसके लोग कुसंस्कार से आलू बोते न रहे। इसके साथ उन्हें विषवृक्ष उत्पन्न होने का ध्यान था। सन् १७२८ ई० को स्काटलैंड-निवासी टमास् प्रेंटिस नामक किसी व्यक्ति ने पहले-पहल आलू बोया। इसकेउपरांत क्रमशः यह अफ़रीका, एशिया और आस्ट्रेलिया में चल निकला। (हिं० वि० को) भारतवर्ष में इसका उल्लेख सबसे पहले उस भोज के विवरण में आता है, जो सन् १६१५ ई० में सर टामस रो को आसफ़खाँ की ओरसे अजमेरमें दिया गया था। जब पहले-पहल आलू भारतवर्ष में आया था, तब हिंदू उसे नहीं खाते थे, केवल मुसलमान और अँगरेज़ ही खाते थे। पर धीरे-धीरे इसका प्रचार खूब हुआ और अब हिंदू व्रत के दिनों में भी इसे खाते हैं। अब यह सारे भारतवर्ष में बोया जाता है और खूब होता है।

यूनानी निघंटुकारों के अनुसार भी यह अँगरेजों वा फिरंगियों द्वारा भारतवर्ष में आया। इसी से इसका फ़ारसी नाम "आलूए फिरंग" पड़ा। दे० "मुहीत आज़म" वा "तालीफ़ शरीफ़ी" व "खज़ाइनुल् अद्वियः" प्रभृति।

भेद—आलू दो तरह के होते हैं लाल और सफ़ेद। इसके देशी और पहाड़ी भेद भी होते हैं। इनके अतिरिक्त एक प्रकार का आलू और होता है जिसे भारतवर्ष के इटावा आदि के समीपवर्ती स्थानों में हम लोगों ने जंगली पाया। वहाँ के लोग इसे "बनआलू" कहते हैं। यही राजनिघंटूक्त "पानीयालु" है। वि० दे० "बन आलू"।

राजनिघंटु (मूलकादि सप्तम वर्ग) में इन कंदों को भी आलू ही लिखा है—मुखालु, पिण्डालु (कंदग्रंथी), रक्तपिण्डालु, कासालु, फोण्डालु (लोहितालु), पानीयालु (जलालु), नीलालु और शुभ्रालु।

वानस्पतिक वर्णन—बहुत प्रसिद्ध होने से नहीं दिया गया।

रासायनिक संघटन—आलू में नत्रजनीय पदार्थ, वसा, कर्बोज (Carbohydrates), राख और जल आदि होते हैं। आलू का नत्रजन सर्वथा वास्तविक एल्ब्युमिनॉइड्स वा प्रोटीन के रूप में नहीं, प्रत्युत लगभग अर्द्धांश वास्तविक एल्ब्युमिनॉइड रूपमें और शेषार्द्ध एमिडो-मिश्रण रूप में, जिसमें मुख्यत: एस्पैरागीन होता है, पाया जाता है। अनलब्युमिनीय नत्रजनीय पदार्थ एस्पैरागीनवत् कंद के मूल अवयवी हैं। वास्तविक एल्ब्युमिनॉइड्स वा प्रोटीन् ट्युबरीन (Tuberin) कहलाते हैं। ट्युबरीन में १६-२४ प्रतिशत नत्रजन होता है। आलू के कतिपय अवयवी कंद स्थित जल के घोलमें रह जाते हैं। आलू स्वरस एक प्रकार के गहरे रंग का द्रव है जो अम्लवत् (तेज़ाबी) स्वभाव रखता है। निंबु-

काम्ल (Citric acid), अम्लिकाम्ल (Tartaric acid) और (Succinic acid) पर ही इसकी अम्लता निर्भर करती है। खनिज द्रव्य प्रधानतः जल विलेय पोटासियम साल्टस् के रूप में पाये जाते हैं। आलू-स्थित ऐस्पैरागीन भी जलविलेय होता है और ट्युबरीन न्यूनाधिक ठोस द्रव्यों में विलेय होता है। अनुभव से यह बात ज्ञात हुई है। कि यदि उबालने से पूर्व आलू को छील डाला जाय वा ठंडे जल में भिगो दिया जाय, तो अत्यन्त हानि घटित होती है। उक्त अवस्था में नत्रजनीय पदार्थ के ह्रास की मात्रा भिगोने के समय-विस्तार पर निर्भर करती हुई ५६ से ५८ प्रतिशत थी। आलू पकाये हुए पानी से २५ प्रतिशत एल्ब्युमिनॉइड्स और ३८ प्रतिशत खनिज द्रव्य प्राप्त हुए। जल को फेंक देने से उक्त द्रव्य साधारणतः नष्टप्राय हो जाते हैं। जब आलू को छीलकर और ठंडे पानी में भिगोकर यथासंभव शीघ्र उबलने तक गरम किया जाता है, तब उक्त ह्रास की मात्रा अत्यल्प ठहरती है अर्थात् समग्र नत्रजनीय पदार्थ का लगभग १६ प्रतिशत (जिनमें से एल्ब्युमिनाइड्स आधेसे कुछ कम) और कुल खनिज द्रव्य का लगभग १९ प्रतिशत। उबलता हुआ पानी एल्ब्युमिनॉइड्स को अविलेय बनाते हुये आलू की सतह पर जमा देता है। वे आलू के बाहरी छिद्रों को भर देते हैं और आंतरिक रसों को छीजने के अयोग्य बना देते हैं। यद्यपि इसके पूर्व लवण एवं खनिज द्रव्य काफी परिमाण में निकल चुके होते हैं। आलू में काफी परिमाण में लोहा होता है, पर किंचिन्मात्र कोषस्थ रस में घुलित होकर रह जाता है। क्योंकि उबालनेसे वह लगभग संपूर्ण तलस्थायी हो जाता है। (The Indian materia medica K. M. nadkarni, p. 809-10)

प्रयोगांश—कंद (आलू) विशेषतः खाद्यौषध, पत्ती, बीज, पुष्प।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

आलू मलमूत्रनिःस्सारक, रूक्ष, दुर्जर, रक्तपित्तनाशक, बातकफनाशक(पाठांतर से-वातकफकारक), बलकारक, वीर्य्यवर्द्धक (वृष्य) और स्तन्यवर्द्धक (पाठांतर से किंचिदग्निकारक) है। भा० पू० १ भ०।

सब जाति के आलू (आलूक) शीतल, विष्टम्भी, मधुर और भारी होते हैं। राज०।

आलू (आलु) रक्तपित्तनाशक, भारी, स्वादु, शीतल, शुक्रवर्द्धक और स्तन्यजनक है। द्रव्याभि०। ज़ख़ीरा अकबरशाही में भी शीतल एवं रूक्ष लिखा है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—सईदी का अनुसरण करते हुए मुहीत आजम में लिखा है कि यह पहली कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है।

स्वाद—फ़ीका हरायँधयुक्त।

हानिकारक—मेदे को गलीज़ करता, चिरपाकी एवं अफराजनक है।

दर्पनाशक—गरम मसाला अदरक और गोश्त।

प्रतिनिधि—अरवी वा उत्तम बंडा।

विशिष्ट गुण—शुक्रसांद्रकर्त्ता एवं कामोद्दीपक।

मात्रा—(वयस्क) १० से १२ तो० तक। (साधारण) २-३ तो० तक।

मुहम्मदशरीफखाँ लिखते हैं कि इसकी प्रकृति शीतल होती है और यह भारी, चिरपाकी, मेदे को गलीज़ (सांद्र) करनेवाला, वायुकारक, वीर्य्यवर्द्धक, शुक्रसांद्रकर्त्ता है और आध्मानकारक होने से कामोद्दीपक एवं वस्ति को बलप्रद है। (तालीफ़ शरीफ़ी)

हकीम मुहम्मद आज़मखाँ के अनुसार ज़ाहिरा इसकी प्रकृति उष्ण एवं रूक्ष मालूम होती है। इसमें सौदावियत भी है; क्योंकि इसके बहुल प्रयोग से खाज पैदा होजाती है। यह क़ाबिज़ तब़ा है। इसे प्रायः गोश्त के साथ वा अकेले पकाकर खाते हैं। अरवी की तरह इसमें पिच्छिलता (चिपचिपाहट) नहीं, प्रत्युत यह भुरभुरा होता है। यह दीर्घपाकी और कामोद्दीपक है। (मुहीत आज़म)

इसका सुरमा आँखों को शक्ति प्रदान करता और जाला काटता है। (मख़्ज़नुल् मुफ़रिदात)

यह अतिसारघ्न है और इसे जली हुई जिल्द पर लगाने से जलन कम होजाती है तथा घाव शीघ्र सूख जाता है। (बुस्तानुल् मुफ़रिदात)

अपक्व बीज एवं पत्तियों में सोलेनीन (Solanine) नामक सार होता है और अंकुरित आलूकंद तथा पुष्प विषैले होते हैं। पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हुए आलूकंद में सोलेनीन(Solanine) का अभाव होता है। अल्प परिमाण में श्वेतसार निर्माण के लिए आलू व्यवहृत होता है। महीन आटों और श्वेतसार में मिलावट करने के लिए आलूजनित श्वेतसार काम में लाया जाता है। आलू द्वारा बहुल परिमाण में व्यापारीय द्राक्षौज (Glucose) तैयार किया जाता है। बहुत सी जगहों में आलू मद्यसार तैयार करने का मुख्य साधन माना जाता है। औषध रूप से यह स्कर्वीहर (Antiscorbutic) है। वातिकाजीर्ण वा यकृदीयाजीर्ण पीड़ित व्यक्ति इसे भली भाँति पचा लेते हैं। मृदुरेचक, मूत्रप्रवर्त्तक, स्तन्यजनक तथा नाड्यवसादक रूप से और उत्तेजक स्वरूप (Gout) में इसका प्रयोग होता है।

रसक्रिया (Extract) रूप में इसकी पत्ती चिरकारी कास में आक्षेपहर रूप से व्यवहृत होती है और उसमें इसका प्रभाव अफ़ीम की तरह होता है। आग से जले हुए स्थान पर पिसे हुए आलू का पलस्तर रखने से बहुत लाभ होता है। (Indian materia medica-K. M. Nadkarni.)

औषध में आलू को सुखाकर सालबमिस्री की जगह व्यवहार करते हैं। लोग इसे अजीर्ण और वात बढ़ानेवाला समझते हैं। (हिं० वि० को०)

शिशु खाद्य रूपेण आलुकाहार—चुने हुए खूब साफ़ किए हुए आलू लेकर धो डालें। फिर इनके बारीक बारीक क़तरे काटकर इतने मंद ताप पर सुखाएँ, जो ४०° शतांश से अधिक न हो। छिलकायुक्त आलूके टुकड़ों को लेकर महीन बूककर ५०° से ५५° शतांश के उत्ताप पर, जिस पर श्वेतसार द्राक्षौज (Dextrin) में परिणत होने लगता है, धीरे-धीरे भूनते हैं। उक्त चूर्ण में खनिज द्रव्य और एलब्युमिनॉइड्स प्रभृति स्वाभाविक संघटक द्रव्य ही नहीं, प्रत्युत प्राणोज (Vitamines) भी होते हैं। मूलर (Mueller) महोदय उक्त रीति से प्रस्तुत आलुकाहार को बालकों के खाद्य रूपसे व्यवहार में लाने की शिफारिश करते हैं। क्रीम के साथ भुने आलू बालकों के लिए उत्तम खाद्य हैं।

ज़खीरा अकबरशाही में लिखा है कि यह मलावष्टम्भ उत्पन्न करता है एवं रक्त को बिगाड़ता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० आलु] छोटा जलपात्र। झारी। लुटिया। घंटी।

आलू-ए-दमिश्क़ी–[फ़ा०] आलू बुख़ारे का एक भेद (Prunus domestica) दे० "आलू-बुख़ारा"।

आलू ए-फ़िरंग–[फ़ा०] आलू। आलुक।

आलू-ए-फ़्रांसीसी–[फ़ा०] आलूबुख़ारा।

आलू-ए-बुख़ारा–[फ़ा०] आलूबुख़ारा।

आलूक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एलवालुक। (२) आलुक। आलू। रा० नि० व० ४।

आलू-का-सालन–संज्ञा पुं० आलू का यूष। आलू का झोल।

आलूगाछ–[बं०] Cassava tree–अं०। Janipha manihot, *Lind*; Jatropha manihot, *Linn*. इस देश में इसके कतिपय भेद हैं; परन्तु ब्राज़ीलियन (Brazilian) आलूगाछ से इसमें न्यून सत्त प्राप्त होता है। इं० हैं० गा०।

आलूचः–[फ़ा०] आलू-बुखारा का एक भेद। आलूचहे सुलतानी–फ़ा०। दे० "आलूचः"।

आलूचा–संज्ञा पुं०[फ़ा० आलूचः]भोटिया बादाम। गर्दालू, शनालू (हिं०)। आरुक भेद(सं०)। आलूचः, आलूचहे सुलतानी, आलू, आलूए फ़राँसीसी, आलूए दमिश्क़ी। (फ़ा०)। अदरक (अ०)। बक़ूक़, बर्क़ूक़ (मु० अ०)–अ०, शामी। ओलची, एर, अलोर (पं०)। मुहीत आज़म के अनुसार कोई कोई इसे ही

'नैशूक' कहते हैं। प्रूनस डोमेष्टिका Prunus domestica, प्रूनस आलूचा Prunus aloocha, *Roxb.* (ले०)। फ्रेंच प्लम French plum, कॉमन प्लम Common plum, प्रूञ्ज़ Prunes (अं०)।

गुलाव वर्ग

(*N. O. Rosaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—इसका वृक्ष पश्चिमी हिमालय पर गढ़वाल से काशमीर तक होता है। यह फ़ारस और अफ़गानिस्थान में भी होता है। पीले रंग का आलूचा यूरोप, सिलिशिया और आरमेनिया में तथा काकेसस पर्वत से उत्तर और दक्षिण फ्रांस में जंगली मिलता और लगाया जाता है। अलमोड़े के समीप जो वृक्ष लगता है, उसमें गहरे हरे और नारंगी रंग का फल उतरता है। इसके लेटिन नाम से ऐसा ज्ञात होता है, मानो इसका मूल उत्पत्तिस्थान दमिश्क है। समतल भूमि की अपेक्षा पर्वत-प्रांत ही इसकी वृद्धि के लिए उपयुक्त है।

वानस्पतिक-वर्णन—आलूबुख़ारे की जाति का एक वृक्ष जिसके पत्ते लम्बोतरे, अंडाकार २ इंच लंबे और १ इंच चौड़े और अनीदार होते हैं। पत्रप्रांत आरीवत् दंदानेदार होता है। पत्र महुए के पत्ते की तरह एक डंडी की चारों ओर आवर्त्त रूप में लगे होते हैं और प्रायः उसी रंग के रोओं से व्याप्त होते हैं। फल गोल गोल होता है और पंजाब इत्यादि में बहुत खाया जाता है। फल पकने पर पीला, बड़ा, रसीला और स्वाद में खटमीठा होता है। अफ़गानिस्तान में आलूचे की एक जाति होती है, जिसके सूखे हुए फल आलूबुख़ारा के नाम से भारतवर्ष में आते हैं। आलूचे के पेड़ से एक प्रकार का पीला गोंद-निकलता है और अरबी निर्यास का सा होता है। गुठलियों से तेल निकाला जाता है, जो कहीं कहीं जलाने के काम आता है। लकड़ी कुछ-कुछ लाल तथा भूरी, दानेदार और बहुत मुलायम होती है, जो थोड़े ही में मुड़ और फट जाती है।

रासायनिक संघटन— फल के गूदे में किंचित् सेवाम्ल (Malic acid), शर्करा २५%, पेक्टिन, एल्ब्युमीन और लवण होता है। बीज में एक प्रकार का स्थिर तैल, वातादीन (Amygdalin) और इमल्सीन होता है।

प्रयोगांश—फल, पत्ती, गिरी का तेल और लकड़ी इत्यादि।

औषध-निर्माण—

डाक्टरी में यह कन्फ़ेक्शियों सेन्नीमें पड़ता है।

प्रभाव—फल का गूदा मृदुरेचक, स्निग्धता-संपादक एवं पुष्टिकर है।

प्रतिनिधि—आलूबुख़ारा। दर्पघ्न-गुलकंद।

गुणधर्म तथा प्रयोग

हकीम मुहम्मद आज़म खाँ लिखते हैं कि, स्वाद में यह किंचित् अम्लता के साथ मधुर एवं अत्यंत सुस्वादु होता है। कच्चा पहली कक्षा में शीतल और पक्का द्वितीय कक्षा में शीतल होता है और यह पित्तोष्मा प्रशामक, पिपासाहर एवं प्रकृति को मृदुकर्ता, पित्तरेचक एवं वमन को दूर करनेवाला है। पक्के आलूचे का रस उष्ण कास के लिये उपकारी और यक्ष्मा के रोगी को अत्यंत लाभकारी है। इसकी पत्ती का रस उदरस्थ कृमि को निकालनेवाला है। आलूचा अफ़राजनक और मेदे के लिए अहितकारक है। (मुहीत आज़म)

अम्लाजीर्ण पीड़ित व्यक्ति को प्रातः कालीन भोजन के समय इसका खाना लाभकारी है। (नादकर्णी)

कोष्ठबद्धता निवृत्यर्थ, विशेषतः दायमी कब्ज़ में इसका पथ्यौषध रूप से प्रायः उपयोग होता है।

फल कुचलकर, शर्करा मिला घरेलू मृदुरेचक-औषध रूप से व्यवहार में आता है। (Pharmacographia.)

आलूज—[?] किसी किसी के मत में यह बच्छनाग की सी एक ओषधि है। पर दूसरों ने इसे मुख़्लसः का एक भेद माना है।

आलूदम—संज्ञा पुं० दे० "दमआलू"।

आलूबालू—संज्ञा पुं० [सं० आलु+बालू (अनु०) वा आलूबूअलीका अपभ्रंश] आलूबूअली, आलीबाली। क़रासिया—अ०। कराज़िया, क़ारासिया—रू०। चरासिया—(सक़लाब)। इब्बुल् मलूक (पश्चि०

स्पेन)। क़रासिया-(दमिश्क़)। फ़ारसा (सिरि०)। क़रूसियून, क़ुरासूस, क़ेरा (यू०)। फारसी में आलूबालूये शीरीं (मधुर आलूबालू) को कैलाश और अम्ल को आलूबूअली कहते हैं। ओलची, गिलास (इं० मे० मे०), औड़, एड़ (मे० मो०)-पं०। भोटिया-बदाम, लदाखी बदाम-अलमो०।

गुलाब वर्ग

(*N. O. Rosaceae.*)

उत्पत्तिस्थान—शीतोष्ण पश्चिमीय हिमालय, पंजाब और संयुक्तप्रांत में इसके वृक्ष जंगली होते वा लगाए जाते हैं। काश्मीर में इसकी कई जातियों के वृक्ष लगाए जाते हैं। यह उत्तरी अमरीका के वर्जीनिया नामक स्थान और संयुक्त राज्य अमरीका में भी होता है। इसकी छाल डॉक्टरी दवा में काम आती है। 'आलूबालू विलायती' शब्द में इसका पृथक् वर्णन किया जायगा।

वानस्पतिक वर्णन—आलूचे की तरह का एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी शाखाएँ फैली हुई और रंग में ललाई लिए होती हैं। पत्ते भी ललाई लिए और खूबानी के पत्तों की तरह होते हैं। इसमें सफेद फूल लगते हैं। चैत बैसाख में इसमें फूल आते हैं और जेठ में फल लगते हैं। फल छोटे अंगूर की तरह और गोल होते हैं और धागे की तरह बारीक एक वस्तु से दो-दो फल लटकते रहते हैं। प्रारंभ में इनका रंग हरा, पर बाद को लाल हो जाता है। पूर्ण परिपक्व होने पर यह मुश्की हो जाता है। इसका एक काला भेद भी है। कच्चे पर यह कसैला, किंतु पकनेपर अम्लता लिए मधुर हो जाता है। बीज चने का सा छोटा, छिलका कड़ा और गिरी एवं गूदा सफ़ेद हाता है। आलूबालू मीठा, खटमीठा, खट्टा और कसला चार प्रकार का होता है। क़रासिया शब्द का प्रयोग इसी फल के लिए होता है। इससे एक प्रकार का गोंद भी निकलता है।

प्रूनस केरासूस Prunus cerasus, *Linn.* प्रूनस स्पे० Prunus sp.-(ले०)।

नोट—क़रासिया वा क़ुरासिया शब्द जिसे तिब्बी ग्रन्थों में रूमी भाषा का शब्द लिखा है। वस्तुतः वह यूनानी भाषा का शब्द है। यूनानी में इसे क़ेरासुस (Cerasus) भी कहते हैं। फ़ारसी में इसको आलूबालू वा आलूबूअली कहते हैं।

कैलास आलूबालू का ही एक भेद है। इसका फल अपेक्षाकृत अधिक बड़ा होता है और पककर मीठा पड़ जाता है। इसी को चेरी कहते हैं। इसके पेड़ में गुलाबी फूल आते हैं। मीर हामिदी में इसी प्रकार लिखा है। उसी ग्रंथ में यह लिखा है कि चेरी काली, लाल और पीली अत्युत्तम हाती है। एक जाति का फल बहुत छोटा होता है जो पकने के बाद बिकसा रहता है। मधुर भेद को "कैलास" और खट्टी किस्मको "आलूबूअली" कहते हैं। साधारण बोल-चाल की भाषा में इसे आलूबालू कहते हैं। कदाचित् आलूबालू, आलेबाले और आलूबोले ये शब्द-त्रय 'आलूबूअली' के अपभ्रंश हैं। कोई कहते हैं कि इसे आलूबालू इसलिये कहते हैं कि यह आलूएबोख़ारा की कतिपय दो भिन्न जातियों के परस्पर मिलाने से प्राप्त हुआ है।

प्रयोगांश—छाल, फल, गिरी और गोंद।

गुणधर्म तथा प्रयोग

प्रकृति—मीठा आलूबालू दूसरे दर्जे में गरम तर है (नफ़ी०)। कोई-कोई गरम ख़ुश्क वा दूसरे दर्जे में उष्ण शीतल लिखते हैं। पक्का मीठा पहले दर्जे के अन्त में और दूसरे दर्जे के पहले उष्ण स्निग्ध है। पक्का खट-मीठा समशीतोष्ण वा दूसरे दर्जे के अन्त में शीतल और रूक्ष है। अधपका लाल एवं अम्ल दूसरे दर्जे के पहिले शीतल और रूक्ष है। कच्चा पहले दर्जे में शीतल और रूक्ष है।

हानिकर्त्ता—मीठा आलूबालू स्निग्धामाशय के लिये अत्यन्त हानिकर है और अजीर्ण पैदा करता है। दर्पनाशक—सिकंजबीन सादा वा नअ्नाई, कालीमिर्च और सेंधानमक। प्रतिनिधि-आलूबुखारा वा शफ़्तालू। विशिष्ट गुण कर्म—पित्त एवं ख़ून की गरमी, तीव्रता एवं उष्मा का नाश करता है। मात्रा-(वयस्क) गोंद एक मिस्क़ाल वा कुछ अधिक। फल ७ से ९ दाना

तक। (साधारण) गोंद २ मा० वा अधिक, फल २-३ शक्त्यनुसार।

नैर्मल्यकारित्व एवं आर्द्रता बाहुल्य के कारण यह आमाशय से बहुत शीघ्र उत्सर्जित हो जाता है और आर्द्रता बाहुल्य के कारण अजीर्ण उत्पन्न करता और आमाशय को शिथिल करता है। इसी कारण आमाशय में जिस दोष का प्राबल्य होता है, उसी की ओर यह मुस्तहील हो जाता है। क्योंकि यह अति साधारण हेतु से भी प्रभावित हो जाता है। खटमीठा आलूबालू प्रायः समशीतोष्ण है और वही खट्टा भौमतत्व के प्राबल्य के कारण शीतल एवं रूक्ष है और श्लैष्मीयामाशय को हितकारी है। क्योंकि संग्राही होने क साथ-साथ इसमें किसी भाँति शोषणकारी गुण भी है। इसलिये अपनी अम्लता के कारण यह श्लैष्मीय मलों का छेदन करता है।

कसैला आलूबालू पार्थिव तत्व की प्रचुरता के कारण स्थूल अर्थात् गुरु एवं दीर्घपाकी है। इसका गोंद फुफ्फुस-प्रणाली के खुरदुरेपन को दूर कर उसे नरम कर देता है। क्योंकि इसमें क्षोभरहित पिच्छलता होती है। शराब के साथ प्रयोजित करने से यह पथरी में लाभकारी होता है। जालीनूस के अनुसार, जैसा लोगों ने बतलाया है यदि सत्य हो, तो इसके गोंद में एक अनुपम गुण यह है कि, जब इसे शराब के साथ प्रयुक्त किया जाता है तब पथरी को लाभ पहुँचाता है। यदि इसकी यह क्रिया वास्तविक हो, तो इसका कारण यह हो सकता है कि इसमें एक सूक्ष्म शक्ति पाई जाती है। (नफ़ीसी)

मीठा ताज़ा आलूबालू फुफ्फुस और कंठ की कर्कशता को दूर करता और बदहज़मी एवं आमाशय नैर्मल्य पैदा करता है। इसीलिए भोजनोपरांत नहीं दिया जाता। यह मेदे से शीघ्र निकल जाता, विरेचन लाता एवं प्रकृतिको मृदु करता है। सूखा आलूबालू संग्राही है। खटमीठा पिपासाहर, रक्त तथा पित्त की गरमी, तीक्ष्णता, उष्मा एवं जोश को प्रशमन करता है और विवमिषा एवं पित्तजन्य छर्दि में उपकारी है। आमाशय एवं उष्ण यकृत को बलप्रद और सूखा हुआ अत्यंत संग्राही है। इसका बीज थोड़े सौंफ के साथ पीसकर पिलाना पथरी को तोड़कर निकालता और मूत्रप्रणाली के क्षतों एवं आर्त्तवप्रवर्त्तन के लिए अत्युपयोगी है। यदि इसके बीजों की गिरी पीसकर रोएँ में वा पुरानी रूई में मिला महीन बत्ती बना शिश्न की सूराख में रखें, तो ज़ख़्मों को साफ़कर उनको भर लाता है। इसका गोंद ठंडे पानी के साथ पुरानी खाँसी को दूर करता है। इसका सुरमा दृष्टि को शक्ति प्रदान करता और आँख की खाज दूर करता है। इसका प्रलेप मुखमंडल को साफ़ करता है। (मख़्ज़नुल् अद्विय:)

हकीम मुहम्मद आज़मख़ाँ ने भी थोड़े उलट फेर के साथ इसके प्रायः उपरिलिखित गुणधर्म ही लिखे हैं।

कहते हैं कि इसकी कड़ुई छाल में ज्वर नाश करने का गुण है। गिरी नाड़ी बलप्रद (Nervine tonic) है। जिन गुणों के लिए हाइड्रोस्यानिक एसिड का प्रयोग होता है, प्रायः उन्हीं गुणों के लिए इसका प्रयोग होता है। क्योंकि इसमें वह काफ़ी मात्रा में वर्तमान होता है। (वैट)

डिमक के अनुसार मुसलमान चिकित्सक इसे वातमंडल को बलप्रद और अश्मरीघ्न लिखते हैं है। (फा० इं० १ भ०) यूरोप में इसके फलों का अचार और मुरब्बा डालते हैं। बीज से शराब को स्वादिष्ट करते हैं और लकड़ी से बीन और बाँसुरी आदि बाजे बनाते हैं।

आलूबालू, विलायती–संज्ञा पुं० [देश०] आलूबालू का वह भेद जो विदेशों में होता है।

पर्य्या०—प्रूनस वर्जिनिएना Prunus verginiana., केरासूस सेरोटिना Cerasus serotina, *Loiseleur.*, प्रूनस सेरोटिना Prunus serotina, *Ehrhart.*, (ले०)। वर्जिनियन प्रून Verginian prune, वाइल्ड चेरी Wild cherry., ब्लैक चेरी Black cherry. (अं०)। क़रासिया-उल् वर्ज़ीनी (अ०)। आलूबालूए बर्ज़ीनी, आलूबालूए सहराई (फ़ा०)।

गुलाब वर्ग

(*N. O. Rosaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—यूरोप, अमेरिका का संयुक्त राज्य और वर्जीनिया (उत्तरी अमरीका)। फल भारतवर्ष में भी मिलता है।

वानस्पतिक-वर्णन—आलूबालू की तरह।

प्रयोगांश—पेड़ की छाल (औषधीय कार्य के लिए यह पतझड़ के समय संगृहीत की जाती है)। यह वृक्ष के हर भाग से ली जा सकती है; पर जड़ की छाल अधिक अच्छी ख़याल की जाती है।

पर्या०—विलायती आलूबालू की छाल। प्रूनाई वर्जीनिएनी कॉर्टेक्स Pruni virginianae cortex-(ले०)। वर्जीनियन प्रून बार्क Virginian prune bark, वाइल्ड चेरी बार्क Wildcherry bark (अं०)। क़श्रुल् क़रासियाउल् वर्जीनी (अ०)। पोस्त आलूबालूए वर्ज़ीनी, पोस्त आलूबालूए सहराई (फ़ा०)।

लक्षण—इसके वक्र वा विषम टुकड़े लगभग $\frac{1}{12}$ इंच मोटे होते हैं। नई छाल बाहर से खुरदुरी एवं ललाई लिए होती है जिसकी ऊपरी सतह भूरी और कागज़ की तरह पतली होती है और उस पर आड़ेपन में दाग़ वा चिह्न पाए जाते हैं। इसकी भीतरी सतह विदीर्ण होती है। तोड़ छोटी और दानेदार होती है। स्वाद कसैला और कडुआ, गंध मुख्यतः जल में भिगोने से कडुवे बादाम की सी होती है।

रासायनिक संघटन—इसमें एक (१) अमॉर्फस ग्ल्यूकोसाइड होता है जो लॉरोसिरेसीन के समान होता है, (२) एक एन्ज़ायम जो लगभग इमल्शन की तरह होता है। जब यह दोनों अंश पानी के साथ मिलते हैं तब वे हाइड्रोस्यानिक एसिड और कडुए बादाम के उड़नशील तैल में परिणत हो जाते हैं; (३) एक तिक्त सत्व, कषायीन (Tannin), श्वेतसार और राल (Resin) प्रभृति पदार्थ होते हैं।

औषध-निर्म्माण—ऑफ़िशल प्रिपेयरेशन Official Preparation-(१) सिरूपस प्रूनाई वर्जीनिएनी Syrupus pruni Virginianae (ले०)। सिरप ऑफ़ वर्जीनियन प्रून Syrup of Virginian Prune (अं०)। विलायती आलूबालू का शर्बत (हिं०)। शर्बत क़रासिया वर्जीनी, शर्बत आलूबालूए वर्ज़ीनी (फ़ा०)।

वर्जीनियन प्रून बार्क का २० नम्बर का चूर्ण २ आउंस साफ़ किया हुआ, शक्कर का मोटा चूर्ण १५ आउंस, ग्लीसरीन $\frac{1}{4}$ फ्लुइड आउंस, परिश्रुत वारि आवश्यकतानुसार। वर्जीनियन प्रून बार्क को परिश्रुत जल में भिगोकर बंद बरतन में २४ घंटे तक पड़ा रहने दें। फिर इसको पर्कोलेटर में जमाकर क्रमशः इतना परिश्रुत जल मिलाएँ जिसमें प्रस्तुत जल का द्रव्यमान ९ फ्लुइड आउंस हो जाय। इसके उपरांत इसमें साफ़ की हुई शक्कर घोलकर और ग्लीसरीन मिलाकर छानलें तथा छलनी में इतना परिश्रुत जल और मिलाएँ जिसमें शर्बत का द्रव्यमान एक पाइंट हो जाय।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड ड्राम=(१·८ से ३·६ घन शतांशमीटर)। सक्षोभ कास में लाभकारी है।

(२) टिंक्चूरा प्रूनाई वर्जीनिएनी Tinctura pruni virginianae (ले०)। टिंक्चर ऑफ़ वर्जीनियन प्रून Tincture of virginian prune (अं०)। विलायती आलूबालू का टिंचर (आसव)। सब्ग़ाहे क़रासिया वर्जीनी, तअफ़ीन आलूबालूए वर्ज़ीनी (अं०)।

निर्म्माण-क्रम—वर्जीनियन प्रून बार्क का २० नं० का चूर्ण ४ आउंस, एलकोहल (९०%) १२½ फ्लुइड आउंस, परिस्रुत वारि ७॥ फ्लुइड आउंस, छाल के चूर्ण को परिस्रुत जल में मिलाकर २४ घंटे तक बंद बरतन में रख दें। इसके उपरांत एलकोहल मिलाकर मेसीरेशन की रीति से टिंचर तैयार कर लें।

मात्रा—॥ से १ फ्लुइड ड्राम=(१·८ से ३·६ घन शतांश मीटर)।

अन्य औषधें

(१) फ्लुइड एक्सट्रैक्ट–मात्रा—३० से ६० विंदु (॥ से १ ड्राम) तक ।

(२) फांट-(छाल का चूर्ण ॥ आउंस, पानी १ पाइंट)–मात्रा—१॥ से ३ फ्लुइड ड्राम ।

(३)शर्बत-(छालका चूर्ण ५,ठंडा पानी १६; ४ घंटे क्वथित कर पर्कोलेट कर लें, १६ भाग पूरा कर लें, २८ भाग शक्कर सम्मिलितकर उस समय तक हिलाते रहें, जब तक घुल न जाय)–मात्रा, २ से ४ फ्लुइड ड्राम । यह कास के मिश्रणों का ग्राह्य एवं प्रभावात्मक अनुपान है ।

(४) टिंक्चर (१% से ५% तक मद्यसार)–मात्रा, २० से ६० विंदु ।

(५) प्रूनीन (रसक्रिया)–मात्रा, १ से ३ ग्रेन तक ।

गुणधर्म तथा प्रभाव

वर्जीनियन प्रून बार्क में किंचित् आमाशय बलप्रद एवं तिक्त बल्य प्रभाव विद्यमान होता है । इसके द्रव योगों में अवसादक प्रभाव होता है । क्योंकि इनके बनाने में सूक्ष्म मात्रा में हाइड्रोस्यानिक एसिड पैदा हो जाता है ।

प्रयोग

इसके शर्बत और टिंक्चर दोनों में उड़नशील तैल होता है । इसलिए स्वाद एवं सुगंधि के लिये इसे कास में प्रयुक्त मिक्सचर प्रभृति में प्रयोजित करते हैं । परंतु इन दोनों में सूक्ष्म मात्रा में हाइड्रोस्यानिक एसिड भी वर्तमान होता है । इसलिए इसका शर्बत शुष्क कास में बहुत उपयोगी होता है । यद्यपि सुस्वादु एवं अवसादक होने से इसको प्रायः कास के मिक्सचरों में डालकर दिया करते हैं, तो भी इसे एक टीस्पूनफुल की मात्रा में अकेले देने से भी, शुष्क कास में लाभ होता है । इसका टिंक्चर अजीर्ण फैटी हार्टयुक्त चिरकारी कास, हौलदिल(Palpitation) और माइट्रल रीगर्जिटेशन इत्यादि रोगों में बर्तते हैं । (हि० मे० मे०)

विलायती आलूबालू का फल वृक्ष पर सर्वोत्तम प्रभाव उत्पादित करने के लिए मूल्यवान् औषध है । ख़ूब पका होनेपर यह अत्यंत सुस्वादु एवं सुपाच्य है । इसके सूखे फलों से फ्रांस में एक प्रकारका सूप (यूष)तैयार किया जाता है,जिसे रोटी के साथ खाते हैं । शरद् ऋतु में किसानों का यह मुख्य खाद्य है । छाल में कषायिन (Tannin) होता है और यह मृदु तिक्त एवं बल्य है । (The Indian materia medica-*K. M. Nadkarni*.)

परीक्षित योग

(१)हीरोइन हाइड्रोक्लोराइड	$\frac{१}{३०}$ ग्रेन
सिरूपस प्रूनाई वर्जीनिएनी	आधा ड्राम
वाइनाई इपीकेक्वाइनी	८ बिंदु
सिरूपस टोलो-टेनी	आधा ड्राम
एक्वा डिष्टिलेटा	आधा आउंस पर्यंत

ऐसी एक-एक मात्रा दिनरात में २-३ बार दें ।

गुण—शुष्क ठसकेदार खाँसीमें लाभकारी है ।

(२) सिरूपस प्रूनाई वर्जीनियनी	आधा ड्राम
ग्लीसराइनम् हीरोइन को०	आधा ड्राम

ऐसी १–१ मात्रा आवश्यकतानुसार दें । शुष्क कष्टप्रद कास में उपयोगी है ।

आलूबु (बो)खारा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] आलूबुखारा–फ़ा०, अ०, काश०, द०, गु०, हिं०, बं० ।

आलूबुख़ारः, आलू, आलूचः, आलूये फ़ूांसीसी –फ़ा० । इजास्, इज्जास, ऐनुल्बक़र–अ० । म्लेच्छाम्लिका, आरुक, आलूक, आलुक, आह्लूक, रक्तफल–सं० । आलू फ़ूांसीसी–हिं० । प्रूनस कम्युनिस (Prunus Communis, *Huds.*) प्रूनस इन्सिटीशिया (Prunus Insititia, *Huds*, var. Bokariensis), प्रूनम (Prunum)-ले०। बोखारा प्लम (The Bokhara plum), चेरी प्लम Cherry plum, प्रून्स (Prunes) –(अं०) । आल्पोगाडा–पज़्म-ता० । आल्पोगाडा–पण्ड्लु, आल्पोगाडा–पण्डु–ते० । आलु बो (बु) खारा–बं० । आलुबु (बो) खारा, आलू-गु० । वीरारुक–मह० । आरुक–कना० । आलुपका, आलु-पकारा–बर० । कोकामीला, कोकामालीन, कोक्कामालस, कोमालस–(यू०) । जास़्स़ा, कामा, सनकबा, कोकाफ़्लियून, कोकाफ़ेलूस (सिरि०) । मस्क़ीनून, ज़ामास्कीना,

कफ़याला, कफ़ाला (रू०)। (खट्टा) ऐनुल् बक़र (पश्चि०, स्पेन)। (पत्ती) क़लियार जास्सा, क़ीलून, कफ़नाला (सिरि०, रू०)।

संज्ञानिर्णायक-टिप्पणी—जहाँ केवल "आलू बोख़ारा" शब्द लिखा होता है, वहाँ इसकी काली और बड़ी जाति अभिप्रेत होती है। तब जब केवल आलू उल्लिखित होता है, उससे अभिप्राय "आलूए जर्द बोखाराई" होता है। ताज़ा होने पर यह कहरुबाकी तरह पीले रंग का प्रशस्त मधुराम्ल एवं सुस्वादु होता है।

गुलाब वर्ग

(*N. O. Rosaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—मध्य एशिया, पश्चिमीय शीतोष्ण हिमालय गढ़वाल से काश्मीर तक ५००० से ७००० फुट की ऊँचाई पर जंगली होता वा रोपा जाता है; परंतु बुख़ारा प्रदेश का उत्तम समझा जाता है। इसीसे इसका यह नाम प्रसिद्ध है। हिंदुस्तान में आलूबुख़ारा अफ़गानिस्तान से आता है।

वानस्पतिक वर्णन—आलूचे की जाति के एक वृक्ष का फल जो आँवले के बराबर और आड़ू के आकार का होता है और स्वाद में खटमीठा होता है। सूखा फल अंडाकार लगभग १। इंच लम्बा, काला, झुर्रीदार होता है। भीतर का गूदा श्यामता लिये भूरा होता है,जिसमें किसी प्रकार की गंध नहीं होती।

नोट—मुहीत आज़मके अनुसार यह एक प्रसिद्ध वृक्ष का फल है, जिसका तना आलूबालू की तरह और पत्ती सेब की पत्ती की तरह होती है।

इतिहास—सूखा हुआ आलूबुखारा भारतीय बाज़ारों में प्राय: मिलता है और उसी भाँति इसका यहाँ बहुत प्रयोग होता है, जिस प्रकार यूरोप में आलू (Prune) का। यह भारत का ऑफ़िशिनल प्रून माना जा सकता है और 'कन्फेक्शन आफ़ सेन्ना' के बनाने में काम में लाया जा सकता है। इसका अन्य किसी भी काम में व्यवहार किया जा सकता है, जिसमें प्रून व्यवहृत होता है। मख़्ज़नुल् अद्विय: (दे० 'इज्जास़') के रचयिता मीरमुहम्मद हुसेन, अनेक प्रकार के आलू का उल्लेख करने के उपरांत जो फ़ारस और तत्समीपवर्त्ती देशों में प्राय: होते हैं, और लिखते हैं, कि औषधीय व्यवहार के लिए अंबरी रंग का आलूबुख़ारा अपेक्षाकृत अधिक उपादेय होता है। वे इसे ईषदम्ल, शीतल तर, पाचक, और मृदुरेचक मुख्यतः जब यह खाली पेट खाया जाता है, शरीर की पैत्तिकावस्था और शारीरोष्मा में गुणकारी लिखते हैं। वे जड़ को कसैला लिखते हैं और कहते हैं कि इसकी गोंद अरबी गोंद (समग़ अरबी) की प्रतिनिधि है और उसे प्राय: फारसी गोंद (समग़ फ़ारसी) भी कहते हैं। वे जंगली आलू (संभवत: Prunus spinosa) का भी उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि इसके गूदे से एक प्रकार की सूखी रोटी प्रस्तुत की जाती है, जो अम्ल एवं कषाय गुण के कारण औषधीय रूप में व्यवहृत होती है। एक प्रकार का कसैला आलू और होता है, जो दमिश्क से आता है और जिसे तुर्क लोग 'फाकूमीलास' कहते हैं। यह स्पष्टतया सावफ़रिस्तुस (Theophrastus) एवं दीसकूरीदूसोक्त यूनानी काकोमेलिया का अपभ्रंश है, जिन्होंने दमिश्क से आलू आने का उल्लेख किया है। प्लाइनी ने १२ प्रकार के आलू का उल्लेख किया है। उसने संकोचक रूप से आलूबुखारे के पत्ते और मृदुरेचकरूप से फल के औषधीय प्रयोग का भी उल्लेख किया है।

मुहीत आज़म के अनुसार बाग़ी एवं पार्वतीय भेद से यह दो प्रकार का होता है। इसमें बाग़ी का फल काला और बहुत बड़ा होता है और इससे आलूबुखारा ही अभिप्रेत है। इसके पीले प्रकार को आलूचा नाम से अभिहित करते हैं, जिसका आलूचा शब्द के अंतर्गत पृथक् वर्णन किया गया है। इसके सफ़ेद भेद को अराक में शाहलूज अर्थात् शाहआलू वा आलूचहे सुलतानी कहते हैं। इसका एक लाल भेद होता है जो छोटा और बहुत खट्टा एवं शीतल होता है और मवाद के द्रवीकरण में इमली की प्रतिनिधि है और इसे आलूकीश: कहते हैं। पकने पर यह बिल्ली की आँख की तरह काले रंग का हो जाता है।

इसका पहाड़ी भेद छोटा और बहुत खट्टा होता है एवं मीठा नहीं होता और संकोचक होता है। इसका वृक्ष और पत्ती भी बाग़ी से अपेक्षाकृत छोटी होती है। दमिश्क में एक प्रकार का आलू होता है जिसे रूमी में फ़क़ूमीलास कहते हैं और यह कषाय होता है। मुफ़रिदात क़ानून की शरह में मुल्ला सदीद लिखते हैं कि आज़रबेजान में एक प्रकार का आलू होता है जिसे इंज़ावी और इंज़ावश कहते हैं और यह आलू के सभी भेदोंसे अधिक रेचक एवं मृदुकारक होता है। इसका एक भेद और होता है जिसे ज़र्दालू कहते हैं। यह अत्यन्त नरम एवं मधुर होता है। और थोड़ा प्रकृति को मृदु करता है। इसका एक दूसरा छोटा भेद है जिसे आलूचहे असफ़हानी कहते हैं। शक्कर के साथ इसका मुरब्बा बनाते हैं।

शेख़ के अनुसार बाग़ी काले की अपेक्षा अधिक बलवान होता है और पीला लाल से। सैदना में लिखा है कि बाग़ी सर्व श्रेष्ठ होता है और इसे क़ौमशी कहते हैं। फ़ारसी में इसे शाह आलू कहते हैं। इसका एक भेद तबरी होता है जिसका उल्लेख तिब्बी ग्रंथों में पाया जाता है। यह पहाड़ी भेद है। सफ़ेद क़िस्म बड़ा, भारी और कम रेचक है। इसका अरमनी भेद सबसे मीठा होता है और सख़्त विरेचक है।

इनमें सर्वोत्तम वह है जो बड़ा, पुष्ट पककर काला पड़ा हुआ, ख़ूब परिपक्व, थोड़ा झुर्रीदार, ख़ूब मीठा और बारीक छिलके का होता है। फलतः प्रागुक्त सभी आलुओं से पीला आलूबुख़ारा अभिप्रेत है। ताज़ा होने पर यह पीला कहरुबाई, प्रशस्त, खटमीठा और सुस्वादु होता है। इसका सर्वोत्तम प्रकार वह है जो ख़ुरासान में होता है। इसके बाद काला फ़ारसी आलू होता है, जिसे अरबी में कुलूबुल्‌दुजज वा दिल माकियाँ कहते हैं। (मुहीत आज़म)

मदनपालनृप कृत मदनविनोद नामक निघंटु में जो पत्र पुष्पादि भेद से चार प्रकार के आरुक का उल्लेख दिखाई देता है, वह आलूबुख़ारा ही है, इससे भिन्न कोई अन्य वस्तु नहीं।

प्रयोगांश—बीजवर्जित शुष्क फल (खाद्यौषध), और गोंद (समग़ फ़ारसी)।

रासायनिक संघटन—फल में सेवाम्ल(Malic acid), निंबुकाम्ल (Citric acid), शर्करा, एल्ब्युमिनॉइड्स, पेक्टिन और भस्म।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कच्चा आलूबुख़ारा धारक,कषाय, हृद्य, शीतल, भारी, मलरोधक, उष्ण, कफापह, भेदी, पित्तहर, पाचक, अम्ल, मधुर, मुखप्रिय, मुख को स्वच्छ करनेवाला तथा प्रमेह, गुल्म और अर्श का नाश करता है। पक्का आलूबुख़ारा वातरक्त रोग की वेदना का प्रशमनकर्ता, रुचिजनक, कफपित्तकर, मधुर, भारी, उष्ण, रुचिकारक और धातुवर्द्धक है। (वै० निव० । निघ० रत्ना०)

यूनानी मतानुसार गुण दोष—

प्रकृति—दूसरे दर्जे में सर्दतर (नफ़ी०)। कोई-कोई पहली कक्षा में सर्द और दूसरी में तर मानते हैं। शेख़ के अनुसार दूसरे दर्जे के पहले शीतल और दूसरे दर्जे के अन्त में तर है।

इसका काला भेद ख़ूब पका हुआ और मधुर पहली कक्षा में शीतल और दूसरी कक्षा में तर एवं खटमीठा होता है। खट्टा दूसरे दर्जे के मध्य शीतल और उसके अन्त में तर है। निष्कर्ष यह कि इसकी मिठास की शीतलता अन्य भेदों से कम होती है। इसकी पत्ती पहलीकक्षा में शीतल एवं रूक्ष है। हानिकर्त्ता—मस्तिष्क, आमाशय और पुट्ठोंको। दर्पनाशक—उचित मात्रा में उन्नाब, मस्तगी व कुन्दुर और गुलकंद। प्रतिनिधि—इमली।

मात्रा—(वयस्क) १० दाने से ३० दाने तक। (साधारण) ३ दाने से ७ दाने तक।

गुण,कर्म, प्रयोग—खटमिट्ठा आलूबुख़ारा हृदय की सोज़िश को प्रशमित करता है; क्योंकि यह मधुर आलुबुख़ारे की अपेक्षा शीतलता की ओर अधिक प्रवृत्त होता है। इस कारण वा अपने अम्लत्व गुण के कारण पित्त का निवारण करता है और दस्त कम लाता है। क्योंकि यह केवल आर्द्रतावाहुल्य एवं पिच्छलता के कारण प्रकृति को मृदु करता है। इसमें अम्लता केवल उबाल (ग़लियान) की वजह से पैदा होती है

और चूँकि ज़ोश खाने से इसकी आर्द्रता कम हो जाती है। अस्तु, यह रूक्षता एवं मलावरोध (क़ब्ज़) की ओर प्रवृत्त होजाता है। यह जितना ही लघु होता है, उतना ही कम दस्त लाता है। क्योंकि छोटे दानों में आर्द्रता भी कम होती है, जो वस्तुत: मृदुकर है। मीठा आलूबुख़ारा आमाशय शैथिल्य उत्पन्न करता है; क्योंकि मीठे आलूबुख़ारे में किंचित् उष्मा होती है और यह उष्मा प्रगाढ़ीभूत वस्तु को शोषण के बिना पिघलाकर उसमें शिथिलता एवं मृदुता उत्पन्न करती है। क्योंकि उसकी निर्बल उष्मा द्रवीकरण से वंचित होती है और इस शैथिल्य एवं मृदुत्व पर उसकी रतूबत भी मुअय्यिन (सहायक) होती है। इसे केवल भोजन से पूर्व खाया जाय; क्योंकि यदि इसे भोजनोपरांत खाया जायगा, तो यह पिच्छलता के कारण उसे फिसला देगा। इसका बहुत थोड़ा अंश ख़ून में परिणत होता (क़लीलुल्‌गिज़ा) है; क्योंकि इसकी रतूबत में जलीयता का ही प्राचुर्य्य होता है। यही कारण है कि सूखे आलूबुखारे का अधिकांश शरीरावयव का भाग बनता (कसीरुल्‌गिज़ा) है। स्निग्ध (मर्तूब) प्रकृति का मनुष्य इसे खाने के उपरांत मधुवारि (माउल्‌अस्ल) पिए, ताकि आलूबुखारे से जो रतूबत आमाशय वा शरीर में उत्पन्न हो, उसको मधु साफ़ करदे। इसकी गोंद रतूबतों को तरलीभूत करनेवाला एवं छेदक है; क्योंकि इसके वृक्ष के आहार से जलीयांश फल में व्यय होजाता है। अस्तु, वृक्ष में अधिकतया उग्र पार्थिवांश ही शेष रह जाते हैं। इसी कारण सिरके के साथ यह दाद को नष्ट करता है। क्योंकि सिर्का निर्य्यास की शक्ति को भीतर व्याप्त कर देता है और माद्दे का छेदन भी करता है। आँखों में लगाने से यह गोंद दृष्टि को शक्ति प्रदान करती है; क्योंकि यह स्वच्छतासम्पादक है। छेदनकारी शक्ति के कारण यह पथरी को टुकड़े-टुकड़े कर देती है। अपनी पिच्छलताकारी शक्ति से ज़ख्मों को भर लाती है। इसके पत्तों के पानी का गण्डूष कौए और गलग्रंथि द्वय (लौज़तैन) की ओर नज़ला गिरने को रोकता है। क्योंकि इसके पत्ते धारक हैं। यही दशा इसकी लकड़ी की भी है। क्योंकि इसका जलीयांश अधिकतर फल की ओर व्यय हो जाता है और पार्थिवांश शेष रह जाता है। तर्जुमा नफ़ीसी)

प्रकृति को मृदुकर्त्ता एवं पिच्छलताकारक (वा फिसलाहट उत्पन्न करनेवाला) है। गरमी के दर्दसर और पित्तज्वर, वमन, विवमिषा एवं प्यास को लाभकारी है। हृदय की ऊष्मा एवं सोज़िश तथा शारीरिक खाज को दूर करता है और पित्तरेचक है। इसका प्रलेप शिरोशूल को दूर करता है। इसके पत्तों(वा जड़) केक्काथ का गंडूष नज़ले को रोकता है और काक एवं तालु की सूजन को लाभप्रद है। पेड़ू पर इसके पत्तों का प्रलेप आँतके कीड़ोंको नि:सरित करता है। इमली की तरह यह खाँसी के लिए हानिकारक नहीं। खाँसी में इमली हानिकारक होती है। (तुहफ़तुल् मोमनीन)

आलुक स्वाद में मधुराम्ल और प्रकृति शीतल है तथा वातपित्त नाशक एवं मृदुताकारक है। (तालीफ़ शरीफ़ी)

पानी में आलूबुखारे को भिगो दें और उस पानी को पिएँ। यह आमाशय को निरापद लाभकारी है। परंतु इसका फोंक मेदे को अत्यंत हानिकर है। कहा है कि जब आलूबुख़ारे को पानी में भिगोएँ, तब पानी निथारते समय वह हिले नहीं, जिसमें उसके फोंक का कोई अंश पानी में न मिले। इससे उपयुक्त लाभार्थ रुब्ब (रसक्रिया) प्रस्तुत करें, जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—

सर्व प्रथम ऐसा आलूबुख़ारा लें, जिसमें मिठास हो। उसकी गुठली पृथक् कर गूदे को एक स्वच्छ देग में डाल ऊपर से इतना पानी डालें, कि वह ढँक जाय। फिर उसे खूब क्वथित कर शीतल करें। फिर मलकर साफ़कर लें और पुन: देग में डालकर मंदाग्नि से यहाँ तक पकाएँ कि चौथाई शेष रहे। फिर ठंडाकर सेवन करें।

शेख़ के अनुसार मीठा आलूबुख़ारा अत्यंत पित्तरेचक है। शारह गीलानी के अनुसार इसका साफ़ किया हुआ पानी शक्कर और तुरंजबीन के

साथ तथा तर आलूबुखारा सूखे हुए की अपेक्षा उग्रतर विरेचक है। इस प्रकार के रेचन का कारण उसकी पिच्छलता ही है। क़ानून के टीकाकार मुल्ला सदीद कहते हैं कि इस कथन से यह समझ में आता है कि इसहाल (रेचन) शब्द तलयिन (मृदुकरण) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दीसक़ूरीदूस के अनुसार आलूए दमिश्की संग्राही है; परंतु जालीनूस लिखते हैं कि दीसक़ूरीदूस ने यह बात लिखने में त्रुटि की है कि आलुए दमिश्की संग्राही है। क्योंकि वह दस्त लाता है एवं उसमें फिसलाहट होती है और वह क़ब्ज़ में लाभकारी है।

आलूबुख़ारा जितना ही छोटा होगा, उससे उतना ही कम दस्त आएगा। छोटे आलूबुख़ारे के खाने से बहुत कब्ज़ होता है, क्योंकि यह बेस्वाद और कोष्टमृदुकर नहीं। कच्चा आलूबुख़ारा संग्राही है और उसमें पोषणांश अत्यल्प होता है। भोजन से पूर्व इसे खाना चाहिए, जिसमें मेदे की गरमी इसके पाचन में सहायक हो। शीतल प्रकृति के लिये यह रद्दी आहार है। इसके खाने के पीछे मधुवारि पीने से दस्त द्वारा इसकी सफ़ाई होती और शीतल एवं आर्द्र मेदे में इससे होनेवाली हानि का निवारण होता है। उष्ण प्रकृति के लोग इसके खाने से एतज्जन्य दोष निवृत्ति की अपेक्षा नहीं रखते। जिनका मेदा निर्बल हो, इसके खाने के पीछे पुराना गुलकंद शकरी खाएँ। यदि बुड्ढे आदमी हरा वा सूखा आलूबुखारा खाएँ, तो उन्हें इसे खाने के बाद थोड़ा मस्तगी वा कुंदुर खाना चाहिये। सूखा आलूबुखारा खाने से थोड़ा रेचन होता है; किंतु कच्चा सूखा आलूबुखारा खाने से स्तंभन होता है। आलूबुख़ारे के शिगूफ़े को चबाने से गिरे हुये माद्दे का छेदन होता है। सिर पर इसका प्रलेप करने से उष्ण शिरोशूल में लाभ होता है। इसकी पत्ती वा जड़ का काढ़ा पीने से आँत के कीड़े नष्ट होते हैं। (मुहीत आज़म)

आलूबुख़ारे के वृक्ष का गोंद

बबूल के गोंद से इसमें गरमी अधिक है, परंतु उससे रूक्षता कम है। यह माद्दे में सूक्ष्मता उत्पन्न करता है। दोषोंका छेदन करता है; पिच्छलता एवं अवरोध उत्पन्न करता है; गुदभ्रंश को लाभ पहुँचाता है; कास का निवारण करता, फुफ्फुस एवं उरोशूल में लाभकारी है, वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी को तोड़कर निकालता है। इसको पीसकर पानी में मिला यदि उससे घाव धोएँ वा इसका बारीक चूर्ण उस पर अवचूर्णित करें, तो क्षत पूरित होकर सूख जाएँ। यदि इसको सिरके में मिलाकर दद्रु, शीतपित्त, सिर के गंज, सिर की भूसी एवं फुन्सियों पर लगाएँ, तो आराम हो। शक्कर एवं मधु मिला प्रयोजित करना और भी गुणकारी है।

हानिकर्त्ता—प्लीहा को।

दर्पघ्न—कंद (शर्करा)।

प्रतिनिधि—क्षतपूरण एवं घावों को सुखाने के लिए छिली हुई मसूर।

नव्यमतानुसार

यह स्निग्धतासंपादक एवं पुष्टिकर है। (Materia medica of India—*R. N. Khory. Vol. 11-, p. 241.*)

धनी मानी व्यक्ति इसका नाना भाँति की चटनियाँ बनाने में प्रयोग करते हैं। विशेषत: इसका शीतल मृदुरेचक प्रभाव होता है। पित्तोल्बणता एवं शारीरोष्मा में इसका खाली पेट खाना उपकारक होता है। यकृत शैथिल्य एवं तज्जन्य वृद्धि, सूज़ाक और अर्श प्रभृति में यह लाभकारी है। यह प्राय: उन सभी दशाओं में उपयुक्त माना जाता है, जिनमें कि अँगरेज़ी बेर (English plum) प्रयोज्य हैं। गोंद अरबी निर्यास की प्रतिनिधि स्वरूप काम में आ सकता है। इसकी गिरी का तेल ख़ूबानी की मींगी के तेल के समान होता है और खाद्य है। जड़ धारक है। (The Indian materia medica—*K. M. Nadkarni, p. 713-4*)

आलूबूअली–[यू०] आलूबालू।

आलूय–[यू०] सनाय मक्की।

आलूसन–[यू०] एक वनस्पति जो श्याम आदि प्रदेशों में उत्पन्न होती है।

पर्य्याय-हज़्रुश्शयातीन, रज्लुल् गुराब(अ०)। हशीशतुन्नजात, हशीशतुस्सलइफ़ात(श्याम०)।

वानस्पतिक वर्णन—एक पौधा जो एक गज़ ऊँचा होता है। इसमें एक ही तना होता है जा सौंफ के तने की तरह होता है। पत्तों पर काँटे बहुत होते हैं और वे उँगली के बराबर लम्बे, कुछ कुछ गोलाकार होते हैं। जिन पर सफ़ेद रोईं होती हैं। फूल लाल एवं काला होता है। बीज फली में होता है। यह हरे तथा काले रंग का कुछ चिपटा होता है। अजवायन की तरह तीव्र एवं कटु स्वाद युक्त होता है। इसमें सोए की सी सुगंधि हाती है। जड़ लम्बे शलगम के आकार की होती है। जड़ हलका मीठा होती है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा के प्रथमांश में उष्ण और प्रथम कक्षा के अंतिमांश में रूक्ष।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह शिरोशूल, ज़ुकाम दमा और वृक्क एवं आमाशयगत वायु के लिये गुणकारी है। यह जोड़ों और चूतड़ों की वेदना शमन करता है। ऐसे शीत-जन्य कंप में जिसके साथ ज्वर न हो, उपकारी है। इसके प्रलेप से छीप और झाँईं आराम होती है। इसके बीज पीसकर शहद में मिलाकर सिर पर लगाने से सिर की वे फुंसियाँ, जिनसे पीला पानी निकलता है, दूर हो जाती हैं। ३॥ माशे इसके बीज खाने से वृक्कगत पथरी का नाश होता है। इससे पेट के कीड़े भी निकल जाते हैं। इसको क्वथित कर पीने से कष्ट श्वास आराम होता है। इससे फुफ्फुस-प्रणाली में एकत्री-भूत श्लेष्मा निकल जाती है। ये अत्यंत कामोद्दीपक हैं। पागल कुत्ते के काटे हुए के लिए यह पौधा रामबाण प्रमाणित होता है। इसके लिए इसका नाना भाँति से प्रयोग होता है। अस्तु (१) रोगी के खाने में इसके बीज पीसकर मिलाते हैं। ये बीज अपने प्रभाव से जलत्रास रोग का निवारण करते हैं। (२) ऐसा करते हैं कि ग्रीष्म ऋतु में आलूसन के वृक्ष को लेकर पत्ते सुखाकर रख लेते हैं। ज़रूरत के समय उसे कूट-छानकर ४॥ माशा से ६ माशा तक १। तो० मधुवारि के साथ दिन में कई बार करके खिला देते हैं। फिर एक दिन का बीच में अंतर देकर उसी प्रकार खिलाते हैं। इस दशा में भी खूब लाभ होता है। (३) इसकी ताज़ी जड़ कुचलकर उसका रस लेकर ताज़े दूध के साथ कुक्कुर दष्ट को पिलाते हैं। यदि वह पानी से डरने लगा हो, तो भी लाभ पहुँचाता है। यदि ताज़ी जड़ न मिले, तो सूखी जड़ को पीस कर ३॥ माशा से ७ मा० तक रोग के बलाबल अनुसार दें। यद्यपि विष का कितना जोरदार प्रभाव हो, तो लाभ पहुँचे बिना नहीं रह सकता। यह प्रभाव इसके सर्वांग में है।

आलूह-[फ़ा०] उक़ाब पक्षी। गिद्ध।

आले-[मरा०] अदरख। आदी।

आलेक्स-स्कैण्डेन्स-[ले० Olax scandens, *Roxb.*] धिनिआनी।

आलेडी-[गु०]बार तुण्डी-मरा०। इसकीपत्तियाँ ३-४ इंच लम्बी प्रथम तंग फिर चौड़ी होकर तंग होती है।

आलेप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लेप। लेपनीय द्रव्य। उपलेप। पलस्तर। मरहम। तिला। सु० चि० १ अ०। (२) आलेपन। आलिंपन।

आलेपन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लेप करने का कार्य। आलिंपन।

आलेय-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पद्मकाष्ठ। पदुमकाठ। पद्म। वै० निघ०।

आलेलगया-[क०] पखानभेद। पाषाणभेद।

आलेश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोड़े के मुख की एक बीमारी। इस रोग में घोड़े के जबड़े के भीतरी आश्रय पर दाँत निकल आता है। वह कफ और रक्तके कारण होता है। इससे घोड़ा जर्जर होजाता, उसेवमन आता, वह धीरे-धीरे खाता-पीता, खाँसता रहता और निर्बल हो जाता है। यथा—

> "हनुदेशे यदा दंतो भवत्यभ्यन्तराश्रय।
> आलेश इति तं विद्यात् श्लेष्मरक्त समुद्भवम् ॥
> तेनाश्वो दुर्मनात्यर्थं मन्दं पिवति खादति।
> जर्जरं कासते चैव बलाच्च परिहीयते ॥"

ज० द० २६ अ०

आलोक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आलोक्य] (१) दर्शन । दीदार । देखना । (२) प्रकाश । चाँदनी । उजाला । रोशनी । (३) चमक । ज्योति । (४) दीप । क़ंदील । चिराग़ । मे० ।

आलोकन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [त्रि० आलोकनीय, आलोकित] (१) दर्शन । अवलोकन । (२) दीप । क़ंदील । चिराग़ ।

आलोचक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वैद्यक में इस नाम की एक अग्नि । इसका स्थान नेत्र है और इससे रूप आदि दिखाई देता है । दृष्टि का गुण वा दृश्य का कारण । सु० सू० ११ अ० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वैद्यक में इस नाम का एक पित्त । आलोचक पित्त । वा० सू० । भा० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोह । लौह । लोहा ।

वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आलोचिका] (१) देखनेवाला । (२) आलोचना करनेवाला । जाँच करनेवाला ।

आलोचन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दर्शन । आलोकन । (२) गुण दोष का विचार । विवेचन । जाँच ।

आलोड़न–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आलोड़ित] (१) मिलावट । मिश्रण । (२) उत्तेजन । मथना । विलाड़न । बिलोना । हिलोरना । "भावनालोडने चास्य कर्त्तव्ये भेषजैर्हितैः ।"
सु० ।

(३) विचार । सोच-विचार ।

आलोड़ित–वि० [सं० त्रि०] (१) मथित । मथा हुआ । मंथन किया हुआ । (२) मर्द्दित । मला हुआ । मर्द्दन किया हुआ । (३) चूर्णीकृत ।

आलोल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आलोलित] कम्प । काँपना । कँपकँपी । चांचल्य ।

वि० [सं० त्रि०] (१) कम्पित । काँपता हुआ । हिलता हुआ । (२) लम्बमान । बढ़ा हुआ । (३) ईषत् चंचल । चुलबुला सा ।

आलोष्टीजियालम्बेटा–[ले० Olostegia-lumbata] बिन । फुटकण्डा–हिं० ।

आलः–[अ०] शुतुर्मुर्ग़ । Ostrich

आलः–[अ०] [बहु० आलात] (१) अस्त्र । शस्त्र । शल्यास्त्र । औज़ार । हथियार । (२) इंद्रियव्यापारशास्त्र की परिभाषा में शरीरके प्रधान कार्य सम्पादक अवयव । दे० "आलात"।

आल्टरनैन्थेरा-सेसिलिस–[ले० Alternanthera sessilis, *R. Br.*] कंचरी ।

आल्डर–[अं० Alder] भोजपत्र की जाति का एक पेड़ ।

आल्नस-निटीडा–[ले० Alnus-nitida, *Endl.*] ओल । रसोलि । सवालि । चापु । रजान । कुन्दश–पं० । पयउदेश, पाया–कुमायूँ । गीर–अफ़० ।

आल्नस-नेपालेन्सिस–[ले० Alnus-nepalensis, *D. Don*] कोही–पं० । इदेश–कुमायूँ उदिस । उतिस–नेपा० । कोवल–लेप० । मे० मो० ।

आल्नीयून–[यू०] रासन । क़नस । (Elecampane.)

आलपीनिया-अल्लुग़ास–[ले० Alpinia-Allughas, *Roscoe.*] तरो, तरुको–बं० । तारा तारका ।

उद्भवस्थान—समस्त भारतवर्ष ।

उपयोग—इसका सुगंधयुक्तमूल ओषधिरूप से प्रयोग में आता है । वैट० ।

आल्पीनिया-आफिसिनेरम्–[ले० Alpinia-officinarum, *Hance*] छोटा कुलंजन । सुगंध बच ।

आल्पीनिया कुलंजन–[ले० Alpinia kulangana, *M. Sheriff.*] कुलंजन ।

आल्पीनिया-कैल्करेटा–[ले० Alpinia-calcarata, *Roxb.*]

उद्भवस्थान—दक्षिणी मलाया प्रायद्वीप और कोंकण ।

उपयोग—हैदराबाद तथा भारतवर्ष के अन्य भागों में यह कुलिंजन की प्रतिनिधि रूप से बिकती है । इं० मे० प्लां० ।

आल्पीनिया-गैलङ्गा–[ले० Alpinia-galanga, *Swz, Willd*] बड़ा कुलिञ्जन । कुलंजन । दे० "कुलंजन" ।

आल्पीनिया-नाडिङ्ग-[अं० Alpinia nodding] दे० "पुन्नाग" ।

आल्पीनिया-न्युटञ्स-[ले० Alpinia.nutans, *Roscoe.*] पुन्नाग-चम्पा-बं० । इलायची-हिं० । कस्तस-ज़रम्बात-फ़ा० । पिग्गायि-बर० । दे० "पुन्नाग" ।

आल्पीनिया लूज़फ्लावड-[अं० Alpinia,loose-flowered] बड़ा कुलिञ्जन ।

आल्पीनिया-सिंगालीज़-[ले० Alpinia-cingalease]

आल्पो गाडा-पज़्म्-[ता०] }
आल्पोगाडा-पण्डुलु-[ते०] } आलूबुख़ारा । स० फा० इं० ।

आल्बीज़िया-अमारा-[ले० Albizzia-amara, *Boivin.*] कृष्ण-शिरीष-सं०। बल्लेई । लुल्लै-द० । फुरिङ्ग-ता० । नल्लरेङ्गा-ते० । दे०"काली-सिरस" ।

आल्बीज़िया-ओडोरेटिस्सिमा-[ले० Albizzia-odoratissima, *Benth.*] भण्डार । बर्स । बाँसा-हिं० । जतिकोरोइ-आसा० । लस्लिन । करम्बु । पोलक-पं० । सिरस-बम्ब० । कल-थुरिङ्ग । कखके । बिल्वर-ता० । शिन्दुग-ते० । थित्मग्यी-बर० । सिरिस । चिचून । चिचाड । सिरस-मरा० । कालोसरसिओ-गुज० । पुल्लिबवि । बिल्वर । बिल्वर-कना० । Mimosa odoratissima, *Linn.*

प्रयोगांश—निर्यास, पत्र और त्वक् ।

उपयोग—निर्यास औषध एवं चारा हेतु व्यवहार में आता है । मे० मो० ।

इसकी त्वचा को वाह्य रूप से प्रयोग में लाते हैं । कोढ़ और हठीले व्रणों के लिए यह उपयोगी अनुमान किया जाता है । सन्ताल लोग इसकी पत्ती को घी में पकाकर कास रोग में औषध रूप से व्यवहार में लाते हैं । (वैट) इससे रतौंधी दूर होती है और यह वल्य है ।

आल्बीज़िया जुलिब्रिसिन-[ले० Albizzia-julibrissin, *Durazz.*] लालसिरिस । दे० "सिरस" । इं० मे० प्लां० ।

आल्बीज़ियाप्रासरा-[ले० Albzzia-procera, *Benth.*] सफ़ेद सिरस । श्वेत शिरीष । गुरर-हिं० । दे० "सिरस" । इं० मे० प्लां० ।

आल्बीज़िया-लेब्बेक-[ले० Albizzia-lebbek, *Benth.*] पीत शिरीष-सं० । पीला सिरस । लसूरिन । दे० "सिरस" । इं० मे० प्लां० ।

आल्बीज़िया-लोफैन्था-[ले० Albizzia- lophantha, *Benth.*] एक प्रकार का सिरस ।

उपयोग—इसकी त्वचा रँगने के काम आती है । मे० मो० ।

आल्बीज़िया-स्टिप्युलेटा-[ले० Albizzia-stipulata, *Boivin*] सिरन । सामसुन्दर-हिं० । चकुआ । आमलुकी-बं० । ओइ । शिर्ष । ओए-पं० । उडुल-मरा० । कत्तुरञ्जी-ता० । कलबधी-कना० । कबल-सिंगा० । बोनमेज़-बर० ।

प्रयोगांश—गोंद और डालियाँ । मे० मो० ।

आल्लमण्डा कैथार्टिका-[ले० Allamanda, cathartica, *Linn.*] भा० आब्लीटियाई (A. Aubletii' *Rohl.*) । जहरी सोनतक्का-मरा० । अरसीन-कना० । पिन्त्रबल्द, कन्हेर, पीली कनेर-बम्ब० ।

शतमूली वर्ग

(*N. O. Apocynaceae.*)

उत्पत्ति स्थान—अमेरिका । यह भारतवर्ष में भी बोई जाती है और पश्चिमी किनारा एवं गोआ में जंगली होती है ।

वानस्पतिक विवरण—ज़हरी सोनतक्का के अर्द्धाण्डाकार भालाकार और बहुत सूक्ष्म डंठल युक्त पत्ते होते हैं, जो ४-४ की संख्या में तने के चारों ओर लगे रहते हैं । पुष्प-वृहत् पीत फुनेल के आकारके और शाखान्तमें लगे होते हैं । फल-वृत्ताकार, आकार में लघु अक्षोटवत् जो घने लम्बे मृदु रोम से आच्छादित होता है । उसमें अनेक चपटे बीज होते हैं जिनके किनारे से एक झिल्ली लगी रहती है । इसका प्रत्येक भाग दूध की तरह के एक रस से परिपूर्ण होता है ।

रासायनिक संघटन—पत्र में एक क्षारीय अस्पष्ट स्फटिकवत् सत्व होता है, जो जल में अविलेय है ।

प्रयोगांश—त्वक् सत्व १ से २ ग्रेन, ($\frac{1}{2}$ से १ रत्ती)। त्वचा, पत्र और पञ्चाङ्ग ।

इतिहास और उपयोग—एक आरोही मनोहर क्षुप जो बागों में प्रायः होता है । कहा जाता है कि पुर्तगाल-निवासी ब्राज़ील से इसे भारत भूमि में ले आये । हिन्दू लोग इसके पुष्प को मन्दिरों में चढ़ाते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि वे इस पौधे की विषाक्त प्रकृति से परिचित थे; क्योंकि इसका मराठी नाम "जहरी सोनतक्का" स्पष्टतया इस बात को प्रकट करता है। सोनतक्का हेडिकियम फ्लेवम् (Hedychium Flavum) को कहते हैं । इसका पुष्प आलमण्डा पुष्प से कुछ समानता रखता है, इसी कारण इसका यह नाम पड़ा । डाइमॉक महोदय के बिचारानुसार यह पौधा इस देश में व्यवहृत नहीं होता; परन्तु ऐन्सली इसके विषय में अपने निम्नांकित विचार पेश करते हैं—"डच लोग इसे विरेचक रूप से व्यवहार में लाते हैं । इसकी त्वचा का सत्व १ से २ ग्रेन अर्थात् $\frac{1}{2}$ रत्ती से १ रत्ती तक की मात्रा में उत्तम द्रव-विरेचक है । पेण्टर्स कालिक में इसके पत्र भी उपयोग में आते हैं । बड़ी मात्रा में समूचा पौधा (पञ्चाङ्ग) तीव्र वामक तथा विरेचक है ।" डाइमॉक ।

आल्लूक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आलुक । आलूबुखारा । आलू–बं० ।

गुण—यह रस में खटमीठा, ठंडा और वात पित्त कारक है । मद० व० ६ ।

आल.वलि.ल-क़िज़.ङ्ग–[ता०]पिण्डालू । पिण्डलम्–द०। Manihot utilissima, *Phol.* (*Root of*) स० फा० इं० ।

आल्स्टोनिया-वेनीनेटस–[ले० Alstonia venenatus, *Brown.*] राजादन। पज़्मुण्णिपाल (ता०)।

आल्स्टोनिया-स्पेक्टेबिलिस–[ले० Alstonia spectabilis, *R. Br*,]

आ (अ) ल्स्टोनिया स्कॉलेरिस–[ले० Alstonia scholaris, *R. Br.*] सतिवन। पत्तपर्ण । छतिवन । छातिम । छतिवन । छत्यून। दे० "सतिवन" । Echitis scholaris. इं० मे० प्लां० । फा० इं० । इं० मे० मे० ।

आल्ह–[?] पतंग । आल । आच्छुक ।

आल्हाजिकेमीलोरम–[ले० Alhagi camelorum, *Fisch.*] ख़ारेबुज । ऊँट कटारा ।

आल्हाजि मॉरोरम्–[ले० Alhagi-maurorum, *Fourn.*, *desv.*]दुरालभा। यवासा । जवासा । जवाँसा । स० फा० इं० । "*Manna of.*" यवास शर्करा । तुरञ्जबीन ।

आवट्टज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्तम अश्व । बढ़िया घोड़ा । (२) पारसीक अश्व। फ़ारसी घोड़ा । अरबी घोड़ा । त्रिका० ।

आंवणक्कु–[मल०] रेंड का पेड़ । एरण्ड-वृत्त ।

आवणक्किङ्कु रु–[मल०] रेंड़ी। अरण्ड के बीज। अण्डी ।

आवन्ती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काँजी । काञ्जिक।

आवपन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) धान रखने का पात्र । थाली । (२) बीज वपन। बीजारोपण। बोना । बोआई। अम० । (३) पेड़ लगाना। (४) थाला । (५) सारे सिर का मुण्डन ।

आवरक–वि० [सं० त्रि०] आच्छादक । अपवारक। ढाँकनेवाला ।

आवरक-औषध–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] वह औषध जो शरीर के किसी भाग को ढाँके।

आवरखाबो–संज्ञा पुं० [बं० आवर=और+बं० खाबो =खाऊँगा] एक प्रकार की बँगला मिठाई ।

आवरगिडा–[कना०] तरवड़ ।

आवरण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आच्छादन । (२) बेठन । वेष्टन । (३) परदा । (४) ढाल । चर्म्मफलक । (५) दीवार इत्यादि का घेरा ।

आवरया–[?] मोरया ।

आवरा–संज्ञा पुं० [देश०] आँवला । आँवरा ।

आंवर्जन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आवर्जित, आवर्ज्य](१)मना करना । रोकना । (२)छोड़ना। त्यागना ।

आवर्जित–वि० [सं० त्रि०] (१)त्याग किया हुआ। छोड़ा हुआ । (२) मना किया हुआ । वर्जित ।

आवर्तकीघृत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दन्ती की जड़ १०० पल के क्वाथ और उसी के ८ पल कल्क से १ प्रस्थ पुराना गोघृत मन्दाग्नि पर सिद्ध करें ।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे रोगानुसार उचित मात्रा में सेवन कराना चाहिए और दस्त होने के पश्चात् शाम को काँजी युक्त आहार एवं उसके पच जाने पर कोदों का क्वाथ सेवन करना चाहिये। इस प्रकार विधिवत् २१ दिन सेवन कराने से व्रण एवं गलित कुष्ट, जिसमें नख और शरीरावयव गल गए हों, नष्ट हो जाते हैं।

आर्वतक्याद्यासव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नेत्र-भेषज (सनाय) की जड़ ८ पल, एलुवा १॥ पल, रूमी मस्तगी आधा पल, रेवतचीनी आधा पल–सबको १ द्रोण पानी में मिलाकर सन्धान करके ३ दिन रक्खा रहने दें, पश्चात् छानकर रख लें। इसे प्रात: काल २ पल की मात्रा में २ मास तक सेवन करने से कमर का दाद मिट जाता है। गण० नि०।

आर्वतन-मणि–संज्ञा पुं० दे० "आवंत्त-मणि"।

आवर्ता, आवर्त्ता-धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Aorta) महा-धमनी। वृहद्धमनी। अ० शा०।

आवतार्ध-चक्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] महाधमनी की मिहराब। क़ौस शिर्यानी–अ०। (Arch of aorta)

आवर्ता-वृक्कीय-गण्ड–संज्ञा पुं० [सं० पुं] (Aortic-renal ganglion) गण्ड विशेष।

आवर्तीयवार्क-सत्तक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Aortic-renal plexus) नाड़ी-चक्र विशेष।

आवर्त्तीयायन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Aortic hiatus.)

आवर्तीयार्ध-चन्द्र-कपाट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Aortic-semilunar-valve.) महा धमनी का अर्ध चन्द्राकार कपाट। अ० शा०।

आवर्त्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भ्रम। चक्कर। चक्र। भा० म० ३ भ० उदा० चि०। (२) एक प्रकार का रत्न। लाजवर्द। राजावर्त्त मणि। रेवटी। रा० नि० व० १३। (३) सुश्रुत के अनुसार विकलताकारक मर्मों में से आवर्त्त नाम के दो मर्म। ये भ्रुकुटी (भौं) से ऊपर नीचे होते हैं। यहाँ आघात होने से अंधापन और दृष्टि का नाश होता है। सु० शा० ६ अ०। (४) घोड़े की शुभाशुभ सूचक भौंरी। अश्व का रोमावर्त। वि० दे० "भौंरी"। (५) पानी का भँवर। गिर्दाब। घूर्णायमान जल। 'स्यादावर्त्तोऽम्भसां भ्रमः'। अम०। (६) रोएँ की भँवरी। रोमावर्त्त। बाल की भौंरी। (७) चिन्ता। सोच। (८) संसार। (९) सोम। (१०) चक्कर। घुमाव। गर्दिश। (११) परिघट्टन। घोंटाई। (१२) धातु का द्रावण। गलाना। (१३) स्त्री जाति की योनि। शंख की नाभि जैसी होने से स्त्री-योनि को आवर्त्त कहते हैं। इसके तृतीय आवर्त्त में गर्भशय्या रहती है। स्त्री-देह के मध्यस्थित आवर्त्ताकार नाड़ी सन्निपात विशेष का नाम भी आवर्त्त है। सु०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोनामाखी। स्वर्ण माक्षिक। रा० नि० व० १३। (२) तरङ्ग। लहर। रा०। (३) गुदा की तीनों बलियाँ जो शंख के आवर्त (आँटी) की तरह होती हैं।

वि० [सं० त्रि०] घूमा हुआ। मुड़ा हुआ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हेममाक्षिक। सोना माखी। स्वर्ण माक्षिक।

आवर्त्तक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का कीड़ा जिसके काटने से वायुजन्य रोग उत्पन्न होते हैं। सु० कल्प० ८ अ०। (२) लाजवर्द। राजावर्त्त मणि। रा० नि० व० १३। (३) घोड़े की भौंरी।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) स्थल पद्म। स्थल कमल। थल कँवल। (२) रूपा माखी। रौप्य माक्षिक। तारमाक्षिक। रा० नि० व०१३।

वि० [सं० त्रि०] बार बार घोंटने, औटने वा चलानेवाला।

आवर्त्तकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार की लता जिसे चर्म्मण्वती और भगवतवल्ली भी कहते हैं। आहुली। तलाड़वल्ली। भगवत वल्ली–कों०। सोना मुखी–बं०।

संस्कृत पर्याय—तिन्दुकिनी विभाण्डी। विषाणिका। रङ्गलता। मनोज्ञा। रक्तपुष्पी। मरुत्ताली। पीत कीला चर्म्म रङ्गा और महाताली।

गुण—आवर्त्तकी-कसेली गरम, रेचक, कड़ुई, वृष्य और रसायन है तथा वायु, आमतात, रक्त, सूजन तथा प्रमेह को नाश करनेवाली है। मद० व० १। कसेली अम्ल, शीतल और पित्तनाशक है। रा० नि० व० ३। (२) बड़ी दन्ती। वृहद्दन्ती। भद्र दन्ती। रा० नि० व० ६। दे० "दन्ती"। (३) अरणी।

आवर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आवर्त्तित, आवर्त्तनीय] (१) दूध आदि का आलोड़न। औटाना। बिलोड़न। मथन। हिलाना। (२) धातु इत्यादि का गलाना। धातुद्रावण। धातुगालन। अ० टी०। (३) चक्कर देना। फिराव। घुमाव। घूर्णन। (४) तीसरा पहर। पराह्ण। (५) दोहराव। पुनः विधान।

आवर्त्तनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) Helicteres isora. एक प्रसिद्ध द्रव्य जिसे मरोड़फली भी कहते हैं। आँतमोड़ा। दे० 'मरोड़फली"। (२) धातु गलाने का पात्र। घरिया। मूषा। श० र०।

पर्य्या०—तैजसावर्त्तनी। मुषा। मूषः।

आवर्त्तनी धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Recurrent artery) धमनी विशेष। अ० शा०।

आवर्त्तनीय-वि० [सं० त्रि०] (१) घुमाने योग्य। (२) आलोड्य। आलोड़नीय। मथने योग्य। (३) द्रावणीय। गलाने योग्य। (४) दोहराने योग्य। बारबार पढ़ने लायक।

आवर्त्त-पूलीका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का पूआ। पूलिका भेद।

आवर्त्त-मणि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाजवर्द पत्थर। राजावर्त नामक उपरत्न। रा० नि० व० १३।

आवर्त्तमान-वि० [सं० त्रि०] चक्कर देनेवाला। घूर्णायमान।

आवर्त्तित-वि० [सं० त्रि०] (१) घुमाया हुआ। (२) मथा हुआ। कृतावर्त्तन। (३) द्रवित। गलाया हुआ। औटाया हुआ।

आवर्त्तिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मेढ़ासिंगी। अजशृङ्गीका वृक्ष। र० मा०। रा० नि०। (२) मुषा। कुठाली।

आवर्त्ती-संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्तिन्] (१) आवर्तनशील। घूम पड़नेवाला। (२) प्रत्यावर्तन करनेवाला। जो लोट रहा हो।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह घोड़ा जिसे भँवरी हो।

आवल कटी, आवल काठी-संज्ञा स्त्री० [मरा०] आमला। धात्रीफल। आँवला।

आवल गट्टी-संज्ञा स्त्री० [देश०] आवल कटी।

आवला-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "आवली"। [मरा, गु०] तरवड़।

आवलि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० अवलि] (१) पाँती। पंक्ति। श्रेणी। कतार। (२) एक सी वस्तुओं का समुदाय। जैसे—वृक्षावलि। (३) परंपरा।

आवली-[मरा०] आमला का भेद। औंरी।

संज्ञा स्त्री० दे० "आवील"।

आवली-कन्द, आवली-कन्दक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मालाकन्द। रा० नि० व० ७।

आवलु-[ते०]
आवले-[मरा०] } राई। सर्षप। इं० मे० मे०।

आवल्य, आबल्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दुर्बल का भाव। दुर्बलता। दौर्बल्य। लागरी। कमज़ोरी।

आवसथ-सज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] [वि० आवसथिक] (१) रहने की जगह। घर। गृह। हे० च०। (२) गाँव। बस्ती। ग्राम।

आवसथ्य-वि० [सं० त्रि०] घर का। ख़ानगी।

संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] पाँच प्रकार की अग्नियों में से एक। वह अग्नि जो भोजन पकाने आदि के काम में आती है। लौकिकाग्नि।

आवसित-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) निर्बुषीकृत धान्य। हे० च०। साफ़ किया हुआ अनाज। परिपक्व मर्हित धान्य। पका अनाज। भरत०।

आवसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० औंसना] अन्न का हरा दाना, विशेषतः जौ का दाना।

संज्ञा स्त्री० [देश०] समय-समय पर तोड़ी जानेवाली कच्चे अनाज की बाल।

आवस्थिक-वि० [सं० त्रि०] (१) अवस्था संबंधी । अवस्थाका । कालकृत । वक्तके मुआफ़िक । दुरुस्त । (२) अवस्थोचित । अवस्था के अनुसार । "आवस्थिकं क्रमश्चापिमत्वा कार्य्यं" निरूहणम् । सु० चि० ३८ अ० ।

आवह-संज्ञा पुं० [सं०] वायु के सात स्कंधों (आवह, प्रवह, विवह, परावह, संवह, उद्वह और परिवह) में से पहले स्कंध की वायु । भू वायु । ज़मीन की हवा । यह भूर्लोक और स्वर्गलोक के बीच रहता है ।

आवहमान-वि० [सं० त्रि०] क्रमागत । पूर्वापर । क्रमिक । धारावाही ।

आवा-[?] राई ।

आवाक-पुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "आवाक्-पुष्पी" ।

आवा (बा) धा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीड़ा । दर्द । श० र० ।

आवानक-मुखी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ब्रम्हदण्डी ।

आवानियून-[यू०] एक पौधा जिसका काँटा सूई के सदृश होता है ।

आवाप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आलवाल । थाला । कियारी । 'स्यादालवालमवापि ।' अम० । (२) कल्क । लुगदी । प० प्र० १ अ० । (३) निःक्षेप । आक्षेप । सु० नि० १ अ० । (४) निम्नोन्नतभूमि । नीची ऊँची ज़मीन । विषम-स्थान । अम० । (५) पात्र । बरतन । शब्द र० । (६) पानीय द्रव्य । (७) धान आदि का खेत में रोपना । रोपाई । (८) हाथ का कड़ा । कंकण ।

वि० [सं० त्रि०] प्रक्षेपणीय ।

आवार-[मल०]
आवर-गिडा-[कना०] } तरवड़ ।
आवारई-[ता०]

आवारि-संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] बाज़ार का घर । हट्ट गृह । हाट चालि-बं० । उणा० ।

वि० [सं० त्रि०] पानी से ख़ूब भरा हुआ । सम्यक् जलयुक्त ।

आवाल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] थाला । कियारी । क्यारी । आलवाल ।

आवालु-[ते०] राई । सर्षप । सरसों ।

आवास-संज्ञा पुं० [सं०पुं०] (१)निवासस्थान । रहने की जगह । घर । गृह । धाम । मकान । हे० च० । (२) चिड़िया रहने की जगह । घोंसला ।

आवि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] चिड़िया । पक्षी । वै० निघ० ।

आविक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कम्बल । गुदमा । लोई । हे० च० । हला० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मेष मांस । भेड़े का मांस । (२) मेषी दुग्ध । भेड़ का दूध ।

वि० [सं० त्रि०] (१) मेष सम्बन्धी । भेड़ का । (२) ऊन का । पशमी । ऊनी । ऊर्णामय ।

आविक-घृत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भेंड़ का घी । मेषी नवनीत जात घृत । भेड़ीर दूधेरघि-बं० ।

गुण—यह पाक में लघु अर्थात् लघुपाकी पित्तप्रकोपक एवं योनिदोष, कफ, वात, शीत तथा कम्प में हितकारक है । रा० नि० व० १५ ।

भेड़ का घी पाक में हलका, समस्त रोग और विषों का हरण करनेवाला है और दीपन, कफ, वात नाशक, कोढ़, गुल्म एवं उदर रोग को नष्ट करता है ।

आविक-दधि-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मेषी दुग्ध कृतदधि । भेंड़ का दही । भेड़ीर-दई-बं० ।

गुण—यह गुरु, सुस्निग्ध, कफ-पित्त कारक तथा वात एवं रक्त-वात में पथ्य और शोथ व व्रण नाशक है । रा० नि० व० १५ ।

मुख रोग में परमहितकारक तथा प्रत्यक्ष फल को देनेवाला अर्थात् दृष्टफल होता है । आविक अर्थात् (भेड़ का दही) पित्तकारक, वातशामक तथा कफ-प्रकोपक है । किंतु गुल्म, अर्श, कोढ़ तथा रक्त-पित्त में हानिकारक (अपथ्य) है । अत्रि० ८ अ० ।

आविक-नवनीत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भेंड़ का मक्खन वा मसका । भेंड़ का नैनू वा नोनी घी । मेषी दुग्ध जात नवनीत । भेड़ीर दुधेर ननि-बं० । Sheeps'-butter.

गुण—पाक में शीतल, लघु, सारक तथा योनिशूल, कफ, वात और अर्श में सदा हितकर

है; किंतु एड़क (जंगली भेड़)-का मक्खन क्लिष्ट गंधी, शीतल, मेधाहर तथा गुरु है और पुष्टि, स्थूलताकारक और मन्दाग्नि को दीपन करता है। रा० नि० व० १५ ।

आविक-मांस–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मेष मांस। भेड़ेका मांस। भेंड़का गोश्त। भेडार मांस–बं०। Sheeps'-meat.

गुण—मधुर, कुछ-कुछ भारी और बलकारक है। बकरे के मांस से विपरीत गुणवाला होने से यह बहुत गरम, बहुत भारी, अतिस्निग्ध, अत्यन्त दोषजनक, अभिष्यन्दी और मांस वर्द्धक है। वा० सू० ६ अ०।

आविक-मूत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भेंड़का पेशाब। मेषी-मूत्र । भेड़ीर-मूत्–बं० । Sheeps'-Urine.

गुण—कड़ुवा, चरपरा, गरम, कोढ़ को दूर करनेवाला और अर्श, शूल, उदर विकार, रक्त-विकार, शोथ, प्रमेह, तथा विष को नष्ट करता है। रा० नि० व० १५ ।

शोथ, कोढ़, बवासीर, प्रमेह, विष्ठा और ग्रह का नाश करनेवाला है। मद० व० ८।

आविक-सौत्रिक–वि० [सं० त्रि०] ऊन के धागे का बना। भेड़ के ऊन के सूत से तैयार। मेषसूत्र-निर्मित।

आविक-क्षीर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भेंड़ का दूध। मेषी-दुग्ध। भेड़ीर दुध–बं०। मेंढि चेदुध–मरा०। Sheeps'-milk.

गुण—रस में मधुर, अम्लपाकी, उष्णवीर्य, स्निग्ध, भारी, पित्त-कफोल्वण तथा बृंहण है और हिक्का, श्वास तथा वातनाशक है। भा० टी० क्षीरपाणि।

लोमश, गुरु, कफ-पित्त हरणकर्त्ता, स्थूलता नाशक, प्रमेह नाशक, वात के प्रकुपित होने पर उपयोगी और वातज कास में लाभदायक है। रा० नि० व० १५ ।

वातव्याधिहर और हिक्का, श्वास, पित्त तथा कफ उत्पन्न करता है। वा० सू० ५ अ०।

औरभ्र (मेषी-दुग्ध)–मधुर, रूक्ष, उष्ण, वात तथा कफ नाशक है और रक्त-पित्त रोगी के लिए अहितकारक एवं वात रोगी के लिये हितकारक है। अत्रि० ८ अ०।

आविकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कम्बल। राल। शाल–बं०। (२) शल्लकी। साही। खारपुश्त।

आविक्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आविक सम्बन्धित्व। भेड़ के लगाव का भाव।

आविघ्न–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करौंदे का पेड़। करमर्दवृक्ष। पाणि-आम्ला–बं०। (Carissa Carandas, *Linn.*)। श० र०। अ० टी० सा०।

आविट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वृक्ष विशेष। आवुटा। आपुटा।

आविदूर्य्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सन्निकर्ष। नैकट्य कुर्ब। पड़ोस।

आविध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आवेध्य] (१) सूच्याकाराग्र काष्ठादि। बरमा। वेधनास्त्र। भोमर। तुरपुन–बं०। अम०। (२) भ्रमर। भौंरा।

आविद्ध–वि० [सं० त्रि०] (१) छिद्रीकृत। छिदा हुआ। (२) भेदा हुआ। बेधा गया। विद्ध। (३) फेंका हुआ। क्षिप्त।

आविद्ध-कर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाठा। अंबष्ठा। "पाठाऽम्बष्ठाविद्धकर्णी।" अम०।

आविर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रसव-वेदना। मा० नि० मूढ़गर्भ।

आविरई–[ता०] तरवड़। Cassia Auriculata.

आविर्भाव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आविर्भूत] (१) प्राकट्य। प्रत्यक्षता। प्रकाश। ज़हूर। (२) उत्पत्ति। पैदायश। तिरोभाव। का उलटा। (३) आवेश।

आविर्भूत–वि० [सं० त्रि०] (१) प्रादुर्भूत। प्रकाशित प्रकटित। अवतीर्ण। जाहिर। (२) उत्पन्न। पैदा। अभिव्यक्त।

आविल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकारका काबुल देशीय फल। सेब। सेव। थोर-सेव-फल-मरा०।

वि० [सं० त्रि०] गन्दा। मैला। कलुष। अपरिष्कृत। सु० नि० ६ अ०।

आविलकन्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मालाकन्द। रा० नि० व० १।

आविल-(मत्स्य)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली जो शुभ्र तथा स्थूलांग होती है। इसके पक्ष तामड़े रंग के होते हैं।

गुण—यह अत्यन्त रुचिकारक, मधुर, बलकारक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक और अत्यन्त गुणकारी है। रा० नि० व० १७।

आविला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मछली। मत्स्य। (२) चाङ्गेरी। चौपतिया। अमलोनिया। आमरूल–बं०। आंबोली–मरा०। Oxalis monadelpha अम०।

आवि-वृत्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेष शृङ्गी। मेढ़ा सिंगी। मेढ़ा-शिङे–बं०।

आविष्कर्त्ता–वि० [सं० त्रि० आविष्कर्तृ] आविष्कार करनेवाला। ईजाद करनेवाला। प्रकाशक। आविष्कारक।

आविष्कार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आविष्कारक, आविष्कर्त्ता, आविष्कृत] (१) प्रकाशक, प्राकट्य। (२) ईजाद। किसी बात का पहिले पहल पता लगाना। साक्षात्करण। आविष्करण।

आविष्कारक–संज्ञा पुं० वि० दे० "आविष्कर्त्ता"।

आविष्कृत–वि० [सं० त्रि०] (१) प्रकाशित। प्रकटित। (२) पता लगाया हुआ। (३) ईजाद किया हुआ। निकाला हुआ।

आविष्क्रिया-संज्ञा स्त्री० दे० "आविष्कार"।

आविष्ट–वि० [सं० त्रि०] जिसे भूत लगा हो। भूतादि से दबाया गया। प्रेत आदि द्वारा निवेशित। भूतादि ग्रस्त। लीन। आवेश युक्त। गृहीत। हारा०।

आविक्षिरणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दुधिया।

आवी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) प्रसव वेदना। वह तकलीफ जो बच्चा होने के समय प्रसूता को हो। सु० नि० ८ अ०। (२) मूत्र, कफ प्रसेकादि प्रसव के लक्षण। बच्चा होने से पेशाब आदि होना। विज० र०। (३) रजस्वला स्त्री। वह नारी जो कपड़े से हो। (४) जिस स्त्री के पेट में बच्चा हो। गर्भवती। "गर्भस्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता।" सु०।

आवीर-चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आबीर। गुलाल। अबीर। पुरा०।

आवीरम्–[नल०] तरवड़। Cassia auriculata.

आवृत–वि० [सं० त्रि०] (१) लपेटा हुआ। वेष्टित। (२) आच्छादित। छिपा हुआ। ढका हुआ। अप्रकाशित। (३) घिरा हुआ। छेका हुआ। परिवृत। (४) पुनरावृत्ति।

आवृति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आवरण। परदा।

आवृत्त–वि० [सं० त्रि०] (१) आवर्त्तमान। घूमा वा वापिस आया हुआ। (२) परावृत। हटा हुआ। (३) प्रतिनिवृत्त। निवृत्त। लौटा हुआ (४) बार-बार अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त। गुणित।

आवृत्त-रन्ध्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Foramen ovale.) अंडाकार गोल छेद। ..सुक़्बः बैज़िय्य:–अ०।

आवृत्त-सुषिर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Fenestra vestibuli.)

आवृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उद्धरणी। पढ़े हुए को दुबारा पढ़ना। पुनरावृत्ति। (२) एक ही काम को बार-बार करना। बार-बार किसी बात का अभ्यास। (३) पाठ करना। पढ़ना। (४) प्रत्यावृत्ति। वापिसी।

आवृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खासी बारिश। सम्यग् वर्षण।

आवेग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चित्त की प्रबल वृत्ति। मन की झोंक। जोर। जोश।

आवेगी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृद्धदारक लता। विधारा की बेल। बीज-तारक–बं०। ध० नि० व० ४। मद० व० १। र० मा०। "स्याद्दक्षगन्धा छगलान्त्र्यावेगी वृद्धदारकः।"

अम०।

आवेरइ-पञ्चाङ्गम्–[ता०] एक मिश्रित चूर्ण जिसमें आवीरइ (तरवड़) का पञ्चाङ्ग पड़ता है और बहुमूत्र रोग तथा आँख आने में लाभ दायक होता है। मात्रा–इसे चाय के एक चम्मच भर शहद के साथ मिश्रित कर सेवन करते हैं। फा० इं० १ भ०।

आवेरइ-येएणाई–[ता०] तरवड़ की छाल से तैयार किया हुआ एक औषधीय तेल। फा० इं० १ भ०।

आवेल–[ते०] राई। सर्षप। फा० इं०।

आवेल-तेल–संज्ञा पुं० [देश०] नारियल का वह तेल जो ताजी गरी से निकाला गया हो। वह तेल जो सूखी गरी से निकाला जाता है, मुठेल कहलाता है। मुठेल का उलटा।

आवेलु–[ते०] राई। सर्षप। (Brassica-juncea, *H. F. &. T.*) फा० इं०।

आवेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अपस्मार रोग। मृगी। (Epilepsy.) हे० च०। (२) सञ्चार। व्याप्ति। दौरा। (३) प्रवेश। (४) चित्त की प्रेरणा। झोंका। वेग। आतुरता। जोश। (५) भूत प्रेतकी बाधा। भूत संचार। भूत चढ़ना, प्रेत लगना, रा० नि० व० २०।

आवेशन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आवेशित] (१) शिल्प-शाला। कारखाना। हला०। अम०। (२) भूतावेश। भूतादि बाधा। शैतान का साया। मे० नचतुष्क। मंत्र से भूत को खींच वा बुलाकर शिर में सन्निवेशित करना। शैतान को शिर पर चढ़ा देने का काम। "बन्धावेशन ताड़नैः"। च० द० ज्व० चि०। (३) क्रोध। धरणिः।

आवेशन-मंत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मंत्र। जिस मंत्र द्वारा भूत आदि शरीर में प्रविष्ट कराए जाते हैं। इस मंत्र के पढ़ने से दूसरे के सिर पर भूत चढ़ जाता है। अत्रि० ३ स्था० ५ अ०।

आवेशिक–वि० [सं० त्रि०] आगन्तुक। अम०।

आवेष्टक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आवरणकारक। ढाँकनेवाला। प्राचीर। बेड़ा।

आवेष्ठन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आवेष्ठित] (१) छिपाने वा ढँकनेका कार्य। आवरणकरण। (२) छिपाने वा ढँकने की वस्तु। (३) वह वस्तु जिसमें कुछ लपेटा हो।

आवेष्ठित–वि० [सं० त्रि०] छिपा हुआ। ढँका हुआ।

आवोधन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ज्ञान। बुद्धि।

आव्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रसवकालीन पीड़ा। (True labour-pains.)

वि० [सं० त्रि०] (१) मेष सम्बन्धी। भेड़ का। (२) ऊनी। और्ण। पश्मी।

आव्याध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आव्याधी] सम्यक् पीड़न।

आव्वुरु-गड्डि-वेरु–[ते०] खस। उशीर। बाला। उसीर–अ०। स० फा० इं०।

आश–[फ़ा०] (१) हरीरे आदि की तरह पकी हुई पतली वस्तु। करक–अ०। मण्ड–हिं०, सं०। गाढ़ा शोरबा। हरीरा। (२) किसी अन्न या औपध का गाढ़ा क्वाथ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भोजन। खाना। (२) भोजन करनेवाला। जो खाता हो। इस अर्थ में आश शब्द प्रायः समासांत में आता है। यथा—मांसाश, पलाश इत्यादि।

आश-आर्द–[फ़ा०] सोयान।

आशक़–[अ०, फ़ा०] उश्शक़। (Dorema Ammoniacum.) इं० हैं० गा०।

आश (शि) क़ुश्शज्र–[अ०] इश्क़-पेचाँ। लबलाब।

आशक्त–वि० [सं० त्रि०] मोहित। लीन। सक्षम।

आशन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आसन का पेड़। असनवृक्ष। पीतशाल का पेड़। द्विरूप कोष०।

आशनः–[फ़ा०] पत्थर का फूल। छड़ीला। (Lichen, rock.) इं० हैं० गा०।

[?] दरख़्त पौपीजः Common, Mass. इं० हैं० गा०। Lycopodium clavatum.

आशफल–संज्ञा पुं० [बं०] पूवटी–ता०, बम्ब०। वुम्ब, सुलहकोटा–कना०। लोङ्गान। (Nephelium Longan, Pro, *Lind.*, Dimocarpus Longan.)

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष जो मदरास, विहार और बंगाल में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और सजावट के असबाब बनाने के काम में आती है।

आशय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आधार जगह। (२) अभिप्राय। तातपर्य्यं। मतलब। (३) कटहलका पेड़। पनस वृक्ष। मे०। (४)

अजीर्ण । (५) कोष्टागार । स्थान । आधार । (६) वैद्यक के अनुसार शरीर के भीतर के वे स्थान जिनमें पित्त, रक्त और मूत्र प्रभृति शरीरोपयोगी पदार्थ रहते हैं । सुश्रुत के अनुसार आशय सात हैं; जैसे–(१) वाताशय, (२) पित्ताशय, (३) श्लेष्माशय, (४) रक्ताशय, (५) आमाशय, (६) पक्वाशय और (७) मूत्राशय । इनके अतिरिक्त स्त्रियों के ८ वाँ गर्भाशय होता है । सु० शा० ५ अ० । अपनी स्थिति के लिये वायु आशयों का निर्माण करता है । स्थिति का योग करके वायु आशयों (वातादि आशयों) की उत्पत्ति करता है । सु० शा० ४ अ० ।

भावप्रकाश के अनुसार आशयों के स्थान इस प्रकार हैं—उरः (छाती) में रक्ताशय उसके नीचे श्लेष्माशय और श्लेष्माशय से नीचे आमाशय, उससे नीचे पक्वाशय है । चरक के मतानुसार "प्राणियों की नाभि से स्तनपर्यन्त के अन्तर को विद्वान लोग आमाशय कहते हैं ।" आमाशय से नीचे और पक्वाशय से ऊपर जो ग्रहणी नामक कला है, उसको पाचकाशय कहते है । नाभि से ऊपर मध्य भाग में स्थित अग्न्याशय रहता है । उस पर तिल पड़ता है; जिससे नीचे पवनाशय (वाताशय) आता है । उसके नीचे पक्वाशय है, उसे ही मलाशय कहते हैं । उसके नीचे वस्ति है; उसको ही मूत्राशय कहते हैं । भा० पू० । आमाशय का क्रम वाग्भट्ट महोदय ने इस प्रकार कहा है—

यथा—"कफाशय, आमाशय, पित्ताशय, वाताशय, मलाशय और मूत्राशय पुरुषों से स्त्रियों के ये तीन आशय अधिक हैं । पित्ताशय और पक्वाशय के बीच में गर्भाशय कहा है और दोनों स्तन जब बढ़ते हैं, तब उनको ही विद्वान स्तन्याशय मानते हैं । वा० ।

(७) जमालगोटा । जयपाल । (८) गड्ढा । खात ।

आशयफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कटहल । पनस । त्रिश्व० ।

आशयाश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वायु । (२) अग्नि । अ० टी० ।

आशर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि । (२) आशेब । भूत ।

आशरः–[अ०] एक दरिंदा अर्थात् फाड़ खानेवाला जानवर । चर्ख़ । कफ़तार । लकड़बग्घा ।

आशरीक–संज्ञा पुं० [(वै०), सं० पुं०] एक प्रकार का रोग जिसमें आज़ा में सख़्त शदीद दर्द पैदा होता है । "आशरीकं विशरीकं वलासः पृष्ठयामयम्" । (अथर्वसंहिता)

आशल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीवक का वृक्ष ।

आशव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शीघ्रत्व । आशुत्व । उतावली । (२) गुड़ की शराब । गुड़मद्य ।

आशवल–[बं०] होरिन । गोदा । वाइटेक्स ग्लैब्रेटा (Vitex glabrata, *Br.*)–ले० । लुकी-नेव-लेडी–ते० । सेङ्गेनित-करिल्ल–कना० । शिरस–मरा० । हतोचा–बर० । शिरस, लौङ्ग-बिंस्थिरस–बम्ब० । टोकरा (Magh.) ।

उत्पत्ति-स्थान—दक्षिण डेकन प्रायद्वीप ।

उपयोग—त्वचा वा मूल संकोचक रूप से व्यवहार में आता है । (मेजर फ्रोर्ड) । इं० मे० प्लां० ।

आशशौरा–[?] (Loemonria-pentaphylla.) । इं० हैं० गा० ।

आशा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) तृष्णा । लालसा । अम० । (२) प्रत्याशा । उम्मीद । इश्तियाक़ । (३) दिक् । दिशा ।

आषाढ़ (ढ)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पलाश का दण्ड । अम० । (२) तृतीय मास । आषाढ का महीना । द्वि रूप० । अ० टी० ।

आशादिरिपुसंभव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूमिज गुगुल । दैत्य मेदज । भुँई गूगल ।

आशान–[पं०] आसन । पियासाल ।

आशापुर–संज्ञा पुं०[सं० क्ली०]एक शहर का नाम । इस नगर में उत्तम गुग्गुल मिलता है और उससे धूप बनता है ।

आशापुरगुग्गुलु–संज्ञा पुं० दे० "आशापुर सम्भव" ।

आशापुर सम्भव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का भूमिज गुग्गुल जो आशापुरमें होता है । भूमिज गुग्गुलु । आशापुरी धूप । रा० नि० व० १२ ।

आशाबन्ध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मकड़ी का जाला । मर्कट जालक । माकड़शार जाल–बं० । मे० धचतुष्क । (२) आश्वासन । प्रत्याशा । भरोसा रखना । (३) समाश्वास । शफ़ा । बहाली ।

आशालबीज–[बं०, गु०] चन्द्र सूर । हालों ।

आशि–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] भोजन । खाना ।

आशिक़–[फ़ा०] उशक़ (Dorema ammoniacum.)

संज्ञा पुं० [अ०] कामुक । प्राणेश । चाहने वाला । दे० "इश्क़" ।

आशित–वि० [सं० त्रि०] (१) खाया । भुक्त । अशित । जटा० । (२) भोजन द्वारा तृप्ति युक्त ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भोजन ।

आशितम्भव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अनाज वगैरः । अन्नादि । (२) आसूदा । छका हुआ (३) तृप्ति । आसूदगी ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तृप्ति । मे० ।

वि० [सं० त्रि०] तृप्तिकारक । आसूदा करने वाला ।

आशिता–वि० [सं० त्रि० आशितृ]अतिशय भोक्ता । अधिक आहार करनेवाला । बहुत ज्योदा खानेवाला । हे० च० ।

आशिर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि । उणा० । (२) सूर्य्य ! सूरज । (३) राक्षस ।

वि० [सं० त्रि०] पकाने योग्य ।

आशिरः पाद–क्रि० वि० [सं० अव्यय] सिर से पाद पर्यंत । शिर से पैर तक ।

आशी–[अ०] दे० "आसी" ।

आशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सर्पदंष्ट्रा । सर्पदन्त । साँप का विषैला दाँत । मे० ।"आशी उरग दंष्ट्रायाम ।" (वैद्य०) "आशीतालुगता दंष्ट्रातया दष्टा (विद्धो)न जीवति ।" (विषविद्या) (२) सर्प विष । साँप का ज़हर । श० र० । (३) वृद्धि नाम की ओषधि ।रा० नि० व० ५ ।

वि० [सं० आशिन्] [स्त्री० आशिनी] खानेवाला । भक्षक । भोक्ता ।

नोट—इसका प्रयोग समास के अन्त ही में होता है ।

आशीत, आशीतक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अङ्किल्लक नाम का एक फूल का पोधा । रत्ना० ।

आशीना–[अ०] पत्थर का फूल । छड़ीला ।

आशी·विष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सर्प । साँप । मद० व० १२ । "आशीविषो विषधरश्चक्री व्यालः सरीसृपः ।" अम० । (२) दर्वीकर सर्प । गोहुँवन । सु० कल्प० ४ अ० ; च० सू० १३ अ० ।

आशु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) सामान्य धान्य । साधारण धान । र० मा० । (२) बरसात में होनेवाला एक धान । सावन भादों में होनेवाला धान । व्रीहि । पाटल । साठी । आउश (स)धान–बं० । मे० शद्विक । "आशुभक्तोदकैः पिष्टम् ।" च० द० अ० पि० चि० अभ्र शुद्धि ।

नोट—अन्य धान्य की अपेक्षा शीघ्र पकने से इसका आशु नाम पड़ा ।

गुण—पाक में खट्टा, मधुर, पित्तकारक और भारी है । राज० ।

क्रि० वि० [सं० त्रि०] शीघ्र । द्रुत । तुरन्त झटपट । जल्द । सत्वर ।

[सं० अव्य०] शीघ्रता से । जल्दी से । फौरन् ।

आशुकचु–संज्ञा पुं० [सं० आशु+सं० कचु] एक प्रकार की घुँइयाँ जो बहुत शीघ्र तैयार होजाती है । इसका पौधा ब्रह्म देश और भारतवर्ष में उत्पन्न होता है । सात मास के बाद मूल को निकाल लेते हैं । (Colocasia antiquorum.)

गुण—इसका रस रक्तस्रावावरोधक एवं क्षत को लाभकारी होता है । पत्ती को अच्छी तरह उबालकर खा सकते हैं । जड़ की प्रायः तरकारी बनती है । ट्रावनकोर के लोग इसे बहुत खाते और मलयवाले इसके स्वाद की प्रशंसा करते हैं । घुँइयाँ बहुत पुष्ट होती और तीखुर की मिठाई में पड़ती है । (हिं० वि० को०)

आशुकारी–संज्ञा पुं० [सं० आशुकारिन्] (१) वह सन्निपात-ज्वर जिसमें पित्त की प्रबलता हो । पित्तोल्वण सन्निपात-ज्वर ।

लक्षण—अतिसार, भ्रम, मूर्च्छा और मुखपाक, शरीर में लाल-लाल बिन्दुओं का होना और अत्यन्त दाह आदि पित्त की अधिकता के लक्षणों द्वारा यह सन्निपात लक्षित होता है। भा० म० १ भ०। (२) शीघ्र प्रभाव करनेवाला। शीघ्र कार्यकारी। जल्द काम करनेवाला। शीघ्रकर। शीघ्रकृत्। यथा—"आशुकारी मुहुश्चारी पक्वाधान गुदालयः।" सु० नि० १ अ० ७ श्लो०। (३) द्रव्य स्थित एक गुण जिससे वह देह में शीघ्रता करता है अथवा जल में तेल की तरह शीघ्र व्याप्त होजाता है। जैसे –"आशुकारीतथाशुत्वाद्धावत्यम्भसि तैलवत्।"

आशुकारी, व्यवायि और विकाशीका भेद–ये तीनों गुण विषों में पाये जाते हैं। इनमें व्यवायी द्रव्य आमाशय में जाते ही, बिना परिपाक को प्राप्त हुए अपक्वावस्था में ही सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होता है। उसके उपरान्त परिपाक को प्राप्त होता है। जैसे–"पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकञ्चगच्छति। व्यवायितद् यथा भङ्गा फेनञ्चाहि समुद्भवम्।" और विकासी पदार्थ भी पचने के पूर्व ही सारे शरीर में व्याप्त होजाता है। पर इसमें इतनी अधिकता है कि यह धातुओं को शिथिल करता है।

जैसे—"विकासी विकसन्नेवं धातुबन्धान् विमोक्षयेत्।"

इसका उलटा मंद (चिरकारी) गुण है।

आशु-कोपित–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मध्य देश में होनेवाला एक प्रकार का शालि धान जिसे वक्रक शालि और धकोइ धान कहते हैं। रा० नि० व० १६।

आशुक्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अविलम्बित व्यवहार। फुरती का काम। शीघ्रकरण।

"अष्टास्वप्यायुर्वेदतन्त्रेषु एतदेवाधिकमभिमतमाशुक्रियेति।" सु०।

आशुग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वायु। हवा। अम०। (२) तीर। बाण। शर। (३) मन।

वि० [सं० त्रि०] शीघ्रगामी। जल्दी चलनेवाला।

आशुगामी–संज्ञा पुं० [सं० आशुगामिन्] [स्त्री० आशुगामिनी] (१) वायु। हवा। (२) सूर्य। (३) बाण। तीर।

वि० [सं० त्रि०] शीघ्रगामी। जल्दी चलनेवाला।

आशुङ्ग–संज्ञा पुं० [(वै०) सं० पुं०] एक चिड़िया। अथ० ६। १४। ३।

आशु-तीक्ष्णक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ताँबा। ताम्र।

आशुत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शीघ्रता। जल्दी।

आशुधान–संज्ञा पुं० [सं० आशु+हिं० धान] साठी धान। षष्टिक। वह धान जो ६० दिन में तैयार हो।

आशुप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का बाँस। वंश विशेष। वेउड़-बाँस–बं०। श० च०।

आशु-पत्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शल्लकी लता। कुंदरु की लता। रत्ना०।

आशु-पाल–संज्ञा पुं० [देश०] अशोक।

आशु-प्रसवकारक,-आशु-प्रसवजनक–वि० [सं० त्रि०] जो औषध शीघ्र बच्चा पैदा कराये। शीघ्र प्रसवकारी। मुअज्जिलुल् विलादत (अ०)। ऑक्सिटॉकिक Oxytocic (अं०)।

आशुफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शाक प्रभृति। सब्ज़ी वग़ैरः। (२) एक प्रकार का हथियार।

वि० [सं० त्रि०] तुरत लाभ पहुँचानेवाला।

आशु-व्रीहि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बोरोधान। रत्ना०। (२) बरसात में पैदा होनेवाला धान। आशु धान्य। आउस। साठी। अ० टी० भ०।

आशु-मण्ड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आउस चावल का माँड़। आशुभक्तमण्ड। आउस चालेर मंड–बं०।

गुण—ग्राही, मधुर, कफकारक, तर्पक, क्षय दोष को हरण करनेवाला और शुक्रवर्द्धक है। अत्रि० १ स्थान २३ अ०।

आशु-शुक्षणि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि। आग। रत्ना०। अम०। (२) वायु हवा।

वि० [सं० त्रि०] दीप्तमान। चमकदार।

आशुपाण–वि० [सं० त्रि०] जो अच्छी तरह सूख जाता हो। सम्यक् शुष्क होनेवाला।

आशे-कुटी–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं० आशेकुटिन्] पर्व्वत। पहाड़। श० मा०।

आशे-जौ–[फ़ा०] यवाम्बु। उबाले हुए जौ का पानी। जौ का आश। माउश्शईर–अ०। Barley water.

आशे-तज़्वीर–[फ़ा०] आशे-मरीज। मरीज़ के लिए आश वा शोरबा। रोगी के लिए पथ्यरूप जूष।

आशे-दक़ीक़–[फ़ा०] आशे बिरञ्ज। चावलों की आश। चावलों की पीच। भक्त-मण्ड। माँड़।

आशे-बच्चगाँ–[फ़ा०] जुन्दबेदस्तर। काह रोहन। (Castoreum.) दे० "ऊदबिलाव"।

नोट—चूँकि यह औषधि बालापस्मार रोग में आक्षेप शामक रूप से बच्चों को अधिक दी जाती है। इसलिये उपर्युक्त नाम से विख्यात हो गई।

आशे-मज़ोर–[फ़ा०] चावलों का शोरबा। Rice-broth.

आशोक–संज्ञा पुं० [देश० बं०] अशोक। आशुपाल।

आशोकेय–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० अशोकेयी] अशोक वृक्ष के पास की भूमि वा प्रदेश। अशोक पेड़ के पास होनेवाला।

आशोब-चश्म–[फ़ा०] आँख की पीड़ा। नेत्राभिष्यंद। नेत्र पीड़ा। आँख का दर्द। आँख आना। रमद-अ०। ((Ophthalmia) दे० "रमद"।

आश्चोतन,-आश्च्योतन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आँख में दिन के समय किसी औषधि की आठ बूँद डालना। आश्चोतन कार्य रात में कभी नहीं होता। खुली हुई आँख में दो अंगुल ऊपरसे क्वाथ, शहद आसव या किसी स्नेहकी बूँद का डालना आश्चतोन कहलाता है। यथा—"उन्मिलिते दृङ्मध्ये क्वाथक्षौद्रासवस्नेहविन्दूनां पातनम्" प्रयोगाः। इसकी मात्रा लेखनके लिये ८, स्नेहन के लिए १० और रोपण के लिये १२ बूँद है। गरमी में ठंडी और सरदी में गरम बूँदें होनी चाहिएँ और वायुमें कड़ुई, पित्तमें स्निग्ध और कफमें तिक्तोष्ण एवं रूक्ष बूँदें उपकारी होती हैं। आश्चोतन कर्म। चक्षुःपूरण। वै० निघ।

"तर्पणैः पुटपाकैश्च धूमैराश्चोतनैस्तथा।
हितमर्द्धोदकं सेके तथाश्च्योतनमेव च॥
क्षौमाबद्धं पथ्यमाश्च्योतने वा सर्पिर्घृष्टं यष्टिकाह्वं सरोध्रम्॥"। सु०।

आश्चोतन-विधि—वातज नेत्र रोग में गरम, कफ में थोड़ा गरम और रक्तपित्त में शीतल दिया जाता है। इसकी विधि यह है कि रोगी को वात-रहित स्थान में बैठाकर बाएँ हाथ से आँख खोलकर सीपी प्रलंबा वा रुई के फाहे से दो अंगुल ऊँचे से आँख के तारे पर १०–१२ बूँद डाल दें; तदनन्तर कोमल वस्त्र से आँख पोंछकर गुनगुने पानी से चेलवर्ति भिगोकर धीरे-धीरे आँखों में स्वेदन करें। यह आश्चोतन वात कफ में किया जाता है, रक्तपित्त में नहीं। धा० सू० अ० २३।

(२) नेत्रसेचन। वा० टी० हेमा०। (३) सम्यक् क्षरण।

वि० [सं० त्रि०] सम्यक् क्षरणशील। खूब टपकनेवाला।

आश्ताँ–[पं०] करनतूत। कीमू। हीमू।

आश्फोता–संज्ञा स्त्री० [सं० आस्फोता] विष्णुक्रान्ता। अपराजिता।(Clitorea ternatia) इं० मे० मे०। दे० "आस्फोता"

आश्म–वि० [सं० त्रि०] (१) पत्थर का बना हुआ। (२) प्रस्तरमय। पथरीला। संगीन।

आश्मन–वि० [सं० त्रि०] पथरीला प्रस्तरमय। पत्थर का बना हुआ। संगीन।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पत्थर की बनी चीज़। प्रस्तर विकार।

आश्मरिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्मरी रोग। संग मसाना। पथरी। "भिन्नवस्तिराश्मरिको न सिध्यति।" सु०। दे० "अश्मरी"।

आश्यान–वि० [सं० त्रि०] (१) कुछ-कुछ गाढ़ा। ईषद् घनीभूत। (२) शुष्कप्राय। जो कुछ-कुछ सूखा हो।

आश्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चक्षु का जल। आँख का पानी। आँसू।

आश्रय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आश्रयी, आश्रित] (१) आधार। सहारा। अवलम्ब। जटा०। (२) गृह। घर। हे० च०। (३) आधार वस्तु। (४) मेल। शरण। पनाह। ठिकाना।

(५) सम्पर्क । लगाव । (६) मूल । जड़ । (७) संबंध । (८) संयोग ।

आश्रयफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] झिंझिरा । झिंझिरीट ।

आश्रयाश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चीता का पेड़ । चित्रक वृक्ष । (२) अग्नि । आग । अम० ।

वि० [सं० त्रि०] आश्रयनाशक । सहारे को तोड़नेवाला ।

आश्रव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दुःख । क्लेश । मे० । (२) किसी के कहे पर चलना । वचन । स्थिति । (३) अंगीकार । इक़रार ।

वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आश्रवी] अश्रु संबंधी । आँसू का । Lacrimal.

आश्रव-कुल्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Lacrimal-groove.) कुल्या विशेष । अ० शा० ।

आश्रव-यन्त्रक–संज्ञा० पुं० [सं० क्ली०] (Lacrimal-apparatus.) अश्रु-अवयव । अ० शा० ।

आश्रव-हानव (वी०)–वि० [सं० त्रि०] (Lacrimal-maxillary.) अश्रु तथा हनु से संबंध रखनेवाला । अ० शा० ।

आश्रवास्थि–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Lacrimal-bone.) अस्थि विशेष । अ० शा० ।

आश्रवी–वि० [सं० त्रि०] (Lacrimal.) अश्रु संबन्धी । आँसू का । अ० शा० ।

आश्रवी-धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Lacrimal Artery) धमनी विशेष ।

आश्रवी तुन्त्री(नाड़ी)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Lacrimal Nerve) नाड़ी विशेष । अ० शा० ।

आश्रि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सम्यक् कोण । खासा कोना । (२) तलवार का किनारा । धारा ।

आश्री–वि० [सं० आश्रिन्] [स्त्री० आश्रिणी] जलयुक्त नेत्र । जिसकी आँख में आँसू भरे हों ।

आश्रुत–वि० [सं० त्रि०] खूब सुना हुआ । सम्यक् श्रुत । आकर्णित ।

आश्रुति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्रवण । सुनने का भाव । सुनाई ।

आश्लिष्ट–वि० [सं० त्रि०] (१) हृदय से लगा हुआ । आलिङ्गित । व्याप्त । कृतालिंगन । (२) लगा हुआ । चिपटा हुआ । सटा हुआ । मिला हुआ ।

आश्लेष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आलिङ्गन । मिलना । जुड़ना । चिपटना । रत्ना० । (२) लगाव ।

आश्लेषण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मिलावट । मेल ।

आश्लेषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१)चम्पा । चम्पक । (२) आश्लेषा नक्षत्र ।

आश्व–वि० [सं० त्रि०] (१) अश्वसंबन्धी । घोड़े का । (२) जिसे घोड़ा ले जासके ; अश्ववहनीय ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (२) घोड़ों का झुंड । अश्वसमूह । (२) अश्वत्व ।

आश्वत्थ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीपल का फल । अश्वत्थ-फल । गोदा । पीपी । अम० ।

वि० [सं० त्रि०] अश्वत्थ संबन्धी । पीपल का । आश्वत्थिक । आश्वत्थीय ।

आश्वत्थ-फला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाऊबेर । अरअर । (Juniper.)

आश्वयुज (ज्)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आश्विना । अगहन । रा० नि० व० २१ ।

आश्वलक्षणिक–वि० [सं० त्रि०] (१) जो घोड़े के शुभाशुभ लक्षण पहचाने । अश्वलक्षणाभिज्ञ । (२) जो घोड़े के शुभाशुभ लक्षणबोधक शास्त्र पढ़ता हो ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्वपाल । साईस ।

आश्वासनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऋद्धि नाम की ओषधि । धन्व० नि० ।

आश्विन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चांद्र आश्विनमास । क्वार का महीना । वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्रयुक्त हो । वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र में पड़े । इसमें सूर्य कन्याराशि में स्थित होते हैं । ६ वाँ महीना । अम० ।

आश्विनेय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अश्विनी

कुमारद्वय। (२) नकुल। (३) सहदेव। (४) अश्व के जाने योग्य पथ। जिस रास्ते से घोड़ा निकल सके। अम०।

आश्वीन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उतना मार्ग जितना घोड़ा एक दिन में चले। जिस राह से घोड़ा एक रोज़ में निकल सके। घोड़े की एक मंजिल। अम०। (२) वह चान्द्रमास जिसकी पूर्णिमा को पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो। ज्येष्ठ मास के पश्चात् और श्रावण के पूर्व का महीना। असाढ़।

आषाढ़-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) असाढ़। इसमें सूर्य की स्थिति मिथुन राशि में होती है। रा० नि० व० २१। अम०। (२) पलाशदण्ड। मे०।

आषाढ़क-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पलास-बीज। परास का बीया। ढाक का बीज। पलाशपापड़ा। (२) अषाढ़ का महीना।

आषाढ़ा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नक्षत्र विशेष। उत्तराषाढ़ा।

आषाढ़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०][वि० आषाढीय। आषाढ़ मास की पूर्णिमा।

आस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (२) धनुष। कमान। (२) चौकी। (३) चूतड़। जैसे-कट्यास।

आस्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुख ; मुँह। चेहरा। अथर्व० सू० १२। ६। का० ६।

ऑस-[अं० Os] (१) अस्थि। हड्डी Bone. (२) मुँह।

आस-संज्ञा पुं० [फ़ा०] विलायती मेंहदी। बरगसा। मोरद। ओराहीरा (हिं०)। हब्बुल आसका वृक्ष। मोरिद (फ़ा०)। विलायती मेंहदी (बं०)। मकली-न-पत्रन (गु०)। सुतूरे सोवा (अ०)। मर्टिल Myrtle (अं०)। मिर्टस कम्यूनिस Myrtus communis, *Linn.* (ले०)। मिर्टे (फ्रां०)। (फल) हब्बुल् आस, तुख़्म मोरद। मोरद दान: (फ़ा०)। विलायती मेंहदी के बीज।

नोट—डिमक महाशय लिखते हैं, कि प्राचीन लेखकों ने जिस, जंगली आस (Oxy myrsine or wild myrtle) का उल्लेख किया है और जिसे मुसलमान लेखकों ने 'आसिल बर्री' लिखा है, वह वास्तव में जंगली आस नहीं; अपितु एक प्रकार का बूचर्स ब्रूम (Ruscus aculeatus) है।

जम्बू वर्ग

(*N. O. Myrtaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—भारतवर्ष में लगाया जाताहै।

वानस्पतिक वर्णन—एक वृक्ष जो बागी तथा जंगली भेद से दो प्रकार का होता है। बागी का पेड़ अनार के पेड़ की तरह और पत्ते अनार के पत्तों से किसी प्रकार छोटे और हरे रंग के गोलाई लिए होते हैं। स्वाद में किंचित् मधुर और अत्यंत बिकसापन लिए होते हैं। इसके फूल सफ़ेद सुगंधित स्वाद में किंचित् तिक्त और फीका होते हैं। पत्तियाँ छोटी-छोटी होतीं और शीघ्र झड़जाती हैं तथा इसमेंसे सुगंधि आती है। फल काले और बीज सफेद होते हैं। जंगली आस उससे किसी प्रकार छोटा होता है। इसका फल पककर लाल रंगका हो जाता है। पत्ते पीले और धारीदार होते हैं तथा चौड़े मोटे एवं बागीके पत्तों से अपेक्षाकृत छोटे होते है। पत्तों की नोंक काँटों की तरह होती है। दोनों प्रकार के वृक्षों का पतझड़ नहीं होता। ये सदाबहार होतेहैं। आस वृक्ष के तने पर हाथ की हथेलीके बराबर एक चीज़ उत्पन्न होजाती है, जिसका रंग तने के रंग का सा होता है। इसको 'बुंख आस' कहते हैं। यह उसके अन्य सब अंगों से अधिक प्रभावशाली होता है। किसी-किसी के अनुसार डालियों के तने पर हथेली के बराबर श्यामता लिए एक वृक्ष उत्पन्न होजाता है, जिसके पत्ते गोल और फूल सफ़ेद होते हैं। इसीको 'बुंख आस' कहते हैं और यह बुन=जड़+क= अल्या० का यौगिक है। जंगली आस् का तना छोटा होता है। इसकी लकड़ी कड़ी होती है। इसका फल पककर अत्यन्त रक्त वर्ण का होजाता है। बागी आस का तना दीर्घ होता है। जंगली का तना एक हाथ से अधिक ऊँचा नहीं होता। कोई-कोई कहते हैं कि जड़ ही से शाखाएँ फूटती हैं। बागी आस का फल और फल का उसारा पत्तों और फूलके उसारे से उत्तम होता हैं। सूखा बुंख निर्बल होजाता है। इसलिए इसे कूटकर कषाय मद्य (शराब आक्रिस) में मिला टिकिया

बनाकर और सायामें सुखाकर रखलें। ये टिकियाएँ कब्ज़ और रूक्षता पैदा करने में उसारे से श्रेष्ट हैं।

रासायनिक संघटन—पके फल में एक प्रकार का उड़नशील तैल (Oil of myrtle), राल, कषाथिन, निंबुकाम्ल, सिंचितिकाम्ल (Malic acid) और शर्करा प्रभृति पाये जाते हैं। पत्तियों, फूलों और फलसे एक प्रकारका उड़नशील तैल परिश्रुत किया जाता है जो पिलाई लिए या हरापन लिए पीले रंग का और जल से हलका होता है।

इतिहास—बुक़रात, प्लाइनी, दीसक़ूरीदूस, जालीनूस एवं आरब्य लेखकों के ग्रंथों में आस (The myrtle) को उच्च स्थान प्राप्त है। प्लाइनी ने इसका सविस्तार वर्णन एवं गुणधर्मोल्लेख किया है। पीछे के लेखकों ने उन्हीं से बहुत कुछ लिया है।

प्रयोगांश—पत्र चूर्ण वा तैल, फल का फांट वा तैल प्रभृति, फल, बीज, तथा पंचांग।

औषधि-निर्माण—(१) २ ड्राम आस के फल १ ड्राम समग़ अरबी और २ ड्राम खर्नूब शामी—इनका बारीक चूर्ण कर ½ से १॥ ड्राम की मात्रा में प्रयुक्त कराने से अतिसार और चिरकारी रक्तामाशय में उपकार होता है।

(२) २॥ तोला आस के कूटे हुए बीजों को ३० तो० परिश्रुत जल में तीन घंटे भिगोकर पुनः शक्कर योजितकर आध घंटे तक मंदाग्नि से पका शर्बत तैयार करें। इसे १ तो० से २॥ तो० की मात्रा में सेवन करने से अतिसार एवं प्रवाहिका में लाभ होता है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—बाग़ी आस प्रथम कक्षा में शीतल और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। किसी किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है। क्योंकि स्वाद में यह कड़ुएपन के साथ बिकसा एवं मधुर है। अस्तु, तिक्तता एवं मधुरता उष्णांश और बिकसापन शैत्यांश की विद्यमानता प्रमाणित करता है। किंतु उष्णांश सूक्ष्म एवं शैत्याभिभूत है तथा इसमें पार्थिवांश है, जिससे क़ब्ज पैदा करता, शक्ति पहुँचाता एवं रूक्षता उत्पन्न करता है और लतीफ़ जौहर होने से निर्मलता, रोधोद्घाटन एवं अभिशोषण करता है। फूल, फल, बीज, पत्ते, लकड़ी और जड़ भेद के कारण इसकी शीतलता एवं रूक्षता न्यूनाधिक हो जाती है। तात्पर्य यह है कि बीज और जड़ पर शीतलता ग़ालिब (अभिभूत) है तथा शेष अन्य अंगों में इसके विपरीत अवस्था है। इससे उसारा तैयार करते हैं। यह पत्र स्वरस के समान लाभ करता है। क्योंकि बाग़ी आस के उष्ण उपादान ने शीतलता की तअ़्दील (समीकरण) नहीं की, बल्कि स्वयं उष्णांश के विलीन हो जाने के कारण रूक्षता बढ़ जाती है। इसलिए विद्वानों का यह मत है कि शीतलता प्रथम कक्षासे अधिक नहीं और रूक्षता द्वितीय कक्षा में है। किसी-किसी के अनुसार इसके समग्र अवयव मुरक्कबुल् क़ुवा (परस्पर विरोधी गुणधर्म युक्त) हैं और शैत्यांश उनमें प्रधान है, उष्णांश न्यून है और अपनी अर्ज़ियत (भौमत्व) के कारण रूक्ष और काबिज़ है। शीतलता अति न्यून है या प्रथम कक्षा में शीतल है। रूक्षता द्वितीय कक्षा में है। जंगली आस को द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष बताया है।

हानिकर्त्ता—इसके अधिक सूँघने से कुस्वप्न दर्शनका रोग हो जाता है। यह गरमी के शिरदर्द एवं प्रतिश्याय में हानिकर है तथा आँत को हानि पहुँचाता है।

दर्पघ्न—सौसन, ताजा बनफ़सा, ताजा नीलोफर। खाज तथा आँतों के क्षत का अनीसून दर्पदलन करता है। प्रतिनिधि—इज़्ख़िर और बालछड़। किसी-किसी के अनुसार आस के पत्तों की प्रतिनिधि ज़रिश्क या मेंहदी के फूल हैं। सूजन के लिये उसकी प्रतिनिधि रसौत है। मात्रा—जिरम (अंग) १० माशे तक, उसारा सवा दो तोले से १ माशा कम ७ तो० तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह अतिसार, पसीना और प्रत्येक भाँतिके प्रवहण विकार को बंद करता है। क्योंकि यह अपनी स्तंभिनीशक्ति के होते हुए, उस गरम, सूक्ष्म (लतीफ़) और रोधोद्घाटकांश के कारण मूत्र का प्रवर्त्तन भी करता

है। पर चूँकि इसके गरम और ठंडे अवयव का संघटन निर्बल है। इसलिये जब इसमें हमारी शारीरिक उष्मा असर करती है, तब प्रत्येक घटक एक दूसरे से विश्लिष्ट हो जाते हैं। परंतु पृथक् होने के उपरान्त उष्ण घटक ठंडे की अपेक्षा प्रथम अपना प्रभाव करता है। क्योंकि गरमी सरदी से बलवत्तर है। इसी हेतु स्तंभन से पूर्व प्रवर्तन होता है। सरांश यदि सबसे पूर्व स्तंभन होता था दोनों प्रभाव एक साथ होते तो उष्ण घटक कदापि प्रवर्त्तन कार्यक्षम न होता। क्योंकि स्तंभन प्रवर्त्तन का विरोधी है।

स्नानागार में जब इसकी शरीर में मालिश की जाती है, तब यह देह को शक्ति प्रदान करता है और अपनी रूक्षता एवं तहलील के कारण यह बीमारियों की रतूबत ग़रीबा (बहिर्द्रव) को शरीर से अभिशोषण करता है।

इसका सूखा पत्ता कक्ष-दुर्गन्धि का निवारण करता है। क्योंकि सूखे पत्ते में हरे की अपेक्षा अभिशोषण की अधिक शक्ति होती है। कारण यह कि हरे पत्ते में कुछ रतूबतें अवश्य मिली हुई होती हैं। अस्तु, यह अपने पार्थिव रूक्षांश से स्रोतों को अवरुद्ध करता है और सड़ी रतूबतों के निकलने को भी रोकता है। इसके साथ ही यह उन रतूबतों को ख़ुश्क और तहलील भी करता है। विशेषतः जब पत्ते को जलाकर प्रयोग में लाया जाय, तो यह अधिक लाभ करता है। क्योंकि जलाने के कारण इसमें स्तम्भन एवं रूक्ष गुण की वृद्धि हो जाती है।

यह केशों को शक्ति देता है। क्योंकि यह प्रथम उष्णांश द्वारा केश पोषणकारी घटकों को अभिशोषित करता और छिद्रों को खोलता है। फिर अपने स्तम्भकावयव के साहाय्य से उस अंग को मजबूत करदेता है। और चूँकि उसकी ओर केशों के घटक अभिशोषित हो चुके हैं, अतएव उक्त अंग केशनिर्माण में समर्थ हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह उन स्रोतों को भी संकुचित कर देता है, जिनसे बालों की जड़ें दृढ़ता के साथ संश्लिष्ट होती हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि सर्व प्रथम उष्णांश का प्रभाव होता है (इसलिए दोनों क्रियाओं में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती) और द्रवों (रतूबतों) के कम करने के कारण यह बालों को काला भी करता है।

अपनी रूक्षता एवं क़ब्ज उत्पन्न करने के कारण आँतों की रगड़ (सहज अमूआ) को रोकता है और उष्ण शोथों (जुमूरः), पित्ती और जले हुए स्थान को शांति प्रदान करता है और छाला नहीं पड़ने देता। क्योंकि उसकी गरमी शांत करता है और उसके माद्दा को लौटा देता है।

यदि आस के पत्तों को मदिरा में क्वथितकर प्रलेप करें तो उग्र सिरदर्द आराम हो। क्योंकि मदिरा उसको अपनी तीव्रता के कारण सिर के आभ्यंतरिक भाग तक प्रविष्ट करा देती है, जिससे यह वहाँ कब्ज़ पैदा करता और ठंढक पहुँचाता है एवं उसकी ओर मवाद बहने को रोकता है। और स्वयं मदिरा द्वारा माद्दे की मृदुता, सूक्ष्मता, विलीनता प्राप्त होती है।

इसका शर्बत खाँसी और मूर्च्छा (खफ़क़ान) के लिए गुणकारी है और हृदय को शक्ति प्रदान करता है। खाँसी में उपयोगी होने का कारण यह है, कि इसके फल में प्राकृतिक मिठास होती है और मधुरता शिथिलता (इर्ख़ाऽ) पैदा करती है और मृदुताकारक होती है। पुनः उस पर भी शर्करागत माधुर्य इसका सहायक होता है। खफ़क़ान में लाभकारी एवं हृदय को बलप्रदान करने का कारण यह है, कि इसमें इत्रियत अर्थात् सुगंधि होती है, जो रूह के जौहर के अनुकूल है। इसमें तलतीफ़ के साथ यत्किंचित् क़ब्ज है. वह रूह को शक्ति देता और उसके जौहर को स्वच्छ एवं विमल करता और उसे फैलाता है।

यह मसूढ़ों को दृढ़ बनाता है। क्योंकि यह संकोचक है और शैथिल्यजनक रतूबतों को सुखा देता है।

यदि इसे शराब पीनेसे पूर्व पिया जाय, तो उसके खुमार को रोक देता है। यही दशा इसके बीजों एवं इसके निचोड़े हुए पानी का भी है। खुमार रोकने का कारण यह है, कि यह आमाशय बलदायक है और शराब के पचने में आमाशय की

सहायता करता है एवं सिर की ओर वाष्पारोहण को अवरुद्ध कर देता है। क्योंकि इसमें स्तंभन एवं प्रवर्त्तन की शक्ति भी है। अस्तु, यह शराब को मूत्रपथ से विसर्जित कर देता है।

इसके फल का उसारा प्रवर्त्तक (मुदिर्र) है, जैसा वर्णन होचुका है। अपने शैत्यांश के कारण यह पेशाब की जलन दूर करता है। (त० न०)

अपनी सुगंधि और क़ब्ज से रूह के अनुकूल है अतएव रूह को शुद्ध करता उसे निर्मलता एवं प्रभायुक्त करता और उसे शक्ति देता है। विशेष कर हृदय को शक्ति प्रदान करता, खफ़कान एवं हृदय की निर्बलता का निवारण करता और दस्तों को बंद करता है। इसके समग्र अंगों की यही दशा है। इसके सकलावयव खून और पसीना को रोकते हैं और मुँह से खून आने को बंद करते हैं। आमाशय, हृदय, आँत और दृष्टि को शक्ति प्रदान करते हैं; मूत्रोत्सर्ग करते, पथरी तोड़ते और बवासीर को लाभकारी हैं। शराब के साथ उतीला (?) और बिच्छू के ज़हर को नष्ट करते हैं। गरम सूजन और फोड़ों को लाभ पहुँचाते हैं। विसर्प (सुर्खबादा) और पित्ती उछलने में गुणकारी हैं। आस के उपयोग से एड़ी का दर्द दूर होता है। यह हाथ की हथेलियों और पाँव के तलवों के घावों के लिये हितकारी है। इसका लेप अंड की सूजन, अर्शाङ्कुर और चोट के लिए अतीव गुणकारी है।

यह गिले अरमनी और सिरके के साथ कंडू का निवारण करता है।

आस का पंचाङ्ग, माज़ू, अकाक़िया, गुलेसुर्ख और मसूर के साथ निर्बल मनुष्यों के अवयवों को बलिष्ट बनाता है।

इसके पंचाङ्ग की धूनी अर्शाङ्कुरों को गिराती है।

नाफ़ के ऊपर इनका लेप पित्तातिसार को बन्द करता है।

यदि आग से कोई जल गया हो तो इनके लगाने से लाभ होता है।

चोट लग जाय वा कोई अंग उखड़ जाय, तो इनको इस प्रकार लगाना चाहिये—मैदा लकड़ी, अंडे की ज़रदी और गुल रोग़न में आस-पञ्चांग का चूर्ण मिला कोष्ण लेप करें। काला जीरा और अंडे की ज़रदी के साथ भी इस काम के लिये व्यवहार में लाते हैं।

आस के पत्तों को गिले अरमनी और सिरके के साथ नाखून पर लगाने से उस पर चमक आती है।

आस के पत्तों को जल में क्वथितकर धारने से संधिशूल आराम होता है और टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है।

छीप (बहक़) पर इसके पत्तों का प्रलेप करने से उसका निवारण होता है।

इसके पत्तों को जलाकर, उसकी राख शरीर पर लगाने से पसीने की दुर्गन्धि निवृत्त होती है। इसकी राख झांई पर लगाने से झाईं का नाश होता है। आँख में लगाने से जाला और नाखूना भी दूर हो जाता है।

आस के पंचांग को पानी में क्वथितकर, उस काढ़े से बाल धोने से बालों की जड़ें दृढ़ हो जाती हैं।

इसके काढ़े की वस्ति करने से आमाशयगत कीड़े नष्ट होते हैं। आँतों की चोट के लिये इसका लेप विशेष रूप से उपकारी है।

यदि मोज़ों से त्वचा पर कहीं खराश हो गई हो, तो इसके सूखे पत्तों का चूर्ण बुरकने से लाभ होता है। इससे वे तर व ताज़ा फुन्सियाँ भी जो गरमी से हुई हों, आराम होती हैं।

इसके पत्तों की राख तूतिया की तरह देह की दुर्गन्धि दूर करने एवं सद्य: जात फोड़े-फुन्सियों के खोने में व्यवहृत होती है। उसी प्रकार यह कक्ष एवं वंक्षण की दुर्गन्धि निवारणार्थ काम में आती है।

बाकला को पानी में भिगोकर, उस पानी में आस के पत्तों को पीसकर झाईं पर लगाने से आराम होता है।

इसका उसारा सिर पर लगाने से सिर की भूसी मिटती है।

पत्तों को चुकन्दर के स्वरस के साथ पीसकर सिर पर लगाने से सिर की फुन्सियाँ नाश होती हैं।

गुलरोगन या रोगन ज़ैतून के साथ लगाने से कंठमाला में लाभ होता है।

यदि संधियाँ ढीली पड़गई हों, तो इसका प्रलेप करें।

स्नानागार के भीतर देह पर इसके पत्ते मलने से शरीर दृढ़ होता है और देह की रतूबत सूख जाती है। यदि आगसे देह जल गई हो तो इसके पत्तों को पीसकर गुलरोग़न के साथ उस स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

इसका स्वरस सिरका और गुलरोग़नमें मिलाकर नस्य लेने से शिरदर्द आराम होता है।

इसके ताज़े पत्ते सूँघने से मस्तिष्क की ओर वाष्प नहीं चढ़ते, मस्तिष्क और हृदय (दिल) को शक्ति प्राप्त होती है, शिरोघूर्णन-शिर चकराना, शिरदर्द और खफ़क़ान को लाभ पहुँचता है।

आघात-प्रत्याघात जन्य शिरोशूल में आस के पत्तों को थोड़े से अकाक़िया और रामक (एक मिश्र औषधि विशेष) तथा बिही के पानी के साथ प्रलेप करें।

बिही का पानी और गुलावार्क लेकर उसमें आस के पत्ते पीसकर और थोड़ा कचूर मिला उसमें वस्त्रखंड आप्लुत कर आमाशय के ऊपर रखने से उस शिरदर्द को लाभ होता है, जो आमाशय में पित्त-संचय के कारण उत्पन्न हुआ हो।

यदि चोट वा आघात के कारण शिरदर्द हो, तो इसके पत्ते गुलरोगन और अंडे की ज़रदी के साथ पीसकर लेप करें।

इसके पत्ते और बीजयुक्त पोस्ते की डोडी, इन दोनों को पानी में औटा छानकर अवलेह प्रस्तुत कर चाटें, तो प्रतिश्याय आराम हो।

इसके पत्ते पानी वा गुलावार्क के साथ पीसकर मस्तक पर लगाने से सिर की ओर से मवाद आँखों में नहीं उतरता।

यदि गरमी से आँख दुखने को आये या आँख में वायु या किसी दोष के एकत्रीभूत हो जाने से वह बाहर की ओर उभर आए, तो इसके पत्तों का स्वरस उसमें टपकाना चाहिये।

जौ के आटे के साथ इसको पकाकर आँख में बाँधने से भी लाभ होता है।

इसके पत्तों की राख कान में डालने से कानकी फुन्सी से पीव निकलना बन्द हो जाता है।

इसको सिरके में पीसकर मस्तक पर लगाने से नकसीर बन्द हो जाती है।

इसके पत्तों के स्वरस में लाल चन्दन पीसकर तथा बेद सादा का अर्क उसमें और मिलाकर और गिले अरमनी पीसकर मिलाकर नाक में टपकाने से नकसीर को लाभ होता है।

सूखे पत्तों का चूर्ण दाँतों पर मलने से उनकी जड़ें दृढ़ हो जाती हैं। इसके पत्तों को पानी में क्वथितकर गण्डूष करने से गरमी से होनेवाला दंतशूल आराम होता है। यह जिह्वा के ढीला होने को लाभ पहुँचाता है।

इसके पत्तों का स्वरस पान करने से और इसी भाँति इसके पत्तों को मवेज़ के साथ प्रयोजित करने से आमाशय को लाभ पहुँचता है और दुर्गंधि का नाश होता है। इसके पत्तों का स्वरस कामला (यर्क़ान) को भी लाभकारी है। इसके लेप से गुद-क्षत में भी बहुत उपकार होता है।

इसके स्वरस या उसारे के पीने से पुरातन अतिसार, संग्रहणी और बवासीर का खून बंद होता है, कै और प्यास दबती है।

कहते हैं इसका उसारा पेट पर लगाने से भी पित्त और वात के दस्त बंद होजाते हैं।

शेख़ के अनुसार तिलों के तेल के साथ खाने से आस निचोड़कर दस्त लाता है। किंतु शारह गाज़रूनी का इस पर यह आक्षेप है कि तिलों का तेल मृदुताकारक है, इसमें निचोड़ने की शक्ति नहीं है। अतएव इस काम के लिए रोग़न गुल उपयुक्त है।

इसकी शाखाओं को यदि स्त्री खाए, तो दूध और आर्त्तव खुलकर जारी होजाय और पित्त के दस्त बंद होजाएँ। चौथाई रतल (८॥ तो०) तिल तैल के साथ इसका उसारा पीने से मलद्वारा खूब कफ निःसृत होता है।

इसको संदरूस के साथ लगाने से बवासीर के मस्से गिर जाते हैं।

आस के पंचांग के क्वाथ से आबज़न करने से काँच निकलने और गर्भाशय के उतर आने को लाभ पहुँचता है और स्त्री के योनि मार्ग से श्वेत द्रव का आना भी बंद होजाता है।

यदि काँच निकल आए, तो पत्तों या रसको या उसारे को उसपर मलें, वह यथा स्थान चला जाता है, पुनः बाहर नहीं आता।

बाग़ी आस का यह एक विशेष गुण है कि इस की लकड़ी से छल्ला बनवाकर, ऐसे मनुष्य के, जिसके वंक्षण स्थान में दर्द एवं सूजन हो, उस तरफ के हाथ की अंगुलियों में पहिनाएँ, जिस ओर दर्द या सूजन हो, तो लाभ होता है। यह भी इसका एक प्रधान गुण है कि इसकी ताज़ी लकड़ी से दातौन करने से कुष्ट को तहरीक होती है।

जंगली आस, विलीनकर्त्ता (मुहल्लिल), अभिशोषणकर्त्ता (जाज़िब) और बल्य है। क्योंकि की इसमें अभिशोषण एवं विलायन (तहलील)की शक्ति अधिक है और मस्तिष्क को भी शक्ति प्रदान करता है। इसलिए जब मस्तिष्क में रतूबात हों, तब इसके सूँघने से उनका निवारण हो जाता है।

इसके फल और पत्ते मद्य के साथ उपयोग करने से आमाशय तथा यकृत को शक्ति मिलती है, कामला (यर्क़ान) दूर होता है, अतिसार रुक जाता है, स्तन्य का प्रवर्त्तन होता है, वस्तिगत पथरी टूट जाती है, यदि रतूबत की उल्वणता के कारण बूँद बूँद पेशाब आता हो, तो वह मिट जाता है।

इसकी वर्त्ति गुदा में धारण करने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

इब्न तल्मीज़ ने कहा है कि जंगली आस ज़र्बः और सकूतः के लिए विशेष रूपसे लाभकारी है।

इब्न मासरजोया के अनुसार इसमें बादावर्द की सी शक्ति है और जिसने इसको इज़खिर जाना है, उसने भूल की है। (ख० अ०)।

बाग़ी आस के फल अर्थात् बीज हब्बुल आस कहलाते हैं—

हब्बुल आस

पर्य्या०–हब्बुल् आस (अ०)। तुख़्म मोरद, मोरद दानः, पिस्तहे ग़ालियः (फ़ा०)।

परिचय—आस वृक्ष का फल है। आरंभ में हरा और पक जाने पर काले रंगका हो जाता है। यह काली मिर्च के बराबर होता है। स्वाद में किंचित् मधुर, तिक्त एवं बिकसा होता है। इसमें कुछ गिज़ाइयत भी है। बीज भीतर से चिकना और सफ़ेद निकलता है। किसी फल में तीन दाने होते हैं, किसी में अधिक—आठ, नौ और दस तक निकलते हैं। किसी में केवल एक ही होता है। पत्तों और फूलों के उसारे से भी यह फल क़वी है।

प्रकृति—मुरक्किबुल् क़ुवा (परस्पर विरोधी गुण धर्म संपन्न) है, किंतु कुछ शीतल अवश्य है। हानिकर्त्ता—शीतल आमाशय को हानि पहुँचाता और क़लीलुल् गिज़ा है। दर्पनाशक—गरम और तर चीज़ें। मात्रा—४॥ माशे।

गुण-कर्म तथा प्रयोग—यह गरमी की खाँसी को लाभदायक है, कषायपन के कारण दस्तों को बन्द करता है, कडुएपन के कारण पेशाब लाता है; वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी का छेदन करता है, पेचिश के लिए हितकर है; हृदय को शक्ति प्रदान करता है; प्रतिश्याय का निवारण करता है; यदि रक्तस्राव होने लगे, तो उसे रोकता है; आँतों को बल प्रदान करता है और रक्तमिश्रित दस्त आने को रोकता है। इसमें रसायन गुण गर्भित है। विशेषकर रुतेला और बिच्छू के ज़हर के लिए अतीव गुणकारी है। शराब पीने से पूर्व इसके खा लेने से या इसका फांट पी लेने से, मद्यजनित ख़ुमार पैदा नहीं होता। इसको रोगन ज़ैतून में क्वथितकर शरीर पर मर्दन करने से, पसीना निकलना बन्द होता है। यदि आग से शरीर जल जाय, तो इसका क्वाथ डालने से छाला नहीं पड़ता। इसके तेल से बनी मरहम से भी यही काम होता है। इसको चुकंदर के पत्तों के साथ क्वथितकर सिर पर मलने से सिर की भूसी जाती रहती है। इसके भक्षण से मस्तिष्क बलवान होता है। पोस्ते की ढेंढी के

साथ इसका क्वाथकर, उस काढ़े द्वारा लेह वा शर्बत प्रस्तुतकर सेवन करने से प्रतिश्याय (नज़लात) जाता रहता है। हब्बुल् आस दूध में पीसकर आँख पर लेप करने से आँख की सूजन उतर जाती है। हब्बुलआस को जलाकर राख करलें। उस राख को सिरके में मिलाकर सिर पर लेप करने से नकसीर बन्द हो जाती है। मुख पाक, रक्तमिश्रित लालास्राव एवं उरःक्षत में उपकारी है; आमाशय को बलप्रदान करता है; प्यास, क़ै और मतली बन्द करता है। क्षोभजन्य हिक्का का निवारण करता है। आमाशय की ओर मल नहीं आते। इससे अधिक मूत्रप्रवर्तन होने के साथ पेशाब की जलन एवं वस्तिगत क्षत मिटता है। यदि स्त्री इसे भक्षण करे, तो आर्त्तव का खून अधिक आवे एवं दूध ज्यादा पैदा हो। इसका क्राथ पीने से गर्भाशय से नानाभाँति के द्रवों का निकलना बन्द हो जाता है। इसके प्रलेप से अर्शाङ्कुरों को लाभ होता है, गुदा एवं अंडों की सूजन जाती रहती है। इसको पीसकर शराब के साथ खाने से वस्तिस्थ अश्मरी टूटकर निकल जाती है। रतूबात (द्रवों) के कारण मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। ताजे हब्बुल् आस को पीसकर खाने से पेचिश और आंत्र-क्षत एवं क्षोभ के कारण मरोड़ होना मिटता है। आँतों की ओर मवाद-प्रवहण रुक जाता है और गर्भ की रक्षा रोती है। हब्बुल् आस का उसारा भी लाभकारी है। हब्बुल् आस को क्वथितकर, शराब में मिलाकर लेप करने से संधियों की शिथिलता दूर होती है, टख़ने और पाँव के क्षत आराम होते हैं। आग से जले हुए स्थान पर लेप करने से छाला नहीं पड़ता। इसका रुब्ब शीतल एवं रूक्ष है। रुब्ब निर्माणार्थ इसके पके हुए काले ताज़े फल व्यवहार में लाने चाहिये।

विधि यह है—उक्त फलों को कुचलकर पानी निचोड़कर छान लें। फिर उस रसको इतना पकाएँ कि आधा रस शेष रह जाय। गुण—इसके सेवन से क़ै रुक जाती है, दस्त बन्द होते हैं और आमाशय बलवान होता है।

इसका तेल बालों पर लगाने से बाल गिरते नहीं, अपितु गिरे हुये केशों की जगह दूसरे निकल आते हैं और उनकी जड़ें दृढ़ हो जाती हैं।

तैल-निर्माण-विधि—आस के बीज (तुख़्म मोरिद) को पानी में क्वथित करें; फिर साफ़ करके ज़ैतून के तेल में मिलाकर दोनों को तैल मात्र शेष रहने तक पकाएँ। पुनः उसमें लादन (एक प्रकार का गोंद) डालें। जब वह घुलजाय तब उतार लें। बस तेल तैयार है।

शेख़ुर्रईस के अनुसार हब्बुल् के शर्बत के सिवाय और कोई अन्य शर्बत ऐसा नहीं, जो अतिसार बन्द करे।

शारह गाज़रुनी उक्त कथन की व्याख्यामें लिखता है कि यह सूरत नूइया (वह सूरत जो किसी द्रव्य को नूअ-जाति बना देती है)के कारण हैं और कभी इसकी शिर्कत कैफ़ियतभी गिरती है। क्योंकि यह परस्पर विरोधी गुण-धर्म संपन्न (मुरक्किबुलक़ुवा) है। यह शर्बत फुप्फुस रोगों और खाँसी के लिये उपकारक है।

आस का तेल

बागी आस के फूलों से जो तैल प्रस्तुत किया जाता है वह शीतल एवं रूक्ष है, स्तंभक (क़ाबिज़) है, तथा अंगोंको शक्ति प्रदान करता है। जिस अंग पर इसकी मालिश की जाती है, उसकी तरफ मवाद नहीं उतर सकता। इसके अभ्यंग से अवयव दृढ़ भी हो जाते हैं। श्रेष्ठ तेल वह है, जो हरा और स्वच्छ हो तथा उससे आस की सी सुगंधि आती हो। स्वादमें कड़ुआ होताहै और उसके लगाने से बालों की जड़ें मज़बूत होती हैं, उनमें शक्ति आती है, केशों की श्यामता स्थिर रहती है, बाल खराब नहीं होते, यह केशों की परमोत्कृष्ट औषध-केशकल्प है। आग से जले हुए स्थान पर इसका लगाना गुणकारी है। इसका यह भी विशिष्ट गुण है कि जो अंग फड़कता हो, उस पर लगाने से बहुत लाभ होता है। यदि गरमीके कारण सूजन हो जाय तो इसकी मालिश से वह विलीन हो जाती है। यह फोड़े और फुन्सियों को गुणदायक है, घावों को भरता है, ढीले अंगों को सुदृढ़ बनाता है, पसीना रोकता

है, सिर के गंज को लाभकारी है, और इसके कान में टपकाने से कर्णशूल मिटता है।

दिल पर दर्द हो, तो ६ माशे पीने से जाता रहता है। श्वास रोगी के लिये उपकारक है। इससे शिर को तर करने से वह अनिद्रा मिटती है, जो मस्तिष्क की ओर वाष्पों के चढ़ने से पैदा हुई हो। इसके उपयोग से आमाशयिक वाष्पों के कारण उत्पन्न होनेवाला सिरदर्द भी आराम होता है।

डामक—आस की पत्ती द्वारा परिश्रुत तेल वाह्य रूप से पचन-निवारक एवं आरुण्यकारक है। जब इसकी अल्प मात्रा (०·०६ से ०·०६ ग्राम) में भीतर प्रयोग कराते अर्थात् मुख से खिलाते हैं, तब यह आस के फलों की तरह पाचन शक्ति को बढ़ाता है; किन्तु बड़ी मात्रा में यह क्षोभक प्रभाव करता है। यह वृक्क द्वारा एवं श्वास मार्ग से निःसरित होता और मूत्र को विलक्षण गंध प्रदान करता है। लॉडर ब्रंटन (Lauder Brunton) के अनुसार इसके भक्षित मनुष्य को पेशाब से शोरकाम्ल द्वारा एक प्रकार की तलछट प्राप्त होती है। उनका विचार है कि कोपाइबाकी तरह इसका श्लेष्मा निःसारक रूप से बहुश्लेष्मा-निष्ठीवनयुक्त चिरकारी कास और चिरकालानुबंधी योनि-प्रदाह एवं वस्तिप्रदाह में उपयोग हो सकता है। अच्छा यह है कि इसे जेटालीन कैप्शूल में डालकर, जिसमें ४–५ बूँद तेल हो, प्रयोग में लाएँ। इसके पत्र तथा पुष्प द्वारा एक प्रकार का सुरभित जल परिस्नुत किया जाता है, जिसे फ्रांस में ओ डी' एञ्जी (Eau d' ange) कहते हैं। (फा० इं० २ भ०– पृ० ३३-३४)।

नादकर्णी—आस का पौधा उत्तेजक एवं संकोचक है। आमवातिक विकारों में इसकी पत्तियों द्वारा प्रस्तुत तैल का स्थानीय उपयोग होता है। इसके बीजों से प्राप्त स्थिर तैल के उपयोग से केश बढ़ते हैं, एवं बालों की जड़ें दृढ़ होती हैं। आस का फल आध्माननाशक है। अतिसार और प्रवाहिका में इसका फांट पिलाने से लाभ होता है। रक्तस्नुति, आभ्यंतरिक, क्षत गंभीर नाड़ीव्रण श्वेतप्रदर और गर्भाशय स्थान-भ्रंश में इसकी वस्ति भी क्षेमकारी होती है। यह योनि संकोचक भी है। पचननिवारक रूप से दुर्गंधित व्रणों में प्रक्षालन द्रव रूप से इसका उपयोग होता है। मुख पाक में इसके फांट वा क्काथ का गंडूष उपकारी सिद्ध होता है। (इं० मे० मे० पृ० ५८४–५८५)।

आस–संज्ञा [अं० Ass] गधा। गर्दभ।

आसक्त–वि० [सं० त्रि०] (१) अनुरक्त। मग्न। तत्पर। लीन। लिप्त। (२) आशिक। मोहित। लुब्ध। मुग्ध।

आसक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अनुरक्ति। लिप्तता। आसङ्ग। प्रणय। (२) लगन। चाह। प्रेम। इश्क।

आसकामूस–[यू० Osquamus] खुरासानी अजवायन। वाराह लोबिया। शूकर लोबिया। हायोसायमस (Hyocyamus.) इं० "अजवाइन खुरासानी"।

आसङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) संग। साथ। (२) लगाव। संबंध। (३) आसक्ति। अनुरक्ति। लिप्तता। (४) मुलतानी मिट्टी जिसे लोग सिर में मलकर स्नान करते हैं।

क्रि० वि० सतत। निरन्तर। लगातार। हमेशा। सदा।

आसङ्गा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोपी चन्दन। सौराष्ट्रमृत्तिका। रा० नि० व० १३।

आसङ्गिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बवण्डर। चक्रवायु। बगूला। त्रिका०।

आसङ्गिम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार के धान की पट्टी। सुश्रुत के अनुसार पंद्रह प्रकार के कर्णबंधन की आकृतियों में से वह, जिसका मध्य भाग लम्बा और एक कोणयुक्त होता है। "अभ्यन्तरदीर्घैकपालिरासङ्गिमः।" सु० सू० १६ अ०।

आसडियगुण–[का०] बड़ी सतावर। महाशतावरी।

आसत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] (१) मिलान। मेल। संगम। मे०। (२) सामीप्य। समीपता। निकटता। नैकट्य संबंध। पासका मेल। (३)लाभ।

आसन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीरा। जीरकद्रुम। मे० नत्रिक।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गजस्कन्ध। हाथी का कंधा जिस पर महावत बैठता है। हला०। (२) आसन। पीठिका। बैठक। (३) चूतड़। (४) जीवक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि। (५) स्थिति। बैठक। (६) सिद्ध पद्म इत्यादि योग के आसन विशेष।

संज्ञा पुं० [सं० आशन] इस नामका प्रसिद्ध वृक्ष। Terminalia alata tomentosa, *W. et. A.* टर्मिनेलिया टोमेंटोसा, Pentapera tomentosa, *Bedd.* पेंटाप्टेरा टोमेंटोसा-(ले०)। असन, असना। सज, सेइन, अस्सम, सदरी-(हिं०)। जंगली करंज-(द०)। असन, आशन, आसन, अशन, वीजक, पीतशाल, परमायुध (श), महासर्ज्ज, सौरि, वंधूक पुष्प, प्रियक, वीजवृक्ष, नीलक, प्रियसालक, अजकर्ण, वनेसर्ज्ज। "असनोवीजकः कटाख्यः स्वनामाख्यातः।" सु० सू० ३८ अ०-(सं०)। पियाशाल, आशान, उसन-(बं०)। करुप्पु-मरुत्-मरम्, करा मरद, अनेमुई-(ता०)। तल्लमद्दिचेट्टु-(ते०)। करुमरुत, तम्बावु-(मल०)। मट्टि, करिमट्टी, बनपु, सेनी, तोरेमट्टोमद्दी-(कना०)। अइन-(गु०, बम्ब०)। अइन, मदट, येन, साज, सदाद, असणा, वड़िलुरिया-(मरा०)। तौक्क्यान-(बर०)। क्रूम्बूक-(सिंगा०)। सहाजू, कलासहाजू-(उड़ि०)। अमरी-(आसा०)। तकूसोर-(लेप०)। हतान, सतनक, बिबठठा-(कोल०)। कर्काय सदोरा-(हैदराबाद)।

हरीतकीवर्ग

N. O. Combretaceae.

उत्पत्ति स्थान—दक्षिण भारतवर्ष, संयुक्तप्रांत, पंजाब, नेपाल, सिकिम और ब्रह्मदेश में यह बहुत उत्पन्न होता है।

संज्ञा-निर्णायक नोट—वैद्यक में असन और बीजक शब्द पर्य्याय रूप से बार-बार प्रयुक्त हुए हैं। पर आजकल आसन और विजैसार नाम से दो प्रकार के वृक्ष उपलब्ध होते हैं। इसीलिए किसी किसी ने वीजक को विजयसार भी लिखा है और ऐसा मानना ठीक भी समझ में आता है। वि० दे० "विजयसार"।

स्थान विशेष से अनेक प्रकार के वृक्ष अशन वा आसन नाम से प्रसिद्ध हैं; जैसे, (१) (Pterocarpus marsupium, *D. C.*) इसका मारवाड़ी नाम आसन है। हिन्दी में विजैसार कहते हैं। इससे हीरादोखी की तरह एक प्रकार का गोंद निकलता है।

(२)-(Terminalia tomentosa,) इसे हिंदी में आसन कहते हैं। इसका बंगला नाम आसन वा पियासाल है। यहाँ पर इसी का वर्णन किया जायगा।

(३)-(Populus ciliata) इसका पंजाबी नाम सफ़ेदा वा आसन इत्यादि है। शिमला पहाड़ पर इसे बेलुन और नेपाली "बंगी काठ" कहते हैं। इसका पेड़ बड़ा होता है, लकड़ी खाकी, उज्जवल और कोमल होती है।

(४)-(Briedelia rotusa) इसका भी मारवाड़ी नाम आसन है। पंजाब में इसे पाथर कहते हैं। अवध, बंगदेश, दक्षिण भारत एवं ब्रह्मदेश में यह बहुत पैदा होता है। इसकी लकड़ी धूसर रंग की होती और उसमें पॉलिश अच्छी लगती है।

वानस्पतिक वर्णन—शाल की तरह का एक अति विशाल जंगली वृक्ष जिसकी छाल विदीर्ण होती है। पत्ता वृन्त के समीप चौड़ा, अग्रभाग की ओर सरु (अर्जुनवत्) होता है। पत्र पृष्ठपर रोइयाँ होतीहैं। पुष्प क्षुद्र हरिदाभ श्वेत रंग के होते हैं। पुष्प काल वसंत। फल शरद् ऋतु में पकता है और अर्जुन के फल की तरह होता है। इस पेड़ की पत्तियाँ माघ फाल्गुन में झड़ जाती हैं। इसके हीर की लकड़ी दृढ़ और मकान बनाने में काम आती है तथा भूरापन लिये काले रंगकी एवं लहरदार रेखायुक्त होती है। इसकी पकी हुई लकड़ी में पालिश अच्छी मालूम होती है। ऊपर से इसकी लकड़ी सफ़ेद और लाल होती है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल की भस्म में बहुत परिमाण में पोटास और कषायिन (Tannin) होता है।

प्रयोगांश—पुष्प, त्वक्, सारकाष्ठ, और निर्य्यास।

औषध-निर्म्माण—यह असनादि गण (वा० सू० १५ अ०) का एक उपादान है और चरकोक्त उदर्दप्रशमन महाकषाय (च० सू० ४) में भी पड़ता है ।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—वीजक कसैला, कफ, पित्त और रक्तनाशक है । (धन्वन्तरीय निघंटु)

असन चरपरा, उष्ण तथा कडुआ है और वातरोगनाशक, सारक, गले की बीमारी का नाशक और रक्तमंडल नाशक है । रा० नि० व० ६ ।२३।

वीजक कफ तथा रक्त-पित्त नाशक है और त्वचा को हितकारी, केश्य एवं रसायन है और कोढ़, विसर्प, चित्रकुष्ठ (श्वित्र), प्रमेह गुदा के रोग और कृमि रोग इनको दूर करता है । भा० पू० १ भ० वटादिव० ।

असन का फूल विपाक में मधुर, तिक्त, पाचनीय और वातकारक है । (वृहन्निघंटुरत्नाकर)

इसकी छाल का काढ़ा उदररोग नाशक है और इसका प्रलेप नाड़ीव्रण में लाभकारी है ।

असन के वैद्यकीय व्यवहार

चरक-रक्तपित्त में असनक्षार—आसन के पेड़ की अंतर्धूम-दग्ध भस्म से क्षार प्रस्तुत कर घी और शहद मिला रक्तपित्त में सेवन कराएँ ।

यथा—

"तथा मधूकस्य तथासनस्य क्षाराः प्रयोज्या विधिनैव तेन" । (चि० ५ अ०)

सुश्रुत-(१) कुष्ठ में असन—इससे सभी प्रकार के कोढ़ नष्ट होते हैं । यथा—

"यथा सर्व्वाणि कुष्ठानि हतः खदिरवीजकौ"। (चि० ६ अ०)

(२) चक्षुकामित्व में असनसार—असन का सारवान काष्ठ ६ तोला, अरनी की जड़ की छाल ६ तोला इनको अच्छी तरह कूटकर आठ सेर जल में क्वथित करें । जब चार सेर पानी शेष रहे, उतार कर वस्त्रपूत कर लें । फिर उस काढ़े में दो सेर उत्तम माष पकाएँ और उसमें २ तो० चीते की जड़ का चूर्ण और आधसेर कच्चे आँवले का रस डाल दें । माष के अच्छी तरह पक जाने पर उतार लें और शीतल होने पर उसमें से बलानुसार घी और शहद के साथ सेवन कराएँ । इसे पच जाने के उपरांत मूँग और आँवले का यूष तैयार कर इस जूस के साथ घी मिला हुआ अलोना अन्न खाने को दें । यथा—

"चक्षुकामः प्राणकामी वा वीजकसाराग्निमन्थमूलं निः क्वाथ्य माषप्रस्थं साधयेत् । तस्मिन् सिध्यति चित्रकमूलाना मक्षमात्रं कल्कं दद्यात् । आमलकरस चतुर्थभागम् । ततः स्विन्नमवतार्य्य शीतीभूतं मधुसर्पिभ्यां संसृज्योपयुञ्जीत यथाबलम् । लवणं परिहरेत् । जीर्णे मुद्गामलक यूषेणालवणेन घृतवन्त मोदनमश्नीयात् ॥"
(चि० २७ अ०)

वङ्गसेन—(१) उपदंशमें असनसार—खदिर काष्ठ और असनसार का काढ़ा शुद्ध गुग्गुल और त्रिफला के चूर्ण के साथ सेवन कराएँ । यह उपदंश में लाभकारी है । यथा—

"क्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्यां । सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्व्वोपदंशापहरः प्रयोगः ।।"
(उपदंशाधिकार)

(२) पश्चात्तक नामक बालरोग में असन का फूल—असन के फूल का खूब महीन चूर्णकर भक्तवारि द्वारा गोली प्रस्तुत कर पश्चात्तक रोग ग्रस्त बालक को सेवन कराएँ । यथा—

"असनस्यतु पुष्पाणि श्लक्ष्ण चूर्णानि कारयेत् ।
गुटिकां कारयेद्वैद्यस्तां च भक्तस्य वारिणा ।
एतां पश्चात्तके दद्याद्बालेषु मतिमान् भिषक्।।"

वक्तव्य

चरक के उदर्दप्रशमन वर्ग तथा सुश्रुत के सालसारादिवर्ग में असन का पाठ आया है । सुश्रुत ने रक्तपित्त की चिकित्सा में असन के फूल का उल्लेख किया है; यथा—"शिरीष रोध्रासन शाल्मलीनाम् । पुष्पाणि शिम्रोश्च विचूर्ण्य लेहो । मध्वन्वितः शोणितपित्तरोगे ।" (उ० ४५ अ०)

नव्यमत

असना की छाल कषाय है और यह अतिसार, ग्रहणी एवं श्वेतप्रदर में व्यवहृत होती है । (Materia medica of India—*R. N. Khory*, *Part*,11. *p.* 263.)

डिमक—इसकी छाल कसैली हाती है और चमड़ा सिझाने के काम आती। डा० ई० रॉस इसे औषध तुल्य व्यवहार करने की अभ्यर्थना करते हैं। मुखपाक में इसे चूर्ण कर तेल में मिला व्यवहार करते हैं। इसकी छाल की भस्म में बहुत सा पोटास होता है। ग्रामीण लोग इसे खाते हैं। धान के खेतों में इसकी पत्ती की खाद देते हैं।

नादकर्णी– इसमें बहुल परिमाण में चूर्ण कज्जलेत मिश्रित (Calcareous) पदार्थ होता है। इसकी राख पान खानेवालों के काम आती है। इसकी गोंद सौंदर्यवर्द्धक उबटनों का एक उपादान है और यह सुगंधि हेतु जलाने के काम में आती है। (The Indian materia medica.)

इसकी कसैली छाल का काढ़ा (१० में १) आमाशय नैर्बल्य जनित अतिसार में २ आउंस की मात्रा में प्रयोजित होता है। और शिथिल व्रणों (Indolent ulecers) में इसका बहिर्प्रयोग होता है। [Ph. ind.)

आसन-पर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अपराजिता। गो कर्णी वल्ली–मरा०। (Clitorea ternatea.) वै० नि०।

आसना-संज्ञा पुं० [सं० आसन] (१) जीवक द्रुम। दोपहरिया का पेड़। (२) असन दे० "आसन"।

आसनिका–[का०] असगंध। अश्वगंध।

आसन्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार को खाट। खटिया। खट्वा भेद। से० दत्रिक।

आसन्दिका–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] खटोली। क्षुद्र खट्वा।

आसन्दी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) खटोली। एक प्रकार की छोटी खट्टिका। (२) कुरसी। मेढ़ा। मचिया। हारा०।

आसन्ध–[मरा०, गु०] असगन्ध। अश्वगन्ध।

आसन्न–वि० [सं० त्रि०] निकट आया हुआ। समीपस्थ। पास का।

आसन्न-काल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अन्तिम काल। मृत्युकाल। मृत्यु का समय। (२) प्राप्त काल। आया हुआ समय। (३) जिसका समय आगया हो। (४) जिसका मृत्युकाल निकट हो।

आसन्नता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नैकट्य। सामीप्य। समीपता।

आसन्न-प्रसवा–वि० [सं० त्रि०] जिसे शीघ्र बच्चा होनेवाला हो।

आसन्नमृत्यु–वि० [सं० त्रि०] जो मरने के करीब हो। जो मर रहा हो। मृत्यून्मुख। क़रीबुल्मर्ग। मुमूर्षु।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्राप्त-मृत्यु। मृत्यु का समय। जिसकी मृत्यु निकट है।

आसन्नमृत्यु रोगी का लक्षण—रोगी के स्वर का एकाएकी बदल जाना और अनेक प्रकार का स्वर हो जाना तथा अनेक प्रकार से फटा हुआ सा स्वर हो जाना, यह रोगियों के अरिष्ट का चिन्ह है। इस प्रकार मरनेवाले रोगियों के स्वर और वर्ण का बदल जाना मृत्यु सूचक है। च० इं० १ अ०।

आसन्वत्-संज्ञा पुं० [सं०] मुख से काटनेवाला सर्प। अथर्व० सू० १२ । २ । का० ६ ।

आसफ़–[फ़ा०] करील। कबर। Capparis spinosa.

आसबर्री–[फ़ा०] जंगली हब्बुल आस का वृक्ष। जंगली विलायती मेंहदी का पेड़। दे० "आस"।

आसमन्तक–संज्ञा पुं० [सं० अश्मतक:] (१) आपटा। (२) धातकी। धव।

आसमान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] आकाश।

आसमानी–त्रि० [फ़ा०] (१) आकाश सम्बन्धी। आकाशीय। आसमान का। (२) आकाश के रँग का। हलका नीला। नीलगूँ।

संज्ञा स्त्री० (१) ताड़ के पेड़ से निकाला हुआ रस (मद्य)। ताड़ी। (२) किसी प्रकार का नशा, जैसे—भाँग, शराब। (३) मिश्र देश की एक कपास।

आसमान गूनी–[फ़ा०]
आसमानी-जूनी–[फ़ा०] } (१) आसमान गूनी। आसमान के रंग का। आकाश वर्णीय। (२) याक़ूत अज़्रक़। नीलम। (Sappire Hyacinth.)

आस-मिल्क–संज्ञा पुं० [अं० Ass-milk] गधी का दूध । गर्दभीक्षीर । गदही का दूध ।

आसयूस–[यू०] एक प्रकार का पत्थर । जिस पर एक भाँति का लवण उत्पन्न होता है जिसको "ज़ुह्रहे असयूस" और "मिल्ह् आसयूस" कहते हैं । दे० "आसियूस" ।

आसर–संज्ञा पुं० दे० "आशर" ।

आसल–[अ०] भेड़िया । वृक ।

आसल-वर्री–[अ०] जंगली मेंहदी । दे० "मेंहदी" वा "आस" ।

आसव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मद्यमात्र । शराब । मदिरा । वा० टी० हेमा० । (२) एक प्रकार का औषधीय मद्य । वह सुरा जो अपक्व औषध में जल, मीठा छोड़कर संधानित करने से प्रस्तुत हो । यथा—

"यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ।"

अर्थात् द्रव में जो द्रव्य चिरकाल तक संधानित किया जाय उसे आसव कहते हैं । कहा है—

"द्रवेषु चिरकालस्थं यद्द्रव्यं सन्धितं भवेत् ।
आसवारिष्ट भेदैस्तत्प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥"
(वै० निघ० स्नेहविधि०)

आसव सुरा भेद

अग्निवेश वा चरक के मत से धान्य, फल, सार, पुष्प, काण्ड, पत्र, छाल, और मूल भेद से आसव की यह आठ योनियाँ हैं और नौवाँ पदार्थ खाँड है । इनके संयोग विशेष से असंख्य प्रकार के आसव बन सकते हैं । उनमें से आसव के ८४ भेद उत्तम और पथ्य माने गये हैं । इनमें से सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक और धान्याम्ल ये छः प्रकार के आसव धान्यों से उत्पन्न होते हैं ।

मुनक्का, खजूर, काश्मरीफल, धामन, खिरनी, केतकी, फालसा, हड़, आमला, बहेड़ा, जामुन, कैथ, मौलसरी, बेर, जंगली बेर, अखरोट, चियाल, कटहर, बड़ के फल, पीपल के फल, पकरी केफल, अम्बाड़ा, गूलर, अजमोद, सिंघाड़ा और शंखिनी ये २६ प्रकार के आसव फलों से प्रकट होते हैं ।

विदारीकंद, शालपर्णी, असगंध, सहिंजन, शतावरी, कालीनिशोथ, लालनिशोथ, दन्ती, द्रवन्ती, एरण्ड और चित्रक इनके मूलों से ११ प्रकार के आसव बनते हैं ।

शालवृक्ष, प्रियंगु, अश्वकर्ण शाल, रक्तचंदन, तिनिश, खैर, श्वेतखैर, सप्तपर्ण, अर्जुन, विजयसार, अरिमेद, तिन्दुक (तेन), किणिही, शमी, सिरस, अशोक, धन्वन और महुआ इनके सारों से २० प्रकार के आसव बनते है ।

कमल, उत्पल, नलिनी, कुमुद, कह्लार, पुण्डरीक, शतपत्र, महुए का फूल, प्रियंगु के फूल और धव के फूल, इनसे १० प्रकार के आसव बनते हैं ।

पटोल-पत्र और देवदाली के पत्रों से २ प्रकार के आसव तैयार होते हैं ।

ईख, काण्डेक्षु, इक्षुवालिका और पुण्ड्रक इनके काण्डों से ४ प्रकार के आसव बनते हैं ।

बिल्वक, लोध, एलवालुक और सुपारी इनके काण्डों से ४ प्रकार के आसव बनते हैं ।

शर्करा से १ प्रकार का ।

इन पदार्थों में व्याप्त रहने और आसुत्वात (दफ़न) कर निकाले जाने से आसव संज्ञा होती है । इस प्रकार ८४ तरह के आसव कहे गये हैं । द्रव्य विशेष के संयोग, विभाग, कल्पना और संस्कार विशेष से आसव अपने-अपने कार्यों के अनुसार अनेक प्रकार के गुण करते हैं । संयोग संस्कार, देश, काल और मात्रा आदि का विचार करके ही आसवों का उपयोग उत्तम होता है । च० सू० २५ अ० ।

उन्होंने यह भी कहा है कि और भी जितने भेद हैं वे सब इसी के भीतर आ जाते हैं । उन्होंने जो चौरासी भेद दिखलाये हैं, उनकी उक्त गणना से स्पष्ट है, कि यह एक आसव के उक्त भेद पदार्थों की विभिन्नता के कारण माने हैं, रचना-शैली के कारण नहीं । किंतु, हम देखते हैं इससे आगे चलकर कुछ वैद्यों ने रचना विभेद से भी इसके कुछ भेद माने हैं । यथा—

"यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यंसआसवः" ।

अर्थात् जो अपक्व औषध में जल मीठा आदि छोड़ संधान किया जाय, उस सिद्ध किये हुये मद्य की आसव संज्ञा है ।

"शीधुरिक्षुरसैः पक्वैरपक्वैरासवो भवेत् ।"
(प० प्र० १ खं०)

तथा—

"अरिष्टः क्वाथ सिद्धः स्यात् । ❀ ❀ ❀"

अर्थात् जो औषध को जल में कथित करके पुनः उसमें मीठा आदि छोड़ संधान करें ऐसे सिद्ध किये हुये मद्य की अरिष्ट संज्ञा है ।

इसके अतिरिक्त सीधु, वारुणी, प्रभृति इसके और भी अन्य अनेक भेद हैं । वि० दे० "मद्य तथा अरिष्ट"।

इस प्रकार रचना-शैली में भेद देखा जाने के कारण वैद्यों ने इसके छः भेद दिखलाये हैं । किंतु इतना होने पर भी वह कहते हैं कि—

"यानि संस्कार नामाद्यैः विशेषैर्वहुधा च या ।
भूत्वा भवत्येक विधा सामान्यान्मद लक्षणम्॥"

अर्थात् यद्यपि आसव अनेक द्रव्यों से तथा कुछ विभेद के साथ बनाया जाता है और वह भिन्न-भिन्न नामवाला भी है, तथापि उसमें मादकता (नशा का होना) यह एक सब में साधारण धर्म्म देखा जाने से, वह आसव अनेक प्रकार का होता हुआ भी, एक ही माना जाता है । अर्थात् जितने आसव हैं, सब नशा करने के कारण ही मद्य कहलाते हैं । इसी लिये उनमें निम्न लिखित लक्षण पाये जाते हैं । यथा—

एक प्रकार की विशेष गंध, पीने पर चरपरा तीक्ष्ण लगना, पेट में पहुँचते ही न्यूनाधिक दाह करना और पीने पर नशा लाना आदि । इसमें अम्लता का नाम नहीं होता । उपर्युक्त गुणों में से यदि कोई कोई गुण आसव में न मिले, तो आप समझ लें कि वह आसव आसव नहीं । अपितु, उसका विकृत रूप—चुक्र है । कहा है—

"विनष्टोऽम्लतां याति मद्यं वा मधुरद्रवः ।
विनष्टः सन्धितो यस्तुतच्चुक्रमभिधीयते ॥"

अर्थात् मद्य वा कोई मधुर द्रव जो संधादार्थ रखा हो, अम्लता को प्राप्त होते ही वह मद्य वा आसव खराब हो जाता है । जो इस तरह अम्लत्व को प्राप्त हो जाता है उसकी चुक्र (सिरका) या काँजी संज्ञा है ।

नोट—इसके निर्माण करने की विधि भी अरिष्ट के समान ही है ।

आसव और सुरा एक हैं

आसव सुरा का ही एक नाम है अर्थात् जो आसव है वही सुरा है । कहा है—

"आसवानामासुतत्वादासव संज्ञेति" ।
चरक

अर्थात् आसवों के आसु-तत्व से यानी स्रवाये, या चुवाये जाने से इसकी आसव संज्ञा है । इसी प्रकार—

"विधिवत् स्रावयेदस्मादन्य पात्रेस्रुतं रसम् ।
गृहीयात् सा सुराख्याता ❀ ❀ ❀ ॥"
(वृद्ध शौनिक)

अर्थात् जो विधियुक्त आसव बनाकर नाड़ी यन्त्र में चढ़ा संधान करे अर्थात् एक पात्र से उड़ा कर दूसरे पात्रमें स्रवाये-चुआये, तो इस स्रवे हुए द्रव को सुरा कहते हैं । इन दोनों की निरुक्ति से स्पष्ट है, कि इसको स्रवाई जाने के कारण सुरा और आसव नाम से संबोधित किया गया । वि० दे० "मद्य" ।

आसव में जल आदि की मात्रा

वृद्ध सुश्रुत कहते हैं—"आसव में जहाँ जल की मात्रा न बतलाई गई हो, वहाँ जल आदि इस मात्रा से ग्रहण करें—जल ३२ सेर, गुड़ १२॥ सेर, मधु ६। सेर और औषध द्रव्य १। सेर ।"

आसव के गुण

आसव के गुण उसमें पड़े हुये द्रव्यों के गुण के समान ही होते हैं । कहा है—

"आसवस्य गुणाः ज्ञेया वीजद्रव्य गुणैःसमाः।"
भा० पू० मद्य० व० ।

(३) धान्याम्ल । वै० निघ० ।

आसवद्रु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) आसन
आसवद्रुम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } का पेड़ । आसन का वृक्ष । असन वृक्ष ।

आसवनीय-वि० [सं० त्रि०] (१) अभिषवणीय । (२) ताड़ का पेड़ । तालवृक्ष । रा० नि० व० ६ ।

आसवी-वि० [सं० त्रि०] आसव पान करनेवाला। शराबख़ोर। शराबी। मद्यप। मद्यपान करनेवाला।

आसहिंदी-[फ़ा०] एक वृत्त जिसका पेड़ धातकी या आपटा के पेड़ की तरह और बहुत ऊँचा होता है। कोई-कोई इसे शीशम वा खैर की जाति बतलाते हैं। इसकी लकड़ी काली और लोहे की तरह कड़ी होती है। इसके पत्ते आपटा के पत्तों की तरह, किंतु उनसे कुछ चौड़े होते हैं और हरएक पत्ता कचनारवत् बीचमें से चिरा हुआ होताहै। ऐसा मालूम होता है कि एक पत्ते में दो पत्ते जुड़े हुए हैं। इसका गोंद लाल तथा सफ़ेद होता है। तज़करतुलहिंद में लिखा है कि इसके गोंद को कमरकस कहते हैं किंतु यह ठीक नहीं। कमरकस वस्तुत: ढाँक के गोंद का नाम है जिसको चीना गोंद भी कहते हैं। खज़ाइनुल् अद्विया में इसके संस्कृत नाम सालस्त, सालसास, राजत्रिया आदि लिखे हैं, मालूम नहीं ये अस्पष्ट शब्द कहाँ से लिए गए हैं। प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष। गुणधर्म—इसकी छाल कुष्ट में उपकारी है। पत्ते पित्त की वृद्धि करते हैं।

आसा-[सिरि०] आस।

आसाढ़-संज्ञा पुं० दे० "आषाढ़"।

आसापाल-संज्ञा पुं० [बम्ब देश०] } एक पेड़
आसापाला-संज्ञा पुं० [बम्ब०] } का नाम।
अशोक का पेड़।

आसाफिटीडा-[अं० Assafœtida] हींग। हिङ्गु।

आसाबेस-[?] साँप का एक भेद। बेस शब्द को अन्त में रखकर अन्य विशेषणों से कहे जानेवाले सर्प पाँच होते हैं, जैसे—(१) आसाबेस। (२) कुनाबेस। (३) स्याहबेस। (४) हल्दियाबेस। (५) हरनियाबेस। इनमें आसाबेस का रँग हरा है। यह डेढ़ गज लम्बा और सिर पर सफ़ेद फूल जैसा चिन्ह रखनेवाला ज़हरीला साँप है। इसके काटने से मनुष्य को उन्माद (ख़फ़्क़ान) होजाता है। यदि चिकित्सा समय पर और ठीक न हो तो उस मनुष्य के मुख से ख़ून निकलने लगता है और इससे वह मर जाता है। शेष चार 'बेस' का वर्णन उन शब्दों के अन्तर्गत होगा।

आसाम-जत्र-[मला०] इमली का बीज। चियाँ। इं० मे० मे०।

आसाम-रबर-ट्री-[अं० Assam-rubber-tree] दे० "फाइकस इलैस्टिका (Ficus-elastica)"। इं० मे० मे०।

आसाम सिल्क-[अं० Assam-silk] आसाम देश में होनेवाला रेशम। आसामी रेशम।

आसार-संज्ञा पुं० [अ० आस़ार। अस़र का बहु०] (१) लक्षण। चिह्न। निशान (Symptom)। (२) १ सेर का मान। स़ार। दे० "सेर"। (३) चौड़ाई।

संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] गहरी बारिश। मूसलाधार वृष्टि। धारासंपात। मेघमाला। "धारासम्पातासार:"। अम०।

आसारण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वृक्ष। भैष०।

आसारून-[सिरि०] तगर। इं० मे० मे०।

आसाल-बीज-संज्ञा पुं० [बं० आशालबीज] चन्द्रसूर। हालों। हालिम।

आसालिआ-[बम्ब०] चन्द्रसूर। हालिम।

आसालिओ-[गु०] चन्द्रसूर। हालिम। हालों।

आसावरी-संज्ञा स्त्री० [?] (१) एक रागिनी का नाम। (२) एक प्रकार का कबूतर।

आसाव्य-वि० [सं० त्रि०] अभिषवणीय मद्यादि।

आसिआटिशेर-वास्सेर-नाबेल्-[जर० Asiatischer-wasser-nabel] ब्राह्मी। (Hydrocotyle-asiatica)। इं० मे० मे०।

आसिकी-[ते०] बरना। उलिमिडी। उसकिआ। (Carataeva religiosa, *Fareh.*)

आसिक्त-वि० [सं० त्रि०] (१) कुछ-कुछ सींचा हुआ। ईषद्सिक्त। (२) अच्छी तरह सींचा हुआ। सम्यक्सिक्त।

आसिमम्-एडिसेएडेन्स-[ले० Ocimum-adescendens, *Willd.*] बन तुलसी-बं०। जंगली तुलसी।

आसिमम्-ऐल्बम्–[ले० Ocimum album, *Linn.*] श्वेत-तुलसी। सफ़ेद-तुलसी। (गु०) जंगली तुलसी। उजली तुलसी। कुक्का तुलसी–द०। बादरूजे अबैज़-अ०। रैहाने-कोही-फ़ा०। सादा तुलसी–बं०। कञ्जाङ्कोरै-नाय-तोलाशिता०। तेल्ल-तुलसि, कुक्क-तुलसि–ते०। वेर्‌ल्-तोल्सि, नाक्कञ्जि–मल०। स० फा० इं०।

आसिमम्-केनम्–[ले० Ocimum-canum. *Sims*] काली-तुलसी। बबरी। बर्बरी–संत्ता०। इं० मे० मे०।

आसिमम्-केरियोफाइलम् (-लेटम्)–[ले० Ocimum-caryophyllum(atum,)*Roxb.*] मरुआ। ओल-तुलसी। मरुवक। गन्ध-तुलसी–बं०। इं० मे० मे०।

आसिमम्-ग्राण्डिफ्लोरा–[ले० Ocimum-grandiflora, *Blume.*] तुलसी। इं० मे० मे०।

आसिमम्-ग्रेटिसिमम्–[ले० Ocimum-gratissimum, *Linn.*] वन तुलसी। राम-तुलसी–हिं०, द०, बं०। फ़ाञ्जमिश्क-अ०। पलङ्गमिश्क। (रैहाने क़रनफ़ुली-बीज), बालङ्गूये ख़ुर्द–फ़ा०। स० फा० इं०।

आसिमम्-टोमेण्टोसम्–[ले० Ocimum·tomentosum] तुलसी। इं० मे० मे०।

आसिमम्-बेज़िलिकम्–[ले० Oimum-basilicum, *Linn.*] सब्ज़ा-हिं०, द०। विश्व-तुलसी-सं०। बबुइ तुलसी। सब्ज, नाश्बो, नास्बो, बाबू-तुलशी–बं०। शाहसपरम्, रेहाँ–अ०। शाहसपरम्–, नाजबू, दबाँ-शाब्-फ़ा०।

आसिमम्-बैज़िलिकम्-एनिसेटम्–[ले०Ocimum-basilicum var. *2.* anisatum, *Benth.*] निगन्ध बाबरी–हिं०, पं०। सबझी-सिंध।

आसिमम् बैज़िलिकम्-ग्लैब्रेटम्–[ले० Ocirmum-basilicum,var. *3* rd, glabratum, *Benth.*] गुलाल-तुलसी–हिं०, बं०। मे० मो०।

ऑसिमम्-बैज़िलिकम्-थ्राइसिफ्लोरम्–[ले० Ocimum-basilicum-var.·*5*th. thrysiflorum, *Benth.*] बर्बरी। मे० मो०।

ऑसिमम्-बैज़िलिकम्-पाइलोसम्–[ले० Ocimum-basilicum-var. 1st,pilosum *Benth.*] बबुइ-तुलसी-हिं०, बं०।

ऑसिमम् मिनिमम्–[ले० Ocimum-minimum] मरुआ। मरुवक। इं० मे० मे०।

ऑसिमम्-लॉङ्गिफोलियम्–[ले० Osimum-longifolium, *Hen.*] वन तुलसी। राम-तुलसी। तुलसी भेद। इं० मे० मे०।

ऑसिमम्-विरिडी–[ले० Ocimum-viride.] तुलसी-हिं०। इं० मे० मे०।

ऑसिमम्-सैङ्कटम्–[ले० Ocimum·sanctum, *Linn.*] वृ (बृ) न्दा-तुलसी, तुलसी–हिं०, द०, गु०, मल०, ते०। तुलसी-सं०, बं०।

ऑसिमम्-सेङ्कटम्-वाइलोसम्–[ले० Ocimum-sanctum-var, 2nd. villosum, *Roxb.*] तुलसी। मे० मो०।

ऑसिमम्-सैङ्कटम्,-सैङ्कटम्-प्रापर–[ले०Ocimum-sanctum var;1st sanctum-proper] कृष्ण-तुलसी-हिं०, बं०, ते०। बबुई–पं०। तुलस-बम्ब०। मे० मो०।

ऑसिमम् स्वेवी–[ले० Ocimum-svave, *Willd.*] सफ़ेद तुलसी। बदरोगी-अबीज़। इं० हैं० गा०।

ऑसिमम्-हिर्स्युटम्–[ले० Ocimum-hirsutum] तुलसी।

ऑसिमम्-हिस्पिडियम्–[ले० Ocimum-hispidium] खरपुष्पा। ममरी (Green basil) इं० मे० मे०।

आसियः–[अ०] (१) स्त्री चिकित्सिका। स्त्री वैद्या। स्त्री शल्य-चिकित्सिका। (Female surgeon)। (२) कन्याओं का ख़तना करने वाली स्त्री। (Circumciser.)

नोट—अफ़रीका की किसी-किसी जाति में युवतियों के भगांकुर पर खतना किया जाता है। इस क्रिया के सम्पादन करनेवाली स्त्री को "आसियः" अर्थात् स्त्री शल्यचिकित्सिका (जर्राह) कहते हैं।

आसियूस-[यू०] इसका धात्वर्थ रिज़्व अर्थात् सुस्त है। एक प्रकार के संगरेज़े जो समुद्रतट पर पैदा होते हैं। ये अति भंगुर होते हैं। उनपर पार्थिवांश सूखकर एक सफ़ेद चीज़ नौसादर और सज्जी की तरह उत्पन्न हो जाती है। किसी-किसी का रंग पिलाई लिए भी होता है। इन संगरेज़ों को संग आसियूस और उस नमक को नमक आसियूस, मिल्ह् आसियूस और ज़ुहरहे आसियूस कहते हैं। उत्तम वह है जो साफ़ और सफ़ेद हो और शीघ्र टूट सके और उसमें सफ़ेद रगें हों, जिह्वा पर प्रदाह उत्पन्न करे, आर्द्रता एवं रतूबत से गल जाय। ये लवण ही शक्तिमान होते हैं, संगरेज़े ऐसे नहीं होते। कोई-कोई इसे नमक-चीनी ख़्याल करते हैं। आसयूस

प्रकृति—संगरेज़े द्वितीय कक्षा में उष्ण तथा तृतीय कक्षा में रूक्ष और लवण। हानिकर्त्ता—यह घर्षण (सहज) पैदा करता है। दर्पघ्न—बबूल का गोंद। मात्रा—२॥ रत्तीसे १॥। माशेतक।

गुण, कर्म, प्रयोग—लवण और संगरेज़े रूक्षता, निर्मलता एवं संशोधन करते हैं। घाव को पूरते हैं। सड़ा हुआ मांस दूर करते हैं और किसी प्रकार का प्रदाह उत्पन्न नहीं करते हैं अतएव ज़ख्मों पर लगाने के काम आते हैं। किंतु स्वयं भी कुछ क्लिन्नता (उफ़ूनत) बढ़ाते हैं। यदि स्थूल मनुष्य हमाम (स्नानागार) में बैठकर इसे अपने शरीर पर लगाए और कुछ दिन ऐसा करे, तो मांस घट जाय। अर्थात् वह कृश हो जाय। ये कंठमाला को विलीन करते हैं। जो घाव अत्यंत बुरे प्रकार के हों और गंभीर हों, पुराने हों और उन पर बदगोश्त आ गया हो, उनके लिए नमक आसियूस मोम तथा रोग़नके साथ अतीव लाभकारी है। यह उन्हें फैलने नहीं देता एवं स्वच्छ करके अच्छा करदेता है। दूषित मांस काट डालता है। इस नमकके आँखमें लगाने से नेत्र निर्मल होता है,यह जाला एवं फूली को काट देता है और दृष्टिको शक्ति प्रदान करता है। यदि शहद में मिलाकर इसे थोड़ा-थोड़ा चाटा करें तो कफज श्वास और फुफ्फुसगत क्षत आराम हो। क्योंकि घाव को शुद्ध कर वह उसे सुखाता है।

आसिर-[अ० आसिर] धात्वर्थ निचोड़नेवाला (सङ्कोचक) है। तिब की परिभाषा में वह ओषधि जो अपने उग्र संकोचन एवं प्रगाढ़ीकरण गुण के कारण इन्द्रियावयव को संकुचित कर उसके पतले रतूबत को बाहर ले आवे। जैसे—हड़, बबूल, अनार की छाल, इमली के बीज, जामुन की गुठली, आम की गुटली, इत्यादि।

आसिरः-[अ० आसिरः] सङ्कोचक। Sphincter.

आसी-[अ० आसी] (१) हकीम। वैद्य। चिकित्सक। (२) शल्य-चिकित्सक। जर्राह।

[अ० आसी] (१) अभियुक्त। मुजरिम। दोषी। अपराधी। कभी-कभी यह शब्द आमाशय तथा रग का विशेषण होकर अधोलिखित पारिभाषिक अर्थ देता है—(२) वह रग जो फ़स्द में खून न दे। रग आसी। (३) मिअदहे आसी जो मुस्हिल अर्थात् विरेचक प्रभाव को स्वीकार न करे।

[अ० आसी] खजूर का ख़ुशा। वि० दे० "आशी"।

आसीन-प्रचलायित-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नींद के झोंके में आकर झूमना। झपकी लेना। निद्रालु होना। औंघना। ऊँघना। राज०।

आसुगाछ-[बं०, आसा०] चेनुङ्ग। चेङ्गरङ्ग—गारो०।

आसुत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चिरकाल स्थित (संधानित) तथा कन्दादि युक्त अम्ल। बहुत दिन की रखी और जड़ी वगैरः मिली हुई खटाई।

"कन्दमूलफलाद्यञ्च लवणोदक संयुतं।
सन्धानाच्चिर कालाम्लमासुतं परिकीर्त्तितम्।"
(वा० टी० हे०)

(२) मद्य संधान। ख़मीर। हे० च०।

आसुति-संज्ञा स्त्री० [(वै०) सं० स्त्री०] (१) सोमलतादि निष्पीडन। (२) अभिषव। भभके से शराब चुआना। मद्यनिष्पादन। ऋक् ८। १ २६। (३) क्षीरादि पेय। ऋक् १। १०४। ७। (४) प्रसव। बच्चा पैदा करना।

आसुतीब(व)ल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलवार। शराब बनानेवाला। शौण्डिक। हे० च०।

आसुद-[बं०] अश्वत्थ। पीपल का वृक्ष।

आसुपाल- }
आसुपाला- } [गु०] अशोक वृक्ष। Saraca indica.

आसुर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोंचर नमक । कटीला । विड्लवण । विट्-लवण । बिरिया । रा० नि० व० ६ । भा० पू० १ भ० । (२) समुद्र लवण । समुंदर नमक । मद० व० २ । च० शा० ४ अ० पृ० ७०८ ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] असुर का । असुर सम्बंधी । आसुरिक ।

आसुर-फेन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अफीम । अहिफेन (Opium) ।

आसुरावेश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूत लगना ।

आसुरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सफ़ेद सरसों । श्वेत सर्षप । श्वेतसरिषा । प० मु० । र० सा० सं० । च० द० ग्रह चि० । (२) आयाम काञ्जिक । (३) रक्त सर्षप । लाल सरसों । राई सरिसा-बं० । रा० नि० व० १६ । (४) वैद्यकोक्त आसुरी, मानुसी और दैवी आदि विविध चिकित्साओं में से एक । छेद भेदात्मक चिकित्सा । चीड़-फाड़ । शस्त्र-चिकित्सा । श० च० ।

वि० [सं० त्रि०] असुर-सम्बन्धी । असुर का । राक्षसी ।

आसूर-[अ० आ.सूर] रोगी के वक्ष में दाह और भारीपन प्रतीत होना । उरःस्थ दाह एवं गुरुत्व ।

आसेक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जलादि द्वारा वृक्षादि का अल्प सेचन । हलकी सिंचाई । (२) सम्यक् सेचन । पूरीसिंचाई ।

आसेचन-वि० [सं० त्रि०] प्रिय दर्शन । जिसको देखने से तृप्ति नहीं होती ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सींचना । छिड़कना । सम्यक् सेचन ।

आसेचनक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "आसेचन"।

आसेक्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का नपुंसक ।

लक्षण—जिसका पिता बहुत ही अल्प-वीर्य हो उससे "आसेक्य" संज्ञक (अत्यल्पवीर्य) पुरुष उत्पन्न होता है । वह अन्य के शुक्र को पीने से निःसन्देह ध्वजोच्छ्राय (मेढ़ की उत्थिति) को प्राप्त होता है । सु० शा० २ अ० ।

नोट—कोई-कोई शुक्र से गन्धमार्जार वीर्य का अर्थ ग्रहण करते हैं । गन्धमार्जार वीर्य एक सुगंधित द्रव्य है जिसके खाने से पुरुषार्थ की वृद्धि होती है । वास्तव में गन्धमार्जार-वीर्य, वीर्य का करनेवाला है । बहुतसे लोग प्रमादवश "अम्बर" नामक सुगंध-द्रव्य को ही गन्धमार्जार वीर्य मानते हैं । दे० "अम्बर" । कुछ लोगों का कहना है कि गन्धमार्जार वीर्य मुश्कबिलाव से प्राप्त होता है जिसे यूनानी हकीम जुन्दबेदस्तर कहते हैं ।

आसेब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० आसेबी] भूत, प्रेत की बाधा ।

आसोद-[गु०] असगंध । अश्वगन्ध ।

आसोदरो-[गु०] अर्जुन । काहू । कोह ।

आस्कन्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्प्लवन । उछाल । (२) घोड़े प्रभृति की आस्कन्दित नामक गति । घोड़े का उड़ान । (३) असगंध ।

आस्कंदपाक—संज्ञा पुं० [सं०पुं०] आस्कंद (अश्वगंध) ४० तो०, सोंठ २० तो०, पीपर १० तो०, मिर्च ५ तो०, दालचीनी ४ तो०, इलायची ४ तो०, तमाल पत्र ४ तो०, चित्रक मूल, पीपलामूल, जायफल, जावित्री, खस, चित्रकमूल, सफेद चन्दन, कमल, रूमीमस्तगी, बंसलोचन, आँवला, खैरसार, कपूर, पुनर्नवा, शतावर प्रत्येक ½-½ तो० इनका चूर्ण कपड़छान कर २०० तो० दूध, १०० तो० शहद और २० तो० घृत मिलाके यथा-विधि पाक करे । यह वातरक्त को नष्ट करता है । शिवनाथ सागर सं० पृ० ६३० ।

(२) आस्कंद (असगंध) ३२ तो०, गोदुग्ध ६ सेर, दालचीनी, इलायची, तमालपत्र, नागकेशर, प्रत्येक १-१ तो०, जायफल, केशर, वंसलोचन, मोचरस, जटामांसी, चन्दन, रक्तचन्दन, जावित्री, पीपर, पीपरामूल, शीतलचीनी, मेढ़ासिंगी, अखरोट की मींगी, भिलावाँ, सिंघाड़ा, गोखरू, रससिंदूर, अभ्रक भस्म, नागभस्म, बंगभस्म, लोह भस्म प्रत्येक ३-३ मासे । दूध का खोवा करके औषधियों से द्विगुण मिस्री की चासनी करके यथा विधि पाक तैयार करें ।

गुण—इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, मूत्राघात और त्रिदोष से उत्पन्न रोग दूर होते हैं और वीर्य्य की वृद्धि होता है । शिवनाथ सागर सं० ।

आस्कन्दन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) संशोषण। सुखाना। मे० नत्रिक। (२) उत्प्लवन। उछाल। (३) घोड़े की एक गति। घोड़े का उड़ान। (४) विनाश। बरबादी।

आस्कन्दित–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घोड़े की एक चाल। "आस्कन्दितं धौरितकं रेचिन वल्गितं प्लुतम्।" (अमर) यह घोड़े की गति का पाँचवाँ भेद है। कभी-कभी कोप से चारों पैर उठा यकायक ऊपर उछलने और उसी तरह आगे बढ़ने का उत्तेरित, उपकंठ, आस्कन्दित अथवा आस्कन्दितक कहते हैं।(हे० च० तिर्यक्काण्ड)

आस्कन्दितक–संज्ञा पुं० दे० "आस्कन्दित"।

आस्कन्धा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रकाण्ड। काण्ड। दण्ड।

आस्टाडिस पेनिक्युलेटा–[ले० Ostades peniculata, *Bl.*] बेपरी–नेपा०। पलोक–लेप०।

ऑस्टियो-मेले–[अं० Osteomala]

आस्टियो-मैलेशिया–[अं० Osteomalacia] मॉलीशीज़ आशियम् (Mollities-ossium), मैलेकॉस्टियोन (Malacosteon) लेनुल्-इ़ज़ाम–अ०। स्त्री रोग का एक भेद। हड्डियों का नरम् व लचकदार हो जाना। यह रोग अस्थियों के पार्थिवांश (चूने के लवणों) के कम हो जाने के कारण होता है। सामान्यत: दुर्बल स्त्रियों को गर्भावस्था वा शिशु को दुग्ध पिलाने के समय यह विकार हो जाया करता है। विशेषकर उनके वस्ति-गह्वर की अस्थियाँ कोमल हो जाया करती हैं और इस रोग के साथ आनवात की तरह पीड़ा भी हुआ करती है। इसके साथ पेशियोंका आक्षेप भी होता है और रोगिणी धीरे-धीरे निर्बल होकर इस संसार से कूच कर जाती है।

आँस्टीलेगो-मेडिस–[ले० Ostelago-madis]

आस्ट्रेलियन-ऐज़्मा-वीड–[अं० Australian-asthma-weed] दुद्धी। रक्तविन्दुच्छदा। इं० मे० मे०।

आस्ट्रेलिन-फीवर-ट्री–[अं० Australian-fever tree] दे० "युकेलिप्टस-ग्लोब्युलस"। इं० मे० मे०।

आस्ट्रेलियन-मेना–[अं० Australian-manna] वह मेना अर्थात् शीरख़िश्त जो एक प्रकार के युकेलिप्टस वृक्ष से प्राप्त होता है। दे० "शीरख़िश्त (मन्ना)"। म० अ० डॉ० २ भ०।

आस्ट्रेलियन-लीच–[अं० Australian-leech] आस्ट्रेलिया देश की जोंक। आस्ट्रेलीय जलायुका विशेष। (Hirudo-Australis) दे० "जोंक"।

आस्तर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी की झूल। करिकम्बल। हे० च०। (२) बिछौना। बिछावन। बिस्तर।

आस्तरण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आस्तरणीय] (१) कुश नाम का तृण विशेष। कुश। दर्भ। दे० "कुश"। (२) हाथी की पीठ पर पड़नेवाली झूल। हस्ति पृष्ठस्थ विचित्र कम्बल। हला०। (३) बिछौना। पलंग।

आस्तिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [संज्ञा आस्तिकता, आस्तिकत्व, आस्ति(ती)क्य] ईश्वरवादी। वेद ईश्वर और परलोक को माननेवाला पुरुष।

वि० [सं० त्रि०] वेद, ईश्वर और परलोक इत्यादि पर विश्वास रखनेवाला।

आस्तिकमति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उत्तम वैद्य। बढ़िया तबीब।

आस्तीर्ण–वि० [सं० त्रि०] फैला हुआ। विस्तारित। विस्तीर्ण। आस्तृत।

आस्त्र–वि० [सं० त्रि०] अस्त्र संबंधी। हथियार का।

आस्था–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) यत्न। (२) अपेक्षा। (३) आलम्बन। सहारा। मे० थद्विक। (४) जल। हे० च०। (४) पूज्य बुद्धि। श्रद्धा।

आस्थागम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल। पानी। हे० च०।

आस्थान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आश्रम। बैठने की जगह। बैठक। (२) सभा। दरबार। अ०।

आस्थानी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सभा। मजलिस। (२) क्लीव। यथा—"आस्थानी क्लीवमास्थानम्"। अम०।

आस्थापन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आस्थापित] (१) एक प्रकार की वस्ति। निरूहवस्ति। भा०। सु०। (२) सम्यक् स्थापन। अच्छी तरह रखना वा बिठाना।

आस्थापन द्रव्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वे द्रव्य जो आस्थापन-वस्ति में व्यवहृत होते हैं। चरक के अनुसार आस्थापन-द्रव्य के वे ६ स्कन्ध निम्न हैं–

(१) मधुरस्कन्ध—जीवक, जीवन्ती, ऋषभक, आमला, वीरा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, असनपर्णी, मेदा, महामेदा, काकड़ासिंगी, शृङ्गाटिका, गुडूची, धनियाँ, बड़ी धनियाँ (अतिच्छत्र), मुण्डी, महामुण्डी, अलम्बुषा, सहदेवी, विश्वदेवा, शुक्ला, क्षीरशुक्ला, बला, अतिबला, विदारी, क्षीरविदारी, क्षुद्रसहा, महासहा, ऋष्यगन्धा, अश्वगन्धा, पयस्या, वृश्चीर, बृहती, पुनर्नवा, कण्टकारी, एरण्ड मोरटा, गोखरू, संहर्षा, शतावरी, शतपुष्पा, मधूकपुष्पी, यष्टिमधु, मधूलिका, मृद्वीका, खर्जूर, फालसा, आत्मगुप्ता, पुष्करबीज, कसेरुका, राजकसेरू, कालङ्कत, काश्मरी, शीतपाकी, ओदनपाकी, ताल, खर्जूर, मुस्तक, इक्षु, इक्षुबालिका, दर्भ, कुश, कास, शालि, गुन्द्रा, उत्कटक, शरमूल, राजक्षवक, ऋष्यप्रोक्ता, द्वारदा, भारद्वाजी, त्रपुष, भीरुपत्री, हंसपदी, काकनासा, कुलिंगाक्षी, क्षीरवल्ली, कपोतवल्ली, गोपवल्ली, मधुवल्ली, सोमवल्ली और मधुर वर्ग में कहे हुए द्रव्यों को लेकर प्रथम शुद्ध जल से प्रक्षालन कर पुनः टुकड़े-टुकड़े करके बारीक कूटकर दूध में मिलाकर किसी पात्र में यथाविधि मंद-मंद आँच से पकाएँ। जब ओषधियों का रस दूध में आजावे तो उस दूध को उतारकर सुखोष्ण होने पर उस दूध में घृत, तैल, चर्बी, मज्जा, लवण, फाणित जो मिल सके उचित रीति से वस्ति कर्म में जिसे वातविकार हो योजित करे। यदि किसी पित्त-विकारवाले को वस्ति देना हो तो इसे शीतल कर इसमें शहद और घृत मिलाकर वस्ति कर्म करें।

(२) अम्लस्कन्ध—आम्र, आम्रातक, लकुच, करमर्द, वृक्षाम्ल, अम्लवेतस, कुवल, बदर, दाड़िम, मातुलुङ्ग, कण्डीर, आमलक, नन्दीतक, क्षालतिका, शीतक, दन्तशठा, ऐरावतक, कोषाम्र, और धन्वन इनके फल और पत्र तथा अश्मन्तक, चाङ्गेरी, चार प्रकार की अम्ली, दो प्रकार के जामुन तथा सूखी हुई अम्ली एवं ग्राम और जंगल के सब आसव द्रव्य, सुरा, सौवीर, तुष्णोदक, मैरेय, मेदक, मदिरा, मधु, सीधू, सुक्तीमधु, दही, दधि-मण्ड, दही का पानी, काँजी तथा अन्य अम्लवर्ग में कहे हुए द्रव्यों के टुकड़े-टुकड़े कर कूटकर साफ़ जल से धोकर किसी उचित पतले पदार्थ में सिद्धकर छान लें। पुनः उसमें तेल, वसा, शहद, मज्जा और फाणित मिलाकर वातवाले मनुष्य के विधिपूर्वक आस्थापन कर वस्ति करें।

(३) लवणस्कन्ध—सैंधव, सौवर्चल, कालानमक; विड् नमक, तथा पाक्य (पागा), आनूप, कूप्य, वालक, एलमूलक, सामुद्र, रोमक, उद्भिद, औषर, पाटेयक, पांसुज यह सब प्रकार के लवण तथा अन्य लवणवर्गोक्त द्रव्य काँजी अथवा गर्म जल में मिलाकर घृत, तैलादि चिकनाई के संयोग से सुखोष्णवस्ति की विधि को जाननेवाला चिकित्सक विधिपूर्वक वात-विकार वाले मनुष्य को दे।

(४) कटुस्कन्ध—पीपल, पीपलामूल, गज पीपल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, अजमोद, वायविडंग, नैपाली धनियाँ, पीलू, धनियाँ, इलायची, कूठ, भिलावें की गुठली, हींग, देवदारु, मूली, सरसों, लहसुन, करंज, सहिंजन, मीठा सहिंजन, वनतुलसी, गंधतृण, सुमुख तुलसी, सुरस, कुठेरक, काण्डीर, कालमलक, पर्णास, क्षवक यह सब तुलसी की जातियाँ और मरुआ, क्षार, मूत्र, पित्त एवं अन्य कटुवर्ग में कहे हुए द्रव्य लेकर छोटे-छोटे टुकड़े कर शुद्ध जल से धोकर बारीक करलें। पुनः गोमूत्र में पकाकर शुद्ध वस्त्रद्वारा छान लें। इसे सुखोष्ण होने पर इसमें मधु, तेल और लवण मिलाकर कफ विकारवाले प्राणी को आस्थापन वस्ति करें।

(५) तिक्तस्कन्ध—चन्दन, खस, अमलतास, करंज, नीम, नैपाली धनियाँ, कुड़ा, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, मूर्वा, चिरायता, कुटकी, त्रायमाण, कनेर, केवुक, करेला, अडूसा, मण्डूकपर्णी, ककोड़ा, बैगन, कमीला, मकोय, छोटा

करेला, कठूमर, कालाजीरा, अतीस, पटोलपत्र, परवल, पाढ़, गिलोय, वेतकी कोंपल, वेतसमजनू, विकंकत, मौलसरी, सफ़ेद कत्था, सतिवन, धत्तूर, आक, बावची, बच, तगर, अगर नेत्रवाला और खस तथा तिक्तवर्गोक्त द्रव्यों को जल से साफ़कर कूट छानकर जल में पकाएँ। पुनः छानकर सुखोष्ण होने पर सेंधानमक और शहद मिलाकर कफरोग से पीड़ित व्यक्ति को आस्थापन वस्ति करें। यदि इसे पित्त जनित रोगी को वस्ति करना हो तो इसमें शहद और घृत मिलालें।

(६) कषायस्कन्ध—प्रियंगु, सारिवा, आम की गुठली, अम्बष्ठकी, कट्वङ्ग (भटामडंगा), लोध, मोचरस, मजीठ, धौपुष्प, कमलकेशर, भारंगी, जामुन, आमत्वचा, पाखर, कपीतन, गूलर, पीपल, भिलावाँ की छाल, अश्मन्तक, सिरस, सीसम, सफ़ेद कत्था, तेंदू, चिरौंजी और बेर, इन सब की छाल, इसी तरह खदिर, सतिवन, तिनिस, स्यंदन, अर्जुन, विजयसार, अरिमेद, एलवालु, केवटीमोथा, कदंब, शल्लकी, जिंगनी, काँस, कसेरू, राजकसेरू, कायफल, बाँस, पद्माख, अशोक, शाल, धावी, भोजपत्र, खरपुष्प, जण्डीवृक्ष, माचिका, कवरक (उन्नाव), अजकर्ण, अश्वकर्ण, स्फूरजत, बहेड़ा, कुम्भीक, कमलगट्टा, विस (भसींड) मृणाल, ताल, खजूर, डिकवार (तरुणी) इन्हें तथा अन्य कषाय वर्गमें कहे हुये द्रव्योंको धोकर कूटछानकर पानी में थोड़ा सा पकाकर वस्त्र से छान लें। पुनः इसमें शहद और घृत मिला पित्त रोगी को आस्थापन वस्ति दें।

आस्थापनोपवर्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आस्थापन योग्य पञ्चविंश महा कषाय। पिचकारी देने योग्य पचीस कसैलो चीजों का समूह वा वर्ग। यथा— निशोथ, बेल, पीपल, कुट, सरसों, बच, इन्द्रजौ, शतपुष्पा (सौंफ), मुलेठी और मयनफल, ये १० आस्थापनोपनवर्ग हैं। च० सू० ४ अ०।

आस्थित–वि० [सं० त्रि०] (१) जमा हुआ। अथर्व०। (२) अवस्थित। ठहरा हुआ। (३) आरूढ़। चढ़ा हुआ। (४) अश्रित। चिपटा वा लिपटा हुआ।

आस्पद–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) स्थान। जगह। हे० च०। (२) पद। दर्जा। (३) प्रतिष्ठा। इज़्ज़त। अम०। (४) अल्ल। वंश। कुल। जाति। (५) कार्य्य। कृत्य। (६) अवस्थान। ठहराव।

आस्पन्दन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अतिकम्प। गहरी कँपकँपी। (२)स्पन्दन। थोड़ी कँपकँपी। ईषत् कंपन।

आस्पर गाइलोसिस–[ले० Asper gylosis] रोग।

आस्फाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करिकर्ण आस्फालन। हाथी के कान की फड़फड़ाहट। हारा०। (२) उत्त्क्षेपण। फड़फड़ाहट। (३) आघात। प्रहार। फटकार। रगड़।

आस्फालन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आस्फालित] (१) ताड़न। मार। फटकार। (२) आटोप। सूजन। (३) चालन। फड़फड़ाहट।

आस्फालित–वि० [सं० त्रि०] (१) ताड़ित। झाड़ा या फटकारा हुआ। (२) चालित। फड़फड़ाया हुआ। (३) आघट्टित। रगड़ा हुआ।

आस्फेल्ट–[अं० Asphalt] शिलाजीत। शिलाजतु।

आस्फेल्टम्–[ले० Asphaltum] शिलाजीत।

आस्फोट,-आस्फोटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ठोकर वा रगड़ से उत्पन्न शब्द। (२) आक। मदार। अर्क वृक्ष। (३) पहाड़ी पीलू। गिरिज पीलु। जंगली अखरोट। रा० नि० व० १०। श० र०। (४) ताल ठोकने का शब्द।

आस्फोटन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आस्फोटक, आस्फोटित] (१) शिगुफ्तगी। खिलने की क्रिया। फैलाव। (२) ताल ठोकनेकी आवाज़। (३) सूप आदि द्वारा धान्यादि का वितुषीकरण। झाड़। फटकार। (४) चालन। फड़फड़ाहट। (५) कंपन। कँपकँपी।

आस्फोटनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भोमर। वेधनिका। वेधनास्त्र विशेष। बरमी। अम०।

आस्फोटा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नवमल्लिका।। चमेली। रा० नि० व० १०। (२)

नेवाड़ी का फूल। नोयालि फूल–बं०। भा०। (३) विष्णुकान्ता। नि० शि०।

आस्फोडल,-क्लब-सीडेड–[अं० Asphodel, club-seeded] बरूक़। ख़न्स़ा।

आस्फोडेलस-क्लेवेटस–[ले० Asphodelus·clavatus] बरूक़। ख़न्स़ा।

आस्फोत,-आस्फोतक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्वनामाख्यात लता गुल्म। हापरमाली–बं०। र० मा०। (२) लाल फूल के मदार का पेड़। रक्तार्क वृक्ष। भा० पू० १ भ०। भैष० नेत्र रो० चि०। (३) कोविदार वृक्ष। कचनार का पेड़। रक्तकाञ्चन–बं०। मद० व० १। (४) भूपलाश वृक्ष। प० मु०। (५) पलाश वृक्ष। टेसू का पेड़। "आस्फोत जातिकरवीर पत्रैः।" सु०।

आस्फोतका,-आस्फोता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अपराजिता सामान्य। विष्णुक्रान्ता। (Cletoria ternatea) प० मु०। भा० पू० १ भ० विष-तैल। "आस्फोताचैव योज्याः स्युः।" भा० म० ४ भ० पूतनाग्रह–चि०। (२) एक प्रकार की लता। हापरमाली–बं०। अडबि-मल्लेतीगे–ते०।

गुण—कोढ़ और विष रोग नाशक है। राज० कन्दर्पसार तैल। (३) शारिवा। श्यामलता। अनन्तमूल। Ichnocarpus frutecens. सु० चि० ६, १८ अ०। वै० निघ० जीर्णज्वर० क्षीरवृक्षादि तैल। (४) स्वनामाख्यात पुष्पवृक्ष। काष्ठमल्लिका। जंगली चमेली। प० मु०। रा० नि० व० १२। (५) श्वेत सारिवा। गौरीसर। भा० पू० २ भ०। (६) नवमल्लिका। चमेली। मे० तन्त्रिक। (७) वनकपास। भारद्वाजी। अरण्य कार्पास। (८) शालशा। सालसा।

आस्माकीन–वि० [सं० त्रि०] हमारे पक्ष का। हमारा। अस्मत् संबंधी।

आस्मानिया–[पं०] बुतशर। पीवा। फोक। (Ephedra vulgaris) दे० "अस्मानिया वा एफिड्रा"।

आस्मायूनी–[?] आपटा वृक्ष।

आस्मैन्थस-फ्रेग्रन्स–[ले० Osmanthus fragrans, *Laur*.] शिलिङ्ग-कुमायूँ।

आस्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मुख। वदन। आनन। मुँह। (२) मुखमण्डल। चेहरा। मुँह का मध्यभाग। मुखाभ्यन्तर। (३) छिद्र। रा० नि० व० १८।

वि० [सं० त्रि०] मुख का। मुँह संबंधी।

आस्यदेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुखमध्य। मुख का स्थान।

आस्यन्दन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ईषत् क्षरण। थोड़ा बहाव। (२) अल्प गलना।

आस्य-पत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमल। पद्म। श० च०।

आस्यपाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुखपाक। च० सू० २० अ०।

आस्य-पुष्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्वेत किणिही वृक्ष। श्वेतापामार्ग। सफ़ेद चिचिड़ी। सफ़ेद लटजीरा। वै० निघ०।

आस्य-फल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफ़ेद धतूरे का पेड़। सफेद धतूर। श्वेत धुस्तूर वृक्ष। श्वेत धूतूर–बं०। श्वेत धोत्रा–मरा०। वै० निघ०।

आस्यलाङ्गल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सूअर। शूकर। (२) जंगली सूअर। बनैला सूअर। वन्य-शूकर। हे० च०।

आस्य-लोम–संज्ञा पुं० सं० क्ली० आस्यलोमन्] होठों, गालों, और दाढ़ी आदि पर होनेवाले बाल। मुँह पर के बाल। श्मश्रु। दाढ़ी मूँछ। दाड़ि, गोंप–बं०। (Whisker) मे०।

आस्य-वैरस्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मुख का बेस्वाद होना। मुख की विरसता। मुँह का फीकापन। मुख विस्वाद।

आस्य-शाखोट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुल्म जाति का एक प्रकार का सिहोर का वृक्ष। आसू-श्याओड़ा–बं०।

गुण—कफ-पित्त नाशक तथा वातकारक है और कृमि, पाण्डुता ज्वर और कामला रोग को नाश करता है। अत्रि०।

आस्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उपवेशन। बैठना। (२) बेकाम बैठने की हालत। निरुद्योगोपवेशन। बैठा रहना। अम०। (३) छोटी-दन्ती। (४) बड़ी दन्ती। रा० नि०। नि० शि०।

के० दे० नि०। (५) स्थिति। गतिराहित्य। "आस्या वर्णकरीस्थौल्य सौकुमार्य्यकरी शुभा।" (सु०)।

आस्यासव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] थूक। लाला। लार। हे० च०।

आस्या-सुख–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बैठने का सुख। बेकाम बैठे रहने का सुख। यथा—

"आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि।
ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि॥"

(मा० नि० प्रमेह नि०)

आस्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रुधिर। ख़ून। रक्त।

आस्रप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खून पीने वाला। जोंक।

आस्रव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मूत्र। प्रस्राव। (२) उबलते हुए चावल का फेन। (३) पनाला। (४) इन्द्रिय द्वार। (५) क्लेश। कष्ट।

आस्राव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) क्षत। ज़ख़म। (२) सम्यक् क्षरण। भली प्रकार बहने का भाव। (३) मुखलाला। लार। लुआब दहन। थूक। (४) क्लेश तकलीफ़। (५) अतिसार, व्रण आदि रोग जिनसे पानी झिरे। अथर्व०।

वि० [सं० त्रि०] ख़ूब बहनेवाला। सम्यक् क्षरणयुक्त।

आस्राव-भेषज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रक्त तथा परिस्राव को बन्द करनेवाली औषधियाँ। अथर्व० सू० ४४। २। का० ६।

आस्रावी–वि० [सं० आस्राविन्] [स्त्री० आस्राविनी] (१) बहनेवाला। क्षरण युक्त। आस्राव युक्त। "दुष्टशोणितास्रावो दीर्घकालानुबन्धी चेति दुष्टव्रणलिङ्गानि"। सु०। (२) जिसे मद टपकता हो। मदादि क्षरणशील।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घोड़े के पैर की एक बीमारी। अश्व के पाद रोग का एक भेद। जयदत्त के अनुसार इस रोग में घोड़े के पैर के तलवे में ज़ख़म हो जाता और उससे हमेशा स्राव हुआ करता है। जैसे—

"आस्राविणंविजानीयात् क्लेदस्रवतलं हयम्"। ज० द० ३६ अ०।

आस्वाद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Taste) ज़ायका। मज़ा। स्वाद। रस।

आस्वादक–वि० [सं० त्रि०] स्वाद ग्रहणकर्त्ता। स्वाद लेनेवाला।

आस्वादन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० स्वादनीय, आस्वाद्य, आस्वादित]। चखना। मज़ा लेना। रस लेना। स्वाद लेना। स्वाद ग्रहण। रसानुभाव।

आस्वादनीय–वि० [सं० त्रि०] चखने योग्य। स्वाद लेने योग्य। रस लेने योग्य। मज़ा लेने योग्य।

आस्वादित–वि० [सं० त्रि०] कृतास्वाद। भक्षित। चखा हुआ। स्वाद लिया हुआ। रस लिया हुआ। मज़ा लिया हुआ।

आस्वादु–वि० [सं० त्रि०] सुरस। मिष्ट। स्वादिष्ट। स्वादु।

ऑसिफ्रैगा-लैक्टिया–[ले० Ossifraga-lactea.]

आस्सेओड़ा–संज्ञा पुं० [बं०] एक छोटा वृक्ष जो पल्लीग्राम के जंगल में होता है। लोग इसकी डाल की दातौन करते हैं। फल बड़े मटर की तरह गुच्छों में लगता है। पत्ती के रस में गाय का घी पकाकर पारददोषजनित क्षत में प्रयुक्त करने से उपकार होता है। इसके फल में एक आश्चर्यकारक गुण है। ४ गंडा आसशेओड़ा का पका फल और ४ गंडा पुष्ट गोल मिर्च-इनको आसशेओड़ा के पके फल के रस में अच्छी तरह बाँट लें। फिर एक पतले कागज पर गाय का घी लगाकर सुखालें। पुनः इस सूखे कागज पर उक्त पिष्ट द्रव्य का महीन लेपकर सुखालें और उसका चुरुट तैयार करें। इस चुरुट द्वारा धूमपान करने से रोगी के गले का क्षत और स्फीतिजन्य अन्नपान बंध होने पर उपकार होता है। डॉक्टर लोग जिसे डिप्थीरिया कहते हैं, उसमें इसके २-३ चुरुट पीने से रोगी आरोग्य लाभ करता है। (वनौषधि दर्पण)

आहक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } नाक सूजने
आहक-ज्वर–संज्ञा पुं० [स० पुं०] } से आनेवाला बुख़ार। नासा ज्वर। नेज़ल फीवर Nasal fever, परनेसियस मलेरियल फीवर Pernacious malarial fever-अं०।

इसमें नासापुट के भीतर रक्त शोथ होता है और श्लेष्मा के कारण गात्र-वेदना तथा ज्वर होता है। यथा—

"तनुना रक्तशोथेन युक्तो नासापुटान्तरे।
गात्रशूलज्वर करः श्लेष्मणा ह्याहकोज्वरः ॥"
वै० निघ०।

चिकित्सा—दूर्वा, हरीतकी, अनार, पुष्कर-मूल, दाख और आमला इनके स्वरस से ३ दिन तक प्रातः काल नस्य लेने से इस ज्वर से छुटकारा मिलता है। भैष०।

दूर्वाद्य-तैल—दूर्वा, भव्य फल (   ), उड़द, कुलथी, वंशपत्री, जल और स्थल में उत्पन्न कर्ण मोरटी (मोरट), खरमञ्जरी तथा दण्डोत्पल की जड़ इनको अठगुने जल में क्वाथ करें। जब चौथाई शेष रहे तब उतने ही तिल तैल मिलाकर यथाविधि पाक करें। इस सिद्ध तैल की नास लेने से आहक ज्वर का नाश होता है। भैष०।

आहक-आबदीदः, आहक-शिगुफ्तः-[फ़ा०] बुझाया हुआ चूना। (Calcii Hydras)Slaked Lime. दे० "चूना"।

आहक-[फ़ा०] चूना। चूर्ण।

आहक-क्लोरीनी-[ति०] हरित्चूर्ण। (Calx chlorinata) दे० "क्लोरम"।

आहत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [संज्ञा आहति] (१) पुरातन वस्त्र। पुराना कपड़ा। (२) नया कपड़ा। तुरंत का धोया हुआ कपड़ा। जो वस्त्र अभी धुल के आया हो। नव वस्त्र। मे० तत्रिक०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वशिष्ट के मत से अल्प ढोल। प्रक्षालित। नूतन और न पहिना हुआ वस्त्र।

वि० [सं० त्रि०) (१) जिस पर आघात हुआ हो। चोट खाया हुआ। घायल। जख़्मी। (२) चलित। कंपित। थर्राता हुआ। हिलता हुआ। (३) पुराना। जीर्ण। गला हुआ। (४) तुरंत का धोया हुआ (वस्त्र)। जो (वस्त्र) अभी धुलकर आया हो।

आहति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चोट। मार। ज़खम। आघात। (२)मर्द्दन। मालिश। मलाई। (३) ताड़न। मारपीट।

आहन-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० आहनी] लोह। लोह। आयस।

आहनन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) स्त्री-पुरुषों का परस्पर संयोग। "आहनन स्त्री-पुरुषयो परस्पर संयोगः"। ऐत० ब्रा० १। ३०। १०। (२) ताड़न। मारपीट। (३) पशुवध। जानवर का क़त्ल। (४) डंडा इत्यादि।

आहन--मुरक्कब व सुम्बुलफ़ार-[अ०]लौह-मल्लेत। दे० "लोहा"।

आहनरुबा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] चुम्बक-पत्थर। कांत पाषाण। (Magnet, Load-Stone.)

आहन व अमोनिया-लेमूनी-[ति०] निम्बुकीय लौह नृसार। (Ferri et ammonii-Citras) दे० "लोहा"।

आहन बकुनः कुनः लेमूनी-[फ़ा०] निम्बुकीय लौह क्वीनीन। (Ferri et quininae-Citras) दे० "लोहा"।

आहनी-वि० [फ़ा०] (१) लौहसम्बन्धी (२) अयोमय। लोहे का बना हुआ।

आहने-अ.ह्या-शुदः-[फ़ा०] लोहे की भस्म। भस्मीकृत लौह। (Ferrum-reductum.) दे० "लोहा"।

आहर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उच्छ्वास। ठंडी साँस। आहसर्द। (२) अन्तर्मुख श्वास। निःश्वास। भीतरी श्वास। मुँह के भीतर-भीतर चलनेवाली साँस। (Inspiration) हे० च०।

वि० [सं० त्रि०] संचयकारक। जो जोड़ता हो। इकट्ठा करनेवाला।

आहरण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आहरणीय] [कर्तृ० आहर्ता] (१) संचयकरण। इकट्ठा करने का काम। मे०। (२) स्थानांतरित करना। किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। अपनयन। (३) हर लेना। छीनना। अपहरण। (४) ग्रहण। लेना।

आहरन-संज्ञा स्त्री० [देश०] निहाई। स्थूणी।

आहर्तव्य-वि० [सं०] ग्रहण करने के योग्य। संगृहतव्य।

आहर्ता–वि० [सं० आहर्त्तृ] [स्त्री० आहर्त्री] (१) उपार्जक। पैदा करनेवाला। (२) इकट्ठा करनेवाला। आयोजक (३) लानेवाला। (४) हरण करनेवाला।

आहलीव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आसन्नबीज–गु०। चन्द्रसूर। हालिम। हालों।

गुण—आहलीव गरम, कड़ुवा और चर्मदोष नाशक है तथा वात, गुल्म का नाश करता है, ऐसा चिकित्सकों का कथन है। वै० निघ०।

आहल्ल–[सिं०] अहिल्ल। अमलतास की फली। अमलतास। गिर्माला। (Cassia fistula, *Linn.*) स० फा० इं०।

आहव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नासाज्वर। आहकज्वर। भैष०। (२) रण। युद्ध। लड़ाई। (३) यज्ञ। याग।

आहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का वणिक् द्रव्य। च० द०।

आहार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भोजन। खाना। द्रव्य-गलाधः करण। पर्य्या०–लेप, निघष; न्याद (अ०)। जमन, विघष (अ० टी०), प्रत्यवसान, भक्षण, अशन (र), अभ्यवहार, स्वेदन, निगर (रा०)। (२) खाने की वस्तु। भोजन द्रव्य। खाद्य। ग़िज़ा, तआम् (अ०)। ख़ुरिश (फ़ा०)। (Food, Diet) पर्य्या०–अन्न, जीवन, आहार, कूर, कशिपु, ओदन, अंध, भिस्सा, अदन, भोज्य, अन्नाद्य, अशन (ध० नि० ७ व०)।

आहार वह पदार्थ है जिसके द्वारा क्षुधा की निवृत्ति और शरीर का पोषण होता है। स्वस्थ और रुग्णावस्था में आहार विभिन्न रूप से व्यवहृत होता है। उचित और व्यवस्थित आहार न मिलने से जीवन भार स्वरूप हो जाता है। इसलिए सदैव उचित आहार की व्यवस्था अवश्य करें। महर्षि चरकाचार्य के कथनानुसार आहार के निम्न भेद प्रभेद हैं:—

स्थावर, जङ्गम भेद से आहार की योनि दो प्रकार की है। हितकर और अहितकर भेद से इसके भी दो भेद हैं। पान, भोजन चर्वण और लेहन भेद से आहार सेवन चार प्रकार के हैं। रस भेद से आहार का स्वाद छः प्रकार का है। गुरु, लघु, शीतल, उष्ण, चिकना, रूक्ष, मन्द, तीक्ष्ण, स्थिर, सर मृदु, कठिन, विशद, पिच्छल श्लक्ष्ण, खर, सूक्ष्म, स्थूल, घन और द्रव इन भेदों से आहार के गुण भी २० प्रकार के हैं। द्रव्यों के संयोग भेद से आहार की कल्पना असंख्य है। च० सू० २५, २८ अ०।

धन्वंतरि निघंटु के अनुसार इसके आठ भेद हैं—भोज्य, पेय, लेह्य, चोष्य, खाद्य, चर्वण, निष्पेय, और भक्ष्य।

मिताहार

आहार सदा परिमित होना चाहिए। आरोग्यता, रुग्णावस्था, बाल्यकाल, ग्रीष्मादि ऋतु, दिन, रातादि इन प्रत्येक काल में मात्रानुसार ही भोजन करना उपयोगी होता है। इससे जठराग्नि की वृद्धि होती है और जठराग्नि का बढ़ना ही शरीर-स्थिति का हेतु है। कहा भी है—

"अग्निमूलं बलं पुंसां बलामूलंहि जीवितम्"।

गुरु लघु द्रव्यों की मात्रा व आहार-विधि

भारी द्रव्य अर्द्ध तृप्ति भर अर्थात् भूखसे आधा और हलका पेट भरकर खा लेने में आपत्ति नहीं। जिसको जितना ही सुखपूर्वक आहार पचजाय, उतना ही विधिपूर्वक किया हुआ आहार आरोग्य मनुष्य के लिये तथा रोगी के लिये हितकर होता है। और उचित समय पर भोजन करना स्वभाव से ही भोजनकर्ता को हितकारक होता है। किसी-किसी के लिये कोई नियतकाल हितकर होता है। गर्म, चिकना और परिमाणोचित आहार प्रथम भोजन के पाचन होनेपर ही खाना चाहिये। वह भोजन अविरुद्ध वीर्य होना चाहिये तथा पवित्र स्थान में बैठकर वांछित पदार्थों से युक्त हो भोजन को न बहुत शीघ्र और न बहुत बिलम्ब में ही करना चाहिये। भोजन करते समय बहुत बोलना और हँसना त्याग कर, भोजनमें मन लगा कर और अपने शरीर के बलाबल को देखकर भोजन करें।

भोजन सदैव ताजा और ईषत् गर्म होना चाहिये; क्योंकि उस आहार में स्वाद शक्ति उत्तम रहती है एवं उससे अग्नि जागृत होकर आहार का पाचन करती है वह आहार शीघ्र जीर्ण

हो जाता है । गर्म आहार से वायु का अनुलोमन और कफ का परिशोषण होता है । इसलिये सदैव गर्म ही आहार सेवन करना उचित है ।

प्रथम का किया हुआ आहार जीर्ण हो जाने पर ही भोजन करना चाहिए । अजीर्ण पर भोजन करने से अर्थात् पहिले किए हुए आहार का रस शरीर में यथोचित रीति पर पच जाने के बिना भोजन करने से, उस दूसरे आहार के साथ मिलकर वह दोषों को कुपित करता है । पहिला भोजन पच जाने पर फिर भोजन किया जाय तो दोष अपने-अपने स्थानों में स्थित रहते हैं । अग्नि चैतन्य होकर भूख लगती है और नाड़ियों के मुख शुद्ध होकर शुद्ध डकार आती है । हृदय शुद्ध रहता है और वायु का अनुलोम होता है । वात, मूत्र और मल अपने निश्चित समय पर निकलते हैं और वह आहार सम्यक् जीर्ण होकर धातुओं को दूषित न करता हुआ आयु की वृद्धि करता है ।

वीर्य-विरुद्ध भोजन के गुण

अविरुद्धवीर्यवाले पदार्थों का सेवन करना उचित है । अविरुद्धवीर्यवाले पदार्थों के खाने से जो विकार विरुद्धवीर्य आहार से उत्पन्न होते हैं, वह नहीं होते । इसलिए उचित है कि विरुद्ध वीर्य पदार्थों को न खाएँ ।

सदैव पवित्र स्थान में बैठकर भोजन करना उचित है, क्योंकि पवित्र स्थान में भोजन करनेवाले प्राणी को दुष्ट स्थान जनित मन की ग्लानि आदि उत्पन्न नहीं होती । इसलिए वांछित स्थान में मन को प्यारे लगनेवाले, उत्तम उपकरणों से युक्त भोजन करें ।

अपने शरीर के बलानुकूल विचारपूर्वक विधिवत् सात्म्य और असात्म्य का ज्ञान रखते हुए भोजन करना चाहिए । इस प्रकार विचारपूर्वक किया हुआ भोजन शरीर के अनुकूल होता है । अग्नि का बलाबल विचारकर जो पदार्थ खाया जाता है, वह शरीर के लिए परम हितकारी होता है ।

अतिद्रुत आहार के गुण

अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक भोजन न करना चाहिये । अत्यन्त जल्दी भोजन करने से शरीर के स्नेह की ऊर्ध्व गति, देह का अवसादन एवं किया हुआ आहार यथोचित रीति पर अपने स्थान में नहीं पहुँच सकता और जो भोजन किया जाय उसका यथार्थ दोष, गुण प्रतीत नहीं हो सकता, इसलिये भोजन करने में अत्यन्त शीघ्रता नहीं करनी चाहिये ।

नातिविलम्ब भोजन के गुण

बहुत देर में भी भोजन करना ठीक नहीं । क्योंकि भोजन करने में बहुत समय लगने से मनुष्य की तृप्ति यथोचित प्रकार से नहीं होती और भोजन की मात्रा अधिक होजाती है, एवं भोज्य वस्तु में शीतलता अधिक आजाती है, जिससे आहार का पाक विषम होजाता है । इसलिए अधिक देर में भोजन करना निषेध है ।

मौनपूर्वक भोजन के गुण

भोजनकाल में बहुत बोलना और हँसना न चाहिए । बोलते और हँसते हुए तथा दूसरी जगह चित्त लगाकर भोजन करने से, जो दोष बहुत शीघ्र भोजन करने से होते हैं, वही दोष इसमें भी प्राप्त होते हैं । इसलिए सानन्द चुपचाप हास्य और वार्तारहित चित्त स्थिरकर सदैव भोजन करना श्रेष्ट है ।

चरकोक्त मात्रा–विचार

आहार का परिमाण मनुष्य की जठराग्नि के बल के आधीन है । जो भोजन किया हुआ मनुष्य के स्वभाव में कुछ फर्क न लावे और ठीक समय पर पच जावे, उस मनुष्य के लिए वही परिमित (ठीक मात्रा) भोजन है । शाली चावल, साठी चावल, मूँग, लवा, तीतर, कृष्णसार (मृग भेद), शशा, शरभ, शावर यह सब स्वभाव से ही हलके होते हैं । परन्तु फिर भी मात्रा से अधिक खाना उचित नहीं । इसी तरह पिष्ट पदार्थ, खाँड, गुड़ आदि, दूधका विकार, खोआ, रबड़ी आदि, उड़द, आनूपसंचारी जीवों का मांस यह सब स्वभाव से ही गुरु होते हैं । यह भी जितने ठीक पच सकें उतनी ही मात्रा से खाना चाहिए । यहाँ पर जो इन द्रव्यों की गुरुता लघुता कही है वह निष्प्रयोजन नहीं, क्योंकि जितने हलके पदार्थ हैं, उनमें

वायु और अग्नि का गुण अधिक होता है। इस प्रकार गुरु पदार्थों में पृथ्वी का गुण और सोम गुण अधिक होता है। इसलिये हलके पदार्थ उचित मात्रा से खाए हुए अपने गुण के कारण स्वभाव से ही अग्नि-दीपन और अल्प-दोष होते हैं और भारी पदार्थ स्वभाव से ही अग्नि को मन्द करनेवाले होते हैं। इसलिए अधिक मात्रा से उपयोग किए हुये दोषों को बलिष्ट करते हैं और बिना व्यायाम (कसरत) और जठराग्नि की ताक़त से गुरु (भारी) भोजन करना उचित नहीं। तात्पर्य यह है कि हलके पदार्थ यथेष्ट पेट भरकर खायँ; परन्तु भारी पदार्थ बहुत पेट भर न खायँ। किन्तु, आहार की मात्रा जठराग्नि के बल पर ही निर्भर है, द्रव्य के हलके और भारीपन पर नहीं। वास्तव में प्रत्येक पदार्थों के खाने का क्रम यह है कि जितने हलके पदार्थ हैं उनको तीन भाग पेट भरकर खाना और जितने भारी पदार्थ हैं उनको आधा पेट भरकर खाना हित है। किंतु हलका पदार्थ भी अधिक पेट भरकर खाना जठराग्नि को मन्द करता है। ठीक मात्रा से किया भोजन प्रकृति को नहीं बिगाड़ता। इसलिए ठीक मात्रा से किया हुआ भोजन मनुष्यों को सदा बल, वर्ण, सुख और आयु का देनेवाला होता है।

जब तक प्रथम का किया हुआ आहार सम्यक् पाचन न हो लेवे, तब तक उसके ऊपर कोई भी भारी पदार्थ या पिष्ट पदार्थ (मैदा, पिष्ठी आदि) खीर, चावल, चिउड़ा आदि कदापि न खायँ। जब अन्न जीर्ण होकर भूख लगी हो, तब परिमाणोचित आहार करें।

न खाने योग्य पदार्थ—

शुष्क मांस, शुष्क-शाक, शालूक (कमल की डंडी), बिस, अनूपादिमांस, इन्हें भारी होने के कारण नित्य खाने का अभ्यास न करें और रोगादि से सूखे जीवों का मांस न खाएँ। छाँछ से तथा और तरह से फटा हुआ दूध, सूअर का मांस, गोमांस इन्हें कभी भी खाना उचित नहीं। मछली, दही, उड़द और जौ इनको नित्य खानेका अभ्यासन न करें।

सेवन योग्य पदार्थ—

साठी चावल, शाली चावल, मूँग, सेंधानमक, आमला, गेहूँ, अगस्त्योदय से शुद्ध आकाश जल, दूध, घी, जांगल पदार्थ और शहद इनको सदा खाना चाहिए तथा जो द्रव्य देहकी स्वस्थावस्था को न बिगाड़े और रोगों को उत्पन्न न करे, वही पदार्थ नित्य आहार के लिये श्रेष्ट हैं। च० सू० ५ अ०।

हीनातिमात्रा का परिणाम

हीनमात्रा में किया हुआ भोजन शरीर के बल, पुष्टि और ओज की वृद्धि का कारण न होकर केवल वातरोगों का कारण बन जाता है। इसी प्रकार अति मात्रा में किया हुआ भोजन अच्छी तरह परिपाक को प्राप्त न होकर तीनों दोषों को प्रकुपित करता है। अतएव उसकी मात्राका असल परिमाण समझना चाहिए।

दोषों के कुपित होने से उदरस्थ अनेक प्रकार की बीमारियाँ जैसे, अजीर्ण, अलसक, विशूचिका, अतिसार, आमातिसार, उदरवेदना, तृषादि अनेक उपसर्ग उत्पन्न होजाते हैं।

पक्व अन्न के भेद

उदर में पके हुए अन्न के दो भेद हैं, यथा-(१) किट्ट और (२) सार। इनमें से अन्न का जो पतला किट्ट अर्थात् मैल है, उसे मूत्र और गाढ़े किट्ट को विष्ठा कहते हैं।

अन्न का सार अर्थात् प्रसाद नामक भाग पुनः ७ अग्नियों द्वारा पकाया जाता है। आशय यह है कि जठराग्नियों और पंच महाभूताग्नि इन छः अग्नियों द्वारा पककर तो सार बनता है; फिर बचा हुआ सात रसादि धात्वग्नि द्वारा परिपाचित होता है।

भुक्तान्न से दोषत्रय की उत्पत्ति

छः रस युक्त भोजन किए हुए अन्न का प्रथम परिपाक होकर मधुरता से फेनभूत कफकी उत्पत्ति होती है। फिर पके हुए अन्न के अम्लभाव से विदग्ध होकर आमाशय से झरकर स्वच्छ पित्त प्रकट होता है। फिर वह अन्न अग्नि से सूखकर पक्वाशय में प्राप्त हो कटुभाव से वायु को उत्पन्न

करता है तथा पिण्डाकार बनकर विष्टारूप में परिणत होजाता है। च० चि० १६ अ०।

आहार परिणति का काल

इसमें विभिन्न मत हैं। कोई आचार्य कहते हैं कि पाकक्रम (जठराग्नि और भूताग्नि) द्वारा पच्यमान रस रक्तादि क्रमपूर्वक वीर्य के प्रभाव द्वारा खाया हुआ अन्न एक दिन रात में शुक्र बन जाता है। कोई-कोई कहते हैं कि छः दिनमें खाए हुए अन्न से शुक्र बनता है। अन्य आचार्य कहते हैं कि एक महीने में आहार से शुक्र बनता है। पराशर के मत से आठ दिन में आहार के रस से शुक्र बनता है। उन्होंने अपने ग्रंथ में इस प्रकार लिखा है—

"आहारोऽद्यतनो यश्चश्वो रसत्वंसगच्छति
शोणितंत्वं तृतीयेह्नि चतुर्थे मांसतामपि।
मेदस्त्वं पंचमेषष्ठेत्वस्थित्वं सप्तमेव्रजेत् ॥ मज्जतां
शुक्रतामेतिदिवसेत्वष्ठमेनृणामिति।"

भोज्य धातुओं का परिवर्तन अर्थात् भ्रमण गाड़ी के चक्र की तरह घूमता ही रहता है। पहिली वाली, जिस धातु से जो दूसरी धातु बनती है, वह पहिलीवाली धातु दूसरी धातु की भोज्य धातु अर्थात् आहार होती है; जैसे रस से रक्त बनता है।अस्तु, रस धातु रक्तकी भोज्य धातु है। इसी तरह मांस की भोज्य धातु रक्त है, मेद की भोज्य धातु मांस, अस्थि की भोज्य धातु मेद, मज्जा की भोज्य धातु अस्थि और शुक्र की भोज्य धातु मज्जा है। भोज्य धातु निरंतर आप्यायित रहने के कारण क्षीण नहीं होती।

सर्व श्रेष्ठ आहार दूध, उत्तम द्राक्षादि फल (अनार, सेव, संतरा, टोमाटो, कोका, कौंच की फली, गेहूँ, जौ, शालीधान, मांस-रस इत्यादि जो सड़ा गला न हो)।

सद्यः शुक्रोत्पादक खाद्य

दूध, माँस रस, मुलहठी, उरद, हंसादि पक्षियों के अंडे, सतावर, सेमल का मूसला, श्वेत तथा श्याम मूसली आदि।

जठराग्नि द्वारा आहार की प्रेरणा

व्यानवायु द्वारा विक्षिप्यमाण रसधातु सम्पूर्ण शरीर में सदा चारों ओर प्रेरित होती रहती है। स्रोतों में किसी प्रकार की विगुणता होने से शरीर के जिस अवयव वा स्थान में वह रुक जाती है वहाँ ही रोग उत्पन्न होजाते हैं। जैसे वायु की प्रेरणा द्वारा आकाशस्थ मेघ जहाँ इकट्ठे होजाते, वहीं बरसा करने लग जाते हैं—सब जगह नहीं बरसते। इसी तरह रस भी अपने रुकने के स्थान में ही रोग उत्पन्न करता है।

जठराग्नि के पालनादि कर्म

सब प्रकार की अग्नियों में अन्न को पचानेवाली पाचकाग्नि अर्थात् जठराग्नि ही श्रेष्ठ हैं, क्योंकि पाचकाग्नि ही भूताग्नि और धात्वादि अग्नियों की मूल है। इसी पाचकाग्नि की वृद्धि और क्षय से ही उनकी भी वृद्धि वा क्षय होता है। इसलिए उचित हितकारी अन्नपान के विविध प्रयोगों द्वारा यत्नपूर्वक सेवन करने से पाचकाग्नि की रक्षा किया करें। क्योंकि किए हुए आहार का सम्यक् पाक ही जीवन का सच्चा सहायक है। और पाचकाग्नि की स्थिति पर ही आयु और बल की स्थिति निर्भर है।

जठराग्नि के भेद

जब समानवायु अपने स्थान में रहता है, तब जठराग्नि भी सम होती है। और जब समानवायु अपने स्थानको छोड़कर अन्य मार्ग का अवलम्बन करता है, तब जठराग्नि विषम भाव को प्राप्त होती है। जब समान वायु पित्त से मूर्च्छित होता है तब जठराग्नि तीक्ष्ण होती है। इसी तरह कफ से पीड़ित होने पर मंद गति को प्राप्त होती है।

इस रीति से अग्नि के चार भेद हैं, जैसे—समाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि और मन्दाग्नि।

विधिपूर्वक किए हुए भोजन को सम्यक् रीति से पचानेवाली अग्नि को समाग्नि कहते हैं। जो अग्नि देश, काल, मात्रा, विधि आदि का विचार किए बिना असम्यक् रीति से किए हुए भोजन को शीघ्र पचा देती है और जो कभी सम्यक् भुक्त अन्न को देर में पचाती है उसे विषमाग्नि कहते हैं। जो अग्नि अतिमात्रा वा असम्यक् भुक्त अन्न को भी शीघ्र पचा देती है, वह तीक्ष्णाग्नि है और जो अग्नि सम्यक् रीति से किए अल्प

भोजन को भी मुख में शोषादिक उत्पन्न करके देर में अन्न को पचाती है वह मन्दाग्नि है। मन्दाग्नि के पाचनकाल में मुख-शोष, पेट में गुड़गुड़ाहट, अंत्रकूजन, अफरा और भारीपन होता है।

अग्नि के नष्ट होने पर मृत्यु होती है, समभाव में स्थित होने पर आरोग्यता और दीर्घ-जीवन होता है, विकृत होने पर अनेक प्रकार के उदरामय उत्पन्न होजाते हैं। अतएव आहार पाचनमें उत्तमाग्नि ही है और वही अग्नि शरीर का मूलाधार है। कहा है—"शांतेग्नौम्रियतेयुक्ते चिरंजीवत्यनामयः। रोगीस्याद्विकृते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥"

भुक्त आहार द्वारा निर्मित मज्जादि का प्रमाण मनुष्य के देह में मज्जा, मेद, बसा, मूत्र, पित्त, श्लेष्मा, पुरीष, रक्त, रस और जल ये दश द्रव्य यथोत्तर अपने हाथ की एक-एक अंजली अधिक होते हैं। जैसे—मज्जा १ अंजली, मेदा २ अंजली, वसा ३ अंजली, मूत्र ४ अंजली, पित्त ५ अंजली, श्लेष्मा ६ अंजली, पुरीष ७ अंजली, रक्त ८ अंजली, रस ९ अंजली और जल १० अंजली। इसी तरह ओज, मस्तिष्क और वीर्य अपने हाथ से प्रत्येक एक-एक प्रसृत अर्थात् आधी-आधी अंजली है। स्त्रियों के स्तन्य अर्थात् दूध २ अंजली है और रज ४ अंजली होता है। यह परिमाण उन स्त्री पुरुषों का है, जिनकी धातु सम प्रकृति पर हैं। धातुओं के घटने बढ़ने के अनुसार ही मज्जादि का परिमाण भी घट बढ़ जाता है।

विरुद्ध-आहार

विरुद्ध-आहार विष के तुल्य होता हैं, इसलिए उन्हें यहाँ संक्षिप्त रूप में दिया जाता है। चिलचिम आदि मछली के मांस दूध के साथ खाने से रक्त दूषित होकर कुष्टादि रोगों को उत्पन्न करता है। ग्राम्य जीवों का मांस, अनूपचारी जीवों का मांस, जलचर जीवों का मांस, शहद, तिल, गुड़, दूध, उड़द, मूली, विस, विरूढ धान्य इन्हें एक साथ मिलाकर न खाना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य में बहरापन, अंधता, कंप, जड़ता, विकलता, गूँगापन, मिनमिनता अथवा मृत्यु उत्पन्न करता है। शहद और दूध के साथ पुष्कर पत्र और रोहिणी का साग नहीं खाना चाहिए। सरसों के तेल में भूना हुआ कबूतर का मांस दूध और शहद के साथ न खाना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य के शरीर में रक्त-दोष, अभिष्यन्द, अपस्मार(मृगी), कनपटीकेरोग, गलगंड और रोहिणी आदि रोग उत्पन्न होते हैं तथा मृत्यु प्राप्त होती है। मूली, लहसन, जातूशाक (बाँस की कोपल), काली तुलसी (कृष्ण गंधा), श्वेत तुलसी, वन तुलसी आदि को खाकर ऊपर से दूध पीना कुष्ट रोग का कारण होता है। इसी तरह संपूर्ण शाक कटहर तथा शहद इन सबको दूध के साथ मिलाकर न खाना चाहिए, ऐसा करने से बल, वर्ण, तेज और वीर्य का नाश होता है और नपुंसकता उत्पन्न होकर मृत्यु होती है। इसी तरह पके हुए कटहर को उड़द की दाल, गुड़ और घी के साथ नहीं खाना चाहिए; क्योंकि यह भी विरोधी हैं।

अंबाड़ा, बिजौरा, कटहल, करौंदा, मोच (सहिंजन की फली), जंभीरी नीबू, बेर, कोशाम्र, भव्यफल (कमरख), जामुन, कैथ, अम्ली, पारावत (लवली), अखरोट, पीलू, बड़हर, नारियल, अनार, आँवले एवं जितने प्रकार के खटाई तथा खट्टे फल एवं काँजी आदि द्रव पदार्थ हैं, इन्हें दूध के साथ खाना निषिद्ध है। कंगू (काँक) धान्य, वरक (चीना) धान्य, मोठ, कुलथी, उड़द, और मटर इन्हें भी दूध के साथ खाना निषिद्ध है। पद्मोत्तारिका शाक (कुसुम), शर्करा से बनाए हुए मद्य, मैरेय नाम की शराब और शहद एक साथ मिलाकर खाने से विरुद्ध-भोजन होता है और इससे वायु का अत्यन्त कोप होता है। हल्दी, सरसों के तेल में भूनकर विरुद्ध है और इससे पित्त का कोप बढ़ता है। जल में मिले हुए सत्तू और घी खाकर ऊपर से खीर खाना अनुपान विरुद्ध है और इससे कफ का कोप होता है। तिल के कल्क में सिद्ध किया हुआ पोई का साग खाने से अतिसार उत्पन्न होता है। वारुणी नामक मद्य के साथ एवं कुल्माष (कुलथी) के साथ बगुले का मांस विरुद्ध है और यदि बगुले का मांस सूअर की चर्बी में भून कर खाया

जाय तो शीघ्र ही प्राणों को नष्ट करता है। इसी तरह मोर का मांस अंडी के तेल में एरंड के लकड़ी के आग से भूना हुआ प्राणनाशक होता है एवं हारिल पक्षी का मांस, भस्म और धूल तथा शहत युक्त होने से प्राण का नाशक होता है। मछली के तेल वाले पात्र में सिद्ध की हुई पिप्पली तथा काकमाची (मकोय) शहदके साथ खाने से मृत्युकारक होता है। शहद को गर्मकर खाना अथवा गर्मी से पीड़ित को गर्मकर शहद देना मृत्युकारक होता है। शहद और घृत दोनों बराबर मिलाकर खाना अथवा शहद और आकाश का जल या शहद और कमलगट्टे अथवा शहद पीकर गर्म जल पीना एवं भिलावाँ खाकर गर्म जल पीना विषवत् हानि करता है। कत्रीला छाँछ में सिद्ध करके खाना, बासी मकोय का साग और कबाब खाना संयोग विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त जो द्रव्य देश, काल और अग्नि सात्म्य और असात्म्य इनसे विरुद्ध हो और वायु आदि को विगाड़ कर प्रतिकूल हो तथा संस्कार से अथवा वीर्य से अथवा परिपाक से, परिहार अथवा उपचार से, परिपाक से अथवा संयोग से अथवा हार्दिक संपत्ति से विरुद्ध हो, वह प्रत्येक पदार्थ हानिकारक और रोगोत्पादक होता है।

देश विरुद्ध आहार

रूक्ष और तीक्ष्ण पदार्थ मिलाकर सेवन करना जल रहित देश में विरुद्ध है। इसी तरह स्निग्ध और शीतादि पदार्थ मिलाकर खाना अनूपदेश में विरुद्ध है।

काल विरुद्ध आहार

शीत और रूक्ष पदार्थों को मिलाकर शीत काल में खाना काल-विरुद्ध है, तथा उष्ण, कटु पदार्थों का उष्ण-कालमें सेवन करना काल-विरुद्ध होता है।

अग्नि-विरुद्ध आहार

वह आहार जो ४ प्रकार की अग्नि के प्रतिकूल हो, अग्नि विरुद्ध होता है।

मात्रा-विरुद्ध आहार

मधु और घृत को समान भाग में मिलाकर खाना मात्रा विरुद्ध होता है।

प्रकृति-विरुद्ध आहार

उष्ण प्रकृति के मनुष्य को चरपरा आदि उष्ण पदार्थ सात्म्य-विरुद्ध है एवं शीतल और मधुरादि सेवन असात्म्य विरुद्ध है। जो-जो पदार्थ अग्नि आदिमें विरुद्ध होता है, उन सबको सात्म्य विरुद्ध जानना चाहिए।

गुण—विरुद्ध और अभ्यास विरुद्ध औषध क्रिया में कदापि न लेना चाहिएँ, क्योंकि गुण अभ्यास और प्रकृति विरुद्ध पदार्थ विषवत् प्राणी को हनन करते हैं। इसी तरह एरंड के तैल में मिला हुआ मोरका मांस संस्कार विरुद्ध होता है। उष्ण वीर्य द्रव्य के साथ शीत वीर्य द्रव्य को मिलाकर खाना वीर्य विरुद्ध होता है। क्रूर कोष्ठ वाले को मन्द वीर्य अभेदन कर्त्ता पदार्थ एवं मृदु कोष्ट वाले को भारी और भेदन कर्त्ता पदार्थ कोष्ट-विरुद्ध होता है। इसी प्रकार श्रम, मैथुन और व्यायाम से पीड़ित मनुष्य को वातकारक पदार्थ निद्रा और आलस्य वाले प्राणी को कफकारक आहार अवस्था विरुद्ध कहलाता है। इसी तरह जो मनुष्य मल, मूत्र के बिना त्याग किये अथवा बिना भूख के ही भोजन करता है तथा अत्यन्त भूख लगने पर भोजन नहीं करता, उसको कर्म-विरुद्ध कहते हैं।

बाराह (सूअर) आदि का मांस खाकर गर्म पदार्थों का सेवन करना और घृत आदि पदार्थों को पीकर शीत पदार्थों का सेवन करना भी आहार-विरुद्ध है।

विषैली लकड़ियों की अग्नि से सिद्ध किया पदार्थ एवं कच्चे जले भुने चावल आदि पाक विरुद्ध कहे जाते हैं।

खट्टे पदार्थों को दूध में मिलाकर खाना संयोग विरुद्ध होता है। मन को बुरा लगनेवाला पदार्थ हृदय-विरुद्ध कहा जाता है।

जिस पदार्थ में यथोचित परिपक्व होकर उचित रस न उत्पन्न हो उसको सम्पद् विरुद्ध कहते हैं एवं जिसका रस नष्ट हो गया हो उसे भी सम्पद् विरुद्ध कहते हैं।

जो मनुष्य भोजन किया हुआ होने पर पुनः भोजन करे अथवा कचा भोजन करे या स्वेदन

आदि से नम्र होने पर एकदम अंट-संट भोजन कर जाय उसको विधि-विरुद्ध कहते हैं।

अपनी प्रकृति से किंचित् विरुद्ध पदार्थ और बलवान अग्निवाले पुरुष तथा तरुण पुरुष एवं स्नेह या व्यायाम आदि से बलवान पुरुष को भी प्रकृति से किंचित् विरुद्ध होने पर भी हानिकारक होता है।

इसलिए रीत्यनुकूल भोजन करना सदैव प्राण का रक्षक है। इसके विपरीत विरुद्ध आहार से नपुंसकता, अंधापन, विसर्प, उदररोग, विस्फोटक रोग, उन्माद, भगंदर, मूर्च्छा, मद, आध्मान, गलग्रह, पाण्डु, आम-विष, किलास, कुष्ठ, ग्रहणी, शोष, रक्त, पित्त, ज्वर, प्रतिश्याय, त्रिदोष, संतान की हानि होती एवं वह मृत्यु का कारण होता है। जो आहार दोषों को कुपित कर देह से बाहर नहीं निकलता, वह अनेक प्रकार की हानियाँ उत्पन्न करता है।

विरुद्ध-आहार जन्य रोगों की चिकित्सा

वमन, विरेचन एवं विरोधी भोजन के परिपाक करनेवाले तथा उनके दोषों को शांत करनेवाली संशमन क्रिया हितप्रद होती है। जिस विरुद्ध भोजन का प्रथम से ही अभ्यास हो गया हो, वह विरुद्ध भोजन अधिक अनिष्टकारक नहीं होता। इसलिये संक्षेप से ही कहा गया है, कि विरुद्ध आहार से उत्पन्न हुये जो रोग हैं, वह तो वमन, विरेचन और शमन द्रव्यों द्वारा शांत हो जाते हैं। अथवा प्रथम से ही ज्ञान प्राप्तकर हित पदार्थों का सेवन करना हितकारक होता है और जिस विरुद्ध भोजन का शरीर को सदा से अभ्यास हो गया हो वह विशेष हानिप्रद नहीं होता।

सदैव सुन्दर गंध वर्णवाले तथा सुसंपन्न रसवाले और पवित्र स्पर्शयुक्त एवं यथार्थ प्रक्रिया द्वारा बना हुआ अन्न-पान प्राणियों के प्राण हैं। उत्तम आहार ही अन्तराग्नि के लिये इंधन स्वरूप है एवं प्राणियों के प्राणों को धारण करने का मुख्य हेतु। उचित रीति पर सेवन किया हुआ अन्नपान धातुओं को बलवान करता है तथा सुन्दर वर्णकारक है। इंद्रियों को प्रसन्न करता है और अनुचित रीति से सेवन किया हुआ सदैव हानिप्रद होता है।

त्रिविध कुक्षीय का वर्णन

भोजन करते समय उदर में आहार को तीन भागों में विभक्त करना योग्य है। उनमें (१) प्रथम उदर के एक भाग को पेड़ा, पूड़ी, पराठा आदि गरिष्ठ पदार्थों से पूरित करें, (२) द्वितीय भाग को खीर, दूध आदि पतले पदार्थों से पूरित करें और (३) तीसरा भाग वात, पित्त और कफ के संचार के निमित्त खाली रखें। यही आहार की उत्तम मात्रा है। इस नियमानुसार भोजन करनेवाला मनुष्य आहारजनितविकारों से सदा वंचित रहता है अर्थात् उसको आहार जनित कोई रोग नहीं होता और यथोचित रीति पर भोजन करने के कारण आहार करने के जो उत्तम फल होते हैं, उससे शरीर को पुष्टता आदि सभी उत्तम गुण प्राप्त होते हैं।

संपूर्ण आहार पूर्वोक्त आहार के आयतनों को विचारकर पुन: मात्रानुसार भोजन करना उचित है। आहार सदैव इस प्रकार करना चाहिये कि जिससे कोख में पीड़ा न हो और हृदय का अवरोध न हो। दोनों तरफ के पार्श्व भाग फटें नहीं, देह में अधिक भारीपन न हो। इस प्रकार मात्रानुसार भोजन करने से इंद्रियाँ पुष्ट होती हैं, क्षुधा और प्यास शांत होती है, बैठने, सोने, चलने, श्वास, प्रतिश्वास लेने से तथा हँसने और बोलने आदिमें आनन्द प्राप्त होता है। सायंकाल और प्रात:काल दोनों समय आहार पाचन हुआ प्रतीत होता है तथा मलादिवेग ठीक परिमाण से निकलते हैं। बल और वर्ण की वृद्धि होती है। यह सब लक्षण मात्रापूर्वक आहार करने के होते हैं।

अमात्रा के भेद

हीन और अधिक मात्राके विचारसे मात्रा दो प्रकार की हैं। हीन मात्रा से भोजन किया जाय तो बल, वर्ण और पुष्टि की क्षीणता, पेट का नहीं भरना, उदावर्त रोग तथा अवृष्यता होती है और आयु की अवृद्धि, ओज, मन, बुद्धि तथा इंद्रिय आदि की शक्ति नष्ट होती है। इसके अतिरिक्त सार का प्रधमन, अलक्ष्मी एवं

८० प्रकार की वात-व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं और अधिक मात्रा से सम्पूर्ण दोष कुपित होते हैं। जो मनुष्य पूड़ी आदि कड़े पदार्थों से पेट भरकर पुनः दूध, जल आदि से पेट को पूर्ण करता है, उस प्राणी के आमाशय में प्राप्त हुए वात, पित्त और कफ अधिक भोजन करने से पीड़ित हुए एक काल में ही सब कोप को प्राप्त होते हैं और पुनः कुपित दोष उसी आहार रस समूह में मिलकर कुक्षि के एक देश में स्थित हो जाते हैं। तब वह विष्टम्भ को करते हुए सहसा ऊपर तथा नीचे से निकलने लगते है। फिर वही दोष अतिमात्रा में भोजन करनेवाले प्राणीके शरीर में पृथक्-पृथक् विकारों को उत्पन्न करने लगते हैं।

भोजन आदि में दही का नियम

रात्रि के समय दही न खावे। इसी प्रकार घी खाँड़ के बिना अथवा मूँग या आमले के यूष बिना, या शहद के बिना मिलाए दही न खायँ। गरम करके भी दही न खायँ। रात्रि में दही खाने से लक्ष्मी का नाश होता है। इसलिए रात्रि को दही नहीं खाना चाहिये। घृतयुक्त दही कफ की वृद्धि करता है और वायु को शमन करता है पित्त को कुपित नहीं करता तथा भोजन को पचाता है। खाँड़ मिलाकर दही खाने से दाह और तृषा की शांति होती है। मूँग के यूष के साथ दही खाने से वायु शांत होता है। शहद मिला दही सुस्वादु होता है और उसमें कफ का दोष क्षीण हो जाता है। गरम दही का सेवन रक्त-पित्त का वर्द्धक है। आमले के यूष के साथ दही खाने से त्रिदोष का नाश होता है। जो मनुष्य बिना विधि से दही का सेवन करता है उसको ज्वर, रक्त-पित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डु, भ्रम और कामला आदि रोग उत्पन्न होते हैं। च० सू० ७ अ०।

आहार-नलिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } अन्न-
आहार-पथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } प्रणाली।

आहार-पाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक के अनुसार भुक्त अन्नादि वा आहार के परिपाक का एक भेद जिससे वह उत्तरोत्तर रसादि रूप धातुओं में परिणत हो जाता है। भोजन का परिपाक। खाने का हाज़मा।

आहार-रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खाये हुये पदार्थ का मेदे में बना हुआ रस। आमाशयिक रस।

आहार-विहार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खाना, पीना, सोना आदि शारीरिक व्यवहार। रहन-सहन।

मिथ्या आहार विहार=विरुद्ध शारीरिक व्यवहार। खाने पीने आदि में व्यतिक्रम।

"मिथ्याहारविहाराभ्याम् दोषाह्यामाशयाश्रया।"
वा० नि० १ अ०।

आहार-शोषण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काला जीरा। स्याह जीरा। कृष्ण जीरक।

आहार-संभव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आहार पाक जन्य शरीरस्थ रस धातु। आहार रस। खाने के हाज़मे से बना हुआ जिस्म का कैलूस। हे० च०।

आहार-स्थान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह स्थान जहाँ भोजन किया जाय। भोजनालय। एकान्त स्थान। निर्जनादि देश। यथा—

"आहारनिर्हार विहारयोग्याः सदैव सद्भिर्निर्जने विधेयाः।" (भा०)

अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्य को आहार-विहार और मल-मूत्रादि का त्याग सदा निर्जन स्थान में ही करना चाहिये।

आहारी–वि० [सं० आहारिन्] [स्त्री० आहारिणी] खानेवाला। भक्षक।

आहार्न-बाट्रिगेर फ्ल्युगेल सामन–[जर० Ahorn battriger flugel samen] कर्णिकार। छोटा सोन्दाल–बं०। छोटा अमलतास। (Peterospermum Aserifolium.)

आहार्य्य–वि० [सं० त्रि०] (१) ग्रहण किया हुआ। गृहीत। (२) बनावटी। कृत्रिम। (३) खाने योग्य। भक्ष्य। (४) आहारणीय। आहरणार्ह। कान की मैल आदि। (५) आगन्तुक। त्रिका०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान बाँधने की एक प्रकार की पट्टी का नाम। सु० सू० १६ अ०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जो बीमारी निकाससे अच्छी हो। निष्कर्ष द्वारा चिकित्सा किया

जानेवाला रोग । (२) निष्कर्षण । निकास ।

आहाव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निपान । जलाशय । चौबच्चा । हौज़ । आहरी । हे० च० ।

"आहावस्तु निपानं स्यादुपकूप जलाशये ।"
अम० ।

"निपानमाहारः ।" पा० ३ । ३ । ७४ ।

आहितुण्डिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साँप पकड़ने वाला । सँपहारा । व्याल-ग्राही । कालबेलिया । सपेरा ।

आहिच्छत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शतपुष्पा । सौंफ ।

आहीरणी–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दुमुँहा साँप । दो सिर का सर्प ।

आहुली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) आहुल्य । तरवड़ । (२) आवर्त्तकी । विषाणिका । नि० शि० ।

आहुल्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काश्मीर देशज "तरवट्" नाम का एक प्रसिद्ध क्षुप जिसमें पीले फूल लगते हैं । भुञ्जित खड़ । तरवड़ । तरवर । आवेर-मरा० ।

पर्य्याय—हलराख्य । तगर । तरवट । शिम्बी फल । सुपुष्प । पीतपुष्प । काञ्चनपुष्पक । नृपमाङ्गल्यक । शरत्पुष्प ।

गुण—आहुल्य, कड़ुवा, शीतल, आँख के लिए हितकारक, पित्त एवं दाहनाशक, मुखरोगनाशक, कोढ़, खुजली, जन्तु (कृमि), शूल और व्रण का नाश करता है । रा० नि० व० ४ ।

(२) हुरहुर । नि० शि० ।

आहू–सं० पुं० [फ़ा०] हिरन । मृग । हरिण ।

आहूरफेन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अफीम । अहिफेन । भैष० शोथ० चि० क्षेत्रपालरस ।

आहूरी–संज्ञा स्त्री० [?] राई । Sinapis ramosa.

आहू-ए-ख़ुतन,-आहूए-मुश्की–[फ़ा०] कस्तूरा मृग । कस्तूरी मृग । हिरन मुश्की । Musk-deer (Moschus-moschiferus.)

आहेय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) विष । साँप ज़हर । मे० । हारा० ।

वि० [सं० त्रि०] अहिसंबंधी । साँप का ।

आह्न–वि० [सं० त्रि०] दिन में होनेवाला ।

आह्निक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक दिन का भोजन । (२) रोज़रोज़ आनेवाला बुख़ार एकातरा ।

वि० [सं० त्रि०] (१) दैनिक । रोज़ाना । (२) दिन में होनेवाला ।

आह्रुत–वि० [सं० त्रि०] आहत । जख़्मी । चोट खाया हुआ ।

आह्रुत-भेषज–वि० [सं० (वै०) त्रि०] आहत् को अच्छा करनेवाला पदार्थ । जो चीज़ जख़्मी को आराम कर देती हो ।

आह्लाद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आनन्द । हर्ष । तुष्टि । प्रसन्नता । खुशी ।

आह्लादक–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आह्लादिका] } हर्ष
आह्लाद-जनक–वि० [सं० त्रि०]

जनक । आनन्ददायक । आनन्दवर्द्धक । आह्लादप्रद । ख़ुशी देनेवाला । तुष्टिकर । मन को प्रसन्न करनेवाला । दे० "हृद्य" ।

आह्लाद-कारक–वि० [सं० त्रि०] प्रसन्नताकर । मनोरम । हृद्य । हृदय को हितकर । (Refrigerant)-दे० "हृद्य" ।

आह्लाददुघ–दे० "आह्लादक" ।

आह्लादन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० आह्लादित] (१) आनन्द संपादन ।

वि० [सं० त्रि०] (१) आनंद प्रद । । आनंद संपादक । खुशी बख्शनेवाला । (२) जिससे आनन्द मिले ।

आह्लादित–वि० [सं० त्रि०] आनन्दित । हर्षयुक्त । हर्षित । प्रसन्न । ख़ुश ।

आह्लादी–वि० [सं० आह्लादिन्] (१) आनन्द युक्त । खुश । मसरूर । (२) आनन्दकारी । खुश रहनेवाला ।

आह्वय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० आह्वा] (१) नाम । संज्ञा । आख्या । इस्म । (२) प्राणिद्यूत ।

आक्ष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बहेड़ा । अक्ष ।

आक्ष-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तेल विशेष ।

गुण—स्वाद (मीठा) ठंडा, बाल को बढ़ाने वाला, भारी, पित्त और वात नाशक है । रा० नि० क्षीरा० व० १५ अ० ।

आक्षपण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपवास । अनाहार । फ़ाक़ाकसी ।

आक्षारणा–संज्ञा स्त्री०[सं० स्त्री०] [वि० आक्षारित] पर पुरुष वा स्त्री के साथ संभोग करने का दोष। स्त्री-पुरुष पर अगम्यागमन का दोषारोप। अम०।

आक्षिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आल। आच्छुक वृक्ष। आचफुलेर-गाछ–बं०। र० मा०। (२) छाग ज्वर। बकरे का बुखार। गज० वै०।

आक्षिक-शीधु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहेड़े और गुड़ से बना धातकी पुष्प का तीक्ष्ण मद्य। एक प्रकार की शराब।

गुण—यह पाण्डु रोग नाशक, बलकारी, संग्राहक, हलका, कसैला तथा मधुर, पित्तनाशक और रक्तप्रसादक है। सु० सू० ४५ अ०।

आक्षिकी(सुरा)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की शराब जो बहेड़े की छाल और शालि चावलों से बनाई जाती है।

गुण—यह पाण्डु, सूजन, अर्श, रक्त, पित्त कफ तथा कुष्ठ को दूर करती किंचित् वातकारक, रूक्ष, दीपन, रेचन तथा हलकी है। म० द० व० ८। नोट—कोई-कोई तिनिश कृत सुरा को भी आक्षिकी कहते हैं।

आक्षीव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सहिंजन का पेड़। शोभाञ्जनवृक्ष। सजिना गाछ–बं०। अ० टी० रा०।

वि० [सं० त्रि०] (१) किसी क़दर मतवाला। अल्पउन्मत्त। (२) खूब मतवाला। सम्यक् उन्मत्त।

आक्षेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आकर्षण। कशिश। तशन्नुज। दे० "आक्षेपक वा तशन्नुज"।

आक्षेप,-आक्षेपक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० आक्षेपी, आक्षिप्त] (१) एक रोग जिसमें रोगी को कँपकँपी होती है। यह वातरोग का एक भेद है। (Spasm, convulsion, cramp, Eclampsia, A kind of nervous disease.) तशन्नुज-अं०।

लक्षण—जब वायु कुपित होकर सब धमनियों में प्रवेश करती है तब वह बारम्बार सञ्चार करके शरीर को बारम्बार चलायमान करके इस प्रकार अविश्रांत हिलाती है जैसे हाथी आदि पर बैठने से झकोरे लगते हैं। बारम्बार आक्षेप करने से इसे "आक्षेपक" रोग कहते हैं। मा० नि० वा० व्या०। (२) फेंकना। गिराना।

आक्षेपक–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० आक्षेपिका] (१) फेंकनेवाला। (२) खींचनेवाला। आकर्षक।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वात रोग जिसमें वायुकुपित होकर धमनियों में प्रवेश कर जाती है और बार-बार शरीर को कँपाया करती है। दे० "आक्षेपक"।

आक्षेपकारक-आक्षेपजनक–वि० [सं० त्रि०] जो आक्षेप पैदा करे। उद्वेष्टनजनक। (Spasmodic)

आक्षेप-नाशक, आक्षेप-शामक, आक्षेप-हर–वि० [सं० त्रि०] (औषधि) जो आक्षेप वा ऐंठन को दूर करे। तशन्नुज का निवारण करनेवाला। उद्वेष्टनहर। दाफ़िआते तशन्नुज (अ०)। एण्टिस्पैज़्मोडिक Antispasmodic (अं०)।

आक्षेपहर औषध यह हैं—

लहसुन, कपूर, भाँग, जुंदबेदस्तर, केशर, दालचीनी, कोकीन–इं० मे० मे०)

आइसो ब्युटिल नाइट्राइट, अर्जेण्टाई ऑक्साइडम्, अर्जेण्टाई नाइट्रास ( ), अफीम (ओपियम्), हाऊबेर का तेल (आलियम् जुनिपराई), सुदाब तैल (आलियम रयुटी), कयपूती का तेल (आलियम केजुपुटाई), पिपरमिंट का तेल (आलियम मेंथी पिप), ईथर, ईथर एसीटिकस, ईथिल आयोडाइडम् ऐट्रोपीनी वेलीरियेनास, हींग, (एसाफीटिडा), एसिड हाइड्रोस्यानिक डायल्यूट, एमाइल नाइट्रिस, एमाइल वेलेरिएनास, उश्शक़ (एमोनाइकम्), अमोनिया (एमोनियाई कार्बोनास), वामक लवण (एण्टिमोनियम् टारटरेटम्), ब्रोमाइड्स, बेलाडोना, पिल्युला एलोज एट एसाफोटिडा, ताम्रकूट (टुबेकम्), रेबेली ट्राईनाइट्राइनी, टेरिबिन्थीना, जिंसाई आक्साइडम्, सफ़ेद तूतिया (जिंसाई सल्फास), जिंसाई वेलीरिएनास, स्पिरिटस एमोनीई एरोमेटिकस, स्पिरिटस एमोनी फ़ीटिडस, धतूरा (ष्ट्रेमोनियम्), सुंबुल (संबल), सोडियाई नाइटरिस, सीरियाई आक्सेलास,

सिमिसिफ्युगा, सेंटोनीन (अफसंतीन का सत), फाइसाष्टिग्मा, फाइसाष्टिग्मेनी सल्फ़ास, फाइसाष्टिग्मेनी सेलीसिलास, क्लोरल हाइड्रास, क्लोरोफॉर्मम्, शूकरान (कोनायम्), लौंग (केरियोफिलम्), केलेंडयुला, कैम्फोरा मॉनोब्रोमेटा, गरंडीलिया, गालबेनम् (बिरोज़ा), लाइकर ईथर नाइट्रिस, लाइकर अमोनिया, लाइकर ट्राइनाइट्राइनी, लोबेलिया (जंगली तमाकू), मास्कस (कस्तूरी), बालछड़ (वेलीरिएना), वेलीरिएनेटस, प्रॉमिनल (Prominal) और यूफार्बिया पिल्युलिफ़ेरा ।

आक्षेपण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] फेंकना । उछालना । प्रेरण ।

आक्षेपी–वि० [सं० त्रि० आक्षेपिन्] वि० दे० "आक्षेपक" ।

आक्षोट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिरिज अक्षोट वृक्ष । पहाड़ी अख़रोट का पेड़ । अख़रोट । आकूराट–बं० । (walnut.) श० र० । दे० "अख़रोट" ।

गुण—यह मधुर, बल्य, स्निग्ध, उष्ण, वात-पित्त-नाशक, रक्त-दोषहर, शीतल और कफ को कुपित करता है । रा० नि० ।

आक्षोड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अक्षोट वृक्ष । अख़रोट का पेड़ । अ० टी० भ० ।

आक्षोदन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आखेट । मृगया । शिकार ।

आत्रेय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अत्रि मुनि के पुत्र । दुर्वासा । दे० "आत्रेय" ।

वि० [सं० त्रि०] अत्रि का । अत्रि संबंधी ।

आज्ञा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आदेश । अनुमति । आज्ञा ।

आज्ञा-चक्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] योग और तंत्र में में माने हुये शरीर के भीतर के चक्रों में से छठवाँ, जो सुषुम्ना नाड़ी के बीचोबीच दो दल के कमल के आकार का माना गया है आर दोनों भौं के बीच में स्थित है । इसे ही सन्त तथा सूफ़ी नुक़्तहे सवेदा कहते हैं । पर्य्या०–त्रिल तिल । षड्दल कमल । शिवनेत्र । शाम सेत । (Cavernous plexus.)

आज्ञा चण्डेश्वर-रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वर में प्रयुक्त एक प्रकार का रसौषध । योग—वच्छनाग १ भा०, शिंगरफ २ भा० इन्हेंलेकर अदरखके रस में घोटकर १ जौ प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे अदरख के रस के साथ खाने से और ऊपर से बकरी का दूध पीने और पथ्य में वात-नाशक आहार और अनारादि खाने से हर प्रकार के ज्वरों का शीघ्र नाश होता है । रस यो० सा० ।

आज्ञा-तन्तु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चालक नाड़ी । चेष्टावहा नाड़ी । आज्ञावहा । गति संबंधी नाड़ी । केन्द्र त्यागी तार । अअ्साब हर्कत, अअ्साब मुहर्रिकः—अ० (Motor-nerve, Efferent nerve] दे० "नाड़ी" ।

आज्ञावहा नाड़ी, आज्ञा संपादिनी नाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरीर की दो प्रकार की नाड़ियों में से वह जो मस्तिष्क की आज्ञा को शरीरावयव वा मांसपेशी तक पहुँचाए । आज्ञा तन्तु ।

आज्ञासिद्ध रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपदंश में प्रयुक्त एक प्रकार का रसौषध । योग—

पारद, गन्धक, जवाखार, रेवतचीनी और शुद्ध मुर्दासंग हरएक समान भाग लेकर जमालगोटे के तेल में घोटकर १ रत्ती प्रमाण गुड़ में बन्द करके खाने से दस्त होते हैं और उपदंश तथा श्वास रोग का नाश होता है ।

आज्ञासिद्ध रसायन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का आयुर्वेदीय रसायन । योग—लोह भस्म, अभ्रक भस्म, पारद और गंधक प्रत्येक समान भाग लेकर साफ़ खरल में घीकुवार के रस में घोटकर एरण्ड के पत्तों से दृढ़तापूर्वक लपेट कर और अच्छी तरह बाँधकर अन्न के ढेर में तीन दिन तक दबा रक्खें । पुनः उसको निकाल कर शहद, त्रिफला और चित्रक का चूर्ण करके रस के बराबर मिला दें । यह कृष्णात्रेय प्रथित आज्ञा सिद्ध रसायन है ।

गुण—यह वृद्धावस्था को दूर करनेवाला और सुखोत्पादक है । इसके सेवन से हर प्रकार के प्रमेह, पाँच प्रकार की खाँसी, बेचैनी, पाण्डु

रोग, हिक्का, व्रण, राजयक्ष्मा, वातरोग, हलीमक, भयंकर शूल, मन्दाग्नि, खुजली, कोढ़, विसर्प विद्रधि और अपस्मार रोग नष्ट होता है। रस० यो० सा० ।

आँक–संज्ञा पुं० [देश०] आक। मदार। (Calotropis gigantea.)

आँकड़ा–संज्ञा पुं० [सं० अङ्क, हिं० आँक+ड़ा (प्रत्य०)] चौपायों की एक बीमारी।

संज्ञा पुं० [सं० आक] मदार (Calotropis gigantea.) ।

आँकड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] लता। बेल। आकर्षणी। (A tendril, cirrhus.)

आँकन–संज्ञा पुं० [अ=नहीं+कण=दाना] ज्वार की बाल की खुड़ी जिसमें से दाना निकाल लिया गया हो। खूआ।

आँकुड़ा–संज्ञा पुं० दे० "अँकुड़ा"।

आँख–संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, पं० अँक्ख] (१) देखने की इंद्रिय। वह इंद्रिय जिससे प्राणियों को रूप अर्थात् वर्ण, विस्तार तथा आकार का ज्ञान होता है।

पर्य्याय—लोचन। नयन। नेत्र। ईक्षण। अक्षि। दृक्। दृष्टि। अंबक। विलोचन। वीक्षण। प्रेक्षण। चक्षु। वि० दे० "नेत्र"। (२) अँखुआ। अंकुर।

मुहा०–आँख आना—आँख में लाली, पीड़ा और सूजन होना।

आँख उठना—आँख आना। आँख में लाली और पीड़ा होना।

आँख कडुआना—अधिक ताकने वा जागने से एक प्रकार की पीड़ा होना।

आँख का जाला—आँख की पुतली पर एक सफ़ेद झिल्ली जिसके कारण धुंध दिखाई देता है।

आँख का ढेला—आँख का बदा। आँख का वह उभड़ा हुआ सफ़ेद भाग जिस पर पुतली रहती है।

आँख का तारा—आँखका तिल। कनीनिका।

आँख का तिल—आँख की पुतली के बीचोबीच छोटा गोल तिलके बराबर काला धब्बा जिसमें सामने की वस्तु का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। यह यथार्थ में एक छेद है जिससे आँख के सबसे पिछले परदे का काला रँग दिखाई पड़ता है। आँख का तारा। कनीनिका।

आँख का परदा—आँख के भीतर की झिल्ली जिससे होकर प्रकाश जाता है।

आँख की पुतली—आँख के भीतर कॉर्निया और लेंस के बीच की रंगीन भूरी झिल्ली का वह भाग जो सफ़ेदी पर की गोल काट से होकर दिखाई पड़ता है, इसी के बीच में वह तिल वा कृष्णतारा दिखलाई पड़ता है जिसमें सामने की वस्तु का प्रतिबिंब झलकता है। इसमें मनुष्य का प्रतिबिंब एक छोटी पुतली के समान दिखाई पड़ता है, इसीसे इसे पुतली कहते हैं।

आँख के आगे अँधेरा छाना—मस्तिष्क पर आघात लगने वा कमज़ोरी से नज़र के सामने थोड़ी देर के लिए कुछ न दिखाई देना। बेहोशी होना। मूर्च्छा आना।

आँखों के आगे चिनगारी छूटना—आँखों का तिलमिलाना। तिलमिली लगना। मस्तिष्क पर आघात पहुँचने से चकाचौंध सी लगना।

आँखों के कोए—आँखों के डेले।

आँखों के डोरे—आँखों के सफ़ेद डेले पर लाल रंग की बहुत बारीक नसें।

आँखों के तारे छूटना—दे० "आँखों के आगे चिनगारी छूटना।"

आँखों को रो बैठना—आँखों को खो देना। अंधे होना।

आँख खटकना—आँख टीसना। आँख किरकिराना।

आँख खुलवाना—आँख बनवाना।

आँख खोलना—आँख बनाना। आँख का जाला वा माँडा निकालना। आँख को दुरुस्त करना।

आँख गड़ना—(१) आँख किरकिराना। आँख दुखना। (२) आँख धसना। आँख बैठना।

आँखें चढ़ना—नशे, नींद वा सिर की पीड़ा से पलकों का तन जाना और नियमित रूप से न गिरना। आँखों का लाल और प्रफुल्लित होना।

आँखें दुखना—आँखों में पीड़ा होना।

आँख पथराना—पलक का नियमित क्रम से न गिरना और पुतली की गति का मारा जाना। नेत्र स्तब्ध होना।

आँखों पर परदा पड़ना—कमज़ोरी से आँखों के सामने अँधेरा छाना।

आँख फूटना—आँख का जाता रहना। आँख की ज्योति का नष्ट होना।

आँख फोड़ना—(१) आँखों को नष्ट करना। आँखों की ज्योति का नाश करना। (२) कोई काम ऐसा करना जिसमें आँख पर जोर पड़े।

आँख बनवाना—आँख का जाला कटवाना। आँख का माड़ा निकलवाना। आँख की चिकित्सा करना।

आँख बिगड़ना—दृष्टि कम होना। नेत्र की ज्योति घटना। आँख में पानी उतरना वा जाला इत्यादि पड़ना। (२) आँख उलटना। आँख पथराना।

आँख बैठना—(१) आँख का भीतर की ओर धँस जाना। चोट वा रोग से आँख का डेला गड़ जाना। (२) आँख फूटना।

आँख में चोब आना—चोट आदि लगने से आँख में ललाई आना।

संज्ञा पुं० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, पं० अँक्ख] (१) आँख के आकार का छेद वा चिह्न, जैसे–(१) आलू के ऊपर के नखक्षत के समान दाग। (२) ईख की गाँठ पर की ठोंठी -जिसमें से पत्तियाँ निकलती हैं। (३) अनन्नास के ऊपर के चिह्न वा छेद। (४) सूई का छेद।

आँख अंजनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख+अंजनी] अंजनहारी। गुहाई। A stye on the eye-lids

आँखफोड़-टिड्डा–संज्ञा पुं० [सं० आक=मदार+हिं० फोड़ना] (१) हरे रँग का एक कीड़ा वा फतिंगा जो प्रायः मदार के पौधे पर रहता है और उसकी पत्तियाँ खाता है। होता तो है यह उँगली ही के बराबर, पर इसकी मूँछें बड़ी लम्बी होती हैं। दे० "आक"।

आँख फोड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० आँख+फोड़ना] कीट विशेष। (A midge that flies into the eyes at night.)।

आँग–संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] (१) अंग। (२) कुच। स्तन।

आँगिक–वि० [सं० आङ्गिक] अंग संबंधी। अंगका।

आँगुर–संज्ञा पुं० दे० "अंगुल"।

आँगुरी–संज्ञा स्त्री० [सं०अंगुली] उँगली। अँगुली।

आँगुल–संज्ञा पुं० दे० "अंगुल"।

आँच–संज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि=आग की लपट, पा० अच्चि] (१) गरमी। ताप। (२) आग की लपट। लौ। (३) आग। अग्नि। (४) ताव। (५) तेज। प्रताप। (६) आघात। चोट। (७) हानि। अहित। अनिष्ट। (८) कामताप।

आँचू–संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीली झाड़ी जिसमें शरीफे के आकार के छोटे-छोटे फल लगते हैं। इन फलों में मीठे रस से भरे दाने रहते हैं। काला हिसालू। दे० "अक्षू"।

आंछन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लम्बा करने की क्रिया। वा० शा० २ अ०।

आँज–संज्ञा पुं० [?] गुग्गुल। गूगुल। (Burseraceœ)।

आँजन–संज्ञा पुं० [सं० अञ्जन] अंजन। काजल। सुरमा। आँख में लगानेकी औषध। (A collyrium.)

आँजनपिटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आँख में होनेवाली एक प्रकार की फुन्सी। लक्षण–रक्त के कारण से वर्त्म के बीच में वा किनारे की तरफ खुजली, दाह और वेदनायुक्त, कठोर मूँग के बराबर ताँबे के से रँग की फुन्सियाँ होती हैं, इसे ही "आँजनपिटिका" कहते हैं। वा० उ० ८ अ०।

आँजना–क्रि० स० [सं० अंजन] अंजन लगाना। आँजन देना। चक्षु में औषध लगाना।

आँझू–संज्ञा पुं० [?] आँसू। अश्रु। (A tear.)

आँट–संज्ञा पुं० [हिं० अंटी] (१) हथेली में तर्जनी और अँगूठे के बीच का स्थान। (२) गिरह। गाँठ।

आँठी–संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टि, प्रा० अट्ठि] (१) दही, मलाई आदि वस्तुओं का लच्छा । Coagulation. (२) गिरह । गाँठ । (३) गुठली । बीज । (Stone of fruit.) । (४) नवोढ़ा के उठते हुए स्तन ।

आँड़–संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] अंडकोष । वृषण । आँडी । (A testicle.)

आँड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ड] (१) अंटी । गाँठ । कंद । (२) अंड ।

आँत–संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] अँतड़ी । दे० "अन्त्र" । (Intestine.)

मुहा०—आँत आना या आँत उतरना=एक रोग जिसमें आँत ढीली होकर नाभि के नीचे उतर आती है और अण्डकोष में पीड़ा उत्पन्न होती है । अन्त्रवृद्धि ।

आँतकट्टू–संज्ञा पुं० [हिं० आँत+कटना] चौपायों का एक रोग जिसमें उन्हें दस्त होता है ।

आँध–संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध] (१) अँधेरा । धुन्ध । (२) रतौंधी ।

आँब–संज्ञा पुं० दे० "आम" ।

आँबा हलदी-संज्ञा स्त्री० दे० आमा हलदी" ।

आँव–संज्ञा पुं० [सं० आम=कच्चा] एक प्रकार का चिकना, सफ़ेद लसदार मल जो अन्न न पचने से उत्पन्न होता है ।

आँवरा–संज्ञा पुं० [सं० आमला] आँवला । धात्रीफल ।

आँवल–संज्ञा पुं० [सं० उल्वलम्=जरायु । अथवा अम्बर=आच्छादन] झिल्ली जिसमें बच्चे लिपटे रहते हैं । यह झिल्ली प्रायः बच्चा होने के पहले गिर जाती है । खेंड़ी । अँवरा । जेरी । साम । अमरा । अपरा ।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक भारतीय विशाल वृक्ष है । जब यह फूलता है तब अत्यन्त सुहावना जान पड़ता है । इसके फूल अमलतास के फूल की तरह पीले रंग के होते हैं । यह दो प्रकार का होता है । इसके दूसरे भेद को "मेंहदी आँवल" कहते हैं । प्रकृति—सर्द व तर, (किसी-किसी के मत से रूक्ष)। गुण,कर्म, प्रयोग—यह कोढ़, वमन, अतिसार तथा वात, पित्त एवं कफ को नष्ट करता है । दमा तथा वक्षः-शूल का लाभ पहुँचाता, नेत्र को दृष्टि-शक्ति प्रदान करता और रक्तोष्मा को लाभप्रद है । मेधा को शक्ति देता, रक्त की वृद्धि करता तथा रतूबतों को बढ़ाता है । कहते हैं कि मांसार्बुद (सर्तान) पर इसकी पत्ती का प्रलेप परीक्षित है । (२) सीस्बान् । मु० अ० । (३) गुलेकुन्द । ता० श० ।

आँवल कुन्दुर-संज्ञा पुं० [देश०] गोंद-सलई ।

आँवलगट्टा–संज्ञा पुं० [हिं० आँवला+हिं० गट्टा वा गाँठ] आँवले का सूखा हुआ फल । आँवले का डाल में सूखा हुआ फल । दे० "आँवला" ।

आँवल तरवर–संज्ञा पुं० [हिं०आँवला+देश० तरवड़] एक बूटी । उशरक़ ।

आँवलनाल–संज्ञा स्त्री० नाल । नाभिनाल । नार । हब्लुस्सुर्रह्–अ० । (Umbilical cord.)

आँवला–संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलओ] आमला, अँवरा, अणोरा, आँवरा, अँवला, अम्लीका, अमला । आँवुलह्–द० । तिष्यफला, अमृता, वयस्था, वयःस्था, कायस्था (अ०), अकरा (श०), बहुफली (मे०), श्रीफली, धात्रिका, शिवा, शान्ता, धात्री, अमृतफला, वृष्या, वृत्तफला, रोचनी (रा०), पञ्चरसा (शब्दमा०), कर्षफला, तिष्या (र०), आमलका, आमलकी, आमलक, तृष्यफला, वयस्था (भरणी), आमलक, वृष्य, जातीफल, रस, शिव, धात्रीफल, श्रीफल, अमृतफल (धन्व० नि०), आमकी, वयस्था, श्रीफला, धात्रिका, अमृता, शिवा, शान्ता, शीता, अमृतफला, जाती- फला, धात्रेयी, धात्रीफला, वृष्या, वृत्तफला, रोचनी (रा० नि० ११ व०)–सं० । आङ्ला, आम्ला–गाछ, आम्ला, अम्बोलटा, आमुलटी, आमलकी (-क)–बं० । अ(आ)म्लज–अ० । आम्लः-फ़ा०। आम्हा–सिरि० । क़लूबा, कलूबा मेख़–रू० । सनायज़–मिश्र० । फाइलेन्थस एम्ब्लिका Phyllanthus emblica, *Linn.* एम्ब्लिका आफ़िशिनेलिस Emblica Officinalis, *Goertn.* (*Fruits of*-Emblic myrobalans)–ले० । एम्ब्लिक माइरोबेलन

Emblic Myrobalan, इण्डियन गूज़ बेरी Indian goose berry-इं० । फाइलेन्थी एम्ब्रेलिक Phyllanthe Emblic, एम्ब्लिक ऑफ़िशनल Emblic Officinal-फ्रां०। Gebrauchlicher Amlabaum-जर० । नेल्लिकाय्, तोप्पि (स० फा० इं०), मारम (लु० क०), नेल्लि (इं० मे० प्रां०) नेल्लिपेरिच्चन काय (मेमो०)-ता० । नेल्लिकाय, उसिरिके-काय़, आमलकमु (स० फा० इं०), नेल्लि (इं० मे० मे०), कजूरूकाय (मेमो०)-ते०, तै० । तिनेच्चन-काय (मेमो०), आमलकम्, नेल्लिकाय (स० फा० इं०)-मल०। नेल्लि-कायि (स० फा० इं०), खजूर (मेमो०) -कना० । अवला (स० फा० इं०), अवलकाठी (फा० इं० ३ भ०)-मरा० । आम्बल (स० फा० इं०), कारैक (मेमो०)-गु० । नेल्लि, नेल्लिक-सिं० । ज़ीफियु-सी (स० फा० इं०), सब्जू-बर० । अमलुकी-आसा० । अंड़ा-उत्० । अम्बाड़ी-गारो० । अँवला-काश० । अम्ब्लो, अम्बुल-पं० ।

अँवरी- काष्ठधात्री (भा० पू० १ भ०), क्षुद्रामलक, क्षुद्रजातीफल (धन्व० नि०), कर्कट, कार्कट, क्षुद्रधात्री, क्षुद्रामलक, कर्क, कर्कफल (रा० नि० व० ११), काष्ठामलकी-(सं०) । काठ आमला, छोटा आमला, अँवरी-(हिं०) ।

एरण्ड वा थूहर वर्ग

(*N. O. Euphorbiaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—भारतवर्ष के उष्णप्रधान प्रदेश, हिमालय की तराई से, जम्बू से पूरब की ओर तथा दक्षिण की ओर लंका तक, विशेषतः संयुक्त प्रांत, काश्मीर और बंग-देश में आँवले के पेड़ लगाए जाते हैं वा जंगली होते हैं।

जंगली आँवलों में भी किसी के फल छोटे और किसी के बड़े होते हैं। जो आँवले बाग़ में लगाए जाते हैं, उनमें भी बीजू के फल छोटे होते हैं। परन्तु जो कलम द्वारा लगाये जाते हैं उनके फल बहुत बड़े होते हैं। ये कलमी कहलाते हैं। इनको शाह आमलः और अम्लुज-मलूक भी कहते हैं। हिन्दी में इनको राय आमला बोलते हैं।

आँवला काशी का प्रसिद्ध है। यहाँ के क़लम द्वारा उत्पन्न आँवले अमरूत के आकार के रेशारहित एवं अत्यन्त गुदार होते हैं और गुठली अत्यन्त छोटी होती है। वे आँवले जो बीज द्वारा लगाये जाते हैं वा स्वयं जंगली उत्पन्न होते हैं, उनमें से किसी-किसी के फल अत्यन्त छोटे रेशेदार होते हैं। इनमें बड़ी गुठली होती है और गूदा बहुत कम होता है। इसे ही वैद्यकीय निघंटुओं में 'काष्टधात्री', 'क्षुद्रामलक' व 'कर्कट' आदि नामों से अभिहित किया गया है। साधारण बोल-चाल में इसे काठआमला वा अँवरी कहते हैं। इनके अतिरिक्त वैद्यक में आँवले के अधोलिखित भेद और पाये जाते हैं।

(१) तामलकी, भूम्यामलकी, भूधात्री—(सं०)। भुइँ आँवला। (Phyllanthus niruri, *Linn.*) । (क)-लाल भुइँ आँवला। (Phyllanthus urinaria. *Linn.*)

(२) प्राचीनामलक, पानीयामलक-(सं०)। पानी आँवला। (Flacourtia cataphracta, *Roxb.*)

इनका विस्तृत विवेचन यथा स्थान दिया जायगा। यहाँ पर केवल आँवले (बीजू कलमी अर्थात् बागी और जंगली) का वर्णन किया जाता है।

वानस्पतिक वर्णन—एक बड़ा शाखी वृक्ष जिसकी पत्तियाँ इमली की तरह महीन-महीन होती हैं। इसकी लकड़ी कुछ सफ़ेदी लिए होती है और उसके ऊपर का छिलका प्रतिवर्ष उतरा करता है। इसकी डालियों पर बहुत छोटे-छोटे राई के दाने से पीले-पीले फूल होते हैं। फूल पतझड़ के बाद ही चैत वैषाख के महीने में लग जाते हैं और भादों में इसमें सरसई बैठती है। कार्तिक से माघ वा फाल्गुन तक इसका फल रहता है जो गोल काग़ज़ी नीबू के बराबर मसृण गुदार एवं ख़रबूज़ेकी तरह एक पतली रेखा से छः बराबर भागों में विभक्त पीताभ हरिद्वर्ण का होता है। इसके ऊपर का छिलका इतना पतला होता है कि उसकी नसें दिखाई देती हैं। इसके भीतर एक कठोर गुठली होती है, जिसमें ६ उभरी हुई फाँकें स्पष्ट दिखाई देती हैं। इसमें ३ कोष होते हैं और इसके हर एक कोषमें दो त्रिकोणा-

कार बीज होते हैं। पुष्ट आँवले का रंग गंधकी होता है। यह स्वाद में कषैलापन लिये हुये खट्टा होता है; परंतु पीछे से इसमें मधुर स्वाद आता है।

सूखा आमला जंगली बेर के बराबर वा उससे कुछ बड़ा, कुछ-कुछ षट्कोण झुर्रीदार, धूसर-कृष्ण वर्ण (अपक्वावस्था में संगृहीत किया हुआ), परन्तु पक जाने पर एकत्रित किया हुआ पीताभ धूसर होता है और यह दबाव पड़ने पर ६ भागों में विभक्त हो जाता है, जिनमें से हरएक में गूदे एवं गुठली का एक अंश लगा होता है और उसमें एक तिकोना। भूरे रंग का बीज होता है।

इसका वृक्ष प्रायः कंकरीली पथरीली भूमि में होता है।

इतिहास—आँवले का मूल उत्पत्ति-स्थान भारतवर्ष ही है। आज भी बहुत स्थानों में यह जंगली होता है। इसी कारण भारतवासी इसे अति प्राचीन काल से जानते और औषधादि में इसका उपयोग करते आ रहे हैं। आयुर्वेद-शास्त्र की यह एक प्रसिद्ध दृष्टफल औषधि है। यही कारण है कि आँवले को आर्य-वैद्यक में बहुत ऊँचा स्थान मिला है। आयुर्वेद का कोई प्रकरण ऐसा नहीं जिसमें आँवले का प्रयोग न हुआ हो। जिस प्रकार काष्ठादिक चूर्ण गुटिकाओं में आँवलेका प्रयोग देखाजाता है, उसी प्रकार इसका व्यवहार रसौषधों में भी हुआ दिखाई देता है। इतना ही नहीं, इसे धर्म क्षेत्र में भी वही सम्मान प्राप्त है, जो वैद्यक में और इसी कारण वर्ष भर में एक दिन लोग इसके वृक्ष के नीचे रहना एवं भोजनादि करना मंगलदायक मानते हैं। पुराणों में इसके वृक्ष की उत्पत्ति के विषय में एक मनोरंजक आख्यायिका है।

किसी पुण्य दिन को भगवती एवं लक्ष्मी प्रभासतीर्थ को गई थीं। भगवती ने लक्ष्मी से कहा,—"देवि! आज हम स्वकल्पित किसी नूतन द्रव्य से हरि का पूजन करना चाहती हैं।" लक्ष्मी भी उत्तर में बोल उठीं, "शिव को भी किसी नूतन द्रव्य से पूजने की हमारी इच्छा है।" फिर दोनों के चक्षु से अमल अश्रु-जल भूमि पर गिरा। इसी से माघ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि को आमलकी वृक्ष उत्पन्न हुआ। देवता एवं ऋषि इस वृक्षको देख फूले न समाये। यह तुलसी और बिल्व वृक्ष के समान है। पत्र से शिव और विष्णु दोनों की पूजा होती है। पुराणों में आमलकी वृक्ष को नमस्कार करने का मंत्र इस प्रकार आया है।

"नमाम्यामलकीं देवीं पत्रमालाद्यलङ्कृताम्।
शिवविष्णुप्रियां दिव्यां श्रीमतीं सुन्दरप्रभाम्॥"
(बृहद्धर्मपुराण)

उपर्युक्त विषय के उल्लेख से हमारा अभिप्राय यह नहीं कि, उक्त आख्यायिका सत्य ही है। परन्तु इससे हमारा अभिप्राय इसकी उपादेयता दिखलानी है। कोई वस्तु इतना सम्मान तथा आदर तभी प्राप्त कर सकती है, जब कि उसमें कोई विशिष्ट गुण निहित हो। अस्तु, यही बात आमलकी के विषय में ठीक उतरती है। अतएव चरक सुश्रुतादि आयुर्वेदीय संहिताओं के रसायन एवं अन्य प्रकरणों में इसका बार-बार उल्लेख हुआ है।

मुसलमानी हकीम भी आर्य वैद्यकीय ग्रंथों के समान ही इसके गुणोंका स्तवन करते हैं। यूनानी ग्रंथ भी इसके बहुल प्रयोगों से भरे पड़े हैं। वस्तुतः इसका आमलज (अ०) तथा आमलः (फा०) संस्कृत आमलक से व्युत्पन्न है।

डॉक्टर ऐन्सली ने इसके फूल के प्रयोग का उल्लेख किया है। डॉक्टर ई० रॉस फॉर्माकोपिया ऑफ इंडिया में इसकी जड़ के प्रयोग का उल्लेख करते हैं। डॉक्टरी दवा में इसका व्यवहार नहीं होता।

प्रयोगांश—आँवले का ताज़ा फल (त्वक्), आँवले का सूखा फल (आँवलगट्टा), पत्र, पुष्प और छाल, जड़ और गुठली वा बीज।

रासायनिक संघटन—मायिकाम्ल (Gallic acid), कषायाम्ल (Tannic acid), निर्यास, शर्करा, एल्ब्युमेन काष्ठोज (Cellulose) और खनिज पदार्थ।

प्रभाव—ताज़ा फल- शैत्यकारक [(Refrigerant) मूत्रकारक और मृदुरेचक; शुष्क

फल–कसैला, फूल–शीतल और विबंधहर (Aperient) और छाल कसैली है।

औषध-निर्म्माण—पत्र एवं बीज का क्वाथ वा फांट, मदिरा (Liquor), स्थिर वा अस्थिर तैल, पाक, चूर्ण, अवलेह, कल्क और मुरब्बा। इसकी जड़ वा छाल से क्वाथ एवं वाष्पीकरण क्रिया द्वारा एक प्रकार खदिरसारवत् संकोचक सत्व प्रस्तुत किया जाता है। वैद्यक में आमला निम्न योगों में पड़ता है—त्रिफला, आमलक रसायन, आमलक घृत, आमलक चूर्ण, आमलकावलेह, आमलकायस (ब्राह्म) रसायन, आमलकाद्यवलेह, आमलकी रसायन, आमलक्यवलेह, आमलक्यादि कषाय, आमलक्यादि गुटिका, आमलक्यादि घृत, आमलकायस, आमलकादि चूर्ण, त्रिफला रसायन, लोहादि रसायन, इन्द्रोक्त रसायन, धात्र्यरिष्ट, आमलाद्यलौह, धात्री लेह, धात्री लौह. धात्री षट्पलक घृत, धात्री चूर्ण, खण्डामलकी (आमलकी खंड), आमलक खण्ड, आमलक्यादि खण्ड, आमलक्यादि, कल्याण गुड़, कल्याणावलेह, आमलक्यादि गण, आमलक्यादि चूर्ण और आमलक्यादि पाक इत्यादि।

यूनानी में यह इत्रीफल, जवारिश, मुरब्बा और रोग़न प्रभृति में पड़ता है। उनमें से कुछ ये हैं—

अनोशदारू सादा (क़राबादीन शिफ़ाई) अनोशदारू लूलुवी, जवारिश आमला, जवारिश आमला लूलुवी, जवारिश आमला लूलुवी तुर्श, जवारिश लूलुवी सादा, रोग़न आमला प्रभृति और प्रायः सभी प्रकार के यूनानी इत्रीफल।

स्वनिर्म्मित आमलक-तैल

योग तथा निर्माण विधि—पाकार्थ–आमले का स्वरस ऽ४, शैवाल स्वरस ऽ४, भाँगरे का स्वरस ऽ४, शुद्ध तिल तैल ऽ३ तीन सेर।

कल्कार्थ–बालछड़ १ तो०, छोटी इलायची १ तो०, बुरादा चन्दन सफ़ेद १० तो०, खस १० तोला, कपूरकचरी १ तो०, लौंग १ तो०, दालचीनी १ तो०, तेजपत्ता १ तो०, जटामांसी १ तो०, गुलाब का फूल १० तो०।

क्वाथार्थ—नागरमोथा २ तो०, मुलेठी २ तो० कमल का फूल २ तो०, गिलोय २ तो०, मजीठ, २ तोला, हल्दी २ तो०, केवड़े की जड़ २ तो०, और त्रिफला २ तो०।

इनका यथा विधि तैल पकाकर छान लें। फिर बेंजोल डालकर तेल को रात-दिन यूँही पड़ा रहने दें। पुनः उसमें रूह गुलाब ६ माशा, रूह केवड़ा ६ मा०, रूह हिना ६ मा०, रूहमोतिया ६ मा०, इत्र मौलसिरी ६ मा०, सतपुदीना १ तो०, कपूर १ तो०, रूह संदल ६ माशा, रूह खस १ तो०, रूह मदन मस्त (कटहली चंपा) १ तो० भली भाँति मिला कर बोतल में डाट लगाकर रख दें।

गुण—इसके सिर में लगाने से बाल अत्यंत मुलायम हो जाते हैं और एक दिन के लगाने से इसकी भीनी भीनी मनोमोहक सुगंधि सप्ताहों बनी रहती है। इसके सदा लगाते रहने से बाल बढ़ते हैं और कभी सफ़ेद नहीं होते और यह हर प्रकार के शिरोशूल, बालख़ोरा, मूर्च्छा, शिर में चक्कर आना आदि सभी प्रकार के मस्तिष्क की कमज़ोरी से होनेवाले रोगों की एक ही अनुपमेय औषध है।

आँवले का गुण-धर्म तथा प्रभाव

आयुर्वेदीय मतानुसार—

आमलक कसैला, कडुआ, चरपरा, मधुर उष्ण और शीतल है तथा सर, त्रिदोष-नाशक, वृष्य, ज्वर नाशक और रसायन है। अपने अम्लत्व गुण से यह वातका नाश करता है, मधुर एवं शीत गुण से पित्त का और रूक्ष, कषाय गुण से कफ का नाश करता है। इस प्रकार धात्रीफल तीनों दोषों का नाश करनेवाला है। (धन्वन्तरीय निघंटु)

आमलक कसैला, खट्टा, मधुर, शीतल तथा हलका है और दाह, पित्त, क़ै, प्रमेह नाशक तथा शोथघ्न एवं रसायन है। अन्यच्च—आलमकी फल, मधुर, कसैला, चरपरा, किंचिदम्ल, कफनाशक, रुचिकर तथा अत्यंत शीतल है और रक्त-पित्त, ताप (ऊष्मा), श्रम, वमन, विबन्ध, आध्मान एवं विष्टम्भ दोष नाशक और अमृत के समान गुणकारी है। (रा० नि० ११ व०)

इसके रस, गुण, वीर्य और विपाकादि सब हड़ के समान जानना चाहिए। इतना विशेष है

कि यह रक्त-पित्त और प्रमेह को नष्ट करता है तथा परम् वृष्य एवं रसायन है। इसमें खट्टा रस रहने के कारण यह वात को नष्ट करता है। मधुर एवं शीतल गुण द्वारा पित्त को, रूखे और कसैले गुण से कफ को नष्ट करता है। इस प्रकार आँवला त्रिदोषनाशक है। वहीं यह एक अत्यंत उपयोगी बात लिखी है कि जिस जिस वृक्षादि के फल में जैसा जैसा वीर्य है, वैसा ही उसकी गुठली में जानना चाहिए। भा० पू० १ भ०। मद० व० १।

सूखा आँवला (आँवलगट्टा) कडुआ, खट्टा और पाक में चरपरा, कसैला एवं मीठा है तथा बालों के लिए हितकारक (केश्य) और टूटी हुई हड्डी को जोड़नेवाला है। आँवले के पेड़ की मज्जा कसेली, मधुर तथा वामक है और वातपित्त नाशक है। अन्य गुण फल के समान हैं। वै० निघ०।

भोजन की आदि, मध्य एवं अन्त में आमलकी फल का सेवन अत्यन्त दोष हरणकर्त्ता है। राज०।

आमलक खट्टा और मृदु है तथा शीतवीर्यता के कारण पित्त शमन करता है। सु० सू० ४५ अ०।

जो-जो गुण-कर्म्म हरीतकी के कहे हैं वे ही आमलकी के भी हैं, पर इसका वीर्य्य उससे उलटा होता है। अर्थात् आमलकी शीतवीर्य्या और हरीतकी उष्णवीर्य्या है। च० चि० १ अ०।

लवण को छोड़ शेष अन्य सभी रस आँवले में वर्तमान होते है। यह स्वेद आना, मेदवृद्धि, कफ, उत्क्लेद, एवं पित्त रोग का विनाश करता है। च० सू० अ० २७।

जो-जो गुण हरड़ में कहे गए हैं, वे ही आँवले में भी हैं, केवल अंतर इतना है कि हरड़ उष्ण है, यह ठंढा है तथा इसका रस खट्टा तथा पित्त और कफ का नाश करनेवाला है। वा० सू० ६ अ०। कहा है—

“आमलकं मधुराल्पकरंच दृष्टिकरंबहुशुक्रकरंच।
शीतकरं सुपवित्रकरं चच्छर्दिहरं व्रणमेहहरंच॥
शोपहरं बहुदोषहरं च मेहसमूत्रहरं च वरं च।
केशकरंसुखरोगहरंचजीवितदीर्घकरं च वरं च॥”

काष्ठधात्री—काठ आँवला स्वादु, कसैला, चरपरा (कटुक) तथा शीतल है और रक्तपित के दोष दूर करता है। (धन्वन्तरीय निघंटु)

कर्कट—कार्कट फल (छोटा आँवला, आँवरी) रुचिकारक, कसैला, परम दीपन तथा कफपित्त नाशक, हलका, ग्राही, आँखों को हितकारी (चक्षुष्य) और शीतल है। रा० नि० व० ११।

यूनानीमतानुसार गुणदोष—

प्रकृति—१ कक्षा में शीतल और २ कक्षा में रूक्ष है अथवा २ कक्षा में शीतल और ३ कक्षा के आरम्भ में रूक्ष कोई-कोई २ कक्षा में रूक्ष लिखते हैं। निष्कर्ष यह कि यह थोड़ी सी ठंडक रखता है एवं रूक्ष है (नफ़ीसी के अनुसार यह रूक्षता दूसरे दरजे में होती है)। यही शीर पर्वर्दः कमतर ख़ुश्क होता है। शीरआमला प्रथम कक्षा में शीतल और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है।

नोट—माजूनों में शीर पर्वर्दः व्यवहार में आता है। शीरपर्वर्दः वह है जो संग्राही गुण के निवृत्त्यर्थ दो-तीन बार दूध में भिगो-भिगोकर सुखा लिया गया हो। शीरआँवला की विधि—आँवलों को अहर्निशि दूध में तर रखकर पानी में धोएँ, फिर पानी में इतना पकाएँ, कि खिलजाय। इसके उपरांत मलकर तारों की चलनी में छान लें। जो चीज छनकर नीचे गिरती है, वही शीर आमला है और सीठी ऊपर रह जाती है। कोई कोई ऐसा करते हैं कि ताज़े या सूखे आँवलों को दूध में इतना उबालते हैं, जिसमें वह गल जाय और उनका कषाय एवं विकसापन जाता रहे। कोई-कोई दही में भिगोकर और मल-छानकर तैयार कर लेते हैं। शीर आमलज शीरआमलः का मुअर्रिब है।

हानिकर्त्ता—प्लीहा को और कोलंज (उदरशूल) पैदा करता है।

दर्पघ्न—शहद और रोग़न बादाम शीरीं।

प्रतिनिधि—आधी मात्रा में काबुली हड़ वा आमले का रस वा भुना हुआ हलेला स्याह समान भाग।

मात्रा—(पूर्ण वयस्क) १०॥ मा० ।क्वाथ में ३ तो० तक । (सामान्य) ३ मा० से ६ मा० तक ।

विशेष कर्म--आमाशय, मस्तिष्क एवं हृदय को प्रसन्न रखता एवं बलप्रदान करता है और यह पित्तशामक, अम्ल, शीतल, शोधक, सारक, केश्य तथा चक्षुष्य है।

गुण,कर्म,प्रयोग—आँवला रक्तोष्मा शामक है। अस्तु, यह हृत्स्थित रक्तको शुद्ध करता है। गरमी का तअदील (प्रकृतिस्थ)करने और क़ब्ज़ करने के कारण यह हृदय को शक्तिप्रदान करता है। यह मस्तिष्कसे उन रतूबात(द्रवों)को जो बुद्धिको मलिन कर सकती हैं,अभिशोषितकर लेता है।

नफ़ीसी के अनुसार आँवला दूसरे दर्जे में रूक्ष और किंचित् शीतल है। यह रक्तोष्मा को शमन करता है। इसलिये हृत्स्थित रक्त को शुद्ध करता है। रक्तको प्रकृतिस्थकरता एवं संग्राही होनेके कारण हृदय को शक्ति प्रदान करता है। बुद्धि को तीव्र करता है, क्योंकि यह बुद्धि को कुंठित वा अपवित्र करनेवाली रतूबतों का शोषण करता है। जब कि यह हृदय के रक्त को शुद्ध करता है तो उस रक्त से जैवी रूह (रूह हैवानी) भी उत्तम ही पैदा होगा और उससे मानसिक रूह (रूह नफ़सानी) श्रेष्ठ होना भी अनिवार्य है, जिससे बुद्धि की तीव्रता भी एक आवश्यकीय बात है।। इसके अतिरिक्त चूँकि आँवला अपनी संग्राहिणी शक्ति के कारण मस्तिष्क की ओर वाष्पारोहण को रोकता है। अतएव यह बुद्धि की तीक्ष्णता का कारण होता है। बालों की जड़ों को निर्बल एवं शिथिल कर देनेवाली रतूबतों को नष्ट करनेके कारण यह बालों को शक्ति प्रदान करता अर्थात् केश्य है और रूक्षता एवं संकोच पैदा करके उनकोमज़बूत करता है । मानसिक रूह (रूह नफ़सानी)और वातमंडलको शक्तिप्रदान करने केकारण यह आँखको बलप्रदान करता है। नाड़ियों (अअ़्साब) को शिथिल करनेवाली रतूबतों का निवारण करने के कारण यह नाड़ि-धातु को अत्यन्त लाभकारी है। कषायपन के कारण यह आमाशयिक अवयवों को संकुचित करता है। अतएव यह भूख लगाता और आमाशय को बलप्रदान करता है। नाड़ियों (अअ़्साब) की आर्द्रता को दूर करने के कारण यह कामोद्दीपन करता है। इसी कारण यह गुदा को बलप्रदान करता है और अर्श में उपकारी है। क्योंकि गुदा को शक्ति प्रदान करने के कारण यह इस ओर माद्दे का बहाव नहीं होने देता। (नफ़ीसी) नाड़ियों (अअ़्साब) के लिये बहुत उपयोगी है। क्योंकि उनसे यह उन रतूबतों का अपहरण करता है जो उनको शिथिल बना देती हैं। यह भूख लगाता और आमाशय को बलवान बनाता है। क्योंकि अपने कषायपन के कारण यह आमाशय के अवयवों को समेटता है। कामोद्दीपन करता। क्योंकि यह (नाड़ियों की तरी) दूर करता है। इसी कारण यह गुदाको भी शक्तिप्रदान करता है और बवासीर के लिए लाभदायक है, क्योंकि वायु को बल प्रदान करने के कारण इस ओर माद्दे की रेज़िश नहीं होने देता। (तर्जुमा नफ़ीसी)।

शेख़ और गीलानी—शैत्य गुण के कारण आँवला रक्तोष्मा तथा पित्त की तेज़ी को कम करता है। रौक्ष्यके सहित लतीफ़ (सूक्ष्म)है; अस्तु रक्त शुद्ध करता एवं खून बदलताहै और दोष-प्रकोप सड़ाँध तथा वायु प्रकोप, शरीर से तदोत्सर्ग एवं उसको ऊर्ध्वारोहण से रोकता है, और उसे रूह के साथ संप्रक्त करता है। अत्यंत संग्राही होने से अवयवों विशेषतः उन अंगों को जिनमें प्रभूत परिमाण में रतूबत हों, जैसे आमाशय नेत्र और गर्भाशय, शक्ति प्रदान करता है। इसके सदृश और ऐसे अवयव जिनमें निर्मल-कारिता (जिला), विलायकता (तहलील) और द्रावकता (तलतीफ़) गुण हैं। चूँकि मस्तिष्क अत्यंत आर्द्र स्वभाव है। अस्तु, आँवला उसके लिये अत्यंत बलप्रदायक होगा। क्योंकि यह मस्तिष्क की ओर वाष्पारोहणको रोकता है। इसलिये मस्तिष्क के लिये बहुत उपयोगी होगा और इसी से यह बुद्धि को अत्यंत तीव्र करता है एवं चिंता वा फ़िक्र को भी दूर रखता है। यह मसूढ़ों को दृढ़ करता एवं उन्हें बल प्रदान करता हैं। जब

शैथिल्यकारक जलीय रतूबत की बाहुल्यता के कारण ज़बान भद्दी हो जाती है, तब उस पर यह रौच्यजनक (मुजफ़्फ़िक़) प्रभाव करता है। सारांश यह कि आँवला समग्र अवयवों को वल्य है। (मुहीत आज़म)।

औरों ने लिखा है कि यह संग्राही है और मेदे तथा आंत्र में मवाद गिरने का अवरोधक, दोषों (अख़्लात) का रक्षक और शरीरसे सौदा का उत्सर्ग कर्त्ता तथा रूह के साथ सौदा (वात), सौदावी, एवं प्रदग्ध पैत्तिक वाष्पों के मिलने से रोकनेवाला है। इसलिये मेधा, बुद्धि की तीव्रता, समग्र इन्द्रिय-ज्ञान एवं चिंता शोधन का कारण है और दूषित वाष्पारोहण का रुद्धक, विस्मृति के लिये उपयोगी, कायरता वा भयको दूर करनेवाला, हृदय को ताकत देनेवाला एवं उल्लासकारक (हृद्य) है।

आमाशय और आंत्र की निर्बलता, हृदय तथा मस्तिष्क की निर्बलता में प्रयोजित होता है। प्रायः इत्रीफ़लात् और खिजाबों का श्रेष्ठतम उपादान है।

आँवले के वाह्य आंतरिक प्रयोग

चरक-(१) विसर्प ज्वर में आमलक—विसर्प ज्वर में गाय का घी मिला हुआ आँवले का रस पान करें। यदि रोगी को कोष्ठवद्ध हो, तो निशोथ की जड़ सम्मिलित कर प्रयोजित करें। यथा—

"रसमामलकानाम्वा घृतमिश्रं प्रदापयेत्।
सएव गुरुकोष्ठाय त्रिवृन्मूल युतो हितः" ॥
(चि० ११ अ०)

(२) हिक्का में आमलक—आँवला और कैथ का रस, पीपल के चूर्ण और शहत के साथ हिक्का रोगी को सेवन कराएँ। यथा—

"पिप्पली मधुयुक्तौ वा रसौ धात्री कपित्थयोः"।
(चि० १२ अ०)

(३) श्वेत प्रदर में आमलकी बीज और आमलकी—श्वेत प्रदर में पके आँवले का बीज भली प्रकार पीसकर चीनी और शहद के साथ अथवा आँवले का चूर्ण वा रस शहद के साथ सेवन करना चाहिए। यथा—

"जलेनामलकाद्बीजकल्कं वा ससितामधु।
मधूनाऽऽमलकाच्चूर्णं रसं वा लेहयेत्सिते" ॥
(चि० ३० अ०)

(४) स्थौल्य में आमलक—आँवले का चूर्ण और जौ का सत्तू यथाविधि सेवन करने से स्थूलता नष्ट होती है। यथा—

"यवामलक चूर्णं च प्रयोगः श्रेष्ठ उच्यते"।
(चि० सू० अ० २१)

(५) कुष्ठ में आमलक—आमले का येन-केन प्रकारेण प्रयोग कोढ़ को दूर करनेवाला है।

यथा—

"खदिराभयामलक हरिद्रारुष्कर सप्तपर्णारग्वध करवीर विडंगजाति प्रवाला इति दशेमानि कुष्ठघ्नानि"। (च० सू० अ० ४)

(६) विरेचन में आमलक—आँवला विरेचक औषधों का एक अवयव है। यथा—

"द्राक्षा काश्मर्यपरुषकाभयामलक विभीतक कुवलकदर कर्कन्धू पीलुनीति दशेमानि विरेचनोपगानि भवन्ति"। (च० सू० ४ अ०)

(७) ज्वरहर औषधों में आमलक—आँवला ज्वर नाशक है। यथा—

"सारिवा शर्करा पाठा मञ्जिष्ठा द्राक्षा पीलु परूषकाभयामलक विभीतकानीति दशेमानि-ज्वरहराणि भवन्ति"। (च० सू० अ० ४)

(८) वयः स्थापनीय योगों में आमलक—आँवला वयः स्थापनीय अर्थात् दीर्घायु करनेवाला है। यथा—

"अमृताभयाधात्री मुक्ताश्वेता जीवन्त्यतिरसा मंडूकपर्णी स्थिरा पुनर्नवा इति दशेमानि वयः स्थापनानि भवन्ति"। (च० सू० अ० ४)

(९) ज्वर में आमलक स्वरस—घी से छौंका हुआ आँवले का रस सेवन करने से ज्वर का नाश होता है। यथा—

"रस आमलकानां वा घृतभृष्टं ज्वरापहं"।
(चि० अ० ३)

(१०) मूत्रल, विरूक्षण और स्वरभंग में—कुशमूल और आँवलों से बना नियूंह (पेया) मूत्रल होता है, साँवाँ (श्यामाक) मिलाकर

बना रूक्षण और पीपल तथा आँवले से बनाया यमक में लाभकारी है ।

"कुशामलक निर्यूहे श्यामाकानां विरूक्षणी ।
कण्ठ्यायवानां यमके पिप्पल्यामलकैः स्मृता ॥"

(सू० अ० २)

(११) कास में आँवला—दश कासहर ओषधियों में से आँवला भी एक है । यथा—

"❀ ❀ आमलक ❀ ❀ ❀ ।
❀ ❀ तामलक्य इति दशेमानि कासहराणि भवंति ॥"

(सू० अ० ४)

(१२) रक्त पित्त में आँवला—दही के साथ खाने से आमला गरमी एवं पित्त और रक्तदोष को ठीक करता है । आमले के साथ रात को दही लेने में दोष नहीं । यथा—

"❀ उष्णं पित्तास्र कृद्दोषान् धात्रीयुक्तं तुनिर्हरेत् । नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ॥"

(सू० अ० ७)

(१३) रूक्ष कोष्ठ में आमला—दाख और आमले द्वारा साधित यूष में खट्टा दही और थोड़ा त्रिकटु चूर्ण मिलाकर पीने से रूक्ष कोष्ठी का स्नेहन होता है । यथा—

"द्राक्षामलक यूषाभ्यां दध्ना चाम्लेन साधयेत् ।
व्योषगर्भं भिषक् स्नेहं पीत्वास्निह्यतितन्नरः ॥"

(सू० १३ अ०)

(१४) मद्योविकार में आमला—मद्यपान जन्य विकार में आमले आदि के साथ सिद्ध किया हुआ मन्थ उपकारी है । यथा—

"मन्थः खर्जूरमृद्वीका वृक्षाम्लाम्लीक दाडिमैः ।
परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥"

(सू० अ० २३)

(१५) वयःस्थापनी ओषधियों में आमला—दीर्घायु करनेवाली ओषधियों में आमला सर्व श्रेष्ठ है । यथा—

"आमलकं वयः स्थापनानां ।"

(सू० अ० २५)

(१६) आमले, आमड़े तथा आम आदि के संयोग से दूध विदग्ध होजाता है अर्थात् ये संयोग विरुद्ध हैं । यथा—

"तथाऽऽम्राम्रातकमा ❀ ❀ ❀ ❀ ।
❀ ❀ ❀ ❀ आमलक ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ॥
❀ ❀ ❀ ❀ चाम्लंद्रवमद्रवं व पयसासहविरुद्धा।"

(सू० अ० २६)

(१७) आमला बृंहण एवं बलवर्द्धक है । यथा—

"आम्रामलकलोहाश्च बृंहणा बल वर्द्धना ।"

(सू० अ० १७, २८)

(१८) आमले आदि के कषाय से तैयार की हुई वस्ति के प्रयोग से कोठे के कृमि नष्ट होजाते हैं । यथा—

"तथामलक शृंगवेर ❀ ❀ ❀
वा स्थापयेत् कोष्ठकृमि निःसारणे ॥

(सू० अ० ६, १८)

(१९) विरेचन के लिये आमलक । आमले से दस्त साफ आता है ।

(वि० अ० ८)

(२०) अम्लस्कंध में आमलक । आमले से खटाई का काम लिया जाता है इसीसे इसका अम्लवर्ग में पाठ आया है ।

(वि० अ० ८)

सुश्रुत—(१) अर्श में आमलक-आँवलों को भली प्रकार पीसकर किसी मिट्टी के बरतन में भीतर लेप करदें । उस बरतन में छाछ रखें और उसमें से बवासीर के रोगी को सेवन कराएँ । यह अर्शरोग में उपकारक है । यथा —

"एष एव ❀ आमलक गुडूचीषु तक्रकल्पः"

(चि० ६ अ०)

(२) वातरक्त में आमलक—पुराने गाय के घी को आँवले के रस में पकाकर उसे वातरक्त रोगी के पानार्थ प्रयोग करें ।

"सर्व्वेषु पुराणघृतमामलकरस विपक्वं वा पानार्थे" । (चि० ५ अ०)

(३) प्रमेह रोगी के आहारार्थ आमलक—प्रमेही साँवा और नीवार भोजी होकर आँवला प्रभृति फल का आहार करे । यथा—

"महाधनो वा श्यामाक नीवारवृत्तिरामलक * फलाहारा मृगैः सहवसेत्" । (चि० ११ अ०)

(४) प्रस्राव विषयक यन्त्रणामें आमलक-मूत्रदोषरुजातुर अधिक मात्रा में आँवले का रस पिये । यथा—

"प्रपाडयामलकानान्तु रसं कुड़वसम्मितंपीत्वा-गदी भवेज्जन्तुर्मूत्रदोषरुजातुरः।" (उ० ४८ अ०)

(५) आयुर्वर्द्धकप्रयोग में आमलक—वाय विडंग और मुलेठी का चूर्ण समान भाग मिलाकर आँवले के रस और शहद के साथ १ मास तक सेवन करें । यथा—

"तत्रविडङ्ग तण्डुलचूर्णमाहृत्य यष्टीमधुयुक्तं *मध्वामलकरसाभ्यां* ।" (चि० अ० २६)

(६) आयुर्वर्द्धक प्रयोगों के पथ्य स्वरूप आमलक—मूँग और आँवले के लवण रहित किंचित् घृतयुक्त यूष के साथ घृतयुक्त भात खाना चाहिए । यथा—

"जीर्णे मुद्गामलकयूषेणालवणेनाल्पस्नेहेन घृतवन्तमोदनमश्नीयात् ।" (चि० अ० २६)

वाग्भट्ट—(१) कास में आमलक-कास रोगी आँवलेके चूर्ण को दूध में पकाकर घी मिला सेवन करे ।

विधि—आँवले का चूर्ण २ तो०, दूध आध पाव, जल १॥ पाव-इनको अग्नि पर रख दुग्धावशेष रहने तक पकाएँ । इसमें ६ मा० गाय का घी मिलाकर सेवन करें ।

यथा—

"चूर्णमामलकानाम्वा क्षीरपकं घृतान्वितम्।" (चि० ३ अ०)

(२) प्रमेह में आमलक—प्रमेही आँवले का रस शहद मिलाकर सेवन करे । यथा—

"रसमामलकस्य वा" । (चि० १२ अ०)

चक्रदत्त—(१) रक्त-पित्त में आमलक—नासिका से जब रक्तस्राव होता हो अर्थात् नकसीर फूटने पर घी में भूना हुआ सूखा आमला (जल) में पीसकर मस्तक पर लेप करें । यथा—

"नासाप्रवृत्तं रुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् । सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्द्धनि प्रलेपेन"। (रक्तपित्त चि०)

(२) पित्तशूल में आमलक—पित्तशूली आँवला का रस चीनी मिलाकर सेवन करे ।

यथा—

"धात्रीरसं * पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूल निसूदनम्" । (शूल-चि०)

(३) शीतपित्त में आमलक—शीतपित्त रोगी पुराने गुड़ के साथ आँवले का सेवन करे ।

यथा—

"*गुड़मामलकः सह"। (उदर्द-चि०)-

भावप्रकाश—(१) मूत्रावरोधमें आमलक—मूत्रावरोध में आँवला पीसकर नाभि के नीचे लगाएँ । यथा—

"आमलक्याश्च कल्केन वस्तिभागं प्रलेपयेत् ।
तेन प्रशाम्यति क्षिप्रं नियमाण्मूत्रनिग्रहः ॥"
(वृ० नि० र० वा० व्या०)

(२) योनिदाह में आमलक—योनिदाह में चीनी मिला हुआ आँवले का रस पीना चाहिये । यथा—

"धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत् सदा ।"
(योनिरोग-चि०)

(३) अतिसार में आमला—आमलों को जल में पीसकर, उससे रोगी की नाभि के चारों ओर थाला सा बना दें और फिर उसमें अदरख का रस भरदें । इससे शीघ्र ही अत्यंत भयंकर नदी के वेग के समान दुर्जय अतिसार भी नष्ट हो जाता है । यथा—

"कृत्वालवालं सुदृढ़ं पिष्टैरामलकैर्भिषक् ।
आर्द्रकस्य रसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम् ॥
नदीवेगोपमं घोरं प्रवृद्धं दुर्द्धरं नृणाम् ।
सद्योऽतिसारमजयं नाशयत्येष योगराट् ॥"
(म० खं० अति० चि०)

हारीत—(१) वातज वमनमें आमलकी—आँवले के रस में सफ़ेद चन्दन घिसकर गाढ़ा करलें । फिर आँवले के समान गोलियाँ बना लें । इसे मधु के साथ सेवन करने से वातजन्य वमन निवृत्त होता है । यथा—

"आमलक्या रसेनाथ घृष्टं चन्दनकं मधु।
गुटिकामलमानेन लेहो हन्ति वमिं ध्रुवम् ॥"
(चि० १३ अ०)

(२) शिरः क्षत में आमलकी—आँवले को पीसकर चीनी और घृत मिला मस्तक पर लेपन करने से शिर का घाव अच्छा होता है। इसे शिर की पीड़ा में भी व्यवहृत करते हैं। यथा—

"तथामलक्याः फलमेव पिष्ट्वा घृतेन खण्डेन प्रलेपनञ्च। निवार्य्यते मस्तकजं क्षतञ्च शिरोऽर्त्तिसञ्चान विनिहन्ति चैतत् ॥"
(चि० ४२ अ०)

वङ्गसेन—(१) सरक्त मूत्रकृच्छ्र में आमलकी–जब अत्यंत यंत्रणा-सहित रक्त मिला हुआ पेशाब आता हो, तब ईख का रस और ताजे आमले का रस समान भाग शहद के साथ सेवन करना चाहिये। यथा—

"धात्रीरसं चेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम्।"
(मूत्रकृच्छ्राधिकार)

(२) नवलोचन कोप में धात्रीफल—आँख आने (नेत्राभिष्यंद) की प्रारम्भिक अवस्था में सुपक्व आँवले का रस बूँद-बूँद करके आँख में डालनेसे दर्द और लाली कट जाती है। यथा—

"धात्रीफल निर्य्यासः नवदृक्कोपं निहन्तिपूरणतः।"
(नेत्र-चि०)

(३) शिशु के विच्छी नामक रोग में आमलकी-आँवले के चूर्ण में ७ बार गोमूत्र की भावना देकर बालक के बिच्छीयुक्त अंगपर प्रलेप करें। यथा—

"आमलक्याः पलान्यष्टौ गोमूत्रे सप्त भावयेत्।
भावयित्वाऽऽतपे पश्चाद्विच्छिर्लिप्ता प्रशाम्यति ॥"
(बालरोग-चि०)

वृहन्निघण्टुरत्नाकर—श्वेतप्रदर में आमले की गुठली–आमले की गुठली को जल में पीसकर उसमें शहद और मिश्री मिलाकर तीन दिन तक पीने से श्वेत प्रदर का नाश होता है। यथा—

"जलेन आमलकी बीज कल्कं समधुशर्करम्।
पिबेद् दिन त्रयेणैव श्वेतप्रदर नाशनम् ॥"

नोट—आमले के प्रयोग से हमारा आयुर्वेदीय साहित्य भरा पड़ा है और यदि उन सभों को एक जगह संगृहीत कर दिया जाय, तो उससे पृथक् एक विशाल ग्रंथ निर्माण हो सकता है। अस्तु, विस्तार भय से यहाँ उन सभों को एकत्रित न कर, केवल कतिपय उत्तम प्रयोग ही दिए गये हैं।

यूनानी मतानुसार प्रयोग—

शेखुर्रईस हृदय में प्रयोजित औषधियों की तालिका में इसका उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि यह संकोचक औषधियों में से है और इसमें हृदय को शक्ति प्रदान करने का विलक्षण गुण है। बहुल प्रयोग से यह उसमें रौक्ष्य एवं संकोच उत्पन्न कर देता है। यह अत्यन्त लाभदायक औषधियों में से है। यह विशेष कामोद्दीपक है।

(१) पानी के साथ इसके सेवन से प्यास शांत होती है और यह पिपासाशामक, क़ै निवारक तथा आमाशयांत्र बलदायक है।

(२) बालछड़ के साथ सेवन करने से यह विशेष क्षुधावर्द्धक है।

(३) शेख़ लिखते हैं कि किसी-किसी के मत से यह उदर में कब्ज़ करता है और अतिसार को रोकता है! परन्तु इसका मुरब्बा उदर को मृदु करता और बवासीर में उपकारी है।

(४) लिखते हैं कि १०॥ मा० इसे समान भाग वा अर्द्धभाग नीलोफर के साथ क्वथितकर, छानकर १० दिरम (लगभग ३ तो०) मिस्री डालकर पीने से याकृदीय, पैत्तिक और आमाशय जनित अतिसारों में बहुत लाभ होता है।

(५) इसका चूर्ण (सहूज) में उपकारी होता है और उदरमें कब्ज़ करता है। इसका चूर्ण २ दिरम (७ मा०) वा बेर का सत्तू १॥ मा० इससे चौगुने चाशनीदार बिही के पानी में सेवन करें। यह चिरकारी अतिसार में परीक्षित है।

(६) इसका मुरब्बा प्रकृति को कोमल करता, आमाशय तथा आंत्र की ओर मवाद गिरने का रूद्धक तथा आंत्रातिसार विशेष (ज़लकुल अम्आ) और बवासीर में लाभदायक है। इसका मुरब्बा हड़ के मुरब्बे की अपेक्षा

निर्बल है। इसी प्रकार अधकुटे सूखे धनिएँ के साथ तैयार किया हुआ इसका नक़ूअ (फांट वा-हिम) चिरकारी अतिसार, आमाशय की उष्मा, गुद प्रदाह तथा मूत्रप्रदाह में उपकारी है।

आमला बवासीर के ख़ून का रुद्धक, नकसीर फूटने का रुद्धक, आंतरांग दार्ढ्यकर एवं वीर्य्य-वर्द्धक है।

(७) इसका शर्बत पुराने बवासीर के लिए लाभदायक और उसकी ओर मवाद उतरने का रुद्धक है।

(८) इसका शर्बत तथा इसके काढ़े के पानी में बैठना शिथिल गुदा को बलप्रद है।

(९) आमले को समान भाग काले जीरे के कूटे-छाने चूर्ण में मिलाकर शहद योजित कर उचित मात्रा में चाटने से शय्यामूत्र (बौल फ़िल फ़राश) का नाश होता है।

(१०) रोग़न आमला शीतल तथा रूक्ष और केश्य है एवं बालों को काला करनेवाला, बाल बढ़ानेवाला एवं उनकी रक्षा करनेवाला और सौंदर्यवर्द्धक है।

(११) इसका शहदाक्त मुरब्बा और इसका हिम मेदे से मस्तिष्क की ओर वाष्पारोहण को रोकता है और ख़ून एवं पित्त की उष्मा को शांत करता है। जब इसमें से ७ मा० (२ दिरम) सेवन करते हैं तब यह नाड़ी-तंतुओं (अअ़्साब) को अत्यन्त लाभ पहुँचाता हैं।

(१२) शैथिल्य निवारक होनेसे यह शिथिल अवयव को शक्ति प्रदान करता है और जवानी का सा स्तंभन पैदा करता है।

(१३) जब इसके हिम को हिना वा नील में मिलाकर बाल पर इसका ख़िज़ाब करते हैं, तब यह उन्हें स्याह करता है और झड़नेसे बचाता है।

(१४) जल में पीसकर इसका अंजन करने से यह आँख को ताक़त देता और धुंध इत्यादि को दूर करता है।

(१५) आँवले को बारीक पीसकर, बराबर मिस्री मिलाकर इसे मीठे बादाम के तेल में मल कर रखें। इसमें से १॥ तो० कोष्ण जल के साथ नाशता करें। यह आँख की धुंध को दूर करता एवं उसे ताक़त देता है, आंत्र के सह्ज को लाभ पहुँचाता है और परीक्षित है।

(१६) ७ मा० आँवले को जौ-कुटकर पानी में तर करें और दो-तीन घंटे बाद आमले को निचोड़ कर फेंक दे। उस हिम जलमें आमला भिगोकर छान लें। इसी प्रकार ३ बार करें। फिर उस पानी को आँख में टपकाएँ (आश्चोतन करें)। इससे आँख की फूली का नाश होता है। परीक्षित है।

(१७) आमले को आस (विलायती मेंहदी) के पानी में महीन पीसकर थोड़ा पानी मिला मस्तक पर गाढ़ा गाढ़ा लेप करें। इससे नाक से रक्तस्राव होने (नकसीर) में लाभ होता है।

(१८) आमले को मुँह में रखने से मसूढ़े दृढ़ होते हैं। यह मोटी ज़बान पतली करता है और लार बहना बंद करता है।

(१९) वल्य ओषधियों के साथ प्रयुक्त करने से यह उत्तमांगों को बल प्रदान करता है।

नव्यमत

आमलेका ताज़ा फल स्निग्ध, एवं मूत्रकारक है और मृदुरेचक होने से पुरातन कोष्ठबद्ध रोग में व्यवहृत होता है। शुष्क आमला शीतल, पाचक और कसैला है।

प्रयोग—(१) शिरः पीड़ा में केशर, नीलोत्पल एवं गुलाबजल के साथ आँवले को भली प्रकार पीसकर माथे पर प्रलेप करें। (२) मूत्रकृच्छ्र किंवा मूत्ररोध के प्रतिकारार्थ वस्तिदेश पर आमले का प्रलेप उपयोगी होता है। (३) अंगूर और मधु के साथ आँवले को उत्तम रूप से पीसकर शर्बत प्रस्तुत करें। यह शर्बत ज्वर विशेष एवं अतिसार में पानीयरूप से व्यवहार में आता है। (४) खदिरसार की तरह आमलकी-काष्ट द्वारा प्रस्तुत एक्सट्रक्ट स्तम्भक एवं कसैला है। (५) आँवले की टहनी वा काष्ठखण्ड अस्वच्छ जल में रखने से आविल जल निर्म्मल होता है। (६) आँवला त्रिफले का एक उपादान है। Materia medica of India-R. N. Khory, *Part 11.. P. 550*-।)

अन्य प्रयोग

(१) ऐन्सली लिखते हैं कि आँवले का फूल जिसकी गंध नीबू के छिलके की तरह होती है, वैद्यों के मतसे शीतल एवं विबंधहर होता है और अन्य औषधियों के साथ अवलेह रूप में प्रयोग में आता है। (Mat. Ind.; *11., P. 244.*)

(२) डिमक के अनुसार कोंकण में ताज़ी छाल का रस, शहद और हलदी के साथ सूज़ाक की बीमारी में दिया जाता है।

(३) ४ मा० आँवले को रातभर पानी में भिगोएँ और स्वाद के लिये मिस्री और जीरा डालें। कोंकण में पित्त विकार की यह एक घरेलू दवा है।

(४) शहद वा शक्कर मिला हुआ इसके रस का शर्बत रोगियों के लिये उत्तम पेया है और इसे मूत्रकारक भी बतलाया जाता है। (फा० इं० ३ भ०)

(५) आँवले की पत्तियों से चमड़ा भी सिझाया जाता है।

(६) इसकी लकड़ी पानी में नहीं सड़ती। इसीसे कूओं के नीमचक आदि इसीके बनते हैं।

(७) बड़ौदा में इसकी पत्ती और (Fenugreek seed) द्वारा प्रस्तुत फांट पुरातन प्रवाहिका में प्रयोजित होता है और पत्ती तिक्त वल्य भी ख़्याल की जाती है। दूषित क्षतों के लिए इसका दुग्धवत् रस उत्तम ख़्याल किया जाता है। (वैट)

(८) शुष्क आमलकी का क्वाथ क्षत स्थान पर लगानेसे अधिक रस नहीं निकलता, एवं ज़ख़्म साफ़ होकर धीरे-धीरे सूख जाता है।

(९) तुर्किस्तान में इसका ताज़ा फल फुफ्फुसप्रदाह में व्यवहृत होता और चक्षुप्रदाह (अभिष्यंद) में अंजन रूप से काम में आता है।

(१०) फ़ारस में इसका फल क्रिमिघ्न रूप से काम में आता है। इस हेतु इसके फल का रस प्रायः शहद के साथ १ से ३ ड्राम की मात्रा में व्यवहार में आता है।

(११) बहुमूत्र रोगमें और ज्वर में ज्वरघ्न रूप से इसके बीज का फांट उपयोग में आता है। नवाभिष्यंद एवं चक्षु के अन्य रोगों में भी यह अंजन रूप में प्रयोजित किया जाता है।

(१२) कष्टश्वास एवं हिक्का में आमले के फल का रस वा एक्सट्रैक्ट शहद और पीपर के साथ बरता जाता है।

(१३) आँवले के सूखे फल रात भर नए बरतन में भिगोकर, सुबह मलकर छान लें। आँख आने में इसका आश्चोतन लाभदायक है। इसको कोष्ण वा ठंढा काम में लाएँ।

(१४) सूखा आमला रक्तस्राव (Haemorrhage) अतिसार और प्रवाहिका में उपयोगी है। लौह के साथ यह रक्ताल्पता, कामला वा पांडु और अजीर्ण में अव्यर्थ महौषधि है।

(१५) इसकी जड़ से तैयार की हुई एक प्रकार की शराब (Fermented Liquor) पांडु (Jaundice) अजीर्ण और कास प्रभृति में काम आती है।

मिला हुआ ताज़ा आमले का रस और घी उत्तम बल्य है।

(१६) आमले का चूर्ण ४ ड्राम, हड़ का चूर्ण ४ ड्राम और रेवंदचीनी का चूर्ण १ ड्राम इनको १ पाइंट जल में क्वथित कर रोगी को २ आउंस की मात्रा में सेवन कराएँ।

(१७) मुख पाक में इसकी जड़ की छाल को पीसकर शहद मिलाकर मुँह में लगाते हैं। मुख पाक में मुख-प्रक्षालन के लिये पत्तियों का काढ़ा भी उपयोगी है।

(१८) योनि में जलन मालूम होने पर आमले (फल) के रस में शकर वा मधु मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

(१९) ज्वरोपरान्त होनेवाली मुख की विरसता में आमले के बीज मुनक्का और शकर इनके काढ़े से गण्डूष कराने से लाभ होता है।

(२०) ज्वर में आमलेकी गुठली (Seed) चीते की जड़, हड़ और पीपल इनका काढ़ा लाभदायक होता है। आमले की गुठली, चीते की जड़, हड़, पीपल और सेंधानमक समान भाग-इनका चूर्ण भी ज्वर में प्रयुक्त होता है।

(२१) मतली (उत्क्लेश) एवं वमन निवारणार्थ आमले के बीज और लालचंदन का चूर्ण शहद योजित कर सेवन कराया जाता है।

(२२) नासा रक्तस्रुति (नकसीर) में इसके बीज को घी में भूनकर और काँजी में पीसकर माथे पर लेप करते हैं।

(२३) तर वा ख़ुश्क खाज में जलाकर भस्म की हुई इसकी गुठली का चूर्ण तेल में मिलाकर लगाया जाता है।

(२४) एक तोला आमले की गुठली (Seed) को रात में एक कलईदार बरतन में भिगो दें और सवेरे उसे गाय के दूध में महीन पीस डाले। इसे ७तोले वा एक पाव दूधमें सेवन करें। यह पित्तोल्वणता का उत्तम प्रतिकार है।

(२५) आमले के बीज और असगंध समान भाग का चूर्ण घी और शहद के साथ सेवन करें। यह वृष्य, वृंहण एवं स्वास्थ्यकर है विशेषतः शरद् ऋतु में।

(२६) आमले के बीज (Seed) और गोखरू प्रत्येक ½ ड्राम इसको कूट छानकर महीन चूर्ण बना इसमें १६ ग्रेन गुरुच का सत मिलाकर घी और मिस्री के साथ प्रातः काल सेवनीय है। यह पुष्ट वल्य है।

(२७) शिश्वतिसार में आमले की गुठली, चीते की जड़, हड़, पीपल और पादालोन का मिश्रित चूर्ण अवस्थानुकूल उचित मात्रा में कोष्ण जल के साथ, दिन में दोबार (प्रातः काल और रात में सोनेसे पूर्व) सेवन कराया जाता है।

(२८) आमले की पत्तियों का दुग्धवत् स्वरस दूषित क्षतों पर लगाने से क्षत स्वच्छ होकर शीघ्र अंकुर लाते हैं।

(२९) फलों द्वारा प्राप्त स्थिर तैल बालों को दृढ़ करता और उन्हें बढ़ाता है। पत्तियों द्वारा परिस्रुत उड़नशील तैल सुगंधियों में बहुत व्यवहृत होता है।

(३०) अजीर्ण और अतिसार में इसके कोमल पल्लव मक्खन के साथ व्यवहार करने से लाभ होता है। हरी ताज़ी पत्तियों को दही में मिलाकर सेवन कराने से भी उक्त रोगों में लाभ होता है।

(३१) आमले का फूल अन्य द्रव्यों के साथ अवलेह रूप में काम आता है। (इं० मे० मे०)

(३२) तुख़्म आमला ५ भाग, मिस्री २भाग इनको कूट छानकर मिलाएँ और १४ दिन तक सेवन करें। (अक्सीरुल अमराज़)

(३३) सूखे आमले ४ भाग, कपूर १ भाग, कुचिला ४ भाग, गंधक ४ भाग, तूतिया १ भाग, रस सिंदूर (रक्त पारद भस्म) २ भाग इनको ख़ूब बारीक कूट-छानकर घी में मिला मरहम प्रस्तुत करें। हठीली खाज प्रभृति में इसका प्रलेप अतीव उपयोगी है।

(३४) पके आमले को १२ घंटे जल में भिगो रखें। इसके उपरांत फल पृथक् कर जल फेंक दें। फिर आमलों को ताज़े पानी में २ घंटे तक पकाएँ जिसमें वे नरम हो जायँ। इसके बाद आमलों को गुठली निकाल कर शिल पर लुगदीसा बना इसे गज्जी के कपड़े में छानकर रेशे प्रभृति से पृथक् कर घी में भून लें। फिर क्वाथ जल में आमलों से तिगुनी मिस्री मिलाकर माजून की चाशनी करें, फिर उसमें आमलों के भूने कल्क को मिलाकर उतार लें और इसे किसी बरतन में सुरक्षित रखें। इसे १ से २ ड्राम की मात्रा में सेवन कराएँ। गुण, प्रयोग—यह अत्यंत सुस्वादु, मृदुरेचक और आदती कब्ज़ में उपकारी है। हकीम लोग हौलदिल में तथा अनेक प्रकार के पाचनावयव विषयक विकारों, जैसे, अम्लपित्त, भूख की कमी और अजीर्ण प्रभृति में इसका अत्यंत लाभदायक उपयोग करते हैं।

(३५) पीपल आमला की पोटली डालकर पकाई हुई यवों की पेया में घी डालकर पीने से ज्वर का नाश और दोषों का अनुलोमन होता है और साफ़ दस्त आते हैं। यह ज्वरोपरांत पथ्य में देने योग्य है।

(३६) सोंठ और आमला से सिद्ध की हुई पेया शक्कर मिलाकर देने से पसीना लाती है, निद्रा लाती है और इससे प्यास दूर होती है। मूँग की दाल घी से छोंककर दें।

(३७) आमला, गुडूची और मोथे का क्वाथ दोष पाचन करता है और यह तृषा अरुचि मुख वैरस्य नाशक है।

(३८) जातीपत्र, आमला, मोथा और यवास का क्वाथ गुड़ मिलाकर पीने से दोषों का विबंध दूर होकर ज्वर नष्ट होता है।

(३९) दाख, आमला, बेल, त्रायमाण, कटेरी द्वारा सिद्ध घृत जीर्णज्वरका नाश करता है।

(४०) आमला और ईख के रस से पकाया हुआ घी पित्तगुल्म नष्ट करता है।

(४१) आमले के रस में हल्दी का चूर्ण और मधु मिलाकर पीने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

(४२) मोथा, आमला और दारचीनी का चूर्ण मुखशुद्धि के लिये उत्तम है।

(४३) जालगर्दभ रोग में आमलों का खाना और लेप लगाना हितकर है।

(४४) आमला और लोधचूर्ण का प्रतिसार करने से फटी हुई गुदा और गुदा के जख़्म दूर होते हैं।

(४५) आमला चूर्ण नीबू रस में मिलाकर देने से रक्तातिसार नष्ट होता है।

(४६) आमला का चूर्ण और सोंठ का चूर्ण मधु के साथ देने से अतिसार नष्ट होता है।

(४७) आँवले के स्वरस में पिसा हुआ सफ़ेद चन्दन मधु मिलाकर देने से वमन बन्द होता है।

(४८) आमला चूर्ण दही के साथ देने से अतिसार नष्ट होता है।

(४९) आँखों के दर्द में आमला अत्युपयोगी सिद्ध होता है। शिर में चढ़ी हुई गरमी को उतारता है। गर्मी के कारण यदि आँखें लाल हों, अँधेरी आती हो, जलन होती हो, तो आमले के वाह्यांतर प्रयोग से उक्त सभी विकार दूर होते है।

(५०) आँवले के भीतर काला रंग रहता है, इससे आमलायुक्त 'कल्प' लगाने से सफ़ेद बाल काले हो जाते हैं और इसी कारण यह प्रायः ख़िज़ाबों में पड़ता है।

(५१) जल में पिसे हुये आँवलगट्टे से शिर मलने वा आमलकी स्वरस में सिद्ध किये हुये तेल लगाने से केशों की रूक्षता मिटकर वे अत्यंत मुलामय हो जाते हैं। बाल बढ़कर खूब लम्बे हो जाते हैं और जूँ तथा लीखें नष्ट हो जाती हैं। विशेषकर जल में पिसे आँवले से शिर और आँख की गर्मी शांत होकर मस्तिष्क हलका हो जाता है और एक प्रकार की विलक्षण शांति का अनुभव होता है। साबुन लगानेवाले एक बार इसका प्रयोग कर देखें।

(५२) आमले का चूर्ण जल में मिलाकर पीने से और उसी जल की इंद्री में पिचकारी करने से सूज़ाक की जलन शांत होती है और व्रणों का रोपण होकर पीव आनी धीरे-धीरे बन्द हो जाती है। धूप के दिनों का मूत्रकृच्छ्र भी इससे मिटता है। गोखरू, आमला, धनियाँ और शक्कर इनका शर्बत बनाकर दिनभर में ४-६ बार लेने से मूत्र रोग में अच्छा लाभ होता है।

(५३) जिन लोगों के हाथ और पैरों में हरदम पसीना आया करता हो, रात-दिन हाथ पैर पानी से भीजे हुये से रहते हों, ऐसे व्यक्तियों को आमलाचूर्ण के खाने से तथा आमले के काढ़े से दिन भर में १०-१५ बार हाथ-पाँव धोने से पसीना कम हो जाता है।

(५४) इसी प्रकार पाददारी पर भी प्रयोग करने से लाभ होता है।

(५५) अनियमित आहार-विहारादि के कारण जब पित्त प्रकुपित होकर शरीर पर फुन्सी वा लाल चट्टे पैदा हो जाया करते हैं, दिन-रात खुजली चला करती है—इनमें तथा विचर्चिका, गुमड़े, कुष्ट, वातरक्त, विसर्प प्रभृति नाना-नाना भाँति के त्वग्दोषों में आमला युक्त कोई भी दवा, जैसे, च्यवनप्राशादि वा केवल आमला चूर्ण सेवन करने से रक्त शुद्ध हाता है, शरीरांतर्गत घुसी हुई झूठी गर्मी शांत होती है, बहुत पुराने नासूर तथा व्रण जल्द भरकर अच्छे होजाते हैं। अच्छा हो यदि साथ ही आँवले के जल से स्नान भी करें। इससे खुजली, जलन और दाह शांत होजाता है।

(५६) वीर्यदोष में आमले का सेवन अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है। यह पित्त-प्रकोपजन्य समग्र वीर्यदोषों का नाश कर देता है। यह वीर्य की गरमी को छाँटता और वीर्याशय को वीर्य धारण के योग्य एवं बलवान बनाता है जिससे वीर्यस्राव, विना इच्छा के वीर्यस्खलन यथा स्वप्न-दोष प्रभृति में इसका विलक्षण प्रभाव होता है। रक्त पित्त रोग में भी इसका चमत्कारी प्रभाव होता है।

(५७) यदि आमले के रस के साथ अनार का रस भी दें, तो रक्तगत उष्मा शांत होकर रक्तस्राव तुरंत बंद होजाता है। इसी प्रकार स्त्रियों के अत्यार्त्तव में और गर्भाशय से स्रावित होनेवाले रक्तस्राव में आँवले का कल्क ६ मा०, शहद ३ मा० मिलाकर देने से स्राव बन्द होजाता है। पित्त के प्रकोप से जिन स्त्रियों को बारबार रक्तस्राव होने की आदत हो, उन्हें कुछ दिन तक धैर्यपूर्वक आँवला सेवन करने से बड़ा लाभ होता है।

(५८) बहुत दिन की जीर्ण व्याधियों में सूखे आँवले शोधक रूप से अधिक लाभदायक होते हैं और ताज़े आँवले का रस नूतन रोगी को तत्काल लाभ देता है। जीर्ण पित्त प्रकृति, रक्त पित्त, अर्श, पांडु तथा क्षय आदि रोगों में आँवला देने की शास्त्राज्ञा है। आँवले के रस में शहत वा शक्कर डालकर देने से पित्तज हिचकी, उबकाई, कै और तृषा आदि एकदम शांत होजाते हैं। इसीसे तीक्ष्ण पित्त प्रकोप में धात्री रस देना योग्य है।

(५९) आँवला और द्राक्षा का शक्कर युक्त शर्बत ४-५ तो० हर दो-दो घंटे में देने से उलटी शांत होजाती है और यदि ज़ोरों की प्यास लगी हो तो वह भी शांत होजाती है।

(६०) आमले का रस मसूढ़ों पर मलने से शिशुओं के दाँत सुखपूर्वक निकल आते हैं।

(६०) आमले की पत्ती को कपूर के पानी के साथ पीसकर सिर पर रखने से अवश्य नकसीर बंद होता है।

(६१) ताजे आमले का स्वरस एक पाव, मिश्री एक सेर, सेवती गुलाब के ताजे फूल १ छं० का स्वरस—इनका यथाविधि मंद अग्नि पर पकाकर शर्बत प्रस्तुत करें।

मात्रा—१ तो० तक।

गुण—इसके प्रयोग से प्रबल पित्त प्रकोप, लू लगने से हुआ ज्वर, गदोद्वेग, वमन और मूर्च्छा का नाश होता है।

(६२) आदित्यपाक आमलकी खण्ड—खूब पके हुए तंतु-रहित आँवले लेकर कोंचनी द्वारा आँवलों को कोंच डालें जैसा मुरब्बा बनाने में किया जाता है (हमारी तरफ़ देहातों में लोग ऐसा न कर आँवलों को चाकू से काटकर गुठली अलग कर लेते हैं)। इसके बाद उन आमलों में चीनी वा गुड़ मिलाकर मिट्टी के बरतन में रख धूप में पाकार्थ रखें। जब रस भली भाँति सूख जाय, तब उस बरतन को छाया में सुरक्षित रखें।

गुण—गरमी के दिनों में इसे खाकर पानी पीने से प्यास कम लगती है और गरमी शांत होती है।—लेखक:

(६३) आमलकीसार

पके आमलों को कुचल कर रस निकाल कर पत्थर के खरल में डालकर घोटें और जब रस गाढ़ा होने पर आए उसमें पुनः और रस डाल कर घोटें। इसी प्रकार जितना तैयार करना हो रस डाल-घोटकर गाढ़ा होने पर गोली बना लें अथवा सुखाकर चूर्ण बना कर रख लें। इसे ही 'आमलकी सार' कहते हैं। गुण—यह अत्यंत पित्त-शामक है। पित्त ज्वर वा ग्रीष्म के बढ़े हुए उत्ताप को मिटाने के लिए इसका (वा आमले के रसका) अवश्य प्रयोग करना चाहिये। इसके सेवन करते ही चित्त की अस्थिरता एवं घबड़ाहट दूर हो जाती है। विधि विशेष से उक्त आमलकी सार का प्रयोग उन सभी दशाओं में हो सकता है, जिनमें आमला व्यवहृत होता है।

आँवलासार गंधक—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँवला+सं० सारगंधक] खूब साफ़ की हुई गंधक जो पारदर्शक होती है।

आँवा—संज्ञा पुं० कुम्हार की भट्ठी।

आँवला—सं० पुं० [देश०] आमला। धात्री।

आँवा—संज्ञा पुं० [देश०] कुम्हार की भट्टी। (A potters'-kiln.)

आँवुरः-[देश०] } आमला।
आँवलः-[देश०] }

आँवुलासार गंधक-संज्ञा स्त्री० [हिं० आँवलासार गंधक] आमलासार गंधक। दे० "गंधक"।

आंशिक-वि० [सं०] अंश संबंधी। अंशविषयक।

आंशुक जल-संज्ञा पुं० [सं०] किरण दिखाया हुआ पानी। वह जल जो एक ताँबे के बरतन में रख कर दिन भर धूप में और रात भर चाँदनी वा ओस में रखकर छान लिया जाय। वैद्यक में इसका बड़ा गुण लिखा है।

आँस-संज्ञा स्त्री० [सं० पाश] रेशा। तंतु।

आँसू-संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, पा० प्रा० अस्सु] वह जल जो आँख के भीतर उस स्थान पर एकत्रित रहता है, जहाँ से नाक की ओर नली जाती है। यह जल आँख की झिल्लियों को तर रखता है और ढेले पर गर्द या तिनके को नहीं रहने देता, धोकर साफ़ कर देता है। आँसू भी थूककी तरह पैदा होता रहताहै और बाहरी वा मानसिक आघात से बढ़ता है। किसी प्रबल मनोवेग के समय, विशेषकर पीड़ा और शोक में आँसू निकलते हैं। क्रोध और हर्ष में भी आँसू निकलते हैं। अधिक होने पर आँसू गालों पर बहने लगता है और कभी कभी भीतरी नली के द्वारा नाक में भी चला जाता है और नाक से पानी बहने लगता है।

पर्य्याय—नेत्रजल, नेत्राम्बु, रोदन, अश्र, अस्त्र, अस्तु, वाष्प (अ), लोच (ज)।

आँसू ढाल—संज्ञा पुं० [हिं० आँसू+ढालना] घोड़ों और चौपायोंकी एक बीमारी, जिसमें उनकी आँखों से आँसू बहा करता है। ढलका।

चिकित्सा—बहेड़े की मींगी गुलाब जल में घिसकर लगाने से आराम होता है।

(इ)

इ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पुरुषोत्तम। हला०। (२) क्रोध। (३) कामदेव। (४) खेद। सन्ताप। दुःख। भावना। (५) गणेश।

इआऽ-[अ०] विआऽ। बर्तन। पात्र। Vessel· वेसेल् (अं०)।

इअ्‌तिक़ाल-[अ०] (१) बाँधना। रोकना। बंद करना। ज़बान का बन्द हो जाना। बात न कर सकना। (२) अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा में इस शब्द का प्रयोग वेदना सम्बन्धी आक्षेप(ऐंठन) के लिये होता है; जिसे डॉक्टरी में क्रैम्प कहते हैं। Cramp.

इअ्‌तिक़ाल ब.तन-[अ०] मल का रोकना। मलावरोध (क़ब्ज़) उत्पन्न करना।

इअ्‌तिदाल-[अ०] धात्वर्थ समान करना वा समीकरण। सम प्रकृतित्व संपादन। पारिभाषिक अर्थ प्रकृति का सम (मुअ्‌तदिल) करना अर्थात् चारों ख़िल्तों (दोषों) का प्राकृतिक अनुपात में पाया जाना। Moderation.

नोट—आयुर्वेद में दोष तीन ही अर्थात् वात, पित्त और कफ होते हैं।

इअ्‌तिदाल अ़ज़्वी-[अ०] वह प्रकृति जो किसी विशेष अवयवके लिये उपयुक्त हो। जैसे, मस्तिष्क के लिये शीतल प्रकृति उपयुक्त है और हृदय के लिये उष्ण।

इअ्‌तिदाल नौई.-[अ०] वह प्रकृति जो किसी एक विशेष प्राणिवर्ग के लिये उपयोगी हो। उदाहरणतः वह प्रकृति जो मनुष्य के लिये उपयोगी है, सिंह के लिये न होगी, और जो सिंह को उपयुक्त है, वह वृषभ के लिए अनुपयोगी होगी।

इअ्‌तिदाल मिज़ाजी-[अ०] प्रकृतिका सम होना। प्रकृति-साम्यता। दे० "मिज़ाज"।

इअ्तिदाल शख़्सी-[अ०] वह प्रकृति जो किसी एक व्यक्ति को उपयुक्त हो।

इअ्तिदाल सिन्फ़ी-[अ०] वह साम्य प्रकृति जो मनुष्य की किसी विशेष जाति (समुदाय) के लिये उपयोगी हो। वह प्रकृति जो ईरानियों के लिये उपयोगी हो; पर भारतीयों के लिए अनुपयोगी हो।

इअ्तिनाफ़-[अ०] जलवायु का अनुपयुक्त होना। जलवायुका असात्म्य होना। हवा पानी का मुआफ़िक़ न होना।

इअ्तियात्-[अ०] बन्ध्या होते हुये भी स्त्री का अधिक काल तक गर्भवती न होना।

इअ्तियादी-[अ०] आदती। आभ्यासिक। स्वाभाविक। स्वभावतः होनेवाली बात। Habitual.

इअ्फ़ाऽ-[अ०] धात्वर्थ चैन, शान्ति, शान्ति प्रदान करना, कष्ट से रक्षा करना। तिब्बी अर्थ रोग से सुरक्षित रखना। रोग से बचा रहना। विश्राम पाना। परंतु यह शब्द क़ुव्वते मुदाफ़िअत अर्थात् शरीर को व्याधि से सुरक्षित रखनेवाली उस शक्ति के लिये प्रयुक्त होता है, जो एक स्वस्थ शरीर को किसी व्याधि के न ग्रहण करने के लिये समर्थ बनातीहै। हिन्दीमें इसे रोगक्षमता, वैष्णवी शक्ति या इन्द्रशक्ति तथा आँग्ल भाषामें इम्म्युनिटी (Immunity) कहते हैं। अमूनिय्यत, क़ुव्वते मुदाफ़िअत-अ०।

इअ्फ़ाऽ कस्बी-[अ०] क़ुव्वत मुदाफ़िअत (कस्बी), अमूनिय्यत कस्बी, क़ुव्वत मुदाफ़िअत मस्नूई-अ०। प्राप्त रोगक्षमता। उपार्जित रोग क्षमता। (Artificial Immunity, Acquired 1mmunity.) दे० "रोगक्षमता"।

इअ्फ़ाऽ तब्ई-[अ०] अमूनिय्यते तब्ई-अ०। प्राकृतिक रोगक्षमता। स्वाभाविक रोगक्षमता। स्वाभाविकी प्रतिषेध शक्ति। (Natural Immunity.) दे० "रोगक्षमता"

इ(अ)अ्याऽ-[अ०] (१) Exhaustion. श्रान्ति। श्रम। थकावट। क्लांति। (२) हाथ पैर टूटना। शरीर का श्रान्त हो जाना।

इ(अ)अ्याऽ क़श्फ़ी-[अ०] ऐसा मालूम होना मानो शरीर रूक्ष एवं दुर्बल हो गया हो।

इ(अ)अ्याऽ क़ुरूही-[अ०] शरीर का क्षत या फोड़े की तरह पीड़ा करना।

इ(अ)अ्याऽ तमद्दुदी-[अ०] अँगड़ाइयाँ। शरीर का टूटना।

इ (अ)अ्याऽ रयाज़ी-[अ०] व्यायाम जन्य श्रान्ति। कसरत की थकान।

इ (अ) अ्याऽ वर्मी-[अ०] ऐसा मालूम होना मानो शरीर का विस्तार अधिक होगया हो।

इअ्राक-[अ०] स्त्री का ऋतुमती होना। कपड़े से होना। रजःस्वला होना। (Menstruate.)

इअ्विजाज-[अ०] वक्रता। वक्र होना। टेढ़ा होना। तिब्बी परिभाषा में किसी अवयव का टेढ़ा होजाना। (Crook, Bend.)

इअ्विजाज इन्सी-[अ०] वास्तव में यह इअ्विजाजुल् क़दम (पादवक्रता) का एक भेद है जिसमें पादतल भीतर की ओर फिर जाता है; और रोगी पाँवका वाह्य किनारा टेककर चलता है। इअ्विजाज वह्शी का "उलटा"। टैलीपीज़वेरस Talipes varus.

इअ्विजाज क़ुद्दामी-[अ०] इअ्विजाजुल् क़दम (पाद वक्रता) का एक विशेष रूप जिसमें पाँव का पञ्जा ऊपर को उठा हुआ होता है और रोगी एड़ी टेककर चलता है। Talipes calcaneus टैलीवीज़ काल्केनियस।

इअ्विजाज क़ुद्दामी वह्शी-[अ०] इअ्विजाजुल् क़दम का एक रूप जिसमें पाँव का पञ्जा ऊपर को उठा होता और तलवा (पादतल) भीतर की ओर झुका होता है और रोगी पाँव का पंजा टेककर चलता है। Talipes calcanio-valgus. टैलीपीज़ कल्केनियो-वल्गस।

इअ्विजाज ख़ल्फ़ी-[अ०] इअ्विजाजुल् क़दम (पादवक्रता) का एक प्रकार जिसमें एड़ी (पार्ष्णि) भूमि पर नहीं लगती और रोगी केवल पंजा टेककर चलता है। टैलीपीज़ इक्वीनस Talipes equinus.

नोट—यह इअ्विजाज क़ुद्दामी का उलटा है।

इअ्विजाज ख़ल्क़ी इन्सी-[अ०] इअ्विजाजुल् क़दम (पादवक्रता) का एक प्रकार जिसमें रोगी की एड़ी भूमि से उठी हुई और पादतल भीतर को झुका होता है और रोगी पाँव का पंजा टेककर चलता है। Talipes equinovarus. टैलीपीज़ इक्वीनो-वेरस।

इअ्विजाजुल् इ.ज़ाम-[अ०] अस्थि-वक्रता। हड्डियों का टेढ़ा हो जाना। अस्थिदौर्बल्य। बालशोष। कुसाह्.-(अ०)। Rickets.

इअ्विजाजुल् क़द्म-[अ०] क़दम क़दमाऽ-(अ०)। एक प्रकार की व्याधि जिसमें पैर टेढ़े हो जाते हैं। पाद-वक्रता। पैरों का फिर जाना वा टेढ़ा हो जाना। टैलीपीज़ Talipes, क्लब फुट Club foot.।

नोट—इस प्रकार के रोगी को अरबी में अख़्नफ़ और उर्दू में कुल्लच कहते हैं।

इअ्विजाजुज़्.ज़कर-[अ०] शिश्न के टेढ़े होने की क्रिया या भाव। इंद्रीवक्रता। शिश्न-वक्रता। जननेन्द्रिय अर्थात् लिंग की वक्रता।

इअ्विजाजुर्रहि.म-[अ०] गर्भाशय का टेढ़ा हो जाना अर्थात् उसका आगे-पीछे या दायें-बायें झुक जाना। जरायु वक्रता। गर्भाशय स्थानभ्रंश। गर्भाशय स्थानच्युति। Talipes of the Uterus. टैलीपीज ऑफ दी युटरस।

इअ्विजाजुस्साक़-[अ०] पिण्डली का फिर जाना। इसमें पिण्डलियाँ बाहर को और जानु वा घुटने भीतर को फिर जाते हैं। जेनुआ वल्गा Genua Valga; इन् नीज़ In knees (अं०)।

इअ्विजाजुल् .हौज़-[अ०] वस्तिगह्वर की वक्रता। एक रोग जिसमें वस्तिगह्वर विशेषरूप से टेढ़ा हो जाता है।

इअ्सार-[अ०] स्त्री का यौवनावस्था को प्राप्त होना वा युवती होना।

इकट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वंशांकुर। करीर।

इकतरा-संज्ञा पुं० [हिं० एक+अंतर] एक प्रकार का विषमज्वर जिसमें एक दिन छोड़ दूसरे दिन ज्वर का वेग होता है। दे० "तृतीयक"।

इकतारा-संज्ञा पुं० वाद्य विशेष। एक ही तार का एक बाजा।

इकतिग्री-[लेपचा०] अनार। दाड़िम। Pome granate (Punica granatum)

इक़दाम-संज्ञा पुं० [अ० पुं०] (१) अपराध करने की चेष्टा। कसूर करने की कोशिश। (२) संकल्प। क़स्द।

इकपेचा-संज्ञा पुं० एक प्रकार की पगड़ी वा दस्तार। यह मस्तक का आभूषण है। आगरा से दिल्ली तक इसका अधिक प्रचार है।

इकपोत्स्यो लह्सण-[जय०] एक पोटिया लहसुन।

इकलालाई-संज्ञा स्त्री० (१) एक वस्त्र विशेष। किसी प्रकार का कपड़ा। एक पाटवाली बारीक गोटा लगी हुई चादर को इकलाई कहते हैं। (२) निर्द्वन्द्वता। तनहाई। अकेलापन।

इकवाई-संज्ञा स्त्री० स्थूणा विशेष। एक प्रकार की निहाई।

इकसर-वि० (१) दूसरा पर्त न रखनेवाला। (२) अकेला।

क्रि० वि० प्रायः। अकसर।

इकसूत-वि० एकत्र। इकट्ठा। मिलाहुआ।

इकहरा-वि० अकेला। केवल। एक ही टुकड़ा रखनेवाला।

इक़ाअ्त-[अ०] वमन करना। Vomit.

इकाई,-संज्ञा स्त्री० दे० "एकाई"।

इकाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्दन का पिछला भाग। मन्या। Back of neck

इक़ा.ह:-[अ०] व्रण के भीतर पूय उत्पन्न होना। क्षत का पिपयाना।

इकौता-संज्ञा पुं० पाद पर उत्पन्न होनेवाला स्फोट। पैर की एक प्रकारकी फुन्सियाँ। उकवत।

इकौना-संज्ञा पुं० मिश्रित अन्न। जो अनाज छँटा न हो।

इकौंज-संज्ञा स्त्री० काकबन्ध्या। एक ही बार संतान उत्पन्न करनेवाली स्त्री। जिस औरत के दूसरी बार बच्चा न निकले। "बाँझ अच्छी इकौंज बुरी" (लोकोक्ति)

इ(अ)क़्आद-[अ०] पंगुत्व। लँगड़ापन। अवयव का वह विकार जो बैठने के लिये विवश करे।

.इ.क़:-[अ०] बालक के शरीर पर के वे बाल जो उसके जन्मकाल से हों।

इकट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार की घास । इकड़–बं० । प० मु० ।

संस्कृत पर्य्याय—बहुमूलः (त्रि०), कोशाङ्गः इत्कटः (हा०), बहुमूलकः (भा०) । (२) बदरवृक्ष । बेर का पेड़ । रत्ना० ।

इकबाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सौभाग्यप्रद योग विशेष । ताजक के मतानुसार नवग्रह के केन्द्र (१, ४, ७, १०) अथवा पणफर (२, ५, ८, ११) में पड़ने और दूसरे स्थान (३, ६, ९, १२) ख़ाली रहने से इकबाल नाम का योग आता है ।

इक्किरि, इक्किरि-गहा–[सिं०] तालमखाने का क्षुप । इक्षुगंधा । (Asteracantha Longifolia, *Necs.*) स० फा० इं० । दे० "तालमखाना" ।

इक़्ज़ाऽ–[अ०] (१) आँख में घास-पात पड़ जाना । (२) नेत्र से घास-पात निकालना ।

इक़्तअ़्रार–[अ०] हाँफना ।

इक्तसाबी–[अ०] वह वस्तु जो असली और जन्म से न हो । अर्जित । प्राप्त । उपार्जित । तिब्बकी परिभाषा वह रोग वा आवयविक विकार जो पैतृक या जन्मसिद्ध (सहज) न हो, परंतु जन्म के पश्चात् किसी कारणवश उत्पन्न हो जाय । Acquired.

इक़्(फ़्)तिज़ाज़–[अ०] कुमारिच्छदभ्रंश । कुमारिच्छद का नष्ट करना । Defloration.

इक्तिज़ाज़्–[अ०] आहार से इस प्रकार उदर परिपूर्ण होना जिसमें श्वास लेना कठिन हो ।

एक्तिनार–[अ०] एकत्रीभवन । सांद्रीभवन । दृढ़ीभवन । इकट्ठा होजाना । परिपूर्ण हो जाना । तिब की परिभाषा में किसी अवयव का कठिन या ठोस हो जाना ।

इक़्तिमाह–[अ०] चूर्ण करना । बुकनी बनाना । (२) सूखा सत्तू खाना । (३) अंगूरी शराब पीना ।

इक्तियाऽ–[अ०] अपने आपको दाग देना ।

इक्तियाम्–[अ०] अँगुलियों के सिरों पर बैठना । उँगलियों के छोरों के बल बैठना ।

इक़्तियाम्–[अ०] नासिका छेदन । नाक कटना ।

इक़्तिलाफ़–[अ०] नख का जड़ से उखड़ जाना ।

इक़्तिवाऽ–[अ०] दृढ़ वा बलवान होना ।

इक़्तिशाम–[अ०] नासिका-मूल-छेदन । नाक को जड़ से काट डालना ।

इक़्तिहाल्–[अ०] अञ्जन करना । सुर्मा देना । किसी औषधि को सुर्मा की भाँति आँख में लगाना ।

इक्तिहाल–[अ०] कुहूल अर्थात् बुड्ढा होना । वृद्ध होना । ४० और ६० वर्ष के भीतर होना ।

इक्थार्गन–[अ० Ichthargan] एक हलके मटमैले रंग का गंधरहित चूर्ण है । सिल्वर इक्थियोलेट (Silver Ichthyolate) दे० "चाँदी" ।

इक्थियोकोला–[ले० Ichthyocolla] सरेशम माही । मछली का सरेश । आइसिन्-ग्लास (Isinglass)-अं० । दे० "सरेशममाही" ।

इक्थियोल–संज्ञा पुं० [अं० Ichthyol] एक प्रकार का तेल जो विशेष प्रकार के प्रस्तरीभूत द्रव्यों, विशेषकर पथराई हुई मछली से खींचा जाता है । इसमें १५ प्रतिशत गंधक होती है । इस तेल पर गंधकाम्ल (Sulphuric acid) की प्रतिक्रिया द्वारा और पुनः इसमें एमोनिया मिलाने से इक्थियोल प्राप्त होता है । यह एक ललाई लिए भूरा वा लगभग काले रंग का शीरा के सदृश गाढ़ा द्रव है जो स्वाद एवं गंध में अलकतरे के समान होता है ।

टिप्पणी—जब उद्भिज्ज एवं प्राणि-वर्ग बहुत सी मिट्टी और पत्थरों में दब जाते हैं और सड़ते गलते नहीं, तब दीर्घकालोपरांत वे पाषाणीभूत हो जाते हैं अर्थात् वे पथरा जाते हैं वा प्रस्तर रूप में परिणत हो जाते हैं । अस्तु, पत्थर का कोयला वस्तुतः पर्वतों में दबे हुए वृक्ष हैं जो काल व्यतीत होने से प्रस्तरीभूत होगये अर्थात् पत्थर बन गए हैं । इसी प्रकार प्राणी भी पत्थर बन जाते हैं ।

पर्य्या०—पथराई हुई मछली का तेल । प्रस्तरीभूत मत्स्य तैल । पाषाणी-भूत मत्स्य तैल । ज़ैतुस्समके म्लुमुतहज्जर (अ०) । इक्थियोल Icthyol (अं०) । एमोनियम् इक्थियोल सल्फोनेट Ammonium ichthyol sulphonate (रासा० ना०) ।

संज्ञा-विवरण—इक्थियोल यूनानी भाषा का एक यौगिक शब्द है, जिसका अर्थ इक्थियो= मछली+आलियम=तैल अर्थात् मछली का तेल है। क्योंकि यह तेल फासिल-फिश अर्थात् पथराई हुई मछली प्रभृति से खींचा जाता है, इसलिए इसे इस नाम से अभिहित किया गया।

नॉट ऑफ़िशल

(*Not Official*)

विलेयता—यह जल में सुविलेय होता है और एलकोहल (९०%) तथा ईथर में अंशतः विलेय होता है। परंतु इन दोनों के मिश्रण में सुगमतापूर्वक विलीन हो जाता है। ग्लीसरीन, चर्बी, तैल, साफ्ट पैराफीन और लेनोलीन में यह सरलता-पूर्वक मिश्रित हो जाता है।

प्रभाव—यह परिवर्त्तक, शोथहर और पचन-निवारक है।

मात्रा—१० से ३० ग्रेन (५ से १५ रत्ती)।

इक्थियोल के योग तथा पेटेंट औषधें—

(१) लिथियम इक्थियोल सल्फोनेट Lithium ichthyol sulphonate तथा (२) सोडियम् इक्थियोल सल्फोनेट में से प्रत्येक की मात्रा १० से ३० ग्रेन (५ से १५ रत्ती है।

(३) ज़िंसाई इक्थियोसल्फोनेट Zinci icthyosulphonate-इसका वहिर प्रयोग होता है।

(४) कलोडियम् इक्थियोल Collodium icthyol-इक्थियोल १ भाग, कलोडियन ७ भाग-इसको पामा (Eczema), विसर्प (Erysepalas) और अन्य त्वग्रोगों में लगाया करते हैं।

(५) मिस्च्युरा इक्थियोल Mistura icthyol-इक्थियोल १ भाग, शर्बत २॥ भाग और पेपरमिंट वाटर ७॥ भाग। मात्रा—१ से ३ ड्राम किंचित् जल में मिलाकर।

(६) पिल्युला इक्थियोल एमोनिएटी Pilula icthyol ammoniate-एमोनियम इक्थियोल २॥ ग्रेन, कंपाउंड ट्रैगेकंथ पाउडर ½ ग्रेन, लिकरिस पाउडर १॥ ग्रेन-सबकी एक गोली बनाएँ। आवश्यकता होने पर गरम प्लेट पर बनाएँ।

(७) टेब्लेट इक्थियोल Tablet icthyol-प्रत्येक टेब्लेट में २॥ ग्रेन दवा होती है। मात्रा—एक टेब्लेट वा अधिक।

(८) सपाज़िटरीज़ ऑफ इक्थियोल Supposituries of icthyol-प्रत्येक सपाजिटरी में ३ ग्रेन इक्थियोल होता है। यदि तात्कालीन प्रयोग के लिए बनाना हो तो ग्ल्युको जेलेटीन… से बनाएँ। वरन् १ भाग मोम और २ भाग ऑइल ऑफ थियोब्रोमा मिलाकर उससे वर्त्ति प्रस्तुत करें।

(९) पेसरीज़ ऑफ इक्थियोल Pessaries of icthyol-ये वर्त्तिकाएँ १० प्रतिशत ताक़त की होती हैं जो जेलेटीन या कोकोबटर बेसिस से बनाई जाती है। १० प्रतिशत वाली श्वेतप्रदर (Leucorrhoea) और पाँच प्रतिशत शक्ति की स्त्रियों के सूज़ाक में प्रयुक्त होती हैं।

(१०) अंग्वेएटम् इक्थियोल Unguentum icthyol-लेनेलीन या ऑलिव ऑइल और लार्ड में १० से ५० प्रतिशत इक्थियोल मिलाकर मरहम बनाई जाती है। यह मरहम विचर्चिका (Psoriasis) के लिए गुणकारी है।

(११) इक्थियोल रीसॉर्सीन Icthyol resorcine-रीसॉर्सीन में १० प्रति इक्थियोल मिलाया हुआ होता है।

(१२) इक्थियोल पेष्ट Icthyol paste-एमोनियम् इक्थियोल २५ भाग, कार्बोलिक एसिड २॥ भाग-इन दोनों को २२॥ भाग उष्ण जल में विलीन करके उसमें ५० भाग निशास्ता मिला दें।

(१३) इक्थियोल वार्निश Icthyol varnish-इक्थियोल ४० भाग, श्वेतसार ४० भाग, सोल्युशन ऑफ एलब्युमेन १ या १॥ भाग, पानी उतना जितने से यह पूरा १०० भाग होजाय। उपर्युक्त पेष्ट (लेप) या वार्निश(तेल) को अरुण युवान पिडिका वा मुँहासे (Acne rosacia) पर लगाया करते हैं। विकारी त्वचा पर लगाने से ये शीघ्र सूख जाते एवं सरलतापूर्वक धोये जा सकते हैं।

(१४) इक्थियोल ऑइंटमेंट Icthyol ointment—इक्थियोल ४० ग्रेन, सैलिसिलिक एसिड ८ ग्रेन, सॉफ्ट पैराफ़ीन १ आउंस तक, (लंडन हॉस्पिटल)।

(१५) इक्थियोफार्म Icthyoform–यह एक कालापन लिये भूरे रंग का चूर्ण है, जो पानी और एलकोहल में अविलेय होता है। ट्युबरकली रोगों में तथा आंत्र विकारों में पचन-निवारक रूप से इसका व्यवहार किया करते हैं। मात्रा—१½ से ५ ग्रेन।

(१६) फेरिक्थोल Ferricthol–यह लौह तथा इक्थियोल का यौगिक है जो कालापन लिए भूरे रंग का चूर्ण होता है। इसको रक्ताल्पता रोग (Anaemia) में बर्त्तते हैं। मात्रा—२ ग्रेन (१ रत्ती)।

(१७) थियोल Thiol-यह इक्थियोल की एक कृत्रिम प्रतिनिधि है। यह चूर्ण वा द्रव रूप में होता है और जल-विलेय होता है। यह उग्र प्रकारके इरिथेमा (त्वक्प्रदाह), विसर्प (Erysepelas) और स्त्रियों के प्रादाहिक रोगों तथा योनिकंडू में उपयोगी है। मात्रा—सूखे की २ से १० ग्रेन (१ से ५ रत्ती)।

(१८) इक्थैल्बीन Icthalbin–यह ऐल्ब्युमेन और इक्थियोल का एक यौगिक है, जो भूरे रंग का स्वाद रहित एवं निर्गन्ध चूर्ण रूप में होता है। इसको पामा (Eczema), आंत्रगत वात व्याधियों तथा ज्वरोपरांत होनेवाली निर्बलता में बर्तते है। मात्रा—१ से १५ ग्रेन (३० ग्रेन दैनिक तक)।

इक्थियोल के प्रभाव तथा प्रयोग

(वाह्य)

पुरातन त्वग्रोगों, उदाहरणतः चिरकारी पामा (Chronic eczema), विचर्चिका वा चंबल (Psoriasis), मुँहासे (Acne), तरगंज भेद (Favus) और ल्युपस प्रभृति पर इसे लगाते हैं तथा चिरकारी आमवात में इसकी मालिश करते हैं। इससे दर्द एवं सूजन कम होजाती है। इसकी गंध निवृत्यर्थ इसमें साइट्रोनेला अर्थात् रूसा का तेल मिला लिया करते हैं। स्त्रियों के सूजाक और श्वेतप्रदर में तूलवर्त्तिकाएँ एवं योनिवर्त्तिकाएँ प्रयोग में लाते हैं तथा इसे फटे हुए स्तनवृन्त वा भिटनी और विसर्प (Zrysepelas) पर लगाते हैं। वृद्ध मनुष्य की खाज (Prurigo seniles) में इसका १० प्रतिशत का जलीय घोल और कंडू (Pruritis) एवं क्षत पर इसका १० प्रतिशत घोल लेड और मर्करीके यौगियोंके साथ मिलाकर उपयोग करने से उनके सल्फाइड नहीं बनते।

आभ्यंतर

इसको आमवात (Rheumatism), फिरंग, कुष्ठ और उरःक्षत आदि रोगों में देते हैं।

परीक्षित योग

(१) इक्थियोल एमोनिएटी	१ ड्राम
अंग्वेंटम् लेनोलीनी	१ आउंस

यथा विधि मरहम बनाएँ। यह चिरकारी पामा (Chronic eczema) और विचर्चिका (Psoriasis) में लाभकारी है।

(२) इक्थियोल एमोनिएटी	१ ड्राम
वरी सोल	१ आउंस

दोनों को मिलाकर वार्निश बनाएँ और उसमें से थोड़ा लेकर मुँहासों पर लगाकर सूखने दें। ऐक्नी रोज़ेशिया (अरुण यौवन-पिड़का) में गुणकारी है।

(३) इक्थियोल एमोनिएटी	१ ड्राम
अंग्वेंटम क्राइसारोबीनी	१ ड्राम
लाइकर कारबोनस डिटर्जेंस	½ ड्राम
अंग्वेंटम पैराफीनी	१ आउंस

सबको परस्पर मिलाकर विकारी स्थल पर लगाएँ। एक्नी (मुँहासों) के लिए लाभकारी है।

(४) इक्थियोल एमोनिएटी	½ ड्राम
आलियम् एमिग्डली	४ ड्राम
लाइकर कैल्सिस	४ ड्राम

सबको परस्पर मिलाकर विदीर्ण स्तन-वृन्त (Cracked nipple) पर लगाएँ।

(५) इक्थियोल एमोनिएटी	१ ड्राम
अंग्वेंटम् एसिड बोरिक	४ ड्राम
अंग्वेंटम् पैराफीनी	१ आउंस

सबको मिलाकर मरहम बनाएँ। जले हुए स्थान पर लगाना हितकर है।

(६) इक्थियोल एमोनिएटी	२ ड्राम
लाइकर प्लम्बाई फार्टिस	१ ड्राम
एक्वा लारोसेरेसाई	२ ड्राम
एक्वा डिष्टिलेटी	४ आउंस पर्यंत

दोनों को मिलाकर लोशन बनाएँ। भगोष्ठों की खाज के लिए उत्तम है।

(७) इक्थियोल एमोनिएटी	४ ड्राम
अंग्वेंटम पैराफीनी	१ आउंस

दोनों को मिलाकर विकारी स्थल पर लगाएँ। विसर्प (Erysepelas) में गुणकारी है।

(८) इक्थियोल	१ ड्राम
एसिडाई सैलिसिलास	२० ग्रेन
जिंसाई आक्साइडाई	२ ड्राम
अमाइलाई	४ ड्राम
पेटेरोलेटी	१ आउंस

सबको मिलाकर विकृत स्थल पर लगाएँ। विचर्चिका (Psoriasis) में उपयोगी है।

इक्थियोल ऑइण्टमेण्ट-[अं० Ichthyol ointment] इक्थियोल का मलहम। दे० "इक्थियोल"।

इक्थियोल पेस्ट-[अं० Ichthyol paste] दे० "इक्थियोल"।

इक्थियोल रीसॉर्सीन-[अं० Ichthyol resorcin] दे० "इक्थियोल"।

इक्थियोल वार्निश-[अं० Ichthyol varnish] दे० "इक्थियोल"।

इक्थैल्बीन-[अं० Ichthalbin] अलब्यूमेन (Albumen) और इक्थियोल का एक मिश्रण। दे० "इक्थियोल"।

इक्थोफॉर्म-[अं० Ichthoform] कालापन लिये हुये भूरे रंग का एक चूर्ण जो कि जल एवं ऐलकुहॉल (मद्यसार) में अविलेय होता है। दे० "इक्थियोल"।

इक्नाफ़-[अ०] (१) उदर का कठोर हो जाना। उदर-काठिन्य। (२) जिह्वा का रुक जाना। (३) हाथ पर गट्टा पड़ जाना।

इक्नोकार्पस फ्रुटिसेन्स-[ले० Ichnocarpus frutescens, *Br.*] श्यामलता। दुद्धी। शारिवाँ। नलतिगा-ते०। मेमो०। इं० मे० प्लां०।

इक़्फ़ाऽ-[अ० क़फ़ाऽ का बहु०] गरदन और सिर के पीछे का भाग। ग्रीवा एवं शिर का पृष्ठ भाग।

इक़्फ़ाफ़-[अ०] (१) आँसू जारी होना। अश्रुधारा बह चलना। (२) आँख के काले भाग का ऊपर की ओर चढ़ जाना।

इक्बार-[अ०] (१) स्त्री का ऋतुमती होना। (२) मज़ी या वदी का उत्सर्ग।

इक़्मांअ्-[अ०] गिलन के बिना जल का कण्ठ के नीचे उतर जाना। बिना निगले पानी का गले से उतर जाना।

इक्माक-[फ़ा०] वमन। छर्दि। मतली।

इक़्माद-[फ़ा०] (१) शिश्न को खड़ा करना। शिश्न प्रहृष्टीकरण। नूनी खड़ा करना। (२) शुक्र स्खलन। वीर्य पातन। धात गिराना।

इक़्मिअ्तात-[अ०] (१) उदर के ऊपरी भाग का मोटा और नीचे के भाग का पतला होना। (२) उदर का वलियुक्त (शिकनदार) होना। पेट पर बल पड़ना।

इक़्मिहलाल-[अ०] जाड़े से सिकुड़ जाना।

इक्य-[अ०] नवजात शिशु का मल। Meconium.

इक़्याऽ-[अ०] वमन करना। क़ै कराना। Vomit.

इक़्यान-[अ०] सुवर्ण। स्वर्ण। सोना। gold (Aurum)

इक़्राऽ-[अ०] (१) स्त्री का ऋतुमती होना। (२) ऋतु-स्नान करना। ऋतु से शुद्ध होना। (३) गर्भस्थिति। गर्भधारण।

इक़्रान-[अ०] (१) फोड़े का मुँह करना। व्रण आदि का फूटने योग्य होना। (२) रग का रक्तपूर्ण होकर उभर आना। Point

इक़्राफ़–[अ०] किसी एक की व्याधि का अन्य में प्रविष्ट हो जाना। रोग संक्रमण। छूत लगना। Contagion.

इक़्राब–[अ०] गर्भवती के प्रसव का समय निकट आना।

इक़्रास्–[अ०] किसी वस्तु को चुटकी या अँगुली के छोरों से पकड़ना।

इक़्रा.ह–[अ०] वह रोगी जिसको फोड़े निकले हों। व्रण रोगी। व्रणी।

इक़्लाअ़्–[अ०] ज्वर उतर जाना। ज्वर रुक जाना। विराम। Intermission.

इक़्लाल–[अ०] झुर्झुरी और जाड़ा मालूम होना। शीत लगना। कंप होना। Rigor.

इक़्लिअ़्फ़ाफ़–[अ०] शीत वा वृद्धापन के कारण उँगलियों का सिकुड़ जाना।

इ(ए)क्लिप्टा प्रोस्टेटा-[ले० Eclipta prostata, *Roxb.*] भाँगरा। भँगरैया। दे० “भँगरा”।

इक़्लीम्–[अ०] प्रदेश। व्यवच्छेद शास्त्र की परिभाषा में शरीर का कोई परिमित भाग वा स्थल। Region

इक़्लीम् ख़स्.ली–[अ०] नाभि और पेड़ू के बीच का स्थान। कौड़ी प्रदेश। Hypogastric-region.

इक्लील–[अ०] [बहु० अकालील] (१) ताज। मुकुट। (२) व्यवच्छेद शास्त्र की परिभाषा में नेत्र की श्यामता और श्वेतता की सम्मिलित सीमा। (३) नेत्र कृष्ण-मंडल। आँख का काला भाग। (४) नख के इर्द-गिर्द मा मांस। नाखून के चारों ओर का गोश्त।

इक्लीली–[अ०] चक्षु के कृष्ण-मंडल के किनारे का क्षत जो किसी भाँति कनीनिका पर भी होता है। जितने श्याम भाग पर यह क्षत होता है वह श्वेत और जितने श्वेत भाग पर होता है वह लाल दृष्टिगोचर होता है। कनीनिका-क्षत। Corneal ulcer.

इ(अ)क्लीलुल् जबल–[अ०] उ़बैस्.रान। गुलेसुर्ख़ बहरी। रोज़मेरिनस आफ़िसिनलिस Rosmarinus officinalis (ले०)। रोज़मेरी Rosemary (अं०) ओकला ओक़ा (यू०)।

नोट–उ़बैसरान संज्ञा के विषय में किसी-किसी प्राचीन यूनानी चिकित्सकमें मतभेद है परंतु क़ामूस, इंगलीजी व अरबी ल्युहन्ना अबकारियूस में उबैसरान को रोज़मेरी का पर्याय लिखा है। किंतु मुहीत आज़म आदि ग्रंथोंमें इक्लीलुल् जबल और उबैसरान दोनों का पृथक् पृथक् गुणधर्म उल्लिखित है।

तुलसी वर्ग
(*N. O. Labiatae.*)

उत्पत्तिस्थान एवं वर्णन—एक प्रसिद्ध पौधा जो स्पेन, सिकंदरिया तथा मिश्र देश में पार्वती, कड़ी एवं निर्जल भूमि तथा सूखे जंगलों में उगता है। इसीलिए इसको इकलीलुल् जबल कहते हैं। यह नदी आदिके कूलपर भी होता है। इस कारण रोज़मेरी (गुले सुर्ख़ बहरी) कहलाता है। दक्षिणी यूरोप और इंगलैंड में यह बहुत होता है। इसका पौधा रबी की फ़सल में होता है और ग्रीष्म के अंत तक रहता है। सिकंदरिया में लोग इसकी खेती करते हैं। इसका पौधा एक हाथ से अधिक ऊँचा होता है। पत्ती लम्बी, बारीक, कालापन लिए होती है। शाखा काष्ठीय एवं कठोर और फूल सुगंधित कुछ-कुछ आसमानी, सफ़ेदी लिए होता है तथा पत्तियों के बीच से निकलता है। फल कड़ा होता है। बीज सूखने पर उससे झड़ जाता और सरसों से भी महीन होता है। स्वाद में यह कड़ुआ एवं तीक्ष्ण, कुछ कुछ कसैला और सुगंधित होता है।

प्रकृति—तीसरी कक्षा में उष्ण और रूक्ष है।

हानिकारक—उष्ण प्रकृति को। इसका **दर्पघ्न**—सिकंजबीन है। **मात्रा**—१०॥ माशा वा ३ दिरम तक। रोधोद्घाटन एवं जलोदर के लिए इसकी मात्रा २ मिसक़ाल वा (९ माशा) वा इससे अधिक आवश्यकतानुसार। अंताकीने इसकी मात्रा १७॥ मा० लिखा है। **प्रतिनिधि**—अफ़संतीन।

यह शोथ-विलायक और रोधोद्घाटक है। इसका शर्बत वायुकारक, दमा और पुरानी तर खाँसी को लाभकारी तथा फुप्फुस को निर्मलकारी है और उस मूर्च्छा (सर्द ख़फ़क़ान) एवं

जलोदर को जो उष्मासहित तथा पिपासाधिक्य के कारण न हो, गुणकारक है। यह प्लीहा तथा यकृत के अवरोधों का उद्घाटक, यकृतशूल का नाशक, वातज पांडु (यर्क़ान सौदावी), वृक्क और वस्ति के अश्मरी का छेदक, मूत्रप्रवर्त्तक, आर्त्तव प्रवर्त्तक सूत्रप्रणाली तथा गर्भाशय-शोधक है। इसका प्रलेप पुरातन सूजन को बिठानेवाला है। इसकी पत्ती उपर्युक्त गुणों में अन्य अवयवों की अपेक्षा प्रबलतर होती है। और जब इसको आँख के चारों ओर चिपकाते हैं, तब शीतल दर्दों को बात की बात में शांत करती है—उसे स्वाभाविक अवस्था पर लाती है। कहते हैं कि गुणधर्म में यह सभी भाँति इक्लीलुल् मलिक के समान है और इसके प्रयोग भी प्रायः वैसे ही हैं। मु० आ०।

नोट—डॉक्टरी में इक्लीलुल्जबल का तेल काम में आता है और ब्रिटिश फार्माकोपिया में यह ऑफिशल है।

इक़्लीलुल्जबल का तेल

पर्य्या०—ऑलियम राजमेराइनी Oleum rosmarini (ले०)। ऑइल ऑफ़ रोज़मेरी Oil of rosemary (अं०)। दुह्न इक्लीलुल्जबल, रोग़न उबैसरान, रोग़न गुलेसुर्ख़ बहरी।

वर्णन—यह एक प्रकार का तेल है जो रोजमेराइनस ऑफिसिनेलिस (Rosmarinus officinalis) अर्थात् इक्लीलुल् जबल बाग़ी की पुष्पवान शाखाओं से खींचा जाता है।

तैल—यह वर्णरहित वा हलका पिलाई लिए एवं उड़नशील होता है। इसकी गंध रोज़मेरी की तरह, स्वाद उष्ण सुगंधित, आपेक्षिक गुरुत्व ·९०० से ·९१५ तक।

विलेयता—यह दो भाग, एक भाग एलकोहल (मद्यसार ९०%) में विलीन होजाता है।

रासायनिक संघटन—इसमें (१) टर्पीन, (२) साइटेरोपेटीन, (३) कैम्फर और (४) बोर्नियोल विभिन्न अनुपात में पाये जाते हैं।

प्रभाव—आरुण्यकारक (Rubifacient), उत्तेजक और आध्मानहर।

मात्रा—½ से ३ मिनिम=(·३ से १·८ घन शतांशमीटर) यह पड़ता है—लिनिमेंटम सैपोनिस, टिंक्च्युरा लैवेंड्युली कंपाज़िटस और अधोलिखित ऑफिशल योग में—

सम्मत योग
(*Official preparations*)

स्पिरिटस रोजमेराइनी Spiritus rosmarini (ले०)। स्पिरिट आफ़ रोजमेरी Spirit of rosemary (अं०)। इकलीलुल्जबल का रूह। रूह इक्लीलुल् जबल। रूह गुले सुर्ख़ बहरी।

निर्माण-विधि—आइल आफ रोज़मेरी एक फ्लुइड आउंस, एलकोहल (९०%) आवश्यकतानुसार। आइल आफ रोज़मेरी में इतना एलकोहल मिलाएँ कि प्रस्तुत स्पिरिट का द्रव्यमान दस फ्लुइड आउंस हो जाय।

मात्रा—५ से ३० मिनिम=(·३ से १·८ घन शतांशमीटर)

गुणधर्म अर्थात् प्रभाव और प्रयोग

वाह्य

त्वचा पर इस तैल का प्रभाव उत्तेजक और आरुण्यकारक होता है। सुरभिपूर्ण होने के कारण इसको अधिकतया हेयर आइल (केश वर्द्धक तैल) या हेयर वाश (केश-वर्द्धक धावन) रूप से, विशेषकर खालित्य (Baldness) में केशवर्द्धनार्थ उपयोग में लाते हैं। लिनिमेंट्स वा अभ्यंग वा उद्वर्त्तन की औषधों में भी इसे सुगंधि के लिये डालते हैं। खालित्य में चँदिया पर लगाने के लिये इसमें कैंथेरीडीन मिला लेने से इसका और उत्तम प्रभाव होता है।

आभ्यंतर

अन्य सुरभित सूक्ष्म तेलों की भाँति यह भी एक प्रबल उत्तेजक, आक्षेपहर वा उद्वेष्टनहर तथा आध्मानहर है; किंतु इसका आभ्यंतरिक प्रयोग नहीं किया जाता। यह पेपरमिंट की तरह कार्य करता है।

परीक्षित प्रयोग

खालित्य Baldness के लिए निम्नलिखित योग अति ही लाभकारी हैं—

(१) आलियाई रोज़मेराइनाई	४ ड्राम
लाइकर एपिसपैष्टिसाई	२ ड्राम
आलियाई एमिग्डलिसस	१॥ ड्राम
स्पिरिटस कैम्फ़ोरी	३ आउंस
ग्लीसरीनम् बोरीसाई	१ आउंस
आलियाई रोज़ी	८ मिनिम
टिंक्च्युरा जेबोरैंडाई (बी० पी० ६८)	१ आउंस

सकल द्रव्यों को परस्पर मिलाकर रखें। इसमें से थोड़ी दवा लेकर उसे हर रात को बालों की जड़ों में मलें।

प्रयोग--(Baldness) में इसका उपयोग अतीव गुणकारी सिद्ध होता है।

(२) स्पिरिटस रोजमेराइनी	१ आउंस
टिंक्च्युरा कैंथेरीडीस	१ आउंस
ग्लीसरीनी	२ ड्राम
सैपोनीन	५ ग्रेन
एक्वाडिष्टिलेटी	८ आउंस पर्यंत

सबको मिलाकर, इसमें से थोड़ी दवा लेकर बालों की जड़ों में मलें। (Baldness) में उपयोगी है।

(३) स्पिरिटस रोजमेराइनी	२ आउंस
सैपोमालिस	१ आउंस
एक्सट्रैक्टम कोल्लाई लिक्विड	२ आउंस
लाइकर एमोनिया	१ आउंस
एक्वा डिष्टिलेटी	८ आउंस पर्यंत

इसमें से २ चमचा-मेज़ भर दवा लेकर, उसे १ पाइंट गरम पानी में मिलाकर, उससे बालों को खूब मल-मलकर धोएँ।

इक्लीलुल् मलिक-संज्ञा पुं० [अ०] एक बूटी की फलियाँ जो छोटी-छोटी हुलाली शक्ल की नाखून की तरह गोल होती हैं। इनके भीतर अत्यन्त सूक्ष्म बीज होते हैं।

पर्य्या०—नाखूना (हिं०)। अस़ाबउ़ल मलिक (अ०)। ना.खूनः, ग्याह क़ैस़र, शाह अफ़्सर (फ़ा०)। टॉन्किन बीन Tonkin bean (अं०)।

संज्ञा-विवरण—इक्लीलुल्मलिक एक यौगिक शब्द है, जिसका अर्थ इक्लील=मुकुट,ताज+म़ल़िक=राजा अर्थात् राजमुकुट है। पूर्वकाल में इसमे ताज बनाए जाते थे, जिसे राजा लोग अपने शिर पर धारण करते थे। इसलिये इसे उक्त संज्ञा से अभिहित किया गया। परन्तु नफीसी के लेखक लिखते हैं कि मेरे विचार से इसके उक्त नाम पड़ने का कारण यह है कि यह घास शिरोशूल के लिए गुणकारी है।

शिम्बी वर्ग

(*N. O. Leguminosae*)

उत्पत्ति-स्थान—फ़ारस। इकलीलुलमलिक नाम से फारस की खाड़ी से बंबई में इसको क्षुद्र अर्द्धचन्द्राकार फलियों का निर्यात होता है, जिसे आरब्य लेखक दीसक़ूरीदूस लिखित मेलिलोटस मानते हैं। मख़्जनुल् अद्विया और मुहीत आज़म में इकलीलुल मलिक का यूनानी नाम मालीलोतर लिखा है जो वस्तुतः पूर्वोक्त मेलिलोटस है। मख़्जनुल् अद्विया में इसका फ़ारसी नाम गियाह क़ैसर लिखा है। उसमें यह और लिखा है कि यह दो प्रकार का होता है। दोनों जाति के पौधे बहुधा समान होते हैं। हाँ! फली में अन्तर होता है। इनमें से एक की फली अर्द्धचन्द्राकार होती है, जिसमें मेथीकी तरह कुछ-कुछ गोल बीज होते हैं। दूसरे की फली अपेक्षाकृत क्षुद्रतर एवं किंचिन्मात्र वक्र होती है दोनों में से मेंथी की सी गंध आती है। औषधीय कार्य के लिये उत्तम फलियाँ वे हैं जो कड़ी, पिलाई लिये सफ़ेद. एवं सुगंधित हों और जिनमें पीले रंग के बीज हों। मुसलमान चिकित्सकों ने इसके गुणधर्म-वर्णन में यूनानियों का ही अनुकरण किया है।

डॉक्टर डिमक महोदय स्वनिर्मित फार्माकोग्राफिया इंडिका नामक ग्रंथ के प्रथम भाग के पृष्ट ४०५ पर लिखते हैं—

"दोप्रकार का इक्लील अर्थात् Malilotus Alba, *Lam.* और Melilotus parviflora, *Desf.* भारतवर्ष में भी उत्पन्न होता है। अस्तु, शरदृतु में यह बंगाल और बेलगाँव में शाकार्थ बोया भी जाता है, जहाँ इसे तिरापौ कहते हैं।" उनके मत से यह संस्कृत ग्रंथकारों का "माल्य" है और भारतवर्ष में यह

(Chaplets) माला बनाने में काम आता है।

मख़्ज़न में इसके एक भारतीय भेद का उल्लेख मिलता है। जिसके फल अत्यन्त क्षुद्र होते हैं और जिसे फिरंग कहते हैं।

नोट—आयुर्वेदीय ग्रंथों में इक्लीलुलमलिक का नाम 'नख' या 'नखें' लिखा है। परन्तु अज़्फ़ारुत्तीब का भी यही नाम उल्लिखित है। सारांश यह कि औषध-विक्रेताओं से नख या नखें नाम से दो पृथक् दवाएँ मिलती हैं। एक अर्द्ध-चंद्रकार वानस्पतिक फलियाँ और दूसरी नाख़ून-परियाँ। अत: वानस्पतिक फलियाँ तो 'इक्लीलुल मलिक' हैं और नाख़ून की आकृति की दूसरी दवा अज़्फ़ारुत्तीब या नाख़ून परियाँ अर्थात् नख हैं।

वानस्पतिक वर्णन—एक पौधे का फल, जो टहनियों की छोर पर छत्राकार, नखवत् अर्द्धचंद्र की आकृति का होता है। यह क्षुद्र हँसिया की शकल की भूरापन लिए पीले रंग की फली है, जो किंचित् बाहर की ओर वक्र चंचुवत् होती है। आधार से शीर्ष तक का माप ⅙ इंच होता है। फली की लंबाई क़रीब-क़रीब एक इंच होती है। इसके दोनों पार्श्व पर गहरी रेखा होती है। फली एक माध्यमिक पर्दे द्वारा दो कोषों में विभक्त होती है। इसमें से प्रत्येक कोष में क्षुद्र भूरापन लिए पीले रँग के अष्टपहल बीजों की इकहरी पंक्ति होती है। बीज का एक पार्श्व गंभीर काटों (Notch) से व्याप्त होता है। अणुवीक्षण यंत्र के नीचे रखकर देखने से यह असंख्य काले धब्बों से चिह्नित दिखाई देता है। मुसलमान लेखकों का दूसरा भेद, जिसकी फली अति क्षुद्र एवं अल्पवक्राकार होती है, बाजार में उपलब्ध नहीं होता।

डिमक महोदय इसके पौधे की लेटिन संज्ञा "ट्रिगोनेला अंकेटा" (Trigonella Uncata, *Boiss*) लिखते हैं। किसी-किसी ग्रंथ में इसकी लेटिन संज्ञा मेलिलोटस ऑफिसिनेलिस Melilotus officinales. भी लिखी है।

तज़्'मा नफ़ीसी में लिखा है कि इसके बहुत से भेद हैं। सबसे अच्छी क़िस्म वह है जिसका पत्ता दिरम की तरह और हरे रंग का होता है। शाखाएँ अत्यंत बारीक होती हैं और फूल पीले रंग के लगते हैं। इसके पीछे कोषावृत पतली-पतली फलियाँ लगती हैं जो लड़कियों के कंगन की तरह होती हैं (इन्हीं को इक्लीलुल मलिक कहते हैं)। इनके भीतर राई के दाने से भी बारीक छोटे-छोटे गोल बीज होते हैं। यही फलियाँ औषध-कार्य में आती हैं।

रासायनिक संघटन—इसके पौधे और फली से एक प्रकार का कोमेरीन (Coumarin) नामक स्फटिकीय अति तीव्र-गंधि सत्व प्राप्त होता हैं। यह सैलिसिलिक ऐल्डिहाइड से कृत्रिम रूप से भी तैयार किया जाता है। यह जल में तो अविलेय होता है, किंतु एलकोहल और वसाओं में विलेय होता है। यह ब्रिटिश मेटीरिया मेडिका में नॉट ऑफिशल (Not official) है। दे० आगे "कोमेरिनम"।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—प्रकृति शेख के अनुसार यह प्रथम कक्षा में रूक्ष तथा उष्ण है। किसी-किसी के अनुसार सम-शीतोष्ण है। हानिकर्त्ता—शिथिल अंगों तथा अंड को। दर्पघ्न—आस, मधु, मवेज़ और अंजीर। प्रतिनिधि-समभाग बाबूना, लोबान, तीसी, मेथी, फ़रासियून और प्रलेप में अर्द्ध भाग अंजीर के पत्ते। मात्रा-३॥ मा० से ६ मा० तक। इसका उसारा ५।। तो० तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसमें कुछ न कुछ धारक गुण है। यह शोथ विलीनकर्त्ता एवं दोष परिपाक करता और वेदना शमन करता है। यह तारल्य जनक है एवं अंगों को बल प्रदान करता है। इसका कारण यह है कि यह शीतल तथा उष्ण दो अंशों से संघटित है। इसमें उक्त दोनों अंश लगभग बराबर हैं। किंतु यह दोनों अवयव रूक्ष हैं। सुतरां इसके उष्णांश से विलेयता, परिपाक और तरलता की उपलब्धि होती है और शैत्यांश से स्तंभन (कब्ज़) तथा आंगिक शक्ति; किंतु, उष्णांश अधिक वलिष्ट नहीं, वरन् यह मवाद का नि:संदेह अभिशोषण करता। पर ऐसा

है नहीं। हाँ! शीतलांश से किसी प्रकार अवश्य बलवत्तर है। यही कारण है कि यह माद्दा का परिपाक करता और उसे विलीन (तहलील) करता है। उसी भाँति शरदंश भी बलिष्ट नहीं, क्योंकि यदि यह बलपूर्ण होता, तो इसकी धारक शक्ति (कब्ज़) भी बलवत्तर होती, परन्तु ऐसा है नहीं। इसके रूक्ष होने का प्रमाण यह है कि यह तो असंभव है कि धारक शक्ति आर्द्रतामय हो; क्योंकि धारण व स्तंभन की क्रिया अंगों के उपादानों के सिकुड़ने से प्राप्त होती है। और आर्द्रता व द्रवत्व अंगोंमें शिथिलता उत्पन्न करती है अर्थात् यह स्तम्भन शक्ति का सर्वथा विरोधी है। इसके अतिरिक्त इसके रूक्ष होने का एक प्रमाण यह भी है कि विलीनतार्थ रौक्ष्योत्पत्ति, नितांत आवश्यक है। इसलिये कि इससे आर्द्रता का नाश होता है। सारांश यह कि यह विलीनकर्त्ता (मुहल्लिल) है। अतएव यह मवाद को पतला भी करता है; क्योंकि मवादके पतला किए बिना तहलील (विलीनीकरण) असंभव है। यह स्तंभक भी है। अस्तु, यह अंगोंको बल प्रदान भी करता है और इस कारण वेदनाओं को शमन करता है। यह उनके मवाद को विलीन करता और अंगों को उनके मवादोत्सर्ग की योग्यता प्रदान करता है। आँख और कान की सूजन एवं वेदनाओं के लिये मैफ़ख़्तज के साथ कल्याणकारी है। (त० नफ़ी०)।

इकलीलुलमलिक सूजन उतारता, दोषों का परिपाक करता, रूक्षता एवं सूक्ष्मता प्रदान करता, कठिन शोथों को मृदु करता और अंगों को बल प्रदान भी करता है। मुआलिजात क़ानून की अरबी टीका में जिसका नाम 'मवारिदुल् हुक्म' है, लिखा है कि इकलीलुलमलिक दोषों को परिपक्व करता, उनको विलीन करता और वेदना शांत करता है तथा सूक्ष्मता उत्पन्न करता एवं अंगों को दोषों के उत्सर्ग की शक्ति प्रदान करता है। (इसके कारण प्रायः वे ही लिखे हैं, जिनका ऊपर हमने उल्लेख किया है।)

आमाशय शूल, यकृत शूल और प्लीहाशूल में इसका क्वाथ उपयोगी है। इसमें अफ़संतीन रूमी मिलाकर प्रलेप करने से भी यकृत एवं प्लीहा की सूजन घट जाती है।

इसे सिरका में पीसकर शिरपर लेप लगाने से गंज रोग का नाश होता है।

इसमें स्तंभक एवं विलायक दोनों प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं। इसलिये यह सकल प्रकार की सूजनों के अनुकूल है। यहाँ तक कि गरम सख़्त सूजनों में भी उपकारी है।

कठोर एवं दृढ़ शोथों के लिये इसे बनफ़्सा, तीसी और मेथी के साथ काम में लाना चाहिये।

उष्ण शोथों में पोस्ते के दाने और मुर्गी के अंडे की सफ़ेदी के साथ इसका उपयोग करना चाहिये।

आमाशय शूल में गुलाब के साथ इसका उपयोग करें।

सकलांगों की उष्मा एवं चोट के लिये केशर के साथ इसका व्यवहार करें।

सिरका और गुलरोग़न के साथ शिरपर इसका प्रलेप करने से गर्मी का दर्द जाता रहता है।

इसको क्वथितकर पीने से वात-तंतुओं का ढीलापन, फालिज, वात-व्याधि भेद (तमद्दुद्) धनुष्टंकार (कुज़ाज़) और कफज आक्षेप (तशन्नुज इम्तिलाई) प्रभृतिमें लाभ होता है। इससे आमाशय, यकृत् और प्लीहा का दर्द मिट जाता है, श्वास वा दमा आराम होता है तथा पथरी निकल जाती है। यह शुक्र एवं स्तन्य-वर्द्धक है, मूत्र और स्त्रियों के आर्त्तव का भली भाँति प्रवर्त्तन करता है और कफज प्यास का निवारण करता है। इसकी वस्ति करने से आँतें बलिष्ट होती हैं और उनका मवाद निकल जाता है तथा वेदना शांत होती है।

शीत ज्वर में ज्वर के समय ४॥ माशे इक्लीलुल मलिक के खाने से उपकार होता है। इससे पाखाना भी खुलकर होता है।

इसको पानी में पकाकर कपड़े से छान लें। उस क्वाथ-जल को कान में टपकाने से कान का दर्द शांत होता है।

गुदा एवं अंडों में दर्द होने पर इसका प्रलेप करने से वेदनाकी शांति होती है।

इसको पानी में क्वथित कर उस काढ़े के पानी का तरेड़ा करनेसे शिर चकराना, व्यग्रता, हृद्वेपन, सन्यास (सकृत:) और लक़वा आराम होते हैं। इसके तेल की मालिश भी उक्त रोगों में गुणकारी है।

इसके मर्दनसे बुद्धि-दोष,मूर्खता (हुमुक़), बुद्धिमांद्य, मालीखोलिया और विस्मृति प्रभृति विकार जाते रहते हैं। फालिज में इसे शिथिलांगगत वातसूत्रों (पुट्ठों) के उद्गम स्थल पर लेप करना चाहिए।

वातज भ्रमाक्रांत मनुष्य को ७ माशे इकलीलुल मलिक का चूर्ण शहद मिलाकर चटाएँ और रोगी को स्नानागार में बिठाकर उसके सिर पर इसके काढ़े का तरेड़ा करें। सदा तीसरे दिन यह प्रयोग करते रहें। (ख० अ०)।

नोट—डॉक्टरी में इसका सत "कोमेरीन" नॉट ऑफिशल है। यहाँ अब उसीके गुणधर्म का उल्लेख किया जाता है।

कोमेरीन *Coumarin*

कोमेराइनम Coumarinum (ले०)। इकलीलुल मलिक वा नाख़ूने का सत। जौहर इक़लीलुल् मलिक। जौहर गियाह क़ैसर।

नोट—वर्णन के लिए इक़लीलुलूमलिकांतर्गत "रासायनिक संघटन" नामक शीर्षक देखो।

गुणधर्म तथा प्रयोग

कोमेरीन को ३० से ६० ग्रेन (१५ से ३० रत्ती) की मात्रा में देने से जी मिचलाता, सिर चकराता, क़ै आती एवं निर्बलता होती है। यह अतीव आमाशयिक उग्रताकारक है। डॉक्टर कोहलर के अनुभव के अनुसार यह एक स्पर्शाज्ञताहर विष है, जो प्रथम हृदय को गति प्रदान करता है, पर इसके उपरांत उसे निश्चेष्ट कर देता है। सुगंधि के लिए इसको मरहम तथा तैलादि विशेषकर पॉमेड्स ($\frac{1}{4}$ ग्रेन प्रति आउंस) में मिलाया करते हैं। आयडोफार्म की दुर्गंधि छिपाने के लिए भी उसमें मिलाया करते हैं। अस्तु, आयडोफार्म ९५ भाग, बालसम ऑफ पेरू ३ भाग और कोमेरीन २ भाग मिलाकर प्रयोजित करने से आयडोफार्म की गंध नहीं आती।

कोमेरीन से कोमेरिकएसिड नामक एक तेजाब प्राप्त होता है। इसका सोडियम साल्ट कैन्सर-नाशक (Anticancer) औषध रूप से व्यवहार में आता है।

इकलीलुल् .हश्फ़:–[अ०] सुपारी। शिश्नाग्र। शिश्नमुण्ड। शिश्नमणि। (Corona Glandis, Glans Penis)

इक्वियुदाद–[अ०] (१) वृद्ध मनुष्य। बहुत बूढ़ा आदमी। (२) वृद्धावस्था के कारण काँपना।

इक्शाश–[अ०] शीतला से अच्छा होना। चेचक रोग से मुक्त होना।

इक्शिअ्रार–[अ०] रोम हर्ष होना। रोंगटे खड़ा होना। साधारणतः शीत वा भय से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। (Horripilation; Goose skin.)

इक़्साऽ–[अ०] हृदय को दृढ़ करना। दिल को कड़ा करना।

इक्साल–[अ०] वीर्यपातरहित मैथुन। मैथुन के पश्चात् वीर्य स्खलित करना।

इक्साल्जीन–[अं० Ixalgine] (Methyl acetanilide) दे० "एक्सल्जीन"।

इक़्सास़–[अ०] मरने के करीब होना। मरणासन्न होना। मुमूर्षु होनेका भाव। आसन्नमृत्यु होना।

इक्सिया चाइनेन्सिस–[ले० Ixia chinensis, *Linn.*] दे० "पार्डैन्थस चाइनेन्सि"। फा० इं० ३ भ०।

इक्सीर–[अ०] (१) मौलिक। मूल वस्तु। (२) रसायन। कीमिया। पारसमणि (Philosopher's Stone) Elixir. (३) आरोग्यजनक औषध। दवाएशाफी।

नोट—डॉक्टरी शब्द एलिक्सिर अरबी शब्द अल्‌अक्सीर वा इक्सीर का परिवर्तित रूप है। डॉक्टरी में इस शब्द का व्यवहार एक प्रकार के ऐसे निर्बल टिंचर (आसव) के लिये होता है जिसमें शर्करा एवं सुगंधि मिलाकर उसे

उत्तम और सुस्वादु बना लिया गया हो। वि० दे० "एलिक्सिर"।

इक्सीर अनीसून-[अ०] (Elixir anisi) दे० "अनीसून"।

इक्सीर .इक़ुज़.ज़हब-[अ०] इक्सीर इपीका। दे० "इपीकेकाइना"।

इक्सीर क़श्र मुक़द्दस-[अ०] एलिक्सिर कैस्केरी।

इक्सीर कैसकरा-[अ०] एलिक्सिर कैस्कैरी।

इक्सीर कोका-[अ०] दे० "कोका"।

इक्सीर ग्याहसितारः-[अ०] एलिक्सिर एलिट्रिस।

इक्सीर ग्वाराना-[अ०] दे० "ग्वाराना"।

इक्सीर जौहर ज़र्दी बैज़ः-[अ०] एलिक्सिर लेसीथीन।

इक्सीर जौहर पपैयः-[अ०] एलिक्सिर पेपीन।

इक्सीर पेप्सिन व बिज्मथ-[अ०] एलिक्सिर पेप्सीनी एट बिस्म्युथाई।

इक्सीर पेप्सिन व बिज्मथ व आहन-[अ०] एलिक्सिर पेप्सीनी एट बिस्म्युथाईकम् फेरो।

इक्सीर पेप्सिन व बिज्मथ मुरक्कब-[अ०] एलिक्सिर पेप्सीनी एट बिस्म्युथाई कम्पोज़िटम्।

इक्सीर पेप्सिन व, कीनीन ब आहन-[अ०] एलिक्सिर पेप्सीनी एट कीनीनी कम् फेरो।

इक्सीर पेप्सिन व बिज्मथ व जौहर कुचिलः ब आहन-[अ०] एलिक्सिर पेप्सीनी एट विस्म्युथाई एट ष्ट्रिकूनीनी कम् फेरो।

इक्सीर फास्फोरस-[अ०] एलिक्सिर फॉस्फोरस।

इक्सीर मुसक्किन-[अ०] पैरेगोरिक एलिक्सिर। दे० "पोस्ता"।

इक्सीर रावंद-[अ०] एलिक्सिर रूहीआई।

इक्सीर स.द्री-[अ०] एलिक्सिर पेक्टोरेल।

इक्सीर सना-[अ०] एलिक्सिर सेनी।

इक्सीर सुबे-[अ०] एलिक्सिर प्रम्बाई।

इक्सीर हीमोग्लोबिन-[अ०] एलिक्सिर हीमोग्लोबीन।

इ(अ)क्सीरी-[फ़ा०] रसायनी। कीमियागर। कीमिया दाँ। धातुवादी।

इक्सोडेस रिसिनस-[ले० Ixodes ricinus, *Latr.*] एक प्रकार का कीड़ा। फा० इं० ३ भ०। दे० "रेंड"।

इक्सोरा अण्डूयुलेटा-[ले० Ixora undulata, *Roxb.*] पालक जूही। (Waving ixora.)

इक्सोरा काक्सीनिया-[ले० Ixora Coccinea, *Linn.*]

इक्सोरा ग्रांडिफ्लोरा-[ले० Ixora grandiflora.] (Jungle geranium) जंगली जिरेनियम्।

बंधूक-सं०। रंगन। रंजन बं०, हिं०। फा० इं० २ भ०।

इक्सोरा टोमेण्टोसा-[ले० Ixora tomentosa.] यूथिका। जूही।

इक्सोरा पार्विफ्लोरा-[ले० Ixora parviflora, *Vahl.*] कोठ गंधल-हिं०। रंगन-बं०। इश्वर-सं०। (Ixora alba.)

इक्सोरा पेवेटा-[ले० Ixora Pavetta, *Roxb.*] कुकरचोर-बं०। पर्पट, तिर्यकफल-सं०। पपड़ी-हिं०। (Pavetta, Indica.)

इक्सोरा रोज़-कलर्ड-[अं० Ixora rose-coloured] (Ixora rosea.) मटिया चाँदा।

इक्सोरा बंधुका-[ले० Ixora bandhuca] (Jungle geranium) बंधूक। गुलदुपहरिया।

इक्सोरा विलासा-[ले० Ixora villosa] चुनारी।

इक्सोरा वेविंग-[अं० Ixora waving] पालक जूही। (Ixora undulata, *Roxb.*)

इक्सोरा स्माल-फ्लावर्ड-[अं० Ixora small flowered] गंधल। रंगन।

इक्सोरा हेयरी-[अं० Ixora hairy] चुनारी।

इक्सोरेसिनी-[ले० Ixoresinae.] राजन। रजन।

इक्सोरेसिनी पार्विफ्लोरा-[ले० Ixoresinae parviflora] कोठ-गंधल। छोटा गंधल।

इक्हब-[अ०] धूसर वर्ण। ख़ाकी रंग। मटियाला। (Dusty.)

इक्हाऽ-[अ०] मांस भक्षण से घृणा करना। गोश्त खाने से परहेज़ करना।

इक़्हाऽ–[अ़०] लगातार कहवा पीना । निरंतर कहवा-पान ।

इक़्हाद–[अ़०] श्रान्तहो जाना । थका देना । श्रान्ति।

इक़्हाब–[अ़०] खाने से हाथ खींचना और इच्छा न करना ।

इक़्हाम–[अ़०] दृष्टि का निर्बल और मंद हो जाना। दृष्टिनैर्बल्य ।

इख़द–दे० ईषत् ।

इख़्राज-संज्ञा पुं० [अ० पुं०] निकालना । अपसारण । उत्सर्जन ।

इख़रास–[यू०] नासपाती । (Pyrus communis, *Linn.*)

इख़्लास–संज्ञा पुं० [अ० पुं०] सफ़ाई । स्वच्छता । नैर्मल्य । पाकीज़गी ।

इख़्तफ़ार–[अ०] गेरुरा ।

इख़्तिनाक़–[अ०] ख़नक़ । श्वासावरोध । श्वासकृच्छ्र । दम बन्द होना । दम रुकना । दम घुटना । गला घुटना । मर्ज़ ख़ुनाक । अस्फिक्सिया Asphyxia, चोकिंग Choking, सफोकेशन Suffocation, स्ट्रैंग्युलेशन Strangulation–अं० ।

नोट—जो बिना किसी बाह्य दबाव के कारण उपस्थित होता ऐसे श्वासावरोध के लिए 'सफोकेशन' शब्द का प्रयोग होता है। जैसे, कोयले के धूएँ से दम घुटता है। और स्ट्रैंग्युलेशन 'उद्बंधन' के अर्थ में व्यवहृत होता है।

इख़्तिनाक़ुर्रहि.म–[अ०] इसका धात्वर्थ रहि.म अर्थात् 'जरायु का घुटना' है।

तिब के अनुसार एक रोग जो अपने कतिपय लक्षणों के अनुसार मूर्च्छा और अपस्मार से समानता रखता और वेग के साथ होता है। यह रोग प्रायः स्त्रियों को होता है। इसमें मृगी के समान वेग होते हैं। राज़ी के अनुसार यह रोग पुरुषों (विशेषकर युवा बालकों) को भी होजाया करता है। बावगोला । योषापस्मार ।(Hysteria) दे० "हिष्टीरिया" ।

इख़्तिनाक़ुल् ग़ुल्फ़ः, इख़्तिनाक़ुल् क़ुल्फ़ः–[अ०] शिश्नाग्र त्वचा का शिश्नमुण्ड अर्थात् सुपारी के ऊपर चढ़कर फँस जाना । परिवर्त्तिका । बाराक़ीमूसिस । Paraphimosis पैराफाइमोसिस (अं०) ।

इख़्तिनाक़ुल्फ़क़ीक़–[अ़०] वह वृद्धि जिसमें आन्त्र प्रभृति अपने समीप के छिद्र से निकलकर फँस जाती हैं। पाशित वा अवरुद्ध अन्त्रवृद्धि । फ़त्क़ इख़्तिनाक़ी । Strangulated hernia दे० "अन्त्रवृद्धि" ।

इख़्तिनान–[अ़०] ख़तना करना । मुसलमानी करना । Circumcission सर्कम्सीजन (अं०) ।

इख़्तिलाज–[अ०] कम्पन । स्फुरण । स्पंदन । धड़कना । थरथराना । फड़फड़ाना ।

(Trembling, beating)

टिप्पणी–इख़्तिलाज तथा रिअ़्शा में भेद । दे० "रिअ़्शः" ।

इख़्तिलाज क़.स्बतुर्रियः–[अ०] फेफड़े की नाली का काँपना । एक रोग जिसमें फुफ्फुस-प्रणाली में कम्पन उत्पन्न हो जाने से बात नहींकी जाती और मुँह की मुँह हीमें रह जाती है। इर्तिआश क़.स्बतुर्रियः । फुफ्फुस-प्रणाली का स्फुरण ।

इख़्तिलाजुल् .ऐन–[अ़०] नेत्र-स्फुरण । पलक का फड़कना । इख़्तिलाजुल् जफ़्न, रफ़्फ़ुल् .ऐन । इख़्तिलाज चश्म–फ़ा० । Nictitation निक्टिटेशन (अं०) ।

इख़्तिलाजुल् क़ल्ब–[अ़०] ख़फ़क़ान । हृत्-स्पंदन । हृदय का तीव्र गति से या अव्यवस्थित रूप से धड़कना । हौलदिल । हृदय की धड़कन । हृत्कम्प । टैकी कार्डिया Tachycardia –अं० ।

इख़्तिलाज क़ल्ब और ख़फ़क़ान का भेद—यद्यपि कोई-कोई हक़ीम इन दोनों में कोई भेद स्थिर नहीं करते, तो भी ख़फ़क़ान में हृदय की गति तीव्र हो जाती है अर्थात् हृदय जोर से धड़कने लगता है; पर इख़्तिलाजुल् क़ल्बमें हृदय अत्यन्त वेग से धड़कता ही नहीं, प्रत्युत अव्यवस्थित रूप से स्पंदित होने लगता है। अतः ख़फ़क़ान हृदय के धड़कने और इख़्तिलाजुल् क़ल्ब उसके फड़कने को कहते हैं। पाश्चात्य चिकित्सक दोनों में यह भी भेद करते हैं कि ख़फ़क़ान में रोगी को हृदय की गति का बोध होता है,

पर इख़्तिलाज में ऐसा नहीं होता। ख़फ़क़ान को अँगरेजी में पैल्पिटेशन (Palpitation) कहते हैं।

इख़्तलाजुल् शफ़त–[अ०] ओष्ठ स्फुरण। ओठ फड़कना।

इख़्तला.तुल् अक़्ल–[अ०] वह अविवेक जो उन्माद की सीमा को न पहुँचा हो। पागलपन। बुद्धि-भ्रंश। एक प्रकार की मालीख़ोलिया।

इम्बेसिलिटी Imbecility–(अं०)।

इख़्तलात् अक़्ल और जुनून का भेद–जब तक बुद्धि-भ्रंश एवं विवेकशून्यता सामान्य हो और उन्मत्ततापूर्ण कार्य घटित न हों, तब तक उसको इख़्तिलात् अक़्ल कहते हैं। परन्तु जब वह सीमा का अतिक्रमण कर जाती है, तब उसी को जुनून (उन्माद) नाम से अभिहित करते हैं।

इख़्तलाफ़–[अ०] धात्वर्थ भेद वा अन्तर; पर तिब की परिभाषा में दस्त को कहते हैं। आमाशय-विकार जन्य विरेक् जिसको कोई-कोई हकीम ज़र्ब वा ख़िल्फ़ःका पर्याय और कोई उनसे भिन्न मानते हैं। इसमें आहार स्वाभाविक रूप से आमाशयमें नहीं ठहरता। कभी सहसा बहुत से दस्त आ जाते हैं, कभी अपक्व आहार विसर्जित होता है और कभी परिपाक होकर। संग्रहणी। लाइएण्टरी Lientery–(अं०)।

इख़्तलाफ़ुद्दम–[अ०] इस्हाल दम्वी। रक्तातीसार। मेलेना Malena, डिसेण्टरिक डायरिया Dysenteric Diarrhœa (अं०)।

टिप्पणी—इस शब्द का प्रयोग प्रायः इस्हाल कबिदी (याकृदीयातीसार)अर्थात् उन रक्तमय दस्तों के लिये होता है, जो यकृत से आते हैं। स्वतंत्र हकीमों के अनुसार ऐसे विरेक् वेदना शून्य आते हैं; परन्तु मसीहा आदि के अनुसार इसका प्रयोग ऐसे विरेक् के लिये होता है जो आँतों से वेदना एवं उद्वेष्ठन युक्त आते हैं।

इख़्तिमार–[अ०] तख़म्मुर। ख़मीर बनना वा बनाना। ख़मीर उठना वा उठाना। अभिषव। फेनोत्पादन। फर्मेण्टेशन Fermentation (अं०)।

इख़्तसार–संज्ञा पुं० [अ० पुं०] (१) अविस्तार। कोताही। (२) संक्षेप। खुलासा।

इख़्सा.ऽ–[अ०] ख़स्.सी करना। बधिया करना। अंडाकर्षण। दोनों अण्ड निकाल डालना। अंडों को निकाल डालना और शिश्न को छेदित कर डालना। कैस्ट्रेशन Castration (अं०)।

इख़्सा.ब–[अ०]वनस्पति वा प्राणी का गर्भित होना। गर्भधारण। तल्क़ी.ह। हमल। Impregnation इम्प्रेग्नेशन (अं०)।

इगास्युरिक एसिड–[अं० Igasuric acid] (Strychnic acid) कारस्करास्ल। दे० "कुचिला"।

इगास्युरीन–[अं० Igasurine] (Impure brucine) दे० "कुचिला"।

इग़्तसा.ब–[अ०] बलात्कार। सतीत्वहरण। ज़िना-बिल्जब्र–(अ०) (Rape.)

इग़्तसाल–[अ०] स्नान करना। नहाना। किसी-किसी के मत से जल वा जलाशय में घुसकर नहाना। अवगाहन।

इग्नेशिया अमारा–[ले० Ignatia amara] (Strychnos Ignatii, *Berg.*) Bean of st. Ignatius. पपीता।

इग्नेशिया सेमिना–[ले० Ignatia semina] (Seeds of Strychnos Ignatia) पपीता के बीज। दे० "पपीता"।

इग़्मा.ऽ–[अ०] (१) असमर्थता। मूर्च्छा का आरंभ। विसंज्ञ होना। शिथिल वा निढाल हो जाना। (२) कभी–कभी यह शब्द साधारण अपस्मार के लिये भी प्रयुक्त होता है। Fainting.

इग्ल मार्मेलोज़–[ले० Ægle Marmelos, *Corr.*] Bael Fruit विल्व। बेल।

इङयिन–[बर०] (Shorea Siavensis, *Miq.*)

इङ्कनट–[अं० ink-nut.] (Terminalia Chebula, *Retz.*) हरीतकी। हड़।

इङ्कूट–संज्ञा पुं० [सं० अंकोट] अङ्कोल । ढेरा । (Alangium Lamarckii, *Thwaites*)

इङ्ग–संज्ञा पुं [सं० त्रि०] जंगम । चर । चलने-फिरनेवाली । हे० च० ।

इङ्गन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ज्ञान । समझ ।

इङ्गनी–संज्ञा स्त्री० धातु सम्बन्धी रसायनिक पदार्थ । (mangnese) पहले लोग इसके सारको लोहे का आकर्षणशील सार समझते थे । किन्तु, अब यह सिद्ध होगया, कि इसमें लोहेका लेशमात्र भी नहीं है । इसमें लवण का अंश होता है । यह प्रकृति में विस्तृत रूप से व्याप्त है । सूर्याकाश, समुद्रजल और अनेकधातु द्रव्य में इसका अंश मिलता है । रसवेत्ताओंने बड़े यत्नसे तपाकर और अन्य द्रव्य मिलाकर इसे विशुद्ध बनाया है । यह फ़ौलाद प्रस्तुत करने के काम में आती है । मध्यप्रदेश, मध्यभारत, महिसुर राज्य और मन्द्राज में इसकी खानि हैं । यह काँचका हरितत्व निकालती और उसपर कान्ति चढ़ाती है । हिं० वि० को० ।

इङ्गरच -[?] कंजर्स तवई-पं० ।

इङ्गल–संज्ञा पुं० [सं०पुं०] (१)इंगुदीवृक्ष । हिंगोट का पेड़ । Egyptian myrobalan (Balanites Roxburghii, *Planch.*) वै० निघ० । (२) देशी बादाम । दे० "हिंगोट"

इङ्गल हर्डिया–[ले०] वालस । सियाल पोमा ।

इङ्गवेर–[जर० ingwer] (Zingiber officinalis) अदरख । आर्द्रक ।

इङ्गलिका–[कना०] Cinnabar (Hydrargyri Bisulphuratum) हिंगुल । सिंगरफ ।

इङ्गलिश–वि० [अं० English] इंगलैंड-देश-सम्बन्धी । अँगरेज़ी ।

संज्ञा स्त्री० अँगरेज़ी भाषा ।

इङ्गलिश वालनट-[अं० English walnut] (Black walnut.) अखरोट विशेष ।

इङ्गला–संज्ञा पुं० दे० "इड़ा" ।

इङ्गली–[मरा०, कना०] (Barringtonia acutangula, *Gartn.*) हिज्जल । समुद्रफल । फा० इं० २ भ० ।

इङ्गलुवीन–संज्ञा स्त्री० [अं० Ingluvin, ले० इंग्लूवीज़ Ingluvies=पथरी, संगदान] यह संगदान ख़ुरोस या मुर्ग़ की पथरी की आभ्यंतरिक झिल्ली से बनाई जाती है । पेप्सिन और पैन्क्रिएटीन के स्थान में इसका व्यवहार करते हैं । गर्भिणी के वमन में भी यह लाभप्रद है । क्रानिसीन-अ० । मात्रा—२॥ से १० रत्ती=(५ से १० ग्रेन) ।

नोट—यूनानी ग्रंथों में मऊजून संगदान ख़ुरोस के अनेक योग आए हैं ।

इङ्गिनि अट्ट–[सिं०] Clearing nut (Strychnos Potatorum, *Linn.*) कतक । निर्मली । स० फा० इं० ।

इङ्गिलि·गमु–[ते०] Cinnabar (Hydrargyri Bisulphuratum) हिंगुल । सिंगरफ । स० फा० इं० ।

इङ्गु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जिस्म को हिला देनेवाली बीमारी ।

इङ्गुआ, इँगुवा–संज्ञा पुं० [सं० इंगुद] Egyptian myrobalan (Balanites Roxburghii, *Planch.*) इंगुदी । गोंदी । हिंगोट ।

इङ्गुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तापसवृक्ष । हिंगोट का पेड़ । (२) मालकांगनी ।

इङ्गुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (Balanites Roxburghii, *Planch.*) हिंगोट । गोंदी । सु० सू० ३९-४६ अ० । सि० या० कास-चि० मनःशिलादि धूमपान । वृन्द । (२) पारावतपदी । लताफटकी । प० मु० ।

इङ्गुदी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हिंगोट । इंगुद । (Balanites Roxburghii, *Planch.*) दे० "हिंगोट" ।

(२) ज्योतिष्मती । मालकंगुनी । गुण—यह मदगंधि, कटु, उष्ण, फेनिल, लघु, रसायन, कृमि-वात नाशक और कफ, व्रणघ्न है । रा० नि० । इंगुदी–कुष्ठ, भूतग्रह, व्रण, विष, एवं कृमि को नष्ट करती और उष्ण, तिक्त तथा कटु होती और श्वित्र एवं शूलघ्न है । भा० । इसका पुष्प,

मधुर, स्निग्ध, उष्ण तथा तिक्त होता है और इसके सेवन से वात और कफ नष्ट होता है। वै० निघ०। फल स्निग्ध, उष्ण, तिक्त, मधुर, और वातश्लेष्मनाशक है। सु०।

इङ्गुदी तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इङ्गुदी फलोत्थ तैल। हिङ्गोट का तेल। रा० नि० व० १५। दे० "हिंगोट"।

इङ्गुदी फल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Fruit of-Balanites roxburghii, *Planch.*) गोंदी का फल। हिंगोट। दे० "हिंगोट"।

इङ्गुदी वृक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Tree of-Balanites roxburghii, *Planch.*) इङ्गुदी। गोंदी का पेड़। हिंगोट का पेड़।

इङ्गुदी-क्षार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिंगोट का नमक।

इङ्गुर–संज्ञा पुं० [देश०] हिङ्गुल। दे० "ईंगुर"।

इङ्गुरु–[सिं०] Dried root of ginger (Zingiber officinalis, *Roxb.*) शुंठि। सोंठ।

इङ्गुल, इङ्गुली–संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) इङ्गुदी का वृक्ष। गोंदी। हिंगोट। (Balanites Roxburghii, *Planch.*) रा० नि० व० ८।

संज्ञा पुं० [स० क्ली०] हिङ्गुल। सिंगरफ़। (Hydrargyri bisulphuretum) मा० नि० विज० र०।

इङ्गुलियक–[का०] हिङ्गुल। सिंगरफ। (Hydrargyri bisulphuretum)।

इङ्गुली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "इङ्गुद"।

इङ्गुले–[का०] (Fragia involucrata, *Linn.*) वृश्चिका। बिछाती। बिच्छू बूटी।

इङ्गुव–[ते०] (Assafoetda) हिङ्गु। हींग। स० फा० इं०।

इङ्गोरियां–[गु०] इङ्गुदी। गोंदी। हिंगोट। Balanites roxburghii, *Planch.*

इच–[अं० Itch] (Scabies) कच्छु। कच्छू। खुजली। खाज।

इचकिल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तड़ाग। तालाब। चहला।

इचल–[कना०] चिल्ता एइत–ते०।

इचवीड–[अं० Itch weed] अमेरिकन कुटकी।

इच्चुर मुलिवर–[ता०] ईश्वरमूल। इसरमूल।

इच्छ्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जम्बीर वृक्ष। बिजौरा।

इच्छा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक मनोवृत्ति। रुचि। दोहद। कामना। अभिलाषा।

इच्छाधीन–वि० [सं० त्रि०] दे० "ऐच्छिक"।

इच्छाधीन मांस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Involuntary muscle) एक प्रकार का मांस-तंतु। ऐच्छिक मांस।

इच्छानिधि रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हरताल का सत्व, पारेकी भस्म और अभ्रक-द्रुति इन्हें समान भाग और सर्व तुल्य सीसे का सत्व लेकर इनमें मँगरैला, नील, सनाय और इन्द्रायण के रस में सात-सात भावना दें। पुनः इसका गोला बनाकर बज्र मूषा में दृढ़तापूर्वक बन्द कर इष्ट देव का पूजन कर भूधरयंत्र में यथाविधि पकाएँ। इस प्रकार २१ बार विधिपूर्वक पकाएँ। जब स्वाङ्ग शीतल हो जाय, निकाल लें।

मात्रा—$\frac{1}{4}$ राई।

गुण—इसके सेवन से वृद्धता और मृत्यु का भय छूट जाता है। इसे हर अवस्था में बिना किसी पथ्य-पालन के सेवन किया जा सकता है। इस इच्छानिधि रस के प्रभाव से देह की सिद्धि होती है और दरिद्रता का नाश होता है। रस० यो० सा०।

इच्छाभेदी–वि० [सं० त्रि०] इच्छानुसार विरेचन करानेवाला (औषध)। प्रकिया भेद से जिसके सेवन से उतने ही दस्त आएँ जितने की इच्छा हो।

इच्छाभेदी (गुड़िका)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक भेदक रस।

इच्छाभेदी (रसः)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक भेदक रस विशेष। योग—

(१) शुद्ध जमालगोटा, पारा, गंधक, भूना सोहागा, बहेड़े की मींगी, यवक्षार, अजवाइन, हड़, एरण्ड बीज, कालीमिर्च इन्हें समान भाग

लेकर बारीक चूर्णकर १ रत्ती प्रमाण खाने से मल सञ्चय जन्य हर प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

(२) शुद्ध पारा १ मा०, गन्धक ३ मा०, बहेड़ा १ मा०, आँवला १ मा०, पीपल २ मा०, सोंठ ३ मा०, शुद्ध जमालगोटा २० माशा और गुड़ २० मासे, इन सबको मिलाकर अमलोनिया के पत्तों के रसमें घोटकर मटर प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इसे अमलोनिया के रस के साथ खाकर ऊपर से उष्ण जल पीने से जब तक शीतल जल न पिया जाय तब तक दस्त होंगे।

(३) भूना सुहागा, पारा और कालीमिर्च समान भाग और सर्व तुल्य शुद्ध गन्धक और सुहागे से द्विगुण सोंठ, और सोंठ से ९ गुना शुद्ध जमालगोटा मिलाकर बारीक चूर्ण कर जल या दन्तीमूल के क्वाथ से १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इसे ठंढे पानी के साथ खाने से जल्द दस्त होते हैं। जब तक गरम पानी न पिया जायगा दस्त न बन्द होंगे। दही भात इस पर पथ्य है।

(४) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, ताम्र भस्म, मैनशिल, तेंदू, पीपल, निशोथ, सोंठ और काली मिर्च इन्हें समान भाग लेकर इनके बराबर शुद्ध जमालगोटा मिलाकर थूहर के दूध के साथ घोटें। पुनः ३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके प्रभाव से हर प्रकार की बीमारियाँ जो मलजन्य हों नष्ट हो जाती हैं। नवीन ज्वर में इसे मिश्री और अदरख के रस के अनुपान से देना चाहिए।

पथ्य—मूँग की दाल भात और तक्र।

(५) पारा १ मा०, गंधक २ मा०, काली मिर्च ३ मा०, भूना सुहागा ४ मा०, सोंठ ५ मा० हड़ की छाल ६ मा०, और शुद्ध जमालगोटा ७ मा०, सर्व तुल्य पुराना गुड़। प्रथम सबका चूर्ण करे पुनः गुड़ मिलाकर मर्दन करें। दो या तीन रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इसके उपयोग से सुखपूर्वक दस्त होते हैं।

(६) पारा, गंधक, भुना सुहागा, कालीमिर्च, हिडिम्बिका (रेवतचीनी), हल्दी, यवक्षार, हड़, एरण्ड बीज इन्हें समान भाग ले, सर्व तुल्य शुद्ध जमालगोटे के बीज लेकर विधिवत् चूर्ण कर रक्खें। मात्रा—१ रत्ती।

गुण—इसके प्रभाव से सुखपूर्वक विरेचन होता है। रस० यो० सा०।

(७) शुद्ध हरताल $\frac{1}{2}$ भा०, नीलाथोथा २ भा०, नौसादर १ भा०, शुद्ध गंधक $\frac{1}{2}$ भा०, मैनफल $\frac{1}{2}$ भा०, सबको इकट्ठा करके रीठेके रस से ताँबे के मूसल से खरल करें। मात्रा—उड़द प्रमाण।

गुण—इसके सेवन से ज्वर और वमन का नाश होता है। रस० यो० सा०।

(८) पारा १ भा०, गंधक २ भा०, ताम्रभस्म ३ भा०, शुद्ध जमालगोटा ४ भा०, भुना सुहागा ५ भा०, एरण्ड बीज ६ भा०, सोनापाठा के बीज ७ भा०, अमलतास की गूदी ८ भा०, हड़ ९ भा०, निशोथ १० भा०, ढाक के बीज ११ भा०—इन्हें विधिपूर्वक चूर्ण करें। पुनः इसे थूहर के दूध में धूप में रख खूब घोटें। फिर जमालगोटे से चौगुनी धोई हुई कालीमिर्च और ८ गुना चूक मिला कर बारीक घोंटकर रख लें। इसे तक्र के साथ खाने से जितने बार जल पिएँ, उतने ही बार दस्त होते रहेंगे। इसे वृद्ध, बाल, गर्भवती स्त्री, दुर्बल, दीन, शोकातुर, भयभीत, कफ के बिगाड़ से घबड़ाये हुए बात रोगी और शीत से आकुल रोगी को कभी नहीं देना चाहिये। दूसरों को बलाबल और कोष्ठ की मृदुता तथा क्रूरता का लक्ष्य कर मात्रा निर्णय कर बुद्धिमानी से प्रयोग करना चाहिए। जलोदर में इसकी उचित मात्रा देने से लाभ होगा।

(९) सोंठ, मिर्च, शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, भुना सुहागा समान भाग, शुद्ध जमालगोटा ३ भा० बारीक पीसकर रक्खें।

अनुपान और पथ्य—तक्र मिश्रित चावल।

गुण—शर्बत मिश्री के साथ सेवन करने से जितने बार पानी के चुल्लुओं को पीवें उतने ही दस्ते होते हैं। मात्रा—२ रत्ती।

(१०) शुद्ध पारद १ भा०, शु० गंधक ३ भा०, बहेड़ा १ भा०, आमला १ भा०, पीपर २ भा०, सोंठ ३ भा०, शुद्ध जमालगोटा के बीज २० भा०, इनको अम्ललोनी (चूका) के रस में

खरल कर मटर प्रमाण गोलियाँ बनाएँ। एक गोली चूके के रस से सेवन करने और उष्ण जल पीनेसे जब तक ठंडा जल न पीवें, दस्त होता रहता है। भैष० र० उदर रो० चि०।

इच्छाभोजन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) इच्छित वस्तुओं का खाना। रुचि के अनुसार भोजन। (२) भोजन की वह सामग्री जिसे खाने की इच्छा हो। रुचि के अनुकूल खाद्य पदार्थ।

इच्छु-संज्ञा पुं० [सं० इक्षु] ईख। ऊख। (Saccharum officinarum, *Linn.*) Sugar-cane. दे० "ईख"।

इच्छुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मातुलुङ्ग। बिजौरा नीबू। (Citrus medica.) श० च०।

इच्छुरस-संज्ञा पुं० [सं० इक्षुरस] ऊख का रस। गन्ने का अर्क़।

इजतिनाब-संज्ञा पुं० [अ़० पुं०] परहेज़। वर्जन। त्याग।

इजमाल-संज्ञा पुं० [अ़० पुं०] संक्षिप्त वर्णन। मुख्तसर बयान।

इज़राक़ी-संज्ञा स्त्री० [अ़०] (Strychnos nux vomica) कारस्कर। कुचिला। कुचला।

इजल-संज्ञा पुं० [सं० इज्जल] (Barringtonia acutangula, *Gaertn.*) हिज्जल। समुद्रफल। समुंदर फल।

इज़ाक़ः-[अ़०] आस्वादन। स्वाद लेना। चखना। (Taste)

.इजान-[अ़०] [बहु० अ़ज्न, अ़अ़्जिनः] (Perineum) मूलाधार। सीवन।

.इजाफ़-[अ़०] इन्द्रवारुणी। इन्द्रायण। इनारुन। (Citrullus colocynthis)

इजाबत-[अ़०] धात्वर्थ स्वीकार करना। मानना। स्वीकृति। लक्ष्यार्थ। रफ़ा हाजत करना।

.इज़ाम-[अ़० अ़ज़्म का बहु०] अस्थियाँ। हड्डियाँ। कंकाल।

जालीनूस और शेख़ुर्रईस के अनुसार नर कंकाल में २४८ अस्थियाँ हैं। पर किसी-किसी अर्वाचीन हकीम वा डाक्टर के मत से उनकी संख्या २४६ है। दे० "कंकाल"।

नोट—जिन्होंने बेनाम-अस्थि के गड्ढे को एक भिन्न अस्थि मान लिया है उनके समीप समस्त अस्थियों की संख्या २४८ है।

.इज़ामुल् उज़्न-[अ़० उज़्मैमातुस्समूअ़] कर्णास्थिकाएँ। श्रवणेन्द्रिय संबंधी अस्थियाँ। कान की हड्डियाँ। (Ossicles) ऑसिक़लज़-अं०। ये संख्या में तीन हैं—

(१) मित्रक़ी (मुद्गर)।
(२) सिन्दानी (शूर्मिका)।
(३) रिकाबी (रकाब)।

.इज़ामुत्तिवाल्-[अ़०] दीर्घ अस्थियाँ। लम्बी हड्डियाँ। जैसे, बाहु और ऊर्वस्थियाँ।

.इज़ामुर्रज़्फ़ः-[अ़०] पाली या चपनी नाम की अस्थि। अर्रज़्फ़ः। अर्रुक्बः। (Patella)

.इज़ामुर्रुस्ग़ुल् क़दम-[अ़०]अर्रुस्ग़। कूर्चास्थियाँ। टखने और एड़ी की अस्थियाँ। (Tarsal bones-)

.इज़ामुर्रुस्ग़ुल् यद-[अ़०] अर्रुस्ग़। कलाई या पहुँचे की अस्थियाँ। (Carpal bones.)

.इज़ामुल् क़स्स-[अ़०] अल्क़स्स। छाती की हड्डियाँ। वक्षोऽस्थि। उरोऽस्थि। (Sternum)

.इज़ामुल् क़िसार-[अ़०] क्षुद्रास्थियाँ। छोटी हड्डियाँ।

.इज़ामुल् ख़ुल्फ़-[अ़०] अ़ज़्ला उज़्ज़ोर। उपपर्शुकाएँ। (False ribs.)

.इज़ामुल् जुम्जुमः-[अ़०] कर्पर या करोटि की अस्थियाँ। खोपड़ी की हड्डियाँ। शिरोऽस्थि। (Cranial bones.)

.इज़ामुल्फ़क्कुल् अअ़्ला-[अ़०] ऊर्ध्वहन्वस्थि। ऊपर के जाबड़े की अस्थियाँ। (Superior maxillary bone.)

.इज़ामुल् फ़क्कुल् अस्फ़ल-[अ़०] अधोहन्वस्थि। नीचे के जाबड़ें की अस्थियाँ। (Inferior maxillary bone, mandible.)

.इज़ामुल् मशाशिय्यः-[अ़०] उस्तख़्वानहाए अस्फंजी-फ़ा०। शुक्तिकास्थियाँ। सीपाकृति अस्थियाँ। (Turbinated bones.)

.इज़ामुल् मुश्तिल् क़दम्-[अ़०] अल्मुश्त। उस्तख़्वानहाए कफ़ेपा-फ़ा०। प्रपादास्थियाँ। पैर के तलवे की हड्डियाँ। (Metatarsal bones.)

.इज़ामुल् मुश्तिल यद्–[अ०] अस्मुश्त् । उस्तख़्वानहाए कफे़दस्त–फ़ा० । करभास्थियाँ । हस्ततल की अस्थियाँ । (Metacarpal bones.)

.इज़ामुल् वज्ह–[अ०] उस्तख़्वानहाए चेहरा–फ़ा० । चेहरे की अस्थियाँ । (Facial bones.)

.इज़ामुस्सलामियातुल् क़दम–[अ०] सलामियातुल् क़दम । उस्तख़्वानहाए अंगुश्ताने पा–फ़ा० । अंगुल्यस्थियाँ । पैर की उँगलियों की हड्डियाँ । (Phalanges.)

.इज़ामुस्सलामियातुल् यद्–[अ०] अल् असाबिअ् । उस्तख़्वानहाए अंगुश्ताने दस्त–फ़ा० । हस्तांगुल्यास्थियाँ । पोर्वे । (Phalanges.)

.इज़ामुस्सिम्सिमानिय्यः–[अ०] (Sesamoid bones) तिल वा चने के आकार की वे छोटी-छोटी अस्थियाँ जो हाथ-पैर की कंडराओं में जोड़ों के स्थान पर पाई जाती हैं ।

.इज़ार–[अ०] (१) कपोल । गाल । रुख़सार । (Cheeks) (२) । कान के आगे वा पीछे की जगह । (३) हनुपार्श्वद्वय । जबड़ों के दोनों ओर ।

.इज़ार–[फ़ा० स्त्री०] जङ्घात्राण । पायजामा । सुथना ।

इ (अ) ज़ाराक़ी–[सिरि०, अ०] (Strychnos nux vomica) कारस्कर । कुचिला । कुचला ।

इ (अ) ज़ाराफ़ियून, इ (अ) ज़ाराफ़ी–[यू०, अ०] एक प्रकार का समुद्रफेन । ज़ुब्दुल्बह्र–अ० ।(A kind of cutlle-fish bone)

इज़ालः–[अ०] नष्ट करना । हटा देना । दूर करना । निवारण । (Remove)

इज़ालहे बकारत–[अ०] योनिच्छद भ्रंश । कुमारिच्छद का नष्ट करना । (Rupture of the hymen.)

इज़्ाह–[अ०] एक प्रकार के बड़े काँटेदार पेड़ । जैसे, बेर, क़ताद (गुलू), ग़ार का वृक्ष वा कीकर का पेड़ ।

इजिप्शियन ऑइण्टमेण्ट–[अं० Egyptian ointment] मरहम विशेष ।

.इज़ुद–[अ०] प्रगंड । वाहु । भुजा । (Arm.)

इज़्ख़िर–[यू०, अ०] लामज्जक । लमजक । घटियारी । खवी । Andropogon laniger, *Desf.* (Squinach.) म० अ० । मु० अ० । नफ़ी० । दे० "लामज्जक" ।

इज़्ख़िरे जामी-[अ०] उशीर । खस । बीखेवाला–फ़ा० । (Andropogon muricatus, *Retz.*) Cuscus. म० अ० ।

इज़्ख़िरे मक्की–[फ़ा०] ज्वरांकुश । काह नाम की घास ।

इज्ग़ाल–[अ०] क्षत से रक्तस्राव होना । घाव से खून बहना ।

.इज़्ज़–[अ०] (१) एक छोटा काँटेदार पेड़ । (२) एक प्रकार का काँटा ।

इज्जल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Barringtonia acutangula, *Gartn.*) हिज्जल । समुद्रफल । मद० व० ५ । भा० पू० १ भ० । इज्जलि । है० च० । दे० "समुद्रफल" ।

इज्जास्–[अ०] (Prunus communis, *Huds.*] आलूबुख़ारा । आरुक । म० अ० ।

इज़्तिजाअ्–[अ०] पार्श्व पर लेटना । करवट लेटना ।

इज्तिनाब–[अ०] इम्तिनाअ् । परहेज़ । पथ्य । (Abstinence, temperance.)

इज्तिमाअ्–[अ०] (१) संचित होना । संचय । एकत्रित होना । इकट्ठा होना । (२) पुरुष का युवा एवं बलवान होना । (३) सम्पूर्ण दाढ़ी निकल आना । (४) रसायन-शास्त्र के अनुसार दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर मिलना वा मिलाना । (Accumulation.)

इज्तिमाउ़द्दम–[अ०] किसी अंग के तंतुओं में खून इकट्ठा हो जाना । इह्तिक़ानुद्दम । रक्त संचय । Congestion कञ्जस्चन–अं० ।

इज्तिमाउ़ल् माइफ़ियुन्नुख़ाअ्–[अ०] सुषुम्नाकाण्डस्थ जल संचय । Hydromyelia हाइड्रोमाइएलिया (अं०) ।

इज्तिमाउ़ल् माइ क़ियुर्रास–[अ०] इस्तिस्क़ाउद्दिमाग़ । अमारहे दिमाग़ । मस्तिष्कस्थ जल–संचय । शिर में पानी भर जाना । मास्तिष्कीय जलंधर ।

हाइड्रोके(से)फेलस Hydrocephalus (अं०) ।

टिप्पणी—प्राचीन तिब्बी परिभाषा में जब जलीय द्रव पार्श्विक कपालास्थि और मस्तिष्क-वाह्यावरण के मध्य में संचित हो जाता या मस्तिष्क की त्वचा एवं पार्श्व कपालास्थिके मध्यमें ठहर जाता है, तब उसको इज्तिमाउ़ल् माइ फ़ियुर्रास नामसे अभिहित करते हैं। यह रोग प्राय: शिशुओं को हुआ करता है।

इस रोग की एक विशेषता यह है कि जब जल पार्श्व कपालास्थि के नीचे एकत्रित होता है, तब रोगी के शिर में भारीपन मालूम होता है; आँखें खुली रहती हैं हैं और उनसे अश्रुपात होता है। परन्तु जब पार्श्व कपालास्थि के ऊपर द्रव संचित होता है, तब मस्तिष्क में उभार उत्पन्न हो जाता है, जो उँगली से दबाने से दब जाता है; बालक रोता एवं व्याकुल होता है।

इज्तियाज़–[अ़०] हवा चलना। (Breezing)

इज्तियाफ़–[अ़०] शव का सड़ जाना।

इ़ज़्त़राब–[अ़०]व्याकुलता। व्यग्रता। अस्थिरता। घबराहट। बेचैनी। (Disturbance)

इज़्दियाद–[अ़०] (१) ज़्यादा होना। वर्धन। बढ़ना। (२) अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा में नैसर्गतः समीपवर्ती अवयवों, जैसे–उँगलियों आदि का परस्पर जुड़ जाना।

इज़्दिराद–[अ़०] गिलन। निगलना। कंठ से नीचे उतारना। बल्अ़। (Deglutition)

इज़्दिवाजिल् बस़्र–[अ़०] एक वस्तु का दो दिखाई देना। डिप्लोपिया Diplopia

इज़्दिवाजुल् नब़्ज़–[अ़०] नब़्ज़ मित़्रक़ी। एक ही बार नाड़ी में दो ठोकरें (फड़क) प्रतीत होना। Dicrotism डाइक्रॉटिज़्म (अं०)।

इज़्दिवाजुल् हदब–[अ़०] पलक के रोमों का दोहरा अथवा दो पंक्तियों में होना। आँख में शअ़्र ज़ायद अर्थात् परबाल हो जाना।

इज़्फ़ार–[अ़०] ऊपर और नीचे के अगले दोनों दूध के दाँतों का गिरना।

इज़्बाद–[अ़०] (Despumation) झाग उतारना। साफ़ करना।

इज़्बिरार—[अ़०] रोमहर्षण। रोमांच होना। शरीर के रोंगटे खड़ा होना।

.इज़्म–[अ़०] वृद्धि। वर्धन। किसी अंग की अप्राकृतिक स्थूलता। त़ज़़ख़्ख़ुम। इसका उलटा "सिग़्र" है। (Hypertrophy)

.इ (अ) ज़्मुत्तिह़ाल–[अ़०]तज़़ख़्ख़ुमुत्तिह़ाल। प्लीहोदर। प्लीहावृद्धि। तिल्ली। तिल्ली बढ़ना। (Meglio-splenia; Hypertrophy of the spleen; Ague cake.)

.इज़्मुर्रास–[अ़०] एक व्याधि जिसमें मस्तिष्क के कोषों में जल संचित होता है। इस्तिस्क़ाउद्दिमाग़। मस्तिष्कस्थ जल-संचय। शिर का बड़ा हो जाना। शिर में पानी भरना। Hydrocephalus हाइड्रोसेफेलस (अं०)।

.इज़्मुल् कबिद–[अ़०] यकृदुदर। यकृद्दाल्युदर। जिगर का बढ़ जाना। कलेजा बढ़ना। त़ज़़ख़्ख़ुमुल्कबिद। (Enlargement of the liver,)

.इज़्मुल् ख़ुस़्यतैन–[अ़०] अण्डकोष का बड़ा होजाना। अण्डकोषवृद्धि। इसके निम्न भेद हैं—

(१) इस्तिस्क़ाउल् ख़ुस़्यः—(मूत्रज वृद्धि वा कुरंड)इस रोग में अण्डावरणके पोले भाग में रक्तवारि के एकत्रित होजाने के कारण अण्डकोष बढ़ जाता है। (Hydrocele-)

(२) दाउल्फ़ील स़फ़िनी—(मेदजन्य वृद्धि। वृषणान्तर्गत श्लीपद) फ़ीलफ़ोत़ः। इस रोग में अण्डकोष फूलकर हाथी के अण्डकोष के समान होजाते हैं। कभी कभी वे इतना बढ़ जाते हैं कि घुटने वा टखने तक लटक आते हैं।(Elephantiasis scroti.)

टिप्पणी—किसी–किसी तिब्बी ग्रंथ में इस्तिस्क़ाउल् .ख़ु.स्यः को .इज़्मुल् .ख़ुस़्यतैनके नामसे लिखा है; परन्तु किसी में उदाहरणत: अक्सीर अअ़्ज़म प्रभृति में दाउल्फ़ील स़फ़िनी को .इज़्मुल् .ख़ु.स्यतैन लिखा है।

.इज़्मुल्लिसान–[अ़०] एक रोग जिसमें जिह्वा बड़ी हो जाती है। कभी–कभी वह इतनी बड़ी हो जाती है कि मुख में नहीं समाती। इ़द्दि़लाउ़ल्लिसान। जिह्वा वृद्धि। (Meglioglossia, macroglossia)

इज्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृहस्पति। देवगुरु। (२) पुष्यान क्षत्र। (३) विष्णु। (४)

परमेश्वर। (५) शिक्षक। (६) पूजनीय व्यक्ति।

इज्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) यज्ञ। (२) दान। (३) सङ्गम।

.इ..ज्यौत्-[अ०] वह व्यक्ति जिसको सहवास काल में मलोत्सर्ग हो जाए।

.इज़्रन-[?] बोरहे अरमनी।

.इज़्रम-[अ०] वृक्ष-ग्रंथि। पेड़ की गाँठ।

इज़्राक-[?] छोटे आलूबुखारा का एक भेद।

इज़्राक़-[अ०] आँख का गोलक के भीतर घूमना।

इज़्.रार-[?] नृसार। निशादल। नोसादर। (Ammonii chloridum)

.इ(अ्)ज़्.ग़ि(र)त्-[अ०] मूलाधार। सीवन। रैफी Raphe (अं०)।

नोट—हरएक ऐसे स्थान पर रैफी शब्द का प्रयोग होता है, जहाँ दो अंगों के मिलने से एक लकीर बन जाती है।

.इज़्रिस-[फ़ा०] इद्‌रिस-अ०। अलूत्रा-यू०। श.ह्मुल्-मराज-अ०। (A kind of wild mallow) बुर्हान०।

इ..ज्रीस-[बरब०] पहाड़ी सुदाब की गोंद (स.ाफ़्-सिया)।

इज्ल-[अ०] (Tetanus) धनुस्तम्भ। धनुष्टङ्कार। टिटेनस।

इज्लाक़-[अ०] फिसलाना।

इज्स.ा ऽ-[अ०] (Hunch-backed) कुब्ज। कुबड़ा। कूज़ः पुश्त-फ़ा०।

इज्हाज़-[अ०] (Abortion, Miscarriage) गर्भपात। गर्भस्राव। पेट गिरना। दे० "इस्क़ात्"।

इञ्चाक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली। झींगा मछली। जलवृश्चिक। एँचला माछ-बं०। त्रिका०।

इञ्चार-Inchar-हिं०। [?]

इञ्चि-[मल०] आर्द्रक। अदरक। आदी। (Fresh root of ginger)

इञ्चिलु-[का०] खर्ज्जूर। खजूर। (Phoenix sylvestris, *Roxb.*)

इञ्चुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इञ्चाक मत्स्य। झींगा मछली। एँचला नाम की मछली। हारा०।

इञ्जु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Saccharum officinarum, *Linn.*) इक्षु। ईख। ऊख। गन्ना।

इञ्ज़्.आफ़-[अ०] श्वासकृच्छ्रता। साँस की तंगी।

इञ्जर्पस-[पं०] तुवक्षी। मे० मो०।

इञ्जरगड्डु-[द०] एक कंद है।

इञ्जराह.-[अ०] ज़ख़्मी होना। घायल होना।

इञ्जुर्र पुश्तु वान्ने-[पश्तु०] (Grewia villosa) खर्मोटी-मरा०। इं० मे० मे०।

इञ्ज़्हाल-[अ०] (Aphelexia) विस्मृति। सहो। भूल जाना। ज़.हूल।

इञ्ज़ाज-[अ०] पकाना। मवाद को परिपक्व करना अर्थात् प्रगाढ़ दोष (ख़िल्त्) को किसी भाँति पतला और पतले को गाढ़ा बनाना तथा पिच्छल दोष का छेदन। मेचुरेशन (Maturation)

नोट—शल्यशास्त्र में केवल शोथ के परिपक्व करने के लिए 'मेचुरेशन' शब्द व्यवहृत होता है।

इञ्ज़ार-[अ०] (Prognosis) अरिष्ट ज्ञान।

इञ्ज़ा (न्ज़ा) ल-[अ०] (१) अवतरण। अवतारण। उतरना। उतारना। गिराना। छोड़ना। तिब की परिभाषा में शुक्र स्खलन। वीर्यपात। (Seminal effusion)

इञ्जि-[ता०] (Fresh ginger) आर्द्रक। अदरख। आदी। फा० इं० ३ भ०।

इञ्ज़िआज-[अ०] किसी अंग का अपनी जगह से उखड़ जाना। उभार।

इञ्जिज़ाब-[अ०] (Affinity) कशिश। जज़्ब होना। खींचना।

इञ्जिज़ाम-[अ०] लूँड़ा होना। हाथ झड़ जाना।

इञ्जिबार-[अ०] जुड़ जाना। टूटी हुई हड्डी का जुड़ जाना। अस्थिसंधान।

इञ्ज़िमास-[अ०] इल्तिसाक़। मिल जाना। एकत्रित होजाना। संश्लिष्ट होना। चिपक जाना। (Adhesion)

इञ्जिज़लाक़ुर्रि.ह.म-[अ०] जरायु भ्रंश। गर्भाशय स्थान भ्रंश। (Prolapsus uteri)

इञ्जेकशन-संज्ञा पुं०[अं० Injection]तरल औषध को किसी यथोचित् यंत्र द्वारा शरीरके भीतर प्रविष्ट करने की क्रिया वा भाव। सूचिकाभरण। सूचीवेधन। अतःक्षेपण। वस्तिदान। त्रि० दे० "वस्ति"।

इञ्जेक्शियो अर्गोटी हाइपोडर्मिका-[ले० Injectio ergotae hypodermica] अर्गट सत का त्वगधोऽन्तःक्षेप। ज़र्राक़हे शैलम ज़ेरे जिल्द-(फ़ा०)। Hypodermic injection of ergot.

अवयव और निर्माण-क्रम—एक्स्ट्रैक्ट ऑफ अर्गट १०० ग्रेन, फीनोल ३ ग्रेन, परिस्रुत वारि ३३० मिनिम तक। फीनोल को परिस्रत जल में मिलाकर थोड़ा क्वथितकर शीतल करलें। फिर उसमें एक्स्ट्रैक्ट ऑफ़ अर्गट मिला दें। यदि आवश्यक हो तो क्वथित शीतल परिस्रुत ताज़ा पानी इतना मिलाएँ जिसमें कुल द्रव ३३० मिनिम होजाए।

शक्ति—११० मिनिम में ३३ ग्रेन वा ३३ प्रतिशत।

मात्रा—५ से १० मिनिम।

प्रभाव तथा प्रयोग—रक्तवाहिनी और जरायु को सिकोड़ने के लिए इसको गर्भाशयिक रक्तस्राव आदि में प्रयोजित करते हैं।

इञ्जेक्शियो एपोमॉर्फीनी हाइपोडर्मिका-[ले०Injectio apomorphinae hypodermica] एपोमॉर्फीन हाइड्रोक्लोराइड का त्वगधः अन्तःक्षेप। दे० "ऐपोमॉर्फीनी हाइड्रोक्लोराइडम्"।

इञ्जेक्शियो ऐट्रोपीनी हाइपोडर्मिका-[ले० Injectio atropinae hypodermica] धतूरीन (बेलाडोना सत्व) का त्वगधः अन्तः क्षेप। दे० "बेलाडोना"।

इञ्जेक्शियो कोकेनी हाइपोडर्मिका-[ले० Injectio cocainae hypodermica]कोकेन का त्वगधः अन्तः क्षेप।

इञ्जेक्शियो क्युरारी हाइपोडर्मिका-[ले० Injectio curare hypodermica] क्युरारा का त्वगधः अन्तः क्षेप। दे० "क्युरारा"।

इञ्जेक्शियो जिंसाई सल्फ-[ले० Injectio zinci sulph] यशद गंधित का अन्तःक्षेप।

इञ्जेक्शियो नाइट्रोग्लिसेरीनी हाइपोडर्मिका-[ले० Injectio nitroglycerini hypodermica]नाइट्रोगिलिसरीन का त्वगधः अन्तःक्षेप। दे० "ट्राइनाइट्रोग्लीसरीन"।

इञ्जेक्शियोनीज़ हाइपोडर्मिकी-[ले० Injectiones hypodermicae] त्वगधोऽन्तःक्षेप।

इञ्जेक्शियो पाइलोकार्पीनी नाइट्रास-[ले० Injectio pilocarpinae nitras] पाइलोकार्पीन का त्वगधः अन्तः क्षेप। दे० "पाइलोकार्पीनी नाइट्रास"।

इञ्जेक्शियो फाइसास्टिग्मिनी सल्फ हाइपोडर्मिका-[ले० Injectio physostigminae hypo-dermica] कालाबार के सत का त्वगधः अन्तः क्षेप।

इञ्जेक्शिया मॉर्फाइनी हाइपोडर्मिका-[ले० Injectio morphinæ hypodermica] मार्फीन का त्वगधःअन्तःक्षेप। दे० पोस्ते के वर्णन के अन्तर्गत "मॉर्फीनी टारट्रास"।

इञ्जेक्शियो मॉर्फाइनी एट ऐट्रोपीनी हाइपोडर्मिका [ले० Injectio morphinæ et atropinae hypodermica] एट्रोपीन व मॉर्फीन का त्वगधः अन्तः क्षेप। दे० पोस्ते के वर्णन में "मॉर्फाइनी एसीटास"।

इञ्जेक्शियो ष्टिट्रकनीनी हाइपोडर्मिका-[ले० Injectio strychninæ hypodermica] ष्टिट्रकनीन (कुचलीन) का त्वगधः अन्तःक्षेप। दे० "कुचिला"।

इञ्जेक्शियो हाइड्रार्जिराइ आयोडाइडाई-[ले० Injectio hydrargyri iodidi] दे० "पारा"।

इञ्जेक्शियो हाइड्रार्जिराई आयोडाइडाई रुब्राई हाइपाडर्मिका-[ले० Injcetio hydrargyri iodidi rubri hypodermica]

इञ्जेक्शियो हाइपोडर्मिका-[ले० Injectio hypodermica] त्वगधःअन्तःक्षेप।

इञ्जेक्शियो हायोसायमीनी हाइपोडर्मिका–[ले० Injectio hyoscyaminæ hypodermica] हायोसायमीन का त्वगधः अन्तः क्षेप। दे० "अजवायन खुरासनी"।

इञ्जेक्शियो हायोसीनी हाइपोडर्मिका–[ले० Injectio hyoscinæ hypodermica] हायोसीन का त्वगधःअन्तः क्षेप। दे० "अजवायन खुरासानी"।

इट–संज्ञा पुं० वेत्र। तृण। बेंत या घास की चटाई।

इटचर–दे० "इट्चर"।

इटत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऋग्वेदीय सूत्र प्रकाशक भार्गव।

इटसिट–[पं०] सफेद गदहपूरना। श्वेतपुनर्नवा। साँठ।

इटसून–संज्ञा पुं० [(वै०) सं० क्ली०] शाखामय कट। बेंतकी चटाई। "इटसूनेउत्तरतोश्वस्यावघ्नन्ति।" शतपथ ब्राह्मण। १३। २। १६। "इटसून तस्मिन्नेव शाखामये कटे॥" (हरिस्वामी)।

इटालियन सेन्ना–[अं० Italian senna] (Cassia obovata, *Collad.*) सूरती सोनामुखी–गु०। भुइ-तरवड़–मरा०।

इट्चर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] षण्ड। बैल। साँड़। अम०। स्वतंत्र घूमनेवाला साँड़।

इट्टि–[सिं०] मधूच्छिष्ट। मोम।

इट्टिकोत–[ते०] कसेरू। (Scirpus kysoor, *Roxb.*)

इट्रोल–[अं०] (Silver citrate) एक श्वेत-गंध रहित चूर्ण जिसमें ६३ प्रतिशत चाँदी होती है। दे० "चाँदी"।

इड़–[यू०] सौसन की जड़।

संज्ञा स्त्री० [?] (१) भूमि। पृथ्वी। (२) अन्न। अनाज। (३) वर्षाकाल। बरसात।

इडरहर–दे० "इड़हर"।

इड़व–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गो पति। साँड़। बैल। हे० च०।

इड़वोल–[का०] कुन्दुर गोंद। गुग्गुल।

इड़स्पति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विष्णु।

इड़हर–दे० "इंड़हर"।

इड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक नाड़ी जो सुषुम्ना के बाईं ओर है। यह कमान के समान तिरछी पीठ की रीढ़ से होकर बाएँ मुष्क के निम्न भाग (मूलाधार) से बाईं नाक तक गई है। हे० च०। तंत्र और योग के ग्रंथों में इसका पर्याप्त वर्णन आया है। बाईं श्वास इसी से होकर आती जाती है। स्वरोदय में चन्द्रमा इसका प्रधान देवता माना गया है। प्राचीनों के अनुसार यह प्रधान नाड़ी है। इंगला। ईड़ा। दे० "इड़ानाड़ी"। (२) गाय। गौ। (३) पृथिवी। भूमि। (४) वाणी। (५) अन्न। हवि। (Food)

इड़ाचिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वरटा। गँधिया कीड़ा। श० च०। (२) गन्धोली। ककड़ी।

इड़ाजात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूमिज-गुग्गुलु। ज़मीन से पैदा गूगल।

इड़ानाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Splanchic nerve) गंड शृंखला से निकली हुई नाड़ी जो विशेषकर अन्नमार्ग को या अन्नमार्ग सम्बन्धी ग्रंथियों कोजाती है। दे० "इड़ा"।

इड़ावत्–[वै० त्रि०] (१) इड़ानाड़ी विशिष्ठ। जो इड़ा को रखता हो। (२) आनन्दप्रद। फ़रहत बख़्श। (३) आप्यायित। तरोताज़ा बना हुआ। (४) हविः विशिष्ठ।

इड़िक,-इड़िक्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वन्य-च्छाग। जंगली बकरा। (२) वानर। बंदर। हारा०।

इड़िका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पृथिवी। भूमि। शब्दर०।

इड़ीय–वि० [सं० त्रि०] अन्न-सम्बन्धीय। अनाज से भरा हुआ।

इड्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृष। ल। छोड़ने लायक साँड़। गौ स्वामी। अ० टी०।

इएटरमिटेएट फ़ीवर–संज्ञा पुं० [अं० Intermittent fever] सविराम ज्वर। विषम शीत ज्वर। मलेरिया ज्वर। दे० "मलेरिया" वा "विषम ज्वर"।

इएटा चेट्टु–[ते०] खजूर। खजूर। (Phœnix sylvestris, *Roxb.*)

इएटु-उप्पु–[मल०] सैंधव। सेंधानमक। (Sodium chloride impura) Rock salt.

इण्टेस्टाइन–[अं० Intestine] अन्त्र । आँत। अँतड़ी ।

इण्टेस्टाइनल ऐण्टिसेप्टिक्स–[अं० Intestinal anti-septics] आन्त्रीय पचननिवारक। आन्त्रीय कीटघ्न । आन्त्रशोधक ।

इण्टेस्टाइनल ऐस्ट्रिञ्जेण्ट्स–[अं० Intestinal astringents] आन्त्रधारक । आन्त्र संकोचक ।

इण्टेस्टाइनल टॉनिक्स–[अं० Intestinal-tonics] आन्त्रबलदायक ।

इण्टेस्टीन–[अं० Intestin] एक निश्रित याग (Mixture) जिसमें बिज़मथ ऑक्साइड, बेञ्ज़ोइक एसिड और नेफ्थलीन पड़ता है। यह कतिपय आन्त्र-रोगों में लाभप्रद है ।

इण्ट्रा-आर्टीरियल-इञ्जेक्शन–[अं० Intra-arterial injection] धमन्यन्तर अन्तः क्षेप । धमन्य वस्ति । दे० "वस्ति" ।

इण्ट्रा-क्रेनिकल-इञ्जेक्शन–[अं० Intra-cranial-injection] करोट्याभ्यन्तर सूचीकाभरण । सूई द्वारा खोपड़ी के भीतर दवा पहुँचाना ।

इण्ट्रा-मस्क्युलर इञ्जेक्शन–[अं० Intra-muscular-injection] मांस पेश्याभ्यन्तरिक अन्तः क्षेप । सूचीवेध द्वारा मांसपेशी के भीतर औषध पहुँचाना । मांश वस्ति ।

इण्ट्रा-वर्टिब्रा इञ्जेक्शन–[अं० intra-vertebra-injection] एक प्रकार का इंजेक्शन जो रीढ़ के भीतर किया जाता है ।

इण्ट्रा-वेनस इञ्जेक्शन–[अं० intra-venous injection] शिरान्तरीय अन्तः क्षेप । एक प्रकार का इंजेक्शन जो शिराके भीतर किया जाता है । शिरा वस्ति ।

इण्ट्रा-सेरिब्रल इञ्जेक्शन–[अं० intra-cerebral injection] एक प्रकार का इंजेक्शन जो मस्तिष्क के भीतर किया जाता है ।

इण्ट्रा-सेल्युलर टॉक्सिन–[अं० intracellular toxin.] विषाक्तता विशेष ।

इण्ट्रास्पाइनल इञ्जेक्शन–[अं० Intra-spinal injection] एक प्रकार का इंजेक्शन जो कशेरू-कंटक के भीतर किया जाता है ।

इण्डइ–[मरा०] (Gloriosa superba, *Linn.*)Super lily लाङ्गली । कलिहारी ।

इण्डरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पक्वान्न विशेष। किसी प्रकार के पके अनाज की बनी चीज़ ।

इण्डाइरेक्ट–[अं० Indirect] असरल । अप्रत्यक्ष । गौण ।

इण्डाइरेक्ट एफ्रोडिजिएक–[अं० Indirect Aphrodisiac] अप्रत्यक्ष कामोद्दीपक ।

इण्डाइरेक्ट एमेनेगॉग–[अं० Indirect-emmenagogue.] अप्रत्यक्ष रजोनिःसारक । असरल आर्त्तवप्रवर्त्तक ।

इण्डाइरेक्ट ऐक्शन–[अं० Indirect action] औषध का वह प्रभाव जो उसके शरीर में अभिशोषित होकर नाड़ी-मंडल द्वारा शरीर के विभिन्न-अंगों पर असर डालने से होता है, जैसे–एपोमार्फीन । त्वगन्तःअन्तक्षेप द्वारा इसका प्रयोग करने से यद्यपि आमाशयिक वात-तन्तुओं पर इसका किंचिन्मात्र भी उत्तेजक प्रभाव नहीं होता, तो भी मस्तिष्कस्थ वमन-केन्द्र पर इसका उत्तेजक प्रभाव पड़नेसे क़ै आने लगती है । असरल प्रभाव । अप्रत्यक्ष वा गौण प्रभाव । दूरस्थ प्रभाव। दे० "प्रभाव" ।

इण्डाइरेक्ट एन्थेल्मिण्टिक–[अं० Indirect Anthelmintic] अप्रत्यक्ष कृमिहर ।

इण्डाइरेक्ट गष्ट्रिक सिडेटिह्व–[अं० Indirect gastric sedative] अप्रत्यक्ष आमाशयवसादक ।

इण्डाइह्व–[अं० Endive] कासनी ।

इण्डाइह्व, कॉमन–[अं० Endive, Common] कासनी भेद ।

इण्डाइह्व वाइल्ड–[अं० Endive, wild] तर्ख़श्क़ून–फ़ा० ।

इण्डाइह्व, सीड्स–[अं० Endive, seeds] अम्बू बेया । कासनी ।

इण्डिकन–[अं० Indican] नील में पाया जानेवाला एक ग्लूकोसाइड ।

इण्डिकून–[यू० Indicon] नील ।

इण्डिगो–[अं० Indigo] नील । नीलिनी ।

इण्डिगोटियर टिंक्टोरियल्-[फ्रा० Indigotier Tinctorial] नीलिनी । नील । (Indigofera tinctoria, *Linn.*)

इण्डिगोफेरा आस्पालेथॉइडिस-[ले० Indigofera aspalathoides, *Vahl.*] शिवनिम्ब-मरा० । शिवमल्ली-कना० । नील-पं० ।

इण्डिगोफेरा आस्फालेथिफोलिया-[ले० Indigofera asphalathifolia, *Roxb.*] शिवनिम्ब-मरा० ।

इण्डिगोफेरा एनिल-[ले० Indigofera anil] नील भेद ।

इण्डिगोफेरा एन्ने अफाइला-[ले० Indigofera enneayhylla, *Linn.*] वसुक । भुइ गुलि-मरा० । अदम्बेदी-ता० ।

इण्डिगोफेरा ऐट्रोपर्प्युरिया-[ले० Indigofera atropurpurea, *Ham.*] काला सकीना । बन कटी । काठी, गोरकत्री-काश० ।

इण्डिगोफेरा ग्लैण्डयुलोसा-[ले० Indigofera glandulosa, *Willd.*] गत्राच मतमन्द्री -बम्ब० । वेखारियो-मरा०, ते० ।

इण्डिगोफेरा टिङ्कटोरिया-[ले० Indigofera tinctoria, *Linn,*] (Dyers' indigo) नीलिनी । नीली । नील ।

इण्डिगोफेरा ट्रिफोलिएटा-[ले० Indigofera trifoliata, *Linn.*] वेकारिओ-गु० । विकारिया-बम्ब० ।

इण्डिगोफेरा डोसुआ-[ले० Indigofera dosua, *Ham.*] कसके । खेएटी । शगली-पं० । थेओट-शिम० ।

इण्डिगोफेरा पल्चेला-[ले० Indigofera pulchella, *Roxb.*] सकेना । हकूना -हिं० । बरोली-मरा० । हिक्पी-लेप० ।

इण्डिगोफेरा पॉसिफोलिया-[ले० Indigofera paucifolia, *Delile.*] कुडेकर-ता० ।

इण्डिगोफेरा पॉसिफ्लोरा-[ले० Indigofera pauciflora] नील भेद ।

इण्डिगोफेरा लिनिफोलिया-[ले० Indigofera linifolia, *Retz.*] तुर्की-हिं० । भंगरा -बं० ।

इण्डिगोफेरा सुमाट्राना-[ले० Indigofera sumatrana] नीलिनी । नील ।

इण्डिगोफेरा हिर्स्युटा-[ले० Indigofera hirsuta] नील भेद ।

इण्डियन-वि० [अं० Indian] भारतीय । हिंदुस्तानी । हिंदी । दे० "देशी" ।

इण्डियन ऑइल ऑफ़ वर्बीना-[अं० Indian Oil of Verbena] गंधतृण तैल । रूसा का तेल । (Oleum graminis citrati)

इण्यिन आ(ऐ)ज़ाडिरक-[अं० Indian azadirach] निम्ब । नीम । (Azadirachta indica) Margosa

इण्डियन आरारूट-[अं० Indian arrow-root] देशी अरारूट । तवक्षीर । तीखुर ।

इण्डियन ऑरेंज-[अं० Indian orange] देशी नागरंग । (Citrus aurantium) दे० "नारङ्गी" ।

इण्यिन ऑरेंजपील-[अं० Indian orange peel] देशी नागरंग फलत्वक् । (Aurantii cortex Indicus) दे० "नारङ्गी" ।

इण्डियन इपिकेकाइना-[अं० Indian ipecacuanha] अन्तमूल । (Tylophora asthamatica) जंगली पिकवन ।

इण्डियन ईल-[अं० indian Eel] वाम मत्स्य । एक प्रकार की मछली ।

इण्डियन एकोनाइट-[अं० indian aconite] बच्छनाग । वत्सनाभ ।

इण्डियन ऐरो-वुड-[Indian arrow-wood] शिखी । केसरी । (Euonymus atropurpurcus) इं० मे० मे० ।

इण्डियन ऐरोरूट-[अं० Indian arrow-root] तवक्षीर । तीखुर । अरारूट हिंदी ।

इण्डियन काइनो-[अं० Indian kino] विजयसार निर्यास । बीजाबोल-हिं० । दम्मुल्अखवैने हिंदी-अ० । दे० "विजयसार" ।

इण्डियन काइनो ट्री-[अं० Indian kino tree] (Pterocarpus marsupium, *Roxb.*) विजयसार का पेड़ ।

इण्डियन कॉक्लेस–[अं० Indian coccles] काकमारी–हिं० । काकफल-बम्ब० । ज़हरे-माही-फ़ा० । (Coccculus indicus) पी० वी० एम० ।

इण्डियन काटन प्लाण्ट–[अं० Indian cotton plant] कपास । कार्पासी । (Gossypium indicum)

इण्डियन कामन शाट–[अं० Indian common shot] अक्लबार । भंगजल ।

इण्डियन कोपल ट्री–[अं० Indian Copal tree] (१) सर्जक । (Vateria indica] इं० मे० मे० । (२) सरोजिया । इं० हैं० गा० ।

इण्डियन कार्न–[अं० Indian corn] (Zea mays, *Linn.*) Maize मक्काई । भुट्टा ।

इण्डियन कोरलट्री–[अं० Indian coral tree] (Erythrina indica) पारिभद्र । फरहद ।

इण्डियन कॉस्टस–[अं० Indian costus] [Saussurea lappa, *Clarke.*] कुष्ट । कुट ।

इण्डियन गटा-पार्चा–[अं० Indian gutta-percha] गटा पारचा ।

इण्डियन गम–[Indian gum] धव निर्यास । (Gummi indicum) दे० "धव" ।

इण्डियन गूज़-बेरी–[अं० Indian gooseberry] आमलक । आमला । (Emblica officinalis,) दे० "आँवला" ।

इण्डियन गेम्बोज–[अं० Indian gamboge] उसारहे रेवंदे हिंदी । तापिंजा वा तमाल का रालदार गोंद ।

इण्डियन ग्लोबथिसल–[अं० Indian globe-thistle] गोरखमुंडी । मुंडितिका । (Sphaeranthus hirtus,)

इण्डियन चिरेटा–[अं० Indian chirata] }
इण्डियन जेंशन–[अं० Indian gentian] }
किरात तिक्त । चिरायता । (Andrographis paniculata)

इण्डियन जैलप–[अं० Indian jalap] (Ipomœa turpethum) त्रिवृत् । निसोथ ।

इण्डियन टर्नसोल–[अं० Indian tnrn-sole] (Heliotropium indicum, *Linn.*) हस्तिशुण्डी । हाथी सुंडी ।

इण्डियन टर्मेरिक–[अं० Indian turmeric] (Hydrastis canadensis) हाइड्राष्टिस कैनाडेन्सिस । पी० वी० एम० ।

इण्डियन टोबेको–[अं० Indian tobacco] (Lobelia) लोबीलिया ।

इण्डियन ट्री-स्पर्ज–[अं० Inhian tree-spurge] (Euphorbia tirucalli) स्नुही । थूहर । सेंहुड़ । तिरुकल्ली–मला० ।

इण्डियन डीलियम–[अं० Indian Bdellium] महेश गुग्गुल ।

इण्डियन नार्ड ट्रू–[अं० Indian nard-true] जटामांसी ।

इण्डियन पर्सिमोन–[अं० Indian persimmon] (Diospyros embryopteris, *Pers.*) तिन्दुक । तेंदू । तेंद ।

इण्डियन पेनीवर्ट–[अं० Indian pennywort] ब्राह्मी । (Hydrocotyle asitica, *Linn.*)

इण्डियन पोडोफिल्ल(फ़ाइल)म्–[अं० Indian podophyllum] भावन बकरा ।

इण्डियन फॉरगेट-मी-नॉट–[अं० Indian forget-me-not] चित्ती फूल । सीता-च-केस (मरा०) । Heliotropium strigosum, *Willd.*)

इण्डियन फिल्बर्ट–[अं० Indian filbert] (Sapindus trifoliatus, *Linn.*) फेनिल । रीठा ।

इण्डियन बटर ट्री–[अं० Indian butter tree] मधूक । महुआ । (Bassia butyracea, *Roxb.*)

इण्डियन बर्थ-वर्ट–[अं०Indian birth-wort] (Aristolochia indica, *Linn.*) रुद्रजटा । इश्वरमूल ।

इण्डियन बर्बेरिस–[अं० Indian berberis] (Indian lycium) दारुहरिद्रा । दारुहलदी ।

इण्डियन बीच–[अं॰ Indian beech] करञ्ज । कंजा । (Pongamia glabra, *Vent.*)

इण्डियन वेरी–[अं॰ Indian berry] (Anamirta paniculata) काकफल । माही ज़ह्‌रज–अ॰ ।

इण्डियन मष्टर्ड–[अं॰ Indian mustard] (Brassica juncea) सर्षप । सरसों ।

इण्डियन मल्बेरी–[अं॰ Indian mulberry] (Morinda citrifolia, *Linn.*) आच्छुक । आल ।

इण्डियन मेलिसा ऑइल–[अं॰ Indian melissa oil] अगियाघास का तेल । Lemon grass oil.

इण्डियन मैडर–[अं॰ Indian madder] (Oldenlandia umbellata, *Linn.*) Chayroot. चायरुट । चिरवल। दे॰ "चिरवल" ।

इण्डियन मैडर टू-फ्लावर्ड–[अं॰ Indian madder two-flowered] शाहर ।

इण्डियन रेड-वुड ट्री-[अं॰ Indian red wood tree] (Soymida febrifuga) रोहिणी । पत्रङ्ग ।

इण्डियन रेज़िन–[अं॰ Indian resin] भारतीय राल ।

इण्डियन रोज़–[अं॰ Indian rose] देशी गुलाब ।

इण्डियन लिकूरिस–[अं॰ Indian liquorice] (Abrus precatorius, *Linn.*] गुञ्जा । घुँघुची ।

इण्डियन लिलैक–[अं॰ Indian lilac](Melia azadirachta, *Linn.*) निम्ब । नीम ।

इण्डियन लीसियम्–[अं॰ Indian lyceum] दारुहरिद्रा । दारुहलदी ।

इण्डियन वैलेरियन–[अं॰ Indian valerian] तगर–सं॰ । रीशहेवाला–फ़ा ।

इण्डियन वाइल्ड पेपर–[अं॰ Indian wild pepper] (Vitex trifolia, *Linn.*) जल निगुंडी । सिंधूक । पानी का सँभालू ।

इण्डियन वाइल्ड वाइन-[अं॰ Indian wild vine] (Vitis indica, *Linn.*) अंधुक । जंगली अंगूर ।

इण्डियन वाटर चेष्टनट–[अं॰ Indian water chestnut] (Trapa bispinosa, *Roxb.*) सिंघाड़ा । शृंगाटक ।

इण्डियन वॉलनट–[अं॰ Indian walnut] (Juglans regia, *Linn.*) अक्षोट । अखरोट ।

इण्डियन विण्टर ग्रीन–[अं॰ indian winter. green] (Gaultheria fragrantissima, *Wall.*) गंदपुरो ।

इण्डियन शॉट–[अं॰ indian shot] (Canna indica, *Linn.*) अकल्‌बार । भंगजल ।

इण्डियन सार्सापरिल्ला–[अं॰ indian sarsaparilla] (Hemidesmus indicus, *Br.*) शारिवा । अनन्तमूल ।

इण्डियन सॉरैल–[अं॰ indian sorrel] (Oxalis corniculata, *Linn.*) चांगेरी । आमरुल ।

इण्डियन स्क्रू-ट्री–[अं॰indian screw-tree] (Helicteres isora, *Linn.*) आवर्तनी । मरोड़फली । मुर्रा ।

इण्डियन स्क्विल–[अं॰indian squill] (Urgeina indica, *Kunth.*) वनपलाण्डु । काँदा ।

इण्डियन स्पिकेनार्ड–[अं॰ indian spikenard] (Valeriana jatamansi, *D. C.*) जटामांसी । बालछड़ ।

इण्डियन स्पिनाक–[अं॰ indian spinach] (Basella alba, *Linn.*) उपोदकी । पोई ।

इण्डियन स्वीट-फेनेल–[अं॰ indian sweet fennel] (Fœniculum vulgare, *Gaertn.*) मधुरिका ।

इण्डियन हेम्प–[अं॰ indian hemp] भंगा । भाँग ।

इण्डियन हेम्प, अमेरिकन–[अं॰indian hemp, American] (Apocynum cannabinum.)

इण्डियन ह्वाइट रोज़-[अं० indian white rose] (Rosa alba) सेवती । सफ़ेद गुलाब ।

इण्डिया-संज्ञा पुं० [यू० । अं०] हिंदुस्तान । भारतवर्ष ।

इण्डिया रबर ट्री-[अं० india rubber tree] रबर का पेड़ ।

इण्डिया रबर-[अं० india rubber] (Caoutchouc) रबड़ । सम़ग़ मरिन-अ० ।

इण्डीन्थ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०]. छुरी । चाकू ।

इण्ड्र-संज्ञा पुं० [वै० क्ली०] मुञ्जापत्र । मूँजकी चद्दर । कड़ाही चूल्हे से उतारते समय यह हाथ में लपेट लेने के काम आता है ।

इण्येरिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वटिका । बाटी । भौंरी । लिट्टी ।

इतर-संज्ञा पुं० [अ० ,इ,त्र] अतर । दे० "इत्र" । [सं० त्रि०] (१) नीच । कमीना । (२) अन्य । दूसरा । (३) अवशेष । बाकी ।

इतरदान-संज्ञा पुं० दे० "अतरदान" ।

इतरबम्-संज्ञा पुं० [अं० Ytterbum] अर्वाचीन रसायन-शास्त्र में एक मौलिक धातु-तत्व ।

इतरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऐतरेय की माता ।

इतरीफल-संज्ञा पुं० [अ०] अवलेह विशेष । दे० "इत्रीफल" ।

इतलाक़-संज्ञा पुं० [अ०] दे० "इ,तलाक़" ।

इतवरी-संज्ञा स्त्री० दे० "इत्वरी" ।

इतिकथ-संज्ञा पुं० [सं० त्रि०] अर्थशून्य वाक्यका वक्ता ।

इतिकथा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अर्थशून्य कथा ।

इताब-संज्ञा पुं० [सं० पुं०](१) क्रोध। ऋषि। गुस्सा । (२) निन्दा ।

इताम-[अ०] एक ही समय में दो बच्चे जनना । जुड़वाँ संतान जनना ।

इतिब्बाऽ-[अ० बहु०] (१) बरिंजासिफ़ । (Achillea millefolium, *Linn,*) (२) चिकित्सक । दे० "तबीब" ।

इतिब्बाउल् कल्बः-[अ०] श्लेष्मातक । बहुवार । लिसोढ़ा । (Cordia latifolia, *Roxb.*)

इतिहाम-संज्ञा पुं० [अ० पुं०] अपराध । क़ुसूर । खोट ।

इतीक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जाति विशेष । एक कौम ।

इत्कटा-संज्ञा स्त्री० [स० स्त्री०] सूक्ष्म पत्रिका दीर्घ लोहित यष्ठिका काष्ठ विशेष । "गोकएटकेत्कट सहाचरवाणकाशाः । " वा० सू० १५ अ० वेल्लन्तरादिव० ।

इत्कठ,-इत्कठर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वनामख्यात क्षुप विशेष । इत्कड़, ओकड़ा, इकड़-बं० । र० मा० । च० सू० ४ अ० । पर्य्या०-बहुमूलः, वाटीदीर्घः, खरच्छदः (रः) ।

इत्कर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "इत्कट" ।

इत्किला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरोचन नामक सुगंधित द्रव्य । श० च० । दे० "गोरोचन" ।

इत्तड़ी-संज्ञा स्त्री०[सं० स्त्री०] (Brass) पित्तल । पीतल ।

इत्तिसाल-[अ०] सम्मेलन । संधि ।

इत्तिसाल इल्तिहामी-[अ०] दो हड्डियों का जुड़कर एक होजाना । जैसे, प्रारम्भ में अधोहन्वस्थि के दो खंड होते हैं; फिर वे दोनों खंड ठुड्डी के स्थान पर मिलकर एक होजाते हैं । सिनॉष्टोसिस Synostosis-अं० ।

इत्तिसाल मफ़्सली-[अ०] मफ़्सल । हड्डियों का संयुक्त होना । हड्डियों की संधि का मिलना । संधि । जोड़ । (Articulation) दे० "मफ़्सल" वा "संधि" ।

इत्थशाल-संज्ञा पुं० [यह इत्तसाल अरबी शब्द का अपभ्रंश] ज्योतिषोक्त तृतीय योग जब शीघ्र चलनेवाला ग्रह अंश में कम पड़ते भी मन्द गामी ग्रह को देखता है, तब इत्थसाल योग होता है ।

इत्फ़-[अ०] दोश-फ़ा० । स्कंध । कंधा । मोढ़ा । (Shoulder)

इत्फ़ा-[अ०] (Quench) बुझाना । गरमी मारना । ठंडा करना ।

इत्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिविका । पालकी नाम की सवारी ।

नोट—वह स्थान जहाँ पर दो अस्थियाँ परस्पर मिलती हैं, अंगरेजी में सिम्फिसिस (Symphysis) कहलाता है।

इत्र-संज्ञा पुं० [अ़०, .इ.त्र=सुगंधि] [बहु० अ़.तूर, .इलि़यात] भभके द्वारा खिंचा हुआ फूलों की सुगंधि का सार। निर्यास। पुष्पसार।

पर्य्या०—.इत्ऱ (अ़०, फ़ा०)। इतर। अतर–(हिं०, द०)। तैलम् (ता०)। तैलमु (ते०)। तैलम्, (बहु० तैलञ्जल)–मल०। Essential oil, otto, Essence

प्रस्तुत-विधि—ताज़े फूलों को पानी के साथ एक बन्द देग में आग पर रखते हैं जो नल द्वारा उस भभके से मिला रहता है जिसमें पहिले से चंदन का तेल (जिसे ज़मीन का मावा कहते हैं) रक्खा रहता है। फूलों से सुगंधित भाप उठकर उस चंदन के तेल पर टपककर इकट्ठी होती जाती है और तेल (ज़मीन) ऊपर आ जाता है। इसी तेल को काछकर रख लेते हैं और इसे अतर वा इतर कहते हैं। जिस फूल की भाप से यह बनता है उसी का अतर कहलाता है; जैसे, गुलाब का अतर, मोतिये का अतर, इत्यादि। (हिं० श० सा०)।

.इत्ऱ अम्बर-[अ़०] अम्बर का अतर।

.इत्ऱ ऊ़द-[अ़०] अगर का अतर।

इत्रदान-संज्ञा पुं० [अ़०] दे० "अतरदान"।

इत्र देशी-संज्ञा पुं० देशी अतर।

इत्र फ़रोश-संज्ञा पुं० [फ़ा०] अतर बेचनेवाला। इतरफ़रोश।

.इत्ऱ मन्स़.म्-[अ़०] हब्ब मन्स़.म् का तेल।

.इत्र. मुस़.ल्लस़.-[अ०] इत्र तृतय। तीन प्रकार के अतरों का समाहार। जैसे,–.इत्र. अम्बर, .इत्र. ऊ़द और .इत्र. स़ंदल।

इत्रलगाना-क्रि० परिमल मलना। अतर लगाना।

.इत्र. विलायती-[पारिभा०] काशमीरी चरस।

इत्.रान-[अ०] क़त्.रान। अलकतरा।

इत्रीफल-संज्ञा पुं० [अ० इत्.रीफल। सं० त्रिफला] एक हकीमी दवा। हड़, बहेड़े और आँवले का चूर्ण तिगुने शहद में मिलाकर चालीस दिन तक रखा जाता है और फिर व्यवहार में आता है। वि० दे० "अतूरीफ़ल"।

इत्रीफ़ल उस्तोख़ूदूस-[अ०] एक प्रकार का इत्रीफल जिसके उपादान वे ही हैं, जो इत्रीफ़ल सग़ीर के। फर्क केवल यह है कि इसमें उनके अतिरिक्त समान भाग उस्तोख़ुदूस भी पड़ता है।

मात्रा—७ मा० यह इत्रीफल ६ तो० अर्क गावज़बान के साथ उपयोग में लाएँ।

गुण—यह मस्तिष्क का शोधन करता है।

इत्रीफ़ल कबीर-[अ०] एक हकीमी योग जिसमें त्रिफला पड़ता है।

योग तथा निर्माण-विधि—हलेला स्याह, पोस्त हलेला काबुली, पोस्तबलेला, आमला मुनक्का (गुठली निकाला हुआ आँवला), गोलमिर्च, पीपल प्रत्येक १ तो० ७।मा०, सोंठ, जावित्री, शतावर, चीता, शकाकुल मिश्री, तोदरी सुर्ख़ तथा ज़र्द, इन्द्रजौ शीरीं, बहमन सुर्ख़, बहमन सफ़ेद, छिलाहुआ तिल, ख़शख़ाश सफ़ेद, मग़्ज़ हब्ब कुल्कुल प्रत्येक ५॥ मा०—इनको कूट-छानकर बादाम के तेल से मर्दित करें। ६ तो० तुरंजबीन को पानी में साफ़ करके चाशनी करें। पुनः इसमें ३ पाव मधु और दवाएँ सम्मिलित कर इतरीफल बना लें।

मात्रा तथा सेवन-विधि—सोते समय ७ मा० इतरीफल १२ तो० अर्कगावज़बान के साथ खाएँ।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—यह आमाशय, मस्तिष्क और आँखों को शक्तिप्रदान करता, बवासीर एवं प्रतिश्याय को लाभकारी और कामोद्दीपक है।

प्रधान गुण—मस्तिष्क का शोधन करता और उसे शक्तिप्रदान करता है।

इत्रीफल क़श्नीजी-[अ०]हलेलाज़र्द, हलेलाकाबुली, हलेला स्याह, आमला मुक़श्शर, बहेड़े का छिलका, धनियाँ ख़ुश्क प्रत्येक ५ तो०—इनको कूटछानकर रोग़न बादाम में मर्दितकर तिगुने मधु में यथाविधि इत्रीफल बनाएँ।

मात्रा तथा सेवन-विधि—रात्रि में सोते समय ७ मा० इत्रीफ़ल १२ तो० अर्क गावज़बान के साथ सेवन करें।

गुणधर्म तथा प्रयोग—आमाशय में वाष्पीभवन क्रिया के होने में उपकारी एवं तज्जन्य नेत्र,

कर्ण तथा शिर में पैदा होनेवाले दर्द के लिए गुणकारी है। अभिष्यंद वा आँख आने में विशेषतया लाभकारी है। इसके अतिरिक्त यह मस्तिष्क और दृष्टि को शक्ति प्रदान करता है।

इत्रीफल किशमिशी-[अ०] पोस्त हलेला ज़र्द, पोस्त हलेला स्याह, आमला हरएक ७ माशे, सूखी धनियाँ ४ मा०—इनको कूट-छानकर गोघृत वा बादाम के तेल में मलकर रखें। फिर किशमिश सब्ज का शीरा ७ तो०, मिश्री ७ तो० की चाशनी करके उपर्युक्त दवाओं को मिलाकर इत्रीफल बनालें।

मात्रा तथा सेवन-विधि—५ माशे यह इत्रीफ़ल १२ तो० अर्क़ गावज़बान के साथ सेवन कराएँ।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—शुक्रमेह, शुक्रतारल्य, गरमी के कारण उत्पन्न शीघ्रपतन के लिये लाभकारी है। आमाशय एवं मस्तिष्क को बलप्रदान करता है।

इत्रीफल ग़ुदूदी-[अ०] इत्रीफल भेद।

उपादान और निर्म्माण-क्रम-हलेला स्याह ४ तो० ४॥ मा०, अफ्तीमून २ तो० ११ मा०, हलेला, आँवला, सफेद निशोथ (मुजव्वफ अर्थात् खोखला), सनाय मक्की प्रत्येक २ तो० ४ रत्ती०, ग़ारीक़ून, ज़रंबाद, चीता, नौसादर, प्रत्येक १०॥ मा०, अनीसून, तज (क़िर्फ़ः), बालछड़ (सुंबुलुत्तीब), लौंग, जायफल, पिसी हुई रूमी मस्तगी प्रत्येक ७ मा०, बकरी की ग्रीवा की सुखाई हुई ग्रंथियाँ १ तो० ४ रत्ती, बस्फ़ाइज फ़ुस्तक़ी, उस्तोख़ुदूस प्रत्येक १ तो० ५॥ मा०—इन सब औषधियों को कूट-छानकर तिगुने मधु में मिलाकर इत्रीफ़ल बनाएँ।

मात्रा तथा सेवन-विधि—१ तो० इत्रीफल, १२ तो० अर्क़ सौंफ के साथ प्रातः काल सेवन करें।

गुण तथा प्रयोग—गलगण्ड वा कंठमाला (ख़नाज़ीर) को हितकर है। मस्तिष्क तथा आमाशय के मलों का शोधन करता है।

परहेज़—विष्टंभकारक आहार; जैसे—मसूर, लाबिया प्रभृति से बिलकुल परहेज़ करें।

इत्रीफल ज़मानी—[अ०] इत्रीफल भेद।

योग तथा निर्माण-विधि—सफेद निशोथ, सूखी धनियाँ प्रत्येक ७॥ तो०, पोस्त हलेला ज़र्द, पोस्त हलेलाकाबुली, हलेला स्याह, सक़मूनिया मुशव्वी, गुल बनफ़्शा हरएक ३तो० ६ मा० पोस्त बलेला, आमला मुक़श्शर, तबाशीर, गुलेसुर्ख़, गुल नीलोफर प्रत्येक २२॥ मा०, संदल सफ़ेद, कतीरा, हर एक १२॥ मा०, औषधियों को कूट छानकर ११ तो० ३ मा० बादाम के तेल से मर्दित करें। इसके पश्चात् उन्नाव, सपिस्ताँ प्रत्येक १०० दाने, गुल बनफ़्शा २ तो० ६ मा० इनको पानी में क्वथित कर छान लें, पुनः औषधियों के डेढ़ गुना हड़ के मुरब्बा का शीरा सम्मिलित कर इत्रीफल प्रस्तुत करें।

मात्रा तथा सेवन विधि—७ मा० इत्रीफल १२ तो० अर्क गावज़बान के साथ रात को सोते समय सेवन करें।

गुणधर्म तथा उपयोग—यह मस्तिष्क का शोधन करता, शिरोशूल, उदरशूल, मलावरोध, मालीख़ोलिया, दायमी नज़ला एवं वाष्पारोहण में अतीव गुणकारी है।

इत्रीफल दीदान-[अ०] इत्रीफल भेद। वायबिडंग काबुली २ तो० १० मा०,सफ़ेद निशोथ मुजव्वफ़ (खोखला), हब्बुल्नील (कालादान), कडुआ कुट प्रत्येक १ तो० ५ मा०, तुमुंस, अफ़संतीन, दर्मिनः तुर्की, अफ़्तीमून, नमक साँभर, इन्द्रायन का गूदा, सुअद कोफ़ी, तुख़्म रासन प्रत्येक १०॥ मा० इनको कूट छानकर तिगुने शहद के साथ इत्रीफल प्रस्तुत करें।

मात्रा तथा सेवन-विधि—५ मा० यह इत्रीफल १२ तो० अर्क गावज़बान के साथ प्रातःकाल वा सायंकाल तीन दिन तक सेवन करें। इसके उपरांत एक हलका सा जुल्लाब ले लें।

गुणधर्म तथा प्रयोग—यह आमाशय को श्लैष्मिक द्रवों से शुद्ध करता और उदरगत हर प्रकार के क्रिमियों को मारकर निकाल देता है।

इत्रीफल फ़ौलादी—[अ०] इत्रीफल भेद।

उपादान एवं निर्माण-क्रम—मवेज़ मुनक्का(दाख), सेंधानमक, पीपल प्रत्येक १४ मा०, पोस्त

हलेला ज़र्द, लोहभस्म हरएक २ तो० ४ मा०, सतावर ३॥ तो०, मुलेठी ४ तो० ८ मा०, सूखा आँवला १० तो०, कूटने की दवाएँ कूट-छानकर बादाम के तेल में मर्द्दित करें। दाख को पीसकर और मिश्री २० तो०, शुद्ध मधु ३० तो० की चाशनीकर यथाविधि इत्रीफल बनाएँ।

मात्रा तथा सेवन-विधि—हर रोज़ प्रातःकाल ५ मा० इत्रीफल ताज़े पानीके साथ या सायंकाल सोते समय १२ तो० अर्क गावज़बान के साथ खाएँ।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—नेत्ररोग उदाहरणतः मोतियाबिंदु विशेषकर आधासीसी (दर्द शकीकः) के लिए अतीव गुणकारी है। खूनी तथा बादी बवासीर एवं आमाशय की निर्बलता के लिये उपकारी है।

इत्रीफल मुलय्यिन–[अ०] पोस्त हलेला काबुली, पोस्त हलेलाज़र्द, हलेला स्याह, आमला मुक़श्शर, निशोथ सफ़ेद प्रत्येक १॥ तो०, रेवंदचीनी, सौंफ, मस्तगी, उस्तोखुद्दूस प्रत्येक ३॥ तोला, सक़मूनिया मुशव्वी ७॥ तो०—इनको कूट-छानकर आवश्यकतानुसार बादाम के तेल में मर्द्दित कर तिगुने शहद के साथ यथा-विधि इत्रीफल प्रस्तुत करें।

मात्रा तथा सेवन-विधि—रात को सोते समय ६ माशे इत्रीफल १२ तोले अर्क़ बादियान के साथ सेवन करें।

गुण-धर्म तथा प्रयोग-मलावरोध के लिए गुणकारी है। आमाशय तथा आँतों के दर्द में लाभकारी है। मस्तिष्क रोगों के लिए विशेषकर जो मलबद्धता के कारण उत्पन्न हुए हों, हितकर है। चिरकारी शिरोशूल में अति ही कल्याणकारी सिद्ध हुआ है। विशिष्ट गुण—मलावरोध निवारक है।

इत्रीफ़ल मुसहिल–[अ०] पोस्त हलेला ज़र्द, पोस्त हलेला काबुली, पोस्त हलेला स्याह, आमला, बसफ़ाइज, उस्तोखुदूस, ग़ारीकून सफ़ेद, गावज़बान, बादियान, प्रत्येक ६ मा०, मवेज़ मुनक्का, सनाय मक्की प्रत्येक २ तो०, तुबुर्दसफ़ेद मुक़श्शर, मग़्ज़ बादाम प्रत्येक १ तो०—सकल औषधियों को पीसकर बादाम के तेल में मर्दित कर लिया जाय। फिर तिगुना मधु योजितकर क़िवाम दुरुस्त कर लें।

मात्रा तथा सेवन-विधि–२ तो० शर्बत किंचित् जल मिलाकर प्रयोग में लाएँ। कोष्ट को मुलायम् करने के लिए इससे न्यून मात्राभी पर्याप्त है।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—द्रवोंका शोधन करता और चिरकारी शिरोशूल को गुणकारी है। यह विरेक् लाता है।

इत्रीफल शाहतरा–[अ०] इत्रीफल भेद।

योग तथा निर्माण-विधि—शाहतरा १४ तो० ७ माशा, पोस्त हलेला ज़र्द ११ तोला ८ माशा, मवेज़ मुनक्का १० तो०, पोस्त हलेला काबुली ८॥। तो०, बहेड़े का छिलका, आमला हरएक ६ तो० १० मा०, सनाय मक्की २ तो० ११ मा०, गुलेसुर्ख़ १ तो० ५ मा० - मवेज़ अर्थात् दाख के अतिरिक्त शेष समग्र औषधियों को कूट-छानकर बादाम के तेल (आवश्यकतानुसार) में मर्द्दित करें। मवेज़ मुनक्काको सिलपर पीसें इसके उपरांत तिगुने मधु में सम्पूर्ण औषध मिलाकर यथाविधि इत्रीफल बनाएँ।

मात्रा तथा सेवन-विधि—प्रति दिन प्रातः काल ७ माशा यह इत्रीफल १२ तोला अर्क़ मुसफ़्फ़ी खून के साथ खायँ।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—यह रक्तदोष में लाभकारी है। आतशक के कारण मस्तिष्क में जो उष्मा पैदा हो जाती है, उसके लिये गुणकारी है एवं मस्तिष्क बलदायक भी है।

इत्रीफ़ल सग़ीर–[अ०] पीली हड़ का बक्कल, काली हड़, बहेड़ा, सूखा आँवला—इनको सम भाग लेकर बारीक चूर्ण कर लें। हड़ों को मीठे बादाम के तेल से मर्द्दित कर लें। पुनः तिगुने शुद्ध मधु की अर्क बादियान में चाशनी करें। जब चाशनी ठीक हो जाय, तब बारीक पिसी हुई औषधियों को धीरे-धीरे उसमें सम्मिलित करते जायँ।

मात्रा—७ माशे से १ तो० तक ६ तो० अर्क गावज़बान के साथ।

गुण—यह मस्तिष्क का शोधन करता है।

इ (अ) त्रीफ़लीन–[मुअ०] चुक्र। चूका।

इत्रीलाल-[अ॰] (Anthriscus cerefolium, *Hoffm.*] दे॰ "आतरीलाल"।

.इत्रुल् वर्द-[अ॰]
.इत्रुल् वर्दुल् अह्मर-[अ॰]
.इत्रे गुलाब-[फ़ा॰]
.इत्रे गुल्ते सुर्ख़-[फ़ा॰]
} गुलाब पुष्प-सार। गुलाब का अतर। (Attar or utr of roses.) दे॰ "गुलाब"।

.इत्रे .संदल-[फ़ा॰] (Essential oil of sandal-wood.) संदल का इतर। चंदन का अतर।

इत्ल-[अ॰] [बहु॰ अत्ताल] जनीब ख़स्र्। कुक्षि ! कोख-हिं॰। फ्लैङ्क Flank-अं॰।

इत्लाक़-[अ॰] (१) इतलाक़। जारी करना। छोड़ देना। (२) यूनानी वैद्यकीय परिभाषा में अतीसार अर्थात् दस्त आना। (३) बोलना। कथन।

इत्वर-संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ इत्वरी] षंढ। नपुंसक। नामर्द।

इत्वरी-वि॰ स्त्री॰ [सं॰त्रि॰]छिनाल। कुलटा। असती स्त्री।

इदअ-[रू॰] ख़ूनाख़राबा। हीरादोखी ! (Dragon's blood.)

इदङ्कार्य्या-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] (Alhagi camelorum, *Fisch.*) दुरालभा। धमासा ! श॰ च॰।

.इदाद-[अ॰] (१) नियतकालीन व्याधि। नियत समय पर आनेवाला रोग, जैसे,-यक्ष्मा, तृतीयक एवं चातुर्थक आदि। (२) मरणकाल। मरने का समय।

इदानुल् बत्रांत्-[अ॰] लालसाग। केसरी। (Polygonum Ariculare, *Linn.*)

इदाम-[अ॰] सालन। भाजी। तरकारी। जो रोटी के साथ खाई जाए।

इदावत्सर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] पाँच संवत्सरादि में से एक। जैसे संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और उदावत्सर। संवत्सर में तिल, परिवत्सर में यव, इदावत्सर में अन्न एवं वस्त्र, अनुवत्सर में धान्य और उदावत्सर में रौप्यदान करने से मनुष्य सुखी होता है।

इदुवत्सर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰]दे॰ "इदावत्सर"।

इद्ख़िर-[अ॰] दे॰ "इज़्ख़िर"। फा॰ इं॰।

इद्ग़ास-[अ॰] धात्वर्थ लगाम देना वा हिलाना। यूनानी वैद्यक की परिभाषा में आहार को बिना चबाए खाना वा निगलना।

इद्दत-संज्ञा स्त्री॰[अ॰ .इद्दत्] (१)ऋतुकाल। आर्तव निकलने का दिन। आर्तवकाल। (२) ज़ुहर का समय अर्थात् ऋतु-स्नानकाल जब कि स्त्री मासिक धर्म से शुद्ध होती है। (३) इसलाम धर्म के अनुसार मुसलमान स्त्रियों का वह काल, पति के मरने वा तिलाक़ के बाद, जिसके बीच वे अन्य पुरुष से विवाह नहीं कर सकतीं। अस्तु, तिलाक़वाली स्त्री के लिए तीन मास या तीन हैज़ नियत है और विधवा के लिए चार मास दस दिवस एवं गर्भवती विधवा के लिए शिशु के प्रशव होने तक।

इद्लाउल्लिसान-[अ॰] जिह्वा का बड़ा होजाना। जिह्वा का मुख से बाहर निकल आना। एक रोग जिसमें जिह्वा फूलकर इतनी बड़ी होजाती है कि मुख में नहीं समाती, प्रत्युत बाहर निकल आती है। ग्लॉसोसील Glossocele (अं॰)।

.इद्दःजैब-[अ॰] (Pocket case) छोटे-छोटे आवश्यक शल्यास्त्रों का वह कोष जो साधारणतः जेब में रक्खा जाता है।

इद्ध-संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] (१) रौद्र। आतप। धूप। दीप्ति। प्रकाश। मे॰ (२) जला हुआ। दग्ध।

इद्धत्सर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] दे॰ "इदावत्सर"।

इद्धमन्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्त्री॰] क्रुद्ध। गुस्से में आया हुआ।

इद्धा-[सं॰ अव्य॰] प्रकाश्य। खुले तौर पर

इद्धाग्नि-[वै॰ त्रि॰] प्रदीपाग्नि युक्त। जिससे आग जले।

इद्फ़ाऽ-[अ॰] गरम कपड़ा पहिनना।

इद्माल-[अ॰] क्षत का भर आना। ज़ख्म भरना। ज़ख्म अच्छा होना। व्रणपूरण।

इद्राक-[अ०] प्राप्ति। पहुँचना। समझना। समझ। बुद्धि। (Perception)

नोट—इद्राक और इह्सास के पारस्परिक अर्थ भेद के लिए दे० क्रमशः "ह़िस" और "दिर्क"।

इद्रार-[अ०] प्रवर्त्तन। जारी करना। बहाना। तिब की परिभाषा में किसी शारीरिक द्रव, जैसे. मूत्र वा आर्त्तव प्रभृति का प्रवर्त्तन। उत्सर्ग। (Flow)

इद्रारुल् बौल-[अ०] मूत्र प्रवर्त्तन। मूत्रोत्सर्जन। मूत्रोत्सर्ग। पेशाब जारी करना (Diuresis.)

इद्रारुल्लबन-[अ०] स्तन से दुग्ध जारी करना। स्तन्यप्रवर्त्तन। (Galactagogue.)

नोट—डॉक्टरी में गैलेक्टेगॉग के दो अर्थ हैं–(१) इद्रारुल्लबन (स्तन्यप्रवर्तन) और (२) मुदिरुल्लबन (स्तन्यप्रवर्तक)।

इद्रारुल् .हैज़, इद्रारुत्तम्स्.-[अ०] रजोनिःसारण। आर्त्तव प्रवर्त्तन। (Emmenagogue.)

नोट—एम्मेनेगॉग के दो अर्थ हैं—(१) इद्रारुत्तम्स्. (आर्त्तवप्रवर्त्तन) और (२) मुदिरुत्तम्स्. (आर्तव निःसारक)।

इद्वाऽ-[अ०] रोगी बना देना। रोगाक्रांत करदेना। बीमार करना।

इद्रिस-[अ०] जंगली खित्मी। .इज़्रिस।

इद्रिस-[तु०] भूतृण तैल। रोहिष तैल। रूसा का तेल। (Rusa-grass oil)

इद्लीम,-इद्लीमः-[अ०] (Indigofera Tinctoria, *Linn.*) नीलिनी। नील।

इध्-संज्ञा पुं० [सं० त्रि०] प्रदीप्त। चमकता हुआ।

नोट-यह समासके अन्तमें आता है; जैसे अग्नीध।

इध्म-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] होम की लकड़ी। यज्ञीय समिध्।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्निदीपन काष्ट। आग जलाने की लकड़ी। (२) प्रिय व्रत के एक पुत्र का नाम।

इध्मजिह्व-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि। लकड़ी की जीभ रखनेवाली आग। (२) प्रिय. व्रत के एक पुत्र का नाम।

इध्मप्रव्रश्चन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृत्तादनी। लकड़ी काटने का कुल्हाड़ा। टांगा।

इध्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रकाशन। सुलगाव।

इन-[सं० पुं०] (१) रक्तशालि धान्य।

[सं० क्ली०] लोहा। सार।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सूर्य्य। सूरज। (२) प्रभु। स्वामी।

.इनत-[अ०] दे० ".इनानत"।

इनफ़िसाल-संज्ञा पुं० [अ० पुं०] निर्णय। निष्पत्ति। फैसला।

इनफ़्लुएंजा-[अं० Influenza] सरदी का बुखार जिसमें सिर भारी रहता है, नाक बहा करती है और हरारत रहती है। यह एक प्रकार का जनपदोद्ध्वंसक संक्रामक उग्र प्रतिश्याय है। वि० दे० "प्रतिश्याय"।

.इनब, अ़नब-[अ०] (Vitis vinifera, *Linn.*) द्राक्षा। अंगूर।

.इनबः-[अ०] .इनबतुल्ऐ.न। रोग या चोट के कारण आँख के ढेले पर का उभरा हुआ मांस। टेंटर। टेंटड़। ढेंढर। (Staphyloma, Prolapsis of the Iris)

.इनबिय्यः-[अ०] नेत्र का तृतीय पटल। आँख का अंगूरी पर्दा।

.इनबुज़्.ज़्.इब-अल्हल्ब व अल्मुर्र-[अ०] काकमाची। मकोय।

.इनबुज्जन-[अ०] शिवलिङ्गी। लिङ्गिनी। फ़ाशरा। (Bryonia Epigaea, *Rottl.*)

.इनबुथ्थालिब-[यू०] (Solanum Dulcamara, *Linn.*) .इनबुस्.स्.ालिब-(अ०)। काकमाची। मकोय।

इनबुद्दुब्ब-[अ० .इनबुद्दुब्ब] पर्य्या०-रीछ दाख-(हिं०)। भल्लूक द्राक्षा, ऋक्ष द्राक्षा (सं०)। इ.नबुद्दुब्ब, आ़विस (अ़०)। अंगूरे ख़िरस (फ़ा०)। अरक्टोष्टेफिलॉस युवा अर्साई Arctostaphylos uva ursi, *Spreng.* (ले०)। बीयर बेरी Bear berry (अं०)।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—अरक्टोष्टेफिलॉस यूनानी भाषा का शब्द है, जो अरक्टोस(=ऋक्ष वा रीछ) और ष्टेफिला(=अंगूर का ख़ुशा) का यौगिक है। युवा अर्साई लेटिन भाषा का शब्द

है, और यह भी युवा (=द्राक्षा) और अर्सी (=ऋक्ष वा भालू) का यौगिक है। अस्तु, उपर्युक्त दोनों पदोंका शाब्दिक अर्थ "भल्लूकद्राक्षा" अर्थात् रीछ दाख हुआ। इसका अरबी पर्याय .इनबुद्दुब्ब भी .इनब (=अंगूर) और दुब्ब (=भल्लूक) का यौगिक है। अस्तु, इसका भी उपर्युक्त अर्थ अर्थात् रीछ दाख हुआ। इसी प्रकार उपर्युक्त सभी भाषा की संज्ञाओं का अर्थ प्राय: रीछ दाख ही हुआ।

(*N. O. Erecaceoe.*)

उत्पत्ति-स्थान—यूरोप, प्रधानतः इंगलैंड, एशिया (पार्वतीय प्रदेश) और उत्तरी अमेरिका।

वानस्पतिक वर्णन—एक उद्भिज्ज, जो प्राय: पार्वतीय भूमि में उत्पन्न होता है। यह दो प्रकार का होता है—(१) नर और (२) मादा। इनमें से नर मनुष्य के क़द के बराबर ऊँचा होता है। यह बहु शाखी होता है और शाखाएँ छत्र की तरह एवं ज़मीन की ओर झुकी हुई होती हैं। काँटे इसमें नहीं होते। पत्ते अनार के पत्तों की तरह और किसी प्रकार उनसे चौड़े और नरम होते हैं। फल छोटे-छोटे जंगली बेर के बराबर और लाल रंग के घौंद में लगते हैं। प्रत्येक फल में ४-५ छोटे-छोटे बीज होते हैं। फल स्वाद में मीठा और किंचित् तिक्त होता है एवं किसी भाँति जबान पर खिंचावट पैदा करता है। उसमें चेंप होती है। फूल हरापन लिए पीला और आकृति में मेंहदी के फूल की तरह; पर उससे बहुत छोटा होता है। जड़ का रंग ललाई लिए होता है। बग़दादी इसको पहाड़ी ज़ुअ्.रूर की क़िस्म मानते हैं।

मादा के पत्ते नर से बड़े और शमशाद के पत्तों के सदृश होते हैं। पर उनसे कुछ छोटे होते हैं। यह छत्राकार नहीं होता। ख़ज़ाइनुल् अद्विया के संकलयिता के अनुसार शमशाद के पत्ते सरोके पत्तों की तरह होते हैं। परंतु मख़्ज़न और मुहीत में इनबुद्दुब्ब के प्रथम भेद के पत्ते अनार के पत्तों की तरह और किसी भाँति उनसे चौड़े उल्लिखित हैं और मादा के पत्तों को नर के पत्तों से भी बड़ा बताकर शमशाद के पत्तों की उपमा दी है। पुनः कहा है कि शमशाद के पत्तों से थोड़े छोटे-छोटे होते हैं। इससे प्रगट होता है कि शमशाद के पत्ते अनार के पत्तों से बहुत बड़े और चौड़े होंगे। सारांश यह कि उन्होंने स्वयं शमशाद के पत्तों को अनार और मोरिद अर्थात् आस के पत्तों की तरह समझ रक्खा है। यह उनका नितांत भ्रम, कृतपरिचय-ज्ञान एवं अनुसंधान का अभाव सूचित करता है।

डाक्टरी ग्रंथों में लिखा है कि इसके पत्ते हरिताभ पीत वर्ण के अंडाकार $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच लम्बे होते हैं। प्रत्येक पत्ते में एक छोटी सी डंटी (पत्रवृंत) होती है। इसका ऊर्द्ध्व पृष्ट चमकदार और प्रशस्त, अधः पृष्ठ हलके रंग का, पर उस पर बारीक जाल सा बना होता है। पत्रप्रांत समान होता है। गंध कुछ नहीं, स्वाद अत्यंत कसैला होता है।

सनाय और बुकू की पत्तियाँ आकृति में किसी प्रकार इनके समान होती हैं।

मादा की जड़ को अरबी में ऊदुलबर्क और ऊदुलबंदक कहते हैं। इसके सर्वांग में विष होता है और ये नशा लाते हैं। केवल जड़ मादक नहीं होती। किर्मान और शीराज़ में प्रचुरता से उत्पन्न होती है।

इतिहास—जालीनूस ने इस वनस्पति का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि यूनान देशीय चिकित्सकों को यह ओषधि ज्ञात थी। किंतु फार्माकोग्राफिया के रचयिता के अनुसार वेल्स देशीय चिकित्सकों ने ईसवी सन् की तेरहवीं शताब्दीमें मूत्र-प्रणालीगत रोगों में इसका सर्व प्रथम प्रयोग आरंभ किया। लंडनकी फार्माकोपिया में सन् १७८८ई० में यह दवा प्रथमबार समाविष्ट की गई। अस्तु, इसकी पत्ती अब तक ब्रिटिस फार्माकोपिया में ऑफ़िशल है।

रीछ दाख की पत्ती
ऑफिसल *Official*

पर्य्या०—ऋक्ष द्राक्ष दल, भल्लूक द्राक्षा पत्र (हिं०, सं०)। औराक़ .इनबुद्दुब्ब (अ०)। अंगूर ख़िरस (फ़ा०)। यूवी अर्साई फॉलिया Uvae ursi folia (ले०)। बीयर बेरी

लीह्वज Bear berry leaves, बीयर्स ग्रेप लीह्वज़ Bear's grape leaves (अं०)।

रासायनिक संघटन—इसमें (१) आब्युर्टीन (Arbutin) नामक एक स्फटिकीय ग्ल्युकोसाइड सत्व जो ग्ल्युकोज़ हाइड्रोकीनून (Hydrochinon) और मीथिल आब्युर्टीन (Methyl arbutin) में वियोजित हो जाता है, (२) एरीकोलीन एक तिक्त स्फिटिकीय ग्ल्युकोसाइड, (३) अर्सून एक स्वादरहित उदासीन पदार्थ, (४) टैनिक एसिड और गैलिक एसिड ३३ प्रतिशत ये अवयव होते हैं।

संयोग-विरुद्ध—साल्ट्स ऑफ लेड एण्ड सिल्वर (रजत एवं सीसक लवण), आयर्न (लौह), वेजिटिब्ल एलकलाइड्स (वानस्पतिक क्षारोद) और जेलाटीन (सरेश)।

प्रभाव—संकोचक, मूत्र प्रवर्त्तक, वस्तिशामक और मूत्रपथगत क्रिमिहर।

औषधार्थ-व्यवहार—पत्र (डाक्टरी में इसकी लघु, सूखी हुई. पीताभ रहित, चमकदार चर्मवत् मोटी पत्तियाँ औषधार्थ काम में आती है), फल और जड़।

औषध-निर्माण—

डाक्टरी मत से—इसका निम्न इन्फ्युज़न आफ़िशल है– इन्फ़्युज़म यूवी अर्साई Infusum uvae ursi (ले०)। इन्फ्युजन ऑफ बीयर बेरी Infusion of bearbery (अं०)। ऋक्षद्राक्षा-फांट। रीछ दाख का फांट। ख़िसाँदहे इ.नबुद्दुब्ब (अ०)।

निर्माण-विधि—बीयर बेरी (रीछ दाख) की कुचली हुई पत्तियाँ १ आउंस, खौलता हुआ परिस्रुत जल १ पाइंट—इनको १५ मिनट तक एक बंद बरतन में भिगोकर छान लें!

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड आउंस।

गुणधर्म यथा प्रयोग

यूनानीमतानुसार-प्रकृति–तर और प्रथम कक्षाके अन्तमें शीतल एवं रूक्ष है। गुण, कर्म, प्रयोग–नर का फल भक्षण करने से थूकमें खून आना बंद हो जाता है। इसको सुखाकर पीसकर फाँकने से पुराने दस्त मिट जाते हैं। इसकी जड़ बहुत खुश्की उत्पन्न करती है, माद्दे को अभिशोषित करती और सूजन उतारती है। सलोतरी (शालिहोत्रविद्) एवं पशुचिकित्सक इसकी जड़ को चतुष्पाद जंतुओं की सूजन पर लगाते हैं जिससे वह पककर फूट जाती है और फिर अच्छा हो जाती है।

डाक्टरी मतानुसार

यूवी अर्साई फॉलिया की फार्माकालॉजी

अर्थात् प्रभाव

रीछ दाख के पत्ते एक प्रवल वस्तिशोधक एवं मूत्रमार्गीय पचन-निवारक हैं। कषायिन (Tannin) की विद्यमानता के कारण यह मूत्रमार्गस्थ श्लैष्मिक कला को बलप्रदान करता है एवं यह उस पर संकोचक असर करता है। इसकी पत्ती में आब्युर्टीन (Arbutin) होता है जो अभिशोषित होने के उपरांत रक्त में हाइड्रोक्विनॉन (Hydrochinon) रूप में वियोजित हो जाता है और इसके सल्फेट रूप में मूत्र के साथ इसका उत्सर्ग होता है, जिसे यह गदला (काले रंगका) और कृमिविरहित (Aseptic) कर देता है। आब्युर्टीन स्वयं एक प्रबल मूत्रप्रवर्त्तक औषधि है। इसके उपयोग से पेशाब गहरा हरियाली लिए भूरे रंग का आने लगता है अर्थात् उसी प्रकार जैसे कार्बोलिक एसिड जन्य विषाक्तता में आया करता है। क्योंकि कार्बोलिक एसिड के विष में भी पेशाब में हाइड्रोकिनॉन पाई जाती है।

नोट—आब्युर्टीन का हाइड्रोकिनान में विश्लिष्ट एवं परिणत होना रक्त में घटित नहीं होता; क्योंकि यह एक उग्र विष है। अस्तु उक्त विश्लेषण एवं परिणति वस्तुतः वृक्क के अभ्यंतर ही संघटित होती है। स्वयं आब्युर्टीन में कोई विषाक्त प्रभाव नहीं।

युवी अर्साई फॉलिया के थेराप्युटिक्स

अर्थात्

रीछ दाख के पत्ते का उपयोग

युवी अर्साई के पत्ते मूत्रगत पचन निवारणार्थ उन्हीं अवस्थाओं में प्रयोजित होते हैं, जिनमें ब्युक्यु के पत्तियों का उपयोग किया जाता है

अर्थात् चिरकालानुबंधी वस्तिप्रदाह (Chronic Cystitis), वृक्कखात प्रदाह (Pyelitis) और सूज़ाक (Gonorrhoea) में। अतिरज, प्रवाहिका और पुरातन पूय मेह (Gleet) में इसका उपयोग किया गया है। वि० दे० "आब्युटीन"।

पत्रो-लेखन विषयक संकेत—ऋक्षद्राक्ष-फांट (इन्युज़म युवी अर्साई) में, आब्युटीन नामक इसका प्रभावात्मक सार इतनी अल्प मात्रा में होता है कि इससे लाभ की कुछ भी आशा नहीं हो सकती और यदि इस फांट को तीक्ष्ण बनाया जाय, तो इसमें कषायाम्ल (Tannic acid) और माथिकाम्ल (Gallicacid) की मात्रा अधिक होजाती है, जिससे पाचन-शक्ति के निर्बल होने की सम्भावना होती है। अतः उसकी अपेक्षा शुद्ध अब्युटीन का ही उपयोग करना श्रेयस्कर ज्ञात होता है। इसलिये इसको ५ से १० ग्रेन (२॥ रत्ती से ५ रत्ती) की मात्रा में चूर्ण वा द्रव रूप में दिन-रात में २-३ बार दें।

परीक्षित प्रयोग

(१) पोटाशियाई बाई कार्ब	१० ग्रेन
पोटाशियाई साइट्रेटस	१५ ग्रेन
सिरूपस ओरेंशियाई	½ ड्राम
इन्फ्युज़म युवी अर्साई	१ आउंस तक

ऐसी १-१ मात्रा औषध दिन में तीन बार दें। यह वस्तिप्रदाह में लाभकारी है।

(२) हेक्सेमीथिलीन टेट्रेमीन	८ ग्रेन
टिंक्चर न्युसिस वामिकी	५ ग्रेन
ग्लीसरीनी	३० मिनिम
इन्फ्युज़म युवी अर्साई	१ आउंस तक

ऐसी एक-एक मात्रा दिन में ३ बार दें। वस्तिप्रदाह में गुणकारी है।

.इनबुल् व.ह्.शी–[अ०] जंगली अंगूर।

.इनबुल् ह़िय्यः–[अ०] (१) करील। कबर। (Capparis spinosa, *Linn.*)। (२) हज़ारजशाँ।

.इ(अ़)नबुस़्.स़्.अ़्.लब–[अ०] (Solanum Nigrum, *Bl. not Linn.* or Rubrum, *Mill.*) काकमाची। मकोय।

.इ(अ़)नबुस़्.स़्.अ़्.लब अस्वद–[अ०] (Solanum nigrum, *Bl. not Linn.*) कृष्ण काकमाची। कालीमकोय।

.इ(अ़)नबुस़्.स़्.अ़्.लब अ.ह्.मर–[अ०] (Solanum Rubrum, *Mill.*) रक्तकाकमाची। लालमकोय।

.इनबुस़्.स़्.अ़्.लब कबीर–[अ०] (Great Morel) बेलाडोना।

.इनबुस़्.स़्.अ़्.लब बुस्तानी–[अ०] (Garden Nightshade) काकमाची। मकोय।

.इनबुस़्.स़्.अ़्.लब मुख़द्दिर–[अ०] बेलाडोना।

.इनबुस़्.स़्.अ़्.लब मुजन्निन-[अ०] जंगली मादा मकोय।

.इनबुस़्.स़्.अ़्.लब मुनव्विम-[अ०] पहाड़ी मादा मकोय।

.इनबुस़्.स़्.अ़्.लबमुह्.लिक–[अ०] बेलाडोना।

.इनबुस़्.स़्.अ़्.लब सग़ीर–[अ०] काकमाची। मकोय।

.इनबुस़्.स़्.अ़्.लब सियाह–[अ०] काकमाची। मकोय।

इनशा–संज्ञा स्त्री० [अ० स्त्री०] (१) लिपि। लिखावट। (२) भाषा सरणि। इबारत।

इनष्टिट्यूट–संज्ञा स्त्री० [अं० स्त्री०=Institute] (१) विधि। नियम। (२) समाज। अंजुमन। सभा।

इनसान–संज्ञा पुं० [अ०] मनुष्य। आदमी। दे० "इन्सान"।

इनस्युलीन-संज्ञा स्त्री० [अं० Insulin] एक वस्तु जो क्लोम ग्रंथि में बनती है। इसका काम शर्कराजनके विश्लेषण को रोकना है। क्लोम विकार के कारण जब शर्कराजन से शर्करा अधिक बनती है और यह शर्करा मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकलती है, तब मनुष्य को क्लोमजन मधुमेह होजाता है। इनस्युलीन के प्रयोग से यह रोग अच्छा होजाता है; और नहीं तो इस रोग की भयंकरता कम होजाती है।

इनाऽ–[अ०] बरतन। पात्र।

इनाउल् तस्.्ईद–[अ०] सत्व-पातन यन्त्र। जौहर उड़ाने का बरतन।

.इनानत–[अ०] (Impotency) क्लीवता। नपुंसकता। क्लैव्य। नामर्दी।

इनानी–संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] वटपत्री। पथरफोड़ी। रा० नि० व० ५।

इनासत–[अ०] सुलाना। सुला देना।

इनारा–संज्ञा पुं० कुवाँ। कूप। (Well.)

इनारुन–संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] (Bryonia scabrella, *Linn.*) इन्द्रवारुणिका। इन्द्रायन। इँदारुन। दे० "इन्द्रायण"।

इनु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धर्व विशेष।

इनुमु–[ते०] लोह। लोहा। Iron. (Ferrum)

इन्-[बर०] (Dipterocarpus tnberculatus सूग्रहन–ते०।

इनआज़्–[अ०] शिश्न प्रहर्षण। सहवासेच्छा होना। लिंग का खड़ा होना।

इन्आज़् दाइम–[अ०] शिश्न का सदा प्रहृष्ट रहना। एक रोग जिसमें लिंग सदैव प्रहर्षित रहता है। फ़रीसमूस। प्रायापिज़्म (Priapism)

इन्आज़् शदीद–[अ०] उग्र शिश्न-प्रहर्षण। लिंग का इस प्रकार प्रहृष्ट रहना कि मूत्रमार्ग से शोणित स्राव होने लगे। स्टाइमेटोसिस Stymatosis (अं०)।

इन्ऑर्गैनिक–[अं० Inorganic] निरावयविक। अनैन्द्रियक। खनिज। निरावयव।

इन्आश–[अ०] धात्वर्थ उत्थापन। अर्वाचीन वैद्यकीय परिभाषा में किसी अत्यंत निर्बल और मृतप्राय मनुष्य को जीवित करना। उठाना। मृतोत्थापन। रीसस्सिटेशन (Resuscitation) –अं०।

इन्आस–[अ०] सुलाना। सुला देना।

इन्.इक़ाद, इन्जिमाद–[अ०] प्रगाढ़ीभवन। सांद्रीभवन। जम जाना। दृढ़ होना। (Coagulation.)

इन्.इताफ़–[अ०] दोहरा होना। मुड़जाना। वक्रीभवन। टेढ़ा होना।

इन्.इदामुर्रहि़म–[अ०] स्त्री में जन्म से ही जरायु का अभाव होना। गर्भाशय का न होना। अमेट्रिया Ametria (अं०)।

इन्.इदामुल् मक़्आद–[अ०] जन्म से ही मलद्वार का अभाव होना। सहज गुदराहित्य। (Absence of the Anus)

इन्कतर–[देश० काशमीर] जलजपत्र। ऐलागन्धि –गु०। इसकी पत्तियाँ सम्मुखवर्त्ती कटे किनारे की छोटी-छोटी होती हैं। यह नेत्ररोगमें लाभकारी है।

इन्कम्पेटिब्‌ल-[अं० Incompatible] संयोग विरुद्ध। असम्मिलन। मुत्नाक़ि़ज़-अ०। दे० "संयोग-विरुद्ध"।

इन्कम्पेटिबिलिटी–[अं० Incompatibility] संयोग-विरुद्धता। असम्मिलन का भाव।

इन्क़र्दिया–[रू०] भल्लातक। भिलावाँ। (Semecarpus anacardium, *Linn.*)

इन्क़ाअ-[अ०] फांट प्रस्तुतीकरण। औषध को जल में भिगोना।

इन्काह.–[अ०] विवाह करना। जोरू करना। उद्वाहन।

इन्क़ि़तरियून–[यू०] कहरुबा।

इन्क़ि़ताअ–[अ०] उच्छिन्न होना। कटजाना। भिन्न होना। समाप्त होना। टूट जाना। रुक जाना।

इन्क़ि़ताउ़त्त़मूस.-[अ०] इ.ह़्तिबासुत्त़मूस.। इन्हि.बासुत्त़मूस.। आर्त्तव उत्पन्न न होना। आर्त्तव का बंद हो जाना। आर्त्तव रोध। रजा निवृत्ति।

नोट—मासिक-धर्म के सर्वथा अवरुद्ध हो जाने को, चाहे वह किसी रोग के कारण अथवा अवस्था के अनुसार हो, जैसा कि ५० वर्ष की आयु में स्वभावत: होता है, अरबी में इन्क़ि़ताउ़त्त़मूस. कहते हैं। परंतु जब रोग के कारण यह अप्राकृतिक रूप से हो, तो डॉक्टरी में इसको एमेनोरिया (Amenorrhoea) तथा मेनोलिप्सिस (Menolipsis) कहते हैं; और जब अवस्था के अनुकूल हो, तो उसको मेनोपॉज़ (Menopause) कहते हैं। प्राचीन यूनानी वैद्यक के अनुसार इ.ह़्तिबासुत्त़मूस.

शब्द का प्रयोग अप्राकृतिक एवं रोगजन्य दोनों प्रकार के रजोनिरोध के लिये होता है।

इन्क़ित़ाउ़ल् इफ़्राज़–[अ०] शरीर में किसी द्रव के स्राव का अवरुद्ध हो जाना। जैसे–कभी-कभी मूत्र की उत्पत्ति वा स्राव बन्द हो जाता है। (Suppression)

इन्क़ित़ाउ़ल् ग़िज़ा अ़निल् क़ल्ब–[अ०] हृदय से आहार का विच्छिन्न हो जाना। यह एक प्रकार का रोग है जो कभी-कभी वृक्कशोथ के कारण उपस्थित हो जाता है अर्थात् जब गुरदे शोथ-युक्त हो जाते हैं, तब वे नाड़ियाँ जिनसे हृदय को आहार प्राप्त होता है, भिच जाती हैं; इसलिए हृदय को आहार पहुँचना बंद हो जाता है। परिणामतः हृदय की प्रकृति उष्ण हो जाती है और रोगी को बुख़ार हो आता और उसकी नाड़ी निर्बल हो जाती है।

इन्क़ित़ाउ़ल् बौल–[अ०] इ.ह्_तिबासुल् बौल, इन्.ह्बासुल् बौल। मूत्रावरोध। मूत्र उत्पन्न न होना। Suppression of Urine, Ischuria, Retention of Urine.

नोट—प्राचीन यूनानी वैद्यक के अनुसार "मूत्र उत्पन्न न होना" वा "मूत्र उत्पन्न होना, किंतु उत्सर्ग न होना"। इनमें से हर एक दशा के लिये इ.ह्_तिबासुल् बौल शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु अर्वाचीन परिभाषा में इनमें से प्रत्येक दशा के लिये अलग-अलग शब्द का प्रयोग होता है। अस्तु, इनमें से प्रथम अवस्था को (Suppression of Urine) वा (Ischuria) कहते हैं, जिसके लिये अर्वाचीन मिश्र देशीय चिकित्सक इन्क़िताउ़ल् बौल शब्द का प्रयोग करते है और दूसरी दशा को (Retention of Urine) शब्द से अभिहित करते हैं। इसके लिये मिश्रदेशीय चिकित्सक इन्ह़्.बासुल् बौल शब्द का प्रयोग करते हैं।

इन्क़ित़्रिवन–[यू०] कहरुबा।

इन्क़िबा_ज़–[अ०] आकुंचन। सिकुड़ना। सिमटना। संकोच। (Astriction, Constriction)

नोट—बुक़्रात का अनुसरण करते हुये इस बात को दृष्टि में रखकर कि तर्वीह के लिये हृदय में वायु के प्रविष्ट होने से वह फैलता है और उसके निकलते समय उसमें संकोच उपस्थित होता है अर्थात् वह सिकुड़ता है; राज़ी ने इन्क़िबा_ज़ शब्द का प्रयोग प्रश्वास वा बहिः श्वसन के अर्थ में और उच्छ्वास वा अन्तः श्वसन के अर्थ में इम्बिसात् शब्द का प्रयोग किया है।

प्राचीन तिब्बी वैद्यक के अनुसार यद्यपि इन शब्दों के उक्त अर्थ सर्वमान्य नहीं, तो भी डॉक्टरी शब्द एक्सपायरेशन (प्रश्वास) तथा इन्सपायरेशन (उच्छ्वास) के पर्याय स्वरूप राज़ी द्वारा वर्णित इन्क़िबा_ज़ एवं इम्बिसात् के अर्थ बहुत उपयुक्त जान पड़ते हैं।

इन्क़िबा_ज़ अव्.इय्यः–[अ०] त_ज़.इ्.इक अव्.इय्यः। धमनी की सूक्ष्म शाखाओं का सिकुड़ जाना (संकुचित हो जाना)। (Vaso constriction)

इन्क़िबाज़़ क़ल्ब–[अ०] हृदाकुंचन। हृदय का संकुचित होना। हृदय संकोच। (Systole)

इन्क़िबा_ज़ नब्_ज़–[अ०] नाड्याकुंचन। नाड़ी की वह गति जो केन्द्र या भीतर की ओर होती है।

इन्क़िबाज़़ .हद्क़ः–[अ०] _ज़ीक़ सु..क़्बः। आँख की पुतली का संकुचित हो जाना। (Myosis)

इन्क़िबाब–[अ०] धात्वर्थ औंधा करना; पर तिब की परिभाषा में वाष्प-स्वेदन अर्थात् भपारा लेने को कहते हैं। विधि निम्न है—

ओषधियों को क्वथित कर उसके मुँह को एक एक छिद्र युक्त बरतन से ढाँक कर, जिस अवयव को स्वेदित करना हो, उस पर उक्त छिद्र से वाष्प प्रवाहित करें। वेपर बाथ Vapour bath (अं०)।

इन्क़िरास–[अ०] अग्न्याशय। क्लोम ग्रंथि। (Pancreas.) दे० "अग्न्याशय"।

नोट—पैन्क्रियास या पान्क्रिरास का मुअर्रिब बान्क़िरास है, जो अत्यन्त उपयुक्त है। यह भूल वास्तव में किसी-किसी अरबी ग्रंथ में लिखे हुए बान्क़िरास को बइन्क़िरास पाठ करने से हुई, फिर यह अशुद्ध नाम ग्रंथों में लिखाता चला आया।

इन्क़िरासीन-[अ०] (Pancreatin) क्लोमीन। क्लोम ग्रंथि का सत्व। दे० "क्लोम ग्रंथि"।

इन्क़िलाअ़-[अ०] उखड़ जाना।

इन्क़िलाउल् उज़्न-[अ०] कान का जड़ से उखड़ जाना।

इन्क़िलाक़-[अ०] नाभि का बड़ा होना। नाभि का बल खाना। नाभि स्थान भ्रंश।

इन्क़िलाब-[अ०] इसका धात्वर्थ व्यावर्त्तन वा उलट पुलट है। चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार किसी अवयव के अन्तस्थल का बाहर आजाना वा व्यावर्त्तित हो जाना। इन्वर्शन Inversion (अं०)।

इन्क़िलाबु र्रिह्म-[अ०] गर्भाशय का व्यावर्त्तित हो जाना अर्थात् उसके अन्तस्तल का बाहर होकर योनि मार्गसे इस प्रकार निकल आना कि उसका छिद्र प्रगट न हो।

इन्वर्शन ऑफ दी युटरस (Inversion of the uterus (अं०)।

नोट—इन्क़िलाबुर्रिह्म शब्द का वास्तविक अर्थ वही है जिसका ऊपर बयान हुआ। परन्तु तिब के प्राचीन अरबी ग्रंथों में इन्क़िलाबुर्रिह्म शब्द नुतूउर्रिह्म् और बुरूज़ुर्रिह्म अर्थात् बिना उल्टे गर्भाशय के बाहर निकल आने पर भी बोला जाता है।

इन्क़िलाबुल् जफ़्न-[अ०] पलक का अक्षिगोलक की ओर व्यावर्त्तित हो जाना। इण्ट्रोपियन (Entropion.)

इन्क़िलाबुल् मिअ़्दः-[अ०] एक रोग जिसमें पचने के बाद आहार वमन द्वारा निकल जाता है।

इन्क़िलाब मिअ़्दः और एलाउस का भेद-इन्क़िलाब मिअ़्दः में आमाशयस्थ परिपक्व आहार वमन द्वारा बाहर हो जाता है, पर उसमें विष्टावत् दुर्गंधि नहीं होती। इसके विरुद्ध एलाउस में वमन द्वारा दुर्गंधित विष्ठामय मल निःसरित होता है और अत्यंत वेदना होती है।

इन्क़िलाबुश्शक्ल-[अ०] आकार परिवर्त्तन। चिकित्सा-शास्त्र की परिभाषा में रोग के कारण किसी अवयव की रचना तथा आकार-प्रकार का बदल जाना। रूप परिवर्तन। विरूपता। ट्रांसफॉर्मेशन Transformation, डिफ़ॉर्मेशन Deformation. (अं०)।

इन्किसार-[अ०] टूटना। भञ्जन। खंडन।

इन्किसारुल् अ़ज़्म-[अ०] कस्र। अस्थि-भग्न। हड्डी टूट जाना। फ्रैक्चर (Fracture)

इन्किसारुल् उज़्न-[अ०] कान टूटना। कान की कुर्री का टूट जाना। Contussion of the ear.

टिप्पणी—यद्यपि इन्किसार शब्द का प्रयोग विशेष रूप से हड्डी टूटने के लिए होता है, तो भी कुर्री के टूटने पर इसका प्रयोग यहाँ कल्पित रूप से हुआ है। किसी किसी हकीम के मत से कान की कुर्री का समावेश अस्थि में होता है। इसलिए इसके साथ इन्किसार का संबंध हो सकता है।

इन्क़िहाल-[अ०] निर्बलता के कारण गिर पड़ना।

इन्क़ीमारियूस-[अ०] कफज्वर जिसका वेग प्रति दिन हो। अन्येद्युष्क ज्वर। आह्निक ज्वर। एकाहिक ज्वर। कोटिडियन Quotidian (अं०)।

इन्ख़ात्-[अ०] (१) निष्ठीवन। थूकना। (२) नाक सिनकना।

इन्ख़ितास-[अ०] क्षत पर पपड़ी पड़ जाना। खुरंड बँध जाना।

इन्ख़िनाक़-[अ०] उद्बंधन। फाँसी लेना।

इन्ख़िफ़ाअ़्-[अ०] फुफ्फुस का विदीर्ण हो जाना। फेफड़ा फट जाना। (Rupture of the lung)

इन्ख़िफ़ाज़्-[अ०]अवरोहण। नीचे उतरना। ढुलक आना।

इन्ख़िमास्-[अ०] शोथ कम होना। सूजन का घटना।

इन्ख़िराक़-[अ०] इन्शिक़ाक़। विदीर्ण हो जाना। किसी अवयव का फट जाना। रप्चर (Rupture)

इन्ख़िलाअ़्-[अ०] स्थान च्युत होना। किसी अंग का अपनी जगह से टल जाना। संधि-भ्रंश। किसी जोड़ का उखड़ जाना। (Dislocation) दे० "ख़लअ़्"।

इन्ग़िमाज़–[अ०] नेत्र का अर्द्धोन्मीलित होना। आँख बंद होना।

इन्ग़िमादुल् अम्आऽ–[अ०] तग़म्मदुल् अम्आऽ। आंत्रका एक प्रदेश से अन्य प्रदेश में उतर जाना। अन्त्रान्यान्यानुप्रविष्ट। (Intussusception, Invagination)दे० "अन्त्रान्योन्यानुप्रविष्ट"।

इन्ग़िलाक़ुर्रिहम–[अ०] जरायु का मुख बंद होजाना मेट्रोस्टेनोसिस (Metrostenosis)

इन्ग्रीडिएएट–[अं०] संयोगी अवयव। मौलिक द्रव्य। संयोजक पदार्थ। घटक।

इन्डोल–संज्ञा पुं० [अं० Indol] एक प्रकार का हानिकारक पदार्थ जो अंत्र में सड़ान्ध के कारण उत्पन्न होता है।

इन्ताक़–[अ०] वाणी प्रदान करना।

इन्ताकियः–[अ०] हकीम अन्ताकीका निवास-स्थान। यह शाम देश में एक स्थान है।

इन्ताकी–[?] सक़्मूनिया। (Scammony)

इन्तिआज़–[अ०]शिश्न प्रहर्षण। कामोद्दीप्त होना। मैथुनेच्छा होना। इरेक्शन Erection(अं०)।

इन्तिआश–[अ०] (१) रोगी का स्वास्थ्य लाभ करना। जान बचना। बीमार का रोग-मुक्ति प्राप्त करना। (Animation; Recovering) (२) सशक्त होना। फैलना। बलंद होना।

इन्तिक़ाल–[अ०] (१) स्थानान्तरित होना। एक जगह से दूसरी जगह जाना। (२) मृत्यु। मौत। परलोकवास।

इन्तिक़ाल नौमी–[अ०] निशाचरण। नींद की दशा में चलना। Noctambulation नॉक्टम्ब्युलेशन (अं०)।

इन्तिक़ाल मर्ज़–[अ०] रोग का एक अवयव से दूसरे अवयव की ओर स्थानांतरित हो जाना। जैसे, कर्णमूल (कनफेड़) कभी कभी अंडो में स्थानान्तरित हो जाता है, जिससे वे शोथयुक्त हो जाते हैं। मेटास्टेसिस Matastasis(अं०)।

इन्तिक़ाल मह्मूद–[अ०] रोग का उत्तमांगों से अधमांगों की ओर स्थानान्तरित हो जाना।

इन्तिक़ाश–[अ०] चुभा हुआ काँटा निकालना।

इन्तिख़ात्–[अ०] नाक साफ़ करना। नाक सिनिकना।

इन्तिदाग़–[अ०] मुसकराना।

इन्तिफ़ाख़–[अ०] फूलना। अफरना। भुरभुराना। सूजना। शरीर के कोष्टों में वायु भर जाता। ट्युमीफेक्शन Tumefection (अं०)।

इन्तिफ़ाऽ–[अ०] बुझना। सरदी से गरमी का बुझ जाना। (Extinction.)

इन्तिफ़ाख़ असाबअ्–[अ०] उँगलियों का फूल जाना और उनमें खाज होना। जैसे, शीताधिक्य के कारण कभी किसी व्यक्तिको यह दोषहो जाता है। (Chilblain)

टिप्पणी—स्परगोसिस शब्दका प्रयोग स्तन की उस सूजनके लिए होता है जो स्तन्यपान करानेवाली के स्तन में दुग्ध के रुकने के कारण होता है।

इन्तिफ़ाख़ुल् क़स्बः–[अ०] फुफ्फुस-प्रणाली का फूल जाना। फुफ्फुस-प्रणाली विस्तार। ब्रांकिएक्टेसिस Bronchiectasis (अं०)।

इन्तिफ़ाख़ुल् बत्न–[अ०] आनाह। उदरस्फीति। अफरा। पेट फूलना। नफ़्ख़ शिकम (फ़ा०)। टिम्पेनायटीज Tympanites. मेटिओरिज़्म Meteorism. (अं०)।

इन्तिफ़ाख़ुस्सद्दी–[अ०] वर्मुस्सद्दी। स्तन शोथ। चूची की सूजन। स्परगोसिस Spargosis (अं०)।

इन्तिफ़ाश–[अ०] रोमांच होना। रोम हर्षण। रोंगटे खड़ा होना।

इन्तिबाक़ुल फ़क्कैन–[अ०] दोनों जाबड़ों का जुड़ जाना। बतीसी बंद होना। दाँती लगना। हनुग्रह। (Trismus, Lock-jaw..)

इन्तिबाक़ुल् मरी–[अ०] आहार प्रणाली का पिचक जाना। अन्नप्रणाली संकोच। एक रोग जिसमें अन्नमार्ग का अन्तस्तल परस्पर जुड़ जाता है। इसलिए पतली चीज़ें कंठसे नहीं उतरतीं। पर बड़े ग्रास अपने भार के कारण उतर जाते हैं अर्थात् सरलतापूर्वक निगल जाते हैं। (Stricture of the oesophagus.)

इन्तिबाज–[अ०] अस्थि शोथ। हड्डी की सूजन।

इन्तिब़ार-[अ़०] फफोला पड़ जाना। सूज जाना। हाथ में घट्ठे पड़ जाना।

इन्तिबाह-[अ़०] सचेत होना।

इन्तियाज-[अ़०] सूजन होना। अस्थि उभर आना।

इन्तिशाअ़-[अ़०] नाक में दवा डालना।

इन्तिशार-[अ़०] (१) धात्वर्थ फैलना। तितर बितर होना। बिखरना। विस्तार। प्रसार। (२) तिब की परिभाषा में पुतलीका फैलना। चक्षुतारा विस्तार। Difusion.

नोट—कोई-कोई हकीम 'इन्तिशार' और 'इत्तिसाअ़' में अर्थ-भेद निरूपित करते हैं। उनके अनुसार तारा विस्तार को 'इन्तिशार' और चक्षु नाडी प्रसार को 'इत्तिसाअ़' कहते हैं। कोई-कोई इसके विरुद्ध कहते हैं। कभी-कभी शिश्न की तुन्दी एवं बाल झड़ जाने के लिए भी इन्तिशार शब्द का प्रयोग होता है।

डॉक्टरी शब्द डिफ्युज़न (Diffusion) जो इंतिशार का पर्याय है, रसायन-शास्त्र तथा द्रव्य-गुण-शास्त्र में किसी औषधि वा गैस के अवयवों के बिखरने पर व्यवहृत होता है।

इन्तिशारुल् अह्दाब-[अ़०] सक़ूतुल् अह्दाब। पलकों का झड़ जाना। एक रोग जिसमें पलकें झड़ जाती हैं। टाइलोसिस (Ptilosis), मैडरोसिस (Madarosis.)

इन्तिशारुश्शअ़र-[अ़०] बालों का गिर जाना। बाल झड़ जाना एक रोग जिसमें शिर आदिके बाल गिरने लगते हैं। टाइलोसिस Ptilosis. (अं०)।

इन्तिशाल-[अ़०] रोग घटना। स्वास्थ्य लाभ करने के समीप पहुँचना। व्रण से दूषित मांस (बद गोश्त) भिन्न करना।

इन्तिस़ाब-[अ़०] ठहरना। पाँव के बल खड़ा होना। अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा में यह शब्द इन्तिआज़ अर्थात् शिश्न प्रहर्षण के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इरेक्शन Erection. (अं०)।

इन्तिस़ाबुन्नफ़स-[अ़०] तनफ़्फ़ुसे इन्तिस़ाबी। एक सबसे बुरे प्रकार का श्वास-रोग जिसमें रोगी भूमि पर लेट नहीं सकता और जब तक सीधा न हो और गरदन को ऊपर की ओर न खींचे, श्वास नहीं ली जाती। ऑर्थोप्निया (Orthopnea) (अं०)।

इन्तिस़ार-[अ़०] नाक में पानी डालना और उसको सिनिकना।

इन्तिहा-[अ़०] धात्वर्थ समाप्त होना। अन्त होना। तिब की परिभाषा में रोग का वह अन्तिमकाल जिसमें रोग एक अवस्था पर ठहरा रहता है अर्थात् न बढ़ता है न घटता। टर्मिनेशन Termination. (अं०)।

इन्तिहाए जुज़्ई-[अ़०] रोग का वह अन्तिम काल जो एक हालत पर स्थिर हो।

इन्तिहाए कुल्ली-[अ़०] रोग का वह अन्तिम काल जिसमें रोग और प्रकृति में युद्ध होने लगता है। इसे बुह्रान कहते हैं।

इन्तिहाक-[अ़०] शीतपूर्व ज्वर (जूड़ी बुखार) का शिथिल एवं निर्बल कर देना।

इन्तिहाज़-[अ़०] शरीर से मांस क्षीण होना। कृश एवं क्षीण हो जाना। कार्श्य। एमेसिएशन Emaciation (अं०)।

इन्तिहाब-[अ़०] बलपूर्वक उच्छ्वास लेना। जोर से साँस लेना।

इन्तिहार-[अ़०] आत्महत्या। आत्महत्या करना। ख़ुदकुशी। सुइसाइड Suicide (अं०)।

इन्तिहार-[अ़०] पेट चलना। दस्त आना।

इन्तिहाल-[अ़०] छानना। पोतन। (Sift)।

इन्तुप्प-[मल०] सैंधव। सेंधानमक। (Rock salt.)

इन्थिहा-संज्ञा स्त्री० [?] ताजकोक्त मुथहा।

इन्दई-[बम्ब०] लांगली। कलिहारी। करियारी। (Gloriosa superba, *Linn.*)

इन्दक़ूक़ू-[फ़ा०] विषखपरा। लाल गदहपूरना।

इन्दगू-संज्ञा पुं० [?]

इन्दम्बर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Nymphaea coerulea) नील कमल। नील पद्म। श० मा०।

इन्दाफ़-[अ़०] अकस्मात् मरणासन्न होना। हृदय का विदीर्ण हो जाना।

इन्दाम्बर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नील पद्म। (२) भ्रमर। भौंरा।

इं(अ)न्दामून-[यू०] माष। उड़द की दाल।

इन्दर-जवे-तल्ख़-[फ़ा०] (Seeds of Holarrhena antidysenterica, *R. Br.*) तिक्त कुड़ा। कड़ुए कोरैया का बीज।

इन्दरजौ-संज्ञा पुं० [देश० द० बं० मद० गु० फ़ा०] इन्द्रयव।

इन्दरजौवे शीरीं-[फ़ा०] (Seeds of Wrightia tinctoria, *R. Br*) कुडा। कोरैया का बीज। दे० "इन्द्रजव"।

इन्दाहकी गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] इन्द्रायणकी जड़, मोंथा, सोंठ, दन्तीमूल, हड़, निशोथ, कचूर विडंग, गोखुरू, चीते की जड़ और बच प्रत्येक दो-दो कर्ष, जमीकन्द ८ पल, विधारा ४ पल, भिलावाँ ४ पल, इन्हें १ द्रोण जल में क्वाथ करें। जब चौथाई शेष रहे तब छानकर उससे तिगुना पुराना गुड़ मिलाकर पाक करें। जब चाशनी ठीक आ जावे तब इसमें यह चूर्ण मिलाएँ-चित्रकमूल, निशोथ, जमालगोटे की जड़ और बच ये पल-पल भर, त्रिकुटा, इलायची, मिर्च और तज तीन-तीन पल-इनको पीस-छानकर शहद में यह पूर्वोक्त चूर्ण युक्त जब बँधने योग्य हो मिलाएँ। इसे "बाहुशाल गुड़" भी कहते हैं।

गुण—इसके सेवन से अर्श, गुल्म, आमवात, वातोदर, प्रतिश्याय, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पाण्डु और प्रमेह का नाश होता है। शा० ध० सं०।

इन्दि-[सिं०] (Dried fruits of phoenix dactylifera, *Linn.*) date खज्जूर। खजूर।

इन्दिआस्-[अ०] शव का सड़ जाना।

इन्दिग़ाम-[अ०] मिलना। संयुक्त होना। जैसे, पेशियाँ अपने शिरों पर अस्थियों से मिलती हैं।

इन्दिमाल-[अ०] व्रणपूरण होना। खुरंड बँध जाना। हीलिंग Healing, ग्रेन्युलेशन Granulation (अं०)।

इन्दियाक़-[अ०] उदर का शोथयुक्त होना। पेट की सूजन।

इन्दिन्दिर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भ्रमर। भौंरा। त्रिका०।

इन्दिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लक्ष्मी। धन की देवी। त्रिका०।

[सिं०] जंगली खजूर।

इन्दिराअ-[अ०] अस्थि का अपने स्थान से निकल आना।

इन्दिरा मन्दिर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विष्णु। राज०।

इन्दिरालय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Nymphaea lotus) पद्म। कमल। श० र०।

इन्दिरावर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) (Nymphœa Coerulea) नील कमल। नीलपद्म। (२) नीलोफ़र। नील कुमुद। नील कमोदनी। प० मु०। श० र०।

इन्दिरूत-[फ़ा०] दद्रु। शुष्क खजूँ। दाद। सूखी खुजली।

इन्दिलाग़-[अ०] (१) जबान का बाहर निकलना। हाँपना। (२) उदर का आगे को निकलना।

इन्दि(न्दी)वर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नील पद्म। नील कमल। (Nymphaea Caerulea) प० मु०। श० मा०। भावप्रकाश के अनुसार गुणों में यह सफ़ेद कमल के समान, पर उससे किञ्चित् हीन गुणयुक्त होता है। भा० पू० १ भ०। दे० "नीलोत्पल"।

इन्दिहान-[अ०] पेट का बाहर की ओर निकल आना। पेट निकलना।

इन्दी-अकुरु-[सिं०] (Jaggery of Phoenix Sylvestris) खजूर का गुड़। संदोले का गुड़।

इन्दीअरक-[सिं०] (Liquor of phœnix Sylvestris) ताल मद्य। सेंधी की शराब।

इन्दीरा-[सिं०] (Toddy of Phoenix Sylvestris) ताड़ी। सेंधी।

इन्दीवर-संज्ञा पुं० [सं क्ली०] (१) इंदीवर। (२) करम्भा। (३) कंद। (४) नील कमल। (५) पद्मलता। गुलाबकी झाड़। (६) कुमुद। (७) सौगन्धिक।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्थल पद्म। थल कमल।। सु० सू० ३८ अ०। (२) कुरुण्टक भेद। एक प्रकार की कटसरैया। "कुरुण्टिका भेदः दीर्घ पत्रो बहुल-पुष्पः"। ड० सु० चि० ७ अ०। (३) नील कमल। नीलोत्पल। (४) कमल।

इन्दीवरा(री)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शतमूली । सतावर । दे० "शतावर" । प० मु० । रा० नि० व० १० । (२) अजशृङ्गी । प० मु० । (३) केले का पेड़ । कदली वृक्ष । वै० निघ० । (४) उतरन की बेल । उतरण । फल-कण्टक । (Daemia extensa, *R. Br.*) दे० रा० नि० गुड़ू ३ व० । दे० "उतरन" ।

इन्दीवरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुमुद । उत्पलिनी । कुँई । रा० नि० व० १० ।

इन्दीवरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) युग्मफला । उतरन । पुष्पमञ्जरिका । दीर्घवृन्त । करम्भा । तमारणी । नलिका । (२) शतावरी । (३) इन्द्रचिर्भिटा । (४) केला । (५) कुन्दर ।

इन्दीवार-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नील पद्म । नील कमल । (Nymphaea stellata, *Willd.*) मे० । राज० ।

इन्दु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कर्पूर । कपूर । (Camphor) । अम० । रा० नि० व० ८ । भा० म० ४ भ० नेत्ररोग-चि० । "स्फटिक शङ्खनाभीन्दव:" । भा० म० १ भ० तन्त्रि-ज्वर -चि० । "तुरङ्गलाला लवणोत्तमेन्दु । लवङ्गेन्दु सुवासितम्" ।-भा० पू० पानक व० । (२) चन्द्रमा । चाँद । (The moon) । (३) अश्मन्तक वृक्ष । आपटा ।

इन्दु-उप्पु-[ता०] सैंधव । सेंधानमक । The Rock-salt

इन्दुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अश्मन्तक वृक्ष । रा० नि० व० ६ । (२) केमुक । केउआँ । बंडा । (Costus speciosus, *Sm.*) कन्द । वै० निघ०

इन्दुकमल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) Nymphaea Esculenta कुमुद । कूईँ । रा० नि० व० १० (२) सितोत्पल । सफ़ेद कुमुद ।

इन्दुकर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्रकिरण । चाँदनी ।

इन्दुकलावटिका, इन्दुकलावटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का आयुर्वेदीय योग—

शिलाजीत, लोह भस्म, सुवर्ण भस्म इन्हें समान भाग लेकर अर्जक (बबई तुलसी) के रसमें घोटकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ । और छाया में सुखाकर रख लें ।

गुण—इसके उपयोग से मसूरिका, विस्फोटक और लोहित ज्वर का नाश होता है । रस० यो० सा० ।

इन्दुकलिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pandanus Odoratissimus. *Linn.*) सफ़ेद केतकी । केवड़ा । केतकी । दे० "केतकी" ।

इन्दुका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Diospyros Embryopteris, *Pers.*) तिन्दुक । तेंदू ।

इन्दुकान्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चन्द्रकांत मणि । रा० नि० व० १३ । हज्रुल् क़मर । चन्द्रगाँठ । (२) चन्द्रकला ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रात्रि । रात । हे० च० ।

इन्दुकान्ता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केतकी । केवड़ा ।

इन्दुकी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Diospyros Embryopteris, *Pers.*) तिन्दुक । तेंदू । तेंदु । तेन का पेड़ ।

इन्दुकु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्मन्तक । दे० "आपटा" ।

इन्दुखण्डा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्कट शृङ्गी । काकड़ासिंगी । (Rhus succedanea, *Linn.*) रा० नि० व० ६ । धन्व० नि० ।

इन्दुचन्दन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का चंदन । हरिचंदन । वै० निघ० ।

इन्दुजनक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अत्रिमुनि । (२) समुद्र ।

इन्दुजा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नर्मदा नदी ।

इन्दुदल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्रकला । चाँद का १६ वाँ भाग ।

इन्दुनाट् टुप्पु-[ता०] सैंधव । सेंधानमक ।(Rock salt.)

इन्दुपत्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूर्ज वृक्ष । भोजपत्र । संग्रहः । (Betula Bhojpattra, *Wall.*)

इन्दुपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Anisochilus carnosus, *Wall.*) पञ्जीरी का पात । लिटकी । सीता की पंजीरी ।

इन्दु पुष्पक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लाङ्गली । चन्ना चर्ला । (Gloriosa superba, *Linn.*) । (२) तिन्तुक । तेंदू । तेन का पेड़ । (Diospyros embryopteris, *Pers.*)

इन्दुपुष्पिका (ष्पी)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Gloriosa superba, *Linn.*) लाङ्गली । कलिहारी । रा० नि० व० ३ । के० दे० नि० ।

इन्दुपोदकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की पोई । वेल्लिका नामकी लता । रा०नि० व० २३ ।

इन्दुप्पु–[ता०, ते०] (Rock salt) सैंधव । सेंधानमक ।

इन्दुफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Spondias mangifera, *Willd.*) आम्रातक । आमड़ा । अमडा । वै० नि० ।

इन्दुभ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मृगशिरा नक्षत्र । (२) चन्द्रमा । (३) कर्कट-राशि ।

इन्दु भक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चंद्रमुखी । पद्मिनी । कूईं ।

इन्दुभा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुमुदिनी । बघोला । (२) चाँदनी । चन्द्रकिरण ।

इन्दुभूषण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नील पद्म । नील कमल ।

इन्दुमणि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चन्द्रकान्त । हजरुल कमर । चन्द्रगाँठ । (२) मोती । मुक्ता ।

इन्दुमती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पूर्णिमा ।

इन्दुमत्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मोर । मयूर । (२) रात । रात्रि । (३) शिव । (४) अग्नि । (५) पूर्णिमा ।

इन्दुमनि–संज्ञा पुं० [सं० इन्दुमणि] चंद्रकान्त मणि ।

इन्दुमुखी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पद्मिनी । कुँईं । वै० निघ० ।

इन्दुम् पोडी–[मला०] जंगली मदनमस्त की गिरी का आटा ।

इन्दुर–संज्ञा पुं० [सं०पुं०] (A rat, a mouse) चूहा । मूसा ।

टिप्पणी—यह विलेशय मृग है । बिल में रहने के कारण इसका मांस वातनाशक, मधुर, उष्णवीर्य, बृंहण, मूत्ररोधक और मलबद्धताकारक है । भा० पू० १ भ० । वि० दे० "चूहा" ।

इन्दुरकर्णिका (र्णी)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूसाकानी । मूषाकर्णी । चूहाकानी । (Ipomoea reniformis, *Chois.*)

इन्दुरत्न–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मुक्ता । मोती । (Mytilus margaritiferus) Pearl. रा० नि० व० १३ ।

इन्दुरसा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की मिठाई जो चौरेठे या पिसे हुए चावल की बनती है । अँदरसा । अनरसा ।

विधि—वैद्यक निघण्टु के अनुसार पिसा हुआ हुआ साठी वा शाली चावल एक भाग, २ भाग शर्करा किंचिद् दही के साथ मर्दितकर दूसरे दिन इसकी गोल-गोल टिकिया बना इसे घी में पका लें ।

गुण—यह अत्यन्त शीतल, हृद्य, बलकारक और पुष्ट है । वै० निघ० । दे० "अँदरसा" ।

इन्दुरा, इन्दुराजि, इन्दुराजी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Vernonia anthelmintica, *Willd.*) सोमराजी । बकुची । वै० निघ० ।

इन्दुराज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्रकान्त-मणि । चन्द्र गाँठ । (२) कुमुद । कोकाबेली ।

इन्दुराट्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Serratula Anthelmintica) बकुची । वाकुची । के० नि० ।

इन्दुरेखा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सोमलता । (२) बकुची । (३) गिलोय । (४) अजवायन ।

इन्दुलेखा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुड़ूची । गुरुच । (Tinospora Cordifolia, *Prain.*) । त्रिका० । (२) सोमराजी ।

बकुची । (Vernonia anthelmintica, *Willd.*) वै० निघ० । (३) सोमलता । सोम । मे० खचतुष्कं ।(४) यमानी । अजवायन । श० मा० ।

इन्दुलोह, इन्दुलोहक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Argentum) Silver रौप्य । चाँदी । रा० नि० व० १३ ।

इन्दुलौह-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोहा । आहन ।

इन्दुवटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिलाजीत, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, समान भाग और एक का चतुर्थांश सुवर्ण भस्म मिलाकर, मकोय, शतावरी, आँवला और कमल के रसों से पृथक्-पृथक् भावना देकर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गुण—इसे प्रातः काल १ गोली आमले के रसके साथ सेवन करनेसे कर्णनाद और कर्ण-रोग, वात रोग, लोहित ज्वर और २० प्रकार के प्रमेहों का नाश होता है ।

इन्दुवधू-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "इन्द्रवधू" ।

इन्दुवल्लिका, इन्दुवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सोमलता । (२) गुडूची । गुरुच ।(Tinospora Cordifolia, *Prain.*) जटा० । (३) सोमराजी । बकुची । (Vernonia Anthelmintica, *Willd.*)। (४) यमानी । अजवाइन । वै० निघ० । (५) सोमलता ।

इन्दुशकला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Vernonia anthelmintica, *Willd.*) सोमराजी । बकुची । वै० निघ० ।

इन्दुशफरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]अश्मन्तक वृक्ष । आपटा । रा० नि० व० ६ ।

इन्दुशेखर रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिलाजीत, अभ्रक भस्म, सिन्दूर, मूँगा भस्म, लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, हरताल भस्म वा रस माणिक्य-इन्हें समान भाग लेकर भाँगरा, अर्जुन, सम्हालू, अडूसा, स्थल पद्म (अभाव में मुण्डी), कमल के फूल और कुड़ा के रस में पृथक् पृथक् भावना देकर जंगली बेर के बीज प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गुण—इसे गर्भिणी स्त्रियों के घोर ज्वर, श्वास, कास, रक्तातिसार, संग्रहणी, उल्टी, मन्दाग्नि, आलस्य और दुर्बलता दूर करने के लिए यथोचित अनुपानसे उपयोग करना चाहिए । भैष० स्त्री० रो० चि० ।

इन्दूर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मूसा । चूहा । दे० "चूहा" ।

इन्दूरकाणि पाना-[बं०] } (Ipomoea reni-
इन्दूरकानी-संज्ञा स्त्री० } formis, *Chois*)
मूषाकर्णी । मूसाकानी ।

इन्दूरन-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रायण] दे० "इन्द्रायण" । शार्ङ्ग० भा० टी० ।

इन्दौन-[फ़ा०] मलहम (प्रलेप) । Ointment.

इन्द्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) देवराज । देवताओं के स्वामी । मे० । (२) कुटज वृक्ष । कुरैया । (Holarrhena antidysenterica, *Wall.*) भा० पू० १ भ० । (३) इन्द्रयव । इंद्रजव । (The seeds of Holarrhena antidysenterica) भैष० भल्लात-गुड़० । "नागरेन्द्र यवासकं ।" च० द० पित्त श्लेष्म० ज्व०-चि० कण्टकार्यादि । "त्रिफलेन्द्रयवासकम् ।" भा० म० ४ भ० मसू-चि० । (४) चन्द्रमा । रत्ना० । (५) एक योग । मे० रद्विकं । (६) अन्तरात्मा । (७) एक प्रकार का स्थावर विष । हे० च० । (८) ह्रस्व महाकाल लता । वै० निघ० । (९) बिजली । विद्युत् । (१०) रात । (११) जीव । प्राण । (१२) दाहिनी आँख की पुतली ।

इन्द्रक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अश्मन्तक । (२) मन्दरगिरि ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) निर्गुण्डी । (२) इंद्रजव । इन्द्रयव । अम० ।

इन्द्रकर्णक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्तैरण्ड । लाल रेंड ।

इन्द्र कील-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पहाड़ी पपीता ।

इन्द्रकुञ्जर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऐरावत । इन्द्र की हाथी ।

इन्द्रकुसुम-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] (Caryophyllus aromaticus, *Linn.*) लवङ्ग । लौंग ।

इन्द्रकूट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक पर्वत जो कैलाश के निकट है।

इन्द्रकृष्ट-संज्ञा पुं० [सं० त्रि०] इन्द्रकर्षित। जंगल में होनेवाला अन्न। वह अन्न जो वृष्टि होने से स्वभावतः उत्पन्न होता है। "इन्द्रकृष्टै र्वर्तयन्ति धान्ये येचनदीमुखाः।" महाभारत सभा० ५१। ६।

इन्द्रकोश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "इन्द्रकोष"।

इन्द्रकोष (क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नियूर्ह। निर्यास। तमङ्गक। हे० च०। हला०।

इन्द्रगिरि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महेन्द्र पर्वत। इन्द्र नाम का पहाड़।

इन्द्रगुप्त-संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] (Andropogon muricatus, *Retz.*) उशीर। खस। अ० टी० भ०।

इन्द्रगोच्चे-[का०] माधवी लता। (Gaertnera recemosa, *Roxb.*)

इन्द्रगोप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Mutella occidentalis) scarlet fly. बीरबहूटी नाम का कीड़ा। हारा०। रा० नि० व० १६।

पर्य्याय-अग्निरजा, वैराट, तितिभ, अग्निक (हे०), शक्रगोप, वर्षाभू, रक्तवर्ण (रा०), कोटिल (ग०), कोटिर (मे०), ताम्रक्रिमि (हा०)। वि० दे० "बीरबहूटी"।

इन्द्रचन्दन-संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] (१) हरिचन्दन। (२) रक्तचन्दन। लालचन्दन। (Pterocarpus santalinus, *Linn.*) रा० नि० व० १२।

इन्द्रचिर्भिटा,-इन्द्रचिर्भिटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इंद्रायन। इन्द्रवारुणी। (२) उतरन। युग्मफल लता। पर्य्याय-इन्दीवरा, युग्मफला, दीर्घवृन्ता, उत्तमारणी, पुष्पमञ्जरिका, द्रोणी, करम्भा, नलिका। गुण-कटु, शीतल और पित्त, कफ आदि दोष तथा खाँसी व्रण एवं कृमि की नाशक है और आँखों के लिए हितकारी है। रा० नि० व० ३। वि० दे० "उतरन"।

इन्द्रच्छन्द-संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] एक हजार आठ मोतियों की माला जो चार हाथ लम्बी होती थी। सहस्रगुच्छहार। हे० च०।

इन्द्रज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इन्द्रयव। इंद्रजव। वै० निघ० २ भ० ज्व-चि० ग्रन्थ्यादि कषाय। (२) कुटज वृक्ष। कुरैया। (Holerrhena antidysenterica, *Linn.*) वै० नि० अ० सार चि० कुटज चूर्ण।

इन्द्रजतु-संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] शिलाजतु। शिलाजीत। (Asphaltum) वै० निघ०।

इन्द्रजम्बूकवत्पत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णसारिवा। भा० पू० १ भ०। दे० "कृष्णसारिवा" वा "अनन्ता"।

इन्द्रजव-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रयव] कुड़ा। कुरैया का बीज। दे० "इंद्रजव"।

इन्द्रज़ा-[शीरा०] गोरोचन।

इन्द्रजाड़-[ते०] मरुआ।

इन्द्रजानु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वानर विशेष। किसी बन्दर का नाम।

इन्द्रजाल-संज्ञा पुं० [सं०] मायाकर्म। जादूगरी। तिलस्म।

[ते०] आकाशवेल। अमरबेल। (Cassytha filiformis, *Linn.*)

इन्द्रजिह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Gloriosa superba, *Linn.*) लाङ्गली। कलिहारी। करियारी।

इन्द्रजौ-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रयव] इंद्रजव।

इन्द्रतरु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Terminalia arjuna, *W. &A.*) अर्जुन का वृक्ष। कोह। वै० निघ०।

इन्द्रतूल,-इन्द्रतूलक-संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] (१) आकाश में उड़नेवाला सूत। (२) Gossypium herbaceum, *Linn.* कार्पासी। कपास। (३) मदार की रुई। त्रिका०।

इन्द्रतोया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धमादन पर्वत के निकट बहनेवाली नदी।

इन्द्रदारु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) Cederus deodara. देवदारु। देवदार। (२) तैलदेवदारु का वृक्ष। स्निग्ध देवदारु। भा० पू० १ भ०। दे० "देवदारु"।

इन्द्रद्युति-संज्ञा स्त्री० [सं० क्लो०] (Sirium myrtifolium) Sandal चन्दन। वै० निघ०।

इन्द्रद्रु,-इन्द्रद्रुम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अर्जुन का वृत्त । कोह । (Terminalia arjuna, *W. &A.*) श० र० । अम० । (२) कुटजका वृत्त । कुरैए का पेड़ । (Holarrhena antidysenterica, *R. Br.*) रा० नि० व० ६ । (३) देवदारु का वृत्त । देवदार । (Pinus deodara, *Roxb.*) भा० पू० अने० ।

इन्द्रधनुष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अर्वाचीन रसायन-शास्त्र में एक धातुतत्त्व । दे० "आइरीडियम् (Iridium)" ।

इन्द्रधनुष-पुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Iris) orris root पुष्करमूल । ईसा ।

इन्द्रधनुष-पुष्पी सत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पुष्कर मूलीन । (Iridin) दे० "पुष्करमूल" ।

इन्द्रनत्तत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ज्येष्ठा नत्तत्र । (२) फाल्गुनी नत्तत्र ।

इन्द्रनील–संज्ञा पुं० [स० पुं०] एक मणि विशेष । नीलमणि । मरकतमणि । पन्ना । नीलम । (A sapphire) हे० च० । भा० पू० १ भ० ।

परीत्ता–इसको दूध में डालने से दूध का वर्ण काला हो जाता है । इसीलिये इसको इन्द्रनील अर्थात् "इन्द्र के समान नीला" कहते हैं । श० र० ।

इन्द्रनीलक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पन्ना । हरिन्मणि । (An emerald) श० र० ।

इन्द्रपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इन्द्र-वारुणी । इंद्रायन । (Cucumis Trigonus, *Roxb.*) । (२) लाङ्गलिका । कलिहारी । करियारी । (Gloriosa Superba, *Linn.*) सु० चि० १७ अ० ।

इन्द्रपुष्प–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लवङ्ग । लौंग । (Caryophyllus Aromaticus, *Linn.*)Cloves. र० सा० सं० पूर्णचन्द्ररस ।

इन्द्रपुष्पा, इन्द्रपुष्पिका, इन्द्रपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) लाङ्गली । कलिहारी । करियारी । (Gloriosa Superba, *Linn.*) प० मु० । रत्ना० । (२) पूती करञ्ज । (Cœsalpinia Bonducella, *Fleming.*) Bonduc nut. सु० सू० १७ अ० अर्कादि ड० ।

टिप्पणी—इस शब्द का प्रयोग किसी-किसी के मत से कण्टकी (शमी) और किसी के मत से कृष्णपुष्प (काला धतूरा) वा करंज तथा किसी के मत से कलिकारिका अर्थात् कलिहारी के लिये भी होता है ।

इन्द्रफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रयव ।

इन्द्रब्रह्म वटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पारदभस्म, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, चाँदी भस्म, सोनामाखी की भस्म और बच्छनाग इन्हें-समान भाग लेकर कमलकेशर मिलाकर थूहर के दूध तथा चित्रक, भाँग, एरंड के पत्ते, बच, निष्पाव (सेम), जमीकन्द और सम्हालू के रसों से भावना देकर पुट पाक करें । पुनः गंधक, मालकाँगनी और सरसों के तेल में घोटें । फिर पुटपाक में पकाएँ । इसी तरह पुनः गंधक और सरसों के तेल में घोटकर तीसरी बार पुटपाक में पकाएँ । इसे शीतल हो जाने के पश्चात् चना प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गुण—इसे पीपल के चूर्ण, अदरक के रस और दशमूल के काथ के साथ सेवन करने से अपस्मार का नाश होता है । भैष० । रस० यो० सा० । रसेन्द्र सा० सं० उन्माद चि० ।

इन्द्रभद्रानी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }
इन्द्रभव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } कुरैया का बीज । इन्द्रजव ।

इन्द्रभाष–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का ताल । इसमें बादल के गर्जन जैसा शब्द निकलता है ।

इन्द्रभेषज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Dried ginger) शुण्ठी । सोंठ । श० र० ।

इन्द्रमण्डल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नत्तत्र मण्डल विशेष । इसमें अभिजित से अनुराधा तक नत्तत्र रहते हैं ।

इन्द्रमद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पेड़ का गुल्म-ज्वर । गजवै० । (२) पहली वर्षा के जल से उत्पन्न विष, जिससे तरु तथा गुल्म जाति को

ओषधियाँ, जोंक और मछलियाँ मर जाती हैं। इसे "तरुगुल्म" ज्वर करते हैं।

इन्द्रमरिस–[उड़ि०] हरिन्-मञ्जरी । कुण्डली । कुप्पी । (Acalypha Indica, *Linn.*)

इन्द्रमहकामुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] A dog कुक्कुर। कुत्ता । त्रिका० ।

इन्द्रयव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) इन्द्रजव। कुटजबीज । वा० सू० १५ अ० । रा० नि० व० ६ । भा० पू० १ भ० । वि० दे० "इन्द्रजव"। (२) पुष्पकासीस । (३) वत्सक ।

इन्द्रयवफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इंद्रजव ।

इन्द्रयवा–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] इन्द्रयव । इंद्रजौ ।

इन्द्ररुद्रवेर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Terminalia Arjuna, *W. &A.*) अर्जुन । कोह ।

इन्द्रलाजी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ओषधि वृक्ष भेद ।

इंद्रलाज्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रजौ ।

इन्द्रलुप्त, इन्द्रलुप्तक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का रोग जिसमें दाढ़ी-मूँछ और सिरके बाल झड़ते हैं। श्मश्रुकेशघ्न रोग ।

पर्य्या०—इन्द्रलुप्तकः, केशघ्नः, इन्द्रलुप्तः, इन्द्रलुप्तकं (भू०), खल्वाट्, खालित्थम्, खल्लि, खालित्य, रूज्या, उपशीर्षक (सं०)। खल्वाट होने का रोग, गंज रोग, चाँइं चूँइं, गंजापन, टाँक (हिं०)। तसाक़ुतुश्शअ़्र, इंतिशारुश्शअ़्र, स़ल्अ़, स़ल्अ़ः (अ़०) । एलोपेशिया Alopecia, बैल्डनेस Baldness (अं०)।

निदान-कारण

रोमों की जड़ में रहनेवाला खून, पित्त के साथ कुपित होकर, रोमों को गिरा देता है, इसके उपरांत रक्त के साथ कफ रोम कूपों को रोक देता है, इससे फिर रोम पैदा नहीं होते। इस रोगको "इन्द्रलुप्त", "खालित्य" और "रूज्या" कहते हैं।

डॉक्टरी मत से कभी यह रोग सहज वा पैदायशी और कभी पैतृक होता है । कतिपय उग्र रोगों, विशेषतः बाज़ क़िस्म के बुखार, उरःक्षत रोग या आतशक या सिर की त्वचा में रूसी छूटना (बफ़ा) या व्यंग या दद्रु इत्यादि इस रोग के कारण हैं ।

स्त्रियों को गंज रोग क्यों नहीं होता ? यह रोग स्त्रियों को नहीं होता; क्योंकि उनका रक्त, रजोधर्म होने से, हर महीने में शुद्ध होता रहता है। इसी कारण से उनके रोमकूप या बालों के छेद नहीं होते।

शेख़ बूअली सेना भी अपनी किताब "शिफ़ा" में लिखते हैं–" स्त्रियों के शिर के बाल नहीं उड़ते; क्योंकि उनमें तरी अधिक होती है। "

डाक्टरी मत से इसके भेद

यह रोग तीन प्रकार का होता है—

(१) सहज, (२) अप्राकृतिक (Premature) और वार्द्धक्यजन्य (Senile) जो बुड्ढों को होता है।

इंद्रलुप्त के लक्षण

यह सहज तो विरला ही होता है, पर तो भी ऐसे शिशु देखे गए हैं, जिनको जन्मतः कमाबेश यह व्याधि थी। निर्बलता आदि के कारण जब यह रोग हो जाता है, तब सिर के बहुत से बाल झड़ जाया करते हैं । परंतु जब पैतृक होता है, तब यह रोग बहुत धीरे-धीरे शुरू होकर महीनों बरसों के बाद पूर्णतया दृढ़ होता है। बुढ़ापे में जब यह रोग होता है, तब पहले कनपुटी और चँदिया के बाल बारीक होने लगते हैं और फिर गिर जाते हैं, इत्यादि ।

चिकित्सा

(१) रोगी को स्निग्ध और स्विन्न करके मस्तक की फ़स्द खोलो अर्थात् स्नेहन और स्वेदन क्रिया करके, सिरकी (या सरेरू की) फस्द खोलो और मैनसिल, कसीस, नीलाथोथा और काली मिर्च—इनको बराबर-बराबर लेकर, पानी के साथ पीसकर, गंज की जगह लेप करो। (सु०)। (२)—तिक्त पटोल की पत्ती का रस निकाल तीन दिन लेप करने से बालखोरा नष्ट होता है। (३) मिलावें की स्याही शहद के साथ मिलाकर लेप करने से बालखोरा नष्ट होता है। (४) भटकटाई का रस और शहद इनका प्रलेप करने से इन्द्रलुप्त का नाश होता है। (५) गुञ्जामूल या गुञ्जाफल के रस में शहद मिलाकर लेप करने से बालखोरा

दूर होता है। (६) मुलहठी, कमल व दाख को तिल के तेल, घृत व गऊके दूधमें पीस लेप करने से बादखोरा दूर होकर केश सघन होते हैं।

गंज रोग में प्रयुक्त डाक्टरी औषधियाँ-- लाइकर एमोनिया एसिटास, ग्लीसरीन, ऑलियम् रोजमेरिनाई, कैन्थेरीडीज़ पाइलाकार्पीन, जेबोरएडी। केशकीट में कार्बोलिक एसिड।

इन्द्रलोहक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Argentum) Silver रौप्य। रजत। चाँदी।

इन्द्रवचा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्रयव। इंदजव। रा० नि० व० ६।

इन्द्रवटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मृतपारद (चन्द्रोदय), बंगभस्म और अर्जुन की छाल समान भाग। सेमल की जड़ के रस से खरलकर एक मासा प्रमाण गोलियाँ बनाएँ।

गुण—मधुमेह में योजित करने से लाभ होता है। वृहद् रस रा० सु०।

नोट—भैषज्य रत्नावली में "सिता" (मिस्री) का पाठ अधिक है। भैष० र० प्रमेह चि०।

इन्द्रवधू-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बीरबहूटी नाम का कीड़ा। Scarlet fly.

इन्द्रवन्ती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूषाकर्णी। मूसाकानी।

इन्द्रवरुणु-[गु०] (Cucumis trigonus, *Roxb.*) इन्द्रवारुणी। इंद्रायन।

इन्द्रवल्लरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Cucumis trigonus, *Roxb.*) इन्द्रवारुणी नाम की बेल। इंद्रायन। रा० नि० व० ३। वै० निघ० २ भ० कर्णक-सन्निपात रोहितकादि लेप।

इन्द्रवल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इन्दुवल्ली। सोमलता। सु०। दे० "सोम"। (२) इन्द्रवारुणी। इंद्रायन। (Cucumis trigonus, *Roxb.*)। (३) पारिजातलता।

इन्द्रवस्ति-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जाँघ की हड्डी। (२) एक मर्म-स्थान जो जंघा के मध्य एड़ी की संधि में स्थित है। वहाँ पर बिंधने से रक्त-क्षय होकर मृत्यु होती है। सु०शा० ६ अ०।

इन्द्रवायु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्र और वायु।

इन्द्रवारु-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] (Cucumis trigonus, *Roxb.*) इंद्रायन। इँदारुन। दे० "इंद्रायन"।

इन्द्रवारुणि, इन्द्रवारुणिका, इन्द्रवारुणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) (Cucumis trigonus, *Roxb.*) इंद्रायन। इँदारुन। प० मु०। रा० नि० व० ३। भा० पू० १ भ०। वै० निघ०। दे० "इन्द्रायन"। (२) गोरखककड़ी। गोरक्षकर्कटी। च० द० लाक्षातैल।

इन्द्रवारुणि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रायणादि का एक मिश्र योग—इन्द्रायण की जड़ और पीपल के चूर्ण को गुड़ में मिलाकर १ कर्ष की मात्रा से सेवन करने से सन्धिगत वायु का नाश होता है।

इन्द्रवारुणि मूल योग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का इन्द्रायण का योग—इन्द्रायण की जड़ और पुष्करमूल को तेल में पीसकर गोदूध के साथ सेवन करने से अण्डवृद्धि का नाश होता है। वृ० नि० र० अण्डवृद्धिरोग।

नोट—इसमें एरण्ड का तेल लेना चाहिए।

इन्द्रवारुणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गिरिकर्णी। (२) विशिडन्य। (३) गवादनी। (४) इन्द्रयव। (५) इन्द्रायण। इंद्रायन। (६) सूक्ष्मएला।

इन्द्रवारुण्यादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक आयुर्वेदीय योग जिसमें इन्द्रायण पड़ता है। योग—इन्द्रायण की जड़ और त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) समान भाग लेकर चूर्ण करें।

गुण—इसे जल के साथ सेवन करने से दारुण शूल का नाश होता है। वृ० नि० र० शूल० चि०।

इन्द्रावारुण्यादि-फाण्ट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का योग जिसमें प्रधान औषधि इन्द्रायण है। योग—इन्द्रायण की जड़, कुटकी, मोथा, कूट, देवदारु और इन्द्रजौ; प्रत्येक १-१ कर्ष, अतीस आधा कर्ष, मुलहठी २ कर्ष, सबको कूटकर गरम पानी में डालें और मलकर अच्छी तरह छानकर पिएँ। फिर ऊपरसे थोड़ासा शहद चाटें।

गुण—इसके सेवन से खाँसी, श्वास, ज्वर, दाह, पाण्डु, अरुचि, गुल्म, अफारा, आमवात और रक्त-पित्त का नाश होता है। च० चि० २० अ०।

इन्द्रविद्धा, इन्द्रवृद्धा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) क्षुद्र रोगों में से एक प्रकार का व्रण-रोग जो वातपित्त जन्य होता है।

लक्षण—माधव निदान के अनुसार इसमें सर्व प्रथम मध्य में कमल के छत्ते की तरह एक बड़ी फुंसी उत्पन्न होती है। इसके उपरांत उसके चारों ओर बहुत सी छोटी-छोटी फुंसियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस रोग का आविर्भाव वात-पित्त के प्रकोप के कारण होता है। मा० नि० क्षुद्र-रोग।

(२) इस नाम का एक प्रकार का अश्व रोग दे० "इन्द्रवृद्ध"।

इन्द्रविषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Aconitum heterophyllum, *Wall.*) अतीस। अतिविषा।

इन्द्रवीज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रयव। इन्द्र-जव। "तिक्तेन्द्रवीज-धनिकेभकणा कषायः।" च० द०। सि० यो० सान्निपातिक ज्व० चि० अष्टादशाङ्ग।

इन्द्रवृद्ध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कुलक्षण घोड़ा जो अंड रहित हो। यह स्वामी के कुलका घातक है। जैसे, "विरोधं नैवयो याति दृष्ट्वाश्वां मुष्कवर्जितः। इन्द्रवृद्धःस विख्यातो भर्त्तुश्च कुल नाशनः।" ज० द० ३ अ०।

इन्द्रवृद्धा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की फुंसी। दे० "इन्द्रविद्धा"।

इन्दवृद्धिक–संज्ञा पुं० दे० "इन्द्रवृद्ध"।

इन्द्रवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) देवदारु वृक्ष। देवदार। (Pinus deodara, *Roxb.*) जटा०। (२) श्वेत कुटज वृक्ष। सफेद कुरैया। (३) अर्जुन वृक्ष। कोह (Terminalia arjuna, *W. &A.*)। "सोमवल्लीमिन्द्र वृक्षम्।" भा० म० ४ भ०।

इन्द्रवैदूर्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बहुमूल्य रत्न विशेष।

इन्द्रशैल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्र कील पर्वत।

इन्द्रसारथि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायु। हवा। (ऋक् ४। ४५। २)

इन्द्रसुत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Terminalia arjuna, *W. &A.*) अर्जुनका वृक्ष। कोह। काहू। रा० नि० व० ९।

इन्द्र सुरस, इन्द्र सुरसा–संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (Vitex negundo, *Linn.*) निर्गुण्डी वृक्ष। सँभालू। रत्ना०।

इन्द्रसुरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरक्ष कर्कटी। गोरख ककड़ी। "गुडूचीन्द्रसुरा"। सु० चि० ३७ अ०।

इन्दसुरिष,-इन्द्रसुरिस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

इन्द्रसुरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] निर्गुण्डी वृक्ष। सँभालू। स्योंड़ी। (Vitex negundo *Linn.*) र० मा०। अ०म०।

इन्द्रसूनु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Terminalia arjuna, *W. &A.*) अर्जुन का वृक्ष। कोह। कहुआ। रा० नि० व० ९।

इन्द्रसूर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सम्हालू। भैष० र०। पञ्चानन घृत वा तैलमें पड़ने वाला एक द्रव्य।

इन्द्र स्वरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Rain water) वृष्टि जल। वर्षा का पानी। च० द० अर्श० चि० नागार्जुन योग।

इन्द्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) फणिज्झक वृक्ष। एक प्रकारका जम्बीर। मे० रद्धिक। भा० म० ३ भ० मेद चि०। दे० "फणिज्झक"। (२) इन्द्रवारुणी। इंद्रायन। (Cucumis trigonus, *Roxb.*) रा० नि० व० ३। (३) इन्द्रायण। छोटा इन्द्रायन। धन्व० नि०। (४) जम्बीर। जम्भीरी नीबू (Citrus acida)। (५) इंद्रपत्नी। शची।

इन्द्राइन–संज्ञा पुं० [हिं० इंद्रायन] (Cucumis trigonus, *Roxb.*] इन्द्रवारुणी। इंद्रायन।

इन्द्राग्नि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] बिजली। विद्युत्।

इन्द्राग्निधूम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हिम। पाला। बर्फ़। हारा०।(२) अग्नि विशेष।

यह अग्नि प्रति वर्ष वैशाख और जेठ के महीने में प्राय: पृथ्वीपर गिरती हैं। इससे महिष, गो, वृक्ष तथा गृह आदि जल जाते हैं।

इन्द्राणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] (१) स्योंढी। निगुंडी का वृक्ष। प० मु०। नील सिन्दुवार। नीला सँभालू। (Vitex negundo, *Linn.*) रा० नि० व० ४ "जातीफलादि वटिका"।

इन्द्राणिका पत्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (The leaves of vitex negundo, *Linn.*) निगुंडी का पत्ता। सँभालू का पत्ता। जाती-फला० वटी।

इन्द्राणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कृष्ण निगुंडी। सँभालू। स्योंडी (Vitex negundo, *Linn.*)। (२) स्त्रीन्द्रिय, जैसे-"इन्द्राणी करणं स्त्रीणां पौलोमासिन्दुवारयोः।" मे० णत्रिक०। (३) स्थूलैला। बड़ी इलायची (Amomum Subulatum, *Roxb.*)। (४) सूक्ष्मैला। छोटी इलायची। (Elettaria cardamomum, *Maton.*) रा० नि० व० ६। इन्द्रपत्नी। शची। (६) छोटा इंद्रायन। (७) बाईं आँख की पुतली। रा० नि०।

इन्द्रादृश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रगोप। बीरबहूटी।

इन्द्राध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक कन्द।

इन्द्रानी-संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणी] अंजबार। बीजबन्द। मिरोमती-सं०। (Polygonum Aviculare, *Linn.*) इं० मे० प्लां०। दे० "अञ्जबार"।

इन्द्राभा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कङ्कपक्षी का एक भेद। एक प्रकार का काँक नाम का पक्षी।

इन्द्रायण, इन्द्रायणी-[जय०] (Cucumis Trigonus,*Roxb.*) इंद्रायन। इन्द्रवारुणी। इनारू।

इन्द्रायन का तेल-संज्ञा पुं०इन्द्रायणका हरा फल तिल के तेलमें पकाकर छानलें। इसे दो-तीन बूँद कान में टपकाने से बहिरापन दूर होता है।

इन्द्रायन-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्राणी] इँदारुन, इनारू, माहर, छोटा इंद्रायन, बिसलोंबी, बिसलंभी, जंगली इंद्रायन (हिं०)। ऐन्द्री, इन्द्रवारुणी, इन्द्राह्वा, इन्द्रवारु, मृगादनी, गवादनी, क्षुद्रफला, वृषभाक्षी, गवाक्षी (ध० नि०), ऐन्द्री, इन्द्रवारुणी, अरुणा, मृगादनी, गवादनी, क्षुद्रसहा, इन्द्रचिर्भिटा, सूर्या, विषघ्नी, गणकर्णिका, अमरा, माता, सुवर्णा, सुफला, तारका, वृषभाक्षी, गवाक्षी, पीतपुष्पी,इन्द्रवल्लरी, हेमपुष्पी, क्षुद्रफला, वारुणी, बालकप्रिया, रक्तैर्वारु, विषलता, शक्रवल्ली, विषापहा, अमृता, विषवल्ली (रा० नि०), विशाला (अ०), ऐन्द्री, चित्रा, गवाक्षी, गजचिर्भिटा, भटा, मृगेर्वारु, पिटंकोकी, मृगादनी (र०), चित्रफला (ज०) इन्द्रवारुणिका (श०), ऐन्द्री, इन्द्रवारुणी, चित्रा, गवाक्षी, गवादिनी (भा०), चित्रदेवी, स्थाणुकर्णी, धेनुःश्रेणी, सूर्या, मरुसम्भवा, चन्द्री (द्रव्य० र०), तवसी, भिषक् श्रेष्ठ (ग० नि०), युग्माब्धिसंख्यक (पुरातन चिकित्सक) -(सं०)। राखाल नाड़ू, राखालशशा, कुंदरुकी (बं०)। कुकुमिस ट्रिगोनस Cucumis Trigonus, *Roxb.*, ब्रायोनिया स्कैब्रेला Bryonia Sacbrella, कुकुमिस स्युडो कॉलोसिंथिस Cucumis Pseudo-Colocynthis, *Roy.* (ले०)। बिटर गोर्ड Bitter gourd (अं०)। लघुकावंडल, तक्मकी, करीट, कटवेल (मरा०)। काट्टुतुमट्टि (ता०)। अडवि-पुच्च, कोडिनेल्ला (ते०)। कचिट (बम्ब०)। अलमेक्की (कना०)। इंद्रावण, करंटी (कों०)। तसतुंबो, गुडतुंबो, इंद्रारुणा (राजपु०)। छोड़ इंद्रावण, (देशाई)। घुलेइंद्रावण, हामेक्के (काठिया०)। इंद्रवरुणु (गु०)।

नोट—इंद्रवारुणी अर्थात् इंद्रायण की परिचयज्ञापिका संज्ञा-"पीतपुष्पी क्षुद्रफला, बालकप्रिया" और गुणप्रकाशिका संज्ञा-"विषघ्नी" है।

वक्तव्य

धन्वन्तरीय निघंटु में इंद्रवारुणी, महेंद्रवारुणी वा विशाला और श्वेतपुष्पी विशाला एवं राजनि-

घंटु में इंद्रवारुणी के गुण-पर्याय पृथक्-पृथक् लिखे हैं। वाग्भट के टीकाकार अरुण ने वाग्भट की टीका के अनेक स्थल पर धन्वन्तरीय निघंटूक्त पाठ उद्धृत किए हैं। वाग्भट सूत्रस्थान के छठवें अध्याय में 'वर्षाभू' और 'आरुक' शब्दों की टीका में "तथाच निघंटुः"। "निघंटावुक्तं" लिखकर अरुणदत्त ने आगे जो लिखा है, उसके साथ धन्वन्तरीय निघंटूक्त पुनर्नवा एवं आरुक के गुण-पर्यायादि का मिलानकर पढ़ने से ही इस बात की यथातथ्यता प्रमाणित होजायगी। धन्वंतरीय निघंटु के रचयिता वा वक्ता सुश्रुत के गुरु धनवन्तरि हैं, इस विषय में कोई संदेह नहीं। अरुणदत्त भी "तथाच धन्वन्तरिराख्यत्" कहकर धन्वन्तरीय निघंटूक्त पाठोद्धार करते हैं (वाग्भट सूत्रस्थान ६ ष्ट अध्याय १६८ पृ० पूज्यपाद श्रीयुक्त विजयरत्नसेन महाशयकृत संस्करण)। इससे यह प्रमाणित होता है कि, सुश्रुत टीकाकार डल्वण एवं वाग्भट टीकाकार अरुण से बहुत पूर्व ही धन्वन्तरीय निघंटु लिखा जा चुका था। उद्भिदों के उन सभी नामों का, जिनका सुश्रुत-संहिता में व्यवहार हुआ है, स्वगुरु धन्वन्तरि कथित निघंटूक्त अर्थ में प्रयुक्त होना ही संभव है। यह प्रेक्षावान व्यक्ति की समझ में नहीं आयेगा। धन्वंतरीय निघंटु के पर्यालोचन से हमें ऐसा अवगत होता है, कि "गवाक्षी" इंद्रवारुणीका एवं "मृगेर्व्वारु" श्वेतपुष्पी विशाला का पर्याय है; किंतु डल्वण लिखते हैं—

"मृगेर्व्वारुरिन्द्रवारुणी", "गवाक्षी श्वेतपुष्पा इन्द्रवारुणी" (सु० सू० ३९ अ० टीका)। सुश्रुत-मत सम्वादी वाग्भट्ट के "मदनमधुकलम्बा निम्बविम्बीविशाला" और "निकुम्भ कुम्भ त्रिफला गवाक्षी" पाठ की टीका में अरुण लिखते हैं "विशाला इन्द्रवारुणी" "गवाक्षी विशाला द्वितीयेन्द्रवारुणी" (वा० सू० १५ अ० टी०)। डल्वण और अरुण की उक्त व्याख्या निघंटु सम्मत न होने पर भी वे इन्द्रवारुणी द्वय की पार्थक्य रक्षा करते हैं। पर चक्रपाणि इस पार्थक्य का विलोप करते हैं। ये मृगेर्व्वारु (बड़ा इन्द्रायन) और गवाक्षी (छोटा इंद्रायन) शब्द से एक ही उद्भिद का अर्थ लेते हैं। यथा—"मृगेर्व्वारु गोरक्षकर्कटी" (भानुमती सू० अ०) "गवाक्षी गोरक्षकर्कटी"—(भानुमती सू० ३६ अ० "अजगंधाजशृंगी च गवाक्षी" इत्यादि पाठ की व्याख्या)। चक्रपाणि के परवर्त्ती आचार्यगण की लिखी जिन सभी टीकाओं का हमने अनुशीलन किया। उनमें से किसी में दोनों प्रकार की इंद्रवारुणी की पार्थक्य रक्षा हुई हो, ऐसा दिखाई नहीं देता। उन सभी में गवाक्षी और विशाला दोनों को ही गोरक्षकर्कटी लिखकर व्याख्या की गई है। चक्रदत्त के टीकाकार शिवदास एवं वृंदकृत सिद्धयोग की कुसुमावली नामक टीका के रचयिता श्री कण्ठदत्त दोनों ही इस दोष के दोषी हैं। कृतश्रम व्यक्ति को आयुर्वेद में यह बात विलक्षण मालूम पड़ती है।

नव्यमत समालोचना

बृहन्निघंटु रत्नाकर के संकलयिता शालिग्राम जी वैश्य इन्द्रवारुणी का परिचय प्रदान करते हुए लिखते हैं—

"फल सूक्ष्म काँटायुक्त लाल रंग का होता है।" जैसा आगे वर्णन किया गया है, इंद्रवारुणी वा महेन्द्रवारुणी के फल में काँटा नहीं होता। राढ़ देश में महेंद्रवारुणी के सदृश एक प्रकार की लता यत्र तत्र उत्पन्न होती है। यह सुदीर्घ लता वृक्षों के आश्रय से प्रतान विस्तार करती है। इसका फल महेंद्रवारुणी के फल की अपेक्षा लम्बा एवं फल पर खेखसा की तरह काँटा होते हैं। वहाँ उस फल को "राखालफल" कहते हैं। राखालफल विष है। पागल कुत्ते को मारने के लिए राखालफल को खाद्य के साथ मिश्रितकर उसे खिलाते हैं। ऐसा बोध होता है कि वैश्यजी ने भ्रमवश उसे ही इंद्रायन समझ लिया है। राखालफल को लेटिन में (Ecballium elaterium) कहते हैं।

कुष्माण्ड वर्ग

(*N. O. Cucurbitaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—सिंध, डेरा-इस्माइल खाँ मुलतान, बहालपुर तथा दक्षिण और दक्षिण भारत में इसकी लता आप से आप उपजती है।

वानस्पतिक-वर्णन--एक लता जो बिल्कुल तरबूज की लता की तरह होती है । इसकी पत्ती कुँदुरु की पत्ती से छोटी, पत्ती की धार असमान-अनेक खंडोंमें विभाजित,प्रत्येक गाँठसे एक-एक पत्ती फूटती है, पत्ती पर रोम नहीं होते । यह प्रायः बीस हाथ तक बढ़ जाती है । ज़मीन पर भी इसकी बेल होती है और गुल्मादि के आश्रय से भी प्रतान विस्तार करती है । पत्र की डंडी एवं डंठलोंमें रोम होते हैं। पत्रवृंतके समीपसे फूलऔर एक लम्बी आवर्त्तिताग्र आकर्षणी (Tendril) निकलती है । इसी के द्वारा लता वृक्ष का आश्रय अवलंबन किये रहती है । फूल की आकृति घंटी के समान होती है । इसका ऊपरी भाग पाँच भागों में खंडित होता है । हरिद्रावर्ण-पुं० पुष्प का वृंत दीर्घ, स्त्री पुष्प का वृंत ह्रस्व होता है । फल मसृण लगभग छोटे अंडे के आकार प्रकार का अथवा सर्वांश में कचरी के समान, जो इसका एक भेद है, होता है । बड़े इंद्रायन के समान इस पर हरी और पीली धारियाँ होती हैं । इसका प्रत्येक अंग कड़ुआ होता है । ये केवल औषध में काम आते हैं ।

कचरी (पेंहटा) इसका एक भेद है जो लोमश एवं प्रायः जोते हुए खेतों में होती है । इसके फल मख़मली होते है और पकने पर अत्यंत मीठे हो जाते हैं । कच्चे पर इसका शाक बनाकर खाते हैं ।

प्रयोगांश—फल, बीज और जड़ ।

औषध-निर्म्माण—इंद्रवारुणी चूर्ण, इन्द्रवारुणी मूल योग, इन्द्रवारुण्यादि चूर्ण, इन्द्रवारुण्यादि फांट, ऐन्द्री रसायन, इन्दारुकी गुटिका ।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार गुण-दोष—

इंद्रायन (इंद्रवारुणिका) अतिउष्ण, रेचन एवं कटुक-चरपरा है तथा कृमि, श्लेष्म, व्रण और सकल उदररोगों का नाश करता है । (धन्वन्तरीय निघण्टु)

इंद्रायन (इन्द्रवारुणिका) तिक्त, कटु, चरपरा, शीतल तथा रेचक है और गुल्म, पित्त, उदररोग, श्लेष्म, कृमि, कुष्ठ एवं ज्वर नाशक है । (रा० नि० गुडूच्यादि ३ व०)

इंद्रायन प्रमेह, अरुचि, कृमि, कफ तथा पांडुरोग नाशक है तथा मूढ़गर्भहर एवं सर्वाङ्ग ग्रंथि मोचन तथा गलगंडरोग नाश करनेवाला है । (कैयदेव)

छोटा इंद्रायन (लघ्वीन्द्रवारुणी) पाक में कटु और तिक्त, शीतल, दस्तावर, उष्णवीर्य तथा हलका है ""…। (वै० निघ०)

वैद्यक में इंद्रवारुणी का व्यवहार

सुश्रुत-कामला रोग में इंद्रवारुणी-इंद्रवारुणी की जड़ का रस गुड़के साथ सेवनीय है । विरेचक होने से यह कामला रोग में हितकर है । यथा—

"❀ हिता गवाक्षी सगुड़ा ❀" ।

(३०-४४ अ०)

चक्रदत्त—(१) वृद्धि रोग में इंद्रवारुणी—इंद्रवारुणी की जड़ का चूर्ण एरण्ड तैल में मर्दन-कर गोदुग्ध के साथ तीन दिन तक सेवन करने से सर्व प्रकार की वृद्धि निवृत्त होती है । यथा—

"ऐन्द्रीमूलभवंचूर्णं रुवुतैलेन मर्दितम् ।
त्र्यहाद् गोपयसा पीतं सर्व्ववृद्धि निवारणम्॥"

(वृद्धि-चि०)

(२) गण्डमाला में इंद्रवारुणी—इंद्रवारुणी की जड़ गोमूत्र में पीसकर पीनेसे घोर गण्डमाला विनष्ट होता है । यथा—

"ऐन्द्रया वा ❀ मूलं गोमूत्रयोगतः ।
गण्डमालां हरेद्घोरां चिरकालोत्थितामपि ।"

(गण्डमालादि-चि०)

(३) अन्तःशल्य निर्हरणार्थ इंद्रवारुणी—अन्तःशल्य निर्हरण अर्थात् शरीर के किसी स्थल में यदि कंकड़, काँटा अथवा कोई अन्य वस्तु चुभ जाय, तो उसे वहाँ से बाहर निकालने के लिए इंद्रवारुणीकी जड़ पीसकर उस शल्यविद्ध स्थानपर प्रलेप करें । यथा—

"गवाक्षी मूलस्तथा" (व्रणशो०-चि०)

(४) उन्माद में इन्द्रवारुणी—इन्द्रवारुणी

का पका फल गोमूत्र के साथ पीसकर नस्य लेने से ब्रह्मराक्षसगृहीत उन्माद जय किया जाता है।

यथा—

"ब्रह्मराक्षस जिन्नस्यं पक्वैन्द्रीफलमूत्रजम्"।

(उन्माद-चि०)

भावप्रकाश-संधिवात में इन्द्रवारुणी—इन्द्रवारुणी की जड़ किंचित् पीपल और गुड़ के साथ पीसकर सेवनीय है। यथा—

"इन्द्रवारुणिका मूलं मागधी गुड़ संयुतम्।
भक्षयेत् कर्षमात्रन्तु सन्धिवातं व्यपोहति॥"

(भा० खं० २ भ०)

स्वकृत परीक्षित प्रयोग

(१) इन्द्रायन का गूदा १ पाव, काले तिल का तेल एक सेर—इन दोनों को मन्दाग्नि से पकाएँ। तेल सिद्ध होनेपर, उसे छानकर रखलें।

गुण-प्रयोग—इसको शिर में लगाने एवं इसका नस्य लेनेसे घोर सँवलवायु नष्ट होता है।

(२) विरेचनार्थ इन्द्रायन-मूल-योग—इन्द्रायन की जड़ ६ मा०, सोंठ ६ मा०, कालानमक ६ मा०, मुनक्का १ तो०—पूर्वोक्त तीन औषधियों का महीन चूर्णकर पुन: बीज निकाले हुये मुनक्का को उसमें मिला गुलाबजल वा केवल पानी से घोटकर इसकी १६ गोलियाँ प्रस्तुत करें। गुण, प्रयोग तथा मात्रा—इसमें से १ गोली जल के साथ निगलने से बिना कष्ट के—सुखपूर्वक दस्त होते हैं।

नोट—इसे सदा ताज़ा तैयार करना चाहिये। पुराने में इस गुण का पाया जाना जरूरी नहीं।

(३) इन्द्रायन की गुद्दी १० तो०, अपामार्ग क्षार ५ तो०, सोंठ ५ तो०, मिर्च २॥ तो०, पीपर १। तो०, जवाखार २ तो०-इनको पीस छानकर महीन चूर्ण बनाएँ। फिर उस चूर्ण को जल में घोटकर मटर समान वटिकाएँ बनाएँ।

गुण-मात्रा—इसमें से १-१ गोली सुबहशाम उष्ण जल के साथ सेवन करने से आमवात और उग्र प्लीहा रोग का शीघ्र नाश होता है।

(४) इन्द्रायनमूल ५ तो०, नौसादर ५ तो०, सोंठ २ तो०-इनका बारीक चूर्णकर नीबू के रस में घोटकर ८-८ रत्ती० की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसमें से १-१ गोली सुबह-शाम गरम पानी के साथ खाने से प्लीहारोग समूल नष्ट होता है। गोदुग्ध के साथ सेवन करने से गृध्रसी (Sciatica) नष्ट होती है।

(५) इन्द्रायन का गूदा ५ तो०, रेंडी की गिरी ५ तो०, सोंठ ५ तो०, हड़ ५ तो०—इनको बारीक पीसकर, इसमें १५ तो० पुराना गुड़ मिला ३-३ माशे की गोलियाँ प्रस्तुत करें।

गुण—इसमें से १-१ गोली प्रात: सायं गर्म दूध के साथ खाने से आमदोष एवं आमवात जनित संपूर्ण विकार नाश होते हैं।

(६) भुना सुहागा २ तो०, हुलहुल की जड़ की छाल २ तो०, चिरायते का फूल २ तो०, नीम का फूल २ तो०, नाई २ तो०, इनारुन की गुद्दी १० तो०, सोंठ ५ तो०-इनकी महीन बुकनी बना भाँगरे के रस में ४ पहर तक घोटकर १-१ माशे की गोलियाँ बनालें।

गुण—इसमें से १-१ गोली सुबह शाम गरम दूध वा पानीके साथ सेवन करनेसे मलेरिया जन्य प्लीहा, अम्लपित्त और रक्ताल्पता (Anaemia) आदि का निवारण होता है।

नव्यमत

इन्द्रायन के बीज शीतल माने जाते हैं और इन्हें दूब के रस में पीसकर विस्फोटक विशेष (Herpetic eruptions) पर लगाते हैं। इन्द्रायन (Bitter gourd) कालोसिंथ के समान होता है और संस्कृत में इसे "विशाला" कहते हैं। मलाबार में इसका पौधा विषघ्न एवं सर्व प्रकार की वेदनाओंको हरण करने की शक्ति रखनेवाला माना जाता है। इसके फल को पीसकर वा गोदुग्ध में उबालकर शिर में लगाते हैं और यह मानते हैं कि इसको शिर में लगाने से उन्माद रोग रुक जाता है, इससे शिरोभ्रमण (Vertigo) निवृत्त होता है और यह स्मृति को पुष्ट करता है। अर्वाचीन शोधों से यह सिद्ध होता है कि इसमें कालोसिंथ से किसी बात में फर्क नहीं। (फा० इं० २ भ० पृ० ६५-६६)

इसकी जड़ का क्वाथ (१० में १) उत्कृष्ट विरेचन है। कहा जाता है कि फल के गूदे से यह प्रभाव में मंदतर एवं अल्प प्रदाहक है। (इं० मे० मे०-के० एम० नादकर्णी पृ० २६८)

इन्द्रायन, बड़ा—संज्ञा पुं०[हिं०इंद्रायन+बड़ा (वि०)] इंदारुकी, सफ़ेद इंद्रायन, बड़ा इनारुन, तुम्बा, बड़ी इंद्रफला, फरफेंदू (व्रजभाषा)–हिं०। इंद्रावन (द०)। संस्कृत पर्य्याय—इंद्रवारुणी, विशाला, महाफला, आत्मरक्षा, चित्रफला, त्रपुसी, त्रपुसा, (ध० नि०), महेन्द्रवारुणी, रम्या, चित्रवल्ली, महाफला, माहेन्द्री, चित्रफला, त्रपुसी, त्रपुसा (पुत्रसा, ? पुत्रदा ?) आत्मरक्षा, विशाला, दीर्घवल्ली, बृहत्फला, बृहद्वारुणी, सौम्या (रा० नि०)। हन्ज़ल, हिन्ज़ल, उल्कम्, अल्क़म्, कसब (अ०)। हिंदवानहे तल्ख़, ख़र्बुज़हे तल्ख़, खुरपूज़ः तल्ख़,कबिस्ते तल्ख़,ख़र्बुज़हे रूबाह, हिंदवानहे अबूजहल, ख़्यारे तल्ख़, ख़ुरपूज़हे रूबाह (फ़ा०)! साइट्रयुलस कॉलोसिंथिस Citrullus colocynthis, *Schrad.*, कुकुमिस कॉलोसिंथिस Cucumis colocynthis, (ले०)। कालोसिंथ Colocynth, बिटर एपल Bitter apple, बिटर गोर्ड Bitter gourd (अं०)। कॉलोक्विंटी Coloquinte (फ्रां०)। पेय्कोमट्टि, तुमट्टि, पेयुत्-तुमट्टि, वरित्-तुमट्टि, पेय कुमुटि (ता०)। एटि-पुच्च, बेरिंपुच्च, चिट्टि पापर, पापर अबुदम, पुट्सा काय (ते०)। हावमेक्केकायि, हाम्मेक्वेक (कना०)। इंद्रवण, कौंडल, कुरुरुण्डावन (मरा०)। यक्कमद्दु (सिंगा०)। किया-सी, खिआ-सी, खिआ-ति (बर०)। कवंडली(कों०)। पैक-कुमट्टि, कटु वेल्लरि (मल०)।

इंद्रायन (बम्ब०)। गुरु ंब, तुम्बी (पं०)। इंदवारुनू, इंदरवार्णीयूँ, इंद्रायन (गु०)। तस, तुम्बु, गुड़ तुम्बु (मालाबार)। हाती के (करना०)।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—मदरास और कतिपय अन्य स्थलों में बड़े इंद्रायन को तामिल में प्रायः 'कोमट्टि' कहते हैं और यही संज्ञा दक्षिण भारतवर्ष के बहुशः अन्य भागों में जंगली ककड़ी (Bryonia callosa) के लिए प्रयुक्त होती है। इसका लेटिन नाम 'कॉलोसिंथिस' इसकी यूनानी संज्ञा कालोकिंथिस से, जिसे कतिपय तिब्बी ग्रंथों में ग़लती से कोलूकीनस आदि लिखा है, व्युत्पन्न है। इसके पौधे को लेटिन भाषा में 'साइट्रयुलस कालोसिंथिस' कहते हैं। परिचय ज्ञापिका संज्ञाएँ—"दीर्घवल्ली", "महाफला", "चित्रफला" और "रम्या" हैं।

कुष्माण्ड वर्ग

(*N. O. Cucurbitaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—इसकी लता प्रायः समग्र भारतवर्ष में बहुतायत के साथ होती है। उत्तर पश्चिम भारत, पंजाब और सिंध के शुष्क प्रदेश, कारोमंडल तट के रेतीले भाग, ईरान, अरब, श्याम, यूनान के कतिपय द्वीप, उत्तरी अफरीका से मराको, भूमध्यसागर तट स्पेन, पुर्त्तगाल और जापान इत्यादि स्थानों में इसकी बेल जंगली उपजती है।

वानस्पतिक वर्णन–इसकी लता अत्यन्त दीर्घ हाती है। पत्तीका किनारा बहुत कटा हुआ, अत्यंत विषम होता है। पत्र पृष्ठ, पत्रवृन्त एवं डंठलों पर रोम होते हैं। पत्रवृन्त के सन्निहित स्थान से पुष्प निकलता है। पुष्पवृन्त नातिदीर्घ, पुष्प पीतवर्ण, फल बड़ा तथा गोल, क्वचित् वा अति अल्प लम्बा, छोटे सेब के आकार का होता है, जिसमें खरबूजे की तरह फाँकें कटी होती हैं। पकने पर इसका रंग पोला होजाता है। यह लाल रंग का भी होता है।

यह फल देखने में बड़ा सुन्दर पर अपने कड़ुएपनके लिए प्रसिद्ध है। शरद् ऋतु में इसका फल पकता है और वनौषधि संग्रहकर्त्ता दिसम्बर और जनवरी में इसे उत्तरी भारतवर्ष में विक्रयार्थ भेजते हैं।

प्रयोगांश—भारतवर्ष में साधारणतः इसकी जड़ और बोज-शून्य समग्र फल, तथा बीज से निकाला हुआ तैल औषधार्थ व्यवहार में आता है। यूनानी ग्रंथों में इसकी पत्तो के गुण-प्रयोगों का भी उल्लेख आया है। किंतु ब्रिटिश फार्मा-

कोपिया में केवल इसके फल का गूदा ही आफ़िशल (सम्मत) है। अनेक प्रकार के इंद्रायन Citrullus colocynthis की प्रतिनिधि स्वरूप बाजार में पाये जाते हैं। जंगली इंद्रायन (Cucumis Trigonus), इंद्रायण भेद (Cucumis pseudo-colocynthis) और पहाड़ी इंद्रायन (Cucumis hardwickii) उत्तर भारतवर्ष के पर्वतीय भूमि में अधिकता के साथ उपजते हैं, जिन्हें प्राय: बाजार में बिकनेवाले इंद्रायन में मिला दिया जाता है। इसकी सुगम पहचान यह है कि वास्तविक इंद्रायन के फल गोल होते हैं और मिलाया नकली इंद्रायन मसृण एवं लंबोतरी आकृति का होता है।

रासायनिक संघटन—भारतीय तथा योरूपियन इंद्रायन की रासायनिक रचना में प्रत्यक्ष कोई भेद दृग्गोचर नहीं होता। दोनों ही अपने शारीर-व्यापार के लिए "कालोसिन्थीन" नामक क्षारोद तथा तिक्तसार पर निर्भर करते हैं। यह कण वा चूर्ण के रूप में पाया जाता है, जो जल एवं मद्यसार में सुविलेय होता है। यह तिक्तसार २ $^0/_0$ से न्यून नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त कालोसिंथेइन Colocynthein (एक राल), कालोसिंथिटिन, पेक्टिन, निर्यास, श्वेतसार कोई नहीं, भस्म ११ $^0/_0$ पाया जाता है। बीज में एक प्रकार का स्थिर तैल १७%, एल्ब्युमिनाइड ६ $^0/_0$ और भस्म ३ प्रतिशत। कालोसिंथिटीन एक स्फटिकीय चूर्ण है जो ईथर विलेय और जल में अविलेय है।

बीज से तेल निकालने की विधि—बीजों को इंद्रायन के गूदे से पृथक् कर सेंक लेवें। पुनः उन्हें पानी में औटाकर, थैली में भरकर मलें। इस प्रकार उनके छिलके उतारकर मींगियों का तेल निकाल लें।

इतिहास—प्राचीन भारतवासियों, यूनानियों, रूमियों और प्राचीन अरब निवासियों को इस औषध का ज्ञान था। चरक तथा सुश्रुत में इसका उल्लेख आया है। आयुर्वेद में फल को तीक्ष्ण रेचन एवं पैत्तिक विकार, मलबद्धता, ज्वर और आंत्रस्थ पराश्रयी कृमियों के लिए उपयोगी लिखा गया है। जलोदर, कामला, मूत्र संबंधी व्याधियों और आमवात में जड़ प्रयोग में आती है। मुसलमान चिकित्सक आर्द्रता रेचक (Drastic purgatives) रूप से जलोदर, कामला तथा गर्भाशय संबंधी नाना विकारों, विशेषतः रजोरोध में, इसका प्रचुर प्रयोग करते हैं। यूनानी एवं रोमन चिकित्सा में भी इस औषध का उल्लेख मिलता है।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

इन्द्रायन का गूदा (वा फल)।

पर्य्याय—महेंद्रवारुणी फल गूदिका, इंद्रायन का गूदा (हिं०)। शह्मे हंज़ल (अ०)। मग्ज़ हिंदवानहे अबूजह्ल (फ़ा०)। कालोसिंथिडिस पल्पा Colocynthidis pulpa (ले०)। कालोसिंथ पल्प Colocynth pulp (अं०)।

यह उपर्युक्त इंद्रायन वा विलायती इंद्रायन (Citrullus colocynthis) के फल का गूदा है जिसे बीज निकालकर सुखा लेते हैं। अर्वाचीन डॉक्टरी चिकित्सा विषयक विरेचनीय वटिकाओं में इसका सांद्र-सत्व रूपमें प्रचुर प्रयोग होता है। यद्यपि भारतवर्ष में पर्याप्त मात्रा में स्वदेशीय इंद्रायन का उपयोग होता है, तथापि इसके फल एवं तन्निर्मित योगों का बहुल परिमाण में प्रतिवर्ष यूरोप, अरब और श्याम से हमारे देश में निर्यात होता है। स्पेन और सायप्रस में तो आयत के लिए ही इंद्रायन की खेती होती है। वस्तुतः निर्यात द्वारा प्राप्त इंद्रायन के फल और उसके सांद्र सत्वों की, भारतीय इंद्रायन द्वारा प्रस्तुत औषधों की अपेक्षा, बाजार में अत्यधिक भरमार है।

नोट—डॉक्टरी में इंद्रायन का गूदा ऑफ़िशल है।

लक्षण – छिला हुआ नारंगी वा छोटे गेंद के बराबर गोलाकार फल जिसका व्यास करीब २ इंच के होता है अथवा इसके टुकड़े—ताजा गूदा स्पंजवत् एवं रसपूर्ण होता है। सूखने पर फल हरिद्राभ श्वेत हो जाता है जिसमें पिलाई लिए अल्प गूदा लगा होता है। गूदा छिलके से

कठिनतापूर्वक पृथक् किया जा सकता है। इसीलिए छिलका उतारा हुआ भारतीय इंद्रायन का फल बहुधा बाजारों में उपलब्ध होता है। जितना भी छिलका उतरा इंद्रायन उपलब्ध होता है, उसका निर्यात यह भूमध्यसागर तट से होता है। १०. ग्राम सूखे फल में गूदा, बीज और छिलका का अनुपात क्रमशः इस प्रकार होता है–१५: ६२: २३। औसतन् फल में १२ से १५ प्रतिशत तक शुष्क गूदा प्राप्त होता है। पौधे का प्रत्येक अंग अत्यंत कडुआ होता है और उसमें एक क्षारोद एवं तिक्त सार–'कालोसिंथीन' के चिह्न पाए जाते हैं। गूदा निर्गंध अत्यंत कडुआ होता है।

टिप्पणी—औषधार्थ केवल गूदा ही व्यवहार में आता है। अस्तु, यदि उसमें बीज हों, तो उन्हें निकाल डालना चाहिये। कोई-कोई लिखते हैं कि फल नर मादा होता है। नर कठोर और छोटा होता है। मादा बड़ा और नर्म होता है। औषध के काम में मादा के ही पर्दे आते हैं। जामा इब्न बेतार में लिखा है कि नर में तंतु होते हैं और मादा में नहीं। उत्तम वह है जो देखने में ऊपर से पीला, भीतर से पिलाई लिये सफ़ेद और हल्का एवं मृदु हो। जो फल सारी बेल में अकेला हो वह घातक होता है। उसके १२ रत्ती भर खाने से मनुष्य काल कवलित होता है। पीले फल को अच्छी तरह उबाल लेने से शरीर को हानि नहीं पहुँचता। बिना छिलका उतारे हुए गूदे की शक्ति चार वर्ष तक स्थिर रहती है। छिलका उतारा हुआ दो वर्ष से भी न्यून समय में ही निर्वीर्य हो जाता है। उचित यह है कि आवश्यकता पड़ने पर ही छिलका उतारें। जब केवल हंज़ल लिखते हैं, तब उससे उसका फल अभिप्रेत होता है। उत्तम फल वह होता है, जो ऊँची जगहों में उत्पन्न हुआ हो तथा वृष्टि के जल से परिपुष्ट हुआ हो। नर मादासे बलिष्ट होता है। वह नर जिसमें तंतु एवं सूत्र हों और जो भारी एवं भीतर से पीत वर्ण का हो, अनुपयोगी है। श्याम, कठोर तथा भीतर से पीत एवं हरित भी उत्तम नहीं, इसको शुष्क होने पर ही लता से तोड़ना चाहिए। अपक्व फल गुणमें निर्बल होता है। उसी प्रकार तरो ताज़ा गूदा भी गुण में निर्बल होता है। फल पक जाने पर तोड़कर सुखा लेना चाहिए। पत्ता जड़ के पास का उत्कृष्ट होता है।

भेषज-कल्पना—चूर्ण, मात्रा २ से ८ ग्रेन; कल्क; वटी; रसक्रिया (Extract), मात्रा–$\frac{1}{4}$ से २ ग्रेन; कालोसिंथीन, मात्रा–१ से ६ ग्रेन; त्वगधःसूचीवेध द्वारा $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ ग्रेन।

डाक्टरी वा एलोपैथी के सम्मत योग (*Official Preparations*)

(१) एक्सट्रैक्टम् कालोसिंथिडिस कंपाजिटम् Extractum Colocynthidis compositum. (ले०)। कंपाउंड एक्सट्रैक्ट ऑफ कालोसिंथ Compound extract of colocynth (अं०)। मिश्र महेन्द्रवारुणी सार (हिं०)। खुलासहे हंज़ल मुरक्कब। रुब्ब हंज़ल मुरक्कब।

निर्माण विधि—कालोसिंथ पल्प (इंद्रायन का गूदा) ६ फ्लुइड आउंस, एक्सट्रैक्ट ऑफ़ बार्बेडोज़ एलोज़ १२ आउंस, स्कैमोनी रेज़िन ४ आउंस, कर्डसोप ४ आउंस, कार्डेमम् सीड्स चूर्ण किया हुआ १ आउंस. एलकोहल (६०%) १ गैलन, कालोसिंथ पल्प को एलकोहल में ४ दिन तक भिगोकर निचोड़ लें और एलकोहल का अधिक भाग इस टिंक्चर से कशीद करके पृथक् करलें और अवशिष्ट भाग में एक्सट्रैक्ट ऑफ़ एलोज़, स्कैमोनी रेज़िन और सोप (साबुन) मिला दें। पुनः उसे आँच पर इतना उड़ाएँ जिसमें वह सांद्र रसक्रिया रूप में परिणत हो जाय। फिर उसमें चूर्ण किया हुआ कार्डेमम् सीड्स (एला-बीज) सम्मिलित कर दें। मात्रा–२ से ८ ग्रेन (=·१३ से ·५२ ग्राम)।

(२) पिल्युला कॉलोसिंथिडिस कंपोजिटा Pilula colocynthidis Composita (ले०)। कंपाउंड पिल ऑफ कॉलोसिंथ Compound pill of colocynth (अं०)। मिश्र महेन्द्रवारुणी वटिका (हिं०)। हब्ब हंज़ल मुरक्कब (उ०)।

निर्माण विधि—चूर्णित कालोसिंथ पल्प १ आउंस, विचूर्णित बार्बेडोज़ एलोज़ २ आउंस, स्केमोनी रेजिन चूर्ण किया हुआ २ आउंस, पोटासियम सल्फेट का अत्यंत बारीक चूर्ण $\frac{1}{4}$ आउंस, ऑइल ऑफ़ क्लवज़ (लवङ्ग तैल) २ फ्लुइड ड्राम, परिस्रुत वारि आवश्यकतानुसार-लौंग के तैल को पोटासियम् सल्फेट के साथ पीसकर शेष औषधियों को इसमें भली भाँति मिश्रित करलें। पुनः परिस्रुत जल से उसे गूँधकर गोलियाँ बना लें। मात्रा—४ से ८ ग्रेन=(·२६ से ·५२ ग्राम)।

(३) पिल्युला कॉलोसिंथिडिस एट हायोसायमाई Pilula colocynthidis et hyoscyamus (ले०)। पिल ऑफ कालोसिंथ एण्ड हायोसायमस Pill of colocynth and hyoscyamus (अं०)। महेन्द्रवारुणी पारसीकयमानी वटिका (हिं०)। हब्ब हंज़ल व बंज (उ०)।

निर्माण-विधि—कंपाउंड पिल ऑफ कालोसिंथ १२ आउंस, एक्सट्रैक्ट ऑफ हायोसाय· १ आउंस· दोनोंको मिश्रित करलें। मात्रा–४ से ८ ग्रेन=(·२६ से ·५२ ग्राम)।

असम्मत योग

(*Not official Preparations*)

तथा पेटेन्ट औषधें

(१) पिल्युला कैथार्टिको कंपोजिटी Pilula Catharticœ Compositae (ले०)। कंपाउंड कैथार्टिक पिल्स Compound Cathartic Pills (अं०)। मिश्र विरेचनवटी (हिं०)। हब्ब मुसहिल मुरक्कब।

निर्माण-विधि—कंपाउंड एक्सट्रैक्ट ऑफ कालोसिंथ १६ ग्रेन, माइल्ड मर्क्युरस क्लोराइड (कैलोमेल) १२ ग्रेन, रेज़िन ऑफ जैलप ४ ग्रेन, गैंबोज ३ ग्रेन–इन सब औषधियों को महीन पीसकर डायल्युटेड एलकोहल (४६ %) से उसका कल्क बनाकर उससे १२ गोलियाँ प्रस्तुत करें।

मात्रा—एक या दो गोलियाँ रात को सोते समय सेवन कराएँ। मलावरोध आदि के लिये उपयोगी है।

(२) पिल्युला कैथार्टिकी वेजिटेबिलिस Pilula Catharticæ Vegetabilis (ले०)। वेजिटेबल कैथार्टिक पिल्ज़ Vegetable Cathartic Pills (अं०)। वानस्पतिक विरेचन वटिकाएँ। हब्ब मुसहिला नबातिया। नबाती मुसहिला गोलियाँ।

निर्माण-विधि—कंपाउंड एक्सट्रैक्ट ऑफ कालोसिंथ १२ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ऑफ हायोसायमस ६ ग्रेन, रेजिन ऑफ जैलप ४ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ऑफ लैप्टंड्रा ३ ग्रेन, रेजिन पोडोफिल्लम ३ ग्रेन, आइल ऑफ पिपरमिंट २ मिनिम–इनसब औषधियों का डायल्युटेड एलकोहल (१६%) से कल्क बनाकर उसकी १२ गोलियाँ बनालें।

मात्रा—१ या दो गोली रात को सोते समय दें। दायमी कब्ज़ में उपयोगी है।

(३) अबर्नथीज पिल्ज (Abernethy's Pills)–योग—मर्करी पिल ३ ग्रेन, कंपाउंड एक्सट्रैक्ट ऑफ कालोसिंथ २ ग्रेन, दोनों की एक गोली बनालें और ऐसी एक गोली रात्रि में सोते समय दें। यकृत विकृतिजन्य मलवद्धता में यह गोली लाभकारी है।

(४) क्रिष्टिसन्ज़ पिल्ज़ Christison's Pills—यह पिल्युला कालोसिंथिडिस एट हायोसाइमाई अर्थात् महेन्द्रवारुणी पारसीकयमानी वटी की २॥-२॥ ग्रेन की गोलियाँ बनाकर इस नाम से बेची जाती हैं।

(५) हैमिल्टञ्ज़ पिल्ज Hamiltons' Pills—यह भी महेन्द्रवारुणी पारसीकयमानी वटी की ही ५–५ ग्रेन की गोलियाँ हैं जो इस नाम से विक्रीत होती हैं।

आयुर्वेदीय मतानुसार गुण-दोष—
दोनों प्रकार का इन्द्रायन (इन्द्रवारु) तिक्त रस और पाक में कटु, उष्णवीर्य तथा लघु है और कामला, पित्त, कफ एवं श्लीपद–फीलपा नाशक है। (ध० नि०)

महेन्द्रवारुणी पूर्वोक्त (इन्द्रवारुणिक कथित) गुणों से युक्त है, विशेषता केवल यह है कि यह रस-वीर्य तथा विपाक में एवं गुणदोष में उससे किंचित् अधिक है। (रा० नि० गुडूच्यादि ३ व०)

दोनों प्रकार का इंद्रायन (गवादनीद्वय) पाक में तिक्त, कटुरस, दस्तावर, उष्णवीर्य एवं लघु है तथा कामला, पित्त कफ, प्लीहा एवं उदर रोग नाशक है। यह कास, श्वासनाशक, कुष्ठ, गुल्म, ग्रंथिरोग एवं व्रण का नाश करता है ,और प्रमेह, मूढ़गर्भ, गलगण्ड तथा विषनाशक है। (भा० पू० १ भ०)

इद्रवारुणी कंठरोग तथा श्लीपद नाशक है। इसके अन्य गुण पूर्ववत् हैं। रस, वीर्य और पाक तथा गुण में यह अधिक है। (वै० निव०)

विशाला के वैद्यक में व्यवहार

चक्रदत्त- स्तन पीड़ा में विशाला—महेन्द्र-वारुणी की जड़ पीसकर स्तन पर लेप करने से स्तन-पीड़ा शांत होती है। यथा—

"विशालामूल लेपस्तु हन्तिपीणां स्तनोत्थिताम्'
(स्त्रीरोग-चि०)

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—तीसरी कक्षा में उष्ण और द्वितीय में रूक्ष है। इसके बीज और छिलका त्याज्य हैं; क्योंकि ये दोनों आँतों से चिपट जाते हैं और अतीव मरोड़ उत्पन्न करके मृत्यु का कारण होते हैं। वह फल जो वृक्ष में अकेला हो, घातक है; क्योंकि सम्पूर्ण विषाक्त गुण उस एक फल में एकत्रीभूत होजाता है। इसीलिए ऐसा फल जो वृक्ष में एक ही हो, बलिष्ट होने के कारण बहुत बड़ा होता है। (त० न०) किसी-किसी ने इसे चतुर्थ कक्षा में उष्ण लिखा है। किसी-किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में उष्ण और तीसरी कक्षा में रूक्ष है। बाज कहते हैं कि तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। पत्ते तीसरी कक्षा में उष्ण और रूक्ष हैं।

हानिकर्त्ता—क्षीणकाय और आमाशय को अहितकर है और हल्लास एवं उत्क्लेश उत्पन्न करता है; मरोड़ तथा पेचिश उत्पन्न करता है। इसके पत्ते आँतों को हानिकर हैं।

दर्पघ्न—क्षीणकाय तथा निर्बल व्यक्ति के लिए फलों की रसक्रिया और दूसरों के लिए कतीरा, बबूल का गोंद और निशास्ता। किसी-किसी के मतसे केवल बबूल का गोंद इसका दर्पनाशक है। नफ़ीसी के अनुसार इसका दर्पनाशक कतीरा और रोगन बादाम है। क्योंकि कतीरा अपनी पिच्छलता (लज़ूजत) एवं ग़र्रवियत से इंद्रायन जनित मरोड़, ख़राश तथा पेचिश को रोकता है और विरेक लाने में भी सहायक होता है। यदि गोंद से इसका दर्पदलन किया जाय तो अपने संग्राहक गुण के कारण वह दस्त रोकता है और रोगन बादाम उसको फिसला देता है और आँतों से चिमटने नहीं देता।

इब्न ज़ुहर के मत से महेन्द्रवारुणी के बीज के दर्पनाशन के लिए मग़ज़पिस्ता से बढ़कर अन्य वस्तु नहीं।

प्रतिनिधि—समभाग राई और २४ रत्ती अर्थात् ३ माशे बंदाल का उशारा और अंडी। किसी-किसी के मत से इंद्रवारुणी के फल की प्रतिनिधि द्विगुण कालादाना है और अर्द्ध भाग सक़मूनिया समान भाग लवण के साथ और तृतीयांश इस्पंद। परन्तु श्रेष्ठ यह है कि इंद्रायन के फल की जगह विरेचनार्थ उतना ही ग़ारीकून या एरंडबीज उपयोगमें लाएँ। मात्रा—१॥। मा० से ३॥ मा० तक। किसी-किसी के मत से १॥। मा० से अधिक वर्जित है। किसी-किसी ने ४ जौ भर से ३॥ मा० तक प्रयोजित करने की अनुमति प्रदानकी है। उनके मत से बीजकी मात्रा १॥। मा० तथा जड़ की ६ रत्ती है। किसी-किसी ने लिखा है कि २ मा० प्रयोग में लाएँ। प्रौढ़ प्रकृति के लिए यह पूरी मात्रा है। किसी किसी ने १॥। मा० ही पूर्ण मात्रा लिखी है। इसे १२ रत्ती दूसरी औषधियों के साथ प्रयोग में लानी चाहिए। तात्पर्य यह कि मात्रा के विषय में ऐसा ही मतभेद तिब्बी ग्रंथों में पाया जाता है।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसका गूदा विलायक (मुहल्लिल) और छेदन है। दूर से मवाद अभिशोषित करता है। इसका विरेचन श्वास के लिए उपयोगी है। यह वात सूत्रों, संधियों और सुदूरवर्त्ती अवयवों से प्रगाढ़ीभूत कफ तथा वायु को खींचकर दस्त लाता है। बलवान मनुष्य के लिए इसकी मात्रा निस्फ़ दिर्हम अर्थात् लगभग पौने दो मा०। निस्फ़दिर्हम बारह क़ीरातके बराबर

होता है और एक क़ीरात ४ जौ के बराबर। यह वस्ति तथा वृक्क को लाभ पहुँचाता है।(त० न०)।

इंद्रायन का गूदा सूजन उतारता, वायु का नाश करता और सांद्रीभूत कफ एवं वायु का मल के साथ उत्सर्ग करता है। दोषों को शरीराभ्यंतर से अभिशोषित करता है। शीत-जन्य शिरोरोग, जैसे—शिरोशूल, अर्द्धावभेदक, फालिज, लक़वा, मृगी तथा विस्मृति के लिए उपयोगी है। मस्तिष्क को मलों से शुद्ध करता है। रोग़न जैतून में क्वथित कर नस्य लेने से मास्तिष्कावरोध का उद्घाटन करता है। कान में टपकाने से कर्णशूल को लाभ पहुँचाता है।

इंद्रायन के फल का रस २ भाग, तिल का तेल १ भाग—दोनों को तैल मात्र शेष रहने तक पकाएँ। यह तेल दर्द, शीतजन्य व्याधियों और खालित्य अर्थात् गंज के लिए उपयोगी है। इसे कान में टपकाने से कर्णनाद(दवी) एवं कर्णक्ष्वेड (तनीन) में लाभ होता और कान के कीड़ों का नाश होता है।

इंद्रायन के समूचे फल को क्वथित कर उससे वस्ति करने से फ़ालिज़, कफज एवं वातज उदर शूल (कोलंज), गृध्रसी तथा कूल्हों और कमर के दर्द के लिए उपयोगी है। यह पेट के कीड़े निकालता है और जलोदर में लाभकारी है।

इसकी वर्त्ति बनाकर गुदा में रखने से दस्त आते हैं और उसे योनि में रखने से भ्रूण का नाश होता है।

इंद्रायन के फल का सिर काटकर, उसके भीतर काली मिर्चें भरकर कपरौटी करें और उसे एक सप्ताह पर्यंत चूल्हे के पास गाड़ रखें। पर इसका ध्यान रखें कि वह जलने न पाए। इसके उपरांत उसे निकाल मिर्चों को पीस रखें। इसके सेवन से वायु नष्ट होता है और खाई हुई चीज़ हज़म होती है। (मख़्ज़नुल् अद्विया)।

नोट—इसी प्रकार मिर्च की जगह रेवंद-चीनी की जड़ काम में आती है।

इंद्रायन के फल में छिद्र करके बीज निकाल डालें। फिर उसमें बेला के फूलों का तेल भरकर छिद्र को उसी के टुकड़े से बंद कर ऊपर से गुँधा हुआ आटा लगाकर आग पर रखें, जिसमें कई जोश आ जायँ। फिर उस तैल को निकाल कर सुरक्षित रखें। उसे बालों पर लगाने से बाल काले हो जाते हैं।

इब्न ज़हर कहता है—जिसे ऐसी जगह जाने का संयोग पड़े जहाँ विषैले कीट अधिक हों, उसे अपने साथ इंद्रायन का फल रखना चाहिए। इससे विषाक्त कीट विलुप्त हो जायँगे।

इंद्रायन का फल, इसपंद और पुदीना—इनको भिगो-औटाकर, उस पानी के मकान में छिड़कने से कीड़े भग जाते हैं।

इंद्रायन के काढ़े के पानी को घर में छिड़कने से पिस्सू मर जाते हैं; पुनः उत्पन्न नहीं होते।

यदि इंद्रायन के फल को चीर कर दो टुकड़े कर ऐसे घोड़े के शरीर पर मलें, जिसे बहुत सी चीचड़ियाँ हों, तो दो-तीन बार के मलने से वे जाती रहती हैं।

टिप्पणी—उन मनुष्यों के लिये जिनकी प्रकृति दृढ़ एवं सबल हो, शरीर स्थूल हो और दोष सांद्र हों, जो भारी पानी पीता हो, दूध और पनीर का अधिक व्यवहार करता हो और जिनकी प्रकृति शीत श्लैष्मिक एवं आर्द्र हो, उनके लिये इसका विरेचन अतीव उपयोगी है। इसके सेवन की इच्छा रखनेवाले को इसे अकेला उपयोग में न लाना चाहिये। बल्कि किसी दर्पनाशक औषध, जैसे बबूल का गोंद, कतीरा, गूगल और निशास्ता प्रभृति के साथ ही व्यवहार में लाना चाहिये। इसके सिवा इंद्रायन को खूब महीन पीसकर काम में लाएँ, क्योंकि दरदरा और खरदरा रहने से यह मरोड़ और पेचिस पैदा करता और आँतोंको काट डालता है। जब इससे अधिक दस्त आएँ, तब शीतल जल में बैठें, सर्दतर एवं बल्य पदार्थ खाएँ पिएँ। कभी-कभी खर्बक स्याह की तरह इसका उपचार करते हैं।

डाक्टरी वा एलोपैथी मतानुसार—

फार्माकालोजी अर्थात् महेन्द्रवारुणी के प्रभाव

(आभ्यन्तर प्रभाव)

थोड़ी मात्रा में कालोसिंथ, तिक्त होने के कारण तिक्त आमाशय बलप्रद (Bitter tonic) है

अर्थात् इसके प्रयोग से आमाशय तथा आंत्र के द्रवों का अत्यधिक उद्रेक होता है और क्षुधा बढ़ जाती है। परंतु इसको मध्य मात्रा में प्रयोजित करने से यह आंत्रकि-ग्रंथियों, उनके मांस तंतुओं एवं यकृत को चेष्टा प्रदान करता है। अतएव आंत्रस्थ द्रवोद्रेक की मात्रा बहुत बढ़ जाती है तथा उनके कृमिवत् आकुञ्चन के तीव्र होजाने से मरोड़ के साथ जल की तरह पतले दस्त आने लगते हैं। पित्तोद्रेक की मात्रा भी इससे किंचित् बढ़ जाती है। अस्तु यह औषध हाइड्रोगॉग (ड्रास्टिक) पर्गेटिव (जलीय विरेक्कारी) है। चाहे इसे मुख द्वारा प्रयोजित कराया जाय, अथवा इसके सत्व को त्वगीय सूचीवेध किया जाय, फल समान होता है। यदि इसे बहुत अधिक मात्रा में दिया जाय, तो इससे आमाशय और आँतों में उत्कट क्षोभ संभूत होता है तथा परावर्त्तित रूप से अन्य कोष्ठावयवों में भी खराश होती है। इसीलिए इससे वस्तिप्रदाह (Cystitis) और गर्भपात (Abortion) भी होजाया करता है। पेट में सख़्त मरोड़ होकर अधिकता के साथ पतले दस्त आने लगते हैं, जो कभी-कभी रक्तमिश्रित होते हैं और अतीव निर्बलता होती है।

कालोसिंथ के थेराप्युटिक्स-रोगानुसार प्रयोग

कालोसिंथ एक उत्कृष्ट ड्रास्टिक और हाइड्रोगॉग कैथार्टिक (जलवत् पतले पतले दस्त लानेवाली एवं पित्तोद्रेक्कारी औषध) है। पर इससे मरोड़ होती है इसलिये इसको अकेले कभी न देना चाहिये। जब यकृत-कार्य-विकृति-जन्य दायमी मलावरोधकी शिकायत हो, तो कालोसिंथ को एलुआ (Aloes) और पारद (Mercury) के साथ मिश्रित कर प्रयोजित करने से बहुत उपकार होता है। ब्लूपिल और सक़मूनिया (Scammony) के साथ मिलाकर देना अच्छा है। पोटल एन् गार्जमेंट (   ) के दूर करने के लिये तो यह एक अत्युत्तम विरेचन है। इससे पानी की तरह पतले दस्त आते हैं, इसलिये इसको कभी जलोदर (Ascites) और मस्तिष्कस्थ रक्त-संचय (Cerebral congestion) में दिया करते हैं। परंतु सक़मूनिया (Scammony), जैलप, बंदाल (Elaterium) इसकी अपेक्षा अधिक प्रभावकारी औषधियाँ हैं। त्वगधः सूचीवेध द्वारा प्रयोजित करने पर इसका प्रबल प्रभाव होता है; परंतु इसका यह प्रयोग बहुत ही वेदना पूर्ण है। पारसीक यमानी सत्व और बेलाडोना, कालोसिंथ द्वारा उद्भूत मरोड़ एवं शूल को बिना उसके विरेचक गुण को हानि पहुँचाए, शांत कर देता है। चिरस्थायी मलबद्धता में आवश्यकता होने पर कभी-कभी सेवन करने के लिये, इसका कंपाउंड-पिलएक उत्तम विरेचन औषध है। यकृत और कोलन पर (वयस्क मात्रा में) इसका सर्वथा एलुआ की तरह ही प्रभाव होता है। यह एक प्रशस्त मूत्रल औषध है, परंतु उद्वेष्टनकारी प्रभाव के कारण इस हेतु इसका उपयोग सर्वथा त्याज्य है। (Materia medica of therapeutics by William Whitlaw.)

सूचना—गर्भवती स्त्रियों, अतिसार, बवासीर और प्रवाहिका के रोगियों को एवं ऐसे रोगियों को जिनके आमाशय वा अँतड़ियों में किसी प्रकार की ख़राश या रक्त-संचय हो, यह औषध कदापि न दें।

परीक्षित योग

(१) एक्सट्रैक्टम् कॉलोसिंथिडिस

कंपॉजिटम्	३ ग्रेन
पल्विस सैपोनिस	१ ग्रेन
ऑलियम् मेन्थीपेप	½ मिनिम

इनकी एक गोली बनाकर रात्रि में सोते समय दें। मलावरोध में कल्याणकारक है।

(२) एक्सट्रैक्टम कालोसिंथिडिस

कंपाजिटम्	३ ग्रेन
पिल्युली हाइड्रार्जिराई	½ ग्रेन
एक्सट्रैक्टम हायोसायमाई	१ ग्रेन
पल्विस कैप्सिसाई	१ ग्रेन

सबकी एक गोली बनाएँ और ऐसी एक या दो गोलियाँ रात को शयन काल में दें। मृदु-रेचन हैं।

(३) पिल्युला कालोसिंथिडिस कंपोजिटा	३ ग्रेन
एक्सट्रैक्टम् नक्सवामिकी	$\frac{1}{6}$ ग्रेन
पल्विस पेपरिस नाइग्रम	१ ग्रेन

सबकी एक गोली बनाएँ और रात्रि में सोते समय दें। कोष्ठबद्धता में हितकर है।

(४) एक्सट्रैक्टम् कालोसिंथिडिस कंपाजिटम्	२ ग्रेन
पोडोफिलीन	$\frac{1}{6}$ ग्रेन
हाइड्रार्जिराई सबक्लोराइडाई	$\frac{1}{2}$ ग्रेन
ऑलियोरेजिन जिंज़िबरिस	$\frac{1}{4}$ ग्रेन
ऑलियम् सिन्नेमोमाई	$\frac{1}{4}$ ग्रेन

सबकी एक वटिका बनाएँ और ऐसी १ वा २ वटिकाएँ रात को सोते वक्त दें। यह उत्कृष्ट मृदुरेचन एवं पित्त-विरेचक है।

अन्यमत

जब वस्ति में मूत्र बनना बन्द हो जाता है या पेशाब रुक जाता है, उस समय इसके गूदे में रेवन्दचीनी मिलाकर देते हैं।

इसके गूदे को पानी में क्वथितकर मल-छानकर गाढ़ा करते हैं। फिर उसकी गोलियाँ बना रखते हैं। इनमें से १–२ गोली रात में सोते समय खाकर ऊपर से औटाया हुआ दूध ठंडा करके पीने से प्रातः काल मुलायम पाखाना हो जाता है।

इन्द्रायन का गूदा और एलुआ—इन दोनों को पीसकर गरम करके लेप करने से आध्मान नष्ट होता है।

इंद्रायन के फल में साँभरलवण और अजवायन भरकर उसका मुँह बन्दकर धूप में सुखाएँ। सूख जाने पर इसे सुरक्षित रखें। ज़रूरत के समय इसमें से लेकर उचित मात्रा में गरम पानी के साथ देने से दस्त आकर पेट का दर्द मिट जाता है।

इसके फल या छिलके को तेल में पकाकर कान में टपकाने से बहरापन मिटता है।

इसके गूदे को गरम करके पेटपर बाँधने से आँतों के सभी प्रकार के कीड़े मर जाते हैं।

इसको पानी के साथ पीसकर ज़च्चा के बढ़े हुये पेट पर लेप करने से उसका पेट अपनी पूर्वावस्था पर आ जाता है।

इंद्रायन के पके फल की धूनी देने से दाँत के कीड़े मर जाते हैं।

इंद्रायन के ताज़े फलके रस में रूई का फाया आप्लुतकर स्त्री के गुह्यस्थान में धारण कराने से सरलतापूर्वक और शीघ्र शिशु-प्रसव हो जाता है।

दस तोले इंद्रायन के फलको दो सेर पानी में औटावें। जब चतुर्थांश जल शेष रह जाय, तब उसे छानकर उस काढ़े में आधा सेर अंडी का तेल डालकर पुनः तेल मात्र शेष रहने तक औटावें। फिर उतारकर तेल छानलें और उसे बोतल में भर रखें। इसमेंसे १॥तो० तेल गोदुग्ध में मिलाकर पिलाने से आतशक प्रभृति व्याधियाँ समूल नाश होती हैं। (ख० अ०)

अफ्रीका के नीलनद-तीरवर्त्ती कोई-कोई लोग इसके फल से एक प्रकार का रस निकालते हैं और उसे पानी भरने की मशक में लगाते हैं। इसकी गंध से ऊँट मशक को काट नहीं सकते। (हिं० वि० को०)

शोथ रोग (Dropsy) में शर्करा मिश्रित इसके फल का रस एक घरेलू दवा है। (के० एम० नादकर्णी तथा डिमक २ भ०)

महेन्द्रवारुणी के पत्र–पत्ती

इसकी ताज़ी पत्ती का निशास्ता के साथ प्रलेप करने से रक्तस्रुति बन्द हो जाती है। यह शोथ उतारता और उसे पकाता है।

इसकी पत्ती खाने से वायुजन्यशूल, निक्रिस (गठिया), संधिशूल और गृध्रसी में उपकार होता है।

यदि इसे कुष्ठ और श्लीपद–फीलपा पर मला जाय तो लाभ हो।

इसे सिरका के साथ पीसकर गण्डूष करने से दंतशूल प्रशमित होता है। यह उन्हें सरलतापूर्वक उत्पाटन के योग्य बनाता है।

इसके विरेचन देने से श्वासरोग अच्छा होता है। (त० नफीसी)

इंद्रायन की बेल की सूखी पत्ती ७ मा० निशास्ता और बबूल के गोंद के साथ सेवन करने

से वातज अतिसार का नाश होता है। अनीसून, अफ्तीमून और अयारज फैक़रा के साथ खाने से मालीख़ोलिया, मृगी, खालित्यभेद (दाउल् ह्ययः) तथा शेष अन्य वातजन्य व्याधियों में उपकार होता है।

तिब्बी तथा अन्य मत—

इसकी जड़ सिरके में क्वथितकर कुल्लियाँ करने से आंत्रशूल एवं दंतवेष्टगतशूल—मसूढ़ों के दर्द आराम होते हैं।

इसकी जड़ का क्वाथ जलोदर और श्लीपद-फीलपा के लिए उपयोगी है। यह प्रगाढ़ीभूत रक्त को द्रवीभूत करता तथा बिच्छू के विष का निवारण करता है। अस्तु, एक व्यक्ति को कई स्थान में बिच्छू ने डंक मारा था, उसे ७ माशे इंद्रायनकी जड़ पिलानेसे बिलकुल लाभ होगया। (ख० अ०)

इसकी धूनी देने से प्रार्त्तव का प्रवर्त्तन होता है। इसकी जड़ सर्प और वृश्चिक के विष का निवारण करती है। इसके खाने और लगाने दोनों प्रकार से लाभ होता है। विशेषत: इसकी नर जाति की जड़ ३॥ माशे तत्काल लाभ प्रदान करती है।

कोई कहते हैं—इंद्रायनकी जड़ तीव्र रेचन है। जिन-जिन व्याधियों में विरेचन औषधियों की आवश्यकता पड़ती है, उनके साथ प्राय: इसे भी सम्मिलित कर देते हैं।

स्त्री-स्तन के पक जाने पर इसकी जड़ का प्रलेप करते हैं अथवा पकाकर बाँध देते हैं।

इसका विरेचन लेने से समग्र शरीरगत श्लेष्मा तथा आँव शरीर से बाहर निकल जाती है।

इसका भपारा देने से नियमित रूप से ऋतु आने लगती है।

इसकी सूखी हुई जड़ की फंकी देने से दस्त आते हैं।

यदि शरीर के किसी भाग में सूजन वा रतूबत पैदा होजाय, तो इसका भपारा (वाष्पस्वेद) और विरेचन देने से उपकार होता है। यह दमे की बहुत ही उत्कृष्ट औषध है इसकी जड़ का १ माशा चूर्ण और २ रत्ती सेंधानमक इन दोनों को एक में मिलाकर गरम पानी के साथ उपयोग कराने से बच्चों के डब्बे का रोग नष्ट होता है।

इसकी जड़ पानी के साथ पीस-छानकर पिलाने से मूत्ररोध मिटता है।

इसकी जड़ पीसकर गोघृत में मिलाकर स्त्री के गुह्यस्थान में लगाने से शीघ्र एवं सुगमतापूर्वक प्रसव होता है।

इसकी जड़ सिरके में पीसकर गरमकर लगाने से सूजन बैठ जाती है।

इसकी जड़ के टुकड़ों को पाँच गुने पानी में क्वथित करें। जब तृतीयांश जल शेष रहे, तब उसे छान लें और उसमें समभाग बूरा मिलाकर शर्बत बना लें। इस शर्बत के पिलाने से आतशक और बादी का दर्द मिटता है।

इसकी जड़ स्त्री के गुह्य-अंग में रखने से उसका शूल निवृत्त होता है।

इसकी जड़ और पीपर—इन दोनों को पीसकर गुड़ में मिला एक तोले की मात्रा में निरंतर खाने से वादी संधिशूल नाश होता है।

इसको पीसकर नस्य लेने से मृगी जाती रहती है।

बेल (बिल्व) के पत्तों के साथ इसकी जड़ पीसकर प्रयोजित कराने से स्त्री का हमल रह जाता है।

गोदुग्ध के साथ चिरकाल पर्यंत इसकी जड़ सेवन करने से सफ़ेद बाल काले होजाते हैं। परंतु जब तक इसका व्यवहार करें, केवल दूध मात्र पीते रहें।

लाल फल और पीले फल—दोनों प्रकार के इंद्रायन की जड़ बराबर-बराबर लेकर पीसकर कर्कट (सर्तान) पर लेप करने से लाभ होता है। (ख० अ०)

इसके फलको महिष और उष्ट्र-पक्षी खाते हैं। अफ्रीका में कोई-कोई इसके बीज भी खाते हैं। इन्द्रवारुणी का ताज़ा मूल दन्तमार्जन में काम आता है। (हिं० वि० को०)।

इन्द्रवारुणी की जड़ के चूर्ण का नस्य लेने से छींक आती है और आँख में प्रदाह हो जाता है। इन्द्रवारुणी के फल वा मूल और कुचिला को

पीसकर अपक्क स्फोटक पर प्रलिप्त करने से वह शीघ्र पक जाता है । इन्द्रवारुणी की जड़ आमवात (Rheumatism) एवं बालकों की प्लीहा तथा यकृत वृद्धि रोग में सेवनीय है । इन्द्रवारुणी अत्यल्प मात्रा में शूल, गृध्रसी (Sciatica), डिम्बकोषगत वात वेदना (Ovarian neuralgia) तथा अन्यान्य वात वेदनाओं (Neuralgias) में विशेष उपकारी है। ग्लॉकोमाकी वेदना निवारणार्थ भी इसका व्यवहार होता है । (Materia medica of India–*R. N. Khory, Part,ii, p. 308.*)

बालकों की प्लीहा यकृद्विवृद्धि रोगमें तथा कास एवं श्वासवेगमें इसकी जड़ काम आती है । पीपल और इंद्रायण की जड़ बराबर-बराबर लेकर वटिका प्रस्तुत करें । यह आमवातघ्न है । प्राय: कृमिघ्न रूप से इसका जड़ का चूर्ण व्यवहार में आता है । (Indian materia medica–K. M, Nadkarni p. 205.)

महेन्द्रवारुणी बीज

सर्पदंश, वृश्चिकदंश तथा आँत के रोग, मृगी रोग और केश बढ़ाने तथा उसे काला करनेके लिये इसके बीजोंका तेल महोपकारक हैं । (Indian materia medica–*K. M.* Nadkarni, *P. 205*)

मख्जनुल अदविया का लेखक लिखता है कि इसके बीज विरेचक हैं । शिर के बाल सफ़ेद न हों, इसलिये भी इसका व्यवहार होता है । ठीक इसी अभिप्राय के लिये वर्तमान काल में इंगलैंड में भी इन्द्रवारुणी (Bitter apple) का स्पष्ट प्रयोग होता है । परंतु उन्होंने जो बीज को विरेचक लिखा है, वह यथार्थ नहीं; क्योंकि अकाल पड़ने पर अरब निवासी उसे खूब प्रचालित कर खाद्य रूप से काम में लाते हैं । (फा० इं० २ भ०–डीमक, पृ० ६०-६१)

इंद्रायन, लाल—संज्ञा पुं० [हिं० इंद्रायन+हिं० वि० लाल] बड़ा इंद्रायन । लाल इँदारुन । बड़ी इंद्रफला । कोंवर (हिं०) । लाल इंद्रायन, गूदा पंड्डु (द०) । श्वेत पुष्पी, मृगाची, मृगेर्वारु, मृगादनी, हस्तिदन्ती, नागदन्ती, वारुणी, गज-चिर्भिटा, (ध० नि० । द्रव्यर०) विशाला, महत्-फला, श्वेतपुष्पा, मृगाक्षी, मृगेर्वारु, मृगादनी, गवादिनी (भा०)महाकाल, उरुकाल, उरुकालक, काल, देवदालिका, काकमर्द, किम्पाक, दाला, दालिका, जलङ्ग, घोषकाकृति (वै० श० सिं०)–(सं०) । माखाल, माकाल, रक्त माकाल, श्वेत पुष्प इंद्रावन, श्वेत माखाल (बं०) । अंबग़ोल, .हंज़ले अ.ह्मर (अ०)। .हंज़लेसुर्ख़ (फ़ा०) । ट्रिकोसैन्थीस पामेटा Trichosanthes Palmata, *Roxb.* (ले०) । कोरट्टै, शवरि पज़..म (ता०) । अव्वगूद पंडु, आवुव्व, काकीडोंड (ते०) । अवगुदे हराणु, काके मंडली (कना०)। कवंडल, कौण्डल (मरा०, बम्ब०) । काक पलम (मल०)। तित्तहोंदल (सिंगा०) ।

कुष्माण्ड वर्ग

(*N O. Cucurbitaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—समग्र भारतवर्ष विशेषकर बंगाल और दक्षिणी भारतवर्ष ।

वानस्पतिक वर्णन—इसकी बेल ऊँचे वृक्षों के आश्रय से चढ़ती है । इन्द्रायन के अन्य भेदों से इसमें यह फर्क है, कि इसके पत्ते अपेक्षाकृत बड़े और करतलवत् चौड़े होते हैं । फूल सफ़ेद होता है । फल नारंगी के बराबर होता है । पकने पर यह सिंदूर वर्ण का हो जाता है । फल के भीतर काले रंग के बीज होते हैं । जड़ बहुत मोटी कंदकी तरह होती है । फल और मूल दोनों अत्यन्त तिक्त होते हैं ।

प्रयोगांश—फल, फल का गूदा और जड़ ।

रासायनिक संघटन—लाल इंद्रायन के फल, छिलके और गूदा में एक अमूर्त्त, "ट्रिकोसैंथीन (Trichosanthin)" नामक तिक्त सत्व पाया जाता है, जो "कॉलोसिंथीन" के तुल्य होता है । यह जल तथा मद्यसार में विलेय और ईथर में अत्यल्प विलेय होता है । फल के आभ्यन्तर-स्थित हरे गूदे में एक प्रकार का रंजक द्रव्य होता है ।

लाल इंद्रायन के गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

लाल इंद्रायन (श्वेतपुष्पी विशाला) कण्ठ के रोग, अपचि, श्वास, कास, प्लीहा, कफ तथा उदर रोग एवं मूढ़गर्भ का निवारण करता और कुष्ठ एवं दुष्टव्रण को जीतता है। (ध० नि०)

यूनानी एवं अन्य मत

नुसख़ा सईदी में लिखा है कि लाल इंद्रायन का, जिसे अंबकोल भी कहते हैं, बीज पन्द्रह सेर लेकर ताज़े आँवले के रस में सात बार भिगो-भिगोकर सुखा लें। फिर उसे तेली के कोल्हू में पेलवाकर तेल निकलवाएँ। इस तेल के निरंतर सप्ताह पर्यन्त नस्य लेने से पलित दूर होता है, सफेद बाल काले हो जाते हैं। यह वर्णन 'अंबकोल' के अंतर्गत है। पुनः उसी ग्रंथ में अंकोल के अंतर्गत लिखा है कि इसके बीज पीसकर ताजे आँवलों के स्वरस की सात भावनाएँ देकर, सुखाकर तेल निकलवाएँ। इस तेल के ४० दिन पर्यन्त नस्य लेने से सफेद बाल काले हो जाते हैं। यह विधि नूरुद्दीन मुहम्मद की है, जिसे तालीफ़ शरीफ़ में उद्धृत किया गया है। उन्होंने अंबकोल में इसका संदर्भ दिया है, और अंकोल में नहीं दिया। और यह भी त्रुटि है कि उसको अंकोल में लिखा है और लाल इंद्रायन को अंकोल नहीं कहते।

लाल इंद्रायन के फल को पीसकर खोपरे के तेल (नारियल के तेल) के साथ गर्म करके कान में लगाने से दुष्ट-व्रण स्वच्छ होकर आपूरित हो जाता है। सर्दी गर्मी से नाक में ऐसी फुन्सियाँ हो जाती हैं, जिनमें से दुर्गंधित पीव निकलती है। उनपर भी इसके लगानेसे कल्याण होता है। (ऐन्सली)

इसके फल को चिलम में रखकर पिलानेसे दमा मिटता है।

लाल इंद्रायन के फल अथवा उसकी जड़ और छाल के रस को तिल-तैल में औटाकर, उस तेल को सिरपर मलने या लगाने से शिरोशूल विशेषकर बार-बार होनेवाला सिरका दर्द जाता रहता है।

लाल इंद्रायन और सिर्वाली इन दोनों के बीजों का तेल निकालकर, सिर के बाल मुंडित करा, सिर पर इसे लगाने से बाल काले पैदा होने लगते हैं।

इंद्रायन के फल का मुरब्बा भी बनता है। विधि यह है—लाल इंद्रायन के फल लेकर सर्व प्रथम उसे चाकू से खूब कोचें। पुन: इसे पानी में डालकर औटाएँ। जब खूब औट चुके, तब पानी पृथक्कर फिर और पानी डालकर औटाएँ। ऐसा ही उस समय तक करते रहें, जब तक इसकी तिक्तता दूर न हो जाय। जब तीतापन दूर हो जाय, तब सफेद शक्कर में इसका मुरब्बा प्रस्तुत कर लें। इसके सेवन से उदर रोगों का निवारण होता है।

लाल इंद्रायण को जड़, हलदी, हड़, बहेड़ा और आँवला प्रत्येक बराबर-बराबर लेकर क्वथित करें वा फांट प्रस्तुत करें। इस काढ़े वा फांट में शहद मिलाकर पिलाने से सूजाक नष्ट होता है। इसकी जड़ और बड़े इंद्रायन की जड़—इन दोनों को बराबर-बराबर लेकर पीसकर कल्क बना (Carbuncle) पर लेप करें। वांइट लिखते हैं कि इसकी जड़ पशुओं की दवा है विशेषकर उस समय जब उनके फुफ्फुस में प्रदाह होगया हो। (फा० इं० २ भ० पृ० ७०-७१)

लाल इंद्रायन का फल तीव्र विरेचक (Hydrogogue cathartic) है। यह ज़हरीला माना जाता है। चावल में मिलाकर इसे कौओं के मारने के लिए देते हैं। (इं०मे०मे०पृ० ८६५)

इसके फल वा जड़ की छाल के रस को तिल-तैल में पकार सुरक्षित रखें। शिरोशूल व अर्द्धावभेदक प्रभृति के चिरकारी एवं बार-बार होनेवाले वेगों को रोकने के लिये स्नान से पूर्व इसे शिर में में लगाना लाभप्रद है। कर्णस्राव में इस तेल को कान में बूँद-बूँद कर डालते हैं। अर्द्धावभेदक में इसका प्रयोग किया गया और इष्टफल सिद्ध हुआ।(Ind.Drugs Report, Madras)

इन्द्रायुध—संज्ञा पुं० [सं० क्री०] (१) The Diamond वज्रकमणि। वज्र। हीरा। रा०नि० व० १३। (२) स्थावर विषों में से एक प्रकार

का कंद विष। वा० उ० ३९ अ०। च० चि० २६ अ०।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की जहरीली जोंक जिसकी पीठ पर इन्द्रधनुष की तरह रेखाएँ पड़ी होती हैं। सु० सू० १३ अ०। दे० "जोंक"।

संज्ञा पुं० [सं पुं०] घोड़ा। अश्व।

इन्द्रायुधशिखिन्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] किसी नाग का नाम। ऐरावत।

इन्द्रायुधा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की जोंक जो विषैली होती है। इसकी पीठ इन्द्रधनुष जैसी चमकती है।

इन्द्रायुधाख्य (स्य)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्व। घोटक। घोड़ा। इन्द्र के रथ का घोड़ा।

इन्द्रारुण–संज्ञा पुं० [सं०] (Cucumis Trigonus, *Roxb.*) इन्द्रवारुणी। इंद्रायन।

इन्द्रार्घपादप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Areca catechu, *Linn.*) सुपारी का पेड़। गुवाक। क्रमुक। अकोट। रा० नि० व० ११। दे० "सुपारी"।

इन्द्रालिश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रगोप। बीर बहूटी.

इन्द्रावण–[मरा०, कों०]
इन्द्रावन–[बं०] } (Cucumis Trigonus; *Roxb.*) इन्द्रवारुणी। इंद्रायन।

इन्द्रावसान–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मरुभूमि। ऊषर भूमि। रेतीली ज़मीन।

इन्द्राशन, इन्द्राशनक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भाँग। सिद्धि। विजया। (Cannabis Indica,) "जातीफलादिवटी।" (२) गुञ्जा। घुँघची। चिरमिटी। (Abrus Precatorius. *Linn.*)। (३) कुष्ठ। कुट नामक ओषधि। हारा०।

इन्द्रासन-चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रासन (भंग वा गुंजा) नामक ओषधि को शुभ मुहूर्त में उखाड़कर यथाविधि चूर्ण बनाएँ।

गुण—घी शहद मिश्रितकर इस चूर्ण को भक्षण करने से मनुष्य हर प्रकार के कुष्ठों से मुक्त हो जाता है। इस पर दूध घी का प्रचुर परिमाण में सेवन करना अत्यन्त आवश्यकीय है। चक्र द० कुष्ठ० चि०।

इन्द्रासियून–[सिरि०] बख़ूरुल् अकूराद नाम की एक बूटी।

इन्द्राह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) Cucumis trigonus, *Roxb.* इन्द्रवारुणी लता। इंद्रायन। मद० व० १। (२) लघु इन्द्रायण। नि० शि०।

इन्द्राक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऋषभक नामक लता-कंद। भा० पू० १ भ० ह० व०। मद० व०। दे० "ऋषभक"।

इन्द्राक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शङ्खिनी। यवतिक्ता।

इन्द्रिय–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) वह शक्ति जिससे बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। वह शक्ति जिससे बाहरी वस्तुओं के भिन्न-भिन्न गुणों का भिन्न-भिन्न रूपों में अनुभव होता है। (२) शरीर के वे अवयव जिन के द्वारा यह शक्ति विषयों का ज्ञान प्राप्त करती हैं। सांख्य ने कर्म करनेवाले अवयवों को भी इंद्रिय मानकर इंद्रियों के दो विभाग किये हैं—ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय वे हैं जिनसे केवल विषयों के गुणों का अनुभव होता है। ये पाँच हैं, चक्षु (जिससे रूप का ज्ञान होता है), श्रोत्र (जिससे शब्द का ज्ञान होता है), नासिका (जिससे गंधका ज्ञानहोता है), रसना (जिससे स्वादका ज्ञान होता है) और त्वचा (जिससे स्पर्श द्वारा कड़े और नरम आदि का ज्ञान होता है)। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियाँ भी, जिनके द्वारा विविधि कर्म किए जाते, पाँच हैं, वाणी (बोलने के लिए), हाथ (पकड़ने के लिए), पैर (चलने के लिए), गुदा (मल त्याग करने के लिए), उपस्थ (मूत्र त्याग करने के लिए)। इनके अतिरिक्त एक उभयात्मक अंतरेंद्रिय मन भी माना गया है जसके मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त चार विभाग करके वेदांतियों ने कुल १४ इंद्रिया मानी हैं। इनके पृथक्-पृथक् देवता कल्पित किए हैं; जैसे कान के देवता दिशा, त्वचा के वायु, चक्षु के सूर्य्य, जिह्वा के प्रचेता, नासिका के अश्विनीकुमार, वाणी के

अग्नि, पैर के विष्णु, हाथ के इंद्र, गुदा के मित्र, उपस्थ के प्रजापति, मन के चन्द्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्त के अच्युत, अहंकार के शंकर। न्याय के मत से पृथ्वी का अनुभव घ्राण से, जल का जिह्वा से, तेज का चक्षु से, वायु का त्वचा से और आकाश का कान से होता है।

इंद्रिय के सभी व्यापार कर्त्ता के अधीन रहते हैं, इसलिए इंद्रिय का दूसरा नाम करण है—
"हेत्वधीनः कर्त्ता कर्त्रधीनंकरणम्।"
(पद्मनाभ)

नैयायिकों के कथनानुसार मन कभी कर्त्ता कभी करण बन जाता है। जैसे किसी रूप के देखने से पूर्व उस वस्तु के देखने की इच्छा मन में उत्पन्न होती है, फिर उसके दर्शन का सुख भी वही अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त आत्मा भी मन ही के द्वारा दर्शन का सुख प्राप्त करता है। ज्ञान का कार्य मन है। वेदांती मन को कारण से भिन्न इंद्रिय नहीं मानते और बुद्धि को भी इंद्रिय से पृथक् मानते हैं। कान से बाहरी शब्द सुन पड़ता है, पुनः ढाँक देने पर भी भीतर ही भीतर आया करता है।

नोट—ऊपर कही गई स्पर्श आदि पाँचों इंद्रियाँ हरएक जीव में समान नहीं होती। किसी में वे एक, किसी में दो, किसी में तीन, किसी में चार और किसी में पाँच तक होती हैं। पृथ्वीकायिक (जिनका पृथ्वी ही शरीर है), जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के एक स्पर्श ही इंद्रिय रहती है। कृमि आदि जीवों के स्पर्श और रसना ये दो इंद्रियाँ होती है। पिपीलिका (चींटी) आदि जीवों के स्पर्श, रसना और घ्राण ये तीन इंद्रियाँ होती हैं। भ्रमर मकरी प्रभृति के श्रोत्र के सिवा चार इंद्रियाँ होती हैं और घोड़े आदि पशु, मनुष्य, देव और नारकी जीवों के पाँचों इंद्रियाँ होती हैं।

इन्द्रियोपक्रमणीय का वर्णन

आध्यात्मिक द्रव्य-गण—मन, मनके विषय, बुद्धि, आत्मा, यह अध्यात्म-द्रव्यों के गण का संग्रह है। शुभ और अशुभ कार्यों में प्रवृत्त और निवृत्त होने का हेतु भी यही आध्यात्मिक द्रव्यगण हैं। द्रव्य के आश्रयी-भूत जो कर्म हैं उसे क्रिया कहते हैं।

इन्द्रियों में विशेषता—यह अनुमान द्वारा सिद्ध है कि पाँचों इन्द्रियाँ पाँच महाभूतों के ही विकार हैं। इनमें तेज नेत्रों में, आकाश कानों में, नासिका में पृथ्वी, जीभ में जल और स्पर्श में वायु विशेष रूप से रहते हैं। इनमें जो इन्द्रिय जिस महाभूत से बनी हुई है, वह उसीके स्वभाव वाली होने से और विभु होने से उसी महा-भूत के गुण को ग्रहण करनेवाली होती है।

इन्द्रियों के विपरीत होने का कारण—इनके विषयों का अयोग, अतियोग, मिथ्या योग होने से मन और इन्द्रियों में विकृति हो जाती है और बुद्धि का नाश भी होता है। इसी प्रकार ठीक योग होने से मन और इन्द्रिय ठीक प्रकृतिस्थ रहते हैं और बुद्धि का भी विकाश होता है।

मन का विषय चिंतन करना है। मन और बुद्धि का ठीक योग होना ही प्रकृति (तंदुरुस्ती) का कारण है और अतियोग, मिथ्यायोग, अयोग और विकृति व्याधि का कारण है। इसलिए जिस योग से मन और इन्द्रिय अपनी शक्ति से हत न हों और अपने ठीक हालत में रहें उसी योग का अनुसरण करना श्रेयस्कर है।

प्रकृति स्थिर रखने के हेतु—निम्न कहे हुए हेतुओं से असात्म्य विषयोंका सेवन न करना और आत्मा के अनुकूल अर्थों का सेवन करना चाहिए, इसलिए आत्महितेच्छावाले प्राणी के प्रत्येक कार्यों को विचार-पूर्वक, देश काल और आत्मा के अनुकूल जानकर सत्कार्यों का सेवन करना चाहिए। ऐसा करने से आरोग्यता का लाभ और इन्द्रियों का बल ठीक रहता है।

सत्कार्य

देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध पुरुष, सिद्ध और आचार्य का पूजन, अग्नि में हवन, पवित्र उत्तम औषधियों का धारण, प्रातःकाल और सायंकाल जल से आचमनादि (संध्या), मल मार्ग और हाथ पावों को पवित्र रखना, एक पक्ष (१५ दिन) में तीन बार चौर-कर्म, दाढ़ी, नख आदि का ठीक रखना, मैले और फटे वस्त्रों का

न पहिनना, मन को प्रसन्न रखना और उत्तम सुगंधि आदि का धारण करना, श्रेष्ठ पुरुषों के समान वेष धारण, केशों को सँवार कर साफ़ रखना, मस्तक, कान, नाक और पैरों के तलुवों में नित्य तैल लगाना, उत्तम धूम्रपान, भले पुरुषों का आदर पूर्वक सत्कार-सम्मान और मीठे वचन द्वारा प्रसन्न करना, भयभीत को धैर्य देना, कठिन कार्यों की प्राप्ति के लिए होम, यज्ञ, दान करना, चतुष्पथ को नमस्कार करना, बलि आदि से अग्नि देवता, भद्र पुरुष और दीन आदिकों को प्रसन्न रखना, अतिथि पूजन, पित्रों को पिण्ड दान, समयानुकूल हितयुक्त और मधुर अर्थवाला संभाषण, आत्मा को स्वाधीन रखना, धर्म-युक्त होना, सर्व जनों की भलाई की चेष्टा, फल को त्यागकर कर्म करना, निश्चिंत रहना, भय-भीत न होना, बुद्धि, लज्जा, उत्साह, चातुरी, क्षमा का धारण, धर्म संपन्न होना, आस्तिकता, विद्या, बुद्धि विनय संपन्न होना, वृद्ध और सिद्ध तथा आचार्य की उपासना, छत्री, यष्टि, पगड़ी, उपानह का धारण, मार्ग चलते समय आगे को चार हाथ मार्ग देखकर चलना, नित्य मंगलकारक वस्तुओं और मंगल कार्यों का सेवन, खराब वस्त्र, अस्थि, कंटि, अमेध्य (विष्ठादि), केश, तुष, कंकड़ आदि, भस्म, ठीकरें वाली भूमि और जहाँ स्नान करने का जल बह रहा हो तथा जिस भूमि में बलि दी हो एवं श्मशान आदि भूमि में न जाएँ। थकावट होने से पूर्व व्यायाम को त्याग करें। प्राणि मात्र से स्वबन्धुवत् प्रेम रक्खें, क्रोध युक्तों को नम्रता पूर्वक शांत करें। भय-भीतों को आश्वासन दें। दीनपर दया करें। सत्य भाषण में तत्पर रहें। साम, दाम, दान और दण्ड भेद को जानें। दूसरों के कठोर वचनोंको शांति पूर्वक सहन करें। क्रोध और अहंभाव से विरत और उत्तम शांति-दायक गुणों का अवलम्बन करें।

असत्कार्य

राग-द्वेष के कारणों को न रहने दें। झूठ न बोलें, पराई वस्तु न लें, पर स्त्री की कभी भी इच्छा न करें। पर संपत्ति देखकर ईर्षा न करें। किसी से विरोध न करें, पाप न करें, पापी से भी पाप न करें। किसी के भी दोष अपने मुख से न कहें। किसी की गुप्त बातको प्रगट न करें। अधर्मी और राजद्रोही पुरुषके पास भी न जाएँ। उन्मत्त, पतित, भ्रूण हत्यारे और क्षुद्र तथा दुष्ट जनों का संग न करें। दुष्ट घोड़े आदि की सवारी न करें। जानु औंधे करके अथवा जिस तरह बैठने से कष्ट बोध हो, वैसे न बैठें। जिस शय्या पर वस्त्र न बिछा हो और ओढ़ने को कपड़ा न हो तथा जो लम्बी चौड़ी ठीक न हो, और नष्ट-भ्रष्ट हो तथा टेढ़ी हो, ऐसी शय्या पर शयन न करें। पर्वत और पर्वतों की ख़राब घाटियों पर न चढ़ें। वृक्ष पर न चढ़ें। अधिक वेगवाली चढ़ी हुई नदी में स्नान न करें। अपने कुल की छाया या बेरी के वृक्ष की छाया में न बैठें। अग्नि लगे स्थान में न जाँय। ऊँचे स्वर से न हँसे। सभा आदि में अपान वायु का शब्द न करें (हट के करें)। मुख को बिना ढके जम्भाई, छींक और हास्य न करें। नाक को न कुरेदें। दाँतों को न कटकटाएँ। नखों को न बजाएँ। हड्डियों को हनन न करें (मटकावे नहीं)। पृथ्वी को न कुरेदें। तिनके न तोड़ा करें। वृथा मिट्टी के ढेले न फोड़ा करें। दुष्टाचारी मनुष्यों का संग अथवा उनसे कोई भी व्यवहार न करें। तेज, ज्योति, अग्नि पवित्र और निंदितों के सामने न देखें। मुर्दे को देखकर हुंकार न करें। चैत्यस्थान, ध्वजा, गुरु माता, पिता आदि पूज्य जनोंकी छाया को और खराब छाया को न लाँघें। रात्रि में— देवालय, चैत्य, आँगन, चतुष्पथ, बाग, श्मशान और हिंसा की भूमि में न रहें। शून्य स्थान अथवा शून्य बन में अकेला न जाँय। पाप वृत्ति-वाली स्त्री, मित्र, नौकर आदि को अपने पास न रक्खें। भद्र पुरुषों से विरोध न करें। कुटिल पुरुष का संग न करें। कपटी पुरुष से मेल जोल न रक्खें। खोटे पुरुष का आश्रय न लें। किसी को भी भय न दिखाएँ। बहुत साहस, अधिक सोना, बहुत जागरण, बहुत स्नान, बहुतजलपीना, और बहुत भोजन करना उचित नहीं। जानुओं को बड़ी देर तक ऊपर को करके न बैठें। साँप, सिंहादि और सींगवाले जीवोंके पास न जाएँ। पूर्व की वायु, सूर्य की धूप, हिम और बहुत वेगवाली

हवा में न जाएँ। कलह न करें। दावानल आदि अग्नि के समीप न जाएँ। उच्छिष्ट होकर या शय्या आदि के नीचे अग्नि न रखें। जब तक थकावट दूर होकर पसीना न सूख जाय, तब तक स्नान न करें। नंगा होकर स्नान न करें। जिस कपड़े से स्नान किया हो, उससे मस्तक आदि उत्तम अंगों को न पोंछें। केशों के अग्र भाग को पकड़ कर न झटकें। जिस कपड़े से शरीर पोंछा हो या स्नान किया हो उस गीले वस्त्र को न पहनें। रत्न, घृत, पूज्य और मंगल वस्तुओं का स्पर्श करके प्रसन्न हृदय से गृह से निकलें। पूज्य और मंगल वस्तुओं को बाईं ओर करके न जायँ। ऐसी ही अपूज्य और अमंगल वस्तुओं के दाहिनी ओर करके न जायँ।

भोजनादि करने के नियम

हाथों में रत्न को धारण किए बिना, नहाए बिना, मैले तथा फटे कपड़े पहन कर, बिना जप किए, हवन किए बिना, देवताओं को अर्पण किए बिना, पितृजनों, गुरुजनों और अतिथियों को दिए बिना, अपने आश्रित जनों को दिए बिना, पवित्र चंदन, गंध, आदि धारण किए बिना, माला पहिने बिना, हाथ पाँव मुख धोए बिना, अशुद्ध मुख से और उत्तर को मुख करके भोजन न करें। अपमानित, अभक्त, दुष्ट, अपवित्र और भूखे नौकर के पास रहते हुए, अशुद्ध पात्र में, निंदित स्थान में, बिना समय, बहुत मनुष्यों में, अग्नि में आहुति डाले बिना, प्रोक्षणोदक से प्रोक्षण किए बिना, मंत्रों से अभिमंत्रित किए बिना, भोजन की निंदा करते हुए, निंदित पदार्थों को, शत्रु के हाथ से दिये हुए भोजन को न करे। और मांस हरित पत्ती, सूखे शाक, फलों के और पेड़ा आदि मिठाई के सिवाय वासी पदार्थ न खाएँ। भोजन करते समय दधि, मधु, लवण और सत्तुओं के बिना प्रत्येक पदार्थ थोड़े-थोड़े छोड़कर भोजन करना चाहिए। रात्रि में दही न खाएँ। केवल सत्तू (घी मीठे बिना) न खाँय, रात्रि को और भोजन के पीछे तथा अनेक प्रकार के मिले हुए सत्तू न खाँय। दो बार सत्तू न खाँय। सूखे सत्तू न फाँकें। दाँतों से बिना कुचले न खाँय। शरीर को टेढ़ा करके छींकना, खाना, सोना उचित नहीं। मलादि के वेग को रोककर कोई भी कार्य न करें। वायु, अग्नि, जल, चन्द्रमा, सूर्य, ब्राह्मण, गुरु इनके सामने थूकना, अपान वायु का त्याग, मलत्याग और मूत्र इन्हें न करें। मार्ग में मल-मूत्र न करें, बहुत मनुष्यों में भोजन के समय, जप, होम, पठन-पाठन, बलि तथा मंगल-कार्य में थूक और नाक की मैल को न त्यागें। स्त्री को बहुत अपमानित न करें और उसका अत्यन्त विश्वास भी न करें तथा अपनी गुप्त बातों को स्त्री से प्रगट न करें। अपने कुल कारोबार को मालिक भी न बनाएँ। ऐसे ही रजस्वला, रोगिणी अशुद्ध, अश्रेष्ठा, कुरूपा, खोटे आचरवाली, कुबुद्धिनी, बिना इच्छा वाली, दूसरे पुरुष की इच्छावाली और पर-स्त्री इनसे मैथुन न करें। स्त्री की योनि से बिना अयोनि मैथुन न करें। चैत्य, चत्वर (देवालय मंदिर आदि), चौराहा, उपवन, श्मशान, बध स्थान, जल, औषधी देने के स्थान, द्विजस्थान, गुरुस्थान, देव मंदिर-इन स्थानों में स्त्री-गमन न करे। दोनों संध्याओं में, एकादशी आदि निषिद्ध तिथिमें, अपवित्र अवस्थामें, औषधी खाकर, बिना निश्चय किए, बिना कामेच्छा प्रगट हुए, भूखे, अत्यन्त भोजन करके, विषम रीति से, मल-मूत्र के वेग में, थका हुआ, व्यायाम करके, व्रत करके, और आलस्य युक्त भी मैथुन न करें। एकान्त स्थान के बिना भी स्त्री-संग न करें।

अध्ययन काल के नियम

श्रेष्ठ महात्माओं की और गुरुजनों की निन्दा न करें। बिना शुद्ध हुए मंत्र-तंत्र, देव-मंदिर, पीपल आदि का पूजन, पूज्यों का पूजन और विद्याध्ययन न करें। अकाल विद्युत्-पात होने पर, दिग्दाह हाने पर, भूकंप होने पर, बड़े उत्साह में, उल्कापात के समय, सूर्य, चंद के ग्रहण में, अमावस्या को, दोनों संध्याओं में, ऐसे ही गुरु मुख से सिवाय, अत्यन्त मात्रा से, बहुत ज़ोर से, ख़राब स्वर से, पदों को तोड़-फोड़ कर, बहुत जल्दी-जल्दी, बहुत देर में, बहुत दुर्बलता से, ऊँचे स्वर से, बहुत नीचे स्वर से अध्ययन न करें। पढ़ने के समय को व्यर्थ न खाएँ। पढ़ने के नियम को न बिगाड़ें।

अन्य नियम

रात्रि के समय और खराब स्थान में न घूमें। संध्या के समय, भोजन, अध्ययन, मैथुन और शयन न करें। बालक, अतिवृद्ध, लोभी, मूर्ख रोगी और नपुंसकों से मित्रता न करें। मद्यपान जूआ और वेश्याओं में कभी रुचि न करें। घर की गुप्त बातें किसी से न कहें। किसी का भी अपमान न करें। अहंकार न करें। चतुराई रहित, सूम, तथा किसी को दोष लगानेवाला न होवें। ब्राह्मण आदिकों की निंदा न करें। गौओं पर डंडा न चलाएँ। वृद्ध पुरुषों, गुरुजनों, बहुत दलवालों तथा राजाओं की निंदा आदि न करें। न इनके सामने बहुत बोलें। अपने बांधवों को अपने प्रेमियों को, आपत्ति में सहायता करनेवालों को और अपने रहस्य जाननेवालों का वहिष्कार भी न करें।

विशेष उपयोगी नियम

धैर्य रहित और बहुत बड़ा सात्विक न बनें। नौकरों की नौकरी न करें। आदमियों से विश्वास रहित भी न बनें। कुटुम्ब के बिना अकेला ही सुख न भोगें और दूसरों को दुःख मिलने वाला आचरण न करें। सभी का विश्वास भी न करें। प्रत्येक मनुष्य के झूठा होने का भ्रम भी न करें। सदा सोचता भी न रहें। काम के समय को व्यर्थ नष्ट न करें। बिना जाने कार्य में प्रवेश न करें और इन्द्रियों के वशीभूत न बनें। मन स्वयं चंचल है। इसलिए इसको और भी अमित न करें। अर्थात् मन को सदा स्थिर रक्खें। बुद्धि और इन्द्रियों पर बहुत भार न दें अर्थात् जिससे रोग होने का भय हो, इतना काम उनसे न लें। काम को अत्यन्त विलम्ब में करनेवाला न बनें। क्रोध और हर्ष को बढ़ने न दें। शोकातुर न बना रहें। कार्य सिद्ध होने पर अत्यंत प्रसन्न भी न होएँ। कार्य भ्रष्ट होने से अत्यन्त दीनता भी न प्रगट नरें। अपने जन्म कर्म का सदैव स्मरण रक्खें। जिस कार्य को आरम्भ करें उसके फल को पहले सोच लें। उन्नति के हेतुओं को नित्य आरम्भ करता रहे। अपने आप को कभी भी कृतकृत्य न समझें। अपने पराक्रम को न छोड़ें। यदि किसी ने अपमान किया हो, तो भी उसकी चिन्ता न करें।

शुद्ध पवित्र होकर घी, चावल, तिल, कुशा, सरसों इनको अग्नि में हवन करें। होम करने के पीछे अपने को इस प्रकार आशिर्वाद दें "अग्नि हमारे शरीर में से विरत न हो, वायु हमारे प्राणों की रक्षा करे, विष्णु हमारे शरीर में बल दे, इंद्र हमारे वीर्य को बढ़ाएँ, शुभ कारक जल हमारे शरीर में प्रवेश करे"। इस प्रकार कहके "आपो हिष्ठामयोभुवः" इत्यादि मंत्रों से अपने शरीर को परिमार्जन करें। दो बार होठों को, दोनों पावों को और ऊपर के सब द्वारों को जल से मार्जन करके मस्तक और आकाश को छींटे दें। जल से शरीर, हृदय, और मस्तक को प्रोक्षण करें। ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दान, मैत्री, कृपा तथा आनन्द (कारुण्य) को चाहें और शांत चित्त से रहें। च० सू० ८ अ०।

इन्द्रियकर्म्म–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इंद्रियों का कर्म। इन्द्रिय-कार्य्य। वे कार्य्य जो इन्द्रियों द्वारा संपादित होते हैं, जैसे—देखना, सुनना, स्वाद लेना, सूँघना इत्यादि। सु० शा० १ अ०। वि० दे० "इन्द्रिय"।

इन्द्रिय-काम–वि० [सं० त्रि०] शक्ति पाने का अभिलाषी।

इन्द्रिय कार्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चक्षु प्रभृति का कार्य। रूप दर्शन, शब्दाकर्णन, स्पर्शग्रहण, रसास्वादन, गंधग्रहण, वचनादान, विसर्ग, गमन और आनन्द इनको "इंद्रिय कार्य" कहते हैं। (सुश्रुत)। वि० दे० "इन्द्रिय"।

इन्द्रिय-गोचर–वि० [सं० त्रि०] इन्द्रिय। विषय। व्यक्त। उपलभ्य। ज़ाहिर। समझ पड़ने के योग्य। चक्षु, कर्ण, जिह्वा, नासिका, त्वक् और मन-इनके द्वारा ६ प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। पहले इंद्रिय और वस्तु का संयोग होता है, पुनः आत्मा में उसका ज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए इन्द्रियाँ ज्ञान का मार्ग हैं और उस ज्ञान पथ में पतित वस्तु इंद्रिय गोचर कहाती है।

इन्द्रियग्राम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शरीर। वै० निघ०। (२) इन्द्रिय समूह।

इन्द्रियघ्न-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकारका आँख का रोग।

इन्द्रियजित्-वि० [सं० त्रि०] जो इन्द्रिय के वश में न हो। इन्द्रियों को जीतनेवाला।

इन्द्रियदमन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रियगण को निग्रह करने का कार्य। इन्द्रिय की वृत्ति घटाने का काम।

इन्द्रिय-दोष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रिय जन्य दोष। पर स्त्री गमन और चौर्य प्रभृति को "इन्द्रिय दोष" कहते हैं।

इन्द्रिय-निग्रह संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वेच्छाचार-प्रवृत्त। इन्द्रिय के आधीन न होकर उनका दमन करना।

इन्द्रियवध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अपने-अपने विषय में इन्द्रियों की शक्तिका प्रतिघात अर्थात् आघात।

इन्द्रिय-बुद्धि संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्रियों के द्वारा होनेवाला ज्ञान।

इन्द्रिय वोधन-वि० [सं० त्रि०] इन्द्रियों को उत्तेजित करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) [illegible] अपनी जगह से उतर विकलता बोध मद्य। [illegible] इसके पीने से समस्त [illegible] गर्भवती का वमन तथा हो जाती हैं। (२) इन्द्रिय के [illegible] तथा यक [illegible] क्रिया।

इन्द्रियवज्री-संज्ञा स्त्री०[सं० इन्द्रिय+वज्रि] वाजीकरण क्रियाका एक भेद। नामर्दी दूर करने की एक विधि।

इन्द्रियवर्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ग्यारह इंद्रियों का समाहार। दे० "इन्द्रिय"।

इन्द्रिय विप्रातिपति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्रिय की विकृति। रुकन का बिगाड़।

इन्द्रिय-वैकल्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रियों की विकलता। इंद्रियों की दुर्बलता। वै० निघ०।

इन्द्रिय व्यापार शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आयुर्वेद का वह पूर्वाङ्ग जिसमें अंगों के कार्य वर्णित हों। शरीर-क्रिया-शास्त्र। इन्द्रिय कार्य-विज्ञान। .इल्मुल अफ़्आलुल् अअ्.ज़ाऽ.इल्मुल्,व ज़ाइफ़ुल् अअ्ज़ाऽ- (अ०)। फ़िजियालॉजी Physiology-(अं०)।

इन्द्रिय व्यापार शास्त्री-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह व्यक्ति जो अंगों के कार्यों का ज्ञाता हो। इंद्रिय कार्य-विज्ञान वेत्ता। आलिम बवज़ाइफ़ुलअअ्ज़ाऽ-(अ०)। फ़िजियालाजिष्ट Physiologist-(अं०)।

इन्द्रिय सन्ताप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रिय वैकृति। इन्द्रियों की बीमारी।

इन्द्रिय सन्निकर्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्व-स्व विषय के साथ इंद्रिय का संबंध। प्रत्यक्षजनक व्यापार। अपने-अपने काम में इन्द्रियों का लगाव।

इन्द्रिय स्वाप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) प्रलय। (२) निद्रा। नींद। (३) चेष्टानाश। रा० नि० व० २०।

इन्द्रिय ज्ञान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इंद्रिय जन्य वा प्रत्यक्ष ज्ञान। देखी सुनी बात।

इन्द्रियात्मन्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इंद्रिय। (२) अज्ञा। विष्णु।

इन्द्रियायतन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रियों का निवास-स्थान। शरीर। हे० च०।

[illegible] र्थ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इंद्रियों का [illegible] य। वे विषय जिनका ज्ञान इंद्रियों द्वारा होता [illegible] जैसे—रूप, रस, गंध,शब्द इत्यादि। अम०।

इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इंद्रियों का अपने-अपने विषयों के साथ संबंध। प्रत्यक्ष ज्ञान का कारण। इन्द्रिय और विषय का संयोग हे० च०।

इन्द्रियासङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आत्म संयम। प्रसन्नता। खुशी।

इन्द्रियेश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीव। प्राण।

इन्द्रियोपक्रमणीय-वि० [सं० त्रि०] इन्द्रियों के उपक्रम संबन्धी। दे० "इन्द्रिय"।

इन्द्री-संज्ञा स्त्री० दे० "इन्द्रिय"।

इन्द्रीजुलाब-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रिय+फ़ा० जुलाब] वे ओषधियाँ जिनसे पेशाब अधिक आता है। मूत्र लानेवाली औषधि। पेशाब अधिक लानेवाली दवा। जैसे-पानी मिला हुआ दूध शोरा और सिलखड़ी इत्यादि। दे० "मूत्रल"।

नोट-प्रायः १ भाग दूध और २ भाग पानी मिलाकर इसके साथ ठंडी दवा दीजाती है। इसका

विधान प्रायः देशी वैद्य सूजाकवाले रोगियों के साथ किया करते हैं।

इन्द्रोक्तरसायन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्र कथित रसायन वर्ग; जैसे, वल्यगण(छोटी इलायची,कौंच-बीज, शतावर, माषपर्णी, क्षीर विदारी, असगंध, शालपर्णी, रोहणकी छाल, वला और अतिवला), जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, अर्कपुष्पी, मुलहठी), बृंहणीयगण (खिरणी, नकछिकनी, वला, काकोली, क्षीर काकोली, सफ़ेद वला, कंघी, वनकपास के बीज, क्षीरविदारी, विधारा) और वयःस्थापनीय गण (गिलोय, हड़, आमला, वच, मोती, अर्कपुष्पी, शतावरी, ब्राह्मी, शालपर्णी, पुनर्नवा), खैर, विजैसार, कचूर, महुआ के फूल, मोंथा, लाल कमल, दाख, विडंड, वच, चित्रक, शतावरी, खिरणी (खिरनी), पीपल, अगर, ऋद्धि, नागवला, हल्दी, धव, त्रिफला, कण्टकारी, विदारीकंद, चन्दन, ईख, सरकंडा, श्रीपर्णी (गम्भार), ति[illegible] (जारुल गाछ-बं०), इनका रस पृथक्-पृथक् [illegible] पलाश का क्षार इन्हें एक-एक पल प्रमा[illegible] गाय का दूध सब से चौगुना, तिल तै[illegible] गाय का घी प्रत्येक ४ सेर। इन्हें विधिपूर्वक चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्निसे पकाएँ। जबवहसिद्ध हो जाय, तब स्नेह भाग को अलग करलें। पुनः इसमें १ आढक वह आमलेका चूर्ण जो १०० बार आमले के रस में भावना दिया गया हो और शहद एवं मिस्री का चूर्ण प्रत्येक एक-एक प्रस्थ, वंशलोचन और पीपल ६४ तोले का चूर्ण डालकर एक चिकने घी के पात्र में रख पुनः इसमें सुवर्णभस्म, ताँबाभस्म, लौहभस्म, मूँगा-भस्म, स्फटिकभस्म, मोतीभस्म, वैदूर्यभस्म, शंख-भस्म और चाँदीभस्म; उपरोक्त अवलेह के $\frac{1}{16}$ भाग मिलाकर १९ दिन तक रहने दें।

गुण—इसे उचित मात्रा में बलाबल विचार-कर अग्निकी प्रवलता देखकर खाएँ। जब ओषधि पच जाय, तब घृतयुक्त दूध और साठीका भात खाएँ। इस प्रकार सेवन करने से और मैथुन, अधिक परिश्रम त्याग करने से यह रसायन संपूर्ण रोगों को दमन करता है। वृष्य और आयु की वृद्धि करता तथा सत्व, स्मृति, जठराग्नि, बुद्धि, तेज, वर्ण की वृद्धि और स्वर की वृद्धि करता है। यह विष और अलक्ष्मी का नाशक है। हर प्रकार की विद्याएँ इसके प्रभाव से शीघ्र आती हैं। अर्थ-सिद्धि, युवावस्था, लोकप्रियता और यश की कामना करनेवाले को इसे अवश्य सेवन करना चाहिये।

(२) ऐन्द्री। इंद्रवारुणी। इंद्रायन। (Cucumis Trigonus, *Roxb.*)। (३) महाश्रावणी। गोरखमुंडी। च० चि० १ अ०।

इन्द्रोपल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नील हीरक। नीले रंग का हीरा। प० मु०।

इन्ध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दीप्ति। चमक। (२) प्रदीप। चिराग़। दीपक। दिया।

इन्धन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वह वस्तु जिससे आग जलती है। जलाने की लकड़ी। [illegible]। तृण। इंधन। (Fuel)। (२) अक्र· [illegible]र्यादि। [illegible]temisia Absinthi- [illegible] सं० त्रि०] ज्वालायुक्त।

इन्धल–संज्ञा पुं० [[illegible] इन्वका] दे० "इन्वका"।

इन्नर–संज्ञा पुं० [?] मसाला मिला हुआ गाय का दूध। इसे गाय ब्याने से १० दिन के भीतर ही प्रायः ग्रामों के किसानादि बनाया करते हैं।

इन्नी–संज्ञा स्त्री० [देश०] अरणी। अरनी।

इ.न्नीन–[अ०] (Impotent) क्लीव। नपुंसक नामरद।

इन्नुप चित्तुमु–[ते०] (Ferri Prsoxidum Rubrum) मण्डूर।

इन्फ़ह.ीन–[अ०] (Rennin) दे० "पेप्सीन"।

इन्फ़िआल–[अ०] (१) प्रभावित होना। असर ग्रहण करना। प्रतिक्रिया। (Reaction)। (२) झेंपना। लज्जित होना।

इन्फ़िआलात नफ़्सानिय्य:–[अ०] मनोवृत्तियाँ; जैसे, आनंद, दुःख, क्रोध और भय इत्यादि।

इन्फ़िक़ाऽ–[अ०] (१) अंधा होना । (२) नवजात शिशु के सिर का छिलना ।

इन्फ़िग़ास–[अ०] बंद ज़ुकाम का दूर होकर अच्छा हो जाना ।

इन्फ़िग़ार–[अ०] मुख का स्वयं विस्तीर्ण होना ।

इन्फ़िज़ाख़–[अ०] व्रण विदीर्ण होना। व्रण के मुख का बड़ा होना ।

इन्फ़िजार–[अ०] विदीर्ण होना । फूटना । फटना । तिब की परिभाषा में फोड़े का फूटना । किसी शिरा का फट जाना । (Burst)

इन्फ़िताक़ुल् बत्̤न–[अ०] फ़त्क़ मराक़ुल् बत्̤न। औदरीय वृद्धि(Abdominal hernia)। दे० "अन्त्रवृद्धि" ।

इन्फ़िताह̤–[अ०] विस्तीर्ण होना । खुलना । विस्तार । तिब की परिभाषा में किसी रग का खुल जाना । डायलेटेशन Dilatation. (अं०) ।

इन्फ़ियाबूस–[अ०] एक प्रकार का ज्वर जिसमें शरीर बाहरसे गरम और भीतर से शीतल होता है ।

इन्फ़िराक–[अ०] कंधे का अपनी जगह से उतर जाना ।

इन्फ़िरास̤–[अ०] (१) गर्भवती का वमन तथा हृत् वैकल्य । (२) आमाशय तथा यकृत् का क्षतयुक्त होना ।

इन्फ़िसाल–[अ०] पृथक् होना । भिन्न होना । विश्लेष ।

इन्फ़िसाल क़ज़्ह̤िय्यः–[अ०] इन्फ़िरा_ज़ अनबिय्यः ।

इन्फ़िसालुल् अज़्_म–[अ०] हड्डी का जोड़ पर से निकल जाना वा सरक जाना । संधि-भ्रंश । स्थान-च्युति । (Dislocation.)

इन्फ़िसाह̤–[अ०] विस्तीर्ण होना । फैलना । तिब की परिभाषा में हृदय का फैलना । हृदय विस्तार ।

डायलेटेशन ऑफ दी हार्ट Dilatation of the heart–(अं०) ।

इन्फेण्टाइल रेमिटेण्ट फीवर–[अं० Infantile remittent fever] शिशुओं का टायफाइड ज्वर । दे० "टायफॉइड" ।

इन्फ्यु_ज़न–[अं० (ए० व०)] वानस्पतिक द्रव्यों के प्रभावात्मक अंश का जलीय विलयन । फाण्ट । फाण्टक । फाँट । मन्क़ूअ्, ख़िसाँदहः–अ० ।

निर्माण-विधि—जिस औषधिका फाण्ट प्रस्तुत करना होता है, उसको कुचल कर या अधकुट करके शीतल वा उबलते हुए पानी में डालकर और एक ढक्कनदार बरतन में एक नियतकाल तक भिगोकर फिर उसे वस्त्रपूतकर लेते हैं । ओषधियों के इस वस्त्रपूत जल को ही फाण्ट, इन्फ्युजन वा मन्क़ूअ या ख़िसाँदह कहते हैं । चिकित्सा-प्रणाली-त्रय के इन पारिभाषिक शब्दों के पूर्ण विवेचन हेतु देखिए "फाण्ट" ।

टिप्पणी—(१) ब्रिटिश फार्माकोपिया वर्णित २२ इन्फ्युज़नों में से २० तो उबलते हुए परिश्रुत जल में बनाए जाते हैं । इनमें से केवल दो अर्थात् (क) इन्फ्युज़न आफ़ काशिया तथा (ख) इन्फ्युज़न आफ़ कलम्बा शीतल जल में बनाए जाते हैं ।

(२) समस्त इनफ़्युज़न एक-एक पाइंट पानी के साथ बनाए जाते हैं ।

(३) इन्फ़्युज़न ऑफ़ काशिया तथा इन्फ़्युज़न ऑफ कलम्बा के सिवा समग्र इन्फ़्युजन लोहे के पर साल्ट्स के साथ मिलकर श्याम होजाते हैं ।

(४) इनको आवश्यकतानुसार नवीन प्रस्तुत करना चाहिये, बासी काम में नहीं लाना चाहिए ।

(५) विद्यार्थियों को इन्फ़्युजन ऑफ डिजिटेलिस का स्मरण रखना अत्यावश्यकीय है । यह एक पाइंट उबलते हुए जल में ६० ग्रेन विचूर्णित डिजिटेलिस-पत्र प्रक्षेपितकर प्रस्तुत किया जाता है । इसकी मात्रा २ से ४ फ्लुइड ड्राम तक है । शेष समग्र इन्फ्युज़न की विभिन्न मात्रा $\frac{1}{2}$ से २ फ्लुइड आउंस तक होती है ।

ब्रिटिश-फार्माकोपिया–वर्णित आफ़िशल नाट आफ़िशल तथा अन्य सभी प्रकार के फाण्ट उनकी निर्माण-विधि, मात्रा एवं गुणधर्म तथा प्रयोग का पूर्ण विवेचन उन-उन ओषधियों के अंतर्गत होगा ।

इन्फ़्युज़न-निर्माण विषयक कुछ आवश्यक नियम

(क) जिन ओषधियों का फाण्ट प्रस्तुत

करना हो, उनका बहुत बारीक चूर्ण नहीं करना चाहिए।

(ख) फाण्ट प्रस्तुत करते समय सदा शीतल वा उबलता हुआ परिश्रुत जल व्यवहार में लाना चाहिए।

(ग) फाण्ट प्रस्तुत करने में ओषधियों को जल में अवलम्बित रखना ज़रूरी होता है। अस्तु, ओषधियों को मलमल की एक थैली में डालकर अथवा पोटली बाँधकर उसे एक डोरे से फाण्ट-पात्र में लटका रखें। इसके लिए स्क्वायर या माज़ का इन्फ्युज़न पाट (फाण्ट-पात्र) उत्तम होता है।

(घ) ओषधियां को जितनी देर तक भिगो रखना हो, उतने समय तक उसका उत्ताप एक समान रखना चाहिए।

(ङ) समयानुकूल सदा ताज़ा फाण्ट प्रस्तुत करना चाहिए। परंतु यदि कार्य-बाहुल्य के कारण यह सम्भव न हो, तो एक बार बनाए हुए फाण्ट को दो-तीन सप्ताह पर्यन्त सुरक्षित भी रख सकते हैं। इस हेतु तीक्ष्ण उष्ण फाण्ट को ६ या ८ आउंस के स्वच्छ बोतलों में लबालब भरकर उनके मुँह पर ग्रीवा पर्यंत झिल्ली वा रबड़ की टोपी चढ़ा दें या मज़बूत बिल्लौरी डाट लगा दें, जिसमें वायु तनिक भी उसमें प्रवेश न कर सके।

(च) कन्सन्ट्रेटेड इन्फ़्युज़न्स (घन फांट) से सद्यः प्रस्तुत फांट का लाभ नहीं प्राप्त किया जा सकता। तो भी फील्ड हॉस्पिटल (रणभूमिस्थ अस्पतालों) में व्यवहार करने के लिए वे उत्तम हैं।

नोट—डिजिटेलिस का कन्सन्ट्रेटेड इन्फ़्युज़न बिलकुल निकम्मा होता है।

इन्फ़्युज़न ऑफ़ अंगस्तूरा बार्क–[अं० Infusion of Angustura bark] अंगस्तूरा त्वक् फांट। इन्फ़्युजम कस्पेरिई।

इन्फ्युज़न ऑफ अर्गट–[अं० Infusion of Ergot] अर्गट फांट। दे० "अर्गोटा"।

इन्फ्युजन ऑफ़ अल्सटोनिया–[अं० Infusion of Alstonia] सप्तपर्ण फांट। दे० "सतिवन"।

इन्फ्युजन आफ ऑरेंज पील–[अं० Infusion of Orange peel] नागरंग फल-त्वक् फांट। नारंगी के छिलके का फांट। दे० "नारंगी"।

इन्फ्युजन आफ ऑरेंज-पील कम्पाउंड–[अं० Infusion of Orange peel compound] मिश्रित नागरंग फलत्वक् फांट। दे० "नारंगी"।

इन्फ्युजन आफ़ इंडियन ऐज़ाडिरक–[अं० Infusion of Indian azadirach] निंबत्वक् फाँट। दे० "नीम"।

इन्फ्युजन आफ़ ऐण्ड्रोग्राफिस–[अं० Infusion of Andrographis] कालमेघ का फांट। दे० "कालमेघ"।

इन्फ्युजन आफ़ कलंबा-[अं० Infusionof Calumba] कलंब फांट। दे० "कलंबा"।

इन्फ्युजन आफ कस्पेरिया–[अं० Infusion of cusparia] अंगस्तूरा त्वक् फांट। दे० "अंगस्तूरा"।

इन्फ्युजन आफ़ कैसकरिल्ला–[अं० Infusion of Cascarilla] कैसकरिल्ला फांट। दे० "कास्ककरीला"।

इन्फ्युजन आफ़ कैमोमायल–[अं० Infusion of chammomile] बाबूने के फूल का फांट। दे० "बाबूना"।

इन्फ्युजन आफ कोसीनियम्–[अं० Infusion of coscinium] नकली दारुहल्दी का फांट। दे० "कोसीनियम्"।

इन्फ्युजन आफ क्रेमेरिया–[अं० Infusion of krameria] क्रामेरिया फांट। दे० "क्रामेरिया"।

इन्फ़्युजन आफ़ क्लव्ज़–[अं० Infusion of Cloves] लवंग फांट। दे० "लौंग"।

इन्फ्युजन आफ काशिया–[अ० Infusion of Quassia] कासिया फांट। दे० 'कासिया"

इन्फ्युजन आफ चिरेटा–[अं० Infusion of Chirata] चिरायते का फांट। दे० "चिरायता"।

इन्फ्युजन आफ़ जंशन–[अं० Infusion of Gentian] जिंतयाना फांट। दे० "जिंन्तियाना"।

इन्फ्युजन आफ टाइनॉसपोरा–[अं० Infusion of Tinospora] गुरुच का फांट। दे० "गुरुच"।

इन्फ्युजन आफ टोडेलिया–[अं० Infusion of Todalia] टोडेलियेका फांट। जंगली कालीमिर्च का फांट। दे० "मिर्च जंगली"।

इन्फ्युजन आफ डिजिटेलिस–[अं० Infusion of digitalis] डिजिटेलिस का फांट। दे० "डिजिटेलिस"।

इन्फ्युजन आफ बीयरबेरी–[अं० Infusion of bear-berry] रीछ-दाख का फांट। दे० ".इनब्बुद् ढ्ब"।

इन्फ्युजन आफ बोनसेट–[अं० Infusion of bone-set] अयापान फांट। दे० "अयापान"।

इन्फ्युजन आफ ब्युक्यु–[अं० Infusion of buchu] बुकू फांट। बुकू का फांट।

इन्फ्युजन आफ ब्राइओनिया–[अं० Infusion of bryonia] शिवलिंगी-मूल फांट। दे० "शिवलिंगी"।

इन्फ्युजन आफ ब्रूम–[अं० Infusion of broom] ब्रूम फाएट।

इन्फ्युजन आफ़ ब्रूम टॉप्स–[अं० Infusion of brooom tops] ख़िसाँदहे तरंजबील।

इन्फ्युजन आफ़ रूहूबार्ब–[अं० Infusion of rhubarb]रेवन्दचीनी का फांट। दे० "रेवंदचीनी"।

इन्फ्युजन आफ़ रोज़ेज़ (एसिड)–[अं० Infusion of roses (acid)] गुलाब का अम्ल फांट।

इन्फ्युजन आफ़ रहेटानी–[अं० Infusion rhatany] राताानिये का फांट। क्रामेरिया फांट। दे० "क्रामेरिया"।

इन्फ्युजन आफ़ सिकोना (एसिड)–[अं० Infusion of cinchona (acid)] सिंकोने का अम्ल फांट। दे० "सिनकोना"।

इन्फ्युजन आफ़ सिनेगा–[अं० Infusion of senega] सिर्नागे का फांट। दे० "सिनेगा"

इन्फ्युजन आफ़ सेना–[अं० Infusion of senna] स्वर्णमुखी फांट। सनाय का फांट।

इन्फ्युजन आफ सर्पेण्टेरी–[अं० Infusion of sorpentary] ज़रावंद अमरीकी का फांट। दे० "सनाय"।

इन्फ्युज़न आफ स्नेकरूट–[अं० Infusion of snake-root] सर्पेण्टेरिया फाएट।

इन्फ्युज़न आफ हाप्स–[अं० Infusion of hops] हशीशतुद्दीनार का फांट। दे० "हशीशतुद्दीनार"।

इन्फ्युज़म–[ले० Infusum] [बहु० इन्फ्युज़ा] फांट। दे० "इन्फ्युजन"।

इन्फ्युज़म् अर्गोटी– ले० Infusum ergotae] अर्गट फाएट। दे० "अर्गोटा"।

इन्फजम अलसटोनीई–[ले० Infusum alstoniae] सप्तपर्ण फाएट। दे० "सतिवन"।

इन्युजम आरंशियाई–[ले० Infusum aurantii] नागरंग फाएट। दे० "नारंगी"।

इन्फ्युज़म आरंशियाई कन्सएट्रेटम्–[ले० Infusum aurantii concentratum] घन नागरंग फाएट। दे० "नारंगी"।

इन्फ्युज़म आरंशियाई कम्पाजिटम्–[ले० Infusum aurantii compositum] मिश्रित नागरंग फाएट। दे० "नारंगी"।

इन्फ्युजम आरंशियाई कम्पाज़िटम् कन्सएट्रेटम्–[ले०Infusum aurantii compositum concentratum] घन मिश्रित नागरंग फाएट। नारंगी का घना मिश्रित फाएट। दे० "नारंगी"।

इन्फ्युजम एज़ाडिरक्टी इण्डिकी–[ले० Infusum azadirachtae indicae] निंब त्वक् फाएट। दे० "नीम"।

इन्फ्युजम ऐण्ड्रोग्रैफिडिस–[ले० Infusum andrographidis] किराततिक्त फाएट। दे० "चिरायता"।

इन्फ्युजम ऐन्थेमिडिस कन्सएट्रेटम्–[ले० Infusum anthemidis concentratum] बाबूना के फूल का घन फाएट। दे० "बाबूना"।

इन्फ्युजम एब्राई–[ले० Infusum abri] गुञ्जा फाएट। दे० "घुँघची"।

इन्फ्युजम कलंबी–[ले० Infusum calumbae]कलंब की जड़का फाण्ट । दे०"कलम्बा"।

इन्फ्युजम कसकारेली-[ले० Infusum cascarillae] कैसकरीला फाण्ट । दे० "कैसकरीला" ।

इन्फ्युज़स कस्पेरीई-[ले० Infusum cuspariae] अंगस्तूरा फाण्ट । दे० "कस्पैरीई कॉर्टैक्स" ।

इन्फ्युजम् केरियोफिलाई-[ले० Infusum caryophylli] लवंग फाण्ट । दे० "लौंग"।

इन्फ्युजम कोकी–[ले० Infusum cocae] कोका फाण्ट । दे० "कोका"

इन्फ्युजम कोसीनियाई-[ले० Infusum coscinii] कोसोनियम् फाण्ट । दे० 'कोसोनियम्' ।

इन्फ्युजम् क्रेसीरिई-[ले० Infusum krameriae] क्रामेरिया फाण्ट । दे० "क्रेसीरीई-रैडिक्स" ।

इन्फ्युजम क्वाशीई–[ले० Infusum quassiae] कासिया फाण्ट । नक़ूअ़ ख़शबुल्मुरं । दे० "कासिया"

इन्फ्युजम चिरेटी–[ले० Infusum chiratae] किरात तिक्त फाण्ट । चिरायते का फांट । दे० "चिरायता" ।

इन्फ्युजम चिरेटी कन्सण्ट्रेटम्-[ले० Infusum chiratae concentratum] चिरायते का घन फांट । दे० "चिरायता" ।

इन्फ्युजम जंशियानी कम्पाज़िटम्-[ले० Infusum gentianae compositum] मिश्रित जंशनमूल फांट । जिंतियाने का मिश्रित फांट । दे० "जिन्तियाना"।

इन्फ्युजम जंशियानी कम्पाज़िटम् कन्सण्ट्रेटम्–[ले० Infusum gentianae compositum concentratum] घन मिश्रित जंशनमूल फांट । दे० "जन्तियाना" ।

इन्फ्युजम जेबोरैण्डाई-[ले० Infusum jabcrandi] जाबोरंदी फांट ।

इन्फ्युजम टाइनासपोरी-[ले० Infusum tinosporae] गुरुच का फांट। दे० "गुरुच" ।

इन्फ्युजम टोडेलिई–[ले० Infusum todaliae] टोडेलिया फांट । जंगली काली मिर्च का फांट । दे० "मिर्चकाली जंगली" ।

इन्फ्युजम डल्केमारी–[ले० Infusum dalcamarae] काकमाची फांट । मकोय का फांट । दे० "मकोय" ।

इन्फ्युजम डिजिटेलिस-[ले० Infusum digitalis] डिजिटेलिस फांट । दे० "डिजिटेलिस"।

इन्फ्युजम डिजिटेलिस कन्सण्ट्रेटम्–[ले० Infusum digitalis concentratum] घन डिजिटेलिस फांट । दे० "डिजटेलिस" ।

इन्फ्युजम पल्साटिल्ली–[ले० Infusum pulsatillae] वायुपुष्प फांट । नक़ूअ़ शक़ायिक़ुन्नुअ़्मान ।

इन्फ्युजम पिक्रास्मा काशीआइडीस-[ले० Infusum picrasma quassioides] भार्गी फांट । भारंगी फांट । दे० "भारंगी" ।

इन्फ्युजम बर्बेरिडिस-[ले० Infusum berberidis] दारुहरिद्रा फांट । दे० "दारुहल्दी" ।

इन्फ्युजम बुकु (ब्युक्यु)-[ले० Infusum buchu] बक़ू फांट । दे० "बुक़ु" ।

इन्फ्युजम ब्युक्यु कन्सण्ट्रेटम–[ले० Infusum buchu concentratum] घन बक़ू फांट । दे० 'बुक़ु' ।

इन्फ्युजम ब्राइओनीई-[ले० Infusum bryoniae] शिवलिंगी-मूल फांट । दे० 'शिवलिङ्गी'।

इन्फ्युजम मैटिको–[ले० Infusum matico] मैतिकी फांट । दे० "मैटिकी फोलिया" ।

इन्फ्युजम मेनीऐन्थिस-[ले० Infusum menyanthis] मेनीऐन्थीज़ फांट । दे० "मेनीऐन्थीज़" ।

इन्फ्युजम युपेटोरियाई–[ले० Infusum eupatorii]अयापान फांट । दे० "अयापान" ।

इन्फ्युजम यूवी अर्साई-[ले० Infusum uvae ursi] ऋक्षद्राक्षा फांट । दे० ".इनबुद्दुब्ब" ।

इन्फ्युजम रोज़ी एसिडम–[ले० Infusum rosae acidum] गुलाब अम्ल फांट । गुलाब का खट्टा फांट । दे० 'गुलाब' ।

इन्फ्युजम र्‌हीआई–[ले॰ Infusum rhei] रेवंदचीनी का फांट । दे॰ "रेवन्दचीनी"।

इन्फ्युजम ल्युप्युलाई–[ले॰ Infusum lupuli] हशीशतुद्दीनार का फांट । दे॰ "हशीशतुद्दीनार" ।

इन्फ्युजम सर्पेण्टिरीई–[Infusum serpentariae] ज़रावंद अमरीकी का फांट ।

इन्फ्युजम सिंकोनी एसिडम्–[ले॰ Infusum cinchonae acidum] सिंकोना अम्ल फांट । दे॰ "सिंकोना" ।

इन्फ्युजम सिनेगी–[ले॰ Infusum senegae] सीनीगा फांट । ख़िसाँदहे बूलीग़ाली ।

इन्फ्युजम सेन्नी–[ले॰ Infusum sennae] स्वर्णमुखी फांट । सनाय का फांट । दे॰ 'सनाय'।

इन्फ्युजम स्कोपेरियाई–[ले॰ Infusum scoparii]स्कोपेरियाफांट।दे॰ "स्कोपेरीइरैकिक्स"।

इन्फ़्युज़न कन्सन्ट्रेटेड–[अं॰ Infusion, concentrated] घन फाण्ट । दे॰ "इन्फ्युजन"।

इन्फ़्युज़न्स-[अं॰ बहु॰ Infusions] फाण्ट । मन्क़ूआत–अ॰ । दे॰ "इन्फ़्युज़न" ।

इन्फ़्युज़म–[ले॰ ए॰ व॰ Infusum] फाण्ट । मन्क़ूअ–अ॰ ।

इन्फ़्युजा–[ले॰ बहु॰ Infusa] फाण्ट । मन्क़ूआत–अ॰ ।

इन्फ्लामेशन–[अं॰Inflammation] (Phlegmasia)प्रदाह । शोथ । इल्तिहाब–अ॰ । शोज़िश–फ़ा॰ । दे॰ "प्रदाह" ।

इन्फ्लुएञ्ज़ा–[अं॰ Influenza] दे॰ "इनफ्लुएञ्ज़ा" ।

इन्युला केम्फर–[अं॰ Inula camphor] रासन कपूर । दे॰ "रासन" ।

इन्युला क्वाड्रिफिडा–[ले॰ Inula quadrifida, *Ham.*] फटमेल । फटमेर । (Pulicaria crispa, *Benth.*)

उत्पत्ति-स्थान—पंजाब, गंगा का ऊपरी मैदान ।

इन्युला रॉयलिएना–[ले॰ Inula Royleana, *D. C.*] एक औषधि, कुट में जिसका मिश्रण किया जाता है ।

इन्युला रैसीमोसा–[ले॰ Inula racemosa, *Hook.*] एक पौधा जो पश्चिम हिमालय तथा काश्मीर में उत्पन्न होता है और पशुओं की औषधि में बल्य एवं आमाशय बलदायक रूप से प्रयुक्त होता है । गुण में इसकी जड़ अधिकतर रासन के समान होती है ।

इन्युला हेलीनियम्–[ले॰ Inula helenium, *Linn.*] (Elecampane) रासन । बाय सुरई । दे॰ "रासन" ।

इन्युलीन–[अं॰ Inulin] रासन में पाया जानेवाला एक प्रकार का सत्व ।

इन्युलोल–[अं॰ Inulol] एक प्रकार का सत्व जा रासन में विद्यमान होता है ।

इन्वका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] इन्वल । मृगशिरा नक्षत्र के उपरिस्थित पाँच तारे ।

इन्वर्टेड शूगर–[अं॰ Inverted Sugar] (Diabetin)मधुमेहीन । एक प्रकारका श्वेताभ स्फटिकीय चूर्ण जो जलविलेय होता है । दे॰ "डायबेटीन" ।

इन्शाअ़–[अ॰] मुँह और नाक में दवा टपकाना ।

इन्शाक़–[अ॰] औषध सुँघाना । नाक में औषध डालना ।

इन्शिआ़ब–[अ॰] शाखाओं में विभाजित होना । (Distribution) शाखा प्रशाखा हाना । विभाजन ।

इन्शिआ़रुल् अ़ज़्म–[अ॰] हड्डी में बाल आ जाना या सामान्य रूप से चिटक जाना । कैशिकीय अस्थि भग्न । ट्रिकिज़्मस Trichismus, कैपिलरी फ्रेक्चर Capillary fracture. (अं॰) ।

इन्शिक़ाक़–[अ॰] चिर जाना । किसी अवयव की बनावट का फट जाना । (Rupture, Laceration)

इन्शिज़ार–[अ॰] नींद उचाट होना ।

इन्शितार–[अ॰] पपोटों का ढीला होकर भीतर की ओर मुड़ा होना ।

इन्सफ्लेशन-[ले० Insufflation] [बहु० इन्सफ्लेशियोनीज़ Insufflationes] नसवार । नस्य । नास । सुँघनी । नफ़ूख़ (बहु० नफ़ूख़ात)-अ० । दे० "नस्य"।

इन्सफ्लेशियो आयोडोफॉर्माई-[ले० Insufflatio iodoformi] आयोडोफार्म नस्य ।

इन्सफ्लेशियो बेञ्ज़ोईनी-[ले० Insufflatio benzoini] लोबानीय नस्य । नसवार लोबानी । दे० "लोबान" ।

इन्सफ्लेशियो मॉर्फ़ाइनी-[ले० Insufflatio morphinae] अहिफेनीन नस्य । नसवार मार्फीन ।

इन्सफ्लेशियो मेन्थोल एट कोकेनी-[ले० Insufflatio menthol et cocainae] मेन्थाल कोकेनी नस्य । दे० "कोका" ।

इन्सफ्लेशियो युकेलिप्टाई गम्माई-[ले० Insufflatio eucalypti gummi] रक्तबोल नस्य ।दे० "युकेलिप्टस"।

इन्स़बाब-[अ०] गिरना । तिब की परिभाषा में माद्दे का गिरना । डिटरिमिनेशन Determination, इन्फ़िल्ट्रेशन Infiltration-(अं०)।

नोट—डिटरिमिनेशन का प्रयोग सामान्यत: रक्तचरण (रक्त के गिरने) के लिए और इन्फ़िल्ट्रेशन का अन्य रतूबात ग़रीब: के गिरने पर होता है ।

इन्सान-[अ०] (१) मनुष्य । आदमी ।(२)मनुष्य की परछाईं । दे० "इनसान" ।

इन्सानुल्ऐ़न-[अ०] नेत्रतारक । आँखकी पुतली । मर्दमक-फ़ा० । (Pupil)

इन्सानुल्माऽ-[अ०] (१) एक समुद्री प्राणी जो मनुष्य की शकल का होता है । इसको नबातुल् माऽ भी कहते हैं । (२) किसी-किसी के मत से मनुष्य की शकल की एक प्रकार की मछली जो रूमसागर में पाई जाती है । मु० अ० ।

इन्स़ार-[अ०] (१) नश्तर भोंकना । (२) नाक में साँस लेना । (३) नाक में दवा लेना ।

इन्सालीस-[यू०] एक अप्रसिद्ध पौधा जो गुणधर्म में अनाग़ालुसके समान होता है । यह आर्द्र क्षतों, अपस्मार, मूत्ररोध, वृक्क-शूल और जरायु काठिन्य में लाभदायक है । मु० अ० ।

इन्सास़ा-[?] मवेज़ । मुनक्का ।

इन्सि़आ़अ़-[अ०] मुख से क़ै और नाक या क्षत से ख़ून निकलना ।

इन्सिकाब-[अ०] पानी आदि का बहना । तिब की परिभाषा में शरीर में किसी रतूबत का स्रावित होना । इफ्युज़न Effusion, सफ्युज़न Suffusion, एक्स्ट्रावेज़ेशन Extravasation-(अं०) ।

इन्सि़क़ाब-[अ०] छिद्रयुक्त होना । सूराखदार होना । स्रोतपूर्ण होना ।

इन्सिकाब स़दीदी फ़ियुल्ऐ़न-[अ०] कमूनुल् मिद्दः । नेत्र में पूय-संचय । साधारणतः कॉर्निया (कनीनिका) के पीछे पूय संचित होता है । हाइपोपिअन Hypopyon-(अं०) ।

इन्सिकाब स़दीदी फ़ियुस़्स़द्र-[अ०] इ़हतिक़ानुल् मिद्दः फ़ियुस़्स़द्र । फुफ्फुसावरण में पूयस्राव एवं उसका संचित होना । पायोथोरैक्स Pyothorax, इम्पाइमा Empyema-(अं०) ।

इन्सिकाबुद्दम-[अ०] रक्त का रगों से स्रावित होजाना । एक्स्ट्रावज़ेशन ऑफ़ ब्लड Extravasation of Blood-(अं०) ।

इन्सिकाबुद्दम फ़ियुत्तामूर-[अ०] हृदावरणांतरीय रक्तोद्रेक । (Hemato-pericardium.)

इन्सिकाबुद्दम फ़ियुस़्स़द्र-[अ०] फुफ्फुसावरणकोशस्थ रक्तोद्रेक । (Hemato-thorax.)

इन्सित़ाल-[अ०] मद । नशा । सुकूर, कैफ़, नशा, मदहोशी-(फ़ा०) । (Ebriety.)

इन्सि़दाअ़-[अ०] चिर जाना । फटना । किसी रग का मध्य से फट जाना । (Rupture.)

इन्सि़दाक़-[अ०] उदर का ढीला होना ।

इन्सिदाद-[अ०] सुद्दा पड़ जाना । बंद होजाना । मार्ग रुक जाना । त्वचा के स्रोतों और रगों के मुँह का बंद होजाना । अवरोधन । (Obstruction.)

नोट—'इन्सिदाद' और सुद्दा के अर्थांतर के लिए दे० "सुद्दः" ।

इन्सिदाद ह.द्कः-[अ०] पुतली का बंद होजाना । सिनिज़ेसिस Synizesis-(अं०)।

इन्सिदादुत्तिहा.ल-[अ०]प्लैहिकीय अवरोध । प्लीहा में सुद्दे पड़ जाना । स्प्लीनम फ्रैक्सिसSpleenum phraxis-(अं०)।

इन्सिदादुर्रिह्.म-[अ०] जरायु के मुख का अवरुद्ध होजाना वा मिच जाना । मेट्रेमफ्रैक्सिस Metremphraxis.-(अं०)।

इन्सिदादुल् कुल्यः-[अ०] याकृर्दःय अवरोध । गुरदे में सुद्दे पड़ जाना । नेफ्रेमफ्रैक्सिस Nephremphraxis-(अं०)।

इन्सिदाम-[अ०] व्रण का अच्छा हो जाना ।

इन्सि.नाऽ-[अ०] (Inflexion) नमन । लचकना । झुकना । दोहरा होना । मोड़ ।

इन्सिफ़ाक-[अ०] (१) रक्तक्षरण । खून बहना । (२) अश्रुस्राव होना । आँसू जारी होना ।

इन्सि.माऽ-[अ०] खोपड़ी टूट जाना । करोटि भग्न ।

इन्सि.राअ-[अ०]अपस्मार के वेग से आक्रांत होना । मृगी का वेग होना ।

इन्सिराक़-[अ०] संधि शैथिल्य । जोड़ों का ढीला होना ।

इन्सि.राम-[अ०] दाँतों का टूट जाना ।

इन्सिलाक़-[अ०] सुलाक़ नामक रोग से आक्रान्त होना ।

इन्सिलालुल्-बौल-[अ०]ज़ूबूल । शरीर घुलना।कार्श्य । दुबला पतला हो जाना । (Emaciation)

इन्सिला.ह-[अ०] एड़ी फट जाना ।

इन्सी, इन्सियः-[अ०] आन्तरीय । आभ्यंतर । 'व.ह.शी' का उलटा । (Internal)

नोट—'इन्टर्नल' शब्द कभी-कभी आन्तरिक अवयवों के लिये भी प्रयोग में आता है ।

इन्हलेशन-[अं Inhalation] लख़लख़ा । सूँघने की सुगंधित वस्तु ।

इन्हाक-[अ०] दुर्बलीकरण । कर्षण । निर्बलीकरण । कमजोर करना ।

इन्हिकाक-[अ०] गर्भावस्था में गर्भवती के कूल्हे के जोड़ों का विस्तीर्ण होना ।

इन्हि.ज़ाम-[अ०] (Digestion)हज़्म होना । पचना ।

इन्हि.ज़ाम बतई-[अ०] देर में पचना ।

इन्हि.ज़ाम सरीअ-[अ०] शीघ्र पचना । जल्द हज़्म होना ।

इन्हि.तात्-[अ०] नीचे उतरना । कम होना । घटना । तिब की परिभाषा में रोग घटना । रोग-शमन-काल । वह काल जिसमें रोग घटने लगे और शारीरिक शक्ति विकृत दोष पर विजयी होने लगे ।

अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा में इन्हि.तात् का प्रयोग शक्ति क्षीण होने के अर्थ में भी हुआ है ।

डिक्लाइन Decline, रिज़ोल्युशन Resolution, डिफ़र्वेसेंस Defervescence-(अं०)।

नोट—डॉक्टरी शब्द डिक्लाइन रोग-शमन और शक्ति-नैर्बल्य दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है । रिज़ोल्युशन साधरणतः इन्हि.तात् मज़ के लिये और सामान्यतः शोथ-विलीन होने के अर्थ में प्रयुक्त होता है । डिफ़र्वेसेंस इन्हि.तात् हुम्मा (ज्वरोपशमन) के अर्थ में व्यवहृत होता है ।

इन्हि.तात् कुल्ली-[अ०] ज़ोफ़ कुल्ली । सकूत कुव्वत । अंतिम कक्षा की अशक्तता । असीम निर्बलता । इसमें रोगी अत्यन्त निर्बल हो जाता है । शीतल स्वेद-स्राव होता और सम्पूर्ण शरीर शीतल हो जाता है अर्थात् शीतांगता उपस्थित होती है । साँस लेने में कष्ट होता है और रोगी से बोला नहीं जाता । चेहरा दब जाता है । आँखें पथरा जाती हैं और उनकी चारों ओर नीलाभ घेरा पड़ जाता है । नाड़ी निर्बल और अटक-अटक कर चलती है और मुखमंडल पर मुरदनी छा जाती है । कोलैप्सCollapse (अं०)।

टिप्पणी—प्राचीन तिब्बी परिभाषा में 'इन्हि.तात् कुल्ली का प्रयोग रोग के इन्हि.तात् कुल्ली अर्थात् रोग के पराजित होने और शक्ति के विजय प्राप्त करने पर होता था । अस्तु, तिब के प्राचीन ग्रंथों के अनुसार इसका भावार्थ 'रोग पर शरीर शक्ति का विजयी होजाना' होता है । अर्वाचीन मिश्रदेशीय ग्रंथों के अनुसार इसका अर्थ असीम निर्बलता है ।

इन्हि.तात् जुज़्ई–[अ०] रोग के वेग का घटना। विराम-काल जो विषम ज्वरों में आता है। रेमिशन Remission, डिक्लाइन Decline–(अं०)।

इन्हि.तातुल् अज्नास–[अ०] इस्तिहालहे दनियः। उत्कृष्ट से निकृष्ट बन जाना। तिब के अनुसार किसी अवयव की रचना का अपनी प्राकृतिक एवं वास्तविक गठन को छोड़कर निम्न श्रेणीकी रचना में परिवर्तित हो जाना, जिससे उसके कार्य में विकार उत्पन्न हो जाएँ।

इन्हि.दाब–[अ०] कुबड़ा होना।

इन्हि.नाऽ, इन्सि.नाऽ–[अ०] वक्रीभवन। टेढ़ा होना। ख़मदार होना। कुबड़ा होना। नत होना। पेचीदा होना। मोड़।

फ्लेक्शन Flexion–(अं०)।

इन्हि.नाउल् अज़्फ़ार–[अ०] नख टेढ़ा होना। नाख़ून का मुड़ जाना। ऑनिकोग्रिफ़ोसिस Onychogryphosis–(अं०)।

इन्हि.नाए सीनी–[अ०] तअ्रीज सीनी। अधोगामी वृहदांत्र का वह वक्र भाग जो सरलांत्र से मिलता है और अँगरेज़ी अक्षर (S) की तरह होता है। सिग्मॉइड फ्लेक्सर Sigmoid Flexure (अं०)।

इन्हि.बास–[अ०] अवरुद्ध होना। रुकना। बन्द होना।

इन्हि.माक़–[अ०] मूर्ख होना। बेवक़ूफ़ बनना।

इन्हि.मास्–[अ०] शोथ कम होना। शोथ का विलीन होना। सूजन का दब जाना। सूजन उतरना।

इन्हि.लाब–[अ०] (१) अश्रुस्राव होना। आँसू बहना। (२) स्वेद स्राव होना। पसीना निकलना। (३) मुख से लालास्राव होना। लाला प्रवर्त्तन।

इन्हि.लाल–[अ०] विस्तृत होना। प्रसरण। विश्लेषण। स्वतंत्र होना। अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा में किसी सांद्र पदार्थ का तरल द्रव्य में विलीन हो जाना। विलीनता। जैसे–लवण तथा शोरा जल में विलीन हो जाते हैं। (Dissolution)

इन्हि.लालुल् फ़र्द–[अ०] अज्ज़ाए मुफ़्रिदः (अमिश्रित अवयवों) में संबंध-विच्छेद (पार्थक्य) उपस्थित होना।

इन्हि.सार–[अ०] बाल झड़ना। टाइलोसिस Ptilosis–(अं०)।

इपर–संज्ञा पुं० [?] हाशा–अ०। (Thymus Serphyllum) इं० मे० मे०।

इपीका–[अं०] इपीकेकाना रूट (Ipecacuanha Root)।

इपीकाक–Ipecac
इपीकाक रूट–Ipecac root } [अं०] इपीकेकाना।

इपीकेकाना—संज्ञा स्त्री० [अं० Ipecacuanha] एक छोटा सा पौदा जिसकी सूखी हुई जड़ ब्राजील देश (दक्षिणी अमेरिका) से आती और औषध के काम में लाई जाती है। इसके पौधे को लेटिन भाषा में साइकोट्रिया इपीकेकाना (Psychotria ipecacuanha) कहते हैं।

मंजिष्ठा वर्ग

(*N. O. Rubiaceae.*)

उत्पत्ति स्थान—ब्राज़ील (दक्षिणी अमेरिका)।

इतिहास—ब्राज़ील निवासी तो पेचिस प्रभृति में और वामक रूप से उक्त औषध का व्यवहार अति प्राचीन काल से करते आ रहे हैं। किंतु यूरोप में सन् १६७२ ई० से पूर्व इसका उपयोग नहीं हुआ। सन् १६८६ ई० में फ्रांस में डॉक्टर हलवीटयूस को उक्त औषध से पेचिस की चिकित्सा में आशातीत सफलता हुई। पर उन्होंने इसे सर्व साधारण पर प्रगट नहीं किया। अंततः फ्रांस-अधिपति चौदहवें लुइस ने उन्हें उसके बदले एक हज़ार डॉलर देकर उक्त औषध को सर्वसाधारण में घोषित करा दिया। फिर भी उक्त औषध के परिचय एवं यथार्थता के विषय में डॉक्टरों को बहुत कुछ अड़चनें थी। अंततः सन् १८०० ई० में एक सैनिक पुर्त्तगाल देशीय चिकित्सक ब्राजील से लिस्बन में उक्त औषध के ठीक सुनिश्चित नमूने लाया। सन् १८६८ ई० में यह औषधि कलकत्ता के वनस्पत्युद्यान में भी

लगाई गई; किंतु बहुत प्रयत्न करने पर भी यह लग न सकी।

भेद

(१) इन्डियन इपीकेकाइना—(Indian ipecacuanha) जिसके वृक्ष को लेटिन भाषा में टाइलोफोरा आज़्मेटिका (Tolophora asthmatica) कहते हैं, हिंदी में उसे जंगली पिकवन या अन्तमूल कहते हैं। वि० दे० "अन्तमूल"।

(२) बष्टर्ड इपीकेकाना (Bastard Ipecacuaha) जिसके वृक्ष को वनस्पतिशास्त्र की परिभाषा में ऐस्क्लीपियस क्युरासाविका (Asclepias curıssavica) कहते हैं हिंदी में उसे काकतुंडी और मराठी में कर्की कहते हैं। इसका मूलोत्पत्ति स्थान तो पश्चिमी भारतीय द्वीप (West Indies) और दक्षिणी अमेरिका है और वहीं से यह भारतवर्ष में लाई गई। अब कतिपय स्थानों में यह खुदरव होती है। इसको मिल्क वीड (Milk weed) अर्थात् दुग्ध-तृण, सिल्क-वीड (Silk weed) अर्थात् रेशम घास और वाइल्ड कॉटन (Wild cotton) अर्थात् अरण्यतूल भी कहते हैं। इस जाति की समग्र वनस्पतियों में कैलोट्रापिस (Cplotropis) अर्थात् मदार के गुणधर्म वर्तमान होते हैं। (इसीलिये अर्क मूलत्वक्-'देखो—"आक" भी इपीकेकाना की उत्तम प्रतिनिधि है।) मार्टिनीको (Martineque) नामक द्वीप (जो पश्चिमी द्वीप समूहों में से है और फ्रांस के अधीन है) में इसको इपीकेकाना ब्लैंक (Ipecacuanha blanc) कहते हैं और इसकी जड़ ब्राज़ीली इपीकेकाना के स्थान में व्यवहार करते हैं। (दे० फा० इं० २ भ० पृ० ४२७)

(३) कंट्री (इपीकेकाना Country Ipecacuanha) जिसके वृक्ष को वानस्पतिक परिभाषा के अनुसार नैरंगामिया एलेटा (Naregamia alata) कहते हैं; मराठी भाषा में इसको 'पित्तपापड़ा' और "तिनपानी" कहते हैं। गोआ (भारतीय पुर्तगाली इलाक़ा) के पुर्त्तगाली लोग इसे 'देशी इपीकेकाना' कहते हैं। प्रसिद्ध पुर्त्तगाली डॉक्टर 'गार्सियाडी औरटा' इसको ओकरी अर्थात् वामक (Emetic) संज्ञा से अभिहित करता है और प्रवाहिका रोग में इसके लाभकारी होने की बहुत प्रशंसा करता है। कतिपय आंग्ल डाक्टरों ने मदरास में इसका उग्र आमातिसार (Acute dysentery) में एवं वामक तथा श्लेष्मनिःसारक रूपसे व्यवहार किया और इसको ब्राज़ीली इपीकेकाना के समान ही उपयोगी पाया। इसकी मात्रा भी उक्त इपीकेकाना के बराबर है। (वि० दे० फा० इं० १ भ०—पृ० ३३३)

डाक्टरी में उपर्युक्त इपीकेकाना-साइकोट्रिया की जड़ औषध-कार्य में आती है और यह ब्रिटिश फार्माकोपिया में ऑफिशल है। अस्तु, अब इसीका वर्णन किया जाता है।

इपीकेकाना की जड़

इपीकेकाइनी रैडिक्स Ipecacuanhae radix.-(ले०)। इपीकेकाना रूट Ipecacuanha root, हिप्पो Hippo.-(अं०)। इपीकेकाना मूल, विदेशी अंतमूल की जड़-(हिं०)। .इकुर्ऱ.ज़हब-(अ०)। अपीका (फारसीकृत)। इपीका, अपीका-(उ०)।

आफ़िशल (*Official*)

लक्षण वा परिचय—यह जड़ें वेलनाकार, न्यूनाधिक बल खाये हुए छोटे-छोटे टुकड़ों की शकल में होती हैं। प्रत्येक खंड २ से ६ इंच तक दीर्घाकार और लगभग $\frac{1}{4}$ इंचके व्यास में (मोटा) होता है। छाल मोटी जिस पर बेकायदा रेखाएँ और छल्ले बने हुए या गाँठें सी पड़ी हुई होती हैं। इस कारण ये माला की गुरिया की तरह मालूम होती हैं। रंगत लाल वा भूरी होती, तोड़नेसे निर्यासवत् वा मोम के पदार्थ की तरह टूटती हैं। लकड़ी भीतर से सफेद, गंध हलकी विशेष प्रकार की, स्वाद तिक्त और खराशदार होता है। प्रभावात्मक सार बहुधा छाल में ही पाये जाते हैं। भीतर की लकड़ी प्रभावशून्य होती है।

नोट—कार्थेजीनिया की इपीकेकाना की जड़ें

किंचित् मोटी होती हैं और उस पर जो गाँठें वा छल्ले पड़े होते हैं, वे प्रशस्त होते हैं।

मिश्रण वा खोट—इपीकेकाना की जड़ों में प्रायः अनन्तमूल की जड़ें (Hemidesmus root) मिला दी जाती हैं, जिन पर दरारें होती हैं और वह छल्लेदार वा गिरहदार नहीं होतीं। पल्विस इपीकेकाना में आमंड पाउडर मिला देते हैं। परंतु उसे क्लेदित करने से उसमें से प्रस्सिक एसिड की गंध आती है।

रासायनिक संघटन—इसमें (१) एमेटीन (Emetin) १·४५ प्रतिशत, (२) सैफिलीन (Cephæline) ·५२ प्रतिशत, (३) तीसरा एक क्षारोद अर्थात् एलकलाइड साइकोट्रीन Psychotrine, (४) सैफीलिक एसिड, (५) एक ग्ल्युकोसाइड. (६) श्वेत सार, वालेटाइल ऑइल और निर्यास प्रभृति पाये जाते हैं।

प्रभाव—श्लेष्मानिःसारक (Expectorant) और वामक (Emetic)।

मात्रा—श्लेष्मानिःसारक रूप से $\frac{1}{2}$ से २ग्रेन वामक रूप से १५ से ३० ग्रेन। एक वर्षीय शिशु के लिए श्लेष्मा निःसारणार्थ $\frac{१}{१२}$ से $\frac{1}{4}$ ग्रेन, वमनार्थ २ से ४ ग्रेन।

सम्मत योग

(*Official Preparations*)

(१) एक्सट्रैक्टम् इपीकेकानी लिक्विडम् Extractum ipecacuanhæ liquidum (लै०)। लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ इपीकेकाना Liquid extract of Ipecacuanha (अं०)। इपीकेकाना तरल-रसक्रिया इपीकेकाना द्रवसार। ख़ुलासहे इक़ुऱ्ज़हब सय्याल (अ०)। ख़ुलासहे इपीका सय्याल।

निर्म्माण-विधि—इपीकेकाना का चूर्ण १ पौंड, कैल्सियम हाइड्राक्साइड ७०० ग्रेन, एलकोहल ६०% आवश्यकतानुसार। परकोलेशन प्रभृति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

शक्ति—इसमें स्थायी रूप से ११० बूँद में २ से २$\frac{1}{4}$ ग्रेन क्षारोद प्रभृति होते हैं।

मात्रा—श्लेष्मानिःसारक रूप से $\frac{1}{2}$ से २बूँद। वामक रूप से १५ से २० बूँद तक।

(२) पिल्युला इपीकेकानी कम सिल्ला—(Pialula ipecacuanha cum scilla) (लै०)। पिल ऑफ इपीकेकाना विथ स्क्विल Pill of Ipecacuanha with Squill (अं०)। विदेशी वनपलाण्डु-इपीकेकाना वटिका, काँदा और इपीका की गोली। हब्बे इक़ुऱ्ज़हब व इस्क़ील, हब्बे इपीका व प्याज़ दश्ती।

निर्म्माण-विधि—कंपाउंड पाउडर ऑफ इपीकेकाना ३ आउंस, स्कील (वन पलांडु) का चूर्ण १ आउंस, एमोनायकम् (उशक़)का चूर्ण १ आउंस, सिरप आफ ग्ल्युकोज़ आवश्यकतानुसार—सबको भली भाँति मिलाकर कल्क प्रस्तुत करें।

शक्ति—(२० भागमें लगभग १ भाग ओपियम् अर्थात् अफीम) मात्रा—४ से ८ ग्रेन अर्थात् २ से ४ रत्ती=(·२६ से ·५२ ग्राम)।

गुण—कफनिःसारक और मूत्रप्रवर्त्तक।

(३) पिल्युला इपीकेकानी कम अर्जीनिया Pilula ipecacuanhæ cum urginea. (लै०)। पिल आफ इपीकेकाना विथ इंडियन स्क्विल Pill of ipecacuanha with Indian squill (अं०)। वनपलांडु-इपीकेकाना वटी। हब्ब इक़ुऱ्ज़हब व बस़लुलफ़ार (अ०)। हब्ब इपीका व प्याज़दश्ती हिंदी।

निर्माण-विधि—कंपाउंड पाउडर आफ़ इपीकेकाना ३ आउंस, स्क्विल (भारतीय वनपलांडु) का चूर्ण एक आउंस, एमोनाइकम् का चूर्ण १ आउंस, सिरप आफ ग्ल्युकोज़ आवश्यकतानुसार। शक्ति—(२० भाग में लगभग १ भाग अफीम)। मात्रा—४ से ८ ग्रेन(२ से ४ रत्ती)।

(४) पल्विस इपीकेकानी कंपाजिटस Pulvis ipecacuanhæ compositus (लै०)। कंपाउंड पाउडर आफ इपीकेकाना Compound powder of ipecacuanha (लै०)। डोवर्स पाउडर Dover's powder (अं०)। मिश्र इपीकाक चूर्ण,

(हिं०)। सफ़ूफ़ .इक़ुड़.ज़हब मुरक्कब (अ०)। सफ़ूफ इपीका मुरक्कब, सफ़ूफ डोवर (उ०)।

निर्माण-विधि—इपीकेकाना का चूर्ण १ भाग, अफीम (आपियम्) का चूर्ण १ भाग, पोटेसियम् सल्फेट ८ भाग—सबको परस्पर मिलालें।

शक्ति—(१० भाग में १ भाग अफीम और १ भाग इपीकाक)। मात्रा—५ से १५ ग्रेन अर्थात् २॥ रत्तीसे ७॥ रत्ती तक(=·३ से १ग्राम)। प्रभाव—स्वेदक और वेदनास्थापक।

(५) ट्राकिस्कस इपीकेकानी Trochiscus ipecacuanhæ (ले०)। इपीकेकाना लाज़ेंज Ipecacuanha lozenge (अं०)। कुर्स .इक़ुड़.ज़हब (अ०)। क़ुर्स अपीका (उ०)। इपीकाकाना की टिकिया (हिं०)।

निर्माण-विधि—इपीकेकाना की जड़ का चूर्ण $\frac{1}{4}$ ग्रेन=(·०१५ ग्राम) फ्रूट बेसिस के साथ मिलाकर टिकिया बनालें। मात्रा—१ से ३ टिकिया। प्रभाव—कफनिःसारक।

(६) ट्रॉकिस्कस मॉर्फीनी एट इपीकेकानी Trochiscus Morphinæ et Ipecacuanhæ (ले०)। मॉर्फीन एण्ड इपीकेकाना लॉज़ेंज Morphin and Ipecacuanha Lozenge (अं०)। अहिफेनीन एवं इपीकेकाना की टिकिया। क़ुर्स मॉर्फीन व .इकुड़.ज़हब (अ०)। क़ुर्स मॉर्फीन व इपीका—

निर्म्माण-विधि—$\frac{१}{३६}$ ग्रेन मॉर्फीन हाइड्रोक्लोराइड और $\frac{१}{१२}$ ग्रेन इपीकेकाना का चूर्ण, टोलूबेसिस के साथ मिलाकर टिकिया बनालें। मात्रा—१ से ६ टिकिया। १-१ टिकिया कास निवारणार्थ खिलाया करें। यह डोवर्स पाउडरवत् प्रभाव करता है।

(७) वाइनम इपीकेकानी Vinum Ipecacuanhæ (ले०)। इपीकेकाना वाइन Ipecacuanha wine (अं०)। इपीका सुरा। शराब .इकुड़.ज़हब। शराब अपीका।

निर्माण-विधि—लिक्विड एक्सट्रैक्ट आफ इपीकेकाना १ फ्लुइड आउंस, शेरी वाइन १० फ्लुइड आउंस, दोनों को मिलाकर ४८ घंटे रखने के उपरांत फिल्टरकर लें। शक्ति-(२० में १)

मात्रा—श्लेष्मानिःसारक रूप से १० से ३० मिनिम, वामकरूपेण ४ से ६ फ्लुइड ड्राम। एक वर्ष के शिशु को कफनिःसारणार्थ २ से ३ मिनिम; वमनार्थ १ ड्राम।

(८) एसीटम् इपीकेकानी Acetum Ipecacuanhæ (ले०)। विनेगर ऑफ इपीकेकाना Vinegar of Ipecacuanha (अं०)। इपीकाचुक्र। ख़ल्ले .इकुड़.ज़हब। सिरकहे अपीका।

निर्माण-विधि—लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ इपीकेकाना १ फ्लुइड आउंस, एलकोहल (६०%) २ फ्लुइड आउंस, डायलूट(जलमिश्रित) एसीटिक एसिड १७ फ्लुइड आउंस, सभी चीज़ोंको परस्पर मिलाकर फिल्टर करें। आवश्यकता होने पर इतना डायलूट एसीटिक एसिड और मिलाएँ जिसमें कुल का द्रव्यमान एक पाइंट होजाय।

शक्ति-(२० में १)

मात्रा--१० से ३० बूँद=(·६ से १·८ घन शतांशमीटर)।

असम्मत योग एवं पेटेन्ट औषधें
(*Not official Preparations*)

(१) एलिक्सिर इपीकेकानी Elixir Ipecacuanhæ (ले०)। इक्सीर .इ.कुड़.हब। इक्सीर इपीका। निर्माण-विधि-लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ एपीकेकाना १ भाग, रेक्टिफाइड स्पिरिट १ भाग, सिम्पल एलिक्सिर १ भाग, ग्लीसरीन ५ भाग, :जल इतना जितने में कुल २० भाग हो जाएँ। (बी० पी० सी०)

(२) लिंक्टस इपीकेकानी Linctus Ipecacuanhæ-इपीकालेह। लऊक़ .इक़ुड़.ज़हब। लऊक़ अपीका। विनेगर ऑफ इपीकेकाना, सिरप ऑफ टोलू, ग्लीसरीन, म्युसिलेज ऑफ ट्रैगाकंथ प्रत्येक समान भाग।

मात्रा--१ ड्राम।

(३) पल्विस इपीकेकानी साइन एमीटीना Pulvis Ipecacuanhæ Sine Emetina (ले०)। डी-एमेटाइज़्ड इपीनेकाना

De-emetized Ipecacuanhæ(अं०)। कहते हैं कि प्रवाहिका (Dysentery) में यह भी पल्विस इपीकेकाना की तरह लाभकारी है, पर इससे वमन नहीं आते।

(४) सिरुपस इपीकेकानी एसीटिकस Syrupus ipecacuanhæ aceticus-(ले०)। इपीका चुक्रशर्बत। शर्बत अपीका ख़ल्ली। एसीटम् इपीकेकानी एक पाइंट, शूगर ३६आउंस, अपीका चुक्र में शकर को मंदाग्नि पर हल करें।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड ड्राम।

(५) टिंक्च्युरा इपीकेकानी कम ओपियो Tinctura ipecacuanhœ cum opio (ले०)। फ्लुइड डोवर्स पाउडर Fluid dover's powder (अं०)। अहिफेन इपीकासव। तअ़्फ़ीन अपीका व अफ़्यून। सय्याल सफ़ूफ़ें डोवर।

मात्रा—५ से १० बूँद।

(६) एमेटीन हाइड्रोब्रोमाइडम Emetine hydrobromidum (ले०) तथा एमेटीन हाइड्रोक्लोराइडम Emetine hydrochloridum (ले०)—ये दोनों यौगिक रेशम के तंतुओं की तरह के होते हैं।

मात्रा—कफनि:सारक रूप से $\frac{१}{६०}$ ग्रेन से $\frac{१}{२०}$ ग्रेन तक। वामक रूपेण $\frac{1}{6}$ से $\frac{1}{3}$ ग्रेन।

गुण-धर्म—ये प्रबल वामक और श्लेष्मा नि:सारक हैं। विशेषतः एमेटीन हाइड्रोक्लोराइड। जब इपीकेकाना का वामक प्रभाव अनपेक्षित हो तब इसे थोड़ी मात्रा में देने से पूर्ण लाभ होता है और जब क़ै के साथ अधिक निर्बलता-कारक प्रभाव अपेक्षित हो, तब इसको $\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{6}$ ग्रेन की मात्रा में दे सकते हैं। एमेटीन हाइड्रोक्लोराइड एक ग्रेन ८ आउंस शेरी शराब में मिलाने से वाइनम् एमेटीनी बन जाती है, जिसकी शक्ति वाइनम् इपीकेकानी के बराबर होती है। वाइनम् एमेटीनी प्रबल श्लेष्मानि:सारक और वामक है।

(७) सेफीलीन हाइड्रोक्लोराइड Cephaeline hydrochloride—इसकी वे रंग शक्लमें होती हैं। यह एमेटीन की अपेक्षा प्रबलतर वामक (Emetic) है।

मात्रा—$\frac{१}{१२}$ से $\frac{1}{4}$ ग्रेन।

इपीकेकाना की फार्माकोलॉजी अर्थात् प्रभाव

वाह्य प्रभाव

इपीकेकाना का चूर्ण त्वचा पर क्षोभक (Irritant), आरुण्यजनक (Rubifacient) और फोस्काजनक (Pustulant) प्रभाव करता है अर्थात् इसके उपयोग से त्वचा पर ख़राश होती है, त्वचा लालिमायुक्त हो जाती है और उस पर विस्फोटक एवं आबले पैदा हो जाते हैं। इसके चूर्ण सूँघने वा इसके नस्य लेने से आँखों और नाक में क्षोभ होकर उनसे पानी आने लगता है और छींकें आती हैं। वायुप्रणाली में क्षोभ होकर कभी-कभी दमे के से लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। यह पचन-निवारक (Antiseptic) भी है; क्योंकि इससे ऐन्थ्रैक्स के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

आंतरिक प्रभाव

अन्न-प्रणाली (अन्नमार्ग, मुख, आमाशय, अन्त्र) और यकृत—यह उग्रताकारक है और इसका स्वाद कड़ुआ है। अतएव मुख में क्षोभ होकर लालास्राव विवर्द्धित होता है। अल्प मात्रा में ($\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रेन)देने से यह आमाशयगत स्थानीय रक्त-संवहन क्रिया को तीव्र करती है अर्थात् आमाशयगत धमनियाँ विस्तीर्ण होजाती हैं और आमाशयिक रस अधिक पैदा होकर, पाचन शक्ति को साहाय्य प्रदान होता है। अस्तु, अल्प मात्रा में यह पाचक (Stomachic) है। पर अधिक मात्रा (१५ से ३० ग्रेन) में प्रयोजित करने से यह वामक (Emetic) प्रभाव करती है। इसका उक्त वामक प्रभाव कुछ तो इसके आमाशय पर उग्रताकारक प्रभाव करने के फल स्वरूप होता है और कुछ सुषुम्नाशीर्षक (Medulla) स्थित वमन-केंद्र पर एमेटीन के प्रभाव करने से, अतएव यह सरल(Direct) और गौण (Indirect) वामक है। (दे० "वामक")। न्युमोगैष्ट्रिक (फुफ्फुसामाशयिक

वात-सूत्रों) के छेदनोपरांत एमेटीन या सेफीलीन को त्वगीय सूचीवेधन द्वारा प्रयुक्त करने से भी यह गौण (Indirect) वामक प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। इपीकेक्काना से क़ै यद्यपि किंचिद् विलम्ब से आती है, पर आती अवश्यमेव है और ऐण्टिमनी (अंजन) की अपेक्षा इससे जी कम मिचलाता और निर्बलता भी कम होती है।

किसी-किसी अवस्था में वाइनम् इपीकेक्काना को एक-एक बूँद किंचित् जल में मिलाकर चौथाई या आध-आध घंटे के उपरांत कतिपय बार देने से वमन आना रुक जाता है।

बड़ी मात्राओं में देने से यह आँतों में भी क्षोभक प्रभाव करती है। अस्तु, उनका रसोद्रेक एवं कृमिवत् आकुंचन विवर्द्धित होकर विरेक् आने लगते हैं।

इपीकेक्काना के क्षारोदों (Alkaloids) का यकृत् पर सरलोत्तेजक प्रभाव होता है अर्थात् इसके उपयोग से पित्तोद्रेक अधिक होता है। अतएव यह एक सरल पित्तोद्रेचनकारक (Direct cholagogue) है।

हृदय तथा शोणित—ऐमेटीन और सेफीलीन (इपीकेक्काना सारद्वय) श्लैष्मिककला से होकर खून में अभिशोषित होजाती है और उन्हीं के द्वारा इनका उत्सर्ग होता है, प्रधानतः श्वासोच्छ्वास पथ, आमाशय और अंत्र की श्लैष्मिककला द्वारा रक्त पर इनका कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं होता। बड़ी मात्रा में प्रयोजित करने से यह हृदय पर निर्बलताजनक प्रभाव करती है।

श्वासोच्छ्वास मार्ग—अपने उत्सर्गकाल में इपीकेक्काना वायुप्रणालियों की श्लैष्मिक कलाओं को अत्यन्त चेष्टा प्रदान करती है। इसलिए उनकी धमनियाँ विस्तारित होजाती हैं और उनसे अत्यधिक रसोद्रेक होता है। परावर्त्तित रूप से खाँसी भी आने लगती है। अस्तु, यह श्लेष्मा निःसारक (Expectorant) है।

ऐमेटीन भी एपोमार्फीनकी तरह हवा की नाली (Trachea) में रसोद्रेक की वृद्धि करती है।

त्वचा—बीच की वा औसत मात्रा में ($\frac{1}{2}$ से १ ग्रेन) प्रयोजित करने से यह त्वचा को चेष्टा प्रदान करती है और पसीना लाती है। पर यदि इसे अफीम के साथ मिलाकर (डोवर्स पाउडर रूप में) दिया जाय, तो इसका यह स्वेदक प्रभाव तीव्रतर होजाता है।

गर्भाशय—इपीकेक्काना सरल जरायु-संकोचक प्रभाव करती है। इसलिए प्रसव की प्रारंभिक कक्षा में कभी-कभी इसको दिया करते हैं और इससे उपकार भी होता है। अतएव गर्भवती स्त्रियों को इसे अधिक मात्रा में न देना चाहिए। क्योंकि इससे गर्भपात की आशंका होती है।

इपीकेक्काना के प्रयोग (थेराप्युटिक्स)

बहिः प्रयोग

उग्रताकारक रूप से इपीकेक्काना का वाह्य प्रयोग बिलकुल नहीं करते। किन्तु पचननिवारक रूप से ऐन्थ्रैक्स (जमूरः) में इसका उपयोग करने से लाभ होता है। अतएव उक्त रोग में क्षत पर इसका चूर्ण बुरकते हैं, साथ ही ५-५ ग्रेन की मात्रा में इसका आंतरिक प्रयोग करते हैं। बिच्छू एवं ततैया के दंश स्थान पर इसका प्रलेप करने से वेदना शांत होजाती है और ज़हर नहीं चढ़ता।

अन्तः प्रयोग

अन्नप्रणाली—एटोनिक डिस्पेप्सिया (आमाशय नैर्बल्यजनित अजीर्ण)में वाइनम् इपीकेक्कानी ३ से ५ बूँद या सफूफ इपीकेक्काना $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रेन अन्य आमाशय बलदायक एवं तिक्तौषध के साथ मिलाकर देने से उपकार होता है।

गर्भकालीन वमन, अधिक मद्यपानजनित क़ै, अर्द्धावभेदक जन्य क़ै और ज्वर एवं अन्य व्याधियों में आमाशयगत क्षोभ के कारण जो वमन आते हैं, उनमें वाइनम इपीकेक्कानी १-१ बूँद की मात्रा में थोड़े पानीमें मिलाकर, चौथाई या आध-आध घंटे उपरांत देने से प्रायः क़ै आना बंद होजाता है। गर्भस्थापनकाल में होनेवाले वमनोद्वेग के रोकने के लिए तो इसका सामान्य रूप से व्यवहार होता है। इपीकेक्काना यद्यपि वामक (Emetic)है; पर चूँकि इससे देर में(२० वा ३० मिनट में) क़ै होती है, अतएव किसी विष को आमाशय से वमन द्वारा निःसृत करने के

लिए इसको नहीं दिया करते। किंतु सीनेके प्रादाहिक रोगों उदाहरणः कास,कुकुर खाँसी(Whooping cough), ख़ुनाक़ वबाई वा रोहिणी (Diphtheria) और ज़ुबहा(Croup) प्रभृति में यह एक अतीव उपयोगी वामक औषध है। इन व्याधियों में इससे क़ै के साथ न केवल श्लेष्मा ही निःसृत होती है, अपितु श्वास-मार्ग की श्लैष्मिक कला पर जो इसका उत्तेजक प्रभाव पड़ता है और अनन्तर जो निर्बलता (Depression) प्रतीत होती है, वह भी अतिशय क्षेमकारी होती है। क्योंकि इससे प्रदाह कम हो जाता है। शिशुओं की इन व्याधियों में विशेष रूपसे इस औषधको व्यवहार में लाते हैं। क्योंकि शिशु भली भाँति खाँसकर कफ नहीं निकाल सकते, इस हेतु उनमें यह अत्युपयोगी होती है। किंतु ऐसी दशा में एक या दो ड्राम वाइनम् इपीकेकानी एक-एक या दो-दो घंटे उपरांत शिशु को क़ै आने तक देते रहें। किसी-किसी में इसका केवल रेचक प्रभाव होता है। शुरू बुख़ार में अजीर्ण आहार को आमाशय से निःसृत करने के लिए एवं पित्तकी उल्वणता में यह एक परमोत्कृष्ट वामक (Emetic) औषध है। आमाशयिक व्रण (Gastric ulcer) में किसी-किसी समय कंपाउंड पाउडर ऑफ इपीकेकाना (डोवर्स पाउडर) से बहुत उपकार होता है।

उग्र रक्तामाशय (Acute dysentery) के लिये इपीकेकाना एक प्रधान औषध है; परंतु उक्त रोग में इससे किस प्रकार लाभ होता है, अभी तक अज्ञात है। उक्त रोग में इसको इस प्रकार सेवन करते हैं—

(१) प्रथम रोगी को दो घंटे तक कुछ खाने को न दें। पुनः उसके आमाशय-हृदय द्वार (कौड़ी) पर बीस मिनट तक राई का पलस्तर लगाएँ और १० या १५ बूँद टिंक्चर ओपियम् थोड़े पानी में मिलाकर पिला दें। उसके आधे वा एक घंटे के उपरांत ६० था ९० ग्रेन इपीकेकाना के चूर्ण को किंचित् शहद में मिलाकर चटा दें या इसकी बड़ी बड़ी गोलियाँ बनाकर खिला दें और रोगी को आराम से लिटा दें। उसे चलने फिरने से वर्जित कर दें। दवा खिलाने के चार घंटे उपरांत तक उसे कोई वस्तु खाने पीने न दें, अन्यथा वमन आने लग जाते हैं! अथवा एक ही बार बड़ी मात्रा में देने के बदले इसको छोटी छोटी मात्राओं में दें। अस्तु, (२) आमाशय-हृदय द्वार पर राई लगाने या टिंक्चर ओपियम् देने के आध या एक घंटे उपरांत २० या ३० ग्रेन इपीकेकाना का चूर्ण थोड़ा मधु मिलाकर चटा दें अथवा गोंदके लुआब प्रभृतिसे इसकी बड़ी वटिकाएँ प्रस्तुत कर खिला दें। फिर २०—२० ग्रेन इपीकेकाना का चूर्ण चार-चार घंटे के उपरांत दो-तीन बार और दें। परंतु औषध सेवनोपरांत रोगी को चलने फिरने से और कम से कम दो घंटे तक पानी पीने से परहेज़ रखना चाहिए, वरन् वमन आने लग जाते हैं। पर यदि उग्र पिपासा जनित कष्ट हो, तो बर्फ़ के टुकड़े चुसा सकते हैं और दो मात्राएँ देने के उपरांत यदि रोगी भूख न रोक सके, तो बीच के वक़्फ़ा में उसे कोई द्रव पथ्य, उदाहरणतः साग़ू या पतली खिचड़ी प्रभृति दे सकते हैं। यदि इस प्रकार औषध न पचे और क़ै आ जाय तो (३) इसे ईसबगोल या बिहीदाना के लुआब में मिलाकर और उसमें १५ मिनिम लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ ओपियम् सम्मिलित करके गुदा में उसकी वस्ति कर सकते हैं।

डी-एमेटाइज्ड इपीकेकाना (एमेटीन निकाला हुआ इपीकेकाना) निर्मित यौगिक भी २० या ३० ग्रेन की मात्रा में उग्र रक्तामाशय वा पेचिस में उपकारी होता है। किंतु यह इतना उपयोगी नहीं, जितना शुद्ध इपीकेकाना का चूर्ण।

अमीबिक प्रवाहिका (Amœbic dysentery) की उग्र अवस्था में यदि इसे कम से २० से ६० ग्रेन (१० से ३० रत्ती) की मात्रा में प्रजोजित कराया जाय और खाने को कुछ न दें और पानीय द्रव्य का सेवन कराएँ तो, यह क़ै द्वारा आमाशय से बहुत कम बाहर होता है। अभी गत महासमर में उन सभी रोगियों को जिनके मल में अमीबा व सिष्ट्स (Cysts) वर्तमान पाए गए, एक ग्रेन इमेटीन हाइड्रोक्लोराइड का त्वगधःसूचीवेध किया गया वा २ से

३ ग्रेन इमेटीन-बिस्मथ-आयोडाइड को मुख द्वारा प्रयुक्त कराया गया और इससे उन्हें बहुत लाभ हुआ। यह यकृद्विद्रधि का भी निवारण करता है। तथापि बैसिलरी डिसेंटरी में इपीकेकाना का अति न्यून प्रभाव होता है। पर क्योंकि इससे किसी प्रकार की हानि की संभावना नहीं होती, अस्तु ठीक निदान होने तक इसका प्रयोग करते रहना चाहिये। (ह्विटला मे० मे०)

सब-एक्यूट (उपोग्र) या चिरकालानुबंधी प्रवाहिका में यह औषध ऐसी उपयोगी नहीं, जैसी उग्र प्रवाहिका में, अलबत्ता ऐसी दशा में या जब रक्त-मिश्रित दस्त आते हों, तब कंपाउंड पाउडर ऑफ इपीकेकाना (डावर्स पाउडर) गुणकारी होता है। डॉक्टर रिंगर महोदय के अनुसार शिशुओं के प्रावाहिकीय अतिसार (Dysenteric diarrhoea) चाहे उग्र हों वा चिरकालानुबंधी, वाइनम् इपीकेकानी को एक-एक बूँद की मात्रा में देने से प्रायः आराम हो जाते हैं।

प्रातिश्यायिक कामला (Catarrhal jaundice) और (Torpidity of the liver) वा याकृदीय अजीर्ण (Hepatic dyspepsia) में अर्थात् जब यकृत के विकार के कारण पाचन-दोष उत्पन्न हो जाय, तब अन्य पित्तोद्रेककारी औषधियों के साथ इपीकेकाना को मिलाकर देने से प्रायः लाभ होता है। प्रतिश्याय-जन्य कामला में अपीकाकां जंशन पिल्ज़ (जिंतियाना वटिका) के साथ मिलाकर देने से प्रायः उक्त विकार मिट जाता है।

श्वासोच्छ्वास—श्लेष्मानिस्सारक रूप से कोल्ड (जुकाम), कैटार (नज़ला), एक्यूट और क्रानिक ब्रॉंकाइटिस (उग्र एवं चिरकारी कास) और ब्रांकोन्युमोनिया (कासयुक्त फुप्फुस प्रदाह), में इपीकेक्वाना को वाइनम, एसीटम्, लिक्विड एक्सट्रैक्ट, लाज़ेंज और सिरप की शकल में प्रतिदिन प्रचुरता के साथ व्यवहार में लाते हैं। उरःक्षत जनित कास में इसके लाज़ेंज़ (टिकिया) प्रायः लाभकारी होते हैं और चिरकारी कास तथा दमा में जब रोग का वेग होने पर कष्ट-श्वास होता है एवं फुप्फुसीया-आध्मान (Emphysema) जन्य खाँसी में वाइनम इपीके-कानाके इन्हलेशन (लख़लख़ा) या स्प्रे (Spray) से किसी-किसी समय उपकारक होता है। हे-ऐज़्मा (तृण श्वास) और कूकरखाँसी (Whooping cough) में भी यह औषध गुणकारी बताई जाती है।

उग्र फुप्फुसौष (Acute Pneumonia) में इसको बड़ी मात्रा में देने से कभी-कभी लाभ होता है।

रक्तनिष्ठीवन (Hæmoptysis) में एवं अन्य अंगों के रक्तक्षरण में इसको मुग़ासी मात्रा में देने से किसी-किसी समय लाभ होता है। किन्तु उक्त अवस्था में विकृतांगों पर इसका ख़ास असर नहीं होता, सिवाय इसके कि यह रक्तसंवहन पर निर्बलताजनक प्रभाव करती है।

परीक्षित योग

(१) वाइनम् ऐण्टिमोनिएली	२ ड्राम
वाइनम इपीकेकानी	३ ड्राम
एक्वामेन्थीपेप	½ आउंस पर्यंत

ऐसी एक मात्रा औषध तुरंत पिलादें। युवा रोगी के लिए यह एमेटिक (वामक) है।

(२) वाइनम् इपीकेकानी	१० मिनिम
टिंक्च्युरा मिर्ही	५ मिनिम
लाइकर एमोनिया एसीटेटिस	३० मिनिम
मिस्च्युरा एमिग्डली	१ आउंस पर्यंत

ऐसी एक-एक मात्रा औषध दिनमें तीन बार दें। यह श्लेष्मानिस्सारक एवं स्वेदक है।

(३) वाइनम इपीकेकानी	२ड्राम
ऐण्टिमोनियम् टारट्रेटम्	१ ग्रेन
ऑक्ज़िमल सिल्ली	२ ड्राम
इन्फ्युजम् सिनीगी	३ आउंस तक

इसमें से १० या १५ विंदु आवश्यकतानुसार १५-१५ मिनट बाद दें। क्रूपी कफ में लाभकारी है।

(४) वाइनम इपीकेकानी	१० मिनिम
लाइकर एमोनिया एसीटेटिस	१५ मिनिम
अमोनिया कार्ब	२ ग्रेन
टिंक्च्युरा वेलाडोनी	१ मिनिम
स्पिरिटस क्लोरोफॉर्माई	४ मिनिम

एक्वा एनीसाई	२ ड्राम पर्यन्त

चार बार तो इसमें से १ या २ टी-स्पून-फुल की मात्रा में एक-एक घंटे बाद दें और फिर चार-चार घंटे बाद। छोटे शिशुओंके उग्र कास (Acute bronchitis) में उपकारी है।

(५) टिंक्चर ओपियाई	१० मिनिम
कोकेनी हाइड्रोक्लोराइड	¼ ग्रेन
एक्वा सिन्नेमोमाई	१ आउंस पर्यन्त

ऐसी एक मात्रा औषध पिलाकर उसके १५ मिनट बाद पलविस इपीकेकानी ३० ग्रेन खिलादें। दो-तीन दिन तक प्रतिदिवस एक बार यह इलाज करें। उग्र प्रवाहिका में हितकर है।

(६) वाइनम इपीकेकानी	४० मिनिम
एमोनियम क्लोराइड	२ ड्राम
टिंक्चर कैम्फर को०	२ ड्राम
एक्सट्रैक्टम् ग्लीसिरहाज़ी लिक्विड	½ ड्राम
एक्वाक्लोरोफॉर्माई	८ आउंस तक

इसमें से आध-आध आउंस की मात्रामें दिन में तीन बार दें। चिरकारी कास (Chronic bronchitis) में लाभकारी है।

इपीकाक हिंदी–[उ०] (Indian Ipecacuanha) दे० "अन्तमूल"।

इपीकाडयु पेज, इपीका सॉवेज–[फ्रां०] अन्तमूल।

इपीकापेज–[?] (Jatropha multifida, *Linn.*) जैट्रोफा मल्टिफिडा।

इपीकेकाना, कंट्री–[अं० Ipecacuanha, country] अन्तमूल।

इपीकेकाना ब्लैंक–[अं० Ipecacuanha blanck] काकतुंडी। कुरकी–मरा०।

इपीकेकानारूट–[अं० Ipecacuanha root] इपीकेकाना मूल। दे० "इपीकेकाना"।

इपीकेकाना लाज़ेंज–[अं० Ipecacuanba lozenge] इपीकेकाने की टिकिया। दे० "इपीकेकाना"।

इपीकेकाना वाइन–[अं० Ipecacuanha wine] इपीकेक्वाना सुरा। दे० "इपीकेकाना"।

इपीकेकानी रैडिक्स–[ले० Ipecacuanhæ radix] इपीकेकाना की जड़। दे० "इपीकेकाना"।

इपोह–[मल०] (Antiaris Toxicaria, *Lesch.*) The Upas tree सापसुरडी–मरा०। फा० इं० ३ भ०। दे० "उपास"।

इप्प–[ते०] (Bassia Latifolia, *Roxb.*) मधूक। महुआ।

इप्प-गिडा, इप्प-चेट्टु–[ते०, कना०] (Bassia Longifolia, *Linn.*) जल मधूक। जल महुआ।

इप्प-सारायि–[ते०] (Liquor of Bassia Longifolia, *Linn.*) मधूक मद्य। महुए की शराब। माध्वी।

इप्पा–[ते०] (१) सीमीएलुपी–ता०। (२) एक मेवा। मु० अ०।

इप्पी, इप्पीच-झाड–[मरा०] (Bassia longifolia, *Linn.*) Mohwah tree. मधूक वृक्ष। महुआ का पेड़।

इप्पे-गिडा–[कना०] (Bassia longifolia, *Linn.*] मधूक वृक्ष। महुआ।

इप्पे-चेट्टु–[ते०] (१) मधूक वृक्ष। महुआ। (Bassia longifolia, *Linn.*)। (२) वन मधूक वृक्ष (Bassia latifolia, *Roxb.*)।

इप्पे-सारायि–[कना०] (Liquor of Bassia longifolia) मधूक मद्य। महुए की शराब। माध्वी।

इप्सम-साल्ट–[अं० Epsom salt] मैग्नेशियाई सल्फास (Magnesii sulphas)।

इफ़रवेसेंट इप्सम साल्ट–[अं० Effervescent epsom salt] मैग्नेशियाई सल्फास इफरवेसेंस (Magnesii sulphas effervescens)।

इफ़रात–संज्ञा स्त्री० [अ०] अधिकता। अधिकाई। कसरत। ज़्यादती। बहुतायत। सीमा का उल्लंघन करना।

इफ़ाक़:–[अ०] व्याधि का शमन होना। रोग घटना। रोगमुक्ति। स्वास्थ्य लाभ करना। होश में

आना। अमीलियोरेशन Amelioration-(अं०)।

इफ़ाक़तुल्_मौत-[अ०] मृत्यवासन्न-रोगनिवृत्ति। यह वास्तव में मृत्यु के समीप का वह काल है जिसमें रोग के चिह्न प्रगट नहीं रहते। क्योंकि ऐसे समय में प्रकृति रोग से जर्जरीभूत हो, जीवन की आशा छोड़ उसका सामना करने से रह जाती है और उसे रोग एवं उसकी प्रतिक्रियाओं का अनुभव ही नहीं होता। देखने में रोगी किसी प्रकार नीरोग मालूम होता है जिसे स्वास्थ्य के लक्षण कहते हैं; परंतु नाड़ी धीरे-धीरे निर्बल होती जाती है और निर्बलता बढ़ती जाती है। अंततः यह क्षणिक रोगमुक्ति यम दूत सिद्ध होती है।

इफ़ास् रोग़न स़ंदल-[अ] (Capsules of Sandal oil) दे० "चन्दन"।

इ(अ)फ़िज़-[अ०(ए०व०)] [बहु० अ.अफ़ाज] अंत्र। आँत। (Intestine)

इफ़्ज़ाअ-[अ] भयभीत करना। सूचित करना।

इफ़्तिज़ाज़्-[अ०] स्वीकृति द्वारा कुमारिच्छद का नष्ट करना। इसका उलटा "बलात्कार" है। डीफ्लोरेशन (Defloration)-अं०।

इफ़्तिराह्-[अ] कुमारिच्छदभ्रंश। सतीत्वहरण। बलात्कार। (Defloration)

इफ़्तिस़ाल-[अ०] शिशु का स्तन्य-विच्छेद। बालक का दूध छोड़ना।

इफ़्राऽ-[अ०] चीरना। शोधन। अधिमांस छेदन।

इफ़्राक़-[अ०] स्वास्थ्य लाभ करना। निरोग होना। आरोग्य प्राप्ति। अर्वाचीन मिश्र देशीय वैद्यकीय परिभाषा के अनुसार ऐसी व्याधि से निरोगता प्राप्त करना जो उम्र भर में केवल एक बार होती है; जैसे, शीतला आदि।

इफ़्राग़-[अ०] बहाना। फफोला फोड़ना।

इफ़्राज़-[अ] इसका माद्दा अर्थात् धातु फ़र्ज़ है, जिसका अर्थ 'एक वस्तु को दूसरी वस्तु से भिन्न करना अर्थात् छेदन" है। अतः इफ़्राज़ के शब्दार्थ भी वे ही हैं। यथा, भिन्न करना, भेद करना। परंतु अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा के अनुसार इसका अर्थ रक्त से भिन्न करना वा छाँटना या रक्त में से कोई विशेष माद्दा बनाना है। परिभाषा के अनुसार इसको मुफ़र्रिज़ कहते हैं।

डॉक्टरी परिभाषा में इफ़्राज़ तथा मुफ़र्रिज़ दोनों को सिक्रीशन (Secretion) कहते हैं।

नोट—इफ़्राज़ का मुफ़र्रिज़ अर्थात् रक्त से पृथग्भूत वा उद्रिक्त द्रव अर्थ मानकर इसके दो भेद करते हैं—

(१) इफ़्राज़ बातिनी और (२) इफ़्राज़ ज़ाहिरी।

इफ़्राज़ ज़ाहिरी-[अ०] मुफ़्रज़ ख़ारिजी। वह द्रव वा पदार्थ जो किसी विशेष अवयव द्वारा रक्त में से शरीर के किसी वाह्य वा आभ्यन्तरिक पृष्ठ पर उद्रिक्त होता है। बहिःस्राव। (External secretion)

इफ़्राज़ बातिनी-[अ०] मुफ़्रज दाख़िली। एक प्रकार का वह विशेष द्रव जो किसी अवयव द्वारा रक्त में से उद्रिक्त होता है और पुनः रक्त में मिलकर विशेष प्रकार की दशा उत्पन्न करता है। अन्तःस्राव (Internal-secretion), भीतरी स्राव।

इफ़्रात्-[अ०] (Intemperance) इसका उलटा "तफ़्रीत् है। दे० "इफ़रात"।

इफ़्रात् स्समन-[अ०] स्थौल्य। स्थूलता। बहुत मोटापा। मेदवृद्धि।

इफ़्रिन्क़ाअ्-[अ०] उँगलियों का चटखना। संधियों से फूटने का शब्द उत्पन्न होना।

इफ़्सन्तीन-[?] दे० "अफ़्सन्तीन"।

इफ़्हार-[अ०] प्रथम स्त्री के साथ स्खलनरहित मैथुन करना और दूसरी में स्खलित होना।

इबरानी-वि० [अ०] यहूदी।

संज्ञा स्त्री० [अ०] पैलिस्तान देश की प्राचीन भाषा।

इबलीस-संज्ञा पुं० [अ० पुं०] पिशाच। शैतान। खबीस।

इबी_ज़ाज़ुद्दम-[अ०] अहम्मुलू अबैज़। रक्त सफ़ेद होना। अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा में रक्त के

श्वेताणुओं का बढ़ जाना। (Leucæmia, Leucocythomia) दे० "नफ़ख़तुत्तिहाल"

इब्री-ज़ा-ज़ुल्ऐन–[अ०] आँख में जाला या फूली पड़ जाना। नेत्र शुक्र। फूली। (*Opacity of the Cornea*)

इब्क़र, अब्क़र–[अ०] (Potassæ Nitras) Saltpetre शोरा। शोरक।

इब्तरीताऊस–[यू०] श़तरुल् ग़िब्ब–अ०। (Double Tertian Fever) एक प्रकार का ज्वर जिसका एक दिन उग्र वेग होता है और दूसरे दिन साधारण। पित्त-श्लेष्मज्वर।

इब्तिदा–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आरम्भ। आदि। शुरू। (२) जन्म। पैदाइश। (३) निकास। उठान।

इब्तिदाऽ कुल्ली–[अ०] व्याधि का आरंभिक काल अर्थात् वह समय जिसमें अभी दोष-परिपाक के चिह्न प्रगट न हुए हों। उदाहरणतः जूड़ी ज्वर में शुरू का क़ारोरा रसूब (तलछट) से ख़ाली होता है।

इब्तिदाऽ जुज़्ई–[अ०] रोगवेगारम्भ। वह काल जिसमें रोग के वेग के लक्षण प्रगट होने लगें। उदाहरणतः बारी वा पर्याय ज्वर में शीत के कारण कम्पन होना आदि। (Onset)

इब्तिदाउल् म-र्ज़–[अ०] रोगारम्भ, शुरूमर्ज़, व्याधि की आदि। वह काल जिसमें पहले पहल रोग का कष्ट अनुभव हो। किसी-किसी के मत से रोग के आरंभ के तीन दिन। (Stage of invasion)

इब्तिलाअ़्–[अ०] गिलन। निगल जाना। कंठ से उतारना। (Devour)

इब्त़ी–[अ०] (१) कक्षीय। कक्ष संबन्धी। (Axillary)। (२) बगल की रग जो बगल से आगे बढ़कर बासलीक कहलाती है। कक्षीया धमनी। (Axillary Artery)

इब्न अ़नब–[अ०] अंगूरी शराब।

इब्न अबी उस़ैबिअ़:–[अ०] मूफ़िक़ुद्दीन। जन्म सन् १२०३ ई० और सन् मृत्यु १२७३ ई०। यह अपने काल के विद्वान् चिकित्सक थे। प्रथम दमिश्क पुनः क़ाहरा में सफल एवं प्रतिभाशाली चिकित्सा-कार्य करते रहे और अन्तिम अवस्था में शाम के एक अमीर के राजवैद्य नियत हुए। इन्होंने "अयूनुल् अम्बा फ़ी तब्क़ातुल् इतिब्बा" नाम की एक अत्यन्त लाभप्रद पुस्तक लिखी है, जिसमें सातवीं सदी हिजरी तक के लगभग ४०० प्रसिद्ध विद्वान् तथा चिकित्सकों की जीवनी का उल्लेख है। (Ibn Abu Uscibia Mawaffik-ed-Din)

इब्न अबी स़ादिक़–[अ०] अबुल् क़ासिम अब्दुर्रह़मान बिन अली बिन अह़मद बिन अबी स़ादिक़ नाम। ये नीशापुर के निवासी और कुशल चिकित्सक थे। चिकित्सा-शास्त्र में अति कुशल होने के कारण इनको बुक़रात द्वितीय की उपाधि प्रदान की गई थी। इन्होंने ज़ालीनूस के ग्रंथों पर अत्युत्तम भाष्य लिखे हैं। अस्तु, उनकी पुस्तक "मुनाफ़ि़उल् अअ़्ज़ा" पर इन्होंने जो भाष्य लिखे हैं वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। Ibn Abe Sadik

इब्न आवा–[अ०] श्रृगाल। सियार। गीदड़। (A jackal.)

इब्न .इर्स–[अ०] नकुल। नेवला। (Vivera mungo) A mongoose

इब्नक़र:–[अ०] एक विषैला सर्प।

इब्नख़ल्लदून–[अ०] अबू मुसलिम उ़मर बिन अह़मद बिन ख़ल्लदूनुल् ह़ज़रमी नाम। अन्दलुस (Spain) के अश्बीलह् नगर का सय्यद कुलीन एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति था। यह समग्र विद्याओं और फिलसफ़े (दर्शनशास्त्र) के उच्च विद्वान, ज्योतिष एवं गणितशास्त्र में निपुण व दक्ष तथा अपने समय के सर्वोत्कृष्ट हकीम थे। इब्न ख़ल्लदून सन् ४४९ हिजरी में अश्बीलह् में स्वर्गवासी हुये।

इब्न ज़करिया राज़ी–[अ०]दे० "ज़करिया राज़ी"।

इब्न जज़्ल:–[अ०] मुह़या बिन .ईसा बिन अ़ली बिन जज़्ल: नाम। ख़लीफ़ा मुक़्तदा बअमरुल्ला के समकालीन और एक प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध चिकित्सक थे। पहले यह ईसा के अनुयायी थे; पीछे मुसलमान हो गए। तिब में इनकी कतिपय उत्तम रचनाएँ हैं। अस्तु रोग-विज्ञान ".इल्मुल्-

अमराज़" तथा चिकित्सा-विज्ञान "अल् .इलाज" में इनका एक प्रशंसनीय निबंध है जिसका प्रमाण अंगरेज़ी ग्रंथोंमें भी आया है। (Ibn jezlah)

इब्न जुल्जुल्-[अ०] अबु दाऊद कनीत (संबंध-सूचक शब्द), सुलेमान बिन ह.स्सान नाम। जुल्जुल् नाम से प्रसिद्ध, अत्यंत निपुण और ख़लीफ़ा हुश्शाम के दरबारी चिकित्सक थे। इन्होंने हकीम दीसक़ूरीदूसके अमिश्र ओषधि 'अद्विय: मुफ़्रिद:" नामक ग्रंथ पर एक अत्यंत खोजपूर्ण भाष्य लिखा है और उसकी यूनानी संज्ञाओं की अरबी में आलोचना की है। सन्दिग्ध एवं अप्रसिद्ध ओषधियों के नामों का भी स्पष्टी-करण किया है।

इब्न ज़ुह्र-[अ०] अबु मर्वान बिन ज़ुह्र। अबु मर्वान बिन अबीयुल् अ.ला' बिन ज़ुह्र नाम। अपने काल के ये श्रेष्ठ विद्वान और अनुपम चिकित्सक थे। इनका जन्म अश्बीलह नगर के समीप सन् १०७२ ई० में हुआ था। इनके कुटुंबी दसवीं शताब्दी मसीहीमें हस्पानिया में आबादथे। इनसे उच्च कोटिके विद्वान उत्पन्न हुए। इब्नज़ुह्र के पिता तथा प्रपितामह-बाप-दादे भी अपने काल के बहुतप्रसिद्ध एवं कुशल चिकित्सक रह चुके थे। इब्नज़ुह्र ने चिकित्सा एवं निदानमें बहुत ख्याति प्राप्त की थी। अन्दलुस (Spain) में इनके नाम की बहुत शोहरत थी। इतना ही नहीं, प्रत्युत सुदूर देशों में भी इनका नाम विदित था। युवावस्था के आरम्भ में ही ये अन्दलुस में राजवैद्य नियत हुए। अन्दलुस के प्रतिभाशाली अधिपति ख़लीफ़ा अ.ब्दुल् मोमिन के ये बहुत विश्वास-पात्र थे। अस्तु, उसने इन्हें राजवैद्य के पद से उन्नत कर अपना मंत्री नियत किया। ये प्रसिद्ध दार्शनिक और हकीम इब्नरुश्द के गुरु थे। इन्होंने उसके ही लिए अपनी जगत् प्रसिद्ध पुस्तक "अत्तीसिर" की रचना की थी। तिब्बके अत्यंत प्रतिष्ठित ग्रंथों में इसकी गणना होती है। आंग्ल लेखक भी इसकी बहुत प्रशंसा करते हैं। सन् १४६० ई० में उक्त ग्रंथ लेटिन भाषा में अनूदित होकर, इटली देश में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। अंगरेज़ी ग्रंथों में इसको मैग्नम ओपस (Magnum opus) या अत्तीसिर (Atteisir) लिखा है। यह हिजरी सन् ५८७ तदनुसार ईसवी सन् ११६२ में अश्बीलह् नामक स्थान में स्वर्गवासी हुए और उसी जगह दफ़न किए गए।

अँगरेज़ी ग्रंथों में इनका नाम अविनज़ूर Avenzoor या अविनज़ुह्र Avenzohr और किसी किसी में अबुमरून Abumeron अर्थात् अबुमर्वान और किसी-किसी में अबुमर्वान इब्न ज़ुह्र Abu marwan Ibn zohr लिखा है। अरबी ग्रंथों में अबुमर्वान इब्नज़ुह्र नाम से इनका उल्लेख पाया जाता है।

इब्न त़ाइर-[अ०] कब्क। चकोर पक्षी।

इब्न बाज:-[अ०] अबु बक्र मुहम्म बिनयु.हया अस़ाइग़। प्रसिद्ध नाम इब्न बाज:। अपने काल के ये सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक तथा बेजोड़ पंडित थे। यूरोप निवासी इनको अविम्पेस (Avempace) नाम से स्मरण करते थे। अपने समय में अन्दलुस (Spain) भर में ये दर्शनशास्त्र तथा भौतिक विज्ञान के अकेले पंडित थे। मुसलमान दार्शनिकों में अबुनस्र फ़ाराबी वा इब्न रुश्द के बाद ये सबसे बड़े दार्शनिक कहे जा सकते हैं। किसी-किसी आंग्ल ग्रंथ के अनुसार इनका मृत्युकाल सन् १३१८ ई० और किसी के अनुसार हिजरी सन् ५३३ है। जन्मकाल का पता नहीं। यह प्रसिद्ध हकीम युवावस्था में ही अर्थात् २३ वर्ष की अवस्था में क़ास नामक स्थान में स्वर्गवासी हुए और वहीं इमाम इब्न अरबो की बगल में इनको दफ़न किया गया। कहते हैं कि विषभक्षण द्वारा इनकी मृत्यु हुई। विभिन्न विद्या एवं कला संबंधी इनके रचित ३० ग्रन्थ वर्तमान हैं। परंतु उनमें से इ.ल्मुल् अद्विय:(औषध-विज्ञान) विषयक इनका ग्रन्थ अपने समय में सर्वोत्तम गिना जाता था। (Abu Bekr Mohammed Ibn Badja.)

इब्न बुत्.लान-[अ०] (Ibn Butlan) अबुल्-हसन (संबंध-सूचक नाम)। मुख़्तार (नाम)। हसन बिन अब्दून बिन सअ्दून बिन बुत्लान (वंशावली)। ये बग़दाद के रहनेवाले और ईसाई धर्म के अनुयायी थे। यह अच्छे दार्शनिक

और चिकित्सक थे। इन्होंने चिकित्सा विषयक अनेक ग्रंथ लिखे हैं। परंतु इनकी लिखी आहार-शास्त्र "किताबुल् अग़्ज़िया" नामक पुस्तक अपने समय की श्रेष्ठतर पुस्तक मानी जाती थी।

इब्न बैतार, इब्नुल् बैतार–[अ०] (Ebn Alibeithar) अबु मुहम्मद अब्दुल्ला अह्मदुल् मालिक़ियुन्नबाती नाम। प्रसिद्ध नाम "इब्न बैतार"। सन् ११९७ ई० में मलागा नामक स्थान में इनका जन्म हुआ। अपने काल के ये सर्व श्रेष्ठ वनस्पति-शास्त्रज्ञ थे। वनौषधियों के परिचय एवं अन्वेषण हेतु इन्होंने यूनान, रूम, मिश्र तथा शाम इत्यादि सुदूर देशों की लम्बी-लम्बी यात्राएँ की। मिश्र में ये दरबारी हकीम, हकीमों के नेता और वनस्पति-शास्त्रवेत्ता थे। वनौषधि विषय में आपकी "किताबुल् जामअ़" नामक पुस्तक अत्यन्त प्रतिष्ठास्पद एवं प्रामाणिक ग्रंथ-रत्न है। द्रव्य-गुण-शास्त्र विषयक बड़े-बड़े अंगरेज़ी ग्रंथों में इसके प्रमाण मिलते हैं। अमिश्रित ओषधियों के वर्णन में "किताबुल् मग़्नी" नामक इनकी एक अन्य पुस्तक भी है, परंतु इसका क्रम विकृत अवयवों के अनुसार है। हिजरी सन् ७४६ तदनुसार ईसवी सन् १२४८ में दमिश्क नामक स्थान में इनकी मृत्यु हुई।

इब्न मन्दवियः–[अ०] अबुअ़ली (संबंध-सूचक नाम)। अह्मद बिन अब्दुर्रह्मान बिन मन्दवियः अस्फ़हानी नाम। यह अजम देश के एक प्रसिद्ध एवं सर्वोत्तम हकीम थे। इन्होंने बहुसंख्यक राजाओं की सेवाएँ की। चिकित्सा क्षेत्र में आपके कार्य प्रतिष्ठा एवं कृतज्ञतापूर्वक स्मरण के योग्य हैं। इन्होंने चिकित्सा विषयक अनेक ग्रंथ लिखे जिनमें से चालीस अधिक प्रसिद्ध हैं।

इब्न रुशद–[अ०] अबुलूवलीद बिन रुशद। अबुल्-वलीद (संबंध-सूचक नाम)। यह अह्मद बिन रुश्द के पुत्र थे और अपने दादा रुश्द के नाम से विख्यात हुए। हिजरी सन् ५२० तदनुसार सन् ११२६ ई० में क़ुरतुवा (Cardova) नामक स्थान में इनका जन्म हुआ। अपने काल के ये भौतिक-विद्या, शारीरिक-व्यायाम, ज्योतिष तथा तिब्ब आदि विद्याओं विशेषत: दर्शनशास्त्र के अनुपम विद्वान थे। सन् ११९६ ई० में यह प्रधान न्यायाधीश (चीफ़ जष्टिस) के पद पर सुशोभित हुए। परंतु इनके किसी-किसी दार्शनिक विचारों पर इनके समकालीन प्रतिद्वंदी धार्मिक पंडितों ने सख़्त कुफ़्र (स्वधर्म विरोधी वा काफ़िर होने) की व्यवस्था दी। अस्तु,राजा मंसूर जो इनका बहुत मान एवं प्रतिष्ठा करता था, इन्हें बंदी कर यहूदियों के एक नसाया नामक ग्राम में जलावतन कर दिया। वहाँ पर यह दो-तीन वर्ष पर्यंत बंदी रहें। उक्त काल में कई यहूदी विद्यार्थी इब्न-रुश्द के दार्शनिक विचार तथा भौतिक-ज्ञान से लाभान्वित होकर इनके शिष्य बने और उन्होंने ही इनके दार्शनिक विचारों का यूरोप में प्रसार किया। इब्न रुश्द ने शेख़ुर्रईस इब्न सीना की पुस्तकों पर अत्यन्त गवेषणात्मक भाष्य लिखे हैं। कई स्थलों पर इसने शेख़ पर ऐसी शंकाएँ की हैं जिनको स्वीकार करने के लिए उनके श्रेष्ठ अनुयायीगण भी विवश हुए हैं।

बंदी करने के दो-तीन वर्ष पश्चात् मंसूर राजा ने उन्हें कैद से मुक्त कर बढ़े मान व प्रतिष्ठा के साथ राज-सभा में पूर्व पद पर सुशोभित किया। पर शोककि राज-सभा में उपस्थित होने के कुछ ही दिवस बाद मराकश नामक स्थान में ता० १९ सफ़र हिजरी सन्५९५ तदनुसार ता० १२ दिसंबर सन् ११९८ ई० को इन्होंने इस संसार से प्रस्थान किया।

इब्नरुश्द-लिखित बहु संख्यक ग्रंथों में से आज बहुत कम ही उपलब्ध होते हैं। दो ग्रंथों के असल योगों के अतिरिक्त शेष सब अप्राप्य हैं। परंतु इनके कतिपय ग्रंथ के इबरानी व लेटिन अनुवाद-ग्रंथ वर्तमान हैं। जिनसे इनका नाम और फ़लसफ़ा (दार्शनिक विचार) जीवित है। इनके यूनानी वैद्यक विषयक भी कई ग्रंथ हैं, जिनमें से "किताबुल् कुल्लियात्" एक श्रेष्ठतर रचना है। इसको अँगरेजी में कॉलीगेट (Colliget) कहते हैं। क़ानून शेख़के समान ही यह प्रामाणिक मानी जाती है। वैद्यकीय इतिहास के कतिपय अंगरेज़ी ग्रंथोंके अध्ययनसे यहज्ञात होता है कि यह पुस्तक जरमन के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है।

इब्न रुश्द ने अरस्तू के ग्रन्थों के ऐसे विद्वतापूर्ण एवं गवेषणात्मक भाष्य लिखें हैं कि यूरोप के दार्शनिक बहुत काल तक यह कहते रहे हैं कि "अरस्तू सत्य का अनुवाद है और इब्न रुश्द अरस्तू का"। यही नहीं प्रत्युत सतरहवीं शताब्दी तक इटली देश के उत्कृष्ण विद्वन् समाज में इब्न रुश्द को अरस्तू से भी बढ़कर माना जाता रहा है। आज भी यूरोपीय विद्वान् इस दर्शनाचार्य का नाम प्रतिष्ठा से लेते हैं और इसके विद्वत्तापूर्ण कार्यों के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

अंगरेज़ी ग्रंथों में इब्नरुश्द का आवरुंइस (Averroes), किसी में इब्नरुश (Ebn rosch) और किसी में इब्न रुश्द (Ebn rushd) लिखा है।

इब्न वाफ़िद–[अ०] अबुल् म.तरफ़ अब्दुर्र.ह्मान बिन मुह.म्मद बिन अब्दुल् कबीर बिन युह.् या बिन वाफ़िद बिन महन्दुल् लह.मी। ये अन्दलुस(Spain)के अत्यंत प्रतिष्ठास्पद शरीफ़ों में से, उत्तम कुलसे और शिष्ट माता-पिताकी संतान थे। इनका जन्म हिज़री सन् ३८७ तदनुसार सन् ९९७ ई० में हुआ था। यह दर्शन-शास्त्र में भी अति निपुण और अपने समय के सिद्धहस्त चिकित्सक थे। अमिश्रित औषधियों के ज्ञान एवं प्रयोग के संबंध में, इन्होंने अभूत-पूर्व कुशलता प्राप्त की थी और अपनी सफल चिकित्सा के लिए बहुत प्रसिद्ध हो गये थे।

चिकित्सा के संबंध में इनके निम्न सिद्धान्तथे। "यथा-संभव आहार-परिवर्तन द्वारा चिकित्सा की जाए और यदि औषधि देना ही पड़े तो यथा-शक्य केवल अमिश्रित साधारण औषधियों द्वारा चिकित्सा की जाए। आवश्यकतानुसार यदि कोई मिश्रित औषध ही देनी पड़े तो कोई ऐसी औषध, जिसमें कम से कम औषधियों का योग हो और जिसकी बनावट बहुत साधारण और सुगम हो, व्यवहार में लाएँ।"

इनकी रचनाओं में से "किताबुल् अद्वियः मुफ़्रिदः" तथा "किताबुल् वसाद" तिबमें अपने काल की विश्वस्त एवं प्रतिष्ठास्पद रचनाएँ थीं, जिनके लेटिन भाषा में भी अनुवाद ग्रंथ प्रकाशित हुए।

हिजरी सन् ४६० तदनुसार सन् १०७० ई० में इनकी मृत्यु हुई।

अँगरेजी ग्रंथों में इनका नाम इब्न वाफ़िद अल् ल.ह्मी (Ibn Wafid Al Lahme)और किसी में इब्न गौफ़ित (Ibn guefit) लिखा है।

इब्नसीना–[अ०] अबु अ.ली (कनीत); हु.सेन (नाम); अब्दुल्ला बिन ह.सन बिन अ.ली बिन सीना (वंश-क्रम)। मुसलमान हुकमाओं में अनुपम, पूर्ण और योग्यता की दृष्टि से आद्याचार्य (अरस्तू) तथा आचार्य द्वितीय (अबी न.स्र.ु ल् फ़ाराबी) के बाद इन्हीं का स्थान माना जाता है। यह अपने काल के आचार्य तथा कला-प्रवीण स्वीकार किए जाते थे और शेख़ुर्रईस की उपाधि से विभूषित हुए। शेख़ का जन्म बुख़ारा नामक नगर के समीप "खर्मीसन" ग्राम में ३ सफ़र हिजरी सन्३७५ तदनुसार सन्९८० ई० में हुआ। माता-पिता ने इनका नाम हुसेन रखा। दस वर्ष की अवस्था में हुसेन ने क़ुरानशरीफ़ (मुसलमानी धर्म-ग्रंथ) को कण्ठस्थ कर लिया। सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होंने तत्कालीन समस्त विद्याओं एवं कलाओं में पारंगतता प्राप्त कर ली। अस्तु, इनको प्रोफेसर वा आचार्य कहा जाता था। यह उक्त श्रेष्ठ उपाधि के हकदार गिने जाते थे। इनके ज्ञान द्वारा लाभान्वित होने के लिए सुदूर देशों से आगत विद्यार्थियों की भीड़ लगी रहती थी।

सतरह वर्ष की अवस्था में बुख़ारा के अधिपति नूह-बिन मन्सूर की सफल चिकित्सा करने पर ये उनके दरबारी चिकित्सक नियत हुए। उनकी मृत्यु के बाद ये गरगानज (ईरान) की राज-सभा में चले गये। वहाँ पर भी इनका बड़ा मान एवं प्रतिष्ठा हुई और ये राज-सभा के विद्वानों के मुखिया बना दिये गये। परंतु शेख़ को उक्त सभा में भी शांति नहीं मिली। क्योंकि जब ग़ज़नी के बलशाली विजयी राजा महमूद सुबुक्तगीन ने इनके दूषित दार्शनिक सिद्धांतों की निंदा

सुनकर यह चाहा कि इनको अपनी सभा में आमंत्रित कर इन्हें आधीनता स्वीकार करने का आदेश करे और उसके अस्वीकार करने पर मृत्यु दंड दे, तो शेख़ इस समाचार को पाकर वहाँ से छिप कर भागे और जरज़ान जा पहुँचे। कुछ काल वहाँ इन्होंने अत्यंत सफलता-पूर्वक चिकित्सा कार्य किये और अधिकांश समय ग्रंथ-रचना में व्यय किया। फिर वहाँ से प्रस्थान कर रे तथा क़ज़वीन नगर होते हुए हमदान जा पहुँचे और अमीर हमदान के शूलरोगकी सफल चिकित्सा कर उसकी राजसभा में प्रवेश प्राप्त किया। फिर मंत्री पदसे विभूषित हुए। हमदानके अमीर शम्सुद्दौला की मृत्यु के बाद उसके पुत्र ताजुद्दौला से शेख़ की अमैत्री हो गई और उसने मंत्री-पद से पृथक् कर इन्हें कैद कर लिया। परतु चार मास पश्चात् उसने इन्हें क़ैद से मुक्त कर अपने अपराध की क्षमा याचना की और इनको अपने साथ हमदान ले आया। वहाँ पहुँचने पर शेख़ दो वर्ष तक एकांत सेवी रहकर केवल ग्रंथ-रचना में ही व्यस्त रहें।

शेख को प्रायः शूल रोग हुआ करता था, जिसकी चिकित्सा वे स्वयं करते थे। यद्यपि शूल रोग की वे हुक्मी चिकित्सा किया करते थे, तो भी शोक के साथ लिखना पड़ता है कि वे उसी रोग से आक्रांत होकर ५८ वर्ष की अवस्था में सन् ४३८ हिजरी में हमदान में ही स्वर्ग सिधारे और वहीं पर दफन किए गये।

शेख़ के सिद्धांत वा मज़हब पर बहुत कुछ चे-मीगोइयाँ होती थीं। कोई इन्हें सुन्नी कहता, तो कोई शीया और प्रायः लोग इन्हें काफ़िर कहते थे। परंतु शेख़ की यह रुबाई सबके तानों का अच्छा उत्तर था।—

कुफ़्र चू मनी गुज़ाफ़ व आसाँ न बूद,
मुह्कम तर अज़ ईमाने मन ईमाँ न बूद।
दर दह्र चू मन यके व आँ हम काफ़िर,
पस दर हमा दह्र यक मुसलमाँ न बूद॥

शेख़ ने विद्वज्जगतमें अत्यंत उज्ज्वल एवं प्रतिभाशाली कार्य किये। इनकी वह रचनाएँ जो एशिया में भी नहीं प्राप्त हो सकतीं, वे यूरोप के बड़े-बड़े पुस्तकालयों में वर्तमान एवं सुरक्षित हैं और यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक वा विद्वानगण मुसलमान दार्शनिकों में से फ़ाराबी, इब्न सीना और इब्न रुश्द के विद्वतापूर्ण कार्यों को निष्पक्ष हृदय से स्वीकार करते हैं। विभिन्न विद्या वा कला तथा तिब विषयक शेख़ के लगभग १०५ ग्रंथ हैं। परंतु चिकित्सा विषय में "किताबुश्शिफ़ा (१८ खंडोंमें)" और 'किताबुल् क़ानून (१४ खंडों में)" नामक ग्रंथ इनकी श्रेष्ठतर एवं लाभप्रद रचनाएँ हैं और वर्तमान युग में भी यूनानी वैद्यक की श्रेष्ठतर पुस्तकें मानीजाती हैं। "क़ानून" वास्तव में एक ऐसा सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है जिसकी उपमा नहीं। यह मूल ग्रंथ सर्व प्रथम सन् १५६३ ई० में फिर सन् १५६५ ई० में रोमा में प्रकाशित हुआ। इसके बाद इसके ३० लेटिन अनुवाद प्रकाशित हुए और फिर फरासीसी तथा अँगरेज़ी भाषा में भी इसके अनुवाद हुए। अँगरेजी ग्रंथों में इब्नसीना को अवीसीना (Avicenna) लिखते हैं।

इब्नसीना से पहले जितने हकीम वा तबीब हुए, उनकी गणना पूर्वकालीन (प्राचीन) और पीछे होनेवालों की गणना उत्तरकालीन में होती है अर्थात् इब्नसीना का समय इन दोनों कालों का मध्यवर्त्ती समझा जाता है।

इब्न ह़ब्ब: [अ] राटिका। रोटी। नान्–फ़ा०।

इब्नुल जज्ज़ार–[अ०] अबुज़ाफ़र अह़मद बिन इब्राहीम बिन अबीख़ालिक़। यह क़ैरवाँ के निवासी और वंश परंपरागत अर्थात् ख़ानदानी चिकित्सक थे। यह बहुत निश्चिंत प्रकृति के हकीम थे। रोगियों से यह कुछ भी फीस आदि नहीं लेते थे। ८० बर्ष की अवस्था में आपकी मृत्यु हुई। आपकी स्मृति के लिये इनकी रचित पचीस तीस पुस्तकें हैं, जिनमें से "तिबुल् फ़ुक़्रा" या "इलाजुल ग़ुर्बा' (Guide for the poor) सर्व साधारण को इतनी पसंद हुई कि इसके इबरानी, लेटिन और यूनानी में अनुवाद हुए। इन्होंने प्लेग वा ताऊन के संबंध में भी, जो उस समय मिश्र देश में फैला हुआ था, एक अत्यन्त अन्वेषणायुक्त या विद्वत्तापूर्ण

पुस्तिका लिखी थी। अंगरेजी ग्रंथों में इनका नाम अबुजाफ़र अह्मद् बिन इब्राहीमुल्ज़ज़ार लिखा है। परंतु किसी में अल्ग़िज़्ज़ार या अल्ग़ाज़िरः भी लिखा है।

Abu Jaffar Ahmed Bin Ibrahim Jezzar, Algizar, Algazirah

इब्नुल्माऽ-[अ] मुर्ग़ाबी। जल कुक्कुट।

इब्नुल् हैस़म-[अ] बू अली मुहम्मद बिनुल हसन बिनुल् हैस़म। वस्तुतः यह बसरा के निवासी थे, परंतु मिश्र देश में आकर वहीं मरण-पर्यंत रहे यह बहुत भले मानस कुशाग्र बुद्धि एवं धार्मिक थे और वैद्यक तथा भौतिक पदार्थ विषयक ज्ञान के अतिरिक्त यह शारीरिक शिक्षा के भी अद्वितीय विद्वान थे। इन्होंने अरस्तू के कतिपय भौतिक-शास्त्र (इ्ल्म हिकमत) और जालीनूस के वैद्यकीय ग्रंथों के अत्यन्त लाभदायक खुलासे लिखकर, फिर उनके अत्युत्तम भाष्य लिखे। सारांश यह कि विद्वत्ता की दृष्टि से चिकित्सा कला में यह समय के सर्वोच्च विद्वान थे। शारीरिक शिक्षा, भौतिकज्ञान एवं वैद्यक विषयक इनके लिखे एवं संकलित लगभग ८० या ९० ग्रंथ हैं।

इब्नुस्सुवैदी, इज़्ज़ुद्दीन-[अ०] अबुइस्हाक़ बिन इब्राहीम बिन मुहम्मद। हिजरी सन् ६०० में दमिश्क में इनका जन्म हुआ और वहीं पर पालन-पोषण हुआ। आपके ग्रंथोंमें से "किताबुत्तज़्किरतुल्हादियः वज़्ज़ ख़ोरतुल्काफ़ियः" जो साधारणतः "तज़्किरः इब्नुस्सुवैदी" नाम से प्रसिद्ध है, उच्च कक्षा की वैद्यकीय रचना है।

इब्र-[अ०] (१) सूची। सूई (Needle)। (२) सूई चुभाना। सूई गड़ाना। (३) आल। आर। डंक। डंक मारना। (Sting)

इब्रत-[अ०] सूची। सूई। (Needle)

इब्रतुल् ख़ल्ल-[अ०] नश्तर देने की सूई। नाड़ी यंत्र। (Canulated needle)

इब्रतुल् ख़ुज़ाम-[अ०] ख़लालनुमा सूची जिसके द्वारा सूत पिरोकर क्षत को ताजा रखते हैं। यह क्रिया साधारणतः दूषित पदार्थों के निःसारणार्थ उन्माद-ग्रस्त रोगियों की गुद्दी पर की जाती है। डॉक्टरी में ऐसी सूची को सीटन नीड्ल (Seton needle) कहते हैं और उक्त क्रिया को सोटन (Seton)।

इब्रतुल् तन्क़ीस-[अ०] मोतियाबिंदु में आँख बनाने की सूई। कोचिंग नीड्ल (Couching needle)-अं०।

इब्रहे क़न्वियःयः-[अ०] प्रणाली युक्त सूची। शलाका यन्त्र। नालीदार या पोली सूई जिसके द्वारा जलोदर आदि में उदरस्थित जल निकाला जाता है। (Canula, trocar canula.)

इब्राज़-[अ०] इफराज़। शरीर से मल प्रवर्त्तन। मलोत्सर्जन। (Elimination.)

इब्रोक़-[अ०] [फ़ा० आबरेज़] [बहु० अबारीक़] (१) लोटा। आफ़्ताबः-फ़ा०। (Water-jug.)। (२) यूनानी-चिकित्सा में प्रयुक्त एक माप। यह २॥ सेर के बराबर होता है।

इब्रेशम-[फ़ा०] (Silk) दे० "अब्रेशम"।

इब्ल-[अ०] (Camelus dromodarius, *Linn*) camel, उष्ट्र। ऊँट।

इब्लसीन-[यू०] मिश्रदेशज मृत्तिका। मिश्री मिट्टी। ति़ीन मिस्री-अ०।

इब्लुद्दोक-[अ०] शुतुरमुर्ग़।

इब्ल्यू-[अ०] ह़युल् आलम (सदाबहार)।

इब्सार-[अ०] दिखाई देना। दीखना। दिखलाना। (Vision.)

इभ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० इभी वा इभ्या] (१) हस्ती। हाथी। (An elephant) अम०। (२) नागकेशर। (Mesua ferrea, *Linn.*) च०।

इभकणा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pothos officinalis) श्रेयसी। गज-पिप्पली। गज-पीपल। र० मा०। भा० पू० १ भ०। च० द०। सि० यो० सान्निपातिक ज्व० अष्टाङ्ग-कषाय। "धनिकेभकणा कषायः"।

इभकर्णा-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पलाश। ढाक। (Butea frondosa, *Roxb.*) (२) रक्तैरण्ड। लाल रेंड। द्रव्य-र०।

इभकुम्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हस्ति का मस्तक। हाथी का शिर।

इभकृष्ण (ष्णा)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] (Pothos officinalis) गज-पिप्पली । गजपीपल । भैष० । च० द० ग्रहणी–चि० कल्याणगुड़ ।

इभकेश (स) र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नागकेशर वृक्ष। (Mesua ferrea, *Linn.*) भैष० ।

संज्ञा पुं०[सं० क्ली०](१)नागकेशर पुष्प । चि० क्र० क० प्रदर चि० । सु० चि० ३८ अ० । (२) पलाश । ढाक । (Butea frondosa, *Roxb.*) ।

इभगन्धा (न्धिका)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१)नागदन्ती । हत्थाजोरी।सरियारी । (२)स्थावर-विषों में से इस नाम का एक प्रकार का फल-विष । सु० कल्प० २ अ० । दे० "नागदन्ती" ।

इभदन्ता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१)हस्तिशुण्डी वृक्ष । हाथीसुंडी । (Heliotropium indicum, *Linn.*) रत्ना० । (२) नागदन्ती । सरियारी । र० मा० ।

इभदन्ताह्वा– इभपत्रिका– } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चिल्ली शाक । चिलारी । (२) नागदन्ती। सरियारी । वै० निघ० ।

इभनिमीलिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भंगा । भाँग । विजया । भाँग बूटी । (Cannabis indica.)

[सं०त्रि०] जिसके सेवन से हाथीको भी नींद आ जाए । इसके पत्र वा बीज खाने से नशा चढ़ती है और नेत्र हाथी की तरह बैठ जाते हैं । इसीसे भाँग को "इभनिमीलिका" कहते हैं ।

इभपुष्प–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Mesua ferrea, *Linn.*) नागकेशर । भैष० मु० रो० चि० वृहत् खदिरवटी ।

इभपोटा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] करिशावक । हाथी का बच्चा ।

इभबला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Sida Alba, *U. C. Dutt.*) नागबला । गुलशकरी । वै० निघ० क्षय–चि० वासाद्यघृत ।

इभभर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हस्तिसमूह । हाथी का झुण्ड ।

इभमज्जक–संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० पुं०] पुत्रदात्री लता । बेटा देनेवाली बेल । वै० निघ० ।

इभमाचल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (A Lion) सिंह । शेर ।

इभमूलक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) हस्तिमूलक । (२) गंध तृण । एक सुगंधित घास । वै० निघ० ।

इभया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वर्णक्षीरी वृक्ष । सत्यानाशी ।

इभयुवति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) युवतिहस्तिनी । नौजवान हथिनी । (२) करिशावक । हाथी का बच्चा ।

इभराज, इभराट्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऐरावत हाथी ।

इभशुण्डी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Heliotropium indicum, *Linn.*) हस्तिशुण्डी । हाथीसुंडी ।

इभषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Agremone Mexicana,) स्वर्णक्षीरी का क्षुप । सत्यानासी । भड़भाँड़ । र० मा० ।

इभाख्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Mesua ferrea, *Linn.*) नागकेशर वृक्ष । त्रिका० ।

इभारि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिंह । शेर ।

इभावती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वटपत्री । पाषाणभेदक विशेष ।

इभी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हस्तिनी । हथिनी । (२) पद्मिनी । कुईं । नलिनी । पलाशिनी ।

इभोषण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Pothos officinalis, *Linn.*) गजपीपर ।

इभोषणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pothos officinalis) गजपिप्पली । गजपीपर । श० च० ।

इभ्यका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हथिनी । (२) शल्लकी का वृक्ष । लोबान का पेड़ ।

इभ्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हस्तिनी । हथिनी ।(२)शल्लकी वृक्ष । लोबानका पेड़ । सलई का पेड़ । (Boswellia thurifera or Serrata) मे० यद्धिकं ।

इभियका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "इभ्यका"।

इभ्राङ्कुशा-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Andropogon laniger, *Desf.*) लामज्जक। लामजक। इज़खिर।

इमकान-संज्ञा पुं० [अ०] दे० "इम्क़ान"।

इमकोस-संज्ञा पुं० [?] असिगृह। तलवारका स्थान।

इमची-[सिंध०] (Terminalia Chebula, *Linn.*) हरीतकी। हड़।

इमरती-संज्ञा स्त्री० [सं० अमृत] एक प्रसिद्ध मिठाई।

विधि-प्रथम उर्द की पीठी को खूब बारीक बाँटकर पुनः उसमें चौरठ मिलाकर दोनों को अच्छी तरह फेंटते हैं। पुनः एक छोटे मलमल के कपड़े में यह फेंटी हुई चीज़ रखली जाती है और घी तई में डालकर गरम किया जाता है। कपड़े के बीच में एक छोटा छिद्र कर दिया जाता है और उस कपड़े को समेटकर खौलते हुये घी में उस फेंटी हुई पिट्ठी को घुमा-घुमाकर चुवाते हैं। गोल-गोल घेरा बन जाने पर उसपर पुनः छल्ले छोड़ देते हैं। जब यह छल्लेदार घेरा पककर लाल हो जाते हैं, तब उन्हें चीनी की चाशनी में डुबा देते हैं। बस इमरती तैयार है। यह खाने में रुचिकारी और सुस्वादु होती है।

इमली-संज्ञा स्त्री० [सं० अम्ल+हिं० ई (प्रत्यय)] (१) एक बड़ा पेड़। (२) इस पेड़का फल। (The fruit of-Tamarindus indica, *Linn.*) अमली। दे० "अम्लिका"।

इमली का सत-संज्ञा पुं० टार्टारिकाम्ल (Acidum Tartaricum) दे०"एसिडम् टार्टारिकम्"।

इमल्शन-संज्ञा पुं० [अं० Emultion] किसी तैल का दूधिया घोल। दे० "एमलशन"।

इमाततः-[अ०] मरना। मारना। मृत्यु। अर्वाचीन यूनानी वैद्यकीय परिभाषा में यह शब्द शक़ाक़लूस और ग़ानूग़राया के लिये व्यवहृत होता है। (Mortification)

इमामदस्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा० हावन+दस्ता] उलूखल और मुसल। खरल और खुटक। एक प्रकार का लोहे या पीतल का खल-बट्टा। यह दवा और मसाला कूटने के काम में आता है।

इमेटीना-[अं० Emetina] दे० "एमेटीन"।

इमेरल्ड-[अं० Emerald] पन्ना। दे० "एमेराल्ड"।

इम्आन-[अ०] ध्यान करना। सोचना। ताकना। घूरना।

इम्क़ान-[अ०] शक्ति। ताक़त। मक़दूर। बस। क़ाबू।

इम्क़िरार-[अ०] रग उभर आना।

इम्ग़ियारीनूस-[अ०] हुम्मा बल्ग़मियः। कफ-ज्वर। श्लैष्मिक ज्वर।

इम्ज़ाज़-[अ०] क्षत का दाह करना। अंजन का आँख में जलन उत्पन्न करना।

इम्तहान-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [अ०] दे० "इम्तिहान"।

इम्तिआस-[अ०] पीठ वा चूतड़ को भूमि पर रगड़ना।

इम्तिख़ाख़-[अ०] हड्डी से गूदा निकालना।

इम्तिख़ाज़-[अ०] माता के पेट में बालक का गति करना।

इम्तिख़ात-[अ०] नाक सिनकना। नाक साफ़ करना।

इम्तिज़ाज-[अ०] मिलना। परिभाषा में दो या अधिक चीज़ों का परस्पर संयुक्त होकर एक हो जाना। (Mixture, Incorporation)

इम्तिताह़-[अ०] हाथ से वायु करना।

इम्तियाक़-[अ०] रोने से हिचकी आना।

इम्तिलाऽ-[अ०] पूर्ण होना। भरना। वैद्यक के अनुसार शरीर वा किसी प्रधान अवयव का दोष विशेषतः रक्त से परिपूर्ण होना। रक्त-संचय।

नोट—यद्यपि "इम्तिलाऽ मिअ्दः" का प्रयोग आमाशय के परिपूर्ण होने के लिए होता है; परंतु यह ठीक नहीं। (Replation.)

किसी मुख्य अंग में रक्त-संचित (इम्तिलाऽ) होनेको अँगरेजीमें कन्जस्चन कहते हैं। (Congestion.)

इम्तिलाऽ और वर्म—में यह अंतर है कि इम्तिलाऽ में राग (ललाई) एवं वेदना नहीं होती, परंतु वर्म में होती है।

इम्तिलाऽ ग़िलाफ़ुल् क़ल्ब-[अ०] इह्तिबाउर्रतूबत अ़लियुल् क़ल्ब। इस्तिस्क़ाऽ हिजाबुल् क़ल्ब। इस रोग में हृदयावरण के भीतर तरल भर जाता है,

इसलिए कष्टपूर्वक साँस ली जाती है आदि। हाइड्रोपेरिकार्डियम Hydropericardium–(अं०)।

इस्तिलाऽ वह.स्त्र औ.इय्य–[अ०] वह दशा जिसमें अख़्लात् (दोष) तथा अरवाह् अधिक परिमाण में होकर स्वस्थान को परिपूर्ण कर दें, जिसमें वह स्थान तनकर खिंचने लगे।

इस्तिलांउत्तिह.ाल–[अ०] (Congestion of the spleen) इह्तिक़ानुद्दम फ़ियुत्तिहाल। प्लैहो रक्त-संचय। पिलही वा तिल्ली में रक्त-संचित होजाना।

इस्तिलाउद्दिमाग़–[अ०] (Congestion of the brain) इह्तिक़ानुद्दम फ़ियुद्दिमाग़। मस्तिष्कस्थ रक्त-संचय। दिमाग़ में शोणित संचित होजाना।

इस्तिलाउल्-कबिद्–[अ०] इह्तिक़ानुद्दम फ़ियुल् कबिद। (Congestion of the liver) यकृतस्थ रक्त-संचय। जिगर में ख़ून एकत्रित होजाना।

इस्तिलाअ् दम्वी–[अ०] (Plethora) कस्.रतुद्दम। शरीर में रक्त अधिक होना। रगों का रक्तपूर्ण होना।

नोट—जिसके शरीर में रक्त अधिक हो उसको तिब में कस्.ीरुद्दम और डॉक्टरी में प्लेथोरिक Plethoric) कहते हैं।

इस्तिस़ास्–[अ०] आचूषण। शोषण। चूसना। ऐब्सॉर्प्शन Absorption–(अं०)।

इस्तिस़ास् स़.ानी–[अ०] उद्रिक्त द्रव का पुनः अभिशोषित हो जाना। (Reabsorption)

इस्तिह.ाज़्–[अ०] शुद्ध स्तन्यपान। ख़ालिस दूध पीना।

इस्तिह.ान–[अ०] जाँच। परीक्षा। परीक्षण।

इस्तिह.ान कीमियाई–[अ०] (Chemical test) रासायनिक परीक्षा।

इस्तिह.ानुल् अद्विय:–[अ०] औषधि-परीक्षण। सड़ी गली तथा बिगड़ी हुई औषधों की परीक्षा।

इस्तिह.ानुल् अन्फ़–[अ०] (Rhinoscopy) फ़.ह्सु.ल् अन्फ़। एक विशेष यंत्र द्वारा नाक की आंतरिक दशा की परीक्षा करना।

इस्तिह.ानुल् ऐ.न–[अ०] (Opthalmoscopy) फ़ह्.सु.ल् ऐ.न। चक्षु-दर्शक द्वारा आँखकी परीक्षा करना।

इस्तिह.ानुल् बत्.न–[अ०] (Abdominoscopy) फ़ह्.सु.ल् बत्.न। उदरपरीक्षण। ठेपन आदि द्वारा पेट की जाँच करना।

इस्तिह.ानुल् मय्यत–[अ०] (Nouroscopy) फ़ह्.सु.ल् मय्यत। मृतक परीक्षा। शव को चीर-फाड़ कर देखना।

इस्तिह.ानुल् रहि.म–[अ०] (Metroscopy) फ़.ह्सु.रेहि.म। एक विशेष यंत्र द्वारा गर्भाशय की परीक्षा करना।

इस्तिहाश–[अ०] स्त्री का उस्तरे से अपने चेहरे को साफ़ करना।

इम्पीरिल मेज़र्स–[अं० Imperial measures] राजकीय माप वा तौल। दे० "माप" वा मान"।

इम्पेरेटा अरुण्डिनेशिया–[ले० Imperata arundinacea, *Cyrill.*] एक प्रकार की घास जो पशुओं के चारे के काम में आती है। उलु–बं०। उसिद्द, सिर सिल, भार्वी–उ० भा०। वरुम विस्स–ते०।

इम्पेशंस एजवर्थियाई–[ले० Impatiens edgeworthii, *Hook.*]

इम्पेशंस चाइनेंसिस–[ले० Impatiens chinensis, *Linn.*] पाइली (मद०)।

इम्पेशंस बालसेमिना–[ले० Impatiens balsamina, *Linn.*] गुल मेंहदी। दुपाती –(बं०)।

इम्पेशंस रायली–[ले० Impatiens roylei, *Walp.*]

इम्पेशंस रेसीमोसा–[ले० Impatiens racemosa, *D. C.*]

इम्पेशंस सल्केटा–[ले० Impatiens sulcata, *Wall.*]

इम्पोटेंसी–[अं० Impotency] क्लैब्य। क्लीवता। नपुंसकता। नामरदी।

इम्प्लाष्ट्रम्–[ले० Emplastrum] दे० "एम्प्लाष्ट्रम्"।

इम्फ़ज़ीमा-[अ०] [अं० इम्फाइसीमा Emphysema] स्फीति। फूलना। वायु भर जाना।

इम्बिताक़-[अ०] धात्वर्थ पानी का बंद फट जाना। पानी निकलना और जारी होना। परंतु अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा में इस शब्द का प्रयोग वीर्य-स्राव (अनैच्छिक शुक्रस्खलन) के अर्थ में होता है। Emission

इम्बितार-[अ०] छिन्न होना। धमनी तथा वात-तंतु आदि पर से खाल हटाकर उसको मोचने आदि से पकड़ना। रग कट जाना।

इम्बिता़ह-[अ०] औंधा लेटना। मुँहके बल शयन करना।

इम्बियाअ़-[अ०] पसीना जारी होना।

इम्बिसात़-[अ०]प्रसरण। विस्तृत होना। फैलना। यूनानी वैद्यक में यह शब्द प्राय: इम्बिसात़ क़ल्ब (हृदय के फैलने) या अन्त:श्वसन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका उलटा 'इन्क़िबा़ज़' है। (Dilatation)

इम्बिसात़ुल् क़ल्ब-[अ०] (Diastole) हृदय विस्तार। हृदय का फैलना।

इम्बिसातु़लु नब़्ज़-[अ०] (Pulsation) ज़र्बुल् नब़्ज़। नाड़ी स्पंदन। धमनी स्फुरण।

इम्बीक़-[अ०] भभके का ढक्कन, जिसकी टोंटी से अर्क परिस्रुत होकर बाहर निकलता है। अलम्बीक Alembic-(अं०)। दे० 'क़रअ़् इम्बीक़'।

नोट-यह अँगरेज़ी शब्द अरबी अल्अम्बीक़ से व्युत्पन्न है।

इम्बुरा-वेर-[ता०] (Root or Wood of Oldenlandia umbeliata, *Linn.*) चिर्वल। चिर्वल की लकड़ी।

इम्बुल-[सिं०] (Eriodendron Anfractuosum, *D. C.*) शाल्मली वृक्ष। सफ़ेद सेमल।

इम्बूड़ल-[ता०] (Root or Wood of Oldenlandia Umbeliata, *Linn.*) चिर्वल। चिर्वल की लकड़ी।

इम्बेलियारिबीज़ [ले० Embelia Ribes, *Burn.* (Berries of.-) विडङ्ग। वायविडङ्ग।

इम्म्युनाइज़िङ्ग बॉडी-[अं० Immunising body] रोगक्षमता उत्पादक द्रव्य।

इम्म्युनिटी-[अं० Immunity] रोगक्षमता। रोगमुक्ति। रोगनाशक शक्ति। दे० "रोगक्षमता"।

इम्म्यून-[अं० Immune] रोगक्षम।

इम्रअत-[अ०] स्त्री। औरत। ज़न। (Woman)

इम्लाऽ-[अ०] प्रतिश्याय से आक्रांत होना। ज़ुकाम होना।

इम्लास़-[अ०] मृत शिशु प्रसव होना। मरा हुआ बच्चा पैदा होना।

इम्ली-संज्ञा स्त्री० दे० "इमली वा अम्लिका"।

इम्शाऽ-[अ०] (१) विरेचन। दस्तावर दवा। (२) दस्त लाना। पेट जारी करना।

इम्साक-[अ०] रुकना। बन्द करना। वैद्यकीय भाषा के अनुसार उदरावरोध। आंत्रावरोध तथा मलावरोध। (Constipation)

नोट—उत्तरकालीन चिकित्सक इस शब्द का प्रयोग वीर्य-स्तंभन के अर्थ में करते हैं।

इम्साक मुतआस़ी-[अ०] उग्र-अवरोध। न खुलने योग्य मलावरोध। (Obstipation) क़ब़्ज़ मुस्त़इस़।

इम्सा़ख़-[अ०] स्तन्यपायी शिशु को स्तनपान से पृथक् करना।

इम्सा़ल-[अ०] स्त्री का भ्रूण को कललावस्था (मु़ज़ग़:) में गर्भच्युत कर देना।

इम़्हूति़प-[Imhotep]एक उज्ज्वल कीर्त्ति प्रसिद्ध मिश्र देशीय हकीम जो अन्य सम्पूर्ण विद्याओंमें पारंगत होने के सिवा इंद्रजाल में भी सिद्धहस्त था। मिस्रियों के बहुत से तीर्थ-स्थानों और मंदिरों में इस देवता की मूर्त्ति की साङ्गोपांग पूजा होती थी। इस मिश्र देशीय देवता के तसवीरों एवं मूर्त्तियों में इसका शिर किसी कदर गंजा दिखाया जाता है, जिससे मालूम होता है कि उस ज़माने में पूर्ण विद्वत्ता से गंजापन का विशेष संबंध था। यद्यपि युरोप के कतिपय प्रदेशों मुख्यत: फ्रांस में इस संबंध स्थापन का उक्त नियम अब भी पाया जाता है कि प्रतिभाशाली विद्वानों की चँदिया पर बाल नहीं होते; तो भी भारतवर्ष में अभाग्यवश गंजेपन को दुष्टता का लक्षण माना जाता है।

जिस प्रकार प्राचीन यूनानी अस्क़्लीबियूस को आरोग्यता प्रदान करनेवाला देवता मानते थे, उसी प्रकार प्राचीन मिश्र देश निवासी भी इम्हूतिप को कला एवं विद्या-गुरु और धन्वंतरि मानते थे। उनकी धारणा थी कि वे रोगियों के दुःख दर्द दूर कर उनको आराम की नींद सुलाते थे।

इय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गमन। चाल।

इयसी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्रेयसी। चव्य-फला। गजपिप्पली। चव्यजा।

इयोज़ूट–[सं०] दे० "क्रियोज़ूट"।

इयारानूतानी–[यू०] एक पौधा जिसकी डालियाँ एक हाथसे भी कुछ बड़ी होती हैं और उनमें गाँठें होती हैं। तना पतला होता है। इसके पत्ते दूर-दूर और ज़ैतून के पत्ते के आकार-प्रकार के होते हैं। इसीलिए मिश्र-निवासी इसे ज़ैतूनियः भी कहते हैं। पत्र का स्वाद कुछ मीठा होता है। जड़ किसी भाँति लम्बी और पतली होती है। फूल पीला होता है। यदि ताँबे के पत्तर पर इसके पत्ते आदि रक्खे जायँ, तो बिना उसमें व्याप्त हुए ही उसे चाँदी की तरह सफ़ेद कर दे। प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष। किसी-किसी के अनुसार समशीतोष्ण। (ख० अ०)

इर, इरक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इरक। उर्वरा भूमि। उपजाऊ ज़मीन।

इरक्क-पोलम्–[ता०] (Aloes) एलुआ। मुसब्बर। बोले सियाह–फ़ा०।

इरक्क-बोलम्–[ता०] रक्तबोल।

इरङ्गून-मल्ली–[ता०] (Quisqualis indica, *Linn.*) Rangoon creeper रङ्गून की बेल। विलायती चमेली–मरा०।

इरगत्-तुत्ति–[ता०] एक प्रकार की बला। दे० "लताकस्तूरी"।

इरट्टि-मधुरम्–[मल०] (Glycyrrhizæ radix) Liquorice मधुयष्टिक। मुलेठी। जेठी मधु।

इरट्टि-मधुरम्-पाल्–[मल०] (Extract of Glycyrrhiza) मुलेठी का सत। रुब्बुस्सूस–अ०।

इरट्टै-पेय-मरुट्टि–[ता०] (Anisomeles malabarica, *R. Br.*) Malabar catmint मोगबीरे का पत्ता।

इरण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] ऊषर भूमि। ऊसर। उर्वरा का उलटा। अ० टी० र०। रा० नि० व० २।

इरणी–[जय०] अरणी। अगेथू। (Premna integrifolia, *Linn.*)

इरत्तें–[ता०] (Alpinia chinensis, *Roscoe.*) Lesser galangal छोटा कुलंजन।

.इरनब–[अ०] बभनी। एक सरीसृप।

इरपू–[ता०] (Cynometra ramiflora, *Linn.*) शिंग्र (गर)–बं०।

इरप्सिन–[अं० Erepsin] दे० "इरेप्सीन"।

.इरब, .इरनब–[अ०] (१) बभनी। एक सरीसृप। (२) देव गंदुम।

.इरमा.ज़–[अ०] (Moss) काई।

इरम्मद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बिजली की आग वा गरमी। वज्राग्नि। (२) बिजली। विद्युत्।

इरशम्–[ता०] (Hydrargyrum) Mercury पारद। पारा।

इरस–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) मत्स्य। मछली।

इरसा–अ० [फ़ा०] दार। दे० "इरसा"।

इरंमद–वि० [संताल] [सं० पुं०] (१) वज्रानल। बिजली की आग। (२) वड़वानल।

इरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सुरा। मद्य। शराब। (२) भूमि। पृथ्वी। (३) जल। मे०। (४) अन्न। अनाज। (५) वाणी। (६) आनन्द। ख़ुशी।

इराक़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पारस का प्रदेश। (२) सिन्ध प्रदेश की एक नदी।

इराक़ः–[अ०] पेशाब। रक्त वा जल की धार निकलना।

इराक़ी–वि० [अ०] इराक़ देश का।

संज्ञा पुं० [अ०] घोड़ों की एक जाति।

इराचर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करका। ओला। वर्षा का पत्थर।

इ राज-संज्ञा पु० [सं० पुं०] कन्दर्प। कामदेव। काम।

.इरा.ज़-[अ०] (Cautery) दागने का एक प्रकारका यंत्र। (२) Whitlow अंगुलबेड़ा। दाख़िस।

इरादा-संज्ञा पुं० [अ० इरादः] विचार। संकल्प। इरादः और शह्‌वत् का अंतर-वह इच्छा जो अपने आधीन हो, इरादः कहलाती है और वह जो अपने वश में न हो अर्थात् स्वाभाविक हो शह्‌वत नाम से बोली जाती है। (Intention)

इरांप (रांप) शक्कर-[ता०] (Raw sugar) राब की शकर।

इरावत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (Citrus Aurantium, *Linn.*) Orange जम्बीर विशेष। नारङ्गी। संत्रा। (२) समुद्र। (३) बादल। मेघ।

इरावती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वटपत्री। पाषाण भेदी। पथरचट। रा० नि० व० ५।

इरावेल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सन्निपात से उत्पन्न सिर की फुंसी। दे० "इरिवेल्लिका"।

इराक्षीर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षीर सागर। क्षीर समुद्र। इसके जल में दूध का स्वाद है।

इरिआ-[?] सोसन।

इरिऑडिक्टयोन-[अं० Eriodictyon] (Yerba santa) एक पेटेंट अँगरेज़ी दवा।

इरिओ-[यू०] (Sisymbrium Irio, *Linn.*) Hedge mustard ख़ाकसी। ख़ूबकलाँ।

इरिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जल। पानी। (Water)

इरिकावन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जल के निकटस्थ वन। पानी के पास का जंगल।

इरिकि-[ते०] (Fruit of-Cordia myxa, *Linn.*) श्लेष्मातक। बड़ा लिसोड़ा। सपिस्ताँ कलाँ-फ़ा०।

इरिकील-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Alangium Lamarkii, *Thwaites.*) अङ्कोल। ढेरा। वै० निघ०।

इरिकेसीइ-[ले० Ericaceæ] वनस्पतियों का एक वर्ग।

इरिटेंट-[अं० Irritant] क्षोभक। उग्रताकारक।

इरिटेंट इन्हलेशंस-[अं० Irritant Inhalations] क्षोभक घ्राण द्रव्य। उत्तेजक नस्य।

इरिण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊषर भूमि। ऊसर। अजय०। रा० नि० व० २।

इरिण्य-वि० [सं० त्रि०] मरुभूमि संबन्धीय। संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊषरखेत। ऊषर क्षेत्र। बंजरखेत।

इरिथ्रॉक्सीलेसीई-[अं० Erythroxylaceæ] एक वनस्पति वर्ग।

इ(ए)रिथ्रॉक्सीलोन कोका-[ले० Erythroxylon coca, *Lam.*) कोका।

इ(ए)रिथ्रॉक्सीलोन मोनोगाइनम्-[ले० Erythroxylon monogynum, *Roxb.*] देवदारु। देवदार।

इरिप-[मल०] (Cynometra cauliflora, *Linn.*) शिंगर।

इरिप्प-[मल०] (Bassia longifolia, *Linn.*) Mohwah tree मधूक वृक्ष। महुये का पेड़। दे० "महुआ"।

इरिप्प-चारायम्-[मल०] (Liquor of Bassia Longifolia) मधूक मद्य। महुए की की शराब। माध्वी।

इरिम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Acacia Farnesiana, *Willd.*) अरिमेद। विट्‌खदिर।

इरिमुसु-[सिं०] (Hemidesmus Indicus, *R. Br.*) Country Sarsaparilla अनन्तमूल। कपूरी बूटी।

इरिमेद(क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Acacia Farnesiana, *Willd.*) अरिमेद। विट्‌खदिर। "कल्कैरनन्ताखदिरेरिमेदः......।" रा० नि० व० ८। भा० पू० ४ भ० मु० रो० चि०। दे० "अरिमेद"।

इरिमेदाद्य तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "अरिमेदाद्य तैलम्"।

इरिविल्ला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मस्तक का एक क्षुद्र व्रण। दे० "इरिवेल्लि"।

इरिवेल्लिः(का)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जत्रु अर्थात् गर्दन के जोतों से ऊपर होनेवाली तीनो दोषों के लक्षणों से युक्त जो गोलाकार फुंसियाँ होती हैं, उन्हें "इरिवेल्लिका" कहते हैं। वा० उ० ३१ अ०।

इरीपु–[कना०] (Cynometra ramiflora, *Linn.*) शिम्र–बं०। शिंगर।

इरीसा–[पं०] (Narcissus tazetta, *Linn.*) नर्गिस।

इरुपै–[ता०] (Bassia longifolia, *Linn.*) मधूक वृक्ष। महुए का पेड़। दे० "महुआ"।

इरुन–[म० प्र०] पेवँदो बेर।

इरुम्ब–[मल०]
इरुम्बु–[ता०] लौह। लोहा। (Ferrum) Iron.

इरुम्बुक्-कीटम्–[मल०]
इरुम्बु-चिट्टम्–[ता०] मण्डूर। लौह-किट्ट। (Ferri peroxidum.)

इरूपू–[कना०] (Cynometra ramiflora, *Linn.*) शिम्र-बं०। शिंगर।

इरूमि-मलैत्तक्कि–[ता०] रूमी मस्तगी। (Mastiche.)

इरेबल-चिन्नि–[ता०] (Rheum) Rhubarb. रेवंदचीनी।

इरेवल-चिनिप्पाल–[ता०](Gambogia) उसारहे रेवंद। गैम्बोजिया। उसारारेवंद।

इरेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०) (१) विष्णु। (२) वरुण। (३) वागीश। (४) राजा। नृप।

इरेप्सीन–संज्ञा पुं० [अं० Erepsin] क्षुद्रांत्रीय रस में पाई जानेवाली चार वस्तुओं में से एक। यह प्रोटीनों के विश्लेषण से बने हुए पदार्थोंका वियोजन करता है। प्रोटीन विश्लेषक।

इरोजा-पुष्पम्, इरोजाप्पू–[ता०] (Rosa centifolia, *Linn.*) शतपत्री। गुलाब। गुलाब का फ़ूल।

.इर्क़–[अ०] [बहु० उरूक़, अराक़] (१) एक प्रकार का वात-तंतुमय नलिकाकार अवयव; जैसे, शिरा वा धमनी। रग। (Vessel)। (२) पौधे की जड़।

.इर्क़ आसफ़–[अ०] कबर की जड़। करीर की जड़। (Root of Capparis spinosa, *Linn.*)

.इर्क़ अंजबार–[अ०] अंजबार की जड़।

.इर्क़ औसत–[अ०] (१) दे० "हफ़्तअंदाम"। (२) कुद्दूल।

.इर्क़ खुलिजान–[अ०] कुलंजन। (Alpinia khulanjan, *M. Sheriff.*)

.इर्क़ मदनी–[अ०] नारू वा नहरुआ नामक रोग। दूद ग़ीनिया। क़र्तीत। रिश्ता। नारुवा। नहरुवा। (Guinea worm, Filaria Medenenensis)

इर्क़ाज़–[अ०] पेटमें भ्रूणका गति करना। (Quickening)

इ.र्क़ुज्जसद–[अ०] देह की रग।

.इर्क़ुत्तीब–[अ०] (१) इस्रार। (२) ज़रंबाद।

.इर्क़ुन्निसाऽ–[अ०] (१) एक रग का नाम जो ऊरु में होती है। यह नितंब से टख़ने तक जाती है। (२) उक्त रग में होनेवाली वेदना। यह वेदना साधारणतः नितंब के अधोभाग से बहिर्गुल्फ के पश्चात् भाग तक प्रतीत होती है। गृध्रसी। रींघनी। राधना (Sciatica) दे० "गृध्रसी"।

नोट—अरबी में "नसा" उस रग को कहते हैं जो चूतड़ से लेकर टख़ने तक है। यूनानी वैद्यक के अनुसार उक्त वेदना का माद्दा इसी रग में हाता है। इस लिए उक्त वेदना को इस नाम से अभिहित किया गया। पर वास्तव में यह वेदना किसी रग में नहीं, प्रत्युत पेडू की बड़ी नाड़ी में होती है। अरबी में इस नाड़ी को अस़बुल् वर्कियुल् कबीर और डॉक्टरी में ग्रेट स्याटिक नर्व (Great sciatic nerve) कहते हैं। इसी संबंध से डाक्टरी में इस रोग का नाम स्याटिका (Sciatica) रखा गया। विशेष देखो "गृध्रसी"।

.इर्क़ुर्रास–[अ०] क़ीफ़ाल नामक एक रग। (Cephalic vein)

.इर्क़ुल्अर्ती–[अ०] लाल रंग की एक हलकी जड़।

.इर्क़ुल् काफ़ूर–[अ०] ज़रंबाद। नरकचूर। (Curcuma cassia, *Roxb.*)

.इक़ुल्-फालूज़ज-[अ॰] रतनजोत। अबुख़ल्सा। Alkanet.

.इक़ुल् बत़न-[अ॰] दे॰ "बासलीक़"।

.इक़ुल्बदन-[अ॰](Median cephalic) हफ़्त अंदाम नाम की एक रग। अक़्ह़ल।

.इक़ुस्सूस-[अ॰] (Glycyrrhiza radix) मधुयष्टि। मुलेठी।

इख़्लाऽ-[अ॰] शिथिली-करण। ढीला करना। सुस्त तथा निर्बल करना।

इग़्ऱाऽ-[अ॰] (Despumation) झाग उतारना। मैल साफ़ करना।

.इ.र्ज़-[अ॰] (१) अंग। अवयव। (२) वह अंग जिसमें से पसीना आवे। (३) दुर्गंधि। शरीर की बदबू।

इर्ज़ब्ब-[अ॰] (Vagina) स्त्री-गुह्यावयव। फ़र्ज। योनि।

इ.र्ज़ाअ-[अ॰] (Suckle) शिशु को दूध पिलाना। स्तन्यदान।

इर्तकान-[फ़ा॰] पीले रंग के हलके संगरेज़े।

इर्तिआद-[अ॰] कंपन। थरथराना काँपना। कंधे पर के मांस का फड़कना। (Trembling)

इर्तिआश-[अ॰] कम्पवायु। कंपन का रोग। अंग का काँपना। रिअ़्शः।(Tremor, Shaking)

इर्तिआश क़स्‌बतुर्रियः-[अ॰] इख़्तिलाज क़स्‌बतुर्रियः।

इर्तिआशे ज़ैबक़ी-[अ॰] पारदजन्य कंपन। एक प्रकार की कंपवायु जो पारद-भक्षण-जन्य विषाक्तता के कारण होती है। (Mercurial tremor)

इर्तिआशे मुस्तम्मर-[अ॰] अवांतर कंपन। निरंतर कंप रोग। यह रोग शिशुओंको साधारणतः पक्षाघात होने के उपरांत होजाया करता है। (Athetosis)

इर्तिआशे हिज़्यानी-[अ॰] औन्मादिक कंपन। प्रालापिक कंप रोग। (Delerium tremor.)

इर्तिआशे हिर्री-[अ॰] (Purring tremor) कंप की लपक। कतिपय हृद्रोगों में इस प्रकार के कंप की तात्कालिक लपक महसूस होती है।

इर्तिक़ाऽ-[अ॰] उन्नति करना। विकास की ओर अग्रसर होना। उभरना। चढ़ना।

इर्तिका.ज़-[अ॰] (Quickening) भ्रूण का माता के उदर में गति करना। इर्का.ज़। तवज्जुअ़।

इर्तिख़ाऽ-[अ॰] धात्वर्थ शिथिल वा ढीला होना। यूनानी हिकमत की आधुनिक परिभाषा में यह शब्द हृदय-विस्तार के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

इर्तिख़ाउल् जिल्द-[अ॰] त्वचा का शिथिल वा ढीला होना। डर्मैटोलाइसिस (Dermatolysis)

इर्तिख़ाए अज़ा.ीम-[अ॰] शक्तिक्षय। असीम निर्बलता। शीतांगता। (Collapse)

इर्ति.ज़ाअ-[अ॰] स्तन्यपान। दुग्धपान। शिशु का अपनी माता तथा धाय का दूध पीना।

इर्तिजाफ़-[अ॰] काँपना। कपकपाना। झूलना। इर्तिजाज। सिंक्लाइसिस Cinclisis-(अं॰)।

इर्तिजाफ़ुल् मुक़्लः-[अ॰] नेत्र कंप। चक्षु गोलक का कंपन। एक प्रकार की व्याधि जिसमें आँख का ढेला कम्पित होता है। निसटैग्मस Nystagmus-अं॰।

नोट—जिन लोगों की दोनों आँखों में कनीनिका-केंद्र पर सफ़ेदी पैदा होजाती है, उन्हें प्रायः यह रोग होजाता है।

इर्तिदाअ-[अ॰] धात्वर्थ परावर्त्तन, लौटना, फिरना। यूनानी हिकमत की आधुनिक परिभाषा में त्वचा पर दाने निकल कर उनका भीतर की ओर दब जाना। (Repurcussion, retrocession)

इर्तिफ़ाउ़ल् ख़ु.स्यः-[अ॰] अंड का ऊपर चढ़ जाना।

इर्तिफ़ाउ़ल् जिल्द-[अ॰] त्वचा पर उभार या चकत्ते पड़ना। (Erythema.)

इर्तिफ़ाक़-[अ॰] धात्वर्थ परस्पर मिलना वा उगना। शारीरशास्त्र में दो अस्थियों के मिलने का स्थान; जैसे—विटप-संधि तथा अधोहन्वस्थि-संधि। (Symphysis)

इर्तिबाक़-[अ०] मिलकर बैठना। स्तर पर स्तर जमना। मेल।

इर्तिबाकुल्अस्नान-[अ०] दाँत बैठ जाना।

इर्तिशाह.-[अ०] (Exudation, infiltration) किसी द्रव वा माद्दा का स्रावित होना। माद्दा गिरना। इन्सिबाब।

इर्दक़नाक़ी-[यू०] एक प्रकार की बूटी जो स्थिर जल में उत्पन्न होती है और करीर की तरह होती है।

.इर्नीन-[अ०] (१) नासिका। नाक (२) नासाग्र। नथुना। (३) नाक की कठोर हड्डी।

इर्न्युटीन-[अं० Ernutin] दे० "अर्गोटा"।

.इर्बिद-[अ०] (Drunkard) मद्यप। उन्मत्त। शराबी। मतवाला।

इर्म्म(म्)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] व्रण। क्षत। अम०।

इर्र-[लेद०] वाथु साग-बं०।

इर्हाइन-[अं० Errhine] वह (औषध) जो छींक लावे। छींक लानेवाली (दवा)। क्षुज्जनक। क्षुताभिजनन। क्षुत्कारक। जैसे—नकछिकनी, नौसादर और तमाकू की पत्ती इत्यादि।

इर्वारु,-इर्व्वारु-संज्ञापुं०[सं० पुं०, स्त्री०] (१)Cucumis utilissima, *Linn.* ककड़ी। पर्य्या०—उर्व्वारुः (अ०), ईर्व्वारुः (शब्दरः)। प० मु०। गुण—स्वादिष्ट, अजीर्णकारक और शीतल। पकी हुई ककड़ी अर्थात् फूट-दाह, कै, प्यास और कांति नाशक है। दे० "ककड़ी"। (२) रोमश कर्कटी। ड०। सु० सू० ४२ अ०, मधुर व०। (३) इंद्रायन।

इर्वारुक-संज्ञा पुं० [स० पुं०] मृग विशेष। हिरन भेद। यह पर्वत की गुहाओं में रहता है।

इर्वारु शुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "इर्व्वारु शुक्तिका"।

इर्व्वारुशुक्ति(का)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Cucumis momordica, *Linn.*) फूट। एक प्रकार की बड़ी ककड़ी। हारा०।

इर्वालु, इर्व्वालु-संज्ञापुं.[सं० पुं०,स्त्री०] (Cucumis utilissima, *Linn.*] कर्कटिका। ककड़ी। अ० टी० रा०।

इर्विन्ती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Mimusops Elengi, *Linn,*) वकुल। मौलसिरी। ता० श०।

इर्वुड-[?] एक अत्यन्त काला भारतीय वृक्ष जिसका फूल गोल और तोते की चोंचकी तरह लाल होता है। प्रकृति—तीसरी कक्षा में गरम, ख़ुश्क, कोई-कोई शीतल बतलाते हैं। गुणधर्म—इसका धूआँ लेना शरीर को तेज़ करता है। इसके खाने से काला दोष पैदा होता है। इससे दस्त आते हैं और गर्भपात हो जाता है। किसी-किसी वैद्य के अनुसार यह वायु कफ और खाँसी को दूर करता है। (ख० अ०)।

इर्षना-क्रि० [सं० एषण] दे० "एषण"।

.इर्स-[अ०] (१) विवाहिता स्त्री। पुरुषवाली स्त्री। पतियुक्त स्त्री। (Married)। (२) सपत्नीक पुरुष।

.इर्समोदून-[यू०] क़र्ज़। बबूल की फली।

.इर्सिम्-[अ०] (Solanum Indicum, *Linn.*) वृहती। बनभंटा। जंगलीबैंगन। मु० अ०।

.इलक़म-[अ०] नर भेड़िया। मादा को "इलक़ः"। कहते हैं।

.इलकिरूमी-[अ०] (Mastiche) रूमी मस्तगी।

.इलकिल अम्बात-[अ०] एक प्रकार की मस्तगी। बुत्म या इसी तरह के एक वृक्ष का गोंद।

इलता-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण भारत के मैदानों और पहाड़ों में होता है इसमें बहुत बड़े बड़े फूल और फल लगते हैं। इसके छोटे छोटे कल्लों से बहुत अच्छा कागज बनता है।

इलन्द-[सिं०] (Zizyphus jujuba, *Linn.*) बदर। बेर।

.इलल-[अ० बहु०] [ए० व० .इल्लत] दे० ".इल्लत"।

.इलल अर्बअ:-[अ०] चार प्रकार के नैमित्तिक कारण। चार कारण जो अखिल पदार्थों के अस्तित्व के लिये आवश्यक हैं, जैसे—(१) .इल्लत माद्दी, (२) .इल्लत .सूरी, (३)

.इल्लत फ़ा.इली और (४) .इल्लत ग़ाई। इनको यथा स्थान देखो।

इलवङ्गप्पू-[ता०] (Caryophyllum) लवङ्ग। लौंग।

इलवमरम्-[ता०] (Eriodendron Anfractuosum, *D. C-*) सफ़ेद सेमल।

इलवा-संज्ञा पुं० [हिं० एलुवा] (Aloes) एलुआ।

इलहाक़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) सम्बन्ध। मिलान। (२) किसी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु के साथ मिला देने का कार्य।

इलहाम्-संज्ञा पुं० [अ० पुं०] आकाशवाणी।

इला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गो। धेनु। गाय। (A cow)। (२) पृथ्वी। मे०। (३) बुद्धिमती स्त्री ; विदुषी। (४) स्वप्नशीला। स्वप्न देखनेवाली या अधिक सोनेवाली स्त्री।

इलाक़ा-संज्ञा पुं० [अ० पुं०] संबन्ध। लगाव।

इलागोल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भूगोल। पृथ्वी। गोलक।

इलाचि-संज्ञा स्त्री०[सं० एला+ची]पुन्नाग चंपा-बं०। सुलताना चंपा। पुन्नाग। (Alpinia Nutans, *Roscoe.*)

इलाची-संज्ञा स्त्री० [सं० एला+ची। (फ़ा० प्रत्य० "च")] (Elettaria cardamomum, *Maton.*) (१) एला। इलायची। लाची। (२) वस्त्रविशेष। इसमें रेशम और सूत दोनों मिले होते हैं।

इलाचीदाना-संज्ञा पुं० दे० "इलायचीदाना"।

इलाज-संज्ञा पुं० [अ० .इलाज] (१) दवा। औषध। (२) चिकित्सा। (३) निवारण का उपाय। युक्ति। तदबीर।

इलाटर्यून-[यू०] उग्र रेचक औषध। इसीसे लेटिन शब्द एलेटेरियम् व्युत्पन्न है।

इलातल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भूतल। पृथ्वी तल। सतह ज़मीन। (२) ज्योतिष के अनुसार राशि-चक्र का चतुर्थ स्थान।

इलाधर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पर्वत। पहाड़।

इलापत्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नाग विशेष।

इलापर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शालपर्णी। सरिवन। (Desmodium gangeticum.)

इलामिच्चम्-वेर-[ता०] (Andropogon muricatus, *Retz.*) उशीर। खस। बाला।

इलायची-संज्ञा स्त्री०[सं० एला+ची(फ़ा० प्रत्य० 'च')] पर्य्या०—लाची (हिं०)। निष्कुटी (अ० टी०), चर्म्म सम्भवा (हा०), दिवोद्भवा (के०), बहुलगन्धा, ऐन्द्री, द्राविणी, कपोतपर्णी, बाला, बलवती, हिमा, चन्द्रिका, सागरगामिनी, गन्धाली गर्भ, एलीका, कायस्था(सं०)। एलाइच, एलाच (बं०)। एलची (मरा०)। यलकुलक्कि, एलुकचेट्टु (ते०)। क़ाक़िल:(अ०)। होल (फ़ा०)। कर्डेमम् Cardamum -(अं०)।

नोट—आयुर्वेदीय ग्रंथोंमें दो प्रकारकी इलायची का उल्लेख पाया जाता है-एला अर्थात् छोटी इलायची और वृहदैला अर्थात् बड़ी इलायची। प्राचीन हकीमों ने दो प्रकार, किसी-किसी ने तीन प्रकार की इलायची का उल्लेख किया है—(१)क़ाक़िलहे सिग़ार अर्थात् छोटी इलायची, (२) क़ाक़िलहे मुत्वस्सित अर्थात् माध्यमिक इलायची और (३)क़ाक़िलहे कुबार अर्थात् बड़ी इलायची किसी किसी ने मोरंग इलायची इसका अन्यतम भेद लिखा है अर्वाचीन यूरोपीय डॉक्टरों ने इलायची के अधोलिखित पाँच भेद लिखे हैं— (१) लंका की जंगली इलायची (Ceylon wild cardamoms) जिससे तात्पर्य छोटी इलायची है, (२) गोल इलायची (Round cardamoms) जो जावा, श्याम तथा चीन प्रभृति देशों से आता है, (३) बंगदेशीय इलायची (Bengal cardamoms), (४) नैपाली इलायची (Naipal cardamoms) और (५) पक्षमय एला (Winged fara cardamoms)। आगे इनमें से प्रत्येक का यथोचित वर्णन किया गया है।

इनमें से आयुर्वेद में तथा यूनानीमें केवल छोटी और बड़ी इन दो प्रकार की इलायचियों का और डॉक्टरी में केवल छोटी इलायची का व्यवहार होता है। आगे इनमें से प्रत्येक का क्रमशः उल्लेख किया जाता है—

इलायची, कलाँ–[फ़ा॰] (Amomum subulatum, *Roxb.*) बड़ी इलायची । स्थूलैला ।

इलायची ख़ुर्द–[फ़ा॰]
इलायची, गुजराती–संज्ञा स्त्री॰ } (Elattarium cardamomum, *Maton.*) सूक्ष्मैला । छोटी इलायची । दे॰ "इलायची छोटी" ।

इलायची, छोटी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ इलायची+हिं॰ छोटी (वि॰)] सफ़ेद इलायची, छोटी इला-इलायची (एलाची) गुजराती इलायची, इलायची, लाची (हिं॰) । इलाची, छोटी इलाची (द॰) । सूक्ष्मैला, द्राविडी, तुत्था, कोरङ्गी, बहुला, त्रुटि, एला, कपोतवर्णा, चन्द्रवाला, निष्कुटी (ध॰ नि॰), एला, बहुलगन्धा, ऐन्द्री, द्राविडी, निष्कुटि, त्रुटि, कपोतवर्णी, गौराङ्गी, वाला, बलवती, हिमा, चन्द्रिका, उपकुञ्ची, सूक्ष्म, सागरगामिनी, गर्भारि, गन्धफलिका, कायस्था (रा॰ नि॰ ६ व॰), निष्कुटी, द्विपा, क्षुद्रैला, चन्द्रसम्भवा, चन्द्रलता (के॰ नि॰), द्राविडोद्भवा, (द्रव्य॰ र॰), चन्द्रवाला, निष्कुटी, कोरङ्गी (मद॰), तुत्था (भा॰), त्रिपुटी, चन्द्रभागा (गण-नि॰), त्रिपुटा (अम॰), उपकुंचिका- (सं॰) । छोट एलाच, गुजराटी एलाइच, एलाची, गार्टी (बं॰) । क़ाक़िलः, क़ाक़लहे सिग़ार, हेल, हेल बवा, ख़ैरबवा, शोशूमीर, शुशूमर (अ॰) । क़ाक़िलहे ख़ुर्द, इलायची ख़ुर्द, हाल बवा, हेल उन्स़ा (फ़ा॰) । एलेटेरिया कार्डेमोमम् Elettaria cardamomum, *Maton.* (ले॰) । कार्डेमम् Cardamom, लेसर कार्डेमम् The leser cardamom, ऑफिशिनल वा मालाबार कार्डेमम् Officinal or Malabar cardamom (अं॰) । कार्डेमम् एलेटरी Cardamom elettarie (जर॰) । Cardamomde, Malabar (फ्रां॰) । एलका, एलाकय्, एलकाय, एल्लकायि विरै, एलम्, इलायची (ता॰) । एलकाय, एलकाय वित्तुलु, ऐलचेट्टि, एल्लय, एलाकु, चिल्लयालकुलु (ते॰) । यालक्कि (कना॰) । वेला, वेलाच, वेल डोड, लघु वेला, एल डोडा (डोडे)– (मरा॰) । इलाची, एलची कागदी, झीनी एलची (गु॰) । एन्सल, एनसल (सिंगा॰) । फाला, भाला, पंलट (बर॰) । एलोकुल्लकापु (द्रा॰) । एलाचि, एलाइच (बम्ब॰) । एलत्तरि, ऐलम् चेड्डय, राजपूतगे पींवर (मल॰) ।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—संस्कृत टीकाकारगण 'एला' शब्द का अर्थ सूक्ष्मैला करते हैं (भानुमती-एलादिगण) । काव्य-ग्रंथों में भी सूक्ष्मैला के अर्थ में एला शब्द का व्यवहार दिखाई देता है—"एला लता स्फालन लब्ध गंधः" (माघ ३ य सर्ग)—यहाँ पर एलालता शब्द से सूक्ष्मैला लता का बोध होता है । सूक्ष्मैला लता सुगंधित होती है; किंतु स्थूलैला के पत्रादि में सुगंधि नहीं होती । द्राविण देश में उत्पन्न होने के कारण, छोटी इलायची का नाम 'द्राविड़ी' है । उपयुक्त संज्ञाएँ यथार्थतः इलायची के डोडे की है; पर साधारणतः डोंड़े और बीज दोनों के लिए उनका प्रयोग होता है । इलायची के डोंडे का विशेष रूप से बोध कराने के लिए क्रमशः इलाची डोंड़े और इलाची बोंड़े हिंदुस्तानी और दक्खिनी संज्ञाओं का प्रयोग होता है ।

आर्द्रक वा हरिद्रा वर्ग

(*N. O. Scitamineae.*)

उत्पत्ति-स्थान—दक्षिणी और पश्चिमी भारतवर्ष, दक्षिण में कनाड़ा के उपजाऊ तर बनों, मैसूर, कुर्ग, ट्रावनकोर, मदुरा और कोचीन के पहाड़ी जंगलों में यह आपसे आप होती है । यह दक्षिण में लगायी भी जाती है । वहाँ के रबर और चाय के प्रांतों में योरपदेशवासी और भारतीय दोनों इसकी कृषि भी करते हैं । ब्रह्मदेश में भी यह जंगली पायी जाती है ।

इतिहास—चरक संहिता (सू॰ ४ अ॰) के विषघ्न, श्वासहर और अंगमर्दप्रशमन वर्ग में 'एला' नाम से इलायची का उल्लेख आया है । सुश्रुत ने भी 'एला' संज्ञा से छोटी इलायची का उल्लेख किया है । इब्नसीना ने 'क़ाक़िलः' और 'हेलबवा' के नाम से इसका उल्लेख किया है । इसकी यूनानी संज्ञा 'क़ातीदाऊस' प्रथम एक और सुरभित फल के लिए प्रयोग में आती थी, उसके उपरांत इलायची के लिए इसका उपयोग

होने लगा। ऐसा ज्ञात होता है कि यूनान देशवासी भारतीय एला से सुपरिचित थे, जो उन्हें सर्व प्रथम पारस्य देश से सीरिया और आरमीनिया होकर प्राप्त हुई थी। योरप में पहले इलायची नहीं होती थी। पीछे भारतवर्ष से वहाँ लोग इसे ले गए। अब भी इंगलैंड, जरमनी, अरब, अदन और ईरान प्रभृति देशों में भारतवर्ष से ही इलायची का निर्यात होता है।

वानस्पतिक-वर्णन और कृषि—एक प्रकार का चिरहरित् चार से आठ फीट तक ऊँचा पौधा जो मालाबार में अधिकता के साथ होता है। इसकी जड़ कंदमूल अर्थात् पाताली धड़ है, जो जमीन में जमती है इसके ऊपरी भाग से इधर उधर पत्रवेष्टित खड़ी डाली निकली है। इसके लिए तर और छायादार ज़मीन चाहिये, जहाँ से पानी बहुत दूर न हो। यह कुहरा और समुद्र की ठंढी हवा पाकर ख़ूब बढ़ती है। इसे पानी और धूप दोनों से बचाना पड़ता है। क्वार कातिक में यह बोई जाती है, अर्थात् इसकी बेहन डाली जाती है। १७–१८ महीने में जब पौधे चार फुट के हो जाते हैं, तब उन्हें खोदकर सुपारी के पेड़ों के नीचे लगा देते हैं और पत्तो की खाद देते रहते हैं। लगाने के एक ही वर्ष के भीतर यह चैत बैसाख में फूलने लगता है और असाढ़ सावन तक इसमें ढेंढी लगती है। फूल सफेद और लाल होते है जिनमें इलायची के बीजों की सी सुगंधि आती है। क्वार कार्तिक में फल तैयार हो जाता है और इसके गुच्छे वा घौद तोड़ लिये जाते हैं और दो तीन दिन सुखाकर फलों को मलकर अलग कर लेते हैं। यह फल इलायची की ढोढ़ी या इलायची का डोडा कहलाता है। एक पेड़ में पावभर के लगभग इलायची निकलती है। फल कच्चेपन पर हरे, पकने के बाद पीले और सूखने पर सफ़ेद होते हैं। इसका पेड़ १० या १२ वर्ष तक रहता है। कुर्ग से इलायची गुजरात होकर और प्रान्तों में जाती थी, इसी से इसे गुजराती इलायची भी कहते हैं।

इलायची के भेद

सफ़ेद या छोटी इलायची के भी कई भेद होते हैं, जो निम्न हैं—

(१) मलाबारी इलायची—इसकी पत्तियाँ मैसूरी इलायची से छोटी होती हैं और उनकी दूसरी ओर सफ़ेद सफ़ेद बारीक रोईं होती है। इसका फल गोलाई लिये होता है। यह अपेक्षाकृत छोटा और असमसृण होता है।

(२) मैसूरी इलायची—मैसूरी इलायची की पत्तियाँ मलाबारी से बड़ी होती हैं। और उनमें रोईं नहीं होती। इसका फल भी मलाबारी से बड़ा होता है।

(३) मैंगलोर की इलायची—यह मलाबारी इलायची की तरह और क़रीब-क़रीब गोल होती है। परन्तु यह उससे बड़ी होती है और इसका ऊपर का भाग खुरदरा होता है।

(४) लंका की जंगली वा देशी इलायची (E. Cardamomum, *var.* major, *Smith.*) लंबोतरी, देखने में झुर्रीदार और गहरे भूरे रंग की होती है।

इलायची का फल वा ढोंढ़ी

छोटी इलायची $\frac{२}{५}$ से $\frac{४}{५}$ इंच लंबी, अण्डाकार किंचित् त्रिपार्श्व, ऊपर की ओर नोकदार एवं नीचे की तरफ गोल होती है। छिलका कागज की तरह मोटा बादामी रंग का होता है. जिसके लंबाई के रुख धारियाँ पड़ी होती हैं। यह प्रायः निर्गंध और स्वाद रहित होता है। बीज $\frac{1}{8}$ इंच के करीब लंबा, किसी भाँति त्रिकोणाकार (नोक तेज नहीं) और झुर्रीदार होता है। रंग बाहर से ललाई लिये काला और भीतर सफ़ेद होता है। सुगंधि मनोरम स्वाद चरपरा तथा सुरभिपूर्ण होता है। खाने के बाद मुँह में ठंढक सी प्रतीत होती है।

भभके में इसके बीजों से एक प्रकार का तेल परिस्रुत किया जाता है जो हलके पीले रंग का होता है। इसका स्वाद एवं सुगंधि इलायची के बीजों की सी होती है। बीस तोले इलायची के बीजों से एक तोला तेल प्राप्त होता है। इसके बीज हवा लगने से बिगड़ जाते हैं। अतएव बिना जरूरत उन्हें छिलकेमें से नहीं निकालना चाहिये। स्वाद में यह बड़ी इलायची की अपेक्षा तीव्रतर

होता है और उससे अपेक्षाकृत कम धारक होता है। तीन वर्ष तक इसकी शक्ति स्थिर रहती है। उत्तम इलायची वह होती है, जो ताज़ी, मोटी और तीव्र सुगंधियुक्त होती है। गुलाम इमाम ने 'तिब गुर्बा' में सफ़ेद को बड़ी से श्रेष्ठतर लिखा है।

रासायनिक संघटन—इसमें एक स्थिर तैल १० प्रतिशत, एक अस्थिर वा उड़नशील तैल—जो इसका क्रियात्मक सार है ५ % पाया जाता है। और इसमें टर्पिनीन नामक एक टर्पीन, पर्याप्त मात्रा में (Terpinyl acetate), (Cineole), (Free terpineol) और संभवत: (Limonene) भी वर्तमान होता है। इसके अतिरिक्त पोटासियम साल्ट्स ३%, श्वेतसार ३%, नत्रजनीय लुआब २%, पीतरंजक पदार्थ, काष्ठतंतु ७७% और भस्म ६ से १०% जिसमें मैंगनीज भी वर्तमान होता है, पाये जाते हैं। (R. N, khory, and R. N. chopra, M. A.)

प्रयोगांश—सूखे हुये परिपक्व बीज तथा बीजकोष और छिलका।

मात्रा—५ से १० ग्रेन (=२॥ रत्ती से ५ रत्ती) अथवा २ से ४ माशे।

इलायची का बीज

इलायचीदाना, इलायची का बीया, एलाबीज, इलायची दाने (हिं०)। इलाची दाना, इलाची दाने (द०)। हब्ब क़ाक़िलहे सिग़ार, हब्ब हालु (अ०)। दानहे हेल (फ़ा०)। दाना इलायची (उ०)। कार्डेमोमाइ सेमिना (Cardamomi semina) (ले०)। कार्डेमम सीड्स Cardamom seeds (अं०)। एलकाय विरे-(ता०)। एलकाय वित्तुलु (ते०)। वि० दे० "इलायची दाना"।

औषध-निर्माण वा भेषज कल्पना-आयुर्वेदीय—इलायची का तेल, इलायची का अर्क, एलादि गुड़िका, एलादिगण, एलादि चूर्ण, एलादि तैल, और एलादिमन्थ इत्यादि।

डॉक्टरी—अल्लोपैथी में यह निम्न योगों में पड़ती है—(१) एक्सट्रैक्टम् कालोसिंथेडिस कम्पाज़िटम्, (२) पल्विस सिन्नेमोमाई कम्पाज़िटस, (३) पल्विस क्रेटी ऐरोमेटिकस, (४) टिंक्च्युरा जेंशियाई कम्पाज़िटस, (५) टिंक्च्युरा रूहियाई कम्पाज़िटस और टिंक्चर स्वयं डिकाक्शन एलोज़ कम्पाज़िटस और मिश्च्युरा सेन्नी कम्पोजिटस में सम्मिलित होता है।

सम्मत योग

(*Official Preparations*)

टिंक्च्युरा कार्डेमोमाई कंपाजिटस Tinctura Cardamomi Compositus (ले०)। कम्पाउंड टिंक्चर ऑफ कार्डेमम्ज़ (अं०)। मिश्रित एलासव (हिं०)। सब्ग़ाहे क़ाक़िलहे सिग़ार (अ०)। तअ्फ़ीन हेल मुरक्कब (फ़ा०)। मुरक्कब टिंक्चर इलायची (उ०)।

निर्म्माण-विधि—कुचले हुये इलायची के दाने $\frac{1}{4}$ आउंस कुट्टित केरुईफ़ूट (कराविया का फल) $\frac{1}{4}$ आउंस, मुनक्का (Resins) २ आउंस, कुट्टित दालचोनी (Cinnamon bark) $\frac{1}{2}$ आउंस, चूर्ण किया हुआ कोचीनील ५५ ग्रेन, एलकोहल वा मद्यसार (६०%) एक पाइंट-समग्र द्रव्य को भिगोकर पर्कोलेशन द्वारा टिंक्चर प्रस्तुत करें। शक्ति-८० में १; वर्ण-गहरा लाल। मात्रा— $\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड ड्राम=(१·८ से ३·६ शतांशमीटर)।

असम्मत योग

(*Not official preparations*)

(१) ऑलियम् कार्डेमोमाई Oleum cardamomi-(ले०)। एला तैल। रोग़न इलायची। यह एक सूक्ष्म पीतवर्ण का अस्थिर तैल है, जो इलायची के बीजों से परिश्रुत किया जाता है, जिनमें यह ४ से ८ प्रतिशत तक होता है।

(२) टिंक्च्युरा कार्मिनेटिवा Tinctura carminativa-(ले०)। आध्मानहर आसव। तअ्फ़ीन कासिरूरियाह।

निर्माण-विधि—इलायचो के दाने (Cardamom seed) ६०० ग्रेन, स्ट्रॉङ्ग शुंठ्यासव (Strong tincture of ginger) $1\frac{1}{4}$

फ्लुइड आउंस,दारचीनीका तैल (Oil of Cinnamon) १०० विंदु, ऑइल ऑफ केरुई १०० बूँद, लवङ्ग तैल (Oil of Cloves) १०० बूँद, एलकोहल (९०%) आवश्यकतानुसार अथवा इतना जितने में पूरा एक पाइंट टिंकूचर तैयार होजाय।

मात्रा—२ से १० बूँद। इसको साधारणतः सुगंधि हेतु अन्य तरल औषधियों में मिलाया करते हैं।

डॉक्टरी परीक्षित योग

(१) टिंक्च्युरा कार्डेमोमाई

कंपाज़िटा	३० मिनिम
टिंक्च्युरा र्‍हीआई कंपाज़िटा	३० मिनिम
सोडियाई बाई कार्ब	१५ ग्रेन
इन्फ्युज़म कलंबी	१ आउंस पर्यंत

ऐसी एक-एक मात्रा दवा दिनमें तीन बार दें।

गुण—आमाशय-नैर्बल्य जनित अजीर्ण में गुणकारी है।

(२) टिंक्च्युरा कार्मिनेटिवी	१० मिनिम
ग्लीसराइनम पेपीनी	३० मिनिम
वाइनम पेपसीनी	१ ड्राम
इन्फ्युज़म जेंशाई कंपाज़िटम्	१ आउंस पर्यंत

ऐसी एक-एक मात्रा दवा दिन में ३ बार दें।

गुण—पाचन शक्तिप्रद है।

(३) मिस्च्युरा कार्मिनेटिवा Mistura carminativa-(ले०)। कार्मिनेटिव मिक्सचर Carminative mixture-(अं०)। आध्मानहर मिश्रण। मज़ीज कासिरुरियाह। दाफ़अ रियाह मुरक्कब। योग—सोडियाई बाई कार्बोनेट ६० ग्रेन, ऐरोमेटिक स्पिरिट ऑफ अमोनिया ७२ मिनिम, कंपाउंड टिंकूचर ऑफ कार्डेमम्ज़ १४४ मिनिम, ग्लीसरीन २४० मिनिम, डिल-वाटर ६¼ फ्लुइड आउंस तक।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार गुण-दोष—

छोटी इलायची (सूक्ष्मैला) मूत्रकृच्छ्रनाशक, श्वास, कास तथा क्षय में हितकर है और यह शीतल, मीठी, हृद्य, रुचिकर तथा दीपन है। (ध० नि०)

छोटी बड़ी दोनों प्रकार की इलायची ठंढी, तिक्त, सुगंधि, पित्त रोगनाशक, कफनाशक, हृद्रोग कारक, किसी किसी ने "हृद्रोगनाशक" ऐसा पाठ दिया है, और मलभेद, वमन एवं शुक्र को नाश करनेवाली अर्थात् नपुंसत्वकारक हैं। (रा० नि० व० ६)

द्रव्य रत्नाकर में इसे अवश्य "अश्मरी नाशक" लिखा है। मदनपाल में इसे "वस्तिप्रणाशिनी" लिखा है। गण-निघंटु में "पित्त प्रकोपक" और "गर्भविनाशक" लिखा है।

इलायची कफ-पित्त-नाशक है तथा यह शूल, कोष्ठवद्धता, तृषा, वमन और वायु का नाश करने वाली है। राज०।

इलायची मूत्रकृच्छ्रनाशक तथा कफ, श्वास, कास और बवासीर नाश करनेवाली है। (भा० पू० १ भ०)

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में गरम और रूक्ष। शेख़ ने तीसरी कक्षा में गरम और रूक्ष लिखा है। शारह गाज़रूनी कहते हैं—"यह प्रथम कक्षांत में गरम और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है।" वैद्य इसे सर्दी की तरफ प्रवृत्त और स्वादमें तिक्त जानते हैं।

हानिकर्त्ता—यूनानी चिकित्सकों के अनुसार उष्ण प्रकृतिवालों के सीने और फेफड़े तथा आँतों के लिए हानिकर है; दर्पनाशक—सीने और फेफड़े के लिए कतीरा वा तबाशीर और आँतों के लिए खुर्फ़ा। प्रतिनिधि—सम भाग लौंग और बड़ी इलायची तथा अर्द्ध भाग कबाबचीनी एवं हब्ब बलसाँ। मात्रा—२ से ४ माशा तक, मिसबाहुल अद्विया में ७ मा० तक लिखा है।

यह तिर्याक़ी और धारक गुण युक्त है तथा रूह को प्रफुल्लित करती एवं उसे लतीफ़ करती है, वायु को विलीन करती, वक्ष, कंठ तथा आमाशय के द्रवों का शोषण करती है। यह पाचन है और शिर, आमाशय तथा हृदय को शक्ति प्रदान करती है। सर्द ख़फ़क़ान को लाभकारी, मुखदौर्गन्ध्यहर तथा क़ै, हल्लास एवं उबकाई को गुणकारी है। इसको पीसकर नाक में फूँकने से छींक आती है और यह अपस्मार, मूर्च्छा, और वायुजन्य शिरो-

शूल में लाभदायक है। वायु को सुवासित करती, वृक्क तथा वस्तिस्थ अश्मरी को निकालती और संग्राही है, विशेषकर भुनी हुई। इसे छिलका सहित जौकुट करके गुलाबार्क वा पानी में क्वथित करके पीना वमन, हृल्लास और विसूचिका में उपयोगी है। सस्तगी और अनार के स्वरस के साथ भी क़ै और मतली का नाश करती है और आमाशय को बलप्रदान करती है। यदि इसे पुदीने या नाना के पत्तों के साथ पानी या गुलाबजल में क्वथितकर पिएँ, तो भी उन दशाओं में कल्याण हो। यदि तबाशीर, खटमीठे अनार का स्वरस और शर्बत गुलाब लेकर, इनके साथ इलायची के बीजों का व्यवहार करें, तो पित्तजनित वमन बंद होजाय। इसका तेल रतौंधी की रामबाण दवा है। आँख में इसके लगाने से पुराने से पुराने रात्र्यांध्य रोग का समूलनाश होता है। यह पसीने में खुशबू पैदा करती है। इसके छिलके मलने से मसूड़े दृढ़ होते हैं। शीतल दर्दों में उपयोगी है, विशेषतः मास्तिष्कीय सर्द दर्दों को बहुत ही लाभकारी है। इसके कान में डालने से कर्णशूल जाता रहता है। सीने, कंठ और आमाशय की रतूबतों का नाश करती है। पाचन शक्ति को बहुत ही साहाय्य पहुँचाती है। आमाशय स्थित रतूबतों को नष्ट करती, डकार लाती, आमाशय से कफजन्य दोषों का छेदन करती और भूख उत्पन्न करती है। इब्न मासूयः के अनुसार सभी कर्मों में बड़ी की अपेक्षा यह अधिक शक्तिशालिनी है, परंतु मेदा को बलप्रदान करने में उससे निर्बल है। किंतु शेख़ और अन्य हकीमों का मत इसके विरुद्ध है। कदाचित् वह इलायची सुर्ख़ जो हबशा और नरंजी तथा बंगाल के सिवा अन्य स्थानों में होती है, ऐसी होती होगी। वरन् बंगदेशीय इलायची सुर्ख़ जो देखी एवं प्रयोग में लाई गई है, परीक्षा द्वारा ऐसी नहीं पाई गई। गाफ़िकी और गीलानी भी कहते हैं, कि यह शीतल आमाशय को बलप्रदान करती और आहार पचाने में सुर्ख़ इलायची से बढ़कर है और उससे अधिक लतीफ़ भी है तथा मेदे की रतूबत का शोषण करती है। शेख़ ने भी ख़ैरबवामें लिखा है कि यह लौंग के समकक्ष है और बृहदेला से अधिक लतीफ़ है तथा आमाशय के लिए उससे अधिक उपयुक्त है। (ख० अ०)

डाक्टरी मतानुसार—

छोटी इलायची लौंग और कालीमिर्च की तरह उष्ण वा उत्तेजक, आमाशय-बलप्रद, वायुनिःसारक वा आध्मानहर और आक्षेपहर है। इसीलिए यह आध्मान और अजीर्ण में उपयोगी है। इसका टिंक्चर प्रियदर्शन एवं सुरभित होने के कारण प्रायः अजीर्ण के योगों में सम्मिलित किया जाता है।

एला आध्मानहर, पाचक, उष्ण और सुगंधि है। यह पान के मसाला की तरह चर्वणार्थ एवं अन्यान्य आध्माननाशक तथा वातघ्न वस्तुवत् भेषजार्थ व्यवहार में आती है। विरेचकादि औषध सेवन करने के उपरांत किसी-किसी को आध्मान होजाता और पेट में मरोड़ एवं शूल होने लगता है, पर उन-उन औषधों के साथ एला सम्मिलित करने से इस प्रकार के किसी उपसर्ग की आशंका नहीं रहती। (Materia Medica of India—R. N. Khory, *Part 11., P. 597.*)

इलायची एक व्यापारिक द्रव्य है। बहुल परिमाण में इसका अन्य देशों में निर्यात होता है, जहाँ इसका मसाला और आहारादि सुस्वादुकर रूप से व्यवहार होता है। (इं० ड्र० इं० भ० १ पृ० १३६)

छिलका सहित छोटी इलायची और गुड़ का काढ़ा पित्तजन्य शिरोभ्रमण के लिए एक प्रसिद्ध घरेलू दवा है। (नादकर्णी)

इसका तेल पीला होता और मद्रास प्रांत में बहुत खिंचता है। यह लगाते-लगाते ही चक्षु को शीतल कर देता है। (हिं० वि० को०)

वैद्यक में इलायची का व्यवहार

सुश्रुत—मूत्राभिहत वा मूत्रकृच्छ्र में एला—आयुर्वेदोक्त किसी मद्य के साथ छोटी इलायची का चूर्ण पान करनेसे मूत्रकृच्छ्र निवृत्त होता है। यथा—

"एलामप्यथ मद्येन ※" (उ० ५८ अ०)

वाग्भट्ट–मूत्रकृच्छ्र में एला—कफज मूत्रकृच्छ्र रोगी को आयुर्वेदोक्त किसी प्रकार के मद्य वा आँवले के रस के साथ छोटी इलायची का चूर्ण पान करना चाहिये। यथा—

"पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैलां धात्रीफल रसेनवा"।

(चि० ११ अ०)

वङ्गसेन–हृद्रोग में सूक्ष्मैला—छोटी इलायची का चूर्ण और पिप्पलीमूल चूर्ण को बराबर बराबर लेकर गाय के घी के साथ सेवन करें। यह हृद्रोग एवं गुल्म में हितकर है। यथा—

"सूक्ष्मैला मागधीमूलं प्रलीढ़ं सर्पिषासह।
नाशयत्याशु हृद्रोगं गुल्मानपि विशेषतः॥"

(हृद्रोगाधिकारे)

इलायची अत्यंत तीव्र है, पित्त और वात-कफके रोगों को नष्ट करती है, फोड़े-फुन्सी और हड्डी की खाज दूर करती है; क़ै को बन्द करती, पुंस्त्व, वक्ष, और अर्श के लिये हितकर है। सफ़ेद इलायची के बीज खाने से दमे की दुर्गंध जाती रहती है।

इलायची के बीजों को बारीक पीसकर सूँघने से शिरोशूल मिटता है।

उनको भूनकर मस्तगी के साथ पीसकर दूध के साथ फाँकने से वस्तिप्रदाह निवृत्त होता है।

अनार के शर्बत में इसके बीजों के चूर्ण को या इसके तेल को पाँच बूँद डालकर पिलाने से मतली और क़ै बंद होती है।

विसूचिका में जब हस्त-पाद शीतल हो जाते हैं, तब इसे अनार के शर्बतके साथ देना चाहिये। पित्त की उल्वणता में भी इसी प्रकार उपयोग करने से लाभ होता है। परन्तु जब कफ सर्दी एवं बादी का प्राबल्य हो, तब इसका प्रयोग वर्जित है।

अन्य चरपरी चीज़ों के साथ इलायची के बीजों की फंकी देने से आध्मान और उदर शूल मिटता है।

पान के बीडे में इलायचीके दाने डालकर खाने से मुखदौर्गन्ध्य निवृत्त होता है।

तोला भर इलायची का अर्क लेकर, उसमें से थोड़ा-थोड़ा पिलाने से नकसीर बंद होती है।

इलायची के बीजों का चूर्ण गोमूत्र वा केले के रस के साथ अथवा शराब के साथ फाँकने से कफजन्य पूयमेह नाश होता है।

सफ़ेद इलायची के १ वा २ तोले छिलकों को आध सेर पानी में औटाकर अर्द्धावशेष रहने पर उसे पिलाने से विशूचिका में उपकार होता है।

सफ़ेद या सुर्ख इलायची के बीजों का लेह बनाकर चाटने से क़ै बंद होती है। इसका क्काथ पिलाने से प्यास रुकती है।

इलायची को गुलाब जल में क्कथितकर सिकंजबीन मिलाकर पिलाने से यकृच्छूल एवं यकृदवरोध में उपकार होता है।

खीरे के बीज के साथ उपयोग करने से यह वृक्क एवं वस्तिस्थ अश्मरी को निकालती है।

इलायची डोडा–संज्ञा पुं० [हिं०, द०] इलायची की ढोंढी। इलायची बोंडा। (Cardamom Capsule)

इलायचीदाना–संज्ञा पुं० [सं० एला+फ़ा० दाना] (१) एला बीज। इलायची का बीया। दे० "इलायची"।

(२) एक प्रकार की मिठाई जो इलायची के बीज पर चीनी की गाढ़ी चाशनी चढ़ाकर तैयार की जाती है।

(३) एक प्रकार के बीज जो भारतवर्ष की पैदावार नहीं। कहते हैं कि सिंगापूर, चीन और बह्मा से यहाँ इसका निर्यात होता है। यह भारतवर्ष के हर एक बाजार विशेषकर दकन के प्रत्येक बड़े-बड़े शहर में सदा सुलभ हैं और साधारण इलायची—मलाबारी इलायची के बीजों से बहुत सस्ते हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि वहाँ ये बहुत अधिकता के साथ होते होंगे। इन्हें प्रायः मलबारी इलायची के दानों के साथ मिलाकर उन्हीं नामों से बेंचते हैं। परन्तु निम्न लिखित विशेष लक्षणों से उसे सहज में ही पहचाना जा सकता है—

ये बीज नोकदार और नाना आकृतिके होते हैं। इनमें कोई तिकोने, कोई दबे हुए और कोई चपटे होते हैं। ये आकार में इलायची के बीज

की अपेक्षा छोटे होते हैं और पीत धूसरितवर्ण के होते हैं। इसकी गंध अति ही मनोरम एवं हृद्य होती है। स्वाद सुरभित और किंचित् चरपरा होता है। मलाबारी या सफ़ेद इलायची के बीजों से इनकी सुगंधि एवं स्वाद तीव्रतर होने पर भी, इनके स्वाद से चित्त बहुत प्रसन्न रहता है। इससे भी इसकी सरल पहचान यह है कि जब छोटी इलायची के दानों को दाँतों से भलीभाँति चर्वित करते हैं, तब उसमें बहुत ही सूक्ष्म, पर स्पष्ट तिक्तास्वाद बोध होता है, जिससे उपर्युक्त बीज सर्वथा शून्य होते हैं।

भारतवर्ष में ये बीज सदैव छिलका उतारकर ही लाये जाते हैं। इसका कारण यह जान पड़ता, कि जब इसका फल परिपाक की किसी एक विशेष अवस्था को पहुँचता है. तब वह प्रस्फुटित हो जाता है और बीज या तो इतस्ततः विकीर्ण हो जाते हैं अथवा वे ढोंढी में ही लगे रह जाते हैं। पुनः वे चुन लिये वा डांडे से निकालकर धो लिये जाते हैं और फिर सुखाकर विक्रयार्थ विभिन्न स्थानों में भेज दिये जाते है।

ये बीज या तो बड़ी इलायची की एक जाति के हैं अथवा उससे भिन्न किसी अन्य प्रकार की इलायची के दाने हैं।

भारतवर्ष में इन बीजों का उपयोग प्रधानतः औषध में और एक प्रकार की मिठाई बनाने में होता है। पर इलायची की तरह न ता ये पान के साथ खाये ही जाते हैं और न मसाले आदि में पड़ते हैं।

पर्य्या—इलायचीदाना, इलायचीदाने (हिं०)। इलायचीदाना, इलायची दाने (द०)। एलम (ता०)। एलकुलु (ते०)। Amomum Sp-of. (Seedof)

उपर्युक्त हिंदुस्तानी और दक्खिनी संज्ञाओं का साधारण अर्थ "इलायची का बीज" है। अतएव उनका उपयोग किसी प्रकार की इलायची के बीज के लिए हो सकता है। परन्तु भाषा-व्यवहार के अनुसार उनका उपयोग प्रायः उपर्युक्त बीजों के लिए होता है; क्योंकि वे, जैसा देखने में आता है, बाजार में बिना छिलके के ही पाये जाते हैं।

उपर्युक्त तामिल और तेलगू संज्ञाओं का व्यवहार केवल इन्हीं बीजों तक सीमित है। अस्तु, छोटी इलायची के बीजों के लिए अन्य संज्ञाएँ व्यवहार में आती हैं। दे० "इलायची छोटी"।

गुणधर्म तथा प्रयोग—ये उद्वेगजनक और वादी को मिटानेवाले हैं और प्रायः उन सभी रोगों में उपयोगी सिद्ध होते हैं, जिनमें साधारण इलायची के बीज काम में आते हैं। इनके चूर्ण को मक्खन में मिलाकर चाटने से आँतों की ऐंठन, दस्त, बारम्बार मल-त्याग की प्रवृत्ति, बार-बार मलोत्सर्ग होना और आँव बन्द हो जाती है। मात्रा—१। माशे से २॥ माशे तक।

इलायची पंडू—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जंगली फल।

इलायची पंड्—संज्ञा पुं० [?] दे० "इलायची पण्डू"।

इलायची बड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० इलायची+हिं० बड़ी (वि०)] बड़ी इलायची, काली इलायची, बँगला इलायची, इलाची पूर्वी, बड़ी लाची, लायची, नैपाली इलायची, लाल इलायची (हिं०)। बड़ी इलायची (द०)। भद्रैला, वृहदेला, त्रिपुटा, त्रिपुटोद्भवा, स्थूलैला, त्वक्सुगन्धा, पृथ्वीका, कन्यका, पुटा (ध० नि०)। स्थूलैला, वृहदेला, त्रिपुटा, त्रिदिवोद्भवा, भद्रैला, सुरभित्वक्, महैला, पृथ्वी, कन्या, कुमारिका, ऐन्द्री, कायस्था, गोपुटा, कान्ता, घृताची, गर्भसंभवा, इन्द्राणी, दिव्यगन्धा (रा० नि० ६ व०), पत्रैला, कन्यका, चन्द्रला, पुटा (कै० नि०), निष्कुटी, चन्द्रवालैला, बहुला (अम०), स्थूलैला, बहुला, पृथ्वीका, त्रिपुटा, भद्रैला, वृहदेला, चन्द्रवाला, निष्कुटी (भा०) वृहत् उपकुंचिका (सं०)। बड़ एलाच, बड़ एलाची, बड़ एलाइच (बं०)। क़ाक़िलहे कुबार, हेल ज़कर, क़ाकिलहे ज़कर, क़ाक़िलहे कलाँ, क़ाकिलहे जंजी (अ०)। इलायची कलाँ (फ़ा०)। अमोमम् सब्युलेटम् Amomum subulatum, *Roxb*. (ले०)। ग्रेटर कार्डेमम् The greater cardamom, लार्ज कार्डेमम् Large cardamom, नेपाल कार्डेमम् Nepal cardamum (अं०)। पेरिय येलक्काय, काट्टुयेलक्काय, एलम् (ता०)। पेद्द येलकायलु, अडवि येलकाय, पॅग एलाकुलु (ते०)। पेरेलम्, पेरिय एलत्तरि, पेरिय एलम्, पेरि एलत्र (मल०)। दोड्ड यालक्की, पर डुलक्की (कना०)। थोरवेला, वेल दोडा (डे), एल डोडी, मोटे वड़े डाडे(मरा०)। मोट्टो इलाची, मोटी एलाची, एलचा (को), जाडी एलची (गु०)। यरडू लक्की (का०)। पाला (बर०)।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—क़रीब-क़रीब सभी उपर्युक्त पर्यायों का अर्थ 'बड़ी इलायची' है। परंतु भारतवर्ष में बहुधा इनका उपयोग एक ऐसी इलायची के लिए होता है, जिसे वास्तविक बड़ी इलायची (The true paradise grains) नहीं कह सकते। बल्कि वह इसी का एक प्रभेद हो सकता है और वह बहुत ही निम्नकोटि का है। यद्यपि उपर्युक्त सभी संज्ञाएँ परस्पर एक दूसरे के पर्याय हैं, तो भी प्रसंगागत इलायची, कलकत्ता, हैदराबाद, बंबई तथा अनेक अन्य स्थानों में अन्य संज्ञाओं की अपेक्षा अपनी अरबी संज्ञा "क़ाक़िलहे कुबार" द्वारा सरलता पूर्वक पहचानी जा सकती है। मदरास में भी यह अधोलिखित नामों से, जिसका अर्थ 'जंगली इलायची' है, सुलभ है—

जंगली इलाची (द०)। काट्टु-एलक्काय (ता०)। अडवि एलकाय (ते०)।

इनके अतिरिक्त अन्य नामों से दुकानदार प्राय: विविध भाँति की छोटी इलायची में से ही बड़ी ढोंढ़ी छाँटकर दे देते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त नामों की जगह धोखे से इसी को बेंचते हैं। भारतवर्ष में छोटी इलायची के सब से बड़े प्रभेद का वास्तविक हिन्दुस्तानी नाम "हैदराबादी इलायची" है। छोटी इलायची की ढोंढ़ी और इसमें केवल आकार भेद के और कोई फ़र्क नहीं। (स० फ़ा० इं०)।

हरिद्रा वा आर्द्रक वर्ग

(*N. O. Scitamnieae.*)

उत्पत्ति-स्थान—यह नैपाल में होती है। इसे बँगला इलायची भी कहते हैं।

वानस्पतिक वर्णन—बड़ी इलायची के वृक्ष भारतवर्ष तथा नैपाल के पर्वतीय भागों में जंगली होते हैं। बंगाल में इसकी एक निकटस्थ जाति (Amomum aromaticum) पायी जाती है। इसके सदाबहार वृक्ष दो-तीन हाथ ऊँचे होते हैं। स्तंभ एक होता है। पत्ते अनार के पत्तों के से होते हैं। हकीम अंताकी के अनुसार इसके पत्ते चौड़े होते हैं। हकीम अब्दुल्मजीद तुह्फ़ा के हाशिया पर लिखते हैं कि इसके पत्ते ज्वार के पत्तों की तरह होते हैं। रंग हरा वा कालापन लिये होता है। पत्ता डेढ़ बालिस्त के क़रीब लंबा और ३-४ अंगुल चौड़ा होता है। फूल और फल तने के तले के हिस्से में लगते हैं। किसी-किसी के मत से इसके पत्ते दो बालिस्त तक लम्बे होते हैं। फूल छोटा और ललाई लिए सफेद बाकला की तरह का होता है। फल अंडाकार वा त्रिपार्श्व, साधारणत: एक इंच वा उँगली के पोर के इतना लम्बा और $\frac{1}{2}$ इंच परिधि में ललाई लिये भूरा होता है। इसके सूक्ष्मतर छोर पर तंतुओं का एक गुच्छा लगा होता है जो प्राय: काल पाकर झड़ जाता है। कोई-कोई फल इसमे भी छोटे होते हैं। छिलका मोटा रक्ताभधूसरित होता और लंबाई के रुख़ इस पर धारियाँ होती हैं। पकने के उपरांत किसी-किसी का छिलका स्वयं फट जाता है। बीज छोटी इलायची की तरह, पर उससे बड़े, करीब-करीब गोल वा अप्रशस्त कोण युक्त, भूरे, स्वाद और गंध में निर्बल सुगंधिमय होते हैं। परंतु इसकी गंध कूँचने पर ही प्रतीत होती है। ताज़ा होने पर ये बीज, बीज-कोष में एक प्रकार के मधुर चेपदार गूदे द्वारा परस्पर संलग्न होते हैं। सूखने पर उक्त द्रव जाता रहता हैं। बड़ी इलायची तरकारी आदि तथा नमकीन भोजनों के मसालों में दी जाती है।

जब तक बीज छिलकों के भीतर रहता है, दो वर्ष तक बिगड़ता नहीं और उसकी शक्ति बनी

रहती है। इसके उपरांत स्वाद एवं सुगंधि जाती रहती पर शक्ति स्थिर रहती है। छिलके रहित बीजों की शक्ति एक वर्ष तक शेष रहती है। यह छोटी इलायची को उत्तम प्रतिनिधि है और बहुत सस्ती पड़ती है। इसके बीजोंसे एक प्रकारका तेल निकाला जाता है, जिसमें काफ़ी (Cineole) वर्तमान होता है और जो औषधियों को सुस्वादु बनाने के काम आता है। यह चित्त को प्रफुल्लित रखनेवाला, उत्तेजक और पीतवर्ण का होता है। इसकी गंध और स्वाद बीजों की तरह होता है।

प्रयोगांश—बीज और बीजों से निःसृत तैल।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

बड़ी इलायची (भद्रैला), तिक्त, हलकी, कफ वात तथा विष एवं व्रण नाश करनेवाली है और वस्ति तथा खाज के रोगों को नष्ट करती एवं मुख तथा कंठ और मस्तक का शोधन करती है। (ध० नि०)

बड़ी इलायची (स्थूलैला) पाक और रस में कटुक, जठराग्निवर्द्धक वा पित्तकारक, हलकी, रूक्ष तथा उष्ण वीर्य है और कफ, पित्त, रक्त, खाज, श्वास एवं तृषा नाशक है तथा हृल्लास, विष, वस्ति, मुख एवं शिरके रोग एवं वमन और खाँसी का नाश करनेवाली है। (भा० पू० १ भ०)

यूनानीमतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—शेख़ुर्रईस प्रभृति ने इसे तीसरी कक्षा में गरम ख़ुश्क लिखा हैं। ग़ाफ़िकी और गीलानी तथा तुहफ़ा के लेखक के मतानुसार यह द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। मख़्ज़नुल् अदविया के रचयिता ने प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष बताया है। यह अंश सम्भवतः शारह के नाम से उद्धृत किया गया है जो उसने सफ़ेद इलायची की प्रकृति के विषय में लिखा है। हानिकर्त्ता—आन्त्र तथा फुफ्फुस को। दर्पनाशक—आँतों के लिए कतीरा और फेफड़े के लिये क़ंद। प्रतिनिधि—समभाग कबाबचीनी अथवा डेवढ़ी छोटी इलायची। मात्रा—४॥ मा०, किसी-किसी के अनुसार ९ माशे।

वृहदैला रूह को फ़र्हत देती है, गरमी पैदा करती, हृदय, आमाशय तथा मसूड़ों को बल-प्रदान करती और आहार का पाचन करती है। मुँह आने पर इसका चूर्ण बुरकने से लाभ होता है। यह भूख पैदा करती, डकार लाती, सुद्दों का उत्सर्ग करती, मृदुता एवं निर्मलता उत्पन्न करती, मुख एवं स्वेद को सुवासित करती, शीतजन्य यकृच्छूल का निवारण करती और यकृदावरोध निवृत्त करती है। इस काम के लिए ३॥ मा० बीज पीसकर सिकंजबीन के साथ तीन दिन तक व्यवहार करना चाहिये।

इलायची के दाने ७ मा० और खीरे के बीज ७ मा०—इन दोनों को पीसकर सिकंजबीन के साथ पीने से वृक्काश्मरी का नाश होता है अथवा केवल इलायची के बीज सिकंजबीन में मिलाकर निरन्तर ७ दिन तक चाटने से भी लाभ होता है।

इसको पीसकर सूँघने से छींक आती है और सांद्रवायु (रेहग़लीज़) जन्य शिरोशूल एवं मृगी में उपकार होता है। मूर्च्छा एवं उन्माद में लाभकारी है।

सफ़ेद इलायची की अपेक्षा बड़ी इलायची किसी-किसी की प्रकृति के अधिक अनुकूल होती है।

इसके दाने दस्तों को बन्द करते हैं। विशेषकर भुने हुए हल्लास निवारकहैं और आमाशयगत वायु को दूर करते हैं, विशूचिका एवं यकृच्छूल में लाभकारी हैं और जबड़ों को खोलते हैं।

इसके छिलकों का लेप करने से गर्मी का शिरदर्द आराम होता है।

इसके छिलकों का मंजन मसूढ़ों को दृढ़ करता है। यह दशा इसके दानों के मंजन की है।

वैद्य कहते हैं कि इलायची सुर्ख़ इलायची सफ़ेद की अपेक्षा प्रवलतर है। यह तेज़, गरम तथा सुबुक है और कफ पित्त को दूर करती है। आमाशय प्रदाह, आमाशयशूल तथा मूर्च्छा में उपयोगी है, मतली और मुँह की बीमारियों

को नष्ट करती, शिरोशूल, वमन और खाँसी को रोकती है। कोई-कोई वैद्य कहते हैं कि यह वायु और कफ उत्पन्न करती है। मिश्री के साथ इसके बीजों के चूर्ण की फंकी लेने से सूज़ाक आराम होता है। इनके चूर्ण को मूसली सफ़ेद, और मिश्री के साथ खाने से शक्ति बढ़ती है। बेलगिरी के साथ इनके चूर्ण की फंकी लेने से दस्त बन्द होते हैं।

सौंफ के साथ खाने से पाचनशक्ति की निर्बलता जाती रहती है। दो माशे इसके बीजों के चूर्ण को कुनैन के साथ देने से वातसूत्रगत वेदना मिटती है। इसका ५ रत्ती चूर्ण सेवन करने से यकृत के क्षत आराम होते हैं। कालेनमक के साथ इसके चूर्ण की फंकी लेने से पेट का दर्द एवं आध्मान निवृत्त होता है। मिश्री के साथ इसके फाँकने से आमाशय की जलन तथा गरमी मिटती है। बड़ी इलायची को क्वथितकर गंडूष करने से दाँत और मसूढ़ों के रोग मिटते हैं। खरबूजे के बीजों की मींगी और इलायची के बीज पीसकर फाँकने से···रोग आराम होता है। आँतों में से जो थोड़ा और गाढ़ा रस निकलने से बदहजमी होती है, उसके निवारणार्थ इसका उपयोग कल्याणकारी प्रतीत होता है। राई के चूर्ण के साथ इसके बीजों की फंकी लेने से यकृतगत सांद्रभूत रक्त विलीन होजाता है। इसके चूर्ण में समान भाग मिश्री मिला गर्भवती स्त्री को फँकाने से उसकी भूख बढ़ती है। (ख० अ०)

नव्य मत

नादकर्णी—बड़ी इलायची के बीज से एक प्रकार का औषधीय तैल प्राप्त होता है जो सुग्राह्य सुगंधित उत्तेजक है। यह पाचक (Stomachic) है और विशूचिका वा किसी अन्य विकारजनित आमाशय प्रदाह शमनार्थ इसका उपयोग होता है। दंत वा दंतवेष्टगत व्याधियों में इसके काढ़े से गंण्डूष कराया जाता है। वृक्काश्मरी में तरबूज (Melon) के बीज के साथ इसका वस्तिशोधक रूप से व्यवहार होता है। उन पाचन संस्थानगत विकारों में, जिनमें आँतों से कोष्ठगत न्यून रसोद्रेक प्रत्यक्षज्ञात होता है, इसेएक अमूल्य औषध स्वीकार किया जाता है। यह पित्तोद्रेक की वृद्धि करता है और यकृत स्थित रक्त संचय आदि यकृद्विकारों, विशेषकर जब वहाँ विद्रधि होगई हो, तब यह अतीव गुणकारी होता है। मात्रा-१० ग्रेन (५ रत्ती) है। बड़ी मात्रा—३० ग्रेन अर्थात् १५ रत्ती की मात्रा में कुनैन के साथ यह वातवेदना (Neuralgia) में उपकारी है। कामोद्दीपक रूप से यह सूजाक़ में प्रयोजित होती है। Indian materia medica—*K. M. Nadkarni.*)

इलायची-बोंड़ा–[हिं०, द०] दे० "इलायची डोडा"।

इलायची, मोरंग-संज्ञा स्त्री० [हिं० इलायची+मोरंग (वि.)] इसके वृक्ष बंगाल के पूरब की ओर गाँव में होते हैं। इनके फलोंको मोरंग इलायची कहते हैं। यह फल बड़ी इलायची के फलों से कम मिलते हैं। पर बीजों का स्वाद और आकृति मिलती हुई होती है। इसके फल सावन, भादों में पकते हैं। गुण—मोरंग इलायची के बीज संकोचक एवं संग्राही हैं। इनको पीसकर दाँतों पर मलने से दाँत स्वच्छ एवं दृढ़ रहते हैं। (ख० अ०)

इलाव:–[अ०] (१) वह सूखी कुटी-पिसी दवा जिसे किसी तरल औषध पर छिड़ककर व्यवहार करें। सरेदारु। प्रक्षेप। (२) सिर जब तक वह ग्रीवा पर स्थापित रहे। गरदन से लगा हुआ शिर।

इलाही रात–संज्ञा स्त्री० [अ०] जागरण की निशा। नींद न लेने की रात।

इलि–दे० "इली"।

इलिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पृथ्वी।

इलिक्सिर–[अं० Elixir] दे० "एलिक्सिर"।

इलि (ली) (ल्लि) श–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली। हिलसा मछली। (Clupea ilisha, *Ham*, *&. Buch.*) हारा०। दे० "हिलसा"।

इलिस–[बं०] हिलसा मछली। दे० "इलीश"।

इली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करबालिका। हाथ छुरी। छोटी तलवार। करपालिका। कटारी।

इलीश–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] हिलसा नाम की मछली। (Clabea ilisha.)

संस्कृत पर्याय—गाङ्गेय। वारिकपूर। शफराधिय। जलताल। राजसफर। इल्लीश। जलतापी।

प्राप्ति स्थान–यह मछली पारस्योपसागर सिन्धु नद की उपकूल और भारतवर्ष, ब्रह्मदेश एवं मलय द्वीप के बड़ी-बड़ी नदियों में रहती है। कृष्णनदी में आश्विन, गोदावरी में कार्तिक, कावेरी में ज्येष्ठ, सिन्धु नद में फाल्गुन-चैत्र और ब्रह्मदेश की इरावती नदी में कार्तिक मास में यह अधिक दीख पड़ती है।

विवरण—इसका गात्र चाँदी सा चमकीला होता, जिस पर सुनहला रंग चढ़ा होता है। बीच-बीच में कुछ-कुछ लाली भी झलका करती है। इलीश अधिक से अधिक १॥ हाथ तक लम्बी होती है। इसके शरीर में काँटे और तैल का पदार्थ अधिक रहता है। खाने में यह अत्यंत सुस्वादु होती है।

गुण—यह मधुर, स्निग्ध, अग्निवर्द्धक, पित्तकर, वृष्य, वायुनाशक, रोचक और लघु है।

इलीस–संज्ञा स्त्री०
इलीस मच्छ–संज्ञा पुं० } (Clupea ilisha, *Ham .&. Buch.*) एक प्रकार की मछली। हिलसा मछली। दे० "इलिश"।

इलीसियम् एनिसेटम्–[ले० Illicium anisatum, *Linn.*] (Star anise) बादियाने ख़ताई–फ़ा०। अनासफल–हिं०।

इलीसियम् ग्रीफ़िथियाई–[ले० Illicium griffithii, *HK.*)

इलीसियम् रेलिजिओज़म्–[ले० Illicium religiosum, *S, &. L.*] अनासफल।

इलीसियम् वेरम्–[ले० Illicium verum, *Hook.*] (star-anise tree) बादियाने ख़ताई–फ़ा०। अनासफल–हिं०।

इलु(रु)प्पै–[ता०] (Bassia longifolia, *Linn.*) मधूक वृक्ष। महुआ का पेड़।

इलुप्पै-शाड़ायम्–[ता०] (Liquor of Bassia longifolia) मधूक मद्य। महुएकी शराब। माध्वी।

इलेक्ट्रिक–वि० [अं० वि० Electric] विद्युत सम्बन्धीय। दे० "बिजली"।

इलै–[ता०] [बहु० इलैगल] (Leaf) पत्र। पत्ती। पत्ता।

इलैक-कल्लि–[ता०] (Euphorbia nerifolia, *linn.*) स्नुहि। सेंहुँड़। थूहर।

इलैगल–[ता० बहु०] (Leaves) पत्र। पत्तियाँ, पत्ते।

.इल्क–[अ०] हर एक गोंद जो चबाए जा सकें।

इल्क़.–[अ०] नर भेड़िया। मादा को अरबीमें इल्क़: कहते हैं।

इल्क़म्–[अ०] इंद्रायन का फल।

इल्क़ा.ह–[अ०] धात्वर्थ पैवंद करना। वैद्यक के अनुसार गर्भित करना। गर्भ रहना। स्त्री के रज तथा पुरुष के वीर्य्य का परस्पर मिलना। (Impregnation)

.इल्कुल् अंबात्–[अ०] बुत्.म या उसके समान एक वृक्ष की गोंद। एक प्रकार की मस्तगी।

.इल्कुल् जाफ़–[अ०] रातीनजुल् जाफ़।

.इल्कुल् बुत्.म–[अ०] बुत्.म की गोंद।

.इल्कु (अलकु)स्.सनोबर–[अ०] चीड़ का गोंद।

इल्कूलीस–[यू०] (Mel) *Honey* मधु। शहद।

.इल्के याबिस–[अ०] रातीनज का एक भेद।

.इल्के रूमी–[अ०] रूमी मस्तगी। .इल्क़रूमी।

इल्तस्त–[?] शिलारस। मीअहे साइल:। (Altingia excelsa, *Noronha,*)

इल्तिक़ाम–[अ०] (१) धात्वर्थ ग्रास-गिलन। कवल घोंटने की क्रिया या भाव। (२) प्रत्यक्ष शारीरक के अनुसार किसी हड्डी के उभरे हुये भाग का दूसरी हड्डी के गढ़े में प्रविष्ट होना।

इल्तिज़ा.अ–[अ०] व्रण वा क्षत की पीड़ा से जलना। शोथ एवं दाह से जलना अर्थात् क्लेशित होना।

इल्तिज़ाक़–[अ०] (Agglutination) एक वस्तु का दूसरे के साथ चिपट जाना। चिमटना। चिपकना। संयुक्त हो जाना। संप्रक्त हो जाना। इल्तिसाक़। इल्तिसा़क़।

इल्तिजाम–[अ०] मूक होने की क्रिया। गूँगा होना। तेंदुवे के कारण ज़बान से बोला न जाना।

इल्तिदाद–[अ०] औषध का गलाधः करण। दवा निगलना। (Deveating)

इल्तिमाह.-[अ०] दृष्टि शक्ति का नष्ट होना। नजर जाता रहना।

इल्तियाअ-[अ०] कामाग्नि से हृदय जलना।

इल्तियाम-[अ०] घाव भर जाना। घाव अच्छा हो जाना। व्रणपूरण।

इल्तिवाऽ-[अ०] (१) धात्वर्थ वक्रीभवन। झुकना। दोहरा होना। (२) तिब्ब के अनुसार रीढ़ के कशेरुकाओं या मुहरों का दायें बायें टल जाना, जिससे रीढ़ वक्रीभूत हो जाती है और रोगी दक्षिण वा वाम पार्श्व की ओर झुक जाता है। (Scoliosis)

इल्तिवाउल् अम्आऽ-[अ०] दे० "इल्तिवाउल्लफ़ाइफ़"।

इल्तिवाउल् उनुक़-[अ०] (Torticolis, Wry-neck) एक रोग जिसमें ग्रीवा की मांस-पेशियाँ ऐंठ जाती हैं और रोगी एक ओर गरदन झुकाए रखता है।

इल्तिवाउल्लफ़ाइफ़-[अ०] Intussusception आन्त्रान्त्रप्रवेश। दे० "अन्त्रअन्योन्यानुप्रविष्ट"। (Ileus) दे० "एलाउस"।

इल्तिसा़क़ुल् क़र्ज़हि.य्यः-[अ०] आँख के अंगूरी पर्दा का अपने सामने कार्निया के पर्दे से या पीछे स्फटिकीय पटल (Crystalline lens) से जुड़ जाना। इल्तिसा़क़ुल .इनबियः। साइनीकिया Synechia-अं०।

इल्तिसा़क़ुल् जुफ़्न-[अ०] दोनों पलकों का परस्पर मिलकर चिपक जाना, कभी तो ऐसा एक ही कोने में और कभी दोनों में होता है और कभी ऐसा भी होता है कि दोनों पलकें एक किनारे से लेकर दूसरे किनारे तक मिलकर चिपक जाती हैं। कभी पलक कनीनिका से चिपक जाती है। एँकिलोब्लीफेरन Ankyloblepharon (अं०)।

इल्तिसा़क़ुल् मफ़्स़ल-[अ०] संधि का संयुक्त हो जाना। जोड़ का मिल जाना। संधि का कठिन हो जाना। ऐंकिलोसिस (Ankylosis)

इल्तिसा़क़ुल् शफ़तन-[अ०] दोनों ओष्ठों का परस्पर संयुक्त हो जाना। ऐंकिलोकीलिया (Ankylo-chilia)

इल्तिसा़क़ुल् शफ़रैन-[अ०] भगोष्ठों का परस्पर संयुक्त हो जाना। ऐंकिलोकोल्पोस (Ankylo-colpos)-अं०।

इल्तिहाब-[अ०] धात्वर्थ जलना, प्रज्वलित होना, भड़कना। अर्वाचीन तिब्बी परिभाषा में इस शब्द का प्रयोग उष्ण शोथ (वर्म ह.ार) के अर्थ में होता है। प्राचीन फ़ारसी भाषामें इसे "आमास" और अर्वाचीन भारतीय फ़ारसी में "सोज़िश" और उर्दू में सूजन कहते हैं। प्रदाह। शोथ। श्वयथु। सूजन।

इन्फ्लामेशन Inflammation, फ्लैग्मेशिया Phlegmasia (अं०)।

नोट – इल्तिहाब के लिये यह चार चीज़ें आवश्यक हैं जो इस पद्य में स्पष्ट रूप से वर्णित हैं—

चार चीज़ अस्त लाज़िम सोज़िश।
दर्द व गर्मी व सुर्ख़ी व आमास॥

जिस प्रकार धातु एवं परिभाषा के अनुकूल इन्फ्लामेशन, इल्तिहाब और सोज़िश आदि शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं, उसी प्रकार स्वेलिंग, वर्म और आमास भी एक दूसरे के तुल्यार्थक हैं। परंतु अर्वाचीन मिश्र देशीय हकीम वर्म के स्थान में 'इल्तिहाब' शब्द का प्रयोग करते हैं और सलअः अर्थात् रसौली के लिए वर्म शब्द का। वि० दे० "सल्अः" तथा "वर्म।"

इल्तिहाब अअ्वर-[अ०] (Cæcitis) अन्त्रपुट प्रदाह। वर्म अअ्वर।

इल्तिहाब अअ़्ज़ाए तनासुल-[अ०] (Edeitis) जननेंद्रिय प्रदाह। जननेंद्रिय की सूजन। वर्म अअ़्ज़ाए तनासुल।

इल्तिहाब अग़्शियः ज़ुलालियः-[अ०] (Synovitis) स्नैहिक-कला-प्रदाह। जोड़ों के भीतर की झिल्ली की सूजन। वर्म अग़्शियः ज़ुलालियः।

इल्तिहाब अज़्रबः-[अ०] (Folliculitis) वर्म अज़्रबः।

इल्तिहाब अ.ज़्लहे क़ल्ब-[अ०] हार्दीय मांस-पेशी प्रदाह। हृदय की पेशियों की सूजन। (Myocarditis) वर्म अ.ज़्लहे क़ल्ब।

इल्तिहाब अ.ज़्ली-[अ०] (Myositis) मांस पेशी प्रदाह। पेशी की सूजन। वर्म अ.ज़्लः।

इल्तिहाब अमूआऽ–[अ०] (Enteritis) आन्त्र प्रदाह । आँतोंकी सूजन । वर्म अमूआऽ ।

इल्तिहाब अस्नान–[अ०] (Odotitis) दंत प्रदाह । दाँतों की सूजन । वर्म अस्नान ।

इल्तिहाब अ़स़ब–[अ०] (Neuritis) नाड़ी प्रदाह । संवेदन-सूत्रों की सूजन । वर्म अ़स़ब ।

इल्तिहाब अस्बअ़–[अ०] (Dactytitis) अंगुष्ठ प्रदाह । उँगली की सूजन । वर्म अस़बअ़ ।

इल्तिहाब अ़स़बवर्की–[अ०] (Ischiatitis) नैतंबिका नाड़ी प्रदाह । चूतड़ के पुट्ठे की सूजन । वर्म अ़स़ब वर्की ।

इल्तिहाब इ़स्ना अ़श्री–[अ०] (Duodenitis) द्वादशांगुलीयांत्र-प्रदाह । बारह अंगुश्ती आँत की सूजन । वर्म इ़स्ना अ़श्री ।

इल्तिहाब उ़ज़्न–[अ०] (Otitis) कर्ण प्रदाह । कान की सूजन जो उग्र और चिरकारी बाह्य तथा आंतरिक कई प्रकार की होती है । वर्म उ़ज़्न ।

इल्तिहाब ऐ़न–[अ०] (Ophthalmitis) अक्षिगोलक प्रदाह । नेत्रपिंड की सूजन । सोज़िश कुर्हे चश्म–फ़ा० । वर्म-ऐ़न–अ० ।

इल्तिहाब औतार व ग़ज़ारीफ़–[अ०](Inchondritis) नसों और कुरियों की सूजन ।

इल्तिहाब औरत़ा–[अ०] (Aortitis) महाधमनी प्रदाह । सोज़िश अबूहर–फ़ा० । वर्म अवरत़ी ।

इल्तिहाब क़ज़ीब-[अ०] (Penitis) शिश्न-प्रदाह । सोज़िश क़ज़ीब–फ़ा० । वर्म क़ज़ीब –अ० ।

इल्तिहाब क़ज़हि़य्यः-[अ०] (Iritis) उपतारा प्रदाह ।

इल्तिहाब कतिफ़–[अ०] (Omitis) स्कंधप्रदाह । कंधे की सूजन । वर्म कतिफ़ ।

इल्तिहाब कबिद–[अ०] (Hepatitis) यकृत्प्रदाह । जिगर की सूजन । वर्म कबिद ।

इल्तिहाब क़र्नियः-[अ०] (Corneitis) कनीनिका प्रदाह ।

इल्तिहाब क़ल्ब–[अ०] (Carditis) हृत्प्रदाह । हृदय की सूजन । वर्म क़ल्ब ।

इल्तिहाब क़स़बः–[अ०] (Trachitis) वायुप्रणालिका प्रदाह । हवा की नालीकी सूजन । वर्म क़स़बः ।

इल्तिहाब कुल्यः–[अ०] (Nephritis) वृक्क प्रदाह । गुरदे की सूजन । बृक्क शोथ । आमासे गुर्दः (फ़ा०) । वर्म कुल्यः (अ०) ।

इल्तिहाब कुल्वी सदीदी–[अ०] (Pyonephritis) सपूय बृक्क शोथ । गुरदे की पूयमय सूजन । आमासे गुर्दः रीमी (फ़ा०) । वर्म कुल्वी सदीद ।

इल्तिहाब कैस–[अ०] (Bursitis) संधिकोष प्रदाह । आमास कीसः (फ़ा०) । वर्म कैस (अ०) ।

नोट—कीसः जिसे डॉक्टरी में बर्सा कहते हैं, एक छोटी सी झिल्लीदार थैली होती है जो संधि के अंगों को परस्पर घिसने से सुरक्षित रखती है ।

इल्तिहाब कैस दमूई़–[अ०] (Dacryocystitis) अश्रुकोष प्रदाह । आँसू की थैली की सूजन । आमासे कीसहे अश्की (फ़ा०) । वर्म कैस दमूई़ (अ०) ।

इल्तिहाब क़ोलून–[अ०] (Colitis) उद्गामी बृहदंत्र प्रदाह । सोज़िश क़ोलून (फ़ा०) । वर्म क़ोलून (अ०) ।

इल्तिहाब ख़द–[अ०] (Gnathites) कपोल प्रदाह । कपोल वा गालों की सूजन । सोज़िश रुख़्सार (फ़ा०) । वर्म ख़द (अ०) ।

इल्तिहाब ख़ुस्यः–[अ०] (Orchitis) अण्ड-प्रदाह । अण्डशोथ । आँडी की सूजन । सोज़िश ख़ायः (फ़ा०) । वर्म ख़ुस्यः (अ०) ।

इल्तिहाब ग़ल्समः–[अ०] (Uvulitis) शुंडिका प्रदाह । कौवेकी सूजन । सोज़िश मलाज़ः (फ़ा०)। वर्म लहात (अ०) ।

इल्तिहाब ग़िलाफ़े अ़स़ब–[अ०] (Neurilemmitis) नाड्यावरक प्रदाह । वातवाहिनी नाड़ियों को आवरण करनेवाली झिल्लियों की सूजन । सोज़िश ग़िलाफ़े अ़स़ब (फ़ा०) वर्म ग़िलाफ़ अ़स़ब (अ०) ।

इल्तिहाब ग़िशाए अ़नबी–[अ०] (Uveitis) उपतारा के पिछले पृष्ठ की सूजन ।

सोज़िश सतह अक़बी .इनबिय्यः (फ़ा०)। वर्म ग़िशाए .इनबी (अ०)।

इल्तिहाब ग़िशाए अर्व्रित:–[अ०] (Peridesmitis) बंधनयावरक प्रदाह। सोज़िश ग़िशाए रबाती (फ़ा०)। वर्म ग़िशाए अर्विंत: (अ०)।

इल्तिहाब ग़िशाए बकारत–[अ०] (Hymenitis) योनिच्छद प्रदाह। कुमारीच्छद प्रदाह। सोज़िश पर्दहे बकारत (फ़ा०)। वर्म ग़िशाए बकारत (अ०)।

इल्तिहाब ग़िशाए बातिने क़ल्ब–[अ०] (Endocarditis) हृदयान्तरावरण प्रदाह। हृदय की भीतरी झिल्ली का शोथ। सोज़िश ग़िशाए अंदरून क़ल्ब (फ़ा०)। वर्म ग़िशाए बातिने क़ल्ब –(अ०)।

इल्तिहाब ग़िशाए बातिने मिअ्.द:–[अ०] (Endogastritis) आमाशयान्तरावरण प्रदाह। आमाशय की भीतरी झिल्ली की सूजन। सोज़िश ग़िशाए अंदरून मिअ्.द: (फ़ा०)। वर्म ग़िशाए बातिन मिअ्.द: (अ०)।

इल्तिहाब ग़िशाए मुख़ाती–[अ०] (Mycodermatitis) श्लैष्मिक-कला-प्रदाह। श्लेष्मधर कला का शोथ। सोज़िश ग़िशाए बलग़मी (फा०)। वर्म ग़िशाए मुख़ाती (अ०)।

इल्तिहाब ग़िशाए सन्ख़–[अ०] (Peri Odontitis) दंतमूल-आवरक प्रदाह। दाँत की जड़ की झिल्ली की सूजन। सोज़िशे ग़िलाफ़े बिन दन्दाँ (फ़ा०)। वर्म ग़िशाए सन्ख़ (अ०)।

इल्तिहाब गुददे मिअ्.विय्य:–[अ०] (Dothien enteritis) आन्त्रीय ग्रंथि प्रदाह। आँतों की गिलटियों की सूजन। सोज़िश गुददहाए रोद: (फ़ा०)। वर्म गुदद मिअ्.विय्य: (अ०)।

नोट—चूँकि यह शोथ एंटरिक वा टाइफाइड फीवर अर्थात् आन्त्रिक सन्निपात ज्वरमें हुआ करता है; इसलिए डोथीनएण्टीराइटिस (Dothienenteritis) एंटरिक फ़ीवर का पर्य्याय भी है।

इल्तिहाब ग़ुददे मुख़ातिय्य:–[अ०] (Blennadenitis) श्लेष्मग्रंथि प्रदाह। लाला-ग्रंथि-प्रदाह। सोज़िश .गुददहाये मुख़ाती (फ़ा०)। वर्म ग़ुदद मुख़ातिय्य: (अ०)।

इल्तिहाब ग़ुददे लिम्फ़ाविय्य:–[अ०] (Lymphadenitis) लसीका ग्रंथि प्रदाह। सोज़िश ग़ुददहाए लिम्फ़ाविय: (फ़ा०)। वर्म ग़ुदद लिम्फ़ाविय्य: (अ०)।

इल्तिहाब ग़ुद्द:–[अ०] (Adenitis) ग्रंथि प्रदाह। गिलटियों की सूजन। सोज़िशे ग़ुद्द: (फ़ा०)। वर्म ग़ुद्द: (अ०)।

इल्तिहाब ग़ुद्दहे तैमूसिय्य:–[अ०] (Thymitis) चुल्लिका ग्रंथि प्रदाह। सोज़िश ग़ुद्दहे तुर्सिय: (फ़ा०)। वर्म ग़ुद्दहे तुर्सिय्य: (अ०)।

इल्तिहाब ग़ुद्दहे दम्.इय्य:–[अ०] (Dacryo-Adenitis) अश्रुग्रंथि प्रदाह। आँसू की गिल्टियोंकी सूजन। सोज़िश .गुददे अश्क (फ़ा०)। वर्म ग़ुद्दहे दम्.इय्य: (अ०)।

इल्तिहाब ग़ुद्दहे नक़्फ़िय्य:–[अ०] (Parotitis, Mumps) कर्णमूल शोथ, कनफेड़, गलसूई, कर्णमूल। वर्म बिन गोश (फ़ा०)। बारी.तूस, फ़ुवजिश्ला, फ़ुवख़ीला (अ०)।

नोट—यह एक प्रकार की संक्रामक व्याधि है जो संसर्ग द्वारा महामारी रूप में प्रसार पाती है।

इल्तिहाब ग़ुद्दहे लुआबिय्य:–[अ०] (Sialadenitis) लालाग्रंथि प्रदाह। सोज़िश ग़ुददे लुआबो (फ़ा०)। वर्म ग़ुद्दहे लुआबिय्य: (अ०)।

इल्तिहाब गुर्द:–[फ़ा०] (Nephritis) वृक्क शोथ।

इल्तिहाब ज़ुफ़्र–[अ०] (Onycbia) नख प्रदाह। नाख़ून की सूजन। सोज़िशे नाख़ुन (फ़ा०)। वर्म ज़ुफ़्र (अ०)।

इल्तिहाब ज़ाइद:–[अ०] (Typhlitis, Appendicitis) अन्त्रपरिशिष्ट प्रदाह। उपांत्र प्रदाह। सोज़िश ज़ाइदहे अअ्.वर (फ़ा०)। वर्म ज़ाइद: (अ०)।

इल्तिहाब जिल्द-[अ०] (Dermatitis) त्वक् प्रदाह । त्वचा की सूजन । सोज़िश जिल्द (फ़ा०) । वर्म जिल्द (अ०) ।

इल्तिहाब जैब-[अ०] (Antritis) सोज़िश जौफ़ ।

इल्तिहाब जौहर अज़्म-[अ०] (Osteitis) अस्थि प्रदाह । हड्डी की सूजन । सोज़िश उस्तख़ाँ (फ़ा०) । वर्म जौहर अ़ज़्म (अ०) ।

इल्तिहाब तामूर-[अ०] (Pericarditis) हृदावरक प्रदाह । सोज़िश ग़िलाफ़े दिल (फ़ा०)। वर्म ग़िलाफ़ुल् क़ल्ब (अ०)

इल्तिहाब ति.हाल-[अ०] (Splenitis) प्लीहाशोथ । तिल्ली की सूजन । सोज़िश सुपुर्ज़, आमास सपुर्ज़ (फ़ा०) । वर्म तिहाल (अ०) ।

इल्तिहाब दिमाग़-[अ०] (Encephalitis) मस्तिष्क प्रदाह । सरे साम, सोज़िश मग़्ज़ दिमाग़ (फ़ा०) । वर्मदिमाग़ (अ०) ।

इल्तिहाब नसीज ख़ुल्वी-[अ०] (Cellulitis) सेल्युलर टिश्यु (कौषिक धातु) की सूजन । आमासे साख़्ते ख़ानःदार (फ़ा०) । वर्म नसीज ख़ुल्वी (अ०) ।

इल्तिहाब नुख़ाअ़्-[अ०] (Myelitis, Medullitis) सुषुम्ना प्रदाह । आमास हराम मग़्ज़ (फ़ा०) । वर्म नुख़ाअ़् (अ०) ।

इल्तिहाब नुख़ाअ़् .इज़ाम-[अ०] (Osteomyelitis) मज्जा प्रदाह । आमास मग़्ज़ उस्तख़ाँ (फ़ा०) । वर्म मुख़्ख़ नुख़ाअ़् (अ०) ।

इल्तिहाब बज़्र-[अ०] (Clitoritis) भगांकुर प्रदाह । भगनासा की सूजन । सोज़िश बज़्र (फ़ा०) । वर्म बज़्र (अ०) ।

इल्तिहाब बनक़्यास-[अ०] (Pancreatitis) अग्न्याशय प्रदाह । क्लोम ग्रंथि की सूजन । सोज़िश लब्लबः (फ़ा०) । वर्म बिनूक़रास (अ०) ।

इल्तिहाब बरी.तून-[अ०] (Peritonitis) परिविस्तृत कला प्रदाह । उदरच्छदा कला की सूजन । सोज़िश बारी.तून (फ़ा०) । वर्म बारी.तून । (अ०) ।

इल्तिहाब बर्बख़-[अ०] (Didymitis) उपांड प्रदाह । सोज़िश ख़ुस्.यः फ़ौक़ानी (फ़ा०) । वर्म ख़ुस्.यः फ़ौक़ानी (अ०) ।

इल्तिहाब बलौरिय्यः-[अ०] (Phacitis) आँख के मोती की सूजन । आँख के बिल्लौरी परदे का शोथ । यह क्वचित् ही होता है । वर्म जलीदियः ।

इल्तिहाब बाति़ने क़ल्ब-[अ०] (Endocarditis) हृदय के कोष्ठों की झिल्ली की सूजन । इल्तिहाबुल् ग़िशाउल् बा.तुनुल् क़ल्ब (अ०) ।

इल्तिहाब बाति़ने र.ह्म-[अ०] (Endometritis) गर्भाशयांतर प्रदाह । जरायु की भीतर की सूजन । सोज़िश अंदरूने र.ह्म (फ़ा०) । वर्म बाति़ने र.ह्म (अ०) ।

इल्तिहाब बाति़ने शिर्यान-[अ०] (Endarteritis) धमन्यांतरिक शोथ । धमनी के भीतर की सूजन । सोज़िश अंदरूने शिर्यान (फ़ा०) । वर्म बाति़ने शिर्यान (अ०) ।

इल्तिहाब मजरी बौल-[अ०] (Urethritis) मूत्रमार्गस्थ शोथ । मूत्रमार्ग प्रदाह । आमासे नाइज़ः (फ़ा०) । वर्म मजरी बौल (अ०) ।

इल्तिहाब मफ़्स.ल-[अ०] (Arthritis) संधिप्रदाह । जोड़ों की सूजन । आमास बन्द (फ़ा०) । वर्म मफ़्स.ल (अ०) ।

इल्तिहाब मफ़्स.ल रुक्बः-[अ०] (Gonarthritis) जानु प्रदाह । घुटने की संधि की सूजन । आमास बंदे ज़ानू (फ़ा०) । वर्म मफ़्स.ल रुक्बः (अ०) ।

इल्तिहाब मबैज़ [अ०] (Ovaritis) डिम्ब ग्रंथि प्रदाह । बीज-कोष की सूजन । वर्म मबैज़, आमास ख़ुस्.यःरह्म, (अ०) ।

इल्तिहाब मरी-[अ०] (Oesophagitis) अन्न-प्रणाली प्रदाह ।

इल्तिहाब मशीमः-[अ०] (Choroiditis) नेत्र-पटल विशेष की सूजन । वर्म मशीमः । आमास पर्दहे मशीमः ।

इल्तिहाब मसारीक़ा-[अ०] (Mesenteritis) आन्त्रधारक-कला प्रदाह ।

इल्तिहाब मह्बिल–[अ०] (Vaginitis) योनि प्रदाह। योनि की सूजन। आमास अंदाम निहानी (फ़ा०)।

इल्तिहाब माक़ुल् .ऐन–[अ०] (Canthitis) आँख के कोए की सूजन। वर्म माक़ुल .ऐन। आमास गोशहे चश्म्।

इल्तिहाब मिअ़्‌वी क़ोलूनी–[अ०] (Enterocollitis] क्षुद्र-उद्गामीबृहदंत्र प्रदाह। छोटी आँत और उद्गामी बृहदंत्र की सूजन।

इल्तिहाब मिज़्मार–[अ०] (Glottitis] स्वर-यन्त्र-प्रदाह। आमास मिज़्मार।

इल्तिहाब मिरार:–[अ०] (Cholecystitis) पित्ताशयिक प्रदाह। आमास ज़ह्र: (फ़ा०)।

इल्तिहाब मिह्.फ़िज़्.हे कबिद–[अ०] (Perihepatitis) यकृदावरककला-प्रदाह। आमास ग़िलाफ़े जिगर (फ़ा०)।

इल्तिहाब मिह्.फ़िज़्हेकुल्य:–[अ०] (Perinephritis) वृक्कावरण प्रदाह। आमासग़िलाफ़े गुर्द: (फ़ा०)।

इल्तिहाब मि.ह्.फ़िज़्.हे ग़ुज़्रूफ़–[अ०] (Perichondritis) तरुणास्थ्यावरक प्रदाह। कुर्री (कारटिलेज)के आवरणकी सूजन। आमास ग़िलाफ़े ग़ु.ज़्रूफ़ (फ़ा०)।

इल्तिहाब मि.ह्.फ़िज़्.हे बलौरिय्य:–[अ०] (Phacocystitis) आँख के मोती के परदे की सूजन। वर्म ग़िलाफ़ जलीदिय:। आमास ग़िलाफ़ जलीदिय:।

इल्तिहाब मुख़–[अ०] (Cerebritis) मस्तिष्क प्रदाह। सरेसाम। भेजेकी सूजन। आमासे दिमाग़ (फ़ा०)।

इल्तिहाब मुख़ाती–[अ०] (Mucitis) श्लैष्मिक कला प्रदाह। आमास ग़िशाए मुख़ाती (फ़ा०)

इल्तिहाब मुख़ैख़–[अ०] (Cerebellitis) लघु मस्तिष्क प्रदाह। आमास दिमाग़ ख़ुर्द, आमास मुवख़्ख़िर दिमाग़ (फ़ा०)। वर्म दुमैग़ (अ०)।

इल्तिहाब मु.ज़यिक़ .हलक़–[अ०] (Isthmitis) कंठ के निचले तंग भाग की सूजन। आमास .हल्क़ूम (फ़ा०)। वर्मुल् .हल्क़ूम (अ०)।

इल्तिहाब मुजावराते र.ह्.म–[अ०] (Parametritis, pelvic-cellulitis) गर्भाशय के आस पास की सूजन। आमास .हवाली र.ह्.म (फ़ा०)।

इल्तिहाब मुल्त.हिम:–[अ०] (Conjunctivitis)नेत्राभिष्यंद। आँख दुखना। आँख आना। आशोब चश्म (फ़ा०)। वर्म मुल्तहि.म: (अ०)।

इल्तिहाब मुस्तक़ीम–[अ०] (Rectitis) सरलांत्र प्रदाह। आमास रोदहे मुस्तक़ीम (फ़ा०)।

इल्तिहाब मुह.ीत् अअ़्‌वर–[अ०] (Perityphlitis) अन्त्रपुटावरक प्रदाह। अन्त्रपुट वा कानी आँत को ढाँकनेवाली झिल्ली की सूजन।

इल्तिहाब रिबात्–[अ०] (Desmitis) बंधनी प्रदाह। सोज़िश रिबात् (फ़ा०)।

इल्तिहाब रिय्य:-[अ०] (Pneumonia, Peripneumonia) फुफ्फुस प्रदाह। फेफड़े की सूजन। फुफ्फुसौष। सोज़िश शुश (फ़ा०) वर्म रिय:, ज़ातुर्रिय: (अ०)।

टिप्पणी—प्राचीन यूनानी चिकित्सकों ने फुफ्फुसावरक प्रदाह का फुफ्फुसौष सेपृथक् वर्णन नहीं किया, इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने फुफ्फुसावरक प्रदाह को भी फुफ्फुसौष में ही समाविष्ट किया है। परन्तु यूरोपीय चिकित्सक फुफ्फुस प्रदाहको न्युमोनिया और फुफ्फुसावरण के शोथ को प्ल्यूरिसी और इन दोनों के प्रदाह को प्ल्यूरो-न्युमोनिया कहते हैं। नि० दे० "ज़ातुज्जनब"।

इल्तिहाब रि.ह्.म–[अ०] (Uteritis) गर्भाशयिक प्रदाह। जरायु वा बच्चेदानी की सूजन। सोज़िश रि.ह्.म (फ़ा०)।

इल्तिहाब लहात-[अ०] (Uvulitis) उपजिह्वा प्रदाह। काग शोथ। कौवे की सूजन। आमासे मलाज़: (फ़ा०)।

इल्तिहाब लिफ़ाइफ़–[अ०] (Ileitis) अधर क्षुद्रांत्र प्रदाह। आमासे रोदहे दक़ीक़ (फ़ा०)।

इल्तिहाब लिसान–[अ़०] (Glossitis) जिह्वा शोथ। ज़बान की सूजन। आमासे ज़बान (फ़ा०)।

इल्तिहाब लि..स्स.ः–[अ़०] (Gingivites) मसूढ़े की सूजन। आमासे लि..स्स.ः (फ़ा०)।

इल्तिहाब लौज़ः–[अ़०] (Tonsillitis) टांसिल की सूजन। गले पड़ना।

इल्तिहाब वरीद–[अ़०] (Phlebitis) शिरा प्रदाह। आमासे वरीद (फ़ा०)।

इल्तिहाब वरीदी र.ह्.मी–[अ़०] (Metrophlebitis) गर्भाशयिक शिरा प्रदाह। जरायुस्थ शिरा की सूजन। आमासे अव्रिद्हे र.ह्.म (फ़ा०)।

इल्तिहाब शफ़्रीन–[अ़०] (Vulvitis) भगोष्ठ प्रदाह। सोज़िश लब्हाए अंदाम निहानी(फ़ा०)।

इल्तिहाब शब्कियः–[अ़०] (Retenitis) रेटीना की सूजन। सोज़िश पर्दहे शब्कियः (फ़ा०)।

इल्तिहाब शर्ज–[अ़०] (Proctitis) गुदा प्रदाह। मलद्वार की सूजन। वर्म इस्त। सोज़िश कून (फ़ा०)।

इल्तिहाब शिरियानी–[अ़०] (Arteritis) धामनिक प्रदाह। धमनी की सूजन। सोज़िश शिर्यान (फ़ा०)।

इल्तिहाब शुअ्ब–[अ़०] (Bronchitis) वायुप्रणालीय प्रदाह। हवा की नलियों की सूजन। कास। खाँसी। सोज़िश शाख़हाए नाए गुलु– (फ़ा०)। नज़्लहे शुअ्बियः (अ़०)।

नोट—ब्राँङ्काइटिस वस्तुत: हवाई नालियों की आभ्यंतरिक झिल्ली की सूजन का नाम है। परंतु उसमें कास का होना अनिवार्य है। अस्तु ब्राँङ्काइटिस शब्द का प्रयोग कास के लिए होता है।

इल्तिहाब शुअ्बी रियवी–[अ़०] (Bronchopneumonia) कासयुक्त फुफ्फुसौष। खाँसी का न्यूमोनिया। ज़ातुरियः सुअ़ाली (अ़०)।

इल्तिहाब स.फ़न–[फ़ा०] (Oscheitis) अण्डकोष प्रदाह। अंडकोश की सूजन। सोज़िशे फ़ोतः (फ़ा०)।

इल्तिहाब स.फ़ाक़ रि.ह्.म–[अ़०] (Perimetritis) गर्भाशय के ऊपर की आवदार झिल्ली की सूजन। वर्म बारी.तून रह्.म (अ़०)।

इल्तिहाब स..र्ब–[अ़०] (Omentitis) आन्त्रावरक प्रदाह। अन्त्रश्छदाकलाकी सूजन। सोज़िश स..र्ब (फ़ा०)।

इल्तिहाब सह.ाई–[अ़०] (Meningitis) मस्तिष्क आवरक प्रदाह। सोज़िश पर्दहाए दिमाग़ (फ़ा०)। वर्म अग़्शियहे दिमाग़ (अ़०)।

इल्तिहाब सह.ाई दिमाग़ी–[अ़०] (Meningocerebritis) मस्तिष्क मस्तिष्कावरक प्रदाह। मस्तिष्क तथा मस्तिष्क को ढ़ाँकनेवाली झिल्ली की सूजन।

इल्तिहाब सिल्सिलतु ज़.ज़.ह्.र–[अ़०] (Rickets, Rachitis) पृष्ट कशेरुका प्रदाह। पीठ के मुहरों को सूजन। सोज़िश उ.मूदुल् फ़क़रात। क़ुसाह् (अ़०)।

इल्तिहाब सुर्रः–[अ़०] (Omphalitis) नाभिपाक। नाभि शोथ। सोज़िशे नाफ़ (फ़ा०)।

इल्तिहाब .सुल्बियः–[अ.०] (Scleritis) आँख के सख़्त परदे की सूजन।

इल्तिहाब ह.जाब मुनसि.स.फ़–[अ.०] (Mesodmitis) सीने के दरमियानी परदे की सूजन। सोज़िस पर्दहे दर्मियानी (फ़ा०)।

नोट--इस परदे की सूजन को कोई कोइ हकीम ज़ातुस.स.द्र नाम से अभिहित करते हैं।

इल्तिहाब ह.जाब ह.ाजिज़–[अ.०] (Diaphragmitis) वक्षोदर मध्यस्थ पेशी प्रदाह। बर्साम, वर्म दियाफ़र्ग़ामा (अ.०)।

इल्तिहाब ह.न्जरः–[अ.०] (Laryngitis) स्वर-यन्त्र प्रदाह।

इल्तिहाब ह.श्फ़ः–[अ.०] (Balanitis) शिश्न मुण्ड प्रदाह। सुपारी की सूजन।

इल्तिहाब ह.ाफ़हे अज्फ़ान–[अ.०] (Soro-ophthalmia balapharitis) अञ्जनहारी। बिलनी। गुहाँजनी।

इल्तिहाब .हालिब [अ़०] (Ureteritis) गवियन्यु प्रदाह। मूत्रप्रणाली की सूजन। सोज़िश .हालिब (अ़०)।

इल्तिहाब .हुल्महे स.दी-[अ़०] (Thelitis) स्तनवृंत प्रदाह। भिटनी की सूजन। सोज़िश सरे पिस्तान (फ़ा०)।

इल्तिहाब .हौ.ज़ कुल्यः-[अ़०] (Pyelitis) सोज़िश .हौ.ज़ कुल्य: (फ़ा०)।

नोट—हौ.ज़ कुल्य: गुरदे का वह आंतरिक कोष्ठ है जिसमें मूत्र स्रावित होता है। अंगरेजी में उसे पलविस ऑफ दी किड्नी कहते हैं। उपर्युक्त सूजन उसी स्थान में होती है।

इल्तिहाबी-[अ़०] (Inflammatory) प्रादाहिक। शोथयुक्त। आमासी, सोज़िशी (फ़ा०)। वर्मी (अ़०)।

इल्तिहाबुस्..स.दी-[अ़०] (Mastitis) स्तन प्रदाह। चूची की सूजन। सोज़िश पिस्तान (फ़ा०)।

इल्तिहाम-[अ़०] (Union. *Healing*) व्रण के मुख का संधानित होना। क्षत का भर जाना। व्रणपूरण। घाव का अच्छा होना। दे० "इल्तियाम"।

इल्तिहास्..-[अ़०] पिपासा एवं क्लांति के कारण ज़बान का बाहर निकलना।

इल्दाद-[अ़०] रोगी को मुँह के एक कोने से औषध पिलाना।

इल्दाम-[अ़०] ज्वर चढ़ा रहना।

इल्ब-[अ़०] एक कंटकाकीर्ण जंगली वृक्ष, जो बिजौरे की तरह होता है; किंतु इसके पत्ते ज़ैतून के पत्तों की तरह पर उससे छोटे होते हैं। इनमें बहुतायत से काँटे पाये जाते हैं। इसमें तरो ताज़गी एवं सब्जी बहुत ज़्यादा होती है। यह समग्र जीवधारियों के लिए विष है और कनेर से भी तीव्रतर है। यदि इसे खाने में मिलाकर किसी प्राणी को खिलाया जाय, तो वह तुरंत मर जाय। यदि न खाए, पर केवल सूँघ ले, तो भी अंधा और बहरा होजाय। श्याम देश में और शरात के पर्वतों में होता है। वहाँ इसके विष का उसी प्रकार प्रतिकार करते हैं, जिस प्रकार खानिकुन्नमिर और कनेर भक्षण किए हुए का करते हैं। यह उचित है कि दर्पघ्न औषध तत्काल दे दें, विलम्ब न करें, अन्यथा जान बचना कठिन है। (ख० अ०)

.इल्बावान्-[अ़० द्वि० व०] [ए० व० .इल्बाऽ। बहु अ़ल्बाबी] ग्रीवा की दो नाड़ियाँ जिसमें से एक ग्रीवा की बाईं ओर दूसरी दाहिनी ओर स्थित है।

इ.ल्म-[अ़० .इल्म] [वि० .इल्मी] (१) विद्या। ज्ञान। जानकारी। (२) शास्त्र। विज्ञान। तन्त्र। विद्या। Science, knowledge.

नोट—इल्म शब्द का प्रयोग विश्वास और धारणा के लिये भी होता है।

.इल्म-अफ़्आलुल् अअ़्.ज़ाऽ-[अ़०] (Physiology) इंद्रियव्यापार-शास्त्र। इंद्रिय-कार्य-विज्ञान। .इल्मुल् वज़ाइफ़ुल् अअ़्ज़ाऽ (अ़०)।

.इल्म-अफ़्आलुल् .हयात-[अ़०] जीव-कार्य्य विज्ञान।

.इल्म-अ़लामातिल अम्राज़-[अ़०] (Symptomatology) लक्षण वा रूप-विज्ञान। निदान। .इल्म अमूरा.ज़ुल् आज़ाऽ (अ़०)।

.इल्म-अस्बाबिल् अम्रा.ज़-[अ़०] (Aetiology) रोग निदान-शास्त्र। निदान।

.इल्मी-[अ़०] चिकित्सा-शास्त्र का वह अंग जिसमें केवल सिद्धान्तों का वर्णन हो क्रिया का नहीं। इसमें क्रिया अर्थात् चिकित्सा सम्बन्धी विषयों का समावेश नहीं होता।

.इल्मुन्नफ़स-[अ़०] (Psychology) मनोविज्ञान। मनःशास्त्र। .इल्मुरू.ह (अ़०)।

.इल्मुन्नबातात-[अ़०] (Botany) वनस्पति शास्त्र।

.इल्मुल् अक़ालीम-[अ़०] (Climatology) विभिन्न प्रदेशों एवं उनकी जलवायु का विज्ञान। .इल्मुल् मनाख़ात (अ़०)।

.इल्मुल् अग़्ज़ि़यः-[अ़०] आहार शास्त्र। पोषण-विज्ञान। (Bromatology)

.इल्मुल् अज्लामिर्र क़ीक़ः-[अ़०] (Micrology) वह शास्त्र जिसमें अणुवीक्ष्य जंतुओं के देखने का विधि-विधान हो। अणुवीक्षण-शास्त्र।

.इल्मुल् अद्वियः-[अ़०] द्रव्य-गुण-शास्त्र। औषध (प्रभाव) विज्ञान। निघण्टु। (Pharmacology)

.इल्मुल्अन्सजः– [अ०] (Histology) तंतु-विज्ञान ।

.इल्मुल् अफ़्लाक– अ०] (Astronomy) ज्योतिर्विज्ञान । ज्योतिष-शास्त्र । व्योम-शास्त्र । खगोल विद्या !

.इल्मुल् अमरा.ज–[अ०] (Pathology) रोग-विज्ञान । विकृति-विज्ञान । व्याधि-मूल-विज्ञान ।

.इल्मुल् अ.र्ज़–[अ०] (Geology) भूगर्भ विद्या । .इल्म त्बक़ातुल् अ.र्ज़ (अ०) ।

.इल्मुल् .इलाज–[अ०] (Imatology, Therapeutics) चिकित्सा-शास्त्र । औषध-प्रयोग-विज्ञान ।

.इल्मुल् कीमिया–[अ०](Chemistry) रसायन शास्त्र ।

.इल्मुल् क़ुवा वल् .हर्कात–[अ०] (Dynamics) गति-विज्ञान ।

.इल्मुल्जरासि.यम्–[अ०] (Bacteriology) कीटाणु-विज्ञान ।जीवाणु-शास्त्र ।

.इल्मुल् जराह.त–[अ०] (Surgery) शल्य-तन्त्र । अस्त्र-चिकित्सा-शास्त्र । जर्राही । चीरफाड़ द्वारा चिकित्सा करने की विद्या ।

.इल्मुल् तंजीम–[अ०](Astrology) आलोक शास्त्र । ज्योतिष शास्त्र । तारों, उनकी गति और बुरे भले प्रभाव का विज्ञान । .इल्मुन्नजूम (अ०) ।

.इल्मुल् तन्वीम–[अ०] (Hypnology)मेस-मेरिज़म-विज्ञान । स्वप्न-शास्त्र ।

.इल्मुल् त.ब.इय्यात्–[अ०](Physics) भौतिक-विज्ञान ।

.इल्मुल् तश्.री.ह–[अ०] (Anatomy)शरीर-शास्त्र । शारीरिक । व्यवच्छेद विद्या । शवच्छेद-विद्या । छेदन-शास्त्र ।

.इल्मुल् तस.व्वुरात्–[अ०] (Ideology) विचार-शास्त्र ।

.इल्मुल बर्क़–[अ०] (Electrology)विद्युच्छास्त्र । बिजली का विज्ञान । .इल्मुल् कहरुबाइयः ।

.इल्मुल् मअ्.दन्यात्–[अ०] (Mineralology) खनिज-विज्ञान ।

.इल्मुल् माद्दः–[अ०] (Hylology) पदार्थ-विज्ञान । प्रकृति-शास्त्र ।

.इल्मुल् मियाह् –[अ०] (Hydrology)वारि-विज्ञान । जल-तंत्र ।

.इल्मुल् विलादत्–[अ०] (Midwifery, Obstetrics) प्रसूति-तंत्र । धात्रि-विद्या ।

.इल्मुल् .हयात्–[अ०] (Biology) जीवन-विज्ञान ।

.इल्मुल् .हश्रात्–[अ०] (Insectology, Entomology) पार्थिव-जंतु-शास्त्र । कीट-विज्ञान ।

.इल्मुल् .हम्मामात्–[अ०] (Balneology) अवगाहन-शास्त्र । स्नान-विज्ञान ।

.इल्मुल् .हैव.नात्–[अ०] (Zoology) जीव-विज्ञान । जीवधारियों का ज्ञान । जंतु-शास्त्र । प्राणि-विज्ञान ।

.इल्मुल् .हैवानाति(तु)स्.स.द्यियः–[अ०] (Memmology) स्तनधारी जीव-विज्ञान । स्तनधारी जीव-शास्त्र ।

.इल्मुश्शिफ़ाऽ–[अ०] (Medicine, Ietrology) स्वास्थ्य एवं रोग-विज्ञान । आयुर्वेद । ति.ब्ब (अ०) ।

.इल्मुरि.स.ह.त–[अ०] (Hygiene, Acology) स्वास्थ्य-संरक्षण-शास्त्र । स्वस्थवृत्त । .इल्म हि.फ़्ज़ुस्सि.ह.त (अ०) ।

.इल्मुस्.सै दलः–[अ०] (Compoundary) औषध-निर्माण-शास्त्र । योग प्रस्तुत करने की विद्या । उपवैद्यक ।

इल्यः–[अ०] चकती । इससे साधारणतः दुम्बा की चकती अभिप्रेत है जो उसकी दुम की प्रतिनिधि स्वरूप होती है और चरबी से बनती है ।

इल्यः ल.ह्मियः–[अ०] मुरग़ियों आदि की चरबी ।

इल्लत–संज्ञा स्त्री० [अ० .इल्लत] [बहु० .इलल्] (१) तिब के अनुसार रोग । बीमारी । (Affection, Disease) । (२) हिकमत अर्थात् दर्शनशास्त्र के अनुसार निमित्त कारण । हेतु । (Cause.)

इल्लती–वि० [अ़०] दुर्व्यसन में फँसा हुआ। बुरी आदतवाला।

.इल्लतुज़्.ज़इब–[अं०] (Lycanthropy) एक प्रकार का उन्माद जिसमें रोगी अत्यन्त तुर्श-रू एवं उदास जान पड़ता है और व्यग्र व व्याकुल होता है। क़ुत्.रुब। दे० "जुनून ज़.इबी"।

.इल्लतुद्.जाजः–[अ़०] धात्वर्थ मुरग़ी की बीमारी। तिब में प्रवाहिका को कहते हैं। (Dysentery)

नोट—चूँकि प्रवाहिका-पीड़ित रोगी को मुरग़ी के समान थोड़ा-थोड़ा मल निःसृत होता है; इसलिए उक्त रोग को इस नाम से अभिहित किया गया।

.इल्लतुल् मशाइख़–[अ़०] एक व्याधि जिसमें रोगी को गुदमैथुन कराने की इच्छा प्रगट होती है। यह बीमारी साधारणतः मशाइख़ अर्थात् वृद्ध पुरुषों को होजाया करती है, जिसका कारण बलग़म शोर वा विशेष प्रकार के कृमि होते हैं जो अपनी ख़राश के कारण इस व्याधि को उत्पन्न करते हैं। उब्नः। बौयस।

.इल्लते आफ़्ताब–[अ़०] इसका संकेत यर्क़ान रोग से है।

.इल्लते ग़ाई–[अ़०] (Final cause) किसी वस्तु का लक्ष्य वा प्रयोजन। अंतिम लक्ष्य।

.इल्लते तामः–[अ़०] पूर्ण हेतु। सबब कामिल। वह अशेष कारण जिसके बाद तुरंत ही कार्य की उपस्थिति हो जाय, दूसरे कारण की अपेक्षा न रहे। जैसे धूप के लिए सूर्य की उपस्थिति इल्लत तामः है और धूप उसका कार्य है। क्योंकि पदार्थ अपने अस्तित्व के लिये अजिल अरबा–हेतु चतुष्टय अर्थात् (१) .इल्लत माद्दी, (२) इल्लत सूरी, (३) इल्लत फ़ाइली और इल्लत ग़ाई के आश्रयभूत हैं। इसलिये इल्लत तामः को वस्तुतः इन हेतुचतुष्टय का समाहार समझना चाहिये। जब किसी पदार्थ के उक्त हेतु चतुष्टय एकत्रित हो जाते हैं, तब उस पदार्थ का अस्तित्व अनिवार्य होता है। इसके विपरीत इल्लत नक़िसः उस हेतु को कहते हैं, जिसके बाद कार्य की उपस्थिति अनिवार्य न हो। उदाहरणतः वह वस्तु जो कतिपय अन्य घटकों से मिलकर बनती वा संघटित होती है और अन्य सभीके बिना उसकी उपस्थित असंभव होती है। इस दशा में उक्त वस्तु के लिए उन चीजों में से प्रत्येक पृथक्तया इल्लत नक़िस होगी। जैसे तख़्त के लिए तख़्ता और बढ़ई पृथक् पृथक् इल्लत नाक़िसः हैं।

.इल्लते दानः–[फ़ा०] मसूरिका रोग। शीतला। विशेष दे० "जुदूरी"।

.इल्लते दुख़ानियः–[अ०] एक प्रकार का हृद्रोग। इस रोग में ऐसा मालूम होता है मानो उसके हृदय से धूम्र उठता हो। जब इस रोग का आक्रमण होता है तब रोगी को मूर्च्छा आने लगती है और उसका मस्तिष्क दूषित विचारों से परिपूर्ण हो जाता है।

.इल्लते नाक़िस्:–[अ०] नाक़िस् सबब। अपूर्ण कारण। दर्शन-शास्त्र में वह कारण जिसकी उपस्थिति के उपरांत कार्य (मुसब्बब, मअ़लूल) की उपस्थिति अनिवार्य न हो। वि० दे० ".इल्लत तामः"।

.इल्लते नाफ़िख़ः, .इल्लते नफ़्फ़ाख़ः–[अ०] मालीख़ौलियाए मराक़ी। यथास्थान देखो।

नोट—चूँकि मालीख़ौलियाए मराक़ी की बीमारी में आध्मान अवश्य होता है, इसलिए उक्त नाम से अभिहित हुआ।

.इल्लते फ़ा.इली–[अ०] (Efficent cause) जो किसी चीज़ को बनाए। बनानेवाला। दर्शन शास्त्र में किसी वस्तु का वह कारण जो उपस्थिति से भिन्न हो और उसको बनाए। जैसे, बढ़ई जो तख़्त को बनाता।

.इल्लते माद्दी–[अ०] (Material Cause) वह भौतिक पदार्थ वा माद्दः जिससे कोई वस्तु बनाई जाय। दर्शन-शास्त्र में किसी वस्तु का वह कारण जो उसके वजूद व क़िवाम में समाविष्ट हो और उसको वजूद बिल्क़ुवा प्रदान करे। जैसे, तख़्ते तख़्त के लिए इल्लते माद्दी हैं और उसके वजूद में समावेशित हैं तथा उनसे तख़्त बनाया जा सकता है।

.इल्लतेसू.री–[अ०] (Formal cause) हिकमत की परिभाषा में किसी पदार्थ का वह हेतु जो उसके वजूद व क़िवाम में समाविष्ट हो और

उसके द्वारा वह पदार्थं बिल्फ़ेल अस्तित्व में आ जाय। जैसे, तख़्त की सूरत वा रूपाकार।

इल्लन्दा-संज्ञा पुं० [?] एक वृक्ष जिसकी डालियों में छोटे-छोटे काले रंगके काँटे लगते हैं। पत्ते मोतिया के पत्तों की तरह होते हैं। किंतु उसके पत्तों से इसके पत्ते किसी भाँति छोटे और मुलायम होते हैं। उन पर कुछ रोआँ भी होता है। इसकी जड़ बड़ी, फल फालसे की तरह होता है। कच्चेपन पर यह हरा और खट्टा होता है, पकने पर ललाई लिये काला और खटमिट्ठा हो जाता है। इसके भीतर त्रिकोणाकार बीज होते हैं। प्रकृति-वृक्षांग गरम तथा ख़ुश्क और फल गरमी लिए सम-शीतोष्ण अर्थात् मातदिल। हानिकर्त्ता—आध्मान कारक, क़ाबिज़ और कोलंज पैदा करता है। दर्पनाशक--गुलकंद और सिकंजबीन।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह मुहल्लिल (शोथ विलीन कर्त्ता) और मुदिर (प्रवर्त्तक) है। छाल एवं जड़ रक्त-दोष और प्रमेह का निवारण करती है। इसकी जड़ सर्प-विषघ्न है। कहते हैं कि साँप इस वृक्षको देखते ही अपना फण जमीन पर डाल देता है, सिर नहीं उठा सकता। फल बलकारक है, पैत्तिक शोणित उत्पन्न करता है, माद्दे को पिघलाता है, भूख पैदा करता है, क़ै और मतलीका निवारण करता है, दस्त बंद करता है और काबिज़ है। (ख० अ०)।

इल्लल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की चिड़िया। श० च०।

इल्ला-संज्ञा पुं० [सं० कील] छोटी कड़ी फुंसी जो चमड़े के ऊपर निकलती है। यह मसे के समान होती है।

इल्लिश-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] दे० "इलीश"

इल्ली-संज्ञा स्त्री० [?] च्यूँटी आदि के बच्चों का वह पहला रूप जो अंडे से निकलने के उपरांत तुरंत होता है।

.इल्लौस-[अ०] अजीर्ण। बदहज़मी। उदरशूल।

इल्वल--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकारकी मछली। ईल वा बाम मछली। मे० लत्रिक।

इल्वला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मृगशिरा नक्षत्र के शिर पर स्थित ५ क्षुद्र तारे।

इल्वा-संज्ञा पुं० [हिं० एलुवा] (Aloes) कुमारीसारोद्भवा। मुसब्बर। एलुआ।

इल्.ह्.ाज-[अ०] (Orbit) अक्षिगुहा। आँख का गढ़ा।

इल्.ह्.ाम-[अ०] व्रण का पूरित होना। क्षत भरना। व्रणांकुरोत्पादन।

इल्.हाम [अ०] परमात्मा की ओर से हृदय में कोई बात आना।

इक्षु क्षार-संज्ञा पुं० [सं० यवक्षार] जवाखार। यवक्षार।

.इवज-[अ०] (Crookedness) वक्र होने का भाव। वक्रता। टेढ़ापन।

.इवज़.-[अ०] स्थानापन्न। किसी चीज़ की प्रतिनिधि। बदल। एवज़।

इवरैइ-[फ्रां०] (Lolium femulentum, *Linn.*) Bearded darnel मूर्छनी।

इवर्ड्युपॉइज़ वेट्स-[अं० Avoirdupois weights] व्यापारी वा सर्राफ़ी माप। दे० "माप वा तौल"।

इवापोरेशन-[अं० Evaporation] (१) गरमी पाकर पानी का भाप के रूप में परिवर्त्तित होना। उच्छोषण। दे० "वाष्पी-भवन"।

(२) रसायन का वह विधान जिसका उपयोग द्रव्यों के विलेय वा अविलेय होने के परीक्षार्थ होता है। वाष्पीकरण। लवणों के स्फटिकीकरण विधान,-सत्व-निर्माण एवं अन्य अनेक औषध-निर्माण विषयक कार्यों में भी इस क्रिया का उपयोग होता है। दे० "वाष्पीकरण"।

इवुर-मामिडि-[ते०] (Spondias mangifera, *Pers.*) आम्रातक। आमड़ा। आमड़ा।

इव्वज़-[अ०] जल कुक्कुट। मुर्ग़ाबी। मु० अ०।

नोट—किसी-किसी ने "उव्विज़" लिखा है।

.इशक़ः-[अ०] चाँदरेल जो लबलाब के सदृश होता है। मु० अ०। दे० "अशकः"।

इशन्-चेडि-[ता०] (Phœnix sylvestris, *Roxb.*) खजूर। खजूर।

इशप्पुकोल-विरै-[ता०] (Plantago ovata, *Forsk.*) Spogel seed इसबगोल।

इशरत-संज्ञा स्त्री० [अ०] सुख । चैन । आराम । भोग विलास । खुशी । तुष्टि । संतोष ।

इशरमूल-संज्ञा पुं० [सं० ईश्वरमूलक] इसरमूल लता । रुहिमूल जोड़ बेल । अहिगंध । रुद्रजटा (हिं०) । इशरमूल, रुहिमूल (द०) । रौद्री, रुद्रा, रुद्रजटा, जटा, सौम्या, सुगंधा, सुवहा, घना, ईश्वरी, रुद्रलता, सुपत्रा, सुगंधपत्रा, सुरभि, शिवाह्वा, पत्रवल्लभी, जटावल्ली रुद्राखि, नेत्रपुष्करा, महाजटा, (रा० नि० गुडू० ३ व०), सुनंदा, ईश्वरमूलक (भैष:), अर्कमूला (च० द०), अर्कपत्रिका (सं०) । ज़रावंदे हिंदी (अ०, फ़ा०) । ईशोरमुल, ईशुरमूल, इशेरमूल (बं०) । अरिष्टो लोकिया इंडिका Aristolochia indica, *Linn.* (?) ले० । इंडियन बर्थवर्ट Indian birthwort (अ०) । इच्चुरमूलि (बेरु), परु मरिंदु, पेरुम् कि.ज़.गु (ता०) । ईश्वरवेरु, दूल गोवेल, गोविल (ते०) । करलेकम्, करुकप्पुल्ल, इश्वरामूरि, करलवेकम् (मल०) । ईश्वेरि बेरू (कना०) । सस्संद(सिंगा०) । इसरमूल, सापसन (बम्ब०) । सापसन (मरा०) । रुहिमूल, इश्वरी (गु०, कच्छ) । सापूस, सफर्स (गाम्रा) । भेदी । जनेटेट (संथाल) ।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—डिमक के अनुसार इशरमूल का संस्कृत नाम राजनिघंटूक्त "रुद्रजटा" है । मुसलमानी द्रव्य-गुण-शास्त्र में इसे ज़रावंद हिंदी लिखा है । ज़रावंद की यह भारतीय प्रतिनिधि है । वि० दे० "ज़रावंद" ।

ईश्वरमूलक वर्ग

(*N. O. Aristolochiaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—यह भारतवर्षके अनेक स्थानों में, विशेषकर बंगाल, कोंकड़, ट्रावनकोर और समुद्र के पश्चिमी तट पर मिलती है ।

वानस्पतिक वर्णन—यह एक क्षुप जाति का पौधा है । तने की लकड़ी किंचित् शंकाकार $\frac{५}{६}$ वा $\frac{१}{४}$ से $\frac{१}{२}$ इंच मोटी अथवा इससे भी अधिक व्यास की होती है । इसकी छाल मोटी, कॉर्कवत् होती है, जिस पर लंबाई के रुख उभरी रेखाएँ और असंख्य खर्वाकार कदरवत् उभार होते हैं । यह तथा जड़ पिलाई लिए भूरी होती है । यह सुरभिपूर्ण एवं प्रिय गंधि तथा स्वाद में कड़ुई होती है । इसमें कर्पूरवत् गंध होती है ।

रासायनिक संघटन—इसका प्रधान उपादान एक उड़नशील तैल है, जिस पर इसकी विशेष गंध एवं स्वाद निर्भर करता है । इसके अतिरिक्त इसमें ईश्वरमूलकीन (Aristolochin) नामक एक क्षाराद, अरिष्टीन, अरिष्टीनिक एसिड राल, टेनीन, एक रंजक पदार्थ और श्वेतसार प्रभृति होते हैं ।

प्रयोगांश—जड़, पाताली धड़ (Rhizome) और पत्र । डॉक्टरी में केवल इसकी सूखी जड़ काम में आती है ।

औषध-निर्माण—क्वाथ (१० में १ भाग) मात्रा–२॥ तो० से ५ तो०; टिंक्चर वा आसव (८ में १ भाग), मात्रा–$\frac{1}{2}$ से १ ड्राम; पत्तों का स्वरस २ मा० से ७॥ मा० तक । मूलचूर्ण-मात्रा–$\frac{1}{4}$ मा० से १ मा० तक ।

डाक्टरी सम्मत योग

(१) लाइकर अरिष्टोलोकी कनूसेन्ट्रेटस Liquor aristolochiæ concentratus (ले०) । कनूसेन्ट्रेटेड सोल्युशन ऑफ अरिष्टोलोकिया Concentrated solution of aristolochia (अं०) । सांद्रभूत रुद्रजटा विलयन । साइल ज़रावंद कसीफ़ । गलीज़ साइल ज़रावंद ।

निर्माण-विधि—अरिष्टोलोकिया १० आउंस, एलकोहल (२० %) २५ आउंस या आवश्यकतानुसार, पर्कोलेशन द्वारा १ पाइंट तैयार कर लें ।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से २ फ्लुइड ड्राम ।

(२) टिंक्च्युरा अरिष्टोलोकीई Tinctura aristolochiae (ले०) । टिंक्चर ऑफ़ अरिष्टोलोकिया Tincture of aristolochia (अं०) । रुद्रजटासव । सबग़ाहे ज़रावंद । तअ़फ़ीन ज़रावंद ।

निर्माण-विधि—अरिष्टोलोकिया का चूर्ण ४ आउंस, एलकोहल (७० %) आवश्यकता-

नुसार या उतना जितने से पर्कोलेट करने के उपरांत टिंक्चर का द्रव्यमान पूरा एक पाइंट हो जाय ।

मात्रा—½ से १ फ्लुइड ड्राम ।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदी मतानुसार—

गुण—कटुरस, श्वास, कास, हृद्रोग को नाश करनेवाला भूतविद्रावक और राक्षसों का निवारण करने वाला है। (रा० नि० गू० ३ व०)।

इसकी जड़ औटाकर पिलाने से जोड़ों की सूजन उतर जाती है और रुकी हुई ऋतु का पुन: प्रवर्त्तन होता है। इसको घिसकर लगाने से बिच्छू का विष उतर जाता है। जड़ गुड़ के साथ उबालकर पिलाने से शिशु प्रसवकालीन वेदना में बहुत कमी आ जाती है। यह दवा शक्ति उत्पादन करती है। इसके उपयोग से ज्वर छूटता है। इसे साँप के काटे स्थान पर लगाने और सर्पदष्ट रोगी को खिलाने से ज़हर उतर जाता है। यह औषध बच्चों के आंत्र रोगों को मिटाती है। इसके पत्तों का रस पिलाने से जलंधर आराम होता है।

नोट—यूनानी गुणधर्म के लिए दे० "ज़रावंद"।

डाक्टरी मतानुसार गुणधर्म तथा प्रयोग

जिन गुणों के लिए सर्पेन्टेरी का व्यवहार यूरोपीय देशों में होता है, प्रायः उन्हीं गुणों के लिए भारतवर्ष में उपर्युक्त औषध काम में आती है। अस्तु, यह उत्तेजक, बल्य, रजःप्रवर्त्तक और संधिवातहर (Antiarthritic) है।

इसकी जड़ वा पत्तों का रस या अर्क भारतनिवासी सर्पदष्ट स्थान पर लगाना हितकर समझते हैं। किन्तु इसका यह प्रभाव विश्वसनीय नहीं। सूक्ष्म तिक्त बल्य रूप से इसको पर्याय ज्वर (Intermittent fever) एवं अन्य रोगों में व्यवहार करते हैं।

नोट—भारतीय, यूनानी एवं मुसलमान चिकित्सक इसको अनेक रोगों में, विशेषतः मूत्रप्रवर्त्तन, रजःप्रवर्त्तन तथा नक़ास के लिए एवं विविध प्रकार के संधि-शोथ, संधि-शूल और गठिया प्रभृति में वर्तते हैं।

नव्यमत

ईश्वरमूल बल्य, उष्ण तथा रजः प्रवर्त्तक है। यह पुरातन ज्वर, शिशु के दन्तोद्गमकालीन उदरामय तथा विसूचिका में हितकर है। शिशु के कास विशेष (Croup) में यह वमनार्थ प्रयुक्त होता है। सेवन तथा लेपन द्वारा सर्वविषघ्न होने से ईश्वरमूल अति सुप्रसिद्ध है। शिशु के कास (Bronchitis) में वक्ष देश पर एवं शूल में उदर पर, अगर के साथ ईश्वरमूल का प्रलेप प्रयोग में आता है। ईश्वरमूल का काढ़ा शीतज्वर, शिरःपीड़ा, उदराध्मान और मूत्रकृच्छ्र में हितकर है। (R. N. Khory, *Vol, 11. P. 513.*)

रीडी—(Rheede) ने सर्व प्रथम इस पौधे का उल्लेख किया था। वह ताजे अदरक की गंध से इसकी तुलना करता है और कहता है कि तेल में पकाकर अभ्यंग रूप से सर्पदंश में इसका उपयोग होता है तथा इसका काढ़ा पिलाया जाता है। शीत ज्वर, शिरोशूल, आध्मानजन्य तनाव, मूत्रकृच्छ्र (Dysurea) में पानी में पीसा हुआ इसका कल्क वा क्वाथ भी व्यवहार में आता है। इसका द्रव गठियाजन्य वेदना का निवारण करता और इसका चूर्ण मिर्च और गरम पानी के साथ रक्तस्रुति को रोकता है।

ऐन्सली (Ainslie) शिशु के अजीर्णजन्य एवं दंतोद्गमकालीन आंत्र रोगों में तामिल डाक्टरों द्वारा इसके उपयोग का उल्लेख करते हैं। वे यह और कहते हैं कि सर्पदंश में इसके चूर्णका आभ्यंतर प्रयोग होता है और यह दष्ट स्थान पर लगाया जाता है।

फ्लेमिंग (Fleming) रजः प्रवर्त्तक एवं संधिवातहर (Antiarthritic) रूप से उत्तर भारत में इसके उपयोग का उल्लेख करते हैं।

बाबू टी० एन० मुकर्जी लिखते हैं कि इसकी ताज़ा पत्ती का स्वरस शिशु के कास विशेष (Croup) में बिना किसी प्रकार की निर्बलता

पैदा किए, क़ै लाकर, बहुत ही लाभ पहुँचाता है।

बम्बई में बालकों के आंत्र-विकार एवं विसूचिका के योगों में साप्सन (ईश्वरमूल) प्रधानतः योजित होता है। यह उत्तेजक एवं बल्य माना जाता है और यह उदर पर लगाया भी जाता है। (फा० इं० २ भ०-वि० डिमक पृ० १६०-१)

नादकर्णी—इसकी जड़ बल्य, उत्तेजक, रजः प्रवर्तक, संधिवातहर (Antiarthritic) और (Alexiteric) हैं। पत्र पाचक (Stomachic) बल्य और पर्याय ज्वरहर (Antiperiodic) है। इसकी जड़ सर्पदंश तथा अन्य विषैले कीट, जैसे–बिच्छू आदि के दंश का मूल्यवान प्रतिविष है। इसका आंतर और बाह्य दोनों प्रकार से प्रयोग होता है। यह दंशस्थल को विष के कुपरिणामों के विरुद्ध उसे संज्ञाशून्य बना देता है। श्वित्र में इसे पीसकर शहद मिलाकर देते हैं। यह शोथ (Dropsy) रोग में भी उपयोगी ख्याल किया जाता है। विसूचिका एवं अतिसार में इसे कालीमिर्च के साथ मिलाकर देने से बहुत उपकार होता है। शिशु के आंत्रविकार, विसूचिका, अतिसार और सविराम ज्वरों(Intermittent fevers)में इसकी पत्ती और छाल का मुख्यतया प्रयोग होता है। (इं० मे० मे० पृ० ८३-४)

आर० एन० चोपरा–इसकी जड़ और तने का क्वाथ, १ से २ आउंस की मात्रा में, उत्तेजक बल्य एवं ज्वरहर है। काली मिर्च और सोंठ के साथ अतिसार एवं नाना प्रकार के आंत्र-विकारों में आध्मानहर रूप से इसका व्यवहार होता है। इसकी ताज़ी पत्ती का रस विषैले साँपों के दंश का उत्कृष्ट प्रतिविष है। जड़ का (Criminal) गर्भपातके लिये व्यवहार किया जा चुका है। (इं० ड्र० इं० पृ० २६६)

.इशाऽ–[अ०] रात्रि का प्रारंभिक अँधेरा। रात का अँधेरा।

इशारः–[अ०] (Symbol) चिह्न। अलामत।

नोट—इशारात तथा अलामात को रसायन की परिभाषा में Notation कहते हैं।

इशिका–
इशीका– } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हाथी
इषीका–

की आँख का डेला। गजाक्षिगोलक। (२) शरकाण्ड। सरकंडा। अ० टी० भ०। (३) गाँडर वा मूँज के बीज की सींक जिसके ऊपर जीरा वा भूआ होता है। (४) काश तृण। काँसा।

इशोरमूल–[बं०] (Aristolochia Indica, *Linn.*) रुद्रजटा। ज़रावंदे हिंदी।

इशाम-कोद-नार–[ते०] (Sanseviera Zeylanica. *Willd.*) मूर्व्वा। मुरहरी।

इश्क़–संज्ञा पुं०[अ० इश्क़] [वि० आशिक़, माशूक़] (१)प्रेमका सीमा उल्लंघन ;सीमासे आगे बढ़ा हुआ प्रेम। पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ अनुराग। मुहब्बत। चाह। प्रेम। लगन। आसक्ति। Erotomania (अं०)। जुनून इश्क़ी (अ०)

नोट—यह उन्माद-रोग का एक भेद है, "कहते हैं जिसे इश्क़ वह अक़्ल क़िस्मे जुनून है" अर्थात् इश्क एक प्रकार का उन्माद है।। जुनून इश्क़ को केवल इश्क़ भी कहते हैं। यह रोग ऐसा साधारण है,जो वर्णनकी अपेक्षा नहीं रखता। इश्क़ औरप्रेम को कौन नहीं जानता ? हाँ ! यह सम्भव है कि जन साधारण इसे उन्माद वा जुनून न समझते हों। वि० दे० "उन्माद"।

इश्क़पेचाँ–संज्ञा पुं० [अ० .इश्क़+फ़ा० पेचः (पेचीदन धातु से)] इश्क़पेचः, आशिक़ुश्शजर, लबलाब सग़ीर. अश्क़ः (अ०, फ़ा०)। कामलता (सं०)। चांदरेल, अमरीका की चमेली (हिं०)। तरुलता (बं०)। सीता-च-केस (मरा०)। आइपोमिया क़ामोक्लिट Ipomæa Quamoclit, *Linn.*), क़ामोक्लिट वल्गेरिस Luamoclit Vulgaris (ले०)। क्युपिड्स फ्लावर Cupid's flower (अं०)।

निशोथ वर्ग

(*N. O. Conolvulaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—इसकी बेल प्रायः अमरीका में उपजती है। परन्तु भारतवर्ष के उद्यानों में भी यह बहुधा लगाई जाती है।

वानस्पतिक-वर्णन—शाहपसंद की जाति की एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ सूत की तरह बारीक होती हैं। इसकी लता समीपवर्त्ती वृक्षादि के आश्रय करके प्रतान विस्तार करती है। पुष्पित अवस्था में यह अति ही मनोरम दीख पड़ती है। फूल विभिन्न वर्ण के होते हैं। किसी के फूल लाल होते हैं, तो किसी के सफ़ेद। कहीं-कहीं पीले और नीले फूल का इश्क़पेचाँ भी देखने में आया है। बीज आवरण के भीतर ललाई लिए काले रंग का होता है। इसको अशक़: इस कारण कहते हैं कि यह जिस वृक्ष पर प्रतान विस्तार करता है, उसे उसी भाँति सुखा देता है, जिस तरह प्रेमासक्त व्यक्ति को प्रेम (इश्क़) सुखाकर काँटा बना देता है। कोई-कोई अर्वाचीन हकीम इसके बीजों को तुख़्म कसूस मानते हैं जो सर्वथा निर्मूल एवं भ्रामक है। तुख़्म कसूस वस्तुतः अफतीमून का बीज है।

प्रकृति—मुरक्किबुल् क़ुवा (परस्पर विरोधी गुण-धर्म युक्त) है। कोई प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष लिखते हैं और कोई द्वितीय कक्षा में।

स्वाद—किंचित् तिक्त एवं कुस्वादु।

हानिकर्त्ता—वाततन्तुओं, सिर, आमाशय तथा वस्ति और उष्ण प्रकृति को।

दर्पघ्न—शीतल एवं स्निग्ध पदार्थ, कंद और इमली।

प्रतिनिधि—शाहपसंद, शाहतरा, ख़त्मी और ख़ुब्बाज़ी।

मात्रा—३॥ मा०। (इसका स्वरस) १०॥ मा० से लेकर १४ तोला तक।

गुणधर्म तथा प्रयोग—गुणधर्म में यह शाहपसंद के समान है। यह अवरोध का उद्घाटन करता, प्रकृति तथा शोथ को कोमल करता, वायु लय करता और विरेक द्वारा पित्तोत्सर्ग करता है। इसका प्रलेप शोथों को विलीन करता और वेदना शमन करता है। शहद के साथ इसका नस्य लेने से शिरोशूल में लाभ होता है। इसका प्रलेप शिश्नवर्द्धक है। यह मलावरोध युक्त कास में उपयोगी है। अमलतास के साथ यह कोष्ठावयवों के शोथ को विलीन करता है और संधि की सूजन में लाभदायक है। गीलानी के अनुसार इसमें विलायक, पार्थिव और धारक शक्ति है और अपनी लज़ूजत (पिच्छलता वा चिपचिपाहट) के कारण पित्तोत्सर्ग करता है और सरलता पूर्वक दस्त लाता है। इसको क्वथित न करना चाहिए। यह लबलाब के अन्य सभी भेदों से निरापद है। पौने नौ तोले इसका रस और उससे आधी मिश्री मिलाकर पीनेसे प्रदग्ध पित्त और पीतवारि निःसृत होजाती है। यह उष्ण और संयुक्त शूल (कोलंज) को लाभ पहुँचाता है। प्रायः ज्वरों का निवारण करता है। चेचक और शीतला (जुद्री) में इसे न देना चाहिए।

यह ठंढा है। आघात लगने से उत्पन्न क्षत वा रक्तार्श में इसकी पत्ती की पुलटिस चढ़ाते और १ तो० रस बराबर गर्मघी में मिला दिनमें दोबार रोगी को पिलाते हैं। विस्फोट विशेष (Carbuncle) पर पत्र का लेप भी लगाया जाता है। (Dymock. 11. *Part. P. 540*)

,इश्क़ुरिस् व्यान-[अ०] शौक़तुस्सौदाऽ।

इश्ख़ीस्-[अ०] यूनानी चिकित्सा-शास्त्रविदों में इसके विषय में बड़ा मतभेद है। हकीम अब्दुल् हमीद ने तुहफ़तुल्मोमनीन के हासिया पर लिखा है, कि हिन्दी में इसको वंकम कहते हैं और सुन्दरवन की राह में बंगाल की तरफ़ बहुत है। अंताकी प्रभृति ने लिखा है कि इसके दो भेद हैं—काला और सफ़ेद वा जंगली और पहाड़ी। सफ़ेद का बीज कड़के बीजकी तरह होता है। फूल नीले रंग का और बालों के समान बारीक होता है। पत्ते काहू के पत्तों से बड़े होते हैं और उनके मध्य काँटे होते हैं। इसके गोंद को, जो जड़ के समीप पैदा होता है, स्त्रियाँ मस्तगी की जगह काम में लाती हैं। इसकी जड़ में सुगन्धि की जगह बसायँध भी होती है। स्वाद किंचित् मधुर होता है। जड़ का रंग सफ़ेद होता है। इसमें तना का अभाव होता है। फल करील के फल की तरह होता है। काले इश्ख़ीस के पत्ते सफेद से किंचित् छोटे और मुलायम भी होते हैं। पत्ते जब तक तरो ताज़ा होते हैं, रंग लाल रहता है।

सूखने के उपरान्त काले पड़ जाते हैं। तना एक बालिश्त के बराबर और लाल रंग का होता है और उस पर घुन्डी होती है। फूल में बिंदु एवं काँटे होते हैं। जड़ मोटी और काली होती है तथा भीतर से लाल रंग की होती है। इसकी किसी जड़ में छिद्र भी होते हैं। इसको चबाने से जिह्वा में दाह होता है। इसकी जड़ औषध के काम आती है। इसमें यह एक विशेष गुण है कि जो घास और पौधे इसके समीप उगते हैं, उनको यह नष्ट कर देती है। यह शिखरों, पाषाणों और नदी के कूलों पर उत्पन्न होती है। इसको पीस आटे में मिलाकर खिलाने से पशु मर जाते हैं।

पर्य्या०—असदुल् अर्ज़ (अ०)। अदादा (बरब०)। खामालादन (यू०)। बश्करायन (स्पे०)। Daphne mezereum. (अं०)।

टिप्पणी—किसी-किसी के अनुसार बरबरी में इसे वहीद और फ़ारसी में मस्तऊद और मारदशो बीश कहते हैं। किसी-किसी ने इसे कृष्ण माज़रयून का भेद बतलाया है। किसी-किसी ने इसको किरदानः को वृक्ष लिखा है। तात्पर्य यह कि ग्रंथों में एतद्विषयक अनेक ऐसे ही परस्पर विरोधी यूनानी-तिब्बो एवं नाना मत पाये जाते हैं। सारांश यह एक संदिग्ध ओषधि की जड़ है जो अफरीका और आरमीनियामें बहुतायत से उत्पन्न होती है तथा आजकल अप्रचलित है।

प्रकृति—सफ़ेद इश्ख़ीस द्वितीय कक्षा के प्रथमांश में गरम एवं खुश्क है और इसमें रासायनिक गुण विद्यमान हैं। काला इश्ख़ीस तृतीय कक्षा के अंतिम अंश में गरम और खुश्क है, बल्कि चतुर्थ कक्षा तक गरम व ख़ुश्क मानते हैं।

हानिकर्त्ता—सफ़ेद क़िस्म सिरदर्द पैदा करती है दर्पनाशक—खाँड। मात्रा—सफेद क़िस्म १७॥ माशे तक।

वि० दे० "माज़रयून"।

इश्तलाबूस-[रू०] कायफल। (Myrica nagi, *Thunb.*)

इश्तार-[अ०] आँख का पपोटा उलटना।

इश्तिआल-[अ०] (Deflagration) प्रज्वलित होना। ज्वलन। प्रदीप्त होना। माद्दे वा रूह. का उष्ण हो जाना वा प्रकुपित होना।

इश्तिवाऽ-[अ०] भर्जन। भूनना। तलना। भुना हुआ होना।

इश्तिबाक-[अ०] ग्रंथन। ग्रथित होना। दाँत बैठ जाना।

इश्तिहा-[अ०] (Appetite) क्षुधा। भूख। स्पृहा।

इश्फ़ा-[अ०] (Cure) नैरोग्य प्रदान करना। अच्छा कर देना।

इश्रत-[अ०] प्रसन्नता। सुख। आनन्द मय जीवन।

इश्रान-[अ०] दाऊद अंताकी में उल्लिखित है कि यह एक पौधा है, जिसके पत्ते ललाई लिये और फूल सफ़ेद होते हैं। तना पतला होता है। इसमें छः शाखाओं से अधिक नहीं निकलतीं। यह फरवरीमें उत्पन्न होता है। इसकी जड़में दो गिरहें होती हैं जो मनुष्य के अंड की तरह की होती है। इनमें से एक कड़ी और दूसरी नरम होती है। कभी जड़ गाजर की तरह होती है। बगदाद में इसे ओज़ानुल्क़सीस कहते हैं। यूनानी लाज़नः और लेटिन में क़र्शतीन कहते हैं। (ख० अ०)

इश्राफ़-[अ०] चढ़ना। उच्च होना। झाँकना। सूचना पाना। तिब के अनुसार रोगी का आसन्नमरण होना।

इश्रास-[अ०] एक वनस्पति की जड़ है। इस पौधे का तना चौड़ा और ऊँचा होता है। फूल ललाई लिये सफ़ेद और फल गोल, तेज़ कुछ तिक्त होता है। अश्रास् का शाक बनाकर खाते हैं और सुखाकर मोची काम में लाते हैं। दाऊद अन्ताकी के तज़किरे में लिखा है कि अश्राज के पत्ते प्याज के पत्तों की तरह होते हैं, किंतु उनसे दबीज़ और चौड़े होते हैं। सरेश (फ़ा०)।

टिप्पणी—(१) अल्फ़ाज़ुल् अद्विया और बुर्हान क़ातिअ में इस शब्द का अंतिम 'स' 'श' लिखा है।

(२) कोई-कोई इसे 'ख़ुन्सा की जड़' भी कहते हैं। अस्तु, शेख़ुर्रईस क़ानून के अन्तर्गत

क़ूबा के प्रकरण में लिखते हैं "अल्ख़ुन्सा हुउल् अश्‌रास" अर्थात् ख़ुन्सा और अश्‌राज दोनों समानार्थी हैं। किंतु यूसफ़ बग़दादी उक्त कथन को त्रुटिपूर्ण प्रमाणित करते हैं। यह ठीक भी ज्ञात होता है। क्योंकि खुन्सा का फूल सफेद होता है। उसमें किंचिन्मात्र भी ललाई नहीं होती और तना छोटा होता है और अन्य अंगों में भी अंतर पाया जाता है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि अश्‌राज और खुन्सा दोनों भिन्न-भिन्न दो पदार्थ हैं।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष; जला लेने के उपरांत द्वितीय कक्षा में उष्ण और तृतीय कक्षा में रूक्ष हो जाती है। हानिकर्त्ता—जड़ आमाशय को शिथिल करती और अवरोध उत्पन्न करती है। दर्पनाशक—आमाशय के लिये गुलकंद, सिकंजबीन से एतज्जन्य अवरोध का निवारण होता है। प्रतिनिधि—प्राय: गुणों में सरेश माही। मात्रा—जड़ १ तो० २॥ मा० तक और जली हुई ४॥ मा० तक; बीज ७ मा० तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसके पीने से पार्श्वशूल (ज़ातुज्जनब) आराम होता है। यह पैत्तिक कामला और कंठगत कर्कशता का निवारण करती है। जली हुई मूत्रप्रवर्तक और आर्त्तव प्रवर्त्तक है, एवं कफज सूजन को विलीन करती है। सिरके के साथ बालख़ोरा (गंज), छींप और दाद को आराम करती है, टूटी हुई हड्डी को जोड़ती है, अंडवृद्धि, फोड़े फुन्सी और अंडशोथ को लाभ पहुँचाती है एवं दद्रु को नष्ट करती है। इसका बीज स्वच्छताकारक है और सांद्र दोषों का उत्सर्ग करता है। जड़ अधिक गरम है। यदि थूक में खून आता हो, तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

इश्रीराक-[अ०] नेत्र का अश्रुपूर्ण होना।

इश्वरमूल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Aristolochia Indica, *Linn.*) रुद्रजटा। ज़रावंदे हिंदी।

इश्वर-मुरि-[मल०] (Aristolochia Indica, *Linn.*) रुद्रजटा।

इश्वर लिङ्गी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Bryonia epigaea, *Rottl.*) लिङ्गिनी। शिवलिङ्गी।

इश्वर वेरु-[ते०]
इश्वरी-[मरा०]
इश्वरी-वेरु-[कना०]
(Aristolochia Indica, *Linn.*) रुद्रजटा। ज़रावंदे। हिंदी।

इष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्वार का महीना। आश्विन। अम०।

इषण-संज्ञा स्त्री० [सं० एषणा] प्रबल इच्छा। कामना। ख़्वाहिश। वासना।

इषिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथी की आँख का का डेला। अ० टी० रा०।

इषिर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि।

इषीक-तुल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रामशर का ऊपरी हिस्सा।

इषीका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काश तृण। हला०। (२) शरकाण्ड। सरकंडा। सरपत। रामशर। अ० टी० भ०। (३) हाथी की आँख का डेला। दे० "इशिका"। (४) गाँडर वा मूँज के बीच बीच की सींक जिसके ऊपर जीरा वा भूआ होता है।

इषु (क)-[सं० पुं०] शर तृण। सरपत। सरकंडा। प० मु०।

इषु काण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शर तृण। सरपत। सरकंडा। नि० शि०।

इषुगोलक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Hygrophila spinosa, *Prain.*) कोकिलाक्ष। तालमखाना।

इषुपत्रिका (त्री)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Aristolochia Indica, *Linn.*) अर्कमूला। इशरमूल। इशेरमूल (बं०)। र० मा०।

इषुपुङ्खा (ङ्खिका)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरपुङ्खा। सरफोंका। बन नील (बं०)। रा० नि० व० ४।

इष्ट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (Ricinus Communis, *Linn.*) एरण्ड वृक्ष। रेंड। श० च०। (२) ईंट।

[सं० क्ली०] उशीर। खस। अ० टी० भ०।

इष्टक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईंट। दग्ध मृत्तिका खण्ड।

इष्टकचित–संज्ञा पुं० [सं० त्रि०] ईंट से भरा हुआ।

इष्टका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Brick) गृह आदि निर्माणार्थ दग्ध मृत् खंड। ईंट। इष्टिका। संग्रहः।

इष्टकाचित–वि० [सं० त्रि०] पक्की ईंट से बना हुआ।

इष्टकागृह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पक्का मकान। ईंट द्वारा निर्मित घर।

इष्टकान्यास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गृह-भित्ति मूल का स्थापन। मकान की नींव डालना। शिलान्यास।

इष्टकापथ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Andropogon laniger, *Desf.*) लामज्जक। वीरण मूल। इज़्ख़िर। रा० नि० व० १२।

इष्ट(ष्टि)कापथक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Andropogon laniger, *Desf.*) लामज्जक। लामजक। इज़्ख़िर। भा० पू० १ भ०। मद व० ३। (२) वीरणमूल। ख़स। (३) पक्की सड़क।

इष्टका राशि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईंट का ढेर। दग्ध मृत्-खण्ड निचय।

इष्टकाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्योतिष के मत से सन्तान उपजने वा अन्य कार्य लगने का निर्दिष्ट समय।

इष्टकालय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ईंटका बना घर। चाणक्य के अनुसार यह शीत काल में उष्ण और ग्रीष्म काल में शीतल होता है।

इष्टकाव–वि० [सं० त्रि०] इष्टक युक्त। पक्का। पोख़्ता।

इष्टकावत्–वि [सं० त्रि०] दग्ध मृत्खण्ड सम्पन्न। ईंट रखनेवाला।

इष्टगन्ध-वि० [सं० त्रि०] सुगंधि। अम०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुगन्धित द्रव्य।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बालुका। बालू। रेत। मे० धचतुष्कं।

इष्ट मुष्ट–सं० पुं० [सं०] (Strychnos nux vomica) कारस्कर। कुचिला।

इष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Acacia suma,) शमी वृक्ष। छोकरा। रा० नि० व० ८।

इष्टार्थ-सिद्धि-गुटिका–संज्ञा स्त्री०[सं० स्त्री०]अङ्कोल, आक, पलाश, कण्टकी पलाश, फरहद (पांगरा–मरा०। पांडरवो–गु०), विष्णु क्रान्ता, बन्दाल, गुञ्जा, क्षुद्रा (कटेरी), अलर्क, पुनर्नवा इन दस सुफेद पुष्प और केशरवाली ओषधियों के बीज समान भाग में लें। इनका पृथक् पृथक् सूक्ष्म चूर्ण करके इकट्ठा मिलाकर इसमें पुनः इन्हीं दश ओषधियों की जड़ और अग्र भाग के जड़ की छाल के रस में क्रमशः दश दश भावना दें। सब के पीछे बकरी के दूध में भावना देकर एक काँसे की नई और साफ़ आधी थाली में एक जौ के मोटाई में लेप करें और उस थाली को तीव्र धूप में टेढ़ा करके रख दें, जब धूप की गर्मी से तेल टपक कर उस थाली के नीचे के हिस्से में जमा हो, तब उस तेल को दीपन और मुख बंधन किए हुए ४ पल प्रमाण शुद्ध पारा लेकर एक वज्र मूषा में वही २ तोले तेल डालकर और उसके बीच में पारा रखकर २ तोले तेल ऊपर से डाल दें। और उस मूषे का मुख बन्द करके आग में रख धमन करें। इस क्रिया से दो घड़ी धमन करने से पारा बँध जाता है। इसी तरह नीलम प्रभृति जो रत्न हैं, उनको धमन करने से उनका उत्तम चमकीला और स्थाई रंग हो जाता है।

इस गुटिका को दरियाई नारियल के रस में पचाकर मुख में रखने से मनुष्य अदृष्य हो जाता है।

इसके प्रभाव से जल, लोह, अग्नि, शुक्र और वाणी का स्तम्भन होता है। इस गुटिका को काली गाय के मलाई में पकाकर उस मलाई को खाने से और गुटिका को मुख में २४ घंटे तक इसी नियमानुसार हर रोज़ ३ महीने तक करने से आयु: वृष्यता, सन्तान, बल और कान्ति की वृद्धि होती है। इस नियम के अनुसार छः महीने में वृद्धता दूर होकर दीर्घायु प्राप्त होता है। गरुड़ पक्षी के तेल में दोला-यंत्र द्वारा पकाकर जिसके मस्तक पर रक्खें, वह वशीभूत हो जाता है। मुख में रखने से वाचस्पति होता है। जिसके गृह में

यह गुटिका रहती है वह सदा सिद्धि को प्राप्त होता है और सदा ऐश्वर्यवान रहता है। जिस राज्य में रहे वह राज्य स्थिर होता है। यह भूत, पिशाच और दुष्ट ग्रहों का निवारण करता है। इसे पास रखने से रोग भय दूर होता है। अधिक तो क्या इससे इष्ट मात्र की सिद्धि होती है। शुद्ध ताम्र को गलाकर धत्तूर के रस में निर्वापित करके गलाकर साफ कर लें, फिर गला कर इस गोलीका उसमें स्पर्श करानेसे सुवर्ण जैसा हो जाता है। यह धातु मात्र को रञ्जन करता है। रस० यो० सा०।

नोट—दीपन ग्रास प्रकार, रस मुख वन्धन प्रकार, वेध मुखरस प्रकार के लिए देखो–"पारा"।

इष्टाश्व–वि० [सं० त्रि०] अभिलाषित अश्व रखनेवाला। जो बहुत अच्छा घोड़ा रखता हो।

इष्टिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Brick) ईंट

इष्टिका दहन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Ammonii chloridum) नरसार। नौसादर। धन्व० नि०।

इष्टिका पथिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Andropogon laniger, *Desf.*) लामज्जक। लामजक। इज़ख़िर। भा० पू० १ भ०। मद० व० ३।

इष्टिका रूप वंग–संज्ञा पुं० [सं०] (Black tin) वंग विशेष।

इष्टिकावत् लोहित–वि० [सं० त्रि०] (Brick-red) ईंट के रंग का।

इष्टि-मुष्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दैत्य। राक्षस।

इष्टीकृत्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) यज्ञ विशेष। (२) न चाहे जानेवाले वस्तु की इच्छा करना।

इष्टु–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इच्छा। उ०।

इष्टिक्नीन–[अं० Strychnine] कुचिला का सत। कुचलीन। विषमुष्टीन। ष्ट्रिक्नीन। दे० "कुचला"।

इष्म–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वसन्त ऋतु। सि० कौ०। (२) कामदेव।

इष्य–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] मौसम-बहार। वसंत ऋतु। हे०।

इष्व–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वाण। तीर। (२) आचार्य।

इष्वसन्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वाण। कमान।

इष्वस्त्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वाणास्त्र। तीर।

इसक-दासरि-कूर–[ते०] (Gisekia pharnacioides, *Linn.*] बालू का साग। बालू की भाजी।

इसपगाल-वित्तुलु–[ते०] (Plantago ispaghula, *Roxb.*) Spogel seeds ईषद्गोल। इस्पगोल। इसबगोल।

इसपात–संज्ञा पुं० [सं० अयस्पत्र, अथवा पुर्त्त० स्पेडा] एक प्रकार का कड़ा लोहा। फ़ौलाद।

इसपिरिट–संज्ञा स्त्री० [अं० स्पिरिट Spirit] (१) किसी वस्तु का सत। (२) एक प्रकार की ख़ालिस शराब। मद्यसार। शुद्धासव। (३) आत्मा। रूह।

इसपंज–संज्ञा पुं० [अं० स्पंज Sponge] मुआ बादल। मुर्दा बादल। अब्रे मुर्दा (हिं०)। वादुलून (द०, बम्ब०)। सीक़ूना, ह़ालास (यू०)। अस्फंक़ारून (रू०)। इस्फ़ंज, निशाफ़ुलमाऽ, मुनश्शिफ़:, निशाफ़:, हर्शफ़:, ज़ुब्दुत्तरी, स़हाबुल् ब़हर, ग़मामः, ग़ीमः, सौ़फ़ुल् ह़ज्जामीन (अ०)। अब्रेमुर्द:, अब्रे कुहन, नशागर्द ग़ाज़ुरान, स्पंग (फ़ा०)। इस्पंज (फ्रॅं०)। बलूत़ (तु०)। स्पंजिया ऑफ़िशिनेलिस Spongia officinalis, स्पॉञ्जिल्ल Spongilla(ले०)। स्पंज The Sponge (अं०)।

वर्णन—समुद्र में एक प्रकार के अत्यन्त छोटे कीड़ों के योग से बना हुआ मुलायम रूई की तरह का सजीव पिंड, जिसमें बहुत से छेद होते हैं, जिनमें से होकर पानी आता है। इसपंज भिन्न भिन्न आकार के होते हैं। इनकी सृष्टि दो प्रकार से होती है—एक तो संविभाग द्वारा और दूसरे रजकीट और वीर्य्य-कीट के संयोग से।

इसकी पीताभ-धूसर–बादामी रंग की, रूई के समान मुलायम स्थिति-स्थापक, विषमाकार ठठरी जिसमें बहुत से छेद होते हैं, बाजारों में इसपंज के नाम से बिकती हैं। गोताख़ोर लोग

जलमग्न चट्टानों से, जिनसे ये संलग्न होते हैं, संगृहीत करते हैं। ताज़ा होने पर यह एक प्रकार के सरेशी पदार्थ से आवृत्त होता है, सड़ने से बचाने के लिये जिसे पृथक् कर देना नितांत आवश्यक होता है।

इसमें पानी सोखने की बड़ी शक्ति होती है; इसीसे लड़के इससे स्लेट पोंछते हैं और डॉक्टर लोग घाव पर का खून आदि सुखाते हैं। पानी सोखने पर यह खूब मुलायम होकर फूल जाता है।

रासायनिक संघटन–सूखे इस्पंज में जेलाटीन, एल्ब्युमेन और आयोडीन होती है।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार–प्रकृति—प्रथम कक्षा में गरम और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है, किसी-किसी के अनुसार तृतीय कक्षा में रूक्ष है।

हानिकर्त्ता—उदर के भीतर के अवयवों तथा फुफ्फुस को।

दर्पघ्न—उदरगत अवयवों के लिये अंगूर का पानी और रेवास और फुफ्फुस के लिये मिश्री और गुलाब।

प्रतिनिधि—जलाया हुआ कागज़। मात्रा—१॥। मा० से ३ मा० तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह सूजन उतारता है। रूक्षता उत्पन्न करता तथा क्षत और व्रणादि को चाहे वे कितने ही गंभीर और ताज़े चाहे पुराने हों, सुखाता है। अंगों से रक्त-क्षरण होने को विशेषतया रोकता है। इसको जलाकर बारीक पीसकर सुरमे की भाँति आँख में लगाने से अभिष्यंदरोग आराम होता है। यह दृष्टिको स्वच्छ करता है। यदि कंठ में जोंक चिमट गई हो अथवा काँटा चुभ गया हो, तो स्पंज का इतना बड़ा टुकड़ा लें जिसे निगल सकें। पुनः इस टुकड़े को रेशमी डोरे में बाँधकर निगल जाँय और डोरे की छोर को हाथ में पकड़े रहें। थोड़ी देर ठहरें, यहाँ तक कि इसपंज का टुकड़ा द्रवाभिशोषण कर फूल जाय। फिर डोरा पकड़कर उसे इस प्रकार निकालें कि डोरा टूटने न पाये। इस उपाय द्वारा जोंक और काँटा निकल आता है।

इसको कथितकर पीना चाहें अथवा किसी चूर्ण प्रभृति में डालना अभिप्रेत हो, तो इसे कैंची से बारीक कतर लें। इसे हावनदस्ते में नहीं कूटा जा सकता इसका यह एक विशेष गुण है कि जिस पानीमें मद्य मिला हो यदि उसमें इसे (प्रथम इसे पानीमें भिगोकर पानीनिचोड़ लें)तो डालदें,यह पानीको सोख लेगा,शराब अवशिष्ट रह जायगी।

जब ताज़ा और सूखे इसपंज को मिट्टी के तेल (क़फ़ुलयहूद), मोम या ज़ुफ़्त में आप्लुतकर उसकी एक छोर आग से जला देते हैं और दूसरी छोर को ऐसे क्षत पर रखते हैं, जिससे रक्तस्राव बन्द न होता हो, जिसमें उसकी गरमी उक्त स्थल पर पहुँचती रहे और राख उस जगह पर गिरती रहे, तो यह क्रिया दग्धकर्मकी स्थानापन्न होती है और तत्काल रक्तस्राव रुक जाता है। क्योंकि रगों के मुँह पर वह राख चिपक जाती है और उनको बन्द कर देती है। कभी ऐसा करते हैं, कि रोग़न ज़ैतून में चिकना करके जलाते हैं और राख उस स्थल पर बुरक देते हैं, जहाँ से रक्त-क्षरण बन्द न होता हो। इसमें सुखाने की विचित्र शक्ति है, परन्तु अभिशोषण गुण का अभाव है। इसीलिये यद्यपि यह क्षतोंको पूरितकर देता है, किंतु भीतर नहीं पहुँच सकता। इसको शहद या पानी के साथ लेप करना भी पुरातन क्षतों का पूरण करता है। जला हुआ इसपंज भी ज़ख्म भरता है और रक्त रुद्धक है। शीतल सूजन पर इसे अकेला रखना लाभकारी है। यदि सांद्र माद्दा के कारण सूजन हो, तो सिरके में तर करके सूजन पर रक्खें। कारण यह है कि सिरका अपनी छेदन एवं तारल्यजनक शक्ति से इसपंजके विलायक गुण में साहाय्य प्रदान करेगा। ताजे इसपंज की बत्ती बनाकर ऐसी रगों के मुँह में रखें, जो अवरुद्ध हो गई हों, तो यह उसे खोल देता है यह कठिन शोथों को भी खोल देता है। इसे ज़ुफ़्त के साथ जलाकर शहद मिला चाटने से उरःक्षत (सिल) का नाश होता है।

नादकर्णी—इसपंज को किसी बन्द बरतन में जलाने से उसकी राख प्राप्त होती है। यह राख रोधोद्घाटक और स्तम्भक रूप से काम में

आती है। तेल में मिलाकर इसे सूजी हुई ग्रंथियों (Goitre) पर लगाते हैं; क्योंकि इसमें आयोडीन होती है। प्रवाहिका, अतिसार तथा आंत्र विकारों में इसका आभ्यन्तरिक प्रयोग होता है। द्रवाभिशोषण, निर्मलीकरण, प्रक्षालन, कोष्ठविस्तारण और भ्रष्ट अंग के सहारा देने के लिये साधारणतः इस्पंज का प्रयोग होता है। (Indian Materia Medica–*P. 1139.*)

नोट—इसपंज में एक प्रकार की पथरी पाई जाती है। यह जितनी सफ़ेद और कड़ी हो, उतना ही उत्तम है। यह रूक्षता, निर्मलता और तरलता उत्पन्न करती है। प्रत्येक अंग से रक्तस्राव को रोकती है, सूजन एवं क्षतों को लाभकारी है, वस्तिगत अश्मरी को तोड़कर निकाल देती है। किंतु जालीनूस इसके अनुयायी नहीं। वह कहते हैं कि उक्त पथरी की शक्ति का वस्ति तक पहुँचना बहुत दूर है। परंतु इसे वृक्कगत पथरी का तोड़नेवाला वे भी मानते हैं। यह कामला (यर्क़ान) को भी लाभकारी है। पीसकर सिरके में मिलाकर गरम तथा शीतल सूजन पर बाँधने से यह शोथ उतारता है। कहते हैं कि गले में लटकाने से यह उत्कट कास का निवारण करता है, यह इसका विशेष प्रभाव है। (ख० अ०)

इसपंद–संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० "इस्पंद"।

इसप़्ग़ोल–[द०. गु०] (Plantago ispaghula, *Roxb.*) इसपग़ोल। इसबगोल।

इसफ़गोल–[पं०] (Lippia nodiflora, *Rich.*) जलपिप्पली। जलपीपर। गंगतिरिया।

इसब–संज्ञा पुं० [मरा०] पामा। उकवत। एग्ज़ेमा नामक रोग।

इसबकोलु–[कना०] इसबगोल।

इसबगोल–संज्ञा पुं० [फ़ा० अस्पग़ोल]

पर्य्या०–ईसबगोल, ईसर्गोल, इस्बगोल, ईश्वर बोल, इस्पगोल, इस्सुफगुल (हिं०)। इसपगोल (द०)। ईषद्गोल, स्निग्ध बीज (सं०)। बज़्रे क़तूना, अस्फ़र्जः (अ०)। इस्बगोल, इ (अ) स्पग़ोल, अस्पग़ोल, इस्पर्जः अस्पर्ज़ः, शिकम दरीदः, बंगूस्त, इस्रियूस (फ़ा०)। कलियून (यू०)। क़ातूर (सिरि०)। कारनी यारूक़ (तु०)। ईशुप्पुकोल विरै, इस्कोल विरै, इसपगाल विरै, इस्पगल (ते०)। इसबकोलु (कना०)। ऐशोपगोल, इसबगोल (बं०)। इसबगोल (मरा०)। इसपगोल, उख मुत्रीरण, उथमी जीरुन, उपतु जीरुन, एपोवगोल (गु०)। इसपगोल (बम्ब०, पं०)। इसगोगुल (काश०)। प्लैंटेगो इस्पगोला Plantago ispaghula, *Roxb.*, प्लैंटेगो ओवेटा Plantago ovata, *Forsk.* इस्पगोला Ispaghula (ले०)। स्पेज सीड्स Spage seeds., स्पागेल सीड्स Spogel seeds (अं०)।

ईषद्गोल वर्ग

(*N. O. Plantaginiae*)

उत्पत्ति-स्थान—इसका मूल उत्पत्ति-स्थान फ़ारस है। यह पंजाब और सिंध के मैदानों तथा सतलज से पश्चिम की ओर की नीची पहाड़ियों पर भी उगा हुआ मिलता है। भारतवर्षके विभिन्न प्रदेशों में भी इसकी न्यूनाधिक कृषि होती है। जैसे—बंगाल, मैसूर और कारोमंडल तट। पश्चिम की ओर यह स्पेन तक होता है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी तथा मुसलमान चिकित्सकों ने इस औषधि का स्पष्ट उल्लेख किया है। पर आयुर्वेदीय ग्रंथों में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। इससे ज्ञात होता है कि भारतीयों को इस औषधिका ज्ञान नहीं था। संभवतः पारस्य देश से ही लोग सर्व प्रथम इसे भारतवर्ष में लाये थे। मोरेश्वरकृत वैद्यामृत और निघंटु संग्रह नामक ग्रंथों में इसबगोल का जो वर्णन आया है, उससे ज्ञात होता है कि यूनानी चिकित्सकों का व्यवहार देखकर ही सम्भवतः यह लिखा गया है। इसबगोल जातीय कतिपय अन्य बीजों के सहित इसका अरबी तथा फ़ारसी ग्रंथकारों की पुस्तकों में प्रायः उल्लेख हुआ है, जिन्होंने इसके औषधीय गुणों की सराहना की है। अति प्राचीनकाल में यहाँ तक कि १० वीं शताब्दी में अलहर्वी नामक पारस्य चिकित्सक और उससे कुछ ही कालोपरांत इब्नसीना ने उक्त

औषध का उल्लेख किया। तदुत्तरकालीन सभी मुसलमान औषधीय ग्रन्थकारों ने इस्पगोल के गुणोंकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की। भारतीय चिकित्सा में इन बीजों का समावेश मुसलमानों के आगमन से ही हुआ और तब से चिरकारी प्रवाहिका और आंत्रीय प्रवहण (Intestinal fluxes)में सुविख्यात औषधोपचार रूप में इसका अत्यधिक व्यवहार प्रारंभ हुआ और कदाचित् आज पर्यंत यह आंत्र विकारों की बहुप्रयुक्त औषधों में से है। हर प्रकार के अतिसार को, प्रधानतः वह, जिसमें मल में रक्त वा श्लेष्मा वर्तमान हो, यह एक प्रसिद्ध गृहोपचार है। इसके बीज शीतल और स्निग्धता-संपादक माने जाते हैं और अतिसार, प्रवाहिका एवं पाचक अवयवों के अन्य प्रादाहिक तथा क्रियात्मक विकारों के अतिरिक्त ज्वरावस्था में भी उपयोजित होते हैं।

इनमें मूत्रल गुणों का होना भी बतलाया जाता है और इन्हें २ से ३ ड्राम की मात्रा में शर्करा के साथ वा क्वाथ रूप में वृक्क, वस्ति तथा मूत्र मार्ग (पूयमेह) संबंधिनी व्याधियों में व्यवहृत करते हैं। चूर्णित इसबगोल प्रायः इन्द्रजव के साथ मिलाकर प्रवाहिका में दिया जाता है। कूटे इसबगोल की बनी पुल्टिस आमवातिक और ग्रन्थिक शोथों पर लगाई जाती है। इसके लुआब से शिर पर रखने के लिए शीतल द्रव भी प्रस्तुत किया जाता है। बीजों का क्वाथ सर्दी और कास में योजित होता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शुष्क इसबगोल को भूनने से उसमें सूक्ष्म मात्रा में संकोचक गुण आ जाता है।

वर्तमान काल में पश्चिमी चिकित्सकों ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया और सन् १८६८ ई० में यह (Indian Pharmacopoeia) में प्रविष्ट होगया और अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्लेमिंग, ऐन्सली और राक्सबर्ग सभी ने अतिसारावस्था में इसके गुणों को सराहना की। तब से अनेक पाश्चात्य चिकित्सकों ने इसके बहुशः प्रयोग किए और उन्होंने पुरातन उदरामय (Chronic dysentery) एवं अतिसार में इसकी उपयोगिता और भी दृढ़ता के साथ प्रमाणित की। किसी २ चिकित्सक ने तो इसे इपीकेकानोपचारके साथ सम्मिलित कर लिया है। अपने मृदुताकारक स्निग्धता-संपादक और कोष्ठ मृदुकारी गुणों के कारण यह अन्नप्रणालीगत श्लैष्मिक कला सम्बंधी सभी प्रकार के प्रादाहिक विकारों में उपयोगी बतलाया जाता है।

संज्ञा-निर्णायक नोट—इस औषधि की गुजराती संज्ञा संस्कृत से व्युत्पन्न जान पड़ती है। इसके सभी प्रांतीय नाम फ़ारसी भाषा के 'इस्पगोल' शब्द के अपभ्रंश हैं। इस्पगोल अस्प=घोड़ा+गोश=कान का यौगिक है। इसका बीज घोड़े के कान जैसा होता है। इसलिए इसको इस नाम से अभिहित किया गया। इसकी लेटिन संज्ञा 'इस्पगोला' फ़ारसी इस्पगोल से व्युत्पन्न है।

वानस्पतिक वर्णन—एक झाड़ी वा पौधा जो लगभग गजभर ऊँचा होता है। पत्ते धान के पत्ते जैसे और टहनियाँ बारीक होती हैं। टहनी के सिरे पर गेहूँ की तरह बाल लगती है जिस पर बीजकोष होते हैं। बीज अर्ध तिल के आकार का गोलाकार व नोकाकार $\frac{१}{८}$ इंच लंबा और $\frac{१}{१६}$ इंचसे भी कम चौड़ा होता है। प्रायः यह गुलाबी भूरे रंग का होता है। परन्तु रंग के विचार से यह कई प्रकार का होता है। कोई भूरा होता है तो कोई गुलाबी लिये सफेद रंग का होता है। मख़ज़नुल् अद्विया और मुहीत आज़म प्रभृति यूनानी चिकित्सा-शास्त्रों में श्वेत, रक्त और श्याम भेद से इसे तीन प्रकार का लिखा गया है। किसी ने इसके श्वेत प्रकार को और किसी ने रक्तभेद को श्रेष्ठतर लिखा है। पर श्याम को सभी ने निकृष्टतम कहा है।

इसके बीज का नतोदर पार्श्व एक महीन सफ़ेद झिल्ली से आवरित होता है। सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा करने पर बीज का उपरित्वक् एक प्रकार के सेलों (Polyhedral cells) से संघटित पाया जाता है, जिसकी दीवारें सेकंडरी डिपाज़िट द्वारा स्थूलीकृत होती हैं और यही लुआब की मूल हैं इसके तथा एल्ब्युमेन के मध्य एक पतला भूरा स्तर होता है। एल्ब्युमेन स्थूल

दीवाल की सेलों से निर्मित होता है जिनमें दानेदार पदार्थ होते हैं। संश्लिष्ट प्रचुर लुआबी आवरण के कारण पानी सोखकर बीज बहुत फूल जाते हैं। लुआब निर्गन्ध व बेस्वाद होता है।

इसी जाति के अन्य अनेक प्रभेदों के बीज समान गुण प्रदर्शित करते हैं। बृहद् इसबगोल (Plantago amplexicaulis) नामक इसबगोल जाति का ही एक पौधा है जो पंजाब मालवा और सिंध के मैदानों में उपजता है और दक्षिण योरुप तक फैला हुआ है। इससे भूरा इसबगोल प्राप्त होता है जो प्रायः भारतीय बाजारों में उपलब्ध होता है। ये बीज भी रंग रूप में इसबगोल ही की तरह और नोकदार, परन्तु इससे बड़े अवसतन् $\frac{1}{6}$ इंच दीर्घ होते हैं। पारस्य देश से भारतमें इसका प्रचुर परिमाण में आयात होता है।

बारतंग भी इसी जाति के एक पौधे का बीज है, इसकी जाति के और भी अनेक पौधे हैं जिन का यथास्थान उल्लेख होगा।

प्रयोगांश—बीज और पत्ते !

रासायनिक संघटन—इसबगोल के बीज में एक वसामय तैल, एल्ब्युमिनीय पदार्थ और इतने अधिक परिमाण में लुआब होता है कि एक भाग बीज २० भाग पानी में थोड़े काल में ही स्वाद-रहित जेली (फालूदा) रूप में परिणत हो जाता है। अधिक परिमाण में जल मिलाकर वस्त्रपूत करने से, किंचित् लुआब वस्त्र से छनकर पृथक् होता है; किन्तु उसका बड़ा भाग बीज में ही लगा रह जाता है। जोर से मलकर छानने से लुआब पृथक् किया जा सकता है। इसकी प्रतिक्रिया उदासीन होती है। यह एलकोहल मिलाने से परिवर्तित नहीं होता और न इसमें आयोडीन, टंकण वा परक्लोराइड आफ आयर्न द्वारा कोई परिवर्तन आता है और न एलकोहल में क्वथित करने से यह तलस्थायी होता है। यह केवल जल में अंशतः विलेय होता है।

मात्रा—वैद्य लोग ३ मा० से ६ माशा तक तथा हकीम लोग ४॥ मा० से १० मा० तक और डॉक्टर ५० से १५० ग्रेन तक प्रयुक्त कराते है।

प्रयोग से पूर्व बीज को रेत कंकण आदि से भली भाँति साफ़ करलें, जो बारीक चलनी वा मच्छरदानी के वस्त्र द्वारा छान लेने से अच्छी तरह किया जा सकता है। इसके उपरांत भी यदि कुछ रह जाय तो उसे उँगली से बीन लें। सेवन से पूर्व बीजों को एक वा दो बार प्याले भर पानी में शीघ्रतापूर्वक धोलें। इसकी साधारण मात्रा २ से ४ ड्राम है; पर अपेक्षाकृत अत्यधिक मात्रा यथा १ से २ औंस तक की बहुत बड़ी मात्रा का लाभदायक उपयोग हो सकता है वा आवश्यकतानुसार अधिक २ वा ३ हलुआ व मुरब्बा खाने का चम्मच भर इसबगोल दिन में २-३ बार दिया जा सकता है। इसमें किसी प्रकार का विषाक्त पदार्थ नहीं होता और यह अधिकांश आमाशयांत्र पथ से ६ से १२ घंटे में उत्सर्जित हो जाता है। वस्तुतः कतिपय रोगों में प्रधानतः जब मलावरोध वर्तमान हो, बड़ी मात्रा अपेक्षित होती है; क्योंकि इसका कार्य कुछ तो इसके स्निग्धतासंपादक प्रभाव के कारण और कुछ आंत्रस्थ द्रव्याकार वृद्धि के कारण होता है, जो यांत्रिक रूप से आंत्रीय कृमिवत् आकुंचन को उत्तेजित करता है। इसके बीज के प्रयोगकी विधि चतुष्टय जो आर० एन० चोपरा लिखित "इण्डिजीनस ड्रग्स आफ इण्डिया" नामक ग्रंथ में उल्लिखित है, यह है:—

(१) स्वच्छ शुष्क बीज एक प्याली पानी में डाल दें और प्राथमिक प्रक्षालनोपरांत, १ वा २ चाय की चम्मच भर शर्करा, यदि इच्छा हो मिला दें और उक्त मिश्रण को हिलाकर प्रयोग में लाएँ।

(२) इसके बीज प्याले भर पानी में मिलाकर २० से ४० मिनट तक रहने दिये जाते हैं। जब सब लुआब निकल आता है, तब इच्छानुरूप कुछ शर्करा मिला दिया जाता है और लुआबी द्रव्य निगल लिया जाता है।

(३) यथोचित परिमाण में इसबगोल के बीजों को युग्म पाइंट जल में अर्द्धावशेष रहने तक क्वथित

कर एक प्रकार का लुआबी क्वाथ प्रस्तुत करते हैं। और इसे २–४ औंस तक की मात्रा में विभक्त कर प्रति २वा ३घंटेपर एक-एकमात्रा सेवन करतेहैं। यह पहिले ही बतलाया जा चुका है कि–क्वथित करनेसे लुआब में कोई फेरफार नहीं होता।

(६) बीज का लुआब–धारक आवरण (छिलका) कूट फटककर बीज से पृथक् कर लिया जाता है। इसे १ से २ चाय की चम्मच तक की मात्रा में प्याले भर जल में थोड़ी चीनी मिलाकर सेवन कराते हैं। बहुधा देशी चिकित्सक समूचे बीज से इस प्रयोग को प्रधानतः आमाशयांत्र पथ की उग्रावस्था में अपेक्षाकृत अधिक पसंद करते हैं।

चोपरा महोदय सामान्य पुरातन प्रकार की प्रवाहिका एवं अतिसार में इनमें से प्रथम विधि को उत्कृष्ट मानते हैं। क्योंकि इस रीति द्वारा बीज अंत्रस्थ द्रव्यों से भली भाँति मिश्रित हो जाते हैं और इस प्रकार वह श्लैष्मिक कला की समग्र सतह पर समान रूप से प्रस्तारित होने योग्य बन जाते हैं। यदि बाहर ही लुआब बनने दिया जाय, तो वह चिपचिपे द्रव्य-समूह रूप में परिणत होजाते हैं और वहसमान रूपसे विस्तारित नहीं हो पाते, प्रत्युत लोंदा-लोंदा होकर आँत से बाहर निकल जाते हैं। इसके अतिरिक्त बीजके साथ लगे हुए लुआब पर पाचक रसों का अपेक्षाकृत निर्बल प्रभाव होता है। परन्तु काम करने से जब लुआब उससे पृथक् हो जाता है तब अहर्निशि (२४ घंटे) उदर में रहने के उपरांत वह पाचक रसों के प्रभाव से लुआब से रहित द्रव्यों में परिणत हो जाता है। जब कि बीज के साथ संलग्न रहने से वह कम परिवर्तित होता है। इससे समूचे बीज के उत्कृष्टतर प्रभाव की पुष्टि होती है। (Indigenous drugs of India, *R. N. Chopra. M. A. p. 361-2*)

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

ईसबगोल–वृष्य, मधुर, धारक, शीतल, पिच्छिल कसैला, किञ्चित् वातकारक, कफपित्तहर एवं रक्तातिसार तथा रक्त-पित्त नाशक है और मूत्रल, उष्णवातनाशक, वस्तिशोधक, शुक्रमेहहर तथा आध्मान नाशक है। इसका शीतकषाय प्रयोज्य है। (वैद्यमृतो निघण्टु संग्रहश्च)

यूनानीमतानुसार—

प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल और द्वितीय कक्षा में स्निग्ध (तर) है। पर सफ़ेद इसबगोल अधिक शीतल होता है। किसी-किसी के अनुसार यह द्वितीय कक्षा में शीतल और स्निग्ध है। किसी ने तीसरी कक्षा में शीतल और किञ्चित् तर लिखा है। किसी के मत से द्वितीय कक्षा में शीतल और सम-शीतोष्ण है। किसी के अनुसार सफ़ेद तीसरी कक्षा में शीतल और द्वितीय कक्षा में तर है और स्याह (काला) रूक्ष है। इसबगोल के पत्ते शीतल और तर हैं।

स्वाद—फीका लुआबदार बेस्वाद होता है।

हानिकर्त्ता—पट्ठों को निर्बल करता और भूख घटा देता है। अधिक मात्रा में खाने से उत्तमाङ्गों को निर्बल करता है। प्रसूता को अहितकर है।

दर्पघ्न—विशुद्ध मधु वा मधु साधित सिकंजबीन और गेहूँ का सत्तू।

प्रतिनिधि—अलसी के बीज। मलावरोध एवं वक्ष तथा कण्ठ की कर्कशता और (परिपाक हेतु) कास निवृत्यर्थ कनोचा बीज बिहीदाना और तुख्म बारतंग, शैत्य एवं स्निग्धता-संपादनार्थ और मलावरोध निवृत्यर्थ तुख्म ख़ुरफ़ा।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

रोग़नगुल में भूना इसबगोल धारक और पेचिश के लिये उपयोगी है। क्योंकि भूनने से इसकी पिच्छिलता चिपकदार हो जाती है अतएव यह रगों का मुख बन्द करता और उनसे मवाद निकलने को रोकता है। सिरका के साथ प्रलेप करने से अपने शैथिल्यकारक, मृदुताकारक और शैत्यकारक गुणों के कारण अंगारा (जमूरः) और तीव्र शोथों को कल्याणकारक है तथा वेदना शांत करता है और शिर पर प्रलेप करने से उष्ण शिरोशूल को प्रशमित करता है। इसका लुआब प्यास और ज्वर-दाह को दूर करता है। बिना भुना हुआ प्रकृति को मृदु करता है। प्रधानतः जब इसका लुआब पानी में निकालकर पिया

जाय। क्योंकि इसके लुआब में पिच्छिलता होती है (जो फ़िसलाकर मलका उत्सर्ग कर देती है)। (तजुर्मा नफीसी)

इसबगोल उष्ण एवं पिपासाहर तथा प्रकृति को मृदु कर्त्ता है और गरमीके ज्वर, रक्तोष्मा तथा वक्ष, कंठ और ज़बान की कर्कशता एवं रक्त और पित्त के रोगों को लाभदायक है। प्रदग्ध दोष, पेट की मरोड़, आंत्र-क्षत और पेचिश को लाभकारी है। गरमी से होनेवाले संधिशूल में सिरका और गुलरोग़न के साथ इसका प्रलेप उपकारक होता है एवं शोथ और कंठमाला को रोकता है। गुलाब में इसका लुआब निकालकर लगाने से शिरोशूल नष्ट होता, बाल बढ़ते और कोमल होते हैं। गुलरोगन में भूना धारक है और पेचिश दूर करता है। कूटकर शरीर पर मलना शरीर को मृदु एवं स्थूल करता है। *कुटा हुआ खाना विष है और इसका प्रतिकार वमन कराना है। (मख्ज़नुल अदूविया:)।

*नोट—कराबादीन क़ादरी में लिखा है कि इसबगोल को कूटना न चाहिए। क्योंकि उसके भीतर गरमी है (जो कूटने से बढ़ जाती है) और इसका ऊपरका छिलका आवरक होगया है।

इसबगोल दस्त साफ़ लाता है। मलावरोध दूर करता है। इसको जल में भिगोकर उससे कुल्ली करना मुखपाक एवं मुख के छालों को लाभप्रद है। मुट्ठी भर ईसबगोल निरंतर एक मास पर्यन्त नित्य प्रातः काल फाँकते रहने से कष्टश्वास में बहुत उपकार होता है। इससे दिन प्रतिदिन रोग घटता जाता है और ४-५ महीने में बिलकुल दूर हो जाता है। किन्तु वर्ष २ वर्ष तक बराबर सेवन करते रहें। मुजर्बात अकबरी में लिखा है कि २०-२० वर्ष का दमा इससे जाता रहता है।

शुक्रमेह की औषधि में इसबगोल की भूसी का प्रयोग बहुत ही उपयोगी होता है। प्रधानतः उस अवस्था में जब कि रोगी की प्रकृति उष्ण और रूक्ष हो। इसमें एकयह गुण भी है कि शुक्रमेहघ्न होते हुए भी यह धारक (काबिज़) नहीं है जिसका उक्त रोग में ध्यान रखना अनिवार्य होता है। स्वप्नदोष में दूध में इसबगोल की खीर पकाकर खाते हैं।

पाश्चात्य मतानुसार—

इसबगोग शीतल, स्निग्ध और मूत्रल है तथा यह अन्त्र और पाकस्थली के प्रादाहिक तथा अन्य विकारों, यथा—आमाशय स्थित श्लेष्मा विकार (Gastric Catarrh), प्रवाहिका, गनोरिया (पूयमेह)एवं वृक्क संबंधिनी व्याधियों में प्रयुक्त होता है। सिरका के साथ इसबगोल और रामतिल की पुल्टिस आमवात और संधिवात विषयक शोथों पर व्यवहृत होती है। इसबगोल कफ-कास में भी हितकारी है। भृष्ट इसबगोल शर्करा मिलाकर शिशुओं के दीर्घकालीन उदरामय में प्रयुक्त होता है। (*R. N. Khory vol. II. P. 501.*)

भारतवर्ष में यह शीतल और स्निग्धता संपादक माना जाता है। पाचक अवयवों के प्रादाहिक एवं दैत्तिक विकारों में उपयोगी है। सिरका, गुड़, और तिलों के तेल के साथ कुटे हुए इसबगोल की पुल्टिस बनाकर आमवात तथा संधि-वात जनित शोथों पर लगाया करते हैं। लुआब से शिर पर रखने के लिए एक प्रकार का शैत्यकारक द्रव प्रस्तुत किया जाता है। गरम जल में भिगोकर और शर्करा मिलाकर दो-तीन दिरम की मात्रा में प्रवाहिका और आंत्रनलिका-प्रदाह में प्रयुक्त करने से सहज में मलोत्सर्ग हो जाता है। कास में इसका क्वाथ प्रयोजित होता है। भृष्ट इसबगोल उष्ण तथा धारक होता है। अतएव शिशु के उदरामय एवं आमरक्तातिसार में यह सेव्य है। एतद्देशीय लोगों का विश्वास है कि चूर्ण किया हुआ इसबगोल उपकारी नहीं। अतएव इसे सदैव समूचा प्रयोग में लाते हैं।

फ्लेमिंग, ट्रिनिंग ऐन्सली प्रभृति सब ही चिरकारी अतिसार की चिकित्सा में इसबगोल की उपकारिता स्वीकार करते हैं। ट्रिनिंग इसको पूर्ण वयस्क मात्रा इस प्रकार लिखते—२॥ ड्राम इसबगोल, मिश्री $\frac{1}{2}$ ड्राम। फार्माकोपिया ऑफ इंडिया में इसबगोल आफ़िसल है और उसमें इसके क्वाथ बनाने की विधि इस प्रकार लिखी

है । (Dymock, vol., *111. pp. 126–7*

इसबगोल के क्वाथ की विधि—

पर्य्या०—इसबगोलका काढ़ा । ईषद्गोल क्वाथ । डिकाक्टम् इस्पगोली Decoctum Ispaghulae (ले०) । डिकाक्शन ऑफ स्पॉगल सीड्स Decoction of Spogal Seeds (अं०) । मत्बूख़ बज़्रे क़तूना (अ०) । जोशाँदहे अस्पगोल (फ़ा०) ।

निर्माण क्रम—कुट्टित इसबगोल १२० ग्रेन को २४ औंस पानी में १० मिनट तक क्वथित कर छान लें । यह पूरा २० फ्लुइड औंस होना चाहिये । यदि कम हो, तो परिस्रुत जल मिलाकर पूरा २० औंस कर लें ।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से २ फ्लुइड औंस ।

नोट—इसबगोल की भूसी में ही पिच्छिल द्रव्य होता है । अस्तु, यदि आंत्र-क्षतों में समूचे इसबगोल के उपयोग से किंचित् मात्र क्षोभ की आशंका हो, तो इसकी भूसी ही सेव्य है ।

आमाशयांत्र पथ के संक्षोभक कारणोद्भूत अमीबिक और बैसिलरी प्रकार की चिरकारी प्रवाहिका और दीर्घ-कालीन अतिसार में इसबगोल के बीज बहुत ही उपयोगी हैं । इसके बीज में आक्युबीन (Aucubin) नामक एक ग्ल्युकोसाइड पाया गया है । परन्तु यह इंद्रिय व्यापार शास्त्रानुसार निष्क्रिय है। इसमें पर्याप्त परिमाण में कषायिन (Tannin) वर्तमान होता है । परन्तु बैक्टीरिया और अमीबा पर इसका थोड़ा प्रभाव विशुद्ध यान्त्रिक जान पड़ता है और यह इसमें बड़ी मात्रा में पाये जानेवाले लुआब के हेतु होता है जो कि बीज के उपरिस्तर में उपस्थित होता है । प्रयोगों द्वारा यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि इस लुआब पर पाचक रसों का कुछ भी प्रभाव नहीं होता और यह अपरिवर्तित दशा में ही क्षुद्रांत्रों से गुजर जाता है । यह आंत्र के उस भाग की श्लैष्मिक कला को आस्तरित कर लेता है और इसका स्निग्धता-संपादक गुण उसे आवरक और अवसादक प्रभाव प्रदान करता है । बृहदान्त्र में आंत्र-स्थित बैक्टीरिया का लुआब पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता, यह बात प्रदर्शित की जा चुकी है । प्रयोगोपरांत साध्यत: १२ से २४ घंटे के बीच यह सम्पूर्ण अपरिवर्तित दशा में ही विसर्जित हो जाता है । आंत्र मध्य से गुज़रते समय यह श्लैष्मिक कला के प्रदाह युक्त एवं क्षतमय स्तर को आच्छादित कर लेता है और उसे आमाशयांत्र तथा पचन (Bacterial Digestion) जनित द्रवों और गैसों द्वारा क्षुभित होने से बचाता है । यह घावों (Lesions) को शीघ्र अच्छा होने योग्य बनाता है । आंत्रस्थ कीट-जन्य विष (Gei) द्वारा अभिशोषित कर लिये जाते हैं और उनका शरीर में अभिशोषित होना रुक जाता है । बीज बड़े परिमाण में प्रयुक्त होते हैं और जब वे पानी के संपर्क से फूल जाते हैं । तब वे आंत्रस्थ द्रव्यों के आकार को बढ़ा देते हैं और इस भाँति आँत्रस्थ कृमिवत् आकुंचन को यांत्रिक रूप से उत्तेजित कर पुरातन मलावरोध को दूर करते हैं । इसबगोल का लुआब तरल पैराफीन के समान ही प्रभाव करता है । यह अपेक्षाकृत अधिक सस्ता पड़ता है और साथ ही तरल पैराफीन के आभ्यासिक उपयोग द्वारा होनेवाले भयंकर प्रभावों, उदाहरणार्थ (Colon) के दूषित रोग गुदस्थ एक्ज़ेमा (Eczema ani) और पैराफीनी वेदना प्रभृति से आजाद रखता है ।

गिर्यतिसार (Hill diarrhoea) की प्रारम्भिक अवस्था में इसबगोल के बीज उपयोगी हैं । लुआब द्वारा प्रदाहित श्लैष्मिककला की केवल रक्षा वा प्रदाह शांति ही नहीं होती, प्रत्युत उत्सेचन क्रिया भी अवरुद्ध हो जाती है और मल ठोस होजाता है । बालकों के चिरकारी अतिसार में भी इससे बहुत लाभ होता है । चिरकालानुवंधी अमीबीय आमरक्तातिसार (Chronic amoebic dysentery) में जहाँ इमेटीन वा कुर्ची के अलकलाइड के प्रयोग असफल सिद्ध होते हैं, वहाँ कुटज-त्वक् साधित तरल सार (Liquid extract of kurchi) और इसबगोल के उपयोग से सफलता प्राप्त होती है । रोगी को २ ड्राम की मात्रा में उक्त सत्व का दिन

में ३-४ बार उपयोग कराया गया, साथ ही उसे २ वा ३ बार हलुआ वा मुरब्बा खाने के चम्मच भर (Dessert-spoonfuls) इसबगोल दिन में दो बार दिया गया। यह चिकित्सा-क्रम छः सप्ताह वा दो मास पर्यंत जारी रखा गया। इससे केवल लक्षणों में ही बहुत सुधार नहीं हुआ, अपितु मल-परीक्षा से प्रावाहिकीय कीट विशेष (E. Histolytica) विलुप्त प्राय होगए। (Indigenous drugs of India by R. N. Chopra, *M. A., M. D.*)

इसबगोल के प्रयोग—

(१) तुख्मबालंगा बी में भुना १।। मा०, इसबगोल १।। मा०, मुलेठी १।। मा०, उन्नाब १।। मा०, धव का फूल १।। मा०, इन्द्रजव १।। मा०-यह एक मात्रा है। इनका यथाविधि पादशेष क्काथ करें। पुन: उसमें अर्द्ध तो० मिश्री मिलाकर पिलाएँ। ऐसे ही प्रात: सायंकाल सेवन कराएँ।

पुरातन आमरक्तातिसार और ज्वरयुक्त प्रवाहिका में इसके उपयोग से पूर्ण लाभ होता है। इसके सेवन के उपरांत अर्क सौंफ २ तो० और अर्क पुदीना २ तो० मिलाकर पिलाएँ।

(२) बालकों के अण्डवृद्धि रोग में कूटे हुए इसबगोल को पानी में गूँधकर लगाने से उपकार होता है।

(३) गुलरोगन, गुलाब और रोगन बनफ़शा के साथ गरमी के शिरोशूल पर लगाने से लाभ होता है। मस्तिष्क एवं पट्ठों में तरी करता है।

(४) इसे शर्करा के साथ पीने से शिर की ओर वाष्प रोहण नहीं होता तथा मुख, वक्ष और जिह्वा की रूक्षता एवं कर्कशता तथा उष्ण कास मिट जाता है।

(५)शर्बत इसबगोल—सवा २तोले ६रत्ती इसबगोल को २८ तो० ४।। मा० पानी में भिगोकर लुआब निकालें। पुनः ४२ तो० ६।।। मा० शर्करा या मिश्री मिलाकर आग पर रखकर चाशनी करें।

गुण प्रयोग—यह शर्बत फुफ्फुस की कर्कशता पित्त और खाँसी को बहुत लाभकारक है और पिच के प्रदग्ध होने के कारण उत्पन्न चिन्ता एवं मूर्च्छाको गुणकारी है। गुलाब और अर्क़ बेदमुश्क के साथ इसबगोल का लुआब भी उक्त रोगोंमें उपकारक है।

(६) इसबगोल के लुआब में रोगन बादाम मिलाकर पिलाने से पित्तजनित प्रबल तृष्णा और आमाशय के प्रदाह एवं क्षोभ की निवृत्ति होती है।

(७) वक्षोदरमध्यस्थ पेशी प्रदाह (बरसाम) के रोगी को इसबगोल का लुआब पिलाने से लाभ होता है। इससे प्यास दब जाती है।

(८) ज़करिया राज़ी ने मनुल् ऐहज़राजीय नामक ग्रन्थ में सरसाम के प्रकरण में लिखा है कि एक औक़िया (२।। तो०) इसबगोल के लुआब में २ औक़िया गुलाब मिलाकर पिलाने से रोगी को लाभ होता है।

(९) ९। तो० इसबगोल के लुआब में १४ मा० रोग़न बादाम मिलाकर पिलाने से शूल (कोलंज) में लाभ होता है और कोष्ठबद्धता जाती रहती है। रोगन बनफशा के साथ पिलाने से भी मलावरोध (कब्ज)का निवारण होता है।

(१०) तीव्र ज्वर, पित्त ज्वर, संतत ज्वर वा रक्तज्वर (हुम्मामुत्बिक़:), सन्निपात ज्वर और औपसर्गिक ज्वर में इसबगोल के लुआब से लाभ होता है और रक्तोष्मा नष्ट होती है।

(११) केवल इसबगोल के फाँकने से शीत पैदा होता है, मलावरोध दूर होता है, पित्त या रेचनौषध जनित आंत्र की रूक्षता दूर होती है, एवं तीक्ष्ण औषध भक्षण जन्य आंत्र-विकार वा आंत्रौष्म्य का निवारण होता है।

(१२) शेख़ के अनुसार ७ मा० इसबगोल रोगन गुल में मिलाकर खिलाने से मलावरोध उत्पन्न होजाता है। इससेसहज (अर्श) को लाभ होता है।

(१३) ७ मा० से १ तो० तक इसबगोल लेकर गरम पानी में भिगोकर शर्करा वा सिकंजबीन के साथ खाने से आँतों से पिच्छल दोषों का शीघ्र उत्सर्ग होता है।

(१४) यदि पैत्तिक दस्त बन्द करने हों, तो इसबगोल को रोग़न बादाम में भूनकर खिलावें ।

(१५) शीतल मिर्च और कलमीशोरे के साथ इसबगोल की फंकी देने से पूयमेह (सूज़ाक) में बहुत लाभ होता है ।

(१६) १। तो० इसबगोल ऽ१। सेर जल में क्वथित करें । अर्द्धावशेष रहने पर उसे दिन भर में पिला देने से दस्त और आँव बन्द होते हैं ।

(१७) इसबगोल को सिरके में पीसकर कनपुटियों पर पतला लेप करने से नकसीर बन्द होती है ।

(१८) इसबगोल को गुलखैरी के फूलों के साथ पीसकर कनपुटियों पर लेप करने से धूप के कारण उत्पन्न शिरोशूल मिटता है ।

(१९) इसबगोलके लुआब में कबीला मिलाकर लेप वा गंडूष करने से होंठ वा जबान फटने में लाभ होता है ।

(२०) इसबगोल के लुआब में प्याज का रस मिलाकर थोड़ा सा गरम करके कान में डालने से कर्णशूल अच्छा होता है ।

(२१) इसबगोल को सिरके में भिगोकर दाँत के नीचे दाब रखने से गर्मी के कारण उत्पन्न दंतशूल में लाभ होता है ।

(२२) इसबगोल के लुआब में शर्बत नीलोफर मिलाकर पिलाने से तृष्णा का नाश होता है ।

(२३) मुँह आने में इसके लुआब का गंडूष धारण करावें ।

(२४) इसबगोल को सिरके में भिगोकर लुआब निकालकर पिलाने से मेंढक का ज़हर उतरता है ।

(२५) इसबगोल के पत्ते शक्ल में धनियों के पत्तों के समीप हैं । इनके खाने से गरमी मिट जाती है । गरम सूजन पर इनको पीसकर लेप करने से लाभ होता है । रक्तनिष्ठीवन में इसके हरे पत्ते का स्वरस पीने से कल्याण होता है ।

(२६) नारियल के पानी के साथ भी इसबगोल प्रयुक्त होता है ।

(२७) चूर्णित इसबगोल एक ड्राम अनीसून (Anise seed) और शर्करा प्रत्येक आध-आध ड्राम के साथ प्रवाहिका की उत्तम औषध है ।

(२८) एक ड्राम इसबगोल के चूर्ण ५ ग्रेन चूर्ण किये हुये इन्द्रयव के साथ प्रवाहिका की उपयोगी औषध है ।

(२९) एक ड्राम चूर्ण किये हुये इसबगोल के बीज के साथ १० ग्रेन पोटासियम् नाइट्रेट और १५ ग्रेन कबाबचीनी का चूर्ण सूजाक की उत्कृष्ट औषध है । (वर्मवुड)

(३०) इसबगोल के बीज का अभी हाल ही में मदरास में परीक्षण किया गया है । विशिष्ट प्रकार के मूत्रमार्ग प्रदाह में इसके बीजों के कषाय के उपयोग से उक्त रोग जनित भीषण प्रदाह एवं क्षोभका अति शीघ्र निवारण होता है । (Report on Indigenous Drugs, *Madras*.)

(३१) १ तोला इसबगोल और १ तोला मिश्री इनको अच्छी तरह मिलाकर दिन में २ से ४ बार सेवन कराने से प्रवाहिका रोग में लाभ होता है ।

(३२) २ से ४ तो० तक इसबगोल को रात्रि में जल में भिगोकर रखें, दूसरे दिन प्रातः काल इसे भली भाँति मलकर २ तो० मिस्री मिलायें । रक्तस्राव, शरीरोष्मा, उपदंश जनित चट्टे प्रभृति में यह हर प्रातःकाल पीने की उत्कृष्ट पेया है ।

(३३) चिरकालाधिवासित योरप निवासियों के पुरातन अतिसार में २।। ड्राम इसबगोल ½ ड्राम मिस्री के साथ अपूर्व औषध है । अथवा १ से २ ड्राम इसबगोल को जल में क्लेदितकर इसे समूचा चम्मच भर की मात्रा में सेवन करायें ।

(३४) इसबगोल का लुआब और विहीदाने का लुआब समभाग और इनकी दूनी मिस्री । इसे दिन में कई बार सेवन करने से आमरक्तातिसार (Dysentery) में लाभ होता है ।
(जौहर हिकमत)

(३५) इसबगोल, तुख़्मरेहां, तुख़्मेबारतंग और तुख्ममरो प्रत्येक १ ड्राम । सबको अग्नि पर गरम करें । शीतल होने पर इनका चूर्ण बनाकर रखें ।

मात्रा—१ से २ औंस तक थोड़ी चीनी के साथ।

उपयोग—आमरक्तातिसार और चिरकारी अतिसार में लाभकारी है।

(३६) कबाबचीनी और नाइट्रेट आफ पोटास के साथ सूजाक में इसबगोल का प्रयोग होता है।

(३७) १ वा २ ड्राम इसबगोल के बीजों को एक औंस (आधा छटाँक) पानी में भिगो रखें। पुन: इसे छानकर उसमें रोग़न बादाम और शर्करा मिलायें। यह एक मात्रा है। इसका मृदुरेचक प्रभाव होता है।

(३८) इसबगोल को जल में भिगो छानकर लुआब पृथक् करलें। फिर उसमें बिहीदाना, दधि और गुलाब-जल मिलायें। यह संखिया द्वारा विषाक्तता की उत्तम औषध है।

इसबेव–[कना०] (Melia azadirachta, *Linn.*) निम्ब। नीम।

इसबंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० "इस्बंद"।

इसम्धारी–[द०] (Clerodendron Inerme, *Gartn.*) क्षुद्राग्निमंथ। संगकुपी। छोटी अरनी।

इसरगोल-संज्ञा पुं० [फ़ा० इस्पग़ोल] (Plantago ispaghula, *Roxb.*) इस्पग़ोल। इसबगोल।

इसरबोल-संज्ञा पुं० [फ़ा० इस्बगोल] इसबगोल।

इसरमूल-संज्ञा पुं० [सं० ईश्वरमुल] (Aristolochia indica, *Linn.*) रुद्रजटा। ज़रावंदे हिंदी।

इसरीन–[अं०] दे० "एसरीन"।

इसरीली-संज्ञा स्त्री० [?] गिरगिट के समान एक प्रकार का जानवर जो सदा हरे रंग का होता है, पर गिरगिट के समान रंग नहीं बदलता। यह साँप की तरह दुम मारता है। जमीन से चिपट जाता है, फिर हवा से भर कर चलने लगता है। चलते समय सिर उठाकर और पेट को टेढ़ा करके धीरे-धीरे मस्ताना झूमता चलता है। हवा से जीवित रहता है। यदि कुछ दिन बंद रखें और खाना-पीना न दें, तो केवल वायु से ही जिंदा रहता है। यह सांघातिक विष है। एक बार एक मनुष्य ने भूल से उस पानी से स्नान कर लिया, जिसमें यह क्वथित हो गया था। बस उस मनुष्य के सर्वांग में विष व्याप्त हो गया, उसके शरीर का वर्ण हरा होगया। कई बार उसे क़ै कराई गई और बार-बार दूध पिलाया गया। शरीर पर अंडे की ज़र्दी और रोग़न बादाम की मालिश की गई, तब कहीं जाकर उसका प्राण बचा। (ख० अ०)।

इसरौर-[बिहा०] (१) लालबेगी। (२) दे० "इसरौल"।

इसरौल-संज्ञा पुं० [सं० ईश्वरमूल] एक दीर्घ लता जो वृक्षादि के आश्रय से प्रतान विस्तार करती है। पत्र भेद से यह तीन प्रकार की होती है—प्रथम वह जिसकी पत्ती २॥ इंच से ५ वा ६ इंच तक लंबी, मसृण अनीदार और विशिष्ट गंधि होती है। दूसरी की पत्ती पहिले से किंचित् छोटी और गहरे हरे रंग की होती है। इसकी डाली आदि भी कालापन लिए हरे रंगकी होती है। इन दोनों जातियोंके पत्र में केवल उक्त भेद के सिवा और कोई फ़र्क नहीं होता। पर तीसरी जाति की पत्ती गंध के सिवा अन्य सभी बातों में इनसे भिन्न होती है। इस जाति की पत्ती अनीदार नहीं, अपितु शीर्षकी और कचनार की पत्ती की तरह होती है। शेष सभी बातों में ये तीनों जाति के इसरौल समान होते हैं। इनमें क्वार कातिक में एक विचित्र आकृति के गुड़चियाए हुए गहरे बैंगनी रंग के पुष्प आते हैं। फूलों के झड़ जाने पर इनमें सतपुतिया की तरह के, पर उससे किंचित् छोटे फल लगते हैं, बीज चपटे और सूखने पर काले रंग के होते हैं। इसकी जड़, अशाखी बहुत लंबी उँगली से लेकर अंगुष्ठ से भी अधिक मोटी होती है। यह ऊपर देखने में बादामी रंग की होती है। काटने पर मोटाई के रुख़ उसमें चक्राकार मंडल पाये जाते हैं। इसका प्रत्येक अंग विशेष कर बीज बहुत ही कड़ुआ एवं झालदार होता है। पत्ती को मलने से वा यूँ ही सूँघने से उसमें से एक प्रकार की विशेष तीव्र गंध आती है।

शिम्बी वर्ग

(*N. O. Leguminoseae.*)

उत्पत्ति-स्थान—भारतवर्ष के उष्ण-प्रधान प्रदेशों विशेषकर पर्वतीभूमि में इसरौल के पौधे आपसे आप उगते हैं। चुनार के अनेक स्थानों में इन तीनों प्रकार के इसरौल की बेलें प्रचुर परिमाण में हम लोगों के देखने में आई हैं।

औषधार्थ-व्यवहार—पत्र, फल तथा जड़ादि प्राय: सभी अंग इसका औषध के काम आता है।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

इसकी जड़ वातज्वर नाशक, फोड़े को बिठानेवाली और सर्पविषघ्न है।

फोड़ा उभड़ते ही इसकी जड़ काली मिर्च के साथ पीसकर गरमकर फोड़े पर बाँधने से अवश्य फोड़ा बैठ जाता है। पत्र और बीज भी इसी प्रकार व्यवहार में आते हैं, पर जड़ की अपेक्षा ये निर्बल पड़ते हैं।

ऐसा अनुमान किया जाता है, कि यह आक्षेप में भी लाभकारी प्रमाणित होगा। परीक्षा प्रार्थनीय है।

इसकी जड़ कालीमिर्च के साथ पीसकर पिलाने से साँप का विष दूर होता है।

इसलाह-संज्ञा पुं० [अ० इस्लाह़] संशोधन।

इसलियूस-[यू०] (Cinnamomum iners) तज।

इसलूक़ूसा-[यू०] ख़ुन्स़ा नामक एक प्रसिद्ध जड़।

इसल्लु-[भुट०, नेपा०] एक ओषधि।

इसहाल-संज्ञा पुं० [अ०] दे० "इस्हाल"।

इस़ाबः-[अ०] धारवर्थ पट्टी (जो अरब, मिश्री और ईरानी स्त्रियाँ अपने ललाट पर बाँधती हैं)। पारिभाषिक अर्थ भ्रू-वेदना (दर्दे अब्रू) अर्थात भवों की पीड़ा। (Tic, Tic Douloureux.)

नोट—भवों के ठीक ऊपर जिस स्थान पर अरब, मिस्र और ईरान की युवतीगण इस़ाबः अर्थात् पट्टी बाँधती हैं, चूँकि उक्त वेदना ठीक उसी स्थल पर होती है। इसलिए उसे इस नाम से अभिहित किया गया।

इसेपिओल-[अं० Isapiol] एक डॉक्टरी औषध।

इसेर-[काश०] (Prunus Armeniaca, *Linn.*) ज़र्दालू। ख़ूबानी।

इसेश-[बम्ब०] (Styrax Bezoin, *Dryander.*) लोबान।

इस्क़ंक़ूर-[अ०] असक़ंक़ूर। सक़ंक़ूर। बन रोहू। सम्हूर। दे० "सक़ंक़ूर"। (Lacerta scincus) scink.

इस्क़त्-[अ०] मद्य। मदिरा। शराब।

इस्कबीनः-[फ़ा०] (Sagapenum) सक्बीनज।

इस्कमोनी-संज्ञा स्त्री० [अं० स्कैमोनी] (Scammony) सक़्मूनिया।

इस्क़र्तीक़ूस-[यू०] एक अप्रसिद्ध औषध।

इस्कर्बूत्-[अ०] (Scarbutus, scurvy) एक रोग जिसमें मसूढ़े नरम और पिलपिले हो जाते हैं और उनसे रक्त क्षरण होता है। मसूढ़ों से खून बहना। मसूढ़ों का नरम और पिलपिला होना। सकरबूत्। लिस़्स़हे दामियः। दाउल् इ़फर।

नोट—इस्कर्बूत् और सकर्बूत् उक्त दोनों शब्द स्कार्ब्युटस से अरबीकृत शब्द हैं। विशेष विवरण के लिए दे० "लिस़्स़हे दामियः"।

इस्क़त्तीनूस-[यू०] एक अप्रसिद्ध बूटी जो रेतीली और पर्वती भूमि में उत्पन्न होती है।

इस्क़ल्यात़ीक़ूस-[यू०] गुलनार।

इस्क़त्रानस-[यू०] एक अप्रसिद्ध बूटी।

इस्क़ा डी जैका-[फ्रां०] (Boletus crocatus, *Batsch.*) कटहल के पेड़ पर होनेवाली एक प्रकार की खुमी। फणसाम्ब।

इस्का डी फ़ेरिर-[फ्रां०] (Agaricus chirurgorum] गारीक़ून बलूती।

इस्क़ाक़स-[यू०] लिसानुल्-अबल या राइ़युल् अबल।

इस्क़ात्-संज्ञा पुं० [अ०] (१) गिरना। पतन। (२) गर्भपात। हमल गिरना। पेट गिरना। इज्हाज़। (Abortion, Miscarriage)

इस्क़ात् बै.ज़ी-[अ०] (Abortion) गर्भित होने से बीस दिवस उपरांत हमल गिरना ।

इस्क़ात् जनीनी-[अ०] (Miscarriage) गर्भ धारणोपरांत चतुर्थ मास से सप्तम मास पर्यंत गर्भपात होना ।

इस्क़ात् रशीमी-[अ०] (Abortion) गर्भधारण के उपरांत तीन मास तक गर्भस्राव होना ।

इस्..क़ाब-[अ०] (Perforation) छेदना । सूराख़ करना ।

(इ) स्कॉर्पियन-[अं० Scorpion] वृश्चिक । बिच्छू ।

इस्क़ाल-[सु०] दे० "इस्क़ील" ।

इस्काल-[अ०] (१) जंगली अंगूर । (२) छोहारे का ख़ुशा ।

इस्कंदूरूस-[रू०] (१) (Allium cepa, *Linn.*) । पलाण्डु । प्याज । (२) (Allium sativum, *Linn.*) रसोन । लहसुन ।

इस्कंदर अफ़रूदीसी-[अ०] एक हकीम जो हकीम जालीनूस के प्रतिद्वंदी और दमिश्क़ के निवासी थे ।

इस्क़ीदूलियून-[रू०] पपोटन । काकनज ।

इस्कीनानतू-[फ़िरग] (Vitex Negundo) निर्गुण्डी । सम्हालू ।

इस्कीफ़ीलाली-[सु०] कं.तूरियून ।

इस्कीरास-[बरब०] (Hyoscyamus Reticulatus, *Linn.*) पारसीक यवानी । खुरासानी अजवाइन ।

इस्क़ीरूस-[अ०] (Schirrhus) कठिन वातज शोथ । वात जन्य कड़ी सूजन । वस्तुतः यह एक प्रकार का दृढ़ मांसार्बुद है । सक़ीरूस ।

इस्क़ील-[अ०]
इस्क़ीला-[सुर०]
इस्क़ाला-[सु०]
इस्काल-[सु०]
(Scilla) Squill

विदेशीय वन पलांडु । विलायती जंगली प्याज़ । विलायती कँदरा ।

इस्क़ीले हिंदी-[अ०] (Urginea Indica, *Kunth.*) वन पलाण्डु । जंगली प्याज़ । काँदा ।

इ (उ) स्क़ूर्दियून-[यू०] (Teucrium scordium) Water Germander वन्य रसोन । जंगली लहसुन । यह पश्चिम हिमालय और काश्मीर में होता है । इसमें से लहसुन की सी गंध आती है । यह "तिर्याक़ फारूक़" नामक यूनानी योग का एक उपादान है । (फ़ा० इं० ३ भ० पृ० १२५)

इस्कूल-[अ०] (१) जंगली बैगन । (२)अंगूर । (३) छोहारे का ख़ुशा ।

इस्क़ूलूक़ंद्रियून-[यू०] उस्क़ूलूक़ंदरियून ।

इ (उ) स्क़ूलूदास-[यू०] इसके लक्षण में मतभेद है । किसी के मत से सरेश की घास और किसी के विचार मे एक प्रकार का पत्थर है ।

इस्केबीज़-[अं० Scabies] कंडू । खजू । खुजली । ख़ारिश । (Itch)

इस्केमोनियम्-[ले० Scammonium]
इस्केमोनी-[अं० Scammony]

सक़मूनिया । महमूदा ।

इस्कोर्बी-[फ़्रा० Scorbe] (Scorpion) वृश्चिक । बिच्छू ।

इस्कोल विरै-[ता०] (Plantago Ispaghula, *Roxb.*) इसपग़ोल । ईषद्गोल । इसबगोल ।

इस्कील [अं० Squill] दे० "स्कील" ।

इस्खल-संज्ञा [देश० पं०] एक बूटी है ।

इस्ख़ार-[रू०] (Lepedium Iberis, *Linn.*) तोदरी ।

इस्ख़ीतात-[अ०] शोथ विलयन । सूजन का कम होना ।

इस्ख़ीस-[फ़ा०] एक बूटी ।

इस्टर्लो-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक कीड़ा जो गन्दी जगहों में उत्पन्न होता है । इसल्लो ।

इस्त-[अ०] (Anus) मलद्वार । चूति । गुदा । शरज (अ०) ।

इस्तख़ीर-[फ़ा०] एक यूनानी औषध ।

इस्.तफ़न-[यू०] (Styrax Præparatus) शिलारस । सिह्लक ।

पहाड़ों पर पैदा होती है। प्रकृति-प्रथम कक्षा में गरम एवं खुश्क।

गुण, कर्म, प्रयोग—यदि दुग्ध एवं मांस के साथ पकाकर खायें, तो शुद्ध रक्त उत्पन्न हो। इसे गरम एवं सर्द दोनों प्रकृतिवालों के लिए लाभकारी बतलाते हैं। क्योंकि लगभग समशीतोष्ण है। इसकी जड़ पीना पेचिश को लाभकारी है। इससे विषैले जानवरों का विष भी नष्ट होता है। स्तन और गर्भाशय में क्षत हो जाने पर, इसके पत्तों के उपयोग से लाभ होता है। (ख० अ०)।

इस्फस्त–अ० [फ़ा० इस्पस्त] दे० "इसपंज"।

इस्फ़ानाख़–अ० [फ़ा० इस्पनाख़] (Spinacea Oleracea, *Linn.*) पालक्य। पालक।

इस्फ़ानाख़ रूमी व हिंदी–[फ़ा०] (Chenopodium Album.) वास्तुक। बथुआ।

इस्फ़ानाज–अ० [फ़ा०] दे० "इस्पनाख़"।

इस्फ़ियूस–[सुर०] (Plantago Ispaghula, *Roxb.*) इस्पग़ोल। इसबगोल।

इस्फ़िराज–[अन्द०] नागदौन। इसका विवेचन अस्फ़ार्ग़ीन शब्द के अन्तर्गत हुआ है।

इस्फ़ेदशा–[फ़ा०] (Plantago Ispaghula, *Roxb.*) इस्पग़ोल। इसबगोल।

इस्फ़ेदाज्–अ० [फ़ा०] सफेद आब। सफ़ेदा। सीष भस्म। (Plumbi carbonas) white lead.

इस्फ़ेदाजुज्जसासीन–[अ०] एक प्रकार का चमकदार पत्थर जो यज़द और इसफ़हान के देश में चूने आदि के खानों से निकलता है।

इस्फ़ेदाब–[फ़ा०] (Plumbi Carbonas) white lead सीष भस्म। सफ़ेदा।

इस्फ़ेदार–[अ०] एक विशाल वृक्ष। इसकी पत्तियाँ और छाल सफ़ेद होती हैं। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है।

इस्फ़ेदेबाज–[अ०] एक प्रकार का मांस-रस वा झोल जो मुर्ग़ी के बच्चों वा बकरी के बच्चों के मांस या अन्य सूक्ष्म मांस तथा तरकारियों वा अन्न, जैसे पालक, कद्दू निःतुष उड़द और चने इत्यादि एवं उपयुक्त गरम मसालों से तैयार किया जाता है।

इस्क़ेराज–[अ०] (१) हलियून। नागदौन। (२) (Asparagus officinalis, *Linn.*) शतमूली। शतावर। इं० हैं० गा०।

इस्त्र–[अ०] कामाद्रि लोम। पेड़ूपर के बाल। झाँट। मूए ज़हार (फ़ा०)। (Pubes.)

इ(अ, उ) .स्त्र(बु)अ–[अ०] [बहु० असाबिअ, असाबीअ] (Finger) उँगली।

इस्बगोल–संज्ञा पुं० [फ़ा० इस्बगोल] (Plantago ispaghula, *Roxb.*) इस्पगोल। इसबगोल।

इस्बूदियून–[यू०] (Zinci oxidum) यशद भस्म। जस्ते का फूल। दे० "जस्ता"।

इस्बंद–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (Peganum harmala, *Linn.*) हरमल। हारीपर्वत। (काशमीर)। दे० "हरमल"।

इस्बितालियः–अ० [अं० हॉस्पिटल अर्थात् हस्पताल] (Hospital, Infermary। चिकित्सालय। शिफ़ाखाना। आतुरालय।

इस्बितालिय्यः नक़्क़ालः–[अ०] (Ambulance) रण-क्षेत्र से आहत व्यक्तियों को ले जाने की डोलियाँ।

इस्म–संज्ञा पुं० [अ०] नाम। संज्ञा।

.इ.स्मत–[अ०] बाज़ रखना। हटा रखना। जंगल मारना।

इ..स्मद (-fि..स्म-)–[अ०] (Antimonii sulphuretum) अञ्जन। सुरमा। दे० "अञ्जनम्"।

इस्मार–[अ०] आस बर्री।

इस्मालावन–[यू०] सौसन बर्री। एक सुगंधित पुष्प जो सौसन नाम से प्रसिद्ध है। यह बाग़ी भी होता है।

इस्लार–[अफरीका] एक पौधा जो हज़ाज़ के समीप भूमध्यसागर के तटों पर उत्पन्न होता है। जहा के तट पर भी मिलता है। जब यह पानी में उगता है, तब इसकी एक शाखा गज भर वा न्यूनाधिक ऊँची हय्युलआलम के आकार-प्रकार की होती है इसकी जड़ जिसे अरबी में .इक़ु`तयब कहते हैं, बारीक होती है और जल के भीतर घुस जाती है। जब तक यह शाखा पानी में रहती है,

तब तक न पत्ता होता है न फूल और न फल। परन्तु जब यह जल की सतह के बराबर होती है, तब पत्ते और शाखाएँ और फूल प्रगट होते हैं। इसके पत्ते और फूल आस की तरह होते हैं। फल फिंदक के बराबर गोल और आयताकार होता है। उस पर रोआँ भी होता है। स्वाद में यह मधुर और किसी प्रकार कषैला एवं बेस्वाद होता है। किसी-किसी के अनुसार फल हरे रंग का होता है। यह आकार-प्रकार में भिलावें की तरह होता हैं। पत्ता किंचित् तिक्त होता है। इस पौधे में चेंपदार गोंद पैदा होता है। यह गोंद जब सूख जाता है, तब कुंदुर की तरह मालूम होता है। इसमें शक्ति भी कुंदुरु सी होती है। कोई-कोई इसे शोरा भी कहते हैं।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में गरम व ख़ुश्क। कोई-कोई इसे परस्पर विरोधी गुणधर्म-संपन्न एवं उत्तापजनक बतलाते हैं। हानिकर्त्ता–सिर को। दर्पनाशक–दूध। मात्रा—२। मा० से ३॥ मा० तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसके थोड़े से फल खाने से सिर में चक्कर आने लगता है। अधिक भक्षण से गाढ़ निद्रा वा मूर्च्छा का रोग हो जाता है। दंतशूल में इसको पीसकर मलना और जलाकर धूनी लेना हितकर है। यदि उष्ण प्रकृतिक व्यक्ति पौने दो माशे से साढ़े चार माशे तक इसे शराब के साथ खायँ, तो कामोदीप्त हो। यह सद्यः शोथ एवं कड़ाई को मिटाता है, अवरोधों को उद्घाटित करता है, प्राकृतिक उष्मा को उत्तेजित करता है, और वाष्पों को रोकता है। इसका गोंद शीतल प्रकृति को लाभकारी है। यह जोड़ों में से कफ निकालता है, दंतशूल का निवारण करता और वीर्य सम्बन्धी रोगों में परमोपकारी है।

इस्री–संज्ञा स्त्री० [सं० ईश्वरी] एक भारतीय ओषधि जो वर्णभेद से तीन प्रकार की होती है—सफ़ेद, लाल और काली। इसरौल।

इ़स्लाज–[अ०] (Frost-bite) पाला लगना।

इ़स्लाह़–[अ०] (Cure) संशोधन। सुधार।

इस्लंज–[अ०] एक प्रकार की अज्ञात घास। बह़्रुल् जवाहर में लह़्यतुत्तीस को लिखा है।

इस्वन, इस्वंद–दक्षि० भा० [फ़ा० इस्बंद वा इस्पंद का अपभ्रंश] मेंहदी का बीज। (Henna seed)

इस्वर–[मरा०] (Callicarpa lanata, *Linn.*) वृक्ष। कोटमल (ता०)।

इ़(उ़)स़्स़ः–[अ०] पशम-कीट। वह कीड़ा जो पशम या पशमीने के कपड़ों में लग जाता है।

इस़्ग़ार अव्वली–[अ०] प्रथम बार दंतोद्भेद होना। शिशु के दाँत निकलना। तस्नीन अव्वली। (Primary Dentition)

इस़्ग़ार सानोई–[अ०] (Sceondary dentition) दोबारा दाँत निकलना। दुग्ध-दंत के पतन के उपरांत स्थिर दंत निकलना।

इस़्ह़ाऽ–[अ०] मस्ती से चैतन्यावस्था को प्राप्त होना। होश में आना। सचेत होना।

इस़्हाक़ बिन ह़ुनैन–[अ०] दे० "हुनैन"।

इस्हाल–[अ०] शरीर गत दोषों का मल मार्ग से उत्सर्ग होना वा करना। अतिसार। दस्त आना। दस्त लाना। पेट चलना। दस्त। पा रवी। शिकम रवी। Diarrhoea, Catharsis, Purgation (अं०)। वि० दे० "अतिसार"।

नोट—(१) प्रगट हो कि जिस अंग के विकार से अतिसार आता है, उसी के साथ इसहाल शब्द को संबंधित करते हैं। जैसे–इसहाल मिअ़्दी वा आमाशयातिसार, इस्हाल मिअ़्वी वा आंत्रातिसार प्रभृति, उसी भाँति मल में जिस दोष की उल्बणता देखते हैं, उससे भी इसे संबन्धित करते हैं। जैसे–पैत्तिक अतिसार, श्लैष्मिक अतिसार इत्यादि।

(२) जब रोग के कारण विरेक आएँ, तब उसको डायरिया और जब विरेचनीय औषधों के कारण दस्त आएँ, तो उसे कैथार्सिस और पर्गेशन नाम से अभिधानित करते हैं।

इस्हाल अख़्ज़र–[अ०] (Green Diarrhoea) हरितातिसार। हरे दस्त। ऐसे दस्त शिशुओं को ग्रीष्मऋतु में वा दंतोद्भेद काल में आया करते हैं।

इस्हाल अत्.फ़ाल–[अ०] (Infantile Diarrhoea) शिश्वतीसार । बालातीसार । बच्चों के दस्त ।

इस्हाल.इब्.ज़ी–[अ०] (Vicarious Diarrhoea) अनुकल्प अतीसार । प्रातिनिधिक अतिसार । वर्षाऋतु में वायु की आर्द्रता के कारण सहसा स्वेदावरोध हो जाने से या किसी प्रवृत्त द्रव के अवरुद्ध हो जाने से इस प्रकार के अनुकल्प दस्त आने लगते हैं ।

इस्हाल उ.ज़्वी–[अ०] आवयविक अतिसार ।

इस प्रकार के दस्त मुख्य-मुख्य अवयव वा सार्वांगिक विकार के कारण आते हैं । जैसे—आमाशयातीसार (आमाशय विकार से), यकृदतिसार (यकृद् दोष से), इस्हाल ज़ूबानी सम्पूर्ण अवयव और सार्वाङ्गिक दोष से ।

इस्हाल कबिदी–[अ०] यकृतीय अतीसार । जिगरी दस्त ।

इस प्रकार के दस्त यकृत् की निर्बलता और खराबी से आते है । इसके कतिपय भेद होते हैं ।

इस्हाल क़ीही–[अ०] पूयातीसार । सपूयदस्त । जब यकृदीय व्रण परिपक्व होकर विदीर्ण हो जाता है, तब इस प्रकार के दस्त आते हैं । यह यकृतीयातीसार का ही एक भेद है ।

इस्हाल ख़ास.री–[अ०] इस प्रकार के दस्त जिगर का सुद्दा खुलने या उसका कच्चा फोड़ा फूटने या जिगर और उसकी रतूबातमें उग्र इ.ह्.तिराक़ होने के कारण तलछट की तरह गाढ़े और बदरंग के दस्त आया करते हैं । तलछटनुमा दस्त ।

इस्हाल ग़िज़ाई–[अ०] (Crapulous Diarrhoea) आहार दोष-जनित अतीसार । दूषित आहारजन्य अतीसार । अधिक मात्रा में भोजन करने वा गुरुपाक तथा आध्मानकारक और बे स्वाद वं दूषित वस्तुओं के भक्षण करने से ऐसे दस्त आया करते हैं । अस्तु, भोजनमें असावधानी एवं नियंत्रण का न होना ही इसके मूलभूत कारण हैं ।

इस्हाल ग़ुसाली–[अ०] मांस के धोवन के समान दस्त । यकृद्दौर्बल्य के कारण इस प्रकार के दस्त आया करते हैं । यह याकृदीयातीसार ही का एक भेद है ।

इस्हाल ज़ूबानी–[अ०] (Colliquitive Diarrhoea) इस प्रकार के दस्त कतिपय उष्ण एवं चिरकारी रोगों,जैसे—उरःक्षत, राजयक्ष्मा, आदि के अन्त में अवयव तथा शारीरिक द्रवों के घुलने और पिघलने के कारण आया करते हैं ।

इस्हाल तहय्युजी–[अ०] (Irritative Diarrhoea) क्षोभजन्य अतीसार । किसी क्षोभक औषध वा आहार भक्षण द्वारा अँतड़ियों में क्षोभ होने से इस प्रकार के दस्त आने लगते हैं ।

इस्हाल दम्वी–[अ०] (Dysenteric diarrhoea) रक्तातीसार । इस्हालुद्दम (अ०) ।

इस प्रकार के दस्त कभी तो आँतों से आया करते हैं और उस अवस्था में "ज़ूसन्तारियाए मिअ्वी" कहलाते हैं और कभी यकृज्जन्य दोष के कारण आते हैं, तब इन्हें "ज़ूसन्तारियाए कबिदी" कहते हैं ।

इस्हाल दिमाग़ी–[अ०) (Nervous diarrhoea, catarrhal diarrhoea) मस्तिष्कीय वा मास्तिष्क दोषज अतीसार । वातातीसार । प्रातिश्यायिक अतिसार ।

मस्तिष्क से कंठ एवं अन्नमार्ग के रास्ते आमाशय में रतूबतों एवं नज़ला के गिरने से इस प्रकार के दस्त आया करते हैं । इसीसे इनको इस्हाल नज़्ली (प्रातिश्यायातीसार) भी कहते हैं ।

इस्हाल दूदी–[अ०] (Diarrhoea verminosa) कृमिज अतीसार । अँतड़ियों में कृमियों के क्षोभ के कारण इस प्रकार के दस्त आया करते हैं ।

इस्हाल दौरी–[अ०] बारी के दस्त । दौरे के दस्त । इस प्रकार के दस्त बारी या वेग से आया करते हैं ।

इस्हाल नज़्ली–[अ०] (Catarrhal Diarrhoea) प्रातिश्यायिक अतीसार । तिब क़दीम में इस प्रकार के अतिसार इस्हाल दिमाग़ी के पर्याय हैं, जो सिर से मेदा और आँतों की

और नज़ले के रतूबतों के गिरने से उपस्थित होता है। दे० "इस्हाल दिमाग़ी"।

परन्तु नज़ला शब्द को ध्यान में रखते हुये डॉक्टरी में इस्हाल नज़ली से केटारल डायरिया अभीष्ट है, जो अँतड़ियों के श्लैष्मिक कलाओं के शोथयुक्त होने से उत्पन्न होता हैं। (Catarrhal diarrhoea)

इस्हाल बल्ग़मी–[अ०] श्लेष्मातीसार। कफज अतीसार। आमातीसार। (Mucous diarhoea.)

इस्हाल बुह्‌रानी–[अ०] (Critical diarrhoea) बुह्‌रानी दस्त।

जब प्रकृति किसी रोग में व्याधिजन्य दोष को दस्त के द्वारा निःसृत करती है, तब ऐसे दस्त आया करते हैं।

इस्हाल मस्‌ली–[अ०] (Serous diarrhoea) जलमय अतीसार। जलीयातीसार।

इस्हाल मिअ्‌दी–[अ०] (Gastrogenic diarrhoea) आमाशयातीसार। यह आमाशय विकार जन्य होता है।

नोट—ज़रब, ख़िल्फ़ः और इख़्तिलाफ़ जिनको डॉक्टरी में लाइएन्टरिक डायरिया (Lienteric diarrhoea) और आयुर्वेद में संग्रहणी कहते हैं, इस्हाल मिअ्‌दी ही के भेद मात्र हैं।

इस्हाल मिअ्‌वी–[अ०] आंत्रीयातीसार। आंत्र-विकार के कारण इस प्रकार के दस्त आया करते हैं।

इस्हाल कबिदी और इस्हाल मिअ्‌वी का भेद—इस्हाल कबिदी (याकृदीयातीसार) में क़ारोरे का रंग बदल जाता है और उसमें मरोड़ आदि नहीं होते। इसके विपरीत आंत्रीयातीसार (इस्हाल मिअ्‌वी) में मरोड़ एवं क्षोभ की विद्यमानता और जल्दी-जल्दी एवं अल्प मात्रा में मलोत्सर्ग का होना आवश्यक है। यही इसका मुख्य विच्छेदक चिह्न है।

इस्हाल मुज़्मिन–[अ०] (Chronic diarrhoea) चिरकारी अतीसार। पुरातन दस्त।

इस्हाल लह्‌मी–[अ०] (Diarrhoea carnosa) मांसज अतीसार। गोश्तदार दस्त।

यह रक्तातिसार का एक भेद है, जिसमें मांस-खंड की तरह गाढ़े दोष निकला करते हैं।

इस्हाल वर्मी–[अ०] (Inflammatory diarrhoea) प्रादाहिक अतीसार। शोथजन्य अतीसार। इस प्रकार के दस्त प्रायः आंत्रस्थ श्लैष्मिक कलाओं के शोथयुक्त होने से और कभी यकृत्प्रदाह के कारण आया करते हैं।

इस्हाल सदीदी–[अ०] (Serous diarrhoea) पीत जलीयातीसार। इसमें दस्त पतले पतले पीले पानी की तरह आया करते हैं। उग्र यकृदुष्मा ही इसका प्रधान कारण है, जिससे रक्त से पीतवर्ण का जलीय द्रवांश पृथक् होकर मल के साथ विसर्जित होता है।

इस्हाल सफ़्‌रावी–[अ०] (Biliary diarrhoea, Bilious diarrhoea) पैत्तिक अतीसार। पित्तज अतीसार।

इस्हाल सैफ़ी–[अ०] (Summer Diarrhoea) ग्रीष्मातीसार।

इस्हाल सौदावी–[अ०] वातज अतीसार।

नोट—इस प्रकार के दस्तों में प्रायः प्लीहा विवर्द्धित होती है। इसलिए इस्हाल सौदावी के लिए मलेरियस डायरिया (Malarious Diarrhoea) शब्द अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

इहभोजन–वि० [सं० त्रि०] जिसके वस्तु और दान यहाँ पहुँचे।

इ़हादिया–[अ०] अजगर।

इहाब–[अ०] कच्चा चमड़ा। वह चमड़ा जिसको पकाया न गया हो।

इहामूत्र–अव्य० [सं०] इस लोक और परलोक में। यहाँ और वहाँ। दोनों दुनियाँ में।

इहामृग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इहावृक। लकड़बग्घा।

इहाल–[अ०] अम्ल मांसरस। खट्टाशोरबा। सिरका या नीबू के रस के साथ पकाया हुआ मांस-रस।

इहालः–[अ०] तेल, घी, वसा आदि के समान वस्तुएँ जो रोटी पर लगा कर खाई जायँ।

इहावृक-संज्ञा पुं०[सं० पुं०]एक प्रकार का मांसाशी जंतु जो कपिल वर्ण का होता है और हिरन का शिकार करता है। लकड़बग्घा। ईहामृग।

इ.ह्तिकाक-[अ०] (Itching) खुजली उठना। रगड़ना। घिसना।

इ.ह्तिक़ान-[अ०] (१) वस्ति दान। हुक़ना करना। अमल देना। (२) अवरुद्ध होना। रुकना। घुटना। बंद होना। (३) तिब की परिभाषा में शरीर में मवाद और रतूबतों का का रुकना वा बंद हो जाना। संचय। कन्जश्चन (Congestion)

नोट—आधुनिक मिस्र देशीय चिकित्सक इ.ह्तिक़ान को अँगरेजी "कन्जश्चन" शब्द का समानार्थी मानकर प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ किसी अवयव में रक्त का संचित वा अवरुद्ध हो जाना है।

इ.ह्तिक़ान मस्.ली-[अ०] मस्.ल अर्थात् रक्तवारि या सीरम का किसी आवयविक तंतु में एकत्रित वा अवरुद्ध हो जाना जिसके कारण शोथ एवं वेदना प्रादुर्भूत होती है।

सीरस इन्फ़िल्ट्रेशन Serous Infiltration (अं०)।

इ.ह्तिक़ानुल् मिद्दः फ़ियुस्.सद्र-[अ०] वक्षःस्थलस्थ पूय संचय वा अवरोधन। सीने में पीव का संचित होना वा रुक जाना। पायोथोरैक्स Pyothorax, एम्पायेमा Empyema (अं०)।

इ.ह्तिजान-[अ०] कन्या के साथ मैथुन करना। नाबालिग़ लड़की से संग करना।

इ.ह्तिबास, इन्.ह्बास-[अ०] रुंधन। रोधन। अवरोधन। स्तंभन। तिब की परिभाषा में किसी माद्दा या रतूबत का शरीर में रुक जाना वा बंद हो जाना। (Retention)

इ.ह्तिबासुल् बौल-[अ०]मूत्रावरोध। पेशाब बंद होना। (Retention of Urine)

इ.ह्तिबासुत्तम्स., इन्क़िताउत्तम्स.-[अ०] (Amenorrhoea, Menostatis) रजोरोध।

इ.ह्तिराक़-[अ०] (Combustion]उज्वलन। दहन। जलना।

इ.ह्तिराक़ अख़्लात्-[अ०] ख़िल्.तों का जल जाना अर्थात् उष्णताधिक्य से रतूबत नष्ट होकर गाढ़े भाग का शेष रह जाना।

इ.ह्तिराक़ ज़ाइद-[अ०] लौ मारकर जलना।

इ.ह्तिराक़ बती-[अ०] लौ के बिना धीरे-धीरे जलना।

इ.ह्तिराक़ शम्स-[अ०] सूर्य-आतप वा धूप से शरीर की खाल झुलस जाना। Sun-burn.

इ.ह्तिराक़ स्.वाइक़्-[अ०] बिजली गिरने से जल जाना।

नोट—स्.वाइक़ और सा.इक़: के विस्तृत विवेचन हेतु दे० "बर्क़"।

इ.ह्तिराक़ुल्लिसाने मिनन्नूरः-[अ०] चूने के प्रभाव से ज़बान जल जाना अर्थात् कट जाना। जैसा पान खानेवालों को प्रायः हुआ करता है।

इ.ह्तिराज़-[अ०] परहेज़ करना। बचना। पथ्य-सेवन। (२) चिकित्सा-शास्त्र में अहितकर आहार-विहार से परहेज़ करना। (Abstinence)

इ.ह्तिलाम-[अ०] दुःस्वप्न। कुस्वप्न। स्वप्न में मैथुन करना। स्वप्न-मैथुन। स्वप्नदोष। नॉक्टर्नल एमिशन (Nocturnal Emission)

इ.ह्तिवाऽ-[अ०] घेरना। बटोरना। समेट कर एकत्र करना।

इ.ह्तिवाउर्.तूबात अज़ीयुल्क़ल्ब-[अ०] हृदय को ढाँकनेवाली झिल्लीमें तरल संचित हो जाना। हृदयावरक कलाओं के भीतर जल-संचय होना। यह एक प्रकार की व्याधि है जिसमें मनुष्य को अपना हृदय जल प्लावित होता हुआ प्रतीत होता है। इस्तिस्क़ाउ हि.जाबुल् क़ल्ब। (Hydropericardium)

इ.ह्दाक़ुल् बक़र-[अ०] काली दाख। स्याह अंगूर।

इ.ह्दाक़ुल मरज़्.ी-[अ०] उक़्.ह्वान। बाबूना गाव।

इ.ह्दिया-[अ०] अजगर।

इ.ह्न-[अ०] तूल। रूई।

.इ.ह्न-[अ०] (१) ऊर्ण । ऊन । (२) तूल । रूई । पुंब: ।

इह्ना-[अ०] शीघ्रपाकी आहार देना ।

इ.ह्माऽ-[अ०] गरम करना । आगमें गरम करना । तपाना ।

इ.ह्मरार, इ.ह्मरारुल्ज़िल्द-[अ०] त्वग्दाह । त्वक् प्रदाह । त्वचा पर रक्त धब्बे वा दाग पड़ना । (Erythema)

इह्राऽ-[अ०] मांस आदि को इतना पकाना कि वह गल जाय ।

इ.ह्राक़-[अ०] जलाना । फूँकना । औषधि-निर्माण में किसी औषधि वा धातु आदि को फूँकना वा भस्म करना । भस्मीकरण । तर्मीद । (Burn)

इ.ह्राज़ुल् बक़ूल-[अ०] वे चीजें जो कच्ची खाई जाती हैं, जैसे काहू आदि ।

इ.ह्रारिय्य:-[अ०] त्वचा पर रक्त चट्टे पड़ना । (Eruption) तफ़ह्. जिल्दी ।

.इह्र-[अ०] (Prostitution) परदारगमन । वेश्यागमन ।

इ.ह्रीज़-[अ०] (Carthamus Tinctorius, *Linn.*) कुसुम्भ । कड़ । बरैं ।

इ.ह्लील-[अ०] [बहु० अह.लील] (१) शिश्न बहिर्द्वार । मूत्रद्वार । (२) स्तन-स्रोत । (३) प्रत्यक्ष शारीरक में मूत्रमार्ग (नाइज़ा) । किसी-किसी के मत से पुरुष-शिश्न और स्त्री के योनिमार्ग के लिये भी इस शब्द का उपयोग होता है । (Orifice.)

नोट—डॉक्टरी में मूत्र बहिर्द्वार को मिएटस युरिनरी (Meatus urinary) और मूत्रमार्ग को युरेथ्रा (Urethra) कहते हैं ।

इह्लीलज-[अ०] [फ़ा० हलील:] (Terminalia chebula, *Retz.*) हरीतकी । हड़ । हलीलज (अ०) । दे० "हलील:" ।

इह्लीलज अस्.फ़र-[अ०] (Terminalia chebula, *Retz.*) हरीतकी फल । पीली हड़ । हड़ ।

इह्लीलज अस्वद-[अ०] बाल हड़ । जंगी हड़ । काली हड़ ।

इह्लीलज काबुली-[अ०] हलीलहे । काबुली काबुली हड़ ।

इ.ह्सास-[अ०] (Sensation) महसूस करना । निर्विकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान । अस्तित्व का धुँधला आभास ।

इक्षव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साधारण इक्षु । मामूली नय शक्कर । साधारण गन्ना ।

इक्षालिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]किक्कक । किलिच । सरकण्डा भेद । इसका पौधा प्रायः जलके समीप होता है । प्रायः बालक इससे क़लम बनाया करते हैं । इसमें गन्ने की तरह मिठास होती है । इसे ढँढ़ा या भरुहो भी कहते हैं ।

इक्षु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईख । गन्ना । ऊख । नय शकर ।

इक्षुक-संज्ञा पुं [सं० पुं०] (१) इक्षु । ईख । गन्ना । (२) इक्षुगन्धा । कास । (३) भूमिकुष्माण्ड । (४) काकोली । वै० निघ० । (५) शर । (६) कोकिलाक्ष । तालमखाना । रा० नि० ४ व० ।

इक्षुकाण्डका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इक्षुकाण्ड । (२) काकोली । (३)भूमि कुष्माण्ड । वै० निघ० । वा० टी० हेमा० ।

इक्षुकन्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विदारीकन्द । रा० नि० ।

इक्षुकन्दा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेत भूमि कुष्माण्ड । वै० नि० ।

इक्षुकांड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ऊँख का डंठल । (२) काश । कास । रा० नि० व० ८ । (३) मुञ्ज । मूँज । श० च० । (४) रामशर ।

इक्षुकाश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काशतृण । काँसा । कास । मद० व० १ ।

इक्षुकीय-वि० [सं० त्रि०] इक्षु युक्त देश । ऊख से भरा हुआ ।

इक्षुकीया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इक्षु युक्त देश । ईख से भरी जमीन । वह पृथ्वी जहाँ ऊख की पैदावार अधिक हो ।

इक्षु कुट्टक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊख काटने का हँसुवा । इक्षु संग्राहक ।

इक्षु कुसुम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास । धन्व० नि० ।

इक्षु गण्डिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कासतृण । कासा । काँस ।

इक्षुगंध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) छोटा गोखरू । रा० नि० व० ४ । (२) कोकिलाक्ष । तालमखाना । (३) काश । कास । भा० ।

इक्षुगंधा (न्धिका)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कोकिलाक्ष । तालमखाना । मद० व० १ । मे० । (२) गोक्षुरक । गोखरू । प० मु० । भा० । (३) क्षीरविदारी । सफ़ेद विदारीकंद । मद० व० १ । श० र० । रा० नि० व० ७ । (४) वाराहीकन्द । (५) काश । कास । भा० पू० १ भ० । मे० । (६) शृगाली । मादा सियार । भा० अने० । मे० धचतुष्कं । (७) श्वेत भूमि कुष्माण्ड । सफ़ेद भुँईं कोहड़ा । अम० । मे० । (८) भूमि कुष्माण्ड । भुँईं कुम्हड़ा । श० र० ।

इक्षु गन्धिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "इक्षुगन्धा" ।

इक्षुगन्धी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वन शृङ्गाटक । छोटा गोखरू । नि० श० ।

इक्षुज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह पदार्थ जो ईख के रस से बने । प्राचीनों के अनुसार इसके छः भेद हैं- (१) फाणित (जूसी या शीरा), (२) मत्स्यंडी (राब), (३) गुड़, (४) खंडक (खाँड), (५) सिता(चीनी) और (६) सितोपल (मिस्री) ।

इक्षुजल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊख का रस । ईख की गडेलियों को अच्छी तरह कूटकर मिट्टी के नवीन पात्र में जल भरकर डालदें । इस घड़े के मुखपर कीड़ादि पड़ने के भय से कपड़ा ढाँककर रात्रि में खुली हुई जगह में रखदें । प्रातःकाल इस जल को पकाकर छानलें और इसमें शहद मिलाकर विकसित कमल को उस पर लगादें । यह जल रक्त-पित्त में उपयोगी होता है । वा० चि० २ अ० ।

इक्षुजटा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इक्षुमूल । ऊँख की जड़ । चि० क्र० क० प्रदर-चि० ।

इक्षुतुल्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार की ईख । इक्षालिका । प० मु० । (२) ज्वार या बाजरे के प्रकार का एक पौधा जिसका रस मीठा होता है । काश । कास । र० मा० । (३) यावनाल । जुआर । मक्का ।

इक्षुदण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईख का डंठल । ईख ।

इक्षुदर्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का तृण । दे० "इक्षुदर्भा" ।

इक्षुदर्भा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का तृण । नटा (बं०) । आश्वालु (मरा०) ।

पर्य्या०—सुदर्भा, पत्रालुः, तृणपत्रिका ।

गुण—मधुर, स्निग्ध, कुछ-कुछ कसेली, कफ और पित्तनाशक, रुचिकारक, हलकी और तृप्तिजनक होती है । रा० नि० व० ८ ।

इक्षुदर्भी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तृणविशेष ।

गुण—सुमधुर, शीतल, अल्पकषाय, कफ-पित्त हारक, रुचिप्रद लघुपाकी और तृप्तिकारक है । रा० नि० ।

इक्षुदा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नदीविशेष । एक नदी (Oxus) । यह इंद्रनामक पर्वत से निकली है ।

इक्षुनेत्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इक्षुमूल । ऊख की आँख । रा० नि० व० १४ ।

इक्षुपत्र(क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
इक्षुपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) ज्वार । मक्का । जूर्णा । रा० नि० व० १६ । (२) बाजरा ।

इक्षुपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खटली । गण्डलिया ।

इक्षुपत्री (र्णी)-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) वचा । बच । (Acorus calamus, *Linn.*) । (१) शुक्ल भूमिकुष्माण्ड । सफ़ेद भुँईं कुम्हड़ा । वै० निघ० ।

इक्षुपाक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुड़ । (Jaggery)

इक्षुपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरपुङ्खा । सरफोंका । रा० नि० व० ४ ।

इक्षुप्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रामशर । शर । रा० नि० व० ८ ।

इक्षुप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मूत्र के साथ मधु वा शकर जाती है । इस रोग में मूत्र पर च्यूँटियाँ और मक्खियाँ बहुत बैठती हैं और मूत्र के अंशों को रासायनिक प्रक्रिया से अलग करने पर उसमें चीनी का अंश मिलता है । मधुमेह । ज़ियाबेतुस सुकरी (अ० । (Diabetes mellitus, Glycosuria) दे० "इक्षुमेह" ।

इक्षु बालिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) खागड़िका । खागड़ा । रा० नि० व० ८ । च० सू० ४ अ० शूल-चि० । (२) कोकिलाक्ष । तालमखाना । भा० पू० १ भ० । मद० व० १ । (३) इक्षुतुल्या । एक प्रकार की ऊख । गन्ना भेद । र० मा० । (४) काश । कास । रा० नि० व० ८ ।

इक्षुभक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊँख पेरने का कल । कोल्हू । वै० निघ० ।

इक्षु भेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पुण्ड्रक (२) अतिमुक्त । (३) तिलक ।

इक्षु भेषज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिठाई । (२) लोध ।

इक्षुमती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुरुक्षेत्र प्रवाहित नदी विशेष । इसी नदीके किनारे साङ्कश्या नामक नगरी थी । रामायण २ । ७ । ३ । हिं० वि० को० ।

इक्षुमद्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँख को शराब । ईख के रस आदि से बना हुआ मद्य । विधि—यह ईक्षु रस, मिर्च, बेर तथा दधि और अन्त में लवण मिलाने से बनता है । वै० नि० ।

इक्षुमालवी, इक्षुमालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "इक्षुदा" ।

इक्षुमूल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ईख की जड़ । राज० । च० सू० ४ अ० । (२) इक्षुनेत्र । ऊँख की आँख । (३) एक प्रकार की ईख । बाँसा ।

इक्षुमेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊख का खेत । दे० "इक्षुवाटिका" ।

इक्षुमेह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कफज प्रमेह । इसमें ईख के रस की तरह मधुर पेशाब होता है । (मा० नि०) ।

पर्य्या०—मधुप्रमेह । इक्षुप्रमेह । ज़ियाबेतुस सुकरी, बौल सुकरी, ज़ियाबेतुस हार (अ०) । Diabetes mellitus, gylcosuria (ले०) ।

नोट—इक्षु प्रमेही का पेशाब रंग में और स्वाद में ईख जैसा होता है । इस प्रमेहवाले के पेशाब पर भी चीटियाँ लगती हैं, पर यह मधुमेह की तरह असाध्य नहीं होता । दे० "मधुमेह" ।

चिकित्सा

(१) इसमें अरनी के काढ़े में "शहद" मिलाकर पीने या हिम बनाकर पीने से लाभ होता है ।

(२) पाढ़, बायबिडङ्ग, अर्जुन की छाल और धमासे के काढ़े में "शहद" डालकर पीने से इक्षु-प्रमेह नाश हो जाता है ।

इक्षुमेही-संज्ञा पुं० [सं० त्रि० इक्षुमेहिन्] इक्षुमेह का रोगी । इक्षुमेह युक्त । सिलसिल बौल का मरीज़ । जिसको छुलक मुत्ती का रोग हो ।

इक्षुयन्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गन्ना पेलने का कल । कोल्हू ।

इक्षुयोनि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) पुण्ड्रक नामकी ईख । पौंढा । (२) काङ्कशालि नामक ईख । यह पौंढे की ही एक किस्म है । रा० नि० व० १४ । (३) ईख की आँख ।

इक्षुर(क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कोकिलाक्ष । तालमखाना । "द्राक्षा सेक्षुर गोक्षुराश्च महती" । इससे यहाँ तालमखाने के बीज लेना चाहिये । र० मा० । भा० उ० ख० । सा० कौ० महाकामेश्वर मोदक । च० सू० ४ अ० । (२) इक्षु । ईख । (३) गोखुरू । श० र० । (४) काश । कास । (५) स्थूल शर । रा० नि० व० ८ । "स्वयङ्गुप्तेक्षुरकयोः" । सु० चि० २६ अ० । भा० म० ३ भ० मू० घा० चि० । (६) शर वा काश । रा० नि० व० ८ । (७) काली ईख । कृष्णेक्षु । रा० नि० व० १४ ।

इक्षुरबीज-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोकिलाक्ष बीज । तालमखाना । भैष० ध्व० भ० चि० ।

इक्षुरस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ईख का रस। दे० "ईख"। (२) काश। कास। भा० पू० १ भ० गु० व०। (३) गुड़। हिं० वि० को०।

इक्षुरस क्वाथ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इक्षु गुड़। ईख के रस से बनाया हुआ गुड़। हे० च०। (२) अवटी। औटी।

इक्षुरस वल्लरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षीर विदारी। दूध विदारी। महाश्वेता।

इक्षुरस विकार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गुड़। (२) ईख के रस से बनी हुई चीज़ें, जैसे—फाणित, गुड़, मत्स्यण्डिका, शर्करा इत्यादि। वा० टी० हेमा०। दे० "इक्षुज"।

इक्षुरस शुक्तम्-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तैल, कन्द, शाक और फल पड़ने से खट्टा होजानेवाला इक्षुरस। सिरका। गुण—यह गुरु और अभिष्यन्दी होता है। (सुश्रुत)।

इक्षु रसोद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इक्षु समुद्र। शर्बती बहर। इक्षुसागर।

इक्षुरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बड़ा गोखरू। (२) तालमखाना। नि० शि०।

इक्षुरालिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इक्ष्वालिका। रत्ना०। च० चि० २ अ० वृंहणीवटी। दे० "इक्ष्वालिका"।

इक्षुरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तालमखाना। नि० शि०।

इक्षुलता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विदारीकंद। के० नि०।

इक्षुलक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हरीतकी। हड़। (Terminalia chebula, *Retz.*)

इक्षुला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "इक्षुदा"।

इक्षु-वण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) इक्षु का वन। ऊख का जंगल।

इक्षु वर्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दर्भ। कुश। कास। ईख आदि का समूह।

इक्षु वल्लकी (-री)(-ल्ली)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण क्षीरविदारी। काला भुइँ कुम्हड़ा। रा० नि० व० ७।

इक्षु वल्लरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षीरविदारी।

इक्षु वल्लिका (ल्ली)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) क्षीर विदारी। दूध विदारी। रा० नि०। विदारीकंद। के० नि०।

इक्षु वल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षीरविदारी। काला विलाईकन्द।

इक्षु वल्लीक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलम।

इक्षु वाटिका (टी)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पौंडूक। पौंढ़ा। दे० "ईख"। (२) करङ्कशालि नामक ईख। रा० नि० व० १४।

इक्षु वाटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इक्षु। ईख। पौंढ़ा। (२) करङ्कशालीक्षु।

इक्षु वारि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "इक्षु रसोद"।

इक्षु वालिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इक्षु। ईख।

इक्षु विकार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुड़, शीरा, राब, चीनी, मिश्री इत्यादि।

इक्षु विकृति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खंड। खाँड़। रत्ना०।

इक्षु विदारिका (री)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भूमिकुष्माण्ड। प० मु०। (२) बिलारी।

इक्षु विदारी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "इक्षुविदारिका"।

इक्षु वेष्ट (ल)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुञ्ज। मूँज। भा० पू० १ भ० गु० व०। रामशर।

इक्षु वेष्टल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "इक्षु वेष्ट"।

इक्षु शर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रामशर। काशतृण।

इक्षु शर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊखकी शक्कर। इक्ष्वीज।

इक्षु शाकट(किन)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इक्षु क्षेत्र। ईख का खेत।

इक्षु शाकिन-दे० "इक्षु शाकट"।

इक्षु सार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊख का गुड़। इक्षु गुड़। रा० नि० व० १८।

इक्षूरक (वीज)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोकिलाक्ष बीज। तालमखाना। योगरत्न० केशरपाक तथा महाकामेश्वर मोदक।

इक्षूरकबीज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "इक्षूरक"।

इक्षूल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिटमिट।

इक्ष्वाकु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (A bitter gourd emetic) तिक्त तुम्बी । कड़ुई लौकी। तितलौकी। कड़ुई तुम्बी । "इक्ष्वाकु बीजदन्ती" । प० सु० । सु० सू० ४३ अ० । भा० म० ४ भ० यो० व्या० चि । च० सू० १ अ० । दे० "कटुतुम्बी" । (२) दुग्धतुम्बी । क्षीरतुम्बी । रा० नि० ।

इक्ष्वाकुकल्प-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कड़वी तुम्बी की १ मुष्टि प्रमाण (१२ अंगुल लम्बी) पुष्प रहित (जिसमें अभी पुष्प न लगे हों) नवीन कोमल शाखा लेकर उसे १ प्रस्थ दूधमें यथाविधि सिद्ध करें।

यह दूध वमनार्थ पित्तोल्वण कफज ज्वरमें देना लाभदायक है।

(२) १ भाग कड़वी तुम्बी के स्वरस में ३ भाग दूध सिद्ध कर देने से उरःस्थित कफ, स्वर और पीनस में लाभदायक है।

(३) एक पुरानी कड़वी तुम्बी के बीज का गूदा निकालकर उसमें दूध भरदें। जब दही जमजाय तो उसे कफज, खाँसी, श्वास और वमन में प्रयोग करें।

(४) कड़वी तुम्बी के बीजों को बकरी के दूध की भावना देकर चूर्ण कर उसे विष दोष गुल्म, उदरग्रंथि, गण्डमाला और श्लीपद रोग में सेवन करने से उत्तम लाभ होता है।

(५) कड़वी तुम्बी के गूदे को दही के पानी के साथ सेवन करने से या उस गूदे के साथ तक्र पकाकर उसमें शहद और सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से पांडु, कुष्ठ और ज्वर का नाश होता है।

(६) कड़वी तुम्बी के फूलों को उसके फलों के स्वरस के साथ सुखाकर चूर्ण करके उसे किसी सुगंधित माला में छिड़ककर सूँघने से सुखपूर्वक वमन होता है।

(७) कड़वी तुम्बीके गूदे को गुड़ और तिलों के कल्क के साथ सेवन करने से वमन होता है।

(८) कड़वी तुम्बी के बीज १० नग लेकर उन्हें मदनफलादि वमनकारक द्रव्यों में पीसकर आसुत करके पिलाएँ। इसी प्रकार बीजोंकी संख्या में यथाक्रम १०-१० की वृद्धि करते हुए ५० तक पहुँचाना चाहिये ; इस प्रकार १०-२०-३० ४० और ५० बीजों के यह ५ योग हैं।

(९) कड़वी तुम्बी के अन्तर्नखमुष्टि (अँगूठे का नख अंदर करके भरी हुई मुट्ठी) बीज लेकर मुलहठी और कोविदारादि द्रव्यों के क्वाथ में पीस कर वमनार्थ पिलाना चाहिये।

(१०) इक्ष्वाकु को मदनफलके समान मात्रा में ग्रहण करके कोविदार आदि आठ द्रव्यों के क्वाथ के साथ पृथक्-पृथक् सेवन करें। यह आठ प्रयोग होते हैं।

(११) बेल की जड़ की छाल के क्वाथ में १ अँजली कड़वी तरोई के बीजों का चूर्ण मिला कर और पकाकर छानलें। यह क्वाथ ३ भाग, राब १ भाग, कड़ुवी तरोई के बीज १ भाग, घी १ भाग, महाजालिनी (बड़ी कड़वी तरोई), जीमूत (बन्दाल), कृतवेधन और इन्द्रजौ प्रत्येक का चूर्ण आधा-आधा भाग, सबको मिलाकर अग्नि पर पकाएँ। जब चलाते चलाते तार छूटने लगे और पानी में डालने से फैल न जाय तो उतार लें। इसे उचित मात्रा में खाकर ऊपर से मंथ पीना चाहिए। च० कल्प ३ अ०।

इक्ष्वाद-वि० [सं० त्रि०] ऊख चूसनेवाला। इक्षु भक्षक। च० चि० २ अ०।

इक्ष्वादि कषाय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईख का एक प्रकार का काढ़ा।

इक्ष्वादि मोदक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईख का रस उच्चटा (भुँइ आमले का रस), वंशलोचन प्रत्येक १-१ प्रस्थ मिस्री, ५० पल। कौंचके बीज, कालीमिर्च, तेजपत्र, दालचीनी, तथा इलायची प्रत्येक १-१ कुडव (४ पल) लें।

इनमें से चूर्ण करने योग्य ओषधियों का चूर्ण करके सबको एकत्र मिलाकर मथनी से खूब मथें और फिर एक-एक पल प्रमाण मोदक बनाकर रखलें।

गुण—इन्हें प्रातः सायं अथवा एक ही समय अग्निबलानुकूल सेवन करने और ब्रह्मचर्यव्रत और पथ्यादि पालन करते हुए रहने से संग्रहणी, ११ प्रकार का यक्ष्मा और भूतावेश का नाश तथा स्वर, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि और आयु आदि की वृद्धि होती है। क्षीणवीर्य एवं व्याकुलताग्रस्त वृद्धों के लिए हितकर, वाजीकरण, वन्ध्यत्वनाशक, धनुष, मद्य और स्त्री-समागम से उत्पन्न खिन्नता, हृद्रोग, तिल्ली, मूत्रकृच्छ्र, अपतंत्रक, अपस्मार, विषदोष और उन्मादनाशक तथा रसायन है।

इक्ष्वाद्य मोदक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "इक्ष्वाद्यमोदक"।

इक्ष्वाद्यलेह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईख, तालमखाना, कमल की डंठल, नीलोत्पल, चन्दन, मुलहठी, पीपल, दाख, लाख, काकड़ासिङ्गी और शतावरी प्रत्येक १ भाग, बंशलोचन २ भाग, मिस्री सब से चौगुनी।

गुण—सबका चूर्ण करके शहद और घी में मिलाकर चाटने से क्षतज कास का नाश होता है। वृ० नि० र० कास०।

योग—ईख का मध्यभाग, कन्द सहित नीलोत्पल, कमलकेशर, केले का फूल, मुलहठी, पद्माख, बड़ की जटा और अंकुर, मुनक्का, छोहारा-इनका शीत कषाय बनाकर और उसमें शहद और मिस्री मिलाकर सेवन करने से प्रमेह और रक्तपित्त का नाश होता है। वृ० नि० र० र० पि०।

इक्ष्वारि(क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काश। कास। रा० नि० व० ८। मद० व० १।

इक्ष्वालि (क) (का)-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०]
इक्ष्वालिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
(१) काश। कास। मद० व० १। र० मा०। वै० निघ० कास-चि० इक्ष्वाद्यवलेह। (२) एक प्रकार की ईख। आराखु, खागड़ा (बं०)। (३) बनखड़िका। च० द० तथा सि० यो० यक्ष्म० चि० बलाद्यघृत। "इक्ष्वालिका त्रिषग्रंथि"। (४) नरकट। नरकुल। (५) सरपत। मूँज।

इक्ष्वौज-संज्ञा पुं० [सं० इक्षु+ओज] (Sucrose) Cane-sugar गन्ने की शर्करा।

इत्र-संज्ञा पुं० [फ़ा०] पुष्पसार। इतर। अतर। दे० "इल"।

इ-स्वर का तीसरा वर्ण। इसका स्थान तालु और प्रयत्न विवृत है। ई इसका दीर्घ रूप है।

इंक-संज्ञा स्त्री० [अं० Ink] स्याही। मसी। रोशनाई।

इंक-नट-[अं० Ink-nut] हड़। हरीतकी। (Terminalia chebula.)

इंग-संज्ञा पुं० [सं० इङ्ग=इशारा, चिह्न] (१) चलना, हिलना, डुलना। (२) इशारा। (३) निशान। चिह्न। (४) हाथी का दाँत।

इंगनी-संज्ञा स्त्री० [अं० मैंगनीज़] एक प्रकार का मोरचा जो धातुओं में आक्सिजन के मिलने से पैदा होता है। यह भारतवर्ष में मध्य भारत, मैसूर, मध्यप्रांत और मद्रास की खानों से निकलता है। इससे एक प्रकार का सफ़ेद लोहा बनाया जाता है जिसे अँगरेज़ी में 'फ़ेरो मैंगनीज़' कहते हैं।

इंगिनी-[सं०] निर्मली। (Strychnos Potatorum.)

इंगलिश-[अं० English] दे० "इङ्गलिश"।

इंगुद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "इंगुदी"।

इंगुदी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० इङ्गुदी] (१) हिंगोट का पेड़। (Balanites Roxburghii, *Planch.*)। (२) ज्योतिष्मती वृक्ष। मालकँगनी।

इंगुर-संज्ञा पुं० दे० "ईंगुर"।

इंगुरौटी-संज्ञा स्त्री० [ ] ईंगुर रखने की डिबिया (डिब्बी)।

इँगुवा-संज्ञा पुं० [सं० इंगुद] (Balanites Roxburghii, *Planch.*) हिंगोट का पेड़ और फल। गांदी।

इंजर-संज्ञा पुं० दे० "समुंदर फल"।

इँटाइ-संज्ञा स्त्री० [हिं० ईंट] एक प्रकार का पंडुक वा पेडुकी।

इंटकोहरा-संज्ञा पुं० ईंट का चूर।

इंटाई-संज्ञा स्त्री० [?] किसी क़िस्म का पेड़ का पत्ती विशेष ।

इँडहर-संज्ञा पुं० [सं० इष्ट+हिं० हर (प्रत्य०)] उर्द की दाल से बना हुआ एक सालन । विधि—उड़द और चने की दाल को एक साथ भिगोकर बारीक पीस डालते और उसका लम्बे-लम्बे टुकड़े बना लेते हैं । पुन: उन टुकड़ों को अदहन में उबाल लेते हैं । अच्छी तरह पक जाने पर टुकड़ों को काटकर छोटा छोटा बना लेते हैं । पुन: उन्हें घी या तेल में तलकर सुर्ख़ कर लेते हैं और उन्हें रसा में छोड़कर धीमी आगपर पका लेते हैं । इंडहर खाने में बहुत लजीज़ और रुचिप्रद होता है ।

इंडुरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] कुण्डली । चक्कर गुंडरी ।

इंड्वा-संज्ञा पुं० [देश०] कुण्डल । दायरा । गेंडुरी । यह कपड़े का गोल-गोल बनाया जाता और बोझ उठाते समय नीचे लगाया जाता है ।

इंडोली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक औषध का नाम । अरडी ।

इंतकाल-संज्ञा पुं० [अ०] दे० “इन्तिक़ाल” ।

इंदारा-संज्ञा पुं० [देश०] कूप । कुवाँ । इनारा ।

इँदारुन-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन । माहुर ।

इंदीवर-संज्ञा पुं० [सं०] दे० “इन्दीवर” ।

इंदु-संज्ञा पुं० [सं०] दे० “इन्दु” ।

इंदुमनि-संज्ञा पुं० दे० “इन्दुमनि” ।

इंदुर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “इन्दुर” ।

इंदुरत्न-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “इन्दुरत्न” ।

इंदुवधू-संज्ञा स्त्री० दे० “इन्दुवधू” ।

इंदुवा-संज्ञा पुं० दे० “इंडुवा” ।

इंदूर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “इन्दूर” ।

इंदूरन-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रायन] इन्द्रायण । इनारुन ।

इंद्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “इन्द्र” ।

इंद्रगोप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “इन्द्रगोप” ।

इंद्रजव-संज्ञा पुं० [सं० इंद्रयव] कुड़ा । कोरैया का बीज । ये बीज लंबे लंबे जव के आकार के होते हैं और दवा के काम में आते हैं । एक-एक सींके में हाथ-हाथ भर की लम्बी दो दो फलियाँ लगती हैं, जिनके दोनों छोर आपस में जुड़े रहते हैं । फलियों के भीतर रूई वा घूआ होता है, जिसमें बीज रहते हैं । इंद्रजव कड़ुआ और मीठा दो प्रकार का होता है । भावप्रकाश के अनुसार यह त्रिदोष-नाशक धारक, कटु, शीतल तथा दीपन है और ज्वर, अतिसार, रक्तार्श, वमन, विसर्प, कुष्ट, वातरक्त, कफ एवं शूल का नाश करनेवाला है । वि० दे० “कुरैया’ ।

नोट—इन्द्र के जितने पर्याय हैं वे सब कुटज वाचक हैं ।

इंद्रदारु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देवदारु ।

इंद्रद्रुम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “इन्द्रद्रुम” ।

इंद्रायन-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्राणी] दे० “इन्द्रायन” ।

इंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] दे० “इन्द्रिय” ।

इंद्रियवज्री-संज्ञा स्त्री० [सं० इंद्रिय+वज्र] वाजीकरण क्रिया का एक भेद ।

इंद्री-संज्ञा स्त्री० दे० “इन्द्री” ।

इंद्रीजुलाब-संज्ञा पुं० दे० “इन्द्रीजुलाब”

इंधन-संज्ञा पुं० [सं०] दे० “इन्धन” ।

इंधरौड़ा-संज्ञा पुं० [सं० इन्धन+औड़ा (प्रत्य०)] इन्धन रखने का स्थान । जिस जगह पर जलाने की वस्तु रहे ।

* * *

(ई)

ई–हिन्दी वर्णमाला का चौथा अक्षर। यह यथार्थ में 'इ' का दीर्घ रूप है। इसके उच्चारण का स्थान तालु है।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विष्णु की स्त्री। लक्ष्मी।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामदेव का नाम।

अव्य० (१) दुःख। शोक। (२) क्रोध। (३) अनुकम्पा। दया। मिहर्बानी।

ईएचकीरै–[ता०] (Mentha sativa, *Linn.*) Indian Peppermint पुदीना। रोचनी।

ईओसीन–[अं० Eosin] एक प्रकार का रंग जिसकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है।

ईक़ाक़ालस–[यू०] हरिन्माज़ू।

ईक़ान–[?] तिर्मिरा। जर्जीर (अ०)। (Eruca sativa, *Linn.*)

ईक़ावन–[यू०] (Aquilaria agallocha, *Roxb.*) अगर। ऊद हिंदी।

ईख–संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षु, प्रा० इक्खु] ऊख, गन्ना, गांडो (हिं०)। गाँडा (द०)। इक्षु, कर्कोटक, वंश, कांतार, रसाल, वेणु, निस्वन (ध० नि०), इक्षु, कर्कटक, वंश, कांतार, सुकुमारक, असिपत्र, मधुतृण, वृष्य, गुडतृण, (रा० नि० १४ व०) इक्षु. दीर्घच्छद, भूमिरस, गुड़मूल, असिपत्र, मधुतृण (भा०), मृत्यपुष्प, महारस, कोशकार, इक्षव, पयोधर, अधिपत्र (सं०)। ऊक्, गन्ना, आक् गाछ, ईक्, कूशियार, कुसुआ (पौड़ु) कजूलि (लाल), कुशेर (बं०)। क़सबुस्सकर, क़सबे सकर (अ०)। नैशकर (फ़ा०)। सैकेरम ऑफ़िशिनेरम् Saccharum officinarum, *Linn.* (ले०)। सुगर केन Sugar-cane (अं०)। कैनो सुक्री Canne á sucre (फ्रां०)। आख़्टेर ज़ुख़रोर Achter Zuckerrohr (जर०)। करुंबु (ता०)। चिरकू बोडी, चेरुकु, आरुकणुपुलक्कानुग, कणुपुल-चेरुकु (ते०)। करिंप (मला०)। कब्बु, कब्बिनमेरु, खब्बु (कना०)। ऊस्, ऊँस (मरा०, बम्ब०)। सेड़डि, नैसकर, शेरड़ी, शेरडेणुमूल (गु०)। ऊक्, उख् (सिंगा०, सिंहली)। क्रियान्. किअन (बर०)। कबुएडु (का०)। शकिर सुर्ख़ (पं०)।

शर वर्ग

(*N. O. Gramineoe.*)

उत्पत्ति-स्थान –भारतवर्ष, प्रायः संसार के सभी उष्ण प्रधान देशों में यह उपजती है।

वानस्पतिक वर्णन—यह शर जाति की एक घास है। जिसके डंठलमें मीठा रस भरा रहता है। इसी रस से गुड़ और चीनी बनती है. डंठल में ६–६ या ७-७ अंगुल पर गाँठें होती है और शिर पर बहुत लंबी लंबी पत्तियाँ होती हैं, जिन्हें गेंड़ा कहते हैं। पुष्पों की चूणा सरपत की तरह पत्रतुल्य होती है। इक्षु के फोंक से कागज बनता है। पत्र से चटाई तैयार कर सकते हैं। ईख के व्यत्यस्त काट में देखने पर असंख्य तंतुमय कोषाकार पुंज होते हैं, जो अन्य एकदलीय पौधों के स्तंभ की तरह इतस्ततः तंतुओं के मध्य विकीर्ण होते हैं। ये कोष-पुंज बाहर को तरफ अत्यधिक होते हैं और वहाँ ये एक पतले उपचर्म से आच्छादित अबिरल मंडल का निर्माण करते हैं। यह अत्यंत कठोर होता है। क्योंकि उसमें कुछ परिमाण में (Silica) तहनशीं होते हैं। स्तम्भ के केन्द्र भाग में कोषाकृति पुंज बहुत कम होते हैं। किंतु काफी पैरेनकाइमा विद्यमान होते हैं, जिनमें पतली दीवाल की सेलें होती हैं और उनमें शकर का स्वच्छ घोल भरा होता है। उसमें किंचित् श्वेतसार के कण और विलेय एल्व्युमीनीय द्रव्य भी होते हैं। (डीमक)।

भारतवर्ष में इसकी बुआई चैत बैशाख में होती है। कार्तिक तक यह पक जाती है अर्थात् इसका रस मीठा हो जाता है और कटने लगती है।

कहते हैं गन्ना शुरू में एक जंगली घास थी जिसे परवरिश करते-करते मनुष्य ने ऐसा नरम और रसीला बना लिया है।

गन्ने के भेद

ईख के तीन प्रधान भेद माने गये हैं—ऊख, गन्ना और पौंढ़ा। (क) ऊख का डंठल पतला, छोटा और कड़ा होता है। इसका कड़ा छिलका कुछ हरापन लिए हुए पीला होता है और जल्दी छीला नहीं जा सकता। इसकी पत्तियाँ पतली, छोटी, नरम और गहरे रंग की होती हैं। इसकी गाँठों में उतनी जटाएँ नहीं होतीं, केवल नीचे दो-तीन गाँठों तक होती हैं। इसकी आँखें, जिनसे पत्तियाँ निकलती हैं, दबी हुई होती हैं। इसके प्रधान भेद धौल, मतना, कुसवार, लखड़ा, सरौती आदि हैं। गुड़, चीनी आदि बनाने के लिए अधिकतर इसी की खेती होती है।

(ख) गन्ना ऊख से मोटा और लंबा होता है। इसकी पत्तियाँ ऊख से कुछ अधिक लंबी और चौड़ी होती हैं। इसका छिलका कड़ा होता है, पर छीलने से शीघ्र उतर जाता है। इसकी गाँठों में जटाएँ अधिक होती हैं। इसके कई भेद हैं, जैसे—अगौल, दिकचन, पंसाही, काला गन्ना, केतारा, बड़ौखा, तंका गोंड़ारा इससे जो चीनी बनती है, उसका रंग साफ़ नहीं होता।

(ग) पौंढ़ा—यह विदेशी है। चीन, मारिशस (मिरच का टापू), सिंगापूर इत्यादि से इसकी भिन्न-भिन्न जातियाँ आई हैं। इसका डंठल मोटा और गूदा नरम होता है; छिलका कड़ा होता है और छीलने पर बहुत जल्दी उतर जाता है। यह यहाँ अधिकतर रस चूसने के काम में आता है। इसके मुख्य भेद थून, काला गन्ना और पौंढ़ा हैं।

रंग के विचार से गन्ना पाँच प्रकार का होता है—(१) सफेद, (२) कबरा, (३) काला, कुछ काला, (४) लाल और (५) हरा। प्रायः इनमें से सफ़ेद गन्ना तरो ताज़ा नरम और रसीला होता है। लाल और काले रंग का कुछ कड़ा और ८–१२ फुट तक ऊँचा होता है।

शास्त्रोक्त भेद

चरक के मतानुसार पौंड्रिक तथा वंशक भेद से ईख दो प्रकार की होती है (च० सू० २१ अ०)। सुश्रुत के मत से यह पौंड्रक (पौंढा), भीरुक, वंशक (बड़ौखा), शतपोरक (सरौती), कांतार (केतारा), तापसेक्षु, काष्ठेक्षु (लखड़ा), सुचीपत्रक, नैपाली, दीर्घपत्र, नीलपोर (काला गेंड़ा) और कोशकृत (कुसवार या कुसियार), भेद से, १२ प्रकार की होती है। (सु० सू० ४५ अ०)। भावप्रकाश ने भी इतना ही लिखा है। राजनिघंटुकार ने श्वेत, पुण्ड्र, करङ्क, कृष्ण और रक्त भेद से इसे पाँच प्रकार का लिखा है (रा० पानीयादि १४ व०)। पौण्ड्रक, अनुवासिक, शतपर्व, कांतार, नैपाल, दीर्घपत्रादि भेद से यह नाना प्रकार की होती है। (वा० टी० हेमा०)। जखीरा अकबरशाही के अनुसार इसके सैकड़ों भेद होते हैं।

प्रयोगांश—ईख का रस (इक्षुरस), ईख के रस से बनी हुई चीज़ें। (इक्षुविकार) खंड, गुड़ प्रभृति और ईख की जड़।

रासायनिक संघटन—ईख के रसमें सैकरीन-मैटर (इक्षौज), जल, लुआब, राल (Resin), वसा, एल्ब्युमेन प्रभृति द्रव्य पाए जाते हैं। ईख में अल्प मात्रा में ग्वानीन (Guanine) नामक एक पदार्थ पाया जाता है। यह एक श्वेत स्फटिकीय चूर्ण है जो जल में अविलेय और अमोनिया में बहुत कम विलेय होता है।

पाश्चात्य रसायनविदों की भाँति यदि हम गन्ने के रस का आपेक्षिक गुरुत्व, निकालना चाहें, तो उसकी एक सहज विधि यह है—किसी शीशी में पहले पानी भरकर तौलें और चिह्न बना दें। पुनः गन्ने का रस उस चिह्न तक भरकर तौलें। पानी से जितना अधिक रस का भार होगा। उसीके अनुसार उस रस में शकर होगी।

प्रभाव—(Preservative), स्निग्धतासंपादक, पचननिवारक (Antiseptic), शैत्यकारक, कोष्ठमृदुकर और मूत्रल है। ईख का रस जल में चूने के विलेय गुण की वृद्धि करता है। यह उपादेय मेदवर्द्धक खाद्य है। अतएव

शर्करा वा शर्करायुक्त आहार स्वास्थ्योपयोगी है। इसका अभाव आशुकर्षणकारी है। शर्करा पचननिवारक (Antiseptic), स्निग्धतासंपादक और कफनिःसारक(expectorant) है। इससे उष्णता एवं शक्ति उत्पन्न होती है। जड़ स्निग्धतासंपादक और मूत्रल है। चुक्र क्षुधाजनक, पाचक और पिपासाहर है। इं० मे० मे०।

इक्षु-विकार—इससे यह चीज़ें तैयार होती हैं—ईख का रस वा इक्षुरस, ईख के डंठलों को कोल्हू में पेरने से यह प्राप्त होता है। यह ईखका कच्चा रस है। फिर इसे छानकर कड़ाहे में औटाते हैं। मही मारने के बाद इस क्वथित रस को औटी कहते हैं। औटाते-औटाते जब यह चौथाई रह जाता है और नरम एवं चिपचिपा होता है, तब इसे फाणित, जूसी वा चोटा कहते हैं। जब रस पककर सूख जाता है, तब गुड़ वा इक्षुरसक्वाथ कहलाता है। यदि राब बनाना हुआ, तो औटाते समय कड़ाहे में रेंड़ी की गूदी का पुट देते हैं जिससे रस फट जाता है और ठंढा होने पर उसमें कलमें या रवे पड़ जाते हैं। इसी राब से जूसी वा चोटा दूर करके खाँड़ वा खंड बनाते हैं। सूखे खाँड़ को बूरा कहते हैं। खाँड़ और गुड़ गलाकर चीनी, शर्करा वा सिता बनाते हैं। मत्स्यण्डिका वा मिश्री भी शर्करा से ही बनाई जाती है।

ईख के रस से एक प्रकार का मद्य प्रस्तुत किया जाता है जिसे 'शीधु' वा 'इक्षुमद्य' कहते हैं। गुड़ से बनाई हुई मदिरा 'गौड़ी' कहलाती है। रस से सिरका-इक्षुरसशुक्त भी तैयार किया जाता है। विशेष "खण्ड, गुड़, फाणित, मत्स्यण्डिका, तथा शर्करा, सितोपल, चुक्र, मद्य, शुक्त" शब्दों के अन्तर्गत देखो।

गुण-धर्म तथा प्रभाव

ईख तथा इक्षुरस

आयुर्वेदीय मतानुसार—ईख का रस सर अर्थात् दस्तावर, भारी, चिकना, बृंहण तथा कफ एवं मूत्र को जीतनेवाला है और वृष्य, शीतल, वातनाशक तथा खाने पर वात को प्रकुपित करता है। मूल के ऊपर का भाग अतीव मधुर और मध्य भाग भी मधुर ही होता है और अग्रभाग (गड़चोली) नमकीन होता है। दोनों प्रकार की ईख स्वाद में स्वादु, पित्तनाशक, वृष्य और शीतल हैं। ग्रन्थान्तर से—भारी, कफकारक वातरक्त तथा पित्तविनाशक है। दन्तनिष्पीड़ित अर्थात् दाँतसे चबाकर निकाला हुआ रस वीर्य में शर्करा के समान होता है। किंतु यन्त्रनिष्पीड़ित अर्थात् कोल्हू में पेलकर निकाला हुआ रस भारी विदाही और विष्टंभी होता है। पकाया हुआ रस भारी, स्निग्ध, सुतीक्ष्ण और कफवात नाशक है। इक्षुविशेष के गुण वृष्य, शीतल, उष्ण एवं मधुर है तथा पित्त को शमन करता, वृंहण, कफकारक, स्निग्ध, हृद्य, वल्य, अत्यन्त शामक और मूत्र शोधक है, मेद बढ़ाता, मल को शमन करता, इंद्रियों को तृप्त करता और दाँतों से चूसा हुआ ईख का रस साक्षात् अमृत है। भोजनके समय से पूर्व जो मनुष्य ईख चूसता है, उनमें यह अपने मधुर स्वभाव के कारण वात प्रकुपित करता है। (धन्वन्तरीय निघण्टु)

दाँतों से चूसा हुआ ईखका रस—वीर्य्यवर्द्धक, शीतल, दस्तावर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, मधुर और कफकारक होता है। कोल्हू से निकाला हुआ रस विदग्धपाकी होता है तथा उपर्युक्त सम्पूर्ण गुण संयुक्त भी होता है।

पौंडा—शीतल, स्वच्छ और मीठा होता है। वंशक ईख गुण में इससे अधिक है। (च० इक्षु-वर्ग–सू० २७ अ०)

ईख का रस भारी, स्निग्ध, बलकारक, कफ-वर्द्धक, मूत्रकारक, वीर्यवर्द्धक, शीतल, रक्तपित्त नाशक स्वादुपाकी, मधुर रसयुक्त और दस्तावर होता है। ईख के अग्रभाग का रस लवण रसयुक्त होता है। दाँत से चूसा हुआ ईख का रस शर्करा के समान मीठा होता है।

ईख की जड़, अग्रभाग, और कीड़ों से खाया हुआ भाग, एक साथ यंत्र (कोल्हू) में डालकर पीसकर निकाला हुआ रस थोड़े ही काल में बिगड़ जाता है। क्योंकि उसमें मैल रहती है। यह विदाही, भारी और विष्टंभी होता है। इनमें पौंड्र (पौंडा) नामक ईख का रस शीतल, मधुर

और प्रसन्नताकारक होता है। वंश नामक ईख का रस इससे गुणों में कम होता है।

शतपर्वक, कांतार, नैपालादि ईखों का रस क्रम से क्षारयुक्त, कसेला और उष्ण होता है तथा कुछ-कुछ विदाही भी होता है। (वा० सू० ५ अ०)

सितेक्षु (सफेद ईख) कठिन, रुचिकारी, भारी, कफ-कारक, मूत्रवर्द्धक, दीपन, पित्त-नाशक तथा दाह-नाशक है और विपाक में कुछ-कुछ गरम है। पर्य्या०—श्वेतेक्षु, सितेक्षु, काष्ठेक्षु, वंशपत्रक, सुवंश, पाण्डुरेक्षु, काण्डेक्षु और धवलेक्षुक।

पुण्ड्र (पौंडा) अत्यंत मधुर, शीतल, कफकारक, पित्त-नाशक, दाहनाशक, श्रमनाशक, रुचकारक और अत्यंत तृप्तिकारक है। पर्य्या०—पुण्ड्रक, रसाल, रसेक्षु, सुकुमारक, कर्बुर, मिश्रवर्ण और नेपालेक्षु।

करङ्क-शालि मधुर, शीतल, रुचिकारक, मृदु, पित्त-नाशक, दाहनाशक, वृष्य, तेज एवं बलवर्द्धक है। पर्य्या०—करङ्कशालि, इक्षुवाटि, इक्षुवाटिका, यावनी, इक्षुयोनि, रसाली और रसदालिका।

कृष्णेक्षु (काली ईख) मधुर, पाक में मीठा, सुहृद्य, कटुक, रसाढ्य, त्रिदोष-नाशक, शमवीर्य्यद, अत्यंत बलप्रद और वीर्य्यप्रद है। पर्य्या०—कृष्णेक्षु, इक्षुर, श्यामेक्षु, कोकिलाक्षक, श्यामवंश, श्यामलेक्षु, और कोकिलेक्षु।

लोहितेक्षु (लाल ईख) पाक में मीठी, शीतल, मृदु, पित्तनाशक, दाह-नाशक, वृष्य, तेज एवं बलवर्द्धक है। पर्य्या०—रक्तेक्षु, सूक्ष्म पत्र, शोण, लोहित, उत्कट, मधुर, ह्रस्वमूल, लोहितेक्षु।

मूल से ऊपर मधुर, बीच में अति मधुर और ईख का अगला हिस्सा क्रमशः लवण रसयुक्त एवं नीरस अर्थात् फीका होता है।

ईख के तीन गुण

बिना खाए ईख का रस सेवन करने से पित्त का नाश होता है; भोजन करने के उपरांत इसके सेवन से वात प्रकुपित होता है और खाने के बीच सेवन करने से यह गुरुतर होता है, इस प्रकार ईख में तीन गुण होते हैं। (रा० नि० पानीयादि १४ व०)

ईख रस और पाक में मधुर, वातकारक, स्निग्ध, भारी, मूत्रल, शीतल, वीर्य्यवर्द्धक, बलप्रद, कफकारक, पुष्टिकारक, तृप्तिजनक, कृमिजनक, कांतिदायक, आनन्दप्रद तथा दस्तावर है और रक्त एवं वात-पित्त के रोगों को नष्ट करता है। वै० निघ०। ईख जड़ की तरफ और बीच में मधुर और आगे के भाग तथा ग्रन्थि अर्थात् पोरों पर लवण रस युक्त होती है। बालेक्षु (कच्ची ईख) कफकारक, मेदजनक और प्रमेहजनक है। युवा अर्थात् पकी ईख वातनाशक, मधुर पित्तनाशक और ईषत्तीक्ष्ण होती है। भा०। राज०।

ईख का रस—मीठा है और शीत वीर्यत्व के कारण वात को बढ़ाता है। (सु० सू० ४० अ०)

ईख का रस—भारी, स्निग्ध, बृंहण, कफकारक, मूत्रवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, शीतल, रक्तपित्त-नाशक, स्वादुपाकी, रस में मीठा और दस्तावर है। (चक्रपाणि)

इसके अग्रभाग के रस के गुण—इसके अगले भाग का स्वाद लवण रसयुक्त, मध्यकांडका मधुर और मूल, अग्र एवं पोरों का मधुर, अम्ल और लवण होता है। कोल्हू में पेलकर निकाला हुआ रस विदाही होता है। (हेमाद्रि, चक्रपाणि)

कोल्हूमें पेरा हुआ रस भारी, वृष्य, कफकारक शीतल, पाक में विदाही, बलकारक तथा सुशोभन है। सेवन करने से रक्त-पित्त के रोगों को नष्ट करता है। दाँत से चूसा हुआ रस रुचिकारक, भारी, संतर्पण बलकारक, कफकारक, श्रमघ्न, विष्टंभकारक, पित्त एवं रुधिर के दोषों को नष्ट करता और सभी प्रकार के वमन एवं शोष रोगों को दूर करता है।

पर्य्युषित रस ठीक नहीं, यह तापहर, भारी, कफ-पित्तकारक, शोषी, भेदन और मूत्रल है।

पक्वरस—अधिक भारी स्निग्ध, सुतीक्ष्ण एवं कफवात-नाशक है और पित्तनाशक होते हुए भी विशेषतया गुल्म, अतिसार और कासनाशक है।

फाणित रस—गुरु, अभिष्यंदी, बृंहण, शुक्रल

पित्त-नाशक, श्रमहर और रक्त-दोष निवारक है। (अत्रि० १० अ०)

पौण्ड्रक पौंड़ा एवं भीरुक वायु और पित्त को मिटाता है। इसका रस और गुड़ मधुर, अति शीतल तथा बलवर्धक है।

कोशकार—कुशिआर गुरु, शीतल और रक्त तथा पित्त को नाश करनेवाला है।

कान्तार—केतारा गुरु, वृष्य, कफकारक, बृंहण और दस्तावर है।

दीर्घपोर—बडौखा अति कठिन होता है।

वंशक—क्षार लवणाक्त है। शतपर्वा—कुछ-कुछ कोशकार के गुण रखता है। विशेषता इतनी है कि यह किंचित् उष्ण, क्षारीय और वायु-नाशक भी है।

तापसेक्षु—मृदु, मधुर, श्लेष्मा प्रकोपक, प्रीतिप्रद (तर्पण), रुचिजनक, वीर्य-वर्द्धक एवं शक्ति-वर्द्धक है।

काण्डेक्षु के भी उपर्युक्त गुण हैं। परंतु यह वात-प्रकोपक होती है।

सूचीपत्र, नीलपोर, नैपाली और दीर्घपत्रक वातकारक, कफ-पित्त-नाशक, कसेला और विदाही होते हैं।

मनोगुप्ता वातनाशक तथा प्यास के रोगों को दूर करनेवाली है और यह सुशीतल, अत्यंत मधुर एवं रक्तपित्त प्रणाशिनी है। (भा० प्र०)

ईख के प्रयोग

आयुर्वदीय मतानुसार—

चरक-(१) मूत्रकरत्व में इक्षु—मूत्रजनक द्रव्यों में ईख श्रेष्ठ है। यथा—

"इक्षुर्मूत्रजननानाम्"।

(सू० २५ अ०)

(२) रक्तपित्त में इक्षु-ईख का रस रक्तपित्त नाशक है। यथा—

"मधूदकस्येक्षुरसस्य चैव।
पानाच्छमं गच्छति रक्तपित्तम्"॥

(चि० ४ अ०)

(३) नासिका द्वारा रक्तस्राव होने में इक्षु—नाक द्वारा रक्तस्राव होने पर अर्थात् नकसीर फूटने पर ईख के रस का नस्य हितकर है। यथा—

"द्राक्षारसस्येक्षुरसस्यनस्यम्"।

(चि० ४ अ०)

(४) ग्रहणी रोग में इक्षु—ईख के रस का आसव ग्रहणी रोग में हितकर है। यथा—

"तद्वद् द्राक्षेक्षु खर्जूरस्वरसानासुतान् पिबेत्"।

(चि० १६ अ०)

नोट—आसव बनाने की विधि-ईख का रस अर्द्धावशेष रहने तक पकाएँ पुनः उतारकर ठंढा होने दें। ठंढा होने पर उसमें उससे चौथाई मधु मिलाकर मिट्टी के पात्र में मुख ढाँककर रखें। इसीको इक्षुरसासव वा आसुत इक्षुरस कहते हैं।

सुश्रुत-(१) पाण्डुरोग में इक्षु—जौ, तंडुल, लाजा और कलाय के चूर्ण को सत्तू (शक्तू) कहते हैं। इनमें से कोई एक सत्तू कच्चे आँवले व ईख के रस और मधु के साथ पाण्डु रोगी को सेवन कराएँ।

नोट—वनौषधि दर्पणकार कृत वर्णन है। टीकाकारों ने इसका दूसरा ही अर्थ किया है। यथा—

"धात्रीफलानां रसमिक्षुजञ्च।
मन्थं पिबेत् क्षौद्रयुतंहिताशी॥"

(उ० ४४ अ०)

(२) क्षतजन्य कास में इक्षु—क्षतजनित खाँसी में चौगुने ईख के रस में पकाया हुआ गाय का घी पिलाना चाहिए। यथा—

"क्षतोत्थे पिबेद् घृतञ्चेक्षुरसे विपक्वम्।"

(उ० ५२ अ०)

वाग्भट्ट-अग्निविसर्प में इक्षु—अग्निविसर्प रोग में शरीर को ईख के रस से सेचन करें। यथा—

"सेचयेत् ❀ ❀ इक्षु रसेनवा।"

(चि० १८ अ०)

नव्यमत

ईख का रस जल में चूने की द्रवीभवन क्रिया बर्द्धित करता है। यह उपादेय मेदवर्द्धक खाद्य है। अतएव स्वास्थ्यानुवर्तन के लिए शर्करा या ऐसा खाद्य जिसमें शर्करा पड़ी हो, नितांत आव-

श्यक है। खाद्य में शर्करा का अत्यन्त अभाव होने से शरीर शीर्ण हो जाता है।

(आर० एन० खोरी मेटीरिया मेडिका भ० २, पृ० ६४३)।

यूनानी मतानुसार–प्रकृति–गरम तर द्वितीय कक्षा में। किसी-किसी के अनुसार इसमें एतदाल के साथ गर्मी है। हानिकर्त्ता–यह आध्मानकारक है। अधिक सेवन से क्षुधा मंद पड़ जाती है और आमाशय विकार हो जाता है। आर्द्र प्रकृति एवं बुड्ढों के फेफड़ों के लिये हानिकर है। दर्पघ्न—आमाशय और फुफ्फुस के लिए अनीसून और आध्मानके लिये मस्तगी और आँवला। वैद्य लोग कहते हैं कि इसका दर्पनाशक अदरक और बालछड़ है। किसी-किसी ने ईख को आग या भूभल में भूनकर या छीलकर तथा गरम पानी से धोकर खाने के लिये लिखा है। ईखं चूसकर यदि दाँतों पर नमक मल लें, तो यह विकार दूर हो जाय।

गुण-कर्म– ईख खून में लताफ़त पैदा करती है और अवरोधोंको उद्घाटित करती है। फुफ्फुस की कर्कशता (खुशूनत) को दूर करती तथा खाँसी निवृत्त करती है। इससे पाखाना खुलकर आता है और यह कामोद्दीपन करती, रक्त शुद्ध करती है एवं पेट की जलन वा दाह दूर करती है। इसका अधिक सेवन, विशेषकर भोजनोपरांत आध्मानकारक, वायुकारक एवं आमाशय हानिकर है। गन्ने के रस को पका लेने से. इसका आध्मानकारक दोष दूर हो जाता है। इसका रस अधिक पीने से भूख कम हो जाती है और इससे दस्त आते हैं। इसे पीकर कै करने से श्लेष्मा का शोधन होता है। इसके रस में चावल पकाकर खाने से शरीर का वृंहण होता है और इससे चित्त प्रफुल्लित होता है। इसमें जौ की हरी पत्ती का रस मिलाकर पीने से असंख्य दस्त आते हैं।

गन्ने के रस में संशोधन तथा निर्मलकारी गुण मधु से कम नहीं, बल्कि कोष्ठमृदुकरण के पक्ष में यह शहद से बढा-चढ़ा है। यह आमाशयस्थ वायुप्रकोप का निवारण करता, उसकी अम्लता घटाता और उससे मिलकर वमनोद्गार निकलने पर आमादा करता है। गन्ने के ऊपर जो निर्यासवत् शर्करा पाई जाती है, वह दस्तावर है। रात में भोजनोपरांत गन्ना चूसना चाहिए। जिनको प्रमेह रोग हो, पाचनशक्ति निर्बल हो, पेट बड़ा हो, पीनस रोग हो, शरीर में श्लेष्मा का प्राबल्य हो, पेट में कीड़े हों, मुख से दुर्गन्धि आती हो और भोजनोपरांत क़ै हो जाती हो एवं भगंदर का रोग हो, ऐसे मनुष्य को गन्ना अहितकर है।

गन्ने के रस में अनार का रस मिलाकर पीने से रक्तातिसार बन्द हो जाता है। इसका रस पिलाने से कड़वे पानी की क़ै बन्द होती है। पैत्तिक वमन निवृत्यर्थ केवल गन्ने का रस अथवा उसमें शहद मिलाकर पिलाना चाहिये। गन्ने के रस में आमले का रस मिलाकर पिलाने से सूजाक अच्छा हो जाता है। इसका रस सुँघाने से नक्सीर में लाभ होता है। हड़ का चूर्ण फाँककर ऊपर से इसका रस पीने से गलगंड की गाँठें विलीन हो जाती हैं। यदि गला बैठ गया हो, तो इसको भूभल में सेंककर चूसने से लाभ होता है।

इसकी जड़ पीसकर काँजी के साथ पीने से स्त्री का दूध बढ़ता है। (ख० अ०)

इक्षु-विकार अर्थात् गुड़ प्रभृति के गुण-धर्म

(१) फाणित

फाणित भारी, अभिष्यंदी, वृंहण, कफ तथा शुक्र जनक है और वात, पित्त, भ्रांति का निवारण करता और मूत्रल एवं वस्तिशोधक है। वि० दे० "फाणित"।

(२) मत्स्यण्डी

मत्स्यंडी भेदक, वलकारक, हलकी, पित्त तथा वायुनाशक, मधुर, वृंहण, वृष्य और रक्त-दोष नाशक है। वि० दे० "मत्स्यण्डी"।

(३) गुड़

गुड़ वृष्य, भारी, स्निग्ध, वातनाशक, मूत्र शोधक और अति पित्तहर नहीं, मेद, कफ तथा क्रिमिकारक और वलकारक है।

पुराना गुड़ हलका, पथ्य, अनभिष्यन्दी, जठराग्नि वर्द्धक, पित्तनाशक, मधुर, वृष्य, वात नाशक और रक्त प्रसादक है।

नया गुड़ कफ-कारक, श्वासकारक कृमिजनक तथा जठराग्निकारक है। सदा अदरक के साथ यह तत्क्षण कफ का नाश करता है। उसी प्रकार हड़ के साथ पित्त और समान भाग सोंठ के साथ वात का पूर्णतया नाश करता है। इस प्रकार वात-पित्तकफ इन तीनों दोषों के हरणकर्त्ता गुड़ को नमस्कार है। वि० दे० "गुड़"।

(४) खंड वा खाँड़

खाँड़ मधुर, वृष्य, नेत्र को हितकारक, वृंहण और शीतल है तथा वात पित्त नाशक, स्निग्ध, वल्य और परम वायुनाशक है। दे० "खण्ड"।

(५) शर्करा वा चीनी

'सिता' चीनी सुमधुर, रुचिकर, वात, पित्त, रक्त तथा दाह नाशक है और मूर्च्छा, वमन एवं ज्वर का नाश करती है तथा अत्यन्त शीतल और शुक्र जनक है। (भावप्रकाश:) वि० दे० "शर्करा"।

ईखराज-संज्ञा पुं० [हिं० ईख+राज] ईख बोने का पहिला दिन।

ईखरी-संज्ञा स्त्री० [देश० उ० प० सू०] (Saccharum officinarum, *Linn.*) इक्षु। ईख।

ईखसार-संज्ञा पुं० [सं० इक्षुसारः] दे० "इक्षु-सार"।

ईग एङ्गिलि कूर-[ता०] (Mentha sativa, *Linn.*) पुदीना। रोचनी।

ईग्ल-[अं० Eagle] गिद्ध। उक़ाब।

ईग्ल मार्मेलोज़-[ले० Eagle marmelos] बिल्व। बेल का पेड़।

ईग्ल वुड-[अं० Eagle wood] अगर। ऊद।

ईङ्गुर-संज्ञा पुं० दे० "ईंगुर"।

ईचङ्कल्लु-[ता०] (Toddy of phoenix sylvestris) सेंधी। खजूर की ताड़ी।

ईचञ्चाड़ायम्-[ता०] (Liquor of phœnix sylvestris) सेंधी की शराब। खजूर मद्य।

ईच्चवेल्लम्-[ता०] (Jaggery of phœnix sylvestris) सेंदी का गुड़। संदोले का गुड़।

ईश्चुरमूलि-[ता०] (Aristolochia indica, *Linn.*) इशरमूल। रुद्रजटा। जरावंदे हिंदी।

ईज़ा-संज्ञा स्त्री० [अ० ईज़ा] दुःख। तकलीफ। पीड़ा। कष्ट।

ईज़ारून-[रू०] मत्स्य। मछली। (Pisces) Fish.

ईजिप्शन ऑइण्टमेण्ट-[अं० Egyption ointment) मिस्रीय प्रलेप। दे० "ताँबा"।

ईजिप्शन माइरोबैलन-[अं० Egyptian myrobalan] इङ्गुदी। हिंगुआ। हिंगोट।

ईजिप्शन लोटस-[अ० Egyption lotus] कमल। पद्म।

ईज्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भूमि। पृथ्वी। (२) गो। गाय। वै० निघ०।

ईडन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] प्रशंसा। तारीफ।

ईड़नपन-[मल०] (Caryota urens, *Linn.*) माड़ी। माड। दे० "माडद्रुम"।

ईडबोल-[?] दे० "इड़वोल"।

ईड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार की नाड़ी। दे० "इड़ा"। (२) स्तुति। प्रशंसा। तारीफ़।

संज्ञा स्त्री० [?] नारंगी।

ईड़ाकुल पुन्ना-संज्ञा पुं० [?] (Bombax malabaricum, *D. C.*) शाल्मली। सेमल का पेड़।

ईडा छाल-[द०] नारंगी का छिलका।

ईडा फल-
ईडावत- } संज्ञा पुं० [?] नागरंग। नारंगी।

ईड्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Phyllanthus niruri, *Linn.*) भूम्यामलकी। तामलकी। भूईं आमला। यथा—"गोपीड्यामलकी"।

ईत-संज्ञा स्त्री० [?] बनमक्षिका। डाँस।

ईत कल्लु-[ते०] (Toddy of phoenix sylvestris) सेंधी। खजूर की ताड़ी।

ईत कल्लु-काडि-[ते०]
ईत काडि-[ते०] } Vinegar of the palm-wine or the toddy of phoenix sylvestris) सेंधी का सिरका। खजूर की ताड़ी का सिरका।

ईत चेट्टु–[ते०] (Phœnix sylvestris, *Roxb.*) संदोले का पेड़। जंगली खजूर का पेड़।

ईत बेल्लमु–[ते०] (Jaggery of phoenix sylvestris) सेंदी का गुड़। खजूर का गुड़।

ईतर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इत्र। अतर। पुष्पसार।

ईत-साराथि–[ते०] (Liquor of phoenix sylvestris) सेंदी की शराब। खजूर की ताड़ी का मद्य।

ईता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सेंधी का पेड़।

ईति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) डिम्ब। मे०। (२) खेती को हानि पहुँचानेवाले उपद्रव। ये छः प्रकार के हैं—(क) अतिवृष्टि। (ख), अनावृष्टि, (ग) शलभ अर्थात् टिड्डी पड़ना, (घ) मूषिक अर्थात् चूहे लगना, (च) शुक अर्थात् पक्षियोंकी अधिकता और (छ) दूसरे राजा की चढ़ाई। यथा—

"अतिवृष्टिर नावृष्टिः शलभा मूषिकाः शुकाः।
अत्यासन्नाश्च राजानः षड़ेते ईतयः स्मृताः॥"

(३) बाधा। (४) पीड़ा। दुःख। कष्ट।

ईतिसार–[अ०] (Union of Fracture) टूटी हुई हड्डी का जुड़ जाना। अस्थि-संधान।

ईती–[ता०] (Dalbergia sisoo, *Roxb.*) शीशम। शिंशपा।

इंतूलीस–[यू०] एक अज्ञात बूटी।

ईथर–संज्ञा पुं० [अं० Ether] (१) एक प्रकार का अति सूक्ष्म और लचीला द्रव्य वा पदार्थ जो समस्त शून्य स्थल में व्याप्त है। यह अत्यंत घन पदार्थों के परमाणुओं के बीच में भी व्याप्त रहता है। उष्णता और प्रकाश का संचार इसी के द्वारा होता है। आकाश। सदीम (अ०)। (२) एक वर्ण रहित, हलका, उड़नशील रासायनिक द्रव पदार्थ जो अलकोहल और गंधक के तेज़ाब से बनता है।

ऑफ़िशल (*Official*)

रासायनिक संकेत सूत्र ($C_4 H_{10} O$), *S. G.* ·720.

पर्य्या०—ईथर Aether, Ether (ले०)। सल्फ्युरिक ईथर Sulphuric Ether, इथिलिक ईथर Ethylic Ether, ईथिल ऑक्साइड Ethyl oxide (अं०)।

कल्पित तिब्बी नाम—

ईस़ र, ईस़ीर (मुअ०)। ईसीरुल् क़िब्रीती (अ०)। ईस़ र गोगिर्दी (फ़ा०)। ईथर (हिं०, उ०)।

नोट—यूनानी भाषा में ईथर का अर्थ 'आकाश' वा 'सूक्ष्म वायु अर्थात् भौगोलिक वायु मंडलसे ऊपर की वायु है। परंतु पश्चात् कालीन यूनानी पंडितों ने इस पद का प्रयोग कल्पित रूह के लिए किया है, जो उनके विश्वास के अनुसार सम्पूर्ण सचराचर जगत के जीवन का मूल कारण है। प्राचीन-अर्वाचीन रसायन-शास्त्री इस शब्द (ईथर) का प्रयोग एक ऐसे द्रव के लिए करते हैं जो अत्यंत उड़नशील एवं ज्वलनशील होता है और जो एलकोहल और सल्फ्युरिक एसिड (गंधकाम्ल) दोनों को मिश्रित कर परिस्रुत करने से तैयार होता है। किसी-किसी के विचार से यह अरबी "इ़त्र" शब्द से व्युत्पन्न है और सारवाचक है।

निर्माण-विधि—पहले बोतल में अलकोहल और गंधक का तेजाब बराबर मात्रा में मिलाकर भरते हैं। फिर आँच द्वारा इसे दूसरी बोतल में टपका लेते हैं, यही ईथर कहलाता है। गन्धकाम्ल मद्यसार के जलांश को पृथक् कर देता है, और शेष ईथर रहता है। ईथर मानो जलांश रहित मद्यसार है।

लक्षण—यह बहुत शीघ्र जलनेवाला पदार्थ है खुला रखा रहने से यह बहुत जल्द उड़ जाता है और बहुत शीत पैदा करता है। यह वर्ण रहित होता है जिसका स्वाद तीव्र और गंध भी विशेष प्रकार की और तेज़ होती है। जलते समय इसकी लौ सफ़ेद रंग की होती है। १०५° दरजा फारनहाइट से कम दरजे के तापपर यह उबलने लगता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ·७३५ और क्थनांक ५° श० है।

नोट—खास ईथर में ६२ प्रतिशत (द्रव्य मान के हिसाब से) ईथिलिक ऑक्साइड और ८ प्रतिशत ईथिलिक अलकोहल होना चाहिये।

ईथर दो प्रकार का होता है—(१) मीथिल ईथर (Methyl Ether) अर्थात् मीथिल मद्यसार और गन्धकाम्ल की प्रतिक्रिया से बननेवाला और (२) ईथिल ईथर (Ethyl Ether) अर्थात् ईथिल मद्यसार और गंधकाम्ल से प्राप्त होनेवाला। परन्तु जब साधारण रूप में 'ईथर' शब्द प्रयुक्त हो, तो ईथिल ईथर ही अभिप्रेत हुआ करता है।

विलेयता—अलकोहल (९०%), क्लोरोफॉर्म और उड़नशील तैलों में ईथर सहज में ही विलीन हो जाता है, परन्तु जल में अल्प विलेय होता है।

मिश्रण या खोट—जल, एलकोहल, ऑइल ऑफ वाइन और सल्फ्युरिक एसिड (गंधकाम्ल) इत्यादि।

परीक्षा—यह क्लोरोफॉर्म का सा होता है, परन्तु विशेष प्रकार की उग्र गंध और अग्नि संसर्ग से शीघ्र जल उठना इसके मुख्य परिचायक चिह्न हैं।

शुद्ध ईथर की पहचान—निम्नोल्लिखित प्रयोगों द्वारा यह बात सहज में ही ज्ञात हो सकती है। कि ईथर शुद्ध है वा अशुद्ध।

(१) ईथर को फिल्टर कागज पर डालने के उपरांत जब वह बिलकुल उड़ जाय तब उस कागज में किसी प्रकार की गंध शेष न रहनी चाहिए। पर यदि ईथर में फ्युसल ऑइल या उसके यौगिकों का मिश्रण हो तो उक्त कागज़ पर जरा सी गंध शेष रह जाती है।

(२) यदि ५ घन शतांशमीटर ईथर को वाष्पीभूत किया जाय तो उसके प्रभाव से लिट्मस पेपर (नीले रंग का काग़ज) लाल नहीं होना चाहिए। परन्तु उस अवस्था में जब ईथर में गंधकका तेज़ाब या सल्फ्युरस एसिड या एसीटिक एसिड का मिश्रण न हो।

(३) ईथर में एल्डिहाइड और विनाइल एलकोहल मिश्रित न होने पर यदि उसमें कॉष्टिक पोटाश मिलाकर आध घंटे तक रखा जाय तो उसमें किसी प्रकार का पीला रंग नहीं पैदा होना चाहिये।

(४) यदि ईथर में ऑक्साइड ऑफ हाइड्रोजन का मिश्रण न हो तो उसे और पोटासियम आयोडाइड के विलयन को परस्पर मिश्रित कर पूरा एक घंटा पर्यन्त धूप में रखने से किसी प्रकार का पीला रंग नहीं पैदा होना चाहिए।

सूचना—ईथर को सदा काले रंग की बोतल में भर कर अँधेरे में रखना चाहिए, क्योंकि वायु तथा प्रकाश के प्रभाव से उसके संयोजक द्रव्य विश्लेषित हो जाते हैं।

प्रभाव—सार्वदैहिक व्यापोत्तेजक, अवसन्नताजनक, मादक और निद्राजनक।

मात्रा—जब बार-बार देना हो तब १५ से ३० मिनिम तक और जब केवल एक ही बार देना हो तब इसे ४५से ६० मिनिम तक जल या शर्बत में मिलाकर प्रयुक्त करें।

नोट—कोलोडियम्, फ्लेक्साइल, टिंक्चर लोबीलिई ईथरिया में एवं एक्सट्रेक्ट फिलिसिस लिक्विड तथा एक्सट्रैक्ट व टिंक्चर स्ट्रौफैन्थस के प्रस्तुत करने में और निम्न योगों में ईथर पड़ता है।

ऑफ़िशल योग

(*Official preparations.*)

(१) ईथर प्योरिफिकेटस Aether purificatus–लै०। प्योरिफाइड ईथर Purified ether-अं०। विशुद्ध ईथर-हिं०। ईस़ीर मुस़ह़ह़ह़, ईस़ीर नक़ी–अ०। साफ़ किया हुआ ईथर।

निर्माण-विधि—परिस्रुत वारि द्वारा ईथर में से ईथिलिक अलकोहल भिन्न करके पुनः उसे कैल्सियम क्लोराइड और ताज़ा चूने के साथ परिस्रावित करते हैं। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ·७२० होता है तथा यह ९४·१ अंश फारनहाइट से न्यून उत्ताप पर परिस्रुत नहीं होता।

यह स्थानिक तथा सार्वदैहिक अवसन्नताजनक रूप से प्रयोग में आता है।

(२) स्पिरिटस ईथरिस Spiritus aetheris –लें०। स्पिरिट ऑफ ईथर Spirit of ether –अं०। रूहुल् ईसीर। रूह ईथर।

निर्माण-विधि—ईथर १ भाग, अलकोहल (९०%) २ भाग, दोनों को परस्पर मिला लें। यह एक वर्ण रहित द्रव होता है जिसका आपेक्षिक गुरुत्व ·८०६ से ·८११ तक होता है।

मात्रा—२० से ४० मिनिम (१·२ से २·४ घन शतांशमीटर) जब बार-बार देना हो, और ६० से ९० मिनिम तक (४ से ६ घन शतांशमीटर) जब एक ही बार प्रयुक्त करना हो।

नोट—यह टिंक्चर लोबीलिई ईथरिया में पड़ता है।

(३) स्पिरिटस ईथरिस नाइट्रोसाई Spiritus aetheris nitrosi–लें०। स्पिरिट ऑफ नाइट्रस ईथर Spirit of nitrous ether, स्वीट स्पिरिट ऑफ नाइटर Sweet spirit of nitre–अं०। दे० "ईथरिस नाइट्रोसाई स्पिरिटस"।

(४) स्पिरिटस ईथरिस कम्पोज़िटस Spiritus aetheris compositus–लें०। कम्पाउंड स्पिरिट ऑफ़ ईथर Compound spirit of ether, हॉफमैन्स एनोडाइन Hoffman's anodyne–अं०।

निर्माण-विधि—ईथर ५½ फ्लुइड आउंस, अलकोहल (९०%) ७८ फ्लुइड आउंस, सल्फ्युरिक एसिड ३६ फ्लुइड आउंस, परिस्रुत वारि १½ फ्लुइड आउंस और सोडियम बाई कार्बोनेट आवश्यकतानुकूल। प्रथम सल्फ्युरिक एसिड को ४० फ्लुइड आउंस अलकोहल में मिश्रित कर २४ घंटे तक पड़ा रहने दें। पुनः इसको धीरे धीरे परिश्रुत करें। इस प्रकार जो कुछ प्राप्त हो उसको सैपेरेटर में रखकर अधःस्थित द्रव भाग को पृथक् कर लें और ऊपर के द्रव भाग में परिस्रुत वारि और उतना सोडियम बाई कार्बोनेट मिला दें, कि इसकी प्रतिक्रिया न्यूट्रल (उदासीन) हो जाय। फिर जितना ईथरीय द्रव पृथक् हो उसमें ३८ फ्लुइड आउंस अलकोहल और ईथर मिलाकर इसको फिल्टर करलें अर्थात् छान लें। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ·८०८ से ·८१२ तक होना चाहिए।

मात्रा—१० से ४० बूँद तक=(·६ से २·६ घन शतांश मीटर) यदि पुनः-पुनः प्रयोजित करना हो और यदि एक ही बार प्रयुक्त करना हो तो ६० से ९० बूँद तक=(४ से ६ घन शतांशमीटर) दें।

नॉट ऑफिशल योग
(*Not official preparations.*)

(१) ईथर मेथीलेटस (Aether methylatus)–लें०।

इसको मेथीलेटेड अलकोहल से बनाते हैं। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ·७१७ होता है। इसको अधिकतया स्थानीय स्पर्शाज्ञताजनन हेतु स्प्रे (आलापाश यंत्र) द्वारा प्रयुक्त करते हैं और सुँघाते भी हैं।

(२) स्पिरिटस ईथरिस म्युरिएटिकस Spiritus aetheris muriaticus–लें०। सेलिस डल्सिस Salis dulcis, क्लुटन्स फ़ेब्रिफ्यूज स्पिरिट Clutton's febrifuge spirit–अं०।

यह भी एक प्रकार का वर्णरहित द्रव है जिसका आपेक्षिक गुरुत्व ·८६० होता है। यह एक अत्यन्त प्राचीन यौगिक है जिसको अब भी कतिपय डॉक्टर ज्वर और प्रतिश्याय में प्रयुक्त करते हैं।

ईथर की फार्माकालॉजी अर्थात्
इसके प्रभाव

नोट—प्रभाव में ईथर क्लोरोफॉर्म के समान होता है।

बहिः प्रभाव

अत्यंत अस्थिर स्वभाव होने के कारण ईथर त्वचा पर डालते ही चट वाष्पीभूत होजाता है और शरीर के जिस भाग पर डाला जाता है उस भाग के संवेदन-सूत्रों के अंतिम छोरों को बिलकुल वातग्रस्त एवं अवसन्न कर देता है। उक्त स्थल की त्वचा शीतल तथा कठिन होजाती और रक्त केशिकाओं के सिकुड़ जाने से उसकी रंगत सफ़ेद हो जाती है। इसलिए यह एक स्थानीय-शैत्य-

जनक एवं अवसन्नताकारक है। यदि स्थानीय शीतलता वा सरदी को अधिक काल तक स्थिर रक्खा जाय तो वह स्थल संज्ञाशून्य हो जाता है। अतः त्वचा पर लगाकर वा पिचकारी द्वारा दन्तमांसादि पर छिड़ककर छोटे-छोटे शस्त्रकर्म सुखपूर्वक किये जा सकते हैं। पर यदि क्लोरोफॉर्म वा अलकोहल के समान ईथर को त्वचा पर मर्दित किया जाय अथवा इसे इस भाँति प्रयोजित किया जाय जिसमें यह उड़ने न पाए तो उक्त स्थल को अवसन्न करने के स्थान में यह उस भाग को सुर्ख़ कर देता एवं वहाँ पर छाला डाल देता है।

आंतरिक प्रभाव

मुख—मुँह में इससे एक विशेष प्रकार के अप्रिय एवं प्रदाहयुक्त स्वाद की अनुभूति होजाती है और उसकी परावर्तित चेष्टा द्वारा लालास्राव की वृद्धि होती है।

आमाशयांत्र—यह शीघ्र अभिशोषित होजाता और आमाशयकी रक्तवाहिनियों, नाड़ियों और मांसतंतुओं को गति प्रदानकर आमाशयिक रस की अभिवृद्धि एवं वायु प्रवृत्ति का कारण होता है। इसलिए ईथर आमाशयोत्तेजक एवं वायु निःसारक हैं। परावर्त्तित रूप से यह अँतड़ियों, हृदय और फुफ्फुस पर उत्तेजक प्रभाव करता है तथा यह आंत्राक्षेप शामक भी है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह यकृत और क्लोम की क्रिया को भी उत्तेजित करता है।

हृदय और फुफ्फुस—हृदय और फुफ्फुस पर यह प्रत्यक्ष और परावर्त्तित दोनों प्रकार से उत्तेजक प्रभाव करता है। अस्तु, हृदय की गति व शक्ति तथा रक्तभार बढ़ जाता है एवं नाड़ी व श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ जाती है। इसलिए यह एक उत्तम हृदयोत्तेजक है।

वात-संस्थान—क्लोरोफॉर्म के समान वात-संस्थान पर ईथर का सार्वांगीय अवसन्नताजनक (पूर्ण अचेतकारक) प्रभाव होता है। इसलिए शस्त्रक्रियाओंमें बेहोशी पैदा करने के लिए, विशेषतः इंगलैंडमें अब इसका प्रचुर प्रयोग होता है। इसके सूँघनेसे मास्तिष्कशक्तियाँ क्रियाशून्य हो जाती हैं जिससे मनुष्य पूर्णतः अचेत हो जाता है। इससे परावर्तित चेष्टाएँ बिलकुल नष्ट हो जाती हैं। आँख की पुतलियाँ प्रथमतः किसी भाँति संकुचित, पर बादको किसी प्रकार प्रसरित दिखाई देती हैं। सौषुम्न-केन्द्रों पर क्लोरोफॉर्म के विपरीत ईथर का किसी भाँति उत्तेजक प्रभाव होता है। पर यदि असावधानता से इसका प्रयोग किया जाय, तो श्वासोच्छ्वास केन्द्र के वातग्रस्त हो जाने से मृत्यु उपस्थित होती है। वात-मंडल पर ईथर निम्नोल्लिखित क्रम से प्रभाव करता है—

प्रथमतः इसका प्रभाव मस्तिष्क पर होता है, पुनः सौषुम्न-संवेदन-केन्द्रों पर, तदनन्तर सौषुम्न गत्युत्पादक केन्द्रों पर।

पाठकों के लाभार्थ यहाँ ईथर तथा क्लोरोफॉर्म के कतिपय मुख्य-मुख्य गुणों की तुलनात्मक व्याख्या की जाती है—

(१) ईथर को अधिक शुद्ध मात्रा में देना पड़ता है। जैसे–३० प्रतिशत वायु के साथ ७० प्रतिशत ईथर-वाष्प होना चाहिये। इसलिये ईथर का सूँघना कठिन प्रतीत होता है। परन्तु क्लोरोफॉर्म को शुद्ध नहीं देना पडता, प्रत्युत इसे बहुत हलका करके देते हैं। उदाहरणतः ९५ से ९७ प्रतिशत वायु के साथ ३ से ५ प्रतिशत क्लोरोफॉर्म-वाष्प होता है।

(२) ईथर ज्वलनशील है। अस्तु इसे अग्नि से सुरक्षित रखना चाहिये। पर क्लोरोफॉर्म ज्वलनशील नहीं।

(३) ईथर अप्रिय गंधि होता है। इसके विपरीत क्लोरोफॉर्म प्रिय गंधि होता है।

(४) अचेत करने के लिये ईथर अधिक परिमाण में देना पड़ता है। अस्तु, डॉक्टर ह्विट्ला ने एक रोगी के अचेत करने में १॥ पौंड ईथर का प्रयोग किया। परन्तु इस अभिप्राय के लिये क्लोरोफॉर्म की थोड़ी मात्रा ही सुँघाना पर्याप्त होता है। अस्तु एक रोगी के बेहोश करने के लिये यह ३ ड्राम से १ आउंस तक काफ़ी होता है।

(५) ईथरजन्य उत्तेजना का प्रभाव अधिक काल तक रहता है। इसलिए रोगी अधिक समय

तक हाथ पाँव मारता रहता है। परन्तु क्लोरोफॉर्म से ऐसा नहीं होता ।

(६) ईथरजन्य अचेतता बहुत गंभीर नहीं होती और न वह अधिक काल तक स्थिर रहती है। परन्तु क्लोरोफॉर्म से जो बेहोशी पैदा होती है वह अति गंभीर एवं पूर्ण होती है ।

(७) ईथर से शारीरोष्मा बहुत घट जाती है। परन्तु क्लोरोफॉर्म से शारीरिक ताप अति ही अल्प मात्रा में कम होता है ।

(८) आमाशय की अपेक्षा वायु प्रणाली में ईथर से अधिक ख़राश होती है। अस्तु यदि रोगी कास पीड़ित हो तो उसकी खाँसी बढ़ जाती है। पर क्लोरोफॉर्म से वायुप्रणाली में अधिक क्षोभ न होकर आमाशय में अधिक ख़राश होती है ।

(९) ईथर से फुफ्फुस संबन्धी व्याधियाँ, जैसे—कास व फुफ्फुसौष (न्युमोनिया) इत्यादि हो जाते हैं। परन्तु क्लोरोफॉर्म से किसी प्रकार की फुफ्फुस सम्बन्धी व्याधियाँ नहीं उत्पन्न होतीं ।

(१०) ईथर शरीर से बहुत धीरे-धीरे उत्सर्जित होता है। इसलिये अधिक काल तक रोगी से इसकी गंध आती रहती है। परन्तु क्लोरोफार्म के शरीर से शीघ्र विसर्जित होजाने के कारण अधिक समय तक रोगीके शरीर से इसकी गंध नहीं आती ।

(११) ईथर-आघ्राण-काल में अर्थात् ईथर सूँघते समय निर्बल हृदयवाले रोगियों के अचेत होकर मरजाने की कम आशंका रहती है । परन्तु क्लोरोफॉर्म सूँघते समय निर्बल हृदयवाले रोगियों के मूर्च्छित होकर मर जाने की अधिक सम्भावना होती है ।

(१२) ईथर से चूँकि मस्तिष्कस्थ श्वास-प्रश्वास एवं हृदय-केन्द्र और स्वगीया रक्तवाहिन्युत्तेजक केन्द्र वातग्रस्त नहीं होते। इस लिए ईथर एक निरापद अवसन्नताजनक औषध है। परन्तु क्लोरोफॉर्म से चूँकि श्वासोच्छ्वास व स्वगीया रक्तवाहिनी गतिदायक केंद्र वातग्रस्त हो जाते हैं। इसलिए क्लोरो-फॉर्म एक वैसी निरापद अवसन्नताजनक औषध नहीं ।

ईथर के थेराप्युटिक्स अर्थात् औषधीय प्रयोग

बहिः प्रयोग

वातज वेदनाओं (Neuralgia) में उग्र वेदना प्रशमनार्थ ईथर स्प्रे (ईथर पाश) नामक यंत्र द्वारा ईथर का प्रयोग होता है। छोटी-छोटी अस्त्र-क्रियाओं में भी स्थानीय अवसन्नताजनक रूप से कभी कभी ईथर व्यवहृत होता है। परंतु चूँकि इससे एक तो त्वचा कठोर हो जाती है और दूसरे इससे स्पर्शाज्ञताजन्य प्रभाव अधिक गंभीर नहीं होता अर्थात् केवल ऊपरी होता है। तीसरे जब इसका स्थानीय प्रभाव नष्ट हो जाता है तब रोगी उस स्थान में उग्र प्रदाह एवं वेदना की शिकायत अनुभव करता है। इसलिये इसे केवल ऊपरी अस्त्र क्रियाओं में ही प्रयुक्त किया करते हैं, कारण यह गंभीर अस्त्र-क्रियाओं के लिये उपयुक्त नहीं। तो भी जब इसे प्रयोजित करना हो तब एक तो इसके प्रयोग से पूर्व जिस स्थान पर शस्त्र-प्रयोग करना हो वहाँ से स्मार्कस बैंडेज द्वारा अथवा किसी अन्य उपाय से रक्त को दबा कर दूर कर दें और दूसरे यह कि प्रयोग काल में उक्त स्थल को बिलकुल सुन्न रखें ।

नोट—लोको-मोटर-एटेक्सी जन्य प्रचंड वेदना और कोरिया (कंपन) एवं टेटेनसजन्य आक्षेप को भी ईथर-स्प्रे से लाभ होता है ।

आंतर प्रयोग

आमाशय तथा आंत्र—क्लोरोफॉर्म और अलकोहल के समान ईथर को भी किसी-किसी प्रकार के अजीर्ण (Dyspepsia) में वायु प्रवर्त्तन तथा वेदना प्रशमन व आक्षेप निवृत्यर्थ व्यवहृत करते हैं। श्लेमरसोद्रेक विकारज अजीर्ण में भी ईथर के प्रयोग से लाभ होता है। आंत्रज शूल एवं पैत्तिक शूल में कंपाउंड स्पिरिट ऑफ ईथर (हॉफ़मैन्स एनोडाइन) एक अत्युपयोगी औषध है ।

नोट—कॉड लिवर ऑइल (कॉड मत्स्य यकृत्तैल) में ईथर मिलाकर देने से वह सुस्वादु एवं सुपाच्य बन जाता है ।

हृदय और फुफ्फुस—ईथर एक अत्युत्तम हृदय-बलदायक और श्वासोच्छ्वासोत्तेजक औषध है। अस्तु, सिंकोपी (मूर्च्छा), पैल्पिटेशन (हृत्स्पंदन) या हृद्दौर्बल्य में ईथर के १० से २० बूँद की मात्रा में पिलाने से या इसकी त्वगस्थ सूचीप्रवेश करने से बहुत लाभ होता है। पर इसका प्रभाव स्थायी नहीं होता। इसलिये इसे बार-बार प्रयोजित करना पड़ता है।

पूरी मात्रा में इसका उपयोग करने से अंजाइना (हृच्छूल), आक्षेपयुक्त कास और श्वास में वेदना एवं विकलता की निवृति होती है। कभी-कभी मदात्यय रोग में क्षोभ-निवृत्यर्थ एवं हृदयके शक्ति प्रदान हेतु ईथर प्रयोग उपयोगी होता है।

वात-संस्थान—आक्षेपहर होने के कारण अपस्मार अर्थात् मृगी एवं योषापस्मार के पूर्व रूप प्रगट होने पर भी कभी-कभी इसका प्रयोग करते हैं।

सार्वांगिक संज्ञा-शून्यता अर्थात् पूर्ण बेहोशी पैदा करने के लिए शुद्ध ईथर सुँघाना चाहिए। ईथर सुँघाने के लगभग वे ही विधि-विधान हैं, जो क्लोरोफॉर्म के और हमें प्रायः उन्हीं बातों में सावधान भी रहना चाहिये। दे० "क्लोरोफॉर्म"।

ईथर सुँघाने की मुख्य दो विधियाँ हैं। एक ओपेन मेथड जिसके अनुसार ईथर में स्पंज भिगोकर इसे रूमाल वा तौलिए के द्वारा प्रयुक्त करते हैं। पर इस रीति से प्रथम तो ईथर अधिक व्यय होता है और दूसरे यह कि इससे रोगी चिरकाल में अचेत होता है।

द्वितीय विधि क्लोज़्ड मेथड कहलाती है। इसके अनुसार क्लोवर्स इन्हेलर (Clover's inhaler) नामक यंत्र द्वारा शुद्ध ईथर सुँघाते हैं। यद्यपि इस रीति से ईथर सुँघाने से रोगी शीघ्र अचेत होता जाता है; परंतु उक्त यंत्र में फुफ्फुस द्वारा निःसृत वायु ही बारंबार सूँघनी पड़ती है। इसलिये उल्लिखित यंत्र के प्रयोग से रोगी का दम घुटने लगता है।

नोट—बहुधा ईथर सुँघाने से प्रथम नाइट्रस ऑक्साइड गैस सुँघाते हैं और जब रोगी का हस्त-पाद-चालन बंद हो जाता है तब उसे ईथर सुँघाना प्रारम्भ करते हैं। प्रारंभ से ही ईथर सुँघाने की अपेक्षा यह विधि श्रेयस्कर है।

चिरकाल तक संज्ञा-शून्यता स्थापित रखने के लिए ए० सी० ई० मिश्रण (एलकोहल एब्सोल्यूट 'ईथिल मद्यसार' १ भाग, क्लोरोफ़ॉर्म २ भाग और ईथर ३ भाग) वा ई० सी० मिश्रण (ईथर २ भाग और क्लोरोफॉर्म १ भाग) का प्रयोग करना चाहिए।

डॉक्टर बक्सटन के अनुसार कोमल प्रकृति के लोगों तथा मद्यपों में जब शुद्ध ईथर के सुँघाने से श्वासकृच्छ्रता के उपस्थित होने की आशंका हो, तब ईथर के साथ ओषजन संमिश्रितकर प्रयोजित करें। पर डॉक्टर ह्यूट और ब्लूम फील्ड महोदय के सांप्रतिक प्रयोगों से जो परिणाम उपलब्ध हुए हैं। उसके अनुसार ३ भाग ईथर को २ भाग (द्रव्यमान में) क्लोरोफॉर्म में मिलाकर ओपेन विधि के अनुसार सुँघाना, अन्य सभी विधियों से अपेक्षाकृत अधिक निरापद है।

सूचना—(१) मुख की ऐसी शस्त्र-क्रियाओं में जिनमें कृत्रिम प्रकाश वा कॉटरी (दग्ध-शलाका) प्रयोग की आवश्यकता हो, कदापि ईथर न सुँघाएँ।

(२) ईथर अप्रिय एवं तीव्र गंधि होता है और इसकी ख़राश से खाँसी हो जाने की संभावना होती है। अस्तु बच्चों को ईथर न सुँघाना चाहिए।

(३) उपर्युक्त कारणों से स्वरयंत्र तथा वायुप्रणाली की शस्त्र-क्रिया में भी ईथर का प्रयोग उचित नहीं।

परीक्षित योग

(१) स्पिरिटस ईथरिस	३० मिनिम
स्पिरिटस अमोनिया एरोमैटिकस	३० मिनिम
सिरूपस ज़िंजिबेरिस	१ ड्राम
एक्वा एनिथाई	१ आउंस तक

ऐसी एक-एक मात्रा औषधि दिन में तीन बार दें।

लाभ—योषापस्मार (Hysteria), मूर्च्छा और आध्मान में उपयोगी है।

(२) स्पिरिटस ईथरिस कम्पाजिटस	३० मिनिम
अमोनियाई कार्बोनास	३ ग्रेन

स्पिरिटस आरमाशेशी कम्पॉज़िटस	१ ड्राम
इन्फ्युज़न कैस्कारिई	१ आउंस तक

ऐसी एक-एक मात्रा औषध दिन में तीन बार दें।

लाभ—चिरकारी कास में लाभदायक है।

(३) स्पिरिटस ईथरिस	२ ड्राम
लाइकर मॉर्फ़ीनी हाइड्रोक्लोरेटस	३० मिनिम
एका मेन्थ पिप	१½ आउंस तक

ऐसी एक-एक घूँट शीघ्र पिला दें।

लाभ—यह आक्षेपयुक्त शूल में उपयोगी है।

(४) स्पिरिटस ईथरिस कम्पाँजिटस	३० मिनिम
टिंक्चूरा वैलेरियानी	२ ड्राम
टिंक्चूरा कस्टोरियाई	१ ड्राम
एका फेनीकोलाई	६ आउंस

चार चार घंटे पर इसमें से एक टेबुल स्पूनफुल औषध दें।

लाभ—योषापस्मार (Hysteria) में उपयोगी है।

(५) ईथर प्योर	१ ड्राम
टिंक्चर ओपियाई	१५ मिनिम
टिंक्चर एसाफिटिडा	३० मिनिम
एका	१ आउंस

इसकी तीन मात्रा बनाकर प्रति तीन-तीन घंटे बाद सेवन कराएँ।

लाभ--श्वास के वेग को तत्काल शमन करता है। (लेखक)

(६) सल्फ्युरिक ईथर २० मिनिम की मात्रा में सूचीवेधन द्वारा प्रयोजित करनेसे गृध्रसी (Sciatica) रोग में उपकार होता है।

ईथर एसीटिकस-[ले० Ether aceticus] शुक्तेथर। ईथर एसीटिक Ether acetic, एसीटिक ईथर Acetic Ether-अं०। ईसीर ख़ल्लीक, ईसीर सिर्कई–ति०।

रासायनिक संकेत सूत्र

($C_2 H_5 C_2 H_3 O_2$)

निर्माण-विधि-ईथिलिक अलकाहल. गंधकाम्ल (सल्फ्युरिक एसिड) और शुष्कीभूत सोडियम एसीटेट को परस्पर संमिश्रित कर परिस्रुत करने से जो द्रव प्राप्त हो, उसके साथ पोटासियम कार्बोनेट मिलाकर तीन दिन तक डाइजेस्ट करें (६० से १०० अंश के उत्ताप पर भिगो रखें)। पुनः इस द्रव के उस भाग को जो १६५ से १७२ अंश फारन हाइट के बीच उबलने लगे, परिस्रुत कर भिन्न करलें।

लक्षण—यह एक वर्ण-रहित प्रियगंधि द्रव है जिसमें ९० % ईथिल एसीटेट होता है। इसका सापेक्षिक गुरुत्व ·९०० से ·९०५ तक होता है।

विलेयता—एक भाग यह दस भाग पानी में विलीन हो जाता है एवं अलकोहल (९०%), क्लोरोफार्म और ईथर में सुविलेय होता है।

मात्रा—बारंबार प्रयोग करना हो तो १५ से ३० बूँद तक और जब एक ही बार देना हो तो ४५ से ६० बूँद।

प्रभाव—उत्तेजक।

नोट—यह लाइकर एपिस्पैष्टिकस (फफोलाजनक द्रव) में कैन्थेरीडीन को विलीन करने में काम आता है।

प्रभाव तथा प्रयोग

इसका प्रभाव बहुतांश में ईथर के समान होता है। तो भी अपेक्षाकृत यह अधिक प्रिय गंधि सुस्वादु एवं मृदु होता है। यह सोत्तेज्य वायु निःस्सारक और आक्षेपहर है। हिष्टीरिया रोग में मूर्च्छा निवारणार्थ प्रायः इसका प्रयोग करते हैं। मीठा बनाए हुए पानी वा शेरी (Sherry) में आधे चाय के चम्मच भर इसको मिलाकर देने से यह मंद आक्षेपहर तथा स्वेदक प्रभाव करता है। हॉफमैन्स एनोडाइन के भी यही प्रभाव होते हैं। ३० बूँद एसीटिक ईथर को १ पाइंट खोलते हुए पानी में मिलाकर इसकी भाप सुँघाने से स्वरयांत्रिक क्षोभ (Laryngeal irritation) कम हो जाता है।

ईथर ओज़ानिक-[अं० Ether ozonic] यह एक मिश्रित अंगरेजी औषध है। ओज़ोनिक ईथर (Ozonic Ether.) दे० "हाइड्रोजीनियाई परऑक्साईडाई लाइकर"।

ईथर कार्बोनिलिक-[अं० Ether carbanilic] दे० "युफोरीन"।

ईथर क्लोरिक-[अं० Ether chloric] (Spiritus chloroformi) दे० "क्लोरोफार्म"।

ईथर नाइट्रस-[ले० Ether nitrous] दे० "ईथिरस नाइट्रोसाई स्पिरिटस"।

ईथर पेट्रोलियम्-[ले० Ether petrolium] (Bezoline) दे० "बञ्जोलीन"।

ईथर प्युरिफिकेटस-[ले० Ether purificatus] विशुद्ध ईथर। दे० "ईथर"।

ईथर फॉर्मिक-[ले० Ether formic] (Ethyl formate) दे० "एसिड फॉर्मिक"।

ईथर सोप-[ले० Ether soap] (solution saponis ætherea) दे० "सैपो मॉलिस"।

ईथर हाइड्रिआडिक-[ले० Ether hydriodic] (Ethyl iodidum) दे० "इथिल आयोडाइडम्"।

ईथर हाइड्रोब्रोमिक-[अं० Ether hydrobromic] (Ethyl Bromidum) दे० "ईथिल ब्रोमाइडम्"।

ईथरियल टिङ्क्चर आफ लोबीलिया-[अं० Ethereal tincture of lobelia] वन्य अमेरिकन ताम्रकूट आसव। दे० "लोबीलिया"।

ईथरिस नाइट्रोसाई स्पिरिटस-[ले० Etheris nitrosi spiritus]

पर्य्या०—स्पिरिट ऑफ नाइट्रस ईथर Spirit of nitrous ether. स्वीट स्पिरिट ऑफ नाइटर Sweet spirit of nitre (अं०)। शोरक स्पिरिट। रूहुल् ईसरुन्नतरूस। रूह ईथर नत्रसी। शीरीं रूहेशोरः।

निर्माण-क्रम-शोरकाम्ल (नाइट्रिक एसिड), सुरासार वा एलकोहल (९०%), गंधकाम्ल (सल्फ्युरिक एसिड) और ताम्र (कॉपर वायेर) को परस्पर मिलाकर १७०° और १८०° अंश फारनहाइट के ताप के बीच परिस्नुत करने से जो कुछ उपलब्ध हो, उसके साथ और एलकोहल-सुरासार (९०%) योजितकर यह यौगिक प्रस्तुत किया जाता है। एलकोहल के अतिरिक्त इसमें ईथल नाइट्रेट, ऐल्डी हाइड, एसीटिक ईथर और एसीटिक एसिड प्रभृति पाए जाते हैं।

लक्षण—यह एक पारदर्शक किंचित् पीताभ वा करीब-करीब वर्ण रहित मद्यसारीय द्रव है, जो ताप पहुँचाने से जल उठता है। इसका स्वाद विशेष प्रकार का (मधुर शीत) होता है और इससे सेब की तरह तीव्र गंध आती है। इसकी प्रतिक्रिया सूक्ष्म अम्लाय अर्थात् खट्टी होती है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ·८३८ से ·८४२ तक होता है।

शक्ति—इसमें १·७५ से २·६६ प्रतिशत (भार में) ईथिल नाइट्रेट होना चाहिए।

मिश्रण वा खोट—एसीटिक एसिड की अधिकता और ईथिल नाइट्रेट की न्यूनता।

संयोग-विरुद्ध—पोटासियम आयोडाइड, आयर्न सल्फेट, ऐण्टिपायरीन, सैलीसिलेट, टैनिक एसिड, गैलिक एसिड, टिंक्चर ऑफ ग्वायकम् और एमलशञ्ज।

प्रभाव—स्वेदक, मूत्रल, आक्षेपहर और(Vaso-dilator) है।

मात्रा—१५ से ६० बूँद (१ से ४ मिलिग्राम) यदि बार-बार देना हो और जब एक ही बार देना हो तब इसकी मात्रा ६० से ९० बूँद (४ से ६ घन शतांशमीटर) है। एक वर्ष के शिशु के लिए इसकी मात्रा ८ विंदु है।

भेषज-कल्पना विषयक आदेश—(१) इसको अंबरी रंग की अत्यंत दृढ बिल्लौरी डाटवाली बोतलों में डालकर ठंढी और अँधेरी जगह में रखना चाहिए। यथासम्भव इसे प्रकाश और वायु में कम खोलना चाहिए। (२) अवसर आजाने पर यदि कभी इस औषध का प्रस्तुत करने की आवश्यकता आ पड़े, तो इथ्रोसिल, जो घनीभूत नाइट्रस ईथर है, एक आउंस लेकर ९ फ्लुइड आउंस एलकोहल (९०%) में मिलाने से कहते हैं कि स्पिरिट ईथर नाइटर बन जाती है।

पत्री-लेखन विषयक संकेत—(१) योग में यदि पोटेसियम आयोडाइड के साथ स्पिरिटस ईथरेस नाइट्रोसाई लिखी हो, तो यदि उसमें प्रथम किंचित् पोटासियम कार्बोनेट या पोटासियम बाईकार्बोनेट, या सोडियम कार्बोनेट वा सोडियम बाई कार्बोनेट मिलालें तो उससे आयोडीन पृथक् नहीं होती। (२) यदि ऐण्टिपायरीन को स्पिरिट

ईथर नाइटर के साथ मिलाकर देना हो, तो इनको एलकलाइन सोल्युशन (क्षारीय घोल) में मिलाकर देना चाहिए ।

स्पिरिट ऑफ नाइट्रस ईथर के प्रभाव

वाह्य प्रभाव—यदि इसे त्वचा पर लगाया जाय तो यह दवा उड़कर उक्त स्थल को किसी भाँति शून्य कर देती है ।

आभ्यंतर प्रभाव—इस औषध में ईथर और उन नाइट्राइट्स के (जिनके योग से यह संघटित होती है) सम्मिलित गुणधर्म वर्तमान होते हैं, परंतु एक सूक्ष्म अंश में। इसलिए यह एक सामान्य सार्वाङ्गिक उत्तेजक, आक्षेपहर और आध्मानहर है ।

हृदय और शोणित—यह औषध रक्त के रक्तकणों की ओषजनाभिशोषण शक्ति को घटाती है । हृत्कार्य (Cardiac activity) को किसी प्रकार तीव्र करती और वाह्य रक्त नलिकाओं (Peripheral blood-vessels) को शिथिल करती है, परंतु नाइट्राइट्स की भाँति नहीं । एमाइल नाइट्रेट की भाँति यह धामनिक तनावट को कम करती है, इस कारण रक्त का दबाव कम होजाता है ।

प्रोफेसर लीच (Leech) महोदय के कथनानुसार रक्तसंवहन पर इसका प्रभाव एमाइल नाइट्रेट तथा अन्य नाइट्रेट की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है ।

इसके प्रभाव से वृक्क और त्वचा की रगें विस्तीर्ण हो जाती हैं। इसलिये इसका प्रभाव मूत्रल और स्वेदक होता है और इसका ऐंटिपाइरेटिक (ज्वरहर) प्रभाव निःसंदेह बहुल स्वेदस्राव होने एवं रक्ताणुओं में परिवर्तित होने के कारण होता है ।

उत्सर्ग—वृक्क और फुफ्फुस द्वारा इसका उत्सर्ग होता है ।

प्रयोग

आभ्यन्तरिक योग—स्पिरिट आफ़ नाइट्रस ज्वरहर मिक्सचरों (Fever mixture) का प्रधान उपादान है और साधारण ज्वरावस्था में एक उत्तम स्वेदक औषध है । क्योंकि इससे निर्बलता नहीं होती, इसलिए इसको ज्वरहर रूप में प्रातिश्यायिक ज्वर (Catarrhal fever), विषम ज्वर (Intermittent fever), स्वल्प विराम ज्वर (Remittent fever), आन्त्रिक सन्निपातज्वर (Typhoid fever) और अन्य ज्वरों में देते हैं । कहते हैं कि शिशुओं के दन्तोद्भेद काल में जो ज्वर होता है, उसमें यह विशेष रूप से गुणकारी है । मूत्रप्रवर्तक रूप से यह चिरकारी ब्राइट डिज़ीज़ (Bright's disease) में एक अतीव गुणकारी औषध है ।

नोट—वृक्कविकारजन्य जलंधर (Dropsy) में तो इस औषध से बहुत ही लाभ होता है। परन्तु हृदय के विकार से जो जलोदर होता है उसमें इससे अति ही न्यून लाभ होता है ।

कभी-कभी इसको श्वास रोग (Asthama), हृच्छूल (Angina pectoris) और कष्टार्तव (Dysmenorrhoea) प्रभृति में भी देते हैं ।

ईथाईल-[अं० Ethyl] दे० "ईथिल" ।

ईथाईल ईथर-[अं० Ethyl ether] एक प्रकार का ईथर । दे० "ईथर" ।

ईथाईल एलकोहल-[अं० Ethyl alcohol] ईथाईल मद्यसार ।

ईथाईल मद्यसार-संज्ञा पुं० [अं० ईथाइल+सं० मद्यसार] एक प्रकार का मद्यसार वा सुरा जो आसवारिष्ट और मद्यों से प्राप्त होता है ।

ईथिल आयोडाइड-[अं० Ethyl iodide] ईथिल आयोडाइडम् ।

ईथिल आयोडाइडम्-[ले० Ethyl iodidum] यह एक वर्ण रहित उड़नशील गुरुद्रव है, जिससे ईथर की सी सुगंधि आती है । इसका स्वाद तीव्र होता है । ईथिल आयोडाइड Ethyl Iodide (अं०) ।

नोट—इसको गंभीर अंबरी रंग की मज़बूत बिल्लौरी डाट की बोतलों में बन्द करके ठंडी जगह में रखना चाहिये ।

नॉट ऑफ़िशल

(*Not official.*)

विलेयता—यह एक भाग ४०० भाग जल में विलीन होता है। किंतु ६० प्रतिशत वाले एलकोहल में सुगमतापूर्वक विलीन हो जाता है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यह आक्षेपहर (Antispasmodic) है। इसे ५ बूँद रुमाल पर डालकर दिन में ५-७ बार सूँघने से पुरातन कास तथा श्वास में कष्टश्वास का निवारण होता है। किंतु रुमाल पर डालकर सूँघने की अपेक्षा, यदि १५-२० बूँद उक्त औषध एक खुले मुँह की शीशी में डालकर सुँघाई जाय, तो कहीं अधिक कल्याणकारी हो।

नोट—छोटे-छोटे ग्लास कैप्शूल्ज़ जिनमें ५-५ बूँद ईथिल आयोडाइड भरा होता है, अँगरेजी औषध-विक्रेताओं से प्राप्त हो सकते हैं। अस्तु, आवश्यकतानुसार एक कैप्शूल रुमाल में तोड़कर उसे सूँघ सकते हैं।

सॉम्नोफॉर्म (Somnoform)—यह एक मिश्रौषध है कहते हैं कि इसमें ६० प्रतिशत ईथिलक्लोराइड, ३५ प्रतिशत मीथिल क्लोराइड और ५ प्रतिशत ईथिल ब्रोमाइड होता है। यह भी ग्लास कैप्शूल्ज़ और ग्लास ट्यूब में भरी हुई बिकती है।

गुणधर्म तथा प्रयोग—यह भी एक स्पर्शाज्ञताकारक अर्थात् सुन्न करनेवाली दवा है। दाँत बनानेवाले इसे सुँघाकर रोगी को मूर्च्छित किया करते हैं।

भयावह लक्षणों का परिहार

यदि ईथर, ईथिलक्लोराइड या साम्नोफॉर्म के सुँघाने से भयानक लक्षण उत्पन्न हों, तो निम्नांकित उपाय करें—

(१) जहाँ रोगी हो, वहाँ की वायु बिलकुल स्वच्छ हो।

(२) रोगी के वस्त्र, प्रधानतः गले और सीने पर के कपड़े बिलकुल ढीले हों।

(३) यदि श्वास लेने में कष्ट प्रतीत हो, तो तत्क्षण कृत्रिम श्वासोच्छ्वास जारी करें।

(४) निर्बल अमोनिया वाष्प रोगी के नथुनों के पास ले जाँय।

(५) हृदय-स्थल के ऊपर गरम फलालैन रखें और शीतल जल में भीगा हुआ तौलिया धीरे-धीरे वक्ष पर मारें। कम से कम एक घंटे तक कृत्रिम श्वासोच्छ्वास आनयन विधि का अवलंबन करना चाहिए तथा फैराडिज़्म का प्रयोग करें अर्थात् बिजली लगावें और रोगी को गरम रखें।

ईथिल-ईथर—[अं० Ethyl ether] दे० "ईथाइल ईथर"।

ईथिल एसीटेट—[अं० Ethyl Acetate] एक डॉक्टरी औषध।

ईथिल कार्बामेट—[अं० Ethyl carbamate] युरेथेन (Urethane)।

ईथिल क्युपरीन—[अं० Ethyl cuperine] एक डॉक्टरी औषध।

ईथिल क्लोराइड—[अं० Ethyl chloride] ईथिल क्लोराइडम्।

ईथिल क्लोराइडम्—[ले० Ethyl chloridum] एक प्रकार का बे रंग ईथरीय उज्वलनशील सांद्रीभूत द्रव जिससे विशेष प्रकार की ईथरवत् गंध आती है। स्वाद किंचिन्मधुर किंतु प्रदाहक होता है। यह साधारण ताप पर भी वायव्य रूप में परिणत हो जाता है। यह प्रायः काँच की शीशियों में जिन पर स्पिरिंगदार टोपी लगी होती है, विक्रय होता है।

पर्य्या०—ईथिल क्लोराइड Ethyl chloride, हाइड्रोक्लोरिक ईथर Hydrochloric Ether (अं०)।

ऑफिशल (*Official*)

रासायनिक संकेत सूत्र ($C_2\ H_5\ Cl.$)

निर्माण-विधि—यह शुद्ध ईथिलिक एलकोहल वा मीथिलेटेड स्पिरिट पर हाइड्रोक्लोरिक एसिड की क्रिया द्वारा प्राप्त होता है।

नोट—यह एक अत्यंत अस्थिर एवं ज्वलनशील द्रव है। इसलिये इसे शीशे की नलियों में डालकर और उनके मुँह को हर्मेटिकली सील करके अर्थात् विशेष प्रकार से बंद करके रखना

चाहिये और इसे आग की लौ के सामने कदापि न खोलना चाहिए।

प्रभाव तथा प्रयोग

छोटी-छोटी शस्त्र-क्रियाओं में त्वक्सुप्तता उत्पादनार्थ इसके वाष्प व्यवहार में आते हैं। अस्तु, शीशे की जिस नली में यह औषध बंद होती है, उस नलको की टोपी दूर करने के उपरांत के हाथ की गरमी से उस नलको में इस औषधि के वाष्प उड़ने शुरू हो जाते हैं। लगभग ८ इंच की दूरी से ये विकारी स्थल की त्वचा पर असर करके उसे सर्वथा सुप्त कर देते हैं। पर इसके प्रयोग से पूर्व त्वचा को साबुन और ईथर से धोकर भली भाँति साफ़ कर लेना चाहिये।

क्लोरोफार्म की तरह सूँघने से, यह शीघ्र सार्वांगिक संज्ञा शून्यता उत्पन्न कर देता है। यह क्लोरोफार्म और ईथर दोनों की अपेक्षा अधिक निरापद ख्याल किया जाता है। कोई-कोई तो इसे नाइट्रस ऑक्साइड से भी कहीं निरापद प्रतिपादित करते हैं।

नवजात तथा नन्हें शिशुओं (उदाहरणत: पाँच दिवसके शिशुसे लेकर छ: मास तक के शिशु को) दस पंद्रह मिनट तक संज्ञा-शून्य करने के लिये यह एक अत्युत्तम औषध है। अस्तु, इसे सेलोलाइड के इन्हेलर में डालकर सुँघाते हैं। थोड़े दिन वा कुछ सप्ताह के शिशु को तीन घन शतांशमीटर और छः मास या इससे अधिक आयु के शिशुओं को पाँच घन शतांशमीटर औषध सुँघाना पर्याप्त है।

दंत संबंधी शस्त्र-कर्म (Dental operations) में ईथिल क्लोराइड व्यवहार में नहीं लाना चाहिए। क्योंकि इसमें नाइट्रस ऑक्साइड का काफ़ी व्यवहार होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि क्लोराइड के वाष्प ज्वलनशील (Inflammable) होते हैं। मद्यपों को न यह दवा सुँघानी चाहिये और न पिलानी चाहिये।

ईथिल नाइट्रिस लाइकर–[अं० Ethyl nitris liquor] एक बेरंग घोल जिसमें ९०% शुद्धासव, ५% ग्लीसरीन और माप में २॥% से ३% ईथिल नाइट्राइट होता है। यह सुरासार (९०%), सोडियम नाइट्राइट और जलमिश्रित गंधकाम्ल इनकी अंतरक्रिया द्वारा मंद ताप पर प्रस्तुत होता है। प्रभाव–प्रणाली विस्तारक (Vaso dilator) है और धामनिक आक्षेप में एमाइल नाइट्राइट की तरह प्रभाव करता है।

मात्रा—१५ से ६० बूँद (१ से ४ मिलिग्राम)।

प्रभाव तथा प्रयोग

यह स्वीट स्पिरिट ऑफ नाइटर और एमाइल नाइट्राइट की तरह प्रभाव करता है। एमाइल नाइट्राइट के अंतर्गत, नाइट्राइट्स के प्रणाली विस्तारक (Vaso-dilator) गुण का उल्लेख किया गया है। यह उन सभी अवस्थाओं में, जिनमें अतिशय धामनिक तनाव वर्तमान हो, जैसे हृच्छूल, हार्दीय, वृक्कीय और फुफ्फुसीय कष्टश्वास, अपस्मार, समुद्री-राग (Sea-sickness) और नाना भाँति के शिरोशूल में व्यवहार में आता है। यह द्रव (Liquor) शीघ्र वियोजित होजाता है। अस्तु, इसे जलयुक्त मिश्रणों में नहीं लिखना चाहिए।

ईथिल फार्मेट–[अं० Ethyl formate] (Formic ether) दे० "एसिडम् फार्मिकम्"।

ईथिल ब्रोमाइड–[अं० Ethyl bromide] दे० "ईथिल ब्रोमाइडम्"।

ईथिल ब्रोमाइडम्–संज्ञा पुं०[ले० Ethyl bromidum] ईथिल ब्रोमाइड, Ethyl bromide, ब्रोमाइड ऑफ ईथिल Bromide of ethyl हाइड्रोब्रोमिक ईथर Hydrobromic ether -(अं०)।

रासायनिक संकेत सूत्र

$$(C_2 H_5 Br.)$$

नाट ऑफ़िशल (*Not official.*)

निर्माण-क्रम –यह एलकोहल, ब्रोमीन और फॉस्फोरस को परस्पर मिलाकर परिस्रुत करने से प्राप्त होता है।

लक्षण—यह एक वर्ण रहित अतिशय उड़नशील भारी–वज़नी द्रव है, जिससे एक प्रकार की सुगंधि आती है।

टिप्पणी—इसको सुदृढ़ बिल्लौरी, डाटवाली, गंभीर अंबरी रंग की बोतलों में रखना चाहिये। यदि इसको प्रकाश एवं वायु से सुरक्षित रखा जाय, तो इसके घटक विश्लिष्ट नहीं होते अर्थात् यह ख़राब नहीं होता।

विलेयता—यह १ भाग १२० भाग पानी में घुल जाता है। परन्तु एलकोहल (९०%) और ईथर में सरलतापूर्वक विलीन होता है।

सुँघाने के लिए इसकी मात्रा $1\frac{1}{2}$ से $3\frac{1}{2}$ ड्राम तक है।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

यह भी एक स्थानीय और सार्वांगिक स्पर्शाज्ञताकारक औषध है जो क्लोरोफॉर्म की अपेक्षा आशुप्रभावकारी है। इसे कभी-कभी क्लोरोफॉर्म के साथ मिलाकर प्रयोग में लाया करते हैं।

छोटी-छोटी शल्य-क्रियाओं में, विशेषकर दाँत और आँख संबंधी हस्तक्रियाओं में तथा शिशु प्रसव-कार्य अर्थात् प्रसूति-तंत्र में व्यवहार करने के लिए यह एक अत्युपयोगी औषध है। वाह्य रूप से किसी शरीरांग को सुन्न करने के लिए इसको स्प्रे (दवापाश यंत्र) द्वारा व्यवहार करते हैं।

सूचना—यह भी ईथर की तरह सुँघाई जाती है। पर यह स्मरण रहे कि यह एक अतीव आशुप्रभावकारी औषध है। ऐसे शस्त्र-कर्म में जिनमें अधिक समय लगता हो अथवा वृक्क विकारग्रस्त रोगियों को इस औषध का प्रयोग वर्जित है।

यदि इस दवा को हवा के साथ मिलाकर या अधिक देर तक सुँघाया जाय, तो इससे आतंकपूर्ण लक्षण उपस्थित होजाते हैं।

ईथीलीन ब्रोमाइड(Ethylene bromide)-यह भी एक वर्णरहित गुरु (वज़नी) किंचित् उड़नशील द्रव है। कहते हैं कि इसे दमा (Ashtama) और मृगी में १ से २ बूँद की मात्रा में एक औंस पानी में मिलाकर दिन में तीन-चार बार देने से उपकार होता है।

नोट—इसके ५-५ मिनिम के कैपसूलज़ भी बिका करते हैं।

ईथिल मद्यसार-संज्ञा पुं० [अं० ईथिल+सं० मद्यसार] दे० "ईथाईल मद्यसार"।

ईथिल मॉर्फीन-[अं० Ethyl morphine] दे० "डायोनीन Dionin"।

ईथिल युरीथेन-[अं० Ethyl urethane] दे० "युरीथेन"।

ईथिल स्पिरिट-संज्ञा स्त्री० [अं०] दैवी मद्य। फल-पुष्प तथा अन्य ओषधीय मद्य।

ईथिल हाइड्राक्साइड-[अं० Ethyl hydroxide] ईथिल एलकोहल।

ईथिल हाइड्रोक्युप्रीन-[अं० Ethyl hydrocupreine] एक डाक्टरी औषध जो न्युमोनिया में रोग प्रतिषेधक एवं रोगनाशक रूप से व्यवहार में आती है।

ईथिलिक ईथर-[अं० Ethylic ether] ईथिल ईथर।

ईथिलिक एलकोहल-[अं० Ethylic alcohol] ईथिल एलकोहल।

ईथिलीन क्लोराइड-[अं० Ethylene chloride] एसीटिलीन-डाइक्लोराइड।

ईथिलीन परआयोडाइड-[अं० Ethylene periodide] डाइ आयोडोफ़ार्म।

ईथिलीन ब्रोमाइड-[अं० Ethylene bromide] एक विवर्ण, गुरु, किंचित् उड़नशील द्रव। दे० "ईथिल ब्रोमाइडम्"।

ईथिलीनिमीन-[अं० Ethylenimine] पाइपेराज़ीन का एक प्राचीन नाम।

ईथिलेट ऑफ सोडा, लाइकर-[अं० Ethvlate of soda, Liquor.] सोडियाई ईथिलेटिस लाइकर Sodii ethylatis, Liquor.

ईथेन-[अं० Ethane] मीथेनवत् एक विवर्ण, निर्गंध और नीरस गैस जो प्रायः पेट्रोलियम की खनियों में मिलती है और विशेष विधियों से प्रयोगशाला में प्रस्तुत भी की जाती है।

ईथेरियल एक्सट्रैक्ट-[अं० Ethereal extract] ईथर द्वारा निर्मित सत्व।

ईथेरियल टिंक्चर आफ कैप्सिकम्-[अं० Ethereal tincture of capsicum] कटुवीरा ईथरीयासव। दे० "मिर्च"।

ईदमामीर–[यू०] हरियाली लिये हुये ऊन के समान एक चीज़।

ईदीगून–[यू०] निर्यासवत् एक वस्तु जो सीपों पर जमती है। रंगरेज़ इसे काम में लाते हैं।

ईदेज़ा–[?] उश्बा।

ईन–[तु०] साँप। सर्प।

ईनोथेरा हाइएनिस–[ले० Oenothera hiennis] दे० "ईविनिङ्ग प्राइम रोज़"।

ईनीमिया–अ० [अं० एनीमिया] (Anaemia) रक्ताल्पता। इनीमिया। नुक़्सुद्दम। क़िल्लतुद्दम।

इनोरज़मा–
इनोरस्मा– } [अ०] (Aneurisma) धमन्यर्बुद। दे० "अबूरस्मा वा धमन्यर्बुद"।

ईन्ते काटि–[मल०] (Vinegar of the Palm-wine or the Toddy of Phoenix Sylvestris) सेंधी का सिरका।

ईन्तेचारायम्–[मल०] (Liquor of Phoenix Sylvestris) संदोले की शराब।

ईन्ते-चेटि–[मल०] (Phoenix Sylvestris, *Roxb.*) संदोले का पेड़। जंगली खजूर का वृक्ष।

ईन्ते-वेल्ल–
ईन्ते-शार्कर– } [मल०] (Jaggery of Phoenix Sylvestris) सेंदी का गुड़।

ईपाज़–[?] कस्तूरी। मुश्क।

ईपिक–[तु०] रेशम।

ईपी–[?] नाज़बू। तुलसी।

ईपीकेकाना–[ले० Ipecacuanba] दे० "इपीकेकाना"।

ईप्सित फल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Cocos Nucifera, *Linn.*) नारिकेल वृक्ष। नारियल। वै० नि०।

ईबाऽ–[अ०] महामारी रोग से आक्रांत होना। वबा में पड़ना।

ईबीसीबी–संज्ञा स्त्री० [?] सम्भोग जनित शब्द विशेष। सिसकारी। सी सी की आवाज़।

ईमदयून–[यू०] एक अज्ञात बूटी।

ईमन–संज्ञा पुं० [सं० अहिमणि] रात के प्रथम प्रहर में गाया जानेवाला एक राग।

ईमन कल्याण–संज्ञा पुं० [सं० अहिमणि+कल्याण] ईमन और कल्याण मिश्रित एक प्रकार का राग।

ईमलनूनन–[?] उस्क़ूलू क़ंदयून।

ईमारानूतानी–[यू०] उश्बा मुकर्रा। इसको मिस्र में ज़ैतूनिया कहते।

ईमारू फ़ालस–[यू०] सौसन।

ईमेराल्ड–[अं० Emerald] पन्ना।

ईर्यमृग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृक्ष। पेड़। (२) मृग। जानवर।

ईय चक्षुस्–वि० [सं० त्रि०] चारों ओर देखनेवाला। जो हर जगह दृष्टि रखता हो।

ईयम्–[ता०, मल०, सिं०] (Plumbum) Lead नाग। सीसक। सीसा।

ईर–[अ०] मसूरिका वा खसरे की जाति का एक रोग।

ईरक़ान–[यू०] (Lawsonia alba, *Lam.*) मेन्दी। मेंहदी। हिना।

ईरज़ान–[?] ज़ुअ़रूर कोही।

ईरण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायु। हवा।

वि० [सं० त्रि०] (१) ऊपर। वीरान। (२) शून्य। खाली। (३) क्षोभक। घबरा देनेवाला।

ईरन–[यू०] छाछ। ज़ुग़रात।

ईरवदी–[ले०] सौसन।

ईरमद्दी–[सं०] सुर्ख़ मद्दी। एक विशाल वृक्ष।

ईरमुलिंगी–संज्ञा स्त्री० [?] (Daucus Carota, *Linn.*) गर्जर। गाजर।

ईरली–[द०] एक पौधा।

ईरवेङ्गायम्–[ता०] (Allium cepa, *Linn.*) पलाण्डु। प्याज़।

ईरस–[फ़ा०] (Juniperus Communis, *Linn.*) हपुषा। हाऊबेर।

ईरसमृक़–[यू०] (Mica) Talc अभ्रक। भोड़ल।

ईरसा–संज्ञा [यू०, अरबी ईर्सा] ईरसाये क़ज़्हि.य्य:, सौसने आसमान जूनी (अ०)। ईरसा, सौसन, इन्द्रधनुषपुष्पी (हिं०)। आयरिस वर्सिकलर Iris Versicolor (ले०)। ऑरिस Orris (अं०)। इरिसा (पं०)। बेरब सोसन (काश०)।

ईरसा वर्ग

(*N. O. Irideoe.*)

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—इस वनस्पति के

फूल नीले, पीले, सफ़ेद इन्द्रधनुष के समान होते हैं, इसलिये इसे इन्द्रधनुषपुष्पी, ईरसा क़ज़ूहियः वा यूनानी ईर्सा (इन्द्रधनुष) प्रभृति नामों से अभिहित किया गया।

ईरसा की जड़

इंद्रधनुषपुष्पीमूल, ईरसा की जड़, ईरसा (हिं०)। ईर्सा, बेख़ ईर्सा (अ०)। ईरसा, रीशहे ईरसा (फ़ा०)। आइरिस Iris (अं०)। ऑरिस रूट Orris root (अं०)।

उत्पत्ति-स्थान—मध्य और दक्षिण यूरोप, उत्तरी भारतवर्ष और ईरान।

वानस्पतिक वर्णन—एक पौधा जिसके बीच से एक डाली निकलती है, जिसकी छोर पर फूल होता है। हर फूल में ३-३ पत्तियाँ भरी हुई होती हैं। फूल का रंग सफेद, पीले और नीले रंगों के सम्मिलित रंग का होता है और उस पर आमने-सामने नुक़ते होते हैं। थोड़ी सी खुश्बू भी आती है। दूसरे पत्ते मोटे दलके और दीर्घ होते हैं। इसकी जड़ चपटी टेढ़ी और गाँठदार होती है और उसमें बनफ़शा की सी सुगंध आती है। इसकी छाल नीलगूँ और लाल एवं नाना भाँति की होती है। जड़ के भीतर का गूदा ललाई लिए पीला और कोई-कोई अत्यंत सफ़ेद होती है। इसका नाम बेख़ बनफ़्सा रख दिया गया है, क्योंकि इससे बनफ़सा की सी सुगंधि आती है। पर वस्तुतः यह बनफ़्शे की जड़ नहीं। उत्तम जड़ वह है जो छोटी, चौड़ी, टूटने में सख़्त, मोटी ललाई लिए (मतांतर से पिलाई लिए), भारी और कसीफ़ हो और कठिनतापूर्वक कट सके, ग्रंथिल एवं सुगंधित हो और जबानको थोड़ा काटे। सूखी हुई जड़ ताज़ी जड़ से अधिक सुगंधित होती है। उत्तम यह है कि जब इसे ज़मीन से निकाले तो, सूइयोंसे इतस्ततः गोदकर छाँहमेंसुखा लें, ताकि दुर्गन्धि न आ जाय। रबी के अंत और क़मरी महीने (शुक्लपक्ष)के आख़िर में रात में इसे खोदें। कमज़ोर, सछिद्र, लंबी और पतली जड़ निकृष्ट है। सफ़ेद किस्म गुणधर्म तथा प्रभाव में निर्बल है। यह रोम से आती है और सुर्ख़ किस्म की मक़दूनी से। पुरानी पड़ जाने के बाद इसकी शक्ति जाती रहती है। इसमें कीड़े लग जाते हैं। कूटने पर इसकी गंध से छींकें आती हैं।

इतिहास – सावफ़रिस्तूस (Theophrastus), दीसक़ूरीदूस तथा अन्य यूनान देशीय चिकित्सकों ने इसका उल्लेख किया है। अस्तु प्राचीन काल में मक़दूनिया प्रभृति में इसकी जड़ से एक प्रकारका अति उपयोगी मरहम (आइरीनून मेरून) प्रस्तुत किया जाता था। मुसलमान और भारतीय चिकित्सकों ने भी इसका उल्लेख किया है।

रासायनिक संघटन—ईरसा की जड़से आइरिडीन (Iridin) नामक एक प्रकार का सत प्रस्तुत होता है, जिसका यूरोप आदि देशों में औषधीय उपयोग होता है। ब्रिटिश मेटीरिया मेडिका में यह सत और ईरसा की जड़ दोनों नॉट ऑफ़िशल (Not official) हैं।

ईरसा का सत

पर्य्या०—इन्द्रधनुष पुष्पी सत, ईरसा का सत (हिं०)। जौहर ईर्सा, जौहर सौसन, ईर्सीन, ख़ुलासहे बेख़ सौसन (उ०)। आइरीडीन Iridin, आईरीसीन Irisin (ले०)। एक्स्ट्रैक्टम आइरिडिस Extractum Iridis (अं०)।

लक्षण—भूरे काले रंग का चूर्ण जिसका स्वाद तिक्त एवं चरपरा होता है।

इसकी सूखी जड़ में एक प्रकार का उड़नशील तैल, श्वेतसार, राल और कषायिन (Tannin) होता है। (इं० मे० मे०)।

प्रयोगांश—जड़ (डाक्टरी के द्रव्य-गुण-शास्त्र में यह नॉट आफिशल है), जड़ का सत (यह भी डॉक्टरी में नाट आफिशल है), बीज पत्ते और तैल।

प्रभाव—पित्तोद्रेककारी विरेचन (Cholagogue purgative), परिवर्त्तक और मूत्र-प्रवर्त्तक।

मात्रा—१ से ३ ग्रेन=(·०६ से ·२ ग्राम)।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—प्रकृति-बूअलीसीना के अनुसार इसकी जड़ द्वितीय कक्षा के अंत में गरम और रूक्ष है। किसी-किसी के अनुसार

द्वितीय कक्षा के प्रथम अंश में गरम एवं रूक्ष है। कोई-कोई कहतेहैं कि यहरूक्षता उससे भी न्यून है। किसी-किसी ने तृतीय कक्षा में गरम एवं रूक्ष माना है। कहते हैं कि ताज़ी से पुरानी अधिक गरम और रूक्ष होती है।

किसी-किसी ने कहा है कि ईरसा की जड़ गरमी, सर्दी एवं तरी तथा ख़ुश्की में सम-शीतोष्ण है।

हानिकर्त्ता—फुफ्फुस को, हृल्लास एवं छर्दि-जनक है। दर्पनाशक—फुफ्फुस के लिए मधु, क़ै और मतली के लिए अम्ल रसक्रियाएँ। प्रतिनिधि—अर्द्ध भाग रेवंदचीनी, पीत द्रव निकालने के लिए $\frac{1}{3}$ अंश माज़रयून एक माशा कम ३ तोले ऊँटनी के दूध के साथ। मात्रा—शेख़ के अनुसार १ तोला १ माशा वा ७रत्ती से २ तोले ४ रत्ती तक; गाज़रूनी शरह क़ानून में लिखते हैं—"इस समय उतना प्रयोग में नहीं लाते, उससे कम देते हैं। अस्तु ३॥ माशे से १०॥ माशे तक देना चाहिये।" कोई-कोई ७ माशे से ६ माशे तक निश्चित करते हैं।

गुण कर्म, प्रयोग—ईरसा लताफ़त(सूक्ष्मता) पैदा करता, शरीर में गरमी लाता, धातुओं (माद्दा) को सम प्रकृतिस्थ करता, वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक दोषों को मल मार्ग से उत्सर्ग करता है। यह (इस्तिला), शिथिलता, आक्षेप, फालिज, अंगस्फुरण और (सकूते) को लाभ पहुँचाता है। स्नेह (तैल) और सिरके के साथ इसका प्रलेप चिरकालानुबंधी शिरोशूल को मिटाता है। छींक लाता है। मस्तिष्क खिल जाता है। सिरके में क्वथित कर कान में टपकाने से उसकी भनभनाहट को लाभ होता है। स्वप्न-दोष की अधिकता, प्रोष्टेट ग्रंथिस्राव और वीर्य स्तम्भन के लिये उपयोगी है। जैतून के तेल के साथ कान में टपकाने से पुराना बहरापन दूर होता है। आर्त्तव के खून रुक जाने एवं गर्भाशय के रोगों को गुणकारी है। इसका प्रलेप प्लीहा की सूजन उतारता है। अस्थिभग्न एवं पेशीगत व्याघात तथा चोट में इसके लेप से उपकार होता है। यह सूजन और जलंधर को नष्ट करता है। झाईं और छींप में इसके प्रलेप से लाभ होता है। इसको महीन पीसकर हड्डी पर बुरकने से हड्डी पर मांस उगता है और गंभीर व्रण पूरित हो जाते हैं। इसके खाने से संधिशूल एवं पेशीगत आघात एवं उसके छिन्न हो जाने में लाभ होता है। शिर पर फुंसियाँ उत्पन्न हो जायँ, तो उनपर इसे लगाना चाहिये।

शेख़ के अनुसार ईरसा से नींद आती है और इससे पुराना सिरदर्द आराम होता है। इसके बीज भी दर्द-सिर निवारण करते हैं और नींद लाते हैं। तीन दिन निरंतर इसके पत्ते सूँघने से शिरोशूल जाता रहता है। इसके क्वथित जल से तड़ा देने से भी शिर की समस्त बीमारियाँ आराम होती हैं। शिशु जो रात में डर जाते हैं, उन्हें यह लाभ पहुँचाता है और विस्मृति दूर करता है तथा स्मरण शक्ति बढ़ाता है। इसको पीसकर सूँघने से छींकें आती हैं, जिससे नेत्र के मवाद निःसृत हो जाते हैं। इसके ताज़े अंगों का रस आँख में लगाने से जाला कट जाता है। यदि नाक से दुर्गंध आती हो, तो इसके काढ़े की बूँदें नाक में टपकाने से दुर्गंधि का नाश होता है। इसके काढ़े से गण्डूष करने से दंतशूल आराम होता है।

इसके चबाने से मुँह से शराब की दुर्गन्धि जाती रहती है। वह खाँसी और दमा जिनका कारण सांद्र रतूबत हो एवं कफज फुफ्फुसौष एवं ख़ुनाक़ बल्ग़मी, पार्श्वशूल, उरोशूल और वक्ष के बंद मलों को यह हितकर है। इसके चबाने से सीने में से मल थूक की राह निकल जाते हैं और उन समग्र रोगों में लाभ होता है। फुफ्फुसगत अवरोध और वक्ष के सांद्र दोष दूर हो जाते हैं। यह हृदय और रूह को शक्ति प्रदान करता है। यदि सरदी के कारण यकृत और प्लीहा में दर्द हो, तो इससे दूर होजाता है। यह शीतजन्य कंप को दूर करता है। इसके पीने से जलंधर में लाभ होता है, क्योंकि मवाद तहलील होजाता है और यकृत को शक्ति प्राप्त होती है। इससे शीत का निवारण होता है। कामला के लिए हितकर है। बवासीर की रगों के मुँह खोलता है। कफ दोष और वह दोष जो अप्राकृतिक पित्त दोष के जलने से बना हो, दस्तों के ज़रिए निकालता है

और पेट को उनसे साफ़ करता है। इस काम के लिए इसको मधुवारि (माउल् अस्ल) के साथ खाना चाहिए। ईरसा की पुरानी और बुनी हुई जड़ खाने से पीले द्रव, अप्राकृतिक पित्त (मिर्रहे सफ़रा) और कफ निकल जाते हैं। किसी-किसी के मत से पुरानी जड़ में विरेक् लाने की अधिक शक्ति है। नाड़ीव्रण (नवासीर) की दुर्गंधि एवं बदगोश्त को दूर करता है। गृध्रसी में इसकी वस्ति उपयोगी है। इसके गुदा में रखने से पेट के कीड़े मर जाते हैं। इससे गर्भाशय का मुख खुल जाता है एवं उसकी सूजन जाती रहती है। शहद के साथ इसको रखने से गर्भपात होता है। इसको पीसकर लेप करने से अथवा मधु वा सिरके के साथ पीने से थकाहट दूर होती है एवं सर्प और अन्य कीटादि, पक्षी और विषाक्त औषधियों का विष दूर होता है।

आइरीडीन के गुणधर्म एवं प्रयोग

डाक्टरी में इसे पित्त की उल्बणता, यकृत की क्रिया की शिथिलता (Torpidity of the liver) और द्वादशांगुलांत्र जनित अजीर्ण वा पक्काशयाजीर्ण (Duodenal dyspepsia) में युआॅनीमीन (Euonymin) और पोडाफिलीन या कैलोमेल के साथ वटिका रूप में दिया करते हैं। मूत्रप्रवर्त्तक रूप से इसे जलोदर (Dropsy) में देते हैं एवं मलेरिया जन्य कामला में भी बर्तते हैं।

परीक्षित डॉक्टरी योग

(१) आइरीडीन?	२ ग्रेन
पोडाफिलाइनी	$\frac{1}{4}$ ग्रेन
एक्स्ट्रैक्टम नक्सवामिकी	$\frac{1}{3}$ ग्रेन
ऑलियम् केरियोफिलाई	$\frac{1}{2}$ ग्रेन

सबकी एक वटी बनाएँ और ऐसी एक वटी हर दूसरी रात को सोते समय दें। पित्त की उल्बणता में उपकारी है।

(२) आइरिडीन	२ ग्रेन
कैलोमेल	$\frac{1}{2}$ ग्रेन
पल० कालोसिंथ कम हायोसायमाई	२ ग्रेन

सबकी एक गोली बनाएँ और रात को सोते समय दें। आगामी प्रातःकाल को लवण विरेचन (Saline purge) दें। शिथिल यकृत (Torpid liver) में हितकारी है।

ईरसा का तेल

गीलानी के अनुसार ईरसा का तेल सौसन सफ़ेद के तेल से, जिसे 'रोग़न राज़की' भी कहते हैं, अधिक उष्ण है और सकल गुणों में उससे श्रेष्ठतर एवं प्रबलतर है। इसके उद्वर्तन से क्लांति एवं स्वग्रता (इख़्तिलाज) को लाभ होता है। आक्षेप विशेष (तशन्नुज इम्तिलाई) को गुणकारी है और बवासीर की रगों का मुँह खोलता है। सिरके और शराब के साथ पीने से तशन्नुज इम्तिलाई को लाभ पहुँचाता है और पेशीगत चोट को आराम करता है। इसके पीने से खुमी और खुरासानी अजवायन का विष दूर होता है। यह सर्दी और तप (ज्वर) का वेग रोकता है। इससे उँगली तर करके गले में लगा लेने से सरलतापूर्वक क़ै होजाती है। इसे २। तो० ६ रत्ती की मात्रा में पीने से खूब दस्त आते हैं। मधुवारि (माउल् अस्ल) में मिलाकर गंडूष करने से फुफ्फुस प्रणालीगत कर्कशता दूर होती है। कान में टपकाने से कर्णनाद एवं कर्णक्ष्वेड का पुराना रोग जाता रहता है। इसको जैतून के तेल में मिला गरमकर कान में टपकाने से बाधिर्य आराम होता है। नाक में टपकाने और सूँघने से नासादौर्गन्ध्य निवृत्त होता है, प्रतिश्याय मिटता है और मस्तिष्क से सांद्र रतूबत का उत्सर्ग होता है। इसकी वस्ति करने से गर्भाशय के रोगों एवं गृध्रसी में कल्याण होता है। धनिए की पहाड़ी जाति, जिसके सेवन से उन्माद रोग होजाता है, उसके विष को भी यह तैल निवारण करता है।

प्रतिनिधि—ग़ार का तेल।

ईरसीन-[अ०] (Irisin) दे० "ईरसा" वा "आयरिस"।

ईराक-[फ़ा० अराक] (Salvadora persica, *Linn.*) पीलु। झाल।

ईरान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० ईरानी] फ़ारस देश।

[तु०] छाछ। दोग़।

ईराम-[अ०] शोथ युक्त होना ।

ईरामा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नदी विशेष ।

ईरिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्षविशेष । एक प्रकार का पेड़ ।

ईरिण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बलुआ मैदान । ऊसर । "ईरिणं तूषरे" । मे० णत्रिकं । (२) शून्य स्थान । खाली जगह ।

ईरित-वि० [सं० त्रि०] कम्पित । क्षिप्त । अम० ।

ईरीडीन-[अं० Iridin] दे० "आइरीडीन" ।

ईरुआ जावानिका-[ले० Ærua Javanica, *Juss.*] एक प्रकार का भुँई कल्लाँ । चाय ।

ईरुआ टैवेनिका-[ले० Ærua javanica] बनखोर । गुगु ।

ईरुआ लानेटा-[ले० Ærua lanata, *Juss.*] चाय । वूई-बं० । भुइ कल्लाँ (पं०) ।

ईरुनती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Mimusops elengi, *Linn.*) वकुल । मौलसिरी ।

ईरुल्लि-[ता०] (Allium cepa, *Linn.*) पलाण्डु । प्याज़ ।

ईर्म, ईर्म्म-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) व्रण । फोड़ा । हारा० । (२) क्षत । अम० ।

ईर्मान्त-वि० [सं० त्रि०] (१) परिपूर्ण नितम्ब युक्त । पूरा पुट्ठा रखनेवाला । (२) अस्थूल नितम्ब युक्त । पतले पुट्ठेवाला ।

ईर्या-संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] शरीर के चार संस्थान । जिस्म की चार सूरतें ।

ईयुर्गो-[अं० Erugo] (Cupri subacetas) ज़ंगार । दे० "ताँबा" ।

ईर्वारु, ईर्व्वारु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) कर्कटी । ककड़ी । (२) स्फुटी । फूट । श० र० ।

ईर्वारुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विलायती पेठा । कौल ।

ईर्व्वारु शुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खमूँज । खबूँजा । वै० निघ० ।

ईर्षक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह संतान जो गर्भाधान काल में माता-पिता के ईर्षायुक्त तथा मंद हर्ष होने से उत्पन्न होती है । च० शा० २ अ० ।

ईर्षणा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ईर्षा" ।

ईर्षम्-[सं०] (Ytterium,) आधुनिक रसायनशास्त्र में एक धातु तत्त्व ।

ईर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) क्रोध । गुस्सा । (२) अन्य स्त्री सहवासजनित पति के चिह्नादि देखने से उत्पन्न पत्नी का अभिमान विशेष । (३) पर स्त्री-कातरता । डाह । हसद । जो पुरुष स्वयं सम्भोग नहीं कर सकता और दूसरों को करते देखकर जलता है, वह ईर्षाषण्ड कहलाता है ।

ईर्ष्यक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के नपुंसक जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी दूसरे को मैथुन करते हुए देखते हैं । दृष्टियोनि । दृग्योनि । सु० ।

ईर्सा-[यू०, अ०] (Iris) Orris root. पुष्करमूल । इंद्रधनुषपुष्पी । बीख़ सौसन । आस्माँजूनी ।

ईर्साए क़ज्हिय्य:-[अ०](Iris versicolor) इंद्रधनुषपुष्पी । सौसन । आस्मान जूनी ।

ईल-संज्ञा पुं० [देशं०] एक बनैला जंतु ।

संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की मछली । बाँग ।

ईलवन-[ता०] श्वेत शाल्मली । सफ़ेद सेमल ।

ईलशीरीं-[फ़ा०] एक प्रकार का पौधा ।

ईलि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ईली । करपाली । करपालिका । गुप्तिका । खड्गाकार चाकू । तलवार के आकार की छुरी ।

ईली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ईलि" ।

ईश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (Hydrargyrum) Mercury पारद । पारा । र० सा० सं० । वै० निघ० उत्र० चि० । (२) आत्मा ।

ईशक-[तु०] An ass गदहा । गधा ।

ईशङ् कल्लु काडि- } [ता०] (Vinegar
ईशङ्-काडी- }
of the palm wine or the Toddy

of Phoenix sylvestris) सेंधी का सिरका ।

ईशञ्चेडि-[ता०] (Phoenix sylvestris, *Roxb.*) संदोले का पेड़ ।

ईशन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लघु शमी । के० दे० नि० । (२) शालपर्णी ।

[फ़ा०] सअ्तर । पुदीना कोही ।

ईशप्पु कोल विरै-[ता०] (Plantago Ispaghula, *Roxb.*) इस्पग़ोल । इसबगोल ।

ईशलाङ्गला-[बं०] (Gloriosa superba, *Linn.*) कलिहारी । करियारी ।

ईश लिङ्गिनी (ङ्गी)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Bryonia Epaegia, *Rottl.*) लिङ्गिनी । शिवलिङ्गी । भवलिङ्गी । पञ्चगुरिया । भा० म० ४ भ० यो० व्या० चि० । "विष्णुक्रान्ते लिङ्गिनी" ।

ईशा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) लाङ्गलदण्ड । हलका दण्डा । मे० शद्विकं । (२) Ficus bengalensis, *Linn* वट । वड़ । बरगद का पेड़ ।

ईशादण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सारा । पहिए का दण्ड ।

ईशादन्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उदग्रदन्ती । बड़े दाँत का हाथी । (२) हस्ति-दन्त । हाथी का दाँत । (Ivory) श० र० ।

ईशादन्त (न्ती)-संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] उदग्रदन्ती । हे० च० । त्रिका० ।

ईशान-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Acacia suma) शमी वृक्ष । रा० नि० व० २३ ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली] ज्योति । रौशनी ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आर्द्रा नक्षत्र । (२) रुद्र संख्या=११ । (३) साध्य विशेष । (४) शिव । (५) विष्णु ।

ईशान-कान्ता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेत दूर्वा । सफेद दूब । रा० नि० ।

ईशान कोण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईशानाधिष्ठित कोण । पूर्व तथा उत्तर के मध्य का दिक् कोण । इस कोण के स्वामी शिव हैं ।

ईशानवायु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पूरब और उत्तरके बीचके कोनेकी हवा । यह कटुक है । वै० निघ० ।

ईशाना (नी)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Acacia suma,) शमी वृक्ष । छोकरा । रा० नि० व० ८ ।

ईशाम-[अ०] (१) चनार का पेड़ । (२) पहाड़ी ज़ुअ्रूर । (३) सफ़ेदार । (४) एक पश्चिमी वृक्ष ।

ईशावस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कपूर । ईशावास कपूर ।

गुण—यह अत्यंत सफ़ेद भेदक, वृष्य और मदनाशक है तथा उन्माद. प्यास, थकान, खाँसी, क्रमि, क्षय, स्वेद और अंगदाह का नाशक है । वै० निघ० ।

ईशावास कपूर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अश्मन्तक । (२) एक प्रकार का कपूर ।

ईशिन्-संज्ञा पुं० [संज्ञा पुं०] ईश्वर । ख़ुदा ।

ईशिर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि । आग । त्रिका० ।

ईशु(शे)रमूल
ईशोरमुल- } [बं०] (Aristolochia Indica, *Linn.*) रुद्रजटा । इशरमूल । ज़रा० वंदे हिंदी ।

ईश्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पारद । पारा । (Mercury) भैष० ध्व० भ० चि० चन्द्रोदय-मकरध्वज । (२) पित्तल । पीतल । रस० र० एकादशायस । (३) आत्मा । (४) काम देव । (५) ब्रह्म । (५) परमेश्वर ।

ईश्वर मल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वक वृक्ष । अगस्तिया का पेड़ । (Agati grandiflora, *Desv.*) वै० निघ० ।

ईश्वरमूरि-[मला०] (Aristolochia Indica, *Linn.*) रुद्रजटा । ईश्वर मूल । इसरौल भेद । यह चित्रकूट में प्रसिद्ध है ।

ईश्वर मूलक-संज्ञा पुं० [सं० पुं० स्त्री०] एक प्रकार का पेड़ । ईश्वर मूल । भैष० कुष्ठ० चि० कन्दर्प सार तैल ।

ईश्वर रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अभ्रक भस्म और पारा बराबर लेकर ७ दिन तक आँवलों के रस मे भावना देकर रक्खें । मात्रा—१ उड़द ।

गुण—इसे वच के क्वाथ या निम्ब के पत्तों के रस के साथ खाने से नील मेहादि का नाश होता है। रसायन सं० प्रमेह चि०।

ईश्वरलिंगी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Bryonia Epaegia, *Rottl.*) लिङ्गिनी। शिवलिङ्गी।

ईश्वर वेरु–[ते०]
ईश्वरा मूरि–[मल०] } (Aristlochia Indica, *Linn.*) इशरमूल। ज़रावंदे हिंदी। रुद्रजटा।
ईश्वेरी-त्रेरू[कना०]

ईश्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बन्ध्या ककोंटकी लता। बाँझ ककोड़ा। वै० निघ० २भ० वा० व्या० महा त्रिषगर्भ तैल। (२) लिंगिनी। शिवलिंगी। (३) नागदमनी। (४) नाकुली कन्द। (५) रुद्रजटा। रा० नि० व० ३।

ईष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आश्विन मास। क्वार का महीना। अ० टी० भ०।

ईषत्–वि० [सं० त्रि०] थोड़ा। कुछ। कम। अल्प। साधारण काल।

ईषत्परिचालक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Partial conductor) भौतिक-विज्ञान में वह पदार्थ जो विद्युत् को शीघ्रता से अपने में से नहीं गुज़रने देते; जैसे—कार्पास, कागज़, काष्ठादि।

ईषत्पांडु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धूसरवर्ण। खाकी रंग। मटमैला। अम०।

ईषद्–वि० दे० "ईषत्"।

ईषदुष्ण-त्रि० [सं० त्रि०] कवोष्ण। थोड़ा गरम। अल्प उष्ण। हे० च०। वै० निघ०।

ईषद्गोल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Plantago Ispaghula, *Roxb.*) इस्पग़ोल। इसबगोल।

ईषद्दीर्घ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Amygdalus Communis, *Linn.*) वाताम फल। बादाम।

ईषद्बीजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बेदाने का पेड़। बिहीदाने का वृक्ष।

ईषना–संज्ञा स्त्री० [सं० एषणा] दे० "एषण"।

ईषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाङ्गलदण्ड। हरीस। हल या गाड़ी का दण्ड।

ईषादण्ड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाङ्गल मुष्टि। हल की मुठिया।

ईषादन्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दीर्घदन्त गज। वह हाथी जिसके दाँत बड़े हों। ईशादन्त।

ईषाधार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लाङ्गल रथ प्रभृति। हल गाड़ी इत्यादि। (२) एक नाग का नाम।

ईषिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अक्षिकूट। (२) हाथी की आँख का खोंड़रा वा गोलक। (३) चित्रकारी में रंग भरनेका क़लम। कूँची। (३) सिरकी। सींक। तूलिका। हे० च०। "ईषिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्तिमादरात"। शा० ३०६ अ०। (५) बाण।

ईषिकास्त्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक अस्त्र। "ईषिकास्त्रं समुत्सृज्य पत्रच्छेदं व्यधादयम्।" नकुल १ अ०।

ईषिर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि। आग।

ईषीका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वीरणादि शलाका। सींक। सिरकी। (२) चित्रकार की अधर्षिणी। मुसव्वर की कूँची।

ईष्ट इण्डियन एलिमाई–[अं० East Indian Elemi] मन्शिम का गोंद।

इष्ट इण्डियन काइनो–[अं० East Indian kino] विजयसार निर्यास। हीरादोखी।

ईष्ट इण्डियन ग्लोब थिस्ल–[अं० East Indian Globe thistle] (Sphaeranthus Hirtus) मुण्डितिका। गोरखमुण्डी।

ईष्ट इण्डियन सेना–[अं० East Indian senna] सोनामुखी। सनाय।

ईष्ट इण्डियन स्क्रू ट्री–[अं० East Indian screw tree] (Helicteres Isora, *Linn.*) आवर्त्तकी। मरोड़फली।

ईष्टन्स पिल्ज़–[अं० Easton's pills] एक पेटेन्ट औषध जो ईष्टन्स सिरप की प्रतिनिधि है।

ईष्टन्स सिरप–[अं० Easton's syrup] एक पेटेन्ट औषध। दे० "लोहा"।

ईष्टर्न हेलीबोर-[अं० Eastern Hellebore] (Helleborus Orientalis) एक प्रकार की कुटकी । दे० "कुटकी" ।

ईष्म-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बसंत काल । वसंत ऋतु । उणा० । (२) कामदेव ।

ईस-संज्ञा पुं० [सं० ईश] ईश्वर । परमेश्वर ।

ईसबगोल-, ईसरगोल- संज्ञा पुं० [फ़ा० इस्पग़ोल] (Plantago Ovata) इसबगोल । ईषद्गोल ।

ईस्केमोनी आस्पेरा-[ले० Æscamony aspera] सोल (बं०) ।

ईस्क्युलस हिपॉकाष्टेनम्-[ले० Æsculus Hippocastanum, *Linn.*] पू (पं०) ।

ईस्क्युलस इण्डिका-[ले० Æsculus Indica, *Hiern.*] कनोर (पं०, हिं०) । हनुदून (काश०) ।

ईस्क्युलीन-[अं० Æsculin] एक प्रकार का ग्ल्यूकोसाइड जो पू के फल के छिलके से प्राप्त होता है । दे० "ईस्क्युलस हिपाकाष्टेनम्" ।

ईहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] [वि० ईहित] (१) चेष्टा । (२) वांछा । इच्छा । त्रिका० । (३) उद्योग ।

ईहामृग,-ईहावृक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोक । लकड़बग्घा । रत्ना० । रा० नि० व० १८ । (वृकः) भेड़िया । श० र० । गोवासारि । छांगलारि । छागलान्त । जलाश्रय । धन्व०नि० ।

ईहित-वि० [सं० त्रि०] इच्छित । वांछित ।

ईक्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० ईक्षणीय, ईक्षित, ईक्ष्य] (१) आँख । नेत्र । रा० नि० व० १८ । (२) दर्शन । देखना । मे० णत्रिकं । (३) विवेचन । विचार । जाँच । (४) दृष्टि ।

ईक्षणिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० ईक्षणिका] (१) सामुद्रिक जाननेवाला । हाथ पैर के चिह्न देखकर बुरा भला बतानेवाला । मनु ९ । २५८ । (२) दैवज्ञ । ज्योतिषी ।

ईक्षमाण-वि० [सं० त्रि०] परीक्षक । पर्यावेक्षक । जाँचनेवाला ।

ईक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दृष्टि । दर्शन । नज़र । देख-रेख ।

ईक्षित-वि० [सं० त्रि०] पर्यावेक्षित । देखा हुआ । मनु० ८ । ९१ ।

ईक्षितृ-वि० [सं० त्रि०] द्रष्टा । देखनेवाला ।

ईक्षेण्य-वि० [सं० त्रि०] अद्भुत । अनोखा । देखने योग्य ।

ईक्ष्यमाण-संज्ञा पुं० [सं० त्रि०] देखा जानेवाला । जो जाँचा जा रहा हो

ईंगुर-संज्ञा पुं० [सं० हिंगुल,प्रा० इंगुल] (Hydragyri bisulphuretum) एक खनिज पदार्थ जो चीन आदि देशों में निकलता है । सिंगरफ़ । हिंगुल । दे० "सिन्दूर" ।

ईंट-संज्ञा स्त्री० [सं०इष्टका, पा०इट्ठका,प्रा०इट्ठआ]साँचे में ढाला हुआ मिट्टी का चौखूँटा लंबा टुकड़ा जो पजावे में पकाया जाता है । इसे जोड़कर दीवार उठाई जाती है ।

पर्य्या०—ईंटा । इष्टिका । आजुर, लबन, क़र्मीद (अ०) । ख़िश्त (फ़ा०) । ख़ख़स्तः (अफ़०) । तूब, बाफ़रीकियः मूल (मिस्री) ।

ईंट के कई भेद हैं । (१) लाखौरी जो पुराने ढंग की पतली ईंट है । (२) नंबरी जो मोटी है और नूतन ढंग के गृहों में लगती है । (३) पुट्ठी जो यथार्थ में मिट्टी की एक चौड़ी परिधि के बराबर खंड करके बनाई जाती है । ये खंड वा ईंटें कूएँ की जोड़ाई में काम आती हैं । इनके अतिरिक्त और भी अनेक भाँति की ईंटें होती हैं; जैसे ककैया ईंट, नौतेरही ईंट, तनिहारी ईंट, मेज़ की ईंट, फर्श ईंट और तामड़ा ईंट । यूनानी ग्रंथों में दो प्रकार की ईंट का उल्लेख मिलता है । (१) सफ़ेद ईंट जो चूने वा लुहारों की भट्टी में पकाई जाती है । (२) लाल ईंट जो पजावे में पकाई जाती है । इनमें से प्रथम प्रकार की ईंट ही सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है और यूनानी चिकित्सा में काम आती है ।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और तृतीय वा चतुर्थ कक्षा में रूक्ष । रंग तथा गंध-लाल, पीला और काला । स्वाद-फीका, कुछ-कुछ नमकीन सोंधा । हानिकर्त्ता-आमाशय, वृक्क और आंत्र को । दर्पघ्न-कतीरा और बबूल का गोंद

तथा सिरका। प्रतिनिधि–ठीकरी तथा सीपी।

मात्रा–६ मा० से ९ मा० तक।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—इसको पीस कर क्षतों पर अवचूर्णित करने से खून रुक जाता है और खट्टे अंगूर के पानी के साथ पित्ती पर इसका लेप करने से उपकार होता है। इससे इसकी वृद्धि रुक जाती है और वह पुनः प्रकट नहीं होता। इसको पीसकर लवण और सिरके में मिलाकर लगानेसे सिरकी भूसी (बफ़ा) को लाभ पहुँचाता है। गाय के गोबर के साथ सूजन, कफज फुंसी, शोथ विशेष (इस्तिस्क़ा लहमी), जलोदर और (सूउल् क़िन्य:) पर लगाने से लाभ होता है, चिरकालानुवंशी शिरोशूल एवं सर्दी तथा नज़ला प्रभृति मस्तिष्क रोगों में कोरी सफ़ेद ईंट अग्नि में दग्धकर पानी वा शराब में बुझाने और उस समय चादर ओढ़कर मस्तिष्क को वाष्प पहुँचाने से लाभ होता है। वेदना स्थल पर सेंक करने के लिए गरम की हुई ईंट पर थोड़ा सा जल वा मद्य छिड़क कर उसे किसी वस्त्र में लपेटकर सेंक करना चाहिये। उष्ण ईंट पर बैठना बवासीर और शीत जन्य वेदना और खूनी पेचिस को लाभदायक है। ईंट के छोटे-छोटे टुकड़े करके दधि में डालकर चादर ओढकर नासिका में वाष्प पहुँचाएँ, इससे नज़ला नासिका की ओर प्रवृत्त हो जायगा। बंद कुशाद (जोड़) के लिए ईंट का चूर्ण बहुत ही परीक्षित है। इसके प्रस्तुत करने की विधि यह है—लगभग शतवर्षीय पुरानी ईंट लेकर पीस छान लें। पुनः उसे वट दुग्ध में भिगो और सान कर बड़ी-बड़ी टिकियाँ बनाकर कोयलों की आग में रख दें। जब लाल हो जायँ, शीतल करके और पीसकर दोबारा बड़ के दूध में तर करके उसी प्रकार कोयलों की आग में पकाएँ। इसी प्रकार सात बार करें। पुनः उसे पीसकर वस्त्रपूत करलें और पुरानी खाँड मिलाकर प्रतिदिन हथेली भर के फाँक लिया करें। मु० अ०।

कोरी ईंट के छोटे-छोटे टुकड़े दधि में डालकर रात्रिभर रखें और प्रातःकाल उसे छानकर पिएँ। यह चिरकारी क्षतों का पूरक है और आर्त्तवरुद्धक एवं वीर्य्य को सुखानेवाला है। (बु० मु०)

शर्करा के साथ प्रयुक्त करने से यह अतिशय रूक्षता उत्पन्न करता और आर्त्तव का रुद्धक है। यदि इसको गरम करके उस पर सिरका डाल बद और पथरी (अश्मरी) को सेंकें तो उसे बिठा-देती है। कुएँ की पुरानी ईंट बहुमूत्र (ज़याबेतुस) रोग में परीक्षित है और शुक्रतारल्य का निवारण करती है। निर्विषैल। (म० मु०)

ईंट का तेल

पर्य्या०—इष्टक तैल (सं०)। दुह्नुल्-मुबारक, दुह्नुल् मनफ़ज़ (अ०)।

निर्म्माण-विधि–पकी लाल ईंट, जिसमें पानी न लगा हो, लेकर उसके बादाम के बराबर टुकड़े करके अग्नि में डालदें जिसमें लाल हो जाँय। पुनः प्रत्येक टुकड़े को सँड़सी से पकड़कर रोग़न जैतून में बुझ लें, फिर रोग़न ज़ैतून से निकालकर छोटा-छोटा करके एक आतशी शीशी में भरकर कपड़मिट्टीकर, शीशी के मुखपर घोड़े के बाल लगाकर पातालयंत्र की विधि से तैल टपकाएँ, जिस प्रकार चोआ टपकाते हैं। पुनः उसे शीशी में सुरक्षित रखकर काम में लाएँ।

प्रकृति—अतिशय उष्ण एवं रूक्ष। यह समग्र उष्ण तैलों से अधिक सूक्ष्म होता है। कोई-कोई इसे रोग़न बलसाँ के तुल्य समझते हैं।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—गीलानी के अनुसार कतिपय गुणों में निफ़्त (एक औषधि) इसके समीप है। रुमूज़ में लिखा है कि यह सफ़ेद निफ़्त से अपेक्षाकृत अधिक उष्ण एवं सूक्ष्म है। इसमें प्रवेश-कारिणी (व्याप्त होने की) शक्ति अत्यधिक है। यह विलायक है और स्वेद लाता है। लकवा, पक्षाघात (फ़ालिज) और मृगी में इसका पीना और नस्य (सऊ़त) लाभकारी है। इसे कान में टपकाने से कर्णशूल को लाभ होता है। शर्बत जूफाके साथ चाटनेसे दमा जाता रहता है। आँखमें लगाने से मोतियाबिंदु को लाभ होता है। चार माशे की मात्रा में इसे सेवन करने से आमाशय और आँतके कीड़े मर जाते हैं, वस्तिस्थ अश्मरी टूटकर निकल जाती है, मूत्रोत्सर्ग होता है और वस्ति के सम्पूर्ण शीत व्याधियों को लाभ होता है। शीतजन्य उदर स्फीति एवं उद्वेष्टन

में इससे लाभ होता है। यह प्रगाढ़ीभूत शोणित को विलीन करता है। योनि में धारण करने से आर्त्तव प्रवर्त्तन करता है, तथा मृत वा जीवित शिशु को निकाल डालता है। बिच्छूका विष उतारता है। अहिफेन तथा अजवाइन खुरासानी के विष का नाशक है और कामोद्दीपन करता है।

ईंटा–संज्ञा पुं० दे० "ईंट"।

ईंत–संज्ञा पुं० [?] ईंट का टुकड़ा। इससे औज़ार तेज़ किए जाते हैं।

ईंदर–संज्ञा पुं० [देश०] आठ दस दिन की ब्याई हुई गाय के दूध को औटाकर बनाई हुई एक प्रकार की मिठाई। प्योसी।

ईंदुर–संज्ञा पुं० [सं० उन्दूर] इन्दूर। चूहा। आखु।

ईंधन–संज्ञा पुं० [सं० इन्धन] जलाने की लकड़ी वा कंडा। जलावन। जखनी।

(उ)

उ–हिंदी वा संस्कृत वर्णमाला का पाँचवाँ अक्षर। इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ है। यह तीन मुख्य स्वरों में है। इसके ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तथा सानुनासिक और निरनुनासिक भेदसे १८ भेद होते हैं। उ को गुण करने से 'ओ' और वृद्धि करने से 'औ' होता है।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ब्रह्मा। (२) नर। (३) शिव। (४) त्रास।

–[बर०] [बहु० उ–मियाआ] कन्द। (Buib or Tuber.)

उआवल–[ता०] (Syzigium Jambolanum) जम्बु। जम्बू। जामुन।

उक–[सिं०] (Calotropis gigantea, *R. Br.*) आक। मदार।

उकचन–संज्ञा पुं० [सं० मुचकुन्द] मुचकुन्द का फूल। (Pterospermum suberifolium, *Lam.*)

उकठना–क्रि० शुष्क होना। सूखना।

उकठा–वि० शुष्क। सूखा।

उकड़ूँ–संज्ञा पुं० [सं० उत्कुतोरु] घुटने मोड़कर बैठने की एक मुद्रा जिसमें दोनों तलवे जमीन पर पूरे बैठते हैं और चूतड़ एँड़ियों से लगे रहते हैं।

उक़द–[अ० बहु०] ग्रंथि। गाँठ। गिरह।

उक़नाह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीत-रक्त वर्ण का घोड़ा। हे० च०।

उकरुवाना–क्रि० बाहर निकालने की चेष्टा। काँटा इत्यादि का शरीर से बाहर निकालने की क्रिया।

उकलाई-संज्ञा स्त्री० [सं० उद्गिरण, हिं० उगलना] वमन। क़ै। उलटी। मचली।

उकलाना–क्रि० अ० [हिं० उकलाई] वमन करना। क़ै करना।

उकलु–[पं०] गूच। तुनंनी। तन्देई। थिलकइन।

उकवथ–संज्ञा पुं० [सं० उत्कोथ] एक प्रकार का चर्म-रोग जो प्रायः पैर में घुटने के नीचे होता है। इसमें दाने निकलते हैं जिनमें खाज होती है और जिनमें से चेप बहा करता है। उँकौत। उकौथ। उकौथा। उंकौत।

उकवथ की चिकित्सा

(१) करेरुआ (विषमुष्टि) की कोमल-कोमल पत्ती लेकर बाँधने से उकवथ आराम होता है।

(२) जामुन की नरम-नरम पत्ती लेकर बाँधने से उकौंथ रोग का नाश होता है।

(३) कौआ (काकनासा) के फल का पातालयंत्रद्वारा तेल निकालकर रूई के फाया से लगाने से उकौथा आराम होता है।

(४) ऊँटकी मींगनी का पातालयंत्र से तेल निकालकर लगाएँ। इससे उकवथ में लाभ होता है।

(५) करंज की गिरी का पाताल-यंत्र से तेल निकालें। इसके लगाने से उकवथ रोग आराम होता है।

(६) कनेर की जड़ की छाल की लुगदी एक पाव, काले तिल का तेल एक सेर इनका तेल तैयार कर लगाने से उकवथ-रोग अच्छा होता है।

(७) रसकपूर ६ मा०, सफ़ेदा १ तो०, सफेद राल १ पाव, तूतिया ३ मा०–इनका बारीक चूर्णकर पीतल की थाली में नीम के काढ़े से रगड़ कर मलहम बनालें। इसका गोला बनाकर पानी में रखदें, जिसमें यह सूखने न पाये। इसे लगाकर कपड़ा बाँधने से उकवथ आराम होता है।

(८) मुरदासंख १ तो०, कबीला १ तो०, इज़खिर १ तो०, जस्ते की भस्म १ तो०–इनका बारीक चूर्णकर गरी के तेलमें फेंटकर रखें। इसके लगाने से उकौथा आराम होता है।

(९) कपूर, समुद्रझाग, जस्ते की भस्म (Zinc oxide) प्रत्येक १–१ तो०, रसकपूर ४ रत्ती–इनको बारीक करके मक्खन में मिलाकर रखें। इसे लगाने से भी उकवथा अच्छा होता है।

(१०) कुचले की भस्म ५ तो०, कछुए की जलाई हुई खोपड़ी ५ तो०–दोनों के बारीकचूर्ण को खोपड़े के तेल में फेंटकर रखें। इसे लगाने से भी उकवथ में लाभ होता है।

(११) कोयने (मधूक गिरी) की खली को जलाकर खोपड़े का तेल मिलाकर लगाने से भी उकौथ का नाश होता है।

(१२) मरिचादितैल, वज्रतैल, कंदर्पसारतैल का उपयोग भी इस रोग में गुणकारी है।

(१३) अलकतरे का तेल लगाने से उकवथ आराम होता है।

उकसाना–क्रि० उभारना। ऊपर करना। शरीर में लगे हुए काँटे को चिमटी आदि से उभारना।

उक़हवान–संज्ञा पुं० [अ०] दे० "उक़्हुवान"।

उक़ाब–संज्ञा पुं० [अ० उक़ाब] बड़ी जाति का एक गिद्ध। इसकी दृष्टि बहुत तीव्र होती है। सुनते हैं–उक़ाब या शार्दूल की छाया पड़ने से दीन-दरिद्र भी राजा बन जाता है।

पर्य्याय—गरुड़ गृध्र, गीध, काब (हिं०)। अलुवह, अलुह, अल्लह (फ़ा०)। वि० दे० "गरुड़"।

उक़ार–[अ०] मद्य। शराब।

उक़ार अत्र्रून–[सिरि०] असराश।

उक़ार अर्त़नीस़ा–[सिरि०] आज़रबुवा।

उक़ार आदम–[अ०] मगास़।

उक़ार कोहान–[?] (१) अकरकरा। (२) फ़ावानिया।

उक़ार सौसीनाई [सिरि०] ईर्सा।

उक़ाल–[अ०] (Spasm) एक प्रकार का तशन्नुज (आक्षेप) जो सहसा उपस्थित हो जाता और तत्काल प्रशमित हो जाता है। तशन्नुज रेही। विशेष विवरण के लिए दे० "तशन्नुज"।

उकासना–दे० "उकसाना"।

उकीरना–क्रि० (१) खोदना। खनन करना। (२) उखाड़ डालना।

उकुण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शिरः कीट। जूँ। चिल्लड़। (२) मत्कुण। खटमल।

उकुरु–संज्ञा पुं० दे० "उकड़ूँ"।

उकुसना–क्रि० दे० "उकसना"।

उकेलना–क्रि० बकला निकालना। छिलका छोड़ाना। उचाड़ डालना। छील डालना।

उकेला–वि० उचाड़ा हुआ।

संज्ञा पुं० [हिं० उकेलना] कम्बल का बाना।

उकौथ– } संज्ञा पुं० दे० "उकवथ"।
उकौथा– }

उकौना–संज्ञा पुं० [हिं० ओकाई ?] गर्भवती स्त्री में होनेवाली अनेक प्रकार की प्रबल इच्छाएँ। दोहद।

उक्थ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि। (२) अग्नि का एक रूप।

उक्थ पात्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तर्पणोदक।

उक्थार्क–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उद्गार।

उक़्दः–[अ०] (१) ग्रंथि। गिरह। (२) रागविज्ञान के अनुसार एक प्रकार की व्याधि जो ऊपर की पलक में भीतर की ओर एक दृढ़ ग्रंथि के समान आविर्भूत हो जाती है। ऊपर का पलक की गाँठ। कंजंक्टिवोमा (Conjunctivoma) (३) कभी कभी यह शब्द शरीर के भिन्न-भिन्न प्रांत की गाँठों के लिए भी प्रयुक्त होता है। नोड Node (अं०)। (४) हकलाना। (५) नाड़ी गंड। वात गंड। असबी गिरह।

[मिस्र०] ज़रिश्क की लकड़ी।

उक़्द: अज़्मिय्य:-[अ०] (Condyle) अस्थि का सिर। लुक़्महे अज़्मिय्य: (अ०)।

उक़्बूल-[अ०] [बहु० अक़ाबिल] (Blister, fever-blister) वह फफोला वा पपड़ी जो ज्वर उतरते समय होंठों पर निकल आती है।

उक़्म-[अ०] वन्ध्या होने का भाव। वन्ध्यत्व। बाँझपन। Sterility

उक़्र-[अ०] वन्ध्या होने को क्रिया या भाव। बाँझ होना। गर्भस्थापित न होना। सन्तति का अभाव। अक़्रत, अक़ारत (अ०)।

उक्ल:-[अ०] (Mouthful) ग्रास। कवल। लुक़्मा।

उक्लेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वमन। क़ै। (Vomit, Vomiting)

उक़्हुवान-[अ०] [बहु० उक़ाह] एक प्रकार का बाबूना जिसे बाबून: गाव कहते हैं। उक़्हवान। सोंभल। शजरहे मरियम्। (Matricaria Parthenium) Featherfew दे० "बाबून:"।

उक़्हुवानुल् बाबूनजी-[अ०] (Matricaria chamomilla) German chamomile एक प्रकार का बाबूनहे गावचश्म। बाबूनहे जर्मनी। दे० "बाबून: जरमनी"।

उख (ष) र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) क्षार भूमि। ऊसर। (२) क्षारमृत्तिका। खारी मिट्टी। वै० निघ०। रा० नि० ६० २।

उख (ष) रज-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पांशु लवण। (२) रोमक नामक एक प्रकार का अयस्कांत। (३) लवण। नमक। रा० निघ० व० २०।

उखच्छिद्-त्रि० [सं० त्रि०] पात्र तोड़नेवाला।

उखटना-क्रि० इतस्ततः पद पड़ना। अच्छी तरह न चल सकना। ठोकर खाना। लड़खड़ा जाना।

उखड़ना-क्रि० निर्मूल होना। उपटना। जड़ से टूट जाना।

उखभोज-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इक्षुवपनोत्सव का विशिष्टान्न सम्भार। ऊख बोने के पश्चात् को कृषकों की दावत।

उखम-संज्ञा पुं० [सं० उष्म] ताप। गरमी। हरारत।

उखमज-त्रि० [सं० उष्मज] (१) गर्मी से पैदा। संज्ञा पुं० उष्मज जीव। गर्मी से पैदा होने वाला कीड़ा।

उखर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उखल।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उद्भित। खारी नमक। क्षार मृत्तिका। शोरा।

उखरज-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पांशु लवण। शोरा। (२) अयस्कान्त भेद। एक प्रकार का लोहा। (३) लवण। नमक।

उखराज-संज्ञा पुं० दे० "उखभोज"।

उखलना-क्रि० खौलना। गर्म होना।

उखर्व्वल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की घास जो पशुओं के चारे के काम में आती है। उखल। ऊखल।

पर्याय—उखलः, भूरिपत्रः, सुतृणः, तृणोत्तमः।

गुण—बल्य और रुचि-कारक एवं पशुओं के लिए सदा हितकारी है। रा० नि० व० ८।

उखल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की घास। दे० "उखर्व्वल"। रा० नि० व० ८।

उखली-संज्ञा स्त्री० [सं० उदूखल, पा० उक्खल] ओखली। उलूखल। काँड़ी।

उखहाई-संज्ञा स्त्री० ऊख की चुसाई।

उखा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रन्धनस्थाली। बटलोई। देग। हंडी। अम०। (२) जघन-चूड़ा। (Iliac crest.)

उखाड़-संज्ञा पुं० उच्छेद। उखाड़ने का काम।

उखाड़ना-क्रि० निर्मूल करना। उपाड़ना। जड़ से पृथक् करना। स्थान च्युत करना।

उखारना-क्रि० दे० "उखाड़ना"।

उखारी-संज्ञा स्त्री० [?] इक्षुक्षेत्र। ऊख का खेत।

उखाल-संज्ञा पुं० वमिक्रिया। कै करने का काम। विशूचिका अथवा वमि क्रिया को उखाल-पुखाल कहते हैं।

उखालिया-संज्ञा पुं० उषः काल का खाद्य। सवेरे का खाना। नाश्ता।

उखेड़–दे० "उखाड़" ।

उखेड़ना–दे० "उखाड़ना" ।

उखेरना–दे० "उखाड़ना" ।

उखेलन–क्रि० उल्लेखन । तस्वीर उतारना ।

उख्मा–संज्ञा स्त्री० [सं० उष्मा] ताप । गरमी ।

उख्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हंडी में पकाया मांस जिसकी आहुति यज्ञों में दी जाती है । अम० ।

उगना–क्रि० जमना । उद्‌गमन । निकलना ।

उगलना–क्रि० [सं० उद्‌गिलन] मेदेसे बाहर निकालना । थूकना ।

[बं०] अगर ।

उगाना–क्रि० पैदा कराना । जमाना । उपजाना ।

उगार–संज्ञा पुं० दे० "उगाल" ।

उगाल–संज्ञा पुं० [सं० उद्‌गार, पा० उग्गाल] पीक । थूक । खखार । बज़्क़, ब.स्क़, बस्क़ (अ०) । तुफ़ (फ़ा०) । स्पिट Spit (अं०) ।

उगालदान–संज्ञा पुं० [हिं० उगाल+फ़ा० दान (प्रत्य०)] (Spittoon) थूकने वा खखार आदि गिराने का बरतन । पीकदान । मिब्ज़ाक़ (अ०) । तुफ़दान (फ़ा०) ।

उगाला–संज्ञा पुं० [हिं० उगाल] (१) एक प्रकार का कीड़ा जो अनाज की फ़सल को हानि पहुँचाता है । आर्द्र भूमि । तर ज़मीन ।

उगिलना–क्रि० [सं० उद्‌गिलन] दे० "उगलना" ।

उगुरु–संज्ञा पुं० [बं०] (Aquilaria agallocha, *Roxb.*) अगर ।

उग्र–वि० [सं० त्रि०] प्रचंड । उत्कट । तेज़ । तीव्र । कड़ा । प्रबल । घोर । रौद्र ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Aconitum napellus, *Linn.*) वत्सनाभ नामक विष । वत्सनाभ विष । बच्छनाग ज़हर । रा० नि० व० ६ ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सहिजन । शोभाञ्जन । मुनगा । (Moringa pterygosperma, *Gaertn.*) श० च० । (२) पृष्ठ ग्रंथि । (३) सूर्य्य । (४) उग्र बिड़ाल । ऊद बिलाव । (५) बलीवर्द । साँड़ ।

उग्रक–संज्ञा पुं० [स० पुं०] नाग विशेष ।

उग्रकाण्ड(क)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (Momordica charantia, *Linn.*) कारवेल्ल । करैला । रा० नि० व० ३ । मद० व० ७ । (२) काण्डवल्ली । काण्डीर । करेले की बेल ।

उग्रगंध (गन्ध)-वि० [सं० त्रि०] तेज़ गंधवाला । तीक्ष्ण गंधि ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शुक्ल रसोन । सफ़ेद लहसुन । रा० नि० व० ७ । (२) कट्फल वृक्ष । कायफल । रा० नि० व० ६ । (३) रक्त रसोन । लाल लहसुन । प्याज (४) कुठेरक । अर्जक । बर्बरी । ममरी । रा० नि० व० १० । (५) रसोनमात्र । भा० पू० १ भ० ह० व० । (६) चम्पक वृक्ष । चम्पा । श० च० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हिङ्गु । हींग । (Assafoetida.)

उग्रगंधा (गन्धा)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वन यमानी । जंगली अजवायन । भा० पू० १ भ० । मद० व० २ । (२) अजमोदा । भा० पू० १ भ० । (३) वचा । बच । प० मु० । रा० नि० व० ६ । भा० अने० । वै० निघ० सा० ज्व० अर्कादि । (४) महाभरी वचा । कुलिञ्जन । इसे सुगंधवचा भी कहते हैं । भा० पू० १ भ० ह० व० । (५) छिक्किका । नकछिकनी । मे० । (६) अजगन्धा । रा० नि० व० ४ । (७) यवानी । अजवाइन ।

उग्रगन्धादि योग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का योग जो इस प्रकार है-वच को काँजी में पीसकर पीने से वमनका नाश होता है । वृ० नि० र० छर्दि चि० ।

उग्र गन्धिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "उग्रगन्धा" ।

उग्रगन्धिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अजमोदा । रा० नि० व० ६ । सि० यो० वक्ष्म-चि० एलादिमन्थ ।

उग्रगन्धिन्–वि० [सं० त्रि०] तीखी खुशबूवाला ।

उग्रगन्धी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शुक्ल रसोन । सफ़ेद लहसुन । मद० व० ७ ।

उग्रग्रंथा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अरक्तलशुन । सफ़ेद लहसुन ।

उग्रचा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Calamus rotang, *Linn.*) बेंत । वेतस ।

उग्रजिह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाङ्गली । कलिहारी ।

उग्रता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तेज़ी । प्रचंडता । उद्दण्डता । उत्कटता ।

उग्रताकारक, उग्रताजनक-वि० [सं० त्रि०] जो क्षोभ उत्पन्न करे । प्रदाहक । क्षोभक । ख़राश पैदा करनेवाली (औषध) ।

उग्रतासाधक-वि० प्रदाहक । दे० "उग्रताकारक" ।

उग्रदण्ड-वि० [सं० त्रि०] उत्कट दण्डधारी । मोटा सोंटा बाँधनेवाला ।

उग्रदंष्ट्र-वि० [सं० त्रि०] उत्कट दन्तयुक्त । तीखे दाँतवाला ।

उग्रदुहितृ-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उत्कट पुरुष की कन्या । खूँखार आदमी की बेटी ।

उग्र धन्वन्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शिव । (२) इन्द्र ।

वि० [सं० त्रि०] असह्य धनुर्विशिष्ट । कड़ी कमान वाला । जिसके धनुष की चोट न सह सके ।

उग्रनासिक-वि० [सं० त्रि०] जिसकी नाक लंबी हो । दीर्घ नासिक । लंबी नाकवाला ।

उग्रपत्रक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महानीली । वै० निघ० । दे० "नीली" ।

उग्र प्रस्वेदक-वि० [सं० त्रि०] तीव्र स्वेद लाने वाली (दवा) । तीक्ष्ण स्वेदक । दे० "स्वेदक" ।

उग्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोपासवल्ली । वै० निघ० । एक प्रकार की लता ।

उग्रम्पश्य-वि० [सं० त्रि०] उग्र दृष्टि युक्त । कड़ी नजरवाला ।

उग्रम्पश्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अप्सरा विशेष । एक परी । अथ० ६ । ११८ । १ ।

उग्र-विडालक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊद बिलाव । लोमश बिडाल । गन्धमार्जार । बिडाल विशेष । दे० "ऊदबिलाव" ।

उग्रवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] (Assafoetida) हिङ्गु । हींग ।

उग्रवीर्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हिङ्गु । हींग । रा० नि० व० ६ ।

उग्रस्वेदनीय-वि० [सं० त्रि०] उग्र प्रस्वेदक । दे० "स्वेदक" ।

उग्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) (Coriandrum sativum, *Linn*) धन्याक । धनिया । रत्ना० । (२) यमानी । अजवायन । रा० नि० व० ४ । (३) संविदामञ्जरी । गाँजा । अलि० । (४) वचा । बच । भा० म० १ भ० कर्णक ज्वर चि० । "कटुविलोग्रा घन कुण्डलीभिः" । वै० निघ० उ० चि० वचादि चूर्ण, कुटज लेह । (५) छिक्किका । नकछिकनी । हे० च० । (६) कर्कशा स्त्री । (७) मेथिका । मेथी ।

संज्ञा पुं० [सं०] रोगियों के लिए तरल आहार द्रव्य । इसे चावल, मूँग और गरम-मसाले से बनाते हैं ।

उग्रादि क्वाथ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का योग—वच, कटेरी, धमासा, रास्ना, गिलोय, सोंठ, कुटकी, काकड़ासिंगी, पुष्करमूल, ब्राह्मी, भारंगी, चिरायता, अडूसा और कचूर-इनका क्वाथ विधिपूर्वक प्रस्तुतकर पीने से सन्निपात ज्वर का नाश होता है । वृ० नि० र० सन्निपा० चि० ।

उग्रादि धूप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वच. वंशनीली (बाँस का छिलका), जौ, अडूसे की छाल, कार्पासकीकस (कपास के बीज), ब्राह्मी, तुलसी, अपामार्ग तथा लाख इन औषधियों को समान परिमाण में लेकर चूर्ण बनाएँ । इस चूर्ण में (चतुर्थांश) घी मिलाकर यथाविधि धूपप्रदान करने से रोमांतिका (दादरा) आदि विविध (स्फोटक) रोग नष्ट होते हैं । चक्र द० मसूरिका चि० ।

उघटना-क्रि० गड़े मुर्दे उखाड़ना ।

उघाई-संज्ञा स्त्री० [देश०] (Salvadora persica, *Linn.*) पीलु । झाल । मीठी दियार (सिंध) ।

उघै-पुट्टै-[ता०] (Salvadora indica, *Roxb.*) पीलु ।

उङ्कुण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (Pediculus) Louse. उत्कुण । जूँ । श०मा० । (२)खटमल ।

उङ्ग दुङ्ग-[बर०] मैदा लकड़ी । (Tetranthera Roxburghii, *Nees.*)

उङ्ग(ङ्ङ)मरम्- मल०] (Pongamia glabra, *Vent.*) करञ्ज । कंजा ।

उङ्गल-संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल] उँगली ।

उङ्गल-संज्ञा पुं० दे० "अंगुल" ।

उङ्गली-संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] दे० "उँगली"।

उङ्गली कला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिम्बी । सेम ।

उङ्गलया थूहर-संज्ञा पुं० [हिं०उँगली+थूहर]भद्रचूड़ । थूहर का एक भेद । छीमिया सेंहुड़ ।

उचकन-संज्ञा पुं० [देश०] अवष्टम्भ । उठगन । अटकनी । आड़ । टेक । इसे नीचे लगा देने से बरतन उलटने नहीं पाता ।

उचरंग-संज्ञा पुं० [हिं० उछरना+अंग] उड़नेवाला कीड़ा । पतंग । पतिंगा । करड़े का कीड़ा ।

उचित-वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा औचित्य] (१) अभ्यस्त । (२) परिमित । योग । ठीक । वाजिब । मुनासिब । मे० तत्रिकं ।

उच्च-वि० [सं० त्रि०] (१) ऊँचा । उन्नत । (२) श्रेष्ठ । महान् । बड़ा उत्तम ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नारिकेल । नारियल ।(Cocos nucifera, *Linn.*) रा० नि० व० ११ । (२) सरल देवदार । (३) ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार मेष का सूर्य, वृष का चन्द्र, मृग का मङ्गल, कन्या का बुध, कर्क का वृहस्पति, मीन का शुक्र और तुला का शनि उच्च होता है ।

उच्चक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Vertex) शीर्ष । चोटी ।

उच्च-जानवी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Highest genicular.)

उच्चट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वङ्ग । वै० नि० ।

उच्चटा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चूड़ामणि । गुञ्जा । घुँघची । (Abrus precatorius, *Linn.*) रत्ना० महाभल्लातक गुड़ । (२) एक प्रकार का लहसुन । हे० च० । सु० चि० २६ अ० ।(३)रक्त गुञ्जा । लाल घुँघची । रा० नि० व० ३ । वै० नि० २ भ० क्षय-चि० इन्द्रादिमोदक । (४) भूधात्री । भुँइँ आमला । (Phyllanthus niruri, *Linn.*) रा० नि० व० ५ । (५) नागरमुस्ता । नागरमोथा । (Cyperus pertenius) रा० नि० व० ६। (६)श्वेत गुञ्जा। सफ़ेद घुँघची । (Abrus precatorius *Linn.*) जैसे, "श्वेत गुञ्जोच्चटा प्रोक्ता" । भा० म० १ भ० गु० व० । (७) एक प्रकार की घास । निर्विषी ।

पर्य्या०—चूड़ाला, चकला (अ), अम्बुपत्रा, जटिला, शुकला, उत्तानकः, शुक्ला (र०) । अ० टी० भ० । (८) तमालिका ।

उच्चटा चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आयुर्वेदीय एक चूर्ण-उच्चटा(श्वेत-गुञ्जामूल) १ भा० शतावर १ भा० । इनका बारीक चूर्ण करें । मात्रा—१ मा० । गुण—गोदूध के साथ सेवन करने से स्त्री-सहवास में परम प्रहर्ष होता है । चक्र० द० वृष्याधिका० ।

उच्चटा पत्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षुद्र तालीशपत्र । वै० निघ० । छोटे पनिहा आँवले का पत्ता ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विच्छोटक पत्र ।

उच्चटा फल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रक्त गुंजा । लाल घुँघची । भैष० कुष्ठ-चि० महाभल्लातक गुड़ ।

उच्चटामूल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) विच्छोटकमूल । चंचेंड़े की जड़ । सु० चि० २६ अ० । (२) घुँघची की जड़ । Indian liquorice root.

उच्चतरु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Cocos nucifera, *Linn.*) नारिकेल वृक्ष । नारियल का पेड़ । रा० नि० व० ११ ।

उच्चताल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भोजनकाल का नृत्य एवं गीत ।

उच्चदेवता-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री] काल । यमराज ।

उच्चध्वज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हृदय में रहने और मुख पर न आनेवाला हास्य। दिल में होनेवाली हँसी।

उच्चन्द्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रात का चौथा पहर। शेष रात्रि। श० र०।

उच्च-पार्शुकान्तरीया धमनी–संज्ञा स्त्री०[सं० स्त्री०] (Arteria intercostalis suprema) एक धमनी।

उच्चभाषिन् वि० [सं० त्रि०] ज़ोर से बोलनेवाला।

उच्चमहोशिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior vena cava) ऊर्ध्व(गा)महाशिरा।

उच्चय–संज्ञा स्त्री० [स० पुं०] (१) परिधान-वस्त्र-ग्रंथि। पहनने के कपड़े की गाँठ। हे० च०। (२) राशि। ढेर।

उच्चल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मन। हे० च०।

उच्चललाटा–
उच्चललाटिका– } वि० [सं० त्रि०]

जिसका ललाट ऊँचा हो। ऊँचे मस्तकवाली स्त्री। उच्च ललाट विशिष्ट। त्रिका०।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वह स्त्री जिसकी पेशानी ऊंची हो। उच्च ललाटवाली स्त्री। मरुण्डा। मरुटा।

उच्च श्रवण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]एक प्रकार का वात रोग। ऊँचा सुनने का रोग। च० सू० २० अ०।

उच्च स्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (High pitch) ऊँचा शब्द। ऊँची आवाज़। ज़ोर का शब्द।

उच्चक्षु–वि० [सं० त्रि०]ऊपर की ओर को चक्षु रखनेवाला। जो आँख उठाए हो।

उच्चाट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०](१)उखाड़ने वा नोचने की क्रिया। (२) चित्तका न लगना। अनमनापन। विरक्ति। उदासीनता।

उच्चाटन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उच्चाटनीय, उच्चाटित](१) लगी वा सटी हुई चीज़ को अलग करना। विश्लेषण। (२) उचाड़ना। उत्पाटन। उखाड़ना। नोचना। (३) किसी के चित्त को कहीं से हटाना। उत्स्वातन। तंत्र के छः अभिचारों वा प्रयोगों में से एक। "उच्चाटनं स्वदेशाद्भ्रंशनं परिकीर्त्तितम्"। तन्त्र०। (४) चित्त का न लगना। अनमनापन। विरक्ति। उदासीनता।

उच्चाबुध्न–वि० [सं० त्रि०] उपरितलयुक्त। जिसका पेंदा ऊपर हो।

उच्चार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विष्टा। पुरीष। मल। (Fæces) रत्ना०। स्मृति के मत से उच्चार, मैथुन, प्रस्राव, दन्तधावन, स्नान और भोजन करते समय बातचीत करना निषेध है। यथा—

"उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्त धावने ।
स्नाने भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्॥"
(स्मृति)

उच्चिङ्गट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का एक कीड़ा। उच्चिटिङ्ग। एक प्रकार का झींगुर। (२) तृणगड़मत्स्य। तृणगड़ुई नामकी मछली। मे० टचतुष्कं। एक प्रकार का केकड़ा।

उच्चिटिङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) A sort of cricket. उच्चिङ्गट। उष्ट्रधूम। रात्रिक। वा० उ० ३७ अ०। रा० नि० व० १९। (२) एक प्रकार का वात-स्वभाव कीट। सु० कल्प०।

नोट—एक प्रकारका झींगुर जिसे उच्चिटङ्ग भी कहते हैं। यह कीड़ा तीन-चार प्रकार का होता है। एक जातीय (Acheta Domestica), नगर, विशेषतः पल्लिग्राम में ही अधिक रहता है। देखनेमें कोमल होता है। यह उष्ण प्रदेश में ही रहना पसंद करता है। उच्चिटिंग ग्रीष्मकालमें निकलता है। शीत पड़ते ही यह निज आवास का आश्रय ग्रहण करता है। उष्णता न मिलने से यह मृतवत् पड़ा रहता है। यह निशाचारी होने से सन्ध्या के बाद निज आहार ढूँढनेके हेतु बाहर निकलता है। ग्राम्य उच्चिटिंग की अपेक्षा वन्य अथवा क्षेत्रज (Acheta campestris) बहुत बड़ा और देखने में काली स्याही जैसा होता है। यह सात-आठ हाथ नीचे मिट्टी में गर्त बनाकर रहता है। रात्रि काल को गर्त के मुखपर बैठ प्रथम अल्प-अल्प पुनः प्रणयिनी के आकर मिल जाने से साथ-साथ उल्लास में प्राणभर बोलता है। इसका स्वर दूर से मन लगाकर सुनने पर अतिमिष्ट लगता और संगीत की नाना प्रकार की ध्वनि का भाव जताता है। इसकी स्त्री प्रायः दो-सौ अण्डे देती है। अण्डा फूटने पर बच्चे

का आकार प्राय: मध्यमवयस्क उच्चिटिङ्ग की तरह रहता है, केवल पत्त ही नहीं निकलते।

एक जातीय दूसरा उच्चिटिङ्ग भी है। यह उक्त उभय जाति से बड़ा होता है। भारत वर्ष में इसे घुरघुरा या झींगुर कहते हैं। इसके काटने से वायुजन्य रोग उत्पन्न होता है। दे० "झींगुर"।

इसके दंश के लक्षण—उच्चिटिङ्ग के काटे हुये मनुष्य के शरीर में रोमांच, कटे हुए स्थान का टेढ़ा सा होकर अकड़ जाना, अत्यन्तपीड़ा, सम्पूर्ण शरीर शीतल जल से भींगे हुये के समान प्रतीत होना यह लक्षण होते हैं। च० चि० २५ अ०। इसमें तीनों दोषों का कोप होने से प्रत्येक धातुओं की विवर्णता से शिर में पीड़ा, लार का बहना और नीचे को मुख हो जाता है। (३) मुख से काटनेवाला विच्छू जिसे उष्ट्रधूम भी कहते हैं। इसके काटने से बिच्छू की अपेक्षा अधिक व्यथा होती है और लिंगेन्द्रियमें स्तब्धता और रोमहर्षण होता है। इसके दंश स्थान में शीतल जल का परिषेक हितकर है।यह विच्छू रात्रिमें निकलता है इसलिये इसे रात्रिक भी कहते हैं।वा०उ० ३ अ०।

चिकित्सा—इसके विष में विच्छू के समान उपचार करना चाहिये, तथा बालू और मट्टी आदि से ऊपर को उद्वर्त्तन करना और सुखोष्ण जल में वस्त्रादि भिगोकर दंशस्थान को पूर्णरूप से ढक देना चाहिये।

उच्चूल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ध्वजोर्ध्वमुखकूर्च। ध्वज के उपरिभाग का वस्त्र खंड। झण्डे के ऊपरी हिस्से का फहरानेवाला कपड़ा। (२) ध्वज के उपरभिाग पर बाँधे जानेवाला एक अलंकार। उच्चड़। हे० च०।

उच्चैःश्रवस्, उच्चैःश्रवस—दे० "उच्चैःश्रवा"।

उच्चैःश्रवा—वि० [सं० उच्चैःश्रवस्] ऊँचा सुननेवाला बहरा। वधिर। जो कम सुनता हो।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वह जिसके कान ऊँचे हों। ऊँचे कानवाला। (२) इन्द्र का सफ़ेद घोड़ा जिसके खड़े-खड़े कान और सात मुँह थे। यह समुद्रमें से निकले हुए चौदह रत्नों में था।

उच्चैर्भुजतरु— वि० [सं० त्रि०] वृक्ष को विस्तारित बाहु की भाँति रखनेवाला। जो फैले पेड़ों को बाजू की तरह रखता हो।

उच्चैःशिरस्-वि० [सं० त्रि०] उन्नत मस्तक। ऊँचे मस्तकवाला।

उच्चैःस्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्नत शब्द।

वि० [सं० त्रि०] उन्नत शब्दसे बोलनेवाला।

उच्छन्न—वि० [सं० त्रि०] दबा हुआ लुप्त। नष्ट। उजड़ा। बरबाद।

उच्छन्न-सन्धि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सन्धि विशेष। एक प्रकार की सुलह।

उच्छादन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गंध-द्रव्य से शरीरमार्जन करना। अ० टी०।

पर्य्या०—उत्सादन, उद्वर्त्तन।

उच्छाद्य—[सं० अव्य०] उतार कर, कपड़े खोल कर।

उच्छास—संज्ञा पुं० दे० "उच्छ्वास"।

उच्छास्त्र—वि० [सं० त्रि०] शास्त्र विरुद्ध। जो शास्त्र से न मिलता हो।

उच्छास्त्रवर्तिन्—वि० [सं० त्रि०] शास्त्रोल्लङ्घनकारी। शास्त्र की मर्यादा को उल्लङ्घन करनेवाला।

उच्छिख—वि० [सं० त्रि०] (१) उन्नत-शिखा। चोटी ऊपर को उठाये हुआ। (२) ज्वलन्त। भभकने वाला। (३) द्युतिमान। चमकीला। (४) उन्नत शिखा विशिष्ट एक नाग। (५) ऊपर जानेवाली आग की लपट की नोक।

उच्छिङ्घन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नस्य की भाँति नासिका द्वारा किसी वस्तु को श्वास के साथ खींचने का कार्य। ख़र्राटे मारने की दशा। इसे कभी "उच्चिङ्घन" भी लिखा जाता है।

उच्छित—वि० [सं० त्रि०] रुद्ध। रुका हुआ। घिरा हुआ।

उच्छिति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उच्छेद। विनाश। बरबादी।

उच्छिद्य—[सं० अव्य०] विनाश करके। काट करके या मार कर।

उच्छिन्न—वि० [सं० त्रि०] (१) समूल उत्पाटित। जड़ से उखाड़ा हुआ। (२) नीच। कमीना।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहु मूल्य भूमि के देने से प्राप्त सन्धि ।

उच्छिरस्–वि० [सं० त्रि०] उन्नत शिर: विशिष्ट । ऊपर को किए हुए मस्तक वाला ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बौद्ध शास्त्रानुसार उरुमुण्ड पर्वत ।

उच्छिलीन्द्र (न्ध्र)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साँप की छतरी । साँप की टोपी । कुकुरमुत्ता । वर्षा ऋतु में यह भूमि को विदारण कर स्वयं प्रकट होता है ।

उच्छिष्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मधु । शहद । (Mel) Honey.

वि० [सं० त्रि०] जूठा । भुक्तावशिष्ट । जूठा खाना शास्त्र-प्रथा के विरुद्ध है । क्योंकि इससे अनेक प्रकार की छूतजन्य व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं ।

"नोच्छिष्टं कस्यचिद् द्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा । न चैवात्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्" । मनु २ । ५६ ।

अर्थात्—जूठा किसी को देना, सायं-प्रातः भोजन काल के मध्य पुनः भोजन करना, अतिशय आहार करना और जूठे मुख इधर उधर जाना निषेध है । मनु द्वारा यह कहा हुआ सिद्धान्त अत्यन्त लाभकारी है और आयुर्वेद-शास्त्र के अनुकूल भी है ।

उच्छिष्ट कल्पना–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] निःसार आविष्कार । बासी बनावट । ईज़ाद बे मज़ा ।

उच्छिष्टता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शेष रह जाने की दशा । (२) अपवित्रता । जूठन । नापाकी ।

उच्छिष्ट भोक्तृ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } दूसरे का
उच्छिष्ट भोजिन्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
जूठा खानेवाला । जो दूसरे का जूठा खाता हो ।

उच्छिष्ट भोजन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दूसरे का जूठा खाने की क्रिया ।

संज्ञा पुं०[सं० क्लीं०] दूसरे का जूठा खाना ।

उच्छिष्ट मोदन–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] सिक्थक । मोम । रा० नि० ।

उच्छीर्षक–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] (१) उन्नत शिर युक्त । ऊँचा शिर रखनेवाला । (२) उपधान । तकिया । बालिश । हला० । (३) मस्तक । शिर:स्थान । खोपड़ी ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का शय्या-दोष । सु० चि० ३८ अ० ।

उच्छुष्क–वि० [सं० त्रि०] (१) ऊपरि भाग में शुष्क । मुरझाया हुआ । (२) संतप्त । गर्मागर्म ।

उच्छुष्म–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] मोह । संभ्रम । घबराहट ।

उच्छुष्मन्–दे० "उच्छुष्म" ।

उच्छू–संज्ञा स्त्री० [सं० उत्थान, पं० उत्थू] एक प्रकार की खाँसी जो गले में पानी इत्यादि के रुकने से आने लगती है । सुनसुनी । प्रायः खाने पीने में शीघ्रता और एकाग्र न होकर भोजन करने से ही यह उत्पन्न होती है ।

उच्छून–वि० (२) स्फीत । फूला हुआ । (२) वर्द्धित । बढ़ा हुआ ।

उच्छृङ्खल–वि० [सं० त्रि०] नियम रहित । बेक़ायदा ।

उच्छेतव्य– वि० [सं० त्रि०] उच्छेद योग्य । उखड़नेलायक़ ।

उच्छेतृ–वि० [सं० त्रि०] उच्छेदकारक । उखाड़ डालनेवाला ।

उच्छेद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उन्मूलन । उखाड़-पखाड़ । विश्लेषण । खंडन । (२) नाश ।

उच्छेदन–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] (१) उखाड़-पखाड़ । खंडन । (२) नाश ।

उच्छेदनीय–वि० [सं० त्रि०] उखाड़ने योग्य । उत्पाटन योग्य ।

उच्छेदिन्–वि० [सं० त्रि०] उन्मूलनकर । उखाड़ डालनेवाला ।

उच्छेद्य–दे० "उच्छेदनीय" ।

उच्छोषण–वि० [सं० त्रि०] सन्तापक । सुखानेवाला ।

उच्छोषुक–वि० [सं० त्रि०] (१) ऊर्ध्व शोष युक्त । मुरझाया हुआ । (२) सुखा डालनेवाला ।

उच्छ्रक-संज्ञा पुं० [सं० पुं० द्वि०] मानव शरीर का एक अवयव । अथर्व० १० । २ । १ ।

उच्छ्रङ्क-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जृम्भण । फाजा । जम्हाई ।

उच्छ्र(च्छ्रा)य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उच्चता । ऊँचाई । ऊँचापन ।

उच्छ्रायी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तख़्ता । पटरा । फलक ।

उच्छ्रित-वि० [सं० त्रि०] (१) ऊँचा । बढ़ा हुआ । (२) बँधा हुआ । (३) उन्नत । उठा हुआ ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सरल देवदारु वृक्ष । वै० निघ० ।

उच्छ्रितपाणि-वि० [सं० त्रि०] उत्थित हस्तयुक्त । हाथ उठाए हुआ ।

उच्छ्रिति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उच्छ्राय । उठान । (२) उत्कर्ष । बड़प्पन ।

उच्छ्रेय-वि० [सं० त्रि०] उन्नत । बुलन्द । ऊँचा ।

उच्छ्वसत्-वि० [सं० त्रि०] स्थूल निश्वास विशिष्ट । हाँफ़ता हुआ । जो कठिनता से साँस लेता हो ।

उच्छवसन-वि० [सं० त्रि०] (१) निश्वास लेता हुआ । जो आह भर रहा हो । (२) स्थूल निश्वास-विशिष्ट । जो गहरी श्वास खींचता हो ।

उच्छ्वसित-वि० [सं० त्रि०] (१) उच्छ्वास युक्त । (२) जिस पर उच्छ्वास का प्रभाव पड़ा हो । (३) विकसित । प्रफुल्लित । फूला हुआ । (४) जीवित । (५) कम्पित । काँपता हुआ । (६) आश्वासयुक्त ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उच्छ्वास । (२) कम्पन । (३) स्फुरण ।

उच्छ्वास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उच्छ्वसित, उच्छ्वासी] (१) प्राणन । ज़िन्दगी । मे० सन्निकं । (२) ऊपर को खींची हुई साँस । अन्तर्मुख श्वास । उसास । हे० च० । (३) साँस । श्वास । (४) वायु का नासिका में से होकर, फुफ्फुसों के भीतर प्रवेश करना । श्वास भीतर खींचना । अंतःश्वसन । प्रश्वासका 'उल्टा' । (Inspiration) । (५) आश्वास । भरोसा । (६) विश्लेष । छुटकारा । (७) स्फीति । सूजन । (८) छिद्र । सूराख़ । (९) विकास । शिगुफ़्तगी ।

उच्छ्वास वायु-संज्ञा स्त्री० [सं०पुं०] (Inspired air) ऊपर को खींची हुई हवा । श्वास ली हुई वा भीतर खींची हुई वायु ।

उच्छ्वासित्-वि० [सं० त्रि०] प्राणहीन । बेदम । जो साँस न लेता हो ।

उच्छ्वासिन्-वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्व श्वास युक्त । हाँफनेवाला । (२) श्वास लेनेवाला । जो दम खींच रहा हो । (३) जो दम छोड़ रहा हो । मरता हुआ ।

उछंग-संज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्ग] दे० "उत्सङ्ग" ।

उछाल-संज्ञा स्त्री० [सं० उत्क्षेप] वमन । क़ै । छाँट ।

उछालना-क्रि० [सं० उत्क्षेपण] वमन या क़ै करना ।

उछास-संज्ञा पुं० दे० "उच्छ्वास" ।

उछिष्ट-दे० "उच्छिष्ट" ।

उजका-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] संत्रासन । चिड़ियाँ के उड़ाने का पुतला ।

उज़्बः-[अ०] वैधव्य । रँड़ापा ।

उज़र-[अ० बहु०] [ए० व० उज़्र:] एक प्रकार का दाद जो रसौली वा गाँठ जैसा होता है और क्षत युक्त नहीं होता; प्रत्युत एक स्थान से विलीन होकर किसी दूसरी जगह पर प्रगट होजाता है । रसौली । गिलटी ।

उजरा-वि० दे० "उजला" ।

उजला-वि० [सं० उज्जवल, प्रा० उज्जल] [स्त्री० उजली] White श्वेत । धौला । सफ़ेद ।

उजला कद्दू-संज्ञा पुं० अलाबु । गोल कद्दू । लौकी ।

उजला कनेर-संज्ञा पुं० श्वेत करवीर । सफ़ेद कनेर ।

उजला चंदन-संज्ञा पुं० [हिं० उजला+चंदन] सफ़ेद चंदन । श्वेत चंदन । (Santalum Album, *Linn.*)

उजला जामुन-संज्ञा पुं० सफ़ेद जामुन ।

उजला धतूरा-संज्ञा पुं० [देश० द०] सफ़ेद धतूरा । (Datura Alba, *Linn.*)

उजला भाँगरा-संज्ञा पुं० श्वेन भृंगराज । सफ़ेद भाँगरा ।

उजली-वि० स्त्री० दे० "उजला"।
संज्ञा स्त्री० रजक स्त्री। धोबिन।

उजली आज़ार-संज्ञा पुं० श्वेत प्रदर। सफ़ेदा। छिनता।

उजली काचकूरी-संज्ञा स्त्री० सफ़ेद केवाँच।

उजली कीकर-[द०] (Acacia leucophlæa, *Willd.*) श्वेत बब्बूर वृक्ष। सफ़ेद बबूल।

उजली तुलसी-संज्ञा स्त्री० [देश० द०] (Ocimum album *Linn.*) सफ़ेद तुलसी।

उजली मुसली-संज्ञा स्त्री० [देश० गु०] श्वेत मुसली। सफ़ेद मुसली। (Asparagus Ascendens, *Roxb.*)

उजली रोटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] रोटी भेद।

उजली शक्कर-संज्ञा स्त्री० चीनी। (Sugar)

उजली शंभाली-[द०] (Vitex trifolia, *Linn.*) जल निर्गुण्डी। सफ़ेद सँभालू।

उजले पान-की-जड़-संज्ञा स्त्री० सफ़ेद पान की जड़।

उजलो-वि० [गु०] श्वेत। सफ़ेद।

उजलो खाँड-[गु०] } (White sugar)
उजलो चीनी-[गु०] }
श्वेत शर्करा। चीनी।

उजलो पियारा, उजलो पेरु-[गु०] (Psidium Pyriferum, *Linn.*) श्वेतामृतफल। सफ़ेद अमरूद। दे० "अमरूद"।

उजलो बूरो-[गु०] (White Sugar) श्वेत शर्करा। चीनी।

उज़ाक़-[अ०] (Hearth) चुल्ली। चूल्हा। देगदान।

उज़ाज-[अ०] कड़ुवा तथा खारा पानी। तिक्त एवं क्षारीय जल।

उ़(अ़)जाज-[अ०] (१) धूम्र। धुँआ। (२) गर्द। धूल।

उ़ज़्ज़ाज़-[अ०] (१) नासाग्र। (२) नासामूल। नाक की जड़ जो भवों के समीप होती है।

उ़ज़ाफ़-[अ०] (Poison) सांघातिक विष।

उ़जाफ़-[अ०] एक प्रकार का खजूर।

उ़जाम-[अ०] गुठली।

उज़ामत-[गोवा०] (Scindapsus officinalis, *Schot.*) गजपिप्पली। गजपीपल।

उ़ज़ारः-[अ०] एक प्रकार का खजूर।

उज़ारम-[अ०] (१) दृढ़ सूची। मजबूत सूई। (२) पुरुष शिश्न।

उजारा-दे० "उजला" और "उजाला"।

उ़ज़ारिम, उ़ज़ारम-[अ०](१) Erect penis प्रहृष्ट शिश्न। दृढ़ावस्था का शिश्न। (२) वह आदमी जिसकी जननेन्द्रिय दृढ़ हो।

उजारी-संज्ञा स्त्री० अँगऊँ। खेत का कुछ अनाज जो देवार्थ प्रथम ही पृथक् रख दिया जाता है।

उ़ज़ाल-[अ०] कष्ट साध्य रोग।

नोट—उ़ज़ाल उस रोग को कहते हैं जो कठिनाई से अच्छा हो। कष्टसाध्य व्याधि। जब वह असाध्य हो जाय, तब उसे उ़क़ाम कहते हैं। नाजस और नजीस भी इसके पर्यायवाची शब्द हैं।

उ़ज़ालद-[अ०] गाढ़ा दूध।

उजाला-संज्ञा पुं० चमक। दीप्ति। रौशनी। प्रकाश।

उजाली-संज्ञा स्त्री० चन्द्रज्योत्स्ना। चाँदनी।

उ़ज़ाहिन-[अ०] साही। ख़ारपुश्त (फ़ा०)। A Porcupine.

उ़ज़ाहि़न-[अ०] [बहु० उज़्ज़ाही़न](Cook) सूपकार। रसोइया। बावरची।

उ़ज़ीलहे यत्‌स-[अ०] (A chameleon) गिरगिट। कृकलास।

उ़ज़ुन-[अ०] [बहु० आज़ान] (Ear) कर्ण। कान। श्रवणेन्द्रिय।

नोट—जिन जानवरों के कान भीतर होते हैं वे अंडे देते हैं और जिनके बाहर होते हैं वे बच्चे देते हैं।

उ़ज़ुन युम्ना-[अ०] (Right auricle) हृदय का दाहिना ग्राहक कोष्ठ। दे० "हृदय"।

उ़ज़ुन युस्रा-[अ०] (Left Auricle) बायाँ ग्राहक कोष्ठ (हृदय का)। दे० "हृदय"।

उ़ज़ुनाउल् क़ल्ब-[अ०] [द्वि० व०] हृदय के दोनों ग्राहक कोष्ठ। उज़ुनैन। (Auricles)

उज़्नुल् क़ल्ब-[अ०] (Auricle) ग्राहक कोष्ठ (हृदय का)। उज़ैनुल् क़ल्ब । दे० "हृदय"।

उ़ज़्ब्-[अ०] प्रसव होने के उपरांत जो कुछ गर्भाशय से निकले।

उजूबा-संज्ञा पुं० [अ० अजूबा] बैंगनी रंग का एक पत्थर जिसमें चमकदार छींटे पड़े रहते हैं।

उ़जूम-[अ०] ऊँट का बच्चा।

उ़जूह्-[अ०] एक प्रकार का खजूर जो मदीने में होता है।

उ़ज्ज:-[अ०] मसालेदार पके हुये अंडे । ख़ागीनः (फ़ा०)। अज्जः (अ०)।

उज्जन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उदजन।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्थूल वा बलिष्ट पड़ने का भाव। जिस हालतमें मोटे या ताकतवर रहें।

उज्जहरिकाम्ल-संज्ञा पुं [सं० (Hydrochloric Acid.) अर्वाचीन रसायनशास्त्र में नमक का तेज़ाब। उदहरिकाम्ल। लवणाम्ल। अभिद्रवहरिक अम्ल।

उज्जहरिद्-संज्ञा पुं० [सं०] (Hydrochloride) अर्वाचीन-रसायनशास्त्र में उदजन और हरिन गैस का एक योग।

उ़ज्ज़ाऽ-[अ०] स्थूल नितम्बवाली स्त्री।

उज्जासन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मारण। वध। अम०।

उज्जृम्भ-वि० [सं० त्रि०] (१) प्रफुल्ल। प्रस्फुटित। (२) उद्घाटित। खुला हुआ। विकसित। खिला हुआ। फूला हुआ।

उज्जृम्भण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पुष्पों के विकसित होने का कार्य। (२) जमहाई। मुख विकाश।

उज्जृम्भित-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चेष्टा। कोशिश। अम०। (२) उज्जृम्भण। जमहाई।

वि० [सं० त्रि०] प्रफुल्ल। विकसित। स्मित। खिला हुआ।

उज्ज्वल-वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा उज्ज्वलता](१)दीप्तिमान। प्रकाशमान्। चमकीला। (२) विमल। साफ़। (३) विकसित। खिला हुआ। (४) ज्वलन्त। जलता हुआ।

उज्ज्वल(न)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुवर्ण। सोना। रा० नि० व० १३।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का धान्य। च०। (२) नजला। बलना। (३) उद्दीप्ति चमक। (४) निर्मलता। सफ़ाई।

उज्ज्वलता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दीप्ति। चमक। (२) सुन्दरता। खूबसूरती।

उज्ज्वलत्व-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "उज्ज्वलता"।

उज्ज्वल मण्डल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Luminous Zone) रसायनशास्त्र में ज्वाला का वह भाग जो कृष्ण-मंडल के बाहर होता है। कृष्ण-मंडल की अपेक्षा यह अधिक ताप देता है।

उज्ज्वला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) (Capsicum) Chilli कुमरिच। लालमिरच। अत्रि०। दे० "मिर्च"। (२) दीप्ति। चमक।

उज्ज्वलाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोराटिका। गोकिराटी। गौरिका। कलहप्रिया। मेधाविनी। सारिका। अन्या। इतिका। प्रियवादिनी। धन्व० नि०। कवरी। कस्कलांगी। कुत्सितांगी। सनालुकः। मधुरालापा। पीतपादा। रक्तचञ्चु। उज्ज्वलाक्षी। रा०नि० व० २१।

पठन्ती। पाठवार्ता। बुद्धिमती। भुसारिका। गोराष्टिका। गौरिका।

गुण—स्निग्ध, वातल, बृंहणी, वृष्य, मेध्य, वीर्य-संजननी और रसायन है।

उज्ज्वलित-वि० [सं० त्रि०] दीप्तिमान। रौशन। चमकनेवाला। जो झलकाया गया हो।

उज़्न-[अ०] (Ear) कर्ण। कान। दे० "उज़्न"।

उ़ज्म-[अ०] (१) (Coccyx) पुच्छास्थि। गुदास्थि। (२) गुठली। बीज। (३) अरब के अतिरिक्त अन्यदेश। (४) पूँछ की जड़।

उ़ज्र:-[अ०] वृक्ष आदि की ग्रंथियाँ। पेड़ों की गाँठ।

उ़ज्रम-[अ०] (१) बलिष्ट ऊँट। (२) वृत्त-ग्रंथि।

उ़ज्रूफ़-[अ०] एक प्रकार का कीड़ा वा च्यूँटी जिसके पाँव लम्बे होते हैं।

उ़ज्रूम-[अ०] एक प्रकार का जल-पक्षी।

उ़ज़्व-[अ०] [बहु० अअ़्ज़ाऽ] (Organ, Member) अवयव। अंग। शरीर का एक भाग।

उ़ज़्व आली-[अ०] मिश्रित अवयव। जैसे-हस्त पाद आदि। दे० "अअ़्ज़ाऽ मुरक्कबः"।

उज्झ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] त्याग। विसर्जन। छूट। भूल। मनु ११। ५६।

उज्झक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मेघ। बादल। (२) तापस। फ़क़ीर।

उज्झटा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भुँइ आँवला। भूम्यामलकी।

उज्झन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विसर्जन। छोड़ाई। (मिताक्षरा)

उज्झित-वि० [सं० त्रि०] (१) त्यक्त। वर्जित। छोड़ा हुआ। (२) उपशमित। दबाया हुआ। जो रोक दिया गया हो।

उ़ज़्व बसीत़-[अ०] अमिश्रित अवयव। दे० "अअ़्ज़ाऽ मुफ़्रिदः"।

उ़ज़्व मशारिक-[अ०] आमाशय। मेदा। (Stomach)

नोट—प्रत्येक अंग का पोषण आमाशय पर ही निर्भर है। इसीलिए इसको "उ़ज़्व मशारिक" कहते हैं।

उ़ज़्व मुफ़्रद-[अ०] अमिश्रित अवयव। दे० "अअ़्ज़ाऽ मुफ़्रदः"।

उ़ज़्व मुरक्कब-[अ०] मिश्रितांग। दे० "अअ़्ज़ाऽ मुरक्कब"।

उ़ज़्व रईस-[अ०] उत्तमांग। श्रेष्ठावयव। दे० "अअ़्ज़ाऽ रईसः"।

उझकुन-संज्ञा पुं० दे० "उचकन"।

उझलना-क्रि० (१) एक पात्र से दूसरे में उँडेलना। धार बाँध कर डालना। (२) उन्नत होना। बढ़ना।

उझिला-संज्ञा स्त्री० [?] (१) अंग प्रलेपार्थ पक्व सर्षप। जो सरसों उबटन के लिये उबाली गई हो। (२) क्षेत्र के उच्च स्थान की खोदी हुई मृत्तिका। जो मट्टी खेत की ऊँची जगह से खोदकर निकाली गई हो। इससे पास के गड्ढे भरे जाते हैं। (३) भोजन विशेष। एक प्रकार का खाना। महुआ और पोस्ते का दाना मिलाकर उबालने से उझिला बनता है।

उञ्छ-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] उञ्छशिल। उञ्छवृत्ति। जटा०। उञ्छन।

उञ्छन-संज्ञा पुं० [सं०, पुं० क्ली०] मालिक के ले जाने के पीछे खेत में पड़े हुए अन्न के एक-एक दाने को जीविका के लिए चुनने का काम। सीला बीनना। उंछ।

उञ्छवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] खेत में गिरे हुए दानों को चुनकर जीवन-निर्वाह करने का कर्म।

उञ्छशिल-संज्ञा पुं० [सं०] उञ्छवृत्ति।

उञ्छशील-वि० [सं०त्रि०] उंछवृत्ति पर निर्वाह करनेवाला।

उट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुष्क तृण। सूखी घास। फूस। वै० निघ०। यह झोपड़े और छप्पर बनाने में लगता है।

उट्कटा(टे)रा-संज्ञा पुं० दे० "ऊँटकटारा"।

उट कटार-संज्ञा पुं० [देश०] पाडर। पाढ़ल।

उटकटेरा-संज्ञा पुं० [देश०]एक प्रकार का प्रसिद्ध पौधा। छोड़ा।(२) तालमखाना।

उटङ्ग-वि० (१) संकुचित। (२) कुनिर्मित। जो अच्छी तरह कटा-छटा न हो।

उटङ्गण-संज्ञा पुं० [देश० राजपु०] दे० "उटङ्गन"।

उटङ्गन-संज्ञा पुं० [सं० उट=घास+अन्न] सुनिषक, शिरआरि, शिरियारी, चौपतिया, गुठुवा, सुसना, चणपती, गुठवा, सिरियारी (हिं०)। शितिवार, शितिवारक, सूचिपत्र, सूच्याह्व, सुनिषण्णक, श्रीवारक, शितिवर, स्वस्तिक, कुक्कुट, शिखी (ध० नि०), शितावरी, शितवर, सूच्याह्व. सूचि-

पत्रक, श्रीवारक, शिखी, बभ्रू, स्वस्तिक, सुनिषण्णक, कुरुट, कुक्कुट, सूचिदल, श्वेताम्बर, मेधाकृद्, ग्राहक (रा० नि० ४ व०), शितिवार शितिवर, स्वस्तिक, सुनिषण्णक, श्रीवारक, सूचिपत्र, पर्णक, कुक्कुट, शिखी, चांगेरी सदृशपत्र, चतुर्दल, चतुःपत्री, (भा०). वितुन्न, चुचु सुतपत्र, शितिचार, सूतिपत्रक, शितिवर, सितिवार (सं०)। मार्सिलिया क्वाड्रिफोलिया Marsilea quadrifolia, *Linn.* (ले०)। शुशुनी शाक शुनो शाक (बं०)। कुरडु (मरा०)। करड़ाहके, खड़कतिरा (मरा० कना)। ओटी गप (गु०)। छुनछुनिया (उड़ि०, उत्०)। सुनिषण्णने शाकमु (ते०)। पकूलु त्रिपत्र (पं०)।

अन्वर्थसंज्ञा—"सूचिपत्रकः", "मेधाकृत्", "ग्राहकः", "चतुष्पत्री"।

उत्पत्तिस्थान तथा वानस्पतिक वर्णन—एक घास जो ठंडी जगहों में, नदी के कछारों में उत्पन्न होती है। यह तिनपतिया के आकार की होती है, पर इसमें चाँगेरी के समान एक साथ चार-चार पत्ते होते हैं, जो एक अंगुल चौड़े और नोकदार होते हैं। इसीलिये इसे "चतुष्पत्री" कहते हैं। कहा है—

"चाङ्गेरी सदृशैः पत्रैश्चतुर्दल इतीरितः।
शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥"
(भावमिश्रः)

पत्तों के बीच में कली लगती है। फलों में दो चपटे बीज होते हैं, जो कुछ रोईंदार होते हैं। ये बीज सूज़ाक में दिये जाते हैं। शिरियारी पंजाब और सिंध में अधिक होती है। शाक के लिए इसका भूरि प्रयोग होता है। कहते हैं यह साग खाने से अच्छी नींद आती है। इसी से इसका नाम 'सुनिषण्ण' (जिससे अच्छी नींद आवे) पड़ा।

वक्तव्य

सुषुनीशाक निद्राजनक रूप से प्रसिद्ध है। अतएव उन्मादादि में इसका शाक पथ्य रूप से काम आ सकता है। चरक सुश्रुत आदि आयुर्वेदीय ग्रंथों में 'सुनिषण्णक' नाम से इसका उल्लेख हुआ है। 'आर्य औषध' में लिखा है कि इसके बीज काम में आते हैं जिनका रंग खाकी होता है। स्वाद कुछ मधुर तिक्त प्रतीत होता है। इनको भिगोने से चिकना लुआब निकलता है। किसी-किसी के मत में उटंगन को अरबी में 'हरसादक़' कहते हैं। मख़ज़नुल् अद्विया के लेखक मीर मुहम्मद हुसेन के अनुसार तुख़्म अंजुरह और यह दोनों एक वस्तु हैं। किंतु सत्यान्वेषकों के मत से यह दोनों विभिन्न पदार्थ हैं। तालीफ़ शरीफ़ और अलफ़ाज़ुल् अद्विया में भी ऐसा ही लिखा है। क्योंकि अंजुरह का कुछ विषैला होना स्वीकार किया गया है, जिसका हकीमों ने अतिशय विशदोल्लेख किया है। पर उटंगन उक्त गुणों से रिक्त है। वे अंजुरह का हिंदी नाम प्रायः यही (उटंगन) लिखते हैं जो सर्वथा भ्रम कारक है। हकीमों ने कबीकज के प्रकरण में जो तुख़्म अंजुरह का उल्लेख किया है उससे उटंगन का अर्थ कदापि नहीं ले सकते। क्योंकि उसे अत्यंत विषाक्त वर्णन किया गया है और यह विरेचक औषधों में से है जो अँतड़ियों में अतिशय प्रदाह उत्पन्न करता है। यही नहीं, अपितु तुख़्म अंजुरह पीसकर फाँकने से कंठ में भी प्रदाह हो जाता है। इसका निघंटु संग्रहोक्त वर्णन भावप्रकाश के अनुरूप ही है। तुख़्म अंजुरह रेचक और धारक है तथा यह कामसंदीपन के प्रायः हिंदी योगों में प्रविष्ट है। इसीलिए 'मुफ़रिदात हिंदी' नामक ग्रंथ के संपादक अंजुरह का उटंगन होना स्वीकार नहीं करते।

प्रयोगांश—पत्र और बीज। पत्र खाद्यौषध। प्रकृति-सम शीतोष्ण। किसी-किसी ने प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष लिखा है। हानिकर्त्ता-आमाशय को। दर्पघ्न-मिश्री वा खाँड़। प्रतिनिधि-बहुफली। मात्रा-४॥ मा०।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

सुनिषण्ण (उटंगन) जठराग्निवर्द्धक, वृष्य, गुरु, ग्राही, त्रिदोष-नाशक, संग्राही, कषाय और सर्व दोष-नाशक है। (धन्व० नि०)।

शितिवार संग्राही, कसेला, उष्ण, त्रिदोषनाशक, मेधाजनक, रुचिकारक, दाह तथा ज्वरनाशक और रसायन है। (रा० नि० व०)

शितिवार रूक्ष, वृष्य, गुरु और वात-पित्त कारक है तथा विष एवं सूजन को दूर करनेवाला वस्ति के रोग तथा वातनाशक, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और कफ-वात-नाशक है। (कैय दे० निघण्ट के)

कफ-वात-नाशक, अग्नि वर्द्धक और सारक है। (द्रव्य)

सुनिषण (उटंगन) शीतल, मलरोधक(ग्राही), मोहनाशक, त्रिदोषघ्न, अविदाही, हलकी, कसैली, स्वादिष्ट, रूक्ष, अग्निवर्धक(दीपन), वृष्य और रोचक होता है और ज्वर, श्वास, प्रमेह, कोढ़ तथा भ्रम रोग को दूर करता है। (भा० पू० १ भ० शा० व०)

यह निद्राकारक है और रक्त-पित्तमें वर्जित है। (भा० र० पि० चि०)

सुनिषण्णक अविदाही, त्रिदोषघ्न और संग्राही है। (राज०)

यूनानी मतानुसार—उटंगन के बीज कामशक्ति वर्द्धक, वीर्य्य स्तम्भक तथा कटि को बलप्रद हैं और बंदकुशाद, शुक्रमेह एवं शुक्रतारल्य का निवारण करते हैं, वृक्क को बल प्रदान करते हैं, मूत्र-दाह को दूर करते और मूत्र-प्रवर्त्तक हैं तथा गरमी और वायु दोनों को मिटाते हैं। (खज़ाइनुल् अद्विया)।

प्रयोग

चरक-(१)वात कासमें सुनिषण्णक—वात कास रोगी को सुनिषण्णक शाक भोजनार्थ व्यवस्था किया जाता है। यथा—"*शस्यते वात कासेतु*" (चि० २२ अ०)।

(२) विषदोष में सुनिषण्णक—विषार्त्त के लिए सुनिषण्णक शाक पथ्य है। यथा—

"*वार्त्ताकु सुनिषण्णकाः*विषार्त्तानां भिषग्जितम्" (चि० २५ अ०)।

(३) ऊरुस्तम्भ में सुनिषण्णक—तिल के तेल और जल के साथ पकाया हुआ सुषुनी शाक बिना लवण के ऊरुस्तम्भ रोगीको भोजन कराएँ। यथा—"सुनिषण्णक* आरग्वधः पल्लवैः। शाकैरलवणैरद्भिाज्जल तैलोपसाधितैः"। (चि० २७ अ०)।

(४)मूत्रकृच्छ्र रोग में सुनिषण्णक बीज—उटंगन के बीज तक्र में पीसकर तक्र के साथ पीने से मूत्रकृच्छ्र रोग निवृत्त होता है। यथा—

"तक्रेण युक्तं शितिवारकस्य बीजं पिवेत् कृच्छ्रविनाशहेतोः" (चि० २६ अ०)।

सुश्रुत-रक्तपित्त में सुनिषण्णक—रक्तपित्त रोगी को घी में भुना हुआ सुषनी शाक भोजन करने को दें। यथा—

"पटोल शेलु सुनिषण्ण यूथिका*। हितञ्च शाकं घृतसंस्कृतं सदा। तथैव धात्रीफल दाड़िमान्वितम्"। (उ० ४५ अ०)

उटज-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] झोंपड़ी। कुटी। पर्णशाला।

उटजा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१)पानीयशाला। (२) पर्णशाला। कुटी। झोंपड़ी। वै० निघ०।

उटारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० उठना] वह लकड़ी जिस पर रखकर चारा काटा जाता है। निसुहा। निहटा। निष्ठा। ओट। कुटहरा। अहूटन।

उटि(ड़ि)का-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नोवार धान। निवार। तिन्नी नाम का धान। मद० व० १०।

गुण—राजवल्लभ के अनुसार यह बलकारक और कफवर्द्धक है।

उटिचेट्ट-[ते०] (Acalypha Indica, *Linn.*) हरितमञ्जरी। कुण्डली। कुप्पी।

उटिङ्गण-संज्ञा पुं० दे० "उटङ्गन"।

उट्टङ्क-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मूत्र। पेशाब। (२) एक प्रकार का अस्त्र।

उठगन-संज्ञा पुं० [?]। दे० "उटंगन"।

उठतक-संज्ञा पुं० [?] (१) उड़तक। जीन या काठी के बीच की गद्दी। (२) अवष्टम्भ। टेक। पाया।

उठना-क्रि० (१) आरम्भ होना। निकलना। (२) उद्भिन्न होना। उगना। उपजना। जमना। (३) बढ़ना। वर्द्धित होना। (४) फल देना। फलना। (५) डिम्ब से निकलना। अण्डे से

बाहर निकलना। (६) प्रादुर्भूत होना। फूटना। फट पड़ना। (७) निष्क्रमण करना। उभर आना। (८) उत्थित होना। ऊपर पड़ना। चढ़ना। (९) जागरण करना। जागना। (१०) दण्डायमान होना। (११) स्फीत होना। फूलजाना। (१२) उष्ण पड़ना। गरमाना। (१३) यौवनावस्था को प्राप्त होना। जवानी में आना। (१४) उत्सेक लगना। उबलना। जोश आना। सड़ना। (१५) व्यथित होना। लगन। (१६) छेदन किया जाना। कटना। (१७) घर्षण किया जाना। रगड़ खाना। (१८) आचूषण किया जाना। जज़्ब होना। सूखना। (१९) आरोग्य हाना। आराम पाना। (२०) पाक किया जाना। पकना। मज़े पर आना।

उठान–संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० उत्थान] (१) समुत्थान। उभार। चढ़ाव। (२) यौवनावस्था। जोबन। जवानी। (३) कामानल। मस्ती। शहवत।

उठौनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० उठाना, उठावनी] प्रसूता की सेवा-शुश्रूषा।

उठौवा–संज्ञा स्त्री० [हिं० उठाना] प्रसूता की सेवा-सुश्रूषा जो दाई करती है। उठौनी।

उठंगन–संज्ञा पुं० [देश०] अवष्टम्भ। पाया। फाड़। टेकनी।

उड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नक्षत्र। सितारा।

उड़ती मछली–संज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ती+मछली] जरादुलबहर–(फ़ा०) मत्स्य विशेष। एक प्रकार की उड़नेवाली मछली। (Exocetus)

उद्भवस्थान–भूमध्यसागर, अतलान्तिक महासागर तथा अमेरिका के अनेक स्थान।

विवरण–इसकी देह दीर्घाकार, स्थूलता रहित होती और नेत्र बहुत बड़े होते हैं। उभयपार्श्वके पक्ष अधिक विस्तृत होते हैं। देखने में यह बट्टी जैसी होती है। यह समय-समय पर जल त्यागकर २०-२५ हस्त ऊपर उड़ सकती है। कतिपय विद्वानों का यह मत है कि यह मछली अपने लम्बे-चौड़े बाजुओं के सहारे से ही उड़ती है। किंतु यह बात ठीक नहीं। प्राणितत्त्व-वेत्ताओं का कहना है कि ढफलिन नामक समुद्रीय मत्स्य जब इसे पकड़ने लगता है, तब यह प्राणभय के वश अपनी दैहिक पेशी की शक्ति लगाकर १५-२० हस्त की दूरी पर ऊपर उछलती है, किंतु १ मिनट से अधिक काल तक शून्य में अवस्थित अथवा जल से पृथक् नहीं रह सकती। अमेरिका के अनेक स्थानों में इसकी अनेक जातियाँ मिलती हैं।

गुण–यह कामशक्तिवर्द्धक, मूत्राशय और वृक्क की पथरी तोड़ती है।

उड़द–संज्ञा पुं० दे० "उरद"।

उड़प–संज्ञा पुं० दे० "उड़ुप"।

उड़न खटोला–संज्ञा पुं० [हिं० उड़न+खटोला] (१) शवयान। जनाज़ा। इस पर हिन्दू मृतक को जलाने के लिये ले जाते हैं। (२) वायुयान। विमान। उड़नेवाला पलंग। यह परियों के पास रहता था।। (३) बच्चों के सोने की अलङ्कृत शय्या।

उड़नछू–वि० लुप्त। गायब। देख न पड़नेवाला।

उड़नफल–संज्ञा पुं० [हिं० उड़ना+फल] फल विशेष। एक प्रकार का मेवा। कहते हैं—इसके खाने से लोग उड़ने लगते थे।

उड़नफाख़्ता–संज्ञा स्त्री० [सं० उड्डीन कपोतिका] उड़नेवाली मैना।

उड़न बीमारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० उड़न+बीमारी] महामारी। मुतादी मर्ज़। छूवा-छोत का रोग। संसर्गज व्याधि।

उड़नशील–वि० उड़नेवाला। वाष्पीभूत होनेवाला।

उड़पति–संज्ञा पुं० उडुपति। चन्द्रमा। चाँद।

उड़राज–संज्ञा पुं० [सं० उडु+राज] उडुराज। चन्द्रमा। चाँद।

उड़री–संज्ञा स्त्री० [उड़द+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार उरद जो छोटा होता है।

उड़व–संज्ञा पुं० [सं० आडव] (१) राग भेद। ५ स्वर का राग। जिस राग में केवल पाँचही स्वर लगते हों।

उड़ा–संज्ञा पुं० [?] यन्त्र विशेष। एक प्रकार का औजार। इससे कीट सूत्र को खोलते हैं। एक प्रकार का कलाबा। जो चार पैर आर छः तीखी रखता है। तीखी मन्थान सदृश रहती है। तीखियों के मध्यवर्ती छिद्र में गज को चलाते हैं।

उड़ाऊ-वि० (१) उड्डयनशील । उड़नेवाला ।

उड़ाक-वि० सपक्ष । परदार । उड़नेवाला ।

उडाकला-संज्ञा स्त्री० [?] दंती । (Croton polyandrum, *Roxb.*)

उड़ाकू-वि० उड़ाक ।

उड़ान-संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० उड्डयन] (१) परवाज़ । उड़ने की हालत । (२) मणिबन्ध । कलाई । पहुँचा । (३) माल-खम्भ की एक कसरत ।

उड़ाना-क्रि० (१) विद्राव देना । छोड़ना । (२) भोजन करना । खाना । (३) मारना (४) प्राप्त करना । पाना ।

उड़ाल-संज्ञ पुं० [?] (१) कचनार की छाल । काञ्चनत्वक् । कचनार का छिलका । (२) कचनार के छिलके से बनी रस्सी । कांचन त्वक् द्वारा निर्मित रज्जु ।

उड़ास-संज्ञा स्त्री० [?] वास स्थान । रहने की जगह ।

उड़िधान-[बं०] नीवार । तिन्नी । पसही ।

उड़िया-वि० [हिं० उड़ीसा] (१) उड़ीसा देश का रहनेवाला । (२) उड़ीसा देश के निवासियों की बोली ।

उड़िल-संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ण+इल (प्रत्यय)] केश युक्त मेष । वह भेड़ जिसका बाल मूड़ा न गया हो । 'मूड़िल' का उलटा ।

उड़ी-संज्ञा स्त्री० [?] व्यायाम विशेष । मालखम्भ की एक कसरत ।

उड़ीके-[ते०] (Alangium Decapetalum, *Linn.*) अङ्कोल । ढेरा ।

उड़ीद्-संज्ञा पुं० [मरा०, बम्ब०] माष । उरद । (Phaseolus radiatus)

उड़ीश-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बँवर जिससे बोझ बाँधते हैं और झूले का पुल और टोकरा बनाते हैं ।

उड़ीसा-संज्ञा पुं० [सं० ओड्र+देश] भारतवर्ष का एक समुद्र-तटस्थ प्रदेश जो छोटा नागपुर के दक्षिण पड़ता है । उत्कल देश ।

उड़ु-संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०, स्त्री०] (१) जल । (Water) अ० टी० भ० । (२) पक्षी । चिड़िया । (३) तारा । नक्षत्र ।

उड़ु(ड़ू)प-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) (Semecarpus Anacardium, *Linn.*) भिलावाँ ।

पर्य्या०—प्लवः, कोलः (अ०), भेलकः, उडूपः, तरणः, तारणः, तारकः (शब्दर०) । (२) बड़ा गरुड़ ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चंद्रमा । चाँद । (२) चर्मपात्र । मशक ।

उड़ु(ड़ू)पति-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार की सोमलता । सु० चि० २९अ० । दे० "सोम" । (२) चंद्रमा । (३) जल का स्वामी वरुण ।

उड़ुपथ-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आकाश । (हे०) तारों के चलने की राह ।

उड़ुपप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कमलिनी । बघोला । फफला । कुइबेरा । मद० व० ३ ।

उड़ुम्बर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) गूलर । ऊमर । (Ficus Glomerata, *Roxb.*) अम० । (२) एक प्रकार का कोढ़ रोग । मे० । माधव निदान के अनुसार एक प्रकार का कोढ़ । जिसमें पीड़ा, दाह तथा खुजली होती है । रोम कपिल वर्ण के हो जाते हैं और उसका आकार गूलर के फल के समान होता है । (३) ताँबा । ताम्र ; प० मु० । (४) एक प्रकार की तौल जो एक कर्ष (= २ तो०) के बराबर होती है । प० प्र० । (५) नपुंसकता । (६) कृमिविशेष । कुष्ठ का कीड़ा ।

उड़ुम्बर दला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Croton polyandrus, *Roxb.*) दंती वृक्ष । रा० नि० व० ६ । दे० "दंती" ।

उड़ुम्बर पर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Croton polyandrum, *Roxb.*) दंती वृक्ष । श० च० । दे० "दंती" ।

उड़ुराज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्रमा ।

उडुलोमा-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रवर ऋषि भेद ।

उड़ुंवर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Ficus glomerata, *Roxb.*) गूलर । ऊमर ।

उड़ुस-संज्ञा पुं० [हिं० उडासना वा सं० उद्दंश] खटमल। (A bug.)

उडेडएड्-संज्ञा स्त्री० व्यायाम विशेष। एक प्रकार की कसरत। इसमें नीचे छाती झुकाते समय दोनों पैर ऊपर को उछालते हैं।

उड़ैनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ना] (Lampyris) the fire-fly जुगनू। खद्योत।

उड्डयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उड़ना। उड़ान। (२) आकाश-विहार। शून्य गमन।

उड्डामर-वि० [सं० त्रि०] (१) श्रेष्ट। (२) अत्यंत प्रचंड।

उड्डामररस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसौषध जिसका योग इस प्रकार है—

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक और ताम्रभस्म इन्हें समान भाग लेकर सागौन वृत्त के पञ्चांग के क्वाथ में दो दिन घोटें। इसी तरह एक दिन सर्पाक्षि नामक औषधि के रस में घोट कर कपड़मिट्टी करके लघु पुट में फूँक दें। इसी प्रकार पाँच बार भूधर पुट में फूँककर बराबर प्रमाण में शुद्ध जमालगोटा मिलाकर बारीक चूर्ण करलें। मात्रा-३ रत्ती। गुण-इसे घृत के साथ खाने से पित्तज गुल्म का नाश होता है। रसायन संग्रह में इसका नाम "उद्दामा" है।

उड्डामरेश्वर रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक आयुर्वेदीय रस-योग। भुना सुहागा, हिंगुल, त्रिकुटा इन्हें बराबर लेकर इनके बराबर शुद्ध जमालगोटा मिला कर बारीक चूर्ण करलें। गुण-इसे ६रत्ती केप्रमाण में यथायोग्य अनुपान से खाने से ज्वर, गुल्म, शूल, शोथ और विदारी रोग नष्ट होता है। र० श०।

उड्डी-संज्ञा स्त्री० परिभ्रमणशील स्त्री। आवारा औरत।

उड्डीन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नभोगति। उड़ान। वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्वगामी। उडाक।

उड्डीयन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उड्डयन। उड़ान। यह हठ योग का कार्य है। योगी उड्डीयन क्रिया द्वारा आकाश में उड़ जाते हैं। सुषुम्ना नाड़ी में प्राण को स्थिर करने और उदर को पृष्ठ से मिलाने पर इसकी सिद्धि होती है।

उड्डीयमान-वि० [सं० त्रि०] उड़ता हुआ। जो उड़ रहा हो।

उड्डीश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शिव। (२) तन्त्र-शास्त्र भेद। इसमें गारुड़ और अभिचार भरा हुआ है।

उड्र (पुष्प)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] अड़हुल का पेड़ वा फूल। जपा। (Hibiscus rosa-sinensis, *Linn.*)

उढकन-संज्ञा स्त्री० (१) तकिया। (२) आड़। आश्रय।

उढीकन-संज्ञा पुं० दे० "उठंगन"।

उढ्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (Hibiscus rosa-sinensis, *Linn.*) अड़हुल का का पेड़ वा फूल। जवा। Wil.

उणक-त्रि० [सं० त्रि०] अपसारक। हटाने या दूर करनेवाला।

उणाङ्ङिङ्ङय-मुन्तिरिङ्ङप्-पज़्म-[मल०] Uvæ. (Raisins) किसकिस। मुनक्का।

उण्डुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) देहस्थ कोष्ठ भेद। मलाशय। पेट का परदा।

उण्डू-[का०] (Phaseolus radiatus) उड़द। उर्द। माष।

उण्डेरक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पिष्टकादि। रोटी। इत्यादि।

उण्डेरकस्रज-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिष्टकादि की तन्त्री। रोटी इत्यादि की लड़ी।

उत-[अव्य० सं०] उक्त। (१) अत्यर्थ। अत्यन्त। बहुत। ज़्यादा। (२) विकल्प-कदाचित्। शायद। (३) समुच्चय-समस्त। कुल। तमाम। सब। (४) वितर्क-यदि। अगर। (५) प्रश्न-क्या। क्यों। (६) अहो। ख़ूब। ठीक।

नोट—यह सन्देह, वितर्क अथवा अवधारण अर्थ में प्राय: वाक्य के अन्त में "इति" शब्द के पीछे लगता है।

जैसे—'सर्वभूतान्वितं पार्थ सदा परिभवन्ति उत' अर्थात् हे पार्थ! सर्व भूत उसे अवश्य सदा घृणा की दृष्टि से देखते हैं। प्रश्नार्थ में "उत" द्वितीय अनुयोग के पीछे पड़ता है।

जैसे—'कथं निर्णीयतेकिंस्यान्निष्कारणी बन्धुरुत विश्वास घातक:' अर्थात् कैसे समझ में आया वह निश्छल मित्र या विश्वासघाती है। इस अर्थमें "उत" के साथ "अहो" आनेसे वाक्य प्रवल होजाता है।

जैसे—'कश्चित्वमसि मानुषी उताहो सुराङ्गना' अर्थात् तुम साधारण स्त्री अथवा अप्सरा हो।

कभी-कभी इसके साथ "अहोस्विद्" भी लग जाता है।

जैसे—'शालिहोत्रः किंनु स्यादुताहोस्विद्रा जानल:'अर्थात् वह शालिहोत्र या राजा नल है।

'नमः पुराते वरुणोत नूनम्'॥ (ऋक् २।२८।८)। (२) ग्रथित। गूँथा हुआ।

क्रि० वि० तत्र। वहाँ। उस तरफ। उधर।

उत(ट)ङ्गन–संज्ञा पुं० [दे०] दे० "उटङ्गन" वा "अञ्जुरः"।

उ़त़फ़-[अ०] (Plumbago zeylanica, *Linn.*) चीता। चित्रक।

उ़त़म–[अ०] धुना हुआ ऊन।

उ़त़म–[अ०] एक प्रकार का पौधा। सत़्रानियून।

उतमङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० उत्तमाङ्ग] मस्तक। मुख। मत्था। मुँह।

उतम्बा–[?] सैंधी का शर्करारहित शुद्ध जल। मु० अ०।

उतरज–संज्ञा पुं० [अ० उत़रुज] दे० "उत़रुज"।

उतरन–संज्ञा स्त्री० [सं० उत्तर] उतरण, उतरन की बेल, उत्रन, सागी (ग) वानि, जूतक (हिं०)। उतरण,जुटुक, जुटुप(द०)। इन्दीवरा (इन्दीवरी) युग्मफला, दीर्घवृंता (दीर्घवृत्त), तमारिणि, पुष्पमञ्जरिका, द्रोणी, करम्भा (करभा), नलिका वा नालिका (ध० नि०, रा० नि०)। करंभा, कर्कशा, सुगोणी, उत्तमा, रणिका (के० नि०)। वारुणी, क्रूरवल्ली, फलयुग्मा (द्रव्य र०) अतिवारुणी, रुष्य (?), मंजरी, कर्कशनासिका(गण नि०), फलकंटक (सं०)। वेलिप परुत्ति, उत्तामणि (ता०)। डीमिया एक्सटेंसा Dæmia Extena, *R. Br.*, ऐस्क्लीपियस एकिनेटा Asclepias echinata, *Roxb.*(ले०)। जिट्टुपाकु, दुष्टुपु चेट्टु, गुरुटिचेट्टु, फुतुपाकु (ते०)। वेलिप् परित्ति (मल०)। हाल कोरतीगे, कुटिंग, जुट्टुवे, तलवारग बल्लि (कना०)। छागुल बाटी (बं०)। उतरनी, उतरंडी (मरा०)। नागल दुधेलि (गु०) उत्तरणी (कों०)। खरयल, दूधवेल (सिंध)। त्रोट्टू, सियाली, करियल (पं०)।

परिचय-ज्ञापिका संज्ञाएँ—युग्मफल, फलयुग्मा, दीर्घवृंता पुष्पमंजरिका, कर्कशा, मंजरी, कर्कशनासिका, फलकंटक।

अर्क वर्ग

(*N. O Asclepiadiae.*)

उत्पत्ति-स्थान—समग्र भारतवर्ष।

वानस्पतिक वर्णन—एक दीर्घ वृक्षाश्रयी लता जो प्रायः भारतवर्ष के सभी उष्ण-प्रधान प्रदेशों में पाई जाती है। इसकी पत्ती वृत्ताकार(दीर्घवृत) हृदयाकार,अनीदार, लोमश,झिल्लीयुक्त, आधारपर अथवा वृंत के पास गोलाई में अवसित और नीचे की ओर मसृण होती है। ये विभिन्न आकार की १ से २ इंच वा अधिक व्यास की होती हैं। पत्रवृंत दीर्घ होता है, इसीलिये इसे संस्कृत में "दीर्घ वृंता" कहते हैं। पत्र की डंटी क्षीण एवं श्वेत होती है। पौधे से एक प्रकार की अप्रिय मूषकवत् गंध आती है और स्वाद किंचित् तिक्त और कुछ-कुछ हल्लासकारक होता है। सूखी पत्ती को ताल (Lens)के नीचे रखकर देखने पर उसके ऊर्द्ध तथा अधः दोनों पृष्ठ हरे मखमली सतह की तरह ज्ञात होते हैं। इसी कारण इसका एक संस्कृतनाम 'कर्कशा' भी है। ये ह्रस्व श्वेत रोइयों से व्याप्त होते हैं। इसमें मंद श्वेत फूलों के घौद लगते हैं। झुमकों वा मंजरियों के कारण ही इसे संस्कृत में "पुष्प मंजरिका" भी कहा है। फली वक्र-चंचु की तरह और कोमल काँटो से व्याप्त होती है। इसीलिये इसे संस्कृत में "कर्कश नासिका", "फलकण्टक" तथा "फलयुग्म" आदि नामों से अभिहित किया गया है। फली प्रायः जोड़े-जोड़े पाई जाती हैं। परंतु किसी किसी में अकेली फली देखने में आई है। फल के

भीतर मदार की तरह घूआ निकलता है। निघंटु शिरोमणिकार ने उक्त ग्रंथ की पादटिप्पणी में वामवर्त्ता और दक्षिणावर्त्ता भेदसे इसे दो प्रकारका लिखा है। इसकी जड़ पतली, तंतुल एवं अत्यंत तिक्त होती है। पुष्प और पत्र दोनों विट्गंधि होते हैं। लता के सर्वांग में दूध निकलता है। इसकी हिंदी संज्ञा उतरन तथा मराठी संज्ञाएँ संस्कृत "उत्तर" से व्युत्पन्न हैं। तामिल संज्ञा "दुस्तुपु" भी जिसका अर्थ चित्रित पुष्प है, संस्कृत मूल से ही व्युत्पन्न है। ऐन्सली इसका Cynanchum extensum नाम से उल्लेख करते हैं। रॉक्सबर्ग Asclepias echinata नाम से इसका उल्लेख करते हैं।

प्रयोगांश—पुष्प-मंजरी, पत्र, फल, जड़ और जड़ की छाल।

रासायनिक-संघटन—इसकी पत्ती में ताम्रकूट तथा आटरूषक की तरह इन्दीवरीन (Daemine) नामक एक प्रकार का क्षारोद होता है, जो ईथर, मद्यसार और जल में विलेय होता है, पर इसके रवे नहीं बनते। सूखी एवं चूर्णीकृत पत्ती द्वारा १५·३३% की मात्रा में भस्म उपलब्ध होती है। जड़ में भी इसके समान ही गुणधर्म का एक क्षारोद पाया जाता है।

प्रभाव—यह अतिशय क्षोभक (Irritant) है। पत्र और पुष्प वामक, श्लेष्मा-निःसारक (Expectorant) और कृमिघ्न हैं। गुणधर्म में यह सक्मूनिया के समान होती है।

औषधि-निर्म्माण—पत्र-क्वाथ, मात्रा-२॥तो०; पत्र स्वरस, मात्रा—१ ड्राम; जड़ वा जड़ की छाल का चूर्ण, मात्रा—२॥से ५ रत्ती; तैल तथा पुल्टिस।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

इन्दीवरी (उतरन) तिक्त, शीतल, पित्त तथा व्रण और कृमि का नाश करनेवाली है। (रा० नि० गुडू० ३ व०)

पाप का नाश करनेवाली, योनिदोष का निवारण करनेवाली, वातनाशक तथा व्रण का रोपण करनेवाली है। (गण-नि०)

यह मूत्रकृच्छ्र नाशक, दद्रुनाशक, व्रणशोधक तथा गर्भ, योनि एवं वात रोगों का नाश करनेवाली है। (कैयदेव)

यह कफ-नाशक, वातहारक और सूजन को उतारनेवाली है। (द्रव्यनामक-नि०)

नव्यमत

उतरन की पत्ती और फूल विट्गंधि होते हैं। देशी लोग, वामक तथा श्लेष्मा-निस्सारक रूप से, मुख्यतः शिशु रोगों में, इनका व्यवहार करते हैं। इसके तने से तंतु प्राप्त होता है। बकरे इसकी पत्तियाँ खाते हैं।

ऐन्सली लिखते हैं "बालकों के पेट के कीड़े मारने के लिए उन्हें इसकी पत्ती का काढ़ा दिया जाता है। इसे तीन टेबुल स्पून से अधिक न देना चाहिये। इसकी पत्ती का रस श्वास की दृष्टफल औषध है। राक्सबर्ग (Asclepias echinata) नामसे इसका उल्लेख करते हैं; पर इसके गुण के विषय में वे खामोश हैं। दक्षिण कोंकण और गोआ में इसकी पत्ती का स्वरस (चूने में मिलाकर) आमवातिक शोथों पर लगाया जाता है।" डॉक्टर बी० एवर्स (B. Evers) शिशुओं के लिए इसे मूल्यवान वामक मानते हैं। वह कहते हैं—"पानी से धोई हुई उतरन की पत्तियाँ और तुलसी की पत्तियों को हथेली पर मलकर रस निकाल कर प्रयोग में लायें। यह औषध सोत्तेजक वामक (Stimulant emetic) है।" डॉक्टर पी० एस० मूतू स्वामी (Ind. Med. Gaz, Feb. 1890) सोंठ मिले हुए इसकी पत्ती के स्वरस का आमवात में उपयोगी होने का उल्लेख करते हैं। वह यह भी लिखते हैं कि आमवात, रजोरोध और कष्ट-रज में प्रयुक्त एक विरेचक औषधीय तैल के योग में भी यह पड़ती है और आमवातिक अवस्थाओं में १से २ ड्राम की मात्रा में गोदुग्ध के साथ इसकी जड़ की छाल का जुल्लाब दिया जाता है। (फा० इं० २ भ० पृ० ४४२-३—डिमक)

नादकर्णी—इसकी ताज़ी पत्ती का कल्क, उत्तेजक पुल्टिस रूपसे, मारात्मक विस्फोटक विशेष (Carbuncle) फोड़े पर लगाया जाता है

और उसमें यह उपयोगी सिद्ध होता है। (इं० मे० मे० पृ० २८६)

आर० एन० चोपरा—नामक तथा कफ निःसारक रूप से विशेषकर बंबई प्रांत में इस पौधे का प्रचुर प्रयोग हो चुका है। २॥ रत्ती से ५ रत्ती की मात्रामें इसकी पत्तियों का चूर्ण अथवा इसकी पत्तियों का काढ़ा २॥ तो० से५ तो० की मात्रा में परमोत्कृष्ट श्लेष्मा निःसारक वा कासहर औषध है। इसके कासहर प्रभाव के साहाय्य के लिए, इसके काढ़े में, कभी-कभी तुलसी-पत्र-स्वरस और मधु का योग देते हैं। (इं० ड्रू० इ० पृ० ५७६)

प्रतिश्याय वा कास में बनफ़्शा की जगह काढ़े में इसका फूल डालने से बहुत लाभ होता है। —लेखक।

उतमारणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्दीवरी। उतरन।

उतरारी–संज्ञा स्त्री० [सं० उत्तर वायु] उत्तर से चलने वाली हवा। उत्तर की हवा।

उतलय गड्डु–[ते०] आलू। आलुक। (Arum companulatum) A potatoe.

उतली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बूटी जो कोंकण देश में होती है।

उतवंग–संज्ञा पुं० दे० "उत्तमाङ्ग"।

उतान–वि० [सं० उत्तान] पीठ को पृथ्वी पर लगाए हुए। चित। सीधा।
(Supine)

[अ०] गदही। गर्दभी।

उतामा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Terminalia chebula, *Retz.*) हड़। हरीतकी। मु० अ०।

नोट—यह उत्तमा का फ़ारसी अपभ्रंश प्रतीत होता है।

उतारा–संज्ञा पुं० पात्र-स्थित परिपक्व अन्नादि। किसी बरतन में रखा हुआ भात इत्यादि। इसे कई बार रोगी के चारों ओर आरती की तरह घुमाकर उतारते हैं। लोगों का विश्वास है कि रोगी की प्रेत बाधा उतारे पर उतर आती है।

उ़तारिद–[अ०] रसायन-शास्त्र में पारा। पारद। Mercury

उतारियून–[यू०] (Echinops echinatus, *D. C.*] ऊँटकटारा। उष्ट्रकंटक।

उतावल–संज्ञा स्त्री० [?] उग्रता। अस्वास्थ्य।

उ़ताश–[अ०] एक प्रकार का रोग जिसमें बार-बार प्यास लगती है और चाहे कितना भी जल पिया जाय, उससे प्यास नहीं बुझती। यह रोग प्रायः शिशुओं को हुआ करता है, पर उपसर्ग रूप से कतिपय अन्य व्याधियों में भी यह दशा हुआ करती है। जैसे जलोदर आदि। पिपासा। तृषा प्यास। (Thirst)

उ़तास–[अ०] छिक्का। छींक। अ़तसः, शनूसः (अ०)। Sneezing.

उ़तीक़–[अ०] (१) पुरानी चरबी। (२) एक प्रकार का छुहारा। (३) जल। (४) सुवर्ण। सोना। (५) मदिरा। शराब। (६) दूध। दुग्ध।

उ़तीनक–[अ०] मदिरा। शराब। नबीज़ साफ़।

उतुम्बीक–संज्ञा पुं० [सं० ?] कद्दू का फूल।

उ़तूस–[अ०] नास लेना। छींक लाने के लिये पिसी हुई शुष्क औषध नाक में सुड़कना।

उतैला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की उरदी। उर्द। माष। यह बरसात में होता है।

उत्–[सं० अव्य०] (१) प्रश्न–कैसे। क्यों। (२) वितर्क–अथवा। किंवा। वा अथवा। या। (३) समुच्चय–अखिल। समस्त। कुल। तमाम। सब। (४) अधिक। ज्यादा। (५) सन्देह–कदाचित। शायद। वि० दे० "उद्"।

उ़तुउ़त्–[अ०] बकरी का बच्चा। A kid.

उत्क–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बृंहणादि के नाम।

उत्कच–संज्ञा पुं० [सं०] जिसके बाल खड़े हों।

उत्कट–वि० [सं० त्रि०] तीव्र। विकट। कठिन। उग्र। प्रचंड। दुःसह। प्रबल। उत्ताल।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सरकंडा। शरकांड। (Saccharum Sara.)। रा० नि० व० ८। (२) एक प्रकार का छोटा क्षुप। झोकड़ा। कालियाविषर (बं०)। प० मु०। (३) ईख। गन्ना। (Saccharaum Officinarum, *Linn.*)। (४) लाल गन्ना। रा० नि० व० १४। (५) मद। श०

र० । भैष० ने० रो० चि० । (६) मस्त हाथी । हारा० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार का वृक्ष (Woody cassia or its bark.) । (२) एक प्रकार की लता । शालसा । Wil. (३) दालचीनी । प० मु० । रा० नि० व० ६ । हारा० । (४) हाथी का मद । गजमद । हारा० । (५) तेजपत्ता । अ० टी० भ० । (६) तज । (७) मूँज ।

उत्कटा–संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] एक प्रकार की पीपल । सिंहली पीपल । सैंहली ।

गुण—यह रुचिदायक, उष्ण, तिक्त, तथा वृष्य है और मूत्रकृच्छ्र, पित्त, वात, प्रमेह, तृषा, विस्फोटक एवं हृदय के रोगों को नष्ट करती है । इसका बीज शीतल, वृष्य, तृप्तिजनक, और मधुर है । वै० निघ० । विशेष दे० "सिंहली पीपल" ।

(२) एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्ती महीन और लकड़ी लम्बी तथा महीन होती है । दे० "जेन्तक" ।

उत्कटासन–
उत्कटुकासन– } संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कठिन आसन । आसन रहित स्थिति । उकड़ूँ तथा विषम आसन बैठना । सु० चि० ६ अ० ।

उत्कण्टक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार का पेड़ । ओकड़ा । च० चि० ३ अ० । (२) ऊँटकटारा ।

उत्कण्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] [वि० उत्कंठित] प्रबल इच्छा । तीव्र अभिलाषा । लालसा । चाव ।

उत्कता–संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०](१)(Scindapsus officinalis, *Schott*) गजपिप्पली । गजपीपर । श० च० । (२) उत्कंठा । इष्ट लाभ में विलम्ब न सहकर उसे चटपट पाने की अभिलाषा ।

उत्कन्दक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रोग विशेष । एक बीमारी ।

उत्कन्धर–वि० [सं० त्रि०] उन्नतग्रीव । गर्दन को पीछे उठाये हुआ । .

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ग्रीवा का पश्चात् दिक् नमन । गर्दन का पीछे की ओर झुकाव ।

उत्कम्प–
उत्कम्पन– } संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कँपकँपी । कम्पन । Virbation

उत्कम्पिन्–वि० [सं० त्रि०] कम्पान्वित । लरजाँ । जो काँप रहा हो ।

उत्कर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लाल गन्ना । रक्तेक्षु । रा० नि० व० १४ । (२) धान्य आदि का ढेर । धान आदि का इकट्ठा करना । अम० । (३) उत्कारिका पुल्टिस । भैष० शूल ०चि० । (४) फैलाना ।

उत्करादि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाणिनि कथित एक गण जिसमें ये शब्द आते हैं–उत्कर, सम्फल, शफर, पिप्पल, पिप्पलीमूल, अश्मन्. सुवर्ण, खलाजिन, तिक, कितव, अणक, त्रैवण, पिचुक, अश्वत्थ, काश, क्षुद्र, भस्त्रा, शाल, जन्या, अजिर, चर्मन् उत्क्रोश, शान्त, खदिर, शूर्पणाय, श्यावनाय, नैवाकव, तृण, वृक्ष, शाक, पलाश, विजिगीषा, अनेक, आतप, फल, सम्पर, अर्क, गर्त्त, अग्नि, वैराणक, इड़ा, अरण्य, निशांत, पर्ण, नीचायक, शङ्कर, अवरोहित, क्षार, विशाल, वेत्र, अरीहण, खण्ड, वातागर, मन्त्रणार्ह, इन्द्रवृक्ष, नितान्तावृक्ष और आर्द्रवृक्ष ।

उत्करिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मोदक विशेष । एक प्रकार की मिठाई । यह दुग्ध, गुड़ और घृत से बनती है ।

उत्कर्ण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का वातज रोग जो घोड़े को होता है । इसमें घोड़े का कान, पूँछ एवं शरीर स्तब्ध होजाता है । यथा "कर्णौ स्तब्धौ तथा पुच्छं स्तब्धं गात्रमकिञ्चनंवातात्मकेन वाहस्य भवेदुत्कर्णकेन हि ।" ज० द० ५४ अ० । (२) उन्नतकर्णयुक्त जो कान खड़ा किए हो ।

उत्कर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्पाटन । उखाड़ना । काट-छाँट । मूढ़गर्भ की चिकित्सा का एक उपाय । सु० चि० १५ अ० ।

उत्कर्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अतिसार । दस्त की बीमारी । (२) वृद्धि । बढ़ती । (३)

(३) आकर्षण । कशिश । खैंचतान । (४) आनन्द । खुशो ।

उत्कर्षन (ण)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उत्कर्षक, उत्कर्षित, उत्कर्षी] ऊपर उकसाने वा सरकाने की क्रिया । सुश्रुत के अनुसार मूढ़ गर्भ की वह क्रिया जिसमें अधोगत गर्भ को ऊपर सरकाया जाता है । सु० चि० १५ अ० ।

उत्कल–संज्ञा पुं० [सं०] एक देश जिसे अब उड़ीसा कहते हैं ।

उत्कलिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उत्कंठा । हारा० । (२) फूल की कली । कलिका । त्रिका० । (३) तरंग। लहर ।

उत्काका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वह गाय जो प्रति-वर्ष बच्चा दे । बरसाइन गाय ।

उत्कार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धानों का इकट्ठा करना । (२) ऊपर उछालना । फेंकना ।

उत्कारिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रोटी । रोटिका । वा० टी० हेमा० । (२) एक प्रकार का "ऊष्मा" नामक स्वेद । वाग्भट के अनुसार जौ, उर्द, रेंड़ी, तीसी और बेरें आदि को पत्थर पर पीसकर पानी के साथ घोटकर लपसीके समान करके जो पसीना निकालने में काम आती है उसे "उत्कारिका" अर्थात् "पुलटिस" कहते हैं । अरुण, वा० सू० १७ अ० । (३) सुश्रुतोक्त वातकफ जन्य शाफादि निवारक उपक्रम का एक भेद । लुपड़ी । भुरता । पुलटिस । सुश्रुत में लिखा है—(क) "जिन व्रणों में मांस की क्षीणता हो, जिनमें स्राव कम होता हो, जो पकते न हों, जिन में तोद(तीव्र वेदना), कठोरता, खुरदरापन, शूल और वेपथु (कंप या झनझनाहट) हो, उन पर वायुनाशक द्रव्यों और अम्लगणों तथा काकोलयादिगण एवं स्नैहिक अर्थात् चिकनाईवाले बीज (अलसी तिलादि) मिलाकर अच्छी (न बहुत कड़ी न नरम) उत्कारिका (लूपरी वा पुलटिस) पकाकर बाँधे और उससे उपर्युक्त स्थिर और व्यथायुक्त व्रणों का स्वेदन कर्म करें । (चि० अ० १)।"(ख)"उपवास से लेकर विरेचन पर्यंत के उपक्रम द्वारा यदि सूजन शांत न हो, तो दही,तक्र, मदिरा, सिरका, काँजी, घृत एवं लवण मिला उत्कारिका पकाएँ। उसे रेंड के पत्ते पर रखकर (वा उसमें रेंड के पत्ते मिले हों), उसे उष्ण रहते-रहते सूजन को सेंकें (या उस पर बाँध दें) और पथ्य आहार दें। यदि पकाव पर आता देखें तो यह उत्कारिका बंधन (पाचन) कर्म करें।" (चि० अ० १)। (४) गोली। वटी। गुटिका। सु० चि० २६ अ०। (५) लपसी । लप्सिका । सु० वि० १४ अ० ।

उत्कास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
उत्कासन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } कास । खाँसी । च० द० यक्ष्म० चि० ।

उत्किर–वि० [सं० त्रि०] उत्क्षेपक । फेंकनेवाला ।

उत्कीर्ण–वि० [सं० त्रि०] (१) उत्क्षिप्त । फेंका हुआ । (२) विद्ध । वेधा हुआ । खोदा हुआ ।

संज्ञा पुं० [सं०] घाव । व्रण ।

उत्कुञ्चि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
उत्कुञ्चिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) बड़ा काला जीरा । स्थूल कृष्णजीरक । (Nigela-indica) रत्ना० । (२)कुलिंजन का पौधा । महाभरी बच । दे० 'कुलंजन" ।

उत्कुट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्तान । चित । उत्तान शयन । हारा० । (Supine.)

उत्कुटक-प्रहान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चित पड़ने से परहेज़ ।

उत्कुटकासन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्तान शयन । चित सोने की हालत ।

उत्कुण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (Pediculus) Louse. केशकीट । बालों का कीड़ा । जूँ । हे० च० । दे० "जूँ"।

संस्कृत पर्य्याय—उद्दंश । किटिभ । मत्कुण । (२) मत्कुण । खटमल । उडुस । कटधीरा । (Anoplura) A bug

उत्कूज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकिल का शब्द । कोयल का गाना ।

उत्कूट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छाता । छत्री ।

उत्कूल–वि० [सं० त्रि०] पर्वत पर चढ़नेवाला ।

अव्यय—[सं०] पर्वत पर । पहाड़ पर ।

उत्कूलित-वि० [सं० त्रि०] जो किनारे लगा हो। नदी वा सागर के तट पर आया हुआ।

उत्कृत्त-वि० [सं० त्रि०] (१) छिन्न। कटा हुआ। (२) उत्खात। खुदा हुआ।

उत्कृष्ट-वि० [सं० त्रि०] प्रशस्त। श्रेष्ट। उत्तम। (२) खिंचा हुआ। (३) सर्वोत्तम। सबसे अच्छा।

उत्कृष्टवेदन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] श्रेष्ठ कुल के साथ विवाह कार्य का समापन। उत्तम कुल के आदमी के साथ शादी करना।

उत्केन्द्रकशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] केन्द्र से दूर फेंकनेवाली। शक्ति।

उत्कोच-वि० [सं० त्रि०] उपायन। रिशवत। घूँस।

उत्कोठ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोठ रोग का एक भेद। एक प्रकार का कोढ़ का रोग।

लक्षण—खुलकर क़ै न होने, पित्त और कफ के बढ़ने और उछलकर ऊपर आये हुए अन्न के रुकने से खुजली और लालीयुक्त जो बहुत से चकत्ते होते हैं, उन्हें “कोठ” कहते हैं। एक चकत्ता नष्ट होकर दूसरा चकत्ता उठता है, उसे “उत्कोठ” कहते हैं। मा० नि०। भा० म० ४ भ० शी० पि० चि०।

चिकित्सा—इस रोग में प्रथम विरेचन आदि द्वारा शरीर शुद्ध करके कोढ़ की तरह उपचार करना चाहिये।

उत्क्रम-संज्ञा पुं० [सं०] उलट-पलट। क्रमभंग। विपर्य्यय।

उत्क्रमण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०][वि० उत्क्रमणीय] (१) क्रम का उल्लंघन। (२) मरण। मृत्यु।

उत्क्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) क्रमशः उत्तमता की ओर प्रवृत्ति। दे० “आरोह”। (२) मृत्यु। मरण।

उत्क्रांतिवाद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विकासवाद। (Evolution Theory.)

नोट—आज कल (आरोह वा विकासवाद) के अर्थ में “उत्क्रांतितत्व वा उत्क्रांतिवाद” का उपयोग किया जाता है। परन्तु संस्कृत में “उत्क्रांति” शब्द का अर्थ मृत्यु है। इस कारण “उत्क्रान्ति·तत्व” के बदले गुण-विकास, गुणोत्कर्ष या ‘गुण परिणाम’ आदि सांख्यवादियों के शब्दों का उपयोग करना हमारी समझ में अधिक योग्य होगा।

उत्क्रोद-संज्ञा पु० [सं० पुं०] परमाह्लाद। उल्लास। ख़ुशी।

उत्क्रोश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) An owl उल्लू। पेचक। वै० निघ०। (२) एक प्रकार की चिड़िया जो मछली पकड़कर खाती है। रत्ना०। सुश्रुत के अनुसार इसका मांस रक्तपित्त नाशक, शीतल, स्निग्ध, वृष्य, वातकारक और रस तथा पाक में मधुर होता है। सु० सू० ४६ अ०। (३) कुरर पक्षी। करॉकुल। क्रौंच। हला०।

उत्क्लिष्ट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्सङ्ग के सदृश ही उत्क्लिष्ट नामक वर्त्म रोग होता है। इसमें रेखासी होती है। और इसमें हाथ नहीं लगाया जाता है। वा० उ० ८ अ०।

उत्क्लिष्टवर्त्म-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का नेत्ररोग। उत्सङ्ग के सदृश ही उत्क्लिष्ट नामक रोग हाता है। इसमें रेखा सी होती है आर इसमें हाथ नहीं लगाया जाता। लक्षण—रक्त और वातादि तीनों दोषों के उत्क्लेश के कारण वर्त्म उत्क्लिष्ट होकर अकस्मात् स्तब्ध होकर म्लान होजाता है, उसे “उत्क्लिष्ट” वर्त्मरोग कहते हैं। वा० उ० ८ अ०।

उत्क्लेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आर्द्रभाव। तरी। भींगने की हालत।

उत्क्लेदन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तर या गीला करना।

उत्क्लेदन वस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] तरी पहुँचाने की इच्छा से उपयुक्त ओषधियों के क्वाथ को पिचकारी द्वारा वस्ती में पहुँचाना।

उत्क्लेद-
उत्क्लेश- } संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
(१) शरीरस्थ दोषों का उपस्थित वमनत्व। वमनेच्छा। वमन करने की इच्छा। च० द० ज्व० चि०। “उत्क्लेशश्चोपशाम्यति।” (२) क़ै होने की सी दशा। मतली। ओकाई। विवमिषा।

उबकाई । भा० म० भ० श्लेष्म-ज्व० चि० । "गौरवं शीतमुत्क्लेशः" । "उत्क्लिश्यान्नं न निर्गच्छेत्प्रसेक ष्ठीवनेरितं हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥" सु० शा० ४ अ० ।

उत्क्लेशक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का अग्नि प्रकृति का कीड़ा जिसके काटने से पित्त के रोग होते हैं । सु० कल्प० ८ अ० ।

उत्क्लेशन वस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] एक प्रकार की वस्ति । वस्ति देने से पहले उत्क्लेशनार्थ इस प्रकार की वस्ति दी जाती है । इसके लिये रेंड़ी, मुलेठी, पीपल, सेंधानमक, बच, हाऊबेर और मैनफल का कल्क काम में आता है । वै० निघ० वस्तिविधि ।

उत्खला-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का प्रसिद्ध गंध द्रव्य । मुरा । मुरामांसी (Murraya exotica, *Linn.*)

उत्खात-वि० [सं० त्रि०] उन्मूलित । उखाड़ा हुआ ।

उत्खातिन्-वि० [सं० त्रि०] (१) नाशक । नष्ट करने वाला । जो खोद डालता हो । (२) जिसमें गड्ढे रहें ।

उत्खेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छेदन । काट छाँट ।

उत्त-वि० [सं० त्रि०] आर्द्र द्रव्य । भीगा पदार्थ । गीली चीज़ । अम० ।

उत्तप्त-वि० [सं० त्रि०] (१) तप्त । गरम । (२) स्नात । नहाया हुआ । मे० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शुष्क मांस ।

उत्तम-वि० [सं० त्रि०] (१) उत्कृष्ट । श्रेष्ट । सब से अच्छा । सबसे भला ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (२) एक प्रकार का घोड़ा । ज० द० ३ अ० । (३) दधि । दही ।

उत्तमगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चमेली । जाती । (Jasminum grandiflorum, *Linn.*)

उत्तम गन्धाढय-वि० [सं० त्रि०] मीठी ख़ुशबू वाला ।

उत्तम दारुणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मेढासिंगी । (२) उतरन । इंदीवरा ।

उत्तमफलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Asclepias Rosea) दुग्धिका । छोटी दुद्धी । प० मु० ।

उत्तम वारि-संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) चावल का धोवन । तंडुलोदक । च० द० मधुकादि । (२) उत्तम जल ।

उत्तम वैद्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह वैद्य जिसने अंगों सहित वेद का अध्ययन किया हो ।

उत्तमसुरा-संज्ञा स्त्री० (Absolute Alcohol) शुद्धासव । सुरासार ।

उत्तमा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दुग्धिका । छोटी दुद्धी । दूधी । (Asclepias Rossea) प० मु० । रत्ना० । (२) मैनसिल । मनःशिला । Realger (Arsenicum Bisulphuretum) प० मु० । (३) भूम्यामलकी । भुँई आमला । (Phyllanthus Niruri, *Linn.*) वै० निघ० । (४) त्रिफला । "शटी सुरतरूत्तमा" । भा० म० १ भ० सन्धिक ज्व० चि० । (५) मोथा । मुस्ता । हे० च० । (६) शूक रोग के १८ भेदों में से एक जिसमें अजीर्ण तथा रक्त-पित्त के प्रकोप से इंद्रिय पर मूँग या उर्द की सी लाल फुंसियाँ हो जाती हैं । सु० नि० शू० दो० चि० १४ अ० । उत्तमा नाम वाली पिटिका को वाडिश नामक यंत्र से उद्धृत करके छेदन करे और इस पर कषाय द्रव्यों का चूर्ण और कल्क मधु मिश्रित करके लगावे । वा० उ० ३४ अ० । (७) दूर्धी । दुग्धिका । (८) इंदीवरा । युग्मफला । उतरन ।

उत्तमाङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सिर । उत्कृष्ट अंग । शीर्ष । मस्तक । रा० नि० च० १८ । वा० उ० २५ अ० । दे० "अस्त्र_ज्ञाऽ रईसः" ।

उत्तमारणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उतरन । इन्दीवरा । (Asclepias echinata, *Roxb.*) रा० नि० व० ३ । (२) इन्द्रवारुणी । इंद्रायन । (Cucumis trigonis, *Roxb.*) वा० उ० ३७ अ० । (३) योधा मल्लिका । जूही । सु० चि० ६ अ० ।

उत्तभित–वि० [सं० त्रि०] उन्नमित। झुका हुआ।

उत्तम्भ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्तम्भन का भाव। रुकावट। रोक रखने को हालत।

उत्तम्भन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पकड़। टेक। (२) मेख। खूँटा।

उत्तर–संज्ञा पुं० [सं०क्ली०] दक्षिण दिशा के सामने की दिशा। ईशान और वायव्य कोण के बीच की दिशा। उदीची।

वि० [सं० त्रि०] (१) पिछला। बाद का। उपरांत का। (२) ऊपर का। उर्द्ध। ऊर्ध्व। Superior. (३) उपरितल का आवरण। ऊपरी सतह का ढक्कन। (४) प्रधान। श्रेष्ट।

उत्तर कण्ठ्या धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior laryngeal artery) स्वारयंत्रिकी ऊर्ध्व धमनी।

उत्तर कर्णीया धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Auricularis superior artery) शष्कुलीया ऊर्ध्व धमनी।

उत्तर काकलकीया धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior thyroid artery) चुल्लिका ऊर्ध्व-धमनी।

उत्तर काण्ड शिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superoir vena cava.) ऊर्द्ध महाशिरा।

उत्तरकाय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीर का ऊर्ध्व-भाग।

उत्तर (मध्य) कुक्षि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Epigastrium) कौड़ी प्रदेश।

उत्तर केदार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Cerebral Fossa) मास्तिष्क खात।

उत्तर केन्द्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पृथ्वी का उत्तर प्रान्त।

उत्तर-गल-संकोचनी पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Constrictor pharingis superior.) पेशी विशेष।

उत्तर गुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Rectum.) मलाशय।

उत्तर ग्रहणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pyloric valve.) आमाशय पक्वाशयिकद्वार।

उत्तरच्छद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्तरीय। आच्छादन वस्त्र। उपरना। दुपट्टा। चादर। (२) बिछौने की चद्दर।

उत्तरज–वि० [सं० त्रि०] जो पीछे पैदा हो।

उत्तर जंघा संधि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Proximal tibiofibular joint.) सन्धि विशेष।

उत्तर तंत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुश्रुत वा किसी वैद्यक ग्रंथ का पिछला भाग।

उत्तरद–संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर का जबड़ा। अथ०। सू० ४६।

उत्तरदिक्–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदीची। उत्तरदिशा।

उत्तरदिश्–दे० "उत्तरदिक्"।

उत्तरदेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उदीच्य। बालक। ह्रीवेर। (२) उत्तरा। प्लक्ष। (३) उत्तर की दिशा। (४) कपि। केवाँच।

उत्तर ध्रुव–संज्ञा पुं० [सं०] (North pole) भौतिक विज्ञान में चुंबक का वह ध्रुव जो उत्तर दिशा की ओर रहता है।

उत्तरपट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपरना। दुपट्टा। चादर। (२) बिछाने की चद्दर।

उत्तर पश्चार्द्ध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाएँ और दाहिने तरफ का अर्द्ध भाग।

उत्तर पश्चिम सरदा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Serratus posterior superior) पेशी विशेष।

उत्तर पायवी धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior hæmorrhoidal artery) सरलांत्रोर्ध्व धमनी।

उत्तर पार्ष्णि नौकीय–संज्ञा स्त्री० [सं०] (Superior calcaneo-navicular.)

उत्तर पृष्ठकीय वनता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Obliquus capites superior) पेशी विशेष।

उत्तर पेश्या–वि० [सं०] (Superior muscular.) पेश्योर्द्ध।

उत्तर प्रकोण गोजिह्विकीया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior aryepiglottideus)

उत्तर प्रकोष्ठ सन्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (Proximal radio-ulnar joint) संधि-विशेष ।

उत्तर प्रास्तरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (Superior petrosal sinus) परिखा विशेष ।

उत्तर प्रैणिकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (Superior phreme)

उत्तर प्रौथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (Superior gluteal)

उत्तर फाल्गुनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (B. Leonis) १२ वाँ नक्षत्र । इस नक्षत्र में जन्म लेने से मनुष्य, दाता, दयालु, सुशील, कीर्तिमान सुमति, श्रेष्ठ, धीर और अत्यन्त मृदु स्वभाव का होता है । इसके प्रथम में सिंह और उत्तर पाद त्रय में कन्या राशि पड़ता है ।

उत्तर भाद्र पद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] २६ वाँ नक्षत्र। (Andromedæ.)

उत्तर मस्तिष्क-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Cerebrum superior) बृहत् मस्तिष्क का ऊपर का भाग ।

उत्तर यमला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Gamellus superior) पेशी विशेष ।

उत्तर-लक्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पीछे के चिह्न । पीछे होनेवाले लक्षण । (२) वामदिक् चिह्नित । बाईं ओर निशान रखनेवाला ।

उत्तर लोमन्–वि० [सं० त्रि०] ऊपरी या बाहरी ओर घुमावदार बाल रखनेवाला । जिसके बाल ऊपर या बाहर की ओर घुमे हों ।

उत्तर-वयस–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुढ़ापा । वृद्धावस्था ।

उत्तर-वस्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की वस्ति जो मूत्राशय में दी जाती है । मूत्राशय में स्नेह पहुँचाने का सुश्रुतोक्त एक यन्त्र । यह यन्त्र रोगी की चतुर्दश अंगुलि परिमित दीर्घ और अग्रभाग में मालती पुष्प के डंडी (वृन्त) के समान छोटा छिद्र युक्त होता है। इसमें स्नेह का परिमाण रहता है । रोगीकी अवस्था पचीस वर्षसे कम होने पर विचारकर मात्रा निर्माण करना चाहिए । स्त्री के अपत्य-पथ से चार अंगुल के अन्तर पर मूत्रनाली लगी होती है । और उसके मुद्गतुल्य छिद्र का परिमाण दश अंगुल दीर्घ होता है । उत्तर वस्ति लगाने को अपत्य-पथ में चार और मूत्रनाली में दो अंगुल पिचकारी प्रवेश करना पर्याप्त होता है। अल्पवयस्का कन्याके लिए एक ही अंगुल प्रवेश करना यथेष्ट है । ऐसे स्थल में औरभ्र (भेड़) वा शूकर का वस्ति व्यवहार्य है । अभाव में पक्षी के गल देश का चर्म लिया जाता है । यदि वह भी न मिले तो हिरण के पद या अन्य किसी प्रकार के कोमल चर्म द्वारा वस्तिनिर्माण करें । प्रथम रोगी को स्निग्ध और स्वेदितकर घृत दुग्ध के साथ यथाशक्ति यवागू पिलाएँ । पुनः जानुपरिमित स्थान पर पृष्ठ टेक और वस्ति तथा मूर्धिनदेश में उष्ण तेल या घी का लेपकर शलाई की नली को लिंग के छिद्र में प्रवेश करें । उसके बाद लिंग में शलाका द्वारा अन्वेषणकर छः अंगुल परिमाण से अल्प-अल्प चलाएँ । फिर वस्ति लगा नल धीरे-धीरे निकालना चाहिए । जब स्नेह टपक जाए, तब अपराह्नकालमें दुग्ध, यूष वा मांस रस का परिमित मात्रा में भोजन कराएँ । इस प्रकार नियम से तीन या चार वस्ति लगाएँ । इसके उपयोग से दूषित शुक्र वा शोणित, मूत्राघात, मूत्रदोष, योनिदोष, शुक्रदोष, शर्कराश्मरी, वस्तिशूल, वङ्क्षणशूल, मेढ्रशूल, समस्त मेहरोग और अन्यान्य उत्कट वस्तिजातरोग उत्तर वस्ति द्वारा नष्ट होजाते हैं ।

नोट—किसी-किसी आयुर्वेदीय ग्रंथ में इस यन्त्रका परिमाण १२ अंगुलका लिखा है और २५ वर्ष की अवस्था से न्यून अवस्थावाले को २ कर्ष की और २५ वर्ष से बड़ी अवस्थावालों को १ पल की स्नेह की मात्रा कही है । स्त्रियों के लिए १० अंगुल की नली और छोटी उँगली के बराबर मोटी, जिसमें मूँग का दाना चला जाय इतना चौड़ा छिद्र करें । लिंग में प्रवेश होनेवाली नली बहुत बारीक होनी चाहिए और सिर्फ दो अंगुल प्रवेश करनी चाहिए । बालकों के मूत्रकृच्छ्रविकार में एक अंगुल नली लिंग में प्रवेश करें ।

स्त्रियों की योनि भाग में स्नेह की मात्रा २ पल की है । और बालकों के मूत्र-मार्ग में सिर्फ़ दो कर्ष की कही है । यो० त० ।

उत्तरवस्तीया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior Vesical) वस्ति के ऊर्ध्व भाग की।

उत्तरवस्त्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्तरीय। चादर।

उत्तरवात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उत्तर दिशा की हवा। दे० "उत्तरवायु"।

उत्तरवायु–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] उत्तर दिशा की वायु। यह शीतल, स्निग्ध, दोषों को प्रकुपित करनेवाली तथा क्लेदन है और प्रकृतिस्थ व्यक्ति को बलप्रद एवं कोमल तथा क्षतक्षीण व विषार्त्त रोगी के लिये विशेषकर हितकारक है।

उत्तर वारुणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इंद्रवारुणी। इंद्रायन। (Cucumis Trigonus, *Roxb.*) र० सा० सं० वैक्रांतमारण। "शिलाचोत्तरवारुणी"। भैष० कुष्ठ-चि०, उत्र० चि० कुलवधूरस। वा० उ० ३७ अ०। वै० निघ० १ २ भ० कास-चि० वारुणीपत्रधूम्।

उत्तरवाहिनी वटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आयुर्वेद में एक वटी विशेष। यथा—हिंगुल. गंधक और हरताल इनकी कज्जली बनाकर कड़ाही में डालकर मृदु अग्नि से पिघलाएँ और ठंडा करके कज्जली बनालें। पुनः इसमें जायफल, जावित्री, जंगलीसूरन, अफीम प्रत्येक हिंगुल के बराबर मिलाकर एक गोला बनालें। फिर इस गोले को एक धतूरे के बड़े फल में गड्ढा बनाकर गोले को बीच में रखकर बन्द करदें और ऊपर कच्चे सूत से लपेट दें। पुनः इसे गोधूम के आटे में बन्द करके तिल तैल में भर्जित करें। जब आटा सुर्ख हो जाय तब निकालकर चूर्णकर इसमें जायफल के क्वाथ और काले धतूरे के रस की २१ भावना दें। फिर इस प्रस्तुत औषध के समान भाग में-ईशानी (समीवृक्ष की छाल), मस्तगी, घृत में भुना हुआ बोल, गुग्गुल, कुचिला, अजमोद, समुद्रशोष, सुहागा और चित्रक, समान भाग लेकर चूर्णकर मिलाएँ और शहद से घोटकर दो-दो उड़द प्रमाण की गोलियाँ प्रस्तुत करें। इसे निम्नलिखित अवलेह के साथ दें।

अवलेह—त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, जामुन की गुठली, आमकी गुठली, अनारबीज, बहेड़ा, दाख, जंगली दाख, पलाश, पाकर, केवड़ा की जड़, विडंग, गंधक, बड़हल, काकड़ासिंगी, कचनार, अम्ली, वृक्षाम्ल, सुपारी, कटहल, नकछिकनी, अडूसा, वच इन्हें समानभाग लेकर १६ भाग जल में क्वाथ करें, जब आठवाँ भाग शेष रहे, तब उसे छानकर फिर गाढ़ा पाक करलें। पुन: इसके समान मिस्री की चाशनी करके इसमें जायफल, जावित्री, मोचरस, मोथा, मिर्च, बेलगिरी, आम्र के वीज, इंद्रजौ, खस, अफीम, रसवत्, आमला, दारचीनी इन्हें चासनी से चतुर्थांश चूर्णकर उस अवलेह में अच्छी तरह मिलाकर रखलें।

गुण—यह केवल अवलेह ही अतिसार को नष्ट करने में समर्थ है। यदि इसके साथ उत्तरवाहिनी वटी का प्रयोग किया जाय तो फिर क्या कहना है। इसके प्रभाव के हर प्रकार के साध्य और असाध्य अतिसार नष्ट होते हैं। रस० यो० सा०।

उत्तरसायकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior Longitudinalis) पेशी विशेष।

उत्तरहनु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हनुका ऊपरी भाग। जबड़े का ऊपरी हिस्सा। (२) ऊपर का जबड़ा।

उत्तर हानवी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Maxillary) जबड़े के ऊपर की पेशी विशेष।

उत्तर हार्दी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior Cardiac) हृदय के ऊपर की पेशी विशेष।

उत्तर क्षुद्रासखी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Accessary Hemiazygos) पेशी विशेष।

उत्तरक्षुद्रांत्र–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्रांत्र का वह भाग जो द्वादशांगुल अंत्र या पक्वाशय और अधर क्षुद्रांत्र के मध्य स्थित है। ऊर्ध्व क्षुद्रांत्र। साइम्, रोदहे दूम (अ०)। जेज्युनम् (Jejunum-(अं०)।

अरबी नामों की व्याख्या के लिये दे० "साइम्"।

उत्तर क्षुद्रांत्र प्रदाह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊर्ध्व क्षुद्रांत्र की सूजन। इल्तिहाबुस्साइम्। वर्म रोदहे ख़ाली (अ०)। जेज्युनाइटिज़ Jejunitis-(अं०)।

उत्तरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) प्लक्ष। पाकर। पकरी। (२) २७ नक्षत्रोंमें से एक।

उत्तराखंड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भारतवर्ष का हिमालय के पास का उत्तरीय भाग।

उत्तराग्न्याशयीय पौरीतती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior Pancreatico-duodenal) पेशी विशेष।

उत्तराजिह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Rectus Superior) पेशी विशेष।

उत्तराणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मेढ़ासिंगी (२) उतरन।

उत्तरातानिक रासनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Longitudinaiis Linguœ) पेशी विशेष।

उत्तरातानकी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "उत्तर सायकी"।

उत्तरान्तर कौर्परी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior Ulnar collateral) पेशी विशेष।

उत्तरान्त्रीया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior Mesenteric) पेशी विशेष।

उत्तरान्त्रीया प्लवक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Superior mesenteric plexus) प्लवक विशेष। एक नाड़ी जाल।

उत्तरापथ-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जीरा।

उत्तरापथिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्राक्षा भेद। मृद्विका। गोस्तनी। मधुरसा। फलोत्तमा। स्वादुपाका। कपिला। दे० "अङ्गूर"। रा० नि० ११ व०।

उत्तरा भाद्रपदा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०](१) निम्ब। नीम। (२) २७ नक्षत्रों में से एक।

उत्तरायण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सूर्य्य की मकर रेखा से उत्तर कर्क रेखाकी ओर गति। (२) वह छः महीने का समय जिसके बीच सूर्य्य मकर रेखा से चल कर बराबर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है।

उत्तरारणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अग्नि-मंथन की दो लकड़ियों में से ऊपर की लकड़ी।

उत्तरा वनता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Obliquus Superior) पेशी विशेष।

उत्तराषाढ़ा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पनस। कटहल। (२) २७ नक्षत्रोंमें से एक। उत्तरा अषाढ़ा। नक्षत्र विशेष।

उत्तरासङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उत्तरीय वस्त्र। ऊपर का कपड़ा। उपरना। दुपट्टा। चद्दर। चादर। ओढ़नी। अम०।

पर्य्या०—उत्तरीयं, प्रावारः, उत्तरासङ्ग, बृहतिका, संव्यानं (अ), कक्षा (ज)।

उत्तरास्थि-कुण्डीय विशरण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Fissure ro Foramen lacerum anticum) विशरण विशेष।

उत्तरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उत्तमारणी।

गुण—यह कटुक, शीतल, नेत्र को हितकारी, लघु, उष्ण, स्निग्ध, सारक, तुवर, व्रण-रोपण एवं सुखासवकर होती है और कास, व्रण, कृमि, श्वास, ज्वर, पित्त, प्रमेह, कफ, कुष्ठ, प्रलाप, वात, तंद्रा, दद्रु, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, योनिरोग तथा शोथ को खोती है। इसका शाक उष्णवीर्य्य एवं तिक्त होता है और कृमि, अर्श, कुष्ठ, कफ तथा वात का हरण करता है। इसका फल पटु, तिक्त, उष्ण, कटुक, लघु, अग्निप्रदीपक, पित्तकोपकर, कल्याणप्रद और विषनाशक है। (वै० निघ०)

उत्तरीय-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शरीर के ऊपरवाले भाग पर धारण करने का कपड़ा। उपरना। दुपट्टा। चद्दर। ओढ़नी। (२) एक प्रकार का बहुत बड़ा सन जो बहुत मज़बूत होता और सहज में काता जा सकता है। यह बहुत चमकीला और मुलायम होता है और सब सनों से अच्छा समझा जाता है।

वि० (१) ऊपर का। ऊपरवाला। (२) उत्तर दिशा का। उत्तर दिशा संबन्धी।

उत्तरोर्ध्व-कौक्षेयी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior Epigastric)

उत्तरोष्ठ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपरिस्थित ओष्ठ। ऊपर का ओंठ।

उत्तरोष्ठ्या-वि० स्त्री० [सं० त्रि०] (Superior Labial) ऊपर के ओंठ का। ऊपरी ओष्ठ संबंधी।

उत्तरौपमस्तिष्क-पदक–संज्ञा पुं०[सं० क्ली०] (Superior cerebellar-peduncle) पदक विशेष।

उत्तरौपमस्तिष्की–वि० स्त्री० [सं० त्रि०] (Superior cerebellar) उपमस्तिष्क के ऊपर का।

उत्तरौरसी–वि० स्त्री० [सं० त्रि०] (Superior thoracic) वक्ष के ऊपर की। ऊपरी वक्ष संबंधी।

उत्तरौष्ठ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उत्तरोष्ठ"।

उत्तरांसाधरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Upper subscapular) पेशी विशेष।

उत्तंस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कर्ण भूषण। बाली। कान का गहना। (२) शिरोभूषण। कलँगी।

उत्तंसिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नाग विशेष।

उत्तान–वि० [सं० त्रि०] (१) पीठ को जमीन पर लगाए हुए। चित। सीधा। उतान। ऊर्ध्व मुख शायित। मे० नत्रिकं। (२) ऊर्ध्वतल। सतह पर फैला हुआ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जल। पानी। हे० च०। (२) वातरक्त का एक भेद। लक्षण—उत्तान वातरक्त में त्वचा में खुजली, स्फुरण और तोद होता है। इसका वर्ण ताम्र, श्याव और लोहित होता है। यह रोग विस्तृत और अत्यन्त दाह और वेदना से युक्त होता है। वा० नि० वातरक्त १६ अ०।

उत्तानक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का मोथा। निर्विषी (Cyperus)। (२) एक प्रकारकी घास। उच्चटा। उटंगन। र० मा०। रत्ना०।

उत्तान पत्र– }
उत्तान पत्रक– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रक्तैरण्ड। लाल रेंड। रा०नि० व० ८। भा० पू० १ भ० गु० व०। मद० व० १। (२) श्वेतैरण्ड। सफ़ेद रेंड। वै० निघ०।

उत्तानपद्–संज्ञा स्त्री० [वै० सं०स्त्री०] वृक्ष। पेड़।

उत्तान-पर्ण–वि० [सं०त्रि०]विस्तृत पत्र युक्त। फैली हुई पत्ती का।

उत्तानशय–संज्ञा पुं० [सं०पुं०] दुधमुँहा बच्चा। स्तन्यपायी शिशु। नोट—उस समय उसकी नीचे मुँह करके सोने की सामर्थ्य नहीं होती।

वि० [सं० त्रि०] जो चित सोया है। ऊर्ध्वमुख शयन करनेवाला।

उत्तानशया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बालिका के नाम। लड़की।

उत्तानशायी–वि० [सं० त्रि०] उतान सोनेवाला। जो चित सोये। वै० निघ०।

उत्तानशीवन्–वि० [सं० त्रि०] उत्तान स्थित। खड़ा। रुका हुआ। अथर्व २। २१। १०

उत्तान हस्त–वि० [सं० त्रि०] विस्तारित हस्तयुक्त। हाथ फैलाए हुआ।

उत्तानीकरणी पेशी–संज्ञा स्त्री०[सं०स्त्री०] (Supinator muscle) करोत्तानिनी पेशी।

उत्ताप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उत्तप्त, उत्तापित] उष्णता। गर्मी। तपन। (२) कष्ट। वेदना।

उत्तापन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उष्णताकरण। गर्म करने की क्रिया या भाव। गरमाना।

उत्तापित–वि० [सं० त्रि०] (१) गर्म। तपाया हुआ। संतापित। (२) क्षुब्ध। दुःखी। क्लेशित।

उत्तामणि–[ता०] (Dæmia extensa, *R. Br.*) उत्रन की बेल। छागुल-बाटी (बं०)। स० फा० इं०। दे० "उतरन"।

उत्तार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वमन। क़ै।

उत्तार लोचन–वि० [सं० त्रि०] घूर्णित नेत्र युक्त। घूमी हुई आँखोंवाला।

उत्ताल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मर्कट। बंदर। वानर। मे० लत्रिक।

वि० [सं० त्रि०] उत्कट।

उत्तास–[अ०] (Errhine) क्षुत्कारक औषध। छींक लानेवाली औषध वा दवा।

उत्तिष्ठद्धोम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] होम विशेष। यह होम खड़ा होकर करना पड़ता है।

उत्तुङ्ग–वि० [सं० त्रि०] ऊँचा। बहुत ऊँचा।

उत्तुण्डकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pongamia-glabra, *Vent.*) कंजा। करंज। वै० निघ०।

उत्तुण्डित-वि० [सं० त्रि०] (१) निर्गत। निकला हुआ। सु० चि० २ अ०। (२) कण्टकाग्र। काँटे की नोक।

उत्तुण्डी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकभंत्री।

उत्तुद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चावल करनेवाला पुरुष। जो आदमी हवि को चलाता हो।

उत्तुष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जिससे भूसी अलग काली गई हो। भुने हुए धान। लाजा। खील। लावा हारा०।

उत्तू-संज्ञा पुं० [?] (१)वेणीकरण। संकोच। चुन्नट। चीन। चौरस। (२) कपड़े की चुन्नट।

उत्तूगर-संज्ञा पुं० [?] चुन्नट डालनेवाला।

उत्तेजक-वि० [सं०त्रि०] उभाड़नेवाला। बढ़ानेवाला। उकसानेवाला। प्रेरक। (२) वेगों को तीव्र करनेवाला। (Stimulant) मुहर्रिक।

उत्तेजन-संज्ञा पुं० [सं०क्ली०] (Stimulation) बढ़ाव। उत्साह। प्रेरणा।

उत्तेजना-संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] [वि० उत्तेजित, उत्तेजक] (१) प्रेरणा। बढ़ावा। प्रोत्साह। (२) वेगों को तीव्र करने की क्रिया। (३) सजीवकरण। जीवित करने की क्रिया।

उत्तेजना जनक-वि० दे० "उत्तेजक"।

उत्तेजि(रि)त-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) घोड़े की मध्य वेग से चलने की एक चाल। यह चौथी पाँचवी चाल है। जैसे—

"उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गमनं कोपादिवाखिलैः पदैः"

हे० च०। (२) उद्दीपित। उसकाया हुआ। जो भड़का हो।

उत्तेज्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राणिशास्त्र में कारण के प्रभाव से कार्य करने और किसी बाह्य उत्तेजना के बल से उत्तेजित होकर अपने शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन करने की एक शक्ति जो केवल जीवित चीजोंमें ही पाई जाती है, निर्जीव या मृत में नहीं। Irritability.

उत्तोलन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊपर को उठाना। ऊँचा करना। तानना। उत्क्षेपण (२) तौलना। वज़न करना।

उत्त्रस्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अतिशय भयभीत। बहुत डरा हुआ।

उत्त्रास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अतिभय। अधिक डर।

उत्त्रिपद्-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उन्नत त्रिपदी। ऊँची तिपाई।

उत्थ-वि० [सं० त्रि०] (१) उत्थित। उठा हुआ। (२) उन्नत। ऊँचा। (३) उत्पन्न। पैदा। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपज। उत्पत्ति।

उत्थातृ-वि० [सं० त्रि०] (१) उत्थापन करने वाला। जो उठा रहा हो। (२) अध्यवसायी। पक्का इरादा रखने वाला।

उत्थान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मलोत्सर्ग। रत्ना०। (२) मलरोग। दस्त की बीमारी। (३) पौरुष। (४) हर्ष। हे० च०। मे० नत्रिकं। (५) उठने का कार्य। (६) उठान। आरंभ। (७) पुनरुज्जीवन। हश्र। (८) रोग का सन्निकृष्ट कारण। बीमारी का नज़दीकी कारण।

उत्थापक-वि० [सं० त्रि०] (१) उत्थापन करने वाला। जो उठाता हो। (२) उत्तेजक।

उत्थापन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊपर उठाना। तानना। (२) हिलाना। डुलाना। (३) जगाना। (४) क्षोभन। भड़काव।

उत्थित-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सरल वृक्ष। रा० नि० व० १२।

वि० [सं० त्रि०] उत्पन्न। मे० तत्रिकं।

उत्थिताङ्गुलि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) विस्तृताङ्गुलि। फैली हुई उँगली। (२) करतल। हथेली। (३) चपट। चपत। तमाचा। श० च०।

उत्थितोपतरु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सरल वृक्ष। सरल का पेड़। चीढ़ भेद।

उत्पचिष्णु-वि० [सं० त्रि०] पाक करने योग्य। जो पकाने के क़ाबिल हो।

उत्पट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृक्षादि की त्वक् को भेदकर उद्गत होनेवाला निर्यास। पेड़ की छाल को फोड़कर निकलनेवाला गोंद।

"त्वचएवास्य रुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः।"

शतपथ ब्राह्मण १४। ६। ३१॥

"उत्पटः वृक्ष निर्यास" (भाष्य)

उत्पट–सं॰ पुं॰ [सं॰ पुं॰] (१) पेड़ की गोंद। (२) ऊपर पहनने का कपड़ा। उपरना। दुपट्टा।

उत्पत–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] पक्षी। त्रिका॰।

उत्पतन–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] [वि॰ उत्पतनीय, उत्पतित] (१) उर्द्ध्वगमन। ऊपर उठना। (२) उत्पत्ति।

उत्पतित-वि॰ [सं॰ त्रि॰] (१) उत्थित। उठा हुआ। (२) उद्गत। निकला हुआ।

उत्पतितृ–वि॰ [सं॰ त्रि॰] ऊर्ध्वगमनकारी। ऊपर चढ़नेवाला।

उत्पतिष्णु–वि॰ [सं॰ त्रि॰] उत्पतनशील। उड़नेवाला।

उत्पत्ति–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰][वि॰ उत्पन्न] (१) उद्गम। पैदाइश। जन्म। उद्भव (२) सृष्टि। (३) आरम्भ। शुरू। (४) उद्भव। उपज। पैदायश। (५) ऊर्ध्वपतन। उड़ान। (६) प्रलय। क़यामत।

उत्पत्ति केन्द्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] उत्पत्ति-स्थान। Nucleus of origin.

उत्पत्ति क्रम–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] जगत की उत्पत्ति का पारिपाट्य। दुनियाँ की पैदायश का तरीक़ा। उपनिषद् के मत से–आत्मा से आकाश। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधि, ओषधि से अन्न, अन्न से रेतः और रेतः से पुरुष की उत्पत्ति मानी गई है।

उत्पत्ति प्रयोग–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] कारण और कार्य के संयुक्त रूप से उद्भव। सबब और समरे की मिली हुई हरकत से पैदाइश।

उत्पत्तिमत्–वि॰ [सं॰ त्रि॰] उत्पन्न। पैदा। उपजा हुआ।

उत्पत्ति विज्ञान–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] सृष्टि रचना सम्बन्धी ज्ञान।

उत्पत्ति व्यञ्जक–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] (१) उद्भव का आदर्श। पैदाइश की सूरत। (२) दोबार उत्पन्न होने का चिह्न।

उत्पत्ति व्युत्क्रम–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] विपरीत भाव से उत्पत्ति। उलटी चाल की पैदाइश।

उत्पत्तिस्थान–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) छेदनशास्त्र के अनुसार मस्तिष्क वा सुषुम्ना का वह भाग जहाँ से नाड़ी का कोई तार निकले। Nucleus of origin. (२) पैदा होने की जगह।

उत्पथ–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] (१) असत्पथ। बुरी राह।

अव्य–[सं॰] शास्त्र के विरुद्ध।

उत्पद्यमान–वि॰ [सं॰ त्रि॰] जायमान। पैदा हो जानेवाला।

उत्पन्न–वि॰ [सं॰ त्रि॰] जात। पैदा। उपजा।

उत्पन्न तन्तु–वि॰ [सं॰ त्रि॰] सन्तान की श्रेणी रखनेवाला। जिससे औलाद का सिलसिला रहे।

उत्पन्न भक्षिन्–वि॰ [सं॰ त्रि॰] प्राप्त द्रव्य को खा डालनेवाला।

उत्पन्न विनाशिन्–वि॰ [सं॰ त्रि॰] उत्पन्न होते ही मृत्यु पानेवाला। पैदा होते ही मर जानेवाला।

उत्पल (क)–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] (१) Blue lotus. नील कमल। रा॰ नि॰ व॰ १०। सु॰ सू॰ ३८ अ॰ उत्पलादि-ग॰। च॰ सू॰ ४ अ॰। च॰ द॰, र॰ पि॰ चि॰। (२) (Saussurea lappa, *Clarke.*) कुष्ठ। कुट। प॰ मु॰। विश्व॰ प्र॰ कस्तूरीमोदक। र॰ सा॰ सं॰। च॰ द॰ पित्त॰ ज्व॰ लोध्रादि। "लोध्रोत्पलामृतापद्म"। लाक्षादि तैल। वै॰निघ॰ अर्श॰चि॰ ह्रीवेरघृत। (३) शालूक। भसींड़। कमल की जड़। प॰ मु॰। (४) कमलकी जाति का एक प्रकार का फूल। कूँई। सु॰ चि॰ ३ अ॰। राज॰। रा॰ नि॰ व॰ १०। द्रव्यगुण। दे॰ "कूँई"। (५) नीलोत्पल। सि॰ यो॰ र॰ पि॰ चि॰ सिद्धमतयोग, श्रीकण्ठ। "वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गु।" सि॰ यो॰ यक्ष्म-चि॰ च्यवनप्राश। वा॰ सू॰ १५ अ॰, अञ्जनादि। (६) Prunus Pudum, *Roxb.* पद्मकाष्ठ। पदुमकाठ।

'पथ्योत्पलधान्यरोहिणीविश्वैः।'–च० द०ज्वराती० चि०घनजलादि। दे०"पदम"। (७)पुष्प। फूल। मे०। (८) जल में उत्पन्न होनेवाले पुष्पमात्र। अम०। (९) कमल। (१०) क्षुद्र उत्पल। (११) गन्धपाषाण। (१२) कतृण।

वि० [सं० त्रि०] मांस शून्य। कमज़ोर। हे० च०।

उत्पलक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) क्षेत्र करीष। अरना कंडा। बन घूँटे (बं०)। प्र० र० सा० सं० रूप्यमारण। (२) नीलोत्पल। नील कूँई। नीलशुंदि (बं०)। रा० नि० व० १०।

उत्पलकन्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शालूक। भसींड़। कमल की जड़। रत्ना०।

उत्पलकुष्ठक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ। कुट। (Saussurea Lappa, *Clarke.*) वै० नि०।

उत्पल केशर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमल का केसर। पद्मकेसर। भैष० क्षुद्रो–चि० कनकतैल।

उत्पल गन्धि–
उत्पल गन्धिक– } संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का अत्यन्त सुगन्धित चंदन। श० मा०।

उत्पलगोपा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेत शारिवा। सफ़ेद श्यामालता। वै० निघ०।

उत्पल चक्षुस–वि० [सं० त्रि०] कमल सदृश नेत्र युक्त। जिसकी आँख कमल की तरह हो। कमलनयन।

उत्पलदल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक अस्त्र जो छेदन-भेदन में काम आता है।

"उत्पलाध्यर्द्ध धाराख्य भेदने छेदने तथा"।

अत्रि०

उत्पलपत्र–
उत्पलपत्रक– } संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वैद्यक में एक अस्त्र जो छेदन-भेदन के काम में आता है। यह ६ अंगुल परिमाण का होता है। सु० सू० ८ अ०। मद० व० १४ अ०। (२) तिल। तिल्ली। तिलक। (Sesamum Indicum,) धरणि०। (३) कुवलयपत्र। कमलपत्र। हे० च०।

उत्पलभि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाषाणभेदी।

उत्पल भेद्यक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

उत्पलमृत्–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सौराष्ट्रमृत्तिका। गोपीचंदन। च० द० र० पि० चि०।

उत्पलशाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शाक विशेष।

उत्पलशारिवा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) श्यामालता। कृष्णसारिवा। (Ichnocarpus frutescens, *Br.*) प० मु०। र० मा०। (२) अनन्तमूल। (Hemidesmus Indicus, *Br.*) अम०। भैष० ज्व० भ–चि०।

उत्पलषट्क–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पृष्ठपर्णी, खिरेटी, बेलगिरी, धनियाँ, सोंठ और नीलोफर, इनके क्वाथ में अनार का रस मिलाकर पीने से ज्वरातीसार का नाश होता है। भा० ज्वराति०। (२) कमल, धनियाँ, सोंठ, पिठवन और बालविल्व (कोमल बेल का फल) को अति उष्ण गाय के तक्र में पीसकर और उससे लाजा मण्ड बनाकर पिलाने से ज्वरातीसार नष्ट होता है। अति०।

उत्पल-षट्क पेया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिठवन, वलामूल, विल्वमज्जा, सोंठ, उत्पल (नीलकमल) तथा धनियाँ इन ओषधियों के साथ यथाविधि साधित पेया में दाड़िम आदि के रस को डालकर अम्लीकृत करके प्रयोग करने से ज्वरातिसार नष्ट होता है। चक्र० द० ज्वरा० ति० चि०।

उत्पलादि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक कषायवर्ग। इसमें कमल, लाल कमल, कुईं, नीलकमल, सफ़ेद कमल (वा कुईं), पुण्डरीक (सफ़ेद कमल) और मुलेठी सम्मिलित हैं।

गुण—यह उत्पलादि नामक गण दाह, रक्तपित्त, प्यास, विष, हृद्रोग, कै, और मूर्च्छा को नष्ट करता है। सु० सू० ३८ अ०।

मतांतरसे इस वर्गकी ओषधियाँ यहहैं–रक्तकमलकन्द, रक्तकपासमूल, करवीरमूल (अर्जुनवृक्षमूल), रक्तोड्रमूल (लाल अड़उल की जड़), मौलसरी मूल, गंधमात्रिक (कलौंजी), जीरा और रक्त चंदन प्रत्येक समानभाग। चावल के पानी के

साथ पीसकर पीने से योनिशूल, कटिशूल, कुक्षिशूल निस्संदेह दूर होता है। भैष० र० स्त्री-रोग-चि०।

उत्पलादि क्वाथ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निलोफर, कमलनाल, जंगलीबेर, दूध, पद्माक, इन्हें पानी में पीसकर पीने से गर्भशूल और गर्भपात का नाश होता है। वृ० नि० र० स्त्रीरोग-चि०।

उत्पलादि-गण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उत्पल (निलोफर), नीलकमल, रक्तकमल, कुमुद, (कुइंबेरा), कल्हार, श्वेत कुमुद, श्वेत कमल, और मुलहठी इन्हें उत्पलादिगण कहते हैं।

गुण—यह शीतल, दाहनाशक, प्यास को शमन करनेवाला, हृद्रोगनाशक, वमन, रक्तपित्त, मूर्च्छा और अरोचक नाशक है।

उत्पलादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नीलकमल, अनार की छाल और कमल केशर समान भाग चूर्णकर चावलों के धोवन से पियें, तो ज्वरातिसार दूर हो। योग तरंगिणी अतिसार चि०। चक्र-दत्त। भा० प्र० ज्वरा-ति० चि०।

उत्पलाभ-वि० [सं० त्रि०] पद्म सदृश। कमल के समान।

उत्पलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुमुद षण्ड। शुंदि फुलेर झाड़ (बं०)। नीलोत्पलिनी। कुमुदिनी। इन्दीवरिणी। (२) लघु कमलिनी। छोटी कूँई। बघोला।

गुण—छोटी कूँई शीतल कडुई, रक्तरोग-नाशक, पित्त नाशक तथा ताप, कफ, खाँसी, प्यास श्रम और कै को दूर करती है। इसका बीज मधुर, रूक्ष, शीतल और भारी है। रा० नि० व० १०। (३) उत्पल पुष्प समूह।

उत्पलिन्-वि० [सं० त्रि०] कमल से परिपूर्ण।

उत्पली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तुषचर्पटी। भूसी की रोटी। मे० लत्रिक।

उत्प्लवन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] प्लावन। बाढ़। बूड़ा।

उत्पश्य-वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्व मुख। ऊपर की ओर देखनेवाला।

उत्पद्मण्-वि० [सं० त्रि०] उत्थित नेत्रच्छद युक्त। पपोटे ऊपर को उठाए हुआ।

उत्पद्मन्-वि० [सं० त्रि०] दे० "उत्पद्मण"।

उत्पाट, उत्पात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान की लौ में होनेवाला एक प्रकार का रोग। लोलक के छेद में भारी गहना पहनने वा किसी प्रकार के खिंचाव से अथवा उसके अत्यंत रगड़ खाने से रक्त-पित्त कुपित हो जाता है, जिससे कानकी लौ में हरी, नीली तथा लाल रंग का एवं दाह, पीड़ा और पाक युक्त सूजन हो जाती है। मा० नि०। एक प्रकार का रोग जो रक्त पित्त के प्रकोप से कान की लौ में हो जाता है। सु० चि० २५ अ०।

लक्षण—भारी आभूषणों के कारण पित्त और रक्तके कुपित होनेसे कर्णपालीमें वेदना, दाह, पाक, स्फोटन, श्यावता, सूजन, पिटका, राग, ऊषा और क्लेद होता है। इस रोग को 'उत्पात' कहते हैं। वा० उ० १८ अ०।

उत्पाटन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उत्पाटित] (१) एक प्रकार की वेदना जो फोड़े में वायु के कारण होती है। (२) उखाड़ना। उन्मूलन। सु० सू० २२ अ०।

उत्पाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्ष की शुष्क छाल।

उत्पाटित-त्रि० [सं० त्रि०] उन्मूलित। उखाड़ा हुआ। जड़ से उखाड़ा हुआ।

उत्पाटिन्-वि० [सं० त्रि०] उन्मूलन करनेवाला। जो उखाड़ डालता हो।

उत्पात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) Explosion विस्फोट। (२) अशुभ सूचक उपद्रव। अकस्मात् दैव घटना।

उत्पातक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान का एक रोग। दे० "उत्पाट (त)"।

उत्पात केतु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमङ्गल-चिन्ह। उल्कापात। भूमि कम्प और उपद्रव के पात का निमित्तक। उदित धूमकेतु तारा प्रभृति।

उत्पादक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आठ पाँववाला शरभ नाम का एक मृग। इसके चार पाँव पीठ पर होते हैं। हुमा-(फ़ा०)।

वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० उत्पादिका] उत्पन्न करनेवाला।

उत्पादक यलक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Formative yolk.)

उत्पादक(न शक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्राणीशास्त्र के अनुसार जीवधारियों की वह शक्ति जिससे वे संतान उत्पन्न कर सकते हैं अर्थात् जैसे आप हैं वे अपने शरीर से उसी प्रकार के और व्यक्ति बना सकते हैं। (Roproductive power.)

उत्पादक संस्थान–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शारीरक के अनुसार शरीर का एक विभाग। इसमें वे अंग सम्मिलित हैं जिनके द्वारा संतान उत्पन्न की जाती है। जैसे, अंड, शिश्न, योनि, गर्भाशय आदि। (Reproductive system)

उत्पादन–संज्ञा पुं० [सं०क्ली०] [वि० उत्पादित] उत्पन्न करना। पैदा करना।

उत्पादन शक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] दे० "उत्पादक शक्ति"।

उत्पादशय (न)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जो अपना पाँव ऊपर करके सोता है। (२) टिट्टिभ पक्षी। टिटिहरी। हे० च०।

उत्पादिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उपजिह्विका। हारा०। (२) हिलमोचिका। (३) पोई। उपोदिका। त्रिका०। (४) देहिका नाम का एक प्रकार का कीड़ा। दीमक। श० च०।

उत्पादिन्-वि० [सं० त्रि०] उत्पन्न करनेवाला। जो पैदा करता हो।

उत्पार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुद्ध घृत। ख़ालिश घी।

उत्पाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आरोग्य। नीरोग। स्वस्थ। श० च०।

उत्पाव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुद्धिकारक घृत। साफ़ करनेवाला घी।

उत्पिञ्जल–वि० [सं० त्रि०] (१) अत्यन्त घबराया हुआ। हे० च०। (२) पिङ्गल वर्ण। ज़र्द। पीला।

उत्पिष्ट–वि० [सं० त्रि०] उन्मथित। रगड़ा या पीसा हुआ।

उत्पिष्ट सन्धि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] संधिमुक्ति का एक प्रकार जिसमें संधि परके हड्डी के दोनों भाग रगड़े वा पीसे गए हों। इसमें विशेष रूप से संधि में दोनों ओर सूजन और पीड़ा होती है, रात में अधिक वेदना उत्पन्न होती है। सु० नि० १५ अ०। दे० "भग्न"।

उत्पीड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सुरामण्ड। फेन। (२) बाधा। कष्ट। (३) संघर्षण। रगड़। (४) उन्मथन। मथाई।

उत्पीड़न–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उत्पीड़ित] दबाना। तकलीफ़ देना। पीड़ा पहुँचाना।

उत्पुटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का रोग जो कान की लौ में होता है। सु० सू० १६ अ०। (२) कर्णपाली वेधोपद्रव। उत्पट। सु०।

उत्पलक–वि० [सं० त्रि०] आनन्द। खुशी।

उत्पेषण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घुसेड़ना। च० सू० १२ अ०।

उत्प्रभ-वि० [सं० त्रि०] (१) अग्नि। आग। (२) चमकीला।

उत्प्रसव–संज्ञा पुं० [सं०] गर्भस्राव। इसकात-हमल।

उत्प्राण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्वास। साँस। वै० निघ०।

उत्प्रेक्षण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊर्ध्व दृष्टि। गहरी नज़र।

उत्प्रेक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वितर्क। उलटा ख़याल।

उत्प्लवन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उल्लंघन। (२) पानी पर तैरना।

उत्प्लवा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नौका। नाव। किश्ती।

उत्फाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उल्लम्फन।

उत्फुल्ल–वि० [सं० त्रि०] (१) विकसित। फूला हुआ। प्रफुल्लित। खिला हुआ। (२) उत्तान। चित्त। (३) स्फीत। सूजा। बढ़ा।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्त्रीन्द्रिय। मे०।

उत्स–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहता हुआ पानी। प्रस्रवण। झरना। निर्झर।

उत्सक्थ–वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्व सक्थि युक्त ।

उत्सङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) क्रोड़ । गोद । कोरा । अंक । "क्रोड़मङ्कस्तथोत्सङ्गः प्राग्भागो वपुषः स्मृतः ।" राज० । (२) व्रण का भीतरी प्रदेश । ज़ख्म का अन्दरूनी हिस्सा । सु० चि० १ अ० । (३) वाग्भट्ट के अनुसार पंद्रह प्रकार के व्रणबन्धनों में से एक । यह पर्वत मध्य-देशाकार होता है । इस प्रकार की पट्टी लंबे बाहु आदि अंगों में बाँधी जाती है । वा० सू० २८ अ० । (४) आलिङ्गन । हमागोशी । (५) गर्भ । हमल ।

एक प्रकार का नेत्र रोग । लक्षण–रक्त के कारण वर्त्म में लाल रंग की फुंसी पैदा हो जाती है और इन फुंसियों के चारों ओर वैसे ही और भी फुंसियाँ हो जाती हैं । इसे ही "उत्सङ्ग" रोग कहते हैं । वा० उ० ८ अ० ।

उत्सङ्ग-पिड़िका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नेत्र वर्त्मगत रोग विशेष । आँख की पलक में होनेवाली एक प्रकार की फुंसी जिसका मुख भीतर को होता है और जो सन्निपात से उत्पन्न होती है । यह ताँबे के रंग की लाल, बड़ी और खुजली युक्त होती है । खुजली कफ की प्रधानता से होती है । मा० नि० । रक्त के कारण वर्त्म में लाल रंग की फुंसी हो जाती हैं और इन फुंसियों के चारों ओर वैसी ही और फुंसियां हो जाती हैं । इसे "उत्संग" कहते हैं । वा० उ० ८ अ० ।

उत्सङ्गी–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] एक प्रकारका नाड़ीव्रण अर्थात् नासूर । सु० ।

उत्सधि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल प्रवाहशील कूप । ऋक् । १ । ८८ । ४ ।

उत्मूस–[अ०] मादकता । नशा । मस्ती ।

उत्रज–[अ०] दे० "उत्रुज" ।

उत्रुज्ज–[अ०] दे० "उत्रुज" ।

उत्रत–[अ०] (१) शिश्नमुण्ड अर्थात् सुपारी की परिधि वा प्रांत । (२) नख के चारों ओर का मांस । (३) महाधमनी प्रांत ।

उत्रन–दे० "उतरन" ।

उत्रफ़ान, उत्रसान–[?] (१) कुक्कुट । मुर्गा । (२) एक प्रकार का पौधा । मु० अ० ।

उत्रब–[अ०] सुमाक़ ।

उतरस–[अ०] (A lion) सिंह । शेर ।

उत्रसान–[?] दे० "उत्रफ़ान" ।

उत्राणि-गिड़ा–[कना०]
उत्राणिच-झाड़–[मरा०] } (Achyranthes aspera, *Linn.*) अपामार्ग । चिचड़ा ।

उत्रार–[अ०] ज़रिश्क ।

उत्रुज–[अ०] (Citrus medica, *Linn.*) फलपूर । बिजौरा । नीबू । तुरंज ।

उत्ली–संज्ञा स्त्री० [देश० कों०] एक प्रकार का पौधा जो औषध के काम आता है । यह कोंकण में उत्पन्न होता है । स्वाद इसका कषैला और किसी भाँति अम्ल होता है । प्रकृति-शीतल है, पित्त की तीव्रता को कम करती है । (ख० अ०)

उत्सन्न–वि० [सं० त्रि०] (१) उच्छिन्न । उखड़ा हुआ । (२) नष्ट । बरबाद । (३) वर्धित । बढ़ा हुआ ।

"उत्सन्नमृदु मांसानां व्रणानामवसादनम् ।"
वा० उ० २५ अ० ।

उत्सर्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उत्सर्गी, औत्सर्गिक, उत्सर्ग्य] (१) त्याग । छोड़ना । (२) समाप्ति । (३) वर्जन ।

उत्सर्गतः–अव्य० [सं०] साधारणतः । साधारण तौर पर ।

उत्सर्जन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उत्सर्जित, उत्सृष्ट] (१) त्याग । छोड़ना । (२) दान ।

उत्सर्जनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुदा की द्वितीय वली । भा० ।

उत्सर्पण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊपर चढ़ना । चढ़ाव । (२) उल्लंघन, लाँघना ।

उत्सर्पित–वि० [सं० त्रि०] (१) निस्यन्दित । सरका हुआ । (२) ऊर्ध्व गमनशील । चढ़ा हुआ ।

उत्सर्य्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऋतुमती अथवा गर्भ योग्य अवस्थावाली गवी । गाभिन होने के योग्य गाय ।

उत्सव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आरम्भ। आगाज़। शुरू। ऋक्। १। १००। ८। (२) आनन्द जनक व्यापार। जलसा। खुशीका काम। (३) उत्सेक। गर्मी। (४) इच्छाप्रसव। ख़ाहिश का उभार। (५) कोप। क्रोध।

उत्साद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यज्ञीय पशुका छेदन प्रदेश।

उत्सादक-वि० [सं० त्रि०] नष्ट करनेवाला।

उत्सादन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उद्वर्त्तन। भा० म० ४ भ० ने० रो० चि०; यथा—

"ताः प्रोक्षणोत्सादन लेपनादीन।
उत्सादनाद्भवेत् स्त्रीणां विशेषाकान्तिमद्वपुः॥"
सु० चि० २४ अ०।

(२) उत्सव। रत्ना० अने०। (३) समुल्लेखन। मे० चतुष्कं। (४) निम्न व्रण का उन्नतीकरण। नीचे ज़ख़्म को उभारने का काम। सु० चि० १ अ०। (५) तैलाभ्यंग द्वारा शुद्धीकरण। तेल लगाकर सफाई करने का काम।

उत्सादनीय-वि० [सं० त्रि०] (१) व्रणौषध। ज़ख़्म पर लगाने की दवा। (२) नष्ट किया जानेवाला।

उत्सादित-वि० [सं० त्रि०] (१) निर्म्मलीकृत। साफ किया हुआ। (२) उन्मूलित। उखाड़ा हुआ। (३) उद्वर्तित। उपर को उठाया हुआ।

उत्सारक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) द्वारपाल। दरवान (२) प्रहरी। चौकीदार।

वि० [सं० त्रि०] अपसारक। हटानेवाला।

उत्सारण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दूरीकरण। हटा देने का कार्य। (२) अतिथि-स्वागत।

उत्सारित-वि० [सं० त्रि०] (१) दूरीकृत। हटाया हुआ। (२) चलित। सरकाया हुआ।

उत्साह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उत्साहित, उत्साही] चित्त की प्रसन्नता। उमंग। उछाह। जोश। हौसला।

उत्साहयुक्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरभ। हुमा। मद० व० १२।

उत्साही-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भक्त रोगी।

उत्सिक्त-वि० [सं० त्रि०] (१) वर्धित। बढ़ा हुआ। (२) ऊपर सींचा हुआ। नहाए हुए।

उत्सिच्यमान-वि० [सं० त्रि०] जल की झड़ी लगाने वाला। पानी छिड़कनेवाला।

उत्सिसृक्षु-वि० [सं० त्रि०] उत्पन्न करने का अभिलाषी।

उत्सिंहन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नाक से ऊपर साँस खींचना। सुनकना। वा० सू०।

उत्सुक-वि० [सं० त्रि०] (१) उत्कंठित। अत्यंत इच्छुक। चाह से आकुल। व्यग्र। (२) चाही हुई वस्तु में देर न सहकर उसके उद्योग में तत्पर।

उत्सूर- संज्ञा पुं० [सं० पुं०]सायंकाल। संध्या। दिनावसान। हे० च०।

उत्सृष्ट-वि० [सं० त्रि०] त्यक्त। त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ। अम०।

उत्सृष्टपशु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृषोत्सर्ग। त्यक्त वृषभ। छोड़ा हुआ साँड़। यह मरने के पीछे छोड़ा जाता है।

उत्सृष्ट वृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] त्यक्त वस्तु द्वारा निर्वाह।

उत्सृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] त्याग। तर्क।

उत्सृजन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]त्याग। तर्क। (२) समर्पण। सौंप देने का कार्य।

उत्सूत्र-वि० [सं० त्रि०] सूत्र से पृथक्। धागे से अलग। जो लड़ी में न हो।

उत्सृष्टुकाम-वि० [सं० त्रि०] त्याग करने का अभिलाषी। जो छोड़ना चाहता हो।

उत्सेक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
उत्सेचन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } ऊर्ध्व सेक।

उत्सेध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उन्नत। बढ़ती। (२) देह। शरीर। (३) ऊँचाई। (४) शोथ।

वि० [सं० त्रि०] (१) ऊँचा। (२) श्रेष्ठ।

उत्सेधाङ्गुल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक परिमाण। यह ८ यव के बराबर होता है।

उत्स्थ-वि० [सं० त्रि०] कूप वा निर्झर से आने वाला।

उत्स्मय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मंद हास्य । मुसकुराहट । वै० निघ० ।

उत्क्षिप्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धतूरे का फल । धुस्तूर फल । (Datura fruit) श० च० ।

उत्क्षिप्त कम्पन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भूमि कम्प विशेष । एक प्रकार का भू-डोल । इसके होने से पृथ्वी उछल पड़ती है ।

उत्क्षिप्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०](१)आतंक विशेष । हे० च०। (२) कर्णालङ्कार । कानका एक गहना । यह अर्ध चन्द्राकार होता और कर्ण के उपरि भाग में पहना जाता है ।

उत्क्षेप–संज्ञा पुं [सं क्ली] उक्त नाम के दो मर्म स्थान जो केशांत में कनपटी से ऊपर हैं । वा० शा४ अ० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०](१)ऊर्ध्वक्षेपण । उछाल । (२) वमन कार्य । उलटी । छाँट ।

उत्क्षेपण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पंखा । (२) मूसल, मुँगरी वा पिसना इत्यादि जिससे अन्न पीसा जाता है । हे० च० । (३) सूप । (४) १६ पण की एक माप । (५) ऊपर की ओर फेंकना । (६) वमन कार्य । उलटी । छाँट ।

उत्क्षेपणी नाली–संज्ञा स्त्री०[सं० स्त्री० एक यंत्र । यह दोबार मोड़ी हुई एक नाली है जो ऐसे बड़े पात्रों से जिनका उलटना कठिन वा अनुचित हो, तरल पदार्थ निकालने में काम आती है । पनचोर । Siphon

उत्क्षेप मर्म्म–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार के मर्म-स्थान जो शंख (कनपुटियों) के ऊपर बालों की सीमा में होते हैं । यह दो होते हैं । इनमें शल्य (तीर आदि) लगने पर जब तक शल्य घुसा हुआ रहता है अथवा स्वयं पककर वह आप ही गिर जाता है, तब तक मनुष्य जीवित रहता रहता है; परंतु ज्योंही उसे खींचकर निकाला जाता है, त्योंही उसकी मृत्यु हो जाती है । सु० शा० ६ अ० ।

उथल, उथला–वि० [सं० त्रि०]अगंभीर । जो गहरा न हो ।

उद् (क)–संज्ञा पुं०[सं०क्ली०] (१)Water जल । पानी । श० र० । रा० नि० व० १४ । नोट — समस्त पदों के आदि में कभी-कभी उदक के स्थान में उद् होजाता है । जैसे—उत्कुम्भ । (२) क्षीर । दूध । (३) बालक । नेत्रबाला ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करिशृङ्खला । हाथियों की कतार । हला० ।

उदक कुम्भ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलघट । पानी का घड़ा ।

उदक कृच्छ्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] व्रत विशेष । इसमें एक मास पर्यंत केवल यव का सत्तू खाते और जल पीते हैं ।

उदक क्रीड़न–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जलविहार । जलक्रीड़ा । पानी का खेल ।

उदक गा –संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल प्रवेश ।

उदक गिरि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल प्रवाह युक्त पर्वत । नदी नाले से भरा हुआ पहाड़ ।

उदक दान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जलादि द्वारा तर्पण ।

उदकधर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बादल । जलधर ।

उदक परीक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जलकी परीक्षा ।

उदक प्रतीकाश–वि० [सं० त्रि०] जलप्रभ । पानी जैसा ।

उदक प्रमेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उदकमेह"।

उदक प्रक्षेपण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]जल के शीतीकरण के उपाय । पानी ठंढा करने की तदबीर ।

उदक भार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल का युग । पानी ले जाने की कड़ी ।

उदक भूमि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आर्द्रस्थली । तर ज़मीन । गीली भूमि ।

उदक मञ्चिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जल के प्रसाधनार्थ एक आधार । पानी रखने की तिपाई ।

उदकमञ्जरीरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) निराम ज्वर में प्रयुक्त एक रस । पके बुख़ारकी एक दवा । शुद्ध सीसा, शु० बंग और शु० पारा समानभाग लेकर इनके द्विगुण ताम्र पत्र लेकर इस पत्र पर सीसा आदि नीबू के रस में घोटकर लेप चढ़ादें । इसी तरह पुनः ताँबे से द्विगुण गंधक नीबू के रस में घोटकर उस पर लेप

चढ़ाए हुए ताँबे पर चढ़ा दें। फिर ताँबे से ८ गुना गंधक और उतना ही तूतिया पीसकर एक अच्छी हाड़ी लेकर उस चूर्ण से आधा नीचे रखकर ऊपर वह लेप किया हुआ ताम्र पत्र रखकर पुन: ऊपर से गंधक और तूतिया का आधा बचा हुआ चूर्ण भर दें और एक सकोरा उलटा रखकर अच्छी तरह मिट्टी से बंद करदें और ऊपर से राख भरदें। फिर हाँड़ी के मुख पर एक और सकोरा रखकर अच्छी तरह संपुट करके बाहर से कपड़मिट्टी करदें। फिर इसे चूल्हे पर चढ़ाकर ३ पहर तक तीव्र अग्नि दें। जब ताम्रभस्म होजाय तब यह भस्म १ भा०, पारद भस्म १ भा०, बच्छनाग २ भा०, लेकर इसमें कालीमिर्च के क्वाथ की ७ भावना दें। इसी तरह इसमें पीपल, सोंठ, अदरख के रस, चित्रक के रस, भैंसे के पित्त, शूकर के पित्त, मुर्गी के पित्त, कबूतर, मोर इनके पित्तों की पृथक् पृथक् ७ भावना देकर मर्दन करें। फिर उपर्युक्त विधि से पकाकर और अदरख के रस में घोटकर १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इसे अदरख के रसके अनुपानसे देनेसे हर प्रकारके दारुण सन्निपात नष्ट होते हैं। गर्मी होने पर शीतोपचार करें।

(२)शुद्ध पारद, शु०गंधक समानभाग—दोनों के बराबर कालीमिर्च लें। सबको खरल में रोहू मछली के पित्त से तीन दिन बराबर घोटें। पुनः इसमें सबके समानभाग भुना सुहागा मिलावें। मात्रा—३ रत्ती। गुण—अदरख के रस के साथ सेवन करने से नवीन ज्वर दूर होता है। इससे मलेरिया ज्वर में भी लाभ होता है। बृहत्रस राज़ सु०।

नोट—भैषज्य रत्नावली में "शर्करा" का अधिक पाठ है और मिर्च समानभाग है। मात्रा २ रत्ती की है।

उदक मण्डल-संज्ञा पुं० दे० "उदककुम्भ"।

उदक मन्थ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छिलका रहित अनाज वा धान्य।

उदक मेह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कफज प्रमेह रोग का एक भेद। इस रोग में पेशाब पानी के समान बहुत होता है और वह चिकना, सफ़ेद रंग का, गाढ़ा, गंधरहित, स्वच्छ और ठंडा होता है। मा० नि०। उदक प्रमेह। मूत्रातिसार। मूत्राधिक्य। बहुमूत्र। ज़ियाबेतुस काज़िब, ज़्याबेतुस बारिद, कस्रतुल् बौल (अ०)। Diabetes insipidus, Polyuria. (अं०)।

चिकित्सा

(१)इसमें २ तोले नीमकी अंतर छालका यथा विधि काढ़ाकर, शीतल होने पर १ तोला शहद मिलाकर पीने से लाभ होता है। यदि गरमी जान पड़े, तो इसका हिम प्रस्तुत कर सवेरे-शाम सेवन करें। इसे कम-से-कम ४० दिन ज़रूर पीना चाहिये।

(२) धाय के फूल, अर्जुन वृक्ष की छाल, ताल वृक्षकी छाल और सफ़ेद चंदन-इन चारों को दो तोले लेकर, ऊपर की विधि से काढ़ा बनाकर और शहद मिलाकर पीने से उदक-प्रमेह नष्ट होता है। अगर इससे गरमी मालूम हो, तो काढ़ा न बनाकर, हिम तैयारकर सेवन करें।

(३) पारिजात के काढ़े में शहद मिलाकर पीने ने से उदक-प्रमेह नाश हो जाता है।

(४) हरड़, कायफल, नागरमोथा और लोध के काढ़े में शहद मिलाकर पीने से उदक-प्रमेह नाश हो जाता है। (चि० चं० ४ भ०)

उदक मेहिन्-वि० [सं० त्रि०] उदक मेहवाला रोगी। उदकमेही।

उदकवत्-वि० [सं० त्रि०] जल से युक्त। पानी से भरा हुआ

उदकवह स्रोत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जलवाहिनी नाड़ी।

सुश्रुत के अनुसार जलवाही स्रोत दो हैं, जिनका मूल तालु तथा क्लोम है। यहाँ बिंध जाने से प्यास का ज़ोर होता और तत्काल मृत्यु होती है। सु० शा० ६ अ०।

उदकवहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुश्रुत के अनुसार अधोगामी धमनियों में से एक प्रकार की वे दो धमनियाँ जो जल का वहन करती हैं। सु० शा० ६ अ०।

उदकवाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदकवहा।

उदकविन्दु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल का बूँद।

उदक वीवध-संज्ञा पुं० दे० "उदकभार"।

उदक शाक संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जलशाक। पानी में उत्पन्न होनेवाली सब्ज़ी।

उदक शान्ति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जलद्वारा ज्वर का निवारण। इसमें विनियोजित जल रोगी के ऊपर छिड़कते हैं।

उदकषट्पल (घृत)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अर्श रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का घृतयोग—जवाखार, पीपलामूल, चव्य और चित्रक, १-१ पल—इनका कल्क बनाकर पुनः इसमें तिल तैल ४ श०, गोदुग्ध १२ श० और घृत ४ सेर मिलाकर यथा-विधि घृत सिद्ध करें।

गुण—इसके उपयोग से ज्वर, प्लीहा, अर्श, और कास रोग का नाश होता है।

मात्रा—१-२ तो०।

उदक सक्तु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आर्द्रीकृतपिष्ट शालि। पानीसे तर किया हुआ सत्तू।

उदक स्पर्श-वि० [सं० त्रि०] जलस्पर्श। जल से शरीर के विभिन्न अङ्ग का स्पर्श।

उदकहार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलवाहक। पानी ले जानेवाला।

उदकान्त-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जल का तट। पानी का किनारा।

उदकार्थिन्-वि० [सं० त्रि०] तृषित। प्यासा।

उदकार्बन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऐन्द्रियक रसायन-शास्त्र के अनुसार एक ऐन्द्रियक द्रव्य जो उदजन और कार्बन के योग से तैयार होता है। उदकार्बन वाष्पीय, तरल तथा ठोस तीनों अवस्थाओंमें पाए जाते हैं। Hydrocarbon.

उदकाश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Hydrogen) उदजन।

उदकिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Sida Cordifolia, *Linn.*) बला। बरियरा। खिरेंटी। रा० नि० व० ४।

उदकी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Cissampelos hexandra,) पाठा। पाढ़। वै० निघ० प्रह० चि० २ अतिविषादि।

उदकीर्ण(र्य्य)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Pongamia glabra, *Vent.*) महाकरंज। डहर करंज (बं०)। रा० नि० व० ६। र० मा०। भा० पू० १ भ० गु० व०।

उदकीर्य्या(र्य)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०, (Cæsalpinia Bonducella, *Flemiug.*) पूति करंज। काँटा करंज। सागर गोला। नाटाकरँज (बं०)। वा० टी० हेमा०। वा० सू० १५ अ० अर्कादि। "प्रत्यक्पुष्पी पीत तैलोदकीर्य्या"। च० सू० २ अ० वमन. फलिनीव० १ अ०। सु० सू० ३६ अ० कफशमन।

उदकुम्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उदककुम्भ"

उदकेचर-संज्ञा पुं० [सं०] जलचर। पानी का जन्तु।

उदकेविशीर्ण-वि० [सं० त्रि०] जल में शुष्कीभूत। जल में सूखा हुआ।

उदकोदञ्जन-दे० "उदककुम्भ"।

उदकोदर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जलोदर नामक रोग। दे० "दकोदर"।

उदकौदन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पानी में उबाला हुआ चावल।

उदक्-अव्यय [सं०] (१)उत्तर दिक्। शुमालकी तर्फ़। (२) उपरि। ऊपर। (३) अन्ततः। आख़िरश।

वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्वगमनशील। ऊपर को घूमा हुआ। (२) उपरिस्थ। ऊपरवाला। (३) उत्तरस्थ। शुमाली। (४) अन्त्य। आख़िरी।

उदक्त-वि० [सं० त्रि०] (१) कूप से उत्तोलित। कूएँ से निकाला हुआ।

उदक्य-वि० [सं० त्रि०] (१) जलवाला। जल में होनेवाला। (२) जल में धोया जानेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पानी में होनेवाला अन्न; जैसे-धान।

उदक्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रजस्वला। ऋतुमती स्त्री। (Menstruating female)

उदगद्रि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्तरीय पर्वत। (२) हिमालय।

उदगन्धिद-संज्ञा पुं० [सं०] (Hydrogen Sulphide) एक प्रकारकी दुर्गंधि युक्त गैस जो लोह गन्धिद के चूर्ण वा छोटे से खंड को परीक्षा नलिका में डालकर उस पर जल मिश्रित गंधकाम्ल डालने से प्राप्त होती है । अपानवायु और गंदी नालियों में प्रायः यही गैस होती है ।

उदगयन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्तरायण । सूर्य के दक्षिण से उत्तर की ओर झुकने का समय । अम० ।

उदगरना-क्रि० [सं० उद्गरण] (१) भीतर से बाहर निकलना । (२) प्रकाश पाना । खुल जाना । (३) उत्तेजित होना ।

उदग्ग-संज्ञा पुं० [सं० उदग्र] (१) वृद्ध । बुड्ढा । (२) उच्च । ऊँचा । (३) दीर्घ । बड़ा । (४) विशाल । आलीशान । (५) महत् । अज़ीम । (६) उद्धत । अक्खड़ ।

उदग्दश-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्तराग्रवस्त्र । वह कपड़ा जिसका किनारा उत्तर को ओर झुका रहे ।

उदग्भूम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह पृथ्वी जहाँ जल की अधिकता हो । उत्कृष्ट भूमि । तरी ।

उदग्र-वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० उदग्रा] (१) ऊँचा । उन्नत । (२) बढ़ा । परिवर्द्धित । (३) प्रचंड । उद्धत ।

उदग्रदन्-वि० [सं० त्रि०] वह हथिनी जिसके दाँत बहुत बड़े हों । है० च० ।

वि० ऊँचे दाँतों वाला ।

उदग्राभ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उदकग्राही मेघ । पानी रखनेवाला बादल । ऋक् ६ । ६७ । १५ ।

उदघटना-क्रि० [सं० उद्घाटन] खुलना । निकलना ।

उदघाटना-क्रि० [सं० उद्घाटन] खोल देना ।

उदङ्क-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुप्पा । घी-तेल इत्यादि रखने को चमड़े का पात्र । (२) सन्दंश । चिमटा । सँड़सी । (३) एक ऋषि ।

उदङ्का-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तैल पिपीलिका । कपिजङ्घिका । तेलचटा । रा० नि० १६ व० ।

उदङ्मुख-वि० [सं० त्रि०] उत्तर मुख । जिसका मुख उत्तर की ओर हो ।

उदङ्मृत्तिक-दे० "उदग्भूम" ।

उदचमस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल स्थापन योग्य चमसाकार एक पात्र ।

उदज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जलजात । पानी से उत्पन्न । पानी से पैदा । (२) पशु प्रेरण । मवेशियों की हँकाई ।

उदजन-संज्ञा पुं० [सं०] (Hydrogen) आधुनिक रसायन-शास्त्र में एक अदृश्य, नीरस, गंध रहित, अत्यंत लघु और ज्वलनशील वायवीय अधातु तत्त्व जो जल में अत्यंत अल्प विलेय होता है और वायुमें किंचित् नीली ज्वालासे जलता है । यह ज्वलनपोषक नहीं होता । यह उदक अर्थात् जल से उत्पन्न होता है वा जल का एक अंग है । अस्तु उदजन की प्रचलित संज्ञा जल से उत्पत्ति के कारण ही पड़ गई है । जल में $\frac{१}{९}$ भाग उदजन गैस होता है । इसके सिवा मट्टी के तेल, सर्षपादि वानस्पतिक तैलों, वसा, घृत, अम्ल, काष्ठादि अनेक द्रव्यों में यह संयोग रूप से वर्तमान होता है । इसका संकेत उ, परमाणु तौल १ और क्वथनांक २३८° शतांश है ।

उदजन पर्यम्लजिद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Hydrogen Peroxide) दे० "हाइड्रोजन परऑक्साइड" ।

उदञ्च-वि० [सं० त्रि०] (१) उपरिगमनकारी । ऊपर को घूमा हुआ । (२) उपरिस्थ । ऊपर वाला । (३) उत्तर की ओर घूमा हुआ । (४) पश्चात् । पिछला ।

उदञ्चन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ढाँकने का पात्र । ढक्कन । पिधान । हला० । (२) ऊर्ध्वक्षेपण । ऊपर को फेँकने का भाव वा क्रिया । (३) उत्क्षेपक । ऊपर को फेंकनेवाला । (४) घटीयंत्र ।

उदञ्चित-वि० [सं० त्रि०] (१) उत्क्षिप्त । फेँका हुआ । (२) ऊर्ध्व गत । चढ़ा हुआ ।

उदञ्जलि-वि० [सं० त्रि०] हथेलियों को गहरा कर हाथ उठानेवाला ।

उदण्डपाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली । डानकोणा माछ (बं०) । मे० जपञ्जक ।

उदथ-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । आफ़ताब ।

उददान-वि० [सं० त्रि०] पानी से भरा हुआ ।

उदद्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तैल पिपीलिका। तिलचट्टा। तेलचटा। लाल पिपड़े (बं०)। रा० नि० व० १६।

उदधि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) A sea सागर। समुद्र। रत्ना० (२) घड़ा। (३) मेघ।

उदधि-कफ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्रफेन। Cuttle-fish bone (Sepia officinalis) च० द०।

उदधिफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] समुद्रफेन। (Cuttle-fish bone) वै० निघ०।

उदधिफेन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्रफेन। (Os sepie) च० द०। रस० र० बाल-चि०।

उदधिमल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्रफेन। (Cephalopoda) Cuttle-fish bone राज०।

उदधि लवण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] समुद्र से निकला हुआ नमक। सामुद्र-लवण। समंदर नोन। (Sea-salt.) भा०।

उदधिवस्त्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पृथ्वी। अवनी।

उदधिशुक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुक्तास्फोट। समुद्री मोती की सीप। समुद्रेर झिनुक (बं०)।

उदधिसम्भव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सामुद्रलवण। समुद्र से उत्पन्न नमक। पाङा लवण (बं०)। (Sea Salt.) भा० पू० १ भ०।

उदधिसुत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वह पदार्थ जो समुद्र से उत्पन्न हो वा समझा जाता हो। (२) शंख। (३) कमल।

उदधिसुता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) समुद्र से उत्पन्न वस्तु। (२) सीप। A shell.

उदधीय–वि० [सं० त्रि०] समुद्र सम्बन्धी।

उदनिमत–त्रि० [सं० त्रि०] तरङ्गमय। जिसमें लहरें उठें।

उदन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उदक। पानी। जल।

उदन्त–वि० [सं० अ+दन्त] जिसके दाँत न जमे हों। बिना दाँत का। अदंत।

नोट—इसका व्यवहार पशुओं के लिए होता है।

उदन्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तृप्ति। आसूदगी। हारा०।

उदन्य–वि० [सं० त्रि०] जलमय। पानी से भरा हुआ।

उदन्यज–त्रि० [सं० त्रि०] जल में उत्पन्न होनेवाला।

उदन्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Thirst) पिपासा। प्यास। तृष्णा। रा० नि० व० २०।

उदन्यु–वि० [सं० त्रि०] जलेच्छु। पिपासु। जल चाहनेवाला। ऋक्। ६। ८६। २७।

उदन्वान–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पानी। जल। (२) समुद्र। सिन्धु।

वि० [सं० त्रि०] जलयुक्त।

उदप–वि० [सं० त्रि०] (१) पानी को पार करनेवाला। (२) जल से शुद्धि करनेवाला।

उदपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का कुधान्य। सु० सू० ३८ अ०।

उदपान–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) कूप। कुआँ। अम०। (२) कूएँ के समीप का गड्ढा। कूल। खाता। चुबचा। (३) तालाब के आस पास की भूमि या टीला।

उदपान मण्डूक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूवें का मेंढक।

उदपात्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोटा। जलपात्र।

उदपेष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ख़मीर। लेई। गारा। अव्य० जल में पीसकर।

उदप्लोरिकाम्ल–संज्ञा पुं० (Hydrofluoric Acid) फ्लोरीन गैस के उदजन के साथ मिलने पर इस अम्ल की प्राप्ति होती है। यह तेजाब अन्य सभी तेजाबों से अधिक तीव्र होता है। इसे काँच-पात्रों में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि यह उन्हें खा जाता है। वि० दे० "फ्लोरीन"।

उदब्रोमिकाम्ल–संज्ञा पुं० (Hydrobromic Acid) एक प्रकार का तेजाब जो ब्रोमीन और उदजन के योग से बनता है। इसमें अनेक धातुएँ गल सकती हैं। विशेष दे० "ब्रोमीन"।

उदभव–संज्ञा पुं० [सं० उद्भव] उत्पत्ति।

उदभार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेघ। बादल।

उदमदना–क्रि० [सं० उन्मदन] उन्मत्त होना। पागल होना।

उदमन्थ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उदक प्रधान मन्थ। च० सू० ६ अ०। (२) जल में साना हुआ वह सत्तू जिसमें घी मिला हो। यह गरमी में सेवनीय है। भा०। प० सु०।

उदमाद-संज्ञा पुं० [सं० उन्माद] दे० "उन्माद"।

उदमादी-वि० [सं० उन्मादी] उन्मत्त। मतवाला।

उदमान–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] (१) पानी का एक माप जो एक आढ़क (४ सेर) के बराबर होता है। (२) उन्मत्त। पागल।

उदमानना–क्रि० [सं० उन्मदन] उन्मत्त होना। पागल होना।

उदमेघ–संज्ञा पुं० [सं०पुं०] (१) जल युक्त मेघ। पानी से भरा बादल। (२) जलवृष्टि।

उदम्बर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कृमि जो शरीर से उत्पन्न होता है। शार्ङ्ग ७ अ०। दे० "कृमि"।

संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] (Cuprum) copper ताम्र। ताँबा। अ० टी०।

उदय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उदित] (१) उत्पत्ति। (२) ऊपर आना। निकलना। प्रगट होना। (३) निकलने का स्थान। उद्गम। (४) प्रसूतिशास्त्र में भ्रूण का वह भाग जो प्रसव के समय गर्भाशय के वहिर्मुख में पहिले पहिल अड़ता है अर्थात् जिस भाग के बल बच्चा जन्म लेता है। शिर अड़ता है, तो यह कहा जाता है कि शिरोदय है। इसी प्रकार मुखोदय, शीर्षोदय, भ्रू उदय या ललाटोदय, स्फिक् उदय और पार्श्वोदय वा पादोदय आदि होते हैं। इनमें शीर्षोदय सबसे अच्छा होता है; शेष सभी प्रकार के उदय कष्टदायक होते हैं। Appearance, Presentation.

उदय चन्द्ररस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वर्क चाँदी १२ मासे, शुद्ध पारा १२ मा० दोनों को ३ दिन तक खरल करके पिष्ठी बना लें। फिर इस पिष्टी को एक मोटे मालिनी कन्द (अग्निशिषा) में गड्ढा करके उसमें रखकर ऊपर से चन्दन और पताल गरुड़ी दोनों का कल्क बनाकर ऊपर नीचे रखकर बीच में पिष्ठी रखकर अच्छी तरह डाट लगा दें। पुनः ऊपर चन्दन पीसकर कपड़े में भिगोकर लेप चढ़ा दें। ऊपर से दो तीन या पाँच कपड़मिट्टी करके पृथ्वी पर जंगली कंडा में जो तादाद में ४–४ हों, फूँक दें। इसी तरह २१ पुट दें। पुनः विष्णुक्रान्ता, लोनिया, मकोय, पुनर्नवा, भाँगरा, प्रसारिणी और धतूरा इनके गीले पत्ते लेकर आकाशबेल के रस में पीसकर चन्दन की लेप दी हुई गोली को एक शराव या कुल्हड़ी में रखकर बाक़ी शराव जो खाली हो उसी पत्र कल्क से भर दें। ऊपर से एक शराव जिसके मध्य में छिद्र किया हो औंधा रख दें और ऊपर से कपड़मिट्टी करके कुक्कुट पुट में फूँक दें। इसी क्रम से नवीन-नवीन शराव में रखकर ४३ पुट दें। इसी तरह बार-बार नवीन चन्दन का लेप चढ़े हुए गोले को यथाविधि पुट दें। शीतल हो जाने पर इसमें शुद्ध स्वर्णमाक्षिक ६ मा०, शुद्ध गंधक ६ मा०, इन दोनों को मधु के साथ आधे पहर तक पीसकर इसके भीतर उक्त गोली रखकर उसके अर्द्ध भाग तक नीचे कपड़मिट्टी देकर पुनः कुक्कुट पुट में फूँक दें। इस तरह करने से पारद का रजत के साथ भस्म हो जायगा। पुनः इसे काँच के प्याले में रखकर त्रिकुटा के क्वाथ से २१ भावना दें। इसी तरह त्रिफला और अदरख के रस की २१–२१ भावना दें। इस नियम से ६३ भावना के पश्चात् इसे उत्तम शीशी में रख लें। मात्रा–१ से ६ रत्ती।

गुण—इसे दूध के साथ सेवन करने से कफ-पित्त, वात-पित्त और बलक्षय का नाश होता है। एक मास के उपयोग से ये समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

पथ्य—तेल, खट्टा और क्षारीय पदार्थों को त्याग कर मधुर भोजन का सेवन करें।

उदयभास्कर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गन्धकसे मृत किया हुआ ताम्बा (ताम्र) १० भा०, कालीमिर्च ५ भा०, मीठा तेलिया २ भा० बारीक चूर्ण कर रक्खें। उचित मात्रा और उचित अनुपान द्वारा सेवन करने से गलित, स्फुटित, विपुल मण्डल विचर्चिका, दद्रु पामा और हर प्रकार का कुष्ट रोग दूर होता है। भैष० र० कुष्ट चि०।

(२) धान्याभ्रक, पारा, गंधक इनको श्वेत अपामार्ग के रस में एक दिन खरल कर फिर पातन यंत्र में पचावें। ऊपर के यंत्र में लगी हुई भस्म को निकाल लें। इसके सेवन से पाँच प्रकार के श्वास दूर होते हैं।

मात्रा—२ रत्ती। इसके ऊपर ४ मासे कुटकी का चूर्ण शहत के साथ चाटना उचित है। बृहत् रस रा० सु० श्वास चि०।

उदय भास्कर कपूर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वनामाख्यात कपूर। यह पक्क और सदल एवं निर्दल भेद से दो प्रकार का होता है। पहिचान—पीत, स्वच्छ, कठिन, समुदित, दस्तावर, अग्निदीपक, लघु, कटु, श्रीवर्द्धक एवं पित्त कारक है, कफ, कृमि तथा वात नाशक है। यह नासा और कर्ण रोग नाशक है। इससे गलग्रह, लालास्राव और जिह्वा की जडता दूर होती है। वैद्यक निघण्टु।

उदयभास्कर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१)त्रिकुटा, पाँचों नमक, सुहागा, सज्जी प्रत्येक समान भाग। सबके बराबर शुद्ध जमालगोटा—इनमें दात्यूणी के रस की ३ पुट देकर इसी तरह बिजौरे के रस की ३ पुट दें। अच्छी तरह खरल कर छाया में सुखा ले। मात्रा—$\frac{1}{2}$ रत्ती। गुण—इसके सेवन से उदररोग, प्लीहा, गुल्म, शूल, आनाह और अर्श रोग का नाश होता है तथा इसका अंजन सर्प विषको नष्ट करता है। रसरत्न प्रदीप। अमृ० सा०।

(२) गंधक से मारा हुआ ताँबा १० भाग, मिर्च ५ भाग, वच्छनाग २ भाग इन्हें खरल करके १ रत्ती की मात्रा में वकुची के अनुपान से देने से गलित, स्फुटित, मण्डल कुष्ट, विचर्चिका, पामा, दद्रु और हैजे का नाश होता है। भै०र०। रस० यो० सा०।

उदय मार्तण्ड महा कषाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का आयुर्वेदीय क्वाथ।

उदय मार्तण्ड रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसौषध। योग—(१) शु० पारद, शु० गंधक वच्छनाग, यवक्षार, ताम्रभस्म, त्रिकुटा, त्रिफला, जीरा, चित्रक इन्हें समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करें। पुनः भाँगरे के रस में खरल कर १—१ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसे मिर्च के साथ खाने से गुल्म, क्षय, पांडु, हर प्रकार के ज्वर और शीत ज्वर का नाश होता है। कफ जनित हर प्रकार के रोग और अम्लपित्त तथा उचित अनुपान से यह अन्य रोगों को भी नष्ट करता है।

(२) ताम्र शुद्ध १ पल लेकर बारीक पत्र बना लें और उसके बराबर शुद्ध गंधक मिलाकर जंभीरी के रस में एक दिन मर्दन करके खूब तेज़ घाम में रक्खें, जब ताम्रपत्र गल जाय तब उसमें १ तो० शुद्ध पारद मिलाकर मर्दन करें। सूख जाने पर कज्जली प्रस्तुत हो जायगी। मात्रा—१ से २ रत्ती।

गुण—इसके उपयोग से उदररोग, शोथ, और भगंदर यथा अनुपान शीघ्र नष्ट होते हैं। रस० यो० सा०।

उदया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तैल पिपीलिका। उदङ्का। तिलचटा। तेल-चटा।

उदयादित्य रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त एक योग—शुद्ध पारा १ भा०, शुद्धगंधक २ भा०, दोनों की कज्जलीकर घिकुवार के रस में एक दिन मर्द्दनकरें। पुनः इसका गोला बनाकर उस गोले को पारे से द्विगुण ताँबा लेकर एक डिबिया बनाएँ और उस डिबियामें रखकर अच्छी तरह बन्द करें। फिर वज्र मुद्रा करके एक मिट्टी के बरतन में उस डिबिया को रख राख से बन्द करदें। पुनः चूल्हे पर चढ़ाकर एक ताँबे के ढक्कन से उसे अच्छी तरह ढाँकदें और चूल्हे पर रख नीचे दो प्रहर तक आँचदें। आँच देते समय पानी में गोबर घोलकर उस ढकने पर धीरे-धीरे छिड़कते जाएँ। इस प्रकार अन्त में तीव्र आँच देकर शीतलकर उतारें।

गोले को निकालकर चूर्ण करें और इसमें कठूमर, चित्रक, त्रिफला, अमलतासपत्र, विडंग व वकुची के क्वाथ की भावना दें। एक दिन घोटने के बाद यह रस तैयार हो जाता है।

मात्रा—एक से दो रत्ती तक।

गुण—इसके सेवन से विचर्चिका, दाद और श्वेतकुष्ठ का नाश होता है।

अनुपान—खदिरसार क्वाथ वा गौ का दूध वा त्रिफला के क्वाथ में ३ शाण वकुचीचूर्ण और २ गुञ्जा प्रमाण रसयुक्त खाने से तीन दिन के अन्त में स्फोट कुष्ठ और ७ दिन में श्वेतकुष्ठ का नाश होता है। शाङ्ग॰ सं॰।

उदयार्कमूर्तिरस-संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] एक प्रकार का रसौषध। योग—तज, पत्रज, इलायची, कूट, पारा भस्म, कृष्णाभ्रभस्म, ताम्रभस्म और भूनी हींग इन्हें समानभाग लेकर इसमें सरडालू और धत्तूरके रसको दो भावना दें। फिर दो दिन अच्छी तरह मर्दन करके दो रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—सोंठ और घी से अथवा घी और मिर्च से अथवा वातघ्न तैल से अथवा सोंचर नमक और हींगसे अथवा गरम जलसे इसे उपयोग करनेसे वातजन्य शूल नष्ट होते हैं। तत्कालिक शूल को नष्ट करने के लिए अथवा विबंध में पुरातन गुड़ के साथ दें। अत्यन्त बढ़े हुए वात में रेवतचीनी के साथ दें। मधु के साथ देने से हैज़ा नष्ट होता है। जिसका सर्वांग वायु से जकड़ गया हो वह इसे शहद के साथ चाटकर ऊपर से सेहुँड़ और आक के दूध में पकाया हुआ घृत पीकर ऊपर से मुलहठी का काढ़ा पीवे तो तत्काल लाभ होता है।

उदयार्करस-संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] एक प्रकार का रसौषध। योग—शुद्ध सिंगरफ, तूतिया, मैनशिल, हरताल, पारा, गंधक, कंकुष्ट समानभाग लेकर पुनः इसमें अपनी-अपनी विशुद्धियों से विशुद्ध दोषरहित वातघ्न वर्ग के क्वाथों की पृथक्-पृथक् कई भावना दें।

गुण—यह पृथक्-पृथक् उचित अनुपानों से वातशूलादि रोगों को नष्ट करता है।

उदर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] (१) धड़ का नीचे का वह भाग जिसमें सामने नाभि होती है और जिसके नीचे के भाग में पुरुषों के शिश्न और स्त्रियों के भग नामक अंग होते हैं। नाभि और स्तन के बीच का भाग। पेट। जठर। ऐब्डोमन Abdomen.-(अं॰)। बत्न, शिकम-(अ॰)।

पर्य्या॰—पिचिण्डः, कुक्षिः, कुक्षी, जठरः, तुन्दः, तुन्दं (अ)। रा॰ नि॰ व॰ १८।

नोट—सुश्रुत आदि प्राचीन वैद्यगण के मत से उदर एक अंग है, जिसमें पेशी, गुद, वस्ति एवं नाभि, मर्म, चौबीस शिरा, तीस धमनी, सात आशय (वाताशय, पित्ताशय, श्लेष्माशय, रक्ताशय, आमाशय और पक्वाशय) तथा स्त्री-देह का एक अतिरिक्त गर्भाशय नामक अंग तथा वलय नामक अस्थि और अंत्र का समावेश होता है।

पाश्चात्य चिकित्सकों के मतानुसार ऊपर वक्ष एवं उदरमध्यस्थपेशी (Diaphragm) और नीचे वस्तिकोटर का अस्थि समूह रहता है, जिसके बीच उदरगह्वर स्थित है। इस गह्वर में पक्वाशय, अन्त्र, प्लीहा, यकृत, वृक्क और अग्न्याशय (Pancreas) हैं।

(२) उदररोग। पेट का रोग। इसके पैदा होने से भीतर-भीतर ही पेट बढ़ता है। उदर में होनेवाले अनेक रोगों का उदररोगों में ही समावेश करते हैं। वैद्यकशास्त्र में उदररोग को केवल "उदर" भी लिखते हैं। कहा है—

"अर्थतो धर्मतः साम्यात्तत्समीपतयाऽपि च।
तत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा॥"

प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने जो उदररोगों के ८ भेद किए हैं और उनके लक्षणों का उल्लेख किया है, उससे किसी विशेष पीड़ा का परिचय नहीं मिलता। अपितु, वह अन्य नानाविध पीड़ाओं से ही सम्बन्ध रखता है।

ऐलोपैथी का असाइटिस (Ascites) अर्थात् जलोदर नाम भी ठीक नहीं उतरता। क्योंकि पेट में जल का संचय प्रायः कोई विशेष पीड़ा नहीं, अन्य नाना प्रकार के रोगों की चरम दशा का एक उत्कट उपसर्ग मात्र है।

चरकसंहिता के संग्रहकार कहते हैं—कोष्ठ-शुद्धि न होना ही सब प्रकार के उदररोगों का मुख्य कारण है। वे लिखते हैं—

"अग्निदोषान्मनुष्याणां रोगसंङ्घाः पृथग्विधाः।
मलवृद्ध्या प्रवर्त्तन्ते विशेषे चोदराणितु॥"
(चरक)

अर्थात् मनुष्य के अग्निदोष से पृथक्-पृथक्

नाना भाँति की पीड़ा उत्पन्न होती है । विशेषतः उसके कारण मल बढ़ने पर अनेक उदररोग पैदा होजाते हैं ।

और भी कहा है—

"रोगाः सर्वेऽपिमन्देऽग्नौ सुतरामुदराणिच ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥"

(मा० नि० । भा०)

अर्थात् प्राय: सब तरह के रोग मंदाग्नि से होते हैं । जिसमें भी उदररोग अर्थात् पेट के रोग तो मंदाग्नि से बहुत ही होते हैं । मंदाग्नि से, अजीर्णकारक पदार्थों के खाने-पीने से दोषों और मलों के बढ़ने या कोष्ठबद्धता, दस्त की कब्ज़ियत से उदररोग-पेट के रोग उत्पन्न होते हैं ।

किंतु यह मत स्वीकार करलेने पर, वर्तमान चिकित्सा-शास्त्र के साथ इसका सामंजस्य दिखलाना अत्यंत कठिन हो जाता है । उदर की प्रागुक्त परिभाषा को ध्यान में रखने पर, यह सहज में ही समझ में आसकता है, कि उसमें अनेक रोगों का समावेश हो सकता है । उदाहरणत: आमाशयांत्र जन्य रोग, जैसे—आमाशय विस्तार (Dilatation of the Stomach), आमाशय और अन्त्र के भीतर का उपपदार्थ (Foreign bodies in the stomach and intestines) आमाशय, अन्त्रावरक झिल्ली प्रभृतिका कर्कट रोग (Cancer of the Stomach, Peritoneum etc.), आमाशय अंत्र प्रभृति अंगका छिद्र (Perforation of the Stomach and intestines), अंत्रावरोध (Obstruction of the Bowels) इत्यादि; प्लीहाजन्य रोग, जैसे—प्लीहा की पुरातन विवृद्धि (Chronic enlargement of the Spleen, Ague cake, Leucocythoemia), प्लीहा का उग्र प्रदाह (Acute splenitis) इत्यादि; यकृतजन्य रोग, जैसे—यकृत्प्रदाह (Suppurative hepatitis), यकृत् का स्फोटक (Abscess of the Liver) इत्यादि, वृक्कजन्यरोग (Diseases of the Kidney), क्लोमग्रंथि के रोग, वस्ति के रोग, गर्भाशय के रोग प्रभृति उदर व्याधि से भिन्न नहीं ।

उदर रोगों की संख्या

आयुर्वेद के मत से उदर रोग आठ प्रकार का होता है—

यथा—

"पृथक् समस्तैरपि चेह दोषैः ।
प्लीहोदरं बद्धगुदं तथैव ॥
आगन्तुकं सप्तममष्टमं च ।
दकोदरं चेति वदंति तानि" ॥

(सुश्रुत)

"पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीह बद्ध क्षतोदकैः ।
संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक् शृणु॥"

(मा० नि० । भा०)

अर्थात्—(१) वातोदर, (२) पित्तोदर, (३) कफोदर, (४) सन्निपातोदर, (५) प्लीहोदर, (६) बद्धगुद या बद्धोदर, (७) आगंतुक (क्षतोदर या परिस्राव्युदर) और (८) दकोदर (जलोदर) ।

उदर रोगों के निदान-कारण

चरक में लिखा है—बहुत गरम, बहुत लवणयुक्त, क्षार, दाहजनक, उग्र एवं अत्यंत खट्टे पदार्थ खाने, वमन-विरेचनादि संशोधनोपरांत अनियमित आहार मिलने, रूक्ष, विरुद्ध तथा अविशुद्ध द्रव्य पेट में पहुँचाने, प्लीहा, अर्श, ग्रहणी प्रभृति व्याधि के अतिशय वृद्धि पर आने, वमनादि क्रिया के विभ्रम में जाने, किसी-किसी व्याधि का यथा समय प्रतीकार न करने, रूक्षता, वेग-रोध सम्पूर्ण स्रोतों की दोष-जनक क्रिया, आमदोष, संक्षोभ होने-अति भोजन पचाने, अर्श, वायु और मल का रोध दिखाने, अंत्र का स्फुटन और भेद, दोष-संचय की अधिकता, पाप कर्म और मंदाग्नि दोष हो जाने से उदर रोग उत्पन्न होता है ।

सुश्रुत में भी संक्षेप से ठीक ऐसे ही कारण कहे हैं—

"सुदुर्वलाग्नेरहिताशनस्य ।
संशुष्कपूत्यन्न निषेवणाद्वा ॥
स्नेहादि मिथ्या चरणाच्च जन्तो।
वृद्धिंगताः कोष्ठमभि च प्रपन्नाः ॥"

गुल्माकृति व्यञ्जित लक्षणानि ।
कुर्वन्ति घोराण्युदराणि दोषाः" ॥

(सुश्रुत)

अर्थात्—अत्यंत दुर्बल जठराग्निवाले मनुष्य के अहित भोजन करने या सूखा सड़ा-गला बासी अन्न सेवन करने अथवा अयोग्य रीति से स्नेहपान वमन, रेचनादि का व्यवहार करने से मनुष्य के कोष्ठाश्रितदोष बढ़कर गुल्म के आकार और प्रगट लक्षणवाले ऐसे घोर उदर रोग उत्पन्न करते हैं।

उदर रोग की सम्प्राप्ति

"सुश्रुत" में लिखा है—उपस्नेह की भाँति अर्थात् जैसे नए घड़े में से चिकनाई बाहर की तरफ झिरकर आती है, उसी भाँति कोष्ठ (आमाशय) से निकला हुआ दुष्ट अन्न का सार वायु द्वारा प्रेरित, बाहर की त्वचा का नम्न करके, धीरे-धीरे सब ओर से बढ़कर, उदररोग उत्पन्न करता है।

"माधवकार" तथा "भावमिश्र" लिखते हैं—संचित हुए दोष—पसीना और जल के बहानेवाली नाड़ियों को रोककर तथा जठराग्नि, प्राणवायु और अपानवायु बिगाड़कर, उदररोग—पेट के रोग पैदा करते हैं।

उदर रोगों के सामान्य लक्षण

"चरक" में लिखा है—कुक्षि में आध्मान वा आटोप होना, हाथ-पैर सूज आना, अग्निमांद्य, श्लक्ष्णगण्डत्व और कृशता—ये उदररोग के सामान्य लक्षण हैं।

शोथ को सकल प्रकार उदररोग का सामान्य लक्षण मानने पर पित्तोदर प्रभृति के निदान में विरोध पड़ता है।

"सुश्रुत", "माधवनिदान" और "भावप्रकाश" के अनुसार सब तरह के उदररोगों—पेट के रोगों में ये लक्षण देखने में आते हैं—अफारा, चलने में अशक्तता, कमजोरी, अग्नि की मंदता, सूजन, अंगों की ग्लानि, अपानवायु का न खुलना, मल का रुकना, दाह या जलन होना और तंद्रा।

उदर रोगों के पूर्व रूप

उदररोग होने से पूर्व ये लक्षण झलकने लगते हैं—

भली भाँति क्षुधा न लगना, सुस्वादु, स्निग्ध एवं गुरु अन्न अति विलंब से अथवा कोई द्रव्य खाने से पेट गर्म पड़ने पर पचना, रोगी के अच्छे प्रकार समझ न पड़ना, अरुचि होना, अतृप्ति, कुछ-कुछ पाँव सूजना, थोड़े श्रम से भी थक जाना, शीघ्र-शीघ्र श्वास-प्रश्वास चलना, मल बँध जाने से श्वास बढ़ना और उदावर्तजन्य यंत्रणा होना आदि।

(चरक)

"सुश्रुत" ने भी प्रायः इसी प्रकार पूर्वरूप लिखा है—

"तत्पूर्वरूपं बलवर्णकांक्षा ।
बलीविनाशो जठरेहि राज्यः ।।
जीर्णापरिज्ञान विदाहवत्यो ।
बस्तौ रुजः पादगतश्चशोफः ।।"

अर्थात् उदररोग होने से पूर्व ये लक्षण होते हैं—बल और वर्ण की कांक्षा (अर्थात् नाश), उदर पर से त्रिवली (सलवटें) जाता रहना अर्थात् पेट तन जाना और रगों की पंक्ति उभर आना, भोजन पचने-न पचने का ज्ञान जाता रहना, विदाह होना, वस्तिस्थान में पीड़ा होना और पाँवों पर सूजन होना।

सारांश, अफारा, आलस्य, अशक्ति, अङ्गसाद, मल-रोध, प्यास और दाह—ये सब उदर रोगों के पूर्वरूप हैं; यानी उदररोग होने से पहले ये होते हैं।

नोट—पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह अनेक प्रकार की पीड़ा के पूर्वरूप हैं। विशेषतः अल्लोपैथी में जिसे डिस्पेपसिया अर्थात् अग्निमान्द्य रोग कहते हैं, उसीके इसमें लक्षण अधिक रहते हैं। चरक और सुश्रुत में लिखा है—"पाँव पर कुछ-कुछ सूजन आजाती है।" किंतु ऐसा होने पर उक्त लक्षण को किसी व्याधि का पूर्वरूप नहीं मान सकते। कारण यह कि—यकृत, हृत्पिण्ड, वृक्क वा अन्त्रावरक झिल्ली प्रभृति में प्रथम कोई रोग कुछ काल तक संचित रहता है, पीछे

देह के स्थान विशेष या सर्वांग में भली प्रकार रक्त भ्रमण न हो सकने किंवा आन्त्रावरक झिल्ली तथा ग्रंथि प्रभृति से निःसृत रस यथोचित रीति से सूखकर अथवा स्वेद-मूत्र आवश्यकतानुसार निकल न सकने के कारण शरीर में सूजन हो जाती है ।

जब कुछ काल तक यकृत् की विशृंखलता का रोग रहता है, तब उपर्युक्त समस्त लक्षण प्रकाशित होते हैं ।

उदर रोगों के लक्षण

वातोदर के लक्षण

“चरक” में वातजनित उदर रोग के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—कुक्षि, हाथ-पाँव एवं अंडकोष पर शोथ होता है । पेट में सूई चुभने जैसी पीड़ा होती है । कभी शरीर बढ़ और कभी घट जाता है । कुक्षि तथा पार्श्व में शूल होता है । उदावर्त, अंगमर्द, पर्वभेद, सूखी खाँसी, कृशता, दौर्बल्य और अरुचि का वेग बढ़ता है । शरीर के अधोभाग में गुरुता रहती है । वायु तथा मलमूत्र बँध जाता है । नाखून, आँख, चर्म एवं मल-मूत्र काले और पीले मिले हुए तथा लाल रंग के हो जाते हैं । पेट पर सूक्ष्म एवं लाल रंग की रेखा तथा शिरा दिखाई पड़ती है । पेट पर आघात लगाने से वायुपूर्ण मशक की तरह आवाज़ निकलती है । वायु ऊर्ध्व, अधः और पार्श्वदिक् वेदना बढ़ाते हुए फिरता है ।

“माधवकार” ने भी कहा है—वातोदर में हाथ-पाँव, नाभि और कूख में सूजन होती है । कूख, पसली, पेट, कमर, पीठ और सन्धियों में दर्द होता है । सूखी खाँसी चलती है । शरीर टूटता है । नाभि से नीचे के शरीर का आधा भाग भारी जान पड़ता है । मलरोध होता है अर्थात् दस्त नहीं होता । चमड़ा, आँख और पेशाब प्रभृति का रंग धूसर या लाल होता है । अकस्मात् उदर की सूजन घट या बढ़ जाती है । पेट में सूई गड़ाने की सी वेदना होती है । काले रंग की सूक्ष्म नसें पेट पर छा जाती हैं । पेट पर उँगली मारने से फूली हुई मशक की सी आवाज़ होती है । दर्द और आवाज़ करती हुई हवा इधर उधर घूमती है ।

“सुश्रुत” में वातोदर का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

“संगृह्य पार्श्वोदरपृष्ठनाभीर्यद्वर्द्धते कृष्ण-
शिरावनद्धम् । सशूलमानाहवदुग्र शब्दंसतोद
भेद पवनात्मकं तत् ॥”

टिप्पणी—कुक्षि और नाभि की सूजन से यह अभिप्राय नहीं कि, कोख और नाभि में सूजन होती है । अपितु इससे “अन्त्रावरक झिल्ली” में जलसंचय होनाही विवक्षित है । परंतु अन्त्रावरक झिल्लीमें जल भर जानेसे नाभि और कुक्षिपर पृथक्-पृथक् सूजन नहीं होती; प्रत्युत एकही सूजन सभी जगह पहुँचती रहती है । केवल रोगीके भिन्न-भिन्न प्रकार पार्श्व बदलने पर अपने ही गुरुत्व से जल नीचे की ओर गिर पड़ता है । जल अधिक होने से समस्त उदर भर जाता है । जल थोड़ा रहने पर, रोगी के उठकर खड़ा होनेपर नाभि के नीचे की ओर ढल जाता है, इत्यादि । अस्तु नाभि और कुक्षिपर पृथक् पृथक् सूजन हो नहीं सकती ।

दूसरी बात—यदि वातोदर में, पेट में जल एकत्रित होता है, तो उदकोदर से इसमें भेद क्या है ? इसका समाधान कठिन है । कारण यह कि, उक्त लक्षण जब संकलित हुए, तब आयुर्वेद के आचार्य शोथ को अन्य भाँति की पीड़ा समझते थे ।

वातोदर के जो लक्षण लिखे हैं, उनसे विशेष किसी आवयविक रोग का सामंजस्य दिखलाना दुष्कर है । फिर भी उदर के भीतर होने वाले कर्कटादि रोग में हाथ पाँव में सूजन, जलोदर और उससे आध्मान हो सकता है । आमाशय-विस्तार रोग में भी ऐसे लक्षण रहने की संभावना है । किंतु इस रोग का प्रधान उपसर्ग वमन ही है ।

पित्तोदर के लक्षण

“चरक” संहिता में लिखा है—पित्तोदर रोग में रोगी को दाह, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, अतिसार और भ्रम का वेग होता है । मुख में कटु आस्वाद आ जाता है । नाखून, आँख, मुख, त्वचा एवं मल-मूत्र का रंग हरा और पीला देख पड़ता है । पेट पर नीली, पीली, हरी एवं तामड़े रंग

की रेखा तथा शिरा झलकती है। फिर दाह एवं ताप के वेग से धूम निकलने पर पेट उष्ण रहता, घर्म तथा क्लेद छोड़ता, दबाने से कोमल लगता और शीघ्र पकता है।

सुश्रुत यह नहीं कहते—पित्तोदर में पेट का कौन स्थान पकता है। उसमें संक्षेप से ये लक्षण मिलते हैं—चोष, तृषा, ज्वर और दाह से युक्त, पेट की फुलावट में पीलापन, नसें (शिरा), आँख, मल-मूत्र, नाखून और मुख पीले होते हैं और यह शीघ्र बढ़ जाता है।

"माधवकार" के अनुसार इसमें ज्वर होता है, मूर्च्छा होती है, दाह या जलन होती है, प्यास लगती है, मुँह का स्वाद कड़वा रहता है, भ्रम होता है, अतिसार या दस्तों का रोग होता है, चमड़ा और आँख इत्यादि का रंग पीला हो जाता है। पेट का रंग हरा हो जाता है, पेट पर पीली या ताँबे के रंग की सी नसें छायी रहती हैं। पेट पर पसीने आते हैं। गरमी से उसमें दाह होता है; भीतर गरमी और बाहर दाह होता है। आँतों से धूआँ सा निकलता जान पड़ता है। छूने से पेट नर्म जान पड़ता है। उसमें पीड़ा होती है। पित्तोदर जल्दी पककर जलोदर हो जाता है।

यकृत की संचित पीड़ा से उदर पक जाने पर ये सब लक्षण प्रकाशित हो सकते हैं।

कफोदर के लक्षण

"चरक" में श्लेष्मजनित उदर का यह लक्षण लिखा है—रोगी को शरीर भारी मालूम पड़ता है। भोजन से अरुचि रहती है। अपाक और अंगमर्द होता, देह का अधिक ध्यान नहीं पड़ता, हाथ-पाँव और मुँह सूज जाता है। वमनेच्छा बनी रहती है। सदा निद्रावलय, कास और साँस चलता है। नाखून, आँख, मुँह, मलमूत्र और चमड़े का रंग सफ़ेद होजाता है। पेट पर सफ़ेद रंग की रेखा और शिरा झलकती है। उदर भारी, स्तिमित, स्थिर और कठिन होजाता है।

"सुश्रुत" ने भी कहा है—कफोदर में पेट शीतल, सफ़ेद रंग की शिरा से व्याप्त, कड़ा और सफ़ेद होजाता है। नाखून और मुँह भी सफ़ेद रंग के होजाते हैं। पेट स्निग्ध और बहुत सूजनयुक्त होता तथा अंगों में ग्लानि होती है और यह बहुत दिनों में वृद्धि को प्राप्त होता है।

"माधवनिदान" में लिखा है—शरीर में शिथिलता, शून्यता स्पर्श-ज्ञान का अभाव, सूजन, भारीपन, नींद बहुत आना, कय होने की इच्छा, अरुचि, श्वास, खाँसी, चमड़े और आँख प्रभृति का रंग सफ़ेद होना, पेट भीगा सा, चिकना, सफ़ेद, नसों से व्याप्त, मोटा, कठोर, छूने में शीतल, भारी, अचल और बहुत देर में बढ़नेवाला होता है अर्थात् कफोदर बहुत देर में बढ़ता है।

पर नाना भाँति के मूत्ररोग और हृद्रोग में भी उक्त लक्षण हो सकते हैं।

त्रिदोषजोदर, सन्निपातोदर या दूष्योदर के लक्षण

सन्निपात या त्रिदोष जनित उदर रोगमें वातोदर, पित्तोदर और कफोदर तीनों उदर रोगों के लक्षण रहते हैं।

जिन मनुष्यों को दुष्टा स्त्रियाँ वश में करने के लिए नाखून, बाल, मूत्र, मल या आर्त्तव (रजोधर्मका खून) मिलाकर खाने-पीने के पदार्थ खिला देती हैं, जिनको शत्रु विष खिला देते हैं, जो दूषित जल पीते हैं अथवा जो दूषी विष सेवन करते हैं, उनके रक्त और वातादि तीनों दोष कुपित होकर अत्यंत भयंकर सन्निपातोदर या दूष्योदर रोग पैदा करते हैं।

यह उदर रोग शीतकाल में, शीतल हवा चलने के समय, अधिक बादल घिरने के दिन या वर्षा की झड़ी लगने के समय विशेष करके कुपित होता है। क्योंकि इन समयों में दूषित विष का प्रकोप होता है। आशय यह कि ऐसे समय में यह रोग बढ़ जाता है और दाह होने लगता है।

इस उदर रोगी के शरीर में दाह होता है। वह निरंतर बेहोश रहता या बार-बार बेहोश होता है, उसके शरीर का रंग पीला हो जाता है। देह कृश हो जाती है और प्यास के मारे गला सूखा करता है। इस सन्निपातोदर या त्रिदोषज उदर रोग को "दूष्योदर" भी कहते हैं। (सु०। भा०। मा० नि०)

प्लीहोदर के लक्षण

प्लीहोदर के संबंध में चरक में लिखा है—

भोजनके बाद अधिक अंगादि चलाने, यानपर जाने, यान पर शरीर अधिक हिलाने, अत्यंत स्त्री-प्रसंग करने, क्षमता से अधिक भार उठाने, अधिक मार्ग चलने से श्रमित होने, वमन तथा व्याधि द्वारा शरीर का अधिक कर्षण करने आदि कारणसे बाईं तरफ़ स्थित प्लीहा स्वस्थान को छोड़ बढ़ती अथवा रसादि द्वारा अतिशय उपजने से वही वर्धमान प्लीहा अधिक स्थूल हो जाती है।

"सुश्रुत" तथा "माधवनिदान" में लिखा है—दाहकारक और अभिष्यन्दी अथवा कफकारक और अम्लपाकी पदार्थ खाने पीने से रुधिर और कफ अत्यंत दूषित होकर पेट के बाईं ओर, प्लीहा को बढ़ाकर, अत्यंत वेदना उत्पन्न करते हैं। इसी को "प्लीहोदर" करते हैं।

प्लीहा या यकृत के बढ़ते रहने से जब पेट बहुत बढ़ जाता है, तब सम्पूर्ण शरीर में अवसन्नता, मंद ज्वर, मंदाग्नि, बलक्षीणता, देह की पांडुवर्णता और कफ पित्त जनित अन्यान्य उपद्रव भी होते हैं। इस समय इन रोगों को "प्लीहोदर या यकृदुदर" कहते हैं। प्लीहोदर होने से पेट का बायाँ भाग बढ़ता है और यकृदुदर (यकृद्दाल्युदर) होने से पेट का दाहिना भाग बढ़ता है; क्योंकि प्लीहा पेट के बायें भाग में और यकृत दाहिने भाग में है।

नोट—प्लीहोदर के लक्षण तथा प्लीहा-यन्त्र से उत्पन्न होनेवाली समस्त व्याधियों का सविस्तार वर्णन "प्लीहा" में और यकृदुदर" एवं यकृदोत्पन्न समग्र व्याधियों का विवरण यकृत शब्द में देखो।

बद्धोदर या बद्धगुदोदर के लक्षण

"चरक" में बद्धोदर के लक्षण-निदान इस प्रकार लिखे हैं—

खाद्य द्रव्य के साथ आँख के बाल पेट में पहुँचने और उदावर्त, अर्श एवं अन्त्र सम्मूर्च्छन प्रभृति कोई रोग रहने से मल का द्वार रुक जाता है। फिर अपान वायु अपना पथ बंद होने पर बिगड़ कर धातु, अग्नि, मल, पित्त एवं वेग रोक देता है। इसी से बद्धोदर रोग होता है। इससे प्यास, दाह, ज्वर एवं मुख तथा तालुशोष का वेग बढ़ता है और उरु अवसन्न पड़जाता है। साँस खाँसी, दुर्बलता, अरुचि, अपाक, मल-मूत्र रोध, आध्मान, वमन, कंप, शिरदर्द, हृच्छूल, नाभिशूल और उदर वेदना का आगमन होता है। इस रोग में उदर स्थिर रहता है। पेट पर रक्त एवं नील वर्ण की रेखा तथा शिरा देख पड़ती है। अथवा रेखा-समूह नाभि पर गोपुच्छ जैसा आकार बना बढ़ा करता है। इसे बृद्धोदर या बद्धगुदोदर कहते हैं।

जब मनुष्य की आँतें अन्न, शाक तथा कमलकंद आदि चिपटने वाले पदार्थों से अथवा रेत, कंकरी या बाल आदि से अत्यंत ढँक जाती है। उस समय वातादि दोषों से नित्य थोड़ा-थोड़ा मल आँतों में उसी भाँति जमता जाता है, जिस भाँति बुहारी देते समय थोड़ा-थोड़ा कूड़ा-कर्कट रह जाता है। ऐसा होने से जमा हुआ मल गुदा की राह को रोककर, थोड़ा-थोड़ा मल बड़ी कठिनता से बाहर निकलने देता है। इससे हृदय और नाभि के बीच में पेट बढ़ जाता है। इसको "बद्धगुदोदर" कहते हैं। (सु०। मा० नि०)।

(*Obstruction of the bowels*)

नोट—डॉक्टरी मत से यह आन्त्रावरोध नामक व्याधि है। आमाशय आदि स्थानों में कर्कट रोग (Cancer), पुरातन रक्तामाशय प्रभृति अनेक कारणों से अंत्रपथ रुक सकता है। वि० दे० "आन्त्रावरोध"।

(आगंतुक) क्षतोदर या परिस्राव्युदर के लक्षण

अन्न के साथ अथवा और किसी प्रकार से पेट में रेत, तृण, लकड़ी या काँटे प्रभृति के चले जाने से आँतें छिद जाती हैं—उनमें घाव हो जाते हैं। फिर उन घावों से पानी जैसा पतला स्राव होता है और वह गुदा में होकर बाहर बहता है। नाभि के नीचेका भाग बढ़ जाता है, पेटमें सूई छेदने का सा दर्द होता है और ऐसा जान पड़ता है मानो

कोई चीरता है। इसी रोग को "क्षतोदर" कहते हैं। क्योंकि इस रोग में आँतों में क्षत या घाव हो जाते हैं। कितने ही ग्रंथों, जैसे सुश्रुतादि में इसे "परिस्राव्युदर" भी लिखा है, क्योंकि इस रोग में पानी-सा स्राव होता रहता है। (सु०। भा०। मा० नि०)।

"चरक" में लिखा है—

शर्करातृणकाष्ठास्थि कण्टकैरन्नसंयुतैः।
भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तं जृम्भाऽत्यशनेन च॥

नोट—(१) डॉक्टरी में इसे (Ulceration of the bowels and stomach) कहते हैं। वि० दे० "क्षतोदर"।

(२) इसके अतिरिक्त चरक में "छिद्रोदर" (Perforation of the bowels and stomach) नाम के एक और रोगका उल्लेख आया है। दे० "छिद्रोदर"।

उदकोर, दकोदर वा जलोदर के लक्षण

"चरक" में लिखा है—जो व्यक्ति अधिक खाता अथवा जठराग्नि की शक्ति गँवाता तथा अपने को क्षीण एवं कृश बनाता है, उसके अधिक परिमाण में जल पाने से क्षुधामांद्य रोग हो जाता है। उस समय वायु क्लोम स्थान में ठहर जाता है। क्रमशः सभी स्रोतों के मार्ग रुकते और पिए हुए पानी से कफ बढ़ता है। बाद में यह दोनों स्वस्थान से पीतजल बढ़ा उदर रोग उत्पन्न करते हैं। इस उदर रोग में भोजन की इच्छा नहीं रहती, प्यास बहुत लगती है, गुदस्राव, शूल, साँस. कास और दौर्बल्य हुआ करता है। पेट पर नानावर्ण की रेखा तथा शिरा देख पड़ती और आघात लगाने से जलपूर्ण मशक की तरह कँप-कँपी सी उठती है।

"सुश्रुत, भावप्रकाश और माधवनिदान" में लिखा है—जो मनुष्य स्नेहपान करके-घी तैलादि पीकर, अनुवासनवस्ति-चिकने पदार्थों की पिचकारी लेकर, वमन, विरेचन करके अथवा निरूह वस्ति सेवन करके, तत्काल शीघ्र जल पी लेता है, उसकी जलवाही नाड़ियाँ दूषित हो जाती हैं। अथवा उनमें चिकनाई लिपट जाती है। फिर उन्हीं दूषित नाड़ियों से पानी टपक टपक कर पेट में जमा होता रहता है।

नोट—जलोदर को साधारण बोल-चाल की भाषा में "जलंधर" कहते हैं। यूनानी चिकित्सक इसे "इस्तिस्का" नाम से अभिहित करते हैं और पुनः वे इसके अनेक भेद करते हैं। डाक्टरी मत से यह असाइटिस (Ascites) है। इन सबका सविस्तार वर्णन "जलोदर" शब्द के अन्तर्गत होगा।

दकोदर स्वयं कोई विशेष व्याधि नहीं। अपितु यह अन्य रोगों की शेष अवस्था का एक लक्षण मात्र है। यकृत् की विशुष्कता, पुरातनप्लीहा, चिरकारी अंत्रवेष्ट प्रदाह, पुरातन रक्तातिसार प्रभृति नाना प्रकार की शेष दशा में यह रोग हो सकता है। किसी व्यक्ति को शैत्य लगकर भी यह रोग हो जाता है. परन्तु ऐसा दकोदर सुसाध्य है।

किसी संचित व्याधि में शिरा समूह में रक्त न पहुँचने अथवा आण्डलालिक पदार्थ कम होने से, प्रथम उदर में नहीं—अन्त्रावरक झिल्ली में जल एकत्रित होता है। पहले हाथ-पाँव पर सूजन आती है। इसके उपरांत उदर में जल भर जाता है। किंतु यकृद्रोग में हाथ-पाँव पर सूजन न होने पर भी दकोदर हो सकता है।

दकोदर होने से पहले पेट में भार मालूम पड़ता है। क्षुधा कम लगती है। कोठे की शुद्धि नहीं होती। प्रस्राव भलीभाँति परिष्कृत नहीं होता। क्रम में जल का परिमाण, बढ़ने से श्वास-कृच्छ्र हो जाता है। पुनः अधिक फूलने से उदर, अंडकोष एवं पुरुषांग (शिश्न)पर सूजन आ जाती है और पेट पर नसें दीखती हैं। आघात लगाने से पेट ढलका करता है।

उदररोगों की साध्यासध्यता

कृच्छ्रसाध्य वा कष्टसाध्य उदररोगोंके लक्षण

अधिक तर सभी तरह के उदररोग जन्म से ही विशेष कष्टसाध्य होते हैं। बलवान पुरुष के नया उत्पन्न हुआ वह उदररोग, जिसमें पानी न आया हो, बड़े यत्न से साध्य होता है। बद्धगुदोदर पन्द्रह दिन से अधिक पुराने होने से असाध्य

होता है। उसी प्रकार सब प्रकार के उदक (पानी) उत्पन्न होने से, मारक होता है और छिद्रान्त्रोदर प्राण नाशक होता है।

नोट—काँटे आदि से आँतों में छेद होगए हों अर्थात् क्षतोदर रोग होगया हो, तो रोगी के बचने की आशा नहीं। बहुधा क्षतोदर रोगी मर जाते हैं।

असाध्य उदररोगों के लक्षण

"चरक" में असाध्य उदररोग के लक्षण बहुत अच्छी तरह लिखे हैं—यथा, वमन, अति-अतिसार, तमक, पिपासा, साँस, खाँसी हिचकी, दौर्बल्य, पार्श्वशूल, अरुचि, स्वरभेद, मूत्ररोध प्रभृति, जैसे–उपसर्ग आविर्भूत होने से रोगी को अचिकित्स्य समझते हैं।

पन्द्रह दिन के बाद बद्धगुदोदर, सब तरह के जलोदर और जन्म से हुए उदररोग-ये सब असाध्य होते हैं। मा० नि०।

बद्धगुदोदर, सब प्रकार के जलोदर और छिद्रान्त्रोदर रोग होने से प्रायः एक पक्ष के पश्चात् मनुष्य मर जाता है। भा०।

जिस उदररोगी की आँख सूज गई हों, लिंग टेढ़ा होगया हो, चमड़ी पतली और गीली होगई हो; बल, खून, मांस और अग्नि ये क्षीण होगए हों–उस रोगी की चिकित्सा न करनी चाहिए। भा०। मा० नि०।

जिस उदररोगी की पसलियाँ टूट गई हों, जिसकी अन्न में अरुचि हो, सूजन हो, दस्त होते हों और जुलाब देने पर भी पेट फिर भर जाता हो। उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। मा० नि०। भा०।

सभी मर्मस्थानों पर सूजन होने,साँस, हिचकी, अरुचि, प्यास, मूर्च्छा, क़ै, अतिसार प्रभृति उपसर्ग होने से उदर रोगी मर जाता है।

सब तरह के उदररोग कष्टसाध्य हैं। विशेषकर जलोदर और क्षतोदर रोग अतिशय कष्ट-साध्य होता हैं। चीर-फाड़से ही लाभ हो, तो हो सकती है; दवादारु से आराम होने की आशा बहुत कम होती है। रोग पुराना होने या रोगीका बल नाश होजाने से सभी उदररोग असाध्य होजाते हैं।

"सुश्रुत" में लिखा है—सब उदररोग अन्त परिपाकावस्था में जलभाव को प्राप्त होजाते हैं और उस अवस्था में त्यागने योग्य अर्थात् असाध्य होजाते हैं-चिकित्सा के योग्य नहीं रहते।

पेट में जल पैदा हुआ है, या नहीं, इसकी सरल पहिचान "चरक" ने इस प्रकार लिखो है—

यदि पेट बढ़ गया हो, क्षोभ पाने पर पानी से भरी हुई मशक की तरह आवाज़ करता हो, नर्म हो, बहुत मोटा होने के कारण अस्फुट शिरायें–नसें दीखती हों; तो समझो कि पेटमें पानी उत्पन्न हो गया है। यदि आलस्य हो, मुँह का स्वाद ठीक न हो, पेशाब बहुत आता हो, पाखान पतला होता हो, अग्नि मंद हो, और शरीर का रंग पीला सा हो–तो भी समझो कि, पेट में पानी उत्पन्न हो गया है। लिखा है—

"पयः पूर्णा दृतिरिव क्षोभे शब्दकरं मृदु।
अप्रव्यक्त शिरा शून्यं नीरात्तमुदरं महत्॥
आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बहु शकृद्द्रुतम्।
जातोदकस्य लिङ्गं स्यान्मन्दाग्निः पाण्डुताऽपिच॥"

उदर रोगों की चिकित्सा

चिकित्सा-क्रम

नोट–उदररोग की चिकित्सा की एक सामान्य विधि होती है। उसमें कुछ विशेष करने-धरने की बात नहीं होती। कारण पहले ही कह चुके हैं,—उदररोग स्वयं कोई स्वतंत्र व्याधि नहीं। अतएव मूल पीड़ा की ही निश्चित रूप से चिकित्सा होनी चाहिए।

(१) प्रायः सभी प्रकार के उदर रोगों में तीनों दोष कुपित होते है; अतः पहले वातादि तीनों दोषों के शमन का उपाय करना चाहिये।

(२) इन रोगों में अग्नि-वृद्धि के लिए अग्नि-वर्द्धक औषधियाँ देनी चाहिये और पाखाना कराने के लिये थोड़ा गरम दूध और रेंड़ी का तेल या गोमूत्र और रेंड़ी का तेल मिलाकर पिलाना चाहिये।

(३) उदर रोग में विरेचक औषध खिलाना, पिचकारी लगाना और स्वेद कराना ही वैद्यक-

शास्त्र की प्रधान चिकित्सा है। इससे भिन्न अन्य प्रकार भी औषध की व्यवस्था बँध सकती है।

(४) वातोदर में पहले स्नेहन, स्वेदन, विरेचन और वस्तिकर्म—इनका उपयोग करना चाहिये।

(५) वातोदर रोगी को पीपर और सेंधानमक मिलाकर माठा पिलाना चाहिये। इस माठे से शरीर का भारीपन और अरुचि दूर होती है। दशमूल के काढ़े में "रेंड़ी का तेल" मिलाकर पिलाना भी अच्छा है। इससे वातोदर, सूजन और शूल नाश हो जाते हैं।

(६) प्लीहोदर और यकृदुदर में प्लीहा और यकृत रोग में लिखी हुई चिकित्सा से काम लेना चाहिये।

(७) बद्धगुदोदर में पहले स्वेद और फिर तेज़ जुलाब देना चाहिये।

(८) पित्तोदर में पंचमूल के काढ़े के साथ पकाया हुआ दूध देना चाहिये।

(९) कफोदर में रेंड़ी के तेल में जवाखार मिलाकर देना चाहिये। सोंठ, मिर्च और पीपर का चूर्ण डालकर कुलथी का रस अथवा दूध भोजन के लिए देना चाहिये।

(१०) विरेचन, आस्थापन वस्ति और स्नेहन कर्म भी सभी प्रकार के उदर रोगों में हितकारी है।

(११) उदर रोगोंमें मलका संचय बहुत होता है, इसलिये इनमें संशोधन कराना अर्थात् दस्त कराना विशेष हितकारी है। अरंडी का तेल-दूध, जल या गोमूत्र में मिलाकर पीने से पेट साफ़ हो जाता है।

(१२) शराब पीनेवाले उदर रोगी को यदि स्तिमिता, अरुचि, हल्लास, मंदाग्नि तथा कफ से उदर रोग में गाढ़ापन वा कठोरता हो तो अरिष्ट और क्षारों का प्रयोग करें।

क्षार-विधि—हींग, पीपल, त्रिफला, देवदारु दोनों हलदी, भिलावाँ, सहिजन की फली, कुटकी, चिरायता, वच, सोंठ, अतीस, मोथा, कूट, सरल, पाँचों नमक, इन्हें पीसकर दही, घी, तेल, चर्बी और मज्जा मिलाकर ऐसी रीति से जलावें कि धुआँ बाहर न निकलने पावे। फिर इस क्षार में से २ तो० मदिरा, दही, सुरा, मंड, गरम जल, अरिष्ट, सुरामंड वा आसव के साथ सेवन करें। इससे उदर रोग, गुल्म, अष्ठीला, तूनी, प्रतूनी, शोथ, विशूचिका, प्लीहा, हृदय रोग, अर्श और उदावर्त का नाश होता है।

(१३) सेंहुड़ का दूध १तो०. गोखरू १तो० दोनों को बारीक पीसकर चना प्रमाणकी गोलियाँ बनाएँ। इसे जल के साथ उपयोग करने से विशेष लाभ होता है। अनुभूत।

उदररोग में पान व्यवस्था—

कफ जनित पेट के रोग में गाढ़ा, मधुर रससे युक्त तक्र श्रेष्ठ होता है। वातोदर में पीपल और सेंधा नोन डालकर, पित्तोदर में कालीमिर्च और खाँड़ मिलाकर। कफोदर में अजवायन, सेंधानमक, जीरा, शहद, और त्रिकुटा मिलाकर; सन्निपातोदर में त्रिकुटा, जवाखार और नमक मिलाकर; प्लीहोदर मे मधु, तेल, वच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सेंधानमक मिलाकर; बद्धोदर में हाऊबेर, अजवाइन, सेंधानोन और जीरा आदि मिलाकर; छिद्रोदर में पीपल और शहद मिलाकर तथा जलोदर में त्रिकुटा का चूर्ण मिलाकर पान कराना उत्तम है।

उदर रोगों की सामान्य चिकित्सा

समस्त उदर रोग नाशक योग

(१) रेंडी का तेल, गरम दूध या जल अथवा गोमूत्र में मिलाकर पीने से सब प्रकार के उदर रोग अच्छे हो जाते हैं।

(२) देवदारु, ढाँक, आक की जड़, गजपीपर, सहँजना और असगँध—इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सब प्रकार के उदर रोग नष्ट हो जाते हैं।

(३) शुद्ध शिलाजीत, गोमूत्र में मिलाकर पीने से या शुद्ध गूगल त्रिफले के काढ़े में मिलाकर पीने से सभी भाँति के उदर रोग नष्ट होते हैं।

(४) इन्द्रजौ ४ मा०, सुहागा ४ मा०, हींग ४ मा०, शंखभस्म ४ मा० और पीपर ६ मा०—इनको गोमूत्र के साथ पीसकर पीने से

सब प्रकार के उदर रोग, यहाँ तक कि पुराने उदर रोग नाश हो जाते हैं।

(५) जो मनुष्य सवेरे ही उठकर, चव्य और चीते के चूर्ण को ऊँट के मूत्र के साथ पीता है, उसका असाध्य उदर रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।

(६) पटोलमूल, त्रिफला, हल्दी, वायविडंग प्रत्येक एक कर्ष, कबीला २ कर्ष, नीलिनी ३ कर्ष, निशोथ ४ कर्ष, इन सबको लेकर यथाविधि चूर्णकर गोमूत्र के साथ पिलावें। विरेचन के पश्चात् पेया पान कराके जांगल मांस-रस के साथ भोजन करावें। तदनन्तर ६ दिन तक त्रिकुटा डालकर औटाया हुआ दूध पीने को दें। इस तरह बार बार करने से हर प्रकार के उदर रोग यहाँ तक कि संजात जलोदर भी नष्ट हो जाता है। वा० चि० १५ अ०।

(७) वायविडंग चीता, दन्ती, चव्य, त्रिकुटा इन सब द्रव्यों का एक तोला कल्क दूध में मिलाकर पीने से बढ़ा हुआ उदर रोग नष्ट होता है।

(८) गोदुग्ध १६ सेर, सेंहुड़ का दूध ६४ तोला—इनको औटाकर दही जमाकर मथनी से मथकर घी निकालें। इसे निशोथ के कल्कके साथ पकाकर उचित मात्रा से सेवन करने से उदर रोग, दूषित विष, अष्ठीला, आनाह गुल्म, विद्रधि, कुष्ठ उन्माद और अपस्मार का नाश होता है। वा० उदररो० चि०।

सन्निपातोदर की चिकित्सा

जिस फल में सर्प ने कुपित होकर काटा हो, उस विष युक्त फल को खिलानेसे रोगीकी धातुओं में लीन विमार्ग गामी, स्थिर दोष समूह शीघ्र छिन्न-भिन्न होकर बाहर निकल जाते हैं। इससे या तो रोगी निरोग हो जाता है या तो मरही जाता है। च० उदररो० चि० १८ अ०। वा० चि० १५ अ०।

नोट—उक्त विधिमें सर्प-विष की मात्रा निर्दिष्ट नहीं पर वस्तुत:। यदि विष को समुचित मात्रा में उचित रीति से दी जावे, तो फल की अवश्य आशा की जाती है।

छिद्रोदर की चिकित्सा

छिद्रोदर में स्वेदन-कर्म के अतिरिक्त और सब चिकित्सा कफोदर के समान की जाती है। परन्तु जब आँतों में छेद होकर उनमें से जल टपक-टपककर पेट को भरे; तब उस जल को निकाल डालना चाहिये। जितनी बार जल इकट्ठा हो, उतने ही बार उसे निकाल डालें। इस तरह रोगी की रक्षा करता रहे।

उदकोदर की चिकित्सा

जलोदर में प्रथम गोमूत्र तथा अन्य विविध क्षारों से युक्त जल के दोष नाशक तीक्ष्ण औषधों का प्रयोग कराना चाहिए तथा अग्नि संदीपन और कफ नाशक आहार का सेवन करावें। पुन: वातादि दोषानुसार चिकित्सा करें।

बकरी की मेंगनियों के क्षार को गोमूत्र में घोलकर अग्नि पर पकावें। जब गाढ़ा हो जावे तब नीचे उतारकर निम्न लिखे द्रव्यों का चूर्ण मिला देवें—पीपल, पीपलामूल, सोंठ, पाँचो नमक, दंती, निशोथ, त्रिफला, स्वर्णक्षीरी, मेढ़ासिंगी, सज्जीखार, वच, सातला और जवाखार। फिर इनको बेर के बराबर गोलियाँ बनवें। इन गोलियों को काँजी में मिलाकर पीने से अजीर्ण, शोथ, और बढ़ा हुआ उदर रोग नष्ट हो जाता है।

यदि उक्त चिकित्सा द्वारा लाभ न हो, तो दक्ष शस्त्र-चिकित्सक द्वारा बद्धोदर और छिद्रोदर रोगी को स्नेह स्वेद द्वारा स्निग्ध और स्विन्न करके नाभि के नीचे रोमराजी से ४ अंगुल हटकर बाईं ओर चार अंगुल चीर दें और सब आँतों को बाहर निकालकर बाल, मल, लेप, पत्थर की किनकी आदि जो कुछ हो सबको साफ करदें। पुन: आँतों को घी और शहद से चुपड़कर जहाँ की तहाँ लगाकर पेट में टाँका लगादें यह बद्धोदर की चिकित्सा है।

छिद्रोदर में भी आँतों में से शल्यादि निकालकर आँतों के स्रवने का रोधन करके काली चीटियों से आँतों के छिद्र को कटवाएँ। जब चीटियाँ आँत में चिपट जाँय तब उनके शरीर

को काट-काट कर निकाल लें और उनका शिर आँतों में लगा रहने दें। तदनन्तर सब आँतों में घी और शहद चुपड़कर यथास्थान स्थापितकरके टाँके लगादें। पुन: कालीमिट्टी और मुलहठी का पेट पर लेप करके बाँध दें। फिर रोगी को वात रहित स्थान में घी वा तैल की द्रोणी में बिठा दें और केवल दूध ही पीने को दें। वा० चि० १५ अ०।

उदररोगों की विशेष चिकित्सा

नोट—सभी प्रकार के उदररोगों की विशेष चिकित्सा कोषांतर्गत उन-उन शब्दों के अन्तर्गत लिखी गई है, अत: वहाँ देखें।

उदररोग नाशक उत्तमोत्तम योग—नारायण चूर्ण, नाराच चूर्ण, नाराच घृत, नाराच रस, इच्छाभेदीरस, बिंदु घृत, चित्रक घृत, पिप्पल्यादि लौह, शोथोदरारि लौह, पुनर्नवादि क्वाथ, पथ्यादि क्वाथ, त्रिवृत्ताद्य घृत, कुमार्यासव, वज्र कल्क, ब्रह्म घृत, शंखद्राव, जलोदरारि रस, इच्छाभेदी रस (उदररोगाङ्क), शोथ कासानल रस, हपादि चूर्ण, गवाक्षादि चूर्ण।

पथ्यापथ्य

मांस, शाक, तिल, पिट्ठी के पदार्थ, नमक, विदाही या जलन करनेवाले अन्न, भारी पदार्थ, कसरत, राह चलना, दिन में सोना, नहाना और जल पीना—सभी उदररोगों में अपथ्य हैं, अत: मना हैं।

ऊँटनी का दूध या बकरी का दूध उदररोगों में सर्वोत्तम है। अग्निदीपक हलके अन्न—गेहूँ, शालि चावल और साठी चावल आदि भोजन को देने चाहिए। रोगकी प्रबल अवस्थामें रोगी को मानमंड देनाचाहिए। उसके अभाव में, केवल दूध या दूध साबू देना चाहिए। यदि रोग का ज़ोर कम हो, तो दिन के समय पुराने चावलों का भात, मूँग की दाल का जूस, परवल, बैंगन, गूलर, सूरण, छोटी मूली और अदरख प्रभृति की तरकारी थोड़ा लवण मिलाकर देनी चाहिए। रात के समय दूध-साबू देना चाहिए। यदि भूख अधिक हो, तो दो एक पतली रोटियाँ दे सकते हैं।

जुलाब देना, लंघन कराना, एक साल के पुराने लाल चाँवल, मूँग, कुलथी, जौ, जांगल देश के पशु-पक्षियों के मांस-रस से मिली पेया, शहद, महुए की शराब, माठा, लहसन, अरंडी का तेल, अदरख, परवल, करेला, सहँजना, हरड़, पान, इलायची, लोह-भस्म, बकरीका दूध, गोदुग्ध, ऊँटनी का दूध, भैंस का दूध, बकरी, गाय, भैंस, ऊँटनी का मूत्र, अग्निदीपक पदार्थ, कपड़े की पट्टी पेट पर बाँधना, अग्निकर्म, विष-प्रयोग पथ्य हैं।

डॉक्टरी मत से दूध, साबूदाना, अरारूट, पतली रोटी दो। पानी बहुत ही थोड़ा-थोड़ा पिलाओ।

जलोदर में जल पिलाने के उपरांत यथासंभव रोगी के शिरोभाग को नीचा रखें और वक्ष से नीचे के भाग को ऊँचा रखना उत्तम है। इसके लिए सुगम उपाय यह है कि चारपाई के पैर की ओर के दोनों पावों को काफी ऊँचा कर दें।

उदररोग में यवागू आदि—

साठी चावलों में गोमूत्र की भावना देकर दूध के साथ उन चावलों की यवागू सिद्ध करके जठर-रोगीको तृप्ति पर्यंत पान करावें ऊपर से ईख का रस पान करावें। ऐसा करने से कफ, वात और पित्त अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं।

जिस रोगी का शरीर औषधों के सेवन से पुष्ट होगया हो उसे दूध पान कराना हो अमृत तुल्य होता है। वा० चि० १६ अ०।

(३) किसी वस्तु के बीच का भाग। मध्य। पेट। जैसे—यवोदर। (४) भीतरका भाग। अंतर। (५) किसी वस्तु के भीतर का पृष्ठ। (Ventral surface)

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुक्षि। कोख।

उदर:-[अ०] अंडकोष का बढ़ जाना वा फूल जाना। अंडकोष वृद्धि। क़ीलः। बादख़ायः (अ०)। (Scrotocele)

नोट—उदरः, क़ीलः, फ़त्क़ और क़रुव् के अर्थ भेद के लिए दे० "फ़त्क़"।

उदरक-संज्ञा पुं० [सं० ?] बकायन।

वि० [सं० त्रि०] उदर संबंधी।

उदरक-कला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Peritoneum) दे० "उदरच्छदा कला"।

उदरक-कला व्रण–संज्ञा पुं० [सं०] [Peritoneal ulcer] उदरच्छदा कला का व्रण।

उदरक-कला शोथ–संज्ञा पुं० [सं०] (Peritonitis) उदरच्छदा-कला की सूजन। उदरच्छदा-कला प्रदाह। इल्तिहाबुल् बारी.तून (अ०)।

उदरक कला क्षय–संज्ञा पुं० [सं०] (Peritoneal tuberculosis)

उदर-कला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Peritoneum) उदरच्छदा कला। उदरक कला।

उदर-कृमि–संज्ञा पुं० [सं०] (Intestinal worm) पेट का कीड़ा। आँत का कीड़ा। दीदान, दीदान मिअ्विय: (अ०)।

उदर-ग्रंथि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) अश्मरी रोग। पथरी। (२) गुल्म रोग। हे० च०। (३) अन्त्र। अँतड़ी। (४) प्लीहा। Wil.

उदरघ्न-रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसौषध। योग—(१) बंदाल, लोहभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, मैनशिल, हरताल, ताम्रभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक, कूट, मुशली, वच्छनाग, अजवायन, इन्हें समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके नीबू के रस में घोटकर गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे शहद या गरम पानी के साथ सेवन करने से समस्त उदर-रोगों का नाश होता है। र० च०। र० क० ल० उदर चि०। रस० यो० सा०।

(२) अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, मैनशिल, हरताल, ताम्रभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता, कूट, मूसली, मीठा तेलिया और अजवायन इन सबका चूर्ण करके नीबू के रस की भावना देकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना लें।

गुण—इन्हें रात को शहद के साथ सेवन करने से हर प्रकार के उदररोगों का नाश होता है। र० र० स० १६ अ०।

उदरच्छदा–वि० स्त्री० [सं० त्रि०] जो उदर को ढाँके। पेट को आवरण करने वाली।

उदरच्छदा अन्तःस्था पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदर की दीवार से चौड़ाई के रुख लगी हुई एक व्यत्यस्थ पेशी, जो दोनों तिर्छी पेशियों के पीछे रहती है। पेट पर की चौड़ी पेशी। (Muscle transversus abdominis) अ.ज़लः अरा.ज़ः बत्नि.य्यः (अ०)।

उदरच्छदा कला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शारीरक में एक अत्यंत विस्तृत पतली, दोहरी आबदार झिल्ली (स्नैहिक कला) जो उदर में हर जगह बिछी रहती है। इस कला से उदर के बहुत से अंग ढके भी रहते हैं। अंत्रधारक कला भी इसी का एक भाग है। इसी कला द्वारा क्षुद्रांत्र उदर की पिछली दीवार से लटकती रहती है। उदरक कला। परिविस्तृत कला। बारी.तून, बारीता.रून, बरीतून (अ०)। पेरिटोनियम् Peritoneum (अं०)।

उदरच्छदा बहिःस्था पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदर की अगली दीवार से चौड़ाई के रुख़ लगी हुई एक तिर्छी पेशी जो उदरच्छदा मध्यस्था से बाहर की ओर होती है। (Muscle obliquus externus abdominis.)

उदरच्छदा मध्यस्था पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदरकी अगली दीवार में चौड़ाईके रुख़ लगी हुई एक तिर्छी पेशी जो उदरच्छदा बहिःस्था से पीछे होती है। (Muscle oliquus internus abdominis)

उदरच्छदा सरला पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदर की अगली दीवार से लम्बाई के रुख़ लगी हुई एक सीधी पेशी। यह ऊपर वक्षोऽस्थि और पसलियों के कारटिलेजों से आरम्भ होती और नीचे भगास्थियों से लगी रहती है। सरल उदरच्छदा सरला। (Muscle rectus abdominis) अ.ज़लः मुस्तक़ीमः बत्नि.य्यः (अ०)।

उदरच्छदा सूच्याकारा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदर की लम्बाई के रुखवाली पेशियों में से वह जो छोटी होती है। सूच्याकार उदरच्छदा। (Muscle pyramidalis.)

उदर जन्तु विध्वंसन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक योग जो उदरस्थ कृमियों का नाश करता है। योग—शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक दोनों समान भाग। दोनों के बराबर मुलहठी और मिस्री मिलाकर एक साथ कज्जली करें। पुन: इसमें मूषाकर्णी का रस डाल दो दिन मर्दन करें। पुन: इन सबके बराबर मधूक (महुआ) डाल कर (शार्ङ्गधरोक्त) क्षुद्रादि क्वाथ और भल्लातक तैल डालकर १-१ दिन मर्दन करें। पुनः इसमें शुद्ध कुचिला, पलास बीज, जायफल, समुद्रफल और स्वर्णमाक्षिक भस्म समान भाग लेकर पूर्व चूर्ण के बराबर डालकर पुन: समस्त के बराबर शुद्ध धतूरे के बीजों का चूर्ण मिला और धतूरे के रस की एक भावना देकर इसमें जीरा सफ़ेद, जीरा स्याह, कालीजीरी, विडङ्ग नागरमोथा, सूर्पाक्षिनी(सुदाब) और भाँगरा के रस की ३-३ भावना देकर चना प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसमें से १-१ गोली वच, मूषाकर्णी, और सोंठ आदि के क्वाथ के साथ अथवा रोहिषादि क्वाथ के साथ देने से समस्त कृमियों का नाश होता है। पथ्य अरहर का यूष तैल डाल कर दें। इसे "कृमिविध्वंसन रस" भी कहते हैं। (रस सागर कृमि चि०।)

उदर ज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जठराग्नि। (२) भूख। क्षुधा।

उदर तल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सामने का या उदर की ओर का पृष्ठ या भाग। Volar surface

उदरत्राण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उदर पर बाँधने के वस्त्र आदि। हे०।

उदरथि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) समुद्र। (२) सूर्य्य। सूरज। हे०।

उदरध्वांन्त सूर्य रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ताम्र भस्म २ भाग, कालीनिसोथ १ भा०, सेंहुड़ का दूध ३ भा०, दन्ती मूल ४ भा०, हड़ ३ भा०, जमालगोटा शुद्ध ४ भा० इस क्रम से इन्हें लेकर जल योग से घोट कर चना प्रमाण की गोलियाँ बना लें।

गुण—एक गोली गरम जल से सेवन करने से आठ प्रकार के उदर रोग, जलोदर, आध्मान, गुल्म और शूल का तत्काल नाश होता है। रसायन सं०। रस० यो० सा०।

उदरनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अन्त्रनाड़ी। आँत।

उदरपरता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक रोग। इसमें अधिक भोजन करने की इच्छा होती है।

उदर परीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जठर परीक्षा। मेदे की जाँच।

उदर पिशाच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहुत खानेवाला आदमी। पेटू। हे० च०।

उदर पीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदरामय। पेट का दर्द।

उदरपुर—अव्य० [सं०] उदरपूर्ति पर्यन्त। पेट भर।

उदरपोषण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुक्षिपालन। पेट पालना।

उदर भङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अतिसार रोग। दस्त की बीमारी।

उदरम्भरि—वि० [सं० त्रि०] पेटू। अधिक खानेवाला।

उदर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उदरस्थ पाचक रस। वह रस जिससे खाया हुआ आहार हज़्म होता है।

उदर रेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वह लकीर जो बैठने से पेट में पड़ जाती। त्रिबली।

उदर रोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पेट का रोग। उदरामय। दे० "उदर"

उदर वल्लभ रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का योग जिसमें पारद पड़ता है।

योग-निर्माण—हिंगुल से निकाला हुआ पारा, गंधक, ताम्र भस्म, चित्रक, दन्ती, पीपर, हाऊबेर, बच, सेंधानमक इन्हें समान भाग लें। पारा से दूना शुद्ध जमालगोटा लेकर चूर्ण कर इसे हड़ के क्वाथ से १ दिन घोटकर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके उपयोग से श्लीपद, आनाह, गुल्म, प्लीहा और अग्निमांद्य का नाश होता है। यथोचित अनुपान और भोजन के साथ सोंठ

और धनियाँ का चूर्ण बनाकर खाना इस पर लाभदायक है। र० क० उदर चि०। रस० यो० सा०।

उदर वातारि रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसौषध। योग—(१) पारा, गंधक और शुद्ध जमालगोटा इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण कर जल से घोट कर ३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। (२) हलदी, दारुहलदी, सोहागा और ताम्र भस्म एक-एक भाग और शुद्ध जमालगोटा ४भाग लेकर जलसे मर्दन कर ३रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इन दोनोंके उपयोगसे दस्त होकर उदर रोग की शान्ति होती है। रस० यो० सा०। र० दी० उदर रो० चि०।

उदरवृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एकरोग जिसमें पेट बढ़ जाता है और उसमें पानी भर जाता है। जलोदर। (Ascites)

उदरवेष्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उदरक कला।

उदर व्याधि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] उदरामय।

उदरशय–वि० [सं० त्रि०] पेट के बल शयन।

उदर शूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Bellyache) पेट का दर्द।

उदरशूलारिमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Aletris) पेट पीड़ाहर जड़ी। दे० "एलीटरिस"।

उदरशोधक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला जीरा। स्याह जीरा।

उदर सर्वस्व–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भोजन चञ्चु। शिकम परस्त। चटोरा।

उदर संस्थान–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Digestive System) पोषण संस्थान।

उदर स्फुटा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Piper betle, *Linn.*) नागवल्ली। पान। वै० निघ०।

उदराग्नि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] जठराग्नि।

उदराद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उदर में होने वाला क्रमि। च० सू० १९ अ०।

उदराध्मान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पेट का फूलना। अफारा।

उदरानलपत्रक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लघु तालीशपत्र। वै० निघ०।

उदरामय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पेट का रोग। अतिसार रोग। दे० "अतिसार"

उदरामयकुम्भ केशरी–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकारकी उदर रोगमें प्रयुक्त औषधि। योग–पारा, गंधक, ताम्रभस्म, कुटकी, यवक्षार, सोहागा भुना, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, अजवायन, भुनी हींग, पाँचों नमक इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण करके कड़ी धूप में रखकर जम्भीरी नीबू के रस की भावना देकर उड़द प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसे द्राक्षासव या जल के साथ खाने से व्रण, यकृत्-वृद्धि, क्रमि, अग्रमांस, प्लीहोदर, जलोदर, मंदाग्नि, पाँच प्रकार के गुल्म, आमवात, कमठ (कछुई) और अम्लपित्त का नाश होता है। र० चि०। र० चं० उदर रो० चि०। रस० यो० सा०।

उदरामयिन्–वि० [सं० त्रि०] उदरामय युक्त। अतिसारी।

उदरारिरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसौषध। योग–(१) पारा, शुक्ति भस्म, तूतिया, शुद्धजमालगोटा, पीपल और अमलतास की गूदी इन्हें समान भाग लेकर थूहर के दूध में घोटकर उड़द प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके उपयोग से स्त्रियों का जलोदर नष्ट होता है। अनुपान–अम्ली का प्रपानक। पथ्य–दही, भात। इसके देने से तीव्र विरेचन होता है। इसलिये योग्यतापूर्वक विचार कर प्रयोग करें। यह और भी रोगों तथा जलोदर में गुणकरता है। रस० यो० सा०।

(२) पारा, गंधक, बच्छनाग, शिंगरफ, अभ्रकभस्म, ताम्र-भस्म, और मिर्च इन्हें समभाग लेकर क्रम से धत्तूर, चित्रक, भाँगरा, सहिजन, तुलसी, मदार की जड़, अदरख, अग्निदमनी, हड़, सोंठ, मिर्च, पीपर, कुचिला इनके क्वाथ तथा रस और छाग पित्त की तीन-तीन भावना पृथक्-पृथक् देकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग-विधि-इसे त्रिकुटा और अदरख के रस के साथ देने से प्लीहा, गुल्म और जठर रोगों का नाश होता है। पीपल और मधु के साथ देने से राजरोग और परिणाम-शूल का नाश होता है। भाँग के साथ देने से घोर अतिअतिसार का नाश होता है। हींग और हड़के साथ देने से अग्निमान्द्य का नाश होता है। कचूर और जल के साथ देने से ज्वर का नाश होता है। अदरख के साथ देने से सन्निपात का नाश होता है। हींग और करंज के साथ देने से उदर रोग का नाश होता है।

पथ्य—दही, भात, और छाँछ।

(३) शुद्ध गंधक, शुद्ध पारद, शुद्ध शुक्ति भस्म, नीलाथोथा, जमालगोटा, पीपर, और अमलतास की गूदी, हड़ की छाल प्रत्येक समान भाग-इन्हें चूर्ण कर थूहर के दूध में खरल कर १ मा० प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके सेवन से स्त्रियों के जलोदर का नाश होता है। पथ्य-अम्ली का पन्ना, दही और भात। इससे तीव्र दस्त होते हैं (योग तरंगिणी)।

उदरारि-लौह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] थूहर, आक, दन्ती, धव, चित्रक, फंजी, शोथारि (पुनर्नवा), पाश (वरुण), आसन, सूरन, मानकंद, जामातृ, (गजपीपल), पालिन्धी (निशोथ), मन: (जटामांसी), चित्रक, कटसरैया, विडंग, ताल, खरमञ्जरी (अपामार्ग), इन प्रत्येकका क्षार ४ पल, और पलाश का क्षार सबके बराबर लेकर चौगुने पानी में पकाएँ। जब अष्टमांश शेष रह जाय, तब इसमें १६ पल शुद्ध लौह मिलाकर पुन: पकाएँ जब चौथाई शेष रहे, तब इसमें आक और थूहरका दूध ८ पल मिलाकर ताम्रके पात्र में १६ पल घृत और पुनर्नवा, भिलावाँ, चित्रक, दन्तीमूल, निशोथ, इन्द्रायण की जड़, आक, वृद्धमूल (विधारा), कंचुकी (चनाखार), मुशली, जंगली कपास की जड़, अपराजिता, नील, हस्तीकंद ४–४ पल प्रमाण लेकर क्वाथ करें जब अष्टमांश शेष रहे तबइसमें पांचों नमक, पाँचों क्षार पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, अजमोद, शु० हिंगुल, भिलावाँ, चीते की जड़, मूशली, इन्द्रायण की जड़, निशोथ, गिलोय, पुनर्नवा, सूरन, मानकंद, वायविडंग, दंतीमूल, पीपलामूल इन्हें लोह के बराबर चूर्ण कर मिलाकर पाक करें, पुन: स्वर्ण माक्षिक भस्म, कंकुष्ट, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गूगल, शुद्ध गंधक, शुद्ध पारा इन्हें एक-एक पल प्रमाण ले क्वाथ करें। शीतल होने पर इसमें ८ पल शहद और घृत मिलाकर लोहपात्र में लोहदंड से मर्दन कर रक्खें।

गुण तथा उपयाग विधि—६ रत्ती की मात्रा में लेकर शहद और घृत मिलाकर लोहपात्र में लोहदंड से घिसकर चाटें, इसी तरह हर रोज एक रत्ती बढ़ाकर चाटें, जब ३६ रत्ती तक पहुँच जाय तब फिर इसी क्रम से घटा-घटा कर चाटें। जब ८ रत्ती लोह एक मात्रा में आ जाय तब घटाना चाहिये। इस प्रकार सेवन करने से यह समस्त उदर रोग, हर प्रकार के शोथ, अर्श, गुल्म, पांडु, कामला, जल के विकार, और हर प्रकार का विष दोष नष्ट होता है। रस० यो० सा०।

उदरावर्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नाभि। ढोंढ़ी। नाफ। रा० नि० व० १८।

उदरावेष्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीर कृमि का एक भेद। पेट का केंचुवा। शार्ङ्ग० ७ अ०। दे० "कृमि"।

उदरिक-संज्ञा पुं० दे० "उदरिन्"।

उदरिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भवती। अन्तर्वत्नी। हे० च०।

उदरिन्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़े पेटवाला।

उदरिल,-उदरी–वि० [सं० त्रि०] महोदर युक्त। बड़े पेट वाला। हे० च०।

उदरीय पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदर की पेशी। पेट का पट्ठा। (Abdominal muscle.)

उदरीया महाधमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Descending aorta.) अधोगा बृहद्धमनी।

उदरोच्छदा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का बेर।

उदर्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) Datura fastuosa, *Linn.* धुस्तूर वृक्ष। धतूरे का

पेड़। (२) मदनकण्टक। मैनफल। मे० कत्रिक।

उदर्चिस्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि। आग। मे०। (२) कामदेव। (३) शिव।

त्रि० [सं० त्रि०] प्रज्वलित। भभकता हुआ।

उदर्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रोग जो शिशिर ऋतु में होता है। इसमें शरीर पर ददोरे निकलते हैं। ये ददोरे बीच में गहरे और किनारों पर ऊँचे होते हैं। इनका रंग लाल होता है और इनमें खुजली होती है। वैद्यक के अनुसार यह रोग कफ की अधिकता से होता है।

पर्य्या०—ददोरा, जुड़पित्ती, पित्ती, छपाकी (हिं०)। त्रनातुल् लैल (अ०)। बलग़मी पित्त, बलग़मी छपाकी। (उ०)। अर्टिकेरिया Urticaria, नेट्ल रैश Nettle-rash, हाइव्ज़ Hives (अं०)।

"उदर्द" और "शीतपित्त" का भेद—देखो "शीतपित्त" में।

चिकित्सा आदि के लिए भी दे० "शीतपित्त"।

उदर्दप्रशमन महाकषाय–
उदर्द प्रशमन वर्ग– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक के अनुसार ओषधियों का एक वर्ग जो उदर्द अर्थात् जुड़पित्ती को शमन करनेवाला है। इस वर्ग में निम्नलिखित ओषधियाँ सम्मिलित हैं—

तेंदू, पियाल (चिरौंजी), बेर, खदिर, श्वेत खदिर, छतिवन, शाल, अर्जुन, पीतशाल और विट्खदिर। च० सू० ४ अ०।

उदर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का ज्वर। लालबुखार, शोणित ज्वर, सुर्ख़ बुखार। (Scarlet fever) Wil.

उदर्य-वि० [सं० त्रि०] (Ventral) उदर का। उदर सम्बन्धी।

उदल-संज्ञा पुं० [देश०] गुलकाँडर, गुलबोडल (पं०)।

उदलावणिक-वि० [सं० त्रि०] लवण-जल में पकाया हुआ पकवान। हला०।

उदवाह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलवाहक। पानी ढोनेवाला।

उदवेग-संज्ञा पुं० [सं० उद्वेग] दे० "उद्वेग"।

उदशराव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलपूर्ण शराब। पानी से भरा हुआ प्याला।

उदश्रु-त्रि० [सं० त्रि०] निर्गताश्रु। आँसू बहानेवाला।

उदश्वित्-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तक्र। मठा। आधा पानी मिला हुआ मट्ठा। अर्द्ध जलयुक्त तक्र। वह तक्र जो दधि में समानभाग जल डालकर तैयार किया गया हो। जैसे-"दध्यम्भसौ यदि समेतदुदश्विदाहुः।" रा० नि० व० १५। प० प्र० ३ खं०।

गुण—प्यास, दाह, मुखशोष और लेप द्वारा कुष्ठ नष्ट होता है। राज०। पित्त और कफनाशक है। रा० नि० व० १५।

उदहरण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुम्भ। घड़ा। र० मा०। अम०।

उदहरिकाम्ल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Hydrochloric acid) नमकका तेज़ाब। लवणाम्ल। उज्जहरिकाम्ल।

उदाज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रेरण। पहुँचाने का काम।

उदानावृतप्राण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह प्राण जो उदान वायु द्वारा आवृत्त हो। लक्षण—उदानवायु द्वारा प्राणवायु के आवृत होजाने पर वर्ण, ओज और बल का नाश होता है। वा० नि० १६ अ०।

उदाप्य-अव्य० [सं०] धारा के ऊपर। दरिया के सामने।

उदायुध-वि० [सं० त्रि०] उद्धृतास्त्र। हथियार उठाए हुआ।

उदात्यूह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलकाक। जल कौआ। पानकौड़ी (बं०)। वै० निघ०।

उदान-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में शरीरस्थ पाँच वायुओं में से एक उदानवायु का कर्म—छींक, डकार, वमन और निद्रा के वेग को रोकने से, भारी बोझ उठाने से, अत्यन्त हँसने वा रोने से तथा ऐसे ही अन्य कर्मों से कुपित होकर कंठरोध, मनोभ्रंश, वमन, अरुचि, पीनस

तथा जत्रु से ऊपर होनेवाले अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। उदानवायु द्वारा प्राणवायु के आवृत्त होजाने से वर्ण, ओज और बल का नाश होता है तथा जब प्राणवायु उदानवायु का आवरण कर लेता है, तब उच्छ्वास लेने और निकालने में रुकावट होती है और प्रतिश्याय, शिरोग्रह, हृद्रोग और मुखशोष ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं। वा० नि० १६ अ०।

उदार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दीर्घ शालि। लम्बा चावल।

संज्ञा पुं० [देश० अवध] गुलू नाम का एक वृक्ष।

उदावत्सर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वर्ष विशेष। इस वर्ष में चाँदी का दान करने से मनुष्य सुखी होता है। दे० "इदावत्सर"।

उदावर्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नाभि। (२) एक प्रकार का साँप।

(३) गुदा का एक रोग जिसमें काँच निकल आती है और मलमूत्र रुक जाता है। वैद्यक-शास्त्र के अनुसार यह रोग वायु के बिगड़ने से होता है। यह वायु, अधोवायु, मल, मूत्र, जँभाई, आँसू (रोवाई), छींक, डकार, वमन, काम (वीर्य), भूख, प्यास, नींद के वेगों को रोकने से तथा श्वास रोग से कुपित हो जाती है। गुदग्रह। काँच। कहा है--

"वात विण्मूत्रजृम्भाऽश्रु क्षवोद्गार वमीन्द्रियैः।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्त्तसम्भवः॥"
(भा० । मा० नि०)

नोट—जिस रोग में वायु का आवर्त्त या चक्कर ऊपरकी ओर जाता है, उसे वैद्य उदावर्त्त कहते हैं।

कहा है—

"यत्रोर्ध्वं जायते वायोरावर्त्तः स चिकित्सकैः।
उदावर्त्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्रानिलः प्रभुः॥"
(भा०)

यह उदावर्त्त का सामान्य लक्षण है।

वायु शब्द से यहाँ "गुदा की हवा" या "अधोवायु" समझनी चाहिए। जिस रोग में हवा ऊपर की तरफ चढ़ती है, उसे उदावर्त्त कहते हैं। डल्लनाचार्य ने अपनी सुश्रुत की टीका में कहा है—

"ऊर्ध्वं वातविण्मूत्रादीनां आवर्त्तो भ्रमणं यस्मिन् स उदावर्त्तवातोत्र अधः प्राप्तोऽपानवायु"

उदावर्त्त रोग के निदान-कारण

"सुश्रुत" में लिखा है—अधोवायु–गुदा की हवा, पाखाना, पेशाब, जँभाई, आँसू क्षव (छींक), (डल्लन के अनुसार हिक्का), डकार, वमन, क़ै, वीर्य (इंद्रिय)-इनके उद्गत होने पर रोक लेने से उदावर्त्त रोग हो जाता है और भूख, प्यास, श्वास और नींद–इनके (विशेष या अयोग्य) रोकने से भी उदावर्त्त हो जाता है।

और भी कहा है—

"वायुः कोष्ठानुगो रुक्षैः कषाये कटुतिक्तकैः।
भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्त्तं करोति हि॥

अर्थात्—रूक्ष, कषाय, कटु और तिक्त द्रव्य भोजन करने से कुपित हुआ वायु तत्काल उदावर्त रोग पैदा करता है।

नोट—यह स्मरण रहे कि वेग दो प्रकारे के होते हैं—(१) शारीरिक, पुनः इसके दो भेद हैं, पहला अधः और दूसरा ऊर्द्ध्व। (२) मानसिक। उपर्युक्त तेरह वेग शारीरिक हैं अर्थात् इनका संबंध शरीर से है। काम क्रोध, मद, मोह, लोभ, ईर्षा-द्वेषादि मानसिक वेग हैं। इनका संबन्ध मन से है। मलमूत्रादि शारीरिक वेगों के रोकने से रोग होते हैं। पर कामक्रोधादि मानसिक वेगों के रोकने से शरीर निरोग एवं स्वस्थ रहता है। इसलिये चतुर मनुष्य को मानसिक वेग रोकने का सदैव प्रयत्न करना चाहिये; परन्तु शारीरिक वेगों को भूलकर भी न रोकना चाहिये। "सुश्रुत" में लिखा है—

अधश्चोर्द्ध्वं च भावाना प्रवृत्तानां स्वभावतः।
न वेगान्धारयेत्प्राज्ञो वातादीनां जिजीविषु॥

जीवन की इच्छा रखनेवाले बुद्धिमानों को चाहिये, कि वे स्वभाव से ही नीचे की ओर और ऊपर की ओर प्रवृत्त होनेवाले वातादि के वेगों का कभी न रोकें।

उदावर्त्त की संख्या

अधोवायु आदि तेरह वेगों के रोकने से तेरह प्रकार के उदावर्त्त रोग होते हैं। इन तेरह के अतिरिक्त एक और चौदहवाँ उदावर्त्त "अपथ्य भोजन" से भी होता है। (सुश्रुत)

उदावर्त्त के लक्षण

अपानवायु के रोकने से उत्पन्न हुए उदावर्त्त के लक्षण

"सुश्रुत" में—पेट का अफरना, शूल चलना, हृदय का रुकना, सिर में दर्द, श्वास, हिचकी, खाँसी, प्रतिश्याय, गला रुकना, कफ और पित्त का घोर उद्रेक, अपानवायु द्वारा मलका रुकना अथवा मुँह की राह से पाखाना निकलना—ये लक्षण अपानवायु के उदावर्त्त के लिखे हैं। यह उदावर्त्त का सामान्य लक्षण हैं।

"माधवनिदान और भावप्रकाश" के अनुसार इसमें अपानवायु का रुकना, मलमूत्र का रुकजाना, अफारा होना, अनायास ही थकान सी होना और सारे शरीर में दर्द तथा वायु की और-और पीड़ायें होना—ये लक्षण होते हैं।

मल रोकने के उदावर्त्त के लक्षण

"सुश्रुत, माधवनिधान और भावप्रकाश" में-पेट में गुड़-गुड़ शब्द होना (आटोप), पक्काशय में शूल या दर्द होना, गुदा में कतरने कीसी पीड़ा होना, मल नहीं उतरना(पाखाना न होना), खट्टी-खट्टी डकारें आनी और कभी-कभी मुँह की राह से मल निकलना—ये लक्षण मलरोधोत्पन्न उदावर्त्त के लिखे हैं।

मूत्र रोकने के उदावर्त्त के लक्षण

"सुश्रुत" के अनुसार इस उदावर्त्तमें ये लक्षण होते हैं—कष्ट से थोड़ा-थोड़ा पेशाब होता है। लिंग, गुदा, वंक्षण (नलों), फ़ोतों और नाभि में तेज़ दर्द होता है; शिर में तीव्र वेदना होती है और वस्ति (पेडू) फूल जाता है। इन अंगों में शूलों से छेदने की सी पीड़ा होती है।

"माधवनिदान तथा भावप्रकाश" में इस उदावर्त्त के ये लक्षण दिये हैं—मूत्राशय और लिंग में दर्द होता है; पेशाब कष्ट के साथ आता है; सिर में दर्द होता है; दर्द के मारे शरीर सीधा नहीं होता—शरीर बेकाबू हो जाता है; वंक्षण वा पेडू में अफारा होता है अथवा दोनों वंक्षणों या पट्ठों में खिंचाव का सा दर्द होता।

जँभाई के रोकने के उदावर्त्त के लक्षण

"सुश्रुत" के अनुसार जँभाई के रोकने से मन्यास्तंभ और गलस्तंभ होता है; शिर में विकार और वात के रोग तथा कान के, मुँह के, नाक के और नेत्रों के तीव्ररोग होजाते हैं।

इसमें मन्यास्तंभ, गलस्तंभ और शिरोरोग होते हैं; आँख, नाक, कान और मुँह में तीव्र पीड़ा होती है। (मा० नि० । भा०)

आँसू रोकने के उदावर्त्त के लक्षण

आनन्द या शोक से आते हुए आँसू रोकने से सिर भारी होजाता है। नेत्रों में पीड़ा होती है और प्रबल पीनसरोग होजाता है। (सु० । मा० नि० । भा०)।

छींक रोकने के उदावर्त्त के लक्षण

"सुश्रुत" में लिखा है—छींक रोकने से सिर, आँख, नाक और कानों में भारी रोग होजाते हैं; कंठ और मुँह भरे हुए से मालूम होते हैं; पीड़ा भी होती है और वायु की आवाज़ और प्रवृत्ति होती है।

आती हुई छींक रोकने से गर्दन के पीछे की "मन्या" नाम की नस रह जाती है। सिर में शूल चलते हैं। आधासीसी होजाती है। अर्दित वात या लकवा होजाता है, अर्थात् आधा चेहरा टेढ़ा होजाता है और सारी इन्द्रियाँ कमजोर होजाती हैं।

डकार रोकने के उदावर्त्त के लक्षण

"सुश्रुत" में लिखा है—डकार के रोकने से मनुष्य को वायु के विकार होते हैं। यथा—उद्गार वेगे विहते भवंति जंतोर्विकाराः पवनप्रसूताः।

"माधवनिदान" तथा "भावप्रकाश" के अनुसार—मुँह और कंठ कौर से रुका हुआ मालूम होता है; हृदय और आमाशय में सूई चुभाने की सी पीड़ा होती है। पेट में हवा गूँजती है और मुँह से अस्पष्ट वाक्य निकलते हैं।

वमन रोकने के उदावर्त्त के लक्षण

"सुश्रुत" के मत से वमन के रोकने से कोढ़ हो जाता है और अन्न विदग्ध हो जाता है।

"माधवनिदान" और "भावप्रकाश" में लिखा है—आती हुई वमन या कै को रोकने से शरीर में खाज, चकत्ते और झाँई ये उपद्रव होते हैं; शरीर में दाह या जलन होती है; भोजन पर अरुचि या अनिच्छा होती है और कोढ़, सूजन, पांडु, ज्वर, हल्लास (जी मिचलाना या सूखी उबकाइयाँ आना) तथा विसर्प रोग होते हैं।

वीर्य रोकने के उदावर्त्त के लक्षण

स्त्री-प्रसंग (वा स्वप्न मैथुनादि) के समय निकलते हुए वीर्य के रोकने से पेड़ू (मूत्राशय) गुदा और फोतों में सूजन और पीड़ा होती है; पेशाब रुक जाता है, वीर्य की पथरी हो जाती है; वीर्य जाता है और नाना प्रकार के कष्ट साध्य मूत्राघात रोग हो जाते हैं। (सुश्रुत, माधव निदान, भावप्रकाश)

भूख रोकने के उदावर्त के लक्षण

भूख लगने पर भोजन न करने से अर्थात् भूख रोकने से तंद्रा, अंग टूटना, अरुचि, थकान मालूम होना और नज़र कमजोर होना—ये लक्षण होते हैं। (सु०। मा० नि०। भा०)

प्यास रोकने के उदावर्त के लक्षण

प्यास रोकने से गला और मुँह सूखना, कानों से कम सुनाई देना, हृदय और छाती में दर्द होना ये शिकायतें होती हैं। (सु०। मा० नि०। भा०)

श्वास रोकने के उदावर्त के लक्षण

परिश्रम करके थके हुए मनुष्य के साँस रोकने से हृद्रोग, मोह (मूर्च्छा या बेहोशी) और पेट में गुल्म या गोला पैदा हो जाता है। (सु०। मा० नि०। भा०।

नींद रोकने के उदावर्त के लक्षण

नींद रोकने अर्थात् नींद मालूम होने पर न सोने से जँभाई आती है; अंग टूटते हैं, शिर शरीर और आँखें भारी हो जाती हैं; तंद्रा या ऊँघाई आती है। (सु०। मा० नि०। भा०)

अपथ्य भोजन के उदावर्त के लक्षण

रूखा, कषैला, कड़वा और चरपरा भोजन करने से कोठे की वायु (अपानवायु) कुपित हो जाती है। वह कुपित हुई वायु मल, मूत्र, आँसू (असृक या खून—सु०) कफ और मेद बढ़ाने वाली नाड़ियों की राह रोककर मल को सुखा देती (बहुत दस्त लाती है—सु०) है। तब रोगी हृदय और वस्तिशूल से दुःखी तथा हल्लास (जी मिचलाना) और ग्लानि (गौरव और अरुचि—सु०) से पीड़ित होता है। उसे अधोवायु और मल-मूत्र अत्यंत कष्ट से और थोड़े-थोड़े उतरते हैं। श्वास, खाँसी, जुकाम, दाह, मोह, प्यास, ज्वर वमन, हिचकी और सिर में दर्द आदि वातविकार होते हैं। मन में भ्रम होता है और श्रवण में भी भ्रम होता है अर्थात् मन में वहम उठते हैं और कुछ का कुछ सुनाई देता है। (भा०)

नोट—सुश्रुत में भी कुछ भेद के साथ ऊपर लिखे हुये लक्षण ही दिये हैं।

कभी तो यह रोग बहुत से दस्त आ-आकर बढ़ता है और कभी दस्त, पेशाब और अधोवायु रुककर बढ़ता है।

असाध्य उदावर्त्त के लक्षण

"सुश्रुत" में असाध्य उदावर्त्त के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—अत्यन्त प्यास लगना, रोगी का शरीर क्षीण हो जाना, शूल चलना और विष्ठा की वमन होना—जिस उदावर्त्त रोगी में ये लक्षण पाये जायँ, उसे असाध्य समझना चाहिये। भावप्रकाशकार ने "कै-पर-कै होना" इतना अधिक लिखा है।

उदावर्त्त की चिकित्सा

चिकित्सा-क्रम

(१ सुश्रुत में लिखा है—

"सर्वेष्वेतेषु विधिवदुदावर्त्तेषु कृत्स्नशः।
वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्ग प्रतिपत्तये।
सामान्यतः पृथक्त्वेन क्रियां भूयो निवोधमे॥"

अर्थात् इन सब प्रकार के उदावर्त्तों में समग्रतया ऐसी क्रिया करनी चाहिये, जिससे अपने-अपने मार्गों में वायु का ठीक-ठीक संचार होने लगे (क्योंकि इसमें प्रधान कारण वायु ही हुआ

करता है); सामान्यतः मुख्य चिकित्सा सबकी यही है, विशेषता से सबकी जुदी-जुदी चिकित्सा सुनो ।

नोट—उदावर्त के कारणों में वायु प्रधान कारण है । कहा भी है—

"उदावर्त्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्रानिलः प्रभुः ।"
(भा०)

(१) अतः यदि सभी प्रकारके उदावर्तों की एक ही चिकित्सा करनी हो, तो ऐसा उपाय करें, जिससे वायु का अनुलोमन हो अर्थात् वायु का रुख नीचे की ओर होजाय । जिस क्रिया से वायु का अपने अपने स्वाभाविक मार्गों से ठीक-ठीक संचार अथवा वायु का अनुलोमन हो, वही उदावर्त की 'सामान्य चिकित्सा' है । उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के उदावर्त्तों की पृथक्-पृथक् चिकित्सा, उदावर्त्तों की 'विशेष चिकित्सा' है ।

(२) अधोवायु रोकने से उत्पन्न हुए उदावर्त्त में, स्नेहपान कराना, गुदा में पिचकारी लगाना और गुदा में फलवर्त्ति या बत्ती चढ़ाना—ये क्रियाएँ हितकारी हैं । (भा०)

"सुश्रुत" में स्नेहपान कराकर और पसीने दिलाकर आस्थापन वस्ति करना हितकारी लिखा है ।

(३) मल रोकने से पैदा हुए उदावर्त्त में दस्तावर अन्न देना, दस्तावर दवा देना, गुदामें बत्ती चढ़ाना, तेल आदि की मालिश (अभ्यंग) कराना, अवगाहन कराना अर्थात् जल वा तेल में बैठाना, सेक प्रभृति करके पसीने (स्वेद) दिलाना और वस्तिकर्म अर्थात् गुदा में पिचकारी लगाना—ये क्रियाएँ हितकारी हैं । (भा०)

"सुश्रुत" के अनुसार मलरोध से होनेवाले उदावर्त्त की चिकित्सा आनाह रोग की तरह करनी चाहिए ।

(४) मूत्ररोधजनित उदावर्त्त में मूत्रकृच्छ्र और पथरी की चिकित्सा करनी चाहिए । (भा०)

"सुश्रुत" के अनुसार इसमें पथरी के छेदन करनेवाले योगोंका उपयोग करें अथवा आद्योपांत मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात में उल्लिखित योगों का सेवन करें ।

(५) जँभाई रोकने से हुए उदावर्त्त में स्नेहन अथवा स्वेदन क्रिया करनी चाहिये । (सु०)

"भावप्रकाश' में इसमें वातनाशक उपायों का और विधान है ।

(६) आँसुओं के रोकने से हुए उदावर्त्त में स्निग्ध या चिकना स्वेदन करके आँसू निकाल देने चाहिये । (सु०)

'भावप्रकाश" के अनुसार इसमें अच्छी तरह रोकर आँसू निकाल देने चाहिये । इसके उपरांत रोगी को सुखपूर्वक सुलाना चाहिये और मनोरंजक बातें कहनी चाहिए । किसी-किसी ने लिखा है, रोगी की आँखों में तीव्र अंजन लगाकर अश्रुमोक्षण कराएँ और उसे प्रसन्न रखें ।

(७) "सुश्रुत" में छींक रोकने से हुए उदावर्त्त में तीक्ष्ण अंजन आँजने और अवपीड़ नस्य तथा प्रधमन नस्य से काम लेने की राय दी है और लिखा है कि इसमें तेज़ चीज़ सुँघानी चाहिए, नाक में बत्ती डालकर छींक लानी चाहिए या सूर्य की तरफ़ देखकर सूर्य की किरणों का प्रकाश नाक में पहुचाकर छींक लानी चाहिए ।

"भावप्रकाश" के अनुसार मिर्च और राई प्रभृति तेज़ चीज़ें सूँघनी चाहिये; नाक में कपड़े आदि की वत्ती डालकर छींक लेनी चाहिये और स्नेहन तथा स्वेदन कर्म भी करने चाहिये ।

(८) डकार रुकने के उदावर्त्त में चिकनाई मिले हुए पदार्थों का धूआँ पीना चाहिये ।(सु० । भा०)

(९) वमन रुकने के उदावर्त्त में दोषानुसार स्नेहन कर्म करना चाहिये तथा जवाखार और नमक मिले तेल आदि की मालिश करनी चाहिये । (सु०)

"भावप्रकाश" के अनुसार इसमें वमन-लंघन और विरेचन कराने चाहिये और तेल की मालिश करानी चाहिये ।

(१०) वीर्य के वेग रोकने से हुए उदावर्त्त में वस्तिशोधक अर्थात् मूत्राशय को शुद्ध करनेवाले द्रव्य गोखरू प्रभृति और चौगुना पानी डालकर औटाना चाहिये । जब पानी जलकर दूधमात्र रह जाय, उसमें मिश्री मिलाकर, रोगी को पेट भरकर

पिलाना चाहिये और प्यारी स्त्रियों से रमण कराना चाहिये । (सु०)

प्यारी नारी के साथ संभोग करना चाहिये, तेल की मालिश करनी चाहिये; जल में अवगाहन करना चाहिये अर्थात् ग़ोता मारना चाहिये; शराब पीनी चाहिये; मुर्ग़ी का मांस, शालि चावल और दूध खाना चाहिये और निरूह वस्ति करनी चाहिये—ये उपाय "भावमिश्र" महोदय ने अधिक लिखे हैं ।

नोट—शुक्रोदावर्त्त में रमणार्थ श्यामा नारी ग्रहण करने का विधान है । क्योंकि गोर नारी के साथ अत्यंत रमण से मूत्रकृच्छ्र रोग होता है । हारीत मुनि ने मूत्रकृच्छ्र रोग में लिखा है—

"गौरस्त्रीसेवनेनापि रक्तं वापि प्रवर्त्तते" इति ।

(११) क्षुधा रोकने के उदावर्त्त में चिकना, गरम-गरम थोड़ा भोजन देना उचित है । (सु०)

"भावप्रकाश" के अनुसार इसमें चिकने गरम रुचिकारी और मन चाहे पदार्थ थोड़े-थोड़े खाने चाहिये अर्थात् कम खाने चाहिये । इत्र और फूल प्रभृति सुगंधित चीज़ें सुँघानी चाहिये ।

(१२) प्यास रोकने के उदावर्त्त में "सुश्रुत" के अनुसार मंथ और शीतल यवागू पिलाना हितकर है ।

"भावप्रकाश" के अनुसार इसमें सभी शीतल क्रियाएँ करानी चाहिये । कपूर-मिला या कमल से सुवासित किया हुआ पानी बारंबार और थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिये ।

(१३) थकान में साँस रोकने से हुये उदावर्त्त में मांस-रस के साथ भोजन कराना चाहिये । (सु०)

"भावप्रकाश" ने इसमें "आराम करना" ज्यादा लिखा है ।

(१४) नींद का वेग रोकने से हुए उदावर्त्त में दूध पीकर अच्छी-अच्छी बातें सुनता हुआ इच्छापूर्वक सोवे । (सु०)

"भावप्रकाश" के अनुसार इसमें मिश्री-मिला गरम दूध पीना चाहिये; हाथ-पैरों को दबवाते हुए सुखदायी पलंग पर सोना चाहिये; मनोरञ्जक किस्से-कहानी सुनते हुये इच्छानुसार सोना चाहिए ।

(१५) उदावर्त्त में जो प्रायः अफारा होता है और उससे जो-जो शूल आदि रोग होते हैं, उनका यथायोग्य प्रयत्न करना चाहिये । जो-जो यत्न जिस-जिस रोग में कहे हैं, उन रोगों के यहाँ होने पर, वही यत्न करने चाहिये । (सु०)

उदावर्त्त की विशेष चिकित्सा

अधोवायुजनित उदावर्त्त की चिकित्सा

(१) अधोवायु और मल-मूत्र रोधोत्पन्न उदावर्त्त में "मदनफलादि वर्त्ति" अति ही लाभकारी है । शास्त्र में इस फलवर्त्ति से अपथ्यजनित एवं और भी सब तरह के उदावर्त्त आराम होने की बात लिखी है ।

मलजनित उदावर्त्त की चिकित्सा

(२) निशोथ २ तो०, पीपर ४ तो०, हरीतकी ५ तो० और गुड़ ११ तो०—इनको पीस-छानकर ३ से ६ मा० तक खाने से मल रोकने का उदावर्त्त और आनाह रोग नाश हो जाते हैं ।

(३) हींग, शहद और सेंधा नमक—इनको बराबर-बराबर लेकर पीसकर बत्ती बनाएँ । पुनः इस बत्ती को घी में तर करके गुदा में रखने से मल रुकने का उदावर्त्त नष्ट हो जाता है ।

मूत्ररोधजनित उदावर्त्त की चिकित्सा

(४) बच का चूर्ण खाकर, ऊपर से जल-मिला दूध पीने से मूत्रजनित उदावर्त्त नाश हो जाता है । (भा०)

(५) शराब में कालानमक मिलाकर पीने से मूत्रजनित उदावर्त्त नाश हो जाता है । (सु०)

(६) इलायची को शराब के साथ अथवा दूध के साथ अथवा पानी के साथ सेवन करने से यह उदावर्त्त आराम हो जाता है । (सु०)

(७) आँवलों के स्वरस में पानी मिलाकर तीन दिन तक पीने से यह उदावर्त्त नष्ट होता है ।

(८) ककड़ी के बीज पानी के साथ सिलपर पीसकर, पानी में घोलकर और थोड़ा नमक मिलाकर पीने से यह मूत्रजनित उदावर्त्त जाता रहता है। (भा०, सु०)

(९) मिश्री ईख का रस, दूध, दाख और मुलेठी का रस पीने से मूत्रजनित उदावर्त्त नष्ट हो जाता है।

डकार जन्य उदावर्त्त की चिकित्सा

(१०) शराब में काला नमक और बिजौरे नीबू का रस मिलाकर पीना चाहिये। (सु०)

छींक जन्य उदावर्त्त की चिकित्सा

(११) नकछिकनी की पत्ती को सूखा पीस कर और नाक से सूँघकर छींके लेनी चाहिये।

वमन जनित उदावर्त्त की चिकित्सा

(१२) जवाखार और सेंधानमक बराबर-बराबर लेकर महीन पीसकर और तेल में मिलाकर मालिश करें। इस उपाय से अवश्य लाभ होता है।

वार्य जनित उदावर्त्त की चिकित्सा

(१३) पंचतृण-मूल के सिलपर पानी के साथ पीसकर एक भाग दूध और चार भाग पानी में मिलाकर औटाओ। जब दूध मात्र रह जाय, छानकर और मिश्री मिलाकर पीलो। इससे वीर्य जनित उदावर्त्त नाश होजाता है।

रूक्षादि अपथ्य पदार्थ जनित उदावर्त्त

नोट—इसमें प्रागुक्त नं० १ और २ के दोनों योग लाभकारी हैं।

उदावर्त्त रोग नाशक उत्तमोत्तम योग

नाराचचूर्ण, गुड़ाष्टक, शुष्कमूलाद्यघृत, स्थिराद्य घृत, वृहत् इच्छाभेदी रस, त्रिवृत्तवटिका इत्यादि।

पथ्यापथ्य

पथ्य-हितकारी आहार विहार।

उदावर्त्त और आनाह रोग में वायु को शांत करनेवाले खान-पान हितकारी हैं। पुराने चावलों का भात, घी मिलाकर गरमागरम खाना चाहिये। मिश्री का शर्बत, कच्चे नारियल का पानी, पका पपीता, वेदाना अनार, इक्षुरस, सीताफल अर्थात् शरीफा अच्छे हैं। मागुर, शिंगी, कवई आदि छोटी मछलियों के मांस का शोरबा, बकरेके मांस का रस, ज़मीकंद, परवल, बैंगन, गूलर, पुराना पेठा, सहँजने का डंडा, आँवले, कसेरू, दाख, बेल-फल, नारियल की गरी, गरम दूध, धनिया, हल्दी, हींग, सेंधानमक इत्यादि पथ्य हैं।

रात को भूख लगे तो वही गरम भात घी पिलादो, यदि भूख तेज न हो, तो दूध-मिला साबूदाना, जौ के आटे की लपसी, दूध और चावलों की खीर अथवा थोड़ा सा हलुवा पथ्य है। तेल की मालिश; यदि सहन हो सके तो गरम या शीतल जल से स्नान, तीसरे पहर की हवा खाना लाभदायक है।

मांस और दूध या दूध मछली एक साथ कभी न खाने चाहिये, क्योंकि ये संयोगविरुद्ध हैं, अन्यथा नये-नये रोग पैदा होजाते हैं।

इसमें पसीना देना, जुलाब देना, गुदा में पिचकारी देना, गुदा में बत्ती चढ़ाना, पाखाना-पेशाब, अपानवायु का त्याग, कैष्टर ऑइल का जुलाब, शराब, छोटी मछली, अमलतास, निशोथ, हरड़ के पत्ते, अदरख, बिजौरा नीबू, हरड़, लौंग, हींग, दाख, गोमूत्र, सबह तरह के नमक ये सब उदावर्त्त और आनाह रोग में पथ्य हैं। उदावर्त्त और आनाह रोग में हलका जुलाब देकर दस्त कराना अथवा गुदा में बत्ती लगाकर दस्त कराना सदा हितकर है।

अपथ्य

देर में हजम होनेवाले पदार्थ, गरम रूखे भोजन, रात में जागना, कसरत, पैदल चलना, रंज या गुस्सा आदि इस रोग में बुरे हैं। वमन कराना, मल-मूत्र, डकार, खाँसी, छींक आदि वेगों को रोकना, कमलकंद, जामुन, ककड़ी, तिल के पदार्थ, आलू, टैंटी, पिट्ठी के पदार्थ (कचौरी. बड़े, बड़ी), पेट में गुड़गुड़ करने वाले, स्वभाव विरुद्ध, कसैले और भारी पदार्थ त्याग दें।

उदावर्तहर घृत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उदावर्त्त रोग नाशक उक्त नाम का एक याग—कंकुष्ठ, हींग, सेंधानमक, निशोथ, दन्ती, बच, हड़, चीते की जड़, और थूहर का दूध—इन्हें समान भाग लेकर

चूर्ण करके कल्क बनावें। पुनः कल्क से चौगुना गाय का घी और घी से चोगुना गाय का दूध और चौगुना पानी लेकर सबको एक साथ यथाविधि घृत सिद्ध करें। जब पकते-पकते घृतमात्र शेष रह जाय तब उतार कर छानलें।

मात्रा—१ मा० से १ तोला।

गुण—इसके सेवन से उदावर्त्त और आनाह शीघ्र नष्ट होता है। रस र० समु०।

उदावर्ता (वृत्ता)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्रियों का एक रोग जिसमें रजोधर्म रुक जाता है और ऋतुकाल में पीड़ा के साथ योनि से फेनयुक्त रुधिर वा रज निकलता है। यथा—

"सफेनिलमुदावृत्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति।"

भा० म० ४ भ० यो० रो० चि०। यह रोग वायु के बिगड़ने से होता है।

उदावर्तानाहहर रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसौषध। योग—शुद्ध पारा और गंधक दोनों समान भाग। इन दोनों से द्विगुण त्रिकुटा और इनके बराबर भूनी हुई हींग तथा पारे का चतुर्थांश शुद्ध जमालगोटा लेकर इन्हें चूर्णकर बिजौरे की जड़ के रस में तीन दिन पर्यन्त मर्दन करें। इसमें से ४ मा० लेकर इसमें ४ ही मासे सोंठ और हींग का चूर्ण मिलाकर उपयोग करने से उदावर्त्त, और विवन्ध का नाश होता है। यह मात्रा प्राचीन काल की है, इसलिए आजकल प्रकृति के अनुकूल बिचारकर प्रयोग करना चाहिए।

उदावर्ती-वि० [सं० त्रि० उदावर्तिन्] उदावर्त रोगी। जिसे उदावर्त रोग हो।

उदावृत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]
उदावृता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } जब वायु कुपित होकर ऋतु संबन्धी शोणित (रक्त) को बड़े वेग से उलटा फिराकर ऊपर को ले जाती है और योनि को प्रपीड़ित करती है, तब वात प्रपीडित योनि बड़े कष्ट से उदावृता (वायु) झागदार रक्त को बाहर निकालती है। इस योनि व्यापत्को "उदावृत" कहते हैं। वा० उ० ३३ अ०।

उदासीन परिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सामान्य मनुष्यों की सभा। च० वि० ८ अ०।

उदासीन रेखा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Neutral line) उत्तर और दक्षिण चुम्बकीय ध्रुवों के मध्य की रखा जहाँ पर आकर्षण शक्ति का सर्वथा अभाव होता है।

उदासीनी करण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उदासीन करने की क्रिया या भाव।

उदिअम्वट बेल-[मरा०] (Vitis penate) गोधापदिका।

उदित-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तिन्नो का धान। मुन्यन्न नीवार। प० मु०। दे "निवाड़(र)"।

वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० उदिता] प्रकट। ज़ाहिर।

उदित यौवना-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तीन भाग यौवन और एक भाग बाल्यकाल की मिलित अवस्थावाली स्त्री।

उदिमरम्-[मल०] ज़ीवल (बं०)। (Odina Wodier, *Roxb.*) कश्मला, जिंगन (हिं०)। बेशरम का झाड़ (द०)।

उदीची-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] [वि० उदीचीन, उदीच्य, औदीच्य] उत्तर दिशा। उत्तरा।

उदीच्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Pavonia Odorata, *Willd.*) ह्रीवेर। सुगन्धबाला। कुरुवेरु (ते०)। सि० यो० ज्व० चि० षडङ्गपानीय। "चन्दनोदीच्यनागरैः"। सि० यो० ज्वर-चि० किरातादि। "चन्दनोदीच्यवत्सकैः"।

उदीच्यकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चोबचीनी। तोपचीनी। (Smilax China, *Linn.*) वै० निघ०।

उदीच्यादि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुगंधबाला और गेरू को चावलों के पानी में पीसकर पीने से वमन का नाश होता है। यो० र० छर्दि० चि०।

उदीप-वि० [सं० त्रि०] उद्गतजल। पानी से भरा या डूबा हुआ।

उदीरण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०](१)विजृम्भण। जमहाई। (२) उत्पत्ति। (३) उत्क्षेपण। उछाल।

उदीर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उदित। उठा हुआ। चढ़ा हुआ। (२) प्रवल।

उदीर्णवेग-वि० [सं० त्रि०] अत्यन्त जोरदार। अतिशय वेगशील।

उदीक्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दमन। (२) संदर्शन। देख-भाल।

उदुआ-संज्ञा पुं० [?] धान्य विशेष। एक प्रकार का चावल।

उदुखल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "उदूखल"।

उदुम्बर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०.क्ली०] [वि० औदुम्बर] (१) Ficus glomerata गूलर। जन्तुफल। भा० पू० अने०। दे० "गूलर"। (२) एक प्रकार का कोढ़। (३) Cuprum ताम्र। ताँबा। रा० नि० व० १३। (४) नपुंसक।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक कर्षका मान (=२ तो०)। प० प्र० १ ख०। (२) Cuprum ताम्र। ताँबा। मद० व० ४। (३) अस्सी रत्ती की एक तौल। (४) एक तोला। वै० निघ० पाना० चि० त्रिफलादिलेह। (५) शिश्न। त्रिका०। (६) एक प्रकार का रक्तजकृमि। च० सू० १९ अ०। (६) सदाफल। लघु उदुम्बर। नदी उदुम्बर। छोटा गूलर।

उदुम्बरच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ह्रस्वदन्ती वृक्ष। छोटी दन्ती का पौधा। रा० नि० व० ६। (२) दन्ती। के० दे० नि०, दे० "दन्ती"।

उदुम्बरदला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ह्रस्व दन्ती वृक्ष। छोटी दन्ती का पौधा। रा० नि० व० ६।

उदुम्बरपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दन्ती। दाँती। एक वृक्ष। प० मु०। र० मा०। (२) लघुदन्ती वृक्ष। भा० पू० १ भ०। दे० "दन्ती"।

उदुम्बरमशक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मूषिक। मूसा। चूहा। (A rat.) वै० निघ०।

उदुम्बरादि तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आयुर्वेदोक्त एक प्रस्तुत तैल विशेष। सूखे हुये कच्चे गूलर के टुकड़े १ द्रोण और पंच वल्कल (बड़, पीपल, पाकर, गूलर और बेंत की छाल), पटोल पत्र, नीम के पत्ते, चमेली के पत्ते। इन्हें समान भाग में मिले हुये १ द्रोण लेकर, रात को १ द्रोण पानी में भिगोदें और प्रातःकाल छान लें। इस जल और लाख, धव, पलाश की छाल और सेमल का गोंद, इनके कल्क से १ प्रस्थ तिल तैल यथाविधि सिद्ध करें।

गुण—इस तैल का फाहा योनि में रक्खें और उपरोक्त उदुम्बरादिहिम में मिश्री मिलाकर उसे अवसेचन करें। इस उपाय से सात दिन में पिच्छला, विवृता कालदुष्टा (दीर्घ काल से विकृता) योनि शुद्ध होजाती है एवं संतान उत्पत्ति की शक्ति प्राप्त होती है।

(२) काले तिलों में गूलर के दूध की छः भावना देकर उनका तेल निकलवा लें और उस तेल को प्रथम योग के समान ही विधिपूर्वक उदुम्बरादि कषाय में सिद्ध करके इसका उसी प्रकार उपयोग करें तो प्रथम योग तुल्य ही लाभ होता है।

उदुम्बरादि योग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पके हुए गूलर में गुड़ मिलाकर या शहद मिलाकर सेवन करने से नकसीर का नाश होता है। वृ० नि० र० रक्त पित्त-चि०।

उदुम्बरादिलेह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्तपित्त नाशक एक उक्त नाम का योग—गूलर का पका हुआ फल, काश्मरीफल, हड़, छोहाड़ा और मुनक्का। इन्हें पृथक्-पृथक् चूर्णकर शहद में मिलाकर अवलेह बनाएँ।

गुण—इसके उपयोग से रक्त-पित्त का नाश होता है।

उदुम्बरादि-हिम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गूलर, शिफा (पद्म कन्द) और गिलोय इनका शीत कषाय मिस्रीयुक्त पीने से पित्तज्वर का नाश होता है।

उदुम्बरावता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नदीविशेष।

उदुम्बरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Ficus Hispida, *Linn.*) काकोदुम्बरिका। कठूमर। रा० नि० व० ११।

उदुम्बल-संज्ञा पुं० [सं०] उदुम्बर। गूलर।

त्रि० [सं० त्रि०] विस्तारित शक्ति सम्पन्न । बडी ताकत रखनेवाला ।

उदुम्भल–दे० "उदुम्बर" ।

उदुल–[मरा०] सामसुन्दर । सिरिस ।

उदुष्ट्रमुख-वि० [सं० त्रि०] अश्वसदृश रक्तवर्ण मुखयुक्त । घोड़े की तरह लाल मुँह रखनेवाला ।

उदूखल–संज्ञा पुं० [सं०क्ली०] (१) Balsamodendron mukul. गुग्गुल । गूगल । मे० । मे० लत्रिक । (२) ओखली । अम० । (३) लौहभाण्ड । हावन ।

उदूखलप्रगण्डीय–(Glano-humeral)

उदूखलसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] उदूखलाकार ग्रीवोर्धगत सन्धि । ओखली गर्दन के ऊपर का जोड़ ।

उदूखलाधर–वि० (Subglenoid) उदूखल के नीचे का ।

उदूढ़–वि० [सं० त्रि०] (१) विवाहिता । व्याहा । (२) स्थूल । मोटा ।

उद्दृढ़–वि० [सं० त्रि०] स्थूल । मे० ।

उदेग–संज्ञा पुं० दे० "उद्वेग" ।

उदेशा–संज्ञा पुं० [कुमायूँ] कोवल–लेप० । कोही (पं०) ।

उदोजस्–वि० [सं० त्रि०] अतिशय प्रचण्ड । अत्यन्त शक्ति शाली ।

उदोर्णवसा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Adeps lanæ hydrosus) ऊन की पानी वाली चरबी । जलीय ऊर्णवसा । दे० "ऊन" ।

उदौदन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०) जल से सिद्ध कियाहुआ अन्न । पानी में पकाया हुआ चावल ।

उदंजरस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] पानी रखनेका स्थान या गुसलखाना ।

उद्–उप [सं०] एक उपसर्ग जो शब्दों के पहले लगकर उनमें इन अर्थों की विशेषता करता है । (१) ऊपर, जैसे उद्गमन । (२) अतिक्रमण, जैसे उत्क्रांत । (३) उत्कर्ष, जैसे उद्बोधन । (४) प्राबल्य, जैसे उद्वेग । (५) प्राधान्य, जैसे–उद्देश । (६) अभाव, जैसे–उत्पथ । (७) दोष, जैसे उन्मार्ग ।

उद्गत–वि० [सं० त्रि०] (१) निकला हुआ । उद्भूत । उत्पन्न । (२) प्रकट । ज़ाहिर । (३) वमन किया हुआ । छर्दित ।

उद्गतशृङ्ग–वि० [सं० त्रि०] नूतन शृंग युक्त । नए सींग वाला ।

उद्गतासु–वि० [सं० त्रि०] मृत । मुर्दा । माराहुआ ।

उद्गति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उर्ध्वगति । चढ़ाव । (२) उत्पत्ति । उपज ।

उद्गन्धि–वि० [सं० त्रि०] उत्कृष्ट गन्धयुक्त । खुशबूदार ।

उद्गम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वमन । वान्ति । वै० निघ० । (२) उदय । आविर्भाव । (३) उत्पत्ति का स्थान । उद्भवस्थान । निकास । मख़रज ।

उद्गमनीय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] धोया हुआ कपड़ा । धौतवस्त्र । अम० ।

उद्गाढ–वि० [सं० त्रि०] अतिशय । अधिक । बहुत ज़्यादा ।

उद्गामी–वि० [सं० त्रि०] ऊपर को जानेवाला । चढ़नेवाला । Ascending एसेंडिंग (अं०) । साइद (अ०) ।

उद्गामी वृहत् अंत्र (वृहदंत्र)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृहत् अंत्र का वह भाग जो दाहिने श्रोणि प्रदेश में आरम्भ होकर ऊपर को यकृत् के अधोभाग तक जाता है । (Ascending colon) क़ोलून साइद (अ०) ।

उद्गामी वृहत् धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृहत् धमनी का वह भाग जो हृदय के बाएँ क्षेपक कोष्ठ से आरम्भ होकर कोई २ इंच ऊपर को गई होती है । Ascending aorta artery

उद्गामी वृहदन्त्र–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'उद्गामी वृहत्अंत्र' ।

उद्गार–संज्ञा पु० [सं० पुं०] [वि० उद्गारी, उद्गारित] (१) तरल पदार्थ के वेग से बाहर निकलने वा ऊपर उठनेकी क्रिया । उबाल । उफान । उद्गमन । (२) कण्ठ गर्जन । गले में गुड़गुड़ शब्द होना । जटा० । शा० २५ अ० । (३) मुँह से निकल

पड़ने की क्रिया । वमन । छर्दि । रा० नि० व० २० । (४) वमन की हुई वस्तु । क़ै । (५) थूक । कफ़ । (६) डकार । खट्टी डकार । (७) बाढ़ । आधिक्य । (८) घोरशब्द । तुमुलशब्द । घरघराहट ।

उद्गारकमणि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (Corallum rubrum) प्रवाल । मूँगा । रा० नि० व० १३ ।

उद्गारण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उद्गारकरण । क़ करना ।

उद्गार शुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उद्गारानवरोध । सधूमाम्लोद्गाराभाव ।

उद्गार शोधन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) श्वेत जीरक । सफेद जीरा (Cuminum Cyminum, *Linn.*) (२) कृष्ण जीरक । काला जीरा । (Nigella Sativa) भा० पू० १ भ० । के० दे० निघ० ।

उद्गार शो(ध)धिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Cuminum Cyminum) जीरा । जीरक । वै० निघ० ।

उद्गारिन्-वि० [सं० त्रि०] उद्गारयुक्त ।

उद्गाह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उद्गार । वै० निघ० ।

उद्गिरण-
उद्गीरण- } संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उद्गीर्ण] (१) उगलना । बाहर निकालना । (२) वमन । वि़न० र० ।

उद्गीर्ण-वि० [सं० त्रि०] (१) उगला हुआ । मुँह से निकाला हुआ । (२) निकाला हुआ । बाहर किया हुआ ।

उद्गूर्ण-वि० [सं० त्रि०] उत्तोलित । उछाला हुआ ।

उद्‌घ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) देहस्थ वायु । मे० घद्विक । (२) हस्तपुट । हे० च० ।

उद्‌घट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बैंगन का फूल । वार्ताकुपुष्प । (Flower of-Solanum Melongena, *Willd.*) वै० निघ० ।

उद्ग्राह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उद्गार । डकार ।

उद्ग्राहिणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाशरज्जु । जाल की रस्सी ।

उद्ग्राहित-वि० [सं० त्रि०] (१) बद्ध । बाँधा हुआ । (२) उदीर्ण । निकाला हुआ । (३) आक्रांत दुःखित । (४) उन्नमित । उचकाया हुआ । (५) ग्राहित । पकड़ा हुआ । (६) स्मरण किया हुआ ।

उद्ग्रीव-वि० [सं० त्रि०] ग्रीवा को उठानेवाला । जो गर्दन ऊँची करता हो ।

उद्ग्रीविन्-दे० "उद्ग्रीव" ।

उद्‌घ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि । आग । (२) देहका वायु । जिस्म की हवा । (३) करपुट । अँजुरी ।

उद्‌घट्टन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आघात । चोट । रगड़ । (२) उन्मोचन । खोलना ।

उद्‌घट्टित-वि० [सं० त्रि०] उन्मुक्त । खुला हुआ ।

उद्‌घर्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घिसना । रगड़ना । पात्रादि से घिसना । झाँवा करना ।

"इष्टक खण्डेनोद्घर्षणे कण्डुकोठनाशः शिरा सुखकारकत्वञ्च ।"-राज० ।

उद्‌घस-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भक्ष्यवस्तु । (२) मांस । हारा० ।

उद्‌घाट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) खोलने का कार्य्य । उद्घाटन । खुलाई । (२) चुंगीघर । (३) क्षत । घाव ।

उद्‌घाटक-
उद्‌घाटन- } संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) रुकावट दूर करना । उद्घाट (२) वह औषध जो रुकावट दूर करे । दे० "रोधोद्घाटक" । (३) कूएँ से पानी निकालने के लिये एक प्रकार की कला । अरघट्ट । घटीयंत्र । दे० "अरहट" ।

वि० [सं० त्रि०] जो रुकावट दूर करे ।

उद्‌घाटन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उद्घाटक, उद्घाटनीय, उद्घाटित, उद्घाट्य] रुकावट दूर करने की क्रिया या भाव । खोलना । (२) वह (औषध) जो रुकावट दूर करे । रोधोद्घाटक ।

उद्‌घाटितांग--वि० [सं० त्रि०] नग्न । नंगा ।

उद्घात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उद्घातक। उद्घातकी] (१) ठोकर। धक्का। आघात। (२) कालभेद। मे० तत्रिक। (३) योग में कुम्भक, पूरक और रेचक तीनों प्राणायाम की क्रियाओं का अभ्यास। विश्व० तत्रिकं। (४) अस्त्र। त्रिका०।

उद्घातक-वि० [सं० त्रि०] प्रतिघातक। ठोकर मारनेवाला।

उद्घुष्ट-वि० [सं० त्रि०] शब्दायमान। पुरशोर। (२) विघोषित। कहा हुआ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शब्द। आवाज।

उद्घृष्ट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उच्चारण का दोष विशेष।

उद्घोष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उच्च शब्द करण। (२) साधारण कथन।

उद्दंश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मशक। माशा। मच्छड़। (२) मत्कुण। खटमल। (३) केशकीट। जूँ। ढील।

उद्द-[ते०] कंसेरी (मेवा०)। हावड़ (अवध)। वुदी-ते०। (Dolichdron Falcata, *Seem.*)

उद्दण्ड-वि० [सं० त्रि०] (१) उन्नत दण्डयुक्त। ऊँची डालवाला। (२) प्रचण्ड।

उद्दण्डपाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार की मछली। दाँड़िका माछ (बं०)। (२) एक प्रकार का सर्प। मे०।

उद्दन्तुर-वि० [सं० त्रि०] वह जिसके दाँत कराल हों। उत्कटदन्त। करालदन्त। मे०।

उद्दान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चूल्हा। (२) उद्यम। (३) बड़वानल। (४) बंधन। (५) लग्न।

उद्दानक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) Albizzia lebbek, *Benth.* शिरीष। सिरस। कोंड। गोगुपुव्वु (ते०)। (२) चूल्हा। विश्व०।

उद्दान्त-वि० [सं० त्रि०] अतिदमित। शान्त। ठण्डा।

उद्दाम-वि० [सं० त्रि०] (१) स्वतन्त्र। (२) उच्छृङ्खल। (३) उत्कट। (४) दीर्घ। बड़ा।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यम।

उद्दामाख्यरस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसौषध। योग-पारा, ताम्रभस्म इन्हें समानभाग लेकर सागौन वृक्ष की जड़ के रस में एक दिन मर्दन करके पुन: सर्पाक्षि के रस में मर्दन कर सुखालें। फिर पृथ्वी पर पाँच बार लघुपुट से फूँकें। इस प्रकार की हुई भस्म और उतने ही शुद्ध जमालगोटे के बीज मिलाकर अच्छी तरह मर्दनकर रखलें।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक।

गुण—इसे दाख के क्वाथ और घृत के साथ सेवन करने से पित्तजगुल्म नष्ट होता है। इस पर पित्तकारक और विदाही पदार्थ वर्जित हैं। नि० र०। रस० यो० सा०।

नोट—वैद्यचिन्तामणि में शाकवृक्ष के स्थान में शङ्खपुष्पी पाठ है।

उद्दारदा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Tectona grandis, *Linn.*) Teak tree शाकवृक्ष। सागवन। शेगुन (बं०)। साग (मरा०)। वै० निघ०।

उद्दारा-
उद्दारी- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Tinospora Cordifolia, *Miers.*) गुडूची। गुरुच। श० च०।

उद्दाल-
उद्दालक- } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) Cordia latifolia, *Roxb.* बहुवार वृक्ष। लिसोड़ा। चालिता गाछ (बं०)। प० मु०। अम०। रा० नि० व० ११। (२) जंगली कोदो। बनकोदव नाम का अन्न। मद० व० १०। (३) कुष्ठ। केऊ। (४) धान्य विशेष। एक अनाज।

उद्दालसिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का अन्न। ता० श०।

उद्दाला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाराष्ट्र देश में इसको आरी कहते हैं।

उद्दित-वि० [सं० त्रि०] बद्ध। बँधा हुआ।

उद्दिन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मध्याह्नकाल। दोपहर का समय।

उद्दिष्ट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) Zizyphus jujuba, *Lamk.* वदर वृक्ष। बेर। (२) लालचन्दन।

उदीच्यकेसी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुगंधवाला। ह्रीवेर। (Pavonia Odorata, *Willd.*)

उद्दीप–
उद्दीप्र– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] Balsamodendron Mukul. गुग्गुल। गूगल। अ० टी० भ०।

उद्दीपक–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० उद्दीपिका] उद्दीपन करनेवाला। उभाड़नेवाला। सोष्मकारी

उद्दीपन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उद्दीपनीय, उद्दीपक, उद्दीपित, उद्दीप्त, उद्दीप्य] (१) उत्तेजित करने की क्रिया। उभाड़ना। बढ़ाना। जगाना। (२) उद्दीपन करनेवाली वस्तु। उत्तेजित करनेवाला पदार्थ।

उद्दीप्त–वि० [सं० त्रि०] (१) प्रज्वलित। (२) वर्धित। बढ़ा हुआ।

उद्देश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उद्दिष्ट, उद्देश्य, उद्देशित] (१) गिरिगण्डकूप। पहाड़ की चोटी। हारा०। (२) वह जो संक्षेप में कहा जाय। समास कथन। जैसे–शल्य (अर्थात् शल्य के कहने से शल्यचिकित्सामात्र का बोध होता है)। "समासकथनमुद्देशः, यथा—शल्यमिति।" सु० उ० ६५ अ०। (३) उपदेश। हारा०। (४) अनुसंधान। (५) हेतु। कारण। (६) न्याय में प्रतिज्ञा। (७) अभिलाष। मंशा। अभिप्राय।

उद्देहिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उत्पादिका नामका एक प्रकार का कीड़ा। दीमक। वालवी (मरा०)। पेदोपोका (बं०)। हारा०।

उद्द्राव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शीघ्र द्रावित।

उद्द्रुत–वि० [सं० त्रि०] द्रवीभूत।

उद्ध–वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्व। ऊपर।

उद्धत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्थित। उठा हुआ। (२) उत्क्षिप्त। फेंका हुआ।

उद्धम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कष्टश्वास। हँफनी।

उद्धमान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चुल्ही। चूल्हा।

उद्धमाय–[अव्यय] कष्टश्वास ग्रहण कर। हाँफ के।

उद्धय–वि० [सं० त्रि०] पान करनेवाला। जो पीता हो।

उद्धर–वि० [सं० त्रि०] उठाकर पान करनेवाला। जो उठाकर पीता हो।

उद्धरण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊपर उठना। (२) उन्मूलन। उखाड़ना। उत्पाटन। (३) वमन। क़ै। उलटी।

उद्धर्षण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रोमाञ्च। शरीर के रोम का खड़ा होना।। रोंगटे खड़ा होना।

उद्धर्षिन्–वि० [सं० त्रि०] (१) उद्धर्षकारक। प्रसन्न करनेवाला। (२) रोंगटे खड़े करनेवाला। पुलकित।

उद्धस्त–वि० [सं० त्रि०] उत्क्षिप्त हस्त। हाथ उठाए हुआ।

उद्धान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चुल्ही। चूल्हा। अ० टी० भ०। (२) वमन। क़ै। उलटी। (३) वमित। उगला हुआ। (४) स्थूल। सूजा हुआ।

उद्धान्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मद रहित हाथी। अम०।

उद्धार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूल्हा।

उद्धारण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्थापन। उठाव।

उद्धारा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Tinospora Cordifolia. *Miers.*) गुडूची। गुरुच। श० च०।

उद्धि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ऊर्ध्वधारण। ऊपर को उठाव। (२) उखास्थापन का मृण्मय। उपष्टम्भ।

उद्धित–वि [सं० त्रि०] स्थापित। दण्डायमान। रखा या खड़ा हुआ।

उद्धुर–वि० [सं० त्रि०] (१) भारशून्य। जिस पर बोझ या जुवा न हो। (२) दृढ़। मज़बूत। (३) उच्च। ऊँचा। (४) बन्द हो जानेवाला। जो निकल पड़ता हो। (५) प्रसन्न। ख़ुश। जो रोक में न हो।

उद्धूत-वि० [सं० त्रि०] (१) उत्पाटित। नोचा हुआ। (२) उत्क्षिप्त। फेंका हुआ। (३) उच्च। ऊँचा। (४) उत्कम्पित।

उद्धूनन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्क्षेपण। ऊपर फेंकना। उछालना। (२) कम्पन। कँपकँपी।

उद्धूपन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊर्ध्व संचालन। ऊपर को उठाव। (२) धूप। (३) धूना। (४) वासन कार्य। सोंधाव।

उद्धूलन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) धूरा देने वा धूरा करने की क्रिया वा भाव। पसीना बन्द करने के लिए विशिष्ट ओषधियोंके चूर्णका शरीरपर मलना। (२) मसालेकी बुकनी। तैलयुक्त लवंग,कपूर, मिर्च कस्तूरीऔर दालचीनीका चूर्ण (पाकराज)। हला०। (३) सूखी पिसी हुई औषध, जिससे धूड़ा करते हैं। ज़रूर (अ०)।

उद्धूलनरस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अकरकरा, मीठा तेलिया, कालीमिर्च और धत्तूर फल की भस्म यथाक्रम १-२-३ और ८ भाग लेकर चूर्ण करें।

गुण—इसके मालिश से स्वेदाधिक्य (अधिक पसीना) दूर होता है। र० सं० क० ४ उल्ला०।

उद्धूषण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रोमांच। हला०।

उद्धृषित-वि० [सं० त्रि०] (१) उत्क्षिप्त। फेंका हुआ। (२) विभक्त। बाँटा हुआ। (३) उद्घाटित। खोला हुआ। (४) पृथक्कृत। अलग किया हुआ। (५) मोचित। छोड़ाया हुआ। (६) उच्छेदित। तोड़ा हुआ। (७) उद्धृत। बचाया हुआ। (८) वमित। उगला हुआ।

उद्धृत-वि० [सं० त्रि०] (१) उगला हुआ। मे० तत्रिक। (२) ऊपर उठाया हुआ।

उद्धृतपाणि-वि० [सं० त्रि०] उन्मुक्तहस्त। हाथ समेटे हुआ।

उद्धृतस्नेह-वि० [सं० त्रि०] हृतफेन। झाग, फेन या मलाई उतारा हुआ।

उद्धृति-संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) उत्क्षेपण। (२) उठाल। (३) आकर्षण।

उद्ध्मान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चुल्ली। चूल्हा।

उद्ध्माय-अव्य० [सं०] निश्वास या साँस छोड़ कर।

उद्ध्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नदी। दरिया।

उद्ध्वस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खरखराहट। भङ्ग। फटाव।

उद्ध्वंस्त-वि० [सं० त्रि०] टूटा हुआ। ध्वस्त। भंग।

उद्‌ब-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Vermix cascosa)

उद्‌बद्ध-वि० [सं० त्रि०] विकसित। हे०।

उद्‌बद्ध-वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्व वद्ध। ऊपर बँधा हुआ।

उद्‌बन्ध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उद्‌बन्धन"।

उद्‌बन्धन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गले में रस्सी लगाकर अपने को लटका देना। पाशबन्धन। फाँसी लगाना। (Strangulation)

उद्‌बन्धन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊर्ध्व बन्धन। गलेमें फाँसी लगाकर ऊपर टँग जाने का कार्य। (२) मृत्यु के अर्थ कंठ में रज्जुवेष्टन। मरण हेतु गले में रस्सी की लपेट। (३) बन्धन च्युति। बन्धन का खोलाव। (४) बन्धन। बँधाई।

उद्‌बन्धुक-वि० [सं० त्रि०] फाँसी लटकानेवाला। उद्‌बन्धन करनेवाला।

उद्‌बल-वि० [सं० त्रि०] शक्तिशाली। ज़ोरदार।

उद्‌बाहु-वि० [सं० त्रि०] (१) ऊर्ध्व वाहु। हाथ ऊपर उठाए हुआ। (२) प्रसारित बाहु। हाथ फैलाए हुआ। (३) शुण्ड उठाए हुआ। जो सूँड खड़ा किये हो।

उद्‌बिल-वि० [सं० त्रि०] बिल से बहिर्गत। माँद से बाहर।

उद्‌बुद्ध-वि० [सं० त्रि०] (१) प्रस्फुटित। खिला· हुआ। (२) उद्दीपित। रौशन किया हुआ। (३) प्रबुद्ध। जगाया हुआ। (४) उदित। उठा हुआ। (५) अणुस्मृत। जो स्मरण में आगया हो।

उद्‌बुद्ध-वि० [सं० त्रि०] (१) विकसित। फूला

हुआ । (२) प्रबुद्ध । चैतन्य । (३) जगा हुआ ।

उद्बुद्धसंस्कार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] किसी बात की यादगारी ।

उद्बुद्धा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] परकीया । अपनी इच्छा से दूसरे पुरुष से स्नेह करनेवाली स्त्री ।

उद्बोध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] थोड़ा बहुत ज्ञान । थोड़ी समझ ।

उद्बोधक-वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० उद्बोधिका] (१) बोध करानेवाला । चेतानेवाला । (२) उद्दीप्त करनेवाला । उत्तेजित करनेवाला । (३) जगानेवाला ।

उद्बोधन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उद्बोधनीय, उद्बोधक, उद्बोधित] (१) बोध कराना । चेताना । (२) उद्दीपन करना । उत्तेजित करना । (३) जगाना ।

उद्बोधिता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] परकीया भेद । कौशलयुक्त पर पुरुष देखकर मुग्ध हो जानेवाली स्त्री ।

उद्भट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कच्छप । कछुआ । (A tortoise) (२) दो द्रोण की एक तौल । शूर्प । मे० टत्रिक । (३) सूप ।

उद्भव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उद्भूत] उत्पत्ति । जन्म । सृष्टि । अम० ।

उद्भाव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उष्मा ।

उद्भावन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्पादन । पैदा करने का कार्य ।

उद्भावयितृ-वि० [सं० त्रि०] उन्नतकारक । ऊपर उठा देनेवाला ।

उद्भावित-वि० [सं० त्रि०] (१) उपेक्षाकृत । ध्यान में न लाई हुई । (२) कथित । कहा हुआ ।

उद्भास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रकाश । चमक ।

उद्भिज-वि० [सं० त्रि०] उद्भिज्ज । अ० टी० र० । दे० "उद्भिज्ज" ।

उद्भिज्ज-संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष, लता, गुल्म आदि जो भूमि फोड़कर निकलते हैं ; वनस्पति ।

नोट—सृष्टि में ये चार प्रकार के प्राणियों में से हैं । मनु इत्यादि ने वृक्षों को अंतसत्व कहा है । अर्थात् उनमें ऐसी चेतना वा संवेदना बतलाई है जिन्हें वे प्रगट नहीं कर सकते । आधुनिक वैज्ञानिकों का भी यही मत है ।

वि० [सं० त्रि०] भूमि को भेदकर जन्म लेनेवाला । जो ज़मीन को फोड़कर निकले । जैसे—बीरबहूटी और मेढकादि । अम० ।

उद्भिज्जविद्या-संज्ञा स्त्री० दे० "उद्भिद्विद्या" ।

उद्भिद-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वृक्ष, लता, गुल्म आदि जो भूमि फोड़कर निकलते हैं । वनस्पति । उद्भिज्ज । वा० टी० हेमा० । (२) सामुद्र लवण । समुन्दर नोंन । (Sea Salt.) र० मा० । (३) Culinary Salt साँभर लवण । साम्बलि लवण । रस० र० अर्श-चि० । पांशुलवण ।

वि० [सं० त्रि०] तरु आदि भूमि को भेदकर उत्पन्न होनेवाला । जो ज़मीन को फोड़कर निकलता हो ।

उद्भिद्(त्)-वि० [सं० त्रि०] गुल्मादि । उद्भिज्ज । उगनेवाला । तरु, गुल्म, लता, वल्ली और तृण, भेद से यह पाँच प्रकारका होता है । अम० । वि० दे० 'उद्भिद' ।

उद्भिदजल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वृक्षजल विशेष । पेड़ का पानी । एक प्रकार का वृक्ष जिसे पन्थपादप कहते हैं । यह मरु भूमि में उत्पन्न होता है । इस वृक्ष का कोई भी अंग काटने से जल निकलता है । पथिक उस जल को पीकर प्यास बुझाते हैं ।

उद्भिदलवण-संज्ञा पुं० [सं०] खारी नमक ।

उद्भिद्विद्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वनस्पति-शास्त्र ।

उद्भिन्न-वि० [सं० त्रि०] (१) तोड़कर कई भागों में किया हुआ । फोड़ा हुआ । (२) उत्पन्न । (३) विकसित । खिला हुआ ।

उद्भू-वि० [सं० त्रि०] स्थाई । ठहरने वाला । पायदार ।

उद्भूत-वि० [सं० त्रि०] उत्पन्न । जात । निकला हुआ । देख पड़नेवाला ।

उद्भूति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उत्पत्ति । पैदाइश ।

उद्भेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अङ्कुर । अङ्कूर । प्ररोह । अँखुवा । रा० नि० व० २ । (२) फोड़कर निकलना (पौधों के समान) । (३) छोटा उभार । शोफ । (Small projection)

उद्भेदन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उद्भेदनीय, उद्भिन्न] (१) तोड़ना, फोड़ना । (२) फोड़कर निकलना । छेदकर पार जाना ।

उद्भ्यस-वि० [सं० त्रि०] जो ऊँचा कर रहा हो ।

उद्भ्रम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जिससे चित्त बहुत घूमता है । उद्वेग । व्याकुलता । घबराहट । श्रम० ।

उद्भ्रमण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चलनाफिरना । इतस्ततः भ्रमण ।

उद्भ्रांत-वि० [सं० त्रि०] घूमता हुआ । चक्कर मारता हुआ ।

उद्भ्रान्तक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वायु में उत्थान । हवा में उठान ।

उद्मन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०](१)उत्क्षेपण । उछाल । फेंकाव । (२)महोर्मि । बहाव ।

उद्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नद । नदी । दरिया ।

उद्यक्त-वि० [सं० त्रि०] तत्पर । मुस्तैद ।

उद्यत-वि० [सं० त्रि०] (१) उद्गूर्ण । उठाया हुआ । (२) उत्तोलित । उछाला हुआ । (३) प्रवृत्त । लगा हुआ ।

संज्ञा पुं०[सं० क्ली०] (१)उद्यम । काम । (२)ताल भेद ।

उद्यतगद-वि० [सं० त्रि०] उद्गूर्ण । गद युक्त । गुर्ज ताने हुआ ।

उद्यतशूल-वि० [सं० त्रि०] उत्थापित शूल युक्त । भाला ताने हुआ ।

उद्यतायुध-वि० [सं० त्रि०] अस्त्र उठाये हुआ । जो हथियार ताने हो ।

उद्यति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उद्यम । काम । (३) उत्थापन । उठाव ।

उद्यत्-वि० [सं० त्रि०] (१) गमनशील । चलने वाला । (२) उदयशील । निकलने वा उठने वाला ।

उद्यन्तृ-वि० [सं० त्रि०] उन्नायक । उठानेवाला ।

उद्यम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उद्यमी, उद्यत] उद्योग । प्रयास । प्रयत्न । मेहनत ।

उद्यम भङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) प्रयास भङ्ग । उद्यम रहित । (२) विराम । ठहराव ।

उद्यमभृत्-वि० [सं० त्रि०] प्रयास करनेवाला । कोशिश करने वाला ।

उद्यान संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपवन । बगीचा । हला० ।

उद्यानक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आराम बाग़ ।

उद्यान पाल(क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उद्यान रक्षक । माली ।

उद्यान रक्षक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “उद्यान पालक” ।

उद्यापन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) आरम्भ । शुरू । (२) व्रत-समापन । व्रत पूरा करने का काम ।

उद्याम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्तोलन । सीधा खड़ा करने का काम । (२) रज्जु । रस्सी ।

उद्याव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊर्ध्व मिश्रण । मिलावट । जोड़ जाड़ ।

उद्याव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मिश्रण । संयोजन ।

उद्यास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उद्यमकर्त्ता । (२) देवता भेद ।

उद्योग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उद्योगी, उद्युक्त] चेष्टा । प्रयत्न । कोशिश । मेहनत ।

उद्योत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) प्रकाश । उजाला । (२) चमक । झलक । आभा ।

उद्र-संज्ञा पुं०[सं० पुं०] (१) (An otter.) जलमार्जार । ऊद बिलाव । हारा० । दे० “ऊद-बिलाव” । (२) जलनकुल । त्रिका० ।

उद्रः-[अ०] अंडकोष वृद्धि । बाद खायः । क़ीलः । Scrotocele.

नोट—उद्रः, क़ीलः, फ़त्क़ और क़रुव के अर्थ भेद के लिये देखो फ़त्क़ ।

उद्रचेकन-[कों०] दे० “अरण्यकासनी” ।

उद्रतुद्वाली-[अ०] एक प्रकार का रोग जिसमें अंडधारक रज्जु की शिरा स्थूल तथा पेवदार हो

जाती है। फ़ोतों की रगों का मोटा और पेचदार हो जाना। क़ीलह दौलिय:। दवालियुस्सफ़न (Varicocele, cirsocele.)

उद्रतुल्माई–[अ०] अंडकोष में पानी उतर आना। कुरंड वा मूत्रज वृद्धि (सं०)। क़ील: माइय: (अ०)। (Hydrocele)

उद्रतुल्लह्म–[अ०] अंडकोष की मांसज वृद्धि। क़र्व लह्मी। (Sarcocele)

उद्रथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का वृक्ष। कुकरमुत्ता। कुकुरशोंका (बं०)। (२) ताम्रचूड़। मुर्गा। मे०। (३) पाचक।

उद्रपारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नाग विशेष।

उद्राह्व–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Plumbago Rosea, *Willd.*) रक्तचित्रक। लालचीता। वै० निघ०।

उद्रिक्त–वि० [सं० त्रि०] (१) स्फुट। फूटा हुआ।

उद्रिक्त चित्तता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Alcoholism) पानात्यय रोग। मत्तता। मदात्यय। रा० नि० व० २०। तृष्णादि। प्यास इत्यादि।

उद्रिन्–वि० [सं० त्रि०] जल युक्त। पानी से भरा हुआ।

उद्रुज–वि० [सं० त्रि०] भङ्ग। तोड़। उन्मूलन। उखाड़ना।

उद्रेक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उद्रिक्त] (१) रजोगुण। रा० नि० व० २१। (२) महानिम्ब। बकायन। भा० म० १ भ०। (३) वृद्धि। बढ़ती। अधिकता।

उद्रेका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महानिम्ब।

उद्रोक्लोरातुल् मर्फीन–[अ०] (Morpinae Hydrochloridum) अहिफेनीनोज्जहरिद। दे० "पोस्ता"।

उद्रोधन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्पत्ति। पैदाइश।

उद्वत्–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पर्वत। पहाड़।

उद्वपन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उत्पाटन। उखाड़। (२) दान।

उद्वत्सर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] संवत्सर। साल। उदावत्सर। हे० च०।

उद्वमत्–वि० [सं० त्रि०] वमन करते हुआ। जो उगल रहा हो।

उद्वयस–वि० [सं० त्रि०] अन्नोत्पादक। बल वर्धक। अनाज या शक्ति पैदा करनेवाला।

उद्वर्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अतिरिक्त द्रव्य। बची हुई चीज़। (२) आधिक्य। वृद्धि। बढ़ती।

वि० [सं० त्रि०] (१) अधिक। ज़्यादा। (२) उद्धृत। बचा हुआ।

उद्वर्तक–वि० [सं० त्रि०] (१) उत्थान कारक। बढ़ाने वाला। (२) शरीर शुद्धिकारक।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गणितांक विशेष। हिसाब की एक अदद।

उद्वर्तन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) किसी वस्तु को शरीरमें लगाने की क्रिया। व्यवहार। सेवन। अभ्यंग। विलेपन। जैसे, तेल लगाना। चंदन लगाना। उबटन लगाना। (२) किसी औषधीय द्रव्य द्वारा गात्रमार्जन करने की क्रिया। यथा– "कल्क चूर्णाभ्यां गात्रमर्द्दनं।" घर्षण। मे० नचतुष्कं।

गुण—उद्वर्त्तन वात, कफ, मेद और अनिल का नाश कर अंगों को स्थिरता प्रदान करता और त्वचा को अत्यंत निर्मल करता है। पिसी हुई हलदीसे गात्र-उद्वर्त्तन करने से शरीरकी विवर्णता, खुजली और रूक्षता दूर होती है। इसी प्रकार तिल द्वारा उद्वर्त्तन करने से खाज, रूक्षता और त्वग्दोष का नाश होता है। (राज०) (२) मर्द्दन। मालिश। च० द० विसूचि०। (३) आलोडन। च० सू० १२ अ०। (४) उबटन। शरीर निर्मलीकरण गंध-द्रव्य आदि। उद्वर्त्तन वात नाशक तथा भ्राजक पित्त एवं अग्नि दीपक है और देह को स्थिर एवं सुखी करता तथा त्वचा को निर्मल और कोमल करता है। मद० व० १३। (५) द्रव्य द्वारा स्नेहादि दूर करने का कार्य। द्रव्यों से तेल आदि छोड़ाने का काम।

"यवाश्वगन्धा यष्ट्याह्वैस्तिलैश्चोद्वर्त्तनं हितम्।
शतावर्यश्वगन्धाभ्यां पयस्यैरण्ड जीवनैः॥"

(सुश्रुत)

(६) पेषण। कुटाई–पिसाई। (७) अंकुरोत्पत्ति। कल्ला फूटना।

उद्वर्तनीय-वि० [सं: त्रि०] मार्जनीय । लगाने योग्य ।

उद्वर्तित-वि० [सं० त्रि०] सुगन्धी कृत । सुवत्तर किया हुआ !

उद्वर्धन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अन्तर्हास । भीतरी हँसी । (२) वृद्धता साधन । बढ़ती का कार्य ।

वि० [सं० त्रि०] वृद्धता साधक । बढ़ा देने वाला ।

उद्वर्हण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उन्मूलन । उखाड़नेका कार्य । (२) उत्पाटन । नोच खसोट । (३) उद्धरण । उठाव । बचाव ।

उद्वशीय-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सामवेद ।

उद्वर्हित-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उद्धृत । उठाया हुआ ।

उद्वह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० उद्वहा] (१) पुत्र । बेटा । (२) उदानवायु जिसका स्थान कंठ में माना गया है । वि० दे० "उदान" । (३) सात वायुओं में से एक जो तृतीय स्कंध पर है ।

उद्वहन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊपर खींचना । कन्धे पर बोझ का ढोना । उठना । (२) विवाह । (३) आकर्षण । (४) आरोहण । (५) आनयन ।

उद्वहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कन्या । पुत्री । बेटी ।

उद्वाचन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नाद । चीख़ । पुकार ।

उद्वादन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊँचे स्वर से आवेदन । (२) उच्च वाद्य करण । जोर से बाजे का बजाना ।

उद्वान-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चुल्ली । चूल्हा । (२) उद्वमन । उगाल । छाँट । क़ । उल्टी ।

उद्वान्-वि० [सं० त्रि०] (१) उन्नत । ऊँचा । (२) उत्कर्ष युक्त । शानदार । ऋक् १ । १६ । ११ ।

उद्वान्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मदरहित हाथी । (२) वमन । क़ै ।

वि० [सं० त्रि०] उगला हुआ । क़ै किया हुआ । वमित । मे० तत्रिकं ।

उद्वान्त-वि [सं० त्रि०] (१) उद्वमित । उगला हुआ ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निर्मद गज । मद रहित हाथी ।

उद्वाप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खेती । फसल ।

उद्वाप-संज्ञा पुं० [सं०पुं०] (१)उन्मूलन । उखाड़ । (२) मुण्डन । मुड़ाई । (३) उद्धरण । निकास ।

उद्वाय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उद्वासन । निकास । (२) उपशम । दबाव ।

उद्वाष्प-वि० [सं० त्रि०] अश्रु बहाने वाला । जो रो रहा हो ।

उद्वास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वस्त्र उतारे हुआ । जो कपड़े खोल चुका हो । (२) स्वस्थान को अतिक्रम कर अस्त होने का कार्य । अपनी जगह को लाँघ कर ग़ुरूब होने का काम ।

उद्वासन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) संस्कार भेद । (२) मारण । क़त्ल । (३) त्याग । विसर्जन । (४) निष्कासन । निकलाई ।

उद्वासन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उद्वासनीय, उद्वासक, उद्वासित, उद्वास्य] मारना । वध । अ० ।

उद्वाह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उद्वाहक, उद्वाहिक, उद्वाहित, उद्वाही, उद्वाह्य] विवाह ।

उद्वाहकर्मन्-[सं०] विवाह संस्कार । शादी का काम ।

उद्वाहन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शादी । विवाह । (२) दो बार का जोता हुआ खेत ।

उद्वाहनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वराटक । कौड़ी । (२) रस्सी । रज्जु ।

उद्वाहित-वि० [सं० त्रि०] (१)विवाहित । शादी युक्त । (२) उत्तोलित । उखाड़ा हुआ ।

उद्वाहिन्-वि० [सं० त्रि०] (१) विवाह सम्बन्धीय । (२) उत्तोलन करनेवाला । जो उठाता हो ।

उद्वाहिनी–वि० [सं० त्रि०] रज्जु । रस्सी ।

उद्बाहु–वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्व वाहु । हाथ उठाए हुआ ।

उद्वाहुलक–दे० "उद्बाहु" ।

उद्विग्न–वि० [सं० त्रि०] व्यग्र । चिन्तित ।

उद्विजमान–वि० [सं० त्रि०] भयभीत । डरा हुआ ।

उद्विडाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊदबिलाव । जल बिडाल । उद्बेताल । धेंड़े ।

उद्विवर्हण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उद्धारकरण । छुड़ा देने का काम ।

उद्वीत–वि० [सं० त्रि०] उद्गत । उठा हुआ ।

उद्वीक्षण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊर्ध्वदृष्टि । उठी हुई नजर ।

उद्वीक्ष्य–अव्य० [सं०] ऊपर देखकर ।

वि० [सं० त्रि०] देखने योग्य ।

उद्वृंहण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आधिक्य । बढ़ती ।

उद्वृत्त–वि० [सं० त्रि०] उत्थित । उत्क्षिप्त । ऊपर फेंका हुआ ।

उद्वेग–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Betel-nut) सुपारी । गुवाक फल । रा० नि० व० ११ ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आशङ्का । त्रिका० । (२) चाञ्चल्य । चित्त की आकुलता । घबराहट ।

वि० [सं० त्रि०] उद्वमित । उगला हुआ ।

उद्वेष्टन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आक्षेप । एँठन । (Spasm.)

उद्वेष्टनहर–वि० [सं० त्रि०] आक्षेप निवारक । (Antispasmodic)

उद्वोढ–संज्ञा पुं० सं० पुं०] वर । शौहर । पति ।

उन्नली–संज्ञा स्त्री० [?] कामासक्त । छिनार स्त्री ।

उधस्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आपीन । स्तन । थन । हला० ।

उधस्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दुग्ध । स्तन्य । दूध ।

उधा–[बम्ब०] (Bambusa arundinacea, *Retz.*) बाँस । वंश ।

उध्मान (र)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चूल्हा । चुल्लो । अ० टी० भ० ।

उ(अ)नक़्–[अ०] [बहु० अअ्नाक़] (Cervix) Neck ग्रीवा । गरदन ।

उनकपुरु–[सिं०] (Siliceous concretion of Bambusa arundinacea, *Sch.*) वंशलोचन । तबाशीर ।

उनक़ा–संज्ञा पुं० [अ० पुं०] पक्षि विशेष । एक प्रकार की चिड़िया ।

उनमाथना–क्रि० [सं० उन्मथन] मथ डालना । मथना ।

उनमूलना–क्रि० [सं० उन्मूलन] उखाड़ना ।

उनमेद–संज्ञा पुं० [?] फेन विशेष । झाग । यह प्रथम वृष्टिसे पैदा होता है । इससे मछलियाँ मर जाती हैं ।

उनरेजल–[काश०] सोसन ।

उनर्जल–[काश०] दे० "अनर्जल" ।

उनलुनु–[सिं०] (Siliceous concretion of Bambusa arundinacea, *Sch.*) वंशलोचन ।

उ़नादिल्–[अ०] (Testicle) फ़ोता ।

नोट—अनादिल जो अन्दलीब का बहुवचन है, ऐ़न के ज़बर से आता है अर्थात् वह अनादिल पढ़ा जाता है ।

उनाली (लू)–संज्ञा पुं० [?] शकाकुल । (Trachydium lehmanni, *B.*) ता० श० ।

उनाली, हुनाली–[देश० ?] एक भारतीय पौधा जो दो प्रकार का होता है–एक भूमि पर आच्छादित और दूसरा खड़ा । एक क़िस्मके पत्ते इमलीकेपत्तों की तरह, पर उनसे बड़े होते हैं । दूसरी किस्म के पत्ते मेंथीके पत्तों की तरहकिसी प्रकार कड़े होते हैं औररगें दिखाई देती हैं । पत्ती तोड़नेसे बीचसे टूट नहीं सकती । हर एक का फूल सफ़ेद और कालापन लिये लाल रंग का होता है । जिसका फूल ऊदे रंग का होता है, उसे सरफोंका प्रसिद्ध किया है । इसकी फली बन्द अंगुश्त के बराबर लंबी बारीक एवं खुशादार होती है । सफ़ेद फूल

वालीकी फली टेढ़ी होती है और उस पर ऊन की तरह रोआँ होता है। दूसरी क़िस्म की फली पर रोआँ नहीं होता। प्रथम क़िस्म का बीज कुछ-कुछ नील के दानों के समान और बेस्वाद होता है। दूसरी क़िस्म का बीज जंगली मूँग की तरह होता है। उसमें किसी भाँति कड़ुआहट भी होती है। वर्षा ऋतुमें ये पौधे बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। ऊँट इसे बड़े चाव से खाता है।

प्रकृति—गरमी लिये समशीतोष्ण।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसका काढ़ा ज्वर, अजीर्ण, प्रकृति की शीतलता एवं विष-प्रभेदों को नष्ट करता है। रविवार को इसकी जड़ ज़मीन से निकालकर रोगी की भुजा पर बाँधने से ज्वर का निवारण होता है। इसके पंचांग का भभके में अर्क़ खींचकर पिलाने से फोड़ा-फुन्सी एवं रक्त दोष का नाश होता है। कुष्ठ, खाज और सिरके गंज में यह अर्क़ असीम गुणकारी है। यदि चिरायता, बाँगरा वृक्ष की छाल, नीम का पंचांग पित्तपापड़ा और गावज़बान—इनके साथ इनका अर्क खींचें और फोक को जलाकर उसका खार निकालें तथा अर्क़ में घोल लें और प्रतिदिन २ वा ४ तोले पिया करें, तो रक्तदोष जनित संपूर्ण व्याधियाँ आराम हों। (ख० अ०)

उनीज-
उरीज } संज्ञा पुं० [देश० अफ्रीका] (१) कोम्बी वृक्ष (Strophanthus Combe)। (२) कोम्बी बीज (Strophanthus seeds)। दे० "स्ट्रोफैन्थस"।

उ़नुक़ुत्तिह़ाल-[अ०] (Pancreas) क्लोम-ग्रंथि। अग्न्याशय। दे० "अग्न्याशय"।

नोट—उ़नुक़ुत्तिह़ाल का धात्वर्थ "प्लीहा की ग्रीवा" है। प्लीहा के साथ क्लोम-ग्रन्थि का ग्रीवावत् सम्बन्ध होने से इसको इस संज्ञा से अभिहित किया गया।

उ़नुक़ुर्रिह़्म-[अ०] (Vagina) योनि। मह्‌बिल। दे० "अनक़ुर्रिह़्म"।

उ़नुक़ुल् कतिफ़्-[अ०] स्कंधास्थिका वह तंग भाग जो उसके सिर के पीछे होता है। गर्दन शानः (फ़ा०)।

उ़नुक़ुल् कुल्यः-[अ०] (Supra Renal capsules, Adrenalin) उपवृक्क। कुलाह गुर्दः (फ़ा०)। दे० "उपवृक्क"।

नोट—यह ग्रंथि वृक्क पर ग्रीवावत् वा टोपी के समान स्थित है। इसलिए प्राचीन अरबदेशीय चिकित्सकों ने इसको "उ़नुक़ुल् कुल्यः" और अर्वाचीन अजमदेशीय हक़ीमों ने "कुलाह गुर्दः" संज्ञा से अभिहित किया।

उ़नुक़ुल् मस़ानः-[अ०] (Neck of the Bladder) वस्ति की ग्रीवा। गर्दन मसानः।

उ़न्फ़ुवान्-[अ०] हर चीज़ का प्रारंभ वा उत्तम अवस्था। आरंभ। शुरू। उमंग। ख़ूबी।

उन्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्लेदन। गीला करना।

उन्दक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धवल यावनाल। सफ़ेद जुआर। रा० नि० व० १६।

उन्दन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] क्लेदन। सिंचाई।

उन्दर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मूषिक। चूहा। मूसा। (A rat)

उन्दरकानी-संज्ञा स्त्री० [बं०] मूषाकानी।

उन्दरु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूहा। मूसा।

पर्या०—उन्दुर, उन्दुरु।

उन्दिरकानी-संज्ञा स्त्री०[बम्ब०] (Ipomoea reniformis, *Chois.*) मूसाकानी। इं० मे० प्लां०।

उन्दिरमारी-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] मूषिकारि नाम की एक ओषधि जो कोंकण देश में होती है। इंदुरमारी (बं०)। रा० नि० व० ४। गुण—यह चरपरी, नेत्र को हितकारी, चूहे के विष को नष्ट करनेवाली है और व्रणदोष तथा नेत्र रोग को नष्ट करती है। रा० नि० व० ४। दे० "मूषिकारि"।

उन्दी-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का वृक्ष, जो बम्बई प्रान्त के रत्नागिरि नामक ज़िले में समुद्र तट पर प्रायः उपजता है। इसके बीज का कटु तैल मूल्यवान होता है। इसके तने से नौका बनती है।

उन्दीर-चकान-[मरा०] (Lactuca Remotiflora, *D C.*) मूसाकानी। गोआ में इसे "टैरेक्सेको" कहते हैं। क्योंकि वहाँ यह टैरेक्सेकम्

(अरण्यकासनी) की प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहार में आती है !

उन्दुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीर का एक भाग । भा० । वा० शा० ३ अ० । 'यकृत्प्लीहोन्दुकं वृक्कौ "।

उन्दुर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०]मूषिक । चूहा । मूसा ।

उन्दुरकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूसाकानी ।

उन्दुरु (क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१)चूहा । मूसा । A rat (२) जंगली चूहा । वन्य मूषिक । रत्ना० ।

(उ) इन्दुरुकर्णा, इन्दुरुकर्णिका, इन्दुरु कर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) Ipomoea reniformis, *Chois* मूसाकानी । इन्दुर काणी (बं०) । रा० नि० व० ३ । (२) एक प्रकार की दन्ती । (डल्वण ने इसे दंती का एक भेद अर्थात् द्रवन्ती माना है) ।

उन्दुरुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूसाकानी । आखुकर्णी । (Ipomoea Reniformis, *Chois*) रा० नि० व० ३ ।

उन्दूर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूहा । मूसा । (A rat)

उन्दूरकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूसाकानी । मूषाकर्णी । (Ipomoea Reniformis, *Chois.*)

उन्दूरु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्दुर । चूहा ।

उन्दूवर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Cuprum) Coppr ताम्र । ताँबा । भा० ।

उन्द्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कूलचर पशु । दे "ऊदबिलाव" । सु० शा० ३८ अ० । दे० "कूलेचर" ।

उन्न-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]सुरत । मेहरबान ।

विо [सं० त्रि०] आर्द्र । क्लिन्न । गीला । भीजाहुआ । मे० नद्विकं ।

उन्नत-वि० [सं० त्रि०] ऊँचा । ऊपर उठा हुआ । उभरा हुआ । Convex

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अजगर ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँचाई । उच्चता ।

उन्नत काल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्नत की छाया द्वारा काल निरूपक प्रक्रिया विशेष ।

उन्नत चरण-वि० [सं० त्रि०] उच्छ्रित पाद युक्त । जो पैर उठाए हो ।

उन्नतत्व-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उच्चता । ऊँचाई ।

उन्नतनतोदर-वि० [सं० त्रि०] जिसका एक पृष्ठ नत और दूसरा उन्नत हो । (Convexo-Concave)

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का ताल जिसका एक पृष्ठ नत और दूसरा उन्नत हो । Convexo-Concave lens

उन्नतनाभि--वि० [सं० त्रि०] उच्च नाभि युक्त । निकले हुए तोंद वाला । तोंदल ।

उन्नतशिरः-वि० [सं० त्रि०] शिर उठाए हुआ । जो सिर ऊपर को खड़ा किए हो ।

उन्नतांश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उत्तुङ्ग भाग । ऊँचा हिस्सा ।

उन्नतोदर-वि० [सं० त्रि०](Convex) जिसका पृष्ठ बाहर को उभरा हो ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का गोलाकार दर्पण जिसके पृष्ठ बाहर को उभरे हुए हों । (Convex mirror) वह पदार्थ जिसका वृत्तखंड ऊपर की ओर उठा हुआ हो । जैसे,-उन्नतोदर शीशा । (२) चाप वा वृत्तखंड के ऊपर का तल ।

उन्नतोदर किनारा-संज्ञा पुं० [सं०] उभरा हुआ किनारा । (Convex border)

उन्नद्ध-वि० [सं० त्रि०] (१) उद्बद्ध । टँगा । लटका हुआ । (२) उत्कट । उभरा हुआ । (३) स्फीत । सूजा हुआ । (४) उन्मुक्त । खुला हुआ ।

उन्नमन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुश्रुत के अनुसार यन्त्र द्वारा व्रण का रुधिर-स्राव साधक चिकित्सा-कर्म विशेष । नश्तर से ज़ख़्म के लोहू निकालने का इलाज ।

उन्नमित-वि० [सं० त्रि०] (१) उत्तोलित । उठाया या चढ़ाया हुआ ! ऊर्ध्वकृत । ऊँचा किया हुआ ।

उन्नम्र-वि० [सं० त्रि०] उन्नत । ऊँचा ।

उन्नय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्तोलन । खिंचाव । (२) उत्थान । उठान । (३) सादृश्य । बराबरी ।

उन्नयन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उत्तोलन। खिंचाव। (२) परामर्श। मशविरा। (३) अनुमान। अन्दाज़। (४) उन्नति। (५) उद्भावन। ग़फ़लत। (६) न्याय-शास्त्र। इल्म मन्तिक़। (७) पूतभृत पात्र। अर्क़ रखने का बरतन।

उन्नस-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँची नाकवाला।

उन्नाद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उच्चशब्द। ऊँची आवाज।

उन्नाब-संज्ञा पुं० [अ० उन्नाब] एक प्रकार का बेर जो अफ़ग़ानिस्तान से सूखा हुआ आता है और हकीमी नुस्खों में पड़ता है। सिंजली, सिमली।

पर्य्या०—तितम बेर, कंडियारी, बान (हिं०) सौवीर, सौवीरक, सौवीरबदर (सं०)। उन्नाब (अ०)। सैलानः, सिंजीदे जैलानी (फ़ा०)। उन्नाब, खोरासानी बेर (बम्ब०)। संजीत (पं०)। ज़िज़िफ़स वलगेरिस Zizyphus vulgaris, *Lam.* (ले०)। जुजुबी Jujube (अं०)। जुजुबीर कल्टिह्व Jujubier cultive (फ्रां०)। जेमीनर जुडेंडून Gemeiner Judendoran(जर०)।

बदरी वर्ग

(*N. O. Rhamneoe.*)

उत्पत्ति-स्थान—उत्तरी भारतवर्ष, पंजाब, हिमालय, काश्मीर और बलूचिस्तान आदि, पारस्य देश और चीन। भारतवर्ष में इसका आयात चीन और पारस्य खाड़ी के बंदरगाहों से होता है। इनमें चीन देशीय फल अधिक पसंद किया जाता है, क्योंकि यह अपेक्षाकृत वृहत्तर और मधुरतर होता है।

वानस्पतिक वर्णन—एक प्रकार का बेर जो अफ़ग़ानिस्तान से सूखा हुआ आता है। इसका पाधा बेर के पौधे के बराबर और पत्ते बेर के पत्तों से आकार में किंचिद् वृहत् और लंबे होते हैं। पत्र का एक पृष्ठ रोईंदार होता है। वृक्ष की छाल लाल रंग की और लकड़ी भी रक्तवर्ण की होती है। फल झरबेरी के फल से किंचित् वृहत् (१ से १॥ इंच लंबा और $\frac{3}{4}$ इंच चौड़ा) होता है। इसका छिलका लाल, अतिशय तरंगायित, गूदा गुठली से चिपका हुआ, स्पंजमय, मधुर और पीला, गुठली ७ वा १० वाँ इंच लंबी, अत्यंत कठोर और तरंगायित, शीर्ष तीक्ष्ण अनीदार (सूक्ष्माग्र), (Shell) अति स्थूल, बीज आयताकार (Oblong), चिपटा, चमकता भूरे रंग का, ४-१० वाँ इंच लंबा और २-१० वाँ चौड़ा होता है। उक्त चीन देशीय उन्नाब से पारस्य खाड़ी से आनेवाला किंचित् क्षुद्रतर होता है। सर्वोत्तम उन्नाब वह है जो बड़ा और पका, लाल, गुदार, स्वादु हो और जिसमें किंचिन्मात्र कषाय न हो। साहब जवामा ने लाल एवं स्थूल होने के साथ पुराना होने की भी क़ैद लगाई है। नैपाल और रंगपूर की ओर से जो उन्नाब आता है, वह अधिक मधुर और कम कषैला होता है। बग़दाद के जिलों में भी उन्नाब होता है। यह बड़ा और उत्तम होता है। इसमें से एक प्रकार का उन्नाब किंचिद्दीर्घ होता है। इसकी गुठली पतली होती है। जर्जानी और ख़ताई भी उत्तम होते हैं। दो वर्ष पर्यन्त इसकी शक्ति स्थिर रहती है।

रासायनिक संघटन—फल में लुआब और शर्करा और छाल तथा पत्तियों में कषायिन (Tannin) होता है। काष्ठ के जलीयसार में एक प्रकारका स्फटिकीय सत्व (उन्नाबाम्ल), एक कषायिन (Ziziphotannic Acid) और कुछ शर्करा होती है। (*Latour.*)

प्रयोगांश—सूखा फल, पत्र, छाल और गोंद।

प्रकृति—ताज़ा उन्नाब गरमी और सर्दी में मातदिल है और थोड़ी सी रूक्षता और किसी के मत से थोड़ी तरी रखता है। बूअलीसीना लिखते हैं कि यह पहली कक्षा में शीतल और तरी एवं रूक्षता में सम प्रकृति (मातदिल) है। पर किसी प्रकार रतूबत (स्निग्धता) से रिक्त नहीं रह सकता। मसीह दमिश्क़ी के अनुसार उन्नाब पहली कक्षा में उष्ण एवं स्निग्ध है (जैसा कि मुल्ला सदीद ने लिखा है)। साहब जवामा के अनुसार जालीनूस उन्नाब में सम प्रकृतित्व

स्वीकार करता है। यूहन्ना बिन मासूया उष्ण स्निग्ध लिखता है।

हानिकर्त्ता—शीतल तथा श्लेष्मीय आमाशय को हानिप्रद, दीर्घपाकी एवं आध्मानकारक है। सूखा उन्नाब मैथुन शक्ति को निर्बल करता और वीर्य को घटाता है।

दर्पघ्न—दीर्घपाकता, आमाशय विकार और आध्मान निवारणार्थ शर्करा, मवेज़ (मुनक्का) और गुलाब और बाह के लिए मधु और कामसंदीपक औषधें।

प्रतिनिधि—सपिस्ताँ (लिसोढ़ा)। मात्रा–क्वाथ में १५ दाने, (किसी ने २० किसी ने ३० और किसी ने ५० दाने तक इसकी मात्रा लिखी है)।

गुणधर्म तथा प्रयोग—उन्नाब दीर्घपाकी और न्यून आहारोत्पादक (क़लीलुल् ग़िज़ा) है; क्योंकि इससे ख़ून बलग़मी ग़लीज़ उत्पन्न होता है। दीर्घपाकी होने के कारण आमाशय के लिए रद्दी है। वृक्क, वक्ष और फुप्फुस के उष्ण वेदना के लिए लाभदायी है और रक्त तारल्यकारक है। इसमें एतराज़ है, क्योंकि तारल्यकारित्व (तलतीफ़) केवल उष्मा से होता है। यद्यपि लेखक के समीप उन्नाब शीतल है। शेख़ के कथनानुसार यह उष्ण रक्त की तीव्रता को लाभ पहुँचाता है। मेरी सम्मति में शेख का विचार यथार्थ है और यह गुण रक्त के सांद्र करने वा उसमें चिपचिपाहट (लज़ूजत) उत्पन्न करने के कारण प्रगट होता है। किसी-किसी के अनुसार 'उन्नाब प्रथम कक्षा में उष्ण-स्निग्ध है'। कदाचित् यह लोग इसमें माधुर्य होने के कारण इसकी उष्णता के क़ायल हुए हैं। राज़ी का कथन है कि अनुभव इस बात का साक्षी है कि उन्नाब माधुर्य गुण संयुक्त होने पर भी शैत्योत्पादन करता, ख़ून को बुझाता और उसकी उष्मा को शांत करता है। (त० नफ़ी०)

जालीनूस ने लिखा है, मैंने उन्नाबमें स्वास्थ्य-संरक्षण और रोग निवारण का कोई प्रभाव नहीं पाया। किंतु यह पाया कि यह विलंब से पचता है और इससे पोषणांश कम प्राप्त होता है। हज़्ज़ाक़ ने शेख़ के कथन के खंडन में बहुत कुछ लिखा है। अत: शरह मुफ़रिदात क़ानून में मुल्ला सदीद गाज़रूनी लिखते हैं कि यद्यपि उन्नाब के विषय में जालीनूस ने उक्त बात कही है। किंतु प्राय: वैद्य-विद्या के आचार्य गण इसके कार्य का उल्लेख किए हैं। मसीह दमिश्क़ी लिखते हैं कि यदि उन्नाबका शीत कषायवा ज़ुलाल पिया जाय तो उससे शुद्ध रक्त उत्पन्न हो और वर्तमान रक्त की उष्मा मिट जाय। उन्नाब उरो वेदना, वृक्कशूल और वस्तिशूलमें लाभ पहुँचाता है। मुख़्तार वह उन्नाब है जिसका दाना बड़ा हो। यदि भोजन से पूर्व खाया जाय तो उत्तम हो। इसके उपरांत सदीद गाज़रूनी ने कहा है कि मसीह कथित गुण जर्जानी और बग़दादी बड़े दाने के उन्नाब से प्रगट होना कोई कठिन नहीं। परंतु शेख़ का कथन केवल उन्नाब के लिए ठीक समझना चाहिए। अतएव मसीह भी लिखते हैं कि कई प्रकारका छोटा उन्नाब भी होता है जो बहुधा नगरों में मिलता है। यूहन्ना बिन मासूय: के अनुसार उन्नाब में रक्तोष्मा के शमन करने का प्रभाव है। साहब मिनहाज लिखते हैं कि उन्नाब मुलय्यिन (कोष्ठमृदुकर) है और वक्ष. फुप्फुस एवं कास को गुणकारी है, आमाशय की जलन को दूर करता, रक्त रुद्धक, रक्तशोधक, रक्त की तीव्रता एवं उद्वेग को मिटाता और हर प्रकार की शीतलता को लाभदायक है। साहब जामा राज़ी से उद्धृत कर लिखते हैं कि उन्नाब कंठ और वक्ष के लिए उपकारक है। यह वक्ष की कर्कशता का निवारण करता, परन्तु दीर्घपाकी है। जालीनूस ने उन्नाब के प्रकरण में सिवा इसके और कुछ नहीं लिखा है। न प्राचीन हकीमों ने ही उन्नाब के रक्तोद्वेग शमन तर्गमें कोई शब्द मुँह से निकाला है। परंतु अनुभव इस बात का साक्षी है कि माधुर्य के होते हुए यह रक्तोद्वेग को कम करता है, प्रधानत: जब मसूर के साथ पकाकर खाया जाय। क़र्शी ने क़ानून के चतुर्थ खंड में शीतला (ज़ुदरी) के वर्णन में लिखा है कि उन्नाब उक्त व्याधि में अतिशय लाभकारी है। इसका कारण यह है किंचित् उदरमृदु-

कारित्व एवं शमन गुण के सहित रक्तोद्वेग को प्रशांत करने के साथ ही वह निज प्रभाव के कारण दोषोंका शोधन करता है। गीलानी ने शरह क़ानून (क़ानून नामक ग्रंथ के भाष्य) में लिखा है कि उन्नाब के भक्षण से श्रेष्ठकर ख़िल्त (दोष) उत्पन्न होता है। केवल ऐसे ख़िल्त में थोड़ी मात्रा में पिच्छलता (लज़ूजत) होती है। किंतु वह दीर्घपाकी होता है। पर यदि भोजन करने से पूर्व भक्षण किया जाय, तो श्रेष्ठतर हो। यह कफ उत्पन्न करता और गरमी को शांत करता है। मुख्यत: जब इसके ज़ुलाल में सिकंजबीन भी मिला लिया जाय। शम्सुद्दरर लिखते हैं कि जालीनूस के मतानुसार उन्नाब का आहार पोषणत्व आमाशय के लिए उत्कृष्ट नहीं। अतएव उसने लिखा है कि मैंने उन्नाब में स्वास्थ्य संरक्षण और रोग निवारक गुण वर्तमान पाया। परंतु इसमें चिरपाकिता दोष है और इससे न्यून आहार पोषणत्व गुण प्राप्त होता है तथा इससे निकृष्ट कैमूस बनता है। शम्सुद्दरर के लेखक के कथनानुसार जालीनूस उन्नाब में स्वास्थ्य-संरक्षण और रोग निवारक गुण की उपस्थिति स्वीकार करते हैं और शेख़ के कथन से यह सिद्ध होता है कि वे इसे स्वीकार नहीं करते। उक्त दोनों बातों में परस्पर महदन्तर है। यहाँ पर सर्वोत्तम पक्ष यह है कि क़ानून के लेखों में लेखक की भूल मानली जाय। (ख़ज़ाइनुल् अद्विया)

उन्नाब में अखिल रोग शमन कारिणी (तिर्याकिय:) और रेचनी शक्ति है। यह सम्पूर्ण अवयवों के अवरोधों का उद्घाटक, दोष तारल्यजनक तथा मूत्र और आर्त्तव-प्रवर्त्तक है। इसका क्वाथ बुद्धि को तीक्ष्ण करता और विस्मृति रोग का निवारण करता है। शीत जलंधर (इस्तिस्क़ा बारिद), कृष्ण कामला (यर्क़ान स्याह) तथा कफ-वात-जन्य ज्वरों को लाभप्रद, उदरीय कृमि निःसारक, वायुलयकर्त्ता, मूत्रकृच्छ्र और संधिशूल को कल्याणकारक, गर्भाशय शोधक और विवृद्ध प्लीहा को विलीन करता है। इसे महीन पीसकर अवचूर्णित करने से व्रणपूरण होता है। इसके ताजे पत्तों का प्रलेप पुरातन क्षतों को स्वच्छ करता एवं उन्हें पूरित करता है। इसकी धूनी से विषैले जानवर भागते हैं। शहद के साथ इसके सुरमा के प्रयोग से दृष्टिशक्ति तीव्र होती है। (मख़्ज़न तुह्फ़ा)

यह सांद्र दोषोंको मृदु और मातदिल किवाम को (मुअत्दिलुल् क़वाम) बनाता है। वक्ष, आंत्र और आमाशय में मृदुता उत्पन्न करता है। पतले दोषों को मल-मार्ग द्वारा निकालता है। वक्ष और कंठ की कर्कशता और आवाज़ भरभराने को लाभदायक है। यह रक्त शुद्ध करता और उत्तम रक्त उत्पन्न करता है। खाँसी और धाँस को लाभप्रद है। यकृत, वक्ष और कटिशूल को गुणकारक है, प्यास बुझाता, प्रदाह और रक्त की उग्रता एवं उष्णता को शमन करता, वृक्क और वस्तिशूल एवं गुद रोगों तथा आमाशय और वस्ति प्रदाह में उपयोगी है और वीर्य को कम करता है। इसके पत्तों को पानी में क्वथित कर, १४ तोले यह क्वाथ खाँड से मीठा करके पाँच दिवस तक पिएँ तो शरीर की खाज दूर हो। इसके सूखे पत्तों को पीसकर मुख वा किसी अन्य अवयव के दूषित क्षतों पर अवचूर्णित करने से बहुत लाभ होता है। प्रधानत: ऐसी अवस्था में जिसमें प्रथम उस स्थान पर मधु मलकर ऊपर से यह चूर्ण बुरका गया हो। इसकी छाल खूब पीसकर अकेले वा समान भाग सफ़ेदे के साथ क्षतों में भरने से यह उनको स्वच्छ करता और पूरित करता है। इसके ताज़े पत्ते चबाने से जिह्वा शून्य हो जाती है। इसलिये लोग प्राय: विरेचन वा तीक्ष्ण एवं तीव्र औषधों के सेवन से पूर्व इसे चबा लेते हैं। उन्नाब का गूदा अर्क नीलोफ़र में पीसकर आँख पर प्रलेप करने से उष्णता से आँख के दहकने को बहुत लाभ पहुँचाता है तथा प्रदाह शांत हो जाता है। इसके पीने से आंत्र-प्रदाह मिट जाता है। मुख्यतः पका हुआ ताज़ा इसके लिये अतिशय लाभकारी है। गदर उन्नाब मलावरोध उत्पन्न करता है और पका हुआ सारक है। इसका विशेष प्रभाव यह है कि यह रक्त के जलीयांश को मलमार्ग से निःसृत कर देता है जैसा कि जवामा ने जालीनूस से उद्धृत किया है। विशेषत: अर्द्ध पक्व उन्नाब का क्वाथ अवश्य दस्त लाता है। गुठली सहित

उन्नाब को पीसकर प्रति दिन ६ मा० भक्षण किया करें तो आंत्रक्षत निवृत्त हो। इसके बीजों को पीसकर फाँकने से दस्त बंद होते हैं। यदि पित्ती उछलने (उदर्द) वा पित्त की उल्बणता से चेचक निकले तो उन्नाब का अर्क़ कासनी और सिकंजबीनके साथ देनेसे बहुत लाभ होता है और कास न होने पर पित्त एवं रक्त की तीक्ष्णता प्रशांत हो जाती है। यदि कास भी हो तो पानी वा अर्क नीलोफ़र वा अर्क़ बेद सादा वा अर्क केवड़ा प्रभृतिके साथ दें और उसके साथ खाकसी का उपयोग भी लाभ शून्य न होगा। इसका गोंद आँख के कतिपय विकारों में प्रयुक्त होता है।

शर्बत उन्नाब—उन्नाब आधसेर, शर्करा एक सेर साफ़ पानी डेढ़ सेर, यथाविधि शर्बत प्रस्तुत करें। मात्रा—½ से १ ड्राम तक द्विगुण शीतल जलके साथ। गुण तथा प्रयोग–ज्वर की प्रथमावस्था, कास और फुफ्फुस प्रदाह में इसका उपयोग करें। वक्ष और फुफ्फुस को लाभदायक है. कास का निवारण करता है और आमाशय की जलन मिटाता तथा रक्तस्राव को अवरुद्ध करता है। रक्त को शुद्ध करता और उसकी तीक्ष्णता मिटाता, उसका उद्वेग शांत करता और शीतला में लाभकारी है और माशिरा अर्थात् मुखमंडल गत विसर्प (Facial Erysepalas) को दूर करता है।

फांट—उन्नाब ७ नग, सपिस्ताँ १० नग, सोंठ १० ड्रांम कासनी ३ ड्राम, बनफ़शा २ ड्राम, जल १२ आउंस। यथाविधि फांट (Infusion) प्रस्तुत करें। मात्रा—मलावरोध और पित्त प्रकोप आदि में ⅓ भाग प्रति तीन-तीन घंटे पर सेवन कराएँ।

उन्नाबे हिंदी–[फ़ा०] (Zizyphus jujuba *Lamk.*) देशी बेर। बदर। बेर।

उन्नाय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्तोलन। उठाव। खिचाव। (२) परामर्श। मशविरा।

उन्नायक–वि० [सं० त्रि०] उत्तोलन करनेवाला। जो उठाता हो। (२) प्रमाण देनेवाला।

उन्नायकत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ज्ञापकत्व। समझाने या बतलानेका काम। (२) ज्ञानजनक विषयत्व।

उन्नाह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काँजी। काञ्जिक। अम०।

उन्निद्र–वि० [सं० त्रि०] (१) निद्रारहित। जैसे–उनिद्र रोग। (२) जिसे नींद न आई हो। (३) विकसित। खिला हुआ।

उन्नी–वि० [सं० त्रि०] जो ऊपर को खींचता हो।

उन्नीत–वि० [सं० त्रि०] (१) ऊर्ध्वनीत। ऊपर उठाया हुआ। (२) विकसित। खिला हुआ।

उन्नेतृ–वि० [सं० त्रि०] (१) ऊर्ध्वनेता। ऊपर ले जानेवाला। (२) उद्भावक। तरक्की देनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोलह ऋत्विक् के अन्तर्गत एक ऋत्विक्। इसके द्वारा सोमरस को भाण्ड से पात्र में छोड़ाते हैं।

उन्नेत्र–वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्वनेत्र। आँख ऊपर को उठाए हुआ। जिसके नेत्र ऊपर को उठे हों।

उन्बिड्रा–[?] काले रंग का एक वृक्ष है। इसकी छाल घोड़ फोड़ की तरह होती है। इसके सर्वांग काले होते हैं। फूल पीले रंग का होता है।

गुण—साँस की बीमारियों को लाभकारी है। पेशाब में शकर आने अर्थात् इक्षुमेह में गुणकारी है। भूख बढ़ाता है और दस्तावर भी है।

(ख० अ०)

उन्मज्जक-वि० [सं० त्रि०] जल में डूबनेवाला।

उन्मज्जन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] प्लवन। तैरने का का काम।

उन्मत्त–वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा उन्मत्तता] (१) उन्माद विशिष्ट। पागल। बावला। सिड़ी। विक्षिप्त। (२) जो आपे में न हो। बेसुध। (३) मतवाला। मदांध।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सफ़ेद धतूरा। श्वेत धुस्तूर (Datura alba, *Nees.*)। (२) धतूरे का पेड़। उपविष। प० मु०। र० मा०। रा० नि० व० १०। (३) मुचकुन्द का पेड़। (Pterospermum suberifolium, *Roxb.*)

उन्मत्तक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (Datura fastuosa, *Linn.*) धतूर का पेड़ । (२) उन्माद ग्रस्त । पागल ।

उन्मत्तकारिणी-
उन्मत्ता- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Euphorbia pilulifera, *Linn.*) दुद्धी । दुग्धिका । दुधियार ।

उन्मत्तगीत-त्रि० [सं० त्रि०] प्रलाप से कहा हुआ ।

उन्मत्तता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पागलपन ।

उन्मत्त तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कड़ुए तेल को धत्तूर के बीज और मानकन्द के खार के साथ पकाकर लेप करने से कुष्ट और विपादिका का नाश होता है । भैष० र० कुष्ठ चि० ।

उन्मत्तदर्शन-वि० [सं० त्रि०] उन्मादग्रस्त । पागल तुल्य दिखाई देनेवाला ।

उन्मत्त पञ्चक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धतूरा, बकुची, भाँग, जावित्री और खसखास इन पाँच मादक द्रव्यों का समुच्चय ।

उन्मत्त भैरवरस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्माद में प्रयुक्त एक आयुर्वेदीय रसौषध । योग—(१) शुद्ध पारा, शु० गंधक और शु० शिंगरफ इन्हें समान भाग लेकर कज्जली करें । पुन: इसमें गजपीपल, वच्छनाग, सोंठ, धत्तूर के बीज, जायफल, जावित्री, लौंग, मिर्च और अकरकरा इन्हें समानभाग लेकर कज्जली के बराबर परिमाण में मिलाकर अदरख के रस से ३ दिन मर्दन करें । फिर इसकी ३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनालें ।

गुण—इसे पीपल और मधु के साथ देने से क्षय और श्वास का नाश होता है । अनुपान विशेष से यह हर प्रकार के कफ जन्य रोगों को नष्ट करता और धातु पुष्टि करता है । यो० र० । रस यो० सा० ।

(२) वच्छनाग ३ भा०, जायफल, लौंग, सोंठ, मिर्च, पीपल, धत्तूरबीज, जावित्री, अकरकरा, अरनी और भंग इन्हें समानभाग लेकर चूर्णकर अदरख या तुलसी के रस में मर्दनकर दो रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना लें ।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे कफ के रोगों में तथा वातरोगों में मधु के साथ, पित्त के रोगों में नीबू के रस और मिस्री के साथ और समस्त ज्वरों में इसे अदरख के रस और शहद के साथ दें । यह ज्वर, कफ, हिक्का, विष, ८० प्रकार के वात रोगों और उग्र से उग्र अतिसारों को नष्ट करता है । रसायन-सं० । रस० यो० सा० ।

उन्मत्तरस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुद्ध पारा और शु० गंधक समान भाग लेकर धत्तूर के फल के रस में एक दिन मर्दनकर उसके बराबर त्रिकुटे का चूर्ण मिलाएँ ।

गुण—इसका नस्य देने से सन्निपात की विक्षिप्तावस्था दूर होती है और यथा अनुपान देने से सन्निपात से उत्पन्न अन्य रोगों का भी नाश होता है । इसे ३ रत्ती की मात्रा में रास्नादि क्वाथ के साथ देने से सन्धिवात में अत्यन्त लाभ होता है । रसायन-सं० । रस यो० सा० ।

उन्मत्तरूप-वि० [सं० त्रि०] दे० "उन्मत्त दर्शन" ।

उन्मत्तलिङ्गिन्-वि० [सं० त्रि०] जो झूठा पागल बनता हो । उन्मत्त बनता हुआ ।

उन्मत्तवत्-अव्य० [सं०] पागल तुल्य ।

उन्मत्त वृक्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Datura fastuosa, *Linn.*) धतूरे का पेड़ ।

उन्मत्ताख्य रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारा, गंधक और त्रिकुटा इन्हें समानभाग लेकर १ दिन तक धत्तूर के रस में खरलकर रखलें ।

गुण—इसका नस्य लेने से सन्निपात का नाश होता है । र० सं० क० ४ उ० ।

उन्मथ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वध । मारना ।

उन्मथन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मारकाट । हिंसा । सुश्रुत के अनुसार यन्त्र के कर्म का एक भेद ।

वि० [सं० त्रि०] (१) कर्तरी तुल्य । कैंची के तुल्य । (२) मर्दनकारक ।

उन्मथित-वि० [सं० त्रि०] (१) मथा हुआ । मर्दित । रगड़ा हुआ । (२) विनष्ट । कुचला हुआ ।

उन्मद्–वि० [सं० त्रि०] (१) उन्माद युक्त। मतवाला। (२) उन्मत्त। पागल। नशा पिए हुआ।

उन्मदन–वि० [सं० त्रि०] प्रीति से उत्पन्न। इश्क़ से जला हुआ।

उन्मदिष्णु–वि० [सं० त्रि०] उन्मत्त। मतवाला। पागल।

उन्मन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उन्माद वायु। (२) द्रोण नामक पुरानी तौल जो ३२ सेर (१६ श०) की होती थी। प० प्र० १ भ०।

उन्मनस्–
उन्मनस्क– } वि० [सं० त्रि०] उद्विग्न। बेचैन।

उन्मनायित–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उन्मादित। पागलपन। रा० नि० व० २०।

उन्मनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हठयोग की एक मुद्रा। दृष्टि को नासा के अग्रभाग पर लगाने और भृकुटि को ऊपर चढ़ाने से उन्मनी मुद्रा बनती है।

उन्मन्थ–
उन्मन्थक– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक के अनुसार कान का एक रोग जो कान के लव के छेद को आभूषण आदि पहनने के निमित्त बहुत बढ़ाने से होता है। बलपूर्वक कान के बढ़ाने से कान की लव में वायु प्रकुपित हो जाती है। फिर वह कुपित वायु कफको ग्रहणकर कठिन और अल्प पीड़ायुक्त सृजन उत्पन्न करती है और उनमें खाज भी होती है। यह रोग कफवात जनित होता है। सु० चि० २५ अ०। मा० नि०।

चिकित्सा—इसमें तालपत्री, असगंध, आक, वकुची, तिल, सेंधानमक—इनके साथ तेल को पकाकर उसमें गोधा और केकड़े की चर्बी मिलाकर अभ्यञ्जन के काम में लाएँ। इसमें तुलसी और कलिहारी से सिद्ध किए हुए तेल का तीक्ष्ण नस्य हितकारी होता है। वा० उ० १८ अ०।

उन्मन्थन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मथन। मथाई। (२) हनन। मारकाट।

उन्मयूख–वि० [सं० त्रि०] उद्दीप्त। चमकीला। जिसकी किरणें फैल रही हों।

उन्मर्दन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उद्वर्त्तन। रगड़। (२) वायु वा शूल प्रभृति निवारणार्थ क्रिया विशेष। मालिश। सु०। (३) मर्दन योग्य द्रव्यादि। मालिश की चीज़।

उन्मा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊर्ध्वमान। एक नाप। शुक्लयजु० १५। ६५।

उन्माथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मांस देकर मृग आदि के फँसाने के लिये लगाया गया कूटयंत्र (फंदा)। अम०।

उन्माथिन्–त्रि० [सं० त्रि०] व्याकुल करनेवाला। घबरा देनेवाला।

उन्माद्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह रोग जिसमें मन और बुद्धि का कार्य्य-क्रम बिगड़ जाता है। इस रोग में रोगी की बुद्धि में इस प्रकार का विपर्य्यय वा विकार आ जाता है कि, उसमे असाधारण क्रियायें संघटित होने लगती हैं, जो कभी अन्य व्यक्तियों के लिये हानिकर होती हैं और कभी नहीं भी होतीं। शास्त्रों में उन्माद शब्द की निरुक्ति इस प्रकार लिखी है—"जिस रोग में मनुष्य का मन विकृत या मतवाला हो जाता है, उसे उन्माद कहते हैं।" उन्माद का अर्थ पागलपन, बावलापन, सिड़, दीवानापन, विक्षिप्तता, चित्त-विभ्रम या ख़फ़क़ानगी है। जिसे उन्माद रोग होता है, उसे उन्मत्त, सिड़ी, दीवाना या पागल आदि कहते हैं।

पर्य्याय—दीवानगी (फ़ा०)। जुनून (अ०)। इन्सेनिटी Insanity, मेंटल डिजीज़ Mental Disease (अं०)।

टिप्पणी—दीवानगी, जुनून और इन्सेनिटी क्रमशः फ़ारसी, अरबी और अँगरेज़ी भाषा के समानार्थी शब्द हैं, जो साधारण बोल-चाल की भाषा में लिखे गये हैं। इनमें से किसी का निर्माण नियमपूर्वक आयुर्वेदीय पारिभाषिक शब्द रूप से नहीं हुआ है। इनमें से प्रत्येक का धात्वर्थ "बुद्धि का ठीक न रहना" है। किंतु बुद्धि के ठीक रहने और ठीक न रहने में वस्तुतः अत्यंत सूक्ष्म अज्ञात भेद है। साधारणतः पागल या मजनू उसको समझा जाता है, जिसकी बुद्धि इतनी विक्षिप्त हो गई हो कि, वह

अपने-पराये के लिये भय का कारण समझा जाय। पर कभी-कभी रोगी अपने या दूसरों के लिये आतंक का कारण नहीं भी होता। किंतु उसके विचारों में ऐसा जोश एवं परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है, कि वह असाधारण तथा अनाप-शनाप व्यर्थ-भाषण एवं गति करने लगता है। तात्पर्य यह कि, आयुर्वेद में इसके, एक ओर वात पित्त आदि दोषानुसार छः भेद हो गये और दूसरी ओर भूत एवं देवग्रह जुष्टादि आठ भेद हुए। हिकमत में भी जुनून के बहुसंख्यक भेद हैं। मालीख़ोलिया और मालीख़ोलिया मिराक़ी भी इसी प्रकार की व्याधियाँ हैं। अतएव प्राचीन हकीमों ने नाना भाँति के जुनून को मालीख़ोलिया के अन्यतम भेद स्वीकार किए हैं। और आधुनिक चिकित्सकों यानी डॉक्टरों ने मालीख़ोलिया को जुनून का एक भेद माना है।

उन्माद रोग के भेद

इस रोग का निश्चित एवं अंतिम यथार्थ विभागीकरण अतिशय जटिल है। इसी कारण इस रोग के विविध भेदों का उल्लेख चिकित्सा-ग्रंथों में उपलब्ध होता है। आयुर्वेद में इसके छः मुख्य भेद माने गए हैं—वातोन्माद, पित्तोन्माद, कफोन्माद सन्निपातोन्माद, शोकोन्माद और विषोन्माद। कहा है—

> "एकैकशः समस्तैश्च दोषैरत्यर्थ मूर्च्छितैः।
> मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते॥
> विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वन्तत्र भेषजम्।
> स चाप वृद्धस्तरुणो मद संज्ञां बिभर्त्ति च॥"
> (सु०)

एक-एक वातादि दोष से, ऐसे तीन और चौथा तीनों दोषों के मेल से अर्थात् सन्निपातोन्माद जो वातादि दोषों के अत्यंत मूर्च्छित होने से होता है। पाँचवाँ मन के दुःख से, इसप्रकार उन्मादरोग पाँच प्रकार का हुआ। और छठा विष (अथवा तीक्ष्ण नशे) से हो जाता है। इसमें यथायोग्य दोषों के अनुसार चिकित्सा होती है। जब तक यह तरुण अवस्था में होता है अर्थात् बढ़ा हुआ नहीं होता, तब तक इसकी "मद" संज्ञा होती है।

परन्तु चरक ने शोक और विष उन्माद न लिखकर उसकी जगह आगंतुक नामक उन्माद का पाँचवाँ भेद लिखा है।

इनके अतिरिक्त देवादि ग्रहों के मनुष्य-शरीर में प्रविष्ट होने से होनेवाले आगन्तुक उन्माद रोग के अन्य भेद, चरकादि आर्ष ग्रंथों में इस प्रकार लिखे हैं—देवग्रहजुष्ट, दैत्याविष्ट, गन्धर्वाविष्ट, यक्षाविष्ट, पित्राविष्ट, नागाविष्ट, राक्षसाविष्ट, और पिशाचाविष्ट।

प्राचीन यूनानी चिकित्सकों ने इसके अधोलिखित भेद किये हैं—

(१) मालीख़ोलिया, (२) मालीख़ोलिया मिराक़ी, (३) क़ुतरुब, (४) मानिया जिसका एक भेद दाउल्कल्ब भी है, (५) सुबारा, (६) चित्त-विभ्रम वा बहकना अर्थात् वृथा बकवाद करना (इख़्तिलात अक़्ल और हज़यान्), (७) अहंकार और मूर्खता (रऊनत व हुमुक़), (८) इश्क़ या प्रेम इत्यादि।

आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सक उन्माद रोग को निम्नलिखित भागों में बाँटते हैं—

(१) मानिया (Mania or Hyperphrenic) और इसके चार भेद हैं—

(क) उग्रोन्मत्तता अर्थात् मानियाहाद (Acute Mania), (ख) चिरकारी उन्मत्तता वा मानियाए मुज़्मिन (Chronic Mania), (ग) बौद्धिक मानिया वा मानियाए अक़्ली (Intellectual Mania)—इसके भी दो प्रभेद हैं—(अ) एकांतोन्मत्तता वा मानियाए वहदत (Mono Mania) और (आ) मालीख़ोलिया (Melancholia)। पुनः इसका एक प्रभेद मालीख़ोलिया मिराक़ी वा मद (Hypochondriasis) है। (४) नैत्तिकोन्मत्तता वा सद्वृत्तोन्मादया मानियाए अख़्लाक़ी (Moral mania) है, जिसके पुनः अनेक भेद हैं। जैसे, (क) आत्मघातिकोन्माद वा मानियाए ख़ुदकुशी (Suicidal mania), (ख) हिंसौन्माद वा मानियाए क़त्ल (Homicidal mania), (ग) क़ुतरुब या मानियाए ज़िइबी (Lyco mania), (घ) कुक्कुरोन्माद या दाउल्कल्ब (Cynanthropia), (ङ) योषापस्मारीयोन्माद या मानियाए इख़्तिनाक़ी (Hysteric mania),

(च) प्रसूतिकोन्माद, मानियाए नफ़ासी वा ज़च्चा का जुनून (Puerperal mania), (छ) प्रेमोन्माद वा कामोन्माद, मानियाए इश्क़ वा केवल इश्क़ (Eroto mania), (ज) मदोन्माद वा मानियाए मसर्रत (Amno mania), (झ) अग्न्युन्माद वा मानियाए नारी (Pyro mania), (ञ) उदकोन्माद वा मानियाए माई (Hydro Mania), (ट) चौरोन्माद वा मानियाए सर्क़ी (Klepto mania), (ठ) मद्योन्माद अर्थात् मदात्यय वा मानियाए ख़ुमरी (Dipso mania), (ड) नृत्योन्माद वा मानियाए रक़्सी (Dancing mania), (ढ) आपस्मारिक उन्माद वा मानियाए स़रई (Epileptic mania), (ण) प्रलाप वा सरेसाम का जुनून, मानियाए सरेसामी या हज़्यानी अर्थात् सुबारा (Delirious mania), (त) स्वदेशोन्माद वा मानियाए वत्नी (Nosto mania) और (थ) गणितोन्माद वा मानियाए हिसाबी (Arithmo mania) इत्यादि। सारांश जिस रोग से या जिस भाँति के मनोविकार में असाधारण ज़ोश हो, उससे उसी भाँति का उन्माद वा मानिया अभिप्रेत होता है।

टिप्पणी—मानिया, जिसका अर्वाचीन डॉक्टरी उच्चारण मेनिया (Mania) है, यूनानी भाषा का शब्द है। उक्त भाषा में इस शब्द का धात्वर्थ "पशुओं की तरह उन्मत्तता के काम वा दीवानगी" है। अस्तु किसी-किसी ने जो इस शब्द का अर्थ—"फाड़ खाने वाला पशु अर्थात् हैवान सबूई" लिखा है, वह ठीक नहीं है। किंतु इसके विपरीत अन्य प्राचीन हकीमों ने इसका यथार्थ अर्थ "जुनून सब्ई अर्थात् जुनून दरिंदगी" लिखा है, जो इसका ठीक एवं उपयुक्त अर्थ है। इसका कारण यह है, कि इसका रोगी फाड़ खाने वाले जानवरों के तुल्य होता है। परंतु किसी-किसी पश्चात् कालीन, हकीम, जैसे विद्वद्वर राज़ी ने यह लिखा है, कि किसी-किसी प्राचीन हकीम ने इस शब्द (मानिया) का अर्थ "भड़का हुआ जुनून अर्थात् जुनून हाइज" किया है। अर्वाचीन पाश्चात्य चिकित्सकों (डॉक्टरों) ने भी इसका उत्तर कथित अर्थ ही ग्रहण किया है। इनके अनुसार मानिया का अर्थ—"उग्र मानसिक क्षोभ" है। और उक्त क्षोभ वा विकार के भेद प्रभेदानुरूप ही नाना प्रकार के मानिया का नामकरण होता है। इसमें यदि रोगी क्रोध एवं मनः क्षोभ के साथ ही दीनता वा दयालुता से पेश आए, जैसा कि कुत्तों का स्वभाव हुआ करता है, तो उसको "दाउल्कल्ब" कहते हैं। किंतु डाक्टरों के कथनानुसार दाउल्कल्ब में रोगी अपने को कुत्ता समझने लगता है या कुत्तों की सी गति करने लगता है। यह रोग असल में "मानिया" का एक भेद मात्र है।

दाउल्कल्ब भी एक प्रकार का जुनून स़ब्ई है। परंतु यह विशेष है और मानिया सामान्य जो सभी प्रकार के जुनून सब्ई के लिए व्यापक रूपेण व्यवहार में आता है।

कल्ब, कलिब, कलब, दाउल्कल्ब और दाउल्कलब का अर्थान्तर—

कल्ब का अर्थ कुत्ता, कलिब का अर्थ हलका कुत्ता और कलब का अर्थ हलकाव या बावले कुत्ते के काटने का रोग अर्थात् जलत्रास है। अतएव दाउल्कल्ब से जुनून कल्बी वा कुक्कुरोन्माद विवक्षित है और दाउल्कलब से जिसे किसी-किसी प्राचीन हकीम ने "अज़्ज़ुल्कलब" वा "अल्कलिब" भी लिखा है, तात्पर्य हलकाव या बावले कुत्ते की बीमारी अर्थात् जलत्रास है, जिसको डॉक्टरी में हाइड्रोफोबिया कहते हैं। पर किसी-किसी लेखक ने इस उपर्युक्त सूक्ष्म भेद को नहीं समझा।

मालीख़ोलिया जिसको तज़किरा के लेखक ने यथार्थतः "मालिनख़ोलिया" लिखा है, वास्तव में यूनानी शब्द मेलनकोलिया से अरबी रूप में लाया हुआ शब्द है, जिसका अर्थ—मालिन (मेलन) =श्याम+ख़ोलिया (कोलिया)=पित्त वा सफ़रा अर्थात् "श्याम पित्त वा जला हुआ या विदग्ध पित्त अर्थात् सफ़रा" है। चूँकि उक्त रोग सौदा (वात) या जले हुए पित्त से प्रादुर्भूत होता है। इसलिए इस नाम से अभिहित किया गया। प्राचीन यूनानी हकीम प्रत्येक विदग्ध दोष से सौदा (वात) अर्थ ग्रहण करते थे। अतएव उन्होंने मालीख़ोलिया में जले हुए पित्त (सफ़राए मुहतरिक़) से ख़िल्त अस्वद (काला दोष) अर्थात् सौदा अर्थ ग्रहण किया है। मालीख़ोलिया

में रोगी सदा मनोविकारों, विकृत विचार और भ्रम के आवेश में रहता है और वह प्राय: दु:खी एवं चिंताकुल रहता है। उसकी प्रकृति में तेज़ी, उद्वेग एवं चंचलता प्रभृति का एक प्रकार से अभाव ही होता है। परंतु जुनून में चंचलता, चिड़ता, क्रोधोद्वेग आदि अधिक होते हैं। दिमाग़ी उन्माद को "जुनून" और दिल की ख़राबी से होनेवाले को "ख़फ़क़ान" कहते हैं। उन्माद के सूक्ष्मांग मद को "मिराक़" कहते हैं।

मालीख़ोलिया मिराक़ी में दूषित वाष्प(दोष) मिराक़ से दिमाग़ में चढ़कर दूषित विचारों का कारण बनता है। मिराक़—त्वचा, उदर और इसके नीचे की झिल्ली एवं निकटस्थ अवयव में एकत्रित होजाता है। इसका प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ने से रोगी में अहंकार तथा आत्मश्लाघा इत्यादि प्रकृति विरुद्ध लक्षण उत्पन्न होजाते हैं।

क़ुतरुब शब्द के अर्थ-निरूपण के विषय में हकीमों के भिन्न-भिन्न मत हैं। शेख़ुर्रईस बू अली सेना कहते हैं, कि "क़ुतरुब" एक छोटे से कीड़े का नाम है, जो पानी पर जल्दी जल्दी आगे-पीछे, दायें बायें, व्यर्थ फिरा करता है। कभी पानी में गोता मार जाता है और झट ही निकल आता है। ठीक इस कीड़े की सी दशा क़ुतरुब–रोगी की होती है। वह भी इस कीड़े की तरह व्यर्थ फिरा करता है। इसी से इस रोग का नाम "क़ुतरुब" रखा गया है।

किसी-किसी ने "क़ुतरुब" का अर्थ नर-भुतनों या जंगली देव लिया है। कोई कहते हैं "क़ुतरुब" अमूअत् अर्थात् ऐसे भेड़िये को कहते हैं, जिसके बाल झड़ गए हों। "शरह अस्बाब" में क़ुतरुब का अर्थ भेड़िया भी लिखा है और इस विचार से उन्होंने इस जुनून को इल्लतुज़्ज़िइब नाम से भी अभिहित किया है, जो विशेषानुसंधान से अधिक सही मालूम होता है। क्योंकि इस रोग में भी रोगी अपने आप को भेड़िया समझता है और वह ठीक भेड़िये की तरह अंग-संचालन करता है, वन में भटकता रहता है, मनुष्यों पर आक्रमण करता और उसी की तरह हू हू करता है, इसी से इस रोग का नाम "क़ुतरुब" रखा गया है।

सुबारा सिरियानी भाषा का शब्द है, जिसका धात्वर्थ सौदावी जुनून (वातोन्माद) है। यह एक प्रकार का सख़्त जुनून है, जिसके साथ उष्ण एवं पैत्तिक सरेशाम भी होता है।

उन्माद के कतिपय अन्य भेद—

(२) बुद्धिविपर्यय वा हुमुक़ या मूर्खता (Dementia)–बुद्धिविपर्यय के भेद—

(१) उग्र बुद्धिविपर्यय या हुमुक़ हाद(Acute dementia), (२) चिरकारी बुद्धिविपर्यय या हुमुक़ मुज़्मिन (Chronic dementia), (३) बुद्धिनाशक औन्मादिक पक्षाघात या फ़ालिज मुफ़्त्तिरुल् अक़्ल (Dementia paralytica.), (४) जलवायु विषयक बुद्धिविपर्यय या हुमुक़ सिन तग़य्युर (Climatic dementia), (५) यौवनोन्माद या हुमुक़ बुलूग़त (Dementia proecox), (६) प्रसूता का बुद्धिविपर्यय या हुमु.क़ुन्नफ़्सा (Puerperal dementia), (७) फ़िरंगजन्य बुद्धिविपर्यय या हुमुक़ आतशकी (Syphilitic dementia), (८) आपस्मारिक बुद्धिविपर्यय या हुमुक़ स़रई. (Epileptic dementia) और (९) आघात जन्य बुद्धिविपर्यय या हुमुक़ ज़रबी (Traumatic dementia)। इसी प्रकार और भी अनेक भेद हैं, जैसे संधिवात जन्य बुद्धिविपर्यय एवं विष जनित बुद्धिविपर्यय इत्यादि।

(३) भोलापन या सादगी (Amentia) जिसके यह तीन प्रभेद हैं—(क) सहज बुद्धिविपर्यय या जड़ता वा निर्बुद्धिता (Idiocy)। उर्दू में इसे "कौदन" कहते हैं। (ख) बुद्धिभ्रंश वा इख़्तिलातुल् अक़्ल (Imbecility), (ग) अंगवैकृतज मूर्खता (Cretanism) इत्यादि भी उन्माद के अंतर्गत परिगणित हुए हैं!

अभी निकट वर्तमान में ही मानस-शास्त्र-विशारदों ने इसके निम्नांकित भेद-प्रभेद किये हैं—

(१) आवयविक उन्माद—इस प्रकार के उन्माद में, इसके उन सभी अवस्थाओं का उल्लेख होता है, जिनमें शरीर, प्रधानतः मस्तिष्क के संघटन में भी किसी न किसी प्रकार का विकार पाया

जाता है। उदाहरणत: पक्षाघातजन्य बुद्धिविपर्यय, फिरंग-जनित बुद्धिभ्रंश, आपस्मारीय मूर्खता तथा धामनिक काठिन्य अथवा अन्य मास्तिष्क रोग, जैसे, मास्तिष्कार्बुद,मस्तिष्कस्थ जल-संचय,सक्ता इत्यादि।

(२) वर्धन-विकारज उन्माद—जो मस्तिष्क की बाढ़ रुकने के कारण होता है। इसमें सहज मूर्खता, बुद्धिविपर्यय आदि उन सभी अवस्थाओं का समावेश होता है, जो मस्तिष्क के घटकावयवों के अपूर्ण-विकास वा वृद्धि के कारण आविर्भूत होती हैं। इसमें भी मस्तिष्क संबंधी परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई दे सकते हैं।

(३) वार्द्धक्यजन्य मूर्खता—यहभी वस्तुत: द्वितीय प्रकार का उन्माद ही है। परन्तु इसमें स्वभावत: मस्तिष्क के घटकावयव शक्तिशून्य हो जाते हैं।

(४) विषोन्माद—इस विभाग में वे सभी प्रकार के उन्माद सम्मिलित हैं, जिनमें रोगका कारण किसी न किसी प्रकार का विष होता है। फिर चाहे वह ज़हर बाहर से शरीर में प्रविष्ट हुआ हो अथवा स्वयमेव देहके भीतर उत्पन्न होकर मस्तिष्ककी शक्तियों को विकृत करदिया हो। मदिरा, अफीम,भंग, कोकीन इत्यादि ज़हरीली चीजें;या मलेरिया, टाइफॉइड ज्वर, ताऊन, न्युमोनिया (फुफ्फुसौष), इन्फ्लुएंज़ा इत्यादि कीटाणु जन्य व्याधियाँ; या हृदय एवं वृक्क इत्यादि के कतिपय रोगों से उत्पन्न होनेवाला उन्माद इस विभाग में सम्मिलित है। उसी भाँति क्षयाधिक्य या मस्तिष्कस्थ व्याघात अथवा चुल्लिका ग्रंथि (Thyroid gland) आदि के रोगों से उत्पन्न होनेवाला उन्माद भी इसी भेदमें समाविष्ट है।

(५) मानसिक उन्माद या अध्यात्मोन्माद (जुनून नफ़सानी)-इसमें एकान्तोन्माद, मालीख़ोलिया, मालीख़ोलिया मिराक़ी, वयस्कोन्माद (हुमुक़ बुलूग़त) प्रभृति उन सभी किस्मों का समावेश होता है, जिनमें किसी प्रकट शारीरिक परिवर्तन के बिना उन्माद जन्य लक्षण प्रकाशित होते हैं।

नोट—प्राचीन यूनानी चिकित्सकों ने "इख्तिलातुल् अक्ल", "हज़्यान", "रऊनत", "हुमुक़", "मिराक़" और "इश्क" को मालीख़ोलिया के अन्तर्गत लिखा है और मालीखोलिया को जुनून से भिन्न एक स्वतंत्र रोग स्वीकार किया है। परंतु पाश्चात्य यूरोपीय डॉक्टर मालीखोलिया और अन्य उल्लिखित भेदों को जुनून का एक भेद मानते हैं।

डॉक्टरी में दिमाग़ से होनेवाले उन्माद को "इनसेनिटी" और दिल की धड़कन से होनेवाले को "पैलपीटेशन आव् हार्ट" और एक प्रकार के सूक्ष्म उन्मादको "मेलनकोलिया" कहते हैं।

हिकमत में उन्माद रोग कई तरह का लिखा है। उनमें मुख्य "मालीखोलिया" है और उसके प्रकारांतर कुतरुब, मानिया, दाउल्कल्ब और सुबारा लिखे हैं। इनके लक्षण न्यूनाधिक हमारे उन्माद से मिलते हैं। अस्तु, इन सबका उल्लेख हमने आगे उन्माद के ही प्रकरण में किया है।

उन्माद मानसिक रोग है

नाना कारणों से मनोविकार होने पर यह रोग उत्पन्न होता है। चूँकि उन्माद मन को विकृत कर देता है। इसलिये इसे मानसिक व्याधि या मन का रोग कहते हैं। कहा है—

"मदयन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः॥"
(सुश्रुत)

अर्थात् वात पित्त और कफ—बढ़कर अपनी-अपनी राहों को छोड़कर और मनोवाहक धमनी नाड़ियों में घुसकर, मन को उन्मत्त करते या मन में भ्रम उत्पन्न करते हैं। इसे ही "उन्माद" कहते हैं और उन्माद मानसिक रोग है। तात्पर्य यह है कि, उन्माद रोग में मनोविकार होता है, इसलिये उन्माद को मन की बीमारी कहते हैं।

उन्माद दिल की बीमारी है या दिमाग़ की ?

उन्माद और अपस्मारादि व्याधियाँ मन और बुद्धि की विकृति से होती हैं। वैद्यक-शास्त्र वाले इस रोग को प्राय: हृदय के विकार से मानते हैं; परंतु यदि विचार कर देखें तो हमारे वैद्यक के सिद्धांत से यह मूर्द्धाजन्य (दिमाग़ से होनेवाला) भी प्रतीत होता है। क्योंकि महर्षि धन्वन्तरि जी ने पहिले ही लिखा है कि—

"उन्मार्गमाश्रिता उद्गता दोषा मदयन्ति"।

अर्थात् वातादिक दोष कुपित होकर, अपनी-अपनी असली राहों को छोड़ देते हैं और ऊर्द्धगामी होकर या ऊपर की तरफ़ जाकर मद या उन्माद रोग करते हैं। इसका यह अर्थ तो प्रायः सभी विद्वान् करते हैं, कि वातादिक दोष कुपित होकर और ऊपर जाकर, हृदय और मन को खराब करके, मनोवाही धमनियों में जाते और अन्तःकरण को मोहित करते हैं। पर धन्वन्तरिजी ने हृदय में ही दोषों के प्रवेश करने की बात स्पष्टतया नहीं लिखी है, किंतु उर्द्धगामी होनेकी बात कही है। इससे यह सिद्ध होता है कि उन्माद हृदय से भी हो सकता है और दिमाग़ से भी। इसके अतिरिक्त एक बात और है, जिससे हमारी बात की पुष्टि होती है। धन्वन्तरि जी ने कहा है—

"तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरश्चापि विशोधयेत्।
पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानाञ्च नित्यशः॥"

यह श्लोक तो अपस्मार रोग के अंतर्गत लिखा है। इसके अतिरिक्त—उन्माद रोग की चिकित्सा में तो शिरोविरेचन की बात साफ ही लिखी है—

"स्निग्धं स्विन्नं तु मनुजमुन्मादार्त्तं विशोधयेत्।
तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरश्च विरेचनैः॥"

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि कुपित हुए दोष हृदय ही नहीं मस्तिष्क में भी जाते हैं। इसी से महर्षि ने "शिरोविरेचन" अर्थात् सिर के जुलाब की बात कही है। यदि यह रोग हृदय से ही होता, तो वे शिरोविरेचक नस्यादि से उसके शोधन की बात न कहते; क्योंकि हृदय के रोग में, शिरोविरेचन की वैसी जरूरत नहीं। तात्पर्य यह कि पाठकों को उन्माद रोग को दिल और दिमाग़ दोनोंसे ही मानना चाहिये।

हिकमत और डॉक्टरी में, उन्माद के पैदा होने की बात दिल और दिमाग़ से साफ लिखी है; परंतु वैद्यक में इसे साफ़ नहीं किया है। वस्तुतः उन्माद रोग दिल से भी होता है और दिमाग़ से भी।

उन्माद के निदान या कारण

इस रोग के उत्पादक अनेक कारण हैं, जिनमें से आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकों के अनुसार जीवन की झंझट, विश्राम का अभाव, मादकद्रव्यों जैसे—भाँग, चरस, मदिरा, कोकीन आदि का सेवन, कुत्सित भोजन वा भोजन की कमी, घोर व्याधि, अधिक सन्तानोत्पत्ति, अधिक विषयभोग, सिर की चोट, चिंता, भय एवं व्याकुलता, मानसिक कार्यों की अधिकता, वातसूत्रों की निर्वलता और हर प्रकार की क्षोभोत्पादक व्याधियाँ इसके प्रमुख हेतु हैं। इसके अतिरिक्त कोई-कोई वातसूत्र एवं मस्तिष्क सम्बन्धी रोग, किसी-किसी प्रकार के तीव्र-ज्वर, फ़िरंगोद्भूत विष इत्यादि, स्त्रियों में गर्भाशय और स्त्री-अंड विषयक कतिपय रोग, प्रसूत-ज्वर, गर्भ और गर्भोत्पत्ति संबन्धिनी व्याधियाँ, स्तन्यदान-काल और रजोनिवृत्तिकाल प्रभृति तथा हस्तमैथुन और तात्कालिक वातसूत्र जनित आघात इत्यादि भी इस रोग के उत्पादक कारण हैं।

आयुर्वेद के अनुसार नीचे लिखे कारणों से उन्माद रोग होता है। यथा—

"विरुद्ध दुष्टांशुचि भोजनानि।
प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानां॥
उन्माद हेतुर्भय हर्ष पूर्व्वो।
मनोविघातो विषमाश्च चेष्टाः॥"
(मा० नि०)

संयोग-विरुद्ध भोजन करने, विष या जहर मिले पदार्थ खाने-पीने, अपवित्र या नापाक खाना खाने, देवता या गुरु प्रभृति का अपमान करने, अत्यंत खुश होने या अत्यंत डरने और अपने से बलवान के साथ युद्ध करने से यह रोग हो जाता है।

वैद्यक के अनुसार भाँग, धतूरा आदि मादक द्रव्यों तथा प्रकृति-विरुद्ध पदार्थों के सेवन तथा भय, हर्ष, शोक आदि की अधिकता से मन वातादि-दोषयुक्त हो जाता है और उसकी धारणाशक्ति जाती रहती है। काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि मनोविकार भी इसके प्रमुख कारणों में से हैं।

उन्माद की सम्प्राप्ति

आयुर्वेद के मत से—ऊपर लिखे हुए कारणों से वात, पित्त और कफ कुपित होते या बढ़ते हैं। बढ़कर, ये अल्पसत्व या हीनशक्ति—कमज़ोर आदमियों की बुद्धि के रहने की जगह—मन और हृदय—को ख़राब करते हैं। इसके उपरांत ये मनोवाही

धमनी नाड़ियों में अपना दख़ल जमाकर, अन्तः-करण में विकार उत्पन्न करते या उसे मोहित करते हैं। (सुश्रुत)

चरक में लिखा है—

"रूक्षान्न शीतान्न विरेक धातु ।
क्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ॥
चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य ।
बुद्धिं स्मृतिं वाप्यु हन्ति शीघ्रम् ॥"

अर्थात् रूखा-सूखा बासी अन्न खाने, विरेक, धातुक्षय, उपवास आदि कारणों से बहुत बढ़ा हुआ वायु चिन्ता द्वारा हृदय को अत्यंत बिगाड़ता है और शीघ्र ही बुद्धि एवं स्मृति को नष्ट कर देता है।

हिकमत के अनुसार जब कोई उपद्रव मस्तिष्क में पहुँच जाता है, तब दिमाग़ी शक्तियों के कामों में कमी आ जाती है, वे निकम्मी हो जाती हैं और हेतु के बलवान या निर्बल होने के अनुसार 'घबराहट' पैदा हो जाती है।

उन्माद के पूर्वरूप या सामान्य लक्षण

उन्माद रोग के पूर्णरूप से प्रगट होने से पूर्व नीचे लिखे हुये पूर्वरूप देखने में आते हैं। इन्हें उन्माद के 'सामान्य लक्षण' भी कहते हैं—बुद्धि ठिकाने न रहना, शरीर का बल घटना, दृष्टि स्थिर न रहना, मन चंचल होना, धीरज न रहना, कुछ का कुछ कहना और विचार-शक्ति का मारा जाना आदि उन्माद के पूर्वरूप कहे गये हैं।

यूनानी एवं पाश्चात्यमतानुसार पूर्व रूप—कभी कभी उन्मादी के सिर में एक प्रकार की तीव्र वेदना होती है एवं उसका सिर चकराता है। सिर में बोझ और गुरुत्व का बोध होता है। रोगी उदासीन और व्याकुल-हृदय रहता है। रात में सर्वथा नींद नहीं आती और यदि नींद आती भी है, तो भयंकर स्वप्न दिखाई देते हैं, जिससे रोगी अत्यंत भयभीत होकर, घबराकर उठ बैठता है या जोर से चिल्लाकर रोने लगता है। उसका दैनिक स्वभाव बिगड़ जाता है, स्मरणशक्ति निर्बल हो जाती, काम करने को जी नहीं चाहता, रोगी की किसी चीज में रुचि नहीं होती; प्रत्युत हर एक बात से उसे घृणा हो जाती है। जिस प्रकार का उन्माद होने को होता है, रोगी हर समय उसी प्रकार के विचारों में तल्लीन रहता है और हर समय उसी तरह की बातें करता है। कभी-कभी वह सर्वथा चुप-चाप एवं संशययुक्त होता है; प्रत्येक चीज से भयभीत होता है; संसार से विरक्त हो जाता है; प्रायः एकांतवास को उत्तम समझता है और ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रतिक्षण सोया हुआ और ऊँघ रहा है। उसी तरह कतिपय रोगियों में कोई विशेष लक्षण प्रगट हो जाता है।

इन लक्षणों के प्रगट होते ही यदि प्रारम्भ में ही इसका उचित प्रतीकार कर दिया जाय, तो संभवतः असन्न रोग रुक जाय।

उन्माद के विशेष निदान लक्षणादि
आयुर्वेदीय मतानुसार—
वातज उन्माद के कारण और सम्प्राप्ति

रूखा और शीतल भोजन करना, भूख से कम खाना, दस्त और कै होना, धातु का क्षय होना, उपवास करना या निराहार रहना इन कारणों से वायु कुपित होता या बढ़ता है। उक्त अवस्था में यदि रोगी शोक चिंतादि करता है, तो वायु और भी कुपित होजाता है। बढ़े हुए वायु को चिंता और शोकादि सहायक मिल जाते हैं। इनकी सहायता से बलवान होकर, कुपित हुआ वायु अंतःकरण को विकृत कर देता है। अंतःकरण को विकृत करके, वायु बुद्धि और स्मृति का नाश कर देता है और इस प्रकार "उन्माद रोग" उत्पन्न कर देता है।

वातज उन्माद के लक्षण

जब वातज उन्माद होजाता है, तब अधोलिखित लक्षण प्रगट होते हैं—

रोगी अकारण हँसता है, मंद-मंद मुस्कराता है, बिना समय या प्रसंगके नाचता-गाता है, आवश्यकता से अधिक बोलता है, हाथ-पैरों को इधर-उधर चलाता है, कर्कश स्वर में रोता है, रोगी का शरीर रूखा, दुबला और लाल होजाता है। भोजन पचने पर, इस वातज उन्माद का ज़ोर बढ़ता है। (मा० नि०)

वातोन्माद में देह की रूक्षता, कर्कशता, श्वास, दुर्बलता, अंग की संधि का स्फुरण, आस्फालन, नृत्य, गीत, रोदन और भ्रमण प्रभृति लक्षण होते हैं। (चरक)

सुश्रुत ने तोड़ फोड़कर पढ़ना (आस्फोटयन्पठति) और गाली देना (विक्रोशति) इतना अधिक लिखा है।

और भी लिखा है—

"अस्थाने स्मृति हास्य भाष्य गणना।
वागंग विक्षेपका ॥
उन्मादे पवनात्मके बहुविधा भावाः।
प्रनृत्यादयः ॥"

बे-मौक़े याद करना, हँसना, बोलना, गिन्ती करना, बातें करना, हाथ-पाँव पटकना और नाच-गान आदि नाना प्रकार की चेष्टाएँ करना—ये सब वातज या बादी के उन्माद के लक्षण हैं।

पित्तज उन्माद के कारण और सम्प्राप्ति

अधकच्चे या कच्चे, कड़वे, खट्टे, दाहकारक और गरम पदार्थ खाने आदि कारणों से पित बढ़ता है। बढ़ा हुआ तीव्रवेगी पित्त अजितेन्द्रिय मनुष्य के हृदय या मनोवाही धमनी नाड़ियों में घुस जाता है। वहाँ पहुँचकर और अंतःकरण को ख़राब करके, वह बुद्धि और स्मृति का नाश कर देता है और इस प्रकार उन्माद रोग उत्पन्न करता है।

पित्तज उन्माद के लक्षण

इस उन्माद में रोगी में सहनशीलता नहीं रहती, वह हाथ-पैर पटका करता है, शर्म-लिहाज़ त्यागकर नंगा होजाता है, डरकर भागता-दौड़ता है, उसका शरीर गरम रहता है, क्रोध या गुस्सा करता है, छाया में रहना चाहता है, शीतल जल और शीतल अन्न खाना-पीना चाहता है और रोगी का चेहरा पीला होजाता है। (मा० नि०)

चरक के अनुसार क्रोध, गर्व, असहिष्णुता, जहाँ-तहाँ ढेला, काष्ठ वा अस्त्रादि फेंकना, घूसा मारना, अपनी वा दूसरे की छाया देखना, ठंडा जल और बासी भात खाने की इच्छा, सर्वदा सन्ताप बोध, आँख तमतमाना, हरा या पीला पड़ना और सर्वदा चक्षु घूमते जैसे रहना आदि लक्षण होते है।

सुश्रुत ने पित्तोन्माद के लक्षण कुछ विशेष लिखे हैं, जैसे—

प्यास, पसीना और दाह की अधिकता, बहुत खाना, नींद का अभाव, छाया, ठंडक, हवा और पानी इनमें विहार करने की इच्छा, चाहे तीक्ष्णता हो बरफ और पानी इनके समूह में भी अग्नि की शंका करना और दिन में भी आकाश में तारे देखना ये पित्तज उन्माद के लक्षण हैं।

और भी लिखा है—

"दाहस्तर्जन नग्न भाव
बहुलालापाश्च कोपोष्णता।
कांक्षा शीत जलाशनेषु
नितरां तृट् पीतता पैत्तिके॥"

दाह, जलन, तर्जन—ज़ोर से चिल्लाना, नंगा होजाना, बहुत बकना, क्रोध करना, गरमी लगना, शीतल जल पीने की इच्छा, निरंतर प्यास लगना और पीलापन—ये सब पित्तज उन्माद के चिह्न हैं।

कफज उन्माद के कारण और सम्प्राप्ति

कम भूख में पेट भर खाना और कुछ भी मिहनत न करना आदि कारणों से मनुष्यों के पित्त-सहित कफ अत्यंत बढ़कर हृदय में जाता है। वहाँ जाकर, वह बुद्धि स्मृति और चित्त की शक्ति का नाश करके उन्माद रोग पैदा करता है। (मा० नि०)

कफज उन्माद के लक्षण

इस उन्माद रोगी को सदैव एकांत में रहना, कम बोलना, स्त्रियों में आसक्त होना और अधिकतर निद्रा में मग्न रहना अच्छा मालूम होता है। नाख़ून, चमड़ा, आखें और मूत्र सफेद हो जाते हैं, भोजन पर रुचि नहीं रहती, कय होती है, मुँह से लार बहती है और भोजन करते ही इस उन्माद का जोर बढ़ जाता है। (मा० नि०)

वमन, अग्निमांद्य, अंगकी अवसन्नता, अरुचि, कास, स्त्री-संसर्ग की इच्छा, अल्प-अल्प निद्रा, कभी खाने की अनिच्छा, निर्जन एवं उष्ण रहने की उत्कण्ठा, वीभत्स भाव, मुख पर शोथ, सादे चक्षु, स्थिर तथा आँख का मल में ढाका और कफविरोधी पदार्थों के सेवन से हानि का बोध होना, ये लक्षण होते हैं। (चरक)

वमन, अग्निमांद्य, शिथिलता, अरुचि और खाँसी, स्त्रियों से रहस्य में रमण करने की इच्छा, बुद्धिमांद्य, नींद बहुत आना, कम बोलना, थोड़ा खाना, गरम पदार्थों का सेवन करना और रात्रि में

इसका ज़ोर अधिक होना ये लक्षण होते हैं। (सु० उ० अ० ६२)।

नोट—यद्यपि उन्माद कफ पित्त से उत्पन्न हुआ कहा जाता है; तथापि बिना वात के उन्माद नहीं होता। कहा है—

"यद्युन्मादः समुद्दिष्टः श्लेष्मपित्त समुद्भव।
तथापि न विना वातादुन्मादो जायते ध्रुवम्॥"

सन्निपातज वा त्रिदोषज उन्माद के कारण व लक्षण

सन्निपातज उन्माद सब तरह के मिले हुए कारणों से पैदा होता है, अतः इसमें तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं। यह उन्माद बहुत ही भयंकर और दुश्चिकित्स्य होता है। इस असाध्य और विरुद्ध चिकित्सनीय उन्माद की चिकित्सा वैद्य नहीं करते।

महर्षि चरकने कहा है—वात, पित्त एवं कफज उन्माद में जो कारण है, उनसे अति भयंकर त्रिदोष का उन्माद पैदा होता है। उसमें तीनों दोषों का कारण लक्षण दिखाई देता है। सुश्रुत ने त्रिदोष जनित को सन्निपात जन्य उन्माद लिखा है और लिखते हैं कि सन्निपात के उन्माद में वायु पित्त और कफ तीनों दोषों के लक्षण और रूप मिले हुए होते हैं। यह संपूर्ण लक्षणों (उपद्रवों) से युक्त हो तो असाध्य होता है। पर कभी यह साध्य भी होता है।

शोकज उन्माद के कारण

चोर, शत्रु, राजा या और मनुष्य से डराया जाना, सिंह, व्याघ्र या सर्प आदि से डरना, धन बांधवों का नाश हो जाना, स्त्री-पुत्रादि नातेदारों की मृत्यु हो जाना और मन-चाही स्त्री का न मिलना—इन कारणों से मनुष्य के मन में अत्यत दुःख होता होता है। मन के दुःखी होने से, मन में भयंकर विकार उत्पन्न हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि क्षुभित या दुःखित "अंतःकरण" मानसिक विकार या शोकज उन्माद उत्पन्न करता है। (सु० उ० अ० ६२ । मा० नि०)

शोकज उन्माद के लक्षण

शोकज उन्माद रोगी गुप्त बातों को कहता है, अनेक तरह की बातें करता है। हँसता है, गाता है और रोता है। उसका ज्ञान विपरीत हो जाता है। वह अत्यंत मूर्ख हो जाता है। (सु०। मा० नि०)

विषजन्य उन्माद के लक्षण

विष या ज़हर खाने-पीने से होनेवाले उन्माद में रोगी की आँखें अत्यंत लाल हो जाती हैं; बल और वर्ण का नाश हो जाता है; इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो जाती है; शरीर की कांति मारी जाती है; मुँह का रंग काला या श्याम हो जाता है और संज्ञा जाती रहती है।

और भी कहा है—

"विषोद्भवे स्याद्बलवाग्विहीनः
श्यावाननोरक्ततरेक्षणश्च।"

विष के उन्माद में बल और वाणी का नाश हो जाता है, मुँह का रंग श्याम हो जाता है और नेत्र अत्यन्त लाल हो जाते हैं।

सभी उन्मादों के विशिष्ट परिचायक चिह्न

१—वातज उन्माद वाले का शरीर रूखा, दुबला और लाल हो जाता है। यह उन्माद भोजन पचने पर अधिक जोर करता है।

२—पित्तज उन्माद वाले का चेहरा पीला पड़ जाता है। वह शीतल अन्न, शीतल जल और शीतल छाया को पसंद करता है।

३—कफज उन्माद वाले के नाखून, चमड़ा, नेत्र और मूत्र आदि सफ़ेद हो जाते हैं। उसे स्त्री, एकांतवास और कम बोलना ये अच्छे लगते हैं।

४—सन्निपातज उन्माद में ऊपर लिखे तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं।

५—शोकज उन्माद वाला अनेक तरह की बातें करता और गुप्त बातों को प्रकट करता है।

६—विषज उन्माद वाले का चेहरा श्यामवर्ण और नेत्र अत्यंत लाल हो जाते हैं।

असाध्य उन्माद के लक्षण

असाध्य उन्माद रोगी का मुँह सदा नीचे की ओर या ऊपर की तरफ रहता है; मांस और बल क्षीण हो जाते हैं, नींद कभी नहीं आती—जागता ही रहता है। इन लक्षणों से युक्त उन्मादी उन्माद रोग से निश्चय ही मर जाता है।

कहा है—

अवाङ्मुखस्तून्मुखोवा क्षीणमांसबलो नरः।
जागरुकोह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥
(भा० म० चि० ८ अ०)

भूतोन्माद के सामान्य लक्षण

देवता आदि के ग्रसने से जो उन्माद रोग होता है, उस उन्माद वाले की बोल-चाल, पराक्रम, शूरता और चेष्टा आदमियोंकी सी नहीं होती। उस आदमी में बुद्धि, विचार शक्ति, धारणाशक्ति, स्मरण शक्ति; शिल्प आदि का ज्ञान, बल और अभिमान आदि होते हैं। ऐसे उन्माद का समय या तिथि नियत होती है अर्थात् ऐसे उन्माद का दौरा किसी निश्चित काल या नियत तिथि में होता है। यह भूतोन्माद की पक्की पहचान है '

यह भूतोन्माद आठ प्रकार का होता है— (१) देवजुष्ट, (२) देवशत्रु जुष्ट या दैत्याविष्ट, (३) गन्धर्वाविष्ट, (४) यक्षाविष्ट, (५) पित्राविष्ट, (६) नागाविष्ट, (७) पिशाचाविष्ट और (८) राक्षसाविष्ट।

इनमें से प्रत्येक के लक्षण निम्न हैं—

देवग्रहजुष्ट के लक्षण

देवग्रह पीड़ित उन्माद रोग में रोगी का चित्त अत्यंत संतुष्ट होता है और वह पवित्र रहता है। उसके शरीर से दिव्य फूलों की सुगंध निकलती है। उसे नींद नहीं आती। वह शुद्ध संस्कृत भाषा बोलता और तेजस्वी होता है। उसके नेत्र स्थिर होते हैं। वह दूसरों को बरदान देता और ब्राह्मणों में भक्ति रखता है।

देवशत्रुजुष्ट अर्थात् दैत्याविष्ट के लक्षण

जिसे दैत्य-ग्रह के ग्रसित करने से उन्माद होता है, वह पसीनों से तर होजाता है; ब्राह्मण, गुरु और देवताओं की निंदा करता है। उसकी आँखें टेढ़ी होजाती हैं और वह किसी से भी नहीं डरता। वह कुमार्ग में रुचि रखता और किसी भी तरह के खाने पीने के पदार्थों से संतुष्ट नहीं होता। उसका स्वभाव दुष्ट होजाता है।

गन्धर्वाविष्ट के लक्षण

गंधर्व-ग्रह से पीड़ित मनुष्य अंतःकरण से प्रसन्न रहता है। जलाशय-तट और वन-उपवनों में रहता है। उत्तम चाल से चलता है। गाना, सुगंधित पदार्थ और फूलों से प्रेम रखता है और नाचते-नाचते मंद-मंद मुस्कराता है।

यक्षजुष्ट वा यक्षाविष्ट के लक्षण

यक्ष-ग्रह से ग्रसित मनुष्य गंभीर होता है। उसकी आँखें लाल होती हैं। सुन्दर महीन और रंगीन कपड़े पहनता है। जल्दी-जल्दी चलता और कम बोलता है। सहनशील और तेजस्वी होता है। "किसको क्या दूँ," ऐसा कहता है।

पितृ-ग्रह जुष्ट वा पित्राविष्ट के लक्षण

पितृ-ग्रह से पीड़ित मनुष्य कुश आदि से अपने पित्रों को पिंड देता है। शांत चित्त रहता है। दाहिने कंधे पर कपड़ा रखकर अपने पित्रों को जल भी देता है। मांस, तिल, गुड़ और खीर खाने की इच्छा करता है। इन सबके अतिरिक्त, वह पित्रों की भक्ति करता है।

डल्लण आचार्य के मत से जिसके जिस वस्तु पर इच्छा हो, उसको उसकी बलि देने से उस ग्रह की शांति होती है।

सर्प-ग्रह जुष्ट अर्थात् नागाविष्ट के लक्षण

सर्प-ग्रह से ग्रसित उन्माद रोगी कभी-कभी पृथ्वी में साँप की तरह पेट और छाती के बल चलता है, बारम्बार जीभ से गलफरों (सृक्कणिद्वय) को काटता है, क्रोध करता है तथा शहद, घी, दूध और खीर खाना चाहता है।

राक्षस जुष्ट अर्थात् राक्षसाविष्ट के लक्षण

राक्षस-ग्रह से पीड़ित रोगी मांस, खून और मदिरा की बनी चीजों के खाने की इच्छा करता है। वह अति निर्लज्ज, अत्यंत निर्दयी, अतिशय शूर और क्रोधी होजाता है। उसके शरीर में अनेक प्रकार के बल आजाते हैं। वह रात में घूमा करता और पवित्रता से घृणा करता है। (मा० नि०)

ब्रह्मराक्षसाविष्ट के लक्षण

ब्रह्मराक्षस से ग्रसित मनुष्य देवता, ब्राह्मण और गुरु से द्वेष करता है। वेद-वेदाङ्गों की निंदा करता है। किसी दूसरे को नहीं मारता; किंतु अपने ही शरीर को कष्ट देता है।

पिशाच जुष्ट अर्थात् पिशाचाविष्ट के लक्षण

पिशाच-ग्रह से पीड़ित मनुष्य नंगा होजाता तथा दुबला और कमज़ोर रहता है। विरुद्ध बात करता है। उसको देह से दुर्गंध आती है। वह अत्यंत गंदा रहता है; रूखा होजाता है; सब प्रकार के खाने-पीने की चीजों में लम्पट हो जाता है; बहुत खाता है। सुनसान जगहों और बनों में रहता है। विरुद्ध चेष्टा करता-करता और रोता-रोता त्रास को प्राप्त हो जाता है।

हिंसक राक्षसादिक ग्रह ग्रसित का निदान

जो मनुष्य अपवित्र रहता है और मर्यादा तोड़ता है, वह मनुष्य घावयुक्त हो चाहे घावरहित राक्षसादि उसे मारने के लिये या अपनी पूजा कराने के लिए पकड़ते हैं।

हिंसार्थ पकड़े हुये के लक्षण

पर्वत, हाथी, वृक्ष, दीवार और ऊँचे मकान आदि से गिरे हुये को राक्षसादि हिंसकलोग ग्रस लेते हैं। उस समय उस मनुष्य के नेत्र जड़ हो जाते हैं

साध्यासाध्य लक्षण

जो उन्माद रोगी जोर से जल्दी-जल्दी चले, जिसकी आँखें फटी सी (भयानक) हों, मुख से झाग निकले, जो बहुत सोवे, जो गिर-गिर पड़े और जो अत्यंत काँपे—उस मनुष्य का उन्माद असाध्य है तथा जो पहाड़, हाथी, वृक्ष, देव-मंदिर आदि से गिरकर उन्माद ग्रस्त हो, वह असाध्य है। देवादि ग्रहों के कारण से उत्पन्न हुआ उन्माद तेरह वर्ष के बाद असाध्य हो जाता है।

"चरक" में लिखा है—जिस उन्माद रोग में रोगी समुदाय के मध्य क्रोध और आक्रोश से हाथ उठाकर निःसंज्ञ भाव से अपने भाव से अपने या अन्य के शरीर पर छोड़ देता है, वह उन्माद रोग असाध्य होता है। तथा जिस उन्माद में आँख से आँसू बहता, लिंग से रक्त गिरता, जबान पर घाव होता और नासिका से जल गिरता, वह भी असाध्य जैसा ही होता है। रोगी के ताली बजाने, सर्वदा चिल्लाने, अपने मर्म स्थान पर चोट लगाने, दुर्वर्ण दिखाई देने, तृषार्त्त होने और दुर्गंध एवं हिंसक बन जाने से उन्माद अच्छा नहीं होता।

देवादि के आवेग का समय

देवग्रह पूर्णमासी को मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं। असुरग्रह दोनों संध्याकाल में और पूर्णमासी में भी प्रवेश करते हैं। गंधर्वग्रह प्राय: अष्टमी को प्रवेश करते हैं। यक्षग्रह प्रतिपदा को आवेश करते हैं। पितृग्रह कृष्ण पक्ष की अमावस्या के दिन मनुष्य के शरीरमें आते हैं। पितर-ग्रह कृष्ण पक्ष में, सर्पग्रह पंचमी को, राक्षस-ग्रह रात में और पिशाच-ग्रह चौदस के दिन मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करते हैं। (मा० नि०)

नोट—इन तिथियों से लक्षण समझने में सहायता प्राप्त होती है और इन्हीं तिथियों में बलिदान भी किया जा सकता है।

यदि कोई शंका करे कि, देवादिक ग्रह मनुष्य शरीर में घुसते हुए दीखते क्यों नहीं? तो इसका समाधान इस प्रकार है—जिस प्रकार दर्पण, तेल या पानी में छाया घुसती हुई नहीं दीखती, जिस तरह सर्दी और गर्मी मनुष्य देह में घुसती नहीं दीखती, जिस तरह सूर्य-रश्मि सूर्यकांतमणि में घुसती हुई नहीं दीखती, जिस तरह जीव शरीर में घुसता हुआ नहीं दीखता, उसी तरह देवादि ग्रह मनुष्य शरीर में घुसते हुए नहीं दीखते। (मा० नि०)

उन्मादरोगोक्त चिकित्सा-क्रम

(१) वातज उन्माद में पहले स्नेहपान और विरेचन कराना चाहिए और पित्तज एवं कफज में वमन के बाद स्नेहपान, वस्ति, शोधन तथा विरेचन के क्रम से चिकित्सा होती है। यथा—

"उन्मादे वातिके पूर्वं स्नेहपानं विरेचनम्।
पित्तजे कफजे वान्तिः पयोवस्त्यादिक क्रमः॥"
(चक्रपाणि)

"भावप्रकाश" के अनुसार वातज उन्माद में पहले स्नेहपान कराना चाहिये; पित्त के उन्माद में पहले जुलाब देकर दस्त कराने चाहिये और कफ के उन्माद में पहले वमन करानी चाहिये। और-और उन्मादों में वस्ति प्रभृति देनी चाहिये।

(२) उन्माद और अपस्मार के दोष और दूष्य समान होते हैं। अतः उन्माद की औषधियाँ अपस्मार में और अपस्मार की उन्माद में काम आ सकती हैं।

(३) "सुश्रुत" में लिखा है—सभी प्रकार के उन्माद में चित्त को प्रसन्न रखना परम कर्त्तव्य है। मद रोग (अर्थात् उन्माद की प्रथमावस्था) में पहले मृदु क्रिया किया करते हैं। विषजन्य उन्माद में भी विषघ्न उपायों के साथ-साथ मृदु क्रिया कही है।

(४) "भावप्रकाश" के अनुसार, उन्माद रोगी की वृक्ष, अग्नि, जल, पर्वत और विषम स्थानों से सदा रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि ये तत्काल प्राण नाश करते हैं।

(५) महर्षि, पितृ और गन्धर्व-बाधा के उन्माद में तीक्ष्ण अंजन, तीक्ष्ण नस्य और सारे क्रूर कर्म त्याग देने चाहिये। घृत आदि मृदु औषधियों से आराम करना चाहिये।

(६) प्रथम रोगी को शांत रखना चाहिये। किंतु पित्त जनित उन्माद में विशेषत: वमन करा देते हैं। वमन एवं विरेचनादि से कोष्ठ, हृदय, इन्द्रिय तथा मस्तक शुद्ध होने पर रोगी को प्रसन्नता, स्मृति और संज्ञा की उपलब्धि होती है। पर शुद्ध हो जाने पर भी यदि उसके आचरण अयोग्य दिखाते हैं, तो नस्य देते और अंजन लगाते हैं। ऐसे स्थलपर ताड़न और मन, बुद्धि तथा देह के प्रति उद्वेग प्रापण अतिशय हितकर है। पुन: अतिशय शक्ति सम्पन्न होने पर कड़े कपड़े से बाँध और अँधेरे घर में डाल रोगी दबाया जाता है। घर में लक्कड़ पत्थर बिलकुल न रहना चाहिये।

उन्माद रोगी को सुधारने का उपाय

(७) तर्जन, त्रासन, दान, सान्त्वना, हर्ष, भय एवं विस्मय मन को भटकाकर प्रकृति पर पहुँचा देते हैं। यथा—

"तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम्।
विस्मयो विस्मृते हेतुर्नयन्ति प्रकृतिं मनः॥"
(चरक)

(८) निज और आगन्तु उन्माद में देश, अवस्था, सात्म्य, दोष, काल और बलाबलकी परीक्षा करके चिकित्सा करनी चाहिये।

(९) जो प्राणी मांस और शराब से बचा रहता है, हितकारी भोजन करता है, यत्न से चलता और पवित्र रहता है, उसे निज अथवा आगन्तु उन्माद कभी नहीं होता।

(१०) बलिदान, मंगल, हवन, भूतबाधा दूर करनेवाली औषधों, सत्य, आचार, तप, ज्ञान, दान, नियम, व्रत, देवता, ब्राह्मण और गुरु की पूजा, सिद्ध-मंत्र और औषध से "आगन्तु उन्माद" को शांत करना चाहिये।

(११) ग्रह-ग्रसित उन्माद में, अपस्मारोक्त कार्य करने चाहिये तथा शांति, दोष-विशोधन और स्नेह-क्रिया ये सब काम करने चाहिये।

(१२) विष के उन्माद में पहले मृदु-क्रिया करनी चाहिये और शोकज उन्माद में शांति आदि कर्म करने चाहिये।

(१३) उन्माद रोगी को बिना हवा के स्थान में बिठाकर, चतुराई से उर, बाहू और ललाट की फ़स्द खुलवानी चाहिये।

(१४) देवग्रह ग्रसित मनुष्य के विश्राम करने के लिये रौद्र कर्म न करना चाहिए और पिशाचादि से ग्रसित होनेपर उनके प्रतिकूल काम न करने चाहिए।

(१५) उन्माद रोग में बहुधा, नींद नष्ट हो जाती है और नींद आने से उन्माद रोग आराम होता है। हरिदास जी वैद्य "चिकित्सा चन्द्रोदय" के सातवें भाग में लिखते हैं, कि उन्माद रोग के साथ होनेवाले "निद्रानाश रोग" को अफीम फौरन् नाश कर देती है। आप के मत से उन्माद के आरम्भ होते ही, यदि अफीम की उचित मात्रा दी जाय, तो उन्माद रुक सकता है। जब उन्माद रोग में थोड़ी-थोड़ी देर में रोगी को जोश आता और उतरता है, तब अफ़ीम की रत्ती-रत्ती भर की मात्रा देने से बड़ा उपकार होता है। उन्माद में हर बार में रत्ती-रत्ती अफीम देने से कोई हानि नहीं होती; क्योंकि उन्माद रोगी अफीम की अधिक मात्रा सह सकता है। पर सभी तरह के उन्मादों में, बिना सोचे-समझे अफीम देना भी ठीक नहीं। जब उन्माद रोगी का चेहरा फीका हो, नाड़ी मंदी-मंदी चलती हो और नींद न आने से शरीर कमज़ोर हुआ जाता हो, तब अफीम देना लाभदायक है। किंतु जब उन्माद रोगी का

चेहरा सुर्ख हो अथवा मुँह या सिर की नसों में खून भर गया हो, तब अफीम न देनी चाहिये। इस हालत के सिवा, उन्माद की और सब हालतों में अफीम देना हितकर है। उन्माद के आरम्भ में, अफीम देने से उन्माद रुकते देखा गया है। (चि० चं० भ० पृ० ७७-७८)

(१६) हृदय अपांग तथा ललाट इन स्थानों के उन्मादवाले का शिरामोक्षण करे तथा अपस्मारोक्त और ग्रहोक्त क्रिया भी करें। जब दोष शांत हो जावें और शोधनादि से शुद्ध हो जावें, तब स्नेह वस्ति करे और पाँचवें शोक के उन्माद में शोक रूपी शल्य को ज्ञानादि से दूर करे। —"सुश्रुत"

(१७) उन्माद के रोगी को स्नेहन-स्वेदन करके तीक्ष्ण वमन-विरेचन देकर ऊपर नीचे दोनों तरफ से खूब शोधन करे और शिरोविरेचन से शिर का भी भली-भाँति शोधन करें। —"सुश्रुत"

(१८) उन्मादी को अद्भुत वस्तु दिखलावे तथा प्यारे मनुष्य या प्यारी वस्तु का नाश हो गया, ऐसा झूँठ मूठ ही उससे कहदे अथवा भयानक मनुष्यों हाथियों से, दाँत से काटनेवालों से और निर्विष साँपों से डरावे। अथवा रस्सों से बाँधकर डरावे या चाबुक मारे या मार डालने का भय देवे या बाँधकर उसको तृण की अग्नि ले जाकर डरावे या बाज-सिकरे पक्षी आदि से नोंचवा दे; परंतु इस बात का ध्यान रहे कि मर्म पर आघात न पहुँचे अथवा मुँह ढके हुए अंधकूप में कुछ दिन पड़ा रखें। (प्राय: ऐसा करने अर्थात् प्राण नाशका भय दिलाने से विकृत हुआ चित्त ठिकाने आ जाया करता है)। —"सुश्रुत"

नोट—भावप्रकाश के लेखक ने भी प्राय: इसी प्रकार के विधान का उल्लेख किया है। कहा है—

"सर्वतो विप्लुतं चेति तेनैव परिशाम्यति।
सर्व दुःख भयेभ्योऽपि परं प्राणभयम्महत् ॥"

समस्त दु:खों के भय की अपेक्षा प्राणनाश का भय बहुत बड़ा होता हैं। इसलिए प्राणनाश के भय से सर्वथा विषय-शून्य हुआ चित्त भी अपनी असली हालत पर आकर मनुष्य को सचेत कर देता है।

"भावप्रकाश" में भी लिखा है—

"देहदुःख भयेभ्योहि यतः प्राणभयं भवेत्।
ततस्तस्य शमं याति सर्वतो विलुतं मनः ॥"

(१९) इन्द्रिय, बुद्धि, आत्मा और मन की प्रसन्नता तथा धातुओं का प्रकृतिस्थ होना—ये उन्माद मुक्त के लक्षण हैं अर्थात् ये लक्षण होने से उन्माद को नष्ट हुआ समझना चाहिये।

(२०) भय और शोक से कामज उन्माद शांत होता है। भय और क्रोधसे शोकज उन्माद शांत होता है। काम और शोक से भय से पैदा हुआ उन्माद शांत होता है और इसी तरह कामज उन्माद भी शांत होता है। मन चाही और अत्यंत प्यारी चीज़ के नाश से हुआ उन्माद वैसी ही चीज़ के मिलने से शांत होता है अथवा विद्वानों के शांतिदायक उपदेशों और समझाने बुझाने से शांत होता है। देवता, गंधर्व, यक्ष, भूत प्रेत और राक्षस आदि से पैदा हुआ उन्माद बलिदान करने, हवन करने, जाप करने अथवा पूजा-उपासना करने से शांत होता है।

(२१) उन्माद रोगी को उसकी खोई हुई या मरी हुई स्त्री के जैसी ही स्त्री देने और नाश हुई चीज़ के समान चीज़ देने अथवा देने का वचन देने और उसे धीरज बँधाने से, उसका चित्त शांत होकर, उन्माद आराम हो जाता है। —"भावप्रकाश"

(२२) उन्माद रोगी के शरीर में कौंच की फली घिसने, अथवा गरम लोहा, गरम तेल या उबलता हुआ पानी उसके शरीर के छुलानेसे उन्माद शांत हो जाता है। —"भावप्रकाश"

उन्मादनाशक शास्त्रोक्त तथा अन्य प्रयोग

(१) ब्राह्मी, पेठा, वच और शंखाहूली—इनका स्वरस पृथक्-पृथक् शहद के साथ सेवन करने से उन्माद रोग नष्ट होता है।—"भावप्रकाश"

नोट—ये चार नुसख़े हैं। इनमें से किसी एक के सेवन से आरोग्य लाभ होता है।

"भावप्रकाश" में लिखा है—

"ब्राह्मी कूष्माण्डीफल षड्ग्रन्था
शङ्ख पुष्पिका स्वरसाः।
दृष्टा उन्मादहृतः पृथगेते
कुष्ठ मधुमिश्राः ॥"

अर्थात् (क) ब्राह्मी के पत्तों का रस ४ तोले, कूट का चूर्ण १२ रत्ती और मधु ४८ रत्ती—इन सबको एकत्र मिलाकर पीने से उन्माद रोग नष्ट होजाता है।

(ख) पेठे के बीजों का चूर्ण ४८ रत्ती और कूट का चूर्ण १२ रत्ती, इन दोनों को ४ माशे शहद में मिलाकर चाटने से उन्माद रोग नष्ट होजाता है।

(ग) वच का चूर्ण ४८ रत्ती और कूट का चूर्ण १२ रत्ती—इन दोनों को ६ माशे शहद में मिलाकर चाटने से उन्मादरोग नष्ट होजाता है।

(घ) शंखाहूली का रस ४ तोले, कूट का चूर्ण १२ रत्ती और शहद ४८ रत्ती—इनको एकत्र मिलाकर पीने से उन्मादरोग नाश होजाता है।

(२) घी और दूध के साथ "बच का चूर्ण" सेवन करने से उन्मादरोग चला जाता है। इससे मृगी और उन्माद दोनों में कल्याण होता है। कहा है—

"अपस्मारे तथोन्मादे सक्षीराज्य हिता वचा।"

(३) उन्मादी को, बलाबल देखकर, दस वर्ष का पुराना घी पिलाने से उपकार होता है; पर इसे कुछ दिन तक नित्य सेवन करना चाहिए। चरक के चिकित्सा-स्थान में लिखा है—

"विशेषतः पुराणञ्च घृतं तं पाययेद्भिषक्।"

अर्थात् उन्मादरोग में विशेषकर पुराना घी पिलाना चाहिए।

(४) सिरस के बीज, मुलहठी, हींग, लहसन का रस, तगर, बच और कूट बराबर-बराबर लेकर, महीन पीस-छान लो। इस चूर्ण को बकरी के मूत्र में पीसकर नास देने और आँखों में आँजने से उन्मादरोग नाश होजाता है।

—चरक

(५) उन्माद रोगी को सेह, उल्लू, बिल्ली, स्यार, भेड़िया और बकरी—इन जानवरों के मूत्र, विष्ठा, नाखून, चमड़ा और पित्त की धूनी देने, आँखों में आँजने, नाक में फूँकने, नस्य देने और सेक करने से उन्मादरोग नष्ट होजाता है।

—चरक

(६) कुत्ते और गौ के मांस को सड़ाकर उसकी निरंतर धूनी देना तथा सरसों के तेल (वा चूर्ण) का नस्य देना और उसीका मर्दन करना सदा उन्माद रोगी को हितकर है।

—सुश्रुत

(७) सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, हल्दी, दारुहल्दी, मँजीठ, हींग, सरसों और सिरस के बीज—समान-समान लेकर पीस-छान लो। समय पर, इस चूर्ण को "बकरी के मूत्र" में पीसकर नस्य देने और आँखों में आँजने से उन्माद, ग्रह और मृगीरोग नाश होजाते हैं।

—चरक

(८) सफेद सरसों, हींग, कंजा—गोकरंजफल, देवदारु, मँजीठ, त्रिफला, सफेद कोयल, कटभी की छाल, त्रिकुटा, प्रियंगू, सिरस की छाल, हल्दी और दारुहल्दी—इन सब चीज़ों को बराबर-बराबर लेकर पीस-छान लो। यह चूर्ण बकरी के मूत्र के साथ पीने से "अगद" समझा जाता है। इसके पीने, आँखों में आँजने, नाक में नस्य देने, शरीर पर लेप करने और स्नान उबटन में व्यवहार करने से मृगी, उन्माद, विष और ज्वर नष्ट होजाते हैं तथा भूत का भय दूर होता है और आँखों में लगाकर राजा के सामने जाने से जय होती है।

——चरक

नोट—भावप्रकाश में सिद्धार्थकादि घृत वा अगद नाम से यही योग कुछ अवयव एवं विधिभेद से आया है।

(९) धवलबिरवा के जड़ की छाल १० तो०, आमला ५ तो०, सफेद चन्दन ५ तो०, छोटी इलायची दाना ३ तो०, वंशलोचन १ तो०, खस १ तो०, गुलाब का फूल १ तो०, चूर्णकर इसे अर्क़ बेदमुश्क और अर्क़ गुलाब में ३-३ दिन मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। दिन-रात में ४ गोली प्रतिदिन खाने से उन्माद में पूर्ण लाभ होता है।

(१०) त्रिकुटा, हींग, सेंधानमक, बच, कुटकी, सिरस के बीज, कंजे के बीज और सफेद सरसों—इन सबको बराबर-बराबर लेकर, महीन कर लो। फिर गोमूत्र के साथ, सिलपर पीसकर बत्ती बनालो। इस बत्ती को आँखों में आँजने से उन्माद मृगी और चातुर्थक ज्वर आराम हो जाते हैं। वृंद और भावप्रकाश।

(११) सफ़ेद प्याज का रस आँखों में आँजने तथा नाक में डालने से उन्माद और मृगी दोनों में लाभ होता है।

(१२) बिनौले का तेल एक, दो या तीन दिन तक लगाने से माथा शांत होता है और इससे शिरोशूल भी जाता रहता है।

नोट—यह दोनों योग "चिकित्सा चंद्रोदय" के लेखक ने अपना परीक्षित लिखा है।

(१३) दो तोले चंपाके फूल एक तोले शहद में मिलाकर कई दिन खाने से उन्माद रोग नष्ट होता है।

(१४) दो तोले खूब पकी हुई इमली को आधपाव पानी में भली भाँति मल छानकर, एक तोला मिश्री मिला पीने से उन्माद रोग नाश हो जाता है।

(१५) वाट्याल अर्थात् पीले फूल की बरियारा की शाखा का रस पीने से उन्माद रोग चला जाता है।

(१६) दो तोले रेवंदचीनी को पानी के साथ सिलपर पीसकर रोगी के दोनों कंधों के बीच में लगा दो। इस उपाय से उन्माद रोग चला जाता है।

(१७) लाल रंग की कच्ची चिरमिटी दो रत्ती लेकर गाय के आधा-पाव दूध के साथ, कुछ दिन पीने से, उन्माद रोग का निवारण होता है।

कहा है—

"अपक्व चट्की क्षीरपीतोन्माद विनाशिनी।"

(१८) चाँगेरी का स्वरस, काँजी और गुड़ बराबर-बराबर लेकर एक में मिला लो और खूब मथो। जब एक दिल हो जायँ, रोगी को पिला दो। तीन दिन में लाभ होगा।

(१९) मंडूकपर्णी या ब्राह्मी के स्वरस में धतूरे के पत्तों का स्वरस मिलाकर पीने से उन्माद रोग का नाश होता है।

(२०) सफ़ेद फूल की बरियारा का चूर्ण ३॥ तोले और पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण १ तोला—इन दोनों को क्षीरपाक की विधि से, दूध में पकाकर और शीतल करके, नित्य सवेरे ही पीने से घोर उन्माद रोग तत्काल नाश हो जाता है।

(२१) तिलों और उड़दों का काढ़ा बनाकर पीने से उन्माद रोग आराम हो जाता है।

(२२) सफ़ेद धतूरे की जड़ को, उत्तर दिशा की ओर मुँह करके उखाड़ लाओ। फिर उसकी खीर बनाओ। उस खीर में अंदाजसे "घी और गुड़" मिलाकर सेवन करो। इस खीर के सेवन से उन्माद रोग चला जाता है।

(२३) बुरादा चाँदी शुद्ध लेकर गुलाब के स्वरस में खरल करें। पुनः एक गाला बनाकर १ छटाँक गुलाब के फूल की लुगदी में लपेट कर इसके ऊपर धागा लपेट दें। फिर गजपुट में फूँकें। आशा है एक ही नहीं तो २–३ आँच में अवश्य ही प्याजी रंग का भस्म तैयार होगा। मात्रा—१–१॥ रत्ती। यह मालीख़ोलिया, ख़फ़क़ान, दमा और वसवास को नष्ट करता है।

उन्मादरोग नाशक उत्तमोत्तम शास्त्रीय एवं अन्य परीक्षित योग

उन्माद गजांकुश, उन्माद पर्पटी रस, उन्माद भञ्जन रस, उन्माद भञ्जिनी, उन्मादाङ्कुशरस, सारस्वत चूर्ण, ब्राह्मीघृत, उन्मादांतक योग, कटुत्रिकाद्यंजन, पानीयघृत, व्यूषणादि वर्ति, भूतोन्माद नाशक धूप, ऋक्षलोमक धूप, हिंग्वाद्यघृत, महापैशाचिक घृत, सारस्वत घृत, पानीय कल्याण घृत, चैतसघृत, चन्दनादि तैल, कृष्णाञ्जन, नारायणतैल, महा विष्णुतैल, महा नारायण तैल, विश्वाद्य चूर्ण, कल्याणघृत, फलघृत (उन्माद नाशक), शिवाघृत, महा चैतसघृत इत्यादि।

पथ्यापथ्य

पथ्य—अभ्यंज, स्वापन, आसन, निद्रा, शीतल, अनुलेपादि तथा गेहूँ, मूँग, लाल शालि चावल, धारोष्ण दूध, सौ बार का धोया हुआ गाय का घी, नया-पुराना घी, कछुएका मांस, धन्वरसा (मरुभूमि या रेगिस्तान के पशु-पक्षियों का मांसरस या शोरबा), रसाल, पुराना पेठा, परवल, ब्राह्मी का पत्ता, बथुआ, चौलाई, गदहे और घोड़े का पेशाब, आकाशजल, (हरड़), सुवर्ण चूर्ण (या भस्म), नारियलकी गिरी, दाख, कैथ और कटहल इन्हें उन्माद रोगों में वैद्यों ने पथ्य लिखा है। राज०।

अपथ्य—शराब पीना, विरुद्ध भोजन, गरम भोजन, नींद, भूख, प्यास आदि वेगों को रोकना, स्त्री-सम्भोग करना, खीरे, ककड़ी, तरबूज, करेले और पत्तों के साग अपथ्य हैं।

हिकमत के मत से उन्मादके निदान और लक्षण

मालीखोलिया

मालीखोलिया एक प्रकार का उन्माद है। इस रोग में रोगी के विचार एवं चिंतनाएँ दूषित एवं अव्यवस्थित तथा अस्थिर हो जाती हैं। यानी वह वहमी और सशंक हो जाता है। वह दूषित एवं मिथ्या भ्रममूलक विचारों से अभिभूत रहता है।

पर्या०—मालीख़ोलिया, मेलिनख़ोलिया–अ०। वहम, वसवास–उ०। भ्रम। मेलनकोलिया Melancholia–अं०।

मालीख़ोलिया का निदान

यह रोग कभी सरेसाम या तीव्र ज्वर या जुनून के बाद हो जाया करता है। यह प्राय: आनुवंशिक होता है। मस्तिष्क की निर्बलता, एवं दुःख चिंता, अत्यंत स्त्री-प्रसंग या हस्तमैथुन, मस्तिष्कके कार्यों की अधिकता, रात्रि-जागरण, जटिल समस्याओं के सुलझाने में रात-दिन लगे रहना, अर्श के रुधिर का बंद हो जाना, स्त्रियों में योषापस्मार रोग का होना और मासिक-स्राव का बंद हो जाना इसके कारण हैं। कभी आमाशय, यकृत और प्लीहा के विकार से भी इस रोग का आविर्भाव होता है।

इस रोग की उत्पत्ति मस्तिष्क से है। जब कोई उपद्रव या दूषित दोष के परमाणु मस्तिष्क में चढ़ जाते हैं, तब दिमाग़ की शक्तियाँ निकम्मी या कमज़ोर हो जाती हैं। इस रोग के हेतु के बलाबल-अनुसार घबराहट भी पैदा हो जाती है। इस रोग का प्रधान कारण "प्राकृतिक" या "अप्राकृतिक" वायु है।

तिब्बे अकबरी के अनुसार मालीखोलिया वातप्रकृतिवालों के सिवाय औरों को नहीं होता।

मालीखोलिया के भेद

मालीख़ोलिया, अपने हेतुओं के पृथक् पृथक् स्थानों के कारण, तीन भेदोंमें बाँटा गया है। क्योंकि मालीखोलिया उत्पन्न करनेवाली वायु सिर को छोड़कर, शेष सर्वांग में रहकर रोग उत्पन्न करती है, केवल सिर में रहकर रोग करती है और आमाशय, तिल्ली या मिराक़ में रहकर रोग करती है। तात्पर्य यह कि मालीखोलिया उत्पादक दोष—सिर के अतिरिक्त सारी देह में, केवल सिर में और आमाशय आदि अंगों में यानी मिराक़ में ठहरकर रोग उत्पन्न करता है। दोष के तीन स्थानों में ठहरकर रोग उत्पन्न करने के कारण, इसके तीन भेद हो गये हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन यूनानी चिकित्सकों ने इख़्तिलातुल् अक़्ल (बुद्धि विपर्यय), हज़यान (प्रलाप), रऊनत, हुमुक़ (मूर्खता) और इश्क़ (प्रेम) का भी मालीख़ोलिया के अंतर्गत उल्लेख किया है। यानी उन्होंने इनको मालीखोलिया का ही भेद स्वीकार किया है और जुनून को इससे भिन्न रोग मानकर उसका पृथक् उल्लेख किया है। अब हम यहाँ पर इनमें से प्रत्येक का सविस्तार निदान लक्षणादि लिखेंगे।

पहला भेद

पहला भेद वह है, जिसमें सदोष या निर्दोष वायु–अप्राकृतिक या प्राकृतिक वायु–सिर के सिवा, सारे शरीर में भरी रहती है। काले-काले भाफ के परमाणु सिर को छोड़कर, देह के अन्यान्य अंगों से उठ-उठकर दिमाग़ की तरफ चढ़ते हैं और वहाँ पहुँचकर एक प्रकार का मालीखोलिया पैदा करते हैं।

दूसरा भेद

दूसरा भेद वह है, जिसमें सदोष या निर्दोष वायु अप्राकृतिक या प्राकृतिक वात–सिर में ठहर जाती है—सारी देह में नहीं फैलती। कभी-कभी दोष का कुछ अंश शरीर के और भागों में भी चला जाता है। यह मालीखोलिया बहुत बुरा है।

तीसरा भेद

तीसरा भेद वह है, जिसमें मालीखोलिया उत्पन्न करनेवाला दोष आमाशय, मासारीक़ा, तिल्ली या मिराक़ में इकट्ठा हो जाता है। उक्त अवयवों से ही काले-काले वाष्प के परमाणु उठ-उठकर दिमाग़ में पहुँचते और मालीखोलिया रोग उत्पन्न करते हैं। मालीखोलिया के इस क़िस्म का दोष चाहे जिस अवयव में क्यों न रुका रहे, पर वह मिराक़ को अवश्य

फुला देता है, इसीलिए इस क़िस्म के मालीखोलिया को "मालीखोलिया मिराक़ी" कहते हैं।

मालीखोलिया मिराकी में रोगोत्पादक दोष आमाशय, मासारीका, प्लीहा और मराक़—इन चार अंगों में एकत्रित हुआ करता है, जिनसे दूषित वाष्प दिमाग़ की तरफ़ चढ़कर दूषित विचारों के कारण होते हैं। इसका उक्त चार अवयवों के साथ संबंध होने के कारण ही, इसके चार भेद स्वीकार किए गए हैं। दे० "मालीखोलिया मिराक़ी"।

मालीखोलिया के पहिले भेद के लक्षण

सामान्य लक्षण

रोगी की देह का रंग कुछ-कुछ काला हो जाता शरीर दुबला और कमज़ोर हो जाता है। पेशाब दोष के पकने से पहले, साफ़ सफेद होता है; किंतु दोष के पकने पर काला हो जाता है। मालीखोलिया का यह भेद अन्य सब भेदों की अपेक्षा सुखसाध्यहै, क्योंकि दोष विशेषकर किसी एक अवयव में नहीं रहता—सिर को छोड़कर सारे शरीर में रहता है।

डॉक्टरोंके अनुसार मालीखोलिया के ये लक्षण होते हैं—रोगी के चेहरे पर ज़र्दी या कालिमा का जोर होता है। आँखें अस्वच्छ और कांतिहीन होती हैं। त्वचा रूखी होती, नाड़ी मंद-गति होती, मंदाग्नि होता, पेशाब में लीथिएट्स उत्सर्ग होते हैं। मलावरोध होता है और रोगी आमाशय के स्थान या यकृत स्थल पर बोझ अनुभव करता एवं व्याकुल और चिंतित रहता है। प्रत्येक वस्तु से भयभीत रहता और दूषित एवं विकारी भाव हृदय में लाता है। कभी तो उसे निर्धन होने का भय रहता है, कभी विषाक्त एवं क़त्ल किए जाने की आशंका रखता है। अतएव खाना-पीना छोड़ देता है और दुर्बल एवं कमज़ोर होकर प्राण गँवाता है। इस रोग के रोगियों में किसी को यह भ्रम होजाता है, कि उसके शरीर पर सिर नहीं। कोई कहता है, मेरे गले में साँप चला गया। कोई मुर्ग बनकर बाँग देता है। कोई गदहा बनकर चिपो चिपो करता है। कोई अपने को मिट्टी या शीशे का बना समझने लगता है। किसी को राजा बनने और देश विजय करने की अभिलाषा होती है। कोई-कोई विद्वान् इस रोग से आक्रांत होकर स्वयं ईश्वरी का दावा करते हैं और अकस्मात् घटित होनेवाली कतिपय वास्तविक घटनाओं को मुअजज़ा क़रार देने लगते हैं। कोई रोगी हँसता है; कोई रोता है; कोई हँसी-मजाक करता है और कोई सर्वथा चुप्पी साधता है। मतलब यह कि, तरह-तरह की दूषित भावनाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं। रोगी ऐसा संशयपूर्ण रहता है कि, किसी विश्वासनीय व्यक्ति का भी विश्वास नहीं करता। कभी रोग के सामान्य लक्षण चिरकाल तक बने रहते हैं, कभी शीघ्र ही उग्र लक्षण प्रकाशित होजाते हैं। अहर्निशि की चिंताओं, अनिद्रा और अनाहार आदि से रोगी शीघ्र कमज़ोर होजाता है।

ये तो हुईं सामान्य लक्षणों की बात; इस रोग के सूक्ष्म लक्षण इस रोग के हेतुओं के अनुसार होते हैं, उन्हें हम आगे लिखते हैं——

प्राकृतिक वात से पैदा होनेवाले मालीखोलिया के लक्षण। बहकना या आनतान बकना, हँसना, खुश रहना, आँखों की सुर्ख़ी, रगों में भारीपन, नाड़ी में गंभीरता और तेजी, देह और चेहरे का रंग लाली लिए हुए काला होना—ये सब लक्षण "प्राकृतिक वायु" से उत्पन्न होनेवाले मालीखोलिया के हैं।

वायु जलने से हुये मालीखोलिया के लक्षण

मालीखोलिया के रोगी में यदि वायु का प्राबल्य हो, तो नाड़ी दृढ़ एवं नाना भाँति की गति करती है। पेशाब साफ होता है। देह श्यामता लिए दुर्बल एवं कृश होती है। वह सोच में डूबा रहता है, चिंता-फिक्र करता, डरता और व्याकुल सिर झुकाए एकांत में अकेला बैठा रहता है। उसमें बुरे-बुरे विचार पैदा होते हैं। ये सब प्राकृतिक वात के जल जाने से पैदा हुई अप्राकृतिक वायु के लक्षण हैं।

पित्त जलने से पैदा हुए मालीखोलिया के लक्षण

अधिक तेज़ी, स्वभाव का बिगड़ जाना, बहकना—आनतान बकना, चिल्लाना, घबराना, जागते रहना, किसी भी जगह कम ठहरना, अत्यंत क्रोध करना, छूने से शरीर गरम मालूम होना, शरीर का रंग पीला हो जाना, पशुओं की तरह देखना और पागल हो जाना, निर्बुद्धिता आदि लक्षण इसमें

दिखाई देते हैं। रोगी की आँख बनैले पशुओं की तरह क्रोधमयी हो जाती है।

पित्त के जलने से भी "अप्राकृतिक बादी" पैदा होती है।

कफ के जलने से हुये मालीखोलिया के लक्षण

इधर-उधर उचकना, बारम्बार थूकना, सुस्ती रहना, एक जगह बैठे रहना पसंद करना और शरीर छूने से कम गरम मालूम होना आदि लक्षण इस किस्म के मालीखोलिया में होते हैं।

कफ के जलने से भी अप्राकृतिक वात पैदा होती है।

खून जलने से हुए मालीखोलिया के लक्षण

यदि रोगी में बहकना, हँसना, प्रसन्न रहना, नेत्रों में लालिमा, नसों में भारीपन, नाड़ी में गहराई और तेज़ी ये लक्षण हों, शरीर और चेहरे का वर्ण ललाई लिए काला हो तथा रोगी के जवान होने पर भी, उसके शरीर से सामान्य रक्त निकलना बन्द हो गया हो, तो उक्त मालीखोलिया को "खून-दोष के जलने या उसकी प्रकृति में गरमी आ जाने से" हुआ समझना चाहिये।

मालीखोलिया के दूसरे भेद के लक्षण

रात-दिन पढ़ने-लिखने या गूढ़ अर्थों के चिंतन में व्यस्त रहनेवाले या अधिक मानसिक आयास करनेवाले लोगों को, इस प्रकार का मालीखोलिया रोग होता है। यह मालीखोलिया अतीव भयावह होता है; क्योंकि इसका दोष समग्र शरीर में न फैलकर, केवल एक जगह–सिर में ठहर जाता है।

हकीम रूफिस के अनुसार, यह रोग बहुधा तत्त्वज्ञानियों या फिलासफरों को होता है। हकीम तिबरी के मत से इस रोग के आखेट वह विद्वान् होते थे जो पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त और काम न करते थे।

जिस रोगी के सिर में मालीखोलिया दोष ठहर जाता है, उसमें ये लक्षण पाये जाते हैं—

रोगी सदा सोच-फिक्र या चिंता में डूबा रहता है, टकटकी बाँधकर ज़मीन की ओर देखा करता है, उसका सिर और चेहरा–ये दोनों अंग तो दुबले हो जाते हैं, पर और सब अंगों में यथा प्रमाण मांस रहता है; अर्थात् और अंग यथावत् बने रहते हैं। नेत्र खड्डों में घुसे रहते हैं। नाड़ी सुस्त, सूक्ष्म, अव्यवस्थित और कठोर होती है। पेशाब पतला और साफ होता है।

यह रोग बहुत जागने, अधिक चिंता करने, धूप में नंगे सिर फिरने और लहसन, प्याज़, गंदनादि मस्तिष्क को हानि पहुँचानेवाले पदार्थ अधिक खाने से होता है।

मालीखोलिया उत्पन्न करनेवाला दोष मस्तिष्क की रगों में रुक रहा है या सारे शरीर में फैल गया है—इसे जानने का सरल उपाय यह है—

यदि दोष केवल मस्तिष्क में ही रुका होगा, तो शरीर के हाथ-पाँव आदि अवयवों का रक्तमोक्षण करने से, वहाँ से लाल और साफ खून निकलेगा। यदि दोष समग्र शरीर में व्याप्त होगया होगा, तो किसी भी अंग की फस्द खोलने से वहाँ से काला या कलौंछ रक्त निकलेगा।

तीसरे भेद या मालीखोलिया मिराकी के निदान लक्षणादि

यह मालीखोलिया रोगका वह भेद है, जिसमें रोगी के सोच-फिक्र एवं चिंताएँ प्रकृतिस्थ नहीं रहतीं। इसमें बहुधा अहंकार एवं आत्मश्लाघा के दूषित भाव समा जाते हैं। वह प्रत्येक बात में प्रधानतः रोग की अवस्था में बढ़-बढ़ कर बातें करता है।

इस रोगका दोष (उग्र सौदावी दोष) आमाशय, मासारीक़ा, तिल्ली या मराक़ में जमा हुआ करता है, जिससे दूषित भाफ के परमाणु मस्तिष्क की ओर उठ-उठ कर दूषित विचारों के कारण होते हैं।

पर्य्या०—मालिनखोलिया, इल्लत नाफ़िख़ः, सौदा-अ०। वहम वा मराक़, वहम मराकी। Hypochondriasis.

विशेष देखो कोषान्तर्गत "मराक़" या "मालीखोलिया मराक़ी"।

मालीखोलिया मिराक़ी के कारण

यह रोग प्रायः पाचन-विकार, विशेषतः यकृत की क्रिया के बिगड़ने से उत्पन्न होता है और कतिपय कुलों में अनुवांशिक भी होता है। किसी ख़ास

धुन में लगे रहना, दिमागी श्रम की अधिकता, स्त्री-संग की अधिकता, दुःख चिंता और वहम आदि इसके कारण हैं।

मालीखोलिया मिराक़ी के लक्षण

जली हुई खट्टी-खट्टी डकारें आती हैं। रियाह के गाढ़ी होने से डकारें बंद भी जाती हैं। पाचन-शक्ति बिगड़ी होती है। मुँह से लार बहुत गिरती है। पेट फूल जाता है। पसलियोंके नीचे तनाव और दर्द होता है। दोनों कंधों के बीच वेदना का बोध होता है। भूठी भूख जोर की लगती है। छाती जकड़ी हुई और तंग मालूम होती है। बहुत सा खाने पर भी रस कम बनता है। आमाशय और मिराक़ नामक पेट की भिल्ली में जलन और खिंचावट मालूम होती है। रोगी को आमाशय या भिल्ली प्रभृति से भाफ के परमाणुओं का, दिमाग़की तरफ़, ऊपर चढ़ना मालूम होता है।

नोट—(१) यदि रोग तिल्ली से होगा, तो उपर्युक्त लक्षणोंके सिवा प्लीहा बढ़ी हुई जान पड़ेगी।

(२) यदि व्याधि आमाशय की सूजन से होगी, तो गरम या शीतल सूजन के अनुसार, ज्वर, प्यास, पित्त की कय के आने या न आने से पहचाना जायगा। यही हाल मसारीक़ा में गाँठ होने का है।

(३) जिस रोग में उपर्युक्त लक्षण मिले हुए पाये जाते हैं, वह रोग तीन-तीन स्थानों के संयोग से होता है।

डॉक्टरी मत से मालीख़ोलिया मराक़ी (Hypochondriasis) के लक्षण—

रोगी सदा सुस्त एवं चिंतित रहता है। उसमें अहंकार के भाव पैदा हो जाते हैं। वह बात-बात में अतिशयोक्तिका प्रयोग करता है। तनिकसे कष्टको बहुत बढ़ाकर वर्णन करता है। उसे भूख नहीं लगती। खाना भली भाँति हज़म नहीं होता। कभी अव्यवस्थित विचारों के कारण एक ही बात को दुहराए जाता है। रोग की उग्र अवस्था में एकांत-सेवन पसंद करता है। कभी जीवन से व्याकुल होकर मरना अधिक पसंद करता है, इत्यादि।

मालीख़ोलिया के और भेद

उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त मालीख़ोलिया के अधोलिखित भेद और होते हैं—

१—बुद्धिविपर्यय (इख़्तिलात अक़्ल), २—अहंकार और मूर्खता (रऊनत तथा हुमुक़), ३—बहकना या वृथा बकवाद करना अर्थात् प्रलाप (हज़यान), ४—प्रेम (इश्क़)।

बुद्धिविपर्यय

वह बेअक्ली जो जुनून की सीमा तक न पहुँची हो। यह एक प्रकार का मालीख़ोलिया है, जिसमें बुद्धि बिगड़ जाती है। यह रोग जन्मोत्तर मस्तिष्क-विकार से उत्पन्न होता है। इसमें रोगी मूर्ख हो जाता है। रोगी ऐसी बातें करता है जो सभ्यता के विरुद्ध एवं साधारण रीति-रिवाज के विपरीत होती हैं।

पर्या०—इख़्तिलातुल् अक़्ल, ख़ब्तीपन, ख़ब्त दिमाग़, अक़्ल ख़राब हो जाना। Imbecility

नोट—डॉक्टरों ने इसे (Amentia) का भेद लिखा है।

इख़्तिलात अक़्ल और जुनून का भेद

जब तक शोरिश एवं तशवीश साधारण रहे और पागलपन के कार्य घटित न हो, तब तक उसे बुद्धिविपर्यय कहते है। परंतु जब मानसिक विकार एवं व्यग्रता सीमा का अतिक्रमण कर जाती है, तब उसे जुनून वा उन्माद के नाम से अभिहित करते हैं।

अहंकार और मूर्खता

इस रोग में बुद्धि, होश तथा स्मृति आदि में कमोबेश फ़र्क़ आ जाता है। यह भी मालीख़ोलिया का एक भेद है। इसमें विचार-शक्ति की क्रिया प्रायः बिगड़ जाती है। गृहस्थी के काम या मनुष्यों से व्यवहार विषयक बातचीत करने में विचार-शक्ति ठीक नहीं रहती अथवा उसमें कमी आ जाती है, इसलिये इस रोग का रोगी बालकों का सा बेमतलब के काम करता है। उसका ध्यान सहज कामों में ठीक लगता है. परंतु कार्यों के परिणाम या फल को सोच समझ नहीं सकता।

वस्तुतः यह एक प्रकार का बुद्धि-नैर्बल्य है, जिसके कारण रोगी अपने सांसारिक काम-काज में मूर्खता प्रकाशित करता है, बच्चों एवं नादानों की सी चेष्टाएँ करता है। जब इस प्रकार के बुद्धि-नैर्बल्य में अहंकार एवं अहम्मन्यताका प्रकाश होताहै अर्थात् जब

रोगी अपने को सर्वाधिक योग्य एवं उच्च समझने लगता है, तब उसे अहंकार (रऊनत) कहते हैं। अस्तु, रऊनत भी वास्तवमें एक प्रकार की मूर्खता ही है, जिसमें रोगी को "हमचु दीगरे नीस्त" का ख्याल रहता है।

पर्य्या०—हुमुक़, रऊनत–अ० । बलाहत, अबलही, बेवक़ूफ़ी, अहमकपन, हिमाक़त–उ० । मूर्खता, अहंकार–हिं० । Dementia.

नोट–डॉक्टरी में इसे इनसेनिटी वा जुनून का भेद माना गया है।

कारण

दिमाग़ के बीच के पर्दे में, जो विचार का स्थान है, सर्दी या खुश्की के साथ सर्दी का आ जाना या मस्तिष्क मध्यावरण के पोलदार स्थान में कफ का भर जाना, इसके उत्पादक कारण हैं। यदि सर्दी और खुश्की या अकेली सर्दी के कारण से रोग होता है, तो नाक में रूक्षता पाई जाती है, नींद नहीं आती है, नहाने और सिर पर गरम पानी डालने से लाभ होता है और सर्दी तथा खुश्की का हेतु भी पाया जाता है।

डाक्टरों के अनुसार तीव्रज्वर, अपस्मार, सरसाम, सकता, उन्माद, मस्तिष्क का मृदु हो जाना, दिमाग पर चोट एवं आघात लगना इत्यादि इसके कारण हैं।

प्रलाप या हज़यान

यह रोग भी मालीखोलिया का एक भेद है। यह चिंता के कामों से उत्पन्न होता है और इसमें ज्वरांश अवश्य होता है। यह वस्तुतः मानसिक शक्तियों का विकार है, जो भाषण एवं चेष्टा में प्रगट होता है।

पर्य्या०—हज़ी, हज़यान–अ० । यावा गोई, फ़ुजूल गोई, बकवास करना, बेहूदा बकना, ऊल फूल बकना, बहकना, बर्राना–उ० । प्रलाप करना, व्यर्थ बकवाद करना, अनाप-शनाप बकना, पागलों की तरह बड़बड़ाना, निरर्थक बकना–हिं० । डेलीरियम् Delerium-(अं०)।

प्रलाप के भेद

इस रोग के उत्पन्न होने के मुख्य तीन स्थान हैं; अतः स्थानों के अनुसार इसके तीन भेद माने गए हैं—

(१) केवल मस्तिष्क से होनेवाला।

(२) आमाशय या झिल्ली आदि किसी एक अंग से होनेवाला।

(३) सारे शरीर से होनेवाला।

बहकने का पहला भेद

इसमें रोग का प्रारम्भ मस्तिष्क से होता है! यह छः प्रकार का होता है—

(१) मस्तिष्क-मध्यावरण के, जो विचार का स्थान है, वायु से भर जाने से, यह रोग होता है। इसमें रोगी मालीख़ोलियावाले के समान उदास एवं दुःखी रहता है।

(२) यह रोग, मस्तिष्क में वात-पित्त की अतिशय वृद्धि के कारण, होता है। इसमें रोगी की प्रकृति एवं साहस पशुओं के जैसा होजाता है।

(३) जब मस्तिष्क में रक्त और वात भर जाते हैं, तब यह रोग होता है। उस दशा में रोगी हँसता और प्रसन्न रहता है तथा रगें फूल जाती हैं।

(४) मस्तिष्क में पित्त की उल्वणता के कारण यह रोग होता है। जब यह रोग होता है तब गरमी का भड़कना, बेचैनी, सिर और गले में दर्द, ज्वरांश और देह का पीला पड़ जाना—ये लक्षण होते हैं।

(५) जब मस्तिष्क में दुर्गंधित एवं तीव्र कफ भर जाता है, तब यह रोग होता है। उस दशा में रोगी बहकता है, हाथ से भौंहों को ऊपर चढ़ाता है और उसका सिर भारी होजाता है।

(६) मस्तिष्क में गरमी और साधारण खुश्की आ जाने से यह रोग होता है। इसमें दिमाग़ में खुश्की होना, जागना और मल के चिह्नों का न होना–ये लक्षण होते हैं।

प्रलाप या बहकने का दूसरा भेद

इसमें रोग के उत्पन्न होने का स्थान मस्तिष्क न होकर, आमाशय, पेट, झिल्ली, गर्भाशय या वीर्यस्थान अथवा और कोई अंग, इसके उद्भव की भूमि, होती है। इन अवयवों में से किसी एक अवयव से मस्तिष्क को क्षति पहुँचती है, उस समय प्रलाप रोग

का प्रादुर्भाव होता है। रोग उत्पन्न होनेवाले अवयव में तकलीफ़ होती है। उस कष्टमय अवयव के कारण यह रोग होता है या उसके उष्ण वाष्प के परमाणु मस्तिष्क में चढ़कर यह रोग करते हैं। उस अवयव में कष्ट होना और बहकना, इस भेद के लक्षण हैं।

प्रलाप का तीसरा भेद

इस भेद में भाफ के तीव्र वाष्प या तेज़ परमाणु सम्पूर्ण शरीर से उठकर मस्तिष्क में पहुँचते और बुद्धि को नष्ट कर देते हैं, जैसा कि ज्वर में होता है। इसमें प्रथम ज्वर आता और पहले ज्वर ही की चिकित्सा की जाती है; क्योंकि ज्वर के जाते रहने से, बहकना आपही जाता रहता है।

बहकने या प्रलाप के कारण

तीव्र ज्वर, रक्त में किसी प्रकार के विष का मिल जाना, मस्तिष्क-रचना-विकार, वाततंतुओं की निर्बलता, जुनून एवं मालीख़ोलिया प्रभृति इसके कारण हैं।

प्रलाप के सामान्य लक्षण

साधारण दशा में रोगी की बात-चीत एवं चेष्टाएँ असम्बद्ध, समय के विपरीत या असामयिक होती हैं; परंतु उग्र अवस्था में वह पागलों की तरह वृथा प्रलाप आदि करने लगता है। वस्तुतः कोई वस्तु वर्तमान नहीं होती, किंतु रोगी कहता है, वह है, यह है, इत्यादि।

इश्क़ या प्रेम
Erotomania

इश्क़ का अर्थ "प्रेम का हद से गुज़रना", "दिल आ जाना", "मोहित होना" या "किसी वस्तु को अत्यंत प्रिय रखना" आदि है। इश्क़ शब्द "अशक़:" से, जिसको लबलाब और इश्कपेचाँ भी कहते हैं, व्युत्पन्न है! इस बेल का यह विशेष धर्म है कि जिस वृक्ष पर चढ़ती है, उसे सुखा देती है। यही दशा इश्क़ या प्रेम की है। जिसको यह होता है, उसको शुष्क एवं ज़र्द कर देता है। यह ऐसा रोग है, कि लोग इसे अपने-आप लगा लेते हैं। जब यह रोग हो जाता है, तब मनुष्य सदैव शोक संतप्त रहता है। उसे अकेले बैठे रहना, चुप रहना और काम न करना अच्छा लगता है। अर्थात् जो-जो लक्षण मालीख़ोलिया या उन्माद में होते हैं, वे सब इसमें पाये जाते हैं। किसी रूपवान पदार्थ को देखकर मनुष्य उसकी चिंता किया करता है, उसके देखने के लिये सदैव उत्कंठित रहता है। वह पदार्थ वास्तव में सुन्दर हो चाहे न हो, पर दिल जब उस पर लग जाता है, तब वह रात-दिन उससे मिलने या उसे देखने की चिंता में ग़र्क़ रहता है और उसकी प्रशंसा किया करता है। प्रेम की तल्लीनता में वह प्रेम पात्र के दोष नहीं देख सकता। अपितु अपने प्रेम पात्र के दोष उसे गुण नज़र आते हैं। इसीलिए तो कहते हैं—"लैला रा बश्म मजनूँ बायद दीद" अर्थात् लैला को मजनूँ की आँखसे देखना चाहिए। कहते हैं कि, मजनूँ की परम प्रेयसी लैला अतीव स्याह फ़ाम (काली कलूटी) थी; परंतु जनाब मजनूँ उसके प्रेम में ऐसे अनुरक्त थे कि, लैला की फ़स्द खोली, तो मजनूँ की रगसे खून निकल आया। वाह रे! इश्क़!

प्रेमासक्त व्यक्ति के सदा चिंता-ग्रस्त रहने से खून जल जाता है और खून के जलने से मनुष्य पागल हो जाता है। अस्तु, यह भी एक प्रकार का उन्माद ही है। अर्वाचीन मिश्र देशीय चिकित्सक, इसको "जुनून इश्क़ी" संज्ञा से अभिहित करते हैं, जो अपने आशय को अधिक स्पष्ट तया व्यक्त करता है।

यह रोग ऐसा साधारण है जो वर्णन की अपेक्षा नहीं रखता। इश्क़ वा मुहब्बत अर्थात् प्रेम और अनुराग को कौन नहीं जानता? हाँ! यह संभव है कि, जनसाधारण इसे जुनून न समझते हों। उन्हें यह मिसरा स्मरण रहे—

"कहते हैं जिसे इश्क़ वह अज़ क़िस्मे जुनून है।"

इसीलिए इश्क़ रोग के प्रसिद्ध रोगी, क़ैस महाशय को मजनूँ की उपाधि से विभूषित किया गया।

अखिल शरीर तथा मानव-रोगों में, केवल इश्क़ ही एक ऐसी व्याधि है, जो प्रेमी को जगत-विख्यात बना देती है। यही नहीं, अपितु उसके सिर पर अक्षय कीर्ति का मुकुट स्थापित कर देती है। इनसान तो दरकिनार, देखिए पुष्पानुराग ने बुलबुल को और शमा के प्रेम ने परवाना को कितनी ख्याति

प्रदान की। क़ैस, फ़र्हाद, हज़रत मंसूर और हज़रत सरमद के नामों से कौन सा ऐसा मनुष्य है, जो सुपरिचित नहीं? प्रेमपात्र या माशूक़ के अनुराग-तल्लीनता में प्रेमी दीन-दुनियाँ और अपने अस्तित्व तक को भी भूल जाता है। बल्कि जब यह तल्लीनता–प्रेममग्नता पराकाष्ठा को पहुँच जाती है, तब द्वैत या दो-पना शेष नहीं रहता। इश्क़ ही ने कतिपय सत्यानुरागियों को परमब्रह्म में लय प्राप्ति की श्रेष्टतम सीमा पर पहुँचा दिया अर्थात् वे परब्रह्म में लीन हो गए। अतएव कतिपय आध्यात्मिक पंडितों ने इस विलक्षण व्याधि की अत्यंत प्रशंसा की है। अस्तु मौलाना रूम, जो परम प्रसिद्ध सूफ़ी गुज़रे हैं, फ़र्माते हैं—

शाद बाश ऐ इश्क़ ख़ुश सौदाए मा,
ऐ दवाए नख़्वत व तामूस मा।
ऐ तबीबे जुमला इल्लतहाए मा,
ऐ तू अफ़लातून व जालीनूस मा।

इश्क़ वा प्रेमोन्माद के लक्षण

प्रेमासक्त मनुष्य सिर झुकाये हुए चुपचाप बैठा या खड़ा रहता है। जो बात सुनता या देखता है, उसे भूल जाता है, उसकी आँखें भीतर को धँस जाती हैं। उसके नेत्र बारंबार चलायमान होते और सूख भी जाते हैं; परंतु रोने के समय तर हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह किसी सुंदर वस्तु की ओर टकटकी लगाये देख रहा हो। उसे आदमियों में बैठना बुरा लगता है और एकांत में रहना अच्छा लगता है। उसकी नाड़ी की गति अव्यवस्थित हो जाती है। इस रोग की एक स्पष्ट और मुख्य पहिचान यह भी है, कि वह अपने प्रेमपात्र को देखकर या उसका नाम सुनकर लंबे-लंबे साँस लेने लगता है। इन चिह्नोंकी कमी और कारण की अधिकता–मनुष्य के पराक्रम या निर्बलता पर निर्भर है।

जुनून या उन्माद

प्राचीन यूनानी चिकित्सकोंने जुनून या उन्माद के, जो मालीख़ोलिया का प्रकारांतर है, अधोलिखित चार भेद किए हैं—

(१) मानिया, (२) दाउलकल्ब, (३) कुतरुब और (४) सुबारा।

मानिया (Mania) के लक्षण

मानिया में दीवानगी के साथ दरिंदगी होती है। इसमें रोगी की प्रकृति अत्यंत चंचल एवं क्रोधातुर हो जाती है। रोगी पशुओं की तरह फिरता रहता है। जिस वस्तु को पाता है, उसे ही तोड़ फोड़कर नष्ट कर देता है। मनुष्यों को देखते ही, उनपर झपटना चाहता है। उसकी दृष्टि आदमियों की सी नहीं रहती; अपितु मांसाहारी पशुओं–सिंह व्याघ्रादि की सी हो जाती है।

मानिया रोग जले हुये पित्त या जले हुये वायु के भाफ के कणों के मस्तिष्क में जाकर इकट्ठा हो जाने से होता है।

प्रदग्ध पित्तोत्पन्न मानिया के लक्षण

रोगी बहुत ही बेचैन रहता है। शीघ्र-शीघ्र बदमाशी या मुहब्बत करने लगता है। इधर-उधर घूमा करता है और शोक या चिंता में व्यस्त रहता है।

प्रदग्ध वातोत्पन्न मानिया के लक्षण

रोगी चिंताग्रस्त और चुपचाप रहता है। बुलाने से बोलता नहीं। परन्तु आग्रह करने पर जब कभी बोलता और बातें करता है, तो इतना बोलता है कि उसकी बातों का अन्त नहीं आता और सुननेवालों को अपना पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। यदि इसे क्रोध आता है, तो बड़ी देर में शांत होता है। इस रोगी का शरीर कृश और रंग स्याही मायल होता है। नाड़ी तीव्र भरी हुई, जबान मैली, भूख नष्टप्राय होती और शिरोशूल होता है। शब्द और प्रकाश का क्षमता बहुत घट जाती है। शारीरिक ताप बढ़ जाता है। इसके साथ ही बोध एवं स्पर्श आदि शक्तियाँ भी न्यूनाधिक बिगड़ जाती हैं। कभी-कभी स्वयं बकवाद करने लगता है, शरारत और हानि पहुँचाने पर आमादा रहता है। कभी समीप के लोगों से भय खाता है।

नोट—मानिया रोग और दिमाग़ की सूजन में यह भेद है, कि दिमाग़ की सूजन अर्थात् सरसाम में ज्वर अवश्य होता है। पर मानिया में ज्वर नहीं होता।

दाउल्कल्ब (Cinanthropy) के लक्षण

यह एक प्रकार का जुनून या उन्माद है,

जिसमें रोगी अपने आपको कुत्ता समझने लग जाता है और कुत्ता की तरह चेष्टाएँ करने लगता है या उसका स्वभाव कुत्तों का सा हो जाता है। यानी कभी तो वह अत्यंत चंचल स्वभाव एवं भयावह हो जाता है और कभी कुत्तों की तरह अतिशय चापलूसी एवं ख़ुशामद करने लग जाता है। इस रोग के रोगी का काटा हुआ आदमी, पागल कुत्तेके काटे हुये आदमी की तरह, मर जाता है। यह रोग वस्तुत: "मानिया" का एक भेद मात्र है।

क़ुतरुब (Lycomania)
के लक्षण
Lyconthropy

इस रोगका रोगी अत्यंत भयंकर होता है और क्रोधित रहता है। क्षण भरभी एक जगह नहीं ठहरता, सदा कुतरुब कीड़ा या भेड़िये की तरह व्यर्थ घूमा करता है। उसे लोगों द्वारा मारे जाने की आशंका रहती है। वह समझता है,कि लोग मुझे पाते ही मार डालेंगे। अतः अपनी प्राणरक्षा के लिये, दिन के समय, क़ब्रस्तानों या खंडहरों में छिपा रहता और रात के समय बाहर निकलता है।

कोई-कोई रोगी भयभीत तो नहीं रहते, पर क्रोधित और चिंतित रहते हैं। उनके शरीर का रंग पीला, ज़बान शुष्क और प्रकृति विशेष गर्म होती है। वे लोग, जंगल में, चारों हाथ-पैरों के बल पशुओं की तरह चलते हैं। बहुत घूमने के कारण, कभी-कभी उनकी पिंडलियों में घाव हो जाते हैं और रातभर फिरने के कारण, उनके पाँव काँटों और पत्थरों से छिल जाते हैं।

सुबारा या जुनून सरसामी
Delerious Mania

यह एक प्रकार का विकट जुनून या उन्माद है, जो पैत्तिक सरसाम के साथ होता है। इस रोग में ऐसा जान पड़ता है, मानो "मानिया" और "क़ुरानीतुस" दोनों इकट्ठे हो गये हैं। मानिया के लक्षण ऊपर लिखे ही गये हैं और क़ुरानीतुस का अर्थ यूनानी भाषा में "व्यर्थ बकवाद करना या प्रलाप करना" है। सारांश यह कि, इस रोग में मानिया और क़ुरानीतुस दोनों ही के लक्षण पाये जाते हैं।

सुबारा रोगी प्रारम्भ में बहुत जागा करता है। दीर्घकाल तक रोगीको बिलकुल नींद नहीं आती।यदि आतीभी है,तो शीघ्रही वह डरकर चौंक उठताहै। हर समय बेचैन और घबराया हुआ रहता है। निरंतर साँस चढ़ाता है। रोगीकी दोनों आँखें कबूतर के खून की तरह लाल एवं चलायमान धूलि-धूसरित और अश्रुपूर्ण होती हैं। उसे ऐसा भ्रम होता है, मानो कोई चीज उसकी आँख में गिर पड़ी है। अपने आप आँसू निकल पड़ते हैं। उससे जोकुछ पूछा जाता है, उसका जबाब नहीं देता-फालतू बातें बकता है। पेशाब सफ़ेद और पतला होता है। कभी-कभी पेशाब उतरता ही नहीं। पेशाब न उतरने पर, उसे कष्ट होता है। कष्ट के मारे वह पेड़ू पर हाथ रखता है और उसे मलता है। पर मूर्खता या अज्ञान के कारण कह नहीं सकता, कि मुझे अमुक कष्ट है। कभी-कभी उसका शरीर भी काँपता है।

नोट—इस रोग में मानिया की अपेक्षा अधिक उग्र लक्षण व्यक्त होते हैं। मतलब यह कि, यह उग्र प्रकार का एक भाँति का जुनून ही है। इसीलिये मान्यवर हरिदास जी ने "चिकित्सा चंद्रोदय" के सातवें भाग में इसे "विशेष जुनून" लिखा है। डॉक्टरी में इसे जुनून सरसामी या जुनून हज़यानी (Delerious mania) कहते हैं।

जुनून या उन्माद के अन्य भेद

शेष अन्य प्रकार के जुनून में उनके अनुसार विशेष प्रकार की चेष्टाएँ व्यक्त होती हैं। उदाहरणतः जुनून रक़्सी में रोगी नाचने लगजाता है। मानियाए सर्क़ी में विवश होकर चोरी करता है, मानियाए नारी में आग लगाता फिरता है।

मालीख़ोलिया और जुनून का फ़र्क़

मालीखोलिया में रोगी के सोच-फ़िक्र एवं विचार अस्थिर हो जाते हैं, उसकी प्रकृति भ्रम एवं शंकापूर्ण हो जाती है। रोगी अधिकतया भयातुर एवं चिंतित रहता है। किंतु उसकी प्रकृति में तेज़ी एवं चंचलता नहीं पाई जाती। इसके विपरीत जुनून में रोगी उद्विग्न होता और असभ्य चेष्टाएँ करने लगता है। कभी लोगों, बल्कि अपने सुहृद मित्रों को जानी दुश्मन समझकर, उनसे भागता है और कभी कुत्तों

की तरह उनकी चापलूसी करने लगता है। कभी जोश एवं क्रोध के आवेश में भर जाता है और ग़ैज़ व ग़ज़ब से लड़ने-झगड़ने और मारने-पीटने पर उतारू हो जाता है। मांसाहारी वनैले-पशुओं की तरह आदमियों पर झपटना और आक्रमण करता है, इत्यादि।

ख़फ़क़ान (हौलदिल) और मालीख़ोलिया का भेद-ख़फ़क़ान हृदय की बीमारी है और मालीख़ोलिया दिमाग़ की। ख़फ़क़ान में हृदय में स्फुरण अर्थात् फड़कन उत्पन्न हो जाता है। किंतु मालीख़ोलीया में सोच विचार एवं चिंताएँ प्राकृतिक अवस्था को छोड़कर भय एवं फ़िसाद की ओर प्रवृत्त हो जाती हैं।

नोट—यद्यपि ख़फ़क़ान भी एक प्रकार का उन्माद रोग ही है। तथापि दिमाग़ से न होकर, यह दिल से होता है। अस्तु, हमने इसका वर्णन हृदय रोगों में किया है।

निदान वा रोग-विनिश्चय

जब किसी रोगी में अधोलिखित लक्षण पाये जाँय, तब समझ लेना चाहिये, कि वह जुनून के किसी न किसी भेद से ग्रस्त है—

दीर्घकालीन अनिद्रा, बड़ी देर तक निरंतर हक्का-बक्का रहना, भाषण में भी अंतर की कमी या ज़्यादती, विशेष प्रकार के कार्यों में मुख्यतया तल्लीन रहना, एक ही बात को बारम्बार कहना या करना, हर समय गिनते रहना या बार-बार वस्त्र प्रक्षालन करते रहना, निरर्थक बातों पर हदसे ज़्यादा आग्रह करना, साधारण से कार्य को करने में हिचकिचाना, हद से ज़्यादा सशंक एवं लज्जावान होना, अत्यधिक भाषण, तनिक-तनिक सी बात पर खिलखिलाकर हँस पड़ना या चिल्लाकर रो देना, किसी प्रकार के विशेष दौरे पड़ना, सहसा अपने जीवन-वृत्त को सर्वथा बदल देना, स्वयं अपने को हर एक से तुच्छ और अतीव दोषी-गुनहगार समझना, मनुष्य एवं अन्य पदार्थ विषयक अनावश्यक भावनाएँ, कल्पित शब्द-श्रवण, स्वयं अपने को सर्वाधिक बलवान एवं धनवान समझना, प्रतिक्षण इस भय में रहना, कि उस पर किसी ने जादू कर कर दिया है। प्रत्येक बात के लिये हद से ज़्यादा चिंतित रहना, किसी आगामी संकट या व्याधि आदि से डरते रहना, हद से ज़्यादा निरंतर मृत्यु की आशंका करना, बिना कारण यह समझना कि, जो मनुष्य उसकी ओर देखता है या देखकर खाँसता है, उसका अपमान करता है—इन लक्षणों के प्रगट होने पर उन्माद रोग होनेका निश्चय करना चाहिये।

कतिपय प्रधान-प्रधान भेदों का पारस्परिक निदान उनके ख़ास-ख़ास लक्षणों से हो सकता है। बनावटी दीवाने और वास्तविक उन्मादी का भेद निम्नलिखित तालिका से प्रगट हो सकता है। पर शर्त यह है कि रोगी को सूचित किये बिना ही उसकी परीक्षा की जाय।

कल्पित उन्माद

(१) इसमें यदि रोगी को पागल कहा जाय, तो वह प्रसन्न होता है। बनावटी पागलपन बहुधा सहसा प्रगट होता है।

(२) रोगी जान-बूझ कर अविवेकपूर्ण बातें करता है। कभी-कभी खूब चिल्लाता और उछलता कूदता है।

(३) सिवा वाह्य प्रकट उन्माद के शरीर में कोई रोग नहीं पाया जाता और न उसका चेहरा ही पागलों का सा मालूम होता है।

(४) उन्माद के दौरे के उपरांत रोगी अत्यंत श्रांत एवं निर्बल हो जाता है। प्रायः उसको पसीना भी आ जाता है।

(५) रोगी को खाने-पीने, सोने और आराम करने की अभिलाषा होती है।

(६) रोगी दुःख-क्लेश की क्षमता नहीं रखता।

(७) प्रायः मादक और निद्राजनक द्रव्यों का प्रभाव रोगी पर शीघ्र प्रगट होता है।

वास्तविक उन्माद

(१) इसमें यदि रोगी को पागल कहा जाय, तो वह अप्रसन्न होता है। वास्तविक उन्माद प्रायः क्रमशः प्रगट होता है।

(२) प्रायः रोगी चिंता-ग्रस्त और चुप-चाप रहता है। कभी-कभी बकवाद या प्रलाप और विवेक-शून्यता की बातें करता है।

(३) इसमें रोगी का चेहरा विशेष दीवानों

की तरह होता है, प्रायः कोई न कोई शारीरिक रोग भी वर्तमान होता है।

(४) रोगी को थकावट और पसीना आदि कुछ नहीं होता। उसकी दशा में कोई विशेष परिवर्तन प्रकट नहीं होता।

(५) रोगी को इनमें से किसी वस्तु की इच्छा नहीं होती।

(६) रोगी प्रत्येक भाँति की तकलीफ़ से अप्रभावित रहता है।

(७) ऐसे द्रव्यों का प्रभाव विलम्ब से या कुछ भी प्रगट नहीं होता।

उन्माद रोगों की चिकित्सा

अनागताबाध-प्रतिषेध

जिन लोगों के मस्तिष्क तथा वात तंतु-निर्बल हों, उन्हें प्रत्येक भाँति की नियम-विरुद्ध बातों से बचाएँ। उग्र मानसिक या शारीरिक व्याघातों से सुरक्षित रखें। मलावरोध न होने दें। लघु शीघ्र-पाकी आहार दें। यदि उन्माद के पूर्वोक्त पूर्व रूपों में से कोई रूप प्रगट हो, तो शीघ्र उसका यथोचित उपाय करें।

उपक्रम-सिद्धान्त

इस रोग का यथा शक्तिशीघ्र उपाय करना चाहिए। क्योंकि यह रोग जितना ही पुराना होजाता है, उतना हो दुश्चिकित्स्य होता है। रोगी को स्वच्छ, हवादार एवं प्रकाशरहित स्थान में रखें, सुगंध सेवन कराएँ; प्रतिदिन भोजन से पूर्व स्नान कराएँ और हर प्रकार उसे प्रसन्न रखें। यदि उन्माद का दौरा अत्युग्र हो और इस बात का भय हो, कि रोगी स्वयं अपने-पराया को हानि पहुँचाएगा, तो उसको मानस-चिकित्सालय (Mental hospital) में प्रविष्ट करादें और वहाँ उसका नियम-पूर्वक चिकित्सा कराएँ। यदि यह सम्भव न हो, तो उसको बाँधने या जंजीरें डालने के बजाय एक लंबी आस्तीनोंवाला चोगा पहना दें। उससे अत्यंत मृदुता, सहानुभूति, प्रसन्नता एवं प्रेम का व्यवहार करें। इसके साथ ही ऐसा उपाय करें, जिसमें रोगी सो जाय। दोषों को पाशोया प्रभृति द्वारा विपरीत दिशा अर्थात् पैरों की तरफ अभिशोषित करें।

यदि रोगी बलवान हो और रुधिर का प्राबल्य हो या अर्श अथवा आर्त्तव के खून बंद होने से दौरा हुआ हो, तो बासलीक़ और साफ़िन नामक रगों की फस्द खोलें और उसके उपरांत तबरीद (शैत्यकारक वा हिम) दें।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए, रोग का जो कारण हो, उसको दूर करें। प्रबल दोष का पाचन एवं शोधन करके माउज्जुब्न पिलाएँ। पुन: मस्तिष्क को ताक़त देनेवाले द्रव्य खिलाएँ। यह स्मरण रखना चाहिए कि, जुनून के समस्त भेदों की चिकित्सा सामान्य रूप से होती है, केवल रोग के दोषानुसार चिकित्सा में विविधता पाई जाती है।

चिकित्सा-क्रम वा सामान्य चिकित्सा

(१) रोगी के नींद लाने के लिए विविध उपायों की आवश्यकता होती है। अस्तु बनफ़शा, नीलोफर, बेख़ ख़त्मी, बर्ग बेद, जौ मुक़श्शर, पोस्त-कद्दू, पोस्त ख्यार, बर्ग काहू, खसखास सफ़ेद, गुले सुर्ख़, गुल बाबूना और लुफ़ाह—इनको बराबर-बराबर लेकर जल में क्वथित करें। इस काढ़े से प्रातः सायंकाल रोगी के सिर पर तरेड़ा करना लाभकारी है। तरेड़ा देते समय रोगी को सीधा बैठाएँ, जिसमें पानी सिर के अगले भाग पर गिरे।

(२) रोगन बनफ़शा, या रोग़न कद्दू लड़की वाली स्त्री के दूध में मिलाकर उसकी नाक में टपकाएँ या उसकी कानों में डालें।

(३) रोग़न कद्दू या रोग़न लबूबसबा सिर पर मालिश करें और इससे उसकी पिंडलियों और रानों पर खूब अच्छी तरह मर्दन कराएँ।

(४) रोगी के सिर पर स्त्री का या श्यामा बकरी का दूध दुहें। पोस्त खसखास सहित तैयार किया हुआ शर्बत खसखास, २ तोले, मीठे अनार का रस ५ तोले, मीठे कद्दू का पानी ५ तोले, या आलूबुखारे का पानी ५ तोले या मांउश्शईर (यवाम्बु) १० तोले मिलाकर पिलाएँ।

(५) यदि मलावरोध हो तो एरंड तैल ४ तोले और लवण ३ माशे दो सेर उष्ण जल में मिलाकर वस्ति दें या इत्र फल मुलय्यिन ५ माशे दें। तदुपरांत प्रबल दोष का पता लगाकर, उसका पाचन और शोधन करें। दमवी (रुधिरजन्य) में

साफ़ की फ़स्द करें या कनपटियोंपर जोंकें लगवाएँ। उसके उपरांत तबरीद दें।

तबरीद का योग यह है—

(६) ख़मीरा ग़ावज़ुबान १ तो०, वर्क़ चाँदी १ अदद में लपेट कर खिलाएँ, ऊपर से बिहीदाने का लुआब ३ मा०, शीरा उन्नाब ५ दाने, अर्क़ गावज़बान १२ तो० में निकाल कर शर्बत बनफ़शा २ तो० मिलाकर पिलाएँ। फिर प्रात: सायं ये नुसखे प्रयोग में लाएँ।

(७) प्रातःकाल मुफ़र्रिह बारिद ५ मा० खिलाकर ऊपर से ज़रिश्क ३ मा०, ५ दाने आलूबुखारे का शीरा अर्क़ कासनी १२ तो० में निकालकर शर्बत अनार २ तो० मिलाकर पिलाएँ। सायंकाल १ अदद आमले का मुरब्बा धोकर उसपर एक अदद चाँदी का वर्क़ लपेटें और ३ मा० सूखे धनिए का शीरा, ३ मा० संदल सफ़ेद का शीरा, अर्क़ ग़ावज़ुबान ६ तो०, अर्क़ केवड़ा ३ तो०, अर्क़ बेदमुश्क ३ तो० में निकाल कर शर्बत सेब ३ तो० मिलायें और आमले के मुरब्बे के साथ खिलाएँ।

(८) यदि इन उपायों से लाभ न हो, तो यथा-विधि दस दिवस तक मुंज़िज पिलाकर, तीन मुसहिल (रेचनौषध) और तीन तबरीद दें। इसके बाद प्रात: मुफ़र्रिह बारिद ५ मा० और सायंकाल ख़मीरा संदल ७ मा०. अर्क़ कासनी ६ तो०, अर्क़ बेद-मिश्क ६ तो०, २ तो० शर्बत अनार के साथ दो सप्ताह पर्यन्त सेवन कराएँ और यदि फिर भी लाभ न हो, तो माउज्जुब्न पिलाएँ।

(९) पित्त दोष के जलने की दशा में भी यही उपाय लाभकारी है। अलबत्ता इसमें फस्द न खुलवाएँ। सुबह शाम पूर्वोक्त योग दो सप्ताह तक सेवन कराएँ। यदि लाभ न हो, तो फिर पित्त का मुंजिज एवं मुसहिल दें। मुफ़र्रिह बारिद और ख़मीरा संदल उपर्युक्त विधि के अनुसार सेवन कराएँ। यदि पुन: लाभ न हो, तो माउज्जुब्न पिलाएँ।

(१०) कफ के जलने की दशा में माउल् उसूल के साथ दोष को पकाकर, हब्ब अयारिज के साथ संशोधन करें। इसके उपरांत ख़मीरा अबरेशम हकीम इर्शादवाला ५ मा० सुबह-शाम १० तो० अर्क़ बादियान के साथ खिलाएँ।

(११) सौदा (वायु) के जलने की दशा में शाहतरा, चिरायता, सरफोंका, मुण्डी, हलेलास्याह, संदल सफ़ेद, प्रत्येक ७ मा०, उन्नाब ५ दाने—इन्हें रातको गरम पानी में भिगोदें, प्रातः छानकर २ तो० उन्नाब का शर्बत मिलाकर पिलाएँ। इसी प्रकार सुबह को भिगोकर शाम को पिलाएँ। तीन सप्ताह के बाद मत्बूख़ हफ्तरोज़ा प्रतिदिन सुबह आठ तोले दें। यदि किसी दिन इससे पेचिश की शिकायत मालूम हो, तो उस दिन मत्बूख़ छोड़कर रेशाख़त्मी का लबाब १ तो० दें। फिर इन गोलियों से शोधन करें—

अयारिज, अफ़्तीमून, उस्तोखोद्दूस प्रत्येक एक भाग, सक़मूनिया, हलेला प्रत्येक अर्द्ध भाग, सबको बारीक पीसकर बड़ी-बड़ी गोलियाँ बनाएँ। इनमें से रात्रि को सोते समय तोला भर सेवन करें।

शोधनोपरांत रोगी की प्रकृति और ऋतु का विचारकर माउज्जुब्न पिलाएँ। पुन: मस्तिष्क को बलवान बनानेवाली चीज़ें सेवन कराएँ। माउज्जुब्न की विधि यह है—

ऐसी काले रंगकी बकरी या गायका दूधलें; जो दूसरा बच्चा जनी हो और जिसका बच्चा तीन-चार मास से अधिक का न हो। इस दूध को ताँबे के कलईदार या मिट्टी के लुकदार बर्तन में डालकर मृदु अग्नि पर पकाएँ। इस बात को ध्यान में रखें कि, दूध जले नहीं। जब दो-तीन उफान आ चुकें, तब उसमें दो तोले नीबू का रस या सिकंजबीनतुर्श या किंचित् टारटारिक एसिड प्रभृति डालकर अंजीर की ऐसी लकड़ी से, जिसका अगला सिरा कुचलकर फैला ली गई हो, हिलाएँ। इससे थोड़ी देर में दूध फट जायगा। जब दूध फट जाय, उतारकर रखलें, कुछ शीतल होजाने पर, तीन तह की साफी में से पानी टपका लें। यह टपका हुआ पानी नीलगूँ रंग का होना चाहिए। यही उसकी सर्वोत्कृष्ट पहचान है। अन्यथा किसी क़दर लवण डालकर पुनः एक-दो जोश दें और झाग उतारकर, साफ करलें। यदि उसमें से स्नेहांश भी दूर करना हो, तो शीतल

होने पर ऊपर से चमचा द्वारा पृथक् कर लें। यही माउज्जुब्न है। इसमें से प्रथम दिवस ७ तो० लेकर, उसमें रोगी की अवस्थानुसार ३ तो० शर्बत नीलोफर या ३ तो० शर्बत अफतीमून मिलाकर पिलाएँ। प्रतिदिन १-१ तो० माउज्जुब्न बढ़ाते जाँय। जब माउज्जुब्न आध सेर की मात्रा तक पहुँच जाय, तब तीन दिन लगातार आध-आध सेर सेवन कराकर फिर रोजाना एक तो० कम करते जायँ। यहाँ तक कि, फिर सात तो० की प्रारंभिक मात्रा पर आजायँ। तीन दिन तक ७-७ तो० रोज़ाना पिलाकर छोड़ दें। माउज्जुब्न के साथ शर्बत की मात्रा भी आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक करते रहें। प्रतिदिन ताज़ा माउज्जुब्न तैयार करके सेवन कराना चाहिए। कभी-कभी माउज्जुब्न तैयार करते समय, उसके साथ, यथोचित दवाएँ भी सम्मिलित करली जाती हैं। संशोधन और माउज्जुब्न के उपरांत मस्तिष्क एवं वाततंतुओं को बल प्रदान करने के लिए, प्रातः खमीरा अबरेशम हकीम इर्शादवाला या ऊद मस्तगीवाला ५ मा०, खमीरा गावजुबान अंबरी जवाहिरवाला ५ मा० और सायंकाल ९ मा० माजून नजाह या इत्रीफल उस्तोखोद्दूस ९ मा० सेवन कराएँ। पथ्य में लघु शीघ्रपाकी आहार दें और हर प्रकार के बादी, गुरु एवं वायुकारक आहार से परहेज कराएँ।

अर्वाचीन चिकित्सा-पद्धति

(१) प्रातः मुफ़र्रिह बारिद ५ मा०, २ तो० अर्क गावज़बान, २तो० अर्ककेवड़ा, २ तो० अर्क बेद मिश्क और १ तोला शर्बत सेब के साथ सेवन कराएँ।

सायंकाल-दवाउल् मिश्क मातदिल ५ मा०, अर्क अंबर २ तो०, अर्क गज़र २ तो०, माउल्लहम कासनी मकोवाला २ तो०, शर्बत गुड़हल २ तो०—इनके साथ सेवन कराएँ।

रात्रि में—हड़ का मुरब्बा १ अदद पानी से धोकर खाएँ।

(२) यदि मेदे की खराबी हो, तो अनोशदारू लूलुई ५ मा० या सादा ७ मा० या ख़मीरा अबरेशम ऊद मस्तगीवाला ५ मा० खिलाएँ। यदि हृन्नैर्बल्य और खफ़कान भी हो, तो ख़मीरा अबरेशम हकीम इर्शादवाला ५ मा० या ख़मीरा अबरेशम सादा ९ मा० या ख़मीरा अबरेशम शीरा उन्नाब वाला ५ मा० या ख़मीरा गावज़बान अंबरी जवाहरवाला ५ मा० खिलाएँ।

(३) यदि हरारत ज्यादा हो, तो ख़मीरा मरवारीद ५ मा० या ख़मीरा संदल ७मा० खिलाएँ।

(४) यदि वाततन्तु भी निर्बल हों, तो ख़मीरा गावज़ुबान अम्बरी जदवार ऊद सलीबवाला ५ मा० सेवन करायें।

(५) जुनून और मालीख़ोलिया का सर्वोत्कृष्ट उपाय यह है, कि माउज्जुब्न पिलाएँ, जिसकी विधि का सविस्तार उल्लेख उपक्रम-सिद्धांत में हो चुका है।

(६) मालीख़ोलिया मिराक़ी में अनोशदारू लूलुई ५ मा०, या ख़मीरा अबरेशम ऊदमस्तगीवाला ५मा०, अर्क गुलाब ३ तो० के साथ प्रातःसायं सेवन कराएँ।

(७) माजून नजाह ९ मा०, अर्क मुरक्कब मुसफ़्फ़ीखून १० तो० और शर्बत उन्नाब २ तो० के साथ सेवन कराएँ सौदावियत के लिए विशेषतया लाभकारी है।

परीक्षित चुने हुए योग

(१) जले हुए दोष-त्रय (सौदा, बलगम और सफ़रा) का उत्सर्ग करनेवाला मुंज़िज तथा मुसहिल, जो प्रत्येक भाँति के उन्माद में उपयोगी है—

योग—गुलसुर्ख़, गुलगावज़बान प्रत्येक ६ मा०, गुलबनफ्सा ९ मा०, गुलख़त्मी, मुलेठी, अनीसून, परसियावशाँ, शाहतरा, उस्तोखोद्दूस, खत्मी प्रत्येक ६ मा०, अफतीमून ९ मा०, गावज़बान नीलोफ़र, बादावर्द, बस्फाइज फुस्तक़ी, गुलगाफ़िस, तुख्म कसूस प्रत्येक ६ मा०, अंजीर जर्द ९ अदद, आलूबोख़ारा ७ दाना, उन्नाब १५ दाना, खूबानी ९ दाना, मकोय ६ दाना, बादियान ९ मा०, मवेज़ मुनक्का २ तो०, तुख्म खुरपज़ा, तुख्म खयारैन, तुख़्म करफ्स, बेखकासनी, बेख़ करफ्स, प्रत्येक ६ मा०—इनको रात्रि को पानी में भिगोकर रखदें। प्रातःकाल क्वथित कर छानलें। फिर ख़मीरा बनफ़शा ४ तो०, तुरंजबीन ९ तो०, उसमें मल-छानकर रोगी को पिलादिया करें। जब दोष का पूर्ण परिपाक हो

जाय, तब सातवें, ग्यारहवें, पंद्रहवें या इक्कीसवें दिन उस योग में तुरंजबीन पाव सेर, शर्बत वर्द मुकर्रर ७ तो०, बर्ग सनाय ३ तो०, शीरख़िस्त ६ तो० सम्मिलित करलें। दूसरे दिन ४ मा० बिहीदाने का लुआब, लुआब रेशा ख़त्मी, गावज़बान तथा मुलेठी प्रत्येक ६ मा० को अर्क मकोय तथा अर्क सौंफ़ पावसेर में निकालकर, तुख़्म फरंजमिश्क ३ मा०, तुख़्म रेहाँ ६ मा०, उसके ऊपर छिड़ककर तबरीद के लिए रोगी को पिलाएँ या चिकित्सा-क्रमोक्त तबरीद का व्यवहार करें।

माजून नजाह—हड़, बहेड़ा, आमला प्रत्येक १२॥ मा०, बस्फ़ाइज फुस्तकी, अफ़्तीमून विलायती, उस्तोख़ोदूस, सफ़ेद निसोथ प्रत्येक १॥ तो०—इनको कूट छानकर तिगुनी शहद की चाशनीमें मिलाकर माजून तैयार करें। इसमें से ५ मा० ताजे पानी के साथ प्रातः काल सेवन करें। यह जुनून सौदावी और योषापस्मार के लिये विशेष रूप से लाभकारी है।

नुतूलुल् मजानीन—तुख़्म खसखास, वर्द अबैज़, बाबूना प्रत्येक मुट्ठी भर, बनफ़्सा तर या खुश्क, गुल नीलोफ़र, बेख़ ख़त्मी, तुख़्मख़त्मी, बर्ग बेद, जौ मुक़श्शर (निस्तुषीकृत यव), बर्ग काहू, बर्ग मको, तराशए कद्दूतर, बर्गेख़ुब्बाजी, बर्ग बज़्रेक़तूना प्रत्येक एक मुट्ठी, सपिस्ताँ १० अदद—इन सबको ऽ१॥ सेर पानी में पकाएँ। जब अर्द्धावशेष रहे, उतार-छानकर ३ तो० रोग़न बनफ़्शा मिलाकर शिरपर धारें (नतूल करें)। यह हर प्रकार के जुनून, मालीख़ोलिया और वसवास में लाभदायक है।

रोग़न या तैल—जो हर प्रकार के जुनून और मालीखोलिया में नींद लाने के लिए उपकारी है।

मग्ज़ तुख़्म कद्दू, तुख़्म काहू, तुख़्म खसखास, मग्ज़ बादाम, कुंजद मुक़श्शर, मग्ज़ तुख़्म ख़यार, मग्ज़ तुख़्म बारतंग समान भाग लेकर तेल निकालें। ज़रूरत होने पर रोगी के सिर के बाल बनवाकर उस पर मलवाएँ और उसकी नाक तथा कान में डालें।

सफ़ूफ़ मुरक्कब जदीद—पोस्त हलेला काबुली, पोस्त हलेला, गुठली निकाला हुआ आमला, हलेला स्याह प्रत्येक ३ तो०, तुर्बुद मुजव्वफ़ ख़राशीदा, बस्फ़ाइज फुस्तक़ी, उस्तोख़ोदूस, प्रत्येक १॥ तो०, पोटासियम ब्रोमाइड, सोडियम ब्रोमाइड हर एक २ तो० ८ मा०—इन सबको बारीक पीसकर परस्पर मिला लें और ६ मा० प्रातःकाल १२ तो० अर्क बादियान के साथ रोगी को खिला दिया करें।

यह सम्पूर्ण वातजन्य उन्माद-रोगों—मालीख़ोलिया, अपस्मार, अनिद्रा और योषापस्मार प्रभृति में उपयोगी है।

अर्क़ माउज्जुब्न ख़ास—पोस्त हलेला ज़र्द,पोस्त हलेला काबुली, पोस्त हलेला स्याह, गिलोय सब्ज़, बर्ग बकाइन, पोस्त बकाइन, पोस्त नीम, तुख़्म नीम, गुल विजयसार, गावज़बान, तुख़्म कासनी, बेख़ कासनी, हिरनखुरी, मग्ज़ तुख़्म तमर हिंदी, मग्ज़ तुख़्म आमला मुक़श्शर, पोस्त हलेला, सूखी धनिया, मौलसिरी की छाल, प्रत्येक १० तो०, शाहतरा, चिरायता, सरफोंका, मेंहदी की पत्ती, अबरेशम, बुरादा संदल सुर्ख़, बुरादा संदल सफ़ेद, बुरादा शीशम, सूखा मकोय, गुलसुर्ख़, पोस्त बेख़ झड़बेरी, बेख़ भंग, पोस्त बेख़ बहेड़ा, बर्ग चमेली, आबनूस का बुरादा, उन्नाब, इक्षुमूल प्रत्येक ५ तो०, मग्ज़ फ़लूस आध सेर, माउज्जुब्न पाव सेर, मजीठ पाव सेर—इन सबको भिगोकर सुबह विधिवत् ४०बोतल अर्क खींचें। इसमें से १० तो० अर्क अन्य यथोचित औषधियों के साथ सेवन करें।

गुण—यह हर प्रकार के जुनून, मालीखोलिया और सम्पूर्ण सौदावी रोगों में असीम गुणकारी है।

मुफ़र्रिह याक़ूती—स्वर्ण भस्म ५ रत्ती, याक़ूत महलूल, गावज़बान, तुख़्म कासनी, मुश्क काफ़ूर, बहमन सफ़ेद, ऊद क़मारी, हज्र अर्मनी, लाजवर्द मग़सूल, तज, दारचीनी, केसर, गुजराती इलायची, बड़ी इलायची, जदवार प्रत्येक १० रत्ती, कतरा हुआ (मुक़र्रिज़) अबरेशम, जलाया हुआ केकड़ा प्रत्येक ११ रत्ती, अबीध मोती महलूल, कहरुबा महलूल, बिसुद महलूल हर एक एक मा० ६ रत्ती, अफतीमून २४ रत्ती, तुख़्म फरंजमिश्क, तुख़्म बादरूज, उस्तोख़ोदूस प्रत्येक ३॥ मा०, तुख़्म ख़यार, गुल सुर्ख़ प्रत्येक ४॥ मा०, दरूनज, बालछड़, तुरंजबीन, अंबर अश्हब हर एक १ मा० ६ रत्ती, शर्बत सेब, शर्बत अनार हर एक ५ तो०, शुद्ध मधु १० तो०—इनका

यथाविधि माजून तैयार कर लें। इसमें से १ मा० प्रति दिन उपयुक्त अर्क के साथ खिलाएँ।

गुण—यह उत्तमांगों को बल प्रदान करता, चित्त प्रसन्न करता, सौदावी वसवसों को दूर करता, जुनून, मालीखोलिया तथा समस्त मस्तिष्क एवं वात-तन्तु विषयक रोगों में लाभकारी है।

दवाए जुनून—यह हिन्दुस्तानी दवाखाना दिहली की प्रसिद्ध औषधि है जो उन्माद, अपस्मार और योषापस्मार में अत्यन्त गुणकारी है तथा क्षोभ का निवारण करती है एवं निद्राजनक है।

योग—छोटी चन्दन (एक बूटी जो विहार और बंगाल में मिलती है) को छाया में सुखाकर चूर्ण बना लें और सुबह शाम २–२ मा० साधारण पानी के साथ सेवन कराएँ।

नोट—किसी-किसी ने इसीको "धवलवरुआ" या "पागल की बूटी" लिखा है।

हब्ब लाजवर्द—लाजवर्द मग़सूल १० मा०।।, लौंग, सक़मूनिया, अनीसून प्रत्येक ३॥ मा०, ग़ारीक़ून १७।। मा०, बसफ़ाइज़ १४ मा०, अयारज फ़ैकरा २१ मा०—इन सबको आब करफ़्स में पीस कर गोलियाँ बना लें। आवश्यकतानुसार इनमें से से १०।। मा० की मात्रा में माउज्जुब्न या अर्क माउज्जुब्न ख़ास के साथ खिलाएँ।

यह हकीम शरीफ़ख़ाँ महोदय का मामूल है और उन्माद मालीख़ोलिया और समग्र सौदावी रोगों में उपयोगी है।

मत्बूख़ अफ़्तीमून—अफतीमून (पोटली में बँधी हुई), सनाय मक्की प्रत्येक २ तो०, गावज़बान, शाहतरा, बस्फाइज फुस्तकी छिली हुई जौ-कुट की हुई, उस्तोख़ोद्दूस, उदसलीब, कंतूरियून दक़ीक़, बादरंजबूया, गुल बनफ़्सा, गुल नीलोफ़र, मकोय, परसियावशाँ, पोस्त बेख़ कासनी, पोस्त बेख बादियान, मुलेठी, तुख़्म कासनी, तुख़्म ख़यारैन, तुख़्म ख़ुरप्ज़ा, पोस्त हलेला ज़र्द, पोस्त हलेला काबुली, हलेला स्याह, गुलसुर्ख़ हरएक ६ मा०, उन्नाब १० अदद, सपिस्ताँ २० अदद—इनमें से कूटने योग्य द्रव्यों को जौ-कुट करके, सिवा अफतीमून के, शेष सब पदार्थों को डेढ़ पाव पानीमें जोश दें। दूसरी सुबह पोटली को खूब मलकर छान लें और सुहाता गर्म करके अमलतास की गुद्दी और तुरंजबीन प्रत्येक ४ तो० शीरख़िस्त ख़ुरासानी, गुलकंद आफ़ताबी प्रत्येक ३॥। तो० इसमें घोलकर साफ़ कर लें। इसमें ४॥ मा० मीठे बादाम का तेल मिलाकर पिलाएँ।

यह योग हकीम उलवीख़ाँ के पिता मीर मुहम्मद हादी का निर्मित एवं अनुभूत है। यह जले हुए दोषों का प्रवर्त्तक एवं विरेचक है। सम्पूर्ण वायु जन्य रोगों, यथा मालीखोलिया, वसवास, जुनून, अपस्मार प्रभृति में उपकारक है।

मुफ़र्रिह—मोती, कहरुबा, प्रवाल प्रत्येक ५। मा०, अबरेशम गावज़बान १७॥ मा०, स्वर्ण-पत्र १।। मा०, तुख़्म फरंजमिश्क, तुख़्म बादरुज, तुख्म बादरंजबूया हरएक १०।। मा०, बहमन सफ़ेद और सुर्ख़, ऊद हिंदी, हज्र अर्मनी मग़सूल, लाजवर्द मग़सूल, मस्तगी, सलीख़ा, दारचीनी, ज़ाफ़रान, छोटी इलायची का दाना, बड़ी इलायची, कबाबा हरएक ४।। मा०, अफ्तीमून ८।।।मा०, उस्तोख़ोद्दूस १०।। मा०, जदवार बनफ़शई ४।। मा० (यदि यह न मिले, तो इसकी जगह ज़रंबाद ६ मा० डाल दें), दरूनज ६ मा०, तुख्म कासनी १७।। मा०, मग़ज़ तुख्म ख़यारैन १४ मा०, तुरंजबीन ३ तो०, गुलसुर्ख़ १४ मा०, कस्तूरी ६ मा०, कपूर ४।। मा०, अंबर अश्हब ३।। मा०, सुंबुल हिंदी, साज़िज प्रत्येक ७ मा०, शुद्ध मधु सम्पूर्ण औषधियों का तिगुना, यथाविधि माजून तैयार करें। ४० दिन के उपरांत ४।। मा० की मात्रा में सेवन करें।

योग-प्रवर्त्तक शेख़ बू अली और अनुभवकर्त्ता हकीम मोमिन अली इत्यादि। यह सौदावी उन्मत्तता एवं प्रायः प्रकार के मालीखोलिया में लाभकारी है, उत्तमांगों को शक्ति प्रदान करता और आमाशय के रोगों तथा खफ़क़ान के लिए असीम गुणकारी है।

नोट—यदि रोगी की प्रकृति में उष्मा का प्राधान्य हो तो ज़ाफ़रान और मिश्क को २। मा० करदें और अफ़तीमून बिलकुल न डालें। उसकी जगह सनाय मक्की १४ मा० और शाहतरा इत्यादि डालदें तथा गुलसुर्ख़ ३ तो०, तुख्म ख़ुर्फ़ा २। तो०, तबाशीर १७।। मा०, तुख्म काहू ३।। मा० और संदल १०।। मा० और सम्मिलित करें। यदि सर्दी

का प्राबल्य हो, तो उसमें पोस्त तुरंज, ऊद बलसाँ, ज़ंजबील और क़िलक़िल प्रत्येक १० मा० और जुंद-बेदस्तर ९ मा० और सम्मिलित करें तथा कपूर २। मा० करदें।

हकीम अली गीलानी इसमें याक़ूत रम्मानी ४॥ मा० बढ़ाया करते थे।

याक़ूती शेखुर्रईस—याक़ूते रम्मानी, गुल-गावज़बान, तुख्म कासनी, मुश्क तिब्बती, काफ़ूर क़ैसूरी हरएक ४॥ मा०, अबीध मोती बड़े दाने का चकमदार, कहरुबाए शमई प्रत्येक ६॥ मा०, अबरे-शम कतरा हुआ, जलाया हुआ केकड़ा प्रत्येक ६ मा०, स्वर्ण भस्म २। मा०, तुख्म फ़रंजमिश्क, तुख़्म बादरूज, उस्तोखोदूस प्रत्येक १०॥ मा०, बहमन सफ़ेद, ऊद ख़ाम, हज्र अर्मनी, लाजवर्द, तज, दार-चीनी, ज़ाफ़रान, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, जदवार ख़ताई प्रत्येक ४॥ मा०, अफ़तीमून ११। मा०, दरूनज अक़रबी, बालछड़, तुरंजबीन, अंबर अशहब हरएक ७ मा०, मग़ज़ तुख्म ख़यार, गुलसुर्ख़ प्रत्येक १८ मा०, गुलाब ३७॥ तो०, शर्बत हुम्माज़, शर्बत सेब, शर्बत अनार शीरीं प्रत्येक ११। तो०, मधु आवश्यकतानुसार—इनसे यथाविधि माजून तैयार करके सोने या चाँदी के बर्तन में ४० दिवस पर्यंत सुरक्षित रखें। उसके बाद ३॥ या ४॥ मा० की मात्रा में ५ तो० अर्क गावज़बान और ५ तो० अर्क गुलाब के साथ उपयोग करें।

गुण—जुनून, वसवास और सम्पूर्ण वातजन्य (सौदावी) रोगों के लिए लाभकारी एवं मेध्य और हृद्य है।

डॉक्टरी चिकित्सा

प्रागुक्त तिब्बी चिकित्सा-क्रम को ध्यान में रखें। मलावरोध होने पर यह नुस्खा दें।

(१) कंपाउंड जैलप पाउडर	३० ग्रेन
कैलोमेल	३ ग्रेन
क्रोटन ऑइल (जयपाल तैल)	१ मिनिम

सबको मिलाकर एक ही समय खिला दें। इससे खुलकर मलोत्सर्ग हो जायगा। जुनून और मालीख़ोलिया में कोष्ठबद्धता को दूर करने के लिए इसका प्रयोग करते हैं।

(२) पोटास ब्रोमाइड	३० ग्रेन
क्लोरल हाइड्रेट	१५ ग्रेन
टिंक्चर हायोसायमस	३० मिनिम
एका क्लोरोफार्म	१ आउंस
एका डिष्टिलेटा	३ आउंस

सबको भली भाँति मिलाकर रख लें। इसमें से १–१ आउंस दिन में तीन बार दें। रोग की उग्र अवस्था में हायोसीन $\frac{१}{१२०}$ से $\frac{१}{८०}$ ग्रेन का त्वागाभ्यंतर सूचीवेध करें।

गुण—जुनून और मालीख़ोलिया के रोगी की अनिद्रा का निवारण करता और नींद लाता है।

(३) जो जुनून और मालीख़ोलिया रोग की उग्रता कम हो जाने के उपरांत उपकारी है—

एसीटेट ऑफ मार्फीन	$\frac{1}{4}$ ग्रेन
फॉस्फेट ऑफ जिंक	२ ग्रेन
एक्सट्रैक्ट ऑफ जेंशन	१$\frac{1}{2}$ ग्रेन

सबको मिलाकर एक गोली बनाएँ। ऐसी १–१ गोली दिन में तीन बार दिया करें; परंतु मल-बद्धता आदि के निवृत्यर्थ भोजन से पूर्व कंपाउंड रुबर्ब पिल ५ ग्रेन प्रति-दिन खिला दिया करें। रोग के सर्वथा निवारण हो जाने पर मस्तिष्क एवं शरीर को बल प्रदान करनेवाली चीज़ें खिलाएँ।

मालीख़ोलिया मिराक़ी में अधोलिखित योग कल्याणकारक होते हैं, आमाशय और पाचन-शक्ति को शक्ति देते तथा यकृद्विकार का निवारण करते हैं।

(१) एसिड नाइट्रो-हाइड्रो क्लोरिक डिल	१० मिनिम
टिं० जेंशन कंपाउंड	३० मिनिम
टिं० नक्सवॉमिका	५ मिनिम
एक्सट्रैक्ट टेराक्साई लिक्विड	३० मिनिम
एका क्लोरोफॉर्म	१ आउंस तक

ऐसी १–१ मात्रा औषध दिन में २–३ बार भोजनोपरान्त दें।

(२) एमोनिया क्लोराइड	१२ ग्रेन
एक्सट्रैक्ट टेराक्साई लिक्विड	३० मिनिम
टिं० जेंशन कंपाउंड	३० मिनिम
सिरप ऑरेंशियाई	१ ड्राम
एका डिष्टिलेटा	१ आउंस पर्यंत

ऐसी १-१ मात्रा औषध दिन में दो बार सेवन कराएँ।

उन्मादमें प्रयुक्त डॉक्टरी औषधियाँ—स्नान, टारटार एमेटिक, आर्सेनिक, बेलाडोना, केम्फर, केनाबिस इण्डिका, क्लोरोफॉर्म, क्लोरल हाइड्रास, कोनायम् आलियम् क्रोटनिस, डिजिटेलिस, हिउमिउलास, ल्युप्युलास, हाइयोसाएमास, मार्फिया, ओपियम्, पोटासियाई आयोडाइडम्, स्ट्रेमिनिम्, विरेट्राम एल्बम्, शावर बाथ, बर्फ़। सूतिकोन्माद-एमनि कार्बोनास, टारटार एमेटिक, केम्फर, हाइयोसाएमास, ओपियम्, क्लोरल हाइड्रास। मदात्यय—एलकोहल, टारटार एमेटिक, बेलाडोना, केलेबारबीन, केनाबिस इण्डिका, क्लोरोफार्म, क्लोरल-हाइड्रेट, डिजिटेलिस, हिउमिउलास, मार्फिया नक्सवामिका, ओपियम्, सम्बल, ज़िंसाई ऑक्साइडम्, आइस, उत्तेजक औषध। प्रलाप—टारटार एमेटिक, बेलाडोना, केम्फर, केन्थाराइडिज़, हायोसायेमास, ओपियम्।

मालीख़ोलिया आदि की विशेष चिकित्सा

पहले भेद के अन्तर्गत—

खूनी और पित्तज मालीख़ोलिया की चिकित्सा

(१) पूर्वोक्त चिकित्सा-क्रम में कही हुई बातों को ध्यान में रखें। यदि रुधिरजन्य या पैत्तिक अर्थात् खून या पित्त के जलने से मालीख़ोलिया हो, तो 'हफ़्त अंदाम, सरारू या बासलीक़' की फ़स्द खोलें। रजोधर्म या बवासीर के खून रुकने से हुए रक्तज मालीखोलिया में "रग साफ़िन" की फ़स्द खोलें। रजोधर्मके रुकने की दशा में "रग साफ़िन" की फ़स्द विशेष उपयोगी है।

इसके उपरांत संशमन तथा स्नेहन औषध का व्यवहार कराएँ। अस्तु, बकरी के दूध में किंचित् सफ़ेद शकर मिलाकर पिलाएँ।

"इलाजुलगुर्बा" में लिखा है—सर्व प्रथम शिरा-वेधन का प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि प्रथम यह कार्य सरलतापूर्वक होता है; स्थिर होनेके उपरांत अतीव कठिन होता है। इस रोग की चिकित्सा में यह कार्य अवश्य करो—

(१) फ़स्द खोलो, (२) प्रत्येक अवस्था में रोगी को प्रसन्न रखो, (३) रोगी को अच्छी जगह बिठाओ, (४) घृतयुक्त भोजन कराओ, (५) खूब सुलाओ, सुलाना सर्वोत्तम उपाय है, (६) जुलाब देकर कई बार मल निकालो, (७) मनको पुष्ट रखो, (८) रोगी का मन जिधर लगे, उधर ही उसको लगाये रहो। (९) मालीखोलिया रोगी को एकांत में रखना और डराना हानिकारक है। (१०) यदि रोगी काम करना चाहे तो करने दो; पर अधिक नहीं। (११) फ़स्द खोलने के उपरांत "माउज्जुब्न" पिलानी चाहिए। (१२) मालीखोलिया में प्रायः सिर पर मारना अच्छा है। इससे बुद्धि उत्पन्न होती है। पीड़ा के कारण इंद्रियाँ चैतन्य हो जाती हैं।

(२) खूनी मालीखोलिया में ८ मा० पीली हड़ का हिम प्रस्तुत कर पिलाना लाभदायक होता है।

(३) कच्चे धनियाँ का चूर्ण १ तो०, अर्क गावज़बान के साथ देना गुणकारी है।

(४) बनफ़शा १० मा०, नीलोफ़र १०॥ मा०, गावज़ुबाँ १०॥ मा०, उन्नाब ७ दाने, सपिस्ताँ २० दाने और मिश्री ३५ मा०—इनको मिट्टी की हाँडी में डालकर और ऊपर से आधसेर पानी मिलाकर, शर्बत की तरह पकालो और छानकर रोगी को पिलादो। इस प्रकार सुबह शाम, इस शर्बत के पीने से जब मल पक जाय और नर्म हो जाय, तब उसे अधोलिखित काढ़े से निकाल दो।

(५) पोस्त काबुली हड़ २ मा०, उस्तोखोदूस ३५ मा०, बीजहीन मुनक्के ३५ मा०, शाहतरा १७॥ मा०, बसफाइज १७॥ मा०, और सनाय १७॥ मा०—इनमें से कूटने की औषधियों को कूटकर और बाक़ी को यों ही रखकर, सबको मिट्टी की हाँडी में डेढ़ सेर पानी डालकर औटाएँ जब औटते औटते आध सेर पानी रह जाय, उसे नीचे उतार लो और उसमें ३५ मा० "अफ़तीमून" डाल दो। जब काढ़ा शीतल हो जाय, उसे कपड़े में छान लो। फिर उसमें ३॥ मा० गारीक़ून और ७ मा० एलुआ महीन पीसकर मिलादो और थोड़ी सी चीनी डालकर रोगी को पिलादो। इस दवा से मल निकल जायगा। यह "अफ़्तीमून या आकाशबेल" का काढ़ा है।

(६) जब उपर्युक्त अफ्तीमून के काढ़े से मल अच्छी तरह निकल जाय, तब शर्बत, तर मेवे या अन्य पदार्थ बेखटके सेवन कराओ। सदा शीतल जल से स्नान कराओ। बकरी का दूध रोगी के सिर पर दुहो। अथवा

(७) प्रारम्भ में यह तबरीद करें—ख़मीरा संदल १ तो०, चाँदी का वर्क़ १ अदद मिलाकर प्रथम खिलाएँ। ऊपर से ४ मा० बर्ग गावज़ुबाँ का लबाब, ५ अदद उन्नाब का शीरा, शीरातुख़्म खुर्फ़ा स्याह. शीरा मग़ज़ तुख़्म कद्दू शीरीं, शीरा मग़ज़ तुख़्म तर्बूज़ प्रत्येक ५ मा०, अर्क़ गावज़बाँ ८ तो०, अर्क़ केवड़ा ४ तो० में निकालकर २ तो० शर्बत गुड़हल या शर्बत नीलोफर मिलाकर पिलाएँ।

नोट—मालीख़ोलिया सफ़रावी (पैत्तिक) में उन्नाब की बजाय ५ अदद आलूबुख़ारा रखें। जब इस उपाय से दाह एवं खुश्की व पिपासा कम हो जाय, तब दोषोत्सर्ग के निमित्त कुछ दिन यह पाचन-रेचन पिलाकर शोधन करें—

(८) पाचन—अफ़्तीमून विलायती, बसफ़ाइज फ़ुस्तक़ी प्रत्येक ५ मा०, बर्ग गावज़बाँ ४ मा०, कोया अबरेशम, गुलगावज़बाँ प्रत्येक ३ मा०, गुलनीलोफर, बर्ग शाहतरा प्रत्येक ६ मा०, उन्नाब ५ अदद—इन सब दवाओं को रात में गरम पानी में भिगोकर, प्रात: मलछानकर, २ तो० गुलकन्द मिलाकर पिलाएँ। इसके सेवन काल में जब पेशाब गाढ़ा एवं गदला हो जाय, नाड़ी दीर्घ तथा मृदु, शरीर का रंग सफ़ेदी से स्याही लिए हुए हो जाय, जो दोष के परिपक्व होने की पहचान है, तब इसी नुसखे में तुख़्म कासनी, सूखा मकोय, सौंफ प्रत्येक ६ मा०, गुलसुर्ख़, बर्ग सनाए मक्की प्रत्येक ७ मा०, अमलतास की गुद्दी ५ तो०, तुरञ्जबीन ख़ुरासानी और शीरख़िश्त प्रत्येक ४ तो०, ५ दाने मीठे बादाम का शीरा सम्मिलित कर विरेचन दें। विरेचन के दूसरे दिन यह तबरीद दें—

(९) ३ मा० बिहीदाने का लबाब, ५ दाने उन्नाब का शीरा, ६ मा० तुख़्म ख़यारैन का शीरा, पानी में निकालकर अर्थात् इनको पानी में पीसकर और २ तो० शर्बत बनफ़शा मिला और तुख़्म रेहाँ ६ मा० और सम्मिलितकर पिलाएँ।

दूसरे तीसरे मुसहिल में हलेलाजात भी बढ़ाएँ और हब्ब अफ्तीमून, हब्ब अयारिज की तरह रातको खिलाएँ। निःशेष संशोधनोपरांत हृदयोल्लास एवं मस्तिष्क-पुष्टि हेतु ख़मीरा संदल, खमीरा मर्वारीद और ख़मीरा गावज़बान अंबरी वग़ैरः हृद्य औषध सेवन कराएँ। अनिद्रा के लिये शर्बत खशखाश आब कद्दू या आश जौ में मिलाकर खिलाएँ।

मालीख़ोलिया के दूसरे भेद की चिकित्सा

यह मालीख़ोलिया एकांतवास करने वालों और किताबी कीड़ों एवं तत्वज्ञानियों को अधिक होता है।

नोट—यदि खून अधिक हो तो पहले सराऊ नामक रग की फ़स्द खोलें और इस बात की ध्यानपूर्वक परीक्षा करें, कि निकला हुआ रक्त बिल्कुल काला है या लाली लिये काला है या सर्वथा लाल है।

यदि रक्त काला आवे, तो फ़स्द को उस समय तक जारी रखें, जब तक उसका रंग बदल न जाय अथवा निर्बलता प्रतीत न हो। इस खून से यह मालूम हो सकता है, कि जला हुआ मवाद मस्तिष्क में ठहरने के सिवाय सारे शरीर में भी फैल गया है।

जहाँ का खून लाल हो, वहाँ से कम खून निकालो—अधिक मत निकालो। यदि खून साफ़ लाल ही निकले तो समझो कि, दोष मस्तिष्क की नसों में रुक रहा है—देह में नहीं फैला है। यदि ऐसा हो, तो रग सराऊ को बंद कर दो और उसके बजाय माथे की फ़स्द खोलो। इस फ़स्द के खोलने से उस अंग अर्थात् माथे से दोष सहज में निकल जायगा।

फ़स्द खोलने के बाद, विशेष दोष को उन काढ़ों और गोलियों से निकालो, जो उस दोष के योग्य हों। जैसे पित्त का दोष हो, तो पित्त नाशक जुलाब या काढ़े प्रभृति दो। कफ का दोष हो तो कफनाशक काढ़े प्रभृति दो। परंतु जब तक मस्तिष्क तक और दोषों में तरी न पहुँच जाय, दस्तावर दवा मत दो; क्योंकि दोष सरलतापूर्वक न निकलेगा।

तरी पहुँचाने के लिये अधोलिखित उपाय करो

(१) मोटी मुर्ग़ी, बकरी या हिरन के बच्चों

के मांस से मीठे और कँकरीले पानी की मछली से बने शोरबे पिलाओ ।

(२) निशास्ता, चीनी, खसख़ास और बादाम के तेल से बनाया हुआ फालूदा दो ।

(३) तरी पहुँचाने वाले तेल गुनगुना करके सिरपर लगाओ ।

(४) छिले हुए जौ, बनफ़शा, नीलोफर और काहू के पत्तों का काढ़ा सिरपर डालो ।

(५) कद्दू के बीजों की मींगी, काहू के बीज, तरबूज़ के बीज़ों की मींगी, नीलोफर के फूल और बनफ़्सा के फूल इनको पीसकर स्त्रियों के दूध में मिला लो और सिर पर लेप कर दो ।

(६) तरी पहुँचाने वाले शर्बत पिलाओ ।

(७) गुनगुने मीठे पानी से स्नान कराओ ।

(८) शीतल मकान में बैठाकर, गुलाब प्रभृति के सुगंधित फूल सुँघाओ ।

(९) किसी शुभ हेतु से अधिक सोना भी लाभदायक है ।

(१०) मैथुन, चिंता और परिश्रम से रोगी को बचाओ ।

(११) मल निकालने के उपरांत, पुनः तरी पहुँचाने की चेष्टा करो । मल निकालने से जो खुश्क़ी मस्तिष्क में आ गई होगी; वह इस उपाय से निकल जायगी ।

नोट—नाक के छेदों को देखा करो । जब उनमें तरी मालूम हो, तब समझ लो कि तरी पहुँच गई । स्मरण रखो रेचक औषध देने के पहिले भी तरी पहुँचानी होती है और मल निकलने के उपरांत भी तरी पहुँचानी होती है ।

मालीखोलिया के तीसरे भेद

मालीखोलिया मिराक़ी की चिकित्सा

इस रोग में खट्टी डकारें बहुत आती हैं । गुदा की हवा बहुत निकलती है, अफारा होता है और पेट में जलन होती है इत्यादि । इस व्याधि की चिकित्सा नीचे लिखी रीति से करो—

नोट—रोगी की शिकायतें चाहे कैसी ही निर्मूल एवं विलक्षण हों, पर उस पर कभी हँसना न चाहिए । अपितु रोगी को सांत्वना एवं संतोष दिलाना अवश्यम्भावी बात है । साधारण व्यायाम, दैनिक स्नान, सैर व तफ़रीह, लघु शीघ्रपाकी आहार अत्यावश्यकीय एवं लाभकारी है । अफारा तथा मलावरोध न होने दें । जलवायु परिवर्तन कराएँ ।

(१) यदि रोगी बलवान हो और उसके शरीर में खून की अधिकता हो, तो प्रकृति के अनुसार हर चालीसवें दिन या आगे पीछे बासलीक की रग अर्थात् उस रग की फ़स्द खोलो, जो मध्यमा उँगली से कोहनी तक गई है या बाएँ हाथ में रग उसैलम अर्थात् उस रग की फ़स्द खोलो, जो छँगुली और उसके पासवाली उँगली के समीप स्थित है ।

(२) यदि आमाशय या कोष्ठों में सूजन अथवा उनमें उष्णांश और जलानेवाले अप्राकृतिक दोष पैदा होगये हों, तो उन व्याधियों की नियमानुसार चिकित्सा करें । अतः यकृत की गरमी दूर करने के लिए—

(३) लाल चंदन, जौ का आटा, गिल अर्मनी, तुख़्म कासनी, गुलेसुर्ख़ प्रत्येक ६ मा० गुलाब में पीसकर यकृत के ऊपर लेप करें और यह दवा पिलाएँ ।

(४) शीरा तुख़्म कासनी, शीरा तुख़्म ख़यारैन, शीरा तुख़्म खुरफ़ा, छोटा गोखरू का शीरा प्रत्येक ६ मा०—पानी में निकालकर २ तो० शर्बत बज़ूरी मातदिल और ४ तो० फाड़ा हुआ कासनी का रस और सम्मिलित कर पिलाएँ ।

यदि अत्यधिक शैत्य एवं तरी पहुँचाने की आवश्यकता हो, तो इसमें ४ तो० भूने हुए खीरे का पानी और बढ़ाएँ ।

नोट—इस प्रकार की मालीखोलिया में जुलाब की कोई भी तेज़ दवा कदापि न दो । मलावरोध निवारणार्थ कोई मामूली कोष्ठमृदुकर औषध दो । इस प्रयोजन के लिए "इत्रीफल जमानी" सेवन कराओ अथवा नीचे लिखे हुये नुसखे से काम लो ।

(५) तुरंजबीन खुरासानी, शीरख़िश्त असली हरएक ३ तो०, अमलतास की गुद्दी ५ तो०, गुलकंद ३ तो०—इन सबको आध सेर माउज्जुब्न में मलछानकर पिलाओ । इसी प्रकार आवश्यकतानुसार कभी-कभी कोष्ठबद्धता निवृत्यर्थ कोष्ठमृदुकर औषध

सेवन कराते रहो। कोठे के नरम और शुद्ध हो जाने के उपरांत ज़रूरी हृद्य, आमाशय बलप्रद और मनोल्लाशकारी जवारिशें उचित अनुपानों के साथ खिलाओ। विशेषकर माउज्जुब्न को वायु एवं वायुजन्य तथा मराक़ से उत्पन्न होने वाले भाफ़ों के लिए अतीव गुणकारी समझो।

यह नुसख़ा मालीख़ोलिया मराक़ी के लिए विशेष हितकर है—

(६) जवारिश आमला या अनोशदारू लूलुई ५ मा० प्रथम खिलाओ। ऊपर से ५ दाने सफेद इलायची का शीरा, ५ मा० सूखी धनियाँ और ५ मा० तुख्म ख़ुर्फा—पानी में इनका शीरा निकालकर शर्बत मीठा अनार २ तो० या रुब्ब बिही २ तो० मिलाकर पिलाएँ। यह योग भी उपयोगी है—

(७) तबाशीर, छोटी इलायची, ज़हरमोहरा ख़ताई हरएक १ मा० पीसकर एक अदद आमला मुरब्बा और १ अदद चाँदी का वर्क मिलाकर खिलाएँ। ऊपर से गिर्द सुमक़, अनारदाना, सूखी धनिया प्रत्येक ५ मा०, ज़ीरा सफ़ेद ३ मा०—इनका पानी में शीरा निकालकर, २ तो० मीठे अनार का शर्बत मिलाकर पिलाओ।

नोट—उपर्युक्त दोनों योग उस अवस्था में उपकारी होते हैं, जब कि रोगी को इस रोग के साथ पतले-दस्तों की शिकायत हो। किंतु जब क़ब्ज़ की शिकायत हो, तब यह नुसख़ा लाभकारी होता है—

(८) इत्रीफ़ल ज़मानी एक तो० या हड़ का मुरब्बा एक अदद धोकर चाँदी का वर्क़ लपेटकर प्रथम खिलाएँ, ऊपर से बादियान (सौंफ), तुख्म कासनी हरएक ६ मा०-इनका अर्क मको और अर्क गावजबान हरएक ६ तो० में शीरा निकालकर गुलकंद सेवती २ तो० मिलाकर पिलाएँ। यदि इससे मलबद्धता दूर न हो, तो तुरंजबीन या शर्बत गुलाब मुकर्रर ४ तो०, के अंदाज में मिलाकर पिलाएँ।

यदि ऐसे रोगी को वायु, पेट में गुड़गुड़ाहट और उदरशूल की शिकायत हो, तो यह नुसख़ा दो—

(९) जवारिश कमूनी एक तोला प्रथम खिलाकर, ऊपर से सौंफ़ ६ माशे, मुनक्का १० दाने, इनका पानी में शीरा निकाल कर २ तोले गुलकंद और २ तोले सिकंजबीन मिलाकर पिलाओ। यदि रोगी के पेट में वायु, गुड़गुड़ाहट और उदरशूल की शिकायत हो तो यह नुस्खा पिलाओ।

(१०) मुफ़र्रिह बारिद ५ माशे या ख़मीरा संदल ५ माशे चाँदी के वर्क़ में लपेट कर पहिले खिलाएँ। ऊपर से बर्ग गावज़बान का लुआब ४ माशे, सूखो धनियाँ का शीरा, सफ़ेद बहमन का शीरा हरएक ३ माशे, पानी में निकालकर २ तोले गुलकंद सेवती मिलाकर पिलाओ। यह मालीख़ोलिया मिराक़ी में ख़फ़क़ान की दशा में उपकारी है।

यदि आमाशय सूजा हुआ हो तो यह नुस्ख़ा पिलाओ।

(११) किशमिश हरा ११ दाने को १२ तोले अर्क गुलाब में रात को भिगोएँ। सवेरे सुई द्वारा किसमिश के एक-एक दाना उठा-उठा कर खाएँ, ऊपर से गुलाब का अर्क पीवें। यदि इस रोग में आमाशय में खराबी, वायु और इख़्तिलाज तथा प्रकृति में हरारत का प्राबल्य हो तो नीचे लिखा हुआ चूर्ण सेवन कराएँ!

(१२) मस्तगी रूमी, तबाशीर, बड़ी इलायची का दाना, बहमन सफ़ेद जराबंद, दरूनज अक़रबी, कतरा हुआ अबरेशम हर एक ६ माशे, मिश्री १॥ तोला इनको कूट छानकर चूर्ण बनाएँ। इसमें से आवश्यकतानुसार ४ माशे सेवन करें।

मालीख़ोलिया मिराक़ी की डॉक्टरी चिकित्सा

नोट—पूर्वोक्त यूनानी चिकित्सका-क्रम को ध्यान में रखें। आवश्यकतानुसार नीचे लिखे हुए योग काम में लाएँ।

(१) एसिड नाइट्रो-हाइड्रो क्लोरिकम् डिल	१० मिनिम
टिंकचूरा जंशाई कंपाज़िटस	३० ,,
टिंकचूरा नक्सवामिकी	५ ,,
एक्सट्रैक्टम् टैराक्सेसाई लिक्विडम्	३० ,,
एक्वा क्लोरोफॉर्माई (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक मात्रा औषध दिन में २–३ बार भोजनोपरांत दें। यह आमाशय की कमज़ोरी और यकृद्दौर्बल्य में लाभदायक है।

(२) एसिड नाइट्रो-हाइड्रो क्लोरिकम् डिल	१० मिनिम
एक्सट्रैक्टय टैरेक्सेसाई	३० ,,
टिंक्चुरा कार्डेमोमाई कंपाजिटस	,, ,,
वाइनम पेप्सीनी	,, ,,
एक्वा क्लोरोफॉर्माई (ऐड)	१ आउंस

ऐसी १–१ मात्रा औषध दिन में २–३ बार भोजनोपरांत दें। यह अजीर्ण में लाभकारी है।

नोट—यह दवा मुसलमान रोगी को न दें।

(३) एमोनियाई क्लोराइडाइ	१२ ग्रेन
एक्सट्रैक्टम् टैराक्सेसाई लिक्विडम्	३० मिनिम
टिंक्च्युरा जंशाई कंपाजिटस	३० ,,
सिरूपस ऑरंशियाई	१ ड्राम
एक्वा डिष्टिलेटा (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक मात्रा दवा दिन में २ बार दें। यकृत की ख़राबी से विशेषकर यकृत के सिकुड़ जाने से जब पाचन-विकार हो, तो यह दवा अतीव हितकर है।

(४) ग्लीसराइनम् पेप्सीनी	१ ड्राम
टिंक्च्युरा न्युसिस वार्मिकी	५ मिनिम
टिंक्च्युरा कार्डेमोमाई कंपाज़िटस	३० ,,
एक्वा डिष्टिलेटा (ऐड)	१ आउंस

ऐसी एक-एक मात्रा औषध दिन में २–३ बार दें। पाचन की कमजोरी में हितकर है।

नोट—इस दवा में पेप्सिन पड़ी है। अतएव इसे मुसलमान रोगियों को न देवें।

अहंकार या मूर्खता की चिकित्सा

इस रोग में नीचे लिखे हुए उपाय करो—

(१) तरी और नमी पहुँचाने के लिए, मोटी मुर्ग़ियों का मांस या शोरबा,—दालचीनी और कुलींजन से सुगंधित करके रोगी को खिलाओ। मातदिल मीठी चीजें खिलाओ। मीठे फालूदे में बादाम का तेल मिलाकर दो।

(२) खैरू का तेल और बाबूने का तेल सिर के बीच में मलो।

(३) तर और गरम सूखी घासों को औटाकर, उतना पानी सिर पर डालो।

प्रलाप या हज़यान की चिकित्सा

इस रोग में अधोलिखित उपाय करें—

(१) उग्र प्रलाप में सिर पर सिरका तथा गुलाब में संदल और कपूर घिसकर उसमें कपड़ा तर करके रखें।

(२) वस्ति प्रभृति दें।

(३) शर्बत ख़शख़ाश २ तो० पिलादें।

(४) निर्बलता की दशा में दवाउल्मिश्क हार्र ५ मा० या ख़मीरा मर्वारीद ५ मा०, याक़ूती या मुफ़र्रिह अंबरी इत्यादि दें।

डॉक्टरी चिकित्सा—

रोग के वास्तविक कारण को दूर करें। उग्र प्रलाप में सिर पर बर्फ़ रखें। पोटासी ब्रोमाइड, हायोसायमस या क्लोरल प्रभृति खिलाएँ। किंतु जब निर्बलता जन्य प्रलाप हो तब बल्य एवं उत्तेजक औषध एमोनिया, ईथर, ब्रांडी, ह्विस्की, रम या पोर्ट वग़ैरः दें।

इश्क या प्रेमोन्माद की चिकित्सा

इस रोगी की चिकित्सा में, दवा-दारू के सिवा इस बात का ध्यान रखना परमावश्यक है, कि जिस भाँति उसके शोक और चिंता दूर हो सकें, दूर कर दिये जायँ। शोक और चिंता दूर करने के लिये, उसे अनेक प्रकार के राग-रागनी और बंशी तथा सारंगी आदि बाजे सुनाये जावें तथा मनोरंजक कहानियाँ, धर्म की बातें, महा पुरुषों के वाक्य और फ़क़ीरों के चुटकुले सुनाये जावें। इन्हीं में उसका दिल फँसाये रखा जाय, जिसमें उसे अपनी माशूक़ा का ध्यान ही न रहे। फिर धीरे-धीरे उसके प्रेमपात्र या माशूक़ा के दोष और अवगुण उसके सामने इस प्रकार कहे जायँ, कि उसका दिल उससे हट जाय; पर उसे यह न मालूम हो कि, ये सारे काम उसके माशूक़ से उसका मन फेरने के लिये किये जाते हैं। यदि उसे यदि भेद मालूम हो जायगा, तो फल उलटा होगा। यदि वह अविवाहित हो, तो उसका विवाह करा देना चाहिये। या उसकी माशूक़ा के सिवा, किसी दूसरी से भोग करा देना चाहिये।

इसकी चिकित्सा के विषय में इतनाही लिखना पर्याप्त है। यदि उपर्युक्त उपायों या किसी अन्य

उपाय से रोगी की हालत सुधर गई तो ग़नीमत समझिये, अन्यथा यह रोग अत्यंत कष्टसाध्य है। कहा है—

"मरीज़े इश्क पर रहमत ख़ुदा की, मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।"

उन्माद रोगों की विशेष चिकित्सा

मानिया और दाउल्कल्ब की चिकित्सा

(१) पहले दोष को पकाने और तरी पहुँचाने का उपाय करो। जब दोष अच्छी तरह से पक जाय और तरी आ जाय—नाक के छेदों में तरी दीखने लगे–तब हेतु के अनुसार जुलाब देकर दोष निकाल दो। जुलाब में जमालगोटा, बेख़ जलापा और निशोथ का व्यवहार करें।

(२) दोष निकल जाने पर, फिर तरी पहुँचाने वाली दवाएँ और पथ्य दो। ऐसी चीज़ें दो. जिनसे रोगी को होश हो और उसका दिल मज़बूत और बलवान हो।

(३) सिर पर तरड़ा करें–गुल नीलोफर, गुल बनफ़सा, गुल सुर्ख़, कोकनार, रेशा ख़त्मी प्रत्येक २ तोले, बर्ग बेद, बर्ग काहू, बर्ग मको, बर्ग ख़यारैन, तराशए कद्दू प्रत्येक ५ तोले—इन सब औषधियों को पक्के तीन सेर पानी में क्वथित करें। जब अर्द्धावशेष रह जाय, तब २ तोले रोग़न कद्दू मिला कर यथाविधि तरेड़ा करें।

(४) फिर रोग़न काहू, रोग़न ख़शख़ाश, रोग़न कद्दू, रोग़न गुल और लड़की का दूध—इनको बराबर-बराबर लेकर, उसमें कपड़ा तर करके मध्य सिर पर रखें।

(५) नींद लाने के लिये शर्बत ख़शख़ाश या लऊक़ ख़शख़ाश खिलायें और फिर कुछ काल पर्यंत प्रति दिन जवारिश जालीनूस और शर्बत सालिहैन उचित मात्रा में सेवन कराते रहें या हब्ब "शबयार" देते रहें।

(६) आवश्यकता हो तो, कनपुटियों पर चंद जोंकें लगवाएँ या सारू आदि की फ़स्द खोलवाएँ।

(७) इतरीफल उस्तोख़ाद्दूस ७ मा० या ख़मीरा मरवारीद ५ मा०, ख़मीरा गावज़बान अंबरी जवाहिर वाला ५ मा० या दवाउल् मिस्क मातदिल जवाहिर वाली ५ मा० अर्क गावज़बान या अर्क अंबर या बेदमुश्क वग़ैर: के साथ देना लाभकारी होता है। लघु शीघ्रपाकी आहार दें।

डॉक्टरी चिकित्सा

इसमें प्रथम चिकित्सा-क्रम में लिखी हुई बातों को ध्यान में रखें।

(१) नींद लाने के लिए पोटासी ब्रोमाइड २० से ४० ग्रेन और क्लोरल हाइड्रेट १० ग्रेन एक या दो आउंस पानी में मिलाकर तत्काल पिला दें।

(२) यदि, मलावरोध हो तो पहले एक बूँद क्रोटन ऑइल (जयपाल तैल) ५ बूँद ग्लीसरीन में मिलाकर ज़बान की जड़ पर मल दें और पीछे ३ ग्रेन कैलोमेल, अर्द्ध ड्राम कम्पाउंड पाउडर ऑफ़ जैलप मिलाकर दें।

(३) रोगी का सिर मुड़ाकर उसपर शीतल जल में कपड़ा तर करके या बर्फ़ रखें।

(४) प्रति दिन शीतल जल से स्नान कराएँ और उसके सिर पर शीतल जल धारा करें।

(५) हायोसीन (पारसीकयवानी सत्व) इस रोग में अतिशय लाभकारी प्रमाणित हुई है। अस्तु $\frac{१}{१२०}$ से $\frac{१}{२०}$ ग्रेन हायोसीन का त्वगीय सूचीवेध करें। आभ्यंतरिक रूपसे हायोसायमसके यौगिकों का उपयोग करें। अन्य निद्राजनक औषधियाँ, जैसे ओपियम, मॉर्फिया, कोनायम, बेलाडोना, क्लोरल प्रभृति भी इस रोग में उपयोगी हैं। निर्बलता की दशा में लोह यौगिकों और कॉडलिवर ऑइल का उपयोग करें।

उसे क़ब्ज़ न होने दें। उसकी प्रकृति में क्षोभ न उत्पन्न होने दें। गरम, भारी, आध्मानकारक, खान-पान से पूर्णतया परहेज़ करें। दूध प्रभृति लघु शीघ्रपाकी आहार दें। आश जौ, दूध-चावल, फ़ीरनी, सादा शोरबा, खिचड़ी और सागू प्रभृति दें। यदि रोगी स्वस्थोन्मुख या रोग मुक्त हो जाय, तो उसे छः मास तक हर प्रकार से आराम एवं चैन से रखें, जिसमें रोग के दोबारा हो जाने की आशंका न रहे।

क़ुतरुब की चिकित्सा

इसकी चिकित्सा इस प्रकार करो—

(१) आवश्यक होने पर फ़स्द खोल दो।

(२) दोष के पक जाने पर, अफ्तीमून के काढ़े या ऐसी ही और किसी औषध से दोषों को निकाल कर, तरड़ों और सर्द-तर तेलों से प्रकृति को सम्हालो।

(३) सर्दी और तरी बढ़ाने वाले उपाय काम में लाओ। तरी पहुँचाने की विशेष चेष्टा करो।

(४) उत्तमोत्तम भोजन खिलाओ।

(५) संदेह नाश करने के लिए, जिस प्रकार बने रोगी को सुलाओ, चिंता दूर करने के लिये बहानों से काम लो। जिस तरह भी चिंता दूर हो, वही उपाय करो।

सुवारा या विशेष जुनून की चिकित्सा

इस रोग में नीचे लिखे उपाय करो—

(१) इसमें पित्तज सरसाम का सा उपाय करो। इमली, आलूबुखारा, उन्नाब, ज़र्दालू लिसोड़े, तुरंजबीन और शीरख़िश्त–इन सबको पानी में भिगो दो। फिर, बिन औटाये ही, मल-छान कर रोगी को पिला दो। इससे कोठा मृदु हो जायगा और मल फूलकर निकालने लायक़ हो जायगा। इस पर मृदु रेचन देना लाभदायक है।

नोट—पित्तजन्य सरसाम में सर्दी और तरी का भय न करना चाहिये, परंतु यह बात खूनी सरसाम के विपरीत है। उसमें अधिक सर्दी और तरी हानिकारक है।

(२) तरी पहुँचाने के लिये खट्टे और मीठे अनार का रस पिलाओ। अर्क गुलाब, कद्दू का रस, और तरबूज़ का पानी पिलाओ।

रोग़नबनफ़शा, रोग़न कद्दू और रोग़न नीलोफर को बर्फ़ में शीतल करके सिर पर मलते रहो। अथवा बनफ़शा कद्दू, नीलोफ़र और ख़त्मी–इनको औटाकर छान लो और इसी काढ़े को सिर पर ढालो।

(३) यदि रोगी को नींद न आती हो, तो इसके प्रागुक्त उपाय काम में लाओ।

(४) रोगी के हाथ पाँव बाँध दो।

मालीख़ोलिया और उन्माद रोग के पथ्यापथ्य

इसमें मूँग की नरम खिचड़ी, बकरीका शोरबा, चपाती, पोलाव, मुर्गी (या बकरी) के बच्चों का शोरबा, खुर्फ़ा, कद्दू, पालक, तोरई, मूँग या अरहर की दाल, अनार, अंगूर, शहतूत, बादाम, सेब इत्यादि पथ्य हैं। गाय का दूध, दही, तरबूज़, ककड़ी, ख़रबूज़ा, मैदा की रोटी, चिकने, मीठे, फीके और स्वादिष्ट भोजन ये सब पदार्थ इसमें हित हैं। आराम करना भी अच्छा है।

इसमें लहसन, प्याज़, मसूर की दाल, बैंगन, बाकला मटर, लवण या क्षारीय वस्तुएँ, स्त्री-प्रसंग, चाय, मेहनत या श्रमाधिक्य, काला पोशाक, संकीर्ण एवं तमाच्छन्न स्थान से परहेज़ करना चाहिये।

उन्मादक–वि० [सं० त्रि०] (१) चित्त विभ्रम उत्पन्न करनेवाला। पागल करनेवाला। (२) नशा करनेवाला।

उन्माद-कुठार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्माद रोग में प्रयुक्त एक रसौषधि।

योग—शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, बच, ब्राह्मी, शंखिनी (शंखपुष्पी), शुद्ध वच्छनाग और धतूर के बीज इनका बारीक चूर्णकर इसमें बच और धतूर के स्वरस अथवा क्वाथ से यथाविधि भावना देकर २–२ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनालें।

गुण—इसे बच अथवा ब्राह्मी के स्वरस के साथ खाने से उन्माद रोग का नाश होता है। र० का०। रस यो० सा०।

उन्माद गजकेशरीरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्माद रोग में दिया जानेवाला एक प्रकार का रसौषध।

योग—(१) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध मैनसिल, इन्हें समान भाग लें। इन तीनों के बराबर धत्तूर के बीज लें। पुनः इन सबका बारीक चूर्ण करके इसमें बच और ब्राह्मी के स्वरस अथवा क्वाथ की ७–७ भावना दें।

मात्रा—उड़द प्रमाण।

गुण—इसे घृत के साथ चाटने से उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद और ज्वर का नाश होता है। वै० र०। र० प्र०। यो० र०। रस० यो० सा०।

(२) शुद्ध पारे को बच के क्वाथ से ३ दिन मर्दन करें। इसी तरह उतनी ही शुद्ध गंधक को

शंखपुष्पी के रस से ३ दिन मर्दन करें । पुन: दोनों को मिलाकर गोमूत्र में मर्दन करके एक गोला बनालें । इस गोले को मूसा में बन्द करके उस पर ७ कपरौटी कर सुखालें । पुन: उसे भूधर यंत्र में लघु पुट दें । जब स्वांग शीतल होजाय निकालकर बारीक पीसकर रखलें ।

मात्रा—१२ रत्ती ।

गुण—इसे पुराने घृत के सात दें और सरसों के तेल का नस्य दें और उसीसे शरीर में मालिश कराएँ । इस प्रकार २१ दिन प्रयोग कराने से उन्माद और अपस्मार का नाश होता है ।

उन्माद गजांकुश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुद्ध पारा और ताँबे का चूर्ण दोनों समानभाग लेकर धत्तूर के फल के रस से तीन दिन मर्दन करें और इसी तरह महाराष्ट्री (मुहरेठी) के रस से तीन दिन और कुचले के ताजे फलों के रस से तीन दिन मर्दन करके टिकिया बनालें । फिर इस टिकिया को दूनी गंधक के बीच में रख सम्पुटकर लघुपुट दें,जिससे गंधक जल जाय और पारा न उड़े । इसी प्रकार सात-आठ बार करने से ताम्र सहित पारे की गोली बन जायगी । पुनः इसके बराबर शुद्ध धत्तूर के बीज, अभ्रकभस्म, गंधक और वच्छनाग इन्हें मिलाकर तीन दिन तक मर्दन करें ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती ।

गुण—इसे वच और शहद के योग से सेवन करने से असाध्य से असाध्य अपस्मार का नाश होता है । रस० यो० सा० ।

उन्माद गजांकुश रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारद को धत्तूर के रस, ब्रह्मदण्डी के रस और कुचले के काढ़ेमें तीन-तीन दिन खरलकर, फिर इसमें गंधक मिलाकर युक्तिपूर्वक अग्नि में बन्धन करें । पुन: पारद के समान धत्तूर बीज, अभ्रकभस्म, गंधक और मीठा विष मिलाकर ३ दिन खरल करें ।

मात्रा—२ रत्ती ।

गुण - इसके सेवन से त्रिदोषजन्य उन्माद तथा भूत जन्य उन्माद का शीघ्र नाश होता है । बृहत रस० रा० सु० ।

नोट—इसमें कहीं-कहीं अर्क (ताम्रभस्म) का पाठ है । भैष० र० उन्माद चि० ।

उन्मादध्वंसनरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्माद में प्रयुक्त एक रसौषधि । योग—हरताल, ताम्र का चूर्ण दोनों समानभाग और इनके बराबर शुद्ध गंधक मिलाकर ब्राह्मी के रस से मर्दन करके गोला बनालें । इस गोले को सम्पुट में रख दो-तीन कपरौटी करके सुखालें । पुनः इसे साधारण पुटसे फूँक लें । इस प्रकार जबतक ताम्र की भस्म अच्छी तरह न होजाय, तबतक बारबार उपर्युक्त विधि से फूँकें । जब इसका शुद्ध भस्म होजाय, तब इस भस्म के बराबर शुद्ध गंधक मिलाकर २ रत्ती की मात्रा से वच के चूर्ण के साथ देने से उन्माद और अपस्मार का नाश होता है ।

उन्मादध्वंसीरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]शुद्ध हरताल, शुद्ध ताम्र ले इन्हें गंधक योग से मारण करें । इनका भस्म समान भाग और शुद्ध गंधक दोनों के बराबर मिलाकर मर्दन करें ।

मात्रा—२ रत्ती । इसे वच के साथ भक्षण करने से उन्माद और अपस्मार दूर होता है । (बृहत् रस रा० सु०) ।

उन्मादन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उन्मत्त करने का कार्य्य । मतवाला करने की क्रिया ।

उन्मादनाशकघृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हींग, सोंचल नमक, सोंठ, मिर्च और पीपल प्रत्येक २-२ पल, घी १ आढ़क, गोमूत्र ४ आढ़क लेकर यथाविधि घृत सिद्ध करें ।

गुण—इसके सेवन से उन्मादरोग शान्त होता है । च० चि० १४ अ० ।

उन्माद पर्पटीरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पर्पटीरस में धत्तूर के पाँच बीज मिलाकर बारीक पीसकर खाने से भूतोन्माद दूर होता है ।(बृहत् रस रा० स०)।

उन्माद पर्यय रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्माद रोग में प्रयुक्त एक रस । चैत्र पर्पटके रस में काले धतूरे का बीज ५ नग मिलाने से यह योग बनता है । इसके उपयोगसे उन्माद नष्ट होता है। रसेन्द्र सा० सं० ।

उन्मादभञ्जन रस–संज्ञा पुं० [सं०पुं०] एक रसौषध। योग—त्रिकुटा, त्रिफला, गजपीपल, देवदारु, वायविडंग, चिरायता, कुटकी, कटेरी, जेठीमधु, इन्द्रयव, चित्रक, वरियारा, पीपलामूल, खस, सहिजन के बीज, निशोथ, इन्द्रायण की जड़, बंगभस्म, चाँदीभस्म, अभ्रकभस्म, मूँगे कीभस्म, इन्हें समान भाग और सर्वतुल्य लोहभस्म लेकर जल से यथाविधि मर्दन करें।

नोट—इसे ब्राह्मी के रस में मर्दनकर ३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाने से यह अत्यंत लाभप्रद हो जाता है।

गुण—इसे ब्राह्मी के रस के साथ या अन्य यथोचित अनुपान से देने से उन्माद, भूतोन्माद, वातोन्माद, अपस्मार, कृशता, और दारुण रक्तपित्त का नाश होता है। रसेन्द्र सा० सं०।

उन्मादभञ्जिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शुद्ध मैनसिल चूर्ण, सेंध नमक, कुटकी, बच, सिरसबीज, हींग, सफ़ेद सरसों, करञ्जबीज, त्रिकुटा, कबूतर की बीट सम्पूर्ण समान भाग। सबका बारीक चूर्णकर गोमूत्र से खरलकर इन्द्रयव प्रमाण गोलियाँ बनाएँ। साया में सुखाकर रक्खें। इसका प्रातः सायं और रात में घृत, जल तथा शहद से अंजन करने से उन्माद, मृगी और चौथिया ज्वर का नाश होता है। वृहत् रस० सु० दाह–चि०।

उन्मादभञ्जिनी वटी–
उन्मादभञ्जिनी गुटिका– } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आयुर्वेद में एक रसौषध। योग—शुद्ध मैनशिल, सेंधानमक, कुटकी, बच, सिरस के बीज, हींग, श्वेत सर्षप, करंज के बीज, सोंठ, मिर्च, पीपल और कबूतर की बीट–इन्हें समान भाग ले मूत्र में घोटकर मटर प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ और साया में सुखाकर रक्खें। इसका प्रातः सायं और रात को अंजन करने से उन्माद, अपस्मार और चातुर्थिक ज्वर का नाश होता है। र० सं०। र० चं०। र० सु०। रस० यो० सा०।

उन्माद-हर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्माद रोग में प्रयुक्त एकरसौषधि। योग—शुद्ध नैपाली ताँबे का चूर्ण जो ऐसा मारा गया हो कि वह वान्ति और भ्रान्ति से रहित होगया हो १ भाग, स्वर्णसिंदूर $\frac{1}{2}$ भाग, शुद्ध मैनशिल १ भाग, काले धत्तूर का बीज $\frac{1}{2}$ भा०, वच्छनाग २ भा०, वच २ भाग—प्रथम स्वर्णसिंदूर, ताम्रभस्म और मैनशिल को वच के क्वाथ में १ दिन घोटकर फिर विष मिलाकर घोटें। फिर २ वा ३ गुंजा प्रमाण की गोलियाँ बनालें।

गुण तथा उपयोग-विधि—अकाशबेल की अन्तर्धूम भस्म १तो०के साथ १ गोली अथवा वच और १२ वर्ष के पुराने गुड़ के साथ अथवा ४० वर्ष के पुराने घृतके साथ खाने या नस्य देनेके लिए किसी भी घृत के साथ अथवा नागकेशर, धत्तूर, वच और आकाशबेल इनमें सिद्ध किए हुए क्वाथ के साथ दें और सरसों का तेल नस्य में उपयुक्त करें। इस प्रकार उपयोग करने से अपस्मार शीघ्र नष्ट होता है। यह प्रयोग सिद्ध है। र० सा०। रस यो० सा०।

उन्मादहर योग, उन्मादहर रस–संज्ञा पुं० दे० "उन्मादहर"।

उन्मादांकुशरस-संज्ञा पुं० दे० "उन्मादगजांकुश रस"।

उन्मादिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भाँग। विजया। भँगा।

उन्मादिन्–वि० [सं० त्रि०] उन्मत्त। मतवाला। नशेबाज़।

उन्मादी–संज्ञा पुं० [सं० उन्मादिन्] [स्त्री० उन्मादिनी] जिसे उन्माद हुआ हो। उन्मत्त। पागल। बावला।

उन्मान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नाप। तौल। (२) नापने वा तौलने का कार्य। मापना।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रोण नामक पुरानी तौल जो ३२ सेर की होती थी। प० प्र० १ ख०।

उन्मार्ग–वि० [सं० त्रि०] कुपथ गामी। बुरी राह जाने वाला।

उन्मार्गी–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाँच प्रकार के भगंदर में से एक।

लक्षण—मांसाशी मूर्ख जन जिस हड्डी को भोजन के साथ खा जाते हैं, वह गाढ़े पुरीष में मिलकर अपानवायु द्वारा नीचे प्रेरित की हुई,

अधूरी बाहर आई हुई (आड़ी-टेढ़ी वा बड़ी होने से) गुदा में घाव कर देती है। फिर घाव पक जाते हैं और उनमें राध और रुधिर-युक्त मांस हो जाने से जैसे जल से गीली पृथ्वी में कृमि पड़ जाते हैं वैसे ही उनमें भी कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। वे क्रिमि मांस को खाकर अनेक भाँति से बगल की ओर विदारण कर देते हैं। तब मनुष्य के उनकृमिकृत मार्गों से वायु, मूत्र, विष्ठा तथा वीर्य निकलने लग जाता है। इसे ही उन्मार्गी नामक भगंदर कहते हैं। सु० नि० ४ अ०। दे० "भगन्दर"।

नोट—बवासीर के मस्से काटने से होनेवाले जखम अथवा और किसी भाँति चोट लग जाने, छिल जाने, कट जाने वा रगड़ आदि लग जाने से घाव होकर जो भगंदर हो, उसे भी उन्मार्गी भगंदर ही समझना चाहिए।

उन्मार्जन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घर्षण। रगड़।

उन्मित-वि० [सं० त्रि०] परिमित। नापा जोखा।

उन्मिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] औषध प्रमाण।

उन्मिलः-संज्ञा पुं० दे० "उन्मील"।

उन्मिष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) प्रकाश। चमक। प्रभा। ज़हूर। (२) विकाश। खुलावट।

उन्मिषत्-वि० [सं० त्रि०] चक्षु उद्घाटन करता हुआ। जो आँख खोल रहा हो।

उन्मिषित-वि० [सं० त्रि०] (१) खुला हुआ। (२) फूला हुआ। विकसित।

उन्मील-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चक्षु का उद्घाटन। आँख खोलना।

उन्मीलन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उन्मीलक, उन्मीलनीय, उन्मीलित] (१) खुलना (नेत्र का)। उन्मेष। (२) विकसित होना। खिलना। (३) दृश्यभाव। देख पड़ने की हालत।

उन्मुख-वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० उन्मुखा] (१) ऊपर मुँह किये हुआ। ऊपर ताकता हुआ। (२) उद्यत। तैयार।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृग विशेष।

उन्मुद्र-त्रि० [सं० त्रि०] विकसित। खिला हुआ।

उन्मूल-वि० [सं० त्रि०] (१) नष्ट मूल। जड़ से उखाड़ा हुआ। (२) जो जड़ निकाल चुका हो। (३) निर्मूल। बे जड़।

उन्मूलन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उन्मूलक, उन्मूलनीय, उन्मूलित] (१) जड़ से उखाड़ना। समूल नष्ट करना। उत्पाटन। (२) नष्ट करना। ध्वस्त करना। मटियामेट करना।

उन्मूलित-त्रि० [सं० त्रि०] (१) उखाड़ा हुआ। उत्पाटित। हे०। (२) नष्ट किया हुआ।

उन्मृजावमृजा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उन्मार्जन। मालिश। मलाई-दलाई।

उन्मृश्य-त्रि० [सं० त्रि०] जो हाथ उठाकर छुआ जा सकता है।

उन्मेदा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्थूलता। मोटापन।

उन्मेष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [त्रि० उन्मिषित] (१) खुलना (आँख का)। नेत्रोन्मीलन। हे० च०। (२) विकास। खिलना। (३) थोड़ा प्रकाश। थोड़ी रोशनी।

उन्मेषण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आँख खोलने की क्रिया वा भाव। जाग्रत भाव। जगाई।

उन्मोचन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खोलने की क्रिया या भाव। मोचन। खोलाई।

उन्स़ा-[अ०] [बहु० उनास़्] मादा। स्त्री। (Female)

नोट – इसका उलटा "नर" है।

उन्सियान्-[अ०] [द्वि० व०] दोनों मुष्क। दोनों आँड़ियाँ। (Testicles)। दे० "अण्ड"।

पर्य्या०—उन्सयैन। खुस़्यतान।

उन्सुर-[अ०] [बहु० अनासिर] (१) आधार। मूल। मौलिक अंश। अंश। (२) रसायन शास्त्र की परिभाषा में वह मिश्रित पदार्थ वा तत्व जिसके टूकड़े न हो सकें।। (३) अनासिर अर्बआ: (तत्व चतुष्टय) अर्थात् आग, हवा, पानी, मिट्टी में से कोई एक। तत्व। मूल भूत। अर्कान। (Element) दे० "तत्व"।

उन्सुल्-[अ०] दे० "अन्सुल"।

उन्सुले हिंदी-[अ०] दे० "अन्सुले हिंदी"।

उन्हालागम-संज्ञा पुं० [?] ग्रीष्मागम । गर्मी की आमद ।

उन्हाली-[मरा०] शरपुङ्खा । सरफोंका ।

उप-उप० [सं०] यह उपसर्ग जिन शब्दों के पहले लगता है उनमें इन अर्थों की विशेषता करता है । (१) समीपता, जैसे-उपकूल । (२) सामर्थ्य (वास्तव में आधिक्य), जैसे-उपकार । । (३) गौणता वा न्यूनता, जैसे—उपपुराण (४) व्याप्ति जैसे-उपकीर्ण ।

उप ऊर्वार्बुद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जाँघ की हड्डी वा ऊर्वस्थि का एक छोटा सा उभार जो इसके नीचे के सिरे में प्रत्येक ऊर्वार्बुद के ऊपर होता है । उप ऊरु अर्बुद । Epicondyle of femur.

उपकण्ठ-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गले के पास । (२) घोड़ों के उछलने की चाल ।

उपकनिष्ठिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सबसे छोटी उँगली के पास की उँगली । अनामिका । (Ring finger)

उपकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कन्या की सखी । बेटी की सहेली ।

उपकरण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) Instrument, apparatus. साधक वस्तु । सामग्री । सामान । (२) उपादान ।

उपकर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूषक कर्णिका । मूसाकानी । वै० निघ० २ भ० अर्श-चि० त्रिवृ-ङ्गादि चूर्ण लेह ।

उपकर्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Abduction) भगा या निकाल ले जाने का काम ।

उपकलाप-अव्य० [सं०] कलाप में । कलाप के निकट ।

उपकल्पन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपकल्प, उपकल्पित] (१) सम्पादन । (२) आयोजन । तैयारी । च० सू० ३० अ० ।

उपकक्ष-वि० [सं० त्रि०] स्कन्ध पर्यन्त पहुँचनेवाला । जो कन्धे तक हो ।

उप-काकल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Parathyroid) उपचुल्लिका ।

उपकाण्ठिक जिह्वीया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Chondroglossus)

उपकार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [त्रि० उपकारक, उपकारी, उपकार्य, उपकृत] (१) विकीर्ण पुष्पादि । हे० । (२) लाभ । फ़ायदा ।

उपकारिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार की पीठी । पिष्टक भेद । मे० कपञ्चक । (२) काला जीरा ।

उपकारी-वि० [सं० उपकारिन्] [स्त्री० उपकारिणी] लाभ पहुँचानेवाला । फ़ायदा पहुँचानेवाला । उपकारक ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] राजगृह । भरत० द्वि० को० ।

उपकार्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) राजगृह । अम० । (२) धान्य रक्षण स्थान । गोला ।

उपकाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक नाग-राज ।

उपकालिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उपकुञ्ची । एक प्रकार का जीरा । सफ़ेद जीरा । श्वेत जीरक । (२) कलौंजी । मँगरैला । मद० व० २ । (३) काला जीरा । भा० पू० १ भ० । (४) पिप्पली । पीपल ।

उपकीर्ण-त्रि० [सं० त्रि०] सिक्त । छिड़का हुआ । किला हुआ ।

उपकुञ्च(क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला जीरा । कृष्णजीरक । वै० निघ० ।

उपकुञ्चा-
उपकुञ्चि-
उपकुञ्चिका-
उपकुञ्ची-
} संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कलौंजी । मँगरैला । कलौंजीजीरक । वृहज्जीरक । स्थूल जीरक । नि० र० । (२) सूक्ष्मैला । छोटी इलायची । गुजराती लाची । अम० । रा० नि० । (३) कालाजीरा । (४) स्वल्प जीरक । छोटा जीरा । भा० पू० १ भ० । रत्ना० ।

गुण—यह कडुआ, चरपरा, गरम, दीपन और वृष्य है तथा अजीर्णनाशक, गर्भाशय को शुद्ध करनेवाला एवं आध्मान, वातगुल्म, रक्तपित्त और कृमि का निवारण करता है और कफ, पित्त, आमदोष, वात तथा शूल को नष्ट करता है । वै० निघ० ।

उपकुञ्चीका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपकुञ्ची । छोटी इलायची ।

उपकुण्डल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Epicondyle) कुण्डलोर्ध्व ।

उपकुम्भा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दन्ती का वृक्ष । वै० निघ० ।

उपकुरङ्गक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृग । हिरन ।

उपकुल्यक-संज्ञा पुं० दे० "उपकुल्या" ।

उपकुल्या (का)-संज्ञा स्त्री०[सं०स्त्री०] (१)दन्ती का पेड़ । वै० निघ० । प० मु० । रा० नि० व० ६ । च० द० अश्म० चि० एलादि० । (२) पिप्पली । पीपल ।

उपकुश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सुश्रुतके अनुसार दन्तमूलगत पित्त-रक्तज रोग विशेष । मसूड़े का फोड़ा । दन्तवेष्ट अर्थात् मसूढ़ों के रोगों का एक भेद । लक्षण—इसमें मसूढ़ों में जलन और पाक होता तथा दाँत हिलने लगते; मसूढ़ों में अत्यंत वेदना होने से खून गिरने लगता, खून गिरने से मसूड़े तत्काल सूज जाते और मुँह से बदबू आने लगती है । यह रोग "पित्त" और "रुधिर" के कोप से होता है । भा० म० ४ भ० मु० रो० चि० । उपकुश-चिकित्सा—इस रोग में गरम जल का गंडूष धारण करके दाँतों के मांस को स्वेदित करें । फिर मण्डलाग्र शस्त्र से वा शाकादि पत्रों से बार-बार खुरचें । तदन्तर लाख, प्रियंगु, पतंग, सेंधानमक, गेरू, कूठ, सोंठ, काली मिर्च, मुलहठी और रसौंत इनके चूर्ण को घृतमंड और शहत में सानकर इससे प्रतिसारण करें । तदनन्तर सुखोष्ण घृतमंड वा तेलका कवल-धारण तथा मधुर गणोक्त द्रव्यों के साथ घृत पकाकर इस घृत का कवल वा नस्य की व्यवस्था हितकारक होती है । वा० उ० २२ अ० । (२) घोड़े के मुँह का एक रोग । इस रोग में दंतमांस से रुधिर स्राव होता है और दाँत हिलने लगते हैं । ज० द० ।

उपकूजित-वि० [सं० त्रि०] शब्दायमान किया हुआ । जो गुँजाया गया हो ।

उपकूप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दीर्घिका । हे० च० ।
संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूप समीप । कूँए के पास ।

उपकूप जलाशय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूँए के पास की द्रोणी (हौज़) । कूप समीपस्थ जलाशय । कूँए के पास का तालाब ।

उपकूल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) किनारा । तट । (२) तट के पास की भूमि । तीर के पास की ज़मीन ।

उपकेंद्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Secondary centre) गौणकेंद्र ।

उपकेश-संज्ञा पु० [सं० क्ली०] कल्पित केश । बनावटी बाल ।

उपकोलिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काला जीरा । कृष्ण जीरक । भा० ।

उपकंकाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Appendicular skeleton)

उपक्रान्तृ-वि० [सं० त्रि०] आरम्भ करनेवाला ।

उपक्रम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चिकित्सा । इलाज । सु० चि० ५ अ० । रा० नि० व० १० । (२) आरंभ । मे० मचतुष्कं ।

उपक्रमण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चिकित्सा । इलाज ।

उपक्रमणीय-वि० [सं० त्रि०] चिकित्सा-संबन्धीय । इलाज से निस्बत रखने वाला ।

उपक्रमितव्य-वि० [सं० त्रि०] आरम्भणीय । शुरू किये जाने योग्य ।

उपक्रमितृ-वि० [सं० त्रि०] आरम्भ करनेवाला ।

उपक्रान्त-वि० [सं० त्रि०] (१) आरब्ध । शुरू किया हुआ । (२) विस्तृत । फैला हुआ ।

उपक्राम्य-वि० [सं० त्रि०] चिकित्सनीय । इलाज किए जाने के क़ाबिल ।

उपक्रोश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) निंदा । बदनामी । (२) आसन्न क्रोश । कोसा हुआ ।

उपक्रोशक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्दभ । गधा ।

उपक्रोशन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बदनामी करने की क्रिया वा भाव । निन्दावाद ।

उपक्रोष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० उपक्रोष्टा] गर्दभ । गधा । गदहा ।

उपक्रोष्टृ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्दभ । गधा ।

उपक्लृप्त-वि० [सं० त्रि०] (१) नियत । ठीक किया हुआ । (२) विन्यस्त । तैयार किया हुआ । (३) उपभोग समर्थ । जो आनन्द उठा सकता हो ।

उपक्लेश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मदादि । नशा इत्यादि ।

उपक्वण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वीणा निनाद । तम्बूर या बरबत की आवाज़ ।

उपकस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कीट विशेष । एक प्रकार का कीड़ा ।

उपखात-अव्य० [सं०] खात के समीप । खाड़ी में ।

उपग-वि० [सं० त्रि०] (१) उपगत । पास आया हुआ । (२) उपगन्ता । पास जानेवाला । नोट—यह शब्द समास के अन्त में आता है ।

उपगत-वि० [सं० त्रि०] (१) अशक्त । थका हुआ । (२) कृत मैथुन । सुहबत किए हुआ । (३) मृत । मरा हुआ । (४) ज्ञात । समझा हुआ । (५) प्राप्त । पहुँचा या मिला हुआ । (६) स्वीकृत । मंजूर । (७) उपस्थित । हाज़िर ।

उपगम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्वीकार । अङ्गीकार । (२) निकट गमन । पहुँच । (३) ज्ञान । समझ । (४) आसक्ति । लगाव । (५) प्राप्ति ।

उपगमन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Converging) संकेंद्रण ।

उपगमन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "उपगम" ।

उपगामिन्-वि० [सं० त्रि०] निकट उपस्थित होने वाला । जो पास आ रहा हो ।

उपगु-अव्य० [सं०] गो के समीप । गाय के पास । वि० [सं० त्रि०] प्राप्त किरणादि ।

उपगुल्फास्थि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (Navicular bone of foot) पैर की नौकाकृति अस्थि ।

उपगूढ़-वि० [सं० त्रि०] (१) आलिङ्गित । लिपटाया हुआ । (२) गुप्त । (३) नियन्त्रित । दबाया हुआ । (४) आलिङ्गन । हमागोशी ।

उपगूढ़वत्-वि० [सं० त्रि०] आलिङ्गन करनेवाला । जो छाती से लगा चुका हो ।

उपगूहन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आलिंगन ।

उपगृह्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आलिंगन । अम० ।

उपगोह्य-वि० [सं० त्रि०] आलिङ्गन योग्य । लिपटाने के क़ाबिल । (२) ग्राह्य । लेने योग्य ।

उपग्रन्थि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] अंग के किसी ग्रंथि पर निकलनेवाली गाँठ ।

उपग्रह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुश समूह । (२) उपयोग । इस्तेमाल ।

उपघात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रोग । व्याधि । रा० नि० व० २० ।

उपघातक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमलतास । आरग्वध । वै० निघ० ।

उपघाती-वि० [सं० त्रि०] (१) नाशक । नष्ट करनेवाला । (२) कष्ट देनेवाला । (३) अनिष्ट कारक । बुराई करनेवाला ।

उपघुष्ट-वि० [सं० त्रि०] शब्दायमान । गूँजता हुआ ।

उपघोषण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) घोषणा । ढिंढोरा ।

उपघ्न-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) निकटाश्रय । पास का सहारा । (२) समीपस्थ विश्रामागार । जो ठहरने की जगह पास हो । (३) आश्रय लेनेवाला ।

उपघ्र-वि० [सं० त्रि०] सम्बन्धीय निस्बत रखनेवाला ।

उपङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उपाङ्ग" ।

उपच-वि० [सं० त्रि०] अल्प माषपिष्टक मिश्रित । जिसमें उड़द का आटा थोड़ा मिला हो । शतपथ ब्रा० १।१।१० ।

उपचयापचय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृद्धि और ह्रास ।

उपचरण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निकट में गमन ।

उपचरित-वि० [सं० त्रि०] (१) लक्षण द्वारा बोधित । चिन्ह से जाना हुआ ।

उपचक्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का हंस । चकवा । चक्रवाक । यथा—"चकोरानुपचक्रकान् ।" च० चि० ३ अ० । गुण—इसका मांस कसैला, स्वादु, नमकीन, त्वचा के लिए हितकारी, केश्य और रुचिकारक है । सु० सू० ४६ अ० ।

हृद्य, हलका, उष्णवीर्य, पाक में कटु, बल और जठराग्निवर्द्धक है। राज०। दे० "चकवा"।

उपचय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उपचयित, उपचित] (१) संचय। जमा। संग्रह करना। (२) वृद्धि। बढ़ती। (३) पुष्टि। (४) समूह।

उपचर्म-संज्ञा पुं० [सं०] त्वचा का ऊपरी पतला भाग। बशूरः, जिल्द ग़ैर हक़ीक़ी, जिल्द काज़िब (अ०)। एपिडर्मिस Epidermis, क्युटिक्ल Cuticle, स्कार्फ स्किन Scarf Skin-(अं०)। वि० दे० "त्वचा"।

उपचर्य-वि० [सं० त्रि०] सेवनीय।

उपचर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सेवा। (२) चिकित्सा। रा० नि० व० २०। इला०।

उपचक्षु-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) Glass उपनेत्र। ऐनक। चश्मा। (२) चक्षु के समीप। आँख के पास।

उपचायित-वि० [सं० त्रि०] वृद्धिकारक। बढ़ानेवाला।

उपचार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उपचारक, उपचारी, उपचारित, औपचारिक] (१) चिकित्सा। दवा। इलाज। (२) सेवा। तीमारदारी। (३) पुष्प। (४) अन्न। (५) धूप। (६) दीप। (७) अनुलेपन। (८) स्नान। (९) गंध। (१०) तर्पण।

उपचारक-वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० उपचारिका] (१) चिकित्सा करनेवाला। दवा करनेवाला। (२) उपचार करनेवाला। सेवा करनेवाला।

उपचारच्छल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] न्याय के मत से अयथार्थ प्रयोग से अर्थ का निराकरण। ग़लत इस्तेमाल से मानी का न मानना।

उपचारिन्-वि० [सं० त्रि०] सेवक।

उपचारी-वि० [सं० त्रि० उपचारिन्] [स्त्री० उपचारिणी] उपचार करनेवाला।

उपचार्य्य-वि० [सं० त्रि०] (१) उपचार वा सेवा के योग्य। (२) चिकित्सा के योग्य।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिकित्सा। हे० च०।

उपचित-वि० [सं० त्रि०] (१) दग्ध। जला हुआ। मे० (२) पुष्ट। (३) संचित। इकट्ठा। (४) लेपन आदि द्वारा वर्द्धित। (५) लिप्त। लगा हुआ।

उपचित रस-वि० [सं० त्रि०] राग में वृद्धिप्राप्त। जोश में बढ़ा हुआ।

उपचिति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वृद्धि। बढ़ती। (२) संग्रह। ढेर।

उपचित्-संज्ञा स्त्री० [वै० सं० स्त्री०] देह वर्द्धक रोग विशेष। सूजन।

"उचित श्वयथुगंडूश्लीपदादयः"।

(वाजसनेयभाष्ये महीधर १२। १७)

उपचित्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पृश्निपर्णी। पिठवन। रा० नि० व० ४। (२) दंती वृक्ष। प० मु०। र० मा०। (३) मूसाकानी का पौधा। मे०। (४) वृहद्दंती। बड़ी दंती। भा० पू० १ भ०। वै० निघ० वा० व्या० विषगर्भ तैल।

उपचित्रका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ह्रस्व दन्ती। छोटी दन्ती।

उपचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "उपचित्र"।

उपचिल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेत चिल्ली शाक। पलाश लोहिता। रा० नि० व० ७।

उपचीका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का समुद्री कीड़ा जो मूँगा बनाता है।

उपचीयमान-वि० [सं० त्रि०] संग्रह किया जानेवाला।

उपचुल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "उपचुल्लिका ग्रंथि"।

उपचुल्लिका ग्रन्थि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] चुल्लिकाग्रंथि के पार्श्विक खण्डों के पिछले किनारों से लगी हुई मटर के आकार और परिमाण की एक प्रकार की प्रणाली विहीन ग्रंथि। यह दो दाहिनी ओर होती हैं और दो बाईं ओर।

पर्य्या०—ग़ुद्दह् तुमु'सिय्यः, ग़ुद्दहे सनोबरियः (अ०)। पाइनियल ग्लैण्ड Pineal gland, कोनेरियम् Conarium (अं०)। वि० दे० "चुल्लिका"।

उपचूलन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तापन। गर्म करने का काम।

उपचेय-वि० [सं० त्रि०] चयनीय । इकट्ठा किए जाने योग्य ।

उपज-वि० [सं० त्रि०] वर्धिष्णु । बढ़नेवाला ।

उपजन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) देह । शरीर । (२) उत्पत्ति । पैदायश । (३) अक्षर । हर्फ़ ।

उपजरस-अव्य० [सं०] वृद्धा अवस्था में । बुढ़ापे के वक्त ।

उपजात-वि० [सं० त्रि०] उत्पन्न किया हुआ । जो उपजाया गया हो ।

उपजाति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चमेली ।

उपजाती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चमेली ।

उपजाय-अव्य० [सं०] जाया के निकट । स्त्री के पास ।

उपजिगमिषु-वि० [सं० त्रि०] निकट । उपस्थित होने का अभिलाषी । जो नजदीक पहुँचना चाहता हो ।

उपजिहिर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दूसरे की चीज़ चुराने की इच्छा ।

उपजिह्व-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अलिजिह्वा । काक । कौआ ।

उपजिह्वा-
उपजिह्विका- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कोमल तालु के पिछले भाग में खूँटी सा दिखाई देनेवाला एक अवयव । अलिजिह्वा । कौव्वा । शुण्डिका । मुँह का काग । (Uvula) रा० नि० व० १८ । (२) स्वरयन्त्रच्छद । (Epiglottis) ह० श० र० । (३) एक प्रकार का कीड़ा । पेदो पोका (बं०) । हे० च० । (४) एक प्रकार का मुख-रोग जो जिह्वा में होता है । इसमें कफ-रुधिर के कोप से, जिह्वा के नीचे, जीभ की नोक के समान सूजन, जीभ को ऊपर नवाकर उत्पन्न होती है । उसमें खाज एवं दाह होता और मुँह से बहुत लार गिरती है । सु० नि० १६ अ० । मा० नि० ।

चिकित्सा

(१) वैद्यक मत से इस रोग में कठोर पत्ते से जीभ को रगड़कर खून निकालो । फिर उस पर जवाखार पीसकर घिसो । अथवा त्रिकुटा, जवाखार, बड़ी हरड़ और चीते की जड़—इन सबका चूर्ण बनाकर जीभ पर घिसो । अथवा उक्त द्रव्यों के कल्क और चतुर्गुण जल द्वारा यथाविधि तैल साधितकर उसे मुँह में भरकर गरगरे वा कुल्ले करने से "उपजिह्वा रोग" नाश हो जाता है ।

(२) अड़ूसे के काढ़े में—शहद, सेंधानमक, घर का धुआँसा मालती के पत्ते और कुल्थी का चूर्ण मिलाकर उससे जीभ के काँटे घिसने से उपजिह्वा रोग शांत हो जाता है ।

नोट—अड़ूसे के काढ़े में—शहद, घर का धुआँसा और मालती के पत्तों का चूर्ण मिलाकर जीभ पर मलने से भी वही लाभ होता है ।

(५) घोड़े के मुख-रोग का एक भेद । इसमें घोड़े की जीभ के नीचे सूजन उत्पन्न होती है ।

जैसे—

"अधस्तादथ जिह्वायाः श्वयथुर्यस्य जायते ।
तं विन्द्यादुपजिह्वाख्यं मुखरोगन्तु वाजिनाम ॥"
ज० द० २६ अ० ।

उपजिज्ञास्य-वि० [सं० त्रि०] निगूढ़ । छिपा हुआ ।

उपजीव-वि० [सं० त्रि०] जीवनोपगत । जीने-जागने वाला ।

उपजीवकत्व-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] न्याय के अनुसार-(१) कार्यत्व । कार्रवाई । (२) प्रयोज्यत्व । इस्तैमाल ।

उपजीवन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपजीवी, उपजीवक] (१) दूसरे का सहारा । निर्वाह के लिए दूसरे का अवलंबन । (२) जीविका । रोज़ी ।

उपजीविन्-वि० [सं० त्रि०] (१) आश्रित । (२) वेतन भोगी । तनख्वाह पर बसर करनेवाला ।

उपजीवी-वि० [सं० उपजीविन्] [स्त्री० उपजीविनी] दूसरे के आधार पर रहने वाला । दूसरे के सहारे गुज़र करने वाला । आश्रित । आश्रयी ।

उपजीव्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आश्रय । सहारा ।

उपजोष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रीति । मज़ा । आस्वाद ।

अव्य० [सं०] प्रीति से । मजे में ।

उपजोषण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आस्वादन। मज़ेदारी। स्वाद लेना।

उपज्योतिष-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ज्योतिष शास्त्रानुगत गणितादि। (२) देश विशेष।

उपज्वलित-वि० [सं० त्रि०] प्रकाशमान। जो जल रहा हो।

उपटन-संज्ञा पुं० दे० "उबटन"।

उपटना-क्रि० उभर आना। बनना।

उपटसुली-[कों०] कृष्ण सारिवा। श्यामलता।

उपढौकन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपहार। नज़र। भेंट। (२) उत्कोच। रिश्वत।

उपतट-अव्य० [सं०] तट के निकट। किनारे पर।

उपतन्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शिवोक्त तन्त्र।

उपतपत्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आन्तरिक ताप। भीतरी गर्मी।

उपतप्त-वि० [सं० त्रि०] (१) संतप्त। गर्म। जला भुना। (२) पीड़ित। तकलीफ़ में पड़ा हुआ।

उपतप्तृ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपतापक। तपा डालनेवाला। (२) उपताप। बिगड़ी हुई गर्मी। (३) रोग। बीमारी।

उपतप्ता-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रोग। बीमारी। अ० टी० भ०।

उपतप्यमान-वि० [सं० त्रि०] पीड़ित। जो तकलीफ़ उठा रहा हो।

तपतत्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नाग वा गन्धर्व विशेष।

उपताप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रोग। (२) उत्ताप। (३) दुःख। मे० पचतुष्क।

उपतापक-वि० [सं० त्रि०] संताप जनक। गर्मी पैदा करने वाला। (२) कष्ट दायक।

उपतापन्-त्रि० [सं० त्रि०] संतापक। जला डालने वाला।

उपतापन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] संताप। जलन।

उपतापिन्-त्रि० [सं० त्रि०] (१) सन्तापी। जला डालने वाला। (२) रोगी। बीमार।

उपतारा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आँख के मध्य पटल का वह भाग जो कनीनिका के पीछे परंतु उससे कुछ दूरी पर रहता है। इसी में तारा वा पुतली का छिद्र होता है। उपतारा के पीछे आँख का ताल रहता है। क़ज़्हिय्यः, इनबिय्यः, तब्क़: इनबिय्यः (अ०)। आइरिस Iris (अं०)।

उपतारानुमण्डल-संज्ञा पुं० [सं०] उपतारा के पीछे का वह भाग जो उभरा हुआ होता है। इसमें अनैच्छिक मांस होता है जिसके ऊपर मध्य पटल रहता है। (Ciliary zone or body.)

उपतारा शोथ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Iritis) उपतारा की सूजन। उपतारा प्रदाह। इल्तिहाब क़ज़्हिय्यः, वर्म इनबिय्यः (अ०)।

उपतिष्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पुनर्वसु। (२) अश्लेषा।

उपतीर-अव्य० [सं०] तीर के समीप। किनारे पर।

उपतुला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्तम्भ के नव समान अंश में तृतीय। यह वास्तुशास्त्र में वर्णित है।

उपतूल-अव्य० [सं०] तूलोपरि। रूईपर।

उपतृण्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सर्प। साँप।

उपतैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अभ्यक्त तैल। लगाया हुआ तैल।

उपत्यका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पर्वत के पास की भूमि। तराई।

उपदग्ध-वि० [सं० त्रि०] ईषद्दग्ध। थोड़ा जला हुआ। सु० सू० ४६ अ०।

उपदन्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुस्तुम्बुरु। कच्चा धनिया। आर्द्र धन्याक। The plant coriander।

उपदल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] The petal पुष्पदल। फूल की पंखड़ी।

उपदिक-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपदिशा। दो दिशा के बीच की दिशा।

उपदिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उपजिह्वा। (२) एक चींटी। इससे दुर्गन्ध निकलती है।

उपदिग्ध-वि० [सं० त्रि०] (१) लिप्त। आलूदा। भरा हुआ। (२) विन्दुलाञ्छित। धब्बेदार।

उपदिश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विदिशा।

उपदिशा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दो दिशाओं के बीच की दिशा। कोण।

उपदी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] (Epidendrum tessellatum) A parasite plant वन्दाक। बाँदा। मान्दड़ा। (बं॰)। वादांगुल(मरा॰)। रा॰ नि॰ व॰ ५।

उपदीका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] उपजिह्वा नामक कोड़ा। हे॰ च॰।

उपदीर्घ–वि॰ [सं॰ त्रि॰] Oblong आयत।

उपदृष्टि–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] दर्शन। नज़ारा।

उपदेवता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] यत्त, भूत, पिशाचादि।

उपदेश–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] (१) मुस्तक। मोथा। (Cyperus rotundus, *Linn.*) हे॰ च॰। (२) सुश्रुत के अनुसार ३२ प्रकार की तंत्रयुक्तियों में से एक। स्थित-कथन। यह इसी प्रकार से है या होता है या होना चाहिये। इसे ही 'उपदेश' कहते हैं। जैसे—रात को जागना नहीं चाहिये और न दिन में सोना। सु॰ उ॰ ६५अ॰। "एवमित्युपदेशः। यथा—तथा न जागृयाद्रात्रौ दिवा स्वप्नं च वर्जयेत्"।

उपदेशार्यसक्य–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] दृष्टान्त। मिसाल।

उपदेह–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰](१)(Unguentum) ointment) उपलेप। प्रलेप। मरहम। वै॰ निघ॰। (२) गण्डमाला। अर्वुद।

उपदेहिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री॰] उपजिह्वा नाम का कीड़ा। हे॰ च॰।

उपदोह–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] दुदहँड़ा। दूध दुहने का पात्र।

उपदंश–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] (१) समष्ठिल। कोकुआ नामक कँटीला पौधा। रा॰ नि॰ व॰४। (२) शिग्रु। सहिजन। (Morniga pterygo sperma, *Gartn.*) रा॰ नि॰ व॰ ७। (३) मद्य के ऊपर रुचनेवाली वस्तु। गज़क। चाट। चखणा। हला॰। सि॰ यो॰ मदा॰ चि॰। (४) एक प्रकार का पकवान। व्यञ्जन। यथा—"स्रग्वी सभक्तां पिशितोपदंशाम्।" रा॰ नि॰ व॰ २०। (५) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का जननेन्द्रिय संबन्धी रोग जिसमें पुरुष की लिंगेन्द्रिय पर नाखून या दाँत लगने के कारण घाव हो जाता है। नरम आतशक। सॉफ्ट शांकर Soft chanker (अं॰)। आतशक मजाज़ी। क़ुरूह ज़ुह्रियः (अ॰)।

टिप्पणी—चरकोक्त ध्वजभंगकृत क्लैव्य के साथ सुश्रुतोक्त उपदंश का बहुधा साम्य है। चरक के बाद ही सुश्रुत बना है, ऐसा ऐतिहासिकों का मत है (कोई-कोइ तो सुश्रुत को चरक से भी पूर्व बना मानते हैं)। चरक में उपदंश का नाम नहीं आया है, चिकित्सा में भी सादृश्य है। इसी उपदंश का आधुनिक सॉफ्ट शांकर (Soft chanker) नामक रोग से मेल होता है जो कि ड्युक्रे (Ducrey's bacillus) कृमिजन्य है। फिरंगरोग (Syphilis) इससे भिन्न है। इसीलिए भावप्रकाश में फिरंग और उपदंश का पृथक् निदान और चिकित्सा है। फिरंग रोग कुछ शताब्दी पूर्व पुर्त्तगाल निवासियों के साथ भारत में आया था, यह भावप्रकाशोक्त "फिरङ्गिणोङ्ग संसर्गात्" इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट है। अस्तु चरक, सुश्रुत, वाग्भटादि प्राचीन ग्रंथों में फिरंग का वर्णन नहीं है। सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में बने भावप्रकाश में इसका वर्णन प्रथम आया है।

कई अर्वाचीन लेखक एवं शास्त्र उपदंश और फिरंग को एक ही रोग मानते हैं। किंतु शास्त्रों के पर्यालोचन से यह बात प्रमाणित नहीं होती। वास्तव में ये रोग पृथक् पृथक् ही हैं, जैसा कि आगे के लेखों से ज्ञात होगा। अतएव भावप्रकाश ने दोनों रोगों का पृथक्-पृथक् ही वर्णन किया है।

अब रहा उपदंश और ध्वजभंगकृत क्लैव्य का साम्य, उसके लिए चरक और सुश्रुत के उक्त पाठों को मिला देखें। आपको स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि, इन दोनों की चिकित्सा और निदान में कितना साम्य है। दोनों में दवाओं के बाहरी लेप सेक आदि का ही विधान है, इस विधान में भी साम्य है। खाने की औषधि का नाम भी नहीं। "एतं पञ्चविधं" की व्याख्या करते हुए "जल्प कल्पतरु" नाम चरक की टीका में गंगाधर

लिखते हैं—"एतं ध्वजभङ्गमुपदंशं केचित्पञ्चविधं प्रचक्षते"।

यहाँ ध्वजभंग का पर्याय उपदंश श्री गंगाधर ने भी स्पष्ट माना है।(यादवजी संपादित द्वितीयावृत्ति चरक टिप्पणी)

अब रही सॉफ्ट शैंकर की बात, उसे हमने आतशक शब्द के अंतर्गत विस्तार के साथ दिखलाया है। इससे पाठकगण यह विचार कर सकेंगे कि, चरकोक्त "ध्वजभंग", सुश्रुतोक्त "उपदंश" तथा ड्युक्रे बैसिलसजन्य "सॉफ्ट शांकर" एक ही रोग है। फिरंग इससे भिन्न सार्वांगिक, आनुवांशिक अनेक रोगानुगत रोग है जिसका विस्तृत विवेचन "आतशक" शब्द के अंतर्गत किया गया है। वहीं पर उपदंश और फिरंग के सूक्ष्म भेदों का भी निदर्शन कराया गया है। फिरंग में आभ्यन्तरिक पारदादि सेवन के बिना कदापि लाभ नहीं होता। परंतु उपदंश की स्थानिक चिकित्सा व्रण की सी होती है। अब हम यहाँ उपदंश के शास्त्रोक्त निदान चिकित्सादि का क्रमशः उल्लेख करेंगे।

उपदंश रोग के कारण

सुश्रुत ने उपदंश पैदा होने के अधोलिखित कारण लिखे हैं—अति मैथुन, अति ब्रह्मचर्य, तथा ब्रह्मचारिणी, बहुत दिन की छूटी हुई, रजस्वला, बड़े रोमोंवाली, कड़े रोमोंवाली, संकीर्ण रोमोंवाली स्त्री के साथ संग करने तथा जिसके भीतर को बाल घुसे हों, उस स्त्री के साथ सहवास करने और जिसकी योनि तंग हो या जिसकी बड़ी हो, उसके साथ संग करने एवं जो अप्रिय हो, जो मैथुन की इच्छा न करे या जिसने गंदे पानी से योनि धोई हो या जिसने (बहुत दिन से) योनि धोई न हो या जिसकी योनि में कोई व्रणादि रोग हो या स्वभाव ही से जिसकी योनि दूषित (अस्थ्यादि युक्त) हो या जिसके योनि हो ही नहीं (अर्थात् हीजड़ी हो जिसके छोटा सा मूत्रमार्ग होता है), ऐसी स्त्रियों के साथ संग करने या विशेष स्त्रियों के पास रहने तथा नाखून, दाँत लगने, विष, तिनका गिरने आदि कारणों और दबाने, हाथ से मलने पशुगमन, मैले जल से लिंग धोने, मलने, वीर्य एवं मूत्र के वेग रोकने, मैथुनांत में न धोने आदि कारणों से वातादि दोष कुपित होते हैं, ये कुपित हुये वातादि दोष लिंग में प्राप्त होकर घाव में या बिना घाव ही शोथ पैदा करते हैं। (सु० नि० १२ अ०)

वाग्भट के अनुसार—एक साथ मैथुन करते-करते हट जाना, अथवा सहसा मैथुन में प्रवृत्त होजाना, अथवा वातादि दोषों से दूषित योनि की स्त्री, तंग, मलिन वा सूक्ष्म मार्गवाली स्त्री के साथ गमन करना, बकरी, भैंसादि पशु योनि में गमन करना, संगम की इच्छा न रखनेवाली स्त्री के साथ गमन करना, अगम्या स्त्री के साथ गमन करना, नवप्रसूता स्त्री के साथ गमन करना, रति के अंत में दूषित जल से गुह्येन्द्रिय प्रक्षालन वा सर्वथा अप्रक्षालन अथवा गुह्येन्द्रिय को बढ़ाने के निमित्त तीक्ष्ण प्रलेपादि करना, कामोन्मत्ता स्त्री के मुष्टि, दाँत, व नख द्वारा लिंग का आहत करना, विषवत वीर्यपतन, वीर्य का वेग रोकना, दीर्घ और अत्यन्त खर स्पर्शवाली योनि से बहुकाल तक गुह्येन्द्रिय घर्षण, इत्यादि बातों से वातादि दोष प्रकुपित होकर उपदंशादि २३ प्रकार के रोगों को उत्पन्न कर देते हैं।

भावप्रकाश और माधवनिदान के अनुसार—हाथ की चोट लगने (वा हस्तमैथुन), नाख़ून या दाँतों के लगने, मैथुन करके लिंग को न धोने, स्त्री का बहुत सेवन करने, योनि दोष (जिसके ऊपर बड़े तथा कर्कश रोम हों) और विविधापचार अर्थात् खारे या गरम जलादि से धोने या ब्रह्मचर्य्ययुक्त स्त्री के साथ गमन, इत्यादि कारणों से उपदंश रोग पैदा होता है।

उपदंश के भेद

सुश्रुत के अनुसार यह पाँच प्रकार का होता है, जैसे—"सपंचविधस्त्रिभिर्दोषैः पृथक् समस्तैरसृजा चैकः"। अर्थात् वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक और रक्तज। इनमें से प्रत्येक उपदंश के लक्षण इस प्रकार हैं—

वातिकोपदंश के लक्षण

वायु के उपदंश में खरदरापन होता है। लिंग की त्वचा में परिपुटन हो जाता है; इंद्रिय कड़ी हो जाती है; खरदरी सूजन होती और अनेक प्रकार की वायु जनित वेदना होती है। (सु०)

इस उपदंश में लिंग के ऊपर काली-काली फुन्सियाँ होती हैं और उनमें सूई चुभने जैसी वेदना एवं शस्त्र लगने की सी पीड़ा होती है तथा उसमें फड़क होती है। (भा० । मा० नि०)

पैत्तिकोपदंश के लक्षण

पित्त के उपदंशमें ज्वर होता है। उसमें सूजन होती और वह पके गूलर के समान लाल रंग का होता है। उसमें जलन होती है। वह शीघ्र पकता और पैत्तिक वेदना होती है। (सुश्रुत)

पैत्तिक उपदंश में लिंग के ऊपर पीले रंग की फुन्सियाँ उत्पन्न होतो हैं। उनमें से पानी बहुत बहता है और दाह होता है। (भा०। मा० नि०)

श्लैष्मिकोपदंश के लक्षण

कफ के उपदंश में खाज से युक्त कड़ी, चिकनी और कफ की वेदनावाली सूजन होती है। (सु०)

कफ से उत्पन्न उपदंश में खुजली एवं सूजन सहित बड़ी सफ़ेद फुंसियाँ उत्पन्न होती है, जिनमें से गाढ़ी पीब बहा करती है। (भा० । मा० नि०)

कफ से कठोरता, चिकनाई, खुजली, शीतलता और भारीपन होता है। वा० उ० ३३ अ०।

रक्तज उपदंश के लक्षण

रक्त के उपदंश में काली-काली फुंसियाँ पैदा होती हैं; अधिक रुधिर निकलता है और इसमें पित्त के से लक्षण होते हैं। विशेषत: ज्वर, दाह-जलन और शोष (खुश्की) होता है। कभी कभी यह याप्य हो जाता है। (सु०)

रक्त से उत्पन्न उपदंश में मांस के समान लाल वा काली फुंसियाँ उत्पन्न होती हैं। अधिक रक्तस्राव होता है और पित्तोपदंश के सभी लक्षण उपस्थित होते हैं। (भा० । मा० नि०)

सन्निपातज उपदंश के लक्षण

सन्निपात से उत्पन्न उपदंश में सभी दोषों के लक्षण मिले होते हैं। लिंग में दारुण ज़ख्म हो जाते हैं। उनमें कीड़े पड़ जाते हैं और मृत्यु हो जाती है। (सु०)

अंडकोष में सूजन, तीव्रवेदना, आशुपाक, फटने और क्रिमियों की उत्पत्ति होतीहै। वा० उ० ३३ अ०।

त्रिदोष से उत्पन्न यह उपदंश रोग नाना प्रकार के स्राव और पीड़ाओं से युक्त होता है और यह उपदंश असाध्य है। (भा० । मा० नि०)

असाध्य उपदंश के लक्षण

जिस उपदंश रोगी के लिंग का मांस गल गया हो, कीड़े लिंग को खा गये हों, केवल अंडकोष (फोता) मात्र शेष रह गया हो, वह असाध्य है। उसको वैद्य त्याग दे। अर्थात् ऐसे रोगी की चिकित्सा न करे। (भा० । मा० नि०)

उपदंश रोग की उपेक्षा का फल

शास्त्र में कहा है कि, विषय में आसक्त जो मूर्ख मनुष्य उपदंश उत्पन्न होते ही चिकित्सा नहीं कराता, उसका लिंग थोड़े दिन में सूज जाता है, उसमें कीड़े पड़ जाते हैं और दाह होता है। काल पाकर वह पक जाता है। अंत में वह सड़-गल जाता है। ऐसा उपदंश रोगी मर जाता है। कहा है—

"संजात मात्रे न करोति मूढ़ः,
क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः।
कालेन शोथ क्रिमिदाहपाकैः,
प्रशीर्ण शिश्नो म्रियते स तेन ॥"

(भावप्रकाश)

उपदंश केवल पुरुष-व्याधि वा स्त्री-पुरुष व्याधि है ?

गदनिग्रहादि ग्रंथों तथा सुश्रुत भावप्रकाशादि में उपदंश को केवल पुरुष-रोग लिखा है।

यथा—

"मेढ्रमागम्य कुपिता दोषाः क्षतेऽक्षते वा,
शोथमुपजनयन्ति तमुपदंशमित्याचक्षते।"

—सुश्रुत

"भवन्ति शिश्ने पंचोपदंशा विविधापचारैः।"

(मा० नि० । भा०)

इससे कुछ लोग ऐसा विचार करते हैं कि यह रोग पुरुषों को ही होता है, स्त्रियों को नहीं। परंतु—

"रुजादाहार्त्ति बहुलास्तृष्णा तोद समन्विताः।
स्त्रीणांपुन्सां च जायन्ते उपदंशाः सुदारुणाः॥"

इससे दोनों को होना प्रमाणित है।

उपदंश और फिरंग में भेद

नोट—इसके लिए दे० "आतशक"।

उपदंश और सोज़ाक में भेद

उपदंश पेशाब की नली में होता है और सारे शरीर में विस्फोटक की तरह फैलता है। पर उपदंश केवल मूत्र-नली में ही होता है।

उपदंश की बद या बाघी

इस रोग में जब लिंग पर घाव होते हैं और वह सूज जाता है, घूँघट नहीं खुलता; तब बड़ा कष्ट होता है। इससे दो-चार या दस-पाँच दिन बाद जाँघों के जोड़ों में बद या बाघी या गाँठ हो जाती है। बाघी या गाँठ बिना उपदंश के भी, तेज़ चलने, ऊँचे नीचे स्थान में पैर पड़ने या पैर में फोड़ा या किसी तरह की चोट लगने आदि कारणों से भी हो जाती है; पर उपदंश की बद पक जाती है, और बद प्रायः नहीं पकतीं।

कुरंड और इस बद में विशेष अन्तर नहीं, केवल अन्तर यही है कि कुरंड में पीड़ा नहीं होती और बद में पीड़ा होती है। बद बहुधा उपदंश होने से होती है। वृन्द में लिखा है—

"यस्य पूर्वं फिरंगाख्यो रोगो भूत्वा प्रशाम्यति।
तस्य जन्तोर्ब्रध्न राग इत्युक्तः सुश्रुतादिभिः॥"

अर्थात् जिस मनुष्य के पहिले फिरंग रोग होकर शांत हो जाता है, उसके बद-रोग हो जाता है; पर फिरंग और उपदंश में भेद है। बद-रोग उपदंश रोग के होते भी होता है और आराम हो जाने पर भी होता है, ऐसा देखने में आता है।

"वैद्य-विनोद" में लिखा है—

"गुर्वन्नसेवनात्क्रुद्धो दोषो वंक्षणे सन्धिगः।
करोति ग्रन्थिवच्छोफं वध्मेति समादिशेत्॥"

अर्थात् भारी अन्न सेवन करने से दोष कुपित होकर, वंक्षण की संधि में जाकर, गाँठ के समान सूजन उत्पन्न करता है, उसको "बद" कहते हैं।

उपदंश-रोग की चिकित्सा

चिकित्सा-विधि

(१) "सुश्रुत" में लिखा है कि, उपदंश यदि साध्य हो, तो पुरुष को स्नेहन और स्वेदन कराके, लिङ्ग के मध्य में जो महीन शिरा है, उसका वेधन कराके रुधिर निकलवाओ अथवा जोंक लगाकर खून निकलवाओ। यदि दोष बहुत ही बढ़े हों तो वमन और विरेचन देकर, उस रोगी के बढ़े हुये दोषों का हरण करो। तत्काल ही दोषों के हरण करने से पीड़ा और सूजन शांत हो जाती है। यदि रोगी बहुत ही कमज़ोर हो, विरेचन के लायक़ न हो, तो निरूहण बस्ति देकर दोषों का नाश करो। "भावप्रकाश" के मत से जैसे भी हो, लिंग को पकने मत दो; क्योंकि पकने से शिश्न का नाश हो जाता है। "सुश्रुत" में भी लिखा है कि, जिस तरह लिंग पके नहीं, वैद्य को ऐसा यत्न करना चाहिये। क्योंकि यदि लिंगेंद्रिय के शिरा, स्नायु, त्वचा और मांस पक जावे, तो लिंग गलकर गिर जाता है। और यदि पकाव पर आ ही जावे तो शीघ्र ही शस्त्र से चीरा देकर पीव आदि निकाल दें और तिल, घृत, शहद मिलाकर लेप कर दें। कनेर की पत्ती, चमेली की पत्ती और अमलतास की पत्ती—इनका क्वाथ करके, इससे धोवें, अरनी और आक के काढ़े से धोवें।

(२) उपदंश में, यथासंभव, रोगी के बलाबल अनुसार जुलाब अवश्य देना चाहिये। इस रोग में जुलाब देकर दोषों को निकाल देना और फिर उपदंश-नाशक दवा खिलाना और घावों पर लेप या मलहम आदि लगाना अच्छा है।

(३) उपदंश-रोगी को शीतल हवा, शीतल पदार्थों और ऊपरी शीत से बचाना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से गठिया-रोग हो जाता है और कभी-कभी रोगी मर भी जाता है।

(४) जहाँ तक हो, पहले सामान्य औषधों से रोग नाश करना चाहिए। यदि उनसे लाभ न हो तो बड़ी दवाएँ देनी चाहिएँ।

(५) उपदंश की साधारण चिकित्सा यह है—

(१) सबसे पहले रोगी को मल पकाने या फुलाने के लिये कई यथोचित मुंजिस दो। इसके उपरांत रोगी का बलाबल देखकर हलका या तेज़ जुलाब देकर मल निकाल दो। इसके बाद खाने और लगाने की दवा दो।

(२) घावों पर लगानेके लिये नीचे की चीज़ें अच्छी हैं—

(१) कत्था, कपूर, और सिंदूर की मलहम, (२) कत्था और मोम की मलहम, (३) करञ्जाद्य घृत, (४) भूनिम्बाद्य घृत, (५)जम्बवाद्य तैल, (६) कोशातकी तैल, (७) त्रिफले की भस्म शहद में मिली हुई, (८) अनार की छाल पीसी हुई, (९) बबूल के पत्ते पीसे हुए, (१०)रसौत और हरड़ पीस कर शहद में मिलाई हुई, (११) रसौत और सिरस की छाल का चूर्ण शहद में मिलाया हुआ और (१२) सफ़ेद कनेर की जड़ पानी में पिसी हुई।

नोट—पर उपर्युक्त चीज़ें लगाने से पहले घावों को दवाओं के रसों या काढ़ों से धो लेना परमावश्यक है।

(३) घाव धोने के लिये ये चीज़ें उत्तम हैं—(क) भाँगरे का रस, (ख) नीम के पत्तों का काढ़ा, (ग) त्रिफले का काढ़ा, (घ) खैरसार का काढ़ा, (ङ) रेंड़, उड़हुल, आक और कनेर के पत्तों का काढ़ा।

धोने का क्वाथ—जामुन, आम, चमेली, कदम और श्वेत खदिर इनके अंकुर, शल्लकी, बेर, बेलगिरी, ढाँक, तिनिश और वटादि दूधवाले वृक्षों की छाल और त्रिफला इन्हें समान भाग लेकर औटाकर काढ़ा बनाकर इससे उपदंश को धोना चाहिये और इसी काढ़े में तिल-तैल पकाकर उपदंश जनित क्षतों को भरने के लिये यह तेल लगाना उत्तम है। इससे व्रण का रोपण होता है।

(४) खाने के लिये ये औषधियाँ अच्छी हैं—(क) वटादि गूगल, (ख) रसशेखररस, (ग) आक और कालीमिर्च की गोली।

(६) उपदंश रोग में होनेवाली बद या बाघी, जो एक तरह की गाँठ या गिल्टी होती है और जांघों के जोड़ोंमें होती है, प्रायः पक जाती है, जब कि और कारणों से पैदा हुई बद प्रायः नहीं पकती।

बद हो जाने पर, उसे अलसी प्रभृति की पुल्टिस से पकाकर, नश्तर या फोड़नेवाली दवाओं से फोड़ देना और राध-पीव निकाल देना ही भला है। इसमें फोड़े के उपक्रम काम में लाने चाहिये। शुरू में बठाने का उपाय करें। इसमें जोंक लगाकर खून निकलवा देना सर्वोत्तम है; यदि बद पक गई हो, तो दवा या नश्तर से फोड़कर कोई मरहम लगा देनी चाहिये।

(७) यदि उपदंश या बद की दशा में ज्वर आदि रोग होजायँ, तो उनके लिए विचार-पूर्वक भिन्न दवा की व्यवस्था करनी चाहिए।

(८) कभी उपदंश को सोज़ाक और सोज़ाक को उपदंश समझकर दवा देने में भूल न करनी चाहिए। उपदंश की दवाएँ शीतल नहीं होतीं और सोज़ाक की दवाएँ अत्यंत शीतल होती हैं। भूल से बीमारके खतरे में पड़ने का भय है। उसी प्रकार फिरंग की दवाएँ, अति तीव्र होती हैं, जो उपदंश के लिए उपयुक्त होनी संभव नहीं।

(९) यदि उपदंश-रोगी के जोड़ों में दर्द और सूजन हो, गठिया होगई हो, तो और दवाओं के साथ-साथ जोड़ों पर (नारायण तैल) लगाना चाहिए। यदि अधिक शीत से रोग हों, 'नारायण तैल' से लाभ न होता हो, तो 'माषादि तैल' मालिश कराना चाहिए। तेल निर्वात-बिना हवा के स्थान में घंटे-दो घंटे रोज मलने से सूजन उतर जाती है और दर्द मिट जाता है।

विशेष-चिकित्सा

वातज उपदंश की चिकित्सा

(१) मुलहठी, महुआ, देवदारु, अगर, रास्ना, कड़वा कूठ और पद्माख—वातज उपदंश में इन दवाओं का लेप करने और इन्हीं के काढ़े से घाव सींचने से अवश्य लाभ होता है।

(२) बेंत (निचुल), अरंड के बीज, जौ और गेहूं के सत्तू इन्हें स्नेह युक्त कर थोड़ा-थोड़ा गरम करके वातोपदंश पर लेप करें ।

—सुश्रुत

पित्तज उपदंश की चिकित्सा

(१) गेरू, रसवत, मुलहठी, सारिवाँ, खस, पद्माख, चंदन और कमल—इन सबको पीसकर पानी में लेप-सा बनाकर घी मिला पित्त-जन्य उपदंशके घावों पर लगाओ, अवश्य लाभ होगा ।

—सुश्रुत

नोट—किसी-किसी ने सारिवाँके स्थानमें मँजीठ लिखा है । भावप्रकाश में मुलेठी और सारिवाँ की जगह क्रमश: मँजीठ और महुआ लिखा है और कमल को जगह उत्पल अर्थात् नील कमल ।

(२) कमल, नीलकमल, कमल की डंडी, राल, कोह (अर्जुन), जलबेंत और मुलेठी—इनको पीसकर घृत मिला लेप करने से पित्तज उपदंश आराम होता है । (सुश्रुत)

(३) घी, दूध, शर्करा, ईख का रस और शहद इन्हें जल में मिलाकर सींचने से अथवा बरगद आदि वृक्षों का क्वाथ ठंडाकर, उससे सींचने से, पित्तोपदंश में लाभ होता है ।

—सुश्रुत ।

(४) त्रिफले के काढ़े में शहद मिलाकर, पित्तज उपदंश के घावों पर सींचने से लाभ होता है ।

(५) नीम, अर्जुन, पीपल, कदम, शाल, जामुन, बड़, गूलर और बेंत—इन सब की छाल पीसकर लेप करने या इनकी छालों को भिगोकर उनका पानी सींचने या इनका चूर्ण बनाकर घावों पर बुरकने से पित्त और रक्त के उपदंश के घाव आराम हो जाते हैं ।

कफज उपदंश की चिकित्सा

(१) शाल, अश्वकर्ण, अजकर्ण (विजयसार) और धव—इनकी छालों को शराब में पीसकर गरम करो और सुहाता-सुहाता लेप कर दो । कफज उपदंश के लिए यह अच्छा योग है ।

—सुश्रुत ।

(२) कफज उपदंश को आरग्वधादिगण की ओषधियों के काढ़े से सींचना चाहिए; यानी कफज उपदंश के घावों पर इनका काढ़ा डालना चाहिए ।

—सुश्रुत

(३) हलदी, अतीस, नागरमोथा, सरल, देवदारु, पत्रज, पाठा और पत्तूर (सरवाली)—इन सबका लेप करने से कफोपदंश आराम होता है ।

—सुश्रुत ।

(४) सुरसादिगण तथा आरग्वधादिगण के काथों से कफोपदंश के घावों को सींचें । इस प्रकार संशोधन, लेपन तथा सेंचन और रक्तमोक्षणादि से प्रतीकार करें तथा पूर्व स्थानोक्त (सूत्रस्थानोक्त मिश्रकों के) हितकारक क्रिया करें ।

द्विदोषज उपदंश की चिकित्सा

द्विदोषजनित उपदंश में पहले कहकर (कि अच्छा हो या न हो) चिकित्सा करे और दोनों दोषों की मिली चिकित्सा करे । इनमें जो योग्य हो, जिस दोष की प्रधानता हो, उसीका बलाबल देखकर चिकित्सा करे ।

—सुश्रुत ।

त्रिदोषज उपदंश की चिकित्सा

इसमें दुष्ट-व्रण की विधि काम में लानी चाहिए । जिसका लिंग सड़ गया हो उसे त्याग दे । फिर जम्बर को लाल करके, जो शेष हो, उसे दाग दे । सम्यक् दग्ध हुआ जानकर, वैद्य उसमें शहद और घी मिलाकर प्रयोजित करे । जब घाव शुद्ध होजाय,तब रोपण करनेवाले कल्क, तैल आदि का यथोचित उपयोग करे । —सुश्रुत

सामान्य चिकित्सा

(१) परवल के पत्ते,नीम की छाल, त्रिफला और हरी गिलोय—इनका काढ़ा पीने से उपदंश-रोग नाश होजाता है ।

—वृन्द ।

(२) मुण्डी और उशबा दोनों का काढ़ा बनाकर और उसमें शहद डालकर पीने से उपदंश, फिरंग और पारे के विकार नाश होजाते हैं ।

(३) अमलताश, नीम, हरड़, बहेड़ा, आमला और चिरायता—इनका काढ़ा बनाकर, उसमें "खैरसार और विजयसार" मिलाकर पीने अथवा शुद्ध गुग्गुल डालकर पीने अथवा त्रिफला

मिलाकर पीने से सब तरह के उपदंश रोग नाश होजाते हैं।

(४) गिलोयके काढ़े में रेंड़ी का तेल मिलाकर पीने से उपदंश-रोग नाश होजाता है।

(५) कुकरौंधे का रस २ तो० पीने और शरीर पर मलने से खून और पारे के दोष निश्चय ही नष्ट होजाते हैं।

(६) बड़ के पत्ते जलाकर राख करलो। इसमें से दो कौड़ी भर राख पान में रखकर खाने से शेष रहा हुआ उपदंश आराम होजाता है।

(७) अच्छा पित्तपापड़ा, अमरबेल, सनाय, हरड़, बहेड़ा, आमला और स्याह हरड़—ये सब डेढ़-डेढ़ तो०, गुलाब के फूल १ तो०, काबुली हरड़ के छिलके २।। तो०, उशबा मग़रबी ६ तो० और चोपचीनी ५ तो०—इन सबको कूट-पीस छानकर, तीन गुने शहद में मिलाकर अवलेह बनालो। दो तो० रोज़ खाने से उपदंश से बिगड़ा हुआ ख़ून साफ होजाता है।

(८) शुद्ध संखिया, सफ़ेद कत्था, भाँगरा, अकरकरा और सफ़ेद सुपारी—सबको बराबर-बराबर लेकर, कूट-पीसकर कपड़े में छानलो और पानी के साथ खरल करके, बाजरे समान गोलियाँ बनालो। सवेरे-शाम एक-एक गोली पानी के साथ खाने से, आठ दिन में घोर उपदंश नाश होजाता है।

(९) आक की जड़ १ तो० ५ मा० और कालीमिर्च ४ तो०—दोनों को खरल में घोट और गुड़ में मिलाकर, मटर-समान गोली बना लो। सवेरे-शाम एक-एक गोली खाने से उपदंश-रोग आराम होजाता है।

(१०) शुद्ध सिंगरफ, नीम का गोंद, अकरकरा, माजूफल और सुहागा—इन सबको एक-एक तो०, लेकर कूट-पीसकर मिला लो। फिर इसके पाँच भाग करके एक भाग चिलम में रखकर, ऊपर से बेर के कोयले रखकर, हुक्के पर पीने से उपदंश आराम होजाता है। इसमें संशय नहीं। (चि० चं० ३ भ० पृ० ४६४-५)

(११) शुद्ध सिंगरफ, माजूफल, आक की जड़ और भाँगरा—इन सबको बराबर लेकर पीस-कूट लो। इसमें से नौ मा० चूर्ण चिलम में तम्बाकू की जगह रखकर, ऊपर से खैर की लकड़ी के कोयले रखकर, हुक्के द्वारा धूआँ पीने से सब तरह का घोर उपदंश रोग नाश होजाता है। रामबाण दवा है। कभी फेल नहीं होती। (चि० चं० ३ भ० ४६५)

(१२) सिद्ध रसशेखर रस और वरादिगूगल आदि का प्रयोग उत्तम है।

उपदंश-नाशक लेप और मरहम आदि

(१) दुपहरिया के पत्तों का चूर्ण उपदंश के घावों पर लगाने से आराम होजाता है।

(२) सुपारी पीसकर लगाने से उपदंश के घाव नाश होजाते हैं।

(३) अनार की छाल पीसकर लगाने से उपदंश के घाव नाश होजाते हैं।

(४) उपदंश के घावों पर मुण्डी के पत्तों का स्वरस बहुत ही लाभदायक है।

(५) साफ पपरिया कत्था ६ मा०, माजूफल २ नग और सफेद इलायची ४ नग—इनको महीन पीसकर कपड़े में छान लो। पहले उपदंश के घाव धोकर मक्खन लगाओ। इसके बाद ऊपर का छना हुआ चूर्ण लगाओ। एक घंटे में आराम मालूम होगा और तीन दिन में घाव अच्छे हो जायँगे।

(६) चिकनी सुपारी पानी में घिसकर लेप करने से उपदंश के घाव मिटते हैं।

(७) सिरस की छाल पानी में घिसकर और रसौत मिलाकर घावों पर लेप करने से उपदंश के घाव मिट जाते हैं।

(८) हरड़ और रसौत पीसकर लेप करने से लिङ्गेन्द्रिय के घाव वगैरः सब रोग आराम हो जाते हैं।

(९) कनेर की जड़ पानी के साथ साफ़ पत्थर पर घिसकर, उपदंश के घावों पर लगाने से उपदंश की असाध्य पीड़ा भी निश्चय ही मिट जाती है।

(१०) करंजाद्य घृत, भूनिम्बादि घृत, गोजी तैल, आगारधूमाद्य तैल और कोशातकी तैल आदि परमोत्कृष्ट योग हैं।

(११) नीलाथोथा, गेरू, लोध, इलायची, मैनशिल, रसवत, हरेणु, पुष्पकासीस, मुलतानी मिट्टी, सेंधा नमक, इन्हें समान भाग लेकर बारीक पीसकर शहद में मिलाकर लेप करने से उपदंश के घाव नष्ट हो जाते हैं । वा० उ० ३४ अ० ।

बाघी या बद की चिकित्सा

नोट—नीचे लिखे नुसख़े बद आराम करने वाले हैं । यथावसर उसे उठते ही बैठाने का उपाय करो । यदि पक गई हो या अधपकी हो, तो पका कर फोड़ने और घाव भरने की तदबीर करो ।

(१) केले की जड़ आदमी के पेशाब में पीसकर गरम करो और कपड़े पर लगाकर गुनगुनी-गुनगुनी बद पर बाँध दो । इससे अवश्य लाभ होगा ।

(२) पीपल के पत्ते गरम करके, सीधी तरफ से, बद पर बाँधने से बद नष्ट हो जाती है ।

(३) घीग्वार का पट्ठा लाकर दो टुकड़े करो, फिर उस पर थोड़ी-सी रसौत और हल्दी पीस कर रख दो और उसे आग पर गरम करके बद पर बाँधो, बद बैठ जायगी ।

(४) शुरू में बद पर चूना और शहद मिला कर लगाने से बद बैठ जायगी ।

(५) केवल नीम के पत्ते गरम करके बद पर बाँधने से बद आराम हो जाती है ।

(६) करिहारी की गाँठ का लेप करने से बद, घाव, कंठमाला और अदीठ फोड़ा आराम होता है ।

(७) यदि बद पकानी हो, तो प्याज़ को पीसकर, उसमें घी और हल्दी मिलाकर एवं गरम करके बद पर बाँध दो । यह सौम्य और उत्तम पुल्टिस है । इसके बारंबार बाँधने से बद आराम हो जाती है ।

(८) नागफनी का एक टुकड़ा लेकर, उसे बीच से चीरकर, उसमें पिसी हुई आमाहल्दी भर दो । इसके बाद उस पर कपड़-मिट्टी करके, उसे आग में पकालो और बद पर बाँध दो । सवेरे-शाम ताज़ी दवा बाँधने से, तीन दिन में बद आराम हो जाती है ।

(९) अलसी को कूट-पीसकर और गरम करके बदपर बाँधने से बद शीघ्रही बैठ जाती है ।

(१०) आमाहल्दी, अलसी, घीग्वार का गूदा और ईसबगोल—इन सबको पीसकर, एकत्र कर लो और आग पर गरम करके बद पर बाँधो । इससे बद बहुत जल्दी आराम होती है ।

(११) उठती बद या गिल्टी पर चीते की जड़ पानी में घिसकर लेप करने से आराम होता है ।

उपदंश कुठार रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] फिरंग रोग में प्रयुक्त होनेवाला एक रसौषध । योग—कंकुष्ट, कूठ, शुद्ध हरताल इन्हें पृथक्-पृथक् १–१ तोला लें और तुत्थ शु० ½तो०, इन्हें बारीक पीसकर इसमें अदरख के रस की ३ भावना देकर अच्छी तरह मर्द्दन करें । फिर उड़द प्रमाण की गोलियाँ बना कर रखलें ।

गुण—इसे अदरख के रस के साथ खाने से नवीन और पुरातन उपदंश का नाश होता है ।

पथ्य—खटाई, मीठा, मछली, दूध, और कुम्हड़ा इसके सेवन करनेवाले को न खाना चाहिये । र० चं० । वै० चि० । रस० यो० सा० ।

उपदंश गजकेशरी रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का योग जो फिरंगरोग नाशक है ।

निर्म्माण-विधि–(१) लौंग, शुद्ध पारा, मिर्च, अकरकरा, विडंग, रूमी मस्तगी, प्रत्येक १–१ तोला, अजवायन ४ तो०, गुड़ ४ तो० और शुद्ध भिलावाँ ४० नग । सबका यथाविधि चूर्ण कर पुन: उक्त गुड़ मिलाकर अच्छी तरह मर्द्दन करके निष्क प्रमाण की गोलियाँ बनालें ।

गुण तथा उपयोग-विधि—प्रात:काल एक गोली खाकर ऊपर से ताम्बूल खाँय । इस प्रकार सेवन करने से फिरंग रोग ७ दिन में नष्ट हो जाता है । इसके अतिरिक्त शोथ, अस्थिशोफ, अस्थिशूल, सन्धिवात (गठिया) और कुष्ठरोग का नाश होता है । रसायन सं० । वृ० यो० त० उपदंश चि० । रस यो० सा० ।

(२) रस कपूर, अथवा शुद्ध पारा २ मा०, जीरा किरमानी ४ मा०, भिलावाँ ३ अदद, तीन

वर्ष का पुराना गुड़ २ मा०–इन्हें अच्छी तरह कूट पीसकर चना प्रमाण की गोलियाँ बनालें। इसे दही में लपेटकर निगल जाँय और ऊपर से आम का अचार खालें या आम के अचार में ही बन्द करके निगल जाँय।

पथ्य—तिल, उड़द,गुड़, खाँड़ इन्हें त्याग दें। इसके प्रभाव से मुख नहीं आता आर उपदंश नष्ट हो जाता है।

उपदंशघ्न मोदक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मोदक जो फिरंग रोग का नाशक है।

निर्म्माण-विधि—१० पल चोपचीनी लेकर १ आढ़क गाय के दूध में पकाएँ। जब दूध गाढ़ा हो जाय, तब इसमें २०० तो० मिस्री की चाशनी और छोटी इलायची, लौंग, कपूर, चातुर्जात, त्रिकुटा, केशर, जावित्री, जायफल, केवाँच के बीज, कंकोल, कस्तूरी, सिंघाड़ा, वंशलोचन, जटामाँसी, तेजबल, भाँग, निलोफर, विदारीकन्द, मुसली, भाँगरा, शतावर, इन्हें २–२ तो० की मात्रा में पीसछानकर और अभ्रकभस्म २ तो०, ताम्रभस्म २ तो० मिलाकर दो-दो तो० की मात्रा के मोदक बनायें।

गुण—इसे एक-एक करके खानेसे समस्त वातव्याधि, आमवात, कटिग्रह, अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, अपतानक, शिर के रोग, हर प्रकार की पीड़ा, गाँठ, गलग्रह, अरोचक, प्रतिश्याय, खाँसी, श्वास, क्षय, धातुक्षीणता, ओजक्षय, बलक्षीणता और उपदंश रोग का नाश होता है। रस० यो० सा०

उपदंशघ्न रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपदंश में प्रयुक्त रसौषध। योग—शुद्ध पारा ४ मा०, शुद्ध गंधक २ मा०, खुरासानी अजवायन २ तो०, पुरातन गुड़ १३ तो०, कुमारिका का रस ३२ तो० लेकर भावना दें। पुनः २-२ मा० की गोलियाँ बनाकर रखलें।

गुण—लोह के पात्र में निम्ब दंड से घोंटकर प्रातः सायं और दो पहर को खाने से उपदंश का नाश होता है।

पथ्य—गेहूँ की रोटी, मूँग की दाल और घी।

उपदंशघ्नलेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपदंश रोग में प्रयुक्त लेप।

योग—(१)पारा,गंधक, हरताल,शिंगरफ,मैनशिल इन्हें एक-एक तोला, मृद्दार (मुर्दासंग) २ तो०, शङ्खजीरक (संगजराहत) २ तो०, इनकी कज्जली बनाकर तुलसी के रस से मर्दन करके छाया में सुखाकर पुनः इसमें धत्तूर के रस की भावना देकर गोलियाँ बना लें।

गुण तथा प्रयोग-विधि—इसे गोघृत में घिस कर लेप करने से उपदंश के व्रण अच्छे होते हैं। योगवाही हर प्रकार के रस चाहे वह कहीं भी हों उपदंश रोग में लाभ करते हैं। रसायन स० उपदंश चि०। रस० यो० सा०।

(२) सफेद अथवा लाल गुंजा को जलाकर भस्म के बराबर हरताल और मैनशिल डालकर मर्दन कर रख लें इसको उपदंश के व्रणों में उपयुक्त करें।

(३) शुद्ध पारा $\frac{1}{2}$ तो० लेकर तुलसी के रस में मर्दन करें, पुनः इसमें मेंहदी, हल्दी, तूतिया, कत्था, एरण्ड की गूदी, इन्हें एक-एक तोला लेकर खूब बारीक चूर्ण कर ताँबे के बर्तन में रखकर पुरातन घृत मिलाकर नीम के नूतन दंड से यहाँ तक मर्दन करें कि वह एकदम मलहम जैसा हो जाय। इसे उपदंश के व्रणों पर लगाने से पूर्ण लाभ होता है।

उपदंशघ्न वटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] फिरंग रोग में प्रयुक्त होने वाली गोली।

योग—कालाजीरी, कंकुष्ट इन्हें ३–३ टंक, दोनों से आधा पुरातन गुड़ मिलाकर अच्छी तरह मर्दन कर १५ गोलियाँ बना लें।

गुण तथा उपयोग-विधि—सायं प्रातः एक एक गोली खाने से आतशक दूर होता है।

पथ्य—घी और गेहूं की रोटी है।

उपदंश दावाऽऽसार रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आतशक में दिया जानेवाला एक प्रकार का रसौषध।

योग—शिंगरफ, हरताल, संखिया, मैनशिल, रसकपूर,पुष्पकाशीश, शिखि(दारचिकना), तूतिया, इन्हें समान भाग लें। इन्हें चार बार की खींची

हुई शराब में ४ पहर अच्छी तरह खरल करके दो मिट्टी के प्यालों का मुँह घिसकर बराबर कर लें, पुन: नीचे वाले प्याले में इन्हें रखकर दूसरे प्याले से बन्द करके ऊपर दृढ़तापूर्वक ७ कपरौटी करें और चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे बेर की लकड़ी से ४ पहर तक आँच दें। स्वाङ्ग शीतल होने पर ऊपर के प्याले में लगा हुआ रस खुरच कर रख लें। पुन: इसी तरह शराब में घोटकर इसी तरह चूल्हे पर चढ़ाकर उड़ावें। इस तरह सात बार उड़ा लें, तो यह रस उत्तम सिद्ध होता है।

गुण—१ से २ चावल तक घी या मक्खन में बन्द करके निगल जायँ।

पथ्य—गेहूं, चनेकी रोटी और शक्कर। इसपर ऐसी विधि करें, कि प्रति-दिन साफ दस्त होते रहें।

७ या १४ या २१ दिन में असाध्य से असाध्य आतशक नष्ट हो जाता है। यह हर प्रकार के रक्त विकार में उचित अनुपान और उचित पथ्य पालन करनेसे लाभ पहुँचाता है। रस० यो० सा०।

उपदंश वनकुठार रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] फिरंग में प्रयुक्त एक रसौषध।

योग—शुद्ध जमालगोटा और एरंडबीज दोनों ७–७ नग, भिलावाँ ९ नग, पुरातनगुड़ $1\frac{1}{2}$ तो०, काला तिल १ तो०. विषकपूर (दारचिकना) १ मा०–प्रथम तिल और भिलावाँ दोनों को एक साथ अच्छी तरह कूटकर मिलाएँ। पुनः एरण्ड बीजादि को मिलाकर कूटें। फिर दारचिकने का पृथक् १ पहर पीसकर सबको गुड़ सहित अच्छी तरह कूटकर मिला लें। इसकी १–१ मासे की गोलियाँ बनाकर रख लें।

गुण तथा उपयोग-विधि—१ तोला दही में इसकी १ गोली लपेटकर निगल जाँय। इससे दो तीन दस्त आते हैं।

पथ्य—नमक को त्याग कर गेहूं की रोटी और घी खाना उचित है। इसके उपयोग से आतशक जो भयानक से भी भयानक हो नष्ट हो जाता है। यह परीक्षित है। यह विष को भी नष्ट करता है।

नोट—जिसे दस्त न आते हों उसे चाहिए कि २ तो० गुलाब के फूल, २ तो० काली दाख, २ तो० सनाय–इनको कूट कर ४० तो० पानी में औटाएँ। जब १० तो० शेष रहे, रात को सोते समय पिलादें। इससे प्रात: २–३ दस्त हो जाँयगे। इसके २१ दिन सेवन करने से असाध्य से असाध्य उपदंश नष्ट हो जाता है। ४६ दिन के प्रयोग से जिसका शरीर एकदम काला पड़ गया हो, दद्रु-जाल ने घेर लिया हो तथा कुष्ट से सर्वाङ्ग गलने लगा हो, सब अच्छे हो जाते हैं।

जिसे अत्यन्त वृद्धता तथा क्षीणताने घेर लिया हो, अथवा धातु शून्य हो गया हो, उसे इसे नहीं देना चाहिए। क्योंकि इसमें भिलावें का योग है। भिलावाँ एक रसायन द्रव्य है। इसके प्रयोग से उक्त अवस्था वाले रोगियों को हानि होती है और शरीर पर आबले आ जाते हैं। यदि इससे किसी को हानि हो गई हो, तो उसे चौलाई का रस, मूली का रस इनको मधु और तिल का तेल मिलाकर सारे शरीर में मालिश कराएँ।

उपदंश लिंगलेप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपदंश रोग में प्रयुक्त होने वाला उक्त नाम का एक योग—रसकपूर ६ मा० को खैर के पानी में घोटकर सुखा कर रख लें। जब आवश्यकता हो पानी में घिस कर लिंगपर लेप करें। इस प्रकार करने से तीन ही दिन में आतशक का व्रण सूख जाता है। यो० र० उप०।

उपदंश सूर्य रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसौषध जो आतशक में लाभप्रद है।

योग—शुद्ध संखिया ३ पल लेकर लोहे के खरल में भटकटैया के रस तथा नींबू के रस ३ पल मिलाकर नीम के नूतन दंड से अच्छी तरह मर्द्दन करें। जब घोटते-घोटते गोली बनाने योग्य हो जाय तब मिर्च प्रमाण की गोलियाँ बनालें।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे घृत के साथ खाने से फिरंग रोग का समूल नाश होता है।

पथ्य—तेल और खटाई त्याग कर इच्छानुसार पथ्याचरण करें। वृ० यो० त०। रस० यो० सा०।

उपदंश स्फोटेऽवलेप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपदंश रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक लेप।

योग—जायफल, वायविडंग, रसकपूर और लौंग सबको समान भाग लेकर पीसकर नवनीत (नैनू) में मिलाकर लेप करने से उपदंश के घाव शुद्ध होकर भर जाते हैं। यो० र० उ०।

उपदंश हर धूप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपदंश रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का धूप।

योग—लौंग ६ फूल, कपूर चनाप्रमाण, शिंगरफ, पलाश, तालमखाने के बीज १-१ तो० लेकर खूब घोटें। यहाँ तक कि काजल सरीखा हो जाय। फिर इसकी पुड़िया बनालें।

रविवार के दिन अपने उपलों की अंगार पर एक पुड़िया डाल और उससे जो धुवाँ निकले उसे श्वासोच्छ्वास द्वारा अन्दर खींचें। धुवाँ खींचते समय मुँह में पान रखना और मुँह को कपड़े से ढाँक लेना चाहिए। इसी प्रकार ७ दिन तक प्रतिदिन २ बार धूनी लें और आठवें दिन स्नान करें। इस क्रिया से उपदंश रोग का नाश होता है।

उपदंश हर धूम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आतशक को नष्ट करने वाला धूम।

योग—(१) हिंगुल ६ मा०, सोहागा १० मा०, अकरकरा १० मा०, मोम १० मा०, प्रथम मोम को पिघलाकर पुनः सबको एक में मर्दन कर बेरकी गुठलीके प्रमाण की गोलियाँ बनालें। प्रातः काल चिलम में रखकर बबूल की अंगेठी रखकर धूम्रपान करें। पथ्यार्थ–जौ की रोटी घी से चुपड़ी हुई नमक रहित और रात को ताम्बूल लगा हुआ खाने को दें।

गुण—इसके उपयोग से १४ दिन में फिरंग वात से पीड़ित मनुष्य सुखी हो जाता है।

नोट—इस योग से यदि मुख पाक हो जाय तो कचनार की छाल का क्वाथ घृत युक्त कुल्ली करने से मुख क्षत नष्ट हो जाता है।

(२) हिंगुल १ टंक, जौ का आटा ३ तो०, सुहागा १ तो०; तीनों को जल से मर्दन करके बेर के बराबर गोलियाँ बना लें। पुनः कपड़ा से सारा अंग ढाँक कर सारे अंग में बेर की अँगीठी पर इस गोली को रख धुवाँ दें।

पथ्य—दिन भर कुछ न खाकर सायंकाल गाय का दूध और चावल खावें। इस प्रकार नियम पूर्वक १४ दिन तक करें। और ऊपर से कत्था लगा हुआ पान खाँय। इस प्रकार करने से आतशक नष्ट होता है।

उपदंशहर पञ्चक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपदंश रोग में प्रयुक्त पाँच प्रकार के योग–(१) पारा, अकरकरा, मालकाँगनी, हिंगुल, अफीम, ताम्रभस्म प्रत्येक २० रत्ती, सबके बराबर पुरातन गुड़ मिलाकर ३ गोलियाँ बनाएँ। एक-एक गोली प्रातः काल जल से निगल जाँय। ३ दिन में आतशक निर्मूल हो जाता है।

(२) शुद्ध पारा, अजवायन, भिलावाँ कुश की जड़ इन्हें समान भाग लेकर गुड़ मिलाकर अच्छी तरह मर्दन कर झड़बेर के बराबर गोलियाँ बनाएं। प्रातः काल एक गोली जल के साथ अथवा दही के साथ निगलें। इसके उपयोग से उपदंश नष्ट होता है।

(३) शुद्ध पारा, भिलावाँ, हल्दी, अजवायन लशुन, समुद्रफल, मँगरैल, नीम के पत्ते हर एक ३-३ मा०, कत्था ४ मा०, पुरातन गुड़ ८ तो० ४ मा०, इन्हें खरल में यहाँ तक कूटें कि भिलावाँका रेशा-रेशा तक मिल जाय। पुनः इसकी १४ गोलियाँ बनालें। सायं प्रातः एक-एक गोली दही के साथ निगलने से उपदंश शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(४) कत्था ३ मा० संखिया का सत्व १ रत्ती मिलाकर जल से घोंटकर ८ गोलियाँ बना लें। इसे जल के साथ खाने से उपदंश नष्ट होता है।

(५) लवंग ३ मा०, रसकपूर १ मा० दोनों को मिलाकर जल से घोंट १० गोलियाँ बनाकर एक-एक कर प्रातः काल जल से निगल जाने से आतशक दूर होता है।

उपदंश हर रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] फिरंग रोग में प्रयुक्त एक रसौषध। योग—(१) शुद्ध पारा ५ मा०, अजवाइन की भूसी २तो०, कत्था २तो०,

पुरातन गुड़ २ तो० मिलावें २ तो०, इन्हें युक्ति पूर्वक कूटकर एक जीव कर लें पुन: इसकी १४ गोलियाँ बनालें ।

गुण तथा उपयोग-विधि—सायं प्रातः एक-एक गोली दही में लपेटकर निकल जावें । जिनका तालू फूट गया हो, उन्हें उल्टी और दाह होता हो तो दही दें ।

पथ्य—घी, गेहूं की रोटी, ठंडा पानी । ६ वें रोज़ पुराने चावलोंका भात और घी दें । १४ दिन तक नमक नहीं खाना चाहिये । खटाई और मैथुन से परहेज़ करें । इस प्रकार १५ दिन तक पथ्य-पूर्वक रहने से उपदंश के समस्त उपद्रव दूर हो जाते है ।

(२) शुद्ध गंधक, पारा, इलायची, मिर्च, लौंग इन्हें समान भाग लें । प्रथम पारे और गंधक की कज्जली बनाकर पुनः शेष औषधियों को चूर्ण कपड़-छान कर मिलाएँ और इसमें पान के रस की और घी की भावना देकर एक दिन मर्द्दन कर रख लेवें । ३ रत्ती की मात्रा में लौंग के कल्क या मलाई में लपेट कर निगल जाँय ।

पथ्य—घी इस पर बिलकुल न खाँय । भात और गाय का दूध खाँय । इस प्रकार नियम पूर्वक १५ दिन करने से फोड़ा-फुंसी सहित उपदंश का नाश होता है ।

उपदंश हर लेप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपदंश रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक लेप ।

योग—राल सफेद, गंधाबिरोजा, मोम, इन तीनोंको आध-आध पाव लेकर डमरू-यंत्र के नीचे की हाँडी में रख दें । दोनों हाँडियों के मुखों को आपस में मिलाकर लोहे के बारीक तारों से खूब दृढ़ बाँध दें, जिसमें वहीं से खसकने न पाये, फिर उन तारों के बंधन के ऊपर सात कपरौटी करके सुखालें । इस डमरूयंत्र को लिटाकर ऐसी युक्ति से चूल्हे पर रखे कि जिसमें बीचकी हाँडी में ही आँच लगे और ऊपर की रीती (खाली) हाँडी चूल्हे से दूर रहे, तब मंदी-मंदी आँच लगाना शुरू करें । एक घंटे के बाद चूल्हे से बाहर निकली हुई खाली हाँडी के तल भाग को स्पर्श करके परीक्षा करें कि राल, मोम और गंधाबिरोजे का सार भाग दूसरी हाँडी में उड़कर आया कि नहीं । जब हाँडी ऐसी गरम हो जाय कि उसमें हाथ नहीं लगा सकें, तब समझ लें कि उन तीनों वस्तुओं का सारभाग इस हाँडी में आ चुका है । तब यंत्र को धीरे से उतार कर पृथ्वी में रक्खें, जिससे वह घंटे आध घंटे में ठंडा हो जाय । फिर डमरू-यंत्र की मुद्रा को खोलकर दूसरी हाँडी में जमे हुये उन तीनों वस्तुओं के कीच के समान घन भाग को निकाल लें । उसमें से एक छटाँक लेकर एक छटाँक घी के साथ कटोरी में रखकर अग्नि पर पिघला लें । जब घी और कीच एक जीव हो जाय तब कटोरी को अग्नि से उतार कर रखलें । बस यह गरमी के घावों की उत्तम मलहम बनकर तैयार हो गई । इस मलहमको लिंग के ऊपर के घावों पर दिन में २ दफे लगावें । परन्तु प्रथम त्रिफला के काढ़े से घावों को धो लिया करें और छटाँक भर त्रिफला के काढ़े को प्रातः काल और रात्रि को पिया भी करें। त्रिफला पीने के बाद या पहले ही एक रत्ती ताम्रभस्म मधु के साथ चाट लिया करें । ताम्र, भस्म न हो, तो ख़ाली त्रिफला से भी काम चल सकता है । त्रिफला के क्वाथ को पीने की इच्छा नहीं हो, तो १ तो० कपड़छन किया हुआ त्रिफला का चूर्ण शहद के साथ दोनों समय चाटा करें । अथवा उन तीनों वस्तुओं के सार का तेल ही निकाल लें, उसकी विधि यह है—

नलीयंत्र (भभका)के चतुर्थांश भाग में बालू-रेता भरदें। फिर उन सबके समान भाग सेंधानमक मिलाकर (कोई वैद्य चतुर्थांश हरताल और गंधक भी मिला दिया करते हैं ।) उसे बालू पर रख दें और उस यंत्र को ढकन से ढँककर तेल गिरनेवाली नली की तरफ़ किंचित् झुकाकर भभका यंत्र को चूल्हे पर रखें, जिसमें बाहर टपकने वाले तेल को नली तक दूर नहीं लाना पड़े । जब नली के द्वारा तेल टपकना शुरू हो, तब उसके नीचे एक प्याला रखदें । परन्तु यह स्मरण रहे कि भभकाके ढकन में बार-बार पानी भरता रहे और गरम होने पर निकलता रहे । इस तेल को उपदंश के घावों पर लगाने से सब घाव अच्छे हो जाते हैं ।

इनके अलावा सर्व प्रकार के घाव नष्ट हो जाते हैं। जब घाव सूखने लगें, तब उस पर कपड़छान किया हुआ त्रिफला का चूर्ण बुरक दें। (कोई-कोई वैद्य त्रिफले की भस्म भी बुरकते हैं)। यदि यह चाहें कि गर्मी सर्वदा के लिए जड़ से चली जाय तो १ छटाँक त्रिफला के क्वाथ या शहद, गंधक १ तोला प्रति दिन सेवन करता रहे। परंतु गंधक चाटने के बाद २ तोले चित्रक का क्वाथ भी पीना चाहिये। नमक खाना बंद कर दे तो अधिक लाभ होगा।

उपदंश हरी वटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपदंश में प्रयुक्त होनेवाली एक गोली।

योग—शुद्ध पारा १ कर्ष वा ४ मासे। भिलावाँ १० नग, पीपर, पीपरामूल, अकरकरा, खुरासानी अजवाइन, जावित्री, लौंग इन्हें १–१ तो०, पुराना गुड़ सर्व तुल्य। इन्हें कूट-छान गुड़ मिलाकर विधिपूर्वक १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना लें।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे घी के साथ दें और नमक से परहेज कराएँ। इसके उपयोग से उपदंश का नाश होता है।

उपदंश क्षम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिग्रु वृक्ष। सहिजन का पेड़। वै० निघ०।

उपदंशारि रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपदंश रोग में प्रयुक्त एक रसौषध।

योग—(१) शिलारस ६ मा०, शुद्ध पारा ६ मा०, अजमोद १० मा०, अकरकरा १० मा०, मिलावाँ २० मा०, अजवाइन २० मा०–इनका यथाविधि चूर्ण कर जल में औटाकर ३६ गोलियाँ बना लें।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे जल के साथ सायं प्रात: १८ दिन पर्यंत सेवन करने से स्फुटित उपदंश का नाश होता है! यह सैकड़ों बार का अनुभूत है। मुख-पाक होने पर जवासा का गंडूष धारण करें।

पथ्य—गेहूँ की रोटी, शालि चावल, मूँग की दाल। खटाई, नमक, क्षार इनका सर्वथा त्याग करें।

(२) गंधक के योग से मारा हुआ ताम्र भस्म १ भाग, स्वर्ण भस्म १ भाग, पारा, गंधक, लोह भस्म, त्रिफला, बकुची–इन्हें ३–३ माशा, इनका यथाविधि बारीक चूर्ण कर शीशी में रख लें।

मात्रा—१ माशा।

गुण—इसमें से १ माशा नित्य खाने से उपदंश नष्ट होता है।

उपदंशिन्-वि० [सं० त्रि०] उपदंश का रोगी।

उपदंशेभ सिंह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपदंश रोग में प्रयुक्त एक रसौषध। योग—शुद्ध पारा १ कर्ष, शुद्ध गंधक २ कर्ष–इनका बारीक कज्जलीकर, इसमें से १ मा० गोघृत के साथ प्रति दिन खाने से २१ दिन में उपदंश का नाश होता है। यह उपदंश की श्रेष्ट औषध है।

पथ्य—गेहूं की रोटी और घी। नमक बिलकुल वर्जित है।

उपद्रव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उपद्रवी] किसी प्रधान रोग के बीच में होनेवाले दूसरे विकार वा पीड़ाएँ; जैसे–ज्वर में प्यास, सिर की पीड़ा आदि। उत्पात। जैसे–"रोगारम्भकदोषस्य प्रकोपादुपजायते। योऽन्यो विकारःस बुधैरुपद्रव इहोदितः॥" भा०। उपसर्ग। अरज़, मुज़ाअफ़: (अ०)। कॉम्प्लिकेशन Complication (अं०)। दे० "अरज़"।

उपद्रविन्-वि० [सं० त्रि०] (१) आक्रामक। हमला करनेवाला। (२) अत्याचारी।

उपद्रु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Ficus bengalensis, *Linn.*) वट। बरगद का पेड़।

उपद्रुत-वि० [सं० त्रि०] उपद्रव पीड़ित। व्याकुल। बेचैन। उत्पातग्रस्त। सु० नि० ६ अ०।

उपधातु-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) Secondary secretion. शरीर के रस रक्त आदि सात धातुओं से क्रमशः बने हुए, दूध, रज, चरबी, पसीना आदि पदार्थ। भावप्रकाश और शार्ङ्गधर के अनुसार सात धातुओं की उपधातुएँ क्रमशः यह हैं। दूध, रज, चरबी, पसीना, दाँत, बाल और ओज। (२) अप्रधान धातु, जो या

तो लोहे, ताँबे आदि धातुओं के विकार वा मैल हैं वा उनके योग से बनी हैं अथवा स्वतंत्र खानों से निकलती हैं। सोना चाँदी आदि प्रधान धातुओं के समान उपधातु भी सात गिनाई गई हैं--सोनामक्खी, रूपामक्खी, तूतिया, काँसा, मुर्दासंख (वा पीतल), सिंदूर, शिलाजतु वा गेरू (भावप्रकाश)। पर किसी के मत से सात उपधातु ये हैं। सोनामाखी, नीलाथोथा, हरताल, मैनसिल, अबरक, सुरमा और खपरिया।

गुण--जो जिस धातु की उपधातु है उसमें उसी धातु के समान अथवा उससे कुछ न्यून गुण वर्तमान होता है। भा० म० १ भ० धातु व०।

उपधान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपधृत] (१) वह जिस पर कोई वस्तु रक्खी जाय। सहारेकी चीज़। (२) तकिया। गेडुआ। उपवर्ह। (३) विष। मे नचतुष्क। (४) ऊपर रखना वा ठहराना।

उपधानीय-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपधान। शब्दर०।

उपधाशुचि-वि० [सं० त्रि०] परीक्षित।

उपधि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) डर। भय। (२) कपट। छल। हारा०। (३) रथचक्र। गाड़ी का पहिया।

उपधूपित-वि० [सं० त्रि०] (१) आसन्नमरण। मे०। (२) आसन्नास्तमय।

उपधूमित-वि० [सं० त्रि०] जातधूम। धुनाँ दिया हुआ।

उपधूमिता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ज्योतिषोक्त यात्रादि वर्जनीय सूर्यगन्तव्यदिक्।

उपधृति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ज्योति। किरण। (२) सँभाल। सन्धारण।

उपधेय-वि० [सं० त्रि०] यन्त्र द्वारा स्थापनीय।

उपध्मा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वास ग्रहण।

उपध्मान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) श्वास ग्रहण। (२) ओष्ठ। ओठ।

उपध्मानिन्-वि० [सं० त्रि०] श्वास ग्रहण करनेवाला।

उपध्वस्त-वि० [सं० त्रि०] (१) नष्ट। (२) अधःपतित। (३) मिश्रित। मिला हुआ।

उपनख-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चिप्प तुल्य एक रोग जिसमें नाखून में वायु और पित्त प्राप्त होकर वेदना, दाह और पाक उत्पन्न करते हैं। इसे ही 'चिप्प' और 'क्षतरोग' भी कहते हैं। आंगुलहाड़ा। सु०नि० १३ अ०।

उपनद्-अव्य० [सं०] नदी के समीप।

उपनद्ध-वि० [सं० त्रि०](१) बद्ध। बँधा हुआ। (२) सन्नद्ध। लगा।

उपन(ना)य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपनयन। नज़दीक पहुँचानेका काम। (२) जनेऊ संस्कार। उपनयन। हे०।

उपनयन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) निकट लाना। पास ले जाना। (२) यज्ञोपवीत संस्कार। व्रत बंध। जनेऊ। त्रिका०।

उपनहन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बन्धनकरण। बँधाई। (२) बन्धन के योग्य वस्त्रादि।

उपनक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] राशि चक्रस्थ तारका भेद। छोटा सितारा। अश्विनी प्रभृति २७ नक्षत्र में प्रत्येक के अनुगत २७-२७ तारका हैं, इन्हीं का नाम "उपनक्षत्र" है। ज्योतिषशास्त्र के मत से ७२९ उपनक्षत्र होते हैं। दे० "तारा"।

उपनायन-संज्ञा पुं० दे० "उपनयन"।

उपनासिक-वि० [सं० त्रि०] नासा के समीप रहनेवाला। जो नाक के पास का हो।

उपनास्या-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] Angular.कोणयुक्त।

उपनाह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१)एक प्रकारकी सूजन। लक्षण—कफ के कारण से तेज़ नोकवाली चारबुद्बुद के समान एक प्रकार की सूजन होती है, इसकी जड़ मोटी होतीहै तथा यह वेगसे उठती है। यह स्निग्ध, सवर्ण, मृदु और पिच्छिल होती है। इसमें बड़ा पाक होता है, खुजली चलती है पर इसमें दर्द नहीं होता है, इसे ही "उपनाह" कहते हैं। वा० उत्तर १० अ०। (२) फोड़े वा घाव पर लगाने का लेप। मरहम। प्रलेप। लेपन। विश्व० हचतुष्क। (३) आँख की संधि का एक रोग। इसमें नेत्र संधि में एक गाँठ उत्पन्न

होजाती है जो बड़ी, कुछ पकनेवाली, खाज युक्त परन्तु पीड़ा रहित होती है। बिलनी। गुहाँजनी। मा० नि०। "शोफयोरुपनाहं कुर्यादामविदग्धयोः।" सुश्रुत। (४) हरिद्रा। हलदी। (Curcuma longa, *Linn.*) विश्व०। (५) एक प्रकार का स्वेद। सेंक। भफारा। वच, किरात, शताह्वा और देवदारु आदि से लिए जानेवाले स्वेद को "उपनाह" कहते हैं। वा० भ० टी०।

यदि सूजन वेदनायुक्त, दारुण और कठिन हो, तो उस पर स्वेदन करना चाहिए। यदि सूजन कच्ची हो या पक गई हो, तो उस पर भी उपनाह स्वेद करना चाहिए। उपनाह स्वेद से कच्ची सूजन शांत होजाती और पकनेवाली तत्काल पक जाती है। "शोफयोरुपनाहं तु कुर्यादामविदग्धयो। अविदग्धः शमं याति विदग्धः पाकमेति च॥" सु० सू० १ अ०।

सब तरह के स्नेहपान, सब तरह के उपनाह स्वेद, प्रलेप और परिषेक या सेक–वातज व्रणशोथ में प्रयोग करना चाहिए।

उपनाह की विधि–(१) सौंफ, देवदारु, निर्गुण्डी, कलौंजी, अंड की जड़, रास्ना, मूली और सहिजने से तथा सोवा, पीपल, कुठेरक और खटाई युक्त नमक इनसे तथा प्रसारिणी, असगन्ध, खिरेंटी और दशमूल इनसे तथा गिलोय, कौंच-बीज–इनमें से जो-जो औषध मिले उसको यथा-लाभ लेकर एकत्र करें। पुनः इनको कूट और उबालकर कपड़े में बाँध और रोग पीड़ित प्राणी को स्वेदन करें। यह "महाशाल्वण" संज्ञक योग सम्पूर्ण वातजनित पीड़ाओं को नष्ट करता है। यो० त०।

(२)सहिजन, पीपल, सेंधानमक, सोंठ, सन के बीज, कपास के बिनौले अलसी, कुल्थी, तिल, जौ, सरसों, काली तुलसी, मूली और सोया–इनमें से सब या जितनी दवाएँ मिल सकें लेकर, खट्टे रस के साथ सिल पर पीसकर लुगदी बनालो। फिर उसे गरम करके धीरे-धीरे सूजन पर विधिपूर्वक स्वेद दो। इस तरह करने से वातज सूजन दूर होजाती है, इसमें संदेह नहीं। इस उपनाह स्वेद को "शोभाञ्जनादि" कहते हैं।

(२)पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहँजना और सरसों–खट्टे रस में पीसकर सुहाता-सुहाता गरम लेप करने से सब तरह की सूजन दूर होजाती है। इस लेप को "पुनर्नवादि लेप" कहते हैं।

उपनाहन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] प्रलेपादि बन्धन। मरहम आदि का चढ़ाव। लेपन। च० द० वा० व्या० चि०। "वेशवारैः सकृशरैः स्निग्धैः स्यादुपनाहनम्"। सुश्रुत।

उपनाह स्वेद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपनाह जन्य घर्म। सेंक या गरम लेप लगाने से निकाला हुआ पसीना। (२) अम्ल, लवण एवं स्नेह युक्त, ईषदुष्ण, वातहर द्रव्यों के लेप द्वारा स्वेद दिलाने का एक प्रकार। गरम-गरम भुरता या अन्य स्निग्ध औषध बाँधने या इनसे सेंकने का कर्म वा भाव।

विधि—वातहरण करनेवाली औषधियों से स्वेदन करके पुनः मालिस किए हुए बादी से पीड़ित मनुष्य को चीर मांस-रस से युक्त तथा खट्टे पिसे हुए नमक मिले स्नेह युक्त सुखोष्ण पदार्थों से तथा ग्राम और अनूप संचारी जीवों के मांस से तथा जीवनीय गण से, तथा दही, काँजी, दूध और वीरतर्वादि गण से, तथा कुलथी, उड़द, गेहूँ, अलसी, तिल, सरसों इनसे स्वेदन करें।

उपनिधातृ–वि० [सं० त्रि०] अपनी चीज़ को बतौर धरोहर के दूसरे के पास रखने वाला।

उपनिधि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] उपन्यस्त द्रव्य। धरोहर।

उपनिपात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) समीपागमन। पास का आना। (२) हठात् आगमन। (३) वध। क़त्ल।

उपनिपातिन्–वि० [सं० त्रि०] (१) आपड़ने वाला। (२) हठात् आक्रमण करने वाला। (३) वध करनेवाला।

उपनियन्त्रण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नियोगकरण। आवश्यकीय काम में लगाने की बात।

उपनिबन्धन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सम्पादन। बनावट। (२) ग्रन्थन। गूँथगाँथ।

उपनिवपन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अग्नि प्रणयन-कर्माङ्गभूत अग्न्याधानादि व्यापार। (२) निक्षेप। फैलाव।

उपनिविष्ट–वि० [सं० त्रि०] उपनिवेश में आकर बसा हुआ। जो नए आबादी में आकर रहा हो।

उपनिवेश–संज्ञा पुं० [सं०क्ली०] (१) उपनगर। बड़े शहर के पास का छोटा शहर। (२) कृषि वाणिज्यादि करने को किसी दूर देश में सब लोगों के साथ रहना। (३) स्वदेश छोड़ अपर स्थान में वास-स्थापन।

उपनिषादिन्–वि० [सं० त्रि०] निकटस्थायी। नज़दीक रहने वाला। (शतपथ ब्रा० ६।४।३।३)

उपनिष्कर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]
उपनिष्क्रमण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } पुरपथ–राजमार्ग। राजपथ। (२) चल देने का काम।

उपनिहित–वि० [सं० त्रि०] (१) गच्छित। अमानत रखा हुआ। (२) स्थापित। रखा हुआ।

उपनिक्षेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गीन गूँथ कर रखा जानेवाला धरोहर।

उपनीत–वि० [सं० त्रि०](१) जनेऊ पाए हुआ। (२) ज्ञान शक्ति से समझा हुआ। (३) निकट। प्रापित। नज़दीक लाया हुआ। (४) आगत। पहुँचा हुआ। (५) उपस्थापित। जो रख दिया गया हो। (६) आनीत। लाया हुआ। (७) प्राप्त। मिला हुआ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृतोपनयन बालक। जिस लड़के को जनेऊ दिया जा चुका हो।

उपनीतभान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] न्यायके अनुसार–(१)उपनीत तत्वादि का विषयकत्व।(२) लौकिक और अलौकिक उभय के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान।

उपनीता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पत्नी। अपनी औरत।

उपनुन्न–वि० [सं० त्रि०] (१) प्रेरित। भेजा हुआ। (२) ताड़ित।

उपनृत्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नृत्यशाला। नाचघर।

उपनेतृ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपनयन कर्त्ता।

वि० [सं० त्रि०] उपढौकन कारी। भेंट चढ़ाने वाला।

उपनेत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०](Glass) ऐनक। चश्मा।

उपन्यस्त–वि० [सं० त्रि०] (१) विन्यस्त। ऊपर या पास रखा हुआ। (२) गच्छित। सौंपा हुआ। (३) आरब्ध। शुरू किया हुआ। (४) दत्त। दिया हुआ। (५) उल्लिखित। लिखा हुआ।

उपन्यास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाक्योपक्रम। बात का शुरू होना। (२) वाक्य का प्रयोग। (३) विचार। (४) उपनिधि। धरोहर। (५) प्रस्ताव। (६) दान। (७) उपकथा। कल्पित कहानी।

उपपति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भिन्न पति। यार।

उपपत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) युक्ति। तदबीर। (२) सङ्गति। साथ। (३) निवृत्ति। खातिमा। (४)हेतु। कारण। (५) उत्पत्ति। पैदायश। (६) प्राप्ति। हासिल। (७) सिद्धि। न्याय के मत से ज्ञान। समझ। (८) प्रमाणकरण। सुबूत देने का काम।

उपपत्नी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपस्त्री। दूसरी स्त्री।

उपपथ–अव्य० [सं०] मार्ग के निकट। सड़क पर।

उपपद–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) लेश। लगाव। (२) समीपोच्चारणीय पद। पास बोला जाने वाला जुमला। (३) उपाधि। ख़िताब।

उपपद्धति–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (Subsidiary system) सहायक पद्धति।

उपपन्न–वि० [सं० त्रि०] (१) युक्ति युक्त। वाजिब। (२) प्राप्त। (३) उत्पन्न। (४) उचित। (५) सम्पन्न। (६) सिद्धान्त। (७) संयोजित। (८) आगत। आया हुआ।

उपपरीक्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "उपपरीक्षा" ।

उपपरीक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपपरीक्षण । जाँच । पूछताछ । इमतेहान ।

उपपर्चन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाधान । (सायण)
वि० [सं० त्रि०] (१) संयुक्त करदेनेवाला । (२) संलग्न । लगा हुआ ।

उपपर्शुका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Costal cartilage) कारटिलेज जो पसलियों के अगले सिरों पर लगे रहते हैं और जिनके नोकीले सिरे उरोऽस्थि के किनारेके स्थालक से मिलते हैं । पसली का कारटिलेज ।

उपपर्शुका संधि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (Sterno-costal articulation) पसली और उरोऽस्थि का जोड़ ।

उपपर्शुका स्थालक-संज्ञा पुं० [सं० पु०] (Facet for costal cartilage) उरोऽस्थि के किनारे का वह गढ़ा जहाँ पर पसली का कारटिलेज (उपपर्शुका) आकर मिलता है ।

उपपक्ष्म-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आँख की पलक पर का वह फालतू निकला हुआ बाल या बिरनी जिसके कारण बहुत पीड़ा होती है । परबाल । शअ्रज़ाइद (अ०) । ट्रिकियासिस Trichiasis

उपपात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हठात् । आगमन । एकाएक आने का काम । (२) फलोन्मुख । वाकिया । (३) नाश । बरबादी ।

उपपादन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपपादक, उपपादित, उपपन्न, उपपादनीय, उपपाद्य] सिद्ध करना । साबित करना । प्रतिपादन । ठहराना । युक्ति देकर समर्थन करना ।

उपपादुक-वि० [सं० त्रि०] जूता पहने हुआ ।

उपपारिमस्तिष्की-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Accessory meningial) उपमस्तिष्क संबंधी ।

उपपार्श्व-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) स्कन्ध । कन्धा । (२) कक्ष । कोख । (३) क्षुद्रतर अन्त्र । छोटी अँतड़िया । संमुखस्थपार्श्व । सामने की ओर ।

उपपीड़न-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भार । दबाव । (२) पीड़न कार्य । तकलीफ़दिही । (३) पीड़ा । दर्द ।

उपपीड़ित-वि० [सं० त्रि०] (१) विनष्ट । बरबाद किया हुआ । (२) पीड़ित ।

उपपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाफिका । जँभाई । जृम्भा । हारा० ।

उपपैण्डिकी-संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] Soleus समर्पित ।

उपप्राच्छनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] Accessory obturator.

उपप्लव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [त्रि० उपप्लावित, उपप्लवी, उपप्लव्य, उपप्लुत] (१) बाढ़ । (२) विप्लव । उत्पात । हलचल ।

उपप्लक्षक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Secondary plexus) गौण नाड़ी जाल ।

उपप्लुत-वि० [सं० त्रि०] उपद्रव युक्त । उत्पात युक्त ।

उपप्लुता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्रीकी योनि का एक रोग जिसमें वायु क्रुद्ध होकर कफ को योनि में ला बिगाड़ता है । फिर पांण्डु तीव्र वेदना युक्त श्वेत कफ स्रावित होता है । रहमका फासिद इद्राक ।

उपबर्ह(ण)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपधान । तकिया । (२) उपपीड़न । छेड़-छाड़ ।

उपबाधा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] संपीड़न ।

उपबाहु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाहु समीपवर्त्ती अंग का भेद । पंजे से कोहनी तक हाथ का हिस्सा ।
अव्य० [सं०] बाहु के निकट । बाजू के पास ।

उपबृंहित-वि० [सं० त्रि०] अतिरिक्त । ज़ायद ।

उपब्दि-संज्ञा पुं० [वै० सं० पुं०] (१) वाक् । शब्द । (२) श्रवणार्ह ।

उपभुक्त-वि० [सं० त्रि०] भक्षित । खाया हुआ ।

उपभूत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नीलिनी । अग्रपालक । केशरुहा । कीर्तनी । जया । विजया । राज्ञी । दे० "नील" ।

उपभूती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महानीली । वै० निघ० ।

उपभोग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उपभोगी, उपभोग्य, उपभुक्त, उपभोक्ता] (१) किसी वस्तु के व्यवहार का सुख । मज़ा लेना । (२) व्यवहार । काम में लाना । बर्तना । (३) सुख की सामग्री । विलास की वस्तु ।

उपभोज्य-वि० [सं० त्रि०] भोजन में व्यवहार किया जानेवाला ।

उपम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साखू का पेड़ ।

उपमधुलिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुलेठी । यष्टिमधु ।

उपमर्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आलोडन । (२) मलना ।

उपमल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नखादि ।

उपमस्तिष्क-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लघुमस्तिष्क । अणुमस्तिष्क । छोटा दिमाग़ ।

उपमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दूध पिलाने वाली स्त्री । धात्री । धाय । दाई ।

उपमाद्रव्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपमा में व्यवहृत द्रव्य ।

उपमारण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निकट से घृत में जल का निक्षेप । (शतपथ ब्रा० २।५।२।४६)

उपमीमांसा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अन्वेषण । खोज ।

उपमेत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शाल का पेड़ । साखू । श० च० । (२) सागवन का पेड़ ।

उपयन्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वैद्यों वा जर्राहों का एक यंत्र जिससे काँटा आदि देह में चुभकर रह जाने वाली चीजें (शल्य) निकाली जाती हैं । शल्योद्धरणार्थ यन्त्र विशेष । जिस्म में चुभे काँटे इत्यादि के निकालने का एक औज़ार । यह २५ प्रकार का होता है (१) रज्जु । (२) वेणिका । (३) पट्ट । (४) चर्म । (५) अन्तवल्कल । (६) लता । (७) वस्त्र । (८) अष्ठील । (९) अश्म । (१०) मुद्गर । (११) पाणि । (१२) पादतल । (१३) अंगुलि । (१४) जिह्वा । (१५) दन्त । (१६) नख । (१७) मुख । (१८) केश । (१९) अश्वकटक । (२०) शाखा । (२१) ष्ठीवन । (२२) प्रवाहण हर्ष । (२३) अयस्कान्त । (२४) क्षार और (२५) अग्नि । इन्हें देह, देह के प्रत्यङ्ग, सन्धि-स्थान, कोष्ठ और धमनी आदि में जहाँ जैसा उचित हो वहाँ उसी को व्यवहार में लाएँ । सु० सू० ७ अ० ।

उपयम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) विवाह । अम० । (२) संयम ।

उपयमन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) विवाह । (२) संयन । (३) बटा हुआ कुश ।

उपयमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अग्न्याधानाङ्ग सिक्कादि । जलाने की लकड़ी रखने का पत्थर । मिट्टी कंकड़ आदि की टेक ।

उपयाचिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] परपुरुष के पास जाकर सम्भोग की प्रार्थना करनेवाली स्त्री ।

उपयाम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उपयम" ।

उपयुक्त-वि० [सं० त्रि०] (१) योग्य । वाजिब । (२) भुक्त । खाया हुआ । (३) रचित । बनाया हुआ ।

उपयोग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उपयोगी, उपयुक्त] (१) काम । व्यवहार । इस्तेमल । प्रयोग । (औषध सेवन) । (२) फ़ायदा । लाभ । (औषध क्रिया) । (३) आनुकूल्य । (४) प्रयोजन । आवश्यकता ।

उपयोगिता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आवश्यकता ।

उपयोगी-वि० [सं० उपयोगिन्] [स्त्री० उपयोगिनी] (१) लाभकारी । फ़ायदेमंद । उपकारी । (२) अनुकूल । मुआफ़िक़ ।

उपयोज्य-वि [सं० त्रि०] उपयोग में लाने योग्य ।

उपयोष-अव्य० [सं०] आनन्द । ख़ुशी ।

उपरक्त-वि० [सं० त्रि०] (१) पीड़ा युक्त । विपत्ति में पड़ा हुआ । (२) उपरंजक वा उपाधि की सन्निकटता के कारण जिसमें उसका गुण आ गया हो ।

उपरञ्जन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपराग करण । रंगसाजी ।

उपरत्न-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कम दाम के रत्न वा पत्थर। गौणरत्न। घटिया रत्न। वैद्यक ग्रंथों के अनुसार वैक्रांत मणि, मोती का सीप. राजस, मरकत मणि, लहसुनिया, लाजा, गारुड़ि मणि (ज़हरमोहरा), शंख और स्फटिक मणि, ये नौ उपरत्न माने गए हैं।

उपरना-संज्ञा पुं० [हिं० ऊपर+ना (प्रत्य०)] ऊपर से ओढ़ने का वस्त्र। दुपट्टा। चद्दर।

उपरन्थी-[मैसू०] पलाती (सिं०)। (Hernandia Peltata, *Meissn.*)

उपरन्ध्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घोड़े के उदर गह्वर के ऊपर का भाग। ज० द० २ अ०।

उपरव-संज्ञा० पुं० [सं० पुं०] गर्ताकार प्रदेश। आवाज़ का गड्ढा।

उपरवार-संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर+वारा (प्रत्य०)] बाँगर ज़मीन।

उपरस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में पारेके समान गुण करने वाले पदार्थ। गौणरस। उपधातुगण। गंधक, ईंगुर, अभ्रक, मैनशिल, सुर्मा, तूतिया, लाजवर्द पत्थर (राजावर्त्तक), चुंबक पत्थर, फिटकरी, शंख, खड़िया मिट्टी, गेरू, मुलतानी मिट्टी, कौड़ी, कसीस और बालू इत्यादि उपरस कहलाते हैं।

गंधक, गेरू, कसीस, फिटकरी, हरताल, मैनशिल, अंजन (सुर्मा) और कंकुष्ठ ये आठ उपरस हैं। यथा—

"गंधाश्म गैरिकासीसकांक्षी ताल शिलांजनम्।
कंकुष्टं चेत्युपरसाश्चाष्टौ पारद कर्मणि ॥१॥
(रसरत्नसमुच्चय:)

राजनिघण्टु के मत से पारद, अञ्जन, कंकुष्ठ, सिंदूर, गैरिक, क्षितिज, और शैलेय और भावप्रकाश के अनुसार कंकुष्ठ, गैरिक, शंख, कासीस, सोहागा, नीलांजन, शुक्ति और वराटक-ये 'उपरस' कहलाते हैं।

उपरसाल-[मरा०] कालीसर। उपलसरी। कृष्णसारिवाँ।

उपरा-संज्ञा पुं० [सं० उत्पल]उपला कंडा। गोहरा।

उपराग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गौणरूप। झाँई। (२) व्यसन। (३) सम्बन्ध। (४) निंदा। (५) प्रवृत्ति। (६) राहुग्रस्त चन्द्र। (७) राहुग्रस्त सूर्य। (८) राहु। (९) विगान। रागभेद। (१०) दुर्णय। बदचलनी। (११) ग्रह कल्लोल। (१२) परीवाद। बदनामी।

उपराठा-संज्ञा पुं० [सं० उपरिष्ट] पराठा।

उपराँठा-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "पराँठा"।

उपराम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मृत्यु। मौत। (२) उपरति। पथ्य। परहेज।

उपरि-क्रि० वि० [सं०] ऊपर।

उपरिचर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (Epidermis) उपचर्म।

उपरितन-वि० [सं० त्रि०] (Superficial) ऊपरी। सतही। गंभीर का "उल्टा"।

उपरितन पादगा शिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पैर के ऊपरी भाग की शिरा।

उपरिशयन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विश्रामस्थान। आरामगाह।

उपरितन शिरो(ओ)धीया शिरा-संज्ञा स्त्री०[सं०स्त्री०] गरदन की बाहरी शिरा। (Internal jugular vein)

उपरितन शंखिकी धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superficial temporal artery) कनपुटी की ऊपरी धमनी।

उपरिष्ट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पराँठा। परौंठा। पराँवठा। उपराँठा।

उपरिस्तर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Upper surface) ऊपरी सतह। ऊपर का पृष्ठ।

उपरिस्थ-वि० [सं० त्रि०]ऊपर रहने वाला। ऊपरी।

उपरी-संज्ञा स्त्री० दे० "उपला"।

उपरुद्ध-वि० [सं० त्रि०] (१) घिरा हुआ। (२) उत्पीड़ित।

उपरोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। अटकाव। रुकावट। (२) आड़। आच्छादन। ढकना।

उपरोधक-संज्ञा पुं०[सं० क्ली०] (१)रोकनेवाला। बाधा डालनेवाला। उपरोधी। (२) भीतर की कोठरी। गर्भगृह। श० च०।

उपरोधन-संज्ञा पुं०[सं० क्ली०]रुकावट। अटकाव।

उपरोधी-संज्ञा पुं० [सं० उपरोधिन्] [स्त्री० उपरोधिनी] रोकनेवाला। बाधा डालनेवाला।

उपरौठा-संज्ञा पुं० दे० "पराँठा"।

उपरंजक-वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० उपरंजिका] (१) रंगनेवाला। (२) प्रभाव डालनेवाला। असर डालनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] उपाधि।

उपरंजन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपरंजक, उपरंजनीय, उपरंजित, उपरंज्य] (१) रंगना। (२) प्रभाव डालना। असर डालना।

उपर्बुध:-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि। आग।

उपर्यासन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जंघा के बल स्थिति।

उपल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पत्थर। रत्ना०। मे०। (२) ओला। (३) रत्न। (४) बालू। (५) चीनी। (६) मेघ। बादल। (७) उपरी। (८) लता। वल्ली। वेल। (९) पर्वत। पहाड़। (१०) नीचे का जबड़ा। अधोहनु। (Lower-law) अथ०।

उपलधिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चमर नामक जन्तु।

उपलब्धि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बुद्धि। रा० नि० व० ५। ज्ञानप्राप्ति। जानकारी। च० नि० १ अ०।

उपलभित्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाखान भेद। पाषाण भेदक। रा० नि० व० ५।

उपलभेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
उपलभेदी-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] } (१) करज्योड़ि। हाथा जोड़ी। (Cyclamen persicum)। (२) पाखान भेद। पाषाण भेदक।

उपलय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Obelion)

उपलवीरुत्-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] गुल्मिनी नाम की लता। है० च०।

उपलसरी-[गु०, मरा०] कालीसर।

उपलहाक-[देश० काश्मीर] (Dipsacus inermis) एक प्रकार का भोज्य शाक जो मेध्य और शोथ नाशक है।

उपलक्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अपने जैसे दूसरी वस्तु को भी बता देना "उपलक्षण" कहलाता है। (२) अन्य का उद्बोधक लक्षण। (३) विशेषण।

उपला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शर्करा। चीनी। (२) बालुका। बालू। मे०। प्रस्तर मयभूमि। पथरीली ज़मीन।

संज्ञा पुं० [सं० उत्पल] [स्त्री० अल्प० उपली] इंधन के लिये गोबर के सुखाए हुए टुकड़े। कंडा। गोहरा।

उपलाख्यक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दद्रुघ्न वृक्ष। चकवँड़। का पौधा। (Cassia alata, *Linn.*)

उपलालिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तृष्णा। प्यास। वै० निघ०।

उपलासिता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खटी शर्करा। खड़िया मट्टी। वै० निघ०।

उपलिङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उपद्रव। (२) अरिष्ट। है० च०।

उपली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] [उपला का अल्पा० रूप] छोटा उपला। गोहरी। कंडी। चिपड़ी।

उपलेटा-[गु०] कुट कड़ुआ।

उपलेप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) किसी वस्तु से लीपना, किसी वस्तु को ऊपरी तह में कोई गीली चीज़ पोतना। (२) चंदन आदि का लेप करना। चंदन आदि पोतना। (३) मुखलिप्तता। सु० चि० ३३ अ०। (४) उपदेह। च० सू० २० अ०।

उपलेपन-सं० पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपलेपित, उपलेप्य, उपलिप्त] (गोबर आदि से) लीपने का कार्य्य। लीपना। त्रिका०।

उपलोह-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्वर्ण आदि धातु विशेष। जैसे-स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, नाग (शीशा), पारा, कान्त, तीक्ष्ण, मुण्ड ये आठ प्रकार, के लौह तथा काँसा, और घोषक ये उपलोह कहलाते हैं। वै० संग्रह।

उपवट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिरौंजी वा पियार का पेड़। चार वृक्ष। अखट्ट। (Buchanania latifolia, *Roxb.*) रा० नि० व० ११।

उपवन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बाग़। बगीचा। कुंज। फुलवारी। अम०। (२) छोटे-छोटे जंगल।

उपवनस्थ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तुरुष्क।

उपवर्तन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भूमि भेद।

उपवर्ह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
उपवहण–संज्ञा पुं० [सं० क्ला०] } उपधान। शिरोधान। तकिया। हला०।

उपवल्लिका–
उपवल्ली– } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमृतस्रवा नाम की लता। रा० नि० व० ३।

उपवसथ–संज्ञा पुं० [सं०] गाँव। बस्ती।

उपवस्त–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपवास। अम०।

उपवा–[पं०] कुलजुद।

उपवास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भोजन का छूटना। भोजन न करना। लंघन। अनाहार। फ़ाक़ा। (२) क्रोध आदि का परित्याग करना।

यथा—

उपावृत्तस्य पापेभ्यः सहवासो गुणैर्हियः।
उपवासः स विज्ञेयो न शरीरस्य शोषणं॥
च० सू० १ अ०।

उपवास के दिन निषिद्ध आहार-विहार—उपवास के दिन अञ्जन, गोरोचन, गन्ध, पुष्प, माला, अलंकार, दण्डधारण, गात्र वा मस्तक में तैल प्रोक्षण, ताम्बूल, दिवानिद्रा, अक्ष-क्रीड़ा, मैथुन और स्त्री स्पर्श का परित्याग करें। उपवास के पूर्व और पर दिन काँसे के पात्र में भोजन, मांस भक्षण, सुरापान, मधुसेवन, लोभ, मिथ्याकथा, व्यायाम, स्त्रीसंग, दिवा-निद्रा, अंजन, मांस, शिलापिष्ट एवं मसूर का भक्षण, पुनरसन, पथभ्रमण, यान, परिश्रम, द्यूतक्रीड़ा, तैलमर्द्दन, परान्न, तैल, चणक, कोद्रव, शाक, अधिक घृत और अधिक जल-पान भी निषिद्ध है।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जवासा। हिंगुआ। (Alhagi Maurorum, *Dess.*)

उपवासी–वि० [सं० उपवासिन्] [स्त्री० उपवासिनी] उपवास करनेवाला। निराहार रहनेवाला।

उपवाह्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) राजा की सवारी का हाथी वा हथिनी। हे० च०। (२) राजा की पालकी आदि।

उपवित्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दन्ती।

उपविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गौण विद्या। दूसरे दर्जे का इल्म।

उपविरस–अव्य० [सं०] उपवेशन करके। बैठकर।

उपविष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कृत्रिम विष। हे० च०। (२) गौणविष। हलका विष। कम तेज़ ज़हर। जैसे–अफ़ीम, धत्तूरा इत्यादि। भा०।

पर्य्या०—चारं, गरः (हे०)।

एक मत से उपविष पाँच हैं

(१) मदार का दूध, (२) सेहुँड़ का दूध, (३) कलिहारी वा करियारी, (४) कनेर, (५) धतूरा, (इन पाँचों के समूह को उपविष पंचक कहते हैं)। दूसरे मत से सात हैं—(१) मदार, (२) सेहुँड़, (३) धतूरा, (४) कलिहारी वा करियारी, (५) कनेर, (६) गुञ्जा और (७) अफ़ीम। प० मु०। भा०। शार्ङ्ग०।

विष सेवन-विधि

रसेंद्रसार संग्रह में उपविषों के शोधन की विधि इस प्रकार है। गोदुग्ध से भरे हुए बरतन में दोलायंत्र की विधि से पकाने से इन सभी विषों की शुद्धि होती है।

उपविषपञ्चक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सेंहुँड़, मदार, कनेर, कलिहारी वा करियारी और धतूरा इन पाँच विषाक्त ओषधियों का समूह। यथा—"स्नुह्यर्क करवीर लाङ्गली कुचेलकेषु"। रा० नि० व० १२। वि० दे० "उपविष"।

उपविषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रक्ताति विषा। लाल अतीस। (२) अतीस। (Aconitum Heterophyllum, *Wall.*) रा० नि० व० ६।

उपविषाणिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णाति-विषा। काला अतीस। मद० व०।

उपविष्ट–वि० [सं० त्रि०] बैठा हुआ। आसीन।

उपविष्टक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भज रोग।

उपविष्टक गर्भ के लक्षण—प्रवृद्ध (बढ़ा हुआ) और संजातसार (बलवान् और अंग प्रत्यंगादि युक्त) गर्भ होने पर यदि गर्भिणी के विधिवत् न रहने पर योनि से रक्त-स्राव होने लगे तो गर्भका विकास नहीं होता और वह कोष्ठमें स्थित रहताहै और उसमें गति भी होती रहती है। इसको "उपविष्टक" गर्भ कहते हैं। यह उदर को बढ़ने से रोकता है। कारण यह है कि योनि-स्राव से वायु कुपित होकर कफ-पित्त का परिग्रहण कर रसवाहिनी-नाड़ी में रुकावट उत्पन्न करता है और नाड़ी के अवरोधित होने से रस की वहन शक्ति में रुकावट हो जाती है। इसलिए गर्भ का विकास भी रुक जाता। जैसे—घास पत्तों से जलकी नाली रुक जाने के कारण खेत हरा नहीं होने पाता। वा० शा० २ अ०।

चिकित्सा—इसमें पुष्टिकारक, वातनाशक और मधुर द्रव्यों से सिद्ध किए हुए घृत, दूध और मांस-रस द्वारा गर्भिणी की तृप्ति करनी चाहिये तथा गर्भ-पुष्टि के लिए कच्चा गर्भ खिलावें। इस कार्य को चिकित्सक स्वयं युक्तिपूर्वक करे, गर्भिणी को कच्चा गर्भ खाने की सूचना न होने दें। यदि कच्चा गर्भ खाने के पीछे गर्भिणी को कुछ जुगुप्सा उत्पन्न हो, तो बृंहणादि द्रव्यों से साधित दूध, घृत और मांस-रस का सेवन करावे। तृप्ति हो जाने पर उस स्त्री को रथ, हाथी वा घोड़े पर बैठा कर वेगसे लेजाकर क्षोभ करावें। क्योंकि जुगुप्सा उत्पन्न हो जाने से गर्भ और गर्भिणी दोनों को ही हानिकारक होता है। इसलिये उक्त चिकित्सा का अवलम्बन करें। वा० शा० २ अ०।

उपवीत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपवीती] जनेऊ। यज्ञसूत्र। यज्ञोपवीत। अम०।

उपवृक्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीलाहट लिए भूरे रंग की एक प्रकार की प्रणाली विलीन ग्रंथि जो उदर में वृक्क के ऊपर के सिरे पर रहती है।

पर्या०—उ़नुक़ुल् कुल्यः, ताजुल् कुल्यः, ग़ुद्दह फ़ौक़ुल् कुल्यः (अ०)। कुलाह गुर्दः (फ़ा०)। सुप्रारेनल कैप्शूल्ज़ Supra-renal capsules, सुप्रारेनल ग्लैंड Supra renal Gland, ऐड्रीनाल Adrenal—(अं०)।

नोट—क्योंकि ये ग्रंथियाँ वृक्क के ऊपर ग्रीवा की तरह या टोपी की तरह स्थित हैं। इसलिये प्राचीन आरब्य चिकित्सकों ने इसको "उ़नुक़ुल् कुल्यः" नाम से अभिहित किया और उत्तर कालीन अजम देशीय वैद्यों ने इसका "कुलाह गुर्दः" नाम रखा।

उपवृक्क दो होते हैं एक दाहिना, दूसरा बायाँ। दाहिना उपवृक्क बाएँ से कुछ छोटा और त्रिकोणाकार होता है। बायाँ उपवृक्क अर्द्धचंद्राकार होता है। उपवृक्कों का परिमाण सब व्यक्तियों में एक सा नहीं होता। उसकी ऊँचाई (लंबाई) १$\frac{1}{4}$-२$\frac{1}{2}$ इंच, चौड़ाई १ इंच और मोटाई $\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ इंच होती है; भार ६–७ माशे। इस ग्रंथि का वर्धन और स्वास्थ्य से संबंध अवश्य है। उपवृक्क का अंतःस्थ भाग बहिःस्थ भाग से जिसको वल्क कहते हैं, भिन्न प्रकार का होता है। दोनों भागों की उत्पत्ति भी जुदा-जुदा है।

वल्क (बहिःस्थ भाग) का काम शरीर में वसा का जमा करना अर्थात् उसके व्यय को कम करना है। अंतःस्थ भाग में "एडरीनलीन" नामक पदार्थ बनता है। दे० "एडरीनलीन"।

बहिःस्थ भाग (वल्क) के बढ़ जाने से दो बातें होती हैं—

(१) शरीर वसा के जमा होने से स्थूल (मोटा) होजाता है।

(२) बहिःस्थ जननेन्द्रियाँ जल्दी बड़ी होजाती हैं; ४ वर्ष के बालक की बहिःस्थ जननेन्द्रियाँ (शिश्न) १४ वर्ष के बालक के बराबर मालूम होने लगती हैं; कन्याओं में भगांकुर बड़ा होजाता है और ४ वर्ष में भग पर बाल निकल आते हैं। परन्तु उसका गर्भाशय नहीं बढ़ता और रजोदर्शन भी आरम्भ नहीं होता।

अंतःस्थ भाग के कम करने से (जैसा कि इस ग्रंथि के क्षय रोग में होता है) एक रोग उत्पन्न होजाता है-जिसमें रक्तभार कम होजाता है।

(सामान्यतः १२० शतांशमीटर पारा होता है; इस रोग में ८० के लगभग रहता है); रोगी की त्वचा का रंग गहरा होजाता है। रोगी निर्बल और शक्तिहीन होता जाता है; जरा से परिश्रम से वह बहुत थक जाता है; मतली और कै आने लगती है; और दस्त भी आने लगते हैं।

अंतःस्थ भाग, खटिक सम्मेलनों के आत्मीकरण का भी सहायक है। (ह० श० र०)

नोट—यदि ये दोनों उपवृक्क नामी ग्रंथियाँ निकाल दी जाँय, तो खून का रासायनिक संघटन बदल जाता है। इस कारण पेशी और वाततंतु अत्यंत निर्बल होजाते हैं। मनुष्य की जब उक्त ग्रंथियाँ विकृत होजाती हैं, तब पेशी एवं वाततंतुओं की निर्बलता के सिवा त्वचा का रंग पीताभ या स्याही लिए हो जाता है। जिन पशुओं की उक्त ग्रंथियाँ निकाल दी जाती हैं, वह थोड़े काल के उपरांत मर जाते हैं। इससे मालूम होता है कि, इन ग्रंथियों से कुछ ऐसे द्रव स्रावित होकर खून में मिलते हैं, जो रगों और पेशियों की शक्ति को बहाल रखते हैं और पिंगल नाड़ी मंडलस्थ शक्ति को स्थिर रखते हैं। वि० दे० "ग्रन्थिसत्व"।

उपबृंहित–वि० [सं० त्रि०] (१)वर्धित। बड़ा हुआ। (२) उच्छलित। उछला हुआ।

उपवेणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नदी विशेष। कृष्णा नदी की एक शाखा।

उपवेद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विद्याएँ जो वेदों से निकली हुई कही जाती हैं। ये चार हैं जिनमें से आयुर्वेद भी एक है। आयुर्वेद को धन्वंतरि ने ऋग्वेद से निकाला। शेष तीन धनुर्वेद, गंधर्ववेद और स्थापत्य हैं जो क्रमशः विश्वामित्र, भरतमुनि और विश्वकर्मा द्वारा यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से निकाले गए हैं। किंतु सुश्रुत के मत से आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग वा उपवेद है।

उपवेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपवेशन। स्थिति। (२) पुरीषोत्सर्ग द्वारा शून्यीकरण। झाड़े बैठने की बात।

उपवेशन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपवेशित, उपवेशी, उपवेश्य, उपविष्ट] (१) बैठना। (२) स्थित होना। जमना। (३) आसन। बैठक। यह मेद को चढ़ाता और श्लेष्मा, सौकुमार्य तथा सुख की वृद्धि करता है।

रा० नि०।

उपवेशित-वि० [सं०त्रि०] (१) स्थित। बैठा हुआ। (२) स्थापित। जो बैठा दिया गया हो।

उपवेशिन्–वि० [सं० त्रि०] उपवेशनकारी। बैठने वाला।

उपवेष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अरत्नि वा प्रादेश मात्र। अङ्गार भाग तोड़ने का काष्ठ।

उपवैणव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] त्रिसन्ध्य। प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल।

उपव्याघ्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चित्रक। चीता। शरभ। (A tiger) रा० नि० व० १६।

उपव्युषस्–अव्य० [सं०] उषः काल बीतने पर। तड़के के बाद।

उपशम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वासनाओं को दबाना। इंद्रिय-निग्रह। (२) निवृत्ति। शांति। आराम। हे० च०। (३) निवारण का उपाय। इलाज। चारा।

उपशमक–वि० [सं० त्रि०] शान्ति देनेवाला।

उपशमक्रम–संज्ञा पुं [सं० पुं०] साधारण औषध। मामूली दवा। वै० नि०।

उपशमन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपशमनीय, उपशमित, उपशम्य] (१) शांत रखना। दबाना। (२) उपाय से दूर करना। निवारण।

उपशमनीय–वि० [सं० त्रि०] (१) शान्त किये जाने वाला। (२) शांत किये जाने योग्य।

उपशय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) किसी वस्तु के व्यवहार से क्लेश का घटना वा बढ़ना देखकर रोग का अनुमान। यह रोग-ज्ञान के पाँच उपायों में से एक है। यह औषधि, अन्न वा विहार विशेष के उपयोग से देखा जाता है। इससे रोग की पहचान इस प्रकार होती है—किसी रोगी को कोई रोग है। वैद्य पूछे, क्योंजी ? आपको कौन-कौन चीज़ें माफ़िक होती हैं या कौन-कौन चीज़ों से सुख होता है ? रोगी कहे, मुझे नारङ्गी, अनार ईख, खीरे, ककड़ी खाने और शीतल जल में

स्नान करने, शीतल तैल मर्दन करानेसे लाभ होता है और गर्म चीज़ें खाने और लगाने से तकलीफ़ होती है, तो वैद्य को समझ लेना चाहिए कि रोगी को शीतल आहार-विहार सुख देते हैं, शीतल पदार्थ उसको मुआफ़िक़ हैं। इस दशा में उसे रोग गरमी से हुआ समझना चाहिए। क्योंकि गरमी से पैदा रोग ही शीतल आहार-विहारों से शान्त होते हैं। बस इसी तरह उपशय और अनुपशय से रोग पहचाना जाता है।

नोट—आयुर्वेद में "सात्म्य" शब्द भी प्राय: "उपशय" के अर्थ में उपयोग में आता है। दे० "सात्म्य"।

अनुपशय उपशय के विपरीत अर्थ में प्रयुक्त होता है। अनुपशय का अर्थ (अन्+उपशय) अर्थात् जो उपशय न हो अर्थात् असात्म्य वा ग़ैर मुआफ़िक़ हो। आयुर्वेद में उपशय के विपरीत जिस औषधि, अन्न और विहार से रोगी को उलटा दुःख हो वा जिसके व्यवहार से क्लेश घटने की जगह बढ़े, वही "अनुपशय" या "व्याधि असात्म्य" है।

(२) औषधि अन्न और विहार—इन तीनों का रोगी की प्रकृत्यनुसार सुखकारी उपयोग। जो औषधि अन्न या विहार रोगी के रोग को घटावे और उसके पक्ष में सुखकारी हो, वही "उपशय" है। उपशय या सात्म्य एक ही बात है। सुख वा आराम देने वाली वस्तु वा उपाय। अनुकूल औषध वा पथ्य। मुआफ़िक इलाज।

यथा—

"हेतुव्याधि विपर्य्यस्त विपर्य्यस्तार्थ कारिणाम्।
औषधान्न विहाराणामुपयोगं सुखावहं॥
विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतिः।"
(मा० नि०)

उपशय छः प्रकार के होते हैं—

(१) हेतु-विपरीत यानी जिस कारण से व्याधि उत्पन्न हुई हो, उसके विपरीत औषधि अन्न और विहार का उपयोग "सुखकारक उपशय" है। जैसे शीत-ज्वर में "सोंठ" हेतु-विपरीत औषधि है। क्योंकि शीत-ज्वर का हेतु या कारण सर्दी है। सर्दी के ख़िलाफ़ या विपरीत दवा "सोंठ" है। रोग का कारण शीत यानी सर्दी है और कारण के खिलाफ़ सोंठ गरम दवा है। इसी तरह हेतु-विपरीत अन्न को समझो। जैसे, किसी को थकाई और बादी से ज्वर हुआ, ज्वरका कारण थकान और बादी है। थकान और बादी के विपरीत अर्थात् थकान और बादी का नाश करनेवाला पथ्य मांसरस और चावल है। इसलिए मांसरस और भात ये हेतु-विपरीत यानी रोग के कारण के नाश करनेवाले या रोग की शांति करने वाले हुये। इसी प्रकार हेतु-विपरीत विहार को समझो। दिन के सोने से किसी का कफ कुपित हो गया। उससे सिर में दर्द और जुकाम हो गया। क्योंकि कफ कुपित होने का कारण दिन में सोना है और दिन में सोने का विपरीत आचरण रात में जागना है। अस्तु, रात में जागने से कफ शांत हो गया और रोगी को सुख हुआ। अत: "रात में जागना" हेतु-विपरीत विहार या आचरण हुआ।

(२) व्याधि-विपरीत—व्याधि-विपरीत अर्थात् रोग के खिलाफ़, औषध, अन्न और विहार का उपयोग "सुखकारक उपशय" है। किसी को अतिसार या दस्तों का रोग हुआ। हमने व्याधि के विपरीत दस्त बंद करनेवाली दवा "बेलगिरि" या "पाठा" दे दी। रोगी को सुख हुआ, तो "बेलगिरि" व्याधि-विपरीत औषधि हुई। किसी को आमातिसार हो गया। हमने उसे दही भात और मिश्री खानेको बतादिया। रोगी को उस पथ्य से सुख हुआ, तो "दही भात और मिश्री" व्याधि विपरीत पथ्य हुआ। किसी को ज्वर में घोर दाह हुआ। हमने कहा, भाई! रूपवती षोडशी स्त्री के सर्वांगमें चन्दन लगवाकर उसे आलिंगन करो। ऐसा करने से उसका दाह शांत हो गया, तो वह "स्त्री का आलिङ्गन करना" व्याधि-विपरीत विहार हुआ।

(३) हेतु-व्याधि-विपरीत—बादी की सूजन में "दशमूलका काढ़ा" बादी और सूजन दोनों को नाश करता है; अतएव "दशमूल का काथ" हेतु-व्याधि विपरीत अर्थात् रोग और रोग के कारण दोनों के विपरीत औषधि हुई।

(४) हेतुविपर्यस्तार्थकारी--पित्त-प्रधान व्रण की सूजन में पित्तकारक गरमागरम पुलटिस बाँधना। गरमी ही से सूजन है और गरम ही दवा की गई।

(५) व्याधि-विपर्यस्तार्थकारी—किसी को क़य होने का रोग है। उसको हमने गले में उँगली डालकर क़य करने की सलाह दी। रोगी ने वैसा ही किया। अथवा रोगी के उदर में सुद्दा होने के कारण पतले दस्त आ रहे हैं और उदर-शूल हो रहा है। उसको हमने दस्तावर दवा दी। उसे आराम मालूम हुआ, तो यह व्याधि विपर्यस्तार्थकारी "आचरण" हुआ।

(६) हेतु-व्याधि विपर्यस्तार्थकारी–कोई आग से जल गया। हमने कहा अगर प्रभृति द्रव्यों का गर्मागर्म लेप करो। लेप करनेसे रोगीको सुख हुआ, तो यह हेतु-व्याधि विपर्यस्तार्थकारी औषधि हुई।

उपशल्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भाला। बरछा। (२) ग्राम के प्रान्त का भाग।

उपशाला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी डाल। गौण शाखा।

उपशान्त–वि० [सं० त्रि०] (१) शांत किया हुआ। जो दब गया हो। (२) शान्त। ठंडा। (३) ह्रास-प्राप्त।

उपशान्तात्मन्–वि० [सं० त्रि०] शान्त-हृदय। ठण्डे दिलवाला।

उपशान्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आरोग्य। चंगा।

उपशान्तिन्–वि० [सं० त्रि०] शान्ति रखनेवाला।

उपशाय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विशाय। सो रहने की बारी।

उपशायिता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वह पथ्य जिससे रोग का निवारण हो। (२) शान्त करने का भाव।

उपशायिन्–वि० [सं० त्रि०] (१) समीप शयन करनेवाला। (२) शयनशील। सोनेवाला। (३) शयन के लिए प्रस्थान करनेवाला। (४) शान्त कर देनेवाला। (५) निद्राजनन। नींद लानेवाला।

उपशाल–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] गृह के समीप की भूमि।

अव्य० [सं०] गृह के समीप। घर के पास।

उपशास्त्र–संज्ञा पु० [सं० क्ली०] साधारण विद्या। गौण-शास्त्र।

उपशिङ्घन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आघ्राण। सुँघाई। (२) आघ्राणौषध। सुँघने की दवा।

उपशिक्ष-माण–वि० [सं० त्रि०] शिक्षा पानेवाला। सीखनेवाला।

उपशिक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिक्षाभिलाष। सीखने की इच्छा।

उपशीर्षक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकारका बाल रोग जिसमें कपाल में वायु दूषित होकर गर्भस्थित बालक के देह के वर्ण के सदृश वेदनाशून्य सूजन उत्पन्न कर देती है। वा० उ० २३ अ०। (२) एक रोग जिसमें शिर में छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकल आती हैं। कपाल रोग। चाईं-चूआँ।

उपशुन्-अव्य० [सं०] कुक्कुर के समीप। कुत्ते के पास।

उपशोषण–वि० [सं० त्रि०] सुखा देनेवाला। शुष्क करदेनेवाला।

उपश्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आच्छादन। ढक्कन।

उपश्रुत–वि० [सं० त्रि०] श्रवण किया हुआ। सुना हुआ।

उपश्रुति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) समीप श्रवण। (२) देवप्रश्न। आवाज़ ग़ैब। (३) भविष्य-कथन। पेशिन-गोई। (४) अङ्गीकार। स्वीकृति।

उपश्रुत्य-अव्य० [सं०] सुनकर। श्रवणकरके।

उपश्रोतृ–वि० [सं० त्रि०] सुननेवाला।

उपश्लिष्ट-वि० [सं० त्रि०] निकट स्थापित।

उपश्लेष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आधार आधेय के एक देश का संबन्ध। नज़दीकी। आमना-सामना।

उपश्लेषण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आधान। आधार और आधेय का एक देश। जमाव। लगाव।

उपश्वस-वि० [सं० त्रि०] शब्दयुक्त। पुर शोर।

उपष्टम्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आड़। रोक टेक।

उपष्टम्भक-वि० [सं० त्रि०] रोकनेवाला। पतन विरोधक। गिरने न देनेवाला।

उपसङ्गृह्य-अव्य० [सं०] ग्रहण करके। पकड़कर सु० नि० १। अ०।

उपसञ्चार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चालाकी। कपटोपाय।

उपसत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सेवा। मे० तचतुष्क।

उपसन्न-वि० [सं० त्रि०] निकटागत। पास आया हुआ।

उपसन्नवर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का दुष्ट व्रण।

उपसन्न्यास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] त्याग। परहेज़।

उपसमिध-अव्य० [सं०] अग्निकाष्ठ के समीप। जलाने की लकड़ी के पास।

उपसम्पन्न-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तृप्ति। तर्पण। हला०।

वि० [सं० त्रि०] (१) निहत। (२) सुसंस्कृत। "उपसम्पन्न मुद्दिष्टं निहते च सुसंस्कृते"। मे० न पञ्चक।

उपसर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रथम गर्भ धारण।

उपसरण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निगमन। निकास।

उपसर्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रोग का विकार। उपद्रव। (२) निश्ररोग। (३) पिशाच आदि बाधा। दैवी उत्पात। उपद्रव।

उपसर्ज्जन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ढालना। (२) त्याग। छोड़ना।

उपसर्पण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] समीपगमन।

उपसर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रतिवर्ष बच्चा देनेवाली गाय।

उपसार्य्य-वि० [सं० त्रि०] प्रापणीय। प्राप्त होने योग्य।

उपसिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Tributary Vein) सहायक शिरा।

उपसूर्य्यक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जुगनू। सनकिरवा खद्योत। (A fire-fly)

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चन्द्रमा वा सूर्य के पास का मण्डलाकार चक्र (घेरा)। अम०।

उपसृष्ट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मैथुन। त्रिका०।

उपसेक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह गीली चीज़ जिससे रोटी वा भात खाया जाय। जैसे-दाल, कढ़ी, सालन आदि व्यञ्जन। वा०।

उपसेचन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पानी से सींचना वा भिगोना। पानी छिड़कना। (२) गीली चीज़। रसा। (३) दे० "उपसेक"।

उपसेवक-वि० [सं० त्रि०] (१) उपभोगकारी। (२) पर स्त्री पर आसक्त।

उपसंख्यान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पहिरने का कपड़ा। धौत वस्त्र। धोती।

उपसंयोजक-चक्राङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चक्रांङ्ग विशेष।

उपसंहार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समाप्ति। अंत। संवृति।

उपसंहारिन्-वि० [सं० त्रि०] परिग्रह करनेवाला।

उपसंहृति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) विनाश। (२) संकोच। सिकोड़।

उपस्कर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बेसवार। दाल वा तरकारी में डालने का मसाला। हला०।

उपस्कीर्ण-वि० [सं० त्रि०] हिंसित। जो मारा गया हो।

उपस्कृत्-वि० [सं० त्रि०] प्रस्तुत किया हुआ। तैयार किया हुआ।

उपस्तम्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अवलम्ब। (२) टेक। पकड़। (३) स्तम्भ। खंभा।

उपस्तम्भादि-त्रिक्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीरोपयोगी आयुर्वेदोक्त तीन-तीन विषयों का समाहार। चरक के अनुसार ये निम्न हैं,—जैसे, तीन प्रकार का बल, तीन आयतन, तीन रोग, तीन रोग मार्ग, तीन प्रकार के वैद्य और तीन प्रकार की औषधि।

(१) उपस्तम्भ—आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य यह शरीर के मुख्य उपस्तम्भ हैं। इन तीनों को युक्तिपूर्वक सेवन करने से शरीर में बल और वर्ण की वृद्धि होती रहती है और आयु भी बढ़ती है। इनके अनुचित व्यवहार से आयुः क्षयकारक रोग उत्पन्न होते हैं।

(२) उपस्तम्भ—३ प्रकारका बल—सहजबल, कालकृत बल और युक्तिकृत-बल। इनमें शरीर और मन का जो स्वाभाविक बल है, उसे "सहज बल" कहते हैं। ऋतु विशेष या अवस्था जन्य बल को "काल कृत बल" कहते हैं। इसी तरह आहार, कसरत, अथवा किसी औषध आदि योग या अभ्यास द्वारा प्राप्त बल को "युक्तिकृत बल" कहते हैं।

(३) उपस्तम्भ—३ आयतन—इंद्रियार्थ कर्म और काल, इन तीनोंका अति योग, अयोग और मिथ्यायोग, ये तीन आयतन अर्थात् रोगों के उत्पन्न करने वाले कारण कहे जाते हैं। जैसे—अत्यन्त कांतिवाले पदार्थ को बहुत गौर से अधिक काल पर्यन्त देखना "अतियोग" है। एकदम देखने की क्रिया को बंद कर देना 'अयोग' है। इसी तरह अत्यन्त बारीक, अधिक समीप तथा बहुत दूर, अति भयंकर, अद्भुत, बुरा लगने वाला, जिसके देखने से ग्लानि उत्पन्न हो तथा विकृत आदि वस्तुओं के देखने को "मिथ्यायोग" कहते हैं। यह दर्शनेन्द्रिय का अतियोग, अयोग और मिथ्या योग है।

इसी प्रकार वज्रपात के शब्दों का सुनना, नगारे आदि का अथवा किसी वस्तु पर अन्य वस्तु के लगने के तीक्ष्ण शब्द का सुनना, अत्यंत तीक्ष्ण अनुक्रोश आदि शब्द का सुनना अथवा किसी शब्द का बहुकाल पर्यंत सुनना श्रवणेन्द्रिय का "अतियोग" है। कुछ भी न सुनना "अयोग" है। ऐसे ही कठोर वाक्य, प्यारी वस्तु का नाश, वज्र घात, रोमांच कारक शब्द भयावह शब्दादि सुनने को श्रवणेन्द्रिय का 'मिथ्यायोग" कहते हैं। यह श्रवण का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग है।

अतितीक्ष्ण, अतिउग्र और अभिष्यंदि आदि गंध अत्यंत सूँघना "अतियोग" कहलाता है। कुछ भी न सूँघना "अयोग" और दुर्गंधित देशयुक्त, गंधवाला, अपवित्र, भीगा हुआ, विषयुक्त पवन, मुर्देकी गंध इनके सूँघने को 'मिथ्यायोग' कहते हैं। यह घ्राण के अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग हैं।

रस के अधिक सेवन करने को "अतियोग" कुछ भी न खाने को "अयोग" और आहार के मिथ्या सेवन करने को "मिथ्यायोग" कहते हैं। यह जिह्वा के अतियोग, अयोग और मिथ्या योग हैं।

अत्यन्त शीतल और अति उष्ण जल से देर तक स्नान करना, मालिश, उद्वर्तन (उपटन) आदि का अति सेवन "अतियोग" कहाता है। एकदम किसी स्पर्शकारक वस्तु का सेवन न करना "अयोग" है।

ऐसे ही विषम स्थान में घूमना, बैठना, सोना, चोट लगना तथा अपवित्र वस्तुओं के स्पर्श आदि को "मिथ्यायोग" कहते हैं। यह स्पर्श के अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग हैं।

स्पर्श-इंद्रिय की सर्वव्यापकता—प्रत्येक इंद्रिय में एक स्पर्शेन्द्रिय ही इन नेत्र, कर्ण, जिह्वा आदिमें व्यापक है; क्योंकि सब इंद्रियों में स्पर्शेन्द्रिय विद्यमान है और प्रत्येक इंद्रिय अपने विषय में संयोग-स्पर्श द्वारा ही क्रिया उत्पन्न कर सकती है। जैसे शब्द के परमाणु जब कर्णेन्द्रिय से स्पर्श करते हैं तब ही कर्णेन्द्रिय शब्द को ग्रहण करने में समर्थ होती हैं, ऐसे ही औरों का भी जानो। इंद्रिय और इंद्रिय के विषय के स्पर्श में मन व्यापक है। इसलिए स्पर्श होनेवाली वायु (स्पर्शशक्ति) सब में प्रधान है। वही स्पर्शजन्य भाव पंच इंद्रियों में व्यापक होने से पाँच प्रकार का होता है। वह पाँच प्रकार की इंद्रिय और विषय का संयोग, अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग इन तीन भेदों से तीन प्रकार का है। यह तीन प्रकार का योग असात्म्य अर्थात् आत्मा के के विपरीत होता है और यथोचित संयोग आत्मा के अनुकूल होता है।

कर्मकृत आयतन—वाणी, मन और शरीर की प्रवृत्ति को कर्म कहते हैं। मन, वाणी, शरीर, इनकी अत्यन्त प्रवृत्ति को "अतियोग" कहते हैं। और सर्वथा अप्रवृत्ति को "अयोग" कहते हैं।

वाणी के मिथ्यायोग—किसीकी निंदा करना, असत्य बोलना, काल विरुद्ध बोलना, कलह करना, अप्रिय भाषण करना, अंट-संट वृथा बकवाद करना, असंगत, अश्रद्धेय वाक्य कहना और कष्टप्रद वाक्य कहना वाणी का 'मिथ्यायोग'' है।

मानस मिथ्या योग—भय, शोक, क्रोध, मोह, अभिमान, ईर्ष्या, मिथ्यादर्शन आदि मन का "मिथ्यायोग" है।

शारीरिक मिथ्यायोग—मल, मूत्रादि के वेगों को रोकना, एवं बिना वेग ही त्याग की चेष्टा करना, विषमासनसे बैठना, सोना आदि, गिरना, फिसलना, अंगों को दूषित करना, शरीर में चोट आदि लगाना, शरीर को अनुचित रीति से मर्दन करना, अनुचित रीति से स्वास रोकना और शरीर को पीड़ा पहुँचाना, यह शरीर का "मिथ्यायोग" है।

कर्म के मिथ्या योग—यह संक्षेप से कहा गया है, इनसे अन्य और भी अतियोग और अयोग से भिन्न, जो वाणी, मन, शरीर इनके अहित-कर्म हैं, उनको भी "मिथ्यायोग" कहते हैं। यह जो वाणी, मन और शरीर इन तीनों के कर्मों का तीन प्रकार का अतियोगादि विकल्प कहा है, यह बुद्धि के दोष से ही उत्पन्न होता है।

कालातियोग—सर्दी, गर्मी, बरसात इन तीनों में क्रम से शीत होना, गर्मी पड़ना, वर्षा होनी इन तीनों का लक्षण है। इन तीन कालों के समुदाय को संवत्सर (वर्ष) कहते हैं, इसी का नाम काल है। वही इस काल में अपने-अपने समय पर सर्दी, गर्मी, वर्षा का अत्यन्त होना काल का "अतियोग" कहलाता है, न होना "अयोग" कहलाता है एवं अपने समय से आगे पीछे होने को और समय के विपरीत लक्षणों को काल का "मिथ्यायोग" कहते हैं। काल को ही परिणाम भी कहते हैं। इस प्रकार असात्म्य (आत्मा के प्रतिकूल) इंद्रिय तथा विषयों का संयोग, बुद्धि के दोष और काल का वर्णन किया गया है।

रोगों के कारण—इंद्रियार्थ संयोग, बुद्धि और काल का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग, यह तीन प्रकार का विकल्प रोगों के उत्पन्न होने का कारण है और इन तीनों का ही सुप्रयोग होना आरोग्यता के मुख्य कारण हैं। संपूर्ण वस्तुओं का अभाव और सद्भाव यह दोनों मनुष्य के शरीर में क्रिया करते हैं। वह क्रिया सम्यक् योग, अयोग अतियोग और मिथ्यायोग इन तीन भेदों से पृथक्-पृथक् हैं। यह भाव और अभाव योग में युक्ति की अपेक्षा करते है अर्थात् मन वाणी और शरीर इनका युक्तिपूर्वक योग सुख का हेतु और अयुक्ति योग दुःख का हेतु होता है।

तीन प्रकार के रोग—निज अर्थात् शारीरिक, आगंतुक और मानसिक इन भेदों से रोग तीन प्रकार के होते हैं। उनमें शरीरस्थ-वात, पित्त और कफ के कारण से जो व्याधि उत्पन्न हो, उसको "निज" अर्थात् शारीरिक व्याधि कहते हैं। भूत विष, और बाहर से आकर लगने वाला वायु और अग्नि-प्रहार आदि से होनेवाली व्याधि को "आगंतुक" कहते हैं। इसी प्रकार मन को प्रिय अर्थात् इच्छित पदार्थ के न मिलने से और अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने से जो मन में शोकादि होते हैं, उनको "मानसिक" रोग कहते हैं।

हितकर्तव्य—मानसिक व्याधि में अथवा मानसिक व्याधि के बिना भी बुद्धिमान को उचित है, कि अपने हित और अहित का विचारकर अहितकारक अर्थ, धर्म और काम का त्याग और हितकारक अर्थ, धर्म और काम का सेवन करने में यत्नवान रहे क्योंकि इस लोक में धर्म, अर्थ और काम के बिना कोई भी मानसिक दुःख, सुख नहीं हो सकता। इसलिए हितकारक धर्म, अर्थ और काम का सेवन करें। उन धर्मादि त्रिविध पुरुषार्थ को हितकर बनाने के लिए योग्य बुद्धिमानों और वृद्धजनों का सेवन तथा सत्संग करना चाहिए और आत्मा, देश, काल, बल और शक्ति, इनके यथार्थ ज्ञान में तत्पर रहना चाहिए, अर्थात् इनसे विरुद्ध आचरण कदापि न करना

चाहिए। धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग को यथोचित जानकर सेवन करना और इस त्रिवर्ग के ज्ञाता वृद्धजनों की सेवा तथा आत्म आदि के ज्ञान में तत्पर रहना यही मानसिक व्याधि की औषधि है।

रोगों के तीन मार्ग—रोग मार्ग ३ प्रकार के हैं—(१) शाखा, (२) मर्म, वा अस्थिसंधि और (३) कोष्ठ। इनमें शाखा शब्द से रक्तादि धातुएँ और त्वचा अभिप्रेत है। इनको वाह्यमार्ग कहते हैं। और वस्ति, हृदय और मूर्द्धादि मर्म स्थान, अस्थि-संधि और अस्थि-संयोग स्थान एवं उन-उन स्थानों में बँधी हुई स्नायु और कंडरा, इनको "मध्यरोग मार्ग" कहते हैं। कोष्ठ शब्द से कोष्ठ के अन्य पर्याय जैसे, महास्रोत, शरीर मध्य, महानिम्न, आमाशय और पक्काशय, इनको "आभ्यंतररोग मार्ग" कहते हैं।

बहिर्मार्गज रोगों के नाम—गंड (गलगंड), पीड़का, अलजी, अपची, चर्मकील, अर्बुद, अधिमांस, अलस (पापका रोग) कुष्ठ और व्यंग आदि रोग वाह्यरोगमार्ग से पैदा होते हैं।

शाखानुसारी रोग—विसर्प, शोथ, गुल्म, बवासीर, विद्रधि, आदि रोग "शाखानुसारी" कहलाते हैं।

मध्यम मार्गानुसारी रोग—पक्षवध (पक्षाघात, अर्धांग), ग्रह (अंगग्रह, किसी अंग का सुन्न होजाना), अपतानक, अर्दित, सोजा, राजयक्ष्मा, अस्थिशूल, संधिशूल, गुद-भ्रंश और शिरोगत रोग, हृदयगत रोग एवं वस्तिगत रोग "मध्यमार्गानुसारी" कहे जाते हैं।

कोष्ठानुसारी रोग—ज्वर, अतिसार, वमन, अलसक (अजीर्ण भेद,) विसूचिका, श्वास, कास, हिचकी, अफरा, उदर रोग, प्लीहा रोग इन्हें "आभ्यन्तर" मार्ग जन्य रोग कहते हैं। विसर्प, शोथ, गुल्म, अर्श तथा विद्रधि आदि "कोष्टमार्गानुसारी" रोग कहलाते हैं।

तीन प्रकार के वैद्य—(१) छद्मचर, (२) सिद्ध साधित और (३) वैद्य गुण संपन्न वैद्य।

छद्मचर भिषक् के लक्षण—जो दूसरे वैद्यों के पात्र, औषध, पुस्तक, पत्र आदि देखकर आप भी उनके समान रूप बनाकर वैद्य कहलाने वाले प्रति रूपक खड़ा करते हैं, उन्हें "छद्मचर वैद्य" कहते हैं।

सिद्धसाधित वैद्य के लक्षण—जो वैद्य गुण संपन्न तो नहीं, परन्तु धनवान यशवाले ज्ञानवान और सिद्ध लोगों ने जिनकी प्रसंशा फैला दी हो, उनको "सिद्धसाधित वैद्य" कहते हैं।

गुण युक्त वैद्य के लक्षण—जो वैद्य औषध प्रयोग आदि में कुशल हैं तथा हेतु, रोग चिकित्सा के ज्ञान-विज्ञान में सिद्धि संपन्न हैं, वह सुख के और जीवन के देनेवाले सद्वैद्य "वैद्य गुण संपन्न" वैद्य होते हैं, इन्हीं में वैद्य शब्द की स्थिति है।

औषधियों के भेद—औषधियाँ तीन प्रकार की हैं। (१) दैवव्यपाश्रय, (२) युक्तिव्यपाश्रय और (३) सत्वावजय। इनमें मंत्र, मंगल, औषधी, रत्न, इनका धारण, मंगलाचरण, बलि, पूजन, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, स्वस्तिवाचन, प्रणाम और तीर्थगमन आदि को "दैवव्यपाश्रय" औषध कहते हैं। युक्तिपूर्वक आहार और औषध के सेवन को "युक्तिव्यपाश्रय" कहते हैं। अहित अर्थों से मन को रोकने का नाम "सत्वावजय" औषध है।

शारीरिक रोगों में औषधि भेद—शारीरिक दोषों के कोप को शांत करने के लिए प्रायशः ३ प्रकार की औषध का प्रयोग किया जाता है। वह यह हैं—अंतःपरिमार्जन, वहिःपरिमार्जन और शस्त्र-प्रणिधान। इनमें जो औषध शरीर के भीतर जाकर मिथ्या आहारादि से हुए रोग को नष्ट करें, उनको "अंतःपरिमार्जन" कहते हैं। जो औषध वहिराश्रय से अर्थात् मालिश, स्वेद (पसीना), प्रलेप, परिषेक और उद्वर्तन आदि के संयोग से रोग को नष्ट करें, उनको "बहिःपरिमार्जन" कहते हैं। शस्त्र द्वारा छेदन, भेदन, व्यधन, विदारण, लेखन, उत्पाटन, प्रच्छन, सीवन, एषण, तथा क्षार-कर्म और जलौका आदि के प्रयोग को "शस्त्र-प्रणिधान" कहते हैं। इन्हीं के उपयोग से बुद्धिमान मनुष्य सुख प्राप्त कर सकता है। च० सू० ११ अ०।

उपस्तरण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आस्तरण। विस्तर। (२) भूमि पर समीकरण।

उपस्तीर्ण–वि० [सं० त्रि०] विस्तीर्ण। फैला हुआ।

उपस्त्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपपत्नी। वेश्या। रण्डी।

उपस्थ-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पुरुष चिह्न। लिङ्ग। (२) स्त्री-चिह्न। योनि। भग। स्त्री लिङ्ग। रा० नि० व० १८। (३) मलद्वार। गुदा। श० र०। (४) क्रोड़। गोद। मे०। (५) नीचे का वा मध्य का भाग। (६) पेड़ू।

वि० [सं० त्रि०] निकट बैठा हुआ। समीपस्थ।

उपस्थ-देश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मूत्र जननेन्द्रिय प्रदेश। (Urogenital-region.)

उपस्थ-निग्रह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विषयावरोध। विषय की इच्छा की रुकावट।

उपस्थ-पत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीपल का पत्ता। अश्वत्थ-पत्रक "पित्त श्लेष्मणि शस्यन्ते सूपे वा प्रलेपेषु चेति।" —चरक०

उपस्थल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नितम्ब। चूतड़। (२) कूल्हा। (३) पेड़ू। अन्तराल।

उपस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ककुद। कूल्हा। कटि। कमर। (३) नितम्ब। चूतड़। (३) पेड़ू। अन्तराल।

उपस्थाता-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] परिचारक। सेवक। रत्ना०।

उपस्थान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अनुसंधान। (२) आगमन। आमद।

उपस्थायक-संज्ञा पुं० [स० पुं०] भृत्य। नौकर। चाकर।

उपस्थेय–वि० [सं० त्रि०] उपसेव्य। सेवा करने योग्य।

उपस्नायु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Accessory ligament.)

उपस्नुत–वि० [सं० त्रि०] क्षरित। गिरा हुआ।

उपस्नेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपलेप। (२) स्नेहयुक्त। (३) स्नेह-युक्त अन्न वा रस।

"मूत्रयुक्त उपस्नेहात् प्रविश्य कुरुतेऽश्मरीम्।"
सु० नि० ६, ७ अ०।

उपस्पर्श–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उपस्पृष्टु] (१) स्पर्श। स्पृश्य। छूत। (२) स्नान। नहान। (३) आचमन। मे० शचतुष्कं।

उपस्पर्शन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "उपस्पर्श"।

उपस्पर्शिन्–
उपस्पृशू– } वि० [सं० त्रि०] स्पर्श करने वाला। छूने वाला।

उपस्पृश्च–अव्य० [सं०] आचमन करके।

उपस्पृष्ट–वि० [सं० त्रि०] स्पर्श किया हुआ।

उपस्रवण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सम्यक् क्षरण। बहाव। स्त्री का सम्यक् क्षरण।

उपस्वत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लाभ। आय। फायदा। आमदनी।

उपस्वेद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्न्यादि के निकट का ताप। औसन। (२) उपताप। गर्मी। (३) क्लेद। तरी।

उपहत–वि० [सं० त्रि०] (१) आहत। नष्टकिया हुआ। बरबाद किया हुआ। (२) बिगाड़ाहुआ। दूषित। (३) पीड़ित। संकट में पड़ा हुआ। (४) किसी अपवित्र वस्तु के संसर्ग से अशुद्ध। (५) अभिभूत। दबा हुआ। (६) प्रतिबद्ध। रुका हुआ।

उपहस्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ताम्बूलाधार। पान सुपारी रखने की छोटी डब्बी या थैली।

उपह्वर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) निर्जन स्थान। (२) निकट।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रथ। अ०।

उपाकचक्षस्–वि० [सं० त्रि०] चक्षुके सम्मुख वर्त्तमान रूप से दण्डायमान।

उपाकृत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपद्रव। हे०। (२) यज्ञ। (३) मृत पशु।

उपाख्य–वि० [सं० त्रि०] चक्षुद्वारा प्रेक्षणीय। जो आँख से देखा जा सके।

उपाङ्ग-संज्ञा पुं०[स०क्ली०](१) अवयव। प्रत्यङ्ग। अङ्ग का भाग। महर्षि सुश्रुतके अनुसार मस्तक, उदर, पृष्ठ, नाभि, ललाट, नासिका, चिबुक, वस्ति एवं ग्रीवा एक एक, नासा, भ्रू, शंख, स्कन्ध, गण्ड, कक्ष, स्तन, मुष्क, पार्श्व, नितम्ब, जानु, बाहु तथा उरु दो-दो, अंगुलि बीस, त्वक् सात, कला सात, वक्ष दो, कोष दो, हृदय, प्लीहा, फुप्फुस, यकृत, क्लोम, आशय सात, अन्त्र, द्वार नौ, प्रधान शिरा सोलह, जाल बारह, कूर्च छः, रज्जु चार, सेवनी सात, अस्थि मिलन के स्थान पंद्रह, सीमन्त अठारह, अस्थि तीन सौ, अस्थि-सन्धि दो सौ दश, स्नायु नौ सौ, पेशी पाँच सौ, मर्मस्थान एक सौ सात, सिरा सात सौ, धमनी चौबीस और योग वहा नाड़ी ये समस्त "उपाङ्ग" हैं।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तिल। तिल्ली। (१) चित्रक। चीता। जटा०।

उपाङ्गचिकित्सा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का प्रतीकार वा चिकित्सा जिसमें छिन्न-भिन्न, भग्न क्षत और पिच्चित अवयव को दग्ध किया जाता है। वै० निघ०। अत्रि० १ स्था० २ अ०।

उपाग्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शिखा के समीप का भाग। (२) द्वितीय श्रेणी का अवयव।

उपाग्रहायण-अव्य० [सं०] अग्रहायण मास में पूर्णिमासी के दिन।

उपाञ्जन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अनुलेपन।

उपाड़-संज्ञा पुं० [हिं० उपड़ना=उभरना] किसी तीव्र औषध आदि के कारण शरीर की खाल का उड़ने लगना। आबला। छाला!

उपाण्ड-संज्ञा पुं० [सं०] एक लम्बा, पतला और कुछ चपटा पिंड जो अंडे के पिछले किनारे से लगा रहता है। इसको अंडकोष की दीवार में से टटोलकर स्पर्श कर सकते हैं। बरबख़, ख़ुस्यः फ़ौक़ानी (अ०)। एपिडिडिमिस Epididymis (अं०)।

उपाण्डपुच्छ-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपांड का नीचे का सिरा जो पतला होता है। Cauda Epididymis

उपाण्डशरीर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपाण्ड का बीच का भाग। उपांड गात्र। Corpus Epididymis

उपाण्डशिर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपांड का ऊपर का सिरा जो मोटा होता है। Caput Epididymis

उपात्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह हाथी जिसका मद प्रगट न हुआ हो। अमद गज। हला०।

उपात्तरंहस-वि० [सं० त्रि०] शीघ्रगामी।

उपादान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह कारण जो स्वयं कार्य्य रूप में परिणत हो जाय। सामग्री जिससे कोई वस्तु तैयार हो। जैसे, घड़े का उपादान कारण मिट्टी है। वैशेषिक में इसी को समवायिकारण कहते हैं। सांख्य के मत से उपादान और कार्य्य एक ही हैं।

उपादान-करण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] समवायी कारण। दे० "उपादान"।

उपादिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कीट भेद। एक प्रकार का कीड़ा।

उपाधान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपधान। तकिया।

उपाधि-संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) उपद्रव। उत्पात। (२) दे० "उपाण्ड"।

उपानत्-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०](१)जूता। पनही। (२) खड़ाऊँ।

उपानद्धारण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जूता व खड़ाऊँ पहनने की क्रिया वा भाव। गुण—जूते आदि का धारण नेत्र को सुख देनेवाला, आयुष्य बढ़ाने वाला, पैर के रोग निवारण करनेवाला, सुख देनेवाला, ओज चढ़ाने वाला और बल-वीर्य लाने वाला होता है। क्योंकि नंगे पाँव सदा घूमने से मनुष्य रोगी, आयुष्य से हीन, हत इन्द्रिय और अंध हो जाता है। (वै० निघ०)

उपानह्-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] जूता। पनही।

उपान्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०][वि० उपांत्य] (१) अंत के समीप का भाग। (२) आस पास का हिस्सा। प्रांत भाग। सिरा। (३) छोटा किनारा। (४) आँख का कोना।

उपान्त्य-वि० [सं० त्रि०] अंतवाले के समीपवाला। अंतिम से पहले का।

उपान्त्र-संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] अन्त्रपरिशिष्ट नामक एक आँत जिसका पूर्ण ज्ञान अभी हाल ही में प्राप्त किया गयाहै। यह एक नली सी होती है जो अंत्रपुटसे लगी रहती है। इस नलीकी दीवार की बनावट क्षुद्र अंत्र की दीवार की बनावट जैसी होती है, बड़ा भेद यह होता है कि श्लैष्मिक कला और मांस के बीच में जो सौत्रिक तंतु है उसमें बहुत से लसीकाणुओं जैसी सेलों के समूह होते हैं। श्लैष्मिक कला में ग्रंथियाँ बहुत थोड़ी होती हैं। इस नली को उपांत्र या अन्त्र-परिशिष्ट कहते हैं। (Appendix) दे० "अन्त्र-परिशिष्ट"।

उपान्त्र प्रदाह, उपान्त्र शोथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रोग जिसमें अन्त्र-परिशिष्ट में प्रदाह हो जाता है। यह रोग अधिकतर मांसाहारियों में ही होता है, विशेषकर उन लोगों में जो कुछ समय तक रक्खा हुआ मांस खाते हैं। जैसे यूरोप और अमेरिका वाले। यूरोप और अमेरिका में इसके प्रदाह के कारण सहस्रों व्यक्तियों को पेट चाक कराना पड़ता है। पर्याय०—अन्त्र परिशिष्ट प्रदाह, अन्त्रपुच्छ प्रदाह। ज़ाइद: का वर्म, वर्म ज़ाइद: (उ०)। अपेण्डिसायटिस Appendicitis (अं०)।

नोट—(१) अंत्रपुट अर्थात् सीकम को अरबी में 'अऊवर' कहते हैं। जैसा ऊपर वर्णन हुआ कानी आँत वा अंत्रपुट से लगा हुआ करीब-करीब ४ इंच लंबा केंचुए की शकल का एक पुच्छ(ज़ाइदा)होती है। इसकी रचना भी आँतोंकी सी होती है। इसमें एक नालीहोती है जिसकी एक छोर तो अन्त्रपुटमें खुलती है,किंतु दूसरीवाह्य छोर बंद होती है। अस्तु, यदि किसी कारणवश उस पुच्छ की नाली में मल वा किसी फल जैसे, अंगूर प्रभृति की गुठली चली जाए, तो उसे बाहर निकलने का मार्ग नहीं मिलता। बस वह उसमें फँसकर क्षोभ एवं शोथ उत्पन्न कर देती है।

(२) कुछ अन्वेषकों का यह अनुमान है कि मानव सृष्टि के प्रारंभ में अंत्रपरिशिष्ट भी आँतों का एक परमोपयोगी भाग था। परंतु काल-क्रम से विकासोन्मुख मानव प्राणी ने जीवन-यात्रा के बहुश: मनज़िल तै कर लिए हैं और जीवन की नित-नूतन आवश्यकताओं से उसकी शारीरिक रचना में भी कुछ ऐसे परिवर्त्तन आगए हैं कि अब उक्त अंत्रपरिशिष्ट सर्वथा व्यर्थ ही नहीं,अपितु ज़हमतका कारण प्रतीत होता है। अस्तु, संभवत: कुछ कालोपरांत यह स्वभावत: स्वयं ही लुप्त होजाय और मनुष्य सदा के लिए इसके प्रदाह एवं अन्य आतंकपूर्ण परिणामों से मुक्ति लाभ करे।

(३) यह अंत्रपुच्छ साधारणत: वृहद् अंत्र के निचले भाग के नीचे नाभि की ओर रहती है। पर कभी यह अंत्रपुट के नीचे या पेड़ू की अस्थि के किनारे के ऊपर लटकी रहती है। कभी ऐसा भी होता है कि इसका अंधशीर्ष अंत्रपुट के नीचे-नीचे तली की ओर पड़ा रहता है और कभी यह समीपवर्त्ती धातुओं से संश्लिष्ट होकर संकुचित होजाती है।

(४) संभवत: यह रोग पूर्वकाल में भी होता था। पर यूनानी चिकित्सकों ने अपने ग्रंथों में इसका कहीं उल्लेख नहीं किया ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने इसका 'क़ोलंज इल्तिवाई' या 'क़ोलंज रूमी' में अंतर्भाव किया है। आज से क़रीब २५ वर्ष पूर्व यूरोपीय चिकित्सक भी इस व्याधि को टिफ्लायटिस (अंत्रपुट प्रदाह) और पेरीटिफ्लायटिस (अंत्रपुट के आस-पास की सूजन) नामों से अभिधानित करते थे। और उनका यह मत था कि अंत्रपुट के चतुर्दिक् जो परिविस्तृतकला (Peritoneum) का भाग लटका होता है, उसमें शोथ होजाने से उक्त व्याधि होजाती है। परंतु तदनन्तरकालीन अन्वेषणों से यह प्रमाणित हुआ है कि यह रोग होता तो उसी स्थल में है, किंतु प्रथम अंत्रपरिशिष्ट में शोथ प्रभृति का प्रादुर्भाव होता है। इसलिए अब इस व्याधि को अंत्रपरिशिष्ट प्रदाह (Appendicitis) कहते हैं।

(५) इसमें संदेह नहीं कि, पूर्वकाल में भी यह रोग होता था; किंतु इतने बहुतायत के साथ नहीं,जितना कि आजकल होता है। इसका कारण

कतिपय यूरोपीय विद्वान्‌गण समीचीन सभ्यता और आचार-व्यवहार बतलाते हैं, जिसमें मनुष्य को अपना जीवन स्थिर बनाए रखने के लिए अधिक संघर्ष करना पड़ता है। दिखावटी सुख-चैन एवं विलासिता की अधिकता, खाने-पीने में मध्यमार्ग का अवलम्बन न करना, यहाँ तक कि भोजन के लिए अवकाश भी कम मिलता है। फलतः लोगों के दाँत ख़राब होते जाते हैं, पाचन-शक्ति नष्ट होजाती है, मलावरोध की शिकायत बढ़ती जाती है और अस्वाभाविक पाचन-क्रिया से आमाशय तथा आंत्र में विषादकारी विष अधिक उत्पन्न होते हैं जो उक्त रोग का कारण होते हैं। यही कारण है कि यह व्याधि अधिकतर सभ्य कहलानेवाले यूरूप और अमेरिका जैसे देशों में होती है। एशियाई देशों और जातियों में इस रोग का आविर्भाव बहुत कम होता है-केवल उन्हीं लोगों में होता है, जो यूरोपीय सभ्यता के पुजारी हैं।

(६) यद्यपि यूरोप तथा अमेरिका में यह रोग लगभग गत २५ वर्ष से ज्ञात एवं सुविदित है। किंतु गत कुछ एक वर्ष से ही इस व्याधि की विशेष चर्चा होरही है, प्रधानतः जब से महाराजाधिराज सम्राट् सप्तम एडवर्ड इस व्याधि से आक्रांत होकर स्वर्गवासी हुए। आंत्रपरिशिष्टि प्रदाहमें सदा बैसिलस कोलाई और ष्टेप्टोकोकाई वर्तमान रहते हैं। उनके विष के अनुरूप ही शोथ भी साधारण वा उग्र होता है। अस्तु, उपांत्र-प्रदाह के निम्न तीन भेद होते हैं—

(१) साधारण उपांत्र प्रदाह—इसमें उपांत्र के भीतर झिल्ली सूजकर फूल जाती है और उसकी नाली बंद हो जाती है। प्रदाह के दूर होने के उपरांत आंत्रपुच्छ या तो सदा के लिये अवरुद्ध हो जाती है या उसमें कड़ाई आ जाता है। यदि जीवाणुओं का जोर अधिक हुआ, तो शोथयुक्त भाग में क्षत हो जाते हैं, जिनके बढ़ने से उपांत्र छिद जाती है। यह दशा विशेष कर उत्पन्न होती है, जब यह रोग मल के प्रविष्ट होने या आंत्रिक सन्निपातज्वर या राजयक्ष्मा रोग के कारण हों।

(२) उग्र उपांत्र प्रदाह—इसमें विष की उग्रता के कारण अति शीघ्र उग्र लक्षण प्रगट हो जाते हैं। उक्त पुच्छ बहुत जल्द सड़-गल जाती है।

(३) उपांत्र का विकीर्ण शोथ—इसमें उक्त पुच्छ के आस-पास की परिविस्तृत कला और अन्य कोष्ठावयव में सूजन फैलकर विविध प्रकारकी पीड़ा एवं क्लेशका कारण होती है। अस्तु, (१) कभी पुच्छ किसी आस-पास के अवयव से चिपक कर एक ग्रंथि बन जाती है, जिसके साथ आँत में पेंच पड़ जाता है और कोलंज इल्तिवाई पैदा हो जाता है, या (२) पुच्छ से सूजन फैलकर आस-पास के कोष्ठावयव को भी शोथ-युक्त कर देता है और कोलंज वर्मी का कारण होता है। इसलिए प्राचीन यूनानी चिकित्सकों ने इस व्याधि का 'कोलंज इल्तिवाई' वा 'कोलंजवर्मी' में अंतर्भाव किया है और पृथक् वर्णन नहीं किया। (३) पुच्छ के आस-पास की परिविस्तृत कला अवश्य शोथयुक्त हो जाती है और उसमें पीव पड़कर फोड़ा बन जाता है, जो साधारणतः आंत्रपुट के नीचे और पीछे की ओर बनता है, या दाईं पेड़ू में प्रगट होता है। कभी (कोलून) के साथ ऊपर की ओर फैल जाता है। पीव या तो वृक्क के चतुर्दिक् या वक्षोदरमध्यस्थपेशी के अधोभाग में एकत्रित हो जाती है या आँतों के पेंचों में भर जाती है अथवा सरलांत्र के साथ पेड़ू में उतर जाती है। कभी ऐसा भी होता है कि आँतों में छिद्र करके पीप उनके भीतर जा फूटती है। (४) यदि सूजन अति तीव्र हो, तो सारी आँतें शिथिल एवं निष्क्रिय हो जाती हैं, जिससे उनके भीतर विष्ठा रुक जाती है। (५) यदि उक्त पुच्छ से छिद्र होकर मल वा पूय परिविस्तृतकला में प्रविष्ट हो जाय, तो समग्र परिविस्तृत-कला भर में सूजन हो जाती है।

रोग का निदान (कारण)

इस व्याधि के उत्पादक हेतु के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद है। प्रायः रोगियों को तो मलबद्धता के कारण यह व्याधि हो जाती है।

किंतु केवल मलावरोध ही इस रोग का कारण हो, यह ठीक नहीं। इस व्याधि के लगभग १२ प्रतिशत रोगियों में उपांत्र की नाली में या तो मल या किसी फल, जैसे—अंगूर प्रभृति की छोटी सी गुठली फँस जाती है। कभी कभी यह पुच्छ स्थूल हो जाती है और उसकी माध्यमिक नाली किसी स्थान पर संकुचित होकर एक बंद थैली सी बन जाती है। कभी-कभी उक्त पुच्छ के भीतर पीप पड़ जाती है। जिससे या तो छिद जाती है या परिविस्तृत-कला में सूजन हो जाती है या पेडू में फोड़ा बन जाता है और कभी उक्तपुच्छ मुर्दार होकर गल सड़ जाती है।

गठिया या आमवातिक प्रकृति के मनुष्यों या उन मनुष्यों को जिनको इन्फ्लुएंजा हो चुका होता है, यह रोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। युवावस्था में तथा अधेड़पन में यह व्याधि अधिक हुआ करती है।

रोग के लक्षण

सहसा रोगी दर्द की शिकायत करता है। उसे ऐसा मालूम होता है, मानो नाभि के चतुर्दिक् कोई छुरी से काट रहा है। वह दर्द के मारे व्याकुल होता है और लोटना-पोटता है। कुछ काल के उपरांत दर्द दाहिने पेडू में ठहर जाता है। साथ ही जी मिचलाता और क़ै आती है। रोगी जो कुछ जलादि पीता है, वह उसी काल क़ै होकर निकल जाता है। जाड़ा लगकर १०२ से १०४ अंश का ज्वर हो जाता है। दाहिने पेडू को दबाने से वहाँ पर एक उभार या रसौली महसूस होता है, जो दर्द करती है। रोगी घुटना सिकोड़े पड़ा रहता है। अति उग्र रोगियों में जब कि आँतों में रुकावट भी हो जाती है, तो मल मिश्रित क़ै आने लगती है अर्थात् वमन में मलोत्सर्ग होने लगता है। नाड़ी प्रायः कोमल और तीव्रगामी होती है। कभी वस्ति में क्षोभ होने के कारण मूत्रकृच्छ्र की शिकायत हो जाती है। कभी मूत्र में एल्ब्युमेन (अंडलाल) आने लगती है। व्याधि का वेग साधारणतः दो-तीन दिन में समाप्त हो जाता है। किन्तु विकारी स्थल में सूक्ष्म सी वेदना शेष रह जाती है।

यदि फोड़ा बन जाय तो रोगी को बारंबार जाड़ा लगकर ज्वर चढ़ आता है। सख़्त कब्ज़ होती है और बार-बार क़ै आती है, इत्यादि।

रोग-विनिश्चय (निदान)

आंत्रशूल (Intestinal colic), पैत्तिक शूल (Biliary colic), अन्त्रान्योन्यानुप्रविष्ट (Intussusception) और वृक्कशूल (Renal colic) से इस व्याधि का निदान करते हैं।

अस्तु, (१) आंत्रीय शूल में नाभि के इर्द-गिर्द कठिन वेदना होती है और रोगीको ज्वर नहीं होता। (२) पित्तज शूल में भी रोगी को ज्वर नहीं होता। इसमें उत्क्लेश अर्थात् मतली और क़ै अधिक होती है। क़ै में हरा या पिलाई लिए पित्त-उत्सर्ग होता है। कभी उग्र वेदना के कारण रोगी मूर्च्छित हो जाता है। (३) आन्त्रान्त्र प्रवेश (Intussusception) में सख़्त क़ब्ज होती है, पेट में तीव्र वेदना होती हैं और उदर फूलकर ढोल के समान हो जाता है। बारंबार क़ै आती है, जिसमें अंततः मलोत्सर्ग होने लगता है। (४) वृक्कशूल में वृक्क-स्थल पर वेदना होती है जिसकी टीसें रानों और फ़ोतों तक जाती हैं। बारंबार मूत्रोत्सर्ग की प्रवृत्ति होती है। किंतु मूत्र अत्यल्प या बिलकुल नहीं आता। कभी बूँद बूँद रक्त-मिश्रित पेशाब आता है।

अन्त वा परिणाम

साधारणतः यह शोथ चार पाँच दिवस में विलीन हो जाता है और रोग के समग्र लक्षण विलुप्त प्राय हो जाते हैं। किंतु विकृत स्थल पर मंद-मंद वेदना होती रहती है और पुच्छ शोथयुक्त प्रतीत होती है। इसका कारण यह होता है कि या तो उसमें क्षत हो जाता है या उसकी नाली संकीर्ण हो जाती है जिससे बार-बार वेदना और सूजन होती रहती है। कभी-कभी प्रारंभ से ही परिविस्तृत कला-प्रदाह (Peritonitis) भी हो जाता है। किसी रोगी में कोलन प्रदाह (Colitis) के साथ ही अंत्रपरिशिष्ट प्रदाह भी हो जाता या पेडू में फोड़ा बन जाता है। उक्त दशाओं में परिणाम प्रायः खराब होता है।

चिकित्सा

वेदना शुरू होते ही रोगी को शय्या पर लिटा कर उसके पेट को सेंकना चाहिये और साबुन मिले हुए पानी की वस्ति (एनीमा) करनी चाहिये अर्थात् गरम पानी में साबुन घोलकर उसकी पिचकारी करनी चाहिये, जिसमें आँतें साफ हो जायँ। लघुपाकी और तरल आहार देना चाहिये; जैसे दूध या उसमें सोडा या यवाम्बु मिलाकर या सादा मांसरस—यख़नी प्रभृति। वेदना निवारणार्थ मॉर्फिया का त्वगस्थ सूचीवेधन करते हैं। या मार्फिया अथवा अफीम का मुख द्वारा प्रयोग करते हैं। क्योंकि मॉर्फिया और अफीम के प्रयोग से केवल वेदना प्रभृति में साधारण सी कमी आ जाती है, वास्तविक रोग का निवारण नहीं होता और उस साधारण से कृत्रिम लाभ के कारण रोगी शस्त्र-कर्म कराने में विलंब करता है, इसलिए कतिपय डॉक्टर मॉर्फिया या अहिफेन का उपयोग अनुचित ख्याल करते हैं। यूरोप और अमेरिका प्रभृति सभ्य देशों में इस व्याधि की चिकित्सा अधिकतया शस्त्र-कर्म द्वारा ही की जाती है, जिससे प्रायः दशाओंमें रोगीका प्राण बच जाता है। क्योंकि वहाँ पर प्रायः योग्य शस्त्र-चिकित्सक (Surgeon) होते हैं। परंतु भारतवर्ष में यह रोग भी कम होता है और यहाँ इसकी चिकित्सा बहुत ही कम होती है।

उपाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उपायी, उपेय] (१) पास पहुँचना। निकट आना। (२) वह जिससे अभीष्ट तक पहुँचें। साधन। युक्ति। तदबीर। चिकित्सा हेतु अनुकूल रीति पर वैद्यों के उपस्थित होने को "उपाय" कहते हैं। लक्षण—वैद्यादि चिकित्सा के चारों पादों का यथोचित गुण संपन्न होकर देश, काल, प्रमाण, सात्म्य और क्रिया-सिद्धि आदि कारणों से उत्तम रीति पर औषध का आचरण करना "उपाय" का लक्षण है। कार्य के उत्पादन करने में कारण, करण, समवायि-करण, देश, काल और प्रवृत्ति आदिकों की कार्य-फल उत्पन्न करने में जिसकी जिस प्रकार जिससे अनुकूलता हो उसको "उपाय" कहते हैं और कारण आदि को भी "उपाय" कहते हैं। क्योंकि कारणादि के न होने से भी कार्य की सिद्धि नहीं होती। फल और अनुबंध को "उपाय" नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये कार्य हो जाने पर उत्पन्न होते हैं। च० वि० ८ अ०।

उपार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) समीप। (२) प्रमाद। गलती। भूल।

उपारना—क्रि० [?] उन्मूलन। उखाड़ना।

उपारूढ़—वि० [सं० त्रि०] वर्द्धित। बढ़ा हुआ।

उपार्थ—वि० [सं० त्रि०] अल्पार्थ वाला। निष्काम। नाकाम।

उपालब्ध—वि० [सं० त्रि०] तिरस्कार पूर्वक। निन्दित।

उपालम्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) निन्दा पूर्वक तिरस्कार। (२) हेतु में दोष वर्णन करने को 'उपालम्भ" कहते हैं। इसका वर्णन 'अहेतु' में देखिए। इसको हेत्वाभास भी कहते हैं। च० वि० ८ अ०।

उपालम्भ्य—वि० [सं० त्रि०] निन्दनीय। जो प्रशंसा के योग्य न हो।

उपावरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का वातरोग। च० सू० २० अ०।

उपावर्तन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भूमि पर लेटना। भूमिलुण्ठन। (२) प्राप्ति। पहुँच। (३) वापसी। पुनरागमन।

उपावसायिन्—वि० [सं० त्रि०] अधीनस्थ। पराधीन। मातहत।

उपावसु—वि० [सं० त्रि०] धन प्रदान करनेवाला।

उपाशंसनीय—वि० [सं० त्रि०] जिसकी आशा भविष्य में की जाय।

उपाश्रय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मतवाला हाथी। मत्त हाथी। हला०।

उपास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनशन व्रत। भोजन त्याग। लंघन। फ़ाका। उपवास।

उपासक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सेवा करने वाला शूद्र। द्विज-दास।

उपास—संज्ञा पुं० [?] पर्य्या०—चाँदुल, चाँदकुड़ा, सापसुंडी (मरा०)। नेट्टविलमरम् (ता०)। जक्कुम्रि (कना०)। अरय-अंगेली (मल०)।

दी उपास ट्री The upastree (अं०)। ऐण्टिएरिस टॉक्सिकेरिया Antiaris toxicaria, *Lesch.* (ले०)। ऐण्टियार वेनेनो Antiar venenaeux (फ्रां०)।

अश्वत्थ वर्ग

(*N. O. Urticaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—डेक्कन पेनिन्सुला, यवद्वीप तथा लंका······ ।

वर्णन तथा गुणादि—यह एक प्रकार का विष वृक्ष है। यह यवद्वीप तथा उसके निकटस्थ स्थानों में उपजता है। इसे 'ओंकार' या 'उपास' कहते हैं। इसका दैर्घ्य ८०-९० फीट होता है। इसकी सर्वोच्च शाखामें स्त्री-पुष्प और अधः शाखा में पुं पुष्प निकलता है! त्वक् अत्यंत स्थूल होती है। उसमें अस्त्राघात लगाने से निर्यास निकलता है। यह निर्यास अतिशय विषाक्त है। कण मात्र जीव देह के शरीर में छिद जाने से तत्क्षण समग्र शरीर में विष व्याप्त होकर प्राणविनाश करता है। यवद्वीप के अधिवासी अपने शर के अग्रभाग पर यह गोंद लगा उस तीरको शत्रु पर फेंकते हैं। जिसे वह शर लगता है, उसकी अवश्य मृत्यु होती है।

संज्ञा पुं० [सं० उपवास] उपवास।

उपास-ट्री-[अं०] दे० "उपास"। फॉ० इं०।

उपासा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सेवा। ख़िदमत।

उपासित-वि० [सं० त्रि०] जिसकी सेवा की गई हो। पूजित।

उपास्तमन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सूर्यास्त। सूरज डूबने का काल।

उपास्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अस्त्रोपकरण। छोटा औजार।

उपास्थि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोमलास्थि। कुर्री। यह प्रायः तीन प्रकारकी होती है। क्षणिक, स्थायी और आकस्मिक। (१) इसमें जीव के देह की प्रथम अवस्था में जो अस्थि के स्थान में देख पड़ती है उसे 'क्षणिक' कहते हैं। (२) सन्धि अथवा अस्थिके संयोग-स्थान में उत्पन्न होनेवाली उपास्थि 'स्थायी' कहलाती है। (३) समूहरूपमें निकलनेवाली उपास्थि के समावेश की 'आकस्मिक' संज्ञा है।

उपास्थिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली। कंटक रहित कंकालवाली मछली।

उपाहार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०]लघ्वाहार। हलका। भोजन। फलमिष्ठान्नादि।

उपाहित-वि [सं० त्रि०] आरोपित। रोपण किया हुआ। लगाया हुआ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अग्न्युत्पात। आग जनित उपद्रव।

उपाक्षका नाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अक्षकोर्ध्व त्वगीयानाड़ी। (Supraclavicular nerve)

उपाक्षिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अक्षिके ऊपर की।

उपांशु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जाप विशेष। (२) मौन। अनुच्चारण।(३)आटरूष वर्गीय एक पौधा।

वि० [सं० त्रि०] निगूढ़। छिपा हुआ।

अव्य० [सं०] चुपचाप। अप्रकाश।

उपांशुक्रीड़ित-वि० [सं० त्रि०] निर्जन में क्रीड़ा किया हुआ।

उपांशुयाज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यज्ञविशेष।

उपांशुवध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निर्जन में किया हुआ वध।

उपुदली-[मल०](Ruellia prostrata, *Lamk.*)

उपुयोमा-[ते०] भार-बं०। कामो-सिंध।

उपेक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आक। मदार।

उपेत-त्रि० [सं० त्रि०] (१) उपागत। समीप आया हुआ। (२) गर्भाधान के लिए स्त्री के पास आया हुआ।

उपेति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्राप्ति। पहुँच।

उपेतृ-वि० [सं० त्रि०] (१) समीपगन्ता। समीप जानेवाला। (२) आक्रामक। आक्रमण करनेवाला।

उपेनित-वि० [सं० त्रि०] अन्तर्गत किया हुआ। जो भीतर किया गया हो। अन्तर्निहित।

उपेन्द्रवज्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का छन्द ।

उपेप्सा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्राप्ति की इच्छा ।

उपेय–वि० [सं० त्रि०] (१) उपाय साध्य । तदवीर से सिद्ध होनेवाला । (२) गम्य । जाने योग्य । (३) प्राप्तव्य । मिलने योग्य ।

उपेक्षक–वि० [सं० त्रि०] उपेक्षा करनेवाला । बे परवाह ।

उपेक्षण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उपेक्षणीय, उपेक्षित, उपेक्ष्य] (१) त्याग करना । छोड़ना उदासीन होना । (२) घृणा करना ।

उपेक्षणीय–वि० [सं० त्रि०] त्याग करने योग्य ।

उपेक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उदासीनता । विरक्ति । त्याग । (२) अनादर । घृणा । तिरस्कार ।

उपैना–वि० [?] नग्न । उघार । जो ढका न हो ।

उपोढ़–वि० [सं० त्रि०] (१) निकटस्थ । समीपस्थ । (२) विवाहित । ब्याहा हुआ । (३) उपगत । पास लाया हुआ । (४) सुसज्जित । ठीक किया हुआ ।

उपोती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपोदकी । पोय ।

उपोत्तम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अन्त तक मिला हुआ । जो अन्त में हो ।

उपोत्थित–वि० [सं० त्रि०] ऊपर को उठा हुआ ।

उपोदक–वि० [सं० त्रि०] उदक समीपस्थ । जल के पास स्थित ।

उपोदका(की)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पोय । पोयी । (Basella alba, *Linn.*)

उपोदकी, क्षुद्र–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी पोय । रा० नि० ।

उपोदय–अव्य० [सं०] सूर्योदय के समय । तड़के ।

उपोदि(दी)का–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पोय । पोई । च० सू० २ अ० ।

उपोदिका तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] क्षुद्र रोग में प्रयुक्त एक प्रकार काउपोदिकी का तेल । योग—पोय, सरसों, नीम, केले का फूल और सेंधानमक, इनके कल्क तथा लघु कुम्हड़े के क्षारीय जल के साथ सिद्ध किया हुआ तैल पाददारी (बिवाई) को नष्ट करता है । यो० र० क्षुद्र रो० चि० ।

उपोदिकाद्य-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "उपोदिका तैल" ।

उपोद्ग्रह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्ञान । समझ ।

उपोद्बलक–वि० [सं० त्रि०] दृढ़ करनेवाला ।

उपोद्बलन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उभार । उत्तेजन । उद्दीपन ।

उपोद्घात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आरम्भ । (२) उपक्रम । दीबाचा । भूमिका ।

उपोष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपवास । फाका ।

उपोषण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [त्रि० उपोषणीय, उपोषित, उपोष्य] उपवास । निराहार । व्रत । फ़ाक़ा । अनशन ।

उपोषध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बौद्ध शास्त्रोक्त एक प्रकार का व्रत ।

उपोह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] संग्रह । एकत्रीकरण ।

उपोह्यमान्–वि० [सं० त्रि०] आरम्भ किया जानेवाला । जो शुरू किया जाय ।

उप्त–वि० [सं० त्रि०] बोया हुआ (धान्य) । कृत वपन ।

उप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वपन । बोआई ।

उप्प–[मल०] लवण । नमक ।

उप्प द्रावकम्–[मल०] उदहरिकाम्ल । नमक का तेज़ाब । लवणाम्ल ।

उप्पम–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास । यह मदरास, प्रांत के तिनावली और कोयम्बटूर ज़िलों में होती है ।

उप्पी–संज्ञा स्त्री० [?] एक भारतीय वृक्ष जो आदमी के क़द के बराबर होता है । कोई-कोई इससे भी अधिक ऊँचा होता है । इसमें चील के नाखून की तरह के काँटे लगे होते हैं । पत्ते मोतिया के पत्तों की तरह, पर उनसे किसी भाँति छोटे और मोटे होते हैं । स्वाद तीव्र होता है । फल इसका गोल और सफेद मोती की तरह होता है और चार-चार दाने बराबर लगे होते हैं । क्रम इस प्रकार होता है, कि प्रथम शाखा होती है और चार काँटे, पुनः शाखा और कंटक चतुष्टय

इसी प्रकार अंत तक काँटे, पत्ते, फूल और फल लगे होते हैं। इसकी दो जातियाँ हैं। एक सफ़ेद और दूसरी श्याम। सफ़ेद क़िस्म को 'तलाउप्पी' और कृष्ण को 'नल्ला उप्पी' कहते। फल स्वाद में मीठा और तेज़ होता है। सफ़ेद का फल किसी प्रकार खारापन और कसेलापन लिए भी होता है।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष है।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—कृष्ण भेद शुक्रप्रमेह, मूत्रदोष और वस्तिदोष में उपकारी है तथा पित्त उत्पन्न करता है। श्वेत भेद, ज्वर, कफ सर्दी तथा पित्त का नाश करता है। यदि रोगी से बदपरहेजी भी हो जाय, तो भी इसका प्रयोग हानिकर नहीं। यह रोगी की मातृवत् रक्षा करता है। समग्र शरीर एवं हड्डियों की वेदना का निवारण करता है। अनुभवी मनुष्य कहते हैं कि इसके श्वेत भेदकी जड़ और छालपरमोपयोगी है। शिशुओं के उदरशूल और रक्तदोष तथा फोड़े फुंसियों के लिए यह परमोपकारी है। यह सूजाक को भी आराम पहुँचाती है। (ख० अ०)।

उप्पु-[ता०, ते०. कना०] नमक। लवण।

उप्पुटी-[मल०] बनी (बं०)। तीवर (मरा०)। (Avicennia officinalis, *Linn.*) The white mangrove फा० इं० ३ भ०।

उप्पु-दिरावकम्-[ता०] लवणाम्ल। नमक का तेज़ाब। उदहरिकाम्ल।

उप्पुसंग-[ते०, मदरा०] रुद्रवंती। रुद्रन्ती।

उप्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह खेत जो बोया जाने को हो। वह खेत जो बोने योग्य हो। वपन क्षेत्र। रा० नि० व० २।

उक़रक कुद्दूस-[?] नकछिकनी।

उ़फ़ूनत्-[अ०] (१) उपसना। सड़ना गलना। सड़ाँध। (२) दुर्गन्ध। बदबू। दे० "अफ़न्"।

उ़फ़ूनतुद्दम-[अ०] एक प्रकार का रक्त-विकार जो हरारत ग़रीबा के प्रभाव से ख़ून में उत्पन्न हो जाता है, जिससे उसकी ख़ासियत, स्वाद और गंध प्रभृति में परिवर्तन आ जाता है। रक्तदोष। (Septicemia, septemia)

उ़फ़ूसत्-[अ०] (Astringency) कषाय। कसेलापन। कसाव।

उफ़्क़ः-[अ०] वह खाल जिसे ख़तने के समय काटते है। शिश्नाग्रत्वचा। (Prepuce)

उबकना-क्रि० अ० [ओकना या उबाक] क़ै करना।

उबकाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० ओकाई] उबाँत। मतली। क़ै।

उबटन-संज्ञा पुं० [सं० उद्वर्त्तन, पा० उब्बट्टन] शरीर पर मलने के लिये सरसों, तिल और चिरौंजी आदि का लेप। बटना। अभ्यंग। अंगराग। यथा—

(१) सिरस, लामज्जक तृण, नागकेशर, और लोध की मालिश करने से त्वग्दोष तथा स्वेद (पसीने) का नाश होता है।

(२) प्रियंगु, लोध, खस और चन्दन का लेप करने से शरीर की दुर्गन्ध नष्ट होती है। वृ० नि० र० मेद०।

उबटना-क्रि० अ० [सं० उद्वर्त्तन, पा० उब्बट्टन] अङ्गराग लगाना। उबटन लगाना। उबटन मलना।

उ़बद-[अ०] एक सुगंधित पौधा।

उ़बब-[अ०] दे० "अबब्"।

उ़बर-[अ०] उ़क़ाब।

उ़बरब्-[अ०] सुमाक़।

उ़बरबियः-[अ०] सुमाक़ियः।

उ़बरी-[अ०] बेर का पेड़ जो नहरों के किनारों पर जमता है।

उ़बरू-[यू०] बर्तानी।

उ़बरूनास-[यू०] दे० "उ़बरूस़"।

उ़बरूनी-[?] ख़ुन्स़ा।

उबलना-क्रि० अ० [सं० उद्=ऊपर+वलन=जाना] ऊपर की ओर जाना। आँच वा गरमी पाकर पानी दूध आदि तरल पदार्थों का फेन के साथ ऊपर उठना। उफनना। उफनाना। उफड़ना। उफान खाना।

उ़बस़-[अ०] तुलसी।

उ़बस-[?] शाबानक़। शाहबानक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उ़बादिलान्-[अ० द्वि० व०] मुष्कौ (सं०) । दोनों अंड । (Testicles)

उबाल-संज्ञा पुं० [हिं० उबलना] आँच पाकर फेन के सहित ऊपर उठना । उफान ।

उबालना-क्रि० स० [सं० उद्वालन, पा० उब्बालन] पानी, दूध वा और किसी तरल पदार्थ को आग पर रखकर इतना गरम करना कि वह फेन के साथ ऊपर उठ आवे । खौलाना । चुराना । जोश देना ।

उबासी-संज्ञा स्त्री० [सं० उश्वास] जँभाई ।

उबांत-संज्ञा स्त्री० [हिं०] वमन । क़ै ।

उबिठना-क्रि० [हिं०] बुरा लगना । सुखकर बोध न होना ।

उबीधा-वि० [देश०] (१) कण्टकावृत । कँटीला । (२) संलग्न । फँसा हुआ ।

उ़बुब्-[अ०] (१) पानी वा क़ारोरे पर उठे हुए बुलबुले (Bubbles) । (२) दे० "अबब"।

उ़बैसरान-[अ० उ़बैस़रान] वानस्पतिक वर्णन—एक उद्भिज्ज जिसका रंग मटमैला होता है और जिस पर रोआँ होता है । शाखाएँ पतली होती हैं । इसमें फल आता है । फूल पीले रंग का होता है । इसमें गंभीर सुगंधि होती है, जो बालछड़ की तरह प्रतीत होती है । बसरा में इसे बागों में लगाते हैं । सभा आदि में इसके फूलों को मेंहदी के फूलों के साथ रखते हैं । यह अत्यंत मनोहर होता है । उक्त वर्णन से यह साफ़ प्रगट होता है कि "दौना" इससे भिन्न ही पौधा है । किसी-किसी ने इसको 'क़ैसूम' समझ रखा है । किसी-किसी ने 'शीह' वा 'शजर मरियम्' बताया है । परंतु बग़दादी और मुअतमिद के लेखक ने उसे असत्य प्रमाणित किया है । अलबत्ता किसी-किसी ने बरंजासिफ़ और कैसूम से इसकी उपमा दी है । यूहन्ना अबकारियूस द्वारा संकलित अरबी एवं आंग्ल क़ामूस नामक कोष में उ़बैसरान को इकूलीलुल्जबल का पर्याय लिखा है ।

प्रकृति—द्वितीय या तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष । मात्रा-७ माशे ।

गुण कर्म, प्रयोग—सिर, दिल, दिमाग़ और आमाशय को बल प्रदान करता है, आर्त्तव का प्रवर्त्तन करता और शीतल प्रकृति वालों में कामोद्दीप्त करता है । यह गर्भधारण में साहाय्य करता है । इसके सूँघने से मस्तिष्क से शीत-वाष्प विलीन हो जाते, मस्तिष्क का शोधन होता और शीतल शिरःशूल को लाभ होता है । आर्द्रता (रतूबत) एवं श्लेष्माजन्य दंतशूल, नज़ला, सर्द ज़ुक़ाम, सिर चकराना (दव्वार व सद्र) में भी, इससे उपकार होता है । इसके आँख में लगाने से दृष्टि शक्ति बढ़ती है । हृदय तथा गर्भाशय के सम्बन्ध से होनेवाले रोगों में इसे मधु के साथ पीने से लाभ होता है । शहद के साथ योनि में इसकी पिचु-बर्त्ति धारण करने से शीतल गर्भाशय में गर्मी आ जाती है और उसकी हालत ठीक हो जाती है । इससे गर्भस्थापन होता है । यद्यपि बंध्या हो तब भी गर्भधारण के योग्य हो जाती है । (ख० अ०)

उ़बैस़ः-[अ०] (१) शुष्कीकृत पनीर । दे० "अक़ित्" । (२) सत्तू ।

उ़ब्उ़ब्-[अ०] दे० "अबब्" ।

उब्नः-[अ०] एक रोग जिसमें रोगी को प्रकृति-विरुद्ध-मैथुन अर्थात् गुद-मैथुन (गाँड़ मराने) की इच्छा उत्पन्न होती है । जब तक गुदा में कोई चीज़ प्रविष्ट न की जाय शांति नहीं मिलती । यह बीमारी प्रायः मशायख़ अर्थात् बुड्ढों को हो जाती है ।

उब्बोलु-[कना०] तोमि-तोमि (मल०) । (Flacourtia inermis, *Roxb.*)

उभड़ना-क्रि० अ० [सं० उद्भिदन । अथवा उद्भरण, प्रा० उब्भरण] (१) किसी तल वा सतह का आस पास की सतह से कुछ ऊँचा होना । किसी अंश का इस प्रकार ऊपर उठना कि समूचे से उसका लगाव बना रहे । उकसना । फूलना । (२) युवावस्था पर आना । जवानी पर चढ़ना ।

उभय-वि० [सं० त्रि०] दोनों ।

उभयकण्टका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बेर का पेड़ । बदर वृक्ष । (Zizyphus jujuba, *Lamk.*)

उभयगुण–त्रि० [सं० त्रि०] दोनों गुण रखनेवाला।

उभयचर–वि० [सं० त्रि०] स्थल-जलचर। पानी और ज़मीन दोनों जगह रहनेवाला।

उभयतः–क्रि० वि० [सं० त्रि०] उभयतस्।

अव्य० [सं०] दोनों ओर से। दोनों तरफ से।

उभयतः स्थूल-मध्य-स्फटिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Biconvex lens) उभयोन्नतोदर ताल।

उभयतःदणुत्–त्रि० [सं० त्रि०] उभयकोटिमत्। दुधारा। हरदो किनारे रखनेवाला।

उभयतोदंत-वि० [सं० त्रि०] जिसके दोनों ओर दो दाँत निकले हों। जैसे–हाथी, सूअर आदि।

उभयतोमुख–वि० स्त्री० [सं० त्रि०] द्विमुख। दो मुँहवाला।

उभयतोमुखी–वि० [सं० त्रि०] दोनों ओर मुँहवाली।

उभयतोह्रस्व––वि० [सं० त्रि०] दोनों ओर ह्रस्व स्वर युक्त।

उभय द्युः–अव्य० [सं०] दोनों दिन। हर दो बीते दिन। हर दो गुज़रे रोज़। (२) अतीत। एवं भविष्यत् दिवस। गए आए दिन।

उभयभागहर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह औषध जो ऊर्ध्व और अधः दोनों भागों को शुद्ध करे। वामक और रेचक औषध। सु० सू० ४१ अ०।

उभयलिङ्गिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Bryonia laciniosa, *Linn.*) शिवलिंगी। लिङ्गिनी। पँचगुरिया। चि० क्र० क० बन्ध्या० चि०।

उभयवत्–वि० [सं० त्रि०] उभयविशिष्ट। जिसमें दोनों रहें।

उभयविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्विगुण विद्या। धार्मिक और आर्थिक विज्ञान।

उभयव्यञ्जन–वि० [सं० त्रि०] दोनों लिङ्ग के चिह्न रखनेवाला।

उभयसम्भव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विकल्प। वहम।

उभयसुगंध-गण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वे महँकनेवाली वस्तुएँ, जिनकी सुगंध जलाने पर भी फैलती है। जैसे–चंदन, सुगंधवाला, अगर, जटामांसी, नख, कपूर, कस्तूरी इत्यादि।

उभयेद्युः–दे० "उभयद्युः"।

उभयोन्नोतोदर–वि० [सं० त्रि०] जिसका पेट दोनों ओर को निकला हो। जिसके दोनों पृष्ठ उभरे हुए हों। युग्मोन्नतोदर। युगलोन्नतोदर। (Double convex, Bi-convex.)

उभयोल्म–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Bipolar) द्विध्रुव।

उभरना–दे० "उभड़ना"।

उभाड़–संज्ञा पुं० [सं० उद्भिदन] (१) उठान। ऊँचापन। ऊँचाई। (२) ओज। वृद्धि। दे० "उभार"।

उभाड़ना–क्रि० स० [हिं० उभड़ना] उत्तेजित करना।

उभाड़दार–वि० [सं० उद्भिदन] उठा हुआ। उभरा हुआ। सतह से ऊँचा। फूला हुआ।

उभार–संज्ञा पुं० [सं० उद्भिदन] (१) उठान। ऊँचापन। ऊँचाई। (२) शारीरक में अस्थि का वह भाग जो उसके आस-पास की सतह से कुछ ऊँचा हो। कूट। पिण्डक।

उभिरिंगन–[?] कटेरी।

उभिरेङ्गणी–[गु०] बन भंटा। जंगली बैंगन। बृहती।

उमड़ा–संज्ञा पुं० [सं० आम्रातक] अमड़ा। आम्रातक।

उमडेच-फल–[मरा०] गूलर। उदुम्बर। (Ficus glomerata, *Roxb.*)

उमदना–क्रि० [हिं०] (१) उन्मादमें आना। उन्मत्त होना। (२) उत्तेजित होना।

उमर–संज्ञा स्त्री० [अ० उम्र] (१) अवस्था। वय। (२) जीवन-काल। आयु।

उमरि–[ता०] चोदुपलंग (बं०)। (Salicornia Indica, *Willah.*) दे० "उमरी"।

उमरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधा जिसे जलाकर सज्जीखार बनाते हैं। यह मदरास, बंबई तथा बंगाल में खरी मिट्टी के दलदलों के पास होता है। मचोल। (Salicornia Indica, *Willah.*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उमस–संज्ञा स्त्री० [?] आन्तरिक उत्ताप । भीतरी गर्मी ।

उमसना–क्रि० [हिं०] आन्तरिक उत्ताप उठना । भीतरी गर्मी लगना ।

उमा–संज्ञा स्त्री० [स० स्त्री०] (१) (Linum Usilatissimum, *Linn.*) अतसी । अलसी । तीसी । रा० नि० व० १६ । (२) हरिद्रा । हलदी । (३) श्री । कान्ति । शोभा । मे० मद्विक । (४) चन्द्रकांत मणि ।

उमाकट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उमाधूलि । तीसी का चूर्ण । अलसी की धूलि ।

उमाकना–क्रि० [हिं०] उत्पाटन करना । उखाड़ना ।

उमाकिनी–वि० [हिं०] उत्पाटन करनेवाली । जो उखाड़ देती हो ।

उमापति-रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाजीकरण में प्रयुक्त उक्त नाम का एक रसयोग —

काले अभ्रक को धान्याभ्रक बनाकर भाँगरे के पानी में डालें और उसमें उतना ही तुत्थ का बारीक चूर्ण और उसी प्रमाण में सोनामाखी और उतना ही भूना हुआ सोहागा भी डालें। पुन: इसमें सब का चौथाई बकरे की हड्डियों का चूर्ण और अभ्रक से अष्टमांश पारे की भस्म, गुड़, गुंजा और शुद्ध गूगल प्रत्येक अभ्रक के अष्टमांश ही डालें । पुनः बकरी के दूध, दही, घी, लेंड़ी और मूत्र से उन्हें घोटकर बेर प्रमाण की गोलियाँ बना लें । इसके पश्चात् नूतन मिट्टी के घड़े के पानी से घिसी हुई खड़िया मिट्टी का उन गोलियों पर लेप चढ़ा दें। पुन: इन्हें सुखाकर सत्वपातन कोष्ठी-यंत्र में रखकर धौंकनी से धमन करके इनका सत्व निकाल लें । यह उचित मात्रासे रोग समूहों को नष्ट करता है ।

यदि इस सत्व को त्रिफले के काढ़े की भावना दे-देकर १०० बार गजपुट की आँच दें, तो यह अभ्रक सत्व मर जाता है। यह मरा हुआ अभ्रसत्व १६ मा०, पारे की भस्म ४ मा०. शुद्ध गंधक ४ मा० और त्रिफला चूर्ण १२ मा० मिलाकर कान्त-लोह के खरल में घी और शकर अनुमान से मिलाकर एकत्र ५ पहर तक मर्दन करें । इस प्रकार करने से इस रस की सिद्धि होती है ।

गुण तथा उपयोग-विधि—१ रत्ती प्रमाण में घी और दूध के साथ सेवन करने से एक वर्ष में वृद्धता तथा वली और पलित का नाश होता और वह मनुष्य शतायु को प्राप्त होता है । र० र० स० वाजीकरणे ।

उमाप्रसादन रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वर में प्रयुक्त होनेवाला उक्त नाम का एक रस योग—

निर्माण-विधि—शुद्ध अभ्रक, पारा, गन्धक, बच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, ५ प्रकार के नमक, दोनों जीरा–इन्हें समान भाग लेकर, सम्हालू, लशुन और अपामार्ग के रस में ७–७ दिन मर्दन करके शुष्क कर लें । पुन: इसे आतशीशीशी में भर कर बालुका यंत्र द्वारा ४ दिन तक यथाविधि पाक करें । स्वाङ्ग शीतल होने पर निकाल कर रख लें। मात्रा–१ रत्ती ।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसमें से १ रत्ती पान पर रखकर मिर्च के साथ खाने से शीतज्वर का नाश होता है । इसके सेवन से तिजारी और चौथिया ज्वर भी नष्ट होते हैं ।

उमामाहेश्वर-रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वर में प्रयुक्त होनेवाला उक्त नाम का एक प्रकार का रस योग—

निर्माण-विधि—शुद्ध पारा और अभ्रक लेकर काकजंघा के क्वाथ से १ दिन मर्दन करके कजली बनाएँ। पुन: इसे दोला-यंत्र में स्वेदित करके गज-पुट में फूँक दें । फिर इसको मोर और मुर्गी के पित्तों से दो-दो पहर मर्दन करके रख लें।

मात्रा—१ माशा ।

गुण—इसे अदरख के अनुपान से खाने से ज्वर का नाश होता है ।

पथ्य—तक्र, भात और बैंगन का शाक ।

उमाशम्भु-रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रमेह रोग में प्रयुक्त होनेवाला उक्त नाम का एक रस योग ।

निर्माण-विधि—(१)शुद्ध तूतिया, शुद्ध गंधक, शुद्ध पारा इन्हें पृथक्-पृथक् समान भाग ले एकत्र बारीक पीसकर इसमें जम्भीरी के रस की ३ पुट देकर अच्छी तरह मर्दन करें । पुनः ७ बार कुक्कुट-पुट में फूँक दें । फिर इसमें छोहाड़ा, अर्क

केवड़ा, बिजौरे का रस, मुलहठी, जीरा, ईखका रस और त्रिफला इन प्रत्येक के स्वरस तथा क्वाथों की एक-एक भावना दें। फिर केलेके रसकी ३ भावना दें। इस प्रकार करने से इसकी सिद्धि होती है।

मात्रा—३-१२ रत्ती तक।

गुण—इसमें से ३ रत्ती मधु के साथ बच्चों को देने से बालरोग अधिक प्यास और दुर्बलता दूर होती है तथा अंग की वृद्धि होती है। अड़ूसे के रस के साथ देने से ७ दिन में समस्त प्रमेहों का नाश होता है। पान के रस में देने से १४,२१ वा ४८ दिनों में पुराने प्रमेहों का नाश होता है। गेहूँ के क्वाथ के साथ देने से भी हर प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

पथ्य—चावलों का भात, मक्खन, गेहूँ की रोटी और दूध।

(२) पारा और अभ्रक भस्म १-१ भाग, नीलाथोथा २ भा० इन सबको जम्भीरी नीबू के रस में ३ दिन तक घोटकर मूषा में दृढ़ बन्द करके पुट दें। इसी प्रकार जम्भीरी के रस की ७ पुट दें। फिर बिजौरा, मोथा, बहेड़ा और ऋद्धि की ४-४ भावना, अर्जुन की क्वाथ की २ और मुलहठी, मिस्री, केतकी, जीरा, केला, छोहाड़ा और चमेली के पत्ते इनके रसकी ३ भावना दें।

मात्रा—२ रत्ती।

गुण तथा उपयोग-विधि–इसे मधुके साथ देने से बालकों के शोष, सन्ताप, निर्बलता और तृषाका नाश होता है। अड़ूसा के रस के साथ सेवन करने से ७ दिन में प्रमेह का नाश होता है। बबूल के नवीन पत्र के रस में चीनी मिलाकर इसे खाने से २० वर्ष का पुराना प्रमेह ३ दिन में नष्ट होता है।

पथ्य--दूध, भात और मिस्री।

त्रिफला के चूर्ण और शहद के साथ सेवन करने से २५ वर्ष का प्रमेह नष्ट होता है। इसके ऊपर २१ दिन तक गाय के नैनू के साथ पथ्य भोजन करें। गेहूँ के क्वाथ के साथ ३ दिन तक सेवन करने से ३० वर्ष का प्रमेह नष्ट होता है। इस प्रयोग में घृत और गुड़ युक्त आहार करें। इसे ३ दिन तक शहद और ईख का रस तथा खाँड के साथ सेवन करने से देह का संताप और स्रोतों का स्फुरन नष्ट होता है। इसके ऊपर अम्ली का रस और गुड़ युक्त तथा द्राक्षादि के रस से युक्त अन्न खाना चाहिए। इसे ३ दिन तक मुनक्का और मिस्री के साथ सेवन करने से लंघन जनित शोष नष्ट होता है। भारत भै० र०।

उमियाआ–[बर० बहु०] [ए० व० उ] (Bulb or Tuber) कंद। अऊमियाआ (बर०)।

उमीह़ः–[अ०] चतुष्पद जीवों की शीतला। चारपायों का चेचक।

उ़मुक़–[अ०] गहराई। गंभीरता।

उ़मूदी–[अ०] खड़ा। सीधा। लंबवत्। इसका उलटा उफ़ुक़ी है, जिसका अर्थ व्यत्यस्त (तिर्छा वा आड़ा) है।

उ़मूर–[अ०] [अमर् का बहु०] मसूड़ा। दंतवेष्ठ।

उमूर तब्इ़य्यः–[अ०] वे पदार्थ जिनपर शरीर का अस्तित्व वा जीवन निर्भर हो, उनके अभाव में यह असम्भव हो। वे सात हैं, जैसे–(१) अर्कान वा तत्व जो शरीर के मौलिक हैं और उसकी रचना में सम्मिलित हैं। (२) अम्जिजः वा प्रकृति, शरीर में जिनकी उत्पत्ति अर्कान के संयोग से होती है। (३) अख़्लात (दोष) जो शरीर-पोषण में काम आते हैं। (४) अंग जिनकी समष्टि को शरीर कहते हैं, जो शारीर-कार्य में उपकरण का काम देते हैं और विविध शारीर-शक्तियों के केन्द्र हैं। (५) अर्वाह जिनके गर्भमें नानाभाँति की शक्तियाँ अन्तर्हित होती हैं और शरीर में संचारित होकर उसे जीवन, पोषण, संवेदन और चेष्टा इत्यादि शक्तियाँ प्रदान करती हैं। (६) क़ुवा वा शक्तियाँ (चाहे वह तब्ई़ हो वा हैवानी वा नफ़्सानी) जिनके द्वारा नाना भाँति के शारीरिक कार्य संपादित होते हैं। (७) अफ़्आ़ल अर्थात् शरीर के विभिन्न कार्य्य।

उमेठन–संज्ञा स्त्री० [सं० उद्वेष्टन] ऐंठन। मरोड़। पेंच। बल।

उम्–अव्य० [सं०] (१) रोष। गुस्सा। (२) अङ्गीकार। (३) प्रश्न। सवाल।

उम्दतुल् फ़क़रात्–[अ०] (Vertebral column) सुषुम्नाकांड।

उम्दतुल् मिन्ख़रीन-[अ०] (Septum nasi) नाक के नथुनोंके बीच का वह परदा जो उन दोनों के बीच में दीवार के रूप में स्थित है।

उम्पाशालि-
उम्पिकाशालि- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

एक प्रकार का शालिधान।

गुण—मीठा, चिकना, सुगंधित और कसेला तथा रूक्ष, पित्तनाशक, कफनाशक और वातनाशक है। रा० नि० व० १६।

उम्पास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] व्रीहि धान्य। ध० नि०।

उम्बर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गूलर का पेड़। उदुम्बर वृक्ष। ऊमर।

गुण—चिकना, मधुरादि गुणयुक्त, उष्णवीर्य, कफपित्तकारक और भारी है। वा०।

उम्बली-[बम्ब०] कम्बल। कुम्बल।

उम्बिका-
उम्बी- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(१) अजवाइन। यमानी। (२) तृणाग्नि में भूनी हुई गेहूँ वा जौ की अधपकी बाल।

गुण—कफकारक, बलकारक, हलकी और वात पित्तनाशक है। भा०।

उम्बो-संज्ञा स्त्री० [देश०] हुम्बु (पं०)। उम्बु (पं०, लाहौर)।

उम्बु-[पं०, लाहौर] शलकट काठी (पं०)।

उम्बूबः-[अ०] [बहु० उम्बूब वा अनाबीब] (Cannula, Tube.) माशोरः। नलको। नली। छूछी। पोर।

नोट—ट्यूब शब्द प्रायः ऐसी नली के लिए प्रयोग में आता है जो व्रणों में पूयनिःसारण हेतु काम में आती है।

उम्बूबहे मिअ्दियः-[अ०] रबड़ की लचकदार नाली जो मुँह के राह मेदे में प्रविष्ट की जाती है और उसके द्वारा आमाशय प्रक्षालित व शुद्ध किया जाता है। (Stomach-tube)

उम्बूबहे मिक़्तरियः-[अ०] (Dropper) चाँदी का छूछी के आकार का एक उपकरण जो विंदुपातन के काम में आता है अर्थात् जिसके द्वारा कान, नाक, इत्यादि में दवा टपकाई जाती है।

उम्म-[अ०] [बहु० उम्महात वा उम्मात] (१) मूल। जड़। (२) माता। माँ। (Mother.)

उम्म कुल्बः-[अ०] (Fever) ज्वर। बुखार।

उम्म ख़तूर-[अ०] एक प्रकार का मांसाशी चतुष्पद जीव। लकड़बग्घा।

उम्म ग़लीज़्-[अ०] (Duramater) मस्तिष्क वाह्यावरण।

पर्य्या०—उम्म जाफ़ियः। उम्म सफ़ीक़। उम्म सुल्ब। ग़िशाउस्सुल्ब।

उम्म ग़ौस्-[अ०] टिड्डी। मलख़ (फ़ा०)।

उम्म जाफ़ियः-[अ०] दे० "उम्म ग़लीज़्"।

उम्मजीन-[अ०] गिर्गिट। कृकलास।

उम्मते गिडा-[कना०] श्वेत धुस्तूर। सफ़ेद धतूर। (Datura alba, *Linn.*)

उम्मत्त-[मल०] श्वेत धुस्तूर। सफ़ेद धतूर का पौधा। (Datura alba, *Linn.*)

उम्म दिमाग़-[अ०] (Meninges) मस्तिष्कावरण। दिमाग़ के पर्दे।

पर्य्या०—अग़्शियतुद्दिमाग़। सहाया।

उम्म नाफ़ः-[अ०]

उम्मम्-[मल०] दे० "उम्मत्त"।

उम्मर-[मरा०] गुल्लर। गूलर। (Ficus glomerata, *Roxb.*) दे० "गूलर"।

उम्म रक़ीक़-[अ०] वह कोमल एवं पतली झिल्ली जो मस्तिष्क के ऊपर लिपटी रहती है। मस्तिष्क मध्यांतरावरण। उम्म लयियन (Arachnoid, Piamater.)

नोट—उम्मरक़ीक़ में वस्तुतः दो पर्त्त वा स्तर होते हैं। एक ऊर्द्ध और दूसरा अधः। ऊर्ध्व अर्थात् ऊपरी पर्त को आधुनिक तिब्बी परिभाषा में अंकबूतियः और डॉक्टरी में अरक्नॉइड, तदनुसार अधः पर्त वा निचली झिल्ली को उम्म हनोनः वा उम्मुल् हाम और अँगरेजी में पायामेटर कहते हैं।

उम्म रास-[अ०] सिर की चोटी। चँदिया।

उम्म रिसालः-[अ०] धेनुक। हरगीला पक्षी। उम्मुज्जनः (अ०)।

उम्म वज़्उल्कबिद्-[अ०]

उम्म सफ़री-[अ०] अमरूद । जामफल ।

उम्म.हनौनः-[अ०] उम्म रक़ीक़ के दूसरे पर्त का नाम । दे० "उम्मरक़ीक़" ।

उम्म .हफ़्स़ः-[अ०] कुक्कुटी । मुर्ग़ी । (A hen)

उम्मह.बीं-[अ०] गिर्गिट । कृकलास ।

उम्म .हल्क़म्-[अ०] (१) कंठ की माता । मादरे .हलक़ । (२) प्राचीन प्रेमोपासक अरब निवासियों की परिभाषा में एक परी का नाम है । उनके विश्वास के अनुसार प्रतिश्याय वा नज़ला व ज़ुकाम का उत्पन्न करदेना अथवा उसे निर्मूल का देना उसी के हाथ में था ।

उम्म .हैदान-[अ०] धेनुक । हरगीला पक्षी ।

उम्मी-संज्ञा स्त्री० [सं० उम्बी] गेहूँ वा जौ की कच्ची बाल जिसमें से हरे दाने निकलते हैं ।

उम्मुज्जनः-[अ०] दे० "उम्मरिसालः" ।

उम्मुज्जलूद-[अ०] एक प्रकार का घोंघा ।

उम्मुत्त्आम्-[अ०] (१) गेहूँ (Triticum Sativum, *Lam.*) । (२) आमाशय । मेदा । (Stomach.)

उम्मुद्दम-[अ०] (Aneurism) धमन्यर्बुद । दे० "अबूरस्मा" ।

उम्मुल् कल्ब-[अ०] एक बूटी जो रबी वा मौसम बहार में उत्पन्न होती है । यह एक हाथ ऊँची और पिलाई लिए होती है । इसके पत्ते मेंहदी के पत्तों की तरह, पर उनसे किसी भाँति चौड़े होते हैं । इनके किनारे गोल और खुरदरे होते हैं । फूल पीले रंग का होता है । इसमें से ख़राब गंध आती है । जब वायु चलती है, तब इससे अत्यंत अहृद्य गंध निकलती है । मिश्र देश में यह खेतों में उत्पन्न होती है । अरब में भी यह बहुत होती है ।

गुण, क्रम, प्रयोग—यह साँप और बिच्छू के विष के लिए गुणकारी है । पागल कुत्ते के काटे में भी इससे उपकार होता ।

प्रयोग-क्रम इस प्रकार है—इसको कुचलकर रस निचोड़ लें । इस रस की मात्रा ६ मा० है । यदि रस न निकले तो ७मा० इसके सूखे पत्ते लेकर पीस-छानकर बारीक चूर्ण प्रस्तुत करें । पुनः उक्त रस वा चूर्ण का जैतून के तेल के साथ खा लें । इससे संपूर्ण विष क़ै की राह निकलकर वेदना जाती रहेगी । बिना रोगन ज़ैतून के इसका उपयोग वर्जित है । (मख़्ज़न, शरह मुफ़्रिदात क़ानून)

उम्मुल् ख़बाइस्-[अ०] (१) बुराइयों की माँ । पापों की जननी । (२) मद्य । शराब ।

उम्मुल् ख़लूल्-[मिश्र०]एक प्रकार की कौड़ी ।

उम्मुल् जलूद्-[अ० एक प्रकार का घोंघा ।

उम्मुल् .हजामः-[अ०] उल्लू (An owl.) । उम्मुस्सि.सब्यान (अ०) ।

उम्मुश्शयातीन-[अ०] दे० "उम्मुस्सि.सब्यान" ।

उम्मुस्सि.सब्यान्-[अ०] (१) उल्लू पक्षी । (An owl.) । (२) एक प्रकार की मृगी जो बहुधा शिशुओं को होती है । इसमें शिशु के हाथ पैर में ऐंठन होती है, उसकी आँख की पुतलियाँ ऊपर को चढ़ जाती हैं । कभी इसके साथ तीव्र पैत्तिक ज्वर भी होता है । इसी से किसी-किसी ने इसको पित्तापस्मार (सफ़रावी मृगी) नाम से भी अभिहित किया है । उम्मुश्शयातीन । स़रअ़ इत्.फ़ाल । शिश्वपस्मार । इन्फैण्टाइल् कन्वल्शञ्ज Infantile convulsions(अं०) ।

नोट—एलोपैथी में इस रोग का समावेश स़रअ़ अर्थात् मृगी में नहीं, प्रत्युत तशन्नुज के अंतर्गत होता है । उम्मुस्सि.सब्यान और स़रअ़ के भेद के लिए दे० "स़रअ़" ।

उम्मेत्त-[ते०] श्वेत धुस्तूर । सफ़ेद धतूर । (Datura Alba, *Linn.*)

उम्मेत्त पुव्वु-[ते०]धतूरे की कच्ची कली व फूल । धरभूलो ।

उम्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अतसी क्षेत्र । तीसी का खेत । Field of Linseed (Linum utilatissimum) । (२) हरिद्रा क्षेत्र । हलदी का खेत । भ० । द्विरूपाक्षरकोषः । (३) भूमि भेद ।

उम्र-संज्ञा स्त्री० [अ० उ़म्र] (१) अवस्था । वयस । (२) जीवनकाल । आयु ।

उ़म्र-[अ०] दे० "उम्र" ।

उर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० उरस्] (१) वक्षस्थल, छाती। सीना। (२) हृदय। मन। चित्त।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेष। मेढ़ा। भेंड़।

उरई–संज्ञा स्त्री० [सं० उशीर] उशीर। खस। (Andropogon muricatus, *Retz.*)

उ़र्ड़र्-[अ०] (१) नाक के नथुनों के बीच का पर्दा (Septum nasi)। (२) पेड़ू। (३) योनि-बहिर्द्वार-प्रांत।

उरग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० उरगी] साँप। (A serpent.)

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सीसक। सीसा। (Plumbum) lead. मद० व० १४। रस० र० वृ० चि० एकादशायस। (२) नागकेशर वृक्ष। (३) अश्लेषा नक्षत्र।

उरगगृह्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सर्पगृह। साँप की बाँबी।

उरगप्रतिसर–वि० [सं० त्रि०] वैवाहिक अंगुरीयक (अँगूठी) के स्थान में सर्प रखनेवाला।

उरगराज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वासुकी नाम का सर्प।

उरगलता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागवल्ली। पान। (Piper betle, *Linn.*)

उरगसारचन्दन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक किस्म का सन्दल। चन्दन विशेष। वह चन्दन जिसमें साँप लिपटता है।

उरगस्थान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] साँपों के रहने की जगह। पाताल।

उरगादि–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

उरगारि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) क्रौञ्च पक्षी। (Ardea jaculator)। (२) गरुड़।

उरगाशन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गरुड़।

उरगिनी, उरगी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०](A female snake.) सर्पिणी। नागिन। साँपिन। मादा साँप।

उरगेन्द्र–संज्ञा पुं० दे० "उरगराज"।

उरगेन्द्र सुमन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नागकेशर। (Mesua ferrea *Linn.*) भा० म० ४ भ०। "व्योषाम्भोद दलोरगेन्द्र सुमनः"।

उरङ्ग, उरङ्गम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सर्प साँप। (A serpent.) अ० टी० रा०। (२) नागकेशर।

उरच्छ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुन्द्र। गोँदपटेर। गुजेना। भा० पू० १ भ०।

उरच्छदा–वि० स्त्री० [सं० उरःच्छदा] दे० "उरःच्छदा"।

उरच्छादनी–वि० स्त्री० [सं० उरःच्छादनी] दे० "उरःच्छादनी"।

उरज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्तन। पयोधर।

उरजात–संज्ञा पुं० [सं० उरोज] स्तन। पयोधर।

उरजात–[फ़ा०] चीना धान।

उरण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भेड़। मेढ़ा। मेष। अम०। (२) चकवड़। पमाड़।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रौप्य। चाँदी। (Argentum) silver.

उरणक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मेष। भेड़ा। (२) बादल।

उरणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भेंड़। भेड़ी। मेषी। (An ewe.)

उरणाख्य–
उरणाख्यक–
उरणाक्ष–
उरणाक्षक } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दद्रुघ्न वृक्ष। चकवँड। (Cassia alata) अ० टी० स्वा०। श० र०। (२) अमलतास। आरग्वध वृक्ष। (Cassia fistula, *Linn.*)

उरद–संज्ञा पुं० [सं० ऋद्ध, पा० उद्ध] [स्त्री० अल्पा० उरदी] उड़िद, उड़द, उरिद, उरुद, उर्द, ठिकिरी (हिं०)। (माष), धान्यमाष, कुरुविन्द, वृषाकर, मांसल, बलाढ्य, पित्र्य, पितृजोत्तम (ध० नि०), माष, धान्यवीर (रा० नि० १६ व०), बीजरत्न, बल्ली, कुरुविन्द, धान्यधार, कृषाकर, मांसल, बलाढ्य, पित्र्य, पितृभोजन (सं०)। माषकलाय (बं०)। फेसीओलस रेडिएटस Phaseolus radiatus, *Linn.* (ले०)। हैरिकाट रेडी Haricot radie (फ्रां०)। श्राफ्रुख़्टिगे बोहन Strahfruchtige bohne (जर०)।

उलंदू मिनुमुली। पट्चै प्यरी, पन्न्य पियरी (ता०)। मिनुमुलु, कर्रुमिनुमूला, पट्स पेसलू (ते०)। उद्दू, हसारू (कना०)। चेरु कोड्यार, उड़िद (मरा०)। उंडू (का०)। उड़िद (बम्ब०)। उलुन्तु (मल०)।

शिम्बी वर्ग

(*N. O. Legumiosae.*)

उत्पत्ति-स्थान—भारतवर्ष में सर्वत्र इसकी खेती होती है।

वानस्पतिक वर्णन—एक प्रकार का पौधा जिसकी फलियों के बीज या दाने की दाल होती है। इसके एक-एक सींके में सेमकी तरह तीन-तीन पत्तियाँ होती हैं। बैंगनी रंग के फूल लगते हैं। फलियाँ ३–४ अंगुल की होती हैं और गुच्छों में लगती हैं। फलियों के भीतर ५–६ लंबे गोल दाने होते हैं जिनके मुँह पर सफ़ेद बिंदी होती है। उरद दो प्रकार का होता है—एक काला और एक हरा जिसको 'कचिया' उरद कहते हैं। यह भादों क्वार में बोया जाता और अहगन पूस में काटा जाता है। काले उरद प्रायः बरसात के शुरू में बोये जाते हैं और सावन भादों में पकते हैं। हरे दरद भी उसी प्रकार बोये जाते हैं और क्वार-कार्तिक में पकते हैं। कच्चे उरदों को भी कहीं वसंत ऋतुमें बोते और बैसाख में काटते हैं। उरद के लिये बलुई मिट्टी और थोड़ी वर्षा चाहिये। सौ तोले उरदों में छप्पन तोले मैदा और सवा दो तोले तेल निकलता है। इसकी दाल खाई जाती है और पीठी से बड़े, पापड़, पकौड़ी आदि बनती हैं।

रासायनिक संघटन—इसमें एल्ब्युमिनॉइड २२.७, श्वेतसार ५५.८, तैल २.२, तंतु ४.८ और भस्म (जिसमें स्फुराम्ल होता है) ४ ४ प्रतिशत। पीले बीज के माष की अपेक्षा इसमें श्वेतसार, तैल और भस्म प्रभृति कहीं अधिक परिमाण में पाये जाते हैं।

औषधि-निर्माण—इसकी दालका यूष, माषयोनि (पापड़), माषरोटिका (झर्झरी), माषवटी, माष सूप (उड़द का जूस), माषान्न, माष तैल, स्वल्प माष तैल, माषादि मोदक।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

धान्यमाष (माष वा उड़द) मधुर, वृष्य, मेदजनक, मांस-जनक तथा बलप्रद है और वातानुबृंहण,(बृंहण), बल्य अत्यंत पुष्ट एवं भारी है। (ध० नि० ६ व०)

माष (उड़द) स्निग्ध, बहुमलकारक, शोषण, श्लेष्म-जनक, उष्ण-वीर्य और तत्काल रक्त तथा पित्त को प्रकुपित करता तथा वायुका नाश करता है। यह भारी, बलकारक, रुचिकारक, खाने में सुस्वादु और थके हुओं को सुख देने के लिए नित्य सेवनीय है। (रा० नि० व० १६)

माष (उड़द) भारी, पाक में मीठा, स्निग्ध, रुचिकारक, वातनाशक, उष्ण, संतर्पण, बल्य, शुक्रल, तथा परम बृंहण है और भिन्न मूत्र, मल, स्तन्य, मेद, पित्त एवं कफ कारक है। यह बवासीर, अर्दित, श्वास, पक्तिशूल आदि को नष्ट करता है। माष कफ पित्त कारक है........॥ (भा० पू० १ भ० धा० व०)

यह स्निग्ध, वृष्य, मधुर, बल्य तथा कफ एवं वात की अति वृद्धि करता, पाक में अम्ल, उष्ण वीर्य, शीतल और हृद्य है। (अत्रि० १५ अ०)

उड़द (माष) वृष्य, परम् वायु-नाशक, स्निग्ध, उष्ण, मधुर, गुरु, बल्य, बहुत मल को करनेवाला और शीघ्र पुरुषत्व को देनेवाला है। (च० सू० २७ अ०)

उड़द (माष) स्निग्ध है तथा बल, कफ, मल और पित्त को उत्पन्न करता है तथा रेचक, गरम, भारी, वायुनाशक, मधुर, वीर्यवर्द्धक और शुक्र निःसारक है। (वा० सू० ६ अ०)

उड़द का यूष (माष यूष)

उड़द का यूष घन, वायुयुक्त, कफकारक तथा पित्तकारकहै और पर्युषित अर्थात् बासी और खट्टा होता है। माषयूष तैल पान में प्रशस्त है। (अत्रि १३ अ०)

माषयूष भारी, वृष्य, कुछ-कुछ, वात-पित्तकारक-बहुत कफकारक और कोठे में मल विवर्द्धित करता है। (द्रव्य गु०)

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण दूसरी कक्षा में तर है। वैद्य लोग गरम बतलाते हैं, किसी-किसी ने शीतल भी लिखा है।

हानिकर्त्ता—आध्मानकारक एवं दीर्घपाकी है।

दर्पनाशक—मिर्च, अदरक और हींग।

उरद चिकना, दीर्घपाकी वा हजम होनेमें भारी, रसमें मीठा है तथा भूख बढ़ाता है। यह वायुनाशक वल्य, स्वास्थ्यसंरक्षक; अवयवों को वलप्रदान करता, कफ एवं पित्त उत्पन्न करता है, शुक्रजनन तथा स्तन्यजनन और मेदवर्द्धक है, ठंडक लाता, मग़ज को शक्ति देता और बादीके रोगों को मिटाता है। माद्दे को मूत्र से भिन्न करता है। लकवे को दूर करता, पार्श्वशूल, बावगोला और साँस की तंगी का निवारण करता है।

उरद को सोंठ के साथ औटाकर पिलाने से फ़ालिज नष्ट होता है।

अंड की जड़ की छाल के साथ उड़दको औटाकर पिलाने से गठिया निवृत्त होती है।

एक रत्ती सफेद घुँघची के चूर्ण को उरद के क्वाथ पर बुरक कर पिलाने से वात-तंतुओं में शक्ति आती है।

हकीम शरीफ़ख़ाँ बावगोला, कोलंज एवं अन्य बादी के रोगों में इसका उपयोग सत्य कल्पना के विरुद्ध समझते हैं। क्योंकि उरद वायुकारक है।

यदि ताज़ा पीसकर इसे श्वित्र पर लगाएँ और चन्दरोज इसका इस्तैमाल जारी रखें, तो बहुत लाभ हो।

इसके आटे को पानी में गूँधकर सिरपर लेप करने से नकसीर बंद होती है।

इसकी दाल पानी में उबाल कर बालों पर मलने से बाल उत्तम एवं बहुतायत से पैदा होते हैं।

ताज़ा उरदों को पानी में पीसकर शरीर पर मलने से तैयारी आती है।

उरदों से आँख की रोशनी बढ़ती है। इनको पानी में पीसकर पीने से हर प्रकार का शुक्रप्रमेह जाता रहता है।

इसका हलुआ शुक्र को सांद्र करता है। इसकी विधि यह है—उरद की धोई हुई दाल लेकर ताज़े गोदुग्ध में भिगो दें। जब समग्र दूध अभिशोषित हो जाय, तब उसे छाँह में सुखा लें। सूख जाने पर इसे पीसकर आटा तैयार कर रक्खें। इसके उपरांत इमलीके बीज भड़भूँजे की भाड़में भुनवाकर उनकी मींगी निकलवा लें। पुनः सफ़ेद मूसली और सिंघाड़ा इन सबको बराबर-बराबर लेकर कूट छानकर रखें। प्रातः काल उसमें से ३॥ तो० उक्त चूर्ण; शर्करा ३॥ तो० और घी ३॥ तोला इनका यथाविधि हलुआ तैयार कर ताज़ा खा लें। इसी प्रकार कुछ दिन खाते रहें।

उरदों का आटा पानी में गूँध लें और थोड़ा सा लवण भी उसमें मिला दें। इसकी रोटी बनाकर तवे पर एक तरफ से पकाएँ। दूसरी तरफ जिधर वह कच्ची है उधर तिल का तेल या गुलरोग़न मलें। इसे वेदनायुक्त अवयव के ऊपर रखकर बाँध दें। यदि लवण के साथ सोंठ और मैनफल भी सम्मिलित कर लें, तो और गुणकारी हो। यदि हींग की गंध अप्रिय न हो, तो थोड़ी सी वह भी समाविष्ट कर लें। यह रोटी प्रत्येक स्थलकी वेदनाको लाभ प्रदान करती है।

उरद की बेल की जड़ मदकारक है। इसको क्वथित कर पिलाने से अस्थिगत वेदना शांत होती है। शोथ तथा विद्रधि पर इसकी पुल्टिस बाँधी जाती है।

जिन फोड़ों में पीब हो, उन पर उरदों की पुल्टिस बाँधनी चाहिये।

इसकी दाल पकाकर खाने से स्त्री का दूध बढ़ता है।

पैत्तिक शोथों पर उरद को पकाकर लेप करें।

विसूचिका के दिनों में बंगाल के लोग उरद की दाल खाना अच्छा समझते हैं। पर इसके विपरीत प्रायः सभी आयुर्वेदीय ग्रंथ एक स्वर से इसे गुरु वा दीर्घ-पाकी बतलाते हैं।

उरद के आटे के बड़े तलकर मक्खन के साथ खाने से लक़वे में बादी का दर्द मिटता है।

ताज़ा उरदों को कुचलकर रस निकालें। इसे नाक में सुड़कने से अवबाहुक रोग नाश होता है।

इनको चिलम में रखकर तमाकू की तरह इनका धूम्रपान करने से हिचकी बंद होती है।

हलदी और अदरक की छाल इनको मिलाकर धूम्रपान करने से भी बड़ी फ़ायदा होता है।

नाड़कर्णी—यह अत्यन्त स्निग्ध, शीतल, सभी दालों की अपेक्षा अधिक पुष्ट, कामशक्तिवर्द्धक (Aphrodisiac) और नाड़ी बलदायक (Nervine tonic) है। इसमें केवल एक दोष यह है कि यह वायु पैदा करता है। उक्त दोष के निराकरण के लिए पकाते समय इसमें इतना हींग मिलादें, जिसमें यह सुस्वादु होजाय। अजीर्ण रोगी के लिए इसका निर्मल क्वाथ अतीव उपयोगी है। औषध में इसका आंतर और बाह्य दोनों प्रकारसे प्रयोग होता है। आमाशयिक प्रतिश्याय, प्रवाहिका, अतिसार, बस्तिप्रदाह, पक्षाघात (Paralysis), अर्श. आमवात, यकृत् के रोग और वात व्याधियों में इसके काढ़े का आंतर प्रयोग होता है और अंत के तीन रोगों में इसका बहिर प्रयोग भी होता है।

इसकी दाल शरद् ऋतु के शीत के आक्रमण से सुरक्षित रखने में भी उपयोगी है। जरायुगत विकारों में इसे भूनकर खाते हैं। साधारण पकाई हुई दाल स्तन्यजनन है। (इं० मे० मे० पृ० ६५८-९)

उरदी-संज्ञा स्त्री० [उरद का अल्पा० रूप] उरद की एक छोटी जाति। यह असाढ़ महीने में ज्वार, बाजरे, अरहर आदि के साथ बोई जाती है और क्वार-कातिक में काटी जाती है। इसके बीज वा दाने काले होते हैं। एक प्रकार की तिनपखिया उरदी होती है जा तीन पक्ष अर्थात् डेढ़ ही महीने में तैयार होजाती है।

उरनीचरा-[बर०] पिनलयतसी।

उरपृष्ठाच्छादनी पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष।

उरपृष्ठाच्छादनी प्रसृता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छाती के पीछे की बड़ी चौड़ी पेशी।

उरभ्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मेष पशु। भेड़ा। प० मु०। (२) विषधर कीट विशेष। एक प्रकार का ज़हरीला कीड़ा।

उरभ्र सारिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का वात प्रकृति का कीड़ा जिसके काटने से वातजन्य रोग होते हैं। सु० कल्प० ८ अ०।

उरमाल-संज्ञा पुं० [सं० उर+माल] रुमाल। अंगोछा।

उरल-संज्ञा पुं० [देश०] पच्छिमी पंजाब और हज़ारा की एक भेड़ जिसे दाढ़ी होती है।

वि० [सं० त्रि०] गति युक्त। चलनेवाला।

उरवल्लिक्-काय-[मल०] रीठा। अरिष्ट फल। Soap-nut (Sapindus emarginatus, *Vahl.*)

उरव्य तन्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] (Femoral nerve) और्वी नाड़ी।

उरश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] औषध। औपग। औतंश।

उरश्छदा-वि० [सं० त्रि०] जो सीने को ढाँके। जिसके द्वारा छाती ढकी जाती है। उरश्छादनी। उरःस्था। उरस्या। (Pectoral)

उरश्छदा अंतःस्था पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वक्ष को ढाँकनेवाली एक पेशी।

उरश्छदा बहिःस्था पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उरश्छादनी पेशियों में से एक।

उरश्छदा मध्यस्थापेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छाती को ढाँकनेवाली पेशियों में से एक।

उरश्छादनी-वि० [सं० त्रि०] दे० "उरश्छदा"।

उरश्छादनी लघ्वी पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Muscle Pectoralis minor) छाती को ढाँकनेवाली छोटी पेशी।

उरश्छादनी बृहती पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Muscle Pectoralis major) छाती को ढाँकनेवाली बड़ी पेशी।

उरस-वि० [सं० कुरस] (१) कुरस। फीका। नीरस। बिना स्वाद का। (२) दृढ़ एवं प्रशस्त वक्ष युक्त। मज़बूत और चौड़े सीनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० उरस्] दे० "उर"।

उरसिज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्तन। छाती। रा० नि० व० ८।

उरसिरुह्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्तन। स्त्री की छाती।

उरसिल-वि० [सं० त्रि०] प्रशस्त वक्षःस्थलवाला। भरी या चौड़ी छातीवाला।

उरसिलोमा-वि० [सं० त्रि०] वक्षःस्थल पर रोम रखनेवाला। जिसकी छाती पर बाल हों।

उरसोधन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला जीरा। स्याह जीरा।

उरस्-वि० [सं० त्रि०] श्रेष्ठ। मे०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वक्षःस्थल। छाती। अम०। (२) हृदय। चित्त।

उरस्क--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छाती। वक्षःस्थल।

उरस्कट--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बालक का यज्ञोपवीत विशेष।

उरस्तः-अव्य० [सं०] वक्षस्थल से। छाती के तर्फ़।

उरस्त्राण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वक्षस्थल की रक्षा करनेवाला। कवच। बख़्तर। छाती का तवा।

उरस्य-वि० [सं० त्रि०] हृदयजात। छाती से उत्पन्न होनेवाला।

उरस्या-वि० [सं० त्रि०] छाती की। वाक्षसी। वाक्षीया। (Pectoral)

उरस्या लध्वी पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "उरश्छादनी लध्वी पेशी"।

उरस्वत्-वि० [सं० त्रि०] उरसिल। भरी पूरी छाती वाला।

उरस्या वृहती पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "उरश्छादनी वृहती पेशी"।

उरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उरणी। भेड़ी।

उराक़्-[अ०] वह हड्डी जिस पर से मांस भिन्न कर कर लिया गया हो। अमांसास्थि। मांस रहित अस्थि। (Bare bone)

उराट-संज्ञा पुं० दे० "उर"।

उरामथि-वि० [सं० त्रि०] उरणी वा भेड़ मारवाला।

उराह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कुछ-कुछ पीले रंग का घोड़ा जिसका जानु वा घुटना काले रंग होता है। जैसे--

"उराहः कृष्णजानुस्तु मनाक् पांडुस्तु यो भवेत्"
ज० द० ३ अ०।

उरिन-संज्ञा पुं० [?] पीरुम। अइरन (बम्ब०)।

उरिमिड्डी-[ते०] वरुण। बरना। (Crataeva Religiosa *Forst.*)

उरिष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] रीठा। रीठी। फेनिल।

उरिहती-[बं०] [सं० वृहती] वृहती। बन भंटा। बयाकूर। कीलसी। बड़ी कटेरी। (Solanum Indicum.) इं० हैं० गा०।

उरी-संज्ञा स्त्री० [?] अरहवी। आरी।

उरीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कारवेल्ल। करेला। (Momordica charantia, *Linn.*)

उरु-वि० [सं० त्रि०] (१) विस्तीर्ण। लम्बा चौड़ा। (२) विशाल। चौड़ा।

संज्ञा पुं० [सं० ऊरु] (१) जँघा। जाँघ। (२) आरी। अरहवी।

उरुकाल(क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाल इंद्रायन। महाकाल लता। (Cucumis coloconthys) त्रिका०।

उरुकु-[ब्राजी०] एक प्रकारका रंजक पदार्थ जो केसरी के पौधे से प्राप्त होता है और जिसे भारतीय अमेरिकन रंग वा भोजन रंगने के काम में लाते हैं।

उरुकु प्लांट-[अं० Urucu plant] एक प्रकार का पौधा जिससे उरुक नामक रंग निकाला जाता है। केसरी। (Bixa orellana, *Linn.*)

उरुक्रम-वि० [सं० त्रि०] पादविक्षेप युक्त। लम्बे पैरों चलनेवाला।

उरुकेरा-[ब्राज़ी०] (Bixa orellana, *Linn.*) उरुकु प्लांट। दे० "केसरी"।

उरुगव्यूति-वि० [सं० त्रि०] प्रशस्त राज्य करनेवाला। जिसके खूब लंबा चौड़ा राज्य हो।

उरुगाय-वि० [सं० त्रि०] सर्वत्र गेय। सब जगह प्रशंसा पानेवाला।

उरुगूला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सर्पविशेष। एक प्रकार का साँप। अथर्व ५।१३।८

उरुचक्र-वि० [सं० त्रि०] प्रशस्त चक्र विशिष्ट। लम्बा चौड़ा पहिया रखनेवाला।

उरुचक्षु-वि० [सं० त्रि०] बड़े आँखवाला। ऋक् ८।१०।२।

उरुज़-
उरु ज़- } [अ०] चावल। बिरंज (फ़ा०)।

उरुज्मन्-वि० [सं० त्रि०] बहुभूमियुक्त। अथ० ६।४।३।

उरुज़्ज़ः-[अ०] (१) चावल। (२) यूनानी वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की तौल जो दो या चार राई वा एक चावल के बराबर होती है।

उरुञ्जिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विपाशा नाम की प्राचीन नदी।

उरुतम-वि० [सं० त्रि०] अत्यन्त प्रशस्त। निहायत वसीअ। अत्यंत विस्तृत।

उरुतर-वि० [सं० त्रि०] अपेक्षाकृत अधिक प्रशस्त। ज़्यादा लम्बा-चौड़ा।

उरुताप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अधिक उष्णता। बड़ी गर्मी।

उरुधार-वि० [सं० त्रि०] बहुवेग से निःसारित। बड़े ज़ोर से बहनेवाला!

उरुपथ-वि० [सं० त्रि०] अधिक विस्तृत। खूब फैला हुआ

उरुबिल-वि० [सं० त्रि०] बृहच्छिद्रयुक्त। बड़े छेदवाला।

उरुबुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एरण्ड वृक्ष। रेंड़ का पेड़। (Ricinus communis, *Linn.*)

उरुब्ज-वि० [सं० त्रि०] बहुजलजनक। अधिक पानी उत्पन्न करनेवाला।

उरुब्यात-[अ०] (Polipus nasi) नासार्श। बवासीरुल् अन्फ़। दे० "बवासीरुल् अन्फ़"।

उरुमत्ती-[ते०] (Crataeva religiosa, *Forsk.*) वरुण। बरना।

उरुमाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का फल शाक। मायीफल। पर्य्या०—स्निग्ध फल।

गुण—उरूमाल बृंहण, भारी, शीतल, पाक और रस में मधुर, स्निग्ध, विष्टम्भी, कफ और शुक्रकारक हैं। वा०।

उरुमित्ती-[ते०] दे० "उरुमत्ती"।

उरुमीन-[कोल०] कारी (संता०)। (Erycibe paniculata, *Roxb.*) इं० मे० प्लां०।

उरुमुण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मथुरा प्रदेश का एक पहाड़।

उरुलोक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अन्तरिक्ष। आसमान। आकाश।

उरुवक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एरण्ड। रेंड। (Ricinus communis, *Linn*) (२) रक्तैरण्ड। लाल रेंड।

उरुवलु-[कना०] एक प्रकारका पौधा। उरिगत्तिगे। नागदौन, नस्तारू (हिं०)। (Artemisia vulgaris, *Linn.*) Wormwood.

उरुवा-संज्ञा पुं० [सं० उलूक, प्रा० उलूअ] उल्लू की जाति की एक चिड़िया। रुरुआ। कुचकुचवा।

उरुवुक-
उरुवूक-
उरूवुक- } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (Ricinus communis, *Linn.*) एरण्ड। रेंड़। (२) श्वेतरैरण्ड। सफेद रेंड। अम०। र० सा० सं०। (३) उदर वृद्धि। (४) रक्तैरण्ड। लाल रेंड़।

उरुष्क-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अर्क। (२) पांशु लवण।

उरुष्य-वि० [सं० त्रि०] महादाता। बहुदानकारी। अत्यंत सखी।

उरुष्या-वि० [सं० त्रि०] रक्षणेच्छा। पनाह देने की ख़्वाहिश।

उरुष्यु-वि० [सं० त्रि०] जो रक्षा करने की इच्छा रखता हो।

उरुसत्व-वि० [सं० त्रि०] उदारात्मा। सखी।

उरुस्तम्भा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कदली। केला। (Musa sapientum, *Roxb.*)

उरुस्वन-वि० [सं० त्रि०] अत्युच्च। बहुत ऊँचा।

उरुहार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहुमूल्यहार। क़ीमती माला।

उरुक्षय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रशस्त भवन। लम्बा चौड़ा मकान।

वि० [सं० त्रि०] प्रशस्त स्थान में रहनेवाला ।

उरुक्षिति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रशस्त वा सुखद भवन । कुशादा या आराम देनेवाला मकान ।

उ़रूक़-[अ० बहु०] [ए० व० .इर्क़=रग] (१) रगें । नोट—उ़रूक शब्दका प्रयोग निम्न अर्थों में होता है-(१) धमनियाँ, (२) शिराएँ, (३) लसीका प्रणालियाँ (रसायनी) । (४) फुफ्फुसीया वायु प्रणालियाँ, (५) हरिद्रा । हल्दी और (६) तुन ।

उरूक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उलूक । उल्लू ।

उ़रूक़ कैलूसिय्य:-[अ०] क़ैलूस की रगें । वे आचूषण करनेवाली रगें जो कैलूस का आचूषण कर वक्षस्थित महा रसायनी में पहुँचाती हैं । उ़रूक़ लब्नियः । (Lacteals) वि० दे० "उ़रूक़ जाज़िबः" ।

उ़रूक़ ख़श्निनः-[अ०] (Bronchioles) खुरदरी रगें । श्वास प्रणालिका । सूक्ष्म वायुप्रणाली ।

उ़रूक़ ख़ार्जः-[अ०] वह लसीका प्रणालियाँ (उ़रूक़ जाज़िबः) जो लसीका ग्रंथियों से निकलती हैं । (Vasa Efferentia.)

उ़रूक़ ज़वारिब-[अ०] (Arteries) धमनियाँ ।

उ़रूक़ जाज़िबः-[अ०] वे बारीक-बारीक नालियाँ जो मस्तिष्क सुषुम्नकांड, अस्थि, उपास्थि (कुर्री) स्नायु, आँख, आँवल-नाल और भ्रूणावरण के अतिरिक्त समग्र मानव-शरीर में स्थित हैं । आंत्र से आहार-रस, जिसे कैलूस कहते हैं, अभिशोषण कर तथा लिम्फ (लसीका) एवं अन्य पतले द्रवों को सम्पूर्ण शरीर से अभिशोषित तथा एकत्रित कर शोणित में पहुँचाना इनका प्रधान कार्य है । अस्तु, आँतों से आहार रस (कैलूस) अभिशोषण करनेवाली रगों को "उ़रूक़ लबनिय्यः" या "उ़रूक़ कैलूसियः" (Lacteals) कहते हैं और वे रगें जो अखिल शरीर एवं आभ्यंतर अवयवों से लसीका (Lymph) प्रभृति द्रवों को अभिशोषित करती हैं, "उ़रूक लिम्फ़ावियः" या "उ.रूक़ माइयः" (Lymphatics) कहलाती हैं । इनकी बनावट भी शिराओं की तरह होती है ।

उ़रूक़ मुस्.सास:, ओइ.य्यः लिंफ़ावियः, जदावल-(अ०) ।

नोट—(१) प्राचीन हकीमों ने उ.रूक़ लिंफावियः को जदावल और सवाक़ी नाम से अभिहित किया है ।

(२) प्राचीन तबीबों ने उ.रूक़ शअ्रियः लिम्फावियः अर्थात् लसीका केशिकाओं को रवा_ज़अ् और उनसे किंचित् बड़ी-बड़ी रगों को सवाक़ी और उनसे बड़ी को जदावल लिखा है ।

(३) प्राचीन हकीमों ने रतूबत तल्लियः नाम से लसीका (Lymph) का उल्लेख किया है ।

आंग्ल पर्य्या०—उ़रूक़ जाज़.बः (Absorbants, Absorbant vessels), उ.रूक़ लिम्फ़ावियः(Lymphatics, Lymphatic vessels), .उरूक़ लबनियः (Lacteals) ।

वे रगें जो आँतों से आहार-रस-कैलूस (Chylo) अभिशोषण कर रक्त में पहुँचाती हैं, अरबी में उ.रूक़ लबनिय्यः और अँगरेज़ी में लैक्टियल्ज़ कहलाती हैं । ये रगें पारदर्शक होती हैं ।

उ़रूक़ दमिव्यः-[अ०] रक्तवाहिनियाँ अर्थात् धमनी और शिराएँ । (Blood vessels)

उ़रूक़ दाखिलः-[अ०] (१) वे लसीका वाहिनियाँ जो लसीका ग्रंथियों में आकर मिलती हैं । Vasa affrensia. (२) वह रगें जो शरीर के भीतर की ओर अर्थात् आगे की ओर स्थित हैं । जैसे, हब्ती और सफ़न हाथ, पाँव में ।

उ.रूक़ फ़ालूज़.ज-[अ०] रतनजोत ।

उ.रूक़ बैज़-[अ०] (१) मुस्तअ्.जलः । (२) बूज़ीदान । शतावर ।

उ.रूक़ मस्.सास:-[अ०] आचोषक रगें । लसीका वाहिनियाँ । उ़रूक़ मास्.सः (अ०) (Absorbants.) दे० "उ.रूक़ जाज़िबः"।

उ.रूक़ माइय्य:-[अ०] वह रगें जो लसीका का आचूषणकर रक्त में पहुँचाती है। लसीका वाहिनी विशेष। (Lymphatics.) दे० "उ.रूक़ जाज़िब:"।

उ.रूक़ मासारीक़िय्य:-[अ०] मासारीक़ी रगें। दे० "मासारीक़ा"।

उ.रूक़ लबनिय्य:-[अ०] दुग्ध स्रोत अथवा उ.रूक़ कैलूसिय्य:। चूँकि इनके भीतर दूध के समान सफ़ेद कैलूस दृष्टिगोचर होता है, इसलिए इनको उ.रूक़ लबनिय्य: कहते हैं। वि० दे० "उ.रूक़ जाज़िब"।

उ.रूक़ शअ्‌रिय्य-[अ०] बाल जैसी रगें। बाल के समान बारीक रगें। हकीमी परिभाषा में यह शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—(१) उन बारीक रगों के लिए जो आमाशय और यकृत के मध्य स्थित हैं। मासारीक़ा। (२) रक्त केशिकाएँ। उ.रूक़ सवाक़ी। (Capillaries.)

उ.रूक़ सफ़र-[अ०] दे० "मुस्तअ्‌जल:"।

उ.रूक़ सवाकिन-[अ०] (Veins) शिराएँ।

उ.रूक़ सुबातिय्य:-[अ०] नींद की रगें। यह वे दो गम्भीर धमनियाँ हैं जो ग्रीवा के दाएँ-बाएँ ओर से खोपड़ी में जाती है। Carotid arteries (अं०)।

नोट—उ.रूक़ सुबातिय: का अर्थ 'नींद की रगें' या 'निद्राजनक नाड़ियाँ' हैं। प्राचीन हकीमों का यह विचार था कि उन रगों के द्वारा एक प्रकार का द्रव मस्तिष्क में पहुँचकर नींद लाता है। इसलिये उनको इस नाम से अभिहित किया गया। किंतु यह मत ठीक नहीं। नींद मस्तिष्क में किसी द्रव के जाने से नहीं आती; प्रत्युत मस्तिष्क में खून के कम हो जाने से नींद आती है अर्थात् जब नींद आने लगती है, तब मस्तिष्क में रक्त कम हो जाता है।

उ.रूक़ .हुमर-[अ०] मजीठ। फ़ुव्वतुस्‌सब्बाग़ीन (अ०)। (Rubia Cordifolia, *Linn.*)

उ.रूक़ा-[अ०] एक द्रव्य जो ख़िज़ाब बनाने में काम आता है। असरूाश।

उ.रूक़ुज्ज़अ्‌फ़रान्-[अ०] दे० "उ.रूक़ुस्‌सुफ़्र"।

उ.रूक़ुत्तीब-[अ०] नरकचूर। ज़रंबाद। उ.रूक़ुल्‌काफ़ूर।

उ.रूक़ुल् आसफ़-[अ०] करीर की जड़। बीख़ कबर। (The root of Capparis spinosa, *Linn.*)

उ.रूक़ुल् उ.रूक़-[अ०] (Vasa Vasorum) रगोंकी रगें। वह बारीक रग जो किसी बड़ी रग के पोषणार्थ उसकी दीवार में फैलती है।

उ.रूक़ुल् काफ़ूर-[अ०] जरम्बाद। कचूर। शटी। ज़ुरंबाद। (Curcuma zedoria, *Roscoe.*)

उ.रूक़ुस्‌सब्बाग़ीन-[अ०] हरिद्रा। हलदी। ज़र्दचोब (फ़ा०)। (Curcuma longa, *Linn.*)

उ.रूक़ुस्‌सुफ़्रा-[अ०] दे० "उ.रूक़ुस्‌सब्बाग़ीन"।

उ.रूक़ुस्सूस-[अ०] मुलेठी। यष्टिमधु।

उरूची-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दूर तक फैली हुई चीज़।

उ.रूक़ुस्सुफ़्र-[अ०] हरिद्रा। हलदी। (Curcuma longa, *Linn.*)

उरूज-संज्ञा पुं० [अ० पुं०] (१) उठान। (२) शिरोविन्दु। सिमतुर्रासा।

उरूणस-वि० [सं० त्रि०] दीर्घ नासा युक्त। लम्बी नाकवाला। ऋक् ११। १४। २२।

उरूल-वि० [सं० त्रि०](१) स्थान से प्रीति रखनेवाला। (२) स्वतन्त्र। आज़ाद। (३) वृद्धिका इच्छुक।

उरूसी-संज्ञा पुं० [?] एक वृक्ष जो जापान में होता है। इसके धड़ से एक प्रकार का गोंद निकाला जाता है, जिससे रंग और वारनिश बनती है।

उ.रूह्-[अ०] दे० "आक़ुस़ार"।

उरोऽस्थि-संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] छाती की हड्डी। यह एक चौड़ी और चपटी अस्थि है जो ग्रीवा के नीचे के भाग से आरंभ होकर उदर के कौड़ी देश तक रहती है। इससे दोनों ओर पर्शुकाएँ जुड़ी रहती हैं। बहुधा इस अस्थि के तीन अंश या टुकड़े पृथक्-पृथक् पाए जाते हैं। बचपन में इसके छः टुकड़े होते हैं जो

आपसमें कारटिलेज द्वारा जुड़े रहते हैं। वृद्धावस्था में तीनों टुकड़े एक दूसरे से जुड़ जाते है और अग्र खंड जो जवानी में कारटिलेज का था अस्थिकृत् हो जाता है। वक्षोऽस्थि।

अ.ज़्मुल् क़स.स् (अ०)। उस्तख़ान सीनः (फ़ा०)। स्टर्नम् Sternum (अं०)।

उरोऽस्थिअग्रखंड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Xiphoid process) उरोऽस्थि का तीसरा नीचे का पतला खंड जो कौड़ी देश में दबाने से स्पर्श किया जा सकता है। नुतूऽखंजरी (अ०)।

उरोऽस्थि ऊर्ध्वखण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छाती की हड्डी का ऊपर का टुकड़ा जो चौड़ा और छोटा होता है। Manubrium मैनुब्रियम् (अं०)। निस़ाब, कब्ज़. (अ०)।

उरोऽस्थि पुच्छ-संज्ञा स्त्री० [सं०] उरोऽस्थि अग्रखंड।

उरोऽस्थि मध्यखंड-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Mesosternum) उरोऽस्थि का दूसरा बीच का लम्बा खंड।

उरोऽस्थि मूल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Manubrium)उरोऽस्थि ऊर्ध्वखंड।

उरोऽक्षकीय संधि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०](Sternoclavicular joint.) अक्षक अर्थात् हँसली और वक्षोऽस्थि का जोड़।

उरोग्रह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हृदय का एक रोग। दिल की एक बीमारी।

निदान और लक्षण

अत्यंत अभिष्यंदी पदार्थ, भारी अन्न, सूखा और बदबूदार मांस खाने से–मांस और रक्त के संयोग से–यकृत और प्लीहा जिस समय बढ़ते हैं, उस समय कफ और वात, कोख में जाकर "उरोग्रह रोग" करते हैं। वृद्धि वाम पार्श्व और दक्षिणांश में नहीं, अपितु बुक्क अर्थात् अग्रमांस के मध्य होती है। जिसका शिरातनुत्व बुक्क के आगे रहता है, उस रोग को ही सद्वैद्य उरोग्रह कहते हैं।

इसमें दौर्बल्य बढ़ता, अग्निमन्द हो जाती, कृशता होती, और कृष्ण वर्णत्व एवं पीतक भी उपजता है। कोई द्विजिह्वसदृश और कोई कच्छप की तरह रहता है। ज्वर, अरुचि, प्यास और सूजन का वेग भी बहुत बढ़ जाता है। नि०। कहीं-कही स्तम्भ, ज्वर, रूखापन, स्पर्श का न सह सकना, भारीपन, पेट फूलना, अरुचि, हृदय में सूजन, अधोवायु का रुकना, मल-मूत्र रुकना, तन्द्रा और शूल ये लक्षण भी उरोग्रह के लिखे हैं।

चिकित्सा

सर्व प्रथम युक्ति-पूर्वक स्वेद दिलाएँ लोह आदि की शलाका से दाग दें, फ़स्द खुलवाएँ और तीक्ष्ण औषधियोंसे निरुह वस्ति करें अर्थात् गुदा में पिचकारी करें, बलाबल अनुसार वमन, विरेचन देकर शुद्ध करें और रोग प्रतिषेधक पथ्य दें। और निम्न प्रयोग काम में लाएँ—

(१) जीयापोता, सहँजना, हुलहुल वा खिरेंटी इनमें से किसी एक का रस गरम करके, उसमें हींग और पाँचों नमक डालकर पीवें इससे उरोग्रह रोग शांत हो जाता है।

(२) निशोथ और गुड़ मिलाकर और गोमूत्र के साथ पीसकर पीने से उरोग्रह नष्ट होता है।

(३) दही, अम्लवेत, जवाखार, हींग और चीता बराबर-बराबर लेकर तेल और काँजी के साथ पीने से उरोग्रह नाश हो जाता है।

उरोघात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हृद्रोग। च० द०। दे० "उरोग्रह"।

उरोज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्तन। कुच। छाती। हे० च०।

उरापरीक्षण यन्त्र–
उरोवीक्षण यन्त्र– } संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह यन्त्र जिसे कान में लगाकर सीना, हृदय प्रभृति अंगों की परीक्षा करते हैं। उपश्रोत। (Stethoscope.)

उरोहानिकर-वि० [सं० त्रि०] (द्रव्य) जो वक्ष को हानि पहुँचाय। सीने को हानि पहुँचाने वाला (द्रव्य)।

उरंग
उरंगम– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उरङ्ग (म)"।

उर:-सज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "उरस्" ।

उर: कण्ठिका पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छाती और कंठ के मध्य की पेशो । (Muscle sterno-hyoid)

उर: कर्णमूलिका-पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छाती और कान की जड़ के बीच की पेशो । (Muscle sterno·cleido·mastoid)

उर:चुल्लिका पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष ।

उर:पञ्जर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छाती की अस्थिओं का ढाँचा ।

उर:प्रच्छदाख्य पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छाती को ढाँकनेवाली पेशी ।

उर:फलक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उरोऽस्थि ।

उर: सूत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुक्ताहार । छाती पर लटकनेवाली मोतियों की माला ।

उर:स्थल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वक्ष । हृदय । दिल । छाती ।

उर:क्षत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उरोव्रण । सीने का ज़ख़्म । छाती का घाव । (२) क्षयरोग । दे० "राजयक्ष्मा"।

उर:क्षत कास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षय कास रोग । शोष या क्षय रोग का एक भेद । सिल ।

उ़क़ूब-[अ़०] एक मोटी नस वा स्नायु जों एड़ी में स्थित है । एड़ी को नस । घोड़ नस । पै पाश्नः (फ़ा०) । टेण्डो अकिलीज़ Teudo-Achelies.

उर्ज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ओज नामक ८ वीं धातु । (Vitamin)

उजवान-[फ़ा० अर्ग़वाँ का मुअ़०]एक पेड़ जो फारस में होता है ।

उर्जान-[फ़ा०] चेना धान ।

उर्जित-वि० [सं० त्रि०] त्यक्त । छोड़ा हुआ ।

उर्ज़िय्य:-[अ़०] दूध चावल एक में पके हुये । फ़िरनी । खीर ।

उर्जौज:-[अ़०] झूला । हिंडोला ।

उर्णनाभ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मकड़ी । दे० "ऊर्णनाभ" ।

उर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भेड़ या बकरी के बाल । ऊन ।

उर्णायु-संज्ञा पुं० दे० "ऊर्णायु" ।

उर्द-संज्ञा पुं० दे० "उरद"।

उर्दपर्णी-संज्ञा स्त्री० [हिं० उर्द+सं० पर्णी] माषपर्णी । बन-उरदी । (Teramnus labiatus, *Spreng.*)

उर्दू-संज्ञा स्त्री० [?] भाषा विशेष ।

उर्द्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊदबिलाव । जल बिडाल । श० र० ।

उर्ध्व पुष्प-संज्ञा पुं० [?] जपा पुष्प । गुड़हल ।

उर्निब:-[अ़०] नासाग्र । नाक की नोक । (Tip of the nose.)

उर्बरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] व्रीहि धान्य ।

उर्बिय्य:-[अ़०] वंक्षण । (Groin, Inguin)

उर्मि-संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्मि] दे० "ऊर्मि" ।

उर्मीकफ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्रफेन ।

उ़र्य:-[अ़०] वह अवयव जो खुले रहते हैं । जैसे, हाथ, पाव, चेहरा इत्यादि ।

उ़र्त-[अ़०] गूह । लीद । गोबर । मेंगनी ।

उर्वङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पर्वत । पहाड़ । (२) समुद्र ।

उर्वज्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विस्तृत क्षेत्र । बड़ा खेत ।

उर्वट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वत्सर । साल ।

उर्वरा-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) उपजाऊ भूमि । (२) पृथिवी ।

वि० स्त्री० उपजाऊ । ज़रख़ेज ।

उर्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) व्रीहि धान्य । (२) पटसन । शण । सूत्र ।

उर्वा (ऽर्वा)-संज्ञा स्त्री०[सं०स्त्री०] शीषक। सीसा ।

उ़र्वाऽ-[अ़०] (१) ज्वर-शैत्य । कंप । झुरझुरी । (२) शीत ज्वर । कंप ज्वर ।

उर्वा(ऽर्वा)रु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ककड़ी । इर्वारु । काँकुड़ (बं०) । (Cucumis utilatissimus) भरत:, द्विरूपकोष: । रा० नि० व० १ । भा० म० ३ भ० अश्म० चि० वरुणगुड़ । (२) खरबूज़ा ।

उर्वारुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ककड़ी । रा० नि० व० ९ । (२) खरबूज़ा ।

उर्वी(र्व्वी)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पृथिवी । (२) भुजा का एक मर्म-स्थान । सु० शा० ६ अ० । (३) एक प्रकार का विकलता-कारक मर्म ।

उर्वीधर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पर्वत । पहाड़ । (२) शेषनाग ।

उर्वीभृत्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पर्वत । पहाड़ ।

उर्वीरुह्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृक्ष । पेड़ ।

उर्व्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक धमनी । (Brachial artery) सु० शा० ६ अ० श्लो० २५ ।

उ़र्श-[अ०] (१) तालवस्थि द्वय । तालू की दोनों हड्डियाँ । (२) गरदन की जड़ की रग । (३) उँगलियों के समेत पाँव का उभार ।

उल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृग विशेष ।

उलक़म-[अ०] विलायती बेर ।

उलका-संज्ञा स्त्री० दे० "उल्का" ।

उलटकटेरी-संज्ञा स्त्री० [सं० उष्ट्रकंट] ऊँटकटारा । ऊँटकटाई ।

उलटकंबल-संज्ञा पुं० [देश०] ओलट कंबल(बं०)। आलकूतंबोल (बम्ब०) । ऐब्रोमा ऑगष्टा Abroma augusta, *Lam.* ऐब्रोमा फैस्च्युओसम् Abroma fastuosum, *Gartn.* (ले०) । डेविल्स कॉटन Devil's cotton(अं०)। पीवरी ? द्रुमोत्पल? कर्णिकार? भरद्वाजी (सं०) ।

(*N. O. Sterculiaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान—उलटकंबल भारतवर्षके बहुधा उष्ण प्रधान प्रदेशोंमें संयुक्तप्रांतसे लेकर सिक्किम, खसिया पहाड़ी और आसाम पर्यन्त जंगली होता है । दर्शनीय गंभीर रक्तवर्णीय फूलों के लिए यह उद्यानों में भी आरोपित होता है ।

वानस्पतिक वर्णन—एक पौधा या झाड़ी जो हिंदुस्तान के गरम भागों में पनीली भूमि में होती है । इसकी शाखाएँ कोमल और मख़मली होती हैं । पत्ती-चौड़ी, पत्रप्रांत खंडित, पत्रपृष्ठ रोमान्वित होता है । फूल-घोर बैंगन के रंग का, अधोमुख लंबित और दल ५ विस्तृत पंजाकारहोते हैं । यह वर्षाकाल में पुष्पित होता है । फल-(बीजकोष) एक पंचकोषमय शिंबी है जो पत्ताकार पंच भागों में विभक्त होता है । पकने पर यह शीर्ष की ओर स्फुटित हो जाता है और कोषों के पंचाभ्यन्तरीय कोश खुल जाते हैं जिनमें रेशम की तरह रोमवत् रुई भरी होती है । इनके स्पर्श से त्वचा प्रदाहित होती है । प्रत्येक कोष में मूली के बीज के आकार के बहुसंख्यक काले बीज होते हैं । वृक्ष की रेशेदार छाल पानी में सड़ाकर या यों ही छीलकर निकाली जाती है । छाल सफेद रंग की होती है । पौधे से साल में दो तीन बार ६ या ७ फुट की डालियाँ छाल के लिए काटी जाती हैं । छाल को कूटकर रस्सी बनाते हैं । जड़ की छाल मोटी, रेशेदार और भूरी होती है । ताज़ी कटी होने पर इस जाति के अन्य पौधों के समान इसमें से एक प्रकार का सांद्र निर्यासवत् पदार्थ स्रावित है । जड़ के भीतर उज्ज्वल शुभ्र वर्णीय गूदा होता है । रस पिच्छिल होता है ।

रासायनिक संघटन—जड़ में एक प्रकार का (१) स्थिर तैल, (२) राल (Resins), (३) अल्प परिमाण (०·०१ प्रतिशत) में एक प्रकार का क्षारोद और (४) जलविलेय बेसेज़ होते हैं । जड़ की छाल में निर्यास मोम (Wax), एक प्रकार का अस्फटिकीय पदार्थ और भस्म (११ प्रतिशत) पाया जाता है । पर किसी प्रकार का मैंगेनीज नहीं पाया जाता ।

प्रयोगांश—जड़ और जड़ की छाल, पत्ती और प्रकांड । मात्रा-पिष्टमूल त्वक् (आर्द्र) ४ से ८ आना भर ।

इतिहास, गुण-धर्म तथा प्रयोग—प्राचीन वा नवीन किसी आयुर्वेदीय तथा यूनानी निघंटु में उलटकंबल का गुणोल्लेख दिखाई नहीं देता । किसी-किसी ने इसका संस्कृत नाम 'भारद्वाजी' लिखा है । परंतु भारद्वाजी अरण्यकार्पास को कहते हैं—अरण्य कार्पास और उलटकंबल एक ही वस्तु नहीं, प्रत्युत ये दो भिन्न पौधे हैं । वैद्यक शब्दसिंधुकार ने पीवरी नाम से इसका

उल्लेख किया है और गुणधर्म इस प्रकार लिखे हैं—

"पीवरी योषिणी सा स्यात् योनि व्यापद् विनाशनी। रजोदोष प्रशमनी प्रदराशों निवारिणी॥"

परंतु उन्होंने किसी ग्रंथ विशेषका प्रमाण नहीं दिया है। उसी ग्रंथमें 'द्रुणोत्पल' शब्दके अन्तर्गत इसका बंगला नाम ओलटकंबल लिखा है। कदाचित् ऋतुशूल में हितावह होने के कारण उन्होंने ऐसा किया है। किसी-किसी ने इसे 'कर्णिकार' भी लिखा है।

यह वृक्ष बहुमूल्य तन्तु-उत्पादक रूप से चिरकालसे ज्ञातहै।(Royles Fibrous Plants of India, *P. 267*)। ईसवी सन् १८७२ के इंडियन मेडिकल गजट में भुवनमोहन सरकार महोदय ने उलटकंबल के सद्यः निष्कासित मूल रस के रजःप्रवर्त्तिनी शक्ति की ओर सर्व प्रथम जनसाधारण का ध्यान आकृष्ट किया। उनके मत से रस की मात्रा ३० ग्रेन (१५ रत्ती) है। इसके पश्चात् डा० किर्टन (Dr. Kirton) ने उलटकंबल की पिसी हुई ताज़ी जड़ की छाल, एक ड्राम की मात्रा में शीतल जल के साथ प्रयोग करने की शिफारिश की। डा० वैट ने "डिक्शनरी ऑफ़ दी एकॉनॉमिक प्रॉडक्टस् ऑफ इंडिया" नामक अभिधान में उलटकंबल के उक्त गुण के विषय में १३ चिकित्सकों के मत उद्धृत किये हैं, जिनमें से ८ व्यक्तियों ने अनुकूल मत प्रगट किये हैं। डा० मैकलिओड लिखते हैं कि कष्टरज में यह उत्कृष्ट औषध है। इसकी ताजी जड़ की छाल कालीमिर्च के साथ पीसकर ऋतु के एक सप्ताह पूर्व से ऋतुदर्शन पर्यंत शीतल जल के साथ प्रतिदिन सेवन करें। मैंने अनेक स्थलपर विशेषतः वेदनान्वित एवं वायु प्रधान रजोरोध में इसकी उपकारिता का प्रत्यक्ष अनुभव किया है। डा० थार्नटन के अनुसार उलटकंबल की महीन जड़ १॥ ड्राम, कालीमिर्च के साथ पीसकर पीने से रजःस्राव परिमित होता है और यह गर्भाशय को बलप्रदान करता है। इस स्थान में गोलमिर्च पाचक और वायुनाशक रूप से कार्य करता है। इसे ऋतुकाल में सेवन कराना चाहिए। यह अवरोध युक्त एवं वातिक कष्टरज में उपयोगी है। डॉ० एवर्स कहते हैं कि यन्त्रणादायक कृच्छ्रजो-रोग में उलटकंबल का प्रयोग कराकर मैं कभी विफल मनोरथ नहीं हुआ। हिंदुस्तान के दक्षिण, पश्चिम प्रदेशों में उलटकंबल के पौधे इस प्रकार दृष्टिगोचर नहीं होते और ऐसा ज्ञात होता है कि वे इसके गुण से परिचित नहीं होते। (डिमक, १ म० खंड, २३३–४ पृ०)

इसकी जड़ और रस गर्भाशय बलदायक और आर्त्तव प्रवर्त्तक है। अवरोध सहित वा वातिक कृच्छ्रजो रोग वा रुद्धार्त्तव रोग में कालीमिर्च के साथ ऋतु से सप्ताह पूर्व वा ऋतु काल में इसका उपयोग होता है। हाइड्राष्टिस, वाइबर्नम (Viburnum) और पलसाटिल्ला की यह उत्तम प्रतिनिधि है। (R. N. Khory, *Vol.11., P. 102*)

इसके ताज़े पत्ते और तने का शीतल जल में तैयार किया हुआ फांट (Infusion) सूजाक में परमोपयोगी है। सरलतापूर्वक पृथक् हो सकने योग्य जड़ की मोटी छाल में होनेवाला ताजा पिच्छल रस ½ ड्राम की मात्रा में नानाभाँति के कृच्छ्रजो रोग में व्यवहृत होता है। ऋतुकाल में इसके एक बार सेवन मात्र से रोग का निवारण होता है और नवोढ़ा युवतियों में गर्भस्थापित करता है। पिच्छल रस जल में अविलेय है। इसे साधारणतः ऋतु के प्रथम दिवस से निरंतर सप्ताह पर्यंत सेवन कराते हैं। यन्त्रणापूर्व रजःस्राव की दशा में ऋतुदर्शन से दो दिन पहले से इसका व्यवहार करते हैं। (Indian Materia Medica by K. M. Nadkarni, *P. 4*)

उलटा–संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक पकवान जो चने वा मटर के बेसन से बनाया जाता है। पपरा। पोपरा। (२) एक पकवान जो आटे और उरद की पीठी से बनता है। गोफा। (३) विपरीत।

उलटी–संज्ञा स्त्री० [देश०] वमन। कै।

उलटी सरसों-संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी+सरसों] वह सरसों जिसकी कलियों का मुँह नीचे होता है। यह जादू, टोना, मंत्र-तन्त्र के काम में आती है। टेरो।

उल(लु)प-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विस्तीर्ण लता। प्रतानवती लता। जैसे-दाख, पान इत्यादि की बेल।

पर्य्या०—वीरुत्, गुल्मिनी (अ०), प्रताना (ज०), प्रतानिनी, वीरुध, वरुत् (शब्दर०) अ० टी० सा०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का कोमल तृण। खङ्ग तृण। उलुखड़ (बं०)। विश्व०। मे०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उलप तृण। चटाई की घास।

उलपतृण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "उलुप"।

उलपल भेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सीता की पंजीरी। (Anisochilus Carnosus, *Wall.*) इं० मे० मे०।

उलय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उल्लू। घुघ्घू पक्षी।

उल्लरएड-दिराक्षप-पज़्म-[ता०] अंगूर। दाख। द्राक्षा। (Ūvae)

उलवी-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की मछली जिसके पर वा पाँख का व्यापार होता है। इसके पर से एक प्रकार की सरेस निकलती है।

उला-संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्ण] भेड़ का बच्चा। मेमना।

उलिट-संज्ञा पुं० [सं०] पलाण्डु। प्याज।

उलिगड्डु-[ते०] (१) लशुन। रसोन। (२) प्याज।

उलीगड्ढ-[देश०] प्याज़।

उलीमिडी-[ते०] बरना का पेड़। वरुण वृक्ष। (Crataeva Religiosa, *Forsk.*)

उलु-[बं०] (Imperata arundinacea, *Cyrill.*) उसीद। सिरसिल। भरवी। उ० भारत।

[उ० प० सू०] उल्लह।

उलुप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उलप तृण। चटाई की घास।

उलुखड़-[बं०] उलप तृण।

उलु(लू)पी-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] शिशुक मत्स्य। सूस। सूइस।

उलुमाली-[यू०] सिह्लक के समान एक प्रकार का तरल जिसे अस्ल दाऊद भी कहते हैं।

उलुम्बा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अजवाइन। यमानी। (Carum copticum) वै० निघ०।

उलुव-[सिं०, मल०] मेथी। मेथिका। (Trigonella foenum-grœcum, *Roxb.*)

उलूक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उल्लू चिड़िया। पेचक। मे० कत्रिक। प० सु०। र० मा०। (२) एक प्रकार का दुमरहित बानर। इसका सर्व शरीर काला और भौंह सफेद होती है। कान मनुष्य की तरह होते हैं। श्रीहट्ट (सिलहट) आसाम प्रभृति स्थानों में उलूक के नाम से बोला जाता है। बैठने पर इसकी ऊँचाई १ फुट होती है। यह वृक्षों के पत्ते और फल का आहार करता है। ग्रीष्म कालमें इसे फंदामें फँसाते हैं। क्योंकि उन दिनों यह वृक्ष छोड़ कर पृथ्वी पर सोने के लिये आता है। वृक्ष पर पकड़ा जाने से आहार जल त्याग कर जीवन समाप्त कर देता है। इसके बच्चे पाले जाते हैं। और शीघ्र हिल-मिल जाते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की घास। उलप। उलुखड़ (बं०)।

पर्य्या०—सूच्यग्रः, स्थूलकः, दर्भः, जूर्णाख्यः, खरच्छदः, उलपः, उलूपः। रा०।

संज्ञा पुं० [सं० उल्का] लुक। लौ। दे० "प्रसहा"।

उलूक-[अ०] [अलक का बहुवचन] गोंद। निर्यास। (Gum or resin)

उलूकजित्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काक। कौआ।

उलूकपाद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रोग जो घोड़े के पैर में होता है।

उलूखल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ओखली। (२) खल। खरल। (३) चट्टू। (४) गुग्गुल। अम०। (५) गहरा गढ़ा। Deep-cavity, Acetabulum)। (६) दाँत का गढ़ा। च० शा० ७ अ०।

उलूखलक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "उलूखल"।

उलूखल भंग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Acetabular notch.)

उलूखल सन्धि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कक्षावंक्षण दशनसन्धि।

उलूखलसुत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उलूखल द्वारा अभिषुत सोमरस। ऋक् १।२८।१।

उलूखलिक-वि० [सं० त्रि०] उलूखल में कूटा हुआ।

उलूटकण्ट, उलटकण्ट-[कुमायूँ] करण्डेर, बेर (पं०)।

उलूत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अजगर की जाति का एक प्रकार का साँप।

उलूपी-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मछली (नाममाला)।

उलूस्राज़ी-[यू०] एक प्रकार का वृक्ष जो श्याम देश में होता है। इसके तने और कभी फूल से एक प्रकार का तेल प्राप्त होता है, जो शहद की तरह गाढ़ा होता है और कुछ-कुछ सिलारस के समान होता है। स्वाद में यह थोड़ी मिठास लिए होता है। इसे 'असले दाऊद' भी कहते हैं। सर्वोत्तम वह है, जो अत्यंत गाढ़ा, स्वच्छ श्वेत एवं मधुर हो। यह जितना ही पुरातन होता है, उतना ही अच्छा होता है।

प्रकृति—यह तृतीय कक्षा में उष्ण और प्रथम में रूक्ष है। अंताकी ने द्वितीय कक्षा में तर बताया है।

हानिकर्त्ता—यह आलस्यजनक एवं निद्राकारक है।

दर्पनाशक—सिकंजबीन।

प्रतिनिधि—तज़किरा अंताकी के नुस्ख़े में अस्लुलूक़्ज़ लिखा हुआ है।

मात्रा—७ तो० तक तिगुने पानी के साथ।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह दोषों का उत्सर्ग करता है। पिच्छिलता (लज़ूजत) का संशोधन करता और नींद लाता है। ६ तो० ११ मा० यह तेल तिगुने पानी में मिलाकर पीने से आर्द्रता (रतूबत) और पित्त का मल-मार्ग से भली भाँति उत्सर्ग होता है। पर इससे निर्बलता एवं आलस्य उत्पन्न हो जाता है। इसके पीने के उपरांत उस समय तक सोना न चाहिए, जब तक कि इसका निःशेष प्रभाव न हो ले। तर खाज और संधिशूल पर इसकी मालिश करने से लाभ होता है। इसके पेड़ की शाखाओं को पानी में क्वथितकर, इस काढ़े में तिल तैल मिलाकर तैल मात्र शेष रहने तक पकाएँ। इस तैल को आँख में लगाने से धुन्ध आराम होता है और इसके मर्दन से पट्ठों का दर्द नाश होता है। (ख० अ०)

उलैक़ुल्कल्ब-[अ० उ़लैक़ुल्क़ल्ब] एक प्रकार का वृक्ष जो उलैक़ के पेड़ से बड़ा होता है। इसके पत्ते आस के पत्तों से चौड़े होते हैं। इसकी टहनियों के काँटे उ़लैक़ की शाखाओं के काँटों से कड़े होते हैं। फूल सफेद होता है। इसे फ़ारसी में 'सेहगुल' कहते हैं। फल जैतून के फल की तरह और दीर्घ एवं अपरिपक्वावस्था में हरा होता है। पकने पर यह लाल हो जाता है। इसके भीतर रूई की भाँति एक चीज़ होती है। इसे निकालकर फल औषधार्थ व्यवहार में आता है। इसकी रूई फेफड़े को हानि पहुँचाती है और अन्नमार्ग (मरी) में चिपक जाने एवं उग्र मलावरोध उत्पन्न करने के कारण, मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, अतएव सुखाकर रूई निकालकर इसे व्यवहार में लाते हैं।

पर्य्या०—वर्दुल् सबाख़, नस्रीनुल् सबाख़, उ़ल्लैक़ुल् क़ुद्स (अ०)। दरख़्त सिहगुल (फ़ा०)।

प्रकृति—फूल शीतल एवं रूक्ष है।

प्रतिनिधि शोकहे मिस्रिय:।

गुण, कर्म, प्रयोग - इसका फल अत्यंत क़ाबिज़ है पर पत्ते कम क़ाबिज हैं। धूपमें सुखाया हुआ इसका उसारा प्रबलतर होता है। इसके फलों को पकाकर पिलाने से दस्त रुक जाते हैं। इससे पेशाब भी रुक जाता है। फूल भी रूक्षता एवं क़ब्ज़ पैदा करते हैं। रक्तातिसार एवं पित्तातिसार को रोकते हैं और आमाशय को बल प्रदान करते हैं। आमाशय की निर्बलता के कारण जो दस्त

आते हैं, उन्हें भी ये रोकते हैं। थूकमें खून आना भी इनके सेवन से बंद हो जाता है। ज़ख्मों पर इसकी रूई लगाने से क्षत पूरण होता है।

(ख० अ०)

उलौयन–[यू० तज़किरा अंताकी में उकौतन लिखा है] एक पौधा जो एक हाथ से कम ऊँचा होता है और ललाई लिए होता है। डालियाँ पतली और कड़ी होती हैं। ऊपर की छाल कोमल होती है। पत्ता छोटा और बारीक होता है। फूल नरम और कमज़ोर ललाई और पिलाई लिये होता है। जड़ चुकंदर की तरह होती है जिसका स्वाद तीक्ष्ण होता है। बीज अफ्तीमून के बीजों की तरह होता है। यह पौधा पानी के किनारे, रेतीली ज़मीन में और आर्द्र स्थलों में उत्पन्न होता है। किसी-किसी ने इसे 'तरीक़ीलून' समझ लिया है। गीलानी कहते हैं कि यह सर्वथा मिथ्या है; क्योंकि वह एक अन्य ही वस्तु है। भूल इस कारण हुई है कि इसके यूनानी भाषा में अनेक नाम हैं, जिनमें से कतिपय नाम तरीक़ीलियून के क़रीब क़रीब हैं। अस्तु इसमें लोगों को भ्रम हो गया। कोई-कोई इसे निसोथ समझते हैं, जो और भी गलत है, जब इसकी जड़ ज़मीन से निकालते हैं, तब उसका गूदा दूर कर देते हैं। इसलिए यह नलकी की शकल पर रह जाती है। उत्तम वह है जो सफ़ेद हो और नलकी की शकल पर हो तथा शीघ्र टूट सके, जो इसके विपरीत हो वह निकृष्ट है। जड़ इसकी शेष सब अंगों से अधिक गुणकारी है।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में गरम और खुश्क है, किसी-किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। हानिकर्त्ता–आँतों में ख़राश पैदा होती है। फेफड़े को भी हानि पहुँचाता है। दर्पनाशक–प्रथम के लिये कतीरा और उन्नाब तथा फेफड़े के लिये कतीरा या सिकंजबीन। प्रतिनिधि–निसोथ। मात्रा–१०॥ मा० तक; जड़ की छाल ७ मा० तक। किसी-किसी के अनुसार ७ माशे से अधिक न खाना चाहिये; क्योंकि इससे आमाशय तथा आँतों को हानि पहुँचती है।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह निर्मलता करता एवं रोधों का उद्घाटन करता है। यह प्रक्षालक है एवं विरेक द्वारा सौदाका उत्सर्ग करता है। यह उन्मादके लिये गुणकारी है। यदि इसके बीज ३॥ मा० से ९ मा० तक लेकर ३॥ मा० लवण और ९। तो० पानी तथा २। तो० सिरके के साथ प्रयोजित करें, तो बलपूर्वक सौदा दस्तों की राह निःसृत हो जाय। इससे उग्र प्रचंड एवं स्थायी उन्माद रोग का भी नाश होता है और कृष्ण कामला (यर्क़ान स्याह) को भी गुणकारी है। (ख० अ०)।

उलंग–वि० [हिं०] नग्न। नङ्गा।

उल्–[सं० सौत्र धातु] दाह करना।

ड़ुल्ड़ुल्, अल्अल्–[अ०] कोड़ीके स्थान की कुर्री। अल्आल। (Ensiform cartilage) -अं०।

ड़ुल्क़म्–[अ०] इंद्रायन। इन्द्रवारुणी। (Citrullus colocynthis, *Schrad.*)

उल्का–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) प्रकाश। तेज। (२) लुक। लुआठा। (३) एक प्रकार के चमकीले पिंड जो कभी कभी रात को आग की लकीर के समान आकाश में एक ओर से दूसरी ओर को वेग से जाते हुए अथवा पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ते हैं।

उल्काग्नि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] लूक। आस्मान से टूटने वाला तारा।

उल्कापात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तामस। उत्पात विशेष। तारों का टूटना।

उल्का मत्स्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूंस। सूइस।

उल्कामुख–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उल्कामुखी] (१) गीदड़। (२) एक प्रकार का प्रेत जिसके मुँह से प्रकाश या आग निकलती है। अगिया बैताल।

उल्कामुखी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शृगाली विशेष। लोमड़ी। संस्कृत पर्याय–उल्कामुखी–शृगालिका। लोमालिका। दीप्तजिह्वा। किखि।

उल्कुषी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उल्का। लूक। तारे का टूटना।

उल्कुषीमान्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उल्काविशिष्ट।

तारे के टूटने से सम्बन्ध रखनेवाला। अथर्व ९। १७। ४।

उल्ब(व)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जरायु। गर्भ वेष्टन चर्म। (२) गर्भ। हमल। सु० शा० १० अ० १२ श्लो०।

उल्बण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीर स्थित वात अथवा पित्त के प्रकोप का रोग।

त्रि० [सं० त्रि०] तीक्ष्ण। तेज़।

उल्वणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मर्जिका।

उल्मुक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अंगार। अंगारा। हारा०। (२) उल्का। लुआठा। के०।

उल्ब्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीर स्थित वात पित्त वा कफ का आधिक्य।

उल्ल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अरण्यशूरण। वन शूरण। के० नि०।

उल्लकसन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रोमाञ्च। रोंगटों का खड़ा होना।

उल्लङ्घन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अतिक्रमण। (२) लाँघना। डाँकना।

उल्लस--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उल्लसन"।

उल्लसन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० उल्लसित, उल्लासी] (१) रोमाञ्च। (२) ख़ुशी करना। हर्ष करना।

उल्लसनक--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'उल्लसन'।

उल्लह-[उ० प० सू०] उलु।

उल्ला-[हिं०] अरलु। श्योनाक। (Dronylum Indicum.) इं० मे० प्लां०।

उल्लाघ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रोग मुक्ति। नीरोगता। रा० नि० व० २०। (२) मरिच। मिर्च।

उल्लाप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आर्त्तनाद। कराहना। बिल्लाना। कातर ध्वनि।

उल्लास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० उल्लासक, उल्लासित, उल्लासी] (१) हर्ष। सुख। आनंद। (२) प्रकाश। चमक। झलक।

उल्लासित-वि० [सं० त्रि०] (१) खुश। हर्षित। मुदित। प्रसन्न। आह्लादित। (२) स्फुरित।

उल्लिगड्डुलु-[ते०] प्याज़। पलाण्डु। (Allium-cepa, *Linn.*)

उल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्याज़। पलाण्डु। (Allium cepa, *Linn.*) रा० नि० व० ७। नि० शि०।

उल्लीगड्डु-[ते०] लशुन। लहसुन।

उल्लु-वि० [सं० त्रि०] उत्पाटनकारी। उखाड़ डालनेवाला।

उल्लुञ्चन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) केशोत्पाटन। बाल उखाड़ने का कार्य। (२) उन्मूलन। उखाड़ना। (३) केश कर्त्तन। बाल कतरने की क्रिया।

उल्लुक्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि। आग।

उल्लू-संज्ञा पुं० [सं० उलूक] कुचकुचवा, कुम्हार का डिंगरा, घुग्घू, घुघुआ, घूक, घूघू, खूसट (हिं०)। उलूक, नक्तचारी, दिवान्ध कौशिक, कौशी, घर्घरक, भीरु, काकशत्रु, निशाचर (धन्व०), उलूक, तामस, घूक, दिवान्ध, कौशिक, कुवि, नक्तंचर, निशाट, काकारि, क्रूरघोषक(रा० नि०) पेच, पेचक (श० र० । अम०), ऊलुक, वायसाराति, शक्राख्य, वक्रनासिक, हरिनेत्र, दिवाभीत, नरवाशी, पीचू, घर्घर, काकभीरु, नक्तचारी, रूपनाशन, रक्तनासिक, भीरुक, आलु, ध्मांक्षाराति (वै० श०) (सं०)। पेंचा (बं०)। बूम, बूमः, ग़ुराबुल्लैल (अ०)। उम्म अग़राबः, उम्मुस्सिब्यान (कुनैत)। कोक़ (फ़ा०)। एथेनी ब्रेमा इंडिका Athene brama indica. (ले०)। आउल Owl. (अं०)।

वर्णन—दिन में न देखनेवाला एक पक्षी जो प्रायः भूरे रंग का होता है। इसका सिर बिल्ली की तरह गोल और आँखें भी उसी की तरह बड़ी और चमकीली होती हैं। संसार में इसकी सैकड़ों जातियाँ हैं; पर प्रायः सबकी आँखों के किनारे पर भौंरी के समान चारों ओर ऊपर को फिरे होते हैं। किसी जाति के उल्लू के सिर पर चोटी होती है और किसी-किसी के पैर में उँगलियों तक पर होते हैं। उल्लू की चोंच कटिये

की तरह टेढ़ी और नुकीली होती है। किसी-किसी जाति के कान के पास के पर ऊपर को उठे होते हैं। सब उल्लुओं के पर नरम और पंजे दृढ़ होते हैं। ये दिन को छिपे रहते हैं और सूर्यास्त होते ही उठते हैं और रात भर छोटे-बड़े जानवरों, कीड़े-मकोड़ों को पकड़कर अपना पेट भरते हैं। इसकी बोली भयावनी होतीहै और यह प्रायः ऊजाड़ स्थानों में रहता है। लोग इसकी बोली को बुरा समझते हैं और इसका घरमें या गाँव में रहना अच्छा नहीं मानते।

भेद

धन्वन्तरि तथा राजनिघंटुकार ने उलूक और क्षुद्रोलूक भेद से इसे दो प्रकार का लिखा है। इनमें में उलूक के पर्य्याय तो ऊपर दिये जा चुके हैं: क्षुद्रोलूक के पर्य्याय निम्न हैं—

क्षुद्रोलूक शाकुनेय, पिङ्गल, डुडुल, वृक्षाश्रयी, बृहद्राव, पिङ्गलाक्ष, भयङ्कर, (ध० नि०), गोत्रद्वेषी, भूरिपक्ष, शतायु, सिद्धिकारक, क्षुद्रोलूक, शाकुनेय, पिङ्गल, डुडुल (रा० नि० १६ व०)

ख़जाइनुल् अद्विया के संकलयिता ने इसे चार प्रकार का लिखा है—(१) बड़ा जिसे फ़ारसी में बूक़ तथा शाहबूम और हिंदी में उल्लू कहते हैं; (२) मध्यमाकृति का काले रंग का जिसे फ़ारसी में चुग़द, तिन्काबिन में कोरहेबूम और हिंदी में चला और खूसट कहते हैं; (३) उक्त दोनों भेदों से लघुतर, इसको तुर्की में बेलाक़ कहते हैं और (४) सब से छोटा, इसका आकार फ़ाख़्ते के बराबर और सिर छोटा नारंगी के बराबर होता है। फ़ारसी में इसे मुर्ग़हक़ और हिन्दी में पेचा कहते हैं। आदमी इसको "सूम" जानते हैं। अरबी में इसको बूम वा बूमः कहते हैं। किंतु बूमः का प्रयोग एक वचन में होता है। कोई-कोई विद्वान खूसट और उल्लू को भिन्न समझते हैं। पीले मुँह का उल्लू भी पाया जाता है और सफेद एवं काले उल्लू भी होते हैं जिनका आकार राजहंस वत्तख़ के बराबर होता है।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

उल्लू का मांस पित्तकारक, भ्रांतिकारक और वायु को प्रकुपित करनेवाला है। (वै० निघ०)

छोटे उल्लू (क्षुद्रोलूक) का मांस पित्तकारक, भ्रांतिकारक और वात प्रकोपक है। कौआ, उल्लू, बाज, गिद्ध आदि प्रसह जातीय पक्षियों का मांस सिंहादि के समान गुणवाला होता है, विशेषता यह है कि ये शोषण के लिये उपयोगी हैं।……

(ध० नि०)

तांत्रिक लोग इसके मांस का प्रयोग उच्चाटन आदि प्रयोगों में करते हैं। प्रायः सभी देश और जातिवाले इसे अभक्ष्य मानते हैं।

यूनानी मतानुसार-प्रकृति—इसका मांस द्वितीय कक्षा में गरम एवं रूक्ष है इसके मांस भक्षण से मनुष्य सकल कार्यों में मूर्ख एवं निर्बुद्धि हो जाता है। इससे उन्माद उत्पन्न हो जाता है।

इसका पित्ता झाऊ की लकड़ी की राख के साथ शहद में मिलाकर खाना घड़ी-घड़ी पेशाब आने को और शय्यामूत्र रोग को लाभकारी है।

इसके रक्त और पित्ते का सुर्मा रतौंधी का नाश करता है।

इसका भेजा रोग़न बनफ़शा में मिलाकर नाक के उस ओर के नथुने में नस्य दें, जिस ओर आधासीसी की पीड़ा होती हो, तो उस रोग में अवश्य उपकार हो। परीक्षित है। परंतु 'किताबुल् इख़्तिसास' में शेख़ अहमद बिन मुहम्मद ने कान में टपकाने के लिए लिखा है और लिखा है कि प्रथम जोश दे लें।

उल्लू का मांस पानी और रोग़न जैतून के साथ हाँडी में भरकर मुँह बंद करके तनूर में रख दें। फिर तेल साफ़ करके जोड़ों और कमर प्रभृति पर मालिश कराएँ। इससे वेदना जाती रहती है। यह भी उसी "किताबुल इख़्तिसास" नामक ग्रंथ में उल्लिखित है।

इसका खून किसी तेल में मिलाकर खाना जूओं को मारता है।

इसका पित्ता आँख में आँजने से धुँध जाती रहती है।

इसका खून सुखाकर ७ मा० की मात्रा में खाने से तीन दिन में रुत्रू नामक व्याधि का नाश होता है। यही दशा इसका मांसरस पीने से होती है।

उसी प्रकार इसका मांस सुखाकर शराब के साथ खाने से रुत्रू में लाभ होता है। किंतु उत्तम यह है कि इसका कोई अवयव न खाएँ अर्थात् ये अभक्ष्य हैं। (ख० अ०)

वैद्य लोग कहते हैं कि इसका गोश्त विस्मृति एवं बुद्धिभ्रंश उत्पन्न करता और अत्यंत वायु पैदा करता है। कहते हैं स्त्रियाँ अपने पतिदेव को अभिभूत करनेके अर्थ उन्हें इसका मांस खिलाती हैं।

उल्लू का मांस उष्ण, वातकारक तथा पित्त निःसारक है और शोथ (Oedema), उन्माद और निर्वीर्यता में उपयोगी है। (इं० ड्र० इं० पृ० ५४५)

(२) अरलु का पेड़।

उल्लूक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उल्लू पक्षी।

उल्लूक मांस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घुग्घूका मांस।

उल्लेखन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वमन। कै करना। र० मा०। (२) खनन। खोदना। (३) छीलना।

उल्लैक़-[अ० उल्लैक़] एक काँटेदार वृक्ष जिसके पत्ते एवं अन्य अवयव गुलाब के पेड़ की तरह होते हैं। बीजू का फल काले शहतूत की तरह और स्वाद भी वैसा ही होता है। किंतु यह किंचिद् गोल एवं तिकोनिया होता है। यह जंगली एवं पहाड़ी पौधा है। बगीचों में प्रायः इसे बहुत कम लगाते हैं। हिमवती पर्वतांचल में भी यह पाया जाता है। इसका वृक्ष मनुष्य के क़द के बराबर ऊँचा, कभी उससे भी ऊँचा होता है। फल कच्चा हरा तथा अधपका फल लाल होता है और पकने पर वह काला हो जाता है। गरमी में फल आता है। इसका उसारा भी प्रस्तुत करते हैं। शेख़ के अनुसार इसका उसारा धूपमें सुखाने से उसमें गुण की वृद्धि हो जाती है। किसी-किसी के मत से छाया में सुखाया हुआ उत्तम होता है। जंगली की अपेक्षा पहाड़ी वृक्ष में काँटे कम और बारीक होते हैं और तना सफ़ेद होता है। फल गुलाबवत् कुछ गोल और लाल रंगका होता है। कहते हैं हज़रत मूसा ने इसी पेड़ में आग देखी थी, कोई कहते हैं, उन्नाब के पेड़ में।

प्रकृति—परस्पर विरोधी गुण-धर्म संपन्न (मुरक्किबुल् .कुवा), किंतु शीतलता एवं रूक्षता इसकी प्रकृति में प्रधान है; बल्कि द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है। फल में माधुर्य की मात्रा के अनुसार उष्मा भी होती है। फूल भी शीतल एवं रूक्ष है। हानिकर्त्ता—अधिक फल खाने से सिर दर्द पैदा होता है। यह प्लीहा एवं वृक्क को हानिप्रद है। दर्पनाशक-शिरोशूल के लिये खट्टा अनार या खट्टा बिही; प्लीहा के लिये मुलेठी का सत (रुब्बुस्सूस) और वृक्क के लिए सफ़ेद शकर। प्रतिनिधि—गुलनार। मात्रा-उसारा और फूल १०॥ मा०।

गुण, कर्म, प्रयोग—कहते कि इसके पत्ते या फल को पानी में क्वथित कर उसमें मेंहदी घोल कर सफ़ेद बालों पर लगायें, तो केश काले हो जाँय। गोश्तखोरे (आकिलः) पर इसके पत्तों का लेप करने से उसका बढ़ना रुक जाता है। इससे पित्ती में भी लाभ होता है। विसर्प (सुर्ख़ बादा) को दूर करता है। सिर के गंज को लाभकारी है। नेत्राभिष्यंद (आँख आने) में इसके पंचाँग का लेप हितकर है। इसके काढ़े से कुल्ली करने से मुख रोग दूर होता है। इसके फल खाने से दस्त बंद हो जाते हैं; यदि मुँह से खून आता हो तो रुक जाता है, इससे बवासीर के खूनी दस्त बंद हो जाते हैं। फल शेष सभी अंगों की अपेक्षा अधिक क़ाबिज है। यदि ऋतुमती स्त्री गुलाब के अर्क़ के साथ इसके पत्तों और फल का काढ़ा पिए, तो बंध्या हो जाय। इसकी जड़ पीस कर पीने से वृक्क एवं बस्तिगत अश्मरी टूटकर बह जाती है। यदि यात्रा वा भ्रमण करने के कारण रानों में ख़राश हो जाय, तो इसके पत्तों तथा कोमल टहनियों को पीसकर प्रलेप करना चाहिये। सिर के गंज रोग पर इसका प्रलेप अतिशय गुणकारी है। यदि आँख का ढेला बाहर निकल आए, तो उसपर इसका लेप करें। इसके लेप से आँख की सूजन उतर जाती है और आँख की ओर रतूबत का आना रुक जाता है। इसके पत्तों एवं तने

का ताज़ा रस थोड़े से बबूल के गोंद के साथ आँख में लगाने से फोड़े और ढलके, नाखूने और सूजन को लाभ पहुँचता है। मुख के गरमी के दर्द में इसका फल एवं उसारा गुणकारी है। इसके पत्ते चबाने से मसूड़े दृढ़ होते हैं और मुख की दुर्गंधि नष्ट होती है। इसके पत्ते पीने से आमाशय बलवान होता है। इसका कच्चा फल शेष समग्र अंगों से अधिक बलिष्ट है और काबिज़ भी है। किंतु पक जाने के बाद कभी-कभी दस्त लाता है। इसके खाने से आँतों को शक्ति मिलती है। दस्त बंद हो जाते हैं, आंत्रक्षत मिट जाता है, जरायु द्वारा द्रव-प्रवहण रुक जाता है। इसके फूलों को खाने से खून के दस्त और थूक में खून आना बंद हो जाता है। यह दस्तों और आमाशय की निर्बलता में लाभ पहुँचाता है। इसकी जड़ स्तंभक गुण रखने के सिवा सूक्ष्म गर्म जौहर भी रखती है। जंगली की तरह पहाड़ी भी गुणकारी है।

उल्लो–[नेपा०] बिछुआ।

उल्लोच–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चंद्रातप। चाँदनी। हला०।

उल्लाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महातरङ्ग। कल्लोल। लहर। हिलोरा।

उल्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जरायु। गर्भाशय। अ०। (२) कलल। सु० शा० १० अ०। (३) झिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ पैदा होता है। आँवल। अँवरी। (४) गर्त। गढ़ा। (५) कण्ठगत कफ। चक्र द० "उल्व मशेषं हरेत पटुतां वातस्य चात्यन्तम्"।

उल्वण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वात पित्त और कफ तीनों धातुओं में से किसी एक की अधिकता। वातादिजन्य विकार। (२) उल्व। आँवल। अँवरी।

उवष्या–[?] कासनी।

उवाकपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ा सौंफ। मिश्रेया। द्रव्य० रत्ना०।

उवाम–[अ०] (१) शिरो भ्रमण। सिर चकराना। सिर घूमना। (२) तीव्र प्यास।

उवार–[अ०] (१) तेज़ गरमी। (२) प्यास। (३) धुआँ। (४) दाक्षणी हवा। (५) सूर्य्यातप। (६) आग की लौ।

उवासी–[अ०] [आसियः का बहु०] कन्याओं का ख़तना करनेवाली स्त्री। ख़त्तानः। दे० "आसियः"।

उव्ज़ाग़–[अ०] दे० "ओज़ाग़"।

उव्फ़ेलूस–[अ०] दे० "ओफ़ेलूस"।

उव्ला–[अ०] दे० "ऊला"।

उश्क्काय–[द्रावि०] अखरोट।

उशक़–संज्ञा पुं० [अ० उशक़। फ़ा० उशः] काँदर, समग हमाम, कलयान, (हिं०)। उश्शक़, उशक़, उश्शज, उशज, वुशूक़, अज़्ज़ाक़ुज़्ज़हब, कत्तख़ (अ०)। उश्शः, किलयान (फ़ा०)। अमोनिआकून (यू०)। डोरेमा एमोनाइकम Dorema ammoniacum, *Don.*, फेरुला ओरिएण्टेलिस Ferula orientalis, फेरुला टिंगिटेना Ferula tingitana, डोरेमा ग्लेब्रम Dorema glabrum (ले०)। एमोनाइकम Ammoniacum (Gum) –(अं०)। गम नायकम (ता०)। गम नायकम् (ते०)। कंदल (अफ़, ता०, बुखा०)। उशक (गु०, बम्ब०)।

शतपुष्पा वा छत्रक वर्ग

(*N. O. Umbelliferae.*)

उत्पत्ति-स्थान–फ़ारस, अफगानिस्तान।

संज्ञा-विवरण—अमन या ऐम्मन प्राचीन रोम देशवासियों, मिस्रियों और यूनानियों के एक देवता थे। मिस्र देश के जिस प्रदेश में इनका मंदिर था, वहाँ उशक के पौधे बहुतायत से पाये जाते थे। अतएव दीसकूरीदूस नामी यूनानी हकीम ने, जिसने सर्व प्रथम उक्त औषध का उल्लेख किया है, इसको उक्त देवता विशेष के नाम से अभिहित किया। इसका वर्तमान डॉक्टरी नाम इसकी प्राचीन यूनानी संज्ञा ही का किंचित् परिवर्तित स्वरूप है।

उशक के स्वरूप-निर्णयके विषय में पूर्वकालीन प्रमुख यूनानी चिकित्सक, यथा शे. खुर्रईस, इब्न-

बेतार, दाऊद अंताकी, मालकी और मालायसूअ नामक ग्रन्थ के लेखकों में परस्पर मतभेद है। शेख़ के अनुसार यह तसूंस का गोंद है। किसी-किसी ने इसे उश्तरग़ाज़ का गोंद लिखा है और किसी ने किल्ख़ का गोंद बतलाया है। यद्यपि उश्तरग़ाज़ अंजदान की जड़ है और उश्तरख़ार एक प्रकार का वह पौधा है जिसपर खुरासान में तुरंजबीन जमती है। किल्ख़ को किसी ने क़िन्ना लिखा है। परन्तु किल्ख़ अनेक वस्तुओं के लिये उपयोग में आता है, जिनमें से उशक़ भी एक है। कोई कहते हैं कि मिश्रदेशवासी किल्ख़ को उशक़ कहते हैं। बग़दादी के अनुसार किल्ख़ अंदरूतालीस है जो उश्नान की तरह पत्रशून्य होता है और क़िन्ना भी अंदरूतालीस का ही एक भेद है। इख़्तियारात के लेखक के अनुसार उशक़ उस पौधे का गोंद है जिसे शीराज़ में बदरान कहते हैं। इब्नबेतार के अनुसार इसे तसूंस का गोंद बतलानेवालों ने भूल की है। उनके मत से यह एक अन्य वृक्ष का गोंद है जो छोटा और खड़ा होता है और शीत प्रधान देशों में उत्पन्न होता है। जैसे, श्यामादि।

मालकी दीसक़ूरीदूस का उद्धरण देते हुए लिखते हैं कि उशक के वृक्ष की शकल क़िन्ना की सी होती है जिसे ग़ाशूत्तीस कहते हैं। ग़ाज़रूनी लिखते हैं कि जिस उद्भिज से उशक स्रावित होता है वह लगभग वृक्ष है और उसमें से उशक़ स्रावित होकर जम जाता है। यह असफ़हान, शीराज़ और यज़्द प्रदेश में उपलब्ध होता है। अंताकी के वर्णनानुसार उशक का पौधा घास और वृक्ष के मध्य होता है और उसके तने पर श्वेताभ रोआँ होता है। फूल लालिमा और नीलिमा के बीच होता है और कर्ख के पर्वतों में इसकी उपज है और न श्याम में। धारदार अस्त्र के मारने से यह गोंद स्रावित होता है।

उपर्युक्त वर्णन का सारांश यह कि बूअली सीना ने जिस उशकवृक्ष को तसूंस लिखा है और इब्नबेतार ने जिसका विरोध किया है, वह वस्तुतः ईरान देशीय उशक का वृक्ष है, जिसे शीराज़ देशनिवासी, बदरान और बुखारावाले कंदल कहते हैं।

यूनान देशीय विद्वानों ने जिस प्रकार के उशक़ का उल्लेख किया है, वह श्याम देश के विभिन्न स्थलों से आता है। पर ईरानी वा ख़ुरासानी उशक (जो आज कल यूरोप में औषध रूप से व्यवहार में आता है) उन्हें ज्ञात न था। इसके वृक्ष ईरान के विभिन्न प्रदेशों वा पंजाब में उत्पन्न होते हैं।

वर्णन—उशक (एमोनाइकम्) वस्तुतः एक गम-रेज़िन (रालदार गोंद) है जो पुष्प तथा फलवान उशक वृक्ष (नब्रातुल् क़िना व शक़, तसूंस, अं० Dorema ammoniacum) से प्राप्त होता है। इसके छोटे-छोटे अश्रुवत् गोल-गोल दाने होते हैं वा उक्त दानों की परस्पर मिली हुई बड़ी-बड़ी डालियाँ होती हैं। इसका आकार धनिए के बीज से लेकर जंगली बेर तक होता है। वर्ण बाहर से पिलाई लिए भूरा होता है। देर तक पड़ा रहने से यह श्यामाभयुक्त हो जाता है। किंतु भीतर से यह अस्वच्छ दुग्धवत् श्वेत वा सूक्ष्म पीताभ होता है। शीतल होनेपर यह कठोर होजाता और सहज में टूट जाता है और भग्नतल मोमवत् दिखाई देता है। किंचिद् गर्म करने से यह मृदु हो जाता है। इसकी गंध हलकी और विशेष प्रकार की होती है। स्वाद-तिक्त, क्षोभक और विवमिषाजनक होता है। इसको जलविलीन करनेसे एमलशन बन जाता है। कॉष्टिक लोशन से यह पीला और क्लोरीनेटेड सोडियम् के सॉल्यूशन से मनोहर नागरंग वर्ण का होता है। यूनानी चिकित्सकों के मत से उत्तम वह है जो सफ़ेद, मृदु और स्वच्छ शुद्ध हो और शीघ्र घुल जाय। शुद्ध उशक सफ़ेद होता है और उसमें सूक्ष्म नीलिमा की झलक होती है तथा वह लकड़ी मैल, कंकड़ इत्यादि से शून्य होता है। उसमें से कुंदुर वा जुंदबेदस्तर की सी सुगंधि आती है।

इसकी जड़ विभिन्न आकार की होती है। इसकी सबसे लंबी जड़का व्यास शीर्ष(Crown) की ओर ३ इंच होता है। ये साधारणतः न्यूनाधिक सशाख होती हैं। जड़ की छाल कागज की तरह पतली होती है। जड़ के कटे हुए भाग पर राल लगा रहता है।

परीक्षा—एमोनाइकम् (उशक़), गैलबेनम् (अंजरूत, जावशीर), लोबान और हींग के समान होता है। अतएव इनसे पहिचानने के लिए उसकी परीक्षा किया करते हैं। ज्ञात रहे कि उशक की गंध उक्त सभी वस्तुओं की गंध से सर्वथा भिन्न होती है। अस्तु अपनी विशिष्ट गंध प्रभृति से इसकी पूर्ण परीक्षा हो सकती है। इसमें सकबीनज के मिश्रण से इसका रंग पीला हो जाता है।

प्रयोगांश—रालदार गोंद (Gum-resin) और जड़।

रासायनिक संगठन—इसमें २० प्रतिशत निर्यास, ७० प्रतिशत राल (Resin), ४ प्रतिशत एक उड़नशील तैल, आर्द्रता और भस्म प्रभृति पाये जाते हैं।

मात्रा—५ से १५ ग्रेन=(˙३२ से १˙८ ग्राम)।

औषधि-निर्माण—डॉक्टरी योग—

ऑफिशल योग

(*Official Preparation*)

(१) एम्प्लास्ट्रम एमोनाइसाई कम हाइड्रार्जिरो Emplastrum ammonici cum hydrargyro (लें०)। एमोनाइकम् एण्ड मर्करी प्लास्टर Ammoniacum and mercury plaster (अं०)। पारद युक्त उशक प्रस्तर।

निर्माण-क्रम—एमोनाइकम् १२ आउंस वा ५५६ भाग, पारद ३ आउंस वा १६४ भाग, रोग़न जैतून ५६ ग्रेन वा ७७ भाग, ऊर्ध्वपातित गंधक (Sublimed sulphur) ८ ग्रेन वा १ भाग—रोग़न वा तैल को गर्म करके उसमें गंधक डालकर मिला दें।

(२) मिस्चुरा एमोनाइसाई Mistura ammoniaci (लें०)। एमोनाइकम् मिक्सचर Ammoniacum mixture (अं०)। उशक का मिश्रण (हिं०)। मज़ीज उशक, मख़्लूत मिक्सचर (अ०)।

निर्माण-क्रम—उशक (एमोनाइकम्) का मोटा चूर्ण $\frac{1}{4}$ आउंस, सिरप ऑफ़ टोलू ४ फ्लुइड ड्राम, परिस्रुत वारि ७$\frac{1}{2}$ फ्लुइड आउंस। सर्व प्रथम उशक़ को थोड़े से पानी में क्रमशः खरल करें। पुनः उसमें शेष परिस्रुत वारि और शर्बत मिला दें। और इसे यहाँ तक खरल करते रहें कि मिश्रण का रंग दूधिया अर्थात् दुग्धवत् होजाय। फिर उसे मलमल के कपड़े से छान लें।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड आउंस तक=(१४˙२ से २८˙४ घन शतांशमीटर)।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—शेख़ ने द्वितीय कक्षा के अंत में उष्ण और प्रथम कक्षा में रूक्ष लिखा है। किसी-किसी ने द्वितीय कक्षा के प्रारम्भ में उष्ण और प्रथम कक्षा के अंत में रूक्ष और किसी ने तृतीय कक्षा में उष्ण और प्रथम में रूक्ष और किसी ने द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष लिखा है। किसी-किसी ने तर भी लिखा है।

हानिकर्त्ता—वृक्क और आमाशय को तथा रक्तमूत्रता उत्पन्न कर देता है।

दर्पघ्न—वृक्क के लिए ज़ूफा और मीठा बादाम तथा निशास्ता और आमाशय प्रभृति के लिए अनीसून और करफ़्स। उत्तम यह है कि अल्प मात्रा में सेवन करें।

प्रतिनिधि—सरसों और शहद की मक्खियों का छत्ता, सकबीनज और जावशीर। इब्नमासूया कहता है कि जहाँ उशक दस्त लाने के लिए श्रेष्ठ है, वहाँ जावशीर भी उपकारी है।

मात्रा—२। मा० से ४।। मा० तक। किसी-किसी ने ७ मा० तक लिखा है। परन्तु यह बलिष्ट मनुष्य के लिए है।

गुण, कर्म, प्रयोग—विलायक (मुहल्लिज) और रोधोद्घाटक है। क्योंकि वह अपनी उष्मा के कारण दोषों को पतला करके बहा देता है। जिससे वे वाष्पीभूत होने के योग्य बन जाते हैं। अपने रोधोद्घाटन कर्म द्वारा यह स्रोतों को खोल देता है। जिससे दोष विलीन होजाते हैं। यह शोषणकर्त्ता है; क्योंकि अपनी रूक्षता द्वारा दोषों को विलीन करता है, जिससे रतूबत विनष्ट

होजाती है। दूषित मांस को खाकर क्षत में शुद्ध मांस के अंकुर पैदा करता है। यह दूषित मांस इस प्रकार नष्ट करता है, कि यह अपनी रूक्षता के कारण दुष्ट मांस और उसकी आर्द्रता को शोषण कर लेता है। शुद्ध गोश्त उत्पन्न करने की सूरत यह है कि यह अपनी उष्णता के कारण पोषणांश को अपनी तरफ़ जज़्ब कर लेता है। क्षत को अपनी निर्मलकारिणी एवं चोषक शक्ति के कारण पीव आदि से स्वच्छ करता है, जिससे उसमें मासांकुर आजाते हैं। जब इसे मधु के साथ चाटा जाता है, तब श्वास, कष्टश्वास, कफज खुनाक़, प्लीहा की कठोरता, आमवात और गृध्रसी का नाश होता है। क्योंकि यह दृढ़ और सांद्र मलों को मृदु एवं विलीन करता है तथा सांद्र एवं पिच्छिल-लहेसदार कफ का विरेक द्वारा उत्सर्ग करता है। इसके अतिरिक्त मधु भी अपनी निर्मलकारिणी एवं मृदुताकारिणी शक्ति से उसका साहाय्य करता है। यह मूत्र तथा आर्त्तव का प्रवर्त्तन करता है। क्योंकि यह कोष्ठ मृदुकर–मृदुरेचक और तारल्योत्पादक है। अपनी अवरोधोद्घाटनी शक्ति एवं कड़ुआहट व तीव्रता के कारण यह उदरगत कृमियों को नष्ट करता है और भ्रूण को उदर से बाहर निकालता है। पुनः चाहे वह जीवित हो अथवा मृत। मृदुताकारिणी एवं विलायक शक्ति के कारण कंठमाला (ख़नाज़ीर) और जोड़ों की सख़्ती में इसका लेप गुणकारी सिद्ध होता है। अपनी रोधोद्घाटनी शक्तिके कारण इसका प्रलेप बवासीर का मुँह खोल देता है। (त० नफ़ी०)

उशक़ उत्तेजक है सूजन तथा वायु को विलीन करता है। यह रूक्षता उत्पन्न करता मलावरोध दूर करता, निर्मलता प्रदान करता, शरीराभ्यंतरीय द्रवों को अभिशोषित करता और यकृत एवं प्लीहा के अवरोध का निवारण करता है। यह विरेचन औषधों का दर्पदलन है। इसको मधु के साथ पीने से मृगी, फालिज, सुन्नता और लकवा दूर होता है। यह नेत्र-रोगों में उपकारी है। इसका प्रलेप प्लीहा की सूजन एवं कठोरता का विध्वंसक है, संधिगत शोथ एवं कठिनताकाभी निवारण करता है। इसमें इतनी बलिष्ट प्रवर्त्तनी शक्ति है कि यह रगों के मुँह से रक्त जारी कर देता है। पेशाब में रक्त आने लगता है। इसके बगल में लगाने से दुर्गंधि का नाश होता है। रोग़न ज़ैतून में मिलाकर लगाने से झाँईं और छींर आराम होता है। सिरके में मिलाकर कंठमाला और दृढ़ सूजन पर लेप करने से लाभ होता है। पौने दो मा० उशक़ पीसकर सिकंजबीन में मिलाकर चाटने से जोड़ों की कठोरता निवृत्त होती है। इसके सिर पर प्रलेप करने से गंज रोग का नाश होता है। सवा दो माशे उशक़ लेकर शहद के साथ सेवन करने से मृगी आराम होती है। पाटों पर लेप करने से उनकी सख़्ती जाती रहती है। इसके आँख में लगाने से जाला और फूली का नाश होता है और आँखकी खाज निवृत्त होती है। ३॥ मा० उशक़ पीसकर सिरके की सिकंजबीन में मिलाकर चाटें, इससे यकृत और प्लीहा की सूजन जाती रहती है। यकृत् और प्लीहा पर लेप करने से भी यही लाभ होता है! इसके उदर पर लगाने और खाने से जलंधर का नाश होता है। पीला पानी निकल जाता है। आमाशय के ऊपर लेप करने से यह सूजन तथा वायु को दूर करता है। इसके गर्भाशय में रखने से हमल गिर जाता है। सिरके में मिलाकर अंड पर लेप करने से यह अंडशोथ को घटाता है। इसके धुएँ से जहरीले कीड़े भाग जाते हैं। बवासीर के मस्सों पर लेप करने से, उनके मुँह खुल जाते हैं। इसे ३॥ मा० की मात्रा में पीसकर प्रकृति एवं ऋतु के अनुकूल यवाम्बु (माउश्शईर) या मधुजल (माउल् अस्ल) के साथ फाँकने से कंप प्रभृति वातव्याधियों को लाभ होता है। इससे कष्टश्वास और श्वासरोग भेद (इन्तिसाबुन्नफ़स) में भी लाभ होता है। इससे मल भी निकल जाते हैं। इसके खाने से कद्दूदाने मरकर निकल जाते हैं। इस काम के लिए इसे अफ़संतीन के काढ़े के साथ खाना चाहिये। इसको खाने और पेट पर लगाने से वृक्क और वस्तिगत पथरी टूटकर निकल जाती हैं। मल मार्ग से कफ का भली भाँति उत्सर्ग करता है। यह चिप-चिपे कफके रोगोंमें बहुत गुण

करता है। यह मुरमकी के साथ खाना विषों का अगद है। (ख० अ०)

डाक्टरी मतानुसार
एमोनायकम् की फार्माकालॉजी
अर्थात् उशक के प्रभाव
बाह्य प्रभाव

स्थानीय प्रयोग से, तत्स्थानीय वातसूत्र एवं रगों का यह (एमोनायकम्) किंचित् शीत प्रदान करता है, जिससे प्रादाहिक माद्दों के तहलील होने में मदद मिलती है। अतएव यह एक शोथ विलीनकारी (Resolvant) है। इसमें पारद मिलाकर प्रयोग करने से इसका उक्त गुण और भी बढ़ जाता है।

नोट—इसका पलस्तर अधिक काल तक लगाये रखने से वहाँ पर छोटे-छोटे आबले पड़ जाया करते हैं।

आंतरिक प्रभाव

स्नेहमय रालों तथा सुरभित ओषधों की भाँति उशक भी फुफ्फुस प्रणालीगत ग्रंथियों की राह निःसरित होता है। अस्तु, यह उनको गति देता और उनके स्रावों को सड़ने-गलने एवं दुर्गंधित होने से बचाता है। इसलिए यह एक गौण उत्तेजनापूर्वक दुर्गंधिहर श्लेष्मानिःसारक (Remote Stimulating Disinfectant Expectorant) है। बड़ी मात्रा में देने से इसका मृदुरेचक (Laxative) प्रभाव होता है।

एमोनायकम के थेराप्युटिक्स
अर्थात् प्रयोग
बाह्य प्रयोग

शोथविलीनकर्ता रूप से उशक और पारद का प्रागुक्त पलस्तर औपसर्गिक बद (Sympathetic Bubos), वेदनाशून्य परिवर्द्धित ग्रंथि (Enlarged indolentglands), चिरकारी प्रदाहिक संधि रोगों, जैसे—स्नैहिक-कला प्रदाह (Synovitis) और आमवातजन्य शोथ (Rheumatic swellings) प्रभृति की सूजन पर लगाते हैं।

आभ्यंतर प्रयोग

निर्बल मनुष्यों के पुरातन कास और दमा में, विशेषतः जब कफ दुर्गंधित हो गया हो, दुर्गंधिहर और श्लेष्मानिःसारक रूपसे एमोनायकम व्यवहार में लाने से बहुत ही लाभ होता है। अतः इसे १० से ३० ग्रेन (५ रत्ती से १५ रत्ती) की मात्रा में दिन में तीन-चार बार देने से वक्ष में चिपका हुआ कफ सुगमतापूर्वक निःसरित होने लगता है और दनकुरी की आवाज़ बंद हो जाती है।

डॉक्टरी परीक्षित प्रयोग

(१) सिरच्युरा एमोनाईसाई	६ ड्राम
सोडियाई बाई कार्ब	३० ग्रेन
टिंक्च्युरा कैम्फोरी कंपाजिटस	४ ड्राम
टिंक्च्युरा हायोसायमाई	१ ड्राम
वाइनम इपीकेकानी	२ ड्राम

समग्र औषधियों को मिलालें और उसमें से ४ ड्राम की मात्रा में थोड़े पानी में मिलाकर दिन में दो-तीन बार दें। पुरातन कास (Chronic Bronchitis) में गुणकारी है। यह डॉक्टर ग्रेविस महोदय का परीक्षित है।

(२) टिंक्च्युरा कष्टूरियाई	५ मिनिम
टिंक्च्युरा ओपियाई	१ मिनिम
सिरूपस टोलूटैनी	१५ मिनिम
सिरच्युरा एमिग्डली	१ ड्राम
सिरच्युरा एमोनाईसाई	२ ड्राम पर्यंत

इसमें से दो चमचा चाय भर दिन में तीन बार दें। यह कुकुरखाँसी (Whooping Cough) में उपकारी है।

उशकलानी–[सिंध०] छोटी लानी (पं०)।

उशज्ज–[अ०] दे० "उशक़"।

उशना-संज्ञा पुं० [अ०] दे० "उश्नः"।

उ़शब–[अ०] नरतृण।

उशबा–संज्ञा पुं० [अ०] एक लता जिसकी जड़ रक्त शोधक है।

उशबा मग़रबी–संज्ञा पुं० [अ० उ़श्बहे मग़रबी] विलायती अनंतमूल। विदेशी सारिवा। उशबा। सालसा (हिं०)। उ़श्बहेमग़रबी, अश्बहेमग़रबियः, उ़श्बः (अ०, फ़ा०)। उश्बः (द०)। छालछा, सालसा (बं०)।

सारसी रैडिक्स Sarsae radix (ले०)। सारसापरिला Sarsaparilla, जमेइका सारसापरिल्ला Jamaica sarsaparilla (अं०)। शीमै नन्नारि, शारशा वेर (ता०)। सीम सुगंधि पाल, सारस वेर (ते०)। तरुतिरिट (मल०)। उश्बो, उश्बो मगरबी (गु०)। रट इरिसुसु (सिंगा०)।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—सारसापरीला स्पेन देशीय भाषा का शब्द है। यह सारसी=जाल+पारीलिया=छोटे अंगूर की बेल, का यौगिक है। इसकी जड़ें अंगूर की बेल के सदृश और लाल रंग की होती हैं, इसलिए इसको उक्त नाम से अभिहित किया गया। तीक्ष्णता के कारण इसे 'उश्बतुज्जार' भी कहते हैं। प्रायः उश्बा मग़रबी नामसे प्रसिद्ध है, क्योंकि सर्व प्रथम पाश्चात्य देश निवासी (अफ्रीका निवासी) इसके गुणधर्म से परिचित हुए थे। इसके उपरांत अन्य देशों में इसका प्रचार हुआ। इसको जमेइका सारसापरीला इस कारण कहते हैं कि पूर्वकाल में जमेइका के मार्ग से ही अन्य देशों में इसका आयात होता था। इसकी एक अन्य जाति का उश्बा (Smilax officinalis) हांडुरस (Honduras) से आती है, परंतु व्यापारिक दृष्टिकोण से (Smilax Ornata) ही श्रेष्ठ माना जाता है।

(*N. O. Liliaceoe.*)

उत्पत्ति-स्थान—दक्षिण अमेरिका, और काष्टारीका Costarica (मध्य अमेरिका)।

वानस्पतिक-वर्णन—डॉक्टरी ग्रंथों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि यह सारिवा की तरह की ही एक लता है जो मध्य अमेरिका में जंगली उत्पन्न होती है। पत्र चौड़े, अंडाकार तथा कोई अनीदार होते हैं। उनमें नसें प्रशस्त होतीं और पत्तों के सन्निहित स्थान से डंटियाँ निकलती हैं, जिनमें छोटी-छोटी कलियाँ आती हैं। यह कलियाँ विकसित होकर फैल जाती हैं। नोकदार पत्तियाँ प्रायः पंक्तियों में होती हैं। पत्र मूल से कोमल आकर्षणी निकलती हैं जो छोर पर जाकर बल खा जाती हैं। यह सारिवा की जाति की ही एक लता है; इसलिये इसे विलायती अनंतमूल वा विदेशी सारिवा कहना उचित जान पड़ता है। लेटिन भाषा में इस बेलको स्माइलेक्स ऑर्नेटा (Smilax Ornata,) कहते हैं। डॉक्टरी में इसीकी सुखाई हुई जड़, जो काष्टारीका (मध्य अमेरिका) से आती है, व्यवहृत होती है और ब्रिटिस फॉर्माकोपिया में यह आफ़िशल अर्थात् सम्मत है। उपरिलिखित सभी पर्याय इसी जड़ के ही हैं। वि० दे० "अनंतमूल" वा "सारिवा"।

जड़ या सारसापरिल्ला

इसकी जड़ बहुत लंबी गोल और लचीली होती है, जिसे पाँच इंच चौड़ी और १८ इंच के क़रीब लंबी गड्डियों में बाँध कर लाते हैं। प्रायः जड़ें झुर्रीदार और $\frac{3}{4}$ इंच के लगभग मोटी होती हैं और इनके साथ बहुत से मुड़े हुए तंतु लगे होते हैं। यह ललाई लिए धूसर वर्ण की तथा गंधरहित होती हैं। स्वाद निर्यासवत् लुआबदार, चर्वण करने पर कड़ुआ और किसी भाँति ख़राशदार मालूम होता है।

तुलना—सारसापरिल्ला से अनंतमूल (हेमिडेज़मस) और स्नीगा का सादृश्य है। किंतु अनंतमूल की जड़ आड़े तौर पर चटख़ी हुई होती है, स्नीगा की जड़ बल खाए हुए होती है और उसकी एक तरफ हुक सा लगा होता है।

यूनानी चिकित्सक इसे एक उद्भिज्ज की शाखा जानते हैं और उसके साथ मिलाकर इसे भ्रामक बना दिये हैं। इसकी जड़ साहब मुअ्तमिद प्रभृति ने ख़र्बक़ स्याह समझ लिया है और लिखा है कि ४॥ मा० की मात्रा में यह घातक है; परंतु डॉक्टरी अन्वेषणों से इसका मारक होना प्रमाणित नहीं होता। कारण इसका यह जान पड़ता है कि यूनानियों ने उश्बा को "ज़ुयान" के साथ मिला दिया है। थोड़ी देर के लिए यदि इसे ज़ुयान का एक भेद स्वीकार भी कर लिया जाय, तब भी उश्बा की जड़ न ख़र्बक़ स्याह की तरह गरम और तीक्ष्ण है और न सांघातिक है। जो कुछ सांघातिक है या ख़र्बक़ स्याह की शक्ति में है, उसकी गणना ज़ुयान में है, न उश्बा में।

श्रेष्ठ उश्बा वह है, जिसकी शाखाएँ न अधिक पतली हों, न अधिक मोटी और जो कुछ-कुछ लाल रंग की तथा कड़्वी हों, तोड़ने पर धूल सा उड़े और भीतर का गूदा सफेद हो। जिसमें यह बातें न हों, उसे निकृष्ट समझें। इसमें बीस वर्ष पर्यंत शक्ति बनी रहती है।

रासायनिक संघटन—(१) इसमें उश्बीन (Smilaxin) नाम का एक उदासीन सार जो सैपोनीनवत् होता है, (२) एक सूक्ष्म जैल और (३) रेज़िन (राल) और श्वेतसार (Starch) प्रभृति होते हैं।

संयोग-विरुद्ध—एलकलीज़ अर्थात् क्षारीय द्रव्य जो इसके घटकों को शीघ्र विश्लिष्ट कर देते हैं। चूने का पानी, मायाफल के मिश्रण और सीसे के योग भी इसके संयोग-विरुद्ध है।

प्रभाव—परिवर्त्तक, स्वेदक और मूत्रल।

औषध-निर्माण—यूनानी चिकित्सा में विविध रूप में इसका अधिकता के साथ प्रयोग होता है। डाक्टरी में इसके निम्न योग काम में आते हैं—

(१) एक्स्ट्रैक्टम सार्सी लिक्विडम् Extractum Sarsae liquidum (ले०)। लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ सारसापरिला Liquid Extract of sarsaparilla (अं०)। विदेशीय सारिवा की तरल रसक्रिया। खुलासहे उश्बा सय्याल। उसारहे उश्बा सय्याल।

निर्माण-विधि—सारसापरीला का ४० नं० का चूर्ण २० आउंस, एलकोहल (२०%) आवश्यकतानुसार, ग्लीसरीन २ फ्लुइड आउंस, सारसापरीला को ३ भागों में विभाजित करें। इनमें से प्रथम भाग को चार फ्लुइड आउंस एलकोहल से तर करके पर्कोलेटर में स्थापित कर २४ घंटे तक पड़ा रहने दें। पुनः और एलकोहल डालकर उसे इतना टपकाएँ, कि ४ फ्लुइड आउंस द्रव प्राप्त हो जाय; फिर दूसरे हिस्सा सारसापरीला को उक्त प्राप्त द्रव में भिगोकर पर्कोलेटर में स्थापित करें और २४ घंटा व्यतीत होने के उपरांत उसे ऐसे द्रव के साथ पर्कोलेट करें, जो पहिले हिस्सा उश्बा में, दोबारा एलकोहल डालने से प्राप्त हुआ हो, यहाँ तक कि पुनः ४ फ्लुइड आउंस द्रव प्राप्त हो जाय। फिर सारसापरीला के चूर्ण के तीसरे भाग को उस प्राप्त द्रव में भिगोकर २४ घंटे तक पर्कोलेटर में स्थापित रहने दें और उसे ऐसे द्रव के साथ पर्कोलेट करें जो सारसापरीला के पहिले दो हिस्सों में दोबारा एलकोहल डालने से उपलब्ध हुआ हो। अब प्राप्त तरल का द्रव्यमान ८ फ्लुइड आउंस होना चाहिये। अंत में ग्लीसरीन इसमें समाविष्ट कर लें।

मात्रा—२ से ४ फ्लुइड ड्राम=(७·१ से १४·२ घन शतांशमीटर)

(२) लाइकर-सारसी कंपोज़िटस कंसण्ट्रेटस Liquor sarsœ compositus concentratus (ले०)। कन्सण्ट्रेटेड कंपाउण्ड सोल्युशन ऑफ सारसापरीला Concentrated compound solution of sarsaparilla (अं०)। अनंतमूलका घन तरल मिश्र रस-क्रिया। साइल उश्बा मुरक्कब गलीज़।

निर्माण-विधि—सारसापरीला कुचला हुआ २० आउंस, सासाफ़रास की जड़ की छीलें २ आउंस, ग्वायकम वुड की छीलें २ आउंस, मेज़ीरियन बार्क के बारीक टुकड़े १ आउंस, एलकोहल (९०%) ४॥ फ्लुइड आउंस, परिस्रुत वारि (Distilled water) आवश्यकतानुसार सारसापरीला को बारंबार ५-५ पाइंट परिस्रुत वारि में १६०° फारनहाइट के उत्ताप पर एक-एक घंटा तक भिगोएँ। पुनः अन्य द्रव्यों को पानी में भिगोकर और क्वथित कर छान लें। तदुपरांत सकल प्राप्त तरल को एकत्रित मिलाकर आँच पर उड़ाएँ। यहाँ तक कि उसका द्रव्यमान ६ फ्लुइड आउंस रह जाय शीतल होने पर उसमें एलकोहल मिलाएँ और १४ दिन तक रखकर उसे फिल्टर करें। प्रस्तुत द्रव का द्रव्यमान पूरा एक पाइंट होना चाहिये। मात्रा—२ से ४ फ्लुइड ड्राम।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार-प्रकृति—नवीन द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष, पुरातन तीसरे दर्जे में गरम खुश्क है। हानिकर्त्ता—उष्ण प्रकृति को, नव जवानों को, ग्रीष्म ऋतु में और पित्त रक्त गरम ज्वरों तथा मसूरिका आदि उष्ण प्रधान रोगों में। दर्पघ्न—माउज्जुब्न और शीतल अर्क। प्रतिनिधि-चोबचीनी। मात्रा—६ माशे तक।

गुण, कर्म प्रयोग—हिन्दुस्तान में भारतीय एवं यूनानी चिकित्सक भी इसको प्रायः परिवर्तक तथा रक्तशोधक योगों में अधिकता के साथ प्रयोजित करते हैं। यूनानी हकीमों का कथन है कि उश्बा वायुनाशक है तथा यह सूजन उतारता है, शुक्रको पतला करता, प्रकृति को मृदु बनाता, स्वेद और मूत्र का प्रवर्त्तन करता, प्रायः आमाशय यकृत और मस्तिष्क के शीतजन्य रोगों का निवारण करता, वृक्क. वस्ति, तथा जरायु संबन्धी रोगों को मिटाता, प्रत्येक दोष को मलमार्ग से विसर्जित करता, त्वग् रोगों एवं कुष्ठ का नाश करता और गठिया के लिए रामबाण का काम करता है। यह वृक्कशूल, वस्तिशूल, फ़ालिज और लकवा के लिए उपकारी है। श्लेष्मप्रकृति के लिए असीम गुणकारी है। यद्यपि वातज रोगों में कुछ गुण करता है, पर वातप्रकृति को हानिकर भी है; क्योंकि पित्त में तीक्ष्णता और शोणित में उष्मा एवं शोषीकरण पैदा करता है। यदि इसे कतिपय शीतल अर्कों के साथ प्रयोकरें, तो इससे उसका दर्पदलन हो जाता है। उत्तम यह है कि उष्ण एवं रूक्ष प्रकृतिवाले को एवं कृश तथा निर्बल मनुष्यों को इसका प्रयोग न कराएँ। क्योंकि उन्हें यह अहितकर है।

माजून उशबा—उश्बा ७ तो० १। मा०, सनाय २ तो०, सौंफ १॥ तो०, लालचन्दन १॥ तो०, बसफाइज ३ तो०, निशोथ १॥ तो०, मधु और कंद अर्थात् मिस्री प्रत्येक १॥-१॥ पाव—इसका यथाविधि माजून प्रस्तुत करलें।

मात्रा—१ तो० से १॥ तो० तक।

गुण—यह माजून आतशक के मवाद का संशोधन करता, शुक्र को शुद्ध करके संतानोत्पति योग्य बनाता तथा खाज, छाजन और झाँईं एवं व्यंग के लिये गुणकारी है। संधिशूल, मस्तिष्क की रूक्षता एवं संपूर्ण वातज रोगों में लाभकारी है। शरीर से आतशक के मवाद निकालनेके लिये अनेक बार प्रयोग में आ चुका है।

उश्बा पुरातन कास, श्वासकृच्छ्रता, जलंधर और बवासीर के लिये अतीव उपकारी है। गृध्रसी में भी लाभ पहुँचाता है। गर्भाशय मे रखने से बच्चा निकल पड़ता है। जलत्रास रोग में भी लाभदायक है।

डाक्टरी मतानुसार—सारसापरिला के गुणधर्म के विषय में प्रायः बिद्वानों में परस्पर मतभेद है। कोई-कोई तो इसको परिवर्त्तक, स्वेदक और मूत्रप्रवर्त्तक मानते हैं और कोई कहते हैं कि इसमें कोई प्रभाव ही नहीं। क्योंकि आतशक, कंठमाला और आमवात प्रभृति रोगों में इसको साधारणत: अन्य औषधियों के साथ मिलाकर वर्तते हैं, अकेला नहीं देते। अतएव प्रागुक्त मतभेदका निराकरण करना कठिन है। तो भी फिरंगरोग, संधिशूल, चिरकारी त्वग्रोगों में परिवर्त्तक एवं रक्तशोधकरूप से और फिरंग को तृतीय कक्षा में, विशेषकर जब रोगी निर्बल हो, इसको पोटासियम आयोडायड के साथ मिलाकर प्रयोजित करने से अवश्य लाभ होता है।

इंडिजिनिस ड्रग्ज ऑफ इंडिया नामक ग्रंथ के पृष्ठ १८२ पर आर० एन० चोपरा महोदय लिखते हैं—"यह पौधा फिरंग एवं पोषणविकार के उपचार के लिए अति प्राचीनकाल से प्रसिद्धि लाभ कर चुका है। चिरकारी आमवात तथा त्वग् रोगों में एवं रक्तशोधकरूप से भी यह प्रयोग में आता है। अर्वाचीन शोधों से यह बात भलीभाँति प्रमाणित हो चुकी है कि सारसापरीला के प्रभावकारी सार (Active principle) में एन्ज़ाइम (Enzyme) एक उड़नशील तैल और सैपोनीन पाये जाते जाते हैं, जिनमें से किसी में भी, फिरंग के निवारण की वा उन अवस्थाओं के सुधारने की शक्ति नहीं, जिनमें इसका व्यवहार होता है। इस पर भी इसका प्रचुर प्रयोग होता है और इसके द्वारा

प्रस्तुत बहुव्ययसाध्य योग काफी परिमाण में बाजारों में बिकते हैं। सारसापरिला और तद्द्वारा निर्मित योगों का बहुत परिमाण में प्रतिवर्ष भारतवर्ष में निर्यात होता है। ब्रिटिश इंडिया के सामुद्र-व्यापारिक आँकड़ों से यह प्रगट होता है कि ४००००) रुपये वा इससे अधिक कीमत का सारसापरीला गत पाँच वर्षों के बीच प्रतिवर्ष भारतवर्ष में आता था।

अनंतमूल(Hemidesmus indicus) और अनंतमूल भेद (Saccolabium papillosum) नाम के, सारसपरिला से मिलते-जुलते एवं उसी जाति के दो पोधे भारतवर्ष में प्रचुरता के साथ उपजते हैं। अनंतमूल (Hemidesms indicus) की जड़, जिसे भारतीय सालसा (Indian sarsaparila) कहते हैं, दक्षिण भारत में, परिवर्त्तक एवं बल्य रूप से, चिरकाल से हो प्रयोग में आ चुकी है। (वि० दे० "अनंतमूल वा सारिवा")। योरोप में चिकित्सा-व्यवसाय करनेवालों ने भी इसके गुण-धर्म का ज्ञान प्राप्त किया और सन् १८६४ ई० में यह ब्रिटिश फॉर्माकोपियों में सम्मत (Official) करार दिया गया। रोगियों पर प्रयोग करने से यह बात प्रगट होती है कि इसका औषधीय मूल्य सारसापरिला-उश्बा मगरबी से किसी प्रकार हीन नहीं।

परीक्षित डॉक्टरी योग

(१) लाइकार हाइड्राजिराई परक्लोराइडाई	३० मिनिम
पोटासियाई आयोडाइडाई	५ ग्रेन
लाइकर सारसी कंपाज़िटस	२ ड्राम
एक्वा डिस्टिलेटा	१ आउंस पर्यंत

ऐसी एक-एक मात्रा औषध दिन में तीन बार दें।

गुण—फिरंगरोग में लाभकारी है।

(२) पोटासियाई आयोडाइडाई	५ ग्रेन
स्पिरिटस एमोनिया ऐरोमेटिकम	१५ मिनिम
एक्सट्रैक्टम् सारसी लिक्विड	१ ड्राम
एक्वा डिस्टिलेटी	१ आउंस पर्यंत

ऐसी १-१ मात्रा औषध दिन में तीन बार दें।

गुण—फिरंग रोग में उपकारी है।

उशबा हिन्दी–संज्ञा पुं० [अ०] दे० "उश्बहे हिन्दी"।

उ़शर–[अ०] आक। मदार।

उ़शार–[अ०] आक। मदार।

उशिक्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घृत। घी। (२) अग्नि। आग।

उशित्-तगरै–[ता०] चक्रमर्द। चकवँड़। (Cassia Tora, *Linn.*)

उशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वाञ्छा। इच्छा। उ०।

उशीक्–संज्ञा पुं० दे० "उशिक्"।

उशीर–
उशीरक– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) गाँडरकी जड़। खस। वीरणमूल। (Andropogon muricatus, *Roxb.*) रा० नि० व० १२। राज०। भा० पू० १ भ०। मद० व० ३। दे० "खस"। (२) बालक। सुगंधवाला। (Pavonia Odorata, *Willd.*) मुस्ताद्यष्टादशांग।

उशीर गिरि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मैनाक पर्वत।

उशीरबीज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उशीर का बीज। खस का बीया। (२) मैनाक पर्वत। हिमालय के उत्तरका एक पहाड़।

उशीरस्तम्ब–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खस का गट्ठा।

उशीरादि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) खस, चन्दन, मोंथा, गुरुच, धनियाँ और सोंठ इन के काढ़ा में मिश्री और शहद मिलाकर पान करने से प्यास और दाहयुक्त तृतीयक ज्वर का नाश होता है। भैष० र० ज्व०–चि०। (२) खस, नेत्रवाला, नागरमोंथा, धनियाँ, सोंठ, लाजबंती, धोके फूल, लोध, बेलगिरी समान भाग। क्वाथकर पीने से ज्वरातिसार, रक्तातिसार, आमदोष, पिच्छास्राव, मिचली और अरुचि का नाश होता है।

मात्रा—१-२ तो० अष्टगुण जल में। भैष० र० ज्वरातिसार चि०।

उशीरादि काथ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खस, सुगंधबाला, नागरमोंथा, बेलगिरी, धनियाँ, मजीठ, धो के फूल, लोध और सोंठ समान भाग।

मात्रा—१-२ तो० अष्टगुण जल में।

गुण—यह दीपन और पाचन है। पिच्छल आमदोष, विबन्ध, ज्वर, रक्तातीसार और शूलयुक्त आमवात का नाशक है।

उशीरादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खस, तगर, शुण्ठी, कङ्काल, दोनों चन्दन, लवङ्ग, पीपलामूल, पीपल, इलायची, नागकेशर, नागरमोंथा, मुलहठी, कपूर, वंशलोचन, खिरनी, पत्रज, काली अगर, प्रत्येक समान भाग। इनका चूर्णकर सब चूर्ण के आठ गुना मिश्री चूर्णकर मिलाएँ।

मात्रा—१ से ६ मा०।

गुण—इससे वमन, ज्वर, दाह, प्यास और रक्तपित्तका नाश होता है। भैष० र० रक्तपित्त-चि०।

उशीरादि तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खस, तगर कूट, जेठीमधु, चन्दन, हड़, बहेड़ा, भीरु, कमल, श्वेत कमल, लालकमल, सारिवा, बला, असगंध, दशमूल, शतावरी, विदारीकंद, काकोली, गिलोय, अतिबला(कंघी), गोखरू, सौंफ, वाट्यालक (बरियारा), मयूरिका-प्रत्येक कर्ष-कर्ष प्रमाण ले १ प्रस्थ तिलके तेल में पचाएँ। पुनः गोखरू पंचांग युक्त १०० पल मिलाकर पचाएँ। फिर तक्र १ प्रस्थ और वीरण (खस) १ प्रस्थ का १ आढ़क क्वाथ मिला विधिवत् पाचनकर तैल प्रस्तुत करें।

गुण—यह मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, तथा पथरीका नाशक है। यह वृष्य है एवं बल-वर्णकारक और वात पित्त को दूर करता है। भैष० र० मूत्राघत-चि०

उशीरादि पाचन-संज्ञा पु० [सं० क्ली०] पाचन विशेष। एक प्रकार का काढ़ा। उशीर, सुगन्धवाला, मोथा, धनियाँ, सोंठ, वराक्रान्ता, लोध, बेल एवं शुण्ठी चार चार आने भर लेकर ऽ॥ जल में पकाएँ। जब एक पाव जल शेष रहे उतार कर छान लें। गुण—इसके पीने से अरुचि, ज्वरातिसार, अतिशय वेदना युक्त विबंध घर्म्म, रक्तातिसार प्रभृति रोग नष्ट होते हैं।

उशीरादि पान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खस, पित्तपापड़ा, सुगन्धबाला, नागरमोंथा, सोंठ, रक्तचंदन: इनको समान भाग लेकर सोलह गुने पानी में पकाएँ। चौथाई शेष रहने पर ठंडाकर पीने से ज्वर और प्यास दूर होती है। शार्ङ्ग० सं०।

उशीरासव- संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खस, नेत्रबाला, कमल, नील कमल, काश्मीर (केशर), प्रियंगू, पद्मकाष्ठ, लोध, मजीठ, जवासा, पाठा, चिरायता, कुटकी, बर्गदकी जटा, गूलरकी छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, श्वेत कमल, परवल, कचनार, जामुन की छाल, मोचरस प्रत्येक का एक-एक पल चूर्ण मुनक्का २० पल, धौ का पुष्प १६ पल, दो द्रोण पानी में मिलाएँ। पुनः मिश्री १तुला, शहद $\frac{1}{2}$तुला, एक उत्तम मिट्टी के पात्र में जिसमें जटामांसी और मिर्च का धूप दिया हो, डाल मुख बंदकर १मास रक्खें। मात्रा—१-२ तो०। गुण—रक्त-पित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, कृमि और शोथ का नाशक है। भै० र० रक्त-पित्त चि०।

उशीरिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उशीर का व्यवसायी। खस का रोज़गार करनेवाला।

वि० [सं० त्रि०] उशीर सम्बन्धी। खस का बना हुआ।

उशीरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र काश तृण। छोटा काँस।

पर्य्या०—मिषि, गुन्द्रा, अश्वाल, नीरुज, शर।

गुण—मधुर, शीतल और पित्त, दाह एवं क्षय नाशक है। रा० नि० व० ८।

उशेन्य-वि० [सं० त्रि०] कमनीय। सुन्दर। चाहा जाने के क़ाबिल। प्यार करने योग्य। ऋक् ८। ३। ६।

उश्जश्-[अ०] दे० "उशक़"।

उश्तबून- } [मिश्र०] बस्फाइज। खंगाली। (Polypodium vulgare, *Linn.*)
उश्तरान्- }

उश्तर-[फ़ा०] ऊँट। उष्ट्र। शुतुर।

उश्तरख़ार-[फ़ा०] (१) ऊँटकटारा । (२) दे० "जवासा" ।

उश्तर गावपलंग-[फ़ा०] ज़(ज़ु)र्राफ़ः (अ०) । एक जानवर जिसकी गरदन ऊँट के समान, सिर पहाड़ी बैल जैसा और खाल भेड़िये के समान होती है ।

उश्तर ग्याह-[फ़ा०] तज ।

उश्तरान्-[मिश्र०] बस्फाइज । (Polypodium vulgare, *Linn.*)

उश्तुरग़ाज़-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक औषधि की जड़ जो अंजदान के समान होती है । असारियून (यू०) । ज़ंजबीलुल् अजम, .हराब, ज़ंजबील फ़ारसी (अ०) ।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—(१) विदित हो कि जिसने इसका अर्थ शौकुल्जमाल (उष्ट्रकंटक) किया है. उसने भारी भूल की है । कदाचित् ऐसा भ्रम उसे इस कारण हुआ, कि उसने इसे उशतरख़ार (उष्ट्रकंटक) का अरबीकृत शब्द समझा है । पर वस्तुतः यह पारस्य भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'ऊँट का काँटा' होता है । यथार्थतः उश्तुरग़ाज़ का ठीक फ़ारसी 'उशतरकान' है । इस कारण कि कान फारसी में दाँत को कहते हैं और यह औषध ऊँट के दाँत की तरह होती है । गीलानी ने शरह कानून में इसी प्रकार लिखा है ।

(२) कानून में बूअलीसीना ने और उसकी शरह (भाष्य) में गीलानी ने कहा है कि महरूस, जिसे उश्तुरगाज़ भी कहते हैं, अंजदान की जड़ है । इसका गोंद हींग है । किसी-किसी ने लिखा है कि यह एक विशेष प्रकार के अंजदान की जड़ है । इसका फल काले रंग का होता है, इसलिए इसे अंजदान स्याह कहते हैं । कोई-कोई कहते हैं, कि यह अंजदान ख़ुरासानी की जड़ है । किसी-किसी के मत से यह काशम की जड़ है । इसको अरब निवासी ज़ंजबीलुल् अजम, ज़ंजबीलुल् फ़ारस कहते हैं । अफ़रीका की भाषा में इसे मबरूत कहते हैं ।

उत्पत्ति-स्थान—यह ख़ुरासान, मोसल, आज़ुर्बैजान, रोम, बग़दाद आदि के जंगलोंमें उपजती है ।

वर्णन—इसके पौधे में दुर्गंधि आती है पर गोंद नहीं आता । स्वाद इसका ख़राब, तीव्र, तेज और कड़ुआ होता है । इसको ऊँट खाता है । सर्वोत्तम रूमी है । इसके उपरांत खोरासानी । इसकी जड़ जब ज़मीन से निकालते हैं, तब वह सद्यः निःसृत जड़ मधुर होती है । वायु लगने के उपरांत उसकी शक्ति अधिक हो जाती है; क्योंकि खुश्की बढ़ जाती है। इसके पौधे में दूध बहुत होता है जिसका स्पर्श होनेसे शरीर पर क्षत पड़ जाते हैं। अन्ताकी के अनुसार यह जड़ दो प्रकार की होती है—(१) दीर्घ और (२) अदीर्घ । इनमें से दीर्घ को शारब अंबर कहते हैं । यह निकृष्ट है । इसके और बादावर्द के पौधे में यह अंतर है कि उश्तुरग़ाज़ के बीज छोटे होते हैं, जिनको हमारे यहाँ असीफ़र्यः नामसे अभिहित करते हैं । इसके पत्तों एवं अन्य तरोताजा अवयव को मोसल में काहू की तरह खाते हैं । खोरासान निवासी भी इसे गोश्त में पकाते हैं । बादावर्द के बीज पीले एवं सफ़ेद होते हैं । काँटे इसके लंबे होते हैं । तात्पर्य यह कि यह अंजदान के पौधे की जड़ नहीं है; प्रत्युत उसके सदृश वा उसी की जाति के एक पौधे की जड़ है । यह जड़ अंजदान की जड़ से पतली होती और गुण-धर्म में अंजदान मूलके क़रीब क़रीब है। उत्तम वह होती है जो बमूँदा सेलाई जाती है और जो देखने में चमकदार, हलकी, पिलाई एवं कालेपन से रहित और किंचित् तिक्त हो, चबाने से ज़बान पर क़ब्ज़ मालूम हो, गाँठें कम हों, जिरम मातदिल हो, तीक्ष्ण स्वाद हो, कंठ को पकड़ती हो और सफेद हो, वह उत्तम है । ठोस होना भी इसके गुणों में से है । कोई-कोई कहते हैं कि इसमें अंजदान आदि की जड़ मिला देते हैं, यह यथार्थ नहीं । इसे अकेला खाने से श्रेयस्कर यह है कि सिरके में डालकर खायँ ।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष । किसी-किसी के मत से तृतीय कक्षा में उष्ण एवं

रूक्ष है। हानिकर्त्ता—इसका जिरम दीर्घपाकी है और मेदे को खराब करता है। यह हृल्लास एवं वमन उत्पन्न करता एवं मस्तिष्क, पुट्ठों, वस्ति तथा वृक्क को हानिकर है। मलमूत्र में दुर्गंधि उत्पन्न करता है, डकार में अधिक काल पर्यंत इसकी गंध बनी रहती है। इसका कारण यह नहीं कि यह अंगदानवत् दीर्घपाकी है; बल्कि इस कारण कि आमाशयगत अवयवों में शीघ्र व्याप्यमान होकर, देर तक उनमें बाक़ी रहतीहै। दर्पनाशक—शर्बत गोरः, शर्बत अनार तुर्श और सिरका। इससे मेदे में प्रदाह हो जाता है एवं प्यास लगती है। इसलिये उचित यह है कि ऊपर से खट्मिट्ठा अनार चूस लें, किसी-किसी ने शर्बत अनन्नासभी इसका दर्पघ्न लिखा है।

प्रतिनिधि—अंगदान। मात्रा–३॥ मा० से ७मा० तक; सिरका १ तो० १०॥ मा० तक और शर्बत ६ तो० ११ मा० दो सुर्ख (२ रत्ती) तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसकी जड़ अवरोधों का उद्घाटन करती और आमाशय में गरमी उत्पन्न करती है। यह मूत्र का प्रवर्त्तन करती है। इसमें रासायनिक गुण (.कुव्वत तिर्याक़िय:) वर्तमान होता हैं, विशेष कर वह जिसका सिरके में अचार डाला जाय; इसमें .कुव्वत तिर्याक़िया अवश्य होती है; चातुर्थक ज्वर रोगी को इसे ४॥ मा० प्रतिदिन खाना चाहिये। इससे उसे अवश्य लाभ होगा। इसके खाने से भूख बढ़ जाती है, खाना हज़म होता है। आमाशय की आर्द्रता (रतूबत) दूर होती है। आमाशय बल-सम्पन्न होता है। इससे कामला (यर्क़ान) रोग निवृत्त होता है। अजीर्ण-जन्य अतिसार बंद होता है। इससे संधिशूल में उपकार होता है। यह औषध शीतल विषों के लिए भी हितकारी है। इसको पीसकर सिरके में मिलाकर लेप करने से शीत-जन्य शिरःवेदना एवं सर्द शोथों में उपकार होता है। इसका लेप ख़नाज़ीर (कंठमाला) को विलीन कर्त्ता है। इसको सिरके में डालकर खाना, बिना सिरके में अर्थात् अकेले खाने की अपेक्षा श्रेष्ट है। इसके सिरके से आमाशय बलवान होता है, भूख बढ़ती है और वृक्क शक्ति सम्पन्न होता है। यदि ग़लीज़ एवं दीर्घ-पाकी खाद्यों के साथ इसको खाया जाय, तो वे सुगमता पूर्वक पच जायँ। इससे आमाशय में गर्मी पैदा होती है और उदरगत वायु विलीन होती है। इसका अर्क वृक्क, यकृत और प्लीहा को लाभ पहुँचता है। (ख० अ०)

उश्नः–[अ०] छरीला। शैलेय। (Parmelia perlata, *Esch.*)

उश्नहे दरख़्तेसियः–[फ़ा०] वृकपंज। वानस्पतिक गंधक। (Lycopodium Clavatum) दे० "लाइकोपोडियम्"।

उश्नहे विलायती–[फ़ा०] पाषाण पुष्प। पत्थर का फूल। .हज़ाज़ुस्.सख़्र (अ०)। (Cetraria Icelandica) दे० "सेट्रारिया"।

उश्ना-संज्ञा पुं [अ०] दे० "हरनः"।

उश्नान–[फ़ा०] सज्जीबूटी। सर्जिका। अश्नान (फ़ा)। (Saponaria officinalis)। म० अ०। मु० अ०। ख़० अ०। दे० "सज्जीबूटी"।

उश्नान अमरीकी–[अ०] साबुन बूटी। (Quillaja saponaria)।

उश्नान क़.सारीन–[मिश्र०] एक प्रकार का पत्थर जो हरे रंग का और मुलायम होता है और जिस पर धोबी कपड़े धोते हैं। यह मिश्र देशीय पर्वतों में होता है।

उश्नान दाऊद–[अ०] एक प्रकार की बूटी। ज़ूफ़ाए याबिस। दे० "ज़ूफ़ाए खुश्क"।

उ़श्बः–[अ०] दे० "उशबा मग़रबी"।

उ़श्बतुन्नार–[अ०] अनन्तमूल। सारिवा। देशी सालसा।

उ़श्बतुल् अ़जीज़– }
उ़श्बतुल् कल्ब– } [अ०] तराश्नः (अ०)। एक प्रकार का पौधा।

उ़श्बतुल् हिंदिय्यः–[अ०] अनंतमूल।

उ़श्बहे मग़्रबी (निय्यः)–[अ०] विदेशी शारिवा। सारसापरिल्ला। दे० "उशबा मग़रबी"।

उ़श्बहे हिन्दी–[अ०] अनन्तमूल।

उ़श्बतुस्सुवाअ़–[अ०] गंदना।

उश्बा-संज्ञा पुं० [अ०] दे० "उश्बा मगरबी" ।

उश्बा जंगली-[?] जंगली उश्बा । गुट्ट(बम्ब०) । (Smilax ovalifolia, *Roxb.*)

उ़श्बुल् ख़ैल-[अ़०] घोड़ा घास । अश्व तृण । (Collinsonia canadensis)

उश्बो-[यु०] दे० "उश्बो मग़्रबी" ।

उश्बो मग़्रबी-[यु०] (Sarsaparilla) उश्बा । सालसा ।

उ़श्र-[अ़०] आक । मदार । अर्क ।

उश्र-[अ़०] दाँतों की तेज़ी व आबदारी ।

उ़श्रक़-[अ़०] एक प्रकार का सनाय जिसकी पत्ती चौड़ी होती है । आँवल तर्वर ।

उश्रिकी-[?] आँवला ।

उश्रिकीमान-[?] रेशम ।

उ़श्रूश-[अ़०] दरियाई ख़रगोश ।

उश्शाक़-[अ०] उशक़ ।

उश्शाज-[अ०](Dorema ammoniacum, *Don.*) दे० "उशक़" ।

उ़श्शार-[अ०] आक । मदार । उ़शर(अ०) ।(Calotropis gigantea, *R. Br.*)

उश्शः–
उश्शः किल्यानी– } [फ़ा०] उशक़ । किल्यानी । (Dorema ammoniacum *Don.*) दे० "उशक़" ।

उष-संज्ञा पुं० [सं०पुं०] (१)गुग्गुल । गूगल। (Balsamodendron mukul, *Roxb.*)। (२) रात्रिशेष । ब्राह्मवेला । मे० षद्विकं । (३) क्षार मृत्तिका । खारी मिट्टी । श० र० ।

संज्ञा पुं०[सं० क्ली०] (१)पांशुज लवण। नानी मिट्टी से निकाला हुआ नमक । रेहका नोन ।पाङ्गा फुला लवण(बं०)। प०मु० (२) प्रभात । सवेरा ।

उषक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) टङ्कणक्षार । सुहागा । रत्ना० । (२) मृत्तिका लवण । प० मु० ।

उषङ्गु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] संहारकर्त्ता । महेश्वर ।

उषण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शुंठी । सोंठ । Dried root of ginger. (२) मरिच । मिर्च । (Piper nigrum, *Linn.*) रत्ना० । भा० पू० १ भ० । च० द० अ० सा० चि० । "त्रिदोषणादि" । सि० यो० अग्निमां० चि० बृहच्चुक्रसंधान ।(३)पिप्पलीमूल।पीपलामूल। रा० नि० व० ६ । "वचोषणकणाः समाः ।" त्रिकटुके । वै० निघ० २ भ० ज्व० चि० सैन्धवाद्यञ्जन । मिर्च, पीपल, चव्य, सोंठ, पीपलामूल ।

उषणा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पिप्पली । पीपल । (Piper longum, *Linn.*) मे० णत्रिकं । (२) शुंठी । सोंठ । (३) चविका । र० मा० । (४) गजपिप्पलीमूल । गजपीपल की जड़ । अम० । भा० पू० १ भ० । (५) कायफल । कट्फल (Myrica nagi, *Thunb.*) । (६) मरिच । मिर्च । सन्निपात ज्व० चण्डकालोद्धूलन । (७) गजपिप्पली । गजपीपल । वै० निघ० २ भ० जिह्वक सन्निपा० ज्व० चि० ।

उषणादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चूर्णादिविशेष । एक प्रकार की बुकनी ।

मिर्च, पीपलामूल, मोंथा, अतीस, अडूसामूलत्वक्, गोखुरू, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, मुलहठी, मूर्वामूल, ब्राह्मणयष्टिका, मोचा, वंसलोचन, और यवक्षार प्रत्येक समान भाग-इनका बारीक कपड़छन किया हुआ चूर्ण १ मासा जल के साथ सेवन करने से लोहितज्वर, विस्फोटक, रोमान्तिका, जीर्णज्वर और मसूरिका रोग का नाश होता है ।

उषती-वि० [सं० त्रि०] अमङ्गल वाक्य । वह शब्द जिससे दूसरे का दिल दुखे ।

उषप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सूर्य्य । (२) अग्नि । आग । उ० । (३) चित्रक । चीता ।

उषप्रसूत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का क्षार । के० ।

उ़ष़र-[अ०] सफ़ेद आक ।

उषरज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खारा नोंन । खारी नमक ।

उषरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षारमृत्तिका । खारी मिट्टी । रत्ना० ।

उषर्बुध-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रक्त चित्रक । लाल चीतेका पेड़ । (Plumbago rosea,)

श० च० । (२) अग्नि । (३) बालक । बच्चा ।

उषबुर्ध्-वि० [सं० त्रि०] प्रत्यूष में उठने वाला । जो तड़के जागता हो ।

उषल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उखल" ।

उषसी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] संध्याकाल । साँझ । मे० ।

उषसुत-संज्ञा पुं०[सं०पुं०]पांशुज लवण । नोनी मिट्टी से निकाला हुआ नमक ।

उषस्-संज्ञा स्त्री० [सं०क्ली०,स्त्री०] प्रभात । प्रत्यूष । मे० सत्रिक । दे० "उषा" ।

उषस्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चाक्रायण ऋषि ।

उषस्ति-दे० "उषस्त" ।

उषस्य-वि० [सं० त्रि०] प्राभातिक । सवेरे वाला ।

उषा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गो । गाय । हे० च० । (२) रात्रि । रात । मे० (३) रात्रिशेष । प्रभात । वह समय जब दो घंटे रात रह जाय । ब्राह्मवेला । अ० । (४) स्थाली । अ० टी० रा० । (५) अरुणोदय की लालिमा ।

उषाकल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुक्कुट । मुरगा । त्रिका० ।

उषाकाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भोर । प्रभात । तड़का ।

उषासानक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सवेरा और अँधेरा ।

उषाक्षार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) टङ्कण । सुहागा । (२) क्षार मृत्तिका । खारी मिट्टी । रत्ना० । के० दे० नि० ।

उषित-वि० [सं० त्रि०] (१) दग्ध । जला हुआ । (२) बासी । व्युषित । पर्युषित । मे० । तत्रिकं ।

उषितङ्गवीन-वि० [सं० त्रि०] गोगण से खाया हुआ ।

उषीर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खस । उशीर । वीरणमूल । (Andropogon muricatus,) अ० टी० रा० । च०द० र० पि० चि० । दूर्वाद्यतैल ।

उष्-[सं० धातु] इसका अर्थ दहन और वध करना है । जलाना और मारना ।

उष्टिरिण्डस्चे ऑफ्टे विल्डे सेली-[डच०] कुकरौंधा । कुकुन्दर । (Blumea balsamifera, *D. C.*)

उष्टुण्डुक-संज्ञा पुं० [सं०पुं०] अरलू । सोनापाठा । (Oroxylum indicum.)

उष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँट । शुतुर (फ़ा०) । रा० नि० व० १५, १७ । भा० पू० १ भ० । दे० "ऊँट" । (२) वृश्चिकाली ।

उष्ट्रकण्टक (क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का काँटेदार पौधा । ऊँटकटारा । (Echinops echinatus) च० द० । (२) गोक्षुर । गोखरू । "उष्ट्रकण्टकमूलं" ।—भैष० मसूवा० चि० ।

उष्ट्रकण्टक भोजन न्याय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उष्ट्र के कण्टक भोजन का न्याय । ऊँट के काँटा खाने की चाल । क्षत से बहु दुःख सहते भी उष्ट्र जैसे सामान्य भोजन की तृप्ति के सुख को लिये शमी कण्टक खा जाता है, वैसे ही मनुष्य भी यत्सामान्य सुख के आशय से बहुत सा सांसारिक दुःख उठाता है । क्षणभङ्गुर सुख के लिए भावी अनन्त दुःख का ध्यान न रखना "उष्ट्रकण्टक भोजन न्याय" कहलाता है ।

उष्ट्रकाण्डिका-
उष्ट्रकाण्डी- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

एक प्रकार के फूल का पेड़ ।

उट्कटारा, उटाँटी (मरा०) । उँटाटी (बं०) ।

संस्कृत पर्य्या०—रक्तपुष्पी, करभकाण्डिका, रक्ता, लोहितपुष्पी और वर्णपुष्पी ।

गुण—कड़ुई, गरम, रुचिकारी और हृदय के रोग को नष्ट करनेवाली है । इसका बीज मीठा, शीतल, वृष्य और तृप्तिदायक है । रा० नि० व० १० ।

उष्ट्रगोयुग-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उष्ट्रद्वय । ऊँट का जोड़ा ।

उष्ट्रग्रीव-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भगन्दर रोग विशेष । यह पित्तज होता है और ऊँटकी गरदनके सदृश ऊँचा होता है; इसलिए यह उष्ट्रग्रीव कहलाता है । दे० "भगन्दर" ।

उष्ट्रधूमः–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रात में विचरनेवाला बिच्छू। रात्रिक। वा० उ० ३७ अ०। दे० "उच्चिटिङ्ग"।

उष्ट्रधूसर पुच्छिकः–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृश्चिकाली। बिच्छू। बिछाती (बं०)।

उष्ट्रपक्षी–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का द्रुतगामी भूचर पक्षी शुतुरमुर्ग। स्ट्रुथियो केमिलस् (Strutbio camelus)।

उद्भव-स्थान—अरब और अफ़्रीक़ा का मरुस्थल।

विवरण—इसकी चोंच मझोली, फैली हुई भीतर को गोल होती है। मत्था छोटा और गला लम्बा होता है। दोनों पैर अधिक बृहत् और बलिष्ट होते हैं। पैर में दो-दो तलवे होते हैं। उनमें एक भीतर और एक बाहर होता है। भीतरी अधिक बड़ा और खपड़े जैसा होता है। बाज़ू से यह उड़ नहीं सकता। किन्तु इससे उसे दौड़ने में बड़ी सुविधा होती है। इसके बाज़ू और पूँछ में मुलायम पर रहते हैं।

शुतुरमुर्ग प्रायः सभी पक्षियों से बड़ा होता है। इसलिए इसे "पक्षिराज" कह सकते हैं। यह चार से छः हाथ तक ऊँचा होता है। स्त्री जाति एक काल में प्रायः १० अण्डे देती है। फिर एक-एक अण्डा मुर्गी के २४ अण्डों के बराबर होता है।

अधेड़ नर का काला और चिकना तथा मादे या बच्चे का पालक काला अर्थात् कबरा–बीच-बीच में सफ़ेद रहता है। बाज़ू और पूँछके पर बड़े-बड़े पर सफ़ेद होते हैं। बीच-बीच में काले धब्बे देख पड़ते हैं। चक्षु अतिशय तीक्ष्ण और उज्ज्वल होते हैं, इसे अधिक दूर के द्रव्यादि सहज में ही दिखाई देते हैं। यह बहुत बलवान होता है। घटना-क्रम से आक्रमण होने पर यह पद के आघात से व्याघ्रादि शत्रुओं को हटा सकता है। प्रति घंटे शुतुरमुर्ग २० कोस से अधिक जाने की शक्ति रखता है। अतिशय झपटने से यह सहज ही हाथ नहीं लगता। दक्षिण अफ़्रीक़ा के लोग शुतुरमुर्ग का ही चमड़ा पहन उसके पास जाते हैं और यह उन्हें भी शुतुरमुर्ग समझ नज़दीक आने से नहीं रोकता। इसी उपाय द्वारा वे निकट जा और विषाक्त तीर चला इसे मार डालते हैं।

इसे तृष्णा कम सताती है। दो-चार दिन बाद जब तृष्णार्त होता है तब मरुभूमि के मध्य से कलींदे या तरबूज निकाल उसका जल पी लेता है। क्षुधा लगने पर बड़े-बड़े पत्थर लोहे के टुकड़े, कंकड़, काँच के बर्तन, ताँबे के सिक्के और टूटे जूते आदि निगलने लगता है। अफ़्रीक़ा के लोग इसके अण्डे खाते हैं। प्राचीनकाल से अब तक इसके पर का विलायतवाले बहुत ही आदर करते हैं। पालनेसे यह शीघ्र ही हिलमिल जाता है। किंतु, अपरिचित व्यक्ति को पास आते देख शीघ्र ही आक्रमण कर बैठता है। बाइबिल के मत से इसका मांस खाना निषिद्ध है।

उष्ट्रपादिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मदनमालती। मदनमाली। चमेली।

पर्य्या०—शीतभीरुः, भद्रवल्ली, भूमिमत्ता, अष्टपादिका (रा०)।

उष्ट्रप्रमाण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काश्मीरदेशीय शरभ। मद० व० १२।

उष्ट्रप्रिय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कंटकपूर्ण पत्र रहित झाड़ जो मरुभूमि में होता है। करीर। (Capparis aphyla, *Roth.*) भा० पू० १ अ०। दे० "करील"।

उष्ट्रभक्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र दुरालभा। धन्वयास। रा० नि० व० ४।

उष्ट्रभक्ष्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वंश करीर। बाँस का नया कल्ला। बाँशेर कोंढ़ (बं०)। प० मु०।

उष्ट्रमूत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँट का पेशाब।

गुण—कटु, तीता, गरम, नमकीन, पित्त प्रकोपक, बलदायक, उदररोगनाशक और वातविकार नाशक है। रा० नि० व० १५।

उष्ट्रमांस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँट का मांस।

उष्ट्रयान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँट गाड़ी।

उष्ट्रशिरोधर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उष्ट्रग्रीव नामक भगंदर रोग। दे० "उष्ट्रग्रीव"।

उष्ट्रासिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उष्ट्रासन। उँट की तरह बैठने की हालत।

उष्ट्रिका-
उष्ट्री- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
(१) वृश्चिकाली। रा० नि० व० ६। (२) एक प्रकारका मिट्टी का बरतन। हारा०। मृन्मय-सुरा पात्र विशेष। शराब रखने की एक मिट्टी का बरतन। (३) ऊँट की मादा। उष्ट्रभार्य्या। ऊँटनी। साड़िनी। मे० गत्रिकं। विशेष दे० "ऊँट" वा "ऊँटनी"।

उष्ट्री घृत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटनी का घी।

गुण—ऊँटनी का घी पाकमें कटु रस है तथा मूर्च्छा प्रमेह, उन्माद अपस्मार, ज्वर, विष, कुष्ट, उदर-रोग और गुल्म रोग का नाशक तथा शोक, कृमि एवं कफवातघ्न और दीपन है। रा० नि० व० ६।

उष्ट्रीदुग्ध-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटनी का दूध।

गुण-ऊँटनी का दूध—इसके पीने से श्वास, गुल्म, आनाह, कृमि, पेट की गुड़गुड़ाहट, कुष्ट, पित्तार्श और शोक का नाश होता है। दे० "ऊँट"।

उष्ट्रीनवनीत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटनी का मक्खन। गुण-विपाक में लघु, शीतल, व्रण, कृमि, कफ, वात, पित्त और रक्तपित्तनाशक है।

उष्ट्रीक्षीर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटनी का दूध। उष्ट्री दुग्ध। दे० "ऊँट"।

उष्ट्रीदधि-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटनी का दही।

गुण-ऊँटनी का दही—विपाक में कटु, क्षार युक्त, अम्ल, वात, अर्श, कुष्ट, कृमि और उदरोग नाशक है।

उष्ट्रीपय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँटनी का दूध।

उष्ण-वि० [सं० त्रि०] (१) छूनेमें गरम। तप्त। (२) तासीर में गरम। उष्णवीर्य। जैसे-यह औषध उष्ण है।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ग्रीष्म। ग्रीष्म-ऋतु। (२) पलाण्डु। प्याज। (Allium cepa) रा० नि०। (३) धूप।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का सूरण। यह गरम और वातकफनाशक है। भा०।

उष्णक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ग्रीष्म काल। गरमी का मौसम। (२) ज्वर। बुखार। (३) पूग वृक्ष। सुपारी का पेड़। (४) सूर्य्य।

वि० [सं० त्रि०] (१) गरम। तप्त। (२) ज्वरयुक्त। (३) आतुर। धर०। मे०।

उष्णकटु-संज्ञा पुं० [सं०] राजिका। राई।

उष्णकाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्मी का समय। ग्रीष्मऋतु। उष्णागम।

उष्णग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ग्रीष्मकाल। गरमी का मौसम। उष्ण काल।

उष्ण-गण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भद्रदार्व्यादि नामक औषधियों का एक गण। (२) औषधियों का एक वर्ग जिसे वैद्यक में पिप्पल्यादि गण कहते हैं। सु० चि० १७ अ०।

उष्णगन्धा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुलंजन। महाभरी वच।

उष्णगु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य। आफ़ताब। वै० निघ०।

उष्णङ्करण-वि० [सं० त्रि०] उष्ण करनेवाला। जो गर्म करता हो।

उष्णजल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गरम पानी। दे० "उष्णोदक"।

उष्णता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गरमी। ताप। (Heat.)

उष्णत्व-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गरमी। उष्णता।

उष्णदीधिति-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य। आफ़ताब।

उष्णनदी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वैतरणी नदी।

उष्णपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चाय। श्यामपर्णी।

उष्णप्रस्रवण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तप्तकुण्ड। गर्म पानी का झरना। उष्ण जल का सोता।

उष्णफला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की लता। कुन्दुरुकी (बं०)। गोड़ितोंडली (मरा०)। वै० निघ०।

उष्णरश्मि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) आक का पेड़। मदार। (Calotropis gigantea, *R. Br.*) अम०। (२) सूर्य्य।

उष्णरुचि-दे० "उष्णरश्मि"।

उष्णवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सारिवा।

उष्णवात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मूत्राघात रोग। निदान और लक्षण—बहुत मिहनत वा कसरत करने, बहुत राह चलने और विशेषकर धूप में फिरने से पित्त कुपित होकर वायु के साथ पेड़ू में जाकर, पेड़ू, लिंग और गुदा में दाह या जलन करता है। उस समय मनुष्य हल्दी के रंग का या किंचित् लाली लिए हुए अथवा रक्त मिश्रित पेशाब कष्ट के साथ बारम्बार करता है। इस रोग को "उष्णवात" कहते हैं। भा०। चिकित्सा आदि के लिए दे० "मूत्राघात"

उष्णवारण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छत्र। छाता। हारा०।

उष्णवाष्प-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नेत्रजल। आँसू। (२) स्वेद। पसीना। वै० निघ०।

उष्णविदग्धा दृष्टि-संज्ञा स्त्री०[सं०पुं०] एक प्रकार का आँखका रोग। लक्षण-गरमीके कारण तप्त होकर झटपट शीतल पानी में निमज्जन करने से त्रिदोष और रक्त से संयुक्त उष्मा ऊपर को उठकर नेत्रों में पहुँच जाती है। इससे नेत्रों में दाह और संताप पैदा होता है और सफेद भाग में मैलापन आ जाता है। इस रोग में दिन में धुंधला दिखाई देने लगता है और रात्रि में देखने की शक्ति सर्वथा नष्ट हो जाती है, इसी को "उष्ण विदग्धादृष्टि" कहते हैं। वा० उ० १३ अ०।

उष्णवीर्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिशुमार। सूँस। संगमाही। हे० च०।

वि० [सं० त्रि०] तीक्ष्ण-वीर्य। गर्म तासीर रखनेवाला।

उष्णसुन्दर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) विभीतक वृक्ष। बहेड़े का पेड़। (२) बहेड़ा। विभीतक।

उष्ण स्निग्ध-वि० [सं० त्रि०] जो वातको नष्ट करे। वातघ्न (द्रव्य)। गरम तर (वस्तु)। सु० सू० ४१ अ०।

उष्णा (ष्मा)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) क्षय रोग। (२) सन्ताप। (३) पित्त। वै० निघ०। रा० नि० व० २०। (४) पीपल।

उष्णा (भि) गम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ग्रीष्म काल। गरमी का समय। निदाघ। अम०। रा० नि०।

उष्णाङ्गत्व-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पित्त जन्य रोग।

उष्णान्न-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उष्ण भक्त। दे० "अन्न"।

उष्णाम्बु-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुखोदक। गरम पानी। जैसे—"उष्णाम्बु च सुखोदकम्"। प० प्र० ३ ख०। दे० "उष्णोदक"।

उष्णालु-वि० [सं० त्रि०] (१) आतपाक्रान्त। (२) शीतल प्रिय। (३) उत्ताप सह्य करने के लिए असमर्थ। जो गर्मी सहन न कर सके।

उष्णासह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरत्काल।

वि० [सं० त्रि०] उत्ताप न सह सकनेवाला।

उष्णांक-संज्ञा पुं० [सं०] भौतिक विज्ञानमें उष्णता की उतनी मात्रा जितनी की एक हज़ार ग्राम या माशा जल के तापक्रम को एक दर्जा शतांश अधिक करने के लिए आवश्यक है। इसे उष्णता की एक "इकाई" भी कहते हैं। (Calorie, Unit of heat)

उष्णांशु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य्य। सूरज।

उष्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महेरा। यवागू।

उष्णिग्-दे० "उष्णिहा"।

उष्णिमा-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] उत्ताप। गर्मी।

उष्णिहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरीरावयव विशेष। उष्णिग्। "उष्णिगेव उष्णिहा"। (सा० भा०) ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्। अथर्व २। ३३। २

उष्णी गङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] "उष्ण प्रस्रवण"।

उष्णीष-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, क्ली०] (१) शिरस्त्राण। पगड़ी। साफ़ा। साफ़ा बाँधने से लाभ—पवित्रतादायक, केश के लिए हितकारक और धूल, वायु तथा धूप आदि नाशक है। मद० व० १३। आँख के लिए हितकारक, आयुवर्द्धक

और सरदी तथा गरमी का निवारण करनेवाला है। रा०। (२) मुकुट। ताज।

उष्णीषकीकस–संज्ञा पुं॰ [सं॰क्ली॰] (Articular cartilage) जोड़ पर लगी हुई कुर्री।

उष्णोदक–संज्ञा पुं॰ [सं॰ क्ली॰] उष्ण जल। गर्म पानी। क्वथित जल। शृतवारि। पकाया हुआ पानी। गरम किया हुआ पानी। औटाते-औटाते धीरे-धीरे झागरहित निर्मल–साफ़ हुआ और आधा, चौथाई वा अष्टमांश शेष रहा हुआ पानी। वह पानी जो पकाते-पकाते आठवाँ भाग, चौथाई वा आधा भाग बच जाय, "उष्णोदक" कहलाता है। प० प्र० १ ख०। कहा हैं—

"सार्द्धद्रयम् तत्पाद हीनं।
वातघ्नमर्द्धहीनंतु पित्त जित॥
कफघ्नं पाद शेषञ्च।
पानीयं दीपनं स्मृतम्॥
शारदं चार्द्धं पादघ्नं।
पाद हीनंतु मेहनम्॥
शिशिरे च वसन्ते च।
ग्रीष्मे पादाव शेषितम्॥
विपरीत श्रृतं दृष्वा।
वार्षिकं मार्गिकं स्मृतमिति॥

गुण—उष्णोदक कफ, आमवात एवं मेदनाशक, वस्तिशोधक तथा दीपन है। कास, श्वास और ज्वर रात्रि को उष्णोदक पीने से नष्ट होते हैं। शार्ङ्ग॰ सं०। सु॰ सं॰। उष्णजल आमपाचक है। इसलिए ज्वरार्त्त मनुष्यों को गर्म जल पिलाने से उनके शरीर में वह जल–वायु को अनुलोमन करता है। यह अग्निदीपन और शीघ्र पचनेवाला है। थोड़ा पीने से तृषा शांत होती है और यह कफ को परिशोषण करता है।

परन्तु यह उष्ण जल—इस प्रकार युक्ति संपन्न और गुणकारी होने पर भी अत्यंन्त बढ़े हुये पित्त के कोपवाले को तथा दाह, भ्रम, प्रलाप एवं अतिसार युक्त ज्वरों में देना उचित नहीं। क्योंकि इस ज्वर में गर्म जल देने से–दाह, भ्रम, प्रलाप और अतिसार अधिक बढ़ जाते हैं, और शीतल क्रिया से तथा शीतल जल देने से शांत होते हैं। यथा–

"शीतेनोष्ण कृतान् रोगान्।
शमयन्ति भिषग्विदः॥
येतु शीतकृता रोगा।
स्तेषाञ्चोष्णं भिषग्जितम्॥
च॰ वि॰ ३ अ०।

यह अर्धावशेष (पकाते-पकाते आधा बचा हुआ वा अर्द्धहीन), त्रिपादावशेष (तीन चौथाई बचा हुआ अर्थात् पादहीन), चतुर्थांशावशेष (चौथाई बचा हुआ अर्थात् त्रिभागहीन) भेद से तीन प्रकार का होता है। साधारणतः कुछ काल तपाकर भी उदक व्यवहार किया जाता है।

गुण—"इनमें से पादहीन (तीन चौथाई बचा हुआ) गरम पानी वातनाशक, अर्द्धहीन (वा अर्द्धावशेष) पित्तनाशक और पादशेष पकाया पानी कफनाशक, पानीय, हलका और दीपन है।

पादहीन हेमन्त में, चौथाई बचा हुआ (पादार्द्धोन) शरद् में और अर्द्धावशेष प्रावृट्, वसंत और ग्रीष्म ऋतुमें हितकारी एवं पथ्य है।" भा०।

पकाया हुआ पानी खाँसी, ज्वर, विबंध और वातकफनाशक, दीपन तथा वस्तिशोधक है। रात में पकाया हुआ पानी कफनाशक, वातहारक और अजीर्णकारक है। दिन का पकाया हुआ पानी रात में गुरु (जाड्य) हो जाता है। अतएव उसे रात में न पीना चाहिये। उसी प्रकार रात में पकाया दिन में भारी हो जाता है। इसलिए उसे दिन में न पीना चाहिये। रा० नि० व० १४।

नोट—जल के विशेष विवरण के लिए दे० "पानी"।

उष्णोपगम–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] ग्रीष्म काल। गर्मी का मौसम। अम०।

उष्म(क)–संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुं॰] (१) चार। र० मा०। (२) चय रोग। रा० नि० व० २०।

(३) गरमीकी ऋतु। ग्रीष्मऋतु। अम०। (४) वसन्तकाल। (५) उष्णता। गरमी। ताप। (६) आतुर। मे० कत्रिक। (७) धूप। उत्ताप। (८) क्रोध। गुस्सा।

उष्मज-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) साधारण नमक। रत्ना० (२) छोटे-छोटे कीड़े जो पसीने मैल और सड़ी-गली चीजों से पैदा होते हैं। जैसे—खटमल, मच्छर, किल्ली, जूँ, चीलर इत्यादि।

उष्मता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उष्णता। गर्मी।

उष्मपा-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उष्म पानकारी तपस्वी विशेष।

उष्मभ्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य्य। सूरज।

उष्ममास्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य। आफ़ताब।

उष्मल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चारपाई का ढाँचा।

उष्मवत्-वि० [सं० त्रि०] उष्मविशिष्ट। गर्म। "ज्वरदाहोष्मवतीं वृद्धिम्" सुश्रुत।

उष्मस्वेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वेद का वह भेद जिसमें किसी तप्त वस्तु द्वारा मनुष्य को स्वेद दिलाते हैं। उष्मजन्य घर्म। बफारा। विधि—(१) प्रथम देह को कपड़ों से अच्छी तरह ढाककर पुनः खटाई में बुझे हुए पत्थरों से अथवा वायुनाशक पदार्थ से क्वाथ रसादि गरम-गरम द्रव से घड़े को भरें और उसके एक बाजू में छिद्र करके तथा उसका मुख बन्द कर तीन टुकड़े की एक धातु (लोह पीतलादि) की अथवा लकड़ी की, छः अंगुल का जिसका मुख हो और आकार में गोपुच्छ के समान हो, ऐसी दो हाथ की नली उस छिद्र में लगाएँ। पुनः तैल की मालिश किए हुये प्राणी को कम्बल या रजाई आदि ओढ़ाकर उस हस्तिशुण्डिक नली से स्वेदन करें।

(२) प्रथम एक गड्ढा इस प्रकार का बनाएँ जो मनुष्य के आकार का हो पुनः उस गड्ढे को खैर की सूखी लकड़ी से भरकर आग लगाएँ, जब लकड़ी जलकर कोयला हो जाय, तब दूध, धनियाँ और खटाई का पानी लेकर कोयले को बुझादें। फिर उस कोयले को गड्ढे में से निकाल कर उस गड्ढे में अंड के पत्ते बिछादें और उस पर रोगी को सुखपूर्वक सुलाकर स्वेद करें। इसी प्रकार उड़द आदि वायुनाशक पदार्थ औटाकर प्राणी को सुलाकर स्वेदन कर्म करें। योग त०।

उष्मा-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं० उष्मन्] (१) सन्ताप। गरमी। (२) पित्त। (३) क्षय रोग। रा० नि० व० २०। (४) ग्रीष्मऋतु। गरमी का मौसम। अ० टी० नीलकण्ठ। (५) धूप।

उष्मागम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ग्रीष्मकाल। (२) उत्ताप।

उष्मान्वित-वि० [सं० त्रि०] उत्तेजित। भड़का हुआ।

उष्माय-संज्ञा पुं० [सं० नामधातु] इसका अर्थ उष्मा उद्वमन करना या आग उगलना है।

उष्मायण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ग्रीष्मकाल। गरमी का मौसम।

उष्मोपगम-दे० "उष्मायण"।

उ़स़्क़-[अ०] एक अप्रसिद्ध पौधा।

उसकन-संज्ञा पुं० [हिं०] उबसन। जूना। बरतन माँजने का बान या पयाल आदि का मुट्ठा।

उसक्लानी-[पं०] लोनिया। छोटा कुलफ़ा।

उसकिया-[ते०] वरुण। बरना। (Cratæva roligiosa)

उसन-[बं०] आसन।

उसनना-क्रि० स० [सं० उष्ण वा स्विन्न] (१) (१) उबालना। पानी के साथ आग पर चढ़ाकर गरम करना। (२) पकाना।

उ़स़्ब-
उ़साब- } [ब०ब०] चीता। शीतरज। (Plumbago zeylanica, *Linn.*)

उसबा-संज्ञा पुं० [अ० उश्बः] उशबा।

उ़स़्म़ुस़्म्-[अ०] (१) सिंह। शेर। (२) बहुत लंबा ऊँट।

उसमा-संज्ञा पुं० [अ० वसमा] उबटन। बटना।

उसरकाय-[ता०] आमला। (Phyllanthus emblica)

उसरौड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया। भूदबकी।

उससना-क्रि० [हिं०] श्वास ग्रहण करना। साँस भरना।

उ़स़ा-[अ०] साँप।

उ़स़ान्-[अ०] [बहु० उ़स्‌वासि़न] धूआँ। धूम्र। दुख़ान। (Smoke.)

उ़साब-[बरब०] दे० "उ़स़ब"।

उ़स़ार-[अ०] रज। धूल। गर्द। गुब्बार।

उ़स़ार:-[अ०] [बहु० उ़स़ारात्] फल आदि का निचोड़ा हुआ रस। वह चीज़ जो निचुड़ने से प्राप्त हो। स्वरस। निचोड़। अफ़्शुर्द:। (Succus.)

उ़स़ारतुल् क़र्ज़्-[अ०] अकाकिया।

उ़स़ारतुस्सूस-[अ०] मुलेठी का सत। रुब्बुस्सूस।

उ़स़ारहे आमल:-[अ०] सुक्क। सत आमला।

उ़स़ारहे आर्ग़ीस [अ०] ज़रिश्क की छाल का निचोड़।

उ़स़ारहे इन्क़िरास-[अ०] (Extractum pancreatis) दे० "पैन्क्रिएटिस लाइकर"।

उ़स़ारहे उ़श्बहे सय्याल-[अ०] उशबा की तरल रसक्रिया।

उ़स़ारहे क़िस़्स़ाउल्‌हि़मार-[अ०] (Extractum elaterii) देवदाली सत। बंदाल का सत।

उ़स़ारहे कुचल:-[अ०] विषमुष्टी सत्व। कुचला का सत। (Extract of nux vomica)

उ़स़ारहे कुचलहे सय्याल-[अ०] (Liquid extract of nux vomica) विषमुष्टी का तरल सत्व।

उ़स़ारहे कोकनार सय्याल-[अ०] पोस्ते की तरल रसक्रिया।

उ़स़ारहे ख़्यार दश्ती-[अ०] (Elaterium) देवदाली का सत्व। बंदाल का सत।

उस़ारहे ग्याह सितारह्-[अ०] (Extractum aleteridis) उदरशूलारिमूल सत्व।

उ़स़ारहे तर्ख़श्क़ून-[अ०] (Extractum taraxaci) अरण्य कासनीमूल सत्व।

उ़स़ारहे तर्ख़स्क़ून सय्याल-[अ०] (Liquid extract of taraxacum) अरण्यकासनी तरल सत्व।

उ़स़ारहे तिर्याक़-[फ़ा०] अहिफेन सत्व। (Extract of opium)

उ़स़ारहे तिर्याक सय्याल-[फ़ा०] अहिफेन तरल सत्व। (Liquid extract of opium)

उ़स़ारहे दातूर:-[अ०] धुस्तूर सत्व।

उ़स़ारहे दातूरहे फिरंगी-[फ़ा०] (Extract of stramonium) विदेशी धुस्तूर सत्व।

उ़स़ारहे दारहल्द-[अ०] (Extractum berberidis) रसवत। रसांजन।

उ़स़ारहे नील-[फ़ा०] नील। (Expressed juice of indigo) नील का कुचल कर निकाला हुआ रस।

उ़स़ारहे मद्क-[फ़ा०] मुलेठी का सत। रुब्बुस्सूस।

उ़स़ारहे रावंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] रेवंदचीनी का सत। दे० "रेवंदचीनी"।

उ़स़ारहे रेवंद-[अ०, फा०]
उ़स़ारहे-रेवन्-[द०] } (१) (Cambogia) gamboge. उसारारेवंद। वि० दे० "उसारारेवंद"। (२) रेवंदचीनी की रसक्रिया। रेवंदचीनी का सत। दे० "रेवंदचीनी"।

उ़स़ारहे परेरा सय्याल-[अ०] (Extractum pareirae liquidum) परेरा तरल सत्व। दे० "पराइरी रैडिक्स"।

उ़स़ारहे पाठा सय्याल-[अ०] (Extractum cissampelii liquidum) पाठा तरल सत्व। दे० "पाठा"।

उ़स़ारहे बंग हिंदी-[फ़ा०] (Extractum cannabis indicae) भंग सत्व।

उ़स़ारहे बाक़्लहे आहू-[अ०] (Extractum menyanthis) बकबीन सत्व। दे० "मेनीएन्थीज़"।

उ़स़ारहे बाक़्लहे इज़्रिह्-[फ़ा०](Extractum physostigmatis) लोबिया कालाबार सत्व। दे० "फाइसाष्टिग्मेटस सेमिना"।

उ़स़ारहे रेवंद हिंदी-[अ०] (Cambogia indica) Indian gamboge यह तमाल वृक्ष (Garcinia morella, *Des.*) से निकला हुआ एक प्रकार का रालदार गोंद है जो लक्षण एवं गुणधर्म में कैम्बोजिया के समान

होता है। फ़र्फ़ीराने हिंदी। उसारारेवंद हिंदी। दे० "तमाल"।

उसारहे लह्यतुत्तीस-[अ०] लह्यतुत्तीस का उसारा।

उसारहे सिब्र बर्बदी-[ति०] (Extractum aloes barbadensis) बर्बदी एलुवाका सत्व।

उसारहे स्ट्रोफैन्थस-[फ़ा०]स्ट्रोफैन्थस सत्व। (Extractum strophanthii) दे० "स्ट्रोफैन्थस"।

उसारहे हिमाय सीनी-[अ०] दे० "शाहचीनी"।

उसारहे हूफ़ारीकृतीदास-[अ०] उसारहे लह्यतुत्तीस।

उसारा-संज्ञा पुं० [अ० उसारः] दे० "उसारः"।

उसारारेवंद-संज्ञा पुं० [अ० उसारहे रेवंद] एक प्रकार का राज़दार गोंद। ग़ोता ग़ंबा, गोतागंबा, लालरस (हिं०)। उसारहे रेवन (द०)। उसारहे रेवंद, रुब्बे रेवंद, फ़र्फ़ीरान (अ०)। कैम्बोजिया Cambogia, गैंबोजिया gambogia (ले०)। गैंबोज Gamboge (अं०)। मक्कि, इरेवल-चिनिप्-पाल (ता०)। रेवल-चिनिपाल (ते०)। रेवाचिन्नि-सीरा (मरा०) गोकतु, गोकतुमेल्लियम् (सिं०)। सनतोसी, तनतो असी या सनकोअसी (बर०)।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—उसारारेवंद एक प्रकार का रालदारगोंद (Gum resin) है, जो विलायतीतमाल वा फ़र्फ़ीरान वृक्ष(Garcinia Hanburii) के तने में शिगाफ़ देने से प्राप्त होता है। अतः यह स्पष्ट हो गया कि वस्तुतः यह उसारारेवंद (रेवतचीनी का सत) नहीं, परंतु इसका रंग और गुणधर्म उसारारेवंद के तुल्य ही हैं; इसलिये यह व्यापारिक मंडियों में उसारारेवंद के नामसे प्रसिद्ध हो गया। उपर्युक्त अरबी, फ़ारसी, हिन्दुस्तानी, दक्खिनी, तेलगु और मराठी भाषा के पर्य्यायों का शाब्दिक अर्थ "रेवंदचीनी का रस वा सत" है। किन्तु भाषा में व्यवहार के अनुसार वे गैंबोज के यथार्थ नाम हैं। यद्यपि ग़लती से कतिपय ग्रंथों में रेवंदचीनी के लिये उनका प्रयोग किया गया है, पर गैंबोज (विलायती तमाल निर्यास) के अर्थ तक ही उनका सीमित रखना संशयच्छेदी होगा। कतिपय अन्य ग्रंथों में केवल पूर्वोक्त द्रव्यों (गैंबोजी और रेवंदचीनी) के नाम को ही नहीं, अपितु हड़ताल के पर्य्यायों को भी परस्पर मिलाकर भ्रमपूर्ण बना दिया गया है। चाहे इसका जो कारण हो, यह सर्वथा परिवर्जनीय है।

श्याम देश के कैम्बोजिया नामक स्थानमें प्रचुरता से इसके वृक्ष पाये जाते हैं। इसलिये इस वृक्ष के निर्यास का नाम भी "कैम्बोजिया" रख दिया गया। फराँसीसी भाषा में इस रालदार गोंद को गम्मीगोटी कहते हैं और ग़ोतागंबा इसी से अरबी बनाया गया है अर्थात् गोटी का अरबीकृत ग़ोता और गम्मी का अरबी रूपांतर ग़ंबा है।

भारतवर्ष में भी इस जाति का एक वृक्ष होता है जिसे संस्कृत में तापिंजा या तमाला और हिंदी तथा बंगला में तमाल कहते हैं। इस वृक्ष का लैटिन नाम Garcinia morella, है। इसके वृक्ष से भी एक प्रकार का कैम्बोजियावत् रालदार निर्यास प्राप्त होता है जो आकृति एवं गुणधर्म में सर्वथा उसके सदृश होता है। वि० दे० "तमाल"।

कैम्बोजिया एलोपैथी मेटीरिया मेडिका में पहिले सम्मत (Official) था। यद्यपि अब यह असम्मत (Not official) है। तथापि यह अबभी प्रयोग में आता है।

(*N. O. Guttiferoe.*)

उत्पत्ति-स्थान—श्यामदेश, विशेषकर श्यामदेश के कैम्बोजिया नामक स्थान में इसके वृक्ष उत्पन्न होते हैं और वहीं से यह दवा आती है।

परिचय—इसके गोंद के बेलनाकार लंबे-लंबे ठोस वा खोखले टुकड़े (रोल) वा बत्तियाँ होती हैं। जिन पर लंबाई के रुख रेखाएँ-धारियाँ पड़ी होती हैं। ये टुकड़े सहज में ही टूट जाते अर्थात् भंगुर होते हैं और उनकी सतह ललाई लिए पीली होती हैं। इसका चूर्ण गंभीर हरिद्रा वर्ण का और सर्वथा निर्गंध होता है। इसका स्वाद तीव्र चरपरा होता है।

इतिहास—चीन निवासियों को अनुमानतः सन् १३०० ई० में इस औषध का ज्ञान हुआ। योरोप में सन् १६०३ ई० से पूर्व यह औषध अज्ञात थी। प्राचीन भारतनिवासी भी इस औषध का व्यवहार नहीं करते थे।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) तीव्र हरिद्रा वर्ण की राल, जिसको विदेशीयतमालाम्ल वा जौहर फ़र्फ़ीरान (Gambogic acid) कहते हैं, लगभग ७५ प्रतिशत और (२) गोंद १५ से २० प्रतिशत होता है।

नोट—उक्त औषधगत पीतवर्णीय राल अर्थात् गैम्बोजिकएसिड ही इसका प्रभावकारी सत्व है।

प्रभाव—जलवत् तरल विरेक लानेवाला अर्थात् हाइड्रोगॉग पर्गेटिव (Hydrogogue purgative) है।

मात्रा - $\frac{1}{2}$ से २ ग्रेन=(·०३२ से ·१३ ग्राम अर्थात् $\frac{1}{4}$ से १ रत्ती)।

औषध-निर्माण

डाक्टरी मत से—

असम्मत योग

(*Not Official preparations*)

पिल्युला कैंबोजी कंपोज़िटा Pilula camboge composita (ले०)। कंपाउंड पिल ऑफ गैंबोज Compound pill of gamboge (अं०)। उसारा रेवंद मिश्रवटी। हब्ब फ़र्फ़ीरान मुरक्कब। हब्बे ग़ोता गंबा मुरक्कब।

निर्माण-विधि—चूर्णीकृत गैंबोज १ आउंस, बार्बेडोज एलोज़ (एलुआ भेद) का चूर्ण एक आउंस, कंपाउंड पाउडर ऑफ़ सिन्नेमन १ आउंस, सिरप ऑफ़ ग्ल्युकोज़ १ आउंस या आवश्यकतानुसार—संपूर्ण द्रव्यों को परस्पर मिलालें।

शक्ति - (६ में १)।

मात्रा—३ से ८ ग्रेन=(·२६ से ·५२ ग्राम)

गुण-धर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष लिखा है। परंतु प्रयोगों द्वारा ज्ञात होता है कि यह द्वितीय बल्कि तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है।

हानिकर्त्ता—आंत्र और गुदा को।

दर्पनाशक—रोग़न बादाम और रोग़न गुल।

प्रतिनिधि—तमाल का रालयुक्त निर्यास।

मात्रा—ताज़ा १२ रत्ती से १॥। पौने दो माशे तक, पुराना ३ माशे तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह विरेचक है और सकल दोषों को मल के साथ सरलतापूर्वक निस्सरित करता है। यह जिस दोष को दूषित पाता है, उसको वेदना स्थल के चतुर्दिक् से तथा आमाशय, यकृत और सकलांगों से क़ै, दस्त एवं पेशाब द्वारा उत्सर्ग करता है। यह आमाशय में बहुत देर तक नहीं ठहरता; बल्कि शीघ्र अपना प्रभाव कर दुष्ट दोषों को साथ लेकर स्वयं बहिष्कृत हो जाता है। यदि किसी विरेचन द्वारा दस्त न आएँ, तो एक माशे उक्त औषध को थोड़े से दूध में घोलकर प्रयोग में लाएँ, उसी क्षण दस्त आएँगे। यह मस्तिष्क, वात संस्थान, वक्ष, आमाशय और फुफ्फुसगत प्रायः शीतल एवं स्निग्ध व्याधियों के लिये परमोपयोगी है। लक़्वा, फालिज, शैथिल्य और इश्तिलाई आक्षेप का निवारण करता है, कफज श्वास, कास और उन्माद में उपयोगी है। फलतः यह पुरातन व नूतन प्रायः चिरकारी रोगों में हितकर है और श्रेष्ठ औषध है। हकीमों ने तो यहाँ तक लिखा है कि इसे शिशुओं तथा गर्भिणी स्त्रियों तक को दे सकते हैं। परंतु श्रेष्ठ निरापद पक्ष यही है कि इसे गर्भवती स्त्री को न दें। यह सभी प्रकार के उदरगत कृमियों को निकालता है तथा रोध का उद्घाटन करता है। प्रायः इसे गुलकंद के साथ प्रयोजित करते हैं। क्योंकि गुलकंद इसका दर्पघ्न है। इसे शक्कर सुर्ख के साथ भी व्यवहार करते हैं। इसको बारीक पीसकर तोला २ तोले गुलकंद या लाल शक्कर के साथ खिला दें। यदि इसकी क्रिया होते न दिखाई दे, तो कोष्ण जल पिलाएँ। यह क़ै और दस्त दोनों लाता है। इससे किसी-किसी को केवल क़ै और किसी को

विरेक और वमन दोनों और किसी को अत्यंत विरेक तथा किसी को व्यग्रता भी उत्पन्न हो जाती है। किंतु उसकी चिंता न करनी चाहिये। जब इसका प्रभाव समाप्त होते देखें, खाना खाकर सो रहें, चित्त ठिकाने आ जाता है। यदि इसका अत्यधिक प्रभाव हो और गुद स्थल में प्रदाह हो, तो थोड़ा अर्क गुलाब रोग़न बादाम के साथ सुहाता गरम पिएँ और गुल रोग़न उदर तथा गुदा पर मलें।

डाक्टरी मतानुसार
गैंबोज की फार्माकालॉजी अर्थात् उसारारेवंद के आभ्यंतरिक प्रभाव

आमाशय तथा आंत्र—औषधीय मात्रा में प्रयुक्त कराने पर गैंबोज आंत्रिक ग्रंथियों का स्राव विवर्द्धित कर तथा आंत्र के कृमिवत् आकुञ्चन को तीव्रकर हाइड्रॉगॉग पर्गेटिव (जलवत् विरेक्कारी) प्रभाव करती है। पर अधिक मात्रा में प्रयोजित करने पर यह आमाशय तथा आँतों में क्षोभ उत्पन्न करती है, इसलिए पेट में मरोड़ होकर दस्त और क़ै (कभी-कभी रक्त मिश्रित दस्त) आने लगते हैं। विषाक्त मात्रा में देने से आमाशय तथा आंत्र में क्षोभ उत्पन्न कर यह मृत्यु का कारण बनती है।

नोट—क्षुद्रांत्र पर इसका प्रभाव स्पष्ट होता है।

यकृत—यद्यपि इसके अभिशोषित होने के लिए पित्त और वसा की वर्तमानता नितांत अपेक्षणीय है। तो भी यकृत् पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता।

वृक्क—कैम्बोजिया की राल किसी प्रकार रक्त में अभिशोषित होकर मूत्र द्वारा उत्सर्जित होती है और उसे हरिद्रावर्ण प्रदान करती है और किंचित् मूत्रल प्रभाव भी करती है।

कैम्बोजिया के थेराप्युटिक्स
अर्थात्
उसारारेवंद के रोगानुसार प्रयोग

जलंधर (Dropsy), हठीले कब्ज़, मस्तिष्कगत रक्तसंचय में इसका क्वचित् उपयोग होने के सिवा साधारणतः उपयोग नहीं होता। इसे सदैव आध्मानहर औषध के साथ मिलाकर व्यवहार करना चाहिये।

सूचना—शिशु को एवं वृद्धावस्था में तथा पेडू के अवयवों के प्रादाहिक रोगों में अर्थात् आमाशयांत्रिक प्रदाहमें और गर्भिणी वा ऋतुमती स्त्री के लिए यह औषध वर्जित है!

उसारारेवंद हिंदी–संज्ञा पुं० [अ०] उ़स़ारहे रेवंद हिंदी। एक प्रकार का गोंद जो तमालवृक्ष से निकलता है। वि० दे० "तमाल"।

उ़स़ालत्–[अ०] गाढ़ा दूध।

उसास–संज्ञा स्त्री० [सं० उत्+श्वास] (१) लंबी साँस। ऊपर को चढ़ती हुई साँस। (२) साँस। श्वास।

उसासना–क्रि० [हिं०] श्वास ग्रहण करना। साँस लेना।

उसासा–संज्ञा स्त्री० [हिं० उसास] श्वास ग्रहणकरने का समय। दम लेने का वक़्त।

उसिकी–[ते०] (Crataeva religiosa) वरना। वरुण।

उसिथगरै–[ता०] (Eurycoma longifolia.) एक पौधा।

उसिन्नना–क्रि० सं० "उसन्नना"।

उसिरिक–
उसिरिके काय– } [ते०] आमला। आँवला। (Phyllanthus emblica, *Linn.*)

उसीजना–क्रि० [हिं०] धीरे धीरे चुरना।

उसीर–संज्ञा पुं० [सं० उशीर] दे० "उशीर"।

उसीर–[अ०] उशीर (सं०)। खस। (Andropogon muricatus, *Retz.*)

उसीर (ढ़)–संज्ञा पुं० [उ० भा०] भरुई। भरवी। उलु (बं०)। (Imperata Arundinacea, *Cyrill.*)

उ़स़ीर–[अ०] [बहु० अस़ाइर] रज। धूल।

उसुवाना–क्रि० [हिं०] सूजना। फूलना।

उस़ूल–[अ०] [अस़्ल का बहु०] (१) सिद्धांत। (२) जड़ें। (Roots.)

उसूल–संज्ञा पुं० [अ०] दे० "उस.ूल"।

उस.ूल अर्बआः–[अ०] यूनानी वैद्यक में सौंफ़ की जड़, कासनीकी जड़, अजमोदे की जड़ और करील की जड़ इन चार जड़ों का समाहार। मूलचतुष्टय।

उस.ुलुस्सितब्र–[अ०] [अस.ुलुस्सितब्र का बहु०] (Bulb or tuber) कंद।

उसेना–क्रि० स० [सं० उष्ण] उबालना। उसनना। पकाना।

उसेय–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो खसिया और जयंतिया की पहाड़ियों पर होता है। इसकी ऊँचाई ५०–६० फुट, घेरा ५-६ इंच और दल की मोटाई एक इंच से कुछ कम होती है। इससे दूध या पानी रखने के चोंगे बनते हैं।

उसैलम–[अ०] एक रग जो कनिष्ठा और अनामिका के मध्य स्थित है। यह बासलीक़ इब्ती से संबंध रखती है।

नोट—उसैलम असलम का अल्पार्थक रूप है, जिसका अर्थ निरापद है। इस रग की फ़स्द में किसी और रग के कटने का भय नहीं। इस लिये यह सुरक्षित एवं निरापद है और यह छोटी सी रग है। इन्हीं कारणों से अल्पार्थक रूप से इसे उसैलम कहा गया।

उ़स.–[अ०] एक प्रकार का कीड़ा जो खाल और ऊन खाता है।

उ़स.उ़स.–[अ०] (Coccyx) पुच्छास्थि।

उ.स.का (कू) ल–[अ०] (१) ख़ुशा ख़ुर्मा। (२) ख़ुशा अंगूर। (३) जंगली बैंगन।

उस्किया–[ते०] (Cratæva religiosa) वरुण। बरना।

उस्क़ीदूलियून–[रू०] काकनज। पपोटन।

उस्कामान–[सं० ?] (१) बरना। (२) रेशम।

उ (इ) स्क़ीरास–[बरब०] अजवाइन ख़ुरासानी।

उस्कुफ़्–[अ०] अधोपक्ष्म। नीचे की पलक।

उस्कुरुज्जः–[अ०] वह बरतन जिसमें पाँच मिस्क़ाल पानी आ जाय। बारह तो० आठ मा०।

उस्कूबः–[अ०] बोतल प्रभृति की डाट। काग। कॉर्क (Cork)

उस्क़ूलूक़ंदयूँन–[यू०] एक बूटी जो कंकरीली भूमि, पर्वतों और आर्द्र स्थलों में उत्पन्न होती है। यह हंसराज वा परशियावसाँ की तरह होती है। इसमें न तना होता है और न फूल और फल होते हैं। इसके पत्ते छोटे और किंचित् लंबे होते हैं। पत्र-प्रांत कटावदार होते हैं। इन पत्तों के पृष्ट तल का वर्ण ललाई लिए होता है जिन पर बारीक और मृदु रोंगटे होते हैं। पत्रोदर हरापन लिये होता है। पत्तों के भीतर जो एक पीतवर्ण की एवं क्रिमि की तरह एक चीज़ होती है, वही इसका बीज है। इसकी जड़ बाहर से हरी होती है। इस पर रोंगटे भी होते हैं और यह शाखा-प्रशाखा होती है। कोई कोई इसे जंगली प्याज़ का एक भेद बतलाते हैं। किसी-किसी के अनुसार यह कबर रूमी है। कोई कहते हैं, यह जंगली कबर की जड़ है। सारांश यह है कि यह एक संदिग्ध एवं अपरिचित औषध है।

पर्य्या०—हशीशतुत्तिहाल, कफ़ुल् नस्र, अक़र-क़र्यान (अ०)। गयाह जालीनूस, जंगीदारू (फ़ा०)।

टिप्पणी—इसका उच्चारण इस.कूलू कंदयूँन भी होता है। शम्सुल् लुग़ात में जो इसका उच्चारण अस्कूलूक़ीदबलूँन दिया है और लिखा है कि यह रूमी भाषा का शब्द है, वह सर्वथा मिथ्या एवं प्रमाणशून्य है। वि० दे० 'पान (Asplenium falcatum, *Willd.*)"

गुण-धर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार–प्रकृति—शेख़ के अनुसार प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। किसी-किसी के अनुसार एतदाल के साथ गरम और दूसरे दर्जा के प्रथमांश में खुश्क है। किसी-किसी के मत से एतदाल के साथ गरम तथा ख़ुश्क है। तुहफ़ा में द्वितीय कक्षा में गरम एवं तृतीय कक्षा में खुश्क लिखा है।

हानिकर्त्ता—आमाशय, दिल तथा वस्तिको। दर्पनाशक—आमाशय और दिल के लिए, बबूल की गोंद, कतीरा, गुलाब के फूल और मस्तगी तथा वस्ति के लिए मधु। प्रतिनिधि—द्विगुण कमाज़रियूस, समान भाग कबर की जड़ की छाल, अर्द्ध भाग अजमोदा, कोई-कोई द्विगुण ग़ाफ़िस इसकी प्रतिनिधि बतलाते हैं। कोई-कोई जला

हुआ मूँगा लिखते हैं। मात्रा—७ मा० से १०॥ मा० तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसको रोग़न बनफ़शा के साथ सूँघने से फालिज, लक़वा और सकूता को लाभ होता है। यह विस्मृति, सौदावी वसवास, मृगी और लक़वे को लाभकारी है। इसके लेप से प्लीहा की सूजन जाती रहती है। यदि इससे सिकंजबीन तैयार करके ४० दिन तक चाटें, तो प्लीहा की कठिन से कठिन सूजन का भी नाश हो। यह दवा प्लीहा की वैरी है। जो पशु इसे चरते हैं, उनका यदि शवच्छेद कर देखा जाय, तो उनकी प्लीहा छोटी हुई पायी जाती है। इसीलिए इसको हशीशतुत्तिहाल (प्लीह-तृण) भी कहते हैं। बुक़रात लिखते हैं—"क्योंकि यह औषध प्लीहा की सूजन एवं उसकी कड़ाई दूर करती है; इसलिये इसको उस्कूलू-क़ंदयून, जिसका अर्थ "प्लीहा की अव्यर्थ महौषधि" है, कहते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि यह औषध कनखजूरे के विष के लिए अतीव लाभकारी है, इसलिए इसे उक्त नाम से अभिहित करते हैं। क्योंकि यूनानी भाषा में सकूलूकंदर कनखजूरे को कहते हैं। प्लीहोदर में इसे शहद के साथ भी प्रयोजित करते हैं। यह औषध वृक्क तथा वस्तिगत अश्मरी को भी तोड़ती है एवं मूत्रकृच्छ्र में भी गुणकारी है।

उस्क़ो मग़ारी-[यू०] गूलर। उदुंबर। (Ficus glomerata)

उस्क़ोयूस-[यू०, रू०] ख़ुन्सा नाम की जड़।

उस्क़ोर्दियून-[यू०] जंगली लहसुन। (Teucrium scordium.)

उस्क़ोलीन-[यू०] धूआँ। (Smoke)

उस्क़ोलू क़न्दयून-[यू०] हशीशतुत्तिहाल्, कफ़्फुलनस्र, इफ़्रयान (अ०)। ग्याह जालीनूस, ज़ंगी दारू (फ़ा०)।

किसी-किसी के मत से एक बूटी जो परशियावशाँ (हंसराज) के समान होती है। अन्य मत से जंगली प्याज़ (इस्क़ील) का एक भेद है और किसी-किसी के अनुसार एक औषधि की जड़ है। सारांश यह कि यह एक संदिग्ध औषधि है जो अधुना अप्रयुज्य है। वि० दे० "उस्कूलूकंदयून"।

उस्क़ोलूदास-[यू०] इसके संबंध में मतभेद है। किसी के विचार से सरेस की घास और किसी-किसी के मत से एक प्रकार का पत्थर है।

उस्त(स्तु)ख़ान-उस्तख़ाँ= } [फ़ा०] [बहु० उस्तख़ाँहाँ]
(१) अस्थि। हड्डी। (Ossa) Bones.
(२) फल की गुठली। अस्थि। (Nut.)

उस्तख़ाने ख़ुर्मा-[फ़ा०] ख़स्तहे ख़ुर्मा अर्थात् छुहारे की गुठली।

उस्तख़ाँ अन्दोज-[फ़ा०] धेनुक। हरगीला नामक पक्षी।

उस्तख़ाँहाँ-[फ़ा०] [उस्तख़ाँ का बहु०] (Ossa) Bones. हड्डियाँ। अस्थियाँ। (२) गुठलियाँ।

उस्तरख़ार-[फ़ा०] जवासा।

उस्तरग़ार-[फ़ा०] बन भंटा। जंगली बैंगन। द्रुम होई (सिंध)।

उ(अ)स्तरंग-[फ़ा०] यबरूजुस्सनम। यबरूज। अस्तरंज। (Mandragora.)

उस्तीक़ूस-संज्ञा पुं० [यू०] उस्तोख़ुदूस।

उस्तुक़ुस्-[यू०] [बहु० उस्तुक़ुस्सात] तत्त्व। मौलिक।

उस्तुख़ूदूस-[यू०] दे० "उस्तोख़ूदूस"।

उस्तुरक-[यू०] एक वृक्ष की छाल जो भारतीय बाजारों में मिलती है। यह हलके भूरे रंग की, कई इञ्च लम्बी होती है। इसका बाहरी पृष्ठ कोमल एवं कार्कवत्, पर भीतरी पृष्ठ रालदार एवं सुरभित होता है। यह संभवतः (Storax officinalis, *Linn.*) की छाल है। कहते हैं, भारतवर्ष में इसका आयात टर्की से होता है। फा० इं० १ भ०।

उस्तुरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] छुरा। अस्तुरा। बाल मूड़ने का औज़ार।

उस्तुवानः-[अ०] (Cylinder) स्तंभ। बेलन।

उस्तोख़ूदूस-संज्ञा पुं०[यू०] उस्तोख़ूदूस, उस्तुख़ुद्दूस, धारो, अलफ़ेजन (हिं०)। आनिसुलअर्वाह, मुम्सिकुल् अर्वाह, हाफ़िज़ुल अर्वाह, जुर्म (फ़ूलजहरुज्जुर्म)-(अ०)। तुनतुना (बं०)।

सहात्रस (सिरि०)। शाह सफरम (रू०)। लेवेण्ड्युला स्टीकास Lavendula stoechas, *Lavi.* (ले०)। अरेबियन लेवेन्डर Arabian lavender. फ्रेन्च लेवेन्डर French lavender (अं०)। ष्टीकास अरेबीक Stoechas arabique (फ्रां०)। लवेन्डरनु फूल (गु०)। अलफेजम (पुर्त्त०)।

तुलसी वर्ग

(*N. O. Labiatae.*)

उत्पत्ति-स्थान—योरोप, रोम, भूमध्यसागर तट से एशिया माइनर और अरब पर्यंत तथा हज़ाज। इनके अतिरिक्त यह बंग प्रदेश और बिहार में भी उत्पन्न होता है।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—उस्तोखूदूस स्टीकाडूस (Stoechadus) का मुअर्रिब है। स्टीकाडूस यूनान देशीय एक द्वीप का नाम है जिसमें उक्त घास उत्पन्न होती है। अस्तु, इस संज्ञा द्वारा अभिहित हुई। अलफाजुल अद्‌विया के संकलनकर्त्ता ने भ्रमवश इसका हिंदी नाम मुण्डी लिखा है।

वानस्पतिक वर्णन—एक पौधा है जो रबी की फसल में जंगलों और पहाड़ों में तर भूमि में उत्पन्न होता है। प्रकांड एक हाथ लंबा और खुरदरा होता है। पत्र गुच्छाकार सातर (जंगली पुदीना) के पत्तों से कुछ लंबे और बारीक होते हैं। फूल बैंगनी ह्रस्व वृंतक बाल की शकल के और लोमस हृदयाकार, पौष्पिक पत्रों के कक्ष में स्थित होते हैं। ऊपर के पतनशील पौष्पिक पत्र बाल के शिखर पर एक प्रकार के बैंगनी स्तवक का निर्माण करते हैं। एक पुष्प-गुच्छ में बहुसंख्यक पुष्प वर्त्तमान होते हैं। ये स्तवक जौ की बाल की तरह मालूम पड़ते हैं; परन्तु ये जौ की बाल से ह्रस्व होते हैं। फूल सफ़ेदी लिए नीलवर्ण का होता है और उसमें किसी भाँति पिलाई और लालाई भी पाई जाती है। इसमें तीव्र कर्पूरवत् गंध होती है जिसके सूँघने से छींके आती हैं। स्वाद किंचित् तीक्ष्ण एवं तिक्त होता है। इससे प्राप्त रक्ताभ पीतवर्णीय तैल की गंध रोजमेरी तैल का स्मरण दिलाती है। इसका बीज कँगनी की तरह छोटा, महीन, किंचित् चपटा और श्यामता लिए पीला होता है। इसके मर्दन करने से कपूर की सी सुगंधि आती है। इसका स्वाद भी तीव्र एवं तिक्त होता है। बोखारा, रोम और फिरंग तथा अन्य स्थानों का बलिष्ट होता है। उसमें बीज भी होता है, स्वाद में कडुवाहट होती, मृदुता होती और सफ़ेद रोआँ जमा होता है। यह अज़ीमाबाद और बंगदेश में भी होता है। परन्तु भूमि के कारण वहाँ का उस्तोखोदूस निर्बल और खुरदरा, कोई-कोई कालिमा लिए पीला, कोई श्वेत होता है, जिसमें थोड़ा सा नीलापन भी होता है और उस पर रोआँ नहीं होता। किसी किसी में बीज नहीं होता और किसी में अतिशय सूक्ष्म पीताभ श्वेतवर्ण का बीज होता है। किसी किसी की बाल के फूल फैले हुए होते हैं। योरप से भारतवर्ष में उस्तोखोदूस का बहुत आयात होता है।

इतिहास—दीसकूरीदूस के अनुसार ष्टीकाडूस (Stoechados) नामक द्वीप समूह में उपजने के कारण इस पौधे को ष्टीकास (Stoechas) कहते हैं। उक्त ष्टीकाडूस से ही उस्तोखोदूस संज्ञा व्युत्पन्न हुई है। इब्नसीना ने उस्तादूस वा उस्तीकूस नाम से इसका उल्लेख किया है। मुसलमान हकीम इसका बहुत उपयोग करते हैं। मख्ज़नुल् अद्‌विया और मुहीत आजम प्रभृति इसलामी चिकित्सा विषयक निघंटु-ग्रंथों में इसका सविस्तार गुणधर्म उल्लिखित मिलता है। परन्तु आयुर्वेदीय ग्रंथों में इसका नामोल्लेख भी नहीं पाया जाता।

रासायनिक संघटन—उस्तोखूदूस के स्पेनीय तैल का विशिष्ट गुरुत्व ०.९४२ है। यह १८० और २४५ तापांश के मध्य क्वथित हो जाता है।

प्रयोगांश—पुष्पगुच्छ और पत्र।

प्रकृति—शेख़ के मतानुसार प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। तमीमी के मत से प्रथम कक्षा के प्रथम अंश में उष्ण और रूक्ष तथा अब्दुल लतीफ के समीप द्वितीय कक्षा के प्रथमांश में उष्ण और रूक्ष है। कोई-कोई अनुभवी व्यक्ति अब्दुल् लतीफ के कथन को

सत्य मानते और कहते हैं कि अरबदेशीय उस्तोखोदूस तो निस्संदेह ऐसा ही होता है। अन्ताकी ने द्वितीय कक्षा के अंत में उष्ण और तीसरी कक्षा के प्रथम में रूक्ष वर्णन किया है। किसी-किसी ने प्रथम कक्षा में शीतल लिखा है। किसी-किसी के मत से यह मुरक्किबुल क़ुवा (परस्पर विरोधी गुणयुक्त) है, जिसमें शीतलांश उष्णांश की अपेक्षा न्यून है। इब्न तल्मीज़ के अनुसार इसके बीज प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष हैं।

हानिकर्त्ता—इसके खाने से पित्तप्रधान प्रकृति के व्यक्ति को व्याकुलता, वमन और विवमिषा पैदा होती है और इससे प्यास की वृद्धि होती है। यह फुफ्फुस और अधोभागको हानि पहुँचाता है। उष्ण प्रकृतिवालों के आमाशय में पित्त उत्पन्न करके अतिशय हानि पहुँचाता है।

दर्पघ्न—व्यग्रता, वमन और विवमिषा के लिए सिकंजबीन दर्पघ्न है। कतीरा, बबूल की गोंद और इमामा फुफ्फुस विकार के निवारक हैं। आमाशय विकार का निवारण सिकंजबीन से होता है। सिकंजबीन के साथ प्रयुक्त करने के उपरांत फिर किसी दर्पनाशक औषध की अपेक्षा नहीं रहती। नीबू का शर्बत इसके शर्बत का दर्पनिवारक है।

प्रतिनिधि—श्वासोच्छ्वासावयवों के लिए फ़रासियून और सौदा के संशोधनार्थ अर्द्धमात्रा में अफ़तीमून और बिल्लीलोटन (बादरंजबूया)।

मात्रा—क्वाथ में अन्य औषधियों के साथ ७ मा० से १४ मा० तक और अकेले १७॥ मा० तक। इब्नजज्ला के मतानुसार इसकी मात्रा १॥ मा० और अंताकी के मत से १७॥ मा० है।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—इसमें कुछ आग्नेय अंश है, इसलिए यह विलायक, तारल्यकारक, अवरोधोद्घाटक और स्वच्छताकारक (मुजल्ली) है। इसमें किंचित् धारक गुण भी है। अस्तु, यह शरीर एवं कोष्ठावयवों को बलप्रदान करता है। इसमें आग्नेय और पार्थिव दो प्रकारके द्रव्यांश सम्मिलित हैं और ये दोनों तत्व रूक्ष हैं। इसी रूक्षता के कारण यह सड़ाँधावरोधक है। और अपने औष्ण्यसंजनन एवं धारक गुण के कारण जो शैथिल्यजनन गुण के सर्वथा विरुद्ध है, शीतल वाततन्तुओं को उपयुक्त होता और उन्हें बलप्रदान करता है। इसका क्वाथ वातवेदना, आमवात, मृगी और मालीखोलिया को लाभ पहुँचाता है। क्योंकि यह प्रधानतः मस्तिष्क का पूर्णतया संशोधन करता है, बलगम और सोदा के दस्त लाता है। परन्तु पित्त प्रकृतिवालों में व्याकुलता उत्पन्न करता और प्यास लगाता है। (तर्जुमा नफ़ीसी)

यह रद्दी माद्दे को विलीन करता, स्वच्छता करता, तारल्योत्पादन करता और अवरोधोद्घाटन करता है तथा शरीर, हृदय, मस्तिष्क, आमाशय, यकृत, प्लीहा और आंत्र को शक्ति प्रदान करता है। दुर्गंधि उत्पन्न नहीं होने देता, मवाद निकाल डालता है, रूक्षता उत्पन्न करता और संशोधन करता है एवं सौदा और बलगम को परिक्क कर मलमार्ग द्वारा उनका उत्सर्ग करता है। यह सर्द पट्ठों को उत्कृष्ट औषध है। मृगी, मालीखोलिया, उन्माद, विस्मृति, जुमूद, (Catalepsy). दुर्भावना, सौदावी इस्तरखा, तर आक्षेप (तशन्नुज इम्तिलाई), आशंका (हजर) और कंप (इख़्तिलाज) को लाभकारी है। इसका क्वाथ पीने से पट्ठों और पसलियों की वेदना शांत होती है। निर्बल पट्ठेवालों और शीताक्रांत व्यक्तिको सदैव उस्तोखोदूस का व्यवहार करना चाहिए। यह मूत्रावयव एवं मूत्रमार्ग को लाभप्रदान करता है। इसमें अपूर्व रोगनिवारक शक्ति है। वक्ष के रोग, प्रतिश्याय और कास रोग में यह जूफ़ा के समकक्ष है, बल्कि जूफ़ा से अधिक लाभदायी है। शेख की हृद्रोगोक्त औषधियों की सूची में लिखा है कि सौदा के निकालने में इस औषध का विलक्षण प्रभाव होता है। विशेषतः शीतल मस्तिष्क से तो यह सौदाको भली भाँति निकालता है। यह हृदय और मस्तिष्क को रूहोंके जौहरोंको सौदा से शून्य करता है। इसमें थोड़ा सा कब्ज का गुण (ग्राहकता) होने के कारण यह उक्त दोनों रूहों को

शक्ति प्रदान करता है अथवा यह अपने प्रभाव के कारण ऐसा करता है और कब्ज को इतना अधिकार नहीं। यह समग्र बाह्य एवं आंतरिक शक्तियों को बल-प्रदान करता है। उस्तोखोद्दूस से रूह को प्रमोद प्राप्त होता है। मस्तिष्क के लिए यह मुख्य वस्तु है। दूषित मलों और वातिक और श्लैष्मिक दोषों का संशोधन करने में यह झाड़ू का काम देता है। मस्तिष्क में शीतल दोष एवं शैत्य अवशेष नहीं रखना। यदि दूषित वायु के वाष्प मस्तिष्क की ओर चढ़ गये हों, तो यह उन्हें विलीन करके रूह को सूक्ष्मता प्रदान करता है। पर इसके सिवा थोड़ी सी वायु आमाशय में रोक भी देता है। अतएव इसे नीबू के शर्बत के साथ देना चाहिये। यदि सिर में चक्कर आता हो वा आघात-प्रत्याघात एवं घोर शब्द के कारण मस्तिष्क कंप हो तो इसको मधुवारि के साथ प्रयुक्त करना चाहिए। यह दुःख और चिंताका नाश करता है। क्योंकि यह मस्तिष्क के मूल धातुओं से उक्त रोगोत्पादक कारणों का निराकरण करता है। पट्ठों पर नजला गिरने नहीं देता, पट्ठों को उष्णता प्रदान करता और उनको शक्ति-प्रदान करता है। यह उत्तम उत्तेजक, सुगंधि, सार्वांगिक वायु-निःसारक, स्वेदल, श्लेष्मानिःसारक, आक्षेपहर और आर्त्तव प्रवर्त्तक है। इसके फूलों से एक प्रकार का स्थिर तैल परिस्रुत किया जाता है और इसका उदरशूल तथा वक्ष के रोगों में उपयोग होता है। यह पैत्तिक दोषों का शामक है। वातज शिरोशूल में इसका स्थानीय उपयोग होता है। वातज और आमवातिक वेदनाओं में इसके फूलों के सेंक से लाभ होता है। (Indian materia medica by *K. M. Nadkarni pp. 501-2*)

स्पेन में उस्तोखूद्दूस को "रोमेरो सेंटो" (पवित्र रोजमेरी) कहते हैं। इसके फूलों से एक प्रकार का स्थिर तैल इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है—ताजे पुष्पदंड को बंद बोतल में औंधा लटका देते हैं और उसे धूप में कुछ काल तक खुला रखते हैं। इससे जल और स्थिर तैल का मिश्रण बोतल की तह में एकत्रित होजाता है जो खून बंद करने में और क्षतों के शोधनार्थ उपयोग में आता है। (Dymock, *111 Pt. PP. 93-4*)

प्रयोग—(१) ४॥ मा० उस्तोखूद्दूस पीसकर गुलकंद में मिलाकर मधुवारि के साथ दिन रात को सोते समय खाते रहने से सौदावी आतंक और दुःख का सर्वथा नाश होता है। (२) इसको शहद में मिलाकर खाने से चिन्ता का भली भाँति सुधार होता है, बुद्धि को सम्यक् शक्ति प्राप्त होती है और मस्तिष्क का संशोधन होता है। (३) मधु वा शर्करा में इसके फूलों का खमीरा बनाकर इतना व्यवहार में लाया करें कि एकबार में ४॥ मा० फूल प्रयोग में आ जाय। इस प्रकार इसके निरन्तर सेवन से सौदा नष्टप्रायः हो जाता है और मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है। (४) ३॥ मा० उस्तोखुद्दूस का चूर्ण ३॥ मा० अयारिज फैकरा* में मिलाकर खाते रहने से बीस-तीस दिवस में स्पंदन (इख्तिलाज) और कंप रोग को सम्यक् लाभ हो जाता है। (५) कफ तथा वात-जन्य मृगी में इसको मधुवारि के साथ नाक में टपकाने से बहुत कल्याण होता है। क्योंकि इससे मस्तिष्क का शोधन होता है और उसमें शक्ति आती है। (५)इसकी धूनी इस्तरखा (अंग शैथिल्य) में लाभकारी है और इसका शिर पर लेप करना विस्मृति और जुमूद (Catalepsy) के लिए उपकारक है। इसका क्वाथ पट्ठों, पसलियों और संधिगत वेदना का निवारण करता है। रबी की फसल में इसको माजून के रूप में सेवन करने से अपूर्व प्रमोद प्राप्त होता है। आमाशय और अन्य आंतरिक अवयवों से विकृत दोष और अन्य शीतल निरर्थक मवाद निकल जाते हैं। (६) २ भाग उस्तोखुद्दूस और १ भाग कबर की जड़ पीसकर मधु मिलाकर चाटने से आमाशय की सरदी और बवासीर को लाभ होता है। यकृत के शीतज शोथ, इस्तिस्का (जलोदर), यकृतोदर और प्लीहोदर को लाभ पहुँचाता है और गुदरोगों को लाभदायक है। (७) विष भक्षित व्यक्ति को इसे मद्य के साथ बरतना चाहिये। (८) लाहौरी

नमक और सिकंजबीन के साथ भक्षण करने से यह दस्त लाता है। (६) इसके साथ सेंक करना और इसका प्रलेप करना संधिशूल और पार्श्वशूल को लाभकारी है। (१०) इसे सातर (जंगली पोदीना) और करफस के साथ क्वथित कर किसी रेचन औषध के साथ पीने से उपकार होता है। (१२) अकरकरा और सिकंजबीन के साथ यह मृगी को दूर करता है। (१३) एक दिरम उस्तोखूद्दूस एलुआ के साथ मिलाकर खाना कंप तथा धड़कन (इख्तिलाज) के लिए परीक्षित है। ३५ दिवस तक सेवन करना चाहिए। (१४) शिर पर इसका प्रलेप करने से विस्मृति का नाश होता है।

*नोट–बालछड़, दालचीनी, ऊदबलसाँ, हब्बबलसाँ, तज, मस्तगी, तगर और केशर १-१ भाग तथा एलुवा २ भाग लेकर पीस-छानकर एकत्र करें। इसी योग का नाम अयारज फैकरा है। यह रेचक है।

उस्तोखूद्दूस के कतिपय उपयोगी योग

(१) इतरीफल उस्तोखूद्दूस—पीली हरड़, काबुली हरड़, काली हरड़, बहेड़े की छाल, आँवला, सनाय मक्की, सफ़ेद निसोथ, बस्फाइज फ़िस्तकी, उस्तोखूद्दूस, रूमी मस्तगी, अफ़्तीमून, किशमिश, मवेज़ मुनक्का प्रत्येक २ तो० १०॥ मा०। इन औषधियोंको यथाविधि कूट-छानकर आवश्यकतानुसार रोग़न बादाम में मर्दितकर तिगुने मधु में इतरीफ़ल प्रस्तुत करें।

मात्रा – ७ मा० १२ तो० अर्क गावजवाँ के साथ।

गुण, प्रयोग—वात और कफ जन्य व्याधियों में बहुत ही उपयोगी है। मस्तिष्क और आमाशय के मलों का संशोधन करता है और सम्पूर्ण मस्तिष्क रोगों में उपकारक है।

(२) उस्तोखुद्दूस २० तो०, पीली हड़ की बकली ५ तो०, आमला ५ तो०, काबुली हरड़ २ तो०, धनियाँ ३ तो०, ऊद सलीब १॥ तो०, सफ़ेद निशोथ ५ तो० सब औषधियों को कूट छान कर ३ तो० बादाम के तेल में मर्दित कर द्विगुण मधु में इतरीफ़ल प्रस्तुत करें। मात्रा और गुण-प्रयोग पहिले के अनुसार।

(३) हब्ब उस्तोखुद्दूस–पीली हरड़, काबुली हरड़ प्रत्येक १७ मा०, निशोथ २ तो०, एलुवा २१ मा०, उस्तोखुद्दूस, ग़ारीक़ून, बसफ़ाइज, अफ्तीमून प्रत्येक १० मा०, इन्द्रायन का गुदा ५मा०, लौंग, पहाड़ी पुदीना प्रत्येक ४मा० विधिवत् वटिका प्रस्तुत करें।

मात्रा—१ तो० गरम पानी के साथ।

गुण, प्रयोग मस्तिष्क एवं सम्पूर्ण शरीर से सौदा का शोधन करता है। यह मालीख़ोलिया (उन्माद विशेष) को नष्ट करता है और वातज तथा कफज व्याधियों में संशोधन कर्म के लिये विशेष रूप से उपयोगी है।

(४) सऊत (नस्य) उस्तोखुद्दूस—उस्तोखुद्दूस २ तो०, ऊदसलीब १तो०, कुंदश १तो०, रीठे की छाल ६ मा०, कालीमिर्च ३ मा०, कपूर २ मा०, नोसादर ४ रत्ती, समग्र औषधियों को कूट छानकर नसवार की तरह सूँघें।

गुण, प्रयोग—मस्तिष्क संशोधनार्थ अतिशय गुणकारी है।

(५) शर्बत उस्तोखुद्दूस–उस्तोखुद्दूस १६ तो०, बस्फाइज, बादरंजबूया (बिल्लीलोटन), गावज़वाँ प्रत्येक ३ तो० पानी में क्वथित कर छान लें और एक सेर चीनी में चाशनी करें।

मात्रा—४ तो० शर्बत, १२ तो० अर्क गावज़वाँ के साथ सेवन करें।

गुण, प्रयोग—वायु एवं श्लेष्मा का प्रवर्त्तक है। यह बुद्धिभ्रंश और विस्मृति की दशा में उपकारी है।

(६) अर्क उस्तोखुद्दूस—उस्तोखुद्दूस १२ तो०, सूखो धनियाँ १३ तो०, पीली हरड़ की बकली, काबुली हरड़, बहेड़ा, आँवला, काली हड़ प्रत्येक ६ तो०, गुलाब पुष्प ५ तो० यथाविधि अर्क परिस्रुत करें।

मात्रा–६ तो० अर्क, ७ मा० इतरीफल उस्तोखुद्दूस के साथ सेवन करें।

गुण, प्रयोग—काबूस और मेदसे वाष्पारोहण में लाभकारी है।

नोट—डॉक्टरी और वैद्यक में इसका कोई विशेष प्रचलित प्रयोग नहीं है ।

उ़स्फ़ुर-[अ०] कुसुम । बरें । रंग ज़अ़्फ़रान (फ़ा०) । Carthamus tinctorius.

उ़स्फ़ुर बर्री-[अ०] जंगली कुसुम ।

उ़स्फ़ुर् बर्री-[अ०] बादावर्द । (Volutarella divaricata, *Benth.*)

उ़स्फ़ूर-[अ०] (१) चटक । चिड़ा । गौरैया । कुञ्जिश्क (फ़ा०) । (२) मस्तिष्क का एक भाग ।

उ़स्फ़ूरुज्जनः-[अ०] अबाबील ।(Swallow)

उ़स्फ़ूरुश्शौक-
उ़स्फ़ूरुस्सबाख़- } [अ०] ममोला । खंजन चिड़िया ।

उ़स्बः-[अ०] एक प्रकार का लबलाब ।

उस्बा-संज्ञा पुं० [अ०] दे० "उ़श्बः" ।

उस्बा मग़रबी-[उर्दू०] दे० "उशबा मग़रबी" ।

उस्बूअ़-[अ०] [बहु० असाबीअ़] (१) एक सप्ताह । सात दिन । (२) सात बार ।

उस्बो-[गु०] दे० "उ़शबा" ।

उस्बो मग़र्बी-[गु०] दे० "उ़शबा मग़रबी" ।

उ़स्मान-[अ०] (१) हुबारा का बच्चा । (२) अजगर का बच्चा । (३) साँप । (४) साँप का बच्चा । सँपोला ।

उस्मूख़-[अ०] (Meatus auditorius) श्रोत्र सुरंग । सि़माख़ (अ०) ।

उ़स्यान-[अ०] नर लकड़बग्घा ।

उस्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "उस्रा" ।

उ़स्र-[अ०] (Difficulties) कठिनाई । कृच्छ्रता ।

उस्रधन्वन्-वि० [सं० त्रि०] दीप्त धनुर्युक्त । चमकीली कमानवाला ।

उ़स्रुब-[अ०] अनार के बराबर एक पेड़ ।

उस्रयामन-वि० [सं० त्रि०] प्रातःकाल के समय बाहर निकलनेवाला ।

उ़स़्रह्-[अ०] वह घाव जो दोनों पाँवों की उँगलियों के मध्य होता है । खरवा । क़ुरूह, क़द्मैन ।

उस्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वृष । बैल । (२) गाय । (३) उपचित्रा । मूसाकानी । मे० रद्विकं । (४) रश्मि । किरण । (५) सूर्य । आफ़ताब । (६) अश्विनीकुमारद्वय ।

उस्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बलीवर्द । साँड़ । बैल । (२) गाय । गाभी । (३) इन्दुकर्णी लता । (४) पृथ्वी ।

उस्रि-वि० [सं० त्रि०] भ्रमणकारिणी । चलनेवाली ।

उस्रिक,-उस्रिय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीर्ण वृष । बुड्ढा बैल ।

उस्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अल्पदुग्धवती गाभी । थोड़ा दूध देनेवाली गाय ।

उस्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गवी । गाय । अथर्व ३ । ८ । १ ।

उस्रीया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गो । गाय । के० ।

उ़स्रुत्तम्स़-[अ०] (Dysmenorrhoea) कष्टार्त्तव । रजोकृच्छ्रता ।

नोट—प्राचीन यूनानी चिकित्सकों ने इसका वर्णन इ़ह्तिबासुत्तम्स़ (रजोरोध) के ही अंतर्गत किया है ।

उस्रुब-[फ़ा०] शीषक । सीसक । सीसा ।(Plumbum) lead.

उ़स्रुब-संज्ञा पुं० [अ० उ़स़्रुब] मुन्तह्युल् अरब में लिखा है कि यह अनार के पेड़ की तरह का एक वृक्ष है; जिसका शाखाग्र कोमल एवं अरुण वर्णका होता है । इसे रैबासकी तरह छीलकर खाते हैं । मुफ़रदात तिब्ब (तिब्बी निघंटुओं) के अनुसार इसका तना सुर्ख़ होता है, पत्ते चूके के पत्तों की तरह होते हैं । यही हाल फल का है । स्वाद कुछ खट्टा और कसेला होता है । बीज भी चुक्रबीजवत् होते हैं और उनमें खुरदरापन होता है । इसके पत्तों को उबालकर पानी निचोड़कर खट्टी छाछ में मिलाकर खाते हैं । इससे पेट में ताकत आती है और भूख बढ़ जाती है । जिसने इसे सुमाक़ समझा है, उसने भूल की है । हाँ ! किसी-किसी ने यह लिखा है कि यह रैबास की तरह होता है ।

उ़स्रुल् बौल-[अ०] (Dysuria) मूत्रकृच्छ्र।

उ़स्रुल् बौल और उ़स्रुल् बौलका भेद-उ़स्रुल् बौल में पेशाब कष्ट से आता है; पर उस्रुल्बौल् में वृक्कों वा गुरदों में पेशाब पैदा ही नहीं होता।

उ़स्रे तकल्लुम-[अ०] (Dysphonia) कष्ट से बोल सकना। बोल बन्द होना।

उ़स्रे तनफ़्फ़ुस-[अ०] श्वास कष्ट। (Dyspnoea.)

उ़स्रे बलअ़्-[अ०] (Dysphagia) निगिलन कष्ट। निगलने में कष्ट होना। उ़स्रे इज़्दिराद (अ०)।

उ़स्रे विलादत-[अ़०] (Tedious labour, Difficult labour) प्रसव कष्ट।

उस्रंज-[फ़ा०] (Plumbi oxidum rubrum) Red lead. सिन्दूर। सेंदुर।

उ़स़्लत्-[अ़०] बहुत गाढ़ा दूध।

उस़्लूल-[अ०] मशक। मस्सा। आ़ज़ूल़। स़ोलूल (अ०)। (Verruca, Wart)

उस्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उखल। भूरिपत्र। तृणोत्तम। सुतृण।

गुण—यह रुचिकारी, बलकारक और पशुओं को सर्वदा हितकारक है। रा० नि० व० ८।

उ़स़्वा-[अ०] लकड़बग्घा। चर्ख़ (अ०)।

उ़(इ़)स़्स़ः-[अ०] वह कीड़ा जो पश्म वा पशमीने के कपड़ों में लग जाता है। किर्म पश्म।

उह्बल-[?] हपुषा। हाऊबेर। ता० श०।

उह्लीम-[?] ब़ज़्रुर्रंशाद। ता० श०।

उहाकुशि-[का०] कुश। दर्भ।

उहोल-[अ०] (Marry) व्याह करना। उद्वाहित होना,

उहू-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृष। बैल।

उक्ष-वि० [सं० त्रि०] (१) धौत। धोया हुआ। (२) सिक्त।

उक्षण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सेचन। सींचना।

उक्षतर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महावृष। हे० च०।

उक्षा(न्)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृषभ। बैल। भा० पू० १ भ०। (२) ऋषभक नामक ओषधि। रा० नि० व० ५।

उक्षाभद्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृष। बैल। वै० निघ०।

उक्षाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वानर। बंदर। वै० निघ०।

उत्रुजी-[अ०] हलके पीले रंग का कारोरा। वह पेशाब जिसका रंग तुरंज अर्थात् बिजौरे के छिलके का सा हो। इस प्रकार का कारोरा तिल्ली से अधिक पिलाई लिए होता है। Light yellow Colour Urine.

उँकौत-संज्ञा पुं० [देश०] दे० “उकवथ”।

उँगल-संज्ञा पुं० दे० “अंगुल”।

उँगली-संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] हथेली के सिरों से निकले हुए फलियों के आकार के पाँच अवयव जो वस्तुओं को ग्रहण करते हैं और जिनके छोरों पर स्पर्शज्ञान की शक्ति अधिक होती है। अँगुली। दे० “अंगुलि”।

उँगली, कानी-दे० “कानी उँगली”।

उँघाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँघना] (१) ऊँघने की क्रिया या भाव। (२) निद्रागम। झपकी।

उंचन-संज्ञा पुं० [सं० उदञ्चन](१) ऊपरी खिंचाव। (२) खाट खींचने की रस्सी।

उंछ-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मालिक के ले जाने के पीछे खेतमें पड़े हुए अन्नके एक-एक दानेको जीविका के लिए चुनने का काम। सीला बीनना।

उँदरी-संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्ण=बाल+दर=नाश करनेवाला] सिर के बालों का झड़ जाना। गंज।

उँदरू-संज्ञा पुं० [सं० कुन्दरु] बबूल की जाति की एक प्रकार की काँटेदार झाड़ी वा बेल जो हिमालय की तराई, पूर्वीय बंगाल, बरमा और दक्षिण में होती है। ऐल। सीकीकाई। रस्सौल। (Acacia concinna, *DC.*)

उँदुर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूहा। मूसा।

(ऊ)

ऊ-संस्कृत वा हिंदी वर्णमाला का छठा अक्षर वा वर्ण जिसका उच्चारण स्थान ओष्ठ है। यह दो मात्राओं का होने से दीर्घ और तीन मात्राओं का होने से प्लुत होता है। अनुनासिक और निरनुनासिक के भेद से इन दोनों के भी दो-दो भेद होंगे। इस वर्ण के उच्चारण में जीभ की नोक नहीं लगती।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) महादेव। (२) चन्द्रमा।

[बर०] अंडा। कुक्कुटाण्ड। (Ovum.)

वि० [सं० त्रि०] रक्षा करनेवाला।

ऊअना-क्रि० [हिं०] उदय होना। निकलना।

ऊक-[सिं०, बं०, सिंध०] ईख। ऊख। (Saccharum officinarum, *Linn.*)

ऊक़ुतारियून्-[यू०] ग़ाफ़िस।

ऊक़ुत्ता ऊक़ा-[यू०] इक्लीलुल् जबल।

ऊकसवानी-[?] लवणाक्त शुक्त। नमक मिला हुआ सिरका।

ऊक़ास-[यू०] अबुक़ानस। एक बूटीकी जड़ जिससे कपड़ा धोया जाता है।

ऊक़ीमन्-[यू०] बादरूज। बाबरी। जंगली तुलसी।

ऊक़ीमूस-[यू०] बादरूज वा ममरी जैसी एक अप्रसिद्ध बूटी।

ऊक़ीलस-[यू०] रामतुलसी।

ऊकूर्मक-[?] ईख। गन्ना।

ऊक्सोमाली-[यू०] मधुकृत सिकंजबीन।

ऊख-संज्ञा पुं० [सं० इक्षु] ईख। गन्ना।

ऊखम-संज्ञा पुं० दे० "उष्म"।

ऊखरी-[उ० प० सू०] दे० "ऊख"।

ऊखरज-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उद्भिद लवण। खारीनमक। रा० नि०। (२) औषरक। साम्भर नमक। बहुलवण। सार्वरस। सर्वलवण। सार्वगुण। रा० नि० व० २।

ऊखल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की घास। भूरिपत्र। रा० नि०।

संज्ञा पुं० [सं० उलूखल] ओखली। काँडी। हावन।

संज्ञा पुं० [सं० उखर्वल] एक प्रकार का तृण वा घास।

ऊग-[?] शाह बलूत।

ऊगना-क्रि० अ० दे० "उगना"।

ऊगरा-संज्ञा पुं० [ओगरना] एक प्रकार का भोज्य। खाली उबाला हुआ (भोजन)। उग्रा।

ऊचा-सुआ-[नैपा०] हल्दी। (Gardneria ovata) इं० है० गा०।

ऊची-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का भूना हुआ पदार्थ। दे० "ऊम्बी"।

ऊजर-वि० दे० "उजला"।

ऊजरा-वि० दे० "ऊजर" और "उजला"।

ऊजली रोटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊजली+रोटी] एक प्रकार की रोटी। नान ज्वारी।

ऊजा-[तिन्०] एक पश्चिम देशीय वृक्ष।

ऊज़ाल्बूस-[यू०] रतनजोत। (Alkanet)।

ऊजी-[माज़ंद०] एक प्रकार का पुदीना।

ऊज़ीतफ़स-[रू०] अरवी। घुइयाँ।

ऊर्ज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बल। चर०।

ऊटकटारा-संज्ञा पुं० दे० "ऊँटकटारा"।

ऊटि-चेट्टु-[ते०] संगकुप्पी। इस्मधारी। (Clerodendron inerme, *Goertn.*)

ऊड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० बुड=डूबना, हिं० डूबना] (१) डुब्बी। ग़ोता। (२) पनडुब्बी चिड़िया। (३) यन्त्र विशेष। दुतकला। (४) चरखी। इस पर रेशम के तागे चढ़ाए जाते हैं।

ऊडुग-चेट्टु-[ते०] अङ्कोट। ढेरा।

ऊढ़-वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० ऊढ़ा] विवाहित। ब्याहा।

ऊढ़कङ्कट-वि० [सं० त्रि०] वर्म युक्त। सूजा हुआ। फूला हुआ।

ऊढ़ा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विवाहिता स्त्री।

ऊतलकू-[?] (१) अंगूर की बेल। (२) एक शिकारी चिड़िया। चर्ग़।

ऊतलयगड्डु-[ते०] आलू ।

ऊता़-[यू०] कान ।

ऊद-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अगर का पेड़ । (२) अगर की लकड़ी । दे० "अगर" ।

संज्ञा पुं० [सं० उद्र] (१) ऊदबिलाव । (२) गुले सुर्ख़ । गुलाब ।

[मरा०] पेरुमरम् (ता०) । (Ailanthus malabarica, *DC.*) हेम-मर (कना०) । बग धूप (कना०) ।

ऊ़द-[अ०] (१) लकड़ी । काष्ठ । (२) अगर का पेड़ । (३) अगर की लकड़ी ।

ऊ़द क़ाक़ाई-[फ़ा०] दे० "ऊ़द हिन्दी" । इं० हैं० गा० ।

ऊ़द ग़र्क़ी-[अ०] एक प्रकार की अगर की लकड़ी जो काली और गोंद अधिक होने के कारण भारी होती है और जल में डालने से डूब जाती है । इसलिए इसे ग़रक़ी अगर कहते हैं । दे० "अगर" ।

ऊद जष्टी-[?] (Echbolium liniatum) अगर भेद ।

ऊदबत्ती-संज्ञा स्त्री० [अ० ऊद+हिं० बत्ती] एक प्रकार की दक्षिण की बनी हुई अगर की बत्ती । इसे लोग सुगंध के लिए जलाते हैं । अगरबत्ती ।

ऊद बल्साँ-[अ०] बलसाँ नामक पेड़की शाखाएँ । चोब बलसाँ (फ़ा०) । दे० "बलसाँ" ।

ऊदबिलाव-संज्ञा पुं० [सं० उद्बिडाल] संस्कृत-पर्याय-उद्र, जलमार्जार, जलाखु, जलप्लव (त्रि०), जलविड़ाल, नीराखु (हा०), पानीयनकुल, वमी (हे०) । नीरज, नकुल (शब्दर०) । उद्बिडाल, जलनकुल (त्रिका०) । उग्रविडाल (क), लोमशविडाल, पूतिका, पूतिकेशर, सुगन्धि मूत्र पतन, गन्ध मार्जार संज्ञक, पिङ्गल, उग्र, सुगन्ध मूत्र वृषण, कस्तूरी (ध० नि०) । लोमश मार्जार, पूतिका, शालि जाहक, सुगंधि मूत्र पतन, गन्धमार्जार, मारजातक (रा० नि०१६ व०) । क़ु़ज़ाअः, कल्ब माई (अ०) । ऊद (हिं०) । सगे आबी (फ़ा०) । कंदज़, कंदोज़ (तु०) । लुट्रा Lutra (ले०) । ओट्टर Otter (अं०) । लुटर (फ्रां०) । ओत्तर (जर०) । जलमाञ्जार (मरा०) । नीरुकुक (पानी का कुत्ता) (ते०) । नरिनाइ (कना०)

संज्ञा-विवरण—वैदिककाल में इस जंतु को 'उद्र' कहते थे । शुक्र यजुर्वेद में लिखा है—

"सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रोमानाङ्कश्यपो ।"
(२४ । ३७)

अन्य भाषा के शब्द संस्कृत 'उद्र' से ही व्युत्पन्न जान पड़ते हैं । अस्तु, भिन्न-भिन्न देश के शब्दों से इस जंतुवाचक 'उद्र' संज्ञा का समाधिक ऐक्य लक्षित होता है । यथा—वैदिक 'उद्र', हिंदी 'ऊद', डेन्स 'उद्दर' वा 'ओद्दर', ओलन्दाज एवं स्विस तथा जर्मन 'ओत्तर', अँगरेज़ी 'ओट्टर' फराँसीसी 'लुटर', इटलीय 'लोद्र' और स्पेनीय, लेटिन आदि भाषाओं में 'लुट्रा' कहते हैं ।

वर्णन—नेवले के आकार का, पर उससे बड़ा एक जंतु, जो जल और स्थल दोनों में रहता हैं । यह पृथ्वी के प्रायः अधिकांश देशों विशेषतः भारतवर्षमें उत्तर हिमगिरि से दक्षिण कुमारी अंतरीप पर्यंत सभी जगह के नद, उपनद और तालाबों के किनारोंपर पाया जाता है और मछलियाँ पकड़कर खाता है । यह प्रधानतः मछली खाकर जीता; मछली न मिलने पर कीड़े-मकोड़े वा छोटे चिड़े के पकड़ने से भी काम चला लेता है । इसके कान छोटे, पंजे जालीदार, नाखून टेढ़े और पूँछ कुछ चिपटी होती है । रंग इसका भूरा होता है । इसके गात्र की लोमावली निविड़ और क्षुद्र होती है । इसके शरीर के ऊपरी भाग के लोम कोमल और निम्न भाग के अत्यन्त चिक्कण होते हैं । चक्षु के पपोटे किंचित् सूक्ष्म त्वक् से निर्मित और अधिकतर पक्षी-जाति जैसे देख पड़ते हैं । दंत दृढ़ एवं तीक्ष्ण होता है । यह पानी में जिस स्थान पर डूबता है वहाँ से बड़ी दूर पर और बड़ी देर के बाद उतराता है । लोग इसे मछली पकड़वाने के लिए पालते हैं ।

भारतवर्ष में तीन-चार प्रकार का ऊदबिलाव मिलता है । परन्तु उन सब में "ऊद" प्रायः अधिक देख पड़ता है ।

भूटान और आसाम के उत्तर पार्वतीय प्रदेशों में एक प्रकार का ऊदबिलाव होता है, जिसकी

देह मटमैली और मुख, मस्तक तथा कंठ देश सफ़ेद होता है। बीच-बीच में हरित वा हरिताभ पिंगल वर्ण के बिंदु पड़े रहते हैं। शावक का ईषत् पिंगल और वयस्था स्त्री जाति का निम्न भाग प्रायः स्वच्छ रहता है। शरीर का पौने दो और लांगुल वा पूँछ का आयतन एक हाथ से अधिक होता।

हिमालय के हिमप्रधान स्थानों में एक अन्य जातीय ऊदबिलाव होता है। इसके लोम वृहत् अपरिष्कृत और पिंगलाभ कृष्णवर्ण के होते हैं। निम्न भाग लांगुल के अंत प्रदेश पर्यंत श्वेत होता है, जिसमें धूसर और पिंगलाभमिश्रित वर्ण झलकता है। देह का दो और लांगुलका आयतन प्रायः डेढ़ हाथ होता है।

युरोप में लुट्रा वल्गेरिस (Lutra Vulgaris) जातीय ऊदबिलाव होता है। किंतु अमेरिका का ऊदबिलाव उपर्युक्त सभी से वृहत् और देखने में अनेकांश में बीवर की तरह होता है।

प्रशांत महासागर के उत्तरांश एवं अमेरिका के निकटस्थ सागर समूह में "सामुद्रिक उद्बिडाल" मिलता है। इसके लोम अन्य सभी जाति के ऊदबिलावों के लोम की अपेक्षा अधिक चिकने एवं मूल्यवान होते हैं। यह सागर की मछलियों पर अपना जीवन निर्वाह करता है।

उपर्युक्त 'ऊदबिलाव' नामक जन्तु के अंड को ही जुंदबेदस्तर कहते हैं, जिसका यूनानी औषधों में प्रचुर प्रयोग दिखाई पड़ता है। वि० दे० "जुन्दबेदस्तर"।

प्रकृति—तीसरी कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष। मीठे पानी में रहनेवाले ऊद में पिच्छिल चेप होता है, जिससे इसकी नैसर्गिक रूक्षता घट जाती है।

हानिकर्त्ता—अभिष्यंद रोग में।

दर्पघ्न—काला सुरमा।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसकी ज़बान पागल कुत्ते के काटे हुए स्थान पर बाँधने से विष को चूस लेती है। इसकी जीभ जलाकर क्षतों पर छिड़कने से लाभ होता है। इसे प्रलेपों में मिलाकर प्रयोजित करने से शीघ्र व्रण पूरण होता है।

इसके मूत्र में मिट्टी सानकर चातुर्थक रोगी के कंठ में बाँधने से दौरा बन्द हो जाता है।

इसकी अस्थि की धूनी से अर्द्धावभेदक का नाश होता है।

इसके पित्ताशय के खाने से तत्क्षण मृत्यु होती है और कोई उपाय काम में नहीं आता। इसे आँख में लगाने से जाला और फूली कट जाती है।

इसका ताजा फुफ्फुस वातरक्त वा गठिया (Gout) में उपयोगी है।

इसका मस्तिष्क जलाकर वा यूँ ही आँख में सुरमे की भाँति लगाने से धुन्ध नष्ट होता है।

इसके चमड़े का मोजा पहनने से गठिया (निक़्रिस) को लाभ होता है।

इसका मांस इसलाम धर्म के अनुसार निषिद्ध माना जाता है। रोमन काथलिकों के धर्म-ग्रंथों में इसका निषेध रहते हुए भी उनके यहाँ इसके मांस का व्यवहार बन्द नहीं हुआ। पूर्व में वे आग्रह के साथ इसे खाते थे। इसका मांस उष्ण और मछली की तरह स्वादु होता है।

इसका लवणाक्त मांस भक्षण करना कटि एवं जानु के लिए उपयोगी है। वृद्ध, शीत प्रकृति-वालों, वातग्रहत और गठिया के रोगी को इसका मांस भक्षण करना और खाल पहनना लाभकारी है। वैद्यक के अनुसार भी इसका भेजा आँख में लगाने से धुँध का नाश होता है। दद्रु एवं व्यंग आदि पर भी इसके लगाने से लाभ होता है। शूल में भी यह कल्याणकारक है। यह रेचक है और जलोदर को लाभ पहुँचाता है। इसकी चर्बी की मालिश से पुराना गठिया नष्ट होता है।

इसकी खाल शरीर पर धारण करने से बहुत गरमी पैदा होती है। इसकी खाल का टुकड़ा पाँव के तले रखने से गठिया (निक़्रिस) में विशिष्ट प्रभाव होता है।

ऊदयमन-[यू०] तिमिरा। तारामिरा।

ऊदल-संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो हिमालय की तराई के जंगलों में बहुत होता है। बरमा

और दक्षिण में भी होता है। इसका तन्तु बहुत दृढ़ होता है, जो रस्सी बनाने के काम में आता है। गुलबादल। बूटी।

ऊदलै-[ता०] लाल भेरंड (हिं०, बं०)। नेल-आमुदमु (ते०)। (Jatropha glandulifera, *Roxb.*)

ऊद सलीब-संज्ञा पुं० [अ०] ऊदुल् स़लीब (अ०)। ऊद सालप (हिं०)। ऊदे सालम् (बम्ब०)। ऑफिशल पेओनी Official peony (अं०)। पेओनिया ऑफ़िसिनेलिस Pæonia offcinalis, *Linn.* (ले०)। पिओनी ऑफिसिनल Pivoine officinal (फ्रां०)।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—डिमक के अनुसार ऊद सालप और ऊदे सालम दोनों अरबी ऊदुल् सलीब (Wood of the cross) के अपभ्रंश हैं और ऊदुल्सलीब इसके पुं० जातीय पौधे (Pæonia corallina) की जड़ को कहते हैं। क्योंकि इसके काटने पर इसमें दो रेखाएँ परस्पर एक दूसरे को काटती हुई सलीब अर्थात् स्वस्तिक की तरह दिखाई देती हैं, जो स्त्री जातीय-फ़ावानिया (Female peony) अर्थात् (Pæonia officinalis) में नहीं दीखतीं। कोई-कोई इसी को फ़ावानिया भी कहते हैं। मौलाना नफ़स ने मूजिज़ के भाष्य के अंतर्गत मृगी की चिकित्सा के प्रकरण में लिखा है—"जिसने इसको ऊद सलीब स्वीकार कर रखा है, उसने भूल की है। भूल का कारण यह है कि दोनों की जड़ और पत्ते एक ही तरह के होते हैं।" किंतु उन्होंने दोनों में भेद वर्णन नहीं किया है। किसी-किसी ने यह प्रभेद वर्णन किया है। उनके अनुसार यद्यपि ये दोनों पौधे हैं तो एक ही जाति से, पर इनके वृक्ष में पुं० तथा स्त्री जाति भेद होता है। इनमें से नर की जड़ को ऊदसलीब और मादा की जड़ को फ़ावानिया कहते हैं। वि० दे० "फ़ावानिया"।

वत्सनाभ वर्ग

(*N. O. Ranunculaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—यूरोप।

वानस्पतिक-वर्णन—ऊद सलीब का पौधा बहुशाखी तथा ऊँचा होता है। तने की छोर पर बादाम की तरह आवरण होते हैं, जिनमें से प्रत्येक में अनार के दानों की तरह लाल-लाल दाने निकलते हैं और प्रत्येक दाने में ५-५, ६-६ चीज़ें कालापन लिए नील वर्ण की होती है। पत्ती शाह बलूत वा गाजर की पत्तियों की तरह तथा मसृण होती है। पत्र-प्रांत कटावदार होते हैं। फूल गुलाब के फूल की तरह और नील वर्ण का होता है। इसके भीतर उसी प्रकार का (गुलाब के फूल की तरह) पीले रंग का जीरा होता है। प्रत्येक पुष्प में चार-पाँच पंखड़ियाँ होती हैं। पुष्प-दल गुलाब के फूल की पंखड़ी से चौड़ा होता है। जड़ उँगली के बराबर मोटी और बालिश्त भर लम्बी और सफ़ेद रंग की होती है। तोड़ने पर उसमें सलीब की तरह दो रेखाएँ परस्पर एक दूसरे को काटती हुई दिखाई देती हैं। डिमक के अनुसार जड़ का वर्णन इस प्रकार है—सूखी जड़ (Tuber) १ से ३ इंच लंबी, $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच व्यास में होती और दोनों छोरों की ओर गावदुमी होती है। बाहरी पृष्ठ भूरा होता है और उस पर लंबाई के रुख़ गहरी रेखाएँ पड़ी होती हैं। भीतरी भाग सफेद श्वेतसार पूर्ण होता है। छेदन करने पर बल्कल कड़ा (Gritty) और कुछ-कुछ पीले रंग का मालूम होता है। स्वाद किंचित् चरपरा होता है। माध्यमिक श्वेतसारीय अंश करीब-करीब स्वाद रहित होता है। ताज़ी कटी हुई जड़ मंद कटुक गंधि होती है।

इसे प्रयोग में लाना हो, तो ख़ूब पीसकर बारीक करलें। सात वर्ष तक इसकी शक्ति बनी रहती है। उत्तम वह है जिसे चर्वण करने पर थोड़ी देर के बाद तीक्ष्णता, चरपराहट और थोड़ी सी कड़ुआहट प्रतीत हो एवं ज़बान पर ख़ाज हो।

ऊद सालब (P. corallina) की जड़ शलगम की आकृति की और लगभग अँगूठे जैसी मोटी होती है। फ़ावानिया (P. officinalis) के लंबोतरे कंद होते हैं जो तंतु-गुच्छ द्वारा पातालो धड़ से लगे रहते हैं। गिवर्ट

(३ य खंड, पृ० ७६३) ने इसके पौधे एवं जड़ का चित्र चित्रित किया है।

रासायनिक-संघट्टन—इसकी ताजी जड़ में श्वेतसार, शर्करा, वसा, मैलेट्स (Malates), ऑक्ज़ेलेटस (Oxalates), फॉस्फेटस (Phosphates) और किंचित् कषायिन् (Tannin) प्रभृति द्रव्य पाये जाते हैं। (फा० इं० १ भ० पृ० ३१)

भारतवर्ष में इसकी जड़ का आयात टर्की से होता है।

औषधार्थ व्यवहार—जड़ (Tuber.)।

इतिहास—यह औषध दीसकूरीदूस कथित फ़ावानिया (Female peony) है। प्राचीनों ने गर्भाशयिक निरोध, शूल, पित्तावरोध, जलंधर (Dropsy), मृगी, आक्षेप और योषापस्मार प्रभृति रोगों में इसकी अमूल्य औषध रूप से बड़ी प्रशंसा की है। दीसकूरीदूस ने दो प्रकार के फ़ावानिया (Peony) का उल्लेख किया है-(१) पुं० जातीय (P. corallina) और(२)स्त्री जातीय(P. officinalis)। इन्हीं दो प्रभेदों का फारसी और अरबी ग्रंथकारों ने भी उल्लेख किया है।

जालीनूस इसके चरपरे और रजः प्रवर्त्तक गुण एवं स्तंभक रूप से अतिसार में प्रयोजित होने का उल्लेख करते हैं। प्लाइनी के अनुसार पेओनिया (Pæonia) संज्ञा पेओन (Pæon) से, जो देवताओं के चिकित्सक थे और जिन्होंने सर्व प्रथम इस पौधे को ढूँढ निकाला, व्युत्पन्न है। बुक़रात इसके बीजों का गर्भाशयिक अवरोधों में प्रयोजित होने का उल्लेख करते हैं।

ऊदसलीब के गुण-धर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—तृतीय, द्वितीय वा प्रथम कक्षा में उष्ण तथा रूक्ष है। किसी-किसी के अनुसार उष्णता अधिक नहीं। प्रत्युत सम के समीप है। हानिकर्त्ता आमाशय। दर्पनाशक—कतीरा। प्रतिनिधि—ग़ारीकून और ज़रावंद। मात्रा—४॥ मा०।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह कफजन्य ज्वर को नष्ट करता, आर्द्रता का शोषण करता, आमाशय, आंत्र एवं पट्ठों को बलप्रदान करता तथा चित्त प्रफुल्लित करता (मुफ़र्रिह) है। यह सौदावी वस्वास को मिटाता है, रगों के मुँह से सुद्दा खोलता है एवं कंपवात, लक़वा और शिश्वाक्षेप को गुणकारी है तथा आमाशय, वृक्क एवं वस्ति के लिए हितकर है। यह गर्भाशय शूल, कामला (यर्क़ान), मृगी और काबूस को हितकारी है, शिशुओं को पथरी का रोग हो, तो इसके पिलाने से पथरी का नाश होता है और पुनः इस रोग का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। यदि शिशु को मृगी का रोग हो एवं वह रोता हो, तो इसके गले में लटकाने से लाभ होता है। इससे विषैले कीड़े-मकोड़े भागते हैं। ६ मा० सोना और चाँदी मिलाकर उसकी तावीज़ बनवाएँ। उस तावीज़ में इसके बीजों के चार दाने रखकर पास रखें, तो चाहे कितनी ही पुरानी मृगी हो, वह बिलकुल जाती रहेगी। कहते हैं कि ऊदसलीब पुरुष रोगों के साथ खुसूसियत रखता है। मृगी के लिए तो यहाँ तक लाभकारी है कि इसको चाहे जिस प्रकार प्रयुक्त करें अर्थात् पीवें, बाँध लें या धूनी दें, उसका अवश्य नाश होता है।

डिमक—देशी लोग ऊद सालप का, शिशुओं के रक्त शोधनार्थ, उपयोग करते हैं। जालीनूस के समय में लोगों में यह अंधविश्वास था कि ऊदसालप को किसी थैली में बंद करके शिशुओं की गर्दन में लटकाने से उनकी दोनों प्रकार से रक्षा होती है अर्थात् इससे मृगी का दौरा रुक जाता है और रोग का निवारण होता है। यूरोप के कृषकों में से यह विश्वास अब भी नहीं गया है। उनका यह भी विश्वास है कि इसका बीज धारण करने से दन्तोद्भेदजनित भय से रक्षा होती है। (फा० इं० १ भ० पृ० ३०)

इसका पौधा सक्रिय प्रमाणित किया गया है। पूरी मात्रा (३० रत्ती) में सेवन करने से यह शिरोशूल, कर्णक्ष्वेड, दृष्टिविकार, उदरशूल और वमन उत्पन्न करता है। अर्वाचीन शोधों ने, न तो प्राचीनों के एतद्विषयक मतों को पुष्ट ही किया

है और न इनसे उनकी गर्हता प्रमाणित हुई । यद्यपि किसी-किसी ने, कंठवात, मृगी एवं कुक्कुर खाँसी में इसके लाभदायक होने का उल्लेख किया है, पर इसके उपयोगिता विषयक प्रमाण बहुत निर्बल हैं । (फा० इं० १ भ०)

ऊदसालप-संज्ञा पुं० [अ० ऊदुल्‌सलीब] दे० "ऊदसलीब" ।

ऊदसालब-संज्ञा पुं० [अ०] दे० "ऊदसलीब" ।

ऊदहिंदी-[अ०, फ़ा०] अगर । अगरु । ऊद ।

ऊदा-वि० [अ० ऊद अथवा फ़ा० कबूद] ललाई लिए हुये काले रंग का । बैंगनी रंग का ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊदे रंग का घोड़ा ।

ऊदाचिरायता-संज्ञा पुं० [हिं० ऊदा+चिरायता] बैंगनी चिरायता । कूचोड़ि(बं०) । (Exacum tetragonum, *Roxb* .) Purple chiretta.

ऊदाचित्रमूल(म्)-[द०] कृष्ण चित्रक । काला चीता । (Plumbago capensis, *Thunb.*)

ऊदाचित्रमूल-[मरा०] कृष्ण चित्रक । काला चीता । (Plumbago capensis, *Thunb.*)

ऊदाधतूरा-संज्ञा पुं० [द०] कृष्ण धुस्तूर । काला धतूरा । (Datura Fastuosa, *Willd.*)

ऊदामको-संज्ञा पुं० [देश०] काला मकोय । कृष्ण काकमाची । (Solanum Nigrum, *Bl.*)

ऊदीकंगोई-का-झाड़-[द०] एक प्रकार की ककही जिसका धड़, शाखा और पत्रडंडी इत्यादि नील वा बैंगनी रंग की होती है । मदरास में यह झाड़ियों में उगा हुआ प्रायः देखा जाता है । करु वा करन्-तुत्ति-ता० । नल्ल-तुत्ति, जल-नूगु-बेण्ड-ते० ।

ऊदीकामूनी-[द०] काला मको । कृष्ण काकमाची । (Solanum Nigrum, *Bl.*)

ऊदीसेम-संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊदा+सेम] केवाँच ।

ऊदीसंभालू-[द०] नील सिंधुआर । काली स्योंड़ी । (Justicia gendarussa, *Linn.*)

ऊदीफ़रुनस-[यू०] भंग । (Cannabis Sativa, *Linn.*)

ऊदीसोलियून-[यू०] अजमोदा । करफ़्स ।

ऊदुद्क़ः-[अ०] बीख़ अंजुदान । हींग के पेड़ की जड़ ।

ऊदुर्रेह-[अ०] बच । वज्ज ।

[शा०] फ़ावानिया ।

[मिश्र०] मामीरान । ममीरा । (Coptis teeta, *Wall*)

[पश्चिमी०] आर्गीस । जरिश्क के पौधे की जड़ की छाल ।

ऊदुल् उतास-[अ०] कुंदुश ।

ऊदुल् क़न्दोल-[अ०] (Myrica sapida, *Wall.*) कायफल ।

ऊदुल् क़रिह. (ह.)-[अ०] अकरकरा ।

ऊदुल् क़रिह. जिब्ली-[अ-] दे० "अकरकरा" ।

ऊदुल् क़िय्यः-[अ०] सफ़ीरा ।

ऊदुल् जूज-[अ०] अगर । अगरु । ऊद । (Aloe wood)

ऊदुल् फ़ालूजूज-[अ०] रतनजोत । (Alkanet.)

ऊदुल् बख़ुर-[अ०] ऊद क़मारी । एक प्रकार का अगर जो कमरून से आता है ।

ऊदुल् बर्क़-[अ०] कायफल । दारशीशआन् । (Myrica sapida, *Wall.*)

ऊदुल् युस्र-[अ०] (१) अनागोरस । (२) ख़त्मी की लकड़ी । (३) पीलू ।

ऊदुल् वज्ज-[अ०] बच । वज्ज । (Acorus calamus,)

ऊदुल् सलीब्-[अ०] फ़ावानिया ।

ऊदुल् हमीर-[अ०] फ़ावानिया ।

ऊदुलूहय्यः-[अ० ऊदुलूह.य्यः] सौसन से मिलती जुलती एक वनस्पति जो बर्बर और सूडान में उत्पन्न होती है । इसकी जड़ भी सौसन की जड़ की तरह होती है । यह कड़ी, खुरदरी और तिक्त होती है । अकरकरे की तरह यह तीव्र गंधि होती है । इसके सुलगाने से तीक्ष्ण गंध निकलती है । अंजुमनआराये नासिरी में लिखा है कि यह फ़ाशरा की जड़ है, जिसे हज़ार जशान, स्याहदारू और क़िर्मतुल् बैज़ा भी कहते हैं ।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में गरम ख़ुश्क।

मात्रा—२। माशा।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसके शरीर पर लगाने से क्षत पड़ जाता है। यह ज्ञानेंद्रियों को बल प्रदान करती है और सांद्र वायु को विलीन करती है। यदि इसे पौने दो माशे की मात्रा में खाया जाय, तो हर प्रकार के उष्ण एवं शीतल विष-प्रभाव दूर हो जायें। यह इसमें एक विशेष गुण है कि यदि इसे विष भक्षण से पूर्व खाकर, फिर विष खाया जाय, तो ज़हर से कोई हानि नहीं होती। कोई-कोई तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि यह हाथ में हो, तो साँप तथा अन्य कीड़े-मकोड़े काटने का साहस तक न कर सकें। यही नहीं, अपितु यदि साँप इसे देख ले, तो निश्चेष्ट एवं निःसंज्ञ हो जाय। यदि इसे चबाकर साँप के मुँह में डाल दें, तो वह मृतप्राय हो जाय, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। विषखोपड़ा जो एक अत्यंत विषैला जानवर है, वह भी इसे देखने मात्र से सुस्त पड़ जाता है। ऊदुल्हय्यः को यदि जैतून के तेल में पकाकर, उससे गृध्रसी एवं अन्य शीतजन्य रोगों में मालिश की जाय, तो शीघ्र आराम हो जाय। वि० दे० "हलूयून"।

ऊदुस्सलीब-[अ०] दे० "ऊदुल्सलीब"।

ऊदूजाती-[हिं०] जाती भेद। (Justisia ecbolium.) इं० हैं० गा०।

ऊदेख़ाम-[अ०] कच्चा अगर। (Raw ud)

ऊदे ग़ार्क़ी-[अ०] दे० "ऊद ग़ार्क़ी"।

ऊदे बल्साँ-[अ०] दे० "ऊद बल्साँ"।

ऊदे सालब-[सिंध०]
ऊदे सालम्-[बम्ब०] } ऊदसालप। फ़ाबानिया। (Poevonia emodi, *Wall.*) दे० "ऊदसलीब"।

ऊदः-वि० (द०) [हिं० ऊदा] दे० "ऊदा"।

ऊद्रका-[?] अभल।

ऊधन्-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पशु का स्तन। चौपाए का थन।

ऊधन्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दुग्ध। दूध।

ऊधस्-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आपीन। स्तन। थन। अम०। पशुस्तन। चौपाएका थन। शतप० ब्रा० २।५।१।

ऊधर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पशु स्तन। चौपायों का थन। ऋक् ८।३।१२।

ऊधस्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दूध। रा० नि० व० ५।

वि० [सं० त्रि०] दुग्धकर। दूध पैदा करनेवाला।

ऊधस्वती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अपने स्तन में अधिक दुग्ध रखनेवाली गौ। जो गाय अपने थन में ज़्यादा दूध रखती हो।

ऊध्री-[?] पालिता मंदार।

ऊन-संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ण] भेड़ बकरी आदि का रोआँ। भेड़ के ऊपर का वह बाल जिनसे कंबल और पहनने के गरम कपड़े बनते हैं। भारतवर्ष में उत्तराखंड वा हिमालयके तटस्थ देशों की भेड़ों का ऊन अच्छा होता है। काशमीर और तिब्बत इनके लिये प्रसिद्ध हैं। पंजाब, हज़ारा और अफ़गानिस्तान की कोच वा ऊरल नाम की भेड़ का भी ऊन अच्छा होता है। गढ़वाल, नैनीताल, पटना, कोयंबटूर और मैसूर आदि की भेड़ों से भी बढ़िया ऊन निकलता है।

ऊन और बाल में भेद यह है कि ऊन के तागे यों ही बहुत बारीक होते हैं अर्थात् उनका घेरा एक इंच के हजारवें भाग से भी कम होता है। इसके अतिरिक्त उनके ऊपर बहुतही सूक्ष्म दिउली वा पर्त (जो एक इंच में ४००० तक आ सकती हैं) होती है। इसी कारण अच्छे ऊन की जो लोई आदि होती हैं, उनके ऊपर थोड़े दिन के बाद महीन-महीन गोल रवे से दिखाई पड़ने लगते हैं। प्रायः बहुत सी भेड़ों में ऊन और बाल मिला रहता है। उनकी उत्तमता इन बातों से देखी जाती है—रोएँ की बारीकी उसकी गुरचन, उसका दिउलीदार होना, उसकी लंबाई, मज़बूती, मुलायमियत और चमक। भेंड़के चमड़े की तह में से एक प्रकार की चिकनाई निकलती है जिससे ऊन मुलायम रहता है।

काश्मीर, तिब्बत और नैपाल आदि ठंडे देशों में एक प्रकार की बकरी होती है जिसके रोएँ के

नीचे की तह में पशम वा पशमीना होता है। इसी को काशमीर में 'असलीतूस' कहते हैं जो दुशाले आदि में दिया जाता है। (हिं० श० सा०)।

ऊन कई प्रकार का होता है। उनमें से एक जाति के तंतु लंबे होते हैं और दूसरी जाति के तार बहुत छोटे होते हैं। एक बीच की जाति भी है। इसी प्रकार बारीकी मोटाई और नर्मी के विचार से भी इसकी नाना जातियाँ हैं। जो ऊन इस देश में पैदा होता है, वह बहुत मोटा और कड़ा होता है। यहाँ के ऊन बिगड़ने का एक कारण यह है कि भेड़ें भली भाँति पाली नहीं जातीं और दूसरा कारण इस देश की अधिक गर्मी है। यदि इन्हीं भेड़ोंको पर्वतों पर ले जाकर विदेशी रीति से उनकी देख भाल की जाय, तो धीरे-धीरे ऊन की खासियत बदल जाय। अस्तु, स्पेन देश में एक जाति भेड़की है, जिनको 'मेरीनो' कहते हैं। इनका ऊन ऐसा बारीक और मुलायम होता है कि उनसे बुनी हुई बानात रेशम की सी चटक रखती है और बहुत मुलायम होती है।

पर्य्या०—ऊन (हिं०)। ऊर्णा वसा (सं०)। सौफ़ (अ०)। पशम (फ़ा०)। वूल Wool. (अ०)। लेनी Lanæ (ले०)।

प्रयोगांश—ऊन के बने वस्त्र और ऊन तथा ऊन की चर्बी (यह ब्रिटिश फार्माकोपिया में ऑफिशल है)।

ऊन की चर्बी

सम्मत (*Official*)

ऊन की चर्बी (हिं०) । ऊर्णा (सं०)। शह्‌म्‌ सौफ (अ०) । पियः पशम (फ़ा०)। वूल फैट Wool fat (अं०)। एडेप्स लेनी Adeps lanœ (ले०)।

निर्माण-क्रम-भेड़ की पशम को प्रथम शीतल जल से धोते हैं। फिर उसको हरारत पहुँचाकर दबाते हैं। इससे अस्वच्छ वसा प्राप्त होती है, जिसको पिघलाकर और उसमें क्षार मिलाकर धोते हैं, जिसमें वसाम्ल (Fatty acids) दूर हो जायँ। इसके उपरांत उसे किसी अम्ल से धोकर साफ कर लेते हैं।

लक्षण—यह अर्द्धस्वच्छ सूक्ष्म पीतवर्ण की एक लेसदार वस्तु होती है, जिसमें से भेड़ की पशम की अत्यंत हलकी गन्ध आती है। यह १०४° से ११२° अंश फारनहाइट के उत्ताप पर पिघल जाती है। जलाने से इसकी लौ बहुत धुएँदार होती है। इसमें ७० प्रतिशत कोलैष्ट्रीन (Cholesterin) पाई जाती है। इसकी प्रतिक्रिया किंचित् खट्टी होती है। कोलैष्ट्रीन के अतिरिक्त इसमें पामिटिक, ष्टियरिक, ऑलीइक और वैलेरियनिक एसिड तथा राख पाई जाती है।

विलेयता—क्लोरोफार्म और ईथर में तो यह सुविलेय होती है। किंतु एलकोहल (९०%) में किंचित् न्यून विलीन होती है और जल में सर्वथा अविलेय होती है। पर यदि पानी में इसको खूब बलपूर्वक मिलाया जाय, तो ताल में यह अपने बराबर पानी अभिशोषित कर लेती है।

सम्मत योग

(*Official Preparations*)

एडेप्सलेनी हाइड्रोसस Adeps Lanæ Hydrosus (ले०)। हाइड्रूस वूल फैट Hydrous wool fat, लेनोलीन Lanolin, एग्नीन Agnin (अं०)। उदकोर्ण वसा। पशम की पानीवाली चर्बी (उ०)। शह्‌म्‌ सौफ़ माई (अ०)।

निर्माण-क्रम—३ फ्लुइड आउंस पानी को ७ आउंस वूल फैट (ऊन की चर्बी) के साथ एक तप्त खल प्रभृति में परस्पर आलोड़ित करने से लेनोलीन बन जाती है।

लक्षण—यह लगभग सफेद या किंचित् पिलाई लिए श्वेत वर्ण का एक तैलीय लसदार पदार्थ है जो गरम करने से पानी और वसा में वियोजित होजाता है। यह ग्लीसरीन में नहीं मिश्रित होता। इसमें समान भाग मृदु पैराफिन मिलाने से इसकी उत्तम मरहम बन सकती है।

लेनोलीन अंगवेंटम कोनाइआइ (शौकरान अनुलेपन) और अंगवेंटम हैसेमैलेडिसके निर्माण में काम आती है।

जलशून्य ऊन की चर्बी

एडेप्स लेनी अनहाइड्रोसस Adeps lanae anhydrosus. (ले०)। अनहाइड्रूस ऊल फैट Anhydrous wool fat (अं०)। अनुदकोर्णवसा (सं०)।

यह शुद्ध किया हुआ कोलेस्ट्रीन (Cholesterin) मेषोर्णवसा है। यह मनुष्यकी त्वचा में होनेवाले बालों, पक्षियों के परों एवं अन्य प्राणियों के विविध अंगों से भी प्राप्त होता है। वि० दे० (बी० पी०)

गुण-धर्म तथा प्रयोग

ऊन की चर्बी

डॉक्टरी मतानुसार—वूल फैट (पशम की चरबी) त्वचा पर मर्दन करने से साधारण चरबी की अपेक्षा बहुत जल्द अभिशोषित हो जाता है। इसलिए ऐसी औषधियाँ जो त्वचा द्वारा अभिशोषित होकर अपना प्रभाव कर सकें, इस चरबी में मिलाकर प्रयोजित की जाती हैं। इसलिये यह चरबी कतिपय मरहमों के बनानेमें काम आती है। यह सड़ती-गलती नहीं और अपने वज़नसे आधा भाग पानी सोख लेती है। जब इसके साथ इसकी तौल का आधा भाग (वा समान भाग) सॉफ्ट पैराफीन मिला दें, तो फिर यह मरहमों में प्रयोजित करने के लिए उत्तम हो जाती है।

यह मृदुता-जनक है और क्षुभित मुख, नासिका एवं गुदा प्रभृति में लगाने के लिए एवं जले हुए स्थान पर लगाने के लिए उत्तम है।

ऊन

यूनानी मतानुसार—ऊन सफ़ेद, लाल और काले होते हैं। काले में लाल से अधिक उष्णता है और लाल सफ़ेद से अधिक उष्ण है। ऊन साधारणतः द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। उत्तम वह है जो मृदु और शुद्ध हो। गीलानी ने लिखा है कि पहनने के लिए परमोत्कृष्ट भेड़ का वह ऊन है जो उसकी खाल से मिला हुआ हो। यह मुलायम होता है और इसको 'मरअ़ज़ी' कहते हैं। इसमें से भी वह श्रेष्ट है जो ग्रीवा, रान और पुट्ठों पर से लिया जाय। रान का ऊन परमोत्कृष्ट होता है। इसमें रूक्षता कम और गर्मी अधिक होती है यह भी सम प्रकृतित्व के लगभग होता है।

इब्न रश्क़िय ने लिखा है कि अन्य प्रकार के ऊनों से खास इस ऊन का कपड़ा अच्छा होता है। उनकी अपेक्षा इसकी उष्णता भी अधिक होती है। इसका कपड़ा प्रत्येक प्रकृति के अनुकूल है। अपनी मृदुता के कारण शरीरको कोमल बनाता है, वृक्क को गर्म रखता है, कटि को शक्ति प्रदान करता है, कामोद्दीपन करता और शीतल प्रकृतिवालों को स्थूल करता है। जलाने के उपरांत ऊन की उष्ण शक्ति कुछ-कुछ लताफ़त के साथ होजाती है। इसलिए ज़ख़्मों पर लगाने से उनके ढीले मांस को पिघला देता है और ऐसे प्रलेपों में, जो ख़ुश्की पैदा करते हैं, समाविष्ट होता है। चिर्क (मैल) से भरे हुए ऊन को उस अवयव में भर दें, तो विदीर्ण होजाय। एक रात दिन रखकर बदल दें, शीघ्र लाभ होगा। चोट लगे हुए वा उखड़े हुए अंग पर लगाने से लाभ होता है। इसको जलाकर और धोकर आँख की औषध में सम्मिलित करते हैं। लाल ऊन पित्ती उछलने के लिए अनुपम है। गुल रोग़नके साथ सूजन उतारता है और पागल कुत्तेके काटे हुए के लिए रामवाण का काम करता है। ऊनी कपड़े से देह में गर्मी और रूक्षता उत्पन्न हो जाती है एवं खाल कठोर हो जाती है। खुजली भी चलने लगती है। ढीले अंग कड़े हो जाते हैं। जिनकी प्रकृति गर्म हो उनके अनुकूल नहीं होता और ग्रीष्म ऋतु में भी उपयुक्त नहीं। उचित यह है कि इसके नीचे रूई का या अतसी का कपड़ा रखें। ऊँटके ऊन के कपड़े में गर्मी एवं रूक्षता अधिक है। यदि इक्लीलुल् मलिक और मक्खन ऊन में लगाकर योनि में धारण करें, तो रजःप्रवर्त्तन हो और बच्चा निकल आये। नौ महीने और सालभर के बच्चे का ऊन बहुत गरम है और पहनने के लिए

अत्युत्तम है। पीठ और गुर्दे के लिए बहुत उपयोगी है। शरीर का रंग अरुण हो जाता है और कांति पैदा हो जाती है। इसका पोस्तीन (खाल) भी उक्त गुणों से युक्त होता है। बाह (कामवासना) में शक्ति आजाती है। वृक्क, वस्ति और नितंब को लाभ होता है। जवान पशु का बनाया हुआ पोस्तीन एतदालके साथ गर्म होता है और देहके मुआफ़िक है। बूढ़े जानवर के पोस्तीन में गरमी बहुत कम है। ऊन का फ़र्श गठिया (निक़्रिस) को लाभकारी है। ऊन के कपड़े से शरीर में जूँ नहीं पड़तीं। (ख० अ०)

ऊनक़.तूस-[यू०] कुटकी। (Picrorrhiza kurroa,)

ऊनया-[यू०] एक प्रकार की बूटी का स्वरस। (बूटी संदिग्ध है)।

ऊनू-[?] शराब।

ऊनूतूलियून-[यू०] एक प्रकार की बूटी जो कद्दू कीसी होती है। अनूतोलून।

ऊनूद्बक़ी-[?] असदुल्अदस।

ऊनूबरूख़िया (ख़ीस)-[यू०] अज्ञात बूटी।

ऊनूमा-[यू०] रतनजोत। (Alkanet.)

ऊनूमाली-[यू०] एक प्रकार की शराब। यह मद्य तथा शुद्ध मधु से तैयार होती है।

ऊनूसालियूस-[यू०] एक बूटी है। क़ुर्रतुल्ऐन। जर्जीरुलमाऽ।

ऊनोदरतातप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] व्रत विशेष। इसमें प्रतिदिन एक ग्रास भोजन कम किया जाता है।

ऊन्त़रीस़ा-[यू०] खुमी। फ़ित़्र।

ऊप-संज्ञा पुं० [?] अन्नव्याज। अन्न का सूद।

ऊफ़कलूस-[यू०] बारतंग।

ऊफ़र्ब्यून-[यू०] फ़र्फ़्यून।

ऊफ़ारीक़ून-[यू०] चीड़ का गोंद। हूक़ारीक़ून।

ऊफ़ीमुवन्दास-[यू०] एक अप्रसिद्ध बूटी है।

ऊफ़ीमूनस-[यू०] ग़ाफ़िस। (Agrimonia Eupatorium, *Linn.*)

ऊब-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) उद्वेग। घबराहट। (२) अरुचि।

ऊबज़्लूफ़ा-[फ़ा०] क़न्तूरियून। छोटे और बड़े भेद से यह दो प्रकार का होता है।

ऊबतूरी-[ले०] एक औषध। मु० अ०।

ऊबना-क्रि० [हिं०] उद्विग्न होना। घबरा जाना।

ऊबर्ब्यून-[?] फ़र्फ़ियून।

ऊबा-[?] कछुआ।

ऊबातीनस-[यू०] अनार की कली। दे० "अनार"।

ऊबीहून-[यू०] अर्क़।

ऊब्यानस-[यू०] बाबूने का एक भेद। सोभल। ऊप्यानस।

ऊभ-संज्ञा स्त्री० [हिं०] व्याकुलता। घबराहट। (२) उष्मा। गर्मी। (३) दमा। श्वास रोग।

ऊभासाँसी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उद्वेग। घबराहट।

ऊम-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रक्षक। रखवाला।

ऊमत्तै-[ता०] सफ़ेद धतूर। श्वेत धुस्तूर। (Datura alba, *Linn.*)

ऊमत्तै पू-[ता०] घरभूली। सफ़ेद और काले धतूरे के अधखिले फूल और कली।

ऊमर-संज्ञा पुं० [सं० उदुम्बर] गूलर। उदुम्बर। (Ficus glomerata, *Roxb.*)

ऊमरो-[गु०] गुल्लर। गूलर। (Ficus glomerata, *Roxb*)

ऊमस-दे० "उमस"।

ऊमसीतरून-[यू०] क़न्तूरियून। (Dianthus anatolicus, *Boiss.*)

ऊमा-संज्ञा स्त्री० [सं० ऊम्बी] जौ वा गेहूँ की हरित मञ्जरी।

ऊमाज-[तु०] आश बुवा।

ऊमारीक़ा-[यू०] अनीसून।

ऊमाली-[यू०] वह शराब जो केवल पानी और शहद से बनी हो।

ऊमासि़याना-[?] खूबानी। ज़रदालू। मिश्मिश्। (Prunus armeniaca, *Linn.*) Apricot.

ऊमी-संज्ञा स्त्री० [सं० ऊम्बी] जौ या गेहूँ की हरी बाल।

ऊमून-[रू०] माहूज। हमामा।

ऊम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जौ वा गेहूँ की वह अधपकी हरी बाल जो तृणाग्नि में भूनी गई हो। ऊमी। जैसे–"मञ्जरी त्वर्द्धपक्वा या यवगोधूमयोर्भवेत्। तृणानलेन संभृष्टा बुधैरूम्बीति सा स्मृता॥"

गुण–कफजनक, बलकारक, हलकी पित्त और वायुनाशक है।

ऊर––संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धान्य-वपन-नियम विशेष। धान बोने की चाल। जड़हन लगाने का नाम 'ऊर' है।

ऊरज–वि०, संज्ञा पुं० दे० "ऊर्ज्ज"।

ऊरण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेष। प० मु०।

ऊरम्–[मल०] ककही। कंघी। (Abutilon indicum, *G. Don.*)

ऊरव्य–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० ऊरव्या] जाँघ का। ऊरु संबंधी। और्वी। (Femoral.)

ऊरव्य चतुरस्रा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Muscle quadratus femoris) ऊरु चतुरस्रा पेशी। अ० श०।

ऊरव्यच्छद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Femoral sheath) जाँघ की झिल्ली।

ऊरव्य तन्त्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Femoral nerve) और्वी नाड़ी। अ० श०।

ऊरव्य द्विमूला पेशी––संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Muscle biceps femoris) और्वी द्विशिरस्का पेशी। अ० श०।

ऊरव्य नाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] और्वी नाली। ऊरु प्रणाली। (Femoral canal)

ऊरव्या जिह्वा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Muscle rectas femoris) और्वी सरला पेशी।

ऊरव्य त्रिकोण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Femoral triangle) ऊरु का त्रिकोण।

ऊरव्या–वि० स्त्री० दे० "ऊरव्य"।

ऊरान्पू–[मल०] जंगली मदनमस्त का झाड़। (Cycas circinalis, *Linn.*)

ऊरासलियूस–
ऊरासालियून–
ऊरासालियूस–
[यू०] पहाड़ी करफ़्स। पार्वती अजमोदा।

ऊरु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जानूपरिभाग। घुटने के ऊपर का हिस्सा। रान। जाँघ। फ़ख़िज़् (अ०)। (Femur, thigh) रा० नि० व० १८।

ऊरु अन्तरनायनी गरिष्ठा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ को अंदर की ओर लानेवाली एक बड़ी पेशी। (Muscle adductor magnus)

ऊरु अन्तरनायनी दीर्घापेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ को अन्दर की ओर लानेवाली एक लंबी पेशी। (Muscle adductor longus)

ऊरु अन्तरनायनी लघ्वी पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ को भीतर की ओर लानेवाली एक छोटी पेशी। (Muscle Adductor brevis.)

ऊरु अन्तरनायनी बृहती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरु अन्तर-वाहिनी बृहती पेशी।

ऊरु अन्तर-वाहिनी पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ को अदर की ओर लानेवाली पेशी। ऊरु अंतरनायनी। (Muscle adductor)

ऊरुग्राह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊरुस्तम्भ रोग।

ऊरु ग्लानि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रान की कमजोरी। ऊरु की निर्बलता।

ऊरु चतुरस्रा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ की चौपहलू पेशी। (Muscle quadratus femoris)

ऊरुज–संज्ञा पुं० [सं० ऊरु+ज (प्रत्यय)] जाँघ से उत्पन्न वस्तु।

ऊरुजन्मा–दे० "ऊरुज"।

ऊरुतोर–[सिं०] बास की कसौंदी। सड़ी कसौंदी। (Cassia sophora, *Linn.*)

ऊरुदघ्न-वि० [सं० त्रि०] ऊरुपरिमित। रान के बराबर।

ऊरु दण्डिका पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष।

ऊरुदण्डिका बंधन–संज्ञा पुं० [सं०] बंधन विशेष।

ऊरुद्वयस–दे० "ऊरुदघ्न"।

ऊरुनलक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जाँघ की नल।

ऊरुपर्वन्, ऊरुपर्वा-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] जानु । घुटना ।

ऊरुपृष्ट त्वगीया-नाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ की ऊपरी त्वचा की नाड़ी । (Posterior femoral cutaneus nerve)

ऊरुपृष्ठीया पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष ।

ऊरुप्रसारणी अन्तःस्था पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरु प्रसारिणी का एक भाग । (Muscle vastus inter-medius)

ऊरुप्रसारणी पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरु को फैलानेवाली पेशी । जाँघ को फैलानेवाली पेशी । इसके चार भाग होते हैं । उन समस्त पेशी को चतुःशिरस्का ऊरुप्रसारणी कहते हैं ।

ऊरु प्रसारणी मध्यस्थापेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरु प्रसारिणी का एक भाग ।(Muscle vastus medialis)

ऊरुप्रसारिणी बहिःस्था पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरु प्रसारिणी का एक भाग । (Muscle vastus lateralis)

ऊरुप्रसारिणी सरला पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरुप्रसारणी का एक भाग ।

ऊरुफलक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नितम्ब देश । सुरीन् । पुट्ठा ।

ऊरुबहिर्नायनी पेशी-
ऊरुबहिर्वाहिनी पेशी- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ को बाहर की ओर लेजानेवाली पेशी ।

ऊरुभिन्न-वि० [सं० त्रि०] ऊरु में छिद्र रखनेवाला। जिसके फटी रान हों ।

ऊरुमाण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मायाफल । माजूफल । दे० "उरुमाल" । सु० सू० ४६ अ० ।

ऊरुशिरोवपिका पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष ।

ऊरुसन्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] जाँघ की सन्धि ।

ऊरुसन्धिभ्रंश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जाँघ के जोड़ का अलग हो जाना ।

ऊरुसम्भव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊरु से उत्पन्न । जो रान से निकला हो ।

ऊरुसाद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वात रोग । च० सू० २० अ० ।

ऊरुस्तम्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वात का एक रोग जिसमें पैर जकड़ जाते हैं । वात और कफ का एक रोग जिसमें मनुष्य की जाँघ अचल, निर्जीव, सुन्न और ज्ञानहीन हो जाती है । कोई-कोई इसे 'आढ्यवात' भी कहते है ।

समान्य लक्षण

ऊरुस्तम्भ रोग होने से मनुष्य की जाँघें सूनी, निर्जीव और अत्यन्त भारी हो जाती हैं । रोगी को अपनी जाँघें दूसरे की सी मालूम होती है । उसे हिलने, चलने और बैठने में बड़ा कष्ट होता है । इस रोग में सूढ़ता, अंगों का टूटना, तन्द्रा, वमन, अरुचि, ज्वर, पाँवों की ग्लानि, पाँवों की मंदता और जड़ता ये लक्षण भी देखने में आते हैं । आशय यह कि, जिस रोग में दोनों जाँघें रह जाती हैं या बेकाम हो जाती हैं, उसे ऊरुस्तम्भ कहते हैं ।

कोई-कोई इसे "आढ्य-वात" भी कहते हैं । सुश्रुत ने इस रोग को महावातव्याधियों में लिखा है ।

निदान-कारण

शीतल, गरम, सूखे, भारी, पतले और चिकने पदार्थ खाने से, दिन में सोने से, रात में जागने से, बहुत मेहनत करने से, चित्त के क्षोभ से, भय से और अजीर्ण से "ऊरुस्तम्भ" रोग होता है; अर्थात् जो नासमझ व्यक्ति ऊपर्युक्त काम करते हैं; उन्हें "ऊरुस्तम्भ" जाँघों के रह जाने का रोग होता है ।

सम्प्राप्ति

उपर्युक्त कारणों से कफ मेद और वायु दूषित हो जाते हैं । फिर वे आमसे मिलकर पित्त को अपने अधीन करते और जाँघों में घुस जाते हैं । जाँघों में घुसकर, वे जाँघों की हड्डियों को गीले कफसे भर देते हैं; तब दोनों जाँघें ठण्डी, निर्जीव और स्तब्ध या अचल होजाती हैं । इस "प्रकार ऊरुस्तंभ" रोग उत्पन्न होता है ।

पूर्वरूप

ऊरुस्तम्भ रोग होने से पहले—अत्यंत नींद,

अत्यंत ध्यान, क्रियाहीनता, ज्वर, रोएँ खड़े होना, अरुचि, वमन और पिंडलियों तथा जाँघों में दर्द—ये उपद्रव होते हैं।

ऊरुस्तम्भ के लक्षण

“भावप्रकाश” तथा “माधवनिदान” में लिखा है, पाँवों के सोने और उनके अचेतन एवं क्रिया रहित होने से मनुष्य प्रायः समझता है कि मुझे ‘वातरोग’ हुआ है। ‘वातरोग’ समझकर, वह वात रोगों की तरह वातनाशक तेल आदि की मालिश करता-कराता है। पर इन उपायों से लाभ की बजाय हानि होती है; यानी वातनाशक तेल प्रभृति लगाने से पीड़ा और भी बढ़ जाती है।

इस रोग में पैरों में वेदना होती है, वे पत्थर या लकड़ी की तरह जड़ या निर्जीव होजाते हैं। पैरों को उठाने और धरने में घोर वेदना होती है। पैरों और जाँघों की पिंडलियों में ग्लानि होती है। चलने-फिरने की सामर्थ्य नहीं रहती। किसी भाँति जलन के साथ ज़ोर की पीड़ा होती है। पैरों को उठाने और फैलाने के समय विशेष पीड़ा होती है। शीतल पदार्थों का स्पर्श मालूम नहीं होता। रोगी बैठने और उन्हें दबाने या हिलाने-चलाने में असमर्थ होजाता है। रोगी को पैर और जाँघ टूटे हुए से मालूम होते हैं। उसके पाँव दूसरों के उठाने से उठते हैं।

“सुश्रुत” में लिखा है—कफ और मेद से मिला हुआ वायु जब जाँघों में पहुँचता है, तब अंग टूटते हैं—अँगड़ाइयाँ आती हैं,शरीर शिथिल होजाता है, रोएँ खड़े होजाते हैं, दर्द होता और ज्वर चढ़ता है। इन उपद्रवों के सिवा दोनों जाँघें नींद में सोयी हुई सी, अकड़ी हुई, चैतन्यता-रहित—निर्जीव, भारी और नर्म होजाती हैं। उनकी स्पर्श-ज्ञान शक्ति नाश होजाती है--वे सूनी होजाती हैं, इसलिए रोगी को यह नहीं मालूम होता कि ये मेरी अपनी जाँघें हैं अर्थात् वह अपनी जाँघों को पराई सी समझने लगता है।

अरिष्ट लक्षण

जिस ऊरुस्तम्भ रोगमें दाह,पीड़ा,सूई चुभने की सी वेदना हो और रोगी काँपता हो वह ऊरुस्तम्भ रोगी को मार देता है। यदि दाह आदि उपद्रव न हों और रोग तत्काल पैदा हुआ हो,तो आराम हो सकता है। ज्यों-ज्यों रोग पुराना होता है, त्यों-त्यों वह कष्टसाध्य होता है।

चिकित्सा-क्रम

(१) ऊरुस्तम्भ रोग में तेल आदि लगाना, खून निकालना—फ़स्द खोलना, वमन कराना, वस्तिकर्म करना—गुदा में पिचकारी लगाना और जुलाब देना—ये सब कार्य हानिकारक हैं; क्योंकि इन सबसे ‘ऊरुस्तम्भ रोग’ बढ़ता है।

(२) ऊरुस्तम्भ रोग में ऐसी क्रिया करनी चाहिए, जिससे कफ शांत हो और वायु कुपित न हो। इसमें सभी रूखी क्रियाएँ करनी चाहिए। परंतु पहले कफनाशक और फिर वातनाशक उपाय करने चाहिए। यदि रूखी क्रिया करने से नींद का नाश होजाय और पीड़ा सहित वायु का कोप हो, तो स्नेहन और स्वेदन क्रिया करनी चाहिए। शरीर के बल और अग्नि की रक्षा करके, जिस उपाय से कफ सूखकर ‘ऊरुस्तम्भ’ नाश हो, वही चिकित्सा करनी चाहिए। क्षार और मूत्र मिले हुए पदार्थों से स्वेदन करना चाहिए और रूखे पदार्थ जाँघों पर मलने चाहिए।

(३) ऊरुस्तम्भ रोग में रूखे पदार्थ, पसीने निकालना, लंघन, पुराने चाँवल, साँवाँ, कोदों, लिसोड़े, मूँग, जंगली जीवों का मांस, मूली, बैंगन, बथुआ, मूली के पत्ते, बिना घी का जंगली जीवों का माँस और बिना नमक का हितकारी साग—ये सब पथ्य हैं।

(४) ऊरुस्तम्भ रोग में भल्लातक आदि काढ़ा, अष्टकटूवर तैल, कुष्ठाद्य तैल और महासैंधवादि तैल प्रभृति श्रेष्ठ हैं। नदी के शीतल जल या तालाब के जल में तैरना और सूरज की धूप से तपी हुई गरम बालू में दौड़ना भी हितकारी है।

“भैषज्य रत्नावली” में लिखा है—इसमें ऐसी औषधि करनी चाहिए जिससे वायु का कोप न होते हुए कफ का नाश हो। स्नेहन कर्म, वस्ति और विरेचनका इसमें सर्वदा त्यागहै।

आदि में रूखे औषधोंसे कफका नाशकर पीछे वायु को हरण करनेवाली संपूर्ण क्रिया करनी चाहिए। इसरोग में (१) शिलाजीत गूगुल, पीपर और सोंठ इनमें से किसी एक के चूर्ण को गोमूत्र अथवा दशमूल के क्वाथ के साथ पीने से लाभ होता है। (२) भिलावाँ, गिलोय, सोंठ, देवदारु, हड़, पुनर्नवा और दशमूल इनका चूर्णकर खाने से लाभ होता है। (३) पीपर, पीपलामूल और भिलावाँ इनके क्वाथ अथवा कल्क में शहद मिलाकर खाने से ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है। (४) त्रिफला, चव्य, सोंठ, मिर्च, पीपर, पीपरामूल इनके चूर्ण में शहद मिलाकर चाटने से लाभ होता है। (५) शुद्ध गूगुल १ मा०, गोमूत्र के साथ खाने से लाभ होता है। (६) कुटकी और त्रिफला समानभाग लेकर चूर्ण करें। पुनः इसे शहद और जल के साथ खाने से लाभ होता है। (७) धतूर के पत्तों के रस में अथवा थूहर के दूध में पारेको खरलकर पीछे एक टुकड़ा कपड़ा लेकर उस पर लेपकर जंघाओं पर बाँधने से ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है। (८) गुञ्जाभद्ररस—शुद्ध पारद ३ निष्क, शुद्ध गंधक १२ निष्क, गुञ्जाबीज ६ निष्क, जमालगोटे के बीज १ निष्क लेकर यथाविधि अरनी, बिजौरा, धतूरा और मकोय के रस से भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इसमें से एक गोली नित्य हींग और सेंधानमक के साथ खाने से दुर्जय ऊरुस्तम्भ रोग का नाश होता है। भैष० र०।

ऊरुस्तम्भ नाशक उत्तमोत्तम अन्य प्रयोग

(१) पीपरामूल, भिलावाँ और पीपरों का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से ऊरुस्तम्भ रोग आराम हो जाता है अथवा इनको पानी के साथ सिलपर पीसकर और मधु मिलाकर चाटने से ऊरुस्तंभ रोग नाश हो जाता है।

(२) सुश्रुत ने गूगल की बड़ी प्रसंशा की है। आपका कहना है, सवेरे ही शुद्ध गूगल—"त्रिफला, दारुहल्दी, परवल और कुशा के पानी में" घोलकर पीने अथवा "गोमूत्र या गरम जल" के साथ, लगातार एक महीने तक, पीने से गोला, प्रमेह, उदावर्त्त, उदर रोग, भगंदर, कृमि, खाज, अरुचि, सफेद कोढ़, अर्बुद या रसौली, गाँठें, नाड़ी रोग, आढ्यवात या ऊरुस्तंभ, सूजन, कोढ़, बिगड़े हुए घाव, कोठे की वायु संधियों की वायु और हड्डियों की वायु--इन सबको गूगल इस प्रकार नष्ट करता है, जिस तरह इंद्र का वज्र वृक्ष को नष्ट करता है। इसकी मात्रा १ से ३माशे तक है।

(३) शुद्ध गूगल और हरड़ "गोमूत्र" के साथ खाने से ऊरुस्तम्भ रोग नाश हो जाता है।

(४) शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गूगल, छोटी पीपर और सोंठ—इनको "गोमूत्र" या "दशमूल के काढ़े" के साथ सेवन करने से ऊरुस्तम्भ नाश हो जाता है।

(५) त्रिकुटा, चीते की छाल, नागरमोथा त्रिफला और बायबिड़ङ्ग एक-एक तोले और इन सबके बराबर ५ तोले "शुद्ध गूगल" ले लो। सबको कूट-पीस और मिलाकर रख लो। इसमें से १ से ६ माशे तक चूर्ण नित्य खाने से कफ, मेद और आमवात से पैदा हुए उरुस्तम्भ आदि सभी रोग नाश हो जाते हैं।

(६) शुद्ध गूगल खाकर ऊपर से "गोमूत्र" पीने से ऊरुस्तम्भ आराम हो जाता है।

(७) "वैद्यजीवन" में लिखा है—पुनर्नवा (सांठी), सोंठ, देवदारु, हरड़, भिलावें, गिलोय और दशमूल का काढ़ा पीने से अथवा शुद्ध गूगल खाकर गोमूत्र पीने से ऊरुस्तम्भ रोग नाश हो जाता है।

इस "पुनर्नवादि योग" की "भावप्रकाश" और "चक्रदत्त" आदि अनेक ग्रन्थों में प्रशंसा लिखी है। "गूगल" सेवन करने की राय सुश्रुत ने भी जोर से दी है।

(८) बाँबी की मिट्टी, सरसों, शहद और नीम के पत्ते—इनको पीसकर गाढ़ा-गाढ़ा लेप करने से ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट हो जाता।

(९) सर्प की बाँबी की मिट्टी और सरसों—इन दोनों को महीन पीसकर और शहद में मिलाकर आगपर निवाया करके, गाढ़ा-गाढ़ा लेप करने से ऊरुस्तम्भ रोग आराम हो जाता है।

(१०) करंज, त्रिफला और सरसों–इनको गोमुत्र में पीसकर गाढ़ा-गाढ़ा लेप करने से ऊरुस्तम्भ रोग आराम हो जाता है।

(११) असगंध और देवदारु को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से ऊरुस्तम्भ जाता रहता है।

(१२) असगंध, आक की जड़ और नीम की जड़ को गोमूत्र में पीसकर जाँघों पर लेप करने से ऊरुस्तम्भ रोग जाता रहता है।

(१३) केवल आक की जड़ गोमूत्र में पीस कर लेप करने से ऊरुस्तम्भ आराम हो जाता है।

(१४) चार युक्त गोमूत्र का तरड़ा ऊरुस्तंभ पर देने से लाभ होता है।

ऊरुस्तम्भ नाशक उत्तमोत्तम योग

रास्नादि क्काथ, षड्धरण योग, योगराज गूगल कुष्ठाद्य तैल, अष्टकट्वर तैल, महासैन्धवाद्य तैल, सैन्धवाद्य तैल, भल्लातकादि क्काथ, आढ्य-वातान्तक रस, अमृतागुग्गुल, द्विपञ्चमूलाद्यतैल प्रभृति योग इस रोग में लाभकारी हैं।

पथ्यापथ्य

पथ्य—हितकारी आहार-विहार।

दिन में पुराने वासमती चाँवल का भात, मसूर, मूँग, चने की दाल, कुलथी, परवल, गूलर, करेला, बैंगन, अदरख, लहसन प्रभृति की तरकारी, बकरी, कबूतर और मुर्गे का मांस-रस–शोरबा, सहन हो सके तो थोड़ा घी और माठा।

रात को रोटी या पूरी तथा ऊपर लिखी सब तरकारियाँ, सूजी-घी-चीनी का हलवा, मिठाई, जलपान के लिए खजूर, किशमिश, छुहारा आदि कफनाशक और वात-विरोधी पदार्थ दो। गरम पानी औटाकर और हाँड़ी में शीतल करके दो। स्नान न करना ही अच्छा, बहुत ही आवश्यकता हो तो गरम जल से नहाओ। यदि वायु-कोप अधिक हो, तो नदीमें तैरना और सोते की ओर तैर कर चढ़ना तथा ऐसे आहार-विहार जो कफ नाशक हों; परंतु वात को कुपित करनेवाले न हों, ऊरुस्तम्भ में हितकारी हैं। सब प्रकार के बफारे, कोदों, लाल चाँवल, जौ, कुलथी, सहँजना, करेला, परवल, लहसुन, चौपतिया, मकोय, वेत की कोंपल, नीम के पत्ते, बथुआ, बैंगन, अमलतास के पत्तों का साग, गरम जल, तिल के पदार्थ, अरिष्ट, शहद, कड़वे, चरपरे, कषेले रस, चार, गोमूत्र, ताक़त भर कसरत-कुश्ती-बैठक, साफ जल के तालाब में तैरना यह सब लाभकारी या पथ्य हैं।

अपथ्य—अहितकारी या हानिकारक आहार-विहार–भारी, शीतल, पतले, चिकने, स्वभाव विरुद्ध अपने को असात्म्य पदार्थ हानिकर होते हैं। जुलाब, स्नेहन, वमन, फस्द, वस्तिकर्म ये सब हितकारी नहीं हैं। अधिक देर में पचनेवाले कफ बढ़ानेवाले, मछली, उड़द, गुड़, दही, पिट्ठी के पदार्थ बहुत खाना, और मलमूत्र के वेग रोकना दिन में सोना, रात को जागना और ओस में सोना या फिरना उरुस्तम्भ में अपथ्य हैं।

ऊरुस्तम्भा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केले का पेड़। कदलीवृत्त। (Musa Sapientum, *Linn.*) रा० नि० व० ११।

ऊरू–संज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता। अलई। वि० दे० "ऐल"।

ऊरै–[ता०] जंगली मदनमस्तका झाड़। (Cycas circinalis, *Linn.*)

ऊर्ज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "ऊर्ज्ज"।

ऊर्जक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वैकुण्ठ। (२) अर्जक। कुठेरक। वटपत्र। बिल्वगंधक।

ऊर्जस्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बल। जोर। (२) अन्नरस विशेष।

ऊर्जसानि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बलदायक। ताक़त देनेवाला।

ऊर्जस्वत्–वि० [सं० त्रि०] शक्तिशाली। ताक़तवर।

ऊर्जस्वी–वि० [सं० त्रि०] (१) अतिशय बलवान्। बड़ाजोरावर। (२) तेजस्वी।

ऊर्जा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अन्नरस की विकृति विशेष। (२) बल। (३) वृद्धि। (४) उत्साह।

ऊर्जानी–दे० "ऊर्जा"।

ऊर्जावान्–वि० [सं० त्रि०] (१) बलवान्। (२) वृद्धियुक्त।

ऊर्जित–वि० [सं० त्रि०] (१) बलशाली । ताक़तवर । (२) वृद्धियुक्त । (३) तेजस्वी । (४) उत्साहित ।

ऊर्जिताश्रय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्रेष्ठ । बड़ा ।

ऊर्जी–वि० [सं० त्रि०] खाद्यविशिष्ट । जिसके पास खूब खाना रहे ।

ऊर्ज्–[सं० धातु] (१) जीवित होना । जी उठना (२) बलिष्ठ होना ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०, (१) अमृत रस नामक अन्न का सारभूत रस । (२) बल ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अन्न ।

ऊर्ज्ज, ऊर्ज्जक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० ऊर्जस्वल, ऊर्जस्वी] (१) बल । शक्ति । (२) कार्तिक मास । हे० च० । रा० नि० व० २१ । (३) वीर्य ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जल । श० र० ।

वि० [सं० त्रि०] बलवान । बली । शक्तिमान ।

ऊर्ज्जा–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उत्साह । वा० सू० २ अ० ।

ऊर्ण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भेड़ या बकरी के बाल । ऊन ।

ऊर्णनाभ, ऊर्णनाभि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]मकड़ी । लूता । अम० । श० र० ।

ऊर्णपट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लूता । मकड़ा ।

ऊर्णम्रद–वि० [सं० त्रि०] कम्बलादि के समान कोमल । कम्बल की तरह मुलायम ।

ऊर्णवसा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊन की चर्बी । (Adeps lanae) दे० "ऊन" ।

ऊर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मेषलोम । मेढ़े आदि के रोम । ऊन । पशम । जैसे–"ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यात् ।" (२) दोनों भौं के बीच के रोम (भँवरी) । भ्रूमध्यावर्त्त । जैसे–"अन्तरावर्त्तके भ्रुवोः ।" मे० णद्विकं । (३) पानी का भँवर ।

ऊर्णापिण्ड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊन का गोला ।

ऊर्णामय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मेषलोम निर्मित सूत्रादि । ऊनी धागा इत्यादि ।

ऊर्णायु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कम्बल । ऊनी वस्त्र । (२) मेष । मेढ़ा । भेड़ । प० मु० । (३) ऊर्णनाभ । मकड़ी । हे० च० ।

ऊर्णावत्–वि० [सं० त्रि०] ऊनी । ऊर्णानिर्मित ।

ऊर्णावन–वि० [सं० त्रि०] ऊर्णायुक्त । ऊन से भरा हुआ । शतप० ब्रा० ७।५।२।३५ ।

ऊर्णावल–वि० [सं० त्रि०] ऊनी । ऊर्णायुक्त ।

ऊर्णासूत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मेषादि के लोम । ऊन । ऊनी धागा ।

ऊर्णास्तुक–वि० [सं० त्रि०] ऊर्णायुक्त । ऊनी । भेड़ आदि के बाल का बना हुआ ।

ऊर्णास्तुका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊर्णास्तवक । ऊन की लच्छी ।

ऊर्णु–[सं० धातु] आच्छादन करना । ढाँकना ।

ऊर्णुत–वि० [सं० त्रि०] आच्छादित । ढँका हुआ ।

ऊर्णुवान्–वि० [सं० त्रि०] आच्छादन करनेवाला । जो ढाँकता हो ।

ऊर्दर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धान्यादि रखने का एक पात्र । कुशल ।

ऊर्दाहून–[यू०] अर्क ।

ऊर्द्ध्व(र्ध्व)–क्रि० वि० [सं०] ऊपर । ऊपर की ओर ।

वि० [सं० त्रि०] (१) ऊँचा । ऊपर का । (Superior, Upper.) । (२) खड़ा । (३) अनन्तर । पिछला (४) छूटा । परित्यक्त । (५) उत्पाटित । उखड़ा ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उच्चता । ऊँचापन । (२) ऊर्ध्वदेश । ऊपरीमुल्क ।

ऊर्द्ध्व अन्वायाम रसनिका पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जिह्वा की एक पेशी । (Muscle longitudinalis linguæ superior.)

ऊर्द्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Superior sagittal sinus) शिरा कुल्या विशेष ।

ऊर्द्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या परिखा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Groove for superior sagittal sinus) शिरा कुल्या परिखा विशेष।

ऊर्द्ध्व ओष्ठ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊपर का ओंठ। यह ऊपर के जाबड़े या ऊर्ध्व हनु से लगा रहता है। शफ़त् उल्या (अ०)। लबेबाला (फ़ा०)। (Superior lip, Upper lip.)

ऊर्द्ध्व ओष्ठीया(ष्ठ्या)धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊपर के ओंठकी धमनी।(Superior labial artery.)

ऊर्द्ध्व कच–वि० [सं० त्रि०] (१) ऊर्ध्वगत केश रखनेवाला। (२) जो बाल नोचा या उखाड़ा गया हो।

ऊर्द्ध्वकण्टका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शतावरी। सतावर। रा० नि० व० १।

ऊर्द्ध्व कण्टा
ऊर्द्ध्व कण्टिका
ऊर्द्ध्व कण्टी
ऊर्द्ध्व कण्ठी
} संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

महा शतावरी लता। बड़ी शतावर। रा० नि० व० ४।

ऊर्द्ध्वकण्ठ–वि० [सं० त्रि०] जो गर्दन उठाए हो। ग्रीवादेश उन्नत किए हुआ।

ऊर्द्ध्व कन्दा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महा शतावरी। बड़ी सतावर। रा० नि०।

ऊर्द्ध्वकर्ण–वि० [सं० त्रि०] कान खड़ा किए हुआ।

ऊर्द्ध्वका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का वातज रोग।

ऊर्द्ध्व काय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) शरीर का ऊपरी भाग। (२) उन्नत देहवाला।

ऊर्द्ध्व कृशन–वि० [सं० त्रि०] फेनाता हुआ। जो झाग छोड़ रहा हो।

ऊर्द्ध्वकेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊपर को उठा हुआ बाल।

वि० [सं० त्रि०] उन्नतकेश रखने वाला। जिसके बाल खड़े रहें।

ऊर्द्ध्व खण्ड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Manubrium)उरोऽस्थि का ऊपर का अंश वा टुकड़ा।

ऊर्द्ध्वग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अस्थिभंग रोग। (२) शिरोरोग। शिर की बीमारी।

वि० [सं० त्रि०] (१) ऊर्ध्वगामी। ऊँचा जाने वाला। (२) स्वर्गगामी।

ऊर्द्ध्वगत–वि० [सं० त्रि०] ऊपर गया हुआ।

ऊर्द्ध्व गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊपर की ओर की चाल। ऊपर गमन करने की क्रिया।

ऊर्द्ध्वगद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुख में होनेवाला एक रोग। लक्षण–अर्श, गुल्म और दूषित कफादि द्वारा वायु नीचे को प्रतिहत होकर मुख में दुर्गंधि पैदा करता हुआ ऊपरको उठता है। इसे "ऊर्ध्वगद" कहते हैं। वा० उ० २२ अ०।

ऊर्द्ध्वगम(न)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊपर गमन करने की क्रिया।

ऊर्द्ध्वगा–वि० [सं० त्रि०] ऊर्द्ध्वगामी।

ऊर्द्ध्वगा धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धमनी विशेष।

ऊर्द्ध्वगा महाशिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिर, ग्रीवा, ऊर्ध्वशाखाओं और वक्षःस्थल की शिराओं के संयोग से बननेवाली एक बड़ी शिरा। यह वक्ष में रहती है और नीचे आकर दाहिने ग्राहक कोष्ठ के ऊपर के भाग में खुलती है। (Superior vena cava)अजोफ़ सा़इद, अजोफ़ फ़ौकानी (अ०)।

ऊर्द्ध्वगामी–वि० [सं० त्रि०] ऊपर को जानेवाला।

ऊर्द्ध्व गुणभूयिष्ट–वि [सं० त्रि०] सभी प्रकार के क़ै पैदा करनेवाले द्रव्य। वमनद्रव्यमात्र। सु० सू० ४१ अ०।

ऊर्द्ध्व गुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुदोर्द्ध्वग रोग।

ऊर्द्ध्व गुह्यक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मक्कोर। मक्कट। एक प्रकार का तीक्ष्ण दंष्ट्र कीट है। रा० नि० व० १९।

ऊर्द्ध्व ग्रह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोड़े का एक प्रकार का ग्रह-दोष जनित रोग। लक्षण–ऊर्ध्वग्रहकृत दोष से घोड़े का मुँह और जिह्वा काली तथा दृष्टि और स्मृति जाती रहती है। यथा—

"श्यामं जिह्वामुखं यस्य नष्ट दृष्टि स्मृतिर्भवेत्।
ऊर्द्ध्वग्रहकृतं दोषं तस्य दीनस्य निर्दिशेत्॥"

ज० ५७ अ०।

ऊर्द्ध्व चरण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शरभ नामक पौराणिक सिंह, जिसके आठ पैरों में से चार पैर ऊपर को होते हैं।

वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्वगत चरणवाला। पैर उठाए हुआ।

ऊर्द्ध्व जत्रु–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंधे के जोड़ के ऊपर का भाग। जत्रु से ऊपर का भाग। जैसे—"ऊर्द्ध्वजत्रु रोगघ्नी। तत्र रोगेषु।" च० द० ज्व०।

उर्द्ध्वजानु–वि० [सं० त्रि०] (१) घुटने का ऊपरी भाग। (२) जिसके घुटने ऊँचे हों। मोटे घुटनोंवाला। उन्नत जानु। उपरिस्थ जानुक। भा०।

ऊर्द्ध्वतन–वि० [सं० त्रि०] उपरिस्थ। ऊपरी।

ऊर्द्ध्व तिक्त (क)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नेपाल निम्ब। चिरायता।

ऊर्द्ध्व दृक्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्कट। केकड़ा। खरचंग।

ऊर्द्ध्व दृष्टि–त्रि० [सं० त्रि०] (१) ऊर्ध्वदेश पर दृष्टि निक्षेपकारी। जो ऊँची जगह कर नज़र डालता हो। (२) ऊर्ध्व नेत्र। ऊँची आँख वाला।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भ्रूद्वयकी-मध्यवर्ती दृष्टि। भौंहों के बीच की नज़र। (२) उत्क्षिप्त दृष्टि। उठी या चढ़ी निगाह। (३) मृत्युकालीन दृष्टि। मरते समय की नज़र।

ऊर्द्ध्वदेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपरिभाग। ऊपरी हिस्सा।

ऊर्द्ध्वदेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मरणान्तर प्राप्त होनेवाला शरीर।

ऊर्द्ध्व द्वार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ब्रह्मरंध्र। दसवाँ द्वार। ब्रह्मांड पर का छिद्र।

ऊर्द्ध्व धारा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदर का किनारा। (Upper border.)

ऊर्द्ध्वनभा–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आकाश का मध्यदेशस्थ वायु। आसमान के बीच की हवा।

ऊर्द्ध्व नयन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरभ नामक जंतु।

ऊर्द्ध्व नाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की नाड़ी।

ऊर्द्ध्व नेत्रच्छद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊपर का पलक। (Upper eyelid.)

ऊर्द्ध्वनेत्रच्छद फलक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सौत्रिक तंतु से निर्मित एक मुड़ी हुई मोटी पट्टी (या फलक) जो ऊपर के पलक में पलक की ऊपरी त्वचा और नीचे की श्लैष्मिक कला के मध्य स्थित होती है और जिसके कारण पलक में कुछ दृढ़ता रहती है और उसका आकार स्थिर रहता है (Upper tarsus.)

ऊर्द्ध्व नेत्रच्छदा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आँख की एक पेशी।

ऊर्द्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिका पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊपर के पलक की एक पेशी जिसका काम पलक को ऊपर उठाना है। अ़ज़लः राफ़िअतुल जफ़्न (अ०)। (Muscle levator palpabrae superioris.)

ऊर्द्ध्वन्तः पार्श्विका पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी विशेष।

ऊर्द्ध्व पर्शुकान्तरिका शिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिरा विशेष।

ऊर्द्ध्वपथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आकाश। आसमान।

ऊर्द्ध्वपात–संज्ञा पुं० [सं०] वह रासायनिक द्रव्य जो ताप से गैस बनकर ऊपर उठते और शीत के संसर्ग से जमकर पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त हो जाते हैं, यथा तालक और पारद के योग। (Sublimate.)

ऊर्द्ध्वपातन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चढ़वाई। (२) पारद का एक संस्कार विशेष। रस अर्थात् पारद का ऊर्द्ध्वोत्क्षेपण कर्म। वि० दे० "धारा"।

नोट—पारद के अतिरिक्त गंधक नवसादर प्रभृति द्रव्य भी इसी विधि से शुद्ध किये जाते हैं। द्रव्यों का सत्वपातन भी इसी विधि से होता है।

ऊर्द्ध्वपात्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उदूखल प्रभृति यज्ञपात्र।

ऊर्द्ध्वपाद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शरभ नामक पौराणिक जंतु। इसके आठ पैर माने गये

हैं। जिनमें से चार ऊपर को होते हैं। (२) शरभ नामक एक प्रकार का मृग जो काश्मीर देश में पाया जाता है।

ऊर्द्ध्व पार्श्विक चक्राङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Superior parietal gyrus) चक्राङ्ग विशेष।

ऊर्द्ध्व पार्श्विका पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी विशेष।

ऊर्द्ध्व पाश्चात्य चक्राङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चक्राङ्ग विशेष।

ऊर्द्ध्वपृश्नि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पशु विशेष। एक चौपाया।

ऊर्द्ध्ववाल–वि० [सं० त्रि०] खड़े बालों वाला।

ऊर्द्ध्ववाहु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उत्तोलित हस्त। उठा हुआ हाथ।

वि० [सं० त्रि०] जो हाथ उठाए हो।

ऊर्द्ध्ववुध्न–संज्ञा पुं० [सं० त्रि०] ऊर्ध्व बन्धन। ऊर्ध्व बांधन।

ऊर्द्ध्व भागहर–वि० [सं० त्रि०] वमन द्रव्य। वामक ओषधि। कै लानेवाली दवा। सु० सू० ६ अ०। बं० से० सं०। दे "वमन"

ऊर्द्ध्वभाक्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़बानल।

ऊर्द्ध्वभाग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपरि भाग। ऊपरी हिस्सा।

ऊर्द्ध्व भार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Upward pressure) ऊपर का दबाव।

ऊर्द्ध्वम्–अव्यय [सं०] उपरि। ऊपर। दे० "ऊर्द्ध्व"।

ऊर्द्ध्वमन्थी–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नैष्टिक ब्रह्मचारी। स्त्री-प्रसङ्ग से बिलकुल पृथक् रहनेवाला।

वि० [सं० त्रि०] जो अपने वीर्य को गिरने न दे। स्त्री-प्रसंग से बचनेवाला। ऊर्द्ध्व रेता।

ऊर्द्ध्व महाशिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिरा का वह भाग जो हृदय के दक्षिण कोष्ठ से ऊपर स्थित है। Superior vena cava (अं०)। अजौफ़ सा.इद (अ०)।

ऊर्द्ध्वमान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) प्रस्तर वा लौह निर्मित तौलने का बाँट। (२) ऊपरी परिमाण।

ऊर्द्ध्वमारुत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] देहस्थवायु का ऊपरी दबाव।

ऊर्द्ध्वमुख–वि० [सं० त्रि०] ऊपर को मुख किए हुये (व्यक्ति)। ऊपर को मुँह रखनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मुख का ऊर्ध्व भाग। मुँह का ऊपरी हिस्सा। (२) उन्नत मुख। ऊँचा मुँह।

ऊर्द्ध्वमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] संसार। दुनिया। जगत्।

ऊर्द्ध्व रक्तपित्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Epistaxis, hæmatemesis) रक्तपित्त विशेष।

ऊर्द्ध्वरेखा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चरण चिन्ह विशेष। यह ४८ चिन्हों में से एक है। अङ्गुष्ठ तथा उसके निकट की अङ्गुलि के मध्य से यह रेखा एडी तक पहुँचती है। इसके होने से मनुष्य अंशावतारी समझा जाता है। राम कृष्ण प्रभृति इस रेखा से युक्त थे।

ऊर्द्ध्वरेता (स्)–वि० [सं० त्रि०] जो अपने वीर्य को गिरने न दे। स्त्री-प्रसंग से परहेज़ करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह मनुष्य मैथुन आदि में जिसका वीर्यपात न होता हो। वह व्यक्ति जिसका शुक्र स्खलित न हुआ हो। ब्रह्मचारी।

ऊर्द्ध्व रोमा–वि० [सं० त्रि०] उन्नत रोमवाला। जिसके रोंगटे खड़े रहें।

ऊर्द्ध्व ललाट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊपर का ललाट।

ऊर्द्ध्वललाट चक्राङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चक्राङ्ग विशेष। ऊर्ध्व ललाट का चक्रांग।

ऊर्द्ध्वललाट सीता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊर्ध्व ललाट की सीता। (Superior frontal sulcus.)

ऊर्द्ध्वलिंग-(ङ्गी)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महादेव।

ऊर्द्ध्वलोक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आकाश। आसमान।

ऊर्द्ध्व वर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का शूल रोग जो घोड़े को होता है। लक्षण—

"यव सङ्कादनञ्चैव यो वाजी खादितं पुनः।
मुखेन प्रोद्गिरत्याशु तं विद्यादूर्द्ध्ववर्त्तिनम् ॥"
ज० द ४३ अ०।

ऊर्द्ध्ववात-संज्ञा पु० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का वायु रोग।(२)अधिक डकार आनेका रोग। उद्गार। नोट—नीचेकी ओर वायु के रुकने से जो बारम्बार डकारें आती हैं, उसे ही ऊर्द्धवात कहते हैं।

लक्षण—अपने कारणोंसे कुपित हुई "समान वायु" और कफ-वात, नीचे से रुककर, बारम्बार डकार आने का रोग करते हैं, इस रोग को 'ऊर्द्धवात' कहते हैं। मा० नि०।

चिकित्सा

(१) सोंठ १० तोले, विधारा १० तोले, हरड़ ३ तो०, भुनी हींग ४ तो०, सेंधानमक १ तो० और चीते की छाल १ तो०—इन सबको पीस-छानकर रखलो। इस चूर्ण से ऊर्द्धवात रोग नष्ट होजाता है।

(२) निशोथ की जड़ दूध में पीसकर, उसमें "अड़ूसे का रस" मिलाकर पीओ। इससे ऊर्द्धवात शांत होजाता है।

(३)ऊर्द्धवातजनित तृषा रोगमें क्षय और खाँसी को दूर करनेवाली औषधों के साथ औटाया हुआ दूध पिलाएँ और मांसरस का भी उपयोग करें। वा० चि० ६ अ०।

(३) ऊर्द्धगत वायु। ऊपर चढ़ी हुई हवा।

ऊर्द्ध्ववायु-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) ऊपर गई हुई वायु। (२) अधिक डकार आना। उद्गार बाहुल्य। (३) श्वास रोग। दमा। भा० उ० चि०।

ऊर्द्ध्व शङ्ख चक्राङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कनपुटी के ऊपर का चक्राङ्ग।

ऊर्द्ध्व शंख सीता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कनपुटी के ऊपर के भाग की सीता।(Superior temporal Sulcus)

ऊर्द्ध्व शाखा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छेदनशास्त्र में कंधे से लेकर उँगलियों तक का भाग। ऊपर की शाखा। दोनों हाथों से अभिप्राय है। अत्राफ़ उल्या(अ०) (Upper extremity)

ऊर्द्ध्व शाखा क्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मस्तिष्क का एक क्षेत्र जिसका सम्बन्ध ऊर्ध्व शाखा की गति से होता है। (Superior extremity area)

ऊर्द्ध्वशायी-वि० [सं० त्रि० ऊर्द्ध्वशायिन्] उत्तानशायी। चित लेटनेवाला।

ऊर्द्ध्व शिरा कुल्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊपर की शिरा कुल्या।

ऊर्द्ध्व शुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सीप के आकार की एक अस्थि जो नाक की दीवार के पिछले भाग में नाक की शेष दो सीपाकार अस्थियों से ऊपर स्थित होती है। वास्तव में यह एक पृथक् अस्थि नहीं; प्रत्युत झर्झरास्थि के नीचे का एक अंश मात्र है। ऊर्ध्व सीपाकृति। अज़्म असफंजी अअ्ला (अ०)। (Superior turbinate bone.

ऊर्द्ध्व शोधन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रीठा। अरिष्टक फल। (२) वमन। क़ै।

ऊर्द्ध्वशोष-अव्य० [सं०] उपरिस्थ शोषण द्वारा। ऊपर ही सूख जाने से।

ऊर्द्ध्व श्वास-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ऊपर को चढ़ती हुई साँस। (२) श्वास की कमी वा तंगी। (३) एक प्रकार का श्वास रोग। दीर्घ श्वास। लंबी साँस।

लक्षण—इस रोग में रोगी दीर्घ और ऊर्ध्व श्वास लेता है। दीर्घ श्वास को छोड़कर अधः श्वास को फिर नहीं लेता; जैसा कि अन्य श्वासों में लिया जाता है। इस रोग में स्रोतों के मुख को कफ आच्छादित कर लेता है, कुपित वायु से पीड़ित करता है, दृष्टि ऊपर को हो जाती है, आँखें विभ्रांत होकर चारों ओर को देखती हैं। मर्म छिदने की सी वेदना होती है और वाणी रुक जाती है। वा० नि० ४ अ०।

असाध्यलक्षण—

जिस रोगीके ऊर्द्ध्वश्वास चलता हो। जिसकी देह की गरमी जाती रही हो। जिसके अंडकोषों

में वेदना होती हो। अनेक प्रकार की चिकित्सा करने पर भी जिसको सुख प्राप्त न होता हो, ऐसे रोगी को बुद्धिमान चिकित्सक त्याग देवे। बा० शा० ६ अ०।

(४) मृत्युकालीन श्वास। मरते समय का साँस।

ऊर्द्ध्ववसित–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करेला। कारवेल्ल।

ऊर्द्ध्वसुरङ्गा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नासागुहा की एक सुरंग वा नाली जो ऊर्ध्व शुक्तिका और मध्य शुक्तिका के बीच में होती है।

ऊर्द्ध्वस्कंध पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंधे के ऊपर की पेशी।

ऊर्द्ध्वस्थ–वि० [सं० त्रि०] ऊपरवाला।

ऊर्द्ध्वस्थित–वि० [सं० त्रि०] ऊपर रहनेवाला।

ऊर्द्ध्वस्थिति–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] घोड़े के ऊपर के भाग की भँवरी। त्रिका०।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वपृष्टदेश। घोड़े की पीठ।

वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्वस्थ। ऊपरी।

ऊर्द्ध्वस्रोता–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृक्षादि। पेड़ इत्यादि।

ऊर्द्ध्वहनु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊपर का जाबड़ा। फ़क़् अअ्ला, फ़क्कुल् सुदग़ैन (अ०)। (Superior Maxilla, Uperjaw)

ऊर्द्ध्वहनुकोटर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०](Antrum of Highmore) उर्ध्वहन्वस्थि के गर्भ के भीतर का वह भाग जो खोखला होता है। ऊर्ध्व-हन्वस्थि कोटर।

ऊर्द्ध्वहन्वस्थि–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊपर के जाबड़े की हड्डी। इसमें दो विरूप अस्थियाँ हैं। एक दाहिनी दूसरी बाईं; दोनों अस्थियाँ मध्य-रेखा में एक दूसरे से मिली रहती हैं। (Maxillary bone) इज़ामुल् फ़क्कुल् अअ्ला (अ०)।

ऊर्द्ध्व क्षुद्रांत्र–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०](Jejunum) उत्तर क्षुद्रांत्र।

ऊर्द्ध्वज्ञ(ज्ञु)–वि० [सं० त्रि०] ऊर्द्ध्वजानु। ऊँचे घुटनोंवाला।

ऊर्द्ध्वाकर्षण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊपर की ओर का खिंचाव।

ऊर्द्ध्वाङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊपर का अंग। सिर। मूँड़। मस्तक।

ऊर्द्ध्वाङ्गुलि-अव्य० [सं०] उँगली उठाकर।

ऊर्द्ध्वादिक्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊपरी दिशा।

ऊर्द्ध्वाधर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊपर का होंठ। ऊर्ध्व ओष्ठ। (Upper lip)

ऊर्द्ध्वाधरोत्थापनी पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊपर के होंठ को उठानेवाली पेशी।

ऊर्द्ध्वायन–वि० [सं० त्रि०] ऊर्ध्वगत। ऊपर जाने वाला।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्लक्ष द्वीपस्थ पक्षि विशेष। एक चिड़िया।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊर्ध्वगति। ऊपरी चाल।

ऊर्द्ध्वारोह(ण)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऊपर को चढ़ने की क्रिया वा भाव। (२) मरना। देहांत। इंतकाल।

ऊर्द्ध्वावर्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अश्वपृष्ठ। घोड़े की पीठ। (२) आवर्त। भौंरी।

ऊर्द्ध्वासित–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करेला। कारवेल्ल। त्रिका०।

ऊर्द्ध्वोष्ठगत चतुरस्रा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊपर के होंठ की चौकोर पेशी। (Muscle Quadratus labii superioris)

ऊर्द्ध्वोष्ठ्या धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊपर के होंठ की धमनी।

ऊर्द्ध्वौष्ठ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊर्ध्व ओष्ट। ऊपर का होंठ। (Upper lip)

ऊर्ध–क्रि० वि० दे० "ऊर्द्ध्व"।

ऊर्ध्व-क्रि० वि० दे० "ऊर्द्ध्व"।

ऊर्मय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलतरंग। अथ०। सू० ५२।२।६। कां०।

ऊर्मिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अंगुरीयक। अंगुठी। (२) भ्रमर गुञ्जन। भौंरे की गुँजन।

ऊर्मिन्–वि० [सं० त्रि०] ऊर्मियुक्त। लहरदार। लहरी।

ऊर्मिमत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भंगुरता। टूटापन। (२) वक्रता। टेढ़ापन।

ऊर्मिमान्-वि० [सं० त्रि०] (१) तरंगयुक्त। लहरदार। (२) वक्र। टेढ़ा।

ऊर्मि,ऊर्मी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ऊर्म्मि"।

ऊर्मिमाली-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्र। सागर। दे० "ऊर्म्मिमालिन्"।

ऊर्म्य-वि० [सं० त्रि०] तरङ्गोत्पन्न। लहर से निकला हुआ।

ऊर्म्सण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक द्रोण की तौल।

ऊर्म्मि (र्म्मी)-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) लहर। तरंग। (२) पीड़ा। दुःख। वेदना। ये छः हैं। जैसे—एक मत से-सर्दी, गर्मी, क्षोभ, मोह, भूख, प्यास और दूसरे मत से-भूख, प्यास, जरा, मृत्यु, शोक, मोह। (३) वेग। (४) भङ्ग। टूट। मे० मद्विकं। (५) छः की संख्या। (६) शिकन। कपड़े की सलोट। (७) शिकन। बल। (८) घोड़े की एक गति। घोड़े की लहरिया चाल।

ऊर्म्मिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोड़े के पैर का एक रोग। लक्षण—"ऊर्म्मिकश्चोर्म्मि संस्थानैर्वलिभिः खुरसम्भवैः।" ज० द० ३६ अ०।

ऊर्म्मिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उत्कंठा। (२) तरङ्ग। (३) भृङ्गनाद। भ्रमर गुञ्जन। भौंरे की गूँजन। (४) वस्त्रभंग। कपड़े की सलोट। शिकन। (५) अङ्गुलीयक। अँगूठी। अंगुरीयक। हे०।

ऊर्म्मिमालिन्(ली)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्र। सिंधु। सागर।

ऊर्म्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रात्रि। रात।

ऊर्व-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जलपात्र। हौज। (२) मेघ। बादल। (३) बड़वानल।

ऊर्वन्तः पार्श्विका पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष। (Muscle Gracilis.)

ऊर्वन्तः पार्श्विकाशिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Saphena magna vein) शिरा विशेष।

ऊर्वष्ठीव-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊरु एवं जानु। रान और घुटना।

ऊर्वस्थि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ की हड्डी। रान की हड्डी। Femur फ़ेमर। (अं०)। अज़्मुल् फ़ख़िज़्, अलफ़ख़्ज़ (अ०)।

नोट—ऊर्वस्थि शरीर भर में सबसे लंबी और मज़बूत अस्थि है।

ऊर्वस्थि गात्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जाँघ की हड्डी का वह भाग जो उसके दोनों सिरों के मध्य में होता है। यह बेलनाकार होता है। पर नीचे जाकर कुछ चौड़ा होजाता है। (Body of femur.)

ऊर्वस्थि ग्रीवा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊर्वस्थि का वह भाग जो उसके शिर के नीचे गात्र तक रहता है। जाँघ की हड्डी की गरदन। (Neck of femur.)

ऊर्वस्थि महाशिखरक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जाँघ की हड्डी का बड़ा उभार जो ऊर्वस्थि की ग्रीवा और गात्र के सम्मेलन स्थल पर और लघुशिखरक से ऊपर होता है। (Great brachanter of femur.) इसे कूल्हे में दबाकर स्पर्श किया जा सकता है।

ऊर्वस्थि लघु शिखरक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जाँघ की हड्डी के ऊपरी सिरे के दो उभारों में से छोटा उभार जो महाशिखरक से नीचे होता है।

ऊर्वस्थि शिर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जाँघ की हड्डी के ऊपर के सिरे का वह भाग जो वंक्षणोलूखल में रहता और गोलाकार होता है।

ऊर्वस्थि शीर्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जाँघ की हड्डी का ऊपरी सिरा।(Upper head of femur.)

ऊर्वार्बुद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह मोटा उभार जो जान्वस्थि स्थालक के दोनों ओर होता है। यह उभार टाँग की मोटी अस्थि के ऊपर के सिरे के ऊपर टिकता है। दे० "आन्तर और वाह्य ऊर्वार्बुद"।

ऊर्वी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ऊर्व्वी"।

ऊर्व्यङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भुँई फोड़। खुमी। गोमयच्छत्रिका। साँप की छतरी। हारा०।

ऊर्व्व-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वड़वाग्नि। बड़वानल ।

ऊर्व्वरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपजाऊ भूमि । सर्व शस्याढ्य भूमि । शब्द र० । दे० "उर्वरा" ।

ऊर्व्वारु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ख़रबूज़ा । के० दे० नि० ।

ऊर्व्वी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ का एक प्रकार का मर्म्म । ऊरु देश का मध्यस्थ मर्म स्थान । यथा—

"ऊरुमध्ये ऊर्वीनाम तत्रशोणित क्षयात् सक्थि शोषणः ।" सु० शा० ।

ऊर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] देवताड़क का पेड़ । रामबाँस । श० च० । दे० "देवताड़" ।

ऊल-[देश० विहा०] दे० "ओल" ।

ऊलम्बा-संज्ञा पुं० [?] अज्ञात ।

ऊलङ्-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय ।

ऊला-संज्ञा पुं० [?] जलीद (अ०) । तग्रग (फ़ा०) ।

[अ०] पहला । प्रथम । श्रेष्ठ । अव्वलियः ।

ऊलि-संज्ञा पुं० [सं०] प्याज । पलाण्डु ।

ऊलियातियूस-[यू०] एक प्रकार का कीड़ा ।

ऊलियातूस-[यू०] अंगूर का पेड़ । दाख का झाड़ ।

ऊ़लीतूस-[रू०] मुर ।

ऊलीसून-[यू०] (१) सेवार । शैवाल । (२) काई ।

ऊलुपी-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिशुमार । सूँस । अ० टी० ।

ऊलूक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उल्लू । पेचक । भा० पू० १ भ० । मद० ।

ऊवध्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पशु के उदर का बे पचा हुआ तृण ।

ऊशज-[अ०] उश्शक । उशक़ ।

ऊशन-[फ़ा०] स़अ़्तर । सातर । (Zataria multiflora, *Boiss.*)

ऊशित-तगरै-[ता०] चक्रमर्द । चकवँड । (Cassia tora, *Linn.*)

ऊशित, ऊशिसी-[बर०] बेल । बिल्व फल । श्रीफल । (Fruit of Aegle marmelos, *Corr.*)

ऊशीर-[फ़ा०] खस । उशीर । (Andropogon muricatus,)

ऊष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) क्षारमृतिका । खारी मिट्टी । रा० नि० । अम० । (२) संध्या । (३) रन्ध्र । छेद । मे० । (४) कर्ण रन्ध्र । कान का छेद । (५) मलय पर्वत । चन्दनाद्रि ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) प्रभात । सुबह । तड़का । प्रत्यूष काल । श० र० । (२) शुक्र । वीर्य ।

ऊषक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] प्रत्यूष समय । सवेरा । श० र० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का वृष्य कंद जो कल्लर नाम से प्रसिद्ध है। वा० सू० १५ अ० ऊषकादि० । "ऊषकस्तुत्थकं हिङ्गु" । (२) क्षार मृत्तिका । खारी मिट्टी । "ऊषकः क्षारमृत्तिका, वाराणसी समीपे वभदर देशे वाहुल्येन भवति । अन्ये तद्भवंद्रव्यान्तरमाहुः ।" सु० सू० ३८ अ० (ड०) ।

ऊषकादि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊषक (खारी मिट्टी), सेंधा नमक, हींग, काशीशद्वय (धातु काशीश; पुष्प काशीश), गुगुल, शिलाजीत और तुत्थक (तूतिया) इसे ऊषकादि गण कहते हैं । गुण—कफनाशक एवं मेदोविशोधक है । इसके प्रयोग से अश्मरी, मूत्र शर्करा, मूत्र शूल तथा कफ से उत्पन्न गुल्म रोग का नाश होता है । चक्र द० अश्मरी चि० ।

ऊषकादिगण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में ऊषक, तूतिया, हींग, दोनों कसीस, सेंधानमक और शिलाजीत आदि औषधियों का समाहार । जैसे—"ऊषकस्तुत्थको हिङ्गु काशी-शद्वय सैंधवं स शिलाजतु ।" वा० सू० १५ अ० । च० द० कषाद्य घृत ।

गुण—मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गुल्म, मेद और कफ नाशक । वा० सू० १५ अ० । च० द० कषाद्य घृत । बं० से० सं० ।

ऊषण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मरिच । मिर्च । "ऊषणं मरिचे क्लीवम्" । मे० णत्रिकं । प०

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

सु० । भा० पू० १ भ० ह० व० । (२) पिप्पली । पीपल । च० द० कफज्व० चि० सिन्दुवारादि । "सिन्दुवारदलकाथः सोषणः कफजे ज्वरे" । (३) शुण्ठी । सोंठ । भा० पू० १ भ० ह० व० । (४) पिप्पलीमूल पीपलामूल । पिपरा-मूल । मा० पू० १ भ० ह० व० । रा० नि० व० २ ।

संज्ञा पु० [सं० पुं०] (१) चित्रक । चीता । भा० पू० १ भ० ह० व० । (२) सोंठ । पुनर्नवा ।

ऊषणा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पिप्पली । पीपल । रा० नि० व० ६ । भा० पू० १ भ० ह० व० । (२) चविका । प० मु० । दे० "चात्र वा चव्य" । (३) शुण्ठी । सोंठ । वै० निघ० ।

ऊषणादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैद्यक में एक चूर्णौषध—मिर्च, पीपलामूल, कूठ, गज-पीपल, मोथा, मुलहठी, मूर्वा, भारंगी, मोचरस, सोवा (या वंसलोचन), इन्द्रजौ, अतीस, अड़ूसा, गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी—इन्हें समान भाग लेकर कूटकर चूर्ण कर लें ।

गुण—१ मा० की मात्रा में सेवन करने से विस्फोटक ज्वर, लोहित ज्वर (लाल बुखार), रोमान्तिका, जीर्णज्वर, और मसूरिका का नाश होता है । भै० र० परिशि० ।

ऊषपुट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कागज में लिपटा हुआ नमक का दाना ।

ऊषमा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ऊष्मा" ।

ऊषमाधिक्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पित्त का रोग । च० सू० २० अ० ।

ऊषर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह भूमि जहाँ रेह अधिक हो और कुछ उत्पन्न न होता हो । क्षार भूमि । ऊसर । रेह की जगह । नोना स्थान । रा० नि० व० २ ।

ऊषरक(ज)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) औषरक । पांशु लवण । रेह का नमक । (२) रोमक नामक एक प्रकार का कांत लौह । रा० नि० व० १३ ।

ऊषरतृण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की घास का नाम ।

गुण—बलदायक, रुचिकारक और पशुओं के लिए उपयोगी है । रा० नि० व० ८ ।

ऊषर भूमि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊसर । रेहटा ज़मीन ।

ऊषवत् (वान्)-वि० [सं० त्रि०] ऊषर । कल्लर-वाली जमीन । रेह की जगह ।

ऊषसूत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मृत्तिकालवण ।

"ऊषसूतं बालु केलं शैलमूलाकरोद्भवम् ।
लवणं कटुकं छेदि विहितं कटुचोच्यते ॥"
(सु० सू० ४६ अ०)

ऊषक्षार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षारमृत्तिका । लोनी माटी ।

गुण—गरम, वातनाशक, प्रक्लेदजनक और बलनाशक है । सु० सू० ४६ अ० ।

ऊषा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) प्रभात । सवेरा । (२) अरुणोदय । पौ फटनेकी लाली ।

ऊषाकर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुरगा । कुक्कुट । श० र० ।

ऊषाकाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रातःकाल । सवेरा । तड़का ।

ऊषापान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सवेरे जल पीने की क्रिया या भाव । सूर्योदय से पहिले जल पीने का विधान ।

विधि तथा गुण—जो मनुष्य सूर्य निकलने से पहिले उठकर आठ अंजली जल पीता है, उसके वात पित-कफ तीनों दोष नष्ट होते हैं और वह सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीता है तथा बवासीर, शोथ, ग्रहणी, ज्वर, जठर के रोग, जरा, कुष्ठ और मेद के रोग, मूत्राघात, पित्त, श्रवण—कान, गले, शिर, श्रोणि, शूल तथा आँख के रोग और भी जो-जो अन्य वात-पित्त-कफ एवं क्षतज रोग हैं, उन्हें मनुष्य रात्रि के अंत में जल पीने का अभ्यास करने से निवारण करता है । रात्रि के घना अंधकार दूर होने पर प्रातः काल उठकर जो मनुष्य नित्य नासिका से जल पीता है उसे गरुड़ की तरह दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है, और वलि पलित दूर होता है । भा० ।

ऊष्–[सं० धातु] पीड़ा देना। कष्ट पहुँचाना।

ऊष्म–संज्ञा पुं० [सं० पुं० ऊष्मन्] (१) गरमी। (२) ताप। धूप। (३) गरमी का मौसिम। (४) भाप। बाष्प।

वि० [सं० त्रि०] गरम।

ऊष्मक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पित्त। रा० नि०। (२) ग्रीष्म ऋतु। गरमी का मौसिम। "ज्यैष्ठाषाढ़ौ ग्रीष्म ऋतुः।"

ऊष्मजन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ओषजन वायव्य। ऑक्सिजन गैस। (Oxygen)

ऊष्मण–वि० [सं० त्रि०] गर्म। ऊष्म युक्त।

ऊष्मण्य–वि० [सं० त्रि०] ऊष्म निवारक। गर्मी दूर करनेवाला।

ऊष्मप–वि० [सं० त्रि०] गर्म। भोजन का वाष्प खींच लेनेवाला।

ऊष्मपर–वि० [सं० त्रि०] ऊष्मन् के पहले पड़नेवाला।

ऊष्मप्रकृति–वि० [सं० त्रि०] (१) ऊष्मन् से निकला हुआ। (२) गरम मिज़ाज का।

ऊष्मवत्–वि० [सं० त्रि०] तप्त। गर्म।

ऊष्मा–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) संताप। उष्णता। गरमी। तपन। (२) क्षय रोग। वै० निघ०। (३) ग्रीष्मकाल। (४) भाप।

ऊष्मागम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ग्रीष्मकाल। उष्णकाल। गर्मी का महीना।

ऊष्मान्त–वि० [सं० त्रि०] ऊष्मन् में समाप्त होनेवाला।

ऊष्मापह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हेमंत-ऋतु। पूस-माघ का महीना। वै० निघ०।

ऊष्मोपगम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उत्ताप का आगमन। गर्मी की आमद।

ऊ़सजुकल्ब–[अ०] उ़लैक़ुल्‌कल्ब।

ऊसज्–[अ०] (१) सफ़ेद ग़ार। (२) उ़लैक़ जैसी एक चीज़। (३) तूत जैसा एक फल।

ऊसन–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिससे तेल निकलता है जो जलाने के काम में आता है। सरसों की तरह यह जौ और गेहूँ के साथ बोया जाता है। इसकी खली चौपायों को दी जाती है। इसे जेवा और तरमिरा भी कहते हैं।

ऊसफ़द्नून–[यू०] काकनज।

ऊसर–संज्ञा पुं० [सं० ऊषर] वह भूमि जिसमें रेह अधिक हो और कुछ उत्पन्न न हो।

वि० (भूमि) जिसमें तृण वा पौधा उत्पन्न न हो।

ऊसरवेली–संज्ञा स्त्री० [?] गिरगिट की तरह का एक प्रकार का जानवर है। दे० "इसरीली"।

ऊ़सिया–[?] जावित्री।

ऊसियूस–[यू०] एक अज्ञात लकड़ी जो जलाने के काम में आती है।

ऊस्–[मरा०] ईख। गन्ना। (Saccharum Officinarum, *Linn.*)

ऊस्तरख़ार–संज्ञा पुं० दे० "उस्तरख़ार"।

ऊस्तरग़ार–संज्ञा पुं० [अ०] द्रुम्महोई (सिंध)। (Fagonia Arabica, *Linn.*) दे० "उस्तरग़ार"।

ऊस्ति़यून–[यू०] एक अप्रसिद्ध बूटी। जदरः।

ऊह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अनुमान। विचार। (२) तर्क। दलील। (३) परीक्षा। (४) अध्याहार। छिपाव।

ऊहन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० ऊहनीय] तर्क। दलील।

ऊहनीय–वि० [सं० त्रि०] तर्क करने योग्य। तर्कनीय। विचार योग्य।

ऊहा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ऊह"।

ऊहापोह–संज्ञा पुं० [सं० ऊह+अपोह] तर्कवितर्क। सोच विचार।

ऊहिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सम्मार्जनी। झाड़ू।

ऊहीरा–संज्ञा पुं० [?] आस का पेड़।

ऊह्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मीमांसा। शास्त्रोक्त ऊह विशेष। (२) जो बुद्धिमान द्वारा अनिर्दिष्ट हो उसे 'ऊह्य' कहते हैं। यथा—"यदनिर्दिष्टं बुद्धिमता तदूह्यं"। सु० उ० ६५ अ०।

वि० [सं० त्रि०] तर्कणीय । बहस के योग्य ।

ऊँख–संज्ञा पुं० दे० "ईख" ।

ऊँग–संज्ञा स्त्री० दे० "ऊँघ" ।

ऊँगना–संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनके कान बहते हैं, शरीर ठंडा हो जाता है और खाना-पीना छूट जाता है ।

ऊँगा–संज्ञा पुं० [सं० अपामार्ग] [स्त्री० अल्पा० ऊँगी] अपामार्ग । चिचड़ा । अज्ञाझारा । चिचिहिड़ी । (Achyranthes Aspera, *Linn.*)

ऊँगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँगा] अपामार्ग । चिचड़ी।

ऊँघ–संज्ञा स्त्री० [अवाङ्=नीचे मुँह] ऊँघाई । निद्रागम । झपकी । अर्द्धनिद्रा ।

ऊँघन–संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँघ] ऊँघ । झपकी ।

ऊँघना–क्रि० [हिं०] निद्रागम होना । झपकी लगना ।

ऊँट–संज्ञा पुं० [सं० उष्ट्र, पा० उट्ट] [स्त्री० ऊँटनी] उष्ट्र, क्रमेलक, मय, महाङ्ग (अ०) । दीर्घगति, बली, करभ, दासेरक, धूसर, लम्बोष्ठ, वरण, महाजङ्घ, जवी, जाङ्घिक, दीर्घ श्रृङ्खलक, महान्, महाग्रीव, महानाद, महाध्वग, महापृष्ठ, वक्रिष्ठ (रा०), दीर्घजङ्घ, ग्रीवी, धूम्रक, शरभ (ज). क्रमेल, कण्टनाशन, भोलि, बहुकर, अध्वग, मरुद्वीप, वक्रग्रीव (शब्द र०), वासन्त, कुलनाश, कुशनामा, मरुप्रिय, द्विककुत्, दुर्ग लङ्घन, भूतघ्न, दासेर, दीर्घग्रीव, केलिकीर्ण (हे०), कुवाहुल, वणिग्वह (श०), दीर्गाध्वग, (मे०), धूम्र, दीर्घ मार्गग, ग्रीवाङ्कुश, कुनास, लवण, महाजङ्घ, बीजाङ्घ्रिक, महानथ (धन्व०, रा० नि०)- (सं०) । उट (बं०) । अबु अयूब, इब्ल, जमल, बईर (अ०) । शुतुर, उश्तर (फ़ा०) । कैमेलस ड्रोमॉडेरियस Camelus dromodarius, *Linn.* (ले०)। कैमेल Camel (अं०) । क़ूरा (यू०, तु०) ।

संज्ञा-विवरण—भिन्न-भिन्न भाषा के शब्द संस्कृत 'क्रमेल' से मिलते-जुलते उच्चारित होते हैं, जैसे संस्कृत 'क्रमेल', हिब्रू 'गमेल, ग्रीक 'कामीलस्', रोमक 'कमेलस्', इटलीय 'कम्मेलो', स्पेनीय 'कमलो', जर्मन 'कमीलु', फ्रांसीसी 'कमु' (Chameau), अँगरेजी 'कैमेल (Camel)' अरबी 'जमल' । इसके सिवा फारसी शुतर वा उश्तर शब्द क्रमशः संस्कृत धूसर वा उष्ट्र जैसा जान पड़ता है ।

ऊँट एक ऊँचा चौपाया है जो सवारी और बोझ लादने के काम में आता है। यह गरम और जलशून्य स्थानों अर्थात् रेगिस्तानी मुल्कों में अधिक होता है । एशिया और अफ्रीका के गरम प्रदेशों में सर्वत्र होता है । इसका आदि स्थान अरब और मिश्र है । इसके बिना अरबवालों का कोई काम नहीं चल सकता । वे इस पर सवारी ही नहीं करते, अपितु इसका दूध, मांस, चमड़ा सब काम में लाते हैं । अरब के अतिरिक्त यह ईरान, दक्षिण तुर्किस्तान, उत्तर-पश्चिम भारत अफ्रीका, सूमध्य-सागर तथा सिनिगल नदी-तट के मध्यवर्त्ती प्रदेश और कनारी द्वीप में वास करता है ।

इसका रंग भूरा, डील बहुत ऊँचा (७-८ फुट), टाँगें और गरदन लंबी, कान और पूँछ छोटी, मुँह लंबा और होंट लटकते हुए और खरहे की तरह छिदे रहते हैं । चक्षु के गोलक अति बृहत् होते और कोटर के उपयुक्त नहीं जँचते । नासिका वक्र और संकोचन के योग्य लगती है । मस्तक बृहत् होता है । पद स्थूल और नख दो ही होते हैं । पद का तल प्रशस्त रहने से मरु के मध्य चलते समय बालू में धँसता नहीं । ऊपर का होंठ खरहे की तरह रहने से यह मरुभूमि में होनेवाले कँटीले गुल्मादि खा सकता है । नासिका वक्र और संकोचन योग्य रहने से यह मरुस्थल में "सिमूम" नामक साक्षात् कालांतक बालुका का प्रवाह बचा सकता है। यात्रा करनेपर जब "सिमूम" नामक वायु चलने लगता है तब ऊँट से नीचे उतर मिट्टी में मुँह घुसेड़ रखने पर बड़े मुश्किल से आरोहियों के प्राण बचते हैं । परंतु ऊँट का काम सामान्य नासिका सिकोड़ने से ही बन जाता है ।

हिंदी विश्वकोषकार के मत से ऊँट तीन प्रकार

के होते हैं—(१) हिगुइन, (२) बेकेती और (३) इलहैरी। इनमें हिगुइन सबसे बड़ा होता और १५ मन तक भार ढोता है। बेकेती हिगुइन से छोटा होता है। पीठ में ककुदाकृति के दो कूब रहते हैं। यह ८-९ मन भार वहन करता है।

इलहैरी अन्य जाति के ऊँटों से खर्व होने पर भी भार वहन में सबकी अपेक्षा तेज़ होता है। ऐसा बहुकाल व्यापी द्रुतगामी पशु कहीं नहीं। हम जिस परदार घोड़े की कथा सुनते हैं, वह ध्यानपूर्वक विचार करने से इलहैरी ही साबित होता है। अरबी कवियों ने इसकी जीभर कर प्रशंसा की है। इलहैरी आठ दिन में प्राय: ४८० कोस अफ्रीका का दुर्गम मरुपथ तय करता है।

परंतु कोई-कोई इसके दो ही भेद करते हैं। एक साधारण वा अरबी और दूसरा बग़दादी वा बलख़ी। अरबी ऊँट की पीठपर एक कूब होता है और यह अरब, भारतवर्ष और उत्तरी अफ्रीका में पाया जाता है। पर बग़दादी की पीठ पर दो कूब होते हैं। यह विशेषतः एसिया के मध्यवर्ती प्रदेश, तुर्किस्तान, फारस, तिब्बत, तातार और चीन में मिलता है।

ऊँट रोमन्थक अर्थात् जुगाली करनेवाला पशु कहलाता है। किंतु दंत की संख्या के अनुसार अन्य रोमन्थक पशुओं से इसका लक्षण भिन्न है। अन्य रोमंथक पशु के केवल नीचे के दंष्ट्र में छेदन दंत जमते हैं, ऊपरी अग्र भाग में नहीं। परंतु ऊँट के नीचे ऊपर दोनों दंष्ट्र वह रहा करते हैं। सोलह ऊपर और अठारह नीचे कुल ३४ दाँत होते हैं। ऊपरी दंष्ट्र में २ सृक, २ तीक्ष्ण एवं १२ पेषण दंत और नीचे ६ सृक, ८ तीक्ष्ण तथा १० पेषणदंत होते हैं। ऊपर के सृक अधिकांश तीक्ष्ण दंत जैसे ही रहते हैं

अन्य जुगाली करनेवाले पशुओं से ऊँट का दूसरा लक्षण भी भिन्न है। घन और नौकाकार गुल्फ की अस्थि (Tarsus) पृथक्-पृथक् रहती है। पुनः अन्य रोमन्थकों की तरह खुर द्विखंडित नहीं, जुड़े होते हैं।

ऊँट की पाकस्थली की रचना विलक्षण होती है। इसकी पाकस्थली अन्य सभी जंतुओं की पाकस्थली से भिन्न होती है। वह देखने में एक ओखली की तरह जान पड़ती है। उसमें पीछे की ओर दो कोठरियाँ होती हैं; जो बीच से एक कठिन पंक्ति द्वारा विभक्त होती हैं। यह अंश अन्न-नाली वाले छिद्र-पथ के दक्षिण पार्श्व से ढलता गया है। इस ओखली में जल का खज़ाना होता है, जिससे जरूरत पड़ने पर ऊँट पुनः जल पी सकता है।

ऊँट भारी बोझ उठाकर सैकड़ों कोस की मंज़िलें तय करता है। इसे जंगल का कंटक-तृण खाना अच्छा लगता है। यह बिना दाना-पानी के कई दिन तक रह सकता है और बराबर कार्य करने की पूर्ववत् क्षमता रखता है। अधिक दिन उपयुक्त आहार न मिलने पर पृष्ठस्थित कूब के रक्त-मांस से उसका प्रतिपालन कार्य संपादित होता है।

अरब देश के कवियों ने इसे "अरण्यपोत" (The ship of the desert) लिखा है। ऊँट उन्हें प्राण से भी अधिक प्रिय है। विलायत में ऊँट के लोम से कलम बनती है। उष्ट्र का मल अरब देश में जलाने के काम आता और धूम से नौसादर प्रस्तुत किया जाता है।

मादा को ऊँटनी या साड़नी कहते हैं। यह बहुत दूर तक बराबर एक चाल से चलने में प्रसिद्ध है। पुराने समय में इसी पर डाक जाती थी। ऊँटनी एक बार एक बच्चा देती है। उसे दूध बहुत उतरता है। इसका दूध बहुत गाढ़ा होता है और उसमें से एक प्रकार की गंध आती है। कहते हैं कि यदि यह दूध देर तक रक्खा जाय तो उसमें कीड़े पड़ जाते हैं।

कहते हैं कि जब ऊँट बीमार होता है, तब बलूत वृक्ष के पत्ते खालेता है और अच्छा हो जाता है।

एक वर्षीय अरबी पीताभ रक्तवर्ण वा श्याम वर्ण का ऊँट श्रेष्टतर होता है।

इतिहास—अति प्राचीन काल से ही ऊँट मनुष्य के व्यवहार में आ रहा है। इसके अनेक

प्रमाण मिलते हैं कि वैद्यक काल के आर्य ऊँट पर चढ़ते थे। (ऋक् ८।४६।२८।३१)

घोड़े की तरह युद्ध में भी वे इससे काम लेते थे—

"यथा मृध उष्ट्रो न पीपरोमृधः।"

(ऋक् १।१३८।२)

वैदिक समय से ही (ऋक् ८।५।३७, ८ ४६ ३१) राजा अश्व, गौ एवं धनादि की तरह उष्ट्र दान (महाभारत, सभा) करते आये हैं।

अश्वयान और गोयान की तरह पूर्वकाल में उष्ट्रयान का भी व्यवहार रहा (मनु० २।२०४)। उस समय ब्राह्मण उष्ट्रयान पर नहींचढ़ सकते थे। कारण उष्ट्रयान पर चढ़ने से ब्राह्मण को पाप लगता है—

"उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानन्तु कामतः।
स्नात्वातु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति"

(मनु० ११।२०२)

शास्त्रानुसार उष्ट्रमांस-भक्षण निषिद्ध है—

"गौधेयकुञ्जरोष्ट्रञ्च सर्वं पञ्चनखं तथा।
क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात् संवत्सरं व्रतम्॥"

(शाङ्ख संहिता १७। २१)

अर्थात्—गोह, हाथी, ऊँट, पाँच नखका पशु और मांसाशी गाँव का मुर्ग़ा खाने से सम्वत्सरव्रत करना चाहिए।

बाइबिल में भी ऊँट का मांस अभक्ष्य कहा गया है—"Because he cheweth the cud, but divideth not the hoop; he is unclean unto you"

(Leviticus, *X1.4.*)

अर्थात्—क्योंकि जुगाली करते हुये भी ऊँट के खुर फटे नहीं होते, अतएव वह तुम्हारे लिए अपवित्र है।

किसी-किसी अरबी ऐतिहासिक ने लिखा है, कि जब मुहम्मद ने टाबक नगर के यूनानियों के विपक्ष में गमन किया, तब सेना के सामंतों ने आहार और पानीय के अभाव से अत्यंत विपद् में पड़कर अपने अपने ऊँट को मार उसकी पाकस्थली का जल पिया था। (सलीस कुरान, पृ० ३६४) किंतु यूरोप के वर्तमान प्राणितत्वविद् यह बात ठीक नहीं समझते।

ऊँटनी का दूध

पर्य्या०—उष्ट्रीक्षीर, औष्ट्रक्षीर, उष्ट्रीदुग्ध, उष्ट्रीपय (सं०)। क्षीर शुतर (फ़ा०)। लबनुलनाक़ाह् (अ०)।

आयुर्वेदीय मतानुसार गुण-दोष—ऊँटनी का दूध (उष्ट्री क्षीर) रूक्ष, उष्ण, किंचित् लवणरस एवं लघु है तथा वात, कफ, आनाह, क्रिमि, सूजन, उदर और अर्श में उपयोगी है। यह कोढ़ एवं सूजन का नाश करनेवाला तथा पित्त नाशक, अर्शनाशक, कफ एवं आटोप निवारक है और आनाह, उदरस्थ जन्तु, गुल्म, श्वास और उल्वास का शीघ्र निवारण करता है। (रा० नि० । धन्व० नि०)

लघु, स्वादु, लवण, दीपन है तथा क्रिमि, कुष्ठ, कफ, आनाह, उदर और परम शोथ नाशक है। भा० पू० १ भ०।

ऊँटनी का दूध—रूक्ष, गर्म, किंचित् नमकीन और हलका होता है एवं वात, कफ, अफारा क्रिमि, सूजन, उदर रोग और बवासीर में हितकारी है। (च० सू० दुग्ध-व० २७ अ०)

ऊँटनी का दूध अग्निसंदीपन, हलका, थोड़ा रूक्ष, उष्ण और लवणरसयुक्त है। यह बादी, कफ, आनाह, क्रिमिरोग, शोथरोग, उदररोग और बवासीर में हितकर है। (वा० सू० क्षीर-व० २ अ०)

यूनानी मतानुसार—अन्य सभी प्रकार के दूधों से ऊँटनी का दूध हलका एवं अधिक पतला होता है। इसमें स्नेह की मात्रा कम होती है और जो कुछ होती भी है वह आपतत्व के साथ इस प्रकार सम्प्रक्त होती है कि उससे भिन्न नहीं हो सकती। इससे नवनीत नहीं निकल सकता। इसीलिए इसकी प्रकृति रुक्षता की ओर प्रवृत्त होती है। इसका स्वाद किंचित् क्षारीय होता है। चालीस दिवस के भीतर की बहुकाल की ब्याई हुई ऊँटनी का दूध निषिद्ध है। उसका व्यवहार न करना चाहिए। प्रकृति—रूक्षता लिए गरम। हानिकारक—विलंब से उदर गह्वर

में उतरता है और प्यास उत्पन्न करता है। दर्पघ्न—शर्करा। प्रतिनिधि गोदुग्ध।

गुण, कर्म, प्रयोग—प्राय: सभी प्रकार के दूध दीर्घपाकी एवं आध्मानकारक होने के कारण कोष्ठावयवों (हहशा) के लिए हानिप्रद हैं। ये सभी कोष्ठावयवों में सामान्यतया एवं यकृत में विशेषरूप से अवरोध उत्पन्न करते हैं। परंतु ऊँटनी का दूध इसका एक अपवाद है। क्योंकि साधारणतः दूध यद्यपि सांद्र होता है, पर यह अपनी विशिष्ट प्रवृत्ति के कारण एवं पोषणाधिक्य की आशा से दूध को आमाशय से पूर्ण परिपाक से पूर्व ही अपनी ओर अभिशोषित कर लेता है। किंतु ऊँटनी के दूध में यह बात नहीं, क्योंकि उसमें चेष्टा कम और जलीयांश अधिक होता है एवं इसकी तारल्यता अपनी उष्मा की अधिकता के कारण, अतिशय रोधोद्घाटक, स्वच्छताकारक एवं प्रक्षालक है। ऊँटनी का दूध जलोदर एवं प्लीहा-काठिन्य के लिए उपयोगी है। क्योंकि यह निर्मलताजनक है और जलीयांश की अधिकता के कारण विरेक लाता है और रोधों का उद्घाटन करता है। ऊँटनी और बकरी का दूध जलीयांश की बाहुल्यता के कारण पतला होता है। उक्त दोनों पशुओं का मांस रूक्ष है। अतएव इनके अवयवोंके पोषणार्थ जो रक्त उनकी ओर जाता है, उससे पार्थिवांश खर्च होजाते हैं और अधिकांश जलीयांश दूध में अवशिष्ट रह जाते हैं। (त० न०)।

इसके स्वादमें क्षारत्व है। इसमें स्निग्धता कम होती है। इसलिए यह आमाशय में पहुँचकर कम जमता है और यकृदीय रोध का उद्घाटन करता है। शोथ (इस्तिस्क़ा) को लाभ पहुँचाता है, स्वच्छता प्रदान करता है, परिपाककारी एवं विलायक है, कामोद्दीपन करता है, माद्दे को प्रकृतिस्थ (मुअ़्तदिलुल् क़वाम) करता है, शारीरिक बल उत्पादन करता है आभ्यंतरिक शोथों को विलीन करता है, क़ै और धाँस को लाभप्रद है, प्लीहोदर एवं बवासीर में उपयोगी है, मूत्र और आर्त्तव अधिक लाता है, इसके पीने और लगाने से नेत्र शक्ति-सम्पन्न होता है। शर्करा मिलाकर पीने से श्वास और कष्ट श्वास को लाभ पहुँचाता है। यकृत की रूक्षता दूर करता है। शर्करा के साथ शरीर को बल बढ़ाता, क्षुधा की वृद्धि करता, कामसंदीपन करता और मुखमंडल को निखारता है। रेंडी के तेल वा किसी अन्य विलायक तैल के साथ इसकी मालिश करने से, यह सूजन उतारता, आमाशय शूल और आनाह उत्पन्न करता है और आमाशय से शीघ्र नीचे उतर जाता है।

पर अन्य दूधोंकी अपेक्षा इससे न्यून आहार प्राप्त होता है, विशेषतः इसकी खोस (प्यूसी) से अति ही न्यून आहार प्राप्त होता है। इससे और इसकी खीस दोनों से हिक्का एवं धूमोद्गार आते हैं। किसी-किसी के मत से अन्य दुग्धों की अपेक्षा आमाशय से यह देर में तले उतरता है और प्यास लगाता है। जलंधर (इस्तिस्क़ा) के लिए बहुत ही उपयोगी है। क्योंकि इसके रोध को उद्घाटित कर देता है और उसके सांद्र दोषों को विलीन करता है। विरेक और मूत्र द्वारा पीत द्रव का उत्सर्ग करता है और मार्ग में नहीं चिपकता; क्योंकि इसमें स्नेहत्व न्यून है। संपूर्ण प्रकार के जलंधर (इस्तिस्क़ा) रोग में इसका व्यवहार कर सकते हैं। किसी-किसी के मत से यह जलोदर तथा वातज जलोदर में उपयोगी है। सिवा इसके अन्य प्रकार के जलंधर में उपकारी नहीं। अधोलिखित दो कारणों से यह यकृद्रोगों में लाभकारी है—(१) बिल्ख़ासियत (द्रव्यस्थ गुण स्वभाव के कारण) और (२) आर्द्रतारेचन द्वारा। परंतु स्मरण रहे कि जब प्लीहा और यकृद्रोगों में ज्वर भी विद्यमान हो, तब इसका व्यवहार न करें, क्योंकि दुग्ध ज्वर-विकार बढ़ा देता है। जलोदर होने की आशंका होने पर भी इसका व्यवहार वर्जित है; क्योंकि जबतक जलोदर पूर्णतया प्रगट नहीं हो लेता, तब तक यह किंचिद् द्रव नहीं छाँटता, प्रत्युत यकृत को निर्बल कर देता है। अन्य प्रकार के शोथों में प्रारम्भ में इसके उपयोग की मनाही नहीं। किंतु शीतलाजनित शोथों में इसका व्यवहार वर्जित है। ऊँटनी के दूध के उपयोग का प्रशस्तकाल शरद् ऋतु का मध्य एवं प्रारम्भिक भाग है। जिस

ऊँटनी का दूध व्यवहार में लाना हो उसे एक सप्ताह पूर्व से लघु विरेचक आहार दें, जैसे सौंफ, कासनी, मको और उत्तरकाल में तुख़्म कारफ़्स, सौंफ़ वा अफ़्संतीन मिलाकर जौ का दाना खिलाएँ अर्थात् हर रोग के अनुकूल उसको आहार दें। आठवें दिन से रोगी के पास खड़ा करके स्वच्छ पात्रमें दूध दूहकर और झाग उतारकर उसी समय शीतल हुए बिना गरम-गरम पिला दें। प्रथम दिवस सात तोला वा अधिक से अधिक चौदह तोले से प्रारम्भ करें और उसमें एक तोला खाँड वा शर्बत बज़ूरी वा शर्बत दीनार वा माधवी र गुलक़ंद लीन करें। कोई-कोई उसमें डेढ़ तोला मधु मिलाकर उसपर सवा दो माशा बालछड़ का चूर्ण बुरक कर देते हैं।

हकीम शरीफ़ खाँ प्राय: हकीम अकमल खाँ का यह चूर्ण दूध पचने के उपरांत दिया करते थे--उसारह गाफ़िस, ग़ारीक़ून, निसोथ, गुले सुर्ख़ प्रत्येक एक माशा, रेवंदचीनी, सनाय, हलेला काबुली हर एक २ माशा, यह सब एक मात्रा है। तीन दिवस पर्यंत १४ तोले दूध देकर चौथे दिन से पौने दो तोला बढ़ाने लगें और सात आठ दिन तक प्रति दिन इसी मात्रा से बढ़ाते हैं। अर्थात् चौथे दिन पौने दो तोला बढ़ाएँ, पाँचवें दिन साढ़े तीन तोला और छठवें दिन सवा पाँच तोला बढ़ाएँ। इसी भाँति ७-८ दिन तक बढ़ाकर तीन-चार दिवस तक बंद कर दें अर्थात् और न बढ़ाएँ। जब इतना दूध रोगी भली भाँति पचा सके, तब पुनः उसी भाँति २१ दिवस पर्यंत वर्द्धित कर स्थगित करें। जब इतना भी खूब हज़म होने लगे, तब और उसी प्रकार यहाँ तक बढ़ाएँ कि २८ तोला वा ५६ तोला तक पहुँच जाय। कोई-कोई ८४ तो० तक पचा सकते हैं। सच बात तो यह है कि जहाँ तक रोगी का मेदा स्वीकार करे और जब तक उद्गार में दुग्धवत् स्वाद का अनुभव न हो, इसे बढ़ाते जायँ। यदि रोगी की प्रकृति बल-शालिनी हो तो २१ दिवस के उपरांत ४० दिवस तक बढ़ाते रहें। अन्यथा २१ दिवस में जितना बढ़ गया हो उतना ही रहने दें। ४० दिवस तक बढ़ाते रहना भी कोई आवश्यकीय नहीं। यह चिकित्सक की राय पर निर्भर है। जब वह देखे कि रोगी को इससे अधिक की क्षमता नहीं, तब उतने ही पर रोक दे।

हृच्छूल और आमाशय शूल-ऊँटनीके दूध के प्रयोगसे हृच्छूल और आमाशयशूल में तत्कालिक लाभ होता है।

प्रयोग यह है—

ऊँटनी का दूध	ऽ१॥ सेर
नमक लाहौरी	ऽ=

इन दोनों को नरम आँच पर धीरे-धीरे पकाएँ जिसमें उबाल न खाने पाए। जब गाढ़ा होने लगे तब उसमें ६ मा० काशमीरी केशर मिलाएँ और आँच से उतार कर केवल कोयले की आग पर रखकर पकाएँ। जब हलुए की तरह गाढ़ा हो जाय, तब उतार कर छाँह में सुखाकर रखें। फिर चूर्णकर शीशी में बंद करें। मात्रा—१ रत्ती से २ माशे तक ठंडे पानी के साथ दें।

अपथ्य ठंडी और बादी करनेवाली वस्तुएँ।

नादकर्णी—ऊँटनी का दूध (Dropsy) श्वास, साधारण स्क्राफ्युलस दशाओं, शोथ वा प्रदाह, कर्कट (Cancer), अर्श आंत्रस्थ कृमि, त्वग् रोग और विषाक्तता में हितकर है।

आर० एन चोपरा - ऊँट का दूध शीघ्रपकी, उत्तेजक, आमाशय बलप्रद, अर्श, शोथ (Oedema), कृमि, उदरार्बुद (Abdominal tumours), शोथरोग (Dropsy) राजयक्ष्मा और कुष्ट में उपयोगी है। (इं० ड्र० इं० पृ० ५४५)

ऊँटनीका दधि (उष्ट्री दधि)

ऊँट का दही क्षारीय, अम्ल, विपाक में कटु है और वात, अर्श, कोढ़ कृमि तथा उदर रोग का नाश करता है। (धन्व० नि०)।

ऊँटनीका दही कटुक, स्वादु और किंचिद् अम्ल रसयुक्त होता है तथा अर्श, कोढ़, कृमि, शूल और उदररोगों का नाश करता है। (रा० नि० १५ अ०)।

ऊँटनी के दूध का मट्ठा (औष्ट्र तक्र)

यह विरस, गुरु, हृद्य तथा दोषकारक है और पीनस एवं श्वास-कास में उपयोगी है। (वै० निघ०) ।

ऊँटनीके दूधका मक्खन (औष्ट्र नवनीत)

यह लघुपाकी एवं शीतल है तथा व्रण, कृमि, कफ और रक्तदोष नाशक, वातनाशक और विष नाशक है। रा० नि० व० १५।

ऊँटनी का घी (औष्ट्री घृत)

यह पाक में मधुर, कटु एवं शीतल है तथा कृमि, कोढ़, वात कफ गुल्म और उदर रोग का नाश करनेवाला है। (रा० नि० व० १५)।

यह (औष्ट्र) पाक और रस में कटु तथा सूजन कृमि और विष नाशक है एवं दीपन, वातनाशक, कफनाशक, कुष्ट, गुल्म तथा उदररोग नाशक है और मूर्च्छा, प्रमेह, उन्माद, विष ज्वर और अपस्मार का नाश करता है। (धन्व० नि०)।

उष्ट्री का घृत दीपन और वातश्लेष्मनाशक है। यह पुराना हो जाने से कटु हो जाता है। इसको पीने से शोथ, विष, कुष्ठ, कृमि, गुल्म, और उदर रोग नष्ट होता है। अत्रि० ८ अ०।

ऊँटनी का घी शैत्यकारक एवं आमाशय बलदायक है तथा आक्षेप, कृमि और कुष्ठ में उपयोगी है। (इं० डू० इं० पृ० २४५)।

ऊँट का पेशाब (औष्ट मूत्र, उष्ट्र मूत्र)

यह सूजन, कोढ़, उदररोग, उन्माद, वायु, कृमि और अर्शका नाश करनेवाला है। (धन्व० नि०)।

यह कटु, तिक्त, उष्ण, लवण, पित्तकारक, बल्य, जठर रोग नाशक और वात दोष को नष्ट करनेवाला है। (रा० नि० व० १५)।

यह उन्माद, सूजन, बवासीर, कृमि, शूल, और उदर व्याधि दूर करनेवाला है। (मद० व० ८)

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

उष्ट्रमूत्र जलोदर के लिए बहुत ही उपयोगी है। उष्ट्री दुग्धवत् इसका प्रयोग करना चाहिए। ऊँट का पेशाब गरम करके कान में टपकाने से कर्णशूल और ऊँचा सुनने को लाभ पहुँचाता है।

ऊँटका पेशाब उत्तेजक पित्तवर्द्धक, हृदयोत्तेजक तथा शोथरोग (Dropsy) में हितकर है। (इं० डू० इं० पृ० २४१)।

ऊँट का मांस (उष्ट्रमांस)

आयुर्वेदीय मतानुसार—

यह उष्ण, लघु, स्वादु तथा चक्षुष्य है और वायु, अर्श, मेद एवं पित्त और कफ का नाश करनेवाला है। (धन्व० नि०)।

यह त्रिदोष नाशक, बल और पुष्टिप्रद, रुचिकारक, मधुर तथा वीर्यवर्द्धक है। (रा० नि० व० १७)।

शीतल, लघु, त्रिदोषनाशक, पुष्टिकर, रुचिकारक और वीर्यवर्द्धक है। (रा० नि० व० १५)

यह कटु, दीपन, वातकफनाशक, कुष्ठनाशक तथा गुल्म और उदररोग नाशक है तथा शोथ, कृमि और विष नाशक है। (भा० पू० १ भ०)

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

ऊँट के बच्चे का मांस गलीज़ आहार प्रदान करता है। यह दीर्घपाकी और उष्ण होता है। (त० नफी०)

इसका मांस काम संदीपन करता और उत्तमाङ्गों को बलप्रदान करता है। चातुर्थक, गृध्रसी, कूल्हे का दर्द, कृष्ण कामला (यर्क़ानस्याह) और मूत्र की जलन के लिए उपयोगी है। किंतु यह सौदावी खून उत्पन्न करता है। बच्चे का गोश्त श्रमजीवियों के लिये उपयोगी और चातुर्थकांत में लाभकारी है। उष्ट्रमांस सांद्र एवं गुरु है और इससे दूषित रक्त उत्पन्न होता है अर्थात् यह रदियुल् कैमूस है। इससे प्लीहा बढ़ जाती है और यह वातज शोथों, जैसे अर्बुद (सर्तान) और तर खाज को हानिप्रद है। यह वातिक रक्त उत्पन्न करता है, चिरपाकी होता है और वातप्रकृति तथा शीतरोगाक्रांत व्यक्तियों के लिए उपयोगी नहीं। किसी-किसी के मत से यह उष्णता एवं प्रदाह उत्पन्न करता है। सदा इसका मूत्र पीते रहने से सांद्रवायु, कूल्हे का दर्द (वज्उलवर्क) और गृध्रसी आदि बिकार पैदा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होते हैं। इसी भाँति इसके मांस से भी ये विकार उत्पन्न होते हैं। इसका मांस चुकंदर, लवण और सोये के साथ भली प्रकार गलाकर भक्षण करने से उपकार होता है। अथवा कालीमिर्च और जीरा प्रभृति उसमें मिलादें वा ऊपर से राई भक्षण करलें अथवा उसके खाने के उपरांत स्वच्छ पुरानी शराब पी लें। खूब श्रम करने के उपरांत खाना भी उससे होनेवाली हानि का दर्पघ्न है। यदि इसका मांस भक्षण करने के उपरांत भ्रांति एवं प्रदाह प्रतीत हो, तो शीतल जल से स्नान करलें। इसके खाने के उपरांत थोड़ा टहलना पुनः विपरीत करवट पर सोना चाहिये, जिसमें गरमी उत्पन्न होकर हज़म हो जाय। सिरका एवं काँजी से भी इसके विकार की खूब शांति होती है।

गीलानी के अनुसार ऊँट जितना ही स्थूलकाय और दीर्घायु होता है, उतना ही उसका मांस विकृत होजाता है और हर प्रकार के सौदावी रोग उत्पन्न करता है तथा पाचनशक्ति को निर्बल करता है। इसका संशोधन प्रकार यह है कि खरबूजे का छिलका डालकर खूब गला लें। जिनको सदैव इसे खाने का संयोग होता हो, उनको चाहिए कि शरीर से वात (सौदा) और सांद्र दोषों का संशोधन करते रहें और लघु एवं तर आहार सेवन करें। सिरका और सिरका में पड़ी हुई टेंटी (कबर) का अचार खानी चाहिए। यदि प्रकृति उष्ण न हो तो अदरक का मुरब्बा पर्याप्त होता है। इसमें यह एक विलक्षण गुण है कि इसके शरीर की कली प्रेमी की आस्तीन में बाँधने से प्रेम का लोप होजाता है। इसके मांस को जलाकर लेप करने से दद्रु का नाश होता है। इसके गरमा-गरम ताज़ा फेफड़े को व्यंग आदि पर मलने से लाभ होता है।

जहाँ इसकी चरबी रखी होती है वहाँ सर्प नहीं आता। उष्ट्र-वसा को बवासीर के मस्सों पर मलने से लाभ होता है।

इसकी अस्थि की मज्जा में पिचु वा ऊर्ण आप्लुत कर ऋतुस्नानोपरांत स्त्री की योनि में धारण करने से गर्भधारण की अधिक सम्भावना होती है।

इसकी मींगनी को पीसकर नस्य लेनेसे नकसीर का खून अवरुद्ध होजाता है। इसकी मींगनी को समुचित औषधियों के साथ पीने से मृगी का नाश होता है।

ताज़ी मींगनियों को पीसकर कंठमाला पर लगाने से लाभ होता है। मस्ती के समय ऊँट के मुँह से जो झाग निकलता है, उसके खाने से उन्माद पैदा होजाता है। पुदीने के पत्तों का पानी ऊँट के मस्तिष्क पर टपकाने से (इब्न ज़हर के अनुसार नासिका में टपकाने से) मस्ती जाती रहती है।

इसके बालों को भस्मकर क्षतों पर अवचूर्णित करने से रक्तस्रुति अवरुद्ध होती है। इसके बालों को रान पर बाँधने से रुद्ध मूत्र का प्रवर्त्तन होता है।

यदि इसके स्वेद में गेहूँ भिगोकर चिड़ियों को खिलाएँ तो वे मूर्च्छित होजायँ। इसके मुँह के झाग में भी उक्त प्रभाव वर्तमान होता है।

ऊँट के कास-रोग में पाँच अंडे, अट्ठाइस तो॰ रोग़न ज़ैतन और उतनी ही शराब में मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। यदि ऊँट की आँख सुहेल सितारे पर पड़ जाय, तो वह मर जाय।

इसके शरीर में पड़ा हुआ कीड़ा इसकी भुजा पर बाँधने वा गले में लटकाने से चातुर्थक ज्वर का नाश होता है। इसको जैतून के तेल वा मक्खन में पीसकर कीड़े-मकोड़े काटे हुए स्थान लगाने से विष उतर जाता है।

ऊँट की नाक का कीड़ा—दे॰ "अपस्मार"।

ऊँटकटारा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उष्ट्रकण्ट] ऊँटकटीरा, ऊँटकटेला, ऊँटकटेरा, उटकटार, छोढ़ा, ऊँटकटारो (हिं॰)। उष्ट्रकण्ट, उष्ट्रकण्टक, कंटालु, करमादन, उत्कंटक, शृगाल, तीक्ष्णाग्र (च॰ द॰। भैष॰), उष्ट्रकांडिका। उष्ट्रकांडी, रक्त पुष्पी, करभ काण्डिका, रक्ता, लोहित पुष्पी, वर्णा पुष्पी (रा॰ नि॰)-(सं॰)। आक़ूल, शौकुल् जमाल (अ॰)। उश्तरख़ार (फ़ा॰)। एकिनाप्स एकीनेटस (Eohinops echinatus, *DC.* (ले॰)। केमल्स थिस्ल Camel's thistle (अं॰)। उटकटारा,

उटांटी (मरा०) मोटोबोर, उटकंटो (गु०)। ऊँटाँटी (बं०)।

मिश्र वर्ग

(*N. O. Compositae.*)

उत्पत्ति-स्थान—हिमालय, मध्यभारत, कोंकण, संयुक्त प्रांत, डेक्कन और मारवाड़।

वानस्पतिक वर्णन—एक कँटीली झाड़ी वा क्षुप जो ज़मीन पर फैलता है और एक से दो फुट वा गज़ भर ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ पंजाकार (Pinnatifid) भँड़भाँड़ की तरह लंबी-लंबी और काँटेदार होती हैं। इसका अधः पृष्ठ रोएँदार होता है। डालियों में गड़नेवाली रोईं होती है। लगभग १ इंच व्यास का गोलाकार पुष्प गुच्छ लगता है। यह भीतर से असफंजी होता है और इस पर छोटे-बड़े बहुश: तीक्ष्णाग्र कंटक होते हैं। इसके भीतर भूसी की तरह एक सफ़ेद चीज़ होती है। फूल इसके पीले और सफेद होते हैं। किसी का फूल नीला भी होता है जड़ गावदुमी श्वेताभ भूरे रंग की होती है। स्वाद तिक्त एवं कटु तीक्ष्ण होता है। ऊँटकटारा कँकरीली और ऊसर ज़मीन में होता है। इसे ऊँट बड़े चाव से खाते हैं। कदाचित् इसी कारण इसके "उष्ट्रकण्टक" प्रभृति नाम पड़े हैं।

संज्ञा-निर्णायक टिप्पणी—मख़ज़नुल् अद्विया के संकलयिता ने लिखा है कि इसको "उश्तरग़ार" भी कहते हैं। परंतु यह ठीक नहीं। वस्तुत: यह शुद्ध "उश्तरग़ाज़" है, जो अंजदान की क़िस्म की एक अत्यंत तीव्र प्रदाह-कारक जड़ है। इसकी गंध भी अंजदान की सी होती है। इसको 'ज़ंजबीलुल् अज्म' और 'ज़ंजबील फ़ारसी' कहते हैं। यह "उश्तरख़ार" का मुअर्रिब भी नहीं, जैसा कोई-कोई ख्याल करते हैं। नुसख़ा सईदी में लिखा है कि यद्यपि मख़्ज़न और अल्फ़ाज़ुल अद्विया के संकलयिता ने उश्तरख़ार को ऊँटकटारा लिखा है, पर लेखक के समीप इन दोनों की आकृति एवं गुण-धर्म में कुछ भी सादृश्य ज्ञात नहीं पड़ता। परंतु हमारे विचार से ऊँटकटारे के लिये भी उश्तरख़ार शब्द का प्रयोग हो सकता है, क्योंकि ऊँट इसे खाता है। शौकुल् जमाल इसका ठीक अरबी भाषांतर है।

औषधार्थ व्यवहार—समग्रक्षुप, जड़ और जड़ की छाल।

प्रभाव—सुगंधित तिक्त, वात-तंतुओं को बलदायक (Nervine tonic), परिवर्त्तक, मूत्रल और कामोद्दीपक।

औषध-निर्माण—जड़ की छाल का क्वाथ तथा फांट (१० में १ भाग), मात्रा—१। तो० से ५ तो० तक। पत्तियों का स्वरस, मात्रा—३० से ६० बूँद; मूलत्वक् चूर्ण वा पाक आदि।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार गुण-दोष—

ऊँटकटारा (उष्ट्रकाण्डी) रसमें तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक एवं हृद्रोगनाशक है। बीज मधुर शीतल, वृष्य और संतर्पण है। (रा० नि० व० १०)

यूनानी तथा नव्य मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण तथा रूक्ष है।

गुण, कर्म, प्रयोग—कफ तथा वायु को नष्ट करता, पाचनकर्त्ता तथा पित्त पैदा करता है। यह शरीर को शक्ति प्रदान करता तथा मूत्रप्रवर्त्तक है। इसकी जड़ टुकड़े-टुकड़े कर, चोये की तरह टपकाकर रखें। इसे अर्द्ध मा० वा एक मा० की मात्रा में पान के साथ खाने से कामशक्ति की वृद्धि होती है। यह स्तंभन करता है। इसका तिला हस्तमैथुनी के लिये अत्युपयोगी है।

इसकी जड़ साये में सुखाकर और पीसछान कर रखें। अत्यधिक स्वेदस्राव होने पर सप्ताह पर्यंत इसे मधु के साथ चाटने से अवश्य लाभ होता है।

१४ मा० इसकी जड़ की छाल कुचलकर, पोटली में बाँधकर आधसेर गोदुग्ध में औटाएँ और उसमें सेर भर जल और ४ छोहारे भी मिलादें। जब जल जल जाय, दूधमात्र शेष रह जाय, तब उस दूध को पीलें। यह अत्यंत कामशक्ति प्रदायक है।

उसी भाँति साये में सुखाई हुई इसकी आध सेर छाल ५ सेर गोदुग्ध में क्वथित करें। जब दूध गाढ़ा पड़ जाय तथा जमनेके क़रीब आ जाय, तब मुसली श्वेत, कृष्ण मुसली, मखाना, मोचरस, बीजबंद—इनको महीन पीसकर मिलालें। इसमें से प्रतिदिन तोले भर सुबह शाम खाया करें। खट्टी वस्तुओं से परहेज़ करें। यह कामशक्तिवर्द्धक और वीर्य को गाढ़ा करनेवाला है।

इसकी जड़ गुड़हल के फूल के साथ पीसकर स्त्री की नाफ पर लेप करने से योनिविस्तार होता है।

इसकी जड़ की छाल और गोखरू प्रत्येक ३-३ मा०, मिश्री ६ मा०—इन सबको पीसकर दूध के साथ फाँकने से प्रमेह रोग निवृत्त होता है।

छोहारे की गुठली और इसकी जड़ की छाल बराबर-बराबर लेकर पीस-छानकर फंकी देने से पाचनशक्ति बढ़ती है।

इसकी जड़ की छाल को पीसकर पान में रख कर खिलाने से खाँसी तथा कफ का नाश होता है।

इसकी जड़ की छाल औटाकर पिलाने से अथवा केवल जड़ को पानी में पीसकर पिलाने से स्त्रियों को शीघ्र प्रसव होता है। इसको कोई-कोई बलवर्द्धक भी मानते हैं।

तालमखाना, मिस्री और इसकी जड़की छाल—इनको महीन चूर्णकर फंकी देने से सुज़ाक नष्ट होता है।

इसकी जड़ को पोसकर गर्भवती स्त्री के पेट पर लेप करने से शीघ्र एवं सुगमता से शिशु-प्रसव होता है। (ख० अ०)

यह परिवर्त्तक, मूत्रल और नाड़ी बलदायक (Nervine tonic) है। गलग्रह (Hoarse cough), योषापस्मार, अजीर्ण और गंडमाला (Scrofula) में इसका व्यवहार होता है। (इं० डू० इं० पृ० ४८५—आर० एन० चोपरा)

नादकर्णी—शिशुओं के गलग्रह (Hoarse cough) में इसकी जड़ काम आती है। बिना छुरी के इसे शनिवार या रविवार को लाकर कास पीड़ित शिशु के गले में बाँध दें। अनेक परिवर्त्तक और वल्य क्वाथौषधों का यह एक प्रधान उपादान है। शुक्रजनित निर्बलता, कामावसाय वा नपुंसकत्व और योषापस्मार प्रभृति में इसका फांट प्रयोजित किया जाता है। उक्त अवस्था में इसकी जड़ की छाल छाँह में सुखाकर बारीक पीसछानकर १ से १॥ ड्राम की मात्रामें दी जाती है। परिवर्त्तक रूपमेंइसका क्वाथ अजीर्ण, गंडमाला, आतशक और ज्वर में प्रयुक्त होता है। वीर्य सम्बन्धी निर्बलता में यह पाक उत्तम है—ऊँटकटारा ५ भाग, पोस्ते का दाना ५ भा०, गोखरू ६ भा०, सांबरफूल(सेमलका फूल) ४ भा०, कौंच के बीज ४ भा०, खाकशी ५ भा०, खोरासानी अजवायन ५भा०, मुसलीकंद ४ भा०, शक्कर १० भा०—इनको मिलाकर यथाविधि पाक प्रस्तुत करें।

मात्रा—३ मा० से ६ मा० तक। दिन में दो बार। (इं० मे० मे० पृ० ३१५-६)

ऊँटकटीरा-संज्ञा पुं० दे० "ऊँटकटारा"।

ऊँटकस्या-संज्ञा पुं० दे० "ऊँटकटारा"।

ऊँटनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँट] ऊँट की मादा। उष्ट्री। दे० "ऊँट"।

ऊँटा-संज्ञा पुं० [?] हुलहुल।

ऊँदर-संज्ञा पुं० [सं० उन्दुर] चूहा। मूसा।

* * *

(ऋ)

ऋ–एक स्वर जो वर्णमाला का सातवाँ वर्ण है। इसकी गणना स्वरों में है और इसका उच्चारण-स्थान मूर्द्धा है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेद से यह तीन प्रकार का होता है। पुन: इनमें से एक-एक के भी उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन-तीन भेद हैं। फिर इन नौ भेदों में भी प्रत्येक के अनुनासिक और निरनुनासिक दो-दो भेद हैं। इस प्रकार इसके कुल १८ भेद हुए।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धातु का अनुबंध विशेष। (२) स्वर्ग। विहिश्त। (३) तपन।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) देवमाता। अदिति। (२) निंदा। बुराई।

अव्य० [सं०] (१) हास्य परिहास। बोली-ठोली। (२) निन्दा। (३) वाक्य। (४) प्राप्ति। (५) वाक्य विकृति।

[सं० धातु] गमन करना। जाना। प्राप्त होना।

ऋक्–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ऋचा। वेद-मंत्र। (२) ऋग्वेद। (३) ऋग्वेदोक्त मंत्र।

वि० [सं० त्रि०] तप्त। गर्म।

ऋक्‌ण–वि० [सं० त्रि०] (१) क्षतयुक्त। ज़ख़्मी। (२) छिन्न कटा हुआ।

ऋक्थ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सुवर्ण। सोना। (२) धन। अम०। सु० सू० ३८ अ०।

ऋक्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धन।

ऋग्वेद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चार वेदों में से एक। दे० "वेद"।

ऋचा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ऋक्"।

ऋचीष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "ऋजीष"।

ऋच्छ–संज्ञा पुं० [सं० ऋक्ष] रीछ। दे० "ऋक्ष"।

ऋजीक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धूम।

ऋजीष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) लोहे का तसला, कड़ाही वा तवा। भ्राष्ट्र। भर्जनपात्र। हे० च०। (२) सोमलता की सीठी। (३) सीठी।

ऋजु–वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा आर्जव, ऋजुता] [स्त्री० ऋज्वी] (१) जो टेढ़ा न हो। सीधा। अवक्र। (२) सरल। सुगम। सहज। जो कठिन न हो। (३) मांड। ताल भेद। मद्य द्रुम। मोहकारी। ध्वजवृक्ष। रा० नि० व० ५। (४) वाग्भट के अनुसार एक प्रकार का भगंदर जो वात-कफ के प्रकोप से होता है। यह अपनी सीधी गति से गुदनाड़ी को विदीर्ण कर देता है। "ऋजुर्वातकफाहज्ज्या गुदोगत्या तु दीर्यते।" वा० उ० २८ अ०।

ऋजुकरण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सीधा करना। सीधाई में लाने की क्रिया। वा० सू० २६ अ०। (२) सुश्रुतोक्त यंत्र-कर्म विशेष।

ऋजुश्रेणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूर्वा। मुरहरी। रत्ना०।

ऋजुसर्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का साँप। दर्वीकर सर्प। सु० कल्प० ४ अ०। दे० "साँप"।

ऋज्ञासन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेघ। बादल। सिद्धा० कौ०।

ऋणान्तक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऋण हर्त्ता मङ्गल ग्रह।

ऋत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जल। मे०। (२) उंछशील। उंछवृत्ति। (३) विष्णु। (४) सूर्य।

वि० [सं० त्रि०] (१) दीप्त। (२) पूजित। (३) सत्य।

ऋतु-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) कालविशेष। मौसम। गरमी, बरसात, और जाड़े का समय। प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुसार वर्ष के दो दो महीनों के छः विभाग। ऋतुएँ छः हैं—(क) वसंत (चैत और वैशाख), (ख) ग्रीष्म (जेठ और असाढ़), (ग) वर्षा (सावन और भादों), (घ) शरद् (क्वार और कार्तिक), (च) हेमन्त (अगहन और पूस) और (छ) शिशिर (माघ और फाल्गुन)।

दोषों के संचय, कोप और शांति के कारण आयुर्वेद में (सु० सू० ६ अ०) ऋतुओं का विभाग इस प्रकार किया गया है—

(१) ग्रीष्म=वैशाख और जेठ।
(२) प्रावृट्=आषाढ़ और सावन।
(३) वर्षा=भादों और क्वार।
(४) शरद्=कार्तिक और अगहन।
(५) हेमन्त=पौष और माघ।
(६) वसन्त=फाल्गुन और चैत्र।

इन ऋतुओं में राशियों का क्रम इस प्रकार रहता है—

(१) ग्रीष्म (मेष और वृष), (२) प्रावृट् (मिथुन और कर्कट), (३) वर्षा (सिंह और कन्या), (४) शरद् (तुला और वृश्चिक), (५) हेमन्त (धनुप और ग्राह) और (६) वसन्त (कुम्भ और मीन) भा०।

स्मृति के अनुसार ऋतु के तीन भेद इस प्रकार हैं।

(१) फागुन से जेष्ठान्त तक ग्रीष्म। (२) आषाढ़ के शुरू से क्वार के अन्त तक वर्षा और (३) कातिक के प्रारम्भ से माघ के अन्त तक शीत ऋतु।

वेद में पाँच और पाश्चात्य शास्त्र में चार ऋतु मानी गयी हैं। साधारण लोग तीन ही ऋतु मानते है। प्रथम देखना यह है कि ऋतु पड़ने का कारण क्या है? आदि वेद ऋक् संहिताके मत से सूर्य ही ऋतु के विभागकारी हैं—

"उत्संहायास्थाद्व्यृतूंरदर्धररमतिः सविता देव आगात्।" (ऋक् २। ३८। ४)

अर्थात् विरामहीन और ऋतु विभागकारी ज्योतिष्मान् सूर्य जब फिर निकलते हैं, तब मनुष्य शय्या छोड़ चलते हैं।

ऋक् संहिता के मत से ऋतुएँ पाँच हैं। कोई-कोई ६ भी बताते हैं।

"पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणा। अथे मे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षलर आहुरर्पितं॥"

(ऋक् १। १६४। १२)

पञ्चपाद और द्वादश आकृति विशिष्ट आदित्य स्वर्ग के परम अर्ध पर रहते हैं, जिन्हें कुछ लोग पुरीषी कहते हैं। जब अपर अर्ध पर आते हैं, तब कोई-कोई उन्हें ६ अरयुक्त सप्त चक्र-विशिष्ट रथ में अर्पित कहते हैं।

यहाँ पञ्चपाद का अर्थ पञ्च ऋतु है। सायण के मत से हेमंत और शिशिर को एक ही मान पञ्च ऋतु कहे हैं।

ऋक् संहिता में इसका भी आभास मिलता है कि पृथ्वी कक्ष की गति के अनुसार ऋतु बदलती है।

"पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थर्भुवनानि विश्वा। तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेच न शीर्यते सनाभिः॥"

(ऋक् १। १६४। १३)

अर्थात् परिवर्त्तन युक्त पञ्च अरयुक्त चक्र में निखिल भुवन लीन है। उसका अक्ष अधिकतर भारवहन से भी क्लांत नहीं होता। उसकी नाभि चिरकाल समान रहती और कभी शीर्ण नहीं पड़ती।

चरक का कहना है कि सूर्य, चन्द्रमा और वायु, इन्हीं के कारण काल, ऋतु, रस, दोष, देह और बल की उत्पत्ति होती है। यथा—

"तावेतावर्कवायू सोमश्च कालर्तु रस दोष देह प्रत्ययभूताः समुपदिश्यन्ते॥ ५॥"

(च० सू० ६ अ०)

सुश्रुत में भी लिखा है—

"संवत्सरात्मनो भगवानादित्यो गतिविशेषणाक्षि निमेष काष्ठाकला-मुहूर्त्ताहोरात्र पक्ष मासर्त्वयन संवत्सर युगप्रविभागं करोति।"

(सु० सू० ३ अ०)

अर्थात् भगवान सूर्य गति विशेष द्वारा काल की देह को अक्षि, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युग अंश में बाँटते हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि ऋतुओं की उत्पत्ति प्रधानतया सूर्य के कारण होती है, यह सभी जानते हैं। परंतु केवल सूर्य ही इनका कारण नहीं है, वायु और जल का भी इसमें भाग है। जैसा पहले लिखा जा चुका है, एक वर्ष में

छः ऋतुएँ होती हैं। शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमन्त। इनमें से पहली तीन उत्तरायण कहाती हैं और अंतिम तीन दक्षिणायन। शिशिर ऋतु से उत्तरायण का आरम्भ होता है। सूर्य की गति दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ती है। वायु में तीव्रता और रूक्षता बढ़ती है। सूर्य पृथ्वी से रस और मनुष्यों के शरीर से बल का आकर्षण करना आरम्भ करता है (इसीसे उत्तरायण को 'आदानकाल' भी कहते हैं)। इस ऋतु में बरफ़ ज़ोर से गिरने लगती है। हेमन्त ऋतु का गोला-बारूद (हिम) अपने विपक्षी (सूर्य) का बल बढ़ता देखकर, दिनोंदिन पृथ्वी पर गिरने लगता है। वसन्त ऋतु में गर्मी और बढ़ती है। सूर्य की गति पहले से अधिक उत्तर की ओर होजाती है। वायु में तीव्रता और रूक्षता अधिक आ जाती है। पृथ्वी का रस भी पहले (शिशिर) की अपेक्षा अधिक सूखने लगता है। प्राणियों का बल कम होजाता है। जो कफ या जलीय अंश हेमन्त ऋतु में प्राणियों के शरीर में संचित हुआ था, वह वसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों की तीव्रता के कारण पतला होने लगता है। शरीर की अंतराग्नि (पित्त) पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। पाचन शक्ति में जो तीव्रता हेमन्त ऋतु में होती है, वह वसन्त में नहीं होती। अग्नि मंद पड़ जाती है और कफ के रोग होने लगते हैं। इसी कारण, वसन्त ऋतु में, वमन विरेचन आदि के द्वारा कफ को कम करने का आयुर्वेद में विधान है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की उष्णता और वायु की रूक्षता अत्यंत प्रबल हो उठती है। सूर्य की प्रखर किरणें पृथ्वी के रस को प्रबल वेग से सोखने लगती हैं। शीतल और मधुर उपचार के द्वारा (ठण्डे, मीठे शरबत और फल आदि से) मनुष्य उस कमी को अपने शरीर में पूरा करते हैं।

शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म इन ऋतुओं में यथाक्रम तिक्त, कषाय और कटु रस पृथ्वी में बढ़ते हैं। कटुरस में वायु और अग्नि के गुणों की अधिकता है। लाल मिर्च में रूक्षता और तीव्रता का आप स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं। ग्रीष्म ऋतु में वायु की रूक्षता और अग्नि की तीव्रता चरम सीमा को पहुँच जाती है। लाल मिर्च के खेत इन्हीं दिनों पकते हैं और अपने में सूर्य तथा वायु के उक्त गुणों का समावेश करते हैं। वसन्त ऋतु में पृथ्वी के भीतर कषाय रस की निष्पत्ति विशेष रूप से होती है।

उत्तरायण में तिक्त, कषाय और कटु रसों की यथाक्रम निष्पत्ति होती है। सद्वैद्य लोग चिकित्सा के समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि किस रोग में किस रस की ओषधियों का प्रयोग करना विशेष हितकर होगा।

दक्षिणायन में सूर्य की गति दक्षिण की ओर होती है। ताप में कमी आती है। मेघ और वर्षा के कारण यह और भी कम हो जाती है। चन्द्रमा का बल बढ़ता है। ओषधीनाथ (चंद्र) का बल बढ़ने से ओषधियों का भी बल बढ़ता है। पृथ्वी के प्राणियों में भी शक्ति-सञ्चार होने लगता है और बल-वर्धक रस अम्ल, लवण, मधुर इनका इन दिनों में संचय होता है। इससे यह स्पष्ट है कि सूर्य, चन्द्रमा और वायु जैसे काल और ऋतुओं को उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार प्राणियों के बल और ओषधियों के रसों के बनाने में भी इनकी कारणता है और ऋतुओं के स्वभाव के अनुसार ये कफ आदि दोषों को भी बढ़ाते-घटाते हैं। फलतः चरक का यह कथन बिलकुल युक्ति युक्त है कि काल, ऋतु, रस, दोष, देह, और बल की उत्पत्ति में सूर्य, चन्द्रमा तथा वायु की कारणता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य, चन्द्रमा और वायु अथवा वात, पित्त, कफ का पूरा प्रभाव काल पर भी है, दिशाओं पर भी है, पृथ्वी के रसों पर भी है, प्राणियों के बल और शरीर पर भी है एवं उन-उन ऋतुओं में बढ़ने-घटने वाले विकारों पर भी है। आयुर्वेद ने दिन तथा रात्रि के अंशों में भी त्रिधातु का विभाग बताया है, जिससे रोग के बढ़ने-घटने का समय देखकर वैद्यों को उसके कारण भूत दोष के समझने में सुगमता होती है।

दोषों का संचय कोप और शांति

वात-ग्रीष्म ऋतु में संचय होता, प्रावृट् में कोप करता और शरद् ऋतु में शांत होता है।

पित्त—वर्षा ऋतु में संचय होता, शरद् ऋतु में कुपित होता और वसंत ऋतु में शांत हो जाता है।

कफ—हेमन्त में संचय होता, वसंत में कुपित होता और प्रावृट् ऋतु में शांत हो जाता है। (मा० नि०)।

"सुश्रुत" के अनुसार पित्त कोप-जनित अर्थात् पित्त के कुपित होने से होनेवाले रोगों की शांति हेमंत-ऋतु में स्वयं हो जाती है; कफ रोगों की शांति स्वयं ग्रीष्म ऋतु में हो जाती है और बादी के रोगों की शांति स्वयं शरद् ऋतु में हो जाती है।

बंगसेन के अनुसार वर्षा-ऋतु में वायु कुपित होता है, शरद्-ऋतु में पित्त कुपित होता है और वसन्त में कफ कुपित होता और फिर हेमन्त में वायु कुपित होता है। रूक्षता बढ़ती है तथा शिशिर में वायु कुपित होता है और ग्रीष्म में पित्त कुपित होता है। सारांश यह कि वर्षा, हेमन्त और शिशिर इन तीनों ऋतुओं में वायु, शरद् और ग्रीष्म इन दो में पित्त और वसंतऋतु में कफ कुपित होता है।

दिनरात में ऋतु-विभाग

दिन का पहला पहर वसंत—कफ-कोप का समय है।

दिन का दूसरा पहर ग्रीष्म—

दिन का तीसरा पहर प्रावृट्—वायु-कोप का समय है।

दिन का चौथा पहर वर्षा—

आधीरात शरद्—पित्त-कोप का समय है।

पिछली रात हेमन्त—

बंगसेन के मत से दिन-रात में दोषों का समय

दिन का प्रथम भाग कफ का समय।
,, मध्य ,, पित्त का समय।
,, अन्तिम ,, वायु का समय।
रात का प्रथम भाग कफ का समय।
,, मध्य ,, ...पित्त का समय।
,, अन्तिम ,, ...वायु का समय।

ऋतु आदि के विशेष विवरणके लिए 'वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्' आदि शब्दों के अन्तर्गत देखो।

(२) स्त्री कुसुम। पुष्प। आर्त्तव। अम०।

(३) रजोदर्शन के उपरांत वह काल जिसमें स्त्रियाँ गर्भधारण के योग्य होती हैं।

ऋतुकाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रजोदर्शन के उपरांत १६ दिन जिनमें स्त्रियाँ गर्भधारण के योग्य रहती हैं। उनमें प्रथम चार दिन तथा ग्यारहवाँ और तेरहवाँ दिन गमन के लिए निषिद्ध हैं।

ऋतुगमन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० ऋतुगामी] ऋतुकाल में स्त्री के पास जाना।

ऋतुचर्य्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऋतुओं के अनुसार आहार-विहार की व्यवस्था। जैसे—वसंत में भ्रमण, ग्रीष्म में दिवाशयन, वर्षा में अंगराग मर्दन, शरद् में विदेश गमन और हेमन्त तथा शिशिर में अग्नि तपना प्रशस्त है।

ऋतुजन्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पुनर्नवा। गदहपूरना।

ऋतुदान—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऋतुमती स्त्री के साथ संतान की इच्छा से संभोग। गर्भाधान।

ऋतुपति—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वसंतऋतु। ऋतुराज। मौसम बहार। (२) आग।

ऋतुपरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आर्त्तव की परीक्षा। ऋतु के समय योनि का कण्डुयन, अंग की वेदना आदि लक्षण वैद्यको देख लेना चाहिए। कहा है—

"ऋतौ कण्डूयनं योनौ कचिदङ्गे च वेदना।
बाहुल्यं स्वल्पतावापि चानुबन्धित्वमस्य वा॥
संरोधः सर्व्वथावापि वेद्यान्येता नियत्नतः।
आमयेष्वखिलेष्वेव भिषग्भिर्योषितां सदा"॥

अत्रि०।

ऋतुप्राप्त—वि० [सं० त्रि०] फलनेवाला (वृक्ष)। फल देनेवाला (पेड़)।

ऋतुमती—वि० स्त्री० [सं० त्रि०] (१) (स्त्री) जिसका ऋतुकाल हो। जिस (स्त्री) के रजोदर्शन के

उपरांत के १६ दिन न बीतें हों और जो गर्भाधान के योग्य हो। (२) रजस्वला। मासिकधर्म युक्ता।

पर्य्या०—स्त्रीधर्म्मिणी, अवीं, आत्रेयी, मालिनी, पुष्पवती, उदक्या और रजस्वला (अ०)। हाइज़ः (अ०)। A menstruated woman.

लक्षण

वैद्यकोक्त लक्षण के अनुसार ऋतुमती का मुख किंचित् स्फीत एवं प्रसन्न रहता और मुख के मध्य तथा दंत में अधिक क्लेद जमता है। कुक्षिदेश, चक्षुर्द्वय और केशपाश शिथिल पड़ जाता है। बाहु, स्तन, नितंब, नाभि, उरु जघन और कटिदेश फड़कते हैं। यह संगमेच्छु, प्रियभाषिणी और हर्ष तथा औत्सुक्यशालिनी दिखाई देती है। (चरक)

महर्षि सुश्रुत ने कहा है—

दिन का अंत होने पर नियत समय पर जिस प्रकार कमल के फूलों की पंखड़ियाँ सिकुड़ जाती हैं उसी प्रकार ऋतु-काल के उपरांत स्त्री की योनि सिकुड़ जाती है। आर्त्तव एक मास तक एकत्रित होता रहता है। इसके उपरांत विदग्ध ईषत् कृष्ण वर्णका होकर आर्त्तव वायु तथा धमनी के सहारे योनिमुख पर आ पहुँचता है। स्त्री का ऋतु १२ वर्ष से प्रारम्भ होकर शरीर जरा जीर्ण होते ५० वर्षकी अवस्था तक जारी रहता है। सु० शा० २–३ अ०।

भावप्रकाश का मत भी प्रायः ऐसा ही है—

बारह वर्ष से लेकर पचास वर्ष पर्यन्त स्त्रियों के भगद्वार से स्वभावतः मास-मास आर्त्तव निकलता है। आर्त्तव निःसरण के प्रथम दिवस से षोड़श रात्रि पर्यंत ऋतु रहता और वही गर्भ ग्रहण के योग्य काल ठहरता है। (भा० पू० ख० १ म० भ०)।

हारीत में लिखा है—

"रजः सप्त दिनं यावत् ऋतुश्चभिषजांवरः।"

अर्थात् हे भिषक् श्रेष्ठ सप्ताह पर्यन्त जब तक रज रहता है, उसी को लोग ऋतु कहते हैं।

वाग्भट्ट लिखते हैं—

"ऋतुस्तु द्वादशनिशाः पूर्वास्तिस्रश्च निंदिताः।"

(शा० १ अ०)

अर्थात् प्रथम दिवस से द्वादश रात्रि पर्यन्त ऋतु-काल रहता है। इसके प्रथम तीन दिन निन्दित हैं।

भगवान् मनु का मत है—

"ऋतुः स्वभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोड़शस्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्ध महोभिः सद्विगर्हितैः॥"

(मनु ३। ४६)

संहिताकार दो प्रकार की ऋतु बतलाते हैं—प्रकाशित और अप्रकाशित। साधारणतः द्वादश वर्ष से रजोदर्शन होने पर प्रकाशित और द्वादश वर्ष के उपरांत रज न निकलने से अप्रकाशित वा अन्तः पुष्प कहलाता है। यथा—

"वर्षाद्द्वादशकादूर्ध्वं यदि पुष्पं वहिर्न हि।
अन्तः पुष्पं भवत्येव पनसौडुम्बरादिवत्॥"

(कश्यप)

बारह वर्ष के उपरांत भी प्रकाशित न होने से पुष्प को पनस उडुम्बरादि की भाँति अन्तः पुष्प कहते हैं।

धर्मशास्त्र और आयुर्वेद के अनुसार रजोदर्शन के उपरांत तीन दिन तक स्त्री को ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना चाहिये, पति का मुख न देखना चाहिये, चटाई इत्यादि पर सोना चाहिये, हाथ पर अथवा कटोरे वा दोने में खाना चाहिये, आँसू न गिराना चाहिये, नाखून न कटाना चाहिये, तेल, उबटन और काजल न लगाना चाहिये, दिन को सोना न चाहिये, बहुत भारी शब्द न सुनना चाहिये, हँसना और बहुत बोलना भी न चाहिये। चौथे दिन स्नान करके सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करे और पति का मुख देखकर सब व्यवहार करे। वि० दे० "गर्भाधान"।

ऋतुराज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऋतुओं का राजा वसंत। रा० नि० व० २१।

ऋतुलिङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ऋतु के चिन्ह। मौसम के आसार। (२) ऋतुमती होने का लक्षण। स्त्री को महीना होने के आसार।

ऋतुवती-वि० [सं० त्रि०] दे० "ऋतुमती"।

ऋतुविपर्य्यय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऋतु के क्रम का भङ्ग। मौसम का बिगाड़। ऋतु की विपरीतता। ऋतु का ठीक न होना अर्थात् गरमी में गरमी, सर्दी में सर्दी और वर्षाकाल में वर्षा, ठीक तरह न होना। ऋतु वैषम्य।

नोट—जब ऋतुएँ ठीक होती है, तब अन्न, शाक प्रभृति औषधियाँ और जल ठीक रहते हैं। ऐसे अन्न जलके सेवन करने से मनुष्यों की आयु और उनका बल, पराक्रम प्रभृति ठीक रहते हैं। किंतु यदि हेमन्त ऋतु में सर्दी नहीं पड़ती, ग्रीष्म में गरमी नहीं पड़ती, वर्षा में पानी नहीं बरसता, तब अन्न, जल आदि बिगड़ जाते हैं। प्राणी उन्हीं को खाते-पीते हैं, इससे उनको अनेक रोग होते हैं अथवा महामारी (प्लेग), हैज़ा प्रभृति से मृत्युकारक समय उपस्थित होजाता है। यह बात धन्वन्तरि भगवान ने सुश्रुत से कही है। आजकल ऋतुएँ ठीक नहीं होतीं। इसीसे इस देश में प्लेग और हैज़ा-प्रभृति प्राणनाशक रोग ऊधम मचाये रहते हैं।

ऋतुवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] वत्सर। वर्ष। त्रि०।

ऋतु वैषम्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऋतुचर्या के विपरीताचरण। ऋतु के विरुद्ध कार्य। यथा—"क्रोधर्तु वैषम्यशिरोभितापैः।" भा० म० ४ भ०।

ऋतुशूल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऋतुकाल पर रजोरोध से उत्पन्न शूलरोग। महीने पर हैज़ बन्द होने से पैदा हुआ दर्द। पुष्प के वातादि से मारे जाने पर यह शूल उठता है। इसमें शोणित पिच्छल, घन (गाढ़ा) एवं स्निग्ध होता है। योनि और नाभि में दारुण वेदना होती है।

"पुष्पस्य वातादिभिर्हतत्वं तस्यकारणम्।
बहुलं पिच्छिलं स्निग्धं घनं स्रवति शोणितं॥
योनौ नाभौ तु शूलानि ऋतौपरमदारुणम।"
(रस० र० यो० व्या० चि०)

ऋतुषट्क-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हिम, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, शरद्, प्राविट्-इन ६ ऋतुओं का समाहार। "चयकोपसमा यस्मिन् दोषाणां सम्भवन्ति हि। ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवेराशिषु संक्रमात्॥" भा०।

ऋतुसन्धि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] दोनों ऋतुओं के आदि के और अंत के सात दिनों को 'ऋतु-सन्धि' कहते हैं। अर्थात् पहिली ऋतुका पिछला सप्ताह और आनेवाली ऋतु का पहिला सप्ताह ये दोनों सप्ताह 'ऋतु-सन्धि' कहलाते हैं। कहा है—"ऋत्वो रेत्यादि सप्ताहावृतु संधिरिति स्मृतः।" वा० उ० ३ अ०।

इस 'ऋतु-सन्धि' के चौदह दिनों में, आगे आनेवाली ऋतु की विधि सेवन करनी चाहिए। उदाहरणतः गरमी की ऋतु के अंत के सात दिनों को वर्षा-ऋतु समझकर, वर्षा-ऋतु में लिखे हुए आहार-विहार सेवन करने अथवा त्यागने चाहिए।

ऋतुसमय-दे० "ऋतुकाल"।

ऋतु सम्मिता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुनि खर्जूरिका। उत्तम पिण्ड खजूर। वै० निघ०।

ऋतुसात्म्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऋतु के अनुकूल भोजनादि।

ऋतुस्नाता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रजोदर्शन के चौथे दिन शुद्धि के लिए स्नान करनेवाली स्त्री।

"पूर्वं पश्येदृतुस्नाता या दृशं नर मङ्गना।
तादृशं जनयेत् पुत्रं ततः पश्येत्पतिंप्रियं॥"
(सु० शा० ८ अ०)

अर्थात्—ऋतु स्नाता स्त्री पहले जैसा पुरुष देखती है, वैसा ही पुत्र उत्पन्न करती है।

ऋतुसेव्य-वि० [सं० त्रि०] ऋतु के भेदानुसार व्यवहार करने योग्य। जो मौसम के मुआफ़िक़ काम में लाने लायक़ हो।

ऋतुस्नान-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० स्त्री० ऋतु स्नाता] रजोदर्शन के चौथे दिन का स्त्रियों का स्नान। रजस्वला का चौथे दिन का स्नान। ऋतु-कालीन चतुर्थ दिवस का स्नान।

नोट—रजोदर्शन के उपरांत तीन दिन तक स्त्री अपवित्र रहती है। चौथे दिन जब वह स्नान करती है, तब कुटुम्ब के लोगों और घर की सब खाने-पीने की वस्तुओं को छूने पाती है। स्नान के पीछे स्त्री को पति वा उसके अभाव में सूर्य्य का दर्शन करना चाहिये।

ऋतुहरीतकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऋतु के भेद से द्रव्य विशेष के साथ मिश्रित हरीतकी।

हरीतकी सेवन करने की ऋतुएँ–हड़ को ग्रीष्म (जेठ, असाढ़) में समान भाग गुड़ के साथ, वर्षा ऋतु (सावन, भादों) में सेंधानमक के साथ, शरद् ऋतु (क्वार, कातिक) में मिस्री के साथ, हेमन्त ऋतु (अगहन,पौष)में सोंठके चूर्णके साथ, शिशिर ऋतु (माघ, फाल्गुन) में पीपल के चूर्ण के साथ और वसन्त ऋतु (चैत, वैसाख) में शहद के साथ, इस प्रकार रीत्यनुसार हरीतकी सेवन करने से समस्त रोग नष्ट होते हैं। च० प०। भा० ।

ऋते–अव्यय [सं०] (१) पृथक्-पृथक्। अलग अलग। (२) बिना।

ऋतोक्ति–वि० [सं० त्रि०] सत्यभाषण। रास्तगोई।

ऋतोद्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सत्यवाक्य । सच बात।

ऋत्वन्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऋतु की समाप्ति। महीने का आख़ीर।

ऋत्विक्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पुरोहित। वेद के मन्त्रों से यज्ञ में कर्म-काण्ड करानेवाला।

पर्याय—याजक। भरत । कुरु। वागयत। वृत्तवर्ही। यतश्रुक। मरुत्। सबाध। देवयव।

ऋत्विय–वि० [सं० त्रि०] (१)ऋतु कालोपस्थित। मौसम पर पहुँचा हुआ। (२)ऋतु कालोत्पन्न। मौसम में पैदा हुआ। (३) ऋतुकाल का कर्त्तव्य। जो मौसम में किये जाने के क़ाबिल हो। (४) ऋतु-काल । औरत के महीने का वक़्त। (५) नियमित। पाबन्द।

ऋत्वियावत्–वि० [सं० त्रि०] (१)पुत्रोत्पादन कर्म युक्त। जो लड़का पैदा करने में लगा हो। (२)व्यवस्थानुरूप । क़ानूनी।

ऋदूदर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोम।

वि० [सं० त्रि०] मृदु-उदर विशिष्ट। मुलायम पेटवाला। भला।

ऋदूपा–संज्ञा पुं० [वै०,सं० पुं०] (१) मर्म वेधी। (२) अर्दनपाती / (३) गमनपाती । (४) गमन वेधी। (५) दूर भेदी।

ऋदूवृध–दे० "ऋदूपा"।

ऋद्ध–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भली प्रकार पका हुआ धान। अम०। (२) पेड़ से मलकर वा दायँकर अलग किया हुआ पका धान। संपन्नधान। पक्वमर्द्दित धान्य। (३) निर्बुषीकृत धान्य। भूसी साफ़ किया हुआ अनाज।

वि० [सं० त्रि०] संपन्न। वृद्धिप्राप्त। समृद्ध।

ऋद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक ओषधि वा लता जिसका कंद दवा के काम में आता है। यह कंद कपास की गाँठ के समान और बाँईं ओर को कुछ घूमा हुआ होता है तथा इसके ऊपर सफ़ेद रोंईं होती है। यह जीवनीयगणोक्त अष्टवर्ग का एक उपादान है। यह गौड़ तथा कोशयामलमें प्रसिद्ध है। कहा है—

"ऋद्धिर्वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः कोशयामले।
श्वेतरोमान्वितः कन्दो लताजातः सरन्ध्रकः॥
तूलग्रंथि समाऋद्धि र्वामावर्त्तफला च सा।
वृद्धिस्तु दक्षिणावर्तफला प्रोक्ता महर्षिभिः॥"
(रा० नि० पर्पटादि ५ व०)

पर्य्या०—सुख, सिद्धि, रथांग, मंगल, वसु, ऋषिसृष्टा (श्रेष्ठा), युग, योग्य, लक्ष्मी, सर्वजनप्रिया (ध० नि० गुडू १ व०), सिद्धि, प्राणदा, जीवदात्री, सिद्धा, योग्या, चेतनीया, रथांगी, मंगल्या, लोककान्ता, यशस्या, जीवश्रेष्ठा (रा० नि० व० ५), आश्वासनी, तुष्टिराशी, चेतना, पयस्विनी (नि० शि०)।

गुण—ऋद्धि मधुर, शीतल है तथा क्षय, पित्त तथा वात को जीतती है और रक्तदोष एवं ज्वर का नाश करती तथा कफ और शुक्र को बढ़ाती है। (ध० नि० गुडू० व० १)

ऋद्धि और वृद्धि दोनों मधुर, सुस्निग्ध, तिक्त, शीतल रुचिकारक एवं मेधाजनक तथा कफ, कुष्ठ और क्रिमिनाशक हैं। यथा—

"ऋद्धिवृद्धिश्चमधुरा सुस्निग्धा तिक्तशीतला।
रुचिमेधाकरी श्लेष्मकुष्ठ कृमिहा परा॥

प्रयोगेष्वनयोरेकं यथा लाभं प्रयोजयेत् ।
यत्रद्वयानुसृष्टिः स्याद् द्वयमप्यत्र योजयेत् ॥"
(रा० नि० व० ५)

ये त्रिदोषनाशक, मूर्च्छानाशक तथा रक्त-पित्त नाशक हैं और गर्भ-वृद्धिप्रद है। (केय० दे०) ऋद्धिर्दानादिनिन्द्य है। (गण० नि०)

ऋद्धि बलकारक, त्रिदोषनाशक, शुक्रजनक, मधुर, भारी, ऐश्वर्यकारक तथा मूर्च्छा और रक्त-पित्त नाशक है। (भा० पू० १ भ०)

नोट—इसके अभावमें बाराहीकंद काममें लाना चाहिये। वि० दे० "वृद्धि"

(२) महाश्रावणी। गोरखमुण्डी। यथा - "पद्मकपुण्ड्रौवृद्धितुगर्द्ध्यः।" वा० सू० १५ अ० पद्मकादौ अरुणः।

ऋद्धिजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सर्पगन्धा। गन्ध रास्ना। नागदवना। प० मु०। भा० म० १ भ०। दे० "रास्ना"।

नोट—भावप्रकाश के अनुसार औषध में इसका कंद लेना चाहिये।

ऋद्धिवचा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दूर्वा। दूब।

ऋफ्—[सं० धातु] (१) हिंसा करना। (२) प्रशंसा करना। (३) दान करना। (४) निन्दा करना। (५) युद्ध करना।

ऋबीस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पृथ्वी। ज़मीन। (२) पृथिवीस्थ अग्नि। ज़मीन की आग। (३) संधि। दराज़।

ऋभु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मेधावी। आक़िल। (२) देवता। (३) यज्ञदेवता। (४) देवगण विशेष।

ऋभुक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इन्द्र। (२) वज्र। (३) स्वर्ग।

ऋभुक्षा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इन्द्र। (२) मरुत्। (३) ऋभु।

ऋभुक्षी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्र।

ऋम्व—वि० [सं० त्रि०] ऊरु से उत्पन्न। रान से निकला हुआ।

ऋम्वन्—वि० [सं० त्रि०] (१) आक्रामक। हमलावर। (२) अतिशय प्रदीप्त। दूर-दूर तक चमकनेवाला।

ऋम्फ—[सं० धातु] वध करना। मारडालना।

ऋल्लक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वादित्र विशेष। बाजा बजानेवाला।

ऋल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वादित्रविशेष। एक प्रकार का बाजा।

ऋश्—[सं० धातु] (१) गमन करना। चलना। (२) स्मरण करना। सोचना।

ऋश्यद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूप। गड्ढा। इसमें हिरन को फाँसकर पकड़ते हैं।

ऋश्यपद—वि० [सं० त्रि०] मृगचरण विशिष्ट। जिसके चरण में हिरण का सा पैर का चिह्न हो।

ऋश्य(ष्य)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृग। रुरुमृग। जैसे—"ऋष्यो नीलाण्डकी लोके स रुरु इति कीर्त्तितः"। भा० म० १ भ०।

गुण—इसका मांस कसेला, मधुर, वातनाशक पित्तनाशक, हृद्य, तीक्ष्ण और वस्तिशोधन हैं। सु० सू० ४६ अ०।

ऋश्यक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मृग सन्निकृष्ट देशादि। जिस देश में चित्रित मृग रहे। (२) हिंसा।

ऋषभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लहसुन की तरह की एक ओषधि वा जड़ी जो हिमालय पर होती है। दे० "ऋषभक"। (२) कर्णरन्ध्र। कान का पोल। (३) नक्र वा नाक नामक जल जंतु की पूँछ। कुम्भीरपुच्छ। मे०। सु० चि० १७ अ०। (४) बैल। वलीवर्द्द।

गुण—इसका मांस अत्यंत भारी, चिकना, कफ और पित्त का बढ़ानेवाला, वृंहण, वातनाशक, बलकारक और पीनस नामक रोग को नष्ट करनेवाला है। भा० पू० १ भ०।

(५) काकड़ासिंगी। शा० औ० श० सा०।

ऋषभक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लहसुन की तरह की एक ओषधि वा जड़ी जो हिमालय पर होती है। इसके विषय में भावमिश्र कहते हैं—

"जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखिरोद्भवौ ।

रसोनकन्द वत्कन्दौ निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ ॥
जीवकः कूर्चकाकारः ऋषभो वृषशृङ्गवत् ॥"

काश्मीर तथा गौड़ देश में यह ऋषभ नाम से प्रसिद्ध है। यह अष्टवर्ग का एक उपादान है।

पर्य्या०—ऋषभ, दुर्धर, धीर, मातृक, वृषभ, वृष, विषाणि, ककुद्, इंद्राक्ष, बन्धुर, गोपति (ध० नि० १ व०), ऋषभ, गोपति, धीर, वृषाणी, धूर्धर, वृष, ककुद्मान्, पुंगव, वोढा, शृङ्गी, धूर्य, भूपति, कामी, ऋक्षप्रिय, लाङ्गली, गो, बन्धुर, गोरक्ष, वनवासी (रा० नि० ५ व०), श्रीमान्, वृषाणी, ककुद, इन्द्राक्ष, मातृक (के० दे०), बद्धामय, पति (द्रव्य० र०), वृष, वृषभ, वीर (र०); पृथिवीपति (से०)।

गुण—ऋषभ स्वाद में मधुर वातपित्त तथा रक्त-दोष नाशक है और क्षय, दाह एवं ज्वर को नष्ट करता, कफ तथा वीर्य को बढ़ाता तथा दाह, रक्त-पित्त क्षय एवं वातज्वर का नाश करता है। (ध० नि० १ अ०)

ऋषभ मधुर तथा शीतल है एवं पित्त, रक्त तथा दस्त आने (विरेक) को निवारण करता है और कफ तथा शुक्रजनक एवं गर्भ संधानकारक है तथा दाह, क्षय और ज्वर का नाश करता है। (रा० नि० व० ५)

जीवक और ऋषभक बलकारक, शीतल, मधुर, कफकारक और शुक्रजनक-कामोद्दीपक हैं। इसके अभाव में विदारीमूल-विदारीकंद प्रयोग में लाना चाहिये। (भा० पू० १ भ०)

"ऋषभको वृषभकः।" सु० चि० ८ अ०।

ऋषभतर—संज्ञा पुं० [सं०पुं०] [स्त्री० ऋषभतरी] बोझा उठाने में थोड़ी शक्तिवाला बैल।

ऋषभकूट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हेमकूट पर्वत। एक पहाड़।

ऋषभा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ऋषभी"।

ऋषभागद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जटामांसी, हरेणु (बड़ा चना), त्रिफला, मुरङ्गी (लाल सहिंजन), रक्ता (लाल गुंजा की जड़, कोई-कोई मँजीठ लिखते हैं), मुलहठी, पद्माख, वायविडंग, तालिशपत्र, सुगंधिका (सर्पगन्धा), इलायची, दालचीनी, तेजपात, चंदन, भारंगी, पटोल, किणही (अपामार्ग), पाठा, मृगादनी (इंद्रायन की जड़), कर्कटी (देवदाली), पालिंदी (निसोथ), अशोक, सुपारी, तुलसी की मंजरी, भिलावें के फूल—इन्हें समानभाग लेकर अच्छी तरह चूर्णकर और इसमें शूकर, गोह, शेर, मोर, बिलाव, पृषत (रोहू मछली या काला हिरण) और न्यौला इनका 'पित्त' तथा 'शहद' मिलाकर सींगों(अर्थात्–सावरशृंग)में भर दें और १५ दिन रक्खी रहने दें। इसके बाद काम में लाएँ। यह ऋषभ नामक अगद सुन्दर रूप से संपादन किया हुआ जिस राजा के यहाँ घर में रहता है, वहाँ सर्प भी विष और शुक्रादि से रहित होजाते हैं, फिर अन्य कीट मूषकादिकी तो क्या सामर्थ्य है। इसको यदि भेरी और दुंदुभी आदि बाजों पर लेप करके उन्हें बजाएँ तो विष का शीघ्र नाश होजाता है। यदि इसे ध्वजा पर लेपकर स्थापन किया जाय तो उसे देखकर शीघ्र ही विष व्याप्त मनुष्यगण निर्विष होजाते हैं। सु० कल्प० ५ अ०।

ऋषभी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केवाँच। कपिकच्छु। (Corpopogon pruriens) र० मा०। (२) वह स्त्री जिसका रंग रूप पुरुष की तरह हो। (३) विधवा। मे० भत्रिकं।

ऋषा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागबला। गँगेरन। गुलसकरी। शा० औ० श० सा०।

ऋषि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आध्यात्मिक और भौतिक तत्वों का साक्षात्कार करनेवाला। (२) गोरोचना। वै० निघ०। (३) एक प्रकार की मछली। (४) दमनाभेद। दमन विशेष। साधु गन्धिक। साधु। साधुक। रा० नि० व० ३।

ऋषिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की लता। सियाढ़िलता। प० मु०।

ऋषिकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत के तीर्थयात्रा पर्व में है।

ऋषिजाङ्गल-
ऋषिजाङ्गलक-
ऋषि जाङ्गला- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
ऋषिजाङ्गलिका-
ऋषि जाङ्गलिकी-

ऋक्षगन्धा । सर्पगन्धा । रत्ना० ।

ऋषिपित्ता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पौधा जो चकरौता में मिलता है । इसकी पत्तियाँ कंगूरेदार होती हैं ।

गुण—यह पित्तसारक है ।

ऋषिपुत्रक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दमनक वृक्ष । दौने का पेड़ । वै० निघ० ।

ऋषि प्रोक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] माषपर्णी । वन उड़द । (Teramnus labiatus, *Spreng.*) प० मु० ।

ऋषि श्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पुंडरीक । पुंडरी । कमल । (२) ऋद्धि ।

ऋषिश्रेष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ऋद्धि । (२) वृद्धि । वै० निघ० ।

ऋषिसृष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऋद्धि । मद० व० १ ।

ऋषीक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काश तृण । काँस । कासा । मद० व० १ ।

ऋषु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनवरत गति । कभी बन्द न होनेवाली चाल ।

ऋष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दोनों ओर धारवाला खड्ग । तलवार । (२) शस्त्र । हथियार ।

ऋष्य-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का मृग जो काले रंग का होता है । नील हरिण ।

गुण—इसका मांस कफनाशक, पित्तनाशक, किंचिद् वातकारक, लघु और बलकारक है । भा० पू० १ भ० । (२) हरिन । (३) नीलगाय । गवय मृग । (४) सफ़ेद कोढ़ । श्वेत कुष्ट ।

ऋष्यक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृग विशेष ।

ऋष्यगता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) माषपर्णी । जंगली उड़द । (Teramnus labiatus, *Spreng.*) श० र० । (२) सतावर । शा० औ० श० सा० । (३) अतिबला ।

ऋष्यगन्धा-
ऋष्यगन्धिका- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(१) ऋषिजाङ्गला नामक पौधा । पर्य्या०—ऋक्षगन्धा, ऋषिजाङ्गलिकी, वृद्धदारकः । र० मा० । (२) अतिबला । ककही । (३) क्षीर विदारी । दूधविदारी । श० र० । (४) सफ़ेद शकरकंद । श्वेतशर्कर कन्द । (५) लाल शकरकन्द । रक्तशर्करकन्द । वै० निघ० ।

ऋष्यजिह्व (क)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का महाकुष्ठ । यह ऋष्य अर्थात् रुरु मृग की जिह्वा के समान खुरदरापन लिए होता है । जैसे—"ऋष्यजिह्वाप्रकाश खरत्वानि ऋष्यजिह्वानि ।" सु० नि० ५ अ० । मा० नि० । दे० "ऋक्षजिह्व" ।

ऋष्यपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अतिबला । कंघी । के० दे० नि० । नि० शि० ।

ऋष्य पुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अतिबला । ककही । (Abutilon indicum, *G. Don.*) वै० निघ० ।

ऋष्यप्रोक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) श्वेतवाट्यालक । सफ़ेद बरियारा । प० मु० । (२) सतावर । (३) महाशतावरी । बड़ी शतावर । (४) महाबला । सहदेवी । (५) केवाँच की बेल । भा० पू० १ भ० गु० व० । (६) पीत वाट्यालक । पीला बरियारा । रमा० । (७) माषपर्णी । जंगली उड़द । च० सू० ४ अ० । "ऋष्यप्रोक्ता शतावर्य्यतिबला शुकशिम्बिषु ।" मे० नचतुष्कं । (८) अतिबला । कंघी । ककही । के० दे० नि० । नि० शि० ।

ऋष्याह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नागबला । गंगेरन । (२) बला । बरियारा । वै० निघ० ।

ऋक्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० ऋक्षी] (१) भल्लूक । भालू । रा० नि० व० १९ ।

गुण—इसका मांस, चिकना, भारी, वृष्य, मीठा गरम और वात नाशक है । मद० व० १२ । (२) हरिन । हला० । (३) कड़ुई तरोई । कृतवेधन । (Luffa echinata. *Roxb.*) मे० षद्विक । (४) श्योणाक वृक्ष । सोनापाठा । अरलु । (Oroxylum indicum.) रा० नि० व० ६। (५) भिलावाँ। (६) गुहाशय के रहनेवाले। गुफा में रहनेवाले।

ऋक्षगन्धा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वृद्धदारक वृक्ष। विधारा। (२) ऋविजाङ्गला। र० मा०। च० सू० ४ अ० बृंहण। (३) श्वेतभूमि कुष्माण्ड। सफेद भुँई कुम्हड़ा। वै० निघ०। (४) क्षीर विदारी।

ऋक्षगन्धिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कृष्ण भूमिकुष्माण्ड। (२) वृद्धदारकलता। विधारा। वै० निघ०।

ऋक्ष(ष्य)जिह्व-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] महाकुष्ठ का एक भेद। वह पीड़ा युक्त कोढ़ जो किनारों पर लाल, बीच में पीलापन लिए काला, छूने में कड़ा और रीछ की जीभ के आकार का हो। ऋष्यजिह्व मा० नि०।

नोट—ऋक्षजिह्व=रीछ की जीभ। क्योंकि इस कोढ़ की आकृति रीछ की जीभ के जैसी होती है, इसी से इसे "ऋक्षजिह्व" कहते हैं।

ऋक्षप्रिय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऋषभक नाम का क्षुप। रा० नि० व० ५।

ऋक्षमुखयन्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सँड़सी की तरह का एक प्रकार का यंत्र। अत्रि०।

ऋक्षर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वारिधारा। मे०।

ऋक्षविट्-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] तैलपायी अर्थात् चाड़ा नामक कीड़े की विष्ठा। आर्शोलार नादि (बं०)। वै० निघ० २ भ० अर्श-चि० कृष्णाशिरीष लेप।

ऋक्षाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महामेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। रा० नि० व० ५।

ऋक्षेप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्र। चन्द्रमा। हे०।

(ए)

ए—संस्कृत वर्णमाला का ग्यारहवाँ और नागरी वर्णमाला का आठवाँ स्वर वर्ण। शिक्षामें यह संध्यक्षर माना गया है और इसका उच्चारण कंठ और तालु से होता है। यह 'अ' और 'इ' के योग से बना है; इसीलिये यह कंठतालव्य है। संस्कृत में मात्रानुसार इसके केवल दीर्घ और प्लुत दोही भेद हैं, पर हिंदी में इसका ह्रस्व वा एक मात्रिक उच्चारण भी सुना जाता है। पर इसके लिए कोई और संकेत नहीं माना गया है। मौक़े के अनुसार ह्रस्व पढ़ा जाता है। प्रत्येक के सानुनासिक और निरनुनासिक दो भेद होते हैं। उदात्त अनुदात्त और स्वरित भेद से यह तीन प्रकार का होता है।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विष्णु।

एइलन-[पं०] अयार (हिं०)। यज्ञछाल (नेपा०)।

एइलोरा-[सिं०] श्वेत मुसली। सफ़ेद मुसली। (Asparagus adscendens, *Roxb.*)

एएजिन-[चीन, मलाका०] गवेधुक (सं०)। गरगरीधान, संखालु. संखरु (हिं०)। (Coix-lacryma, *Linn.*) Job's tears. फा० इं० ३ भ०।

एएन्थकाय-[मल०] जंगली मदनमस्त का फूल। अरण्य मदनमस्त पुष्प। (Cycas circinalis, *Linn.*)

एएयिन- चीन०, मलाका] दे० "एएजिन"।

एक-वि० [सं० त्रि०] (१) एकाइयों में सबसे छोटी और पहली संख्या। एक की संख्या। वह संख्या जिससे जाति वा समूह में किसी अकेली वस्तु वा व्यक्ति का बोध हो। (२) अकेला।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) परमेश्वर। (२) विष्णु। (३) अग्नि। (४) सूर्य। (५) यम। (६) देवराज।

एक कन्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बनालु। पानीयालु। अनुपालु। प० मु०। दे० "बनआलू"।

एक (क्का)कली लसन- } संज्ञा पुं० एकँडिया
एकां (कां)ड लसुन- }
लहसुन। एक-पुतिया लहसुन । (Allium ascalonium) One-clove garlic.

एक-कुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] क्षुद्रकुष्ठ का एक भेद। इसमें शरीर काला और लाल पड़ जाता जाता है और यह असाध्य है। सु० नि० ५ अ०। जो कोढ़ पसीनों से रहित हो, बड़ा घेरदार और मछली के चमड़े (सेहरे) के समान हो तथा चक्राकार और अभ्रक के पत्रों के समान हो,—उसे 'एककुष्ठ' कहते हैं। मा० नि०।

कोई-कोई इसे चर्मदल भी कहते हैं।

एक कोष्ठि-वि० [सं० त्रि०] एक कोष्ठ चूर्णमय आधार पर अवस्थान करनेवाला। जो एक ही कोठे में रहता हो। शिरः पदी, कटल मत्स्य, अर्गोनट, बेलम, नाइट, अक्टोपस प्रभृति प्राणी एक कोष्ठी है।

एकगाछी-संज्ञा स्त्री० [सं० एक+बं० गाछ=पेड़] केवल एक ही वृक्ष द्वारा निर्मित नौका। जो नाव एक ही पेड़ से बनी हो।

एकचर-वि० [सं० त्रि०] अकेले चरनेवाला। झुण्ड में न रहनेवाला। एका। अकेले घूमनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जंतु वा पशु जो झुण्ड में नहीं रहते, अकेले चरते हैं। जैसे—सिंह, साँप। (२) गैंड़ा। गण्डक। त्रिका०।

एकचरण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक पद विशिष्ट मनुष्य। एक पैर का आदमी।

एचारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पतिव्रता स्त्री।

एकज-वि० [सं० त्रि०] अकेला उत्पन्न होनेवाला। जो दूसरे के साथ पैदा न हो।

एकजद्दी-वि० [फ़ा०] जो एक ही पूर्वज से उत्पन्न हुये हों। सपिंड वा सगोत्र।

एकजात-वि० [सं० त्रि०] सहोदर। एक ही मा बाप से उत्पन्न।

एक ज्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वर रोग विशेष। दे० "ज्वर"।

एकड़-संज्ञा पुं० [अं०=Acre] भूमि नापने का एक परिमाण। यह १ बीघा १२ बिस्वे का होता है।

एकडाल-वि० [सं० त्रि०] अभिन्न। एक जैसा।

[पुं०] अस्त्र विशेष। एक प्रकार का छूरा। वह छूरा जिसके फल और बेंट एक ही टुकड़े का बना हो।

एकतरा-संज्ञा पुं० [सं० एकोत्तर] एक दिन अंतर देकर आनेवाला ज्वर। अँतरा। एकाहिक।

एकताल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक मात्र ताल वृक्ष का पर्वत।

एकद-[तु०] एक प्रकार का मेवा। गुबैरा (अ०)। दे० "सिञ्जद्"।

एकदृक् (दृष्टि)-वि० [सं० त्रि०] काणा। काना। एकनेत्र। है० च०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौवा। काक। हला०।

एकदेशीय-वि० [सं० त्रि०] एक देश का। एक ही स्थान से सम्बन्ध रखनेवाला। जो सर्व-देशी वा बहु-देशीय न हो।

एकदेह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गोत्र। वंश। (२) दंपती।

एकदंता-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक दन्त विशिष्ट हस्ति। एक दाँत का हाथी।

वि० [सं० एकदंष्ट्र] एक दाँतवाला।

एकनयन-वि० [सं० त्रि०] काना। एकाक्ष।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौवा। काक।

एकनक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक तारा विशिष्ट नक्षत्र। आर्द्रा, चित्रा और स्वाति नक्षत्र एक तारामय हैं। (२) अमावस्या। (३) एक नक्षत्र।

एकनेत्र-दे० "एकदृक्"।

एकपल (क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का चण्डालकन्द। रा० नि० व० ७। (२) श्वेत तुलसी। सफ़ेद तुलसी। र० मा०।

एकपत्रा,-एकपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सुगंधशठी। गंधपलाशी। गंध पलाश। कपूर कचरी। रा० नि० व० ६। (२) सफ़ेद तुलसी का पौधा।

एकपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागवल्लीलता। पान। (Piper betle, *Linn.*) वै० निघ०।

एकपत्रोत्पत्तिक–वि० [सं० त्रि०] अंकुर के समय एक ही पत्र निकलने वाला। जो कोंपल फूटते समय सिर्फ एक ही पत्ती देता है। एक दलीय।

एकपदी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पद विशिष्टा। एक पैरवाली।

एकपर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जो एक ही पत्ती खाकर जीवन व्यतीत करे। पार्वती। दुर्गा।

एकपर्णिका, एकपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पार्वती। इन्होंने तपस्या काल में केवल एक पत्र खाकर जीवन धारण किया था। (२) वह बूटी जिसमें एक ही पत्ती हो।

एकपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नागदन्ती। (२) रास्ना। के० दे० नि०।

एकपलाश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक मात्र पत्र विशिष्ट वृक्ष विशेष। एक ही पत्ते का पेड़।

एक पक्षका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Unipenate muscle) पेशी विशेष।

एकपाटला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जो एक ही पुष्प का आहार कर जीवन धारण करे। पार्वती की भगिनी। हिमालय की कन्या।

एकपादिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पद के अवलम्बन से पक्षियों का एक अवस्थान।

एकपादुक–वि० [सं० त्रि०] एक पाद। एक पैरवाला।

एकपिण्ड–वि० [सं० त्रि०] सपिण्ड। एक ही वंश में उत्पन्न।

एकपुत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक ही पुत्र रखनेवाला। जिस आदमी के एक ही बेटा रहे।

एकपुत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] कौडिल्ला पक्षी।

एकपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्ष विशेष। इसमें एक ही पुष्प आता है।

एकपोटिया लहसुन–संज्ञा पुं० [हिं० एक+पोटिया+लहसुन] वह लहसुन जिसमें एक ही अपेक्षाकृत बड़ा जावा हो। (Allium ascalonium) वि० दे० "लहसुन"।

एकपोट्या लसन–संज्ञा पुं० दे० "एक पोटिया लहसुन"।

एक प्रस्थ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] परिमाण विशेष। एक तौल। यह ३२ पल या २ सेरका होता है।

एकप्राण योग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक श्वास का संयोग। एक ही साँस का मेल।

एक फ़र्दा–वि० [फ़ा०] जिस (खेत वा ज़मीन) में वर्ष में केवल एक ही फ़सल उपजे। एक-फ़सला।

एकफला(ली)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ओषधि विशेष।

एक-फ़सला-वि० दे० "एकफ़र्दा"।

एकभक्तव्रत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] (१) आधा दिन बीत जाने पर खाने और रात को कुछ भी भोजन न करने का व्रत वा नियम। रात दिन में केवल एक ही बार भोजन करने का नियम। (२) वह व्यक्ति जो नियमानुसार आधा दिन बीत जाने पर खाता है और रात्रि में कुछ भी भोजन नहीं करता। स्कन्द० पु०।

एक भङ्गीनय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] न्याय विशेष। एक दलील। एक रूप अनेक विषयों के मध्य किसी स्थल में एक की प्रवृत्ति पड़नेपर इस न्याय बल से वैसे ही अन्य विषयों की प्रवृत्ति लगाई जा सकती है।

एकभुक्त-वि० [सं० त्रि०] जो रात दिन में केवल एक बार भोजन करे।

एक भोजन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) केवल एक बार का आहार। (२) एक साथ का भोजन।

एकमुख (खी)–वि० [सं० त्रि०] एक मुँह वाला। एक फाँक वाला (रुद्राक्ष)।

एक मुँहा–वि० [हिं० एक+मुँह+आ (प्रत्यय)] एक मुँह वाला साँप।

एक मूर्ति रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुद्ध संखिया १ भाग लेकर ८ भाग स्वर्णमाक्षिक के चूर्ण के बीच में किसी प्याले के अन्दर रखकर अच्छी तरह कपड़मिट्टी करके एक प्रहर की आग दें। जब स्वांग शीतल होजाय, माक्षिक सहित निकाल कर बारीक चूर्ण कर रखलें।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे १ चना भर मिश्री के साथ देने से शीतज्वर का नाश होता है। इससे तीव्र वमन होकर ही ज्वर की शांति होती है।

नोट—इसमें संखिया अधिक मात्रा में है। वमन होनेसे विष का प्रभाव तो नष्ट हो जाता है; पर यदि वमन न हो, तो मयन आधा तोला घिसकर पिलाएँ, इससे वमन होकर विष का प्रभाव जाता रहेगा। फिर भी इसे योग्यतापूर्वक सावधानी से उपयोग में लानी चाहिये।

उक्त योग के मूल पाठ में यद्यपि संखिया और स्वर्णमाक्षिक का मान निर्दिष्ट नहीं है, और यह भी नहीं दिया है कि किस प्रकार इसे विपाचित करना चाहिये। तथापि इसमें युक्तिपूर्वक मान का आदेश कर दिया गया है और कुक्कुट पुट से इसका भस्मीकरण करना उचित है।

एक मूर्धा–दे० "एकमुख"।

एकमूल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पुण्डरीक वृक्ष। पुंडरी का पौधा। सफ़ेद कमल का पेड़।

एकमूला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शालपर्णी। सरिवन। (२) अलसी। अतसी। संग्रहः।

एकयोनि–वि० [सं० त्रि०] (१) एक जाति। हम क़ौम। (२) एक ही स्थान में उत्पन्न।

एकर-[तु०] बच।

एकरज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भँगरा। भृङ्गराज। (Eclipta Prostata) जटा०।

एकरदन–दे० "एकदन्त"।

एकरन्ध्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नदीवट। वै० निघ०।

एकरात्रिक-वि० [सं० त्रि०] जो एक रात के लिए पर्याप्त हो।

एकल–वि० [सं० त्रि०] एकाकी। अकेला।

एकलकण्टो–[गु०] (१) एकबीर वृक्ष। (२) सतावर।

एकलबेर-का-दंडा–[पं०] गीदड़ तम्बाकू।

एकला-कली-लसन–संज्ञा पुं० दे० "एकांडलहसुन"।

एकलिङ्गभाक्–वि० [सं० त्रि०] एक जातीय केशर विशिष्ट पुष्पयुक्त।

एकलेखा–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का फूल या उसका पौधा।

एकवक्त्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक मुखी रूद्राक्ष।

एकवर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करताल नामक एक प्रकार का बाजा।

पर्य्या०—करताली, कङ्कमाला, कलङ्कषा। शब्द० र०।

एकवार्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक साल की बछिया।

एकवर्षीया–वि० [सं० स्त्री०] एक वर्ष की। एक साल की।

एकवाँज–संज्ञा स्त्री० [सं० एक+वन्ध्या] वह स्त्री जिसे एक बच्चे के पीछे और दूसरा बच्चा न हुआ हो। काक वन्ध्या।

एकवाद्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] डिण्डिम नाम का बाजा। शब्दर०।

एकवासा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नारी। वनिता। रा० नि० व० ६।

एकविषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] निसोत। त्रिवृत्।

एकविंशति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इक्कीस। बीस और एक की संख्या वा अंक।

एकविंशतिगुग्गुलु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्टरोग नाशक उक्त नाम का एक योग—चीता, त्रिकुटा, जीरा, कलौंजी, वच, सेंधानमक, अतीस, कूट, चव्य, इलायची, जवाखार, वायविडंग, अजमोद, मोथा, देवदारु–सब समान भाग। गूगल सबके बराबर। सब चीज़ों का चूर्ण करके घी के साथ अच्छी तरह कूटकर गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इन्हें प्रातःकाल या भोजन के समय बलानुसार उचित मात्रा में सेवन करने से १८ प्रकार के कुष्ट, कृमि रोग, दाद, घाव, संग्रहणी, बवासीर, मुखरोग, गलग्रह, गृध्रसी, भग्न और गुल्म तथा कोष्ठगत व्याधियों का शीघ्र नाश होता है। वृ० नि० र० त्वग् दो० चि०।

एकविंशतिक गुग्गुलु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चित्रकमूल, त्रिफला, त्रिकुटा, दोनों जीरा, वच, सेंधानमक, अतीस, कूट, चव्य, छोटी इलायची, जवाखार, वायविडंग, अजमोद, मोथा तथा देवदारु इन्हें समान भाग लेकर यथाविधि बारीक चूर्ण करें।

पुनः इस चूर्ण के समानभाग शुद्ध गुग्गुल डालें। तदनन्तर थोड़ा घृत डालकर अच्छी तरह कूटकर ४·४ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके सेवन से १८ प्रकार के कुष्ठ, कृमि, दुष्ट व्रण, संग्रहणी, अर्श, मुखरोग, गलग्रह, गृध्रसी, भग्न, गुल्म तथा कोष्टगत विविध विकार नष्ट होते हैं। चक्रद० कुष्ठ चि०।

एकवीर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक सामान्य ऊँचाई का वृक्ष, जिसकी डालियोंमें मोटे, तेज़ तथा लम्बे कुछ-कुछ दूर पर नोकदार काँटे होते हैं। इसकी पत्ती पाकरकी सी होती है। फल छोटे-छोटे बेरकी शकल के होते हैं। यह झुमकोंमें लगते हैं। इसमें कुछ हरे रंग के फूल लगते हैं। इसके वृक्ष हिमालय में झेलम के पूरब की ओर और उड़ीसा तथा बंगाल में होते हैं। गुंडु विकेक।

संस्कृत पर्याय—महावीर। सकृद्वीर। सुवीरक। एकादिवीर। वीर।

गुण-प्रयोग—कटुक, तोद तथा वातनाशक एवं गरम है और गृध्रसी, कटिशूल तथा चोट आदि को अच्छा करता है। रा० नि० व० ८।

एकवीर गरम, चरपरा, तोद-वातनाशक तथा गृध्रसी, कमर तथा पीठ आदि का दर्द और पक्षाघात का नाश करता है। (ध० नि०)

इसकी छाल पानी में भिगोने से बहुत सा लुआब निकलता है। इसके सेवन से वीर्य सांद्र होता है। इसके उपयोग से कीड़े मरते हैं। बेलगिरी के साथ इसके चूर्ण को फंकी देने से दस्त बन्द होते हैं। (ख० अ०)

एकवीरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बन्ध्याकर्कोटकी। बाँझ ककोली। बाँझ ककोड़ा।

गुण—तिक्त, अत्यंत गरम, वायुनाशक है और पक्षाघात तथा पीठ और कमर के दर्द को दूर करती है। वै० निघ०।

एकवृन्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गले का एक रोग जिसमें कफ और रक्त के विकार से गले में गिल्टी वा सूजन हो जाती है और उसमें दाह और खुजली भी होती है तथा वह पकने पर भी कड़ी रहती है।

"वृत्तोन्नतो यः श्वयथुः सदाहः।
कण्ड्न्वितोऽपाक्य मृदुर्गुरुश्च॥
नाम्नैकवृन्दःपरि कल्पितोऽसौ।
व्याधिर्बलास क्षतज प्रसूतः॥"

सु० नि० १६ अ०। मा० नि०।

एकवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गले का रोग। वै० निघ०। (२) वह स्थान जहाँ एक ही वृक्ष हो। (३) एक मात्र वृक्ष। अकेला पेड़।

एकशफ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वह पशु जिसके खुर फटे न हों, जैसे-घोड़ा, गदहा। भावप्रकाशमें गदहे, घोड़े, खच्चर, गौर (   ), शरभ और चमड़ी अर्थात् सुरागाय इत्यादि को एक खुरवाले पशुओं में लिखा है। (२) घोड़ा। त्रिका०।

एकशफक्षीर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक खुरवाले पशुओं का दूध।

गुण—एक शफ जानवरों का दूध गरम, हलका, हाथ और पाँव की वायु को नष्ट करनेवाला, खट्टापन लिये कुछ कुछ नमकीन और जड़ताकारक होता है। वा० टी० हेमा०। चरक में इसे बलकारक लिखा है।

एकशफाघृत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एकशफ पशु घोड़ी प्रभृति का घी। गुण—दीपन और मलमूत्र का वर्द्धक है। रा० नि० व० ६।

एकशफापय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक ही खुर रखनेवाले पशु का दूध। गुण—उष्ण, बलकारक, शाखावात-नाशक, मधुर, अम्ल रस युक्त, रस में नमकीन हलका और रूक्ष है। रा० नि० व० ६।

एक शरीर-वि० [सं० त्रि०] एक मात्र शरीर वा रक्त से सम्बन्ध रखनेवाला।

एक शरीरान्वय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सगोत्रता। सपिण्डता।

एकशरीरारम्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] माता और पिता के संभोग से सगोत्रता का प्रारम्भ। माँ बाप के मेल से क़राबत का शुरू।

एकशरीरावयव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सगोत्र। सम्बन्धी। क़राबती। रिश्तेदार।

एकशरीरावयवत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सगोत्र सम्बन्ध । क़राबती रिश्ता ।

एकशाख–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक शाखा विशिष्ट वृक्षादि । एक डाल का पेड़ इत्यादि ।

एकशिखा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाठा । (Cissampelos pareira, *Linn.*) प० मु० ।

एकशितिपाद्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक पैर सफ़ेद वाला घोड़ा । वह घोड़ा जिसका एक पैर सफेद हो ।

एकशुक्त–वि० [सं० त्रि०] एकमात्र कोष युक्त । एक खोलवाला ।

एकशृंग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गण्डक । गैंड़ा । वै० निघ० ।

एकश्रुत–वि० [सं० त्रि०] एकबार श्रवण किया हुआ । जो एकही बार·मरतबा सुना गया हो ।

एकश्रुति–वि० [सं० त्रि०] (१) उदात्त, अनुदात्त और स्वरित–त्रिविध स्वर मिश्रित । जो ऊँची नीची और बराबर की आवाज़ में हो ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक कर्ण विशिष्ट । जिसके एकही कान हो ।

एकष्ठीला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाठा । (Cissampelos pareira, *Linn.*) रा० नि० ।

एकसत्तावाद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वादविशेष । एक दलील । इसमें सत्ता ही मुख्य मानी गई है, असत् कुछ भी नहीं ।

एकसूतेश्वर रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सन्निपात में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग । यथा—

शुद्धपारा १ भाग, अभ्रक, गंधक, मैनशिल, लोह, नाग, ताम्र, स्वर्णमाक्षिक और बंग प्रत्येक $\frac{1}{4}$ भाग । इन सबकी यथासम्भव भस्म ही लेनी चाहिये । सबको एकत्रित करके भाँग केरस की ३ भावना दें । फिर इसमें काले धतूरे के रस की ३ भावना दें । पुनः टिकिया बनाकर शुष्क करके मिट्टी के दृढ़ मूषा में बन्द करके कपड़मिट्टी चढ़ाकर सुखालें, और इसे लघुपुट की आँच दें । स्वांग शीतल होने पर उसमें पारे के बराबर शुद्ध बच्छनाग मिलाकर मछेछी और त्रिकुटे के क्वाथ की सात भावना दें । फिर मछेछी और त्रिकुटा इन्हीं से धूपित करके पहले के बराबर और बच्छनाग मिलाएँ । इस प्रकार इस रस की सिद्धि होती है ।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसको एक रत्तीकी मात्रामें अदरखके रससे मिस्री मिलाकर देनेसे अथवा अन्य किसी उचित अनुपान के साथ देने से यह शीतज्वर, ५ प्रकार की खाँसी, विषमज्वर, और दूसरे असाध्य रोगों को भी तत्काल नष्ट करता है । र० प्र० सन्निपाते । रस० यो० सा० ।

एकसूनु–वि० [सं० त्रि०] एक पुत्रवाला । जिसके एक ही लड़का हो ।

एकसूत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] डमरू बाजा । शब्दर० ।

एकसेलयुक्त–वि० [सं० त्रि०] (Unicellular) एक सेलवाला । वह (जीव) जिसका शरीर केवल एक कोष वा घटक से निर्मित हो ।

एकस्तनी–वि० [सं० त्रि०] एक थनवाली । एक स्तनवाली ।

एकहस्ती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्व की शोभन वल्गा का एक भेद । घोड़े की लगाम ।

एकहायन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वत्सर का वत्स । एक साल का बछड़ा ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक वत्सर का समय । एक साल का अरसा ।

वि० [सं० त्रि०] एक वत्सरवाला । एक साला ।

एकहायनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक वर्षीया गो । एकसाल की बछिया । अम० । (२) उद्भिदविशेष । एक पेड़ । जो पेड़ एक ही वर्ष में उपज और फल·फूलकर झड़ या सूख जाता है ।

एकक्षीर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक ही धात्री का दुग्ध ।

एकांतिक–वि० [सं० त्रि०] एक देशीय ।

एका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] माकन्दी । माग्रमूल । रा० नि० ।

एका आयोडोफॉर्म–[अं० Eka Iodoform] आयोडोफॉर्म और फॉर्म एलिडहाइड का एक यौगिक। दे० "आयोडोफॉर्म"।

एकाइटिस केर्योफाइलेटा–[अं० Echites carryophyllata] मालती।

एकाइटिस, क्लोव लीव्ड–[अं० Echites, clove leaved] मालती।

एकाइटिस टू-स्टेम्ड–[अं० Echites two-stemmed] हापरमाली।

एकाइटिस डाइकोटोमा–[ले० Echites dichotoma, *Roxb.*] हापरमाली।

एकाइटिस फ्रूटीसेन्स–[ले० Echites frutescens, *Roxb.*] श्यामालता।

एकाइटिस मैक्रोफाइला–[ले० Echites macrophylla, *Roxb.*] हड़की।

एकाइटिस लॉँग-लीव्ड–[अं० Echites, long-leaved] हड़की।

एकाइटिस श्रबी–[अं० Echites shrubby] श्यामालता।

एकाइटिस स्कॉलरिस–[अं० Echites scholaris] सप्तपर्ण। सतिवन।

एकाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+आई (प्रत्य०)] वह मात्रा जिसके गुणन विभाग से और दूसरी मात्राओं का मान ठहराया जाता है। इकाई। Unit

एकाग्रदृष्टि–वि० [सं० त्रि०] एक मात्र विषय पर दृष्टि डालनेवाला। एक लक्ष्य पर दृष्टि रखनेवाला।

एकाघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बाण विशेष। एक प्रकार की तीर।

एकाङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चन्दन। संदल। हारा० । (२) एक अंग। अकेला अङ्ग जो। (३) मस्तक।

वि० [सं० त्रि०] एक अंग का। जिसे एक अंग हो।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बुध ग्रह।

एकाङ्गवात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पक्षाघात। आधे अङ्ग का लकवा। पक्षवध। एकांग रोग। (Hemiplegia) मा नि०।

लक्षणादि—दूषित वायु देह के अधोभाग को ग्रहण करके उस भाग की सम्पूर्ण शिरा और स्नायुओं को विशोषित करके तथा सन्धियों के बन्धनों को शिथिल करके वाम अथवा दक्षिण पसवाड़े को मार देता है। रोगीकी आधी देह निष्काम और चेतना रहित हो जाती है। वा० नि० १२ अ०।

शरीरके किसी एक भागमें सूई चुभनेके समान पीड़ा होना, प्रतिदिन शरीर का दुबला होना, अंग का फड़कना और वह स्थान स्पर्श करने से शीतल मालूम होना ये 'एकाङ्गवात'के लक्षण हैं। रसरत्न स०।

(२) घोड़े का एक प्रकार का वात रोग।

एकाङ्गवातघ्न रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एकाङ्गवातमें प्रयुक्त रसौषध। यथा–शुद्ध बच्छनाग १भा०, शुद्ध पारा ४ भा० और शुद्ध गंधक १६ भा०। इनको लेकर कज्जली करके चित्रक के रसके साथ दो-तीन दिन तक खरल करें।

मात्रा—२ रत्ती।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे मिर्च, सेंधानमक और चित्रक के योग से देने से दन्तभञ्जन रोगको प्रभञ्जन करता है। योगराज गुग्गुलु अथवा हड़, मधु और पीपल के चूर्ण के साथ देने से एकाङ्गवात में लाभ होता है। वातारियोग तथा वातारितैल से मर्दन करने से और इस रस को खाते रहनेसे एकाङ्गवातका नाश होता है। रास्नादि क्वाथ से यह सम्पूर्ण वातव्याधियों को नष्ट करता है। इसके अनेक अनुपान हैं। रस० यो० सा०।

एकाङ्गवीर रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुद्ध गंधक, चन्द्रोदय, कान्तलोहभस्म, बंगभस्म, नागभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म और फौलाद लोहभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, प्रत्येक समान भाग–इनका चूर्ण कर कपड़ छानकरें। पुनः इस चूर्ण में त्रिफला, त्रिकुटा, निगुंण्डी, चित्रक, भाँगरा, सहिंजन, कुचिला, अकरकरा और अदरख के रस की पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना देने से यह तैयार होता है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती।

गुण—इसके सेवन से अर्दित, धनुर्वात, अर्द्धाङ्गवात, गृध्रसी, विश्वाची और अपबाहुक इत्यादि सम्पूर्ण वातजन्य रोगों का नाश होता है। वृहत् रस० रा० सु०।

एकाङ्गस्वेद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का स्वेद।

एकाङ्गी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रसिद्ध गंधद्रव्य जिसे "मुरा" वा 'मुरामांसी' भी कहते हैं। यह कड़वी, शीतल और स्वादिष्ट होती है और पित्त, वात, ज्वर, रुधिरदोष आदि को नष्ट करती है। भा० पू० १ भ०। रा० नि० व० १२। दे० "मुरामांसी"। (२) कपूरकचरी। (३) Honey-bush हनीबुश-अं०। कमिनी-बं०। बीबज़ार-कूएरी- इं०। इं० मे० मे०।

एकाङ्गीमुरा-[मरा०] कपूर कचरी।

एकाण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एकँड़िया घोड़ा। वह घोड़ा (वा बैल) जिसके एक ही लम्बी आँड़ी हो। जैसे—

"एकेन लम्बमानेन मुष्केणैकाण्डसंज्ञकः"।

ज० द० ३ घ०। (२) एक-पुतिया लहसुन।

वि० [सं० त्रि०] एक अंडे का।

एकादशशतिकमहा-प्रसारणी-तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वातव्याधि में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग। जैसे—

तिल तैल ६४ सेर, क्वथनीय-द्रव्य (१) शाखा, मूल तथा पत्र संयुक्त प्रसारणी ३०० पल, (३७॥ सेर), (२) कुरण्टकमूल (कटसैया की जड़) २०० पल, (३) गिलोय २०० पल, (४) एरण्डमूल २०० पल, (५) रास्ना तथा शिरीष त्वक् (सिरस की छाल) मिलित १०० पल, पाकार्थ जल २०० द्रोण (३२०० प्रस्थ), अवशिष्ट क्वाथ ४ द्रोण, काँजी ४ द्रोण (१२८ सेर), दही का पानी २ आढ़क (१६ सेर), शुक्त (सिरका) २ आढ़क, बकरे के मांस का क्वाथ २ आढ़क, ईख का रस २ आढ़क, दूध २ आढ़क; कल्क द्रव्य—स्पृक्का (शाक विशेष), काकड़ासिंगी, जीवकाद्यगण की (जीवक ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली वनमूँग, वनमाष, जीवन्ती तथा मुलहठी ये दश) ओषधियाँ, मजीठ, काकोली, कौंछ की जड़, छोटी इलायची, कपूर, कुन्दरू, (लोहबान), सरल (चीढ़), काश्मीर (केशर), जटामांसी, नखी, अगर, नीलाकमल, पद्माख, हल्दी, शीतलचीनी, ग्रंथिक (गठिवन), चाम्पेय (नागकेशर अथवा चम्पा की कली), अभय (खस), दालचीनी, सुपारी, कटुका (लताकस्तूरी), जायफल, शतावर, सरलकाष्ठ, देवदारु, लालचन्दन, नच, शैलेय (छारछ़ीला), सेंधानमक, तैल (शिलारस नामक गंधद्रव्य), नागरमोथा, प्रसारणी की जड़, नलिका (गन्धद्रव्य), वृश्चीर (सफ़ेद पुनर्नवा), कचोरछ (गंधकचूर), कस्तूरी, दशमूल, केवड़े की जड़, नत (तगर), ध्यामक (गंधतृण), असगंध, सुगंधवाला, कौन्ती (रेणुक बीज), तार्क्ष्यज (रसवत), शलई, कायफल, लघु (अगर), श्यामा (प्रियंगू), सोए के बीज, कूट, भिलावाँ, हड़, बहेड़ा, आमला, कमल का केशर, महाश्यामा (श्यामालता), लौंग, सोंठ तथा कालीमिर्च ये ओषधियाँ प्रत्येक ३-३ पल। इन ओषधियों के यथाविधि-साधित क्वाथ तथा कल्क आदि के साथ यथाविधि धीमी-धीमी आँच देकर तैल पाक करें।

गुण—इस तैल को पान, अभ्यङ्ग, वस्ति तथा नस्यकर्म द्वारा प्रयोग में लाएँ। इसके प्रयोग से सर्वांगवात, अर्द्धाङ्गवात, अवयवगत, सन्धिगत, अस्थिगत तथा मज्जागत वातविकार एवं कफजनित तथा पित्त जनित विविध प्रकार के विकार नष्ट होते हैं। यह तैल धातुओं को बढ़ाता है तथा मनुष्यों के नवयौवन को स्थिर रखता है। इससे बूढ़े आदमियोंका भी शारीरिक बल बढ़ जाता है। इसके प्रयोग से वन्ध्या स्त्रियों के गर्भ रह जाते हैं। इसके पीने से वृद्ध स्त्रियाँ भी पुत्र पैदा कर सकती हैं। इसके पिलाने से गाय, घोड़े, हाथी तथा पुरुषों के टूटे हुए अंग भी सुदृढ़ हो जाते हैं।

नोट—इस तैल में कल्क अधिक मात्रा में हैं। इसलिये अल्प-गंधवाली ओषधियों के कल्क से पहिले, मध्य-गंधवाली ओषधियों के कल्क से मध्य में, एवं उत्तमगंधवाली ओषधियों के कल्क के साथ अन्त में पाक करें। इस प्रकार यहाँ तीन बार कल्क पाक करना चाहिये। चक्र द० वातव्याधि-चि०।

एकादशायस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का योग जो अण्डवृद्धि रोग में प्रयुक्त है।

योग—लोह भस्म, पारा, ताँबा, कसीस, शिंगरफ, गंधक, अभ्रक भस्म, पोखराज भस्म, माणिक भस्म, पीतल भस्म, नाग भस्म, विडङ्ग, त्रिफला, हींग, अजवायन, दोनों जीरे, सज्जीखार, मैनफल, वच, काकड़ासिंगी, मिर्च, छोटी पीपल, बड़ी पीपल, चव्य, जवासा, चित्रक-इन्हें समान भाग लेकर प्रथम धातुओं को पुनः काष्ठादि ओषधियों को यथाविधि चूर्ण कर मिलाएँ। पुनः इसे अदरख के रस या सोंठ के क्वाथ से अच्छी तरह घोंट कर एक-एक माशे की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसे उचित वातघ्न अनुपान योग से सेवन करने से अण्डवात, अन्त्रवृद्धि, मुत्रकृच्छ्र, ऊरुस्तम्भ, तथा अन्य प्रकार के वातरोगों का नाश होता है। र० र०,। र० चं० अण्डवृद्धि चि०। रस० यो० सा०।

एकादशी नाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मस्तिष्क की ग्यारहवीं नाड़ी (युगल)। (Eleventh nerve)

एकादशेन्द्रिय–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] ग्यारह इंद्रियाँ। जैसे-श्रोत्र, चक्षु, जिह्वा वा रसना, नासिका, त्वचा, वाणी, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ और मन। इनमें से पहले की पाँच, ज्ञानेन्द्रिय वा बुद्धीन्द्रिय और पीछे की पाँच कर्मेंद्रिय कहलाती हैं। ग्यारहवाँ मन उभयात्मक है। सुश्रुत के अनुसार ये तैजस की सहायता से वैकारिक (सात्विक) अहंकार से उत्पन्न होतीं और सात्विक वा प्रकाश के लक्षण से युक्त होती हैं। सु० शा० १ अ०। दे० "इंद्रिय"।

एकादिवीर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एकवीर नाम का पेड़। वै० निघ०

एकान्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की तंत्रयुक्ति। जो सर्वत्र निश्चय रूप से कहा जावे। जैसे, निसोथ दस्त कराती है और मैनफल क़ै लाता है।

"सर्वत्र यदवधारणेनोच्यते स एकान्तः।
यथा त्रिवृद्विरेचयति मदनफलं वामयतीति॥"

(सु० उ० ६५ अ०)

एकान्तजन–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Xenon) एक प्रकार का वायव्य।

एकान्न–वि० [सं० त्रि०] (१) जो रात दिन में केवल एक बार भोजन करे। एक भक्त। (२) एक बार खाने का व्रत।

एकान्नभुक्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक ही अन्न का भोजन।

एकान्नादी–वि० [सं० त्रि०] एक ही व्यक्ति का दिया अन्न खानेवाला।

एकाब्दा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक साल की गाभी। एक साल की बछिया।

एकायु–वि० [सं० त्रि०] (१) सम्पूर्ण जीवों को एकत्र करनेवाला। (२) प्रथम जीवधारी। पहिले ज़िन्दा होनेवाला। (३) अत्युत्तम भोजन प्रदान करनेवाला।

एकार्णव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल प्लावन विशेष। एक प्रकार की बाढ़ (बूड़ा) जिसमें बाहर भीतर सब जगह पानी भर जाता है।

एकार्थ-समुपेत्–वि० [सं० त्रि०] एक अर्थ विशिष्ट। एक ही माने रखनेवाला।

एकालिफस–[अं० Acalyphus] कुप्पी का एक सत्व।

एकालिफा इण्डिका–Acalypha Indica, *Linn.*
एकालिफा कैनेस्केना–[Acalypha canescana
एकालिफा पेनिक्युलेटा–calypha paniculata, *Miquel.*

अरित मञ्जरी। हरिन् मञ्जरी। कुप्पी। खोकली।

एकालिफा फ्रुटिकोसा–[ले० Acalypha frutecosa, *Forsk.*] सिन्निमरम्। चिन्नी का झाड़। चिन्नी। इसकी पत्ती का फाएद आमाशय

बलप्रद और परिवर्त्तक है। इसका व्यवहार अजीर्ण रोग में होता है।

एकालिफा सिलिएटा–Acalypha ciliata
एकालिफा स्पिकेटा–Acalypha spicata
[ले०] एक प्रकार की कुप्पी।

एकालिफा हिस्पिडा–[ले० Acalypha hispida, *Burm.*] एक प्रकार की हरित मञ्जरी जिसका फूल अतिसार में काम आता है। वत्तताली (मद०)।

एकालिफीन–[अं० Acalyphine] हरिन्मञ्जरी सत्व। कुप्पीन।

एकावयव–वि० [सं० त्रि०] (१) एक शरीर विशिष्ट। एक जिस्म रखनेवाला। (२) तुल्य शरीर विशिष्ट। बराबर जिस्म रखनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक अङ्ग मात्र। अकेला अअजो।

एकाश्रित गुण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वृत्तिधर्म। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, एकत्व, पृथक्त्व, परिमाण, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, अदृष्ट और शब्द को एक वृत्ति धर्म कहते हैं।

एकाष्ठी संज्ञा स्त्री० [स० स्त्री०] (१) कपास। कार्पासी (Gossypium herbaceum, *Linn.*)। (२) कपास का बीज कोष। वै० निघ०।

एकाष्ठीका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पाठा। पाढ़ा। (Cissampelos pareira,) वै० निघ०।

एकाष्ठील–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अगस्तया। हथिया। वक। (Agati grandiflora) अम०। भा० पू० १ भ०। (२)राजार्क। मंदार भेद। आक का भेद। रा० नि० व० ४।

एकाष्ठीला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पाठा। पाढ़ा। (Cissampelos pareira) र० मा०। रा० नि० व० ६। वनतिक्तका। पाठा। (२) एक प्रकार के फूल का पेड़। भा० पू० १ भ०।

एकाहार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दिन रात में केवल एक बार भोजन करने की क्रिया या भाव।

वि० [सं० त्रि०] जो दिन रात में केवल एक बार भोजन करे।

एकाहिक–वि० [सं० त्रि०] एक दिन का। एक दिन में पूरा होनेवाला। (शीत ज्वर)।

संज्ञा पुं० दे० "ऐकाहिक"।

एकाक्ष–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० एकाक्षी] (१)जिसके एक ही आँख हो। काना। एकनेत्र। श० च०। (२) सुन्दर नेत्र विशिष्ट।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काक। कौआ।

एकिटीज ऐण्टिडिसेण्टेरिका–[ले० Echites antidysenterica] कुरैया। कुटज।

एकिटीज डाइकोटोमा–[ले० Echites dichotoma] भद्रवल्ली। हापरमाली (बं०)।

एकिटीज फ्रुटीसेंस–[ले० Echites frutescens] श्यामालता। सारिवा।

एकिटीज स्कॉलरिस–[ले० Echites scholaris] सतिवन। सप्तपर्ण। (Alstonia scholaris. *Br.*)

एकिटीज स्पाइनोसा–[ले० Echites spinosa] करौंदा। करमर्द। (Capparis corundas)

एकिटीइन–[अं० Echitein] सतिवन के पेड़ का एक संयोजक द्रव्य।

एकिटीन–[अं० Echitin] सतिवन के पेड़ से निकाला हुआ एक प्रकार का सत्व।

एकिटेनाइन–[अं० Echitenine] एक कड़ुवा भूरे रंग का सत्व जो सतिवनकी छाल से निकाला जाता है।

एकिटेमाइन–[अं० Echitamine] सतिवन की छाल में पाया जानेवाला एक प्रकार का सत्व।

एकिनाप्स एकिनेटस–[ले० Echinops echinatus, *DC.*] ऊँटकाटारा। उष्ट्रकण्टक।

एकिनेशिया अंगष्टिफोलिया–[ले० Echinacea angustifolia] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि।

एकिरेटीन–[अं० Echiretin] एक अस्फटिकीय

द्रव्य जो ५२ ° शतांश के ताप पर विलेय होता है।

एकिस केरिनेटा-[ले० Echis carinata] फुरसा नामक साँप।

एकीकरण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० एकीकृत] (१) एक करना। मिलाकर एक करना। (२) जीवधारियों (वनस्पति वा प्राणी) का एक गुण जिसके द्वारा वे भोजन ग्रहण करते और उसको पचाकर उससे अपना शरीर बनाते हैं और उससे प्राप्त हुई शक्ति से शरीर का कारोबार चलाते हैं। हैं। समीकरण। Assimilation.

एकीभाव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० एकीभूत] (१) मिलना। मिलाव। एक होना। (२) एकत्र होना। इकट्ठा होना।

एकेंद्रिय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इन्द्रिय का मन की ओर निग्रह। इस अवस्था में इंद्रिय को भली और बुरी दोनों बातों से पृथक् रखते हैं। (२) एक ही इंद्रिय युक्त जीव। जैसे-जलौका प्रभृति को एक त्वक् के सिवा दूसरी इंद्रिय नहीं होती।

एकेशिया-[ले० Acacia] दे० “अकेशिया”।

एकेक्षण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काक। कौवा। (२) काना। (३) शुक्राचार्य।

एकैशिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सतावर। शतावरी। (Asparagus racemosus, *Willd.*)

एकैशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाठा। पाढ़ा। (Cissampolas pareira) के० दे० नि०।

एकैषिक तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक तेल का नाम।

गुण—शीतल, पित्तनाशक और वायु तथा कफ को पैदा करता है। मद०।

एकैषि (कोशि) का-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अगस्तिए का पेड़। हथिया। वकपुष्प वृक्ष। (Agati grandiflora)। (२) पाठा। पाढ़ा। (३) निशोथ। जैसे, “एकैशिकाजशृङ्गी च।” सु० सू० ३६ अ०, चि० १७, १८ अ०।

गुण-इसका तेल मधुर, अत्यंत शीतल, पित्तनाशक, वात को कुपित करनेवाला और कफवर्द्धक है। सु० सू० ४५ अ०।

एकैषी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाठा। पाढ़ा। (Cissampelos pareira) वै० निघ०।

एकोइन-[अं० Acoine] एक सफ़ेद स्फटिकीय चूर्ण जो एक भाग ५० भाग जल में विलेय होता है। यह कोकेन की प्रतिनिधि है और उससे अपेक्षाकृत कम विषाक्त होता है। दे० “कोका”।

एकोदर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सहोदर। (२) तुल्योदर। बराबर पेट।

एकोद्ध्रुव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Unipolar) एक ध्रुव।

एकोनाइट-[अं० Aconite] विष। वत्सनाभ। वच्छनाग। बछनाव (बम्ब०)।

एकोनाइटम्-[ले० Aconitum] दे० “एकोनाइट”।

एकोनाइटम् एन्थोरा-[ले० Aconitum anthora] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि।

एकोनाइटम्टकॉर्डटम्-[ले० Aonitum cordatum] अतीस।

एकोनाइटम् कैज़्मेन्थम्-[ले० Aconitum chasmanthum, *Stapf.*] बनबल नाग। (काश०)। मोहरी, पिन्न (झेलम)।

एकोनाइटम् जदवार-[ले० Aconitum jaduar] जद्वार विशेष।

एकोनाइटम् जिम्नैएड्रम-[ले० Aconitum gymnandrum] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि।

एकोनाइटम् डिस्सेक्टम्-[ले० Aconitum dissectum] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि।

एकोनाइनटम् डीनोरह्राइजम्-[ले० Aconitum deinorrhizum, *Stapf.*] मोहरा। मौरबिख।

एकोनाइटम् नेपेलस-[ले० Aconitum napellus, *Linn.*] विष। मीठा ज़हर। काट विष (बं०)। मोहरी (काश० । पं०)।

एकोनाइटम् नेविक्युलेरी–[ले० Aconitum naviculare] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि ।

एकोनाइम् पामेटम्–[ले० Aconitum palmatum. *Don.*] त्रिखूमा (हिं०) । वखमा (बम्ब०) । यह पूर्वी समशीतोष्ण हिमालय में गढ़वाल से लेकर मनीपुर तक होता है । यह निर्विषैल होता है ।

एकोनाइटम् पालिशिज़ा–[ले० Aconitum polyschiza] वच्छनाग का एक भेद ।

एकोनाइटम् पेपरेटम्–[ले० Aconitum paperatum] ऐन्थोरा जाति के वच्छनाग का एक भेद ।

एकोनाइटम् फिस्केरी–[ले० Aconitum fischeri] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि ।

एकोनाइटम् फेरोक्स–[ले० Aconitum ferox, *Wall.*] बछनाग । वत्सनाभ । विष । मीठा ज़हर । (Indian aconite)

एकोनाइटम् फैल्कोनेराई–[ले० Aconitum falconeri, *Stapf.*] विष । मीठा तेलिया ।

एकोनाइटम् बार्बेटम्-[ले० Aconitum barbatum] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि ।

एकोनाइटम् बैलफोरियाई–[ले० Aconitum balfourii] गोबरी (नैपा०) ।

एकोनाइटम्मल्टिफिडम्–[ले० Aconitum multifidum] बछनाग का एक भेद ।

एकोनाइटम् मॉस्केटम्–[ले० Aconitum moschatum] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि ।

एकोनाइटम् रिजिडम्-[ले० Aconitum rigidum] बछनाग का एक भेद ।

एकोनाइटम् रोटण्डिफोलियम्–[ले० Aconitum rotundifolium] मीठा ज़हर का एक भेद ।

एकोनाइटम् लाईकॉक्टोनम्–[ले० Aconitum licoctonum, *Linn.*] लाहौर बच्नाब । मीठा ज़हर ।

एकोनाइटम लीवी–[ले० Aconitum levæ] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि ।

एकोनाइटम लेसिनिएटम्-[ले० Aconitum laciniatum, *Stapf.*] कालोविखूमो ।

एकानाइटम् ल्युकेन्थम–[ले० Aconitum leucanthum] नेपेलस जाति के बच्छनाग का एक भेद ।

एकोनाइटम् ल्युरिडम्-[ले० Aconitum luridum] एक प्रकार का बछनाग जो सिक्किम में बहुतायत से होता है ।

एकोनाइटम् वालोइलेसियम्–[ले० Aconitum vilolaceum] नेपेलस जाति के बछनाग का एक भेद ।

एकोनाइटम् वेरीगेटम्-[ले० Aconitum variegatum] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि ।

एकोनाइटम् सूनूगैरिकम्–[ले० Aconitum soongaricum, *Stapf.*] वत्सनाभ वर्ग की एक ओषधि ।

एकोनाइटम् स्पिकेटम्–[ले० Aconitum spicatum, *Stapf.*] बिख । कालो विखोमा ।

एकोनाइटम् हूकेरी–[Aconitum hookeri] ऐन्थोरा जाति के बछनाग का एक भेद ।

एकोनाइटम् हेटेरोफांइलम्-[ले० Aconitum heterophyllum, *Wall.*] अतीस । अतिविषा ।

एकोनाइटम् हेटेरोफाईलॉइडीज़–[ले० Aconitum heterophylloides] नेपेलस जातीय बछनाग का एक भेद ।

एकोनाइटिया–[अं० Aconitia] बछनाग में पाया जानेवाला एक प्रकार का सत्व । यह एक प्रकार का क्षारोद है जिसे एकोनाइटीन भी कहते हैं ।

एकोनाइटीन–[अं० Aconitine] एक प्रकार का सत्व जो बछनाग की जड़ से प्रस्तुत किया जाता है । दे० "बछनाग" ।

एकोनाइटीना–[ले० Aconitina] एक प्रकार का क्रियात्मक क्षारोदीय सार जो बछनाग से निकाला जाता है । इसकी बे रंग छः पहलू क़लमें होती हैं । दे० "बछनाग" ।

एकोनाइटीनी ऑलिएटम–[ले० Aconitinæ oleatum] एक प्रकार का ऑलिएट । शक्ति, २ प्रतिशत । यह वातज वेदनाओंमें उपयोगी है ।

एकोनार्ड लीव्ड किड्नी बीन–[अं० Aconard leaved kidney-bean] मोठ ।

एकोनीन–[अं० Aconine] बच्छनाग की जड़ में पाया जानेवाला एक प्रकार का क्रियात्मक सार ।

एकोनेटिया–[Aconatia] एक औषध ।

एकोरस ओडोरेटस–[Acorus odoratus]
एकोरस कैलेमस–[Acorus calamus, *Linn.*]
[ले०] बच । वचा । (Sweet flag)

एकोर्सी डी कोडेगापाल–[फ्रां० Ecorce de codagapala] कुरैया । कुटज । (Conessi)

एकोर्सी डी डिटा–[फ्रां० Ecorce de dita] सतिवन । सप्तपर्ण । (Dita-bark)

एकोर्सी डी लॉटूर–[फ्रां० Ecorce be lautour] लोध । (Lotur-bark)

एकोशि (षि)का–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाठा । पाढ़ा । (Cissampelos-pareira.) र० मा० ।

नोट—मतांतर से अगस्यिता (वक वृक्ष) ।

एकँड़िया–वि० [सं० एक+अंड+इया (प्रत्य०)] एक अंडे का ।

संज्ञा पुं० (१) वह घोड़ा वा बैल जिसके एक ही अंडकोष हो । एकाण्ड । (२) वह लहसुन की गाँठ जिसमें एक ही अंटी हो । एकपुतिया लहसुन । एकांड लसुन । एक्ला-कली लसन ।

यह लहसुन की जाति का एक पौधा है जिसमें ऐसी ही गाँठें पड़ा करती हैं । इसे लेटिन भाषा में एलियम् एस्केलोनिकम् (Allium-ascalonicum.)और अँगरेजी में वन-क्लव गार्लिक (One-clove garlic) कहते हैं ।

प्रयोग—कान के दर्द में इसका एक छोटा टुकड़ा कर्णकुहर में रखने से कान का दर्द मिट जाता है । इसे घी में भूनकर और शहद में सुरक्षित रखते हैं । यह कामोद्दीपक है । फा० इ० ३ भा० । वि० दे० "लहसुन" ।

एकः–[तु०] फुफ्फुस । फेफड़ा ।

एका–संज्ञा पुं० वह पशु वा पक्षी जो झुंड छोड़कर अकेला चरता वा घूमता हो ।

एक्के–[ते०] अर्क । आक । मदार ।

एक्केगिडा–[कना०] मदार । आक ।

एक्के-पन्नी–[कना०] आक । मदार ।

एक्के-माली–[को०] अर्क । आक । मदार ।

एक्टोजन–[अं० Ektogan] परऑक्साइड या ज़िंक परहाइड्रोल का एक नाम ।

एक्टोल–[अं० Actol] एक प्रकार की सफेद रंग की बुकनी वा सूई जैसी पतली-पतली बेरंग कलमें, जिसका दूसरा नाम अर्जेण्टाई लैक्टास है । दे० "चाँदी" ।

एक्बेलियम् एलेटेरियम्–[ले० Ecballium elaterium, *A. Rich.*] क़िस्साउल् हिमार । ख़ियार खर । काली इंद्रायन (हिं०) ।

एक्बेलियम् लिनिएनम्–[ले० Ecballium linneanum, *Kurz.*] ऊदजटी ।

एक्बोलीन–[अं० Ecboline] अर्गोटॉक्सीन का नाम । दे० "अर्गोटॉक्सीन" या "अर्गट" ।

एक्रोमिगैली–संज्ञा स्त्री० [अं० Acromegaly] एक रोग जो पैदा होने के पश्चात् पिट्यूट्री वा हाइपोफिसिस ग्रंथि के अगले खंड के अधिक कार्य करने से हो जाता है ।

लक्षण—इस रोग में हाथ पैर, नीचे का जबड़ा और चेहरे की हड्डियाँ बड़ी हो जाती हैं; पुरुषों में नपुंसकता होती है; और स्त्रियों में रजोदर्शन नहीं होता; मूत्र में द्राक्षौज आने लगती है; शरीर दुबला होता जाता है ।

एक्लिप्टा इरेक्टा–[ले० Eclipta erecta] एक प्रकार का भँगरा ।

एक्लिप्टा ऐल्बा–[ले० Eclipta alba, *Hassk.*] भँगरा । भृङ्गराज ।

एक्लिप्टा प्रॉष्ट्रेटा–[ले० Eclipta prostrata, *Roxb.*] भँगरा ।

एक्वा–[ले० Aqua] [बहु० एक्वी Aquæ] (१) पानी । जल । वारि । (Water)

दे० "पानी"। (२) वह जल जिसमें ओषधि का उड़नशील अंश वा तैलांश विलीन कर लिया गया हो। अर्क। रसायन की परिभाषा में तरल वा विलयन को कहते हैं। जैसे एका फॉर्टिस, एका रेजिया।

नोट—अर्क साधारणतः भभके द्वारा खींचे जाते हैं। दे० "अर्क़"।

पर्य्या०-एका Aqua (ए० व०), एकी Aquæ (बहु०)-ले०। वाटर Water (ए० व०), वाटर्स Waters (बहु०)-अं०। अर्कः (सं०)। माऽ (ए० व०), मियाह् (बहु०), अर्क़ (ए० व०), अर्क़ियात (बहु०) -अ०।

ब्रिटिस फार्माकोपिया में कुल अर्कों की संख्या १९ है, जिनमेंसे निम्नलिखित १० अर्क इस भाँति तैयार किये जाते हैं। सबसे पहिले ओषधि को जल में डालकर फिर अर्क खींचने की साधारण विधि द्वारा अर्क़ चुआ लेते हैं।

उपर्युक्त १० अर्क यह हैं—

(१) एका ऑरन्शियाई फ्लोरिस, (२) एका एनेथाई, (३) एका एनीसाई, (४) एका पाइमेंटी, (५) एका रोज़ी, (६) एका सम्ब्युसाई, (७) एका सिन्नेमोमाई। (८) एका फेनिक्युलाई, (९) एका केरुई और (१०) एका लॉरोसेरेसाई।

एका मेन्थी पाइपरेटी और एका मेन्थी विरीडिस के बनाने की विधि इस प्रकार है। ऑइल ऑफ पेपरमिंट (पिपरमिंट का तेल) को जल मिश्रित कर इसका अर्क चुआ लेते हैं।

दैनिक औषधि-निर्माण में वे अर्क जो ऐसी औषधियों से तैयार किये जाते हैं, जिनमें उड़नशील तैल होता है, इसी भाँति प्रस्तुत किये जाते हैं। अर्थात् वालेटाइल ऑइल (उड़नशील तैल) को जलमिश्रित कर देते हैं, जिसमें तैल पानी में फैल जाय। उसमें किंचित् केलिसयम् फॉस्फेट भी योजित कर देते हैं।

एका केम्फोरी (अर्क कपूर) और एका क्लोरोफार्माई (अर्क क्लोरोफार्म)-यह दोनों अर्क चुआए नहीं जाते, प्रत्युत ठंडे पानी में तैयार किए जाते हैं। एका डिस्टिलेटा भी सामान्य विधि द्वारा परिस्रुत किया जाता है।

नोट—(१) एका क्लोरोफॉर्म और एका कैम्फर के अतिरिक्त अन्य सभी अर्क चुआए जाते हैं।

(२) बाज़ारी अँगरेजी एका ऑरन्शियाई फ्लोरिस और अँगरेजी एका रोज़ी अधिक तीक्ष्ण होते हैं (ये इस कारण अधिक तेज चुआए जाते हैं, जिसमें अधिक समय तक रखने से ख़राब न हों)। अस्तु इनको औषधि में प्रयोजित करते समय इनकी मात्रा से द्विगुण परिस्रुत वारि मिला लेना चाहिए।

(३) सिवा एका लॉरोसेरेसाई के अन्य सभी अर्कों की मात्रा $\frac{1}{2}$ से २ फ्लुइड आउंस तक है। एका लॉरोसेरेसाई की मात्रा केवल $\frac{1}{2}$ से २ फ्लुइड ड्राम तक है, क्योंकि इसमें हाइड्रोस्यानिक एसिड होता है जो एक अत्युग्र विष है।

एका ऑरंशियाई फ्लोरिस-[ले० Aqua aurantii floris] नागरङ्ग पुष्पार्क। (Orange flower-water)

एका एनिसाई-[ले० Aqua anisi] अनीसूनार्क। (Anise water.)

एका एनेथाई-[ले० Aqua anethi] मिश्रेयार्क। सोए का अर्क। (dill water.)

एका ओपियाई-[ले० Aqua opii] अहिफेनार्क। दे० "पोस्ता"।

एका केम्फोरी-[ले० Aqua camphoræ] कर्पूरार्क। अर्क कपूर। (Camphor water.)

एका केरुई-[ले० Aqua carui] कारव्यर्क। अर्क कराविया। (Carui water)

एका क्रियोज़ूटाई-[ले० Aqua creosoti] अर्क क्रियोज़ूट। दे० "क्रियाज़ूटम्"।

एका पाइमेंटी-[ले० Aqua pimentæ] अर्क फ़िल्फ़िल ह़ु.ल्व। अर्क़ फ़िल्फ़िलुस्सोदान। (Pimento-water.) दे० "पाइमेंटा"।

एकापाइसिस-[ले० Aqua picis] अर्क़ क़ु.तू.रान। चुड़ैल का अर्क। (Tar-water.)

एका फॉर्टिस–[ले॰ Aqua fortis] (Nitric acid.) शोरकाम्ल ।

एका क्लोरोफॉर्माई–[ले॰ Aqua chloroformi] क्लोरोफॉर्मार्क । (Chloroform water)

एका ज़िओज़ूनाइ-[ले॰ Aqua zeozoni]

एका डिस्टिलेटा-[ले॰ Aqua distillata] परिस्रुत वारि । भभके में चुआया हुआ पानी । (Distilled·water.)

एका फ़ीनीक्युलाई–[ले॰ Aqua fœniculi] शतपुष्पार्क । सौंफ का अर्क । अर्क सौंफ़ । (Fennel-water.)

एकाफ्लोरोफॉर्माई–[ले॰ Aqua fluoroformi] वायवीय फ्लोरोफार्म । दे॰ "एसिड हाइड्रोफ्लोरिकम्" ।

एका मेन्थी पाइपरेटी–[ले॰ Aqua menthæ piperatæ] अर्क नअ्नअ् । रोचन्यर्क । पुदीने का अर्क । (Peppermint-water)

एका मेन्थी विरिडिस–[ले॰ Aqua menthæ viridis] अर्क़ नअ्नअ् सब्ज़ । हरे पुदीने का अर्क । (Spearmint-water.)

एका मेन्थोल–[ले॰ Aqua menthol] अर्क पुदीनोल । दे॰ "मेन्थोल" ।

एका रेजिया–[ले॰ Aqua regia] लवणाम्ल और नत्रिकाम्ल का मिश्रण । यह अत्यंत बलवान् धातुद्रावक है; इसलिए इसे अम्लराज (Aqua regia) कहते हैं । इसमें सुवर्ण और प्लैटिनम् विलीन हो जाते हैं ।

एका रोज़ी–[ले॰ Aqua rosæ] गुलाबार्क । गुलाब जल । (Rose-water.)

एका लॉरोसिरेसाई–[ले॰ Aqua laurocerasi] अर्क ग़ार केलासी । (Cherry laurel-water.)दे॰ "लारोसेरेसाई फोलिया" ।

एका-वाइटी–[अं॰ Aqua·vitæ] [ले=जीवनोद, आबेहयात] ज्वलनशील मद्यसार ।

एका सिन्नेमोमाइ–[ले॰ Aqua cinnamomi] दारचीनी का अर्क । (Cinnamon-water.)

एका सैम्बूसाई-[ले॰ Aqua sambuci] अर्क़ ख़म्मान । (Elder flower-water.)

एक्विलेरिया–[Aquilaria]दे॰ "अक्विलेरिया" ।

एक्विसेटम् डिवाइल–[ले॰] बूकी ।

एक्विसेटम हाइमेल–[ले॰] (Scouring rush)

एक्वीअस-[अं॰ Aqueous] जलीय । जल का ।

एक्वअस एक्सट्रैक्ट–[अं॰ Aquas extract] जलीय सार ।

एक्साइटेण्ट–[अं॰ Excitant] उत्तेजक ।

एक्सप्लोसिव–[अं॰ Explosive] भभक उठनेवाला पदार्थ । विस्फोटक पदार्थ । गंध, बारूद आदि ।

एक्स-रे–[अं॰ X-rays] एक वैज्ञानिक यंत्र जिससे अस्थिभग्न, अस्थि स्थानभ्रंश तथा शरीरांतर्गत शल्यों के निदान में काफी सहायता मिलती है ।

एक्सा एक्साक्वीन–[अं॰ Xaxaquin] इसको क्विनोनी एसिटिल-सैलिसिलास भी कहते हैं । दे॰ "सिंकोना" ।

एक्साइल आलिएण्डर–[अं॰ Exile oleander] पीला कनेर । पीत करवीर । (Thevetia nerifolia, *Juss.*) Yellow oleander.

एक्साल्जीन–[अं॰ Exalgin] इसकी बेरंग सूई जैसी क़लमें होती हैं । इसे मीथिल एसिट एनीलाइड भी कहते हैं । दे॰ "फेनेज़ूनम्" ।

एक्सीकेटेड एलम्–[अं॰ Exsicated alum] फूल की हुई फिटकरी । दे॰ "फिटकरी" ।

एक्सीकेटेड सोडियम् कार्बोनेट–[अं॰ Exsicated sodium carbonate] फूल की हुई सोडियम कार्बनित । दे॰ "सोडियाई कार्बोनास ।

एक्सीकेरिया इण्डिका–[ले॰ Excæcaria Indica] हुनी, बतूल (बं॰) किर्री-मकलु–सिं॰ ।

एक्सीकेरिया इन्सिगीनस–[ले॰ Excæcaria insignis, *Mull.*] दूदल, बिलोदर, बिलोज (पं॰) । खिन्न (हिं॰) ।

एक्सीकेरिया एगेलोका-[ले॰ Excæcaria agallocha, *Linn.*] अगुरु । गेरिया ।

एक्सीकेरिया एसेरिफोलिया-[ले० Excæcaria acerifolia, *Didrichs.*] बासिंग ।

एक्सीकेरिया कोचीन-चाइनेन्सिस-[ले० Excæcaria cochin-chinensis] एक पौधा ।

एक्सीकेरिया बक्केटा-[ले० Excæcaria baccata, *Mull.*] लाल कैंजल (नेपा०)। अदमसली (आसा०)। बिल्ल (सिलह०)। लिन्हलून (बर०)।

एक्सीकेरिया सेबीफेरा-[ले० Exaecaria sebifera, *Mull.*] मोमचीन (बं०)।

एक्सीपिएण्ट-[अं० Excipient] अनुपान बद्रिका । (Vehicle)

एक्सीलीन-[रू०] दे० "आबनूस" ।

एक्सेकम् पेडंक्युलेटम्-[ले० Exacum pedunculatum, *Linn.*] यह जेंशन की प्रतिनिधि है ।

एक्सेकम् बाईकलर-[ले० Exacum bicolor, *Roxb.*] बड़ा चिरायता।

एक्सेकम् टेट्रागोनम्-[ले० Exacum tetragonum, *Roxb.*] अव-चिरेता, तितखन (हिं०)। कूचरी (बं०)। Exacum four-celled.

एक्सेकम् लेवियाई-[ले० Exacum lawii, *Clarke.*] मरुकोज़ुन्थु (मद०)।

एक्सोगोनियम् पर्जा-[ले० Exogonium purga, *Roxb.*] शातिल (अ०)। बीख़े जलापः (फ़ा०)।

एक्सोडीन-[अं० Exodin] यह निर्गंध, स्वाद-रहित पीले रंग का एक प्रकार का चूर्ण है जो जल में अविलेय होता है। यह एक निरापद विरेचन औषध है। इससे आमाशय में किसी प्रकार क्षोभ नहीं होता।

मात्रा—७½ से २४ ग्रेन तक। दे० "पिक्स कार्बोनिस प्रिपेयरेटा"।

एक्सटेम्पोरेनियस फार्मेसी-[अं० Extemporaneous pharmacy] डॉक्टरी में औषध निर्माण-शास्त्र का वह अंग जिसमें स्वयं डॉक्टरोंके योगों के निर्माण का विधान होता है।

एक्स्ट्रा फार्माकोपिया-[अं० Extra pharmacopœia] अनुमोदन प्राप्त फार्माकोपिया से भिन्न वह फार्माकोपिया जिसमें यूरोपीय तथा अमेरिका देशादि के विविध फार्माकोपिया के नाना उपयोगी मिश्रामिश्र प्रयोगों के प्रविष्ट होने के अतिरिक्त वे नूतन आविष्कृत औषधें भी समाविष्ट होती हैं, जो प्रत्येक देश के डाक्टरों की राजकीय आयुर्वेदीय समिति (General Medical Council) के सिवा अन्य योग्य डाक्टरों के प्रयोगों से उपादेय प्रमाणित होती रहती है। अँगरेजी भाषा में मार्टिंडेल का फार्माकोपिया जिसके अनेक संस्करण हो चुके हैं, इसी प्रकार का एक फार्माकोपिया है।

एक्स्ट्रैक्ट-[अं० Extract] [बहु० एक्स्ट्रैक्ट्स] सत्त्व। सार। ख़ुलासा। दे० "रसक्रिया"।

एक्स्ट्रैक्ट ऑफ़ अर्गट-[अं० Extract of ergot] अर्गट सत्व। दे० "अर्गोटा"।

एक्स्ट्रैक्ट ऑफ इण्डियन हेम्प-[अं० Extract of indian hemp] भाँगका सत्व। विजयासार। दे० "भाँग"।

एक्स्ट्रैक्ट आफ़ ओपियम्-[अं० Extract of opium] अफीम का सत्त। अहिफेन सत्व। दे० "पोस्ता"।

एक्स्ट्रैक्ट आफ़ कन्वेलेरिया-[अं० Extract of convallaria] कन्वेलेरिया सत्व। दे० "कन्वेलेरिया मैजेलिस"।

एक्स्ट्रैक्ट आफ़ कालिचकम्-[अं० Extract of colchicum] कड़वे सूरंजान का सत्त। दे० "सूरंजान"।

एक्स्ट्रैक्ट आफ़ कैमोमाइल-[अं० Extract of chamomile] बाबूने का सत्त। रुब्बे बाबूनः। दे० "बाबूना"।

एक्सट्रैक्ट आफ कैलेबार बीन-[अं० Extract of calabar bean] कालाबार लोबिए का सत। दे० "फाइसास्टिग्मेटस सेमिना"।

एक्सट्रैक्ट आफ केस्कारा सैग्रेडा-[अं० Extract of cascarasagrada] कैस्कारा सेगरेडा की छाल का सत । दे० "कैस्कारा सैग्रेडा" ।

एक्सट्रैक्ट आफ क्रैमेरिया-[अं० Extract of krameria] क्रामेरिया सत्व । दे० "क्रैमेरीई रैडिक्स" ।

एक्सट्रैक्ट आफ जेन्शन [अं० Extract of gentian] जिन्तियाने का सत । दे० "जिन्तियाना या जन्शन" ।

एक्सट्रैक्ट आफ जैलप-[अं० Extract of jalap] जलापा सार । विरेचनमूल सत्व । ख़ुलासहे जलब । दे० "जलापा" ।

एक्सट्रैक्ट आफ टैरेक्से (ग्ज़े)कम्-[अं० Extract of taraxacum] अरण्यकासनी मूलसत्व । जंगली कासनी की जड़ का सत । दे० "अरण्यकासनी" ।

एसक्ट्रैक्ट आफ नक्सवामिका-[अं० Fxtract of nux vomica] कुचलेका सत । कारस्कर सत्व ।

एक्सट्रैक्ट आफ बार्बेडोज़ एलोज़-[अं० Extract of barbados aloes] बर्बदी एलुए का सत । दे० "घीकुआर" ।

एक्सट्रैक्ट आफ बेलाडोना-[अं० Extract of belladonna] बेलाडोने का सत । दे० "बेलाडोना" ।

एक्सट्रैक्ट आफ माल्ट-[अं० Extract of malt] यव सत्व । जौ का सत । दे० "जौ या माल्टम्" ।

एक्सट्रैक्ट आफ मेलफ़र्न-[अं० Extract of male-fern] ख़ुलासहे सरख़्सुल् मुज़कर ।

एक्सट्रैक्ट आफ रहटानी-[अं० Extract of rhatany] क्रामेरिया सत्व । दे० "क्रैमेरीई रैडिक्स" ।

एक्सट्रैक्ट आफ र्हैम्नस पर्शियानस-[अं० Extract of rhamnus purshianus] कैस्कारा सैग्रेडा सत्व । दे० "कैस्कारा सैग्रेडा" ।

एक्सट्रैक्ट आफ र्हुबर्ब-[अं० Fxtract of rhubarb] रेवंदचीनी का सत । पीतमूली सत्व । उसारहे रा (रे) वंद । दे० "रेवंद" ।

एक्सट्रैक्ट आफ लिकरिस-[अं० Extract of liquorice] मुलेठी का सत । रुब्बुस्सूस । दे० "मुलेठी" ।

एक्सट्रैक्ट आफ स्ट्रैमोनियम्-[अं० Extract of stramonium] विदेशी धतूरे का सत । दे० "धत्तूर" ।

एक्सट्रैक्ट आफ स्ट्रोफ़ैन्थस-[अं० Extract of strophanthus] उसारहे स्ट्रोफैन्थस । दे० "स्ट्रोफैन्थस" ।

एक्ससट्रैक्ट आफ हायोसाइमस-[अं० Extract of hyoscyamus] पारसीकयमानी सत्व । अजवाइन खुरासानी का सत । दे० "अजवायन खुरासानी" ।

एक्सट्रैक्टम्-[अं० Extractum] [बहु० एक्स्ट्रैक्टा] किसी वानस्पतिक द्रव्य का वह रस जो ताज़ी जड़ी-बूटी से निकालकर या उसका काढ़ाकर पुनः मंदाग्नि पर उड़ाकर गाढ़ा कर लेते हैं । रसक्रिया । सत्व । सार । ख़ुलासा । रुब्ब । दे० "रसक्रिया" ।

एक्सट्रैक्टम् अर्गोटी-[ले० Extractum ergotæ] अर्गट सत्व । दे० "अर्गोटा" ।

एक्सट्रैक्टम् अर्गोटी लिक्विडम्-[ले० Extractum ergotæ liquidum] अर्गट तरल सार । दे० "अर्गोटा" ।

एक्सट्रैक्टम् आयरीडिस-[ले० Extractum Iridis] इन्द्रधनुषपुष्पी सत्व । ईरसा का सत । दे० "ईरसा" ।

,, इग्नेशिई अमारी-[ले० Extractum Ignatiæ amarœ] पपीते का सत । ख़ुलासहे पापीता । दे० "पपीता" ।

,, इपीकेकानी लिक्विडम्-[ले० Extractum Ipecacuanhæ liquidum] इपीकेकाने का सत । दे० 'इपीकेकाना' ।

,, एकालिफी लिक्विडम्-[ले० Extractum Acalyphœ liquidum] कुप्पी तरल सत्व ।

एक्सट्रैक्टम् ऐन्थेमिडिस-[लै० Extractum Antbemidis] बाबूने का तरल सत्व। रुब्बे बाबूनः। दे० 'बाबूना'।

,, एलीट्राइडिस-[लै० Extractum Aletridis] उदरशूलारिमूल सत्व।

,, एलेटेरियाई-[लै० Extractum Elaterii] क़िस़ाउल् हिमार का सत।

,, एलोज़ बार्बेडेन्सिस-[लै० Extractum Alœs brbadensis] बर्बेदी एलुए का सत। दे० 'घोकुआर'।

,, ऐग्रोपाइरी लिक्विडम्-[लै० Extractum Agropyri liquidum] श्वान तृण सत्व। कुत्तेघास का सत। दे० "ऐग्रोपाइरम्"।

,, ऐडाटोडी लिक्विडम्-[लै० Extractum Adhatodæ liquidum] अड़ूसे का द्रव सत। आटरूष तरल सार। दे० 'अड़ूसा'।

,, ओपियाई-[लै० Extractum opii] अफीम का सत। अहिफेन सत्व। दे० 'पोस्ता'।

,, ओपियाई लिक्विडम्-[लै० Extractum opii liquidum } अहिफेन तरल सत्व। अफीम का द्रव सत। दे० 'पोस्ता'।

,, ओपियाइ सिक्कम्-[लै० Extractum opii siccum]

,, कन्वैलेरीई-[लै० Extractum convallariæ] कन्वेलेरिया का सत। दे० 'कन्वैलेरिया मैजेलिस'।

,, कॉल्चिसाई-[लै० Extractum Colchici] सूरंजान का सत। दे० "सूरंजान"।

,, कालोसिन्थिडिस कम्पोज़िटम्-[लै० extractum colocynthidis compositum] मिश्रित इंद्रायन का सत। मिश्रित इन्द्रवारुणी सत्व।

,, कावी लिक्विडम्-[लै० extractum kavæ liquidum] रुब्बे कावा सय्याल। कावा का तरल सार। दे० "कावी रूहाइज़ोमा"।

एक्सट्रैक्टम् कैनेबिस इंडिकी-[लै० extractum cannabis Indicæ] भाँग का सत। दे० "भाँग"।

,, कैस्कारी सैग्रेडी-[लै० extractum cascaræ sagradæ] कैस्कारा सैक्रेडा का सत। दे० "कैस्करा सैग्रेडा"।

,, कैस्कारी सैग्रेडी लिक्विडम्-[लै० extractum cascaræ sagradæ liquidum] कैस्कारा सैग्रेडा का तरल सत्व। दे० "कैस्कारा सैग्रेडा"।

,, कैस्कारी सैग्रेडी लिक्विडम् इन्स्पाइडियम्-[लै० extractum cascaræ sagradæ liquidum inspidium] कैस्कारा सैग्रेडा का स्वादरहित तरल सत्व। दे० "कैस्कारा सैग्रेडा"।

,, कोटो लिक्विडम्-[लै० extractum coto-liquidum] कोटो तरल सत्व। दे० "कोटो कार्टक्स"॥

,, कोनियाई लिक्विडम्-[लै० extrcatum conii liquidum] शौकरान तरल सत्व। दे० "कोनायम्"।

,, कोली लिक्विडम्-[लै० extractum kolæ liquidum] एक तरल सत्व जो कोलावेरा नामक वृक्ष के बीजों से, जिनमें २ से २½ प्रतिशत कैफीन होती है, बनाया जाता है।

नोट—अफ्रीका देश में दो तीन प्रकार के कोला के पेड़ उत्पन्न होते हैं। वहाँ पर इस पेड़ के पत्ते चाय वा क़हवे के स्थान में व्यवहृत होते हैं। इसमें एक प्रकार का चारोद (एलूकलॉइड) पाया जाता है, जो कैफीन जैसा होता है।

,, क्रैमेरी-[लै० extractum krameriae] क्रामेरिया का सत। दे० "क्रैमेरिई रैडिक्स"।

,, गासीपियाई रेडिसिस कार्टिसिस-[लै० extractum gossypii radicis corticis] कार्पासी मूल त्वक् सार। कपास की जड़ की छाल का सत। दे० "कपास"।

,, गासिपियाई रेडिसिस कार्टिसिस लिक्विडम्-[लै० extractum gossypii radicis corticis liquidum] कार्पासी मूल त्वक् तरल सार । कपास की जड़ की छाल का तरल सत्व । दे० "कपास"

एक्सट्रैक्टम् ग्रिण्डेलिई-[ले० extractum grindeliae] ग्रिण्डेलिया का सत दे० "ग्रिण्डेलिया" ।

,, ग्रिण्डेलिई लिक्विडम्-[ले० extractum grindeliae liquidum] ग्रिण्डेलिया तरल सत्व । दे० "ग्रिण्डेलिया" ।

,, ग्लीसिर्रहाइजी-[ले० extractum glycyrrhizae] मुलेठी का सत रुब्बुस्सूस । दे० "मुलेठी" ।

,, ग्लीसिर्रहाइजी लिक्विडम्-[ले० extractum glycyrrhizae liquidum] मुलेठी का तरल सत्व । रुब्बुस्सूस सय्याल । सुरासार घटित यष्टिमधु कृत रसक्रिया । दे० "मुलेठी" ।

,, ग्लीसीर्रहाइजी स्पिरिचुओसम्-[ले० extractum glycyrrhizae spirituosum] अलकोहलीय यष्टिमधु सार । दे० "मुलेठी" ।

,, जन्शियानी-[ले० extractum gentianae] जिन्तियाना सत्व । रुब्बे जिन्तियाना । दे० "जिन्तियाना" ।

,, जैबोरैण्डाई लिक्विडम्-[ले० extractum jaborandi liquidum] जाबोरन्दी सार । दे० "जैबोरैण्डाइ फ़ोलिया"

,, जैलेपी-[ले० extractum jalapae] जलापा सत्व । खुलासहे जलब । दे० "जलापा" ।

,, टैरेक्सेसाई-[ले० extractum taraxaci] अरण्यकासनी मूल सत्व । जंगली कासनी की जड़ का सत । दे० "अरण्यकासनी" ।

,, टैरेक्सेसाई लिक्विडम्-[ले० extractum taraxaci liquidum] अरण्यकासनी की जड़ का तरल सत्व । दे० "अरण्यकासनी" ।

एक्सट्रैक्टम् डल्केमारी लिक्विडम्-[ले० extractum dulcamarae liquidum] काकमाची तरल सत्व । मकोय का द्रव सत । दे० "मकोय" ।

,, डामियानी-[ले० extractum damianae] डामियाने का सत । दे० "डामियाना" ।

,, डामियानी लिक्विडम्-[ले० extractum damianae liuiqdum] डामियाना तरल सत्व । डामियाने का द्रव सत । दे० "डामियाना" ।

,, थाइरॉईडियाई लिक्विडम्-[ले० extractum thyroidei liquidum] चुल्लिका ग्रंथि का तरल सत्व । दे० "चुल्लिका ग्रन्थि" ।

,, न्युसिस वामिसी-[ले० extractum nucis vomicae] कुचिला का सत । दे० "कुचला" ।

,, न्युसिस वामिसी लिक्विडम्-[ले० extractum nucis vomicae liquidum] विषमुष्टि तरल सत्व । विष तिंदुकीय रसक्रिया । दे० "कुचला" ।

,, न्युसिस सिक्कम्-[ले० extractum nucis siccum]

,, पराइरी लिक्विडम्-[ले० extractum pareirae liquidum] परेरा तरल सत्व । दे० "पराइरी रैडिक्स" ।

,, पल्साटिल्ली लिक्विडम्-[ले० extractum pulsatillae liquidum] गुलेलालाका तरल सत्व । खुलासहे शक़ायक़ुन्नुअ्मान सय्याल । दे० "पल्साटिल्ला या गुललाला"

,, पापावेरिस लिक्विडम्-[ले० extractum papaveris liquidum] पोस्ते का तरल सत्व । दे० "पोस्ता" ।

,, पिक्रोर्हाइजी लिक्विडम्-[ले० extractum picrorrhizae liquidum] काली कुटकी का तरल सत । दे० "कुटकी" ।

,, पैन्क्रिएटिस-[ले० extractum pancreatis] क्लोम ग्रंथि सत्व ।

एक्सट्रैक्टम् पैम्पिनोरम् वाइटिस–[लै० extracum pampinorum vitis]

,, फाइसॉष्ट्रिग्मेटिस–[लै० extractum physostigmatis] ख़ुलासहे बाक़लाए कालाबार।

,, फ़िलिसिस् लिक्विडम्–[लै० extractum filicis liquidum] ख़ुलासहे सरख़ूस सय्याल।

,, फेराई पॉमेटाइ–[लै० extractum ferri-pomati] रुब्बे आइन सेबी। यूरोप के कतिपय प्रदेशों में यह ऑफ़िशल है।

मात्रा—३ से १० ग्रेन तक। दे० "लोह"।

,, बर्बेरिडिस–[लै० extractum berberidis] रसांजन। रसवत। उसारहे दारहल्द।

,, बाइनीज–[लै० extractum bynes] दे० "एक्स्ट्रैक्ट माल्टाई"।

,, बेलाडोनी [लै० extractum belladonnae] बेलाडोने का सत। दे० "बेलाडोना"।

,, बेलाडोनी एलकोहलिकम्–[लै० extractum belladonnae alcoholicum] बेलाडाने का मद्यसारीय सत्व। दे० "बेलाडोना"।

,, बेलाडोनी लिक्विडम्–[लै० extractum belladnnae liquidum] बेलाडोने का तरल सत्व। दे० "बेलाडोना"।

,, बेलाडोनी विराइडी–[लै० extractum belladonnae viridae] बेलाडोने का हरित् सत्व। दे० "बेलाडोना"।

,, बेलीलिक्विडम्–[लै० extractum belae liquidum] बिल्व तरल सत्व। दे० "बेल"।

,, माल्टाई–[लै० extractum malti] जौ का सत। माल्टीन। दे० "जौ"।

,, माल्टाई लिक्विडम–[लै० extractum malti liquidum] जौ का तरल सत्व। (Bynin) दे० "जौ"।

एक्सट्रैक्टम् मेनीऐन्थिस–[लै० extractum menyanthis] उसारहे बाक़लाए आहू। दे० "मेनीएन्थीज़"

,, युआनीमाई लिक्विडम्–[लै० extractum euonymi liquidum] सिखी का तरल सत्व। दे० "सिखी"

,, युआनीमाई सिकम्–[लै० extractum euonymi siccum]

,, युकेलिप्टाई गम्माई लिक्विडम्–[लै० extractum eucalypti gummi liquidum] रक्तबोल तरल सत्व। दे० "युकेलिप्टस"।

,, युफार्बीई–[लै० extractum euphorbiae] दुग्धिका सत्व। दे० "दुद्धी"।

,, र्‌हीयाइ– लै० extractum rhei] उसारहे रावंद। रेवंदचीनी का सत। दे० "रेवंद"।

,, लेप्टैण्ड्री–[लै० extractum leptandrae] लेपटैंडरा का सत। दे० "लेप्टैंडरा"।

,, लेप्टैण्ड्री लिक्वडम्–[लै० extractum leptandrae liquidum] लेपटैण्ड्रा का तरल सत्व। दे० "लेप्टैंड्रा"।

,, ल्युप्युलीनाई फ्लुइडम (लिक्विडम्)–[लै० extractum lupulini fluidum] हशीशतुद्दीनार का तरल सत्व।

,, वाइबर्नाई प्रूनीफोलियाई–[लै० extractum viburni prunifolii] श्रीपर्ण सत्व। नरवेल का सत। दे० "अमेरिकीय श्रीपर्ण"।

,, वाइबर्नाई प्रूनीफोलियाई लिक्विडम्–[लै० extractum viburni prunifolii liquidum] अमेरिकीय श्रीपर्ण का तरल सत्व। दे० "अमेरिकीय श्रीपर्ण"।

,, साइप्रिपीडीयाई फ्लुइडम्–[लै० extractum cypripedii fluidum] अमेरिकीय जटामांसी का तरल सत्व। ख़ुलासहे सुम्बुल अमरीकी सय्याल।

श्रीहरिहर औषधालय बरालोकपुर इटावा यू० पी०

के

पुस्तक विभाग का

सूचीपत्र

इसमें

अत्यन्त उपयोगी, नवीन ढंगसे लिखी हुई अनुभव पूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कराई जाती हैं। जिनका प्रत्येकघरमें रहना और आबालस्त्री पुरुष के लिये पढ़ना अत्यावश्यकीय है। इनके कई कई संस्करण होना इनकी उपयोगिता के ज्वलंत प्रमाण हैं मँगाकर देखिये।

नियम

१—एक रुपये से कमकी कोई पुस्तक वी० पी० से नहीं भेजी जाती है। कम की पुस्तकें मंगाने के लिए टिकट भेजें और रजिष्ट्री खच मय पोस्टेज के भेजना चाहिए।

२—जो लोग अपने शहर में हमारी पुस्तकें बेचने की एजेन्सी लेना चाहेंगे तो उन्हें २५)सैकड़ा कमीशन दिया जावेगा।

३—एक रुपया प्रवेश फीस भेजने वाले स्थाई ग्राहक समझे जाते हैं, उन्हें प्रत्येक पुस्तक पौने मूल्य में दी जाती है।

४-ये इतनी उपयोगी पुस्तकें हैं कि कोईघर ऐसा न रहना चाहिये,कि जिसमें यह पुस्तकें नहों, समय पड़ने पर एक बड़े डाक्टर का काम देंगीं, इस कारण जनता ने इन्हें खूब पसंद किया है, एक वर्ष के भीतर ही दुबारा छप चुकी हैं।

५—घर२ में प्रचार करने की हमारी इच्छा है अतः प्रत्येक गांव, कसबा और शहर में हमें अपनी पुस्तकों को बेचने केलिए एजेन्ट चाहिये, जो एजेन्ट होना चाहें पत्र व्यवहार करें।

आयुर्वेदीय उच्चकोटि की सचित्र

पाक्षिक पत्रिका

अनुभूत योगमाला

यह पाक्षिक पत्रिका आज १६वर्षसे आयुर्वेदीय चिकित्सा का चमत्कार दिखाने और हकीम वैद्योंसे निराश रोगियों के रोग का हाल छपा कर भारतीय प्रसिद्ध२ वैद्यराजों की सम्मति लेकर रोग मुक्त करने केलिये प्रगटित होती है। अनुभूतयोग एवं उत्तमोत्तम लेखों के द्वारा थोड़ा पढ़ा लिखा आदमी भी वैद्य बन जाता है, इसी कारण इसने इतने थोड़े समय में ही बहुत ख्याति प्राप्त की है, जो आज तक अन्य आयुर्वेदीय पत्रों ने नहीं प्राप्त कर पाई, इसके विषय में बहुत कुछ कहना अपनी तारीफ करना है, बस एक बारआजमावें अवश्य मंगाकर अवलोकन करें, वार्षिकपेशगी मू० मनीआर्डर से४)वी० पी० मंगाने पर४।=) देना होगा, नमूना मुफ्त मंगा कर देखें।

निवेदक—मैनेजर

१—राजयक्ष्मा

राजयक्ष्मा, (तपेदिक) जीर्णज्वर, क्षय, थाइसिस, कंझपसन् ट्यूबर्क्यूलिनिम् आदि नामों से सभी परिचय रखते हैं। यह कैसे साधारण आहार विहारों की अवहेलना का फल मात्र है। जिसके कारण को हम समझने के लिये अब भी तैयार नहीं होते, कितने दुःख की बात है। विद्वानों का कहना है, कि जितने मनुष्य अन्य समस्त रोगों के कारण मरते हैं। उससे कुछ अधिक मनुष्य इस दुष्ट रोगसे पीड़ित होकर मरते हैं। इसलिये यह निबंध लिखवाने का आर्डर २१ वें ग्वालियर सम्मेलन की स्वागत कारिणी ने किया था। उसपर २० बर्ष के अनुभव पूर्ण खोज से ओत प्रोत वैदिक काल से लेकर अबतक के इतिहास और चिकित्सा से परिपूर्ण इस ग्रन्थ को आयुर्वेदोद्धारक प्रशस्त यशस्वी लेखक विद्वान् वैद्य चिकित्सक चूड़ामणि पं० बिश्वेश्वरदयाल जी वैद्यराज सम्पादक "अनुभूत योगमाला" ने लिखा था। जो समस्त आगत निवन्धों में से प्रथम श्रेणी का चुना गया और इस पर एक स्वर्णपदक दिया गया इसीलिये यह लागत मात्र मू० ।) में दिया जाता है।

नि० भा० १२ वें वैद्यसम्मेलन बीकानेर के लिये लिखीगई

२—यकृत प्लीहा के रोग

यह पुस्तक भी अपने ढंग की अपूर्व वस्तु है, यकृत प्लीहा क्या वस्तु है। इसका स्थान कहां है। किन किन कारणोंसे बढ़कर कौन २ रोग पैदा होतेहैं उसकी क्या चिकित्साएँ हैं। यूनानी, ऐलोपैथी आयुर्वेदीय निदानों का मतभेद कर मार्मिक तुलनात्मक विवेचन जो आजतक अन्यत्र कहीं भी देखनेको न मिलेगा वह इसी में मिलेगा, पुस्तक पढ़ने पर आप लेखकके लिये वाह वाह किये विना नहीं रह सकते। अवश्यमेव प्रत्येकको देखकर लाभ उठाना चाहिये। गृहस्थों के सिवा वैद्योंके बड़े काम की वस्तु है। मू० केवल ।)

नि० भा० वैद्य सम्मेलन पटना के रौप्य पदक प्राप्त

३—मधुमेह

मधुमेह (डायाबटीज) का विस्तृत और खोज पूर्ण विवेचन वैद्य संसार के प्रसिद्ध स्वर्गीय पं० परशुरामजी शास्त्री की अद्भुत और ज्ञातव्य विषयों से ओतप्रोत निबन्ध है। वैद्यजन इसके कारणों से कितने अनभिज्ञ हैं। इसी कारण से वह इसकी चिकित्सामें सफल नहीं होते, यह समझाते हुये लाक्षणिक चिकित्सा का कैसा सुन्दर चित्रण किया है। जिसे देखते ही लेखक के लिये अपने आप ही वाह वाह कह उठेंगे पुस्तक प्रत्येक वैद्य के देखने योग्य है। मू० ॥)

४—स्नानचिकित्सा

पुस्तक क्या है? गागर में सागर की कहावत को लेखक ने चरितार्थ कर दिया है।

जरा पुस्तककी सूची पर तो ध्यान दीजिये इसमें पांचभौतिक चिकित्सा, जलस्नान, मृतस्नान, वायुस्नान ज्योतिस्नान, चन्द्रस्नान, सूर्यस्नान, अर्थात् समस्त स्नानों द्वारा शिर की चोटी से पैर की एड़ी तक के समस्त रोगों पर ऐसे २ सरल और अनुभूत उपाय स्नानों द्वारा लिखे गये हैं कि जिसे पढ़कर साधारण व्यक्ति भी लाभ उठा सकता है। साल में सैकड़ों हजारों रुपये वैद्यों हकीम और डाक्टरों आदि की जेबों में चले जाते हैं। यदि इससे बचकर स्वयं घर बैठे लाभ और ख्याति पैदा करना चाहते हों तो आज ही मंगवाइये मू० ।=) आना

५—प्लीहा रोग चिकित्सा

यह पुस्तक अपने ढंग की बड़ी ही अनोखी है यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह कितना भयंकर और दुखदाई रोग है इसका अनुभव उन्हीं को होगा जो इस दुष्ट रोग के निन्यानवे के चक्कर में जीते जी नरक यातना का दुःख भोग कर रहे हैं इसः पुस्तक में ऐसे २ सिद्ध प्रयोग लिखेगये हैं। जो सैकड़ों बार के अनुभूत हैं। पुस्तक का मूल्य केवल ।) ही है।

६—श्वास रोग चिकित्सा

लोग कहते हैं कि दमा दम के साथ जाता है, यह उनकी बड़ी भूल है। वर्तमान समय में यह दुष्ट रोग ऐसा फैल रहा है कि दातों तले अँगुली दबानी पड़ती है। इस पुस्तक में श्वास (दमा) के सम्पूर्ण लक्षण तथा उनके रूप आदि सविस्तार से वर्णन हैं, प्रयोग ऐसे ऐसे उत्तम दिये गये हैं जो कि सेन्ट परसेन्ट हैं, जिनको हर एक आसानी से बना सकता। ऐसी अनोखी पुस्तक की कीमत केवल ।) मात्र है।

७—अर्श रोग चिकित्सा

अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। इसमें बवासीर रोग की उत्पत्ति मय कारणोंके एवं निदान समेत भली भांति सरल भाषामें दर्शाई गईहै प्रयोग बड़े ही उत्तम हैं मू० केवल ।।)

८—स्त्री रोग चिकित्सा

स्त्री जाति कितनी कोमल पुष्प है, यदि इसमें असमय ही में तुषार पड़जाय तो इसमेंकिसका दोष है। इस पुस्तक में स्त्रियों के रोग कैसे दूर हो सकते हैं। श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, मासिकधर्म आदिकी पूर्ण खराबियोंका सम्पूर्ण विधान तथा चिकित्सा वर्णित हैं, हम चाहते हैं कि यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके हाथमें हो ताकि वह अपना जीवन आनन्दमय बना सकें। पुस्तक का मू० भी केवल ।।) ही है।

९—व्रणोपचार पद्धति

इस पुस्तक में समस्त प्रकार के घावों का इलाज है।जैसे विद्रधि,जहरवाद, नहरुवा, अग्निसे जलना चोट लगने का घाव,गलगड, गंडमाला भगंदर, ग्रन्थि, अर्बुद, पामारोग आदि आदि रोगों की सरल चिकित्सा लिखी है। पुस्तक का द्वितीय संस्करण छप गया है। मू० केवल ।=) है।

१०—सिद्धौषधिप्रकाश

आर्डरों की भरमार ? सारी प्रतियां समाप्त हो चलीं हैं। इसीलिये तो कहते हैंकि आज ही एक कार्ड डालकर मँगा लीजिये। इस पुस्तक में सर से लेकर पैरतक के सम्पूर्ण रोगों के कारण निदान तथा उनको चिकित्सा बड़े सरल ढंग के साथ सुलझाई गई है। पुस्तक में सैकड़ों प्रयोग हैं जो अनुभूत योग हैं। ऐसी पुस्तक का मूल्य केवल १।।) मात्र है।

११—वैद्यकशब्दकोष

अकारादि क्रम से संस्कृत औषधियोंके नाम हिन्दी भाषामें लिखे गये हैं। पुस्तक बड़ीही अच्छी और उपयोगी है।प्रत्येक वैद्यके पास रहनी चाहिये। मू० केवल ।)

१२—हरिधारित ग्रंथरत्न

पुस्तक क्या है गागर में सागर वाली कहावत को लेखक ने चरितार्थ कर दिया है। सम्पूर्ण रोगों की बड़ी अच्छी विवेचना की गई है। सुन्दर भाषा टीका में वर्णित है। मू० केवल ।=)

१३—भारतीय रसायनशास्त्र

इस पुस्तक में सोना चांदी आदि २ बनाने की अपने शास्त्रों में प्रतिपादित सभी विधियों का संग्रह है। प्रत्येक वैद्य को इससे अवश्य ही लाभ उठाना चाहिये। पुस्तक बड़ी ही अच्छी है मू० ।।)

१४—औषधि-विज्ञान

यह पुस्तक आयुर्वेद के विद्यार्थियों एवं वैद्यों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इस पुस्तक में औषधि निर्माण संबन्धी प्रक्रियायें चिकित्सा संबंधी प्रक्रियायें औषधियों के भिन्न २ वर्ग और उनके गुण धर्म प्रभाव इत्यादि एवं दीपक रेचक ग्राही शीत तथा पित्त हर द्रव्यों का पूरा पूरा स्पष्ट दिग्दर्शन कराया गया है। अमुक रोग में अमुक औषधि एवं उसका पूरा २ विधान आदि सविस्तार से वर्णन है। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मू० १)

१५-१६—औषधि गुणधर्म विवेचन

इस पुस्तक की उपादेयता के विषय में .हना ही वृथा है। इस पुस्तक में समस्त धातुज औषधियों के विषय में लेखक ने भली भांति दर्शाया है, किआजकल प्राय:सभी वैद्यजन अंध परम्पराछन्नहो चिकित्सां कर रहे हैं। रोगों के कारणों का पता तथा उनकी उत्पत्ति कहां २ और कौन २ से बिगाड़ होने से वह वेदना पैदा हुई तथा अमुक स्थान की विकृति किस दवा से ठीक होगी आदि २ सुन्दर सरल भाषा में वर्णन है। इसका प्रत्येक वैद्यके पास रहना नितान्त आवश्यक है। मू० प्रथम भाग ।।) द्वितीय भाग का ।≈) है।

१७—चिकित्सक व्यवहारविज्ञान

प्रायः ऐसा देखा गया है कि बड़े बड़े सुयोग्य वैद्य भी चिकित्सा सम्बन्धी व्यवहार न जानने के कारण रोगी को जीवनलीला से विदा करवाने के कलंक के भागी होते हैं। इसी कारण हमने सर्व साधारण के लाभार्थ इसे प्रकाशित किया है। वैद्य बन्धुओं को इससे लाभ उठाना चाहिये। मू० केवल ।) मात्र

१८-१९—पेटेंट औषधें और भारतवर्ष

(प्रथम भाग व द्वितीय भाग)

पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है कि पुस्तक कैसी है प्रथम भाग तथा द्वितीय भाग में भारतवर्ष की सभी पेटेन्ट औषधियों का भंडाफोड़ किया गया है, रोगन बिजली, अमृतांजन, नमक सुलेमानी, अपूर्व ताक़त की दवा, बालामृत आदि २ सभी प्रसिद्ध २ पेटेन्ट औषधियों के बनाने की विधियां समझाई गई हैं। पेटेन्ट कर्ता एक आने की चीज़ के १) लेते हैं और मनमाना दाम ऐंठकर लखपती हो गए। यदि आप भी लाभ उठाना चाहते हैं तो आज ही एक कार्ड डाल कर मँगा देखिये। मू० प्रथम भाग का ।।) द्वितीय भाग का मू० १) है।

२०—अंड तथा अन्त्रबृद्धि चिकित्सा

प्रस्तुत पुस्तक का विषय नाम से ही प्रकट है और सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि इस रोग के रोगियों का जीवन कितना नीरस और फीका मालूम होता है। यही सोच कर यह पुस्तक प्रकाशित की गई है। पुस्तक में सविस्तार रोगों का पूर्ण हाल तथा मय निदान के चिकित्सा लिखी गई है। मू० ।।) मात्र

२१-२२=सिद्ध प्रयोग(दो भाग)

ग्राहकों एवं अनुग्राहकों की उत्कट अभिलाषा एवं पत्र पर पत्र आने के कारण इस पुस्तक में वही शतशोऽनुभूत प्रयोग प्रकाशित किये गये हैं जो 'माला' में निकले थे जिनकी परीक्षा हो चुकी थी श्लोक वद्ध मणियों के रूप में भाषा टीका सहित की गई है। बहुत थोड़ी प्रतियां शेष हैं मू० प्रथम भाग का १) द्वितीय भाग का ।।) मात्र है।

२३=विन्ध्यमहात्म्य

इसमें विंध्यवासिनी देवी की उत्पत्ति; महिमा, कार्य कुलशता, साक्षात, दर्शन के उपाय विन्ध्यक्षेत्र की उत्कृष्ठता, महापापों के नाश के उपाय आदि २ सुन्दर भाषा टीका में वर्णित हैं। पुस्तक देखते ही बनती है। मू० ३३६ पृष्ठ के पोथे का केवल १।।) मात्र

२४—कोकशास्त्र

यह पुस्तक प्राचीन हस्त लिखित पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। इसकी सानी का आज तक कोई भी कोकसार नहीं निकला इसमें ८४ आसन, स्त्री वशीकरण, स्तम्भन, इन्द्री वर्द्धक, योनि संकोचन एवं मंत्र तंत्र लिखे गये हैं प्रयोग अनुभूत लिखे गये हैं। पुस्तक की लेखनशैली बड़ी ही रोचक है। मू० लागत मात्र ।।)

२५, २६—शिफाउल अमराज़

इस पुस्तक में यूनानी साहित्य का सारानिचोड़ भर दिया गया है। यूनानियों ने हमारे साहित्य का निचोड़ लेकर अपनी भाषामें भरकर अपने साहित्य को सर्वाङ्ग पूर्ण बना लिया और अपना यह दोष (कि हमने किसीके यहां से कुछ लिया या नहीं), मिटाने के लिये जिन जिन ग्रन्थों से विषय लिया था उनका नामोनिशान सदा के लिये मिटा दिया, ऐसी दशा में अब जरूरत है कि हम अपना साहित्य पूर्ण कर सर्वज्ञ बने तो इधर उधर की साहित्य से संग्रह करना पड़ेगा, जब आप इसको एकबार पढ़ेंगे तो आपको आश्चर्य होगा कि, हम वास्तविक भूल से अन्य साहित्य का देखना पाप समझते थे। इससे हमें बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त हो सकती है, आयुर्वेद के मर्मज्ञ बनने की इच्छा हो तो इस ग्रंथ का अध्ययन अनिवार्य होगा, आप निदान और लाजवाब योगों को देख बाग २ हो उठेंगे। मू॰ प्रथम भाग का १)द्वितीय भाग का१॥)

२७—दीर्घजीवन

'माला' सम्पादक द्वारा लिखित, हजारों प्रशंसा पत्र प्राप्त, अपने ढंग की निराली पुस्तक है। गृहस्थ जीवन की ऐसी पुस्तक आज तक नहीं निकली प्रातः से सायं तक के कर्तव्य वर्णित हैं। १०१ विषयों का समावेश किया गया है। मू॰ ।।)

२८—कर्तव्य शिक्षण

(हिन्दू लॉ)

राजा-प्रजा, पति-पत्नी, भाई-बहिन, स्वामी सेवक, माता-पिता का पुत्र के प्रति तथा पुत्र का माता पिता के प्रति कर्तव्यों का विशद् वर्णन है। अपने २ कर्तव्यों का पालन करनेमें कैसे सुखशांति प्राप्त हो सकती है, इस समय क्रांति क्यों मची है कैसे दूर की जा सकती है, पढ़कर शांति स्थापन करने में सहायक बनिये और स्वतः शांति स्थापित कीजिये,अपने विषयकी पहिली पुस्तक है जो प्रत्येक मनुष्य कहलाने वाले के लिए पठनीय है। म॰ ।।)

२९—सरलरोगविज्ञान

निदान जसे उपयोगी विषय को सर्वाङ्गपूर्ण सरलता से समझाने वाली अपूर्व पुस्तक है। यूनानी, आंग्ल और आयुर्वेदीय सभी पद्धतियों को एक-साथ मिलाकर ऐसा उपयोगी बना दियां गया है कि साधारण से साधारण की समझ में निदान आ जाय और कोई नवीन रोग शेष न रहे कि जिसका निदान इसमें न हो। पुस्तक प्रत्येक वैद्य एवं आयुर्वेद प्रेमी के देखने योग्य है कोष साइज के ४५० पृष्ठ की पुस्तक का दाम ३) मात्र है।

३०—एक दिन में ज्योतिषी

प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का हाल जानने के लिये उत्सुक रहता है। बड़ी खोज के साथ ज्योतिष शास्त्र का सार लेकर उदाहरण के रूप में समझाया गया है ताकि सभी साधारण जन लाभ उठा सके। प्रत्येक के लिये बड़ी उपयोगी पुस्तक है। मू॰ ।।) आना।

३१—एक दिन में कवी

प्रत्येक जन कविता करने की इच्छा करता है कौन छंद कितने अक्षरों से कितने गुरु लघु से बनता है इसमें नक़शा द्वारा बताया गया है। देखते ही छन्द बनाना आजाता है। मूल्य केवल ।) मात्र है।

३२—आयुर्वेदीय विश्वकोष

प्रथम भाग

निघण्टु विषय का सबसे अधिक बिस्तृतनवीन और प्राचीन सभी यूनानी आंग्ल आयुर्वेदीय खोजों से पूर्ण ग्रन्थ है संसार में एकदम नवीन और बहुत उपयोगी है। ऐसा ग्रन्थ न अबतक था और न होगा ६२० पृष्ट के ग्रन्थ का दाम सजिल्द ६) अजिल्द ५।) रु॰ शब्द संख्या १०२५० सहित।

३३—आयुर्वेदीय विश्वकोष

दूसरा भाग

अ से एक्सटेूक्ट तक

१०६९३ शब्दों की व्याख्या सहित ६०४ पृष्ठके विशाल काय ग्रन्थ का दाम ६।) अजिल्द ५॥) रु०।

शीघ्र ही प्रकाशित होंगी

औषधि विज्ञान दूसरा भाग

मखजन उल मुफर्दात

करावादीन कादरी

माला के विशेषाङ्क

क्षयांक

दैव का महान कोप! आश्चर्य!! भारत की गरीबी के साथ २ क्षयी तपेदिक भी बिना लगाम के घोड़े की तरह सरपट दौड़ रहा है। इसमें उसकी सभी निदान और चिकित्सा दर्शाई गई है। मू० ॥)

वाजीकरणांङ्क

अहा क्या? यही कि वाजीकरण पढ़िये जानते हैं. इसमें क्या है वही कोका प्रणीत कोकशास्त्र आदि के बताये रति रहस्यका सुन्दर विशद वर्णन जिसका जानना जरूरी है। इसलिये कि इसमें अनुभूत तथा चिकित्सा आदि भी सम्लित हैं। मू० १) मात्र।

ग्रहणी अंक

यह बताना बिल्कुल ही आवश्यक है कि इसमें क्यां है। जब देखो तब लोटा लिये पाखाने पर बैठे हैं। क्या बुरा मालूम होता है। अजीब किस्म की दिन भर कसरत करनी पड़ती है। जो इसके १७॥ के फेर में पड़ा, बस उसका मरण होता है। इस अंक में शतसोनुभूत प्रयोग और उपचार आदि सभी वर्णन किये गये हैं। बहुत थोड़ी प्रतियां शेष हैं, शीघ्रता कीजिये। मू० ॥)

आंत्ररोगांक

आंत्र सम्बन्धी सम्पूर्ण रोगों का वर्णन साथ ही उनके नाम और चिकित्सा सम्यक् प्रकार से वर्णित है। २५० पृष्ठ के अंक का दाम १)

धात्वांक

धातु सम्बन्धी सारे विकारों का विशद् रूप से विश्लेषण है। उनका मारण, शोधन आदि सुन्दर तथा मुहावरेदार हिन्दी में वर्णित है। आज ही एक कार्ड डाल दीजिये नहीं तो "चिड़ियां चुग गई खेत पुनि का पछताने होत है"। मू० १)

उपदंशांक

नवयुवकोंकी असंमयशीलता तथा असावधानी का इतना भीषण परिणाम निकला है। कि आज घर २ इसका प्रचार हो गया है, उसीके नाश करने के सुगम उपाय एवम् चिकित्सा इसमें वर्णित है। हम चाहते हैं कि इस अंक का प्रचार घर २ हो। की० १)

नव्यरोगांक (दो भाग)

भारतवर्ष में कौन २ नवीन रोगों ने आकर अपना आतंक जमाया है और जिनका प्रवेश आयुर्वेद में नहीं है। इस कारण निदान एवं चिकित्सा में वैद्यों को विमुख होना पड़ता है। इसलिये वैद्यों के उपकारार्थ बड़ी खोज के साथ इसको प्रकाशित किया है। इसको मंगाकर अवश्य देखें। कीमत प्रथम भाग का १) द्वितीय भाग ॥) है।

वृक्कामयांक

गुर्दे में कौन २ रोग किस २ प्रकार से होते हैं। और क्या चिकित्सा है। यह विषय प्रायः वैद्यों से छिपा हुआ सा रहा है। इच्छुक वैद्योंको इस अंकका अध्ययन करना चाहिये, इस अंक में बहुत से वैद्यों की सम्मतियां हैं। मू० ॥)

यकृदंक

कलेजे में खराबी होने से क्या २ रोग किस २ प्रकार से होते हैं, साथ ही रोगों को स्वस्थ्य करने के लिये किस प्रकार चिकित्सा करनी चाहिये। यदि इस विषयमें दक्ष होना चाहते हैं तो इसको अवश्य मंगाकर देखें। मू० ॥)

सन्निपातांक

निदान स्थान में वर्णित है कि जिस वैद्य ने सन्निपात ग्रस्त रोगी को स्वस्थ्य कर दिया वह कौन से पुन्य का भागी नहीं। आजकल वैद्यगण इस रोग में प्रायः कम सफल होते हैं। यह अंक भारत के प्रसिद्ध २ वैद्यराजों की अनुभवी चिकित्सा के द्वारा आविष्कृत किया गया है। निदान और चिकित्सा का अत्युत्तम समावेश किया गया है। भारत आश्रयीभूत वैद्यों से हमें पूर्ण आशा है कि इस अंक का आश्रय लेकर अवश्यमेव दुःखियों का दुःख दूर करनेमें दत्तचित्त होकर यशको प्राप्त करेंगे। मू० ॥)

प्रमेहांक

घुन लगा हुआ है, भारतके दुर्विपाकसे नवयुवकोंके शरीर में। अब न कहना कि इसकी कोई दवा नहीं, पढ़िये और दौलत की रक्षा कीजिये। की० ॥)

कुष्टांक

यह नाम भी घृणित! यह वह मर्ज है जो मसीह अच्छा नहीं करसकता, लेकिन आज झूठा होगया, पढ़िये साथ २ सौन्दर्य की रक्षा कीजिये। मू० ॥)

शिरोरोगांक

शीशी, आधी शीशी सर्व प्रकार के शिरोरोगों की चिकित्सा का कारण निदानादि वर्णित है। सुन्दर सरस सचित्र मू० ॥)

वातव्याधांक

वे बैठे थे, वे लेटे थे और वे-वे उस दिन मदनोद्यान में विचरण कर रहे थे और रो रहे थे इसीलिये हमने दौलत का खून करना विचारा है। वात रोगों के समस्त उपचार इसमें है। मू० ॥)

सूजाकांक

वे छटपटा उठते, तिलमिला उठते हैं, और जीते जी उनके प्राण गले में अटक जाते हैं। जो इस व्याधि के कराल गाल में फंसे हैं। मू० ॥) पढ़कर रक्षा कीजिये।

स्नायुरोगाङ्क

शरीर में स्नायु क्या है इनके प्रतिघात से क्या क्या रोग होते है वह कैसे दूर किये जा सकते हैं। वैद्यों एवं ग्रहस्थियों के लिये खास जानने का विषय हैमू० २) रु०।

वस्तिरोगांक पूर्वार्ध व उत्तरार्ध

यह अंक अपने ढंग का निराला है, इसमें वस्ति में होने वाले सम्पूर्ण रोग साथ ही संक्षिप्त परीक्षा विधि जैसे वस्तिशोथ, वस्तिव्रण, वस्तिकंडू, मूत्र संचय, वस्तिशूल, वस्ति टल जाना, वस्ति का आध्मान, वस्ति अश्मरी, मूत्रप्रदाह, मूत्रस्तम्भ, मूत्र कृच्छ्र, बेखबरी में मूत्र त्याग, मंडमूत्र, मूत्ररक्त, वस्ति अश्मरी, वस्तिदर्द, बहुमूत्र इत्यादि चिकित्सा विधि पूर्वक लिखीगई है। मू० पूर्वार्ध १) उत्तरार्ध १)

हृदय रोगांक

हृदय संबन्धी समस्त रोगों के निदान मय लक्षण और सुन्दर २ रंगीन के चित्रों सहित समझाया गया है। अंक बड़ा ही मनोहर है। आजतक ऐसा सुन्दर और वृहत् विशेषांक नहीं निकला। मू० २)

फुफ्फुस-रोगांक

विशेषांक क्या है, अपने ढंग का निराला निकला है। फुफ्फुस संबन्धी सभी विषयों का पूर्ण विवेचन मय निदान के किया गया है। साथ ही फेफड़े के एक्सरे द्वारा लिये गये चित्र भी प्रकाशित हैं मू० २)

अनुभूत योगमाला की फाइलै

सन् १६२४	२)
सन् १६२६	४)
सन् १६३०	४)
सन् १६३१	४)
सन् १६३२	४)
सन् १६३४	४)
सन् १६३५	४)
सन् १६३६	४)

जो महाशय एक साथ सन् १६२४ से १६३६ ई० तक की फायलें खरीदेंगे उसको सिर्फ २३) में दी जावेंगी। प्रत्येक फाइलमें उस वर्षके विशेषांक भी होंगे पिछली फाइलें समाप्त होने वाली हैं। अतः मंगाने में शीघ्रता करनी चाहिये।

नपुंसकता और नामर्दी का

अव्यर्थ इलाज

लगातार कई बर्षोंकी महान कोशिशके बाद ईश कृपासे मिल ही गया

हब्ब अम्बर

वाजीलगाकर प्रथम दिनही चमत्कार दिखा विश्वास दिलाने वाली यह जादू असर दवा है। यह किसी महात्मा या साधू प्रदत्त नहीं न हमारी ही कल्पित है। यह विलास प्रिय मुगल राजाओं एवं नवाबों की इच्छानुसार उनके हकीमों द्वारा की गई, बिचित्र ईजाद है जो उन्हीं की पुस्तकों से प्राप्त हुई और अनुभव में लाई गई है। इसके जादू असर को देख हमें बिवश हो संसार के सामने अपने निराश भाइयों को विज्ञापनी लुटेरों के लुटते देख आना पड़ा है। और कहना पड़ता है। कि जाल में न फंसकर सीधे साधे इसका प्रयोग कीजिये कोई कारण नहीं कि आपको लाभ न हो नामर्दी चाहे वहुमैथुन जनित हो या बुढ़ापे के कारण इन्द्री बिषय प्रबृत्ति के थोड़े समय बाद ही शिथिल हो जातीहो इसका व्यवहार प्रथमदिनहीं यथेष्ट शक्ति दिखा विश्वास करा देगी। कि इस मर्ज की यह अमोघ दवा है। मू० १ [illegible] का १०) पोष्ट व्यय अलग।

पारदीय तिला

बिना किसी प्रकार की तकलीफ के नसों में संचित बुरे मादे को निकाल देता है। औ इन्द्री को सीधा सख्त बना देता है इसकी ताक को देखकर हैरान होना पड़ता है एक बार अज माइये। आनन्द और लज्जत आपको अभूतपू प्राप्त होगी मू० २) तोला।

चन्द्रोदय बटी

षड्गुण बलिजारित मकरध्वज, स्वर्ण कस्तूरी आदि बहुमूल्य पदार्थों के योग से ब हुई आयुर्वेदीय औषधि है इसका सेवन अस में आने वाले बुढ़ापे को रोकता है। य हृदय, को ताकत देता है २१ दिन के सेव कामान्ध बना देता है। बुढ़ापे की शिथिलत लिये वे जोड़ और स्थाई असर रखने वा वस्तु है। वैद्यों एवं रोगियों को लाभ, यश, ए धन देने वाली है। मू० १०) तोला।

आयुर्वेदीय समस्त दवाइयों को बड़े भारी परिमाण में बना संसार से सस्ते मूल्य में देने के लिये यू॰ पी॰ का सबसे बृहत् औषधालय है। जिसे स्वर्ण मेडिल रौप्य पदक एवं सैकड़ों प्रशंसा पत्र औषधियों की उत्तमता पर मिल चुके हैं।

मिलने का पता—

श्री हरिहर औषधालय, बरालोकपुर—इटावा यू॰ पी॰

4165

State